भूमिका

महाशय पाठक पाठिका गणोंको विदित हो कि यह ग्रन्थ "वन्ध्याकल्पद्रुम" हमने स्त्री जातिके उपकारके निमित्त ही लिखा है इसमें हमने अपना स्वार्थ कुछ भी नहीं रखा है। चार साल पर्य्यन्त ११४ घंटा समय निरन्तर इस ग्रन्थके लिखनेमें व्यतीत किया है। इसका कारण यह कि अभीतक जितने ग्रन्थ स्त्रीचिकित्साके मुद्रित हुए हैं वे खंड ग्रन्थ हैं, जैसा कि स्त्री देहतत्त्व वन्ध्याचिकित्सा स्त्रीचिकित्सा और भी कितने ही ग्रन्थ मुद्रित हुए हैं। परन्तु इनमेंसे एक भी ग्रन्थ ऐसा नहीं है कि जिसमें स्त्री जातिके गुह्यावयवमें उत्पन्न हुए रोगोंका निदान और चिकित्सा पूर्णरूपसे हो कि जिससे स्त्रीजातिको पूर्ण लाभ पहुंचे। आयुर्वेद वैद्यकके प्राचीन ग्रन्थ चरक सुश्रुत आदिमें गुह्यावयवके बीस रोगोंका निदान तथा चिकित्सा सामान्यरीतिसे लिखी है, इसका कारण यही प्रतीत होता है कि वे लोग संसारत्यागी विरक्त और स्त्रियोंसे उदासीन रहते थे, इसी कारणसे स्त्रीजातिके गुह्यावयवकी व्याधियोंका निदान तथा शारीरककी ओर विशेष लक्ष्य नहीं दिया है। वैद्यककी अपेक्षा यूनानीवालोंने कुछ विशेष लक्ष्य दिया है। शारीरक, निदान, तथा चिकित्सा भी कुछ विस्तारसे वर्णन की है। हकीमोंकी अपेक्षा यूरोपियन डाक्टरोंने स्त्रीजातिके गुह्यस्थानमें होनेवाले रोग, शारीरक निदान तथा चिकित्सा पूर्णरूपसे वर्णन की है। जो व्याधियां स्त्रियोंको वन्ध्या बना स्त्रीपन नष्ट करदेती हैं उन सबका विवेचन इस ग्रन्थमें मिलेगा और जो चिकित्सा प्रक्रिया प्रत्येक व्याधिके ऊपर इसमें लिखी गई है उसका अनुभव १९ साल पर्य्यन्त हमने तीनों प्रकारकी चिकित्सा प्रणालीसे किया है। जिन २ स्त्रियोंका उपचार किया है उनमेंसे फी सैकडा सत्तर अस्सी स्त्रियोंको सन्तानरूपी फलकी प्राप्ति हुई है। संसाररूपी प्रवाहमें सन्तान सर्वोपरि श्रेष्ठ वस्तु है, रोग रहित तन्दुरुस्त स्त्री पुरुषोंके समागमका प्रजारूपी फल व स्त्रीपुरुषका प्रजारूपी पुनर्जन्म है। जिस स्त्रीके सन्तान नहीं होती तो उसको प्रायः स्त्रियां वन्ध्या कहा करती हैं, स्त्रीके ऊपर वन्ध्या दोष लगनेसे यह दोष उसके पुरुषके ऊपर भी आरोपण होता है। लेकिन स्त्रीका पति चाहे षण्डदोष युक्त ही होय परन्तु यह दोष विशेष करके स्त्रीपर ही लोग संघाटित करते हैं। वन्ध्यादोष कुछ रोग नहीं है, क्योंकि जो स्त्रियां देखनेमें अच्छी हृष्टपुष्ट मोटी ताजी हैं परन्तु उनके सन्तान उत्पन्न नहीं होती, इसका कारण यही है कि उनको जाहिरमें कोई ऐसी व्याधि नहीं है कि जिसके कारणसे चारपाईमें पडी रहें। केवल किसी शारीरक कारणसे गर्भ रहने और सन्तानोत्पत्ति होनेमें रुकावट पड जाती

है। वह रुकावट है तो स्त्रीके प्रजोत्पत्ति अङ्गमें, परन्तु मूर्ख स्त्री पुरुष उसको न जानकर कर्म और ईश्वरपर दोष आरोपण करते हैं, इसी कारणसे इस पुस्तकको लिखनेका हमने संकल्प किया था सो हम तो अपना फर्ज अदा कर चुके अब इससे लाभ उठानेका काम आर्य्य स्त्री पुरुषोंका है। हम सभ्यताके अभिमानी आर्य्य सज्जनोंसे निवेदन करते हैं कि इस पुस्तकको कन्या पाठशालाओंकी पाठ्य पुस्तकोंमें स्थान देवें और अपनी सद्गृहिणी, भगिनी तथा कन्याओंको वितीर्ण करें। वन्ध्या दोषमें ऊपर लिखेहुए भ्रमजालमें जो मूर्ख स्त्रियां अपना स्त्रीपन नष्ट करती हैं उनको इस पुस्तकके अनुसार यथार्थ कारणको दर्शाकर सत्मार्ग पर लावें और सन्तानकी उत्पत्तिमें मुख्य दोही कारण हैं आरोग्य शुद्धक्षेत्र और शुद्धवीर्य्यसे सन्तानरूपी फल प्राप्त होता है। सो मूर्ख स्त्रियोंको समझा उनका उपाय करें, क्योंकि इस पुस्तकमें स्त्री जातिके बाह्य और गुह्या-वयवमें होनेवाली कोई भी ऐसी व्याधि नहीं है जिसका वर्णन न किया हो जिन व्याधियोंका नाम निशान भी वैद्य नहीं जानते उन सबका विस्तारपूर्वक निदान लक्षण और चिकित्साका वर्णन है। सन्तान उत्पत्तिमें बाधक नव दोष स्त्रीमें और एक दोष पुरुषमें है सो जो दोष सन्तान पक्षकी हानिका पुरुषमें है उसका भी उपाय इस पुस्तकमें विस्तारपूर्वक लिखा गया है। इस पुस्तकके १६ अध्याय हैं इनमेंसे १४ अध्यायमें स्त्रीजातिकी चिकित्साका वर्णन है, एक अध्यायमें पुरुषार्थहीन पुरुषोंकी चिकित्सा है, सोलहवें अध्यायमें बालकोंके समस्त रोगोंकी चिकित्सा है। उसका विवरण सूचीपत्रमें देखिये। प्रथम अध्यायमें यूनानीतिब्बसे तथा डाक्टरीसे और सूक्ष्मरूपमें वैद्यकसे स्त्री जातिके गुह्यावयवका शारीरक गर्भाशयकी आकृति दिखलाई गई है व चिकित्सक रोगावस्था तथा गर्भ रहनेकी रुकावटका उत्तम रीतिसे निदान कर सके। दूसरे अध्यायमें आयुर्वेदसे योनि व्याप्य २० प्रकारकी व्याधियोंका निदान तथा उनके लक्षण और चिकित्साका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। तीसरे अध्यायमें यूनानी तिब्बसे वन्ध्यत्वके लक्षण तथा चिकित्साका वर्णन है। चौथे अध्यायमें आयु-र्वेदसे सन्तानोत्पत्तिकी हानि तथा वातादि दोषोंसे दूषित शुक्रके लक्षण तथा दूषित शुक्रके साध्याऽसाध्यका विचार आर्त्तव शोणितका प्रतिपादन शुक्र दोषकी चिकित्सा, आर्त्तव दोषके लक्षण तथा चिकित्सा शुद्ध शुक्र और शुद्धार्त्तवके लक्षण नूतन वैद्यकसे नव दोष वीर्य्य दूषित होनेके कारण शुक्रदोष शमनार्थ चिकित्सा, बलवतीके लक्षण तथा वीर्य्योपघात बलवतीके लक्षण ध्वजभङ्गके लक्षण जरासंभव तथा क्षयज बल-वतीके लक्षण, तथा असाध्य बलवतीके लक्षण और क्लैब्य बीजोपघात, ध्वजभङ्ग, जरासंभवादि क्लैब्योंकी चिकित्सा विस्तारपूर्वक वर्णन है। पांचवें अध्यायमें स्त्री जातिके प्रदर रोगका निदान लक्षण, प्रदर रोगवाली दुश्चिकित्स्य स्त्रीके लक्षण, विशुद्ध ऋतुके

लक्षण, प्रदरकी चिकित्साका अनुक्रम, यूनानी तिब्बसे प्रदरके लक्षण चिकित्सा डाक्टरीसे प्रदर रोगके लक्षण, अत्यार्त्तव (मेनोरेजया) का निदान तथा चिकित्सा, आयुर्वेदसे स्त्रीके सोम रोगके लक्षण तथा चिकित्सा, यूनानी तिब्बसे जयावीतस (सोमरोगका) निदान तथा चिकित्सा, डाक्टरीसे सोम रोगके लक्षण तथा चिकित्साका वर्णन किया है। छठे अध्यायमें प्रजोत्पत्ति कर्म अवयवका संकोच (रतकके क्षलण) तथा चिकित्सा, डाक्टरीसे प्रजोत्पत्ति कर्म अवयवका संकोच तथा चिकित्सा, गर्भाशयकी आकृति और गर्भाशयके सम्बन्धकी चिकित्सामें काम आनेवाले विविध प्रकारके यन्त्र शस्त्रोंकी आकृति स्त्रीके गुह्यावयवकी परीक्षा प्रणाली कमलमुखको विस्तृत करनेवाले यन्त्र प्रजोत्पत्ति कर्म अवयवकी अपूर्णता, फलवाहिनी शिराकी अपूर्णता, गुह्येन्द्रिय मार्गका अभाव व संकीर्णता, अपूर्णताकी चिकित्सा, यन्त्रोंको काममें लानेकी प्रक्रिया गर्भाशयमें शलाका तथा टेंट आदि यन्त्रोंको काममें लेनेकी प्रक्रिया तथा विधि कमलमुखको प्रफुल्लित करनेकी प्रक्रिया तथा यन्त्रयोनि विस्तारक यन्त्र स्पर्शासह्य योनिरोगके लक्षण तथा चिकित्साका वर्णन विस्तारपूर्वक लिखा है। सातवें अध्यायमें यूनानी तिब्बसे गर्भाशयके आभ्यन्तर पिण्डका शोथ, गर्भाशयके जखम, गर्भाशयकी फुंसी, गर्भाशयका नासूर, इनके लक्षण तथा चिकित्सा डाक्टरीसे गर्भाशयके मुखका दीर्घ शोथ, क्षत, छाला, कमलमुखकी चिकित्सामें काम आनेवाले यन्त्र शस्त्रोंकी आकृति, गर्भाशयके आभ्यन्तर पिण्डका दीर्घशोथ और इससे गर्भकी स्थितिका परिवर्त्तन, कमलमुखका प्रतिबन्ध इनका निदान लक्षण और चिकित्सा तथा यन्त्र शस्त्रक्रियाका विधान पूर्णरूपसे विस्तारपूर्वक लिखा गया है। योनिमार्गका दीर्घ शोथ और शोथसे हुए प्रतिबन्धका उपाय वर्णन किया है। आठवें अध्यायमें आयुर्वेदसे स्त्रीके गुह्यावयव (जननेन्द्रियके बवासीरी मस्से) रक्तज गुल्म इनके लक्षण चिकित्सा यूनानी तिब्बसे गर्भाशय और योनिके बवासिरी मस्सोंके लक्षण तथा चिकित्सा, डाक्टरीसे गर्भाशयके मस्से मेदज ग्रन्थी श्वेत तन्तुमय ग्रन्थी अर्बुदादि दुष्ट रोगोंकी उत्पत्ति गर्भाशयके आभ्यन्तरके मस्सोंकी ग्रन्थी, तथा अर्बुद, तथा कमलमुखके मस्से, गर्भाशयकी बाह्य ग्रन्थीकी आकृति, निदान लक्षण तथा चिकित्सा एवं मस्से अर्बुद ग्रन्थी छेदनप्रक्रियाकी आकृति इत्यादिका वर्णन विस्तारपूर्वक किया है तथा यूनानी तिब्बसे गर्भाशयका एक ओर झुक जाना डाक्टरीसे गर्भाशयका स्थानान्तर होना इत्यादि लक्षण और चिकित्साका वर्णन पूर्णरूपसे लिखा है। तथा डाक्टरीसे गर्भाशय और उसके समीपवर्त्ती मर्मस्थानोंकी आकृति तथा स्थिति व उनमें उत्पन्न होनेवाली व्याधियोंका निदान, चिकित्सा, गर्भाशयकी तीन प्रकारकी वक्रता कमलमुख और गर्भाशय दोनोंकी वक्रताकी आकृति तथा चिकित्सा, गर्भाशयकी

विवृत्तता तथा उसकी निवृत्तिके लिये यन्त्रोंकी आकृति यन्त्रोंके पहनानेकी प्रक्रिया और कई प्रकारके यन्त्रोंकी आकृति, यूनानीसे गर्भाशयके घुट जानेकी व्याधि और उससे उत्पन्न हुई मूर्च्छा तथा अपस्मारके लक्षण तथा चिकित्साका वर्णन पूर्णरूपसे है । नववें अध्यायमें आयुर्वेदसे योनिकन्दका निदान चिकित्सा यूनानी तिब्बसे गर्भाशयके निकलनेका निदान तथा चिकित्सा डाक्टरीसे गर्भाशय भ्रंशका निदान भ्रंशकी स्थितिकी आकृति तथा चिकित्सा और इसके काममें आनेवाले यन्त्रोंका विधान फलवाहिनी शिराकी वक्रता अथवा संकोच इनका निदान तथा चिकित्सा स्त्री गर्भ अण्डकी व्याधियोंका निदान तथा चिकित्सा गर्भअण्डका जीर्ण शोथ-तथा गर्भ अण्डके जलोदरका निदान और चिकित्सा योनिभ्रंश (प्रोलापसस) इत्यादिका निदान, लक्षण, चिकित्सा वर्णन पूर्णरूपसे लिखा है । दशवें अध्यायमें आयुर्वेदसे नष्टार्त्तव यूनानीसे हैजका वन्द होना डाक्टरीसे रजोदर्शनसे सम्बन्ध रखनेवाली व्याधि जैसा कि वैकल्यताजन्यार्त्तव, ऋतु आना एकदम वन्द हो जावे, नष्टार्त्तव, न्यूनार्त्तव, पीडितार्त्तव, शुद्ध पीडितार्त्तव, शोथजन्य पीडितार्त्तव, प्रतिवन्धजन्य पीडितार्त्तव इत्यादि/व्याधियोंका निदान लक्षण और चिकित्सा विस्तारपूर्वक वर्णन की है । ग्यारहवें अध्यायमें आयुर्वेदसे आमगर्भमें पुष्पदर्शन, जातसारगर्भमें पुष्पदर्शन, नागोदरगर्भ, इनके लक्षण, चिकित्सा, प्रसुप्तगर्भ, वातशुष्कगर्भ, अनस्थिगर्भ, अन्तस्थगर्भ यूनानीसे गर्भके समान दीखनेवाली रिजा, डाक्टरीसे गर्भाशयमें दूषित मांस विकृति, गर्भ रहनेकी क्रियामें हीनता अर्थात् नष्टगर्भितव्यताके सात कारण आयुर्वेदसे ऋतु वन्द होनेका समय गर्भकी हीनता, यूनानी तिब्बसे गर्भाशयका स्थूल हो जाना व फूल जाना डाक्टरीसे गर्भाशयका फूल जाना अथवा अत्यन्त संकुचित हो जाना, नष्टगर्भितव्यताकी विकृति कितने अंशमें निवृत्त हो सक्ती है इसका विचार आयुर्वेद तथा डाक्टरीसे मेदवृद्धि अति स्थूलता भी वन्ध्यादोषको स्थापन करता है । इसका निदान तथा चिकित्सा और उपरोक्त व्याधियोंका निदान तथा चिकित्साका वर्णन विस्तारपूर्वक है । बारहवें अध्यायमें डाक्टरीसे स्त्रियोंका प्रमेह रोग अश्मरी रोग, वृद्ध वागभट्टसे शस्त्रोपचार द्वारा अश्मरी निकालनेकी विधि, डाक्टरीसे अस्मरी निकालनेको शस्त्रोपचार विधिकी आकृति, आयुर्वेदसे उपदंशका निदान, चिकित्सा, डाक्टरीसे उपदंशका सामान्य और विशेषतासे निदान और परम्परासे वारसामें उतरनेकी स्थितिके लक्षण तथा उपदंश २० प्रकारकी विकृति, टांकी, चांदी उपदंशकी विकृति वद मृदु और कठिन चांदीके भेद वालोपदंश वारसासे उतरीहुई उपदंशवाले वालकोंकी दन्ताकृति इत्यादिका निदान और चिकित्साका वर्णन विस्तारपूर्वक है। तेरहवें अध्यायमें यूनानी तिब्बसे गुदारोग, बवासीर, आयुर्वेदसे

छः प्रकारके अर्शका निदान, चिकित्सा, अर्शके मस्से छेदनकी प्रक्रिया, डाक्टरीसे अर्श (पाईल्स) का निदान चिकित्सा, अर्शके मस्से छेदनकी विधि आयुर्वेदसे भगंदरका निदान, चिकित्सा, यूनानी तिब्बसे (नासूर भगंदरका निदान, चिकित्सा) डाक्टरीसे (फीसच्युल्यईनरोनो) निदान चिकित्सा भगंदरकी विशेष व्याख्या, भगंदर-पर शस्त्रोपचारकी प्रक्रिया आयुर्वेदसे गुदभ्रंश डाक्टरीसे गुदभ्रंशका निदान चिकित्सा, यूनानीसे गुदाका शोथ, गुदाके फटने, सर्जके इस्तारखा अर्थात् जननेन्द्रिय और गुदाके बीचकी सीमनमें उत्पन्न होनेवाली व्याधि, गुदाका जखम, गुदाकी खुजली इत्यादि व्याधियोंका निदान और चिकित्सा विस्तारपूर्वक वर्णन की है । चौदहवें अध्यायमें यूनानी तिब्बसे मसानेके रोगोंका वर्णन जैसा कि मसानेकी सूजन, खुजली, डाक्टरीसे योनिकण्डु, योनिमुखका शोथ खुजली यूनानीसे मूत्रदाह, डाक्टरीसे मूत्रदाह, मूत्रनलीमें उत्पन्न होनेवाले मस्से, आयुर्वेदसे मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, यूनानीसे मसानेका दर्द, मसानेमें रुधिरका जम जाना, मसानेका फूल जाना, एकएक बिन्दु मूत्रका निकलना, सिलसिलबोल, मूत्रमें रक्तका आना, डाक्टरीसे गुदास्थि शूल, डाक्टरीसे वन्ध्यादोषकी परीक्षा प्रणाली डाक्टरीसे स्त्रियोंकी कटि पडि, इत्यादिका निदान, चिकित्सा विस्तारपूर्वक वर्णन की है । पन्द्रहवें अध्यायमें आयुवदसे गर्भ धारण प्रक्रिया, तथा डाक्टरीसे गर्भ धारण प्रक्रियासे लेकर गर्भवतीके समस्त कृत्य गर्भके पोषणादि अनेक विषय लिखे हैं सो सूचीपत्रमें देखे। प्रसव तथा प्रसूतिके उपाय मूढगर्भ निकालनेके शस्त्र शस्त्रोपचारकी विधिकी आकृति बालकके जन्मके कृत्यादि सबका वर्णन है । सोलहवें अध्यायमें बालकके रोगोंकी चिकित्सा चेचक, विसर्प, विस्फोटक, मसूरिका, नेत्ररोग, मस्तकरोग, कर्णरोग, मुखरोग, स्थावर व जंगमविष, गृहजुष्ट व्याधि, देवीजुष्ट व्याधि अभङ्ग सन्धिभङ्ग आदि समस्त रोगोंका वर्णन है । परिशिष्ट भागमें आरोग्य रहनेकी सूचना, जलवायु आर आहारकी शुद्धि स्थानशुद्धि, शरीर शुद्धि, स्नानविधि, व्यायाम, निद्रा, रोगियोंकी सेवा, संक्राम रोगियोंसे बचना और उनकी चिकित्सा, रोगी और चिकित्सकी मृत्युका विवरण आयुर्वेद, यूनानी, डाक्टरी इन तीनोंमें कोई ऐसा रोग स्त्रीजातिका न होगा कि इस ग्रन्थमें न मिल सके, सो सूचीको देखनेसे ज्ञात हो सक्ता है, इसके अतिरिक्त १२१ आकृति इसमें यथास्थान दी गई हैं जिनका हाल सूची देखनेसे ज्ञात होगा । इसमें वैद्यक विषय संस्कृत श्लोक तथा गद्यमें हैं । उसके नीचे देवनागरीमें स्पष्टरूपसे अर्थ कहा गया है, यूनानी तिब्बके प्रकरणोंमें कहीं २ अर्बीके शब्द लिखे गये हैं लेकिन उनका आशय स्पष्टरूपसे समझमें आ सक्ते हैं, जो पुरुष व (स्त्री देवनागरी लिख पढ सक्ते हैं, वे इस ग्रन्थमें लिखेहुए प्रत्येक रोगके आशयको पूर्णरूपसे समझ सक्ते हैं) । इस समय

भारतमें एक प्रकारसे विद्या व हुनरकी नूतन जागृति दीख पडती है हमनेभी देशकाल तथा मनुष्योंकी जागृतिकी ओर दृष्टि रखके ही इस ग्रन्थको लिखा है । स्त्री समाजमें इस समय पर विद्याका प्रचार होनेका कुछ २ लक्षण दीखने लगा है इसीसे उनकी आरोग्यताके लिये ऐसे ग्रन्थकी आवश्यकता थी कि जो लज्जावश स्त्री अपने गुह्य रोगोंको मरण पर्य्यन्त प्रगट नहीं कर सक्ती और ऐसी व्याधियोंमें फँसकर ही उनके शरीरका अन्त हो जाता है, जो पुरुष व स्त्री इस ग्रन्थको पढे व विचारेंगे उनको स्त्री और बालकोंके रोग विषयमें वैद्य हकीम और डाक्टर डाक्टरनी मिडवाईफ तीनोंकी लियाकत प्राप्त हो सक्ती है । वन्ध्या स्त्री इसके अनुकूल उपाय करनेसे सन्तानकी माता बनेगी, रोगी स्त्रियां आरोग्यताको प्राप्त हो दुष्ट व्याधियोंसे पीछा छुडावेंगी, और बालकोंकी माता आरोग्यता पूर्वक शिशुओंका पोषण करेंगी, क्लीव पुरुष पुरुषार्थको लाभ कर सहधर्मिणीके प्रेमपात्र बनेंगे, अनभिज्ञ वैद्य जिनको स्त्री रोगोंका पूर्ण ज्ञान नहीं है वे स्त्रीरोगोंके अनुभवी बनेंगे, जो डाक्टरलोग वैद्यक और यूनानी तर्कीवसे स्त्री जातिके रोगको नहीं जानते हैं उनको वैद्यक और यूनानी चिकित्सा प्रणालीका अनुभव होगा, पढा लिखा मनुष्य इस ग्रन्थको बाँचकर कदापि यह पश्चात्ताप न करेगा कि इस पुस्तकके अवलोकनमें हमारा समय व्यर्थ व्यतीत हुआ, किसी न किसी अंशमें पढनेवालेकोअवश्य लाभ ही पहुंचेगा । इति ।

धन्यवाद–

श्रीयुक्त महाशय लालजी हरजी वर्म्मा विद्यार्थी मुम्बई निवासीको स्नेहपूर्वक अनेक धन्यवाद प्रदान करता हूँ कि आपने इस ग्रन्थके फीचर बनानेमें पूर्ण सहायता दी है । परमात्मा इनको सपरिवार कुशल राखे ।

अर्पण ।

प्रायः लोग कोई ग्रन्थ लिखते हैं तो राजा महाराजा सेठ साहूकारोंको अर्पण किया करते हैं, परन्तु मैं इस ग्रन्थको साहित्यानुरागी समस्त भारतवासी आर्य्य सन्तानमात्र स्त्री पुरुषोंको अर्पण करता हूं कि इससे अमीर गरीब सब लाभ उठावें । इति ।

द०–रामेश्वरानंद जीवानंद शर्मा.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम् प्रेस
कल्याण–मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
" श्रीवेङ्कटेश्वर " स्टीम् प्रेस
खेतवाडी–मुंबई.
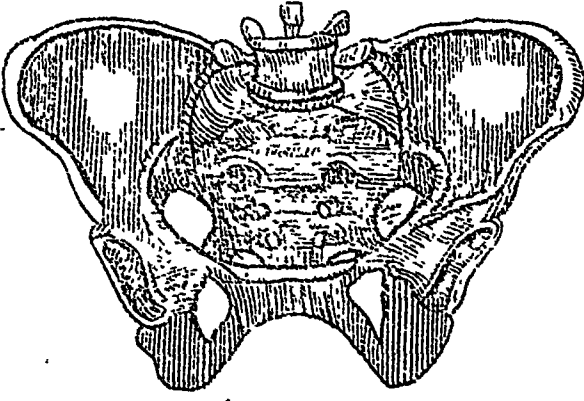
आकृति-१ (पृ०६) चित्र- स्त्रीका बस्तिपिंजर।
आकृति-२ (पृ०७) चित्र-स्त्रीका बस्तिपिंजर।
आकृति-४ (पृ.१०) गर्भाशय तथा उसके उपांग।
आकृति - ३ (पृ०९)
चित्र- स्त्रीकी बस्ति अवयव।
गर्भाशय
योनिमार्ग
मलाशय
गुदा द्वार
(रेकटम)
मूत्राशय
मूत्रमार्ग
योनिमुख
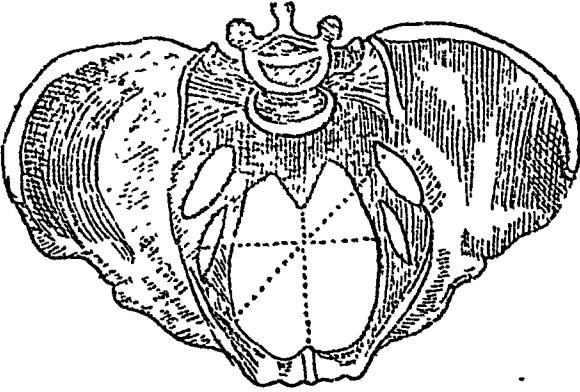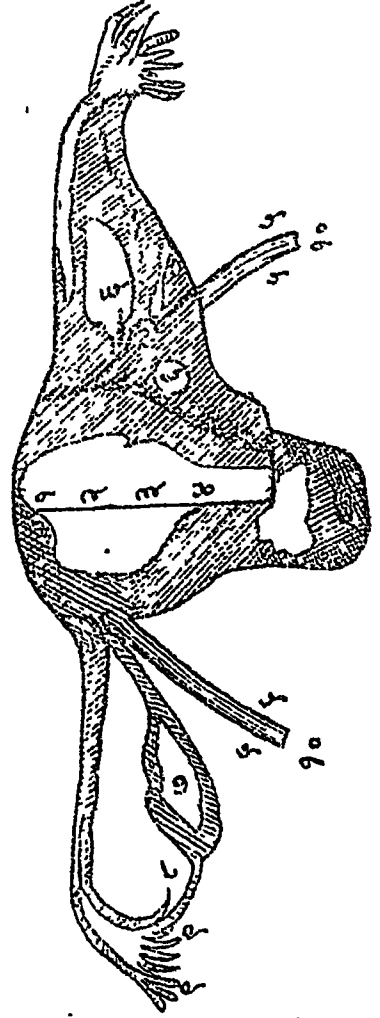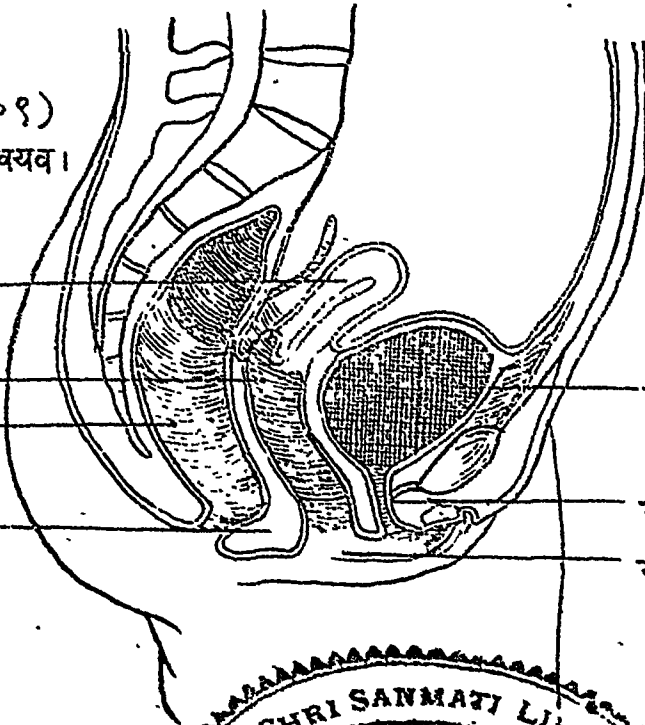
उबलना होता है और ये दोनों भेदे वबा (संक्रामक) के रोगोंमेसे हैं अर्थात् यह रोग जब किसी देश व नगरमें प्रगट होते हैं तो अनेक मनुष्य इस रोगमें फस जाते हैं। विशेष लक्षण जैसे कि हम अपने अनुभवमें ऊपर लिख चुके हैं उसीके माफिक समझो। और वैद्यक तथा यूनानीके निदानमें विशेष अन्तर नहीं है।

चिकित्सा।

चेचकका ज्वर प्रगट होय और रोगीके शरीरमें खून अधिक होय तो वासलीक रग तथा अकहल और सरारूकी फस्द खोले और शरीरमें खूनकी अधिकता होय और खूनके निकालनेसे शरीरको किसी प्रकारकी हानि न पहुँचे तो खून इतना निकाले कि अचैतन्यता आ जाय क्योंकि आवश्यकताके समय पर खून कम निकालना हानिकारक है। अगर अधिक खून निकालनेसे रोगीको कुछ हानि पहुँचनेकी संभावना होय तो सिफ पछने लगाकर खून निकाले (फस्दकी अपेक्षा पछने लगानेसे खून कम निकलता है) अथवा जोंक लगाकर खून निकाले। खसरेके ज्वरमें यह विशेषता है कि ज्वरका वेग अधिक गर्म और मुख कडुवा नेत्र पीले मूत्र लाल यदि ये लक्षण बरावर होयँ तो प्रथम मवादको नर्म करनेवाली दवा काममें लावे, क्योंकि खसरेमें मवाद खुश्क होता है। और मवादमें खुस्की पित्तकी अधिकता और गर्मीसे होती है। सो पित्तको कुछ कम करना चाहिये और तबीयतको नर्म करे और तबीयत नर्म न हो तो पित्तके घटानेकी तर्फ आरूढ होना चाहिये और फसू न खोले इसी प्रकार जिस बालककी अवस्था १२ सालसे कम हो तो उसकी फस्द न खोले इसी प्रकार जिस बालककी अवस्था १ सालकी न हुई होय उसके पछने भी न लगावे। और जब खून निकाले तो उसके उफानको देखे कि खूनमें उफान अधिक है या कम है व नहीं है, जो खूनमें उफान अधिक है तो वे चीजें खिलावे जो खूनको गाढा कर खूनमें शर्दी पहुंचा खूनके उफानको रोकती हैं। जिससे कि खूनक उफान थोडासा दब जावे और जो खूनमें अधिक उफान नहीं मालूम पडे तो खूनको गाढा करने और शर्दी पहुंचानेकी आवश्यकता नहीं होती। लेकिन किसी २ चेचक और खसरेके ज्वरमें यदि फुंसियां प्रगट न हों तो इस दशामें खूनको गाढा करने और शर्दी पहुंचानेकी आज्ञा नहीं देते इस लिये कि जब खून उबलने लगता है तो तबीयत उसके निकालनेके लिये परिश्रम करती है ऐसे समय पर खूनको गाढा करने अथवा ठंढी चीजोंके देनेकी और आरूढ होनेसे तबीयतका काम जो मलको निकाल कर दूर करना है उसको रोकती है, इस दशामें जहांतक होसके ठंढी चीजोंके देनेमें अधिक परिश्रम न करे। कदाचित् जो मवादके

निकलनेका समय न होय तो इस ज्वरमें तबीयतको नर्म न करे । और खसरेके ज्वरमें पित्तकी विशेष अधिकता व तबीयतमें विशेष अजीर्ण होय अथवा फफोलेवाली चेचकमें जो ज्वर उत्पन्न होता है वह मवादके जोशके कारणसे होता है, अगर शरीरमें मवाद भरा हुआ मालूम होय लेकिन चमडेकी जिल्दका रंग अधिक लाल मालूम न होय और ज्वरकी अधिकता होय तथा शरीर पर भडकाव होय और नाडीकी चाल मौजी होय (जलकी लहरके समान नाडीकी चालको यूनानी तबीब मौजी व लहरदार चाल कहते हैं) यह शरीरके वायुकी गर्मीको जाहिर करती है, इस दशामें तबीयतको मुलायम करनेकी आवश्यकता है । किन्तु ऐसी चेचककी दशाके ज्वरमें फस्द खोलनेकी आवश्यकता कम होती है और दस्त लानेकी आवश्यता विशेष होती है । ऊपर जो कुछ वर्णन किया गया है फस्दका खोलना पछना लगाना जोंक लगाना शीतल चीजोंका देना खूनको गाढा करना तबीयतको मुलायम करना इत्यादि उपचारोंके करनेकी आवश्यकता और इजाजत वहांतक है कि जिस समयतक चेचक और खसरेके फफोले और गुमडी उत्पन्न न हुई होयँ । क्योंकि जब मवाद उबल कर फफोले और गुमडी उत्पन्न कर देता है तो फिर ठंढी चीजोंके देने और मवादको गाढा करने नर्म करनेवाली चीजोंसे बचना चाहिये, क्योंकि यह उपाय इस दशाकी तबीयतकी इच्छा विरुद्ध है, इसी लिये इस दशामें फस्द खोलना पछने लगाना भी वर्जित किया गया है । परन्तु जिस रोगीकी अवस्था जवान होय शरीरमें रक्तकी विशेषता होय और रोगीकी दशा ठीक होय किसी प्रकारकी खराबी उत्पन्न न हुई होय इस दशामें फुंसियां उत्पन्न होने पर भी आवश्यकता पडे तो फस्द और पछने लगा कर आवश्यकताके अनुसार कुछ रक्त निकालना योग्य है । जिससे कि रोगका जोश कम पड जावे और मवाद कुछ कम हो जाय और जिस समय रोगीके शरीरमें चेचककी फुंसियां उत्पन्न होने लगें उस समय रोगीको गर्म और नर्म कपडासे शरीरको ढांक कर रखना चाहिये, जिस मकानमें चेचकका रोगी रहे उस मकानकी हवाको गर्म करके ठीक रखे जिससे रोगीको पसीना आवे और रोमाञ्च खुले रहे फुंसियां सहजमें निकल आवें । इस दशामें रोगीको जलकी आवश्यकता पडे तो शीतल जल थोडा २ देना चाहिये, चन्दन और कापूर सुँघाना दिलको पुष्ट करता है और तबीयतकी सहायता करता ह मवादको शरीरसे बाहर निकालता है । इसी प्रकार जब फुंसियां प्रगट होनेके चिह्न दिखाई देवें तो उस समय विशेष श्रेष्ठ अङ्गोंकी रक्षा योग्य रीतिसे करनी उचित है, जैसे कि आंख, नाक गला कान, फेंफडा आंत, जोड जिसे इन अङ्गोंपर फफोले विशेष उत्पन्न न होवें और इन अङ्गोंकी रक्षाकी विधि ब्योरेवार वर्णन की जाती हैं । जिस मुकामपर मवाद गाढा और

रोमाञ्च बन्द होय सो मवाद गाढे होनेका यह चिह्न है कि छाती और उसके पास फुंसियां अधिक उत्पन्न होय और दूसरे ठिकानेपर बहुत कम निकलें आर फुंसियां निकलते हुए चौथा दिवस व्यतीत हो जाय और कभी सम्पूर्ण फफोला प्रगट न होय। शरीरके रोमाञ्च बन्द होनेके चिह्न यह हैं कि चमडेमें खुरखुरापन और पसीनेका बहुत कम आना व फुंसियोंका अधिक समयमें निकलना । इसका उपाय इस प्रकार करना चाहिये कि गाढे मवादको मुलायम कर रुके हुए रोमाञ्चोंको खोलनेका उपाय करे और इसका यह उपाय है कि रोगीकी दशा पर निरन्तर ध्यान रखे कि इसके शरीरमें किस दर्जे पर कितनी गर्मी है। इसका विचार करके इसीके अनुसार उपाय करे जैसे कि जो नाडी और श्वास अपनी असली दशापर है और अचेतनता तथा गर्मी चिन्ता (शोच) दिलमें विशेष नहीं होय और जीभ काली नहीं हुई हो तो इस दशा पर चाहिये कि रोगीके रहनेके मकानको कुछ गर्मी लिये हुए करे और रोगीके पीनेको शीतल जल न देवे । कोई शीतल वस्तु न सुंघावे आवश्यकताके अनुसार कभी गर्म जल व ताजा कूपका जल पिलावे अथवा हरी सोंफ हरी मकोय हरा अजमोद इनमेंसे जो प्राप्त हो सके उसका जल पिलावे यह वस्तु लाभदायक हैं। और लकमगमूल १४ मासे, छिली मसूर ३४॥ मासे, कतीरा १०॥ मासे इन तीनोंको एकत्र करके एक प्याले जलमें पकावे, जब आधा रह जाय तो छान कर पिलावे और जो इसी काढेके प्रयोगमें गुलाबके फूल ७ मासे अंजीर ७ दाने, सोंफ, ७ मासे, मुनक्का बीजों सहित १० दाने ये भी डालकर पकावे तो अति उत्तम है। केवल अंजीर ही जलमें पका कर उसका जल छान कर थोडी केशर मिला कर दिया जावे तो विशेष लाभदायक है । अंजीरमें यह स्वाभाविक गुण है कि मवादको शरीरके अन्दरसे बाहरकी तर्फ निकालता है और फुंसियोंके प्रगट करने और शरीरके रोमाञ्चोंके खोलनेके लिये गर्म जल रोगीके चारपाईके नीचे रखना विशेष लाभदायक है। उसकी विधि इस प्रकारसे है कि एक ढके हुए बर्तनमें गर्म जल करे और रोगीको चारपाई पर बैठाल कर गर्मजलका पात्र उसकी चारपाईके नीचे रख देवे और रोगी वस्त्र उढाकर बर्त्तनका मुख आहिस्ते २ खोल देवे । और रोगीकी गर्दनसे ऊपर चेहरा खुला रखे और तमाम शरीर गर्म और कोमल कपडेसे ढक देवे । और दूसरा कपडा और डाल देवे जिससे भाफका असर शरीरको उत्तम रीतिसे पहुँच भाफ बाहर न निकलने पावे । इसके अलावे नाडीकी गति और श्वास कठिनतासे आती होय और रोगीको अचैतन्यता और गर्मी अधिक होय जीभमें कालापन प्रगट हो गया हो तो कोई गर्म वस्तु न देवे, ऊपर लिखे हुए उपायोंके अनुसार ही चिकित्सा करे ।

शरीरको कपडेसे ढका हुआ रखे और रोगीके रहनेके मकानकी वायुको समान रखे और शीतल जल आवश्यकताके समय एक व १॥ तोलाकी मात्राके अन्दाज़से देवे (एक घूंटसे अधिक जल एक समयमें न देवे) शीतल तासीरकी सुगन्धि रोगीको सुंघावे और पसीना निकालनेके समय इतना ध्यान रखे कि रोगीको घबराहट उत्पन्न न होय और श्वासमें तंगी न आने पावे। शरीरमें जिस समय चेचक व खसरेकी फुंसियां उत्पन्न होने लगें और उत्पन्न होते २ भीतरकी तर्फ दबने और छुपने लगे और छिप जाय तो यह दशा बहुत खराब समझी जाती है। इसके लिये रोगीकी तबीयतको पुष्ट करे जिससे बाहरको निकलता हुआ मवाद लौटकर भीतरको न जाने पावे इसके लिये फुंसियोंके जल्द निकलनेका उपाय जो ऊपर कथन किया है वही लाभदायक है। और तर व सूखी सोंफका शीरा अथवा तर व सूखे अजमोदका शीरा दोनोंको मिला कर पिलाना अति गुण करता है। (गर्मीकी अधिकताका उपाय) जब कि चेचकके फफोले व खसरेमें गर्मी अधिक मालूम होय और कपडा उढानेसे अचेतनता और निर्बलता उत्पन्न हो तो इस दशामें रोगीके रहनेके मकानकी हवाको ठंढी करे कापूर और चन्दन सुंघावे परन्तु शरीरको ढांक कर रखे जिससे दोनों लाभ प्राप्त होयँ। किन्तु ठंढी हवाके नाकमें जानेसे तथा ठंढी सुगन्धिके अन्दर पहुंचनेसे अन्दर गर्मीको आराम पहुंचता है और दिल गर्म न हो और शरीर पर गर्म कपडेके रहनेसे रोमाञ्च बन्द नहीं होते और हवाके ठंढी करने और शीतल सुगन्धि सुंघानेसे भी आराम न हो तो कभी २ छातीके ऊपर दिलकी जगह परसे कपडा हलका कर देवे और रोगीकी तबयित ठहर जावे जब छातीको ढांक देवे और इस बातकी सावधानी रखे कि दिलके सिवाय जिस्मके किसी और भागको शर्दी न लगने पावे, जबकि समस्त शरीरमें फफोले निकल आवें और घबराहट तथा अन्दरकी गर्मी कम न होय और जीभ काली होय ऐसी दशाके सिवाय फिर भी शरीरको गर्म रखना बडी भूल है। जब कि अचेतनता आ जाय तो दिलकी रक्षा और अचेतनताके इलाजके सिवाय और कुछ चिन्ता न करे और जब चेचकका फफोला तथा खसरा निकल आवे तो ठंढे शरबत आवश्यकताके अनुसार देय और जबतक शक्तिकी निर्बलता व गर्मीका गुण शरीरमें बाकी रहे तबतक बराबर रोगीको पथ्यसे रहना चाहिये। जिससे रोग पुनः अपना कुछ उपद्रव उत्पन्न न करे और जानना चाहिये कि खसरेके अन्तमें दस्तोंका बडा भय है सो जो चेचकके फफोले और खसरेके दानेके निकलनेके अन्तमें पेट नर्म हो तो हब्बुलासका शरबत बबूलका गोंद गिलेइरमनी और अजीर्णका रक्त वंशलोचनकी टिकिया वीहके लुब्ब आदिसे बन्द करे। जो दस्त खूनी हो तो खसखासके शरबत आदिसे इलाज करे,

अगर जो खूनी दस्तोंमें खून निर्मल आता हो तो रोगीके बचनेकी आशा नहीं करनी, जो इस दशामें अजीर्ण करनेवाली दवा दी जावे जिससे सूजन आ जाय तो भी रोगी बहुत जल्दी मर जाता है। यदि इस दशामें कदाचित नकशीर चल निकले तो उसको उस समय तक बन्द न करे जबतक कि खून साफ न आवे। खूनके निकलनेसे विशेष निर्बलता माल्रुम होवे तो नकसीर फूटनेके प्रकरणमें लिखी हुई दवाओंसे तत्काल बन्द कर देवे। क्योंकि रक्तके अधिक निकल जानेसे रोगीकी मृत्युका भय रहता है, और कपडे अथवा रुईकी बत्ती जितनी मोटी कि नाकमें आ सके बनाकर स्याहीमें भिगोकर चक्कीकी गर्दमें लपेट कर नाकमें रखे इसके रखनेसे नकसीर बन्द हो जाती हैं। और रुईकी बत्ती शिरकेमें भिगोकर भुने हुए माजूफलका चूर्ण उसके ऊपर बुरककर नाकमें ठूसकर रख देवे और जो बत्तीका कुछ भाग बाहर रह जावे उसको काट लेवे और नकसीर चलनेके उपायमें हाथ पैरका बांधना तथा पुरुषके फोतोका बांधना भी उपयोगी है। जिस मनुष्यको इस रोगके अन्तमें नींद न आवे तो उसको शरबत खसखास देना उपयोगी है। जो खांसी बेचैनी रखती होय तो मुनक्का आदिकी चटनी व खसखासके डोडेकी जवारिस आदि देकर निवृत्त करना उचित है। इसी प्रकार जो उपद्रव उत्पन्न होय उसको तबीब निवृत्त करे। जब फफोले उत्पन्न होनेके चिह्न माल्रुम होने लगें उस समय पर मुख्य २ अङ्गोंकी रक्षा करनेका प्रयत्न करना चाहिये, उनमेंसे नेत्रोंकी रक्षाका यह उपाय है कि तुतरुग, गुलाबमें तर करके छान लेवे और थोडासा कापूर इसमें मिलाकर नेत्रोंमें बूंद २ करके टपकावे। और हरे धनियेका पानी खट्टे अनारदानेका पानी व माजूफलको गुलाब जलमें घिसकर तीनोंको मिलाकर नेत्रोंमें टपकावे ये दवा फफोलोंसे नेत्रोंकी रक्षा करती है। रसौत एलुवा, मामीसाकी सलाई, अकाकिया प्रत्येक ३॥ मासे, केशर तीन रत्ती इन सबको बारीक कूट छानकर गुलाब जलके संयोगसे सलाई बनाकर तर धनियेके पानीमें घिसकर नेत्रोंके बाहर लेप करे तो उपरोक्त प्रयोगके समान गुण करता है और नेत्रोंमें कदाचित फुंसियां निकल आवें तो कापूर गुलाबके स्वरस अथवा गुलाब जलमें घिसकर नेत्रोंमें डाले और कदाचित इस उपायसे कुछ लाभ न पहुँचे और नेत्र लाल होयँ नेत्रोंकी स्याह पुतलीमें फुंसियां निकल आई होयँ तो अस्फहानी सुर्मा, कापूर, धनियेके स्वरसमें पीसकर हर समय नेत्रोंमें टपकाता रहे और गुलाबमें रगडा हुआ सुर्मा विशेष लाभदायक है। जिस रोगीके नेत्रमें चेचककी फुंसियाँ निकल आई होय उसके लिये शियाफ अबियज स्त्रीके दूधमें मिलाकर लगावे तो विशेष लाभदायक है। जब यह माल्रुम होय कि मवादके भरे होनेके कारणसे

नेत्र उभरे आते हैं तो उपरोक्त दवाको नेत्रोंमें लगाकर एक गद्दी कोमल कपडेकी नेत्रोंके ऊपर रखके सीसेका एक पत्र नेत्रके ऊपर रखके (सीसेका पत्र) नेत्रके प्रमाणका होना चाहिये। कपडेकी पट्टीसे सिरके पीछेको लपेटा देकर बांध देना जिससे नेत्रोंको दबाये रहे, दवा डालनेके समय पर खोले और पुनः बांध देवे। नासिकाकी रक्षा इस प्रकार करे कि सिर्का और गुलाब अथवा केवल सिर्का लेकर हरसमय पर नासिकामें कई २ बूंद टपकाता रहे अथवा रोगी अपने आप नासिकामें सुडकता रहे। तथा चन्दन और मामीसाकी लुवाई अंगूरके रसमें पीसकर सलाई व टिकिया बनावे और गुलाबजल अथवा पानीमें घिसकर नाकमें डाले तो लाभदायक है। एवं गुलरोगन और मोलसरीका तेल थोडा कापूर मिलाकर नाकमें डालना और नाकके अन्दर मलना लाभदायक है। गलेकी रक्षा इस प्रकारसे करे कि जब चेचकके फफोले प्रगट होयँ अथवा खसरे व चेचकके ज्वरका निश्चय हो जाय तो रोगीको आज्ञा देवे कि दाने सहित अनारको मुखमें रखे और चाबकर उसका रस गलेके अन्दर उतारता रहे अगर रोगी कम उमरका बेसमझ होय तो साबत अनारको कूटकर उसका रस निचोड लेवे और बोतलमें भरकर रखे उसमेंसे चमचामें निकालकर बालकके मुखमें डालता रहे। और खरबूजेके शरबतसे कुल्ला करावे। अथवा तुतरा, गुलाबके फूल, छिली हुई मसूर इनको गुलाब जलमें पकाकर काढा बनावे और इससे कुल्ला (गरारह) करावे तो अति लाभदायक है। और विशेष शीतल जलसे कुल्ला करना भी गलेके फफोले निकलनेको रोकता है। ठंडे जलमें गुलाब मिलावे अथवा अनारकी रुब्ब, शहतूतकी रुब्ब, मिलाकर कुल्ला करे तो विशेष लाभदायक है। और फेफडेकी रक्षा इस प्रकारसे करे कि जब फफोला शरीरपर उत्पन्न होने लगे छाती और रोगीके शब्दमें खुरखुरापन और अधिक गर्मी प्रगट न होय और तबीयत नर्म न होय तो थोडा २ गौके दूधका मक्खन और बूरा मिलाकर चटावे यह फेफडेकी रक्षाके लिये विशेष लाभदायक है और गर्मीकी अधिकता फेफडेमें मालूम पडे तो ईसबगोल और बिहीदानेका लुआब, कन्द और बादामरोगन देवे। और मीठे बादाम कूटकर मुखमें रखना लाभ पहुंचाता है। यह आगे लिखा लऊक भी लाभदायक है। मीठे घीयाके बीजोंकी मिंगी २ तोला सफेद बदामकी मिंगी १ तोला, सफेदकन्द २ तोला, कतीरा १ तोला इन सबको बारीक पीसकर ईसबगोल अथवा बिहीदाना इन दोनोंमेंसे किसी एकका लुआब निकालकर मिलाकर रोगीको सेवन करावे। रोगीकी तबीयत नर्म होय तो बबूलका गोंद भुने बदामकी मिंगी, खीरे ककडीके भुने हुए बीजोंकी मिंगी और गेहूँका निशास्ता भुना हुआ ये सब समान भाग लेकर भुने हुए ईसबगोलके लुआबमें मिलाकर चटनी बनावे १४ सालसे कम उमरवालेको

६ मासेकी मात्रा और १४ सालसे ऊपरकी उमरवालेको १ तोलासे १। तोलातककी मात्रा देवे । जोडों (सन्धियों) की रक्षाके निमित्त यह उपाय करे कि चन्दन, मामीसाकी सलाई, भुनी हुई गिले इरमनी, सूखे हुए गुलावके फूल सब समान भाग और एक दवाके वजनसे चौथाई भाग कापूर इन सबको गुलाबके जलमें बारीक पीस लेवे और थोडासा सिर्का मिलाकर सन्धियोंपर लेप करे । और जोडपर कदाचित् कोई बडा फफोला उत्पन्न हुआ होय तो उसको शीघ्र फोडकर पीब निकाल देवे फिर जखमके भरनेका उपाय करे, जो कि चेचकके जखमोंका उपाय नीचे लिखा जावेगा और आंतोंकी रक्षा इस प्रकारसे करे कि मोलसरीकी शराब, वंशलोचनकी टिकिया और विहीका रुब्ब प्रति दिवस सेवन कराता रहे । विशेष करके जब फफोलेकी न्यूनता होय इसलिये कि फफोले शरीरके ऊपरके भागमे कम होते हैं तो कभी मवादका जोस आँतोंपर आन पडता है सो ऐसे समय पर आंतोंकी रक्षा करना अति आवश्यक है । चेचक और खसरेवाले रोगीको खाने पीनेके पदार्थ नीचे लिखे मुताबिक देवे । अब जानना चाहिये कि चेचकके फफोलेका कारण ऊपरी गर्मी है जो कि तरीवाले खूनमें असर कर खूनको उबाल देती है । इस दशामें खानेपीनेकी वह वस्तु उत्तम है कि जिसकी तासीर शर्दी खुश्की लिये हुए होय जैसे जौका भुना हुआ आटा (सत्तू) तथा मसूरका भुना हुआ आटा (सत्तू) खट्टे अनारके स्वरस तथा कच्चे अंगूरके पानीमें मिलाकर देवे । और जो तबीयतमें खुश्की और छातीमें तथा गलेमें खुरखुरापन होय और गर्मीकी अधिकता होय तो भुने हुए जौका सत्तू जलावके साथमें देवे और खट्टी चीजें न पिलावे, जो तबीयत नर्म होय और छाती व गलेमें खुरखुरापन होय तो सत्तूको दुबारा भूनकर काममें ला अजीर्णकारक वंशलोचनकी टिकियाके साथ देवे । और बबूलका गोंद वंशलोचन थोडी मिश्री मिलाकर खिलावे । यदि तबीयत अधिक नर्म न होय तो जौकी भुनी हुई घाट और अनारदाना खसखासके बीज ये तीनों समान भाग लेकर देवे और गलेमें खुरखुरापन होय, नींद न आवे तो जौकी घाटका दलिया और खसखासके बीजका दलिया बनावे अनारदानेका रस निकालकर उसमें मिला मरीजको खिलावे । इस विषयके विशेष उपाय बुद्धिमान् तबीब (हकीम) की सम्मति पर निर्भर हैं, जैसी दशा देखे उसके अनुसार उपाय करे । यह ध्यानमें रखे कि खसरेका मवाद बहुतही थोडा और निकम्मा होता है इसका कारण जले हुए पित्तकी अधिकता है जोकि खूनको बिगाड देता है । सो इसमें वह भोजन और शराब देना उचित है जो ठंढे और तर होयँ जो जले हुए पित्तकी तेजीसे बराबरी रखते होयँ और खूनको सँभालनेकी सामर्थ्य रखते हों जैसे कि जौका पानी तरबूज, खुर्फा,

घीआ इनके पानीको देवे खटाईका देना हानिकारक है, लेकिन जो रोगीके गलेमें खुरखुरापन होय तो खट्टी चीजें कदापि न देवे । और जौका सत्तू जुलाबकी दवाके साथ पिलावे और बाकी वही उपाय हैं जो कि फेफडेकी रक्षाके विषयमें ऊपर लिखे गये हैं । इस बातका ध्यान रखे कि खसरेमें तुरंजबीनका देना निषेध किया गया है और हकीमलोग कहते हैं कि खसरेमें तुरंजबीन देनेसे ऐसी हानि पहुँचती है कि जैसे गर्म प्रकृतिवालेको शहदके देनेसे हानि पहुँचती है और घबराहट जी मिचलाना और बेचैनीको बढाता है । इसी प्रकार बनफशा और इश्कपेंचका पानी देना खसरेमें वर्जित है क्योंकि इसमें भी जी मचलाता है और घबराहट उत्पन्न होती है ।

आरोग्य मनुष्य जो इस मर्जसे बचना चाहें उनको हिदायत ।

आरोग्य मनुष्योंको उचित है कि इस रोगसे बचनेके लिये सावधान रहें सावधानीसे रहने पर जो चेचक और खसरा निकले भी तो बहुत ही कम निकलता है । और जब जिस ऋतुमें चेंचक और खसरा उत्पन्न होनेके चिह्न ढूंढ जावें तो जो लडके लडकी तीन और १४ वर्षकी उमरके दर्मियानमें होय और कभी उनके जन्मसे लेकर चेचक और खसरा न निकला होय तो उनकी फस्द खोले (मगर जो बालक १२ सालसे ऊपर होय उसकी फस्द खोले और जो बारह सालसे नीची उमरका होय उसके पछने लगाकर रक्त निकाल देवे और इस बवाकी फसल फैल रही होय तो ९ और १४ वर्षकी उमरके दर्मियानके बालकोंके शरीरमें जोंक जहां तहां लगाकर थोडा खून निकाले और इस बवाकी मौसममें सब मनुष्योंको सावधान रहना चाहिये) ठंढे भोजन तथा ठंढे शरबत जैसे कि शरबत उन्नाब, सिकंजबीन नीबू, ईसबगोल, बूरा कन्द गाजरका शरबत, वंशलोचनकी फंकी, काफूरकी टिकिया इत्यादिका खाना लाभदायक है । और जिस मौसममें चेचक निकलनेकी फसल होय उन दिनोंमें चढती जवानीके लडके लडकियोंको जिनके चेचक व खसरा जन्मसे न निकला होय उनको दूध, मिठाई, शराब, मांस, बैंगन आदि गर्म भोजन और गर्म मेवाओंसे बचना चाहिये, जो कि खूनको बढाकर जोश पैदा करती हैं । जैसा कि छुहारा, खरबूजा, शरदा, शहद, अंजीर, अंगूर इत्यादि खाना बन्द कर देवे । इसी प्रकार परिश्रम, कसरत, संभोग, धूप, आगसे तापना, गर्मी, खाक, धूलसे बचना बन्द पानीके पीनेसे बचना चाहिये और कभी तर मेवाओंके पानी तबीयतको नर्म रखे और तबीयतमें अजीर्ण न होने पावे ठंढे शाक और खट्टी चीजें लाभदायक हैं । मांसको बगैर खटाई और हरे शाक मिलाये बिदून न खाना चाहिये ।

वंशलोचनकी टिकिया विधि ।

गुलाबके फूल, चूकाके बीज प्रत्येक ३॥ मासे, अरबी निशास्ता, वंशलोचन

कतीरा, प्रत्येक ७ मासे इन सबको कूट छानकर ईसबगोलके लुआबमें एक मासेके प्रमाण टिकिया बनावे मात्रा ३ व ४ टिकिया बच्चोंको चनेके बराबर गोली बनाकर देवे ।

कापूरकी गोली ।

कापूरकैसूरी २। मासे, सफेद वंशलोचन, निशास्ता, सफेद सन्दल, मीठे कद्दूके बीजोंकी मिंगी, कतीरा प्रत्येक ४।। मासे सबको कूट छानकर ईसबगोलके लुआबमें चनेके प्रमाण गोलियां बनावे । ऊपर जो वंशलोचन और कापूरकी टिकियाके विषयमें लिखा गया है उसी समय पर इन टिकियाओंको काममें लावे ।

यूनानीतिब्बसे खसरे और चेचककी फुंसियोंकी स्थिति ।

हसवा (लाल फुंसी) प्रथम फैली हुई वाजरेके दानेके समान होती है । जिस समय फुंसी जिस स्थान पर निकलने लगती है उस स्थानपर हलकीसी लाल सूजन पिस्सूके काटनेके चिह्नके समान उत्पन्न होती है इसीको खसराभी कहते हैं । पीछे दाने उत्पन्न हो जाते हैं । इन खसरेके दानोंका स्वभाव है कि न पकते हैं न फूटते हैं और उनमें न पवि पडती है, किन्तु खुरंड होकर उनका छिलका भूसीके समान उतर जाता है । और चेचककी फुंसीको आँवला और नगजका भी कहते हैं । ये खराब फुंसियां हैं जो कि मसूरके दानेके समान होती हैं सम्पूर्ण शरीरमें अथवा किसी २ जगह निकलती हैं ये फुंसियां आरम्भमें सुर्ख होती हैं और पकनेपर सफेदी लिये हो जाती हैं । उनमें शीघ्र पवि पड जाती है और जदरी जिसका अर्थ फुंसी और चेचक है उसकी पोलमें दूसरी फुंसी उत्पन्न हो जायँ तो कभी २ इस फुंसियोंमेंसे रक्त टपकता है और यह चिह्न बुरा समझा जाता है । और उन्नावके फलके समान वडे २ दाने सफेद फैले हुए होते हैं और थोडे होनेके कारण इनकी गणना भी हो सक्ती है, इन दोनोंकी उत्पत्तीके समय किसी २ मनुष्यको ज्वर होता है और किसी २ को ज्वर उत्पन्न नहीं होता और मनुष्यकी बुद्धि ठीक रहती है और श्वास अधिक चलता है ये सबसे शीघ्र अच्छे हो जाते हैं । इनकी उत्पत्तिमें रोगीको कुछ भय नहीं रहता और इन फफोलोंके जो बडे २ दाने सफेद फैले हुए होते हैं उनको (खारक) और (खशखशक) तथा बाद आवला कहते हैं (वैद्यकमें इनका नाम विस्फोटक है) इनका उपाय ऊपर वर्णन हो चुका है यहां सिर्फ फफोलोंके पकानेका उपाय तथा खुरंड अलग करने और उसके दागोंको मेटनेका उपाय लिखा जाता है । फफोलोंके पकानेका उपाय यह है कि जब फफोले निकलें और बेचैनी कम हो जाय नाडी तथा श्वास अपनी असली दशा पर आ जाय और फफोलोंके

पकनेमें विलम्ब होय तो पकानेका उपाय करे और जो इनके अलावे और भी फफोला निकलते रहें और गर्मी तथा बेचैनी कम न होय और नाडी तथा श्वास अपनी असली दशा पर न आवे तो जानना कि अच्छा चिह्न नहीं है, इस दशामें फफोलेंके पकानेका उपाय करना वाचत है । पकानेके लिये बाबूना अकली लुलमलिक वनफसा, खतमी, गेहूँकी भूसी जो कुछ इनमेंसे समय पर मिल सके उन सबको जलमें डालकर काढेकी विधिसे पका रोगीके दामनके नीचे आगे और पीछे रख जिससे फफोला तर होकर पक जावें, इसके पीछे फफलोंको सुखानेका उपाय करे । यदि फफोले सात दिवसतक पककर न फूटें तो एक व दो दिवस इन्तजार और करे कि पके हुए फफोले फूटना शुरू हुआ है कि नहीं । इसका निश्चय इस प्रकारसे हो सक्ता है कि जो फफोला प्रथम पका होगा वही प्रथम मुरझाकर फूटेगा, जो प्रथम फफोलेमें झुरीं उत्पन्न होकर फूटनेके लक्षण दीखते होयँ तो कुछ उपाय करनेकी आवश्यकता नहीं है । सब कुदर्ती स्वभावसे फूटने लगेंगे कदाचित् न फूटते होवें तो उपाय करे । वह उपाय इस प्रकारसे है कि तांबे वा सोनेके तारकी सुई लेकर प्रथम सबसे बडे फफोलेको फोड देवे और उसका पानी साफ नर्म कपडेसे सुखा लेवे और सूखे गुलाबके फूल मौलसरीके पत्र अथवा सोसनके पत्र इनका बारीक चूर्ण करके अथवा चन्दन, झाऊकी लकडी इनका धूप बनाकर रोगीको धूनी देवे । परन्तु उष्ण ऋतुमें गुलाबके फूल मौलसरीके पत्र चन्दन इनकी धूनी अति उत्तम है । शीत ऋतुमें सोसनके पत्र झाऊकी लकडी इन दोनोंकी धूनी अति उत्तम है और फफोला फूटकर जहां कहीं जखम (घाव) हो जावे तो गुलाबके फूल सूखे हुए, कुंदरूगोंद, एलवा, बबूल (कीकर) का गोंद, हीरा दुखी गोंद (इसको हीरा दखनभी कहते) । हैं इन सबको बारीक पीसकर घावपर बुर्क देवे, जो फफोला बडा होय तथा उसमें पानी अधिक होय तो बबूलके सूखे पत्रोंका बारीक चूर्ण अथवा भुने चने व जौका चून (सत्तू) रोगीके बिछौने पर छिडककर उसपर सुलाव । यदि चमडा छिल जावे तो सोसनके पत्र रोगी बिस्तरपर बिछाकर सुलावे और छिली हुई जगहपर सूखे गुलाबके पत्र अथवा सूखे मौलसरीके पत्र इनका चूर्ण करके लगावे बारीक कोमल रेतपर लिटाना अच्छा है । यदि फुंसी फफोले बिलकुल न पकते होयँ तो छिलका दूर की हुई मसूर, गुलाबके पत्र, झाऊकी लकडी इनको जलमें पकाकर काढा बना थोडा नमक डालकर साफ रुई इस काढेमें भिगोकर फुंसी और फफोलोंपर रखे; जो गर्मीकी अधिकता होय तो कापूर और थोडा चन्दन घिसकर उस काढेमें मिला लेवे । वेदके पत्र, जारूरके पत्र, सफेदा काशगरी, मुर्दासंग इनको समान भाग

लेकर वारीक पीसकर बुर्के । और घावदार फफोलपर कापूरका मरहम लगाना अति लाभदायक है । कदाचित् नासिकामें फफोलोंके जखम होय तो भी कापूरका मरहम लगाना हितकारी है । जब फफोला सूख जावें तो ऐसा उपाय करे कि जिससे खुरंड उतर जावें । खुरंडके अलग करनेका उपाय यह है कि जब फफोला सूख जावे और खुरंड रहजावे तो जो खुरंड सूखा और बारीक ह उसके नीचे तरी विलकुल न होय तो गुनगुने तैलका एक विन्दु उसके ऊपर डाल देवे जिसके कारणसे शीघ्र गिर पडेगा । इन खुरंडाके निकालनेको ताजे दूधमें पकाया हुआ तैल अति हितकारी है । और जो मुखपर काममें लाया जावे तो तर पिस्तांका तैल लगावे ताजे दूधमें पकाया हुआ तैल मुखपर न लगावे क्योंकि तिलीके तैलका चिह्न मुखपर रह जाता है । यदि खुरंड मोटा और दलदार व उसके नीचे तरी होय तो उसको धीरेसे उठाकर तैल न लगावे किन्तु उसके नीचेसे तरीको उठा लेवे । यह मालूम पडे कि गहरा ह और स्रावमें गाढापन आ गया है अथवा नहीं, याद गहरा ह तो एलुआ, बूल, जरूद मुर्दासन, हल्दी, चांदीका मैल, सफेदा काशगरी, सिन्दूरका जरूर बनाकर उसपर बुर्के और गहराई न होय खालके बराबर होय तो भुनी फिटकरी व सेंधानमक दोनों हमवजन लेकर बारीक पीसकर बुर्के । यदि नीचे भी वैसी तरी मालूम पडे तो वैसाही इलाज करे, जो तरी न होय तो इलाजकी जरूरत नहीं है । कदाचित् दुबारा खुरंड आ जावे तो उपरोक्त तैलसे चिकना करे जिससे खुरंड उतर जावे । (फफोलोंके चिह्न मिटानेका उपाय) बाँसकी जड, बाकलाका चून, खरबूजेके बीजोंकी मिंगी, चावलेका चून, मिश्री, बदामकी मिंगी, जौका चून सबको समान भाग लेकर बारीक पीसकर मुर्गीके अंडका सफेदीमें मिलाकर लेप करे । प्रायः देखा जाता है कि मुखके ऊपर इस व्याधिके दाग बडेही बुरे पड जाते हैं किसी २ का चेहरा खोतखुतरा हो जाता है और बिलकुल भयावना दीखता ह । इसका प्रथम कारण तो यह है कि छोटी उमरके लडका लडकी अपनी वेसमझीकी दशामें फुंसी और फफोलोंको नखोंसे कुरेद कर बिगाड लेते हैं, इसकी रक्षाके लिये चेचककी तीसरी दशामें जब कि फफोलों पर झुर्रियां पड जावें तब बालकोंके हाथमें कपडेकी थैली व सूती मोजे पहना कर रखना ठीक है । यदि मुख पर दाग हो गये होवें तो हड्डीकी भस्म बकरीकी पुरानी मेंगनी भुनी हुई जो कि बहुत रोजकी रखी हुई होय नया ठीकरा खरबूजेके बीजकी मिंगी, निशास्ता धुले हुए चावल चनेका आटा प्रत्येक ३९ मासे बकायनके बीजकी मिंगी तिर्मिस कूट जरावन्द तबाल प्रत्येक १७॥ मासे सूखे वांसकी जड ७० मासे इन सबको कूट छान कर खरबूजेके पानी (स्वरस) में अथवा बाकलाके पानीमें अथवा जौके पानीमें मिलाकर रात्रिके समय मुख पर लेप करे और प्रातःकाल

सूखा बनफ़शा जलमें पकाकर उस जलसे मुखको धोकर साफ करे । यदि कोई चिह्न फफोलेका नेत्रमें रह जाय अथवा किसी प्रकारकी और किस्मकी खराबी नेत्रमें चेचकके कारणसे हो जाय तो उसका इलाज नेत्र रोगकी चिकित्साके अनुसार करे । जो फफोलोंके चिह्न छोटी उमरके बालकोंके शरीरमें गम्भीर होयँगे तो उनकी उमर बढने और मोटे होने पर जाते रहेंगे और जो फफोलोंके चिह्न सफेद होवें तो उन पर बतककी चर्बी लगा मरहम दाखलीऊनका लेप करना लाभदायक है । मुर्दासनको सफेद करके गुलरोगनमें मिलाकर लगानेसे सफेद दाग नष्ट हो जाते हैं । अथवा सफेद किया हुआ मुर्दासन चनेका आटा सफेद बांसकी जड जली हुइ पुरानी हड्डी कूट बकायनके बीजकी मिंगी चावलका चून खरबूजेके बीजकी मिंगी इन सबको बारीक पीसकर खरबूजेके पानीमें अथवा मुलहटी और अलसीके लुआबमें मिलाकर लेप करे । मुर्दासनको सफेद करके उपरोक्त दवाओंमें मिलाना चाहिये, क्योंकि मुर्दासन सफेद न किया जावे तो चनडे पर कालापन लाता हैं और सफेद किया हुआ सफाई करता है। मुर्दासनके सफेद करनेकी विधि यह है कि मुर्दासनको उसके वजनके समान नमक मिलाकर एक बर्तनमें रखे और उसमें पानी डाल धूपमें रखे जब पानी गर्म हो जावे तब बदल देवे ऐसा कई वार करनेसे मुर्दासन सफेद हो जाता है ।

डाक्टरीसे (स्माल पाक्स) चेचकका वर्णन ।

लैटिन् भाषामें इस मसूरिका रोगको (वेरीओला) कहते हैं । और इंग्लिश् भाषामें (स्मालपाक्स) कहते हैं, डाक्टरोंने इस व्याधिका कारण मुख्य करके ज्वर ही माना है, जो आलस्य और शिर तथा कमरमें पीडायुक्त आरम्भ होता है । तीसरे दिवससे मुखपर छोटी २ मसूरिका उत्पन्न होकर शरीरके नीचेके भागकी तर्फ उत्पन्न होती हुई सात दिवसमें सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो जाती हैं । ये मसूरिका नाक मुख नेत्र गुदा मूत्रेन्द्रिय कण्ठ कान सब ठिकाने उत्पन्न होती हैं । (मूयक्स मम्बरीन) में भी होती है मूयक्स मम्बरीन उस झिल्लीका नाम है कि जो अत्यन्त पतली होती है और शरीरके सम्पूर्ण अङ्गोंमें विस्तृत है । इस रोगसे मांसपेशी और कमर मस्तकमें अधिक पीडा होती है ऐसी स्थितिसे रोगकी प्रबलता समझी जाती है । ये मसूरिका जब शिरसे उत्पन्न होकर पैरोंतक निकल जाती है तब मुखपरसे ही मसूरिकाओंका पकना शुरू होता है मसूरिकाओंके निकलनेकी क्रिया खसरा हो तो ३ रोजमें और बडी मसूरिका हो तो ९ से ७ दिवसमें सम्पूर्ण अङ्गमें निकल आती है शिरसे लेकर पदा पर्य्यन्त निकल आती हैं तब प्रथम मुख पर निकली हुई मसूरिकाओंका पकना आरम्भ होता है और पकनेके अनन्तर सुकडती है और खुरंड पडकर झडने लगती है । इस रोगकी भयानकता और नम्रता

रोगीके शारीरिक मलके ऊपर समझी जाती है । चतुर चिकित्सक रोगीके मल और बलके ऊपर विशेष ध्यान रखे । जिस रोगीके शरीरमें मसूरिका थोडी उत्पन्न होती हैं उसके अलग २ रहती हैं । और जिस रोगीके शरीरमें पिडिका अधिक होती हैं उसकी हरएक मसूरिका दूसरीसे मिलकर अपनी गोलाकृतिको त्याग देती हैं । इस कारणसे इस पश्चूल पिडिका (मसूरिकाओं) के दो भेद डाक्टरोंने किये हैं । बेरी ओल्ड डस्पिटिया इस भेदमें रोगीको भय कम होता है । और दूसरा भेद बेरी ओल्ड कनफ्लेवान्स इस भेदवाली मसूरिकाव्याधिमें रोगीको विशेष भय रहता है । रोगीके मुखपर मसूरिका परस्पर मिलजाय और थोडी हो तो उसको कसप्लिवायस बोलते हैं । जो मुखपर मसूरिका निकटवर्त्ती होय अधिक होय और परस्पर मिली न हो तो इनको कोनप्लिवायस बोलते हैं । तीसरे दिवसके अन्तरसे मसूरिकाकी आकृति फफोलेके स्वरूपमें होती जाती है, उस फफोलेके समीपकी जगह दबी हुई और फफोला उठा हुआ दीखने लगता है । फफोलेके अन्दर साफ जल रहता है और फफोलेके चारों तर्फ रक्तता रहती है, पांचवें दिवसके उपरान्त फफोलेके बीच भागका जल नहीं रहता और पकाव शुरू हो जाता है उस फफोलका पश्चोल बन जाता है और फफोलेके बीचमें कुछ पीले रंगकी राध बन जाती है । जिस समय फफोलेमें राध बन जाती है उस समय रोगीके शरीरमें एक विचित्र प्रकारकी दुर्गन्ध उत्पन्न होती है । ८ वें व ९ वें दिनके उपरान्त अथवा किसी रोगीके शरीरमें १२ वें अथवा १४ वें दिवसके उपरान्त प्रत्येक पश्चूल (मसूरिका) के ऊपर स्याही दीख पडती है और मुख फटकर बीचमें खड्डा पड जाता है और पीब बह निकलती है और मसूरिका सुकडकर खुरंड बंध जाते हैं और इसके बाद खुरंड झडना शुरू हो जाता है । खुरंडके स्थान पर रक्त श्यामता लिये चिह्न दीख पडते हैं और ये चिह्न धीरे २ शरीरकी त्वचासे मिल जाते हैं, यदि मसूरिका गंभीर होय तो खुरंड झडनेसे अन्तर शरीरमें खड्डे पड जाते हैं । इस रोगीकी दशामें (वरावलोकि तक्षीवाकन्स) सदैव बने रहनेवाले ज्वर डिसक्रेटियांकी अपेक्षा अधिक उग्र रूपसे उत्पन्न होता है । इस तीव्र ज्वरके बाद फफोले शीघ्र प्रगट हो जाते हैं नेत्र फूल जाते हैं कभी २ किसी २ रोगीके नेत्र बन्द भी हो जाते हैं, कर्णमूलकी स्नायु फूल जाती हैं हाथ पैर फूल जाते हैं मुखकी मसूरिका परस्पर मिलकर एक हो जाती हैं । मुखपर पीतता झलकने लगती है ज्यों २ मसूरिका उत्पन्न होती जाती हैं त्यों २ रोगीके शरीरमें निर्बलता बढने लगती है भ्रम दाह तीव्र वेदना होती हैं जिह्वा पर कांटे और फफोले पड जाते हैं जल व आहारका लेना कठिन हो जाता है, श्वास रुक कर आने लगता है खांसी भी उत्पन्न हो जाती है । कंठकी नली सुकड जाती

है श्वासके रुकनेसे प्रलाप और उन्माद उत्पन्न होता है। दोनों प्रकारके स्मालपाक्स (मसूरिका) रोगमें स्कान्डरी फीवर विशेष ज्वर उत्पन्न होकर रोगीको मृत्युकारक भी हो जाता है। डाक्टरी कायदेसे यही इस रोगका निदान है, चिकित्सा इस रोगकी यह है कि बालक १ सालका हो जाय उसी समयसे उपरान्त (व्याक्सीनेशन) टीका लगवा देना चाहिये, इसके अलावे दूसरा कोई उपाय डाक्टरीमें नहीं है। यूरोपियन लोगोंमें मसूरिका रोग उत्पन्न होता है तो उस रोगी और मकानको त्याग कर अलग भाग जाते हैं और यहांतक भय मानते हैं कि जिस मकानमें रोगी रहे उसके अच्छे होने पर अथवा मरने पर मकानका सामान जला उस मकानमें भी अग्नि प्रज्वलित करते हैं। भारतवर्षके बडे २ शहरोंमें जहां अंगरेजोंकी छावनी है, किसी समय पर भारतवासियोंमें मसूरीका रोग होता है तो उस समय पर भारतवासियोंको यूरोपियन लोग छावनीमें नहीं आने देते और न भारतवासियोंकी आवादीमें स्वयं जाते हैं। बस डाक्टरीमें यही चिकित्सा मसूरिका रोग उत्पन्न होनेपर की जाती है। मसूरिका रोगीको स्पर्श करनेसे डाक्टरलोग बडी घृणा मान दूर भागते हैं। मसूरिका रोगकी उत्तरावस्थाकी कुछभी चिकित्सा डाक्टरीमें नहीं की जाती। भारतवर्षके पशु पालनेवाले लोग इस बातको भले प्रकारसे जानते हैं कि यह मसूरिका रोग कभी २ गौ घोडा आदि पशुओंको भी होता है। गौकी मसूरिका व्याधिको विक्साईना और घोडेकी मसूरिकाको इकवाईना कहते हैं। गौ और घोडेकी मसूरिका रोगका चेंप लेकर मनुष्योंके शरीरमें चेचककी मसूरिका उत्पन्न करनेको डाक्टर लोग डालते हैं, इससे क्या लाभ पहुंचता है इस विषयमें कुछ निश्चय नहीं किया जाता। भारतवर्षके हिमालय प्रान्तमें चेचकका जोश अधिक न होय इसलिये पहाडी लोग गोंदनेकी क्रिया वहुत प्राचीन कालसे करते आये हैं और इस समय भी डाक्टरी कायदेसे टीका लगानेके महकमेंमें अक्सर पहाडी लोग ही टीका लगानेका काम करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि चेचकके रोकनेके लिये भारतवासियोंने गोंदनेकी तर्कीव टीका लगानेकी तर्कीवसे कई हजारों वर्ष पूर्वही निकाल ली थी। हम यह तो नहीं लिख सक्ते कि टीका लगाना हितकारी और गोंदना अहितकारी है, क्योंकि टीका लगे हुए भी हजारों बालक इस रोगसे हरसाल मृत्युको प्राप्त होते प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। इसी प्रकार विषूचिका और ग्रन्थिक सन्निपात (महामारी) रोगके अवरोधके निमित्त टीका लगानेकी तर्कीव-यूरोपियन डाक्टरोंने निकाली है। हाफकिनका कारखाना परेल मुम्बईमें वहुतकाल पर्य्यन्त रहा और भारतके अनेक प्रान्तोंमें प्लेगका टीका लगाया गया लेकिन टीका लगे हुए मनुष्योंमेंसे हजारों ही मृत्युको प्राप्त होते देखे गये हैं। हमारे विश्वासमें तवारीखोंके देखनेसे यह सिद्ध

हो गया है कि गोंदनेकी तर्कीब एशिया खण्डसे ही तुर्किस्थान रूममें प्रसार करती हुई यूरोपमें पहुंची है और गोंदनेकी तर्कीबकी प्रतिनिधि टीका लगानेकी तर्कीब व्याक्सीनेशन नियत की गई यह सब तजुर्बा प्रथम एशियाटिक भारतवासियोंका है।

शीतपित्तके लक्षण।

शीतमारुतसंपर्कात्प्रवृद्धौ कफमारुतौ। पित्तेन सह संभूय बहिरंतर्विसर्पतः॥ पिपासारुचिहृल्लासदेहसादांगगौरवम्। रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य लक्षणम्॥ वरटीदष्टसंस्थानः शोथः संजायते बहिः। सकण्डूतोदबहुलश्छर्दिज्वरविदाहवान्॥ वाताधिकतमं विद्याच्छीतपित्तमिमं भिषक्। सोत्संगैश्च सरागैश्च कण्डूमद्भिश्च मण्डलैः॥ शैशिरः श्लेष्मबहुल उदर्द इति कीर्तितः। असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः॥ मण्डलानि सकण्डूनि रागवन्ति बहूनि च। सानुबन्धस्तु स प्राज्ञैरुत्कोठ इति कथ्यते॥

अर्थ–शीतल वायुके लगनेसे कफ और वायु दूषित होकर पित्तसे मिलकर अन्दर रक्तादिमें बाहर त्वचामें विचरे। शीतपित्त होनेसे पूर्व तृषा, अरुचि, मुखसे जलस्राव, अङ्गका भारी होना, नेत्रोंका रक्त होना ये चिह्न होते हैं। (शीतपित्तके लक्षण) वरटी कहिये ततैयाके काटनेके समान त्वचा पर चकता पड जावे उसमें खुजली चले व सुई चुभनेकीसी पीडा होय इस व्याधिके संयोगसे वमन सन्ताप दाह उत्पन्न होय इस व्याधिको वाताधिक्य शीतपित्त कहते हैं, लौकिकमें पित्तीरोग कहते हैं। इसमें खुजली होती है सो कफसे सुई चुभानेकीसी पीडा वातसे और वमन सन्ताप पित्तसे होते हैं। (उदर्द शीतपित्तके लक्षण) शर्दीसे कफ प्रकुपित होकर शरीरके ऊपर लाल चकता उत्पन्न होवे और उनमें विशेष खुजली उत्पन्न होय और चकते मंडलाकार गोल होयँ बीचमें कुछ नीचे चारों तर्फ ऊँचे होयँ इस रोगको उदर्द शीतपित्त कहते हैं। (उत्कोठ शीतपित्तके लक्षण) मनुष्यको वमनकी इच्छा हुई होय और वमन उत्तम प्रकारसे न हुआ होय तो बढे हुए पित्त और कफ अन्नको रोक कर शरीरमें लाल रंगके चकत्ता खुजली संयुक्त उत्पन्न करें और बारम्बार उत्पन्न होय और बैठ जावे इस रोगको बुद्धिमानोंने उत्कोठ शीतपित्त कथन किया है।

शीतपित्तके तीनों भेदोंकी चिकित्सा।

शीतपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवासकैः। त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्च प्रश-

स्यते । अभ्यङ्गः कटुतैलेन सेकश्चोष्णेन वारिणा ॥ त्रिफलां क्षौद्र संयुक्तां खादेच्च नवकार्षिकम् । त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैकांशयोजिता ॥ गुटिका शीतपित्तार्शोभगंदरवतां हिता । सितां त्रिकटुसंयुक्तां गुडमामलकैः सह ॥ यवानीं खादयेच्चापि सव्योषक्षारसंयुताम् । आर्द्रकस्य रसः पेयः पुराणगुडसंयुतः ॥ शीतपित्तापहः श्रेष्ठो वह्निमान्द्यविनाशनः । सिद्धार्थरजनीकल्कैः प्रपुन्नाटतिलैः सह । कटुतैलेन संमिश्रमेतदुद्वर्त्तनं हितम् । सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत्पथ्यान्नभुक् नरः । तस्य नश्यति सप्ताहा दुदर्दः सर्वदेहजः । घृतं पीत्वा महातिक्तं शोणितं मोक्षयेत्तथा । स्निग्धस्विन्नस्य संशुद्धिमादौ कोठे समाचरेत् । उत्कोठे शुद्धदेहस्य कुष्ठघ्नीं कारयेत् क्रियाम् ॥ निम्बस्य पत्राणि सदाघृतेन धात्रीविमिश्राणि नरः प्रयुंज्यात् । विस्फोटकण्डूक्रिमिशीतपित्तसुदर्दकोठौ च कफं च हन्यात् ॥

अर्थ—शीतपित्तवाले रोगीको .पटोलपत्र नीमकी छालका क्काथ शहद डालकर पिलावे इसके पीनेसे वमन होती है । त्रिफलाके क्काथमें गूगल और पीपलका चूर्ण मिलाकर रेचक करावे । कडुवे तैल (सरसोंके तैल) की मालिश करावे—ऊष्ण जलका तरडा देवे अथवा ऊष्ण जलमें बैठाले—अथवा त्रिफलाके क्काथमें शहद मिलाकर नवकार्षिकगुटिका सेवन करे । (नवकार्षिक गुटिका) त्रिफला ३ तोला, शुद्ध गूगल ५ तोला, पीपल १ तोला—इन सबको एकत्र कूट कर जलके संयोगसे चणक प्रमाण गोली बनावे और रोगीकी अवस्थाके अनुसार मात्रासे सेवन करावे, यह गोली शीतपित्त अर्श भगंदर इत्यादिके रोगियोंको अति हितकारी है । अथवा शीतपित्तवाले रोगीको त्रिकुटा आमलेके चूर्णमें गुड मिला कर खिलावे । अथवा त्रिकुटा—अजवायनमें जवाखार मिला कर सेवन करावे । अथवा अदरखके रसमें पुराना गुड मिलाकर पीवे यह प्रयोग शीत पित्त और मन्दाग्निको नष्ट करता है । अथवा सफेद सरसों और हल्दीको पीस कर अथवा सफेद सरसों पवारके वीज इन दोनोंको पीसकर तिलके कल्कके साथ सरसोंका तैल मिलाकर उवटना करे तो शीतपित्त निवृत्त होय । पुराने गुडमें अजवायनका चूर्ण मिलाकर सेवन करे तो शीतपित्त निवृत्त होय इस प्रयोगका सेवन ७ दिवस पर्य्यन्त करे और पथ्य भोजन करे तो इसके सेवनसे सम्पूर्ण शरीरका उदर्द नष्ट होय । महातिक्त घृतको पिलाकर रोगीकी

फस्द खोले । और उत्कोठक रोगमें स्नेहन–स्वेदन कराके वमन विरेचनसे शुद्धि करे । उत्कोठक रोगमें शरीरको शुद्ध करके कुष्ठ रोगके समान चिकित्सा करे नीमके पत्र आंवले इनको समान भाग लेकर चूर्ण बनावे और इस चूर्णको परिमित मात्रासे घृतके साथ सेवन करे तो विस्फोटक, खुजली, कृमि, शीतपित्त, उदर्द, उत्कोठक और कफको नष्ट करे ।

आर्द्रकखण्ड ।

आर्द्रकं प्रस्थमेकं स्याद्गोघृतं कुडवद्वयम् । गोदुग्धं प्रस्थयुगलं तदर्द्धं शर्करा मता ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् । चित्रकं च विडङ्गञ्च मुस्तकं नागकेशरम् ॥ त्वगेला पत्रकर्च्चूरं प्रत्येकं पलमात्रकम् । विधाय पाकं विधिवत्खादेत्तत्पलसम्मितम् ॥ इदमार्द्रकखंडोऽयं प्रातर्भुक्तं व्यपोहति । शीतपित्तमुदर्दञ्च कोठमुत्कोठमेव च ॥ यक्ष्माणं रक्तपित्तं च कासं श्वासमरोचकम् । वातगुल्ममुदावर्त्तं शोथं कण्डू-क्रिमीनपि । दीपयेदुदरे वह्निं बलं वीर्य्यञ्च वर्द्धयेत् । वपुः पुष्टं च कुरुते तस्मात्सेव्यमिदं सदा ॥

अर्थ–एक सेर अदरखको घियाकस यन्त्रमें कसके बारीक बुरादा कर लेवे और दो सेर गोदुग्धमें पकावे, जब पकते २ घनरूप हो जावे तब आधा सेर गोका घृत डालकर भूने जब तैयार हो जावे तब १ सेर मिश्री व सफेद बूरा मिलावे तथा पीपल पीपलामूल मिरच, सोंठ, चित्रक, वायविडंग, नागरमोथा, नागकेशर, तज, इलायची, पत्रज, नरकचूर प्रत्येक औषध ४ तोला लेकर कूट छानकर सूक्ष्म चूर्ण बनाकर मिला बर्त्तनमें भरकर रखलेवे, इसकी मात्रा पूरी उमरके मनुष्यको ४ तोलाकी है और बालकोंको उनकी उमर अनुसार मात्रा देनी योग्य है । यह आर्द्र-खंड प्रातःकाल सेवन कर हित भोजन करे तो शीतपित्त, उदर्द, कोठ, उत्कोठ, क्षय, रक्तपित्त, खांसी, श्वास, अरुचि, गुल्म, उदावर्त्त, सूजन, खुजली, कृमिरोग इनको निवृत्त कर जठराग्निको प्रदीप्त करके बलवीर्य्यको बढाकर शरीरको पुष्ट करे ।

अग्नि दग्धकी चिकित्सा ।

जब शरीरका कोई भाग अग्निसे जल गया होय और फफोला (छाला) न पडा हो तो ऐसा उपाय करना चाहिये कि उस जगह पर शीतलता पहुंचे और गर्मीके दाहकी हानि होवे, इस उपायकी विधि यह है कि एक कपडा बर्फके पानीमें भिगो-कर जले हुए स्थानपर रखे और वह गर्म हो जाय तब उसको उठाकर दूसरा कपडा

रखे अथवा वर्फकी डली कपडेमें लपेट कर रखे । सम्पूर्ण शीतल औषधियोंका लेप करना हितकारी है, जैसे कि गिलेइरमनीको पानी अथवा सिर्केमें मिलाकर लेप करे । मसूर पकाकर लेप करे, वट वृक्षकी कोंपल बारीक पीसकर दहीमें मिलाकर लेप करे । अथवा स्याही जो कि काजल और गोंदसे बनती है जले स्थान पर लेप करे एक घंटा रखनेसे लाभ पहुंचता है । अथवा अंडेकी सफेदीका लगाना अति लाभदायक है । अथवा अंडेकी सफेदी तिलके तैलमें मिलाकर लगावे । खतमी और खव्वाजी इनको जलमें पकाकर लुवाब निकाल, इस लुआवमें सफेदा काशगरी और तर धनियेका स्वरस मिलाकर घोंट लेवे, जब मरहम बन जावे तब कपडे पर लगाकर जले हुए अंगपर रखे । यदि शरीर अधिक जल कर फफोले पड गये होयँ व शरीर मवादसे खूब भरपूर होय या रोगीकी शक्ति बलवान हो तो रोगीकी फस्द खोलकर कुछ मवाद निकाल देवे, इससे जले हुए मुकाम पर मवाद कसरतसे न पडे और ऊपर कथन किया हुआ सफेदा काशगरीका मरहम लगावे । जो इस मरहमसे दर्द न रुके तो चूनेका मरहम लगावे । (जो रोगीके जिस्ममें मवादकी कमी हो तो फस्द कदापि न खोले) और जले हुए अंगपर फफोला पडनेका कारण यह है कि किसी बाहरके व भीतरके कारणसे रक्तमें जो मिला हुआ पानीका भाग है वह रक्तसे पृथक् हो जाय और रगोंके पाससे निकलकर चमडेके नीचे गोस्तके ऊपर आ जाय इस कारण चमडा ऊपरको उठ कर पानी चमडेकी जिल्दमें भर आवे। (चूनेका मरहम बनानेकी विधि) चूना लेकर साफ जलमें भिगो देवे जब वह फूल जावे तब उसको जलमें घोल देवे जब चूना पानीमें बैठ जावे तब ऊपरसे पानी नितार देवे । इसी प्रकार सात बार पानी डाले और नितरने पर निकाल देवे । चूनेसे चतुर्थांश खडिया मिट्टी मिला तिलीका तैल मिलाकर हाथसे मथ डाले जब मरहमके समान हो जावे तब जले हुए अंगपर लगावे । (दूसरी विधि) कलई चूना लेकर साफ जलमें भिगो देवे और उसका जल नितर जावे उस समय उसको उतार उसीके समान मीठा तैल मिलाकर हाथसे मथडाले जब वह मरहमके समान गाढा हो जावे तब जले हुए अङ्ग पर लगावे, इस मरहमसे हर समय तर रखे थोडे ही दिवसमें इस मरहमसे अग्निदग्धके जखम भर जाते हैं । जिस छाले पर चमडी उतरकर पानी निकल गया होय और उसमें जलन होती होय तो सफेद रालको बारीक पीसकर मीठे तैलको गर्म करके रालके चूर्णको उसमें छोड देवे और चमचासे चलाता रहे जब राल तैलमें मिलजावे तब उतार कर शीतल कर टूटे हुए छालेके जखम पर लगावे उसी समय जलन बन्द हो जाती है और थोडे दिवस पर्य्यन्त लगानेसे जखम भर

जाता है । जले ठिकाने पर जखम भरनेके पीछे सफेद दाग पड जावें तो जामुन वृक्षके नर्म २ पत्र पीसकर मर्दन किया करे अथवा बेरीके वृक्षकी कोंपल पीसकर दही-में मिलाकर मदन करे तो चमडेके समान सफेद दागकी रंगत हो जाती है । इसी प्रकार त्रिफला पीसकर लगाना भी असली रंगत पर लाता है, यदि गर्म तैल व गर्म घृतसे मनुष्य जल गया हो तो ऊपर लिखे उपायको काममें लावे अथवा मुर्गीके पंखकी भस्म नमककी भस्म चावलका बारीक आटा सफेदा काशगरी राईका बारीक आटा इन पांचोंको समान भाग लेकर अंडेकी सफेदी और वनफशाक तैलमें मिलाकर लगावे इस प्रयोगमें नरमुर्गेके पंखोंकी भस्म नहीं मिलाना, कारण कि नरमुर्गेके वदनमें एक खारी जलन करनेवाली तरी होती है । गर्म पानीसे जलनेका यह उपाय करे कि जब-तक फफोला न पडे राखका पानी अथवा जैतूनका नमकीन पानी उस अङ्गपर डालता जावे, इसमें इमलीकी लकडीकी राखका पानी अति हितकारी है राखके पानीमें कपडा भिगो कर हर समय जले हुए अङ्गपर रखे । राखके पानीकी विधि इस प्रकारसे है कि राखको पानीमें डाल देवे और जब वह राख पानीमें बैठ जावे तब पानीको दूसरे बर्तनमें नितार दूसरी नवीन राख उस पानीमें मिला देवे । जब राख बैठ जावे तब पानीको दूसरे बर्त्तनमें नितार लेवे इसी प्रकार पांच व सात बार नितार कर काममें लावे । राखमें जो क्षारका भाग होता है वह सब जलमें आ जाता है, वही क्षार इस जले हुएको फायदा पहुंचाता है । अथवा जौकी राखको अंडेकी जर्दी मिलाकर पानीसे जले हुए मुकाम पर लगावे । यदि विद्युत (विजली) से जला हो विजलीका गुण है कि जिस वस्तुपर गिरे उसको जला देती है और वह प्राणी निर्जीव हो जाता है, क्योंकि बिजलीका तेज यावत् अग्नि है उन सबसे अधिक है । यदि बिजली गिरनेके ठिकानेसे मनुष्य अधिक दूरीपर होय और उसको केवल झर्पमात्र लगी होय इस लपटं मात्र गर्मीकी तेजीका ही उपाय हो सक्ता है, इसका उपाय अग्निके जलेके समान करे । सूर्य्यकी धूपकी गर्मीसे जले हुए मनुष्यका उपाय यह है कि कापूर अथवा भीमसेनी कापूरकी मालिश करे अथवा सिर्केकी मालिश करे ।

अचेतनताकी चिकित्सा ।

अचैतन्यता व गशी शरीरके शून्य पड जानेको कहते हैं, इसके कितने ही कारण हैं । जैसे कि दिलकी निर्बलता और बिगडे हुए ज्वरके कारणसे दिलका खराब व निर्बल होना, दुष्ट खराब दुर्गन्धि दिलकी तर्फ जाती होय अथवा किसी प्रकारके भयका सद्मा दिलपर पहुंचा होय । अथवा कोई भयानक वस्तु या किसीकी शकल देखी होय । इस अचैतन्यताके निवृत्त करनेके मुखपर शीतल जल छिडके और उत्तम सुगन्धित वस्तु सुंघावे जो प्रकृतिकी गर्मीसे अचैतन्यता हो तो गुलाब जल अथवा जलमें कोरी

सुगन्धित मृत्तिका भिगोकर सुंघावे, जो शर्दीकी प्रकृतिसे हो तो कस्तूरी सुंघावे लोह-वानकी धूनी देना पैरके तलुए मलना वमन कराना ये सब उपचार अचैतन्यताको नष्ट करते हैं । खीराककडीको चीर कर सूंघना गर्भीकी अचैतन्यताको निवृत्त करता है ।

रुधिर थूकनेकी चिकित्सा ।

जो रुधिर खखारके साथमें आता हो तो जानो कि तबीयतकी गर्मीसे है । जो खखरके बिदून रुधिर थूके तो जानो कि मस्तकसे आता है, जो खांसीके साथ आवे तो जानो कि चीनी हड्डी और मुख गले कलेजे अथवा फेंफडेसे आता है । उपाय इसका यह है कि बालकको छोड कर जो रोगी पूरी उमरवाला होय और उसके मस्तकसे रुधिर आता हो तो सरेरूनसकी फस्द खोले, जो गले छाती फेंफडा कलेजासे आता हो तो बासलीक नसकी फस्द खोले और मुखके जोडोंसे आता हो तो चार नसकी फस्द खोल आवश्यकताके अनुसार रक्त निकाले । यदि गलेमें जखम होय और उससे रक्त आता हो तो स्तम्भक औषध गलेमें लगावे जैसा कि तूतिया सुहागा अथवा फिटकरीका पानी । कहरुआकी टिकिया रुधिर थूकने और मूत्रमें रुधिर आनेको विशेष गुण करती है (विधि) कहरुआ ७ मासे, कुलफाके बीज, भुने हुए गेंहू, भुना धनियां, निशास्ता, गिले अरमनी, बबूलका गोंद, कतीरा, प्रत्येक १४ मासे इन सबको बारीक पीस कर बिहीदानेके लुआबमें गूंद कर टिकिया बनावे मात्रा पूरी उमरवालेको ४ माससे लेकर सात मासे तक और बालकोंको उनकी उमरके माफिक देवे । चूर्ण जो कि रुधिरके थूकनेको रोकता है । बबूलका गोंद, मुलतानी मृत्तिका, कतीरा सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनावे और पूरी उमरवाला मनुष्य ७ मासेकी मात्रा खसखसके शरबत और अदरखके रसके साथ सेवन करे, बालकको उसकी उमरके माफिक मात्रा देवे । (दूसरा चूर्ण) सोनागेरू, कुंदरू-गोंद, अनारके फूल सूखे हुए, बबूलका गोंद सब बराबर वजन लेकर बारीक पीसकर चूर्ण बना परिमित मात्रासे आंवलेके स्वरस अथवा शरबतमें मिलाकर खावे । गुलखैराकी जड एक तोला कूट कर रात्रिको ७ तोला जलमें भिगो देवे प्रातःकाल मल छान कर पीवे । अथवा हरी गिलोय १ तोला अडूसाकी सब्ज पत्ती १ तोला दोनोंको कुचलकर काढा बनाकर पीवे तो रुधिरका थूकना बन्द होय ।

मस्तक पीडा ।

मस्तकपीडा कितने ही कारणोंसे होती है जिस कारणसे होय उसको इस प्रकारसे जाने कि जो मस्तकपीडा आधे मस्तकमें होय उसको सूर्य्यावर्त्त व आधाशीशी कहते हैं और तबीब लोग इसको शकीकह कहते हैं । रुधिर वात कफ

पित्त ये चारों मिले होयँ तो सन्निपातकी मस्तकपीडा जानना, इसको तबीब लोग माद्दी कहते हैं । इनसे पृथक् हो तो वह क्षीणताकी मस्तकपीडा जाननी, इसको तबीब लोग साजिज कहते हैं । और जो धूपके लगनेसे गर्म वायुके लगनेसे अग्निकी तापके लगनेसे अथवा किसी गर्म औषधके खानेसे होय उसको हकीम लोग साजिजहार कहते हैं । जो ठंढी वायुके लगनेसे अथवा ठंढा पानी काममें लानेसे अथवा ठंढे मकानमें रहनेसे हो तो उसको तबीब लोग साजिजवरद कहते हैं । जिस मनुष्यका मस्तक अग्निके समान तेज गर्म होय और ठंढी वस्तुओंके लगानेसे आराम होय और गर्मके लगनेसे कष्ट हो तो इसको पित्तकी मस्तकपीडा जानना । जिस मनुष्यका शरीर शिथिल सुस्त और ठंढा होय और मस्तक तथा आंखोंमें जलन न होय गर्म वस्तुओंके इस्तेमालसे आराम पहुंचे और ठंढी वस्तुसे कष्ट पहुंचे तो कफकी मस्तकपीडा जानो । जो मस्तकपीडा शिरमें एक ठिकानेसे दूसरे ठिकाने जाती हुई माल्रुम होय और कानोंमें शब्द माल्रुम हो तो वायुकी मस्तक-पीडा जानो । जो वालक मस्तकको इधर उधर हिलावे और मस्तकपर हाथ रखके रोवें तो उसके मस्तकमें पीडा जानना । यदि मस्तकपीडा वडे मनुष्यके मस्तकमें रक्तकी प्रबलतासे हो तो फस्द खोलना, यदि वातकफकी प्रबलतासे हो तो जुलाव देकर शुद्ध करना । परन्तु वालकोंकी फस्द न खोले आवश्यकता हो तो हलका जुलाव दे सक्ते हैं । इतरीफल कशनीजी जो कि मस्तकपीडा भौहँपीडा नेत्रपीडाको अति लाभकारी है । वडी काविली हरडकी छाल, पीली हरडकी छाल, छोटी हरड, छिलका उतरा हुआ धानियां प्रत्येक एक तोला इन सबको वारीक कूट छान कर थोडे घृतमें अकोर लेवे और १२ तोला शहदको गर्म करके मिला देवे, मात्रा उमर और प्रकृतिके अनुसार देवे, वडी उमरके मनुष्यको २ तोलाकी मात्रा है । इतरीफल मुलैयन मस्तकपीडाको अति गुणदायक है (विधि) वडी काविली हरडकी छाल, पीली हरडकी छाल, काली छोटी हरड, आंवला बहेडाकी छाल प्रत्येक ३ तोला, गुलाबके सूखे फूल, सनायकी पत्ती छिली हुई काली निसोत प्रत्येक १ तोला २ मासे, सोंठ दो मासे सबको कूट छान कर वदामके तैलमें अकोर लेवे और ७४ तोला शहद व कंदकी चाशनी करके मिला देवे, मात्रा मनुष्यकी प्रकृति व उमरके माफिक देवे । पैरके तलुओंको दवाना शहलानागर्मी शर्दीकी मस्तकपीडाको गुण करता है । गर्म जलसें पैर धोना व गर्मजलमें पैर रखना शर्दीकी मस्तकपीडाको लाभ पहुंचाता है । और शीतल जलका मस्तक पर तरडा देना अथवा स्नान करना गर्मीकी मस्तकपीडाको लाभ पहुंचाता है, पित्तकी मस्तकपीडाको शान्त करनेवाली ठंढाई । धनिया, काहू गुलनीलोफर प्रत्येक ३ मासे इनको जलके साथ बारीक पीसकर ६ तोला शीतल जलमें छान कर

सरवत नीलोफर मिलाकर पीवे बालकको उसकी उमरके माफिक मात्रा देवे। और जुखाम नजलेकी मस्तकपीडा पर बडी सीप सिर्केमें घिसकर कानकी लोरपर लगाते रहनेसे मस्तकपीडा शान्त रहती है। महुएके फूलका तैल शर्दी और गर्मीकी मस्तक-पीडाको निवृत्त करता है (विधि) महुआके फूल जीरा निकलाहुआ, सोंठ, बाय-विडंगका बीज भांगरा, छिली हुई मुलहटी प्रत्येक १ तोला इन सबको कूट कर २० तोला जलमें पकावे और १० तोला पानी बाकी रहे उस समय उतार कर छान लेवे और इस काढेमें ५ तोला मीठा तैल मिलाकर पकावे जब तैलमात्र बाकी रहे तब उतारकर शीशीमें भरलेवे जब आवश्यकता होय तब इस तैलको जरा निवाया करके कानमें टपकावे और शर्दीकी मस्तक पीडा हो तो गर्म और गर्मीकी हो तो शीतल तैलकी मालिस मस्तकपर करे। मस्तकके रोगोंमें प्रायः गुलरोगन विशेष काम आता है उसके बनानेकी विधि नीचे लिखी जाती है।

गुलरोगन बनानेकी रीति।

फसली गुलाबके ताजे फूलोंकी पंखडियां लेकर एक बोतलमें भरके उसका मुख बन्द करके एक दिवस उसको धूपमें और दूसरे दिवस उसमें धुली हुई तिलोंका तैल डालकर कई दिवस पर्य्यन्त धूपमें रखे जब फूलोंकी सम्पूर्ण सुगन्धि तैलमें आ जावे तो जानो कि गुलरोगन तैयार हो गया, फिर छान कर तैल शीशीमें भर लेवे कभी २ फूलोंको तैलमें पकाकर भी गुलरोगन तैयार करते हैं, लेकिन उपरोक्त विधि अति उत्तम है। इसी प्रकार मोगरा मोतिया जुही चमेली नरगिस बाबूना तथा और २ किस्मके फूलोंका गुलरोगन बन सक्ता है। पित्त और गर्मीकी मस्तकपीडा पर यह लेप करे। नीलोफर चन्दन रसौत मामीसा, थोडा कापूर, तुखम काहू, तुखम ककडी, ताजी धनियेके पानीमें पीसकर थोडा गुलरोगन मिलाकर लेप करे शरबत नीलोफर शरबत बनफशा, अथवा शरबत उन्नाव शरबत इमली, इनका पिलाना हितकारी है, पित्तज शिरोरोगमें दोषको निकालनेके लिये नीचे लिखा जुलाब देवे। पीली हरडकी छाल, काबुली हरडकी छाल, आलूबुखारा, मुनक्का, उन्नाव, छिली हुई मुलहटी, इमली बन्-फशा छोटा लसोडा इनको परिमित मात्रासे लेकर जलमें काढा बनाकर तुरंजवीन और अमलतासका गूदा मिलाकर (अथवा तुरंजवीनकी जगहपर शीर खिस्त होय तो सबसे उत्तम है पिलावे) गेंहूकी भूसी खतमी बनफशा इनको जलमें पकाकर भफारा देवे। भफारा इस विधिसे देवे कि मुख नाक और नेत्रोंको न लगे किन्तु रोगीके शिर और मस्तकको लगे। रक्तज शिरोदर्द रक्त गर्म और तर है। रक्तका दोष अधिक हो तो शरेरूकी फस्द खोले, पिंडलियों पर पछने लगावे (परन्तु बालक और अति वृद्धावस्थावालोंका रक्त मोक्षण न करे) तबीयत नर्म करने और

रक्तकी गर्मीको निकालनेके लिये नीचे लिखा जुलाब देवे । उन्नाव आलूवालू लसोडा इमली, वनफशा, पित्तपापडा इनके काढेमें तुरंजवीन डालकर पिलावे जिससे दस्त हो जावे । इसके पीछे गर्मी शान्त करनेको शरबत उन्नाव शरबत आलू शरबत नीलोफर पिलावे और काहू कुल्फा कदूक शीरामें गुलरोगन और स्त्री-का दुग्ध मिलाकर नाकमें टपकावे इसका अति उत्तम असर पहुंचता है । काहूके बीज कुलफाके बीज कदूक बाज इनका शीरा और हरे धनियेका पानी गुलरोगन तथा थोडासा सिर्का इन सबको मिलाकर खुले मुखकी शीशीमें भर कर शीशीको हिलाहिला कर वारम्बार सुंघावे और शीशीको नाकके समीप रखे ।

कफके शिरोरोगमें मुलहटी, सोफ गुलकंद इनसे कफदोषको पकावे और अयारजफैकरा, विही सकमूनियां इन्द्रायणका गूदा इनका जुलाब देकर कफको निकाले (अयारज फैकरा प्रयोग ।) जाद, वालछड, केशर, दालचीनी, प्रत्येक १०॥ मासे जरा बन्द तवील फितरा शालियून मिरच, सफेद सकबीनज जावशीर प्रत्येक ७॥ मासे कमादयूश फराशयून गारीकून उस्तुखुदूस प्रत्येक ५ तोला ११ मासे इन्द्रायणके फलका गूदा ५ तोला ११ मासे इन सबको कूट छान कर शहद मिलाकर तैयार कर ६ महीने रखे रहनेके बाद काममें लावे । पुरानी मस्तकपीडा आधाशिशी हाथ पैरोंके वायटे व गांठोंकी सन्धियोंके दर्दको मुफीद है । (शिरोविरेचनकी गोली) एलुआ तर्बुद (निशोतका चूर्ण) अनीसून रूमी मस्तगी सकमूनिया सेंधानमक इन सबको हमवजन लेकर कूट छान कर शहद मिलाकर चनेके प्रमाण गोलियां बना रोगीकी उमरके अनुसार मात्रासे देवे । हुब्बेशवियार कफकी मस्तक पीडाको विशेष लाभ देती हैं । (विधि) एलुआ रूमीमस्तगी तुर्बुद गारीकून नमक हिन्दी समान भाग लेकर कूट छानके शहदमें चनेके प्रमाण गोली बनावे आवश्यकताके अनुसार रात्रिको सेवन करे (शव) रात्रिको कहते हैं । कफ और शर्दीकी मस्तकपीडा पर सहजनेके पत्र जलके साथ पीसकर गर्म करके लेप करे शीघ्र मस्तकपीडाको लाभ पहुंचाता है । पीपल, कलोंजी, काली जीरी जलके साथ पीसकर गर्म करके मस्तक पर लेप करे तो शर्दी और कफकी मस्तकपीडा शान्त होय । अरंडीकी गिरी सोंठ अजवायन जलके साथ पीसकर गर्म करके मस्तक पर लेप करे तो शर्दी और कफकी मस्तकपीडा निवृत्त होय ।

वातज मस्तककी चिकित्सा इस प्रकारसे करे कि प्रथम माद्देके पकानेके लिये विस्फायज उस्तुखदूस वेदानेकी मुनक्का गावजवां वादरंजवोया आलूबुखारा अफ्तीमून इनके काढेमें तुरंजवीन मिलाकर पिलावे । इस बातका ध्यान रखे कि वातज दोष बहुत रोजमें पचता है । पित्त ३ दिवसमें कफ १० दिवसमें और वादीका दोष १५ दिवसमें पकता है । जब मल पक कर कालापन व गाढे होनेका चिह्न प्रगट होय उस

समय जुलाव देकर मलको निकाल देवे । चाहे अयारज फैकराकी गोलियाँ अफ्तीमूनके काढेके साथ देवे । चाहे यह प्रयोग देवे अफ्तीमून विस्फायज गारीकून उस्तुखुद्दूस अयारज फैकरातुर्बुद इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीस लेवे और सौंफके काढेमें घोंटकर गोलियां बना आवश्यकतानुसार रोगीकी उमरके अनुकूल मात्रासे खिलावे । जब सम्यक् प्रकारसे शरीर और मस्तककी स्वच्छता हो जाय तब रोगीकी प्रकृतिको स्वभाव पर लानेके लिये बाबूना नाखूना दोनामरुआ इनको जलमें पीसकर गुलरोगन अथवा चमेलीके तैलमें मिलाकर सिरपर लेप करे । तथा बाबूना नाखूना सआतर शीरा इरमनी गावजवां चुकंदरके पत्र गेंहूकी भूसी इन सबको जलमें पकाकर उस मन्दोष्ण जलको शिरपर डाले । और नरगिसका फूल कस्तूरी अम्बर ऐसी वस्तुओंको सूंघे और गर्म तैल शिरमें डाले रोगन बाबूना रोगन दोनामरुआ रोगन नरगिस इत्यादि । अगर प्रकृतिमें कुछ गर्मी हो तो रोगन बनफशा रोगन नीलोफर इनके साथमें मिलाकर डाले । यदि प्रकृतिमें गर्म बादी हो तो एकदम गर्म दवा काममें न लावे किन्तु शर्द तर दवा गर्म दवाके साथ मिलाकर काममें लावे । शिरके दर्दवाले रोगीको उचित पथ्याहार सेवन करावे, अति गर्म और अति शीतल आहार न देवे । खाना खानेके बाद बाईं करवटसे थोडे समयतक लेट जावे, क्योंकि इस प्रकार लेटनेसे जिगर आमाशयकी तर्फ आरूढ होता है । यह क्रियापूर्ण पचावटके लिये विशेष सहायक है । इस व्याधिमें बडी उमरके मनुष्योंको परिश्रम (मेहनत) करना और बालकोंको खेलना कूदना दौडना त्याग देना चाहिये ।

रीही शिरोदर्द यह दर्द भी बातसे ही होता है इसका लक्षण यह है कि यह दर्द मस्तकमें हटता और फिरता हुआ रहता है, शिरमें खिचाव मालूम होता है मगर शिरमें भारीपन मालूम नहीं होता और कानोंमें ऐसा सनसनाहट होता है कि जानो कान बज रहे हैं । उपाय इसका यह है कि गली जरीहीं अर्थात् गाढी बाढी जो शिरमें रुकगई है उसके नष्ट करनेके लिये शीरा इरमनी बरन्जासफ (यह एक घास है) सँआतर, दोनामरुआ, सौंफ इनको जलमें पकाकर इस जलको गर्म २ शिरपर डाले और हरी तुलसी हरा दोनामरुआ सौंफ इनको सूंघे । काली मिरच जुन्दे बेदस्तर इनकी हुलाश सूंघे और छींक लावे छींक लानेके वास्ते दो उपाय हैं । एक तो यह कि जुन्देबेदस्तर और फरफ्यूनको चुकन्दर अथवा दोनामरुआके पत्रोंके रसमें पीसकर नाकमें टपकावे । दूसरा प्रयोग यह कि नकछिकनी तुर्बुद जुन्देबेदस्तर इनको अति बारीक पीसकर एक बारीक कपडेकी पोटलीमें बांध लेवे और जब छींक लेनेकी आवश्यकता होय तब पोटलीको सूंघे छींक आवेगी और कई हकीमोंका सिद्धान्त है कि छींकें आनेसे रीहका दर्द निवृत्त हो जाता है । एलुआ नकछिकनी केशर सफेद मिर्चे

सुक इनको दोनामरुआके स्वरसमें घिसकर नाकमें टपकावे। और माद्दा वलगमीकी दस्तावर दवाओंसे तबीयतको नर्म करे जिसमें माद्दा रिआह उत्पन्न होते हैं वह निकल जावे।

शकीका अर्थात् आधाशीशी।

यह दर्द आधे शिरमें अर्थात् शिरकी लम्बाई जो आगेसे पीछे तक है एकशक अर्थात् आधे भागमें होता है, इस लिये इसका नाम शकीका रखा गया है। इसके दो कारण हैं एक तो यह कि खराव भाफके परमाणु सम्पूर्ण शरीरसे अथवा किसी एक अङ्गसे ही दिमागमें चढ जावें और शिरके किसी एक भागमें आकर एकत्र हो जावें। दूसरे यह कि उस भागमें दोष पारीह आ जावे और दोष चाहे गर्म होय चाहे शीतल होय जैसे कि जुखाम होकर मवाद न झडे और रगोंमें व्याप्त हो जावे तो दर्द उत्पन्न हो जाता है। जैसे जुखामकी दशामें मवाद एक नाकसे निकले और दूसरीसे न निकले तो उसी तर्फके आधे शिरमें दर्द उत्पन्न हो जाता है और इसका मदाव दिमागकी रगोंमें रहता है, इसका चिह्न यह है कि दर्द सदैव शिरके एक भागमें रहता है और दिलकी रगोंका धडकना इसका प्रधान लक्षण है। जो दिलकी रगको हाथसे दबा लेवे कि वह धडकने न पावे तो दर्द भी ठहर जाता है। किसी २ मनुष्यके शिरमें यह दर्द दिनरात समान रूपसे रहता है और किसीके शिरमें प्रातःकालसे उत्पन्न होकर मध्याह्नोत्तर तक हलका पड जाता है, इसी कारणसे वैद्योंने इसका नाम अर्द्धावभेदक सूर्य्यावर्त्त रखा है। इसका उपाय इस प्रकारसे करे कि जो मस्त-कके आधे भागमें मल गर्म हो तो नीलोफर, बनफशा, खतमीके पत्र, काहू, गुलाबके फूल इनको जलमें पकाकर दर्दके स्थान पर तरडा देवे और काहूके बीज सेवकी जड, अफीम इनको पीसकर लेप करे। जिस जगह पर दोष ठंढा होय तो ऐसी अवस्थामें वावूना, सोया, शीहि इरमनी, सआतर इनको जलमें पकाकर कुछ गर्मका शिरपर तरडा देवे और महदीका पानी नमकके साथ मिलाकर लेप करे। तथा जंगली सुद्दावका गोंद, कन्निकी जडकी छाल, कांडा, फरफ्यून, तुलसीके अर्कमें मिलाकर लेप करे। आवश्यकतानुसार अफीम कागज व बारीक कपडे पर लगाकर दिलकी रगपर लगावे। जिससे धडकनको रोक देवे। अफीमके प्रयोगके बनानेकी विधि इस प्रकारसे है कि दम्बुलअखवैन, केशर, समगेअर्वी, अफीम सब समान भाग लेकर मुर्गीके अण्डेकी सफेदीमें मिला कागज पर लपेटे। इसी प्रयोगकी एक पट्टी कनपटी पर धडकनेवाली रग पर लगावे। दूसरा प्रयोग इसी काममें लानेका इस प्रकारसे है कि काहूके बीज अजवायन, खुरासानी, अफीम, कतीरा इनको हमवजन लेकर सिर्केमें पीसकर उपरोक्त ठिकानोंपर काममें लावे, सम्हालु

(निर्गुण्डी) के कोमल पत्तोंको कूटकर उसका स्वरस निचोड लेवे और प्रातःकाल सूर्य निकलनेसे प्रथम ही नासिकामें डाले इसके डालनेसे नासिका और मुखके मार्गसे मवाद निकलता है और छींकैं भी आती हैं। इसीप्रकार दुपहरियाके फूलोंका स्वरस डालनेसे भी गुण करता है। रीठेके छिलकेको गर्म जलमें भिगोकर खूब मले जब झाग निकल आवे तब नासिकामें डाले, सिरसके बीज थोडे पानीके साथ पीसकर कपडेमें रखके निचोड लेवे और जिस ओर मस्तकमें पीडा होती होय उसी ओरकी नासिकामें डाले एक रोजके डालनेसे पीडा बन्द न होवे तो उसी प्रकार दूसरे दिवस डाले, दो दिवसके डालनेसे बिलकुल निवृत्त हो जाती है। समुद्रफलकी मिंगीको दूधमें पीसकर दाहिनीतर्फके मस्तकमें पीडा हो तो बाईं तर्फकी नाकमें डाले और बाईं तर्फको हो तो दाहिनी नासिकामें डाले यह ४ व ५ बूंदसे अधिक न डाले। सफेद कनेरके पत्र छायामें सुखाकर बहुत बारीक पीस लेवे और जिस तर्फके मस्तकके भागमें पीडा होती होय उसी ओरकी नासिकामें २ व ३ चावल भर फूंक देवे इससे छींकें आवेंगी और बहुत पानी मवाद नासिकामेंसे पकेगा और पीडा निवृत्त होगी। कानमें (टपकानेकी दवा) इतना ध्यान रखे कि कानमें कोई दवा ठंढी न न डाले कुछ २ गर्म करके डाले कद्दू काहू हरा धनियां कासनी हरी मकोयकी पत्तियां इनमेंसे जो मिल सकें उनका अर्क निकाल कर जरा गर्म करके कानमें डाले शर्दी और कफकी मस्तकपीडाको गुण करे जूफाके पत्रका स्वरस छानकर कानमें टपकावे।

शिरोऽभिघातसे उत्पन्न हुई मस्तकपीडा।

यह शिरोदर्द कई कारणसे होता है एक तो यह कि शिरकी खोपडी पर जो पर्दा मढा हुआ है उसमें चोट अथवा धमकके लगनेसे किसी प्रकारका कष्ट पहुंच गया होय इससे शिरमें दर्द उत्पन्न हुआ होय। दूसरे चोट व धमकसे भेजेमें अथवा किसी पर्देमें सूजन उत्पन्न हो गई होय इस कारणसे शिरमें दर्द उत्पन्न हुआ होय, तीसरा यह कि भेजा अथवा शिरकी खोपडीके भीतरका कोई पर्दा अथवा बाहरवाला पर्दा जो खोपडीके ऊपर लिपटा हुआ है फट गया होय और इसी कारणसे शिरोवेदना उत्पन्न हुई होय चौथा यह कि शिरके किसी भागकी हड्डी टूट गई होय। हड्डी टूटनेसे शिरके सब पर्दे तन जाते हैं और खिच जाते हैं इस कारणसे दर्द उत्पन्न हुआ होय। पांचवा कारण यह कि किसी प्रकारके अभिघात (चोट) की धमक लगनेसे शिरका भेजा अपनी जगहसे हिलगया होय और अपनी नीयत जगहसे हट गया होय। हड्डीका टूटजाना और भेजेका अपनी जगहसे हट जाना ये दोनों कारण ऐसे हैं कि इनसे मृत्यु हुए विदून

नहीं रहती । बाकी बचे इस रोगोंका उपाय यह है कि तत्काल सरेरु हत्फ अंदामकी फस्द खोले, परन्तु फस्द खोलनेके पूर्व रोगीकी उमर जैसे अति बालक और अति वृद्धकी न खोले, इसके अलावे फस्द खोलनेके विरुद्ध और कोई कारण रोगीके शरीरमें न होना चाहिये, यदि कोई कारण उस समय पर फस्द खोलनेको वर्जित करता हो तो कदापि फस्द न खोले । दर्द रोकने तथा ठंढक पहुँचने और बल पहुंचानेके लिये मूरिदकी टहनियां पत्तों सहित, जौका आटा, मसूरका आटा, गिले इरमनी, मामीसा रसीत, चन्दन बबूलकी छालका काढा वारेतंगके पानीमें पीस-कर गुलरोगन मिलाकर शिर पर लेप करे । गुलरोगन ऐसी दशामें अधिक लाभदायक है, गुलरोगनको ही मले अथवा किसी लेपमें मिलाकर काममें लावे, क्योंकि गुलरोगन दर्दको रोकता है और शिरको बल पहुँचाता है । यदि थोडासा सिर्काभी गुलरोगनमें अथवा किसी लेपमें मिलाया जावे तो अधिक लाभदायक है । सिर्का द्रव (पतला) पदार्थ है और लोमकूपोंके रस्तेसे दवाके असरको शिरके अन्दर शीघ्र पहुँचाता है, परन्तु बहुतसे तबीबोंकी राय है कि सिर्का उस समय प्रयोग किया जाय जिस समय शिरमें दर्द अधिक न होय, यदि अधिक दर्दके समय सिर्का प्रयोग किया जावे तो सक्तेका भय रहता है । उन्नाव तथा अमलतासके काढेसे कोष्ठको नर्म करे जिससे दस्त साफ हो जाया करे । कारण कि तबीयत दर्दकी तर्फ लगी है भाफके निकम्मे परमाणु आमाशयादि नीचेके अवयवोंमेंसे उठकर दिमागकी तर्फ न खिचे जावें इस लिये नर्म और मौतादिल दवा देना उचित है, जिससे दिमागी माद्दा नीचेकी तर्फ लौट जावे । यदि इस किस्मके शिरदर्दमें ज्वर उत्पन्न हो बुद्धि बिडग जावे तो इसको दिमागमें सूजन उत्पन्न हो जानेका चिह्न समझना चाहिये । ऐसी स्थितिमें उचित है कि विशेष कब्ज करनेवाली दवाइओंका लेप करना चाहिये, जैसे झाऊ अनारका छिलका सर्रूका फल, कुन्दरू गोंद, गुलाबके फूल इन सबका अथवा जो मिल सके उतनीका वारेतंगके जलमें अथवा बबूलके काढेमें मिलाकर लेप करे कि जिससे सूजन अधिक न बढने पावे । और चोट अथवा धमकसे वह झिल्ली फट गई होय जो समस्त खोपडीके ऊपर मढी हुई है तो घावके समान मरहम तैल व स्तम्भक पानीसे इलाज करे । परन्तु दुष्ट प्रकृतिको अपनी असली दशा पर लानेका प्रयत्न ऊपर कथन की हुई औषधियोंसे करे । और दुष्ट प्रकृतिकी शर्दी गर्मीकी दशाकी परीक्षा उक्त लक्षण जांन लेवे, शिरके भीतरकी कोई झिल्ली फट गई होय तो इलाज बहुत ही कठिन है यदि वह झिल्ली फट गई होय जो भीतरकी दो झिल्लियोंमेंसे कडी झिल्ली है । जिसको अर्बी जबानमें मानीखस कहते हैं । और जो चोट और धमकसे भेजा फट गया हो तो इलाज करना बहुतही कठिन है । और इसमें प्रायः मृत्युका भय रहता है ।

साधारण शिरोरोगका इलाज।

यह साधारण शिरोदर्द किसी दोषके कुपित होनेके विनाही स्वाभाविक प्रकृतिमें थोडासा अन्तर पडनेसे ही उत्पन्न हो जाता है। इसका एक कारण तो यह है कि उष्णता चाहे यह गर्मी शिरमें ऊपरी बाह्य कारणसे पहुँची होय जैसे धूपमें बैठने व चलनेसे अथवा गर्म लू आदिके लगनेसे अथवा अग्निके सामने बैठनेसे पहुँची होय और शिरमें दर्द उत्पन्न हो जाय। प्रथम इस रोगकी उत्पत्तिका हेतु ढूंढना चाहिये। जैसे कि रोगीको लू लगी अथवा अग्निके समक्ष बैठा सर्दी करनेसे शिर गर्म मालूम होता है। मल मूत्र स्वाभाविक उतरता होय नासिकाके बांसेमें खुश्की होय। तृषा विशेष होय कानमें सनसनाहट होय। शिरमें भारीपन और खिचावट मालूम न होय शीतल वस्तुकी इच्छा होय और उनके सेव-नसे लाभ पहुँचे, उपाय इस रोगका यह है कि रोगीको शीतल वस्तुओंका सेवन करावे शीतल और तरावटवाले मकानमें रोगीका निवास रखे, चन्दन बनफशा गुलाब, काफूर, आदि सुगन्धित द्रव्य रोगीके समीप रख सेव फलको सुंघावे। यदि इस उपायसे दर्द शमन न हो तो जो द्रव्य वीर्य्यमें शीतल गुणवाले हैं उनको शीतल करके शिर पर डाले जैसे गुलरोगन शीतल जलका तरडा रोगन बनफशा रोगन नीलोफर रोगन कद्दू इन सबको मिलाकर अथवा पृथक् २ बर्फमें शीतल करके सिरपर लगावे। अथवा शिरपर बर्फ रखे (जो पतली बहनेवाली दवा शिरपर डाली जावे तो पतली धारसे बराबर जबतक डालना होय तबतक डालता रहे इसका नाम नतूल तंतील वा तरडा है। जो तरडा बराबर न डाला जावे और रुक १ कर डाला जावे उसको सकूब कहते हैं। यदि शिरके अन्दर गर्मीका हेतु अति बलवान हो तो सिरका गुलाब गुलरोगन इनकी टिकिया बनाकर शिरके तालु और उसके समीपवर्ती भागोंपर रखे। लगानेकी दवाओंमेंसे सिर्काके समान विशेष शीतल दवा मिलाना उस समय उचित है कि जब भाफके परमाणु कम होयँ और जो भाफके परमाणु शिरको-तर्फ अधिक चढ रहे होयँ तो विशेष शीतल और मुखद्दर दवाओंका प्रयोग कभी न करे। ऊपर कथन किये हुए तरडेमें बाबूनाका तेल एक तिहाई बढा लेवे जिससे उन शीतल द्रव्योंकी हानिसे बच जावे, जो भाफके परमाणुओंको बन्द कर निकलने नहीं देती। स्त्री बच्चे तथा नपुंसकके काममें अधिक शीतल दवा न लावे। जबतक विशेष आवश्यकता न होय तबतक सिर्काको काममें न लावे। क्योंकि हकीम जालीनूसने कहा है कि शिरके पीछेके भागमें विशेष शीतल दवा न लगानी चाहिये, क्योंकि इस मुकाम पर सम्पूर्ण बदनके पट्ठोंका संयोग है ऐसा करनेसे उनको अधिक हानि पहुंचती है। सिरोवस्ति सिर्कादि शीतल दवा अथवा किसी प्रकारके

शीतल व गर्म तैलादि पतली दवा शिरके तालुपर लगानी हो तो उसकी यह विधि है कि शिरके बाल मुडवा देवे और शिरके पछिकी उंचाईसे दोनों भौहोंतक एक साफ चमडेका पट्टा जो आठ और १० अंगुलके दर्मियानकी चौडाईका होय और लम्बाई शिरकी गोलाईके व्यासके समान होवे। इस पट्टेको शिरके चारों तर्फ लपेट कर फीतासे बांध देवे और इसकी सन्धियोंको उडद व गेहूँके आटेसे बन्द कर देवे। अन्दरकी तर्फसे जिस पतले द्रव्य शीतल तासीर व गर्म तासीरके भरने होयँ उनको रोगीको सीधा बैठालके भर देवे, जितने समय तक रखने होवे उतने समय तक रखे पछि दवाको निकाल कर पट्टेको खोल देवे। इस क्रियाको वैद्यकमें शिरोवस्ति और अर्बीमें तगरीकसर अथवा अकलील कहते हैं, इस क्रियामें औषधियोंके प्रयोग करनेकी आवश्यकता बुद्धिमान चिकित्सककी रायके ऊपर निर्भर है। जैसे कि अधिक शर्दी पहुंचती हो तो सिर्का तैलसे चौथाई भाग लेवे यदि शर्दी अधिक न हो तो सिर्का तैल अर्क व पानी वराबर अथवा उचित समझे उतना न्यूनाधिक लेवे। इस क्रियाके वास्ते सिर्का बहुत पुराना न होय और गुलरोगनभी धूपमें बना होय जिसकी विधि ऊपर लिखी गई है और १ सालका बना हुआ होय। इस शिरोवस्ति क्रियाका असर दिमागके अन्दर पहुंचता है।

सान्जिज वारिद और शीतज शिरोदर्दका वर्णन।

साधारण शर्दीसे उत्पन्न हुआ शिरोदर्दका वर्णन कुछ ऊपर किया गया है लेकिन इस शर्दीका कारण या तो बाह्य होता है अथवा भीतरी होता है। ऊपरी कारण यह है कि शीतकाल अथवा शीतप्रधान देशकी शीतल वायु शिरमें अधिक लगे अथवा जिस समय पर बर्फ पड रही होय उस समय पर बाहर खुली जगहमें ठहरना अथवा फिरना अथवा अति शीतल जलमें गोते लगाना और कभी २ गर्म जलके स्रोतमें स्नान करनेसे भी यह शिरोदर्द उत्पन्न हो जाता है। गर्म स्रोतका जल वह है कि जिसके नीचे आगे लिखी हुई वस्तुओंमेंसे किसी वस्तुकी खान होय, जैसे गन्धक सज्जीखार नमक तूतिया फिटकरी टंकणखार ये खनिज वस्तु स्रोतके जलमें मिली हुई रहती हैं। ऐसे स्रोतके जलमें स्नान करनेसे शिरोदर्दके उत्पन्न होनेका यह कारण है कि ऐसे स्रोतोंके पानी अपनी स्वाभाविक गर्मीके कारणसे शरीरके लोम कूपों अर्थात् छिद्रोंके मुखको खोल देते हैं और अपनी स्वाभाविक गर्मीके हेतुसे शरीरक अन्दरकी गर्मीको बाहर खींचते हैं। लोमकूपोंका द्वार शरीरकी गर्मी खिचनेसे शरीरको अन्दरकी गर्मी कम हो जाती है, उन्हीं खुले हुए लोमकूपोंके द्वारा शीतल वायु शरीरमें प्रवेश कर जाती है। इस दशामें मनुष्यका शरीर अधिक शीतल हो जाता है इसलिये दिमागकी जिसकी प्रकृति शीतल है और आमाशय जो दिमागके सामने है और उससे

संयोग भी रखता है दोनोंमें शर्दीकी अधिकता होनेसे कष्ट पाते हैं इसीका नाम शीत प्रधान शिरोदर्द है । इस शीतज शिरो वेदना शिरके पोछके भागकी और दर्दका झुकाव विशेष माल्रुम होता है और गर्म हवा लगनेसे दर्दमें कुछ आराम माल्रुम होता है । धूपमें वैठने और अग्निके समीप वैठनेसे रोगीको चैन होता है इस दर्दके कारणसे रोगी भौंचकसा तथा पागलसा हो ज्ञानेन्द्रियोंकी क्रिया नष्ट हो जाती हैं । शिरके रोगोंमेंसे इस रोगका नाम इसी कारणसे (सुदाखत्ता) उन्मादज शिरोरोग कहते हैं । इस रोगकी चिकित्सा यह है कि शिरमें गर्मी पहुँचानेके लिये तकमीद (गर्म पोटली) से शिरपर सेंक करे और गर्म औपधियोंके मफारे देवे और हम्मामका गर्म जगहमें रोगी कुछ कालतक रहे और गर्म जल वोतलोंमें भर कर दोनों वाहु पशलियोंके वीचमें एक २ वोतल दवावे और दोनों पैरोंको वरावर सीधे करके दो तीन वोतल उसके पैरोंके वीचमें रखके दवाये रहे, इससे शरीरमें गर्मी पहुंचे और चिकित्सक उचित समझे तो गर्म जगहमें जहां हवा न आती होय साधारण रीतिसे गर्म साफ जलका स्नान करावे । उष्णवीर्य्यवाले तैल जैसाकि सोसनका तैल चमेलीका तैल अथवा दोनामरुआका तैल गर्म करके शिरपर मले और अवरे मुर्दा (स्पेंज) अथवा ऊनी कपडा (फलालेन व वनात) का टुकडा उपरोक्त तैलोंमें भिगोकर शिरपर रखे । वाद वनफसाकी पत्ती लसोडा, खतमीके वीज, अलसीके वीज, अंजीर तुरंजवीन इनका काढा पिलाकर उदरके मलको नर्म कर कब्जियतको हटावे अर्थात् एक दो दस्त करा देवे । और खाना वह देवे जो नर्म और मौतदिल होय, अगर रोगी मांसाहारी हो तो तीतर व वटेरके शोरवेमें जीरा, दालचीनीका चूर्ण मिलाकर देवे । ऊपर तकमीद (सेककी विधि) लिखी गई है सो शरीरमें गर्मी पहुंचानेको तकमीद कहते हैं । इस सेंकके दो भेद हैं एक तर और दूसरा खुश्क । तकमीद तर यह है कि किसी जानवरका फुकना जिसमें पिशाव रहता है उसकी थैली अथवा (आजकल इस कामके वास्ते रवरकी थैली विलायत) से वहुत आती हैं । इसमें गर्म २ जल अथवा काढा भर कर जिस रोगयुक्त अङ्गपर रखके सेंक देवे और जव शीतल हो जावे तव दूसरा गर्म जल व काढा डाल देवे । अथवा ऊनी कपडा व स्पेंज दवाके गर्मपानीमें भिगोकर रखना इस प्रकारका सिकाव शरीरके शुस्त भागोंमें गर्मी पहुंचाकर वलवान करता है । दूसरी विधि सूके सिकावकी इस प्रकारसे है कि ईंट पत्थर अथवा मिट्टीका गोला व कपडेकी गद्दी रुईका गोला वनाकर अग्निपर गर्म करके पीडित अङ्गको सेक देवे अथवा नमक अजवायन व किसी अन्नकी भूसी वाल्रुरेत इनको कपडेकी पोटलीमें वांधकर गर्म करके किसी पीडित अंगपर सेंक देना । तीसरा तरीका इन कवाव (मफारा) देनेका है । इसका तरीका इस प्रकारसे है कि कोई गर्म काढा अथवा गर्म

पानीकी भाफ किन्तु किसी प्रकारकी धूनी जो अग्निपर डाल कर उसमेंसे धूआं उत्पन्न किया होय अथवा गर्म पत्थर लोहा जमीनपर पानी व कोई दवा डाल कर भाफ उत्पन्न की होय और इन उपरोक्त भाफोंपर पीडित अङ्गको रखकर उसमें गर्मी पहुँचाई जावे । और शिरमें सर्दी पहुंचनेका भीतरी कारण यह है कि विशेष शीतल जल अथवा वर्फ पान किया होय अथवा कोई शीतल दवा खाई होय । अथवा आहार ऐसी शीतल प्रकृतिवाला किया होय जिससे सर्दीका विशेष असर मस्तकको पहुंचा होय । इस शिरके दर्दका यह लक्षण है कि रोगीके शरीरमें पूर्वोक्त सब कारण पाये जावें और शिरको स्पर्श करनेसे शिर शीतल मालूम हो, शिर पर गर्म कपडा ढांकने अथवा गर्मी पहुंचानेसे रोगीको आराम मालूम होय । इस भीतरकी सर्दीसे उत्पन्न हुए रोगका उपाय यह है कि बाबूना, नाखूना, दोनामरुआ, पोदीना, सआतरा, शीरेइरमनी इनका काढा बनाकर प्रथम इसकी भाफ शिर पर दे सुहाता २ काढा शिर पर डाले । और सेवतीके फूल, सोसनके फूल, कस्तूरी, अम्बर, अगर, नरगिसका फूल, चमेलीका फूल, नारंगीका फूल, तुलसीके फूल अथवा और वृक्षोंके फूल, जिनमें सुगन्धि गर्म हो उनको सूंघे । जुन्देवेदस्तर, हब्बुलफार, कूट, कतावा इनको तुलसपित्रके स्वरस और गुलाबमें पीसकर शिरपर लेप करे, परन्तु लेपको प्रथम जरा गर्म करके लगावे और गर्म कपडा ऊपरसे लपेट देवे । भफारा देनेके समय शिरसे गर्म कपडेका फटा बांध लेवे । यदि ज्वरके कारणसे शिरमें दर्द हो तो जिस दोषसे ज्वर उत्पन्न हुआ है वही दोष शिरोदर्दका कारण समझना चाहिये, इसका उपाय यही है कि ज्वरके दूर करनेका उपाय करे ज्वरके शान्त होनेपर यह शिरोदर्द स्वयं निवृत्त हो जाता है । ज्वर शान्त होनेपर भी शिरमें दर्द रह जावे तो वही उपाय करे जो ऊपर दोषज शिरोदर्दमें कथन किये गये हैं ।

कृमिज शिरोदर्दकी चिकित्सा ।

दिमागके अन्दरके भागमें कीडे बहुत कम उत्पन्न होते हैं उनके उत्पन्न होनेकी जगह दिमागका अगला भाग है उस जगहका नाम नासिकाकी हड्डी कहते हैं । किसी तबीबका कथन है कि शिरके ओर पास दिमागके पर्देके समीप भी कृमि उत्पन्न होते हैं । इस स्थल पर कीडे उत्पन्न होनेका कारण यह है कि बहुतसा गाढा दुर्गन्ध-युक्त मल इस जगहपर एकत्र हो जाता है उसमें सडाव पडनेसे कीडे उत्पन्न हो जाते हैं । इसकी अपेक्षा यह भी एक प्रमाण प्रत्यक्ष देखनेमें आया है कि मुख धोनेके समय जो मनुष्य नासिकामें जल सुडकते हैं उनकी नासिकामें जलके जन्तु रह जाते हैं और वे जन्तु ऊपरसे उतरती हुई तराईके आश्रित होकर नासिकाकी हड्डीके समीप पहुंचकर बढने लगते हैं । जिनको नासिकामें जल सुडकनेका महावरा पडा हुआ है उनको उचित

है कि जल सुडकनेके पीछे जोरसे नासिकाको सिनके जिससे अन्दरकी वायुके वेगद्वारा नासिकासे मल और जलका भाग बाहर निकल जावे, यदि जल जन्तु हों तो वे भी निकल जावें । अथवा जलको प्रथम गर्म करके शीतल होने पर सुडकना चाहिये । कृमिज शिरोरोगवालेके दिमागमें बडी खुजली उत्पन्न हो नासिकासे दुर्गन्धि आने लगती है, जिस समय रोगी शिरको हिलावे उस समय दर्द अधिक होता है । क्योंकि शिरके हिलनेसे कृमि हिलकर कुलमुलाते हैं यही कारण अधिक दर्द होनेका है । कृमिज शिरोरोगवालेकी नासिकासे जो मवाद निकलता है वह पीवके समान दुर्गन्धित होता है । उपाय इसका यह है कि दिमागकी शुद्धिके लिये वे औषध खानी चाहिये जो दिमागके शुद्ध करनेमें प्रधान हों जिसके सेवनसे दुर्गन्धित मल व कीडे उत्पन्न होते हैं निकल जावें । इसके उपरान्त अयारजफैकरा और दूसरी दवा जो कि कृमियोंको मारनेमें प्रधान हैं, जैसे शफतालूके पत्रका पानी शहतूतकी जडकी छालका पानी अफसंतीन और दिरमनाको पका कर उसका काढा नाकमें डाले । इन दवाओंसे नाकके कीडे मर जाते हैं । निर्गुण्डी (सम्हालू) के पत्रोंका स्वरस नाकमें डालनेसे कृमि मर जाते हैं । पलाशपापडेको जलमें पीसकर नाकमें डालनेसे कृमि मर जाते हैं । कृमिज शिरोरोगवालेकी नासिकासे दुर्गन्धि कृमियोंके नष्ट होने पर निवृत्त हो जाती है । यदि दुर्गन्धि निवृत्त न हो तो शरावरिहानी नाकमें सुडके । और वालछड नागरमोथा अगर ये एक २ अथवा सबको एकत्र करके वारीक पीसकर नाकमें फूंके । चिकित्सक उचित समझे तो इन दवाओंका उपरोक्त शरावमें मिलाकर कपडेकी वत्ती भिगोकर नाकमें रखे । शरावरिहानीके बनानेकी क्रिया यह है कि लवङ्ग, जायफल, दालचीनी, जावित्री, अगर, बादरंजबोया इन सबको एक कपडेमें बांधकर अंगूरके शीरेके खमीरमें डाल देवे, कि जब सुगन्धित हो जावें इसके बाद भवकेमें शराब खींचे । जो दुर्गन्धि हलककी तरफ उतरती हो तो सिकंजबीनविजूरी, ज़ीरा, राई इनका काढा बनाकर रोगीको गरारत (कुल्ला) करावे जिससे नर्म होकर दुर्गन्धित तरी निकल आवे । इसके बाद सुगन्धित चीजों (जिनका वर्णन ऊपर किया गया है) का हुलास बनाकर नाकमें सूंघा करे ।

आमाशयके संयोगसे उत्पन्न हुए शिरोरोगकी चिकित्सा ।

जब कि आमाशयमें सादा दुष्ट प्रकृति मिल जाती है अथवा दूषित दोष एकत्र होकर मिल जाते हैं उस समय इनके सम्बन्धके कारणसे आमाशयकी खराबी शिरका दर्द उत्पन्न करती है । जो सादा दुष्ट प्रकृति आमाशयके कारणसे शिरका दर्द उत्पन्न हुआ तो उसके लक्षण यह हैं कि. आहार करनेके पीछे ही भरे पेटके होनेके कारणसे ही शिरका दर्द अधिक हो जाता है और खाली पेट पर शिरमें दर्द कम

रहता है। लेकिन गर्म सादा दुष्ट प्रकृतिवाले आमाशयमें किसी २ समय ऐसा भी होता है कि भूख खाली पेटमें दर्द वढ जाता है यह व्यवस्था गर्मीके अधिक होनेसे समझी जाती है । गर्म सादा दुष्ट प्रकृतिके विशेष लक्षण आमाशयके रोगोंमें पृथक् पृथक् कथन किये हैं वहां देखना योग्य है । इस छोटे ग्रन्थमें लिखे नहीं जा सक्ते । इस रोगका उपाय यह है कि आमाशयकी इस रोगी स्थितिको सँभाल प्रकृतिको बदलना चाहिये, शर्दी गर्मीका विचार करके इसके अनुसार वह वस्तु खानेको देनी चाहिये जो कि आमाशयके रोगोंमें वर्णन की गई है। जैसा कि वह भोजन जिसमें अनारका रस पडा होय, जरिश्क पडा हो, अंगूरका रस पडा हो पक्षी मुर्गीके बच्चोंका मांस हरा धनियां काहू गर्म घृत ए सब आमाशयके रोगमें लाभदायक हैं । आमाशयमें माद्दा अर्थात् दुष्ट दोष एकत्र हो जानेके कारणसे जो शिरमें दर्द होता है उसका लक्षण प्रत्येक दोषके चिह्नोंसे प्रगट होगा। जैसे कि दर्द यदि पित्तकी अधिकतासे हो तो उसका लक्षण यह है कि जी मिचलाता है नेत्र पीले हो जाते हैं मुखका स्वाद कडुवा माळूम होता है आमाशयमें ऐंठा और मरोडा होने लगता है पिलाश अधिक वढ जाती है एवं दर्दमें उस समय रुकावट माळूम होती है । जब वमनके द्वारा पित्त निकल जाता है उस समय पर शिरके दर्दमें ऐसा माळूम होता है कि अब दर्द नहीं है। उपाय इसका यह है कि प्रथम सिकंजवीन व गर्म जल पिलाकर वमन करावे इसके अनन्तर आमाशयकी गर्मी बुझानेके लिये जिस दवाकी चिकित्सक आवश्यकता समझे उसे काममें लावे इसके साथ ही शिर और आमाशय दोनों अङ्गोंको बल पहुंचानेवाली औषधियोंका सेवन करावे शिरको बल पहुं-चानेवाली औषधियां ऊपर पित्तज शिरोरोगके प्रकरणमें कथन की गई हैं । और आमा-शयका बल देनेवाली औषध रुब्ब होती है और ये कब्ज करती है जैसे विहीका रुब्ब खजूरके गूदेका रुब्ब कालिमेवेका रुब्ब इत्यादि जो शर्दी पहुंचाना विबन्ध करना इन दोनोंको करनेकी अधिक आवश्यकता हो तो वंशलोचन गुलाबके फूल गिले इरमनी इनको बारीक पीसकर इन्हीं रुब्बोंमें मिला लेवे । (रुब्ब) उस औषधका नाम है जो किसी द्रव्यका जल निचोडकर उसमें कुछ दूसरी वस्तु न मिलाकर इतना पकावे कि चतुर्थांश रह गाढा हो जावे तब समझो रुब्ब तैयार हो गया । यदि आमाशयमें अधिक कफ एकत्र हो गया हो तो उसका लक्षण यह है कि आमाशयमें अफरा माळूम होगा और प्रथम अजीर्णका होना मुखमें विशेष थूकका भरना विशेष वमनका आना इत्यादि लक्षण होते हैं । जब वमनके साथ कफ निकल जाता है तब शान्ति हो जाती है । इस व्याधिमें खट्टी डकार भी आती है चिकित्सा इस रोगकी यह है कि सोयाके बीज मूलीके बीज मेथीके बीज इनको जलमें पकाकर काढा बना छान कर सिकंजवीन मिलाकर पिलावे, इसके पिलानेसे वमनके द्वारा कफ निकलेगा। लेकिन इस प्रयोगमें सिकंजवीन

वह डाले जो शहद और सिर्केसे बनाई गई होय, अयारजफिकराकी गोलियोंसे दस्तके द्वारा कफको निकाले, कफके निकालनेके पछि आमाशयको गर्म जवारिशोंसे बल पहुँचावे । यदि वातसे उत्पन्न हुआ दोष आमाशमें एकत्र हुआ हो तो उसके लक्षण इस प्रकारसे हैं कि आमाशयमें जलन होती है भूख विशेष लगती है वमनके द्वारा वातज दोषके निकलनेसे आराम मालूम होता है । चिकित्सा इसकी यह है कि प्रथम दोषको पकाकर निकालनेके योग्य बनावे दोषको पकानेके लिये अफतीमूनादिका काढा मुख्य है और दोषके पकने पर वातज दोषको जुलाबसे निकाल देवे । वातज दोषको निकालनेवाली औषध जैसे काली हरड बिस्फायज उस्तुखुद्दूस अफतीमून विलायती गारीकून ऊनी कपडेमें छनी हुई लाजवर्द पत्थर घुला हुआ सकमूनिया विलायती यह एक लकडीका सत्त्व है इसको महमूदा भी कहते हैं । इन सबको समान भाग लेकर बारीक कूट बिल्लीलोटन (बालछड) के काढेमें मिलाकर चनेके प्रमाण गोली बना रोगीकी अवस्थाके अनुसार मात्रासे देवे । यदि आमाशमें अधिक रियाह उत्पन्न. होनेके कारणसे शिरमें दर्द उत्पन्न हो तो उसके चिह्न इस प्रकारसे होते हैं कि प्रथम आमाशयमें दर्द मालूम होय इसके उपरान्त शिरमें दर्द मालूम होय जो सदैव आमाशयमें दर्द उत्पन्न रहे तो शिरमें दर्द सदैव रहता है । वातकारी भोजनोंके सेवनसे आमाशय और शिरमें अधिक कष्टदायक दर्द रहता है, यह रिआहका दर्द एक जगह नहीं ठहरता किन्तु हर जगह फिरता हुआ मालूम होता है । शिरका दर्द खोपडीसे आरम्भ होय यह अन्तका लक्षण आमाशयसे सम्बन्ध रखनेवाले सब शिरके दर्दोंमें होता है, कारण इसका यह है कि चाँद आमाशयके सीधमें है । चिकित्सा इसकी यह है कि आमाशयके अफराको निवृत्त करनेका उपाय करे उस रिआह अर्थात् वायुके माद्देको जो असलमें वायुसे दूषित कफ है । उसको रेचक द्वारा निकाल आमाशयको दूषित कफसे रहित करे । इसके पीछे आमाशय और दिमागको बल देनेवाली कफको निकालनेवाली वही औषधियां देवे जो ऊपर कफके शिरोरोगमें कथन की गई हैं, रिआहको निकालने और आमाशयको बल पहुंचानेके लिये जवारिश कम्मूनी और जवारिश पोदीना देवे और रिआहके निकल जानेसे आमाशयको बल पहुंचनेसे शिर और आमाशयका दर्द जाता रहता है जिससे मल निकालनेकी आवश्यकता नहीं पडती ।

ऊपर कथन की हुई जवारिश कामूनीकी विधि ।

जीरेको एक दिन रात सिर्कामें भिगोकर छायामें सुखावे सूखने पर भून लेवे इसी जीरेमेंसे ३॥। तोला लेवे जवाखार ४॥ मासे काली मिरच १३॥ मासे सोंठ १॥ तोला इन सबको कूट छान कर सफेदकंद ३८ तोला कन्दकी चाशनी करके

मिलावे मात्रा ३॥ माससे ७ मासे तक बालकोंको उनकी उमरके माफिक देवे। ऊपर कथन किये हुए प्रसंग पर यह उस समय हो सक्ता है कि जब आमाशयमें रिआहका उत्पन्न होना किसी वातकारी दवाके खानेसे हो और कफसे रिआह उत्पन्न होती हो तो अवश्य दुष्ट माद्देका निकालना ही उचित होगा। इस व्याधिके वास्ते पुष्टताही काफी न होगी, जो आमाशयके मुखकी निर्बलताही शिरके दर्दका कारण हो तो उसके चिह्न यह हैं कि खाली पेटमें और प्रातःकालके शयनसे उठकर ही शिरमें दर्द अधिक होगा। उपाय इसका यह है कि जबतक रोग न जावे तबतक प्रतिदिवस प्रातःकालके समय शयनसे उठकर खजूरके पानी अथवा रीवासके पानी (यह एक घासका लाल फूल होता है) अथवा खट्टे अनारदानेके पानी इनमेंसे किसी एकमें कुछ नवाले रोटीके भिगोकर खाया करे (उपरोक्त दवाओंमेंसे जिस देशकालमें जो मिलसके) उसको जलमें भिगोकर पानी निकाल लेवे कि दवाकी खटाइ पानीमें आ जावे, जब पानीको छान कर काममें लावे। यह कब्ज करनेवाली दवा खजूर रीवास अनारदाना गोलसिमाक (तुतरग) ये सब आमाशयको पुष्टि करनेवाले प्रयोग हैं, भाफको ठहराते और चढानेसे रोकते हैं पित्तको उखाडते हैं। जब आमाशयके मुखकी निर्बलताके साथ ही आमाशयकी प्रकृति शीतल हो जाय तो इस प्रकारकी खटाइओंमें रोटी भिगोकर अनीसून (रूमीसोंफ) जीरा, अजवायन, केशर, अगर, तज इनका बारिक चूर्ण मिलाकर खावे जिसके खानेसे अजीर्णके साथ ही आमाशयकी शर्दीको निवृत्त करके गर्मी भी उत्पन्न हो जाय जिस मौकेपर खटाइयोंका खाना वार्जित किया गया है जैसे खांसी आदि कफ जनित रोगोंमें। ऐसे मौकेपर थोडेसे रोटीके ग्रास कंद और गुलाब जलमें भिगोकर खावे।

उदर और पीठके संयोगसे उत्पन्न होनेवाला शिरोदर्द।

यह दर्द स्त्रियोंके गर्भाशय और दोनों गुर्दे दोनों पिंडली दोनों पैर दोनों हाथ दोनों कलाई जिगर तिल्ली और उस पर्देके संयोगसे जो दिल और आमाशयके बीचमें है और मिराक (वह झिल्ली पेटकी है जो पेटके भीतरके अङ्गोंको लपेटे हुए है) पीठके संयोगसे उत्पन्न होता है जब कि इन अङ्गोंमेंसे किसी अङ्गमें कुछ कष्ट पंहुंचता है तो उस संयोगके सम्बन्धके कारण जो कि दिमागमें और इनमें वर्तमान है। भाफके निकम्मे (दुष्ट) परमाणु उन अङ्गोंमें उठकर चढकर दिमागमें पहुँचते हैं और दर्द उत्पन्न करते हैं इन सब अङ्गोंके संयोगके कारणसे जो शिरमें दर्द उत्पन्न हो तो उनके पृथक् पृथक् चिह्न वर्णन किये जाते हैं। जैसे कि जो स्त्रियोंके गर्भाशयके संयोगसे शिरका दर्द उत्पन्न हो तो उसका चिह्न यह है कि शिरके अगले भागके बीचोंबीच चांदमें दद ठहरा रहता है। जो दोनों गुर्दोंके

मिलापसे दर्द हो तो उसका चिह्न यह है कि शिरके पीछेके भागमें दर्द बराबर ठहरा रहता है। जो तिल्लीके संयोगके कारणसे हो तो उसका चिह्न यह है कि सिरके बांये तर्फ दर्द पाया जाता है। जिगरके संयोगसे शिर दर्द हो तो उसका चिह्न यह है कि शिरकी दाहिनी ओरमें दर्द प्रगट होता है, वह पर्दा जो कि दिल और आमाशयके बीचमें है उसके संयोगसे दर्द उत्पन्न हो तो उसका चिह्न यह है कि शिरके बीचमें आगेकी ओर दबा हुआ दर्द होय। जो पर्दा दिल और आमाशयके बीचमें है इसको (हिजाबे हाजिज) कहते हैं इसका मुफसिल छातीके रोगोंमें देखो, जो शिरका दर्द मिराकके संयोगसे हो तो उसका चिह्न यह है कि शिरके अगले भागमें माथेके समीप दर्द होय जो पीठके संयोगसे शिरमें दर्द हो तो उसका चिह्न यह है कि शिरके बिलकुल अन्तके हिस्सेमें दर्द होता है। पीठके संयोगसे जो शिरका दर्द और गुर्देके संयोगसे जो शिरका दर्द होता है उनमें केवल इतना अन्तर है कि गुर्देके शिरके दर्दमें तो शिरके अन्तके हिस्सेमें दर्द होगा और पीठके शिरके दर्दमें उससे भी पीछे बिलकुल अन्तमें अर्थात् गुर्देके समीपमें होगा। जो पिण्डलियों व पैरों अथवा हाथोंके संयोगसे शिरमें दर्द होगा तो उसका चिह्न यह है कि बीमारको ऐसा मालूम होता है कि कोई चीज चींटीकी तरह रेंगती हुई इन्हीं अङ्गोंमेंसे ऊपरको चढी चली जाती है, इन सब संयोगिक शिरके दर्दके लिये जो चिह्न सामान्य हैं। तथा प्रधान २ प्रत्येक अंगके संयोगमें प्रगट कर दिया है वह यह है, कि जिस अङ्गके संयोगसे शिरमें दर्द हुआ है प्रथम उसीमें कष्ट और रोग उत्पन्न होवे। उसके पीछे शिरमें दर्दका होना आरम्भ होय चिकित्सा इस रोगकी यह है कि जो पैर और पिण्डलियोंके संयोगसे शिरमें दर्द हुआ हो तो अतिवृद्ध और बालकको त्याग साफिन अर्थात् पैर टकनेके ऊपरकी रगकी फस्द खोले, पिण्डलियोंपर सिंगियां लगवावे। इस्तमखीकूनकी गोलियोंसे देहका मल निकाल देवे। गोलियोंकी विधि इस प्रकार है कि सफेद तुर्बुद, निसोत छिली हुई और खोखला का हुई एलवा काला दाना गारीकून ये सब एक२ तोला पीली हरडकी छाल ६ मासे बिस्फायज ६ मासे इन्द्रायनका गूदा ४ मासे सकमूनियां ४ मासे इन सबको कूट छान कर सोंफके काढेके साथ चनेके प्रमाण गोलियां बना ३॥ मासेकी मात्रासे ७ मासे पर्य्यन्तकी मात्रा देवे। बालकोंको उनकी उमरके अनुसार देवे, यदि पैरोंके कारणसे शिरमें दर्द होता हो तो जांघके मूलसे लेकर टकनोंतक पैरोंको कसके बांध देवे। इस कामके लिये वह पट्टी होनी चाहिये कि जो सफरके समय पर सिपाही लोग बांधते हैं। पैरके तलुओंपर खैराका तैल मले वह भफारा जो कि पित्तज शिरोरोगमें वर्णन किया है उसका प्रयोग किया जाय तो अति लाभदायक है। जो हाथोंके संयोगसे शिरोदर्द हुआ होय तो प्रथम सम्पूर्ण शरीरकी शुद्धिके लिये इस्तमखी-

कूनकी गोलियोंका सेवन करावे जिस अंगसे भाफके परमाणुओंका चलना और रेंगना आरम्भ हुआ होय उस अंगपर सिंगी लगाकर रक्त मोक्षण करे, जब शिरके दर्दमें अधिकता और उभार हो तो कोहनियोंसे ऊपर दोनों हाथोंको पट्टीसे कसकर बाँध देवे और जो अन्य २ वर्णन किये हुए अङ्गोंके संयोगसे उत्पन्न हो तो उपाय इस प्रकारसे करना चाहिये कि जिस २ अङ्गके कारणसे रोग उत्पन्न हुआ होय उस २ की सफाई कर उस२ अङ्गको उचित रीतिसे बल पहुँचावे। प्रत्येक अङ्गके स्वच्छ करनेमें वह २ उपाय करे जो रोगके कारण मलको निकाल देवे, जो शिरका दर्द निर्बलताके कारणसे हो तो इस रोगमें ज्ञान आर स्मरणशक्ति नष्ट हो जाती है। प्रत्येक प्रकारका विचार जो मस्तिष्क सम्बंन्धि कार्य्य है तथा चलने फिरनेका कष्टरूपी उपद्रव प्रगट हो तो मस्तिष्क निर्बल और सिाथल माळूम होता ह, थोडेसे परिश्रमसे भी मनुष्य हरारत मान कर सिथिल हो जाता है। मस्तकमें पीडा होने लगती है जैसे कि भोजनके पचनेके समय भाफके परमाणु चलनेसे और बुरे शब्दके सुननेसे किसी प्रकारकी सुगन्धि तथा दुर्गन्धिके सूंघनेसे यदि वह सुगन्धि और दुर्गन्धि विशेष तेज और बलवान न हो तो शिरमें दर्द होने लगता है। उपाय इसका यह ह कि दिमागको बल पहुंचानेके लिये मुर्गी बटेरका गोस्त चनेके साथ पकाकर केशर गुलाब दालचीनी इनके चूर्णसे सुगन्धित करके खिलाव। जो मांस नहीं खाते हैं उनको बदाम मगजकद्दू मगज़ भिलावा इनका हरीरा बनाकर खिलावे इससे मस्तक बलवान होता ह। गुलाबके स्वरस मस्तक पर मले अथवा गुलरोगन मस्तक पर मले। अथवा गुलाबके फूलोंके रसमें लवङ्ग घिसकर मस्तक पर लेप करे। सेव अम्बर और गुलाब सूंघे जो सादा दुष्ट प्रकृतिभी दिमागकी निर्बलताके साथ हो तो उन वस्तुओंसे प्रकृतिको बदले जिन वस्तुओंका वर्णन सादा दुष्ट प्रकृतिके प्रकरणमें ऊपर हो चुका है। जो माद्दी दुष्ट प्रकृति दिमागकी निर्बलताके साथ मिली हुई हो तो प्रथम उसको निकाले और पीछे दिमागको बल पहुंचावे। दूषित मलको मस्तकके रोगमें सब उपायोंसे प्रधान समझकर निकाल देना चाहिये, लेकिन दिमागको मलसे सरलतापूर्वक स्वच्छ करे और दिमागको साफ करनेवाली चीजोंके साथ कुछ पुष्टिकारक औषधियोंको भी मिला देवे नहीं तो दिमागकी अधिक निर्बलता बढनेका भय रहता है।

खुश्कीके कारणसे उत्पन्न होनेवाला शिरोरोग।

यह शिरका दर्द खुश्कीके कारणसे होता है इस दर्दको फारसीमें खुफह कहते हैं। क्योंकि खुफहका अर्थ दर्द हलका करना है, उसका लक्षण यह है कि शरीरका मल विशेष निकल जानेके पीछे अथवा विशेष जागरण करनेके पीछे अथवा विशेष शोच विचार करनेके पीछे यह शिरका दर्द उत्पन्न होता है। यह मवाद जैसे कि नजले व

नकसीरके जरियेसे निकला होय लेकिन दिमागसे ही निकलता है व कुल्लोंके जारिये अथवा नासारेचकके जरिये। विशेष मवाद दिमागसे खींचलिया होय जिससे दिमाग बिलकुल खाली खोकला हो गया होय । चाहे समस्त शरीरकी रतूवतें मवाद निकल कर सूख गया होय जैसे कि वमन दस्त विशेष सम्भोगका अधिकतासे सेवन करना अथवा फस्दके वार २ खोलनेसे सब शरीर रतूवतसे खाली हो गया होय अथवा मूत्र अधिक आता होय अथवा मूत्रल औषधियोंसे मूत्र अधिक निकाला गया होय अथवा पसीना अधिक आता होय अथवा पसीना निकालनेवाली औषधियोंसे अधिक पसीना निकाला गया होय अथवा स्त्रियोंका दूध अधिक निकलता होय व निकाला गया होय जिससे सम्पूर्ण शरीर खाली होकर सूख गया होय । अथवा स्त्रियोंके रजोदर्शन व रक्त प्रदरमें अधिक रक्त निकल गया होय अथवा रक्तार्शसे अधिक रक्तस्राव हुआ होय अथवा पेचिश आमातीसार व रक्तातीसारमें मवाद अधिक निकल गया होय कि जिसके कारणसे शरीर सूख गया होय । अथवा विशेष भूखा रहने और आहारके न मिलनेसे शरीरकी रतूवत नष्ट हो गई होय और नवी रतूवत न पहुँची होय इस कारणसे शरीर खाली होकर सूख गया होय । यदि किसी प्रकारका मवाद शरीरसे न स्वभावसे निकला होय न निकाला गया होय । यदि इस दशामें भी शिरका दर्द उत्पन्न हुआ होय वह (युवसी) और (खिरफा) कहा जाता है, युवसीके माने खुश्की और खिरफाके मानें हलका है । कई तवीवोंकी यह राय है कि यह दर्द प्रायः उन स्त्रियोंको विशेष करके उत्पन्न होता है कि जिनके शरीरसे रजोधर्म सम्बन्धि रक्त अथवा प्रसव समयमें रक्त अधिक निकल गया हो। उपाय इस रोगका यह है कि रोगीको तर और उत्तम बलिष्ठ आहार जो कि रक्तोत्पादक होयँ उनका सेवन करावे जिनसे रस रक्त मांसादि सप्तधातुओंकी उत्पत्ति होय जैसे जौ गेहूँका मीठा दलिया दुग्धके साथ मोटी चर्बीदार मुर्गियोंका सोरवा अथवा झोल हरीरा जिसमें रोगन बादाम और निशास्ता पडा होय अथवा बकरीके बच्चोंके गोस्तका पानी पडा हो और तरी पहुंचानेवाले तैल जैसे कि रोगन बादाम, रोगन कद्दू, तिलीका शिर और समस्त शरीरमें मालिश कर रोगन गुलबनफशा रोगन कद्दू रोगन नीलोफर इनमेंसे किसी एकको नासिकामें डालना और मुर्गीकी चर्वी तीतरकी चर्वी खाने और मस्तक तथा शरीरमें लगानेके काममें लेनी चाहिये ।

कष्टदायक भयंकर शिरोरोग ।

यह शिरका दर्द अति कष्टदायक है, जो बडी ही कठिनतासे निवृत्त होता है और यह दर्द टोपके समान सम्पूर्ण शिरके भागोंको घेर लेता है जैसे कि शिरपर दर्दका टोप पहना दिया होय इस कारणसे इस शिरोदर्दको वैजा और खोदा कहते हैं ।

क्योंकि इसका अर्थ टोपका है। शिरदर्दके प्रधान हेतु और कारणमें तबीबोंके मन्तव्यमें परस्पर विरुद्धता है। परन्तु शेखबूअली तबीबका ऐसा सिद्धान्त है कि यह दर्द शिरके समस्त भागोंको ग्रस लेता है और दर्द समान रूपसे एकसा रहता है, यह दर्द रुक २ कर नहीं होता अधिक समय पर्य्यन्त लगातार रहता है। इस दर्दमें बहुत स्वल्प कारणसे भी घडी २ में कष्ट बढता रहता है, यहांतक कि इस दर्दवाले रोगीको शब्द प्रकाश और मनुष्योंका मेलझोल व बार्तालाप करना बुरा लगता है। कि एकाकी अन्धकारमें एकान्तवास करना और आरामसे पडा रहना अच्छा लगता है। घडी २ में रोगीको ऐसा मालूम होता है कि हथौडा व टांकीसे कोई शिरको फोडता है अथवा शिर अधिक कष्टसे खींचा जाता है और शिर फटा पडता है। इस प्रकारके शिरोरोगके छः कारण हैं। एक तो यह कि गाढे और दृढ बलवान भाफके परमाणु किसी प्रकारके निकम्मे दूषित दोषसे उठकर दिमागकी उस झिल्लीके नीचे आनकर एकत्र होकर बन्द हो जावें, जो झिल्लीकी शिरकी खोपडकि नीचे अन्दरकी तर्फ है और भेजा इन झिल्लियोंसे लिपटा रहता है और वे दोष जिनसे भाफके परमाणु उठकर दिमागकी झिल्लियोंमें बन्द हो गये हैं वे चाहे शिरहीमें होयँ अथवा शरीरके किसी अन्य भागमें होयँ। (दूसरे) यह कि चाहे निकम्मे दूषित दोषके परमाणु जो कि इस रोगका कारण है उसही स्थलमें घुसकर बन्द हो जावे जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। (तीसरे) यह कि रक्तसे उत्पन्न हुई सरसामी सूजन मुख्य दिमागमें उत्पन्न हो जावे। (चौथे) दिमागमें पित्तकी सूजन उत्पन्न हो जानेके कारणसे यह शिरोरोग उत्पन्न हुआ होय। (पांचवें) यह कि शर्दी लगनेसे शिरके भीतरके भागोंमें सूजन उत्पन्न हो जावे। (छठे) यह कि गाढा रिआह शिरके पर्दोंमें घुसकर बन्द हो जावे इसके कारणसे शिरका दर्द उत्पन्न हुआ होय। इस शिरोरोगके सामान्य और विशेष पांच चिह्न हैं। प्रथम किसी प्रकारका चलना फिरना परिश्रम अथवा बालकोंको खेलने कूदनेका परिश्रम बडी उमरके स्त्री पुरुषोंका मद्यपान करना अथवा वातकारक वस्तुओंका सेवन अथवा शरीरमें किसी प्रकारकी गर्मीका पहुंचना अथवा कठोर और भयंकर शब्दोंका सुनना इत्यादि कारणोंसे शिरमें दर्द अधिक होने लगता है। दूसरे इस रोगका रोगी प्रकाश (उजाले) से नफरत माने और एकाकी एकान्त अन्धकारमें बैठा रहना और शिर नीचेको लटकाये रहनेको अच्छा समझे जिस समय शिरकी पीडामें अधिकता हो तो रोगी नेत्र न खोल सके। तीसरे नेत्रकी सन्धियोंमें पीडा और खिचावट मालूम होय यह दशा उस समय होती है कि जब शिरके दर्दका कारण भीतरी झिल्लीमें होता है। चौथा चिह्न यह है कि चेहरा खिचा हुआ मालूम होय और चेहरेकी रंगत तबदील होगई होय और रोगीके शिरपर हाथ रखनेसे उसे दुःख मालूम

होय यह दशा उस समय पर होती है कि जब रोगका कारण शिरके बाहरकी झिल्लीमें होय जो कि शिरकी हड्डियोंपर मढी हुई है और चेहरेकी रंगत फीकी पड जानेसे यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि कौनसा दोष अधिक है। जैसे कि चेहराकी रंगतमें ललाई हो तो मालूम हो जावेगा कि रक्तकी अधिकताका विकार है और चेहरेपर अधिक पीतता झलके तो पित्तकी अधिकताका विकार है और चेहरे पर अधिक सफेदी झलके तो कफकी अधिकताका विकार है । चेहरेपर स्याहीकी झलक अधिक हो तो वातकी अधिकताका विकार समझना । पांचवाँ चिह्न यह है कि शिरकी रगें कूदती हुई और धमकती हुई न मालूम होय यह दशा उस समय होती है जब कि किसी झिल्लीके नीचे भाफके परमाणुओंके बन्द हो जानेसे शिरमें दर्द होता है । इस शिरो-रोगकी चिकित्सा यह है कि जब इस दर्दका कारण अच्छी तरहसे मालूम हो जाय और दूषित दोषकी अधिकता भी ऊपर लिखे चिह्नोंके अनुसार मालूम हो जावे तो उस दोषको पकाकर निकाल देवे और शरीरको शुद्ध कर देवे शिर और शरीरको शुद्ध करनेके पीछे दिमागको उन वस्तुओंसे बल पहुंचावे जो इस कामके लिये प्रधान गुण रखती हैं । और उन औषधियोंका वर्णन ऊपर कई बार हो चुका है । शिरद-र्दका एक कारण नेत्रोंमें पानी उतर आनेका भी कई तबीबोंने माना है इसका उपाय नेत्ररोगोंके प्रकरणमें देखो ।

बौहरानी शिरोरोगकी चिकित्सा ।

यह शिरोदर्द बोहरानके दिन उत्पन्न हो जाता है प्रथम नहीं होता, यदि प्रथमसे यह शिरोदर्द होता तो आर्जी समझा जाता । यह, बौहरानी शिरोदर्द प्रायः उन्हीं रोगोंके बौहरानमें होता है जो गर्म और मलके सड जानेसे उत्पन्न होते हैं, इसका लक्षण यह है कि जो बौहरानके दिवस नियत हैं जैसे पांचवा सातवां ग्यारहवां इत्यादि दिनोंमें शिरका दर्द उत्पन्न होय और कभी २ बौहरानी शिरोदर्दका यह भी चिह्न होता है कि रोगीका मूत्र सफेद और पतला होय । उपाय इस रोगका यह है कि मलको निकालनेके लिये दोषके अनुसार प्रकृतिको सहायता पहुँचावे, परन्तु यह अच्छे प्रकारसे देखलेवे कि मलका झुकाव किस मार्गसे निकलनेको रुजू है । जैसे कि शिरके दर्दके साथ जी मिचलावे और श्वांस उलटी चलती होय और घुमेर मालूम होती हो तो जान लेवे कि प्रकृति मलको वमनके द्वारा निकालना चाहती है और दोष भी वमनके द्वारा निकलनेको तैयार है तो सिकंजवीन और गर्मजल पिलावे अथवा सिकं-जवीन और मुलहटीका चूर्ण ककडीकी जडका चूर्ण इनको चुकंदरके काढेमें घोलकर पिलावे और उसी समय वमन करा देवे । जो शिरदर्दके साथ पेटमें गुडगुडाहट होय और अफरा भी होय तथा पेटकी खाल जलती होय और घबराहट हो तो जान

लेना कि मल दस्तोंके द्वारा निकलनेको तैयार है और प्रकृति भी मलको दस्तोंके द्वारा निकलनेको चाहती है, यदि ऐसी दशा हो तो नीचे लिखे हुए प्रयोगसे कोष्ठको नर्म करे । आलूबुखारा उन्नाव लसोडा विहीदाना मुनक्का इमली शीरखिस्त इनको परिमित मात्रासे लेकर गर्म जलमें भिगोकर छान कर पिलावे अथवा आलूबुखारेका शरबत अथवा इमलीका शरबत अथवा दुबारा खींचे हुए गुलाबका शरबत शीतल जलमें मिलाकर पिलावे और कोष्ठको नर्म करनेके लिये उन्नाव, लसोडा, आलूबुखारा चुकंदरके पत्र जौकी घाट, नीलोफर बनफशा आलूवालू इनको परिमित मात्रासे लेकर काढा वनावे और मल छानकर काढेमें तुरंजवीन और थोडा तिलीका तैल मिलाकर अमल देवे (अमल देनेका प्रयोजन उपरोक्त दवाको पिचकारीके द्वारा गुदामें भरदेवे) इसका प्रयोजन यह है कि जुलावकी दवा वौहरानकी दशामें पिलाई जावे तो कष्ट और बेचैनी अधिक होगी । पिचकारीके जरियेसे दवा गुदामें चढा दी जावे तो कष्ट और घवराहट कम होगी, क्योंकि पिचकारीके जरिये पहुंचाई हुई दवा आंतोंमें मलको नर्म करके निकाल कर वापिस लौट आती है । न तो अमल कराई हुई दवा अधिक चढती ह न अधिक असर करती है इन सब बातोंके सिवाय प्रकृति मलको अच्छी तरह निकाल देती है, क्योंकि मल तो निकालनेको प्रथमही तैयार था और प्रकृति भी मलके दूर करनेको तैयार थी केवल हुकने (पिचकारीके) जरिये दवा पहुँचाकर तबीयतको सहायता पहुंचाई गई । और जो रोगी इस दर्दकी दशामें अपनी आंखोंके सामने सूर्य्यकी किर्णें अथवा लाली देखता है और पीछे तिलमिली व भुनगेसे देखता है और इसके साथ रोगीको शिरसे नाककी तर्फ कोई वस्तु सर-सराती मालूम होती है तो जानना चाहिये कि प्रकृति मलको नकसीरके द्वारा निकालना चाहती है । मल भी निकलनेको तैयार है इस दशामें रोगीकी नकसीर लानेका उपाय करे । नकसीर लानेका उपाय यह है कि नासिकाके छिद्रोंमें कोई खुरखुरी वस्तु डालकर उसको खुजावे जिससे नासिकाकी रगोंका मुख खुल जावे और नकसीर जारी हो जावे अथवा किसी पत्थरका टुकडा व ईटका टुकडा गर्म करके उसपर शिर्का डाले और उसमेंसे जो भाफ (धूंआ) उठे उसको नासिकामें सूंघे और लाल लाल वस्तु वरावर देखता लाल पदार्थोंको नेत्रोंके सन्मुख रखे, जो इन उपरोक्त उपायोंसे नकसीर जारी हो जावे तो सबसे अच्छा है । नहीं तो जंगली पोदीना अजखरका फूल नकछिकनी इन सबको हम वजन लेकर वारकि पीसकर बेलके पत्र इसके साथ मिल सकें उतने मिलाकर बारीक पीसकर बत्ती बना बेल पत्रके स्वरसमें बत्तीको तर करके नासिकामें रखे थोडेही समयके बाद नकसीर जारी हो जावेगी । जो रोगीको गुर्दे और पशलियोंके नीचे भारीपन और बोझसा मालूम हो तो जानना चाहिये कि प्रकृति

मलको पेशावके द्वारा निकालना चाहती है और मलका झुकाव मूत्राशयकी तर्फ है । इस दशामें मूत्र लानेवाली औषधियोंका प्रयोग काममें लावे जैसे खरबूजेके बीजोंकी ठंढाई ककडीके बीजोंकी ठंढाई इनमेंसे किसी एकमें सिकंजवीन अथवा शरबत बनफशा मिला-कर पिलावे जिससे मलमूत्रके मार्ग होकर निकल प्रकृति हलकी हो जावे ।

शिरोदर्द जो दुर्गन्धितवस्तुओंके सूंघनेसे उत्पन्नहोय उसकी चिकित्सा ।

यह शिरोदर्द दुर्गन्धित जगहकी बदबू जैसे कि संडासकी सडाद और जहां मृतक पशुओंका मांस अथवा मछली पक्षी व चूहे आदि मर कर सडते होयँ अथवा जहां पशुओंका चमडा भिगोकर धोया अथवा रंगा जाता होय अथवा कोई अन्य पदार्थ सडकर दुर्गन्धित उत्पन्न करनेवाला होय इसी प्रकार अति गर्मचीजोंके सूंघनेसे भी शिरो दर्द उत्पन्न होता है । जैसे कस्तूरी अम्बर मुरमकी (बूल) हींग इनके सिवाय और भी गर्म तेज सुगन्धियोंके सूंघनेसे उत्पन्न होता है । उपाय इसका यह है कि जो शिरोदर्द गर्म सुगन्धित वस्तुओंके सूंघनेसे उत्पन्न हुआ होय केवल गर्मी ही इस व्याधिका कारण हो तो केवल कापूर खसका इतर खीरेककडीका इतर बन-फशाके फूल नीलोफरके फूल इत्यादि तथा अन्य जो शीतल तासीरकी सुगन्धि हैं उनको सूंघे । जो उस गर्म सुगन्धित वस्तुके सूंघनेसे गर्मी और खुश्की दोनों उत्पन्न हुई होयँ और इसी कारणसे शिरका दर्द उत्पन्न हुआ हो तो बनफशाका तैल नीलो-फरका तैल अथवा इसी तासीरके अन्य तैल नासिकामें सुडके । यदि गर्म दुर्ग-न्धित वस्तुओंके सूंघनेसे शिरमें दर्द उत्पन्न हुआ हो तो उसके विरुद्ध वह सुगन्धित द्रव्य सूंघे कि जो प्रकृतिमें उस दुर्गन्धित वस्तुके विरुद्ध होय जैसे कि वह दुर्गन्धित वस्तु खुश्क थी तो उसके विरुद्ध नीलोफर और बनफशाके फूल तर सूंघे, जो वह दुर्गन्धित वस्तु तर थी तो कापूर और चन्दन अथवा इसी तासीरकी और २ वस्तु सूंघे । इसी प्रकार ऐसे ही तैल भी सुडके जो कि कारणके विरुद्ध होय और कुछ तरडे भी देय जो प्रकृतिके अनुकूल और कारणके विरुद्ध होय । जिनसे आरोग्यता होना संभव होय उनको काममें ला दिमागको उन योग्य वस्तुओंसे बल पहुंचावे जिनका ऊपर कईवार वर्णन किया गया है । और जो शिरका दर्द संडासादिकी दुर्गन्ध अथवा सडे मांस चर्मादिकी दुर्गन्धिसे उत्पन्न हुआ होय उसका उपाय यह है कि प्रथम रोगीको गुनगुने जलसे स्नान करा शिरपर अधिक जलका तरडा दे सिर्का सुंघावे, रुई अथवा बारीक कपडेकी बत्ती सिर्केमें भिगोकर नासिकामें रखे । और दूसरी सुगन्धित वस्तु रोगीके प्रकृतिके अनुकूल सुंघावे । अगर इस रोगका रोगी वृद्धावस्थामें होय तो उसको गर्म सुगन्धित वस्तुओंसे लाभ पहुंचेगा और रोगी युवावस्थामें हो तो इसके विरुद्ध तर सुगन्धित द्रव्योंसे लाभ पहुंचेगा ।

सुद्दी शिरोदर्दकी चिकित्सा।

यह सुद्दी शिरोदर्द अन्दर दोषोंके एकत्र होने और उनमें गांठें पड जानेसे होता है, सो यह जानना चाहिये कि कभी भेजेकी उन रगोंमें जिनमें रक्त दौडता है अथवा उन रगोंमें कि जिनमें रूह दौडता है अथवा उन पर्दोंकी रुधिरवाहिनी और शक्तिवाहिनी रगोंमें जो खोपडीके अन्दर है कोई दोष गाढा संगीन बन्द होकर रुका रहता है और गांठ उत्पन्न करता है, इस कारणसे शिरदर्द उत्पन्न होता है। इस शिरदर्दका लक्षण यह है कि शिर और चेहरा भराया हुआ और बोझल मालूम होय शिर और चेहरेमें खिचावट पाई जाय यह शिरका दर्द विशेष आराम करने व बैठे रहने और शारीरक परिश्रमके सर्वथा छोड देनेसे भी होता है। अथवा अधिक आहार करने और बहुत दिनतक स्नान न करनेसे भी यह दर्द उत्पन्न होता है, क्योंकि स्नान करनेसे लोमकूप खुल जाते हैं और उनमें होकर दोष निकलते रहते हैं। चिकित्सा इस रोगकी यह है कि जूफ़ा, हाशा, विस्फायज, अफतीमून इनके काढेमें गुलकंद मिलाकर पिलावे जिससे कि वह गाढा दोष जिसकी गांठें दिमागमें पड गई हैं हलका और पतला हो जाय और फटकर खंड २ हो जाय और इसके पीछे अयारजात जिनका कथन ऊपर हो चुका है रोगीको खिलावे जिससे दोष निकल कर साफ हो जावे।

आनन्द तथा शारीरक परिश्रमसे उत्पन्न हुआ शिरोदर्द।

यह शिरोदर्द दिमागकी हरकत अर्थात् संचालन क्रियासे उत्पन्न होता है, क्योंकि दिमागके हिलनेके दो कारण हैं। जैसा कि: बाल्यावस्थामें बालक विशेष खेल कूदमें मगन होकर शरीर और मस्तकसे अपरिमित परिश्रम लेवें दूसरे जवान उमरके स्त्री पुरुष परस्परके आलिङ्गनमें मस्त होकर अधिक विषयभोग व क्रीडा दिमागको हिला देता हैं। इन दो कारणोंके सिवायं सामान्यतासे तीसरा कारण यह भी हो सक्ता है कि किसी प्रकारका कष्ट शिरको ऐसा पहुंचे कि जो भेजेको हिला देवे जैसे कि चोट और धमक तथा टक्करका लगना इन कारणोंसे दिमाग हिल जावे दिमागका हिलजाना वह है कि उसके जोडोंमें अन्तर आ जाय और दूसरी तर्फ ढीला हो जाय किसी २ जोडकी असली स्थिति बदल जाय और दिमाग किसी एक तर्फको खिचजाय अथवा हिलनेकी अधिकतासे दिमागका कोई पर्दा फट जावे और दिमागका कोई भाग बिखर जाय इस दशामें रोगीके आरोग्य होनेकी आशा नहीं हो सक्ती। मफासिल इसका लक्षण यह है कि दिमागके हिलनेके ऊपर कहे हुए हेतुओंका होना जैसे खेल कूद और स्त्रीके साथ आलिङ्गनादि करना और चोट धमक टक्करादिका लगना और उन पट्ठों तथा रगोंमें जो दिमागके और पास हैं। उनमें खिचावट आ जाय और एक ऐसी दशा उत्पन्न हो

जाय कि नेत्रोंके आगे अंधेरासा छा जाय और रोगी भौंचकासा रह जाय और यह भी संभव है कि सबका नष्ट हो जाय और कभी २ ऐसा देखा गया है कि रोगीको सब प्रकारकी गंध सूंघनेसे सब एक समान ही मालूम होती हैं। चिकित्सा इसकी यह है कि मलको शिरसे नीचेकी ओर फेरनेके लिये बासलीक या सेरू (नाडी) की फस्द खोले (बालक और वृद्धकी फस्द खोलना मना है) और कोठको नर्म करनेके लिये मुलैयन दवा काममें लावे और ज्वरकी दशा हो तो मुलायम दवाओंके क्वाथसे अथवा अमलतास और कासनीका शीरा मिलाकर हुकना करे और जिस समय पर ज्वर न होय तब तीक्ष्ण दवाओंके हुकने (पिचकारी) से तथा कोकायाकी गोली देकर कोठको नर्म करे पीछे प्रकृतिको अपनी दशापर लावे और शिरको बल पहुंचावे जो ज्वरके साथ सूजन भी हो तो चंदन, सुपारी, गिले, इरमनी, जरावन्द, काहो, जौका आटा, बाकलेका आटा, इनका लेप करे और ज्वर न होय और शिरमें सूजन भी न होय तो गुलनार अनारकी छाल गुलाबके फूल, आस, चिरायता, फिटकरी इनका लेप करे और सुगन्धियां सुंघावे और गुलरोगन बनफशाका तैल स्त्रीके दुग्धमें मिलाकर और थोडीसी साफ रसौत उसमें घिसकर कान और नाकमें टपकावे इससे अधिक लाभ पहुंचता है।

जो शिरोदर्द सोतेसे उठने पर होता है उसको दोषके अनुसार निकाल अंजीरकी लकडीकी राख सिर्कैमें मिलाकर दोनों कनपटियोंपर लेप करे । साधारण राख भी सिर्केमें मिलाकर कनपटियोंपर लेप करनेसे लाभ पहुंचता है।

नेत्ररोगकी चिकित्सा।

द्वादश व्याधयो दृष्टौ तत्रैवान्यौ गदावुभौ । कृष्णभागेतु चत्वारो दशैकः शुक्लभागजाः। वर्त्मन्येकोविंशतिश्च पक्ष्मजौ द्वौ प्रकीर्त्तितौ। नव सन्धिषुं सर्वस्मिन्नेत्रे सप्तदशोदिताः। एवं नेत्रे समस्ताः स्यु रष्टसप्ततिरामयाः॥

अर्थ—दृष्टिके मध्यमें १२ व्याधि हैं परन्तु चरक सुश्रुतके कथनसे दो व्याधि न्यूनाधिक हैं, किन्तु १४ मानी गई हैं। कृष्ण भागमें ४ शुक्ल भागमें ११ वर्त्म काहिये पलकोंमें २१ पक्ष्ममें २ नेत्र संधियोंमें ९ और सम्पूर्ण नेत्रमें होनेवाली १७ इस प्रकार नेत्रोंमें होनेवाली ७८ व्याधियाँ हैं। और सुश्रुतके मतानुसार ७६ व्याधियाँ इस प्रकारसे है।

वाताद्दश तथा पित्तात्कफाच्चैव त्रयोदश । रक्तात् षोडश विज्ञेयाः सर्वजाः पञ्चविंशतिः। बाह्यो पुनर्द्वौ नयने रोगाः षट्सप्ततिः स्मृताः॥

अर्थ—वातसे उत्पन्न हुई १० पित्तकफसे १३ रक्तसे १६ और सर्वज २५ और बाह्य २ इस प्रकार सब ७६ व्याधियाँ हैं। इनके अतिरिक्त भौहँकी व्याधि पृथक् है। अब नेत्रकी वही व्याधि लिखी जायगी जो बालकोंके नेत्रोंमें उत्पन्न होती है सम्पूर्ण व्याधियोंके लिखनेका अवकाश इस छोटे ग्रन्थमें नहीं है।

भौहँके दर्दकी चिकित्सा।

यह भौंहका दर्द ललाट और आंखके कोएके बीचमें भौंहकी जगहमें होता है। कभी तो दोनों भौहोंमें होता है कभी एक भौहँमें होता है। इस जगह पर होनेसे इस दर्दका नाम असावा रक्खा गया है, इस रोगके दो कारण हैं एक यह कि दूषित दोषके परमाणु गर्म शरीरसे ऊपरकी तर्फ चढकर आ जावें और चर्म जिल्दकी मुटाई तथा लोमकूप बन्द होनेके कारण इस स्थान पर आ रुक कर दर्द उत्पन्न कर देवे। इसी प्रकार उत्तरकी वर्फानी हवाके लगनेसे और अति शीतल जलसे स्नान करनेके पीछे प्रायः यह रोग उत्पन्न हो जाता है। इस रोगका विशेष लक्षण यह है कि भौहँमें तीव्र शस्त्र चुभानेके समान पीडा हो रोगी नेत्रका पलक न उठानेसे निरन्तर ओंधा पडा रहे याने नेत्र न फेर सके, दर्दकी अधिकतासे ऐसा समझे कि अब मस्तक फट जायगा। उपाय इसका यह है कि बालक और वृद्धको त्याग कर जवान स्त्री व पुरुषकी भौहँमें यह व्याधि होवे तो कडी और खरदरी वस्तुसे नासिकाको खुजावे जिससे कि नकसीर चल निकले कि समीपवर्त्ती स्थानसे दुष्ट माद्दा निकल जावे। कदाचित् नकसीर ज़ारी न होवे तो सरेरू रगकी फस्द खोले। बालककी भौहँमें दर्द हो तो सिर्का और कापूर सुँघावे पिंडलिया और तलुए मले खानेके वास्ते शक्कर और सिर्केसे बना हुआ ऊगरा देवे तथा जौका जल पिलावे और विशेष उपाय चिकित्सक अपनी बुद्धिके अनुसार करे, जो दुष्ट सादा प्रकृति कनपटीमें और नेत्रमें आ जाय तो इन स्थानोंपर दर्द होने लगता है और यह इस प्रकारसे है कि जैसे कोई मनुष्य विशेष तेज धूपमें फिरकर विना शीतल हुए शीतल हवामें शिर खोल देवे अथवा शिरपर शीतल जल डाले और इस कारणसे शिरके रोमाञ्चमेंसे निकलती हुई रतूवत (पसीना) बन्द हो जावे और गर्मी बाहरको निकल रही थी वह रुक जावे। इस व्याधिका विशेष चिह्न यह है कि सूर्य्यके निकलते ही दर्द आरम्भ हो जावे और जितना सूर्य्य चढता जावे उतना ही यह दर्द बढता जावे, जब सूर्य्य अस्त होने पर आवे तो यह दर्द भी घटने लगे और जब सूर्य्य अस्त होकर रात्रि हो जावे तो दर्दका नाम निशान भी न रहे। इस दर्दका उपाय यह है कि शिरके रोमाञ्च जो बन्द हो गये हैं उनके खोलनेका उपाय करे। (भफारा देवे) शीतलता पहुंचावे कापूरका तैल नासिकामें टपकावे।

आयुर्वेदसे नेत्रका वर्णन नेत्रबुद्बुदका लक्षण।

विद्याद्द्व्यङ्गुलबाहुल्यं स्वाङ्गुष्ठोदरसम्मितम्। द्व्यंगुलं सर्व्वतः सार्द्धं भिषग् नयनबुद्बुदम्। सुवृत्तं गोस्तनाकारं सर्वभूतगुणोद्भवम्। पलं भुवोऽग्नितो रक्तं वातात्कृष्णं सितंजलात्। आकाशादश्रुमार्गाश्च जायन्ते नेत्रबुद्बुदे॥ (दृष्टिमण्डलका प्रमाण) दृष्टिश्चात्र तथा वक्ष्ये यथा ब्रूयाद्विशारदः। नेत्रयामत्रिभागन्तु कृष्णमण्डलमुच्यते। कृष्णात्सप्तममिच्छन्ति दृष्टिं दृष्टि विशारदाः॥ (मण्डलादिकी संख्या) मण्डलानि च सन्धीश्च पटलानि च लोचने। यथाक्रमं विजानीयात्पञ्च षट् च षडेव च॥ (पञ्चमण्डलोंका वर्णन) पक्ष्मवर्त्मश्वेतकृष्णादृष्टीनां मंडलानि तु। अनुपूर्वन्तु ते मध्याश्चत्वारोऽन्त्या यथोत्तरम्॥ (सन्धि वर्णन) पक्ष्मवर्त्मगतः सन्धिर्वर्त्मशुक्लगतोऽपरः॥ शुक्लकृष्णगतस्त्वन्यः कृष्णदृष्टिगतोऽपरः। ततः कनीनकगतः षष्ठश्चापाङ्गगः स्मृतः॥ (पटलवर्णन) द्वे वर्त्मपटले विद्याच्चत्वार्य्यन्यानि चाक्षिणी। जायन्ते तिमिरं येषु व्याधिः परमदारुणः॥ (चार पटलोंका चिकित्सार्थविभाग) तेजोजलाश्रितं बाह्यं तेष्वन्यत्पिशिताश्रितम्। मेदस्तृतीयं पटलमाश्रितन्त्वस्थिचापरम्। पञ्चमांशसमं दृष्टेस्तेषां बाहुल्यमिष्यते॥ (नेत्रोंमें धात्वादिकका निर्देश) शिराणां कंडराणाञ्च मेदसः कालकस्य च। गुणाः कालात्परः श्लेष्मा बन्धनेऽक्ष्णोः शिरायुतः।

अर्थ—नेत्रबुद्बुदका लक्षण—दो अंगुल लम्बा और अंगूठेके उदरके समान चौडा चारों तर्फ ढाई ढाई अंगुलके विस्तारवाला नेत्रबुद्बुद अर्थात् अक्षिगोलक कहलाता है। गौके गोलस्तनके समान होता है यह नेत्रबुद्बुद सम्पूर्ण तत्त्वोंके गुणसे उत्पन्न होता है, जैसा कि इस नेत्रबुद्बुदमें पृथिवीके गुणसे मांस अग्निके गुणसे रक्तता वायुके गुणसे कृष्णता जलके गुणसे श्वेतता आकाशके गुणसे अश्रुमार्ग बनते हैं। दृष्टिमण्डलका प्रमाण जैसा शारीर विद्याके विशारद (विद्वानों) ने कथन किया है उसीके अनुसार दृष्टिका प्रमाण कहते हैं। नेत्रकी लम्बाईसे तिहाई कृष्ण मण्डल अर्थात् काली पुतली होती है, इस काली पुतलीसे सातवें भागकी दृष्टि होती है। इस विषयमें यही मत अन्य विद्वा-

नोंका भी है सातवां भाग मसूरकी दालके समान होता है, इस दृष्टिभागपर किसी प्रकार जाला व जलका आवरण आनेसे मनुष्यको दीखता नहीं है । (नेत्रोंमें मण्डलादिकी संख्या) नेत्रोंमें पांच मण्डल छः सन्धि और छः ही पटल होते हैं । (सन्धि वर्णन) एक सन्धि पक्ष्म और वर्त्ममें है दूसरी सन्धिवर्त्म और सफेदाईके बीचमें है, तीसरी सन्धि सफेद भाग और काली पुतलीके बीचमें है । चौथी सन्धि काली पुतली और दृष्टिके बीचमें है पांचवी सन्धि कनीनमें और छठी सन्धि अपाङ्ग दृष्टिमें है (पटलका वर्णन) दो पटल वर्त्ममें और चार नेत्रोंमें होते हैं, इन्हीमें भयानक तिमिर रोग उत्पन्न होता है, इन चार पटलोंकी चिकित्साके अर्थ विभाग किये जाते हैं । जैसा कि अक्षिगोलकके बाहर प्रथम पटल आलोचक तेज अर्थात् शिरागत रक्त और जल अर्थात् त्वचागत रस धातुके आश्रित है, दूसरा पटल मांसके आश्रित है और तीसरा पटल मेदाके आश्रित है और चौथा पटल अस्थिके आश्रित है । पंचमांशके समान दृष्टिका इनमें बाहुल्यता (वृद्धि व स्थूलता) होती है । (नेत्रोंमें धात्वादिका निर्देश ।) शिरा कंडरा मेदा कालक इनमेंसे यथोत्तर नेत्र बन्धनमें उत्कृष्ट हैं । कालक अर्थात् नेत्रके कृष्ण भागके सम्बन्धसे शिरायुत श्लेष्मा नेत्रोंके बन्धनमें उत्कृष्ट है । इन नेत्रके सब अङ्गोंको समझकर निदान और चिकित्सा आरम्भ करे ।

नेत्ररोगोंकी सामान्य सम्प्राप्ति व नेत्ररोगका पूर्वरूप ।

शिरानुसारिभिर्दोषैर्विगुणैरूर्द्ध्वमागतैः । जायन्ते नेत्रभागेषु रोगाः परमदारुणाः ॥ तत्राविलं ससंरम्भमश्रुपूर्णोपदेहवत् । गुरूषाचोषरागाद्यैर्जुष्टञ्चाव्यक्तलक्षणैः । सशूलं वर्त्मकोषेषु शूकपूर्णाभमेव च ॥ विहन्यमानं रूपे वा क्रियास्वक्षि यथा पुरा । दृष्ट्वैव धीमान्बुध्येत दोषेणाधिष्ठितञ्च तत् ॥

अर्थ—कुपित हुए दोष जब नेत्र गत शिराओंमें होकर ऊपरको आ जाते हैं तब नेत्रोंमें अनेक प्रकारके भयंकर रोग हो जाते हैं । पूर्वरूप—व्याकुलता थोडी सूजनसे युक्त आंसुओंसे पूर्व और मलकी वृद्धिसे युक्त हो और गुरुत्वादि (भारीपन) कफ चिह्नोंसे उष्मादि पित्त चिह्नोंसे तोदादि वात चिह्नोंसे रागादि रक्तज चिह्नोंसे युक्त नेत्रोंका रंग बिगड जाय और उनके निमेष उन्मेषादि व्यापारोंमें अन्तर पड जावे तब जान लेना कि नेत्रोंमें रोग स्थित हो गया है । इन सर्व प्रकारसे नेत्र स्थितिको जानकर नेत्र रोगोंकी चिकित्सा आरम्भ करे ।

यूनानी तबीब लिखते हैं कि नेत्र उपाङ्ग है और इसमें पट्टे जिगरकी रक्तवाहिनी रगें और दिलकी रूहवाली रगें फैली हुई हैं । इसमें ७ पर्दे और तीन रतू-

वर्ते हैं। विशेष करके नेत्रकी स्वाभाविक प्रकृति गर्म तर है और यदि ऐसा न होय तो उसकी कोई प्रकृति स्वाभाविक और मुख्य नहीं है, किन्तु दूसरी प्रकृतिके संयोगसे होनेवाली है। नेत्रकी गर्मीकी प्रकृतिका यह चिह्न है कि नेत्र शीघ्र चलने लगे और लाल रंगकी रगें चमकने लगें और स्पर्शसे गर्म मालूम होय शर्दीके चिह्न सब इसके विरुद्ध होयँ और तरीके चिह्न इस प्रकारसे हैं कि मैल और आंसू विशेप आवें और वडी हो जावें और खुश्कीका यह चिह्न है कि छोटी हो जावें और मैल तथा आंसू न निकलें और नेत्र भीतरको घुसे हुए होयँ स्पर्श करनेसे कठिन प्रतीत होयँ, यहांपर यह जानना उचित है कि करंजी आंखकी गर्मी व तरी दूसरे रंगके नेत्रोंकी तरीसे कम होती है। कृष्ण नेत्रोंकी गर्मी व तरी सब रंगोंसे अधिक है, इसलिये प्रायः कृष्ण वर्ण नेत्रोंमें नजला उतर आता है। इसी कारणसे नेत्रोंमे अन्य व्याधियां भी हो जाती हैं, जो कि परमाणुओंकी अधिकतासे उत्पन्न होती हैं। शौहला नेत्र (जिसके नेत्रकी स्याहीमें सुर्खी हो) यह साधारण होती है। अब यह बात ध्यानमें रखो कि नेत्र रोगोंके कारणके अनुसार सब प्रकारके रोगोंकी पृथक् २ चिकित्सा वर्णन की गई है, लेकिन सब नेत्र रोग चार भागोंमें विभक्त किये गये हैं। जैसे कि प्रत्येक पर्दा व रतूवतकी व्याधिको पृथक् २ प्रकरणमें वर्णन करते हैं। (१) सादा दुष्ट प्रकृति (२) दोषयुक्त दुष्ट प्रकृति। (३) तफर्रुके इत्तिसाल जैसे घाव व सूजन। (४) वह रोग जो नेत्रोंके अन्य भागोंमें उत्पन्न हों। जैसे अहवल (भेंडापन) होना और नेत्रका बाहरकी ओर निकल आना, तथा इसके समान और भी रोग हैं। इसी प्रकार नेत्र रोगोंकी चिकित्साके भी चार भेद हैं, एक सादा दुष्ट प्रकृतिको ठीक करना। दूसरा मलका साफ करना, तीसरा जखम व सूजनका उपाय, चौथे नेत्रकी सूरत शकलकी दुरुस्ती और जो कष्ट नेत्र सन्धियोंमें होता है उसको निवृत्त करना। सादा प्रकृतिको अपनी असली दशापर उन औषधियोंसे लाना चाहिये, जो अप्रधान प्रकृतिके विरुद्ध होयँ। जैसे कि जो अप्रधान प्रकृति गर्म होय तो मकोय, कासनी, काहूका पानी, गुलाब, मुर्गीके अण्डेकी सफेदी ऐसी ही अन्य वस्तुओंका प्रयोग करे। यदि प्रकृति शीतल हो तो कस्तूरी, ममीरा, वच, काली मिरच ऐसीही तासीरकी अन्य औषधियोंको काममें लावे। यदि नेत्रोंकी प्रकृति तर होय तो भुनाहुआ तूतिया, चांदीका मैल, मनसिल, संगवसरी, खपरिया ऐसी ही अन्य औषधियां जो खुश्क तासीरकी हों उनसे उपाय करे। यदि प्रकृति खुश्क हो तो स्त्रीका दूध, बदामकी मिंगी, अंडेकी सफेदी, ईसबगोलका लुआब तथा ऐसी ही तर अन्य औषधियां काममें लावे और खाने पीनेमें भी प्रत्येक कारणके अनुसार विचारपूर्वक प्रकृतिके विरुद्ध आहार देवे और भी प्रत्येक

दोषकी प्रकृति अनुसार ही ध्यान रखे। अब यह बात जाननेकी आवश्यकता है कि नेत्रका मल ७ प्रकारके प्रयत्नसे निकाल सक्ते हैं। एक तो यह कि खाने पीनेकी दवा बहुत कम व हलकी २ अति उत्तम गुणवाली देवे, अजीर्णकारक तथा भाफ उठानेवाली वस्तु न देवे। दूसरे यह कि जो शरीरमें मल भरा होय तो प्रथम उसको निकालनेका प्रयत्न करे। तीसरे यह कि दिमागके स्वच्छ करनेवाली मुख्य (प्रधान) औषधियोंसे दिमागको साफ कर मनुष्यकी उमरके अनुसार पछने लगाना तथा रग सरेरू एवं शिरकी उपयोगी रगोंकी फस्द खोलना इस रोगमें लाभदायक है। चौथे यह कि प्रकृतिके दुष्ट मलको नासिकाके द्वारा बाहर निकालना छींक लाना जिससे कि मलकी रतूबत जो नेत्रकी ओर रुजू हो रही थी वह लौट कर नासिकाकी राहसे निकल जावे नेत्रमें न आवे। क्योंकि यह नासिकाका मार्ग मल निकालनेको सबकी अपेक्षा नेत्रके अति समीप है और यह भी समझ लेना चाहिये कि छींक लानेवाली दवाओंका प्रयोग नेत्रोंके साफ करनेमें पूर्ण गुण रखता है। परन्तु जबतक शरीर शुद्ध व मल न ठहर जावे तबतक इस उपायका प्रयत्न न करे। क्योंकि ऐसी दशामें यह उपाय हानि पहुंचानेवाला समझा ज़ाता है। पांचवें नेत्रके कोएमें जो रग है उसकी फस्द खोले। छठे आंसू बहानेवाली औषधियोंसे नेत्रोंके मलको निकालकर साफ करे, आंसू बहानेवाली औषधको काममें लाने और कोएकी फस्द खोलनेसे प्रथम कोष्ट (उदर) का शुद्ध करना अति आवश्यक है। जिससे नेत्रोंमें खराब रतूबत पहुंचनेसे हानिका भय न रहे, यादि शरीर साफ होय तो कुछ हानि पहुंचनेकी संभावना नहीं रहती। सातवें यह कि जो मल किसी अङ्गसे नेत्रमें आता होय तो उस अङ्गको मलसे साफ कर मलको नेत्रमें आनेसे रोके, जो नेत्रके किसी भागमें सूजन व जखम होय तो इनका उपाय ऐसी औषधियोंसे करे जो तरीको शोषण करती होय और विशेष खुश्की भी न बढाती होय, न नेत्रोंमें जलन उत्पन्न करती होय जैसा कि सुरमा, केशर, भुना, तूतिया, सफेदा एलुआ शादनज अतसी (यह मसूरके समान पत्थर होता है रंगत इसकी सफेद होती है) क्योंकि जिस औषधकी तासीर नेत्रके समान है वह नेत्रको हानि पहुंचाती है। जिस औषधकी प्रकृति नेत्रसे थोडी विरुद्ध है वह लाभदायक होती है। उपरोक्त औषध इसी प्रकारकी है क्योंकि नेत्रकी प्रकृति गर्म और तर है, इस कारणसे प्रायः तरी बढानेवाली दवा नेत्रको हानि पहुंचाती है, जो औषध कुछ कम तरी उत्पन्न करती होय और जलन उत्पन्न करनेवाली न होय तो नेत्रको बल पहुंचाती है। बल प्राप्त करनेवाला अङ्ग रोगके मादेको ग्रहण नहीं करता और आरोग्य रहता है। नेत्र रोगीकी चिकित्सामें यह स्मरण रखना चाहिये कि नेत्रोंमें जो उपद्रव उत्पन्न हुए होयँ

उनको चिकित्सा द्वारा निवृत्त करके नेत्रको असली दशा पर लाना चाहिये। इस नेत्रके रोगोंकी व्याधिमें कोई उपाय तो फस्द खोलकर तथा मलको निकाल कर होता है और कोई उपाय दूसरे कायदेसे होता है, जो नियत रोगोंमें लिखा जायगा। नेत्रका उपाय करनेके प्रथम ही यह देखे कि नेत्र पीडाके साथ कुछ सूजन भी है कि नहीं, जो शिरदर्दके साथ सूजन होय तो यह निश्चय करे कि कौनसा दोष है व किस दोषके चिह्न उत्तम रीतिसे प्रगट होते हैं। यह भी करे कि मल समस्त शरीरमें है अथवा केवल शिरमें ही है। यदि मल समस्त शरीरमें हो तो प्रथम दोषके अनुसार औषधियोंसे शरीरके दूषित मलको निकालकर शरीरको शुद्ध करे, फिर शिरके मलको निकालकर दिमागको शुद्ध करे। इसके अनन्तर नेत्रकी सफाई करे, बाद जबतक शरीर पूर्ण रीतिसे शुद्ध न होवे तबतक नेत्रकी चिकित्सा आरम्भ न कर मलको नष्ट करनेवाली औषधियां भी नेत्रमें न लगावे। कदाचित् सूजनके साथ शिरदर्द अधिक होय अथवा नेत्रमें दर्द होय तो प्रथम शिरको शुद्ध करके ही नेत्रके दर्दकी निवृत्तिका उपाय करना चाहिये। यदि ऐसा न किया जाय तो बडी भूल समझी जायगी। प्रत्येक रोगके अनुसार आगे उपाय कथन किये जायँगे, परन्तु यह भी बारीक तौरपर जानलेना चाहिये कि जहां नेत्रके दर्दका माद्दा गाढी रतूवत अथवा वादीका होय तो दोषके अनुसार विरेचन औषधियोंसे समस्त शरीरकी सफाई करके एलुआकी गोली अथवा अयारजकी गोली, कौकायाकी गोली इत्यादिमेंसे किसी एक प्रयोगका सेवन कराके दिमागको साफ करे। फिर शेष मवादको ऊपरसे निकाल देवे और नेत्रको मेथीके जल और दूधसे प्रक्षालन करे, लेकिन् दुग्ध ताजा लेना चाहिये, जब यह निश्चय हो जावे कि मलसे शरीर शुद्ध हो गया है और दिमाग भी साफ हो गया है। मल पकने लगा होय तो रोगके अनुकूल उचित औषधियां नेत्रमें लगा स्नान भी करावे। कदाचित् पतली रतूवतका मल अथवा रुधिर पित्तमें मिश्रित होय तो प्रथम आवश्यकताके अनुसार रक्तवाही रगकी फस्द खोले इसके पीछे दस्तावर औषधियां देकर पीछे मल शिरसे नीचेकी तर्फ उतारे और जिस स्थानपर मल वातदूषित होय ऐसे मौकेपर स्नान कराना और मवादको नष्ट करनेवाली औषधियोंका सेवन कराना लाभदायक है। जिस मौकेपर रक्तज मल होय तो फस्द खो[illegible]ना हितकारी है, यदि रक्त विशेष गाढा होय और नेत्रकी रगें रक्तसे भरगई होयँ और फस्[illegible] खोलने पर भी रगें रक्तसे भरीहुई रहें ऐसी अवस्थामें स्नान और हल्के तथा उत्तम भोज[illegible]ता कराना रोगीको लाभदायक है। साथही अयारज फैकरा तथा कौकायांकी गो[illegible]लियां सेवन कराना हितकारी है, औषधकी वत्तियोंका प्रयोग काममें लावे तथा ज[illegible]ऊमें घिसकर नेत्रमें लगावे। और मलको नष्ट करनेवाले लेप जो रुधिरके

गाढेपनको पतला करते हैं लगावे । जो रोगी शराबी होय और शराब पीना चाहता होय तो स्नान करके थोडी शराब पीवे और शराब पीना दिमागको गर्म करता है गांठोंको खोलता है और रक्तको पतला करता है, परन्तु रूहको गाढा करके उसे काला कर देता है । कभी नेत्रोंमें सूजन प्रगट नहीं होती है परन्तु मल नेत्रोंमें सदैव भरा हुआ निकलता रहता है । इस इलाजसे लाभ नहीं पहुँचता ऐसी स्थितिमें उचित है कि इसका निश्चय करे कि मल खोंपडीमसे आता है तो उसके चिह्न इस प्रकारसे हैं—नेत्र और मुख रक्त वर्ण होय, मस्तक तथा शिरमें गर्मी और शिरकी रगें भरी रहें । उपाय इसका यह है कि बालक और वृद्धको त्यागकर शिरकी फस्द खोले और कनपटीकी रगका छेदन करे तत्पश्चात् कटीहुई रगको दग्ध (दाग) देवे, इसकी अपेक्षा तेज लेप काममें लावे, येभी लाभदायक हैं । यदि दुष्ट मल खोपडीके अन्दरसे आता है तो उसका चिह्न इस प्रकारसे है कि नासिकामें गुदगुदी माळूम होय और नेत्र तथा नासिकामें खुजली माळूम होय छींक विशेष आवें । उपाय इसका यह है कि फस्द और दस्तोंसे दिमागको स्वच्छ करे और दिमागके साफ करनेवाले अन्य उपाय भी करे । नेत्रके सबल रोग प्रकरणमें जो औषधियां कथन की गई हैं उनको काममें लानेसे विशेष लाभ पहुंचता है । दूखते हुए नेत्र विधिपूर्वक उत्तम उपाय करनेपर भी दूखतेही रहें आरोग्यता न होय तो भी उपचारके सीधे मार्गको न छोडना चाहिये । क्योंकि शीतल माद्दा विशेष गाढा होगा, इस कारणसे विलम्बसे निकलेगा ऐसे मौकेपर माद्देके मुलायम करने व निकालनेके लिये विशेष समय लगता है ।

नेत्ररक्षाकी विधि ।

उष्णता तप्त जलमें प्रवेश धूपमें मार्ग चलकर शीतल जलमें प्रवेश व स्नान, दूरस्थ वस्तु दृष्टि लगाकर देखना, स्वप्न विपर्य्ययसे अत्यन्त रुदन करनेसे, शोक व क्रोध करनेसे, नेत्रपर अभिघात लगनेसे, शिर्का, शराब, कांजी, खटाई, कुलथी, राई, मिर्चादि तीक्ष्ण पदार्थोंके सेवनसे, मल मूत्रादिके वेगको रोकनेसे नेत्रोंमें पसीना जानेसे, धुआँ, धूल, जानेसे, वमनके रुकनेसे, आंशुओंके रुकनेसे, भाफके लगनेसे, अति सूक्ष्म पदार्थोंके देखनेसे, विशेष हवा लगनेसे व गर्म हवा (लू) के लगनेसे, अति शीतल पवनके लगनेसे, अति चमकीली वस्तुओंको देखनेसे जैसे कि बर्फका पर्वत चित्त लेटकर सोनेसे मादक द्रव्योंके सेवनसे, गारिष्ट अति भारी आहारोंके करनेसे अर्थात् जो वस्तु आहार की हुई अच्छे प्रकारसे न पचे । और जो वस्तु दिमागकी तर्फ भाफके परमाणु उठानेवाली होय, तेज चीजोंकी झरफ लगनेसे तथा उनके अत्यन्त सेवन करनेसे जैसे गन्दना लहसन प्याज इत्यादि अन्य ऐसे ही पदार्थोंके सेवन करनेसे अजीर्ण होनेसे विशेष स्नान करनेसे विशेप फस्द खोलना अथवा

पछने लगाना विशेष सोना विशेष जागरण करना टकटकी लगाकर देखना नमक मिर्च अधिक खाना, अति स्त्री संगम व स्त्रीको पुरुष संगम, दूषित व गाढी शराब पीना तथा अन्य वस्तु जो आमाशयके मुखको कष्ट पहुँचाती हैं ये सब विपरीत आहार विहार नेत्रकी दृष्टिकी तेजीको अधिक हानि पहुँचाते हैं । इसी प्रकार पहाडी तुलसी, सोया, पकाहुआ जैतून ये भी नेत्रोंको लाभदायक नहीं हैं । बारीक वस्तु व छोटे २ नकशोंका देखना अति बारीक अक्षरोंका पढना यह भी नेत्रोंके लिये हानिकारक है । जिन २ चीजोंके उपयोगोंको ऊपर निषेध किया है वे यदि औषध प्रयोगमें किसी व्याधिके कारण पर ली गई होयँ तो कुछ हानि नहीं समझी जाती, परन्तु अति सेवन व महवरा डालकर ली जाय तो हानि पहुँचानेवाली होती है । यदि नेत्रोंकी रक्षा करना चाहे तो उपरोक्त विपरीत आहार विहारोंसे वचता रहे । नेत्रोंको लाभ पहुंचानेवाली ये वस्तु हैं कि मीठे ठंढे स्वच्छ जिसमें कीडे मकोडे न होयँ ऐसे जलमें डुबकी लेकर नेत्र खोल देवे और सुर्मा शुद्ध कियाहुआ शुद्ध तूतिया, खपरिया, भीमसेनी कापूर, सौंफ दोनामरुआ इनके पानीमें घिसकर लगानेसे नेत्रकी दृष्टि स्वच्छ और तेज होती है । नेत्रको बल पहुंचता है और अनारकी ठंढी दवा सौंफका पानी लगाना भी लाभदायक है । आयुर्वेदीय प्रक्रियामें प्रायः सम्पूर्ण नेत्ररोग अभिष्यन्दसे होते हैं, इसलिये अभिष्यन्दके उत्पन्न होते ही शीघ्र चिकित्सा करना आरम्भ करदेना चाहिये ।

अभिष्यन्दके लक्षण ।

निस्तोदनं स्तम्भनरोमहर्षसङ्घर्षपारुष्यशिरोऽभितापाः । विशुष्कभावाः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ दाहप्रपाकौशिशिराभिनन्दा धूमायनं वास्फसमुश्रयश्च । उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति । उष्णाभिनन्दा गुरुताक्षिशोफः कण्डूपदेहौ सिततातिशैत्यम् । स्रावो मुहुः पिच्छल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च राज्यः समन्तादति लोहिताश्च । पित्तस्य लिङ्गानि च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ वृद्धैरेतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम् । तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवेदनाः ॥ उत्पाट्यत इवात्यर्थं नेत्रं निर्मथ्यते तथा । शिरसोऽर्द्धन्तु तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः ॥ नेत्रमुत्पाट्यत इव मथ्यतेऽरणिवच्च यत् । सङ्घर्षतोदनिर्भेद-

मांससंरब्धमाविलम् । कुञ्चनास्फोटनाध्मानवेपथुव्यथनैर्युतम् । शिरसोर्द्धञ्च येन स्यादधिमन्थः समारुतात् ॥ रक्त राजिजितं स्राव वह्निनेवावदह्यते । यकृत्पिण्डोपमंदाहि क्षारेणाक्तामिव क्षतम् ॥ प्रपक्कोच्छूनवर्णान्तं सस्वेदं पीतदर्शनम् । मूर्च्छाशिरोदाहयुतं पित्तेनाक्ष्यधिमन्थितम् ॥ शोफवन्नातिसंरब्धं स्रावकण्डूसमान्वितम् । शैत्यगौरवपैच्छिल्य दूषिकाहर्षणान्वितम् । रूपं पश्यति दुःखेन पांशुपूर्णमिवाविलम् । नासाध्मानशिरोदुःखयुतं श्लेष्माधिमन्थितम् ॥ बन्धुजीवप्रतीकाशं ताम्यति स्पर्शनाक्षमम् । रक्तास्रावं सनिस्तोदं पश्यत्यग्निनिभा दिशः । रक्तमग्नारिष्टवच्च कृष्णभागश्च लक्ष्यते । यद्दीप्तं रक्तपर्य्यन्तं तद्रक्ते नाभिमन्थितम् ॥ हन्याद्दृष्टिं सप्तरात्रात्कफोत्थोऽधीमन्थोऽसृक्सम्भवः पञ्चरात्रात् । षड्रात्राद्वा मारुतोत्थो निहन्यान्मिथ्याचारात्पैत्तिकः सद्य एव । कण्डूपदेहाश्रुयुतः पक्कोडुम्बर सन्निभः । दाहसंहर्षताम्रत्वशोफनिस्तोदगौरवैः । जुष्टो मुहुः स्रवेद्वास्रमुष्णशीताम्बुपिच्छिलम् । संरम्भो पच्यते पश्च नेत्रपाकः स शोफजः ॥ शोफहीनानि लिङ्गानि नेत्रपाके त्वशोफजे ॥ अन्तः शिराणां श्वसनः स्थितो दृष्टिं प्रतिक्षिपन् । हताभिमन्थं जनयेत्तमसाध्यं विदुर्बुधाः । पक्ष्मद्वयाक्षिभ्रुवमाश्रितस्तु यत्रानिलः सञ्चरति प्रदुष्टः । पर्य्यायशश्चापि रुजः करोति तं वातपर्य्यायमुदाहरन्ति ॥ यत्कूणितं दारुणरुक्षवर्त्म विलोकने वाविलदर्शनं यत् । सुदारुणं यत् प्रतिबोधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि ॥ यस्यावटूकर्णशिरोहनुस्थो मन्यागतो वाप्यनिलोऽन्यतो वा । कुर्य्याद्रुजोऽतिभ्रुवि लोचने वा तमन्यतो वातमुदाहरन्ति ॥ अम्लेव भुक्तेन विदाहिना वा सञ्छाद्यते सर्वत एव नेत्रम् । शोफान्वितं लोहितकं सनीलैरेतादृगम्लाध्युषितं वदन्ति ॥ अवेदना वापि सवेदना वा यस्याक्षिराज्यो हि भवन्ति ताम्राः । मुहुर्विरज्यन्ति च ताः सम-

न्ताद् व्याधिः शिरोत्पात इति प्रदिष्टः ॥ महान् शिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रोगस्तु शिराप्रहर्षः । ताम्राच्छमस्रं स्रवति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुञ्च ॥

अर्थ–वाताभिष्यन्दके लक्षण–वाताभिष्यन्दमें सुई चुभानेकीसी पीडा, स्तब्धता, रोमाञ्च होना, सङ्घर्ष (कडका) मारना, कर्कशता, सिरमें वेदना, विशुष्कभाव और शीतल आंशु ये होते हैं, यह नेत्रवेदना साध्य होती है । (पित्ताभिष्यन्दके लक्षण) दाह, पाक, शीतल पदार्थोंसे आनन्द होना, धूंआसा घुमडना, आँसुओंका विशेष स्राव और आसुओंमें अति ऊष्णता, नेत्रोंका पीला हो जाना ये सब लक्षण पित्ताभिष्यन्दके हैं । (कफाभिष्यन्दके लक्षण) ऊष्ण पदार्थोंसे आनन्द होना, भारीपन, नेत्रोंमें सूजन, खुजली, उपदेह, श्वेतता, अत्यन्त शीतलता, अत्यन्त गिलगिला स्राव ये सब कफके लक्षण हैं । (रक्ताभिष्यन्दके लक्षण) ताम्रवर्ण, आँसुओंका स्राव, लाल नेत्र, चारों तर्फ अत्यन्त लोहित वर्णकी धारोंका पडना तथा जो लक्षण पित्ताभिष्यन्दमें कथन किये हैं उनका होना ये सब रक्ताभिष्यन्दके लक्षण हैं । यदि इन अभिष्यन्द रोगोंकी चिकित्सा न की जावे तो ये बढकर अत्यन्त तीव्रवेदनासे युक्त इतने ही प्रकारके अधिमन्थरोगोंको उत्पन्न कर देते हैं ।

अभिमन्थ रोगका सामान्य लक्षण ।

नेत्रोंमें उपडनेकीसी तथा मथनेकीसी पीडा होती है और आधा शिर फटासा मालूम होता है तथा वातादि दोषोंकी पृथक् २ वेदना होने लगती है, ये अधिमन्थरोगके सामान्य लक्षण हैं । (वाताधिन्थमका लक्षण) नेत्रोंमें उपडनेकीसी पीडा होय अथवा अरनीके समान मथे जानेकीसी पीडा होय कडका (कंकडसा चुभना) सुईसी चुभना, शस्त्रसे चीरनेकीसी पीडा होय मांसका एकत्र होजाना, मलयुक्त, कुञ्चन, आस्फोटन, आध्मान, वेपथु, व्यथन, आधे शिरमें पीडा होना ये सब लक्षण वाताधिमन्थके हैं । (पित्ताधिमन्थके लक्षण) जिसमें लाल २ डोरेसे पडजावें स्राव होने लगे अग्निके समान दाह होय, यकृत्पिण्डके समान दाह अथवा क्षारसे जलनेके समान घावसा होजाय, पक्व सूजनसे युक्त स्वेदसे युक्त और पीला २ दीखने लगे मूर्च्छा और शिरमें दाह होय इसको पित्ताधिमन्थ कहते हैं । (कफाधिमन्थके लक्षण) जिसमें सूजन होय अत्यन्त संरब्धता न होय स्राव और खुजलीसे युक्त होय शीतलता भारीपन गिलगिलापन, गीड और हर्षसे युक्त होय और कोई वस्तु न दीख सके धूलसे भरा हुवा और मैलसे युक्त होय तथा नासाध्मान और शिरोदुःखसे युक्त होय उसको कफाधिमन्थ कहते हैं । (रक्ताधिमन्थके लक्षण) जो दुपहारियाके फूलके समान होय और

नेत्र तिरमिराने लगैं हाथका स्पर्श नेत्रको शहन न होय रक्त झिरने लगे सूई चुभानेकीसी पीडा होय अग्निके समान चारों तर्फ दीखे काली पुतली रीठेके समान लाल चमके तथा रुधिरसमान चमकने लग इसको रक्ताधिमन्थ कहते हैं। अधिमन्थ रोगसे दृष्टि नाशकी अवधि कफाधिमन्थसे दृष्टिका नाश सात दिवसमें और रक्ताधिमन्थसे पांच दिवसमें वाताधिमन्थसे छः दिवसमें पित्ताधिमन्थसे तत्कालही दृष्टिका नाश हो जाता है। अधिमन्थ रोग उत्पन्न होत ही मनुष्योंको उचित है कि मिथ्याहार विहार त्याग युक्त आहार विहार करके दृष्टिकी रक्षा करे। (शोफान्वितनेत्रपाकके लक्षण) खुजली उपदेह और आंसुओंसे युक्त पकेहुए गूलरके समान दाह संहर्ष तांबेकासा रंग सूजन तोद भारीपन तथा गर्म शीतल और गिलगिला स्राव होय तथा सूजन अति अधिक होय ये कफान्वित नेत्रपाकके लक्षण हैं। (सशोफनेत्र पाकके लक्षण) शोफसहितनेत्र पाक शोफरहित नेत्रपाकमें भी ऊपर कथन किये हुएके समान ही लक्षण होते हैं। (हताधिमन्थके लक्षण) वायु शिराहुओंके बीचमें स्थित होकर दृष्टिको निकालता हुआ हताधिमन्थ रोगको करता , यह रोग असाध्य होता है। (वातविपर्य्यय रोगका लक्षण) वायु दूषित होकर कभी नेत्रके दोना पलकोंमें कभी नेत्रमें और कभी भृकुटीमें विचरता हुआ नेत्रोंमें वेदना करता है इसको वात विपर्य्यय कहते हैं।

शुष्काक्षि पाकका लक्षण।

नेत्रोंको बन्द करनेमें कठिनता प्रतीत हो कोये रूखे पड गये हों तथा देखनेके समय सब वस्तु मलीन दीखे तथा नेत्राके खोलनेमें भी अत्यन्त कठिनता प्रतीत होय इसको शुष्काक्षि पाक कहते हैं। (अन्यतो वातके लक्षण) जिसके अवटुस्थान (ग्रीवाके पिछाडीका भाग) कान शिर ठोडी अथवा मन्यामें स्थित अथवा पीठमें स्थित वायु नेत्र और भृकुटियोंमें पीडा करे, इसको अन्यतोवात कहते हैं कि अन्य स्थानमें स्थित होकर नेत्रोंमें पीडा करे। (अम्लाध्युषितके लक्षण) खट्टे तथा विदाही आहारके भोजनस अर्थात् अत्यन्त सेवन करनेसे नेत्र चारों ओर सूजनसे घिर जाता है, इसमें सूजनके अतिरिक्त रक्तता व नीलापन भी होता है इसको अम्लाध्युषित कहते हैं। (शिरोत्पात नेत्र रोगके लक्षण) जिसके नेत्रमें वेदनासे युक्त अथवा वेदनासे रहित तांबेकेस रंगकी धारियां पड जाती हैं और बारम्बार वे धारियाँ विरुद्ध वर्णवाली हो जाती हैं उस रोगको शिरोत्पात, कहते हैं। (शिराहर्ष नेत्र रोगके लक्षण) याद शिरोत्पातकी चिकित्सा न की जावे तो वह रोग बढकर सिराहर्ष रोगको उत्पन्न कर देता है, इस रोगमें तांबेकेसे रंगका स्वच्छ गाढा स्राव होता है और नेत्रोंसे कुछ भी नहीं दीखता।

अभिष्यन्द व अधिमन्थकी चिकित्सा ।

पुराणसर्पिषा स्निग्धौ स्यन्दाधीमन्थपीडितौ । स्वेदयित्वा यथान्यायं शिरामोक्षेण योजयेत् ॥ सम्पादयेद्वस्तिभिश्च सम्यक् स्नेहविरेचितौ । तर्पणैः पुटपाकैश्च धूमैराश्चोतनैस्तथा ॥ नस्यस्नेहपरीषेकैः शिरोबस्तिभिरेव च । वातघ्नानूपजलजमांसाम्लक्काथसेचनैः ॥ स्नेहैश्चतुर्भिरुष्णैश्च तत्पीताम्बरधारणैः । पयोभिर्वेसवारैश्च साल्वणैः पायसैस्तथा ॥ भिषक् सम्पादयेदेतानुपनाहैश्च पूजितैः । तथा चोपरि भुक्तस्य सर्पिः पानं प्रशस्यते ॥ त्रिफला क्काथसंसिद्धं केवलं जीर्णमेव वा । सिद्धं वातहरैः क्षीरं प्रथमेन गणेन वा ॥ स्नेहास्तैलाद्विना सिद्धा वातघ्नैस्तर्पणे हिताः । स्नैहिकः पुटपाकश्च धूमो नस्यञ्च तद्विधम् । नस्यादिषुस्थिरा क्षीरमधुरैस्तैलमिष्यते । एरण्डपल्लवे मूले त्वचि वाजं पयःश्रुतम् । कण्टकार्य्याश्च मूलेषु सुखोष्णं सेचने हितम् ॥

अर्थ–जो रोगी अभिष्यन्द और अधिमन्थ रोगोंसे पीडित हैं उनको एक वर्षका रखाहुआ पुरातन घृतसे नेत्रोंपर स्नेहन करके (चुपडके) स्वेदन करावे, फिर शिरा छेदन करके रक्तमोक्षण (विधिपूर्वक फस्द खुलवा देवे) और उत्तम रीतिसे स्नेहन विरेचन होनेपर वस्तिकर्म करे । तर्पण, पुटपाक, धूम, आश्चोतन, नस्यकर्म्म, स्नेहनकर्म, परिषेक, शिरोवस्ती ये सब कर्म करे । वातनाशक व अनूपदेशमें होनेवाले जलके जीवोंके मांस और अम्ल कषायोंसे सेचन करे । चार प्रकारके गर्म स्नेहोंसे सेचन कर पीताम्बर धारण करावे । दूध वेसवार साल्वण खीर इत्यादि श्रेष्ठ उपनाहोंका प्रयोग करे, भोजनके पश्चात् घृत पान कराना हित है । अथवा दुग्धको त्रिफलाके क्काथमें सिद्ध कर लेवे अथवा एकला ही पका लेवे अथवा वातनाशक औषधियोंके क्काथमें पकालेवे अथवा प्रथम गणकी औषधियोंमें पका सिद्ध कियेहुए दुग्धको पान करावे । तैलको छोंडकर अन्य स्नेह जो वातनाशक औषधियोंसे सिद्ध किये जाते हैं वे सब तर्पणमें हित हैं । स्नैहिक पुटपाक धूम और नस्य भी हित हैं, नस्यादिमें शालपर्णी दूध और मधुर द्रव्योंमें सिद्ध किया हुआ तैल हित है । अरंडीके कोमल पत्र, जडकी छालमें सिद्ध किया हुआ बकरीका दुग्ध हित है । कटेलीकी जडमें सिद्ध किया हुआ गर्म २ दूध सेचनमें हित है ।

आश्चोतन कर्मके औषध।

सैन्धवोदीच्ययष्ट्याह्वपिप्पलीभिः शृतं पयः। हितमर्द्धोदकं सेके तथाश्चोतनमेव च। ह्रीवेरचकमञ्जिष्ठोडुम्बरत्वक्षु साधितम्। साम्भश्छागं पयो वापि शूलाश्च्योतनमुत्तमम्॥ मधुकं रंजनीं पथ्यां देवदारु च पेषयेत्। आजेन पयसा श्रेष्ठमभिष्यन्दे तदंजनम्। गैरिकं सैन्धवं कृष्णां नागरं च यथोत्तरम्। द्विगुणं पिष्ठमद्भिस्तु गुटिकाञ्जनमिष्यते।

अर्थ—सेंधा लवण, नागरमोथा, मुलहटी, पीपल इनके साथ अर्द्ध भाग जल मिलायाहुआ दुग्ध पकाया जाय यह दुग्ध सेंक तथा आश्चोतन वर्गमें हित है। नेत्रवाला, तगर, मजीठ, गूलर इनकी छालमें चतुर्गुणा जल डालकर सिद्ध कियाहुआ बकरीका दूध शूलाश्चोतन कर्ममें हित है। मुलहटी, हल्दी, हरड, देवदारु इनको समान भाग लेकर बकरीके दूधके साथ ऐसा बारीक पीसे कि काजलके समान हो जाय यह अञ्जन अभिष्यन्दमें हितकारी है। सोनागेरू इससे दूना सेंधा लवण, इससे दुगुणी पीपल (पीपलके बीज) इससे दुगुणी सोंठ इन सबको साफ जलके साथ बारीक पीसकर अंजनगुटिका बना स्त्रीके दुग्ध व बकरीके दुग्धमें घिसकर विधिपूर्वक इस स्नेहाञ्जनका सेवन करना अभिष्यन्दमें हितकारी है।(ताम्रपात्रस्थितं मांसं सर्पिः सैन्धवसंयुतम्) तांबेके पात्रमें रखा हुआ घृत सेंधा नमक और मांससे संयुक्त स्नेहाञ्जन कहते हैं।

अन्यतोवात और वातविपर्य्ययकी चिकित्सा।

रोगो यश्चान्यतो वातो यश्च मारुतपर्य्ययः। अनेनैव विधानेन भिषक्तावपि साधयेत्। पूर्वभक्तं हितं सर्पिः क्षीरं वाप्यथ भोजने॥ वृक्षादन्यां कपित्थे च पञ्चमूले महत्यपि। सक्षीरं कर्कटरसे सिद्धं चात्र घृतं पिबेत्। सिद्धं वाहितमत्राहुः पत्तूरार्त्तगलाग्निकैः। सक्षीरं मेषशृङ्ग्या वा सर्पिर्वीरतरेण वा॥

अर्थ—अन्यतोवात, वातविपर्य्यय रोगोंमें इस प्रकार चिकित्सा करना उचित्त है। भोजनसे घृत सेवन अथवा भोजनके साथमें दुग्ध सेवन हित है। (घृतकी विधि) बंदाल, कैथ, बृहत् पञ्चमूलके ५ औषध, दुग्ध सहित कर्कट इसमें सिद्ध कियाहुआ घृत पान करे। अथवा सिरवाली, कोरटा, अजमोद इनमें घृतको सिद्ध कर लेवे। अथवा मेढाशृङ्गीके क्वाथ और दुधग्में घृतको सिद्ध करे अथवा वीरतरुके क्वाथमें घृतको सिद्ध करलेवे।

शुष्काक्षिपाककी चिकित्सा।

सैंधवं दारु शुण्ठी च मातुलुङ्गरसे घृतम्। स्तन्योदकाभ्यां कर्त्तव्यं शुष्कपाके तदञ्जनम्॥ पूजितं सर्पिषश्चात्र पानमक्ष्णोश्च तर्पणम्॥ घृतेन जीवनीयेन नस्यं तैलेन चाणुना॥ परिषेके हितश्चात्र पयः शीतं ससैन्धवम्। रजनीदारुसिद्धं वा सैन्धवेन समायुतम्॥ सर्पिर्युतं स्तन्यघृष्टमञ्जनञ्च महौषधम्। वसा वानूपजलजा सैन्धवेन समायुता। नागरोन्मिश्रिता किञ्चिच्छुष्कपाके तदञ्जनम्॥

अर्थ-सेंधा लवण, देवदारु, सोंठ, बिजौरे नींबूका रस, घृत, दुग्ध इनको जलके साथ बारीक पीसकर शुष्काक्षि पाकमें अञ्जन करे, इस व्याधिमें घृतपान तथा नेत्रोंको तर्पण करना भी हितकारी है। जीवनीय घृत और अणु तैलसे नस्य देना भी हित है, (अणु तैलका प्रयोग पूर्व इस ग्रन्थमें आ चुका है) सेंधा नमक डाला हुआ शीतल दुग्धका परिपेक हित है। हल्दी, देवदारु, सेंधा नमक, घृत, दुग्ध, सोंठ इनको घिसकर अंजन लगावे। अथवा अनूपदेशमें होनेवाले जलके जीवोंकी चर्वी, सेंधा नमक, सोंठ मिलाकर नेत्रोंमें अंजन करे। और वातज तिमिर रोग काच रोग तथा अन्य वातजनित रोग जिनसे दृष्टि नष्ट होती है इसी वाताभिष्यन्द रोगके कर्मोंके अनुसार सबकी चिकित्सा करे।

पित्ताभिष्यन्द रोगकी चिकित्सा।

पित्तस्यन्दे पैत्तिके चाधिमन्थे रक्तास्रावः स्रंसनञ्चापि कार्य्यम्। अक्ष्णोः सेकालेपनस्याञ्जनानि पैत्ते च स्याद्विसर्प्ये विधानम्॥ गुन्द्राशालिं शैवलं शैलभेदं दार्वीमेलामुत्पलं रोध्रमभ्रम्। पद्मात्पत्रं शर्करा दर्भमिक्षुं तालं रोध्रं वेतसं पद्मकं च॥ द्राक्षां क्षौद्रं चन्दनं यष्टिकाह्वं योषित्क्षीरं रात्र्यनन्ते च पिष्ट्वा। सर्पिः सिद्धं तर्प्पणे सेक नस्ये शस्ते क्षीरं सिद्धमेतेषु वाजम्॥ योज्यो वर्गोव्यस्त एषोऽन्यथा वा सम्यङ्नस्येष्टार्द्धसंख्यापि नित्यम्। क्रियाः सर्व्वाः पित्तहार्य्यैः प्रशस्तास्त्र्यहाचोर्द्ध्वं क्षीरसर्पिश्च नस्यम्॥ पालाशं स्याच्छोणितं चाञ्जनार्थे शल्लक्या वा शर्कराक्षौद्रयुक्तम्। रसक्रियां शर्कराक्षौद्रयुक्तां पालिन्द्यां वा मधुके वापि कुर्य्यात्॥ मुस्ताफेनः सागरस्योत्पलञ्च कृमिघ्नैलाधात्रिबीजाद्रसश्च। तालीशैलागैरिकोशीरशंखैरेवं यञ्ज्यादञ्जनं स्तन्यपिष्टैः॥

अर्थ—पित्तज अभिष्यन्द और पित्तज अधिमन्थमें फस्द खोल-कर रक्त मोक्षण करना और विरेचन देना दोनों कर्म करने चाहिये। तथा नेत्रोंपर स्निग्ध सेंक आलेपन और अंजन भी हित है। एवं पित्तज विसर्पमें जो क्रिया कथन की गई हैं वेभी करना उचित है (इस ग्रन्थके विसर्प रोगके अधिकारमें देखो) तथा पित्ताभिष्यन्दको यौगिक द्रव्य गुन्द्रा, शालि, शैवल, पाषाण-भेद, हल्दी, इलायची, उत्पल, लोध, नागरमोथा, कमलपत्र, शर्करा, कुशा, इक्षु, ताड, सफेद लोध, वेत, पद्माख, दाख, शहत, चन्दन, मुलहटी, स्त्रीका दुग्ध, दारु हल्दी, अनन्ता इन सबको समान भाग लेकर पीस लेवे और इनमें दूधको सिद्ध करलेवे यह सिद्ध कियाहुआ दुग्ध तर्पण सेक नस्य सबमें हितकारी है। अथवा इसमें बकरीका दुग्ध सिद्ध करके काममें लावे यह वर्ग सम्पूर्ण अथवा जितना मिलसके उपयोगमें लावे। यह प्रतिमर्ष, अवपीडन, नस्य, शिरोविरेचन इन चार प्रकारके नस्य कर्ममें काम आता है। तीन दिवसके उपरान्त सम्पूर्ण पित्तको हरनेवाली क्रिया करे तथा क्षीर और घृत नस्य कर्ममें देवे। टेसूका रस अथवा खांड मिश्री, शहत मिला हुआ शल्लकीका रस अंजनमें लगावे, खांड और शहत मिलीहुई निशोतसे अथवा मुलहटीके सूक्ष्म चूर्णसे रसक्रिया करे। अथवा इनके क्काथमें खांड और शहत मिलाकर रसक्रिया करे (किसी द्रव्यके क्काथ, अथवा कल्कसे रस निचोडकर अथवा चूर्णकी पोटली बनाकर उसका रस दुग्ध शहत व घृतमें संयुक्त करके नेत्रोंमें लगानेको रसक्रिया कहते हैं) नागरमोथा, समुद्रफेन, कमल, वायविडंग, छोटी इलायचीके बीज, आंवला, बिजौरा इन सब औषधियोंको बिजौराके रसमें मिलाकर रसक्रिया करे। तालीसपत्र, इलायची, सोनागेरू, उसीर, शंख इन सबका सूक्ष्म सुर्मा बनाकर दुग्धमें पीसकर रसक्रिया (अंजन) नेत्रोंमें लगावे।

चूर्णाञ्जन।

चूर्णं कुर्यादञ्जनार्थे रसो वा स्तन्योपेतो धातकीस्यन्दनाभ्याम्। योषित्स्तन्यं शातकुम्भं विघृष्टं क्षौद्रोपेतं कैंशुकञ्चापि पुष्पम्॥ रोध्रं द्राक्षां शर्करामुत्पलञ्च नार्य्याः क्षीरे यष्टिकाह्वं वचाञ्च। पिष्ट्वा क्षीरे वर्णकस्य त्वचं वा तोयोन्मिश्रे चन्दनोडुम्बरे च॥

अर्थ—अंजनके लिये सूक्ष्म चूर्ण बनावे अथवा औषधका रस निकालकर रसक्रिया करे। आंवला और स्यन्दन इनको स्त्रीके दुग्धमे पीसकर नेत्रोंमें लगावे अथवा केसूके फूलोंका रस स्त्रीका दुग्ध शहत इन सबको घिसकर सुवर्णकी सलाईसे नेत्रोंमें लगावे। सफेद लोध, दाख, मिश्री, कमल, मुलहटी, वच इन सबको स्त्रीके दुग्धमें बारीक

पिसकर नेत्रोंमें लगावे अथवा वरुण वृक्षकी छालको स्त्रीके दुग्धमें पीसकर नेत्रोंमें लगावे अथवा नागरमोथा चन्दन गूलरकी छाल इनको स्त्रीके दुग्धमें पीसकर लगावे ।

आश्चोतनांजन कर्म ।

कार्य्यः फेनः सागरस्यांजनार्थे नारीस्तन्ये माक्षिके चापि घृष्टः । योषितुस्तन्ये स्थापितं यष्टिकाह्वं रोध्रं द्राक्षां शर्करामुत्पलञ्च ॥ क्षौमावद्धं पथ्यमाश्चोतने वा सर्पिर्घृष्टं यष्टिकाह्वं सरोध्रम् । तोयोन्मिश्राः काश्मरीधात्रिपथ्यास्तद्वच्चाहुः कट्फलं चाम्बुनैव ॥

अर्थ—समुद्रफेनको स्त्रीके दुग्ध अथवा शहतमें घिसकर नेत्रोंमें लगाना चाहिये । मुलहटी, लोध, दाख, खांड, कमल इनको स्त्रीके दूधके साथ पीसकर साफ वस्त्रमें पोटली बांध आश्चोतन कर्म करे अथवा मुलहटी, लोध, नागरमोथा खंभारी, आंवला, हरड इन सबको घृतमें पीसकर आश्चोतन कर्म करे, अथवा कायफल, नागरमोथा, इनसे आश्चोतन कम करे, जिन औषधियोंका विधान आया होय उनके चूर्ण व कल्कको शहत घृत दुग्धमें मिलाकर नेत्रोंके चारों ओर फेरे और दो ४ विन्दु नेत्रोंके अन्दर भी टपकावे इसको आश्चोतन क्रिया कहते हैं ।

अम्लाध्युषित और शुक्तिकी चिकित्सा ।

एषोऽम्लाख्येऽनुक्रमश्चापि शुक्तौ कार्य्यः सर्वः स्याच्छिरामोक्षवर्ज्यः । सर्पिः पेयं त्रैफलं तैल्वकं वा पेयं वा स्यात्केवलं यत्पुराणम् ॥ दोषोऽधस्ताच्छुक्तिकायामपास्ते शीतैर्द्रव्यैरंजनं कार्य्यमाशु । वैदूर्य्यं यत्स्फाटिकं वैद्रुमं च मौक्तं शांख्यं राजतं शातकुम्भम् । चूर्णं सूक्ष्मं शर्कराक्षौद्रयुक्तं शुक्तिं हन्यादंजनं चैतदाशु ॥

अर्थ—अम्लाध्युपित रोग और शुक्तमें ये सब योग करने चाहिये, परन्तु फस्द खोलकर रक्त मोक्षण न करे । अम्लाध्युषितमें त्रिफला अथवा लोधमें पकायाहुआ घृत पान करावे, अथवा केवल पुराना घृत ही पान कियाहुआ हित है । शुक्तिका रोगमें दोषोंको नीचेके मार्गसे निकाले और शीघ्रही शीतल द्रव्योंका अंजन करे, वैदूर्य्यमणि, स्फटिक, मूंगा, मोती, शंख, चांदी, सोना इन सबका अति सूक्ष्म चूर्ण मिश्री और शहत मिलाकर नेत्रोंमें लगावे तो शुक्तिका रोग शीघ्रही नष्ट हो जाता है ।

धूमदर्शी नेत्ररोगकी चिकित्सा।

(जिस नेत्ररोगसे सर्व पदार्थ धूम्रवर्णके दीखें उसको धूम्रदर्शी नेत्ररोग कहते हैं ।)

युञ्ज्यात् सर्पिर्धूम्रदर्शी नरस्तु शेषं कुर्याद्रक्तपित्ते विधानम् ।
यच्चैवान्यत् पित्तहृच्चापि सर्वं यद्वीसर्पे पैत्तिके वै विधानम् ॥

अर्थ—धूमदर्शी मनुष्यको उचित है कि उपरोक्त कथन की हुई औषधियोंमें घृत मिलाकर नेत्रोंमें लगावे, शेष चिकित्सा प्रक्रिया रक्त पित्तकी शमन करता करनी चाहिये । इसी प्रकार पित्तनाशक सम्पूर्ण चिकित्सा तथा पित्तज विसर्पमें जो उपचार कथन किये गये हैं वे सम्पूर्ण करने चाहिये ।

श्लेष्माधिमन्थ श्लेष्माभिष्यन्दकी चिकित्सा ।

स्यन्दाधिमन्थौ कफजौ प्रवृद्धौ जयेच्छिराणामथ मोक्षणेन । स्वेदावपीडांजनधूमसेकप्रलेपयोगैः कवलग्रहैश्च । रूक्षैस्तथा श्च्योतनसंविधानैस्तथैव रूक्षैः पुटपाकयोगैः । त्र्यहात्त्र्यहाच्चाप्यपतर्पणान्ते प्रातस्तयोस्तिक्तघृतं प्रशस्तम् ॥ तदन्नपानं च समाचरेद्धि यच्छ्लेष्मणो नैव करोति वृद्धिम् । कुटन्नटास्फोतफणिज्झबिल्वपत्तूरबिल्वर्कर्कपित्थभंगैः ॥ स्वेदं विदध्यादथवानुलेपं बर्हिष्ठ शुण्ठीसुरकाष्ठकुष्ठैः । सिन्धूत्थहिङ्गुत्रिफलामधूकप्रपौण्डरीकाञ्जनतुत्थताम्रैः ॥ पिष्टैर्जलेनांजनवर्त्तयः स्युः पथ्याहरिद्रामधुकाञ्जनैर्वा । त्रीण्यूषणानि त्रिफला हरिद्रा विडङ्गसारश्च समानि च स्युः ॥ बर्हिष्ठकुष्ठामरकाष्ठशंखपाठानलव्योषमनःशिलाश्च ॥ पिष्टाम्बुना वा कुसुमानि जातीकरञ्जशोभांजनजानि युञ्ज्यात् । फलं प्रकीर्य्यादववापिशिग्रोः पुष्पं च तुल्यं बृहतीद्वयस्य ॥ रसांजनं चन्दनसैन्धवं च मनःशिलाले लशुनं च तुल्यम् ॥ पिष्टांजनार्थं कफजेषु धीमान् वर्त्तीर्विदध्यान्नयनामयेषु ।

अर्थ—यादि कफसे उत्पन्न हुए अभिष्यन्द और अधिमन्थ ये दोनों रोग बढ जायँ तो फस्द खोलकर इनको शान्त करे । इसमें स्वेदन, अवपीडन, अंजन, धूम, सेंक, प्रलेप और कवल ग्रह रूक्षण, आश्च्योतन तथा रूक्ष पुटपाकका प्रयोग करे । फिर तीसरे २ दिवसके अन्तरसे अपतर्पण करे, प्रातःकाल तिक्त औषधियोंमें पके हुए घृतका सेवन करे । तथा इसमें ऐसे अन्नपानका सेवन करे जो कफकी वृद्धि न करते हों । तगर,

आस्फोत, फणिज्झ (तीक्ष्णगन्धा) वेल, शिरवाली, पीलू, आक, कैथ, भांगरा इनके क्वाथकी भाफसे स्वेद करावे, अथवा नेत्रवाला, सोंठ, देवदारु, कूट इनका लेप करे । अथवा सेंधा नमक, हींग, त्रिफला, महुआ, पौंडेका रस, अंजन, नीलाथोथा, तांबा इनको जलमें पीस वत्ती बनाकर अंजन करे । अथवा हरड, हल्दी, मुल्हटी, सुरमा इनका अंजन बनाकर लगावे । त्रिकुटा, त्रिफला, हल्दी वायविडंगकी मिंगी इनको समान भाग लेकर अंजन बनाकर लगावे । अथवा नेत्रवाला, कूट, देवदारु, शंख, पाढ चित्रककी छाल, त्रिकटु, शुद्ध मनसिल इनको चमेलीके फूल और करंजुवाके फूल सहँजनेके फूल अथवा इनमेंसे जो ऋतुके अनुसार मिलसकें उनको मिलाकर वारीक पीस लेवे और वत्ती बनाकर अंजन करे । अथवा कण्टक करंजके फल, सहजनेके बीज, दोनों कटेरीके फूल, रसौत, चन्दन, सेंधा नमक, मनसिल, हरताल, लहसनकी पोत इन सबको समान भाग लेकर वत्ती बना नेत्रोंमें फेरे, ये अंजन और वत्ती समस्त कफज रोगोंको निवृत्त करते हैं ।

क्षाराञ्जन फणिज्झकादि योग ।

नीलान् यवान् गव्यपयोऽनुपीतान् शलाकिनः शुष्कतनून् विदह्य । तथार्जकास्फोतकपित्थबिल्वनिर्गुण्डिजातीकुसुमानि चैव ॥ तत्क्षारवत्सैन्धवतुत्थरोचनं पक्वं विदध्यादथ लोहनाड्या । एतद्बलासग्रथितेऽञ्जनस्यादेषोऽनुकल्पस्तु फणिज्झकादौ ॥

अर्थ—नील व जौको श्यामा गौके दुग्धकी भावना देकर सूख जानेपर छिलके सहित जलाकर भस्म करे, इस भस्मको जलमें मिलाकर गर्म कर एक स्वच्छ गाढे वस्त्रकी रैनी वांधकर स्रावित करलेवे, इस छनेहुए क्षार जलमें आजवला, सफेद गोकर्णी, कैथ, निरगुण्डी, चमेलीके फूल इनको परिमित समझ कर डाल देवे और क्षारकी तरह सेंधा नमक, तूतिया, गोरोचन, डालकर पकावे, जब पककर गाढा काजलके समान हो जावे तब घोटकर शीशीमें भर. जस्ता व शीशा अथवा लोहकी सलाईसे नेत्रोंमें लगावे यह फणीज्झकादि (योग) बलासग्रथित रोगमें अति हितकारी है ।

रक्ताभिष्यन्द तथा रक्ताधिमन्थकी चिकित्सा ।

(रक्तजव्याधियोंमें क्रिया निर्देश ।)

मन्थं स्यन्दं शिरोत्पातं शिराहर्षञ्च रक्तजम् । एकैकेन विधानेन चिकित्सेच्चतुरो गदान् ॥ व्याध्यार्त्तांश्चतुरोऽप्येतान्स्निग्धान्कौम्भेन सर्पिषा । रसैरुदारैरथवा शिरामोक्षेण योजयेत् ॥ विरिक्तानां प्रकामञ्च शिरांण्येषां

विशोधयेत् । विरेचनिकसिद्धेन सितायुक्तेन सर्पिषा । ततः प्रदेहाः परिषेचनानि नस्यानि धूमाश्च यथास्वमेव । आश्च्योतनाभ्यञ्जनतर्पणानि स्निग्धाश्च कार्य्याः पुटपाकयोगाः ॥

अर्थ—अधिमन्थ, अभिष्यन्द, शिरोत्पात, शिराहर्ष इन रक्तसे उत्पन्न हुए रोगोंमें एक २ विधानसे चारोंकी चिकित्सा करे, यदि कोई रोगी चारों व्याधियोंसे पीडित होय तो घृतसे अथवा अधिक स्नेहवाले मांसरससे स्निग्ध करके उसकी फस्द खोलकर रक्त मोक्षण करे अथवा (जलौका द्वारा) दूषित रक्तको निकाल देवे । परन्तु शिरारक्त मोक्षणसे प्रथम भले प्रकारसे रेचक देकर शुद्ध कोष्ठ करलेवे, इस कार्य्यके लिये विरेचन औषधियोंके साथमें मिश्री घृत भी डाल देवे ।

विरेचन प्रयोग ।

सोंफ, दाख, रूमीसोंफ, नीलोफर, स्याहतरा, वनफशाकी पत्ती, सूखा हंसराज, उन्नाव, सूखे अंजीर, सनाय प्रत्येक १ तोला इन सबको रात्रिको ८० तोला जलमें भिगो देवे, प्रातःकाल पकावे, जब ४० तोला जल बाकी रहे तब उतारकर मल छानकर ३॥ तोला अमलतासका गूदा इस काढेमें भिगो देवे । जब गूदा फूलकर नर्म हो जावे तब हाथसे मसलकर अमलतासके गूदेके छिलके निकाल पुनः वस्त्रमें छानकर जरा गर्म (निवायासा) करके परिमित मात्रासे घृत और मिश्री मिलाकर रोगीको पिलावे । यह मात्रा युवावस्थाके स्त्री पुरुषोंकी है, बालक और वृद्धको रेचककी आवश्यकता पडे तो उनकी उमरके अनुसार मात्रा चिकित्सक इस क्वाथकी देवे । इसके अनन्तर, प्रदेह, परिषेक, नस्य, धूम, आश्च्योतन आभ्यञ्जन, तर्पण तथा स्निग्ध पुटपाकोंका प्रयोग करे ।

रक्तज व्याधिमें प्रलेप द्रव्य ।

नीलोत्पलोशीरकटङ्कटेरीकालीययष्टीमधुमुस्तरोध्रैः ।
सपद्मकैर्धौतघृतप्रदिग्धैरक्ष्णोः प्रलेपं परितः प्रकुर्य्यात् ॥

अर्थ—नीलोफर, खस, दारुहल्दी, अगर, मुलहटी, नागरमोथा, सफेद लोध, पद्माख इनको जलके साथ बारीक पीसकर धुलाहुआ गौका घृत मिलाकर नेत्रोंपर लेप करे । यदि वेदना अधिक हो तो मृदु स्वेदन कर्म्म हित है और इससे पीडा शान्त न होय तो नेत्रोंके तीनों भागोंपर जलौका (जोंक) लगाकर रक्तमोक्षण करे । घृतकी विशेष मात्रा पीना भी हित है तथा पित्ताभिष्यन्दके शमन करनेवाली विधि करना उत्तम है ।

आश्च्योतन क्रियाकी विधि ।

कसेरुमधुकाभ्यां वा चूर्णमम्बरसंवृतम् ।
न्यस्तमप्स्वान्तरिक्षासु हितमाश्च्योतनम्भवेत् ॥

अर्थ—कसेरू और छिलीहुई मुलहटी इन दोनोंको वारीक पीसकर स्वच्छ कपडेमें रखके पोटली बना लेवे और उसके आंतारिक्ष (मेह अर्थात् वर्षातसे अधवर) लिये हुए जलमें भिगोकर वारम्वार उसको नेत्रोंके तीनों ओर फेरे और उसको दवाकर दो चार विन्दु नेत्रोंमें भी टपकावे ।

रक्ताभिष्यन्दमें अंजन विधान ।

पाटल्यर्जुनश्रीपर्णीधातकीधात्रिबिल्वतः । पुष्पाण्यथ बृहत्योश्च बिम्बी-लोटाच्च तुल्यशः । समंजिष्ठानि मधुना पिष्टानीक्षुरसेन वा । रक्ताभि-ष्यन्दशान्त्यर्थमेतदंजनमिष्यते ॥ चंदनं कुमुदं पत्रं शिलाजतु सकुङ्कु-मम् । अयस्ताम्ररजस्तुत्थं निम्बनिर्यासमंजनम् ॥ त्रपुकांस्यमलं चापि पिष्ट्वा पुष्परसेन तु । विपुलायाः कृता वर्त्यः पूजिताश्चांजने सदा । स्यादंजनं घृतं क्षौद्रं शिरोत्पातस्य भैषजम् । तद्वत्सैन्धवकासीसस्तन्य-घृष्टं च पूजितम् । मधुना शंखनैपालीतुत्थदार्व्यः ससैन्धवाः ॥ रसः शिरीषपुष्पाच्च सुरामरिचमाक्षिकैः । युक्तं तु मधुना वापि गैरिक हितमञ्जनम् ॥

अर्थ—पाढ, अर्जुनवृक्ष, खंभारी, धायके फूल, आंवला, वेल, दोनों कटेरी इन सबके फूल, और विम्बालोटकी छाल, मंजिष्ठ इन सवको समान भाग लेकर ईखके रसमें वारीक पीसकर काजलके समान वना शहत मिलाकर नेत्रोंमें अंजन करे तो रक्ताभिष्यन्द रोग निवृत्त हो जाता है । चन्दन, कमोदनी, तेजपत्र, शिलाजीत, केशर, लोहचूर्ण, ताम्रचूर्ण, तूतिया, नीमका गोंद, रसाञ्जन (साफ रसौत) रांग कांसेका मैल इन सबको समान भाग लेकर शहतके साथ वारीक पीसकर काजलसा बनालेवे, यातो इसकी बत्ती बनावे अथवा पतली गोल किनारीकी टिकिया बना नेत्रोंमें फेरे । अथवा ऐसे ही काजलके समान लगा शिरोत्पात रोगमें सुर्मा, घृत, शहत तीनोंको समान भाग मिलाकर काजलके समान बनाकर अंजन करे । इसी प्रकार सेंधानमक कसीसका फूल इनको स्त्रीके दुग्धमें पीसकर अंजन करे । अथवा शंख मनसिल, तूतिया, दारुहल्दी, सेंधा नमक इनको समान भाग लेकर शहतके साथ

पीसकर काजलसा बना लेवे और नेत्रोंमें अंजन करे । अथवा सिरसके फूलका रस, मदिरा काली मिरच, शहत इनको बारीक पीसकर काजलसा बना नेत्रोंमें अंजन करे । अथवा सोनागेरू और शहतको बारीक पीसकर लगाना हित है ।

सिराहर्षकी चिकित्सा ।

शिराहर्षेऽञ्जनं कुर्य्यात् फाणितं मधुसंयुतम् ।
मधुना तार्क्ष्यजं वापि कासीसं वा ससैन्धवम् ॥

अर्थ—सिराहर्ष रोगमें राव और शहतका अंजन लगावे । अथवा शहत और साफ रसौत मिलाकर लगावे अथवा कसीसका फूला, सेंधा नमक मिलाकर स्त्रीके दुग्ध व जलमें पीसकर लगावे । अथवा अम्लवेतस स्त्रीदुग्ध सेंधानमक इनको मिलाकर लगावे ।

शोफसहित और शोफरहित अभिष्यन्दकी चिकित्सा ।

सशोफश्चाथशोफश्च द्वौ पाकौ यौ प्रकीर्त्तितौ । स्नेहस्वेदोपपन्नस्य तत्र विद्ध्वां शिराभिषक् । सेकाश्च्योतननस्यानि पुटपाकांश्च कारयेत् ॥ सर्वतश्चापि शुद्धस्य कर्तव्यमिदमञ्जनम् । ताम्रपात्रस्थितम्मांसं सर्पिः सैन्धवसंयुतम् ॥ मैरेयं वापि दध्येवं दध्युत्तरकमेव च । घृतं कांस्यमलोपेतं स्तन्यं वापि ससैन्धवम् । मधूकसारं मधुना तुल्यांशं गैरिकेन वा । सर्पिः सैन्धवताम्राणि योषित्स्तन्ययुतानि च ॥ दाडिमारेवताश्मन्तकोलाम्लैश्च ससैन्धवम् । रसक्रियां वा वितरेत् सम्यक् पाकाजिघांसया । मांससैन्धवसंयुक्तं स्थितं सर्पिषि नागरम् । आश्च्योतनांजनं योज्यमबलाक्षीरसंयुतम् ॥

अर्थ—शोथ सहित और शोथ रहित जो दो नेत्रपाक कथन किये गये हैं, उनमें स्नेहन और स्वेदन करके सिरावेधन करे । इसके अनन्तर सेंक आश्च्योतन नस्य और पुटपाक भी करे । (उपरोक्त रोगमें अञ्जनविधान) अन्तः परिमार्जन और बहिः परिमार्जनसे नेत्रोंको शुद्ध करके नीचे लिखाहुआ अंजन लगावे । ताम्रपात्रमें मांसको रखदेवे और मांसपर घृत और थोडा सेंधानमक डाल एक दिन रात रखा रहने देवे पीछे इसको अंगुलीसे मथकर नेत्रोंमें लगावे यह अंजन नेत्रोंको विशेष हितकारी है । अथवा मैरेय (यह मद्यका) भेद है दही तथा दहीकी मलाई इनको ताम्रके बर्त्तनमें रख थोडा घृत तथा सेंधा नमक मिला एक दिन रात रखा रहने देवे । फिर मथकर नेत्रोंमें अंजन करे यह भी नेत्रोंको अतिलाभदायक है । अथवा घृत, कांसेका मैल, स्त्रीका दुग्ध,

सेंधा नमक इनको मिलाकर लगावे । अथवा मुलहटी सत्व, शहत, सोनागेरू इन सबको काजलके समान बनाकर लगावे, अथवा घृत सधा नमक ताम्रचूर्ण, स्त्रीका दुग्ध इनको बराबर भाग लेकर विसकर लगावे । (उपरोक्त रोगपर रसक्रियाका विधान) अनार, अमलतासका गूदा, अश्मन्त, कोलाम्ल, सेंधा नमक इन औषधियोंसे नेत्रपाक निवृत्तिके लिये रसक्रिया करे । (आश्च्योतन) मांस, सेंधा नमक घृतमें भीगी हुई सोंठ इनको स्त्रीके दुग्धमें पीसकर आश्च्योतन करे । अथवा चमेलीके फूल सेंधा नमक अदरखका रस पीपलके बीज वायविडंग इन सबको पीसकर शहत मिलाकर अंजन करे ।

नेत्रचिकित्सामें ऊपर कथन की हुई क्रियाओंका विधान ।

(आश्च्योतन क्रियाका वर्णन ऊपर हो चुका है ।) स्वेदन कर्म औषधियोंका क्वाथ मुख वन्द करके पात्रमें बना रोगीके नेत्र वन्द कराके उसकी भाफ रोगीके नेत्रों-पर देवे, इससे नेत्रोंपर पसीना आता है उसको पोंछलेवे, यह स्वेदन कर्म वन्द मकानमें करना चाहिये और स्वेदन करके शीघ्र हवामें न निकलना चाहिये ।

तर्पणकी विधि तथा काल ।

संशुद्धदेहशिरसो जीर्णान्नस्य शुभे दिने । पूर्वाह्णे चापराह्णे वा कार्य्य-मक्ष्णोश्च तर्पणम् ॥ वातातपरजोहीने वेश्मन्युत्तानशायिनः ॥ आधारौ माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिमण्डलौ । समौ दृढावसम्बाधौ कर्त्तव्यौ नेत्रको-शयोः । पूरयेद् घृतमण्डस्य विलीनस्य सुखोदकैः ॥ आप-क्ष्माग्रात्ततः स्थाप्यं पञ्च तद्वाक्शतानि च । स्वस्थे कफे षट् पित्तेऽष्टौ दश वाते तदुत्तमम् ॥

अर्थ—उत्तम दिवसमें आहारके पाचन होनेपर विरेचन और शिरो विरेचनादिसे शरीरको शुद्ध करके दिनके पूर्वाह्न तथा अपराह्नमें नेत्रोंका तर्पण करना हित है । रोगीको ऐसे घरमें जिसमें वात और आतप और रज प्रवेश न करसके सीधा शयन करा उड़दके चूर्ण (आटे) को जलके साथ मलकर नेत्र गोलकोंके चारों ओर मेंढलसी बना देवे । वह मेंढल नीचे सन्धियोंके समीप तथा वचिमेंसे छिद्र रहित होवे ऐसी दृढ बनावे कि कहींसे टूटने न पावे । और चारों ओरसे उसकी उँचाई समान होवे, उस मंडलमें सुहाता २ गर्म जलमें मलाई डालकर पलकों तक भर नेत्रको पांचसौ मात्राके उच्चारण कालतक सीधा रखे और प्रयोगको भरा रहने देवे । इसके बाद निकाल लेवे विशेष कथन यह है कि पांचसौ मात्राके उच्चारण

कालसे अधिक भी दोषके अनुसार रहने देवे। जैसे कि कफ विकारमें छः सौ, पित्त विकारमें आठसौ, वात विकारमें सहस्र मात्राके उच्चारण कालतक भरी रहने देवे।

सम्यक् तर्पितके लक्षण।

तर्पणे तृप्तिलिङ्गानि नेत्रस्येमानि लक्षयेत्। सुखस्वप्नावबोधत्वं वैशद्यं वर्णपाटवम्। निर्वृत्तिर्व्याधिविध्वंसः क्रियालाघवमेव च।

अर्थ—सम्यक् तर्पणमें तृप्तिके यह लक्षण होते हैं। सुखपूर्वक नींद आना पीडाका न रहना मलका अभाव श्वेतादि वर्णोंका यथार्थ हा जाना सुख होना व्याधिका नष्ट होना नेत्रोंक खोलने और बन्द करनेमें लाघवता ये सब लक्षण होते हैं। इनसे विपरीत लक्षण होय अथवा कोई उपद्रव होय तो सम्यक् तपण न समझना। (तर्पणका निषेध) जिस दिन बादल हो रहे होयँ अत्यन्त गर्मी अथवा शर्दी पडती होय चिन्ता सम्भ्रम हो उपद्रव शान्त न हुआ होय तो नेत्रोंमें तर्पण कर्म वाजत है।

पुटपाकका विधान और निषेध।

पुटपाकस्तथैतेषु नस्यं येषु च गर्हितम्। तर्पणार्हा न ये प्रोक्ताः स्नेहपानाक्षमाश्च ये ॥ ततः प्रशान्तदोषेषु पुटपाकक्षमेषु च। पुटपाकः प्रयोक्तव्यो नेत्रेषु भिषजा भवेत् ॥ स्नेहनो लेखनीयश्च रोपणीयश्च सत्रिधा। हितः स्निग्धोऽतिरूक्षस्य स्निग्धस्यापि च लेखनः। दृष्टिबलाथामतरः पित्तासृग्व्रणवातनुत् ॥

अर्थ—पुटपाक नेत्रकी उन्हीं व्याधियोंमें किया जाता है जिनमें तर्पण करना हित है, जिन व्याधियोंमें नस्यकर्म्म नहीं किया जाता है उन्हींमें पुटपाक वर्जित है। जो चिन्ता और भ्रमवाले तपणके अयाग्य हैं वे दुर्बल और अरुचिवाल जो स्नेहपानके योग्य नहीं है, वेही पुटपाकके याग्य भी नहीं हैं। (पुटपाकका आवस्थिक काल) जब प्रथम दोष शान्त हो जाय और नत्र भी पुटपाकक याग्य हो जायँ तब पुटपाक करना उचित है। (पुटपाकके तीन भेद) पुटपाक तीन प्रकारका होता है, स्नेहन, लेखनीय और रोपणीय। आत रूक्षका स्नेहन पुटपाक करे आति स्निग्धका लेखनीय पुटपाक करे आर दृष्टिको बलवान् करनेके लिये रोपणीय पुटपाक करे यह पित्त रक्त व्रण और वातको नष्ट करता ह।

तीनों पुटपाकोंका पृथक् २ विधान।

स्नेहमांसवसामज्जमेदःस्वाद्वौषधैः कृतः। स्नेहनः पुटपाकस्तु धार्य्यो

द्वे वाक्शते तु सः ॥ जांगलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसम्भृतैः । कृष्णलोहरजस्ताम्रशंखविद्रुमसिन्धुजैः ॥ समुद्रफेनकासीसस्रोतोजदधिमस्तुभिः । लेखनो वाक्शतं तस्य परं धारणमुच्यते ॥ स्तन्यजाङ्गलमध्वाज्यतिक्तद्रव्यविपाचितः । लेखनात्रिगुणो धार्य्यः पुटपाकस्तु रोपणः ॥ वितरेत्तर्पणोक्तन्तु धूमं हित्वा तु रोपणम् । स्नेहस्वेदौ द्वयोः कार्य्यौ कार्यौ नैव च रोपणे ॥ एकाहं वा द्व्यहं वापि त्र्यहं वाप्यवचारणम् । यन्त्राणां तु क्रियाकालाद् द्विगुणं कालमिष्यते ॥ तेजांस्यनिलमाकाशमादर्शम्भास्वराणि च । नेक्षेत तर्पिते नेत्रे पुटपाककृते तथा ॥ मिथ्योपचारादनयोर्यो व्याधिरुपजायते । अञ्जनाश्च्योतनस्वेदैर्य्यथास्वन्तमुपाचरेत् ॥ प्रसन्नवर्णं विशदं वातातपसहं लघु । सुखस्वप्नावबोध्यक्षिपुटपाकगुणान्वितम् ॥ अतियोगाद्रुजः शोफः पिडिकास्तिमिरोद्गमः । पाकोऽश्रुहर्षणश्चापि हीने दोषोद्गमस्तथा ॥

अर्थ—काकोल्यादि गणसे सिद्ध कियेहुए स्नेह, मांस, वसा, मज्जा, मेदाको स्नेह पुटपाक कहते हैं। यह दोसौ मात्राके उच्चारण कालतक धारण किया जाता है, इसको स्नेहन पुटपाक कहते हैं। जाङ्गल अर्थात् एणादिकके यकृत् मांस, लेखन द्रव्य, कांतीसार, लोहका चूर्ण, तांबा, शंख, मूंगा, सेंधा नमक, समुद्रफेन, कसीसका फूला, सौवीराञ्जन, दहीका मस्तु (तोड) इन सबसे तैयार कियाहुआ लेखन पुटपाक होता है, यह सौ मात्राके उच्चारण कालतक धारण किया जाता है। स्त्रीका दुग्ध जांगल पशुका मांस, शहत, घृत और तिक्त द्रव्य इन सबको पका लेवे, इसको रोपण पुटपाक कहते हैं। यह तीनसौ मात्राके उच्चारण कालतक धारण किया जाता है। रोपण पुटपाकको छोडकर दोनों पुटपाकोंमें तर्पणोक्त धूमपानका ग्रहण करे और उन्हीं दोनोंमें स्नेहन और स्वेदन भी करे, परन्तु रोपण पुटपाकमें कदापि न करे। कफज नेत्र रोगमें पुटपाक एक दिवस करे पित्तजमें दो दिवस और वातजमें तीन दिवस करे। (कोई २ यह भी अर्थ करते हैं कि लेखन पुटपाक एक दिवस और स्नेहन पुटपाक दो दिवस और रोपण पुटपाक तीन दिवस करे,) स्नेह पानके आरम्भ कालमें दुगुणाकाल इष्ट है (पुटपाकमें वर्जित कर्म) दीपककी ज्योति, प्रज्वलित अग्नि, व तेजमान पदार्थोंके सन्मुख, वायु आकाश दर्पण सूर्य्य इन वस्तुओंको तर्पण व पुटपाकके पीछे न देखे। कदाचित तर्पणक्रिया और पुटपाक इन दोनोंमें किसी

मिथ्या उपचारसे जो रोग हो जाय उसमें अंजन आश्च्योतन स्वेदन आदि यथायोग्य करे। (पुटपाकका सम्यक् योग) वर्णप्रफुल्लित हो जाय नेत्र मल रहित हो जाय नेत्रोंमें हलकापन मालूम होय वात और आतप सहन करने योग्य नेत्र हो जावें सुखपूर्वक निद्रा आवे ये सब लक्षण होयँ तो सम्यक् पुटपाक समझना। यदि पीडिका पीडा और सूजन उत्पन्न होय अथवा तिमिर होय तो पुटपाकका अति योग समझो। पाक आँसूका निकलना हर्षण दोषोंका उत्पन्न होना ये हीन पुटपाकके लक्षण हैं।

पुटपाककी साधन विधि।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि पुटपाकप्रसाधनम्। द्वौबिल्वमात्रौ श्लक्ष्णस्य पिण्डौ मांसस्य पेषितौ। द्रव्याणां बिल्वमात्रन्तु द्रवाणां कुडवो मतः। तदेकत्र समालोड्य पत्रैः सुपरिवेष्टितम्। काश्मरीकुमुदैरण्डपद्मिनीकदलीभवैः। मृदावलिप्तमङ्गारैः खादिरैरवकूलयेत्॥ कतकाश्मन्तकैरण्डपाटलावृषबादरैः। सक्षीरद्रुमकाष्ठैर्वा गोमयैर्वापि युक्तितः॥ स्विन्नमुद्धृत्य निष्पीड्य रसमादाय तं नृणाम्। तर्पणोक्तेन विधिना यथा वदवचारयेत्॥ कनीनके निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः। रक्ते पित्ते च तो शीतौ कोष्णौ वातकफापहौ। अत्युष्णतीक्ष्णौ सततं दाहपाककरौ स्मृतौ॥ आप्लुतौ शीतलौ चाक्षुस्तम्भरुग्घर्षकारकौ। अतिमात्रौ कषायत्वसङ्कोचस्फुरणावहौ॥ हीनप्रमाणौ दोषाणामुत्क्लेश जननौ भृशम्। युक्तौ कृतौ दाहशोफरुग्घर्षस्रावनाशनौ॥ कण्डूपदेहदूषिकारक्तराजिविनाशनौ। तस्मात्परिहरन्दोषान्विदध्यात्तौ सुखावहौ॥ व्यापदश्च यथादोषं नस्यधूमाञ्जनैर्जयेत्। आद्यन्तयोश्चाप्यनयोः स्वेदमुष्णाम्बुतैलिकः॥ तथाहितोऽवसाने च धूमश्लेष्मसमुच्छ्रितौ॥

अर्थ—अब यहां आगे पुटपाककी साधन विधि कहते हैं। मांसको महीन पीसकर बेल फलके समान दो गोला बनावे और स्नेहन, रोपण, लेखन जैसा पुटपाक करना होय वैसाही यथाक्रम मधुर लेखन और तिक्त द्रव्योंको एक एक पल डाले और द्रव (पतले) द्रव्य स्नेहन पुटपाकमें मांसरस, मधुर द्रव्योंका कषाय आठ पल डाले। लेखन पुटपाकमें शहत, तोड, त्रिफलाका जल आठ पल डाले और रोपण पुटपाकमें तिक्तकषाय डाले। इन सबके गोले बनाकर खंभारी कमोदनी, अरंड, पद्म और केलेके

पत्र लपेट ऊपरसे कपडा मिट्टी करके खैरके कोयलेमें पका लेवे । अथवा खैरक कायले प्राप्त न होवें तो निर्मली अश्मन्तक, अरंड, पाढ, वृप, वेरदूधिया आदि वृक्षोंकी लकडी अथवा कंडोंकी अग्निमें युक्तिपूर्वक पका लेवे, मांसपिण्ड सींजने (पकने) पर निकालकर मीचकर दवाक उसका रस निकाल लेवे । इस रसको तर्पणकी कथन की हुइ रीतिसे काममें लावे । मनुष्यको सीधा चित्त सुलाकर कनीनकामें इस रसको टपका देवे, ये दोनों तर्पण और पुटपाक रक्तपित्तमें शीतल और वातकफमें ऊष्ण किये जाते हैं । अत्यन्त उष्ण और तीक्ष्ण तर्पण और पुटपाकोंका सेवन करनस मन्दप्लुत आंसूस्तम्भ वेदना और हर्ष इनको करते हैं और अति मात्राके सेवन करनेसे कशीलापन त्वचा संकोच और नेत्रोंमें फडकन होती है । हीन मात्रासे दोषोंका उत्क्लेश होता है । युक्त मात्रासे दाह सोफ वेदना हर्ष और स्राव इनका नाश हो जाता है । खुजली उपदेह गीढ नेत्रोंके रक्त डोरे भी निवृत्त हो जाते हैं । इसलिये दोपोंको दूर करनेवाले ये दोनों सुखोत्पादक होते हैं, (तर्पण और पुटपाकके पूर्व पश्चात् कर्मका विधान) इन दोनों तर्पण और पुटपाकके आदि और अन्तमें गर्म जलसे सेचन किये हुए ठीकडेपर जल व दहीका तोड डालकर जो माफ ठीकडे परस उठे उसको नेत्र बन्द करके लगावे जिससे नेत्रोंक वाह्य भागमें पसाना आ जावे और कफकी अधिकतामें इनके अन्तमें धूम्रपान करावे किसी आषधके धम्रको हुक्केके समान अथवा तुरह (चिलमके) समान पीनेको धूम्रपान कहते हैं ।

आश्च्योतन और सेकका वर्णन ।

यथा दोषोपयुक्तन्तु नातिप्रबलमोजसा । रोगमाश्च्योतनं हन्ति सेकस्तु बलवत्तरम् ॥ प्रागेवाक्ष्यामये कार्य्यं त्रिरात्रं लघु भोजनम् । उपवास-द्व्यहं वा स्यान्नक्तं वाप्यशनं त्र्यहम् ॥ ततश्चतुर्थे दिवसे व्याधिं संजा-तलक्षणम् । समीक्ष्याश्च्योतनैः सेकैः यथास्वमुपपादयेत् ॥ तौ त्रिधै वोप युज्येते रोगेषु पुटपाकवत् ॥ लेखने सप्त चाष्टौ वा विन्दवः स्नैहिके दश । आश्च्योतने प्रयोक्तव्या द्वादशैव तु रोपणे ॥ सेकस्य द्विगुणः कालः पुटपाकात्परो मतः ॥ अथवा कार्य्यं निर्वृत्तेरुपयोगो यथाक्र-मम् । पूर्वापराह्णे मध्याह्ने रुजाकालेषु चोभयोः ॥

अर्थ—दोषोंके अनुसार प्रयुक्त कियाहुआ आश्च्योतन कर्म अपनी शक्तिसे उस रोगको नष्ट कर देता है, जो कि अत्यन्त प्रवल नहीं है और इसी प्रकार दोषोंके अनुसार प्रयुक्त किया हुआ पारिषेक प्रवल रोगको नष्ट कर देता है । नेत्ररोग होनेपर

प्रथम तीन दिवस पर्य्यंत हलका भोजन करे अथवा ३ दिवसतक उपवास करे अथवा रात्रिमें भोजन करे फिर जब व्याधिके लक्षण दीखने लगें तब चौथे दिवस आश्च्यातन और सेक यथायोग्य करे । आश्च्योतन तथा सेक ये दोनों स्नेहन लेखन और रोपण इन तीनों भेदोंसे पुटपाकके समान हैं, इनके पेषण आलोडन द्रव्य भी पुटपाकमें कहे हुए ही हैं और पुटपाकके समान ही हीन अधिक और सम्यक् प्रयोग हैं । लेखनीय आश्च्योतनमें ७ (सात) व आठ बिन्दु स्नेहनीय आश्च्योतनमें १० बिन्दु और रोपणीय आश्च्योतनमें १२ बिन्दु औषध डाली जाती है । (परिषेकके धारणमें कालविधान) पुटपाकसे परिषेक धारणमें दूना समय लगता है लेखन परिषेकमें दोसौ मात्राके उच्चारण कालतक और स्नेहन परिषेकमें चारसौ मात्राके उच्चारण कालतक, रोपण परिषेकमें छ:सौ मात्राके उच्चारण कालतक समय लगता है । नेत्रकी व्याधियोंकी शान्तिका यथाक्रम उपयोग करे और आश्च्योतन तथा सेक ये दोनों कर्म पूर्वाह्न मध्याह्न और वेदना होते समय करे ।

योगायोगान् स्नेहसेके तर्पणोक्तान् प्रचक्षते । रोगान् शिरसि सम्भूतान् हत्वातिषबलान् गुणान् ॥ करोति शिरसो बस्तिरुक्ता ये मूर्द्धतैलिकाः ॥ शुद्धदेहस्य सायाह्ने यथाव्याध्यशितस्य तु । ऋज्वासीनस्य बध्नीयाद्वस्तिकोशं ततो दृढम् । यथाव्याधि शृतस्नेहपूर्णं संयम्य धारयेत् ॥ तर्पणोक्तं दशगुणं यथादोषं विधानवित् ॥

अर्थ—अब तर्पणमें कथन कियेहुए योग और अयोगोंका वर्णन करते हैं—शिरमें उत्पन्न होनेवाले अत्यन्त प्रबल गुणवाले रोगोंको नष्ट करके शिरोवस्ति उन गुणोंको करती है, जो मूर्द्ध तैलके कहे गये हैं । सायंकालके समय शुद्ध शरीरवाले पुरुषके जिसने व्याधिको नष्ट करनेवाला आहार किया होय ऐसे रोगीको सीधा बैठाल कर वस्ति कोशको बांधकर उसकी सन्धियोंमें उडदका आटा लगाकर बंद कर व्याधिको रोकनेवाली औषधियोंमें पकाहुआ स्नेह (तैल) कोशभूमिके ऊपरवाले भागतक भर देवे । दोषोंके अनुसार शिरोवस्ति तर्पणके कालसे दश गुणे कालतक धारण की जाती है । कफकी व्याधिमें छः सहस्र मात्राके उच्चारण कालतक पित्तमें आठ सहस्र और वातमें दश सहस्र मात्रातक शिरोवस्ति धारण की जाती है ।

(वस्तिकोश एक चमडा अथवा रबडका आठ व ९ अंगुल चौडा और शिरके चारों ओरके व्यासके समान लम्बा, टुकडा उसको शिरके चारों ओर लपेट कर भौंहके ऊपरसे निकलताहुआ डोरीसे बांध उसकी सन्धि आटेसे बन्द कर उसके ऊपरके भागमें तैलादि स्नेह जो कुछ औषध भरनी होवे सो भर देवे ।

अंजनका अवस्थाकाल।

व्यक्तरूपेषु दोषेषु शुद्धकायस्थ केवले। नेत्र एव स्थिते दोषे प्राप्तमञ्जनमाचरेत्। लेखनं रोपणं चापि प्रसादनमथापि वा। तत्र पञ्च रसान् व्यस्तानाद्यैकरसवर्जितान्। पञ्चधा लेखनं युञ्ज्याद्यथादोषमतन्द्रितः॥ नेत्रवर्त्मशिराकोशस्रोतः शृङ्गारकाश्रितम्। मुखनासाक्षिभिर्दोषमोजसा स्रावयेत्तु तत्॥ कषायतिक्तकं चापि सस्नेहं रोपणं मतम्। तत्स्नेहशैत्याद्वर्ण्यं स्याद् दृष्टेश्च बलवर्द्धनम्॥ मधुरं स्नेहसम्पन्नमंजनन्तु प्रसादनम्। दृष्टिदोषप्रसादार्थं स्नेहार्थञ्च तुतद्धितम्। यथादोषप्रयोज्यानि तानि दोषविशारदैः। अंजनानि यथोक्तानि प्राह्णसायाह्नरात्रिषु॥ गुटिकारसचूर्णानि त्रिविधान्यंजनानि तु। यथापर्वं बलं तेषां श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः॥ हरेणुमात्रावर्त्तिः स्याल्लेखनस्य प्रमाणतः। प्रसादनस्य चाध्यर्द्धा द्विगुणा रोपणस्य च॥ रसांजनस्य मात्रा तु पिष्टवर्त्ति मिता मता। द्वित्रिचतुः शलाकाश्च चूर्णस्याप्यनुपूर्वशः॥

अर्थ—दोष प्रगट हो आये होयँ और रोगीका शरीर शुद्ध होय, वे दोष केवल नेत्रमें स्थित होयँ तो केवल अंजन ही लगाना चाहिये। वह अंजन लेखन, रोपण अथवा प्रसादन तीन प्रकारका होता है, यही काल अंजनको काममें लेनेका है। (अंजनभेदका निर्देश) प्रथम एक रसको छोडकर पांचों रसोंका योग करे और यथा दोष पांच प्रकारका लेखन करे, जैसे वातमें अम्ल लवण, पित्तमें कषाय, कफमें कटु-तिक्त कषाय, रक्तविकारमें पित्तके समान, सन्निपातमें दो अथवा तीन रसोंके संसर्गसे देवे। जो दोष नेत्र वर्त्मशिरा, कोश, स्रोत, शृंगाटकमें स्थित होयँ उन्हें मुख, नासिका, नेत्र इनके द्वारा बलपूर्वक स्रावित करे। (रोपणाञ्जन) कषाय और तिक्त द्रव्योंमें थोडासा घृत डालकर रोपणांजन किया जाता है तथा स्नेहकी शीतलतासे वर्ण सुन्दर हो नेत्रोंमें बल बढ जाता है। (प्रसादनाञ्जन) मधुर द्रव्य और स्नेहसे प्रसादांजन किया जाता है। यह अंजन दृष्टिके दोषोंको नष्ट करनेके लिये और स्नेह करानेके लिये हितकारी है। चिकित्सकको उचित है कि इन अंजनोंको यथा दोष प्रातःकाल सायंकाल अथवा रात्रिमें लगावे जस कि कफ रोगमें प्रातःकाल वात-रोगमें सन्ध्याके समय, पित्तरोगमें रात्रिके समय लगावे। प्रत्येक अंजनके तीन भेद होते हैं, जैसे गुटिकांजन, रसक्रिया अंजन, चूर्णांजन इनमेंसे महा बलिष्ठ रोगोंमें

गुटिका अंजन मध्य बलवाले रोगोंमें रसक्रियाञ्जन, हीन बलवाले रोगोंमें चूर्णांजन उपयुक्त किया जाता है। (गुटिकांजनका प्रमाण) लेखनांजनकी बत्तीका प्रमाण हरेणुके समान प्रसादांजन डेढ मटरके समान और रोपणांजन दो मटरके समान होता है। (रसांजन चूर्णका प्रमाण) रसांजनका प्रमाण पिष्टवर्त्तीके प्रमाणके अनुसार होता है, जैसे लेखन रसक्रियांजनका प्रमाण लेखन बर्त्तीके समान और रोपणका रोपणवर्त्तीके समान, प्रसादनका प्रसादनवर्त्तीके समान होता है। चूर्णांजनमें सलाइयोंका प्रमाण है, लेखनांजनमें दो सलाई रोपणांजनकी और प्रसादांजनकी चार सलाई लगाई जाती हैं (तांबा, पत्थर, सींग, जस्ता, शीशा आदिकी सलाइयोंसे अंजन लगावे।)

अंजन लगानेकी विधि।

वामे नाक्षि विनिर्भुज्य हस्तेन सुसमाहितः। शलाकाया दक्षिणेन क्षिपेत् कानीनमञ्जनम्॥ आपाङ्ग्यं वा यथायोग्यं कुर्याच्चापि गतागतम्। वर्त्मोपलेपि वा दत्तदङ्गुल्यैव प्रयोजयेत्। अक्षिनात्यन्तया रंज्याद्बाधमानोऽपि वा भिषक्। नवानिर्व्वान्तदोषेऽक्षिण धावनं सम्प्रयोजयेत्॥ दोषः प्रतिनिवृत्तः सन्हन्याद् दृष्टेर्बलं तथा। गतदोषमपेताश्रु पश्यद्यत्सम्यगम्भसा। प्रक्षाल्यास्थि यथादोषं कार्य्यं प्रत्यञ्जनं ततः॥

अर्थ—अत्यन्त सावधानीपूर्वक बायें हाथसे नेत्रको खोलकर कानीन प्रदेशमें अंजन लगावे और वहांसे अपांग देशमें इसप्रकार कई बार इधरसे उधर फेरे, जो वर्त्मके ऊपर उपलेप करने योग्य होय तो भी अंगुलीहीसे लगा देवे। यदि पीडा होती होय तो भी कनीनकामें विशेष अंजन न लगावे, क्योंकि अधिक तीक्ष्ण अंजन विशेष लग जानेसे जखम पड जानेका भय रहता है। जिसके ढीडादि दूषित दोष दूर न हुए होयँ और प्रक्षालनसे उसको कष्ट होय तो उसके नेत्रको न धोवे। क्योंकि अकालमें नेत्रोंको धोनेसे दोष फिर बढकर दृष्टिके बलको नष्ट कर देते हैं। इसलिये दोषोंको निवृत्त करके आंसुओंको पोंछ कर जलसे नेत्रोंको धोवे, फिर यथा दोषके अनुसार कथन कियेहुए अंजनको लगावे।

अंजन लगानेमें अयोग्य मनुष्य।

श्रमोदावर्त्तरुदितमद्यक्रोधभयज्वरैः। वेगाघातशिरोदोषैश्चार्त्तानां नेष्यतेऽञ्जनम्। रागरुक्तिमिरास्रावशूलसंरम्भसंभ्रमान्।

अर्थ—श्रम, उदावर्त्त, रुदित, मद्य, क्रोधित, भयभीत, ज्वरित वेगके आघात शिरोदोष, अन्य रोगयुक्त पुरुषोंके अंजन नहीं लगाया जाता । राग, वेदना, तिमिर, स्राव, शूल सूजन और सम्भ्रममें भी निषेध है ।

अंजन विषयमें विशेष कथन ।

निद्राक्षये क्रियाशक्तिं प्रवाते दृग्बलक्षयम् ॥ रजोधूमहते रागस्रावाधी-मन्थसम्भवम् ॥ संरम्भशूलौ नस्यान्ते शिरोरुजि शिरोरुजम् । शिरः-स्नातेऽतिशीते च रवावनुदितेऽपि च । दोषस्थैर्य्यादपार्थं स्यात्स्रोतोमार्गा-वरोधनात् । पोषवेगोदये दत्तं कुर्य्यात्तांस्तानुपद्रवान् ॥ तस्मात्परिहरं दोषानञ्जनं साधु योजयेत् ॥

अर्थ—निद्राके अन्तमें अंजन लगानेसे नेत्रोंको खोलने मूंदनेकी शक्ति हो जाती है । वात रोगमें अंजन लगानेसे दृष्टिके बलका नाश होता है । रज और धूम्र लगेहुए नेत्रोंमें काजल लगानेसे राग, स्राव और अधिमन्थ रोगकी उत्पत्ति होती है । नस्य कर्मके अन्तमें लगानेसे सूजन और शूल शिरो रोगमें लगानेसे शिरमें वेदना होती है । और शिर सहित शीतल जलसे स्नान न करके अत्यन्त शीतमें अथवा सूर्य्यके उदय होनेसे प्रथम अंजन लगानेसे दोषोंकी स्थिरताके कारण वे निकल नहीं सक्ते, किन्तु स्थिर हो जाते हैं । अजीर्णमें स्रोत रुक जाते हैं इससे अंजन लगानेसे दोषोंका उत्क्लेश ही होता है । यदि दोषोंके वेगमें अंजन लगाया जाता है तो रोग शोकादिमें कहेहुए उपद्रव खडे हो जाते हैं इसलिये दोषोंकी निवृत्ति करके अंजन लगाना चाहिये ।

अकालाञ्जन रोगोंकी चिकित्सा ।

लेखनस्य विशेषेण काल एष प्रकीर्त्तितः । व्यापदश्च जयेदेताः सेका-श्च्योतनलेपनैः । यथास्वं धूमकवलैर्नस्यैश्चापि समुत्थिताः॥विशदं लघुना स्रावि क्रियापटुसुनिर्मलम् । संशान्तोपद्रवं नेत्रं विरिक्तं सम्यगादिशेत् । जिह्मं दारुणदुर्वर्णं स्रस्तं रुक्षमतीव च । नेत्रं विरेकातियोगे स्यन्दते चातिमात्रशः । तत्र सन्तर्पणं कार्य्यं विधानं चानिलापहम् ॥ अक्षि मन्दविरिक्तं स्यादुदग्रतरदोषवत् । धूमनस्याञ्जनैस्तत्र हितं दोषावसेच-नम् ॥ स्नेहवर्णबलोपेतं प्रसन्नदोषवर्जितम् । ज्ञेयं प्रसादने सम्यगुपयु-क्तेऽक्षि निर्वृतम् ॥ किंचिद्धीनविकारं स्यात्तर्पणाद्विकृतादति । तत्र दोष-

हरं रूक्षं भेषजं शस्यते मृदु ॥ साधारणमपि ज्ञेयमेवं रोपणलक्षणम् । प्रसादनवदाचष्टे तस्मिन् युक्तेऽतिभेषजम् ॥ स्नेहनं रोपणं वापि हीनयुक्तमपार्थकम् ॥ कर्त्तव्यं मात्रया तस्मादञ्जनं सिद्धिमिच्छता ॥ पुटपाकक्रियाव्वासु क्रियास्वेकैव कल्पना । सहस्रशश्चाञ्जनेषु बीजेनोक्तेन पूजिताः ॥

अर्थ–विशेष करके यह काल लेखनाञ्जनका कहा गया है, इन रोगोंको यथायोग्य सेंक, आश्च्योतन, लेपन, धूम कवल, नस्य इन कर्म्मोंसे निवृत्त करे । (लेखनाञ्जनके योगातियोगका वर्णन) यदि नेत्र विशद लघु स्राव रहित क्रिया पटु निर्मल और शान्त हो गये हैं उपद्रव जिनके उनको समझना चाहिये कि अंजनका सम्यक् योग हुआ है । वक्रता, काठिनता, दुर्वर्ण, स्राव, रूखापन, जो अत्यन्त फडकें तो लेखनाञ्जनका अतियोग समझो, । इसमें सन्तर्पण और वातानाशक चिकित्सा करे । (लेखनांजनका हीन याग) जो अत्यन्त उत्कट दोषसे युक्त होकर पीडासी उत्पन्न होय उसे हीनाति योग समझो, इसमें धूमनस्य और अंजन द्वारा दोषोंका अवसेचन करे । (प्रसादनाञ्जनका योगातियोग) स्नेहवर्ण और बलसे युक्त प्रफुल्लित दोषोंसे राहत सब क्रियाओंको सहनेके योग्य जब नेत्र हो जायँ तब प्रसादनका सम्यक् योग समझो । तर्पणके अति योगसे जो कुछ हान दोप होय उसको प्रसादनका अतियोग समझो, इसमें दोषको दूर करनेवाली रूखी और कोमल औषध हितकारी है । (रोपणांजनका योगाऽतियोग) रोपण अंजनके योग और अति योगके लक्षण प्रसादनके योग आर अतियोगके समान ही होते हैं । इसमें प्रसादनांजनके अति योगके समान ही औषध की जाती है । (प्रसादन रोपणका हीन योग) स्नेहन अथवा रोपण यदि हीन मात्रासे प्रयुक्त किये जायँ तो निष्फल होते हैं, इसलिये इन अंजनोंको यथार्थ मात्राके अनुसार देवे । पुटपाकादि क्रियाओंमें एक ही कल्पना होती है, परन्तु अंजनोक्त मधुर रसको छोडकर पंचरसके लेखनांजनकी कल्पनासे तथा स्नेह युक्त तिक्त कषायके द्वारा रोपणाञ्जन कल्पनासे तथा स्नेहयुक्त मधुर रसके द्वारा प्रसादनांजनकी कल्पनासे अंजनोंमें सहस्रों प्रकारकी कल्पना है ।

दृष्टि वर्द्धक अंजन ।

दृष्टेर्बलविवृद्ध्यर्थं टाप्यरोगक्षयाय च । राजार्हान्यञ्जनाग्र्याणि निबोधैतान्यतः परम् ॥ अष्टौ भागानञ्जनस्य नीलोत्पलसमात्विषः । औदुम्बरं शातकुम्भं राजतञ्च समासतः ॥ एकादशैतान्भागांस्तु योजयेत्कुशलो भिषक् । मूषाक्षिप्तं तदाध्मातमावृतं जातवेदसि ॥ खदिराश्मन्त-

काङ्गरैर्गोशकृद्भिरथापि वा। गवां शकृद्रसे मूत्रे दध्नि सर्पिषि माक्षिके॥ तैलमद्यवसामज्जसर्वगन्धोदकेषु च। द्राक्षारसेक्षुत्रिफलारसेषु सुहिमेषु च॥ सारिवादिकषाये च कषाये चोत्पलादिके॥ निषेचयेत्पृथक् चैनं ध्मातं ध्मातं पुनः पुनः॥ ततोऽन्तरीक्षे सप्ताहं प्रोतवद्धं स्थितं जले। विशोष्य चूर्णयेन्मुक्तां स्फीटकं विद्रुमं तथा॥ कालानुसारिवां चैव शुचिशावाप्ययोगतः। एतच्चूर्णाञ्जनं श्रेष्ठं निहितं भाजने शुभे॥ दन्तस्फटिकवैदूर्य्यशंखशैलासनोद्भवे। शातकुम्भेऽथ शार्ङ्गे वा राजते चसुसंस्कृते। सहस्रपाकवत् पूजां कृत्वा राज्ञः प्रयोजयेत्। तेनाञ्जितोक्षा नृपतिर्भवेत् सर्वजनप्रियः। अधृष्यः सर्वभूतानां दृष्टिरोगविवर्जितः॥

अर्थ—यहांपर उन अंजनोंका वर्णन किया जाता है, जो दृष्टिके वल वढानेके निमित्त और याप्य रोगोंको निवृत्त करनेके निमित्त हैं। ये अंजन उत्तमोत्तम राजा महाराजा व श्रीमन्त धनाढ्य लोगोंके योग्य हैं। नीलकमलके पुष्पके समान कान्तिवाला सुर्मा ८ भाग, शुद्ध ताम्र १ भाग, सुवर्ण १ भाग, रजत (चांदी) १ भाग इन सब ११ भागको एकत्र करके मट्टीकी मूसमें रखके खैर, अश्मन्तक तथा कंडोंकी अग्निमें गलाकर एक रस करलेवे, जब पिघल कर एकत्र हो जावे तब गौके गोवरके पानी, गौमूत्र, दही घृत, शहत, तैल, मद्य, चर्वी, मज्जा, सर्वगंधके क्वाथ, दाखका क्वाथ, ईखका रस, त्रिफलाका क्वाथ, सारिवादि क्वाथ, उत्पलादि क्वाथ इत्यादिमें वारम्वार वुझावे। फिर उस टिकियाको एक वस्त्रमें वांधकर आकाशसे लिये हुए वर्षातके जलमें भिगोदेवे, सात दिवसके वाद निकाल कर सुखा खरलमें डालकर अति सूक्ष्म चूर्णकर मोती, विल्लौर, मूंगाकी शाख, तगरकी जड प्रत्येक (छःछः मासे) लेकर इनका सूक्ष्म चूर्ण करके मिलावे, जब अति सूक्ष्म चूर्ण हो जावे तब १ तोला ७॥ मासे सींगापुरी भीमसेनी कर्पूर मिलाकर कांचकी शीशीमें भर लेवे। यदि राजाओंके यहां इसको तैयार किया जाय तो दुन्तस्फटिक, वैदूर्य्य, शंख, पत्थर, असन, सुवर्ण, सींग, चांदी इनके पात्रोंमें उत्तम रीतिसे रखे। और सहस्र पाककी विधिसे पूजा करके राजाओंके लगावे, इस अंजनको लगानेसे राजा सर्वप्रिय होता है। इसके लगानेसे पंचभूतोंसे उत्पन्न हुई दृष्टि अगम्य, और रोग रहित हो जाती है। ऊपर कथन की हुई गोली सलाई व वत्ती इनको जल व स्त्रीके दुग्ध व वकरीके दुग्धमें घिसकर काजलसा वन जावे तव सलाईपर रखके नेत्रोंमें लगावे। यदि ऐसा न किया जावे तो कठिन चीजको नेत्रोंमें फेरनेसे जखम पड जाता है॥

आयुर्वेदमें नेत्रपाक रोगके नाम अभिष्यन्द अधिमन्थ रखे गये हैं, अभिष्यन्द नेत्रपाककी प्रथम स्थिति है और अधिमन्थ दूसरी स्थिति है । इसी प्रकारसे यूनानी तिब्बमें नेत्रपाककी संज्ञा रमद है । मुल्तहिमानामक पर्देके सूज जानेको रमद कहते हैं और रमदहकीकी भी इसीको कहते हैं । रमद उस दशाको भी बोलते हैं, जैसे गर्मी, धूप, धूल, धूआं व किसी प्रकारकी गर्मी नेत्रोंमें पहुंचनेसे सुर्खी व दूखनेकीसी दशा हुई होय और किसी किसी हकीमने सर्दी व गर्मीके किसी कारणसे भी नेत्रोंमें सूजन हुई होय उसको रमद नामसे ही उपाय लिखा है । परन्तु असलमें रमदके (रक्तज रमद, पित्तज रमद, कफज रमद, वात्तज रमद, रीही रमद) यह पांचही भेद हैं । अर्बीमें नेत्र दूखनेको रमद कहते हैं । रक्तज रमदमें नेत्र विशेष सूजा हुआ और नेत्रमें खिचावट पडती है मैल विशेष निकलता है नेत्रकी रगें मवादसे भरी हुई रहती हैं, कनपटियोंमें दर्द और धमक रहती है और रक्तकी अधिकताके चिह्न प्रगट होते हैं । उपाय इस रोगका यही है कि बालक और अतिवृद्धको छोडकर किसी प्रकारका उपद्रव न होवे तो सरेरू नसकी फस्द खोलदेवे, मगर जिस ओरकी आंख दुखती होय उधरकीही फस्द खोले । यदि दोनों नेत्र दुःखते होयँ तो दोनों सरेरूकी फस्द खोल देवे, यदि किसी कारण विशेषसे फस्द न खोली जावे तो गुद्दीपर पछने लगाकर रक्तमोक्षण करे । यदि बालक भी अन्नाहारी होय और रक्तका जोश अधिक देखा जावे तो पछने लगाना उचित है । जिस बालककी उमर अति छोटी होय और केवल दुग्धाहारी होय तो हरड, आलूबुखारा, पित्तपापडा, इमली इनके क्वाथसे कोष्ठको नर्म करे और रक्तमोक्षणके पीछे बडी उमरके मनुष्योंके कोष्ठको भी इन्हीं औषधियोंसे नर्म करे और मलको निकालनेके पीछे शियाफे अबियाजअंडेकी सफेदी व मेथीके लुआब अथवा स्त्रीके दुग्धमें घिसकर नेत्रोंमें लगा . बत्तीको घिसकर लगावे और शियाफ (बत्ती) और लुआब लसदार दवाओंको मस्तक और शरीर शुद्ध होनेके प्रथम न लगावे । क्योंकि शरीर और मस्तक शुद्ध न किये जावें तो रक्तका जोश कम. नहीं होता और ऐसी दशामें दवा लगानेसे किसी पर्देको हानि पहुँचना संभव है । और नेत्र दूखतेही आरम्भमें नेत्रोंमें पानी लगानाभी वर्जित है, क्योंकि पानी लगानेसे मल पकता नहीं है किन्तु कच्चा रहता है । और नेत्रके पर्दे मोटे हो जाते हैं और पर्देको हानि पहुँचाता है ।

शियाफे अबियाजके बनानेकी विधि ।

जस्तका फूला (सफेदा) समगे अर्बी कतीरा इन तीनोंको कूट छानकर ईसबगोलके लुआब अथवा अंडेकी सफेदीमें मिलाकर बत्ती बना लेवे और किसी २ तबीबन इस नुसखेमें अफीम और शोधी हुई अंजरूतभी थोडी मिलाई है । नेत्रमेंसे मलके निकल जानेपर नेत्रकी पुष्टता और मवाद हटानेके लिये चन्दन, रसौत, अका-

किया मामीसा इनको हरे धनियेके पानीमें पीसकर लेप करे और खट्टे मीठे पदार्थोंका सेवन करे। जैसे कि अनारजारिश्क, इमली इनको खांड मिलाकर खावे ऐसी खट्टी मीठी दवा खूनकी तेजीको उखाडती हैं और उसके उबालको बुझाती हैं। परन्तु केवल खटाईही कदापि न देवे, क्योंकि खटाई नेत्रके रोगको अधिक हानिकारक और पर्दा-मुल्तहिमा और पट्ठेके लिये खटाईसे अधिक हानिकारक दूसरी वस्तु नहीं है।

पित्तजनित नेत्र रमद्की चिकित्सा।

इस पित्तज रमदमें नेत्रोंका सूजना, फुलाव, खिंचाव लाली चीपड निकलना, आंसू वहना, रक्तज रमदकी अपेक्षा विशेष न्यून होता है। परन्तु दर्द, जलन, चुमन, अधिक होती है, यह भी जानना चाहिये कि आंसू आरोग्यावस्थामें गर्म होते हैं। क्योंकि उनमें पचाव हो चुका है और रमदमें सर्द होते हैं, क्योंकि विना पचावके आते हैं। चिकित्सा इसकी उसी प्रकारसे है जैसा कि रक्तज रमदमें हरडका काढा पिलाकर प्रथम दस्त करावे और शीतल चीजोंके पानी जैसे कासनीके वीजका शीरा पालकके वीजका शीरा अथवा हरी मकोय और हरे धनियेकी पत्तियां पीसकर नेत्रोंपर लेप करे। विहिदाना, ईसवगोलका लुआव इनमें लडकावाली स्त्रीका दूध और अंडेकी सफेदी मिलाकर नेत्रमें डाले और जिस समय पर दर्दकी अधिकता होय तो शिया-फेकापूरी और अफीम नेत्रोंमें लगावे। यदि रोग अधिक पीडाके साथ होय तो प्रथम पीडाके रोकनेका उपाय करे, क्योंकि अधिक पीडा शरीरकी शक्तिको निर्बल कर देती है और तवीयतको रोगके निवृत्त करनेस फेर देती है। मवादको भी खींचती है और इन सब दशाओंसे रोग वढता है। परन्तु पीडाके ठहराने और मादेके रोकनेके लिये अंगको सुस्त करनेवाली औषधियोंको सदैव न लगावे। क्योंकि अंगको विशेष सुन्न करनेसे दृष्टिको हानि पहुंचती है।

कफजनित नेत्र रमद्की चिकित्सा।

इस कफज रमदका चिह्न यह है कि नेत्र विशेप फूलाहुआ होय और मस्तक पर वोझ अधिक मालूम होय, चीपड (दीढ) और आंसू विशेप निकलें और सोनेकी अवस्थामें दोनों पलक आपसमें चिपट जावें और लाली कम होय। चिकित्सा इसकी यह है कि मलके पकनेके पीछे दिमागके साफ करनेके लिये गोलियां और यारजात पीछे जो मस्तक रोगमें अयारज फैकरा कथन कर आये हैं उसको देवे। मलको रोक-नेके लिये तथा नष्ट करनेके लिये- एलवा, रसीत, वूल, अकाकिया केशर इनको गुलावमें पीस मस्तक और नेत्र पलकोंकी पीठ पर लेप करे मवादको पकाने और निकालनेके लिये धोईहुई मेथीका लुआव और अलसीका लुआव नेत्रोंमें लगावे फिर जव दूसरा अथवा तीसरा दिवस व्यतीत हो जाय और रोग अन्तके दर्जेको पहुंचे

तो जरूरे अवियाजको नेत्रोंमें भरे और इस जरूरके लगानेमें बिलम्ब करनेकी आज्ञा इसलिये है कि यह जरूर माद्देको विशेष निकालता है। और माद्देको नष्ट करनेवाली दवाओंका जो ये बलवान् होय तो उनको सूजन रोगके अन्तसे प्रथम लगाना ठीक नहीं है। मेथीके धोनेकी यह विधि है कि मेथीके मीठे जलमें डालकर ६ घंटे पर्य्यन्त रखी रहने देवे छः घंटेके बाद उस पानीको निकाल कर मेथीके वजनसे वीस गुणा पानी मिलाकर पकावे, जब आधा भाग जल रहे तब उतार कर उसका लुआब निकाल कर काममें लावे। इसी प्रकार अलसीका लुआब भी आवश्यकताके समय पर निकाले।

जरूरे अवियजके बनानेकी विधि।

अंजरूद लेकर बारीक पीस गधीके दूधमें अथवा पुत्रीकी माता स्त्रीके दुग्धमें मिलाकर उसन लेवे और झाऊकी लकडियों पर रखकर ऐसे चूल्हेमें जो कि ठंढी होनेको होय रख देवे, जिससे अंजरूत उन लकडियों पर सूख जावे। फिर उन लकडियों परसे निकाल कर एक भाग इस अंजरूतमेंसे लेवे और एक भागकी चौथाई हिस्सा निशास्ता लेकर दोनोंको मिलाकर बारीक पीस लेवे, जो पलक आपस चिपटते होयँ और मल निकलता होय तो थोडीसी मिश्री भी इसमें मिला नेत्रोंमें लगानेकी जो दवा बनाई जावे उसको बहुत सफाईसे बनावे कि धूल गर्दा न जावे और साफ खरलमें पीसे।

वातजनित नेत्र रमदकी चिकित्सा।

नेत्र रोगके चिकित्सक इस प्रकारके रमदको रमदेयाविस अर्थात् खुश्कीके कारणसे नेत्र दूखते हैं इस प्रकार कहते हैं और रोगके लक्षण इस प्रकारसे होते हैं कि नेत्र खुश्क होय भारी मालूम पडे रंगमें स्याही लियेहुए होय। नेत्रोंमें चुभनेकीसी पीडा होय रोगकी वृद्धि होय और पलकें लाल हो जायँ कभी २ पर्दा मुल्तहिमा भी लाल हो जाय यह रमद प्रायः शिरके दर्दके साथ हुआ करता है। विशेष करके जिस मनुष्यकी प्रकृति वायुकी होय और शिरमें खुश्की रहती होय उसको यह रोग उत्पन्न होता है। (चिकित्सा) इस रोगकी यह है कि दिमागमें खुश्कीको निवृत्त करनेके लिये और तरी पहुंचानेके अर्थ तरी उत्पन्न करनेवाले पथ्याहार देवे। वनफशा गुलनीलोफर, गावजुबां, प्रत्येक १०॥ मासे उन्नाव ७ दाने, छोटा सिपिस्तान २० दाने, मिश्री ३५ मासे इनको पकाकर क्काथ बना रोगीको पिला जौका पानी पिलावे। अथवा वनफशा, नीलोफर, खतमीके पत्र लम्बी घीयाके पत्र और जौकी घाट इनका काढा बनाकर शिरके आगेके भागपर डाले और इसी काढेका बफारा दे स्नान करावे। वनफशाका तैल तथा ताजा दुग्ध नासिकामें सुडकावे बिहीदानेका लुआवा नेत्रमें डाले और बाबूना, वनफशा, अलसीका पानी नीलोफरके

पानीके साथ मिलाकर नेत्रोंपर लेप करे । शियाफे दीनारंगू नेत्रोंमें लगावे, दोषमें तरी पहुंचानेसे प्रथम मलके निकालनेवाली व नष्ट करनेवाली औषधियोंका सेवन कदापि न करे, क्योंकि तरी पहुंचनेसे प्रथम सफाई और खुश्कीको बढावेगी और माद्देमें गाढापन अधिक करेगी । (शियाफे दीनारंगूके बनानेकी विधि) जस्तेका सफेदा चांदीका मैल प्रत्येक १९ मासे अफीम आधा मासे कतीरा ९ मासे, निशास्ता ३॥ मासे इन सबको बारीक पीसकर स्त्रीके दुग्धमें सानकर बत्ती बना गयी व स्त्रीके दुग्धमें घिसकर नेत्रोंमें लगावे ।

रीहीजनित नेत्र रमदकी चिकित्सा ।

रीहीजनित रमदके लक्षण इस प्रकारसे हैं कि नेत्रोंमें खिचावट माळूम होय, भारी-पन और आंसू बिलकुल न होय और कभी २ दूसरे दर्दके कारणसे लाली भी हो जाती है । उपाय इसका यह है कि बाबूना, अकली लुलमालिक, दोनामरुआ इनका काढा बना छानकर नेत्रोंपर डाले और गेहूँकी भूसी अथवा बाजरेके आटेकी पोटलीसे तर सिकाव कर, मलको निकालनेवाली दवाइयोंके पानीसे स्नान करे । किसी समय पर्दे मुल्तहिमामें बाहरी कारणोंसे जैसे सूर्यकी गर्मी लगने और विशेष तेज चमकीली चीजोंकी तर्फ देखने और ऐसी ही अन्य बातोंसे गर्मीसी आ जाय और नेत्रका दुखना उत्पन्न होय तो यह रोग भी एक प्रकारका रमद (नेत्र दुःखना) है और नेत्रके दुख-नेको तकद्दुर भी कहते हैं । उसका स्वभाव ऐसा होता है कि प्रायः तीन व चार दिवसमें अथवा जिस समय कारण नष्ट हो जाय उस समय पर विना इलाजके स्वयं नेत्र आरोग्य हो जाते हैं । इसलिये कथन करते हैं कि इसकी चिकित्सा करनेमें शीघ्रता न करे । क्योंकि इसका उपाय कारणका नष्ट होना ही है । कदाचित् स्वयं कारण नष्ट न होय तो उपाय करना आवश्यक है । इस रोगके लक्षण इस प्रकारसे होते हैं कि हेतु इस रोगका प्रथम हो गया होय अथवा मौजूद होय और नेत्रोंमें थोडीसी सुर्खी व जलन माळूम होय और आंसू निकलते होयँ तो उपाय इसका यह है कि तीन चार दिवसमें स्वभावसे निवृत्त न होय तो हेतुके निवृत्त होनेपर फस्द खोल कर थोडा रक्त मोक्षण करे । रेचकके वास्ते हरड, आलूबुखारा, इनका क्वाथ बनाकर उसमें अमलतासका गूदा और तुरंजबीन मिलाकर पिलावे और शियाफे अबियज नेत्रोंमें लगावे ।

नेत्राभिघातकी चिकित्सा ।

अभ्याहते तु नयने बहुधा नराणां संरम्भरागतुमुलासुरुजासुधीमान्
तस्य प्रलेपपरिषेचनतर्पणाद्यमुक्तं पुनः क्षतजपित्तजशूलपथ्यम् ॥ दृष्टि-

प्रसादजननं विधिमाशु कुर्य्यात् स्निग्धैर्हिमैश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगैः। स्वेदाग्निधूमभयशोकरुजाभिघातैरभ्याहतामपि तथैव भिषक् चिकित्सेत्॥

अर्थः—प्रायः मनुष्यके नेत्रोंपर किसी प्रकारका अभिघात लगनेसे नेत्रमें अत्यन्त सूजन राग वेदना होती है, ऐसा होनेपर (इसका उपाय इस प्रकारसे करे कि) नस्य प्रलेप परिषेक तर्पणसे आदि लेकर क्रिया करे। इसमें रक्ताभिष्यन्द और पित्ताभिष्यन्द ये भी हित हैं, इसमें दृष्टिको स्वच्छ करनेकी विधि शीघ्र करे स्निग्ध शीतल और मधुर द्रव्योंके प्रयोगसे स्वेद अग्नि, धूआं, भय शोक इनके होनेके अभिघातवाले नेत्रोंकी चिकित्सा करे। आयुर्वेदका दूसरा वैद्य कहता है कि तीक्ष्णांजनोंसे उत्क्लिष्ट वात, आतप, धूआँ, रजकृमि मक्खी मच्छरादिके लगनेसे जलक्रीडा जागरण करनेसे. लांघनेसे परिश्रमकी थकावटसे भयसे सूर्य्य अग्नि इनके तापसे अथवा अनेक प्रकारके रूपोंके देखनेसे दुर्बलतासे पीडित रागदाह तोद सोफ पाक घर्षण आदि वेदनाओंके होनेसे नस्यादि कर्म करे। सद्योहत नेत्रमें ऊपर कथन की हुई विधि करे, अथवा दोषोंको देखकर अभिस्यन्दमें कथन की हुई चिकित्सा करे, यदि नेत्रमें विशेष न्यून (थोडी) चोट आई होय तो कपडेको मुखकी भाफसे स्वेदित करके बारम्बार नेत्रोंको सेकनेसे तत्क्षण पीडा निवृत्त हो जाती है।

नेत्राभिघातज रोगोंमें साध्याऽसाध्यका विचार।

साध्यं क्षतं पटलमेकमुभे तु कृच्छ्रे त्रीणि क्षतानि पटलानि विवर्जयेत्तु। स्यात्पिच्चितश्च नयनं ह्यति चावसन्नं स्रस्तं च्युतश्च हतदृक् च भवेत्तु याप्यम्। विस्तीर्णदृष्टितनुरागमसत्प्रदर्शि साध्यं यथास्थितमनाविलदर्शनञ्च। प्राणोपरोधवमनक्षवकण्ठरोधैरुन्नम्यमाशु नयनं यदति प्रविष्टम्॥

अर्थ—एक पटलका घाव साध्य है, दो पटलोंका घाव कृच्छ्रसाध्य है, तीन पटलोंमें जो घाव पडा होय वह असाध्य है। तथा पिचित (पिचकेहुए) अवसन्न (नेत्रगोलकमें अन्दरकी ओर प्रवेश किये हुए) शिथिल च्युत और जिनकी दृष्टि नष्ट हो गई है ऐसे नेत्र अभिघातसे पीडित कृच्छ्रसाध्य हैं। विस्तीर्ण दृष्टि मंडलवाले ईषद्रागयुक्त अच्छे प्रकार देखनेवाले भी याप्य हैं। जो यथास्थित गीड रहित और अच्छे प्रकार देखनेवाले होयँ वे साध्य होते हैं। जो नेत्र अन्दर विशेष प्रविष्ट हो गया है उसकी श्वास रोकनेसे वमन और छींक करानेसे अथवा कण्ठके निरोध करनेसे शीघ्र ही ऊपरको लानेका प्रयत्न करे।

(यूनानी तिब्बमें) चोटके कारणसे नेत्रमें सुर्खी अथवा सूजन उत्पन्न हुई होय तो फस्द खोलकर रक्त मोक्षण कर हलके २ क्वाथ और मेवाओंके रससे कोष्ठको नर्म करे, यदि आवश्यकता होय तो गुद्दीपर पछने भी लगाने चाहिये । सफाईके पीछे दर्द ठहरानेके लिये पीलापन लियेहुए मुर्गीके अंडेकी सफेदी गुलरोगनमें मिलाकर नेत्रोंपर लगावे जब माद्दा दूसरी ओरको लौट जाय और दर्द भी शान्त हो जाय तथा नेत्रकी सुर्खी निवृत्त हो नेत्रमें नीलापन बाकी रहे तो उचित है कि धनियां, पोदीना, संग-फिलफिल, हरताल इनका लेप करे (संगफिल्फिल) काली मिरचके समान पत्थर है और वह मिर्चोंमें मिल जाता है । इस लेपसे नेत्रका नीलापन निवृत्त हो जायगा और जो नेत्रका पर्दा अपनी जगहसे हट जावे चाहे किसी तलवारादिके अभिघातसे अथवा लाठी पत्थरादिके अभिघातसे अथवा किसी अन्य वस्तुके अभिघातसे होय तो इसका उपाय भी फस्द और दस्तोंके द्वारा होता है । जिससे उसमें माद्दा न जा मिले । किसी मौकेपर रक्त निकल आया होय ता रक्तको उसके ऊपरसे साफ कर धुलाहुआ शादनज अतसी थोडेसे कापूरके साथ लगाकर रुईकी गद्दी रखके कडी पट्टी बांध देवे और जिस अभिघातके लगनेसे नेत्रमेंसे खून न निकला होय तो नीलाथोथा शुद्ध कियाहुआ उसमें भर देवै और मुर्गीके अंडेकी जर्दी नेत्रकी पीठ पर (पलकों) पर लगा देवे । थोडे समयके पीछे फस्द खोल दस्त लानेवाली दवा देवे जबतक आंखकी रतूबतें मवादसे न भरी होयँ उस समयतक नेत्रके घाव और ढेलेका इलाज न करे ।

नेत्रके घावकी चिकित्सा ।

इस बातको ध्यानमें रखो कि घावका उत्पन्न होना नेत्रके सब पर्दोंमें हो सक्ता है । परन्तु जो घाव मुल्तहिमा करनिया और इनबिया पर्दोंमें उत्पन्न होय तो वह दिखलाई देता है और प्रत्येक घावके मुख्य २ चिह्न हैं । ये चिह्न उस घावके विरुद्ध हैं जो इनके सिवाय और दूसरे पर्दोंमें होते हैं, जो दिखलाई नहीं देते परन्तु जिस समय पीव (राध) उबलकर ऊपरके पर्दोंको फाडकर और रतूबतोंमें घुसकर बाहरकी तर्फ आती है तब दिखलाई देते हैं । परन्तु आरम्भमें इसके कुछ चिह्न नहीं पाये जाते, केवल विशेष दर्द और अधिक कष्ट अवश्य हुआ करता है । इस बातको चिकित्सक जानता है कि यह आंख दुखती है, अथवा सूजन आई है । इस कारणसे घावका कारण वे तेज दोष जलेहुए और जलन उत्पन्न करनेवाले हैं । जो पर्दोंमें घुस कर घाव उत्पन्न करते हैं इसलिये दर्दकी अधिकता चुभन, टीस और आंसू बहना सब पर्दोंके घावोंमें हुआ करता है । अब वह चिह्न जो मुल्तहिमा, इनबिया, करनियां पर्दोंके घावके साथ सम्बन्ध रखते हैं वे कथन किये जाते हैं । पर्दे मुल्तहिमाके घावके चिह्न

इस प्रकारसे हैं कि नेत्रकी सफेदीमें एक लाल बिन्दु प्रगट होय और जो लाली सब सफेदीमें फैल गई होय तो कोई मुख्यस्थान दूसरे भागोंसे अधिक लाल दिखलाई देय और इसके सिवाय दूसरे चिह्न जो घावमें अवश्य होते हैं और ऊपर कथन किये गये हैं। जैसा कि दर्दकी अधिकता चुभन और धमक आदि इसके सूचक हैं । और पर्दे मुल्तहिमामें जो घाव गहरा होता है उसको फारसी भाषामें दवीला कहते हैं। पर्दे इनवियाके घावका यह लक्षण है कि नेत्रकी स्याह पुतलीके सामने एक बिन्दु रक्त वर्णका जो लाल रगोंसे बना हुआ होय दिखलाई देवे, फिर जो माद्दा प्रमाणमें अधिक और दशामें बुरा होता है तो पर्दे कर्नियाको फाड डालता है, यदि अधिकता और बुराईसे खाली होता है तो नष्ट हो जाता है। फटनेकी नौबत नहीं पहुंचती और पर्देका कर्नियाके घावके होनेका यह लक्षण है कि नेत्रके स्याह भागमें एक सफेद दाग उत्पन्न होय और इस पर्देमें सफेद घाव होनेका यह कारण है कि इनविया पर्दा जो उसके नीचे है वह दृष्टिको उसके देखनेसे रोकता है और करनिया पर्देका रंग उसके रंगकासा दीखता है और इस पर्देके घावोंके ७ भेद हैं) इन सातमेंसे चार घाव ऐसे होते हैं जो पर्दे करनियाके वाहरी भाग पर उत्पन्न होय और तीन उसके भीतरकी गहराईमें होते हैं। इस लिये उसके घावोंको हम दो भेदोंमें वर्णन करते हैं। इसका प्रथम भेद यह है कि पर्दे करनियाका वह घाव जो बाहरी भागके ऊपर उत्पन्न होता है उसको चिकित्सक लोग कुराह अथवा घाव कहते हैं। कितने ही तबीब इस घावको खुरखुरापन और खुजली बोलते हैं न कि घाव, लेकिन एक तीसरा तबीब कहता है कि इन दोनोंके मन्तव्यमें विरुद्धता नहीं है। केवल नाममात्रमें विरोध है, क्योंकि खुरखुरापन और सूखी खुजली (इनहिलाल) का भेद है और इनहिलालका अर्थ वह तफर्रुके इत्तिसाल अर्थात् घाव है, जो एक सूरतके अङ्गोंमें उत्पन्न होय उसका अर्थ (खालका फाडना) है इसलिये इनहिलालका अर्थ घाव माना है । मुख्य करके जब वह नेत्रमें उत्पन्न होय तो चिकित्सकको अपराधी नहीं कह सक्ते और यह ध्यानमें रखना चाहिये कि इसके चार भेद हैं। प्रथम यह कि स्याहीपर एक बिन्दु चौडा धूएँके समान उत्पन्न हो जाय उसीको अरबीमें कताम और यूनानीमें अखीलूस कहते हैं, कतामका अर्थ धूलका है अखीलूसका अर्थ अंधेरीका है। दूसरे यह कि प्रथम प्रकारकी अपेक्षा अधिक गहरा और विशेष सफेद होय परन्तु फैलावमें बहुत कम होय- अर्थात् बहुत जगहको रोकेहुए न होय। इसको अर्बी जबानमें सहाव और गमाम, यूनानीमें कानालयून कहते हैं। तीनोंका अर्थ अभ्रका अपभ्रंश अब्र (बादल) बदलीका है। तीसरे यह कि जो नेत्रकी स्याहीके किनारे पर प्रगट होय और पर्दे मुल्तहिमामेंसे भी थोडासा भाग दबा लेवे इसको अर्बी जबानमें अकलीली और यूनानीमें अरखीमून कहते हैं। अर्थात्

दो रंगवाला, क्योंकि यह घाव बहुतसा तो काला होता है और थोडासा सफेद, जो स्याही पर है वह सफ़ेद दीखता है। इसलिये कि वह पर्दे इनवियाकी दिखलाई देनेसे रोकता है और जो सफेदी पर है वह लाल होता है । नेत्रकी स्याहीके घेरेको अर्बी जबानमें (अकलीलुस्सवाद) यूनानीमें अरखामून कहते हैं । चौथे यह कि नेत्रकी स्याही पर बाल व सफेद ऊनके सदृश कोई चीज उत्पन्न होय जैसा कि ऊनका छोटासा टुकडा है इसको अर्बी जबानमें सूफी, इखराकी और यूनानीमें अर्बीकूंमा, हकीकादमा कहते हैं । अर्बीकूमांका अर्थ टहनी है और हकाकीदमाका अर्थ ऊन है ।

दूसरा भेद यह कि जो घाव पर्दे करनियाके अन्दर होय यह तीन प्रकारकी स्थिति पर रहता है । एक तो यह कि गहरा और साफ रंग और वाजेरके समान होता है, इसपर खुरंड बहुत कम आते हैं और यूनानी जबानमें इसको लोकूयून कहते हैं, इसका अर्थ अर्बीमें जुत्र है देशी जबानमें गहरे गढेका अर्थ हो सक्ता है । दूसरे यह कि लोकूयूनकी अपेक्षा अधिक चौंडा होय और गहराईमें कम होय तो इसको हाफरा कहते हैं, यूनानीमें छलुमा अर्थात् गहरा गढा कहते हैं । कोई २ तवीव इसको फलमूसा भी कहते हैं अर्थात् रंज और दुःख पहुंचानेवाला है। तीसरे यह इसमेंसे विशेष मल व चीपड तथा खुरेंड आवे, जो बहुत समय वीत जायँ तो नेत्रकी रतूवतें उससे छनकर निकल जायँ और किसी २ हकीमके मतानुसार यही दवीला अर्थात् गहरा घाव है । यह घाव भी उपरोक्त नामोंसे समझा जाता है, जो प्रथम भेदक चौथे प्रकारमें वर्णन किये गये हैं । जैसा कि इखराकी, अर्बीकूंमा, हफीकादमा इनके अलावे और एक प्रकारका घाव होता है, जो इनसे जुदा है, कभी २ होता है उसको जलुतुउरूक अर्थात् रगोंका घाव कहते हैं । इसकी पहचान इस प्रकारसे होती है, उसमें रगें बहुत होयँ और नेत्रके जिस स्थानपर यह प्रगट होय वहां टहनीमें टहनी और रगें बनी हुई होयँ जैसे जाल (अर्थात् नेत्रकी सूक्ष्म स्नायु तन्तुका जाल परस्पर संयुक्त हो) इस प्रकारका घाव बहुतसे पर्दोंको दवा गहरा घाव हो जाता है । इससे नेत्र आरोग्य नहीं होता और इसके उत्पन्न होनेका स्थान पर्दा शव-किया है । इन उपरोक्त कथन किये हुए घावोंमेंसे शीघ्र अच्छा होनेवाला वह घाव है । जो पर्दे मुल्तहिमामें उत्पन्न होय और उसमें दर्द बेचैनी आंसू बहुतही कम होय रोगी नेत्रको वन्द करसके जो ऐसा न हो तो अन्य घाव बहुत बुरा होता है । विशेष करके जो स्याहीमें पुतलीके सामने होय उपाय जिस समय ये चिह्न कि जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है उनका कारण प्रगट होय तो शीघ्र फस्द खोले और रोगीके शरीरकी रक्त स्थितिके अनुसार रक्त मोक्षण करे । हर सातवें रोज अथवा इससे भी प्रथम सरेरू नामवाली नाडीसे थोडा २ खून निकालता रहे और हरड, इमली, अमलतासका काढा

तथा इसी तासीरकी अन्य औषधियोंसे तबीयतको नर्म करे । हरडके काढेमें थोडासा अयारज डालना विशेष लाभदायक है । जुलाव कई बार देवे, जो घाव नेत्रके उस भागमें हो जो कि नासिकाके कोनेकी ओर है तो सोनेके समय इस प्रकारसे सोवे कि वह भाग ऊंचा रहे, जिससे कि घावकी पीव नेत्रके कोएमें हो नेत्रको न बिगाडे । अथवा उस कोयेमें जो कोना कानकी तर्फ है तो ऐसी तरहपर सोवे कि यह कोना तकियेके ऊपर होय कि इस लिये पवि छानकर निकलता रहे । चिल्लाना, वमन, छींक शिर हिलाना शिरहाना नीचा रखना, घनरूप भोजन करना हानिकारक है । इससे रोगीको बचना चाहिये, जो घाव बलवान और माद्दा गर्म जलानेवाला और दर्दके साथ होय तो शियाफे अवियजको अंडेकी सफेदी अथवा स्त्रीके दूधमें घिसकर नेत्रमें लगावे और स्त्रीका दूध व गधीका दूध भी नेत्रमें डालना हित-कारी है । जो घाव शीघ्र न पके तो धोई हुई मेथीका लुआब व अलसीका लुआव अथवा अकली लुलमलिक अर्थात् नारवूनेका पानी नेत्रमें डाले, जिससे शीघ्र पककर पीब प्रगट हो तो घावकी सफाईके लिये शियाफे अवार और जरूरे अंजरूतका प्रयोग करे । पीब गाढी होनेसे निकल न सक्ती होय तो उचित है कि मेथीका लुआव और शहत काममें लावे जिसस पीव पतली व हलकी हो आसानीसे निकल सके । पीब हो जाय और निकल जाय, इसके पीछे निकलकर जब घाव साफ हो जाय तो शियाफे कुंदरू और इसके समान गुणवाली अन्य औषध जो घावको भरनेवाली नूतन मांस उत्पन्न करनेवाली होयँ उनको लगावे, जब घाव भर जाय तो शियाफे अहमरेलय्यन लगाना चाहिये । फिर शियाफे कौहले अगवर लगाना चाहिये, जो आवश्यकता पडे तो सब शियाफे और सुरमोंके पीछे शियाफे अजखर लगाना विशेष लाभदायक है, जो अच्छे होनेके उपरान्त घावका चिह्न रहजाय तो जो जीचें घावके चिह्न और छोटी फुंसीको निवृत्त करनेके लिये उत्तम हैं उनको काममें लिया जावे, कदाचित् घाव बढकर मोरसर्ज हो जाय तो उन औषधियोंसे इलाज करे जो अजीर्ण करने, बल देनेवाली होयँ और खुरखुरापन अधिक उत्पन्न न करें ।

जरूरे अंजरूत बनानेकी विधि ।

नशास्ता २१ मासे, अंजरूत गधीके दूधमें शोधाहुआ, जस्तेका सफेदा प्रत्येक ७ मासे, इन तीनोंको बारीक पीसकर कपडेमें छानकर काममें लावे ।

शियाफे कुन्दुरूके बनानेकी विधि ।

कुंदरू ३ तोले, उपुक अंजरूत, प्रत्येक १७॥ मासे, जाफरान ७ मासे बारीक पीस छानकर मुलहटीके लुआवमें शियाफ तैयार कर नेत्रोंमें टपकावे, जो पुराने

जखम और फुंसी पकानी होय तो पट्टीसे बांधे । नेत्रके पुराने जख्मको हितकारी है नया मांस जमाता है । फुंसियें और पुराने जख्मोंके मवादको पकाता है ।

शियाफ अहमरलय्यनकी विधि ।

सफेदा काशगरी, निशास्ता, सादनज अतसी, अनाविंधे मोती मूंगेकी जड, रूमी सिंगरफ (हिंगुलरूमी) रूस खतज (जलाया हुआ तांबा) अफीम, प्रत्येक ३॥ मासे, सबको बारीक कूट छानकर सुर्मेके समान करके विहीदानेके लुआबमें शियाफ तैयार करे । दर्द और गर्मी सख्तको तस देता है । सुर्खी और नेत्रकी खुजली और घावको अच्छा करता है नेत्रके ढलके नाखूने मोरसरजको अक्सीर है ।

शियाफ अजखरके बनानेकी विधि ।

उपुक, अकलीमियां, रूपैहरी, बबूलका गोंद, सफेदा कासगरी प्रत्येक ७ मासे, जंगाल १०॥ मासे, उपुक और बबूलके गोंदको तितलीके स्वरस व काढेमें हल करके दवाइयोंको कूट छानकर उसमें मिला शियाफ तैयार करे । शियाफ जो कि नेत्रोंके घावको भरता है, सफेदा काशगरी २ तोला ११ मासे, कुंदरूगोंद, अंजरूद प्रत्येक ३॥ मासे अफीम पौने दो मासे कापूर ८ रत्ती ३ चावल भर, सबको कूट छानकर विहीदानेके लुआवमें शियाफ बना स्त्री व गधीके दूधमें घिसकर लगावे ।

(शियाफ कि जो नेत्रके नासूरको निवृत्त करता है) । कुंदरूगोंद, अनारकी कली, अंजरूत, दम्मुलअखवेन, सुर्मा, असफहानि, फिटकरी, प्रत्येक साढे तीन मासे जंगाल छः रत्ती सब दो चावल भर गुलावमें पीसकर सलाई बना स्त्रीके दूधमें घिसकर काममें लावे । शियाफ कि नेत्रोंकी पीडाको तत्काल शान्त करता है, गुलावके फूल चार तोला साढे चार मासे केशर दो तोले चार मासे, अफीम दो तोले ११ मासे, बालछड सात मासे, बबूलका गोंद ३॥ मासे सबको बारीक कूट पीसकर वर्षात्के जलमें विधिपूर्वक शियाफ बना पीडित नेत्रों पर लेप करे ।

(शियाफ जो कि नेत्रकी पुरानी सूजन और घावको भरता है) गुलावके फूल २७ तोला, चांदीका मैल, बवूलका गोंद प्रत्येक ९ तोला ३ मासे, अफीम, सुर्मा, प्रत्येक १३ मासे जंगाल तांबेका सूक्ष्म चूर्ण बालछड प्रत्येक ९ मासे बीजाबोल डेढ तोला सबको बारीक कूट पीसकर वर्षातके जलमें गूंद कर शियाफ बना स्त्रीके अथवा गधीके दूधमें घिसकर काममें लावे । (शियाफ जो कि नेत्रोंकी बुरी गांठ और घावको गुण करती है ।) सोनेका मैल, जस्तेका सफेदा, तांबा जलाहुआ सुर्मा असफहानि बबूलका गोंद, कतीरा, शीश, जलाहुआ प्रत्येक दो तोला चार मासे, बीजाबोल, अफीम प्रत्येक ३॥ मासे सबको कूट छानकर वर्षात्के जलमें सलाई बनावे । शियाफ दवाकी बत्ती अर्थात् सलाईको कहते हैं । और वस्तुके साथ घिस-

कर लगानेको लिखा होय उसमें लगावे, जहां न लिखा होय वहां पर गधी व स्त्रीके दुग्धमें घिसकर लगावे ।

निर्गत नयनकी चिकित्सा ।

नेत्रे विलम्बिनि विधिर्विहितः—
पुरस्ताद्दुच्छिहनं शिरसि वार्य्यवसेचनं च ॥

अर्थ—जो नेत्र बाहरको विशेष निकल आते हैं पूर्व उनकी चिकित्सा इस प्रकारसे करे कि वायुको नलीके द्वारा भीतरको प्रवेश कर शिरपर शीतल जल डाले ।

निर्गत नेत्रोंकी चिकित्सा यूनानी तबीबोंने विशेष विस्तार और सरलतासे लिखी है, उसको नीचे लिखते हैं । नेत्रके बाहर निकलनेके ३ कारण हैं । प्रथम यह कह देना ठीक है कि यह रोग रतूबत जुजाजिया और रतूबत जलीदियासे भी सम्बन्ध रखता है । इसका विशेष वर्णन दूसरी किताबोंमें देखो (जैसा कि तिब्ब अकबर) अब तीन कारणोंको सुनो—प्रथम कारण तो यह कि रीह अर्थात् वातदोष अथवा दूषित मवाद नेत्रके भागोंमें आ जाय, इसके कारणसे नेत्रका ढेला बढकर तथा फूलकर बाहरकी तर्फ झुक आवे और इसका विशेष लक्षण यह है कि ऊंची होने- और उभरनेके साथ नेत्र बडा मालूम होय और जो दोषके कारणसे होय तो, बोझ भी मालूम होय । चिकित्सा इसकी यह ह कि जिस दोषके दूषित मवादसे यह रोग उत्पन्न हुआ होय उसके अनुसार औषधियोंसे जैसे हुकना (गुद) वस्ति अथवा औषधियोंमें रुईका फोहा भिगोकर गुदापर रक्खे और अङ्गोंकी गहराईसे मलके निकालनेवाली औषधका सेवन कराके तथा फस्द और पछनेके द्वारा मवादको निकालनेके पीछे जो वस्तु आंसूको निकालनेवाली मवादको रोकनेवाली और नेत्रोंको दृढ करनेवाली हो उनको नेत्रोंमें लगावे, जिससे नेत्रोंमें बल प्राप्त हो नेत्रके उभर आने और मवादको रुजू होनेसे रोक रखे, जो औषध कि इस रोगमें लगाई जाती हैं । वह शियाफ, सिमाक है, शियाफ सिमाकके बनानेकी विधि इस प्रकार है कि सिमाकको जलमें पकावे और काढा तैयार हो जावे तब छान लेवे । सिर्फ इस काढेको पकाकर गाढा करलेवे, जब गाढा हो जावे तब रांगका सफेदा १ भाग, कापूर चौथाई भाग, कतीरा छठा भाग इन सबको बारीक करके औटाये हुए सिमागमें मिलाकर बत्ती (सलाई) बना लेवे, नेत्रमें विधिपूर्वक लगावे । दूसरा कारण यह है कि जो कारण दबाव डालनेवाले हैं उनमेंसे किसी कारणसे ढेला पर दवाव पड़कर बाहरकी तर्फ निकल आवे वे कारण ये हैं गला घुटना अथवा गलेपर फांसीका झटक लगना, शिरमें दर्दकी अधिकता, वमन विशेष वेगके साथ होना अति जोरसे चिल्लाना, ललकारना, स्त्रियोंकी प्रसव वेदना कोथना (कुनहना)

श्वासका रुकना इत्यादि । इस रोगका विशेष लक्षण यह है कि उसका हेतु वर्त्तमान रोगकी दशामें होय अथवा रोग उत्पन्न होनेसे पूर्व हो चुका होय, ऐसी खिचावट मालूम होय कि कोई नेत्रको पीछेसे धकेल कर बाहरकी तर्फ खींचता है और जो मवाद भी निकलने पर होय तो भी आंख बढीहुई दिखलाई देय । चिकित्सा इसकी यह है कि जो कारणका दूर करना लाभकारी न हो प्रायः कारण निवृत्त हो जाय तो भी नेत्र बाहरकी तर्फ निकला रहे तो शीशेका एक टुकडा जो नेत्रके समान आकृति पर बनाहुआ होय अथवा एक बारीक गफ कपडेकी थैलीमें सुर्मा बारीक पिसाहुआ भरकर गुद्दीके ऊपर और नेत्रोंके ऊपर कसकर पट्टी बांध देवे और रोगीको आज्ञा देवे कि सीधा चित्त शयन करे और मवादके रोकनेवाले तैल जैसे अनारकी छाल अकाकिया अकलील उसारे लहियुत्तीस इत्यादिका सिद्ध कियाहुआ तैल अथवा इन औषधियोंका लेप नेत्रोंपर लगावे और विशेष शीतल जलसे मुख प्रक्षालन करे जिससे नेत्रको बल पहुंचे । और उसके भागोंको एकत्र करके नियत ठिकाने पर बैठाले और संकुचित करे (विशेष शीतल जल भी संकुचित करनेका गुण रखता है, जो कब्ज करनेवाली वस्तु हैं जैसे अनारके फूल जैतूनके पत्र और खसखासके पत्र अफीमके पत्र) इनमेंसे किसी एकको अथवा जितने मिलसके उतनेको जलमें पकाकर उससे मुख और नेत्र प्रक्षालन करे तो अधिक संकुचित (विबन्ध) होता है और शीघ्र लाभ पहुंचाता है । तीसरा कारण नेत्र बाहर आनेका यह है कि नेत्र ढेलेके बन्धन और उन बंधनोंके रक्षक जोड ढीले हो जायँ उसका चिह्न यह है कि नेत्र बढाहुआ न मालूम होय, क्योंकि इसमें अन्दर किसी प्रकारका मवाद भराहुआ नहीं है और न अंदर विशेष खिंचावट है । इसलिये कि उसमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है कि नेत्रको भीतरसे दबाकर बाहरकी ओर उभार देवे । लेकिन यह अवश्य है कि नेत्रके ढेलेमें बेचैनी उत्पन्न होय बेवश फिरने लगे क्योंकि वह बन्धन जो नेत्रके ढेलेको बेचैनी और बेवश चलनेसे बचाये रखते थे और रोकते थे इस समय पर ढीले हो गये हैं । वे रतूबतें जो नेत्रके बन्धनोंको सुस्त करनेवाली हैं उनके निकालनेके लिये अयारजात देवे कुल्ले और सूंघनेवाली वस्तु व बुखूर अर्थात् सूखी दवाको जला करके उसका धूंआ नेत्रमें पहुंचावे । (धूआँ देनेकी विधि शिरोरोगमें वर्णन कर चुके हैं) और मवादके निकलनेके पीछे जला हुआ इमलीका बीज, गुलाबके फूल, अनारके फूल, कुंदरू गोंद, बालछड इनका लेप नेत्रोंपर करे । जिससे कि नेत्रके बन्ध संकुचित होकर नत्र ढेलेको दृढ कर देवें ।

दृष्टिकी निबलताकी चिकित्सा ।

दृष्टिकी निर्बलतासे प्रयोजन यह है कि दृष्टिमें कुछ विघ्न पड जावे जैसे प्रत्येक वस्तु जैसी सूरत शकल (आकृति) की वह है वैसी अच्छी तरहसे पूर्णरूपमें न दीख सके

व इतनी दूरसे दृष्टि काम न कर सके जहांसे अच्छी तरहसे देखना संभव है । यद्यपि समीपसे प्रत्येक वस्तु अच्छी तरहसे दिखाई दे व छोटी वस्तु बडी और बडी वस्तु छोटी हरी वस्तु काली और काली वस्तु हरी सीधी वस्तु टेढी और टेढी वस्तु सीधी दिखाइ देय, इन सब उपद्रवोंको नेत्रकी निर्बलता कहते हैं । नेत्रकी निर्बलताके १२ भेद हैं । एक तो यह कि ठंढी और तर दुष्ट प्रकृति दोष युक्त नेत्रकी दर्शन शक्तिको और दोषोंको गाढा करदेवे, फिर रूहकी प्रकृतिके बिगड जानेसे और नेत्रके कामोंके बदल जानेसे नेत्रकी दृष्टिमें निर्बलता उत्पन्न हो जाय । उसका चिह्न यह है कि गाढे और छोटे छोटे आंसू नेत्रसे टपकें नेत्रके कोएमें थोडासा मैल निकल आवे और आरोग्यताकी अपेक्षा नेत्र बडा दिखाई देवे । परन्तु दर्द और लाली बिलकुल न होय और खाने तथा शयनके उपरान्त मुख्य करके अजीर्णताकी दशामें और आमाशयमें भोजनके बिगड जानेके समय नेत्रकी दृष्टिकी निर्बलता बढजावे । इस कारणसे कि इसमें निर्बलताका कारण रूहका गदलापन है, दृष्टिके कार्य्योंका बदल जाना हुआ करता है । इस लिये जिस वस्तुको देखते हैं उसकी पूरी दशा मालूम नहीं होती और बाहरसे भी करनिया पर्दे और रतूवत वैजियामें गदलापन प्रत्यक्ष होता है, किन्तु गदले होनेक कारणसे नेत्रकी पुतली नहीं दिखाई देती, जो गदलापन केवल नेत्रके छेदके ही सामने हो तो जानना चाहिये कि स्याही रतूवत वैजियामें भी है । चिकित्सा इसकी इस प्रकारसे करे कि दिमागके मवादको निकालनेके लिये दस्तावर गोलियां उचित चीजोंसे कुल्ले करावे तथा वच और मस्तगी चबावे और मवादके निकालनेके पीछे वासलीकून मुमसिक सुर्मा, रोशनाई कवीर (एक प्रकारका सुर्मा है) नेत्रोंमें लगावे । दूसरा भेद यह कि दोष रहित सर्द दुष्ट प्रकृति निर्बलताका कारण होय उसका चिह्न यह है कि नेत्र आरोग्यताकी अपेक्षा छोटा हो जाय कि इस कारणसे सर्दी रतूवतोंको जमा देती है । नेत्रके भागोंको संकुचित करती है और नेत्रका देरमें फिरना खराबी आना इसका चिह्न है । चिकित्सा इसकी यह है कि दिमागकी आरोग्यताके लिये बटेर और मुर्गियोंका मांस भूनकर चने और दालचीनीके साथ पकाकर सेवन करे और वानका (बकायन महानिम्ब) का तैल तथा चमेलीका तैल नासिकामें डाले और गर्म औषधियाँ जो कि जडीबूटी (काष्ठादिक) को जलमें पकाकर भाफ लेवे, इस भफारेकी यह विधि है कि जब पसीना लाना उचित होता है तब रोगीको एक चद्दर जो कि गफ कपडेकी होय उढा देवे, जिस दवाको जलके साथ बन्द मुखके पात्रमें पकाया होय उसका मुख खोलकर भाफ रोगीके शरीरपर देवे और शियाफ अजखर तथा शियाफ असफर रोगीके नेत्रमें लगावे ।

श्वासका रुकना इत्यादि । इस रोगका विशेष लक्षण यह है कि उसका हेतु वर्त्तमान रोगकी दशामें होय अथवा रोग उत्पन्न होनेसे पूर्व हो चुका होय, ऐसी खिंचावट मालूम होय कि कोई नेत्रको पीछेसे धकेल कर बाहरकी तर्फ खींचता है और जो मवाद भी निकलने पर होय तो भी आंख वढीहुई दिखलाई देय । चिकित्सा इसकी यह है कि जो कारणका दूर करना लाभकारी न हो प्रायः कारण निवृत्त हो जाय तो भी नेत्र बाहरकी तर्फ निकला रहे तो शीशेका एक टुकडा जो नेत्रके समान आकृति पर बनाहुआ होय अथवा एक बारीक गफ कपडेकी थैलीमें सुर्मा बारीक पिसाहुआ भरकर गुद्दीके ऊपर और नेत्रोंके ऊपर कसकर पट्टी बांध देवे और रोगीको आज्ञा देवे कि सीधा चित्त शयन करे और मवादके रोकनेवाले तैल जैसे अनारकी छाल अकाकिया अकलील उसारे लहियुत्तीस इत्यादिका सिद्ध कियाहुआ तैल अथवा इन औषधियोंका लेप नेत्रोंपर लगावे और विशेष शीतल जलसे मुख प्रक्षालन करे जिससे नेत्रको बल पहुंचे । और उसके भागोंको एकत्र करके नियत ठिकाने पर बैठाले और संकुचित करे (विशेष शीतल जल भी संकुचित करनेका गुण रखता है, जो कब्ज करनेवाली वस्तु हैं जैसे अनारके फूल जैतूनके पत्र और खसखासके पत्र अफीमके पत्र) इनमेंसे किसी एकको अथवा जितने मिलसके उतनेको जलमें पकाकर उससे मुख और नेत्र प्रक्षालन करे तो अधिक संकुचित (विबन्ध) होता है और शीघ्र लाभ पहुंचाता है । तीसरा कारण नेत्र बाहर आनेका यह है कि नेत्र ढेलेके बन्धन और उन बंधनोंके रक्षक जोड ढीले हो जायँ उसका चिह्न यह है कि नेत्र बढाहुआ न मालूम होय, क्योंकि इसमें अन्दर किसी प्रकारका मवाद भराहुआ नहीं है और न अंदर विशेष खिंचावट है । इसलिये कि उसमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है कि नेत्रको भीतरसे दबाकर बाहरकी ओर उभार देवे । लेकिन यह अवश्य है कि नेत्रके ढेलेमें बेचैनी उत्पन्न होय बेबश फिरने लगे क्योंकि वह बन्धन जो नेत्रके ढेलेको बेचैनी और बेवश चलनेसे बचाये रखते थे और रोकते थे इस समय पर ढीले हो गये हैं । वे रतूवतें जो नेत्रके बन्धनोंको सुस्त करनेवाली हैं उनके निकालनेके लिये अयारजात देवे कुल्ले और सूंघनेवाली वस्तु व बुखूर अर्थात् सूखी दवाको जला करके उसका धूंआ नेत्रमें पहुंचावे । (धूआँ देनेकी विधि शिरोरोगमें वर्णन कर चुके हैं) और मवादके निकलनेके पीछे जला हुआ इमलीका बीज, गुलाबके फूल, अनारके फूल, कुंदरू गोंद, बालछड इनका लेप नेत्रोंपर करे । जिससे कि नेत्रके बन्ध संकुचित होकर नेत्र ढेलेको दृढ कर देवें ।

दृष्टिकी निर्बलताकी चिकित्सा ।

दृष्टिकी निर्बलतासे प्रयोजन यह है कि दृष्टिमें कुछ विघ्न पड जावे जैसे प्रत्येक वस्तु जैसी सूरत शकल (आकृति) की वह है वैसी अच्छी तरहसे पूर्णरूपमें न दीख सके

व इतनी दूरसे दृष्टि काम न कर सके जहांसे अच्छी तरहसे देखना संभव है । यद्यपि समीपसे प्रत्येक वस्तु अच्छी तरहसे दिखाई दे व छोटी वस्तु बडी और बडी वस्तु छोटी हरी वस्तु काली और काली वस्तु हरी सीधी वस्तु टेढी और टेढी वस्तु सीधी दिखाइ देय, इन सब उपद्रवोंको नेत्रकी निर्बलता कहते हैं । नेत्रकी निर्बलताके १२ भेद हैं । एक तो यह कि ठंढी और तर दुष्ट प्रकृति दोष युक्त नेत्रकी दर्शन शक्तिको और दोषोंको गाढा करदेवे, फिर रूहकी प्रकृतिके बिगड जानेसे और नेत्रके कामोंके बदल जानेसे नेत्रकी दृष्टिमें निर्बलता उत्पन्न हो जाय। उसका चिह्न यह है कि गाढे और छोटे छोटे आंसू नेत्रसे टपकें नेत्रके कोएमें थोडासा मैल निकल आवे और आरोग्यताकी अपेक्षा नेत्र बडा दिखाई देवे । परन्तु दर्द और लाली बिलकुल न होय और खाने तथा शयनके उपरान्त मुख्य करके अजीर्णताकी दशामें और आमाशयमें भोजनके विगड जानेके समय नेत्रकी दृष्टिकी निर्बलता बढजावे । इस कारणसे कि इसमें निर्बलताका कारण रूहका गदलापन है, दृष्टिके कार्य्योंका बदल जाना हुआ करता है । इस लिये जिस वस्तुको देखते हैं उसकी पूरी दशा मालूम नहीं होती और बाहरसे भी करनिया पर्दे और रतूवत वैजियामें गदलापन प्रत्यक्ष होता है, किन्तु गदले होनेक कारणसे नेत्रकी पुतली नहीं दिखाई देती, जो गदलापन केवल नेत्रके छेदके ही सामने हो तो जानना चाहिये कि स्याही रतूवत वैजियामें भी है । चिकित्सा इसकी इस प्रकारसे करे कि दिमागके मवादको निकालनेके लिये दस्तावर गोलियां उचित चीजोंसे कुल्ले करावे तथा वच और मस्तगी चबावे और मवादके निकालनेके पीछे वासलीकून मुमसिक सुर्मा, रोशनाई कवीर (एक प्रकारका सुर्मा है) नेत्रोंमें लगावे । दूसरा भेद यह कि दोष रहित सर्द दुष्ट प्रकृति निर्बलताका कारण होय उसका चिह्न यह है कि नेत्र आरोग्यताकी अपेक्षा छोटा हो जाय कि इस कारणसे सर्दी रतूवतोंको जमा देती है । नेत्रके भागोंको संकुचित करती है और नेत्रका देरमें फिरना खरावी आना इसका चिह्न है । चिकित्सा इसकी यह है कि दिमागकी आरोग्यताके लिये बटेर और मुर्गियोंका मांस भूनकर चने और दालचीनीके साथ पकाकर सेवन करे और वानका (बकायन महानिम्ब) का तैल तथा चमेलीका तैल नासिकामें डाले और गर्म औषधियाँ जो कि जडीबूटी (काष्ठादिक) को जलमें पकाकर भाफ लेवे, इस भफारेकी यह विधि है कि जब पसीना लाना उचित होता है तब रोगीको एक चद्दर जो कि गफ कपडेकी होय उढा देवे, जिस दवाको जलके साथ बन्द मुखके पात्रमें पकाया होय उसका मुख खोलकर भाफ रोगीके शरीरपर देवे और शियाफ अजखर तथा शियाफ असफर रोगीके नेत्रमें लगावे ।

शियाफ असफरकी विधि ।

पीली हरडकी छाल, नीलाथोथा (तूतिया) सफेद मिरच, समय अर्वी प्रत्येक १०॥ मासे, केशर ३॥ मासे इन पांचों औषधियोंको कूट छानकर ताजी हरी सोंफके पानीमें सलाई बना लेवे । (शियाफ अजखर, हरी सलाईके बनानेकी विधि) जंगार १०॥ मासे, पीली फिटकरीका फूला २१ मासे, पपडिया नमक, समुद्रफेन, लाल हरताल (मनसिल) प्रत्येक ३॥ मासे, नौसादर १॥। मासे हिन्दी छरीला ४॥ मासे ए सात औषधियां हैं इनमेंसे छरीलाको ताजी तुतलीके पत्रोंका स्वरस निकाल कर उसमें भिगोदेवे, जब भीग जावे तब मसल कर छरीलाका रस तुतलीके स्वरसमें निकाल लेवे । बाकी छः औषधियोंको कूट छान बारीक करके उस स्वरसमें मिलाकर सलाई बना लेवे । तीसरा भेद यह है कि दोषयुक्त गर्म दुष्ट प्रकृति निर्बलताका कारण हो जाय और यह बात प्रगट है कि गर्मी नेत्रकी रतूबतोंको उबाल देती है, बढा देती है । इस कारणसे नेत्रके जोड (सन्धि) खिंचकर बढ नेत्रकी दृष्टि खराब हो जाती है । इसके लक्षण यह हैं कि नेत्र फूलाहुआ रक्तवर्ण और ऊष्ण मालूम होय । चिकित्सा इसकी यह है जो रक्तकी विशेषता होय तो फस्दके जरियेसे रक्त मोक्षण करे हरडके काढेसे कोष्ठको नर्म करे और प्याज गन्दना आदि तथा इसी तासीरकी वातकारक तेज खारी अन्य वस्तुओंका सेवन कदापि न करे, सामान्य विरेचनके पश्चात् आंसू निकालनेवाली दवा नेत्रोंमें लगावे । जैसे कि बरूद हसरमी अथवा अन्य ऐसी ही औषधें ।

बरूद हसरमीके बनानेकी विधि ।

नीलाथोथा, तूतियाको बारीक पीस कर खट्टे अंगूरके स्वरसमें भिगोकर छायामें सुखा लेवे और दूसरे समय बारीक पीसकर सलाईसे नेत्रोंमें लगावे । यदि इस तूतियाके साथमें कोई अन्य औषध मिलानेकी आवश्यकता हो तो वह भी मिल सक्ती है । चौथा भेद यह है कि साधारण गर्म दुष्ट प्रकृति जो विशेष गर्म होय और अङ्गोंपाङ्गोंको गर्म करके उसकी रतूबतोंको सुखा देवे, इस कारणसे मनुष्यको दूरस्थ वस्तु यथावत साफ दिखाई न देवे । इसका लक्षण यह है कि नेत्र दुर्बल होकर भीतरको गड जाता है और नेत्र तथा नासिकासे रतूबत विशेष न्यून निकलती है और भूख अथवा गर्मीके समय व गर्मी आनेके पीछे नेत्रकी दृष्टि विशेष निर्बल हो जाती है । भोजन तथा शयनके पीछे दृष्टिकी निर्बलता कम हो जाती है । चिकित्सा इसकी यह कि सर्दी और तरी पहुंचानेका वह उपाय करे जिनका वर्णन नेत्र रमदमें कथन किया गया है, शीतल तथा तर तैल जैसे बनफशाका तैल व नीलोफरका तैल शिरपर मले और नासिकामें टपका मीठे बदामका तैल नेत्रमें डाले और लडकीकी माता स्त्रीके

दूधकी धार नेत्र खोलकर डाले, जो अंगूरी शराबमें विशेष जल मिलाकर पीवे तो लाभकारी है। शराबमें विशेष जल मिलाकर पीनेका यह प्रयोजन है कि तरी विशेष पहुंच गर्मी कम उत्पन्न होती है। पांचवाँ भेद यह है कि नेत्रमें कोई रोग उत्पन्न न होय किन्तु रोग आमाशमें होय और उससे गाढी भाफ़के परमाणु उठकर दिमागकी ओर चढकर नेत्रकी निर्वलताका:कारण होय। इसके लक्षण इस प्रकारसे हैं कि निर्बलता हर समय न होय किन्तु अजीर्णकी दशामें उत्पन्न हो जाय और भूँखके समय बिलकुल जाती रहे। चिकित्सा इसकी यह है कि आमाशयमें मवाद भराहुआ होय तो उस मवादको मुलायम करके निकालनेका उपाय कर लाभदायक तथा उचित जवारिसोंसे आमाशयको पुष्ट करे। छठा भेद यह है कि स्वाभाविक गर्मी निर्वल हो जाय और कारणसे फोककी रतूवतोंके पकने और ठीक होनेमें हानि उत्पन्न हो बिगड जाय तथा दूषित भाफके परमाणु बढकर दिमागकी प्रकृति और ज्ञानशक्तिमें निर्बलता उत्पन्न कर दें। इस प्रकार रोग प्रायः वृद्ध (जईफ) उमरके मनुष्यके नेत्रोंमें होता है, क्योंकि उमरके अधीन नष्ट हुई वस्तुका पुनः उत्पन्न होना असंभव है। इसी कारणसे शारीरक विद्याके जाननेवाले चिकित्सक इस रोगकी चिकित्सामें प्रवृत्ति नहीं करते, परन्तु डाक्टर लोग इस दशामें उपाय करते हैं और किसी २ रोगीको कुछ लाभ भी पहुंचता है, परन्तु कुछ समयके बाद उसी दशामें रोगी हो जाता है। जैसी कि स्वभावके अनुकूल थी इस विषयमें हमारी भी यही राय है कि इस व्याधिको दुश्चिकित्स्य समझ कर उपाय न किया जाय तो व्याधि स्वाभाविक होनेसे बढती चली जाती है। इस कारणसे उपाय इसका अवश्य करना चाहिये, इसकी चिकित्सा इस प्रकारसे करे कि दिमागको मवादसे साफ करे और मवादके निकल जानेके पीछे शादनज, अतसी, समुद्रफेन पीली हरडकी छाल इनको घिसकर नेत्रोंमें लगावे अथवा इनको समान भाग लेकर सलाई बनाकर स्त्रीके दुग्धमें घिसकर लगावे, इसके लगानेसे नेत्र साफ हो जायगा और सुर्मा तूतिया अथवा अन्य ऐसी ही दवा नेत्रोंमें लगावे, जो बल पहुंचानेवाली होय। नेत्र दृष्टिकी निर्वलता जो अति वृद्धावस्थाके मनुष्योंको हुआ करती है, उसको सर्वथा बे इलाज न समझे, क्योंकि यह रोग केवल वृद्धोंको ही नहीं होता किन्तु जवानोंको भी होता है, परन्तु वृद्धोंका भी उपाय करना उचित है।

सातवां भेद इस प्रकारसे है कि रतूवत वैजियामें गदलापन हो स्वच्छता नेत्रमेंसे न्यून हो जाय और ज्योतिको रतूवत जलीदियासे बाहरकी ओर न निकलने देवे प्रत्येक वस्तुकी सूरत शकलकी अच्छी तरहसे छाया पडनेमें बाधक हो जाय। रतूवत वैजियाके गदले होनेके तीन कारण हैं, एक तो यह है कि वातकारक दोष शरी-

रमें वढ जावें, फिर उस मवादसे वादीके गाढे और काले अंश दिमागकी ओर चढ जायँ और उस जगहसे नीचे उतर कर रतूवत वैजियामें एकत्र हो जावे और अपने गाढेपनके कारणसे रतूवत वैजियाको गैला कर देवे। दूसरे यह कि जवान उमरवाले स्त्री पुरुष विशेष संगम करें इस कारणसे कि भोजनके परिणामका सार भाग सम्पूर्ण शरीरसे और विशेष करके दिमागसे निकल जाता है तो दिमागमें विशेष खुश्की उत्पन्न हो जाती है। क्योंकि नेत्रमें जो तरी और वल है वह दिमागकी तरीसे आता है, इसलिये जिस समय दिमाग खुश्क हो जाता है तब उसके साथ ही नेत्रकी तरी भी खुश्क हो जाती है। इस कारणसे रतूवत वैजिया सुकडकर गाढी हो जायगी और उसका प्रकाश तथा चमक नष्ट हो जायगी। फिर जो खुश्की विशेष होय तो कोई वस्तु दिखलाई न देवेगी और जो खुश्की विशेष कम हो तो ऐसा दीख सक्ता है जैसा एक काला पर्दा नेत्र पर पडा हुआ है। तीसरे यह कि खाने पीनेमें कुपथ्य हुआ होय सदैव रात्रिके समय भोजन करनेसे अथवा अजीर्णके कारणसे व. आहारके न पचनेके कारणसे शरीरमें तरी विशेष उत्पन्न हो जाय रतूवत वैजियाको विशेष गन्दा कर-देवे। इस प्रकारकी नेत्र निर्बलताके चिह्न यह हैं कि रोगीको अपने नेत्रोंके सन्मुख एक काला पर्दा दिखाई देवे और दृष्टि आकाशकी तर्फ देखनेमें पृथिवीकी तर्फ देख-नेकी अपेक्षा अधिक स्वच्छ प्रकाशित होय, क्योंकि प्रायः रोगियोंके नेत्रमें रतूवत वैजि-याका गदला होनाःधूल और सूक्ष्म निकम्मे परमाणुओंके मिलनेसे होता है, इन पर-माणुओंका झुकाव असलमें नीचेकी तर्फ होता है। इस दशामें नेत्रोंको नीचा करनेसे विशेष गदलापन होगा, उसके ऊंचा करनेमें गदलापन न होगा। और जो गदलापन स्त्री संगमकी अधिकतासे होता है उसका हेतु तो प्रगट हो ही चुका है। चिकित्सा इसकी यह है कि जिस रोगीकी प्रकृतिमें मवादकी अधिकता गदलेपनका कारण होय तो अफतीमून और गारीकूनके काढेसे उसको निकाल हानिकारक वस्तुओंका सेवन न करे। जिस रोगीको स्त्री संगम गदलेपनका कारण होय अथवा स्त्रीको पुरुष संगम गदलेपनका कारण होय तो तरी पहुंचानेकी कोशिश करे और पुरुषको स्त्री संगन और स्त्रीको पुरुष संगम त्याग देना उचित है। सब मवादके निकालनेवाली औषधियों तथा आहारसे सावधान रहे। इसका प्रयोज यह है कि इलाज कारणके अनुसार करना चाहिये, चाहे तरी पहुंचाना होय चाहे खुश्क करना होय। आठवां भेद यह है कि रतूवत जलीदियाका गदला हो जाना निर्बलताका कारण होय और इस तरीमें गदलापन आनेका कारण वादीकी वह सडीहुई तरी हुआ करती है, जो दिमागमें वहने लगे और उसमेंसे थोडी रतूवत जलीदिया पर गिरे और उसका लक्षण यह है कि रतूवत जलीदिया गदली होती जाय यहांतक कि एक साथ नेत्रमें

ऐसी स्याही आ जाय कि प्रत्यक्ष सूरतोंकी उसमें परछाईं न पडे, परन्तु इसके अतिरिक्त नेत्रमें नजले और छेदके चौंडा हो जानेका कुछ असर और चिह्न न होय, यदि वादीको औषधियोंसे निकालनेका प्रयत्न किया जाय तो नेत्रकी तरियोंमें प्रकाश आ जाय और अंधेरा कम हो जाय। चिकित्सा इसकी यह है कि प्रथम तो वातनाशक उत्तम भोजनोंका करना उचित है और रतूबत जलीदिया, रतूबत वैजियाके गदला होनेका वर्णन उनके प्रकरणमें अवलोकन करके उपाय करे, यहांपर उसका प्रसंग लिखना असाध्य है। नवमा भेद यह है कि प्रत्येक वस्तु अपने प्रमाणसे छोटी माल्म होय यद्यपि वह समीप ही होय और समीप होनेका नियम इस लिये लगाया गया है कि विशेष दूरसे तो वडी वस्तु छोटी माल्म हुआ करती है, इसका कारण यह है कि प्रकाशवाही नल दब कर छोटा हो जाय नेत्रके पोले पट्ठोंके दब जाने व तंग होजानेके तीन कारण हुआ करते हैं। एक तो सूजन, दूसरा गांठ, तीसरा खुश्क हो जाना। यह तो प्रगट है कि जब नेत्रका प्रकाशवाही नल तंग हो जाता है तो स्वाभाविक प्रकाश अपनी निजदशा पर नहीं निकलता, किन्तु जितना मार्ग छोटा हो जाता है उतना ही बारीक हो जाता है। इस कारणसे प्रत्येक वस्तु अपने निज प्रमाणसे छोटी दिखाई देती है और यह अन्तर कि नेत्रकी दृष्टिका सूक्ष्म हो जाना नेत्रके तीसरे पर्देके छेदके छोटे हो जानेसे है। अथवा नेत्रके प्रकाशवाही नलके छोटे होनेसे है, तो वह ऐसा होता है कि यदि नेत्रके तीसरे पर्देके छेदके छोटे हो जानेके कारणसे दृष्टि सूक्ष्म होती है तो उसमें प्रत्येक वस्तु अपनी निजदशा पर दिखाई देती है। क्योंकि दृष्टि नेत्रके छिद्रमें छोटा मार्ग हो जानेके कारणसे प्रायः संकुचित (सुकुडीहुई) कम होती है। परन्तु जब जगह बदल कर उस जगह जाती है, जहां दोनों नल मिलते हैं और इसको मजमेंउन्नूनर अर्थात् (ज्योति संयोग) कहते हैं तो फिर अपनी स्वाभाविक दशापर आ जाती है तो इस कारणसे पट्ठा आरोग्य है, प्रत्येक वस्तु अपने प्रमाण पर दिखाई देती है। चिकित्सा इसकी यह है कि जो पट्ठेके दब जानेका कारण खुश्की होय तो पट्ठेको खींच कर दबा दे और उसकी पोलको अधूरी गांठसे ऐसी तरह पर बन्द कर देवे कि विलकुल बंद न होय तो तरी पहुँचानेका यत्न करे। यदि पट्ठेके दब जानेका कारण तरी होय तो उसके सुखाने और निकालनेका यत्न करे, यह सामान्य बात ह कि उक्त तरी सूजन उत्पन्न करे या न करे। परन्तु जो तरीका माद्दा विना सूजनके होगा तो पट्ठेमें ढीलापन होगा, इस कारणसे उसके कोई २ भाग आपसमें ऐसी रीतिसे मिल जावेंगे कि पट्ठेकी राह विलकुल बन्द न होय, क्योंकि जो सबका सब बन्द हो जाय तो इस स्थिति पर मनुष्य बिलकुल दृष्टिहीन होकर अंधा हो जाता है और वह अन्धा ऐसा होता है कि जैसे नजलेसे हुआ करता है।

इकका विशेप विषय नजलेके प्रकरणमें देखना उचित है, जो तरी सूजन उत्पन्न करनेवाली है तो समीपवाले अङ्गों सहित पट्टेके भागोंका सूजना पट्टेके रास्तेमें तङ्गी कर देता है। दशवां भेद यह है कि छोटी वस्तु बडी दिखाई देवे, यद्यपि वह बहुत समीप होय और न बहुत दूर होय क्योंकि जो वह वस्तु अधिक समीप होय तो प्रत्येक मनुष्यको बडी दिखाई देवे, जैसे कि अंगूठीको नेत्रके अति समीप लाकर देखा जावे तो कंकणके समान दीखती है और छोटी वस्तु जो मध्यम दूरीसे बडी दिखलाई देवे तो उसका कारण यह है कि तर गाढा और साफ शरीर पानी बिल्लौर और उजले दर्पणकी तरह दृष्टि और दृश्य पदार्थके मध्यमें अड जाता है। तब उस शरीरके कारणसे नेत्रकी ज्योति टेढी हो जाती है और जब ज्योति टेढी हुई और उसकी किरणोंने प्रत्येक ओर (तर्फ) टेढे होकर शक्ति पाई तो प्रत्येक वस्तु बडी दिखाई देने लगती है। इसी कारणसे शीतकालकी ऋतुमें वायुके गाढे होनेसे तारागण बडे २ दिखलाई देते हैं, दराहम (स्वच्छ जलकी गहराई) में स्वच्छ अक्षर बिल्लौरके नीचे बडे २ मालूम होते हैं। यहांतक कि हकीमलोग इसी लिये नेत्रकी दृष्टिकी निर्बलतामें ऐनक (चस्मे) का शहारा पकडनेकी आज्ञा देते हैं। चिकित्सा इसकी यह है कि आमाशय और शिरको साफ करनेके लिये अयारजात देवे (इसके प्रयोग शिरोरोगमें लिखे गये हैं) इसके सेवनसे वह मवाद और तरी जो रोगके उत्पन्न होनेका कारण है निकल जावेगी। इसके पीछे नेत्रोंके पर्दोंको स्वच्छ करने और आंसू निकालनेके निमित्त सुर्मे वासलीकून तथा ऐसेही अन्य सुर्मे काममें लावे, इससे वह भाफवाली वस्तु जो बीचमें आ गई है सब निकल जावे।

सुर्मा वासलीकून बनानेकी विधि।

समुद्रफेन, (झाग), चांदीका मैल प्रत्येक ३९ मासे, मामीरा, हल्दी प्रत्येक १० मासे, तांबा जला हुआ, नमकसंग, तेजपत्र, सीसेका सफेदा, काली मिर्च, पीपल बालछड, नीलाथोथा प्रत्येक ७ मासे हरडका छिलका, खानेका नमक, शियाफे मामीसा प्रत्येक १।७ मासे कस्तूरी १॥ मासे इन सबको बारीक पीस बारीक कपडेमें छानकर नेत्रोंमें लगावे, वासलीकूनका अर्थ राजा . बादशाहोंके योग्य दवा है। ग्यारहवाँ भेद नेत्रदृष्टिकी निर्बलताका यह है कि नेत्रोंकी आरोग्यताके समयमें जितनी दूरसे नेत्रके देखनेवाली शक्ति उत्तम रीतिसे देखती थी वह अच्छी तरहसे प्रत्येक पदार्थके रूपको यथावत न देख सके और निर्बल हो जाय परन्तु समीपमें देखनेसे किसी प्रकारकी हानि प्रगट न होय तो उसका कारण यह है कि नेत्रके देखनेवाली शक्ति थोडी और पतली हो जाती है। क्योंकि पतली होनेके कारणसे दूरतक अपनी असली दशाके अनुसार नहीं फिर सकती और फैल

जाती है तो फिर उसके कार्य्यमें निर्बलता और न्यूनता आ जाती है इस रोगका अच्छा होना कठिन है। चिकित्सा इस रोगकी यह है कि शरीरमें तरी पहुंचानेके लिये बकरी और भेडके बच्चे व मोटी मुर्गियोंका मांस तथा अधभुने मुर्गीके अण्डे खिलावे। गुनगुने मीठे जलसे स्नान किया करे। तर तैल जैसे नीलोफरका तैल व कद्दूका तैल शिरपर मले, इसका प्रयोजन यह है, जो उपाय इस नेत्ररोगीकी प्रकृतिके अनुकूल पडे वैसाही यत्न चिकित्सक अपनी बुद्धिसे करे। इस रोगका बारहवां भेद यह है कि दूरसे समीपकी अपेक्षा सबसे अच्छी तरह दिखाई देवे। इसका कारण यह है कि नेत्रके देखनेवाली शक्तिमें भाफके परमाणु मिले रहते हैं सो जितनी दूरतक दृष्टि फिरती है वे भाफके परमाणु जो उसमें मिले हुए होयँ बिलकुल नष्ट हो जाते हैं, इस कारणसे नेत्रके देखनेवाली शक्ति अच्छी तरह पूर्णरूपसे देख सक्ती है। समीपकी वस्तुके देखनेमें वे परमाणु फैल नहीं सक्ते इसी कारणसे समीपकी अपेक्षा दूरस्थ वस्तु पूर्णरूपसे यथावत् दीखती है। चिकित्सा इसकी यह है कि मवादके निकालनेके लिये अयारज फैकरा सेवन करावे, जो आहार शरीरमें तरी बढाते हैं उनको छोडदेवे और ज्योति बढानेवाला सुर्मा नेत्रोंमें लगावे। पीछेके चार भेद तिमिररोगसे मिलते हैं इनमें नेत्रोंके सामने मच्छर भिनगे और सूक्ष्म कणसे उडते हुए भी मालूम होते हैं, वे सब दूषित भाफके परमाणु दृष्टिके समक्ष आते हैं उस समय ऐसा दीखता है।

अन्धकारमें रहनेसे दृष्टि नष्टकी स्थिति।

इस नेत्रव्याधिके दो भेद हैं एक तो यह कि विशेष समयपर्यन्त मनुष्य अँधेरे स्थानमें और प्रकाशको न देखे इस कारणसे नेत्रकी वह तरी और निकम्मे भाफके परमाणु जो प्रकाशमें फैलकर निकल जाया करते थे वे न निकलें तो अवश्य इस कारणसे कि जो कारण भाफके निकम्मे और गाढे परमाणुओंका फैलाने और नष्ट करनेवाला था न रहा तो नेत्रकी दृष्टि गदली हो जायगी और नेत्रका प्रकाश गाढा होगा और गाढी रतूवतके एकत्र हो जाने और स्वाभाविक तरीके गाढे हो जाने और नेत्रके पर्दोंके संकुचित (सुकड) जानेसे नेत्रकी प्रकाशवाही ज्योतिके रास्ते बंद हो जाते हैं और फोकोंके एकत्र होनेसे रतूवत वैजिया गाढी गदली और काली हो जाती है और नेत्रकी दृष्टिको रोकती है। दूसरा भेद यह कि कोई मनुष्य विशेष समयपर्य्यन्त अंधेरी जगहमें बैठे और उस जगहसे एक साथ बाहर निकल आवे इस कारणसे नेत्रकी ज्योति जो प्रकाशको ढूंढती है विशेष शक्तिके साथ नेत्रसे निकले, जिससे बाहरके प्रकाशमें जा मिले, क्योंकि प्रकाश विशेष बलसे निकलता है। इस लिये नेत्रका प्रकाशवाही छिद्र विशेष चौंडा हो जाता है, जब नेत्रका छिद्र विशेष चौंडा होगा तो प्रकाश

फैल जायगा और सूरजका प्रकाश भी उस नेत्रकी दृष्टिकी ज्योतिको जो कि निर्वल हुआ करती है आकर्षण करता है, जैसा कि दीपकके प्रकाशको उसकी न्यूनता और निर्वलताके कारणसे कम हो जाती है। चिकित्सा इस रोगकी यह है कि नेत्रोंमें ज्योतिका गदला होना व दृष्टिग्राही मार्गोंका बन्द हो जाना व रतूबत वैजियाका काला होना ये दृष्टिके नष्ट होनेके कारण होयँ तो इन दोषोंको निकालनेवाला सुर्मा जैसे वासंलीकून और सियाफ मिरारात व अन्य ऐसेही सुर्मा नेत्रोंमें लगावे और ऐसे भोजन और माजूनका सेवन करावे जो मवादको हलका और शुद्ध करनेवाली होय। जिस रोगीकी दृष्टि अन्धकारसे निकलकर एकदम प्रकाशमें आनेसे हुई होय उसका उपाय यह है कि सूरजके प्रकाशकी ओर न देखे और एक नीला दुपट्टा अपने नेत्रोंपर डालकर ढांके रहे, शीशेको रेतीसे रेतकर उसके चूर्णको देखता रहे, उत्तम आहारका सेवन करे, रात्रिके समय भोजन न कर पुरुष स्त्रीसंगम और स्त्री पुरुष संगमसे बचती रहे।

शियाफ मिरारातकी विधि।

कुलंगका पित्ता, माहिये शब्बूतका पित्ता, (यह एक जातकी मछली है) जंगली बकरीका पित्ता, बाजका पित्ता, चकोरका पित्ता, उकाबका पित्ता इन छः पित्तोंको समान भाग लेकर सुखालेवे और इन्द्रायणका गूदा मुकवनिज फरफयून प्रत्येक साढे तीन मासे उसमें मिलाकर बारीक पीसकर सोंफके स्वरस व काढेमें गूंदकर बत्ती बना काममें लावे।

दिवस और रात्रिअन्धपर अंजन।

आम्रजम्बूद्भवं पुष्पं तद्रसेन हरेणुकाम्। पिष्ट्वा क्षौद्राज्यसंयुक्तां प्रयोज्यमथवाञ्जनम्॥ नलिनोत्पलकिञ्जल्कगैरिकैर्गोशकृद्रसैः। गुटिकांजनमेतद्वा दिनरात्र्यन्धयोर्हितम्॥ रसांजनरसक्षौद्रतालीशस्वर्णगैरिकम्। गोशकृद्रससंयुक्तं पित्तोपहतदृष्टये॥ शीतं सौवीरकं वापि पिष्ट्वाथ रसभावितम्। कूर्मपित्तेन मतिमान् भावयेद्रौहितेन वा। चूर्णाञ्जनमिदं नित्यं प्रयोज्यं पित्तशान्तये॥ काश्मरीपुष्पमधुकदार्वीरोध्ररसांजनैः। सक्षौद्रमंजनं तद्वद्धितं नेत्रामये सदा॥ स्रोतोजं सैंधवं कृष्णां रेणुकाश्चापि पेषयेत्। अजमूत्रेण ता वर्त्यः क्षणदान्ध्यांजने हिताः॥

अर्थ—आम और जामनके फूलोंके रसमें रेणुकाको पीसकर रसक्रियाकी रीतिसे पकाकर शहत और घृतमें मिलाकर अंजन करे। अथवा नील कमल और कमलकेशर

(कमलके फूल और फूलका जीरा) सोनागेरू और गौके गोबरका रस इन सबकी गुटिका बनाकर गोबरके रसमें घिसकर नेत्रोमें अंजन करे तो पित्त और कफसे विदग्ध दृष्टिका रात्रिअन्ध और दिनान्ध दोनों रोग निवृत्त होते हैं ।

दिनान्धमें चूर्ण ।

साफ रसौत, आंवलेके पत्रोंका स्वरस, शहत, तालीशपत्र, स्वर्णगेरू, गौके गोबरका रस इनसे सिद्ध हुआ अंजन पित्तविदग्ध दृष्टिमें हितकारी है । अथवा भीमसेनी कर्पूर, सौवीरांजन इनको पीसकर मांसरसकी भावना देवे, इसके बाद कछुएके पित्तेकी भावना दे बाद रोहूमछलीके पित्तेकी और इसके बाद गौके गोबरके रसकी भावना देकर यहां-तक मर्दन करे कि मर्दन करते २ सूख जावे । यह नित्यप्रति लगाया हुआ अंजन पित्तविदग्ध दृष्टिकी शान्तिके लिये अति उत्तम है ।

दिवान्धमें कल्कांजन ।

खंभारीके फूल, मुलहटी, दारुहल्दीकी छाल, पठानीलोध, साफ रसौत इनको बारीक पीसकर शहत मिलाकर लगावे तो दिनका अन्धपन निवृत्त होय । अथवा साफ रसौत, सेंधानमक, पीपल, रेणुका इनको बकरीके मूत्रमें पीसकर नेत्रोंमें लगावे तो रतोन्ध निवृत्त होय ।

यूनानी तिब्बवाले तबीब लोगोंने अशाका अर्थ सबकोरी और सबकोरीका अर्थ रतोंध माना है, यह रतोंध इस प्रकारसे है कि रात्रिके समय नेत्रकी ज्योति बेकाम हो जाती है, यहांतक कि तारागणको भी न देख सके । और दिनके समय ज्योति अपनी ठीक दशापर आ यथावत् सब पदार्थोंको देखे । जब सामके समय सूर्य्य अस्त होने लगें तो नेत्रकी ज्योतिमें निर्बलता मालूम होने लगे और कोई तबीब यह कहते हैं कि जिस समय रतोन्ध इस दर्जेको पहुंचे कि दिनको बादल होनेके समय भी न देख सके उस समय उसका नाम अशा अर्थात् रतोंध होता है । इस रोगके तीन कारण हैं । एक तो यह कि देखनेवाली रूह जिसको रूहवासरा कहते हैं, गाढे और निकम्मे भाफके परमाणु-ओंके कारणसे गाढी हो जाय और भाफके परमाणु चाहे दिमागमें उत्पन्न होयँ चाहे आमाशयसे दिमागकी ओर चढकर जायँ इन दोनों कारणोंमें यह अन्तर है कि जो भाफके परमाणु दिमागमें उत्पन्न होंगे तो सबकोरी अर्थात् रतोंध एक दशापर ठहरी रहेगी । यदि आमाशयसे भाफके परमाणु चढकर आते होयँ तो आमाशयके हलके-पनमें रतोंधकी व्याधि हलकी हो जायगी और आमाशयके भारीपनमें बढ जायगी । दूसरे यह कि किसी कारणसे नेत्रके भागोंमें विशेष रतूवत अर्थात् तराई आ जाय और रतूवत बैजिया गाढी हो जाय, इन दोनोंमें यह कारण है कि दिनकी हवा रात्रिकी हवाकी अपेक्षा सूर्य्यके प्रकाशके कारणसे गर्म और हलकी हो जाती है । इस कारणसे

दिनमें रूह और रतूबत वैजियाके गाढापन और नेत्रकी रतूबत अथात् तराईमें हलकापन आ नेत्रकी ज्योति अपनी दशापर रहती है । इस कारणसे कि रात्रिकी हवा तर और गाढी होती है वह रतौंधका कारण (अर्थात्) नेत्रकी रतूबतोंके गाढा होनेकी सहायता करती है तो नेत्रके देखनेवाली शक्ति जिसको (फारसीमें कुव्वते वासरा) कहते हैं अपने कामसे रह जाती है। तीसरे यह कि मनुष्यको सदैव धूपमें रहनेका काम पडे और सूर्य्यका प्रकाश नेत्रकी देखनेवाली शक्तिमें हलकापन और नर्मी जो स्वाभाविक है वह नष्ट हो विशेष गाढी हो जावे और जव रात्रि आवे तो रात्रिकी शीतल हवा रूहको अधिक गाढा कर कोई वस्तु दिखलाई न देवे और कारण प्रथम हो जाना और जो चिह्न कि विद्यमान हैं वे प्रत्येक कारणको प्रत्यक्ष करते हैं । यह ध्यान रखना चाहिये कि प्रायः रतौंध वडे २ नेत्र और काली पुतलीवालोंके नेत्रोंमें उत्पन्न होता है ।

चिकित्सा—इसकी यह है कि जिस मौकेपर माद्देका निकालना आवश्यक समझा जावे तो अयारजातका सेवन कराके निकाल देवे और कुल्लोंसे भी निकल सक्ता है । भाफके परमाणु और रतूवत और तरियोंको हलका और साफ करनेके लिये काली मिरच, नकछिकनी, जुन्देवेदस्तर, एलवा छींक लानेके वास्ते काममें लावे, अथवा सोंफ, सोया, वावूना, कैसून, दोनामरुवा, नम्माम, तुतली इनको पकाकर भाफ लेवे, वकरीकी कलेजी, सोंफ इनको पीपलके साथ मिलाकर वन्द मुखकी हांडीमें जलके साथ पकाकर इसकी भाफ शिरपर लेवे तो अधिक गुणकारी है । वकरीकी कलेजीको अंगारपर रखके भूने और उसके धूएँकी भाफ लेवे तो उपरोक्त गुण करती है । रोगीके खानेमें हींग, पोदीना, राई, सातर ये विशेष मिलावे । जंगली वकरीकी कलेजी अग्निके ऊपर रखकर काली मिर्च और सोंफ कूटकर उसके ऊपर डाले जिससे जो तराई कलेजीमेंसे निकलती है यह दवायें उसको शोपण कर लेवें फिर उन दवाइयोंको कलेजीके ऊपरसे उतार वारीक करके सुर्मेके समान वनाकर नेत्रोंमें अंजन करे । पीपल तथा वचको वकरीकी कलेजीमें मिला करके पीस लेवे और अग्निपर रखके भूने, जव उसमेंसे तराई निकले उसको लेकर नेत्रोंमें लगावे इसका अद्भुत गुण है । जिस रोगीको रक्तकी अधिकता होय तो सराारू और नेत्रके कोएकी रगकी फस्द खोले तो अति लाभ पहुँचता है । जिसके नेत्रोंमें नेत्रके देखनेवाली रूहका गाढा हो जाना धूपमें ठेहरनेके कारणसे रोगका कारण होय तो उसका उपाय तरी और गर्मी पहुँचा निकम्मे भोजनोंसे जो मवाद गाढा करते हैं वचना चाहिये ।

दिनान्धकी चिकित्सा ।

यह व्याधि रतौंधके विरुद्ध है इस व्याधिके उत्पन्न होनेपर दिनमें कुछ दिखाई

आकृति- २१ (पृ०१३४) चित्र- योनिविस्तारक नलिकायंत्र।

आकृति-२२ (पृ०१५४) चित्र-संन्धिवाली इन्डिया रवरकी. पिचकारी।

आकृति- २३ (पृ०१५४) चित्र-वेसन्धिकी सलंग इन्डिया रवरकी पिचकारी।

आकृति-२४ (पृ०१५७) चित्र- हैपरनी प्रोव.
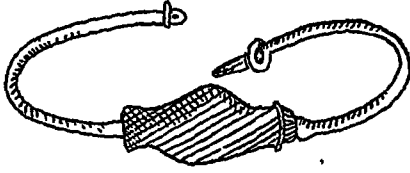
आकृति- २५ (पृ०१६३) चित्र- गर्भाशयमें प्रवेश करनेका नलिका यन्त्र।

आकृति-२६ (पृ०१६३) चित्र गर्भाशयमें औषध लगानेकी शलाका।
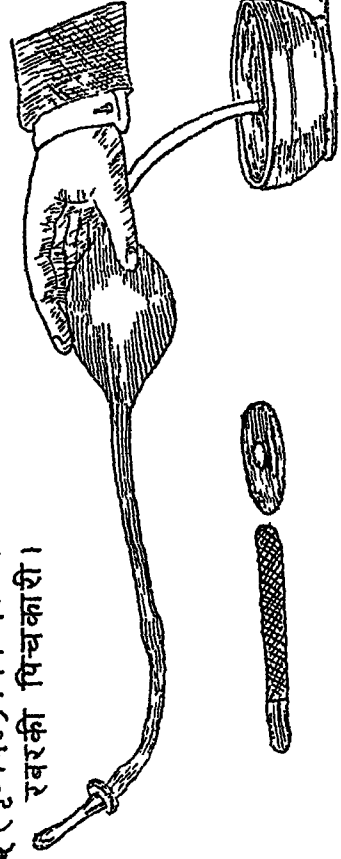
आकृति-२७ (पृ०१७४) चित्र- गर्भाशयके अन्दर ऊपरके भागमेंसे उत्पन्न हुई श्वेत तन्तुमय ग्रन्थि।

आकृति-२८ (पृ०१७४) चित्र- गर्भाशयके आगेके बाह्य भागमेंसे उत्पन्न हुई श्वेत तन्तुमय ग्रन्थि।

आकृति-२९ (पृ०१७५) चित्र-गर्भाशयके अन्दर ऊपरके भागमेंसे उत्पन्न हुआ और गर्भाशयके बाहरतक लटकनेवाला मस्सा।

नहीं देता और रात्रिमें तथा अभ्र बादलवाले दिनमें दीखने लगता है। दिनमें न दीखनेका यह कारण है कि नेत्रकी देखनेवाली रूह कम और पतली हो जाय इस कारणसे कि सूर्य्यकी गर्मी उसको नष्ट कर देवे और दिनमें नेत्रकी ज्योति काम न दे सके। रात्रि तथा बादलवाले दिनमें सर्दीके कारणसे रूहके एकत्र हो जानेके कारणसे नेत्रके देखनेवाली शक्ति अपनी असली स्थितिपर आकर यथावत् काम देने लगे, कोई २ तबीब कहते हैं कि जहर (दिनान्धका कारण) एक तीक्ष्ण दोष है, जे. मनुष्यके दिमागमें आ अपनी तेजीसे दिमागवाली रूहको बिगाड देता है। फिर दिनकी गर्मी उसकी गर्मीको और भी बढा नेत्रके देखनेवाली शक्तिको नष्ट कर देती है। चिकित्सा इसकी यह है कि दिमागमें अन्दर और बाहरसे तरी पहुँचानेका उपाय करे जैसे लडकीकी माता स्त्रीका दूध, वनफशाका तैल कद्दूका तैल इनमेंसे किसी एकको नाकमें डाले और रीवासका पानी (स्वरस) रीवास एक प्रकारकी घास है उसका लाल फूल होता है। शर्बत नीलोफर, शर्बत वनफशा अथवा अन्य ऐसी ही दवा पिलावे और शीतल जलमें डुबकी लगाकर जलके अन्दर नेत्र खोल देवे। रूहको गाढा करनेके लिये गाढे करनेवाले भोजन जिनसे रक्त गाढा उत्पन्न हो आहारको देवे। जैसे रोटी, पूडी, हलवा और भी ऐसीही वस्तु देवे। आयुर्वेदके अनुभूत प्रयोग जो कि रतौंधमें शीघ्र लाभ पहुंचाते हैं जैसा कि—

विपाच्य गोधायकृदर्द्धपाटितं सुपूरितं मागधिकाभिरग्निना। निषेवितं तत्सकृदंजनेन निहन्ति नक्तान्ध्यमसंशयं खलु। तथा यकृच्छागभवं हुताशने विपाच्य सम्यग् मगधासमन्वितम्। प्रयोजितं पूर्ववदाश्वसंशयं जयेत्क्षपान्ध्यं सकृदञ्जनान्नृणाम्। प्लीहायकृच्चाप्युपभक्षिते उभे प्रकल्प्य शूल्ये घृततैलसंयुतम्। ते सार्षपस्नेहसमायुतेऽञ्जनं नक्तान्ध्यमाश्वेव हतः प्रयोजिते॥

अर्थ—गोहके यकृत् (कलेजे) को आधा चीरकर उसमें पीपल भर देवे और ऊपरसे कपडा मिट्टी करके मृदु अग्नि (भूभल या गर्म बालूमें भुर्तेके माफिक) पकावे और पीपलोंको निकालकर पीस उत्तम शहतमें मिलाकर नेत्रोंमें काजलके समान लगावे तो रतौंध अति शीघ्र नष्ट होता है। अथवा बकरेके यकृत्में पीपल भरके उपरोक्त प्रयोगके समान पका अंजन करे तो शीघ्र रतौन्ध निवृत्त होय। अथवा गोह और बकरेकी यकृत और प्लीहाको घृत तैलमें मिलाकर शूल पाककी विधिसे पका लेवे फिर इसमें सरसोंका तैल मिलाकर नेत्रोंमें अंजन करे तो रतौंध शीघ्र नष्ट होता है।

नेत्रोंमें किसी बाह्य वस्तुके गिर जानेका उपाय ।

नेत्रोंमें कोई वस्तु गिर जावे उसके पहचाननेकी यह रीति है कि जिस समय धूल और वायुके पहुँचनेके पीछे नेत्रमें छिलन मालूम होय और आंसू निकलने लगें इससे पूर्व किसी प्रकारका कष्ट नेत्रोंमें न होय तो जान लों कि कोई बाह्य वस्तु नेत्रमें गिर पडी है । उपाय इसका यह है कि नेत्र थोडे गर्म जलसे प्रक्षालन करे परन्तु हाथसे कभी न मले और स्त्रीके दूधकी धार डाले, जो कोई वस्तु धूंआ धूलके द्वारा नेत्रमें गिरी होय तो इसी उपाय करनेसे नेत्रोंमेंसे निकल जावेगी । यदि न निकले तो नेत्रके पलकको उलटकर नेत्रके अन्दर और दोनों पलकोंकी जडमें ध्यानसे देखे कि गिरी वस्तु किस ठिकानेपर है, वह वस्तु जो दिखलाई दे जावे तो सलाईके शिरेसे उठा लेवे । अथवा सलाईमें रुईका फोहा लपेटकर जलमें भिगोकर नेत्रमें रक्खे थोडी देरतक उसके रखनेसे वह वस्तु रुईके फोहासे आ लगेगी । फिर उस फोहेको एकदम उठा लेवे वह गीरी हुई वस्तु विशेष ऊपर होय और पर्दे मुल्तहिमामें या पलकके भीतर न घुसगई होय तो अलसीके पीछे भागके समान आकृतिवाली सलाई अथवा रुई तथा कोमल कपडेकी वत्तीसे उठा लेवे, जो अधिक भीतर घुस गई होय और उपरोक्त उपायोंसे न निकले तो उचित है कि निशास्ता व अलसीको बारीक पीसकर उसका लुआब निकालकर नेत्रमें डाले और थोडे समय पर्य्यन्त वहीं रहने देवे, जो वस्तु नेत्रमें गिर गई है वह इस लुआबसे चिपट आवेगी फिर उसको रुईकी वत्तीसे निकालकर नेत्रको साफ कर देवे । कभी २ ऐसा होता है कि नेत्रमें गिरी हुई वस्तु दिखलाई नहीं देती लेकिन उसकी चुभन मालूम होती है, जो गिरी हुई वस्तु मोटी है तो चुभन अधिक होगी और जो बारीक होयगी तो चुभन कम होयगी । यदि बारीक वस्तु होय तो अंगुलीपर बारीक कपडा लगाकर उसके सहारेसे उसको उठा लेवे, कपडा ऐसा कोमल होना चाहिये कि पलक और नेत्रपर फेरनेसे उसको सद्मा न पहुंचे । जिस नोकेपर कोई खुरदुरी वस्तु नेत्रमें जा गिरे जैसे कि जौ गेहूंकी बालका तिकुर अथवा धनादिका छिलका काच कंकड पत्थरका टुकडा व ठीकरी आदि अथवा किसी धातुका रवा इनमें कोई वस्तु गिरकर नेत्रके किसी भागमें चिपट गई होय तो इस मौकेपर गोल नोकवाली चीमटी आदि औजारसे पकडकर उठा लेवे, शल्यको निकालनेके बाद स्त्रीका दुग्ध व अण्डेकी सफेदी नेत्रमें डालनी चाहिये कि नेत्रको कुछ हानि पहुँची होय वह ठीक हो जावे ।

नेत्रमें जन्तु गिर जानेका उपाय ।

नेत्रोंमें एक इस प्रकारका जानवर गिरता है जो कि मच्छरकी सूरतसे मिलता

जुलता है और आकारमें मच्छरसे कुछ छोटा होता है, ऐसे जानवर प्रायः सायंकालके समय वडी तेजीसे उडते हैं और वर्षांतकी ऋतुमें अथवा बागबगीचोंमें अधिक होते हैं। तेजीसे उडता हुआ जानवर मनुष्यके खुले हुए नेत्रोंमें जा गिरता है, जिस समय यह जन्तु नेत्रमें गिरता है तो नेत्रकी पुतलीपर चिपट जाता है और नेत्रके ढेलेको चूसता है। इस कारणसे नेत्रको अधिक कष्ट पहुँचता है और नेत्रमें झलझलाहटसा मालूम हो नेत्र लाल हो जाता है, मनुष्य उसी समय नेत्रको हाथसे मल देता है तो वह जन्तु मर जाता है और जो नेत्रको न मला जावे तो कुछ समयतक जीवित रहता है। (इस जन्तुके निकालनेकी दो तर्कीबें) हैं एक तो यह कि जन्तु मरकर कोएकी ओर आ गया होय तो रूईकी बत्ती व सलाईसे उसको निकाल लेवे, जो जन्तु पलकके अन्दर चढ गया होय तो पलक लौटाकर उसको रुई व कपडेकी बत्तीसे निकाल लेवे। यदि जन्तु पुतलीपर चिपट रहा होय तो एक सलाई ऐसी लेवे जो कि भोथरे कंगूरेवाली होय और बीचमें छेद होय सलाईके कंगूरेसे जन्तु छुटाकर और उसके छेदमें अटकाकर खींच लेवे। इस उपायसे कदाचित् न निकले तो अलसीका लुआब अथवा निशास्ता व दूधकी मलाई भर थोडे समयको नेत्र बन्द करके रहने देवे। इस उपायसे जानवर नेत्रमें भरी हुई वस्तुमें आ लगेगा। फिर उस भरी हुई वस्तुको निकालकर नेत्रको साफ कर देवे। एक उपाय यह भी है कि जानवर पडतेही नेत्र खोल देवे और दूसरा मनुष्य नेत्रमें फूंक लगावे तो जानवर उसी समय उड जाता है।

नेत्रके श्याम भागमें सफेदी (व्याज–फूला)।

नेत्रके श्याम भागके ऊपर जो श्वेत दाग उत्पन्न होता है वह दो प्रकारसे है। एक तो यह कि करनिया पर्देके ऊपरके स्थानपर बहुतही पतला उत्पन्न होय और इस प्रकारकी सफेदीको अब्र व गमाम अर्थात् बदली व सहाब भी कहते हैं। दूसरा वह कि जो करनिया पर्देकी गहराईमें उत्पन्न होय और इस भांतिकी सफेदीके सिवाय व्याज व सफेदीके और कुछ नाम नहीं हैं। इस रोगके कारण तीन हैं, यातो श्याम भागमें जखम हो जानेसे नेत्र बहुत समय पर्य्यन्त बन्द रहें और निकम्मा मवाद व फोक उसके ऊपर गिरता रहे और निर्बलताके कारणसे न निकल सके, तथापि जखम अच्छा हो जावे, परन्तु सफेदी बाकी बनी रहे। इस प्रकारकी सफेदी उपाय करनेसे भी सम्पूर्ण नष्ट नहीं होती, घावके चिह्नके बराबर सफेदी रह जाती है। क्योंकि जिस समय करनिया पर्देमें जखम हो जाता है वह भर तो जाता है परन्तु मिलकर एकसा नहीं होता जैसा कि हो जाना चाहिये, किन्तु मिलनेका चिह्न उसमें मिलने बगैर अवशेष रह जाता है। जैसा कि शरीरकी बाह्य त्वचाके घावोंका रह जाता है इस निशानके निवृत्त होनेकी आशा नहीं रहता ह। दूसरा भेद इसका यह है कि नेत्र दुखनेके कारणसे श्याम

पुतलपिर सफेदी आ जाती है। इसका कारण यह है कि चिकित्सामें असावधानी होनेसे मवाद गाढा हो जाय और उसके नष्ट न होनेसे नेत्रके पर्दोंमें कष्ट पहुंचे और नेत्र बन्द रहें इस कारण कई प्रकारका निकम्मा मवाद उसमें आ जाय और न निकलनक सबबसे एकत्र होकर श्याम भागपर सफेदी उत्पन्न हो जावे । तीसरा भेद यह है कि आधे नेत्रमें दर्द होय और दर्द अधिकतासे होता होय इस दर्दके पीछे श्याम भागपर सफेदी उत्पन्न हो जाती है। इसका कारण यह है कि शिरके दर्दसे नेत्र बन्द रहता है और नेत्रके बन्द रहनेसे उसमें निकम्मा मवाद आनकर जमा होता है, क्योंकि जो शिरोदर्द विशेष कष्ट पहुँचाता है उसमें नेत्रका बन्द रखना अच्छा मालूम होता है और जिस समय ऐसा होता है तो वह फोक जो नेत्रके खुले रहने और चलने फिरनेसे निकल जाया करता है वह रुककर नेत्रमें रह जाता है। चिकित्सा इसकी यह है कि जो कारण अवशेष होय तो उसे प्रथम उन चीजोंसे निवृत्त करनेकी कोशिश करे, जो कारणको हटानेमें अनुकूल पडे । न तो इस व्याधिमें फसदकी आवश्यकता न तीक्ष्ण विरेचन देनेकी आवश्यकता है। लेकिन जहांपर यह भय हो कि काटनेवाली तेज औषधियाक उपचार करनेसे जो गर्मी उत्पन्न होकर मवादको खींचे ऐसी दशामें प्रथम फसद खोलना आर विरेचन देना सबसे उत्तम है। कारणके निवृत्त होनेपर जो नेत्रकी सफेदी हलकी होय तो केवल लाले घासके स्वरस डालनेसे (लाल घास खसखसके पत्र और फूलके समान होती है और इसको गुललाला भी बोलते हैं) अथवा कन्तूरयूनका स्वरस डालनेसे भी जाती रहती है (यह घास वसन्तऋतुमें उत्पन्न होती है। और इन दोनों घासोंका स्वरस लगानेकी विधि यह है कि इन घासोंको कूटकर इनका रस निचोड लेवे और उसमें साफ शहत मिलाकर नेत्रोंकी श्याम पुतली पर रूईकी फुरफुती बनाकर लगावे और फुरफुतीको फेरकर उठा लेवे । यह प्रयोग सफेदीको काट डालता है। नवी पतली सफेदी जीभ फेरनेसे भी जाती रहती है। जीभ फेरनेकी प्रक्रिया इस प्रकारसे है कि प्रथम खांड और सेंधानमक जीभकी नाकपर रक्खे जब जीभ खुरखुरी हो जावे तब नेत्र खोलकर श्याम पुतलीको जीभकी नोकपर फेरे (इस प्रक्रियाको बालककी माता अच्छी तरहसे कर सक्ती है) इसी प्रकार कितनेही दिवसपर्य्यन्त प्रातःकाल करना चाहिये और रोगीको सदैव पथ्यसे रहना चाहिये । कदाचित् सफेदी गाढी होय तो बलवान् औषध लगानी चाहिये जैसा कि जला हुआ तांबा, खार, नौसादर, इंदरानी नमक, समुद्रझाग, जरूरेमुस्क अर्थात् जिस सूखी दवामें कस्तूरी पडी होय और इसमें सगीर और जरूर अर्थात् छिडकने तथा बुरकनेकी दवाको काममें लानेसे प्रथम फोकोंको नर्म और साफ करनेके लिये स्नानके (गुसलखानेमें) जाकर ऊष्ण जलकी भाफपर नेत्र खोलकर शिर झुकावे और यहांतक भाफ

देवे कि चेहरा लाल हो चेहरेपर पसीना आ जावे, इसके पीछे दवा लगावे इस विधिके करनेसे शीघ्र विशेष लाभ पहुँचता है, परन्तु जिस रोगीके शरीरपर यह भय होय कि मवाद खींच आवेगा तो ऐसे मौकेपर मलको निकालनेसे प्रथम कोई इलाज काममें न लावे।

जरूरे मुस्कके बनानेकी विधि।

इस सूखी औषधमें कस्तूरी पडती है। इसके बनानेकी विधि यह है कि कीकडा जानवर जो जलमें रहता है सूखा हुआ, काचकी चूडी, समुद्रझाग, गोहकी विष्टा, संगदानजजरीया (जंगली जानवर) है, बसरे उर्फ भसरेका नीलाथोथा, सुतरमुर्गके अंडेका छिलका, रांगका सफेदा, तांबेका मैल, आवगीर येसामी (सामदेशका सीसा) अनविंधे बारीक मोती जला हुआ अकीक पत्थरसिल्लीका हरा पत्थर (संग सब्ज) पीपलके बीज, सिफाले रंगीन सोनेका मैल, तूतिया हिन्दी, नीलाथोथा, मूंगेकी जड, खडिया मिट्टी, जला हुआ तांबा, तूतिया किरमानी, तूतिया महमूदी, प्रत्येक द्रव्य ७ मासे, सेन्धानमक बूरेअरमनी प्रत्येक ३ मासे, सोनामक्खी, चमगादरकी वीट प्रत्येक पौने दो मासे, अवागीना ७ मासे, कस्तूरी १॥ मासे इन सबको बारीक पीसकर सुर्मेके समान करके काममें लावे। सुतरमुर्गके अंडेका छिलका जलाकर सफेद भस्म कर लेवे और बराबरकी मिश्री मिलाकर बारीक पीसे (बुरकनेकी दवा जरूर बनाकर पुतलीकी सफेदी पर डाले यह प्रयोग परीक्षित है।

हजमेसगीरके बनानेकी विधि।

मुर्गीके अण्डेका छिलका जितना चाहिये उतना लेवे और उसको मीठे जलमें भिगो देवे और उस बर्त्तनको धूपमें रख देवे यहांतक कि उस जलमें दुर्गन्धि आने लगे उस समय उसको हाथसे मसलकर पानीको निकाल दूसरा ताजा पानी डाल देवे। जहांतक उसमें, दुर्गन्धि आती रहे वहांतक इसी प्रकार जलको बदलता रहे। जब पानीमें बदबू आना बन्द हो जावे तब अण्डेके छिलकोंको निकालकर सुखा लेवे और छिलकोंके वजनके समान मिश्री मिलाकर बारीक पीसकर सुर्मा बना काममें लावे।

हजमे कबीरके बनानेकी विधि।

मुर्गीका अंडा उपरोक्त विधिसे साफ किया हुआ छिलका और पुराने बांसकी गांठ जली हुई सीप, अनविंधे मोती, सीह अर्मनी (यह तुतलीके पत्रके समान एक वनस्पति है), समुद्रफेन, दोहनज (हरे रंगका पत्थर है), गोहकी विष्टा, चांदीका मैल, सोनेका मैल, सादनज अतर्सी, गीधपक्षीके बाजूकी भस्म, मूंगाकी जड प्रत्येक १ तोला हरितपत्थर जिसपर छुरी आदि शस्त्र घिसे जाते हैं (सिल्ली) ३ मासे, चमगादरकी वीट ६ मासे इन सबको बारीक पीसकर सुर्मेके समान कर काममें लावे।

हजमे मुअस्सलके बनानेकी विधि ।

गोहकी विष्ठा, सुतर्मुर्गके अण्डेका छिलका, जली हुई सीप, सींह अर्मनी, मूंगेकी जड, चमगादरकी वीट, पापरी नमक (इसको पपरिया खार बोलते हैं) इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर करगस और कुलंगके पित्तेमें भिगोकर सुखा बारीक पीसकर सुर्मा बना आवश्यकताके समय साफ शहदमें मिलाकर स्याह पतली गाढा (मोटी) सफेदी पर लगावे ।

नेत्ररोगी सूर्य्यकी किरणोंको देखनेसे घृणा माने ।

प्राय: इस रोगके दो कारण हैं एक तो यह कि रूह गर्म होकर भडक उठे, फिर सूर्य्यकी किरणकी गर्मी और पतलापन बढ जाय, इस कारणसे नेत्रके देखनेवाली शक्तिको सूर्य्यकी किरणका देखना बुरा मालूम होय इससे करानीतुस अर्थात् सरसामके होनेका भय होता है । क्योंकि सरसाम गर्म मवादसे उत्पन्न होता है और उसका चिह्न यह है कि दूसरे प्रकारके चिह्न बिलकुल नहीं होते । चिकित्सा इसकी यह है कि तरी और शर्दी पहुँचानेके उपायमें आलस्य न करे जिससे कोई बडा कष्ट न होय । दूसरे यह कि नेत्रमें कोई रोग जैसे कि दूखना (नेत्रपाक) सबल रोग व पलकोंमें कोई कष्ट हो जाय जैसे कि खुजली आदि । फिर ऐसे रोगके कारणसे नेत्र सूर्य्यकी किरणोंके प्रकाशको देखनेमें समर्थ न होय । इस रोगका कारण पाया जाना इसके चिह्न हैं इसके कारणको निवृत्त करनाही इसकी चिकित्सा है ।

नेत्रकी रक्तताका उपाय ।

जैसे कि मनुष्य शयन करनेसे उठा होय उस समय दोनों नेत्र लाल मालूम होते हैं और ऐसा मालूम हो ऐसा संदेह होता है कि नेत्रोंमें धूल है । इनका असली कारण यह है कि गाढी बादीके कारणसे एक प्रकारका बोझ पलकोंमें उत्पन्न होय और शयनावस्थामें नेत्रोंके बन्द रहनेके कारणसे नेत्रके पर्दोंमें भाफके परमाणु जो कि निकम्मे परमाणु नेत्रकी खुले रहनेकी दशामें निकला करते हैं वे बन्द हो जायँ । इससे इस प्रकारकी नेत्रसुर्खी सदैव एक दशामें नहीं रहती, क्योंकि जाग्रतावस्थामें पलकोंके बन्द करने और खोलनेसे व प्रत्येक वस्तुको देखनेसे दिनके प्रकाशके कारणसे भाफके परमाणु नष्ट हो जाया करते हैं । शयनावस्थामें नष्ट होनेवाले कारणोंके न रहनेसे निकम्मे भाफके परमाणु एकत्र हो जाते हैं । इसके लिये कुछ उपाय करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जाग्रतावस्था होनेपर थोडे समयके पीछे गर्मीके कारणसे जितने भाफके परमाणु एकत्र हो गये थे नष्ट हो जाते हैं । यदि सुर्खी बादीके निकम्मे और दूषित मलसे होयँ तो जो वस्तु रोगीकी प्रकृतिके अनुकूल रोगको शमन करनेवाली व बादीसे उत्पन्न करनेवाले मवादको निकाले वह काममें लेनी

चाहिये। वाद सब शरीरसे मवाद साफ होनेके पछि पलक और नेत्रके पर्दोंका मवाद निकालनेके लिये आंसू निकालनेवाली दवा नेत्रोंमें लगावे, जैसे अहमरेहाद व वासीलकून सुर्मा काममें लावे वासलीकून सुर्माका प्रयोग पछि कथन हो चका है।

शियाफ अहमरेहादके बनानेकी विधि।

शादनज अतसी, फिटकरीका फूला प्रत्येक ३॥ मासे, तांवा जला हुआ, केशर, काली मिर्च प्रत्येक १॥ मासे सबको कूट छानकर तुलसीकी पत्तीके रसमें मर्दन करके बत्ती बना काममें लावे। इसके अतिरिक्त जो नेत्रोंमें रक्तता होगी व किसी विशेष व्याधिके कारणसे समझना और नेत्रका सफेद भाग जो बारीक शिरातन्तुओंका जाल अति रक्त वर्णका हो जावे तो रक्तविकार समझना। इसकी चिकित्सा चरक सुश्रुत अथवा तिब्बके बडे ग्रन्थोंके अनुसार करनी उचित है। इस छोटे ग्रन्थमें आनपूर्वक सर्व व्याधियोंके लक्षण और चिकित्सा लिखनेका अवकाश नहीं है।

भेंडेपनकी चिकित्सा।

भेंडापन यह ऐसा रोग है कि जिसमें मनुष्य प्रत्येक वस्तुको नेत्रोंसे देखकर यह संदेह करे कि दो वस्तु हैं और यह रोग (रतूवते जलीदीया) अर्थात् वह तरी जो वर्फके समान है उसीके साथ सम्बन्ध रखता है) जिस समय दोनों नेत्रोंकी रतूवतें जलीदीयामें पूरी विरुद्धता होयँ तो प्रत्येक वस्तु दो दिखलाई देती हैं। पूरी विरुद्धताका यह प्रयोजन है कि एक नेत्रकी रतूवत जलीदीयाके नीचेकी ओर झुकजाय और दूसरे नेत्रकी रतूवत ऊंची हो जाय अथवा एक ऊंची नीची हो जाय और दूसरी अपनी असली स्थितिपर रहे। परन्तु जो रतूवत जलीदीया दायीं व बाईकी ओर अपने स्थानपर हट जाय तो यह दशा भेंडेपनको उत्पन्न नहीं करती। क्योंकि दोनों नेत्रोंके दो पट्ठे (अस्वेमुजव्विफा) है, जो कि दिमागसे उतरकर नेत्रोंमें आये हैं और नेत्रकी ज्योति इन्हीं पाट्ठसे नेत्रोंमें आती है। इससे प्रकाशके एकत्र होनेकी विरुद्धता नहीं होती और इस विषयका वर्णन ऐसी रीतिसे लिखते हैं कि इस रोगका कारण पूर्णरूपसे चिकित्सक समझ लेवे। इस व्याधिको समझनेके लिये यहां नेत्रोंके शारीरकका कुछ अंश लिखनेकी आवश्यकता है कि दिमागकी अगली ओरसे दो पट्ठ निकले हैं और दिमागके आगेसे दो विशेष वस्तु स्तनोंके अग्रभागके समान वाहर निकली हैं। सूंघनेकी दुर्गन्धि सुगन्धिका ज्ञान इनसेही होता है, स्तनके अग्रभागके समान स्थानसे प्रत्येकके समीपसे एक पोला पट्ठा निकला है इसी कारणसे इस पट्ठेको मुजव्विफ (पोला) पट्ठा कहते हैं, इस पट्ठेकी पोलमें विशेष बारीक पतली सुई घुस सक्ती है। यह पट्ठा जो दाहिनी ओरसे निकला है वह बाईं ओर नीचेको आया है और वायाँ पट्ठा दाहिनी ओरको आया है।

दोनों एक दूसरेकी ओर पहुँचकर आपसमें मिल गये हैं और दोनोंकी पोल एक दूसरेकी भीतरही खुल रही है और दोनों एक हो गये हैं और उसमें उँचाई उत्पन्न होगई है। यह बात जाहिर है कि जब वह पोल एक हो जाती है तो एक होने-पर विशेष चौडी मालूम होती है और यही पोल दोनों पट्ठोंके मिलनेकी जगह है। इसीको मजमे उन्नूर कहते हैं (यानी रोशनीकी जगह) वह दोनों पट्ठ फिर उस जगहसे झुककर एक दूसरेसे अलग होकर दो शाखाओंमें इसी रीतिपर चले गये हैं कि जो दाहिनी ओरसे आया था वह दाहिनीही ओरको हट गया है और दाहिने नेत्रमें उतरकर आया है। जो बाईं ओरसे आया था वह बाईं ओर पलटकर बाईं ओरके नेत्रमें आया है। और दोनोंके किनारे इस जगहमें अधिक चौडे हो गये हैं। रतूबत जलीदियामें आये हैं, जो कि देखनेकी शक्तिकी जगह है। जो कित-नेही तबीब दाहिने पट्ठेको बाईं ओर और बायें पट्ठेको दाहिनी ओर आया बतलाते हैं वह ठीक नहीं है। किन्तु दाहिनी ओरका पट्ठा दाहिनी ओर बाईं ओरका बाईं ओर लौटकर ऊपर कथन किया है, यह जालीनूस हकीमका सिद्धान्त बहुतही ठीक है। अब यह जानना चाहिये कि मजमे उन्नूर (प्रकाशके एकत्र होनेकी जगह) के सब लाभोंमेंसे एक यह कि दोनों नेत्रोंके वास्ते एक जगह होनी चाहिये कि जिस वस्तुको देखो वह उसी जगहपर पहुँच जाय, जिससे एक सूरत दो न दिखलाई देवे। सो यह जगह मजमेंउन्नूर है जहां एकही वस्तु दोनों आँखोंसे पहुंचती है जिस समय एक नेत्रकी पुतली ऊपर आती है और दूसरी नीचे जाती है या एक ऊपर या नीचे होय और दूसरी अपनी निज दशापर रहे तो एक वस्तु दो दिखलाई देती हैं। यह इस कारणसे हुआ करता है कि जो दोनों पट्ठे मजमेंउन्नूरमें जाते हैं वह एक दूसरेकी सीधपर न जाय और इस कारणसे पोलकी सूरतमें उन पट्ठोंके झुक जानेसे जो वह आपसमें मिलते हैं खराब हो ऐसी सूरत हो जाय कि जैसे एक वस्तु मजमेंउन्नूर (प्रकाशके एकत्र) होनेके स्थानमें दो जगहसे पहुंचता है अर्थात् एक पट्ठा ऊंची जगहसे वस्तुको लाता है, दूसरा पट्ठा नीची जगहसे वस्तुकी शकलको लाता है। इसी कारणसे एक वस्तुकी दो आकृति दिखलाई देती हैं यही कारण भेंडेपन होनेका है। अब यह जानना चाहिये कि भेंडापन दो प्रकारका होता है एक तो यह कि बालकको जन्मसेही होय इसका कुछ भी इलाज वैद्यक तिब्ब व डाक्टरीमें नहीं है। दूसरे यह कि पीछेसे उत्पन्न हो जाय जो भेंडापन नूतन उत्पन्न होता है वह प्रायः बालकोंमें और कभी २ बडी उमरवालोंको भी उत्पन्न हो जाता है। इसके दो भेद हैं प्रथम जो बालकोंमें उत्पन्न होता है उसके तीन कारण हैं, एक यह कि जिस बालकको मृगी उत्पन्न हुई होय उसके कारणसे दिमागकी

झिल्ली खिंचकर सुकड जाय और नेत्रके पर्दे और अस्वेमुजन्विफा भी खिंच जाय और एक नेत्र ऊपरकी ओर या नीचेकी ओर खिंच जाय (यहाँपर खिंचनेसे पुतलीके झुक जानेका प्रयोजन है) प्रायः यह अवस्था मृगीके निवृत्त होनेपर भी रही आती है। दूसरे यह कि बालकको दूध पिलानेवाली धात्री व माता बालकके लिटानेमें व दूध पिलानेमें अनुचित रीतिसे वर्त्ताव करे जैसे सदैव एक ओर व एक करवटसे लिटावे और इस रीतिरप दूध पिलावे इसका कारण यह कि बालक दूध पिलानेवालीकी ओर नेत्रको तिरछा करके एक ओरको अधिक समय पर्य्यन्त देखता रहे तो वही स्थिति उस नाजुक बच्चेके नेत्रोंमें ठहरकर जम जाती है। तीसरे यह कि कोई चिल्लाकर बच्चेके पास बोले अथवा अन्य कोई भयंकर शब्द होय इससे एक साथ अचानक बालक चौंक पडता है और उसका शरीर झटका खाकर हिल पडता है। इस कारणसे उस ओर नेत्र घुमाकर देखने लगे और उस भयानक शब्दकी तर्फ बहुत समयतक घूमेहुए नेत्रोंसे देखनेमें नेत्रकी पुतली उसी ओर फिर जावे, जबतक बालक उस ओर देखता रहे और पीछे आराम मिलनेपर जब बालक उस ओरसे विपरीत दूसरी ओरको देखना चाहे तो अति कठिनता माळूम होय। क्योंकि उस समय अकस्मात् पट्ठे और झिल्लीके खिंचनेसे एकदम नेत्रकी पुतली उस ओर रुजू हो चुकी है, अब उसके विरुद्ध दूसरी ओर देखनेमें पट्ठे और झिल्लीकी खिंचावटसे अति कष्ट पहुँचता है। और बालक कष्ट होनेके कारणसे विरुद्ध गतिपर नहीं ला सक्ता, इस कारणसे नेत्रकी पुतली उसी स्थितिपर ठहर जाती है। उपाय इसका यह है कि ऐसी स्थिति बालककी होय तो उपाय करनेमें विलम्ब न करे, क्योंकि बालकोंका इलाज उनके शरीरकी नर्मीके कारणसे शीघ्र हो सक्ता है। ऐसा उपाय काममें लावे कि जिस ओरको बालककी नेत्रपुतली फिर गई है बालक उस ओरके विरुद्ध देखे जैसे कि बालक जिस ओरको नेत्रपुतलीको फेरना चाहे उस ओरको किसी विचित्र रंगकी वस्तु अथवा विचित्र आकृतिवाला खिलौना अथवा मनोहर शब्दवाला बाजा अथवा जिस वस्तुको बालक प्रीतिसे चाहता होय और उसकी ओर ध्यानसे बलपूर्वक देखने लगे, क्योंकि ऐसे विचित्र रंगका खिलौना व सुन्दर शब्दके बाजे बालकोंको प्रिय माळूम होते हैं। नेत्रके छोटे कोयेकी ओर जो कि कानकी ओर है नेत्रकी पुतली फिर गई होय तो इस स्थितिके उपायके लिये नासिकाके ऊपर बडे कोयेकी ओर कोई विचित्र वस्तु अथवा गहरे लाल व हरे रंगका कपडा लगा देवे कि बालक हर समय अति प्रीतिके साथ उस ओरको देखने लगे। इसी प्रकार जिस ओर नेत्रकी पुतली फिरी होय तथा दबी होय उसके विरुद्ध गतिपर दूसरी ओर कोई विचित्र सुन्दर शब्दवाला बाजा व खिलौना या रंगबिरंगी वस्तु लगा देवे। दूसरी विधि यह कि बालकके चेहरेको कप-

डेसे ढांक देवे फिर पुतलीके सामने कपडेमें एक छेद कर बालकके सामने दीपक जलाकर रख देवे जिससे बालक कष्टके साथ बलात्कारसे देखनेके कारणसे नेत्रकी पुतली अपनी यथार्थ दशापर आ जाती है । जैसे कि लकवेसे बक्र हुआ मुख दर्पणमें देखनेसे निज दशापर पलट आता है और उचित है कि बालकको दुग्ध पिलानेवालीको अच्छे २ उत्तम भोजन करावे जिससे स्वाभाविक गर्मी और प्रकृति शक्ति अंगको सीधा कर देवे और जहां कहीं मृगीके कारणसे भेंडापन उत्पन्न हो जावे तो बालकको दूध पिलानेवाली धात्रीको वातकारक आहारोंसे बचा स्त्री पुरुष समागमसे बचती रहे । दूसरी प्रकारका भेंडापन जो बडी उमरके मनुष्योंमें उत्पन्न होता है उसके भी तीन कारण हैं, एक तो यह कि कोई अजला (अर्थात् मछलियां जो प्रायः पिंडली और मुड्डोंपर होती हैं यह मांसपेशियोंके नाम हैं) उन अजलोंमेंसे जो नेत्रके ढेलेको हिलाते हैं खिच जायँ और ढेला उलटकर इस ओर फिर जाय और उस खिच जानेका कारण जो खुश्की होय तो उसका चिह्न यह है कि बिशेष कठिन रोगोंके और सरसाम (सन्निपात) के उपरान्त उत्पन्न होता है, इसका उपाय यह है कि उन तरडो और तैलोंके द्वारा तरी पहुँचाना है जो खुश्क तसनुजको शमन करते हैं । जैसे कि तरी पहुंचानेकी यह रीति है, गधीका दूध, बकरीका दूध ताजा और जौका दलिया विहीदानेके लुआबके साथ शर्बत बनफशा, शर्बत नीलोफर मिलाकर पीवे, कद्दूका तैल तथा बदामका तैल मिलाकर पीवे, चाहे दूध दलिया शर्बत लुआब सबको मिलाकर पीवे चाहे जो जिस देशकालमें मिल सके उतनेको पीवे । बकरीके बच्चे तथा भेडके बच्चे जो दूध पानेवाले होयँ उनका मांस बदामके तैलमें पकाकर खावे । ककरीली जमीन जो मीठे पानीके तालाबकी मछली और बदामका हरीरा गेहूँके निशास्ते और सफेद खांड तथा बदामके तैलमें बनाया हुआ हरीरा खावे यह अतिलाभदायक है । मोमका तैल तरी लानेके वास्ते शरीरपर मले ।

मोमके तैलकी विधि ।

गौकी नलीका गूदा, मुर्गियोंकी चर्बी सफेद मोम इनको समान भाग लेकर अठगुने बनफशाके तैलमें मिलाकर पका लेवे— और लगानेके समय लडकीकी माता स्त्रीका दूध इस तैलमें मिलाकर मले । ऐसा रोग कदाचित् छोटे दूध पीनेवाले बालकको होय तो पीनेकी दवा जो ऊपर कथन की गई है उनको दूध पिलानेवाली धात्रीको पिलावे और तैल आदिकी मालिश बच्चेके शरीरपर करे । लडकोकी माता स्त्रीका दूध तथा गधीका दूध नेत्रोंमें डालना हितकारी है । यदि इस खिचावका कारण वह रतूबत होय कि अजलोंको भरकर चौडाईमें खींचे तो उसके चिह्न तसन्नुज इम्तलाईके समान होते

हैं, यह प्रायः मृगीकी व्याधिके उपरान्त प्रगट होता है । जैसे कि कफ और वायु ये दोनों दोष पट्ठोंके छिद्रोंमें आनकर पट्ठोंको चौडा कर देवें फिर पट्ठोंकी लम्बाई अवश्यही कम पडेगी और चौडाई वढेगी जब लम्बाईके खिंचावसे जो नेत्रकी पुतलीका सम्बन्ध है वह खिंचकर अपने ठिकानेसे हट जावेगी । उस कफकी तरीको यारजका सेवन कराके मलके जरियेसे निकाले और कुल्ले करा अच्छे भोजन आहार करना चाहिये । दूसरे यह कि उन्हीं अजलोंमेंसे कोई अजला ढीला हो जाय किन्तु उसमें ढिलाढिलापन उत्पन्न हो जाय और नेत्रका ढेला इस अजलेकी दूसरी ओर झुक जाय तो इसके चिह्न और उपाय शिरके रोगोंके समान करे । तीसरे यह कि नेत्रके पर्दे और रतूवतें अपनी जगहसे उस गाढी वादीके कारणसे हट जाय कि जिसका निकलना और बचना कठिन होय और पृथक् २ गतियोंकी अधिकतासे नेत्रोंके पर्दों और रतूवतोंको हिलावे, उस जगहसे हटाकर और किसी ओरको झुकावे । उसका यह चिह्न है कि नेत्र फडका करे और कभी आंसूभी बहने लगे उपाय इसका यही है कि यारजातकी गोलियोंका सेवन करावे जिससे नेत्रकी रतूवतें जो रिहाको उत्पन्न करती हैं दिमागसे निकल जावें । पचावके लिये गर्मजलसे सिकाव करे और मामीरा सोंफके जलमें घिसकर लेप करे । जो दूषित मवाद आमाशयमें होय और उस जगहसे दिमागमें जाकर रोगको उत्पन्न करे तो आमाशयको वमन और विरेचनसे शुद्ध करना चाहिये । गर्म जवारिसोंका सेवन कराके वातदोषको तोडना चाहिये, कभी नेत्रके पर्दों और रतूवतोंका अपनी जगहसे हट जाना इस कारणसे होता है कि निकम्मी वात उत्पन्न करनेवाले फोक रगोंमें एकत्र होकर सबकियामें पहुंचे और यह पर्दा अपनी जगहसे ऊँचा होकर रतूवतें जुजाजियासे मुकाविला करे और रतूवत जुजाजिया रतूवत जलीदियासे मुकाविला करके उसको उसकी जगहसे हटा देवे इस कारणसे भेंडापन उत्पन्न होता है इसका उपाय कठिन है ।

कंजे नेत्रकी चिकित्सा ।

कंजे नेत्र जिस मनुष्यके नेत्रोंकी पुतली बिल्लीके नेत्रोंके समान सफेद और कुछ पीतता लिये होती है उसे कंजी आँखवाला मनुष्य बोलते हैं । परन्तु शीतप्रधान देश यूरोप आदिके मनुष्योंकी नेत्र पुतली प्रायः कंजीही होती हैं । अब यह विचारना चाहिये कि कंजे नेत्र दो प्रकारसे होते हैं एक तो जन्मसे और दूसरे जन्म लेनेके पीछेसे । कंजे होनेके सात प्रधान कारण हैं—१ देखनेवाली शक्तिकी अधिकता, २ स्वच्छता और प्रकाश, ३ रतूवत जलीदियाका बडा होना, ४ रतूवत जलीदीयाका ऊंचा होना, ५ रतूवत वैजियाकी न्यूनता, ६ रतूवत वैजियाकी स्वच्छता, ७ इनमियावर्देकी स्याहीका कम होना आयुर्वेद सुश्रुतमें विकृत नेत्र होनेका कारण

इस प्रकारसे कथन किया है :" तत्र दृष्टिभागमप्रतिपन्नं तेजो जात्यन्धं करोति । तदेव रक्तानुगतं रक्ताक्षं पित्तानुगतं पिङ्गाक्षं श्लेष्मानुगतं शुक्लाक्षं वातानुगतं विकृताक्षमिति ॥ " इस (प्रसंगसे पूर्व बालकके शरीरका गौर श्याम होनेका कथन सुश्रुतने किया है कि तेजोधातु ही गौर श्यामादि शरीरके सब रंगोंका कारण है, यदि वही धातु गर्भोत्पत्तिके समय जलप्राय होती है अर्थात् जलके भागसे अधिक मिली होती है तब गर्भस्थ बालकका रंग गौर होता है । जब उसमें पृथिवीधातु अधिक होती है तब शरीरका रंग काला होता है, जब उसमें पृथिवी और आकाशधातु अधिक मिले होते हैं तब देहका रंग श्याम कृष्ण होता है, जब उसमें जल और आकाश धातु अधिक होते हैं तब शरीरका रंग गौर श्याम होता है. इसी प्रसंगपर नेत्रका विवरण भी किया है कि (उपरोक्त गद्यका अर्थ—जब चौथे मास गर्भ रहनेके चौथे महीने) में वही पूर्वोक्त तेजोधातु किसी पूर्व जन्मोपार्जित पापके कारणसे दृष्टिभागमें नहीं पहुँचता है तो सन्तान जन्मान्ध होती है । जब तेजोधातु रक्तमें प्रवेश करती है तब सन्तानके नेत्र रक्तवर्णके होते हैं, जब तेजोधातु पित्तसे मिलती है तो संतानके नेत्र पीले होते हैं, जब वह तेजोधातु कफसे संयुक्त होती है तो सन्तानके नेत्र सफेद होते हैं, जब वह तेजोधातु वातसे अनुगत होती है तब सन्तानके नेत्र विकृत होते हैं । अब यह बात विचारनेकी है कि, आफ्रिकाद्वीपके लोग जिनको सिद्दी कहते हैं वे अतिकृष्णवर्ण और लाल नेत्रके होते हैं और नेत्रपुतली श्याम वर्ण होती है तो वह द्वीप अति उष्ण है । शीतप्रधान देश जैसे यूरोपके लोगोंका गौर वर्ण श्वेत नेत्र और कंजी पुतली होती है उत्तर भारतके हिमालय प्रांतमें भी अधिकांश मनुष्योंकी कंजी आँखें होती हैं और ये जन्मसेही कंजे माने जाते हैं, इनके नेत्रोंकी चिकित्सा करनेकी आवश्यकता नहीं है । देशप्रधान शीतोष्ण और सूर्यकी सर्दी गर्मीसे वर्ण नेत्रोंकी रंगत है वह स्वाभाविक समझनी चाहिये । यूरोपादि शीतप्रधान देशोंके लोग उष्ण देशोंमें रहने लगे हैं उनके सन्तानोंकी नेत्र पुतली कंजापन त्यागकर श्यामवर्णकी हो शरीरके वर्णमें भी कुछ अन्तर हो जाता है । अब ऊपर जो ६ भेद बाकी रहे उनमेंसे बालक जन्म होनेके पीछेसे नेत्र कंजे होनेके तीन कारण हैं । एक तो रतूवत जलीदियाका ऊंचा होना । चाहे रतूवत जलीदियाके ऊंचे होनेका कारण रतूवत जुजाजियाका बढ जाना हो वा सलबिया और मुशीमिया पर्देका सूज जाना होय और यह बात प्रगट है कि जब रतूवत जुजाजिया बढ जाय व उक्त पर्दोंमें सूजन उत्पन्न होय तो रतूवत जलीदिया दब बाहरकी ओर झुक आती है, इसी कारणसे नेत्रका रंग कंजाई लिये दिखाई देता है । यह भी प्रगट है कि रतूवत जलीदियाका बाहरकी ओर झुक आना

वह काम करता है जो उसका अधिक होना करता है और इसके अधिक हो जानेका यह काम है कि वह नेत्रके तीसरे पर्देके रंगको छिपा लेवे इसके कारण लक्षण और उपाय नेत्रके पर्देके रोगोंके विषयमें बडे ग्रन्थोंमें देखो । जो कंजापन रतूवत जलीदियाके ऊंचे होनेके कारणसे होय और ऊंचा होनेका कारण रतूवत जुजाजिया होय तो उसके लिये सबसे प्रधान उपाय यह है कि जो प्रकृति ठंढी होय तो कडुवे बदामका तैल, वेदअंजीरका तैल, रोगनगार इनको नाकमें डाले और शादनज अतसी, पीपलके वीज, पीली हरडकी छाल इनको बारीक पीसकर नेत्रोंमें लगावे । यदि गर्म प्रकृति होय तो शीतल दवा जैसे समगअर्बी नेत्रोंमें लगावे, जितने शीतलवीर्य्य तैल हैं उनको नासिकामें डाले, काला सुर्मा तथा वंशलोचन भी नेत्रोंमें लगावे । क्योंकि ये औषध नेत्रोंकी तरीको सुखाती हैं और गुलरोगन भी नासिकामें टपकाना लाभकारी है । चाहे रोगका कारण सर्दी होय चाहे गर्मी होय । दूसरे यह कि नेत्रके तीसरे पर्देकी प्रकृति गाढी रतूवतसे वदल जाय और इस कारणसे उसकी स्याही जितनी है वह न रहे और इस बातपर बच्चोंकी दशा पहचानी जाती है, इसलिये हम देखते हैं कि प्राय: लडके जवान होनेसे प्रथम रतूवतोंकी अधिकता और उसके कच्चे होनेसे बिल्लीकीसी चक्षुवाले होते हैं और वही लडके जब तरुणावस्थामें आते हैं तो शरीरमें गर्मी प्रवल होती है तव चक्षुकी उपरोक्त रतूवतोंमेंसे कुछ तो अपनेआप पच जाती हैं और शेष अवस्थाके अनुसार शरीरकी गर्मीसे पक जाती हैं, उत्तम आहारोंके करनेसे नेत्रके डेले अर्थात् पुतलीका रंग काला हो जाता है । यह कंजापन उसके अनुसार है जैसा हकीम सिन्दुरने अपनी तिब्बकी किताबमें लिखा है कि यह कंजापन वरसुलएन (नेत्रमें सफेद दागका होना) कहलाता है । इस कंजेपन और उसमें जो नजलेके कारणसे होता है उसमें यह अन्तर है कि दृष्टिका जाना नजलेका पानी निकलनेसे कंजेपनका जाता रहना और आरम्भमें नेत्रके सामने भुनगे आदि उडते हुए दिखलाई देना नजलेके कारणसे उत्पन्न हुए कंजेपनके लक्षण हैं । इसमें पुतलीके नीचे पानी जमता रहता है । इस कंजेपनका यह लक्षण है कि प्रथम इसमें किसी प्रकारके लक्षण प्रगट नहीं होते । उपाय इसका यह है कि पुष्टिकारक अयारजोंसे मवादको निकाले जैसे अयारज जालीनूस और अयारज लुगाजिया (इनके प्रयोग मस्तकरोगके प्रकरणमें लिखे हैं) का सेवन करावे और ऐसी औषधियोंके कुल्ले करावे जो दिमागको मवादसे निकालकर साफ कर देवें, छींक लानेके लिये गर्म चीजोंकी नस्य देनी चाहिये । प्रकृतिको ठीक करनेके लिये गर्म माजूनोंका सेवन करावे केशरको बारीक पीसकर नेत्रोंमें लगावे केशरका तैल नेत्रमें डेले (पुतली) को काला करनेमें मुख्य है, चाहे किसी कारणसे नेत्रोंमें कंजापन

होय इन्द्रायणके ताजे फलमें सलाई भिगोकर नेत्रोंमें फेरनेसे ऐसाही गुण करता है । इसकी प्रसंशामें कितनेही तबीबोंने लिखा है कि इन्द्रायणके फलमें सलाई भिगोकर बिल्लीके नेत्रोंमें लगाई जावे तो उसके नेत्रकी पुतलीको भी काला करती है । तीसरे यह कि पकी हुई रतूबतें जिनसे पुतलीमें रंग होता है पिघल जाय और इस कारणसे मनुष्यके नेत्रोंकी पुतली बिल्लीकीसी दीख पडे । ऐसी पुतलीके ऊपर घासकीसी झलक मारती है, जब उसकी रतूबतें नष्ट हो खुश्की आने लगती है तो फिर उसमें सफेदी बढ जाती है । इसी कारणसे वृद्ध मनुष्योंके नेत्र और उन रोगियोंके नेत्र जो खुश्कीके रोगसे ग्रस्त होयँ असली रतूबतोंके नष्ट हो जानेसे कंजापन हो जाता है और इस कारणसे कि इस प्रकारका रोग करनियां अर्थात् नेत्रके दूसरे पर्देका रंग बदल नेत्रकी दृष्टिको बिलकुल नष्ट कर देता है तब तबीब लोग इसको भी नजलेकाही रूपान्तर समझते हैं । यद्यपि यह रोग मुख्यता करके खुश्कीसे उत्पन्न होता है । जैसे कि पेट फूलनेसे इस्तस्काय तबली अर्थात् जलन्धर गिनते हैं, यद्यपि पेटके फूलनेमें पानीका कुछ लगाव नहीं होता इसी प्रकार इस कंजेपन तथा नजलेके कंजेपनमें यह अन्तर है कि इसमें नेत्रोंके सामने भुनगे आदि उडते हुए नहीं दिखाई देते, नेत्रका बनाना और पानी निकालना भी लाभदायक नहीं होता । नेत्रका दुबला होनाभी खुश्कीके कारणसे होता है (उपाय) इसका यही है कि जहांतक बन सके नेत्रोंमें तरी पहुँचानेकी कोशिश करे ।

कुमूर अर्थात् विशेष चमकीली प्रकाशित वस्तुओंके देखनेसे नेत्रदृष्टिका नष्ट हो जाना ।

कुमूर शब्दका अर्थ यह है कि विशेष चमकीली और प्रकाशित वस्तुओंको देखनेसे जैसा कि बर्फ अथवा काचका प्रतिबिम्ब और भी चमकीली वस्तुको देखनेसे नेत्रकी दृष्टि धुंधली और निर्बल हो जाती है, इस रोगमें कभी २ नेत्रकी दृष्टि बिलकुल नष्ट हो जाती है, कोई वस्तु दिखाई नहीं देती, कभी ऐसा होता है कि दूरस्थ वस्तु नहीं दीखती क्योंकि नेत्रकी ज्योति निर्बल है, परन्तु समीपकी वस्तुको देख सक्ती है । परन्तु जिस रंगको देखती है उसके ऊपर सफेद रंगका ध्यान करती है, इसका कारण यह है कि विशेष समय पर्य्यन्त सफेद वस्तु देखनेसे उसके ध्यान करनेवाली शक्तिके स्थानमें सफेदी अच्छी तरह गई तथा जम गई है सो जिस वस्तुको रोगी देखता है यही ख्याल करता है उस वस्तुपर सफेदी है । इस कुमूररोगके उत्पन्न होनेके कारणमें एक तबीबने कथन किया है कि सफेद वस्तु और तेज प्रकाश अपनी स्वच्छताकी अधिकतासे नेत्रके देखनेवाली शक्तिको फैलाकर बखेर देता है जैसे कि सूर्य्यका प्रकाश दीपकके प्रकाशको मलीन कर देता है । इसी प्रकार विशेष समय

व्यतीत होनेसे यह स्थिति जम जाती है और ध्यानमें भी जगह पकड जाती है। यदि उन वस्तुओंको देखना छोड देवे परन्तु उसकी हानि पहुँची हुई स्थिति दृष्टिमें शेष रह जाती है जबतक कि उसका उपाय न करे। चिकित्सा इस रोगकी यह है कि एक काला वस्त्र मुखके ऊपर लटकावे, श्वेत वस्त्रका पहरना त्यागकर काले रंगके वस्त्र पहनना उचित है नेत्रके सामने (नीचे) काली पट्टी बांध देवे और कितनेही दिवस पर्य्यन्त काली वस्तुओं पर दृष्टि रख नेत्रपर काली छजली व काली ऐनक लगाना सबसे उत्तम है। काले बालोंकी अथवा काले कपडेकी एक छजली जो कि यूरोपियन लोगोंकी टोपीके किनारोंके समान निकली हुई होती है, अरब और तुर्किस्थानके लोग सफरके समय इसको भौहोंके ऊपर बांधते हैं, इसका लगाना इस रोगीको अति हितकारी है। काली वस्तुको नेत्रके सामने रखनेसे यह लाभ होता है कि नेत्रके प्रकाशको एकत्र कर देता है और नेत्रोंके आगे काले कपडेमेंसे देखनेकी क्रियामें भी वाधा नहीं आती। स्त्री तथा गधीके दूधकी धार नेत्रोंमें डाले जिससे नेत्रकी रूह गाढी हो नेत्रके पर्दोको नर्म कर शर्दीके जमावको निवृत्त कर देवे। यदि रोग चमकीली प्रकाशित वस्तु वर्फादिके देखनेसे उत्पन्न हुआ होय तो दृष्टिको शक्ति देने और रूहके गाढापनको निवृत्त करनेके लिये कडुवे बादामको पीसकर स्त्री व गधीके दूधके साथ तर करके नेत्रोंके ऊपर लेप करे। नेत्र और रूहकी दुरुस्तीके लिये नेत्रके पर्दोंकी नर्मी लाने और गदलापन नष्ट करनेके लिये और रोमांचोंको खोलनेके लिये गर्म जलसे सिंकाव करे। कभी २ चमकीली और प्रकाशित वस्तुको देखनेसे नेत्रपाक रोग उत्पन्न हो जाता है, इसका कारण यह है कि अधिक चमकीली और प्रकाशित वस्तुकी किरणें नेत्रकी ज्योतिको पीछे हटा देती हैं, क्योंकि प्रकाशित वस्तुकी तेज किरणें नेत्रकी निर्वल किरणको पीछे धकेल देती हैं। इस कारणसे नेत्रके पर्दोंके सुकड जाने और रोमांचोंके बन्द होनेके कारणसे नेत्रमें भाफके परमाणु घुट जाते हैं और जगहपर रुककर उनका मवाद निकम्मा वन सूजन उत्पन्न करनेवाला हो जाता है। उसका चिह्न यह है कि कारण तो नष्ट होय परन्तु नेत्र दूखनेके चिह्न जो पीछे नेत्रपाकके प्रकरणमें वर्णन किये हैं उसके अनुकूल न पाये जावें। उपाय इस रोगका यह है कि मवादके पिंघलाने और निकालनेवाली औषधियां काममें लावे उससे रोमांच खुल जावें जो भाफ और मवादके परमाणु उपस्थित हैं। वे नर्म हो जावें जैसे सलगम और लहसनके: ताजे पत्र या उसके सूखे हुए छिलके, सूखा हुआ जूफा अकलीलुलमलिक, वावूना इनको जलमें पकाकर उसकी भाफका भफारा देवे, आटा पीसनेकी चक्कीका पत्थर गर्म करके निर्मल मद्य उसके ऊपर डालकर उसकी भाफके ऊपर शिर झुकावे। इसी प्रकार तांबा गर्म करके निर्मल

मद्य उसके ऊपर डाले और नेत्रोंपर भाफ देवे तो अति लाभ पहुँचता है, रोमांचोंके खुलने मवादके निकालने और नेत्रको बल पहुंचानेको हितकारी है ।

नेत्रपलकके रोगोंकी सामान्य चिकित्सा (पलकके ढीले व शिथिल होनेकी चिकित्सा)

किसी समयपर नेत्रके प्रथम पटल (पर्दे) में सूजन उत्पन्न होय अथवा नेत्र दूखने आ जायँ तो नेत्रके ऊपरके पलकमें ढीलापन आ जाता है । कभी २ इतना ढीलापन आ जाता है कि बीमार पलक नहीं उठा सक्ता यह रोग पलकके अजलोंमें ढीलापन होनेके कारणसे उत्पन्न होता है । चिकित्सा इसकी यह है कि जो आवश्यकता होय तो शरीरके मवादको निकालकर साफ करे, नेत्रके दूखने व प्रथम पर्देकी सूजनका जैसा दोष (मवाद) होय उसके अनुसार औषधियोंसे उसका उपाय करे । जब नेत्रका दूखना और सूजन निवृत्त हो जावे और पलकका ढीलापन बाकी रहे तो उचित है कि नासिकाके अन्दर जो रगें हैं उनकी फस्द खोले अथवा नकसीर जारी करे, पलक, भौंहँ तथा मस्तक पर एलवा, अकाकिया, मामीसा, केशर, बूल इनको ताजेहरे आस अर्थात् अबीराके स्वरसमें पीसकर लेप करे, जिससे मवाद सूख जाय और पलककी स्नायुओंको शक्ति पहुँचे । पलकके मवादको निकालनेके लिये तथा आंसू निकालनेके लिये सुर्मा वासीलीकून तथा आंसू निकालनेवाले ऐसे ही और सुर्मा पलकमें लगावे । जो इस उपायके पीछे भी पलक दृष्टिके निकलनेवाले मार्गको ढक रखे तो पलकको कांट देवे । पलकके काटनेकी यह विधि है कि ऊपरके पलकको छोटे कोएसे लेकर बडे कोएतक काट डाले ढीले होनेकी न्यूनता और अधिकताके अनुसार जितना उचित समझा जावे और ढीलापन निकल जावे उतना पलकके चमडेके टुकडेको अंगुली और अंगुठेसे पकडकर कैंचीसे कतर लेवे । जिस जगहसे पलकका चमडा अधिक ढीला होय वहांसे विशेष काटे और जहाँ चमडा कम ढीला होय वहांसे अधिक काटे । काटनेके पीछे चांदीके बारीक तारसे कमसे कम ३ टांके और अधिकसे अधिक चार टांके लगा देवे । यदि चांदीका तार न होवे तो बारीक रेशमके डोरेसे टाँके लगा देवे, परन्तु इस जगहपर चांदीके तारकी अपेक्षा रेशमके डोरेके टांके लगाना ठीक है । टांके लगानेके बाद उसके ऊपर जरूरे अस्फर बुरक देवे । सेंधानमक तथा जीरा चाबकर उसका पानी नेत्रके अन्दरके भागमें टपका देवे । तीसरे अथवा चौथे दिवस जब पलकका चमडा जुड जावे तब टांके लगे हुए डोरेको कैंचीसे काटकर निकाल जखमपर रोपण मरहमकी पट्टी लगावे । इस उपायसे पलक उठकर ऊँचा रहता है और दृष्टिका मार्ग खुल जाता है । (डाक्टरी कायदेमें पलकके सीमनेके पीछे शीतल जलमें भिगोये हुए कपडेकी पट्टी रखना लिखा है ।

नासिकाके अन्दरकी रगोंके फस्दके खोलनेकी विधि ।

नासिकाके दोनों छिद्रोंके भीतर दो रगें अति बारीक होती हैं उनको (इरकूल-मन खैरन) अर्थात् नथुनोंकी रग कहते हैं और इन रगोंके फस्द खोलनेकी यह विधि है कि रोगी श्वासको रोककर धूपमें खडा हो जावे और नासिकाके छिद्रोंको सूर्य्यके सन्मुख रक्खे कि प्रकाशके सामने रगें दीख पडें । फस्द खोलनेवाला रगोंको देखकर नस्तरकी नोकसे अथवा वह नस्तर जो इस कामके लियेही बनाया गया होय उन रगोंकी फस्द खोल देवे । नासिकाकी फस्द खोलनेसे यह लाभ है कि रतूवत खूनके साथ नेत्रके पलकोंमेंसे निकल जाती है, पलकका ढीलापन सुकड जाता है । कभी २ लकुएके कारणसे पलकका ढीलापन हो जाता है । कभी ऐसा भी होता है कि पलकका वह बन्धन जो पलकको ऊपरकी ओर खींचे रहता है, और किसी रोगके कारणसे मस्तककी फस्द खोलनी पडे तो फस्द खोलनेवालेकी असावधानीसे वह पलकके बंधनकी रग कट जावे तो इस कारणसे पलक ढीला होकर नीचेको लटक आता है ।

दोनों पलकोंके परस्पर चिपट जानेकी चिकित्सा ।

कभी ऐसा होता है कि दोनों पलकोंका परस्पर मिलना एक कोनेमें होता है, कभी दोनोंमें होता है, कभी २ दोनों पलक एक किनारेसे लेकर दोनों किनारेतक मिल जाते हैं, कभी पलक मुल्तहमा व करनियां पर्दोंपर दोनों ओर चिपट जाते हैं । इस रोगके तीन कारण हैं एक तो यह कि नेत्र प्रथम सूजकर विशेष लाल हो जावें और पलक ऐसा दिखलाई देवे कि जानो फट गया है, अथवा छिल गया है । फिर इस स्थितिपर दोनों पलकोंका जखम भर गया होय तो इस कारणसे दोनों पलक मिल जाते हैं और बहुत समय पर्य्यन्त एक पलक दूसरे पलकसे मिला रहता है । दूसरा कारण यह कि नेत्रमें अथवा पलकमें घाव हो जाय और विशेष समय पर्य्यन्त नेत्र मिचा रहे और उसके कारणसे घावभी चिपट जाय । तीसरा कारण यह है कि सबल व नाखूना नेत्रमेंसे काट डाला होय और जगहपर जैसा चाहिये कि जीरे और नमकसे दाग देना था सो न दिया होय, जो सावधानी काटनेके पीछे की जाती है वह भी न की होय इन्हीं कारणोंके निमित्तसे दोनों पलक परस्पर मिल गये होयँ । इस रोगकी चिकित्सा यह है कि पलकके किसी स्थानमें इतनी जगह चिपटे विना रह गई होय कि जिसमें सलाई जा सके उसी ठिकाने पर सलाई डालकर पलकको उठा लावे । जिस जगहसे पलक झुक रही होय उस ठिकानेपर मोथरी कंगूरेदार सलाईसे उठाकर पृथक् करे । नेत्रका प्रथम पर्दा अथवा नेत्र डेलेके ऊपर पलक जम गया होय हाथ और सलाईको पलक पृथक् करनेके समय नीचा और हलका रखे जिससे पलक

विशेष न खिंचने पावे, क्योंकि इस बातका भय रहता है कि नेत्रका दूसरा पर्दा जिसको करनियां कहते हैं वह पलकके साथ न उठ आवे, नेत्रडला अपने स्थानसे न हट जावे। जिस रोगीके दोनों पलक बराबर मिल गये होयँ और सलाई भीतर तथा पलकोंके बीचमें न जा सके तो पलकोंको धीरे २ नेत्रविस्तारक यन्त्रसे थोडासा उठाकर पृथक् करे, फिर सलाईका सहारा देकर दूसरे समय नेत्र विस्तारक यन्त्रको जरा चौंडा चढाकर दोनों पलकोंको पृथक् कर देवे। यदि इस उपायसे भी पलक पृथक् न होवे तो छोटे कोएकी ओर जो कि कानकी ओरको है जिस स्थानपर पलकसे पलक चिपट रहा होय उस स्थानको तीव्र बारीक नस्तरकी नोकसे इतना चीर देवे कि जिसमें चपटी सलाईकी नोक चली जावे। फिर उस चिरे हुए स्थानमें सलाईकी नोक इतनी प्रवेश करे कि नेत्र पर्देको सदमा न पहुँचने पावे। और उस सलाईसे पलकको ऊपरकी ओर उठाता हुआ बडे कोएकी ओरको सलाईको सरकाता लावे (बडे कोएसे प्रयोजन नासिकाकी ओरके कोएका है) यदि सलाईके सरकानेसे दोनों पलक प्रथक् न होवें तो दोनोंकी मिली हुई सन्धिको कैचीसे कतर देवे, जो इस उपायसे पलक खुल जाय तो पलकोंके खुलनेके पीछे जीरा और नमक चावकर उसका निर्मल जल नेत्रमें टपकावे जिससे दाग हो जाय और साफ रुई गुलाबके तैलमें चिकनी करके दोनों पलकोंके बीचमें रख देवे जिससे पुनः परस्पर न चिपट जायँ। नेत्रकी पीठपर अण्डेकी जर्दी गुलाबरोगनमें मिलाकर लगा देवे जिससे पलक नर्म हो दर्दको रोक देवे और उस स्थानको बल पहुँचावे, फिर साफ कोमल रुईको एक नर्म कपडेमें लपेटकर गद्दी बनाकर नेत्रके ऊपर रख ढीली पट्टीसे बांध दूसरे दिवस खोले, फिर जीरा और सेंधानमक चावकर उसका साफ पानी नेत्रमें टपकावे। अण्डेकी जर्दी तथा गुलरोगन मिलाकर नेत्रकी पीठपर लेप करके उपरोक्त विधिसे पट्टी बांध देवे। तीसरे रोज उचित समझे तो दोनों पलकोंके बीचमें सलाई लगाकर देखे कि किसी स्थानपर दोनों पलक आपसमें चिपटते तो नहीं हैं। यदि पलक चिपटा मालूम पडे तो अभी गुलरोगन और अण्डेकी जर्दीकोही काममें लावे। जो पलक न चिपटते होवें तो वह स्याफ (सलाई) जो घाव भरनेके प्रकरणमें कथन की गई है उनको लगावे। जो प्रथम पर्देकी सूजनसे दोनों पलकोंके आपसमें मिल जानेका भय होय तो प्रथमसेही ऐसा उपाय करे कि पलक न मिलने पावे (विशेष द्रष्टव्य दोनों पलकोंके बीचमें नस्तर लगाने तथा सलाईसे खोलनेके समय इतनी सावधानी रक्खे कि नस्तरकी नोक तथा सलाईकी नोकसे नेत्रके पर्देको सदमा न पहुँचे)।

पलकके छोटे हो जानेकी चिकित्सा।

पलकके छोटे होनेको सुतरा कहते हैं। प्रायः देखा जाता है कि कितनेही मनु-

क्योंका ऊपरका पलक सुकड जाता है और नीचेका पलक बाहरकी ओर उलट जाया करता है । इस प्रकारसे देखनेमें आता है कि ऊपरका पलक नीचेके पलकसे नहीं मिल सक्ता । जिन मनुष्योंके नेत्र शयनकी दशामें आप खुले हुए देखते हों उनके पलकोंमें यही खामी पाई जाती है । जितना पलक सुकड जायगा उसीके अनुसार नेत्रकी पूर्ण सफेदीको व सफेदीके किसी अंशको (थोडे भागको) न ढक सकेगा—तबीबलोग इस नेत्रको शशाके नेत्रसे मिलाते हैं और ऐसे मनुष्यकी नींदको खरगोशकी नींद कहते हैं । इस रोगसे नेत्रको यह हानि पहुँ-चती है कि जितना भाग नेत्रका खुला रहता है उसके द्वारा नेत्रमें धूल गर्दादि मलीन पदार्थ पहुँचकर एकत्र हो जाते हैं । दोनों पलकोंके परस्पर मिलनेसे नेत्रकी दृष्टिमें अवश्य निर्बलता आ जाती है । इस रोगके दो भेद हैं एक तो यह कि जन्मसेही वह मवाद कि जिससे पलक बनती है कम उत्पन्न होय और इस कारणसे पलक पूर्णरूपसे छोटे उत्पन्न होय और नेत्रकी रक्षा करनेके लिये परस्पर दोनों पलक न मिल सकें । दूसरा भेद यह कि पलक जन्मसे छोटे उत्पन्न न होयँ किन्तु पीछे किसी दूसरे कार-णसे पूर्णताको त्यागकर छोटे होगये होयँ । इसके छः कारण हैं—एक तो यह कि पलक कट जाय जैसा कि परबालकी व्याधिमें । दूसरा यह कि पलकमें कडा मांसका लोथडासा निकल आवे अथवा अधिक मांस जम जावे चाहे वह अधिक मांस उस घावका होय जो उसमें हो गया है चाहे अपनेआप विना घावके मांस जमकर उत्पन्न हो आवे । तीसरे यह कि किसी कारणसे ऊपरके पलकको काट देवे और वह नियम-पूर्वक उचित रीतिसे ना मिल सके और उसको विपरीत रीतिसे सीमदेनेके कारणसे पलक छोटा हो जाय । चौथे यह कि सबल रोगमें सबलको काटनेके समय पलकको बाहरकी ओर लौटा दिया होय और उसमेंसे थोडासा भाग कट जाय और शेष वैसाही छोड दिया जाय । तब खिचावके कारण घावके भरनेसे हो जाया करता है या विशेष मांस उत्पन्न होनेसे पलक उसी तरह बाहरकी ओर लौटी हुई रहे, इसी कारणसे तबीब लोग कहते हैं, सबलको काटनेके पीछे पलकोंको जो बाहरकी ओर उलट दिया होय तो भीतरकी ओर हटाना चाहिये जिससे पलकके छोटे होनेका भय न रहे । नेत्ररो-गकी चिकित्सामें शस्त्रोपचारको वही चिकित्सक करे जो क्रिया कुशल होय । नेत्रके कितनेही रोग ऐसे हैं जो कि चीरने फाडने और काटफांस करनेसे निवृत्त होते हैं, सो जिस रोगीके नेत्र पलक कट जानेसे अथवा पलकको विपरीत सीमनेसे अथवा आव-श्यकतासे विशेष पलकको उठा लेनेसे अथवा काट लेनेसे यह रोग उत्पन्न हो जाय तो उचित है कि पलकको जिस जगहसे कि घाव मिलगया है चीरकर छोड देवे, जिससे पलक ढीला पड नेत्रके समस्त भागको ढांक लेवे । पलकको चीरनेके ठिका-

नेपर (चीराके बीचमें) वह मरहम बत्ती लगाकर रखे जो मांसको जमा देती है, जिससे दोनों चीरोंके किनारे न मिलने पावें और दोनों किनारोंके बीचमें मांस भर आवे । जिस रोगीके नेत्रमें मांसका कडा लोथडासा अथवा विशेष मांस होय तो चाहिये कि उसको चीमटीसे पकडकर उठा लेवे फिर कैंचीसे कतर डाले और काटनेके पीछे उसकी जगह पर तेज दवा लगावे कि वह दग्ध हो दूसरे समय न बढने पावे । जिस रोगीके नेत्रमें सबल काटनेके पीछे पलक बाहरकी ओर उलटी हुई रह जानेसे यह रोग उत्पन्न हो जाय तो ध्यानसे देखना चाहिये कि नेत्रका प्रथम पर्दा पलकके साथ उभर आने और अच्छे होनेमें झुक गया होय और इसी कारणसे पलक झुक गया होय पलक खींचकर उलट गया होय तो उस उपायके अनुसार इस रोगका इलाज करना चाहिये जिसका वर्णन ऊपर दोनों पलकोंके चिपट जानेके प्रकरणमें हो चुका है । पलकको नेत्रके प्रथम पर्देके ऊपरसे उसी विधिके अनुसार पृथक् करे । जो पलकके ऊपर कोई वस्तु गांठके समान उत्पन्न हो गई होय तो उसके नष्ट कर देनेके लिये मेथी और अलसीका लुआब और (मरहम दाखलीऊन) लगावे, जो इस उपायसे निवृत्त हो जावे तो ठीक है यदि न होवे तो नस्तर व कैंचीसे काट डाले । पांचवें यह कि जो झिल्ली खोपडीकी ओर पास लगी हुई है किसी भीतरी रोगसे या चोट लगनेसे अथवा धमक लगनेसे व घावके कारणसे जो कि घाव शिर पर व माथे पर होय और यह झिल्ली कष्ट पाकर खिंच जाय और समीप होनेके कारणसे ऊपरके पलकमें भी खिंचाव उत्पन्न होय । छठे यह कि पलकका उठानेवाला अजला खिंच जाय और पलकके छोटे होनेका कारण होय अब यह समझना चाहिये कि झिल्लीका खिंचाव जो चोटके लगने पर अथवा धमक लगने पर व घावके कारणसे उत्पन्न होयं तो उसका यह चिह्न है कि उसमें कष्ट मालूम होय और इसका उपाय यह है कि जैसा रोग देखे उसके कारणोंका उपाय करे । जो खिंचाव कदाचित किसी भीतरी कारणोंसे उत्पन्न हुआ होय चाहे उस झिल्लीमें कि जो खोपडीके ऊपर लगी हुई है चाहे पलकके अजलामें तो उसको उन चिह्नोंसे जान सक्ते हैं । जो खुश्की और मवादके भरनेकी खिंचावटके प्रत्येक कारणमें पाये जा सक्ते हैं । और उसके अनुसार ही उसकी चिकित्सा हो सक्ती है जैसे कि जो पलक एक साथ छोटा हो जाय और उसमें बोझ तथा खिंचावट मालूम होय और भरे हुए मवादके सब चिह्न प्रगट होयँ तो जान लो कि मवादके कारणसे खिंचावट है । यदि पलक धीरे २ छोटा होय तथा उसमें दुबलापन और खुश्की करनेवाले कारण प्रथम हो चुके होयँ तो समझ लो कि खिंचावट और इठना खुश्कीसे है । चिकित्सा इसकी यह है कि जो मवादके

कारणसे खिचावट होय तो उसके निकालनेका उपाय करे मवादको नष्ट करनेवाले तैलको मले और मेथीके लुआबका तरडा देवे, तरी पहुंचानेवाले शर्बत व भोजन करे व तरी पहुँचानेवाले तैलोंको काममें लावे। ये उपाय खुश्क और दोषयुक्त दोनों प्रकारके रोगोंमें लाभदायक हैं, क्योंकि जो खिचावट मवादके भरे होनेके कारणसे होय तो मवादके गाढेपनके कारणसे तरी पहुँचाने और नर्म करनेकी आवश्यकता है। ऐसेही लडकीवाली स्त्रियोंके दूधमें खतमी और बनफशा मिलाकर लेप करना व बनफशाका तैल और कद्दूका तैल शिरमें डालना दोनों प्रकारके रोगोंमें हितकारी है।

नेत्रपलकपर अधिमांस वृद्धिकी चिकित्सा।

अधिमांस यह चर्बीके समान पट्ठेसे बना हुआ मांसका टुकडा होता है (कितनेही वैद्योंका तो यह भी सिद्धान्त है कि यह मेदज ग्रन्थी है) और एक झिल्ली उसमें खिची हुई ऊपरके पलकमें बाहरकी ओर उत्पन्न हुआ करती है। उसका चिह्न यह है कि पलक मोटी हो जाय और मोटे होनेके कारणसे पलक काठिनतासे खुले और नेत्रमें सदैव तरी बनी रहे। जिस समय तर्जनी अंगुली और बीचकी अंगुलीको खोलकर नेत्रके ऊपर रखकर नेत्रको दबाया जावे तो दोनों अंगुलियोंके बीचमें एक विशेष वस्तु प्रगट मालूम होय, क्योंकि यह रोग अंगके सारभागमें चिपटकर गाढा रहता है और उससे पृथक् न हो फिरता हुआ तथा चलायमान नहीं होता है। परन्तु इस कथनसे इसको रसौली नहीं समझना, क्योंकि रसौलीकी स्थिति इससे विरुद्ध और पृथक् है, क्योंकि वह फिरती और चलायमान होती है, रसौली और अधिमांसमें यही अन्तर है। इस रोगवाला मनुष्य सूर्य्यके प्रकाशको बहुतही कम देख सक्ता है, यदि देखे तो नेत्रोंमेंसे शीघ्र आंसू निकल आते हैं और छींक आने लगती है, यह रोग जुकाम नजले और तर प्रकृतिके मनुष्योंको प्रायः उत्पन्न हुआ करता है। चिकित्सा इस रोगकी यह है कि जैसी आवश्यकता होय उसके अनुसार शरीरके दूषित मवादको निकालनेके लिये फस्द खोल बनफशाकी टिकिया देवे। मवादको मुलायम करनेके लिये मुंजव्विरा और केवल पक्षियोंका मांस देवे, वातको उत्पन्न करनेवाले आहारविहारोंसे बच रोगी प्रकृतिको सम्हालनेका उपाय करता रहे। इस रोगमें बंद गुसलखानेमें जाकर स्नानविधिको हितकारी समझे। मवादको नष्ट करनेवाली जडी बूटियोंको जलमें पकाकर उस पानीसे सिकाव करे, मवादको निकालनेके पीछे बासलीकून अगवर लगावे जिससे तरीवाला मवाद नेत्रमेंसे निकल जावे। यदि इन उपायोंसे अर्थ सिद्ध न होय तो नस्तरका प्रयोग करे, परन्तु जहांतक लगानेकी औषधियोंसे रोग निवृत्त होय वहांतक शस्त्रप्रयोग काममें न लावे।

क्योंकि नेत्र तथा नेत्रके उपाङ्गोंको चीरने फाडनेमें भय अवश्य रहता है, इसलिये नेत्ररोग जहांतक औषधसे निवृत्त होय वहांतक औषधोपचार करना ठीक है । यदि चिकित्सक और रोगी जिस रोगका निवृत्त करना चाहे और पथ्यसे रहे तो अवश्य सब रोग निवृत्त हो जाते हैं । एक तबीबने इस रोगकी चिकित्सा पिघलानेवाली दवा और जरूरे अगवरसे किया वह रोगी बिलकुल अच्छा हो गया । जिस रोगीको औषधियोंसे आराम न होय और शस्त्र प्रयोगकी आवश्यकता होय तो रतूबतकी जगहको चौडाईके बीचमेंसे चीर देवे । चीरा इतना गहरा लगाना चाहिये कि चीरा चरबीतक पहुँच जावे ऐसा न हो कि. चीरा चर्बीसे बढकर आगे पहुँच जावे, क्योंकि चर्बीसे गहरा लगाना भी हानिकारक है आवश्यकता हो उतनाही गहरा चीरा लगावे । चीरा लगाते ही चर्बी चमक उठे तो उसको निकाल लेवे, यदि ऐसे न निकले तो अलसीकी पीठके समान मुखके आकारवाली सलाईसे व चीमटीसे पकड दायें बायें हिलाकर ऊपरकी ओर हिलाके उठावे कि जिससे वह सब बाहर आ जाय । काटनेके पीछे अलसीका टुकडा सिर्के और गुलाबमें भिगोकर चीरेकी जगहपर रखदेवे । जिस रोगीके पलकसे चर्बीका टुकडा जडसे न उखडे कुछ अंश उसका बाकी रहजाय तो सेंधानमक बारीक पीसकर उसपर बुर्क देवे जिससे वह गलकर निकल जावे । यदि चर्बीका टुकडा कुछ बाकी रह जायगा तो दर्द और गर्म सूजनको उत्पन्न करेगा । पीछे कडा पड पलकको खोलनेसे रोकेगा । इसी प्रकार पलकमेंसे समस्त चर्बीका भाग निकल जायगा तो भी पलकको हानि पहुँचती है, क्योंकि चर्बी पलकका एक भाग है जो पलकसे समस्त चर्बी निकल जायगी तो पलकमें खुश्की आ जायगी और पलक जैसा चाहिये वैसी नर्मीके साथ बन्द न हो सकेगा ।

नेत्रपलककी ग्रन्थीकी चिकित्सा ।

यह व्याधि ऊपरके पलकमें गांठके समान उत्पन्न होती है, इसके उत्पन्न होनेका कारण यह है कि वातजन्य गाढी तरी शिरसे उतरकर पलकके ऊपर गिरती है । इसका तर भाग तो शरीरकी गर्मीसे जल जाता है शेष भाग पथरा जाता है, इसीलिये इसका नाम ग्रन्थी रखा गया है । इस ग्रन्थीके तीन भेद हैं एक तो यह कि जो रसौलीके समान चलता फिरता होय और अपनी जगहसे दायें बायें और ऊपर नीचे हट जाती होय । चिकित्सा इसकी यह है कि जो ग्रन्थी गहरी भीतरी गडी हुई न होय तो गांठके ऊपरके चमडेको चौडाईमेंसे चीर देवे, चीरे हुए चमडेके किनारे लोहेकी चीमटीसे पकडकर गांठके ऊपरसे खींचकर इधर उधरको हटाकर शीघ्र छील डाले जिससे उसके ऊपरकी झिल्ली जो उसपर लिपटी हुई है दिखाई देने लगे । फिर उस झिल्लीको आहस्तेसे चीमटीमें पकडकर खींच लेवे कि जिससे गांठ सहित बाहर

निकल आवे, गांठको निकालनेके समय यह सावधानी रखे कि वह झिल्ली न फटने पावे क्योंकि जो वह झिल्ली गांठके ऊपर छाई हुई है यदि वह फट जायगी तो गांठको काटकर व छीलकर निकालना उत्तम रीतिसे न बन सकेगा। इसलिये किसी २ चिकित्सकका इस विषयमें यह कथन है कि गांठके ऊपरके चर्मको चौडाई और लम्बाईमेंसे दो तर्फा चीर देवे कि जिससे गांठका निकाल लेना सुगमतासे हो सके। यदि ग्रन्थी विशेष गडी हुई भीतरी होय तो पलकको बाहरकी तर्फ उलट देवे पलकके भीतरसे जिस जगहपर गांठ है चीरा दे सावधानीके साथ गांठको बाहर निकाल लेवे। फिर जीरा चाबकर उसका स्वच्छ पानी नेत्रमें डाले और थोडे समय पर्यन्त पलकको पकडे रहे कि जिससे वह झुक न जावे। फिर पलकको छोडकर भीगे हुए कपडेकी गद्दी लगाकर नेत्रपर पट्टी बांध गद्दीपर पानी डालता रहे, फिर तीसरे रोज खोलकर देखे कि जखम पानीसेही पुर गया है व नहीं, जो पुरा होय तो ठीक है न पुरा होय तो गुलरोगन अंडेकी जर्दीको मिलाकर फोहा भिगोकर रख पट्टी बांध देवे। दूसरे यह कि गांठ कंकरी व पत्थरके समान कडी होय, अपनी जगह न हिले चले क्योंकि वह अंगसे पृथक् नहीं है किन्तु उसमें चिपटी हुई है कितनेही चिकित्सकोंका यह मन्तव्य है कि यह ग्रन्थी फोडेके समान होती है। चिकित्सा इस ग्रन्थीकी यह है कि उसको नर्म करनेके लिये गर्म जल और मोमका तैल लगावे। जब नर्म हो जाय तो मरहम दाखली यून मैथी और अलसीका लुआब लगावे जिससे वह नष्ट हो जाय। कदाचित् इस उपचारसे ग्रन्थी नष्ट न होय तो इसका उपाय करना छोड देवे, लेकिन जो औषधियाँ ग्रन्थीको पिघलाती हैं उनका इस्तेमाल बराबर रखे कुछ कालमें बैठ जावेगी। इसके ऊपर शस्त्रोपचार बिलकुल न करे, न तीक्ष्ण औषधियोंके लगानेका उपचार करे, क्योंकि इस जातिकी ग्रन्थीको काटनेसे रोगीको कष्ट पहुँचनेके सिवाय कुछ लाभ नहीं पहुँचता और भय विशेष रहता है। क्योंकि इस ग्रन्थीकी थैली नेत्रपलकसे पृथक् नहीं है जिससे सबकी सब निकल आवे, इस ग्रन्थीको काटकर निकाला जावे तो उसका सब अंश नहीं निकलता जो कुछ अंश शेष रह जाता है उसके खमीरसे वैसीही ग्रन्थी दूसरी बार निकल आती है। कभी २ विशेष सूजन भी उत्पन्न कर देती है। किसी २ चिकित्सकका इस ग्रन्थीके विषयमें ऐसा कथन है कि सब मवादके निकल जानेके पीछे ग्रन्थीको कैचीसे कतरकर उठा बहुत समयतक रक्तको बन्द न करे कि जिससे खमीररूप होकर रह जावे व दूसरे ठिकाने ग्रन्थी उत्पन्न करे, पलकमें भी सूजन होनेका भय न रहे। तीसरे प्रकारकी ग्रन्थी यह है कि पलकके चमडेके ऊपर ऊपरी भागमें फैली हुई होय, उसकी रगें अङ्गमें गढी हुई होयँ,

उसका रंग लाल शहतूत व बैंगनके समान होय । ऐसी ग्रन्थीका उपाय यह है कि थोडी देरमें उसका मवाद निकालता रहे जिससे मवाद बढने न पावे । वातको उत्पन्न करनेवाले आहार विहारोंका त्याग रखना उचित है, चाहे कोई कारण क्यों न होय ऐसी ग्रन्थीके ऊपर शस्त्रोपचार न करे क्योंकि ऐसी फैली हुई ग्रन्थीको शस्त्रद्वारा जडसे उखाडना विशेष कठिन है । क्योंकि ऐसी ग्रन्थीका मवाद विशेष दूषित और निकम्मा है इसी कारणसे इसका घाव भी शीघ्र नहीं भरता जैसे कि सरतान सूजनका घाव नहीं भरता सो उचित है कि शस्त्रोपचारको त्यागकर रोपण औषधियोंसे इसका उपचार करे ।

परवालकी चिकित्सा ।

इस रोगको परवाल कहते हैं कि पलककी बांफडी भीतरी भागमें ऐसा वाल जम जावे कि उसका शिरा नेत्रके भीतरी भागकी ओर मुडा हुआ होय जब नेत्र फिरें व मुडे तो नेत्रके ढलेमें चुभन मालूम होय, आंसू निकल आवें इस वालकी हरकतसे नेत्र निर्वल हो जाय । मवादको ग्रहण करनेकी उसमें शक्ति उत्पन्न हो जावे, नेत्रकी रगें लाल रंगकी हो जावें, पलक और कोएमें खुजली उत्पन्न होय । यह परवाल दो प्रकारका होता है–एक तो यह कि सीधा होय नेत्रके ढलेमें चुभे, दूसरा यह कि वाहरकी ओर मुडा हुआ होय यह मुडा हुआ वाल नेत्रके ढलेमें नहीं चुभता, नेत्रको कुछ विशेप हानि नहीं पहुँचाता जिससे उसके उपायकी फिकर की जावे । परन्तु जो वाल नेत्रके ढलेपर अन्दर पडा रहता है उससे इस प्रकारके रोगीको देखनेकी वस्तुओंपर काली लकीरें दिखाई देती हैं । ऐसांही उस मनुष्यको भी दीखता है कि जिसके पलकोंके वाल प्रमाणसे अधिक होयँ दृष्टिके मार्गमें खडे हो जायँ ऐसे वाल स्वभावके विपरीत निकल आये होयँ । इस रोगका मूल कारण दुर्गन्धित तरी होती है कि जो पलकमें वालोंके समीप एकत्र हो जाती है । इस रतूवतमें खारीपन नहीं होता है क्योंकि यह रतूवत जो खारी होती तो विशेष वालोंको गिरा खराव कर वालोंको जमने नहीं देती । चिकित्सा–इस रोगकी यह है कि प्रथमहीसे रोगके उत्पन्न होतेही मवादको योग्य औषधियोंके द्वारा दिमाग और शरीरसे निकालना चाहिये । अयारजका सेवन तथा ऐसीही अन्य औषधियोंसे कुल्ले कराना उचित है । जिस मनुष्यकी प्रकृतिमें गर्मी होय तो प्रातःकालके समय पीली हरडका मुरब्बा व इत्तरीफलसगीर देना चाहिये ।

इत्तरीफल सगीरके वनानेकी विधि ।

काबुली हरडकी छाल, पीली हरडकी छाल, जंगी हरडकी छाल, वहेडेकी छाल, आंवला सब बराबर वजन लेकर कूट छानकर वदामके तैलमें चिकना

करके तिगुणे शहतकी चासनीमें मिलाकर सात मासेकी मात्रा पूरी उमरवालेको सेवन करावे। इस रोगीको सदैव पीली हरडकी छाल व काबुली हरडकी छाल मुखमें रखके चूसता रहे। जिस रोगीकी प्रकृति ठंढी होवे तो उसको मस्तगी लवङ्ग चावना चाहिये। जायफल मुखमें रखकर उसका पानी धीरे २ चूसना चाहिये, अम्बर सूंघना चाहिये। इसके पीछे जर्राही तरीकेसे इलाज करना चाहिये। इस वीमारीमें जर्राही इलाज पांच प्रकारके तरीकेसे होता है। एक यह कि दवा लगाकर बालको नष्ट करना दूसरे यह कि रोगसे उत्पन्न हुए निकम्मे बालको अच्छे बालोंके साथ लगाना अथवा चिपकाना। तीसरे बाल निकलनेके ठिकानेपर दाग देना कि बालकी जड जल जावे, चौथे बालके निकलनेको बन्द करना व सी देना। पांचवें बालको काटना व जडसे उखाडते रहना लगानेवाली औषधियोंमेंसे तीक्ष्ण और पलकको मवादसे साफ करनेवाली औषध लगावे—जैसे वासलीकून, रोशनाई कबीर, शियाफ अजखर, अहमरेहाद। निकम्मे बालको अच्छे बालोंमें चिपका देना इस प्रकारसे होता है कि निकम्मे बालको पलकके बाहरके बालोंकी ओर चीमटीसे पकडकर मोड वांफणीके बालोंमें बहुत खफीफ गंधा वहरोज तर लगाकर निकम्मे बालोंको चिपका देवे। निकम्मा बाल छोटा होय तो उसके बढनेपर उसको इसी विधिसे बाहरकी ओर लानेकी कोशिश करे, चेंपदार वस्तु बबूलका गोंद और कतीरा भी है परन्तु यह आंसुओंसे घुल जाता है, इसके घुलनेसे बाल छुटकर फिर अन्दरकी रुखमें पहुँच जाता है गंधावहरोजा तर घुलता नहीं है उसके ऊपर पानी भी असर नहीं करता, मस्तगीभी इस कामके लिये उत्तम है। बालकी जडको दाग देनेकी यह रीति है कि पलकको बाहरकी ओर उलटकर परवालोंको चीमटीसे पकडकर उखाड एक लोहेकी बारीक सलाई जो सूईके समान पतली गोल बारीक नोंकवाली होय उसको अग्निमें लाल करके होसियारीके साथ बालकी जडको दाग देवे। एक समयमें दो बालोंसे अधिक न उखाडे और न दागे। जब उसके जखम अच्छे हो जावें तब दूसरे बाल उखाड दाग देवे। दोसे अधिक बाल एक समयमें दागे जावें तो पलकपर सूजन आ रोगीको अधिक कष्ट होता है। इस दग्ध करनेकी क्रियाके समय पलकको लौटा लेनेके लिये लिखा गया है उसका यह कारण है कि गर्म सलाईके तेजसे नेत्रपटल बचा रहे। इसी कारणसे एक चिकित्सककी यह राय है कि जिस समय परवालोंकी जडको दाग दिया जावे उस समय पर मेदा (गेंहूका बारीक आटा) गूंदकर नेत्रमें भर दिया जावे अथवा साफ रुईका फोहा शीतलजलमें भिगोकर थोडा निचोडकर नेत्रढेले पर रख दिया जावे यह सबसे सरल विधि है। बालकी जडको दाग देनेके पीछे उसपर गुलरोगन और अंडेकी जर्दी मिलाकर लगावे जबतक दागका चिह्न बाकी रहे पल-

कमें उसका कष्ट रहे तवतक दूसरे वालोंकी जडको न दागे। सब उपायोंसे यह उपाय श्रेष्ठ है कि सव परवालोंको उखाडनेके उपरान्त उस जगहको नौसादरसे खुजावे, अथवा दरयाके हरे मेंडकका रक्त व कुत्तेकी चिचडियोंका रक्त अथवा खुटक वढैयाका पित्ता, चेंटियोंके अंडे व अंजीरका दूध इनमेंसे जो मिल सके उसको उखाडे हुए वालोंको ठिकानेपर लगाकर मले, क्योंकि दवा वालोंको नहीं निकलने देती है, जमनेसे रोकती है। नदीके झाग इसबगोलके लुआवमें मिलाकर लगाना वालोंके निकलनेकी जगहको शीतल और सुन्न कर देता है। सींदनेकी यह रीति है कि एक अति वारीक सुई लेकर शिरका एक पतला वाल दोलर करके उसके दोनों सिरे मिलाकर सूईमें पिरोवे इस तरहसे कि वाकी वाल घेरेकी सूरतमें वाहर रहें शिरका एक लम्वा वाल और भी इस घेरेमें डाल देवे क्योंकि काम आवेगा। इस दूसरे वालको भी इसी तरह पर दोलर कर लेवे कि उसका घेरा उस पाहिले वालके घेरेमें जो सुईमें पिरोया गया है पड जाय तो फिर सुईका शिरा पलकके भीतर परवालके समीपसे जितना उचित होय वाहर निकाल लेवे। सलाईकी नोकसे परवालको इस वालके घेरेमें खींचकर भीतर कर सूईको धीरे २ खींचता जावे जव वालका घेरा छोटा रह जाय तव एकही साथ खींच लेवे जिससे पर वाल वाहर निकल आवे। जो इस क्रियाके करनेमें परवाल घेरेके भीतरसे वाहर निकल अपनी जगहपर आ जाय तो इस दूसरे वालसे जो प्रथम वालके घेरेमें डाला गया था प्रथम वालके घेरेको फिर भीतरकी ओर खींच लो, कदाचित दूसरे वक्त सूई लगानेकी आवश्यकता पडे तो प्रथम जगह पर सूई लगावे इसलिये कि छेद चौंडा हो परवाल उसमें न ठहर सकेगी। इस लिये उचित है कि दूसरी वार प्रथम जगहके वरावरमें सूई लगावे जिस समय परवालको वाहर निकाल लावे तव उसको असली वालोंके साथ जैसा कि ऊपर लिखा गया है चिपका देवे, परन्तु प्रथम सूईका छिद्र जिसमेंसे सूई निकाली थी उसको सलाईसे कईवार मल देवे जिससे वह छिद्र दवकर मिल परवाल मिचकर उसमें ठहरा रहे। इस सीमनेकी क्रियामें वालकी जगहपर वारीक रेशमका डोरा भी काममें लाया जावे तो कुछ हानि नहीं है, वालको वाहर निकालनेकी एक तर्कीव यह भी है कि परवालको सूईके नाकेमें पिरोकर पलकके वाहर निकाल लेवे लेकिन परवाल विशेष छोटा न होवे, यदि छोटा होगा तो फिर अन्दर चला जावेगा। पलककी छेदन क्रिया जिस मनुष्यके पलकमें परवाल विशेष होयँ तो उनपर काटनेके सिवाय ऊपर लिखे हुए उपाय काम नहीं दे सक्ते पलकको काटनेकी उत्तम विधि इस प्रकारसे है कि रोगीको एक टेविल (मेज) पर सीधा सुला उसको वोल रखे कि शरीरको हिलाना झुलाना नहीं, शिरको स्थिर-

भावसे सीधा रक्खो रोगीको ऐसा सावधान करके चिकित्सक अपने बायें हाथके अंगूठे और तर्जनी अंगुलीसे ऊपरके पलकको पकडकर उसको थोडासा उठा सलाईका चाडा शिरा पलककी पीठपर रखकर दबावे जिससे पलक आसानीसे उठ जावे। पलक उठानेसे प्रथम तीन बारीक सूइयोंमें तीन बारीक रेशमके डोरे पिरोकर रख लेवे। उन सूइयोंको पलकके भीतरसे पलककी पीठकी ओरसे बाहर निकाल लेवे, जिस जगहपर कि पलकका बीच समझमें आवे वहांसे निकाले। यह तर्कीब बहुत पुरानी है इस डोरेकी तर्कीबकी अपेक्षा आजकल पलकको उठाने और पकडनेके लोहेके औजार आते हैं, उनसे पकडना व उठाये रखना उत्तम है। जब पलकको डोरोंसे चाहे आजारोंसे उठा लेवे तो प्रथम यह अंदाज कर लेवे कि पलकके कितने भागमें परबाल है और कितना काटना होगा। जितनी जगह काटनेके योग्य समझी जावे उतनीका अनुमान करके उसपर कुछ चिह्न कर देवे, फिर उतनीही जगहको तीव्र कैंचीसे काटदेवे। इस बातकी विशेष सावधानी रक्खे कि पलकके सिवाय और अङ्ग नेत्रका न कट जावे जब काट चुके तब तीन जगह सूईसे टांके लगाकर गांठ लगा देवे। टांके लगानेके पूर्व काटे हुए भागके दोनों सिरे बराबर मिलावे, कटी हुई जगहमें प्रथम बीचकी जगहमें टांका लगाकर सी देवे। फिर जरूरे अजफरका मरहम अवियजमें मिलाकर घावपर लगा देवे। नेत्रके पलकको नीचे डालकर रुई और नर्म कपडेकी गद्दी लगाकर बांध देवे। (विशेष सूचना) यह शस्त्रोपचार अति निपुण और क्रियाकुशल चिकित्सक कर सक्ता है, साधारण चिकित्सक इस कामको करनेका साहस न करे नहीं तो रोगीको कष्ट और हानि पहुँचकर चिकित्सक अपयशका भागी होगा। क्योंकि कदाचित् पलकके वे अजले कट जावें जो कि पलकको झुकाते हैं तो नेत्रके ढकनेकी क्रियामें हानि पहुँचेगी। दूसरी विधि पलकके काटनेकी यह है कि दो लोहेकी पत्ती बहुत साफ, हलकी चिकनी पलकके बराबर होयँ ऐसी तैयार करके रखे, यदि हो सके तो ये पत्तियां सोने चांदीकी भी तैयार हो सक्ती हैं। नेत्रके पलकको अंगुलियोंसे उठाकर जितने पलकके भागमें परवाल होयँ उतनेको काटनेके वास्ते दोनों पत्तियोंके बीचमें दबाकर पत्तियोंके दोनों सिरे ऐसे मिलाकर कडे बांध देवे कि वह पलकका दबा हुआ भाग बराबर भिचा रहे। इस क्रियासे पलककी खाल भिचावमें आ जायगी, उसको पोषण भिचावके कारणसे नहीं पहुँचेगा और वह पलकका भाग निर्जीव होकर दश दिवसमें अथवा इससे कमती वढतीमें स्वयं गिर पडेगा, घावका चिह्न उत्पन्न न होगा। जो मनुष्य दश दिवसपर्यन्त इस क्रियाको सहन न कर लोहेकी पत्ती व काटनेसे भयभीत होय तो उसके परवालयुक्त पलकको तेज औषधियोंसे काटना चाहिये। इसकी विधि यह है कि तेज दवाको सलाईके

सिरेपर उठाकर पलककी खालपर जिस जगहसे पलकको काटना चाहे लेप कर देवे तो मेथीकी पत्तीकी सूरतपर उसी समय खाल फूलकर उभर घावका चिह्न दिखाई देगा । तव दवाको वहांसे उठा थोडे समयतक ठहरकर फिर दूसरे वक्त लेप कर थोडी देरतक लगी रहने दे, फिर दवाको उठा लेवे जहांतक परवालकी जड निकलकर घाव न होय वहांतक इसी प्रकारसे किये जाय, जब घाव हो जाय तो दवा लगाना छोड देवे । जवतक कि वह जगह काली होकर खुरंड बंध जाय तब दवाको धोकर उस ठिकाने पर मोमका तैल लगाता रहे जिससे खुरंड झड जाय । जखम भरकर अच्छा न होय तो सफेदाका मरहम लगावे जिससे कडा होकर अच्छा हो जाय । प्रायः ऐसी तेज दवाको लगानेकी ओर तवीव लोग रुजू नहीं होते, क्योंकि लगाते समय यह जलती है । तेज दवाके वनानेकी विधि यह है कि विना बुझा चूना सज्जी दोनों आधा २ भाग नौसादर वूरये इरमनी एक २ भाग सावुनका पानी दो भाग चारों दवाओंको सावनके पानीमें सानकर मरहमसा वनालेवे । कभी २ इस प्रयोगमें चूना और सज्जी एक २ भाग ली जाती हैं, क्योंकि इनके एक भाग लेनेसे दवामें तेजी अधिक दग्ध करनेकी होती है । लडकेके मूत्र तथा राखके स्वच्छ पानीमें सानकर मरहम वनाना भी लिखा है । जिस रोगीके नेत्रकी पलकोंमें अधिक वाल न हों, अपनी जगह पर जहां कि वाल जमे हुए हैं उसी ठिकानेपर वाल जमें होंयँ लेकिन उनमें कुछ वालोंका शिरा अन्दर नेत्र पुतलीकी ओर मुडा हुआ होय तो उसका उपाय सी देना और मुडेहुए वालोंको वाहरकी ओर निकालकर मोड अच्छे वालोंके साथ चिपका देवे जैसा कि ऊपर कथन किया गया है । ऐसे वालोंके लिये दाग देना अथवा पलकके काटनेकी आवश्यकता नहीं है । एक चिकित्सकका कथन है कि मुडे-हुए तथा जमेहुए परवालोंको उखाड छोटी सीपोंको जलाकर तैलमें बुझा उसीमें वांटकर मिला देवे इस तैलको उस ठिकाने पर लगानेसे वाल नहीं जमते । (सूचना) इस दवाको कई वार लगाना चाहिये और लगानेके समय नेत्रकी हिफाजत रखे ।

पलकोंके वाल अर्थात् वाफणी गिरजानेकी चिकित्सा ।

पलकोंके वाल गिर जानेके चार कारण हैं । प्रथम तो यह कि जो पोषण वालोंके लिये इस जगहमें पहुँचता है उसमें पित्त व वायुके परमाणु जो कि दूषित होकर मिल जावें, इनके मिलनेसे वालोंको पोषण करनेवाले तत्त्वमें तेजी आनेसे वह मवाद कि जिससे पलककी वाफणी उत्पन्न हुई है नष्ट हो जायगा और पलकोंकी वाफणीको गिरा देगा । इस दुष्ट मवादके उपद्रव विशेष करके पलकोंमें होते हैं, क्योंकि इस मवादका उपद्रव समस्त शरीरमें होता है तो सव शरीरके वाल गिर जाते हैं किसी चित्सिकका यह भी सिद्धान्त है कि चाहे यह दूषित मवाद समस्त शरीरमें होय परन्तु उसका

खराब असर पलकोंके सिवाय शरीरके दूसरे अवयोंमें प्रगट नहीं होता। क्योंकि पलक नर्म और हलका अङ्ग होनेके कारणसे दूषित मवादका असर शीघ्र ग्रहण करते हैं। उसका चिह्न यह है कि दोषोंमेंसे एककी अधिकताका चिह्न प्रगट होय और जलन तथा खुजली उत्पन्न होय। चिकित्सा इसकी यह है कि जैसा दोष होय उसके अनुसार औषधियोंसे मवादको निकाल प्रकृतिको दुरुस्त करनेवाला उपाय करे, जो औषधियां पलकके बालोंको जमा देती हैं उनको सुर्मेके माफिक लगावे। जैसा कि लाजवर्द, संगअरमनी छुहारेकी गुठली जलीहुई कुंदरू गोंदका काजल, किशूर सिनौबर अर्थात् लीककी छाल, वालछड इत्यादि औषधियोंको पलकपर लगावे। दूसरे यह कि पलककी खैंचनेवाली शक्ति निर्बल हो जाय और इस कारणसे उसमें पोषण करनेवाला तत्व न पहुंचे और पोषणके न पहुंचनेसे पलकोंके वाल झड जायँ जबतक उसके मूल कारणका उपाय न होय तबतक वाल कदापि न जमें जैसे किसी वृक्षमें पानी न पहुंचे वह जमनेसे नष्ट हो जावे। उसका चिह्न यह है कि गर्म सरसाम (सन्निपातज्वर) अथवा प्रबल ज्वर उत्पन्न हुआ होय इस व्याधिके मूल कारण ये दो हैं। इस व्याधिकी चिकित्सा इस प्रकारसे करे कि जो पोषणको खींचनेवाली शक्तिको उभार देवे और शरीरमें तरी बढानेके लिये ऐसे उत्तम आहार देवे जिनसे उत्तम साफ रस उत्पन्न होय और स्नानविधिका सेवन करना हित है। मवादको निकालनेवाली औषधियोंसे सावधानी रक्खे और तरी बढानेवाली औषधियाँ तथा आहारोंकी ओर अधिक रुजू रहे नेत्रकी पलकोंमें ऐसी वस्तु लगावे जो आंसू निकाले और पलकोंकी जडमें गर्मी पहुँच पुष्टाई आवे। जैसे (वासलीकून) कौहल रोशनाई, कौहल रोशनाईके बनानेकी विधि यह है—जलाहुआ तांवा, शादनज, मगसूल प्रत्येक १७॥ मासे, सफेद मिर्च, पीपल, केशर, इन्द्रायणका गूदा प्रत्येक पौने दो १॥। मासे जंगार एलवा, बूरये इरमनी प्रत्येक ३॥ मासे, चांदीका मैल ७ मासे ये सब दश औषधियां हैं इन सबको कूट छानकर सुर्मा बना लेवे। तीसरे यह कि उस स्थानपर तरी बढकर पलकोंकी जडको ढीला कर देवे, ढीले होनेसे पलक सुस्त हो जावें और वालोंकी जडमें छेदोंको चौंडा कर देवे इस कारणसे वाल न जमसकें और पलकों परसे बाल झड जावें और कफकी अधिकताका पाया जाना ये उसके चिह्न हैं। चिकित्सा इसकी यह है कि कफके निकालनेके लिये अयारजातका सेवन करावे और विशेष परिश्रम करना, जागरण करना, कम आहार करना तथा खुश्की उत्पन्न करनेवाली औषधियोंका सेवन करना उचित है। जो औषधियाँ आंसू निकालनेवाली हैं जैसे अहमरेहाद, अजखर इनको नेत्रोंमें लगाना जिसके लगानेसे मुख्य अङ्गनेसे रतूवत निकल जाय। चौथे यह कि कोई उपद्रव पुष्टाई (पोषण) के पलककी ओर आनेमें

बाधक हो पलकमें पोषणके आनेको रोक देवे । इस दशामें दो बातें हुआ करती हैं एक तो यह कि गाढा दोष रोमाञ्चोंमें चिपट वालोंकी जडको खराब कर देवे और जो भाफके परमाणु कि बाल निकालनेके मवादमें हैं उनको जानेसे रोक देवे । यह (दाउस्सालिब) रोगका एक भेद है, जिससे शिरके बाल गिर जाते हैं । इसकी चिकित्सामें यह ध्यान रखे कि गाढे दोष कफसे अथवा वादीसे व दूषित रक्तसे व निकम्मे पित्तसे जिसमें पतली रतूबत मिल गई होय और प्रत्येक कारणकी असलीयत पलकके रंगसे जानी जा सक्ती है । प्रत्येकके चिह्न उसके साक्षी हैं जैसा कि कथन हो चुका है । उस दोषके अनुसार औषधियोंसे निकालना चाहिये और दोषके निकालनेके पीछे जो लेप कि दाउस्सालिब रोग पर लिखे गये हैं उनको यहां काममें लेना उचित है और जब कारण नष्ट हो आरोग्यता प्राप्त होय तो ऐसी वस्तु पलकोंपर लगानी चाहिये, जिससे वांफणीके बाल जम आवें । इसके अतिरिक्त यह कि पलकमें पुष्टाई (पोषण) न पहुंचनेका यह कारण होय कि रोमाञ्च चेचकसे अथवा घावके भरनेसे अथवा अग्निके जल जानेसे अच्छा होनेके अनन्तर बाल निकलना वन्द हो विलकुल न निकलते होयँ, तीनों स्थितियोंमें कोई उपाय काम नहीं देता । इस प्रसंग पर कि नेत्र पलकके बाल गिरनेके समीपवर्त्ती होने तथा नेत्र रक्षक अङ्ग भौंहँ भी समझा जाता है, इसके भी बाल प्रायः गिर जाया करते हैं । इसका उपाय यह है कि बतखकी चर्बी व जैतूनका तैल अंगुली पर लगाकर रानपर खूब जोरसे घिसे पीछे उसी अंगुलीको भौंहँपर लगावे, इसके लगानेसे भौंहँमें बाल जम जाते हैं ।

नेत्र पलकोंके गंज होनेकी चिकित्सा ।

इस पलकोंकी गंजका लक्षण यह है कि पलकके वालोंकी जडोंमें सबूस अर्थात् भूसीकीसी सूरत उत्पन्न हो जाय और कभी २ घायल होकर पीब पड जाय फिर पलक खुरखुरे पड पलकके बाल झड जायँ इस रोगीके नेत्रमें वातजनित दुर्गन्धिसे और उसकी भाफके परमाणुके कारणसे गंजापन उत्पन्न होता है तो इसका रंग कुछ मैला हो जाता है । जब यह रोग कफजनित मवादके सड जाने और उसकी भाफके परमाणुसे होता है तो उसका रंग सफेद हो जाता है । चिकित्सा इस रोगकी यह है कि प्रथम शरीरको निकम्मे दोषोंसे स्वच्छ करे पीछे शियाफ अहमर लैइयन अथवा शियाफ दीजज नेत्रोंमें लगा चैनाकी छाल जलाकर रोगन गुलमें मिलाकर लेप करे, जो गंज पुरानी हो गई होय तो नस्तरसे खुर्च देवे और चीनी खांडसे खुजाकर ज्योतिवर्द्धक सुर्मा नेत्रोंमें लगावे ।

शियाफ अहमरके बनानेकी विधि।

शादनज २१ मासे, समगेअखी (गोंद) कतीरा प्रत्येक १७॥ मासे, तांबा जलाहुआ १०॥ मासे, मूंगाकी जड, अनविंधे मोती कहरवा (सुनहरी गोंद), जस्तेका सफेदा, रूमी सिंदरफ प्रत्येक ३॥ मासे, दम्बुल अखवैन (हीरादुखीगोंद) केशर प्रत्येक पौने दो मासे इन सबको कूट छानकर जलके साथ बत्ती बनावे।

नेत्र पलक कण्डु (खुजली) की चिकित्सा।

इस पलक कण्डु रोगके चार कारण हैं। एक तो यह है कि पलकके भीतर खारी मवादके कारणसे थोडासा खुरखुरापन और थोडा कडापन (सख्ती) लाली (रक्तता) और खुजली प्रगट होय, उसके कारणसे नेत्रमेंसे आंसू निकलना शुरू हो जाय इस प्रकारका रोग फैलीहुई खुजलीके नामसे बोला जाता है। प्राय: गर्म सूजन होनेके उपरान्त उत्पन्न होता है, इसलिये इसके इलाजमें सर्दी पहुंचानेकी अधिकता की जाती है। मुख्य उपाय यह है कि सरेरूरगकी फस्द खोलकर रक्त मोक्षण कर पीली हरडको खांडके साथ सेवन करके प्रकृतिको नर्म करे और शरीरके मवादके निकलेके पीछे प्रधान अंगके मवादको निकाल ज्योति बढानेवाला सुर्मा शियाफ अहमरेलैयन, शियाफ अजखरेलैयन नेत्रमें लगावे। यदि यह खुजली गाढी और कडी होय एवं उपरोक्त उपायसे निवृत्त न होय तो उसका इलाज यह है कि मवादके निकालनेके पीछे पलकके भीतरी भागमें रोगकी जगह पर नस्तरसे पछने लगाकर रक्त निकाले। इस व्याधिका मवाद पलककी विशेष गहराईमें नहीं होता है, इसलिये पछने विशेष गहरे न लगावे, किन्तु बहुत हलके ही पछने लाभदायक होते हैं। पछने लगानेके पीछे उस रोगयुक्त स्थानको सलाईसे खुजाना चाहिये, जिससे पलकमेंसे रक्त अधिक निकल पलकका खुरखुरापन जाता रहे। और निरोग पलक जैसा पतला था वैसाही हो जाय, इस क्रियाके उपरान्त गुलाब जल और थोडासा सिर्का मिलाकर उस जगह पर लगावे जिससे पछनेके जखमोंका दर्द निवृत्त हो जावे। इस स्थितिमें पलकको चिपकने न देवे और इस प्रकारकी खुजलीमें सदैव स्नान करना हितकारी है। क्योंकि स्नान दोषके नष्ट करनेमें सहायता कर अङ्गको चैतन्य करता है, अङ्गके नर्म होने और लोम कूपोंके खुले रहनेसे मवाद निकल दवाका असर शीघ्र पहुँचता है। लेकिन जहांतक माद्दा नर्म करने और मवादके निकालनेसे हलकी व नर्म करनेवाली दवाइयोंसे मवादकी जड उखड कर रोग नष्ट हो जाय वहांतक पछने लगाना और खुजनेकी क्रियाको ग्रहण न करे आवश्यकताके समय पर करनी उचित है। खुजानेकी विधि लिखी गई है यह उस प्रकारकी व्याधिमें प्रधान है, जिस रोगका मवाद झिल्लीके ऊपरी भागपर रुकाहुआ होय और अधिक गहरा न

होय । दूसरे यह कि पलकके भीतर तेज दोष और दुर्गन्धित भाफके परमाणुओंसे छोटे २ सफेद नोकवाले दाने उत्पन्न हो जायँ और कभी २ उन भाफके परमाणुमें घुटनेके कारणसे खारीपन आ जाय, इस कारणसे कि इस प्रकारकी खुजलीके दाने हर्फकी सूरतके होते हैं इससे उनका नाम हर्फी हुआ है । हर्फ एक प्रकारकी फुंसियां होती हैं, जो शरीरकी चर्म जिल्दमें उत्पन्न होती हैं और उनका प्रभाव यह है कि हलकी और पतली खाल दोनोंके ऊपरसे छिलकेकी सूरतमें उतर जावें, जब इस रोगको वहुत दिन वीत जावें और इसके उपायमें आलस्य किया जावे तो दमा अर्थात् ढलके (नेत्रस्राव) का रोग उत्पन्न हो नेत्रके डेलेमें उसकी खरावी जा पहुँचे, और नेत्रकी रगें लाल हो जायँ. इसी कारणसे एक हकीमका कथन है कि निस्संदेह खुजली और नेत्रकी रगोंका लाल होना वहुधा साथ लगे रहते हैं । चिकित्सा इसकी यह है कि सेरुरू रगकी फस्द खोले अफतीमूनके काढेसे मवादको निकाल केवल हलके उत्तम आहारका सेवन करे । इस कारणसे कि यह रोग झिल्लीके ऊपरी भागमें होता है और पलकके गहरावमें कुछ गहरा नहीं होता, इसलिये इसमें खुजाना उचित नहीं है । क्योंकि किताव सरहअस्वावके वनानेवालेने कथन किया है कि इसमें खुजानेसे नेत्रका पर्दा फट जायगा और पलक विगड जायगा, ऐसाही इस रोगमें मवादको निकालनेसे प्रथम विशेष तीक्ष्ण शियाफके लगानेकी शक्त मनाई है । विशेष तीक्ष्ण शियाफका लगाना मवादके साफ होनेपर भी हानिकारक समझा जाता है, क्योंकि एक तवीवका कथन है कि तेज औषधियोंसे वनीहुई सलाइयाँ अपनी तेजीसे दर्दको वढा पलककी तर्फको विशेष मवाद खींच लाती हैं । इस कारणसे पलकोंमें विशेष सूजन उत्पन्न हो जाती है, अथवा घाव पड जावे तो फिर चिकित्सा करना भी कठिन हो जाता है । इसलिये सबसे उत्तम यह है कि जव तेज औषधियोंसे वनी-हुई सलाइयां लगावे तो उनके लगानेके पीछे वरूद वन्फसजी अर्थात् शीतल तासी-रका सुर्मा भी लगावे कि गर्म दवाके लगानेसे नेत्रमें जो गर्मी आई होय वह दव नेत्रकी प्रकृति अपनी निज दशा पर आ जाय, यह वात चिकित्सकको ध्यान रखना योग्य है । विशेष सूचना यह है कि प्रायः इस प्रकारका मवाद पलकके भीतर इसलिये विशेष गहरा नहीं होता कि वह गर्म भाफके परमाणुओसे उत्पन्न होता है, यह स्वाभाविक वात है कि जो चीज गर्मीसे उत्पन्न होती है उसका झुकाव अपनी प्रकृतिसे ऊपरको ही होता है, (जैसे कि जलकी भाफ और अग्निका धूंआ ऊपरको ही उठता) है, इसलिये भाफके परमाणु अंगकी गहराईमें अपनेआप नहीं ठहर सक्ते । यही कारण है कि इस रोगमें पलक मोटी और फूली हुई नहीं होती संशय रहित गर्मीसे होता है ।

वरूद् वनफसजी (सुर्मा) बनानेकी विधि।

काश्मीरी वनफशाके फूल, छिलाहुआ धनियां, अरवीगोंद, कतीरा प्रत्येक ३॥ मासे निशास्ता १०॥ मासे ये सब पांच औषधियाँ हैं। इनको बारीक कूट छानकर पांच बार सिर्केकी भावना देकर छायामें सुखा लेवे, सूख जानेपर शीशीमें भरकर रख आवश्यकताके समय काममें लावे। वरूद उसको कहते हैं कि नेत्रमें तेज औषधियोंके लगानेसे जो खराबी आई होय उसपर पुट दिलवे। तीसरा भेद यह कि दानेकी सूरत अंजीरके दानेकीसी होय और कोई २ दाना अंगसे चिपटा हुआ होय जडकी ओरसे गोल और शिरकी ओरसे नोकदार होय इसलिये इस प्रकारके दाने तिवनी अर्थात् अंजीरके नामसे नेत्ररोगके निदानमें कहे जाते हैं। युनानीमें अंजीरको सौकूसीस कहते हैं, (एक हकीमने इसका अर्थ इस प्रकार संवटित किया है कि अंजीरके फलका पेट अन्दरसे टुकडे २ होता है इसी प्रकार पलकमें इस नामका रोग उत्पन्न होता है, तव पलक भी अंजीरकी पोलकी तरह पर फटीहुई दिखाई देती है। किसी २ तबीबने इसके नामके रखनेके कारणमें इसके फटनेको अंजीरके छिलकेकी समानता पर रखा है। प्रयोजन यह कि प्रथम तो यह रोग सबसे बुरा है और दूषित रक्तकी जलनसे उत्पन्न होता है, एक चिकित्सकने इसके बुरा होनेके विषयमें कथन किया है कि यह रोग विशेष खुरखुरी कडी व गाढी स्थितिमें रह अधिक समय पर्य्यन्त ठहरता है, इसका दूषित मवाद शरीरमें विशेष होता है। चिकित्सा इस रोगकी यह है कि फस्द खोलकर रक्त मोक्षण करे और मवादके निकालनेके लिये मतबूक अफतीमूनका काढा पिलावे इसलिये कि इस रोगका माद्दा विशेष गाढा होता है, इस कारणसे कई बार करके निकालना चाहिये। निकम्मे माद्देके निकल जानेके पीछे शियाफ अहमरेहाद सदैव नेत्रमें लगाया करे। और मिश्री तथा खांड डालकर वर्दा नामवाले लोहेके नस्तरसे धीरे २ उसको छीले कि पलक जिससे अपनी निज दशापर आ जाय। छीलनेके पीछे शियाफ अवियज, शियाफ आयार, शियाफ दीजज इनमेंसे किसी एकको नेत्रोंमें लगावे जिससे गर्मीको दवावें। छीलनेके कारणसे जो जखम पड गया होय उसको भर लावे। वर्दा नाम यहां एक प्रकारका नस्तर है जो नोकरहित गोल होता है। चौथा भेद इसका यह कि पलक खुजलीसे काला पड उसपर खुरंट जम रहे होयँ यह रोग उपरोक्त तीनों रोगोंसे भी अधिक खराव है। इसका मवाद सुगमतासे नहीं उखडता है विशेष करके जब कि इस रोगको पलकोंमें उत्पन्न हुए अधिक समय व्यतीत हो जायँ और उपाय न किया जाय तो इस रोगका उखाडना बहुत कठिन पडता है, इस रोगका कारण वात दूषित मवाद है जो सडकर उस जगहपर उपद्रव उत्पन्न करता है, इस रोगको: यूना-

नवाल तूतहसांस अर्थात् निकम्मा (बुरा) कहते हैं । चिकित्सा इस रोगकी यह है कि जो औषधियाँ वातदूषित मवादको निकालनेवाली हैं उनसे शरीरको शुद्ध करे फिर गोलियां अयारजातका सेवन करावे जिससे दिमाग साफ हो जाय और हलके उत्तम आहारोंका सेवन करावे अंजीरके पत्र तथा लोहेके नस्तरसे पलकको छीलकर साफ करे छीलनेकी विधि ऊपर लिख आये हैं । छीलनेके पीछे ऊपर लिखे हुए शियाफोंमेंसे किसीको काममें लावे ।

नेत्रके कोए और पलकमें होनेवाले खुजलीकी चिकित्सा ।

यह खुजली उपरोक्त कथन की हुई खुजलियोंसे पृथक् है । इस खुजलीका कारण यह है कि नमकीन खारी रतूवत जो नेत्रपर गिरती है इसी कारणसे आंसू गर्म और खारी निकलते हैं । रोग उत्पन्न होनेवाली जगहपर लाली और जलन उत्पन्न होती है यहांतक कि जखम पड जाते हैं । चिकित्सा इसकी यह है कि कासनीको बारीक पीसकर गुलरोगनमें मिलाकर नेत्रपर लेप करे । हलरमी नेत्रमें लगावे जिससे निकम्मी रतूवत निकल जाय इस उपायसे रोग निवृत्त हो जाय तो ठीक है नहीं तो बाह्य उपचारको वन्द करके वकरी तथा अन्य जानवरोंका मांस और रोटी खानेको देवे । नमक खाना वन्द करे फलोंमेंसे अंजीर और मुनक्का खिलावे, हरसूरतसे तरी पहुंचानेमें परिश्रम करे जलाशयके किनारेकी हवामें फिरे तरी पहुँचानेवाले तैलोंकी मालिस करे तरडे देवे, तरीके वढानेवाले भोजन और शर्वतोंका आहार करे, यह उपाय इस निमित्तसे है कि मवाद नर्म होकर निकलनेके लिये तैयार हो जाय । तरी पहुंचनेसे मवादकी तेजी और खारापन दव जावे । जब चिकित्सक इसका विचार करे कि जो नमकीन और खारी मवाद रक्तज होय तो फस्द खोलकर रक्तमोक्षण करे । वात पित्त कफ इनमेंसे किसी एकका मवाद दूषित हुआ होय तो इनके अनुसार औषध देकर मवादको निकालना चाहिये । जव मवाद निकल जाय तव नेत्रके रोगी अङ्गके मवादको निकालनेके लिये सुर्मा वासलीकून अथवा। कौहलगरीजी पलकोंमें लगावे । कौहलगरीजीके वनानेकी विधि यह है कि सुर्मा अस्फानी जला हुआ १७॥ मासे, रूपामक्खी, सोनामक्खी, शादनज अतसीमगसूल, नीलाथोथा, जलाहुआ तांवा प्रत्येक ७ मासे पीली हरडका छिलका, पत्रज, काली मिरच, पीपल, नौसादर, एलवा, रसौत मक्कोकेशर, दरयाईकेंकडा सूखाहुआ प्रत्येक ३॥ मासे, सोंठ १॥। मासे, कपूर ३॥ रत्ती, कस्तूरी ३ रत्ती, लवङ्ग १ मासे इन १९ औषधियोंको कूट छानकर वारीक सुर्मा वनाके काममें लावे ।

पलकोंके कडे व मोटे हो जानेकी चिकित्सा ।

पलकोंके कडे, मोटे हो जानेका प्रयोजन यह है कि नेत्रोंके वन्द करने और

खोलनेमें पलक कठिनतासे चल सके, दर्द तथा रक्तता उत्पन्न होय और ऊपरका पलक भीतरसे इस प्रकारसे मोटा हो जाय कि उसको खुजली समझ लेवे । जब पलकको उलटा करके देखें तो उसमें कुछ रोग न दीख पडे और ऊपरका पलक ही मोटा होता है, कभी २ नीचे ऊपरके दोनों पलक मोटे होते हैं । इस रोगका कारण भाफके सूखे गाढे परमाणु होते हैं कि जिनसे कठोरता उत्पन्न हो जाती है और वे भाफके परमाणु विशेष खुश्क होते हैं । जो भाफके परमाणु गाढापन उत्पन्न करते हैं वे तरी लिये हुए होते हैं, इन भाफके परमाणुओंमें जलन नहीं होती है नहीं तो उनसे पलकके किनारे मोटे और लाल हो जाते हैं । जिन बातोंसे इस रोगके कारण उत्पन्न होते हैं वे चार हैं । एक तो यह कि चलनीके हिलनेसे रोमांच चौडे हो जायँ और पसीना आ जाय तो उस समय एक साथ सर्द हवा ठंढा पानी पलकोंमें लगे । जिससे भाफके परमाणु जो पतले और हलके होकर बाहर निकलना चाहते थे, चमडेके नीचे रुक जावें और बाहर निकलनेसे रुके रहें, यह बात जाहिर है कि ठंढसे रोमांच सुकडकर बन्द हो जाते हैं । दूसरे यह कि नींदसे जागनेके पीछे पलकमें बोझ और मोटापन माळूम होय, यह इस रीतिसे होता है कि जो भाफके परमाणु जाग्रतावस्थामें पलकोंके खोलने मूंदने और हलने चलनेसे पच जाया करते थे वेही नींदकी अवस्थामें न पचनेसे विशेष संचय हो जायँ और शिरकी ओर चढकर दिमागमें बन्द हो जायँ । विशेष करके शीत ऋतुकी रात्रियोंमें भाफके परमाणुओंमें गाढापन और रोमाञ्चोंमें सुकडन आ जाती है । तीसरे यह कि खुजलीका मवाद गाढापन कर देवे, यह इस प्रकारसे होता है कि उसके मवादमेंसे हलके और नर्म भाग जिनमें खारापन होय, वे पचकर गाढे भाग जिनमें खारापन न होय शेष रह जाय । चौथे यह कि नेत्रकी सूजनका मवाद इस रोगको उत्पन्न कर देवे, क्योंकि उसकी चिकित्सामें पलकके ऊपर जो ठंढे लेप लगाये जाते हैं वे मवादमें गाढापन और रोमांचोंमें ठिठरन उत्पन्न करते हैं । चिकित्सा इसकी यह है कि प्रथम मवादके पकानेवाले क्वाथोंसे मवादको पकावे उसके पीछे अफतीमूनके काढे और काबिली हरडसे मवादको निकाले और बाबूना अकलीलुलमलिक, वनफशा, खतमीके पत्र, जलमें पकाकर उसकी भाफपर शिर झुका भफारा लेवे जिससे रोमांच खुल जावें और मवाद नर्म व पतला होकर सहजमें निकल जावे । मवादके निकलनेके पीछे नेत्रको हाथसे मले जिससे कि गर्मी उत्पन्न होकर रोमांच खुल जावें और उन भाफके परमाणुओंको जो पलकोंमें ठहरे हुए हैं हाथसे मलनेकी क्रिया निकाल देती है । इस कारण शयनावस्थासे उठकर नेत्रोंको हाथसे मलते हैं तो नेत्रोंमें हलकापन आ जाता है । पलकोंका दुःखना और लाल हो जाना यह भी एक प्रकारका पलकका रोग है यह सिर्फ पलकमें खुश्क प्रकृतिके कारणसे होता है,

इसके उपायमें केवल तरी पहुँचाना ही लाभकारी है । मवादके निकालनेकी आवश्यकता नहीं है और तरी पहुंचानेके लिये गर्म जलकी भाफ व जलका सिकाव देना व दवाओंको जलमें पकाकर उस जलके तरडे तर तैल शिरपर मलना ।

पलकोंके किनारे लाल होकर मोटे होनेकी चिकित्सा ।

यह रोग इस प्रकारसे है कि जिससे पलक मोटे होकर लाल हो जाते हैं, विशेप करके पलकके किनारे विशेप मोटे हो उनमें खुजली हुआ करती है । क्योंकि इस व्याधिका मवाद तेज और नमकीन तथा खारी है, जब विशेप काल पर्य्यन्त इस व्याधिका कुछ उपाय न किया जाय तो पलक झड पलकके किनारे जिनको अर्बीमें अशफारुल, अज्फान, मनाबतुल, अहदाब कहते हैं । मवादकी तेजीसे जलकर घायल हो जाते हैं और इसकी खराबी नेत्रमें भी पहुंच जाती है, यह रोग प्रायः शीतल प्रकृतिकी औपधियोंके काममें लानेसे नेत्रके पर्देमें सूजन आनेके पीछे उत्पन्न होता है । इसके दो भेद हैं एक तो यह कि रोगका आरम्भ ही हुआ होय और उत्पन्न हुए विशेप दिवस व्यतीत न हुए होयँ रोग भी हलका होय, इसके सिवाय विशेप चिह्न प्रगट न हुए होयँ केवल नेत्रके कोए और पलकमें ही खुजली उत्पन्न हुई होय और थोडीसी लाली प्रगट होय । चिकित्सा इसकी यह है कि रोग उत्पन्न होते ही इस कारणसे थोडा और मवाद हलका होता है, उसके निकालनेके लिये मेवाओंका पानी तथा अन्य ऐसी ही वस्तु गुणकारी होती हैं । मवादको उखाडनेके लिये सिमाकको गुलाबमें भिगो देवे और उसको नितार कर नेत्रोंमें लगावे, उसमें कपडेकी गद्दी भिगोकर पलक पर रखे और रात्रिके समय खुर्फा कासनीकी पत्ती गुलाबरोगनमें मिलाकर पलक पर लेप करे, अथवा अंडेकी सफेदी गुलरोगनमें मिलाकर कपडे पर लपेट कर पलक पर रक्खे प्रतिदिवस प्रातःकालके समय स्नान करता रहे । जब मवादके उखाडनेमें और औपधके शीघ्र गुण करनेमें सहायता करे और दूसरे यह कि इस रोगको विशेषकाल व्यतीत हो मवाद गाढा होय और पलक मोटा तथा लाल होय एवं फूल गया होय तो चिकित्सा उसकी यह है कि सरेरूरग और मस्तककी फस्द खोले और पिंडालियों पर अथवा कन्धोंके बीचमें पछने लगावे । पीली हरडके काढेमें गारीकून मिलाकर पिलावे और मवादके निकालनेके पीछे शियाफ अहमरलैयन नेत्रोंमें लगावे और गर्म जलसे नेत्रोंपर सिकाव कर गर्म जलकी भाफ पर सिर झुकाके भफारा लेवे । छिलीहुई मसूर अनारका गूदा इनको अंगूरके तीन भाग जलेहुए पानी (रुब) में मिलाकर लेप करे, जिससे अङ्गमें मोटापन और अजीर्ण उत्पन्न कर मवादकी तेजीको दबा देवे । जिस रोगीको यह रोग विशेप समयसे उत्पन्न हुआ होय यहांतक कि नेत्रोंसे आंसू बहने लगें और पलक झड जाय, पलकोंके किनारे घायल हो जायँ तो चाहिये कि ऐसे

रोगीके मवादको कई वार करके निकाल सदा पथ्यसे रखे । इसके पीछे शियाफ-दीजज, अहमरलैयन, अवियज इन तीनोंको एकत्र करके लगावे, लेकिन सोंफके काढेमें पीसकर लगावे । इन शियाफोंके एकत्र करके लगानेका कारण यह है कि पलक अपनी असली दशापर आ जानेसे मवादकी तेजीको बढा उसको नष्ट कर देवे ।

पलककी सूजनकी चिकित्सा ।

यह पलकमें एक प्रकारकी लम्बी सूजन उत्पन्न होती है, यह सूजन जौके दानेकी आकृतिके समान पलकके किनारेमें पैदा होती है । इसके दो भेद हैं एक तो यह कि पलकके समान होय और उसका मवाद गाढे खूनके फोकका जलाहुआ भाग है, दूसरा यह कि उस सूजनका रंग लाल होय और नर्म होय इसको खरोस कहते हैं, प्रायः इसका मवाद निर्मल खूनका होता है । चिकित्सा इसकी यह है कि फस्द खोलकर दिमागके मवादको निकाले रोगीको भूखा रखे और आहार दिया भी जावे तो कम दिया जावे रात्रिके समय आहार न करे । यदि इस सूजनका आरम्भ ही हुआ होय तो एलवा, रसौत, मामीसा, गिलेइरमनी, ताजी हरी कासनीके स्वरसमें मिलाकर बारीक पीस लेप करे । यदि आरम्भका समय व्यतीत हो जाय तो गर्म मोम और मरहम दाखलीऊन लगावे, यह उपाय दोनों दशाओंको समान है । परन्तु प्रथम प्रकारका रोग कभी २ इस उपायसे निवृत्त नहीं भी होता और नस्तर क्रियाकी आवश्यकता पडती है । उसकी विधि यह है कि पलककी सूजनको दो अंगुलियोंसे उठाकर नस्तर व कैंचीसे काट उसके निकलते हुए खूनको एक घंटेतक बन्द न करे, इसके पीछे गर्म पानीसे धोकर जरूरे अजफर लगा देवे जिससे जखम भर जावे ।

पलकके घावोंकी चिकित्सा ।

पलकमें जखम या तो बाह्य कारणोंसे उत्पन्न होता है अथवा गर्म सूजनसे उसका मवाद जमा हो पककर पलकमें घाव उत्पन्न कर देता है । चिकित्सा इसकी यह है कि मसूरकी फली अनारके छिलके, पिस्तेके छिलके सिर्केमें पकाकर लेप करे, जब खुरंट बँधनेको होय तब जखमको एकसा समान भरनेके लिये अंडेकी जर्दी केशरके साथ मिलाकर लगावे अथवा शियाफ इस्तफ्तीकानके साथ मिलाकर लगावे ।

शियाफ इस्तफ्तीकानके बनानेकी विधि ।

सोनेका मैल, काली मिरच, अफीम, केशर प्रत्येक ७ मासे सेंधा नमक, पपडिया नोन, मैनसिल प्रत्येक ४॥ मासे समगअर्वी (अर्बी गोंद) शियाफ मामीसा, अंजरूत प्रत्येक १४ मासे ये सब दश दवा हैं इन सबको कूट छानकर ताजी हरी सोंफके स्वरसमें पीसकर वत्ती बना काममें लावे ।

पलकपर मस्से उत्पन्न होनेकी चिकित्सा ।

पलक मस्सा-ब्रजरा, मूंग उडद अथवा इससे भी बडा उत्पन्न होता है, इसका कारण वातजन्य ठंढा दोष होता है । उपाय इसका यह है कि शरीरमेंसे वातजन्य दोषको निकाल मस्से पर जैतूनके तैलकी गाद बलपूर्वक मल अथवा कलौंजी व सैंधानमक पीसकर मले, अथवा सिर्केमें मिलाकर लेप करे अथवा चूना और सज्जी समान भाग लेकर जलसे पीसकर मस्सेकी जडमें लगादेवे, परन्तु ऐसी होशियारीसे लगावे कि किसी और भागपर न लगने पावे, इस दवासे एक घंटेमें मस्सा गलकर गिर जाता है, यदि काटना हो तो मस्सेको चीमटीसे पकड कर कैंचीसे काट उसमें चूना भर देवे कि पुनः मस्सा न निकले ।

पलककी पित्तीकी चिकित्सा ।

पित्तीको यूनानी हकीम शरी कहते हैं यह नेत्रके पलकपर पित्तीके समान उछल आती है, इसके चिह्न इस प्रकारसे हैं कि पलकमें खुजली उठे और जब उसको खुजावें तो ददोडेके समान सूजन उत्पन्न हो ऐसी दीख पडे कि बरैया (त्रिपैली मक्खी) ने काट लिया होय । इस व्याधिका कारण रक्त व पित्तकी अधिकता होती है । उपाय इसका यह है कि फस्द खोलकर रक्त मोक्षण कर हरड, इमली, आलूबुखारा, उन्नाव इनसे प्रकृतिको नर्म कर उत्तम आहारका भोजन करे । तथा नेत्रको खट्टे अंगूरके पानीसे धो शादनज अतसी नेत्रमें लगावे ।

पलकपर होनेवाली छोटी फुंसियोंकी चिकित्सा ।

ये छोटी २ फुंसियां पलकके ऊपर उत्पन्न होती हैं और इनमें जलन हुआ करती है । प्रथम थोडीसी सूजन उत्पन्न होकर फुंसी फूट घायल होकर फैलती जाती है, इनके उत्पन्न होनेका कारण दग्ध पित्त है । जब यह रोग पलकपर उत्पन्न होता है तो पलकें झडने लगती हैं और पलकका किनारा ऐसा हो जाता है कि जैसे फटने लगेगा, पलकका रंग लाल हो जाता है । चिकित्सा इसकी यह है कि मवादको निकाल उसकी गर्मीको रोक शियाफ मामीसा, केशर, रसौत, बूल इनका लेप कर शियाफ अहमरलैयन लगावे । जिससे सब मवाद उखडकर पलक साफ हो जाय ।

पलककी रसौलीकी चिकित्सा ।

यह रसौली पलकके ऊपर उत्पन्न होती है तथा नेत्रकी चर्म जिल्द और मांससे पृथक् होती है, उसके उत्पन्न होनेके समयसे एक झिल्ली थैलीकी सूरतकी होती है । उपाय इसका यह है कि शरीरको मवादसे शुद्ध करनेके पीछे नस्तरका प्रयोग करके इसको निकाले । इसके निकालनेकी विधि यह है कि पलकके चमडेको रसौलीके ऊपर चौडाईमेंसे चीर देवे और इस बातकी सावधानी रखे कि नस्तरकी नोक रसौ-

लीकी झिल्लीकी झिल्लीको न काट देवे । बाद इस वातका यत्न करे कि रसौली अपनी झिल्लीसे मढीहुई ज्योंकी त्यों निकल आवे, यदि रसौली रोगीके पलकमें बाकी रहजाय तो तेज दवा और गौका घृत उसपर लगावे, जिससे सबकी सब बाहर निकल आवे। यदि रसौलीकी झिल्ली घायल होकर उसमेंसे पीब निकल जाय तो इस अवस्थाके प्राप्त होनेपर उसका उपाय करना कठिन हो रसौली पुनः उत्पन्न हो जाती है । रसौलीको निकाल कर आवश्यकता होय तो टांके लगाकर सी देवे पीछे लिखे अनुसार उपाय करे कि जैसा पलकोंके काटनेवाले रोगोंमें कथन हो चुका है ।

कोएके नासूरकी चिकित्सा ।

नेत्रके कोएमें जो कि नासिकाकी ओर है सूजन उत्पन्न होकर पीछे नासूर हो जाय उसको गर्ब कहते हैं । जो मवाद कि उस जगहमें एकत्र हो जाता है उसकी दशाएँ भिन्न २ होती हैं, कभी तो नासिकाकी ओर फूट निकलता है और उस मार्गसे जो नेत्र और नासिकाके बीचमें है पीब निकलती है । कभी पलककी खालको फाडकर निकलता है और पलककी समीपवर्ती हड्डीको निकम्मा कर देता है, इसके अधिक समय पर्य्यन्त रहनेसे हड्डीमें कुछ २ सडाव पड जाता है और पलकके ऊपर अंगुली लगावे तो पीब बाहर निकल आती है । प्रायः ऐसा होता है कि उसकी तेजीसे मांसके नीचेकी हड्डी निकम्मी होकर घुन जाती है, यदि सलाईसे हड्डीको देखा जावे तो हड्डी मोमके समान हो जाती है और सलाई उसमें घुस जाती है । इस नासूरका एक ऐसा भेद है कि जो फूटकर बाहर नहीं निकलता है और दर्दके साथ होता है और उसके संयोगसे नेत्रमें सदैव दर्द रहता है इस कारणसे उसमें पीब भरी रहती है, नेत्रमें भी विशेष खराबी उत्पन्न हो जाती है । चिकित्सा इसकी यह है कि प्रथम सरेरूकी फस्द खोलकर रक्त मोक्षण कर रेचक औषधियां देकर शरीर और दिमागको शुद्ध कर हलके और पौष्टिक आहार रोगीको खिलावे । जैसे कि व्रण रोगियोंको दिये जाते हैं और व्रण रोगीके समान ही पथ्य परहेजसे रहे, मवादसे शरीर शुद्ध हो जावे तब पलकमें शियाफ गर्ब टपकावे और दवाकी बनीहुइ सलाईके लगानेसे प्रथम नासूरकी पीब और सडाहुआ भाग निकाल पीबको पुरानी रुईसे उठालेवे और मुर्दार मांसको काटदेवे, मांसके काटनेकी दो रीती हैं एक तो शस्त्रद्वारा काटना, दूसरे औषधके द्वारा निकम्मे मांसको निकाल देना । जिस रोगीके नेत्रमें नासूर गहरा न होय और पलकमें मिला हुआ होय तो उसके काटनेके लिये जंगारी मरहम लगावे और इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि नासूरमेंसे जबतक पीब और मुर्दार मांस न निकाला जावे तबतक शियाफ गर्बके लगानेसे कुछ लाभ नहीं पहुंचता । जब कि इस उपायसे लाभ न पहुंचे तो नासूरको दागना चाहिये । नासूरके दागनेकी यह रीति है कि इस

ठिकानेके नासूरको दागनेका औजार छोटा बारीक और गोल नोकवाला होय उसको अग्निके अंगार पर रखके लाल करलेवे और कई वार मुर्दार मांसपर रख २ के उठा लेवे जिससे मुर्दार मांस सबका सब जल पीवे तथा मैली निकम्मी तरी सब खुश्क हो जावे । जिस समय पर नेत्रके कोएके नासूरको जलावे उसके प्रथम ही शीतल जलमें भीगाहुआ बारीक कपडा अथवा बर्फके पानीमें मलाहुआ मैदा (आटा) नेत्रमें भर देवे कि जिससे जलानेकी गर्मी नेत्रमें न पहुंचे । दूसरी विधि दागनेकी यह है कि जिसको बहुतसे तबीबोंने पसन्द किया है कि तांबे अथवा चांदीकी एक नली ऐसी बनावे जिसका शिरा तो इतना बारीक होय कि जो नासूरके समान बराबर होय और दूसरा शिरा इतना चौडा होय कि जिसमें तर्जनी अंगुली अच्छी तरहसे चली जावे, यह नली तांबा अथवा चांदीके पत्रेकी गावदुम्म होनी चाहिये । इसका पतला शिरा खूब साफ होय नली चार व पांच अंगुल लम्बी होनी चाहिये जितना नासूरका आकार होय उतना शीशेका टुकडा लोहेके चमचामें पिघलाकर तैयार कर रखे और नलीके बारीक शिरेको नासूर पर लगा चौडा शिरा ऊपरको रखे और पिघलाहुआ शीशा नलीके ऊपरके मुखमें छोड देवे । नासूर पर नली रखनेके पूर्व नेत्रकी रक्षा उपरोक्त विधिके अनुसार कर लेवे, रोगी इस कष्टको इतना सहन कर लेवे कि नासूर अच्छी तरहसे जल जावे तब रोगी उठकर बैठ जावे और शिर नीचेको झुकावे कि शीशेकी गोली निकल कर गिर जावे । यह विधि कितनेही चिकित्सकोंने इस लिये पसन्द की है कि जखमके मुख्य स्थानके जलनेके सिवाय दागका भय दूसरी जगहपर नहीं रहता । दाग देनेके पीछे सफेदाका मरहम लगावे कि घावको भर दर्दको नष्ट कर देवे । शियाफगर्व जो ऊपर कथन किया है उसके बनानेकी विधि यह है कि एलुवा, कुंदरू-गोंद, अंजरूत, दम्मुल अखबैन, अनारके फूल, मुर्गी, फिटकरी प्रत्येक एक एक भाग लेवे और जंगार एक दवासे चौथाई भाग ले इन सबको बारीक पीसकर सुर्मेके समान कर पानीके साथ सलाई बना आवश्यकताके समय पानीमें घिसकर तीन बूंद टपकावे, थोडी २ देरके बाद इसी तरहसे टपकाते रहे यहांतक कि लाभ न पहुंचे वहांतक टपकावे । (विशेष सूचना) जबतक नेत्रके कोएकी सूजनमें मुख न हुआ होय तो प्रथम उस पर मामीसा, केशर, मुर्र, एलुवा, जलीहुई सीप इनमेंसे समय पर जो २ मिल सकें अथवा सब मिल सकें तो तलशकूनके पानीमें अथवा ताजी हरी कासनीके स्वरसमें पीसकर लेप करे । कई तबीब कहते हैं कि उडदकी यह तासीर है कि जो उसको मुखसे चाबकर नासूर पर रखदिया करे तो नासूरको नाबूद करता है । इसका प्रयोजन यह है कि प्रथमावस्थामें उडद चाबकर सूजन पर लगावे तो सूज-

नको नष्ट कर देता है । यदि सूजन इससे निवृत्त न होय तो तेज दवाका लेप करे, जैसे कि मटरको पीसकर शहद मिलाकर लेप करे । अथवा कुन्दुरूगोंद और कबूतरकी बीटको मिलाकर मरहमसा बनाकर लेप करे, अथवा फिटकरी पीसकर सिर्केमें मिलाकर लेप करे । अथवा सुकवीनजको सिर्केमें घिसकर लगावे, इनके लगानेसे यह लाभ है कि मवादको पकाकर खालको तोड हड्डीको नहीं सडने देते । यदि सूजन पक जाय तो बूल और सूखी मौलसरी घिसकर व अन्य इसी तासीरकी औषध नासूरके छिद्रमें भर देवे, जिससे उसको शीघ्र सुखा देवे । यदि जंगारको पीसकर और वर्त्तीमें लगाकर नासूरमें रख देवे तो अति लाभदायक है, किन्तु यह दवा प्रथम नासूरके खराब मवादको जला देती है और रखनेसे जलन उत्पन्न करती है । परन्तु कई समय लगानेसे और रोगी इसकी तेजीको सहन कर लेवे तो अतिलाभ पहुंचाती है सूखेहुए सिमाकका पानी नासूरमें टपकाना लाभदायक है, जली हुई सीप एलुवा, बूल इन तीनोंको मिलाकर पीस नासूरमें मुख होनेसे प्रथम व पीछे इनका लेप करना लाभदायक है । तुतलीके पत्रको पानीके साथ पीसकर वर्त्ती बनाकर नासूरमें रख देवे तो विशेष लाभ पहुंचता है, जब दवा तथा वर्त्ती नासूरमें रखना चाहे तो प्रथम उसको दवाकर उसका मवाद निकाल अंगूरकी अजीर्ण करनेवाली शराबसे नासूरको धोकर जो दवा रखनी होय उसको रखे । यदि नासूरमें मवाद कम होय और न निकले तो दो तीन दिवस ठहर जाय जिससे मवाद एकत्र हो जाय, पीछे मींचकर धो डाले और दवा रखदेवे, जिस दशामें नासूरका मुख बन्द हो जाय और पीव न निकले तो कनूचाके वीज पीसकर गूंदेहुए आटेमें मिलावे अथवा स्त्रीके दूधमें व गधीके दूधमें मिलाकर पोलटिसके समान पका थोडीसी पिसीहुई केशर उसमें मिलाकर नासूर पर रखके बांध देवे जिससे नर्म होकर उसका मुख खुल जायगा । और मैदाकी रोटीके गूदेमें कुन्दुरूगोंद पीसकर मिलावे और कीकरके पत्तोंके रसमें मिलाकर लगाना बन्द नासूरको खोल देता है । सलाई पतले गोल शिरेसे नासूरकी लम्बाईको नाप लेवे कि कितना गहरा है फिर जिस दवाको लगाना होय उसमें रुईकी वत्ती भिगोकर नासूरमें रख देवे और जब कोएके नासूरमें तेज दवाको लगावे तो नेत्र पटलकी रक्षा कर नासूरपर दवा लगानेके पीछे रुई अथवा कोमल कपडेकी गद्दी लगाकर नेत्रपर पट्टी बांध देवे, जो दो तीन घंटेतक हिले फिरे नहीं । जब लगानेकी औषधियोंसे नासूर निवृत्त न होय तो दग्ध अथवा शस्त्रोपचारसे काम लेवे जैसा कि ऊपर कथन हो चुका है ।

नेत्रके कोएमें अधिमांस उत्पत्तिकी चिकित्सा ।

नेत्रके कोएमें अर्थात् जो वडा कोया नासिकाकी ओर है उसके कोनेमें एक मांसखंड

विशेष वढ जाता है । इसको गुद्दा कहते हैं और इससे यह हानि है कि नेत्रके जो फोक आंसू और गीढ होकर निकलते हैं उनको कोएमें रोक रखे, इनके रुकनेसे नासूर उत्पन्न हो जाता है । यह अधिमांस कदाचित विशेष वढ जावे तो नेत्रकी दृष्टिको रोकता है । चिकित्सा इसकी यह है कि शरीरमें जो विशेष दोष दूषित होय उसको निकालकर शरीरको साफ कर पीछे अधिमांसपर मरहम जंगार अथवा शियाफ जंगार उस पर लगावे, जो इस उपचारसे ठीक हो जावे तो उत्तम है, नहीं तो नेत्रके नाखूनेके समान इसको नस्तरसे छेदन कर डाले जब विशेष मांस कट जाय और कोया अपनी असली दशामें रह जाय तो कुछ चिन्ता न करे कि जडसे नहीं कटा है । इसकी पहचान यह है कि आंसू दीढ नेत्रमें न रुके और वाहर स्वभावसे निकलने लगे, यदि निकलने लगे तो काटनेके पीछे जरूर अजफर उसपर बुरक देवे जिसके बुरकनेसे जो वाकी रहजाय उसको यह दवा खा जाती है । काटनेके पीछे, जो पीडा होवे तो उसको निवृत्त करनेके लिये अंडेकी जर्दी गुलरोगनमें मिलाकर लेप करे और जखम भरनेके लिये रोपण मरहम सफेदा लगावे । शियाफ जंगारके वनानेकी विधि यह है कि समगअर्वी (गोंद) रांगका सफेदा, जंगार प्रत्येक ७ मासे इन तीनों औषधियोंको वारीक करके तुतलीके पत्रके स्वरसमें मिलाकर सलाई वना काममें लावे ।

पलककी वांफणीमें जूंआं पड जानेकी चिकित्सा ।

पलकोंकी वाफणीमें प्रायः जूंआ पड जाते हैं, ये तीन प्रकारके होते हैं । एक तो यह कि वहुत छोटे और सफेद होते हैं और पलकके वालोंकी जडमें दिखाई देते हैं, इनको अर्वी जवानमें सींत्रां कहते हैं । दूसरे यह कि वडा जूंआं होय और उनका रंग गेहूँ व धूलके रंगके समान होय इनको कमकाम कहते हैं, कोई तवीव कमकाम उनको कहते हैं कि जिनके वहुत पैर होते हैं और इनसे पृथक् तीसरे जातीके जूंआंको कम्ल कहते हैं । परन्तु कमकाम और कम्लमें विशेष अन्तर है । तीसरे यह कि उसका मवाद अधिक और विशेष गाढा होय और उन जन्तुओंके पैर दिखलाई देवें उनको अर्वीमें किर्दा कहते हैं । प्रयोजन यह कि इनका मवाद कफकी सडीहुई रतूवत होती हैं कि प्रकृति उसको पकानेके पीछे खालके चारों ओर और वालोंकी जडोंमें फेंक देती है । क्योंकि प्रकृतिको उसकी मलीन दुर्गन्धिसे घृणा आती है, वालोंकी जडें ऐसी जगह पर हैं कि जिस फोकसे वालोंको पुष्टाई (पोषण) पहुंचता है उसको ग्रहण करनेके लिये तत्पर रहते हैं समझनेकी वात है कि कफके सिवाय और दोषोंके मवादमें यह सिफ्त नहीं है कि उससे पलकोंमें जन्तु उत्पन्न होयँ, क्योंकि पित्तकी गर्मी विशेष तेज है और पित्तका मवाद भी कडुवा है । कडुवा-

पन जन्तुओंकी उत्पत्ति, प्रकृतिके विरुद्ध है, यही कारण कि कडुवी औषध लगानेसे जन्तु मर जाते हैं । सौदा (वात.) अपनी प्रकृतिसे जन्तुओंके विरुद्ध है, क्योंकि वह शर्द और खुश्क है, रक्त ऐसी वस्तु है कि जिसको प्रकृति देना नहीं चाहती है । कफकी तरी चाहे फोकवाली होय चाहे निकम्मी होय चाहे अच्छी शुद्ध होय जब स्वाभाविक अथवा ऊपरी गर्मी उसमें अपना असर पहुंचाती है तो उसमें एक प्रकारकी सडांदरूपी विकृति उत्पन्न होकर तरीमें जन्तुओंको उत्पन्न करनेवाली सिफ्त पैदा हो जाती है विदून सडावके शरीरके बाह्य भागमें जीवोंकी उत्पत्तिका होना असम्भव है, शरीरके आभ्यन्तर रक्तादि धातुओंमें जो जन्तु उत्पन्न होते हैं वे विकृत व रोगके मादेसे उत्पन्न नहीं समझे जाते, किन्तु वे स्वभाव सिद्ध और प्रकृतिके अनुकूल हैं । चिकित्सा इस व्याधिकी यह है कि प्रथम शरीरको दुष्ट मवादसे शुद्ध करे और इसके पीछे अयारज फेकराका अथवा (हुब्बको काया) तथा एलुवाकी गोलीसे व उन कुल्लोंसे जो (अयारज फेकरा) कांजी और शहदसे बनाये जाते हैं, दिमागके मवादको निकाले । मवाद उस समय निकल सक्ता है जब कि जडोंके पानीके पीनेसे मवादमें पकाव और नर्मी आ गई होय, जब अन्दरका मवाद निकल चुके उसी अङ्ग (नेत्रपलक) का मवाद निकालना चाहिये । इसकी रीति यह है कि जो बन पडे तो उन जन्तुओंको पलकसे छुटाकर पृथक् कर सोया तथा नमकको पानीमें डालकर पका मन्दोष्ण जलसे पलकोंको धोकर साफ कर देवे । धोनेके पीछे पलकोंपर ऐसी औषध लगावे जो पलकोंको शुद्ध कर जन्तुओंको मारडाले । जैसा कि फिटकरीका फूला १ भाग, पहाडी मुनक्का आधा भाग इन दोनोंको पीस सलाई बनाकर जन्तुओंके जमावकी जगह पर फेरे अथवा काजलसा बनाकर लगावे । बूरये इरमनीको बारीक पीसकर सलाईसे लगाना भी लाभदायक है, (बूरये इरमनीसे पापडिया खार) समझना । दूसरी विधि जन्तुओंके मारनेकी यह है कि जस्तेकी सलाईके शिरेको पारेमें डालकर रखना, जब उसपर पारेका असर हो जावे तब निकालकर दोनों पलकोंके बीच (सन्धि) पर फिरानेसे नेत्र पलकके जन्तु नष्ट हो जाते हैं । पारेकी गन्ध सब प्रकारके छोटे जन्तुओंको मार देती है । तिला फिटकरी १ भाग, मवीजज आधा भाग दोनोंको पीसकर गुलरोगनमें हल करके मरहमसा बना पलकोंपर लगावे तो जूंआ नष्ट हो जाते हैं ।

अयारजकी गोलीकी विधि ।

अयारज फैकरा, निसीतका चूर्ण प्रत्येक ३॥ मासे, कालादाना, गारीकून, रूमी सोंफ प्रत्येक १॥। मासे, इन्द्रायणका गूदा, सेंधा नमक प्रत्येक ६ रत्ती सवा दो चावल भर सबको कूट छानकर सोंफके काढेमें घोट कर गोली बना मात्रा ३॥ मासे देवे ।

कोकायाकी गोलीकी विधि ।

अयारजफैकरा ३ तोला, छिलीहुई निसौत, उस्तुखुद्दूस प्रत्येक १७॥ मासे, इन्द्रायणके फलका गूदा १०॥ मासे, सकमूनिया ८॥। मासे, कतीरा ३॥ मासे सबको कूट छान कर गूगलके हल किये हुए पानीमें गोलियां बना मात्रा ३॥ माससे ६ मासे तक देवे ।

एलुवाकी गोलीकी विधि ।

एलुवा ३॥ मासे, पीली हरडका वक्कल, गुलाबके फूल, मस्तगी, निसोत प्रत्येक ३॥ मासे सकमूनिया १॥। मासे सबको कूट छानकर सोंफके काढेमें गोलियां बना मात्रा ५॥ माससे साढे दश मासेतक सोते समय जलके साथ लेवे । दूसरी गोली, एलुवा, इफसतीन, मस्तगी प्रत्येक ४॥ मासे, इन्द्रायणका गूदा, सकमूनिया प्रत्येक १॥। मासे सबको कूट छानकर अजमोदके काढेमें गोलियां बना मात्रा ४॥ मासे । इन औषधियोंकी मात्रा पूरी उमरवाले मनुष्योंकी लिखी गई हैं, यदि बालकोंको देनी होय तो उनकी उमरके अनुसार देवे । सामान्य रीतिसे नेत्र रोगोंकी चिकित्साका वर्णन किया गया है, परन्तु जो पटल गत रोग शस्त्रोपचार साध्य हैं उनका वर्णन इस छोटी पुस्तकमें नहीं लिखा गया है ।

अस्थिभङ्ग व अस्थिसन्धिका स्थानान्तर होना ।

हड्डीका टूटना अथवा अस्थि सन्धिका नियत स्थानसे हट जाना, यह शरीरको अकस्मात् सधा पहुंचनेसे होता है, विशेष करके जिस ठिकाने पर कुछ प्रहार पहुंचे उसी ठिकानेकी अस्थि टूटती है । किसी समय ऐसा होता है कि प्रहारके ठिकानेको छोडकर दूसरे ठिकानेकी हड्डी टूटती है, जैसे कि कोई मनुष्य ऊंचे स्थानसे पैरके बल गिर जावे तो उसकी जंघाकी हड्डी टूट जाती है । अथवा मस्तककी एक ओरमें मार पडे (लाठी आदि) लगे तो उसके सामनेकी हड्डी टूटेगी, छोटी उमरके मनुष्योंकी अपेक्षा पूर्णावस्थाके मनुष्योंकी हड्डी विशेष करके टूटती है । क्योंकि पकीहुई हड्डीमें चटकनापन विशेष होता है, कभी स्नायु संकोचसे भी अस्थिभङ्ग होता है, इस प्रकारका अस्थिभङ्ग किसी समय घुटनेकी ढकनी (परिया) पर होता है । हड्डी टूटनेके दो भेद हैं प्रथम यह कि हड्डी अन्दरसे तो टूट गई होय, परन्तु ऊपरकी चमडी साबित होय और चमडेमें जखम न हुआ होय इसको निर्जखम अस्थिभङ्ग कहते हैं । दूसरा भेद यह कि जब टूटीहुई हड्डीके सम्बन्धमें चमडेमें जखम हो जाय इसको सहजखम अस्थिभङ्ग कहते हैं । कभी कभी ऐसा होता है कि हड्डी टूटकर उसका टुकडा एक भागको छोडकर दूसरे भागमें बैठ जाता है, अथवा घुस जाता है, किसी समय टूटेहुए टुकडेका चूरा हो जाता है ।

टूटीहुई हड्डीके साथ जखम दो प्रकारसे होता है, एक तो यह कि जिस कारणसे हड्डी टूटी होय उसके अभिघातसे जखम हुआ होय। दूसरे यह कि हड्डीके टूटनेके पीछे उस टूटीहुई हड्डीका एक शिरा चमडीको फाडकर वाहर निकल आता है। हड्डी, आडी, तिरछी, खडी स्थितिमें टूटती है किसी समय थोडी टूटकर बांकी (टेढी) पडजाती है। अस्थिभंग होनेसे ये चिह्न होने लगते हैं पीडा होय, उस ठिकाने पर सूजन उत्पन्न हो जाय दूसरे टूटेहुए भागमें (अवयव) के आकारमें कितनाही फर्क पड जाता है। वह फर्क सामनेकी वाजूके अवयवके साथसे सरखाहुआ स्पष्ट जान पडता है। और अस्थिके टूटेहुए भागका स्थानान्तर हो जानेसे वह अवयव टेढा व ओछा हो सूजन चढ आती है। यदि स्नायुके आकर्षणसे अस्थिभङ्ग हुई होय तो वह अस्थि स्वाभाविक स्थितिमें नहीं रहती पैरकी एक अथवा दोनों हड्डी पृथक् २ रीतिसे

आकृति नं० ८९-९०-९१-९२ देखो।

टूटती हैं, उनकी स्थितिकी तीसरी हड्डी टूटनेका विशेष चिह्न यह है कि हड्डीके टूटनेके ठिकानेपर हड्डी हिलानेसे हिलती है। स्वाभाविक सब हड्डी अथवा उसके एकाध भागमें हलताहुआ मालूम पडे तो वह टूटाहुआ है ऐसा सिद्ध होता है। परन्तु किसी २ समय हड्डीके टूटेहुए भागका टुकडा एक ओरसे टूटकर दूसरे भागमें बैठ जाता है तो हिलताहुआ मालूम नहीं होता। चौथा चिह्न हड्डी टूटनेका यह है कि अवयव वरावर पकडकर हिलाकर देखें तो अस्थिका टुकडा एक दूसरेके साथ घिसनेसे कट-कटकर कराहटकी आवाज होती है, वह हाथके स्पर्शसे लगती और कानसे सुननेमें भी आती है। इस प्रमाणे एक व अधिक निशानी स्पष्टरूपसे जान पडें तो अस्थिभंग होना जाना जाता है। अस्थिभंगके साथ चमडेमें भी जखम होय तो निश्चयपूर्वक अस्थिभंग जानना, क्योंकि जखमके मार्गसे टूटीहुई हड्डीकी परीक्षा विशेषरूपसे हो सक्ती है। किसी २ समय हड्डीका टूटाहुआ शिरा दूसरे शिरेमें बैठ गया होय अथवा जिस ठिकाने पर दो हड्डी होयँ और उनमेंसे एक हड्डी टूट गई होय, सन्धिके समीपमें अस्थिभङ्ग हुआ होय अथवा अवयवके ऊपर विशेष सूजन उत्पन्न हो गई होय तो हड्डी भागना कि नहीं, इसका निश्चय करनेमें बडी कठिनता पडती है। विना जखम वाचका भाग जखम सहित अस्थिभंग इन दोनोंके दुरुस्त होनेमें विशेष अन्तर है। अस्थि. टूटी है अस्थिभंग ४ से लेकर ६ अठवाडेकी अवधिमें जुड जाता निश्चय न हुआ होय तो तथा उसके वाहर तथा अन्तर पडतमेंसे आसपासके भागसे इलाज करना चाहिये। (रस) उत्पन्न होता है, इससे हड्डीका टूटाहुआ ऊपर तखती लगाकर पट्टी बाँध-जाती है। आरम्भमें यह रस विशेष हो। टूटी होय तो भी तखती लगाकर बांधनेसे मालूम होती है लेकिन पीछेसे उसका शोइंचती।

मात्र कायम रहता है उसकी अस्थि बनती है । लेकिन जखमसहित अस्थिभंगमें मिलाप इतनी जल्दी नहीं होता, उसकी सन्धि संयुक्त होनेमें चारसे छः के सुमार अवधिकी आवश्यकता चाहिये, उसकी सन्धि संयुक्त करनेको उपरोक्त रसका संयोग नहीं होता लेकिन टुटीहुई हड्डियोंके शिरेपर मांसांकुर जमकर धीरे २ नूतन हड्डी पैदा होती है । चिकित्सा—प्रथम विना जखमके अस्थिभंगमें जैसे बने तैसे अवयवमें त्रुटि न रहे ऐसी सावधानी रखनी चाहिये । चिकित्सकको उचित है कि रोगीको सावधान कर ठिकानेको हिलावे झुलावे नहीं किन्तु जिस ठिकाने पर अस्थिके दोनों टुकडे जोडे गये हैं उनको बराबर जोडकर समान कर देना, समान किये पीछे स्थिर रखना यह अस्थिभंगके इलाजकी मुख्य चाबी है । यदि हड्डी टेढी पड गई होय अथवा उसका शिरा एक दूसरे पर चढ गया हो तो उसको सावधानीसे यथास्थित बैठालना उसमें किसी प्रकारका बल न पडने पावे और रोगी उस अंगपर किसी प्रकार बल न डाले । स्नायु आकर्षणका विचार करके उसको समान बैठालना, इसके बाद अवयवके नीचेके भाग और ऊपरके भागपर लकडीकी पट्टी रखके कपडेकी चौंडी पट्टी बांध देना, पट्टी न अधिक कडी बांधे न अधिक ढीली बांधे । और टूटे हुए अवयव पर रखनेको लकडी कागज व चमडेकी पट्टी होनी चाहिये और कपडेकी पट्टी उस अंगपर विशेष कसकर बांधी जावेगी तो बांधेहुए अवयवमें रक्त नहीं फिरेगा । ढीली बांधी जावेगी तो टूटी-हुई अस्थिकी सन्धि हिल जावेगी, लकडी कागद व चमडेकी पट्टीपर रुई लपेट लेना उचित है । अवयव पर लकडीकी पट्टी जितनी चौंडाई लम्बाईकी आवश्यकता होय उतनी लेनी चाहिये, याने टूटीहुई हड्डीके सम्बन्धके ऊपर नीचे दोनों ओरके भाग क़ब्जेमें आने चाहिये । जिससे हड्डीके खिसकनेका अथवा हिलनेका कुछ भय न रहे, पट्टी बांधनेके दिवससे आठ व दश दिवसके पीछे उसको खोलकर देखना चाहिये कि किसी प्रकारकी न्यूनता संधिके सम्बन्धमें मालूम पडे तो उसको सँभालकर पुनः

...ा, इसके बाद जैसे बने तैसे पट्टी थोडे दिवस... अन्तरसे खोला करे । पट्टी
विशेष ...
...ी समय टूटेहुए अवयवको गर्म जलसे धोना चाहिये और कपडे व लिंटसे
स्नायु संको...
उसके ऊपर घृत तैल व चर्वी जो मिलसके वह लगानी
ढकनी (परिया)
...ई अस्थि अवयवपर किसी समय काँजीकी पट्टी बांधना
तो टूट गई होय, परन्तु
उसकी विधि यह है कि टूटेहुए अवयवके ऊपर रुई
होय इसको निर्जखम अस्थिभं...
गत्ता अथवा चमडा रखकर और कांजीमें कपडेकी
सम्बन्धमें चमडेमें जखम हो जाय इ...
...जड बैठ जाती है । कदाचित पट्टी बांधनेके
ऐसा होता है कि हड्डी टूटकर उसका टुक...
ठंडी विकृत रंगतकी हो फफोला उठ
जाता है, अथवा घुस जाता है, किसी सम...
...पद्रव अति खेंचकर

बांधीहुई पट्टीसे होते हैं, डेढ व दो महीनेके बाद पट्टी बांधना छोड देवे । पीछे कुछ घृत तैल लगाकर अवयवको कुछ दिनतक मसलता रहे, काँजीसे प्रयोजन भातके मांडका समझना । जखम सहित अस्थिभङ्गमें प्रथम हड्डीके दोनों शिरे बराबर मिलाकर बैठालनेके वाद हड्डीका कोई भाग वाहर आ गया होय और वह पीछे अन्दर न जा टूटेहुए भागकी सन्धिके मिलानेमें बाधक हो सान्धिसे पृथक् रहता नजर आवे तो उसको काटकर निकाल देना चाहिये । जखम सहित अस्थिभंगके अवयव पर लोहेकी पट्टियां अथवा लकडीकी पट्टियां बांधना उत्तम है, इन पट्टियोंको रखकर बांधनेके समय चर्म जिल्दके जखमवाले भागको खुलाहुआ रखना चाहिये । जिससे जखम पर प्रतिदिवस मरहम, तैलादि रोपण औषधियोंकी पट्टी लगती रहे, जो छोटा और सुर्ख जखम होय तो उसको शीघ्र रोपण करनेके लिये उसपर लींट कोलोडीयन व क्रापर्सवालसममें अथवा कार्बोलिकएलमें भिगोकर रखना । यदि यह जखम शीघ्र रोपण हो जावे तो विना जखमके अस्थिभंगकी समान यह भी अस्थि सन्धि शीघ्र जुड जाती है । यदि अस्थिभंगका जखम पक जावे तो उसको प्रतिदिवस उष्ण जलसे धोकर कार्बोलिक तैलका फोहा रखना चाहिये । यदि जखममें दर्द होता होय तो लाईकरमोरफियाकी परिमित मात्रा रोगीको देता रहे, दर्द वन्द होनेपर इस दवाका देना वन्द कर देवे अधिक समय पर्य्यन्त विस्तरपर पडे रहनेसे रक्त और पीबके निकल जानेसे रोगीके शरीरमें अशक्ति हो जाय अथवा ज्वरादि उपद्रव उत्पन्न हो जायँ तथा पीठ और कटिमें पीडा होय तो इसके लिये रोगके उपद्रवोंके अनुकूल उपाय करना हलका और पौष्टिक आहार देना । ज्वरके लिये सानकोनाकी परिमित मात्रा देना और रोगी शयनके स्थानपर नर्म गुदगुदा विस्तर बिछाना । यदि जखम सहित अस्थिभङ्गमें अस्थिका चूर्ण हो गया हो तो अथवा रक्तकी नाडियां तथा स्नायुतन्तु आदि कुचलकर नष्टभ्रष्ट हो गई हों तो उस अवयवको छेदन (काटने) की आवश्यकता पडती है । हाथ अथवा पैरके किसी भागको वाँधनेकी आवश्यकता पडे तो अंगुलियोंसे ऊपरके अवयवको बांधता जावे, यदि जंघा अथवा भुजाका भाग टूटाहुआ होय तो अंगुलियों पर्य्यन्त बांधना चाहिये, क्योंकि ऊपरका भाग बांध दिया जाय तो इस समय पर नीचेका भाग खुला रहनेसे उसपर सूजन उत्पन्न हो आती है । जहां कहीं एक अस्थि. टूटी है कि नहीं इस विषयमें शंका उत्पन्न हुई होय और पूर्णरूपसे निश्चय न हुआ होय तो भी उसका उपाय हड्डा टूटीहुई समझ कर उसी प्रमाणसे इलाज करना चाहिये । क्योंकि कदाचित हड्डी टूटी हुई होय तो उसके ऊपर तखती लगाकर पट्टी बाँधनेसे लाभ पहुंचता है और कभी हड्डी न टूटी होय तो भी तखती लगाकर बांधनेसे अवयव स्थिर रखने पर कुछ हानि नहीं पहुंचती ।

नीचले जावडेका टूटना।

किसी ऊंची जगहसे गिरने अथवा मार पडनेसे नीचेका जावडा किसी समय टूट जाता है और यह बीचमें हनु (ठोडी) के ठिकानेसे टूटता है अथवा ठोडीकी बगलके सिरे टूटते हैं। इसके टूटनेके लक्षण इस प्रकार मालूम होते हैं कि जावडेके आकार परसे टूटाहुआ भाग हिलनेसे तथा उससे उत्पन्न हुई कटकट आवाजसे अस्थिभंग जान पडता है, इसके साथ बाहर अथवा मुखके अन्दर जखम हो रक्तप्रवाह तथा दन्तपंक्तिमें कुछ स्थानान्तर हो जाता है। चिकित्सा इसकी यह है कि मोटे कागजका गत्ता (पुट्ठा) अथवा चमडा इस अन्दाजसे लेवे जो दोनों ओर जावडेके शिरेको दाब सके, इसके ऊपर लपेट कर जावडेके टूटेहुए भागको मिलाकर उसके ऊपर रूईकी गद्दी लगा पुट्ठेको जावडेके ऊपर योग्यरीतिसे बैठाल ऊपरसे कपडेकी पट्टी बांध देवे। कपडेकी पट्टी दोनों बाजू फाडकर ऊपरकी पट्टीके शिरेको मस्तकके पीछेकी ओर लपेटा देकर बांधना और पट्टीके नीचेके शिरेको मस्तकके ऊपर लपेटा देकर बांध तीन चार अठवाडे पर्य्यन्त बंधा रखना। इस अवधिके बीचमें कोई ऐसा पदार्थ न खाना चाहिये जिसको मुखसे चावना पडे, अथवा दान्तोंसे कतरना पडे, प्रत्युत ऐसे पदार्थ आहार करे जो होठोंके सहारेसे पीलिये जावें। जैसे पतला दलिया दूध प्रवाही पदार्थ, यदि दन्तपंक्तिमेंसे कोई दांत उखडकर बिलकुल जाता रहा होय तो उसको अलग कर देवे और जिस दाँतका सम्बन्ध दन्दपंक्तिसे रहा होय व टेढा हो गया होय अथवा दांत ऊपरको उठ आया होय उनको बराबर स्थित बैठाल देवे, उनकी सन्धि बराबर मिल जाती है। जावडा बैठालनेके साथ ही दान्तोंको बैठालना चाहिये, पीछे नहीं बैठ सक्ते, क्योंकि जहांसे दांत हट गया है वहांपर मांस अवयव स्थिर हो जाता है इससे फिर नहीं बैठ सक्ते।

पार्श्व (पशली) भंगकी चिकित्सा। आकृति नं० ९३ देखो।

एक अथवा इससे अधिक पशली एक साथ ही भंग होती हैं, किसी प्रकारकी मार अथवा सोतेहुए मनुष्यकी पशली पर किसी प्रकारका अभिघात आ पडे उसी ठिकाने पर पशली भंग होती है। जिस ठिकानेकी पशली भंग होय तो उसका शिरा फेंफसाके अन्दर घुस जाता है, किसी समय छातीको दाबनेसे पशली कोनेमेंसे भङ्ग होती है। एक ओरकी अथवा दोनों ओरकी पशली भंग होती है, पशली भंग जखम सहित और निर्जखम दो प्रकारका होता है, इसके लक्षण इस प्रकारसे हैं कि ओंडा (लम्बा) श्वास लेनेमें अथवा खांसी आनेमें पशली टूटेहुए ठिकानेपर अतिशय करके दुखती है, इस कारणसे दम लेनेकी क्रिया

बराबर नहीं बनती, उस ठिकानेपर हाथ रखके अथवा कान लगाकर रोगीसे बोले कि खाँसो, रोगीके खांसनेसे कटकट शब्द सुनाई देगा और पशली टूटनेका मुख्य भय फेंफसाकी इजाके ऊपर रहता है । यदि पशलीभंगके साथ फेंफसामें जखम हुआ हो तो पशली टूटना जान जोखमसे भराहुआ समझा जाता है, और खांसी आनेमें रक्त पडता है । फेंफसा अथवा उसके आवरणमें सूजनके चिह्न जान पडते हैं, यदि जखम होय तो बाहर अथवा फेंफसामें मुखके मार्गसे विशेष रक्त निकलता हुआ फेंफसाके आवरणकी खोहमें रक्तका भरना विशेष होता है । अथवा सूजन उत्पन्न होनेके पीछे पीबकी उत्पत्ति होती है और कभी फेंफसाके आवरणकी खोहमें हवा भर जावे और कई बार जफा (अभिघात) के स्थानमें त्वचा तन जावे और संयोजकमें हवा भर जाती है । इस कारणसे त्वचा उठ आती है उसको दाबनेसे कटकट आवाज माल्लम हो सुननेमें आती है, किसी २ समय इसके कारणसे रोगीके समस्त शरीरमें सूजन उत्पन्न हो जाती है । विशेष करके पीछेसे इस हवाका शोषण हो जाता है । चिकित्सा इसकी यह है कि छातीके आसपास मोटे कपडेकी पट्टी तानकर बांध देवे जिससे पशलीका हलना कम हो जावे और न हिलनेसे पसलीकी सन्धि शीघ्र मिल जावेगी । यदि कपडेके वदलेमें रेझीन प्लाष्टरका चौंडा तथा लम्बा टुकडा लपेटकर बांधा जावे तो उत्तम है । दोनों ओरकी पशली टूटी होय तो छातीके समान चौंडा कपडा लेकर उसके दोनों शिरे चीरकर ग्रन्थी लगाकर बांध देवे, जो एक ओर की ही पशली टूटी होय तो राळके प्लाष्टरकी एक २ तसु चौंडी पट्टी करके पशलीकी दशाके अनुसार एकके ऊपर एक अर्द्धी बैठती हुई लगानी चाहिये, इसके लगानेके लिये ऊपरकी आकृति देखो इसप्रकार लगानेसे बाजूकी पशलियोंका हिलना कम होगा यदि पशली भङ्गके कारणसे विशेष रक्त जाता होय अथवा फेंफसामें दाह होता होय तो उसका उपाय योग्य रीतिपर चिकिस्सकको करना उचित है ।

गलेके पास हसलीभङ्गकी चिकित्सा ।

दोनों स्कन्द (खवों) के बीचमें और छातीके ऊपरके भागमें दो हड्डियाँ आई हुई हैं, इनको हसलीकी हड्डी बोलते हैं । और खवेकी कूंची इसमें गडती है किसी ऊंचे स्थानसे गिर जाने अथवा लाठी आदिकी मार लगनेसे अथवा हसलीके ऊपर किसी भारी वस्तुका अभिघात पहुंचनेसें हड्डी टूट जाती है । किसी समय दो ओरके दबावके बीचमें पडनेसे टूटती हैं, किसी समय पर स्नायुका जोर पडनेसे भी टूट जाती है और खवा तथा हाथ केवल गिरनेसे भी हसली भंग होती है । हसली विशेष करके बीचके भागमेंसे टूटती है, किसी समय बाहरका शिरा खवेके पाससे टूटता है विशेष करके हसली भंग निर्जखमहो

होता है। लक्षण हसलीभंगके इस प्रकारसे हैं जब हसलीकी हड्डी बीचमेंसे

आकृति नंबर ९४ देखो।

टूटे तव टूटा हुआ बाहरका शिरा थोडा अन्दर नीचे तथा पीछेको खिंच जाता है और अन्दरका शिरा उभरा हुआ ऊँचा चमडेके अंदर माल्म होता है। खवा हिलानेसे कटकट आवाज होती है रोगी खवा नहीं हिला सक्ता उस ओरको हाथको दूसरे हाथका सहारा देना पडता है तथा मस्तक उसी ओर ढलाहुआ रखता है। क्योंकि मस्तक ढला हुआ रहनेसे पीडा कम माल्म होती है। खवा थोडा आगेको खिंच जाता है, खवेके वजनसे तथा स्नायुके आकषर्णसे टूटाहुआ शिरा यथास्थित न रहकर थोडा ऊपर नीचे रहता है इससे हड्डीकी सन्धि मिलनेके अनंतर वह जगह कुछ ऊंची रहती है, हसली बाहरके शिरेसे टूटती है तब हड्डीके टुकडे एक दूसरेसे विशेष खिंचता हुआ नहीं रहता। चिकित्सा इसकी यह है कि कांखके अन्दर कपडेकी गद्दी रख कोहनीको जरा पीछे रख छातीके साथ पट्टी बांध देवे। कोहनीसे लेकर पहुँचे पर्यन्त हाथ मोडकर झोलीमें रखे (९४ ऊपर आकृति) देखो रोगी एक समान तंग बुनी हुई खाटपर सोवे उस समय टूटी हुई हसली और हाथके भागको ऊपरके ओर रख एक वगल अथवा पीठके बल शयन करे। यदि किसी समय दोनों ओरकी हसली भंग हुई होयँ तो ऐसी ळ आकृतिकी पट्टी पीछेसे दोनों खवेके साथ बांधनी चाहिये और रोगीको पीठके बल शयन करना चाहिये।

भुजास्थिभंग।

भुजाकी अस्थि तीन ठिकानेसे टूटती है। एक तो ऊपरके शिरेपर खवेके पास, दूसरे नीचेके शिरेपर कोहनीके पास, तीसरे विचली डांडीके भागमें। ऊपरका शिरा कभी सन्धिके अन्दरका भाग टूटता है परन्तु विशेष करके सन्धिके बाहरके भागको जफा पहुंचती है तब इस माफिक चिह्न होते हैं कि खवेके नीचे खड्डा जान पडता है और हड्डीके दोनों टुकडे हिलते हुए कटकट आवाज माल्म पडती है। और भुजा एक इंचके अन्दाज कम हो जाती है और नीचेकी हड्डीके टुकडेका ऊपरका शिरा खवेके अन्दरकी वाजूमें ऊंचा चढकर उठा हुआ दीख पडता है। दर्द तथा सूजन उत्पन्न हो जाती है, कदाचित किसी समय हड्डीका एक टुकडा दूसरेमें फँसगया होय अथवा सन्धिके अन्दरका भाग टूटा होय तो ये उपरोक्त लक्षण नहीं होते हैं। चिकित्सा— जिस ओरकी हड्डी टूटी होय उस ओरकी कांखमें कपडेकी गद्दी रखनी तथा कोहनीको जरा आगेकी ओर लाकर छातीके साथ पट्टीसे बांध देना और कोहनीके भागको बन्धनसे पृथक् रखे और केवल हाथको झोलीमें रखे रहे, टूटी हुई हड्डीके दोनों शिरोंको बराबर मिलाकर बांध देवे। जब भुजाकी अस्थिका बीचका भाग टूटता

है तब वह स्पष्टरूपसे जान पडता है, क्योंकि हड्डीके दोनों टुकडे हिलते हैं और आवाज जान पडती है। तथा नीचेका टुकडा ऊपरके टुकडाकी अन्दरकी बाजूमें खिच भुजा लम्बाईमें छोटी पड दर्द तथा सूजन उत्पन्न होती है। इसकी चिकित्सा यह है कि कोहनीको मोडकर भुजा तथा हाथकी बाजूपर काटकौनेवाली पट्टी रखकर बाँधनी चाहिये, इसके अलावे भुजाके आगे तथा बाहरकी बाजूपर दूसरी छोटी पट्टी रखकर कपडेकी पट्टियोंसे बांध हाथको झोलीमें रख लेना। भुजाकी अस्थिका नीचेका शिरा कोहनीके सम्बन्धमें टूटे तब सूजन उत्पन्न हो पीडा हो दोनों टुकडे हिलते हैं तथा आवाज कटकट सुननेमें आती है। चिकित्सा इसकी यह है कि कोहनीको मोड-कर काटकोनेवाली लकडीकी पट्टीपर हाथको रखके टूटेहुए हाडकी सन्धि मिलाकर कपडेकी पट्टीसे बांध कोहनीकी सन्धिको सच्चा पहुंचा होय तो टूटीहुई हड्डीके जुड जानेके पीछे कोहनीकी सन्धि जकड जाती है। यदि अस्थि भंगकी सन्धि जकड जावे तो अवयव इस स्थितिमें रहे तब उपयोग होता है और हाथ लम्बा रहजावे तो उपयोगके बदलेमें हानिकारक हो पडता है। कोहनी जकड जावे तो उपयोगमें कुछ काम हाथसे हो सक्ता है, ऊपर कथन कियेहुए तीन प्रकारके भुजास्थिभंजनमें यदि जखम सहित अस्थि भंजन होय तो रोगीको पीडाका विशेष कष्ट होता है। इसके लिये अफीम तथा मोर्फिया देना चाहिये, जिससे रोगी नसेमें पडा रहे और अवयवको पट्टीमें रखना तथा जखमकी मरहम पट्टीसे चिकित्सा करे।

हाथकी कलाईकी अस्थिका भंग।

हाथकी कलाईमें दो आस्थियां होती हैं विशेष करके दोनों साथही टूटती हैं, किसी समयपर एक टूटती है और एक सबित रहती है। ये ऊपरके अथवा नीचेके शिर अथवा मध्यमेंसे टूटती हैं, मध्यमेंसे टूटती है तब कलाईकी हड्डीका टूटाहुआ टुकडा खिसक टुकडा हिलता है एवं कटकट आवाज होती है पीडा तथा सूजन उत्पन्न हो कलाई छोटी हो जाती है।

आकृति नं० ९९ देखो.।

चिकित्सा इसकी यह है कि टूटी हुई हड्डीकी सन्धि मिलाकर उसके ऊपर नीचे लकडीकी तखती बराबर लगाकर कपडेकी पट्टीसे बांध देवे, परन्तु लकडीकी तखतीके बीचमें रुई व कपडेकी गद्दी रख अवयवको झोलीमें रखना। कितने ही समय कलाईकी हड्डीके कंडराके समीपका भाग टूटता है बालक अथवा बडी उमरका मनुष्य किसी स्थानसे गिरपडे तो हाथके ऊपर जोर तथा दबाव पडता है,। इससे यह वारम्वार टूट जाता है। विशेष करके बाहरकी हड्डी (रेडीयस) कंडरासे इंच पौन इंचके करीब ऊंची टूटती है, इसलिये कंडराके पीछेके भागके ऊपर ऊंची जगह हो जाती है।

दूसरी ओर उसके सामनेके भागमें खड्डा पड जाता है, इस खड्डेके समीपमें ऊपर एक ऊंची जगह दीखती है । कंडराकी बाहरकी बाजू टेढी मुडीहुई अन्तरगोल तथा अन्दरकी बाजू टकली हुई बाह्यगोल कलाई दीख पडती है । हाथ औंधा नहीं होता और सीधा भी नहीं रहता, किन्तु मध्य स्थितिमें रहता है । हाथ सीधा करनेके समय विशेष दुखता है । हड्डीके टूटेहुए भागमें अतिशय पीडा होती है और रोगी हाथ छूने नहीं देता, हाथमें वक्रता स्नायुके आकर्षणसे होती है । ऊपरकी आकृतिको देखनेसे स्पष्ट मालूम होगा, हाथके पीछले भागपर जो ऊँचाई दीख पडती है वह नीचेके खड्डेके कारणसे जान पडती है। तथा आगेकी ऊँचाईके ऊपरका ककडाके शिरेके लिये जान पडती है । यदि ककडा जुदा होय तो आवाज सुननेमें आती है । परन्तु विशेष करके ऊपरका ककडा नीचेके ककडामें बैठ जाता है, इस कारणसे आवाज नहीं निकलती । टूटी सन्धि संयुक्त होनेके पीछे अवयवमें थोडा बहुत दोष रहे बगैर नहीं रहता । चिकित्सा इस स्थितिकी यह है कि पिस्तौलके आकारकी लकडीकी पट्टीपर कपडेकी गद्दी लगाकर उसके ऊपर हाथको रखके बांधना चाहिये और लकडीकी पट्टीका मुडाहुआ भाग नीचे तथा बाहरकी बाजूपर आना चाहिये, इन पट्टियोंके बीचमें हाथ रखनेके पूर्व टूटेहुए हाडकी सन्धिको बराबर बैठाल कपडेकी पट्टीसे हाथ बांधनेके समय हाथ अन्दरकी बाजू मुडा हुआ रहना चाहिये ।

हाथके पंजेका भङ्ग होना ।

हाथकी अंगुली अथवा अंगूठा आदि टूट जावे तो उनको यथास्थित बैठालकर बांसकी खपची पर रखके कपडेकी पट्टीसे बांध हाथके पंजेको झोलीमें रखना, जब हाथके पंजेकी छोटी मोटी सन्धिके सम्बन्धमें अस्थिभंग होय तब हाथपर सूजन आ जाती है । इस सूजनकी निवृत्तिके लिये प्रथम ठंढा लोशन रखना चाहिये, इसके पीछे विधिपूर्वक अवयवको बांध देना चाहिये । यदि अस्थिभंगके साथ जखम होय तो विशेष कष्टदायक और जोखमवाला समझा जाता है । यदि साधारण जखम होय तो वह रोपण होकर सन्धि सजड हो अवयव ठीक रहता है और जो खराब जखम होये तथा वह भाग कुचल गया होय और त्वचा स्नायु, धमनी, तन्तु आदि सब छिद गये होयँ तो अवश्य काटनेकी जरूरत पडती है ।

पादास्थिभंगकी चिकित्सा ।

बस्तिभंग दोनों जंघाकी हड्डियोंके ऊपर बस्तिकाका हाडपिंजर किसी २ समयपर मार पडनेसे अथवा ऊंचे स्थानसे मनुष्य गिर पडे तो बस्तिपिंजरकी हड्डी भंग हो जाती है । इसके साथ मूत्राशय व मूत्रमार्ग अथवा सफरा (मलमार्ग मलद्वार) को नुकशान पहुंचे तो मनुष्यका शरीर विशेष जोखममें आ पडता है, मूत्रमार्गमें जखम

हो जाय तो वह भरनेके पीछे मूत्रग्रन्थी उत्पन्न हो हड्डीके टूटनेके ठिकानेपर सूजन आनेके पीछे पीडा होती है। ककडा हिलता है कटकटकी आवाज सुननेमें आती है, तथा मनुष्य खडा नहीं रहसक्ता। मूत्रके अवयवको सधा पहुंचे तो मूत्रमार्गसे रक्त निकलता है और मूत्रके साथमें भी रक्तस्राव हो मूत्र नहीं उतरता। चिकित्सा इसकी यह है कि बस्तिस्थानके आसपास चौडी पट्टी तानकर (खींचकर) बांधनी और दोनों पैरोंको साथ बांधकर रखे, जिससे हिलने न पावें और मूत्रमार्ग भंग हो गया होय तो उसकी मूत्रनलीके अंदर रबडकी मूत्रशलाका डोलकर रखनी व उसके द्वारा ही मूत्र निकालना।

जंघाअस्थिभंग।

भुजा अस्थिके समान जंघा अस्थि भी तीन ठिकानेसे टूटती है। एक तो ऊपरके शिरके पास दूसरे नीचेके शिरेके पास, तीसरे बीचमें डंडीके ठिकानेपर टूटती है। १ ऊपरका शिरा सन्धिके अन्दरका भाग टूटता है अथवा सन्धिके बाहरका भाग टूटता है। सन्धिके अन्दरका भाग विशेष करके पचास वर्षसे ऊपरकी उमरके मनुष्योंमें देखनेमें आता है, यह सहजसाज कारण भंग हो जाता है। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें इस ठिकानेकी हड्डी विशेष भंग होती है। धडपणमें जंघास्थिकी ग्रीवा डंडीसे काटकोना आ रहा है तथा अस्थि विशेष कटकोने रहनेसे सहज कारणके लिये भंग हो जाती है। इसके लक्षण विशेष इस प्रकारसे हैं कि जंघाकी सन्धि चपटी दीखती है, स्वाभाविक भरीहुई नहीं दीखती इस ठिकाने पर दर्द होनेसे रोगी पैरको नहीं हिला सक्ता। जंघाको हिलानेसे कटकट आवाज मालूम पडती है, यदि रोगी शयन करता है तो घुटनेको आधा मुडाहुआ और पैरको बाहरकी ओर मुडाहुआ रखता है। यदि रोगी खडा होय तो पैर अंगुली जमीनकी ओर और पैरकी पगथली दूसरे पैरके सामने रहती है और पैर प्रथमसे एक दो इंच कम हो जाता है। पीछे दोसे तीन इंचतक छोटा हो जाता है, जो टूटीहुई अस्थिका कपडा अलग न होकर दूसरेमें बैठ गया होय तो पैर इतना छोटा नहीं होता, चलनेमें ठोकर लगनेसे अथवा पैरमें पैरका अंटा लगनेसे अथवा ऐसे ही दूसरे कारणोंसे इस ठिकानेकी हड्डी टूट जाती है। यदि रोगीकी अवस्था वृद्ध होवे तो विशेष करके इस ठिकाने हड्डीकी सन्धि मजबूत नहीं होती और रोगीको आयुके अन्तपर्य्यन्त लँगडा रहना पडता है। हड्डीकी सन्धि जो हड्डीमें मिलकर होनी चाहिये थी सो उसके बदले श्वेत तन्तुमें सन्धि मिलती है। चिकित्सा इसकी यह है कि एक लम्बी पट्टी लकडीकी कांखसे लेकर पैरके टकनेपर्य्यन्त पहुंचे ऐसी पैरकी बाहर बाजूपर रखकर कपडेकी लम्बी पट्टियोंसे बांध देवे अथवा (मेकींटायरस्प्लींट) के ऊपर पैरको रख रोगीको एक व डेढ महीने पर्य्यन्त अथवा

आवश्यकता पडे तो इससे भी अधिक समय पर्य्यन्त विस्तर पर सुलाकर रखना । यदि सन्धि एक महीनेके दर्मियानमें वरावर ठीक जुड जावे तो अधिक दिवस पर्य्यन्त विस्तर पर पडे रहनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अधिक समय पर्य्यन्त विस्तरपर पडे रहनेसे क्षीणता और दूसरे उपद्रव उत्पन्न हो रोगी निर्वल हो जाता है । सन्धि जुड-नेके वाद लकडीकी घोडीके ऊपर आइस्ते २ रोगीको चलनेकी आदत करानी चाहिये । सन्धिके वाहर जंघाकी अस्थि टूटती है यह कुछ सरल कारणसे नहीं टूटती इस प्रका-रकी हड्डीका टूटना छोटी और वडी उमरके मनुष्योंमें होता है, तथा सन्धि ठिकाने पर विशेष अभिघात अथवा सख्त लाठी आदिकी मार पडनेसे हड्डी टूटती है । हड्डी टूट-नेके ठिकानेपर विशेष पीडा हो सूजन उत्पन्न हो हड्डीके टुकडे हिलते हैं । तथा कट-कट आवाज होती है, पैर वाहरकी ओर मुडाहुआ रहता है और पैरकी लम्बाई प्रथमसे दो तीन इंच कम हो जाती है । चिकित्सा इसकी ऊपर लिखे प्रमाणे कर लकडीकी लम्बी पट्टी अथवा लोढाकी स्प्लींट वांधनी चाहिये ।

दूसरे जंघाकी अस्थि टूटनेपर अवयवसे लम्बी पट्टी वांधनेकी प्रक्रिया । आकृति नं० ९६ में देखो ।

दूसरे जंघाकी अस्थिका मध्यभाग टूटता है तव उसके लक्षण प्रत्यक्षमें दीखते हैं, हड्डीके टुकडे हिलते हैं और कटकट शब्द सुनाई दे जंघाकी लम्बाई कम हो जाती है । पैर वाहरकी ओर निकलाहुआ रहता है नीचेका टुकडा ऊपरसे तथा अन्दरसे खिंचता है और ऊपरका टुकडा आगे तथा वाहरको खिंचता है, दर्द तथा सूजन उत्पन्न हो पैरकी क्रिया वन्द हो जाती है । यदि रोगी पैरको हिलावे झुलावे तो अधिक पीडा होती है। चिकित्सा इसकी यह है कि पैरसे लकडीकी लम्बी पट्टी वांधे अथवा लोढाकी स्प्लींटके ऊपर पैरको रखना और पैरको लम्बा रखना ठीक है तथा पैर पर वजनदार वस्तु वांधनी चाहिये, दो तीन अठवाडेके पीछे कांजी (चावलके मांडकी) पट्टी वांधकर रोगीको लकडीकी घोडीके आश्रय (आधार) पर चलाना आरम्भ करे । तीसरे जंघाकी अस्थि घुटनेकी सन्धिके सम्बन्धमें टूटी होय तो पैरको लोढाकी स्प्लींटपर रखके वांधना और घुटनेके भागको खुला रखे, जो सूजन आ गई हो तो उसके ऊपर थोडा लोशन लगाना ठीक है । यदि इस प्रकारके अस्थिभंगके साथ घुटनेकी सन्धिपर कदाचित विशेप जखम पडा होय तो पैरको काटनेके शिवाय दूसरा उपाय काम नहीं देता । घुटनेकी ढकनीकी हड्डी किसी २ समयपर टूट जाती है उसका टुकडा प्रथक् प्रथक्ही जान पडता है और यह ढक-नीका टूटना स्नायु संकोचसे होता है और ऊपरका टुकडा नीचेके टुकडेसे दूर खिंचता है, समीपमें लाना कठिन हो जाता है । इन दोनों टुकडोंके वीचमें अंतर

रहनेसे अस्थिमें सन्धि न होतेहुए श्वेततन्तुमें सान्धि होती है, इसके लिये पैरको लम्बा रखके दोनों टुकडोंको मिलाकर लकडीकी पट्टी अथवा प्लास्तर घुटनेपर रखके कपडेकी पट्टीसे बांधना । पैरकी नलीका टूटना, पैरकी नलीकी एक हड्डी व दोनों हड्डी गाडी आदिके नीचे आनेसे अथवा दूसरे प्रकारके अन्य अभिघातसे टूट जाती है । इसके चिह्न प्रत्यक्ष दीख पडते हैं, जो यह अस्थिभंग जखम सहित होय तो टूटीहुई हड्डीका शिरा बाहर निकल आता है शरीरके दूसरे अवयवोंकी अपेक्षा पैरकी हड्डीका टूटना विशेष देखनेमें आता है । विशेष करके यह अस्थिभंग जखम सहित होता है, क्योंकि पैरकी हड्डीके ऊपर आगेके भागपर मांसका जमाव बहुत कम है । पैरकी वक्रता, हिलना, कटकट शब्द होना, पीडा इत्यादि लक्षणोंसे सहजमें जान पडता है। चिकित्सा इसकी यह है कि पैरको लोढाकी स्प्लींटके ऊपर रखके हड्डीकी सन्धि मिलाकर कपडेकी पट्टीसे बांधना । यदि इस ठिकाने पर जखम न हुआ होय तो थोडे दिवसमें टूटीहुई अस्थिकी सान्धि जुड जाती है । इस अस्थि-भंगके साथ छोटा जखम हुआ होय तो उसके ऊपर (कोलोडीयन) अथवा कार्बोलिक ओईलका फोहा रखनेसे रोपण हो जाता है । कदाचित मोटा जखम होकर हड्डी बाहर निकल आई होय तो उसको अन्दर ले जाकर बराबर बैठालना, यदि अन्दर जाकर दोनों हड्डियोंकी सन्धि न मिले तो बाहर निकले हुए भागको काटकर दोनों टुकडोंकी सन्धि मिलाकर पैरको उपरोक्त रीतिसे बाँध जखमके भागमें रोपण उपाय करना । इस जखम सहित अस्थिभंगकी सन्धि मिलनेमें अधिक समय लगता है । किसी समय टकनेके ऊपर एक व दो इंचपर पैरकी हड्डी टूटती है, बाहरकी हड्डी ऊपर टूटती है तथा अंदरकी हड्डी जरा नीचे टूटती है और पैरका पंजा बाहरकी बाजू मुड जाता है । इसका उपाय इस प्रकारसे करे कि पैरकी अन्दरकी बाजू पैर सीधा करके लकडीकी पट्टी लगाकर उसके ऊपर रुई अथवा कपडेकी गद्दी रखके हड्डीकी सन्धि बराबर मिलाकर बांधना और पाटियाकी गद्दी ऊपरके भागमें भी रखना, पैरके पंजेको अन्दरकी ओर खींचकर बांध देना । (पैरके पंजेका भंग होना) पैरकी अंगुली अथवा टकनाका भाग टूट जावे तो उसको लोढाके स्प्लींटपर रखके बांधे, अथवा उचित समझे तो लकडीकी पट्टियोंपर रखके बांध देवे । सदैव पैर बांधनेके समय फणाको पगसे काटकौने सीधा बाँधना, जो फणाको आगेकी ओर ढलता हुआ बांधनेमें आवे । इसी स्थितिमें विशेष दिवस पर्य्यन्त रहे तो फणाकी अस्थि आगे निकल टकनेकी सन्धि ढीली पड जाती है ।

सन्धिका स्थानान्तर ।

समस्त शरीरमें अस्थियोंकी परस्पर सन्धि हैं सन्धिके ठिकाने पर परस्पर जुडीहुई

हड्डियोंमेंसे कोई एक हड्डी खिसक जावे तो उसको हड्डीका खिसकना व उतरना कहते हैं । सन्धिमेंसे हड्डीका थोडा भाग अथवा सम्पूर्ण भाग खिसक जाता है, इस प्रमाणसे सम्पूर्ण खिसक गया अथवा अधूरा खिसक गया ऐसा बोलते हैं । हड्डी प्रायः बाहरकी जफा पहुंचनेसे खिसकती है, किसी समयपर सन्धिमें किसी प्रकारकी व्याधि उत्पन्न हो जाय और व्याधिके कारणसे सन्धि बन्धन ढीला पडकर हड्डी अपने संयोगसे पृथक् हो जाय, बालक तथा वृद्धावस्थाके मनुष्यकी सन्धिकी अस्थि अक्सर करके खिसक जाती है । बीचकी अर्थात् मध्य आयुवाले मनुष्योंकी सन्धि जो खिसकती है वह गिरनेसे अथवा मार लगनेसे अथवा भार उठानेसे व अवयवको खींचनेसे इत्यादि कारण समझे जाते हैं । किसी २ समय स्नायुके आकर्षणसे भी सन्धिसे हड्डी खिसक जाती है, जैसे कि जंभाई लेनेसे जावडा उतर जाता है । सन्धि खिसक जानेके लक्षण इस प्रकारसे हैं कि जैसे हड्डियोंकी सन्धिकी आकृति स्वभावसे समस्त शरीरमें है उससे खिसकी सन्धिकी आकृति विपरीत दीखने लगे । दूसरे सन्धिके सम्बन्धमें फर्क पड जावे, तीसरे खिसकी हुई हड्डीका शिरा सन्धिसे पृथक् दीख पडे । चौथे अवयवकी लम्बाई तथा धरीमें अन्तर हो जाय । पाँचवें सन्धिसे खिसकाहुआ हाड पीडित होवे तथा सूजन हो जावे । छठे खिसकेहुए हाड मनुष्य हिला झुला न सके और सन्धिमेंसे हड्डीके खिसक जानेसे सन्धिका बंधन तथा स्नायु कि कितने ही दर्जे टूट सन्धिके आसपासकी रक्तवाही नली तन्तु तथा चमडीको हानि पहुंचती है । किसी समयपर हड्डी टूट सन्धि खिसक जाती है, यदि इसके सम्बन्धमें बाहरका जखम होय तो उसको जखम सहित सन्धिस्थानान्तर कहते हैं । यदि जखम न होय तो उसको निर्छेद सन्धिस्थानान्तर कहते हैं । यदि सन्धि स्थानसे खिसकाहुआ हाड अधिक समय पर्य्यन्त सन्धिमें बैठालकर ठीक न किया जावे तो उस हाडके नियत स्थान (रहनेकी जगह) पर खड्डा होता है, वह भर जाता है तथा नये ठिकाने पर जुजवी सन्धि बन जाती है । और. खिसकीहुई अस्थिके आसपासके भागोंमें शोथ उत्पन्न होकर लस स्राव (लिंफ) हो जाती है । इससे यह फेरफार होता है और आसपासकी स्नायु संकुचित रहती हैं, इससे अधिक समयकी. खिसकी हुई सन्धिको चढानेमें विशेष कठिनाई पड महान् कष्ट सहन करना पडता है ।

चिकित्सा ।

सन्धिका स्थानान्तर होनेके पीछे जैसे बने तैसे हड्डीको शीघ्र सन्धिमें बैठालना चाहिये, हड्डीके चढानेमें मुख्य दो बाधा होती हैं, एक तो स्नायु आकर्षण दूसरे अन्य अस्थिसे होताहुआ प्रतिबन्ध । अस्थिके खिसक जानेके पीछे उसके आसपासकी स्नायु

संकुचित होकर हड्डीको भ्रष्ट स्थलमेंसे खींचकर लानेसे प्रतिवन्ध करती हैं और हड्डी सन्धिमेंसे खिसकनेके पीछे जैसे अधिक समय व्यतीत होय तैसेही यह प्रतिवन्ध अधिक मजबूत होता है । इसलिये सन्धिमेंसे खिसकीहुई हड्डीको सन्धिमें शीघ्र बैठालनेसे यह प्रतिवन्ध थोडा होता है, यदि कलोरोफार्म सुंघाकर मनुष्यको वेहोश करके हड्डी चढाई जावे तो स्नायु आकर्षणका कष्ट कम माल्रम होता है। इससे कलोरोफार्म सुंघाकर मनुष्यको मूर्छित करके सन्धि चढाना सुगम है । सन्धिसे हड्डी खिसक जानेके पीछे हड्डीको पीछे सन्धिमें बैठालनेके वक्त उसके आसपासकी कोर तथा हड्डीके शिरेकी गांठ आदि अडती हैं, यह अवरोध अवयवको खींचकर सन्धिमें बैठालनेसे नष्ट हो जाता है, इतने सबको मनुष्य जबहीं सहन कर सक्ता है जब बेहोश किया जाय । संधि चढानेमें खिसकेहुए अवयवको प्रथम खींचकर उसको नियत स्थानपर बैठालना और हड्डीको नियत स्थान पर चढानेके समय (खटक) शब्द सुनाई देता है । यदि रोगीको कलोरोफार्म सुंघाया होय तो स्नायु शिथिल होनेसे समयपर यह खटका सुननेमें नहीं आता । और अवयवको अपने हाथसे पकडकर खींचना, यदि विशेष जोर लगे तो सामने पैर अडालेना अथवा पट्टी बांध कर गरेंडीके साधनसे खींचना । खिसकीहुई हड्डीने जो दिशा धारण की होय उसीके सीधमें उसको खींचना और पीछे स्वाभाविक स्थितिमें लाना चाहिये । खिसकी हुई हड्डीको खींचनेमें अन्य अस्थिकी ऊंची नीची जगहके सम्बन्धका विचार करके खींचना और सन्धि चढानेके बाद उस भागपर लकडीकी तख्ती लगाकर कपडेकी पट्टीसे बांधकर रखना । और दोसे तीन अठवाडेके पीछे छोडकर उसको हिलानेका आरम्भ करे नहीं तो सन्धि जकडकर उसी स्थितिमें रह जावेगी । यह ऊपर लिखचुके हैं कि सन्धिमेंसे खिसकी हुई हड्डी अधिक समय पर्यन्त न चढाई जावे तो उसकी असली जगह पुर (भर) नवीन जगहपर कितने ही दर्जे सन्धिके समान स्थिति बन जाती है । चार छः सप्ताह पर्यन्त तो खिसकीहुई हड्डी सन्धिमें बैठ सक्ती है; यदि इससे आधिक समय व्यतीत हो गया होय तो फिर चढाना अति कठिन हो जाता है । पुरानी खिसकीहुई सन्धिके चढानेमें कितने ही समय अकस्मात् कष्ट होता है जैसे कि स्नायु, चमडी, धमनी, फस, तंतु आदि टूट जाते हैं । किसी समय पर हड्डी भी टूट सन्धिमें शोथ उत्पन्न होकर पक जाती है । ऐसी सन्धिके चढानेका प्रयत्न करनेके बदले यह उपाय करना ठीक है कि अवयवको सैंधवादि तैलसे चुपडकर गर्म जलसे सेंक करके इसकी गति हासिल करे । इधर उधर हिलावे फिरावे, इससे यह लाभ पहुंचता है कि नवी सन्धि कुछ काम देने लगती है । कदाचित सन्धि स्थानान्तरके साथ बाहरका जखम होय तो ऐसी स्थितिमें अवयव जोखममें पड जाता है, जो कि छोटी सन्धि जैसे अंगुलियोंकी सन्धिपर

जखम होय तो बचाव हो सक्ता है। यदि मोटी सन्धिपर जखम हो तो वह अवयव काटना पडता है, इसका बचाव किया भी जाय तो सन्धिमें जडता आती है। हाथकी मोटी सन्धिका जखम होय और वह जखम छोटा होय और सन्धिके आसपासका भाग सलामत होय तो उसको बंद करना। संधिको नियत स्थान पर बैठालेनेके बाद ठंढा लोशन लगाना, यदि वहांके रक्तमें कुछ खराबी होय तो जलौकाके द्वारा खींचलेना कदाचित जखम पक जावे तो व्रणके समान मरहम पट्टीसे उसका उपाय करना, जो जखम बडा होय तथा आसपासकी धमनी आदिका भाग कट गया होय तो अवयवको काटनेके शिवाय दूसरा उपाय काम नहीं देता। हाथकी अपेक्षा पैरकी संधिका जखम अधिक जोखमवाला होता है। घुटनेके जखमके लिये पैर अवश्य काटना पडता है यदि टकनेका जखम छोटा होय तो टकना बच सक्ता है, यदि टकनेपर बडा जखम होय तो वह भी जोखमवाला समझा जाता है। कदाचित सन्धि उतर जावे और इसके साथही उतरीहुई हड्डी टूट गई होय तो उसके बैठालेनेमें अति कठिनता पडती है। इसके लिये टूटीहुई हड्डीसे पट्टी बांधकर पीछे सन्धिको तुरंत चढा देवे।

नीचेके जावडेका उतर जाना।

खींचकर जोरसे मुख चौडा करनेसे और जंभाई लेनेसे तथा हँसनेसे अथवा स्नायु आकर्षणसे नीचेका जावडा सन्धिसे उतर जाता है। और जावडेकी एक अथवा दोनों सन्धि उतर जाती हैं। जब दोनों सन्धि उतर जाती हैं तब मुख फटेका फटाहुआ रह जाता है। दांतसे दांत नहीं मिलते बोलनेमें शब्द उच्चारण नहीं होता, खाने व किसी वस्तुके कतरनेको दांत नहीं मिलते। मुखसे थूक बहा करता है नीचेके दांत हनुकी ओर झुक जाते हैं। कानके आगे खड्डा पड जाता है और उसके आगे लमणामें उँचाई रहती है, जब एक ओरका ही जावडा उतरा होय तब जावडा सामनेकी बाजूको मुड जाता है और दूसरे चिह्न ऊपर कथन किये प्रमाणे होते हैं। उतरेहुए जावडेको चढानेमें चिकित्सक अपने हाथके दोनों अंगूठा नीचले जावडेकी दोनों बाजू मुखके अन्दर दाढ पर रखके और हाथकी अंगुली ठोडीपर रखके अंगूठोंको जोरसे नीचेको दबावे, जो अंगुली ठोडीपर लगी हुई हैं उनसे ठोडीको ऊंची करे; इतनी क्रियासे जावडा चढ जाता है। लेकिन मुखमें अंगूठा प्रवेश करनेके समय उनपर कपडा लपेट लेवे, क्योंकि जावडा चढनेके समय अंगूठोंके ऊपर दांत गिरनेसे सख्त पहुँचनेका भय है, जो एक ओरका जावडा उतरा होय तो एक अंगूठासे एक ओरही दबावे। और जावडा चढनेके बाद चार शिरेकी पट्टी बांध बोलना कम कर प्रवाही आहार ८ रोजतक करना चाहिये, पीछे पट्टी भी खोल देवे।

गलेकी हसलीकी सन्धिका खिसकना।

गलेकी हसली जिसका बयान टूटनेका ऊपर हो चुका है किसी समय वह अपनी सन्धिपरसे अन्दरके शिरेसे खिसक जाती है, अथवा बाहरके शिरेसे भी उतर जाती है। खिसकाहुआ भाग सरलतापूर्वक दृष्टिगत होता है और इसके चढानेमें भी विशेष कठिनता नहीं पडती है। परन्तु चढानेके पीछे वह हड्डीका शिरा स्थिर नहीं रहता, अन्दरका शिरा स्टरमनसे ऊपर आगे अथवा पीछे खिसक जाता है और बाहरका शिरा एकोमियनके ऊपर चढ जाता है। खवेको पीछेको खींचकर उतरे हुए शिरेको दूसरे हाथसे पकड कर बैठालना, बैठ जानेके बाद उसके ऊपर गद्दी रखके पट्टी बांध दोनों खवोंमें इस ∞ आकृतिकी पट्टी बांधनी चाहिये।

खवेकी सन्धिका उतर जाना।

शरीरकी अस्थि सन्धियोंकी अपेक्षा यह खवेकी सन्धि विशेष उतरती देखी गई है। खवेकी सन्धि उतर जाय तब इसकी मुख्य ६ निशानी हैं। एक तो खवा दुखता है, दूसरे खवा हिल नहीं सक्ता, तीसरे खवा चपटा हो जाता है, चौथे एकोमीयन निकलाहुआ दीखता है। पांचवें उसके नीचे खड्डा पडाहुआ दीखता है, छठे भुजास्थिका मस्तक नवे स्थलमें मालूम होता है। भुजास्थि चार ठिकानेसे खिसक जाती है। एक तो भुजास्थिका मस्तक जरा अन्दर तथा नीचे खिसक जाता है तब भुजा जरा छोटी पड जाती है और कोहनी पीछेकी ओर और छातीकी बाजूसे दूर रहती है। कांखकी परीक्षा करनेसे हड्डी खिसकी हुई मालूम होती है इसके अतिरिक्त ऊपर लिखीहुई ६ निशानी दीख पडती हैं।

आकृति नं० ९७–९८ देखो।

२ भुजास्थिके आगे हसली नीचे आती है तब हड्डी हसलीके नीचे दीखती है और भुजा छोटी पड जाती है। कोहनी विशेष पीछे तथा पसवाडेसे दूर रहती है, प्रथमके स्थानान्तरकी अपेक्षा इसमें विशेषता रहती है। इससे इसके चिह्न विशेष दर्जे मिलते हुए आते हैं। ३ भुजास्थि पीछेको सरक जाती है तब हड्डी पीछेके भागमें लगती है तथा भुजास्थिका मस्तक खवेके ढालकी हड्डीके पीठपर जाता है और कोहनी आगेको आती है तथा पसवाडेसे दूर रहती है। इसके साथमें उपरोक्त छः निशानी होती हैं। ४ हड्डी नीचे उतर जाती है तब भुजास्थिका मस्तक काँखमें जान पडता है और भुजा लम्बी हो जाती है। और हाथ मुडाहुआ रहता है, कोहनी पीछेको तथा पसवाडेसे दूर रहती है और रक्तनली तथा ज्ञानतन्तुओंके ऊपर दवाव होनेसे हाथ किसी समय सूज चस्क मारती है, इसके अतिरिक्त ऊपर कथन की हुई निशानी होती हैं। (ऊपर आकृति देखो) खवेकी सन्धि खिसकनेका कारण

यह है कि हाथ अथवा कोहनीके ऊपर वजन व झटका पडनेसे खवेके ऊपर वजनदार वस्तुके पडनेसे तथा खवेके ऊपर मार पडनेसे खवा उतर जाता है, विशेष करके आगे अथवा नीचेके भागमें भुजास्थि खिसक जाती है । (खवा चढानेकी प्रक्रिया) कांखमें पैरकी एँडी रखके अथवा घोंटू रखके अथवा हाथको ऊंचा मोडकर खवा चढाया जाता है । एक तो यह कि रोगी सीधा चित्त सुलाकर उसकी उतरी हुई सन्धिकी ओर बैठकर उसकी कांखमें पैरकी पगथरी भरकर उसका हाथ कंधे परसे पकडकर खींचना और हाथको भलेप्रकार खैंचनेके बाद उसको छातीकी ओर मोडना, इतनेमें हड्डियोंकी सन्धि चढ जाती है । दूसरे यह कि रोगीको कांखमें घुटना लगाकर चढावे यह विधि इस प्रकारसे है कि रोगीको बैठालकर उसके पीछेकी बाजूपर खडा रहकर बैठकके ऊपर पैर रखके अपना घुटना उसकी कांखमें भरकर और उसकी भुजाको कोहनीपरसे खींचकर छातीकी ओर मुडानेसे हड्डी बैठ जाती है । ३ तीसरे यह कि रोगीको सुलाकर उसके मस्तकके पास खडे होकर एक हाथ खवेके ऊपर रखना तथा दूसरे हाथसे रोगीका खिसकाहुआ हाथ पकड-कर ऊपरकी ओर खींचना । इतनेमें हड्डी ठिकाने पर बैठ जाती है और सन्धि चढनेके अनन्तर थोडे दिवस पर्य्यंत खवेपर पट्टी बांधकर रख हाथको हिलाने झुलानेसे बन्द रखे ।

कोहनीकी सन्धिका उतरना ।

कोहनीकी सन्धिका उतर जाना यह किसी समयपर होता है और इसकी एक हड्डी खिसक जाय अथवा दोनों एक साथ खिसक जाती हैं । जब दोनों हड्डी उतर जाती हैं तब विशेष करके दोनों पिछवाडे खिसक जाते हैं, जो आगेको खिसके तो (अल्ना) के ऊपरका शिरा टूट जाता है । किसी समय अंदर अथवा बाहरकी बाजूपर दोनों अस्थि खिसक जाती हैं, जब अंदरकी हड्डी अल्ना अकेली ही खिसके तो वह पीछेको उतर जाती है । और बाहरकी हड्डी रेडीअस अकेली ही खिसके तो वह बाहर पीछे भी विशेष करके आगे खिसक आती है । जब रेडीअस इस प्रमाणे आगेको खिसक जाती है तब हाथकी कलाई थोडी मुडी रहती है, तथा औंधी और सीधी मध्यम स्थितिमें रहती है और कोहनीको लम्बी करनेमें दर्द होता है कोहनी भुजाके साथ काटकौनसे अधिक नहीं मुड सक्ती और उस ओरके खवेमें उस हाथकी अंगुली नहीं लग सक्ती सूजन आनेके प्रथम हाथको हिलाने तथा सामनेकी कोहनीके साथ समानता मिलानेसे मालूम हो जाता है कि किस प्रकारपर सन्धिका स्थानांतर हुआ है और सूजन आनेके पीछे इसका निर्णय करना कठिन है और खिसक जानेके साथ कोहनीके सम्बंधकी एकाध अस्थिका शिरा भंग हो गया होय तो इसका निर्णय करनेमें विशेष कठिनता पडती है ।

कोहनीकी सन्धि चढानेकी विधि ।

जब दोनों हड्डी खिसक गई होयँ अथवा अल्ना अकेला ही खिसक गया होय तो इसके लिये रोगीको बैठालकर उसकी बैठकके ऊपर अपना पैर रखके अपना घोंटू उसकी कोहनीकी सन्धिपर रखके तथा उसका पहुंचा व पंजाको पकडकर हाथको तानकर कोहनीको मोडे, इतनेमें ठिकानेपर आ जाती है। इसके वाद काट-कौनेवाली लकडीकी पट्टियोंमें कोहनीकी सन्धिको रखके कपडेकी पट्टीसे बांध देवे, परन्तु जब रेडीअस आगे उतर आया होय तो हाथको सीधा खैंचनेसे वैठ जाता है। खैंचते समय रेडिअसके खिसकेहुए मस्तकके ऊपर दूसरे हाथका दबाव देकर उसको बैठालना और सन्धि चढानेके बाद लकडीकी सीधी तख्ती हाथके आगेके भागपर रखके कपडेकी पट्टीसे बांध देना। बाद दो सप्ताहके खोलकर कोहनीकी सन्धिको थोडा २ हिलाने लगे तथा मोडने लगे नहीं तो सन्धि सीधी रहजानेसे पीछे अधिक काठिनता पडती है। यदि कोहनीकी सन्धिको इजा विशेष होय अथवा सन्धि जडरूपमें रह जानेकी शंका होय तो ऐसी दशामें कोहनीकी संधिको काटकौनेवाली तखतीमें रखके बांधना उचित है। जो इस स्थितिसे भी अन्तके दर्जे कोहनी जकडीहुई रहे तो भी वह अवयव उपयोगी पडेगा, क्योंकि सीधे रहनेकी अपेक्षा कुछ मुडाहुआ अवयव कामकाजमें उपयोगी होता है और सीधी कोहनी रहे तो कामकाजमें बाधक होती है।

हाथके पंजे तथा अंगुलियोंका उतर जाना ।

हाथके पंजेकी हड्डी अथवा अंगुलियोंकी अस्थि संधि खिसक जाती है, अथवा अंगूठा उतर जाता है। इनमेंसे जो उतर जावे उसकी निशानी ऊपरही माल्रम हो जाती हैं। इन संधियोंके ऊपर विशेष मांस न होनेसे संधिका स्थानान्तर हुआ होय तो सरलतापूर्वक दीख सक्ता है। चिकित्सा इसकी यह है कि अस्थिको तानकर बराबर संधिमें बैठालके पट्टियोंके बीचमें हाथको रखके कपडेकी पट्टीसे खींचकर बांध दो सप्ताहतक बराबर बन्धा रहने देवे, इसके बाद पट्टी खोलकर सन्धियोंको मोडनेका अभ्यास करे। जंघाकी संधि अनेकबार उतर जाती है तब थापा बेडौल हो जाता है, यह भी खवेके समान तीन चार ठिकानेसे खिसक जाती है।

आकृति नं० ९९ देखो ।

१ विशेष करके ऊपर तथा पछिके भागमें नितम्ब अस्थि इल्यमपर खिसक जाती है, उस ठिकानेपर जंघाकी अस्थिका मस्तक जान पडता है और ट्रोकांटरकी उचावटके ठिकाने खड्डा माल्रम पड पैरकी लम्बाई एक दो इंच कम हो अंदरकी ओर मुड जाती है। जंघा और घुटनेकी संधि थोडी मुड जाती है और वह दूसरी जंघा तथा घुटनेकी ओर झुक पैर अन्दरकी बाजू मुड जाता है। बाहरकी तर्फ नहीं मुडसक्ता, (नंबर ९९

की आकृति देखो ।) दूसरे यह कि जंघाकी अस्थिके मस्तकके ऊपर और पीछेकी तर्फ नितम्ब अस्थिके पिछवाडे खड्डा है (सायाटीक फोरामेन) उसमें उतर जाता है, इसकी निशानी प्रथम स्थानान्तरसे मिलती आती है । परन्तु नितम्बके ऊपर विशेष उंचा टीवासा नहीं जान पडता और खिसकीहुई जंघाकी धरी सामनेकी जंघाकी मध्यकी ओर होती है । तीसरे यह कि किसी समय जंघाकी अस्थि नीचेकी बाजू (आवटयू रेटरफोरामेन) की तर्फ खिसक जाती है, तब पैर एक व दो इंचके सुमार लम्बाईमें बढ पैरकी धरीसे छोटे व बाहरको मुड घुटना मुडाहुआ रहता है । और धडके खिचानेसे टेढा रहना पडता है और थापा बेडौल लगता है, ट्रोकांटरकी उँचाई अदृश्य हो जाती है । चौथे यह कि किसी २ समयपर जंघाकी अस्थि ऊपरकी सुर्वीस पेर खिसक जाती है, तहां पोपार्ट बंधन तनकर जंघा अस्थिका मस्तक जान पडता है, एक इंचके सुमार छोटा हो जाता है और बाहरकी तर्फ मुडाहुआ रहता है । ट्रोकांट-रके ठिकाने खड्डा जान पडता है थापा बेडौल जान पडता है । इस प्रमाणे गिर जानेसे अथवा अन्य कारणोंसे जंघाकी अस्थि पृथक् २ ठिकानेपर खिसक जाती है । चिकित्सा इसकी यह है कि इसके चढानेमें जिन धरीको अवयवने धारण किया होय उसी दिशामें जंघाको खींचकर हड्डीको ठिकाने लाना चाहिये और जंघाके खींचनेमें अधिक जोर लगता है । कितने ही समय गेरेडीके जोरकी सहायता लेनेकी आवश्यकता पडती है । और जंघाको खींचनेके समय शरीरको स्थिर रखके सामनेकी बाजूपर बांधकर रखना चाहिये कि जंघाको खींचनेके समय शरीर टेढा सीधा तथा आगेको खिचने न पावे । इसके चढानेमें यन्त्रयुक्ती हालमें कम देखी जाती है, इस समय हस्तक्रियाके सांधनसे ही थापाकी सन्धि चढानेमें आती है । प्रथम व दूसरे स्थानान्तरमें जब जंघाकी अस्थि नितम्बके ऊपर जाती है तब पैरकी जंघाके ऊपर मोडकर तथा जंघाको पेटके ऊपर मोडकर सामनेके वंक्षणकी ओर घुटनेको ले जाना । इसके बाद घुटनाको मध्य रेखामें लाकर नाभिके तर्फ बाहर मोडकर एकदम लम्बा कर देवे, इस प्रमाणे एक समय अथवा इससे अधिक समय करनेसे संधि खटक शब्दके साथ ठिकाने पर बैठ जाती है । दूसरे तथा चौथे स्थानान्तरमें इसी रीतिसे पैर तथा जंघा मोडकर पेटकी मध्य रेखा पर्य्यन्त घुटनेको ले जाकर सामनेके अवयवकी तर्फ मोडकर उसको एकदम लम्बा कर देवे । इतनेमें सन्धि बैठ जाती है और जंघाको चढानेके पीछे दो तीन अठवाडे पर्य्यन्त पट्टी बांधकर रखना । इस सन्धिओंके चढानेमें रोगीको अति कष्ट पहुँचता है और वह कष्ट असह्य माळूम होता है, ऊपर यान्त्रिक विधि लिखी है उसमें रोगीका शरीर बांधनेसे उसके काबूमें नहीं रहता सो सन्धि चढानेके समय कुछ उपद्रव नहीं करता । परन्तु इस समय यन्त्रक्रिया काम नहीं ली जाती सो

हस्तक्रियाके द्वारा इस सन्धिको चढाया जावे तो प्रथम रोगीको कलोरोफार्म सुंघाकर बेहोश कर हस्तक्रियासे सन्धि चढानी उचित है।

घुटनेकी ढकनी अर्थात् परियाका हट जाना।

यह परिया घोंटूकी सन्धिके ऊपरसे बाजूकी तर्फ अथवा ऊपरको खिसक जाती है और जब यह इन दो स्थितियोंमेंसे किसी एकमें खिसक जाती है तब स्पष्टरूपसे दीखती है। पैरको ऊँचा सीधा रखके ढकनीको दाब कर ठिकानेपर बैठाल देवे और बैठालनेके पीछे पैरको लम्बा रखके दो तीन अठवाडे पर्य्यन्त बँधा रखे, पीछे पट्टी खोल देवे। (पैरके टकनेकी सन्धि) यह किसी समय खिसक जाती है और आगे पीछे अथवा बाजूकी ओर खिसकती है, जब बाजूको खिसक जाय तब उसके साथ उस सन्धिके सम्बन्धके बाहर अथवा अन्दरके टकनेकी हड्डी उतरती है पीछेकी अपेक्षा टकनेकी सन्धि आगेको विशेष उतरती है। पैरके फळको खींचकर बराबर करके सन्धिको बैठाल देवे। पैरकी दूसरी हड्डी तथा अंगुलीकी सन्धि किसी समय उतर जाती है। उन सबको खींचकर योग्य रीतिपूर्वक नियत ठिकानेपर बैठाल कितनेही समय पर्य्यन्त बांधकर रखना। प्रत्येक सन्धिको चढानेके समय रोगीको बडा कष्ट होता है, इस कारणसे सन्धि चढानेमें कलोरोफार्म सुँघाकर मनुष्यको बे भान करलेना अति हितकारी है।

मगज तथा खोपडीकी अस्थियोंका भंग।

मस्तककी खोपडीके अन्दर भेजा भराहुआ है और खोपडीको जफा पहुंचनेसे उसका सद्मा भेजाके ऊपर असर करता है। जोरका अभिघात अथवा शिरके बल मनुष्य किसी ऊंचे स्थानसे गिरजावे अथवा पछाड खावे तो उसकी खोपडी फूट जाती है और साधारण सद्मासे खोपडीकी अस्थि नहीं टूटती हैं। क्योंकि खोपडीकी अस्थि विशेष मजबूत होती हैं, परन्तु वे चाहे फूटें चाहे न फूटें तो भी मस्तकको विशेष धक्का लगनेसे मगजको सद्मा पहुंचता है। इससे कितनेही दर्जे मगजको सद्मा पहुंचनेके चिह्न होते हैं उनको तीन भेदोंमें दिखलाते हैं। एक तो यह कि मगजको धक्का, दूसरे मगजके ऊपर दबाव, तीसरे मगजका क्षोभ (इरीटेशन) मगजको जफा पहुंचनेके पीछे ये तीन प्रकारके चिह्न विशेष करके शीघ्र उत्पन्न हो जाते हैं और इससे किसी मनुष्यकी शीघ्र मृत्यु हो जाती है, कितने मनुष्य इस सद्माको सहन करके जीवित भी रहते हैं, किसीको पीछेसे वर्मके चिह्न उत्पन्न हो जाते हैं।

(१) मगजको धक्का (कंकशन) मस्तकके ऊपर किसी भारी वस्तुका अभिघात पहुंचनेसे अथवा मस्तकके बल पछाड लगनेसे मगजको धक्का पहुंचता है। इसके चिह्न धक्काके अनुसार न्यूनाधिक होते हैं, यदि हलका धक्का पहुंचा होय तो रोगीको थोडे समय पर्य्यन्त चक्कर आ रोगी विचारशून्य और मूर्छित हो जाता है, थोडे समयके

की आकृति देखो ।) दूसरे यह कि जंघाकी अस्थिके मस्तकके ऊपर और पीछेकी तर्फ नितम्ब अस्थिके पिछवाडे खड्डा है (सायाटीक कोरामेन) उसमें उतर जाता है, इसकी निशानी प्रथम स्थानान्तरसे मिलती आती है । परन्तु नितम्बके ऊपर विशेप उंचा टीवासा नहीं जान पडता और खिसकीहुई जंघाकी धरी सामनेकी जंघाकी मध्यकी ओर होती है । तीसरे यह कि किसी समय जंघाकी अस्थि नीचेकी वाजू (आवटयू रेटरफोरामेन) की तर्फ खिसक जाती है, तव पैर एक व दो इंचके सुमारे लम्बाईमें वढ पैरकी धरीसे छोटे व वाहरको मुड घुटना मुडाहुआ रहता है । और धडके खिचानेसे टेढा रहना पडता है और थापा वेडौल लगता है, ट्रोकांटरकी उँचाई अदृश्य हो जाती है । चौथे यह कि किसी २ समयपर जंघाकी अस्थि ऊपरकी खुवीस पैर खिसक जाती है, तहां पोपार्ट बंधन तनकर जंघा अस्थिका मस्तक जान पडता है, एक इंचके सुमार छोटा हो जाता है और वाहरकी तर्फ मुडाहुआ रहता है । ट्रोकांटरके ठिकाने खड्डा जान पडता है थापा वेडौल जान पडता है । इस प्रमाणे गिर जानेसे अथवा अन्य कारणोसे जंघाकी अस्थि पृथक् २ ठिकानेपर खिसक जाती है । चिकित्सा इसकी यह है कि इसके चढानेमें जिस धरीको अवयवने धारण किया होय उसी दिशामें जंघाको खींचकर हड्डीकों ठिकाने लाना चाहिये और जंघाके खींचनेमें अधिक जोर लगता है । कितने ही समय गरेंडीके जोरकी सहायता लेनेकी आवश्यकता पडती है । और जंघाको खींचनेके समय शरीरको स्थिर रखके सामनेकी वाजूपर वांधकर रखना चाहिये कि जंघाको खींचनेके समय शरीर टेढा सीधा तथा आगेको खिचने न पावे । इसके चढानेमें यन्त्रयुक्ती हालमें कम देखी जाती है, इस समय हस्तक्रियाके सांधनसे ही थापाकी सन्धि चढानेमें आती है । प्रथम व दूसरे स्थानान्तरमें जव जंघाकी अस्थि नितम्बके ऊपर जाती है तव पैरकी जंघाके ऊपर मोडकर तथा जंघाको पेटके ऊपर मोडकर सामनेके वंक्षणकी ओर घुटनेको ले जाना । इसके वाद घुटनाको मध्य रेखामें लाकर नाभिके तर्फ वाहर मोडकर एकदम लम्वा कर देवे, इस प्रमाणे एक समय अथवा इससे अधिक समय करनेसे संधि खटक शब्दके साथ ठिकाने पर वैठ जाती है । दूसरे तथा चौथे स्थानान्तरमें इसी रीतिसे पैर तथा जंघा मोडकर पेटकी मध्य रेखा पर्य्यन्त घुटनेको ले जाकर सामनेके अवयवकी तर्फ मोडकर उसको एकदम लम्वा कर देवे । इतनेमें सन्धि वैठ जाती है और जंघाको चढानेके पीछे दो तीन अठवाडे पर्य्यन्त पट्टी वांधकर रखना । इस सन्धिओंके चढानेमें रोगीको अति कष्ट पहुँचता है और वह कष्ट असह्य मालूम होता है, ऊपर यान्त्रिक विधि लिखी है उसमें रोगीका शरीर वांधनेसे उसके कावूमें नहीं रहता सो सन्धि चढानेके समय कुछ उपद्रव नहीं करता । परन्तु इस समय यन्त्रक्रिया काम नहीं ली जाती सो

हस्तक्रियाके द्वारा इस सन्धिको चढाया जावे तो प्रथम रोगीको कलोरोफार्म सुंघाकर वेहोश कर हस्तक्रियासे सन्धि चढानी उचित है।

घुटनेकी ढकनी अर्थात् परियाका हट जाना।

यह परिया घोंटूकी सन्धिके ऊपरसे बाजूकी तर्फ अथवा ऊपरको खिसक जाती है और जब यह इन दो स्थितियोंमेंसे किसी एकमें खिसक जाती है तब स्पष्टरूपसे दीखती है। पैरको ऊँचा सीधा रखके ढकनीको दाब कर ठिकानेपर बैठाल देवे और बैठालनेके पीछे पैरको लम्बा रखके दो तीन अठवाडे पर्य्यन्त बँधा रखे, पीछे पट्टी खोल देवे। (पैरके टकनेकी सन्धि) यह किसी समय खिसक जाती है और आगे पीछे अथवा बाजूकी ओर खिसकती है, जब बाजूको खिसक जाय तब उसके साथ उस सन्धिके सम्बन्धके बाहर अथवा अन्दरके टकनेकी हड्डी उतरती है पीछेकी अपेक्षा टकनेकी सन्धि आगेको विशेष उतरती है। पैरके फळको खींचकर बराबर करके सन्धिको बैठाल देवे। पैरकी दूसरी हड्डी तथा अंगुलीकी सन्धि किसी समय उतर जाती है। उन सबको खींचकर योग्य रीतिपूर्वक नियत ठिकानेपर बैठाल कितनेही समय पर्य्यन्त बांधकर रखना। प्रत्येक सन्धिको चढानेके समय रोगीको बडा कष्ट होता है, इस कारणसे सन्धि चढानेमें कलोरोफार्म सुँघाकर मनुष्यको बे भान करलेना अति हितकारी है।

मगज तथा खोपडीकी अस्थियोंका भंग।

मस्तककी खोपडीके अन्दर भेजा भराहुआ है और खोपडीको जफा पहुंचनेसे उसका सद्मा भेजाके ऊपर असर करता है। जोरका अभिघात अथवा शिरके बल मनुष्य किसी ऊंचे स्थानसे गिरजावे अथवा पछाड खावे तो उसकी खोपडी फूट जाती है और साधारण सद्मासे खोपडीकी अस्थि नहीं टूटती हैं। क्योंकि खोपडीकी अस्थि विशेष मजबूत होती हैं, परन्तु वे चाहे फूटें चाहे न फूटें तो भी मस्तकको विशेष धक्का लगनेसे मगजको सद्मा पहुंचता है। इससे कितनेही दर्जे मगजको सद्मा पहुंचनेके चिह्न होते हैं उनको तीन भेदोंमें दिखलाते हैं। एक तो यह कि मगजको धक्का, दूसरे मगजके ऊपर दबाव, तीसरे मगजका क्षोभ (इरीटीशन) मगजको जफा पहुंचनेके पीछे ये तीन प्रकारके चिह्न विशेष करके शीघ्र उत्पन्न हो जाते हैं और इससे किसी मनुष्यकी शीघ्र मृत्यु हो जाती है, कितने मनुष्य इस सद्माको सहन करके जीवित भी रहते हैं, किसीको पीछेसे वर्मके चिह्न उत्पन्न हो जाते हैं।

(१) मगजको धक्का (कंकशन) मस्तकके ऊपर किसी भारी वस्तुका अभिघात पहुंचनेसे अथवा मस्तकके बल पछाड लगनेसे मगजको धक्का पहुंचता है। इसके चिह्न धक्काके अनुसार न्यूनाधिक होते हैं, यदि हलका धक्का पहुंचा होय तो रोगीको थोडे समय पर्य्यन्त चक्कर आ रोगी विचारशून्य और मूर्छित हो जाता है, थोडे समयके

पीछे सावधानी आ जाती है। जो धक्का शक्त (अधिक) पहुंचा होय तो रोगी केवल बेभान होकर गैरहोशीमें डूबाहुआ कई घंटे अथवा दिवस पडा रहता है। इस स्थितिमें रोगीको हिला झुलाकर कुछ पूछा भी जावे तो कभी तो कुछ जवाब देता है, कभी नहीं देता। रोगीका शरीर ठंढा पड जाता है नाडीकी गति निर्बल मन्द होकर अनियत और विपरीतभाव वहती है। नेत्रकी पुतली संकुचित हो जाती है रोगीका मल मूत्र बिस्तरपर निकल जाता है और श्वास मन्द गतिसे चलता है। ऐसी स्थितिमें रहकर कितने ही समयके पीछे रोगीके चिह्न अच्छे दीखने लगते हैं, यदि कुछ समयके पीछे अच्छे चिह्न न दीखें तो रोगीकी मृत्यु हो जाती है। यदि सम्पूर्ण चिह्न अच्छे दीखने लगें तो थोडे दिवसमें रोगी अच्छा हो जाता है। अच्छे होनेके चिह्न यह हैं कि रोगीका शरीर गर्म होता जावे नाडीकी गति नियत ठिकानेपर आ जावे, रोगीके होशहवास ठीक होकर शुद्धमें आ जावे इससमय पर विशेष करके रोगीको वमन होती है, इसके बाद ज्वर उत्पन्न होकर मगजमें वरम हो आता है। ये चिह्न रोगीके मृत्युसे बचने तथा अपूर्ण आरोग्यताके हैं, क्योंकि इसके बाद आरोग्यतामें कितनी ही न्यूनता रह जाती है जैसे कि दृष्टि मंद हो जाय, कान, नासिका, अथवा जिह्वा बिगड जावे, स्मरणशक्ति न्यून हो जाय, मस्तक दूखने लगे, चक्कर आने लगे, कुछ काम सूझे नहीं इत्यादि खामियोंमेंसे कितनी अथवा समस्त रह जाती हैं।

चिकित्सा।

मस्तकको धक्का (अभिघात) पहुंचने पर रोगीको सम्पूर्ण रीतिसे आरामपूर्वक रखना चाहिये। इस रोगीको किसी प्रकारका त्रास न पहुंचे रोगीके शरीरके ऊपर गर्म कपडा रखना चाहिये। गर्म जल बोतलोंमें भरकर शरीरपर सेक कर मालिश करना चाहिये। और शराब आदि गर्म पदार्थ विशेष नहीं देना, यदि मगजको अधिक अभिघात पहुंचा होय तो गर्म औषधियां देनी उचित है। क्योंकि पीछे मगजमें वरम होनेकी दहशत रहती है, रोगीके अच्छे होनेपर भी कितनेही समय तक तथा पूर्ण आराम न होवे तबतक उसको कामकाज न करने देवे। सादा पौष्टिक और हलका आहार रोगीको देना चाहिये समय समय पर हलका रेचक देना। यदि मस्तक दुखे तो दर्द निवृत्त करनेवाली औषधियोंका लेप करना। प्लीष्टर लगाना आवश्यकता पडे तो जलौका लगाकर कुछ रक्त निकाल देना जिससे सूजन बढनेका भय न रहे, मस्तकरोगमें लिखी हुई चिकित्साको काममें लाना।

२ दूसरा भेद यह है कि मगजके ऊपर दवाव (कोंप्रेशन) नीचे लिखेहुए कारणोसे होता है। वे कारण पांच हैं। एक तो यह कि खोपडीकी हड्डी टूटकर अन्दर

मास्तिष्कमें बैठजावे इससे मगजके ऊपर दबाव पडे । दूसरा यह कि खोपडीके अंदर रक्तनली टूटकर रक्तस्राव होय इससे मगजके ऊपर दबाव पडे । तीसरे यह कि गोली खोपडीके अंदर चली गई होय अथवा भाला कील व कांटेदार पोलादि (लाठी) की कील आदि बाह्य पदार्थ मगजके अंदर हड्डी तोडकर जायँ तो इनका दबाव पडता है, चौथे यह कि मगजमें वरम उत्पन्न होकर अंदर पीव पड जावे इसका दवाव पडे । पांचवें यह कि खोपडीके अंदर किसी प्रकारकी ग्रंथी उत्पन्न हो दबाव पडे । ये ऊपर कथन कियेहुए पृथक् २ कारणोंसे मस्तिष्कपर दबाव पडता है, दवाव पडनेके मुख्य चिह्न नीचे लिखे प्रमाणे होते हैं । रोगी बेहोश होकर अचैतन्य पडा रहे, नाडी भरी-हुई और मंदगतिसे चलती है, नेत्रकी एक व दोनोंकी (पुतली) विस्तृत हो फैलीहुई दीख पडती है । श्वासोश्वासके साथ नस कोरा बोलता है, तथा ओष्ठ फडकते हैं, त्वचामेंसे थोडा २ पसीना निकलता है, मलमूत्र बन्द हो जाता है । यदि मलमूत्र आवे भी तो गैरहोशीमें बिस्तरपर निकल जाता है, रोगकी वाणी बन्द हो जाती ह कुछ उत्तर नहीं देता । समस्त अथवा आधा शरीर चैतन्यता रहित हो जाता है और जिसी समय पर हिचकी अथवा शरीरमें तनाव उत्पन्न हो जाता है । ऊपर कथन की हुई स्थितिमें रोगी कुछ काल रहकर पीछे मृत्युके मुखमें प्रवेश करता है । यदि दवाव खिचावसे उत्पन्न होय तो रोगी बचतो जाता है परन्तु मगजमें वरम उत्पन्न हो जाता है । किस कारणसे मगज पर दबाव हुआ है यह जाननेकी आवश्यकता प्रथम चिकित्सकको करनी चाहिये । खोपडीकी हड्डी टूटगई है और टूटे हुए हाडका दवाव मगज पर होय, अथवा गोली व अन्य कोई शस्त्र खोपडीको भेदन करके मगजके अंदर घुस गया होय इसकी निश्चयपूर्वक परीक्षा करे । रक्तस्राव होता होय अथवा खोपडीपर जफा पहुंचती होय इसका निश्चय करे । यदि मस्तिष्कमें पीबकी उत्पत्ति हुई होय तो इसके पूर्व मगजके वरमके चिह्न दीख पडते हैं । यदि ग्रंथीके कारणसे दवाव होय तो अधिक समयपर्य्यंत व्याधिके चिह्न माळूम पडेंगे । रोगी अच्छा हुआ तो किस प्रकारसे अच्छा हुआ पूर्णरूपसे आरोग्य अथवा अपूर्णरूपसे आरोग्य हुआ, इसकी परीक्षा चिकित्सक बराबर करता रहे । और मस्तकमें दर्द रहे, नेत्रकी पुतली छोटी व मोटी फैलीहुई रहे, शरीरका कोई भाग अचैतन्य रहे इत्यादि चिह्नोंमेंसे कोई रह जावे तो अपूर्ण आराम समझना और अंतके दर्जे इसका परिणाम संदेहजनक है ।

चिकित्सा इसकी यह है कि मस्तकके ऊपर केश निकलवा शिरपर बर्फ रख हलका जुलाब देना । यदि बेहोशीमें जुलाबकी दवा रोगी न खा सके तो रेचकके वास्ते साबनके किंचित ऊष्ण जलकी पिचकारी लगाना, अथवा जमालगोटाके तैलके दो बिंदु शक्करमें मिलाकर रोगीके मुखमें जीभके ऊपर डाल देवे इससे रेचक हो

जावेगा । यदि दवाव होनेका कारण माल्म पड जावे तो उसको दूर करना, यदि मगजमें हड्डीका भाग वैठ गया होय तो उसको उठाकर ऊंचा करे, यदि विलकुल टूटकर हड्डीके सम्बन्धसे पृथक् होकर मगजमें घुस गया होय तो उसको औजारसे खींचकर वाहर निकाल रक्तस्राव अथवा पीव हड्डीके नीचे होय तो खोपडीके छिद्र द्वारा निकाल लेवे । यदि छिद्र न होय तो खोपरीकी हड्डीमें छिद्र करके निकाल देवे, खोपडीकी हड्डीमें छिद्र करनेके अथवा हड्डीको संधिके जोडमेंसे उखाडके शस्त्र आते हैं उनको काममें लेवे ।

मगजका क्षोभ (ईरीटेशन) इस व्याधिके तथा दूसरे मानसिक ऐसे दो प्रकारके लक्षण होते हैं । शारीरिक चिह्नमें मनुष्य हाथ पैर मोडकर नीचेको मुख और मस्तक करके पडा रहता है और नेत्र वंद हो जाते हैं, कीकी (नेत्रपुतली) संकुचित हो जाती है, यह रोगी अचैतन्य नहीं होता लेकिन अचैतन्य माल्म पडता है । मानसिक चिह्नोंमें रोगी गैरहोश तो नहीं होता, परंतु उसको वरोवर भान नहीं रहता । यदि जोरपूर्वक उससे वोलनेको कहे तो चिढकर जवावमें हुंकार शब्द कहेगा और किसी २ समय वडवडा दांत करडता है । मगजके फूटनेसे ऐसे ही चिह्न होते हैं, इनमेंसे रोगी यातो अच्छा हो जाता है अथवा दिवाना हो जाता है अथवा मगजका वरम उत्पन्न हो जाता है । चिकित्सा इसकी यह है कि रोगीको किसी प्रकारका त्रास न पहुंचने देवे और मस्तकके ऊपरसे वाल निकालकर वर्फ रखना वर्फ न मिले तो शीतल जलमें भीगाहुआ कपडा रखना । रेचक दवा देकर दस्त करादेना, ब्लीस्टर रखना, मगजकी जफासे पीडा होती होय तो दस्त आनेके पीछे थोडी अफीम व शराव देना, लेकिन इन चीजोंकी अति आवश्यकता समझे और रोगीकी पीडा शांत न होय और रोगी वेचैन होय तव इन दोनों पदार्थोंमेंसे एक किसीको देवे और इनके न देनेसे काम चल सके तो कदापि न देवे, क्योंकि ये दोनों पदार्थ अन्य हेतुओंमें हानिकारक हैं ।

मगजका वरम ।

मगजको जफा पहुंचनेसे कितनेही समय मगजमें वरम उत्पन्न हो जाता है उसको आकस्मिक वरम कहते हैं । यह वरम तीक्ष्ण अथवा दीर्घ दो प्रकारका होता है, तीक्ष्ण वरम मगजको ईजा पहुंचनेसे तुरन्त उत्पन्न हो जाता है और किसी समय कुछ वक्त निकलनेके पीछे भी उत्पन्न होता है । इसके साथ शक्त तीव्र ज्वर और भ्रम भी उत्पन्न होता है, नाडी शीघ्र कठिन और भरीहुई गतिपर चलती है, रोगीकी जिह्वा सफेद हो जाती है खाली उवकाई अथवा वमन आने लगती ह, दस्तकी कब्जी हो जाती है गर्दनकी तथा कनपटीकी नाडी फडकने लगती हैं । नेत्र और चेहरा रोगीका लाल हो जाता है, मस्तकमें अतिशय पीडा होती है, कीकी नेत्रपुतली

संकुचित हो जाती है, भयंकर शब्द अथवा अजनबी शब्द व किसी प्रकारका त्रास रोगीको शहन नहीं होता । इस मस्तिष्क वरमकी व्याधिमेंसे रोगी अच्छा हो जाता है, यदि अच्छा न होवे तो बरमके चिह्न बदल मगजके दबावके चिह्न उत्पन्न हो जाते हैं। कारण कि दाहसे खोपडीके अंदर पीब पड जाती है, उस दूषित पीबका दबाव मगजके ऊपर पडता है तब ज्वरका वेग निर्बल हो जाता है । नेत्र पुतली संकोच त्यागकर विस्तृत हो जाती है, ज्वर और भ्रम दोनों ही नर्म पड जाते हैं रोगी असावधान हो अंतके दर्जे मृत्युके मुखमें प्रवेश करता है । जब दीर्घ वरम होता है तब उसके चिह्न प्रथम ऐसे क्षुद्र होते हैं कि उसका यथार्थ रूप नहीं मिल सक्ता, जब उसका यथार्थ रूप प्रगट होय तब वह विशेष करके निर उपाय हो जाता है । दीर्घ वरम तीक्ष्ण वरमके पीछे उत्पन्न होता है, परन्तु विशेष करके वह मगजको धक्का पहुंचनेके पीछे शीघ्र अथवा कुछ समयके विलम्बसे माऌम पडता है । इसका कारण उत्पन्न होनेके पीछे विशेष करके शिर दुखता रहता है और चक्कर आते हैं, स्मरणशक्ति मन्द माऌम पडती है सहज कारणसे भी रोगीको क्रोध उत्पन्न हो आता है । एक कामके ऊपर विशेष समय पर्य्यन्त मन लगानेसे भी काम नहीं हो सक्ता, कर्ण, नेत्र, जिह्वा और घ्राणेन्द्रियमें कुछ खामी जान पडती है । एक अथवा दोनों नेत्रोंकी पुतली कुछ छोटी मोटी दीखती है, नेत्रके डेले एक ओरको खिंचेहुए माऌम होते हैं, शरीरकी कोई २ स्नायु खिंचने लगती है, इनके अतिरिक्त अनेक प्रकारके लक्षण जान पडते हैं । मस्तकको जफा पहुंचनेके पीछे इस प्रकारके चिह्न. अथवा इससे अधिक चिह्न जान पडें तो समझो कि दीर्घ वरमका दूसरा पाया है। इनमेंसे किसीको फेफरू हो आता है, किसीको दिवानापन उत्पन्न होता है, किसीको पक्षाघात हो जाता है अथवा शरीरका थोडा भाग अचैतन्य हो जाता है, कोई वेहोशीको धारण करके मृत्युके मुखमें प्रवेश करता है, किसीको इसमेंसे तीक्ष्ण वरम उत्पन्न हो जाता है । चिकित्सा—इसकी यह है कि तीक्ष्ण वरमके लिये तो तीव्र जुलाब दे मस्तकके ऊपर बर्फ रखनी चाहिये । लमणा (गर्दन) के ऊपर दोनों ओर एकसे लेकर ४ दर्जन पर्य्यन्त जलौका (जोंक) लगाकर रक्त निकालना चाहिये, जो रोगी बलवान् और मजबूत शरीरवाला तरुणावस्थामें होय तो फस्द खोलकर रक्त निकाल (कयालोमल) (एन्टीमनी) की दवा क्लीस्टर लगा रोगीको थोडा और हलका आहार देना चाहिये । दीर्घ वरमके चिह्न माऌम पडें तबसे ही रोगीको तन और मन सम्बन्धी परिश्रमसे पृथक् रख आरामतलबीमें रखे । लमणा और ढोकके ऊपर ब्लीष्टर रखना मस्तक गर्म होय तो जलौका लगाकर रक्त निकालना और ढोकके ऊपर फोहा रखना आहारमें गर्म पदार्थ अथवा शराब आदि न देवे । हलका और सादा आहार दे समय २ पर जुलाब देता रहे ।

खोपडीकी हड्डियोंकी मजबूत पेटीमें शरीरका सर्वोपयोगी अति नाजुक पदार्थ मगज (मास्तिष्क) रहता है । इसको विशेष सञ्चा पहुंचनेसे यह किसी समय टूट जाता है, इस खोपडीकी पेटीरूपी हड्डियोंके टूटनेसे मगजको विशेष हानि पहुंचती है और मगजको हानि पहुँचनेसे शरीरको नुकसान होता है । जब खोपडीकी हड्डी टूटती है तब उसकी टूटीहुई हड्डी अपने ठिकाने पर रहती है, अथवा टूटकर अन्दर मगजकी ओर बैठ जाती है । जो वह हड्डी टूटकर अपने नियत स्थानपर रहे तो विशेष हानि पहुंचनेकी संभावना नहीं होती । हड्डी टूटकर अन्दरकी ओर बैठ जावे तो मगज और उसके पर्देको सञ्चा और दवाव पहुंचता है, यह दबाव हानिकारक समझा जाता है और खोपडीकी हड्डीका भंग जखम सहित निरजखम होता है । कितनी ही वार ऐसा होता है कि खोपरीके एक बाजू (चोट) पडती है उस स्थलपर वह नहीं फूटती है, किन्तु उसके सामनेकी ओर प्रत्याघातसे खोपडीका फूटना होता है । खोपडीका भंग चाहे किसी भी स्थलपर होय जैसे कि दोनों कनपटीकी ओर आगे व पश्चात् भागमें ऊर्ध्व तथा अधोभागमें होय, अधोभागके शिवाय दूसरे स्थलपर खोपडी भंग होय तो हाथसे परीक्षा करनेपर वह मालूम हो जाता है । यदि जखम सहित होय तो बडी सरलतापूर्वक जान पडता है, परन्तु जब खोपडीके अधोभागका भंजन होय तब वह भाग हाथ अथवा नजरसे परीक्षा कर सके ऐसा नहीं होता, इसलिये उसके देखनेके चिह्नोंके ऊपर आधार रखना पडता है । मगजको जफा पहुंचनेसे जो चिह्न पूर्व कथन किये प्रमाणे होते हैं वैसेही चिह्न इस अस्थिभंगकी स्थितिमें होते हैं, परन्तु ऊपर कथन कियेहुए चिह्नोंके शिवाय दो चिह्न अधोभागके भंजनमें खास करके नीचे प्रमाणे होते हैं । एक तो यह कि कान अथवा नासिकामेंसे रुधिर निकलता है, अथवा नेत्रमेंसे रुधिर स्राव होकर सूजन उत्पन्न हो जाती है । दूसरे यह कि कान अथवा नासिकामेंसे पानीके समान प्रवाही पदार्थ निकलता है, नासिकाकी अपेक्षा कानमेंसे रक्त और प्रवाही पदार्थ अधिक समयतक निकलता है, यह रक्त अथवा प्रवाही पदार्थ थोडा न निकलते हुए जब एक दो अथवा अधिक ओंस निकले तब अधिक विश्वासके योग्य निशानी हो जाती है । रक्तस्रावकी अपेक्षा इस प्रवाही पदार्थके बहनेकी निशानी अधोभागके मस्तक भंगके लिये खास चिह्न है, यह प्रवाही पदार्थ मगजके मध्य पडतमेंसे आता है । खोपरीके अधोभागमें अथवा दूसरे भागमें फूटता है तब दूसरे सामान्य चिह्न होते हैं अधोभागमें खोपडी फूटती है तब उस समयपर कोई विशेष चिह्न देखनेमें नहीं आता । उस समय कवल मगजके दबावके चिह्न जो ऊपर लिखचुके हैं उसी प्रमाणे देखनेमें आते हैं । पीछेसे तीक्ष्ण अथवा दीर्घ वरमके चिह्न भी होने लगते हैं । किसी समय पर खोपडीकी हड्डी टूटकर मगजमें जखम हो जाता है । किसी समय उस टूटीहुई हड्डी और मगजके जखमसे मगजका भाग बाहर निकल आता है ।

चिकित्सा इसकी यह है कि जब मस्तकके ऊपरकी त्वचामें जखम होय तब खोपरी टूटी है कि नहीं, यह नेत्रसे देखकर अथवा हाथसे देखकर मालूम पडता है, यदि वह जखम हड्डी तथा हड्डीके ऊपरके पर्देतक होय और धमकके शिवाय हड्डीको कुछ सद्मा न पहुंचा हो तो ल्वीष्टरकी पट्टी लगा देनी चाहिये, जो मस्तककी चमडीमें जखम न होय और कोई महत्वका चिह्न न होय तो केवलमात्र रोगीको आरामतलबीमें रखना चाहिये। जुलाब देकर मादेको साफ कर देना चाहिये तथा हलका सादा और पौष्टिक आहार देवे (जैसे दूधभात) जो मगजके दबावके चिह्न जान पडें तो उस ठिकानेके जखमको खोलकर देखे, जो हड्डी अन्दरकी ओर बैठ गई होय तो उसको उखाडकर वाहर निकालना। यदि वह हड्डी सरलतापूर्वक न निकले तो उसकी एक बाजूको (ट्रीफाईन) नामवाले शस्त्रसे छिद्र करके उखाड लेवे। आर मस्तकके ऊपर बर्फ रखना, समय २ पर रोगीको जुलाब देता रहे, वरमके चिह्न जान पडें तो उसका उपाय वरमके प्रकरणमें लिखे प्रमाणे करे।

अस्थिव्रणकी चिकित्सा।

अस्थिव्रणमें प्रथम हड्डीमें बरम उत्पन्न होकर हड्डी सडने लग जाती है, इसको अस्थिव्रण कहते हैं। प्रथम हड्डीमें किसी कारणसे बरम उत्पन्न होता है उस समय हड्डीके ऊपरकी जगह सूजकर लाल और नर्म हो जाती है, पीछे पककर उसमेंसे पीब निकलती है। जैसे शरीरके किसी मृदु भागमें चांदी उत्पन्न होती है। उसी प्रकार इसको अस्थिकी चांदी समझनी, अस्थिका कोमल भाग (कानसेलसटीश्यु) में यह रोग विशेष करके होता ह। इससे हाथ पैरकी पतली हड्डियां अथवा मोटी हड्डियोंके शिरे जिनमें कोमल भाग अधिक होता ह, इन ठिकानोंपर यह व्याधि उत्पन्न होती विशेष देखी जाती है। जब किसी जगहकी हड्डी सडे तब उसके समीपकी अस्थि सन्धिमें खराबी उत्पन्न होना विशेष संभव होता है और गर्मीकी व्याधिवालेको यह अस्थिव्रण प्रायः उत्पन्न होता है, क्षय रोगीकी पतली हड्डियोंमें भी होता है। कितने ही समय यह व्रण अस्थिकी सपाटीके ऊपर उत्पन्न होता है। इसकी उत्पत्तिका कारण यह है कि शारीरक सप्त धातुओंकी निर्बलता स्कोफ्युला (क्षय रोगसे उत्पन्नहुई कण्ठमालाकी ग्रन्थी) और गर्मी (उपदंश) के रोगसे अस्थिव्रण होता है। हड्डीके ऊपर इजा पहुंचनेसे अथवा वृद्धावस्थामें हड्डीकी शुष्कतासे भी यह अस्थिव्रण होता है। इस रोगके आरम्भमें ये लक्षण होते हैं कि जिस अस्थिके ऊपर यह व्रण उत्पन्न होता हैउस ठिकाने चमडेके ऊपर वह भाग सूज जाता है और अधिक वेदनाके पीछे पककर वह भाग व्रणके समान फूट जाता है, जब रक्तमिश्रित पीब और सडेहुए मांसके टुकडे इनके साथही हड्डियोंके टुकडे

(कणी) निकलती हैं । व्रण फूटनेके पीछे वेदना तथा सूजन कम हो जाती हैं लेकिन नासूर बाकी रहता है, वह भरता नहीं है और उसमेंसे पीव निकलती रहती है । किसी समय सडीहुई हड्डीकी किरच भी निकल आती है और व्रणके मुखके ऊपर अंगूर बँधे रहते हैं, अधिक समय पर्यंत रहनेसे यह भाग कठिन और काला सूजनयुक्त रहता है और नासूरमें सलाइ प्रवेश करके देखा जावे तो खडपचडी तथा नर्म हड्डीका स्पर्श मालूम होता है । हड्डीका भाग अधिक सडा होय तो सलाई उसके अंदर चली जाती है, इस परीक्षासे पूर्ण रीतिपर निश्चय हो जाता है कि अस्थिमें व्रण है, जहांतक सडीहुई हड्डी नहीं निकाली जाती वहांतक नासूर बंद नहीं होता । चिकित्सा इसकी यह है कि जिस इलाजकी विधिसे रोगीकी तबीयत सुधरे और अस्थिव्रणको लाभ पहुंचे वही उपाय करना योग्य है । रोगीको बल बढानेके लिये उत्तम योगवाही रसायन औषधि और हलका पौष्टिक आहार देना चाहिये । जिस अङ्गमें अस्थिव्रण हुआ होय उससे परिश्रम नहीं लेना, किंतु उस अङ्गको आराम पहुं-चाना चाहिये । लोहभस्म, काडलीवरओईल, आयोडिन इनकी संयुक्त औषध परिमित मात्रासे देवे, अथवा वैद्यककी औषध व्रणगजांकुशरस, चंद्रप्रभा वटी अथवा स्वायं-भुव गुग्गुलु इनमेंसे कोई प्रयोग देवे और औषधका साधन अधिक काल पर्य्यंत रखे। यदि अस्थिव्रणको लाभ न पहुंचे तो शीघ्र सडीहुई अस्थिको निकालनेका प्रयत्न करे और कलोरोफार्म रोगीको सुंघाकर नासूरके स्थानको चीरकर बडा छिद्र करलेवे । अस्थिके सडेहुए अथवा नर्म भाग जिसमें सड जानेकी आशंका होय उसको निकाल लेवे और कार्बोलिकलोशनसे धोकर उस भागमें ओडरोफार्म भर कर दोनों ओरकी चमडी मिलाकर दो व तीन ठिकाने सूई और रेशमसे टांके लगा देवे । अथवा बारीक चांदीके तारसे लगा देवे, ऊपरके कार्बोलिकलोशनमें कपडेकी गद्दी भिगोकर रख देवे और पट्टीसे बांध देवे तीन दिवसके बाद वे टांके कैंचीसे काट देवे । व्रणके समान मरहमपट्टी करे, यदि हड्डी विशेष सडकर निकम्मी हो गई होय तो उस अवयवको काटना पडता है । हाथ व पैर जिस अवयवको चीरकर अस्थिका सडाहुआ भाग निकालना होय उससे ऊपर चीरनेके प्रथम कपडा डोरी व रबडकी नलीसे बंधेज लगा देवे कि जिससे रोगीके शरीरका रक्त नीचेको उतर कर चीरेहुए मुकामसे अधिक न निकल जावे । क्योंकि रक्त अधिक निकल जावेगा तो रोगी निर्बल होकर भयंकर जोखमकी स्थितिमें जा पहुंचेगा ।

अस्थिघातकी चिकित्सा ।

अस्थिका समुदाय अथवा मोटा भाग एकदम बिगड जाता है, उसको अस्थिघात अथवा अस्थिभ्रंश कहते हैं । अस्थिव्रणमें चांदी पडनेके समान थोडा २ भाग नष्ट

होता है, परंतु अस्थिघातमें एक संधिसे लेकर दूसरी संधि पर्यंत एक सम्बंधमें ही एक साथ समस्त अस्थि निर्जीव हो जाती है। इस प्रमाणे निर्जीव हो जाय तब शरीरमें जैसे किसी ठिकाने पर कुछ विगडाहुआ मवाद होय और उसके लिये सूजन उत्पन्न हो जाय इसी प्रकारके चिह्न अस्थिघातमें प्रथम होते हैं। इन चिह्नोंके महत्वका आधार अस्थिका कितना भाग और किस कारणसे निर्जीव हुआ है इसके ऊपर रहता है, यदि अस्थिका मोटा भाग एकाकी निर्जीव होय तो शक्त चिह्न उत्पन्न होते हैं। किसी २ समय अस्थि एक सिरेसे लेकर दूसरे सिरेपर्य्यंत निर्जीव हो जाती है, अस्थिके जो दोनों सिरे सन्धिमें रहते हैं वेही सजीव वरकरार रहते हैं और अस्थिके वीचका समस्त भाग निर्जीव होकर नष्ट हो जाता है, किसी समय अस्थिके वाहरकी सपाटीके ऊपरका भाग जिसको थर वोलते हैं निर्जीव हो जाता है, इसको वाह्यास्थिघात वोलते हैं। किसी समय अस्थिके मध्यका भाग निर्जीव हो जाता है इसको आभ्यन्तरास्थिघात कहते हैं। इस अस्थिघातके कारण भी अस्थिव्रणके समान ही हैं, निर्वलता स्क्रोफ्युला (क्षयसंयुक्त कण्ठमाला) और गर्मीके रोगसे (याने उपदशका जहर अस्थिमें प्रवेश कर गया होय) शीणीटाई फस और अति तीव्र जहरी ज्वरसे प्राप्त हुई निर्वलतासे वृद्धावस्थामें अथवा अन्य कारणोंसे भी अस्थि निर्जीव हो जाती है, यदि फासफरसके कारखानेमें काम करनेवाले मजदूरको यह रोग होय तो अथवा हड्डीको किसी प्रकार जफा पहुंचे तो मनुष्यका मरण हो जाता है।

आकृति नं० १०० देखो।

इसके चिह्न विशेष करके इस प्रकारसे होते हैं कि जव पैरकी हड्डी गल जाती है तव वह भाग विशेष सूज शक्त पीडा होने लगती है। सडीहुई अस्थिके ऊपरका भाग विशेष शक्त और कठिन लाल रंगका हो जाता है और पीछे पककर नर्म पडके फूट जाता है। इसके पीछे उसमेंसे दुर्गन्धि युक्त पीव और सडेहुए छिछडे निकलते हैं, ये चिह्न विसर्प रोगके शोथ और व्रणसे मिलते हुए होते हैं। इसके साथ ही शरीरमें शक्त ज्वर भी होता है और सडेहुए भागमेंसे अधिक पीव वहती रहे तो रोगीका मरण हो जाता है। जो अन्तर अस्थि अर्थात् (आभ्यतरास्थि घात) में थोडा ही भाग अस्थिका निर्जीव हुआ होय तो ज्वरादि शक्त चिह्न नहीं होते हैं। केवल उस भागमें विशेष पीडा होती है और सूजकर अन्तके दर्जे पक फूटकर जखम तथा नासूर पड जाता है। आभ्यन्तरास्थिघातमें पीवको वाहर आनेके लिये रस्ता करनेमें अधिक दिवस लगते हैं, क्योंकि उसको अस्थिके वाह्य कठिन भागमेंसे निकलनेमें अधिक समय लगता है। कारण यह कि वाह्यभागकी अस्थि अति कठिन है उस भागको तोडकर निकालनेमें अति मुसीवत पडती है। इस प्रमाणे दीर्घ और तीक्ष्ण दो प्रकारके लक्षण

देखनेमें आते हैं। फूटनेके पीछे शोथके चिह्न कम हो जाते हैं। परन्तु उस स्थानपर नासूर जारी रहता है और नासूर एक अथवा कई २ पडते हैं। उनमेंसे मवाद बहता रहता है और आभ्यन्तरास्थिघातमें हड्डीमें छिद्र होकर मवाद निकलता है। यदि सलाईको नासूरमें प्रवेश करके देखा जावे तो सडीहुई हड्डीमें सलाई प्रवेश करती है। हड्डीमें कहीं खुरखुरापन कहीं ऊंची कहीं नीची कहीं कठिन कहीं कोमल और कहीं सलाईका हड्डीमें घुस जाना ऐसा स्पर्श मालूम होता है। (आकृति नं० १०१ देखनेसे मालूम होगा)।

आकृति नं० १०१ देखो।

जैसे पीवको निकालनेके लिये शोथ उत्पन्न होता है इसी प्रकार इस निर्जीव अस्थिको निकालनेके लिये ऊपर कथन किये प्रमाणे शोथ और पाकादि चिह्न उत्पन्न होते हैं। जिस जगहपर अस्थिघात उत्पन्न होता है उसके आसपासकी सजीव हड्डीमें शोथ उत्पन्न होता है इससे वह पृथक् पड पीछे सजीव भागमें अंकुर आनकर वह फूटकर बाहर निकलनेके योग्य होता है। जो बाह्यास्थिघात होय और निर्जीव अस्थिका सडा टुकडा छोटा होय तो नासूरके छिद्रमेंसे बाहर निकल आता है। उसके निकलनेके नासूरका छिद्र भी रोपण हो जाता है, परन्तु निर्जीव अस्थिका टुकडा मोटा होय अथवा आभ्यंतर अस्थिघात होय तो अधिक समय पर्य्यंत अर्थात् ६ मास व १ साल पर्य्यंत उसके निकलनेको रस्ता नहीं मिलता और नासूरमेंसे मवाद जारी रहता है।

आकृति नं० १०२–१०३–१०४–१०५ देखो।

(नूतनास्थिकी उत्पत्ति) आसपासकी सजीव अस्थि तथा अस्थि अवरण और दूसरे भागोंकी सहायतासे नष्ट हुई अस्थि भागके स्थान पर नवी अस्थि उत्पन्न होती है। चिकित्सा इसकी यह है कि अस्थिघातका जो कुछ कारण होय और चिकित्सकको निश्चय हो जावे तो उसको निवृत्त कर रोगीको उत्तम हलका और पौष्टिक आहार देवे पौष्टिक तथा व्रणनाशक औषधका सेवन करावे, पककर व्रण हो जावे तो धोकर साफ रख यथायोग्य उस भागका मरहमपट्टीसे उपचार करे। जहांतक निर्जीव भाग पृथक् होकर अलग न हो जावे वहांतक ऐसा इलाज जारी रखे कारण कि वह कार्य्य कुदरती नियमसे यथास्थित हो जाता है। हड्डीका मुरदार भाग अलग हो जाय लेकिन नासूरका भाग छोटा होनेसे वह बाहर नहीं निकाल सक्ता, इस प्रकारके अस्थिखंडको शस्त्रक्रियासे निकाले नासूरको चीरकर मोटा रस्ता बनावे। जो आभ्यन्तर अस्थिघातमें छिद्रको बडा करके अन्दरसे निर्जीव अस्थिभागको निकाल लेना पीछे महरपट्टीसे जखमको रोपण करना।

करोडास्थिकी व्याधियोंकी चिकित्सा।

मस्तकके पीछेके भागसे लेकर दोनों नितम्बके बीच गुदाके द्वार पर्य्यंत छोटी २ हड्डियोंकी मालाका स्तम्भ (खम्भ) पीठके बीच भागमें आया हुआ है इसको पीठकी करोड अस्थि कहते हैं, छाती और पेटके पीछेके भागमें पीठके मध्योमध्य करोड अस्थिका खम्भ है। इसी खम्भसे पशलियां दोनों ओर जुडी हुई हैं। मस्तक और धडका आधार करोड अस्थिके ऊपर है मगजके सम्बंधकी चैतन्य डोरी इस अस्थिकलाकी पोलमें रहती है जिसके द्वारा ज्ञान और गति तन्तुओंकी शाखा समस्त धड और हाथ पैरोंमें फैलती है। करोडास्थिकी अपूर्णता (स्पाईनांवी फीडा) कभी तो जन्मसे ही करोडके पीछेका भाग अपूर्ण रहता है इतना कि वह बराबर अस्थिसे पूरित नहीं होता इससे डोरीका जाल फरस तहां भरकर एक ग्रन्थीके आकारमें हो रहता है उसका कद बढकर नारंगीके समान हो जाता है। करोडास्थियोंके मध्यमें कमरके पीछेके भागमें यह ग्रंथी मालूम पडती है, जिस बालकके ऐसी ग्रंथी होती है वह विशेष करके हिक्का (हिचकी रोग) व वातरोगसे पीडित होकर छोटी उमरमें ही मृत्युको प्राप्त होता है। किसी बालकको यह कितनेही वर्ष पर्यंत जारी रहता है और अंतके दर्जे फूटकर उससे मृत्यु हो जाती है। चिकित्सा इस डोरी जाल ग्रंथीकी यह है कि इसके ऊपर रुईका नामा रखके सदैव पट्टी बंधी रहने देवे और उस ग्रंथीपर किसीकी इजा न पहुंचने पावे ऐसी हिफाजतसे रोगीको रखे और उत्तम उपाय इस व्याधिके लिये दूसरा नहीं, ग्लीसरीन और टींचरआयोडिनकी पिचकारी परिमित बिंदू लेकर इस व्याधिमें प्रायः चिकित्सक लोग लगाते हैं।

करोड अस्थिकी वक्रता।

करोड अस्थि टेढी बांकी जान पडती है इसको करोड तथा कमरकी वक्रता कहते हैं, वक्रता दो प्रकारकी होती है। करोड अस्थि एक अथवा दूसरी ओर टेढी मुडी हुई होती है इसको पार्श्व वक्रता कहते हैं और आगे तथा पश्चात् भागमें टेढी मुडी हुई होती है और अस्थिका कोना निकलता हुआ रहता है उसको कोनाकार वक्रता कहते हैं। पार्श्ववक्रता (लाटरल कर्वेचर) यह वक्रता विशेष करके छोटी उमरके बालकोंको होती है और निर्बलता तथा नाजुकपनके कारणसे होती है, एक पैरके ऊपर खडा रहनेसे अथवा एकही हाथसे काम करनेसे ऐसी वक्रता होती है। इस वक्रतामें एक खवा दूसरेकी अपेक्षा ऊंचा रहे और उस ओरका छातीका भाग उकस करोडकी वक्रता स्पष्टरूपसे मालूम पडती है। चिकित्सा इसकी यह है कि उत्तम आहार जो शरीरको पुष्ट करनेवाला समझा जावे उसका सेवन करना उचित है। दूसरे पौष्टिक औषधका सेवन करना उचित है, तीसरे योग्य रीतिसे

व्यायाम (कसरत) का महावरा रखे, चाथ पीठपर सदैव तैलकी मालिश करनी और शीतल जल छिडकना । करोडकी वक्रता मस्तकके और धडके वजनसे अधिक होती है चलनेसे तथा खडा रहनेसे अधिक वढती है, इसके लिये करोडके ऊपर अधिक वजन न पहुँचने पावे ऐसी तजवीज करे । इसके लिये दो प्रकारक उपाय हैं एक तो यह कि इसके लिये चांप और चापडावाला यंत्र आता है :जिसके पहनानेसे कुछ सहायता मिलती है । दूसरा उपाय यह है कि डाक्टर सायरकी रीति प्रमाणे इसके लिये पट्टी बाँधना यह पट्टी बगलसे लेकर कमर पर्य्यंत बांधनी पडती है, पेट और छातीके ऊपर चारों ओर रुईके नामे रखके उसके ऊपर कोरी पट्टी बांधे । इस पट्टीको ऐसी उत्तम रीतिसे समानांतर चढाव उतारपर लपेटता जावे कि पीछे इसके ऊपर दूसरी पट्टी प्लास्टर (ओफ् पारीश) लगाकर लपेटना, यह पट्टी चार इंच चौडी और बाहर वार लम्बी होनी चाहिये और प्लास्टर ओफ् पारीशकी पट्टी बांधनेके समय रोगीके दोनों हाथ पकड कर जमीनसे ऊंचा लटका कर रखना चाहिये, इससे करोडास्थि कुछ सीधी स्थितिमें आ जावे । पट्टी बांधनेके पीछे कई घंटे पर्य्यंत जहांतक पट्टी सूख न जावे : वहांतक सुलाकर रोगीको रखना, पट्टी सूखकर चूनेके माफिक कठिन और जिकडीहुई हो जाती ह यह पट्टी ६ महीने व १ वर्ष पर्य्यंत पहननी पडती है । प्रत्येक महीने अथवा . दो महीनेके पीछे इस पट्टीको बदलता रहे, यदि जिस स्थलपर प्लास्टर ओफ्पारीश न मिल सके तो सफेद खडिया मिट्टी जिसको चाक भी कहते हैं और बबूलका गोंद इन दोनोंको जलके साथ पीसकर लेप करना अथवा चावलकी लेई बनाकर उपरोक्त विधिसे लेप करना । कोनेकार वक्रता—यह वक्रता स्कोफ्युला (कण्ठमाला) के रोगसे होती है, यह छोटी उमरके मनुष्यको ही होती है । करोडकी छोटी अस्थियोंमें इस रोगका वरम उत्पन्न होता है और इसी कारणसे वे अस्थियां निर्बल पड उनमें पीव पड जाती है । और करोड अस्थि टेढी पडके उसके कौने निकल आते हैं, विशेष करके कलाके मध्य भागमें कौना निकलता है । एक अथवा इससे अधिक अस्थि इस रीतिसे बिगडती हैं जैसे २ अस्थि रोगके कारणसे अधिक बिगडती जाय वैसे ही कला (करोडास्थि) में विशेष वक्रता होती जाती है । किसी २ समय करोडास्थि इतनी वक्र हो जाती है कि रोगी सोता हो तो एकाएकी वह बैठ नहीं सक्ता और पसवाडा मोड नहीं सक्ता और करोड टेढी पड जाती है । जब इस अस्थिमें पीव पड जाती है: तब अधिक पीडा होती है, गर्दनकी बाजूमें और मुखके पीछेके भागमें फूटती है । यदि पीठके मध्य अथवा नीचेके भागमें होय तो पीव पेडूमें होकर जंघामें तथा पैरमें किसी समय मार्ग करती है । पीव होकर जब फूटती है तो रोगीके शरीरम

निर्बलता बढ ज्वर उत्पन्न हो रोगी सूखता जाता है। करोडास्थिकी पोलमें डोरीमें वरम हो जाय तो हिचकी, खिंचाव, वेदना, उरुस्तम्भ आदि चिह्न उत्पन्न होते हैं, विशेष करके यह स्थिति मृत्युजनक समझी जाती है। जो प्रथम दर्द थोडा होकर सडीहुई अस्थि सजड होकर जुड जावे और इतनी ही व्याधि होकर आराम हो जावे तो थोडी बहुत ही कसर जारी रहती है और उसमें पीडा तथा व्याधिका बढना बन्द हो जाता है। चिकित्सा इसकी यह है कि उत्तम पौष्टिक आहार, स्वच्छ वायुमें रोगीका निवास, बल बढानेवाली दवाका सेवन कराना उचित है। सडीहुई अस्थि हिलने न पावे ऐसी तजवीज करनी चाहिये, कारण यह कि सडीहुई अस्थि जहाँतक हिले नहीं वहींतक व्याधिकी रुकावट हो सक्ती है। और अस्थिका सडाहुआ भाग भी दुरुस्त हो सक्ता है। इसके लिये ऊपर कथन कियाहुआ प्लास्टर ओफ्पारीशका लगाना, फिर यदि रोगी हिलेचले तो उसकी कुछ फिकर नहीं, प्लास्टर लगाकर पट्टी बांधनी चाहिये। यदि प्लास्टर न लगाया जावे और पट्टी बांधी जावे और रोगी हिले चले तो कूना बढता जाता है।

करोडास्थिकी डोरीको सद्मा (करोडरज्जुकी व्याधि)।

करोडास्थिके टूटनेसे अथवा करोडकी अस्थि खिसक जानेसे करोडकी रज्जु (डोरी) को सद्मा पहुंच उसके ऊपर दबाव पडता है। किसी समय उसको जखमसे भी सद्मा पहुंचता है और किसी समय उसके ऊपर केवल मात्र धक्का लगता है और उसके ऊपर दबाव आता है, उस दबावसे वरम अथवा जखम उत्पन्न हो जाता है। ऊपर कथन कियेहुए सद्मोंमेंसे जब कोई भी सद्मा पहुँचे तब रज्जुको सद्मा पहुंचे-हुए स्थानसे नीचेके शरीरका भाग अचैतन्य होकर रह जाता है। जैसे कि कमरके भागमें सद्मा पहुंचनेसे नीचेके भागमें दोनों पैर अचैतन्यता प्राप्त होकर उरुस्तम्भ हो जाता है। इसके साथ मूत्राशय और गुदाकी क्रियामें भी अंतर आ जाता है, कि मल और मूत्र निर्गत नहीं होते हैं। करोडास्थिके मध्य अथवा ऊपरके भागमें कुछ सद्मा पहुंचे तो उरुस्तम्भके लक्षणके उपरान्त छातीकी स्नायु भी अचैतन्य हो जाती हैं। इससे श्वास लेनेमें कठिनता पडती है और दोनों हाथ क्रियाशून्य हो जाते हैं। ग्रीवाके ऊपरके भागमें क्रेनीक तंतुके मूलके ऊपर सद्मा पहुंचे तो शीघ्र मृत्यु उत्पन्न होती है, कारण यह कि इस सद्मेसे श्वास प्रश्वासकी गति बंद होती जाती है। जब करोड रज्जुपर सद्मा पहुँचकर उरुस्तम्भादि चिह्न होते हैं तब बिस्तर पर पडे रहनेसे स्नायु जालमें रुकावट उत्पन्न होती है। और मूत्र न उतरनेसे मूत्राशयकी व्याधि उत्पन्न होती हैं। मूत्र गदला दुर्गंधयुक्त और श्लेष्म पदार्थकी विशेषता लियेहुए श्वेत पदार्थ जिसमें दीख पडें ऐसा उतरने लगता है, वह भी स्वयं

नहीं उतरता शलाकायंत्रकी सहायतासे निकालनेकी आवश्यकता पडती है। रोगी दिनपर दिन निर्बल होता जाता है और अधिक समय तक इसी स्थितिमें रहता हुआ अंतके दर्जे मृत्युको प्राप्त होता है। करोड रज्जुको सद्मा अधिक न पहुंचा होय तो उरुस्तम्भके चिह्न न्यून ही मालूम पडते हैं और मल मूत्रका अवरोध हो जाता है, परंतु धीरे २ वह खुल जाता है। किसी समय ऐसा होता है कि करोड रज्जुको सद्मा थोडा पहुंचता है तो कुछ चिह्न उरुस्तम्भके प्रगट होकर पीछे रोगी सुधरता जाता है। किसी समय ऐसा होता है कि करोडकी डोरीको सद्मा तो पहुंचता है, परंतु उस समयपर विशेष चिह्न मालूम नहीं पडते। परंतु पीछेसे धीरे २ रज्जुकी व्याधि उत्पन्न होकर कितने ही चिह्न उत्पन्न होते जाते हैं, इससे रोगी खराब दशामें आन पडता है। रज्जुको सद्मा पहुंचनेके पीछे एक समान चिह्न नहीं होते हैं, किसी समय तो शक्त चिह्न मालूम होते हैं और व्याधि निवृत्त नहीं होती। किसी समय हलके चिह्न होते हैं और व्याधि भी निवृत्त हो जाती है। गिर जानेसे, जखम हो जानेसे और लात तथा मार लगनेसे करोड रज्जुको सद्मा पहुँचता है, इसके बाद उसमें तीक्ष्ण शोथ उत्पन्न हो ज्वर आने लगता है। अधिक वेदनाके साथ खिंचाव पडता है। और दीर्घ शोथ होय तब अधिक समयके पीछे उसके चिह्न उत्पन्न हो रोगीकी निर्बलता बढ रोगी चल फिर नहीं सक्ता, कामकाज नहीं करसक्ता और उरुस्तम्भादिके चिह्न उत्पन्न होने लगते हैं।

चिकित्सा–इसकी यह है कि करोड रज्जुको सद्मा पहुंचे तब रोगीको उत्तम नर्म बिस्तर पर सुलावे नहीं तो उसका थोडे समयमें शरीरस्तम्भ पड मूत्र उतरना बन्द हो जाता है। ऐसी दशामें दोसे तीन वक्त मूत्र शलाकायन्त्रके जरियेसे निकाल देना और मूत्राशयको पानीमें औषध डालकर धोना चाहिये, दस्त आवे ऐसी दवाका रोगीको सेवन करना चाहिये। रोगीको आरामतलबीसे रहना चाहिये, बाद सद्मा पहुंचेहुए भागपर बेलोडोना लगाना, जलौका लगा कर अथवा तूंबडी (शृङ्गी) लगाकर रक्त मोक्षण करना दीर्घ वरमकी शांतिके लिये ब्लीस्टर लगाना और औषधियोंका फोहा भिगोकर रखना, पीनेके वास्ते बेलोडोना, अरगट तथा पुटासआयोडीड इत्यादिका प्रयोग परिमित मात्रासे देना।

अस्थि सन्धियोंकी व्याधिकी चिकित्सा।

शरीरकी प्रत्येक सन्धिमें आमने सामने दो अस्थि होती हैं, इनके संधि संयोगके बीचमें कार्टिलेज होता है। जितनी सन्धि अचल होती हैं उतनीका बंधान इस रीतिका होता है, परंतु दूसरी कितनी ही सन्धि हिलती फिरती हैं। उनके अंदर कार्टिलेजके शिवाय एक स्निग्ध पडत होता है, उस स्निग्ध पडतमेंसे एक प्रकारका

स्निग्ध रस उत्पन्न होता है । जैसे कि कलयंत्र और सांचेमें तैलकी स्निग्धताकी आवश्यकता होती है, इसी प्रकार हिलती फिरती संधियोंको हिलाने फिरानेके लिये इस स्निग्ध रसकी आवश्यकता है । सन्धिकी व्याधियोंके मुख्य करके दोही भेद हैं, एक तो यह कि स्निग्ध पडतमें शोथ, दूसरे संधिमें शोथ । स्निग्ध पडतका शोथ दो प्रकारका होता है, एक तो तीक्ष्ण शोथ दूसरा दीर्घ शोथ तीक्ष्ण शोथ दो संधियोंमें उत्पन्न होता है, एक घोंटूकी संधिके स्निग्ध पडतमें, दूसरे कोहनीके संधिके स्निग्ध पडतमें, विशेष करके इन दो ठिकानों पर ही होता है । कारण कि इनको सर्दी लगना विशेष संभव है और संधिको सद्मा पहुंचनेसे भी तीक्ष्ण शोथ उत्पन्न होता है । जिस मनुष्यको उपदंश (आतशक) की व्याधि हुई होय और सन्धिवायु तथा गाउट हुआ होय उसको यह वरम उत्पन्न होता है । वायु और सर्दीसे भी तीक्ष्ण वरम उत्पन्न होता है । कारण यह कि सन्धिमें सूजन उत्पन्न होती है जब विशेष होती है और संधिकी अस्थिके बीचके मार्गमें वह विशेष उठ आती है । घोंटूपर शोथ होय तो घोंटूकी ढकनी प्रवाहीमें तैरती है वरमके लिये विशेष रस उत्पन्न होता है, उसीसे सूजन उत्पन्न होती है। घोंटूके दाबनेसे प्रवाही रसका प्रत्याघात मालूम होता है और सन्धिमें विशेष पीडा होती है, उसके ऊपर अंगुली रखी जावे तो सहन नहीं होती । संधिको जरा भी हिलानेसे अतिशय पीडा होती है, घोंटू गर्म तथा लाल हो जाता है । पैर अथवा हाथ इनमेंसे जिसकी संधिपर वरम उत्पन्न हुआ होय वे आधे मुडते हैं, उपरोक्त कथन कियेहुए स्थानिक लक्षणोंके अतिरिक्त ज्वर भी होता है और नाडीकी गति शीघ्रगामी होती है, रोगीका मूत्र लाल रंगका उतरता है, जिह्वाके ऊपर क्षार जमा रहता है थोडे दिवसमें ज्वरादि चिह्न कम पड जाते हैं और सूजन तथा वेदनादि निवृत्त होकर आराम हो जाता है, यदि आराम न होय तो इससे दीर्घ वरम उत्पन्न करनेको माद्दा रुजू हो जाता है । यदि किसी समय पर शक्त वरम हो तो समस्त संधि पक संधिकी आकृति नष्ट भ्रष्ट हो जाती है । (दीर्घ शोथ) इस शोथमें ज्वरादि उपद्रव नहीं होते, इसमें पीडा भी होय तो बहुत थोडी होती है । नहीं तो किसी समय बिलकुल नहीं होती केवल सूजन ही मुख्य चिह्न होता है । उस सूजनको दबानेसे किञ्चित् पीडा होती है बराबर चलनेकी गति नहीं होती घोंटूको टेढा करके चलना पडता है । यह व्याधि अधिक समय पर्य्यन्त रहती है, यह वरम तीक्ष्ण वरममेंसे बाकी रह जाता है, अथवा स्वतन्त्र उत्पन्न होता है । किसी समय सन्धिमें द्रवरूप जलके समान रस विशेष एकत्र होता है और पीडा नहीं होती इसको अस्थि सन्धिका जलंदर कहते हैं । चिकित्सा इस व्याधिकी यह है कि तीक्ष्ण वरम होय तब रोगीको बिस्तरपर सुलाकर आरामसे रखे और दर्दवाला अवयव हिलने न पावे, इसलिये उसको

चुपडना, सेंक करना वेलोडोना और पारदका प्लाष्टर लगाना गर्म पोल्टिस रखना । यदि पक जावे तो उसको नस्तरसे फोड योग्यरीतिसे फिर मरहमपट्टी तथा रोपण तैलोंसे जखमको भरना । जिस समय पर वेशुमार पीडा होय उस समय पीडाके शान्त करनेके लिये रोगीको अफीमकी परिमित मात्रा देवे और दीर्घ वरमके लिये डाम (दाग) देना अति हितकारी पडता है । औषध प्रयोगमें क्वीनाईन, लोहभस्म, काटलविर आईल, आमोनिया इत्यादिका प्रयोग दे पौष्टिक तथा हलका आहार रोगीको देवे । अधिक समयपर्य्यन्त रोगीको विस्तर पर रहना पडता है, सो कोमल सुख शय्यापर रखना, यदि सुखशय्या पर रोगीको न रखा जावे तो शीघ्र व्रण होकर जखम पडता है और इसके पडनेसे रोगीकी सन्धि खराव हो जाती है । अवयवमें नासूर पड जाता है और उसमेंसे पीव वहती रहती है, इसलिये रोगी निर्वल होता जाता है और उसकी जान जोखममें रहती है । तव उस सन्धिसे अवयवको काटना पडता है, काटनेके पीछे मरहमपट्टी अथवा रोपण तैलोंसे छेदन कियेहुए अङ्गको सुखाना पडता है ।

सन्धिकी सजडता अर्थात् सन्धिका जकड जाना ।

सन्धिकी कोई व्याधि उत्पन्न होय उस व्याधिके होनेके कारणसे ही सन्धि सज्जड अर्थात् जकडीहुई रहती है । पीडा कम होय और थोडा वरम कम होय तो थोडे ही समयपर्य्यंत उसके ऊपर तैल आदि लगानेसे संधि कोमल और छुटी पड जाती है । जव शोथके कारणसे संधि सज्जड होती है तव किसी समय आमने सामने अस्थि जुड जाती है, किसी समय केवलमात्र उसके वंधन तथा स्नायु कठिन हो जाते हैं । इसके अनुक्रमसे अस्थि संयोग सज्जडता और वन्धन संयोग सज्जडता कहते हैं । अस्थिसंयोगकी सज्जडतामें संधि विलकुल नहीं हिलती है वंधन सज्जडता होय तव पूर्णरूपसे तो नहीं हिलती लेकिन थोडी हिलती है, इसमें पीडा अथवा सूजन विशेष नहीं होती है । चिकित्सा इसकी यह है कि प्रथम कितने ही सप्ताह पर्य्यंत औषधियोंके तैलकी मालिश कर गर्म जलका सेंक करना । भेडीका घृत मालिश करना, घृत व तैल मसलनेके समय संधिपर थोडा जोर देकर हिलाना झुलाना और गर्म जलमें सेंधा नमक डालकर मर्दन करना । यदि महीने पर्यंत यह उपाय करनेपर कुछ भी लाभ न होय तो वंधन घटित सजड संधिको वलात्कारसे हिलाने झुलानेकी जरूरत पडती है । इसकी विधि यह है कि रोगीको मेजपर सुलाकर कलोरोफार्म सुँघाना और जव रोगी वेहोश हो जावे तव संधिको जिस रुखपर हिलाने झुलानेकी आवश्यकता समझी जावे उस रुखपर हिलाझुलाकर जडताको निकाल लकडीकी पट्टीपर रखके ऊपरसे कपडेकी पट्टी वांध देवे । इस क्रियाके करनेसे संधिपर शोथ उत्पन्न

हो जाता है, वह कई दिन पीछे स्वयं निवृत्त हो जाता है। इसके पीछे सन्धिको स्वयं रोगी हिलाता तथा मोडता रहे और तैलकी मालिश करता रहे इस प्रकार हिलाने चलानेसे सन्धि क्रियामें काम देने योग्य होने लगती है। यदि अस्थि संयोगकी सज्जडता होय और वह अवयव उपयोगी स्थितिमें होय तो उसका कुछ उपाय करनेकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु जो वह अपनी स्थितिमें होय तो थोडा अस्थिका भाग काटकर निकालनेसे उसको दुरुस्तीमें लानेकी आवश्यकता पडती है।

अन्तर्वृद्धि (सारणगांठ)।

पेटके अन्दरसे आंतरडा किसी समयपर किसी मार्गसे ग्रन्थीके समान बाहर आ जाता है, इसको सारण गांठ (हर्न्या) कहते हैं। पेटके पर्देमें जहां कोई स्वाभाविक छिद्र होता है तहांपर इस प्रमाणे आंतरडाके बाहर आनेका विशेष संभव है। पेड्के भागमें दोनों भागोंमें जहांसे वृषणकी रग पेटमें प्रवेश करती है, वहां एक बाह्य छिद्र और दूसरा अन्तर छिद्र दो छिद्र हैं। उन दोनों छिद्रोंके बीचमें एक मार्ग है गर्भावस्थामें वृषण बालकके पेटके अन्दर होते हैं व गर्भस्थ बालकके सातवें आठवें महीनेके दर्मियान इन दोनों छिद्रों अर्थात् मार्गमें होकर नीचे अंडकोशकी कोथलीमें उतरते हैं। और यह मार्ग कुदर्त्ती नियमके माफिक वैसा ही बना रहता है, इस :मार्गकी राहसे सारण गांठ भी अनेक समय उतर बढकर ठेठ वृषणकी कोथलीमें उतरती है। किसी समय बालक जन्मे तबसे ही अथवा बालकके जन्मके कई मासके अन्दर इस प्रमाणे सारण ग्रन्थी उतरती है। और मोटी अर्थात् बडी उमरतक मनुष्य पहुंच जावे उस समयपर भी सारण गांठ उतरती है। इसके उतरनेका इस ठिकाने वही उपरोक्त मार्ग है, स्त्रियोंकी अपेक्षा यह सारण गाँठ पुरुषोंमें विशेष उतरती है। इसको (ईन्गावायनलसारण) बोलते हैं, जंघाके मूलमें मोटी धमनीके अन्दरकी बाजू (पोपार्टाबन्धन) के तले एक मार्ग है वहांसे भी किसी समय सारण उतरती है। इस मार्गसे पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें विशेष उतरती है, यह सारण विशेष मोटी नहीं होती। यह वृषण थैलीमें नहीं जाती इसको जंघा सारण (फेमरलहर्न्या) कहते हैं। नाभिके रस्तेपर भी किसी समय सारण उतरती है और बालकोंके इस प्रमाणे सारण बढकर (नाभिके स्थानमें टुंडी) हो जाती है। बालकके जन्मके पीछे थोडे कालपर्य्यन्त नाभिका भाग कच्चा रहता है, तब विशेष करके यह सारण उत्पन्न होती है। बालक विशेष रुदन करे अथवा कूंखे (नुकेहे) इससे यह उतरती है इसको नाभिसारण (अंबीलाईकलहर्न्या) कहते हैं। इन स्थलोंके अतिरिक्त कभी किसी दूसरे स्थलपर भी सारण निकलती है। सारण उतरनेके कारणोंमें हर किसी प्रकारका शारीरक जोर कसरत कराजिबो (कूंखना नुकेहना) विशेष जोरसे खाँसना और स्त्रीजनोंकी गर्भावस्थामें

पेटपर दबाव पडता है। इत्यादि कारणोंसे सारण उतरना संभव है; निर्बलता, जखम अथवा कोई व्रण होनेसे पेटकी वीवाल कमजोर हो जाय तो सारण गाँठका उतरना संभव है। लक्षण इसके इस प्रकारसे होते हैं कि सारणकी गाँठ अन्दरसे धीरे २ बढकर मोटी हो जाती है वह ऊपर कथन किये हुए तीन ठिकाने होती है और विशेष करके ये तीन स्थल इसके उतरनेके होते हैं, मनुष्य खडा होकर खांसे तो वाहर आ जाती है। यदि मनुष्य सो जावे अथवा हाथसे दाब देवे :तो अंदर चली जाती है। अंदर जानेके समय विशेष करके गुनगुन शब्द सुनाई देता है, रोगीको खांसी आवे तब सारण ग्रन्थीके ऊपर हाथ रखा जावे तो हाथको ठपका लगता है। और सारण गांठमें शोथ अथवा पीडा नहीं होती वह नर्म तथा त्वचासे पृथक् होती है। अंगुलीसे ठोकनेमें पोली आवाज आती है। पेटके अंदर चारों ओर पेरीटोन्यम नामका रसावरणका आच्छादन होता है, जब हरकिसी छिद्रसे सारण गांठ वाहर आती है तब यह रसावरण उससे लिपट कर उसके आगे आता है उसको सारण अंतरावरण (सांक) कहते हैं, जिस छिद्रमेंसे वह निकलता है उसको सारण अंतरावरणकी ग्रीवा कहते हैं। त्वचा आदि दूसरी स्नायुके आवरण भी सारणके ऊपर होते हैं और सारणमें विशेष करके छोटा आंतरडा उतरता है किसी समय (ओमेटम्) का पर्दा उतरता है। किसी समय पर्दा तथा आंतरडा दोनों साथ उतरते हैं। कभी २ मोटा आंतरडा, ओझरी, वरोड आदि उदरके दूसरे अवयव उतरते हैं, जब सारण बाहर निकल आवे और दाबनेसे पीछे अंदर बैठ जाती है तब उसको अंतरगत (रीडयुसीवल) सारण कहते हैं। परंतु जो वह पीछे अंदर न जावे तो उसको बाह्यगत (ईरीडयुसविल) सारण कहते हैं और आरम्भमें हमेशह सारण पीछे चढ जाती है। लेकिन् कई वर्षकी उतरीहुई प्राचीन हो जाय और अधिक समय पर्यन्त नीचे रहे तो बाहर नीचेके भागोंके साथ अथवा जिस भागमें जाती है उसी भागका साथ कर लेती है। इस कारणसे पीछे अन्दर नहीं जा सक्ता और बाह्यगत सारणके लिये अजीर्णके चिह्न चस्क तथा भार (वजन) खिंचावके चिह्न मालूम होते हैं, जो सारणकी चिकित्सा न की जावे तो वह धीरे २ बढती जाती है। किसी समय पर कोथणीमें उतर कर तुम्बडी जैसी देखी जाती ह, सारणवाले आंतरडामें किसी समय मल और वायुका भराव होनेसे बद्धकोष्ठ होता है। इससे दस्त बन्द होकर दर्द उत्पन्न हो जाता है और रोगीके शरीरमें बेचैनी हो जाती है। इसको बन्धेज सारण (इन्कासेरेटेहर्न्या) कहते हैं और सारणमें किसी समयपर फन्दा पड जाता है। वह इस प्रकारसे पडता है कि वह आंतरडाके ऊपर विशेष करके ग्रीवाके ठिकाने इतना तंग

फंदा पडता है कि उसका रस्ता केवल बन्द हो जाता है, उस फन्देमेंसे शीघ्र नहीं छूटे तो सारणका नाश हो जाता है। सारणके स्थानपर वद, अथवा दूसरे प्रकारकी ग्रन्थी वृषण वृद्धि तथा वृषण जलोदर, व्रण आदि दूसरी व्याधि उत्पन्न होती हैं। उनको सारणसे पृथक् निदान करके देखे और समझे सारणके लक्षण ऊपर कथन किये हैं। उनको निदान करनेके समय ध्यानमें लानेसे दूसरी व्याधियोंसे पृथक् सारणकी परीक्षा चिकित्सकको पृथक् हो सक्ती है। चिकित्सा इसकी यह है कि सारणका उतरना आरम्भ होते ही उसको पीछे बैठाले, उसके ऊपर योग्य चांप अथवा पट्टी बांधकर हरसमय रखे और सारणके ऊपर बांधनेकी पट्टी स्वदेशी तथा विलायती दो प्रकारकी होती हैं। स्वदेशी पट्टी कमरमें लपेटनेमें आवे उतनी पतिलकी पत्तीका भाग होता है उसको कमानी कहते हैं। जिस ओर सारण गांठ होती है उस ओरके शिरेपर. लकडीका एक टुकडा अर्द्धगेंदके आकारका जडाहुआ होता है।उसके ऊपर इस्क्रूके पेंचसे सारणके छिद्रके ऊपर वह बैठ जाता है सारणको उतरने नहीं देता। जो विलायती पट्टा आता है उसमें लोहकी पत्तीकी कमानीकी चांप होती है और चमडेसे मढीहुई होती है। उसके एक शिरेपर नर्म गद्दी लगी रहती है, इसकी चांपके जोरसे सारण उतरनेके छिद्रपर दवाव रहता है वह खिसककर हट न जावे इसलिये कोंधनीके समान कमरसे बांध दी जाती है, उसकी एक पट्टी लँगोटीके समान होती है उसको लंगोटीके समान बांध दिया जाता है। आरम्भसे ही यह पट्टा बांधनेमें आवे तो सारण ग्रन्थी वढ नहीं सक्ती, इतना ही नहीं किन्तु इस क्रियाके अनुसार वर्ष छः महीने मनुष्य रहे तो उसकी सारणका उतरना विलकुल बन्द हो जाता है। जिन लोगोंको पट्टा न प्राप्त हो सके उनको अर्द्धगेंदाकार लकडीका गोला एक मजवूत कपडेकी पट्टीके बीचमें रखके चारों ओरसे उसके अन्दर रखके सी दिया जाय और सारण उतरनेके छिद्रपर रखके कमरसे बांध दो तीन लपेटा उसके ऊपर आ जावें इतनी पट्टी कमरसे लपेट ली जावे तो यह भी पट्टाका काम करती है। पहरनेमें विलम्ब अथवा किसी प्रकारका विचार नहीं करना, पट्टा लेने और बांधनेके समय यह परीक्षा करलेवे कि पट्टा पहनकर खडा होकर दो चार वक्त जोरसे खींचकर खांसी करनी, जो खांसनेसे सारण न उतरे तो समझना कि पट्टा ठीक वैठ गया है। पट्टा दिन रात्रि वरावर बांधे रहना, यदि रात्रिमें सोते समय कुछ आलस्य मालूम होय तो उतारके रख देवे और प्रातःकाल सोतेसे उठतेही पहन लेवे। नाभिकी सारण तथा जंघाकी सारणको भी उनके अनुसार पट्टा आता है, उसका योग्यरीतिके अनुसार उपयोग करना चाहिये। सारण जिस मनुष्यको उतरनेका रोग उत्पन्न हुआ होय उसको जोरसे नहीं खांसना चाहिय, जोरसे नुकेहे नहीं इसका पूरा ध्यान रखे। वाह्यगत सारणके लिये भी पट्टा

पहरना अति हितकारी है,पट्टा पहरनेसे उसकी वृद्धि नहीं होती और अन्तरगत सारणके लिये जो बाह्य गोल गद्दी आती है वह गद्दी नहीं लगानी, परन्तु इसके लिये बाड-काकार अन्तरगोल गद्दी सारणके कदके प्रमाणमें होनी चाहिये । बाह्यगत सारण-वालेको समय २ पर हलका जुलाव लेना चाहिये, यदि पट्टा व उपरोक्त अर्द्धगेंदके आकारका यंत्र न बन सके तो सारण उतरनेके छिद्रपर कपडेकी गद्दी रखके ∞ इस आकृतिकी कपडेकी पट्टी बांधनी चाहिये । सारणका फन्दा इसको (स्ट्रांग्युलेटेड-हर्न्या) कहते हैं, जिस मनुष्यको सारण उतरनेका रोग होय उसकी जिन्दगी सदैव एक प्रकारसे जोखममें फँसी रहती है । साधारण सारण उतरती चढती है, तब रोगीको कुछ विशेष कष्ट अथवा पीडा नहीं होती, परन्तु इसी सारणका एकाएकी फंदा पड जावे तो थोडे ही समयमें उस मनुष्यकी आयु बडी जोखममें आ जाती है । अन्तरगत सारणकी अपेक्षा बाह्यगत सारणका फन्द पडना विशेष संभव रहता है, सारणके ऊपर ऐसा दबाव होय कि उसका मार्ग केवल बन्द हो मल तथा वायु उसमें न जा सके । उसमें फिरतेहुए रक्तकी रुकावट हो जाय तब सारणका फंदा पड गया ऐसे कहनेमें आता है, जिस छिद्रमें समावेश न हो सके ऐसे छिद्रमें सारण उतरे तो उसमें जाकर फँस जाती है । और सारण होय उस ठिकाने आंतरडाके दूसरे भाग उतरें तो मार्गके संकोच होनेसे फन्दा पड मेहनत तथा जोर करनेसे फन्दा पडता है। फन्दा पडनेका स्थान विशेष करके ग्रीवाके ठिकाने होता है, फन्दा पडनेसे ऐसे लक्षण होते हैं कि फन्दा पडनेके समय सारणमें कुछ फेरफार हुआ होय ऐसा मालूम होता है । सारण सदैवकी अपेक्षा कुछ मोटी जान पडती है, पीछे उसमें वेदना होना आरम्भ होता है । और हाथका स्पर्श होनेसे पीडा हो सारण शक्त तथा कठिन मालूम होती है । सारणके ऊपर हाथ रखके रोगी खांसे तो हाथको ठमका नहीं लगता और सारण पेटमें नहीं चढती, दस्त तथा अपान वायुका आना बिलकुल बंद हो वमन होना आरम्भ हो जाता है । प्रथम वमनमें आहार कियाहुआ पदार्थ आता है, इसके पीछे वमनमें मल (विष्ठा) निकलता है आयुर्वेदमें पुरीषज उदावर्त्त रोगमें मलकी वमन आना लिखा है । जब उल्टीमें मल निकलने लगे तब आंतरडाके मार्गमें किसी भी ठिकानेपर बिलकुल प्रतिबन्ध हुआ है ऐसा प्रगट करता है, इससे सारणके फन्देका एक खास करके चिह्न जाना जाता है । आंतरडाके अन्दरका पदार्थ पाचन होकर मल बनके सफरेमें पडता है । परन्तु जब इस रीतिकी क्रियाके होनेमें तथा मार्गमें प्रतिबन्ध हो जाता है तब इस क्रियासे विपरीत उल्टी क्रियाका वेग होकर मल मुखमेंसे बाहर निकलता है, सारणके आसपास पेटके भागमें पीडा हो

पेट चढ जाता है। (अफरा हो आता है) और पेटमें गडंगडाहट शब्दकी आवाज सुनाई दे (पेरीटोन्यम) का वरम हो ज्वर उत्पन्न हो जाता है। नाडी क्षीण कठिन और शीघ्रगामी होती है, मनुष्यका मुख दुःखित दीखता है, रोगीके शरीरमें अत्यन्त बेचैनी रहती है श्वास उत्पन्न हो जाता है। जीभ सूख जाती है और उस पर काला क्षार जम जाता है, नेत्रोंमें खड्डे पड जाते हैं हिचकी उत्पन्न होकर अन्तके दर्जे रोगी मृत्युके मुखमें प्रवेश करता है। सारणका फन्द पडनेसे शरीरमें रक्ताभिसरण (रक्तका फिरना) भी प्रतिबन्धको प्राप्त होता है, (रक्त नहीं फिरता) इस कारणसे रक्तवाही शिरा फूल उनमें जलका भराव हो जाता है। इससे शरीरपर शोथ आ जाता है और अन्तके दर्जे उसकी मृत्यु होकर शरीर सडने लगता है। इस परिणाममेंसे रोगी अपने भाग्यसे भलेही बच जावे नहीं तो कदापि बचता नहीं, कदाचित रोगी बच भी जावे तो सारणके ठिकानेका सडा हुआ भाग पृथक् पडके उस स्थानमें गुदाके समान छिद्र होकर मल बहने लगता है।

चिकित्सा इसकी यह है कि सारणका फन्दा पडे तो रोगीको बिस्तरपर सुलाकर रख आरम्भमें तत्काल जुलाब लानेवाली औषध देनी, परंतु आरम्भका समय निकल जानेके पीछे कदापि जुलाबकी दवा नहीं देनी। सारणके ऊपर गर्म पानीका सेंक करना और रोगीको गर्म पानीमें १० व १५ मिनिट बैठालना। गुदामें साबनके गर्म पानीकी अथवा अरंडीके तैलकी पिचकारी लगानी, इस क्रियासे रगें नर्म पडके सारण चढ जावे तो ठीक है। यदि न चढे तो उसके ऊपर बर्फ रख रोगीको सुलाकर उसकी जंघा मोडकर रखना तथा थापाका भाग ऊंचा रहे और मस्तकका भाग नीचा रहे इस प्रमाणे तकिया रखना। इन साधनोंके शिवाय हस्तक्रियासे सारणको चढानेका प्रयत्न करे, हस्तक्रियासे सारणको चढानेके समय रोगीकी जंघा मोडकर रख एक हाथ सारण ग्रीवाके ऊपर रख दूसरे हाथसे सारणको पकडकर उसको दोनों बाजू जरा खींचके ऊपरको ले, जिस मार्गमेंसे सारण उतरी होय उसी ओर उसको दाबकर बैठालनी लेकिन विशेष जोर लगाकर काम न करे। यदि इस हस्तक्रियासे थोडे समयमें सारण न चढे तो रोगीको कलोरोफार्म सुंघाकर विचैतन्य करे और पीछे दूसरे समय उपरोक्त विधिसे हस्तक्रियाका प्रयत्न करके चढावे। क्योंकि कलोरोफार्मके असरसे सर्वस्नायु बिलकुल सिथिल हो जाती हैं, इस कारण विशेष करके सारण चढे विदून नहीं रहती। लेकिन कदाचित इससे भी न बैठे तो पीछे शस्त्रक्रिया करनेकी आवश्यकता पडती है, यदि हस्तक्रियासे सारण बैठ जावे तो रोगीको थोडे दिवस पर्य्यन्त बिस्तरपर सुलाके रखना चाहिये, हलका प्रवाही (पतला) आहार देना चाहिये। जुलाब न दे थोडी २ अफीमकी अथवा मोर्फियाकी मात्रा देता रहे। सारण

बैठनेके पीछे उस ठिकाने शीघ्र पट्टा बांध देवे कि पुनः उतरनेका भय न रहे, जिसको सारणका फन्द एक समय पड चुका है उसको वर्ष ६ महीना पट्टा दिन रात बँधा रखना उचित है । यदि सारणका फन्दा अधिक समयका पडाहुआ होय तो उससे उसकी मृत्यु होना संभव रहता है, सो ऐसा फन्दा होय कि हस्तक्रियासे रोगीकी मृत्यु हो जावेगी तो कदापि हस्तक्रियासे सारण बैठालनेका प्रयत्न न करे । इसमें शस्त्रोपचार करनेका हेतु ऐसा होता है कि सारणके ऊपर नस्तरसे छेद करके जिस ठिकाने सारण पर फंदा पडा होय उस स्थानको छेदन करके सारणको चढा देवे । परंतु क्लोरोफार्म सुंघानेके पीछे सारणकी ग्रीवाके ऊपरकी त्वचा पकडकर उसमें नस्तरसे छिद्र करे, इसके बाद एकके पीछे एक इस प्रमाणे सारणके ऊपरके पडत काटता जावे और काटनेके समयमें विशेष संभाल और सावधानी रखना यह है कि आंतरडामें जखम न होने पावे ठेठ अंतरावरण पर्य्यंत काटतेहुए पहुंचनेपर पीछे उसका छेद करके अंगुलीको ग्रीवाकी ओर जाने देवे । जहां फंदा मालूम पडे उसके नीचे नख शेरवी जो सारण शस्त्र होता है उसको अंगुलीपर चढाकर फंदामें प्रवेश करके उसका छेदन करे, यह छिद्र पेडू तथा नाभिकी सारणके लिये ऊपरके वाजू करना, जंघाकी सारणके लिये ऊपर और अन्दरकी वाजू करना और आसपासकी रक्तनालियोंका बचाव करनेके लिये ऊपर कथन की हुई दिशामें ही छिद्र करनेका रिवाज है । छिद्र करनेके पीछे सारणका भाग यथार्थ बरकरार होय तो उसको पेटमें बैठाल देना, जो फन्देमें पडकर वह नष्ट हो गया होय तो उसका विकृत भाग (विगडा हुआ) होय उसको निकाल उसको वहीं रहने देवे, अर्थात् पेटमें न बैठाले । इस प्रमाणे शस्त्रक्रियासे सारण बैठालनेके पीछे व खराब भागको निकालनेके पीछे जखमको कार्वोलिकलोशनसे धोकर उसमें ओडरोफार्म भरके सी देवे और ऊपर लोशनकी गद्दी रखके पट्टा और पट्टी बांध देवे । पीछे तीसरे दिवस खोलकर टांके काटकर जखमके समान उपाय कर रोगीको कितने ही दिवस पर्य्यन्त बिस्तरपर सुलाकर रख उठने बैठनेकी शक्त मनाई कर देवे । अफीम तथा मोर्फियाकी परिमित मात्रा रोगीको देता रहे, जुलावकी दवा बिलकुल न देवे आहार थोडा और पतला (दूध) आदि देवे और जखम भरनेपर पीछे भी कमरपट्टा थोडे दिवस पर्य्यन्त विशेष सँभालके साथ रखना ।

आंतरडेकी व्याधिसे दस्तका बन्द होना ।

आंतरडेकी एक पोली नली है उसके अन्दर अन्नादि आहार पाचन होकर आगे नीचेकी ओर बढते हैं और अन्तके दर्जे मल गुदाद्वारसे बाहर निकल कर पडता है । यदि इस नलीके मार्गमें किसी प्रकारका दबाव पडनेसे अथवा गांठ आदिसे मार्ग बन्द हो जाय तो जिस जगह पर ऐसी अडचन पडी होय उसके नीचेकी ओर आंतरडाके

अन्दरका पदार्थ उतर नहीं सक्ता, ऐसी रुकावट आन पडे तो भयंकर परिणाम उत्पन्न नहीं होता, लेकिन ऐसी रुकावट कभी २ अचानक आन पडती है, इसको तीक्ष्ण अंतरात्ररोध कहते हैं, किसी समय इस नलका रस्ता आइस्ते आइस्ते बन्द हो जाता है इसको दीर्घ अँतरावरोध कहते हैं । इन दो भेदोंमेंसे प्रथम तीक्ष्ण अँतरावरोध इस प्रकारसे होता है कि जो आंतरडाका रस्ता एकाएकी बन्द हो जाता है वह नीचे लिखे हुए चार कारणोंसे उत्पन्न होता है । एक तो यह कि किसीको सारण गांठ होय और उसके अन्दर विशेष आंतरडा उतर जानेसे उसके ऊपर फन्दाके समान दवाव पडे और ऐसेही पेटके अन्दरकी ओमेनटम तथा मीझेटरी आदि पर्दा हैं उनके अन्दर कोई छिद्र होय उसमें एकाध आंतरडाका भाग वैठ जानेसे भी ऐसा फन्द पड जाता है । दूसरे यह कि आंतरडाका एक भाग दूसरेके अन्दर बैठ जावे जैसे कि मोजा उतारनेके समय नीचेका भाग ऊपरके भागके अन्दर चला जाता है, ऐसे ही आंतरडाकी स्थिति किसी समय पर हो जाती है, तब उसको आंतर्गमन (ईन्टयुससेपशन) कहते हैं । तीसरे यह कि आंतरडाकी नली अधिक फुट लम्बी होती है इस नलीमें अकस्मात् आंटा (वोलव्युलस) मुड जानेसे भी रुकावट होती है । चौथे यह कि आंतरडाकी नलीमें वरन आनेके कारणसे संकुचित हो जाती है और यही परिणाम होता है, ऐसी जातिकी तीक्ष्ण रुकावट आन पडती है तब मनुष्यको एकाएकी किसी बडे आश्चर्य्यमें फँसना पडता है कि यह क्या हुआ । क्योंकि यह अकस्मात् एकाएकी: होता है पेटमें एकाध ठिकाने पर पीडा होती है, किसी समय यह पीडा विशेष बढ जाती है । ऐसा रोगीको मालूम हो दस्तका आना एकदम बन्द हो थोडे समयके पीछे वमनका आना आरम्भ होता है । उल्टीमें प्रथम तो आहार कियाहुआ पदार्थ निकलता है, पछिसे मल निकल पेटकी पीडा वढ जाती है । पेटमें अफरा होकर फूल जाता है और पेटमें गडगडाहट होती हुई फूलाहुआ आंतरडा हिलता है, किसी समय आंतरडाके फन्देकी जगहपर गांठ व गोला ऐसा कठिन मालूम होता है । रोगीको दस्तका बिल्कुल बन्धेज हो जाता है मूत्र बहुत थोडा उतरता है वमन जारी रहता है, पेटमें आहार नहीं ठहरता नाडीकी गति कमजोर होती जाती है । जिह्वाके ऊपर कांटे पड पीडा बढती जाती है, किंतु अत्यन्त दुःखके साथ रोगीकी मृत्युका समय आने लगता है ।

दूसरा यह कि (आंतरडाकां दीर्घावरोध) यह अवरोध धीरे २ होता है । इसके तीन कारण नीचे लिखे प्रमाणे होते हैं । एक तो यहकि कान्सर आंतरडामें होय और इससे धीरे २ आंतरडाका भाग खराब हो आंतरडाका रस्ता बन्द हो जाता है । दूसरे यह कि पेटमें बडी ग्रन्थी होय तथा उसका आंतरडाके ऊपर दवाव

पडे इससे उसका रस्ता वन्द हो जावे । तीसरे यह कि आंतरडामें मलकी ग्रंथी बंध जाती हैं अथवा उसमें कोई दूसरा पदार्थ भर जानेसे अडचन हो जावे । इस दीर्घ अडचनमें अधिक समय व्यतीत होनेपर मल उतरनेमें थोडी थोडी हरकत माल्म पडती है, किसी २ समय दस्तके साथ रक्त भी पड कुछ पीडा भी होती है । मल भी पतला अथवा छोटी लेंडी बँधकर उतरता है और किसी समय वमन अथवा अजीर्णकेसे चिह्न माल्म होते हैं, ऐसा होते होते अंतके दर्जे आंतरडाका रस्ता वंद हो दस्त विलकुल न उतर वमनमें मल निकलने लगे । पेट चढ जावे इस दीर्घ अटकावमें रोगी एकदम मरता नहीं है, दस्त बंद होनेके पीछे भी दो चार सप्ताह जी सक्ता है । इसका निदान जाननेकी आवश्यकता है कि आंतरडामें अडचन किस कारणसे हुई है, इसको प्रथम शोधकर पीछे चिकित्साका विचार करना ठीक है । दस्त एकदम बंद हुआ है अथवा धीरे २ वंद हुआ है । पेटमें किसी स्थानपर दरद है कि नहीं उल्टी साधारण आती है अथवा मलकी आती है, इसको लक्षमें रखना चाहिये । प्रथम प्रकारकी अडचनमें बाहर सारण गांठ होय तो इसकी परीक्षा करनी, उसमें दरद होता होय तो वह एकदम वडी जान पडेगी और सूजन मालूम होगी । यदि अंदर इस प्रकारका फंदा पडा होय तो एकदम ऐसे चिह्न जान पडेगे । पेटमें किसी अमुक ठिकाने दर्द होता जान पडे तथा उल्टी किस प्रकारकी आती है इससे यथार्थ परीक्षा करके निश्चय करे । दूसरे प्रकारकी आंतर्गमनकी रुकावट विशेप करके छोटी उमरके बालकोंको होती है । पेटमें एकाध ठिकानेपर लम्बी गांठ भाग जान पडेगा तथा उस ठिकानेपर पीडा होती है । किसी समय ऐसी गांठ सफ-राम अंगुली डालनेसे जान पडती है, दस्त कुछ २ रक्त मिश्रितसा जान पडता है और पेचिसके मरोडाके समान बचा जोर करता है । तीसरे प्रकारकी आंतरडाकी अडचन वडी उमरके मनुष्यको होती है, पेट एक बाजूकी ओर चढ जाता है (फूल जाता है) दूसरी ओर साफ होता है, पेटपर हाथ रखके देखे तो एकाध ठिकाने पर आंतरडाका भाग कठिन माल्म होता है । चौथे प्रकारके संकोचकी अडचनमें विशेप करके मलकी उल्टी नहीं होती तथा उसके साथ आंतरडाके वरमके चिह्न होते हैं । दीर्घ प्रकारकी अडचनमें अधिक समयके दरदके चिह्न होते हैं, इसके पीछे दस्त विलकुल बंद हो जाता है । किस प्रकारकी अडचन है इसका निर्णय यथार्थ करे कि यह अडचन आंतरडाके किस भागमें है, छोटे आंतरडामें है कि वडेमें । कारण कि इसकी चिकित्सामें क्या उपाय लेना पडेगा, इसकी आधार निर्णयके ऊपर है, विशेप करके आंतरडाके आंटेका प्रकार छोड देवे आंतरडाकी दूसरी तीक्ष्ण अडचनें छोटे आंतरडामें होती हैं तथा दीर्घ अडचन वडे

आंतरडामें होती है । छोटे आंतरडामें उसकी हरकत आती है तब मूत्र विशेप कम उतरता है तथा मलकी उल्टी अधिक शीघ्र आने लग जाती है, बडे आंतरडामें अडचन होय तब कोलनफूल आता है ऐसा जान पडता है । तथा सफराके अन्दर परीक्षा करनेसे भी कारण माल्रम हो जाता है, जो उतरते कोलनके नीचे ऐसी अड-चनका कारण होय तो सफरामें तर्जनी अंगुली प्रवेश करके परीक्षा करनेसे कारण जान पडेगा और अर्शके मस्सोंके कारणसे अथवा मूत्राशय अयवा गर्भाशय इनके दबाव अडचन होती हुई माल्रम पडे तो उसके अनुसार उपाय करके निवृत्त करना । परन्तु जो कान्सर होय तो पेटकी बाजूके भागमें (कोलनके ऊपर पीछेकी ओर पेरीटोन्यम नहीं होता तहां) फोडनेसे मलका रस्ता वहां होय परंतु जो इस भागमें अडचन न होय तो विशेष करके छोटे आंतरडामें यह होती है । इसके दूर करनेके लिये पेट चीरकर पेरीटोन्यमको भी खोलना पडता है, इस क्रियाके करनेमें रोगीकी जान विशेष करके जोखममें आ जाती है । अधिक समय आंतरडामें किसी जगह पर कौनसी अडचन है, इसका शोधन करके निकाल कर निश्चय कर-नेमें चिकित्सकको अति कठिनता आन पडती है । चिकित्सा इसकी यह है कि तीक्ष्ण अडचनमें सारण गांठ बाहर होय, उसका फंदा पड गया होय तो उसका योग्य उपाय करना, आंतर्गमनकी अडचन होय तो चमडेकी धोंकनीकी नली गुदामें लगाकर सफराके अन्दर वायु प्रवेश करना । अथवा विशेष जलकी पिचकारी लगाना, पिचकारीका जल किंचित् ऊष्ण होना चाहिये । ऐसा उपाय करनेसे यह अडचन कितने ही समय निवृत्त हो जाती है । इसके अतिरिक्त दूसरी अडचन माल्रम पडे तो केवल दूधकी काँजी आदि प्रवाही आहार रोगीको दे अफीम तथा कालो मलकी गोली परिमित मात्रासे रोगीको देता रहे, । इसके साथ बेलोडोना देनेसे विशेष लाभ पहुंचता है । प्रयोग अफीम ६ ग्रेन (३ रत्ती) कालेमल १२ ग्रेन (६ रत्ती) इनको परस्पर मिलाकर ६ गोली बराबरकी बनावे, प्रत्येक गोली दो व ३ घंटेके अंतरसे देता रहे । आवश्यकता होय तो पेटके ऊपर जोंक लगाकर रक्त मोक्षण करना तथा गर्म जलका सेंक करना । अलसीकी पोल्टिस गर्म २ रखना उसके ऊपर सुहाता २ सेंक करना । यदि पेट चीरनेसे रोगकी निवृत्ति होय ऐसी कोई विशेष अडचन होय तो उसके लिये पूर्णरीतिसे निश्चय करके वैसाही उपाय करना, आंतर्गमन अथवा आंटी होय तो उसको उकसेर कर ठीक करना । यदि दीर्घ अडचनमें मल आदिकी रुकावट होय तो रेचक दवा देनी योग्य है, अथवा गुदामें साबनके गर्म पानीकी पिचकारी लगानी, यदि नीचेके भागमें कान्सर आदि होय तो बामी बाजू पीछेको काटकर कोलनको खोल देना तथा वहां मल निकलनेका रस्ता करना ।

गुदा अर्थात् सफराकी व्याधिकी चिकित्सा।

(सफराकी अस्वाभाविक स्थिति) कभी ऐसा होता है कि वालकका जन्म होता है तवहीं उसका मलद्वार अर्थात् सफरामें कुछ कुदरती नुक्स होता है। कभी २ मलद्वार विशेप छोटा होता है यहांतक कि वारीक छिद्रके समान होता है और किसी २ का विलकुल वंद होता है। इस कारणसे मल विलकुल नहीं उतर सक्ता इस प्रकार मलद्वारका छिद्र वारीक होय तो चौंडा करना पडता है और विलकुल वंद होय तो उस ठिकानेपर नूतन छिद्र करना पडता है। विना मलद्वारका वालक भी कितने ही समय दो चार महीने अथवा इससे अधिक समय पर्य्यंत भी जीवित रह सक्ता है। ऐसे वालकको वमन होकर मल वाहर निकल पडता है और किसी वालककी इस स्थितिके रस्तेका सम्वन्ध मूत्राशय अथवा योनिके साथ जन्मसे ही माल्म पडता है, उसी रस्तेसे मल उतरता है। ऐसे कुदरती कायदासे विरुद्ध प्रमाण जव कभी किसी वालकमें मिलता है व मिल जावे तव इसका उपाय करनेकी आवश्यकता पडती ह। यदि विलकुल मलद्वार न होय तो स्वाभाविक मलद्वारके स्थलके ठिकाने छिद्र करना, छिद्र होने पीछे देखना थोडे ऊपरको आंतरडाका शिरा विशेप करके मिल जावेगा। कदाचित न मिले तो थोडा और काटे और देखे कि आंतरडाका शिरा है कि नहीं, कदाचित एक इंच पर्य्यंत काटने पर भी आंतरडाके शिरेकी निशानी न मिले तो वामे पखवाडे पीछेको छिद्र करके कोलनको फोडना पडता है। कोलनको फोडकर उसको त्वचाके साथ मिलाकर सी देनेसे मल उस ठिकानेसे निकलने लगता है और कृत्रिम मलद्वार स्थापित किया जाता है। दूसरा भेद यह कि सफराका संकोच किसी २ समय वालकके अतिरिक्त वडी उमरके मनुष्यके भी सफराका रास्ता संकुचित हो जाता ह। इससे दस्त आनेके समय पर मल निकलनेमें वडी काठिनता पडती है और विशेप जोर करनेके पीछे पतली वारीक लेंडी उतरती है, मल वरावर न उतरनेसे मलका संग्रह (जमाव) हो जाता है। वमन आने लगती है भूँख नहीं लगती आहार नहीं किया जाता, दूसरे चिह्न भी इसके परिणाम रूपमें होते हैं। मूत्रमार्ग प्रमेह आदिके कारणसे संकुचित हो जाता है और पीछे मूत्र उतरनेमें कठिनता पडती है, वैसे ही इस व्याधिमें मल उतरनेमें कठिनता पडती है। सफराका रास्ता संकुचित होनेके तीन कारण हैं, एक तो यह कि कानूसर सफरामें उत्पन्न होनेसे उसका रास्ता संकुचित हो जाता है। दूसरे उपदंशके कारणसे संकुचित होता है, तीसरे यह कि इन दोनों कारणोंके अतिरिक्त सफराके मार्गमें किसी २ समय श्वेत तन्तुसे भी संकुचितपन उत्पन्न हो जाता है और सफरामें अंगुली प्रवेश करके परीक्षा करनेसे संकचित भाग माल्म पडता है।

यदि संकुचित भाग नीचे होगा तो अंगुलीके स्पर्शसे लगेगा, जो संकुचित भाग ऊंचा होगा तो गुदा नली प्रवेश करके देखने मात्रसे माल्म पडेगा। यदि गर्मीके कारणसे यह व्याधि उत्पन्न हुई होय तो उस रोगीको इस व्याधिसे पूर्व गर्मी (उपदंश-सिफलिश) की व्याधि हुई होगी और कान्सर होय तो विशेष पीडा होती है, उसके साथ ही रक्त और पीव निकलती है।

चिकित्सा इसकी यह है कि-जब उपदंशके कारणसे संकोच माल्म पडे और उपदंशका एकाध अन्य चिह्न भी दिखलाई देवे तो आयोडाईड पुटाश्यम आदि उपदंशकी दवा देनी चाहिये। उपदंशके अनुकूल दवा देनेसे ही आराम माल्म होगा, जो साधारण कारणसे संकोच हुआ होय तो गुदा (सफरा) को चौडा करना उचित है और सफराको चौडा करनेके लिये सलाइयां आती हैं उनको काममें लेनेसे आराम हो जाता है। जब कान्सरके कारणसे यह व्याधि हुई होय तो आराम होना वडा ही कठिन है, जलमें ग्लीसरीन, लाडेनम मिलाकर पिचकारी लगाना इससे मल उतरने लगता है। अफीमको काममें लानेसे वेदना कम होती है, यदि चिकित्सक उचित समझे तो दाहिने तथा वामे पडखेमें कोलनको फोटकर वहां कृत्रिम मलद्वार कर देवे, जीवन रोगीकी उमरके आधीन समझकर यह उपाय किया जाता है। (गुदा सफराका जखम चांदी) गुदाके मुखपर (याने गुदाके किनारों) के ऊपर किसी समयपर चांदी अथवा चिरावट पड जाती है, इस कारणसे मल उतरनेके समय अतिशय पीडा और जलन होती है। इस दशामें जो मल कठिन उतरे तो विशेष वेदना होती है, कभी २ रक्त भी निकलने लगता है। मल उतरनेके बाद भी कितनी ही देरतिक जलन व वेदना बनी रहती है, इस कारणसे कितने ही समय पर्य्यन्त रोगीको बेचैनी रहती है। इस पीडाके भयसे रोगी कभी २ दस्तकी हाजतको रोककर बैठा रहता है, दस्त आनेके भयसे आहार भी थोडा करता है और मलद्वारके आसपास चिकना पदार्थ निकल खुजली आती है। मूत्र कितने ही समय उतर रोगीका मुख फीका पड जाता है, रोगी फिकरमन्द जान पडता है। इस रोगका कारण विशेष करके यही है कि ऐसी चांदी अथवा चिरावट निर्बल मनुष्यको हुआ करती है, किसी २ समय बाह्यशिरके मस्सोंके कारणसे होती है। मलद्वारको अंगुलीसे खींचकर देखे तो उसकी सरवटोंमें इसका स्थल दीख. पडता है, यदि इस प्रकारसे न दीखे तो गुदाके देखनेका काचका नलिकायन्त्र आता है उससे बराबर दीख सक्ता है। चिकित्सा इसकी यह है कि इस व्याधिवालेको दस्तका रोग रहनेपर्य्यन्त दस्त नर्म आना चाहिये, इसके लिये अरंडीका तैल दूधमें मिलाकर पिलाना उचित है। अथवा हरड, निशोत, सनाय,

इनमेंसे किसी एकका चूर्ण शक्करमें मिलाकर सेवन करना चाहिये, पीडा कम करनेके लिये एकस्ट्राकट बेलोडोना दो ग्रेन, एसेटेट ओफ लेड दो ग्रेन, टानिक ऐसिड चार ग्रेन इन सबकी एक गोली बनाकर रात्रिके समय सफराके अन्दर रखनी । प्रथम उठते ही कास्टिक अथवा तूतिया इनका पानी लगानेसे ही चांदी रोपण हो जाती है, यदि इस उपायसे न मिटे तो चांदीकी जगह पर छेद करना पडता है । परन्तु अन्य औषधियां पूर्व स्त्रियोंकी गुह्य व्याधिमें लिखी गई हैं उनसे वगैर छेद करनेसे ही आराम हो जाता है, जबतक औषधियोंके लगानेसे आराम होय तबतक छेद करनेकी आवश्यकता नहीं है । छिद्र करनेके पूर्व अरंडीके तैलका जुलाब देना इसके बाद छिद्र करना, छिद्र करके मलद्वारकी वर्तुलाकार स्नायुको काटना पडता है । इस स्नायुके आकर्षणसे ही चांदी नहीं रुजती तथा गुदा खुलनेके समय अतिशय पीडा होती है । छिद्र करनेके बाद रोगीको थोडी २ अफीमकी मात्रा देकर दस्त कब्ज करना चाहिये, दो चार दिवस दस्त बन्द रहनेसे जखम तथा चांदी रुज जाती है । कदाचित् ३-४ दिवसमें चांदी न रुजे और कुछ कमी रह जावे तो जखम रुजनेतक ऐसा प्रयोग देना चाहिये जिससे दस्त पतला होकर उतरता रहे । जखमके ऊपर जिकलोशनमें लिंट अथवा रुईका फोहा भिगोकर रखना, अथवा रेडप्रेसिपिटेट मरहम लगाना ।

गरविष प्रकरण ।

(विष चिकित्सा तथा लक्षण सुश्रुतके कल्पस्थानमें लिखे गये हैं । परन्तु यहांपर इतने विस्तारपूर्वक लिखनेका स्थान नहीं है । केवल प्रचलित विषोंके लक्षण तथा चिकित्सा मात्रही इस छोटे ग्रन्थमें लिखी जायगी ।)

विषके भेद ।

स्थावरञ्जङ्गमञ्चैव द्विविधं विषमुच्यते । दशाधिष्ठानमाद्यन्तु द्वितीयं षोडशाश्रयम् ॥ मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वक्क्षीरं सार एव च । निर्य्यासो धातवश्चैव कन्दश्च दशमः स्मृतः ॥ तत्र क्लीतकाश्वमारगुञ्जा सुगन्धगर्गरककरघाटविद्युच्छिखाविजयानीत्यष्टौ मूलविषाणि । विषपत्रिकालम्बावरदारुककरम्भमहाकरम्भाणि पञ्च पत्रविषाणि ॥ कुमुद्वतीवेणुकाकरम्भमहाकरम्भकर्कोटकरेणुकखद्योतकचर्मरीभगन्धासर्पघातिनन्दनसारपाकानीति द्वादश फलविषाणि ॥ वेत्रकादम्बवल्लिजकरम्भमहाकरम्भाणि पञ्च पुष्पविषाणि ॥ अन्त्रपाचककर्त्तरीयसौरीयककरघाटकरम्भनन्दनवराटकानि सप्तत्वक्सारनिर्यासविषाणि ॥ कुमुदघ्नीस्नुही-

जालक्षीर्य्याणि त्रीणि क्षीरविषाणि ॥ कालकूटवत्सनाभसर्षपकपालककर्दमकवैराटकमुस्तकशृङ्गीविषप्रपौंडरीकमूलकहालाहलमहाविषकर्कटानीति त्रयोदश कन्दविषाणि। इत्येवं पञ्चपञ्चाशत् स्थावरविषाणि भवन्ति ॥ चत्वारि वत्सनामानि मुस्तके द्वे प्रकीर्तिते। षट् चैव सर्षपाण्याहुः शेषाण्येकैकमेव तु ॥

अर्थ–विष दो प्रकारका होता है स्थावर और जंगम, इनमेंसे प्रथम स्थावर विष दश प्रकारका होता है और दूसरा जंगम विष सोलह प्रकारका होता है। स्थावर विषके ये दश भेद हैं जड, पत्र, फल, फूल, छाल, दूध, सार, गोंद, धातु, कन्द इनमेंसे मूल विष आठ प्रकारका होता है। क्लीतक, कनेर, चिरमिटी, सुगन्ध, गर्गर, ककरघाट, विद्युताशिखा (कलिहारी) भांग इन सबकी जडमें विष माना गया है। पत्रविष पांच प्रकारका है विषपत्रिका, तोरई, अवरदारु (सांगवृक्ष) करम्भ महाकरम्भ इनके पत्रोंमें विष है। फलविष बारह प्रकारका होता है, कुमुद्वती, वेणुका, करम्भ, महाकरम्भ, कर्कोटक, रेणुका, खद्योतक, चमरी इभगन्धा, सर्पघाती, नन्दन, सारपाक इन फलोंमें विष होता है। पुष्पविष वेत, कदंभ, वल्लिज, करम्भ, महाकरम्भ ये पांच पुष्प विप हैं। त्वक्सार निर्यास विष अन्नपाचक, कर्त्तरीय, सौरीयक, करघाट, करम्भ, नन्दन, वराटक ये सात छाल सारानिर्यासक हैं। दूधविष कुमुदघ्नी, सेहुंड, जालक्षीरी ये तीन दूध विष हैं। धातुविष फेणाश्म भस्म, हरिताल ये दो धातु विप हैं इनके शिवाय सोमल ४ प्रकारका पारदकी विकृति रसकपूर, दाल चिकना और ताम्र ये भी विष हैं। कन्दविष, कालकूट, वत्सनाभ, सर्षप, पालक, कर्दमक, वैराटक मुस्तक, शृंगीविष, (सिंगिया) पुण्डरीक, मूलक, हालाहल, महाविष, कर्कटक ये तेरह कन्द विप हैं। इस प्रकार सब मिलकर पचपन प्रकारके स्थावर विष हैं। सोमलादि जो लिखे हैं वे सुश्रुतकी गणनासे पृथक् हैं। इनमेंसे वत्सनाभ चार प्रकारका है, मुस्तक दो प्रकारका सर्षप छः प्रकारका और शेष सब एक २ प्रकारके हैं।

मूलादि विषोंके उपद्रव।

उद्वेष्टनं मूलविषैः प्रलापो मोह एव च। जृम्भाङ्गोद्वेष्टनश्वासा ज्ञेयाः पत्रविषेण तु ॥ मुष्कशोफः फलविषैर्दाहोऽन्नद्वेष एव च। भवेत् पुष्पविषैश्छर्दिराध्मानं मोह एव च ॥ त्वक्सारनिर्यासविषैरुपयुक्तैर्भवन्तिहि। आस्यदौर्गन्ध्यपारुष्यशिरोरुक्कफसंस्रवाः। फेणागमः क्षीरविषे विड्भेदो जिम्भजिह्वता ॥ हृत्पीडनं धातुविषैर्मूर्च्छा दाहश्च तालुनि।

प्रायेण कालघातीनि विषाण्येतानि निर्दिशेत् । कंदजानि तु तीक्ष्णानि तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥ स्पर्शाज्ञानं कालकूटे वेपथुः स्तम्भ एव च । ग्रीवास्तम्भो वत्सनाभे पीतविण्मूत्रनेत्रता ॥ सर्षपे वातवैगुण्यमानाहो ग्रन्थि जन्म च । ग्रीवादौर्बल्यवाक्संगौ पालकेऽनुमताविह ॥ प्रसेकः कर्दमाख्ये तु विड्भेदौ नेत्रपीतता । वैराटकेनांगदुःखशिरोरोगश्च जायते ॥ गात्रस्तम्भो वेपथुश्च जायते मुस्तकेन तु । शृंगी विषेणांगसाददाहोदरविवृद्धयः ॥ पुण्डरीकेण रक्तत्वमक्ष्णोर्वृद्धिस्तथोदरे । वैवर्ण्यं मूलकैश्छर्दिर्हिक्काशोफप्रमूढताः ॥ चिरेणोच्छ्वसिति श्यावो नरो हालाहलेन वै । महाविषेण हृदये ग्रन्थिशूलोद्गमौ भृशम् ॥ कर्कटेनोत्पतत्यूर्द्धं हसन्दन्तान्दशत्यपि । कन्दजान्युग्रवीर्य्याणि प्रयुक्तानि त्रयोदश ॥

अर्थ-मूलविषोंके भक्षणसे शरीरमें ऐंठन पडती है प्रलाप और मोह होता है, पत्र विषके भक्षणसे जँभाई, शरीरमें ऐंठन और श्वासकी गति अधिक होती है । फलविषके भक्षण करनेसे अंडकोशमें शोथ दाह और अन्नसे अरुचि होती है; पुष्पविषके भक्षणसे उल्टी, आध्मानं मोह होता है । त्वक्सार निर्यास विषके भक्षणसे मुखमें दुर्गन्धि, कर्कशता, शिरमें वेदना, कफस्राव होता है । क्षीर विषके भक्षणसे मुखसे झागोंका आना, विष्ठाका फटजाना, जिह्वामें ऐंठन होती है । धातुविषके भक्षणसे हृदयमें पीडा, मूर्च्छा, तालुमें दाह होता है । ये विष कालघाती अर्थात् कुछ दिनके अन्तरसे प्राणोंको हरण करते हैं । कन्दज विष तीक्ष्ण होनेके कारण सद्यः प्राणहारक है, अब आगे इनका विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे । कालकूट विषके भक्षणसे स्पर्शका अज्ञान, कम्पन, स्तम्भता होती है । वत्सनाभ विषके भक्षणसे ग्रीवामें जकडन, विष्ठा, मूत्र, नेत्रोंमें पीलापन छा जाता है । सर्षपविषके भक्षणसे वायुमें विगुणता, आनाह, ग्रन्थी उत्पन्न होती है । पालकाविषके भक्षणसे ग्रीवामें दुर्बलता (गर्दनका ढुलना) वाणीका रुक जाना ये होते हैं । कर्दम विषके भक्षणसे लारका बहना मलका फट जाना और नेत्रोंमें पीतता होती है, वैराट विषसे अंगमें पीडा और शिरोरोग उत्पन्न होते हैं । मुस्तक विषसे गात्रस्तम्भ और कम्पन होता है, । शृंगी विषके भक्षणसे अंगग्लानि दाह और उदरकी वृद्धि होती है । पुण्डरीक विषके भक्षणसे नेत्रोंमें रक्तता उदरकी वृद्धि होती है । मूलक विषके भक्षणसे शरीरकी विवर्णता, उल्टी, हिचकी, शोथ, मूढता होती है । हालाहल विषके भक्षणसे

श्वास रुककर आता है और मनुष्यका शरीर काला पड जाता है । महाविषके भक्षणसे हृदयमें ग्रन्थी, अत्यन्त शूल उत्पन्न होता है । कर्कटक विषके भक्षणसे मनुष्य ऊपरको उछलता है, हँसता है, दांतोंको कटकटाता है । ये तेरह कन्द विष बडे उग्रवीर्य्य प्रचण्ड होते हैं । येही विष शुद्ध कियेहुए और परिमित मात्रासे भक्षण कियेहुए रोगोंके नाशक और बलप्रद होते हैं । अपरिमित मात्रासे भक्षण कियेहुए मनुष्यको मार देते हैं ।

कन्दज विषोंके दश गुण ।

सर्व्वाणि कुशलैर्ज्ञेयान्येतानि दशभिर्गुणैः । रूक्षमुष्णं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्ममाशु व्यवायि च । विकाशि विशदञ्चैव लघ्वपाकि च तत् स्मृतम् ॥ तद्रौक्ष्यात् कोपयेद्वायुमौष्ण्यात् पित्तं सशोणितम् । मानसं मोहयेत् तैक्ष्ण्यादङ्गबन्धान् छिनत्यपि । शरीरावयवान् सौक्ष्म्यात् प्रविशेद्विकरोति च । आशुत्वादाशु तद्धन्ति व्यवायात् प्रकृतिं भजेत् ॥ क्षपयेच्चाविकाशित्वाद्दोषान्धातून्मलानपि । वैशद्यादतिरिच्येत दुश्चिकित्स्यञ्च लाघवात् । दुर्जरञ्चाविपाकित्वात्तस्मात् क्लेशयते चिरम् ॥ स्थावरञ्जंगमं यच्च कृत्रिमं चापि तद्विषम् । सद्यो व्यापादयेत्तत्तु ज्ञेयं दशगुणान्वितम् ॥ यत्स्थावरं जङ्गमं कृत्रिमं वा देहादशेषं यदनिर्गतन्तत् । जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा ॥ स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति । वीर्य्याल्पभावान्न निपातयेत्तत्कफावृतं वर्षगणानुबन्धि ॥ तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो विगन्धवैरस्यमुखः पिपासी । मूर्च्छन् वमन् गद्गदवाग्विषण्णो भवेच्च दूष्योदरलिङ्गजुष्टः ॥ आमाशयस्थे कफवातरोगी पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी । भवेन्नरो ध्वस्तशिरोरुहाङ्गो विलूनपक्षस्तु यथा विहङ्गः । स्थितं रसादिष्वथवा यथोक्तान् करोति धातुप्रभवान् विकारान् । कोपञ्च शीतानिलदुर्दिनेषु यात्याशु पूर्वं शृणु तत्र रूपम् ॥ निद्रागुरुत्वञ्च विजृम्भणञ्च विश्लेषहर्षावथवाङ्गमर्दः । ततः करोत्यन्नमदाविपाकावरोचकं मण्डलकोठमोहान् ॥ धातुक्षयं पादकरास्यशोफं दकोदरं छर्दिमथातिसारम् । वैवर्ण्यमूर्च्छाविषमज्वरान् वा कुर्य्यात्प्रवृद्धां

प्रबलां तृषां वा ॥ उन्मादमन्यञ्जनयेत्तथान्यदानाहमन्यत् क्षपयेच्च शुक्रम् । गाद्गद्यमन्यज्जनयेच्च कुष्ठं तांस्तान् विकारांश्च बहु प्रकारान् ॥ दूषितं देशकालान्नदिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः । यस्माद् दूषयते धातून् तस्माद्दूषीविषं स्मृतम् ॥ स्थावरस्योपयुक्तस्य वेगे तु प्रथमे नृणाम् । श्यावा जिह्वा भवेत् स्तब्धा मूर्च्छा श्वासश्च जायते ॥ द्वितीये वे मधुः स्वेदो दाहः कण्डू रुजस्तथा । विषमामाशयप्राप्तं कुरुते हृदि वेदनाम् ॥ तालुशोषं तृतीये तु शूलं चामाशये भृशम् । दुर्वर्णे हरिते शूने जायेते चास्य लोचने ॥ पक्वाशयगते तोदो हिक्का कासोऽन्त्रकूजनम् । चतुर्थे जायते वेगशिरसश्चातिगौरवम् ॥ कफप्रसेको वैवर्ण्यं पर्वभेदश्च पंचमे सर्वदोषप्रकोपाश्च पक्वाध्माने च वेदना ॥ षष्ठे प्रज्ञाप्रणाशश्च भृशं वाप्यतिसार्यते । स्कन्दपृष्ठकटीभंगः सन्निरोधश्च सप्तमे ॥

अर्थ—कंदज विषोंके दश गुण होते हैं, रुक्ष, ऊष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, आशु, व्यवायि, विकाशि, विशद, लघु, अपाकि । इन दश गुणोंके कर्म रूक्षतासे वायुको प्रकुपित करते हैं, उष्णतासे रक्त पित्तको कुपित करते हैं, तीक्ष्णतासे बेहोशी कर अङ्गके बंधनोंको तोडते हैं, सूक्ष्मतासे सूक्ष्म मार्गोंमें प्रवेश करके अवयवोंमें घुस कर विकृत कर देते हैं । आशु कहिये शीघ्र गमन करनेसे शीघ्रही प्राणोंको हरण करते हैं, व्यवाई सम्पूर्ण शरीरमें फैलनेसे अपनी प्रकृतिको प्राप्त होता है, विकाशि होनेसे प्रसर्प और अपसर्पसे धातु बंधनोंका शिथिल करना, दोष धातु . आर मलोंको फेंक देता है, विशदतासे अतिसार (दस्त लगा देता है) लघुतासे चिकित्सा करनेके योग्य नहीं होता अपाकी आहारादिको नहीं पचने देता, इससे दुर्जर हो क्लेश देता है । और २ विषोंमें दश गुणोंका निर्देश स्थावर जङ्गम अथवा कृत्रिम विप जो तत्काल प्राणोंको हर लेता है उसे इन दश गुणोंसे युक्त समझ लो । (हतवीर्य होनेसे स्थावर विषका नामांतर जो विष स्थावर, जङ्गम, अथवा कृत्रिम है, जो शरीरसे निःशेप नहीं निकला है जो जीर्ण है अथवा विषघ्न औषधियोंसे हतवीर्य्य है । अथवा दावाग्निवात धूपसे शुष्क है अथवा जो स्वाभाविक ही दो तीन गुणोंसे हीन है ऐसे विपको दूपी विष) कहते हैं । इसको अल्प—वीर्य्य होनेके कारणसे न निकाले यह विप गुणहीन होता है, चिरकालानुबन्धीकफ मार्गोंको रोक लेता है, इससे मरनेका भय भी नहीं होता । इस विषके उपद्रव इस प्रकारसे

हैं कि विषसे पीडित होनेपर विष्ठा फट जाता है रंग बिगड जाता है, मुखमें दुर्गन्धि और विरसता होती है तथा तृषा अधिक लगती है। मूर्च्छा, वमन, वाणीसे स्पष्ट उच्चारण न होना और दीनता ये लक्षण होते हैं, तथा दूष्योदर रोगकेसे लक्षण भी होते हैं। (विषके स्थान विशेषमें लक्षण) यदि यह विष आमाशयमें पहुंचता है तो कफ वातका रोग हो जाता है, पक्काशयमें पहुंचनेसे वात पित्तके रोग होते हैं। उस मनुष्यके जिसने विष भक्षण किया होय शिरके बालों सहित सब अंग बिगड जाते हैं, जैसे पंखहीन पक्षी हो जाता है। वही विष रसादिमें स्थित होकर धातुजनित विकारोंको करता है जिस दिवस शीत होता है, शीतल वायु चलती है, बादल होते हैं तब इस विषका अत्यन्त प्रकोप होता है, अब इस विषके पूर्वरूपका वर्णन सुनो। निद्रा भारीपन, जंभाई, सन्धिविश्लेप, रोमाञ्च होना, शरीरका टूटना, भोजनका नशा, अविपाक, अरुचि, चकत्ते, पित्ती, मोह, धातुक्षय पैर, हाथ और मुखपर सूजन, दकोदर, वमन, अतिसार, विवर्णता, मूर्च्छा, विषमज्वर इत्यादि उपद्रव पूर्वरूपमें होते हैं। तृषा बढ जाती है और तृषाकी प्रबलतासे अत्यन्त बेचैनी होती है, कोई विष उन्माद करता है कोई अनाह करता है, कोई वीर्य्यको गिराता है, कोई वाणी गदगदता, कोई कुष्ठ रोगको उत्पन्न करता है, अनेक प्रकारके ऐसे ही उपद्रव होते हैं। (दूषी विषकी निरुक्ति) दूषित देशकाल और दूषित अन्नका निरन्तर सेवन करनेसे, दिनमें शयन करनेसे धातुओंको दूषित कर देता है, इसलिये विषको दूषी विष कहते हैं। (स्थावर विषके वेगोंका लक्षण) स्थावर विषके भक्षण करनेसे मनुष्यकी जिह्वा प्रथम वेगमें ही काली पड जाती है और जिह्वामें ऐंठन उत्पन्न हो जाती है तथा मूर्च्छा और श्वास भी बढने लगता है। द्वितीय वेगमें कम्पन, स्वेद, दाह, खुजली, वेदना होती है, तथा विष जब आमाशयमें पहुंच जाता है तब हृदयमें वेदना होने लगती है। और तीसरे वेगमें तालुशोष, आमाशयमें शूल होता है, विष भक्षण करनेवालेके नेत्र हरे तथा कुत्सित रंगके हो जाते हैं। तथा जब विष पक्काशयमें पहुंचता है तब सूई चुभनेकीसी पीडा, हिचकी, खांसी, और पेट बोलने लगता है। चौथे वेगमें शिर विशेष भारी हो जाता है, पांचवें वेगमें कफका गिरना विवर्णता हडफूटनादि उपद्रव हो जाते हैं। सम्पूर्ण दोष कुपित हो जाते हैं और पक्काशयमें वेदना होने लगती है। छठे वेगमें बेहोशी और दस्त होने लगते हैं, सातवें वेगमें कन्धा पीठ और कमर पीडा श्वास रुकने लगता है।

उपरोक्त विषोंके सात वेगोंकी चिकित्सा।

प्रथमे विषवेगे तु वान्तं शीताम्बु सेवितम्। अगदं मधु सर्पिर्भ्यां पाययेत समायुतम्। द्वितीये पूर्ववद्वान्तं पाययेत्तु विरेच-

नम् । तृतीयेऽगदपानन्तु हितं नस्यं तथाञ्जनम् ॥ चतुर्थे स्नेहसंमिश्रं पाययेतागदं भिषक् । पञ्चमे क्षौद्रमधुकं काथयुक्तं प्रदापयेत् ॥ षष्ठेऽतीसारवत्सिद्धिरवपीडश्च सप्तमे । मूर्ध्नि काकपदं कृत्वा सासृग्वापि शितं क्षिपेत् ॥ वेगान्तरे त्वन्यतमे कृते कर्म्मणि शीतलाम् । यवागूं सघृत क्षौद्रामिमां दद्याद्विचक्षणः ॥ कोषातक्योऽग्निकः पाठासूर्य्यवल्ल्यमृताभयाः । शिरीषः किणिही शेलुर्गिर्य्याह्वारजनीद्वयम् ॥ पुनर्नवे हरेणुश्च त्रिकटुः सारिवे बला । एषां यवागूर्निःकाथे कृता हन्ति विषद्वयम् ॥

अर्थ—प्रथम विष वेगमें वमन कराना और शीतल जलका सेवन ये उत्तम हैं, तथा घृत और शहतके साथ दूषी विषारिका पान करावे, दूसरे वेगमें प्रथमकी तरह वमन कराके और इसमें विरेचन भी कराना चाहिये। तीसरे वेगमें दूषी विषारिको घृत और शहतके साथ पान करावे तथा विषनाशक नस्य और चैतन्यता उत्पन्न करानेवाले अंजन भी लगावे। चौथे वेगमें गौका घृत और उपरोक्त औषधको मिलाकर पान करावे। पांचवें वेगमें मुलहटीके क्काथमें शहत मिलाकर पिलावे, छठे वेगमें अतीसारके समान चिकित्सा करे, सातवें वेगमें अवपीडन करे शिर पर काक पदका चिह्न करके रक्तसहित मांस रख देवे। कालघाती विषकी चिकित्सा इन सात वेगोंमेंसे जिस किसीमें जब कर्म कर चुके होयँ तब घृत और शहत मिलाकर इस शीतल यवागूको पान करावे, तोरई, अजमोद, पाढ, सूर्यवल्ली, गिलोय, हरड, सिरसकी छाल, किणाही (इसको कटभी) कहते हैं । सेलू श्वेतस्यन्द, दोनों प्रकारकी हल्दी, सांठ, हरेणु, त्रिकुटा दोनों सारिवा खरेटी इनके क्काथमें यवागू (जौका आटा और घृत शहतके संयोगसे लपसी) बनाकर पान करानेसे दोनों प्रकारके विषोंके वेग निवृत्त हो जाते हैं।

अजेय घृतका प्रयोग।

मधुकं तगरं कुष्ठं भद्रदारु हरेणवः । पुन्नागैलैलवालूनि नागपुष्पोत्पलं सिता ॥ विडंगं चन्दनं पत्रं प्रियंगुध्यामकं तथा । हरिद्रे द्वे बृहत्यौ च शारिवे च स्थिरा सहा ॥ कल्कैरेषां घृतं सिद्धमजेयमिति विश्रुतम् । विषाणि हन्ति सर्व्वाणि शीघ्रमेवाजितं क्वचित् ॥

अर्थ—मुलहटी, तगर, कूट, भद्रदारु, हरेणु, पुन्नाग, एलुवा नागकेशर, कमलकी जड, मिश्री, वायविडंग, चन्दन, तेजपत्र, प्रियंगु, ध्यामकतृण, हल्दी, दारुहल्दी,

कटेली, श्वेत फूलकी कटेली, लालसारिवा, श्वेत सारिवा, शालपर्णी, सहा इन सबको समान भाग लेकर कल्क बनावे, औषधियोंके वजनसे चौगुन जल और गोघृत मिलाकर घृतपाककी विधिसे सिद्ध करे इस घृतका नाम अजेय घृत है। यह घृत स्थावर, जंगम और कृत्रिम सब प्रकारके विषोंको दूर करता है यह घृत सब विष विकारोंमें जय पाता है।

दूषी विषकी चिकित्सा।

दूषी विषार्त्तं सुस्विन्नमूर्ध्वञ्चाधश्च शोधितम्। पाययेता गदं नित्यमिमं दूषीविषापहम्॥ पिप्पल्यो ध्यामकं मांसी सावरः परिवेलवम्। सुवर्चिका ससूक्ष्मैला तोयं कनकगैरिकम्॥ क्षौद्रयुक्तोऽगदो ह्येष दूषीविषमपोहति। एष नाम्ना विषारिस्तु न चान्यत्रापि धार्य्यते॥ ज्वरे दाहे च हिक्कायामानाहे शुक्रसंक्षये। शोफेऽतिसारे मूर्च्छायां हृद्रोगे जठरेऽपि वा॥ उन्मादे वे पथौ चैव ये चान्ये स्युरुपद्रवाः। यथास्वं तेषु कुर्वीत विषघ्नैरोषधैः क्रियाम्॥ साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं संवत्सरोत्थितम्। दूषीविषमसाध्यन्तु क्षीणस्याहितसेवनम्॥

अर्थ—जो मनुष्य दूषी विषसे पीडित है उसको पसीने देकर वमन व विरेचन द्वारा शुद्ध कर नीचे प्रमाणे दूषीविष नाशक औषधियोंका पान करावे। पीपल, ध्यामक तृण, जटामांसी, लोध, धनियां, सज्जी, छोटी इलायचीके बीज, सोनागेरू इनको समान भाग लेकर चूर्ण करके शहत मिश्रित जलके साथ पान करावे, ये औषधियां दूषी विषको नष्ट कर देती हैं। इस प्रयोगका नाम (विषारि) है, इससे यह अन्य विषोंके वेगको भी निवृत्त करती है। (दूषीविषके उपद्रव) ज्वर, दाह, हिचकी, आनाह, वीर्य्यक्षय, शोफ, अतीसार, मूर्च्छा, हृद्रोग, जठररोग, उन्माद, कम्पन, इत्यादि उपद्रवोंमें तथा उससे उत्पन्न हुए अन्योपद्रवोंमें विषनाशक औषधियोंसे यथायोग्य चिकित्सा करनी चाहिये। (साध्यासाध्यका विचार) जितेन्द्रिय पुरुषके जो तत्काल विषरोग होता है वह साध्य होता है, जो १ सालका हो गया होय वह याप्य होता है। और क्षीण तथा अहित आहार विहार सेवन करनेवाले पुरुषका दूषी विष असाध्य होता है।

खनिजविष सोमल हरताल।

सोमल (संखिया) तथा हरताल ये प्रख्यात (प्रसिद्ध) विष हैं। इनसे मृतक मनुष्योंके अनेक प्रमाण मिलते हैं, संखियामें कुछ स्वाद नहीं है इससे दुश्मन लोग

आहारमें मिलाकर प्रायः सरलतापूर्वक खिला देते हैं । बहुत लोग चूहे आदि मारनेके काममें इसको लेते हैं, दगाबाजीसे देनेमें सोमल प्रत्येक आहारमें मिलाकर दिया जा सक्ता है । खानेवालेको कुछ भी मालूम नहीं होता और हरतालमें भी संखिया होता है, परन्तु रंगतके कारणसे हरताल दगाबाजीमें छिप नहीं सक्ती और संखियाकी चार जाती है श्वेत, पीत, कृष्ण, रक्त, पीला संखिया हरतालके समान ही होता है । ये सब विष लोहे तामेके समान खानोंसे निकलते हैं । संखिया खायेहुए मनुष्यके चिह्न इस प्रकारसे होते हैं कि सोमल पेटके अन्दर जानेके दो घंटे बाद उसके चिह्न मालूम होने लगते हैं सोमल क्षोभक विष है । प्रथम पेटमें पीपडाके भागमें जलन हो दर्द शुरू हो जाता है, दाबनेसे पेट अधिक दुखता है ऐंठा उठता है और वमन होने लगती है । इस दशामें कोई भी पदार्थ रोगी खावे पीवे परन्तु उसी समय तुरन्त उल्टीमें पीछे निकल आता है, पेटकी पीडा बढकर समस्त पेटमें फैल जाती है और पेटके ऊपर स्पर्श सहन नहीं होता, थोडे ही समयमें दस्त होने लगते हैं दस्त जानेके समय पेचिशके समान पीडा व मरोडा होता है और जोर करना पडता है । उसमें जलन और किसी समय रक्त पडता है, दस्त विशेष करके पतला आता है, रंग उसका पीला होता है । मूत्र उतरनेके समय जलन होती है गला और मुख आ जाता है, पिलाश विशेष लगती है नेत्र लाल हो उनमें जलन होती है । मस्तकमें पीडा होती है रक्ताशय जल्दी २ चलता है (धडकता है) नाडी और श्वास भी जल्दी २ चलने लगते हैं, रोगीको विशेष बेचैनी हो तडफडाने लगता है । पैरोंमें भडकन होती है ऐंठन चढती है हाथोंमें जलन होती है, रोगी शक्तिहीन होकर मृत्युको प्राप्त होता है । बुद्धि अन्त समय पर्य्यन्त निर्विकार रहती है । कोई २ मनुष्य सोमल खानेपर भी अच्छा हो जाता है और कोई बेशुद्ध होकर मृत्युको प्राप्त होता है । किसीको ज्वर उत्पन्न होकर मृत्यु होती है संखिया भक्षणके चिह्न किसी समय अति तीक्ष्ण होते हैं, अत्यन्त उल्टी दस्त पिलाश और पैरोंमें ऐंठन वेदना होती है । किसी २ मनुष्यको दस्त व उल्टी नहीं होती किन्तु थोडी बेहोशी होकर मृत्यु पाता है, किसी २ मनुष्यको संखिया खानेके पीछे ३ । ४ घंटेमें, किसी २ को ६ । ७ घंटे पीछे सोमलके चिह्न प्रगट होते हैं । सोमल जलमें विशेष गलता नहीं है द्रवरूप अथवा पीसकर चूर्णके रूपमें खाया गया होय तो इसके चिह्न शीघ्र प्रगट होते हैं । और रोगीका बचना अति कठिन होता है, यदि संखियाकी साबत डली खाई गई होय तो कदाचित् मनुष्य बच भी जाता है एक मनुष्यने अनकरी १ रुपये भर संखियाकी डली निगल गया था इसके खानेके कई घंटे बाद उसको दस्त और उल्टी होना आरम्भ हुआ, पीछे वह संखियाकी डली दस्तके साथ बाहर निकल आई उस मनुष्यके

आकृति-३० (पृ०१७५) चित्र-कमलमुखके बाह्य मुखके भागमेंसे उत्पन्न हुआ योनिमार्गमें लटकता हुआ मस्सा।
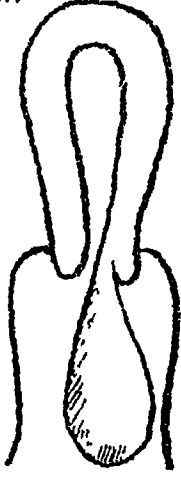
आकृति-३१ (पृ०१७९) चित्र-अर्शका मस्सा निकालनेकी विधि और हस्तक्रिया.
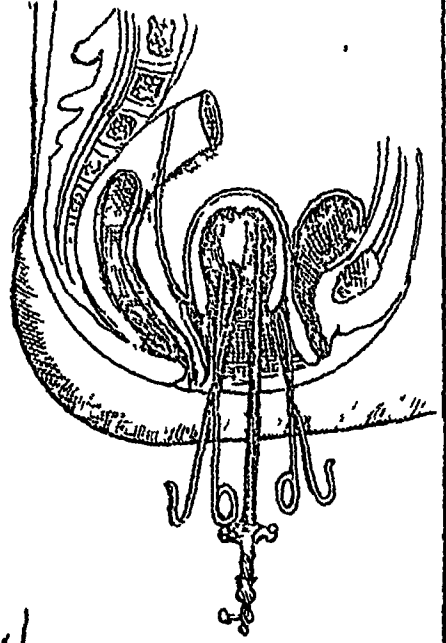
आकृति-३२ (पृ० १८२) चित्र-गर्भाशय और उसके समीपवर्त्ती मर्मस्थान।
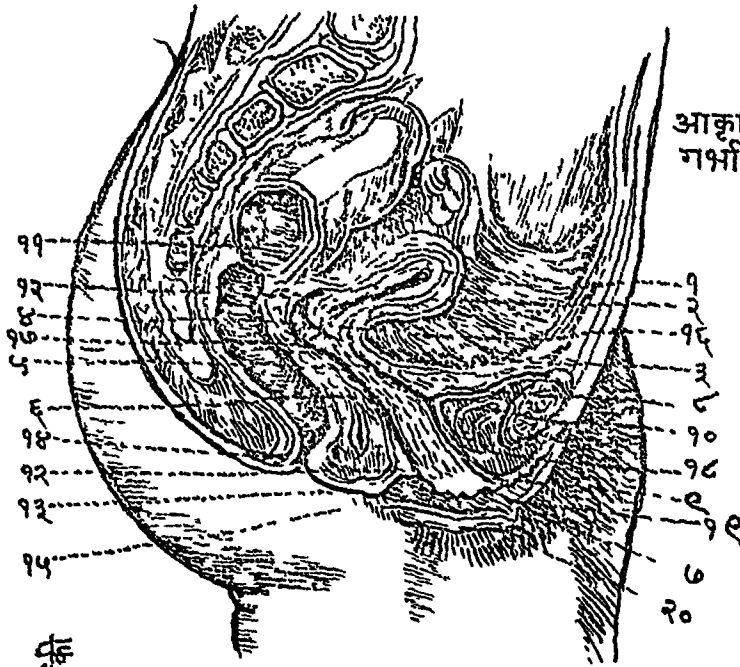
आकृति-३३ (पृ०१८५) चित्र गर्भाशयकी अग्रवक्रता.
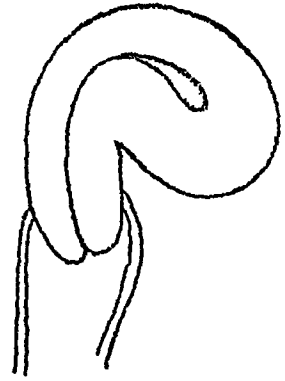
आकृति-३५ (पृ०१८५) चित्र-गर्भाशय और कमलमुख दोनोंकी अग्रवक्रता.
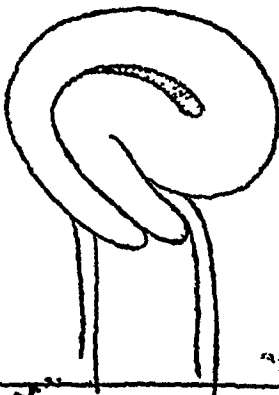
आकृति-३४ (पृ०१८५) चित्र-कमलमुखकी अग्रवक्रता.
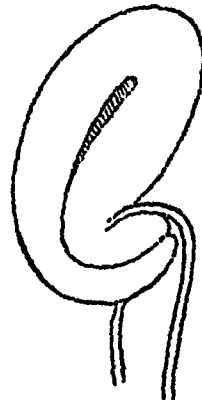
शरीरमें दाह और अन्य कई चिह्न कितने ही दिवस पर्य्यन्त रहे, परन्तु घृत, दुग्ध पान करता रहा और मृत्युसे बच गया। संखिया खायेहुए मनुष्यके मरण होनेके अनन्तर ऐसे स्वरूप होते हैं कि संखिया खानेसे पक्काशयमें दाह होता है और पेटमें खानेसे ही पक्काशय दाह होता है सो बात नहीं है। किन्तु संखिया शरीरके किसी भागपर लगाया जावे तो उसका जहर जिस समय चढेगा तब पक्काशयमें तथा ओझरीमें अवश्य दाह होगा। यह नहीं कि पक्काशय और ओझरीमें दाह होय, किन्तु डुओडीनमें और किसी समय समस्त अंतरडाके श्लेष्मावरणमें दाह देखनेमें आता है। किसीके अन्ननल और गला मुख भी लाल रंगका हो जाता है, ओझरीमें श्लेष्मावरण लाल सुर्ख हो जाता है, उसकी कांचलीके ऊपर विशेष रक्तता हो जगह २ पर संखियाके सूक्ष्म कण सफेद व पीत रंगके दीख पडते हैं। लगेहुए प्रत्येक कणके आसपासका भाग सुर्ख दीखता है और किसी २ ठिकानेसे रक्तस्राव होकर वह भाग काला दीखता है। आंतरडा तथा ओझरीमेंसे पीला दाग और किसी २ के प्रवाही पदार्थ भी दीखनेमें आता है। संखियासे कमसे कम १ रत्तीमें भी किसी २ मनुष्यका मरण हो जाता है और अधिक मात्रा लेनेवालेका मरण अति शीघ्र होता है। न्यून मात्रा लेने-वालेका मरण १९ से २० घंटेमें होता है। किसीका मरण ३ घंटेमें ही हो जाता है और कोई चार पांच दिवसमें होता है, उपरोक्त परीक्षा संखिया खानेवालोंकी लाश चीर-नेसे देखी गई ह। संखिया खानेकी लाशके आभ्यन्तरके उपरोक्त चिह्न लक्षमें रखने योग्य हैं।

चिकित्सा इसकी यह है कि उल्टी और दस्त होकर संखिया निकल जावे तो मनुष्यका बचना संभव हो सक्ता है। इसके लिये इन दोनों क्रियाओंको सहायता पहुंचाना उचित है, उल्टी शुरू होते ही गर्म पानी अथवा दूध रोगीको पिलाते रहे उल्टी न आवे तो गलेमें अंगुली डालकर उल्टी करानी, इपीकाक्युआ अथवा नमक व मैनफल पानीमें डालकर उल्टी कराना। अथवा वृंदालका पानी मिलाकर उल्टी कराना, कदाचित उल्टी न आती होय तो (स्टमकपंप) को काममें लाना और इससे ओझरीको धो डालना विशेष करके संखिया खानेवालेको उल्टी अवश्य ही आवेगी। स्टमकपंपको काममें लानेकी आवश्यकता नहीं पडती, यदि ओझरीमें जह-रका असर पूरे तौरसे हो गया होय तो उसमें वरम उत्पन्न होनेसे नलमें स्टमकपंपकी नली प्रवेश करनेमें विशेष इजा पहुंचना संभव है। दस्त होनेके लिये अरंडीका तैल दुग्धमें मिलाकर देवे, पिलाश अधिक लगे तो पुस्कल जल सरवत मिलाकर देवे अथवा चूनेका नितराहुआ जल पीनेको दे ओलीवओइल पीनेको देवे। विषघ्न औषध ऊपर कथन कियेहुए पदार्थोंसे उल्टीके साथ सोमल बाहर निकल पडता है और इस

प्रवाहमें मिश्रित होनेसे दाह कम होता है। इसके शिवाय दूसरी दवा देनेसे संखियाका विष अटकता है हाईड्रेडसेस्कवीओक्षाईड आफ आयर्न हाईड्रेटेड ओक्षाईड आवमाग्नीशीयावणेलोमग्निशीया अथवा प्राणीजकोलसा देनेसे संखियाके विपसे मनुष्यका बचाव हो सक्ता है लीकरफेरीमें लीकरआमोन्या मिलानेसे हाईड्रेटडओक्षाईड ओफआयर्न होता है, उसको गलाकर पानीमें डालकर धोवे और पीछे एक व दो तोला जलमें मिश्रित करके पिलावे। सल्फेट आव माग्निशीयाके द्रवमें लीकर पुटास मिलानेसे हाईड्रेटेडओक्षाईड आवमाग्निशिया हो जाता है, इसको गलाकर पानीसे धोकर पानी मिलाकर परिमित मात्रासे पिलावे और पैरोंमें भडकन तथा ऐंठन होय उसके लिये पैरोंको दाबना उचित है। सलफाईडआवआर्सेनिक दो जातिका होता है, एक पीला जिसको हरताल कहते हैं। दूसरा लाल रंगका जिसको मनसिल कहते हैं, प्रायः ये वस्तु रंगके काममें आती हैं और वैद्यक रसशास्त्रके अनुसार औषधियोंमें भी काम आती हैं परन्तु विशेष न्यून मात्रासे दी जाती हैं, यदि अपरिमितमात्रासे खाई जावें तो (ह्वाईटआर्सेनीकऐंडसल्फाईडओफ्आर्सेनीक—संखियां) के समान मृत्युप्रद होती हैं, और सब लक्षण संखियाके समान होते हैं।

यूनानी तिब्बसे संखियाका इलाज।

संखिया सम्पूर्ण विषोंमें बुरा और शीघ्र मारनेवाला है इसका सबसे उत्तम इलाज यह है कि ताजे करेलेको कूटकर उसका पानी निचोडकर पिलावे कारण कि इसके पीनेसे वमन आ संखिया बाहर निकल आता है। पपडिया कत्था महीन पीसकर जलमें मिलाकर पिलावे, यदि यह प्रयोग शीघ्र दिया जावे तो संखियेके कामको रोक वमनके द्वारा संखियेको निकाल देता है, ये दोनों प्रयोग प्रथम और दूसरे दर्जेतक अच्छा असर करते हैं।

पारा रसकपूर तथा पारदकी विकृति।

द्रवरूप पारद यदि मनुष्य खावे तो कुछ भी हानि नहीं करता क्योंकि उसी समय नलमेंसे गुदाके द्वारा बाहर निकल जाता है। लेकिन मूर्छित पारद खाया जावे और अपरिमित मात्रासे वे अन्दाज खालिया जावे तो संखियाके समान हानिकारक और मारक होता है। पारदकी कितनीही विकृति (बनावट) होती हैं जैसे रसकपूर (कोराझीवसल्बीमेण्ट) अथवा दालचिकना, हिंगुलू, (सिंगरफ) अथवा और भी डाक्टरी औषधियोंके अनुसार बनती है जैसे (रेड ओक्षाईड आवमर्क्युरी) अथवा अन्य बनावट ये सब विप समझे जाते हैं। रसकपूर अथवा पारदकी अन्य विकृति (बनावट हैं) उनकी अपरिमित मात्रा सेवन करनेसे मुख और गला आ जाता है, अन्नवाही नल और पक्काशयकी त्वचा जल उसके ऊपर चांदी पड

जाती हैं और पेरीटोन्यममें बरम हो जाता है, आंतरडामें बरम तथा चांदी उत्पन्न हो जाती है। प्रथम लेतेही मुखमें तथा गलेमें अग्नि जलती है। पेटमें भी दाह होता है, कुछ वस्तु निगलनेके समय गलेमें दर्द होता है, उल्टी होती है, दस्त लगते हैं, दस्तमें जलन और रक्त पडता है। दस्त जानेके समय विशेष नुकहना पडता है। समस्त पेटमें दर्द होता है, दाबनेसे अधिक पीडा माॡम होती है पेट फूलकर ऊंचा हो जाता है नाडी जल्दी चलती है ज्वर आ जाता है श्वास अधिक चलता है, हाथ पैरमें अकडाई आती है, और रोगी मृत्युको प्राप्त होता है। जो रस कपूरादि पारदकी कोई विकृति लेनेके थोडे समय पीछे रोगी जीवित रहे तो मुख विशेष आ जाता है, लेकिन ४ ग्रेनसे कम लेनेमें मृत्यु नहीं होती, सिफ्लिस् (उपदंश) आतशककी व्याधिवालोंको पारदकी कोई विकृति मुख लानेके वास्ते दी जाती है तो अधिक न्यून मात्रासे दी जाती है। पारदके अतिरिक्त तांबा, सोना, सोमल, ऐंटीमनी, वीझमथ डीजुडेलिस, अफीम, हाईड्रोश्यानिक आसिड आदिसे भी मुख आता है यह सिद्धांत डाक्टरी है। चिकित्सा इसकी यह है कि, आल्व्युमीन रसकपूरके लिये विषघ्न है अंडेमें सफेद पदार्थ होता है उसको आल्व्युमनि कहते हैं आल्व्युमीनके सिवाय गेंहूका चूर्ण (बारीकचून) दूधमें मिलाकर पिलाना अथवा लोहकी कीट गोंदके पानीमें मिलाकर पिलाना और दूध, पानी, गोंदका पानी आदि पीनेको देना वमनको बंद न करे, एरंडीके तैलका जुलाब देना, मुख और गले पकनेको बबूलकी छाल, कचनारकी छाल, फिटकरी आदिका कुल्ला कराना, दूध साबूदाना, तवाखीर आदि आहार देना। यूनानी तब्बीब कहते हैं कि कच्चा पारा तो जिसमें ठहरता नहीं मगर भरा हुआ पारा (मूर्छित) दिलमें दर्द, सूजन, ऐंठन जीभमें भारीपन और मूत्रको बंद करता है। इसके लिये शहदके पानीमें बूरा मिलाकर वमन करावे और उसीसे हुकना करे, १०॥ मासे बूरा शहदके पानीमें मिलाकर कई बार देवे, दूध और बुजूरका लुआब लाभदायक है। यदि जीवित पारद कानमें चला जावे तो वांयटे, खिंचाव और विशेष दर्द उत्पन्न करता है। बुद्धि हीन हो जाती है, वजन माॡम होता है, प्रायः सक्ता और मिर्गीकी व्याधि हो जाती है। इसके निकालनेका यह उपाय है कि राँगकी सलाई बनाकर कानमें आइस्तेसे करे कि पारा उसपर चिपटकर निकल आवे। वैद्यकके रसशास्त्रोंमें पारद दो भेदोंमें माना गया है, अशुद्धको विष और क्रियापूर्वक शुद्धको अमृतके तुल्य समझकर सकल रोगनाशक और आयुवर्द्धक माना है जैसा कि-

दोषहीनो रसो ब्रह्मा मूर्च्छितस्तु जनार्दनः। मारितो रुद्ररूपी स्यात् बद्धः साक्षात्सदाशिवः॥ आयुर्द्रविणमारोग्यं वह्निर्मेधा महद्बलम्।

रूपयौवनलावण्यं रसोपसनयाभवेत् ॥ यो न वेत्ति कृपाराशिं रसं हरिहरात्मकम् । वृथा चिकित्सां कुरुते सवैद्यो हास्यतां व्रजेत् ॥ शुष्केन्धनमहाराशिं यथा दहति पावकः । तद्वद्दहति सूतोऽयं रोगान् दोषत्रयोद्भवान् ॥

अर्थ—भारतवर्षीय वैद्योंने दोषहीन शुद्ध पारेको ब्रह्मास्वरूप, मूर्छितको जनार्दनका स्वरूप और मृत पारदको रुद्रस्वरूप और बद्धको साक्षात् सदाशिवका स्वरूप कथन किया है । आयु, द्रव्य, आरोग्यता, जठराग्नि, बुद्धि और अतिशय बल तथा रूप यौवन और लावण्यता ये सब रसोपासना (पारद सेवने) से होते हैं । जो वैद्य कृपासागर हरिहरात्मक पारेको नहीं जानता वह वैद्य वृथा चिकित्सा करता है और उसकी हँसी होती है । जैसे सूखे इंधनके समूहको अग्नि भस्म करती है उसी प्रकार तीनों दोषोंसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंको यह पारद दहन कर देता है । इस समयके रसाचार्य्य बाबू निरंजनदेवने भी यह सिद्ध कर दिया है कि यदि दुनियामें पारस मणि है तो पारदही है ।

ऐन्टीमनी ।

टारटर इमेटिक और कलोराइड आव ऐन्टीमनी परिमित मात्रासे अधिक लेनेपर विषके समान परिणाम होता है । टारटर इमेटिक औषधियोंमें काम आता है इसकी मात्रा $\frac{1}{6}$ से $\frac{1}{2}$ ग्रीनकी है, दो ग्रेन अथवा इससे अधिक सेवन किया जावे तो मृत्युकारक होता है और प्रमाणसे अधिक खानेवालेको वमन होने लगती है, यह वमनके साथ निकल जावे तो लेनेवालेको कुछ हानि नहीं पहुंचती । सोमलके समान ही इसके चिह्न होते हैं जो लक्षण सोमल विषके होते हैं उसी माफिक इसके होते हैं, वगैर पूछे ताछे चिकित्सकको यह ज्ञान होना बडा कठिन है कि इसने सोमल खाया है । अथवा ऐंटीमनी खाई है । क्योंकि सोमल और ऐंटीमनीके विषारि चिह्न विशेष अंशमें मिलते हुए हैं और रसायनिक गुणमें भी दोनों विशेष अंशमें मिलते हुए हैं । परन्तु इस पदार्थको प्रसिद्धिमें विषके समान नहीं वर्त्तते, इसके खानेवालेको उल्टी, दस्त, पेटमें वेदना होती है मुख और गला सूज जाता है । चिकित्सा—इसकी यह है कि सिन्कोना टिंकचर अथवा सिन्कोनाका चूर्ण गोंदके पानीके साथ देवे । अथवा माजूफल, हरड, वहेडा, आंवला इनका काढा करके अथवा हिम बनाकर देवे अथवा कत्था और अनार (दाडिम) की छालका काढा करके देवे दूध तथा गोंदका पानी देवे । उल्टीके वास्ते गलेमें अंगुली फेरे कदाच स्टमकपंपकी आवश्यकता भी इसमें पडती है ।

ताम्रविष तथा तुत्थ ।

न विषं विषमित्याहुस्ताम्रं तु विषमुच्यते ।
एको दोषो विषे सम्यक् ताम्रे त्वष्टौ प्रकीर्तिताः ॥

अर्थ—रसायनविद्याके ज्ञाता विषको तो विष नहीं कहते, क्योंकि वह प्रसिद्ध विष है सो उससे मनुष्य भयभीत होकर ग्रहण नहीं करता। परन्तु ताम्र गुप्त विष है इसको पौष्टिक योग समझकर बहुत लोग सेवन करते हैं, लेकिन विषमें तो एक मारक दोष है और ताम्रमें आठ दोष हैं। वान्ति, भ्रान्ति, ग्लानि, दाह, खुजली, दस्त, वीर्य्य नाश, शूल इसलिये वैद्यक रसशास्त्रमें जहां ताम्रकी भस्मकी विधि लिखी है वहां इन आठ दोषोंको निकालकर शुद्ध करके काममें लेना चाहिये।

ताम्रका भेद तुत्थ व तूतिया ।

ताम्रविषमें मुख्य करके मोर तूतिया भी विष है। इसके अलावे जंगालभी ताम्रका जहरी क्षार है ये दोनों वस्तु प्रायः रंग आदिके काममें आती हैं। वैद्यक तथा यूनानी तिब्बके औषध प्रयोगोंमें भी ली जाती हैं, इनका स्वाद कुछ तुरसी लिये हुए कषायला होता है सो विश्वासघात करके कोई देवे तो मालूम हो जाना संभव है। यदि कोई बे समझ खालेवे तो इसके चिह्न नीचे लिखे प्रमाण होते हैं, यह एक प्रकारका क्षोभक विष है, इसके खानेसे पेटमें दर्द होता है, दस्त और उल्टी होने लग जाती है, उल्टी और दस्तमें मोरतूतिया अथवा जंगालका रंग होता है। उल्टी लाना मोर तूतियाका एक मुख्य गुण है वमन करानेके लिये इसकी ८ व १० रत्तीकी मात्रा दी जाती है, इससे मृत्यु तो कम होती है परन्तु उल्टी और दस्त होकर मनुष्य विशेष निर्बल हो जाता है। लेकिन ८। १० रत्तीसे अधिक खाया जावे तो उपरोक्त उपद्रव होनेके अनन्तर हिचकी उत्पन्न होकर मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। इस जहरसे मृतक मनुष्यकी लाशको अप्रेसन किया जावे तो पेट तथा आंतरडामें मोरतूतियाको रंग मालूम पडता है, सोमलके समान (दग्ध) हुआ मालूम होता है, किसी २ स्थल-पर चांदीभी मालूम होती है। चिकित्सा—इसकी यह है कि अल्ब्युमन देना दूध, गोंदका पानी गेहूँका आटा, तथा रसकपूरके समान उपचार करना और उल्टी बराबर होने देवे उल्टीको बन्द न करे।

मुर्दासंग ।

मुर्दासंग भी जहर है प्रायः यह रंग और विशेष करके यूनानी दवाओंमें काम आता है और यह सीसेकी विकृति व उपधातु मालूम होता है। संखियाके समान काटने-वाला गुण भी इसमें पाया जाता है, यूनानी तबीब इसका सुजाकके जखमकी पिचका-

रीमें काम लेते हैं, परंतु यह इस कामके लिये बहुत खराब वस्तु है । इसके खानेसे शरीर सूज जाताहै, मांस फूलकर लेथडेसे हो जाते हैं और कुलंजको उत्पन्न करता है। मुखमें खुश्की रहती है जीभ और आमाशय भारी हो जाते हैं । किसीको विशेष दस्त होने लगते हैं और पीछे शरीरमें बांयटे आने लगते हैं । आंतरडामें जखम हो जाते हैं, यदि रोगी अधिक समय पर्य्यन्त जीवित रहे तो उसके शरीरके ऊपर भी जखम पड जाते हैं । चिकित्सा इसकी यह है कि अंजीर, सोयाके वीज, पपडिया नमक इनके काढेको पिलाकर रोगीको कई वार वमन करा दस्तावर जवारिस देकर अथवा निसोतका चूर्ण वदाम रोगनसे चिकना कर तबीयतको नर्म करे, इसमें शराव भी विशेप गुणकारी है । १०॥ मासे वूल और ७ मासे वालछड इनका चूर्ण करके शहद अथवा शरावके साथ देवै, ऐसीही मुहताज ४ वार देनेसे विशेप लाभ पहुंचता है । हमाममें लेजाकर रोगीको पसीने लानेका उपाय करे, लारका वहना भी लाभ पहुंचाता है । ३॥ मासे फरफयून और १॥। मासे काली मिर्च इनका चूर्ण करके शरावके साथ देनेसे पसीने आ जाते हैं । मूत्रका आना भी इसमें लाभदायक है । अजमोद, वूल, अफसंतीन प्रत्येक ९ मासे इनका चूर्ण करके अजमोदके पानी अथवा शरावके साथ देनेसे मूत्र आ जाता है ।

विषतिन्दुक जहरकुचिला (नक्षवोमिका)

फलविपोंके नाम ऊपर लिखे गये हैं ।परन्तु यह फल जहर कुचिलाका समस्त वृक्ष विपैला है, लेकिन और भागोंकी अपेक्षा इसका वीज सर्वोपारि जहरी है, (यह वीज फलके अन्दरसे निकलता है इसकी आकृति गोल होती है, और अतिकाठिन होता है इसका वीर्य्य (सत्वयूरोपसे आता है जिसको स्ट्रीकनिया कहते हैं, कुचिला आयुर्वेद, यूनानी, डाक्टरी, सब ही प्रकारकी औपधियोंमें काम आता है । यह विशेष कटु होता है कितने ही लोग इसको पशु तथा कृमि मारनेके काममें लेते हैं । जहर कुचिला खानेवाले मनुष्यके चिह्न धनुर्वायु रोगसे मिलते हुए होते हैं, इस विषको खानेके पीछे थोडे समय अथवा एक दो घंटेके वादही चिह्न शुरू हो जाते हैं । इसके सब लक्षण धनुर्वातके लक्षणोंमें देखना योग्य है, जैसे धनुर्वातवालेकी दांती मिच जाती है हाथ पैर तथा सम्पूर्ण शरीरमें खिंचाव पडता है । धनुर्वात तथा कुचिलाके जहर भक्षणमें नीचे लिखे प्रमाणे अन्तर होता है । १ कुचिला विषके चिह्न आरम्भमें ही स्पष्टरूपसे जान पडता है और इसके चिह्न शीघ्र वढने लगते हैं । १ धनुर्वातके चिह्न प्रथम स्पष्टरूपमें नहीं होते और धीरे २ वढते हैं । २ कुचिला० शरीर स्वच्छ स्नायु प्रथम खिंचती है, पीछे जावडा वन्द होकर दान्त मिचकर वैठ जाते हैं । २ धनुः० प्रथमसे ही जावडा वन्द होकर दांत खिंचकर वैठ जाते हैं और पीछे शरीरकी

कितनीही स्नायु खिंचने लगती हैं। ३ कुचिला० आरम्भमें ही शरीर बाह्यायामकी गति पर मुडने लगता है। धनुः० पीछेसे धीरे २ बाह्यायामकी गतिपर शरीर मुडता है। ४ कुचिला० शरीरमें खिंचाव ठहर ठहर कर आता है, जब खिंचाव न पडता होय तब बीचके समयमें रोगी अच्छा जान पडता है। ४ धनुः० खिंचाव पडकर थोडा कम हो जाता है तो भी शरीर खिंचाहुआ रहता है। ५ कुचिला० रोगी ४। ६ घंटेमें मृत्युको प्राप्त होता है अथवा अच्छा होने लगता है ५ धनुः० रोगी एक दो दिवस अथवा इससे अधिक समयमें मृत्युको प्राप्त होता है अथवा अच्छा हो जाता है। कुचिला अथवा उसकी कोई विक्रति खानेके पांच दश मिनिटसे लेकर आधा घंटाके भीतर अथवा बाहर जहरके चिह्न शुरू हो जाते हैं। कभी २ ऐसा होता है कि दश बीस मिनिटमें ही मरण हो जाता है। अधिकसे अधिक ६ से लेकर १० घंटेके अन्दर मरण होता है जहरकुचिलाका चूर्ण अर्द्धा ड्राम ३० ग्रेन अनकरीब १५ रत्ती २ मासेके खानेसे स्ट्रीकनीया आधा ग्रेन पाव रत्ती खानेसे, ऐक्स-ट्राक्ट ३ व ४ ग्रेन १॥ व दो रत्ती खानेसे मनुष्यके जीवनको हानि पहुंचना संभव हो सक्ता है। चिकित्सा इसकी यह है कि वमन कराना, जुलाब देना, यदि जहर कुचिलाके लक्षण माळूम पडें तो उसी समय कलोरोफार्म सुंघाना अथवा कलोरलहाईड्रेट पारिमित मात्रासे देना। कुचिलाके विषपर कलोरलहाईड्रेट विपघ्न है इसके अथवा कलोरोफार्मके नशेमें मनुष्यको रख टानिक आसिड और चाह्र आदि देवे।

हाईड्रोश्यानिक आसिड।

आसिड तेजावको कहते हैं। हाइड्रोश्यानिक आसिड और उसका क्षार साया-नाईड आफ पोटाश्यम ये विषके तरीकेसे अपने भारतमें प्रसिद्ध नहीं हैं पोटाश्यम-सोमानाईड प्रायः फोटोग्राफीके काममें आता है और हाईड्रोश्यानीकआसिड हालाहल विष है। डाक्टरोंके सिद्धान्तमें इसके समान शीघ्र मारक दूसरा विष कोई नहीं है, यह पनिमें कडुवा माळूम होता है इसके पीते ही विषके चिह्न प्रगट हो मनुष्य बेहोश हो जाता है। श्वास रुकने लगता है, कुछ अन्तरसे चलता है नेत्र फटे रह जाते हैं नेत्रकी पुतली विस्तृत रहती है पसीना शरीरपर आने लगता है, शरीर शीतल और शिथिल हो जाता है। नाडी विशेष क्षीण हो जाती है अंगु-लीके स्पर्शसे नहीं लगती मुखमेंसे फेन आने लगता है। नख काले पड जाते हैं, गलेमें जलन हो मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है। यदि यह आसिड थोडा लिया होय तो घंटा दो घंटा मनुष्य जीवित रहता है, यदि अधिक लिया होय तो १०।२० मिनि-टम मत्यु हो जाती है। कमसे कम ४५ विन्दु डाईल्युटआसिडसे भी मरण हो जाता

है। चिकित्सा इसकी यह है कि शीघ्र वमन कराना और जहांतक हो सके वहांतक शीघ्र स्टमकपंपसे ओझरी धोकर विषको निकाल मुखपर शीतल जल छिडकना। गर्म कपडासे रोगीके शरीरको ढककर रखना शरीरपर सेंक देना विजली लगा उष्णोपचार करना आक्साईडआफआयर्न अथवा कलारीन इस विषके लिये विपघ्न औषधियोंके देनेके योग्य इस विषपर समय नहीं रहता, क्योंकि १० वीस मिनिटमें किसी औषध देनेका मौका ही नहीं मिलता।

वच्छनाग विष अर्थात् मीठा तेलिया ऐकोनाईट।

वच्छनाग विष वैद्यकके विष प्रकरणमें ऊपर आ चुका है यह कन्द है इसकी दो जाती होती हैं एक सफेद दूसरी काली। सफेदको दूधिया और कालेको तेलिया भी वोलते हैं, यह वैद्यक तथा डाक्टरी औषधियोंमें काम आता है। इसका कन्द वैलके छोटे सींगके समान होता है सो कोई २ इसको सींगिया वच्छनाग भी वोलते हैं। यूरोपियनलोग इसका रसायन प्रक्रियासे सत्व भी निकालते हैं जिसको (एकस्ट्राक्टओफएकोनाईट) कहते हैं। वच्छनाग तथा इसका सत्व एक मुख्य विष है, खानेके साथमें दगा करके दिया जाता है अथवा कभी २ भूलसे भी खा लिया जाता है। इसके खानेवालेके मुखमें सबसे प्रथम चमचमाहट होता है इसी प्रकारके चिह्न ओठ और जीभ पर भी होते हैं। मुख मल और ओझरीमें अग्निके समान दाह होने लगता है, मुखमेंसे जल स्राव होता है वमन आने लगती है कलेजेपर दर्द होता है। शरीर काँपने लगता है नेत्रोंके सामने अन्धकार मालूम होता है कानोंमें घोंघों शब्द होता है। शरीरपर शून्यता आ जाती है छातीमें धकर २ होने लगती है हाथ पैरोंमें हडफूटन होने लगती है। शरीरकी शक्ति नष्ट होने लगती है मुखमेंसे फेन आने लगते हैं नाडीकी गति अनियत चलती है श्वास प्रश्वासकी गति मन्द पड जाती है। शरीरपर पसीना आने लगता है वाणी बन्द हो अन्तके दर्जे मृत्यु होती है। इस विषके खानेवालेको अन्त समयसे कुछ प्रथमतक बेहोशी बहुत ही कम होती है और एकाएकी मृत्यु हो जाती है, इसमें रक्ताजयकी शिथिलता होनेसे मृत्यु होती है। आधा ड्राम वच्छनाग खानेसे अथवा १ ड्राम टिंकचर एकोनाईट अथवा ४ ग्रेन (दो) रत्ती एक स्ट्राक्ट-एकोनाईट खानेसे मृत्यु हो जाती है। चिकित्सा इसकी यह है कि वमन कराके विषको निकाल जुलाव दे आमोनिया और ब्रांडी पिलानी गोंदका पानी पिलाना।

धतूरा स्ट्रामोन्यम।

धतूरा काला और सफेद दो जातीका होता है इसके वृक्षका सर्वाङ्ग विष है, परन्तु फलमें कुछ विशेषता पाई जाती है। प्रायः बीजही विशेष करके काममें आते हैं, कोई तो इसको खानेमें देता है और कोई चिलममें तमाकूके साथ बीजको रखके

धूंआ पिला देता है इससे प्राणहानि तो कम देखी जाती है परन्तु लूटने चोरी करनेके लिये इसको लोग दगासे खिला देते हैं, जब मनुष्य बेमान हो जाता है तब अपना मतलब सिद्ध कर लेते हैं। थोडा धतूरा खानेसे तो मनुष्य मरता नहीं है लेकिन अधिक खाया होय तो इसका परिणाम खराब होता है। प्रायः धतूरेका तेल बीजका चूर्ण रोटी आदि खानेके आहारमें मिलाकर दगाबाजीसे दिया जाता है, धतूरा खानेके पीछे आधेसे लेकर एक घंटेके बाद उसके चिह्न होना आरम्भ हो जाते हैं। गला सूखने लगता है पिलास विशेष लगती है, मस्तक फिरने लगता है, यदि रोगी चलता होय तो ऐसा माळूम होता है कि जमीनमें किसी वस्तुको ढूँढता है। नेत्रकी पुतली विस्तृत हो जाती है और नेत्र रक्तवर्ण हो जाते हैं, चेहरा भी लाल जान पडता है। मनुष्य बडबडाने लगता है कपडोंपरसें कुछ बीनता होय अथवा सूत कातता होय या वायुमेंसे किसी पदार्थको पकडता होय इस प्रमाणे हाथकी गति और चेष्टा करने लगता है, इसके बाद ऐसी दशा हो जाती है कि मनुष्यको नहीं पहचान सक्ता अन्तके दर्जे बेभान हो जाता है नाडीकी गति तीव्र चाल पर हो जाती है। यदि विशेष धतूरा खाया होय तो नाडी क्षीण होकर शरीर ठंढा पड जाता है और अन्तके दर्जे मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। धतूरा खानेवाला जो अच्छा होने-वाला होय तो बेहोशीमें प्रलाप करने लगता है और धीरे २ जहरका जोश घटनेपर होशियारीमें आने लगता है, धतूरेके चार पांच बीज खानेसे ही उसके विषका असर प्रगट होने लगता है। इसका असर एक दो व तीन दिवस पर्य्यन्त रहता है और कभी २ इससे भी अधिक समय पर्य्यन्त रहता है। मरण होनेके अनन्तर धतूरा खानेवाले मनुष्यकी लाश अप्रेशन की जावे तो ओझरी तथा आंतरडामेंसे धतूरेके बीजके परमाणु मिलते हैं, जो बीज साबत खिलाये गये हों तो मिरचके तथा बैंगनके बीजसे जरा मोटे और इसी आकृतिके साबत भी मिलते हैं। यदि अति सूक्ष्म चूर्ण करके खिलाये गये होयँ तो मिलना कठिन है, परीक्षा करना कठिन हो जाता है लेकिन होशियार चिकित्सक नेत्रकी पुतली विस्तृत होनेसे तथा हाथकी संचालन गति और प्रलाप करना इनहीं तीनों चिह्नोंसे धतूरेका निश्चय कर लेते हैं। चिकित्सा इसकी यह है कि प्रथम रोगीको शीघ्र वमन करावे और सल्फेट् आवझींक इपीकाक्यु-आना, कार्बोनेट आवआमोन्या अथवा मैनफल इत्यादि औषधियोंमेंसे जो शीघ्र प्राप्त हो सके उसको देकर वमन करावे। गर्म जल पिलाकर पीछे अंगुली डालकर गले और जीभको घिसना, इससे पीछे उलटीमें निकल आवे, उलटी करानेके अनन्तर अरं-डीके तेलका जुलाब दे शिरपर शीतल जल डालना। अथवा शीतल जलके छींटे मारना शरीर शीतल और नाडी क्षीण हो रोगी बेमान होय तो ऊष्णोपचारसे शरीरमें गर्मी

उत्पन्न करना । वेलोडोना तथा हायोसाइमना विषके चिह्न धतूरेके समान होते हैं, इनका उपाय भी धतूरेके समान करना चाहिये ।

अहिफेन अफीम ओपीयम ।

अफीम एक प्रसिद्ध वस्तु है एक फलका रस है और परिमित मात्रासे दी जावे तो निद्रा लाती है और शरीरमें किसी प्रकारका दुःख होय तो इसके नशेमें मनुष्य पड़ा रहता है । इससे दुःख शमन करनेको उत्तम औषध है, लेकिन अपरिमित खानेसे विषके समान काम करती है और अनेक मनुष्यका इससे मरण भी हो जाता है । कितने ही मनुष्य अफीमको जवानीकी उमर ढलनेपर इन्साक और स्तम्भनके शोकके लिये खाने लगते हैं, कितनी ही मूर्ख स्त्रियां अपने दूध पीनेवाले बच्चोंको अफीमके संयोगकी वाला गोली अथवा खालिश अफीम देकर सुला आप कामकाजमें लगी रहती हैं । अफीमका मुख्य सत्व मोर्फिया यूरोपसे निकल कर आता है, दूसरी मेकोनिक-आसिड है और अफीमकी पैदायश इस देशमें होती है, इसमें लोग दूसरे कृत्रिम पदार्थोंका संयोग भी कर देते हैं । प्रायः एलुवा तथा ऐसी ही दूसरी वस्तु मिला देते हैं, अफीम प्रायः स्वात्महत्या करनेको विशेष करके लोग खा लेते हैं । इसका स्वाद कटु होनेके कारण परहत्या करनेको काममें नहीं आ सक्ती । अफीमके विषके चिह्न निद्राके समान हैं, इसके खानेके पीछे घुमेर आती है जी घुटने लगता है वेहोशी आने लगती है और आहस्ते २ वेहोशी वढकर पूर्णरूपसे मनुष्य बेभान हो जाता है । प्रथमकी वेहोशीमें चिल्लाकर कुछ वोला जावे तो कुछ २ जवाव देता है लेकिन कुछ समय निकलने पर वेहोशी वढ जाती है, तव कुछ भी जवाव रोगीकी ओरसे नहीं मिलता, श्वास प्रश्वासकी गति मन्द हो जाती है और नाडी भरहुई मन्द गतिसे चलती है । वारीक तथा मन्द चलती है शरीर जरा गर्म और कुछ पसीना युक्त होता है, नेत्रकी पुतली संकुचित हो जाती हैं, नेत्र वन्द हो जाते हैं श्वास घुटने लगता है, चेहरा फीका माल्म होता है, ओठ और हाथोंपर स्याहीकी झलक मारती है दस्त वन्द हो जाता है । पेट फूल जाता है मरणसे प्रथम शरीर शीतल हो जाता है और नेत्रकी पुतली भी संकोच त्यागकर विस्तृत हो जाती है, नाडीका स्पर्श माल्म नहीं होता श्वास कुछ अन्तरसे आन २ कर वन्द हो जाता है । कदाचित रोगी इस सद्माको सहन करके अच्छा होनेवाला होय तो कुछ २ शुधमें आने लगता है । किसी २ को वमन और मस्तक पीडा भी होती है, यदि अफीम थोडी भक्षण की होवे तो हिचकी प्रलाप धनुर्वात उन्मादादि लक्षण होते हैं । अफीमसे मरनेवालेका स्वरूप मृत्युके अनंतर सद्रूपमें होता है शरीरमें ऐसा कोई फेरफार अथवा निशान नहीं होता कि जिससे यह मालूम होवे कि अफीम खाई है, किंतु रसायनी परीक्षासे मेकोनीक

पेटमें है कि नहीं इसका निश्चय हो सक्ता है । इसीसे अफीम खानेका सावूत अथवा नासावूत मिल सक्ता है, मगजकी रक्तनलियां रक्तसे विशेषरूपमें भरीहुई होती है, ओझरीमें अफीमकी वास आती है । अफीम खानेके पीछे एक घंटेके बाद उसके जहरके चिह्न जान पडते हैं विशेष करके अफीमवालेकी मृत्यु १८ से ३० घंटेके दरमियानमें होती है, जो लोग अफीम् कभी नहीं खाते उनकी मृत्यु ३ । ४ रत्तीसे ही हो जाती है और किसी २ की मृत्यु दो रत्तीसे ही होते देखी गई है । बालकको बहुत थोडी अफीमसे ही जीवहानि पहुंचती है, प्रायः इस देशमें अफीम खानेके बन्धानी जो कि नियमपूर्वक प्रतिदिवस खाते हैं ऐसे लाखों मनुष्य हैं उनका शरीर दुर्बल होता है उनको दस्त साफ नहीं आता अग्नि मन्द रहती है मानसिक शक्ति निर्बल हो जाती है सौर्य्यत्व नष्ट हो जाता है, स्मरणशक्ति संकल्प विकल्पमें फँस जाती है चेहरा चमत्कार दीख पडता है । विशेष करके अफीमी मनुष्य छोटी उमरमें ही मरण पाते हैं, यूनानी तबीब कहते हैं कि जो अफीम तैलमें मिलाकर थोडी भी खाई होय तो इसका उपाय दुनिया भरमें नहीं है । चिकित्सा इसकी यह है कि अफीम खानेवालेको वारबार वमन करावे, गर्म जल पीकर गरारह करे सल्फेटओफझींक आधा ड्राम पानीमें मिलाकर पिलावे गर्म जलमें राईका चूर्ण मिलाकर पिलावे । मैनफलके गर्भका पानी पिलावे, यदि रोगी बेभान हो गया होय तो स्टमकपेंपका उपयोग करना, पेंपकी दांतोंमें रखनेकी नली लकडी व धातुकी होती है । उसको दांतोंमें लगाकर और ओझरीकी नलीसे घृत व तैल चुपडकर उसके आगेका भाग जरा टेढा मोडकर गलेमें प्रवेश करके गलेसे नीचे उतार देवे, यह सरलतासे ओझरीमें सरक जाती है । इस पेंपके वाहरके शिरेके साथ पिचकारीका संयोग करके गर्म २ जल अंदर पहुंचाना ज्यों २ पिचकारी दवाते जाओगे त्यों २ जल ओझरीमें पहुंचकर उसके जहरको अपनेमें उठा लेगा, फिर ओझरीमेंसे जलको खींचलो बाहर निकलेहुए पानीमें अफीमकी वास न होय वहांतक बराबर ओझरीको धोना और सब अफीमको बाहर निकाल लेना । अफीम खायेहुए रोगीको नींद न लेने देवे नहीं बेभान हो जायगा । मुख तथा शरीरके ऊपर ठंढे जलका भीगाहुआ कपडा रखना अथवा शीतल जलके छींटे लगाना रोगीके दोनों हाथ व खवे पकडकर इधर उधर फिरा उसको बातोंमें फँसाकर बातचीत करना नासिकाके आगे आमोन्या रखना । यदि आमोन्या जहांपर न मिले तो एक शीशीमें नौसादर और चूना मिलाकर रखना, वमन करानेके पीछे अथवा ओझरी धोनेके पीछे गूंदका काथ करके पिलाना, यदि गोंद न होय तो चांह पिलाना । यदि रोगी विशेष गैरहोशीमें होय तो विजलकी बेटरी लगाना और अन्तके दर्जे कृत्रिम श्वास लानेकी क्रिया करना । यदि मोर्फिया भूलसे दवाओंमें अधिक खा लिया जाय तो इसके चिह्न भी अफीमके समान होते हैं, लेकिन अफीमके चिह्नोंकी अपेक्षा मोर्फियाके चिह्न अति शीघ्र उत्पन्न होने लगते हैं ।

यूनानी तवीव कहते हैं कि सोयाके बीज और मूलीके बीज दोनोंको समान भाग लेकर क्वाथ बनावे, और उसमें शहद मिलाकर पिलावे इससे वमन आवेगी और तेज दस्तावर दवा देकर जुलाव करावे और तिरियाक मरूदीतूस देवे, तिरियाक न मिल सके तो हींग और शहदके पानीमें दालचीनी और कूटका सफूफ मिलाकर पिलावे (यह प्रयोग ठीक काम देता है एक समय हमारी परीक्षामें आ चुकां है) जुन्देवेदस्तर सुंघानां और कूटका तैल शिरपर मलना लाभदायक है ।

कनेरका मूल (जड)

कनेरका वृक्ष विषवाला है इसको कोई पशु नही खाता, इसकी जडको किसी २ समय कोई २ मनुष्य स्वात्महत्या करनेको खा लेता है । इसके खानेसे घुमेर आती है और वेहोशी आती है इसके अतिरिक्त कुछ समयके पीछे शरीरमें खिन्चाव पडने लगता है, अन्तको नाडी निर्वल पड जाती है शरीर ठंढा हो जाता है श्वास घुट मृत्यु होती है । उपाय इसका यही है कि जहांतक हो सके शीघ्र वमन और विरेचन करावे ।

भांग गांजा चरस (कयानावीस इंडीका ।

भांग, गांजा, चरस ये तीनों एक वृक्षके जहरी अवयव हैं, लेकिन इनके जहरसे मृत्यु होनेका प्रमाण अभीतक अपने देखनेमें नहीं आया, वैरागी जोगी धूनी तपनेवाले खाकी वेषधारी लोग अथवा धतिया गृहस्थ लोग चरस और गांजाको चिलममें रखके धूआँ चूसते हैं, इस धूएँसे नशा चढता है और इसके पीनेवालोंको आह्लाद प्राप्त होता है, इसी आह्लादके लिये तथा ठंढक निद्रा और विशेप आहार करनेके लिये भांग पीते हैं । उत्तर भारत तथा मथुरा इसके समीपवर्त्ती नगरोंमें भांग पीनेकी विशेप रवाज है, मथुराके चौवे तो भांगके कृमि हैं । अधिक भांग गांजा चरस पीनेसे नेत्र लाल हो जाते हैं वेपधारी लोग इसी कारणसे पीते हैं कि उनके नेत्रोंकी लालीको देखकर लोग कहते हैं कि तपस्याके प्रभावसे महात्माके नेत्रोंमें तेज आ गया है । चेहरा लाल हो जाता है मनुष्य इसके नशेमें पागलके समान वातें करता है, अन्तके दर्जे निद्रा आ जाती है । अथवा कोई मनुष्य इसके नशेमें उन्मादपन करता है, हँसता है वकता है और अन्य मनुष्योंको मारनेके लिये दौडता है । भांगमें दो गुण अच्छे हैं एक तो भूँख लगाती है दूसरे निद्रा लाती है, कोई मनुष्य रोगकी वेदनासे त्रास पाता होय तो इसके अथवा अफीमके देनेसे उसको निद्रा आ जाती है । इसी कारणसे भांगको देशी औपधियोंमें काम लेते हैं, इसके अधिक सेवनसे वेहोशी भी हो जाती है । कितने ही समय पर्य्यन्त मनुष्य वेमान पडा रहता है किसीको इसके नशेमें कामोत्तेजना होती है कोई २ मनुष्य भाँग पीनेके उपरान्त कई दिवस

पर्य्यन्त पागलके समान रहता है। चिकित्सा इसकी यही है कि वमन कराना इसके अनन्तर जुलावकी दवा देनी और शरीरपर शीतल जल छिडकना नासिकाके आगे आमोनिया रखना।

मद्य, ईथर कलोरोफार्म।

इन तीन वस्तुओंके चिह्न अधिकांश एक समान होते हैं, इनके लेनेसे प्रथम उल्लास होता है इसके बाद घुमेर आती है। मनुष्य बडवडाने लगता है इसके अनन्तर बेभान हो जाता है और विषका जोश अधिक होय तो रक्ताशयकी रक्त संचालन गति मन्द होकर मगजमें रक्त संचय होकर मृत्यु हो जाती है। मरणके पूर्व नेत्र पुतली विस्तृत हो जाती है, श्वास प्रश्वास विशेष कम तथा अधिक २ समयके अन्तरसे चलता है नाडीकी गति मन्द और धीमी पड जाती है मुख, हाथ काले पड जाते हैं शरीर ठंढा हो जाता है। चिकित्सा इसकी यह है कि वमन कराना और स्टमकपंपसे धोकर ओझरीको साफ करना, शीतल जल मुख और शरीरपर छिडकना नासिकाके आगे आमोनिया रखना, मुखके रास्तेसे कापी देना। यदि गफलतके कारणसे मुखके मार्गसे न जा सके तो गुदाके मार्गसे कापी और आमोनिया पहुंचावे, विजली लगाना कृत्रिम श्वास प्रश्वास उत्पन्न करनेकी क्रिया करे शरीरको गर्म रखे और मशलता रहे कलोरोफार्मकी स्थितिमें मस्तक नीचेकी ओर ढलता हुआ रखे।

तमाकू सुर्ती टोबाको।

प्रायः तमाकू खानेका महावरा इस मुल्कके अनेक मनुष्योंको होता है, कोई इसका धूंआ पीता है, कोई सूक्ष्म चूर्ण करके (हुलास) नाकमें सूंवता है। इसके सेवन करनेवालेंको इसके विषको सहन करनेकी कुछ सामर्थ्य हो जाती है, परन्तु जो नहीं खाते हैं और सूंघने पीनेमें नहीं लेते उनको इसके सेवनसे विषके तुल्य परिणाम होता है। एक तबीबने कहा है कि एक ओंस २॥ तोला तमाकूका सत्व निकाल कर खाया जावे तो ७ मनुष्योंकी मृत्युके वास्ते ठीक है, प्रत्यक्षमें देखा जाता है कि तमाखूका विष चढनेवालीकी प्रथम नाडी जरा तेज चलती है। इसके बाद घुमेर आने लगती है हिचकी आती हैं चक्कर और उल्टी शुरू हो पीछे नाडी मन्द पडती जाती है। शरीरमें भडकन होने लगती है शरीर शिथिल होकर रक्ताशयकी संचालन क्रिया बन्द हो जाती है, किसी २ समयपर मृत्यु हो जाती है। चिकित्सा इसकी यह है कि उल्टी करानी अरंडीके तैलका जुलाव देना कभी २ ऐसा होता है कि तमाकूके पत्र शरीरपर लगाकर बांधनेसे वमन विषके चिह्न प्रगट होते हैं परन्तु कुछ समयमें शान्त हो जाते हैं।

इनके अतिरिक्त भिलावा, एलुआ, इन्द्रायण, जैपाल, थूहर, आक आदि भी वनस्पति विष हैं । यूनानी तवीव जंगली प्याज, कुटकी, रेवतचीनी, काला जुन्देवेदस्तर, मकोय, कुम्भनी, तुंतलीके पत्र, वहेडाका मगज इनको जहरी कथन करते हैं । किसी रोगपर जहरी वस्तुओंके देनेकी आवश्यकता पडे तो इसका विचार पूर्व करलेना कि कितनी मात्रा मनुष्यकी प्रकृतिके अनुकूल हो शरीरको हानि न पहुंचावेगी । विषोंकी अपरिमित मात्रा देनेसे चिकित्सक भी राजदण्डका भागी होता है ।

कृत्रिम श्वास लानेकी विधि ।

ऊपर कृत्रिम श्वास उत्पन्न करनेके विषयका कथन आया है उसकी यह विधि है कि प्रथम रोगीको सीधा सुलाकर उसकी पीठके नीचे एक मोटा भारी तकिया रखे, जिससे शरीरके ऊपर नीचेका भाग नीचा रह वीचके धड और पेटका भाग ऊँचा रहे फिर उसके पेटपर दवाव दोनों हाथसे करे कि पेटकी हवा वाहरको निकल जावे, जब अन्दरकी हवा वाहर निकल जावेगी तो फिर वाहरकी हवा अन्दर जानेकी कोशिश करेगी । जव वाहरकी हवा अन्दर जानेलगे तव पेटके दवावको जरा ढीला कर देवे, जव हवा पेटमें भर जावे तव हाथके दवावसे उसको वाहर ढकेल कर निकाल देवे और पीछे दवावको ढील करदेवे कि पुनः हवा वाहरसे पेटके अन्दरको आवे इस क्रियाको एक घंटे वरावर जारी रखे । यदि रोगीकी जिन्दगी होगी तो अवश्य इस क्रियासे उसके श्वास प्रश्वासका आवागमन होने लगेगा ।

सर्पदंश जंगम विषकी चिकित्सा ।

(आयुर्वेद सुश्रुतसे सर्पोंके भेद ।

दर्वीकरा मण्डलिनो राजिमन्तस्तथैव च । निर्विषा वैकरञ्जाश्च त्रिविधास्ते पुनः स्मृताः ॥ दर्वीकरा मण्डलिनो राजिमन्तश्च पन्नगाः । तेषु दर्वीकरा ज्ञेया विंशतिः षट् च पन्नगाः ॥ द्वाविंशतिमण्डलिनो राजिमंतस्तथा दश । निर्विषा द्वादशज्ञेया वैकरंजास्त्रयस्तथा । वैकरञ्जोद्भवाः सप्त चित्रा मण्डलिराजिलाः ॥ पदाभिपृष्टा दुष्टा वा क्रुद्धा ग्रासार्थिनोऽपि वा । ते दशन्ति महाक्रोधास्तद्धि त्रिविधमुच्यते ॥ सर्पितं रदितं वापि तृतीयमथ निर्विषम् । सर्पाङ्गाभिहतं केचिदिच्छन्ति खलु तद्विदः ॥

अर्थ—दर्वीकर सर्प उनको कहते हैं कि जो फणवाले हैं, मण्डलिन जो कि फण रहित थूथडीवाले हैं । राजिमन्त जिनके शरीर लहरियादार लकीरें होती हैं, निर्विष

दुमहीं आदि, विषरहित, वैकरञ्ज जो अन्य जातिकी सर्पिणीमें अन्य जातिके सर्पसे गर्भ रहकर उत्पन्न होते हैं । इनके तीन भेद हैं दर्वीकर, मण्डलिन, राजिमन्त इनमेंसे दर्वीकर २७ प्रकारके होते हैं, मण्डलिन २२ प्रकारके राजिमन्त १० प्रकारके निर्विष १२ प्रकारके वैकरञ्ज ३ प्रकार के होते हैं। इनमेंसे भी वैकरञ्जसे उत्पन्न सात प्रकारके होते हैं और चित्रमण्डलि चार प्रकारके, राजिमन्त तीन प्रकारके सब मिलकर ८७ होते हैं । परन्तु आगे चलकर इसी सुश्रुतमें (एवमेतेषां सर्पाणामशीतिरिति) इस तरहसे ये सर्पोंकी ८० जाती हैं ऐसा कथन किया है । परन्तु हमारी समझमें देशकाल द्वीपान्तर और पृथिवीके भेदसे सर्पोंकी अनेक जाती हैं, अभीतक इनकी जातिकी गणना नहीं हो सकी है, चाहे सुश्रुतके समयमें इतनी ही जातिके सर्प होयँ लेकिन इस समयके लिये यह गणना ठीक नहीं है । सर्पके काटनेका कारण यह है कि पैरसे कुचलने अथवा दबनेपर व दुष्ट प्रकृतिवाला सर्प क्रोधको प्राप्त होकर अथवा किसी २ सर्पका स्वभाव ही ऐसा होय कि वह दौडकर व छुपकर दूसरे मनुष्य पशु पक्षी आदि प्राणियोंको काटा करे। जब ये सर्प काटते हैं उस समय इनको महा क्रोध होता है । इनके दंशके तीन भेद हैं । सर्पित, रदित, निर्विष, असलमें दंशके तीन ही भेद हैं चौथा सर्पाङ्गाभिहत यह केवल भयसे उत्पन्न हुआ भ्रममात्र है । जहांपर दांतोंके एक दो निशान होयँ और दांत मांसमें नीचे गड गये होयँ और उनके निकलनेपर थोडासा रक्त निकला होय काटनेके स्थानके समीपवर्त्ती अंकुर व दानेसे उत्पन्न हो गये होयँ उस स्थानपर कुछ सूजन जान पडती होय ऐसे दंशको सर्पित कहते हैं । जिसकी त्वचापर रक्तता लियेहुए नीली, पीली, सफेद धारियाँ होयँ उसको अल्प विषवाला रदित दंश कहते हैं । जिसमें अल्प सूजन अल्प दुष्ट रक्त होय मनुष्य अपनी प्रकृतिमें स्थित सावधान हो उसके एक व अधिक चिह्न होयँ उसको निर्विष दंश कहते हैं । चौथा जो सर्पांगाभिहत कहा इसका कारण यह है कि किसी डरपोक पुरुषको सर्पका स्पर्श हो जाय और भयके कारणसे वायु कुपित होकर सूजन उत्पन्न कर देवे इसको सर्पाङ्गाभिहत कहते हैं । व्याधित और उद्विग्नसे डसाहुआ अल्प विष होता है, अति वृद्धावस्थाके अथवा अति छोटे बाल्यावस्थाके सर्पके दंशका भी अति अल्प विष होता है । तरुणावस्थावाले सर्पके दंशमें पूर्ण विष होता है आगे जातिपरत्वसे अवस्थाके अनुसार उग्र विषत्व जैसा कि—" दर्वीकरास्तु तरुणा वृद्धामण्डलिनस्तथा । राजिमन्तो वयो मध्ये,जायन्ते मृत्युहेतवः ॥" अर्थात् दर्वीकर तरुणावस्थामें, मण्डलिक वृद्धावस्थामें, राजिमन्त मध्यावस्थामें मनुष्यको काटे तो ये अवस्था भेद मृत्युके हेतु हैं । सर्पोंमें अल्प विषत्वका कारण यह है कि नौलेसे भयभीत बालक उमरके अति कृश अति वृद्ध जल निवासी, कांचली रहित ये सब अल्प विषवाले हैं । निर्विष, गलगोली,

शूकपत्र, अजगर, दिव्यक, वर्षाहिक पुष्पशकली, ज्योतिरथ, क्षीरिका, पुष्पक, अहिपताक, अन्धाहिक, गौराहिक, वृक्षेशय, ये १४ निर्विष हैं । इनसे अतिरिक्त दर्वीकर, मण्डलिक, राजिमन्त, वैकरञ्ज इन चारों जातिमें जितने भेदके सर्प हैं सब विषवाले हैं, दर्वीकरके जो २७ भेद हैं वे महा उग्र विषवाले हैं । अब इन सर्पोंमेंसे जिनके नेत्र, जिह्वा, मुख, शिर ये बडे होते हैं वे पुरुषसंज्ञक नर हैं जिनके नेत्र, जिह्वा, मुख, शिर ये छोटे होते हैं वे स्त्रीसंज्ञक नारी जातिके हैं । तथा इन दोनोंके लक्षण जिनमें पाये जायँ और थोडे विषवाले क्रोध रहित होते हैं ये नपुसंक समझना । सर्पदंशके सर्पका विष दंशके जखममें जाता है इसका कारण यह है कि सर्पके ऊपरके जावडेमें प्रत्येक लर्मणकी ओर एक एक विष उत्पन्न करनेवाली थैली होती है उस विषकी थडीकी नलीका सम्बन्ध सर्पकी ऊपरली दाढके साथ रहता है । जब सर्प दंश करता है तब उस थैलीके अन्दरका विम जहांपर मनुष्यके शरीरमें सर्पकी दाढ घुसी थी उस जखममें उतर रक्तमें मिलताहुआ शरीरमें विस्तृत होने लगता है । सर्प दंश होनेके पीछे तीन प्रकारके चिह्न होते हैं । एक तो यह कि सर्प दंश होनेके पीछे किसी २ समय कुछ चिह्न नहीं जान पडता, इसका कारण यह है कि सर्पने दंश तो किया परन्तु वह सर्प ऊपर कथन किये अनुसार निर्विष जातिमेंसे होय अथवा उग्र विषवाली जातिका ही होय लेकिन दंश बहुत शीघ्र किया होय जैसे कि किसी मनुष्यका पैर सर्पके शरीरपर पड गया होय और सर्प उसके काटनेको फण पैरपर लाया होय, उसी समय मनुष्य उछल कूद करने लगा होय तो ऐसी झटपटीमें दंश पूरे तौरसे न हुआ होय और जखममें विष उतरनेको समय न मिला होय तो कुछ भी चिह्न उत्तरावस्थामें नही होते । इसी प्रकार सर्प एक मनुष्यको काट चुका होय उसका विष थैलीमेंसे काटेहुए मनुष्यके दंशमें चला गया होय तो उसकी विषथैली खाली हो जाती है और वही सर्प उसी समय दूसरेको काटे तो उसका विष दूसरे मनुष्यके दंशस्थानमें नहीं पहुंचता । इस कारणसे जहर नहीं चढता न कोई विशेष चिह्न देखनेमें आता है, दूसरा यह कि सर्पोंका जाति भेद जो ऊपर लिखा गया है उसमेंसे दर्वीकर (जो फणवाले सर्प हैं) उनके दंशसे थोडे ही घंटेमें मृत्यु हो जाती है । तीसरे दूसरी जातिके जो सर्प होते हैं उनके दंशसे मृत्यु शीघ्र न होकर किन्तु क्षोभक चिह्न शोथके उत्पन्न होते हैं, इसके दंशको अल्प विषवाले कहते हैं । सर्पके दंशसे छोटे २ चारसे ६ जखम पर्य्यन्त होते हैं उनमेंसे किञ्चित्मात्र रक्त निकलता है, जबतक सर्पको कुछ कष्ट न पहुंचे तबतक वह दंश नहीं करता । दूसरा भेद इसका यह है कि सर्पके विषसे मनुष्यकी अथवा गौ आदि पशुओंकी मृत्यु होती है, सर्पका दंश होनेके पीछे अफीम अथवा हाईड्रोस्यानीक आसिड आदि बनावटी स्थावर विषोंके

समान सर्प विषका असर भी मनुष्योंके मगजके ऊपर जान पडता है। जिस मनुष्यके शरीरमें सर्पदंश हुआ होय उसका शरीर शीतल पड जाता है, पसीना छुटता है मनुष्य गफलतमें लीन हो बिलकुल बेशुध हो जाता है। नाडी अति मन्द और अनियत चलती है, नेत्रकी पुतली विस्तृत हो जाती है मुखमें किसी कडुवा तीक्ष्ण पदार्थका स्वाद ज्ञान होनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है नासिका और मुखमेंसे रक्त बहता है, श्वास प्रश्वासकी गति मन्द हो अन्तके दर्जे मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। तीसरा भेद यह है कि कितने ही सर्पोंका विष क्षोभक होता है तो इस प्रकारकी बेहोशी जो ऊपर वर्णन की है वह मनुष्यको नहीं होती, किन्तु दंशके स्थानपर सूजन चढ आती है और उसमें वेदना हो विशेष सूजन चढकर अवयवके इस पिण्ड अथवा जंघामें सूजन चढ आती है। दंशवाले भाग पर सूजन उत्पन्न होकर विसर्पके समान दीखता है और पकने लगता है, पककर फूटता है उस समय पीब और सडाहुआ मांस विशेष निकलता है। किसी समय ऐसा होता है कि दंशके ठिकानेसे नीचेकी हड्डी भी सडने लगती है, जिस समय पर हड्डी सडने लगती है उस समय पर शोथके साथमें तीव्र वेदना भी उत्पन्न हो रोगीका शरीर निर्बल हो जाता है। यदि विशेष ज्वर और निर्बलताकी वृद्धि होय तो मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है, कदाचित् इस महान् कष्टको सहन करके मनुष्य जीवित भी रहे तो कई मासपर्य्यन्त पीडित रहता है। दंशके तीन भेद जैसे ऊपर आयुर्वेदमें सर्पितादि माने हैं, उसी प्रकार तीन भेद डाक्टरीमें माने गये हैं। परन्तु आयुर्वेदमें दंशके उत्तर विशेष लक्षण सर्पोंकी जाति भेदसे पृथक् कथन किये हैं जैसा कि नीचे लिखे जाते हैं।

सर्पोंकी जातिभेदसे विषके लक्षण।

तत्र दर्वीकरविषेण त्वङ्नयननखदशनमूत्रपुरीषदंशकृष्णत्वं रौक्ष्यं शिरसो गौरवं सन्धिवेदना कटीपृष्ठग्रीवादौर्बल्यं जृम्भणं वेपथुः स्वरावसादो घुर्घुरको जडता शुष्कोद्गारकासश्वासौ हिक्का वायोरूर्द्ध्वगमनं शूलोद्वेष्टनं तृष्णा लालास्रावः फेणागमनं स्रोतोऽवरोधस्तास्ताश्च वातवेदना भवन्ति मण्डलिविषेण त्वगादीनां पीतत्वं शीताभिलाषः परिधूपनं दाहतृष्णा मदो मूर्च्छा ज्वरः शोणितागमनमूर्द्ध्वमधश्च मांसानामवशातनं श्वयथुर्दंश कोथः पीतरूपदर्शनमाशुकोपस्तास्ताश्च पित्तवेदना भवन्ति। राजिमद्विषेण शुक्लत्वं त्वगादीनां शीतज्वरो रोमहर्षस्तब्धत्वं गात्राणामादंशशोफः सान्द्रकफप्रसेकश्छर्दिरभीक्ष्णमक्ष्णोः कण्डूः कण्ठे श्वयथुर्घुर्घुरक

उच्छ्वासनिरोधस्तमः प्रवेशस्तास्ताश्च कफवेदना भवन्ति। पुरुषाभिदष्ट ऊर्द्ध्वं प्रेक्षतेऽधस्तात् स्त्रिया सिराश्चोत्तिष्ठन्ति ललाटे॥ नपुंसकाभिदष्टस्तिर्य्यक् प्रेक्षी भवति। गर्भिण्या पाण्डुमुखोध्मातश्च॥ सूतिकया शूलार्त्तो रुधिरं मेहत्युपजिह्विका चास्यभवति। ग्रासार्थिनान्नं कांक्षति॥ वृद्धेन मन्दा वेगाश्च। बालेनाशुमृदवश्च निर्विषेणाविषलिङ्गम्॥अन्धाहिकेनान्धत्वमित्यके। ग्रसनादजगरः शरीरप्राणहरो न विषात्॥ तत्र सद्यः प्राणहराहि दष्टः पतति शस्त्रशनिहतइव भूमौ स्रस्ताङ्गः स्वपिति।

अर्थ–दर्वीकर सर्पके विषसे त्वचा, नेत्र नख, दांत, मूत्र, पुरीष, दंशस्थान काले पड जाते हैं, रूखापन शिरमें भारीपन शरीरकी सन्धियोंमें वेदना, कमर पीठ ग्रीवामें दुर्बलता, जंभाई, कम्पन, स्वरभङ्ग घुर्घुरता, जडता, सूखी डकार, श्वास, खांसी, हिचकी वायुका ऊपरको निकलना शूल, ऐंठा तृषा लाला स्राव झाग आना स्रोतोंका अवरोध और तरह तरहकी वात वेदना होने लगती है। मण्डलिक सर्पके विषसे त्वचादि पीली पड शीतल पदार्थोंके सेवनकी इच्छा रहती है, सर्वाङ्ग संताप, दाह, तृष्णा, मद, मूर्च्छा ज्वर, मुख और गुदासे रुधिर निकलना, मांसका सडना, सूजन, दंशस्थानका पाक अन्य सब पदार्थोंका पीला दीखना आशुकोष और ओपचोपादिक पित्त वेदना होती है। राजिमन्त सर्पके विषसे त्वचा नख नेत्रादिक श्वेत हो जाते हैं शीतज्वर, रोमाञ्चका खडा होना शरीरकी स्तब्धता दंशके चारों ओर सूजन गाढा कफ निकलना बारम्बार वमन होना नेत्रोंमें खुजली कण्ठमें सूजन, घुर्घुराहट श्वासका रुकना अंधकार छा जाना और खुजलीसे आदि लेकर कफजनित वेदना होती हैं। पुरुष और स्त्रीसंज्ञक सर्पके दंश लक्षण इस प्रकारसे हैं कि जिस मनुष्यको पुरुषसंज्ञक सर्पने दंश किया है वह ऊपरको देखता है, जिसको सर्पिणी काटती है वह नीचेको देखता है। उसके ललाटमें नसें खडी हो जाती हैं, जिसको नपुंसक सर्प काटता है वह तिर्छा देखता है। जिसको गर्भिणी सर्पिणी काटती है उसका मुख पीले रंगका और उसके उदरमें आध्मान हो जाता है। जिसको प्रसूता सर्पिणी काटती है उसके शूल रोग होता है और मूत्रके साथ रक्त आ उपजिह्वाका रोग भी हो जाता है। क्षुधातुर सर्पके काटनेसे भोजनकी इच्छा होती है, वृद्ध सर्पके काटनेसे वेग मन्द हो जाता है बालक सर्पके काटनेसे मृदुता और शीघ्रता होती है, निर्विष सर्पके काटनेसे विषके चिह्न नहीं होते। किसी २ का यह भी कथन है कि अन्धा सर्प काटे तो मनुष्य भी अन्धा हो जाता है, अजगर सर्प समस्त शरीरको निगल कर प्राणोंको हर लेता है परन्तु अगजरमें विष नहीं होता सद्यः

प्राणहारी सर्पके दंशसे मनुष्य उसी समय विजली और शस्त्रसे मारेहुएकी तरह भूमिमें गिर शयन कर जाता है । (यहां स्वपिति) से प्रयोजन अन्तिम महा निद्रासे है।

सर्प दंशके सप्त वेगोंका वर्णन ।

तत्र सर्वेषां सर्पाणां विषस्य सप्त वेगा भवन्ति । तत्र दर्वीकराणां प्रथमे वेगे विषं शोणितं दूषयति ॥ तत्प्रदुष्टं कृष्णतामुपैति । तेन कार्ष्ण्यं पिपीलिकापरिसर्पणमिवचाङ्गे भवति ॥ द्वितीये मांसं दूषयति तेनात्यर्थं कृष्णता शोफो ग्रन्थयश्चांगे भवन्ति । तृतीये मेदो दूषयति तेन दंशक्लेदः शिरो गौरवं स्वेदश्चक्षुर्ग्रहणञ्च ॥ चतुर्थे कोष्ठमनुप्रविश्य कफप्रधानान्दोषान्दूषयति । तेन तन्द्रा प्रसेकसन्धिविश्लेषा भवन्ति । पञ्चमेऽस्थीन्यनुप्रविशति प्राणमग्निञ्च दूषयति ॥ तेन पर्वभेदो हिक्का दाहश्च भवन्ति । षष्ठे मज्जानमनुप्रविशति ग्रहणीञ्चात्यर्थं दूषयति ॥ तेन गात्राणां गौरवमतीसारो हृत्पीडा मूर्च्छा च भवन्ति । सप्तमे शुक्रमनुप्रविशति व्यानञ्चात्यर्थं कोपयति कफञ्च सूक्ष्मस्रोतोभ्यः प्रच्यावयति ॥ तेन श्लेष्मवर्तिप्रादुर्भावः कटिपृष्ठभंगश्च सर्वचेष्टाविघातो लालास्वेदयोरतिप्रवृत्तिरुच्छ्वासनिरोधश्च भवति । तत्र मण्डलिनां प्रथमे वेगे विषं शोणितं दूषयति ॥ तत्तत्र प्रदुष्टं शीततामुपैति तत्र परिदाहः पीतावभाषता चांगानां भवति । द्वितीये मांसं दूषयति तेनात्यर्थं पीतता परिदाहो दंशे श्वयथुश्च भवति ॥ तृतीये मेदो दूषयति तेन पूर्ववच्चक्षुर्ग्रहणं तृष्णा दंशे क्लेदः स्वेदश्च । चतुर्थे कोष्ठमनुप्रविश्य ज्वरमापादयति- पञ्चमे परिदाहं सर्व्वगात्रेषु करोति षष्ठसप्तमयोः पूर्ववत् ॥ राजिमतां प्रथमे वेगे विषं शोणितं दूषयति । तत्प्रदुष्टं पाण्डुतामुपैति तेन रोमहर्षः शुक्लावभासश्च पुरुषो भवति ॥ द्वितीये मांसं दूषयति तेनापाण्डुतात्यर्थं जाड्यं शिरः शोफश्च भवति । तृतीये मेदो दूषयति तेन चक्षुर्ग्रहणं दन्तक्लेदः स्वेदो घ्राणाक्षिस्रावश्च भवति । चतुर्थे कोष्ठमनुप्रविश्य मन्यास्तम्भं शिरोगौरवं चापादयति पञ्चमे वाक्संगं शीतज्वरं च करोति ।

षष्ठसप्तमयोः पूर्व्ववदिति धात्वन्तरेषु यः सप्तमकलाः सम्परिकीर्तिताः ॥ तास्वेकैकामतिक्रम्य वेगं प्रकुरुते विषम् । येनान्तरेणाहिकलां काल-कल्पंभिनत्ति हि समीरणेनोह्यमानं तत्तु वेगान्तरं स्मृतम् ॥

अर्थ–सम्पूर्ण जातिके विषधारी सर्पोंके विषके सात वेग होते हैं । जैसा कि दर्व्वीकरादि सर्पोंके प्रथम वेगमें विष रक्तको दूषित कर देता है और रुधिर दूषित होकर काला पड जाता है । ऐसा होने लगता है कि मानो सम्पूर्ण शरीर पर काली चींटी (कीडियां) चल रही हैं । द्वितीय वेगमें विष मांसको दूषित करता है, इससे शरीरमें कालापन सूजन और गांठ पड जाया करती हैं । तृतीय वेगमें विष मेदाको दूषित कर दंशस्थानमें क्लेद, शिरमें भारीपन, पसीना और चक्षु पथरा जाती हैं । चौथे वेगमें विष कोष्ठमें प्रवेश करके कफप्रधान शरीरस्थ दोषों (मलों) को दूषित करता है इसी कारणसे तन्द्रा प्रसेक एवं सन्धि विश्लेप होता है । पांचवें वेगमें विष अस्थियोंमें प्रवेश कर जाता है, उस समय प्राण और अग्नि दूषित हो जाती हैं, इसी कारणसे हडफूटन हिचकी दाह होने लगता है । छठे वेगमें विष मज्जामें प्रवेश कर जाता है, ग्रहणी अर्थात् पित्त धरा कलाको अति दूषित कर देता है, इसीसे अङ्गोंका भारी होना अतीसार हृदयमें पीडा और मूर्च्छा होती है । सातवें वेगमें विष वीर्य्यमें प्रवेश कर जाता है तब व्यानवायु अत्यन्त कुपित हो जाती है, सूक्ष्म स्रोतोंसे स्राव हो कफकी वत्तियांसीं निकलने लगती हैं । कमर और पीठमें दर्द होने लगता है, शरीरकी समस्त चेष्टाओंका विघात होता है, मुखसे लार और शरीरसे पसीना निकलता है । श्वास रुक जाता है (यह अन्तिम समय समझो) मण्डलिक सर्पोंके प्रथम वेगमें विष रक्तको दूषित कर देता है तथा दूषित रक्त ठंढा हो जाता है फिर समस्त शरीरमें दाह और पीलेपनकी झलक मारने लगती है । द्वितीय वेगमें विष मांसको दूषित कर देता है इससे शरीरमें अत्यन्त पीलापन दाह और दंशस्थानमें सूजन होती है । तृतयि वेगमें विष मेदाको दूषित कर देता है इसमें दर्व्वीकर सर्पके विषके समान नेत्रोंका पथरा जाना, (नेत्रोंकी पुतली विस्तृत और स्थिर हो जावे) और तृषा दंशस्थानमें क्लेद, स्वेद होता है । चतुर्थ वेगमें विष कोष्ठमें प्रवेश होकर ज्वर उत्पन्न करता है । पंचम वेगमें समस्त शरीरमें दाह होता है । छठे और सातवें वेगमें दर्व्वीकर सर्पके समान लक्षण होते हैं । जो शारीरिक विद्याके विषयमें धात्वाशयके अन्तर सात कला कथन की गई हैं उन एक २ कलाओंका अनुक्रमण करनेसे एक एक वेग होता है । ये कला सात हैं इसलिये वेग भी सात ही होते हैं, जैसे रस और रक्तके बीचवाली कलाका अतिक्रमण करके विषका प्रथम

वेग होता है । रक्त और मांसके बीचवाली कलाका अतिक्रमण करके दूसरा वेग होता है । इसी प्रकार अन्य पांच कलाओंमें पांच वेगोंका अतिक्रमण समझो, जिस समय मत्युके समान विषवायुसे प्रेरित होकर उक्त लक्षणवाली कलाका भेदन करता है । उसको भूत और भविष्यत वेगोंका मध्यवर्त्ती वेगान्तर कहते हैं ।

सर्पदंशकी चिकित्सा । (अरिष्ट बन्धनकी विधि)

सर्वैरेवादितः सर्पैः शाखादष्टस्य देहिनः । दंशस्योपरि बध्नीयादरिष्टाश्चतुरङ्गुले ॥ प्लोतचर्मान्तवल्कानां मृदुनान्यतमेन च । न गच्छति विषं देहमरिष्टाभिर्निवारितम् ॥ दहेद्दंशमथोत्कृत्य यत्र बन्धो न जायते । आचूषणछेददाहाः सर्वत्रैव तु पूजिताः ॥ प्रतिपूर्य्य मुखं वस्त्रैर्हितं माचूषणं भवेत् । सदष्टव्योऽथवा सर्पो लोष्टो वापि हि तत् क्षणम् ॥

अर्थ—सर्पदंश होते ही सबसे प्रथम करनेकी यह क्रिया है कि जो ऊपर चौथे श्लोकके अन्तमें लिखी हुई है । (सदष्टव्य) अर्थात् जिस सर्पने मनुष्यको काटा होय उसी समय उस सर्पको पकडकर मनुष्य भी जोरसे काट लेवे (यह विचार न करे कि एक समय तो सर्प काट चुका है यदि मैं पकडूंगा तो वह दूसरे समय काटेगा । हम ऊपर लिख चुके हैं कि जिस सर्पने एक मनुष्यको एक समय काट लिया है उस समय उसकी विष थैलीका विष काटेहुए मनुष्यके दंशमें चला गया है, अब वह काटे भी तो जखम होनेके शिवाय कुछ हानि नहीं है । सर्पको उस समय फौरन पकड लेय और निरभय होकर दोनों जावडोंके बीचमें देकर क्रोधपूर्वक दांतोंको उसके शरीरमें घुसेड देवे । यदि सर्प काटकर भाग जावे और हाथ न लगे तो उसी समय लोष्ट ईंट पत्थर, कंकड जो कुछ वहांपर होय उसीको काटलेवे इस क्रोधसे काटे कि जिस प्रकार शिकारके पीछे दौडाहुआ श्वान शिकारपर आक्रमण कर मुखसे पकडकर शिकारको झझोडता है । इसका प्रयोजन यह है कि मनुष्यके शरीरमें क्रोध वढनेसे रक्तमें जोश आनकर रक्त उबड उठता है और दंशस्थानमें जो सर्प विष गया है वह क्रोधके जोशसे रक्तस्रावमें बाहर निकल जाता है । यदि मनुष्यने जो सर्पको दंश किया होय तो वह कई घंटेके अन्दर मर जाता है, चाहे सर्प कैसाही फणवाला विषधारी होय इस तत्कालकी क्रियासे मनुष्य बराबर जीवित रहता है और दंशस्थानकी किञ्चित् पीडाके शिवाय विषका कुछ भी असर मनुष्यके शरीर पर नहीं होता । दूसरी विधि यह है कि उपरोक्त क्रिया सर्पसे काटेहुए मनुष्यपर न वनसकी होय तो हाथ व पैरमें जहाँ पर सर्पने काटा होय उस स्थानसे चार अंगुल ऊपर कपडाकी धजी, चमडा, वृक्षकी कोमल त्वचा, रस्सी, पगडीका शिरा, कोधनी, जनेऊ जो कुछ उस समय पर

दंशवाले मनुष्यके हाथ लागसके उससे अवयवको ऐसा खींचकर बांध देवे कि दंशकी ओरसे एक कणमात्र रक्तका ऊपरके अंगकी ओर न चढने पावे, ऊपरका रक्त नीचेको न उतरने पावे इस बंधनसे विष सम्पूर्ण शरीरमें न फैलने पावेगा न मनुष्य बेहोश होवेगा। इस बन्धनके अनन्तर दंशस्थानको चाकू व नस्तरसे चीरकर व पछने शृङ्गी लगाकर वहांसे रक्तको निकाल देवे, इस क्रियाके करनेमें रोगीको कुछ कष्ट नहीं होता, क्योंकि सर्पका काटाहुआ स्थान ज्ञानशून्य हो जाता है। तीसरी विधि यह है कि दंशस्थान बांधनेके योग्य न होवे तो दंशस्थानको चाकूसे छीलकर लोहेकी कोई कीलादि वस्तु लाल करके उससे जला देवे कि विष जल जावे, इसके पीछे उस जखमका कई दिवस तक मवाद बहना जारी रखे। इसके बाद जखमका रोपण औषधियोंसे उपाय करे, अथवा मुखमें कपडेका टुकडा रखकर सर्पके दंशस्थानको चूसे और थूकता जावे। जिस समय चूसे उसी समय दंशस्थानको अंगुलियोंसे दबाकर मींच लेवे कि दंशस्थानसे विषका भाग दबकर ऊपरकी ओर निचुड बाहर निकल जावे। परन्तु जिस मनुष्यके मुखमें छाला चांदी व जखम होय वह इस चूषणक्रियाको न करे। दंशके प्रतिदंश, बंधन, दग्ध आचूषण ये चार क्रिया तत्काल एकसे दूसरी उत्तरोत्तर करनेकी हैं। प्रायः जो लोग मन्त्रसे अरिष्ट बांधते हैं उसके विषयमें सुश्रुतने ऐसा लिखा है।

अरिष्टमपि मन्त्रैश्च बध्नीयान्मन्त्रकोविदः।
सातु रज्वादिभिर्बद्धा विषप्रतिकरीमता॥

अर्थ-मन्त्र जाननेवालेको उचित है कि अरिष्टको मन्त्रसे बांधे और वह अरिष्ट यदि रस्सी व सुतली कपडादिसे बांधी जाय तो विष निवृत्त कर देती है। इस श्लोकसे यह प्रगट होता है कि जो लोग विषको मन्त्रसे उतारनेका ढोंग किया करते हैं वह केवल दिखानेमात्रका है, क्योंकि जो अरिष्टको बांधनेकी विधि ऊपर लिखी गई है उसीके द्वारा विषकी निवृत्ति की जाती है। इस श्लोकमें रस्सीसे मन्त्रपूर्वक बांधना लिखा है वह कल्पनामात्र है, केवल रज्जु बन्धनही विषके वेगको ऊपर चढनेसे रोकता है, यदि मन्त्रसे विष ऊपरको न चढ सके तो रज्जु बन्धन करना निरर्थक है, प्राचीन विज्ञ वैद्योंका यदि मन्त्रसे विष निवृत्तिका विश्वास होता तो इतना लम्बा विष चिकित्साका प्रकरण लिखना ही व्यर्थ हो जाता। ऊपर लिखीहुई चार क्रियाओंके करनेके समयका व्यतिक्रम हो जावे तो रक्तापकर्षणसे विष नाशका उपाय करना उचित है। जैसा कि-

समन्ततः शिरादंशाद्विध्येत्तु कुशलो भिषग्। शाखाग्रे वा ललाटे वा वेध्यास्ता विसृते विषे॥ रक्ते निर्ह्रियमाणे तु कृत्स्नं निर्ह्रियते विषम्।

तस्माद्विस्रावयेद्रक्तं सा ह्यस्य परमाकृति ॥ समन्तादगदैर्दंशं प्रच्छयित्वा प्रलेपयेत् । चन्दनोशीरयुक्तेन वारिणा परिषेचयेत् ॥ पाययेतागदांस्तांस्तान् क्षीरक्षौद्रघृतादिभिः । तदलाभे हिता वा स्यात्कृष्णा वल्मीकमृत्तिका । कोविदारशिरीषार्ककटभीर्वापि भक्षयेत् ॥ न पिबेत्तैलकौलत्थमद्यसौवीरकाणि च । द्रवमन्यत्तु यत्किञ्चित्पीत्वा पीत्वा तदुद्वमेत् । प्रायो हि वमनेनैव सुखं निर्ह्रियते विषम् ॥

अर्थ—दंशके स्थानसे समीपवर्त्ती आईहुई शिराओंको नस्तरसे वेधन कर रक्त निकाल देवे, जिससे विष फैलने न पावे । कदाचित विष फैल गया होय तो हाथ पैरके अग्र भागकी शिराओंको तथा ललाटकी रक्तवाही नसोंको बेधकर रक्तको निकाले रक्तके साथमें विषका विशेष भाग निकल जाता है । इससे रक्तको अवश्य निकाल देवे यह क्रिया परमोत्तम है । दंशस्थानके चारों ओर पछना लगाकर रक्त निकल जाने पर औषधियोंका लेप करे, चन्दन तथा उसीर इनके जलसे सेवन करे और इन्हीं औषधियोंके चूर्ण व शीतल क्काथमें दुग्ध घृत और शहद मिलाकर पिला देवे । यदि यह न मिलसके तो बांबीकी काली मिट्टी हित होती है अथवा कोविदार, सिरस, आक, कटभी इनको भक्षण करावे । सर्प दंशसे आर्त्त, तैल, कुलथीका यूप मद्य कांजी इनका पान न करे, इनसे अन्य और २ पतले पदार्थोंको पीकर (जैसे वन्दालका क्काथ वन्ध्याकर्कोटीका क्काथ व स्वरस इनको, अथवा मदनफलका क्काथ) इनसे वमन करे वृंदाल और वन्ध्याकर्कोटी उत्तम विषनाशक औषधि हैं, इसी कारणसे वन्ध्याकर्कोटीको नागारि कहते हैं । वमन करनेसे सम्पूर्ण विष सुखपूर्वक निकल जाता है, ऊपर जो दंशको दग्ध करनेकी विधि लिखी गई है सो मण्डलिक सर्पके दंशको दग्ध करनेका निषेध किया गया है । (अथ मण्डलिना दष्टं न कथञ्च न दाहयेत् । सपित्तविषबाहुल्याद्दंशोदाहाद्विसर्पति ।) क्योंकि मंडलिक सर्पका विष पित्तजनित होनेसे दग्धक्रियाकी ऊष्मा पहुंचनेपर शरीरमें फैल जाता है ।

दर्व्वीकर मण्डलिक राजिमन्त, सर्पोंके वेगोंकी चिकित्सा ।

फणिनां विषवेगे तु प्रथमे शोणितं हरेत् । द्वितीये मधुसर्पिर्भ्यां पाययेतागदं भिषक् ॥ नस्यकर्म्माञ्जने युञ्ज्यात्तृतीये विषनाशने । वान्तं चतुर्थे पूर्वोक्तां यवागूमथ दापयेत् ॥ शीतोपचारं कृत्वादौ भिषक् पञ्चमषष्ठयोः । दापयेच्छोधनं तीक्ष्णं यवागूञ्चापि कीर्त्तिताम् ॥ सप्तमे त्ववपी-

डेन शिरास्तीक्ष्णेन शोधयेत् ॥ तीक्ष्णमेवाञ्जनं दद्यात्तीक्ष्णशस्त्रेण मूर्ध्नि च । कुर्य्यात्काकपदं चर्म सासृग् वा पिशितं क्षिपेत् ॥ पूर्वे मण्डलिनां वेगे दर्व्वीकरवदाचरेत् । अगदं मधुसर्पिर्भ्यां द्वितीये पाययेत च ॥ वामयित्वा यवागूञ्च पूर्वोक्तामथ दापयेत् । तृतीये शोधितं तीक्ष्णैर्यवागूं पाययोद्धिताम् ॥ चतुर्थे पञ्चमे वापि दर्वीकरवदाचरेत् ॥ काकोल्यादिर्हितः षष्ठे पयश्च मधुरो गणः । हितोऽवपीडे त्वगदः सप्तमे विषनाशनः ॥ अथ राजिमतां वेगे प्रथमे शोणितं हरेत् । अगदं मधुसर्पिर्भ्यां संयुक्तं पाययेत च । वान्तं द्वितीये त्वगदं पाययेद्विषनाशनम् । तृतीयादिषु त्रिष्वेव विधिर्दर्वीकरो हितः । षष्ठेऽञ्जनं तीक्ष्णतममवपीडश्च सप्तमे ॥ गर्भिणीबालवृद्धानां शिराव्यधविवर्जितम् । विषार्त्तानां यथोद्दिष्टं विधानं शस्यते मृदु ॥ देशप्रकृतिसात्म्यर्त्तविषवेगबलाबलम् । प्रधार्य्य निपुणो बुद्ध्या ततः कर्म्म समाचरेत् ॥ वेगानुपूर्वमित्येतत्कर्मोक्तं विषनाशनम् । कर्मावस्थाविशेषेण विश्योरुभयोः शृणु ॥

अर्थ—दर्वीकर सर्पोंके प्रथम वेगमें फस्द खोले, दूसरे वेगमें शहद और घृतके साथ विषनाशक औषधियोंका पान करावे । तीसरे वेगमें नस्यकर्म और विषनाशक अंजन करे, चौथे वेगमें उपरोक्त औषधियोंसे वमन कराके यवागू पान करावे । पांचवें और छठे वेगमें प्रथम शीतल द्रव्योंका उपचार करके तीक्ष्ण शोधन कर यवागूपान करावे । सातवें वेगमें तीक्ष्ण अवपीडनसे शिराओंका शोधन कर तीक्ष्णही अंजन लगावे और तीक्ष्ण शस्त्रसे मूर्द्धामें काकपद चिह्न कर रुधिर साहित मांस रखकर चर्मसे ढक देवे । मण्डलिक सर्पके प्रथम वेगमें दर्व्वीकर सर्पके प्रथम वेगके समान चिकित्सा करे । दूसरे वेगमें घृत और शहदके साथ विषनाशक औषधियां पान करावे तथा वमन कराके पूर्वोक्त विधिसे यवागू पान करावे; तीसरे वेगमें तीक्ष्ण शोधन करके यवागू पान करावे । चौथे और पांचवें वेगमें दर्वीकर सर्पोंके वेगके समान चिकित्सा करे, काकोल्यादि मधुरगण और पयका पान कराना हित है, सातवें वेगमें अवपीडनके लिये विषनाशक औषधियां हित हैं । राजिमन्त सर्पोंके प्रथम वेगमें फस्द खोले तथा शहद और घृत मिलाकर विषनाशक औषध पान करावे । दूसरे वेगमें वमन कराके विषनाशक औषधियोंका पान करावे । तीसरे चौथे और पांचवें वेगमें दर्वीकर सर्पोंके वेग विधिके समान उपाय करना हितकारी है , छठे वेगमें अत्यन्त तीक्ष्ण अंजन और सातवें वेगमें

अवपीडन हित है। यदि गर्भवती स्त्री बालक और अतिवृद्ध इनको सर्पने डशा होय तो इन तीनोंकी फस्द खोलकर रक्त मोक्षण न करे, ऐसे विपात्तोंके लिये यथोद्दिष्ट मृदु मात्राका विधान करे तथा अन्य उपचारोंसे विपका शमन करे। चिकित्सकको उचित है कि देश (भूमि तथा रोगीका शरीर) प्रकृति (कायिक अथवा मानसिक) सात्म्य ऋतु विषवाले रोगीका बलाबल इन सब बातोंका निर्धारण करके कर्म करनेमें प्रवृत्त होय, यह विषनाशक कर्म वेगोंके अनुसार कथन किया गया है। स्थावर, जंगम विपोंके विशेष कर्म अवस्थाके अनुसार सुनो, वे यहां नहीं लिखे गये, किन्तु सुश्रुत संहिताका कल्पस्थान देखो।

डाक्टरीसे सर्पदंशकी चिकित्सा।

जो क्रिया ऊपर आयुर्वेद वैद्यकसे कथन की गई है उसीके अनुसार डाक्टरोंने लिखा है, जैसा कि सर्प दंश करे उसी समय उस भागको काट डाले अथवा जला देवे। यदि एक अंगुली पर ही सर्पने काटा हो तो उसी समय उस अंगुलीको काट डाले, जो शरीरके किसी मोटे बडे भागमें सर्पने दंश किया होय तो उसको उसी समय जला देवे। यदि यह उपाय उसी समय पर न किया जाय तो अवयवको दंश स्थानसे ऊपर पट्टी व सुतलीसे खींचकर बांध देवे, इस बंधनके बांधनेसे दंश कियेहुए स्थानका रक्त शरीरके ऊपरके भागमें नहीं जा सक्ता। बाद सर्पके दंश कियेहुए जखमको दूसरा मनुष्य मुख लगाकर चूसे और थूकता जावे, इस चूषण क्रियासे विप कितने ही अंशमें निकल जाता है। लेकिन चूसनेवाले मनुष्यके मुखमें किसी प्रकारका ज़खम न होना चाहिये, यदि मुखमें जखम होगा तो वह विष जखममें घुस सर्पके दंशके समान ही हानिकारक होगा। दंश कियेहुए स्थानको चक्कू व नस्तरसे छेदन करके उसमेंसे रक्त बहावे, इससे रक्तके साथमें विपका कुछ अंश निकल जावेगा। यदि मनुष्यके शरीरमें जहरके चिह्न उत्पन्न हो गये हों तो आमोनिया ब्रांडी (शराब) अथवा दूसरी ऊष्ण दवा देनी चाहिये। अथवा लाईकर आमोनिया १० बिन्दु जलमें मिलाकर पिला लाईकर आमोनियाकी पिचकारी शरीरमें लगावे, अथवा परमाङ्गनेटआफ पुटासके प्रवाही (अर्क) की पिचकारी त्वचामें लगानेसे शरीरको आराम मिलता है। यदि फणधारी सर्पका विप पूर्ण रूपसे मनुष्यके शरीरमें फैल गया होय तो कोई भी उपाय काम न दे अन्तके दर्जे शरीर नष्ट हो जाता है। यदि क्षोभक विप-वाले सर्पका दंश हुआ होय तो सूजन आयेहुए भागपर सेंक देना, पोल्टिस बांधना, मूत्रल और स्वेदल ऊष्ण औषधियाँ देनी चाहिये। यदि दंश स्थानमें पीव पड गई होय तो उसको चीरकर पीवको निकाल जखममें जो कुछ सडाहुआ भाग होय उसको साफ करके मरहमपट्टीसे उपाय करे। सर्प विपका दंशके अनन्तर जैसा शीघ्र उपाय

हो सक्ता है वैसा अधिक समय निकलने पर नहीं होता, सो जहां तक हो सके शीघ्र उपाय करे । यूनानी तबीबोंने सर्पकी अनेक जाती मानी हैं कि जिनकी गणना नहीं हो सक्ती, किसी २ जातिके सर्पका विष किसी भी उपायसे नष्ट नहीं होता । किसी जातिके सर्पका विप ऐसा होता है कि दंश होते ही मनुष्यका प्राण निकल जाता है और उपाय करनेका समय ही नहीं मिलता । सर्प विपको नष्ट करनेकी छ विधि हैं—एक तो यह कि कोई ऐसी औपध देवे कि जिसके खानेसे शरीरके अन्दरकी गर्मी भडक उठ शरीरके भीतरी अङ्गोंको शक्ति पहुंचावे, इस कारणसे मनुष्यका शरीर वलवान् वना विपके वेगको शरीरमें न फैलने देवे, जैसे तिरियाक कवीर अथवा लुआब तवखरी । दूसरी विधि यह कि शरीरमेंसे शीघ्र तरीको निकाले जिससे कि तरीके साथ शरीरमें विप न फैल पोपक अङ्गोंमें पहुंच सके । और शरीरकी तरियोंको न्यून करने व निकालनेके लिये सवसे उत्तम विधि वमन है, इसके पीछे फस्द दस्त और मूत्रल औषधियां देवे, लेकिन विषके समस्त वेगों तथा भेदोंमें वमन सवसे लाभदायक है । तीसरी विधि यह कि प्रकृतिके अनुकूल विषनाशक प्रयोग देवे जैसा कि मगरका मांस मगरके काटनेमें और सर्पका मांस सर्पके काटनेमें लाभकारी है । चौथी विधि यह है कि मनुष्यको ऐसी औपध खिलावे कि दंश करनेवाले जानवरकी प्रकृतिके विरुद्ध होय, जैसे हींग विच्छूकी प्रकृतिके विरुद्ध है । (नागारि) वन्ध्या ककोंटी सर्पकी प्रकृतिके विरुद्ध है । पांचवीं विधि यह है कि कोई औषध अथवा अन्योपचार ऐसा होना चाहिये जिससे कि तवीयतको गति पहुंचे और उस गतिसे जो लहर उठे वह विपके परमाणुओंको अन्दरसे शरीरकी चर्म जिल्दकी ओर फेंक देवे और पीछे पसीना लानेवाली औपधियोंसे पसीना निकालना कि जिसके साथमें विपके अवखरे परमाणु वाहर निकल आवें । (परन्तु मेरी समझमें यह उपाय किसी समय विपरीत और भयदायक मालूम होता है) क्योंकि इस विधिसे कभी विप शरीरके पोपक अङ्गोंमें प्रवेश कर जाता है । छठी विधि यह है कि सर्पके काटते ही उस अंगको काटकर अलग कर देवे फिर उचित समझा जावे तो दाग भी दिया जाय । अथवा उस अङ्गको विशेप कसकर वांध उसपर सुस्त और सुन्न करनेवाली दवा रखे, जिससे विप आगे न वढे अथवा वहां पछने सिंगियोंसहित अथवा वे सिंगीके लगावे, सिंगी न लगावे तो जोंक लगाकर रक्त निकाले जिससे विष रक्तमें मिलाहुआ निकल जावे । शरीरके पोपक अंगकी ओर न जावे और काटेहुए अंगको मुखसे चूसना भी लाभदायक है । जो मनुष्य सर्प दंशमेंसे विपको चूसकर निकाले वह थोडीसी शराव प्रथम पी लेवे और विपको चूसकर थूक देवे, हरसमय एक दो कुल्ला शरावके कर लेवे, चूसनेके वाद शरावसे कुल्ला करके मुखको साफ कर

लेवे । लागियाका दूध काले सर्पके दंशमें विशेष हितकारी है, नींबूके बीज ९ मासे विषैले सर्व जन्तुके विरुद्ध होते हैं, हींगके वृक्षकी जड सम्पूर्ण जन्तुओंके विषको नष्ट करती है।

सर्प विषनाशक तिर्याक ।

हुब्बविलसां, सूखा जूफा, जंगली सलगमके बीज, सफेद मिर्च, काली मिर्च, पीपल, वच, अनीसून, अजमोद, तगर, जीरा, भांगके बीज प्रत्येक १४ मासे, बालछड, फुका गन्दवेल प्रत्येक २१ मासे इन सबको कूट छानकर शहद मिलाकर रख छोडे इसकी मात्रा रूमी बाकलाके समान है ।

सर्पोंके क्षोभक विषकी चिकित्सा ।

विवर्णे कठिने शूने सरुजेऽङ्गे विषार्दिते । तूर्णं विस्रावणं कार्य्यमुक्तेन विधिना ततः ॥ क्षुधार्त्तमनिलप्रायं तद्विषार्त्तं समाहितः । पाययेद्दधि तक्रं वा सर्पिः क्षौद्रं तथा रसम् ॥ तृड्दाहघर्मसंमोहे पैत्तं पैत्ते विषातुरम् । शीतैः संवाहनस्नान प्रदेहे समुपाचरेत् । शीते शीतप्रसेकार्त्तं श्लैष्मिकं कफकृद्विषम् । वामयेद्वमनैस्तीक्ष्णैस्तथा मूर्च्छाभिदान्वितम् ॥ कोष्ठदाहरुजाध्मानमूत्रसङ्गरुगान्वितम् । विरेचयेच्छकृद्वायुः सङ्गपित्तातुरं नरम् ॥ शूनाक्षि कूटं निद्रार्त्तं विवर्णाविललोचनम् । विवर्णश्चापि पश्यन्तमञ्जनैः समुपाचरेत् ॥ शिरोरुग्गौरवालस्य हनुस्तम्भगलग्रहे । शिरो विरेचयेत् क्षिप्रं मन्यास्तम्भे च दारुणे ॥ नष्टसंज्ञं विवृत्ताक्षं भग्नग्रीवं विरेचनैः । चूर्णैः प्रधमनैस्तीक्ष्णैर्विषार्त्तं समुपाचरेत् ॥ ताडयेच्च शिराः क्षिप्रं तस्य शाखा ललाटजाः । तास्वप्रसिच्यमाना मूर्ध्नि शस्त्रेण शस्त्रवित् ॥ कुर्य्यात् काकपदाकारं व्रणमेवं स्रवन्ति ताः । सरक्तं चर्म मांसं वा निक्षिपेच्चास्य मूर्ध्नि च । चर्मवृक्षकषायं वा चूर्णं वा कुशलो भिषक् ॥ वादयेच्चागदैर्लिप्ता दुन्दुभीस्तस्य पार्श्वयोः । लब्धसंज्ञं पुनश्चैनमूर्द्ध्वश्चाधश्च शोधयेत् ॥ निःशेषं निर्हरेच्चैवं विषं परमदुर्जयम् । अल्पमप्यवशिष्टं हि भूयो वेगाय कल्पते ॥ कुर्य्याद्वासादवैवर्ण्यं ज्वरकासशिरोरुजः । शोफशोषप्रतिश्याय तिमिरारुचि पीनसान् । तेषु चापि यथा दोषं प्रतिकर्म प्रयोजयेत् । विषार्त्तोपद्रवांश्चापि यथास्वं समुपाचरेत् ॥

अर्थ—यदि विपसे पीडित अङ्गवालेके विवर्ण कठोर और पीडासहित सूजन होवे तो उक्त विधिसे शीघ्रही शिरा वेधन करके रक्त निकाल देवे, जो मनुष्य भूँखा और वातप्राय होय और वातज विपसेही पीडित होय तो दाधि तक्र घृत शहद और मांस रस इनको पान करावे, यह वातज विपकी चिकित्सा विधि है । जिस रोगीको तृपा दाह ऊष्णता मूर्च्छा हो उसको पित्तज विपका रोग समझो, ऐस, रोगीको शीतल जलसे स्नान शीतल द्रव्योंका लेप तथा अन्य शीतल क्रियाओंका उपचार करे; यह पित्तज विषकी चिकित्साविधि है । शीतकालमें शीतल, प्रसेकसे आर्त्त कफ प्रकृतिवाले पुरुषके कफज विष होता है, ऐसे मनुष्यको तथा ऐसेको जो कि मूर्च्छा और मदसे युक्त होय उसको तीक्ष्ण द्रव्योंसे वमन करावे, यह कफज विपकी चिकित्साविधि है । जिस विपार्त्त मनुष्यके कोष्ठमें दाह पीडा अफरा हो और मूत्र रुक गया होय ऐसे वातयुक्त पित्त रोगीको विरेचन देवे, जिसके नेत्रोंके चारों ओर सूजन होय निद्रालु, विवर्ण, और गढेहुए नेत्र हों वस्तुमें यथार्थ रंग न दीखता होय किन्तु विपरीत रंग दीखता होय ऐसे रोगीके नेत्रोंमें अंजनोपचार करे । शिरकी वेदना, भारीपन, आलस्य, हनुस्तम्भ, गलग्रह और दारुण मन्यास्तम्भमें शीघ्रही शिरो विरेचन देवे । शिरो विरेचनके लिये वृन्दाल देवदाली फलको गर्म जलमें भिगोकर उसके हिमकी नस्य कई वार देवे इससे उत्तम शिरोविरेचन होता है और विपनाशक है, जो विपार्त्त वेहोश होय और नेत्र पथरा गये होयँ तथा जिसकी ग्रीवा टूट गई होय तो ऐसे मनुष्यका उपाय विरेचन देकर करे, जो विपार्त्त होय उसकी चिकित्सा तीक्ष्ण प्रधमन चूर्णसे करे । उसके हाथ पैर और ललाटकी फस्द तत्काल खोल देवे, यदि इन अंगोंसे रक्तस्राव न होवे तो मूर्द्धास्थानमें नस्तरसे काकपदके समान छेदन कर देवे ऐसा करनेसे नसोंमें रक्त निकलने लगता है । इसकी मूर्द्धापर रुधिर सहित चर्म और मांस रख देवे तथा चर्मवृक्षका कषाय रख देवे, रोगीके समीप इधर उधर विष विनाशक औपधियोंसे पुतेहुए भेरी (ढोलादि) बाजे बजावे । (इस समय सर्प विपकी चिकित्सा करनेवाले गारुडी लोग खाली ढोलक और थाली बजाया करते हैं, परन्तु विपनाशक औपधियोंका लेप बाजोंपर नहीं करते)। जब इस क्रियासे रोगी चैतन्य हो जावे तब वमन विरेचनसे शुद्धि करे, इस प्रकार इस दुर्जय विपको निःशेप कर देवे । यदि विप शरीरमें कुछ भी रह जायगा तो फिर भी वेग कर लेवेगा, अथवा अङ्गग्लानि, विवर्णता ज्वर, खांसी, शिरकी वेदना, शोफ, शोप, प्रतिश्याय, तिमिर, अरुचि, पीनस आदि रोग उत्पन्न होते हैं । यदि इन रोगोंमेंसे कोई रोग उत्पन्न होय तो उनका यथाविधि उपाय कर विषार्त्त उपद्रवोंकी योग्य विधिसे चिकित्सा करे ।

दंशस्थानकी चिकित्सा ।

गाढं बद्धेऽरिष्टया प्रच्छितेऽपि तीक्ष्णैर्लेपैस्ताद्विधैर्वा विशेषैः । शूने गात्रे क्लिन्नमत्यर्थपतिर्शेयं मांसं तद्विषात्पूतिकष्टम् ॥ सद्यो विद्धं निस्रवेत्कृष्ण-रक्तं रक्तं यायाद्दह्यते चाप्यभीक्ष्णम् । कृष्णीभूतं क्लिन्नमत्यर्थपूतिर्शीर्णं मांसं यात्यजस्रं क्षताच्च ॥ तृष्णा मूर्च्छा भ्रान्तिदाहौ ज्वरश्च यस्य स्युस्तं दिग्धविद्धं व्यवस्येत् । पूर्वोद्दिष्टं लक्षणं सर्वमेतज्जुष्टं यस्यालं विशेषव्रणाः स्युः । लूतादष्टादिग्धविद्धा विषैर्वा जुष्टा ये स्युस्ते व्रणा पूतिमांसाः ॥

अर्थ–आरिष्ट अर्थात् सर्पदंशके ऊपर खींचकर रस्सी वांधनेसे मांस मिच जाता है, अथवा पछना लगानेसे व तीक्ष्ण लेपोंके लगानेसे दंश स्थान तथा उसके आसपास सूजन हो जाती है, सूजन होनेके शिवाय विषके कारणसे भी मांस सड जाता है, यह मांसका सडाव वडा ही कष्टसाध्य होता है । सद्यो विद्धमें काला रुधिर निकल पक जाय एवं बारम्बार दाह होने लगे काले रुधिरके गीले हो जानेसे अत्यन्त दुर्गन्ध आने लगती है, घावमेंसे वारम्वार सडाहुआ मांस निकलने लगता है । जिसको तृषा, मूर्च्छा, भ्रान्ति, दाह ज्वर इत्यादि उपद्रव हों उसको दिग्धविद्ध समझना, जिसके पूर्वोक्त समस्त लक्षण होयँ और जिसके विषके कारणसे ही व्रण हो जाय तथा मकडीके विषसे सडेहुए दिग्ध और विषजुष्ट जो व्रण होते हैं, वे पूतिमांस होते हैं अर्थात् उनका मांस दुर्गन्धयुक्त होता है ।

उपरोक्त विषदूषित व्रणोंकी चिकित्सा ।

तेषां युक्त्या पूतिमांसान्यपोह्य वार्य्योकोभिः शोणितं चाप्यहृत्य । हृत्वा दोषान् क्षिप्रमूर्द्धन्त्वधश्च सम्यक् सिञ्चेत्क्षीरिणां त्वक्कषायैः । अन्तर्वस्त्रं दापयेच्च प्रदेहान् शीतैर्द्रव्यैराज्ययुक्तैर्विषघ्नैः ॥

अर्थ–ऊपर कथन कियेहुए विषदूषित व्रणोंका सडाहुआ मांस युक्तिपूर्वक चीमटी और कैंचिके सहारेसे काटकर अलग करदेवे । और उसके विषदूषित रक्तको भी जोंकोंके द्वारा खींच लेवे और वमन तथा विरेचनके द्वारा विषदूषित दोषोंको नष्ट करके शरीरको शुद्धकर दूध-वाले पंचक्षीरी वृक्षोंकी छाल (वड, पीपल, पिलखन, औदुम्बर, अंजीरादि) के काथसे पारिषेक करे । वीचमें वस्त्र लगाकर विषनाशक शीतल द्रव्योंमें शत धौतघृत (१०० वार धोया हुआ घृत) मिलाकर प्रदेह करे । जो कुछ उपचार व्रण रोपणमें किये

जाते हैं उनको चिकित्सक अपनी बुद्धिसे विचारकर करे, तथा महागद औषधका प्रयोग काममें लावे ।

महागद औषध ।

भिन्नेऽस्थ्ना वै दुष्ट जातेन कार्य्यः पूर्वो मार्गः पैत्तिके यो विषे च । त्रिवृद्धि शल्ये मधुकं हरिद्रे रक्तां नरेन्द्री लवणश्च वर्गः । कटुत्रिकं चैव विचूर्णितानि शृङ्गे निदध्यान् मधुसंयुतानि । एषोऽगदो हन्ति विषं प्रयुक्तः पानाञ्जनाभ्यञ्जननस्ययोगैः ॥ अवार्य्य वीर्य्यो विषवेगहन्ता महागदो नाम महाप्रभावः ॥

अर्थ—किसी दुष्ट विषैले जीवकी विषैली हड्डीके विषसे जो व्रण होय अथवा उपरोक्त सर्पादिके दंशसे जो व्रण होय अथवा पैत्तिक विषमें पूर्वोक्त रीतिसे सडेहुए मांसको निकालकर यह उपाय करे कि निसोत, काठा, पाढर, मुलहटी, हल्दी, दारुहल्दी, मंजिष्ठ, अमलतास, पांचों नमक (सेंधा, काला, सांभर, काचिया, समुद्र लवण इत्यादि) त्रिकुटा (सोंठ मिरच पीपल) इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके शहदमें मिलाकर सींगमें भर ऊपरसे सींगकी ही ढकनीसे ढक देवे । यह औषध पान अंजन, अभ्यंजन, नस्यमें देनेसे महान् विषको नाश कर देती है, विषके वेगको नष्ट करनेमें कभी निष्फल नहीं होती और महाप्रभाववाली है इसीसे इसका नाम महागद रखा गया है ।

ऋषभौषध प्रयोग ।

मांसी हरेणु त्रिफला सुरङ्गी रक्ता लता यष्टिकपद्मकानि । (विडङ्गतालीशसुगन्धितालीशसुगन्धिकैलात्वक्कुष्ठपत्राणि सचन्दनानि) ॥ भार्गी पटोलं किणिही सपाठा मृगादनी कर्कटिका पुरश्च ॥ पालिन्द्यशोको क्रमुकं सुरस्याः प्रसूनमारुष्करजश्च पुष्पम् । चूर्णान्यथैषां निहितानि शृङ्गे न्यसेच्च पित्तानि समाक्षिकानि ॥ वराहगोधाशिखिशल्लकीनां मार्जारजं पार्षतनाकुले च । यस्यागदोऽयं सुकृतो गृहे स्यान्नाम्नर्षभो नाम नरर्षभस्य । न तत्र सर्पाः कुत एव कीटाः त्यजन्ति वीर्य्याणि विषाणि चैव ॥ एतेन भेर्य्यः पटहाश्च दिग्धा नानाद्यमाना विषमाशु हन्युः । दिग्धा पताकाश्च निरीक्ष्य सद्यो विषाभिभूता ह्यविषा भवन्ति ॥

अर्थ-जटामांसी, हरेणु, त्रिफला, सुरङ्गी, मंजिष्ठ, मुलहटी, पद्माख, वायविडंग, तालीशपत्र, सुगन्धवाला, इलायची, दालचीनी, कूट, तेजपत्र, चन्दन, भारंगी परवल, किणही, पाढ मृगादिनी, इन्द्रायण, गूगल, निसोथ, अशोक, सुपारी, तुलसीके फूल, भिलावेके फूल इन सबको समान भाग लेकर वारीक कूट छानकर शहद मिलावे और सूअर, गोह, मोर, सेह, भिल्ली हिरन, नीला इनका पित्ता भी इसमें मिलावे और सींगमें भरकर सींगका ही ढकना लगा देवे और समय पर विपार्त्त रोगियोंको परिमित मात्रासे देवे, जिस मनुष्यके घरमें यह उत्तम ऋषभ नामवाली औषध होती है वहां विषैले जन्तु तो क्या वहांपर बडे उग्र विषवाले सर्प भी अपना वीर्य्य और विष नहीं त्याग सक्ते हैं । इस ही औषधसे यदि भेरी, दुंदुभि आदि वाजोंपर लेप करके उन वाजोंको वजाया जावे तो शीघ्र जंगम विष नष्ट हो जाता है, इस औषधिसे पुतीहुई पताकाओंको जो देखता है वह विषीला तत्काल निर्विष हो जाता है ।

महासुगन्धि औषधका प्रयोग ।

चन्दनागुरुणी कुष्ठं तगरं तिलपर्णिकम् । प्रपौण्डरीकं नलदं सरलं देवदारु च ॥ भद्रश्रियं यवफला भांर्गी नीली सुगन्धिकाम् ॥ कालेयकं पद्मकञ्च मधुकं नागरं जटाम् । पुन्नागैलैलवालूनि गैरिकं ध्यामकं चलाम् । तोयं सर्जरसं मांसीं सितपुष्पां हरेणुकाम् ॥ तालीशपत्रं क्षुद्रैलां प्रियङ्गुं सकुटन्नटाम् । शैलपुष्पं सशैलेयं पत्रं कालानुसारिवाम् ॥ कटुत्रिकं शीतशिवं काश्मर्य्यं कटुरोहिणीम् । सोमराजीमतिविषां पृथ्विकामिंद्रवारुणीम् ॥ उशीरं वरुणं मुस्तं नखं कुस्तुम्बुरुं तथा । श्वेते हरिद्रे स्थौणेयं लाक्षाञ्च लवणानि च ॥ कुमुदोत्पलपद्मानि पुष्पञ्चापि तथार्कजम् ॥ चम्पकाशोकसुमनास्तिलकप्रसवानि च । पाटलीशाल्मलीशेलुशिरीषाणां तथैव च । सुरस्यास्तृणशूल्याश्च सिन्धुवारस्य यानि च ॥ गुग्गुलुं कुंकुमं बिम्बीं सर्पाक्षीं गन्धनाकुलीम् । एतत्सम्भृत्य सम्भारं सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् । गोपित्तमधुना सर्पिर्युक्तं शृङ्गे निधापयेत् ॥ भग्नस्कन्धं विवृत्ताक्षं मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गतम् । अनेनागदमुख्येन मनुष्यं पुनराहरेत् ॥ एषोऽग्निकल्पं दुर्वारं क्रुद्धस्यामिततेजसः । विषं नागपतेर्हन्यात् प्रसभं वासुकेरपि । महासुगन्धिनामायं पञ्चाशी-

त्यङ्गयोजितः। राजा गदानां सर्वेषां राज्ञो हस्ते भवेत्सदा। तेनानुलि- प्तस्तु नृपो भवेत्सर्वजनप्रियः। भ्राजिष्णुतां च लभते शक्रमध्यगतोऽपि सन्॥

अर्थ—चन्दन, अगर, कूट, तगर, तिलपर्णी, प्रपौण्डरीक, नलद, सरला, देवदारु, सफेद चन्दन, दुद्धी, भारंगी, नलि जलिका सर्पगंधा पीत चन्दन, पद्माख, मुलहटी, जटामांसी, पुन्नाग, बडी इलायची, एलुआ, सोनागेरू, रोहिषतृण, खरैटी, नेत्रवाला, राल, मुरामांसी, सितपुष्पा, हरेणु, तालीसपत्र, छोटी इलायची, प्रियंगु, कुटन्नट, शिलापुष्प, शिलाजीत, कालानुसारी अर्थात् तगरका भेद कालातगर, त्रिकुटा, कर्पूर, खंभारी, कुटकी, बावची, अतीस, वडा जीरा, इन्द्रायण, खस, वरुणकी छाल, नागर-मोथा, नख, धनियां, दो प्रकारकी श्वेता, दोनों हल्दी, ग्रन्थपर्णी, लाख, पांचो नमक, कमोदनी, उत्पल, पद्म, आकके फूल, चम्पाके फूल, अशोकके फूल, तिलके फूल, पाढर, सेमर, शेलु, सिरस इन सबके फूल लेवे, सुरसीके फूल, सम्हालूके फूल, धायके फूल, रालवृक्षके फूल, तिनिशके फूल, गूगल, कुंकुम, कंदूरी, सर्पाक्षी, सुगंधमूला इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीस छानकर गौका पित्ता घृत शहद मिलाकर सींगमें भरकर रखदेवे। इस मुख्य औषधके सेवनसे टूटाहुआ कन्धा विवृताक्ष होता है और मृत्युके दांतोंके बीचमें गया हुआ मनुष्य भी निकल आता है यह औषध सर्पोंके राजा महा क्रुद्ध और अति तेजस्वी वासुकीके विषको भी नष्ट करनेमें अग्निके समान दुर्निवार्य है। इस औषधका नाम महासुगन्धि है, यह पचासी औषधियोंके संयोगसे बनती है, यह संपूर्ण औषधियोंकी राजा है और सदैव राजाके हाथमें रखनी चाहिये, क्योंकि उस हाथसे अन्नपानका स्पर्श करनेसे विषैले अन्नपान निर्विष हो जाते हैं। इस औषधको शरीरपर लगानेसे राजा सर्व मनुष्योंको प्रिय होता है और इन्द्रादिक देवताओंके बीचमें शोभाको प्राप्त होता है इन्द्रादिक देवताओंसे यहां विष राजाओंका ग्रहण है।

आखू मूषिक विष चिकित्सा।

पूर्वमुक्ताः शुक्रविषा मूषिका ये समासतः। नामलक्षणभैषज्यैरष्टादश निबोध तान्॥ लालनः पुत्रकः कृष्णो हंसिरश्चिक्किरस्तथा। छुछुन्दरोऽल-सश्चैव कषाय दशनोऽपिच। कुलिङ्गश्चाजितश्चैव चपलः कपिलस्तथा॥ कोकिलोऽरुणसञ्ज्ञश्च महाकृष्णस्तथोन्दुरः। श्वेतेन महता सार्द्धं कपिले-नाखुना तथा॥ मूषिकश्च कपोताभस्तथैवाष्टादशस्मृताः। शुक्रं पतति यत्रैषां शुक्रघृष्टैः स्पृशन्ति वा॥ नखदन्तादिभिस्तस्मिन् गात्रे रक्तं

प्रदुष्यति । जायन्ते ग्रन्थयः शोफाः कर्णिका मण्डलानि च । पिडकोपचयश्चोग्रा विसर्पाः किटिभानि च ॥ पर्वभेदोरुजस्तीव्रा ज्वरो मूर्च्छा च दारुणा । दौर्बल्यमरुचिः श्वासो वमथुर्लोमहर्षणम् ॥

अर्थ—जो पूर्व कथन किया गया है कि चूहेके शुक्रमें विष होता है सो ये चूहे नाम लक्षण और भैषज्यसे १८ प्रकारके हैं, उनकी संज्ञा इस प्रकारसे है कि लालन, पुत्रक, कृष्ण, हंसिर, चिकिर छुछून्दर, कषायदशन, कुलिंग, अजित, चपल, कपिलकोकिल, अरुण, महाकृष्ण, उन्दुर, महाश्वेत, आखुकपिल, कपोताभ मूषिक (इनका वीर्य्य जिस जगह गिरता है अथवा शुक्रमें विसेहुए नख और दन्तादिक शरीरमें जहां कहीं लग जाते हैं वहींका रक्त दूपित हो जाता है । हमारी परीक्षामें चूहोंकी उपरोक्त जातियोंमेंसे कई जातिके चूहोंके दन्त ही विषैले होते हैं और कई जातिके चूहे निर्विष होते हैं, जो यह मान लिया जाय कि चूहेके शुक्रमें ही विष होता है तो क्या चूहोंका शुक्र वे नारीके समागमके बहता रहता है जो कि उनके नख और दांतोंमें लग जाता है । दूसरे यह कि नारीके समागममें चूहेका शुक्र निकले वह नारीके शरीरके आभ्यन्तर पिण्डमें जाता है उसमेंसे निकल कर बाहर नहीं आता सो दन्त और पैरके पंजोंसे लग जावे । इससे यही ठीक है कि चूहेके दांतमें ही विष है और मनुष्यके शरीरमें जहां दाँत चुभाता है वहीं उसके दंशके लक्षण दीखने लगते हैं.) चूहेके दंशके सामान्य लक्षण इस प्रकारसे हैं—चूहेके काटनेके स्थानपर गांठ और सूजन उत्पन्न हो कमलकी कर्णीकाके समान चटपड जाती है, फुंसियां उत्पन्न होती हैं चकत्ते पड जाते हैं बडा प्रचण्ड विसर्प और किटिभ रोग होता है शरीरमें हडफूटन तीव्र वेदना ज्वर गहरी मूर्च्छा, दुर्बलता, अरुचि, श्वास, वमन, और रोमाञ्च खडे होते हैं ।

जाति भेदसे विशेष लक्षण ।

दृष्टरूपं समासोक्तमेतच्च व्यासतः शृणु । लालास्रावो लालनेन हिक्काच्छर्दिश्च जायते ॥ तण्डुलीयककल्कन्तु लिह्यात्तत्र समाक्षिकम् । पुत्रकेणाङ्गसादश्च पाण्डुवर्णश्च जायते ॥ चीयते ग्रन्थिभिश्चांगमाखुशावकसन्निभः । शिरीषेंगुदकल्कन्तु लिह्यात्तत्र समाक्षिकम् ॥ कृष्णेनासृक् छर्दयति दुर्दिनेषु विशेषतः । शिरीषफलकुष्ठन्तु पिबेत्किंशुकभस्मना ॥ हंसिरेणान्नविद्वेषो जृम्भालोमाञ्च हर्षणम् । पिबेदारग्वधादिन्तु सुवान्तस्तत्र मानवः ॥ चिक्किरेण शिरोदुःखं शोफो हिक्का वमी तथा ।

जालिनीमदनाङ्कोष्ठकषायैर्वामयेत्तु तम् ॥ छुछुन्दवेनमूच्छर्दिर्ज्वरो दौर्बल्यमेव च । ग्रीवास्तम्भः पृष्ठशोफो गन्धाज्ञानं विषूचिका ॥ चव्यं हरीतकी शुण्ठी विडंगं पिप्पली मधु। श्वेतकवीजं क्षारञ्च बृहत्याश्चात्र दापयेत् ॥ ग्रीवास्तम्भोऽलसेनोर्ध्ववायुर्दंशे रुजा ज्वरः । महागदं ससर्पिष्कं लिह्यात्तत्र समाक्षिकम् ॥ निद्राकषायदन्तेन इच्छोपः कार्श्यमेव च । क्षौद्रोपेताः शिरीषस्य लिह्यात्सारफलत्वचः ॥ कुलिंगेन रुजः शोफो राज्यश्च दंशमण्डले । सहेससिन्धुवारे च लिह्यात्तत्र समाक्षिके ॥ अजितेन वमी मूर्च्छा हृद्ग्रहः कृष्णनेत्रता ॥ तत्र स्नुहीक्षीरपिष्टां पालिन्दीं मधुना लिहेत् । चपलेन भवेच्छर्दिर्मूर्च्छा च सहतृष्णया ॥ सभद्रकाष्ठां सजटां क्षौद्रेण त्रिफलां लिहेत् । कपिलेन व्रणे कोथो ज्वरो ग्रन्थ्युद्गमस्तथा ॥ क्षौद्रेण लिह्यात्त्रिफलां श्वेतां चापि पुनर्नवा। ग्रन्थयः कोकिलेनोग्रा ज्वरो दाहश्च दारुणः ॥ वर्षाभूनीलिनी क्वाथः सिद्धं तत्र घृतं पिबेत् । अरुणेनानिलः क्रुद्धो वातजान् कुरुते गदान् ॥ महाकृष्णेन पित्तञ्च श्वेतेन कफ एव च । महता कपिलेनास्त्रृक्पोतेन चतुष्टयम् । भवन्ति चैषां दंशेषु ग्रन्थिमण्डलकर्णिकाः ॥ पिडकोपचयाश्चोग्राः शोफश्च भृशदारुणः । दधिक्षीरघृतप्रस्थास्त्रयः प्रत्येक शोमताः ॥ करञ्जारग्वधव्योषबृहत्यंशुमतीस्थिराः । निःक्वाथ्य चैषां क्वाथस्य चतुर्थांशपुनर्भवेत् ॥ त्रिवृत्तिलामृताचक्रसर्वगन्धासमृत्तिका। कपित्थदाडिमत्वक् च सुपिष्टानि तु दापयेत् ॥ तत्सर्वमेकतः कृत्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । पञ्चानामरुणादीनां विषमे तद् व्यपोहति । काकादनी काकमाची स्वरसेष्वथवा कृतम् । सिरांश्च स्रावयेत् प्राज्ञः कुर्य्यात् संशोधनानि च ॥

अर्थ—(लालन दंशके लक्षण) मुखसे लार वहना हिचकी और वमन आती है इसके विषकी निवृत्तिके लिये चौलाईकी पीठी पीसकर उसमें शहद मिलाकर चाटे । पुत्र दंशके लक्षण) अङ्गमें ग्लानि पाण्डु वर्ण रोगीका हो जाता है और चूहेके छोटे बच्चोंके समान

ग्रन्थी हो जाती है, प्रायः समस्त जातिके आखु विषसे ऐसी ग्रन्थी होती हैं, परन्तु पुत्रककेमें कई ग्रन्थी हो जाती हैं । ज्यों २ विषका विस्तार होय त्यों २ ग्रन्थी बढती जाती है । चिकित्सा इसकी यह है कि सिरसकी छाल गोंदीकी छाल दोनोंका कल्क बनाकर शहदके संग चाटे (कृष्ण दंशके लक्षण) कृष्ण मूषकके काटनेसे यदि बादल वर्षा होय तो रोगीको विशेष करके रक्तकी वमन आती हैं । चिकित्सा सिरसके बीज, कूट इनका चूर्ण करके पलाश भस्मके नितरे हुए क्षार जलके साथ सेवन करावे । (हंसिरके लक्षण) हंसिर जातिका चूहा काटे तो अन्नमें अरुचि जंभाई आ रोमाञ्च खडे हो जाते हैं । वमन विरेचनसे रोगीके शरीरकी शुद्धी करावे, आरग्वधादि क्वाथका सेवन करावे, अमलतास, पीपलामूल, कुटकी, नागरमोथा, हरडकी छाल, समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्वाथ बनावे । (चिक्किरके लक्षण) शिरमें दर्द, सूजन, हिचकी, वमन ये उपद्रव होते हैं चिकित्सा कडुवी तोरईका गूदा, मैनफलका गर्भ इनका काढा पिलाकर वमन करावे छुछुन्दर—चकचूंदड जिसको काटे तो तृषा, वमन ज्वर, दुर्लवता, ग्रीवास्तम्भ, पृष्ठशोथ, गन्धका अज्ञान, विशूचिका ये उपद्रव होते हैं । चिकित्सा—चव्य, हरडकी छाल, सोंठ वायविडंग, पीपल, श्वेतर्कके बीज, कटेलीका क्षार इनका चूर्ण करके शहदके साथ सेवन करावे । (अलसदके लक्षण) अलसदके दंशसे ग्रीवास्तम्भ, उर्ध्ववायुका निकलना, दंशस्थानमें वेदना, ज्वर ये उपद्रव होते हैं चिकित्सा इसमें ऊपर लिखीहुई महागद औषधको शहदके साथ सेवन करावे । (कषाय दन्तके लक्षण) हृदयमें शोष, कृषता, और निद्रा होती है । चिकित्सा सिरसके बीज, छाल और लकडीके बीचका सार भाग इनका चूर्ण करके शहदके साथ चटावे । (कुलिङ्गके लक्षण) वेदना, शोथ दंशमंडलमें लकीर पड जाती हैं, इसमें मूंगपर्णी, मासपर्णी, संभाल्ड इनको समान भाग लेकर चूर्ण करके शहदके साथ सेवन करावे । (अजितके लक्षण) अजित चूहेके काटनेसे वमन, मूर्च्छा, हृदग्रह होता है नेत्र काले पडजाते " इसमें थूहरके दूधमें निशोथके चूर्णको पीसकर और शहदमें मिलाकर सेवन कराके दस्त करावे । (चपलके लक्षण) वमन, मूर्च्छा, तृषा होती है । चिकित्सा देवदारु, जटामांसी, त्रिफला इनके चूर्णको शहदमें मिलाकर चटावे । (कपिलके लक्षण) दंशव्रणका सडना, ज्वर ग्रन्थीका उत्पन्न होना इसके लिये श्वेतस्यन्द श्वेत पुनर्नवाका चूर्ण करके शहदके साथ सेवन करावे । (कोकिलके लक्षण) उग्र ग्रन्थी, ज्वर दाह ये उपद्रव होते हैं । चिकित्सा त्रिपखपराका स्वरस और नीलिनीका क्वाथ इनमें घृतको सिद्ध करके पान करावे अरुणके काटनेसे वात कुपित होती ह तथा वातज अन्य बीमारियाँ खडी हो. जाती हैं । महाकृष्ण मूषकके काटनेसे पित्तज रोग होते हैं और चकारसे वातज व्याधि भी

होती हैं। सफेद चूहेके काटनेसे कफज रोग होते हैं। महाकपिलके काटनेसे रक्तज व्याधि होती हैं, कपोत संज्ञक चूहेके काटनेसे वात पित्त कफ रक्तज चारों प्रकारकी व्याधियां होती हैं। इन सव प्रकारके चूहोंके काटनेसे ग्रन्थी चकत्ते और कमल-केशरके समान मांसका उठना और बडी पीडा देनेवाली फुंसियां तथा दारुण शोथ इत्यादि चिह्न होते हैं। चिकित्सा दुग्ध, दही, घृत, प्रत्येक तीन २ प्रस्थ लेवे। अमलतासका गर्भ, त्रिकटु, (कटेली) शालपर्णी, मूषकपर्णी इनको आठ २ तोला प्रत्येकको लेकर कूटकर एक आढक जलमें क्काथ वनावे, जव चौथा भाग जल वाकी रहे तव उतारकर छान लेवे। निसोथ, तिल, गिलोय, तगर, सर्पगन्धा, काली मृत्तिका, कैथ, अनारके छिलके इनको एक २ तोला लेकर कूटके डाल दूध दधि घृत क्काथ और सर्व औपधियोंको एकत्र करके मन्दाग्नि पर पकावे, जव घृत सिद्ध करके इस घृतका पान करावे। यह अरुणादि घृत पांच प्रकारके चूहोंके विपको नष्ट करता है। अथवा काकादनी और मकोयके स्वरसमें उक्त घृतको पका फस्द खोलके रक्त-मोक्षण करे और संशोधन भी करे।

सर्व विपनाशक विधि।

सर्वेपां च विधिः कार्य्यो मूषिकाणां विपेष्वयम्। दग्धविस्रावयेद्दंशं प्रच्छितञ्च प्रलेपयेत्। शिरीषरजनीकुष्ठकुङ्कुमैरमृतायुतैः॥ छर्दनं जालिनीक्काथैः शुकाख्याङ्कोठयोरपि। शुकाख्याकोषवत्योश्च मूलं मदन एव च। देवदालीफलञ्चैव दध्ना पीत्वा विपं वमेत्। फलं वचा देव-दाली कुष्ठं गोमूत्रपेषितम्। पूर्वकल्पेन योज्याः स्युः सर्वोन्दुरुविष-च्छिदि॥ विरेचने त्रिवृद्दन्तीत्रिफलाकल्क इष्यते। शिरोविरेचने सारः शिरीषफलमेव च॥ कटुत्रिकाव्यश्च हितो गोमयश्चरसोऽञ्जने। कपि-त्थगोमयरसः सक्षौद्रो लेह इष्यते॥ रसाञ्जनहरिद्रेन्द्रयवकटुकीषु वा कल्कम्। कल्कं सातिविषं प्रातर्लिह्याच्च क्षौद्रसंयुतम्॥ तन्दुलीयकमू-लेषु सर्पिः सिद्धं पिबेन्नरः। आस्फोतमूलसिद्धं वा पंचकापित्थमेव वा॥ मूषिकाणां विपं प्रायः कुप्यत्यभ्रेषु निर्हृतम्। यत्राप्येष विधिः कार्य्यो यश्च दूषीविषापहः॥ स्थिराणां रुजतां वापि व्रणानां कर्णिकाभिषक्। पाटयित्वा यथादोपं व्रणवच्चापि शोधयेत्॥

अर्थ—यह शिरा व्यधादिक विधि सब प्रकारके चूहोंके विषोंमें करनी चाहिये, दंशस्थानको जलाकर विस्रावित करे और पछना लगाकर सिरस, हल्दी, कूट, कुंकुम, गिलोय इनका लेप करे । (सर्पदंष्टके समान विष चूषण विधि चूहेके दंशमें भी हितकारी है) चूहेके विषको वमन प्रयोग कडुवी तोरईके क्वाथको पिलाकर वमन करावे अथवा छोटी जातिका नागरमोथा अकोल इनका क्वाथ पिलाकर वमन करावे, अथवा छोटा मोथा, कडुवी तोरईकी जड, मैनफल, विंदालफलका जाल, त्रिफला इनको बारीक पीसकर दहीके साथ पिलाकर वमन करावे । अथवा मैनफल, वच, देवदाली (विंदालफल) कूट इनको गोमूत्रके साथ पीसकर दहीमें मिलाकर पिलावे, इन प्रयोगोंसे वमन आती है और सब प्रकार मूसोंका विष निवृत्त हो जाता है । (विरेचनके प्रयोग) चूहेके विषमें विरेचनके लिये .निसोथ दन्ती (जमालगोटाकी जड) त्रिफला इनका कल्क व चूर्ण गर्म जलके साथ देवे शिरो विरेचनको सिरके बीजकी नस्य व गूदा देवे । अथवा देवदालीके फलका जाल जलमें भिगोकर उस जलकी नस्य देवे अत्युत्तम शिरो विरेचन होता है । अंजनमें त्रिकटु (सोंठ, काली मिरच पीपलके बीज) इनका सूक्ष्म चूर्ण करके गौके गोबरके रसमें काजलके समान पीसकर नेत्रोंमें आंजे इससे नेत्र विरेचन होता है । कैथके गर्भका चूर्ण गौके गोबरका रस और शहद मिलाकर चाटे । रसौत, हल्दी, इन्द्रजौ कुटकी, अतीस इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना प्रातःकाल शहदमें मिलाकर चटावे । चौलाईकी जडके क्वाथमें घृत पकाकर पिलावे, अथवा कोविदारीकी जडके क्वाथमें सिद्ध कियाहुआ पान करावे । अथवा पचकापित्थ घृत पिलावे उसके बनानेकी विधि यह है कि कैथके फलका गूदा कैथकी जड, पुष्प, छाल, पत्र इनको समान भाग लेकर इनके क्वाथमें घृतको सिद्ध करे । यदि चूहेका विष वमन विरेचन द्वारा निकाल कर शरीर शुद्ध न किया जावे तो बादल और वृष्टि होनेपर पुनः कुपित हो जाता है । इस स्थितिमें सर्पके दूषी विषके समान चिकित्सा करे ।

गोधा गुहेरा गोह विषकी चिकित्सा ।

प्रतिसूर्य्यः पिंग भासो बहुवर्णमहाशिराः । तथा निरूपमश्चापि पञ्च गौधेरकाः स्मृताः ॥ तैर्भवन्तीहदष्टानां वेगज्ञानानि सर्पवत् । रुजश्च विविधाकारा ग्रन्थयश्च सुदारुणाः॥कृष्णसर्पेण गोधायां भवेत्यस्तु चतुष्पदः । सर्पो गौधेरको नाम तेन दष्टो न जीवति ॥ गलगोली श्वेतकृष्ण रक्तराजी रक्तमण्डलासर्वश्वेता सर्सपिकेत्येवं षट् । ताभिर्दष्टे सर्षपिका-

वर्ज दाह शोफक्लेदा भवन्ति ॥ सर्षपिकया हृदयपीडातिसारश्च । शतपद्यस्तु पूरुषा कृष्णा चित्रा कपिलिका पीतिका रक्ता श्वेता अग्निप्रभा इत्यष्टौ । ताभिर्दष्टे शोफो वेदनाश्च दाहश्च हृदये ॥ श्वेताग्नि प्रभाभ्यांमेतदेव दाहो मूर्च्छा चातिमात्रं श्वेतपिडकोत्पत्तिश्च ॥

अर्थ—गुहेरेके जातिभेद प्रतिसूर्य्य, पिङ्गभास, बहुवर्ण, महाशिर निरूपम, ये पांच प्रकारके गुहेरे होते हैं, इनके काटनेसे सर्पके समान वेग होते हैं अनेक प्रकारकी वेदना भयंकर ग्रन्थी और चकारसे ज्वरादि उपद्रव भी होते हैं। काले सर्पसे गोधामें जो चतुष्पद सर्प होता है उसे गौधेरक कहते हैं, इसका काटाहुआ मनुष्य जीवित नहीं रहता। गोहके जातिभेद। गलगोली, श्वेत कृष्णा, रक्तराजी, रक्तमंडला, सर्वश्वेता, सर्षपिका ये छः भेद गोहके हैं, इनमेंसे सर्षपिकाको छोडकर अन्य पांचोंके काटनेसे दाह, क्लेद, सोथादि होते हैं सर्षपिकाके काटनेसे हृदयमें पीडा और अतिसार होता है ये प्राणोंके हरनेवाली होती है। शतपदीके जातिभेद—परुषा, कृष्णा, चित्रा, कपिलिका, पीतिका, रक्ता, श्वेता, अग्निप्रभा ये आठ भेद शतपदीके हैं। इनके काटनेपर सूजन, वेदना, हृदयमें दाह होता है, जब श्वेता और अग्निप्रभा काटती है तब उसी तरहसे हृदयमे दाह अत्यन्त मूर्च्छा अनेक सफेद फुंसियाँ होती हैं।

चिकित्सा।

कीटैर्दष्टानुग्रविषैः सर्पवत्समुपाचरेत् । त्रिविधानान्तु सर्पाणां त्रैविध्येन क्रिया हिता। स्वेदमालेपनं सेकं चोष्णमत्रावचारयेत् । अन्यत्रमूर्छिता दंशात् पाक कोथप्रपीडितात् । विषघ्नश्च विधिं सर्वं कुर्यात् संशोधनानि च । शिरीषकटुकं कुष्ठं वचारजनिसैन्धवैः ॥ क्षीरमज्जवसासर्पिः शुण्ठी पिप्पलि दारुषु। उत्कारिकास्थिरादौवा सुकृता स्वेदनेहिता॥ अगारधूमरजनी वक्रं कुष्टं पलाशजम् । गलगोलिकदष्टानामगदो विषनाशनः ॥ कुंकुमं तगरं शिग्रुपद्मकं रजनीद्वयम् । अगदोजलपिष्टोयशतपद्विषनाशनः ॥

अर्थ—उग्र विषवाले गोधादि कीडोंके काटने पर सर्पोंके दंशके समान चिकित्सा करे। तीन प्रकारके सर्पोंकी तीन ही प्रकारकी क्रिया होती हैं, सामान्य क्रिया यह है कि स्वेदन, आलेपन और ऊष्ण द्रव्योंका सेंक करे। परन्तु यह क्रिया मूर्छित और पाककोथसे पीडित दंशमें न करनी चाहिये, तथा सम्पूर्ण विषनाशक और संशोधन

विधियोंको करे सिरस, कटुक, कूट, वच, हल्दी, सेंधा नमक दूध, मज्जा, वसा, घृत, सोंठ, पीपल, दारु हल्दी इनकी लुपडी (पुल्टिस) बनाकर स्वेदन करे अथवा शालपर्णी आदि गणकी औषधियोंकी लुपडी बनाकर स्वेदन करे। घरका धुआँ, हल्दी, पवाड, कूट, ढाकके बीज ये द्रव्य गलगोलीके विषको निवृत्त करते हैं। कुंकुम, तगर, सहजना, पद्माख, हल्दी, दारुहल्दी इनको जलमें पीसकर लेप करनेसे शतपदीका विष नष्ट होता है।

कणभके लक्षण और भेद।

त्रिकण्टकः कुणी चापि हस्तिकक्षोऽपराजितः। चत्वार एते कणभा व्याख्यातास्तीव्रवेदनाः। तैर्दष्टस्य श्वयथुरङ्गमर्दो गुरुता गात्राणां दंशः कृष्णश्च भवति॥

अर्थ—त्रिकण्टक कुणी, हस्तिकक्ष, अपराजित, कणभके ये चार जातिभेद हैं, इनके काटनेसे बडी तीव्र वेदना होती है और कणभके चार जाति भेद होनेपर भी इनके दंशमें एकसे उपद्रव होते हैं। सूजन, शरीरका टूटना, शरीरमें भारीपन, दंशस्थानका काला हो जाना इत्यादि लक्षण होते हैं। चिकित्सा—इनकी सर्पके समान करे परन्तु त्रिकण्टकी चिकित्सा इस प्रकारसे करे कि कूट, तगर, वच, वेलगिरीकी जड, पाढ, सज्जी, गृहधूम, हल्दी, दारु हल्दी इनके द्वारा स्वेदन लेपन करनेसे कणभ (त्रिकण्टक) के चारों भेदोंका विष निवृत्त होता है।

मण्डूकके जातिभेद।

मण्डूकाः कृष्णः सारः कुहको हरितो रक्तो यववर्णाभो भृकुटी कोटिकश्चेत्यष्टौ। तैर्दष्टस्य दंशकण्डू भवति पीतफेनागमश्च वक्रात्। भृकुटीकोटिकाभ्यामेतदेवं दाहश्छर्दिर्मूर्च्छाचातिमात्रम्। मण्डूकाभिर्दष्टे पीताङ्गच्छर्द्यतीसारज्वरादिभिरभिहन्यते॥

अर्थ—कृष्ण, सार, कुहक, हरित, रक्त, यववर्णाभ, भृकुटी, कोटिक ये आठ भेद मेंडकके होते हैं, इनके दंशके सामान्यतासे ये लक्षण हैं कि दंशस्थानमें खुजली चलती है और मुखसे पीले २ झाग निकलते हैं। भृकुटी और कोटिक इन दोके काटनेसे ऊपर कथन कियेहुए (शतपदी) के दंशके समान भी लक्षण होते हैं। तथा दाह वमन मूर्च्छा अतीसार ज्वरादि उपद्रव होते हैं, इनमेंसे रक्त मेंडक सबसे बुरा है। यूनानी तबीब कहते हैं कि लाल मेंडक उछल कर काटनेको आता है, यदि काटता नहीं है तो जलके अन्दर प्रवेश करनेवाले पशु और मनुष्योंके जिस्ममें फूँक मारता है, उसकी फूंक व सूजनसे मृत्यु होती है।

(मण्डूक विषकी चिकित्सा)।

मेषशृङ्गी वचा पाठा निचुलो रोहिणी जलम्।
सर्व्वमण्डूकदष्टानामगदो विषनाशनम् ॥

अर्थ-मेंढाशृङ्गी, वच, पाढ, जलबेत, हरड, नेत्रबाला इनको पीसकर लगानेसे सम्पूर्ण जातिके मेंडकोंका विष निवृत्त होता है, अथवा यूनानी प्रयोग तिर्याक कबीरका सेवन करावे।

वृश्चिक विच्छूका जातिभेद।

त्रिविधा वृश्चिकाः प्रोक्ता मन्दमध्यमहाविषाः। गोशकृत्कोथजा मन्दा मध्याः काष्टेष्टिकोद्भवाः। सर्पकोथोद्भवास्तीक्ष्णा ये चान्ये विषसंभवाः॥ मन्दा द्वादशमध्यास्तु त्रयः पञ्चदशोत्तमाः। दशविंशतिरित्येते संख्यया परिकीर्त्तिताः॥ कृष्णः श्यावः कर्बुरः पाण्डुवर्णो गोमूत्राभः कर्कशो मेचकश्च। श्वेतो रक्तो रोमशः शाद्वलाभो रक्तश्चैते मन्दवीर्य्या-मतास्तु ॥ एभिर्दष्टे वेदना वेपथुश्च गात्रस्तम्भः कृष्णरक्तागमश्च। शाखादष्टे वेदना चोर्द्ध्वमेति दाहस्वेदौ दंशशोफो ज्वरश्च ॥ रक्तः पीतः कपिलेनोदरेण सर्वे धूम्रा पर्वभिश्च त्रिभिः स्युः। एते मूत्रोच्चारपूत्य-ण्डजाता मध्या ज्ञेयास्त्रिप्रकारोरगाणाम् ॥ यस्यै तेषामन्वयाद्यः प्रसूतो दोषोत्पत्तिं तत्स्वरूपाञ्च कुर्य्यात्। जिह्वाशोफो भोजनस्यावरोधो मूर्च्छा चोग्रा मध्यवीर्य्याभिदष्टे ॥ श्वेतश्चित्रः श्यामलो लोहिताभो रक्तः श्वेतो रक्तनीलोदरौ च। पीतो रक्तो नीलपीतोऽपरस्तु रक्तो नीलो नीलशुक्लस्तथा च ॥ रक्तो बभ्रुः पूर्ववच्चैकपर्वा पश्चापर्वा पर्वणी द्वे च यस्य। नानारूपा वर्णतश्चापि घोरा ज्ञेयाश्चैते वृश्चिकाः प्राणचौराः ॥ जन्मैतेषां सर्पकोथात्प्रदिष्टं देहेभ्यो वा घातितानां विषेण। एभिर्दष्टे सर्पवेगप्रवृत्तिः स्फोटोत्पत्तिर्भ्रान्तिदाहौ ज्वरश्च। खेभ्यः कृष्णं शोणितञ्चापि तीव्रं तस्मात्प्राणैस्त्यज्यते शीघ्रमेव ॥

अर्थ-विच्छू तीन प्रकारके होते हैं, एक मन्द विषवाले, दूसरे मध्य विषवाले, तीसरे महाविषवाले। इनमेंसे वे विच्छू जो गाय भैंसके गोबर और मूत्रसे उत्पन्न होते

हैं वे मन्द विषवाले हैं, जो काष्ठ और ईंट पत्थर सडीहुई वनस्पतिमें उत्पन्न होते हैं वे मध्य विषवाले हैं । जो सर्पके मल मूत्र अथवा मृतक सर्पके सडेहुए शरीरसे अथवा अन्य विषोंके संयोगसे उत्पन्न होते हैं वे महा विषवाले हैं। (विच्छुओंकी संख्या) मन्दविषवाले विच्छू १२ प्रकारके होते हैं, मध्य विषवाले तीन प्रकारके और तीक्ष्ण विषवाले १५ प्रकारके होते हैं, इस प्रकार सब विच्छू तीस प्रकारके हैं। (विच्छु-ओंकी जाति भेदसे दंशके लक्षण) कृष्ण, श्याव, कुर्बर, पाण्डुवर्ण, गोमूत्राभ, कर्कश, मेचक, रक्त, श्वेत, रोमश, साद्वलाभ, रक्तरेखा ये बारह प्रकारके विच्छू मन्द विषवाले होते हैं। यदि ये विच्छू दंश करें तो वेदना, कम्पन, गात्रस्तम्भ, काले रक्तका बहना ये होते हैं। यदि हाथ पैरादि शाखाओंमें काट खायँ तो वेदना ऊपरको वढ दाह स्वेद दंशस्थानमें सूजन और ज्वर भी होता है। (मध्य विष-वाले विच्छुओंके जाति भेद लक्षण) मध्य विषवाले विच्छू रक्त पीत और कपिल तीन प्रकारके होते हैं, परन्तु इन सबका उदर धूम्र वर्णका होता है और इनके शरीरमें तीन जोड होते हैं। ये विच्छू दर्वीकर, राजिमन्त मंडलिक इन तीनों जातिके सर्पोंके मल मूत्र और सडेहुए अण्डोंसे उत्पन्न होते हैं। इस लिये ये विच्छू जिस प्रकारके सर्पके मलमूत्रादिसे उत्पन्न होते हैं वैसेही वैसे दोषोंको उत्पन्न करते हैं, यदि मध्य विषवाला विच्छू काट खाय तो जिह्वामें सूजन, भोजनमें अरुचि और उग्र मूर्च्छा उत्पन्न होती है। (तीक्ष्ण विषवाले विच्छुओंका जाति भेद और लक्षण) श्वेत, चित्र, श्यामल लोहि-ताभ, रक्तश्वेत, रक्तोदर, नीलोदर, पीतरक्त, नीलपीत, रक्तनील, नीलशुक्र, रक्तबभ्रु, एकपर्व, अपर्व, द्विपर्व इस प्रकारसे ये पंद्रह जातिवाले विच्छू तीक्ष्ण विषके कहे जाते हैं, इन विच्छुओंका विष अति भयंकर प्राणोंको हरनेवाला है इनका जन्म उग्र विषवाले सडेहुए सर्पोंसे अथवा विष विकारसे भरेहुए शरीरोंसे होता है, इनके काटनेसे सर्प विषके समान वेग होते हैं। तथा शरीरका टूटना, भ्रान्ति, दाह, ज्वर ये उत्पन्न होते हैं। इनके दंशसे लोम कूपोंमें होकर तथा नासिका कर्णादि स्रोतोंसे काला रक्त निकल प्राणी शीघ्रही मर जाता है। यूनानी हकीम कहते हैं कि विच्छूका डंक रगमें लगे तो अचैतन्यता आती है, जो पुट्ठेपर लगता है तो मिर्गी और शिरमें दर्द होता है। एक प्रकारका विच्छू जिसको जरारा कहते हैं, क्योंकि जब वह चलता है तो उसकी पूंछ धरतीपर खिंचतीहुई जाती है, इस जातिके विच्छूका विष अतिगर्म होता है जिस दिन यह काटता है उस दिन दर्द कम होता हुआ दूसरे तीसरे दिवस दर्द वढ जाता है। जीभ पर सूजन आ मूत्रमें रक्त आने लगता है, अत्यन्त अचैतन्यता उन्माद पीलिया, अजीर्ण उत्पन्न करता है और कभी २ मनुष्य मर भी जाता है।

वृश्चिक विषकी चिकित्सा।

उग्रमध्यविषैर्दष्टं चिकित्सेत्सर्पदष्टवत्। दंशं मन्दविषाणां तु चक्रतैलेन सेचयेत्॥ विदार्य्यादिसुसिद्धेन सुखोष्णेनाथ वा पुनः। कुर्याच्चोत्कारिकास्वेदं विषघ्नैरुपनाहनैः॥ आदंशं स्वेदितं चूर्णैः प्रच्छितं प्रतिसारयेत्। रजनीसैन्धवव्योषशिरीषफलपुष्पजैः॥ मातुलुंगाम्लगोमूत्रपिष्टञ्च सुरसाग्रजम्। लेपे स्वेदे सुखोष्णञ्च गोमयं हितमिष्यते॥ पाने क्षौद्रयुतं सर्पिः क्षीरं वा बहुशर्करम्। गुडोदकं वा सुहिमं चातुर्जातिकवासितम्॥ पानमस्मै प्रदातव्यं क्षीरं वा सगुडं हिमम्। शिखिकुक्कुटबर्हाणि सैंधवं तैलसर्पिषी। धूपो हन्ति प्रयुक्तोऽयं शीघ्रं वृश्चिकजं विषम्॥ कुसुम्भपुष्पं रजनीनिशाकोद्रवकं तृणम्। एभिर्घृताक्तैर्धूपस्तु पायुदेशे प्रयोजितः॥ नाशयेदाशु कीटोत्थं वृश्चिकस्य च यद्विषम्॥

अर्थ—उग्र और मध्य विषवाले विच्छुओंके दंशकी चिकित्सा सांपके काटनेके समान करे, मन्द विषवाले विच्छुओंके दंश होनेपर कोल्हूका पिलाहुआ तैल सेचन करे अथवा विदार्य्यादि गणोक्त औषधियोंकी गर्म २ पुल्टिससे अथवा विषनाशक उपनाहोंसे स्वेदन करे। दंशपर्य्यन्त स्वेदित और प्रच्छित करके हल्दी, सेंधा नमक, त्रिकुटा, सिरसके वीज और पुष्प इनका चूर्ण वनाकर प्रतिसारण करे। तथा विजौरा तुलसीके पत्र इनको गोमूत्रमें पीस कर लेप करे (प्रयोगमें विजौरेके वीज लिये जाते हैं) अथवा गौके गोवरको कपडेकी पोटलीमें वांधकर गर्म करके सेंक करे तो अतिलाभ पहुंचता है। दूधमें विशेष मिश्री व खांड शहद डालकर पीना विच्छूके विषजन्य दाहको निवृत्त करता है, अथवा गुडके शीतल जलमें नागकेशर, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची इनका चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये। अथवा मोर और मुर्गाके पर (पंख,) सेंधा नमक, तैल, घृत इन सबकी धूनी देनेसे विच्छूका विष शीघ्र ही निवृत्त हो जाता है। अथवा कसमके फूल, दोनों हल्दी, कोदोंके तृण इनका चूर्ण करके घृत मिलाकर धूप वना अग्निपर डालकर गुदापर धूनी देनेसे विच्छू तथा अन्य कीडोंका विष उतर जाता है। ऊपर स्वेदविधि उपनाह विधि लिखी गई है लेकिन सुश्रुतमें स्वेदका विधान और निषेध दोनों ही लिखे हैं। जैसा कि—

न स्वेदयेत्तथा दंशं धूमं वक्ष्यामि वृश्चिके।
अगदानेकजातीषु प्रवक्ष्यामि पृथक् पृथक्॥

अर्थ-विच्छूके डंकपर स्वेदन न करे, किन्तु उसपर धूम देवे । परन्तु हमारी रायमें स्वेदनसे प्रत्यक्ष लाभ पहुंचता देखा गया है और स्वेदनको यूनानी तबीबोंने हितकारी समझा है । यूनानी तबीब लिखते हैं कि विच्छूके दंशवाला मुखमें रीठ रखे और खरलमें रीठाको पीसकर डंकके स्थानपर लेप करे, लहसन बारीक पीसकर जम्बकके तैलमें मिलाकर लेप करे । लहसन, हींग, अकरकरा इनको पीसकर परिमित मात्रासे मद्यमें मिलाकर खिलावे और किसी २ यूनानी तबीबका कथन है कि जहांपर वहुत विच्छू रहते होयँ तो मनुष्योंको खीरा और मूली प्रतिदिवस खाया करें तो विच्छूके विषसे हानि नहीं पहुंचती । जरारा विच्छूके डंक मारनेके स्थानपर पछनोंसे विषको चूस दाग देवे, फिर फस्द खोले और जो दाग उस जगहपर न हो सके तो फरफयून, जुन्देवेदस्तर उस जगहपर रख उसके चारों ओर गिलेइरमनी, सिरकाका लेप करे । ताजा दूध पीना सेवका रुव्व, विहीका रुव्व, काहूका शीरा, कासनीका शीरा खीरा ककडीका शीरा, तलशकूनका पानी इनका पिलाना हितकारी है और २। मासे कापूर सेवके स्वरसके साथ देना अति लाभदायक है । यदि विशेष पीडा होय तो शीतल मेवाओंका स्वरस और खट्टा तक्र देना हित है, जो पेटमें अफरा होय तो हुकना (गुदामें पिचकारी वस्तिक्रिया) करे । यदि जिह्वामें सूजन होय तो जिह्वाके नीचेकी रगकी फस्द खोले और कासनीके पानी और सिकंजबीनसे कुल्ला करे । विच्छूका विष पछनोंसे खींचा जावे तो पछनोंके अन्दर धुनीहुई रुई रखलेनी चाहिये, यदि ऐसा न किया जावे तो चूसनेवालेको हानि पहुंचती है ।

लूता-मकडीके विषकी चिकित्सा ।

लूताविषं घोरतमं दुर्विज्ञेयतमन्तु तत् । दुश्चिकित्स्यतमं वापि भिषग्भिर्मन्दबुद्धिभिः ॥ सविषं निर्विषं चैतदित्येवं परिशङ्किते । विषघ्नमेव कर्त्तव्यमविरोधि यदौषधम् ॥ अगदानां हि संयोगो विषजुष्टस्य युज्यते । निर्विषे मानवे युक्तोऽगदः सम्पद्यतेऽसुखम् ॥ तस्मात्सर्वः प्रयत्नेन ज्ञातव्यो विषनिश्चयः । अज्ञात्वा विषसद्भावं भिषग् व्यापादयेन्नरम् ॥ प्रोद्भिद्यमानस्तु यथाङ्कुरेण न व्यक्तजातिः प्रविभाति वृक्षः । तद्वद् दुरालक्ष्यतमं हि तासां विषं शरीरे प्रविकीर्णमात्रम् । ईषच्च कण्डू प्रचलं सकोठमव्यक्तवर्णं प्रथमेऽहनि स्यात् । अन्तेषु शूनं परिनिम्नमध्यं प्रव्यक्तरूपं च दिने द्वितीये ॥ त्र्यहेण तद्दर्शयतीह दंशं विषं

चतुर्थेऽहनि कोपमेति। अतोऽधिकेऽह्नि प्रकरोति जन्तोर्विषप्रकोपप्रभवान् विकारान् ॥ षष्ठे दिने विप्रसृतश्च सर्वान् सममर्मदेशान् भृशमावृणोति। तत्सप्तमेऽत्यर्थपरीतगात्रं व्यापादयेन्मर्त्यमतिप्रवृद्धम् ॥

अर्थ—मकडीका विष बडा घोर भयंकर होता है, तथा समझनेमें भी नहीं आता मंद बुद्धिवाले वैद्य (चिकित्सक) से इसकी चिकित्सा होना भी दुसवार है। जब ऐसी शंका होवे कि यह मनुष्य सविष है अथवा निर्विष है उस समय ऐसी औषध देनी चाहिये कि जो धातुओंका विरोध करनेवाली न होय विषयुक्त मनुष्यके शरीर पर ही औषध प्रयोग करना हित है। निर्विष मनुष्यको औषध प्रयोग देना केवल सुखनाशक है, इसलिये प्रथम चिकित्सकका यह काम है कि हरएक रीतिसे जैसे बनसके वैसे विषका निश्चय कर लेवे, विषका निश्चय किये विदून जो चिकित्सा की जाती है ऐसा वेसमझ चिकित्सक रोगीको मार डालता है। क्योंकि मकडीका विष प्रथम ही प्रगट नहीं होता, जैसे अंकुरोंसे व्याप्त वृक्ष यद्यपि प्रथम ही व्यक्त अर्थात् प्रगट नहीं होता है। इसी प्रकार लूतादिका विष भी प्रथम ही शरीरमें स्थित मात्र होनेसे दीखनेमें नहीं आता, प्रथम दिन कुछ २ खाज चलकर पित्तीसी उठने लगती है, परन्तु रंग दिखलाई नहीं देता है, दूसरे दिवस किनारोंपर सूजन और ऊँचाई बीचमें नीचा खड्डा और रूप प्रगट होने लगता है। तीसरे दिन दंश प्रगट हो जाता है और चौथे दिन विष कुपित हो जाता है, पांचवें दिन विषके कोपसे विकार उत्पन्न हो जाते हैं। छठे दिन विष फैलकर सम्पूर्ण मर्म प्रदेशोंको रोक देता है, फिर सातवें दिन अत्यन्त वढकर समस्त शरीरमें फैलकर मनुष्योंको मारडालता है।

तीक्ष्ण, मध्य और मन्द विषके लक्षण।

यास्तीक्ष्णचण्डोग्रविषा हि लूतास्ताः सप्तरात्रेण विनाशयन्ति। अतोऽधिकेनापि निहन्युरन्या यासां विषं मध्यमवीर्यमुक्तम् ॥ लूता तीक्ष्ण विषा हन्युः सप्ताष्टनवभिर्दिनैः। एकादशाहात्परतो विषं यासान्तु मध्यमम् ॥ यासां कनीयो विषवीर्य्यमुक्तं ताः पक्षमात्रेण विनाशयन्ति। तस्मात् प्रयत्नाद्भिषगात्रकुर्यादादंशपाताद्विषघातियोगैः ॥ विषन्तु लालानखमूत्रदंष्ट्रारजःपुरीषैरथचेन्द्रियेण। सप्तप्रकारं विसृजन्ति लूतास्तदुग्रमध्यावरवीर्य्ययुक्तम् ॥ सकण्डुकोठं स्थिरमल्पमूलं लालाकृतं मन्दरुजं वदन्ति। शोफश्च कण्डूश्च पुलाकिका च धूमायनं चैव नखाग्र-

दंशे ॥ दंशन्तु मूत्रेण सकृष्णमध्यं सरक्तपर्य्यन्तमवेहि दीर्णम् । दंष्ट्राभिरुग्रं कठिनं विवर्णं जानीहि दंशं स्थिरमण्डलञ्च । रजःपुरीषेन्द्रियजं हि विद्धि स्फोटं विपक्वामलपीलुपाण्डुम् ॥ एतावदेतत्समुदाहृतन्तु वक्ष्यामि लूताप्रभवं पुराणम् । सामान्यतो दष्टमसाध्यसाध्यं चिकित्सितञ्चापि यथा विशेषम् ॥ त्रिमण्डला तथा श्वेता कपिला पीतिका तथा । आलमूत्रविषा रक्ता कसना चाष्टमी स्मृताः । ताभिर्दष्टे शिरोदुःखं कण्डूर्दंशे च वेदना । भवन्ति च विशेषेण गदा श्लैष्मिकवातिकाः ॥ सौवर्णिका लाजवर्णा जालिन्येणीपदी तथा । कृष्णाग्निवर्णा काकाण्डा मालागुणाष्टमी स्मृता ॥ ताभिर्दष्टे दंशकोथः प्रवृत्तिः क्षतजस्य च । ज्वरादाहोऽतिसारश्च गदाः स्युश्च त्रिदोषजाः । पिडिका विविधाकारा मण्डलानि महान्ति च । शोफा महान्तो मृदवो रक्ताः श्यावाश्चलास्तथा ॥ सामान्यं सर्वलूतानामेतदादंशलक्षणम् विशेषलक्षणं तासां वक्ष्यामि स चिकित्सितम् ॥

अर्थ—ये मकडियां जो अत्यन्त तीक्ष्ण अर्थात् दाहपाक और स्राव करनेवाली हैं, चण्ड अर्थात् अत्यन्त कोप करनेवाली हैं तथा जो उग्र हैं । अर्थात् ऐसी हैं जिनका विष सहन नहीं हो सक्ता वे मनुष्यको सात दिवसमें मारडालती हैं, मध्यम विषवाली मकडियां इससे अधिक अर्थात् ग्यारह दिवसमें मनुष्यको मारडालती हैं । आश्वलायन मुनि कहते हैं कि तीक्ष्ण विषवाली मकडियोंके विषसे मनुष्य सात आठ व नव दिवसमें मर जाता है, मध्यम विषवाली मकडियोंके विषसे अधिकसे अधिक ग्यारह दिनमें मनुष्य मर जाता है । मन्द विषवाली मकडियोंके विषसे मनुष्य पन्द्रह दिनमें मर जाता है, इसलिये चिकित्सकको उचित है कि काटनेके ही दिनसे विषनाशक औषधियोंका उपचार आरम्भ कर देवे । मकडी अपना विष सात प्रकारसे त्यागती हैं, लार, नख, मूत्र, दांत, रज, पुरीष, इन्द्रीसे यह विष उग्र, मध्यम, निकृष्ट तीन प्रकारका होता है । जो विष मकडीकी लारसे चढता है उससे खुजलीके साथ पित्ती उछलती है, वह स्थिर अल्प जडवाली और मन्द वेदनासे युक्त होती है । नखके विषसे सूजन, खुजली पुलानिका और धूएकासा रंग हो जाता है । मूत्र विषसे दंशस्थान बीचमें काला और रक्त पर्य्यन्त फटाहुआ होता है, दंत विषसे उग्र कठिन विवर्ण, स्थिर मंडलवाला दंश

स्थान होता है। रंज, पुरीप, और इन्द्रिय विपसे दंशस्थानमें स्फोट होता है, तथा उसका रंग पकेहुए निर्मल पीलूके समान पाण्डु वर्णका हो जाता है। यह मकडियोंका वर्णन सामान्य रीतिसे किया गया है, अब आगे उनके विपके साध्यासाध्य और चिकित्सा विशेपका वर्णन करेंगे।

"कृच्छ्रसाध्यास्तथाऽसाध्या लूतास्तु द्विविधाः स्मृताः।
तासामष्टौ कृच्छ्रसाध्या वर्ज्यास्तावत्य एव तु॥"

अर्थात् मकडियोंके दो भेद होते हैं एक कृच्छ्रसाध्य और दूसरी असाध्य इनमेंसे आठ कृच्छ्र साध्य और आठ असाध्य हैं। मकडियोंके नाम और दंश:लक्षण त्रिमण्डला श्वेता, कपिला, पीतिका, आलविपा, मूत्रविपा, रक्ता, कसना इन आठ प्रकारकी मकडियोंके काटनेसे सिरका दु:खना दंशस्थानमें खुजली और वेदना तथा विशेप करके कफ वातजनित रोग होते हैं। सौवर्णिका, लाजवर्णा, जालिनी, एणीपदी, कृष्णा, अग्निवर्णा, काकाण्डा, मालागुणा इन आठ प्रकारकी मकडियोंके काटनेसे दंशस्थानमें सडांदका पडना, रुधिरका वहना, ज्वर, दाह अतीसार सन्निपातज रोग और तरह २ की फुंसियां वडे २ चकत्ते अत्यन्त मृदु रक्त, श्याव और अस्थिर सूजन उत्पन्न होती है। दंश पर्य्यन्त मकडियोंके लक्षण और भेद सामान्य रीतिसे कथन किये गये हैं, अब चिकित्सा सहित उनके विशेप लक्षणोंको कथन करेंगे।

विशेष लक्षण और चिकित्सा।

त्रिमण्डलाया दंशेऽसृक् कृष्णं स्रवति दीर्य्यते। बाधिर्य्यं कलुषा दृष्टिस्तथा दाहश्च नेत्रयोः॥ तत्रार्कमूलं रजनी नाकुली पृश्निपर्णिका। नस्यकर्मणि शस्यन्ते पानाभ्यङ्गाञ्जनेषु च। श्वेताया पिडका दंशे श्वेता कंडुमती भवेत्। दाहमूर्च्छा ज्वरवती विसर्पक्लेदरुक्करी॥ तत्र चन्दनरास्नैलाहरेणुनलवञ्जुलाः। कुष्टं लामज्जकं वक्रं नलदं चागदो हितः॥ आदंशे पिडका ताम्रा कपिलाश्च स्थिरा भवेत्। शिरसो गौरवं दाहस्तिमिरं भ्रम एव च॥ तत्र पद्मककुष्ठैलाकरञ्जककुभत्वचः। स्थिरार्कपर्ण्यपामार्गदूर्वाब्राह्मी विषापहाः॥ आदंशे पीतिकायास्तु पिडका जायते स्थिरा। तथा छर्दिर्ज्वरः शूलं रक्ते स्याताश्च लोचने। तत्रेष्टाः कुटजोशीरतुङ्गपद्मकवञ्जुलाः। शिरीषकिणिहीशेलुकदम्बककुभत्वचः॥ रक्तमण्डलनिभे दंशे पिडकाः सर्षपा इव। जायन्ते तालुशोषश्च दाहश्चालविषान्विते॥

तत्र प्रियङ्गु ह्रीवेरं कुष्ठं लामज्जवञ्जुलाः । अगदः शतपुष्पा च सपिप्पलवटाङ्कुराः ॥ पूतिमूत्रविषादंशो विसर्पी कृष्णशोणितः । कासश्वासवमीमूर्च्छाज्वरदाहसमन्वितः । मनःशिलालमधुककुष्ठचन्दनपद्मकैः ॥ मधुमिश्रैः सलामज्जैरगदस्तत्र कीर्तितः । दंशश्च पाण्डुपिडको दाहक्लेदसमन्वितः । रक्ताया रक्तपर्य्यन्तो विज्ञेयो रक्तसंयुतः ॥ कार्य्यस्तत्रागदस्तोयचन्दनोशीरपद्मकैः । तथैवार्जुनशेलुभ्यां त्वग्भिराम्रातकस्य च ॥ पिच्छिलं कसनाद्दंशाद्रुधिरं शीतलं स्रवेत् । कासश्वासौ च तत्रोक्तं रक्तलूताचिकित्सितम् ॥ पुरीषगन्धिरल्पासृक् कृष्णाया दंश एव तु । ज्वरमूर्च्छावमिर्दाहकासश्वाससमन्वितः ॥ तत्रैलाचक्रसर्पाक्षीगन्धनाकुलिचंदनैः । महासुगंधिसहितैः प्रत्याख्यायागदः स्मृतः ॥ दंशे दाहोऽग्निवर्णायाः स्रावोऽत्यर्थं ज्वरस्तथा । चोषकण्डू रोमहर्षौ दाहश्च स्फोटजन्म च ॥ कृष्णाप्रशमनं चात्र प्रत्याख्याय प्रयोजयेत् । सारिवोशीरयष्ट्याह्वचन्दनोत्पलपद्मकम् ॥ सर्वासामेव युञ्जीत विषे श्लेष्मातकत्वचम् । भिषक् सर्वप्रकारेषु तथा च क्षीरपिप्पलम् ॥ कृच्छ्रसाध्यविषा ह्यष्टौ प्रोक्ता द्वे च यदृच्छया । अवार्य्यविषवीर्य्याणां लक्षणानि निबोध मे ॥ ध्मातः सौवर्णिकादंशः सफेणो मत्स्यगन्धकः । श्वासकासौ ज्वरस्तृष्णा मूर्च्छा चात्र सुदारुणा ॥ आदंशे लाजवर्णाया आमं पूति स्रवेदसृक् । दाहो मूर्च्छातिसारश्च शिरोदुःखं च जायते ॥ घोरदंशस्तु जालिन्या राजिमानवदीर्यते । स्तम्भः श्वासस्तमोवृद्धिस्तालुशोषं च जायते ॥ एणीपद्यास्तथा दंशो भवेत्कृष्णतिलाकृतिः । तृष्णामूर्च्छाज्वरश्छर्दिकासश्वाससमन्वितः ॥ दंशः काकाण्डकादष्टे पाण्डुरक्तोऽतिवेदनः । रक्तो मालागुणादंशो धूमगन्धोऽतिवेदनः ॥ विदीर्य्यते च बहुधा दाहमूर्च्छाज्वरान्वितः ॥ असाध्यानां भिषक् प्राज्ञः प्रयुञ्जीत चिकित्सितम् । दोषोच्छ्रायविशेषेण छेदकर्मविवर्जितम् ॥

अर्थ—त्रिमण्डला मकडी मनुष्यके दंश करे तो उसके काला रक्त बहता है, चमडा फट

जाता है, बाहिरापन, दृष्टिमें कलुषिता और नेत्रोंमें दाह होता है । चिकित्सा आककी जड, हल्दी, सर्पगंधा, पृष्ठपर्णी ये औषधियां नस्य कर्म पान अभ्यङ्ग और अंजनमें हित हैं । श्वेता मकडीके काटनेसे दंशमें सफेद फुंसियां हो जाती हैं, जिनमें खुजली चलने लगती है तथा दाह मूर्च्छा ज्वर विसर्प क्लेद वेदना इनको करती है । चिकित्सा यह कि चन्दन, रास्ना, इलायची, हरेणु, नरसल, जलवेत, कूट, लामज्जक, पवाड, उसीर ये सब हितकारी हैं । कपिला मकडीके काटनेसे दंशपर्य्यन्त तांबेकेसे रंगकी कठोर फुंसियां हो जाती हैं, शिरका भारीपन, दाह, तिमिर, भ्रम ये भी होते हैं । उपाय इसका यह है कि पद्माख, कूट इलायची करंजा अर्जुनकी छाल शालपर्णी अर्कपर्णी अपामार्ग दूब, ब्राह्मी ये सब औषधियां कपिलाके विषका नाश करती हैं । पीतिका मकडीके दंश पर्य्यन्त कठोर फुंसियां हो जाती हैं तथा वमन ज्वर और शूल होता है, नेत्र लाल पड जाते हैं । उपाय इसका यह है कि कुडाकी छाल, खस, वरना, पद्माख, जलवेतस, सिरस, किणही, शेलु, कदम्ब, अर्जुनकी छाल, पीतिकाके विषमें ये औषधियां हित होती हैं । आलविषा मकडीके काटनेसे दंशस्थानमें लाल २ चकत्ते और सरसोंके समान फुंसियां हो जाती हैं । तथा तालु शोष और दाह भी होता है, उपाय इसका यह है कि प्रियंगु, ह्रीवेर, कूट, रोहिषतृण, जलवेतस, सोंफ, पीपल, बडके अंकुर ये औषधियां इसमें हित हैं । मूत्रविषा कहिये दुर्गन्धित मूत्र विषवाली मकडीके काटनेसे विसर्प रोग तथा रुधिर काला हो जाता है । खांसी, श्वास, वमन, मूर्च्छा, ज्वर, दाह इत्यादि उपद्रव होते हैं । उपाय इसका यह है कि मनसिल, हरताल, महुआ, कूट, चन्दन, पद्माख, रोहिषतृण इन सबका सूक्ष्म चूर्ण करके शहदके साथ सेवन करावे । रक्ता मकडीके काटनेसे पीली २ फुंसियां दाह और क्लेद युक्त होती हैं और उसका दंश रुधिरसे मिलकर रक्तपर्यन्त फैल जाता है । उपाय इसका यह है कि नेत्रवाला, चन्दन, खस पद्माख, अर्जुनकी छाल, शेलु, आम्रतक ये औषधियां रक्ता मकडीके विषमें हित हैं, कसना मकडीके काटनेसे गिलगिला और शीतल रुधिर स्राव होता है और खांसी तथा श्वास भी हो जाते हैं । इसका उपाय रक्ताके समान करे अथवा रक्त चन्दन, मंजिष्ठ, रोहिषतृण, सिरसका सार भाग इत्यादि । कृष्ण मकडीके काटनेसे विष्ठाकीसी गन्धवाला थोडा २ रुधिर बहता है, ज्वर, मूर्च्छा, वमन, दाह, खांसी, श्वास ये भी सब होते हैं । इसका उपाय यह है कि इलायची, पवाड, सर्पाक्षि, गंधनाकुली, चन्दन इत्यादि औषधियोंका प्रयोग करे । पूर्व लिखी हुई महासुगन्ध नामवाली औषध हित है । अग्निवर्ण मकडीके काटनेसे दंशस्थानमें दाह अत्यन्त चेंपका निकलना, ज्वर, चोप, खुजली, रोमाञ्च, समस्त शरीरमें दाह, हडफूटन इत्यादि उपद्रव होते हैं इसको असाध्य समझकर कृष्णमकडीके समान चिकित्सा करे । सम्पूर्ण प्रकारकी मकडियोंके

विषकी चिकित्सामें सामान्य रीतिसे सारिवाखस, मुलहटी, चन्दन, उत्पल, पद्माख, ल्हिसौडेकी छाल मिलानी चाहिये तथा वैद्योंको उचित है कि रोगीको दुग्ध और पीपल पिलाता रहे। आठ मकडियोंका विष कष्टसाध्य होता है उनमेंसे दोका वर्णन कर दिया गया है शेप अवार्य्य विषवीर्य्यवाली छः के लक्षणोंका वर्णन किया जाता है। सुवर्णिका मकडीके काटनेसे आध्मान होता है, मुखसे झाग आते हैं, मछलीकीसी गन्ध आती है, श्वास, खांसी, ज्वर, तृष्णा और दारुण मूर्च्छा होती है। लाजवर्णके काटनेसे दंशमेंसे कच्चा दुर्गन्धयुक्त रक्त बहता है, दाह, मूर्च्छा, अतीसार और शिरमें पीडा होने लगती है। जालिनीके काटनेसे दंशस्थान भयंकर हो जाता है, लकीरसी पडकर फट जाता है, स्तम्भता, श्वास, नेत्रोंके आगे वारम्बार अन्धकार और तालुशोष होता है। एणीपद मकडीके काटनेसे दंशकी आकृति काले तिलकीसी हो जाती है, तृष्णा, मूर्च्छा, ज्वर, वमन, खांसी, श्वास ये भी होते हैं। काकाण्डके काटनेसे दंश पीला लाल और अत्यन्त वेदनायुक्त हो जाता है। मालागुणके काटनेसे दंशस्थान लाल धूऐंकी गंधवाला और अत्यन्त वेदनासे युक्त होता है, प्रायः फट भी जाता है तथा दाह ज्वर और मूर्च्छा भी होती है। इन असाध्य मकडियोंके विषकी भी चिकित्सा करना उचित है, परन्तु वह दोषोंकी विशेषताके अनुसार होते हैं इनमें छेदन कर्म करना वर्जित है॥

साध्य मकडियोंकी चिकित्साकी विधि।

साध्याभिराभिर्लूताभिर्दष्टमात्रस्य देहिनः। वृद्धिपत्रेण मतिमान् सम्यगादंशमुद्धरेत्॥ जम्बोष्ठेनाग्नितप्तेन दहेदाकरवारणात्। अमर्मणि विधानज्ञो वर्जितस्य ज्वरादिभिः। दंशस्योत्कर्त्तनं कुर्य्यादल्पश्वयथुकस्य च॥ मधुसैन्धवसंयुक्तैरगदैर्लेपयेत्ततः। प्रियङ्गुरजनीकुष्ठसमङ्गामधुकैस्तथा। सारिवा मधुकं द्राक्षा पयस्यां क्षीरमोरटम्। विदारीगोक्षुरक्षौद्रमधुकं पाययेत वा। क्षीरिणां त्वक्कषायेण सुशीतेन च सेचयेत्। उपद्रवान् यथादोषं विषघ्नैश्चैव साधयेत्॥ नस्याञ्जनाभ्यञ्जनपानधूमं तथावपीडं कवलग्रहञ्च। संशोधनञ्चोभयतः प्रयुञ्जाद्रक्तं हरेच्चापि जलायुकाभिः॥ कीटदुष्टव्रणान् सर्वानहिदष्टव्रणानि च। आदंशपाकयत्नेन चिकित्सेत् सर्पदष्टवत्॥

अर्थ—जो साध्य मकडियोंने मनुष्यको काटा हो तो दंशपर्य्यन्त वृद्धिपत्र शस्त्र उद्धरित करे तथा अग्निमें तपाये हुए जम्बोष्ठशस्त्रसे उस समय तक दग्ध करे जवतक रोगी

हाथसे न रोके, जो दंश मर्मस्थानमें न हो अथवा अल्प सूजनसे युक्त हो तो उसे कतर देवे परन्तु ज्वरादि उपद्रवोंमें यह विधि नहीं की जाती है । शहत, सेंधानमक इनके साथही महासुगन्धादि औषधको मिलाकर लेप करे । महासुगन्ध औषधका प्रयोग ऊपर लिखा गया है, प्रियंगु, हल्दी, कूट, मंजिष्ठ, महुआ इनका लेप करे सारिवा, महुआ, दाख, दुद्धी, क्षीरकाकोली, मोरटा विदारीकन्द, गोखुरू, शहद, मुलहटी, इनका काथ बना शीतल करके पान करावे दूधवाले पंचक्षीरी -वृक्षोंकी छालके काथसे दंशस्थानको सेचन करावे, तथा विषजन्य अन्य उपद्रवोंको दोषोंके अनुसार विषनाशक औषधियोंसे शान्त करे । मकडियोंकी चिकित्सामें नस्य, अभ्यञ्जन, अञ्जन, पान धूम, अवपीडन, कवलग्रह, वमन, विरेचन इत्यादि कर्म रोगीको करावे तथा जोंक लगाकर रुधिर निकाले । कीडोंके कियेहुए दुष्ट व्रण तथा सर्पके काटेहुए व्रणका दंश स्थानके पकनेसे प्रथम ही सर्पके काटे हुएके समान चिकित्सा करे ।

विषोत्पन्न कर्णिकाकी चिकित्सा ।

विनिवृत्ते ततः शोफे कर्णिकापातनं हितः । निम्बपत्रं त्रिवृद्दन्ती कुसुम्भं रजनी मधु । गुग्गुलुः सैन्धवं किण्वं वर्च पारावतस्य च । विषवृद्धिकरश्चान्नं हित्वा सम्भोजनं हितम् ॥ विषेभ्यः खलु सर्वेभ्यो कर्णिकामरुजां स्थिराम् । प्रच्छयित्वा मधुयुतैः शोधनीयैरुपाचरेत् ॥

अर्थ—सूजनके निवृत्त होनेपर कर्णिकाका पातन करना हित है, यह रोग कमलकी कर्णिकाके आकारवाला होता है । उपाय इसका यह है कि नीमके पत्र, निसोथ, दन्ती, कसूमके बीज, हल्दी, शहत, गूगल, सेंधा नमक, महुआके बीज, कबूतरकी बीट इत्यादिकी लुपडी (पोल्टिस) बनाकर रखना, कर्णिकाके पातन करनेमें हित है । तथा ऐसे भोजनोंका करना भी हित है, जो विषको न बढावें । (वात कफकी कर्णिका) सम्पूर्ण विषोंसे उत्पन्न हुई जिसमें वेदना न होती होय जो कठोर भी होय उसमें पछना लगाकर शहत मिलेहुए शोधन द्रव्योंका उपयोग करे ।

विषैले कीटोंकी चिकित्सा ।

सर्पाणां शुक्रविण्मूत्रशवपूत्यण्डसम्भवाः । वाय्वग्न्यम्बुप्रकृतयः कीटास्तु विविधाः स्मृताः ॥ सर्वदोषप्रकृतिभिर्युक्तास्ते परिणामतः । कीटत्वेऽपि सुघोराः स्युः सर्व एव चतुर्विधाः ॥ कुम्भीनसस्तुण्डिकेरी शृङ्गी शतकुलीरकः । उच्चिटिङ्गोऽग्निनामा च चिच्चिटिङ्गो मयू-

रिका ॥ आर्त्तवकस्तथोरभ्रसारिकामुखवैदलौ । शरावकुर्दोऽभीराजी पुरुषश्चित्रशीर्षकः । शतबाहुश्च यश्चापि रक्तराजी प्रकीर्त्तितः । अष्टादशेति वायव्याः कीटाः पवनकोपनाः । तैर्भवन्तीह दष्टानां रोगा वातनिमित्तजाः । कौण्डिल्यकः कणभको वरटी पत्रवृश्चिकः । विनासिका ब्रह्मणिका विन्दलो भ्रमरस्तथा । बाह्यकी पिच्चिटः कुम्भी वर्चः कीटोऽरिभेदकः ॥ पद्मकीटो दुन्दुभिको मकरः शतपादकः । पञ्चालकः पाकमत्स्यः कृष्णतुण्डोऽथ गर्दभी । क्लीतः कृमिसरारी च यश्चात्युत्क्लेशकः स्मृतः । एते ह्यग्निप्रकृतयश्चतुर्विंशतिरेव च ॥ तैर्भवन्तीह दष्टानां रोगाः पित्तनिमित्तजाः । विश्वम्भरः पञ्चशुक्लः पञ्चकृष्णोऽथ कोकिलः ॥ सैरेयकः प्रचलको वलभः किटिभस्तथा । सूचीमुखा कृष्णगोधा यश्च कापायवासिकः । कीटगर्दभकश्चैव तथा त्रोटक एव च ॥ त्रयोदशैते सौम्याः स्युः कीटाः श्लेष्मप्रकोपणाः। तैर्भवंतीह दष्टानां रोगाः कफनिमित्तजाः ॥ तुङ्गीनासो विचिलकस्तालको वाहकस्तथा । कोष्ठागारी क्रिमिकरो यश्च मण्डलपुच्छकः ॥ तुङ्गनाभः सर्षपिको वल्गुली शम्बुकस्तथा । अग्निकीटश्च घोराः स्युर्द्वादश प्राणनाशनाः ॥ तैर्भवन्तीह दष्टानां वेगज्ञानानि सर्पवत् । तास्ताश्च वेदनास्तीव्रा रोगा वै सान्निपातिकाः । क्षाराग्निदग्धवद्दंशो रक्तपीतसितारुणः ॥ ज्वराङ्गमर्दरोमाञ्चवेदनाभिसमन्वितः । छर्द्यतीसारतृष्णा च दाहो मोहविजृम्भिका ॥ वेपथुश्वासहिक्काश्च दाहः शीतं च दारुणाम् । पिडकोपचयः शोफो ग्रन्थयो मण्डलानि च ॥ दद्रवः कर्णिकाश्चैव विसर्पाः किटिभानि च । तैर्भवन्तीह दष्टानां यथास्वं चात्युपद्रवाः ॥

अर्थ—सर्पोंके शुक्र, विष्ठा, मूत्र और सडीहुई मृत देह तथा सडेहुए अंडोंसे वायु अग्नि और जलकी प्रकृतिवाले अनेक प्रकारके कीडे उत्पन्न होते हैं, ये कीडे दर्वीकर मण्डली और राजिमन्त इन तीनों प्रकारके सर्पोंके मल मूत्रादिकसे, चौथे गुण कर्मसे निर्दिष्ट किये गये हैं । इनकी प्रकृति सब प्रकारके दोषोंकी होती है, ये घोर कीट चार प्रकारके होते हैं । वायु प्रकृतिके कीट कुम्भीनस, तुण्डिकेरी, शृङ्गी, शतकुलीरक

उच्चिटिङ्ग, अग्निनामा, चिच्चिटिङ्ग, मयूरिका, आवर्त्तक, उरभ्रसारिका, मुख, वैदल, शरावकुर्द, अभीराजी, परुष, चित्रशीर्षक, शतबाहुं, रक्तराजी ये अठारह प्रकारके कीडे वात. प्रकृतिवाले वातको कुपित करनेवाले होते हैं । इनके काटनेपर वात निमित्तक रोग होते हैं, आग्नेय प्रकृतिवाले कीट कौण्डिल्यक, कणभक, वरटीपत्र, वृश्चिक, त्रिनासिका, ब्रह्मणिका, बिन्दल, भ्रमर, बाह्यकी, पिच्चिट, कुम्भी, वर्च्च, कीट, अरिमेदक, पद्मकीट, दुन्दुभिक, मकर, शतपादक, पञ्चालक, पाकमत्स्य, कृष्णतुण्ड, गर्दभी, क्लीत, कृमि सरारी, उत्क्लेशक ये चौवीस प्रकारके कीडे आग्नेय प्रकृतिवाले हैं, इनके काटनेसे पित्त निमित्तक रोग होते हैं। (कफ प्रकृतिवाले कीट) विश्वम्भर, पञ्चशुक्ल, पञ्चकृष्ण, कोकिल, सैरेयक, प्रचलक, वलभकिटिम, सूचीमुख, कृष्णगोधा, काषायवासिक, कीटगर्दभ, त्रोटक ये १२ कफके कोप करानेवाले कीट हैं, इनकी प्रकृति कफ है इनके काटनेपर कफनिमित्तक रोग होते हैं । तुङ्गीनास, विचिलक, तालक, वाहक, कोष्ठागारी, कृमिकर मण्डलपुच्छक, तुङ्गना, सर्षपिक, अवल्गुली, शम्बुक, अग्निकीट ये बारह बडे घोर और प्राणोंको नष्ट करनेवाले कीडे हैं । इनके काटनेपर सर्पोंके समान वेगोंका ज्ञान होने लगता है, तोद दाह, कण्डूादिक वेदना और ज्वरादिक रोग होते हैं । इन कीडोंका विष सन्निपातिक कहलाता है । इनका काटाहुआ स्थान खार और अग्निके जलेहुएके समान रक्त पीत सित अरुण हो जाता है, ज्वर, शरीरका टूटना, रोमाञ्च खडे होना इत्यादि लक्षण होते हैं । वमन, अतीसार, तृष्णा, दाह, मोह, जंभाई, कम्पन, श्वास, हिचकी, दारुण दाह, दारुण शीत, फुंसी, सोफ, गांठ, चकत्ते, ददोरे, कर्णिका, विसर्प, किटिम, इत्यादि उपद्रव इन कीडोंके काटनेसे होते हैं तथा और भी जैसी प्रकृतिका कीडा होता है वैसे ही उपद्रव भी होते हैं. ।

तीक्ष्ण और मन्दविषके लक्षण ।

येऽन्ये तेषां विशेषास्तु तूर्णं तेषां समादिशेत् । दूषीविषप्रकोपाच्च तथैव विषलेपनात् ॥ लिङ्गं तीक्ष्णविषेष्वेतच्छृणु मन्दविषेष्वतः । प्रसेकोऽरोचकश्छर्दिः शिरोगौरवशीतता । पिडकाकोठकण्डूनां जन्मदोषविभागतः ॥

अर्थ–जो कीडे ऊपर कथन किये गये हैं उनके सिवाय जो अन्य कीडे हैं उनके भेद कहते हैं दूषी विषके प्रकोपसे और विलेपनसे उनके तीक्ष्ण विष और मन्द विषमें जो लक्षण हैं वे यह हैं कि कफ स्राव, अरुचि, वमन, शिरमें भारीपन, शीतलता, फुंसी पित्ती, खुजली, इत्यादि कीडोंके दंशके उपद्रव होते हैं सो कीडोंके दंशके अनुसार होते हैं ।

जातिभेदसे विशेष लक्षण ।

विश्वम्भराभिर्दष्टे दंशः सर्षपाकाराभिः पिडकाभिश्चीयते शीतज्वरार्त्तश्च पुरुषो भवति । अहिण्डुकाभिर्दष्टे तोददाहकण्डुश्वयथवो मोहश्च ॥ कण्डुमकाभिर्दष्टे पीतांगश्छर्द्यतीसारज्वरादिभिरभिहन्यते ॥ शूकवृन्ताभिर्दष्टे कण्डुकोठाः प्रवर्द्धन्ते शूकं चात्र लक्ष्यते ॥

अर्थ—विश्वम्भराके काटनेसे दंशके चारों ओर सरसोंके दानेके समान वहुतसी फुंसियां हो मनुष्यको शीतज्वर आ जाता है । अहिण्डुकाके काटनेसे तोद, दाह, खुजली, सूजन और मोह उत्पन्न होते हैं । कण्डूमकके काटनेसे शरीर पीला पड जाता है वमन, अतीसार, ज्वरादि रोगोंसे प्राणोंका नाश होता है । शूकवृन्ताके काटनेसे खुजली और पित्ती वढ जाती है और शूक रोगभी हो जाता है । इन सब कीटोंकी चिकित्सा सर्पोंकी चिकित्साकी विधिके अनुसार यथादोषको विचार कर बुद्धिमान चिकित्सक अच्छीतरहसे करे । जिनके नाम लेकर चिकित्सा प्रयोग कथन कियेगये हैं उसके अनुसार प्रयोग करे ।

कुष्ठं वक्रं वचा बिल्वमूलं पाठा सुवर्चिका । गृहधूमं हरिद्रे द्वे त्रिकण्टकविषे हिताः ॥ वचाश्वगन्धातिबला बलासातिगुहागुहाः । विश्वम्भराभिर्दष्टानामगदो विषनाशनः ॥ शिरीषं तगरं कुष्ठं हरिद्रेऽशुमती सहे । अहिण्डुकाभिर्दष्टानामगदो विषनाशनः ॥ कण्डुमकाभिर्दष्टानां रात्रौ शीताः क्रिया हिताः । दिवा तेनैव सिध्यन्ति सूर्य्यरश्मिबलार्दिताः ॥ चक्रं कुष्ठमपामार्गः शूकवृन्ते विषेऽगदः । भृङ्गस्वरसपिष्टा वा कृष्णावल्मीकमृत्तिका ॥

अर्थ—कूट, तगर, वच, वेलगिरीकी जड, पाढ, सज्जी, गृहधूम, हल्दी, दारुहल्दी, ये औषधियां त्रिकंटकादि कीडोंके विषको नष्ट करती हैं वच, असगन्ध, अतिवला, खरैटी, शालिपर्णी, पृष्टपर्णी ये औषधियां विश्वम्भराके विषको दूर करती हैं । सिरस, तगर, कूट, हल्दी, दारु हल्दी, मालकांगनी, विष्णुक्रान्ता, अपराजिता ये औषधियां अहिण्डुकाके विषको नष्ट करती हैं । कण्डुमकके काटनेपर शीतल क्रिया रात्रिमें की जाती हैं, दिनमें वे क्रिया सूर्य्यकी गर्मीके कारण सिद्ध नहीं हो सक्ती । शूकवृन्तके काटनेपर पवाडके बीज, कूट, अपामार्ग इनको पीसकर लगा देवे तथा बांबीकी काली मिट्टी भांगरेके रसमें पीसकर लगाना भी हित है । और प्रतिसूर्य्यके दंशपर (प्रतिसूर्य्यकदष्टानां सर्पदष्टवदाचरेत्) सर्पके समान क्रिया करनी चाहिये ।

कानखजूरा कातरके विषका उपाय ।

इसके ४४ पैर दोनों ओर होते हैं प्रत्येक बाजूपर २२ पैर होते हैं और यह जानवर आगे पछि दोनों ओर चल सक्ता है । चार अंगुलसे लेकर बारह अंगुलतक लम्बा होता है, उसके काटनेसे विशेष दर्द भय और श्वासमें तंगी और मिठाईपर रुचि होती है । इस जानवरकी ऐसी तासिर है कि चूहेके शरीरसे चिपट जावे तो उसका शिकार किये विदून नहीं छोडता मुख तथा सब पंजोंको उसके जिस्ममें गाड देता है, इसी प्रकार मनुष्यको काटता है तब भी मुख और पैर गडाता जाता है । चिकित्सा इसकी यह है कि इसी जानवरको पीसकर दंशके स्थानपर रखे और जरा वन्द तवील अथवा पाषाणभेद किब्रकी जडकी छाल मटरका चूर्ण इन सबको समान भाग लेकर शराब अथवा शहदके पानीमें मिलाकर खिलावे और तिरियाक अरबा, दिवाइलमिस्क संजीरनिया, नमक और सिर्केका लेप करना लाभदायक है । दिवाइलमिस्ककी विधि रूमी अफसन्तीन, एलवा, प्रत्येक २८ मासे रेवतचीनी २१ मासे अजवायन, केशर, अजमोदके बीज प्रत्येक १४ मासे बालछड कस्तूरी, बूल, तेजपत्र, प्रत्येक ७ मासे जुन्देबेदस्तर ९ मासे २ रत्ती सब औषधियोंको कूट पीसकर तिगुने कच्चे शहतमें मिलावे और केशर कस्तूरीको केवडेके अर्कमें घोलकर पीछेसे मिलावे । इसके खानेकी मात्रा ४॥ मासेकी है यह सब विषोंको लाभदायक है ।

छिपकलीके काटनेकी चिकित्सा ।

छिपकलीके काटनेसे प्रायः मनुष्यको घबराहट और ज्वर हो निकम्मी तरी बढती है और काटनेकी जगह पर हरसमय दर्द रहता है । क्योंकि छिपकलीके दांत दंशस्थानमें रह जाते हैं छिपकलीके जिस्मकी कुदरती सिफत ऐसी ही है कि जितने समय इसकी दुम और दांत निकल जाते हैं उतनेही समय वृक्षकी शाखाके समान दूसरे निकल आते हैं । उपाय इसका यह है कि दंशस्थानमेंसे दांत बाहर निकालनेके लिये तैल और राख मले अथवा प्रथम रेशम मले और पीछे राख और तैल उसपर रखे, जो दर्द हर समय रहे और उपरोक्त उपायसे निवृत्त न होय तो मुखसे चूसकर अथवा शस्त्रके द्वारा दांतोंको निकाल गेंहूकी भूसीको पकाकर उसका पानी जखमपर डाले । जखमके दोनों ओर रेशम लगाकर ऐंठा देवे तो मिचाव पडनेसे दांत बाहर निकल आते हैं और तिरियाक रतीला लाभदायक है । ऊनके टुकडे करके ईसबगोल व बबूलके गोंदके लुआबमें भिगोकर रखे, सूखनेके बाद एक साथ उठालेवे तो दांत निकल आते हैं । इसी प्रकार गंधा बहरोज कपडेपर लगा देवे और जखम पर चिपका देवे, जब वह सूख जावे तब रोगीको भूलमें डालकर एकदम

दंशशोफश्च । पार्वतीयस्तु कीटैः प्राणहरैस्तुल्यलक्षणः । नखावकृष्टेऽत्यर्थं पिडकाः सदाहपाका भवन्ति ॥

अर्थ—कान्तारिका, कृष्णा, पिङ्गलिका, मधूलिका, कापायी, स्थालिका ये छः भेद मक्खियोंके हैं, इनके काटनेसे दाह और सूजन होती है। स्थालिका और कापायीके काटनेसे ऊपरवाले लक्षण हो अत्यन्त उपद्रव युक्त फुंसियां भी होती हैं। यूनानी तवीवका कथन है कि—एक प्रकारकी वर्र जिसका शिर बडा होता है, रंग काला होता है उसके ऊपर विन्दु होते हैं। उसके डंक मारनेसे विशेष पीडा और सूजन दाह होता है, कभी २ इसके दंशसे मनुष्यकी मृत्यु भी हो जाती है। मधु मक्खी और विपैली सब मक्खियाँ तथा वर्र इनके पीछेके भागमें बारीक डंक होता है, जब क्रोधमें आती हैं तो इसी डंकको मनुष्यके शरीरमें घुसेड देती हैं डंकमेंसे एक प्रकारका विप जो पानीके स्वरूपमें होता है दंशस्थानमें निकल पडता है। ऊपर जो मक्खियोंकी छः जाति कथन की गई हैं उनसे अतिरिक्त और भी कई जातिकी मक्खियां और वर्र भौंरा आदि विपैली जातिके देखे जाते हैं इसी प्रकार मच्छर भी जहरी होते हैं। सामुद्र, परिमण्डल, हस्तिशक, कृष्ण, पार्वतीय ये पांच भेद मच्छरोंके हैं। इनके काटनेसे अत्यन्त खुजली और दंशस्थानमें सूजन हो जाती है। पार्वतीय मच्छरके काटनेसे प्राण हरनेवाले कीडोंके काटनेकेसे लक्षण हो जाते हैं, यदि दंशस्थानको नखसे खुजलाया जाय तो दाहयुक्त ऐसी फुंसियाँ हो जाती हैं कि कभी २ पाकको प्राप्त होती हैं। मच्छरोंका वारीक डंक मुखके भागमें होता है और मच्छरके शरीरकी कोमलताकी अपेक्षा वह डंक कई दर्जे कठिन व मजबूत होता है।

पिपीलिका (चींटियों) के भेद ।

पिपीलिकाः स्थूलशीर्षा सम्वाहिका ब्राह्मणिकाङ्गुलिका कपिलिका चित्रवर्णेतिषट् ॥ ताभिर्दष्टे दंशे श्वयथुरग्निस्पर्शवद्दाहशोफौ भवतः ॥

अर्थ—स्थूलशीर्षा, सम्वाहिका ब्राह्मणिका, अंगुलिका, कापिलिका, चित्रवर्णा ये छः भेद पिपीलिका (चींटियोंके) होते हैं, इन चींटियोंके काटनेसे दंशमें सूजन तथा अग्निके स्पर्शके समान दाह होता है और दंशस्थान पर सूजन हो जाती है। चींटियोंका मुख प्रायः जंबुआ संडासीके माफिक होता है और मुखके किनारे दोनों ओरसे नोकदार होते हैं इनको ही शरीरमें घुसेड कर चींटी दबाती हैं।

झटकेसे पट्टीको उखाड लेवे कि इतनेमें दांत बाहर निकल आवेंगे। दांतोंके बाहर निकल आनेके यह चिह्न हैं कि ज्वर निवृत्त हो जाय, घबराहट जाती रहे जखमकी पीडा और ढीलापन नष्ट हो पीवका स्राव बन्द हो जावे। छिपकलीके समान ही एक जानवर इसी सूरतका चार पैरवाला मंदरा होता है, इसकी पूंछ छोटी शिर काला गर्दन पतली और छिपकलीसे कुछ बडा होता है। इसकी रंगत अक्सर तीन प्रकारकी देखी गई है, सफेद काला और पीला यह रंगमें तब्दीली देश और जमीनके भेदसे होती है। यह जानवर अक्सर पत्थर व धातुओंकी खान तथा पत्थरोंकी खरोडमें रहता है, इस जानवरका शरीर इतना कठिन होता है कि न पत्थरसे कुचल सके न शस्त्रसे कट सके, इसके दंशसे इतनी पीडा होती है कि मनुष्य निद्रा नहीं ले सक्ता शरीरके अवयवमें सुन्नता आ जाती है, शरीरमें दाह होता है गर्म सूजन जीभमें भारीपन, अंगमें कपकपी और दंशस्थान काला हो जाता है। यदि इसका शीघ्र उपाय न किया जाय तो यह जगह सडने लगती है। इसका उपाय जरारीहके समान करे जंगली अथवा नदीके कच्छुवेके अंडेका मेदा खाना लगाना अति लाभदायक है। विशेष उपाय यह है कि हरमुलके बीज, कलोंजी, जीरा प्रत्येक ७ मासे पाषाणभेद, सफेद मिर्च, वूल प्रत्येक १॥ मासे जराबन्दगोल ५। मासे इन सबको कूट पीसकर शहतमें मिलाकर तैयार कर मात्रा रूमी बाकलाके समान शराबके साथ मरीजको देवे।

नकुल (न्यूलेके) विषकी चिकित्सा।

नौलाके काटनेका दर्द शरीरमें शीघ्र फैल व्याकुलता अधिक वढ जाती है। चिकित्सा इसकी यह है कि लहशुन अथवा कच्चा अंजीर व मटरके चूनका लेप करे, जो नौलाका मांस दंशस्थान पर रखे तो उसी समय पीडा निवृत्त हो जाती है। कभी २ नौला भी श्वानके समान बावला हो जाता है और वह जिस मनुष्यको काटता है वह भी बावला हो जाता है। इसका वही उपाय करे जो आगे बावले कुत्तेके विषयमें लिखा जायगा, यदि गर्भवती नाकुली काट खावे तो इसका उपाय होना कठिन है।

माक्षिक मक्खियोंके भेद।

मक्षिकाः कान्तारिका कृष्णा पिङ्गलिका मधूलिका काषायी स्थालिकेत्येवं षट्। ताभिर्दष्टस्य दाहशोफौ भवतः॥ स्थालिका काषायीभ्यामेतदेव पिडकाश्च सोपद्रवा भवन्ति। मशकाः सामुद्रः परिमण्डलो हस्तिमशकाः कृष्णः पार्वतीय इति पञ्च॥ तैर्दष्टस्य तीव्रकण्डु-

पिपीलिका माक्षिक मशककी चिकित्सा।

पिपीलिकाभिदष्टानां माक्षिकामशकैस्तथा।
गोमूत्रेण युतो लेपः कृष्णवल्मीकमृत्तिका॥

अर्थ–चींटी, मक्खी, मच्छर इनके काटनेपर यह उपाय करे कि काली बांबीकी मिट्टी गोमूत्रमें पीसकर लेप करे। अथवा खतमीका पानी खब्बाजीका पानी, सुर्फाका पानी, मकोयका पानी, काकनजका पानी इनमेंसे जो समय पर मिलसके उसीके रसमें रुई व कपडा भिगोकर दंशस्थानपर रखे। अथवा मुलतानी मिट्टी, जौका आटा, कापूर इनको समान भाग लेकर सिर्केमें मिलाकर लेप करे। अथवा हरे धनियेका स्वरस, सिर्का, कापूर तीनोंको मिलाकर लेप करे, यदि बडी वर्र काटे तो उसका जहर दंशस्थानके चारों ओर फैलकर अधिक जलन सूजन और खिचाव करता है। यदि लेपादिकसे शान्ति न होवे तो फस्द खोलकर वहांका रक्त निकाल देवे अथवा पछनेसे निकाल देवे। मधु मक्खी जहांपर डंक मारती है वह डंक उसी स्थानपर रह जाता है, उस रहेहुए डंकको निकालकर मधुमक्खी उस स्थानपर मल देवे तो उसी समय पीडा निवृत्त हो जाती है। अथवा तिल कूटकर कापूर और सिर्कामें अथवा हरे धनियेके स्वरसमें मिलाकर लेप करे।

चतुष्पाद (चौपायोंके) विषका उपाय।

(चीता, सिंह, वाघ, बन्दर, लंगूरादिके विषकी चि०।)

चीता, सिंह, वाघ, बन्दर, लंगूर इनके दांत और पंजे विषसे खाली नहीं हैं। मनुष्यके शरीरमें ये लग जावें तो विषका असर होता है। चीता, सिंह, वाघ, ये प्रायः शिकारी मनुष्योंपर आक्रमण करके घायल करते हैं, तो कोई बिरलाही मनुष्य इनके विषसे जीवित रहता है। यदि जीवित भी रहता है तो उसका अङ्गभङ्ग होना संभव है, इनके काटनेपर प्रथम घावकी जगह पर पछने लगावे जिससे विषयुक्त मवाद और रक्त बाहर निकल जावे। फिर जरावन्द सौसनकी जडको पीसकर शहदमें मिलाकर लेप करे, फिर जखमको सिर्केसे धोवे और तांबेका चूरा सौसनकी जड, चांदीका मैल, मोम, जैतूनका तैल इन सबका मरहम बनाकर लगावे, इसीसे घाव भर जाता है। और चाहके काढेसे उसी समय धोवे तो घाव अच्छा हो विषका असर नहीं फैलता।

मनुष्य दंशकी चिकित्सा।

जो भूखा मनुष्य निराहार बगैर अन्न जलके होय वह मनुष्यको काटे तो अवश्य विषका फल होता है, इसका उपाय यही है कि प्रथम उस स्थानको स्वेदित करे।

है ठोडी और कन्धे स्थानसे च्युत हो लार वहुत टपकने लगती है, तथा अत्यन्त बहरे और अन्धे होकर एक दूसरेकी ओर दौडने लगते हैं। ये पशु उन्मत्त होकर विषैली दाढसे काट खाते हैं तब दंशस्थानकी जगह सुन्न हो जाती है और काला रक्त बहने लगता है, इसमें प्रायः दिग्ध विद्धके लक्षण दिखाई देते हैं, जो पशु मनुष्यको काटता है वह मनुष्य उसी पशुकीसी चेष्टा करके रुदन करने लगता है और अत्यन्त भोकता-हुआ विना चिकित्साके मर जाता है। काटाहुआ मनुष्य जो अपना चेहरा जल व दर्पणमें देखे और उसको अपना चेहरा काटनेवाले पशुके समान दीख पडे तो वह मनुष्य अवश्य मर जाता है। जलको देखकर व जलका शब्द सुनकर अकस्मात् वारम्वार भयभीत होता है, ऐसे रोगीको जलत्रास अरिष्ट कहते हैं और मृत्यु लक्षण भी समझा जाता है। किसी विषैले पशुके बिना काटेहुए ही जो जल देखकर डरता होय उसको भी आराम नहीं होता, सोताहुआ अथवा सोकर उठाहुआ अथवा स्वस्था-वस्थाहीमें डरने लगे उसे भी आराम नहीं होता। तिब्बसे—वावले पशु अन्य पशुको काटें तो वह भी इसी विपत्तिमें फँस जाता है। एक यूनानी तबीब इस रोगके विषयमें लिखता है कि कुत्तेकी प्रकृति विषैले निकम्मे वादीवाले मवादकी ओर हवासे अथवा खाने पीनेकी चीसोंसे वदल जाती है, परन्तु हवासे तो इस प्रकार पर उत्पन्न होती है कि हवाकी गर्मी कुत्तेके दोषोंको जला देवे। फिर वह रोग पतझड ऋतु (बसन्त) में उत्पन्न होता है अवथा हवामें विशेष सर्दी आ जानेसे और उसका खून जमकर निकम्मे वादीवाले मवादकी ओर झुक आता है, तब कुत्ता तथा इसी तासीरके अन्य पशु वर्षा ऋतुमें बावले होते हैं। खाने पीनेकी चीजोंसे ऐसे होते हैं जैसे किसी जहरीले जानवरका गोस्त खाया होय अथवा किसी जहरी जानवरने उस कुत्तादि पशुओंका काटा होय और काटनेके स्थानसे खून निकला होय उस विषैले खूनको वही पशु चाट गया होय जैसे प्रायः कुत्ता चाट लेता है, ऊपरसे निकम्मा पानी पी लेवे तो फिर इसकी प्रकृति सडेहुए वादीके मवादकी ओर झुकीहुई होगी और सम्पूर्ण शरीरके वाल झड जावेंगे इसके तीन भेद हैं। जब कुत्ता बावला हो जाय तो उसकी दशा वदल जाय, खाना कम खाय, पानीको देखकर थर्रावे और डरने लगे, पिलासा रहे, नेत्र लाल हो जायँ जीभ मुखसे वाहर लटकी रहे, लार झाग टपकते रहें नाकसे तरी बहने लगे कान लटकायेहुए शिर नीचा कियेहुए कमर ऊंची उठायेहुए पूंछ दबाकर ऐसा चले जैसे मस्तीकी दशामें चलता है और थोडी दूर चलकर शिरके वल गिर पडे दिवाल तथा वृक्ष पत्थरादिपर काटनेके लिये आक्रमण करे और उसकी आवाज ऐसी हो जाय कि जैसी बैठीहुई आवाज होती है। अन्य कुत्ते उसके समीप न आवें तथा उसको देखते ही भाग जावें। इस बातकी परीक्षा कि बावले कुत्तेने

णोंवाले मनुष्यकी जूँठी वस्तु न खावे, यदि भूलसे खा ली जावे तो वह भी उसी दशामें हो जाता है। और जिसको बावला श्वान काटे और दंशस्थानमेंसे विशेष रक्त अपने आप निकल जावे तो अच्छा है ऐसा मनुष्य उपाय करनेसे बच भी जाता है, इसी प्रकार उसको तिरियाक और मूत्र लानेवाली औषध दी जावे तो पानीसे डरनेका भय नहीं होता है और कुत्तेका काटाहुआ मनुष्य जब पानीसे डरने लगे तो उसका उपाय नहीं है मृत्युके मुखमें समझना।

श्वानदंशकी चिकित्सा।

विस्राव्य दंशं तैर्दष्टे सर्पिषा परिदाहितम्। प्रदिह्यादगदैः सर्पिः पुराणं वापि पाययेत्॥ अर्कक्षीरयुतं चास्य दद्याच्छीर्षविरेचनम्। श्वेतां पुनर्नवां चास्य दद्याद्धत्तूरकायुताम्॥ पललं तिलतैलञ्च रूपिकायाः पयो गुडः। निहन्ति विषमालार्कं मेघवृन्दमिवानिलः॥ मूलस्य शरपुंखायाः कर्षं धत्तूरकार्द्धिकम्। तंडुलोदकमादाय पेषयेत्तण्डुलैः सह॥ उन्मत्तकस्य पत्रैस्तु संवेष्ट्यापूपकं पचेत्। खादेत्तदौषधं चैव तदलर्कविषदूषितः॥ करोत्यन्यान् विकारांस्तु तस्मिन् जीर्य्यति चौषधे। विकाराः शिशिरे याप्या गृहे वारिविवर्जिते॥ ततः शान्तविकारस्तु स्नात्वा चैवापरेऽहनि। शालिषष्टिकयोर्भक्तं क्षीरेणोष्णेन भोजयेत्॥ दिनत्रये पञ्चमे वा विधिरेषोऽर्द्धमात्रया। कर्त्तव्यो भिषजावश्यमलर्कविषनाशनः॥ कुप्येत्स्वयं विषं यस्य न स जीवति मानवः। तस्मात्प्रकोपेदाशु स्वयं यावन्न कुप्यति॥

अर्थ—श्वानके दंशस्थानका रक्त निकालकर विष निश्शेष करनेके लिये घृतसे दग्ध कर देवे तथा महागदादि औषधका लेप कर पुराना घृत पान कर आकका दुग्ध देकर शिरोविरेचन करावे। वृन्दाल फलके जालको जलमें भिगोकर उस जलको नासिकामें डालनेसे उत्तम शिरोविरेचन होता है, लेकिन जलको नासिकामें डालनेके समय मुखमें दूधका कुल्ला भर लेवे, जब दवा मस्तकमें चढ जावे तब दुग्धको मुखसे बाहर निकाल देवे। श्वेत पुनर्नवाको धतूरेके स्वरसके साथ देवे मास तिलका तैल आकका दूध और गुड देवे, यह औषध विषको ऐसे दूर कर देती है जैसे वायु बादलोंके समूहको नष्ट करती है। अथवा एक कर्ष सरफोकाकी जडका चूर्ण और धतूरेकी जड, तथा ऋद्धि एक २ कर्ष (इनको १४ कर्ष) चावलोंके साथ मिलाकर पीस लेवे और चावलोंके जलसे

णोंवाले मनुष्यकी जूँठी वस्तु न खावे, यदि भूलसे खा ली जावे तो वह भी उसी दशामें हो जाता है। और जिसको बावला श्वान काटे और दंशस्थानमेंसे विशेप रक्त अपने आप निकल जावे तो अच्छा है ऐसा मनुष्य उपाय करनेसे बच भी जाता है, इसी प्रकार उसको तिरियाक और मूत्र लानेवाली औषध दी जावे तो पानीसे डरनेका भय नहीं होता है और कुत्तेका काटाहुआ मनुष्य जब पानीसे डरने लगे तो उसका उपाय नहीं है मृत्युके मुखमें समझना।

श्वानदंशकी चिकित्सा।

विस्राव्य दंशं तैर्दष्टे सर्पिषा परिदाहितम्। प्रदिह्यादगदैः सर्पिः पुराणं वापि पाययेत्॥ अर्कक्षीरयुतं चास्य दद्याच्छीर्षविरेचनम्। श्वेतां पुनर्नवां चास्य दद्याद्धत्तूरकायुताम्॥ पललं तिलतैलञ्च रूपिकायाः पयो गुडः। निहन्ति विषमालार्कं मेघवृन्दमिवानिलः॥ मूलस्य शरपुंखायाः कर्षं धत्तूरकार्द्धिकम्। तंडुलोदकमादाय पेषयेत्तण्डुलैः सह॥ उन्मत्तकस्य पत्रैस्तु संवेष्ट्यापूपकं पचेत्। खादेत्तदौषधं चैव तदलर्कविषदूषितः॥ करोत्यन्यान् विकारांस्तु तस्मिन् जीर्य्यति चौषधे। विकाराः शिशिरे याप्या गृहे वारिविवर्जिते॥ ततः शान्तविकारस्तु स्नात्वा चैवापरेऽहनि। शालिषष्टिकयोर्भक्तं क्षीरेणोष्णेन भोजयेत्॥ दिनत्रये पञ्चमे वा विधिरेषोऽर्द्धमात्रया। कर्त्तव्यो भिषजावश्यमलर्कविषनाशनः॥ कुप्येत्स्वयं विषं यस्य न स जीवति मानवः। तस्मात्प्रकोपेदाशु स्वयं यावन्न कुप्यति॥

अर्थ—श्वानके दंशस्थानका रक्त निकालकर विष निश्शेष करनेके लिये घृतसे दग्ध कर देवे तथा महागदादि औषधका लेप कर पुराना घृत पान कर आकका दुग्ध देकर शिरोविरेचन करावे। वृन्दाल फलके जालको जलमें भिगोकर उस जलको नासिकामें डालनेसे उत्तम शिरोविरेचन होता है, लेकिन जलको नासिकामें डालनेके समय मुखमें दूधका कुल्ला भर लेवे, जब दवा मस्तकमें चढ जावे तब दुग्धको मुखसे बाहर निकाल देवे। श्वेत पुनर्नवाको धतूरेके स्वरसके साथ देवे मास तिलका तैल आकका दूध और गुड देवे, यह औषध विषको ऐसे दूर कर देती है जैसे वायु बादलोंके समूहको नष्ट करती है। अथवा एक कर्ष सरफोकाकी जडका चूर्ण और धतूरेकी जड, तथा ऋद्धि एक २ कर्ष (इनको १४ कर्ष) चावलोंके साथ मिलाकर पीस लेवे और चावलोंके जलसे

बलवान् करनेकी आवश्यकता होय तो तेज और मांसको गलानेवाली दवा फलदफयून लगावे जिससे निकम्मे घाव और विषैलेपनको नष्ट करे । वादीके निकालनेमें अधिक परिश्रम करे मुख्य करके जब विष फैलने लगे और रोगीकी दशा उन्मादकीसी बदलने लगे तो सर्वथा तिरयाक अथवा और दवा उस्सरतान खिलावे, तथा उसी कुत्तेका जिगर भूनकर खिलाना लाभदायक है । यदि माहूदाना और जुन्देवेदस्तरकी सलाई बनाकर घावमें रक्खे तो विशेष लाभदायक है, कुत्तेके विषको नष्ट करनेवाली पाषाणभेदके समान दूसरी दवा नहीं है ।

दवा उस्सरतानके बनानेकी विधि ।

नहरके कीकडे ५ भाग, पाषाणभेद, कुंदरूगोंद प्रत्येक ३ भाग इन सबका सफूफ बनाकर प्रथम दिवस पानी और घृतके साथ ४॥ मासेकी मुहताज देवे, दूसरे दिवस ६ मासेकी मुहताज देवे, तीसरे दिवस ७॥ मासेकी मुहताजसे देवे इसी प्रकार १॥ मासेकी मुहताज प्रति दिवस बढाकर १८ मासेकी मुहताजतक पहुंचावे । पीछे क्रम २ से घटाता जावे और जरारीहकी टिकिया इस मौकेपर विशेष लाभदायक हैं, (जरारीह एक जानवर होता है वह खुद विषैला है) जरारीहको लेकर उसके हाथ पैर और शिरको काटकर निकाल देवे और १ भाग लेवे और छिलीहुई मसूर भी उसीके समान ले केशर, बालछड, लवङ्ग, कालीमिर्च, दालचीनी इन प्रत्येकको जरारीहसे छठा भाग ले सबको पीसकर पानीके साथ डेढ २ मासेकी टिकिया बना एक टिकिया प्रतिदिवस रोगीको प्रातःकालके समय देवे । और हम्माममें लेजाकर रोगीको भफारेमें बैठाल मोटे मुर्गेके मांसका तथा चनेका सुरुवा (मांसरस) पिलावे, और मीठा पानी लाभदायक है, जो इस दवाके खानेके पीछे मसानेमें मरोडा मालूम होय तो मसूरके काढेमें बदामका तैल और मक्खन मिलाकर पिला गौका घृत खिलावे ।

श्वानविषको निवृत्त करनेवाला चूर्ण ।

नहरका कीकडा, पाषाणभेद प्रत्येक १७॥ मासे कुंदरूगोंद, पोदीना प्रत्येक १०॥ मासे, गिल्ले मखतूम ३५ मासे इनको कूट छानकर चूर्ण बना ३॥ मासेकी मात्रासे देवे । जर्खकी खालका प्याला लेकर उसमें दवा तथा पानी आदि पिलाना हितकारी है, अथवा एक लकडीका प्याला लेकर उसके भीतर और बाहर जर्खकी खाल मढ देवे और उससे दवा तथा पानी पिलावे, जो बावले कुत्तेकी खालका बनाकर जर्खकी खाल उसके ऊपर मढकर काममें लावे तो ये सब कुत्तेकी विषकी प्रकृतिके अनुसार लाभदायक हैं । (विशेष सूचना) श्वान दंशवाला रोगी जिस अवस्थामें डरसे जल न पीवे तो किसी बहानेसे उसको पानी देना चाहिये, क्योंकि जल न पीनेसे उसके मरनेका भय है । क्योंकि प्यासकी अधिकतासे मृत्यु होना संभव है, इस दशामें एक

बन्द वर्तन जैसा टोंटीदार लोटा व बदनामें जल भरकर उसको ढांक देवे और उसकी टोंटीमें एक नरसल व रवडकी पोली नली लगाकर रोगीके मुखमें नलीका शिरा लगाके वर्तनको आवश्यकताके माफिक झुकाकर मुखमें पानी पहुंचावे । लेकिन प्रत्यक्षमें रोगीके समक्ष पानीका नाम न लेवे और पानीके ऊपर रोगीकी निगाह न पडे । और पतली लुआवदार चीजें शीतल तासीरके शीरा टिकिया तर भोजन और पतली अजीर्ण करनेवाली चीजें जो पिलासको निवृत्त रखती हैं देनी चाहिये । इसका प्रयोजन यह कि तरी और सर्दीको पहुंचानेमें विशेष ध्यान देवे, कि रोगी खुश्की पिलाससे शीघ्र न मरजावे और किसी तवीवका कथन है जो वावला कुत्ता मनुष्यको काटे तो उसी कुत्तेका थोडासा रक्त लेकर पानीमें मिलाकर काटे हुए मनुष्यको पिला देवे तो उसका विष मनुष्यपर असर नहीं करता । कोई २ तवीव ऐसा भी कहते हैं कि १ मासे कस्तूरी प्रति दिवस ६ महीनेतक वावले कुत्तेसे काटेहुए मनुष्यको देते रहें और तीन महीनेतक जखमको न भरने देवे । एक तवीवका कथन है कि जव वावले कुत्तेके काटेहुए मनुष्यको सात महीने व्यतीत हो जावें तब शरीरके मवादको आकाशवेल तथा हरडके काढेसे निकाले, अथवा, मवादको निकालनेके लिये नीचे लिखीहुई गोलियां काममें लावे । सनाय १७॥ मासे, कावुली हरड २४॥ मासे, आकाशवेल २। मासे, सांभर नमक १।।। मासे वीसफाइज, हिब्बइरमनी प्रत्येक ४॥ मासे, गारीकून, वैलका भेजा १।।। मासे (इस दवामें वैलके भेजेके स्थानपर गोरोचन भी डालते हैं) इन सवको वारीक पीसकर बिल्लीलोटन (जटामांसी) के काढेके साथ मिलाकर गोलियां वनावे, इसकी मात्रा ९ मासेकी है । अथवा रेचकके लिये आकाशवेलका काढा माउलजुब्नके साथ दे वातनाशक दवा देनी उचित हैं, उसी कुत्तेका जिगर भूनकर खावे, रक्त पीवे और दांत गलेमें लटकावे तो लाभदायक है । और १४ मासे रसौत प्रतिदिवस ४० दिवस पर्य्यन्त खाना कुत्तेके विषके भयको नष्ट करता है ।

निर्विष और सविष मनुष्यके लक्षण ।

प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थधातुमन्नाभिकांक्षं सममूत्रजिह्मम् । प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं वैद्योऽवगच्छेदविषं मनुष्यम् ॥ प्रवृद्धदोषं विकृतिस्थधातुमन्नाभिकांक्षं क्षतमूत्रजिह्मम् । विरुद्धवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं वैद्योऽवगच्छेत्सविषं मनुष्यमिति ॥

अर्थ—वातादि दोष अपने २ स्वभावमें स्थित हो जायँ रसादिक धातु अपनी २ प्रकृतिमें स्थित होजायँ, जिस विष रोगीकी अन्नमें रुचि वढे, जिह्वा और नेत्र

स्वच्छ हो जायँ, मल मूत्र समरूपसे निरोगी मनुष्यके समान उतरे, जिसका वर्ण इन्द्री चित्त चेष्टा सब प्रफुल्लित होजायँ उस मनुष्यको निर्विष समझो। इसके विरुद्ध लक्षणवाला जैसे कि विषके कारणसे जिसके वात पित्त कफादि दोष विकृत हो रहे होयँ, रसादिक धातु विगडेहुए होयँ, अन्नमें रुचि न होय, दंशस्थानमें क्षत विकृत और दूषित हो रहा होय, मूत्र पुरीषमें खराबी होय, जिह्वा विवर्ण होय, इन्द्रिय और चित्त स्वस्थ न होय इन लक्षणोंसे युक्त मनुष्यको चिकित्सक विषातुर समझे। और यावत्काल उपरोक्त लक्षण निर्विषताके संघटित न होवें तावत् काल उसकी यथाविधिसे चिकित्सा करे।

मांसविषकी चिकित्सा।

मांस भक्षण करना मनुष्य जातिके धर्मसे सर्वथा विरुद्ध है, परन्तु औषध प्रयोगमें जहां मांस लिया गया है वह केवल मनुष्य जातिकी रक्षाके निमित्त समझा जाता है। क्योंकि सब प्राणियोंमें मनुष्य श्रेष्ठ और ज्ञानी हैं, इसकी रक्षाके निमित्त अनेक प्रकारके उपाय विज्ञलोगोंने निर्माण किये हैं। परन्तु जहांतक अन्य औषधियोंसे मनुष्यकी रक्षा हो सके वहांतक किसी प्राणधारीको कष्ट पहुंचाकर मांस प्रयोगका प्रयत्न न करे। किन्तु खेदकी वात है कि अनेक मनुष्य जिह्वाके स्वाद और उदरपूर्तिके लिये प्राणधारियोंको हनन करके मांससे तृप्त होते हैं, ऐसे मांसाहारी लोग जिह्वा स्वादके वशीभूत होकर विषयुक्त मांसवाले जीवोंका भी मांस भक्षण करके दुःख और मृत्युको प्राप्त होते हैं। ऐसे विषैले मांसको भक्षण करनेवाले मनुष्योंकी चिकित्सा नीचे लिखी जाती है।

जरारीह एक जन्तु है प्रायः पैर और शिर छेदन करके यह यूनानी औषधियोंके प्रयोगमें भी आता है,। परन्तु बहुत न्यून मात्रासे इसका मांस काममें लिया जाता है। यह गर्म और तेज है, इसके खानेसे मुख और मसानेमें जलन होती है, पेटमें मरोडा, शिरमें दर्द होता है। मूत्र जलनके साथ उतरता है, मूत्रेन्द्रियपर शोथ उत्पन्न होता है, ज्वर बुद्धिविभ्रम और अचैतन्यता उत्पन्न होती है। उपाय इसका यह है कि तिलीका तैल, अंजीरसोयाके बीज, पोदीना इनका काढा करके उसमें तैल मिलाकर पिला कई वार वमन करावे, और मसानेपर गर्म पानीका सेंक कर फस्द खोले (फस्द वासलीक रगकी खोले) और ताजा दूध तथा ललदार चीजें पिलावे, जौका पानी या चावलका लुआव वतक और मुर्गेकी चर्बी इनके संयोगसे हुकना कर चिकने, सारेवा खिलावे। विहीका तैल खाना, मलना विषको नष्ट करता है, सनोवरका फल अंगूरी शराबके साथ खाना लाभदायक है। अंजीर खाना, वनफशाका शरवत, अथवा काढा, मक्खन, घृत, मुर्गीके अण्डेकी जर्दी ये सब जरारीहके विषमें लाभदायक हैं।

गुलरोगन और मुर्गीके अण्डेकी सफेदी लिङ्गके छिद्रमें डाले और जीके आटेको शहद मिलाकर मसाने और मूत्रेन्द्रियके ऊपर लेप करे । छिपकली और गिरगिटका मांस खानेसे मृत्यु होती है । ये दोनों किसी खानेकी चीजमें गिरपडें और मालूम न होय व फूलकर इनका पेट फट इनका मवाद खानेकी चीजमें मिल खा ली जावे तो वमन हो मुखमें दर्द होता है । यदि शरावमें गिर जावे तो येही लक्षण होते हैं, यदि गिरगिटका अण्डा खाया जावे तो मृत्युकारक है । उपाय इसका यह है कि छिपकलीका उपाय तो जरारीहके समान करे और गिरगिटका उपाय इस प्रकारसे करे कि तिल, खरनूव, और कन्द (मिश्री) इन तीनोंको समान भाग लेकर वारीक करके गौके घृतमें मिलाकर रोगीको परिमित मात्रासे सेवन करावे, ताजा दूध पीना, तैल मलना, हम्माममें जाना लाभदायक है । गिरगिटके वच्चेके विपके लिये वमन करावे और शरीर पर तैलकी मालिश करावे नमक गर्म करके शिरपर रक्खे गौका मक्खन और पापाणभेदका सफूफ दोनोंको मिलाकर खिलावे, सालामन्दराके मांसका खाना आमाशयमें अत्यन्त दर्द करता है और पेटमें जलन्धरके समान सूजन करता है । मूत्रको वन्द कर देता है, शरीर काला होकर सड जाता है । चिकित्सा इसकी यह है कि वमन और हुकनेसे पेटको साफ करे और तिरियाक अथवा सलारस, शहद, सनोवरका फल जैतूनके तैलमें मिलाकर देना लाभदायक है । मेंडकका मांस खाना, शरीरमें सूजन उत्पन्न करता है और शरीरका रंग पीला हो अचैतन्यता लाता है, वाल और दांतोंको पतन करता है भूँखको नष्ट करता है । चिकित्सा इसकी यह है कि गर्म पानी पिलाकर वमन करावे, यदि गर्म पानीसे वमन न आवे तो मैनफलके वीजोंका काढा वनाकर शहत मिलाकर पिला दस्तावर औपधियोंको देकर जुलाव करा शरावकी मात्रा पिलावे, परिश्रम करना हित है, हम्माममें ले जाकर पसीने निकाले, शरीरको भफारा देवे, तैलकी मालिश करना लाभदायक है । कस्तूरी, दवाउलकिरमक, नागरमोथा, वांसकी जड इन सवको समान भाग लेकर सफूफ वनावे और ३॥ मासेसे लेकर ६॥ मासेतककी मात्रा शरावके साथ देवे, कोई २ इसकी ९ मासेकी मात्रा देना भी लिखते हैं । दर्याई कुत्तेका पित्ता एक मसूरके माफिक भी खायाहुआ एक सप्ताहके वाद मनुष्यको मार देता है । चिकित्सा इसकी यह है कि तैल, ताजा दूध, पापाण-भेद, दालचीनी इनको खरगोशके पनीरके साथ पीना, वदामके तैलकी मालिश शरीरमें करना हितकारी है । चित्तेके पित्ताके खानेसे पीली और हरी वमन हो नेत्रोंमें पीलापन उत्पन्न होता है । चिकित्सा इसकी यह है कि तैल और गर्म पानीसे वमन करावे और विपकी निवृत्तिको यह दवा देवे, गिले मखतूम, हब्बुलगार, तुतलीके वीज सव समान भाग वूल आधा भाग सवको कूट छान चूर्ण वना ४॥ मासेकी मात्रा शहदके

साथ देवे बाकी हैजेकासा उपाय करे। सर्पके विषका खाना अथवा सर्पका गोस्त खाना अचैतन्यता लाता है और किसी २ सर्पका गोस्त ऐसा जहरा होता है कि उससे बचना बडा ही कठिन हो जाता है, किन्तु मनुष्यको मारही डालता है। चिकित्सा इसकी यह है कि मक्खन घृत गर्म करके और तिलीका तैल देवे ऊपरसे गर्म जल पिलाकर वमन करा विषनाशक तिरियाक कबीर और मसरूदीतूस खिला रोगीके खानेके लिये मांसरस देवे। गौका दूध कभी २ आमाशयमें पहुंचकर अति विकृत और विषैला हो पचता नहीं है, इस दशामें मनुष्यको घुमेरी और अचैतन्यता आ जाती है। आमाशयमें मरोडा उत्पन्न करता है, कभी २ हैजेकीसी दशामें आनकर मनुष्य मर जाता है। चिकित्सा इसकी यह है कि शहदका गर्म पानी पिलाकर वमन करावे वमनमें दूधकी जमीहुई और खट्टी फुटकें निकलती हैं वमनके पीछे केवल थोडी शराब पिलाना हित है। अथवा फलफली खाना, गुलाबका गुलकंद खाना लाभदायक है, नार्दन, बदाम, मस्तगी इनमेंसे किसीका तैल आमाशयपर मलना लाभदायक है और आमाशयमें दूधका जम जाना बेहोशी और पसीना लाना उत्पन्न करता है। इसका उपाय लिखा गया है, परन्तु यहां भी लिखते हैं, पनीरमाया २। मासे लेकर पुराने सिर्केमें देवे अथवा बाकलाके दानेके समान हींग, पोदीनाका अर्क, सिकंजबीन, अजमोदके बीजका काढा और शहद इन सबको मिलाकर वमन करावे। दूधके प्रथम और पीछे पनीर खानेसे दूध जम जाता है और दूधके जम जानेके पीछे खानेसे पतला हो जाता है, इसलिये कई तबीबोंका सिद्धान्त है कि दूध पीकर उसी समय रात्रिको शयन न करना चाहिये। दूधके ऊपर कुछ न खाना चाहिये, जब रक्त आमाशय, रक्ताशय, आंतडे, मसानेमें जम जाता है तो गलेमें सूजन, निर्बलता, बेहोशी, सुस्ती, और हाथ पैरोंमें सर्दी और नाडीमें निर्बलता उत्पन्न होती है। चिकित्सा इसकी यह है कि अंजीरकी लकडीकी राख और खरगोशका गूदा देवे अथवा ३॥ मासे चाह शराबमें मिलाकर देवे, जो रक्त छाती और आमाशयमें जमा होय तो वमन करावे और जो आंतडेमें जमा होय तो हुकना (गुदामें पिचकारी गर्म जलकी लगावे), मसानेमें जमा होय तो पथरीके समान उपाय करे। बासी और खराब मछलियोंके खानेसे घबराहट, हैजा, और कभी २ मृत्यु होती है। चिकित्सा इसकी यह है कि वमन करावे, विहीकी शराब पिलावे, और शराबमें विहीका निचोडाहुआ स्वरस मिलाकर पिला गिलेमखतूमका खिलाना भी लाभदायक है। पकायाहुआ मांस गर्म ही पात्रमें ढकाहुआ रखदिया जावे और उसकी भाफ न निकले किन्तु भाफ घुटकर उसी पात्रमें रह जावे और मांसमें मिलजावे तो ऐसा मांस विषके तुल्य हो जाता है, इसके खानेसे बेहोशी और हैजा उत्पन्न होता है। चिकित्सा इसकी यह है कि प्रथम वमन कराके

आमाशयको साफ करे, फिर विहीकी शराव, और शरावमें विहीका रस, सेवका रस, मखतूम मिलाकर देवे । कस्तूरी आदि देना लाभदायक है और बाकी उपाय हैजेके समान कर रोगीको सोने व संभोग करनेसे वर्जित रखे । इसी प्रकार तांबेके वर्त्तनमें किसी प्रकारका खाना पकाया जाय और उस वर्त्तनमें कलई न होय और खाना अधिक समय तक रखा रहे तो वह विषके समान हो जाता है । दस्त वमन और वेहोशी अचैतन्यता हृदफूटन कभी २ मृत्यु भी हो जाती है। चिकित्सा इसकी उपरोक्त विधिके अनुसार करे, दर्याई खरगोशका गोस्त खानेसे श्वास, मुखसे रक्त स्राव दुर्गन्धित पसीना आमाशय तथा छातीमें पीडा उत्पन्न होती है । चिकित्सा इसकी यह है कि गर्म पानी पिलाकर वमन करावे, पीछे खतमी और खव्वाजीका काढा पिलावे और गर्म जलसे स्नान कराना लाभदायक है । यदि छातीमें कुछ दर्द रहे तो वासलीक रगकी फस्द खोले और शरवत खसखास व शरवत उन्नाव पिलावे गौकी पूंछका शिरा खानेसे आँतोंमें प्रबल पीडा उत्पन्न हो जाती है । उपाय इसका यह है कि तैल और गर्म पानी पिलाकर वमन करावे और वमनसे आमाशयका मवाद निकल जावे तो तिरियाक फारूक मसरूदीतूस देना लाभदायक है ।

स्थावर जंगमकी विषचिकित्सा समाप्त ।

भूतग्रह तन्त्र ।

आयुर्वेद सुश्रुत संहिता आठ तन्त्रोंमें विभक्त करके चिकित्सा प्रणाली कथन की गई है । (जैसा, शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतन्त्र, रसायनतन्त्र, वाजीकरण तन्त्र) इनमें ऊपर भूत विद्या नाम आया है इस शब्दके ऊपर देव, असुर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पित्रीश्वर, पिशाच, नाग (सर्प) नवग्रह इन ९ की कल्पना की गई है, ज्योतिष खगोल गणितकी सिद्धिके लिये शुक्र शनि आदि ग्रहोंकी कल्पना की गई है । इन ग्रहोंसे पृथक् आयुर्वेदमें ग्रह शब्दसे नवग्रह पृथक् नियत किये गये हैं । जैसा—

स्कन्दग्रहस्तु प्रथमः स्कन्दापस्मार एव च । शकुनी रेवती चैव पूतना चान्धपूतना ॥ पूतना शीतनामा च तथैव मुखमण्डिका । नवमो नैगमेयश्च यः पितृग्रहसंज्ञितः ॥

अर्थ—इन सबमें प्रथम स्कन्द ग्रह प्रधान है, २ स्कन्दापस्मार, ३ शकुनी, ४ रेवती, ५ पूतना, ६ अंधपूतना, ७ शीतनामा पूतना अथवा शीतपूतना, ८ मुखमंडिका ९ नैगमेय अथवा नैगमेय यह नवमा ग्रह बालकोंके अन्य ग्रहोंसे रक्षा करता

है, इस कारणसे इसका नाम पितृसंज्ञित भी है। ये नव ग्रह अबोध बालकोंपर आक्रमण कर उनको कष्ट पहुंचाते हैं, अब यहांपर यह शंका होती है कि दूधपान करनेवाले बालकोंपर ये क्यों आक्रमण करते हैं। इसका उत्तर यह है कि (बालग्रहा अनाचारात्पीडयन्ति शिशुं यतः)। अर्थात् बालग्रह बालकोंके अनाचार निषिद्धाचरणसे, आक्रमण करते हैं। परन्तु यह समाधान यथार्थ नहीं है कि अज्ञानी बालक क्या अनाचार करता है उसको धर्माधर्म आचारानाचार शुद्धि अशुद्धि पाप पुण्य और संसारका कुछ भी ज्ञान नहीं है, इस विषयमें सुश्रुतका कथन है कि—

धात्रीमात्रोः प्राक् प्रदुष्टापचारान् शौचभ्रष्टान् मङ्गलाचारहीनान्। त्रस्तान् हृष्टांस्तर्जितान् क्रन्दितान् वा पूजाहेतोर्हिंस्युरेते कुमारान्॥ ऐश्वर्य्यस्थास्तेन शक्या विशन्तो देहं द्रष्टुं मानुषैर्विश्वरूपाः।

अर्थ—धाय (बालकको पालनेवाली) तथा बालककी माताके शारीरस्थानमें कथन कियेहुए दुष्टाचरणोंसे युक्त और बालकको मल मूत्रसे भ्रष्ट (धो पोंछकर बालकको शुद्ध न रखना अथवा बालकको पोषण करनेवालीका शुद्ध न रहना) मंगलाचरण (स्वस्तिपाठ शान्ति हवनादि वेदविहित कर्म जिन घरोंमें न होते होयँ) और बालकको डरावे धमकावे अथवा रुदन करतेहुए बालकोंको ये ग्रह पूजाके अर्थ मार डालते हैं। इस सुश्रुतके कथनसे साफ २ विदित होता है कि बालकके पालनेवाली धात्री और माता पिता बालकको धमकावें नहीं और उनके शरीरको स्वच्छ रखें, जिससे कोई रोग उत्पन्न न होय, क्योंकि मलीन रहनेसे फोडा फुंसी खाजादि चर्म रोग और रक्त विकार हो जाता है। बालकके रहनेके स्थानमें स्वस्तिवाचन शान्तिकरणका पाठ और सुगन्धित द्रव्योंके हवनसे घरकी वायु शुद्ध रखनी चाहिये, जिससे बालक सदैव आरोग्य और हृष्टपुष्ट रहे इसी निमित्तसे इन भयानक ग्रहोंका भार सुश्रुत आचार्य्यने डाला है, सुखपूर्वक पोषण होवे यह बुद्धिमानोंकी कल्पना है। सुश्रुतके अतिरिक्त वैद्यकके अन्य ग्रन्थोंमें भी इसी प्रकार लिखा है।

कुलेषु येषु नेज्यन्ते देवाः पितर एव च। ब्राह्मणाः साधवो वापि गुरवोऽतिथयस्तथा॥ निवृत्तशौचाचारेषु तथा कुत्सितवृत्तिषु। निवृत्तभिक्षाबलिषु भग्नकांस्यगृहेषु वा॥ ते वै बालांश्च तांस्तान् हि ग्रहा हिंसंत्यसंकिताः॥

अर्थ—जिनके कुलमें देव कहिये विद्वान् लोगोंकी पूजा नहीं होती, पितर कहिये माता पिता पितामह वृद्ध पुरुषोंकी सेवा सुश्रूषा नहीं की जाती ब्रह्मनिष्ठ वेदपाठी धर्मप्रचारक सत्योपदेशक ब्राह्मण और गुरु जनाचार्य, अतिथि, आत्मपरायण निर्लोभ साधु

महात्मा यतियोंका पूजन सत्कार नहीं जिनके पवित्रता और शुद्धाचरण नहीं जो लोग अधर्मी दुष्ट वृत्तिवाले वेदविरुद्ध कर्मोंके करनेवाले हैं जिन घरोंमें सुगंधित रोगनाशक द्रव्योंकी तथा घृतादिकी वलि अग्निकुण्डमें नहीं दी जाती और अपाहिज मुहताज पुरुषार्थहीन भिक्षुक क्षुधातुर रोगियोंको वलिवैश्वदेवके अन्नकी भिक्षा दान नहीं की जाती, जिन घरोंमें फूटे कांसे आदि धातुओंके वर्त्तन रहते हैं (ऐसे फूटे वर्त्तनोंसे हाय फटनेका भय है । उन दुष्ट मूर्ख जनोंके वालकोंको ये नव ग्रह शंका-रहित नष्ट करते हैं । इस कथनसे भी यही सिद्ध होता है कि वालकोंके पालन पोषणके अर्थ उत्तम आचरण गृहकी शुद्धि और वेदविहित कर्म्मोंका अनुष्ठान विद्वान् गुरु आचार्य्योंके सदोपदेशके अनुसार करें । क्योंकि जहांपर वेदोक्त कर्म और विद्वान्का समागम रहता है वहांपर मूर्खोंके चलायेहुए ढकोसले नहीं चल सक्ते । दूसरे यह कि जो गृहजुष्टके लक्षण नीचे लिखे हैं. वे वात पित्त कफसे सम्बन्ध रखनेवाली व्याधियोंके लक्षण हैं, और वात पित्त कफको शमन करनेवाली औषधियोंके प्रयोग भी लिखे गये हैं, यदि ग्रहजुष्ट व्याधि होती तो उपचार औषध प्रयोगसे करना निष्फल है, क्योकि ग्रह पीडाको औषध निवारण नहीं कर सक्ती नव ग्रहोंके उपचारमें औषध प्रयोग लिखे गये हैं इसी कारणसे एक दो ग्रहकी व्याधिके लक्षण और उपचारका उल्लेख हम आगे करते हैं । जैसा—

शूनाक्षः क्षतजसगन्धिकः स्तनद्विट् वक्रास्यो हतचलितैकपक्ष्मनेत्रः ।
उद्विग्नः सुलुलितचक्षुरल्परोदी स्कन्दार्त्तो भवति च गाढमुष्टिवर्चाः ॥
निःसंज्ञो भवति पुनर्भवेत्ससंज्ञः संरब्धः करचरणैश्च नृत्यतीव । विण्मूत्रे सृजति विनद्य जृम्भमाणः फेणञ्च प्रसृजति तत्सखाभिपन्नः ॥
स्रस्ताङ्गो भयचकितो विहंगगन्धि संस्राविव्रणपरिपीडितः समन्तात् ।
स्फोटैश्च प्रततनुसदाहपाकैर्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या ॥

अर्थ—स्कन्दग्रहार्त्तके लक्षण जिस वालकके नेत्रोंमें सूजन, रुधिरकीसी गन्ध आती है स्तनपान न कर सके, मुखको टेढा रखे जिसके नेत्रमें एक पलक हत और चलित हो जाय मन विगडा रहे नेत्र मिचेसे रहें थोडा रुदन करे मुट्ठी मींचे रहे मल कठिन उतरे ये स्कन्दग्रहार्त्तके लक्षण हैं (असलमें यह व्याधि वातदोषसे रक्त दूषित होकर नेत्र पाकके समान लक्षण हैं । (स्कन्दापस्मारके लक्षण) कभी तो वालक होशमें आ जाय, कभी वेहोश हो जाय शरीर शोथके समान दीख पडे हाथ पैर ऐसे हिलने लगें जैसे कांपता हो व नृत्य करता होय, मल मूत्र अधिक उतरने लगे वालक

चीख मारता होय, जंभाई लेता होय मुखसे झाग पडने लगे ये स्कन्दापस्मारके क्षंलण हैं । इस व्याधिके लक्षण वात और कफजन्यसे मिलते हैं । (शकुनी ग्रहके लक्षण) बालकके अङ्ग शिथिल पडजायँ भयसे चकित होनेलगे शरीरमें पक्षीकीसी गन्ध आने लगे छोटे २ व्रण होकर स्राव होने लगे और छोटे २ विस्फोटक होकर दाह पाक होने लगे ये लक्षण शकुनी ग्रहके हैं । (ये लक्षण पित्त दूपित रक्त विकारके समान हैं) इसी प्रकार अवशेष ६ ग्रहोंके नामसे जो रोग अन्य ग्रन्थोंमें कथन किये हैं उनको भी बुद्धिमान् दोषजन्य समझकर उपचार करे ।

उपरोक्त तीनों व्याधियोंकी चिकित्साक्रम ।

स्कन्दग्रहोपसृष्टानां कुमाराणां च शस्यते । वातघ्नद्रुमयन्त्राणां निःक्वाथः परिषेचने॥ तेषां मूलेषु सिद्धञ्च तैलमभ्यञ्जने हितम् । सर्वगन्धसुरामण्ड-कैटर्य्यावापमिष्यते ॥ देवदारुणि रास्नायां मधुरेषु द्रवेषु च । सिद्धं सर्पिश्च सक्षीरं पानमस्मै प्रयोजयेत् ॥ सर्षपाः सर्पनिर्मोको वचा काका-दनीघृतम् । उष्ट्राजाविगवाश्चैव रोमाण्युद्धूपनं शिशोः ॥ सोमवल्लीमिन्द्र-वल्लीं शमीं बिल्वस्य कंटकान् । मृगादन्याश्च मूलानि ग्रथितान्येव धारयेत् ॥ बिल्वः शिरीषो गोलोमी सुरसादिश्च यो गणः ॥ परिषेकः प्रयोक्तव्यः स्कन्दापस्मारशान्तये ॥ सुरसा श्वेतसुरसा पाठा फंजी फणि-ञ्जकः । सौगन्धिकं भूस्तृणको राजिका श्वेतवर्वरी ॥ कट्फलं खरपुष्पा च कासमर्दश्च शल्लकी । विडंगमथ निर्गुण्डी कर्णिकार उदुंबरः । बला च काकमाची च तथा च विषमुष्टिका । कफक्रमिहरः ख्यातः सुरसादिरयं गणः ॥ अष्टमूत्रविपक्वञ्च तैलमभ्यञ्जने हितम् । गोऽजावि-महिषाश्वानां खरोष्ट्रकरिणां तथा । मूत्राष्टकमिति ख्यातं सर्वशास्त्रेषु सम्मतम् ॥ उत्सादनं वचा हिङ्गुयुक्तमत्र प्रकीर्तितम् ॥ शकुनीग्रह-जुष्टस्य कार्य्यं वैद्येन जानता । वेतसाम्रकपित्थानां क्वाथेन परिषेचनम् ॥ ह्रीवेरमधुकोशीरसारिवोत्पलपद्मकैः । लोध्रप्रियङ्गुमञ्जिष्ठागैरिकैः प्रदिहे-च्छिशुम् ॥ स्कन्दग्रहोक्ता धूपाश्च हिता अत्र भवन्ति हि । स्कन्दापस्मारशमनं घृतमत्रापि पूजितम् ॥ शतावरीमृगैर्वारुनागदन्ती-निदिग्धिकाम् ॥ लक्ष्मणां सहदेवीं च बृहतीं चापि धारयेत् ॥

अर्थ-स्कन्दग्रहसे पीडित बालकोंको वातनाशक वृक्षोंके पत्रोंके क्राथसे सेक कर, उन्हीं वातनाशक औषधियोंकी जडके क्राथ व कल्कमें तैल सिद्ध करके शरीरमें लगावे यह तैल हितकारी है। (सर्वगन्धके औषध) सुरामंड कहिये मद्यके ऊपरकी रफ मलाई गिलोय इनके क्राथमें सिद्ध किया हुआ तैल भी हितकारी है। देवदारु, रास्ना, मधुर द्रव्योंमें सिद्ध किया हुआ घृत दूधके साथ पान करानेमें हित है। (मधुर द्रव्य, दाख, छुहारा, मुलहटी आदि) और सरसों, सर्पकी कांचली, वच, काकजंघा, घृत, ऊंटके लोम, बकरी, गायके बाल इनकी धूप बनाकर देवे। गिलोय, इन्द्रायण, छोंकरा, बेलके काँटे, मूंगादिनीकी जड इनको कपडेकी थैलीमें सीकर बालकके गलेमें बांधे। स्कन्दापस्मार जुष्टकी चिकित्सा इसप्रकार करे-बेलकी जड, सिरसकी छाल, सफेद दूब, और सुरसादि गणके औषध इनका काढा करके बालकके शरीर पर तरडा देवे अथवा सहते २ जलमें बैठाले, बैठालनेके समय बालककी गर्दन जलसे ऊपर रहे । (सुरसादि गणके औषध) काली तुलसी, सफेद तुलसी, पाढ, भारंगी, दोना मरुआ, भूस्तृण, राई, सफेद वनतुलसी, कायफल, ममरी, कसौंदी, सल्लकी, वायविडंग, निर्गुंडी, कनेर, गूलर, खरैटी, मकोय, बकायन यह सुरसादि गण है कफ और क्रमिरोगको नष्ट करता है । स्कन्दापस्मारवाले बालकके शरीरमें मूत्राष्टकमें पकाये हुए तैलका मर्दन करना हितकारी है। (मूत्राष्टक) गौ, बकरी, भेंड, भैंस, घोडा, गधा, ऊंट, हाथी इन आठोंके मूत्रको मूत्राष्टक कहते हैं और सुश्रुतमें (क्षीरवृक्षकषाये च कांकोल्यादौ गणे तथा । विपक्तव्यं घृते अपि पानीयं पयसान्वितम् ।) कथन किया है कि क्षीरवृक्षोंके क्राथ अथवा काकोल्यादि गणके क्राथमें पकायाहुआ घृत दुग्धके साथ बालकको पिलाना हित है। (क्षीरीवृक्ष वट, गूलर, पीपल, पिलखनादि और काकोल्यादि गणके औषध काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, गिलोय, मुद्गपर्णी, मासपर्णी, पद्माख, वंशलोचन, काकडाशृंगी, पंडरिया, जीवन्ती, मुलहटी दाख यह काकोल्यादि गण है इसके सेवन करनेसे स्त्रीके स्तनोंमें दुग्धकी वृद्धि होती है शरीर पुष्ट होता है वीर्यकी वृद्धि होती है रक्त पित्त और वात रोगको नष्ट करता है। स्कन्दापस्मारमें वच और हींग इनका उबटना करना हित है। और गिद्ध उल्लूक (घुग्घूपक्षी) इनकी बीट बाल हाथीका नख-घृत बैलके रोएँ इनकी धूप देवे। शकुनी ग्रह व्याधिमें चिकित्सक आम और वेत इनका क्राथ करके बालकको स्नान करावे। अथवा हाऊबेर, मुलहटी, खस, सारिवा, कमल, पद्माख, लोध, फूलप्रियंगु, मंजिष्ठ, गेरू इनका कल्क बनाकर उबटना करे, जो धूनी स्कन्दापस्मारके वास्ते ऊपर कथन की गई है उसका प्रयोग करे। स्कन्दापस्मारमें कथन कियाहुआ घृत इस शकुनी ग्रह व्याधिमें देना हित है। शतावरी, बडी इन्द्रायण,

नागदंती, कटेरी, लक्ष्मणा, सहदेई, बडी कटेरी, इनको तावीजमें मढकर अथवा थैलीमें सीकर बालकके गलेमें धारण करे । अब यह विचारका स्थल है कि ये व्याधियां यदि ग्रहजुष्ट होती तो औषधियोंके क्वाथसे स्नान औषध सिद्ध घृत पान तैल मर्दन, धूपादिके प्रयोग नहीं लिखे जाते । प्रथम तो यह कि सुश्रुतके कथनानुसार बालकोंका पोषण स्वच्छता और विधिपूर्वक होवे इस कारणसे भय दिखलाये गये हैं । दूसरे यह कि ग्रहजुष्ट व्याधि लिखी गई है वह केवल दोषजन्य रोग है और दोषानुसार उनकी शांतिके अर्थ यथाविधि प्रयोग लिखे गये हैं । इन ग्रहोंकी लम्बी चौडी उत्पत्ति जैसा (नवस्कन्दादयः प्रोक्ता बालानां ये ग्रहा अमी । श्रीमन्ते दिव्य वपुषो नारीपुरुषविग्रहाः ॥) अर्थात् ये स्कन्दादिक बालकोंके नव ग्रह कथन किये हैं वे श्रीमन्त सुशोभित दिव्य स्त्री पुरुषके समान रूपवाले हैं स्वामिकार्तिककी रक्षाके अर्थ कृत्तिका, पार्वती अग्निदेव और शिवने सरपतोंके वनमें उत्पन्न किये हैं वे अपने तेजसे स्वयं रक्षित हैं । पूतना ग्रहकी बलिदानमें लिखा है कि (मत्स्योदनं बलिं दद्यात्कृशरां पललं तथा) किन्तु सुश्रुतमें इसके विपरीत है जैसा कि (मांसमामं तथा पक्वं शोणितं च चतुष्पथे) अर्थात् मछली और भात खिचडी और खल इनको मिट्टीके पात्रमें रखके शून्य घरमें बलि देवे अथवा कच्चा पक्का मांस आम और रक्त इनकी बलि चौराहे और घरके अन्दर देवे, इसी पूतना ग्रहकी स्तुतिमें इस प्रकार लिखा है ।

मलिनाम्बरसंवीता मलिना रूक्षमूर्द्धजा । शून्यागाराश्रिता देवी दारकम्पातु पूतना ॥ दुर्दर्शना सुदुर्गन्धा कराला मेघकालिका । भिन्नागारश्रया देवी दारकम्पातु पूतना । (सुश्रुत कौमारभृत्यतन्त्रम्)

अर्थ—मलीन वस्त्रोंको धारण करनेवाली मलीन और रूखे बालवाली निर्जन स्थानमें विचरनेवाली पूतना देवी बालककी रक्षा करे भयंकर रूपवाली दुर्गन्धयुक्त करालवदना काले मेघोंके समान वर्णवाली छिन्नभिन्न मकानोंमें निवास करनेवाली पूतना देवी बालककी रक्षा करे ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि बालरक्षां यथाक्रमम् । प्रथमे दिवसे नाम्नी नंदिनी क्रमते शिशुम् ॥ तद्गृहीतस्य बालस्य ज्वरः स्यात्प्रथमं ततः । गात्रशोषस्तथा स्वेदो नाहारेश्वभिनन्दनम् ॥ द्वितीये दिवसे बालं गृह्णाति च सुनन्दना । ततो भवेज्ज्वरः पूर्वं संकोचो हस्तपादयोः ॥ दन्तान् खादति श्वसिति निमीलयति चक्षुषी । आहारं च न गृह्णाति दिवारात्रौ च रोदति ॥ तृतीयेऽह्नि च गृह्णाति घंटाली बालकं गृही । तया स्यात्कम्प-

मुद्वेगं कासं श्वासं च रोदनम् ॥ चतुर्थेऽह्नि च गृह्णाति कटकोली ग्रही शिशुम्। तच्चेष्टाऽरुचिरुद्वेगः फेनोद्गारौ दिगीक्षणम् ॥ पञ्चमेऽह्न्यहंकारिग्रही गृह्णाति बालकम् । तच्चेष्टाज्जृंभणश्वासमुष्टिबंध्नोर्ध्ववीक्षणम् । षष्ठे च दिवसे नाम्ना खट्वाङ्गी क्रमते शिशुम् । तच्चेष्टा गात्रविक्षेपो हास्यरोदनमोहनम् ॥ सप्तमे दिवसे नाम्ना हिंसिका क्रमते शिशुम् । तच्चेष्टा जृंभणं श्वासो मुष्टिबन्धस्तथैव च ॥ अष्टमे दिवसे नाम्ना भीषणी क्रमते शिशुम् । कासते श्वासते चैव गात्रं संकोचते भृशम् ॥ नवमे दिवसे बालं मेषा गृह्णाति वैशिशुम् । तच्चेष्टा त्रासनोद्वेगः स्वमुष्टिद्वयखादनम् ॥ दशमे दिवसे नाम्ना रोदना क्रमते शिशुम् । तच्चेष्टा कासनं चैव रोदनं मुष्टिबंधनम् ॥

अर्थ—अब यथाक्रम बालककी रक्षा कहते हैं—कि प्रथम दिवस नंदिनी नामवाली देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है उस एक दिवसके उत्पन्न हुए बालकके शरीरमें ज्वर होता है, गात्र सूखने लगे, पसीना निकलने लगे स्तनपान न करे । दूसरे दिवस सुनंदना नामकी देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है। उसके आक्रमणके यह लक्षण हैं कि प्रथम ज्वर उत्पन्न होय हाथ पैरोंको संकुचित रखे दांतोंको चावे, श्वासकी अधिक गति होय, नेत्रोंको वन्द रखे, स्तन पान न करे और रात्रि दिवस रुदन करे। तीसरे दिवस घंटालि नाम देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है प्रथम बालकका शरीर कांपने लगे उद्वेग होय, कासश्वास होय और रुदन करे । चौथे दिवस कटकोली नामक देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है, इससे स्तन पान न करे उद्वेग होय मुखमेंसे झाग निकलें डकार आवें रुदन करे और दशों दिशाको निरीक्षण करे । पांचवें दिवस अहंकारी नाम देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है बालकको जँभाई आवें, श्वास होय मुट्ठी वँधी रखे ऊपरको देखे, छठे दिवस खट्वाङ्गी देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है, इससे बालकके शरीरमें वेचैनी होय कभी हँसे कभी रुदन करे, मोह होय स्तन पान न करे सातवें दिवस हिंसक नाम देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है, बालकको जंभाई आवे श्वास उत्पन्न होय मुट्ठी न खोले, स्तन पान भी न करे । आठवें दिवस भीषणी नाम देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है, बालकको खांसी श्वास होय अंग संकोच होय ज्वर होय नेत्र न खोले । नवमें दिवस मेषा नाम देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है, प्रथम बालक चौंक २ उठे शरीरमें वेचैनी होय अपने हाथकी मुट्ठीको

काटता रहे । दशमें दिवस रोदना नाम देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है, बालकको खांसी होय रुदन करे, चीख मारे मुट्ठी बँधी रखे स्तन पान न करे । इस भारतवर्षमें यह रवाज शास्त्रोक्त विधि तथा वैद्यक विधिके अनुसार है कि दश दिवस पर्य्यन्त प्रसूता स्त्री सूतिकागारमें रहती है और दशवें दिवस बालक. और प्रसूता स्त्रीको स्नान कराके बालकका नामकरण संस्कार करके सूतिकागारकी मर्यादाका नियम समाप्त हो जाता है । (इस बातको स्त्रियां भी जानती हैं कि बालकके दांत ७ महीनेके उपरान्त निकलना शुरू होता है लेकिन कल्याण वैद्य लिखते हैं कि दूसरे दिवस सुनंदना देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है तब बालक (दन्तान्खादति) अर्थात् दान्तोंको चाबता है कैसे प्रवीण वैद्य हैं कि जिनको शारीरक विद्याका कुछ भी ज्ञान नहीं है, यदि शारीरक विद्याका ज्ञान होता तो दो दिवसके बालकको दान्त चबानेका लक्षण कदापि नहीं लिखते । आर्य्य चिकित्सा शास्त्रका गौरव ऐसे ही लोगोंने नष्ट किया है और पश्चात्तापके साथ कहना पडता है कि ऐसे विचारहीन और बुद्धिशून्य लोगोंके ग्रन्थोंसे संसारका अहित पहुंचता है और अनेक बालकोंकी चिकित्सा सद्वैद्योंके हाथसे न होकर जादू टोनावाले मूर्खोंके हाथसे उनका जीवन नष्ट होता है । यहांतक तो दिनपरत्वकी देवियोंने आक्रमण किया था अब मासपरत्वकी देवियोंका आक्रमण नीचे लिखा जाता है ।)

मासपरत्वसे बालकोंके ऊपर देवियोंका आक्रमण ।

अथमास गृहीतस्य बालकस्य विमुक्तये । बलिं वक्ष्यामि सुखदं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥ प्रथमे मासि गृह्णाति कुमारी नाम योगिनी । उद्वेगज्वरशोषादि चेष्टितं तत्र जायते ॥ द्वितीये मासि गृह्णाति बालकं मुकुटा ग्रही । ग्रीवानिवृत्तिर्निष्पंदो वपुषः पीतशीतता । वक्त्रसंशोषणो द्वारारोचकानि तदाश्रयम् ॥ तृतीये मासि गृह्णाति बालकं गोमुखी ग्रही । तच्चेष्टा रोदनं निद्रा बहुमूत्रपुरीषकम् । निमीलयति नेत्राणि गोगन्धो मधुकंधवा ॥ चतुर्थे मासि गृह्णाति बालकं पिङ्गला ग्रही । पयः पानारुचिः श्वैत्यं भुजस्पन्दास्य शोषणे ॥ पञ्चमे मासि गृह्णाति बालकं बडवा ग्रही । तच्चेष्टाऽरोचकं कासो मुखशोषणरोदने । सीदन्ति सर्व गात्राणि विश्रान्तो न पिबेत्पयः ॥ षष्ठे मासि तु गृह्णाति पद्मा नाम ग्रही शिशुम् । तच्चेष्टा रोदनं शूलं स्वरभ्रंशस्तथैव च ॥ सप्तमे मासि

गृह्णाति बालकं पूतना ग्रही। क्षीरं पिबति विसृज्य कृशो रोदति छर्दि-वान्॥ अष्टमे मासि गृह्णाति बालकं चाऽर्जिका ग्रही। गात्रभङ्गो ज्वरोऽक्षीरुक् प्रलापश्छर्दिरेव च॥ नवमे मासि गृह्णाति बालकं कुंभ-कर्णिका। तच्चेष्टाऽरोचकं च्छर्दिर्ज्वरः पातालगन्धता॥ दशमे मासि गृह्णाति बालकं तापसी ग्रही। तच्चेष्टा गात्रविक्षेपः क्षीरद्वेषोऽक्षिमील-नम्॥ मासि चैकादशे नाम्ना गृह्णाति सुग्रही शिशुम्॥ तया ग्रहीतमा-त्रस्तु स स्वस्थो न प्रजायते॥ द्वादशे मासि गृह्णाति बालकं बालिका ग्रही। तच्चेष्टा रोदनं छर्दिः श्वासस्तृष्णा पुनः पुनः॥

अर्थ—अब दिनरक्षा कथनके अनन्तर बालकोंको महीनेमें गृहीत हुए कष्टकी निवृत्तिके वास्ते सुखके देनेवाले बलिदानादिक प्रयोग कहते हैं। प्रथम मासमें कुमारी नामवाली योगिनी (देवी) बालकके ऊपर आक्रमण करती है उसके लक्षण कथन करते हैं प्रथम बालकको उद्वेग होय, ज्वर होय, तथा गात्रशोष होय, रुदन करे, स्तनपान न करे। दूसरे महीनेमें बालकके ऊपर मुकुटा देवी आक्रमण करती है तब बालककी ग्रीवा ढीली हो इधर उधरको ढुलती है, अङ्ग कांपने लगते हैं, शरीर पीला और शीतल हो जाता है, मुख सूख जाता है स्तनपान त्याग देता है, डकार विशेष आती हैं। तीसरे महीनेमें गोमुखी नाम देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है तब बालक बिलग २ कर रुदन करता है, नींद विशेष आती है, मूल मूत्र वारम्बार उतरता है, नेत्र बन्द रखे और बालकके शरीरमेंसे गौके समान गन्ध आती है। चौथे महीनेमें पिंगला देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है तब बालक स्तनपान नहीं करता शरीर सफेद हो जाता है, भुजा फडकती हैं, मुख सूखा रहता है और शरीरमेंसे दुर्गन्धि आती है। पांचवें महीनेमें बालकको वडवादेवी ग्रहण करती है इससे बालकको अरुचि होय खांसी होय, मुख सूख जावे विशेष रुदन करे, सम्पूर्ण शरीरमें कष्ट रहे, स्तनपान न करे। छठे महीनेमें पद्मा नाम देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है तब बालक विशेष रुदन करे, शूल होय गला बैठ जावे, मुखसे लार बहे। सातवें महीनेमें बालकके ऊपर पूतना नाम देवी आक्रमण करती है तब बालक थोडा २ स्तन पान करता है और स्तन पानके समय मुखसे दुग्ध गिरता रहे बालकका शरीर कृश हो जाय दिन प्रतिदिन बालक सूखता जाय रुदन करे छर्दि करे। आठवें महीनेमें अर्जिका नाम

देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है, तब बालकके समस्त शरीरमें हडफूटन होय ज्वर होय नेत्रोंमें पीडा होय बालक बरडावे छर्दि होवे। नवम महीनेमें बालकके ऊपर कुम्भकर्णिका देवी आक्रमण करती है तब बालकको स्तन पानमें अरुचि होय, ज्वर होय, वमन होय, पृथिवी खोदनेके समय जैसी सुगन्ध आती है वैसी सुगन्ध बालकके शरीरमेंसे आवे नेत्र मिचे रहें। दशवें महीनेमें तापसी नाम देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है तब बालक हाथ पैर पटकता रहे स्तन पान न करे नेत्र बन्द रखे दस्त आना बन्द हो जावे। ग्यारहवें महीनेमें सुग्रही नाम देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है तब बालक अच्छा नहीं होता न तो इस समय पर कोई औषध काम देती है न मन्त्र काम देता है न कोई बलिदान काम देता है। बारहवें महीनेमें बालिका नाम देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है तब बालक विशेष रुदन करे और वमन आवे श्वास उत्पन्न हो बारम्बार तृषा लगे विचारशून्य मनुष्योंने ये बालकोंके लिये एक प्रकारके भय दिखलाये हैं, परन्तु ये सब प्रारब्ध वश होते हैं। सद्गृहस्थ स्त्री पुरुष उत्तम रीतिसे अपने संतानोंका पालन पोषण करे, यदि बालक रोगी होय तो समझदार और अनुभवी सद् वैद्यसे औषधोपचार करावे। अनभिज्ञ चिकित्सकसे बालकका उपाय न करावे, क्योंकि रोगकी परीक्षा, व औषध प्रक्रियामें उसकी बुद्धि नहीं पहुंचती। कारण कि वह निरर्थक चिकित्साके समयको व्यतीत करता है। यह अवश्य है कि मासपरत्वके क्रममें सात आठ व दश महीनेके बाद बालकके दांत निकलना आरम्भ होता है, उस समय बालकके शरीरमें इस देवी व्याधिकेसे कितने ही लक्षण संघटित होते हैं, जो नीचे लिखे जावेंगे। लेकिन ये चिह्न केवल दांत निकलनेके कष्टसे होते हैं यदि, दांतोंका उपद्रव किसी निर्बल बालकसे सहन न होवे तो कितने ही बालक मृत्युके मुखमें प्रवेश करते हैं। इससे यह न समझना कि ग्यारहवें महीनेमें सुग्रही नामवाली देवी बालकको मार लेगई, किन्तु इस अवसर पर किसी बालककी मृत्यु हो जावे तो दांत निकलनेके उपद्रवोंमेंसे कोई उपद्रव ऐसा भयानक होता है, कि उससे बालककी प्राणरक्षा करना दुसवार समझा जाता है।

(बालकके दांत निकलनेका समय और इसके सम्बन्धसे उत्पन्न हुई व्याधियोंके उपद्रव।)

दांत आनेके पूर्व बालक केवल दूध आदि प्रवाही पदार्थ पीनेके लायक होता है और प्रवाही पदार्थोंका पचानेके योग्य ही उसकी पाचन शक्ति होती है। दांत निकलनेपर कुछ २ अन्न आदिके भागको पचा सके ऐसी शक्ति कुदरती नियमानुसार बालकके शरीरमें उत्पन्न होती है। बालकके मुखमें दांत निकलें केवल इतना नहीं किन्तु बालकके शरीरमें पाचन करनेवाले दूसरे अवयवोंमें भी इस समय पर विशेष

परिवर्तन होता है। इस दांत निकलनेके समयपर बालकको ज्वर आता है, नेत्र दुःखने लगते हैं, प्रतिश्याय रहता है, नासिकासे पानी कफमिश्रित बहता है, कानकी व्याधि उत्पन्न होती है शिरमें पीडा होती है, मुखसे लार बहने लगती है। किसी २ बालकके मुख और जीभपर छाले उत्पन्न हो जाते हैं, दस्त और उल्टी होने लगती है त्वचाके रोग उत्पन्न होते हैं, हिचकी आती हैं, अजीर्ण, अफरा, शरीरकम्प, सोतेमें उछल पडना, चौंकना, किसी २ को अपस्मारके चिह्न भी हो जाते हैं। इनमेंसे हरएक बालकको कोई न कोई व्याधि अवश्य होती है, ऐसा देखनेमें नहीं आता कि इनमेंसे किसी व्याधिके चिह्न दीखे बिदून दांत निकल आते होयँ। इतना अवश्य है कि किसीके शरीरमें हलके और कम चिह्न दीखते हैं, किसीके विशेष उपद्रव सहित अधिक चिह्न दीखते हैं। यदि इन व्याधियोंमेंसे कोई हलकी व्याधि होय तो चिकित्सा करनेकी आवश्यकता नहीं पडती, कुछ उपचार किया भी जावे तो मृदु उपचारसे व्याधि शान्त हो जाती है, यदि इनमेंसे कोई विशेष व्याधि होय तो उसका पूर्व लिखे अनुसार योग्य उपाय करना उचित है, दांत निकलते समय बालकके मसूडे सूजकर लाल हो जायँ तो उसकी यह परीक्षा करे कि इसके अन्दर दांत उठा है कि नहीं। यदि दांत उठ आया होय तो उस मसूडेको ऊपरके भागमें बीचोंबीच नस्तरकी नोकसे चीर देवे, जिससे शीघ्र दांत बाहर निकल बालकको कष्ट न होवे। यदि दांत मसूडेके अन्दर उठकर न आया होय तो चीरनेसे कुछ लाभ नहीं है, और दांत निकलनेके समय जो व्याधियां बालकको होती हैं वे विशेष करके जावडेकी हड्डीमेंसे दांत फूटनेके समय होती हैं। मसूडेकी कोमल त्वचामें इतना कष्ट नहीं होता है, बालकके दांत सातवें महीनेसे उपरान्त निकलना आरम्भ हो दो वर्ष पूरे होनेके समय पर्य्यन्त दूधिया दांत निकल आते हैं। किसी बालकके दो चार महीनेके विलम्बसे निकलना आरम्भ होते हैं, किसी बालकको एक वर्षकी उमर होनेके पीछे प्रथम दांत दिखलाई दे तीन वर्षकी उमर पूरी होनेके समय पर्य्यन्त सब निकल आते हैं। मनुष्य जातिके दांत दो समय फूटकर निकलते हैं, प्रथम बालकपन (स्तनपान करने) की दशामें दांत निकलते हैं, जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है,. इनको दूधिया कहते हैं। इनकी संख्या बीस होती है और इनके उखड जानेके पीछे जो दांत निकलते हैं वे यदि किसी खराबीसे उखड न जावें तो मनुष्यके जीवन पर्य्यन्त रहते हैं। इनमेंसे कोई दांत किसीकारणसे उखड जावे तो फिर नहीं निकलता इन दांतोंकी संख्या ३२ होती है, ये दांत एक समान नहीं होते इनकी आकृतिमें और कार्य्यमें विशेष अन्तर होता है, इस कारणसे इसके चार भेद करनेमें आते हैं। एक तो काटनेवाले दांत, दूसरे कुतारिआ दांत (कीला), तीसरे दो कोनेवाले, चौथे भेदमें

दाढ कही जाती हैं प्रत्येक दांतका भाग जो बाहर देखनेमें आता है उसको दांतका मस्तक कहते हैं और जितना भाग जावडेके अन्दर जडरूपमें बैठा रहता है उसको दांतका मूल अथवा जड कहते हैं। दूधिआ दांतोंमें विशेष विवर्ण इस प्रकारसे है कि ऊपरके जावडेमें काटनेवाले ४ दांत, कुतरिआ कीला, २ और दो कोनेवालोंकी हानि, दाढ ४ कुल १० हुए। नीचले जावडेमें काटनेवाले ४ दांत कुतरिआ (कीला) २ और दो कोनेवालोंकी हानि दाढ ४ कुल १० दोनों जावडोंके मिलाकर २० होते हैं। दूसरे समय आनेवाले ऊपरके जावडेके काटनेवाले आगेके ४ दांत और कुतरिआ कीला २ दो कोनेवाले ४ दाढ ६ ये १६ हुए। नीचेके जावडेमें काटनेवाले ४ कुतरिया कीला २ दो कोनेवाले ४ दाढ ६ ये १६ हुए दोनों जावडेके ३२ दांत होते हैं। किसी २ मनुष्यके मुखमें ३० भी देखे जाते हैं। काटनेवाले एकएक जावडेमें आगेके भागमें चार होते हैं, ये चारों दांत नीचेके दांतोंकी अपेक्षा ऊपरके कुछ लम्बे होते हैं, नीचेके दांतोंसे आगे निकलेहुए होते हैं और ये बाल्यावस्थामें सबसे प्रथम निकलते हैं। इनके ऊपर शिरे बारीक धारवाले होते हैं, इनका मूल (जड) अनीदार और लम्बी होती है ये काटने चीरने फाडनेके काममें आते हैं, इनसे शब्दोच्चारण शुद्ध होता है। इनकी दोनों बाजुओंपर एक २ जरा लम्बा दांत अनीदार होता है, इसको कुतरिया अथवा कीला दांत कहते हैं और कुतरिआ दांत व कीला इनको इस कारणसे कहते हैं कि श्वान भेडिया सिंह, गीदड आदि मांसभक्षी और शिकारी जानवरोंको ये दांत विशेष लम्बे होनेसे उपयोगी होते हैं, ये दांत लम्बे और अनीदार होनेसे शिकारको फाडने चीरनेके काममें आते हैं इनका मस्तक अनीदार टोंचीवाला होता है, मूलमें लम्बा होता है। इनकी बगलमें दो कोनेवाले दो २ दांत होते हैं वे दांत बाल्यावस्थाके दूधिया दांतोंके साथ बिलकुल नहीं होते किन्तु दूसरे समय अन्तके दर्जे निकलनेवाले दांतोंके साथ निकलते हैं, इनका उपयोग विशेष करके दाढके समान ही काममें आता है। इनके मस्तकपर दो अनीदार कोने होते हैं और इनका मूल एकही होता है, किसी २ में दो मूल भी होते हैं। दूसरे समय निकलनेवाले दांतोंमें १२ दाढ दोनों जावडोंमें होती हैं और बालकके दूधिया दांतोंके साथ निकलनेवाली दोनों जावडोंमें आठ होती हैं। दाढ मुखके अन्दर चक्कीके समान काम देती है, इनसे खानेकी चीजें बारीक पीसकर नर्म मावेके समान हो जाती है। मनुष्योंकी अपेक्षा वनस्पती खानेवाले पशुओंको दाढकी विशेष आवश्यकता होती है, इसी कारणते मनुष्यकी अपेक्षा पशु दाढ विशेष मोटी होती है प्रथमकी दाढ मोटी और अन्तकी छोटी होती है, इनका मस्तक चौरस होता है और चार व पांच कोने होते हैं, दाढोंका मूल एकसे लेकर ३ तक होते हैं। उसकी आकृति नीचे देखनेमें आवेगी दूधिया दांत बालकके छठे व सातवें

महीनेसे फुटने लगते हैं, वालककी उमर दो ढाई सालकी होय तवतक सव निकल आते हैं । इस कथन की हुई अवधिसे अधिक समयमें भी किसीके दांत फूटते हैं, इसी प्रकार किसी २ के इससे प्रथम भी निकलते हैं और वालककी उमर जब पांच व छः सालकी होती है तब ये दूधिया दांत गिरने लगते हैं और दूसरे समयके दांतोंका निकलना आरम्भ हो जाता है । अनु•ानन अठारहसे वीस अथवा पचीस वर्षकी अवस्था पर्य्यन्त सव दांत निकल आते हैं, अन्तकी दाढ अंठारहसे वीस वरसकी उमर होय तव निकलती है, किसी २के यह ३० वर्षकी उमर होनेके वाद निकलती हैं । दांतोंके निकलनेके ऊपरसे मनुष्यकी उमरका अनुमान किया जाता है इनके निकलनेका समय इस प्रकारसे है कि–वालकके दूधिया दांत काटनेवाले ६ से लेकर ८ महीनेमें निकलते हैं । इनकी वगलके ८ से लेकर १० महीनेमें निकलते हैं, अगली दाढ १२ से लेकर १४ महीनेमें निकलती है । और कुतारिआ दांत १४ से लेकर २० महीनेमें निकलते हैं और पीछेकी दाढ २० से लेकर २८ महीने तक निकलती हैं । (दूसरे समय निकलनेवाले दांतोंकी व्यवस्था) आगे बीचके काटनेवाले दांत ६ से लेकर ७ वर्षकी उमरतक निकलते हैं इनकी वगलके दांत ७ से लेकर ९ वर्षतक दो कोनेवाले दांत ८ से लेकर १० वर्षतक । पीछले दांत ९ से लेकर ११ तक । कुतरिया दाँत ११ से लेकर १२ तक । दूसरी दाढ १२ से लेकर १४ तक । तीसरी दाढ १७ से लेकर २५ वर्षकी उमरतक निकलती हैं । प्रथम वारके दूधिया दांतोंके निकलनेके समय वालकको अति कष्ट और ऊपर लिखे हुए रोग और उपद्रव होते हैं । जिनको लोगोंने ग्रहाजुष्ट व देवी देवता पीडित व्याधि समझ कर मनुष्योंको झंझटमें फँसाया है, परन्तु इस समय पढे लिखे समझदार लोग ऐसी कल्पित वातोंपर विलकुल विश्वास नहीं ला सक्ते दूसरे समय निकलनेवाले दांतोंसे कुछभी कष्ट अथवा रोग मनुष्यको नहीं होता, आसानीसे निकल आते हैं ।

आकृति नं० १०६–१२१ तक देखो ।

नीचेके जावडेके दूसरे समय निकलनेवाले ८ दांतोंकी आकृति ।

इन दोनों आकृतियोंमें नीचे ऊपरके अर्द्ध जावडेके दांत दिखलाये हैं । प्रत्येक दांतको काटकर देखें तो उसके अन्दर पोलापन मालूम होता है, यह पोल प्रत्येक दांतकी आकृतिके अनुसार होती है । उसमें नर्म मावेके समान पदार्थ भरा रहता है दांतके वीचमें ठेठ उसके मूल पर्य्यन्त यह पोल होती है और दांतके मूलके प्रत्येक शिरेपर वारीक छिद्र होता है । उसीमें होकर दांतको पोपण पहुँचता है और रक्तनली व तन्तु इसी पोलमें होकर प्रवेश करके चैतन्य रखते हैं, दांतके खुलेहुए भागपर श्वेत और कठिन पदार्थका थर है । उसमें स्पर्शज्ञान नहीं है ।

दांतकी सूरत देखनेमें अस्थिके समान है, परन्तु असलमें अस्थिसे विरुद्ध है और उसका अन्दरका भाग हाथी दांतके जैसा सूक्ष्म नलीवाला है, उसमें स्पर्शज्ञान होता है। दांतमें जब दर्द होता है अथवा दांत सडकर अन्दरके भागमें व्याधि पहुँचती है तब वेदना माल्रम होती है, तब यह समझो कि व्याधि दांतकी पोलतक पहुंच गई है और अति कष्टदायक होती है। यह दांतोंकी उत्पत्ति और शारीरक इस प्रसंगपर इस कारणसे लिखा गया है कि मूर्ख वैद्योंने दांतोंकी उत्पत्ति समयके रोगोंको ग्रह और देवी बाधा समझ कर मनुष्योंको भ्रममें फँसाया है। दांतोंकी उत्पत्तिकी व्याधियोंके सिवाय १६ साल पर्य्यन्त बालकोंके ऊपर देवियोंके आक्रमण करनेका भय संसारके ऊपर बताया गया है, जैसा कि नीचे लिखा है।

अथ वर्षे गृहीतस्य बालकस्य विमुक्तये। बलिं वक्ष्यामि सुगमं येन संपद्यते सुखम्॥ प्रथमे वत्सरे बालं ग्रही गृह्णाति नंदिनी। अरोचकाक्षिविक्षेपगात्रदाहप्ररोदनम्॥ पतनञ्च सदा भूमौ चेष्टितं तत्र लक्षयेत्। द्वितीये वत्सरे बालं ग्रही गृह्णाति रोदिनी॥ रक्तमूत्रं ज्वराध्मानं पद्मकेशरवर्णता। स्फुरते दक्षिणं हस्तं रोदनं च पुनः पुनः॥ तृतीये वत्सरे बालं गृह्णाति धनदा ग्रही। अवीक्षणमनाहारं ज्वरः शोषाङ्गसादने॥ स्फुरणं वामपादस्य छदनं तत्र चेष्टितम्॥ चतुर्थे वत्सरे बालं ग्रही गृह्णाति चंचला। चेष्टितं तत्र विज्ञेयं ज्वरः श्वासाङ्गसादने॥ पञ्चमे वत्सरे बालं ग्रही गृह्णाति नर्तकी। उद्वेजनं मुहुर्मूत्रं गात्रस्फुरणसादनम्॥ मुखशोषणवैवर्ण्यं चेष्टितं तत्र लक्षयेत्॥ षष्ठे च वत्सरे बालं गृह्णाति यमुना ग्रही। तच्चेष्टा रोदनोद्गारजृम्भा शोषाङ्गदाहकम्। सप्तमे वत्सरेऽनंता ग्रही गृह्णाति बालकम्। तया गृहीतमात्रेण त्वंधीभवति बालकः॥ सीदन्ति सर्वगात्राणि मुखं च परिशुष्यति। मूत्रं च स्रवते नित्यमुद्वेगश्च पुनः पुनः॥ अष्टमे वत्सरे बालं गृह्णाति च कुमारिका। तया गृहीत मात्रस्तु ज्वरेण परिदह्यते। सीदन्ति सर्वगात्राणि कंपयंति पुनः पुनः॥ गृह्णाति नवमे वर्षे कलहंसा ग्रही शिशुम्। तया गृहीतमात्रेण स्याद्दाहो ज्वरता कृशः॥ गृह्णाति दशमे वर्षे देवदूती ग्रही शिशुम्। तच्चेष्टा तत्र ज्ञातव्या

नर्त्तनं च प्रधावनम् । विड्बद्धं वमनं क्रीडा हसनं स्वगृहेक्षणम् । यामि यामीति वचनं नेत्ररोगो प्रसादनम् ॥ सदापानासनश्रद्धा विधुरालापनं तथा ॥ वर्षे एकादशे बालं ग्रही गृह्णाति कालिका । तया गृहीतमात्रेण ज्वरः स्यात्प्रथमं ततः ॥ कासश्वासाक्षिरोगश्च काकारावोङ्गसादनम् ॥ द्वादशे वत्सरे बालं गृह्णाति वायसी ग्रही । तच्चेष्टा वक्रसंशोषो ज्वरो जृम्भाङ्गसादनम् ॥ वर्षे त्रयोदशे बालं ग्रही गृह्णाति यक्षिणी । तच्चेष्टया च हृद्रोगं ज्वररोदनहासनम् ॥ वर्षे चतुर्दशे बालं स्वच्छदा नामतो ग्रही । गृह्णाति चेत्तु तत्र स्याच्छोणितस्रवणं सदा । शूलं च नाभिदेशे स्यात्तत्र यत्नं न कारयेत् । तथा पञ्चदशे वर्षे गृह्णीते बालकं कपी । तया गृहीतमात्रस्तु भूम्यां पतति निःस्वनः । ज्वरश्च जायते तीव्रो निद्रात्यंतं प्रजायते ॥ षोडशे वत्सरे बालं ग्रही गृह्णाति दुर्जया । तया छर्दि ज्वरः कम्पो यास्यामीति वचो वदेत् ॥

अर्थ—महीनोंकी बालरक्षा विधि ऊपर कथन की गई है, इसके अनन्तर वर्षगृहीत देवीसे जुष्ट बालकोंके छुटानेके वास्ते सुगम उपाय लिखते हैं, जिसके लिखनेसे बालकको सुख प्राप्त होय । (समीक्षक) हमारी समझमें सोलह साल पर्य्यन्त बालकोंको देवीका भय दिखलाया गया है न मालूम भयभीतको सुख किस प्रकारसे हो सक्ता है । प्रथम वर्षमें बालकके ऊपर नंदिनी देवी आक्रमण करती है, इससे बालकको अरुचि होय नेत्र बंद रखे शरीरमें दाह होय शरीर गर्म रहे रुदन करे शय्या और गोदीको त्यागकर पृथिवीमें शयन करे । दारिद्री गरीब लोगोंके बच्चे प्रायः जमीनमें पडे रहते हैं । परन्तु किसी अमीरका बच्चा शय्या और गोदीको त्यागकर पृथिवीमें नहीं पडता । दूसरे वर्षमें रोदनी नाम देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है तब मूत्र लाल आवे ज्वर होय पेटमें अफरा होय कमलकी केशरके समान शरीरका वर्ण हो जावे, दक्षिण हाथ फर्के बालक बारम्बार रुदन करे । तीसरे वर्षमें धनदा देवी बालकको ग्रहण करती है, तब बालकको समीप नहीं दीखे, भोजन नहीं करे, ज्वर होय कण्ठ शोष होय, शरीरमें कष्ट होय बाम पाद फडके वमन होय । चौथे वर्षमें चंचला देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है तब ज्वर होय, श्वास होय, अंग फडकें बेचैनी रहे नेत्र भारी रहें रुदन करे । पांचवें वर्षमें नर्तकी नाम देवी बालकको ग्रहण करती है, तब बालक बहुत कूंखे बारम्बार मूत्र त्याग करे गात्र फडके शरीरमें पीडा रहे बेचैनी रहे । छठे वर्ष यमुना देवी

बालकके ऊपर आक्रमण करती है तब बालक विशेष रुदन करे डकार विशेष आवें जँभाई आवें शरीर सूकता जाय शरीरमें दाह होय। सातवें वर्षमें अनन्ता नाम देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है, उसके आक्रमण करनेसे ही बालक तत्काल अन्धा हो जाता है, सम्पूर्ण शरीरमें पीडा होती है दुर्बल और कृश हो जाता है मुख सूखा हुआ रहता है मूत्र अधिक आवे चित्तको उद्वेग रहे आलस्य रहे अङ्ग टूटें। आठवें वर्षमें कुमारिका नाम देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है तब बालकके शरीरमें ज्वर होय सम्पूर्ण शरीरमें पीडा हो शरीर कांपे बारम्बार छर्दि आवे। नवमें वर्षमें बालकके ऊपर कलहंसा देवी आक्रमण करती है, तब प्रथम बालकके शरीरमें दाह होय ज्वर होय शरीर कृश हो जाय अङ्गमें पीडा हो बारम्बार मल मूत्र उतरे छर्दि करे हाथ पैरोंमें भडकन होय। दशमें वर्षमें देवदूती नाम देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है, तब बालक नाचे दौडे विट्बन्ध होय वमन आवे अनेक प्रकारकी क्रीडा करे हास्य करे अपने घरको देखता रहे जाऊं जाऊं ऐसा वचन कहा करे नेत्रोंमें रोग होय अंगमें पीडा होय। ग्यारहवें वर्षमें कालिका नाम देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है, तब प्रथम बालकको ज्वर होय खांसी होय श्वास होय नेत्र दूखें कांकां शब्द करे रुदन बहुत करे अङ्गमें पीडा विशेष होय अङ्गको विशेष ऐंठे। बारहवें वर्षमें वायसी नाम देवी बालकको ग्रहण करती है, तब बालकका मुख सूखा रहे ज्वर हो जाय जंभाई विशेष आवें शरीरमें पीडा होय। तेरहवें वर्षमें यक्षिणी नाम देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है, प्रथम, बालकके हृद्रोग होय ज्वर होवे रुदन करे और किसी समय हँसने लगे। चौदहवें वर्षमें स्वच्छंदा नाम देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है, तब बालकके मुख और नासिकासे रक्त निकले ज्वर होय नाभिमें शूल होय तृषा लगे वमन करे इस देवीके आक्रमण होनेपर सर्व क्रिया और बलिदानादि निष्फल हैं इस लिये न करे। (इस कथनसे यह ज्ञात होता है कि चौदहवें वर्षमें बालक मर जाता है) पन्द्रहवें वर्षमें बालकके ऊपर कर्पी नाम देवी आक्रमण करती है, तब बालक पृथिवीमें शयन करनेकी विशेष इच्छा करे विशेष कूंखे व न कूंखे विशेष तेज ज्वर होय निद्रा विशेष आवे वमन होय अंग कम्पे चित्त भ्रम होय। सोलहवेंमें दुर्जया नाम देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती है, तब बालकको वमन आवे ज्वर होय शरीर कांपे नींद नहीं आवे मुखसे बारम्बार जाऊं २ शब्द कहे। इसके आगे और भी भय बालकको दिखलाये हैं।

" दिने मासे च वर्षे च तेषां शान्तिं वदाम्यहम्। प्रथमे दिवसे मासे वर्षे योगिनि मातृका॥ पूतना नंदिनी नाम्ना बालकं क्रमते यदा। द्वितीये दिवसे मासे हायने च सुनंदना। गृह्णाति पूतना बालं योगिनी स्तनदाऽपि वा।

इसी प्रकार प्रथम दिवस प्रथम मास प्रथम वर्षसे लेकर सोलहवें दिवस सोलहवें मास और सोलहवें वर्षपर्यन्त यथाक्रमसे १ पूतना नंदिनी २ सुनंदना योगिनी ३ पूतना ४ मुखमंडिका ५ विडालिका ६ पङ्कारिका ७ कालिका ८ कामिनी ९ मदना देवी १० रेवती देवी ११ सुदर्शना देवी १२ अद्भुतनाम देवी १३ भद्रकाली १४ श्रीयोगिनी तारा देवी १५ हुंकारिका देवी १६ कुमारिका देवी ये देवी बालकके ऊपर आक्रमण करती हैं। और मद्य मांस मछली गुड, तैल, चावल, घृत, अन्न, सतनजा, मालपूए, पेडा, वर्फी इत्यादिकी बलिदान करनेसे ये देवी माता बालकको छोड देती हैं। आयुर्वेदकी बाल चिकित्सा प्रकरणमें भी ऐसा लिख दिये हैं। कि " प्रणवं सर्वसिद्धान्ते मातरिति पदं वदेत् ॥ इमं ग्रहं संहरतु हुं रोदय च रोदय। स्फोटयद्वितयं गृह्णद्वयमामर्दद्वयम्। शीघ्रं हनद्वयं प्रोक्तमेवं सिद्धो वदेत्ततः। रुद्राज्ञापयति स्वाहा स्नाने चैष विधिः स्मृतः। बालकस्य शिरस्पृष्ट्वाऽजसा सर्वग्रहान् हरेत् ॥ खुंखुर्दनं समुच्चार्य्य खं हुं फट् वह्निवल्लभा। नवार्णोऽयं समाख्यातो धूपने सर्वकर्मसु। रक्ष रक्ष महादेवनीलग्रीव जटाधर। ग्रहैस्तु सहितो रक्ष मुंच मुंच कुमारकम् ॥ " इत्यादि मन्त्र यन्त्र अनेक प्रकारके मन्त्र वैद्यक ग्रन्थोंमें दिखाई देते हैं। परन्तु इस परिवर्त्तनशील समयके मनुष्योंका इनपर विश्वास नहीं होता, अनेक तर्कना उत्पन्न होती हैं इन कल्पित प्रकरणोंपर दृष्टि देनेसे बुद्धिमान मनुष्योंका चित्त आयुर्वेदसे उदासीन होता है, इस कारणसे ये कल्पित प्रकण त्यागने योग्य मानते हैं।

ग्रहजुष्ट तथा देवजुष्ट बालचिकित्सा एवं षोडशोऽध्याय समाप्त।

इति वन्ध्याकल्पद्रुम चौथा भाग समाप्त।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस
कल्याण-मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस
खेतवाडी-मुंबई.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ

परिशिष्ट भाग ।

शरीर आरोग्यताकी सूचना ।

एक तन्दुरुस्ती अन्य सहस्र सुख समान हैं, अर्थात् संसारमें जितने सुख हैं वे केवल तन्दुरुस्तीके पीछे ही ठीक समझे जाते हैं। प्रथम सुख शरीरकी आरोग्यता है इसके न होनेसे अन्य सर्व सुख वृथा समझे जाते हैं, जो मनुष्य तन्दुरुस्त है वही अन्य सर्व सुखोंका अनुभव कर सक्ता है। वैद्यक शास्त्रमें देखा जावे तो एक कारण ऐसा दीख पडेगा कि मनुष्यके शरीरको दुःख (रोग) किस २ कारणसे अथवा किस २ रीतिसे उत्पन्न होता है उसकी परीक्षा करके उस नियमसे चलना चाहिये कि दुःख उत्पन्न न हो. शरीर आरोग्य रहे। दूसरा कारण कि शरीरमें दुःख उत्पन्न होनेपर शरीरको दुःखके पंजेमेंसे मुक्त करना, ऐसा यत्न करना योग्य है। मनुष्य शरीरकी सृष्टि रचना होनेके बादसे ही प्राचीन कालके ऋषी मुनियोंने इस दुःखकी उत्पत्ति जैसे २ होती गई तैसे २ व्याधियोंका अनुभव करके अपनी शक्तिके अनुसार उन २ व्याधियोंका उपचार अपनी शक्तिके अनुसार संशोधन करनेमें परिश्रम किया है, उसीका औषधोपचार तथा शस्त्र क्रियाको लिखकर सम्पूर्ण संसारके उपकारके लिये वैद्यक ग्रन्थ लिखे गये हैं, जोकि चरक सुश्रुत संहिताके नामसे प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार अन्य द्वीपान्तरोंके लोगोंने विशेष बारीकीसे शोध करके आरोग्यता मनुष्यको किस प्रकार रह सक्ती है इस विषयके ऊपर अनेक प्रकारके औषधोपचारों तथा शस्त्र यन्त्र आदिका निर्णय किया है और दिन पर दिन नवीन शोध करते जाते हैं। यूरोपके लोगोंने इस महान् विषयपर अधिक लक्ष दिया है और इसी विद्याके आश्रयसे उन लोगोंका व्यवसाय और राज्य वृद्धिको प्राप्त हुई है और दिन पर दिन होती जाती है। प्राचीन कालके विद्वान् वैद्योंने इसी कारणसे (आयुष्कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् । रोगास्तस्यापहन्तारः श्रेयसो जीवितस्य च) लिखा है परन्तु भारतवासी इस विद्याकी उन्नतिमें इस समय सबसे पीछे हैं।

अब यहाँपर दो भेद किये जाते हैं कि आरोग्य रहनेके लिये मनुष्योंको ऐसा आहार विहार करना चाहिये कि जिससे व्याधि उत्पन्न न हो शरीर आरोग्य रहे

यह सबसे उत्तम विधि है । दूसरे यह कि रोग शरीरमें उत्पन्न हो जावे तो उसकी निवृत्तिके लिये उपचार करना यह दूसरे दर्जेकी विधि है । अब यह विचारना चाहिये कि शरीरकी आरोग्यतामें किस २ कारणसे विघ्न पडकर व्याधि उत्पन्न होती है, उसका प्रतिबंध करना उचित है । शरीर सुख प्रत्येक मनुष्यको प्रिय है और इसके सम्पादन करनेका काम विशेष करके प्रत्येक मनुष्यके हाथमें है । हिताहार विहार करना नियमपूर्वक वर्त्ताव रखना शरीरसे योग्य परिश्रम करना मनको कावूमें रखना और मानसिक परिश्रम अधिक न करना । शरीरको स्वच्छ रखना निवासस्थानको रखना यह प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है, जो उपरोक्त वर्त्ताव नियमपूर्वक रखते हैं कोई एकाध ही मनुष्य रोगी देखे जाते हैं । इसका आधार कितने ही अंशमें तो पृथक् मनुष्योंपर है, कितना ही आधार मनुष्य आवादीके समुदायके ऊपर है, क्योंकि एक मनुष्य चाहे जितनी अधिकता आरोग्य रहनेके नियमोंका पालन करे तो अवश्य रोग उत्पन्न होगा । क्योंकि अन्य लोग रोगोत्पादक कारणोंको सहायता देवें तो इसका फल समस्त लोगोंको ही रोगग्रस्त होना पडता है । यदि एक मनुष्यको कोई संक्रामक रोग हो जावे तो उस रोगके फन्देमें आसपासके लोगोंको भी फँसना पडता है, ग्राममें यदि ऐसा संक्रामक रोग उत्पन्न होय तो प्रथम उस मूल रोगीको ग्रामसे पृथक् किसी स्थानमें रखके उपाय करना चाहिये, नहीं तो एकके पीछे एकको वही संक्रामक रोग लगकर समस्त ग्राम वासियोंमें फैल मनुष्योंकी जान जोखममें फँस जाती है । जैसे एक मनुष्यको विशूचिकाकी व्याधि होय तो दूसरेको होना संभव है, इस लिये संपूर्ण आवादीके जनसमुदायके सुख सम्पन्न करनेको सब मनुष्य समुदायको उत्तम स्वच्छता रखनेका नियम प्रतिपालन करना चाहिये । घरकी शुद्धिके वास्ते और वायु साफ करनेको दोनों समय हवन अथवा अष्टगंध औषधियोंकी धूप देनी चाहिये । ग्रामनिवासियोंको जनसमुदायके सुखके लिये ऐक्यता करके आरोग्यताके नियम पालन करना उचित है । ग्रामनिवासी लोग इस समय स्वच्छताके नियम पालन नहीं करते वर्त्तमान राजशासनकीओरसे म्युनिसिपालिटीके अधीन स्वच्छता और जल शुद्धिका काम दिया गया है, वह वडे २ शहर और कसवोंकी सफाईकी ओर ध्यान देकर अपना काम करती है, परन्तु छोटे २ ग्राम इस शुद्धिसे शून्य हैं । अपनी आरोग्यताके निमित्त ग्राम निवासियोंको स्वयं इस ओर ध्यान देकर अपना काम करना चाहिये, इस स्वच्छताके लिये प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि आलस्य और लोभ त्यागकर इस काममें सहायता दे स्वच्छताके जो २ निमय हों उनके अनुसार आप भी वर्त्ताव करें, जिससे अनभिज्ञ पुरुषोंके ऊपर उस श्रेष्ठ पुरुषका असर पडे । स्वच्छ वस्त्र पहरना, स्वच्छ जलको काममें लेना, शरीरको शुद्ध रखना, घरकी शुद्धि करना, संडास अथवा मोरी

(खार) पर फिलाई न डालना, सडावुसा आहार न करना, दुर्गन्ध उत्पन्न न होवे ऐसे गलीकूंचोंका इन्तजाम करना । मोटे अन्नका आहार करनेसे जैसे ज्वार, वाजरा, मक्का, कोदो, चना आदिसे हानि नहीं पहुँचती जितनी कि सडेहुए अन्न और दूषित जलसे पहुंचती है । इसी प्रकार दुर्गन्धित वायु भी अति हानिकारक समझी जाती है, इस प्रकारके अनेक प्रमाण हमारे देखनेमें आते हैं । इसी प्रकार जहांकी जमीनमें अधिक तराई रहती होय और वर्षात् भी अधिक पडती है और जंगली वनस्पति तथा घास आदि अधिक सडती होय वहांके जल वायु दूषित होकर मनुष्यकी आरोग्यताके वाधक समझो । पूर्वकालमें मृत्यु संख्याकी जांच नहीं होती थी, परन्तु वर्त्तमान राजशासनके नियमानुसार जन्म और मृत्युकी संख्या परताल वरावर की जाती है । इस समयकी मृत्यु संख्याको देखकर और २० साल पूर्वकी मृत्यु संख्यासे मिलान करनेपर यही सिद्ध होता है कि भारतकी मृत्युसंख्या कई दर्जे वढीहुई है, यह मनुष्योंकी आरोग्यता विगडने, रोगग्रस्त होनेसे ही मृत्युसंख्या वढती है । भारतके जिस प्रान्तका जल वायु विगडकर संक्रामक रोगोंकी उत्पत्ति होती है, वहांके हजारों मनुष्य मृत्युके मुखमें प्रवेश करते हैं । जहाँका जल वायु दूषित होकर लोगोंकी तन्दुरुस्ती विगडे वहांके विगाडनेवाले कारणोंको निवृत्त करनेका उपाय करना उचित है, जो लोग रोगके पंजेमें फँसजावें उनको एकान्त स्थानमें रखके उनका उपचार कर अन्य तन्दुरुस्त मनुष्योंको उनके संसर्गसे वचाना ठीक है, जिससे अन्य मनुष्योंमें व्याधि न फैलने पावे ।

मनुष्योंके तन्दुरुस्त रहने तथा जीवन और शरीर पोषणका आधार मुख्य करके तीन वस्तुओंके ऊपर है, वायु जल और अन्नादि पदार्थोंका आहार, वायुके विना मनुष्य थोडे मिनट जी सक्ता है, यदि जल न मिले तो थोडे ही समय पर्य्यन्त जी सक्ता है, हवा पानी मिले जावे और आहार न मिले तो कुछ अधिक समय पर्य्यन्त मनुष्य जीवित रह भी सक्ता है, परन्तु इनका विलकुल त्याग करना अशक्य है । जीवित रहने और शरीरका पोषण होनेके लिये इन पदार्थोंकी अत्यावश्यकता है, परन्तु आरोग्य रहनेके लिये वायु जल और आहार ये तीनों स्वच्छ व उत्तम होने चाहिये । यदि वायु दूषित होय जल खराव होय, आहार विगडा हुआ सडे अन्नका होय तो शरीरका आरोग्य रहना कठिन है । शरीरमें उत्पन्न होनेवाले रोगोंका विशेष सम्वन्ध इन तीन चीजोंके ऊपर है, अति सूक्ष्म विचार करके देखें तो ऐसी व्याधि वहुत ही कम निकलेगी जो इन तीन पदार्थोंसे सम्वन्ध न रखती होयँ, इसलिये वायु जल और आहारकी स्वच्छता आरोग्यतासे रहनेवाले प्रत्येक मनुष्यको रखनी चाहिये ।

वायु—अर्थात् वातावरण जो पृथिवीके आसपास कितने ही मील ऊँचे पर्य्यन्त आच्छादन करता है और इस वायुमंडलके अन्दर मनुष्य पशु पक्षी तथा अनेक प्रकारके शरीरधारी जीव इस प्रकारसे रहते हैं जैसे जलके अन्दर मगर, मछली, कछु- आदि जीव फिरते हैं । इस वायुका विचार आरोग्यताके सम्बन्धमें विशेष है, इस वातावरणमें आक्सीजन और नाईट्रोजन ये दो प्रकारकी वायु हैं और पृथिवीके प्रत्येक भागके ऊपर इन दोनों वायुओंका प्रमाण एक समान होता है । याने १०० भाग वायुमें आक्सीजन २० भाग और नाईट्रोजनका ७९ भागसे कुछेक ऊपर है । समुद्र, पहाड, जंगल अथवा शहरके मध्यमें चाहे जहां देखो तो इसका प्रमाण कम ज्यादा नहीं होगा, इन दो जातिकी वायुके शिवाय किञ्चित् भाग कार्बोनिकऐसिड जलकी भाफ तथा आमोनिया होता है । इसका प्रमाण इस प्रकारसे है कि वायुके १०० भागमें जलकी १ भाग भाफ और वायुके २५०० भागमें १ कार्बोनिक आसिड है । और वायुके १०००८० भागमें एक भाग आमोन्या है । भाफका भाग हवाकी उष्णताके प्रमाणमें न्यूनाधिक होता है और उसका प्रमाण विशेष वढ जाता है, यदि वढ जावे तो मनुष्योंकी तन्दुरुस्तीको हानि पहुंचाता है । आमोनियाके प्रमाणमें विशेष फेरफार नहीं होता, परन्तु कार्बोनिक-आसिडके प्रमाणमें परिवर्त्तन (फेरफार) होनेके कारण निरन्तर चलते हैं यह विशेष जहरी वायु है, इसलिये इसका विचारना आवश्यक है । वायुमें मिश्रित अशुद्ध पदार्थ और मनुष्योंकी आरोग्यता पर उसका असर वायुके अन्दर अशुद्ध पदार्थ मुख्य करके दो प्रकारके हैं, एक तो खराब विषैली वायु उसके साथ मिल जाती है जैसे कि कार्बोनिक ऐसिड तथा दूसरे भिन्न २ जातिके वारीक परमाणु वायुमें उडते हैं । जैसे कि धूलके परमाणु, धूऐंके परमाणु, रूईके परमाणु, धातुके परमाणु, वनस्पतिके परमाणु, तथा प्राणीज शरीरोंके परमाणु वे सुमार वायुमें उडते हैं और अपने देखनेमें नहीं आते, परन्तु विजलीके प्रकाश अथवा किसी मकानके झरोखोंमेंसे सूर्य्यका प्रकाश मकानके अन्दर आता होय उसमें अनेक प्रकारके कण चलते फिरते और उडतेहुए वायुके साथ दृष्टिगत होते हैं । इन रजकणोंके देखनेसे निश्चय होता है कि जब वायुमें धूल धूऐंके कण मिश्रित विशेष होते हैं तव हवामें अंधकार आता है जैसा कि आंधी तूफानमें अंधकार हो जाता है । जब हवामें दुर्गन्धित तथा सुगन्धित पदार्थ मिश्रित रहता है तव उसका निश्चय नासिका इन्द्रियसे होता है, अनेक प्राणियोंके सडेहुए शरीर तथा वनस्पतिके रजकण वायुमें मिश्रित होकर रहते हैं । इन सर्व अशुद्ध दुर्गन्धित निकम्मे पदार्थोंका निवारण कितने ही अंशमें तो कुदरती नियमके

अनुसार उपयोगमें हो जाता है और कितनेही रजकण नीचे बैठ जाते हैं, अथवा वर्षातमें भीगकर जलके साथ बह जाते हैं, कितने ही दूसरे रूपान्तरमें हो जाते हैं और कितनेही हवामें फैल जाते हैं कितनेहीको वनस्पति शोषण कर लेती है, मनुष्य जो वायु साफ करनेके यत्न करता है वह इस कुदरती नियमके अनुसार हैं श्वास प्रश्वाससे वायु दूषित है इससे आक्सजिन कम होता है तथा दूसरे तीन पदार्थ बढते हैं, कार्बोनिक ऐसिड तथा भाफ और प्राणज द्रव्य। एक घंटेके अन्दर एक मनुष्यके श्वासमेंसे १६० ग्रेन (८०) रत्ती कार्बोन निकलता है अथवा २४ घंटेमें सोलह घनफुट कार्बोनिक आसिड निकलता है। त्वचाके लोमकूफ तथा श्वासमेंसे भाफ निकलती है वह एक मनुष्यके शरीरमेंसे अनुमानन २५ ओंससे लेकर ४० ओंस पर्यन्त निकलती है, इसके न्यूनाधिकके प्रमाणका आधार वायुकी गर्मीके ऊपर है। यदि गर्मी विशेष होय तो अधिक भाफ निकलती है और वायुमें शीतलता होय तो कम निकलती है। श्वासमें बाहर निकलती हवामें प्राणीज द्रव्य होता है और उसमेंसे दुर्गन्ध आती है, यदि जलमेंसे बायुका भाग निकाल लिया जावे तो वह जल भी दुर्गन्धि देने लगता है। यदि एक छोटी कोठरीके अन्दर अधिक मनुष्य शयन करते होवें तो यह दुर्गन्धि शीघ्र मालूम हो जाती है, मुख, नासिका अथवा फेंफडेमें कुछ रोग उत्पन्न हुआ होय तो विशेष दुर्गन्धि श्वासके साथमें आती है जैसे कार्बोनिकऐसिड अधिक होय वैसे ही प्राणीज द्रव्य भी अधिक होता है। श्वास ली हुई वायुमें जब कार्बोनिक-ऐसिडका प्रमाण एक हजारमें १½ तक होय तब वह वायु श्वास प्रश्वासके लिये बिलकुल निकम्मी जानना। श्वास ली हुई विषैली वायु होती है उसकी परीक्षा इस प्रकार हो सक्ती है कि एक बोतलमें एक चूहा अथवा इसीके समान आकारवाला दूसरा जानवर रखे, बोतलमें काग लगाकर बन्द कर दी जावे तो थोडे ही समयमें उसकी मृत्यु हो जावेगी। क्योंकि उस प्राणीके श्वाससे बोतलके अन्दरकी आक्सजिन वायु कम हो जावेगी तथा कार्बोनिक ऐसिड बढ जावेगा। जिस ठिकाने पर वायुके आने जानेका प्रतिबन्ध होता है ऐसी थोडी जगहमें मनुष्यका भी यही परिणाम होता है कि थोडी जगहमें विशेष मनुष्य रहे और ताजी वायुके जाने आनेका सुभीता न होय तो आक्सीजन मनुष्योंके श्वासमें काम आकर खर्च हो जाती है और विषैला पदार्थ कार्बोनिकऐसिड बढ जाता है। इससे रक्त साफ नहीं रहता किन्तु जहरी वायुके रक्तमें जहरी असर उत्पन्न होकर नाडीकी गति मन्द पड जाती है और श्वासकी वृद्धि होकर मृत्यु उत्पन्न होती है। इस कथनसे प्रयोजन यह है कि एक छोटी कोठरीमें वायुका आवागमन न होय उसको बन्द करके अनेक मनुष्य न सोवें बैठें, क्योंकि इस

वहांसे दुर्गन्धि निकल उन समीपवर्त्ती मनुष्योंको हानि पहुंचानेवाली हो. जाती है। इसी प्रकार संडास आदि भी स्वच्छ न रखनेसे वायुको दूषित करनेवाली होती हैं। इसी प्रकार गौ, भैंस, घोडादिके मल मूत्रके सडनेसे वायु दूषित होती है, सो पशुओंके रहनेका स्थान मनुष्योंकी आवादीसे कुछ दूर होना चाहिये। यदि पशुओंके रहनेका मकान मनुष्योंकी आवादीसे दूर न हो सके तो मनुष्योंकी आवादीके पीछे रखना चाहिये। जिससे मनुष्योंको हानिकारक न होवे। मकानके समिप पानीके खड्डे आदि न होने चाहिये कि जिसमें हर एक वस्तु पडकर अथवा वनस्पति और वृक्षोंके पत्र सडने लगें। मनुष्योंके रहनेके मकानका शयन जमीनसे कमसे कम दो फुट ऊंचा रहना चाहिये और मकानकी छतमें अथवा खपरेल व छप्परमें रोशनदान होना चाहिये, जिससे खराव वायु ऊपरके मार्गसे निकल जावे। वर्षातके दिनोंमें मकानके समिप कूडा कचरा न रहने देवे, क्योंकि वह सडकर वायुको दूषित कर मलेरिया ज्वर तथा मच्छरादि जन्तु उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार मुर्दार पशु अथवा अन्य जानवरोंके अथवा कवुरस्थानमें मुर्दोंके सडनेसे एक प्रकारकी खराब दुर्गन्ध उत्पन्न होती है, जो कि वायुको अधिकांश दूषित करती है, इससे आरोग्यतामें विशेष हानि पहुंचती है। मृतक पशुओंको ग्रामसे विशेष फैसले पर डालना चाहिये और जिस २ कौममें मुर्दा गाडनेकी रवाज है उनको उचित है कि मनुष्योंकी आवादीसे दूर ७ व ८ फुट जमीन खोदकर मुर्दे दवावें, परन्तु जमीन दवाने और जलप्रवाह करनेसे मुर्दोंका अग्निदग्ध करना अति श्रेष्ठ है, अग्निदग्ध करनेसे वायु विशेष दूषित नहीं होती। विशेष कारखाने जीनप्रेस भट्टी भाड धूंआँ मील, इनसे भी वायु दूषित होती है, क्योंकि इनके धूएँमेंसे तथा अन्य प्रकारके रजकण वायुमें मिश्रित होकर मनुष्योंके श्वास प्रश्वासके द्वारा शरीरमें प्रवेश करके मनुष्यकी आरोग्यताके बाधक हैं। इन कारखानोंमें काम करनेवाले मनुष्योंको प्रायः श्वास कास और रक्त विकार हो जाता है। ऐसे मील कारख़ाने प्रेस मनुष्योंकी आवादीसे पृथक् होने चाहिये और इनमें काम करनेवाले मनुष्योंको उचित है कि अपना मुख और नासिका कपडेकी पट्टीसे बांधकर काम करें। अन्न भरनेके खास खत्ती कोठे आदि तथा चिरकालसे बन्द रहनेवाले मकानकी वायु दूषित हो जाती है, कभी २ ऐसा देखा गया है कि अन्नकी खत्तियोंको खोलकर मनुष्य अन्न निकालनेको अन्दर घुसे हैं और उसके अन्दर पहुंचने पर उनका श्वास घुटने लगा है। इसी प्रकार बंद मकानको खोलकर अन्दर जानेसे होता है, ऐसे स्थलको कुछ घंटे पर्य्यन्त खुला रहने देवे और उसकी रुकीहुई कार्वोनिक वायुके जोशको निकल जाने देवे, तत्काल खोलकर अन्दर घुसनेसे मनुष्यको विशेष हानि पहुंचती है। इसी प्रकार जहांतक हो सके दूषित वायुसे मनुष्यको आरोग्य रहनेके निमित्त बच स्वच्छ

वायुका सदैव सेवन करना चाहिये । जैसे कि श्वास प्रश्वासरूपी अग्नि शरीरमें सदैव जीवन पर्य्यन्त जारी रहती है, इसके द्वारा कितने ही अंशमें कुदरती नियमानुसार वायुके दूषित अंशको शरीरसे बाहर करती है । क्योंकि शुद्ध और अशुद्ध दोनों प्रकारकी वायु परस्पर मिश्रित होकर कार्बोनिक ऐसिड अथवा दूसरी कोई वायु उत्पन्न होकर वायुमंडलमें विस्तृत हो सूर्य्यकी गर्मी तथा दूसरे प्रकारकी अग्निके संयोगसे वायु गर्म होकर हलकी हो ऊपरको चढती है । इसके चढनेसे ऊपरकी स्वच्छ और शीतल पवन वह हलकी पवन मनुष्योंको तथा अन्य प्राणियोंको हितकारी और आरोग्यप्रद है । इसी प्रकार आंधी तूफानके आनेसे भी पवनका परिवर्त्तन हो जाता है और निकम्मी हवा एक ठिकाने पर नहीं रहती है, कुदरती नियमके परिणाम अनुसार वह सर्वत्र वायुमंडलमें मिल जाती है और वृष्टिके पडनेसे उसमें स्थित दुर्गन्धवाले कण जलके प्रवाहमें चले जाते हैं । कार्बोनिक ऐसिडके समान जहरी पदार्थ सदैव उत्पन्न होनेवाली वायुको हरित वनस्पति आकर्षण करलेती है, क्योंकि इस प्रकारकी जहरी वायु हरित वनस्पतिकी पोषणकरता: और हितकारी है । विशेष करके इन तीन प्रकारके कुदरती नियमोंके अनुसार वायु साफ होती रहती है, इन वायु शुद्धिके कारणोंको मनुष्य भी सहायता देवे तो वायुकी शुद्धि होकर मनुष्योंको विशेष आरोग्यता मिलना संभव है । अब इस बातके जाननेकी (आवश्यकता है कि मनुष्योंको कितने दर्जेकी साफ वायुकी आवश्यकता है जिससे आरोग्यता रह सकी है) वायुमंडलमें अशुद्ध पदार्थोंमेंसे कार्बोनिक ऐसिड प्रधान पदार्थ है । इसीके प्रमाणके ऊपर वायुकी शुद्धि अशुद्धिका विचार करनेमें आता है, स्वाभाविक वातावरण (वायुमंडल) के सहस्र भागमें कार्बोनिक ऐसिडका ४/१० भाग होता है इससे बढकर ६/१० भाग होय वहांतक आरोग्यताका बाधक नहीं होता । यदि इससे बढकर दूणांक दश भाग पर्य्यन्त पहुंच जावे तो आरोग्यताका विशेष बाधक होता है, यदि एकसे अधिक प्रमाणमें होय तो वायुमें दुर्गन्ध मालूम होती है और मनुष्यको वह वायु प्रिय मालूम नहीं होती, शरीरको कुछ हानि पहुंचाती है । प्रत्येक घंटेमें युवावस्थावाले मनुष्यके शरीरसे ६/१० घनफुट कार्बोनिक ऐसिड श्वासके द्वारा बाहर निकलता है, स्त्री तथा बालकके शरीरसे कुछ कम निकलता है इसको वातावरणके स्वाभाविक प्रमाणमें लानेको तीन सहस्र घनफुट वायुकी आवश्यकता है । इसलिये मनुष्यको प्रत्येक घंटेमें तीन सहस्र घनफुट ताजी वायु चाहिये, स्त्री तथा बालकको इससे कुछ कम चाहिये । खुलीहुई जगहमें न रहनेवाले मनुष्यको इतनी वायु मिलना कठिन है, क्योंकि मकानोंके अन्दर इतनी वायुका प्रवेश नहीं हो सका, जो लोग दरिद्री हैं और एक छोटी कोठडीमें कितने ही मनुष्य रहते हैं अथवा बडे २ शहरोंकी घनिष्ट आबादीके मकान हैं उनमें इतनी वायुका प्रवेश होना सर्वथा असंभव है । इसी कारणसे शहरोंके लोग

अति निर्बल और अधिकांश रोगी रहते हैं। लेकिन कमसे कम बारहसौसे लेकर पन्द्रहसौ घनफुट हवाकी आवश्यकता तो प्रत्येक स्थानके निवासी मनुष्योंको चाहिये। अब यह विचारना उचित है कि मनुष्यको प्रत्येक घंटेमें कितनी ताजी वायु मिलना उत्तम है और किस प्रकारके मकानमें वायुकी कितनी आवश्यकता है, इसका आधार केवल वायुकी अधिकांश गतिपर है। जो वायु विशेष झपाटेकी गतिसे चलता होय तो छोटे मकानकी जगहमें भी पूर्णरूपसे ताजी वायु मनुष्योंको मिल सक्ती है। परन्तु ऐसी तेज गतिसे वायु दिन रात्रि नहीं चलती, कदाचित ऐसी तेज वायु चलती भी हो तो वह शरीरको हितकारी नहीं होती। मन्द गतिसे वहनेवाली वायु शरीरको प्रिय और हितकारी होती है। तेज गतिसे चलता हुआ वायु शरीरको विशेष न लगना चाहिये, तेजगतिके पवनको अधिक समय पर्य्यंत सेवन करनेसे मनुष्य रोगी हो जाता है। इसलिये मन्द गतिसे चलनेवाली ताजी वायु एक घंटेमें तीन सहस्र घनफुट मिल सके इतनी जगहकी प्रत्येक मनुष्यको आवश्यकता है, जो प्रत्येक मनुष्यके लिये सहस्र घनफुट जगह होय तो विशेष उत्तम है। एक कोठडी १० फुट लम्बी, १० फुट चौंडी, १० फुट ऊंची जगह है, कमसे कम ६०० घन-फुट होनी चाहिये, लेकिन आरोग्यताके लिये प्रत्येक मनुष्यको ६४८ घनफुट जगह मिलनी चाहिये। क्योंकि इससे कम जगहमें पूर्ण वायु मनुष्यको नहीं मिल सक्ती और रोगी मनुष्यको इससे ड्योंढी होनी चाहिये, इस देशमें स्त्री पुरुष दोनों समीप रहते हैं सो उनको दूनी जगह आरोग्यके हेतुसे होनी चाहिये। यदि इतनी जगहमें एक दो बालक भी रहें तो वायु दुषित होनेका अथवा वायुके दूषित होनेसे रोग होनेका भय कम ही रहता है, वायु भी निर्वाहके योग्य बराबर मिल सक्ती है। इससे कम जगहमें आरोग्यता कायम नहीं रहती है। वायु परिवर्तन १००० घनफुट जगह होय तो उसके अन्दरकी वायु प्रत्येक घंटेमें तीन समय बदलनी चाहिये, जो ६०० घनफुट जगह होय तो उसके अन्दरकी वायु प्रत्येक घंटेमें ५ व छः समय बदलनी चाहिये, जबतक वायु पांच व छः समय न बदली जाय तबतक शरीरको वायु नहीं लगती। परन्तु अधिक समय बदली जाय तो शरीरको लगती है, जितनी ताजी वायु शरीरको मिल सके उतनी विशेष हितकारी है।

ऊपर लिखा गया है कि अस्वच्छ वायु निकलनेके दो तीन कारण कुदरती नियमानुसार हैं एक तो वायुका विस्तृत होना जैसा कि अशुद्ध वायु वातावरणमें फैलकर विस्तृत हो जाय और अति गर्मीसे वायु गर्म होकर हलका हो जाय, ऐसा हलका वायु ऊपरको चढता है और ऊपरकी स्वच्छ हवा नीचे उतर कर विस्तृत होती है। जैसा कि आप किसी स्थानपर अग्नि प्रज्वलित करोगे

तो उस समय चारों ओरकी वायु अग्निपुंजकी ओर खिचकर आवेगी और गर्म होकर अग्निशिखाके द्वारा ऊपरको निकलतीहुई. जान पडेगी । ऊपरकी शीतल और स्वच्छ वायु जमीनकी सपाटीकी ओर नीचेकी ओर आवेगी इसी प्रकारसे वायु गर्म और पतली होकर ऊपर चली जाती है । और उसके ठिकानेपर ऊपरके स्वच्छ वायु नीचे आ जाती है । इस प्रकार पवनके बदलनेकी गति सदैव होती रहती है, चाहे कम होय चाहे अधिक होय । घर अर्थात् रहनेकी जगहमें वायुके आने जानेका आधार विशेष करके वाहरकी वायुकी गतिके ऊपर है, इसलिये रहनेके घरमें आमने सामने खिडकी और दरवाजे होने चाहिये । दरवाजे और खिडकियोंके सिवाय रोशनदान झरोखे तथा छतमें धवाला होना चाहिये । जिससे कि वत्ती चिमनी व अग्निसे घरकी वायु गर्म होकर ऊपर चढके वाहरको निकल जावे और घरके अन्दर ताजी वायु आने लगे, हिमप्रधान शीत देश जैसा कि हिमालय प्रांतके लोग घरके अन्दर सदैव अग्नि रखते हैं शीत अधिक होनेके कारणसे उनके मकानोंमें अधिक खिडकियां अथवा रोशनदान नहीं होते । केवल अग्निकी गर्मीसे वायु हलकी होकर परिवर्तन होती रहती है और वाहरकी वायुकी गति अन्दर पहुंचती रहती है ।

☞ घरमें अँगीठी तथा अग्निकुण्ड व भाफसे वायु गर्म करनेमें आती है, एवं इन साधनोंके शिवाय घरके अन्दर गर्मीकी ऋतुमें जो पंखा लगाया जाता है वह. भी वायु परिवर्तनका एक साधन है । किस स्थानपर कितना वायु आता है इसका आधार पवनकी गतिके ऊपर है तथा मकानकी लम्बाई चौडाई तथा खिडकी झरोखे रोशनदान दरवाजे भी विशेप वायु मकानके अन्दर पहुंचाते हैं । और पवनकी गतिकी माप करनेको (एनीमोमीटर) नामका यन्त्र आता है इसके द्वारा यह जाना जाता है कि एक मिनिट अथवा घंटेमें वायु कितना चलता है, वायुकी गर्मी उष्णता मापक यन्त्रसे मालूम पडती है । वायुमें जलकी भाफका कितना भाग है इसका प्रमाण (हाइग्रोमीटरयंत्र) से जाना जाता है । शुद्ध और अशुद्ध वायुकी परीक्षा एक तो नासिका इन्द्रियसे हो सक्ती है वाहर खुली हवामेंसे किसी प्रकारकी दुर्गंध आती होय तो उस वायुको अशुद्ध समझो, इसी प्रकार जिस घरके अंदरकी वायुमें दुर्गंध आती होय उसको भी अशुद्ध समझो । रसायनिक विद्याके साधनसे कार्वोनिकआसिडका मिलाव वायुके अंदर कितना है इसका प्रमाण जाना जाता है, जिस स्थानकी वायुमेंसे कार्वोनिक आसिडका प्रमाण जाननेकी आवश्यकता होय वहांपर चूनेका जल रखदेना चाहिये चूनेका जल कार्वोनिक आसिडको चूस लेता है, फिर रसायनिक तरीकेसे मालूम हो सक्ता है कि इस ठिकानेपर अमुक प्रमाणसे कार्वोनिकआसिड है । सूक्ष्म दर्शक यन्त्रसे वायुमें उडतेहुए अनेक प्रकारके

पृथक् २ परमाणु देखनेमें आते हैं । अथवा काचकी नलीमें ग्लीसरीन नामकी द्रवरूप औषध भरके खुली जगहमें जहांपर हवाके आने जानेकी गति निरन्तर होती होय इस नलीकी ग्लीसरीनमें हवाके साथ मिलेहुए अन्य जातिके परमाणु चिपट जाते हैं । इसको यन्त्रमें रखके और सूक्ष्मदर्शक यन्त्रसे देखा जावे तो प्रत्येक जातिके परमाणु देखनेमें आते हैं ।

आरोग्यताके लिये स्वच्छ जलकी आवश्यकता ।

जल जीवोंके तथा (मनुष्यों) के जीवन और तन्दुरुस्तीमें दूसरे दर्जेपर है और जमीन पर जलका विस्तार होना वर्षातके द्वारा होता है, वर्षातका जल जमीन पर पडनेके पीछे कितने ही भागमें तो उसी समय नदी नालोंके द्वारा प्रवाह रूपसे बहकर समुद्रमें पहुंच जाता है और कितना ही भाग तालाब सरोवरोंमें स्थिर होकर पृथिवीपर भरा रहता है. । कितना ही भाग जमीनके अन्दर प्रवेश करके कूप बावडी आदि रूपसे दीख पडता है, कितने ही भागको पृथिवी पर उत्पन्न होनेवाली वनस्पति अपने पोषणके अर्थ खींच लेती हैं । कितने ही भागको सूर्य्यकी किरणें भाफ बनाकर आकाशमंडलमें खींच लेती हैं । मनुष्यको आहार तथा पीनेके लिये स्वच्छ जलकी आवश्यकता है । यदि यथार्थमें देखा जाय तो स्वच्छ जल वही है जिसको अग्निपर रखके भाफ उडाकर निकाला जाता है । इस जलमें वायुके शिवाय पृथिवीके पदार्थोंके परमाणु क्षारादि नहीं होते हैं, नदी, तालाब, सरोवर, कूप, बावडी, झरनादिका जल स्वच्छ होने पर भी उसमें क्षारका भाग अवश्य होता है । यदि क्षारका भाग जलमें थोडा होय तो पीनेमें विशेष हानिकारक नहीं होता, आकाशमेंसे गिराहुआ वर्षातका जल जिसको जमीनमें गिरनेसे अधवर वस्त्रके आधारसे लिया होय विशेष करके पृथिवी पर गिरेहुए जलकी अपेक्षा स्वच्छ होता है और पीनेके योग्य है । इसमें जमीनके अवयव नहीं होते, लेकिन फिर भी हम इसको जमीनके अवयवोंसे बिलकुल रहित नहीं समझते क्योंकि वायु मंडलमें जो परमाणु मिश्रित होकर उडते रहते हैं व वर्षातके जलमें अवश्य मिश्रित होकर आते हैं । जिस ठिकाने पर यह जल पडता है उस ठिकानेका मल भी मिश्रित होता है, चाहे वह मल पात्रादि किसी वस्तुका होय यदि इन दो दोषोंसे रहित होय तो वर्षातका जल पीनेमें अति स्वच्छ और हितकारी है । यदि कई वर्षात् पडनेके पीछे वायुमंडलमें उडते हुए परमाणु कम हो जावें उस समय पर इस जलको ग्रहण किया जाय तो पीनेके लिये अति उपयोगी है । इस देशकी मरुत भूमि राजपूताना प्रान्तमें प्रायः वर्षातका जल एकत्र करके हौद चहबच्चामें भरकर रखते हैं और यह जल प्रायः मकानोंकी छत छप्पर खपरेलादि पर पडके टांकी व चहबच्चामें जाता है । सो यह जल दो पदार्थोंसे रहित नहीं होता जिनका

वर्णन ऊपर हो चुका है, लेकिन इस जलमें जीवित मछली रखनेसे जल अच्छा रहता है और हरसाल जलके आधार टांकी व हौदको धोकर साफ कर-लेना चाहिये, जिस ठिकानेपर पडकर यह जल आवे उसको भी साफ करदेना उचित है । इस वर्पातके जलमें वायुमंडलमें मिलेहुए परमाणुओंके अतिरिक्त कार्वोनिक ऐसिड तथा आक्सीजन भी होता है ? नदी कूप तालाव, झरना इनका जल पृथक् २ वस्तुओंके संयोगसे सम्पन्न होता है । इसमें क्षार तथा दूसरी जातिके मलका संयोग वहांकी जमीनमें जहांपर कि यह जल वैठतां होय उसीके ऊपर आधार रखता है । पृथिवीमें पृथक् २ ठिकाने पर पृथक् २ जातिके खनिज पदार्थ होते हैं और पृथिवीके ऊपर तथा नीचेकी तहमें कितना ही अन्तर होता है, नदीमें जलकी सपाटीके ऊपर क्षार होता है और क्षारके अतिरिक्त जलमें मिलाहुआ अनेक प्रकारका मल भी होता है । (जैसा वनस्पतिके सडनेसे वस्त्र धोनेसे मनुष्य तथा पशुओंके स्नान करनेसे तथा अन्य प्रकारके पदार्थोंको नदीमें धोनेसे जलमें अनेक प्रकारका मल मिश्रित हो जाता है) तथा गंदे नाले और गटरोंके मिलनेसे दूपित मल जलमें मिल जाता है, इसी प्रकार जमीनका क्षार और वाह्य मलयुक्त तालावका जल भी समझो । और कूप, वावडी अथवा झरनाके जलमें पृथिवीका क्षार भाग मिला रहता है । वर्पातके जलमें कार्वोनिकऐसिड रहता है, वर्पातका जल जव जमीन पर पडता है तव कार्वोनिकऐसिडकी उसम अधिकता हो जाती है और ऐसे कार्वोनिकऐसिडवाले जलमें साधारण जलकी अपेक्षा विशेप क्षार निकलता है । इसी कारणसे कितने ही कूप और झरनोंके जलमें कितने ही स्थलपर अधिक क्षारका भाग देखनेमें आता है और पृथिवीके जिस भागमें क्षार अधिक नहीं होता है वहाँका जल मिष्ट होता है । कूपके दो भेद होते हैं जैसा वावडी जिसमें उतरकर जल पर्य्यन्त मनुष्य सीढियोंके रस्तेसे जल भरनेको चला जावे यह वावडी पांच छः हाथसे लेकर २९ व ३० हाथतक गहरी होती है और जमीनको ऊपरके नर्म भागकी तह पर होती है और जमीनकी सपाटीके ऊपरका जो जल जमीनके अन्दर उतरता है उसमें एक भाग (नर्म) जमीनमें जिस ओर ढाल होता है तथा जलको मार्ग मिलता है उस ओरको वहता है । सूखीहुई नदीमें भी थोडी जमीन खोदनेसे इस प्रमाणे जल निकल आता है और जलका दूसरा भाग पृथिवीकी गहराई ओंडे भागमेंको उतरता है और कठिन पत्थरकी तहमेंसे भी नीचे उतर कर वहां उसका प्रवाह चलता है । अर्थात् पृथिवीके सम्वन्धमें जलके तीन प्रकारके प्रवाह चलते हैं, एक पृथिवीकी सतहके ऊपर जो नदी नाले रूपसे देखनेमें आता है। दूसरा पृथिवीकी नर्म दूसरी तहके ऊपर वहता है, तीसरा विशेप गहरी तह अर्थात् जिसको पक्की जमीन व थर वोलते हैं उसके ऊपर जलका प्रवाह वहता है । जिस

जमीन और थरमें जल बहता है उसका मल तथा क्षार जलमें आता है इसी कारणसे किसी जमीनके गहरे कूपका भी पानी खारी और किसी ठिकानेका पानी मीठा होता है। किसी जमीनका हलका और किसी जमीनका भारी होता है, वर्षातूका जल जैसी २ जमीनमें उतरता है उस जमीनके खनिज पदार्थोंके अनुसार ही जलमें गुण समझे जाते हैं। कम गहरे कूपका जल किसी ठिकाने पर स्वच्छ और उत्तम होता है परन्तु कितने ही ठिकाने गन्धा तथा पीनेके अयोग्य होता है, ऐसे अयोग्य जलको पान करनेसे मनुष्य रोगी हो जाता है। कम गहरे कूपके समीप पोली और नर्म जमीनमेंसे उतरते हुए जलके साथ उस जमीनका मल भी जलके साथमें मिश्रित होकर क्षारके समान उस कूपमें पहुंचता है और जमीनके ऊपरके दूसरे पदार्थ क्षार तथा वनस्पतिका सडाहुआ भाग, मल मूत्रादिके दूषित परमाणु भी ऐसे कम गहरे कूपमें सरलतापूर्वक पहुँच जाते हैं। एक ग्यालन जलमें एकसी ग्रेन वनस्पतिका भाग होता है, इसीसे ऐसे कूपके जलमें हरियालीकी झलक मारती है, ऐसे कम गहरे कूप वर्षातूमें भरकर ऊपरतक आ जाते हैं और इनका जल पीनेके हकमें दूषित तन्दुरुस्ती बिगाडनेवाला समझा जाता है। अति गहरे कूप तथा झरनेका जल कठिन जमीनमेंसे छनकर आता है इस कारणसे इसका जल कम गहरे कूपकी अपेक्षा अधिक स्वच्छ होता है। इसके जलमें वनस्पतिका जुज तथा मल मूत्रादि दूषित पदार्थोंके परमाणु नहीं जा सक्ते, परन्तु उस ठिकानेकी जमीनकी गहराईमें जो वस्तु होय अथवा क्षार होय गंधक, सुहागा, फिटकरी, पत्थर आदि जमीनकी विकृतियोंमेंसे जो पदार्थ होगा उसका असर जलमें अवश्य आवेगा। यदि जमीनमें खडिया होगी तो जल हलका होगा और माग्निश्यावाला पत्थर होगा तो जल भी भारी होगा। नदीका जल कूप तथा झरनेके जलकी अपेक्षा विशेष हलका होता है, क्षारादिक पदार्थ इसमें न्यून होते हैं परन्तु वनस्पति और मलादि मैल जिस नदीके जलमें विशेष होता है वह जल दूषित और आरोग्यताको बिगाडनेवाला समझा जाता है। बहुतसे मनुष्य मुर्दोंका मुख जलाकर नदीमें डाल देते हैं उनका मांस तो जलके जन्तु भक्षण करलेते हैं लेकिन तोभी मुर्दोंके संयोगसे जल दूषित हो जाता है, ऐसी नदियोंका जल पान करनेमें अग्राह्य है। तालावका जल जो अति स्वच्छ होय पशु और मनुष्यके मल मूत्रादिका संयोग न होय तो हलका होता है, परन्तु जो तालाव मनुष्योंकी आबादीसे दूरस्थ होय वनस्पति और मलादिसे जल रहित होय तो पीनेके काममें लेना चाहिये यदि दूषित होय तो कदापि न लेवे। जलके स्थलके ऊपरसे गुणोंका नियम करना अनुचित है, क्योंकि किसी नदी व तालावका जल उत्तम होता है और किसी नदी व तालावका जल दूषित होता है। इसी प्रकार एक कूपका जल हलका और मीठा होता है दूसरेका खारी और भारी होता है।

पर रख उसके नीचे दूसरा बर्त्तन रख देवे जिसमें छनाहुआ जल एकत्र होता रहे यह जल साफ और आरोग्यता रखनेवाला समझा जाता है। किसी २ का यह भी मन्तव्य है कि चलनीदार वर्त्तनमें जल भरके उसके नीचे दूसरा बर्त्तन रख बारीक धारोंसे हवामें जो जल अधिक समय पर्य्यन्त पडता रहता है वह शुद्ध हो जाता है। परन्तु इस प्रक्रियासे जलका मल नष्ट होना असंभव है, इन दोनों विधिके शिवाय जल साफ करनेकी अन्य विधि इस प्रकारसे है कि जलको अग्निपर पका कर गाढे वस्त्रमें नितार कर छानलेवे, इससे क्षारादि पदार्थ पृथक् पड जाते हैं। प्राणीज तथा उद्भिज्ज पदार्थ जल जाता है, इस जलको शीतल होने पर पान करे। प्रत्येक ग्यालन जलमें १० व १२ ग्रेन (५ व ६ रत्ती) फिटकरी पीसकर मिला देनेसे जलका मल बर्त्तनके तलेमें बैठ जाता है। निर्मलीफलको घिसकर जलमें मिलानेसे जलका मल बर्त्तनके तलेमें बैठकर जल स्वच्छ हो जाता है। जलमें चूनेका जल मिलानेसे कार्बोनिक ऐसिडके साथ वह मिल जाता है और उसका क्षार बर्त्तनके तलेमें बैठ जाता है। लोहेके टुकडे कोयला जलमें डालनेसे उसके मैलको शोषण कर जल शुद्ध हो जाता है। जलके कुंडमें जीवित मछली रखनेसे जल शुद्ध रहता है। किसी २ मट्टीके बर्त्तन तथा नर्म पत्थरके बर्त्तनमें विशेष उत्तम रीतिसे छनकर जल साफ होता है, उसके नीचे दूसरा बर्त्तन रखना चाहिये। जिस बर्त्तनमें जल रहता होय उसको समय २ पर धोकर साफ न किया जाय तो जल खराब हो जाता है, इसी प्रकार जलके हौद चहबचादिको साफ करना चाहिये और कूपका जल तथा कीचड छः महीनेके अन्तरसे निकालके साफ करना चाहिये। नलके जलमें भी एक प्रकार हानि पहुँचानेवाली वस्तु उत्पन्न होती है, जल ले जानेका नल लोह, शीशा व मट्टीका होता है मट्टीके नलमें कीट उत्पन्न नहीं होती परन्तु लोह और शीशाके नलमें एक प्रकारकी कीट (जंगाल) उत्पन्न हो जाती है, यह कीट यदि जलके साथ शरीरमें जावे तो विशेष हानि पहुँचाती है। इससे कीट और शीशाके संयोगका जल पीनेके काममें न लेना चाहिये।

पान करने योग्य जलकी परीक्षा।

यह परीक्षा तीन प्रकारसे होती है एक साधारण स्वाभाविक परीक्षा, दूसरी रसायनिक परीक्षा, तीसरी सूक्ष्म दर्शक यन्त्रिक परीक्षा। इनमेंसे प्रथम साधारण स्वाभाविक परीक्षामें जलकी रंगत गंध और स्वादकी परीक्षा करनी चाहिये, रंगत स्वच्छ और सफेदीकी झलक किसी प्रकारकी गंध न आती होय जलके स्वादके शिवाय किसी अन्य वस्तुके स्वादसे रहित होय तथा स्वच्छतामें पारदर्शक होय तो समझना कि जल स्वच्छ और हानिकारक नहीं है। बहतेहुए जलका रंग जरा आसमानी लगता है, जो

जलकी रंगत हरित होय तो जानना कि उसमें शिवार तथा वनस्पति पदार्थ है । और पीलाश पर होय तो प्राणीज पदार्थका अनुमान होता है, बिल्लौरी काचके प्यालेमें जलको भरकर प्रकाशमें रखके देखनेसे उसकी रंगत तथा उसमें जिस प्रकारका मल होगा सो दीख पडेगा । यदि जलमें किसी प्रकारकी दुर्गन्ध होय तो वह जल सर्वथा पीनेके अयोग्य समझना, पीनेके जलमें किसी प्रकारका स्वाद न होना चाहिये । प्राणीज तथा वनस्पतिके संयोगसे जलका स्वाद खराब मालूम होता है और क्षारका भाग अधिक होय तो खारी तथा कटु स्वाद मालूम होता है । रसायनिक परीक्षासे जलमें क्षारादि पदार्थ तथा प्राणीज और वनस्पति पदार्थका संयोग है कि नहीं सो मालूम हो सक्ता है यदि है तो कौन पदार्थ कितना है इसका निर्णय यथार्थ रीतिसे हो जाता है कि शरीरको अवगुण करनेवाला पदार्थ कितना है और अवगुणरहित कितना पदार्थ है, इसका निर्णय एक काचके प्यालेमें जल भरकर कितने ही समय पर्य्यन्त स्थिर रखना और देखना कि प्यालेकी पेंदीमें कितना पदार्थ है । ऊपर कितना है सो मालूम होगा, जो पदार्थ भारी होगा उसका जमाव प्यालेके पेंदेमें होगा और जलमें क्षारका भाग कितना है इसका निर्णय इस प्रकारसे करना कि थोडे जलका वजन करके एक साफ वर्त्तनमें रखके मन्दाग्निसे पकावे, जब सब जल जल जावे और वर्त्तनमें जो वस्तु राखके समान रह जावे उसको निकाल कर वजन करे इससे मालूम होगा कितना क्षार है। जलके उड जानेके बाद जो भाग रहता है उसको अधिक जलानेसे उसमेंका कितना ही अस्थिर भाग उड जाता है और स्थिर भाग रहता है, जो भाग स्थिर रहता है वही असलमें क्षार द्रव्य है और अस्थिर भागमें वनस्पति आदि पदार्थकी राख होती है । एक ग्यालन जलमें यह क्षारादि द्रव्य ३० ग्रेन होय वहांतक वह जल पीनेके योग्य समझना, यदि क्षारका भाग इससे कम होय तो विशेष उत्तम है । क्षारका भाग यदि थोडा अधिक होय तो विशेष हानिकारक नहीं होता, लेकिन शरीरको हानि पहुंचानेका आधार क्षारकी जातिपर किया जाता है । कार्बोनेट आवलाईम विशेष हानि नहीं करता, लेकिन सल्फेट आवलाईम तथा मागनेशिया जलमें होवे और उस जलको मनुष्य पान करे तो मनुष्यकी आरोग्यतामें बाधा पहुँचती है । जलको पकानेसे कार्बोनेट आवलाईम जलसे पृथक् पडता है, लेकिन मागनेशिया तथा सल्फेट आवलाईन जलसे पृथक् नहीं होता, इसलिये यह जल पीने तथा खाना पकानेके काममें अयोग्य समझा जाता है जलमें जो क्षार भाग है उसीके प्रमाण पर जलके हल्का भारी होनेका आधार समझा जाता है, जलमें क्षारके शिवाय प्राणीज तथा उद्भिज पदार्थ कितना है इसका जानना विशेष मुख्य है । क्योंकि इससे शरीर तथा प्रकृतिको विशेष हानि पहुंचती है, इस जल द्रव्यके पदार्थोंमें नाईट्रोजन वायुका भाग

होता है और रसायनिक द्रव्यसे जलमें नाइट्रेटस नाइट्राइटस तथा आमोनियाका अंश कितना है इसका शोधन कर सक्ते हैं । इसीके ऊपरसे यह निश्चय हो सक्ता है कि मल मूत्र विष्ठा वनस्पति गटरादिका गंधवाला कितना भाग है, लेकिन इतने प्रसंगको लिखनेका यहां अवकाश नहीं है और जल मनुष्योंके पीनेके योग्य है कि नहीं इसका विशेष आधार आमोनियाके ऊपर है । आमोनिया दो प्रकारका होता है फ्रीआमोनिया, दूसरा आलब्युमीनोइड आमोनिया । फ्रीआमोनिया वनस्पति आदि पदार्थोंमेंसे निकलता है, परन्तु आलब्युमीनोइड आमोनिया विशेष दुर्गन्धिवाले दूषित पदार्थ होते हैं उनमेंसे जलमें आता है इसलिये इसके प्रमाण पर विशेष लक्ष देनेकी आवश्यकता है । जलके दश लाख भागमें इसका प्रमाण $\frac{१}{१०}$ अथवा इससे कम होय तो ऐसा जल पान करनेसे हानि नहीं पहुंचती, यदि इतने जलमें $\frac{३}{२०}$ आमोनिया होय तो इस जलके पान करनेमें भय रहता है । $\frac{३}{२०}$ इससे अधिक होय तो यह जल खाने पीनेके काममें बिलकुल न लेना चाहिये, वनस्पति पदार्थ जो जलमें होता है उसकी अपेक्षा प्राणीज पदार्थ मनुष्योंकी तन्दुरुस्तीमें विशेष हानि पहुंचानेवाला होता है । जिस जलमें आमोनिया विशेष होय तो उस जलके साथमें गटर विष्ठा गंधी नाली तथा अन्य दुर्गन्धवाले पदार्थोंका सम्बन्ध अवश्य समझो । तीसरे यह कि सूक्ष्मदर्शक यन्त्रसे जलमें मिश्रित पदार्थोंके परमाणु दीख पडते हैं जैसे कि रेती, मिट्टी, बाल, रुई सनादिके तन्तु, वनस्पति विशेष मृतक जन्तुओंका भाग जीवित जन्तु व जीवित वनस्पति अति सूक्ष्म जल जन्तु दुर्गन्धित जलमें ऐसे पदार्थ विशेष होते हैं और अन्य प्रकारके जीवोंके सूक्ष्म अंडे व अतिसूक्ष्म जन्तु जो जलके साथ मनुष्य तथा पशु पक्षियोंके शरीरमें प्रवेश करते हैं ये सब दृष्टिगत हो जाते हैं ।

दूषित जल पानसे उत्पन्न हुई व्याधि ।

मनुष्योंको जैसे स्वच्छ जलकी आवश्यकता है वैसा स्वच्छ जल न मिले तो गंध व दूषित जलके पान करनेसे रोग उत्पन्न होते हैं । रोगोंकी उत्पत्तिके कारणमें सहायता मिलती है पान करनेके जितने जलकी आवश्यकता है उतना स्वच्छ जल न मिले तो शरीरकी स्नायु तथा मनका वेग और स्फुरणशक्ति न्यून हो जाती है । कदाच जल बिलकुल न मिले तो अति दुःखके साथ मनुष्यकी मृत्यु होती है । स्वच्छ जलसे शरीर आरोग्य और सुखी रहता है और अशुद्ध जलसे शरीरमें रोग उत्पन्न होते हैं, इसलिये दूषित जलको खाने पीनेके काममें कदापि न लेना चाहिये । प्रथम जिन रोगोंके कारण अन्य २ मालूम हो चुके हैं अथवा अशुद्ध जलपर दृष्टि न रखनेसे जलको उन रोगोंका कारण नहीं समझा था परन्तु इस समय जलकी विशेष शोध करनेसे यह सिद्ध

हो चुका है कि कितने ही रोगोंकी उत्पत्तिका कारण दूषित जल भी है । परन्तु अशुद्ध दूपित जलसे कौन २ रोगोंकी उत्पत्ति हो सक्ती है यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सक्ते, लेकिन जितने रोग जल दोषसे होते देखे गये हैं उनका प्रमाण नीचे दिया गया है ।

अजीर्ण यदि जलमें क्षारका भाग विशेष होय तो इससे अजीर्ण, मलावरोध, अरुचि मन्दाग्नि आदि रोग उत्पन्न होते हैं । अतीसार रोग भी जलके दोपसे होता है जैसा कि आयुर्वेदमें भी लिखा है कि (दुष्टाम्बुमद्यातिपानैः) दुष्ट जल और अति मद्य पीनेसे अतीसार होता है । जिस जलमें क्षारादि खनिज पदार्थ और मल मूत्रादि दुर्गन्धित और मलीन पदार्थ तथा वनस्पतिका विशेप संयोग होय तो अतीसार होता है । आमातीसार अर्थात् पेचिशका रोग भी वर्षात्के नूतन जलसे होता है। कोलेरा (विशूचिका) इस भयंकर रोगकी उत्पत्तिका कारण दूपित जल है यह रोग विशेष करके दूपित जलसे होता है, यह कितने ही समय संशय रहित सिद्ध हो चुका हैं । यह व्याधि जलमें जो प्राणीज द्रव्य हैं उसीके कारणसे होती हैं । टाईफाईड फीवर दुर्जल जनित ज्वर इस नामवाला ज्वर भी दूपित जलके द्वारा ही होता है (आयुर्वेदमें इसके औपध प्रयोग लिखे हैं जैसा कि दुर्जलजेतारसः । अयं रसो ज्वरे योज्यः सामे दुर्जलजेऽपि च) यह ज्वर विशेप करके यूरोप खंडकी घनिष्ट आवादीमें अधिक देखनेमें आता है, इन रोगोंकी उत्पत्ति प्रायः जलमें विष्टाका संयोग होनेसे मुख्य करके होती है । विष्टा संयोग जलके साथ या तो गटरमेंसे होता है अथवा जलमें विष्टा त्यागा जावे व डाला जावे और वह जल मनुष्योंके पीनेके काममें आवे तो यह रोग अवश्य हो जाता है । यदि इस दूषित दुर्गन्धित पदार्थका लेश मात्र जलमें मिला होय तो हजारों ग्यालन जलमें उसका विप फैल जाता है । पीनेके जलमें मल मूत्रादि भ्रष्ट पदार्थोंका संयोग कदापि न होना चाहिये, यदि होगया होय तो उस जलको पीनेके काममें न लेना चाहिये । हेकटिकफीवर, विपमज्वर तथा शीतज्वर दूषित जलसे उत्पन्न होता है कितने ही जंगल तथा ग्रामोंमें यह ज्वर सदैव बना रहता है, इसकी उत्पत्तिका मुख्य कारण वनस्पति है । क्योंकि वनस्पतिके पत्र जलमें सड जाते हैं और उसको लोग पीनेके काममें लेते हैं, जहांपर अनेक मनुष्योंको एकही मौसममें ज्वर आता होय वहां दूपित जलके सम्बन्धसे ज्वरकी उत्पत्ति समझना ।

गलगंड यह रोग भी खराव जलसे उत्पन्न होता है, जिस देशके जलमें (कालश्यम) और (मागनीशयमसाल्ट) विशेष होता है उस जलके पीनेसे वहांके मनुष्योंको गलगंडकी व्याधि अधिक होती है । भारतके उत्तर प्रान्त कुलू, पांगी पाढर, हिमालयके पहाडी देशमें यह रोग अधिकतासे देखा जाता है । (पत्थरी) अश्मरीरोग जिस प्रान्तके जलमें क्षारका भाग विशेष हो जल भारी होता है उस प्रान्तके

आकृति ३६ (पृ० १८८) चित्र- गर्भाशयकी पश्चात् तथा अग्र विवृतताकी पृथक् पृथक् स्थितियां।
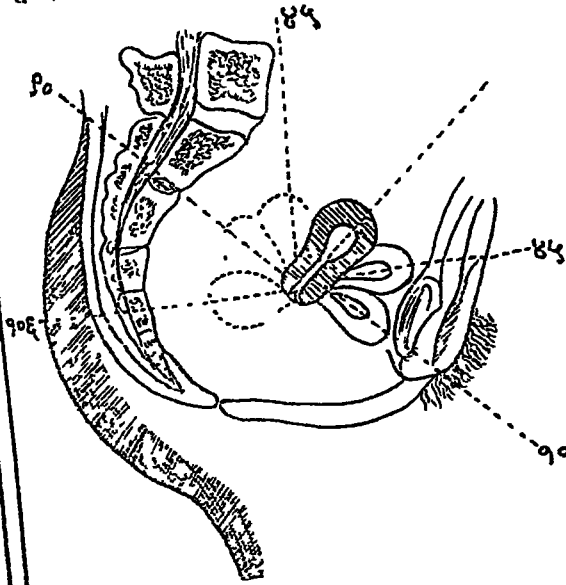
आकृति-३९ (पृ० १९३) चित्र- होजिस पेसरी·
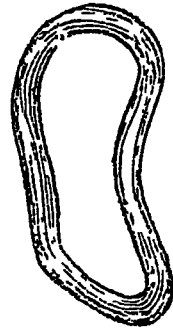
आकृति- ४० (पृ०१९३) चित्र· होजिस पेसरी पहनानेकी प्रक्रिया
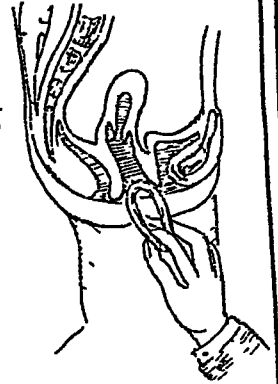
आकृति-३७ (पृ० १९०) चित्र- वक्षोजकी स्थितिसे गर्भाशयकी पश्चात् विवृतता

आकृति-३८ (पृ० १९२) चित्र-वक्षोज स्थितिसे योग्यनियत स्थितिमें बैठालाहुआ गर्भाशय।
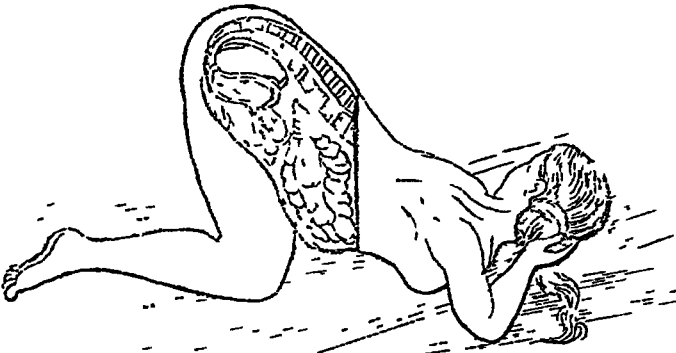
आकृति- ४१ (पृ०१९३) चित्र बराबर पहनानेमें आई हुई होजिस पेसरी
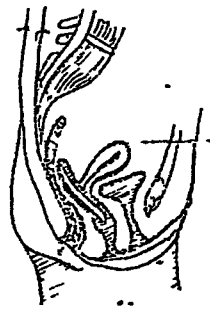
मनुष्योंमें अधिकतासे होता है (त्वचाके रोग) प्रायः जलकी खराबीसे होते हैं जैसे दाद, कण्डु नहरुआ, पाम, खुजली इत्यादि। (कृमिरोग) यह जलसे होता है जलके द्वारा सूक्ष्म जन्तु तथा उनके अंडे शरीरमें पहुंचते हैं और अन्दर उनकी वृद्धि होने लगती है। जलके द्वारा शीशा, पारा, ताम्र, फिटकरी, सुहागा, गंधक, लोहा, जस्तादि धातु पेटमें पहुँचते हैं जिस देशमें इन खनिज पदार्थोंमेंसे किसीकी खान होय वहांके जलमें इनका कुछ भाग अवश्य रहता है। और वह जलके साथ शरीरमें प्रवेश करता है, परन्तु वहां लोगोंको ऐसे जहरी जलके सेवनका अभ्यास पड जाता है, कभी २ किसी २ मनुष्यको जहरी जलसे रोगोत्पत्ति भी जहरमें देखी जाती है। जिस देशका जल दूषित होता है वहांके मनुष्य सर्वथा रोगी निर्बल हो उनका शरीर फीका व कृश रहता है।

शरीर आरोग्य रखनेका आहार।

शरीरका तीसरा आधार हित आहारके ऊपर है, सर्व देशोंके मनुष्योंको जलवायु कुदरती नियमके समान एकसाही मिलता है उसमें कुछ फर्क भी होय तो किञ्चित् मात्र होता है, परन्तु आहारमें विशेष अन्तर देखनेमें आता है। प्रत्येक देशकी आहारके काममें आनेवाली वस्तु पृथक् २ देखनेमें आती हैं, किसी २ ठिकाने पर मनुष्य केवल मांसका ही आहार करते हैं, किसी ठिकाने पर वनस्पतिका आहार करते हैं और किसी ठिकाने केवल गेहूँका आहार करते हैं। किसी ठिकाने केवल चावलका आहार करते हैं, किसी जगह ज्वार, वाजरा, जौ, मसूर, मटर, चना, कोदो, समा, मूँग, मोठ, मकई आदि मोटे अन्नोंका आहार करते हैं। किसी जगहके मनुष्य सब अन्न तथा मांसादि और आलू आदि कन्द सबको ही आहारके काममें लाते हैं। इन पदार्थोंके देखनेमें विशेष अन्तर मालूम होता है, लेकिन तत्त्वोंपर विचार करके देखा जावे तो न्यूनाधिक एक समान हैं इससे एक पदार्थकी जगह पर दूसरे अन्नसे मनुष्यका निर्बाह हो सक्ता है, अन्नसे शरीरका पोषण हो शरीरकी वृद्धि होती है। हड्डी मांस त्वचा चर्बी आदि सत पदार्थ इसी अन्नादि आहारसे वनते हैं, केवल यही नहीं किन्तु शरीरकी गर्मी, चैतन्यता, तथा गतिका आधार ये सब आहारके ही ऊपर हैं। गति गर्मी चैतन्यताके प्रमाणमें शरीरको आहारकी आवश्यकता है, आहारके विभाग चार हैं १ नाइट्रोजनवाला पदार्थ, २ कार्बोनवाला पदार्थ, ३ क्षारवाला पदार्थ, ४ जल। (नाई ट्रोजनवाला पदार्थ) यह पदार्थ शरीरके पोषाण तथा वृद्धिकी आवश्यकताके लिये है, शरीरकी क्रियाका आधार इसीके ऊपर है शरीरको श्रम पडे उसके प्रमाणमें इस वर्गके पदार्थोंकी खपत पडती है। शरीरके सम्पूर्ण भागोंमें नाईट्रोजन रहता है केवल एक चर्बीमें नहीं है, मांसमें नाईट्रोजनका विशेष भाग है। आलब्युमीनके वर्गके सर्व पदार्थोंमें नाईट्रोजन है आलब्युमीन फिब्रिन, केझीन ग्ल्युटीन, (गेहूँका सत्व)

लेग्युमनि (चना इत्यादिका सत्व) इस वर्गमें आता है, जिसमें नाईट्रोजन बिलकुल नहीं होय ऐसे अन्न थोडे ही हैं । (कार्बोनवाले पदार्थ) ये पदार्थ खानेकी दो प्रकारकी वस्तुओंमें आते हैं, एक तो चर्बी जैसी वस्तु घृत तैल चर्बी दूसरी शरकराके समान वस्तु शक्कर खांड मिश्री बूरा गुड आरारोट साबूदाना चावल आदि चावल आरारोट आलू आदि चीजोंके सत्वको स्टार्च, कहते हैं और कार्बोनवाले पदार्थोंका मुख्य हेतु गर्मी उत्पन्न करनेका है, इसीसे शरीरमें चर्बी उत्पन्न होती है इससे शरीरको समानता मिलती है । जलपान करनेसे रक्ताभिशरण (रक्तका फिरता है । और शरीरके अन्दरके सर्व परिवर्त्तन तथा पाचन क्रिया आदि जलके संयोगसे होती हैं, इसीसे रस उत्पन्न होता है । क्षार हड्डियोंके लिये उपयोगी है लेकिन शरीरकी दूसरी धातुओंमें भी रहता है, शरीरके सुखके लिये चारों वर्गके पदार्थोंकी आवश्यकता है । इनमेंसे हरकिसी वर्गकी खुराक बांद करनेमें आवे तो मनुष्य तन्दुरस्तीकी दशामें अधिक समय पर्य्यन्त नहीं जी सक्ता । मनुष्यको युवावस्थामें ३० से लेकर ६० तोला पर्य्यन्त अन्नका आहार चाहिये, परन्तु यह वजन विदून जलके सूके अन्नका है, यदि आहारके साथ जल होय तो ६० से लेकर १०० तोला पर्य्यन्त आहार होना चाहिये । प्रत्येक मनुष्यको हररोज इतने आहारकी आवश्यकता है इसके अतिरिक्त पीनेका जल ९० से लेकर ८० तोलापर्य्यन्त हररोज चाहिये । सब मनुष्योंकी आहारशक्ति एक समान नहीं होती, किन्तु न्यूनाधिक होती है । इसका प्रत्येक मनुष्यके शरीरकी बनावट पाचनशक्ति परिश्रम देशकी आवहवाके ऊपर है शीतप्रदेशमें गर्म देशकी अपेक्षा थोडा आहार अधिक किया जाता है । और बैठे रहनेवाले मनुष्योंकी अपेक्षा परिश्रम करनेवाले मनुष्योंको अधिक आहारकी आवश्यकता होती है, क्योंकि काम करनेमें जो शारीरिक बल खर्चमें आता है उसके प्रमाणमें शरीरकी स्नायुके परमाणुका नाश होता है । उन परमाणुकी पूर्ति करनेके लिये परिश्रमी मनुष्यको उतने आहारकी आवश्यकता है, जितना कि उपद्रवरहित उसको पच सके । पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीकी आहारशक्ति अर्द्ध व पौन भाग होती है, नव वर्षकी उमरसे नीची उमरके बालकके लिये दूध आरारोट, साबूदाना चावलादि सत्ववाले आहार देना उचित है । दश वर्षकी उमरके बालकको स्त्रियोंके आहारसे अर्द्ध भाग आहार पचनेकी शक्ति हो जाती है और १४ वर्षसे ऊपर स्त्रियोंके समान आहारकी शक्ति होती है । १६ वर्षसे ऊपर आहारशक्ति बढते हुए २९ वर्षकी उमरतक पूर्ण युवावस्थाकी आहारशक्ति हो जाती है, स्त्रीजातिको १६ तथा १८ सालकी अवस्थामें आहारकी पूर्ण शक्ति प्राप्त हो जाती है । परन्तु ऊपर लिखे अनुसार पुरुषके आहारकी अपेक्षा आधी पौन परिमाण पर रहती है, आहारमें सदैव एक सौ भागमें २२ भाग नाईट्रोजन वाला पदार्थ

९ भाग चर्बीवाला पदार्थ जैसे घृत तैल मक्खन आदि ६९ भाग बूरा खांड स्टार्च (सत्व) वाले पदार्थ होयँ। आहारका पदार्थ वनस्पतिका होय अथवा मांसादि पदार्थोंका होय लेकिन शरीरके पोषणके लिये उपरोक्त तत्त्वोंके प्रमाणमें उसी प्रमाणसे होना चाहिये जो तत्व मांसमें विद्यमान हैं। वैसेही तत्व रूपान्तर भेदसे वनस्पतिमें विद्यमान हैं क्योंकि मांसमें जो तत्व हैं वे भी वनस्पति पदार्थोंमेंसे पहुँचे हुए हैं (इसीलिये हम मांस खानेकी अपेक्षा वनस्पतिका खाना उत्तम समझते हैं) इस कारण वनस्पति खानेवाले और मांस खानेवाले मनुष्यके शरीरका पोषण एक समान होता है। एक वस्तुमें चर्बी अधिक होती है जैसे घृत अथवा मक्खन तो दूसरी वस्तुमें नाईट्रोजन विशेष होय जैसे गेहूँ और मांस तथा चावलमें स्टार्च (सत्व) का भाग अधिक है। परन्तु आहारमें सर्व पदार्थोंका संयोग मिलाकर तत्त्वोंको देखिये तो उनका एक समान प्रमाण होता है और पारिमित प्रमाणसे तत्त्वका प्रमाण विशेष होय तो वह व्यर्थ ही जाता है अथवा उससे व्याधि उत्पन्न होती है। मनुष्य आहार विशेष करे और परिश्रम थोडा करे तो मेद वृद्धिका रोग उत्पन्न होता है, इससे. पेट तथा अन्य अवयव फूल जाते हैं, इसी प्रकार तैल घृतादि पदार्थ अधिक खानेसे चर्बी बढ मनुष्य स्थूल हो जाता है। सदैवके आहारमें इन चार तत्त्वोंके पदार्थ होने चाहिये, यही नहीं किन्तु आहारकी वस्तुओंमें भिन्नता होनी चाहिये यदि एक प्रकारकी वस्तु सदैव आहारमें आवे तो उसपर रुचि नहीं रहती इसलिये भोजनके पदार्थ पृथक् २ जातिके होने चाहिये और उनमें पाचनशक्ति रखनेवाले लवण मसाले धनियां जीरा सोंठ मिर्च तेजपत्र अनारदानादिका संयोग होना चाहिये। यदि इन मसालोंरहित आहार किया जावे तो खानेमें रुचि नहीं बढती और आहार थोडा किया जाता है। लेकिन स्वादिष्ट वस्तु आहारमें होवे तो वह आहार पूर्णरीतिसे किया जाता है, आहारकी प्रत्येक वस्तु उत्तम रीतिसे स्वच्छतापूर्वक पकाई जावे यदि आहारकी कोई वस्तु अपक्व रह जावे तो खाई नहीं जाती और पचनेमें विशेष विलम्ब होता है तथा रोगकी उत्पत्ति होती है। मनुष्यको हररोज दिनमें तीन समय आहार मिले तो शरीरकी पुष्टता और प्रकृतिको सुख मिलता है, इन प्रत्येक आहारमें ६ घंटेका अन्तर होना चाहिये, प्रातःकालको ६ व ७ बजे, मध्याह्नको १२-१ बजे, सामको ७ व ८ बजे इन आहारोंके पचनेपर यदि शरीरको अधिक पुष्ट बनाना होय तो रात्रिमें शयन करनेसे १ घंटे पूर्व रुचिके अनुसार दुग्ध पान करे, परन्तु इसका आधार विशेष करके मनुष्यकी आदतके ऊपर है। इस देशके मनुष्य प्रायः ऋषी मुनी होते आये हैं और उनका मुख्य धर्म तपस्या और तितिक्षा सहन करना था, इसकि अनुगामी गृहस्थ लोग भी होते थे। सो कोई एक

समय आहार लेता था और कोई दो समय लेता था इसकि अनुसार दो समय आहार करनेकी प्रणाली इस समय भी चली जाती है। जैन मुनीजन अब भी ऐसे हैं कि पर्वके दिनोंमें अब भी कई २ दिवसके अन्तरसे आहार लेते हैं, इस देशके मनुष्य जीवित रहनेके लिये आहार करते हैं और यूरोपके भोगविलासियोंका जन्म आहार करनेको ही हुआ है। इस देशके मनुष्य जो अधिक परिश्रम करते हैं वे तीन चार समय आहार करते हैं और उनकी पाचनशक्ति तीव्र होती है सो उनको आहार करना ठीक ही है। चाहे मनुष्य परिश्रमी होय चाहे वैठाळ होय उसको अपनी आरोग्यता नियत रखनेके लिये समय पर भोजन करना उचित है, भोजनके समयका व्यतिक्रम न करे जो भोजनके समयका व्यतिक्रम करते हैं उनको अवश्य रोगी बनना पडता है और पाचनशक्ति विगड जाती है। शीघ्र पचनेमें चावल सब अन्नोंसे हलका है ओझरीमें पहुंचकर दो ढाई घंटेमें पच जाता है। परन्तु इसमें शरीरका पोषण पहुँचानेवाला भाग बहुत ही कम है सैकडा पीछे ९ भाग हैं इसलिये जो लोग केवल भातका ही आहार करते हैं उनको भात विशेष खाना पडता है लेकिन चावल पुराना एक दो सालका रखाहुआ खाना चाहिये, नवीन चावल खानेसे पेटमें दर्द और अजीर्ण होता है, साबूदाना, टापियोका, आरारोट इनके पाचन होनेमें चावलकी अपेक्षा कुछ अधिक समय लगता है। ये तीनों पदार्थ वृक्षका अवयव हैं इनमें केवल स्टार्च (सत्व) का भाग है बालकोंकी पाचनशक्तिके अनुकूल हैं। बाजरा, ज्वार, जौ, मकई, गेहूं ये क्रमपूर्वक एक दूसरे पाचनमें भारी हैं। गेहूंमें सैकडा पछि १९ व २० भाग पौष्टिक है। और ज्वार, बाजरा, जौ, मकई इनमें सैकडा पीछे १० से १२ भाग पौष्टिक है। सौ भाग गेहूंमेंसे अस्सी भाग उत्तम आटा निकलता है, बाकी छिलका भूसी आदि निकलते हैं, गेहूंकी दो जाति भारतभूमिमें उत्तम होती हैं कठिन और कोमल, नर्म और सफेद, लाल और कठिन गेहूंमें पौष्टिक भाग अधिक है। परन्तु इस जातिके गेहूँ पचनेमें भारी हैं यह रोगीको न देना चाहिये, सफेद गेहूं इसकी अपेक्षा शीघ्र पचता है, गेहूंकी भूसीभी पौष्टिक है। गेहूंकी रोटी पूरी आदि पक्वान्न तथा मिठाई आदि बनती हैं, वे सब पचनेमें भारी होती हैं। पूडी व मिठाईकी अपेक्षा रोटी हलकी है साधारण रोटियोंकी अपेक्षा खमीरी रोटी हलकी होती है, १ सेर आटेकी रोटी पकाकर वजन किया जावे तो १॥ करीब होती हैं। गेहूँमें चर्बी तथा क्षारका भाग कमती है, इससे जो लोग केवल गेहूंका आहार करते हैं उनको इसके साथमें घृत तथा क्षार (लवण) खानेकी आवश्यकता रहती है। जिस प्रान्तमें गेहूंकी उत्पत्ति कम होती है अथवा वहांके लोग गरीबीके कारणसे ज्वार, बाजरा, मकई आदिकी रोटी खाते हैं इनसे भी शरीरका पोषण उत्तम रीतिसे होता है। ज्वार,

बाजरा, गेहूंकी अपेक्षा सरलतापूर्वक पचता है, अरहरकी दाल, चनेकी दाल, मूंग, उडद, सेंमके बीजकी दाल .चौला (लोमिया) कुलथी, मौंठ इनकी रोटी अथवा चावलके साथ दाल बनाकर खाते हैं, ये सब अन्न पौष्टिक हैं। इनमें सैकडा पीछे वीससे अधिक पौष्टिक भाग है। चनेमें सैकडा पीछे २२ भाग पौष्टिक है और यह घृत तैलको विशेप पीता है क्योंकि रूक्ष है इसमें चर्बीका भाग नहीं है, किन्तु है तो किञ्चित है। आहारके पदार्थोमें दुग्ध सबसे उत्तम पदार्थ है, इसके अन्दर शरीरके पोषणके अर्थ तथा आरोग्यताके लिये चारों पदार्थोंके तत्त्व हैं। और दूधके कई भेद हैं, स्त्रीका दुग्ध, गधीका दुग्ध, बकरीका दुग्ध, गौका दुग्ध भैंशका दुग्ध उंटनीका दुग्ध ये क्रमपूर्वक एक दूसरेसे पौष्टिक हैं। ऊंटनीके दुग्धमें क्षारका भाग अधिक है इसीसे प्रायः उदर रोगमें उपयोगी समझा जाता है। उपरोक्त दुग्ध एककी अपेक्षा दूसरा और दूसरेकी अपेक्षा तीसरा पचनेमें क्रमपूर्वक भारी है, गौका दुग्ध बडी उमरके मनुष्योंके उपयोगमें साधारण आता है इसका विशिष्ट गुरुत्व १०३० डिग्रीका है, दुग्धके १०० भागमें १० भाग घन पदार्थ मावा और ९० भाग द्रवरूप जलका है। यदि कोई बडी उमरका युवा मनुष्य अन्नका आहार त्याग कर दुग्धके आहारके ऊपर रहना चाहे तो ४—५ सेर दुग्ध उसके आहारके वास्ते ठीक है, बकरी तथा गधीका दुग्ध छोटी उमरके बालकोंको विशेष उपयोगी होता है। यदि छोटे बालकको गौका दुग्ध दिया जावे तो थोडा बूरा अथवा मिश्री और थोडा जल मिलाकर देना चाहिये। रोगी पशुका दुग्ध काममें न लेना चाहिये। और हालकी प्रसूता पशुका दूध भी लेना उचित नहीं है, यदि दुग्धको बालकोंके लिये प्रातः कालसे मध्याह्न व सायंकाल पर्य्यन्त रखना होय तो गर्म करके उसमें थोडा बूरा मिश्री व सोडा डालकर रख देवे, दुग्धकी मलाई उतारलेनेसे पौष्टिक भाग कम हो जाता है।

आहारमें घृत मुख्य स्निग्ध और पौष्टिक पदार्थ है, इस देशके आर्य्य सन्तान प्रायः अधिकांश मांस भोजनके त्यागी होते हैं उनके जीवनका आधार और शरीरके पोपक दोही पदार्थ हैं घृत और दुग्ध। इन्हींके पूर्णतया न मिलनेसे ही आर्य्य सन्तान निर्बल होकर अधिक मरते हैं और निर्बल शरीरपर अनेक प्रकारके रोग आक्रमण करते हैं। जिस भूमिमें दया धर्मका मुख्य अङ्ग था उसी भूमिमें आधुनिकसमयमें कतिपय पशु हनन किये जाते हैं। राजशासनके नियमसे जो कायदा मनुष्य वधिकोंके दण्डका है यदि वही कायदा पशुओंके वधिकोंको नियत किया जावे तो कोई भी पशु वध करनेमें प्रवृत्ति न करे, राजशासन प्राणीमात्रके सुखके अर्थ बुद्धिमानोंने नियत किया है, इस समय जो कुछ घृत द्रव्यपात्रोंको धनवलसे प्राप्त होता है उसमें खोपडा तथा महुआके तैलका मेल होता है और ताजी मक्खनमें भी दही सिंघाडेका आटा चर्बी

आदि मिलाकर वेंचा जाता है। निष्केवल घृत मिलना कठिन हो गया है, घृतकी बातको छोडकर उत्तम तैलका मिलना भी दुर्लभ हो गया है। ऊंचे दर्जेके तैलोंमें नीचे दर्जेके खराव तैल मिलाये जाते हैं। तैल भी इस समय एक रुपयेका सवासेर व डेढ सेरसे अधिक नहीं मिलता। सीकिया मुल्कोंको तिलहनकी वस्तु चली जाती है, जव कि स्निग्ध पदार्थ आहारमें घृत तैलादि न मिलें तो किस आधारपर यहांके मनुष्य वलिष्ट और आरोग्य रह सक्ते हैं। मद्य, शराव, दारू, इसके कई नाम हैं यह आजकल इस देशके मनुष्योंकी आवादीमेंसे अनेक जातिके मनुष्य इसको आहारके प्रथम पीते हैं और कितने ही दो चार घंटेके अन्तरसे दिन रात पीया करते हैं। आयुर्वेद वैद्यकमें इसको औषध प्रयोगमें लिया जाता है, इनमें कितनी ही प्रकारकी मद्य हलके मदवाली हैं और कितनी ही तीव्र मदवाली हैं। परन्तु इस समय अधिक प्रचार यूरोपियन शरावोंका इस देशमें हो रहा है और मद्यका सत्व (आल्कहोल है) जिसमें ये सत्व अधिक है वह तेज मदवाली है, जिसमें यह सत्व थोडा है वह हलके मदवाली है। इसमें जल तथा रंग अम्लपदार्थ तथा हलकी शराबमें मेल भी वेचनेवाले करते हैं, यूरोपसे आईहुई शरावमें देशी शरावका मेल भी होता है, साधारण शरावोंमें ब्रांडी पोर्टवाईन शेरी शापेन, वीयर, जिन, वीस्की, रम इत्यादि नामवाली काममें आती हैं। इन शरावोंके पीनेसे प्रथम नाडी शीघ्रगामी होती है शरीरमें गर्मी और फुर्त्ती माळूम होती है थोडे समयके पीछे इससे विपरीत परिणाम होता है नाडीकी गति मन्द हो जाती है। शरीरकी गर्मी तथा फुर्त्ती नष्ट हो जाती है, यदि शरावको आहारके पदार्थोंमें समझा जावे तो कार्वोनके विभागमें गिना जाता है, क्योंकि इसमें नाईट्रोजनका पौष्टिक भाग नहीं है। हम ऊपर लिख चुके हैं कि रुग्णावस्थामें औषध प्रयोगोंमें ली जाती है, अव आरोग्यावस्थामें मनुष्योंको शरावके सेवनकी आवश्यकता है कि नहीं, यह एक वडा कठिन प्रश्न है? क्योंकि जिन स्त्री.पुरुषोंको इसके सेवनकी आदत पड रही है वे हमारे यथार्थ कथनको श्रवण करके कुपित होंगे, जो इसको नहीं पीते हैं वे धर्म विरुद्ध समझते है वे पढकर खुश होंगे। परन्तु हम उभय पक्षकी परवा न करके हिकमतसे सिद्ध कियेहुए सिद्धान्तके अनुसार यही कहते हैं कि आरोग्यताकी दशामें शराव सेवन करनेकी बिलकुल आवश्यकता नहीं है यह प्रत्येक वैद्य हकीम और डाक्टरोंका सिद्धान्त है। धर्म ग्रन्थोंसे भी इसका पीना निषिद्ध है भारत जैसे कि ऊष्म प्रधान देशमें मद्य पीनेकी आवश्यकता बिलकुल नहीं है औषध प्रयोगके अतिरिक्त शीत प्रधान देशोंमें भी मद्य पीनेकी आवश्यकता नहीं है, जो लोग उत्तर ध्रुवके अति शीत प्रधान देशोंमें सफर करनेको गये हैं उनका सिद्धान्त है कि मद्य शीत मुल्कोंमें पीना भी ठीक नहीं है। उनमेंसे एक डाक्टर हेझ नामक महाशय जो

उत्तर ध्रुवकी ओर पृथिवीके देशोंकी खोजमें गये थे उनका भी यही सिद्धान्त है कि अति शीत प्रधान देशोंमें भी इस मद्यके पीनेकी आवश्यकता नहीं है । जैसे निरोगी मनुष्यको अफीम भांग आदि अभक्ष्य हैं इसी प्रकार मद्य भी अभक्ष्य है, जो स्त्री व पुरुष शौकमें फँसकर इसका सेवन करते हैं उनको इससे विशेष हानि पहुँचती है । हृदय, क्लोम, रक्ताशय, फुप्फुस, पक्वाशयको बिलकुल खराब कर देती है, यदि जिन स्त्री पुरुषोंको इसका व्यसन पड रहा है और यह न छूट सके पीनेकी आवश्यकता ही पडे तो हलके मदवाली शराब जैसे बीयर, शेरी, पोर्टवाईन इनमेंसे किसी एकको भोजनके पूर्व आधा पळ लेवें । ब्रांडी आदि तेज मदवाली शराब कदापि न पीनी चाहिये, *कितने ही शराबियोंका यह कथन है कि शराब पीनेसे क्षुधा लगती है परन्तु* जिन मनुष्योंको स्वाभाविक क्षुधा लगती है उनको नकली शराबी क्षुधासे कुछ प्रयोजन नहीं है । अधिक शराब पीनेसे मनुष्यको नशा चढता है और नशेमें अपनेको बडा खुश मिजाज समझता है परन्तु शक्ति नष्ट होकर बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, इसी प्रकार करनेसे शराब पीनेकी आदत पड जाती है। यूरोपादि देशोंमें शराब पीनेकी विशेष रवाज हो गई थी लेकिन अब वहांके लोग पश्चात्ताप करते हैं तथा इसके कम करने और एकदमसे त्यागनेका प्रयत्न करते हैं । अनेक समझदार लोगोंने एकदम त्याग दी है और जनसमूहसे त्यागनेकी प्रतिज्ञा कराते हैं, अफसोस है कि इस भारतवर्ष ऊष्म प्रधान देशमें मद्यका प्रचार दिनोदिन बढता जाता है, महाराष्ट्र प्रांतके कुछ सज्जनोंने पूनामें इसके कम करनेका प्रयत्न किया था । मांसाहार करना सबसे घृणित और निष्ठुरताका आहार है, आयुर्वेदमें क्षयादि रोगोंपर बल वृद्धिके अर्थ इसके प्रयोग कथन किये गये हैं । परन्तु जहांतक अन्य प्रयोगोंसे मनुष्यकी रक्षा हो सके वहांतक इसको काममें न लेना चाहिये, क्योंकि मांस अनेक जातिके पशु पक्षी और जलजन्तुओंके वध करनेके शिवाय प्राप्त नहीं हो सक्ता । कितने ही रोगी पशुओंके मांसमें कई प्रकारके कृमि होते हैं और कितने ही प्रकारके मांसमें स्वाभाविक विष होता है ये कृमि और विष मांस खानेवाले मनुष्योंको हानि पहुंचाते हैं, मद्य और मांस ये दोनोंही पदार्थ मनुष्यको हानिकारक हैं सो जहांतक हो सके इनको आहार वर्गमेंसे त्यागना उचित है । शराब पीनेसे मनुष्यको कई प्रकारकी हानि है इसका व्यसन लगनेपर लोग नियम विरुद्ध शराब पीते हैं, द्रव्यहीन दरिद्री हो जाते हैं शराबके नशेमें अनेक प्रकारके राजनियमके विरुद्ध गुनाह कर राजदण्डके अधिकारी होते हैं शरीरमें अनेक प्रकारकी व्याधि उत्पन्न होकर रोगी बन जाते हैं । अग्नि मन्द हो जाती है ओझरी, कलेजा, रक्ताशय, मूत्रपिण्ड, मगजकी व्याधि उत्पन्न होती हैं और क्षय रोग हो जाता है । इसी प्रकार मांसमें अनेक प्रकारके कीट तथा उनके अण्डे रहते हैं और विषैला मांस

नेसे अथवा अयोग्य आहार करनेसे व्याधि होती है उसी प्रकार कम आहार करनेसे अधिक उपद्रव होते हैं। इसका प्रमाण दरिद्री मनुष्योंमें तथा दुर्भिक्ष पीडितोंमें अधिक देखे जाते हैं आहारकी न्यूनतासे मांस सूखकर हाड पिंजर दीखने लगते हैं इसके साथ ही अतीसार पेचिश ऐंठा व्रण, रक्तविकार, शोथ, अस्थिशोष, क्षय अनेक प्रकारकी व्याधि होती हैं। आहारके पदार्थोंके साथमें अनेक रोगोंका सम्बन्ध है, आहारकी वस्तु बेचनेवाले लोगोंमें यदि कोई चेपी या संक्रामक व्याधि होवे तो आहारके पदार्थ उस ठिकानेसे कदापि न लेवे, यदि लेवे तो चेंपीया संक्रामक रोगोंके विस्तार होनेको सहायता मिलती है। यहांतक दूधकी मार्फत टाईफाईडफीवरका फैलाव होते देखा गया है, (आरोग्य रहनेको आश्रम घर) आरोग्यता विशेष करके रहनेके घर और उसके आसपासकी वस्तुओंके ऊपर है, परन्तु दरिद्री लोगोंको जैसे मिल जावे वैसे मेंही निर्वाह करना पडता है। सदैव घर ऊँची भूमिपर बनाना चाहिये उसके आसपास पानी भरनेके खड्डे व दलदलवाली भूमि जिसमें कीचड आदि भरी रहती होय ऐसे ठिकाने पर कदापि घर न बनावे। तालाब व नदियोंके समीप घर बनाना उचित नहीं है, जहांपर जंगली वनस्पति सडती होवे वहांपर कदापि घर न बनावे, इस सडांदसे ज्वर उत्पन्न होता है। मकानकी कुर्सी जमीनसे दो व ३ फुट ऊँची होनी चाहिये जिससे वर्षात्के दिनोंमें पानी और शीलका असर न होवे। शीलवाले मकानमें प्रायः रोग उत्पन्न होता है, मकानकी छतको व खपरेलको इतना ढाल रखे कि वर्षात्का जल पडते ही बह जावे, मकान ऐसा बनाओ जिसमें सदैव प्रकाश रहे और ताजी वायुके आने जानेके वास्ते उसमें आमने सामने खिडकी और दरवाजे रखने चाहिये। अन्धकारवाले मकानोंमें सदैव रोगकी उत्पत्ति रहती है और अनेक प्रकारसे जन्तुओंकी पैदा-यश होती रहती है, यह मसल मसहूर है कि "जहां प्रकाश नहीं जाता वहां हकीम जाता है" सूर्य्यके प्रकाशसे घरकी स्वच्छतामें सहायता मिलती है। मकानके समीप ऐसे घनिष्ट वृक्ष न होने चाहिये जिससे मकानके अन्दर प्रकाश और वायुके जानेमें रुकावट पहुंचे, प्रकाशसे घरके कीडे मकोडे व मक्खी मच्छर तथा जहरी जन्तु भाग जाते हैं। पर्देनशीन स्त्री और बालकोंको अन्धेरे मकानमें कदापि न रखे अन्धकारमें रहनेसे उनके शरीर पीले पड निर्बल और रोगी हो जाते हैं। मनुष्यमात्रको प्रकाशवाला घर आरोग्यता रखनेमें उपकारी होता है, मकानकी दिवाल व छत्तमें झरोखे और रोशनदान रखने चाहिये, जो कोठडियां मनुष्योंके सोने बैठनेकी हैं उनमें खाने पीनेका सामान तथा अन्य वस्तु न रखे। यदि उनमें धूंआ निकलनेका मार्ग न होय तो अग्नि न जलावे, यदि कभी अग्निकी आवश्यकता पडे तो दहकतेहुए निर्धूम कोयलेके अंगार रखे और मकानका दरवाजा खुला रखे। क्योंकि बन्द मकानमें अग्नि रखनेसे

कार्वोनिक ऐसिड ग्यैस मनुष्यकी श्वासके साथ अन्दर चली जाती है तो मनुष्य अचेत हो जाता है और विषका फल होता है । घरके समीप कूडा कचरा गलीज वस्तु व जिसके सडनेसे दुर्गन्ध उत्पन्न होय कदापि न डालनी चाहिये, मोरी व खार यह घरके अन्दर ऐसे ठिकाने पर होना चाहिये कि मनुष्योंके सोने वैठनेकी जगहसे पृथक् हो, इसको पत्थर व पक्के चूनेकी गचसे ऐसा ढालू वनवाना चाहिये कि जिससे मूत्र व पानी आदि सव मकानसे बाहर निकल गन्धे पानीकी नालियों तथा गटरमें जा मिले । संडास मकानके किसी ऐसे भागमें होनी चाहिये कि जिस भागकी ओरकी हवा मकानके अन्दर न आती हो, जहांपर मेहतर मलको उठाने आता होय वहांपर किसी किस्मकी दवा ऐसी मेहतरके हाथसे डलवा दिया करे जैसे फिलाईन जिससे संडासमें दुर्गन्ध तथा जन्तुकी उत्पत्ति न होने पावे, मेहतर मलको ले जाकर जमीनमें गाड दिया करे । जिन वडे शहरोंमें गटरके जारिये मलको किसी नदी व दर्यावमें पहुंचाते हैं वहांकी संडासोंमें प्रतिदिवस अधिक जल डालकर साफ कर देना चाहिये । मल मूत्रको नदीमें डालना व गटरको नदीमें मिलाना बिलकुल अनर्थ है, परन्तु पश्चिमी सभ्यताका प्रचार इस देशमें बढा जाता है) प्राचीन कालकी यह रवाज इस देशमें है कि मट्टीकी दो कूडी संडासमें राख व मट्टी डालकर रखनी चाहिये, एक कूंडीको मेहतर ले जावे और दूसरी रख जावे ।

चार व छः महीने वाद मकानमें चूना व खडिया लगाकर पोतना चाहिये कि मकान शुद्ध रहे कीडोंका जमाव न रहने पावे । घरके अन्दर किसी प्रकारका विल व वांबी न रहनी चाहिये, घरके समीप थोडे फैसलेसे सुगन्धित पुष्पके झाड व वेल वूटे लगाने चाहिये, जिससे कार्वोनिकको शोपण कर वायु शुद्ध रहे । घरके समीप अमली ववूल, छोंकराके वृक्ष न होना चाहिये, इनसे तन्दुरुस्ती बिगडती है, ऐसे वृक्ष भी न होने चाहिये कि जिनके पत्र वायुके वेगसे खडपडाते होयँ जैसे पीपल ।

आरोग्यताके अनुकूल वस्त्र ।

वस्त्र भी मनुष्यकी आरोग्यता रखनेमें कारणभूत हैं, वस्त्र ऋतुके अनुकूल पहरने चाहिये । शीत ऋतुमें तथा शीतप्रधान देश जैसे उत्तर भारत हिमालय प्रान्तमें ऊष्ण वस्त्र पहरना चाहिये, ऊष्ण जैसे ऊनके वस्त्र व रुईदार वस्त्र पहननेसे शरीरकी गर्मी वाहर नहीं निकलती और शरीरकी गर्मीसे बाहरकी शीतल पवन नहीं मिलने पाती । ऊष्ण ऋतुमें अथवा ऊष्मा प्रधान देश दक्षिण भारतमें स्वभावसे ही शीत कम और ऊष्मा विशेप रहती हैं, इस ऋतु और देशके अनुकूल सूती वस्त्र हैं । उत्तर भारत हिमालय प्रान्तके मनुष्य गौर वर्ण और दक्षिण भारतके मनुष्य कृष्ण वर्ण होनेका कारण सर्दी व गर्मी है, यदि सर्दीकी ऋतुमें गर्म वस्त्र न

पहना जावे तो ज्वरादि रोग उत्पन्न होते हैं। शरीरके दो भाग विशेष सुकुमार हैं शिर और बीचका धड् बीचके धडमें फुप्फुसा रक्ताशय हृदय आंतडा आई हुई हैं, इन अङ्गोंमें सर्दी तथा गर्मीका विशेष असर पहुंचता है। इनकी रक्षा योग्य वस्त्रोंसे करनी चाहिये, हाथ व पैर इनको सर्दी व गर्मीका असर कम पहुंचता है। शिरपर असर हुआ होय तो शिरपर गर्म वस्त्र लपेटना चाहिये, इसी प्रकार आंतडेमें सर्दीका असर हुआ होय तो फलालेन व रुईदार वस्त्र लपेटकर रखना चाहिये। सर्दीकी ऋतुमें सुकुमार बालकोंको प्रायः सर्दी लगनेसे खांसी जुखाम बुखारादि व्याधियां हो जाती हैं, उनकी योग्य वस्त्र व योग्य आहारसे रक्षा करनी चाहिये, जो वस्त्र दिनके समय पहने जाते हैं उनको रात्रिके समय उतार कर रख देवे। दिनके समय जो पसीना उनमें लगता है वह सूख जावेगा और जब वस्त्र मलीन हो जावें तब धोकर साफ करलेवे, कारण कि मलीन वस्त्र पहननेसे चर्म रोग और जूं उत्पन्न होते हैं।

स्नानकी आवश्यकता।

जैसे स्वच्छ आबादीके तरीकेसे बनेहुए नगरोंमें निकम्मे जल बहनेकी हजारों नालियां बनीहुई हैं, उसी प्रकार शरीरकी रचनामें भी ऐसी अनेक नलियां शरीरसे निकम्मे मवादको निकालनेके वास्ते प्रवाहित रहती हैं। शरीरका निकम्मा मवाद दो मार्गोंसे निकलता है, जो मवाद हलका है वह मुख और नासिकाके मार्गसे श्वास प्रश्वासके द्वारा निकलता रहता है, जो मवाद भारी है वह चर्मजिल्दमें बनीहुई नालियों (लोमकूपों) से पसीनारूपी निकम्मा मवाद निकलता है, एक रुपये भर जगहमें सैकडों लोमकूपरूपी नालियां हैं। इनमेंसे सदैव निकम्मा मवाद पसीना रूपमें निकला करता है। इसके द्वारा शरीरकी खराब रतूबत बाहर निकलती रहती है, जो लोग अधिक परिश्रम करते हैं उनका पसीना बिन्दुरूपमें टपकने लगता है। एक दिवसमें परिश्रमी मनुष्यके शरीरमेंसे एक बोतलके करीब पसीना निकलता होगा और कभी २ इससे भी अधिक निकलता है, इस पसीनेके साथ कितने ही अंशमें शरीरकी विगड़ी वस्तु भी निकल जाती है। इन छोटी २ नालियोंके मुख चर्मजिल्दको धोकर साफ रखनेसे खुले रहते हैं, यदि स्नान किया जाय तो मलसे उनके मुख बन्द हो शरीरका निकम्मा मवाद यथार्थ रीतिसे नहीं निकल सक्ता। इससे खाज आदि अनेक प्रकारके चर्म रोग होते हैं, इससे उचित है कि निरोगी मनुष्य हररोज एक समय स्नान किया करे। शीत ऋतुमें गर्म जलसे शरीर पर साबुन मलकर स्नान करे। उष्ण ऋतुमें शीतल जलसे स्नान करे, स्नानका स्थान एकान्त निर्वात स्थान जहांपर वायुके झकोरे न आते होयँ वहां होना चाहिये। क्योंकि स्नान करनेसे शरीरके लोमकूप खुलेहुए रहते हैं, उस समय लोमकूपोंमें होकर शरीरके अन्दर वायु प्रवेश कर जावे तो व्याधि उत्पन्न हो

तथा परिश्रम न करनेसे मनुष्य आलसी हो जाते हैं, कदाचित् अकस्मात् कभी परिश्रम करनेका काम आ पडे तो थोडा परिश्रम करनेसे ही उनका दम फूल जाता है और हाफ २ कर बातें करने लगते हैं। ऐसे आलसी मनुष्य न तो कुछ अपना काम कर सक्ते हैं न दूसरोंको कुछ सहायता पहुंचा सक्ते हैं। बालकोंकी कसरत खेलना कूदना भागना है खेलना कूदना सब ही बालकोंको प्रिय है, इस व्यायामसे बालकोंको लाभ पहुंचता है। गेंद फेंकना भागना गोली टीच खेलनादि क्रियायोंसे बालकोंके हाथ पांव बलिष्ट होते हैं, चिल्लाने और हँसनेसे उनकी आरोग्यता बढती है। कोई २ बालक ऐसे खेल प्रिय होते हैं कि अपना पाठतक नहीं सीखते, कोई २ बहुत कम खेल कूदमें रुजू होते हैं। अध्यापकोंको उचित है कि बालकोंको कुछ समय व्यायामको अवश्य देवे, जो बालक १६ वर्षकी उमर पर पहुंच गये होयँ उनको दण्ड, बैठक, लकडी फेंकना (पटेबाजी) निशानेवाजी व मल्लयुद्धकी क्रियाके दाँव पेंच सिखावें और व्यायाम करनेके पीछे एक वालक दूसरेके शरीरको मध्य बलसे मर्दन करे। १६ वर्षसे नीचे उमरके बालकोंको केवल खेलकूदके शिवाय दण्ड कसरत न करनी चाहिये, क्योंकि छोटी उमरमें दण्ड कसरत करनेसे उनकी अस्थियां लम्बाईमें कम बढती हैं मोटी और मजबूत विशेष हो बालक ठिगना रह जाता है। कन्याओंका व्यायाम खेल कूद है और लडकियोंके माष्टरजीको उचित है कि (कालीदास माणिकजी रचित कन्याओंके लिये सरल व्यायाम नामकी पुस्तक) द्वारा कन्याओंको व्यायाम सिखावें, इसमें कई प्रकारका व्यायाम लडकिओंको सिखानेके लिये सरलरीतिसे सचित्र दिखलाया गया है। इस व्यायामसे कुमारिओंके शरीर आरोग्य और वलिष्ट हो सक्ते हैं, शरीरमें फुर्त्ती और पाचनसक्ती बढती है। युवा स्त्रियोंकी कसरत घरका कामकाज व वालकोंका पालनपोषण और उनको खिलाना व उनके साथ खेलना है। आलसी होकर सो रहना व आराम तलबीसे बैठे रहना मेद वृद्धिका कारण और वन्ध्यत्व दोषका स्थापन करता है। युवा पुरुषोंका व्यायाम उनका रोजगार है, परन्तु रोजगारके दो भेद हैं एक तो शारीरक परिश्रम दूसरे मानासिक परिश्रम, जो लोग शरीरसे परिश्रम करते हैं जैसे बोझा उठाना मार्ग चलना मील व कारखानेमें काम करना लोहार व वढईका काम करना इत्यादि परिश्रम उनका पूर्ण व्यायाम है। लिखेपढे लोग जो हाफिस व दफ्तरोंमें काम करते हैं वडी उमरके विद्यार्थी जो स्कूल कालेजोंमें शिक्षा पाते हैं व्यवहारी लोग जो दूकानोंपर दिनरात वैठे रहते हैं उनको प्रातःकाल और सायंकाल गेंद बल्ला व क्रिकेटका खेल अत्यन्त उपयोगी है। जिनका मन खेलमें न

१ बालिकाओंके लिये सरल व्यायाम नामकी पुस्तक ।=) में काशीनागरी प्रचारिणी सभासे मिलती है।

लगे उनको सायंकाल व प्रातः काल एक दो मीलका भ्रमण करना चाहिये, खाली पेट और भोजनके पीछे कसरत करना हानि पहुंचाता है ।

आरोग्यताके निमित्त निद्राकी आवश्यकता ।

विना शयन किये मनुष्यका जीवन नहीं रह सक्ता, जब कि मनुष्य दिनभर परिश्रम करता है तो रात्रिके समय वह अवश्य थक जाता है, उस समयपर शरीर और मन दोनोंको विश्राम देनेकी आवश्यकता पडती है । जो कुछ परिश्रम मनुष्य दिनभर करता है उससे शरीरके परमाणुकी कुछ न कुछ कमी अवश्य होती है, विशेष करके यह कमी शयन करनेसे ही पूर्ण होती है । क्योंकि किसी कूप व वावडीमेंसे दिन भर जल निकाला जाय तो उसका जल कम हो जाता है और रात्रिको जल निकालना वन्द करदिया जावे तो पुनः कूप व वावडीमें जल पूर्णरूपसे हो जाता है । इसी प्रकार दिनभर परिश्रम करनेके पीछे रात्रिके समय मनुष्यको निद्रा अवश्य लेनी चाहिये, रात्रिके समय विश्रान्ति लेनेसे जब प्रातःकाल मनुष्य शयनसे उठता है तब जरा भी थकावट माल्लम नहीं होती । और शरीरके परमाणु जो परिश्रममें खर्च हो चुके हैं वे पुनः संचित हो जाते हैं । इसलिये बलवान और आरोग्य होनेके निमित्त प्रत्येक मनुष्यको रात्रिभर निद्रा लेना चाहिये, निद्रा लेनेके लिये रात्रिकाही समय ठीक होता है धनवान लोगोंके शयन करनेका तो कोई समय ही नहीं है क्योंकि आराम तलवीमें दिन रात्रि पलंगपर पडे रहते हैं । परन्तु निर्धन दरिद्री लोग प्रायः वहुत कम समयतक सोते हैं, वृद्धावस्थामें स्वभावसे ही निद्रा कम आती है । लेकिन युवा पुरुषोंकी अपेक्षा बालकोंको अधिक सोना चाहिये, क्योंकि युवा मनुष्योंकी अपेक्षा बालक निर्बल होते हैं, उनको अधिक आराम मिलनेकी आवश्यकता है । दो सालतककी उमरके बालकको दिन रातमें १४ घंटे सोना चाहिये और दोसे ७ वर्षकी उमरतकके बालकको ११ घंटे सोना चाहिये, ७ से १२ सालतककी उमरके लडका लडकियोंको ९ घंटे सोना चाहिये और इसके उपरान्त ७ घंटे सोनेकी अति आवश्यकता है । लेकिन किसी मनुष्यका स्वभाव अधिक समयतक शयन करनेका और किसीका कम होता है । मनुष्योंको उचित है कि रात्रिको ८ वजे भोजन करके १० वजे शयन करे और प्रातःकालके ५ वजेसे ६ पर्य्यन्त उठ बैठे तो प्रातःकाल आरोग्य और बलवान होकर उठते हैं धर्मशास्त्रमें भी रात्रिके चतुर्थ याममें उठना लिखा है । (ब्राह्ममुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौचानुचिन्त-येत् । कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च ॥) प्रातःकाल दो घडी रात्रि रहे तब उठना चाहिये और धर्म, अर्थका चिन्तन करे, इनके उपाजर्नमें जो बाधक कायक्लेश रोगादिक हैं उनके निवारणका उपाय कर वेदतत्त्वार्थको भी विचारे । अब

यह निश्चय हुवा कि परिश्रम करनेवाले मनुष्यको कमसे कम सात घंटे नींद अवश्य लेनी चाहिये। अच्छी निद्रा आनेका उपाय यह है कि मनुष्य अपनी सामर्थ्यके अनुसार दिनभर परिश्रम करे। और भोजन करते ही कदापि न सोवे, ऐसा करनेसे मनुष्य अचेत सो जाता है और बुरे २ स्वप्नमें ख्यालात फँस जाते हैं, प्रायः अजीर्ण ही भोजनके पचानेमें आमाशयको बडा परिश्रम करना पडता है। मस्तिष्क शान्त नहीं रहता इसीसे कल्पित स्वप्न जिनका कुछ फल नहीं है हुआ करते हैं, मनुष्यको उचित है कि पृथिवीपर कदापि शयन न करे चारपाईपर शयन करे, भूमिपर शयन करनेसे शरीरको कई प्रकारकी हानि पहुंचती है। यदि भूमिमें तराई और नमी होवे तो वात-व्याधि और ज्वरकी उत्पत्ति हो जाती है दूसरे तर भूमिमेंसे एक प्रकारकी खराब भाफ उठा करती है, उससे मस्तिष्कमें खरावी पहुंचती है। इसी भाफयुक्त वायुसे ज्वर भी उत्पन्न होता है, तीसरे सर्प, बिच्छू, चूहे, अथवा अन्य प्रकारके विषैले कीट प्रायः दंश करते हैं, क्योंकि रात्रिके समय सब जन्तु शिकार व दानेकी खोजमें निकलते हैं कारण कि रात्रिके समय मनुष्यकी चहल नहीं होती सो कीडे निर्भय होकर विचरण करते हैं। इससे चारपाई पर शयन करना ही श्रेष्ठ है, वालकोंको सदैव चारपाई व पालनेमें सुलाना चाहिये चारपाईके ऊपर तोसक तकिया और बिछौने स्वच्छ रखने चाहिये, क्योंकि शरीरसे निकलाहुआ मलयुक्त पसीना व निकम्मी रतूवत् विस्तरे पर चिपक जाती है जिससे शरीरको कई प्रकारकी हानि पहुंचती है, शयनावस्थामें मनुष्योंके विशेष और निर्मल वायुकी आवश्यकता है, बन्द मकानमें शयन करनेसे अत्यन्त हानि पहुंचती है, वायु तथा स्थानके प्रकरणमें इसका विवरण कर चुके हैं। बहुत मनुष्योंकी ऐसी खराब आदत होती है कि वे शयनावस्थामें कपडेसे मुख ढाँककर सोते हैं, इस कारणसे साफ वायु आवश्यकताके अनुसार अन्दर नहीं जा सक्ती, जो वायु श्वास प्रश्वाससे दूषित हो कपडेके अन्दर भराहुआ है वोही कार्वोनिकके परमाणुसे दूषित वायु वारम्वार अन्दर जाता है। यह रुकाहुआ दूषित वायु शरीरको हानिकारक समझा जाता है। इसके साथमें कुछ स्वच्छ वायु भी कप-डेसे छनकर अन्दर मिलता रहता है, इसीसे मनुष्य जीवित रहता है। यदि आवश्य-कता होय और सर्दीका देशकाल होय तो शिरको टोपा व किसी गर्म रुमालसे ढाँक-कर सोना चाहिये, परन्तु मुख नासिका, नेत्रोंको खुला रखे। किसी खिडकी व सूरा-खके समीप शिर रखके कदापि न सोवे, जहां वायुके झोंके आते होयँ वहां भी शिर खुला रखके न सोवे। अधिक वायुके वेगमें न सोना चाहिये क्योंकि शरीरकी गर्मी अधिक निकल जानेसे प्रायः मनुष्य रोगी हो ज्वर उत्पन्न हो जाता है। कहीं २ जहांकी वायुमें जलके परमाणु अधिक न होय और गर्मीकी ऋतु होय तो मनुष्य खुले

मैदानमें भी शयन कर सक्ता है और कुछ हानि शरीरको नहीं पहुंचती । परन्तु जव ओस पडती होय और वायुमें जलके परमाणु अधिक होयँ तो शरीरको विशेष हानि पहुंचती है ज्वर जुखाम कास और कफ वृद्धि हो जाती है । कफोल्वण सन्निपात (निमोनिया) भी हो जाता है, ज्वरकी मौसम अथवा विशूचिका रोगका जोश फैल रहा होय तो रात्रिके समय शरीरको वस्त्रसे ढांककर रखना चाहिये । रात्रिके समय वृक्षोंके समीपसे अलग सोवे क्योंकि रात्रिके समय वृक्ष कार्वोनिक ऐसिडको अपने पोषणके अर्थ चारों ओरसे खींचते हैं, यदि वृक्षके समीप शयन करे तो वहांकी वायुमें कार्वोनिकके परमाणु अधिक होनेसे मनुष्य श्वासके साथ शरीरमें प्रवेश करते हैं और अधिक कार्वोनिक शरीरमें पहुंचे तो हानिकारक होता है ।

ऊपर जो कुछ आरोग्य रहनेके निमित्त वायु जल और आहारकी स्वच्छताके विषयमें लिखा गया है उसके अनुकूल चलनेसे मनुष्योंकी आरोग्यता नहीं विगडती, व रोगी होनेकी अपेक्षा आरोग्यताके नियमोंके अनुसार चलना अति श्रेष्ठ है । सो पढे लिखे सभ्य स्त्री पुरुषोंको उचित है कि स्वयं आरोग्य रहनेके नियमानुसार चलें और दूसरे वेसमझ मनुष्योंको चलने फिरनेका उपदेश दें इसी प्रकार वालक अपनी अज्ञानावस्थामें यह नहीं जानते कि हमको किस प्रकार चलने और किस प्रकारकी वस्तु खानेसे क्या हानि लाभ पहुंचेगा । ऐसे अज्ञान वालक विपरीत आहार तथा कच्चे फलोंको खा लिया करते हैं, इससे उनको दस्त व आमविकारकी व्याधि हो जाती है । सो प्रत्येक माता पिता और आचार्य्यको उचित है कि वालकोंको अन्यथा आहार विहारसे वचानेकी शिक्षा दे उनके रोगकी उत्पत्तिके कारणोंसे वचाते रहें । रोगी होनेके पीछे मनुष्य अच्छे हो जाते हैं तथापि बीमारीकी अपेक्षा आरोग्य रहना अति उत्तम है जव मनुष्य वीमार हो जावे तव उचित है कि काम छोडकर विश्राम करे और अपने शरीरको गर्म वस्त्रोंसे ढांककर रखे और दो चार समयका भोजन त्याग देवे, पीछे हलका भोजन कुछ न्यून मात्रासे लिया करे ।

रोगियोंकी सेवा ।

रोगियोंकी यथार्थ सेवा और औषधोपचार न होनेसे प्रायः वहुतसे रोगी मृत्युके मुखमें प्रवेश करते हैं। जव मनुष्यको किसी प्रकारकी व्याधि उत्पन्न हो जाय तव उसको एकान्त स्वच्छ स्थानमें रखे और स्थानकी वायु स्वच्छ व ताजी रखनी चाहिये, आरोग्य मनुष्यकी अपेक्षा रोगी मनुष्यको दूनी स्वच्छ वायुकी आवश्यकता है । क्योंकि रोगी मनुष्योंके शरीरसे एक प्रकारके निकम्मे अवखरे निकला करते हैं उनकी दुर्गन्धि वायुमें फैल जाती है । वहुतसे मूर्ख मनुष्य व वैद्य रोगीको छोटी कोठडीमें वन्द कर देते हैं उस वन्द कोठडीकी वायु खराव हो जाती है और रोगीके समीप वहुत लोग

आया जाया करते हैं, सो वायु और भी अधिक दूषित होती है । इस कारणसे रोगीको तथा आने जानेवाले मनुष्योंको हानि पहुंचती है, इस लिये रोगीके रहनेके स्थानकी वायु स्वच्छ रखनेका विशेष ध्यान देना चाहिये। रोगी रहनेके स्थानमें किसी प्रकारकी दुर्गन्ध आती होय तो उसको निकाल देवे, यदि रोगीके शरीरसे विशेष दुर्गन्धि आती होय और रोगी विशेष बीमार न होय तो गर्म जलमें कपडा भिगोकर रोगीके शरीरको पोंछ कर दुर्गन्धिको निकाल देवे। कभी २ देशी वैद्य रोगीके बलका विचार न करके इतने लंघन कराते हैं कि रोगी निर्बल होकर मर जाता है। रोगीके शरीरका बल तथा दोष प्रबलता निर्बलता विचार करके लंघन कराना चाहिये और रोगी अधिक समयतक रोगके पंजेमें फँसा रहे तो उसको दोषके अनुसार हलका और शीघ्र पचनेवाला आहार दो समय देना चाहिये कि रोगीके बलकी रक्षा होती रहे। बलवान रोगी प्रत्येक रोगकी झपटको झेलकर अच्छा हो जाता है लेकिन कभी २ निर्बल रोगी छोटे रोगसे मर जाता है, सो चिकित्सकको चाहिये कि रोगके बलकी रक्षा करनेमें विशेष ध्यान रखे। यदि रोगीके वस्त्रोंमें पसीने और मलकी गंध आने लगे तो उसके वस्त्र बदला देना चाहिये, रोगीके समीप बहुतसे मनुष्य बैठकर इधर उधरकी गप्पसप्प न मारें और गुलशोर न मचावें रोगीके ऊपर सदैव दयाका वर्त्ताव रखना चाहिये, मिष्ठभाषण करना तथा धैर्य देना अत्यावश्यक है। रोगीको इच्छानुसार नींद लेनी चाहिये निद्रा आनेसे बहुत रोगोंकी शान्ति हो जाती है, रोगीको सदैव प्रसन्न चित्त रखना चाहिये बालकोंको छोटे २ रोग भी अधिक कष्टदायक होते हैं। बडे दीपककी अपेक्षा छोटा दीपक थोडी वायुके झोंकेसे भी शीघ्र बुझ जाता है जिन रोगोंसे युवा पुरुष कुछ भी कष्ट नहीं मानते परन्तु निर्बल बालक उन छोटे २ रोगोंसे मृत्युको प्राप्त होते हैं। यदि बालकको छोटी व्याधि भी होवे तो उसका विशेष सावधानीसे शीघ्र उपाय करना चाहिये, बालकोंको व्याधि तथा आरोग्यताकी दशामें सबसे उत्तम आहार माता, गधी, गौ तथा बकरीका दुग्ध है। खराब आहार बालकको कदापि न देवे, बालकोंका शरीर और वस्त्र सदैव स्वच्छ रखने चाहिये, जिससे खाज गुमडी अलाई आदि न होने पावे। जब ओस पडती होय तब बालकोंको खुली जगहमें कदापि न सुला बालकके शरीर पर रात्रिके समय भी वस्त्र पहनाकर सुलावे। प्रायः देखा जाता है कि सर्दीकी बीमारी बालकोंको बहुत शीघ्र असर कर जाती है। इससे बचानेका विशेष ध्यान रखना चाहिये।

कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च। औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्॥ प्रसङ्गाद्गात्रसंस्पर्शान्निश्वासात्सहभोजनात्। सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रामाल्यानुलेपनात्॥

अर्थ–कुष्ठ, ज्वर, शोष (क्षय) रोग, नेत्र रोग ये औपसर्गिक रोग एक मनुष्यसे दूसरे पर पहुँच जाते हैं। इन रोगियोंके विशेष गात्र प्रसंग रखना, शरीरका स्पर्श करना, श्वास लगना, एक पात्रमें साथ बैठकर भोजन करना, एक शय्यापर सोना, एक आसन पर बैठना, रोगीका पहनाहुआ वस्त्र पहनना, माला धारण करना, अनुलेपन कहिये चन्दनादि लगाना, इन कारणोंसे ये चारों व्याधि एक मनुष्यसे दूसरे पर और दूसरेसे तीसरे पर लग जाती है। इसी प्रकार मनुष्योंकी आबादीमें विस्तृत हो जाती है, सुश्रुतने इन चार व्याधियोंको संक्रामक माना है। परन्तु डाक्टरी और यूनानी कायदेसे विशूचिका (कोलेरा) विसर्प, श्लीपद, मूत्रोष्णवात, सुजाक, शीतला (चेचक) विपैले व्रण, कण्ठमाला व्रण, क्षयकास, राजयक्ष्मा, प्रमेह, उपदंश, टाईफस, टाईफस और स्कार्लेटफीवरप्लेग (अग्निरोहिणी) कुष्ठ इन चेपिया रोगोंका एक प्रकार विष होता है। जैसे २ इनका प्रसार मनुष्योंमें होता जाता है वैसे ही वैसे ये फैलते जाते हैं, इन रोगोंका प्रतिबन्ध करनेमें दो प्रकारका उपाय करना चाहिये, एक तो जहांतक हो सके वहांतक इस रोगके विषको नष्ट करनेका प्रयत्न करना उचित है। दूसरे यह उपाय करना चाहिये कि एक मनुष्यसे दूसरे पर और दूसरेसे तीसरे पर पहुंचकर विस्तार न करने पावे, यदि रोग मनुष्योंमें विस्तृत हो जावे तो विशेष मनुष्य आबादीको हानि पहुंचाते हैं। इन संक्रामक रोगोंके विस्तृत होनेके चार कारण हैं। वायु, जल, खाद्य पदार्थ, शरीरस्पर्श, कितनी ही व्याधियोका विष अदृश्य रीतिसे वायुके द्वारा उडकर एक मनुष्यके शरीरसे दूसरे मनुष्यके शरीरमें पहुँचता है। अथवा वह विष जलमें मिश्रित होकर रहता है, यदि जलको दूसरा मनुष्य पीवे अथवा स्नानादि करे तो वह विष मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करके फैलकर रोग उत्पत्ति करता है। खाद्य पदार्थ कहिये उच्छिष्ट भोजन, अथवा वैद्यकके मतानुसार रोगीके कपडे, वर्त्तन, एक मकान व एक शय्यापर सोना बैठना, व रोगीका शरीर स्पर्श करना इत्यादि साधनोंके द्वारा विष एकसे दूसरे मनुष्यपर पहुंचता है। इन चेपवाले रोगोंमेंसे कितने ही रोग ऐसे हैं कि मनुष्यकी सारी आयुमें एक ही समय उत्पन्न होते हैं जैसे कि विस्फोटक (चेचक) दूसरे रोगोंके विषका नियम नहीं है जैसे विसर्प, कोलेरा आदि एक समय मनुष्यको लागू पडे होयँ और उस समय वह मनुष्य अच्छा हो जावे तो कभी दूसरे समय भी होना संभव है। कोलेरा (हैजे) का जहर मनुष्यके वमन और दस्त द्वारा निकलनेवाले मलमें रहता है इस कारणसे इसके मल और वमन कियेहुए पदार्थसे विशेष सावधान रहना चाहिये, कोलेरावाले रोगीका शरीर स्पर्श करनेसे विष नहीं लगता है, जिस समय जिस स्थानपर कोलेराका रोग फैल रहा होय अथवा प्लेग रोग फैल रहा होय उस समय वहांसे मनुष्योंको दूसरे ठिकाने पर चला जाना चाहिये, ऐसे समय पर दूसरे ठिकाने जानेमें विलम्ब न करना चाहिये। दूसरे जिस मनुष्यको यह रोग हुआ होय

उस मनुष्यके पास चिकित्सक और सेवकके शिवाय दूसरे मनुष्योंको न जाना चाहिये, तीसरे जिस स्थानपर ये रोग हुए होयँ उस ठिकानेसे दूसरे ठिकानेपर रोगीको कदापि न ले जावे। यदि कोई अनाथ रोगी होवे तो उसको किसी एकान्त स्थानमें रखे, चौथे कोलेराकी व्याधि फैल रही होय ऐसे समयमें रेचक औषध न लेनी चाहिये, यदि ऐसे समयमें साधारण अतीसारकी व्याधि हुई होय तो भी उसके रोकनेका उपाय शीघ्र करना चाहिये। पांचवें कोलेराके समयमें जल स्वच्छ और गर्म किया हुआ पीना चाहिये, हलका और थोडा आहार करना योग्य है, इसका बराबर ध्यान रखना चाहिये कि अजीर्ण न होने पावे। छठे कोलेराके समयमें कोई मेला तमासा व मनुष्योंका विशेष समूह एक ठिकानेपर न होना चाहिये, जिस प्रांतमें कोलेराका विशेष जोश फैला होय तथा प्लेगका जोश फैला होय उस प्रान्तके मनुष्योंको दूसरे प्रान्तके मनुष्योंसे न मिलना चाहिये। उस प्रान्तमें निरोगी प्रान्तके लोगोंका जाना भी ठीक नहीं है, सातवें प्लेग तथा कोलेराके रोगीकी सेवा करनेवाले मनुष्योंको अपना हाथ जबतक साफ न करलेवें तबतक मुखमें न लगाना चाहिये। रोगीके खानेपीनेके बर्त्तन पृथक् रखने चाहिये। आठवें रोगीका मल मूत्र उल्टी आदि किसी बर्त्तनमें लेकर उनको पृथिवीमें खड्डा खोदकर गाड देवे और रोगीके समीप तथा मलमूत्र त्यागनेके ठिकानेपर फिनाईल आदि दुर्गन्धनाशक तथा जन्तुनाशक औषध डालनी चाहिये। प्लेग और कोलेरा अथवा जितने चेंपिया रोगवाले मनुष्य होयँ उनका मल मूत्र नदी तालाब नहरमें कदापि न डालना चाहिये, इन रोगियोंके मृतक शरीर भी नदी आदिमें डालना बहुत खराब है। नवमें रोगीके वस्त्र बिछोना आदि मलमूत्र और वमनसे बिगड गये होयँ तो उनको लकडीसे अलग करके अग्निमें बालकर भस्म कर देवे, यदि दरिद्री मनुष्योंको वस्त्रोंका लोभ होय तो उबलतेहुए गर्म जलमें डालकर धो कई दिवस पर्य्यन्त धूपमें सुखा लेवे। देशमें जिस मकानमें प्लेग व कोलेरा आदि संक्रामक रोगोंका रोगी रहा हो उस सब मकानकी शुद्धि चूना आदिसे पोतकर गोबर मट्टीसे लीप अथवा विष और कृमिनाशक औषधियोंके जलसे धोकर करनी चाहिये। गंधक डामर, लोहवान, व कुँदरूगोंदकी धूनी देकर मकानको थोडे समयको बन्द कर देवे कि जिससे रुकी हुई वायुमें चेंपिया परमाणु धूएँके साथ मिलकर बाहर निकल जावे। जैसे कि कोलेराका विष रोगीके दस्त और उल्टीमें रहता है इसी प्रकार टाईफाईड नामवाले ज्वरका विष भी रोगीके दस्तमें रहता है, इस रोगवालेके मलसे बचना चाहिये और जमीनमें गाड देना उचित है। विस्फोटक (चेचक) का विष त्वचामें रहता है, इसी प्रकारका विष भी त्वचामें रहता है, ये रोग भी चेंपिया है। कोलेराका विष स्पर्शसे दूसरे मनुष्योंपर नहीं पहुंचता परन्तु चेचक और विष स्पर्शसे दूसरे मनुष्यों पर पहुंचता है और बडी उमरके मनुष्योंकी अपेक्षा बालकोंको अति शीघ्र लगता है, इससे जिन बालकोंको चेचक रोग न हुआ होय

उनको चेचकके रोगी बालकोंके समीप कदापि न जाने देवे । जितने चेपी रोग ऊपर कथन किये गये हैं उनके रोगीको जहांतक हो सके एकान्त पृथक् मकानमें रखना चाहिये, चेपी रोगवाले रोगीको दवा खाने तथा अन्य रोगियोंके रहनेके स्थानमें न ले जाना न रखना । क्योंकि चेपी रोग अन्य रोगियोंके ऊपर शीघ्र असर करता है, इसी कारणसे अस्पतालमें चेपी रोगवाले रोगियोंको डाक्टर लोग नहीं रखते । चेपी रोगवाले रोगीके समीप उसकी सेवाको १ व २ मनुष्य रहें उनको भी अति सावधानीसे रहना चाहिये और दूसरे मनुष्य इन रोगीके सेवकोंका स्पर्श न करें । रोगीके स्थानमें जितनी वस्तुओंकी आवश्यकता होवे उतनी ही वस्तु रखनी चाहिये विशेष वस्तु उस मकानमें कदापि न रखनी चाहिये, चेपी रोगवाला मनुष्य अच्छा हो जावे अथवा मर जावे इसके बाद उसके कपडे आदि सामानको जला देवे । अथवा न जलावे तो उपरोक्त विधिसे कपडे आदि सामान और मकानकी शुद्धि करे, चेपिया रोग प्रायः अधिक गर्मीसे नष्ट हो जाता है सो मकानके अन्दर चेपी रोगका विष नष्ट करनेको मकान तथा सामानमें गर्मी पहुँचानी चाहिये । दुर्गन्धनाशक पदार्थोंको काममें लावे और चेपी रोगवाले मुर्देको अग्निमें दग्ध करनेसे उसके विषके फैलनेकी आशंका नहीं रहती, यह मुर्देके विषयमें सबसे श्रेष्ठ उपयोग है । इसीसे सभ्य भारतवासी आर्य्योंने इस विधिको पसन्द किया है । और जलमें डालना व जमीनमें गाड देना व खुले मैदानमें रख देना जैसा कि पारसी लोग रख देते हैं; गीध, चील, काकादि मांसाहारी पक्षी पशु खा जाते हैं । नदीमें डालने और मैदानमें रखदेनेकी अपेक्षा गहरा गर्त्त खोदकर जमीनमें गाड देना अच्छा है, लेकिन जहांपर मुर्दे गडते होयँ वहांसे मनुष्योंकी आबादी एक सहस्र गजकी दूरीपर होनी चाहिये । मनुष्योंकी वस्तीके समीप मुर्दे कदापि न गाडने चाहिये, मुर्दोंको मैदानमें रखदेने व जलमें प्रवाह कर देनेसे मनुष्योंको विशेष हानि पहुंचती है । मैदानमें रखनेसे वायु दूषित होती है और वायुके द्वारा चेपिया रोगके परमाणु मनुष्योंको लगते हैं, जलमें मुर्देको प्रवाह करनेसे जल दूषित होता है, यदि वह जल पान करनेमें आवे तो चेपी रोगके परमाणु मनुष्योंके शरीरमें दाखिल होकर रोगको उत्पन्न करते हैं । मुर्दोंके विषयमें सबसे उत्तम विधि आर्य्य लोगोंकी है कि मुर्देको अग्निदग्ध करके रोगके परमाणुओंको नष्ट कर देते हैं और किसीको हानि नहीं पहुंचती । प्राचीन आर्य्योंने नरमेध यज्ञ भी इसी अन्त्येष्टी कर्मको कथन किया है ।

रोगी और चिकित्सक ।

मनुष्यके लिये रोग ऐसी भयानक स्थिति है कि इसकी दशामें अच्छे २ वीर और योधा विवश और दीन हो जाते हैं । इस दशामें प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि रोगीके ऊपर दया रखे और जहांतक बनसके वहांतक रोगीको आराम पहुंचानेका प्रयत्न करना चाहिये, जिन ऋषियोंने चिकित्सा शास्त्र लिखे हैं उन्होंने मनुष्यमात्रके ऊपर दया और उपकार किया है, यदि वे चिकित्सा ग्रन्थोंको न लिखते तो किसीके अपराधी व

दण्डनीय नहीं थे न उनको किसी प्रकारका लोभ और लालच था, जैसा कि इस समयके (लोग) किसी प्रकारकी पुस्तक लिखते हैं अथवा नवीन आविष्कार अथवा औषध आदि निकालते हैं तो द्रव्य कमानेके लोभसे राजकीय नियमानुसार रजिष्टर्ड करा लेते हैं। यह बात हमारे आर्य्य ऋषी मुनि और वैद्योंमें नहीं थी, जो कुछ उन्होंने निर्माण किया है वह संसारके मनुष्योंके उपकारके निमित्त किया है स्वयं उन लोगोंको किसी प्रकारका व्यसन नहीं था आरण्य पर्वतकी गुफा और नदियोंके तटपर पर्णकुटी बनाकर निवास करते थे वृक्षोंके पत्र और त्वचासे शरीर ढकते कन्द मूल और सामक कोदों आदि अन्नोंसे क्षुधा निवृत्त कर संसारके सुख साधनमें लगे रहते थे। लेकिन इस समय यह उपकार दृष्टिमें बिलकुल नहीं आता डाक्टर वैद्य और हकीम किसीके समीप रोगी जावे तो उनकी यही दृष्टि रहती है कि जहांतक हो सके इससे द्रव्याकर्षण करना चाहिये। कितने ही डाक्टर हमने ऐसे देखे हैं कि वे रोगीके रोगका निदान करनेकी फी नियत कर लेते हैं और इसके साथही ५।१० मिनिटका समय भी नियत कर लेते हैं, यदि उससे आधिक समय रोगके निदानमें लगे तो दूसरी फी लेलेते हैं। यदि रोगी फी न देवे तो जो कुछ निदान हो चुका है उसी अधूरे निदानपर रोगीको विश्वास करलेना चाहिये। अथवा उसी रोगीको कुछ दूसरा रोग भी उसी रोगके सम्बन्धसे हुआ तो भी डाक्टर साहब दूसरी फी मागेंगे। यदि फी न दोगे तो उसके विषयमें कुछ उत्तर न मिलेगा, इसी प्रकार रोगी मनुष्य भी चाहे कितनाही द्रव्यपात्र होय परन्तु वैद्य डाक्टर हकीमके समीप आनकर अपनेको गरीब ही प्रगट कर यही चाहेगा कि शीघ्र आराम हो जावे तो इससे पीछा छुट जावे। परन्तु धार्मिक दृष्टिसे उभय पक्षका बर्त्ताव स्वार्थ साधन तत्पर है, यह चिकित्सक और रोगी दोनोंको हानिकारक है, सब रोगी चिकित्सकके समीप ऐसे नहीं आते कि जिनसे द्रव्यका लाभ हो सके। परन्तु चिकित्सकके आश्रयमें जितने रोगी आवें सबका उपचार आश्वासन देकर दया दृष्टिसे करे, चाहे मनुष्य कैसा ही दरिद्री होवे निरोग होनेपर आयुपर्य्यन्त चिकित्सककी प्रशंसा करता है। और अनेक आशीर्वाद देता है कोई दरिद्री मनुष्य निरोग होकर चिकित्सकको अपना जीवनदान देनेवाले समझते हैं और वगैर वेतनके नौकर बने रहते हैं। द्रव्यपात्र तो यह भी समझ लेते हैं कि हमने अपना काम रुपयेके जोरसे निकाला, है, परन्तु दरिद्रीको यह संकल्प नहीं होता। द्रव्यपात्रोंको उचित है कि शीघ्र आरोग्यताकी इच्छा करें तो चिकित्सकका द्रव्यसे सत्कार करें, क्योंकि द्रव्यपात्रका दियाहुआ द्रव्य अनेक दरिद्री मनुष्योंकी सहायतामें औषधरूप होकर पहुंचता है और चिकित्सकको द्रव्य देना कुछ पातक नहीं है। क्योंकि चिकित्सकसे अनेक मनुष्योंको लाभ पहुंचता है और उसकी जीविकावृत्तिका आधा भी रोगियोंके आश्रित ही है जैसा कि (धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् रोगास्तस्यापहन्तारः श्रेयसो जीवितस्य च) रोगी कैसा ही होवे वैद्यको प्राणदाता समझे और चिकित्सकको उचित है कि प्रत्येक रोगीको अपना स्वजन समझ कर रोगसे छुटानेका प्रयत्न करे, रोगी कैसी ही ऊँच नीच जातिका होवे उससे घृणा न मान स्वा..

समान रक्षा करे। चिकित्सककी क्रिया कदापि निष्फल नहीं होती कहींसे द्रव्यका लाभ कहींसे यश लाभ और कहींसे प्रीतिका लाभ मिलता है। चिकित्सक किसी भी दूरदेशमें जाकर बसे वहीं उसके अनेक मित्र और स्वजन हो जाते हैं, चिकित्सकको उचित है कि निष्कपट होकर उपाय करें और रोगी करावें। चिकित्सकको उचित है कि अपने पूर्वज वैद्योंका नाम स्थिर रखनेको स्वार्थ त्यागकर उपकार दृष्टिसे रोगीमात्रका उपाय करे, मतलब यह कि अधिक लोभकी अश्लाघा न करें। यदि ऐसा होगा तो आर्य्य चिकित्साका दया और परोपकाररूपी महत्व उठ जावेगा। देशी चिकित्सकोंको उचित है कि अपनी आर्य्य चिकित्साके महत्वको विस्तृत करनेका यथासाध्य प्रयत्न करें, यदि आलस्यमें पडे रहेंगे तो अपने पूर्वजोंकी साध्य विद्याको खो वैठेंगे।

मृत्युका विवरण।

संसारमें जितने पदार्थ उत्पत्तिवाले देखे जाते हैं उनकी उत्पत्ति नाशको लेकर है, सो इस प्रवाहके अनुसार जन्म और मरण प्राकृत स्वभाव है। जैसे नारी जातिके गर्भाशयमें पुरुष वीर्य्य जन्तुओंका दाखिल होना और स्त्री वीर्य्य जन्तुओंसे मिलकर शरीरका वनना और नियत समय पर्य्यन्त गर्भमें रहकर नियमानुसार उत्पन्न होना। जैसी यह उत्पत्तिकी क्रिया स्वाभाविक है वैसे ही शरीरके विगडनेकी (नष्ट होनेकी) क्रिया मृत्यु है, उत्पत्ति मरण सबके लिये समानरूपसे है इसमें विद्वानका विद्या बल और धनवानका धन बल कुछ काम नही करसक्ता। अनेक मनुष्योंका ऐसा सिद्धान्त है कि मरनेके समय वडा दुःख होता है और मरना वडा ही भयानक है, लेकिन हमारे अनुभवमें यह मृत्यु शव्द ही भयानक है, किन्तु मरनेके समय मनुष्यको कुछ भी दुःख व क्लेश नहीं होता। जो कुछ दुःख होता है वह रोगकी अवस्थामें होता है, मृत्युके समय सब रोग निवृत्त हो जाते हैं। मृत्यु जिस रोगका कार्य्य है उस रोगकी दशामें चाहे महान् कष्ट रोगीको हुआ होय परन्तु मृत्युके समयपर वह कष्ट और वेदना विलकुल नहीं रहती याने समस्त दुःख शान्त हो जाते हैं। वहुत लोगोंका विश्वास है कि दुराचारी पापीघातक विश्वासघाती तस्करादि दुष्टोंको मृत्युके समय वडा कष्ट होता है यह शव्द केवल उपरोक्त प्रकृतिके मनुष्योंको अनाचार और दुष्टकर्म्मोंसे वचानेके लिये बुद्धिमानोने अति उत्तम समझा है, दुष्टोंको भय देना लोकमर्यादाका रक्षक है। परन्तु मृत्युका समय तपस्वी महात्मा धार्मिक और चोर डाकू पापी घातकादि सबके लिये समान है, जव मृत्युके समय हम मनुष्यको देखते हैं तो शरीरमें शीतलता वढती जाती है ऊष्मा घटती जाती है नाडीकी गति क्रम २ से मन्द पडती जाती है, मतलब यह कि अधिक लोभकी अश्लाघा न करें। रक्ताभिसरणकी गति न्यून पडती जाती है। अधिकांश मनुष्योंके मृत्यु समयमें कफकी वृद्धि होकर कफ कण्ठमें घुरघुराने लगता है, कितने ही मनुष्योंकी मृत्यु समयसे प्रथम नाडीकी गति अति तीव्र और चंचल उष्ण होती है शरीर गर्म रहता है रोगीके शरीरमें कष्ट कुछ भी नहीं होता और अपनेको निरोग समझकर

खडा हो जाता है, अथवा खडे होनेकी चेष्टा करता है और गिरकर बेभान हो जाता है, यह दीपशिखावत् ऊष्मा बढकर मृत्यु हो जाती है, केवल मृत्युके समय शरीरके ज्ञानतन्तु निर्बल पड जाते हैं । इसके अनन्तर ज्ञानतन्तु और इन्द्रियोंका क्रियाहीन होना ही मृत्यु है, इसका अनुभव प्रत्येक मनुष्य कर सक्ता है । जैसे शयन (नींद) आनेके पूर्व मनुष्यकी इन्द्रियोंकी क्रिया निवृत्त और शरीर सिथिल और ज्ञानतन्तुओंपर कफका आवरण पडके निद्रा प्राप्त होती है, दिल और दिमाग जो शरीर ज्ञानके मुख्य अङ्ग हैं वे सुस्त पड जाते हैं इसके अनन्तर निद्रा प्राप्त होती है । लेकिन इस निद्रासे मनुष्य जाग्रतावस्थामें आता है किन्तु इस मृत्युको महानिद्रा समझिये, इसमेंसे मनुष्य जाग्रतावस्थामें नहीं आता इसी महानिद्राको मृत्यु कहते हैं । अब इस महानिद्राके आनेके दो कारण हैं, एक तो यह कि बालक युवा स्त्री व पुरुष इनके शरीरके रग पट्ठे किसी व्याधिके कारणसे निर्बल और सुस्त पडगये होयँ और पुनः सँभलकर यथास्थितिमें आनेकी सामर्थ्यमें न आ सकें और कोई भी उपचार मनुष्य रचित उनको यथास्थितिमें न ला सके, ज्ञानतन्तु व्याधिसे निर्बल होकर बिलकुल सुस्त पडजावें अपने काम ज्ञान और क्रियाको त्याग देवें, शरीरस्थ प्राण वायुकी गति बन्द होकर मनुष्य शरीर अथवा यावत् प्राणधारियोंका शरीर काष्ठ लोष्ठके समान हो जावे यह निमित्त विशिष्ट मृत्यु है । दूसरे यह कि मनुष्य अति वृद्ध हो जावे और उसके शरीरका सामान क्षीण होकर सूखता जावे अन्तके दर्जे वह यहांतक निर्बल हो जावे कि शरीरका ज्ञान और गतिको बिलकुल त्याग देवे और प्राणवायुका संचार बन्द होकर काष्ठ लोष्ठके समान शरीर हो जावे यह स्वभाव विशिष्ट मृत्यु है । इस दोनों प्रकारकी मृत्युमें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता, दुःख व कष्ट रुग्णावस्था अथवा अति वृद्धावस्थामें होता है मृत्युसे भयभीत कदापि न होना चाहिये । तीसरी मृत्यु ज्ञानविशिष्ट है लेकिन इसको हम मृत्यु नहीं कहसक्ते, किन्तु योगशास्त्रकी रीतिसे इसको मुक्ति कह सक्ते हैं । यह मृत्यु संसार व्यवहार विशिष्ट मनुष्योंको प्राप्त नहीं हो सक्ती, किन्तु एकान्तवासी यती योगीश्वर जो गुफानिवासमें प्राण वायुको अपने अधीन कर लेते हैं वे चाहे जब इस मृत्युकी गतिको प्राप्त हो सक्ते हैं । इस ज्ञानविशिष्ट मृत्युमें भी कुछ कष्ट नहीं होता ।

इति परिशिष्ट भाग समाप्त ।

आयुर्वेदीय चिकित्सक-रामेश्वरानंद जीवानंद सारस्वत आगरानिवासी लिखित वन्ध्याकल्पद्रुम समाप्त ।

ग्रंथ निर्माण मिती ज्येष्ठ वदी अमावास्या सम्वत् १९६६ विक्रमीय

औषधियोंकी तौल ।

१ रत्ती	
८ रत्तीका	१ मासा
१२ मासेका	१ तोला
४ तोलका	१ पल
२० पल व ८० तोलाका १ सेर	

वैद्यकमें १६ मासेका १ तोला माना गया है, परन्तु उपरोक्त तौलमें वैद्यक और यूनानी दोनोंकी तौलकी समानता हो जाती है ।

डाक्टरी तौल ।

डाक्टरी तौलका देशी तौलसे मिलान–

१ ग्रेन	आधा रत्ती
२० ग्रेन १ स्क्रुपल	१ वाल
६० ग्रेनका १ ड्राम	३० रत्ती
८ ड्रामका १ औंस	२॥ तोला
१६ औंसका १ पौंड अर्थात् १ रतल	३९ तोलके करीब ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस
कल्याण–मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस
खेतवाडी–मुंबई.

वन्ध्याकल्पद्रुमकी भूमिकाका शुद्धिपत्र ।

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
४	८	आर	और
४	१२	आर	और
४	१४	ह	है
६	९	डाटरीसे	डाक्टरीसे
७	१५	विस्तारपूवक	विस्तारपूर्वक
७	१५	अध्यायम	अध्यायमें
७	१५	आयुनदसेभ	आयुर्वेदसे गर्भ
७	१६	गभ	गभ
७	१७	देख	देखो
७	१९	चचक	चेचक
७	२१	अभङ्ग	अस्थिभङ्ग
७	२२	आर	और
७	२३	शुद्ध	शुद्धि
७	२४	चिकित्सकी	चिकित्सककी वर्त्तावप्रणाली
७	२३	मृत्युका	और मृत्युका
७	२९	राग	रोग
८	२०	राखे	रक्खे

वन्ध्याकल्पद्रुमके विषयसूचीपत्रका शुद्धिपत्र ।

पृष्ठ.	कालम.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
५	२	१०	रजोधर्म बन्ध	रजोधर्म वन्द
५	२	३०	आमगभर्म	आमगर्भमें
६	२	१४	लाहरसायन	लोहरसायन
८	१	१८	अर्शसे पेय औषध	अर्शमें पेय औषध
९	१	२३	कमलकी पत्र प्रयोग	कमलपत्र प्रयोग
१२	२	२१	दर्शन बन्द होनेका	रजोदर्शन वन्द होनेका
१४	१	२८	स्तनोंक	स्तनोंके
१४	२	२०	पीतोपसृष्ट	पित्तोपसृष्ट
१५	२	१२	देशभद	देशभेद
१५	२	२५	हंसादक	हंसोदक
१६	२	२०	कर्णको	कर्णकको
१७	२	६	वातज्वर	वातज्वरपर
२१	१	७	त्रिकटुकाद्यावात्त	त्रिकटुकादिवर्त्तिका
२८	२	४	रोगी आर चिकित्सक	रोगी और चिकित्सकका वर्त्ताव

वन्ध्याकल्पद्रुमके चित्रोंकी अनुक्रमणिकाका शुद्धिपत्र ।

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
३०	९	अग्रविवृताकी	अग्रविवृतताकी
३१	३	आगमद्वारमें	आगमन द्वारमें
३१	२३	मध्यकन्दका	मध्यकदका

वन्ध्याकल्पद्रुमका शुद्धिपत्र ।

पृष्ठ.	पंक्ति	अशुद्ध.	शुद्ध.
४	२७	गर्भस्थान जा पडे	गर्भस्थानमें जा पडे
८	३	रेपा निकला	रेखा निकाली
९	७	किसी २ लडकीको	किसी २ लडकीका
११	२९	गर्भाशयसे	गर्भाशयमें
१३	५	साबूद	साबूत
१३	१२	और आगे इस ग्रन्थमें	और इस ग्रन्थमें
१३	१७	रागी स्त्री	रोगी स्त्री
१५	१	माताके बीज दोषसे	मातापिताके आर्त्तव और बीज दोषसे
१७	७	योनिका	योनिको
१७	१८	पाठ	पीठ
१७	२८	पयन्त गर्भाशयम	पर्य्यन्त गर्भाशयमें
१८	९	कफकी	कफको
२१	२०	स्नाहन	स्नेहन
२२	९	वदलता	वदलती
२६	१६	रसम	रसमें
२६	१२	विधि	विधिसे
३१	१२	सर्पाक्षि बूटीके	सर्पाक्षि बूटीको
३२	२१	आर	और
३३	१०	श्वेतफूल	श्वेतफूलकी
३५	१६	आर	और
३६	११	काकोली	क्षीरकाकोली
३९	१२	करक	करके
४२	८	से मिश्रित दोषसे पुरुष	मिश्रित दोषसे स्त्री
४३	८	स्थित	गर्भ स्थित
४४	१९	विवण	विवर्ण
४५	३	सफद जीरा	सफेद ज़ीरा
४५	१५	पूव	पूर्व
४६	११	वद्यक	वैद्यक
४७	७	आर	और
४७	२७	प्रात	प्रति
४८	५	अवश्यहा	अवश्यही
४८	२९	छोटी दूधकी जड	छोटी दूधीकी जड
५५	१	४२॥ मासे	४२ मासे
५६	२१	आपन वायु	अपान वायु
५६	२६	माजुव	माजून
६२	१५	स्त्रीचिकित्साका ह	स्त्रीचिकित्साका है
६२	१८	गयी ह	गयी है
६३	१८	कुष्टके	कुष्ठके
६३	१९	कुष्टादि	कुष्ठादि
६४	६	आर	और
६५	६	जा	जो
६६	२	कचूरक	कचूरके
६६	५	पलाशका	पलाशकी
६९	१६	अरोग्य	आरोग्य
७०	६	शिष्यकी	शिष्यके
७०	२९	उसक	उसके
७४	२७	लिङ्गेन्द्रिय	लिङ्गेन्द्रियमें
७५	१	स्त्रीप्रमाद सब सुख वा	स्त्रीप्रमाद अर्थात्
७७	२७	असाध्यत्वसे	असाध्यत्वभी
७८	१३	जा जो	जो जो
७९	६	ध्वजभङ्गज	ध्वजभङ्ग

शुद्धिपत्र ।

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
७९	१९	सन्ताना-त्पात्ति	सन्तानोत्पात्ति
७९	२२	आयुवदसे	आयुर्वेदसे
७९	२९	इत्यादिका	इत्यादिकी
७९	२८	प्रजोत्पात्ति-कममें	प्रजोत्पत्तिकर्ममें
८३	११	इसक	इसके
८६	२९	होता ह	होता है
८९	१७	लिङ्गेन्द्रि-यरक्तस्राव	लिङ्गेन्द्रियमेंसे रक्तस्राव
९०	१६	धन्य वर्ण-वलको	धनवलवर्णको
९१	१	नाग कशर	नागकेशर
९२	१७	गर्भ स्थित होती है	गर्भ स्थित होता है
९३	२०	सुनहरी गों-दका विधि,	सुनहरी गोंदकी टिकियाकी विधि
९३	२१	ऊन कपडा	ऊनी कपडा
९४	१	खानस	खानेसे
९४	२०	निकालनक	निकालनेके
९४	२१	किाजिन	किजिन
९४	२४	लप	लेप
९४	२९	बलवान ह	बलवान है
९४	३०	अधीरा गुलाबके फूल	अधीरा, गुलाबके फूल
९५	२	सलाई उठाना,	सलाई रखना
९५	१५	दूसरे भेदमें, जो	दूसरे भेदमें
९५	२४	धूराके रंगकी	धूंएके रंगकी
९५	२९	पित्तकी तरी ह	पित्तकी तरी है
९६	१०	रोग कारण	रोगका कारण

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
९६	११	आर पाल पानीके	और पीले पानीके
९६	१५	गर्भाशय जख्म	गर्भाशयके जख्म
९८	१८	मूत्रस्थान-पर रक्खे	योनिमार्गमें रक्खे
९९	११	कारवोलिक रोल	कार्वोलिकएल
१०२	२७	शोधका	शोथका
१०४	१८	भावसे	स्वभावसे
१०४	२६	अभ्यन्त-रही	आभ्यन्तरही
१०५	२८	जठराग्न	जठराग्नि
१०६	१०	गंअत्या-र्त्तकी	अत्यार्त्तवकी
१०७	५	अध्मान	आध्मान
१११	६	जस्ममें	जिस्ममें
१११	२४	कहत हैं	कहते हैं
१११	२४	आर	और
११२	१	कालस	कालसे
११२	१०	नाककेवल	नाकि केवल
११२	१६	रीतिस	रीतिसे
११३	१	गर्भाशयक	गर्भाशयके
११३	२	होसक्ती ह आर जा	होसक्ती है और जो
११३	३	नहीं राक सक्ती	नहीं रोक सक्ती
११३	४	वीर्यका प्रवश	वीर्य्यका प्रवेश
११३	५	मांसवृद्धि म माग	मासवृद्धिमें मार्ग
११३	१३	छेदवाले-पर	छेदवालीनालि-कापर
११४	१०	स्त्रियाम	स्त्रियोंमें

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
११४	१२	गर्भाशयक	गर्भाशयके
११४	१३	।वशेप	विशेप
११४	१४	गया ह	गया है
११४	१७	होता ह	होता है
११४	३१	आर	और
११४	३१	जवाक	जवकि
११६	७	यह है ।क	यह है कि
११६	२०	।मचा हुआ	मिचा हुआ
११६	२८	हाजतसे	हाजत
१२०	४	होनस	होनेसे
१२०	५	गर्भाशय	गर्भाशयके
१२०	१४	वाह्यमुखक	वाह्यमुखके
१२०	१९	प्राप्त होती है	प्राप्त होता है
१२०	१६	संकुचित	संकुचित
१२१	३	जिसस	जिससे
१२४	२२	पानी	यानी
१२४	२७	पीछेका	पीछेके
१२६	२७	वाई	० ०
१२८	४	थोडी	घोडी
१२८	१९	यह अङ्क	इस अङ्कमें
१२८	२३	होता ह	होती है
१३०	२०	आर	और
१३०	२९	आता ह	आता है
१३०	२९	होता ह	होता है
१३१	७	माकान	मकान
१३१	२९	काटली कर-आईल	काडलीवर आ-ईल
१३२	७	इस शला-कोंके	इन शलाकाके
१३५	१७	गभअंडका	गर्भअण्डका
१३५	२४	स्त्रीक	स्त्रीके
१३५	२७	योनिभाग	योनिमार्ग
१३६	१	योनिओ-ष्ठोंपर	योनिमुख ओष्ठों
१३६	९	आर	और
१३७	१४	अवयवको	अवयवकी
१३७	२१	आर	और
१३८	४	क्षतम	क्षतमें
१३८	२३	आर	और
१३९	२	याद	यदि
१३९	७	फटकरहा,	फटकर हो
१३९	१६	गभाशय-कशायक	गर्भाशयके शोथके
१३९	१७	वाकलकी	वालककी
१३९	२२	अपन	अपने
१३९	२३	गभाशयकी	गर्भाशयकी
१३९	२८	।नतम्वों	नितम्वों
१३९	२९	तफ	तर्फ
१४०	११	टपकाले	टपकावे
१४०	१६	सीरके	तासीरके
१४०	२३	तेर्डकी	तर्डकी
१४०	२९	होने लग	होने लगे
१४१	११	कूटती है	फूटती है
१४१	११	आंता	आंत
१४१	१४	यह है ।क	यह है कि
१४२	३	तर्फ झुका होय	तर्फ झुकाव होय
१४२	५	तफम	तर्फमें
१४२	८	वासलीकी	वासलीककी
१४२	८	आर	और
१४२	१८	वणन	वर्णन
१४३	१२	गर्भाशयक	गर्भाशयके
१४३	२९	आर	और
१४३	२८	आर	और
१४४	२१	खूनक	खूनके
१४५	३८	हा	हो

शुद्धिपत्र ।

पृष्ठ.	पंक्ति,	अशुद्ध.	शुद्ध.
१४६	१६	पहुंचा दर्द	पहुंचाकर दर्दको
१४६	२१	सजन	सूजन
१४९	७	आद	आदि
१४९	१८	जाता ह	जाता है
१४९	३१	कारणोंसे क	कारणोंसे कि
१५०	२३	जखमपर लगाभी	जखमपरभी लगा
१५०	२५	जसा	जैसा
१५१	२	उत्तम चर्म पडता	चर्म पडत व चर्म जिल्द
१५१	१२	आने सक्ता है	जाने आने सक्ता है
१५१	१८	आता है	आती है
१५१	३१	चलनेसे फिरने	चलने फिरनेसे
१५२	१०	फटा हुआ	फटे हुए
१५२	१०	जाता है	जाती है
१५२	१२	घनरूप होता है तो	घनरूप होता है तो अन्दर भरा रहता है
१५२	३१	(हिस्टीरी-या) क	(हिस्टीरीया) के
१५३	५	होती ह	होती है
१५३	२३	चूर्णका	रसका
१५३	२४	पञ्चामृत चूर्ण प्रयोग	पञ्चामृत रसः प्रयोग
१५३	३०	जा स्त्रियां	जो स्त्रियां
१५४	१९	ठीक ह	ठीक है
१५५	१	जो गर्भाशयके	जो औषध गर्भाशयके
१५५	२५	मिलता हुई ह	मिलती हुई है
१५६	२०	क्षत रापण	क्षत रोपण
१५६	२६	आरा लप-फस आव,	और (लपेफेर्स प्रोव
१५६	२७	उपयोगी ह	उपयोगी है
१५६	३०	आर	और
१५७	२२	योग्य ह	योग्य है
१५७	२८	कमलमुख सूझा	कमलमुख सूजा
१५८	२३	कमलमुखमें	कमलमुखसे
१६०	२	प्रमेह होता हो	प्रमेह(सुजाक) हो रहा हो
१६०	७	यह सूझ जाता है	यह सूज जाता है
१६०	१२	सूझता	सूजता
१६०	२७	हो पडता है	हो जाता है
१६०	२७	योग्य है	योग्य आश्रय
१६०	२८	रहता	रहता है
१६३	२२	करनक	करनेके
१६४	१	जाता ह	जाता है
१६५	१८	कमल मुखकी	कमल मुखके
१६६	९	होती ह	होती है
१६६	१५	सूझा	सूजा
१६७	२१	भाग सूझ	भाग सूज
१६७	२४	आर तीक्ष्ण	और तीक्ष्ण
१६७	२६	अनुकूल पडे	अनुकूल न पडे
१६७	२७	गभाशय	गर्भाशय
१६८	७	सूझा हुआ	सूजा हुआ
१६८	१३	सूझ जाती है	सूज जाती है
१७०	२४	क्षारसे दुर्गंध कर देवे	क्षारसे दग्ध कर देवे
१७१	४	ऋतुधमके	ऋतुधर्मके

१६७।१६८।१६९।१७० इन पृष्ठोंमें जहाँ २ प्रमेह शब्द आया है उससे स्त्रीजातिके सुजाकका ग्रहण करना ।

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
२२६	१०	गर्भाशयका मिच जाना	गर्भाशयका भिच जाना
२२६	३१	मुनक्कादाने निकाली हुई	मुनक्का बीज निकाली हुई
२२७	४	कुर्संमुर मकी	कुर्संमुरमाकि
२२९	२२	वे अपूर्ण है	व अपूर्ण है
२२९	३०	आनेका न कारण	आनेका बाधक
२३०	७	कमल उदास	कमल मुख उदास
२३१	२४	ग्रन्थी सूझ आती है	ग्रंथी सूज आती है
२३२	४	पडता ह	पडता है
२३४	३०	शादा लग नेसे	शर्दी लगनेसे
२३६	२	ाकसी प्रकारका	किसी प्रकारका
२३९	४	कमलसूझा हुआ	कमल सूजा हुवा
२३९	७	आन्त वन्द	आनाबन्द
२३९	२३	कुछ ऊष्णा	कुछ ऊष्ण
२४०	५	टिंचर वे चूर्ण	टिंचर व चूर्ण
२४०	११	इसक साथ	इसके साथ
२४०	१६	तथा रसमें	तथा इसमें
२४०	२७	गर्भाशयमें	गर्भाशयमसे
२४१	२६	सूझा हुआ	सूजा हुआ
२४१	२८	गर्भअण्डभी सूझा हुआ	गर्भाण्डभी सूजा हुआ
२४१	२९	भाग सूझे हुए	भाग सूजे हुए
२४२	२०	होता ह	होता है
२४२	३१	स्त्रियोंको इसी प्रकार	स्त्रियोंको किसी प्रकार
२४३	७	और सांघल	और सांथल
२४३	८	अण्डमें सू-झन	अण्डमें सूजन
२४३	९	गर्भअण्डकी सूझनको	गर्भअण्डकी सूजनको
२४७	९	जेज्झटा-चार्य्य	जेज्झटाचार्य्यने
२४७	१२	जब स्त्राकि साथ	जब स्त्रीके साथ
२४७	१७	नही ह	नहीं है
२४९	७	कर पिला	कर पिलावे
२४९	१९ २०	गर्भाशयके पत्रोंमें	गर्भाशयके पडतोंमें
२५०	२६	मांस वृद्धि-गत	मांसवृद्धि इस प्रकार
२५१	१०	गमशुष्क	गर्भशुष्क
२५१	१२	होता ह	होता है
२५२	२२	नेत्रकी बां-झडी	नेत्रकी बांफडी
२५३	११	बायीं और	बाईं ओर
२५३	२०	मर्गको	गर्भको
२५३	३०	गर्भस्राव	और गर्भस्राव
२५४	९	मांस पीडा	मांस पिण्ड
२५५	८	तु कहना	नु कहना
२५७	२७	क्रियाम	क्रियामें
२५७	२८	स्त्रीचिकि-त्सा	स्त्रीचिकित्सामें
२५८	६	उमरगभ	उमरगर्भ
२५८	७	नष्टगर्भित-व्यता ह	नष्टगर्भितव्यता है
२५८	९	होता ह	होता है
२५८	१८	यथाथ	यथार्थ
२५८	३१	लिये ता	लिये तो

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
२५९	७	क्रिया सौप- ध्का	क्रिया व सौप- धका
२६१	२७	व्याधिक	व्याधिके
२६२	१७	सूझन	सूजन
२६२	११	सूझनपर	सूजनपर
२६२	२१	गभाशयपर	गर्भाशयपर
२६३	२	लाभदायक ह	लाभदायक है
२६३	६	दीखता ह	दीखता है
२६३	१३	बालक नहीं घबडाने वाली	बालकको दूध न पिलानेवाली
२६६	२३	तया सूझा हुआ	तथा सूजा हुआ
२६६	१४	प्रमाणक	प्रमाणके
२६७	१	(छोड, क	(छोड, के
२६७	६	यथाय	यथार्थ
२६७	१८	नष्टगर्भित- व्यताक	नष्ट गर्भतव्य- ताके
२६८	३	सरल ह	सरल है
२६८	६	होती ह	होती है
२६८	२३	उसका	उसको
२६९	२	कितने अंश	कितने अंशमें
२६९	६	सक्ताह	सक्ताहै
२६९	२७	शुद्ध	शुद्धि
२७१	७	सामथ्य	सामर्थ्य
२७१	११	क मदक	कि मेदके
२७१	१८	जलाता ह	जलाता है
२७१	२४	मेदस्वा	मेदस्वी
२७१	३०	जाता ह	जाता है
२७१	३२	हो जाना ह	हो जाती है
२७८	३	त्यागकर	त्यागकर
२७८	३	नरोडकरी	नरोडकरी
२८०	१२	को	कोमें

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
२८०	१५	रक्तनिकल	रक्त न निकल- नेसे
२८१	२	रोग सूक्ष्म रूपमें	रोगोंका सूक्ष्म- रूपमें
२८१	११	स्थूलता प्राप्त	स्थूलताको प्राप्त
२८२	८	सूझा हुआसा	सूजा हुआसा
२८६	५	शरिरम	शरीरमें
२८६	११	देता ह	देता है
२८६	२५	गनस्थानोंमें	मर्म स्थानोंमें
२८९	२४	रेहू	रेहू
२९०	८	शर	शर (शरपत)
२९३	११	किया आ	किया हुआ
२९३	१२	नाभिक	नाभिके
२९३	१३	वढेहुए नख	कटे हुए नख
२९४	१	मनुष्य दोना	मनुष्य दोनों
२९४	१७	झुक है	झुके हैं
२९४	२०	होती ह	होती है
२९४	२३	क्रियांक	क्रियांके
२९५	१८	होती ह	होती है
२९६	११	आता ह	आता है
२९७	३	निकलने मत्युकी	निकलनेसे मृत्युकी
२९७	६	सूझन	सूजन
२९९	३	आता ह	आता है
२९९	१६	जाता ह	जाता है
२९९	११	होता ह	होता है
३००	२०	पीवस	पीवसे
३०१	२६	सूझन	सूजन
३०५	१०	२०	२१
३०७	१२	सूझ आता है	सूज आता है
३०७	१२	योनिमुख सूझ	योनिमुख सूज
३०७	१७	सूझ आता है	सूज आता है
३०७	२८	सूझ जाता है	सूज जाता है

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
३०८	२९	सूझनका	सूजनका
३०९	२०	प्रयोगों	प्रयोगोंमेंसे
३०९	२९	भागके	भागके ऊपर
३०९	२९	वस्तरसे	नस्तरसे
३१०	४	सूझ गया.	सूज गया
३१०	१४	उसके चप	उसका चेंप
३१२	३	ादवस	दिवस
३१३	५	विषे	विषसे
३१४	१७	टांकाक	टांकींके
३१४	१८	अन्तक दर्जे	अन्तके दर्जेमें
३२१	४	बारसामा	बारसामें
३३१	१६	चिह्नविषय दूसरा	चिह्नोंके विषयमें दूसरा
३३१	२१	वर्षतक	वर्षोंतक
३३१	२८	सूझा हुआ	सूजा हुआ
३३४	२०	पुय पिडिका	पूय पिडिका
३३३	२६	दोनों और	दोनों ओर
३३४	२	सूझ	सूज
३३४	४	स्वरनलीभी सूझ	स्वरनलीभी सूज
३३४	५	सूझन	सूजन
३३४	९	वह सूझ	वह सूज
३३४	१८	घोटी सन्धि	छोटी सन्धि
३३४	१९	सूझन	सूजन
३३४	२४	कनीनिका सूझ	कनीनिका सूज
३३४	२४	सूझनेपर	सूजनेपर
३३५	३	नामकोरसका	नामके रसका
३३५	२०	सहस्त्र.	सहस्त्रों
३३८	३०	पिलख	पिलखन
३४२	२०	रजवीर्य्यम	रजवीर्य्यमें
३४२	२५	कुष्ट	कुष्ठ
३४३	१८	होता ह	होता है
३४३	२८	गर्मी पडे	गर्मीके चिह्न दीख पडे
३४५	२७	औषधोपचासे	औषधोपचारसे
३४६	३	उटकुरुआ	उकुरू
३५०	२५	परह	परहे
३५३	२२	चिकित्सककके	चिकित्सकको
३५७	२७	अरुचि	रुचि
३५९	४	अर्शम	अर्शमें
३५९	२६	बढानेवाला ह	बढानेवाला है
३८१	९	रोगीके	रोगीको
३८२	२५	गुदाक	गुदाके
३८२	२८	फूलजाकर	फूलकर
३८२	३१	सूझा हुआ.	सूजा हुआ
३८३	२५	दस्त	मल
३८४	३	नीचेके नीचे त्रिकसंधिके	नीचे त्रिकसन्धिके
३८४	२८	सूझ आता है	सूज आता है
३८४	२९	सूझनेसे	सूजनेसे
३८६	२९	मलम	मरहम
३८७	१५	सूझ	सूज
३८८	३	रोगीक	रोगीके
३८८	१८	अरंडीक	अरंडीके
३८८	२२	आता ह	आता है

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
३८८	२४	अशके	अर्शके
३८९	१	थोड	थोडे
३८९	२६	सूझनादि	सूजनादि
३९१	१९	छिद्रामसे	छिद्रोंमेंसे
३९१	१९	आर	और
३९१	२४	दशाम	दशामें
३९२	११	इसकी व्रणमेंसे	इसके व्रणोंमेंसे
३९२	२८	पुरीषोत्सगस	पुरीषोत्सर्गसे
३९३	१३	भगंदरके पांच	भगंदरके पांच भेद
३९३	२६	यह सम्पूण	यह सम्पूर्ण
३९४	१	नाडियाक	नाडियोंके
३९४	३	निकट वत्ता	निकट वर्त्ती
३९४	१६	मागम	मार्गमें
३९५	२२	रीतिस	रीतिसे
३९७	२३	अणु तलस	अणु तैलसे
३९८	२१	वर्त्तनक	वर्त्तनके
४०३	४	प्रक्रियाक	प्रक्रियाके
४०३	१७	मंद्रासप्रान्तःक	मन्द्रास प्रातः-के
४०४	१	प्रसवम	प्रसव समयमें
४०४	४	टेढा	टेढी
४०४	५	आता ह	आती है
४०४	७	नजा बाहर	न जाय और बाहर
४०४	१२	सकेता	सकेतो
४०४	१८	निवृत	निवृत
४०४	२३	आवश्यकताक	आवश्यकताके
४०६	१	याद	यदि
४०६	२	इसमें	इससे
४०६	६	भीतरकी	भीतरको
४०७	४	कुंदर दम्बुल	(कुंदर) दम्बुल अखवेन
४०७	२९	बवासीरक	बवासीरके
४०८	२७	गूगलवढ	गूगल और वढावे
४०९	१२	कफेंके	कुएंके
४०९	२०	फटनक	फटनेके
४०९	२४	मुर्दासंगाजेत्फ	मुर्दासंगजेत्फ
४१०	२१	पानीकी जहगके	पानीकी जगहके
४१०	२१	बठना	बैठना
४११	२६	शफतालके	शफतालुके
४१२	२	चाहिय	चाहिये
४१२	६	तिब्बस	तिब्बसे
४१२	९	मसानस	मसानेसे
४१२	९	आर	और
४१२	११	दो घर हैं	दो घेर हैं
४१२	११	अस्वी ह	अस्वी है
४१२	१२	जिसस	जिससे
४१२	१२	गात करे	गाते करे
४१२	१७	मसानेमें आव	मसानेमें आवे
४१२	२८	कारणस मसानेक	कारणसे मसानेके
४१२	३०	कर सक	कर सके
४१२	३०	वद्यक	वैद्यक
४१३	१३	माविजफस्त खोले	माविजनसकीफस्त खोले
४१४	१	लेपकर जस	लेपकर जैसे
४१४	४	कूटनेके बाद	फूटनेके बाद
४१४	९	लाभदायक ह	लाभदायक है

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
४१५	२	मूत्रके मार्गमें टपक	मूत्रके मार्गमें टपकावे
४१५	३	भुना	और भुना
४१५	३	करा दीनकादरी	कराबा दीनकादरी
४१५	९	साद उद्विल्सान	साद, उद्विल्सान
४१५	१९	पानी पिला और	पानी पिलावे और
४१६	१२	वमन करा इस	वमन करावे और इस
४१६	१४	उपाय कि	उपाय यह कि
४१७	१८	अब स्थानिक कारनोंमें	अथवा स्थानिक कारणोंमेंसे
४१९	१	आता ह	आता है
४१९	१०	लाईकवोरआर्सेनिनीकेलीस	लाईकवोरआर्सेनीकेलीस
४२०	२	खुजानेसे भाग	खुजानेसे जो भाग
४२२	२	गया ह	गया है
४२२	३	कलेजा गम	कलेजा गर्म
४२३	९	की गई ह	की गई है
४२३	२९	नलाक	नलीके
४२४	८	सेवन कर	सेवन करे
४२७	१८	हृदयक	हृदयके
४२७	२४	जाती ह	जाती है
४२७	२८	ऐसी प्रवृत्तिस स्त्रीका	ऐसी प्रवृत्तिसे स्त्रीका
४२७	३१	चलनस धूममें	चलनेसे धूपमें
४२८	८	ऐसा मत्र	ऐसा मूत्र
४२८	१३	गंध युक्त मत्र	गंध युक्त मूत्र
४२८	१६	मूत्राशयमें मूत्रमें	मूत्राशय अथवा मूत्रमें
४२९	१५	जोनसे हैं	जो मूत्रनली है
४२९	१८	और मत्रकी	और मूत्रकी
४२९	१९	निमित्त किसी स्त्री	निमित्तसे किसी २ स्त्री
४३०	२२	मत्रावात	मूत्रावात
४३०	२४	मत्राघात	मूत्राघात
४३०	२७	तृणापञ्चमल	तृणपंच मूल
४३४	२९	उन सबोंको प्रयोगको	उन सब प्रयोगोंको
४३५	५	मत्रकृच्छ्रकी	मूत्रकृच्छ्र
४३५	६	मत्रकृच्छ्र	मूत्रकृच्छ्र
४३६	९	मत्र कृच्छ्र	मूत्रकृच्छ्र
४३६	२४	मत्रकृच्छ्र	मूत्रकृच्छ्र
४३६	२८	मूत्राघात मूत्राकृच्छ्र	मूत्राघात मूत्रकृच्छ्र
४३७	३१	सहायतासे मत्रको	सहायतासे मूत्रको
४३८	४	शातल	शीतल
४३८	२५	सूजनेसे	सूजनसे
४३९	२८	मत्र मार्गको	मूत्र मार्गको
४३९	३०	कमरक	कमरके
४४०	३	मत्रको	मूत्रको
४४०	१५	जवमत्र	जवमूत्र
४४०	२०	जव मत्र	जव मूत्र
४४०	२१	शराक	शराकके
४४०	२१	पथरीक	पथरीके
४४०	२३	मांसवृद्धिकी	मांसवृद्धि निवृत्तिकी

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
४४३	१९	काममें ला	काममें लावे
४४३	२८	होती ह	होती है
४४४	२	कद्द	कद्दू
४४५	१२	कद्दूक	कद्दूके
४४५	१९	इत्यादि खिला शर्वत	इत्यादि खिलावे और शर्वत
४४५	२७	रोग वेद अं-जीर	रोगन वेद अं-जीर
४४६	११	यह ह	यह है
४४७	२	नहीं ह	नहीं है
४४७	१४	हररोज खाजो	हर रोज खावे, और
४४९	११	खुर्खीके	सुर्खीके
४४९	२४	डाक्टरीम	डाक्तरीमें
४५०	५	सक करना	सेंक करना
४५०	१४	कारणोंको लकर	कारणोंको लेकर
४५०	१८	अत्यात्तव	अत्यार्त्तव
४५०	१८	इसस	इससे
४५१	२१	उद्देशह	उद्देश है
४५१	२५	चिकिरसक	चिकित्सकके
४५३	१	उचित ह	उचित है
४५३	४	अति आव-श्यक ह	अति आवश्यक है
४५३	१४	हुआ ह	हुआ है
४५३	२६	दक्षिण आर पश्चिम	दक्षिण और पश्चिम
४५४	२८	विशष	विशेष
४५५	४	आवश्यकता ह	आवश्यकता है
४५७	२३	भागम ह	भागमें है
४५८	२१	होसक	हो सके
४५८	३०	स्कल	स्कूल

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
४५९	२०	होसकता ह	हो सक्ता है
४६०	२	कमलमुखक	कमलमुखके
४६०	९	सम्बन्ध ह	सम्बन्ध है
४६०	१४	कारणकी आर	कारणकी और
४६०	१५	इनको ज्ञान	इनका ज्ञान
४६०	१६	पूर्ण रीति	पूर्ण रीतिसे
४६०	२४	अवयवक	अवयवकी
४६०	३१	खुली आंखोंस	खुली आंखोंसे
४६१	२	अंगुल	अंगुली
४६२	१	आवश्यकता ह	आवश्यकता है
४६२	३	निश्चय पूवक	निश्चयपूर्वक
४६२	१७	जो दर्शन	रजो दर्शन
४६२	२२	गम धारण	गर्भधारण
४६२	२५	गर्भाशयक	गर्भाशयके
४६२	२८	अनुमानस	अनुमानसे
४६२	२९	करनकी	करनेकी
४६३	२०	तस	तैसे २
४६३	२१	जैसे	जैसे जैसे
४६३	३०	जाता ह	जाता है
४६७	२	मम स्था-नोंके	मर्म स्थानोंके
४६७	११	होती ह	होती है
४६७	२९	स्थानान्तरमें अधिकभाग	स्थानान्तरके अधिकभागमें
४६८	६	होता ह	होती है
४६८	२७	उत्पत्ति स्थान	उत्पत्तिका स्थान
४६९	९	कमलम-खका	कमलमुखका

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
४६९	११	अपूर्णता	अपूर्णतासे
४६९	१६	कारण क स्त्री	कारण कि स्त्री
४६९	१७	स्त्री	स्त्रीके
४६९	२८	हाता है	होता है
४६९	२८	रजो दशन	रजो दर्शन
४७०	११	कठिन ह	कठिन है
४७०	३०	स्पर्श हाते	स्पर्श होते
४७१	१	होता ह	होता है
४७१	१२	बालकोंको	००००
४७१	२१	रहता ह	रहता है
४७१	२६	जसा कि	जैसा कि
४७१	२८	स्त्रियाके	स्त्रियोंके
४७२	६	रखती हरे	रखती रहे
४७२	१९	आर वन्ध्या	और वन्ध्या
४७३	२३	अंशम	अंशमें
४७३	६	उसक	उसके
४७३	८	इसक	इसके
४७३	२९	फूलवाहिनीके	फलवाहिनीके
४७३	३०	आता ह	आता है
४७४	२९	निकलता ह,	निकलता है
४७५	९	पुरु	पुरुष
४७५	१३	स्त्रीमें गभ	स्त्रीमें गर्भ
४७५	१४	विरुद्ध ह	विरुद्ध है
४७६	२१	नखाद	नखोदे
४७७	१०	खोदनस	खोदनेसे
४७७	११	हाय	होय
४७९	२०	आर	और
४७९	९	पर्य्यन्त ह	पर्य्यन्त है
४७९	२९	होती ह	होती है
४८३	५	कोइ	कोई
४८३	७	स्त्रीको	स्त्रीकी
४८३	८	होता ह	होता है
४८३	१०	गभाशय	गर्भाशय
४८३	१६	होताह	होता है
४८४	२८	अधोपतन हा	अधोपतन हो
४८५	१	होत है	होते हैं
४८५	२	यज्ञादिकम	यज्ञादिकर्म
४८५	२०	हाता है	होता है
४८५	२१	कम वे	कर्म वे
४८५	२७	पुत्र होता व कन्या	पुत्र हो व कन्या
४८६	२	जैसे विहीके	जैसे व्रीहीके
४८६	६	गभके	गर्भके
४८६	२०	उत्तरका	उत्तरकी
४८६	२२	आगा आर	आँगा और
४८६	२३	सिद्ध करक	सिद्ध करके
४८६	२८	इन प्रयोगोंक	इन प्रयोगोंके
४८७	१३	यानम	योनिमें
४८७	२२	होत हैं	होते हैं
४८७	२६	ऋतु स्नानके	ऋतु स्नानके समय
४८८	२०	करता ह	करता है
४८९	२९	गभ	गर्भ
४८९	२७	स्नेह किया	स्नेहपान क्रिया
४९१	२२	होती ह	होती है
४९१	२३	स्त्रियांको	स्त्रियोंको
४९१	२५	उाचत	उचित्
४९२	२	रहता ह	रहता है
४९२	३	विपयस	विपयसे
४९२	११	होता ह	होता है
४९२	१५	उसक	उसके
४९२	२७	इसो	इसी

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
४१२	३०	यादे गर्भ	यदि गर्भवती
४१३	२२	आर	और
४१३	२९	राक्षसह	राक्षसहै
४१४	७	गनमाप्नोते	गर्भमाप्नोति
४१४	१२	उसम	उसमें
४१४	१८	आर	और
४१४	२४	गभम अङ्गों-का	गर्भमें अङ्गोंका
४१५	५	केशरादीनां	केशादिनां
५०२	६	एसे	ऐसे
५०३	१२	ासद्ध	सिद्ध
५०४	१३	वेतसजलवे-तस	जल वेतस
५०४	१८	अनुवासन वास्त	अनुवासन बस्ति
५०५	११	उसक	उसके
५०७	२२	आर	और
५१३	१४	दो पिप्प-लक	(रेश्मी धागे-की गोली
५१४	८	कूख ढीली पड जाता है	कूख ढीली पड जाती है
५१४	१०	पारत्याग	परित्याग
५१४	१६	म्स्राव	स्राव
५१४	१७	होनेका दद	होनेका दर्द
५१५	१२	आर	और
५१५	१४	एकका	एकको
५१५	२२	करक	करके
५१८	४	रक्षाकर	रक्षाकरें
५१८	१०	दृष्टान्त ह	दृष्टान्त है
५१८	१९	देव वैसा तुम	देवे वैसा तुम
५१८	१९	प्रथम ता	प्रथतो
५१८	१९	धीरे २ खींचे	चींके
५१८	१६	जोर २ से खाचे	जार २ से चींके
५१८	१६	जोर २ स	जोर २ से
५१८	१८	हप	हर्ष
५१८	१९	तफस	तर्फसे
५१८	११	संतट	संतुष्ट
५१८	२६	पाढला	पाढल
५१८	२७	प्रयाग	प्रयोग
५१९	१०	पोईक	पोईके
५१९	१३	जनती ह	जनती है
५२०	३	होता ह	होता है
५२०	७	योनिम	योनिमें
५२३	१०	आर उसा	और उसी
५२३	२६	पीडाक	पीडाके
५२३	२६	करती	करती है
५२३	२७	सतिका वाली	सूतिका वाली
५२५	१४	तथा सरसों-के चूर्ण	तथा घृत
५३०	५	सुश्रुप	सुश्रूषा
५३४	१३	रेशेनाला	रेशेवाली
५३५	७	अश	अर्श
५३६	९	प्रत्येक १६। १६	प्रत्येक १६
५३८	९	माताक	माताके
५३९	२३	तरफस	तर्फसे
५४१	१	उचित ह	उचित है
५४१	६	मत	मृत
५४३	८	करके	०००
५४६	१२	तल	तेल
५४७	३	जात है तथा गभ	जाते हैं तथा गर्भ
५४७	८	गभ	गर्भ

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
५४८	१८	मख्य	मुख्य
५४९	२०	देव	देवे
५५०	२०	तफ	तर्फ
५५०	२२	फिरती ह	फिरती है
५५०	२५	प्रकारसे ह	प्रकारसे है
५५०	२६	सखा धनियां	सूखा धनियां
५५०	२८	गर्मी हाव	गर्मी होय
५५१	४	मलतानी	मुलतानी
५५१	१३	आर	और
५५१	२९	हलक	हलके
५५२	५	स्थान	स्थानमें
५५२	२८	चहरम	चहरेमें
५५३	५	अथव	अथवा
५५६	१९	सहज	सहन
५५६	२४	मकामों	मुकामों
५५७	१६	अमलतास-का छिलका	अमलतासकी फलीका छिलका
५५८	४	निकालनका	निकालनेका
५५८	१४	और पेपर	और पेटपर
५५८	१९	आव शीर	जव शीर
५५८	३१	कर सक्ता हे	कर सक्ती है
५५९	१२	विस्तृत	विस्तृत करके
५६०	२९	मुखम	मुखमें
५६१	३४	स्त्री	स्त्रीके
५६२	३	होतां	होता है कि
५६२	४	रहता	रहता है
५६२	२८	मख्य २	मुख्य २
५६२	३३	होने समय	होनेके समय
५६३	३१	गभ खुश्क	गर्भ खुश्क
५६६	४	नियत	नियत
५६६	१२	करक	करके
५६६	१२	हजाराम	हजारोंमें
५६६	१८	लगता ह आर	लगता है और
५६६	२०	थकापनसी	थकायनसी
५७१	१६	ताना	तीनों
५७१	२५	सैकडा स्त्रीमेंसे	सैकडों स्त्रियोंमेंसे
५७१	२६	अवधिक	अगनिके
५७२	१६	समर्थ	समर्थन
५७३	४	कुदरतक	कुदरतके
५७३	६	नाफिक	माफिक
५७३	३१	जखमवाले-को	जखमवालेकी
५७४	१०	अनुमन	अनुभव
५७४	२६	ऋतुस्नाता प्रयोजन	ऋतुस्नाता ००००
५७४	२६	यही कि	यही है कि
५७४	२८	वगैरह	वगैर दिये
५७५	१३	स्त्रियोंकी	स्त्रियोंको
५७५	१७	गभ रहना	गर्भ रहना
५७५	२१	जाता ह	जाता है
५७७	१	किसी	किसी रोगसे
५७७	१७	मर्भ स्थानसे	मर्म स्थान०
५७८	६	गर्भाशय निवृत्त	गर्भाशय विवृत
५७८	१३	गर्भाशयक	गर्भाशयके
५७८	१४	कारण ह	कारण है
५७८	१९	कहत हैं	कहते हैं
५७९	१	हो जाता	हो जाता है
५७९	२	नहीं हो गर्भ	नहीं होता और गर्भ
५७९	१७	नहीं होत	नहीं होते
५७९	१८	आर	और
५७९	२०	पुरुष वी-र्यमें	पुरुष वीर्य्यमें

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
५८०	१९	नहीं ह	नहीं है
५८०	२७	पूर्ण बुद्धिको	पूर्ण वृद्धिको
५२८	८०	हो जाता	हो जाता है और
५८०	३०	और गभ	और गर्भ
५८१	३	गभ	गर्भ
५८४	२४	कठिन	कठिन है
५८६	३१	गर्भाशयक मुखका	गर्भाशयके मुखकी
५८७	९	हाड	हाडे
५८८	७	हो जाता है	हो जाती है
५८९	७	आर	और
५८९	१३	स्तनादि आदि चिह्न है	स्तनादि चिह्न हैं
५८९	२९	जावन पय्यन्त	जीवन पर्य्यन्त
५९०	१०	करनेस	करनेसे
५९०	१३	गर्भ खब	गर्भ खूब
५९०	१९	गर्भाशयक	गर्भाशयके
५९०	१९	निर्वलताक	निर्वलताके
५९०	२०	हान	हानि
५९०	२९	जाता ह	जाता है
५९०	३०	आर कहन	और कहने
५९१	९	विगड	विगडकर
५९१	११	लिख चुक है	लिख चुके हैं
५९३	४	कार्योंसे	कार्य्योंसे
५९४	२०	गर्भाधानकी अवाध	गर्भाधानकी अवधि
५९५	२	प्रकृया	प्रक्रिया
५९६	६	गर्भमें १८०	गर्भमें २८०
५९६	२६	जसे	जैसे
५९७	१२	गर्भाशय	गर्भाशयसे
५९७	१३	होती ह	होती है
५९८	१८	वह जावे तो रह	रह जावे तो वह
६००	२१	खुल	खुलकर
६००	२२	सुकड	सुकडकर
६०१	३	मामूल	माकूल
६०१	१४	रक्त प्रवाह	रक्त प्रवाहमें
६०२	१०	डिटर	ठिठर
६०३	२६	वे वक्त	वह समय
६०३	३१	दो भद हैं	दो भेद हैं
६०४	६	वालकके	वालकको
६०४	७	और वालक	और वालकके
६०४	१३	पीडा है किसी	पीडा होती है किसी २
६०४	१९	जेरी	जेरीसे
६०४	२०	प्रसवके	प्रसव०
६०५	९	आर	और
६०५	२५	थैलीक	थैलीके
६०५	२९	होयता	होयतो
६०५	२८	अत्यावश्य-कताकाह	अत्यावश्यक-ताका है
६०६	१३	स्कूल	स्कूल
६०६	३०	कमलमुख	कमलमुखमें
६०७	२९	गर्भाशयके	गर्भाशय०
६०८	११	गर्भम	गर्भमें
६०८	१९	आगमन द्वारम	आगमन द्वारमें
६०९	२९	स्थिररूप रीतिसे	स्थिररीतिसे
६१०	८	ईस्कयम	ईस्कयमकी
६१०	२३	कमानेके	कमानीके
६१०	३१	उतता है	उतरता है

पृष्ठ.	पंक्ति	अशुद्ध.	शुद्ध.
६१०	३१	इसी प्रसव	इसी कारणसे प्रसव
६११	१७	आर	और
६११	१८	शरीरका	शारीरक विद्याके
६११	२३	१२ घटसे	१२ घंटेसे
६१३	३	होती	होती है
६१४	२	दी गइ ह	दी गई है
६१४	५	न हुआ होय	न हुए होयँ
६१४	७	गभ जाल	गर्भजल थैली
६१४	११	चाहिये	चाहिये कि
६१४	२८	अभ्यन्तर	आभ्यन्तर
६१५	१५	हाथाक	हाथोंके
६१५	१६	प्रसव करने	प्रसव कराने
६१५	१६	उचित है कि	उचित् है कि
६१५	३१	आर	और
६१६	२०	रक्त ऐंठन	सक्त ऐंठन
६१७	८	गर्भाशयसे	गर्भाशय०
६१७	२३	पट्टी ऐसा	पट्टी ऐसी
६१७	२८	जानघाईके	जानदाईके
६१८	१७	दाइयोंको	दाईयोंके
६१८	२२	स्त्रीजाँघों	स्त्रीकी जाँघों
६१८	२६	स्त्रीचाकि-त्सक	स्त्रीचिकित्सक
६१९	१२	बालक	बालकका
६१९	२१	गर्भाशयस	गर्भाशयसे
६१९	२३	प्रकरण	प्रकरणमें
६२१	१८	घढा	चढा
६२३	४	थली	थैलीके
६२३	२८	बकाईमें	अवश्य
६२३	३१	आर	और
६२५	२१	पसलियां	पशलियोंपर
६२६	५	बालक	बालकका
६२६	६	मोर पंखा	मोरपख
६२६	७	पक्षीका	पक्षीकी
६२६	१९	आर	और
६२७	३	सूतनालावे	सूंत लावे
६२७	५	जाता ह	जाता है
६२७	७	बालकक	बालकके
६२७	१८	ढकोसले	ढकोसलेसे
६२७	२४	गर्भाशयम	गर्भाशयमें
६२७	२५	कोई मूर्ख	और कोई २ मूर्ख
६२७	३०	पीछ	पीछे
६२९	२६	खुराकका	खुराककी
६२९	२८	प्रसती	प्रसूती
६३०	१	पक्षम	पक्षमें
६३०	९	वृद्धिसे	०००
६३०	११	आर	और
६३०	१८	आवश्य-कता ह	आवश्यकता है
६३१	३	एतावताव त्तीव	ऐसा वर्त्ताव
६३१	७	कितनी	कितनेही
६३१	१२	सँभलनेसे	सँभालनेसे
६३१	१६	बालक	बालककी
६३२	१२	सूझन	सूजन
६३३	१८	ि श्चय	निश्चय
६३४	६	फविंडीका	फोकेंडीका
६३४	१७	पेय	वेष्टपेय
६३५	१	आर	और
६३५	३	प्रकार	प्रकारका
६३५	१५	होनी ह	होनी है
६३५	१७	थाडा	थोडा
६३५	१९	जन्म	जन्मे
६३५	२२	पीताह	पीता है
६३६	५	स्तनाम	स्तनोंमें
६३६	३१	लटकन लग-ता है इसका	लटकने लगना है इसके

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
६८८	१	जाता ह	जाता है
६८८	८	आर	और
६८८	१०	निकाल	निकाल
६८८	१३	इसक	इसके
६८८	१७	गभाशयके	गर्भाशयके
६८८	२२	वफ	वर्फ
६८९	८	होता ह	होता है
६८९	११	विलम्ब करना	विलंब न करना
६८९	२९	भागम	मार्गमें
६९०	९	जाता ह	जाती है
६९०	१६	पिचकारीम	पिचकारीमें
६९०	२९	जैस	जैसे
६९१	३१	उलजलजलू	उलजलूल
६ २	६	संभव ह	संभव है
६९२	८	वातका·	वात (वायु)की
६९२	९	मिलती ह	मिलती है
६९२	२२–२३	स्त्रीको शरीर को कुछ कष्ट न पहूंचेतो	००००००० ०००००००
६९३	२०	न दीख	न दीखपडेऔर
६९७	१०	होती है	होता है
६९७	१३	नहीं होता	नहीं होती
६९७	२१	मूल गांठें	मूलमें गांठें
६९९	२२	ओझरीमें	ओवरी(स्त्रीगर्भअंड
७००	२९	(लं).	(लेंस)
७०१	८	ज्वरको	ज्वरका
७०१	१९	वनाव	तनाव
७०१	२९	प्रमान	प्रमाण
७०५	७	स्त्रीकी	स्त्रीको
७०५	१३	लोहेकी	लोहेको
७०६	३०	सूजनेपररख	सूजनपर रखे
७०७	२२	काकनज	काकनज और
७१०	२३	निकलता ह	निकलता है
७१०	२९	रोग ह	रोग है
७११	२२	स्तनको	स्तनकी
७१४	८	सुगरलेद-सुगरलेड	सुगरलेद०००० ००
७१४	११	मिलती ह	मिलता है
७१६	१०	वालकोंकी	वालकोंके
७१८	३	दिया ह	दिया है
७१९	२	वपस	वर्पसे
७१९	१९	थकलेते हैं	ढांक लेते हैं
७२१	१४	औपधभा	औपधभी
७२४	६	खाको	दवाको
७२६	२४	चरकक	चरकके
७२६	२४	सिद्धान्तानुसार	सिद्धान्तानुसार
७२६	२४	यद्रव्यहै	ये द्रव्य हैं
८२६	२४	साधुसंज्ञक	सीधुसंज्ञक
७२६	२९	आर	और
७२६	२६	जसे	जेसे
७२८	२०	य	यह
७२९	३	उत्पन्न हे	उत्पन्न हुआ है
७२९	३१	खतमें	खतमी
७३०	३	रक्तक	रक्तके
७३१	१९	कमकर	कमकरे
७३१	२९	कितावम	किताबमें
७३२	३०	सिक	सिर्के
७३३	९	द्विजातीलोग	द्विजीयलोग
७३३	१४	पूर्वीच्याय्योंकी	पूर्वाचार्य्योंकी
७३९	१२	चाहिय	चाहिये
७३९	१८	वास्तह	वास्ते है
७३९	२२	कसाही	कैसाही
७३९	२७	कामला	कामले

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
७४१	३०	दशमलके	दशगूलके
७४७	५	आग्न	अग्नि
७४७	८	फिरनेस	फिरनेसे
७४८	१	सोमरूप ह	सोमरूप है
७४८	६	करक	करके
७४८	७	वीर्य्य	वीर्य्य
७४८	१५	सज्जनतास	सज्जनतासे
७४९	२	होता ह	होता है
७४९	४	७० वषक	७० वर्षके
७५०	११	श्वसादिसे	श्वासादिसे
७५४	२६	संभव ह	संभव है
७५६	७	हानक	होनेके
५६७	१	शास्त्र वैद्य	अशास्त्रज्ञ वैद्यका
७७०	२२	करक	करके
७७०	२२	इसा	इसी
७७०	२६	रहता ह	रहता है
७७०	२८	चाहय	चाहिये
७७१	११	माक्षणादि	मोक्षणादि
७७५	१६	भावनादेव	धूपमें सुखा लेवे
७७७	७	पोटलीमें रखे	० ० ० ० ० ०
७७७	१३	लीध	लोध
७७८	२०	अर्बु	अर्बुद
७८६	१४	लानेवालो	लानेवाली
७८७	२९	आनस	आनेसे
७८७	३०	अधिक निकलने	अधिक न निकलने
७८८	३	प्रकृतिके	प्रकृतिकी
७८८	२१	नाकक	नाकके
७८९	२४	तफ चढ	तर्फ चढे
७८९	३१	नाक खुश्की	नाककी खुश्की
७९०	१	शरीर	शरीरके
७९०	७	(रेशाखमी,	रेशाखतमी,
७९१	३	तेलकी	तैलको
७९२	५	दोनोंका उपाय	दानोंका उपाय
७९२	६	दोनोंपर	दानोंपर
७९५	२३	तृषाके	तृपासे
७९५	२४	वातज्वर	वातज्वरपर
७९८	१८	रखता ह	रखता है
८०४	८	चूण	चूर्ण
८०५	२	गंधक	गंधककी
८०५	९	इसका अदरखक	इसको अदरखके
८१५	२७	आर	और
८२०	२	स्थानम	स्थानमें
८२०	१८	करती ह	करती है
८२०	१९	गर्म ह	गर्म है
८२१	७	नाशते रैं	नाशते हैं
८२१	१३	अग्नि नष्ट हो गई होय	० ० ० ० ० ० ० ० ०
८२७	१८	करता ह	करता है
८३०	१२	बारकि	बारीक
८३०	१३	पाता ह	पाता है
८३४	२१	कुण्डराग	कुण्डरोग
८३४	२३	पय्यन्त	पर्य्यन्त
८३५	१८	पुाष्ट	पुष्टि
८३६	२४	(चूर)	(कचूर)
८३६	२९	अन प्रयो	अन्य प्रयोग
८३७	६	परामत	परिमित
८३७	१५	याद	यदि
८४२	१३	औषध	ओपधको
८४२	१३	निचोडली	निचोडलिया
८४३	२२	करनेस	करनेसे
८४५	१	रक्त जन्तुओं	रक्तज जन्तुओं
८४५	२६	चुका हं	चुका है

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
८४९	१७	बहुतस	बहुतसे
८५२	१०	होती ह	होती है
८५२	२८	जारा	जीरा
८५४	२४	जोर	जोरसे
८५५	७	मूत्रजल	मूत्र जल जावे और
८५५	१२	वैलवाल	वैलके बाल
८५६	३	पदार्थोंसे	पदार्थोंके
८५६	४	भस्म रोगका	भस्मक रोगका
८६१	२३	मोह	मोंह
८६२	१४	मगीरोग	मृगीरोग
८६५	९	हरडकी	हरडका
८६९	१०	वालक	बालककी
८६९	११	रोगको	रोगके
८६९	१८	जैसाक	जस क
८६९	२६	कारणस	कारणसे
८७०	१६	देना	सेक देना
८७०	२०	दुग्ध क्रिया	दग्ध क्रिया
८७१	१	क्वाथ जल	क्वाथ जल जावे और
८७२	१८	जठराग्निको	जठराग्निकी
८७४	२७	हिग्वादि चूर्ण	हिंग्वादि चूर्ण
८७५	१०	भागल	भागले
८७५	११	चूण	चूर्ण बनावे
८७५	१२	आध्यान	आध्मान
८७५	१३	तूना	तूनी
८७५	१७	जानत	जनित
८७५	१८	किया ह	किया है
८७५	२६	आर	और
८७५	२७	हात	होता है
८७७	६	वद्य	वैद्य
८७७	२३	शोधा हुआ ले	शोधा हुआ गूगल लेवे और
८७८	२	करनेवाली ह	करनेवाली है
८७८	१७	सीठकी	सौंठकी
८७८	२३	वात रागवाले	वात रोगवाले
८७८	२४	होगइ	होगई
८७९	१०	तजा	तेजी
८७९	१९	मागास	मार्गोसे
८८३	८	आर	और
८८५	८	मिलाव	मिलावे
८८५	१८	आत	अति
८८५	२२	जात है	जाते हैं
८८६	१०	जिससे	जिसमें
८८९	२३	बालकमल	बालकका मल
८८९	२४	गुदा	गुदाके
८९१	२	संकोच है	संकोचसे है
८९१	१६	फलबात्तका	फलवर्त्तिका
८९१	१८	आषध	औषध
८९३	१२	करता ह	करता है
८९४	१०	अन्तर कूजन न होना	अन्तर कूजन होना
८९५	५	भोजन करनेसे	० ० ० ० ०००
८९६	१९	दूधम	दूधमें
८९६	२१	लेकर	० ० ०
८९६	२७	गुल्म रोगीका	गुल्म रोगीको
८९७	२०	मात्रास	मात्रासे
८९७	२७	अलसा	अलसी
८९८	७	पीपलामल	पीपलामूल
९१०	१०	लप	लेप

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
११३	७	मंनुष्यक	मनुष्यके
११३	२३	जाता ह	जाता है
११४	२१	गुलव	गुलाब
११८	६	होती ह	होती है
११८	९	इसक	इसके
११८	१७	होता ह	होता है
११८	२०	जंघा ग्रन्थी	जंघाकी ग्रन्थी
११८	२१	होने लगती	होने लगती है
११८	२७	जाता ह जिह्वा शुष्क हती	जाता है जिह्वा शुष्क रहती
११८	२८	रक्तताक	रक्तता कम
११८	२९	उसक	उसके
११८	२९	डा आर	पीडा और
११८	३०	कूटनेके	फूटनेके
११८	३०	ानकलता है	निकलता है
११९	११	चिकित्सक	चिकित्सकके
११९	१३	चिकित्साके	चिकित्सकके
११९	१९	रोगके	रोगीके
१२१	१६	सरवत	सरवन
१२४	९	जाता ह	जाता है
१२८	२४	गया ह	गया है
१२९	६	गलेस लकर	गलेसे लेकर
१२९	१३	इसमेंस	इसमेंसे
१३०	१४	पैर लगडा	पैरसे लगडा
१३१	७	जाता ह	जाता है
१३१	१४	परीक्षित	परीक्षित है
१३१	२४	रोको	रोगको
१३१	२९	स्फोटकको	विस्फोटकको
१३१	२६	परिषय	परिचय शीतला देवीके
१३९	२३	पाण्डु-सार	पाण्डुरोग, अतीसार

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१४१	३	होती ह	होती है
१४२	१७	फूटने जलसे	फूटनेसे जल
१४४	२१	कांदोके	कोदोंके
१४७	९	होय लेवे	उसीको काममें लेवे
१४७	२१	थहरके	थूहरके
१४७	२३	थूहरवृक्ष	थूहर वृक्षको
१४८	२१	गूली	मूली
१५०	१०	होत	होता है
१५३	११	सिफ	सिर्फ
१५३	१७	फसू न खोले	फस्द न खोले
१५४	१६	इच्छा	इच्छाके
१५४	२९	रह	रहे
१५४	२८	करता ह	करता है
१५५	२	आर	और
१५६	२२	गमा	गर्मी
१५९	१०	भागम	भागमें
१५९	१९	सत्तू जलावके	सत्तू जुल्लावकी दवाके
१६०	२७	पानी	पानीसे
१६१	९	कहक	कहूके
१६२	४	आचत है	उचित है
१६३	९	वारीक ह	वारीक है
१६३	१९	याद हतो	यदि गहराहै तो
१६३	२२	दीखताह	दीखताहै
१६३	२४	रक्षाक	रक्षाके
१६३	२९	तवाल	तवील
१६४	२९	पदा	पैरों
१६६	११	लाग	लोग
१६७	२९	अन्नको	अन्नरसको
१७१	३०	करनेके	करनेको

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
९७२	६	खखर	खखारके
९७३	८	आर	और
९७४	११	जातीह	जांती है
९७४	१४	धूपमें	धूपमें रक्खे
९७५	१	आलूवालू	आलू बुखारा
९७५	३	आलू	आलू बुखारा
९७५	४	कद्दूक वाज	कद्दूके बीज
९७७	९	पारीह	या रीह
९७७	१२	मदाव	मवाद
९७८	१७	जूफाक	जूफाके
९७८	२४	हुआह	हुआहै
९७९	१	इसरोगोंका	इन रोगोंका
९७९	२५	खोपडीक	खोपडीके
९८०	१३	समीप रख	समीप रखे
९८२	१०	वाहुपा शीलयो	वाहु और पशलियों
९८३	१७	फटा	फेंटा
९८४	२३	गरारत	गरारह
९८७	१२	जव पानीको	इस पानीको
९८७	३१	चांदमें दद	चांदमें दर्द
९८८	१०	हिस्सेमें दर्ह	हिस्सेमें दर्द
९८८	१८	उसक	उसके
९८८	२०	शिरम दद	शिरमें दर्द
९८८	२१	पैरट्कनेके	पैरके टकनेके
९८९	८	आर	और
९८९	१०	सिाथलमालूमहोताहे	सिथिलमालूम होताहै
९८९	१७	हाताह	होताहै
९९०	२१	आत	अति
९९६	१८	सिकैम	सिकैमें
९९६	२७	प्रकारस	प्रकारसेहै
१००२	२३	खेले	खोले
१००३	६	खोपडीमसे	खोपडीमेंसे
१००७	३	चमकने लग	चमकनेलगे
१००७	६	होतही	होतेही
१००७	१३	करता	करताहै
१००७	१४	दोना	दोनों
१००७	१८	नेत्राके	नेत्रोंके
१००७	२३	भोजनस	भोजनसे
१००७	२६	तांवेकेस	तांवेकेसे
१००७	२८	याद	यादि
१००९	८	वर्ग	कर्म
१०११	१३	टेसू	केशूत्पलाशके फूलका रस
१०११	२८	दुग्धम	दुग्धमें
१०१२	१२	कम	कर्म
१०१५	२५	पासकर	पीसकर
१०१६	५	अघवर	अधवर
१०१६	२५	लगा	लगावे
१०१८	२	काजलक	काजलके
१०१८	२	सधा	सेंधा
१०१८	११	कराक	कराके
१०१८	१२	अताह	आताहै
१०१८	१२	स्वदन	स्वेदन
१०१८	१४	तपणकी विाध	तर्पणकी विधि
१०१८	२१	आर	और
१०१८	२२	तपण	तर्पण
१०१८	२५	समाप	समीप
१०१९	११	वाजत	वर्जित
१०१९	१८	ाकयों	किया
१०१९	१९	व्याधिया	व्याधियों
१०१९	२०	तपणके अयोग्य	तर्पणके अयोग्य
१०१९	२१	याग्य	योग्य

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१०१९	२२	नत्रभी पुटपाकक याग्य	नेत्रभी पुटपाकके योग्य
१०१९	२४	आत	आति
१०१९	२९	आर	और
१०२२	२	खैरक कायले	खैरके कोयले
१०२२	८	करनस	करनेसे
१०२२	१६	पसाना	पसीना
१०२२	१७	आषके धमको	औषधके धूम्रको
१०२२	११	हीन याग	हीन योग
१०२७	१४	राहत	रहित
१०२७	१९	हान दोष	हीन दोष
१०२९	२१	वत्तीको घिसकर लगा	वे ००००००००
१०३०	१८	करनेस	करनेसे
१०३१	४	मेथीके	मेथीको
१०३१	१३	आपस चिपटते	आपसमें चिपटते
१०३१	१४	मिला ने- त्रोंमें	मिलावे और नेत्रोंमें
१०३४	१९	नत्रके	नेत्रके
१०३८	२९	शीश	शीशा
१०३९	१६	यह ह	यह है
१०४२	२	समय अर्वी	समग अर्वी बाबूलका गोंद
१०४३	३१	नासिका-में टपका	नासिकामें टपकावे
१०४३	१७	जैसी ाक	जैसी कि
१०४४	६	क्याकि	क्योंकि
१०४४	२६	प्रयोज	प्रयोजन

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१०४५	१६	जानेस	जानसे
१०४६	१	इकका	इसका
१०४६	२८	द्रेख	देख
१०५१	६	जे	जो
१०५१	९	ाक	कि
१०५२	१९	होता ह	होता है
१०५२	२४	धनादिका	धानादिका
१०५३	३१	रहता ह	रहता है
१०५४	४	निकल-नक	निकलनेके
१०५४	१४	ओषाध-याक	औषधियोंके
१०५४	१९	आर	और
१०५५	३	माकेपर	मौकेपर
१०५७	३	चका है	चुका है
१०५८	५	पठ्ठ	पट्ठे
१०५८	१९	पठ्ठ	पट्ठे
१०६०	६	प्रकाति शक्ति	प्रकृतिकी शक्ति
१०६६	२३	अधिक काटे	अधिक न काटे
१०६९	१९	ना मिल सके	न मिल सके
१०७१	८	नत्र पलक	नेत्रपलक
१०७१	२६	वच रोगी	बचना रोगीकी
१०७२	२	ठीक है	ठीक नहीं है
१०७२	१२	अलसी-का टुकडा	साफ कपडेका टुकडा
१०७७	२	चाडा	चौडा
१०७७	८	आजारों	औजारों
१०७७	२७	मिचाव	भिचाव
१०७७	२८	मिचाव	भिचाव

पृष्ट.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१०८१	८	आर	और
१०८१	१६	आर	और
१०८३	१८	यह ह	यह है
१०८४	१	यूनान-वाल	यूनानवाले
१०८६	८	पलकझड	पलककी बांफणी-के बाल झडकर
१०८८	२	वजरा	वाजरा
१०९७	२१	हड्डा	हड्डी
१०९९	६	फेंफसामें	फेंफसामेंसे
११००	९	औरको	औरके
११०३	१४	कारण	कारणसे
११०७	१३	जोर लग	जोर लगे
१११२	२८	इस	इन
१११३	२०	खपडीकी	खोपडीकी
१११५	१२	जाती ह	जाती है
१११५	१४	जिसी	जिस
१११६	१४	इनमेंस	इनमेंसे
१११६	२९	लगती ह	लगती है
१११८	९	निर्वल	प्रवल
१११८	२९	कवल	केवल
१११९	११	आर	और
१११९	१९	होता ह	होता है
१११९	२०	होता ह	होता है
१११९	२६	स्कोफ्युला	स्कोफ्युला
११२१	१३	स्फोफ्युला	स्कोफ्युला
११२२	१९	अवरण	आवरण
११२४	१	चाय	चौये
११२४	११	वारहवार	वारह गज़
११२४	१९	जाती ह	जाती है
११२४	३१	शरीरम	शरीरमें
११२५	१६	पहुंच	पहुंचकर
११२७	१	स्निग्य	स्निग्ध
११२८	२६	स्कोफ्युला	स्कोफ्युला
११३२	२	पेटकी वीवाल	पेटकी दीवाल
११३२	२७	जाती ह	जाती है
११३३	३१	चाहिय	चाहिये
११३४	७	कहत	कहते हैं
११३४	२०	होता	होता है
११३४	२३	जाता ह	जाता है
११३४	३१	निकलता ह	निकलता है
११३७	१०	एका गम	एक भाग
११३८	१८	गांठ भाग	गांठका भाग
११३८	१९	सफराम	सफरामें
११४०	१३	पडती ह	पडती है
११४०	२१	जाता ह	जाता है
११४०	३१	संकचित	संकुचित
११४६	१८	आर	और
११५१	१७	गई ह	गई है
११५२	३१	त्वचा जल	त्वचा जलकर
११५३	१९	जिसमें	जिस्में
११५७	३०	मिनिटम	मिनिटमें
११५८	१६	मुखमल	मुख गले
११५८	२४	रक्ताजय	रक्ताशय
११६०	७	मनुष्यका	मनुष्योंका
११६३	२४	चढनेवा-लीकी	चढनेवालेकी
११७३	१२	जलसे से-वन करे	जलसे पीसकर दंशपर लेप करे
११७६	६	भडक उठ	भडक उठे और
११७६	१२	मेदोमें	भेदोंमें
११७८	९	ऐस	ऐसे
११८९	२३	पड जाते	पड जाते हैं

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
११८५	२७	श्वत	श्वेत
११८५	३०	होती है	होती ह
११८७	११	सिरके बीज	सिरसके बीज
११८७	१९	पचकपित्थ	पञ्चकपित्थ
११८९	३०	सूजनसे	सूंघनेसे
११९२	२३	कसमके	कुसूमके
११९३	३	रीठ	रीठा
१२०७	५	झुर्फाका पानी	कुलफाका पानी
१२०९	१९	चासोंसे	बीजोंसे
१२१०	१७	ठंढ	ठंढा
१२१५	२९	सारेवा	सोरवा
१२१७	२	जहरा	जहरी
१२२६	१७	मूलमूत्र	मलमूत्र
१२२७	२८	पदार्थोंका	पदार्थोंको
१२२९	२८	कारणते	कारणसे
१२४१	३१	निमित्त वच	निमित्त बचना चाहिये और
१२५६	२७	जावे तो ११।करीव	जावे तो १॥ सेरके करीव
१२५८	२८	उष्म प्रधान	उष्णता प्रधान
१२६०	२६	रक्त आ अर्श	रक्तजार्श
१२७४		मतलव यह कि अधिक लोभकी अश्लाघा न करे	यह पंक्ति इस प्रसङ्गपर सर्वथा असङ्गत है

इति वन्ध्याकल्पद्रुम शुद्धिपत्र समाप्त ।

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१०८१	८	आर	और
१०८१	१६	आर	और
१०८३	१८	यह ह	यह है
१०८४	१	यूनान-वाल	यूनानवाले
१०८६	८	पलकझड	पलककी बांफणी-के बाल झडकर
१०८८	२	वजरा	बाजरा
१०९७	२९	हड्डा	हड्डी
१०९९	६	फेंफसामें	फेंफसामेंसे
११००	९	औरको	औरके
११०३	१४	कारण	कारणसे
११०७	१३	जोर लग	जोर लगे
१११२	२८	इस	इन
१११३	२०	खपडीकी	खोपडीकी
१११५	१२	जाती ह	जाती है
१११५	१४	जिसी	जिस
१११६	१४	इनमेंस	इनमेंसे
१११६	२९	लगती ह	लगती है
१११८	९	निर्बल	प्रबल
१११८	२९	कवल	केवल
१११९	११	आर	और
१११९	१९	होता ह	होता है
१११९	२०	होता ह	होता है
१११९	२६	स्कोफ्युला	स्कोर्फ्युला
११२१	१३	स्फोफ्युला	स्कोर्फ्युला
११२२	१९	अवरण	आवरण
११२४	१	चाथ	चौथे
११२४	११	वारहवार	बारह गज़
११२४	१५	जाती ह	जाती है
११२४	३१	शरीरम	शरीरमें
११२५	१६	पहुँच	पहुँचकर
११२७	१	स्निग्ध	स्निग्ध
११२८	२६	स्कोफ्युला	स्कोर्फ्युला
११३२	२	पेटकी वीवाल	पेटकी दीवाल
११३२	२७	जाती ह	जाती है
११३३	३१	चाहिय	चाहिये
११३४	७	कहत	कहते हैं
११३४	२०	होता	होता है
११३४	२३	जाता ह	जाता है
११३४	३१	निकलता ह	निकलता है
११३७	१०	एका गभ	एक भाग
११३८	१८	गांठ भाग	गांठका भाग
११३८	१९	सफराम	सफरामें
११४०	१३	पडती ह	पडती है
११४०	३१	जाता ह	जाता है
११४०	३१	संकाचित	संकुचित
११४६	१९	आर	और
११५१	१७	गई ह	गई है
११५२	२१	त्वचा जल	त्वचा जलकर
११५३	१९	जिसमें	जिस्ममें
११५७	३०	मिनिटस	मिनिटमें
११५८	१६	मुखमल	मुख गले
११५९	२४	रक्ताजय	रक्ताशय
११६०	७	मनुष्यका	मनुष्योंका
११६३	२४	चढनेवा-लीकी	चढनेवालेकी
११७३	१२	जलसे से-वन करे	जलसे पीसकर दंशपर लेप करे
११७६	६	भडक उठ	भडक उठे और
११७६	१२	मेदोमें	भेदोंमें
११७८	९	ऐस	ऐसे
११८५	२३	पड जाते	पड जाते हैं

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
११८५	२७	श्वत	श्वेत
११८५	३०	होती है	होती ह
११८७	११	सिरके बीज	सिरसके बीज
११८७	१९	पचकपित्थ	पञ्चकपित्थ
११८९	३०	सूजनसे	सूंघनेसे
११९२	२३	कसमके	कुसूमके
११९३	३	रींठ	रींठा
१२०७	५	ख़ुर्फाका पानी	कुलफाका पानी
१२०९	१५	चासोंसे	बीजोंसे
१२१०	१७	ठंढ	ठंढा
१२१५	२९	सारेवा	सोरवा
१२१७	२	जहरा	जहरी
१२२६	१७	मूलमूत्र	मलमूत्र
१२२७	२८	पदार्थोंका	पदार्थोंको
१२२९	२८	कारणते	कारणसे
१२४१	३१	निमित्त वच	निमित्त बचना चाहिये और
१२५६	२७	जावे तो	जावे तो १॥
		११।करीव	सेरके करीव
१२५८	२८	उष्म प्रधान	उष्णता प्रधान
१२६०	२६	रक्त आ अर्श	रक्तजार्श
१२७४		मतलब यह कि अधिक लोभकी अश्लाघा न करे	यह पंक्ति इस प्रसङ्गपर सर्वथा असङ्गत है

इति वन्ध्याकल्पद्रुम शुद्धिपत्र समाप्त।

आकृति - ४२ (पृ० १९४) चित्र-ग्लीसराईन पेड होजिस पेसरी
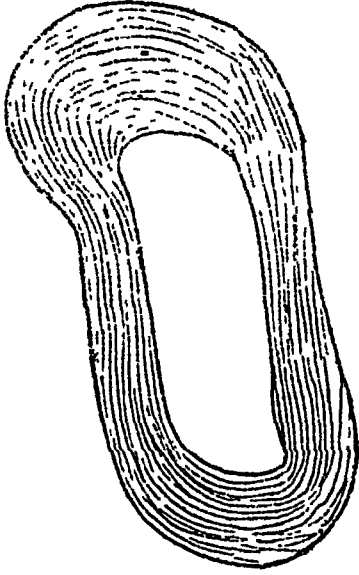
आकृति-४३ (पृ०१९४) चित्र-रींग पेसरी.
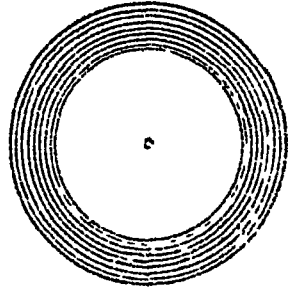
आकृति -४५ (पृ० १९७) चित्र-पश्चात् वक्र गर्भाशयको होजिस पेसरी यन्त्र
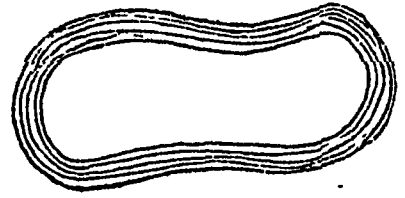
आकृति- ४४ (पृ०१९४) चित्र-गर्भाशयकी पश्चात् वक्रता
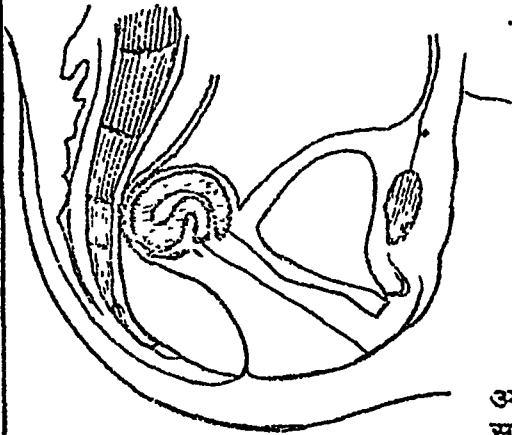
आकृति-४६ (पृ० २०९) चित्र- गर्भाशयके भ्रंशकी पृथक् पृथक् तीन स्थितियां

आकृति- ४७ (पृ० २०९) चित्र-गर्भाशयके साथ मूत्राशय तथा योनिमार्गका भ्रंश ॥
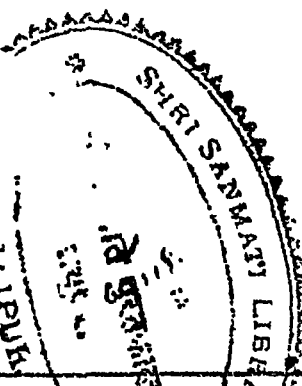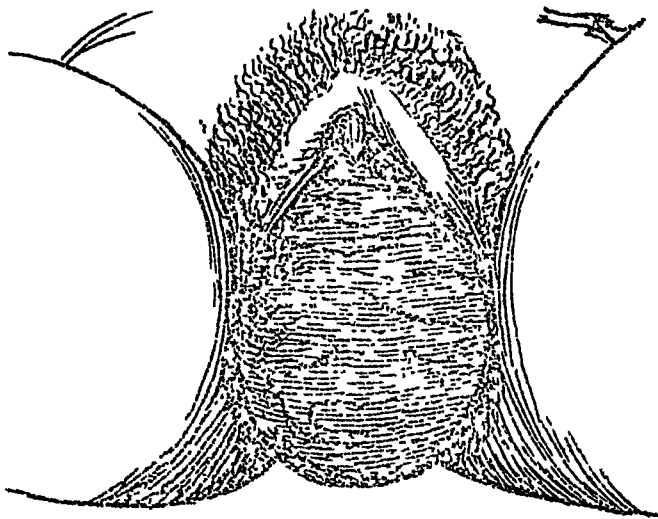
आकृति-४८ (पृ० २११) चित्र-
अश्मरी-भंजना कृति।
आकृति ५० (पृ० ३४३) चित्र-कुलपरम्परासे
उतरी हुई उपदंश व्याधि वालेके दान्त.
आकृति-५१ (पृ० ३४३) चित्र
आरोग्य स्थिति वालेके दान्त.
आकृति-४९ (पृ० २९९) चित्र
गर्भिणीका गर्भभंग न होनेका पट्टा।
आकृति-५२ (पृ० ४५७) चित्र
गर्भाशयके निदानकी विधि.
आकृति-५३ (पृ० ४५८) चित्र-डाक्टर
मेकनोटन जोन्सका गर्भाशयदर्शक
नलिका यन्त्र।
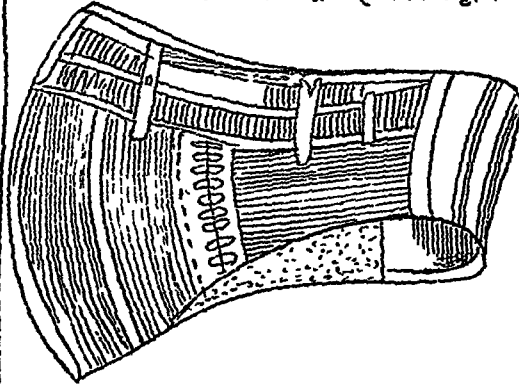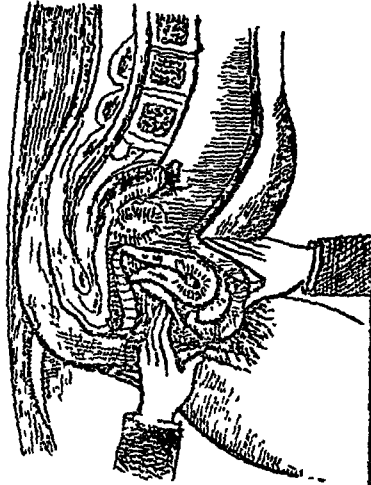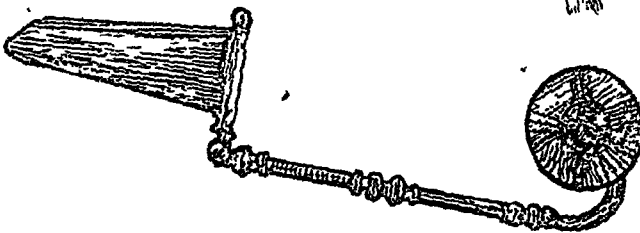
आकृति-५४ (पृ० ४५९) चित्र-
चंच्वाकृति यन्त्र
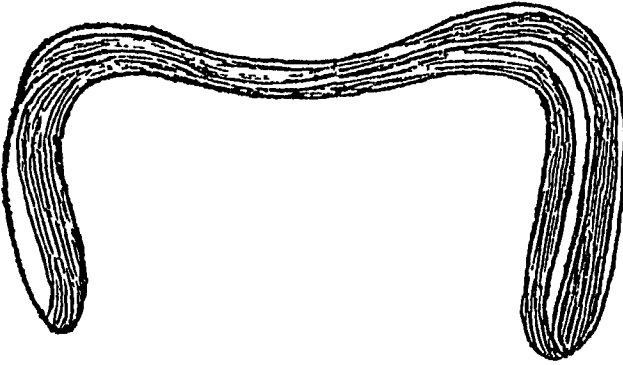
आकृति-५५ (पृ० ५८५) चित्र-
चार पांच महीनेका गर्भाशय.
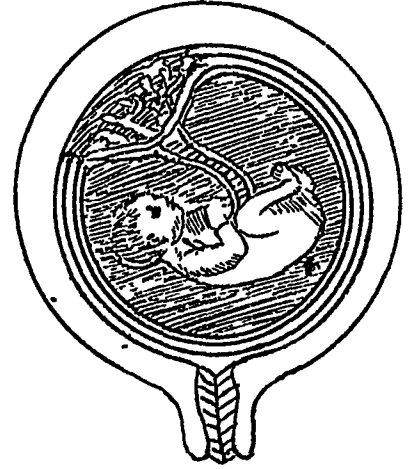
आकृति-५६ (पृ० ५८९) चित्र-
बालकको बाहर रखकर गर्भकी स्थिती।
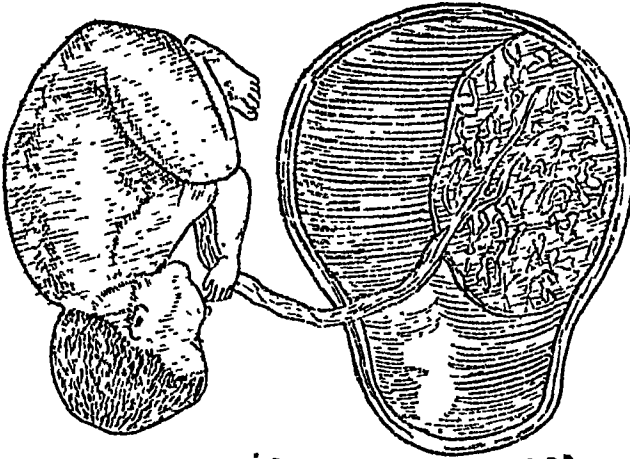
आकृति-५७ (पृ० ६०८) चित्र-
बालकका कपाल वा खोपडी उसका ललाट कहिये मस्तकका अग्र भाग दक्षिण और वाम पार्श्व अस्थि पश्चिम अस्थि पूर्व और पश्चिम रन्ध्र ललाटास्थि पार्श्वास्थि पश्चिमास्थि पूर्वब्रह्मरन्ध्र पश्चिम ब्रह्मरन्ध्र.

आकृति ५८ (पृ० ६०८) चित्र-बालकका प्रसव होनेके समय मस्तक प्रथम आगमनद्वारमें कई स्थितिमें दाखिल होता है पीछे कैसे फिरता है और किस रीतिसे गर्भाशयसे चलकर उतरता है इस क्रियाका प्रदर्शन चित्र एकही मस्तक कैसे २ फिरकर योनि-मुखसे बाहर आता है इसकी सब स्थिति ज्ञात होगी.
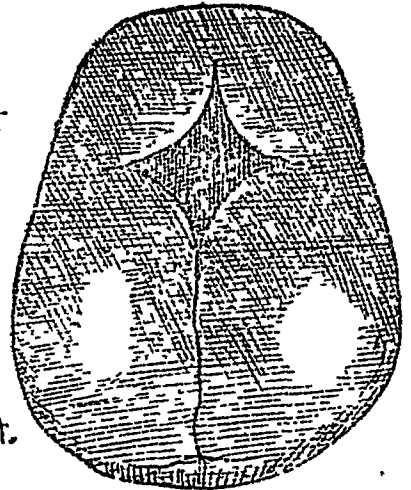
आकृति-५९ (पृ॰ ६१०) चित्र- बालककी प्रसव स्थितिकी आकृति ॥ मस्तक प्रसवकी प्रथम स्थिति- ललाटास्थि दक्षिण कौनेमें है. पश्चिमास्थि वामे इस्कयमकी तरफ है दक्षिण कान दक्षिण इस्कयम तरफ है॥
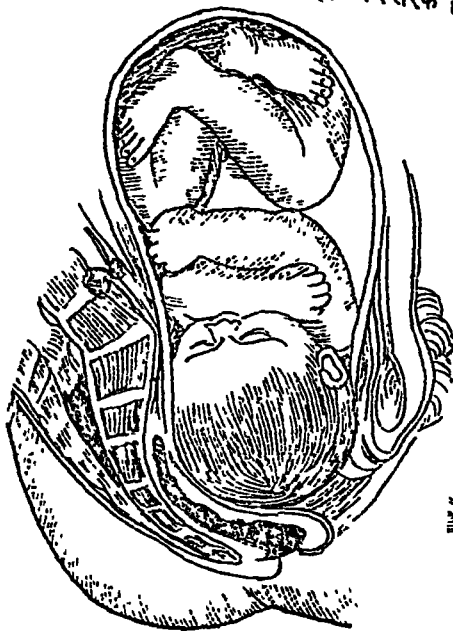
आकृति- ६० (पृ॰ ६१०) चित्र-बालकके प्रसवकालकी आकृति। बालकके प्रसवका तीसरे प्रकारमें ललाटास्थि पूर्व दिशामें होनेसे मस्तक बाहर निकलते समय निर्गमन द्वारमें अटकता है॥
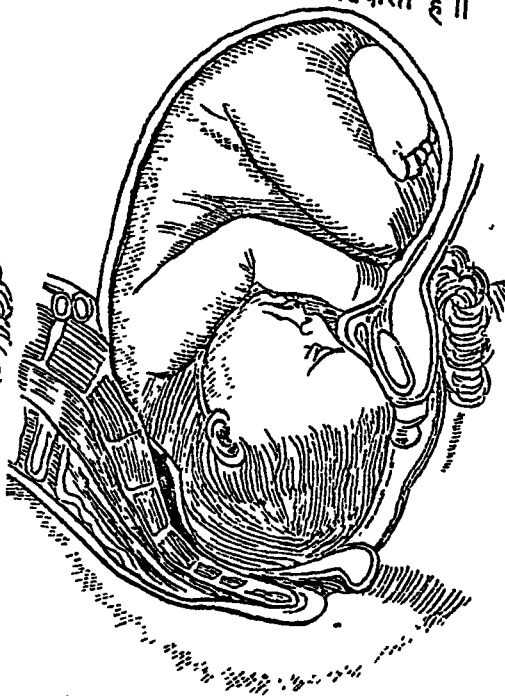
आकृति-६१ (पृ॰ ६१४) चित्र-प्रवसके आरम्भमें योनिमार्गमें तर्जनी अंगुली प्रवेश करके कमल-मुखकी परीक्षा मणालिकी आकृति

आकृति-६२ (पृ॰ ६२२) चित्र-बालकका आंवल अर्थात् फूलसे सम्बन्ध ॥

आकृति- ६३ (पृ॰ ६६२) चित्र-युग्म (जोडले) बालकोंका आंवल अर्थात् फूलसे सम्बन्ध.
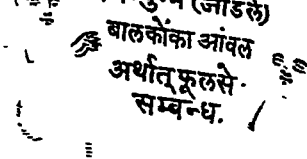
आकृति-६४ (पृ. ६२४) चित्र-प्रसवकालमें स्त्रीके आसनकी स्थिति-की आकृति। तथा दोनों जंघाओंके बीचमें तकिया लगाना और नि-र्गमन द्वारसे बालकके मस्तकके आगे हाथ रखकर उसको नीचेके अभिघातसे बचाना यह धाई वा दूसरी स्त्रीका हाथ लगा हुआ है.

आकृति-६५ (पृ. ६४४) चित्र-स्तनोंमेंसे दुग्धाकर्षण करनेवाला यन्त्र (ब्रेस्ट पेंप)
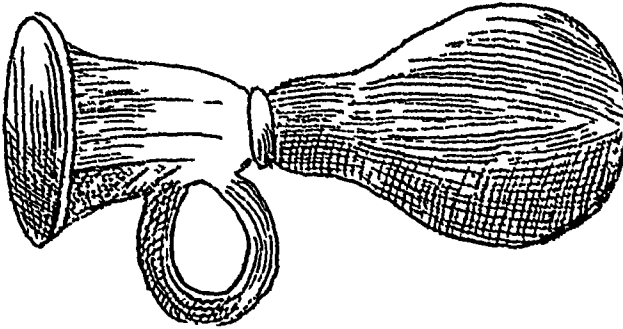
आकृति-६७ (पृ. ६५६) चित्र गर्भकी जल थैलीको छेदन करनेवाला शस्त्र।

आकृति-६६ (पृ. ६५४) चित्र-यह आकृति अस्वाभाविक वस्तीकी है इसका पूर्व पश्चिम व्यास लम्बा है और उत्तर दक्षिण व्यास संकु-चित है इस ग्रन्थके प्रथम अध्यायमें आकृति-२ के साथ मिलान करनेसे न्यूनाधिकताका अन्तर मालूम होगा ॥

आकृति-६८ (पृ० ६५६) चित्र- विचित्रगर्भ दो बालक जुडे हुए.
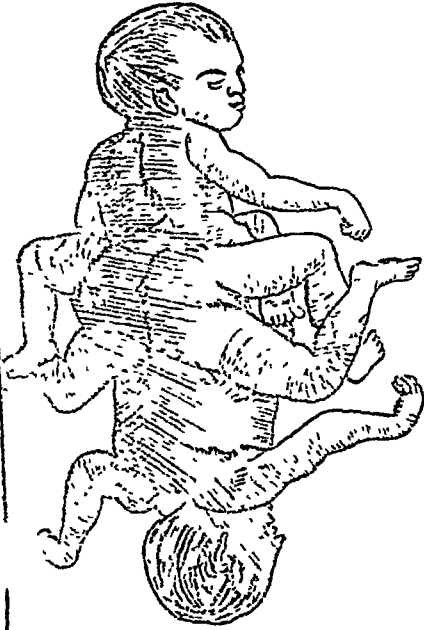
आकृति-६९ (पृ० ६५७) चित्र- गर्भाशयमें दो बालकों की आकृति दिखलाई है इन की गर्भजल थैलीमें अन्दर पडदा है और पृथक् २ दो थैलीजान पडती हैं.
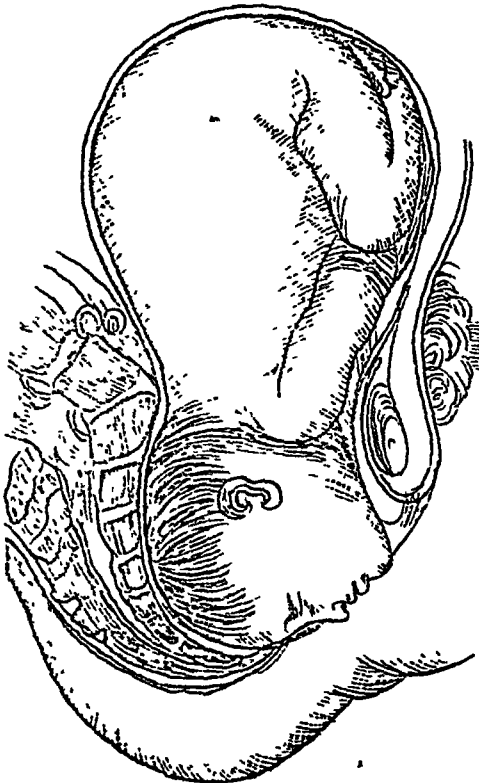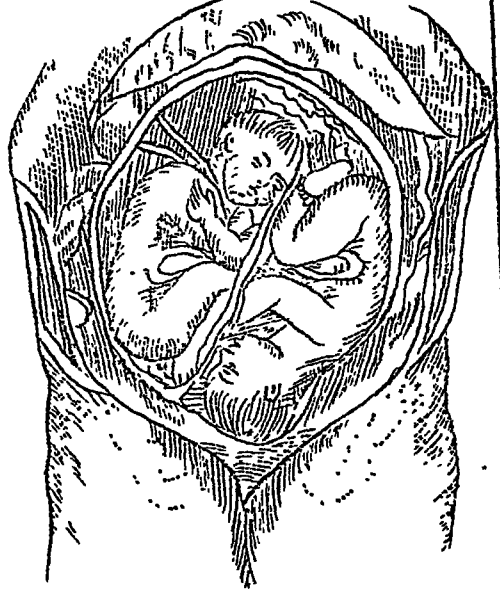
आकृति-७० (पृ० ६५८) चित्र- मुख (चेहरा) प्रथम निकला हुआ प्रसव इस आकृतिमें निर्गमन द्वार से मुख निकलता है हडपची (ठोडी) पूर्व दिशामें और ललाटास्थि पश्चिमकी तर्फ है ॥

आकृति-७१ (पृ० ६६०) चित्र-इस स्थितिमें नितम्बप्रसव होता है।
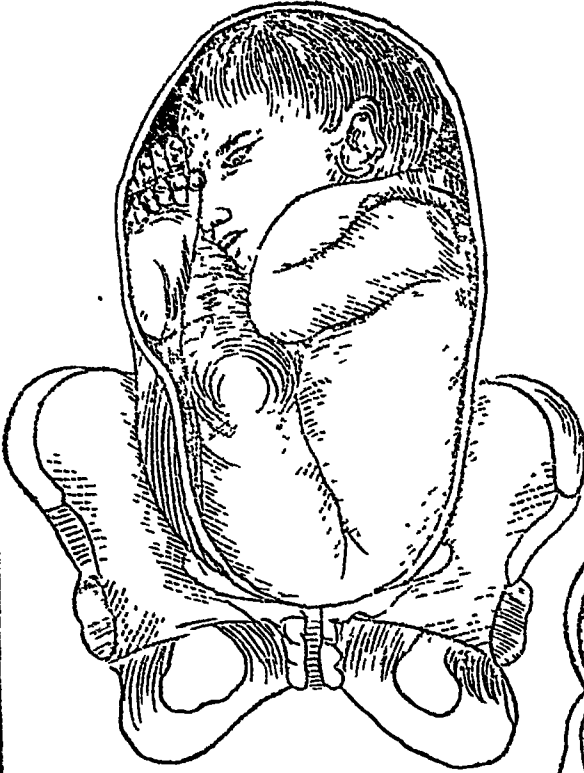
आकृति- ७२ (पृ० ६६२) चित्र- जो बालक आडा गर्भाशयके अन्दर होजाता है उसका हाथ इस आकृतिके प्रथम बाहर आता है इसका दक्षिण हाथ बाहर आया हुआ है मस्तक बामी बगलकी तर्फ है और पीठ पूर्व दिशामें है। यह प्रथम स्थिति है।
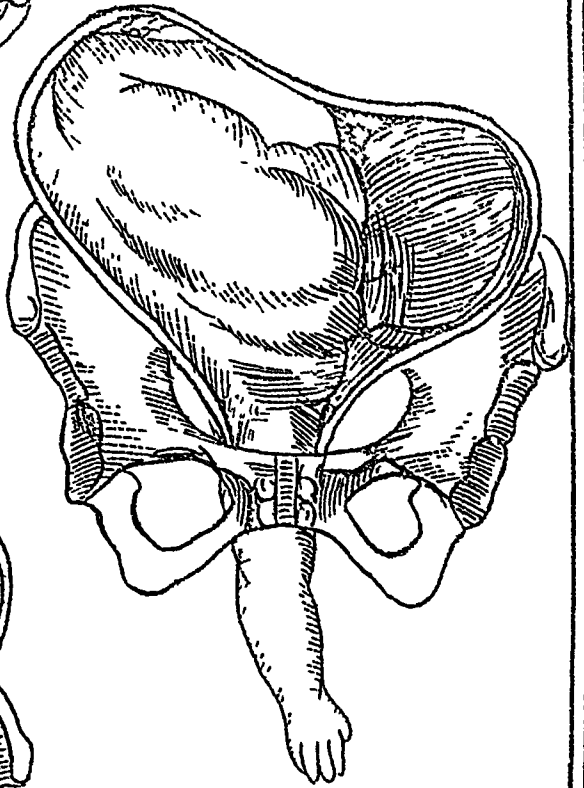
आकृति-७३ (पृ० ६६३) चित्र-गर्भाशयमें बालक आडा पडगया है यह आडे गर्भकी दूसरी स्थिति समझो। बालकका मस्तक माताकी दक्षिण बगलमें है और पीठ पश्चिम दिशामें है।
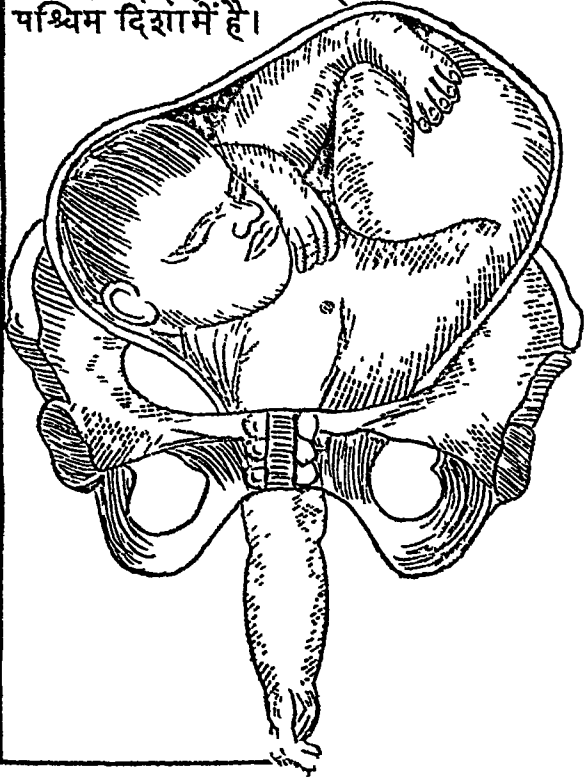
आकृति- ७४ (पृ० ६६५) लम्बा टेढे वांकवाला प्रसव करानेका चीमटा
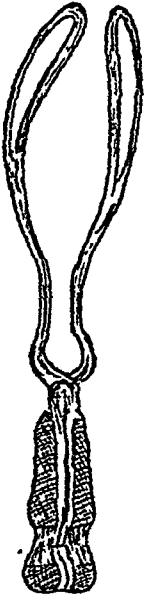
आकृति-७५ (पृ० ६६५) लम्बे प्रसव चीमटेका एक ही पंख है।

आकृति-७६ (पृ० ६६५) मध्यकदके प्रसव चीमटा

आकृति- ७७ (पृ० ६६५) मध्यकद प्रसव चीमटाका एक पंख

आकृति-७८ (पृ० ६६६) चित्र- बालकका मस्तक निर्गमन द्वारमें रुकावट पानेसे प्रसव करवानेके लिये योनि मार्गके अन्दर चीमटा प्रवेश किया गया है जिसकी प्रक्रिया बराबरवाली आकृतिमें देखो ॥
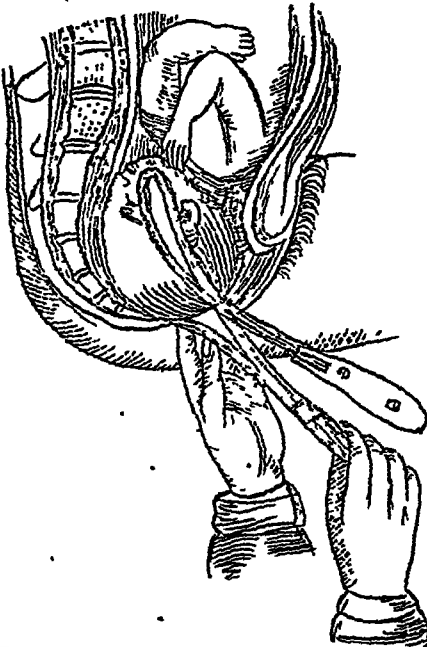
आकृति-७९ (पृ० ६६९) चित्र- इस आकृतिमें बालकका मस्तक आगमन द्वारमें अटका हुआ है और आगमनद्वारमें शोथ आगया है इस कारणसे प्रसवकार्य के लिये लम्बा चीमटा लगाया है॥

आकृति-८० (पृ० ६७३) चित्र-इस आकृतिमें बालकका चरण भ्रमण प्रथम बालकका पैर पकडकर फेरनेकी प्रक्रिया चिकित्सक का दूसरा हाथ पेट पर रखके वह गर्भस्थ बालकके फेरनेमें सहायता करता है।
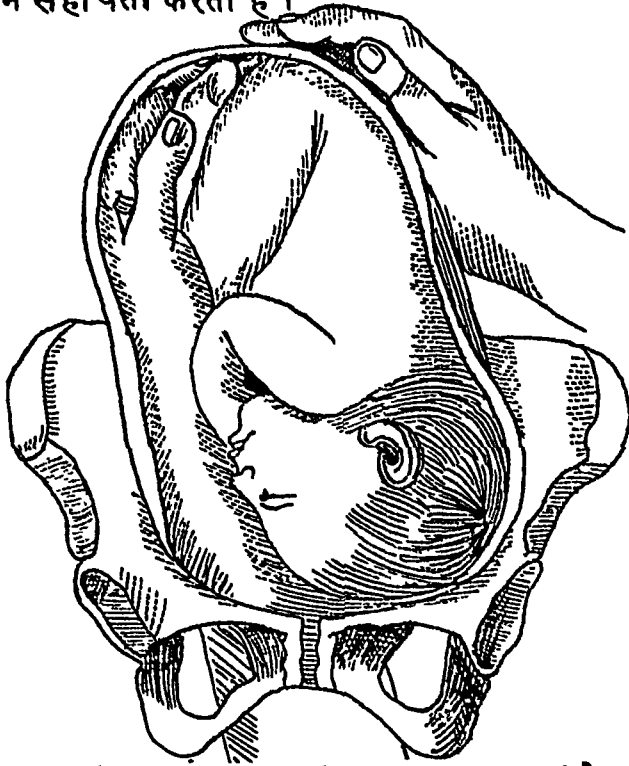
आकृति ८१ (पृ० ६७३) चित्र-इस आकृतिमें चरण भ्रमण स्त्रीके गर्भाशयमें चिकित्सकने हाथ प्रवेश करके बालकका पैर पकडकर बाहर निकालनेको खींचता है. चिकित्सकका दूसरा हाथ पेटपर है वह बालकको नीचेकी तर्फ सरकानेकी गतिको निरन्तर सहायता कर रहा है ऊपर दिखलाई हुई आकृतिसे इसमें भ्रमणगति कुछ अधिक है।
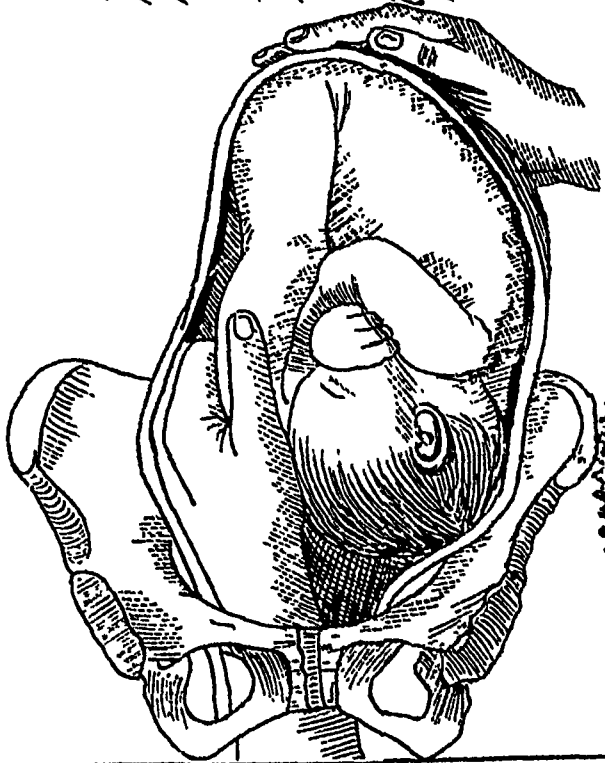
आकृति- ८२ (पृ० ६७४) चित्र- इस आकृतिमें गर्भस्थ बालक आडा होगया है दुसरी स्थितिमें बालकका सीधा हाथ बाहर आपगया है इस कारणसे बालकका चरण भ्रमण करके बालकका पैर पकडकर चिकित्सक नीचेको खींचता है॥
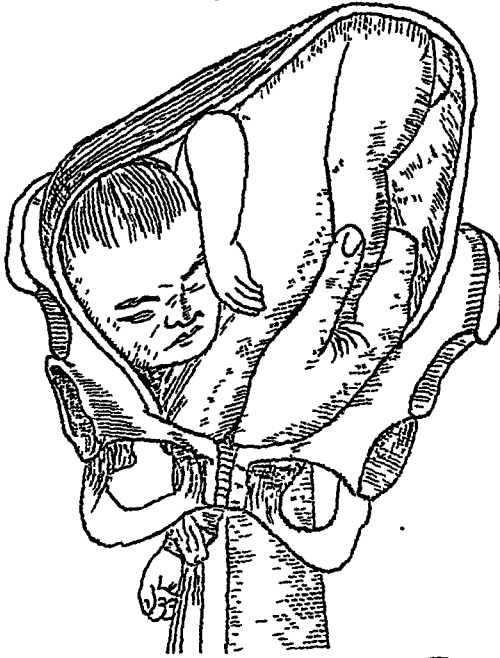
आकृति- ८३ (पृ० ६७५) चित्र- इस आकृतिमें चरणभ्रमण करके बालकको गर्भाशयसे बाहर निकाला है और दोनों पैर पकडके खींचकर चिकित्सक निकालता है।
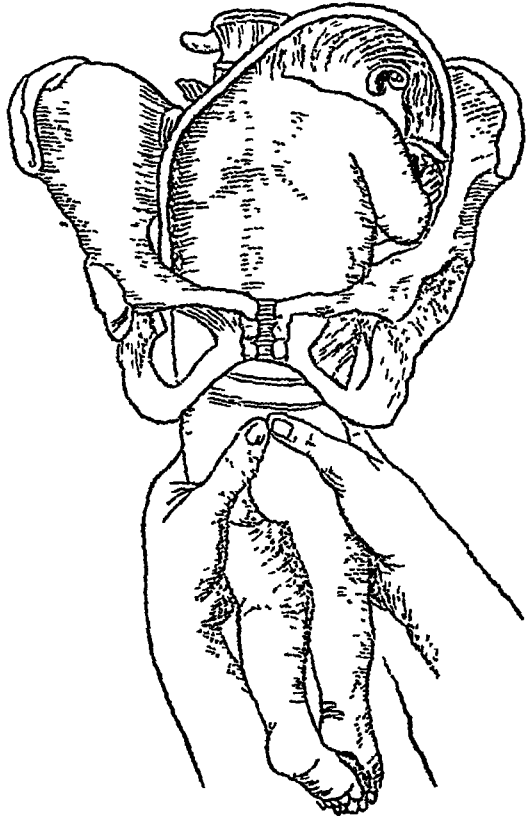
आकृति- ८४ (पृं० ६७५) चित्र-इस आकृतिमें चरण भ्रमण कियागयाहै और बालकके दोनों हाथ मस्तकके साथ ऊपर रहगये हैं इस लियेचिकित्सक बालकके कंधेपर अंगुली चढाकर नीचे उतारता है।

आकृति- ८५ (पृ० ६८०) चित्र-गर्भस्थ बालकका शिरभेदन करने वाला शस्त्र.

आकृति- ८६ (पृ० ६८०) चित्र- शिरभेदन करने पीछे अन्दरका मगज निकल जानेके बाद खोपडीकी हड्डियोंको पकडकर खींचने वाला चीमटा शस्त्र।
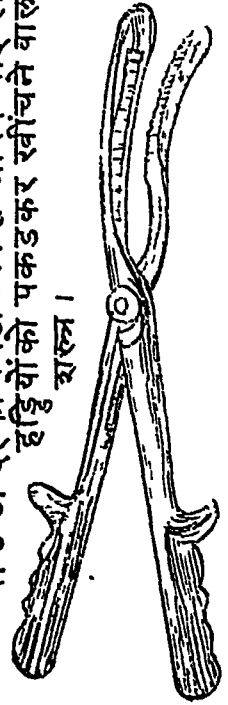
आकृति- ८८ (पृ० ६८५) चित्र- इस आकृतिमें रक्त एक हाथकी शिरामेसे दूसरे मनुष्यके हाथकी शिरामें यन्त्र प्रवेश करके पेरभायुं रक्त प्रवेश किया जाता है इसकी प्रक्रिया दिखलाई है सीधे हाथकी शिरामें रक्ताकर्षण यन्त्रका एक शिरा प्रवेश करके दूसरा शिरा वामी तर्फके हाथकी शिरामें प्रवेश किया गया है बीचमें रबडका पोला गोला है इसमें रक्त सीधे हाथमेंसे आता है और गोलाको दाबनेसे रक्तहीन वामें हाथमें रक्त प्रवेश करता है। रक्त प्रवेश करके सब शरीरमें वहने लगता है॥
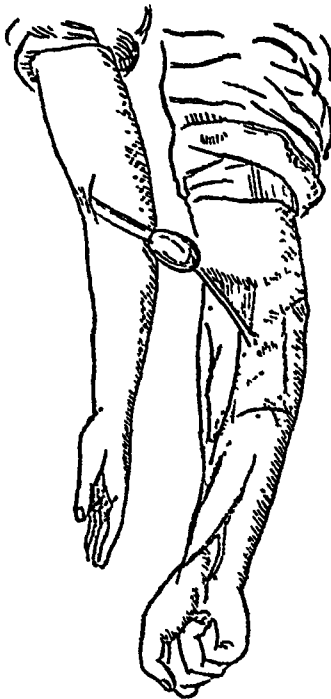
आकृति-८७ (पृ० ६८०) चित्र-शिरकी हड्डियोंको अटकाकर खींचने वाला आंकडा शस्त्र.
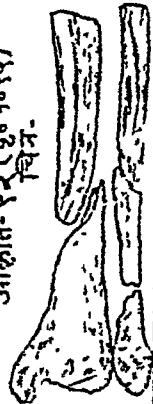
आकृति- ९३ (पृ०१०९८) चित्र दक्षिणभागकी टूटीहुई पसलीपर गर्म प्लास्तरकी पट्टी मारनेकी क्रिया दिखलाई है.
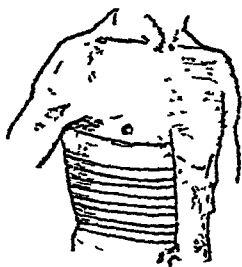
आकृति- ९४ (पृ०११००) चित्र-इस आकृतिमें वामे हसली टूटी है इसपर बांधनेकी क्रिया दिखलाई है.
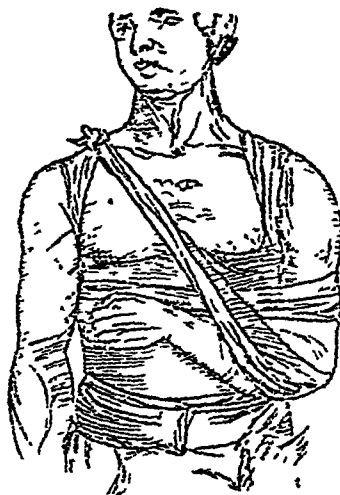
आकृति- ९५ (पृ०११०१) चित्र- हाथकी कलाईके वाहरकी अस्थी रेंडीयस टूट गई है॥

आकृति- ९६ (पृ०११०४) चित्र-जंघाकी अस्थि टूटनेपर अवयवसे लम्बी पट्टी बांधनेकी प्रक्रिया नीचेकी आकृतिमें देखा।
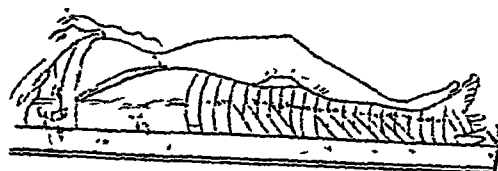
आकृति-९७ (पृ०११०९) चित्र-इस ९७ आकृतिमें भुजास्थि आगे और जरा नीचे खिसक गई है.
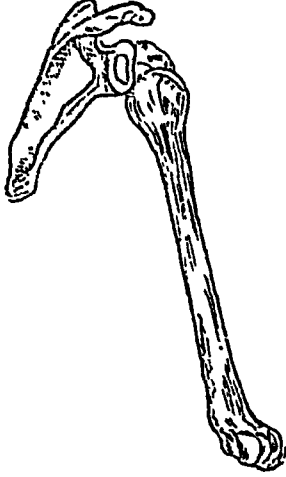
आकृति-९८ (पृ०११०९) चित्र- इस ९८ आकृतिमें भुजास्थि नीचे खिसक गई है.
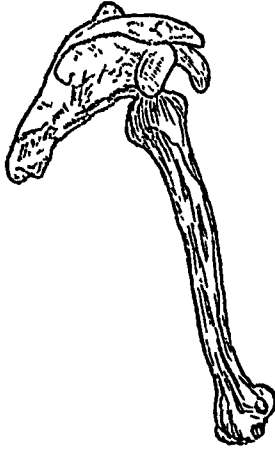
आकृति-९९ (पृ०१११९) चित्र-दक्षिण जंघाकी अस्थि पीछे इल्यमके ऊपर खिसक गई है.
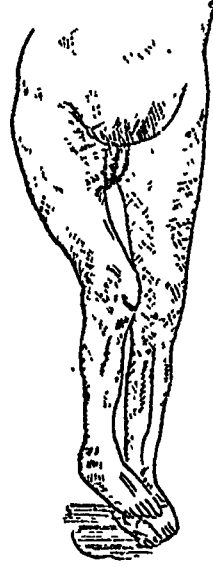
आकृति-१०० (पृ० ११२१) चित्र-अस्थिव्रणमें पैरकी नलीकी हड्डी सडनेसे पडे हुए नासूर और पैरकी स्थितिकी आकृति-

आकृति- १०१ (पृ० ११२२) चित्र- पैरकी नलीकी हड्डी-उसमें पडा हुआ नासूर-अन्दरका भाग सडा हुआ ॥
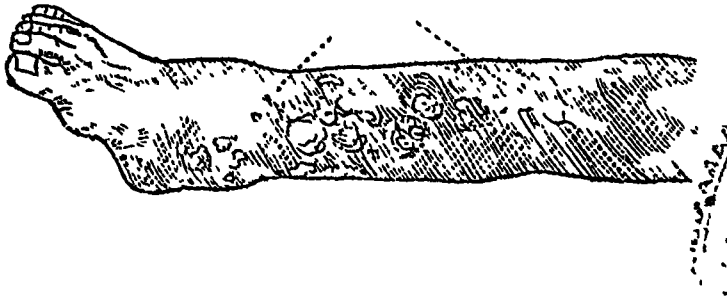
आकृति-१०२ (पृ०११२२) चित्र-अस्थि व्रण होनेसे अस्थि सड़कर टुकडे २ होगई होय अथवा अस्थि घातसे हड्डी टूटकर सड़ने लगी होय तो इन विविध प्रकारके शस्त्रोंसे निकालना चाहिये ॥
आकृति-१०३ (पृ०११२२) चित्र अस्थि पकडनेका चीमटा.
आकृति १०४ (पृ०११२२) चित्र-अस्थि खेंचनेका चीमटा.
आकृति-१०५ (पृ०११२२) चित्र अस्थि निकालनेकी संडासी अर्थात् चीमटा.
आकृति-१०६ – ११३ (पृ०१२३०) चित्र-ऊपरके जावडेके दूसरे समय निकलने वाले ८ दांतोंकी आकृति-
दाढ ३
१०६
१०७
१०८
दोकोनेवाले २
१०९
११०
कुतरिआ कीला १
१११
आगेकेकाटनेवाले २
११२
११३
आकृति-११४–१२१ (पृ०१२३०) चित्र-नीचेके जावडेके दूसरे समय निकलने वाले ८ दांतोंकी आकृति॥
११४
११५
११६
दाढ ३
११७
११८
दोकोने वाले २
११९
कुतरिआ कीला १
१२०
१२१
आगेके काटनेवाले २
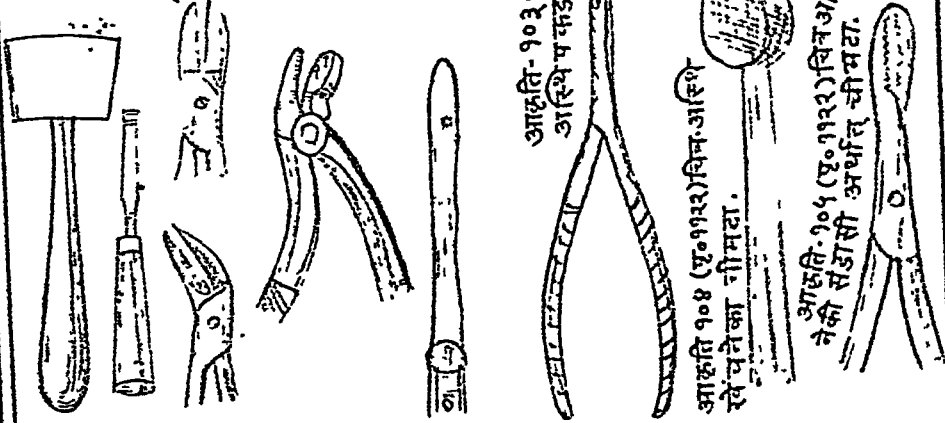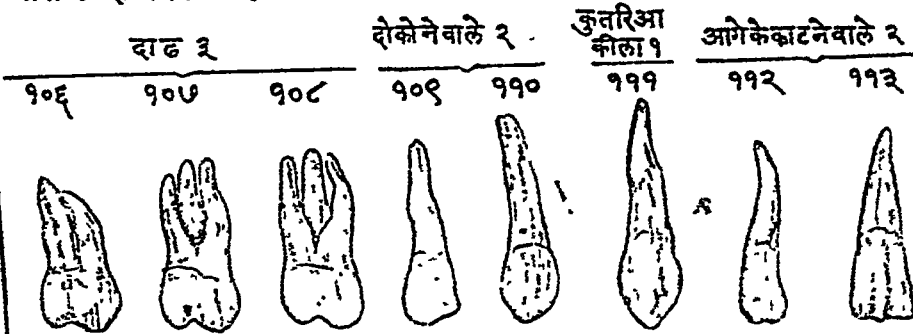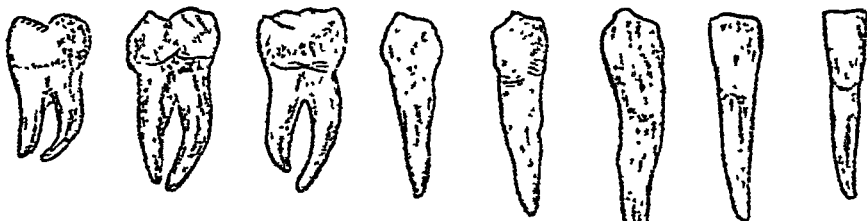
अथ वन्ध्याकल्पद्रुम ।

विषयानुक्रमणिका ।

द्वितीय भाग ।

द्वादशाऽध्यायारम्भः ।

अथ चतुर्दशाऽध्यायारम्भः।

चतुर्थ भाग ।

इति विषयानुक्रमणिका समाप्त ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस
कल्याण-मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस
खेतवाडी-मुंबई.

चित्रोंकी अनुक्रमणिका।

इति चित्रानुक्रमणिका समाप्त ।

श्रीगणेशाय नमः।

अथ वन्ध्याकल्पद्रुमः।

प्रथम भाग।

प्रथम अध्याय।

इस भारतवर्षकी सन्तान आर्य्यलोगोंकी धर्मप्रणाली वेद स्मृति आदि सत्शास्त्रों द्वारा यही सिद्ध होताहै कि हमारा द्वितीय गृहस्थाश्रम एक स्त्री और एक पुरुषकी जोडी मिलकर शरीरनिर्वाहके लिये द्रव्योपार्जन करें और सुखपूर्वक धर्मानुसार प्रजोत्पत्ति करें, जैसा कि हमारे माननीय धर्मग्रन्थ वेदकी आज्ञा है।

देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या संभवेह ॥ १ ॥
सं पितरा वृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः।
मर्य इव योषामधिरोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥ २ ॥
तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या ३ वपन्ति।
या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ॥ ३ ॥
स्योनाद्योनेरधिबुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥ ४ ॥

अर्थः—हे सौभाग्यप्रदे (नारि) स्त्री तू जैसे (इह) इस गृहाश्रममें (अग्रे) प्रथम (देवाः) विद्वान् लोग (पत्नीः) श्रेष्ठ सुन्दर स्त्रियोंको (न्यपद्यन्त) प्राप्त होते हैं और (तनूभिः) शरीरोंसे (तन्वः) शरीरोंको (समस्पृशन्त) स्पर्श करते हैं। वैसे ही (विश्वरूपा) विविध सुन्दररूपको धारण करनेहारी (महित्वा) सत्कारको प्राप्त होके (सूर्येव) सूर्यकी कान्तिके समान (पत्या) अपने स्वामीके साथ मिलके (प्रजावती) प्रजाको सन्तानको प्राप्त होनेहारी (संभव) उत्तम प्रकारसे हो ॥ १ ॥ हे स्त्री पुरुषो ! तुम (पितरौ) सन्तानोंके उत्पन्न करनेवाले (ऋत्विये) ऋतुसमयके अनन्तर सहवास करके सन्तानोंको (संसृजेथाम्) भले प्रकार उत्पन्न करो (माता) जननी

(च) और (पिता) जनक दोनों (रेतसः) वीर्यको मिलाकर गर्भाधान करनेहारे (भवाथः) हूजिये हे पुरुष ! (एनाम्) इस (योषाम्) अपनी स्त्रीको (मर्य इव) प्राप्त होनेवाले पतिके समान (अधिरोहय) सन्तानोंसे वृद्धि कर और दोनों (इह) इस गृहाश्रममें मिलकर (प्रजाम्) प्रजा कहिये सन्तानोंको (कृण्वाथाम्) उत्पन्न करो (पुष्यतम्) और सन्तानोंका पालन पोषण करो, एवं पुरुषार्थसे (रयिम्) धनको प्राप्त होओ ॥ २ ॥ हे (पूषन्) वृद्धिकारक पुरुष, (यस्याम्) जिसमें (मनुष्याः) मनुष्यलोग (बीजम्) वीर्यको (वपन्ति) बोतेहैं (या) जो (नः) हमारी (उशती) कामना करतीहुई (ऊरू) ऊरुको सुन्दरतासे (विश्रयाति) विशेष कर आश्रय करतीहै (यस्याम्) जिसमें (उशन्तः) सन्तानोंकी कामना करतेहुए हम (शेपः) उपस्थे-न्द्रियका (प्रहरेम) प्रहरण करतेहैं (ताम्) उस (शिवतमाम्) अतिशय कल्याण करनेवाली स्त्रीको सन्तानोत्पत्तिके लिये (एरयस्व) प्रेमसे प्रेरणा कर ॥ ३ ॥ हे स्त्री और पुरुष ! जैसे सूर्य (विभातीः) सुन्दर प्रकाशयुक्त (उषसः) प्रभातवेलाको प्राप्त होताहै वैसे (स्योनात्) सुखसे (योनेः) घरके मध्यमें (अधिबुध्यमानौ) सन्तानोत्पति आदिकी क्रियाको अच्छे प्रकारसे जाननेहारे सदा (हसामुदौ) हास्य और आनन्दयुक्त (महसा) बडे प्रेमसे (मोदमानौ) अत्यन्त प्रसन्न हुए (सुगूः) उत्तम व्यवहारादि चालचलनसे धर्मोक्तरीतिपूर्वक चलनेवाले (सुपुत्रौ) उत्तमपुत्रवाले (सुगृहौ) श्रेष्ठ गृहादि सामग्रीयुक्त (जीवौ) उत्तम प्रकारसे जीवोंको धारण करते हुए (तराथः) गृहाश्रमके व्यवहारोंके पार होओ ॥ ४ ॥

इन चार वेदमन्त्रोंसे यह सिद्ध होगया कि स्त्रीपुरुषकी जोडी सन्तानोत्पत्तिके निमि-त्तसे बनाई गई है । यदि जोडी मिलनेपर सन्तानोत्पत्ति न होवे तो बडेही दुर्भाग्यकी बात है । यदि समस्त भारतभूमिकी ओर दृष्टि दीजावे तो कई लक्ष वन्ध्या स्त्रियां निकलेंगी, उनमेंसे कितनी तो जन्मसेही वन्ध्यापनको धारण किये हुए निकलेंगी, इन जन्मवन्ध्याओंमेंसे कितनीही तो ऐसी हैं जिनका किसीभी उपचारसे वन्ध्यत्व निवारण नहीं होता और अधिकांश ऐसी निकलेंगी कि वन्ध्यत्वदोष निवृत्त होकर गर्भधारणमें सामर्थ्यमान् होसक्तीहैं । दूसरी श्रेणीकी वन्ध्या वे हैं कि जिनको किसी प्रकारकी व्याधिरूपी विघ्नने वन्ध्यत्वदोषको नियत कर दिया है। इनमेंसे प्रत्येक सैकडे पीछे नव्वे स्त्रियोंकी व्याधि निवृत्त होकर सन्तानोत्पत्ति करनेमें सामर्थ्यमान् हो सक्तीहैं । इस पुस्तकमें जो उपचार वन्ध्यादोषकी निवृत्तिके अर्थ लिखे गये हैं वे चिरकाल-पर्यन्त अनेक स्त्रियोंकी चिकित्सामें अनुभव करके फलीभूत हुए हैं और उन स्त्रियोंको आरोग्यता प्राप्त होकर सन्तानोत्पत्ति हुई है । वन्ध्यादोषकी चिकित्साके विषयमें स्त्रीके गुह्य अंगविशेषसे प्रयोजन पडता है क्यों कि गर्भाशय योनिके आभ्यं-

तर है और जबतक गर्भाशय तथा उसके समीपवर्ती अङ्ग और मर्मस्थानोंकी स्थिति यथार्थ रीतिसे चिकित्सक न जान लेवे तबतक वह चिकित्सा करनेमें साहसी नहीं हो सक्ता । इस कारणसे सबसे प्रथम उत्पत्तिअङ्गका शारीरिक समझा देना अति उचित है । आयुर्वेद वैद्यकशास्त्रमें शारीरिक अङ्गोपाङ्ग रस रक्त मांस मेदा अस्थि मज्जा वीर्य आशय धमनी स्नायु शिरा त्वक् वात पित्त कफादिकी संख्यामात्रका उल्लेख पाया जाता है । प्रत्येक अङ्गकी यथास्थान स्थितिका वर्णन उत्तम रीतिसे नहीं किया गया कि जिससे साधन पक्षके अधिकारी पूर्ण रीतिसे समझकर शारीरिक क्रियाओंके उपचारमें फलीभूत होवें । प्राचीन वैद्योंको हम अन्तःकरणसे धन्यवाद दिये वगैर नहीं रहसक्ते कि उनके प्राचीन चरक सुश्रुत वाग्भटादि ग्रन्थोंमें शारीरिक सामग्रीकी संख्यामात्र तो हमारे दृष्टिगत होती है, इन उपरोक्त ग्रंथोंके निर्माण कर्त्ताओंके पीछे कोईभी वैद्यकका ऐसा ग्रन्थ दृष्टिगत नहीं होता कि जिसमें उपरोक्त महान् पुरुषोंसे शारीरिक विद्याकी अधिक छानवीन करके कुछ विशेष उन्नति की होवे, इसका यही कारण ज्ञात होताहै कि भारतवर्षमें अनेक प्रकारके मत और सम्प्रदायोंका उदय होनेसे लोग मांसादिके छूनेसे ग्लानि मानने लगे और इस विद्याको उन्नतिकी पूर्ण शिखरपर न पहुँचा सके । लेकिन पश्चात्ताप इसका है कि जो हमारे ब्राह्मण भ्राता इस समय भी प्रत्यक्ष मांसाहारी हैं और वैद्यक अभिमानीभी पूर्ण हैं परन्तु उन्होंने भी इस विद्याकी उन्नतिको तिलाञ्जलि देरखी है । उनको उचित है कि वैद्यकके सच्चे अभिमानी बननेका दावा रखते होवें तो वे शल्यशास्त्रकी उन्नतिका बीडा उठावें और अधिक नहीं तो अन्यदेशी वैद्योंकी तुलनातक पहुँचनेका पूर्ण उद्योग करें । अथवा वैद्य बननेका अभिमान त्याग देवें । भारतवर्षीय वैद्योंकी अपेक्षा यूनानी (तिब्ब) वाले हकीमोंने कुछ अधिक छानवीन शारीरिककी की है और हकीमोंकी अपेक्षा यूरोपके वैद्योंने (डाक्टरोंनें) पूर्ण परिश्रमसे छानवीन करके उन्नतिके पूर्ण शिखरपर पहुँचगये हैं और हरसाल नूतन शोध करते जाते हैं, इसका यही कारण है कि मांसादिके स्पर्शसे उन लोगोंको ग्लानि नहीं है ।

स्त्रीकी गुह्येन्द्रियका यूनानी तिब्बसे शारीरिक ।

गर्भाशय पट्ठेकी बनी हुई पतली रगोंसे मिलकर मसानेके समान बना है और उसका अंग सफेद और नर्म है और सुन्न होनेका यह कारण है कि बालकके बोझसे और खिचावसे कि बालककी वृद्धिके समय होता है कि बालकको कष्ट न होवे और उसके दो पुर्त्तोंमेंसे भीतरके पुर्त्तमें रगें और चुन्नट (सुकडन) अधिक हैं । य चुन्नट इसलिये हैं कि बालकको ठहरा सकें और इस पुर्त्तमें दो पोल हैं जैसे दो थैली होती

जाता है । एक हलकीसी झिल्ली कडी रगोंसे मूत्रस्थानके मध्यमें लगी है, क्वारेपनका इसीसे ग्रहण है और कुमारिकापनका दूर होना उसके टूट जाने और फट जानेसे प्रयोजन है । दिमागसे एक पट्टा गर्भस्थानमें आनकर मिलाहै उसीके द्वारा गर्भस्थानका दिमागसे सम्बन्ध है परन्तु विशेष सम्बन्ध नहीं क्योंकि उक्त पट्टा है उसमें कुछ विशेषही है ।

स्त्रीकी गुह्येन्द्रियका यूनानीमतसे शारीरिक समाप्त ।

आयुर्वेदसे गर्भाशयका स्वरूप वा शारीरिक ।

शंखनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्त्ता सा च कीर्त्तिता ।
तस्यास्तृतीये त्वावर्त्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥
यथा रोहितमत्स्यस्य मुखं भवति रूपतः ।
तत्संस्थानां तथारूपां गर्भशय्यां विदुर्बुधाः ॥

शंखनाभिके आकार स्त्रीकी योनि तीन आंटेवाली है । उसके तीसरे आंटेमें गर्भाशय है । रोहूमछलीके मुखके स्वरूपका गर्भाशयका मुख है । आयुर्वेदके कर्त्ता ऋषिलोग स्त्रीजनोंमें विशेष आसक्त नहीं थे इसी कारणसे उन लोगोंने स्त्रीके गुह्यावयवका विशेष शारीरक नहीं लिखा है और हमारी समझमें स्त्रियोंके गुह्यावयवको देखनेसे उनको यहांतक लज्जा थी कि मृतक स्त्रियोंकी लाशको अपरेशन करकेभी गर्भाशयका शारीरक नहीं देखा था । यदि मृतक लाशको चीरकर देखते तो इस विषयका विशेष अनुभव हो जाता । सुश्रुतने मूढगर्भ निकालनेमें कुछ हस्त और शस्त्रप्रकिया लिखी है, वहभी आवश्यकतासे न्यूनही है, विशेष लक्ष औषधप्रयोगोंपर दिया है ।

डाक्टरीसे स्त्रीकी बस्तिका यथार्थ शारीरक ।

वस्तिस्थान (पेल्वीस) ।

स्त्रीजनोंकी निज व्याधि तथा प्रसवप्रक्रिया वा मूढगर्भाकर्षण करनेके निमित्त तथा गर्भाशय स्त्रीअण्डफलवाहिनी शिरा और योनिरोगोंको समझनेके लिये स्त्रीकी वस्तीका शारीरक जाननेकी विशेष आवश्यकता है । स्त्रीके गुह्य शरीरकी रचना इस प्रकार है कि यह गुह्य शरीर पेटके नीचेके भागमें नाभिसे नीचे स्त्री जिसको नले बोलती है और पेड़ू बोलती है उसके अन्दरमें आया हुआ है । इस प्रदेशके भागको वस्तीनामसे भी बोलते हैं । इस गुह्यावयवके एक आभ्यन्तर और दूसरे बाह्य ऐसे दो विभाग हैं । अन्तरावयव वस्तीके आभ्यन्तर रहता है, इसमें गर्भशाय तथा गर्भाशयके बंधन स्त्रीअण्डफलवाहिनी और योनिमार्गका समावेश होता है और बाह्य-

विभागमें योनिद्वार योनिलिङ्ग योनिपटल योनिओष्ठ और केशभू इत्यादि अङ्ग आये हैं। इस स्त्रीजातिके गुह्यावयवका वर्णन समझनेके लिये वस्तीस्थानकी रचना जाननेकी अति आवश्यकता है क्योंकि चिकित्सक इस स्थानकी रचना जाने विना चिकित्सामें साहसी नहीं होसक्ता। देखो वस्ती एक वेडौल आकारका हाडपिंजर है। नीचे उसके सम्बन्धमें दोनो जंघा आई हुई हैं। आगेकी तर्फ पेटका भाग और पीछेकी तर्फ कमरका कणा इसपर स्थित है। वस्तीकी जुदी जुदी चार अस्थि हैं, पीछे कणाके नीचे (सेकम , और उसके नीचे (काकसीक्ष) है इसको आयुर्वेदमें त्रिक और गुदास्थि भी कहते हैं। प्रत्येक वाजूमें और आगेके भागमें एक मोटी अस्थि है। वाजूकी अस्थि मोटी दोनोंमें परस्पर एक सम्बन्ध देखनेमें आता है। परन्तु बालक अवस्थामें वाजूकी अस्थिके पृथक् ३ तीन टुकडे होते हैं। उनका संयोग मिलकर वडी उमर (युवावस्था) में एक अस्थि हो जाती है। उन तीनोंके ऊपर एक पंखके समान वाजू और पीछेके भागमें है उसको (इल्यम्) नितम्बास्थि कहते हैं। आगेके भागमें जो पतली संकुचित और छोटी हड्डी है उसको (खुवीस) वंक्षणअस्थि कहते हैं। और नीचे है उसको आसनास्थि (ईस्कीम) कहते हैं आमने सामने दोनों खुवीस आगे मिलती हैं इसको खुवीस सन्धि कहते हैं। पीछे प्रत्येक वाजूके सेकम और इल्यमका संयोग होता है। उसको दाहिना और वामा (सेकम ईल्याक) सन्धि कहते हैं और इसके सिवाय सेकम और काकसीक्षके संयोगकी सन्धि है। इन सब सन्धियोंमें केवल पीछेकी सन्धि चलायमान है और वाकीकी अस्थि अचल (स्थिर) हैं। खुवीस और ईस्कयमके बीचमें एक छिद्र है इसको (थाईरोईड) छिद्र कहते हैं। स्वाभाविक स्थितिमें वह एक पडदेसे ढका हुआ होताहै। वाहरकी वाजू खुवीस ईस्कीयम तथा ईल्यमका जहां संयोग होता है वहां एक खड्डा रहता है। उसको (आसेटा-व्युलम) कहते हैं और इस ठिकाने जांघकी अस्थिकी सन्धि मिलती है। स्त्रीका वस्तिपिंजर पुरुषके वस्तिपिंजरकी अपेक्षा अधिक चौडा छरेरा और हलका होताहै। (स्त्रीका वस्तिपिंजर आकृति १ में देखो।)

इस प्रमाणसे वस्तिका जो हाडपिंजर है उसके ऊपरके भागमें जो दो चौडी पंख जैसा १ आकृतिमें देखो (इल्ययम) के बीचमें है वह यथार्थ वस्तिकी गिनतीमें नहीं है इसको अयथार्थ वस्ति कहते हैं। इसमें पेटका आंतडा तथा दूसरे अवयव रहते हैं। परन्तु इसके नीचेका पोला भाग कि जिसमें गर्भाशय मूत्राशय गुदा और योनिका संयोग होताहै, इसको यथार्थ वस्ति प्रदेश कहते हैं, जो ऊपर कथन किये हुए अवयव तथा दूसरे स्नायुवंधनोंसे सम्यक् भरा हुआ है इसके ऊपरके द्वारको आगमनद्वार और नीचेके द्वारको निर्गमनद्वार कहते हैं।

ये दोनों नाम गर्भके सम्बन्धसे रखे हुए हैं। कारण कि प्रसवकालमें गर्भका आगमन द्वारमें दाखिल होकर बस्तिप्रदेशमेंसे निकलकर निर्गमन द्वारसे बाहर आना पडता है।

आगमनद्वार कुछेक गोलाकार है परन्तु पीछे सेकमकी शिखरका शिरा आगेको धसा हुआ होताहै। उसको (सेकमप्रोमोन्टरी) कहते हैं इस द्वारके चार व्यास हैं। पूर्व पाश्चिम व्यास खुर्वीकसंन्धिसे सेकमकी .शिखरपर्यंत है । यह सुमारसे ४ १/२ इंचके करीब है। उत्तर दक्षिण व्यास ५ १/८ इंच है। यह एक बाजूसे दूसरी बाजूतक मापा जाता है। तिर्यक् व्यास प्रत्येक बाजुको एक एक गिना जाता है। तिर्यक्का दूसरा शब्द तिरकस व्यासभी कहते हैं। तिर्य्यक् व्यास एक दक्षिण तर्फ, दूसरा वामी तर्फ है। दाहि़ना तथा वामा (सेकम इल्यार्क सन्धि) से माप करनेमें आता है। प्रत्येककी लम्बाई ४ ३/४ इंच होती है। निर्गमनद्वार अनियामित आकारका है उसके आगेका भाग दोनों खुर्वीसोंके बीचमें आया हुआ है। वह दरवाजा जैसा त्रिकोण आकार है इसको खुर्वीसकी कमान कहते हैं, निर्गमनद्वारकी दोनों बाजू आस्नास्थि है तथा पछिकी तरफ गुदास्थि और दूसरे बंधनं हैं। उनका चारका प्रमाणं नीचे लिखे मुताबिक है। पूर्व पश्चिम व्यास ५ इंच, उत्तर दक्षिण व्यास ४ १/४ इंच, प्रत्येक तिरकस व्यास ४ २/३ इंच है।

इस ठिक़ाने पूर्व पश्चिम व्यासकी लम्बाई केवल ५ इंच दीगई है परन्तु उसकी लम्बाई पांच इंचसे ऊपर होसक्ती है कारण कि कोकसीकसके अन्दर दबाव होनेसे वह पीछे हटती है इससे व्यासमें कुछ अधिकता होती है। निर्गमन और आगमन-द्वारके बीचके मार्गको बस्तिप्रदेश कहते हैं अथवा वस्तिकक्षा कहते हैं। यह कक्षा आगे छिरेरी है तथा दोनों बाजू और पीछे औंडी (.गहरी) है, पीछेके भागमें सेकम है, वह अंजलीके आकार अंदर गोल है। कक्षाके तीन व्यास हैं।

पूर्व पश्चिम व्यास ५ १/८ इंच, उत्तर दक्षिण व्यास ४ १/३ इंच, प्रत्येक तिरकस व्यास ५ १/५ इंच। (बस्तिापिंजरका पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण और तिर्यक् व्यास देखनेकी दिशा तथा स्थान २ ·आकृतिमें देखो।)

कक्षाकी गहराई अग्रभागमें १ १/२ इंचके आसरे है तथा बाजू (बगल) ३ १/२ इंच और पीछे ५ से ६ इंच है। बस्तिके आकारका जुजवी ख्याल देनेके लिये मनुष्यको अपने दोनों हाथकी अंगुलियां थोडी चौडी करके मिलानी और दूसरी तर्फ अंगूठेको मिलाना इतने विस्तारका जो सामान्य आकार होय उतना ही आकार बस्तिका समझ लीजिये। अंगुष्ठको बस्तीके अग्रभागके ठिकाने समझो और अंगुलियोंको पछिका भाग जानो। बस्तीका व्यास जो दिया गया है वह हड्डीकी सूखी बस्तीका

व्यास समझना । स्वाभाविक स्थितिमें मांस पेशी तथा स्नायुबंधन वगैरह होय तत्र जुजवी तफावत रहती है । वस्ती गोल नलीके आकारकी नहीं है और उसकी धरीका रेषा निकाला जावे तो वह वस्तीके मध्य (वीच) में सेकमके अंदर गोल और समानान्तर जाता है । योनि तथा गुदाभी इसी प्रकार अन्दर गोल दशामें रहती है ।

स्त्रीके गुह्यवाह्यावयवकी योनिसंज्ञा है, उसके पृथक् पृथक् विभाग नीचे लिखे प्रमाणसे हैं । गुह्यकेशभू (मोन्सविनेरीस) योनिके ऊर्ध्व भागमें खुब्बीसके ऊपर जो ऊँचा भाग है उसको केशभू कहते हैं । यहां त्वचाके नीचे चर्बीका जमाव (संग्रह) रहता है इसीसे वह भाग कुछ ऊंचा दिखाई देता है। इस स्थलकी त्वचापर स्त्रीकी युवावस्था होतेही केश उत्पन्न होते हैं, इनको अधोलोम वोलते हैं । योनिओष्ट (लेब्या) योनिके दोनों तर्फ दो दो योनिओष्ठ हैं । इनमेंसे बाहरका ओष्ट त्वचाकी वडी (सरवट) का वन जाता है, यह ओष्ठ छोटी उमरकी वची लडकियोंके वहुत छोटे और योनिसपाटीसे मिले हुए वारीक होते हैं, योनिकी सपाटीके अन्दर रहते हैं । युवावस्थामें पुरुषेन्द्रियके संघर्षणसे त्वचा वढकर कोमल सरवटवाली दीर्घाकृतिमें लंवी और योनिकी सपाटीसे कुछ बाहर देखी जाती है । यह आकृति वाल्यावस्थाकी कुमारी लडकियोंमें नहीं देखी जाती । जवानीकी उमरमें इस ओष्ठवृद्धिके स्थानमें कई प्रकारके रोग शोथ तथा उपदंशकी चांदी वगैरहभी होते हैं । यह केशभूसे लेकर योनिकी पश्चिम सीमापर्यन्त जाता है । मोटा होनेसे इसको पृथु ओष्ठ (लेब्या माजोरा) कहते हैं और इसी ओष्ठके अन्दरकी वाजू वारीक कोमल जिल्दवाला गुलावके फूलके समान चमकदार श्लेष्म पडतका आभ्यन्तर ओष्ट है, इसको लघु ओष्ठ (लेब्या माईनोरा) कहते हैं, इन दोनोंके अन्दर कितनेही रसोत्पादकपिण्ड हैं। योनिलिङ्ग तथा योनिमुखके वीचमें एकत्र कोणाकार जगह होतीहै उसको (वेस्टव्युल) कहते हैं । योनिलिङ्ग यह योनिके ऊर्ध्वभागमें केशभूमिसे नीचे और दोनों तर्फके योनिओष्ठोंके वीचमें त्रिकोणाकार ऊंचा भाग नासाकृतिसे मिलता हुआ है । इसको योनिलिङ्ग कहते हैं । इसका आकार स्थल तथा वनावटमें पुरुषलिङ्गकी रीतिपर है । इसके स्पर्शसे स्त्रीको उत्तेजना शक्ति होती है । मूत्रमार्ग यह योनिद्वारके ऊपरही एक गोलाकार किनारीके मध्यमें मूत्रमार्गका छिद्र है, इसको मूत्रनलीभी कहते हैं । स्त्रीके मूत्रमार्गकी लम्बाई $1\frac{1}{2}$ इंच है । योनिद्वार—दोनों तर्फके योनिओष्ठोंके वीचमें योनिद्वार है । योनिद्वारके पश्चिममें मलद्वार (गुदा) पर्य्यन्तका जो प्रदेश वेसणी है इसको (पेरिन्यम) कहते हैं । गुदा तथा योनिके वीचमें रेखा है उसको सीमनरेखा कहते हैं । योनिपटल (हाईमेन) स्त्रीकी कुमारी अवस्थामें योनि द्वारके ऊपर एक परदा चमडेकी जिल्दका होताहै उसकी आकृति विशेष करके अर्द्ध चन्द्राकार होती है,

उस अर्द्धचन्द्राकारके अन्तरगोल दिशा पूर्वकी तर्फ याने योनिके नीचे किनारेसे ऊपरकी तर्फ होती है, जिस ठिकानेपर योनिमार्गमें जानेकी चौडी जगह रहती है, बिलकुल योनिमुखपर ही इस पटलका सम्बन्ध है और इससे योनिद्वार प्रथम पुरुष-संयोगसे पूर्व अथवा रजोधर्म आनेके समय तक बन्द रहता है । पूर्वकालमें इस पट-लकी निशानीसे स्त्रीकी कुमारी अवस्था अर्थात् अक्षत योनि रहनेका प्रमाण समझते थे, परन्तु इस समय तो यह पटल रहनेपर भी अक्षत योनि होनेके प्रमाण नहीं आने सक्ते । क्योंकि किसी लडकीको देखा है कि सहज अभिघातसे ही यह पटल टूट जाता है और कितनीही स्त्रियोंको देखा गया है कि गर्भवती होनेपरभी उनका पटल ज्योंका त्यों संरक्षित रहता है, इसके दो कारण है जिस स्त्रीके पटलकी चर्म जिल्द बारीक और पतली रहती है उनका पटल सहज अभिघात अथवा पुरुषके प्रथम समागममें टूट जाता है और जिन स्त्रियोंके पटलकी चर्म जिल्द मोटी और कडी होती है उनका अभिघात तथा पुरुषसमागम होनेपरभी नहीं टूटता किन्तु बालक होनेके समय अवश्यही टूटता है ।

स्त्रीका गुह्य अन्तरावयव । (स्त्रीकी वस्ती अवयव आकृति ३ में देखो)

योनिमार्ग (वजईना) योनिमुखसे लेकर जो गर्भाशय पर्यन्त पुरुषेन्द्रियका गमन मार्ग है इसको योनि वा योनिमार्ग कहते हैं और इसकी लम्बाई ४ से ६ इंच पर्यन्त है परन्तु कितनीही स्त्रियोंके न्यूनाधिक भी देखनेमें आती है । इसकी दशा वस्ती प्रदेशकी धरी प्रमाणे वक्र है इसके नीचेके शिरेपर एक संकोचक वर्त्तुलाकार स्नायु है, इसका अन्दरका शिरा गर्भाशयग्रीवासे लगा हुआ है, ग्रीवाका भाग इसके अन्दर है, इसलिये दोनोंके बीचमें वर्त्तुलाकार द्रोणी है, योनिका पूर्व पश्चिम बाजू साधारण तौरसे एकमें एक लगा हुआ है, इन्होंमें संकुचित तथा प्रसरण होनेका गुण है, इसके पूर्वपश्चिम भागमें एक खडी सीमन है, उससे दोनों तर्फ सरवट वा करचली पडी रहती है, योनिका अंतर पडत श्लेष्म वर्णका और बाहर स्नायु आदि हैं, श्लेष्मवरणकी करचली (सरवटें) इसी कारणसे प्रसवके समयमें विस्तृत (चौडी) होकर योनिके फैल-नेकी क्रिया होसक्ती है, अन्तर पडत पर चिपटा हुआ (एपीथील्यम) का अस्तर है इसमेंसे ऐसिड श्लेष्म निकलता है । योनिके पूर्व भागमें मूत्राशय तथा मूत्रमार्ग है और पश्चात् भागमें गुदाद्वार तथा मलाशय आया हुआ है ।

गर्भाशय (युटरस) यह साधारण रीतिसे वस्तीप्रदेशके बीचोंबीचमें है । इसका आकार एक चपटे अमरूदसे मिलता हुआ है । इसकी लम्बाई ३ इंचके सुमार है और चौडाई १½ इंच है मुटाई १ इंचके करीब है । इसको पृथक् करके तोला जावे तो वजनमें ९ से लेकर १० तोले पर्यन्त होताहै । गर्भाधान स्त्रीको रह जाता है

उस स्थितिमें इसका आकार तथा वजन अतिशय बढ जाता है । गर्भाशयका बाह्य वरण (पेरीटोन्यम) का है यह पेरीटोन्यम गर्भाशयके आगे तथा पीछे मूत्राशय और गुदाके बीचमें उतरा है और पीछेसे वह ऊपरको चढा हुआ है इससे दोनों ठिकाने द्रोणी आकृतिका खड्डा पड जाता है, गर्भाशय तथा गुदाके बीचकी द्रोणी विशेष गहरी है वहां पेरीटोन्यम योनिके ऊपर डेढ इंच पर्यन्त उतरता है और वह गर्भाशयके बन्धन तरीके उपयोगी है । गर्भाशयकी दोनों बाजूमें यह पेरीटोन्यमकी घडी (सरवट) पडी हुई बस्तीकी बाजूसे लगा रहता है । इन दोनो सरवटोंको गर्भाशयका पृथु बंधन कहते हैं, इनके अन्दर गर्भाशयको उपयोग रहता है । गर्भाशयका नीचेका शिरा योनिके सम्बन्धमें आया हुआ है । उसकी ग्रीवाको (सरवीक्ष) अर्थात् कमल कहते हैं उसके मध्य (बीच) में कमलमुख (आस) है, इसको कमलका बाह्यमुख भी कहते हैं । और जहां ग्रीवा तथा गर्भाशयके अन्दरका भाग मिलता है उसको अन्तरमुख बोलते हैं । गर्भाशयके अन्दरका प्रदेश त्रिकोणाकार है, गर्भाशयके ऊर्ध्व भागमें फलवाहिनी शिराके संयोगका सूक्ष्म छिद्र है और फलवाहिनीके दूसरे शिरेका संयोग गर्भअण्डसे है । गर्भाशयके आगे मूत्राशय आया हुआ है । पीछेकी तर्फ मलाशय और गुदा आई हुई है और दोनों तर्फ उनके उपांग तथा पृथु बंधन है और नीचे योनि तथा ऊपर आंतडा है । गर्भाशयके तीन आवरण है । बाहर (पेरीटोन्यन) रस पडतका आच्छादन है । उसके अन्दर श्लेष्मावरण है, इस आवरणमें कितनेही प्रकारके रसोत्पादक पिंड हैं । योनिके श्लेष्मावरणकी अपेक्षा यह आवरण कुछ पृथक् तरहका है, इसपर लम्बा गोलाकार (ऐपीथल्यम) है और इसपर रुवाटां आया हुआ है, इसका श्लेष्म (आलकलीन) है, इसको सूक्ष्मदर्शक यन्त्रसे देखनेमें आवे तो बारीक ग्लांडका खड्डा मालूम पडता है । प्रत्येक ऋतुधर्मके समय तथा गर्भाधानस्थिति रहनेके समयमें इसमें विशेषताके साथ फेरफार होता है, इसके बीचका आवरण यह स्नायुघटित है, गर्भाशयको विस्तृत तथा संकुचित करनेको गुणका आधार इसीके ऊपर है । स्नायुतन्तु इसकी सब दिशाओंमें गुथे हुए हैं । गर्भाशयके तीन काम जाननेमें आते हैं (१) गर्भाशयमेंसे आर्त्तवसंज्ञके रक्त निकलता है (२) गर्भके धारण करनेका आश्रय वा आधार देकर वृद्धि पहुँचावे है (३) गर्भकी पूर्णवृद्धि प्राप्त होनेके पीछे उसको स्नायुवेगसे बाहर टकेलकर निकाल देता है इस प्रकारसे बालकका जन्म देता है ।

गर्भाशय तथा उसके उपांगोंकी आकृति । (आकृति ४ में देखो)

चौथी आकृतिको भले प्रकार समझनेसे गर्भाशय तथा उसके उपाङ्गोंका हाल अच्छे प्रकारसे मालूम होगा । १ से लेकर २ । ३ । ४ तक गर्भाशयके अन्दरका भाग

है इसमें गर्भकी स्थिति होकर पोषण पाता है । ४ से नीचेके भागमें गर्भाशयका अन्तरमुख और उससे नीचे ग्रीवा है, जिसको कमल भी कहते हैं । नीचेके गोल शिरेपर गर्भाशयका बाह्यमुख है जिसको कमलमुख भी कहते हैं । ५ से ५ तक दोनों बाजू गर्भाशयके लंबे चौडे बन्धन हैं । ६ से ६ तक गर्भाशयके गोल बन्धन दोनों तर्फ समझ लो । ७ पर स्त्रीगर्भअण्डकी आकृति है सो दोनों तर्फ समझलो । ८ पर गर्भअण्डके साथ फलवाहिनी शिराके सम्बन्ध तथा संयोगको दोनों तर्फ समझलो । ९ से ९ तक फलवाहिनी शिराका गुच्छेदार शिरा दोनों तर्फ समझो । १० पर गर्भाशयके लम्बे बन्धनके शिरेका अन्त समझो । ११ गर्भाशयके ऊपरी भागसे फलवाहिनी शिराके सम्बन्धकी नलीका छिद्र समझो । गर्भ अंडसे स्त्रीवीर्य निकलकर गर्भाशयमें इसीके द्वारा पहुँचता है, यह क्रिया स्वभावसे प्रत्येक मासमें होती रहती है ।

स्त्रीके गुह्यबाह्य अवयवको खोलकर आगे परीक्षा करें तो प्रथम योनिमार्ग आता है और यहांसे स्त्रीके अन्तरावयव शुरू होते हैं । योनिमुखसे लेकर गर्भाशयपर्यन्तके भागको योनिमार्ग कहते हैं, आगेके भागकी तर्फ इसकी लम्बाई ४ इंच है और पीछेके भागकी तर्फ ६ इंच है, योनिके मुखकी तर्फका मार्ग संकुचित है और गर्भाशयकी तर्फका विशेष चौडा है, इसी चौडे भागमें चौथी आकृतिमें बतलाया हुआ गर्भाशयका मुख (कमलमुख) आया हुआ है । योनिमार्गका विशेष काम यह है कि पुरुषेन्द्रियके संघर्षणसे पुरुषके वीर्यको आकर्षण करके स्त्रीके गर्भाशयमें पहुँचादेना । फलवाहिनी (फालोप्यनटयूब) गर्भाशयकी दोनों तर्फ एक नली होती है वह अनुमान ४ इंच लम्बी और बारीक कलमके माफिक मोटी होती है, वह पृथुबंधनकी घडी (सरवट) के अन्दर आई हुई है उसका एक शिरा गर्भाशयके ऊर्ध्व भागमें जुडा हुआ है तथा दूसरा शिरा सरणाईके समान चौडा गुच्छेदार पूँछके माफिक होता है और वह छुटा हुआ रहता है, इसका सम्बन्ध गर्भअण्डसे रहता है प्रत्येक महीनेमें जब स्त्रीअण्डमेंसे स्त्रीबीज परिपक्व होकर फूट निकलता है तब वह फलवाहिनीका छुटा हुआ शिरा उस ठिकाने लगा रहता है और उस बीजरूपी आर्त्तवको यह फलवाहिनी नलीके जरिये गर्भाशयसे पहुँचाता है और गर्भाशयमेंसे कमलमुखद्वारा निकलकर योनिमार्गसे निकलकर योनिमुखके बाहर आता है जब स्त्रीको मालूम होता है कि, हमको ऋतुधर्म आय गया है । प्रत्येक फलवाहिनीके तीन आवरण होते हैं (१) बाह्य रसपडतका आवरण (२) मध्यमें स्नायु आवरण (३) अन्दर श्लेष्मावरण ।

१ × अगर ३ भाग रोकता है । इसके पीछे कमी होकर नववें महिनेमें बिलकुल छोटा होकर अन्तमें वह नाबुद होता है । परन्तु जो उस बीजमेंसे गर्भ उत्पन्न न होय तो यह पीला दाग तीन अठवाडेमें थोडी वृद्धि पाकर पीछे सूखना आरम्भ होता है और महीनेमें नष्ट नाबुद हो जाताहै । इस पीले दागकी स्थितिके ऊपरसे यह जान पडता है कि गर्भ रहा कि नहीं इसके साबूदका एक प्रमाण है ।

गर्भ स्थितिका विशेष हाल इस ग्रन्थके १९ वें अध्यायमें देखो । ऊपर जो स्त्रीके गुह्यावयवका शारीरक बतलाया गया है उसके प्रत्येक अंगोपांगको सम्यक् रीतिसे समझलो और समझकर हृदयगत करो क्योंकि गुह्यावयवोंमें जो व्याधि उत्पन्न होती हैं और जिनके उत्पन्न होनेके कारणसे अनेक स्त्रियां वन्ध्यादोषको धारण करती हैं उन सब व्याधियोंके उपायमें स्त्रीचिकित्सक उस समय साहसी हो सक्ता है कि स्त्रीके गुह्यावयवमें आये हुए प्रत्येक अङ्गोपाङ्गको पूर्ण रीतिसे समझ लेवे तब ही प्रत्येक व्याधिकी चिकित्सा करनेमें सामर्थ्यवान् हो सक्ता है और आगे इस ग्रन्थमें स्त्रियोंकी जो चिकित्साप्रणाली आगे लिखी हुई है तथा यन्त्र और शस्त्रप्रक्रिया स्त्रीरोगपर वर्णन की गई है उसको उसी समय काममें ला सक्ते हो जब कि गुह्यावयवके शारीरकको उत्तम रीतिसे समझ लोगे । स्त्रीके गुह्यावयवका शारीरक जो मूढ चिकित्सक वा दाई (मिडवाइफ) नहीं जानती हैं वे स्त्रीचिकित्सामें प्रवृत्ति करें तो स्त्रियोंको मार देती हैं, कदाचित् रोगी स्त्री अपने भाग्यके वशसे बची भी रहे तो उसका स्त्रीपन जन्मभरको नष्ट हो जाता है ऐसे मूढ चिकित्सक वा दाइयोंसे जो कि स्त्रीके गुह्यावयवका शारीरक नहीं जानते कदापि इनसे स्त्रियोंकी चिकित्सा न करानी चाहिये, क्योंकि अनभिज्ञके हाथसे जीवन वा शरीरकी प्रक्रिया नष्ट होती है सो मूर्खोंका तिरस्कार करनाही ठीक है और जब आप स्त्रीके गुह्यावयवका शारीरिक उत्तम रीतिसे समझ लोगे तबही स्त्रियोंके प्रसव करानेमें सामर्थ्यमान् हो सक्ते हो, क्योंकि, प्रसवसमयमें बालककी ठोडी, स्कन्ध, कोहनी, पैर, पीठादि अंग योनिमुख, गर्भाशयमुख तथा बस्तिपिंजरमें अटक जाते हैं । उनको किस प्रकार सीधा करके वा चरण भ्रमण करके प्रसव कराना पडता है । तथा मूढ गर्भ वा मृतक बालकको किस प्रकार छेदन करके वा खोपडी तोडकर निकालना होता है अथवा यन्त्र शस्त्र किस रुखसे प्रवेश करके काम करना पडता है अथवा प्रसवके अनन्तर गर्भाशयमें अगरा (जरायु) को किस विधिसे निकालना होता है इत्यादि क्रियाओंके निमित्त स्त्रीके गुह्यावयवके जाननेकी अत्यावश्यकता है सो प्रत्येक स्त्रीचिकित्सक वह चाहे पुरुष होवे अथवा स्त्री होवे प्रथम शारीरिकको पूर्ण रीतिसे लक्षमें करके स्त्रीचिकित्सामें प्रवृत्ति करे ।

द्वितीय अध्याय ।

आयुर्वेदसे स्त्रीके गुह्यावयवसम्बन्धी रोगोंकी चिकित्सा ।

आयुर्वेदीय वैद्योंने स्त्रियोंके गुह्यावयवमें २० प्रकारकी व्याधियोंका निश्चय किया है और केवल आर्त्तव और बीजदोषके सहज सम्बन्धसेही उन व्याधियोंकी उत्पत्ति मानी है इस कारणसे चिकित्साप्रणालीमें औषधप्रयोगोंपर विशेष लक्ष दिया है दूसरे दर्जेपर वातादि दोषोंके सम्बन्धसे भी योनिरोगोंकी उत्पत्ति कथन की है उसका वर्णन नीचे देखो ।

दिव्यौषधिजलस्वादुधातुचित्रशिलावति ।
पुण्ये हिमवतः पार्श्वे सुरसिद्धर्षिसेविते ॥
विहरन् तं तपोयोगात्तत्त्वज्ञानार्थदर्शिनम् ।
कृष्णात्रेयं जितात्मानमग्निवेशोऽनुपृष्टवान् ॥
भगवन् रत्यपत्यानां मूलं नार्यः परं नृणाम् ।
तद्विघातो गदैश्चासां क्रियते योनिमाश्रितैः ॥
तासां तेषां समुत्पत्तिमुत्पन्नानां च लक्षणम् ।
औषधं श्रोतुमिच्छामि प्रजानुग्रहकाम्यया ॥
इति शिष्येण पृष्टस्तु प्रोवाचर्षिवरोऽत्रिजः ॥

अर्थ—पुण्यवान् (पवित्र) हिमालयके ऊंचे शिखरपर जहां अनेक प्रकारकी दिव्यौषधियां उत्पन्न हो रही थीं, अति स्वच्छ और मिष्ट जल बह रहा था, जहां अनेक प्रकारकी धातुमय शिला सुशोभित थीं और जहांपर अनेक देवता (विद्वान्), सिद्ध और ऋषि मुनि निवास करते थे वहां विचरते हुए तप और योगसे सम्पन्न तत्त्वज्ञानार्थदर्शी जितेन्द्रिय कृष्णात्रेयसे शिष्य अग्निवेशने प्रश्न किया कि हे भगवन्! पुरुषोंके लिये स्त्रियां विषयभोग और सन्तानोत्पत्तिकी मूल कारण हैं परन्तु जब उनकी योनियोंमें रोग उत्पन्न हो जाता है तब दोनों कार्योंका नाश हो जाता है, अत एव हे प्रभो! मैं प्रजाके कल्याण और सुखके लिये स्त्रियोंके योनिरोगोंकी उत्पत्तिके कारण और जो रोग उत्पन्न हो गये हैं उनके लक्षण तथा उनकी औषधोपचार चिकित्सा श्रवण करनेकी अभिलाषा करता हूं। प्रिय शिष्यके इस प्रश्नको श्रवण करके महर्षि कृष्णात्रेयजीने इस विषयपर व्याख्या करना आरम्भ किया ।

योनिरोगोंकी संख्या ।

विंशतिर्व्यापदो योनेर्निर्दिष्टा रोगसंग्रहे।
मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्त्तवेन च ॥
जायन्ते बीजदोषाश्च दैवाच्च शृणु ताः पृथक् ॥

अर्थ—हे शिष्य ! रोगसंग्रह अध्यायमें यह बात वर्णन कर चुके हैं कि योनिरोग वीस प्रकारके होते हैं, इन सब रोगोंकी उत्पत्ति स्त्रियोंके मिथ्या आहार विहारसे तथा दुष्ट आर्त्तव, बीजदोष और दैवप्रकोप ये चार कारण रोगकी उत्पत्तिके हैं। जैसे कि धन्वंतरिने सुश्रुतमें कुष्ठरोगको तथा अर्शको माता पिताके वीर्यदोषसे सहज उत्पत्ति मानी है उसी प्रकार ऊपर आत्रेयऋषिने माताके बीजदोषसे योनिरोगकी उत्पत्ति मानी है। जैसा कि " स्त्रीपुंसयोः कुष्ठदोषाद्दुष्टशोणितशुक्रयोः । यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ " अर्श "सहजानि दुष्टशोणितशुक्रनिमित्तानि " सुश्रुतसंहिता निदानस्थानमें यह विषय ध्यान देने योग्य है कि बीजदोषसे शरीरके साथ आया हुआ योनिरोगका पूर्ण निश्चय करके चिकित्सक औषधोपचारकी प्रवृत्ति करे॥

वातल योनिके लक्षण ।

वातलाहारचेष्टाया वातलाया समीरणः।
विवृद्धो योनिमाश्रित्य योनेस्तोदं सवेदनम् ॥
स्तम्भं पिपीलकासृप्तिमिव कर्कशतां तथा।
करोति सुप्तिमायामं वातजांश्चापरान् गदान् ॥
सा स्यात् सशब्दरुक्फेनं तनुरूक्षार्त्तवानिलात् ॥

अर्थ—वातलप्रकृतिवाली स्त्रीके वातोत्पादक आहार विहार और चेष्टा करनेके कारणसे वायु अत्यन्त कुपित होकर योनिका आश्रय लेकर योनिमें वेदनायुक्त सुई चुभनेके समान पीडा उत्पन्न करती है तथा स्तम्भता, चींटी चलनेकासा अनुभव, कर्कशता, सुप्ति, आयाम और अन्य वातजरोग भी उत्पन्न होते हैं, तथा वातके कारण उस स्त्रीकी योनिसे पतला, रूखा, शब्द करता हुआ झागदार रक्त निकलता है॥

पित्तल योनिके लक्षण ।

व्यापत्तथाम्ललवणक्षाराद्यैः पित्तजा भवेत्।
दाहपाकज्वरोष्णार्त्ता नीलपीतासितार्त्तवा ॥
भृशोष्णाकुणपस्रावा योनिः स्यात् पित्तदूषिता ॥

अर्थ—खट्टे, अधिक नमकीन और क्षारादिमिश्रित पदार्थोंके अत्यन्त सेवनसे पित्तज योनिरोग होते हैं उन रोगोंके होनेसे योनिमें दाह पाक ज्वर उष्णता और यातना होती है, तथा योनियोंमेंसे नीला पीला काला आर्त्तव निकलता है और अत्यन्त उष्ण मुर्देकीसी गंधका स्राव होता रहता है ॥

श्लेष्मिक योनिरोगोंके लक्षण ।

कफोऽभिष्यन्दिभिर्वृद्धो योनिं चेद् दूषयेत् स्त्रियाः ।
सशीतां पिच्छिलां कुर्यात् कण्डुग्रस्तां सवेदनाम् ॥
पाण्डुवर्णां तथा पाण्डुपिच्छलार्त्तववाहिनीम् ॥

अर्थ—अभिष्यन्दी आहारके सेवनसे कफ बढकर स्त्रीकी योनिमें कफज रोगोंको उत्पन्न करता है, इन रोगोंके कारण योनिमें शीतलता, पिच्छलता, खुजली, वेदना और पाण्डुता होती है और योनिमेंसे पीला गिलगिला आर्त्तव निकलता है ॥

सान्निपातिक योनिरोगोंके लक्षण ।

समश्नत्या रसान् सर्वान् दूषयित्वा त्रयो मलाः ।
योनिगर्भाशयस्थैः स्वैर्योनिं युञ्जन्ति लक्षणैः ॥
सा भवेद्दाहशूलार्त्ता श्वेतपिच्छिलवाहिनी ॥

अर्थ—त्रिदोषकारक आहारके सेवनसे सम्पूर्ण रसोंको दूषित करके योनिगर्भाशयका आश्रय लेकर अपने २ लक्षणोंको प्रगट करते हैं इन रोगोंके होनेसे दाह शूल और यातना अधिक होती है तथा योनिमेंसे सफेद और गिलगिला आर्त्तव निकलता है ॥

रक्तपित्तजन्य योनिरोगके लक्षण ।

रक्तपित्तकरैर्नार्या रक्तं पित्तेन दूषितम् ।
अतिप्रवर्त्तते योन्या लब्धे बीजेऽपि साग्रजा ॥

अर्थ—रक्तपित्तोत्पादक आहारादि सेवन करनेसे रक्तपित्तके कारण दूषित होकर योनिमेंसे अत्यन्त रक्त निकलने लगता है और बीजके ग्रहण करनेपरभी स्त्रीके गर्भ-स्थिति तथा सन्तान नहीं होती है ॥

अरजस्का योनिके लक्षण ।

योनिगर्भाशयस्थं चेत् पित्तं संदूषयेदसृक् ।
सारजस्का मता कार्श्यवैवर्ण्यजननी भृशम् ॥

अर्थ—योनि और गर्भाशयमें स्थित पित्त जब रक्तको दूषित कर देता है तब रजोधर्म होना बन्द हो जाता है और स्त्री अत्यन्त दुर्बल और विवर्ण हो जाती है ऐसी योनिको अरजस्का कहते हैं ॥

अचरणा योनिके लक्षण ।

योन्यामधावनात् कण्डूं जाताः कुर्वन्ति जन्तवः ।
सा स्यादचरणा कण्ड्वा तयातिनरकांक्षिणी ॥

अर्थ—योनिका न धोनेसे उसमें एक प्रकारके अदृश्य छोटे कीडे पडकर खुजली उत्पन्न करते हैं उस खुजलीके कारण योनि पुरुषसमागमकी अत्यन्त इच्छा करती है ऐसी योनिको अचरणा कहते हैं ॥

अतिचरणा योनिके लक्षण ।

पवनोऽतिव्यवायेन शोफसुप्तिरुजः स्त्रियाः ।
करोति कुपितो योनौ सा चातिचरणा मता ॥

अर्थ—अत्यन्त मैथुन करनेके कारण वायु कुपित होकर योनिमें सूजन सुप्ति और वेदना कर देती है ऐसी योनिको अतिचरणा कहते हैं ॥

प्राक्चरणा योनिके लक्षण ।

मैथुनादतिबालायाः पृष्ठजंघोरुवंक्षणम् ।
रुजयन् दूषयेद्योनिं वायुः प्राक्चरणा तु सा ॥

अर्थ—अत्यन्त बाला स्त्रीके साथ मैथुन करनेसे उसका पाठ जांघ ऊरु और वंक्षणमें वेदना उत्पन्न करके वायु योनिको दूषित कर देती है ऐसी योनिको प्राक्चरणा कहते हैं । प्राक्चरणा शब्दका अर्थ यही है कि स्त्री पुरुप सहवासके योग्य आयुवाली न होवे किन्तु छोटी आयुमें प्रमादवश सहवास करनेसे प्राक्चरणा रोग उत्पन्न होता है जैसा कि सुश्रुतमें अति बालाके साथ सहवास करना निषेध किया है ॥

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम् । यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः । तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥

अर्थ—सोलह वर्षसे कम उमरवाला स्त्रीमें पच्चीस वर्षसे कम उमरवाला पुरुष जो गर्भको स्थापन करे तो वह कुक्षिस्थ गर्भ विपत्तिको प्राप्त होता है किन्तु पूर्ण काल ९ मास १० दिवस पर्यन्त गर्भाशयमे रहकर उत्पन्न नहीं होता, यदि उत्पन्न भी

हो जावे तो चिरकालतक नहीं जीता, यदि जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय आयुपर्यंत रहे, इस कारणसे अति बाल्यावस्थाकी स्त्रीसे सहवास करना अथवा गर्भ स्थापन करना सर्वथा वर्जित है और उपरोक्त प्राक्चरणा रोग भी इसी कारणसे होता है ॥

उपप्लुता योनिरोगके लक्षण ।

गर्भिण्याः श्लेष्मलाभ्यासाच्छर्दिःश्वासविनिग्रहात् । वायुः क्रुद्धः कफं योनिमुपनीय प्रदूषयेत् ॥ पाण्डुं सतोदमास्रावं श्वेतं स्रवति वा कफम् । कफवातामयव्याप्ता सा स्याद्योनिरुपप्लुता ॥

अर्थ-कफजन्य आहारके अत्यन्त सेवनसे तथा वमन श्वासादि वेगोंके रोकनेसे गर्भिणी स्त्रीके वायु दूषित होकर कफकी योनिमें लाकर योनिको दूषित कर देती है, तब योनिमेंसे सुई छिदनेके समान वेदनासे युक्त पाण्डुवर्णका स्राव होता है अथवा सफेद २ कफ निकलता है, कफवातरोगोंसे युक्त ऐसी योनिको उपप्लुता कहते हैं ॥

परिप्लुता योनिरोगके लक्षण ।

पित्तलाया नृसंवासे क्षवथूद्गारधारणात् । पित्तं संमूर्च्छितो वायुर्योनिं दूषयति स्त्रियाः ॥ शनास्पर्शाक्षमा सार्त्तिर्नीलपीतमसृक् स्रवेत् । श्रोणीवंक्षणपृष्ठार्तिज्वरार्तायाः परिप्लुताः ॥

अर्थ-पित्तप्रकृतिवाली स्त्रीके मैथुनके समय छींक वा डकार आवे और यदि वह उनको रोक लेवे तो पित्तयुक्त वायु कुपित होकर स्त्रीकी योनिको दूषित कर देती है, उस समय योनि ऐसी सूज जाती है कि स्पर्श नहीं किया जाता और उसमेंसे वेदनायुक्त नीला पीला स्राव होने लगता है तथा स्त्रीकी कमर वंक्षण और पीठमें वेदना और ज्वर होता है ऐसी योनिको परिप्लुता कहतेहैं ॥

उदावृत्ता योनिरोगके लक्षण ।

वेगोदावर्त्तनाद्योनिमुदावर्त्तयतेऽनिलः । सा रुगार्ता रजःकृच्छ्रेणोदावृत्ता विमुञ्चति ॥

अर्थ-अधोवेगोंको रोकनेसे वायुके कारण योनिका वेग ऊपरको होता है । इससे बडे कष्टके साथ रजःसम्बन्धि आर्त्तव निकलता है इसको उदावृत्ता योनि कहते हैं ॥

उदावर्त्तिनी योनिके लक्षण ।

आर्तवे या विमुक्ते तु तत्क्षणं लभते सुखम् । रजसो गमनादूर्ध्वं ज्ञेयोदावर्तिनी बुधैः ॥

अर्थ—आर्त्तवके निकलनेसे जिसमें तत्काल चैन पड जाता है उस योनिको रजके ऊपर जानेके कारण उदावर्त्तिनी कहते हैं ॥

कर्णिनी योनिरोगके लक्षण ।

अकाले वाहमानाया गर्भेणापिहितोऽनिलः । कर्णिकां जनयेद्योनौ श्लेष्मरक्तेन मूर्छितः ॥ रक्तमार्गावरोधिन्या सा तया कर्णिनी मता ॥

अर्थ—छोटी अवस्था (अति बाला स्त्री) में गर्भ धारण करनेसे गर्भके कारण आच्छादित वायु कफ और रक्तसे मिली हुई एक प्रकारकी कर्णिका योनिके मुखमें उत्पन्न कर देती है ये कर्णिका रक्तके मार्गको रोक देती है इससे इस योनिको कर्णिनी कहते हैं ।

पुत्रघ्नी योनिरोगके लक्षण ।

रौक्ष्याद्वायुर्यदा गर्भं जातं जातं विनाशयेत् ।
दुष्टशोणितजं नार्या पुत्रघ्नी नाम सा मता ॥

अर्थ—जो गर्भ स्त्रीके दूषित रक्तसे उत्पन्न होता है ऐसी स्त्रीको जब जब वह गर्भ उत्पन्न होता है तब तबही वायु रूक्षताके कारण उसे नष्ट कर देती है ऐसी योनिको पुत्रघ्नी कहते हैं ।

अन्तर्मुखी योनिरोगके लक्षण ।

व्यवायमतितृप्ताया भजन्त्यास्त्वन्न पीडितः । वायुर्मिथ्यास्थिताङ्गाया योनिस्रोतसि संस्थितः ॥ वक्रयत्याननं योन्याः सास्थिमांसानिलार्तिभिः । भृशार्तिर्मैथुनासक्ता योनिरन्तर्मुखी मता ॥

अर्थ—जब स्त्री अत्यन्त पेट भरकर आहार करे और उसके पीछे अन्याय अर्थात् विपरीत आसनकी रीतिसे पुरुषके साथ रतिक्रियामें प्रवृत्ति करे तब वायु उसकी योनिके स्रोतमें स्थित होकर योनिके मुखको वक्र (टेढा) कर देती है उसके अस्थि और मांसमें अत्यन्त वेदना होती है ऐसी स्त्री मैथुनमें असमर्थ हो जाती है. इसको अन्तर्मुखी योनि कहते हैं ।

सूचीमुखी योनिके लक्षण ।

गर्भस्थायाः स्त्रिया रौक्ष्याद्वायुर्योनिं प्रदूषयन् ।
मातृदोषादणुद्वारात् कुर्यात् सूचीमुखी तु सा ॥

अर्थ—माताके दोषके कारण वायु रूक्ष होकर गर्भस्थ कन्याकी योनिको दूषित करके उसके योनिद्वारको छोटा कर देती है । ऐसी योनिको सूचीमुखी कहते हैं ।

शुष्का योनिरोगके लक्षण ।

व्यवायकाले रुन्धन्त्या वेगान् प्रकुपितोऽनिलः ।
कुर्याद्विण्मूत्रसङ्गार्तिशोषं योनिमुखस्य तु ॥

अर्थ-मैथुनके समय जब स्त्री मल मूत्रके वेगोंको रोक लेती है तब वायु कुपित होकर विष्ठा और मूत्रको रोककर योनिको शुष्क कर देती है ऐसी योनिको शुष्का कहते हैं ।

वामिनी योनिरोगके लक्षण ।

षडहात् सप्तरात्राद्वा शुक्रं गर्भाशयं गतम् ।
सरुजं नीरुजं वापि या स्रवेत् सा च वामिनी ॥

अर्थ-जिस स्त्रीकी योनिसे गर्भाशयमें पहुँचा हुआ वीर्य वेदनायुक्त अथवा विना वेदनासेही छः सात दिनके भीतर गर्भाशयमेंसे निकल पडता है. उसे वामिनी योनि कहते हैं ।

पूर्णवन्ध्या कहानेवाली षण्डी स्त्रीके लक्षण ।

बीजदोषात्तु गर्भस्था मारुतोपहताशयः ।
नृद्वेषिण्यस्तनी चैव षण्डी स्यादनुपक्रमा ॥

अर्थ-बीजदोषके कारण जिस गर्भस्थ कन्याका गर्भाशय नष्ट होजाता है. वह पुरुषसमागमकी इच्छा नहीं करती है, न उसके स्तन निकलते हैं ऐसी स्त्री षण्डी वा हीजडी कहाती है. इसकी चिकित्सा किसी देशके डाक्टर, वैद्य डिम्बधारीसे भी नहीं हो सक्ती ।

महायोनिके लक्षण ।

विषमं दुःखशय्यायां मैथुनात् कुपितोऽनिलः । गर्भाशयस्य योन्याश्च मुखं विष्टम्भयेत् स्त्रियाः ॥ असंवृतमुखा सार्तिरूक्षफेनास्रवाहिनी । मांसोत्सन्ना महायोनिः पर्ववंक्षणशूलिनी ॥ इत्येते लक्षणैः प्रोक्ता विंशतिर्योनिजा गदाः ॥

अर्थ-टूटी हुई कष्टोत्पादक खट्वा (पलंग) पर विषम रीतिसे शयन करके जो पुरुषसमागममें रतिक्रिया करती है उस स्त्रीकी वायु कुपित होकर गर्भाशय और योनिमुखको स्तंभित कर देती है इस कारणसे योनि असंवृतमुखा वेदनायुक्त रूखा और झागदार आर्त्तव निकालनेवाली और मांसोपचिता हो जाती है इस स्त्रीके सन्धि और वंक्षणमें शूल होने लगता है यह महायोनि होती है । बीस प्रकारके योनिरोग और उनके लक्षण इस प्रकार वर्णन किये गये हैं । सुश्रुतमेंभी योनिरोग वीस

प्रकारके माने गये हैं कुछ २ नामान्तरमें अन्तर है परन्तु लक्षण निदान और चिकित्सामें अन्तर नहीं है प्रक्रिया दोनों ग्रन्थोंकी एक है ॥

न शुक्रं धारयत्येभिर्दोषैर्योनिरुपद्रुता । तस्माद्गर्भं न गृह्णीते स्त्री गच्छत्यामयान् बहून् ॥ गुल्मार्शप्रदरादींश्च वाताद्यैश्चातिपीडनम् ॥

अर्थ—इन उपरोक्त दोषोंसे उपद्रुत योनि वीर्य धारण नहीं कर सक्ती है न गर्भको ग्रहण कर सक्ती है तथा गुल्म अर्श और प्रदरादिक अनेक प्रकारके उपद्रव हो आते हैं और वह वातरोगोंसे सदैव पीडित रहती है ॥

योनिरोगोंमें दोषपरत्वकथन ।

आसां षोडश यास्तासां मध्ये द्वे पित्तदोषजे । परिप्लुता वामिनी च वात पित्तात्मके मते ॥ कर्णिन्युपप्लुते वातकफात् शेषास्तु वातजाः । देहं वातादयस्तासां स्वैर्लिंगैः पीडयन्ति हि ॥

अर्थ—इन वीस प्रकारके योनिदोषोंमें प्रथमके चार वातज पित्तज कफज और सान्निपातिक हैं । शेष सोलहमेंसे पहिले दो (रक्तपित्तज और अरजस्का) पित्तसे उत्पन्न हैं । कर्णिनी और उपप्लुता वातकफसे उत्पन्न हैं और शेष आठ केवल वातसे उत्पन्न हैं इनमेंसे वातादिक दोष अपने अपने लक्षणोंसे शरीरको पीडित करते हैं ॥

योनिव्याप्यरोगचिकित्सा ।

स्नेहनस्वेदवस्त्यादिवातलास्वनिलापहम् । कारयेद्रक्तपित्तघ्नं शीतपित्तकृतासु च ॥ श्लेष्मलासु च रूक्षोष्णं कर्म कुर्याद्विचक्षणः । सन्निपाते विमिश्रं तु संसृष्टासु च कारयेत् ॥

अर्थ—वातज योनिरोगोंमें स्नेहन स्वेदन और बस्त्यादि उपचारोंसे वात शान्त हो जाती है । पित्तजनित योनिरोगोंमें रक्तपित्तनाशिनी शीतक्रिया हित है । कफजन्य योनिरोगोंमें रूक्ष और उष्ण कर्म करना हित है । त्रिदोषज और द्विदोषज योनिरोगोंमें तीनों प्रकारकी मिली हुई चिकित्सा करना योग्य है ॥

वातजन्य योनिरोगकी चिकित्सा ।

स्निग्धस्विन्नां तथा योनिं दुःस्थितां स्थापयेत् पुनः । पाणिना नामयेज्जिह्मां निःसृतां संप्रवेशयेत् ॥ वर्धयेत् संवृतां चैव विवृतां परिवर्तयेत् । योनिः स्थानापवृत्ता हि शल्यभूता स्त्रिया मता ॥

अर्थ—वायुजन्य योनिरोगमें योनिको स्निग्ध और स्वेदित करके जो योनि अपने ठीक स्थानमें न होवे उसको ठीक स्थानपर लावे । यदि गर्भाशय स्थानान्तरमें होगया होय तथा वक्रता किसी भागमें आय गई होय तो उसको भी नियत स्वस्थानपर लाकर सीधा करे । यदि गर्भाशयके मुख वा गर्दनमें अग्र वक्रता होवे तो कोमल रुईकी अर्द्ध अंगुष्ठप्रमाण वर्तिका बनाकर वातनाशक तैलमें भिगोकर एक हाथकी अंगुलीसे गर्भाशयके मुखको ऊंचा उठाकर सीधा योनिमार्गकी बराबर लावे और जहांपर वक्रतासे मुडा हुआ है उस स्थानके अवकाशमें दूसरे हाथकी अंगुलीके सहारेसे वर्तिका रख देवे और यह वर्तिका प्रथम प्रति दिवस बदलती रहे पीछे स्वेदन और स्नेहन वस्तिकर्म करके तीसरे दिवस बदलता रहे । चिकित्सकको उचित है कि गर्भाशयके जिस भागमें टेढापन होवे उस भागके उपयोगी वर्तिका अपने बुद्धि अनुसार कल्पना करके बनावे और काममें लावे और जब गर्भाशय तथा उसका मुख सीधा होकर अपने स्वस्थानपर नियत होजावे तब स्त्रीको अतिसावधानीसे रहनेका उपदेश देना योग्य है । इसी प्रकार जो योनि टेढी हो गई होय उसको अंगुली और अंगूठेके सहारेसे सीधी करे । जो योनि बाहरको निकल आई होय उसको हाथके सहारेसे भीतरको प्रवेश करे और स्वस्थानपर स्थिर रक्खे, बन्धन उपचार करे और संकुचित योनिको चौडी करे और उसमें स्नेहन स्वेदन और वस्तिकर्मके अनन्तर रुईका स्थूल पिण्ड पिचुवर्ति बनाकर चार अंगुल प्रमाण लम्बा होवे, उसको वातनाशक तैलमें भिगोकर योनिमुखमें रक्खे । इस यत्नसे संकुचित योनि मुख वा योनिमार्ग विस्तीर्ण होताहै । इसी प्रकार गर्भाशयका मुख संकुचित होय तो लघु वर्तिकासे तथा शलाका-यन्त्रसे विस्तीर्ण करे । इसी प्रकार योनिमुख वा योनिमार्ग तथा गर्भाशयका मुख ये चौडे होवें तो संकोचन करनेवाली क्रिया और औषधियोंसे संकुचित करे । यदि योनिमुख और योनिमार्ग अति चौडा होगा तो पुरुषवीर्यको आकर्षण न कर सकेगा । यदि गर्भाशयका मुख चौडा होगा तो पुरुषवीर्यको तथा स्त्रीवीर्यको अपने अन्तरपिण्डमें न ठहरा सकेगा और उभय वीर्यके न ठहरनेसे गर्भकी स्थिति न होवेगी और जो योनि अपने निज स्थान अथवा गर्भाशय अपने निज स्थानसे हटकर स्थानान्तरमें हो जाते हैं ये स्त्रियोंको शल्यरूप हैं, इनको यथास्थान नियत करे । योनि वा गर्भाशयकी चिकित्सा करनेके समय चिकित्सकको उचित है कि अपनी हस्तांगुलियोंके नख सूक्ष्म करलेवे कि जिससे स्त्रीको आभ्यन्तराङ्गमें उनका आघात न पहुंचे । सुश्रुत आचार्यने षण्ढी, फलिनी, महायोनी, सूचीवक्त्रा इनको असाध्य कहा है जैसे कि—

सर्वलिङ्गसमुत्थाना सर्वदोषप्रकोपजा । चतसृष्वपि चाद्यासु सर्वलिङ्गो-च्छ्रितिर्भवेत् ॥ पञ्चासाध्या भवन्तीमा योनयः सर्वदोषजाः ॥

अर्थ—जिसमें तीन दोषोंके चिह्न पाये जाते हैं उसे त्रिदोषजा कहते हैं । पण्डी आदि चार प्रकारकी योनियोंमें त्रिदोषके चिह्न अधिक होतेहैं । ये त्रिदोषसे उत्पन्न हुई योनियाँ असाध्य होतीहैं । षण्डीको छोडकर फलिनी, अफलिनी, सूचीवक्त्रा इन तीनोंकी चिकित्सा हो सक्ती है ॥ अनुवादक—

साध्ययोनियोंकी चिकित्सा सुश्रुत ।

प्रतिदोषं तु साध्यासु स्नेहादिक्रम इष्यते । दद्यादुत्तरबस्तींश्च विशेषेण यथोदितात् ॥ कर्कशां शीतलां स्तब्धामपस्पर्शां च मैथुने । कुम्भी-स्वेदैरुपचरेत् सानूपौदकसंयुतैः ॥

अर्थ—साध्य योनिरोगोंमें प्रत्येक दोषके अनुसार स्नेहादिक क्रम कहा गया है । इसमें विशेष करके उत्तर बस्ति दी जाती है, जो योनि मैथुन करनेके समय कर्कश शीतल स्तब्ध और दुस्पर्श होय उसका आनूपौदक मांसरस करके कुम्भीस्वेदसे उपचार करे ॥

इसकी यह रीति है कि आनूपौदक मांस और वातनाशक द्रव्योंको घडेमें भर-कर भूमिमें (गड्ढा खोदकर घडेका आधा भाग भूमिमें दब जावे ऐसा) रख देवे और उसके ऊपर छिरैरी पीढी वा खाट बिछाकर योनिके ऊपरसे वस्त्र अलग करके स्त्रीको उटकुरुवा बिठला देवे कि योनिका भाग खाट वा पीढीके नीचे सीधा घडेके मुखके ऊपर रहे और स्त्रीको बोलदेवे कि स्थिर भावसे बैठी रहे और चारों तर्फसे स्त्रीका शरीर वस्त्रसे ढाँक देवे और एक तकिया मोटी स्त्रीके आगे रखदेवे जिसके आश्रय दोनों भुजा रखके बैठी रहे और लोहेके वा पत्थरके या ईंटके जो समयपर मिल सके एक टोकरीभर टुकडे तीव्र अग्निमें तपावे जब कि वे लाल होजावें तब चींमटेसे एक २ टुकडा उठाकर उस खाट वा पीढीके नीचेके घडेमें डालता रहे और उसमेंसे जो भाफ उठे उसकी ऊष्मा बराबर योनिपर लगती रहे इसको कुम्भी-स्वेद कहते हैं इससे योनिपर अति स्वेद आवेगा ।

उत्तर बस्ति ।

यह पिचकारी लगानेका नाम है और स्त्री पुरुष दोनोंके गुदा, योनि, मूत्रनली, पुरुषकी गुदा वा लिंगेन्द्रियमें पिंचकारी रोगानुसार लगायी जाती है । ऊपर जो उत्तर बस्तिका वर्णन किया है वह यह है । वातनाशक क्काथ तैल अथवा मद्य जिस वस्तुकी पिच-कारी लगानी होवे उसको एक बर्त्तनमें रख लेवे और आजकल रबडकी वा काच तथा धातुकी पिचकारी सब शहरोंमें मिलती हैं उन्हींके द्वारा औषधियोंके क्काथ तैल मद्यादिसे बस्तिकर्म करना उचित है । उष्ण द्रव्योंकी पिचकारी लगानी होवे तो योनि वा गुदाका आभ्यंतरांग जितनी उष्णताको सहन कर सके उतने गर्म जल क्काथ

तैलादिको काममें लावे और जब शीतल हो जावे तब निकाल लेवे और दूसरे समय पिचकारीसे पुनः भर देवे । यदि शीतल द्रव्यकी पिचकारी लगानी होवे तो उसको योनिमें इतने समयतक रहने देवे कि जबतक वह शरीरकी ऊष्मासे गर्म न होवे, गर्म होनेपर निकाललेवे और दूसरी बार शीतल द्रव्य पिचकारी द्वारा भरे । योनिमें यदि केवल प्रक्षालनके लिये ही पिचकारी लगानेकी आवश्यकता होवे तो पिचकारी लगाता जावे और जलको बाहर निकलने देवे और योनिके अन्तःपिण्डको विस्तीर्ण करनेके लिये वस्तिक्रिया की जावे तो योनिकी पोलमें ३५ तोले तथा ४० तोले पर्यन्त क्वाथादि द्रव्यको पिचकारी द्वारा प्रवेश करे और योनिमुखको बन्द कर लेवे । जब द्रव्यको निकालना होवे तब योनिमुखको खोल देवे । स्त्रीको सीधी सुलाकर दोनों पैर मोडकर जांघ पेटकी तर्फ करदेवे शिर नीचा और कमरका भाग ऊंचा रख और पिचकारीका शिरा योनिमें प्रवेश करके दूसरे हाथसे योनिके ओष्ठोंको मींचे रहे कि अन्दर गया हुआ द्रव्य बाहर न निकलने पावे और ३५ वा ४० तोले द्रव्य अन्दर पहुँचने पर योनि अन्दरसे खूब विस्तीर्ण हो जाती है और उसके रग पट्ठे सब तन जाते हैं । मूत्रमार्गकी पिचकारी बारीक छिद्र और पतली नलीकी होती है । और गुदा वा लिंगेन्द्रियमें पिचकारी लगानी होवे तो उसकी आवश्यकताके अनुसार लगावे ।

चरकसे पांच कर्मोंके प्रयोगका विधान ।

सर्वाव्यापन्नयोनिं तु कर्मभिर्वमनादिभिः । मृदुभिः पञ्चभिर्नारीं स्निग्धस्विन्नामुपाचरेत् ॥ सर्वतः सुविशुद्धायाः शेषं कर्म विधीयते । वातव्याधिहरं कर्म वातार्तानां सदा हितम् ॥ औदकानूपजैर्मांसैः क्षीरैः सतिलतण्डुलैः । सवातघ्नौषधैर्नाडीकुम्भीस्वेदैरुपाचरेत् ॥ युक्तां लवणतैलेन साश्मप्रस्तरशंकरैः । स्विन्नां कोष्णाम्बुसिक्तांगीं वातघ्नैर्भोजयेद्रसैः ॥

सब प्रकारके योनिरोगोंमें स्त्रीको प्रथम स्नेहन और स्वेदन कर्म कराके मृदु वमन विरोचनादि पांचों कर्मोंका प्रयोग करे । इस तरहसे जब योनि सर्व प्रकारसे शुद्ध होजाय तब शेष कर्मोंका विधान करे । वायुसे उत्पन्न योनिरोगोंमें सदैव वातव्याधिनाशक कर्म हित होतेहैं, वातल योनिरोगमें औदक और आनूपमांस (अनूपदेशके रहनेवाले पशु पक्षियोंके मांसको आनूपमांस करते हैं), दूध, तिल, चावल और वातनाशक औषधियां इन सबका पाक करके नाडीस्वेद (नलिका) वा कुम्भीस्वेदद्वारा उपचार करे अथवा लवण और तैलका योग करके अश्मवनप्रस्तरस्वेद और शंकरस्वेद-स्वेदित करके गर्म जलका परिषेक करे पीछे वातनाशक मांसरसोंका भोजन करावे ।

प्रयोग ।

बलाद्रोणद्वयक्वाथे घृततैलाढकं द्वयम् । स्थिरापयस्याजीवन्तीवीरर्षभकजीवकैः ॥ श्रावणीपिप्पलीमूलपीलुभाषाख्यपर्णिभिः । शर्कराक्षीरकाकोलीकाकनासाभिरेव च ॥ पिष्टैश्चतुर्गुणक्षीरं तथैव च यथाबलम् । वातपित्तकृतान् रोगान् हत्वा गर्भं दधाति तत् ॥

अर्थ—बलाके दो द्रोण क्वाथमें घृत और तैल प्रत्येक एक एक आढक डाले और शालपर्णी, क्षीरविदारी, जीवन्ती, क्षीरकाकोली, ऋषभक, जीवक, श्रावणी, पीपलामूल, पीलू, मांसपर्णी, शर्करा, काकनासा इन सबका कल्क चार सेर और दूध गौका १६ सेर इन सबको पकावे इस घृत तैलका यथाबल सेवन करनेसे वातपित्तजनित योनिरोगोंके नष्ट होनेपर स्त्री गर्भको धारण करती है ॥

काश्मर्यादिघृत चरक ।

काश्मर्यत्रिफलाद्राक्षाकासमर्दपरूषकैः । पुनर्नवाहरिद्राभ्यां काकनासासहाचरैः ॥ शतावर्या गुडूच्याश्च प्रस्थमक्षसमघृतात् । साधितं योनिवातघ्नं गर्भदं परमं पिबेत् ॥

अर्थ—काश्मरी (खंभारी), त्रिफला, द्राक्षा (दाख), कसौंदी, फालसा, पुर्ननवा, (सांठ), हल्दी, दारुहल्दी, काकनासा (जिसको कौआटोंटी वा कौआचोंच भी कहते हैं), सहचरी, शतावरी, गिलोय, प्रत्येक आधा पल (दो तोले) लेकर कल्क बनावे और इनके समान घृत मिलाकर चौगुने जलके साथ पकावे और घृत सिद्ध होनेपर निकाल लेवे यह घृत सब प्रकारके वातजन्य योनिरोगोंको नष्ट करके गर्भ धारण करानेवाला है ॥

गुडूच्यादितैल ।

गुडूचीमालतीव्याघ्रीश्रेयसीसुरदारुभिः । बलाचित्रकयष्ट्याह्वयूथिकाभिश्च कार्षिकैः ॥ तैलप्रस्थं गवां मूत्रे क्षीरेण द्विगुणं पचेत् । वातार्तायै पिचुं तस्माद्योनौ च प्रणयेत् सदा ॥

अर्थ—गिलोय, मालती, कटेली, रास्ना, देवदारु, खरैटी, चीता, मुलहटी, चमेलीकी जड, प्रत्येक एक एक कर्ष लेवे इनके कल्कके साथ एक प्रस्थ तैल दो प्रस्थ गोमूत्र और दो प्रस्थ गोदुग्ध मिलाकर तैलपाककी विधिसे तैल सिद्ध करे और इस तैलमें रुईका फोहा भिगोकर वातरोगसे पीडित स्त्रीकी योनिमें रख देवे इससे योनि सदैव प्रणिहित रहती है ॥

कफपित्तजन्य योनिरोगमें क्रियाविधान ।

पञ्च कल्कस्य पित्तार्त्ता श्यामादीनां कफातुरा । पित्तलानां तु योनीनां सेकाभ्यङ्गपि चुक्रिया ॥ शीता पित्तहराः कार्याः स्नेहनानि घृतानि च ॥

अर्थ—पित्तजनित योनिरोगोंमें पंच वल्कलका कल्क तथा कफजन्य योनिरोगोंमें अनन्तमूलका कल्क योनिमें रक्खें । पित्तला योनिवाली स्त्रियोंकी योनिमें परिषेक अभ्यंग, पिचुक्रिया, पित्तनाशिनी शीतलक्रिया तथा स्नेहनकर्त्ता घृतोंका प्रयोग हित है ।

शतावरीघृत ।

शतावरीमूलतुलाः चतस्रः संप्रपीडयेत् । रसेन क्षीरतुल्येन पचेत्तेन घृताढकम् ॥ जीवनीयैः शतावर्यामृद्वीकाभिः परूषकैः । प्रियालैश्चाक्षकैः पिष्टैर्द्वियष्टीमधुकैः पचेत् ॥ सिद्धे शीते च मधुनः पिप्पल्याश्च पलाष्टकम् । सितादशपलोन्मिश्राल्लिह्यात्पाणितलं ततः ॥ योन्यसृक्शुक्रदोषघ्नं वृष्यं पुंसवनं च तत् । क्षतं क्षयं रक्तपित्तं कासं श्वासं हलीमकम् ॥ कामलां वातरक्तं च विसर्पं हृच्छिरोग्रहम् । उन्मादायामसंन्यासं वातपित्तात्मकं जयेत् ॥

अर्थ—शतावरीकी जडको चार तुला लेकर कूट डाले और उस लुगदीको कपडेमें निचोडकर रस निकाल लेवे । पुनः इस रसमे रसके समान गौका दूध और एक आढक गौका घृत डालकर तथा जीवनीयगणोक्त द्रव्योंका कल्क, शतावरी, किसमिस, फालसा, पियाल दोनों प्रकारकी मुलहटी सब दो दो तोले डालकर पकावे और घृतपाककी विधि घृत सिद्ध करे घृत सिद्ध होनेपर इस घृतमें शहत आठ पल, पीपल आठ पल, और मिश्री दश पल इन सबको मिलाकर प्रति दिन दो तोले सेवन करे तो योनिके सर्व प्रकारके रोग, रक्तदोष, वीर्यदोष, क्षत, क्षय, रक्तपित्त, खांसी, श्वास, हलीमक, कामला, वातरक्त, विसर्प, हृद्रोग, शिरोग्रह, उन्माद, आयास, संन्यास और अन्य वातपित्तात्मक रोग दूर हो जाते हैं यह घृत पुष्टिकारक और पुंसवन है । इसी प्रकार जीवनीय गणके साथ सिद्ध किये हुए दूधका घृत गर्भ धारण करानेवाला और पित्तज योनिरोगोंको नष्ट करनेवाला है । जीवनीयगणकी औषधियां औषधवर्गमें देखो ॥

कफजन्य योनिरोगकी चिकित्सा ।

योन्याः श्लेष्मप्रदुष्टाया वर्तिः संशोधनी हिता । वाराहे बहुशः पित्ते भावितैर्नक्तकैः कृता ॥ भावितं पयसार्कस्य माषचूर्णं ससैन्धवम् ।

वर्तिः कृता मुहुर्धार्या ततः सेव्या सुखाम्बुना ॥ पिप्पल्या मरिचैर्माषैः शताह्वा कुष्ठसैन्धवैः । वर्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या धार्या योनिविशोधनी ॥

अर्थ–कफ दूषित योनियोंमें संशोधनी बत्तीका प्रवेश करना हितकारक है, पुराने कपडेकी बत्ती बनाकर उसे शूकरके पित्तेकी कई भावना देकर योनिमें रख देवे । उरदका आटा और उसके समान सेंधा नमक पीसकर एक बत्ती बनावे इसको आकके दूधकी भावना देकर योनिमें कई मिनट पर्यंत रखे और पछि निकाल लेवे और उष्ण जलकी पिचकारी लगाकर योनिको प्रक्षालन करे । अथवा पीपल, काली मिरच, उरद, सौंफ, कूट, सैंधानमक इसको कूट छानकर (सुहागेके जलके साथ) तर्जनी अंगुलीके समान बत्ती बनाकर योनिमें रखनेसे योनि शुद्ध हो जाती है ॥

योनिशोधक तैल ।

उदुम्बरशलाटूनां द्रोणमद्रोणसंयुतम् । सपञ्चवल्ककुलकनिम्बमालतिपल्लवम् ॥ निशां स्थाप्यं जले तस्मिंस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् । लाक्षाधवपलाशत्वङ्निर्यासैः शाल्मलेन च ॥ विष्टैः सिद्धं च तत्तैलं पिचुं योनौ निधापयेत् । सशर्करैः कषायैश्च शीतैः कुर्वीत सेचनम् ॥ पिच्छिला विवृता कालं दुष्टयोन्यथ दारुणम् । सप्ताहाच्छुद्धतिक्षिप्रमपत्यं चापि विन्दति ॥

अर्थ–कच्चे गूलरके बीज निकालकर छिलका मात्र एक द्रोण लेवे तथा इतने ही पंच-वल्कल, परवलके पत्र, नीमके पत्र, मालतीके पत्र इन सबको दुगुण गर्म जलमें रात्रिको भिगो देवे, और प्रातःकाल इसे मसलकर रस छान लेवे इस रसमें एक प्रस्थ तैल मिष्ट तिलीका मिलाकर पकावे । पकते समय इसमें लाख, धौका निर्यास (गोंद), पलाशका निर्यास, सेमरका निर्यास पीसकर डाल देवे जब तैल पक जावे तब उतारकर वारीक वस्त्रमें छानकर बर्तनमें भर लेवे और इसमें रुईका फोहा भिगोकर योनिमें रख देवे तदनन्तर पूर्वोक्त उदुम्बरादि द्रव्योंके शीतल क्वाथमें शर्करा मिलाकर योनिको प्रक्षालन करे । इस प्रयोगसे पिच्छला, विवृता, दूपिता, दारुणा कैसाही योनिरोग क्यों न हो सात दिनमें शुद्ध होता है और शीघ्र गर्भ धारण करके स्त्री संतानको प्राप्त होती है ॥

दूसरा औदुम्बर तैल ।

**उदुम्बरस्य दुग्धेन षट्कृत्वो भावितांस्तिलान् ।
तैलं क्वाथे च तस्यैव सिद्धं धार्यं च पूर्ववत् ॥**

अर्थ–गूलरके दूधमें तिलोंको छः बार भावना देकर छायामें सुखाकर उनका तैल निकाले पुनः इस तैलको गूलरकी छालके क्वाथमें पकावे और तैल सिद्ध होनेपर छानकर भर लेवे और रुईका फोहा भिगोकर योनिमें रखनेसे उपरोक्त तैलके समान गुण करता है ॥

जन्मवन्ध्या काकवन्ध्या मृतवत्सा क्वचित्स्त्रियः ।
तासां पुत्रोदयार्थाय शंभुना सूचितं पुरा ॥

अर्थ—जन्मवन्ध्या, काकवन्ध्या, मृतवत्सा वन्ध्या, जिसके बालक नहीं जीते हैं इनके पुत्र होनेके अर्थ शिवजीने विधान किया है ।

प्रथम जन्मवन्ध्या चिकित्सा ।

समूलपत्रां सर्पाक्षीं रविवारे समुद्धरेत् । एकवर्णगवां क्षीरे कन्याहस्तेन पेषयेत् ॥ १ ॥ ऋतुकाले पिबेद्वन्ध्या पलार्द्धं तद्दिने दिने । क्षीरशाल्यन्नमुद्गं च लघ्वाहारं प्रदापयेत् ॥ २ ॥ एवं सप्तदिनं कुर्य्याद्वन्ध्या भवति गर्भिणी । उद्वेगं भयशोकं च दिवा निद्रां विवर्जयेत् ॥ ३ ॥ न कर्म कारयेत्किंचिद्वर्ज्जयेच्छीतमातपम् । नो चेदपरमासेवा कारयेत् पूर्ववत् क्रियाम् ॥ ४ ॥ पतिसंगाद्गर्भलाभं नात्र कार्य्या विचारणा । एकमेव तु रुद्राक्षं सर्पाक्षीकर्षमात्रकम् ॥ ५ ॥ पूर्ववच्च गवां क्षीरे ऋतुकाले प्रदापयेत् । महागणेशमंत्रेण रक्षां तस्यानुबन्धयेत् ॥ ६ ॥ एवं सप्तदिनं कुर्य्याद्वन्ध्या भवति पुत्रिणी । ॐ ददन्महागणपते रक्षामृतं मत्सुतं देहि ॥ ७ ॥ पत्रमेकं पलाशस्य गर्भिणी पयसान्वितम् । पीत्वा च लभते पुत्रं रूपवंतं न संशयः ॥ ८ ॥ पथ्यमुक्तं यथापूर्वं तद्वत्सप्तदिनावधि । देवदालीयमूलं तु ग्राहयेत्पुष्यभास्करे ॥ ९ ॥ निष्कत्रयं गवां क्षीरैः पूर्ववत् क्रमयोगतः । वंध्या च लभते पुत्रं देयं पथ्यं यथा पुरा ॥ १० ॥ शीततोयेन संपिष्टं शरपुंखीयमूलकम् । कर्षं पीत्वा लभेद्गर्भं पूर्ववत् क्रमयोगतः ॥ ११ ॥ मुस्ताप्रियंगुसौवीरं लाक्षाक्षौद्रसमं पिबेत् । कर्षं तंदुलतोयेन वंध्या भवति पुत्रिणी ॥ १२ ॥ पथ्यमुक्तं यथापूर्वं तद्वत्सप्तदिनं पिबेत् । समूला सहदेवीं च संग्राह्यं पुष्यभास्करे ॥ १३ ॥ छायाशुष्कं च तच्चूर्णमेकवर्णगवां पयः । पूर्ववत्तु पिबेत् नारी वंध्या भवति गुर्विणी ॥ १४ ॥ मूलं शिखायाः खलु लक्ष्मणाया ऋतौ निपीयं त्रिदिनं पयोभिः ॥ क्षीरान्नचर्य्यानियमेन भुंक्ते पुत्रं प्रसूते वनिता न चित्रम् ॥ १५ ॥ सपिप्पलीकेशरशृङ्गवेरं

भद्रोषणं गव्यघृतेन पीतम् । वन्ध्यापि पुत्रं लभते हठेन योगस्तु सोऽयं मुनिभिः प्रदृष्टः ॥ १६ ॥ तुरंगगन्धाघृतवारिसिद्धमाज्यं पयस्स्नानदिने च पीत्वा । प्राप्नोति गर्भं नियमं चरंति वन्ध्या च नूनं पुरुषप्रसंगात् ॥ १७॥ पुष्पार्कयोगोद्धृतलक्ष्मणाया मूलं तथा वज्रतरोश्च पिष्ट्वा । अप्येकवर्णा-पयसा निपीतं स्त्रियः स्मृतं पुत्रकरं मुनीन्द्रैः ॥ १८ ॥ पुष्योद्धृतं लक्ष्मणमेव चूर्णं पुंसा निपिष्टं सघृतं निपीतम् । क्षीरोदनं प्राश्य पति-प्रसंगाद्गर्भं विदध्यात्तरुणी न चित्रम् ॥ १९ ॥ कृष्णापराजितामूलं बस्तक्षीरेण संपिबेत् । ऋतुस्नाता त्रिधा यातु वन्ध्या गर्भधरा भवेत् ॥ ॥ २० ॥ नागकेशरकं चूर्णं नूतनं गव्यदुग्धतः । पिबेत्सप्तदिनं दुग्धं घृतैर्भोजनमाचरेत् ॥ २१ ॥ तदृतौ लभते गर्भं सा नारी पतिसंगता । पुत्रजीवकपत्रैकं पिबेत् क्षीरैर्ऋतौ च यः ॥ २२ ॥

अर्थ—प्रथम जन्मवन्ध्याकी चिकित्सा कहते हैं । जडपत्र सहित सर्पाक्षिबूटीके रविवारके दिवस उखाडकर लावे और उसको एकरंगकी गौके दुग्धमें कुमारी लडकी-के हाथसे पिसवावे ॥ १ ॥ ऋतुकालके समयमें वन्ध्या स्त्री दो तोले प्रतिदिन पान करे दूध तथा शालिचावल मूंगादि हविष्य लघु अन्नका आहार करे ॥ २ ॥ इस प्रकार इस औषधका सेवन सात दिवस करनेसे वन्ध्या स्त्री गर्भिणी हो जाती है और इस औषधकी सेवन अवधिके दिनोंमें उद्वेग, भय, शोक, और दिनमें शयन करना त्याग देवे ॥ ३ ॥ किसी प्रकारका काम न करे शीत तथा धूप अधिक वायु-सेवन न करे, और गर्भ न रहे तो दूसरे महीनेमें इसी नियमपूर्वक इस उपरोक्त औ-षधका सेवन करे ॥ ४ ॥ इस औषधको सेवन करनेवाली स्त्री पतिके संग सहवास करनेसे गर्भधारणको प्राप्त होती है इसमें संदेह नहीं साक्षात् शिवजीका कथन है और एक दाना रुद्राक्षका तथा एक कर्ष सर्वाक्षिजडी, बूटी, ॥ ५ ॥ इसको पूर्व लिखी हुई क्रियाके अनुसार पीसकर ऋतुकालके समय गोदुग्ध मिलाकर पीवे और महाग-णेश जो साक्षात् शिवजीके पुत्र हैं उनके मन्त्रसे रक्षा करे ॥ ६ ॥ इस प्रकार सात दिवस करनेसे वन्ध्या स्त्री पुत्रिणी होती है । और महागणपति उसको रक्षा देते हैं 'ॐ ददन्महागणपते रक्षाभृतं मत् सुतं देहि' यह गणपतिकी उपासना तथा रक्षाका मन्त्र है ॥७॥ एक पलाश ढाकका कोमल पत्र लेकर गोदुग्धके साथ पीसकर पनिसे गर्भिणी स्त्री रूपवान् पुत्रको उत्पन्न करती है इसमें संदेह नहीं करना क्योंकि शिवके वचन हैं ॥ ८ ॥ और जैसा उपरोक्त पथ्य पूर्व कथन किया है उस प्रकार सात

दिवस पर्यन्त करे । तथा जब सूर्य पुष्यनक्षत्रमें आवे तो देवदालीकी जडको ग्रहण करे ॥ ९ ॥ और गौके दुग्ध तीन निष्क ४ मासेका १ निष्क होता है, एक तोला जडीको पूर्ववत् क्रियाके योगानुसार सेवन करे तो वन्ध्या पुत्रको प्राप्त होती है और पूर्ववत् पथ्य सेवन करे ॥ १० ॥ शरपुंखा (सरफोका) की जड १ तोला लेकर शीतल जलके साथ पीसकर पूर्व कथनके अनुसार पीवे तो वन्ध्या स्त्रीके पुत्र उत्पन्न होताहै ॥ ११ ॥ नागरमोथा, प्रियंगु, सौवीर (सौवीर संज्ञक मद्य होतीहै) इस प्रसंगपर न मालूम श्लोककर्तानें मद्यके आशयसे लिखा है अथवा किसी अन्य पदार्थको ग्रहण किया है), लाख शहत ये सब समान भाग १ कर्ष लेकर जलके साथ पीवे तो वंध्या स्त्री पुत्रवती होती है ॥ १२ ॥ और सात दिवस पर्यन्त पथ्यसे रहे, जब कि सूर्य पुष्यनक्षत्रमें आवे तो जडसहित सहदेई नामकी बूटीको लावे ॥ १३ ॥ और छायामें सुखाकर उसका चूर्ण करके एकरंगकी गौके दूधके साथ वंध्या स्त्री पीवे तो गार्भिणी होती है ॥ १४ ॥ लक्ष्मणा एक प्रकार जडी विशेष है परन्तु कितनेही लोग लक्ष्मणा शब्दसे श्वेतपुष्पकी कटेलीको ग्रहण करते हैं, लक्ष्मणाकी जड और पत्र ऋतुकालके समयमें वन्ध्या स्त्री गोदुग्धके साथ तीन दिवस पीन करे और दुग्धादिभोजन करे तो उसके अवश्य पुत्र होता है इसमें आश्चर्य नहीं ॥ १५ ॥ पीपल केशर, अदरख, भद्रमुस्तक (नागरमोथा) इनको गौके घृतके साथ पनिसे वन्ध्या स्त्री पुत्रको प्राप्त होती है, यह योग मुनियोंका देखा हुआ है ॥ १६ ॥ असगंध (अश्वगन्धा), घृतको सिद्ध करके दुग्ध और घृतसे स्त्री स्नान करके और असगंधसे सिद्ध किये हुए घृतको स्त्री दिनमें पान करे और नियमपूर्वक रहनेसे अवश्य वन्ध्या स्त्री पुत्रवती होती है अथवा पुरुष प्रसंगसे कुछ काल पूर्व इस घृतका पान करे ॥१७॥ पुष्यनक्षत्र आर सूर्यके योगमें लक्ष्मणाकी जड उखाडकर लावे यह प्रयोग अथवा थूहरकी जड पीसकर अथवा उपरोक्त लक्ष्मणाको पीसकर एक रंगकी गौके दूधके साथ पीनेसे अवश्य पुत्र होता है क्योंकि ऐसा मुनीन्द्र कथन करते हैं ॥ १८ ॥ पुष्यनक्षत्रमें उखाडी हुई लक्ष्मणा बूटीका चूर्ण करके उसको गोघृतके साथ पान करनेसे पीछे दुग्ध पान करे तो तरुणी अवश्य गर्भवती होती है इसमें संदेह नहीं ॥ १९ ॥ काली अर्थात् श्याम विष्णुक्रान्ताकी जड दूधसे पीसकर और ऋतुसे स्नान कर तीन दिन पीवे तो वन्ध्या स्त्री गर्भ धारण करती है ॥ २० ॥ नागकेशरका चूर्ण ताजे गौके दुग्धके साथ सात दिवस पर्यन्त पीवे और अधिक घृतयुक्त भोजन करे तो ॥ २१ ॥ वह स्त्री पतिके संग करनेसे अवश्य पुत्रको प्राप्त करती है जो स्त्री ऋतुसमयमें पुत्रजीवि (जियापोते) के एक पत्रको गो दुग्धके साथ पान करती है वह पुत्रको प्राप्त होती है ॥ २२ ॥

कदम्बपत्रं श्वेतं च बृहतीमूलमेवच । एतानि समभागानि अजाक्षीरेण पेषयेत् ॥ २३ ॥ त्रिरात्रं पंचरात्रं वा पिबेदेतन्महौषधम् । ऋतौ निपीयमाने तु गर्भो भवति निश्चितम् ॥ २४ ॥ भगाख्ये चैव नक्षत्रे वटवृक्षस्य मूलकम् । हस्ते बद्धा लभेत्पुत्रं सुन्दरं कुलवर्द्धनम् ॥ ॥ २५ ॥ अश्वत्थस्य तु वन्दाकं पूर्वेद्युः सुनिमंत्रितम् । ऋतुस्नाते तु पीतं स्यादपि वन्ध्या लभेत्सुतम् ॥ २६ ॥ एकवर्णसवत्साया गोक्षीरेण सुपेषितम् ॥ भावितं वटवंदाकं पीतं वन्ध्यासुतं लभेत् ॥ २७ ॥ पूर्वं पुत्रवती या सा कचिद्वंध्या भवेद्यदि । काकवन्ध्या तु सा ज्ञेया चिकित्सास्यास्तु कथ्यते ॥ २८ ॥

अर्थ–कदम्बपत्र, श्वेतचंदन, श्वेतफूल, कटेलीकी जड, इनको समान भाग लेकर १ तोलेकी मात्राको बकरीके दूधसे पीसकर ॥ २३ ॥ तीन रात्रि वा पांच रात्रि ऋतुके अन्तमें इस महौषधको पान करनेसे वन्ध्या स्त्री अवश्य गर्भवती होती है ॥२४॥ भगदेवतावाले नक्षत्र पूर्वाफाल्गुनीमें वटवृक्षकी जड हाथमें बांधनेसे वन्ध्या स्त्री पुत्रवती होती है ॥ २५ ॥ अश्वपीपलवृक्षके वन्दाको प्रथम दिवस निमंत्रण कर आवे तदनन्तर दूसरे दिवस लाकर ऋतुसमयमें पीनेसे वन्ध्या स्त्री पुत्रवती होती है ॥ २६ ॥ एक रंगवाली बछडेकी माता गोके दुग्धमें वटवृक्षके वन्दा (ग्रन्थी) को भावित करके पीवे तो वन्ध्या स्त्रीके पुत्र होता है ॥ २७ ॥ जो स्त्री प्रथम पुत्र जन्म चुकी होवे और पीछेसे वन्ध्या हो जावे उसको शिवजी महाराज काकवन्ध्या कहते हैं उसकी चिकित्सा इस प्रकार है ॥ २८ ॥

काकवन्ध्याचिकित्सा ।

विष्णुक्रांतां समूलां तु पिष्ट्वा दुग्धैस्तु माहिषैः । महिषीनवनीतेन ऋतुकाले तु भक्षयेत् ॥२९॥ एवं सप्तदिनं कुर्यात्पथ्यभुक्तं च पूर्ववत् । गर्भं च लभते नारी काकवन्ध्या सुशोभनम् ॥ ३० ॥ अश्वगन्धीयमूलं तु ग्राहयेत्पुष्यभास्करे । पेषयेन्महिषीक्षीरैः पलार्द्धं भक्षयेत्सदा ॥ सप्ताहाल्लभते गर्भं काकवन्ध्या चिरायुषम् ॥ ३१ ॥

अर्थ–विष्णुकान्ता (अपराजिता) की जड, पत्र याने पंचाङ्ग भैंसके दुग्धमें पीसकर और भैंसके ही नवनीत (मक्खन) में मिलाकर ऋतुकालमें भक्षण करे ॥ २९ ॥

इस प्रकार सात दिवस करे और पूर्ववत् पथ्य सेवन करे तो काकवन्ध्या स्त्री अवश्य गर्भवती होय ॥ ३० ॥ पुष्यनक्षत्रमें सूर्य आवे उस समय अश्वगन्धा (असगन्ध) की जडको उखाडकर लावे और भैंसके दूधमें पीसकर अर्द्धपल (दो तोले) सात दिवसमें पान करे तो काकवन्ध्या गर्भवती होय । और चिरायुष्क पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ ३१ ॥

मृतवत्सावन्ध्याचिकित्सा ।

गर्भे संजातमात्रेण पक्षान्मासाच्च वत्सरात् । म्रियते द्वित्रिवर्षाद्वा यस्याः सा मृतवत्सिका ॥ ३२ ॥ तत्र योगः प्रकर्त्तव्यो यथा शंकरभाषितम् । मार्गशीर्षेऽथवा ज्येष्ठे पूर्णायां लेपिते गृहे ॥ ३३ ॥ नूतनं कलशं पूर्णं गंधतोयेन कारयेत् । शाखाफलसमायुक्तं नवरत्नसमन्वितम् ॥ ३४ ॥ सुवर्णसूतिकायुक्तं षट्कोणमंडले स्थितम् । तन्मध्ये पूजयेद्देवीमेकांतीं नाम विश्रुताम् ॥ ३५ ॥ गंधपुष्पाक्षतैर्धूपैर्दीपनैवद्यसंयुतैः । अर्चयेद्भक्तिभावेन मद्यमांसैः समत्स्यकैः ॥ ३६ ॥ ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा । वाराही च तथेंद्राणी षट्सु पुत्रेषु मातरः ॥ ३७ ॥ पूजयेन्मंत्रबीजैश्च फैंकारैर्नाम विश्रुतः । दधिभक्तैश्च पिंडानि सप्तसंख्यानि कारयेत् ॥ ३८ ॥ षट्संख्या षट्सु पत्रेषु मातृभ्यः कल्पयेत्पृथक् । बिल्वाभं सप्तमं पिण्डं शुचिस्थाने बहिः क्षिपेत् ॥ ३९ ॥ तैर्भुक्ते गृहमागच्छेच्चक्राग्रे यागमाचरेत् । कन्यका योगिनी वामा भोजयेत्सकुटुम्बकैः ॥ ४० ॥ दक्षिणान्दापयेत्तासां देवताग्रे च नान्यथा । विसर्ज्य देवतां चाथ नद्यां तत्कलशोदकम् ॥ ४१ ॥ सकुलं वीक्षयेद्धीमाँल्छुभेन शुभमादिशेत् । विपरीते पुनः कार्यं यावत्तावत्सुसिद्धिदम् ॥४२॥ प्रतिवर्षमिदं कुर्याद्दीर्घजीवीसुतं लभेत् ॥ ॐ ह्रींफैं एकांतीदेवतायै नमः ॥ ४३ ॥ अनेन मंत्रेण पूजा जपश्च कार्यः । प्राङ्मुखः कृत्तिकाऋक्षे वन्ध्याकर्कोटकीं हरेत् ॥ तत्कन्दं पेषयेत् तोये कर्षमात्रं सदा पिबेत् । ऋतुकाले तु सप्ताहं दीर्घजीवी सुतो भवेत् ॥ ४४ ॥ या बीजपूरंद्रुममूलकं वा क्षीरेण सिद्धं हविषा विमिश्रम् । ऋतौ

निपीत्वा सुपतिं प्रयाति दीर्घायुषं सा तनयं प्रसूते ॥ ४५ ॥ मंजिष्ठा मधुकं कुष्ठं त्रिफला शर्करा बला। मेदा पयस्या काकोलीमूलं चैवाश्वगंधजम् ॥ अजमोदा हरिद्रे द्वे हिंगुं कटुकरोहिणी ॥ ४६ ॥ उत्पलं कुमुदं द्राक्षा काकोल्यौ चंदनद्वयम्। एतेषां कर्षिकैर्भागैर्घृतं प्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४७ ॥ शतावरीं रसं क्षीरं घृतं देयं चतुर्गुणम् । सर्पिरेतन्नरः पीत्वा नित्यं स्त्रीषु वृषायते ॥ ४८ ॥ पुत्राञ्जनयते नारी मेधावीप्रियदर्शनान्। या चैवास्थिरगर्भा स्याद्या नारी जनयेन्मृतम् ॥४९॥ अल्पायुषं वा जनयेद्या च कन्यां प्रसूयते। योनिदोषे रजोदोषे गर्भस्रावे च शस्यते ॥ ५० ॥ प्रजावर्द्धनमायुष्यं सर्वग्रहनिवारणम् । नाम्ना फलघृतं ह्येतद्रहस्यं परिकीर्तितम् ॥ ५१ ॥ जीवद्वत्सैकवर्णाया घृतमत्र तु दीयते। आरण्यगोमयेनात्र वह्नेर्ज्वाला प्रदीयते ॥ ५२ ॥

अर्थ--जिस स्त्रीके बालक उत्पन्न होकर ही पक्ष, मास, साल, दो साल वा तीन सालमें मर जाते हैं, वह स्त्री मृतवत्सा कहलाती है ॥ ३२ ॥ उसके बालकोंकी रक्षाके निमित्त शंकरका योग करना चाहिये । मार्गशीर्ष अथवा ज्येष्ठकी पूर्णिमाको अपना गृह लीपकर ॥ ३३ ॥ नवीन कलशमें जल भरकर उसमें अनेक प्रकारके सुगन्धित द्रव्य डाले आम्र (आमकी डाली) और नवरत्न भी उसमें डाले ॥ ३४ ॥ सुवर्णसूत्रिका (सोनेके तार) से छः कोनेवाले मंडलकी रचना करे उसके मध्य (बीच) में एकान्ती नामवाली देवीकी पूजा करे ॥ ३५ ॥ गंध पुष्प अक्षत धूप दीप नैवेद्यसे संयुक्त कर भक्तिभावसे अर्चन करे और (मद्य मांस मत्स्य भी देवे) ॥३६॥ ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी ये छः माता हैं ॥ ३७ ॥ इनको बीजमंत्रसे छः पत्रमें पूजन करके फैंकारका उच्चारण करे (फैंकार मंत्र आगे आवेगा) और दधिके सात पिण्ड बनाकर निर्माण करे ॥ ३८ ॥ पुनः छः पिण्ड तो छहों माताओंको उपरोक्त पत्रोंपर प्रदान करे और बिल्वफलकी समान सातवां पिण्ड पवित्र स्थानमें बाहर रक्खे ॥ ३९ ॥ उस पिण्डको खाकर घरमें प्रवेश करे और उस चक्रके आगे यज्ञ करे और कन्या तथा योगिनी स्त्रीको सकुटुम्ब भोजन देवे ॥ ४० ॥ और देवताके समक्ष (आगे) उनको दक्षिणा देकर पुनः देवताको विसर्जन् करके उस कलशके जलको नदीमें डाल देवे ॥ ४१ ॥ और कुटुम्बसहित बुद्धिमान् उस कृत्यको देखे और शुभ दिवसमें उस कृत्यको करे जबतक गर्भसिद्धि होय तबतक

करता रहे ॥ ४२ ॥ प्रतिवर्ष इसी माफिक करता रहे तो दीर्घजीवी पुत्रकी प्राप्ति होती है और ' ॐ ह्रीं फैं एकान्तदिवताये नमः ' इस मंत्रसे पूजन वा जप पुरश्चरण करे ॥ ४३ ॥ और कृत्तिका नक्षत्रमें पूर्वदिशाको मुख करके वन्ध्या स्त्री कर्कोटकीको लावे और उसकी जडको जलसे पीसकर एक कर्ष सेवन किया करे इस प्रकार प्रत्येक रजोवर्त पर सात दिवस पीनेसे स्त्री दीर्घजीवी पुत्रको प्राप्त होती है ॥ ४४ ॥ और जो बीजपुरकी जडको दूधमें सिद्ध करके हविष्य अन्नाहारमें मिलाकर ऋतुकालमें भक्षण वा पान करके पतिके समीप सहवास करती है वह स्त्री दीर्घजीवी पुत्रको उत्पन्न करती है ॥४५॥ नीचे फलघृतका प्रयोग कहते हैं । मंजीठ, मुलहटी, कूट, त्रिफला, मिश्री, खरैटी, महामेदा, क्षीरकाकोली, असगन्धकी मूली, अजमोद, दोनों हल्दी (हल्दी और दारुहल्दी), हिंगुपत्री, कुटकी, ॥ ४६॥ नीलाकमल, कुमुद, काकोली, द्राक्ष, काकोली, श्वेतचंदन, रक्तचन्दन ये प्रत्येक औषध एक एक कर्ष लेवे एक सेर गोघृत लेवे और पकावे ॥ ४७ ॥ इसमें शतावरीका रस दूध ये घृतसे चतुर्गुण डाले और घृत सिद्ध होनेपर छानकर चिकने पात्रमें रखे इस घृतकी अनुमानमाफिक मात्रा पान करके मनुष्य रतिक्रियामें स्त्रीसे प्रबल रहता है ॥ ४८ ॥ और स्त्रीजन इस घृतके सेवनसे बुद्धिमान् पुत्रोंको उत्पन्न करती हैं जो प्रियदर्शन पुत्र होय । तथा जिस स्त्रीका गर्भ स्थिर रह गया होय, अथवा जिसके मृतक संतान होती होय ॥ ४९॥ अथवा जिसके अल्पायु संतान होती होय वा जिस स्त्रीके केवल कन्याही कन्या होती होंय, अथवा जिस स्त्रीके योनिरोग और रजमें दोष होय वा जिस स्त्रीको गर्भस्राव होता होय ऐसी कथन की हुई उपरोक्त सब क्रियोंके निमित्त यह फलघृतका प्रयोग उत्तम है ॥ ५० ॥ यह प्रजा (सन्तान) का बढानेवाला, आयुका देनेवाला, सब ग्रहदोषोंका निवारण करनेवाला फलघृत है । अश्विनीकुमारोंने कथन किया है । जीवित बछडेवाली और एक रंगकी गौका घृत दुग्ध इस प्रयोगमें लेना चाहिये और इसको आरने उपलों (कंडों) की अग्निसे सिद्ध करे (पकावे) ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

पाठकगण, ऊपर जो आठ प्रकारकी वन्ध्या कथन की गयी हैं उनमेंसे, जन्मवन्ध्या, काकवन्ध्या, मृतवत्सावन्ध्या इन तीनकी चिकित्सा शिवजीके नामसे (कामरत्न) ग्रन्थमें कथन की गयी है, जो कि बुद्धि और विद्याके विरुद्ध हैं । शेष पांच वन्ध्याओंकी चिकित्सा भी इसी कल्पित प्रणालीके अनुसार है जिसपर किसी समझदार और शारीरिक विद्याके ज्ञाताओंका विश्वास कदापि नहीं हो सक्ता । एक फलघृतको छोडकर सब प्रयोग संयोग विरुद्ध तथा मद्य मांस मीनादिकी बलिदान दक्षिणादि सब स्वार्थी पुरुषोंने अपने लाभकी प्रक्रिया शिवजीके नामसे कथन की है । जब कि चरक सुश्रुतादि बडे २ वैद्य जन्मवन्ध्याकी चिकित्साका निषेध कर

आये हैं तो जन्मवन्ध्याकी चिकित्सा करना वा कराना असंभव है । हमको आगे वन्ध्या स्त्रीजनोंकी यथार्थ चिकित्सा लिखनी है: इसी कारणसे यहांपर चिकित्सा-प्रकरणका दिग्दर्शन कराना उचित समझा गया, क्योंकि जिसको अन्धकारका ज्ञान नहीं है वह प्रकाशके गुणको नहीं जान सक्ता । जिसने कटु पदार्थ कभी भक्षण नहीं किया है उसको मिष्ट रसका स्वाद उत्तम रीतिसे नहीं होता । इसी निमित्तसे कुछ चिकित्साप्रणालीको दिखलाकर इस ग्रन्थमें आगे यथार्थ चिकित्सा प्रणाली लिखी गयी है, जो कि स्त्रीमात्रको फलदायक है । स्त्रीचिकित्सा नामक ग्रन्थके लेखकने वन्ध्याओंके छः प्रकारके भेद लिखे हैं जैसा कि—

आत्रेयोवाच ।

वन्ध्या स्यात् षट्प्रकारेण बाल्येनाप्यथवा पुनः । गर्भकोशस्य भङ्गाद्वा तथा धातुक्षयादपि ॥ १ ॥ जायते न च गर्भस्य संभूतिश्च कदाचन । काकवन्ध्या भवेच्चैका अनपत्या द्वितीयका ॥ २ ॥ गर्भस्रावी तृतीयाऽथ कथिता मुनिसत्तमैः । मृतवत्सा चतुर्थी स्यात् पंचमी च बलक्षयात् ॥ ३ ॥ तस्योपक्रमणं वक्ष्ये येन सा लभते सुतम् । अजातरजसां स्त्रीणां क्रियते यदि मैथुनम् ॥ तेनैन गर्भसंकोचं भगत्वमुपगच्छति ॥ ४ ॥ तेन स्त्री भवते वन्ध्या गर्भं गृह्णाति नो भृशम् । सा च कष्टेन भवति रामा गर्भवती भिषक् ॥ ५ ॥ औषधैश्चोपचारैश्च सिद्धिश्चापि न संशयः । अनपत्याऽबलायाश्च जायते भिषजांवर ॥ ६ ॥ न भवेत् काकवन्ध्या च अनपत्यापि सिध्यति । सिध्यति क्षीणधातुत्वाज्जायते सा भिषग्वर ॥ ७ ॥

अर्थ—आत्रेय ऋषि हारीतादिसे कहते हैं कि वन्ध्यारोगका लक्षण और चिकित्सा सुनो । वन्ध्या स्त्री छः प्रकारकी होती हैं, प्रथम वंध्या तो बाल्यावस्थामें अधिक मैथुन करनेसे उसका गर्भकोश नष्ट हो जाता है तथा धातु क्षीण होजानेसे होती है ॥ १ ॥ इसीसे उस स्त्रीके कदापि गर्भ नहीं रहता है और काकवन्ध्या १, अनपत्या २, गर्भस्रावी ३, मृतवत्सा ४, बलक्षयी ५ और एक ऊपर अति मैथुनसे हुई छः वन्ध्या होती हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ प्रथम जो वन्ध्या कथन की है उसका निदान यह है कि जो स्त्री रजस्वला न हुई होय और उसके साथ मैथुन आचरण किया जावे तो उसका गर्भाशय संकुचित होकर भगरूप हो जाता है ॥ ४ ॥ इस कारणसे वह स्त्री वन्ध्या हो जाती है वह विशेष करके गर्भ धारण नहीं करती है । यदि उसकी चिकित्सा की

जावे तो बडे विलम्बसे गर्भको धारण करती है ॥ ५ ॥ और अनपत्या स्त्री भी औषधोपचारसे गर्भको धारण करती है ॥ ६ ॥ पुनः वह अनपत्या गर्भवती हो जावे तो काकवन्ध्या गर्भवती नहीं होती और जो क्षीणधातु हो गई है उसके भी बलवान् और धातु उत्पन्न होनेसे गर्भवती हो जाती है ॥ ७ ॥

स्त्रीचिकित्साग्रन्थके लेखकने वन्ध्यारोगका मूल तो आत्रेयोवाच करके आरम्भ किया और छः प्रकारकी वन्ध्याओंकी गणना भी की परन्तु भिन्न २ चिकित्सा तीन वन्ध्याओंकी कथन करके अग्रे रजोदोषशुद्धिपर दृष्टि जा पहुँची और अब शेष तीन वन्ध्याओंकी चिकित्साको गोलमाल करके त्याग दिया। असल और सत्य बात तो यह है कि इन छोटे २ अधूरे ग्रंथोंपर विश्वास करके कोई चिकित्सक वा रोगी उत्तम फलको प्राप्त नहीं हो सक्ता, इससे बुद्धिमान् रोगी तथा चिकित्सकोंको नूतन प्रणालीके जितने ग्रन्थ स्त्रीचिकित्साके विषयमें हैं वे सब त्यागने योग्य हैं और ये सब ग्रन्थ शारीरिकविद्या तथा सुश्रुतके शल्यतन्त्रसे अनभिज्ञ पुरुषोंकी रचनासे परिपूर्ण हैं ऐसे ग्रन्थोंपर विश्वास करके रोगी तथा चिकित्सक दोनोंही पश्चात्तापके भागी होंगे । अब बालतन्त्रके प्रणीता कल्याणवैद्यने अपने तन्त्रमें स्त्रियोंके रजमें आठ दोष और वन्ध्या स्त्रियां आठ प्रकारकी कथन की हैं, जैसे कि कामरत्नग्रन्थका रचयिता एकान्ती देवीका उपासक था उसी प्रकार कल्याणवैद्य ग्रह देवताओंके पूर्ण भक्त ज्ञात होते हैं और अपने तन्त्रमें ग्रहका भय दिखाकर भी वन्ध्यत्व दोष सिद्ध किया है सो पाठकोंके दृष्टिगत आगे स्वयं होगा । अब यहांसे कल्याणवैद्यके बालतन्त्र ग्रन्थसे वन्ध्याओंके लक्षण तथा चिकित्सा उद्धृत है ।

अष्टौ दोषास्तु नारीणां नवमः पुरुषस्य च । रक्तात्पित्तात्तथा वाताच्छ्लेष्मणः सन्निपातकात् ॥ १ ॥ ग्रहदोषविकारेण देवतानां प्रकोपनात् । अभिचारकृताच्चैव रेतोहीनः पुमांस्तथा ॥ २ ॥ काकवन्ध्या मृतवत्सा गर्भस्रावस्तथा स्त्रियः । आदिवन्ध्याश्च गीयन्ते दोषैरेभिर्न चान्यथा ॥ ३ ॥ पुष्पं तु जायते यस्याः फलं चापि न विद्यते । तस्या दोषविकारांश्च ज्ञात्वा कर्म समारभेत् ॥ ४ ॥

अर्थ—प्रायः स्त्रियोंके सन्तान उत्पत्तिके अवरोधक आठ दोष होते हैं और पुरुषको एक नवम दोष कथन किया है । अब इनको पृथक् पृथक् सुनो—१ रक्तदोष, २ पित्तदोष, ३ वायुदोष, ४ कफदोष, ५ सन्निपातदोष, ६ नवग्रह दोषोंसे उत्पन्न

हुए विकार ७ तथा तेतीस कोटि देवताओंके कोपसे उत्पन्न हुए विकार ८ तथा किसी साधु महात्मा सिद्ध यती योगी ब्राह्मण फकीर साहव सिद्धनि भाई मुंडीके शाप (वद्दुआ) से इस प्रकार ये आठ दोष स्त्रियोंकी सन्तानोत्पत्तिके बाधक होकर सन्तानका अभाव करते हैं (और हीन वीर्य होना अथवा निर्वल वा दूषितवीर्य होना यह एक पुरुषका दोष कथन किया है)। इन पूर्वोक्त सव दोषोंके कारणसे काकवंध्या अर्थात् एकही वार सन्तान होकर पुनरपि सन्तान न होना, मृतवत्सा (जिसको मसान संज्ञक भूतकी व्याधि भी कहते हैं) अर्थात् सन्तान. तो अनेक उत्पन्न हों परन्तु वे पक्ष मास सालके होकर मर जावें । गर्भस्रावी (जिसकी गर्भकी स्थिति तो समय समय पर होती रहे परन्तु गर्भस्राव वा पात हो जाया करता है) आदि वन्ध्या जो जन्मसेही वन्ध्या उत्पन्न हुई होवें । इन परिगणित किये हुए रोगोंवाली स्त्रियाँ होती हैं । जिस स्त्रीके पुष्प (रजोदर्शन) आता होवे आर फल अर्थात् गर्भ न ठहरता होय इस प्रकार स्त्रियोंके दोषोंकी पूर्ण रीतिसे निश्चय करक चिकित्सा करनी योग्य है ॥ १-४ ॥

वात पित्त कफ तथा त्रिदोष मिश्रित होनेसे दूषित रजके लक्षण तथा क्रमपूर्वक चिकित्सा ।

यस्याः पित्तहतं पुष्पं प्राज्ञस्तु ह्युपलक्षयेत् । पक्वजम्बूफलाकारं कृष्णं स्रवति शोणितम् ॥ ५॥ कटिशूलं भवेत्तस्या उदरं परिदह्यते । प्रदरं च करोत्युष्णमेतत्पित्तस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥ तस्यौषधं प्रवक्ष्यामि येन गर्भोऽभिजायते । उत्पलं तगरं कुष्ठं यष्टी मधुकचंदनम् ॥ ७ ॥ एतानि सम-भागानि छागीक्षीरेण पेषयेत् । पिबेन्नारी त्रिरात्रं वा यावत्स्रवति शोणि-तम् ॥ ८ ॥ ततो योन्यां विशुद्धायामिमां दद्यान्महौषधीम् । लक्ष्मणां क्षीरसंयुक्तां नस्ये पाने प्रदापयेत् ॥ ९ ॥ तेन सा लभते पुत्रं रूपवंतं महाकविम् ॥ १० ॥

अर्थ-जिस स्त्रीका पुष्प पित्तदोषसे दूषित होगया होय उसको बुद्धिमान् पंडित लोग इस प्रकारसे परीक्षा करें कि उस स्त्रीके पके हुए जामनके फलके समान काले रंगवाला रक्तस्राव होता है और उसकी कटिमें अति शूल रहता है और उदरमें अतिदाह (जलन) होती है गर्मगर्म प्रदर स्रवता रहता है ये सव लक्षण पित्तसे दूषित हुए स्त्रीपुष्पके जानना योग्य है अव पित्तसे दूषित स्त्री पुष्पकी चिकित्सा

कहते हैं । पित्तदूषित दोषसे रजकी शुद्धि करे जिससे स्त्रीको गर्भकी स्थिति होवे । कमलगट्टा, तगर, कूट, मुलहटी, महुएके फूल, सफेद चंदन इन औषधियोंको समान भाग लेकर बकरीके दूधके साथ पीसकर और बकरीके ही दूधके साथ तीन दिवस पर्यन्त स्त्री पीवे अथवा रज दीखता रहे जबतक पीवे इसके पीछे इस महान् दिव्य औषधको देवे । लक्ष्मणा नामवाली बूटीको पीसकर उसका स्वरस निकाले और स्वरसके समान गौका दूध मिलाकर नासिकामें नस्य देवे तथा पान करावे तो यह प्रयोग श्रीमान् रूपमान् वा महाकवि पुत्रको उत्पन्न करता है । प्रसंगवश यहां लक्ष्मणाबूटीका लक्षण कहते हैं । किसी २ वेसमझ टीका-कारने लक्ष्मणाके नामसे श्वेतपुष्पकी बृहती (कटेली) का ग्रहण किया है यह उनकी अति मूर्खता है ॥ ९-१० ॥

लक्ष्मणालक्षणम् ।

चिह्नं तस्याः प्रवक्ष्यामि ज्ञायते च भिषग्जनैः । रक्तबिन्दुयुतैः पत्रैर्वर्तुलाकृतिभिर्युता ॥ ११ ॥ पुरुषाकारसंयुक्तैर्लक्ष्मणा सा निगद्यते । आत्मच्छायां परित्यज्य गृह्णीयात् पुष्यभे सुधीः ॥ १२ ॥

अर्थ—लक्ष्मणा बूटीके चिह्न वैद्यजन इस प्रकारसे जानें कि जिसके पत्रोंपर लाल वर्णके अनेक बिन्दु होवें और गोल पत्र होवें ॥ ११ ॥ तथा पत्रोंपर नसाजालकी आकृति पुरुषके समान होवे वह लक्ष्मणा बूटी कहलाती है उस बूटीको लेने जावे तो उसके ऊपर मनुष्य अपनी छाया (परछाई) नहीं पडने देवे ऐसी विधिपूर्वक इस बूटीको पुष्यनक्षत्रमें लावे ॥ १२ ॥

वातदूषित स्त्रीपुष्पके लक्षण तथा चिकित्सा ।

यस्या वातहतं पुष्पं फलं तस्या न विद्यते । अतिसूक्ष्मतरं रक्तं कुसुम्भोदकसन्निभम् ॥ १३ ॥ कटिशूलं भवेत्तस्या योनिशूलं तथा ज्वरम् । (उपचारः) सहकारस्य मूलं च मूलं व्याधिजवं तथा ॥ १४ ॥ बृहतीजम्बुमूले च क्षीरेणालोड्य सा पिबेत् । सप्ताहं पंचरात्रं वा यावत्स्रवति शोणितम् ॥ १५ ॥ ततो योन्यां विशुद्धायां लक्ष्मणा क्षीरसंयुता । नस्ये पाने च दातव्या तेन सा लभते सुतम् ॥ १६ ॥

अर्थ--जिस स्त्रीका रजद्रव्य वायुदोषसे दूषित हो गया होय उसको कदापि गर्भकी स्थिति नहीं होती अतिसूक्ष्मतन्तुवाला कुसुम्भके रंगके सादृश्य रक्तस्राव योनिमार्गसे

गिरे और उस स्त्रीकी कटि (कमर) और योनिमें शूल होय तथा थोडा २ ज्वर उत्पन्न हो आवे । उपचार । आम्रवृक्षकी जड, कटेलीकी जड, सफेद फूलकी कटेलीकी जड, जामुनकी जड, इनको समान भाग लेकर दूधमें पीसकर और गोदूधमें मिलाकर सात रात्रि पर्य्यन्त अथवा पांच रात्रिपर्य्यन्त पीवे अथवा जबतक उस स्त्रीका रक्तस्राव दीखता रहे तबतक इस औषधको पीवे और योनि शुद्ध हो जावे तब लक्ष्मणा बूटीको दूधमें पीसकर रस निकालकर नस्य लेवे तो वह स्त्री उत्तम पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ १३–१६ ॥

कफदूषित स्त्रीरजके लक्षण तथा चिकित्सा ।

यस्याः श्लेष्महतं पुष्पं तस्या नापि भवेत्फलम् । बहुलं पिच्छिलं रक्तं नारीरक्तं भवेत्तदा ॥ १७ ॥ नाभिमंडलमूले तु शूलं भवति दारुणम् । (उपचारः) अर्कमूलं प्रियंगुं च कुसुमं नागकेशरम् ॥ १८ ॥ बलां चातिबलां चैव छागीक्षीरेण पेषयेत् । त्रिफला त्रिकटुं चैव चित्रकं समभागिकम् ॥ १९ ॥ अजाक्षीरेण संपिष्टा चालोड्य युवती पिबेत् । त्रिरात्रं पंचरात्रं वा यावत्स्रवति शोणितम् ॥ २० ॥ ततो योन्यां विशुद्धायां लक्ष्मणां नसि दापयेत् ॥ २१ ॥

अर्थ–जिस स्त्रीका रजद्रव्य कफदोषसे दूषित हो गया होय उसको भी गर्भस्थिति नहीं होती उसका लक्षण यह है कि झागोंवाला विशेष रक्त योनिमार्गसे स्रवता है और नाभिके नीचे दारुण (तीव्र) शूल होताहै । उपचार–इसका यह है कि आककी जड, मेंहदी, लवंग, नागकेशर, खरैटीकी जड, गंगेरनकी छाल, इन औषधियोंको समान भाग लेकर बकरीके दूधके साथ पीसकर पीवे अथवा त्रिफला, त्रिकटु, (हरड, बहेडा, आंवला, सोंठ, मिरच, पीपल) और चित्रककी छाल इनको समान भाग लेकर दूधके साथ मिलाकर स्त्रीको पिलावे सात दिवस पर्यन्त अथवा पांच दिवसपर्यन्त किन्तु योनिसे रक्तस्राव होता रहे जबतक पीवे और जब योनिरक्त स्रवनेसे बन्द हो जावे तब लक्ष्मणा बूटीकी पूर्व कथनानुसार नस्य देवे अथवा पिलावे ॥ १७–२१ ॥

सन्निपातदूषित स्त्रीपुष्पके लक्षण तथा चिकित्सा ।

सन्निपातहते पुष्पे ज्वरस्तीव्रश्च जायते । शोणितं तु भवेत्कृष्णं चात्युष्णं पिच्छिलं बहु ॥ २२ ॥ कुक्षिदेशे तथा योन्यां कट्यां शूलं

च जायते । गात्रभङ्गो भवेत्तस्या बहुनिद्रा च जायते ॥ २३ ॥ (उपचारः) गन्धर्वहस्तमूलं च सहकारं त्रिवृत्तकम् । उत्पलं तगरं कुष्ठं यष्टी मधुकचंदनम् ॥ २४ ॥ अजाक्षीरेण पिष्टं तु सप्तरात्रं ततः पिबेत् । रजोहार्त्पंचरात्रं च यावत्स्रवति शोणितम् ॥२५ ॥ ततो योन्यां विशुद्धायां श्वेतार्कं शङ्खिणीं तथा । लक्ष्मणां वन्ध्यकर्कोटीं श्वेतां च गिरिकर्णिकाम् ॥२६॥ गवां क्षीरेण सम्पिष्य नसि पानं प्रदापयेत् । दक्षिणे लभते पुत्रं वामे पुत्री न संशयः ॥ २७ ॥

अर्थ—जिस स्त्रीका सन्निपात (वातपित्तकफ) से मिश्रित दोपसे पुष्प (रज) द्रव्य दूपित हो गया होय तो उसको रजोधर्म आनेके समयमें तीव्रता उत्पन्न होती है और अत्यंत उष्ण झागवाला स्याह रंगका रक्त उसकी योनिमें स्रवता है, कोखमें तथा योनिमें, कमरमें शूल होता है और सर्व शरीर पीडित रहता है और स्त्रीको निद्रा तथा आलस्य अधिक रहता है । उपचार—अरंडकी जड, आम्रवृक्षकी जड, निसौत, कमलगट्टा, तगर, कूट, मुलहटी, महुएके फूल, चन्दन इनको समान भाग लेकर बकरीके दूधके साथ बारीक पीसकर और दूधमें मिलाकर सात दिवसपर्यंत पीवे अथवा रजस्वला होनेकी अवधिमें पांच दिवस पर्यंत पीवे अथवा योनिसे रक्त स्राव होता रहे जबतक पीवे किन्तु रक्तस्रावसे योनि शुद्ध हो जावे तब सफेद आककी जड, सफेद फूलकी कटेलीकी जड, लक्ष्मणाबूटी, बांझककोडीकी जड, सफेद फूलकी विष्णुक्रांता इन औषधियोंको समान भाग लेकर गौके दुधके साथ पीसकर नस्य देवे और पान करावे और यदि दाहिनी नासिकासे पीवे तो पुत्र होय और बायीं नासिकासे पीवे तो पुत्री होय इसमें संदेह नहीं ॥२२–२७ ॥

पूर्वोक्तदोषहीनाया ग्रहदोषो न संशयः । जन्मपत्रीं समालोक्य ग्रहपूजां समाचरेत् ॥ २८ ॥ व्रतं तया प्रकर्तव्यमधमस्य ग्रहस्य च । विकारेण यदा वंध्या स्फुटं चिह्नं तदा भवेत् ॥ २९ ॥ रोगनाशे भवेद्गर्भो नात्र कार्या विचारणा । देवताकोपवन्ध्याया तस्याश्चिह्नं वदाम्यहम् ॥ ३० ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यामावेशो वेदना तथा । गोत्रदेवीं समाराध्य दुर्गामन्त्रं ततो जपेत् ॥ ३१ ॥ गणनाथं समभ्यर्च्य पुत्रं सा लभते ध्रुवम् ॥ ३२॥ कृत्याकृतो यदा दोषः शरीरे वेदना भवेत् । दुर्गामन्त्रं जपेन्नारी ततो गर्भो भवेद्ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—जो स्त्री पूर्वोक्त वातादि दोषोंसे रहित होय तो उस स्त्रीको समझना कि निश्चयही ग्रहदोपसे युक्त है, सन्तान होनेका मार्ग रोक रखा है इस लिये स्त्री और पुरुपकी जन्मकुंडली लेकर ज्योतिपीके समीप पहुँचे और कौन ग्रह क्रूर होकर विचारी स्त्री पुरुपके सन्तानरूपी फलको वीचमेंही हर लेता है ऐसा निश्चय करके उस ग्रहकी शांतिके लिये ज्योतिपजीको बुलाकर पूजन कराना चाहिये । यदि इस स्थलपर अनिष्ट ग्रह होवे तो उसकी शान्तिके निमित्त व्रत पुण्य दानादि ज्योतिषीजीको देना, वातादि दोप विशेपसे गर्भ स्थित न होता होय तो उसका लक्षण तथा उपचार ऊपर लिख चुके हैं उसका उपचार करे और रोग नष्ट होनेपर स्थित होवेगा इसका कुछ विचार न करना । और जिस स्त्रीको देवतादिके कोपसे वन्ध्यत्व दोप प्राप्त हुआ होय तो उसके लक्षण कहते हैं जिस स्त्रीको अष्टमीके दिवस अथवा चतुर्दशी-के दिवस पीडा होती है, अथवा कुछ चेटक चमत्कार भी दीखता है । वह स्त्री कुल-देवीकी आराधना करके दुर्गाजीका मन्त्र जपे और गणेशजीका पूजन करे ऐसा कर-नेसे वह स्त्री निश्चय पुत्रको प्राप्त होती है । कृत्या यानी किसीने जादू टोना करा दिया होय और इस दोपसे शरीरमें पीडा हुई होय तो दुर्गापाठ करके वा किसी पंडितसे कराके देवीजीका आराधन करावे तब निश्चय गर्भ रहता है और गुरुदेव तथा साधु महात्मा ब्राह्मण फकीरादिके शापसे सन्तान न होता होवे तो इन सबकी पूजा करे, दान देवे, भोजन करावे, वस्त्र दान देवे और उनका आशीर्वाद लेवे तो शीघ्र सन्तान होवे इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २८–३३ ॥

अब वैद्यवर कल्याणजी उन आठ प्रकारकी वन्ध्याओंका कथन करते हैं । जो सब ग्रन्थोंमें छुपी हुई हैं । उनको आपने बहुत परिश्रमसे तलाश करके निकाला है और अपने बालतन्त्र अनुवन्धकी शोभा बढाई है । पूर्व आठ बा छः तथा इनकेही आभ्य-न्तर तीन वन्ध्याओंका उल्लेख हो चुका है । परन्तु ये आठ वन्ध्या उनसे विलक्षण हैं जैसा कि--

अन्यद्वन्ध्याष्टकं वक्ष्ये सर्वतन्त्रेषु गोपितम् । त्रिपक्षी शुभ्रती सज्वा त्रिसुखी व्याघ्रिणी बकी ॥ ३४ ॥ कमली व्यक्तिनी चैव तासां चिह्नं वदाम्यहम् । त्रिपक्षी नाम या वंध्या त्रिपक्षे पुष्पिता भवेत् ॥ ३५ ॥ द्वे जीरके श्वेतवचा कर्कोट्याश्च फलं समम् । तण्डुलोदकसंपिष्टं चोत्थिता सूर्यसन्मुखी ॥ ३६ ॥ त्रिदिनं च पिबेन्नारी दुग्धभक्तं च भोजनम् ॥ तेन गर्भो भवेन्नार्य्याः सत्यमेतन्न संशयः ॥ ३७ ॥ शुभ्रती

नाम या वंध्या चिह्नं तस्या वदाम्यहम् । गात्रं संकोचते नित्यं देहे चैव विवर्णता ॥ ३८ ॥ गर्भस्तस्या न जायेत सञ्ज्ञा वन्ध्या च कथ्यते ॥ अप्रमाणैश्च दिवसैस्तस्याः पुष्पं प्रजायते ॥ ३९ ॥

अर्थ--अब आठ प्रकारकी उन वंध्याओंका कथन करते हैं, जो सर्वतन्त्र (शास्त्रों) में गुप्तरूपसे छुपी हुई हैं इनको वैद्यराज कल्याणजी महाशयनेही निकाला है अब उनके नाम तथा लक्षण पृथक् पृथक् कहकर उनकी चिकित्साके उपचार भी भिन्न भिन्न कहेंगे । १ त्रिपक्षी २ शुभ्रती ३ सञ्ज्ञा ४ त्रिमुखी ५ व्याघ्रिणी ६ वक्री ७ कमली ८ व्यक्तिनी ये आठ प्रकारकी वन्ध्या हैं अब इनके पृथक् २ लक्षण कहते हैं, जो स्त्री तीन पक्षमें ऋतुमती होती है उसको त्रिपक्षी कहते हैं । त्रिपक्षीकी चिकित्सा सुनो--स्याहजीरा, सफेदजीरा, सफेदवच, ककोडाका फल ये सब समान भाग लेकर चावलके धोवनके जलसे पीसकर उसी जलमें मिलाकर प्रभातसमय स्नान करके सूर्यके सन्मुख प्रार्थना--उपासना करके खडी होकर पीवे और ३ दिवस पर्यन्त दूध चावल भोजन करे तो उस स्त्रीके अवश्य गर्भ रहेगा, यह यथार्थ बात है इसमें संशय नहीं । अब शुभ्रती नाम वन्ध्याके लक्षण सुनो--शरीर संकुचित रहे, शरीरका रूप रंग विवर्ण (अन्यथा) होजावे, ' गर्भस्तस्या न जायते ' शुभ्रती नाम वाली वन्ध्याको गर्भ नहीं रहता परन्तु कल्याण वैद्य अन्य ग्रन्थोंसे इसका प्रयोग लिखते हैं । नागकेशर टंक ३ हाऊबेर टंक ३ मयूर-शिखा टंक ३ मिश्री १८ टंक इन सबको पीस छानकर ३ टंककी मात्रा बनावे और प्रातःकाल १ मात्रा स्नान करके सूर्यके सन्मुख खडी होकर प्रार्थना करके एक वर्णकी गौके दुग्धके साथ लेवे, दूध चावलका भोजन करे और सब वस्तु खाना त्याग देवे तो शुभ्रती नामवाली वन्ध्याके सन्तान होवे । अब सञ्ज्ञा नामक वन्ध्याके लक्षण सुनो--सञ्ज्ञा वन्ध्याका ऋतुस्राव अनियत दिनोंमें आता है कभी ऋतु शीघ्र आवे कभी अधिक कालके विलम्बसे आवे उस स्त्रीको सञ्ज्ञा वन्ध्या कहते हैं ॥ ३४--३९ ॥

जीरे वचां समंगां च गृह्णीयाच्छुभवासरे ॥ कर्कोटी शृंखलाकारी पिष्ट्वा तंडुलवारिणा ॥ ४० ॥ दिनत्रयं यदा नारी सूर्य्यस्य सम्मुखी पिबेत् । सदुग्धं षष्टिकान्नं च भक्षयेद्दिनसप्तकम् ॥ ४१ ॥ तेन गर्भो भवेन्नार्य्यास्त्रिमुखी नाम कथ्यते । तस्याश्चिह्नं प्रवक्ष्यामि मैथुने सलिलं स्रवेत् ॥ ४२ ॥ भोजने मैथुने लौल्यं गर्भस्तस्या न विद्यते । व्याघ्रि-ण्या उत्तरे कालेऽपत्यमेकं प्रजायते ॥ ४३ ॥ त्रिपक्ष्युक्त प्रदातव्य-

मौषधं पुत्रदायकम् । बक्यमृक् स्रवते श्वेतं दशमेऽष्टमके दिने ॥४४॥ असाध्या सा सुसाध्या वा औषधं नैव कारयेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ–अब सज्जा वन्ध्याके लिये औषध प्रयोग कहते हैं । कालाजीरा, सफेद जीरा, वच, मंजिष्ठ, ककोडीफल, हडजोडी (हथजोडी) ये सब समान भाग लेकर चावलोंके जलके साथ पीसकर और उसी जलमें मिलाकर प्रातःकालके समय शुभदिवस (गुरुवार रविवारादि) स्नान करके सूर्यसन्मुख खडी होकर प्रार्थना करके निरन्तर तीन दिवस पर्यन्त यत्नपूर्वक स्त्री पीवे । दूध और सांठी चावल ७ दिवस पर्यन्त आहार करे इस प्रयोगके सेवनसे सज्जा संज्ञाकी वन्ध्याके गर्भ रहे और सन्तान उत्पन्न होवे । अब त्रिमुखी वन्ध्याके लक्षण कहते हैं । पुरुषके मैथुनसमयमें भोग करते योनिसे जल बहता हो और भोजनसे तथा मैथुनसे तृप्ति नहीं होती हो, भोजन औरं मैथुनमें उसका चित्त लोलुप रहे ये लक्षण त्रिमुखी वन्ध्याके हैं । अन्य वैद्यक ग्रन्थोंमें इसको कर्णिनी योनि कहा गया है । इस योनिमें पुरुषवीर्य स्थिर न रहनेसे गर्भकी स्थिति नहीं होती । अब व्याघ्रिणी वन्ध्याके लक्षण सुनो । जिस स्त्रीके एक संतान अवस्था चढनेपर होय दूसरी न होवे ऐसी स्त्रीको व्याघ्रिणी वन्ध्या कहते हैं उसकी चिकित्सा यह है कि जो औषध प्रयोग त्रिपक्षी वन्ध्याको देनेके निमित्त पूर्व लिखी गयी हैं वोही प्रयोग व्याघ्रिणी वन्ध्याको देना चाहिये । अब बकी नामक वन्ध्याका लक्षण कहते हैं । जिस स्त्रीकी योनिमेंसे सफेदी मिला हुआ रक्त धातुके सादृश्य अथवा चावलके मांडके सादृश्य मिला हुआ आवे और आठ वा दशदिवसके अन्तरसे निकलाकरे ऐसी स्त्रीको बकी वन्ध्या कहते हैं, यह वन्ध्या असाध्य होती है इसकी औषध चिकित्सक न करे । परन्तु हमारी रायमें इस वन्ध्याकी चिकित्सा नीचे लिखे प्रयोगोंसे करे । बकी नामकी वन्ध्याकी योनिमें बस्ती प्रयोग करे इसकी विधि इस प्रकारसे है कि फिटकरीका फूला अथवा टंकणखारका फूला अथवा जस्तेका फूला अथवा कान्तकसीसका फूला इन चारोंमें किसी एकको एक तोला लेकर ९० तोले गर्म जलमें मिलावे और स्त्रीको ऐसी विधिसे सुलावे कि शिर नीचा और कमरका भाग ऊँचा रहे और योनिमें इसकी पिचकारी लगावे इसी प्रकार इस समय हररोज कई दिवस पर्य्यंत पिचकारी लगानेसे यह व्याधि निवृत्त हो जाती है गर्म पदार्थ खावे । श्वेतस्राव बन्द हो जावेगा और मासिकधर्म नियमपूर्वक आवेगा ॥ ४०–४९ ॥

सलिलं स्रवते योन्या कमलिन्या निरन्तरम् । असाध्या सा च विज्ञेया औषधं नैव कारयेत् ॥ ४६ ॥ व्यक्तिनी नाम वंध्यायाः प्रमेहो भवति स्फुटम् । रक्तापामार्गजं बीजं शर्करा मर्द्दकीफलम् ॥ ४७ ॥ औषधीं

रत्नमालां च गोदुग्धेन प्रपेषयेत् । त्रिसप्तदिवसं पीत्वा प्रमेहं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ ४८ ॥ कृष्णागुरुं केशरञ्च कर्कोटीं सफलां तथा । द्वे जीरके सवत्सागोक्षीरेणालोड्य सा पिबेत् ॥ ४९ ॥ दिनत्रयं दुग्धषष्टिभोजनं गर्भधारकम् । लक्षणानि परिज्ञाय ह्यौषधीं कारयेत्सुधीः ॥ ५० ॥

अर्थ--अब कमलीनी वन्ध्याके लक्षण कहते हैं। कमलिनी वन्ध्याकी योनिमें निरन्तर जल स्रवता रहताहै और उस स्त्रीका वन्ध्यत्व असाध्य होताहै, इस स्त्रीकी औषधि वैद्य न करे इसको असाध्य कथन किया है लेकिन गर्भाशयकी व्याधियोंमें इस असाध्यकी भी चिकित्सा उत्तमरीतिसे आगे इसी ग्रन्थमें लिखी गयी है, यह व्याधि असाध्य नहीं है गर्भाशयको दीर्घ शोथ है चिकित्सा करनेसे निवृत्त होजाती है। अब व्यक्तिनी वन्ध्याके लक्षण सुनो । व्यक्तिनी वन्ध्याको। जाहरमें प्रमेहरोग होताहै श्वेत धातु प्रतिदिवस गिरता रहताहै परन्तु वद्यकके कई आचार्योंका सिद्धान्त है कि स्त्रीको प्रमेहरोग नहीं होताहै परन्तु कल्याण वैद्य कहतेहैं सोम नामक रोगही प्रमेह कहाताहै इसका खुलासा तो आगे आवेगा कि क्या वस्तु किस कारणसे निकलती है यहां वैद्यकके प्रकरणमें विस्तारपूर्वक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। व्यक्तिनीका उपचार । लाल अपामार्ग (औंगा) के बीज, मिश्री, आंवला, रत्नजोत, ये सब औषधि समान भाग लेकर गौके दुग्धमें पीसकर और दुग्धहीमें मिलाकर २१ दिवसपर्यन्त पीवे तो व्यक्तिनी स्त्रीका प्रमेह निश्चय करके दूर होजाता है। और प्रमेह नष्ट होनेपर काला अगर, केशर, ककोडा, मोरशिखा, स्याह जीरा, सफेद जीरा ये सब औषध समान भाग लेकर बछडेवाली गौके दुग्धमें पीस छानकर ३ दिवस पीवे और दूध तथा सांठी चावलका भोजन करे अवश्य गर्भ रहेगा और सन्तान होगा। कल्याण वैद्यने ८ रजदोषवाली वन्ध्या तथा ग्रह दोष जादू टोना दोष देवता भूतदोष तथा आठ वन्ध्या सब १६ कथन की हैं ॥ ४६-५० ॥

औषध मात्रा--कल्याणवैद्यने औषधियोंके जितने प्रयोग कथन किये हैं उनमें औषधकी मात्राका परिमाण नहीं दिया इसका यही कारण ज्ञात होताहै कि उस समयमें मनुष्य स्वतः औषधोपचार नहीं करते होंगे किन्तु वैद्यके द्वाराही औषध प्रयोग होता होगा। परन्तु यह समय ऐसा नहीं है किन्तु सैकडा पीछे ४० मनुष्य ऐसे हैं कि जिनको जरा लिखना पढना आताहै वो स्वयं औषधोपचार करनेको उद्यत होजाते हैं जो पढे लिखे नहीं हैं वे दूसरोंसे सुनकरके अथवा नुसखा लिखवाकर अपना तथा घरके लोगोंका औषधोपचार करने लगते हैं। यदि कुछ आरोग्यता होगई तो ठीक नहीं तो पीछे वैद्य हकीम डाक्टरका आश्रय लेते हैं ऐसे मनुष्योंके लिये औषधकी

मात्राका परिमाण खोल देना ठीक है । वैद्यलोग तो औषधकी मात्राका परिमाण जानते हैं परन्तु साधारण लोगोंको ऐसे स्थलपर कठिनता पडती है और लाभके स्थलपर प्रत्युत हानि उठानी पडती है । ऊपर कल्याणवैद्यने' जहांपर संयुक्त कई औषध वा केवल एकही औषधका प्रयोग कथन किया है उनमें संयुक्त अथवा एक औषधकी एक तोलेकी मात्रा काष्ठादिक औषधियोंकी लेवे । क्वाथके निमित्त और स्त्रियोंकी प्रकृतिके अनुकूल न्यूनाधिकभी मात्रा होसक्ती है, लेकिन न्यूनाधिक करना वैद्यका काम है साधारण मनुष्यका नहीं आर सर्वत्र काष्ठादिक औषधियोंकी मात्रा एक तोलेकीही समझनी चाहिये । कल्क और चूर्णकी मात्रा ६ मासेकी है । जहांपर मात्रा परिमाण नहीं लिखा है वहांपर इसी परिमाणसे लेवे । वन्ध्याओंके पृथक् २ लक्षण संघटित स्थिति तथा चिकित्सा कथन करनेके अनन्तर कुछ प्रयोग ऐसे हैं, जो सर्वप्रकारकी वन्ध्याओंके प्रतिकार भावप्रकाश वङ्गसेनादि वडे ग्रन्थोंमें भी पाये जाते हैं और छोटे २ खंड ग्रन्थोंमें भी लिखे हैं उनको नीचे उद्धृत करनेकी आवश्यकता है ।

पूर्वोक्तचिह्नहीनानां प्रतीकारं वदाम्यहम् । द्वे जीरके श्वेतवचा वटपिप्पलवंदकौ ॥ ५१ ॥ शृगालकंठरोमाणि कर्कोटी फलमूलके । सहस्रमूलीं सवत्सागोक्षीरेणाथ दिनत्रयम् ॥ ५२ ॥ सूर्यस्य सम्मुखं पीत्वा क्षीरषष्टिकभोजनात् । गर्भो भवति वंध्याया ध्रुवमस्मिन्न संशयः ॥ ५३ ॥ पुष्ये वा शततारायां शंखपुष्पीं समाहरेत् । पिष्ट्वा तद्रसमादाय ऋतुस्नाता च तत्पिबेत् ॥ ५४ ॥ वन्ध्या गर्भं दधात्याशु नात्र कार्या विचारणा । श्वेतकुलित्थसंभूतं मूलं नागवलोद्भवम् ॥५५॥ अपराजितामृतुस्नाता गोदुग्धेन समं पिबेत् ॥ दिनत्रयं तथा सप्त गर्भो भवति नान्यथा ॥ ५६ ॥ अश्वगन्धाभवं मूलं गोघृतेन समन्वितम् । ऋतुस्नाता पिबेन्नारी त्रिदिनैर्गर्भधारकम् ॥ ५७ ॥ सुश्वेतकंटकीमूलं तन्मयूरशिखाभवम् । त्र्यहं गोपयसा नारी पिबेद्गर्भो भवेद्ध्रुवम्॥५८॥ बीजपूरस्य बीजानि गोदुग्धेन च पेषयेत् । पिबेद्गर्भो भवेन्नार्यास्त्रिदिनं षष्टिकादनात् ॥ ५९ ॥ मेषी दुग्धीभवं मुलं गोदुग्धेन च संपिबेत् । ऋतुत्रये ततो गर्भो भवत्येव न संशयः ॥ ६० ॥

अर्थ--पूर्व कथन की हुई वन्ध्याओंके लक्षण रहित जो अन्य वन्ध्या हैं उनके प्रति नीचे गर्भधारक प्रयोग लिखे जाते हैं । सफेद जीरा, कृष्णजीरा, सफेद वच, वट-

वृक्षकी जटा, ब्रह्मपीपलकी जटा, स्याल (गीदड) के गलेके लोम (लोम भक्षण करना अहित है उदरविकार होता है) ककोडेकी जड, फल, शतावरी, ये सब औषध समान भाग लेकर कूट छानकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे ६ अथवा ९ मासे चूर्ण एक रंगी बछडेवाली गौके दुग्धके साथ ३ वा ७ दिवसतक स्नान करके सूर्यके सन्मुख खडी होकर पीवे और दुग्ध तथा सांठी चावल भोजन करे तो अवश्यहा वन्ध्या स्त्रीके गर्भ स्थित होवे और सन्तान उत्पन्न करे इसमें संदेह नहीं । पुष्य नक्षत्रमें अथवा शतभिषा नक्षत्रमें धोलफूली वूटीको (ओंदाहूली) पंचांग सहित लावे और पीसकर उसका रस निकाले और ऋतुस्नानसे निवृत्त होकर स्त्री इसका १। तोला स्वरस पीवे तो सब प्रकारकी वन्ध्या शीघ्र गर्भको धारण करके सन्तान उत्पन्न करती हैं । इस बूटीका रस ३ वा ७ दिवस सेवन करे । मयूरशिखा नामकी बूटीको प्रथम दिवस सन्ध्याके समय निमंत्रण कर आवे और दूसरे दिवस प्रातःकाल ऐसा योग होय कि पुष्य नक्षत्र और रविवारका दिवस आया होय अथवा हस्त नक्षत्र और रविवार आया होय ऐसे योगके दिवस उखाडकर लावे और बारीक पीसकर बछडेवाली एक रंगी गौके दुग्धमें मिलाकर ऋतुस्नानसे निवृत्त हुई स्त्री सूर्यके सन्मुख खडी हुई भीगे केश तथा शरीरवाली इस औषधका पान करे और गोदुग्ध तथा सांठी चावलका आहार करे तो सब प्रकारकी वन्ध्या स्त्रियोंके गर्भ रहे और सन्तानको उत्पन्न करे सफेद कुल्थी, गंगेरनकी जडकी छाल, अपराजिता (विष्णुक्रान्ता) की जड ये सब औषध समान भाग लेकर बारीक पीसकर ऋतुस्नानसे निवृत्त हुई स्त्री कपिला गौके दुग्धसे पान करे ३ वा ७ दिवसपर्य्यन्त तो वन्ध्या स्त्रीके अवश्य गर्भ रहे । अश्वगन्ध, नागौरी कूट समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और गोघृतके साथ ६ वा ९ मासे मिलाकर ऋतुस्नानसे निवृत्त हुई स्त्री ३ वा ७ दिवस सेवन करे तो वन्ध्या स्त्रीको अवश्य गर्भ रहे और सन्तान उत्पन्न होवे । सफेद फूलकी कटेलीकी जड और मयूरशिखाकी जड इन दोनोंको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे ओर वन्ध्या स्त्री ऋतुस्नानसे निवृत्त होकर तीन दिवस बराबर गोदुग्धके साथ सेवन करे तो निश्चय गर्भ रहे और सन्तान होवे । बिजौरेके नव मासे बीजोंकी मींगी निकालकर गोदुग्धसे पीसे और दूधमें मिलाकर पीवे तीन अथवा छः दिवस ऋतुस्नानसे निवृत्त होकर और गोदुग्ध तथा सांठी चावल भोजन करे तो वन्ध्या स्त्री अवश्य गर्भको धारण करे और सन्तान उत्पन्न होवे । मेढाशृङ्गी और छोटी दूधकी जड ये दोनों समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और ६ मासे चूर्ण गोदुग्धके साथ वन्ध्या स्त्री ऋतुसमयमें ३ दिवस पीवे तो अवश्य गर्भ स्थित होवे और सन्तान उत्पन्न होय इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ९१–६० ॥

अब योनिरोगनाशक और योनिशोधक गर्भ धारण करनेवाला वर्त्तिकायन्त्र कथन करते हैं ।

त्रिफला पिप्पली द्राक्षा लोध्रं जीर्णो गुडस्तथा । वर्त्तिः कृता योनिमध्ये क्षिप्ता गर्भकरी मता ॥ ६१ ॥ पिप्पली देवतादारुलाक्षागुग्गुलुनिर्मिता । वर्त्तिका योनिमध्ये तु क्षिप्ता शोधनकारिणी ॥ ६२ ॥ शुंठी मुस्ता हरिद्रे द्वे बला हिंगुमिसी पुरम् । एषां वर्त्तिः कृता योनौ क्षिप्ता शोधन गर्भकृत् ॥ ६३ ॥

अर्थ—बडी काबिली हरडकी छाल, बहेडाकी छाल, आंवला, पीपल, दाख, पठानी लोध, पुराना गुड ये सब समान भाग लेकर कूटकर वस्त्रमें छानकर गुड मिलावे । यदि गीलापन कम होवे तो थोडा जल मिलाकर अंगुष्ठके बराबर मोटी और ५ वा ६ अंगुल लम्बी वत्ती बनाकर योनिमार्गमें रक्खे और योनिके मुखपर कपडेकी गद्दी रखके लंगोट बांध देवे । जिससे बत्ती बाहरको न निकलने पावे । बाद जो टीकाकारने बत्तियोंका रखना ऋतुधर्मके समयमें लिखा है सो ऋतुस्रावके समय बत्ती भूलकर न रखनी चाहिये । रक्तस्रावकी हालतमें गर्भाशयके मुखको अवरोध न करे और योनि मार्गभी रक्तस्रावके लिये खुला रहना चाहिये, गर्भाशयके मुखके आगे ऋतुसमयमें किसी प्रकारका प्रतिबन्ध होनेसे विकृत रक्त बहनेसे रुककर गर्भाशयके अन्तर मुख तथा बाह्यमुखमें वा बीच गर्दनमें उपद्रव उत्पन्न करेगा, सो बत्ती वा लेप वगैरह योनिमें रजोधर्मके अनन्तर करना योग्य है । दूसरी बत्ती पीपल, देवदारु, लाख, गुग्गुल इनको समान भाग लेकर उपरोक्त विधिसे बत्ती बनावे और योनिमार्गमें पूर्व कथन की हुई विधिसे रक्खे । तीसरी बत्ती सोंठ, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, खरैटीकी जड, हींग, सोंफ, गुग्गुल ये सब औषध समान भाग लेकर कूट छानकर पूर्वोक्त विधिसे बत्ती बनाकर योनिमार्गमें रक्खे । ये बत्तियोंके तीन प्रयोग योनिके शुद्धकारक हैं तथा योनिरोग, योनिपीडा, योनिकण्डूको नष्ट करके गर्भाशयकी शुद्धि तथा गर्भधारक हैं ॥ ६१-६३ ॥

गर्भधारक बृहत्कल्याणघृत वङ्गसेन ।

मुस्ता कुष्ठं हरिद्रे द्वे पिप्पली कटुरोहिणी । काकोली क्षीरकाकोली विडङ्गं त्रिफला वचा ॥ ६४ ॥ मेदा रास्नाश्वगन्धा च निशाला च प्रियंगुका । द्वेशारिवे शताह्वा च दन्ती मधुकमुत्पलम् ॥ ६५ ॥ अजमोदा महामेदा [illegible] रक्तचन्दनम् । जातिपुष्पं तुगाक्षीरी शर्कराहिंगुकट्फलम् ॥ ६६ ॥

चतुर्गुणेन पयसा विपचेद्रोमयाग्निना । नक्षत्रे पुष्यसम्पन्ने भाण्डे ताम्रमये दृढे ॥ ६७ ॥ कलिशेवापि कल्याणे कृतकौतुकमङ्गलः । सर्पिरेव नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते ॥६८॥ एतद्वन्ध्या पिबेन्नारी या च कन्याप्रजायिनी । या चैवास्थिरगर्भा स्याद्या च सूता पुनः स्थिता ॥ ६९ ॥ अनायुष्यं वा जनयेद्या वा जनयते मृतम् । सा नारी जनयेत्पुत्रं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥७०॥ रूपलावण्यसम्पन्नमजरं च शतायुषम् । बृहत्कल्याणकं सर्पिर्भारद्वाजेन भाषितम् ॥ ७१ ॥ अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकित्सकाः ॥ ७२ ॥

अर्थ—नागरमोथा, कूट, हल्दी, दारुहल्दी, पीपल, कुटकी, काकोली, क्षीरकाकोली, वायविडंग, त्रिफला, वच, मेदाकंद, रास्ना (रायसन), अश्वगन्धा, इन्द्रायणका मूल, मेहँदीके फूल, सफेद शारिवा, रक्तशारिवा, शतावरी, दन्ती (जमालगोटा) की जड, मुलहटी, कमलकी जड (भसिंडा), अजमोदा, महामेदा, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, चमेलीके फूल, वंशलोचन, मिश्री, हींग (कोई वैद्य हींग और कोई २ हिंगुपत्री डालते हैं,) कायफलकी छाल और कोई फल डालते हैं । इन औषधियोंको समान भाग लेवे और कूट पीसकर पिट्ठीके समान कल्क बनावे और औषधियोंसे चौगुना दूध लेवे इस प्रयोगमें घृतकी तौल नहीं लिखी लेकिन औषधियोंके वजनसे दूना गौका घृत मिलावे और अन्दर रांगकी कलई लगी होवे ऐसे उत्तम तांबेके पात्रमें जो कि दृढ (मजबूत) होवे पुष्यनक्षत्रमें मंगलकार्य (स्वस्तिकरण शान्तिकरण पाठ करके) मन्दाग्निसे पकावे इस बृहत्कल्याणनामवाले घृतको पान करनेसे पुरुष स्त्रियोंके साथ वृषभके समान रतिमें प्रवृत्त होवे और जो वन्ध्या स्त्री पीवे अथवा जो स्त्री केवल कन्याही उत्पन्न करती होवे ऐसी स्त्री पीवे, अथवा जिस स्त्रीको गर्भ न रहता होवे ऐसी स्त्री पीवे, अथवा जिस स्त्रीको गर्भ रहकर नष्ट (स्राव पात) हो जाता होवे ऐसी स्त्री पीवे, अथवा जो स्त्री मृतक संतानको उत्पन्न करती होवे अथवा जो स्त्री अल्प आयुवाले सन्तानको उत्पन्न करे ऐसी स्त्रियां पीवें तो वेदवेदाङ्गपारंगत, रूपलावण्यता युक्त, अजर, सौ वर्ष जीवित रहनेवाले पुत्रको उत्पन्न करती हैं । यह बृहत्कल्याणघृतभारद्वाजऋपिने संसारके उपकारके निमित्त कथन किया है । इस प्रयोगमें लक्ष्मणा बूटी कथन नहीं की गयी परन्तु चिकित्सक लोग लक्ष्मणा बूटीको भी डालते हैं ॥ ६४–७२ ॥

लक्ष्मणादि घृत ।

लक्ष्मणा चन्दनं लोध्रमुशीरं पद्मकं शठी । द्वे हरिद्रे वचा कुष्ठं पद्मकेशरमुत्पलम् ॥ ७३ ॥ शारिवे द्वे विडङ्गानि सुमनः कुसुमानि च । मांसी दारु श्वदंष्ट्रा च रेणुकं चोत्पलं तथा ॥ ७४ ॥ मधुकं शतपुष्पा च मात्रैषां कार्षिका भवेत् । एभिर्वाजघृतप्रस्थं क्षीरं दत्वा चतुर्गुणम् ॥ ७५ ॥ तत्कषायं दशगुणं स्नेहपाकविधिं पचेत् । गुणां तस्य प्रवक्ष्यामि घृतस्यास्य महात्मनः ॥ ७६ ॥ गर्भिणीनां च नारीणां पानाभ्यञ्जनभोजनैः । बालानां ग्रहजुष्टानां घृतमेतत्प्रशस्यते ॥ ७७ ॥ वन्ध्यापुष्टिप्रदं पौष्टमपुत्राणां च पुत्रदम् । श्रेष्ठं वा योनिरोगे स्यादसृग् दरविनाशनम् ॥ यन्मया निर्मितं ह्येतल्लक्ष्मणाद्यं घृतं महत् ॥ ७८ ॥

अर्थ—लक्ष्मणाबूटी, चन्दन, लोध, खस, पद्माख, सोंठका कर्चूर, हल्दी, दारुहल्दी, वच, कूट, कमलकेशर और कमलकी जड (भसिंडा), सफेद सारिवा, रक्तसारिवा, वायविडंग, चमेलीके पुष्प, बालछड, देवदारु गोखरू, रेणुका बीज, कमोदिनी (नीलोफर), मुलहटी, सोंफ ये प्रत्येक औषध एक एक तोला लेवे और बकरीका घृत १ प्रस्थ तथा दूध ४ प्रस्थ ' तत्कषायं दशगुणं ' से सिद्ध होता है कि उपरोक्त औषधियोंका कल्क इस घृतके लिये न बनावे किन्तु कषाय १० प्रस्थ तैयार करके घृत और दुग्धमें मिलाकर घृत सिद्ध करे (यदि उपरोक्त औषधियोंका कल्क बनाया जावे तो काढा दूसरी उपरोक्त औषध लेकर तैयार करे सो ऐसा मूलसे निकलता नहीं सो उपरोक्त औषधियोंका काढा लेनाही सिद्ध होता है) घृत, दूध, काढा इन तीनोंको एकत्र करके मन्दाग्निपर स्नेहपाककी विधिसे घृतको पचावे इस घृतको गर्भवती स्त्रियोंको खाने लगाने और भोजनके साथ देवे । यह घृत ग्रहसे पीडित बालकोंको अत्यन्त हितकारी है और वन्ध्या स्त्रियोंको पुष्टि देनेवाला और पुत्ररहित स्त्रियोंको पुत्र देनेवाला है योनिरोगमें हितकारी और प्रदरको नष्ट करनेवाला है ॥ ७३–७८ ॥

घृतपाककी विधिमें औषधियोंका कल्क मिलाना लिखा है परन्तु कल्कको मिश्रित करनेसे घृत विशेष करके कल्कमें शोषण होजाता है इससे औषधियोंका क्वाथ करके मिलाना उचित है ।

इति आयुर्वेद वैद्यक शास्त्रके सिद्धान्तानुसार वन्ध्याचिकित्सा समाप्त ॥

तृतीय अध्याय ।

यूनानी तिब्बसे वन्ध्याचिकित्सारम्भ ।

फर्जन्द न होना और हमल न रहना अर्थात् बालक न होना और गर्भ न रहना इसके दो भेद हैं । प्रथम तो यह कि स्त्रीकी तर्फसे होताहै, दूसरा यह कि पुरुषकी तर्फसे होय । प्रथम भेद जो स्त्रीकी तर्फसे होता है उसके कितने ही भेद हैं ।

(१) प्रथम भेद यह है कि शीतल दुष्टप्रकृति गर्भाशयमें हो जाय और वहां वीर्य और खून जमकर सूख जाय उसके चिह्न यह हैं कि रजोधर्म अधिक विलम्बसे आवे और रक्तस्राव बहुत थोडा होवे और लाल तथा पतला रक्त निकले और जब आने लगे तब थोडा २ आवे परन्तु नियत दिनोंसे अधिक दिनोंतक आता रहे क्योंकि बलगमी (कफ) का खून जल्दी बन्द नहीं होता और ऐसी प्रकृतिके मनुष्योंके बाल कम होते हैं और जो कहीं शीतलप्रकृति सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाती है तो रंगमें सफेदी और स्पर्शमें शीतल माल्म होती है और इसके सिवाय जो कुछ शर्दीके चिह्न हैं वे सब प्रगट होते हैं इसकी चिकित्सा जो साधारण दुष्ट प्रकृति होवे तो गर्म तासीरकी दवाइयोंसे उसको सम्हालकर असली प्रकृतिपर लावे और जो कफका मवाद होवे तो प्रथम उसको (यारजात) और हुकनोंसे निकाल डाले और इसके पीछे असली दशापर लानेके लिये परिश्रम करे और इस मौकेपर जो कुछ काममें आता है वह यह है कि मसरुदीतूस संजरनियां और दिवालमुस्क. आदि दवायें खिलावे और केशर वालछड, अकलीलउलमलिक, तेजपत्र, पहाडी किविंया, बतक और मुर्गीकी चर्बी और इनके अण्डेकी जर्दी तथा नारदेनका तैल ये सब दवाइयां मिलाकर और इनमें कपडेकी बत्ती भिगोकर स्त्रीकी फुर्ज (योनि) में अन्दर रक्खे और हेज (रजोधर्म) से शुद्ध होनेके पीछे लाल रंगकी हरताल, दूध, और सरूकाफल, शिलारस, गन्दा विरोजा और हब्बुलगार इनकी धूनी देवे और इनकी धूनी देनेकी यह विधि है कि सब दवाइयोंको मिलाकर एक बर्त्तनमें भर देवे और उसमें दहकती हुई आग डाल देवे और उस बर्तनके मुखके ऊपर कुछ सरवादि ढांक देवे और उस वर्तनमें आमनेसामने दो छिद्र करे और उन दोनों छिद्रोंमें किसी चिकनी जातिकी नली लगावे और एक नलीके सिरेको योनिमार्गमें प्रवेश करे और गर्भाशयके मुखके समीप तक पहुँचावे जिससे धुआँ गर्भाशयपर लगे दूसरी नलीको एक कागसे बन्द कर देवे यदि इसी तर्कीबसे धुआँ गर्भाशयके मुखपर लगे तो ठीक है नहीं तो दूसरी नलीका काग निकालकर उसमें हवाकी फूंक मारता रहे सो धुआँ इस नलीकी हवाके जोरसे ठीक गर्भाशयके मुखपर पहुँचेगा, जब कि दवा धुआं देनेसे बन्द हो जावे तब नलीको

योनिमार्गमेंसे निकाल लेवे इस धुआँ लगानेके समय स्त्री ऊँची पीढी वा कुर्सीपर उटकुरुवा पैरोंपर जोर देकर वैठे और बर्त्तन कुछ नीचे रखे और इन्द्रायणके काढेसे योनिको धोवे इससे विशेष फायदा पहुँचता है और इसी तरहसे गर्भाशयपर वारे लगाना और उत्तम पौष्टिक आहार कलिया और पक्षियोंका मांस तवेपर भुना हुआ गर्म मसाले मिलाकर खानेको देवे और मुर्गीके अधभुने अंडेकी जर्दीमें दालचीनी अथवा उटंगनके बीज महीन पीसकर उसपर बुर्क दे और खिलावे ॥

(२) दूसरा–भेद इसका यह है कि गर्भाशयकी दुष्ट गर्म प्रकृति होजाय और पुरुषके वीर्य्यको जलाकर खराब कर डाले उसके यह चिह्न हैं कि रजोधर्मका रक्तस्राव आवे उसमें गर्मी मालूम पडे और गाढा आवे और कालापन होवे और पेडूपर बाल विशेष होयँ और यह दुष्ट प्रकृति सब शरीरमें फैल जावे तो शरीर दुबला हो जाता है और शरीरकी रंगत पीली हो जाती है गर्मीके और भी चिह्न मालूम पडते हैं तबीबको उचित है कि सबसे प्रथम इसके इलाजमें शरीरमें शर्दी पहुँचावे और शर्दी पहुँचानेके लिये शर्बत वनफसा शर्बत नीलोफर शर्बत खसखास, शर्बतसेव, शर्बत चंदन, शर्बत नींबू पिलावे और शर्द तासीरकी मेवा खिलाना तथा मुर्गीके बच्चे, हिरनके बच्चे, बकरीके बच्चेका मांस तथा घिया, पालंक, कुलफा वगैरहका शाक खिलाना और मुर्गी तथा बतकके अंडेकी जर्दी, तथा रतककी चर्बी, गुलवनफसाके तैलमें मिलाकर ऊन वा रुई भिगोकर स्त्रीकी योनिमें गर्भाशयके मुखपर रक्खे । और शरीरमें सफरा (पित्त) अधिक होवे तो उसके निकालनेकी कोशिश करे जिस तर्कीवसे आसानीसे पित्त निकल जावे वही क्रिया तवीबको करना उचित है ॥

(३) तीसरा भेद इसका यह है कि खुश्क (रूखी) प्रकृति गर्भाशयमें उत्पन्न होजाय और पुरुषका वीर्य गर्भाशयमें पहुँचनेपर सूख जावे उसका चिह्न यह है कि स्त्री रजस्वला तो होवे लेकिन खून बहुतही कम दिखलाई देवे और बहुत जल्द बंद हो जावे और गर्भाशयका मुख तथा योनिमार्ग सर्वथा खुश्क (सूखा) रहे और विशेष खुश्कीसे ऐसा मालूम होवे कि चमडेकी जिल्द सूखी है और योनिमार्ग बिलकुल खुरखुरा मालूम होवे और शरीर दुर्बल तथा निर्बल रूखा हो जावे । इलाज इसका यह है कि शर्बत गुलबनफशा, शर्बत नीलोफर पिलावे, और मगजधिया तथा नीलोफरका तैल बतक और मुर्गीकी चर्बी चारोंको मिलाकर स्त्रीके मसाने और योनिमार्गमें मले, और फक्त पोढका गूदा और गौका लोनी घृत और स्त्रीका दूध ये सब मिलाकर अथवा एक एकमें एक साफ कपडा वा रुई भिगोकर स्त्रीकी योनिमार्गमें गर्भाशयके मुखपर अडाकर रखे ॥

(४) चौथा भेद—इसका यह है कि तरीकी दुष्ट प्रकृति गर्भाशयमें उत्पन्न हो जावे और गर्भाशयमें जो पुरुषवीर्य्यको ठहरानेकी सिफत है उसको निर्बल कर देवे यानी पुरुषके वीर्य्यको गर्भाशय अपने अन्दर न पकड सके और बढी हुई दुष्ट तरी परसे पुरुषवीर्य्य वापिस लौट आवे यह तराई एक किस्मकी चिकनी वस्तु है इसपर पुरुषवीर्य्य हर्गिज नहीं ठहर सक्ता और उसका विशेष चिह्न यह है कि सदैव गर्भाशयसे तरी वहा करती है और प्रयन तो वीर्य्य ठहर नहीं सक्ता अगर किसी वक्त वीर्य्य ठहरकर गर्भ रह भी जावे तो अक्सर देखा गया है कि तीन महीनेके अन्दर गिर जाता है विशेष समयतक नहीं ठहर सक्ता । इलाज इसका यह है कि तरीको निकालनेकी कोशिश करे और तरीके निकालनेको वारजात, खिलावे और वमन कराना इसके लिये विशेष हितकारी है और रूखे भोजन करावे जैसा कि कबाव तथा गर्म और रूखे मसाले मिलाकर खिलावे और इन्द्रायणका गूदा, अंजरूत, सोया, तुतलग, बूलकेसर, अगर इनको बहुत बारीक पीसकर शहदमें मिलावे और इसमें नर्म ऊन डबोकर स्त्रीकी योनिमार्गमें अन्दर गर्भाशयसे अडता हुआ रक्खे । और रूखी दवाइयोंके काढे जैसे कि, गुलावके फूल, अजफारूत्तीबतातर, वालछड, शुक्र, तज इनका काढा करके गर्भाशयमें हुकना करे ॥

(५) पांचवां—भेद इसका यह है कि कफका दोष वा वादीका दोष वा पित्तका दोष गर्भाशयमें गिरता होय और गर्भस्थान तथा पुरुषवीर्य्यको विगाड देवे । इसके विशेष चिह्न यह हैं कि कफका विगडा हुआ गर्भाशय सफेद रंगकी तरी और वादीमें काली तरी और पित्तकी दशामें पीली तरी स्राव करता है और यह वात कुछ २ पहिले भेदोंमें वर्णन हो चुकी है परन्तु विशेष लक्षणोंकी सूचनाके वास्ते पृथक् भी वर्णन करनी उचित थी । इलाज इसका यह है कि सम्पूर्ण मवादके निकालनेके लिये पीनेकी दवाओंसे जो जिस २ मादेके निकालनेकी सिफत रखती है उस उस दवाको पिलाकर दोषोंको गर्भाशयसे निकाले और गर्भाशयको शुद्ध करनेके लिये हुकना करे फिर सलाई तथा लेप हुकने जो अजीर्ण कारक और सुगन्धित होवें उनको तवीब काममें लावे जिससे गर्भाशयको बल (शक्ति) प्राप्त होवे और नये शिरेसे मवादको न पकड सके ॥

(६) छठा—भेद इसका यह है कि स्त्री विशेष मोटी (स्थूल) हो जाय तब शरीर तथा गर्भाशयमें अधिक चर्बी वढ जावे । उसका विशेष चिह्न यह है कि पेट जैसा स्त्रीका मामूली होना चाहिये उससे कई दर्जे वडा और ऊंचा होजाय नितम्ब जांघ और स्तन मोटे हो जावें और चलने फिरनेमें श्वास तंग होने लगे और थोडी भी वादी और मलका पेटमें संग्रह होनेसे अति कष्ट पहुँचे योनिस्थान छोटा और तंग

होजावे और गर्भ ठहर जावे और जब बच्चेकी बढतीका समय आवे तो गर्भ गिर पडे और हमेशह स्त्रीकी इच्छा आलसी और आरामतलबीकी तर्फ रहे इलाज इसका यह है कि, शरीरको दुबला पतला करनेके लिये फस्द खुलवावे और जुलाब देवे और आहार बहुत कम करे और इतरीफल, सगीर, कांमूनी, और जो चीज (दवा) खुश्की लावे और चर्बीकी पैदायशको रोके हमेशह खिलावे और दवा उल्लक इसमें विशेष फायदे बन्द हैं। दवा उल्लकके बनानेकी विधि, लक्मगमूल, जंगली गाजरके बीज, पहाडी अजमोदके बीज किर्मानी, जीरा सोंठ प्रत्येक वस्तु २४॥ मासे, कमाफीतूस (ककरोंदा), सूखा जूफा प्रत्येक वस्तु १७॥ मासे, पाषाणभेद, जराबन्द, मुद्धारिज प्रत्येक वस्तु ३॥ मासे एलुवा बालछड प्रत्येक वस्तु ४२॥ मासे कुंदरूगोंद, पीपल, जरावन्द तवील, प्रत्येक वस्तु १२ मासे मुलहटी १८ मासे, रेवन्द, रीवासकी जड, गन्दवेल, प्रत्येक वस्तु ७ मासे, स्याहमिर्च, कूट, प्रत्येक वस्तु ३५ मासे, रूमीहींगके वृक्षके बीज १०॥ मासे, ये सब २८ दवाइयां हैं इनको बारीक कूटकर कपडेमें छान लेवे और तीन गुणे शहदमें मिला लेवे और किसी काच या चीनीके वर्त्तनमें भर लेवे। इस दवाकी मात्रा ४॥ माससे लेकर ९ मासेतक है और इस दवाका गुण यह है कि, जिगर तिल्ली और आमाशयकी कठोरताको दूर करती है, जलंदर और आंतोंके मर्जको नष्ट करती है, और गांठोंको खोलती है, और मूत्र लाती है, और शरीरको बहुत जल्द दुबला कर डालती है, और गुरदेकी पथरी तथा मसानेकी पथरीको तोडकर निकाल देतीहै। (दवा उल्लकसगीरकी विधि) इसके लाभ उल्लक कबीरके समान हैं। लक्मगमूल, कडवाकूट, बेनशाकी शराब (सिर्का वा द्राक्षारिष्ट), गन्दवेल, तिर्मिस (पीले रंगके बीज वाकला) से छोटे होते हैं हब्बुल गार, मेथी, स्याहामिर्च प्रत्येक ३५ मासे रेवन्दचीनी ५२॥ मासे ये सब १० चीजें हैं इन सबको कूट छानकर शहद तिगुनेकी चाशनी करके और उसीमें बेनशाकी शराब मिलाकर इन सब दवाइयोंको मिला लेवे इसकी मात्रा ३॥ मासेसे लेकर. ७ मासेतक है मंजरीके काढेके साथ अथवा गर्म पानीके साथ खाया करे इसका गुण भी पूर्वोक्त दवाके माफिक है॥

(७) सातवां—भेद इसका यह है कि स्त्री विशेष दुर्बल होय यहांतक कि अंगोंके भोजनका फोक न रहे और जो रक्त रजोधर्ममें आता है वह उत्पन्न न होय जिससे कि उस बच्चेका भोजन बने तिब्बवालोंके सिद्धान्तमें रजोधर्ममें जो रक्त आता है वह गर्भ रहनेपर बालकका भोजन हो जाता है, इलाज इसका यह है कि मोटा करनेके लिये चिकने भोजन और दवा खिलावे और उसकी दुर्बलताकी हालत रहे जहांतक आराम तथा शान्ति ग्रहण करावे मोटे होनेकी

दवा मीठे बदामकी मींगी, खसखास, कुन्दक, चिरोंजी, सनोवरका फल, तुन, इनको समान भाग लेकर वारीक सफूफ बनावे और गौका घृत तथा बूरा मिलाकर प्रकृतिके अनुसार सबेरे और सामको खाया करे । और जिस कौमकी स्त्रियां मांस खाती होवें उनको बतक, मुर्गी, चकोर, हरियल आदि पक्षियोंका मांस खाना शरीरको मोटा करता है । दूध, घी, मलाई, इत्यादिका खाना भी शरीरको मोटा करता है ॥

(८) आठवां भेद–इसका यह है कि बालक जो गर्भाशयमें रहता है उसका आहार रज है वह बन्द हो जाय यानी रजका बनना बिलकुल बन्द हो जाय उसका विशेष चिह्न यह है कि स्त्रीको जो हर महीने हेजका रक्तस्राव होता है वह किसी कारणसे बन्द हो जाय तो जान लो कि रजका बनना किसी कारणसे बन्द हो गया है । इलाज–इसका यह है कि जो वस्तु रजको बहाती है और रजोधर्म बन्द होनेके विषयमें वर्णन की जायगी उन्हींका उपचार करे ॥

(९) नवमा भेद--यह है कि गर्भाशयमें किसी गर्भ सूजनका तथा कठोरता अथवा किसी प्रकारके दुष्ट जखम (घाव) उत्पन्न हो जावें इस कारणसे गर्भ न ठहरसके और यह बात प्रगट है कि गर्भ उसवक्त रहता है जब कि गर्भाशय आरोग्य और उसके कार्य बराबर नियमानुसार होते होंय और उन रोगोंमेंसे प्रत्येक रोगका चिह्न लक्षण तथा इलाज इसी ग्रन्थके प्रकरणोंमेंसे ढूँढकर करो ॥

(१०) दशवां भेद इसका यह है कि गाढी हवा गर्भाशयमें उत्पन्न होवे और वीर्य तथा बालकको न ठहरने देवे उसका चिह् यह है कि पेड़ू सर्वथा फूला हुआ रहे और वायु करनेवाली चीजोंके खानेसे कष्ट पहुँचे और जो यदि गर्भ ठहर-जावे तो बडे होनेसे प्रथमही गिरजावे और पुरुष संभोगके समय योनिमेंसे शब्द सहित वायु निकले और जैसा शब्द गुदामेंसे आपनवायु निकलनेके समय होताहै वैसा ही शब्द योनिमेंसे निकले । इलाज–इसका यह है कि जडोंका पानी वेदका तेल अंजीरमें मिलाकर पिलावे और जो चीज कि अफराको दूर करती है जैसे गुलाब और सोंफका अर्क और गुलकन्दादि जो ठंढे गर्भाशयके उपायमें वर्णन किया गया है अथवा ईथर वगैरहका गिलाश लगाना गर्म तासीरकी माजून खिलाना हुकना तथा फर्जजा दवाइयोंको दो कपडेके बीचमें लेपकर योनिमार्गमें रखना तथा पेड़ूपर रखना, वायुनाशक तैल लेप और भोजन इत्यादि सब वायुनाशक उपचार करे और जो वस्तु वायु उत्पन्न करती है उनसे बचती रहे विशेष कथन यह है कि जडोंका पानी वेद अंजीरका तैल उस समय देना चाहिये कि जब गर्भ न होय और स्त्रीको गर्भ होवे तो इससे बचना बहुत जरूर है कि इसके देनेसे गर्भ न गिरजाय क्योंकि ये अदवीयात् गर्भाशयके मवादको निकालती हैं जवारिस जो

वायुको नष्ट करती है जैसा कि कचूर दरुनज, जायफल, अकाकिया, लवंग, अजवायन, अजमोदके बीज, सोंठ, प्रत्येक ७ मासे जीरा सिर्केमें पडा हुआ १७॥ मासे, जुंदवेदस्तर १॥। पौने दो मासे कूट छानकर तिगुने कंद तथा शहदकी चाशनी करके मिलावे मात्रा इसकी ४॥ मासेसे ६ मासेतक गर्म पानी या सौंफके अर्कके साथ देवे ।

(११)ग्यारहवां भेद—इसका यह है कि गर्भाशयके मुखमें कडी सूजन अथवा रितका वा मस्सा आदिका उत्पन्न होना और इनसे गर्भाशयका मुख बन्द हो जावे और पुरुषके वीर्य्यको गर्भाशयमें जानेसे रोक देवे ऐसी स्त्रीको भी वन्ध्या कहते हैं । इलाज इसका यह है कि जैसे होसके इसके कारणको नष्ट करना उचित है और दूर करनेका कोई भी इलाजका भयाव न होवे तो छोडदेना चाहिये क्योंकि इलाजकी हालतमें कोई दूसरी विपत्ति खडी न हो जावे क्योंकि यह रोग जडसे नहीं जाता है और खाने तथा लगानेकी दवाइयोंके इस्तेमालसे भी नहीं जाता है । इस रोगकी पूर्ण चिकित्सा शस्त्रक्रिया तथा गलाने और दग्ध करनेवाली औषधियां हैं जिनका वर्णन इस ग्रन्थके आगेके अन्य प्रकरणोंमें किया जायगा और शस्त्रक्रियाके विदून इस रोगका नष्ट होना सर्वथा असम्भव है ।

(१२)बारहवां भेद—इसका यह है कि गर्भाशयका मुख जिससे पुरुष इन्द्रियका अग्रभाग योनिमार्गमें प्रवेश करके मिलता है वह गर्भाशयके मुखसे न मिले और गर्भाशयका मुख नीचे ऊपर वा दोनों कोखकी ओर हटा हुआ वा मुडा हुआ होय और पुरुषइन्द्रियके मुखसे गर्भाशयका मुख न मिले तो पुरुषवीर्य्य स्त्रीके गर्भाशयमें दाखिल नहीं हो सक्ता इससे गर्भ नहीं ठहरता इसका विशेष चिह्न यह है कि पुरुषसमागमके समय स्त्रीको दर्द माळूम होवे, और अंगुली योनिमार्गमें प्रवेश करके देखा जावे तो माळूम हो जायगा कि अमुक दिशाको हटा हुआ वा मुडा हुआ है, और इसके हटनेसे वा मुडनेसे कदाचित पेटमें दर्द (मरोडा) उत्पन्न होजावे। और मल मूत्र बन्द हो जाता है और कारणके अनुसार दूसरे चिह्न भी प्रगट हो जाते हैं और इसका कारण या तो सक्त कडी सूजन है, जो सुकडन और अजीर्णकी सूजनकी एक ओरमें उत्पन्न हो या मवादका भर जाना है जो उसकी एक तर्फकी रगोंमें उत्पन्न हो या खिंचाव जो एक ओरके बन्धन और पतली रगोंमें होय क्योंकि गाढे दोष इसके बन्धनों और पतली रगोंमें आ पडते हैं । और अधिक बोझका उठाना कूदना दौडना और बोझदार (वजनदार) वस्तुका खींचना गिरनेकी धमक आदि ये सब काम इस रोगको उत्पन्न करते हैं । इलाज इसका यह है कि जो टेढा होनेका कारण रगोंका भर जाना और खिंचाव होवे तो पैरकी मोटी नसकी फस्द खोले । और वगैरह मवाद केवल रुकाव और सुकड जाना उसका कारण होय तो अंजीर, बाबूना मेथी, कर्डके बीजकी

मिंगी, अलसीके बीजके काढेमें तिल्लीका तैल मिलाकर जननेन्द्रियमें हुकना करे। हुकनाकी प्रक्रिया पूर्वभी आचुकी है। हुकना पिचकारी लगानेको कहते हैं। और बाबूनाका तैल बतककी चर्वी अथवा मुर्गीकी चर्वी मले कर्नवके पत्र औटायकर और तिल्लीका तैल और मुर्गीकी चर्वी मिलाकर और ऊन वा रुई उसमें भिगोकर योनिमार्गमें गर्भाशयके मुखसे लगता हुआ रक्खे। और शीतल हम्माम तथा भफारे गर्भाशयके सुकड जानेको तथा गर्भाशयके रुक जानेको दूर करनेमें विशेष लाभदायक हैं और जो गर्भाशयपर तरीके गिरनेसे यह रोग उत्पन्न हुआ होय तो मवादके निकालनेके लिये यारज देना उत्तम है (वक्तव्य) जब कि कारण इस रोगका दूर होजाय और गर्भाशयके मुखका झुकाव बाकी रहे तो चिकित्सकको उचित है कि योनिमार्गमें अंगुली प्रवेश करके गर्भाशयके मुखको सीधा करे और ठीक कुदरती नियत स्थानपर बैठाल देवे जिससे गर्भाशयका बाह्य मुख ठीक योनिमार्गके सन्मुख आय जावे और पुरुषेन्द्रियके मुखसे गर्भाशयका मुख बराबर मिलनेके ठिकानेपर नियत रहे। तबीबको चाहिये कि जिस वक्त योनिमें अंगुली प्रवेश करे उस वक्त तैल चर्वी घृत वगैरह चिकनी चीजें अंगुली पर चुपड लेवे। जिससे गर्भाशयको कष्ट न पहुँचे और गर्भाशय आसानीके साथ अपने नियत स्थलपर आय जावे। विशेप सूचना किताब (दस्तूरउलइलाज) में गर्भस्थानके सीधा करनेका उपाय ऐसा बयान किया है कि मवादके निकलनेके बाद हस्तकुशल तबीबको उचित है कि अपनी अंगुलियोंसे तिल्लीका तैल चुपडकर हाथसे गर्भाशयको सीधा करे। उसकी रगोंको खींचकर सीधी करे और अपने असल मुकामपर कायम करे इसी प्रकार करनेसे गर्भाशयका मुख योनिमार्गके सामने आय जावे उस समय स्त्री। कई दिवसतक चारपाईपर लेटी रहे उठने बैठनेकी हरकत न करे कि गर्भाशय अपने स्थानसे फिर न हट जावे। अच्छी होनेके बाद पतिसे समागम करनेपर अवश्य गर्भ स्थित होवेगा।

(१३) तेरहवां कारण इसका यह है कि गर्भाशयमें तो कोई रोग न होय और स्त्रीका शरीरभी आरोग्य होय, परन्तु बाहरी या भितरी कारणोंमेंसे कोई कारण प्रगट होय जो पुरुषके वीर्यको अथवा बालकको गर्भाशयमें न ठरहने देवे और यह कई प्रकारसे होता है, एक तो यह कि स्त्री पुरुष मैथुनसे स्खलित होकर जल्दी उठ बैठें और वीर्य गर्भाशयमें न पहुँचा होय यदि पहुंचा होय तो शीघ्र वापिस निकल पडे दूसरा यह कि उसी समय स्त्रीको रस्ता चलना पडे या कुछ काम करनेमें लग जावे अथवा किसी प्रकार शोक वा रंज उत्पन्न हो जावे, तीसरा यह कि गर्भ तो रह गया होय लेकिन स्त्रीको विशेष भूखा रहना पडे इस कारणसे बालक क्षीण हो जाय और मवादके निकालनेसे हानि तो इस लिये होती है कि

आंतोंको निर्बल करती है और आंतोंके पास होनेके कारणसे गर्भाशयको भी निर्बलता पहुँचती है और गर्भवाली स्त्रीके साथ समागम करनेसे भी अधिक हानि पहुँचती है क्योंकि पुरुषसमागमके समय गर्भाशय बाहरकी तर्फ गति करता है क्योंकि गर्भाशयकी प्रकृति पुरुषके वीर्यको खींचने-पर तत्पर रहती है इस कारणसे गर्भाशयमें बच्चा हिल जाता है और गर्भस्थ बालक गिर जाताहै और गर्भवती स्त्रीको अधिक स्नान करना भी गर्भको हानि पहुँचाता है, अधिक स्नान करनेसे गर्भाशय तर और नरम हो जाता है और गर्भस्थ बालक गर्भाशय-मेंसे फिसल पडता है और बालकको ठंढी हवाकी आवश्यकता पडती है और गर्भाशय बाहरकी तर्फ गति करता है (वक्तव्य) क्रोध, चिन्ता, आनन्दादि सामान्य कार्य गर्भके न रहने और बालकके गिर जानेके कारणसे नहीं होते परंतु जब इनमें अधि-कता होती है तब कदाचित् गर्भ गिर जानेकी नौबत पहुँचती है (इलाज) इसका यह है कि इन रोगोंमें उन कारणोंसे बचे जो गर्भको क्षीण करते हैं वीर्यको गर्भा-शयमें ठहरने वा जानेसे रोकते हैं और जो कुछ गर्भवतीके लिये हानिकारक हैं वह अन्य प्रकरणमें बयान किया जावेगा । अब इस सम्बन्धका दूसरा प्रकरण पुरुषकी तर्फ है क्योंकि गर्भका मूल कारण दोनों स्त्री पुरुष हैं । गर्भका न रहना बालकका न होना जो पुरुषपक्षकी तरफसे होय तो यह पुरुषोंके रोगकी गिनतीमें है । परन्तु गर्भ न रहनेके सम्बन्धसे यह स्त्रियोंमें प्रगट हो जाता है, इसी कारणसे इस स्त्रीरोगके प्रकरणमें इसका कथन करनेकी आवश्यकता जान पडती है, और अक्सर हकीमलोग इस पुरुषपक्षकी दशासे अनजान रहते हैं । इस दशामें स्त्रियोंहीके रोगोंपर हकीमलोग ज्यादा ध्यान देते हैं । सो हकीमको उचित है कि प्रथम यह विचार करे कि पुरुषमें बुराई है कि स्त्रीमें । इसका निश्चय करके जिसमें रोग होवे उसके अनुसार इलाज करें और पुरुषके रोगकी व्यवस्था तीन प्रकारके भेदसे है ।

(१) प्रथम भेद पुरुषकी तर्फसे यह है कि पुरुषवीर्यकी जो कुदरती प्रकृति है वह किसी कारणसे बिगड जाय और बालक उत्पन्न करनेकी शक्ति उसमें न रहे, गर्मी अथवा शर्दीके कारणसे नष्ट हो जाय जैसे गर्मी तो जला देती है और शर्दी ठंढा करके जमा देती है और यहभी जानना चाहिये कि वीर्यकी प्रकृतिकी तरी और खुस्की गर्भको नहीं रोकती परन्तु जहां कहीं ऐसे पुरुषको ऐसी स्त्रीसे काम पडे तो उसके गर्भाशयकी या वीर्यकी प्रकृति पुरुषकी वीर्यप्रकृतिके समान हो, इस दशामें उपद्रव विशेष होता है और वीर्यकी गर्मीका यह चिह्न है कि वीर्य पीला और थोडा होय और निकलते समय इन्द्रियकी नलीमें जलन मालूम होय और प्रकृतिमें गर्मी होनेके और २ विशेष चिह्न भी प्रगट होयँ और कदाचित्

वीर्यमें गन्ध आवे । यह बात उस समयकी है कि जब ऊपरी गर्मी विशेष होय और ठहर जाय और वीर्यके ठंढा हो जानेका यह चिह्न है कि वीर्य सफेद और पतला होय और शर्दीके चिह्न, जिनका बहुधा वर्णन हो चुका है सो प्रगट है (इलाज) गर्मी और सर्दीके अनुसार भोजनोंसे जैसा उचित होय प्रकृतिको असली कुदर्ती दशापर लानेका उपाय करे और ऐसी स्त्रीके साथ विवाह करके जोडी मिलावे कि जिस स्त्रीकी प्रकृति पुरुषकी प्रकृतिसे विरुद्ध होवे कि जिससे दोनोंका वीर्य्य मिलकर समान हो जावे और गर्भाशयमें ठहरकर बालक उत्पन्न होवे ॥

पुरुषपक्षका दूसरा भेद–यह है कि पुरुषेन्द्रियके सिरेका बन्धन छोटा होय इस कारणसे वीर्य्य गर्भाशयके अन्दर न पहुँच सके तो इसका चिह्न यह है कि मूत्रेन्द्रियका सिरा टेढा और झुका हुआ होय अर्थात् दोनों अण्डकोषोंकी ओर मुडा हुआ होय और मूत्र भी शीघ्रताके साथ सीधी धारसे न निकले किन्तु नीचे और पिछेकी ओर मूत्रधारा पडे, जैसे कि ऊँटकी मूत्रधार पडती है । इलाज इसका यह है कि चर्बी, मिंगी, लुआब और तैल पुरुषेन्द्रियपर मले, जिससे उसमें नर्मी आजाय । फिर मूत्रेन्द्रियको खींचकर सीधा करे, फिर किसी सीधी चीजपर याने कागजकी पट्टीपर रुई लपेट कर रक्खे और पट्टीसे बाँध देवे, जिससे लिंगेन्द्रिय सीधी हो जावे और जो इस इलाजमें लाभ न पहुँचे तो जिस तर्फसे पुरुषेन्द्रिय टेढी है वहाँसे थोडेसे चर्मबन्धनको नस्तरसे काट डाले और किसी सीधी कागजकी तखतीपर बांधकर उसी तरहसे पट्टी बाँधकर रक्खे जबतक कि चर्म काटनेका जखम अच्छा होजाय काटते समय इतना ध्यान रखे कि इन्द्रियकी नसपर सदमा न पहुँचे । अगर नसपर सदमा पहुँच जावेगा तो बिल्कुल नामर्द होजावेगा काटनेसे प्रयोजन उस चर्म जिल्दके भागसे है, जो लिंग इंद्रियको खमदार बना रही है ।

तीसरा भेद–इसका यह है कि पुरुषके वीर्य्यके संयोगिक आंगेमें कुछ विपत्ति उत्पन्न हो जैसे दोनों अण्डकोशोंकी रगें कट जायँ और दोनों कानोंके पीछेकी रगें कट जायँ जैसा हकीम बुकरातने जर्राही और दग्ध करनेकी किताबमें लिखा है कि इन रगोंका काटना सन्तानोत्पत्तिको नष्ट करता है इसका इलाज असम्भव है और जान लेना चाहिये कि कभी किसी स्त्रीके वीर्य्यमें जन्मसेही एक ऐसी प्रकृति होती है कि सन्तान उत्पन्नके योग्य नहीं होती और उसके सिवाय दूसरा कोई कारण नहीं होता जैसा कि किसी २ वृक्षमें फल नहीं आता है असलमें कुदर्ती वन्ध्या इसीका नाम है और इसीका इलाज नहीं हो सक्ता । क्योंकि उसका कुदर्ती कारण इंसानको मालूम नहीं होसक्ता परन्तु जो दवाकी प्रकृतिके अनुसार गर्भ रखनेके लिये लाभदायक है वो खुदाकी

मेहरबानीसे लाभदायक हो जाती है । " ग्रन्थसम्पादक हकीम साहबने कुदर्ती वन्ध्या कहकर और खुदाके भरोसे पर गर्भ रखनेवाली औषधियोंका देना तो लिख दिया परन्तु गर्भ अण्ड गर्भाशय और स्तनोंकी हानि जिस जन्मवन्ध्यामें होताहै उसको वैद्य डाक्टर दोनोंही वन्ध्या कहते आये हैं । पुनः औषधका स्वभाव गर्भ रखनेका है और गर्भ क्षेत्रमें रह सक्ता है, परन्तु जब कि क्षेत्रकी हानि है तो औषधियां गर्भको रखनेकी स्थिति किस अंगमें करेंगी सो विचार समझमें नहीं आता। " गर्भ न रहना और बालक उत्पन्न न होना पुरुषकी तर्फसे है, या स्त्रीकी । इस बातकी यह परीक्षा हकीमजी लिखते हैं कि दोनोंके वीर्यको अलग अलग पानीमें डाले जिसका वीर्य पानीपर ठहर जाय (तैरता रहे) और पानीमें नीचे न बैठे तो बांझ होना उसीकी तर्फ साबित होता है । दूसरी परीक्षा यह है कि प्रत्येकका मूत्र काहूके वृक्ष या घीआकी जडमें अलग २ डाले सो जिसका मूत्र उस पेडको जला देवे (सुखा देवे) तो बांझ होना उसी तर्फ साबित होता है । तीसरी विधि यह है कि गेहूँ, जौ, बाकला इनके सात सात दाने लेकर और मिट्टीके बर्त्तनमें डालकर आज्ञा देवे कि उस बर्त्तनमें मूत्र किया करें और पुरुष तथा स्त्री दोनोंका पात्र अलग अलग रहना चाहिये, जिसके पात्रके दानोंमें अंकुर न उगें उसीकी तर्फ बांझ होना साबित होताहै और यह परीक्षा मुख्य करके बांझ होनेका निर्णय करनेके लिये की जाती है कि जिसके वीर्यमें जन्मसे वह प्रकृति है जिससे सन्तान न हो सके औरोंकी यह परीक्षा नहीं है ।

अब उन दवाओंका वर्णन करते हैं, जो प्रकृतिके अनुसार गर्भके रहनेपर सहायता करती हैं ।

हाथी दांतका बुरादा ४॥ मासे खाना लाभदायक है । दूसरा नुस्खा हाथीका मूत्र संभोगके समय, या उससे प्रथम स्त्रीको पिलाना विशेष गुणदायक है । तीसरा नुस्खा हींगके वृक्षका बीज कि जिसको (बज्रसीसियालयूस) भी कहते हैं इसका खाना परीक्षा किया हुआ है गर्भ रखनेमें अपूर्व लाभ देता है । चौथा नुस्खा नीचेकी दवाओंमें कपडेको तर करके स्त्री अपनी योनिमार्गमें रखे सूखा बालछड खुसियत्तुस्सालिब (एक प्रकारकी जड है) और रोगनविलसां बकाइनका तैल, सोसनका तैल कहीं २ यूनानी किताबोंमें हाथीकी लीदका सफूफ वा तर लीदका निचोडा हुआ पानी गर्भ न रहनेके काममें लिया गया है परन्तु यहांपर तबीबोंकी राहमें कुछ विरुद्धता मालूम होती है ॥

हुकना ।

वन्ध्याके चौथे भेदकी चिकित्सामें हुकना करनेको लिखा गया है सो उनकी औप-धियाँ यह हैं। भुने हुए जौका आटा, चावल, मसूर छिली हुई गुलनार, अनारके फलका (छिलका) हवुलास प्रत्येक समान भाग लेकर ३२ गुणे जलमें उबाल लेवे और चौथा भाग छीज जावे तब छान लेवे और अर्बी गोंद, निसास्ता, दम्मुलअखवैन, लिद्य तुत्तीसका उस्सारा, जला हुआ कागज, जली हुई सीपी, काँसाका फूल अगर कांसाका फूल न हो सके तो जस्तेका फूल ये थोडे २ मिलावे और बकरीके गुर्देकी चर्वी तथा अंडेकी जर्दी ये भी मिलावे और वस्तिक्रिया करे ॥ हुकना और वस्ति-क्रियासे प्रयोजन पिचकारी लगानेका है ॥

इति यूनानीतिव्वसे वन्ध्यालक्षण तथा चिकित्सा समाप्त ॥

अथ चतुर्थोऽध्याय ।

दूसरे और तीसरे अध्यायमें स्त्रीपक्षमें जो सन्तानोत्पत्तिके बाधक दोप हैं उनकी व्यवस्था तथा चिकित्सा आयुर्वेद तथा तिव्वसे लिखी गई हैं इस चतुर्थाध्यायमें पुरु-पकी तर्फसे जो दोप सन्तानोत्पत्तिके बाधक हैं उनके लक्षण और चिकित्साका उल्लेख किया जायेगा । यह ग्रन्थ केवल स्त्रीचिकित्साका है पुरुषोंकी चिकित्सा वा व्याधियोंसे इस ग्रन्थका कुछभी सम्बन्ध नहीं है । परन्तु इस ग्रन्थमें जो प्रक्रिया लिखी गयी है वह सन्तानोत्पत्तिके बाधक रोगोंकी निवृत्ति और सन्तानोत्पत्तिके मुख्य हेतुओंको लेकर लिखी गयी है और सन्तानोत्पत्तिका मूल कारण स्त्री पुरुपकी जोडी है । यदि स्त्री आरोग्य और पुरुप रोगी दूपित शुक्रवाला हुआ तो स्त्रीके साङ्गोपाङ्ग आरोग्य होनेपर भी पुरुपपक्षकी हीनताको लेकर कदापि सन्तानोत्पत्ति नहीं हो सकती और प्रथम लिखभी आये हैं कि (अष्टौ दोपास्तु नारीणां नवमः पुरुपस्य च) अर्थात् सन्तानोत्पत्तिके बाधक आठ दोप स्त्रीमें और नवम पुरुपमें है । यूनानी तिव्वसे पुरुपपक्षके लक्षण तथा चिकित्सा तीसरे अध्यायमें कथन हो चुकी है अब पुरुपपक्षकी हीनता प्राचीन वैद्यक सुश्रुतसे नीचे उद्धृत की जाती है ।

सुश्रुत ।

अथातः शुक्रशोणितशुद्धिनामशरीरं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब पुरुपके दूपित वीर्यकी निरुक्ति करके उसकी शुद्धिका उपाय लिखेंगे शोणित कहिये स्त्रीका रज, उसकी व्यवस्था दूसरे अध्यायमें लिख चुके हैं और शुद्ध रजके लक्षण आगे लिखे जावेंगे. तीसरे अध्यायमें जो यूनानी तिव्वसे वन्ध्याकी चिकित्साप्रणाली कथन की गयी है उसमें कुछ अंश पुरुपदोपकी चिकित्साका आया

है, उसी प्रसंगके समीपवर्त्ती आयुर्वेदसे भी पुरुषदोषकी चिकित्सा इसी स्थलपर लिखना योग्य समझा गया । यदि यहांपर इसको नहीं।लिखते हैं तो आगे प्रसंग असंगत हो जाता अतः इसको लिखना पडा ।

दुष्ट शुक्रके लक्षण ।

वातपित्तश्लेष्मकुणपग्रन्थिपूतिपूयक्षीणमूत्रपुरीषरेतसः प्रजोत्पादने न समर्था भवन्ति ॥ १ ॥

अर्थ–वात पित्त कफ इनसे दूषित दुर्गंधित गांठदार राध (पीव) के समान क्षीण मूत्र और विष्टा इन दोनोंसे दूषित वीर्यवाला मनुष्य शुद्ध संतानकी उत्पत्ति करनेमें सर्वथा असमर्थ होता है यदि सन्तान होती है तो रोगग्रस्त और विरूप भयंकर आकृतिकी बेडौल होती है ॥ १ ॥

रोगयुक्त वीर्यसे सन्तान भी रोगी होता है जैसा कि सुश्रुतके कुष्ठनिदानमें कथन किया है और अधिक कालपर्यन्त शरीरमें ठहरे हुए कितनेही रोग शुक्रपर्यन्त पहुँचते हैं अथवा उपदंशसे समस्त शरीर और वीर्य दूषित हो जाता है जैसे–

कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां सम्भेदः क्षतसर्पणम् । शुक्रस्थानगते लिङ्ग-प्रागुक्तानि तथैव च ॥ २ ॥ स्त्रीपुंसयोः कुष्ठदोषाद् दुष्टशोणितशुक्रयोः । यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ ३ ॥

अर्थ–जब कि कोढरोग पुरुषके वीर्यमें प्रवेश कर जाता है तब हाथकी अंगुलियोंका गिर पडना, चलनेकी शक्तिका नष्ट होना, घावका बढना और कुष्टके पूर्व कथन किये हुए सब चिह्न होते हैं ॥ २ ॥ जिन स्त्री पुरुषोंके रज और वीर्य कुष्टादि भयंकर रोगोंसे दूषित हो गये होवें उनकी सन्तानभी कोढी होती है । इस प्रमाणसे निश्चय होता है कि वातादि दोषोंके अतिरिक्त कितनीही भयंकर अन्य व्याधियाँ भी वीर्य और रजको दूषित कर देतीहैं और दूषित रजवीर्यका सन्तान भी रोगी और अल्पायु होताहै॥३॥

वातादि तीनों दोषोंसे दूषित शुक्रके भिन्न भिन्न लक्षण ।

तेषु वातवर्णवेदनं वातेन । पित्तवर्णवेदनं पित्तेन । श्लेष्मवर्णवेदनं श्लेष्मणा । शोणितवर्णवेदनं कुणपगन्ध्यनल्पं रक्तेन । ग्रन्थिभूतं श्लेष्मवाताभ्यां । क्षीणं प्रागुक्तं पित्तमारुताभ्याम् । मूत्रपुरीषगन्धि सन्निपातेनेति ॥ ४ ॥

इसमेंसे जो वीर्य वातदोषसे दूषित हुआ है उसका रंग जैसे अन्य रक्तादि वातसे दूषित होते हैं वैसाही होताहै और उसमें वेदना भी वातके समान होती है अर्थात्

रंग लाल वा काला हो जाता है । यहांपर यह संदेह होता है कि अव्यक्त वायुमें रंगोंका होना असम्भव है, परन्तु वातदूषितमें रंगकी विकृति अवश्यही हो जाती है और अनेक प्रकारकी वेदनायुक्त पीडा भी होती है क्योंकि वायु अनेक कारणोंसे उत्पन्न होता है । पित्तदूषित वीर्यमें पित्तके समान पीला नीला रंग और ऊप चोष आदि पीडा होती है, और इसमें सडे हुए मुर्दे और सडी हुई राधके समान गंध आती है कफदूषित वीर्यका रंग श्वेत आर उसमें खुजलीसे लेकर जा कफके उपद्रव हें उनक सहित वेदना होती हैं और फीकी गन्ध आती है रक्तदूषित वीर्यमें रक्तके समान लाल रंग पित्तविकारके समान वेदना मुर्देकीसी अत्यन्त गन्ध ये बातें होती हैं (विशेष वक्तव्य) रक्तसे वीर्य दूषित नहीं होता किन्तु जो मनुष्य अतिमैथुन करता है अथवा जिसके शरीरमें वीर्य बनानेवाली शक्ति न्यून हो गई है उन्हींका वीर्य रक्तमिश्रित निकलता है शायद आचार्यने ऐसेही वीर्यको रक्तदूषित मान लिया होय, कफ और वातसे दूषित वीर्यमें गांठें पड़ जाती हैं पित्तकफसे दूषित वीर्यमें सडी हुई राधके समान दुर्गन्ध आती है वातपित्तसे दूषित वीर्यमें क्षीणता होती है ॥ और इन दो दोषोंसे दूषित वीर्यमें दो दोषोंके समानही वेदना होती है और त्रिदोषसे दूषित वीर्यमे विष्टा और मूत्रके समान दुर्गन्धि होती है और अन्य लक्षण भी त्रिदोषके समान होते हैं ।

साध्याऽसाध्यलक्षण ।

तेषु कुणपग्रन्थिपूतिपूयक्षीरेतसः कृच्छ्रसाध्याः ।
मूत्रपुरीषरेतसस्त्वसाध्याः साध्यमन्यच्चेति ॥ ९ ॥

अर्थ—ऊपर कथन किये हुए लक्षणोंसे युक्त वीर्यमेंसे मुर्देकीसी गन्धवाले गूठीले हुई राधके समान और क्षीण ये चारों लक्षणके वीर्यवाले पुरुष कृच्छ्रसाध्य (कष्टसाध्य) हैं । मूत्र और पुरुषकी गन्धवाले वीर्य सर्वथा असाध्य हैं और अवशेष सब साध्य हैं ॥ ९ ॥

आर्त्तवदोष अर्थात् स्त्रियोंका रज भी पुरुषके वीर्यके समान दूषित होता है वह भी गर्भधारणमें बाधक है दूसरे अध्यायमें दूषित रजकी चिकित्सा नूतन वैद्यकप्रसंगसे रजशुद्धिके प्रयोग कथन कर आये हैं परन्तु सुश्रुत आचार्यने रज और वीर्यका समीपवर्ती घनिष्ट सम्बन्ध होनेसे एक साथही लिखा है इसी कारण नूतन वैद्यकप्रकरणमें हमने उसका संयोग नहीं किया इसी प्रकरणमें आर्त्तवदोषका कथन भी सुश्रुताचार्यके प्रसंगवश करना योग्य है ॥

आर्त्तव शोणितका प्रतिपादन ।

आर्त्तवमपि त्रिभिर्दोषैः शोणितचतुर्थैः पृथग् द्वन्द्वैः समस्तैश्चोपसृष्टमबीजं भवति तदपि दोषवर्णवेदनादिभिर्विज्ञेयम् ॥ ६ ॥

अर्थ—आर्त्तव अर्थात् स्त्रियोंका रज वात, पित्त, कफ, रक्त, वातपित्त, वातकफ, कफपित्त और त्रिदोषसे दूषित होकर सन्तानोत्पत्तिके योग्य नहीं रहता और इनके जाननेके लक्षण यही हैं कि वह जिस दोषसे दूषित होता है उसमें उसी दोषके समान रंग और पीडा होती है । जैसे कि उपरोक्त शुक्रदोषोंमें वर्णन हो चुका है ॥ ६ ॥

आर्त्तवके साध्याऽसाध्यलक्षण ।

तेषु कुणपग्रन्थिपूतिपूयक्षीणमूत्रपुरीषप्रकाशमसाध्यं साध्यमन्यद्भवति ॥ ७ ॥

अर्थ— इनमेंसे मुर्देकीसी गन्धवाला गुठीला सड़ी हुई दुर्गन्धिवाला क्षीण और मूत्र पुरुषकी गन्धवाला रज असाध्य है और अवशेष सब साध्य हैं ॥ ७ ॥

शुक्रदोषकी चिकित्सा ।

तेष्वाद्यान् शुक्रदोषां स्त्रीन्स्नेहस्वेदादिभिर्जयेत् । क्रियाविशेषैर्मतिमांस्तथा चोत्तरबस्तिभिः ॥ १ ॥ पाययेत नरं सर्पिर्भिषक्कुणपरेतसि । धातकीपुष्पखदिरदाडिमार्जुनस्याधितम् ॥ २ ॥ पाययेदथवो सर्पिः शालसारादिसाधितम् ॥ ग्रन्थिभूते शठीसिद्धं पालाशे वापि भस्मनि ॥ ३ ॥ परूषकवटादिभ्यां पूयप्रख्ये च साधितम् ॥ ४ ॥ प्रागुक्तं वक्ष्यते यच्च तत्कार्यं क्षीणरेतसि ॥ ५ ॥ विट्प्रभे पाययेत् सिद्धं चित्रकोशीरहिंगुभिः ॥ ६ ॥ स्निग्धं वान्तविरिक्तं च निरूढमनुवासितम् । योजयेच्छुक्रदोषार्तं सम्यगुत्तरबस्तिना ॥ ७ ॥

अर्थ—ऊपर कथन किये हुए शुक्र दोषोंमेंसे प्रथमके तीन दोषोंको स्नेहन स्वेदन और आदि शब्दसे वमन विरेचन, निरुहन, अनुवासन, और उत्तर वस्ति करके यथा दोषानुसार क्रिया तथा औषधसे शमन करे, यहां उत्तर बस्तिका निर्देश प्रधानतासूचक है ॥१॥ कुणपसंज्ञक शुक्रका उपाय । जिस मनुष्यके वीर्यमें मुर्देकीसी दुर्गंध आवे उसको धायके फूल, खैरसार, अनारकी छाल, और अर्जुन (कोहवृक्ष) की छाल इनके कल्क वा क्वाथमें सिद्ध किया हुआ घृत पान करावे । अथवा शालसारादि गणोक्त द्रव्योंमेंसे किसी एक औषधके कल्क वा क्वाथमें घृतको सिद्ध करके पान करावे

॥ २ ॥ **गठीले वीर्यका उपाय** । जिस मनुष्यका वीर्य गठीला पड गया होय उसको नरकचूर (सोंठ कचूर) के काथमें सिद्ध किया हुआ घृत पान करावे । अथवा पलाश (ढाक) के क्षारमें सिद्ध किया हुआ घृत पिलावे । पूर्व कल्क वा काथकी प्रक्रियासे घृत सिद्ध करनेकी विधि लिखी गई है, परन्तु क्षारघृतकी विधि नहीं लिखी गयी सो क्षारकी विधि इस प्रकार है । पलाशका भस्म (राख) को जलमें डालकर पकावे, जल उसमें छः गुणा अधिक डाले और चतुर्गुण जल बाकी रहे उस समय उतारकर रंग छाननेकी रैनीकी विधिके समान छानकर नीचे जो जल निकले उसमें घृतको मिलाकर पकावे और घृत अवशेष रहनेपर उतारकर छान लेवे ॥ ३ ॥ **पूयसंज्ञक वीर्यका उपाय** । जिस मनुष्यका वीर्य राधके समान हो गया होय, उसको परूपक और न्यग्रोधादि गणके द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ घृत पिलाना ॥ ४ ॥ **क्षीण वीर्यका उपाय** । जिस मनुष्यका वीर्य्य क्षीण हो गया होय उसको वीर्य्यवर्द्धक तथा स्त्रयोनिवर्द्धक पूर्व कथन किये हुए (याने सुश्रुतके क्षीणवलीय, रसायनप्रकरणके औषध देवे । ५ । **पुरीषके समान शुक्रका उपाय** । जिस मनुष्यके वीर्य्यमें विष्टाकीसी दुर्गन्ध आती होय उसको चीता ,खस, और हींगके काथमें सिद्ध किया हुआ घृत पिलावे । यद्यपि यह रोग असाध्य है परन्तु वीर्य्यकी दुर्गन्ध नष्ट करनेका यह उपाय है ॥ ६ ॥ सब प्रकारके दूपित शुक्रमें सामान्य क्रियाका करना योग्य है । जो ऊपर कहे हुए कुणप पूयादि शुक्र दोषोंसे पीडित होय उसे स्नेहन, वमन, विरेचन, निरूहन, अनुवासन और उत्तर बस्तिसे शुद्ध करे ॥ ७ ॥

आर्त्तव दोषके सामान्य उपचार ।

विधिमुत्तरबस्त्यन्तं कुर्य्यादार्त्तवसिद्धये । स्त्रीणां स्नेहादियुक्तानां चतसृष्वार्त्तवार्त्तिषु ॥ कुर्य्यात्कल्कान्पिचूंश्चापि पथ्यान्याचमनानि च ॥ ८ ॥

अर्थ--स्त्रियोंके वात पित्त कफ और रक्त इन चार प्रकारकी व्याधियोंसे विगडे हुए आर्त्तवको स्नेहन, उत्तर बस्ति, पर्य्यन्त छः प्रकारकी क्रिया करनी चाहिये । वातादि दोषोंके हरनेवाले कल्क काथ फोहा और दोषोंको नष्ट करनेवाले प्रक्षालन योगोंसे निवृत्त करनी चाहिये ॥ ८ ॥

भिन्न भिन्न दोषोंके उपचार ।

ग्रन्थिभूते पिवेत्पाठां त्र्यूषणं वृक्षकाणि च । दुर्गन्धे पूयसङ्काशे मज्जतुल्ये तथार्त्तवे ॥ ९ ॥ पिवेद्भद्रश्रियः काथं चन्दनकाथमेव च । शुक्रदोपहराणां च यथास्वमवचारणम् । दोषाणां शुद्धिकरणं शेषास्वप्यार्त्तवार्त्तिषु ॥ १० ॥

स्त्रीके रजसम्बन्धी रुधिरके गठीले होजानेपर, पाढ, सोंठ, काली मिरच, पीपल, कुडाकी छाल, इनको समान भाग लेकर काढा करके पिलावे । जिस स्त्रीके रजमें दुर्गन्धयुक्त राध आती होवे अथवा मज्जाके तुल्य होय तो रजकी इस दुर्गन्धिको दूर करनेके लिये रक्त चन्दन अथवा श्वेत चन्दन इनका काढा करके पिलावे ॥ कई आचार्य्योंका कथन है कि चन्दनमें दुर्गन्ध नष्ट करनेकी सामर्थ्य नहीं है इस लिये गोरोचन ग्रहण करना चाहिये । इसके अतिरिक्त यदि रजमें अन्य दोष होय तो उन दोषोंकी निवृत्ति और रजकी शुद्धिके लिये शुक्रदोषको दूर करनेवाली क्रियाओंको करना चाहिये शुक्रदोषकी शुद्धिकी क्रिया इसी प्रकरणमें ऊपर लिख चुके हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

आर्त्तवदोषमें पथ्य ।

अन्नं शालियवं मद्यं हितं मांसं च पित्तलम् ॥ ११ ॥

अर्थ—आर्त्तवदोषोंकी शुद्धिके लिये पुराने शालिचावल, जौ, मद्य और पित्तोत्तेजक मांसोंका पथ्य देवे ॥ ११ ॥

शुद्ध शुक्र वा शुद्ध आर्त्तवके लक्षण ।

स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगन्धि च । शुक्रमिच्छंति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभं तथा ॥ १२ ॥ शशासृक्प्रतिमं यत्तु यद्वा लाक्षारसोपमम् । तदार्त्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विरञ्जयेत् ॥ १३ ॥

अर्थ—शुद्ध शुक्र स्फटिक (बिल्लौरमणि) के समान स्वच्छ पतला चिकना मीठा और मधु (शहत) के समान गंधयुक्त शुक्र शुद्ध होता है । और किसी २ आचार्य्यका कथन है कि तेल आर शहतके समान रंगवाले शुक्रको शुद्ध कहते हैं । शुद्ध आर्त्तव—जो स्त्रीरज खरगोशके रुधिरके समान लाल अथवा लाखके रंगके समान लाल होता है और जिसका धुले हुए वस्त्रपर कुछभी दाग नहीं आता है ऐसे आर्त्तवको शुद्ध आर्त्तव कहते हैं । ऐसाही शुद्ध शुक्र और शुद्ध आर्त्तव शुद्ध निरोगी दीर्घजीवी संतानको उत्पत्तिमें प्रशंसनीय है ॥ १२ ॥ १३ ॥

वैद्यकग्रन्थोंसे पुरुषके नव दोष कथन ।

क्लीबं लघुद्रवं हीनं षंढं मेहैश्च दूषितम् । रक्तोद्रेकी रुगार्त्तश्च विषसेवी तथैव च । सुरापेयी च दोषाश्च नवैते पुरुषे स्मृताः ॥ १ ॥

अर्थ—नपुंसक, अल्पवीर्यवाला, शक्तिहीन, नष्टवीर्य, प्रमेहरोगसे ग्रस्त, जिसके वीर्य निकलनेके समयपर रुधिर निकलता होय, उपदंश (आतशक) रोगवाला, विषैली मादक द्रव्योंके सेवनका जिसको व्यसन लग गया होय, सुरा (शराब) पीनेवाला ये नव दोषवाले पुरुष हैं ॥ १ ॥

हम यह तो नहीं कह सक्ते कि इन नव दोषी पुरुषोंके सन्तान न होती होय, परन्तु ३ को छोडकर अवशेष सन्तान उत्पत्तिमें समर्थ हैं, किन्तु सन्तान विकृत और निर्बुद्धि होना संभव है । पुरुषके शुद्ध वीर्यके लक्षण ऊपर सुश्रुतसे उद्धृत किये गये हैं किन्तु नूतन वैद्यकमें कुछ श्लोक प्राचीन वैद्यकसे विलक्षण पाये जाते हैं और अनुमान होता है कि आर्यावर्त्तमें यूनानीतिब्बके प्रचार होनेके अनन्तर इन श्लोकोंकी रचना की गई है क्योंकि जो वीर्यकी परीक्षा इन श्लोकोंमें है उसी ढंगकी परीक्षा रूपान्तरभेदसे यूनानीतिब्बमें देखी जाती है प्राचीन आयुर्वेदमें कहीं दृष्टिगत नहीं हुई ।

नूतन वैद्यकसे शुद्ध वीर्यके लक्षण शिक्षा ।

मत्स्यगन्धप्रतीकाशं बीजं तालकसन्निभम् । मेचकं मधुसंकाशं धूम्राभं फेनबुद्बुदम् ॥ २ ॥ क्षिप्तेऽम्भसि निमज्जेत गुणाधिक्यं प्रकीर्तितम् । प्लवते यस्य बीजं तु तद्बीजं त्वनपत्यकम् ॥ ३ ॥ तदनुत्पत्तिकं बीजं भोजभेडेन भाषितम् । तस्य मूत्रेण मुद्गास्तु वापनीया विचक्षणैः ॥ ४ ॥ अंकुरैः सदृशो मुद्गः कदाचिदपि दृश्यते । भोगयोग्यं तदा ज्ञेयं शुभदं तद्द्वयोर्भवेत् ॥ ५ ॥ तदा सन्तानसंप्राप्तिश्चिरैर्वा ह्यचिरेण वा । येषां मूत्रेण मुद्गाश्च प्रस्फुटा न च सांकुराः ॥ ६ ॥ वन्ध्यत्वं तत्र विज्ञेयं स्त्रीणां वा पुरुषस्य वा ॥ ७ ॥

अर्थ—जिस पुरुषके वीर्यमें मछलीके समान गन्ध आवे, कुछ पीलापन लिये होय, मेचकवर्णवाला शहत और धूम्रवर्णवाला झागदार होय और जलमें डालनेसे डूब जावे ऐसा वीर्य अधिक गुणवाला होता है और जिसका वीर्य जलमें डालनेसे नहीं डूबे जलके ऊपर तैरता रहे उसको हलका वीर्य कहते हैं इससे गर्भ रहना असम्भव है । ऐसा भेडाचार्यका कथन है । पुरुष तथा स्त्रीके मूत्रको एक मट्टीके वर्तनमें अलग अलग रखके उसमें मूंगके दाने डाल देवे यदि मूँगमें अंकुर फूट निकलें और वो अंकुर मूंगके वर्णके समान होवें तो उन दोनों स्त्री पुरुषोंका रज वीर्य गर्भ धारण करनेमें योग्य है, ऐसे स्त्री पुरुषोंके संयोगसे अवश्य गर्भ रहेगा । और जिस स्त्री वा पुरुषके मूत्रमें मूंगका दाना फटजावे और अंकुर न निकले तो उस स्त्री वा पुरुषको दोषविशिष्ट जानो । उनके रज वीर्यसे गर्भ नहीं रहता उन दोनों स्त्री पुरुषोंको वन्ध्यादोष जानना ॥ २–७ ॥

दाहकंपभ्रमोल्लासश्लेष्माधिक्यं शिरो व्यथा । नाभिशूलमुरः शूलमंत्रकूजनक्लेदनम् ॥ ८ ॥ भेदस्पन्दश्च गात्राणां मोहः कंडूश्च देहिनाम् ।

करांघ्रिकर्णकंडूश्च गात्रगंधिश्च दाहवान् ॥ ९ ॥ दंतादीनां मलाढ्यत्वं मंदाग्नित्वं प्रचीयते । इत्येवं ज्ञायते पुंसां लक्षणेन भिषग्वरैः ॥ १० ॥ रेतोदोषयुताः पुंसो रजोदोषयुताः स्त्रियः । तयोर्मिलितयोश्चैव न त्वपत्यं प्रजायत ॥ ११ ॥ विपरीतं तु तज्ज्ञात्वा रजो रेतश्च दूषितम् ॥ १२॥

अर्थ—स्त्री तथा पुरुषके समागमसमय शरीरमें दाह, कम्प, भ्रम, छर्दि, कफ, शिरमें व्यथा-नाभिशूल, आँतोंमें गुडगुडाहट, मूर्च्छा शरीरमें खुजली, हाथ, पैर और कानोंमें खुजली शरीरमें दुर्गन्धि आवे, दाँतोंमें मैलका जमना, मन्दाग्नि, पाचनशक्ति नष्ट होय ये लक्षण जिस स्त्री और पुरुषके होयँ उनका रज वीर्य दूषित जानना चाहिये ॥ ८-१२ ॥

चरकसे दूषित वीर्य पुरुषके लक्षण तथा चिकित्सा ।

प्रथम सुश्रुतसे और दूसरे दर्जेपर नूतन वैद्यक ग्रन्थोंसे पुरुषवीर्य और स्त्री आर्त्तवकी चिकित्सा ऊपर वर्णन की गई है । परन्तु पुरुषवीर्यके दूषित होनेके कारण तथा निदान लक्षण और चिकित्सा महर्षि आत्रेयने कथन की है और सैकडों रोगियों-पर हमने स्वयं अनुभव किया है उसी प्रकरणको नीचे उद्धृत करते हैं । नीचे लिखे हुए लक्षण तथा निदानका निश्चय करके जिस विकृत वीर्य पुरुषकी चिकित्सा की जावेगी अवश्य रोगी अरोग्य तथा सन्तानरूपी फलको प्राप्त करेगा और चिकित्सक यशस्वी होगा, इसी हेतुसे चरकके प्रयोग इस प्रकरणके अन्तमें नूतन वैद्यक तथा सुश्रुतसे पृथक् रक्खे हैं ।

शुक्रदोष ।

पुनरेवाग्निवेशस्तु पप्रच्छ भिषजांवरम् । आत्रेयमुपसंगम्य शुक्रदोषास्त्वयानघ ॥ १ ॥ रोगाध्याये समुद्दिष्टा ह्यष्टौ पुंस्तमशेषतः । तेषां हेतुभिषक्श्रेष्ठ दुष्टादुष्टस्य चाकृतिम् ॥ २ ॥ चिकित्सितं च कार्त्स्न्येन क्लैब्यं यच्च चतुर्विधम् ॥ उपद्रवेषु योनीनां प्रदरोयश्च कीर्तितः ॥ ३॥ तेषां निदानं लिंगं च चिकित्सां चैव तत्त्वतः । समासव्यासयोगेन प्रब्रुहि भिषजांवरः ॥ ४ ॥ तस्मै शुश्रूषमाणाय प्रोवाच मुनिपुंगवः । बीजं यस्माद्व्यवायाच्च हर्षयोनिसमुत्थितम् ॥ ५ ॥ शुक्रं पौरुषमित्युक्तं तस्माद्वक्ष्यामि तच्छृणु ॥ ६ ॥

अर्थ—अग्निवेश भिषग्वरने पुनर्वसुसे पुनरपि प्रश्न किया कि हे भगवन् ! आपने अष्टोदरीय रोगाध्यायमें पुरुषके आठ प्रकारके शुक्रदोष कथन किये थे सो हे प्रभो ! वीर्यके दूषित होनेके हेतु तथा दूषित और निर्दोष वीर्यकी आकृति दूषित वीर्यकी चिकित्सा चार प्रकारके क्लैब्यरोग तथा योनिरोगोंमें वर्णन किये हुए प्रदररोगका निदान लक्षण और चिकित्सा संक्षेप और विस्तार दोनों रीतिसे वर्णन कर दीजिये । यह वाक्य शिष्यकी श्रवण करके मुनिपुङ्गव आत्रेयजी बोले, कि पुरुषका वीर्य अर्थात् शुक्र मैथुनमें हर्ष स्त्रीकी योनिके स्पर्शसे उठता है, यह बात प्रथम कथन कर चुके हैं । अब जिस प्रकारसे उस वीर्य्यमें दोष उत्पन्न होते हैं उसका वर्णन करता हूं सो श्रवण कर ॥ १–६ ॥

बीजके दूषित होनेमें दृष्टान्त ।

यथा बीजमकालाम्बुकृमिकीटाग्निदूषितम् ।
न विरोहति सन्दुष्टं तथा शुक्रं शरीरिणाम् ॥ ७ ॥

अर्थ—जैसे कुसमयकी वृष्टिसे कृमि कीट वा अग्नि दग्धके कारण विगडाहुआ बीज अंकुरित नहीं होता है इसी प्रकार मनुष्योंका विगडाहुआ वीर्य्य भी सन्तानके उत्पन्न करनेके योग्य नही रहता है ॥ ७ ॥

वीर्य्यके दूषित होनेका कारण ।

अतिव्यवायाद्व्यायामादसात्म्यानां च सेवनात् । अकाले चाप्ययोनौ वा मैथुनं न च गच्छतः ॥ ८ ॥ रूक्षतिक्तकषायाति लवणाम्लोष्णसेवनात् । मधुरस्निग्धगुर्वन्नसेवनाज्जरया तथा ॥ ९ ॥ चिन्ताशोकादविस्रम्भाच्छस्त्रक्षाराग्निभिस्तथा । भयात् क्रोधादभीचाराद्व्याधिभिः कर्षितस्य च ॥ १० ॥ वेगाघातात् क्षयाच्चापि धातूनां संप्रदूषणात् । दोषाः पृथक् समस्ता वा प्राप्य रेतोवहाः शिराः ॥ ११ ॥ शुक्रं संदूषयन्त्याशु तद्वक्ष्यामि विभागशः ॥ १२ ॥

अर्थ—अति मैथुन, अति शारीरिक परिश्रम, अत्यन्त असात्म्य (प्रकृतिके विरुद्ध) द्रव्योंका सेवन, कुसमय मैथुन वा अयोनिसे मैथुन अगम्य योनिमें मैथुन रूक्ष कषाय तिक्त (तीक्ष्ण) जैसे मिरच, राई आदि द्रव्योंका अत्यन्त सेवन अत्यन्त खट्टे नमकीन और ऊष्ण पदार्थोंका सेवन अत्यन्त मीठे चिकने और भारी अन्नका सेवन वृद्धावस्था चिन्ता शोक प्रकाश स्थानमें स्त्री गमन शिश्नेन्द्रिय तथा उसके समीपवर्त्ति मर्मोंपर शस्त्रकर्म अग्निकर्म और क्षारकर्मका अनु-

चित विधिसे किया प्रयोग भय क्रोध अभिचार रोगादि द्वारा कर्षण मलमूत्रादि वेगोंका अवरोध धातुकी क्षीणता तथा सप्तधातुओंका दूषित होना इन कारणोंसे सम्पूर्ण दोष भिन्न भिन्न अथवा संयुक्त (मिलकर) वीर्यवाही शिराओंमें पहुँचकर शुक्रको शीघ्र ही दूषित कर देते हैं, अब उनके पृथक् पृथक् भेद और लक्षण कहते हैं ॥८-१२॥

दूषित शुक्रके भेद ।

फेनिलं तनुरुक्षं च विवर्णं पूति पीच्छिलम् ।
अन्यधातूपसंसृष्टं अवसादि तथाष्टमम् ॥ १३ ॥

अर्थ—दूषित वीर्य्य आठ प्रकारके होते हैं झागदार, पतला, रूखा, विवर्ण, दुर्गन्धित, गिलगिला अन्य धातुसे मिश्रित अवसादी ये भेद हैं ॥ १३ ॥

वातादि दोषोंसे दूषित शुक्रके लक्षण ।

वातेन फेनिलं शुष्कं कृच्छ्रेण पिच्छिलं तनु । भवत्युपहतं शुक्रं न तद्गर्भाय कल्पते ॥ १४ ॥ सनीलमथवा पीतमत्युष्णं पूतिगन्धि च । दहल्लिङ्गं विनिर्याति शुक्रं पित्तेन दूषितम् ॥ १५ ॥ श्लेष्मणा बद्धमार्गं तु भवत्यत्यर्थपिच्छिलम् । स्त्रीणामत्यर्थगमनादभीघातात् क्षयादपि ॥ ॥ १६ ॥ शुक्रं प्रवर्त्तते जन्तोः प्रायेण रुधिरान्वयम् । वेगसन्धारणात् शुक्र वायुना विहितं पथि ॥ १७ ॥ कृच्छ्रेण याति ग्रथितमवसादि तथाष्टमम् । इति दोषाः समाख्याताः शुक्रस्याष्टौ सलक्षणाः ॥ १८ ॥

अर्थ—(वातसे दूषित शुक्रके लक्षण)—वातसे दूषित शुक्र झागदार, शुष्क, पिच्छिल पतला और कष्टसे बाहर निकलनेवाला होजाता है वातसे विकृत हुआ शुक्र, गर्भ उत्पन्न करनेके योग्य नहीं होता है (पित्तसे दूषित शुक्रके लक्षण)—पित्तसे दूषित हुआ शुक्र कुछ नीले रंगका, कुछ पीत रंगका, अत्यन्त उष्ण और दुर्गन्धित होता है, तथा शिश्नेन्द्रियसे बाहर निकलनेके समय बडा दाह होताहै । (कफसे दूषित शुक्रके लक्षण)—कफ दूषित वीर्यका कफके कारणसे मार्ग रुक जाता है और वह अत्यन्त गिलगिला होजाता है अन्य (हेतुओंसे दूषित शुक्रके लक्षण)—अत्यंत स्त्रीप्रसंगसे तथा अभिघात । वस्तिस्थान शिश्नेन्द्रिय वा उसके समीपवर्ती गर्भस्थानमें कुछ लगनेसे अथवा क्षीण होनेसे जो शुक्र निकलता है उसमें जन्तुयुक्त रुधिर मिला रहता है । (अवसादि शुक्रके लक्षण)—मलमूत्रादिके उपस्थित वेगोंको रोकनेसे तथा कामवेगके (मैथुन करनेकी चेष्टा) रोकनेसे शुक्र मार्गमें विहित होकर बडी कठिनतासे गांठदार होकर निकलता है इसीको अवसादी शुक्र कहते हैं । इस

प्रकार शुक्रके दूषित होनेके आठ लक्षण तथा आठों कारणोंमे दूषित होनेकी व्यवस्थाका व्याख्यान कहा गया ॥ १४–१८ ॥

शुद्ध शुक्रके लक्षण ।

स्निग्धं घनं पिच्छिलं च मधुरं च विदाहि च । रेतः शुद्धं विजानीयात् श्वेतं स्फटिकसन्निभम् ॥ १९ ॥

अर्थ–स्निग्ध, घन, पिच्छिल, मधुर, अविदाही, और स्फटिकके समान श्वेत स्वच्छ शुक्र शुद्ध होता है ॥ १९ ॥

शुक्रदोषोंकी चिकित्सा ।

वाजीकरणयोगोक्तैरुपयोगैः सुखैर्हितैः । रक्तपित्तहरैर्योगैर्योनिव्यापादिकैस्तथा ॥ २० ॥ दुष्टं यथा भवेद्रेतः ततस्तत् समुपाचरेत् । घृतं च जीवनीयं यच्चयवनः प्राश एव च ॥ २१ ॥ गिरिजश्च प्रयोगश्च रेतोदोषानपोहति । वातान्विते हिताः शुक्रे निरुहा सानुवासनाः ॥ २२॥ ब्राह्ममामलकीयं च पैत्ते शस्तं रसायनम् । मागध्यमृतलोहानां त्रिफला वा रसायनैः ॥२३॥ कफोत्थितं शुक्रदोषं हन्याद्भल्लातकस्य च । अन्यधातूपसंसृष्टं शुक्रं वीक्ष्य भिषक्कमैः ॥ २४ ॥ यथा दोषं प्रयोज्यं स्याद्दोष धातुभिषार्जतम् ॥ २५ ॥

अर्थ–वाजीकरण योगोक्त सुखदाई प्रयोग रक्त पित्त नाशक योग, योनिरोग नाशक योग इनसे जो शुक्र दूषित होजाताहै उसकी चिकित्सा नीचे लिखी रीत्यनुसार करे । जीवनीयघृत, च्यवनप्राश और शिलाजीतके प्रयोग वीर्यदोषोंको दूर करते हैं । वातान्वित शुक्रमें निरूहण और अनुवासन वस्ति हित है पित्तान्वित शुक्रमें ब्राह्मरसायन और अभयामलकी रसायन हित है, कफान्वित शुक्रमें पिप्पली रसायन गुडूची लोह त्रिफलारसायन और भल्लातक प्रयोग हित हैं । यदि शुक्रमें अन्य धातुका संसर्ग होय तो उसकी यथार्थ रीतिसे परीक्षा करके यथादोषानुसार उसकी चिकित्सा करनेमें प्रवृत्ति करे ॥ २०–२५ ॥

शुक्रदोषके निमित्त साधारण प्रयोग ।

सर्पिः पयोरसः शालिर्यवगोधूमषष्टिकम् । प्रशस्तं शुक्रदोषेषु वस्तिकर्मविशेषतः ॥ २६ ॥

अर्थ—उपरोक्त शुक्र दोषोंमें घृत दुग्ध मांस रस शालीचावल जौ गेहूं और साँठी चावल हित हैं और बस्ति कर्म विशेष करके हित होताहै ॥ २६ ॥

क्लीबताके विशेष कारण ।

रेतोदोषोद्भवं क्लैब्यं यस्माच्छुद्ध्यैव सिद्ध्यति । अतो वक्ष्यामि ते सम्यगग्निवेश यथातथम् ॥ २७ ॥ बीजध्वजोपघाताभ्यां जरया शुक्र-संक्षयात् । वैक्लब्यसम्भवस्तस्य शृणु सामान्यलक्षणम् ॥ २८ ॥ संकल्पप्रणवो नित्यं प्रियं वश्यामपि स्त्रियम् । न याति लिङ्गशैथि-ल्यात्कदाचिद्याति वा पुमान् ॥ २९ ॥ श्वासार्त्तः स्विन्नगात्रांऽसो मोघ-संकल्पचेष्टितः । म्लानशिश्नश्च निर्बीजः स्यादेतत् क्लैब्यलक्षणम् । सामा-न्यलक्षणां ह्येतद्विस्तरेण प्रवक्ष्यते ॥ ३० ॥

अर्थ—हे शिष्य अग्निवेश ! शुक्रके दोषसे जो क्लीवता होती है वह शुक्रके शुद्ध होनेपर ही मिट जाती है । अब मैं यथारीतिसे तेरे समक्ष कथन करताहूं, कि क्लीबताके चार कारण हैं । यथा वीर्यदोष, ध्वजभंग, वृद्धावस्था और वीर्य्यकी क्षीणता । अब मैं इनके सामान्य लक्षणोंका वर्णन करताहूँ, श्रवण करो । **क्लीवताके सामान्य लक्षण**—यदि मनुष्य मनोइच्छा उत्पन्न होनेपरभी लिंगेन्द्रियकी शिथिलताके कारण अपनी प्रिया और वशीभूता स्त्रीके पास तक नहीं जा सक्ता है और यदि जाता है तो श्वास चलने लगता है, पसीना आय जाता है, उसका मनोसंकल्प व्यर्थ निष्फल होजाता है । चेष्टा निष्फल व्यर्थ होजाती है, शिश्नेन्द्रिय सिथिल पड-जाती है तथा निर्बीज होजाती है हे शिष्य ! इसीका नाम नामर्दी तथा क्लीवता है । क्लीवताके ये साधारण लक्षण कथन किये हैं अब विस्तारपूर्वक कथन करता हूँ सो श्रवण करो ॥ २७–३० ॥

बीजोपघातजक्लीवताके लक्षण ।

शीतरूक्षाल्पसंक्लिष्टविरुद्धाजीर्णभोजनात् । शोकचिन्ताभयत्रासात् स्त्रीणां चात्यर्थसेवनात् ॥ ३१ ॥ अभीचारादविश्रम्भाद्रसादीनां च संक्षयात् ॥ वातादीनामोजसश्च तथैवानशनाच्छ्रमात् ॥ ३२ ॥ नारीणामरसज्ञत्वात् पञ्चकर्मापचारतः । बीजोपघातो भवति पाण्डुवर्ण सुदुर्बलः ॥ ३३ ॥ अल्पप्राणोऽल्पहर्षश्च प्रमदासु भवेन्नरः । हृत्पाण्डुरोगतमककामलाश्रम-

पीडितः ॥ ३४ ॥ छर्द्यतीसारशूलार्त्तः कासज्वरनिपीडितः । बीजोपघातजं क्लैब्यं ध्वजभङ्गकृतं शृणु ॥ ३५ ॥

अर्थ–शीतल रूखा अल्प (थोडा) क्लिष्ट विरुद्ध और दुष्पाच्यभोजन शोक चिन्ता भयत्रास स्त्रियोंका अत्यन्त सेवन अभिचार अविस्रंभ रसादि धातुओंकी क्षीणता वातादिक दोषोंकी विषमता, ओज (बल) की क्षीणता, उपवास, श्रम, अरसज्ञ (कामचेष्टारहित) स्त्रीसे गमन करना वमनादि पंचकर्मोंका योगातियोग इन कारणोंसे शुक्रका नाश होता है इससे पुरुष पाण्डु (पीले) वर्ण और अत्यन्त दुर्बल होजाता है, उसकी प्रमदा (स्त्रियों) में अनिच्छा होती है इससे पीछे हृद्रोग, पाण्डुरोग, तमकश्वास, कामला और श्रम होता है उसको वमन अतीसार और शूल तथा कासज्वरकी उत्पत्ति होती है, ये बीजोपघात क्लीवताके लक्षण हैं अब ध्वजभंगसे हुई क्लीवताके हेतु तथा लक्षण कहते हैं सो श्रवण करो ॥ ३१–३५ ॥

अत्यम्ललवणक्षारविरुद्धाजीर्णभोजनात् । अत्यम्बुपानाद्विषमपिष्टान्नगुरुभोजनात् ॥ ३६ ॥ दधिक्षीरानूपमांससेवनाद्व्याधिकर्षणात् । कन्यानां चैव गमनादयोनिगमनादपि ॥ ३७ ॥ दीर्घरोम्णीं चिरोत्सृष्टां तथैव च रजस्वलाम्। दुर्गन्धां दुष्टयोनिं च तथैव च परिस्रुताम् ॥३८॥ ईदृशीं प्रमदां मोहादतिहर्षात् प्रगच्छतः ॥ चतुष्पदाभिगमनाच्छेफसश्चाभिघाततः ॥ ३९ ॥ अधावनाद्वा मेढ्रस्य शस्त्रदन्तनखक्षतात् । काष्ठप्रहारनिष्पेषशूकानां चातिसेवनात् ॥ ४० ॥ रेतसश्च प्रतीघाता द्ध्वजभङ्गः प्रवर्त्तते ॥ ४१ ॥

अर्थ–अत्यन्त खट्टे नमकीन क्षारयुक्त विरुद्ध और दुष्पाच्य भोजन अत्यन्त जलपान विषम भोजन अति सूक्ष्म मिष्टान्न भोजन गुरु (भारी) भोजन दही दूध और मांसका अत्यन्त सेवन व्याधि द्वारा कर्षण छोटी उमरकी स्त्रीसे गमन अयोनिगमन दीर्घ रोमवाली स्त्रीसे गमन बहुत दिवससे जिस पुरुषने संसग त्याग दिया होय ऐसी स्त्रीसे गमन करना रजस्वला स्त्रीसे गमन करना दुर्गन्धवाली योनिमें गमन दुष्टयोनि (योनिरोगवाली) स्त्रीसे गमन, स्रावयुक्त योनिमें गमन, ऐसी विकृत प्रकृतिकी योनिवाली स्त्रियोंमें मोह वा हर्षसे गमन करना गौ, भैंस, बकरी, घोडी आदि चतुष्पाद् योनिमें गमन करना लिङ्गेन्द्रिय किसी वस्तुकी चोट लगना, शिश्नका प्रच्छालन (धोना) न करना, अधोलोम छेदनके समय अथवा किसी प्रकारकी शस्त्रक्रियाके समय उस्तरा तथा नस्तर

आदि शस्त्रका लगना–स्त्रीप्रमाद व समुख वा दाँतको लगादेवे तथा नखादिका लगना और उससे घाव होजाना–लकडी आदिका लगना निष्पेषण (हस्तमैथुन) हाथसे वीर्य्यको स्खलित करना, शुक्र प्रयोगोंका अत्यन्त सेवन और वीर्य्यका नष्ट होना इन उपरोक्त सब कारणोंसे पुरुषको ध्वजभङ्ग होताहै ॥ ३६–४१ ॥

ध्वजभङ्गके लक्षण ।

श्वयथुर्वेदना मेढ्रे रागश्चैवोपलक्ष्यते। स्फोटाश्च तीव्रा जायन्ते लिङ्गपाको भवत्यपि ॥ ४२ ॥ मांसवृद्धिर्भवेच्चास्य व्रणाः क्षिप्रं भवन्त्यपि । पुलाकोदकसङ्काशस्त्रावः श्यावारुणप्रभः ॥ ४३ ॥ वलयी कुरुते चापि कठिनं च परिग्रहम् । ज्वरस्तृष्णा भ्रमो मूर्च्छा च्छर्दिश्चास्योपजायते ॥ ॥ ४४ ॥ रक्तं कृष्णां स्रवेच्चापि नीलमाविललोहितम् । अग्निनेव च दग्धस्य तीव्रो दाहः सवेदनः ॥ ४५ ॥ वस्तौ वृषणयोर्वापि सीवन्या वंक्षणेषु च । कदाचित्पिच्छिलो वापि पाण्डुस्रावश्च जायते ॥ ४६ ॥ श्वयथुश्च भवेन्मन्दस्तिमितोऽल्पपरिस्रवः ॥ चिरात् सपाकं व्रजति शीघ्रं वा थ प्रपद्यते ॥ ४७ ॥ जायन्ते क्रिमयश्चापि क्लिद्यन्ते पूतिगन्धि च । प्रशीर्यते मणिश्चास्य मेढ्रं मुष्कावथापि च ॥ ४८ ॥ ध्वजभङ्गं कृतं क्लैब्यं इत्येतत् समुदाहृतम् । एवं पञ्चविधं केचित् ध्वजभंगं वदन्त्यपि ॥ ४९ ॥

अर्थ–मेढ्र कहिये (शिश्नेंद्रिय) में सूजन, वेदना, ललाई उत्पन्न होजाती है । वडे तीव्र व्रण (फोडे) और लिङ्गपाकभी होजाता है लिङ्गका मांस बढ जाता है घाव अतिशीघ्र उत्पन्न हो जाते हैं पुलाक मांसरसके जलके समान श्याम और अरुणरंगका स्राव होने लगता है । लिङ्गमें टेढापन, कठिनता और स्तब्धता उत्पन्न हो आती है । ज्वर, तृषा, भ्रम, मूर्च्छा और छर्दि ये उपद्रव होजाते हैं नीला, लाल, काला, मैला और लोहित वर्णका स्राव होता है अग्निसे जलनेके समान तीव्र दाह और दर्द वस्ती, वंक्षण अंडकोश और सीवनीमें होने लगता है । और कभी २ पिच्छिल और पाण्डुवर्णका स्राव भी होता है, मन्दस्तिमित और अल्पस्रावत्राली सूजन होती है पाक अधिक विलम्ब (देरी) से होता है, और कभी २ शीघ्रभी होजाता है, कीडे पड जाते हैं । सडीहुई दुर्गन्ध आने लगती है, मणिमेढ्र और मुष्क विशीर्ण हो जाते हैं । यह ध्वजभङ्गकी क्लीवताके लक्षण हैं कोई २ आचार्य्य ध्वजभङ्गके ५ भेद कथन करते हैं ॥ ४२–४९ ॥

जरासंभवक्लीवताके लक्षण ।

क्लैब्यं जरासंभवं हि प्रवक्ष्याम्यथ तच्छृणु । जघन्यमध्यप्रवरं वयस्त्रीविधमुच्यते ॥ ५० ॥ अथ प्रवयसां शुक्रं प्रायशः क्षीयते नृणाम् । रसादीनां संक्षयाच्च तथैव वृष्यसेवनात् ॥ ५१ ॥ बलवर्णेन्द्रियाणां च क्रमेणैव परिक्षयात् । परिक्षयादायुषश्चाप्यनाहारात् श्रमात् क्रमात् ॥ ॥ ५२ ॥ जरासम्भवजं क्लैब्यं इत्येतैर्हेतुभिर्नृणाम् । जायते तेन सोऽत्यर्थं क्षीणधातुः सुदुर्बलः ॥ ५३ ॥ विवर्णो विह्वलो दीनः क्षिप्रं व्याधिमथाश्नुते । एतज्जरासंभवं हि चतुर्थं क्षयजं शृणु ॥ ५४ ॥

अर्थ— अब हम वृद्धावस्थासे उत्पन्न हुई क्लीवताके लक्षण कहते हैं;—मनुष्यकी आयुके तीन भेद हैं यथा 'जघन्य' बाल्यावस्था, 'मध्य' यौवन जवानीकी उमर, 'प्रवर' बुढापा, अति वृद्धावस्था होनेके कारणसे बुड्ढे मनुष्योंका शुक्र प्रायः क्षय (क्षीण) होजाता है; क्योंकि रसादि धातु क्रमसे क्षीण होती चली जाती हैं और पुष्टिकारक द्रव्योंका सेवन नहीं करते हैं । इससे पुरुषोंका बल, वर्ण, लावण्यता और इन्द्रियोंका पराक्रम क्रमसे क्षीण होता चला जाता है । आयुके क्षीण होनेसे आहारकी शक्ति न रहनेसे और श्रमसे जरा सम्भव क्लीवता होती है । इससे मनुष्यकी सब धातु, रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा शुक्र ये क्षीण पड़जाती हैं और मनुष्य दुर्बल होजाता है । वह विवर्ण विह्वल, दीन और शीघ्र ही व्याधिग्रस्त होजाता है, यह जरासम्भव क्लीवता है । अब चौथी क्षयजक्लीवताको कथन करता हूँ सो श्रवण करो ॥ ५०–५४ ॥

क्षयजक्लीवताका लक्षण ।

अतिप्रचिन्तनाच्चैव शोकात् क्रोधाद्भयादपि । ईर्ष्योत्कण्ठ्यात्तथोद्वेगात् समाविशति यो नरः ॥ ५५ ॥ कृशो वा सेवते रूक्षमन्नपानमथौषधम् । दुर्बलप्रकृतिश्चैव निराहारो भवेद्यदि ॥ ५६ ॥ अथासात्म्यभोजनाच्चापि हृदये यो व्यवस्थितः । रसः प्रधानधातुर्हि क्षीयेताशु नरस्ततः ॥ ५७ ॥ रक्तादयश्च क्षीयन्ते धातवस्तस्य देहिनः । शुक्रावसानास्तेभ्यो हि शुक्रं धामपरं मतम् ॥ ५८ ॥ चेतसो वातिहर्षेण व्यवायं सेवते तु यः । शुक्रं तु क्षीयते तस्य ततः प्राप्नोति

संक्षयम् ॥ ५९ ॥ घोरां व्याधिमवाप्नोति मरणं वा स ऋच्छति । शुक्रं तस्माद्विशेषेण रक्ष्यमारोग्यमिच्छता । एतन्निदानलिङ्गाभ्यामुक्तं क्लैब्यं चतुर्विधम् ॥ ६० ॥

अर्थ–जो मनुष्य अत्यन्त चिन्ता, शोक, भय, क्रोध, ईर्ष्या, उत्कण्ठा और उद्वेगसे सदा ध्यानावस्थित रहता है, जो कृश मनुष्य सदा रूक्ष अन्नपान और औषध सेवन करता रहता है, जो मनुष्य दुर्बल प्रकृतिका है और उपवास अधिक करता रहता है वा अल्प (थोडा) असात्म्य (प्रकृति) के विरुद्ध भोजन करता है उसका हृदयस्थ प्रधान धातु रस शीघ्रही क्षीण होजाता है। उस मनुष्यके सब, धातु रस, रक्त मांस, मेदा अस्थि, मज्जा, शुक्र पर्य्यन्त क्षणि होजाते हैं और शुक्रही सब धातुओंका तेज स्वरूप है। अथवा जो मनुष्य चित्तकी अत्यन्त हर्षतासे स्त्रीके साथ मैथुनमें प्रवृत्त होता है उसका शुक्र अधिकतासे क्षीण होजाता है और क्षयरोग उत्पन्न होता है अथवा घोर व्याधियोंके होनेके कारणसे वह मृत्युके मुखमें प्रवेश करता है, इसलिये जो पुरुष वा स्त्री आरोग्यताकी इच्छा रखते होवें उनको अपने वीर्य्यकी सावधानीसे रक्षा करनी योग्य है। प्रमाणसे अधिक शौक-मौजके वशीभूत होकर वीर्य्य नाश न करें। शुक्रके आश्रयभूत ही मनुष्यका बल है और बलके आश्रय शरीरका जीवन है। हे शिष्य ! यहाँपर्य्यन्त चारों प्रकारकी क्लीवताका निदान और लक्षण वर्णन कर चुकाहूँ। अब क्लीवताकी असाध्यता कथन करता हूँ ॥ ५९–६० ॥

असाध्यक्लीवताके लक्षण ।

केचित् क्लैब्ये त्वसाध्ये द्वे ध्वजभङ्गक्षयोद्भवे । वदन्ति सेफसश्छेदादूषणोत्पाटनेन वा ॥ ६१ ॥ मातापित्रोर्बीजदोषादशुभैश्च कृतात्मनः । गर्भस्थस्य यदा दोषाः प्राप्य रेतोवहाशिराः ॥ ६२ ॥ शोषयन्त्याशु तन्नाशाद्रेतश्चाप्युपहन्यते । तत्र सम्पूर्णसर्वाङ्गः स भवत्यपुमान् पुमान् ॥ ६३ ॥ एते त्वसाध्या व्याख्याताः सन्निपातसमुच्छ्रयात् । चिकित्सितमतस्तूर्द्ध्वं समासव्यासतः शृणु ॥ ६४ ॥

अर्थ–किसी २ वैद्याचार्यका कथन है कि ध्वजभंग और क्षयज क्लीवता असाध्य होती है और कोई यह कहते हैं कि शेफ (पुरुषेन्द्रिय) में छिद्र होनेसे वा अण्डकोषके फटनेसे जो क्लीवता होती है वह भी असाध्य होती है अन्य क्लीवताओंका असाध्यत्वसे भी इस प्रकार है कि माता, पिताके बीजदोषसे वा अपने पूर्वजन्मके किये अशुभ कर्मोंसे

जब गर्भस्थदोष शुक्रवाही स्रोतोंमें पहुँचकर उन्हें शुष्क कर देता है और उनके शुष्क होनेसे शुक्र भी नष्ट होजाता है ऐसे पुरुषके सम्पूर्ण अंगोपाङ्ग सहित जन्म लेनेपर ही क्लीवता होती है । यह क्लीवता सन्निपातकी उदीर्णताके कारण दुश्चिकित्स्य असाध्य होती है अब यहाँसे संक्षेप और विस्तार दोनों रीतिसे क्लीवता तथा ध्वजभंगकी चिकित्साका वर्णन करेंगे सो हे शिष्य !, तुम श्रवण करो ॥ ६१–६४ ॥

क्लैब्यचिकित्सा ।

शुक्रदोषेषु निर्दिष्टं भेषजं यन्मयानघ । क्लैब्योपशान्तये कुर्य्यात् क्षीणक्षतहितं च यत् ॥ ६५॥ बस्तयः क्षीरसर्पींषि वृष्ययोगाश्च ये मताः । रसायनप्रयोगाश्च सर्वानेतान् प्रयोजयेत् ॥ ६६ ॥ समीक्ष्य देहदोषाग्नि बलभेषजकालवित् ॥ व्यवायहेतुजं क्लैब्यं यत्स्याद्धेतुविपर्ययात्॥६७॥ दैवव्यपाश्रयश्चैव भेषजैश्चाभिचारजम् । समासेनैतदुद्दिष्टं भेषजं क्लैब्यशान्तये ॥ ६८ ॥ विस्तरेण प्रवक्ष्यामि क्लैब्यानां भेषजं पुनः ॥ ६९ ॥

अर्थ–हे अनघ ! शुक्रदोषके नष्ट करनेके लिये जो जो चिकित्सा हमने कथन की हैं तथा क्षीणक्षतमें जो जो चिकित्सा प्रयोग उपयोगी हैं वे सब क्लीवताको नष्ट करनेमें समर्थ हैं । शरीर दोष, अग्निबल, औषधकाल इनका विचार करके बस्ति दूध, घृत वृष्य योग और रसायनक प्रयोग करने चाहिये, व्यवायहेतुज (विपरीत हेतुज .) से उत्पन्न और अभिशापज क्लीवताको दैवव्यपाश्रय औषधियोंसे दूर करनेका प्रयत्न करे क्लीवता दूर करनेके ये संक्षिप्त उपाय वर्णन किये गये हैं । अब इसकी चिकित्साका सविस्तार वर्णन किया जाता है ॥ ६५–६९ ॥

बीजोपघातक्लीवकी चिकित्सा ।

सुस्विन्नस्निग्धगात्रस्य स्नेहयुक्तं विरेचनम् । प्रदद्यान्मतिमान् वैद्यस्ततस्तमनुवासयेत् ॥ ७० ॥ पलाशैरण्डमुस्ताद्यैः पश्चादास्थापयेत्ततः । वाजीकरणयोगाश्च पूर्वं ये समुदाहृताः । भिषजा ते प्रयोज्याः स्युः क्लैब्ये बीजोपघातजे ॥ ७१ ॥

अर्थ–क्लीवरोगीको अच्छीतरहसे अभ्यक्त करके पसीने देवे, फिर स्नेहयुक्त विरेचन देवे, इसके पीछे अनुवासन बस्ति देवे, इसके अनन्तर ढाक, अरंड और मोथाके क्वाथ आदिसे आस्थापन देवे और प्रथम जो वाजीकरण प्रयोग वर्णन करदिये गये हैं वह सब इस बीजोपघात क्लीवतामें हित हैं ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अथ पंचमाध्यायः ।

प्रदररोग ।

यह प्रदरकी व्याधि सौमेंसे अस्सी स्त्रियोंको अवश्य होती है, ऐसी स्त्रियाँ बहुत कम निकलेंगी कि युवावस्थामें सफेद पानी पडनेकी शिकायत न करती होवें । स्त्रियोंकी समझमें यह व्याधि साधारण है, परन्तु कालान्तरमें यह व्याधि बढकर वन्ध्या-दोष स्थापनका कारण हो जाती है, तीसरे दर्जेपर इसकी विशेष व्यवस्था खुलासा करके लिखी जायेगी ॥

चरकसे प्रदर वर्णन ।

यः पूर्वमुक्तः प्रदरः शृणु हेत्वादिभिस्तु तम् । यात्यर्थं सेवते नारी लवणाम्लगुरूणि च ॥ १ ॥ कटून्यथ विदाहीति स्निग्धानि पिशितानि च । ग्राम्यौदकानि सेव्यानि कृसरं पायसं दधि ॥ २ ॥ शुक्तमस्तुसुरादीनि भजन्त्याः कुपितोऽनिलः । रक्तं प्रमाणमुत्क्रम्य गर्भाशयगताः शिराः ॥ ३ ॥ रजोवहाः समाश्रित्य रक्तमादाय तद्रजः । यस्माद्विवर्द्धयत्याशु रक्तपित्तं समारुतम् ॥ ४ ॥ तस्मादसृग्दरं प्राहुरेतत्तन्त्रविशारदाः । रजः प्रदीर्यते यस्मात् प्रदरस्तेन स स्मृतः ॥ ५ ॥

अर्थ--जो प्रथम प्रदर रोगका वर्णन किया गया है अब उसके हेतु आदिका वर्णन करते हैं । जो स्त्री अत्यन्त खेद, कष्ट, पानेवाली पारिश्रम करनेवाली तथा अत्यन्त नमकीन पदार्थ खटाई, तीक्ष्णपदार्थका सेवन करती है । अथवा कटु, विदाही, स्निग्ध तथा ग्राम्य और औदक पशुओंका मांस सेवन करती है, व खिचडी, खीर, दही, शुक्त सिरका और सुरा (शराब) आदिका सेवन करती हैं उनकी वायु कुपित होकर रक्तको प्रमाणसे अधिक निकालने लगती है । उस समय रजोबाही शिराओंमें वायु रक्तके साथ पहुँचकर रजको बढा देती है । वैद्यकशास्त्रमें इस वायु संसृष्ट रक्तपित्तको रक्तप्रदर कहते हैं । रजके प्रदीर्ण होनेसे इसे प्रदर कहते हैं ॥ १-५ ॥ ऊपर जो कारण कथन किया है वह चरक संहितासे उद्धृत है, परन्तु भावमिश्र तथा माधवमिश्र नीचे लिखे कारण कथन करते हैं कुछ थोडा अन्तर चरकसे आता है ।

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णागर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च । यानाध्वशोकादतिकर्षणाच्च भाराभिघाताच्छयनाद्दिवा च । तं श्लेष्मपित्तानिलसन्निपातैश्चतुःप्रकारं प्रवदन्ति वृद्धाः ॥ १ ॥

अर्थ—विरुद्ध आहार जैसे (क्षीर मत्स्यादि खीरा खिचडी) एक साथ संयोग विरुद्ध खाना । मद्यपान, अध्यसन (भोजनके ऊपर भोजन अजीर्ण, गर्भपात, अति मैथुन, अतिगमन मार्ग चलना) अति शोक उपवासादि करके शरीरको कृष करना भारी वस्तु शिरपर वा कंधेपर रखकर चलनेसे काष्ठ (लकडी) आदिके लगनेसे, दिनमें शयन करनेसे इन कारणोंसे कफ पित्त वायु और तीनों दोषोंके मिलनेसे सन्निपात इन भेदोंसे वृद्ध वैद्योंने चार प्रकारका प्रदर रोग कहा है ॥ १ ॥

चरकसे प्रदरके भेद तथा लक्षण वर्णन ।

सामान्यतः समुद्दिष्टं कारणं लिङ्गमेव च । चतुर्विधं व्यासतस्तु वाताद्यैः सन्निपाततः ॥ १ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि हेत्वाकृतिभिषग्जितैः ॥ रूक्षादिभिर्मारुतस्तु रक्तमादाय पूर्ववत् ॥ २ ॥ कुपितः प्रदरं कुर्याल्लिङ्गं तस्यावधारयेत् । फेनिलं तनुरूक्षं च श्यावं चारुणमेव च ॥ ३ ॥ किंशुकोदकसङ्काशं सरुजं वाथ नीरुजम् । कटीवंक्षणहृत्पार्श्वपृष्ठश्रोणिषु मारुतः ॥ ४ ॥ करोति वेदनां तीव्रामेतद्वातात्मकं विदुः । अम्लोष्णलवणक्षारैः पित्तं प्रकुपितं यदा ॥ ५ ॥ पूर्ववत् प्रदरं कुर्याल्लक्षणं तत्कृतं शृणु । सनीलमथवा पीतमत्युष्णामसितं तथा ॥ ६ ॥ नितान्तरक्तं स्रवति मुहुर्मुहुरथार्तिमत् । विदाहरागतृण्मोहज्वरभ्रमसमायुतम् ॥ ७ ॥ असृग्दरं पैत्तिकं तु श्लैष्मिकं तु प्रवक्ष्यते । गुर्वादिभिर्हेतुभिश्च पूर्ववत् कुपितः कफः ॥ ८ ॥ प्रदरं कुरुते तस्य लक्षणं तत्त्वतः शृणु ॥ पिच्छिलं पाण्डुवर्णं च गुरु स्निग्धं च शीतलम् ॥ ९ ॥ स्रवत्यसृक् कफेनेदक् तथा मर्मरुजाकरम् । छर्द्यरोचकहृल्लासश्वासकाससमन्वितम् ॥ १० ॥ वक्ष्यते क्षीरदोषाणां सामान्यमिह कारणम् । यत्तदेव त्रिदोषस्य कारणं प्रदरस्य तु ॥ ११ ॥ त्रिलिङ्गसंयुतं विद्यान्नैकावस्थमसृग्दरम् ॥ १२ ॥

अर्थ--प्रदरके कारण और लक्षण संक्षेपसे कहे गये हैं । यह वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातिक चार प्रकारके हैं अब इनके हेतु लक्षण और चिकित्साका विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है । वातज प्रदरके हेतु पूर्वोक्त रूक्षादि द्रव्योंके अत्यन्त सेवनसे कुपित हुई वायु रक्तको ग्रहण करके प्रदर उत्पन्न करती है । अब

इसके लक्षणोंको सुनो (वातज प्रदरके लक्षण) वातज प्रदरमें रक्त झागदार, पतला रूखा, श्यामवर्ण, अरुण और टेसूके फूलोंके जलके समान होता है । इसमें वेदना होती है और नहीं भी होती । इस रोगमें वायुके कारण कमर वंक्षण, हृदय, पशली, पीठ और श्रोणीमें तीव्र वेदना होने लगती है । पित्तज प्रदरके हेतु खट्टे, गर्म, नमकीन और क्षारादि पदार्थोंके अति सेवनसे पित्तप्रकुपित होकर जब पूर्ववत् प्रदर रोगको उत्पन्न करता है तब नीचे लिखे हुए लक्षण होते हैं । (पित्तज प्रदरके लक्षण)–पित्तज प्रदरमें नीला, पीला, अत्यन्त उष्ण, काला और वेदनायुक्त बारबार बहुतसा रक्त निकलता है । इसमें दाह राग तृषा मोह ज्वर और भ्रम ये उपद्रव होते हैं, ये पित्तज प्रदरके लक्षण हैं, अब कफज प्रदरका वर्णन किया जाता है–कफज प्रदरके हेतु गुरु (भारी) पदार्थोंके सेवन करनेसे कुपित हुआ कफ प्रदर रोगको उत्पन्न करता है; अब इसक लक्षणोंका वर्णन करते हैं (कफज प्रदरके लक्षण)–कफज प्रदरमें गिलगिला पाण्डु वर्ण भारी स्निग्ध शीतल और झागदार रक्त निकलता है इससे मर्मस्थानोंमें वेदना (पीडा) होती है । तथा वमन अरुचि हृल्लास, श्वास, और खाँसी, ये भी उसमें होते हैं ॥ सान्निपातिक प्रदरके हेतु स्तन्यदोपके जो सामान्य कारण कहे जाँयगे वोही सान्निपातिक प्रदरके कारण हैं । (सान्निपातिक प्रदरके लक्षण)–सान्निपातिक प्रदरमें तीनों दोपोंके मिलित लक्षण होते हैं, इसकी एकसी अवस्था नहीं रहतीहै ॥ १–१२ ॥

भावप्रकाश वंगसेनादिने सान्निपातिक प्रदरकी चिकित्साको निषेध लिखा है ।

सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णं मज्जप्रकाशं कुणपं त्रिदोषम् । तच्चाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञा न तत्र कुर्वीत भिषक् चिकित्साम् ॥ १३ ॥ तस्यातिवृत्तौ दौर्बल्यं श्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा । दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तंद्रारोगाश्च वातजाः ॥ १४ ॥ शश्वत् स्रवंती सा स्रावं तृष्णादाहज्वरान्विताम् । दुर्बलां क्षीणरक्तां च तामसाध्यं विवर्जयेत् ॥ १५ ॥ भा. प्र. ।

अर्थ–जिस प्रदरका रंग शहत, घृत, हरताल और मज्जा (चर्बी) के समान होय तथा मुर्देकीसी दुर्गन्ध आती होय ऐसा त्रिदोपजन्य प्रदर असाध्य है । इसकी वैद्य चिकित्सा न करे । रक्तकी अति प्रवृत्तिके उपद्रव प्रदरके अत्यन्त गिरनेसे दुर्बलता, भ्रम, मूर्च्छा, मद, तृषा, दाह, प्रलाप, पाण्डु, तन्द्रा और वातके रोग (आक्षेपक) आदि होते हैं । (असाध्य प्रदरवाली स्त्रीके लक्षण)–जिस स्त्रीको प्रदरका स्राव निरन्तर हुआ करे तृषा, दाह और ज्वर होय । अथवा रुधिरके अतिस्रावसे

स्त्री दुर्वल होगई होय जिसका अधिकांश रुधिर क्षीण होगया होय ऐसी स्त्री असाध्य है उसकी चिकित्सा न करनी चाहिये ॥ १३–१५ ॥

चरकसे दुश्चिकित्स्यस्त्री ।

नारी त्वतिपरिक्लिष्टा यदा प्रक्षीणलोहिता । सर्वहेतुसमाचारादतिवृद्ध-स्तथानिलः ॥ १६ ॥ रक्तमार्गेण सृजति प्रत्यनीकगुणं कफम् । दुर्गन्धं पिच्छिलं पीतं विदग्धं पित्ततेजसा ॥ १७ ॥ वसां मेदश्च वृद्धिसमुपा-दाय वेगवान् । सृजत्यपत्यमार्गेण सर्पिर्मज्जावसोपमम् ॥ १८ ॥

अर्थ–जव स्त्री अत्यन्त रक्तस्रावके परिक्लिष्ट और अत्यन्त क्षीणरक्त होजाती है उस समय तीनों दोष अपना प्रभाव जमा लेते हैं । इनमेंसे वायु अत्यन्त कुपित होकर रक्त-मार्ग द्वारा विपरीत गुण कफको निकालती है उस समय पित्तके तेजके कारण रक्त दुर्गन्धित पिच्छिल, पीला और विदग्ध होजाता है तव बलवान् वायु शरीरकी सम्पूर्ण वसा और मेदको ग्रहण करके योनिद्वारा घृत मज्जा और चर्बीके सदृश निकालती रहती है ॥ १६–१८ ॥

विशुद्ध ऋतुके लक्षण ।

मासान्निष्पन्नदाहार्तिपञ्चरात्रानुबन्धि च ॥ नैवातिबहुनात्यल्पमार्त्तवं शुद्ध-मादिशेत् ॥ १९ ॥ गुञ्जाफलसमानं च पद्मालक्तकसन्निभम् । इन्द्रगो-पकसङ्काशमार्त्तवं शुद्धमेव तत् ॥ २० ॥

अर्थ–जो स्त्री प्रत्येकमास नियत समय पर ऋतुमती होती है और ऋतुकालमें दाह वा यातना कुछ नहीं होती और रजोदर्शन पाँच रात्रितक रहता है और रुधिर भी न बहुत अधिक न बहुत थोडा निकलता है उसे शुद्ध ऋतु कहते हैं । विशुद्ध आर्त्त-वके लक्षण जो रुधिर गुञ्जाफल (चिरमिठी) लाल कमलके पुष्प महावर वा वीरव-हूटीके रंगके समान लाल होता है वह शुद्ध आर्त्तव है ॥ १९ ॥ २० ॥

चरकसे प्रदरकी चिकित्साका अनुक्रम ।

योनीनां वातलाद्यानां यदुक्तमेहं भेषजम् । चतुर्णां प्रदराणां च तत् सर्वं कारयेद्भिषक् ॥ १ ॥ रक्तातिसारिणां चैव तथा लोहितपित्तिनाम् । रक्तार्शसां च यत्प्रोक्तं भेषजं तच्च कारयेत् ॥ २ ॥

अर्थ–वातलादि योनियोंकी जो २ चिकित्सा कथन की गई हैं वही चिकित्सा चारों प्रकारके प्रदरोंमें करना श्रेष्ठ है । रक्तातिसार रक्तपित्त रक्तार्श (खूनीववासीर)

में जो जो चिकित्सा तथा स्तम्भन प्रयोग कथन किये हैं वे सब प्रयोग प्रदरमें उपचार करना योग्य हैं ॥ १ ॥ २ ॥

रक्तयोन्या प्रसृग्वर्णैरनुबद्धं समीक्ष्य च । ततः कुर्याद्यथादोषं रक्तस्थापनमौषधम् ॥ ३ ॥ तिलचूर्णं दधिघृतफाणितं शौकरी वसा । क्षौद्रेण संयुतं पेयं वातासृग्दरनाशनम् ॥४॥ वाराहस्य रसो मेध्यः सकौलत्थोऽनिलाधिके । शर्करातैलयष्ट्याह्व नागरैर्वा युतं दधिः ॥ ५॥ पयस्योत्पलशालूकबिसकालीयकम्बुजान् । सपयः शर्करां क्षौद्रं पैत्तिकेऽसृग्दरे पिबेत् ॥ ६ ॥

अर्थ—जिस योनिमेंसे रक्त वहता होय उसमें रक्तकी रंगत देखकर दोषानुसार रक्तके रोकनेको औषधोपचार करे । वातजरक्त प्रदरमें तिलका चूर्ण, दही, घृत, राव, (पतली जातिका रवेदार गुड होताहै) और वाराहकी चर्बी इनको मधुके साथ सेवन करनेसे वातजरक्त प्रदर नष्ट होता है । अथवा कुल्थीके क्वाथमें सिद्ध किया हुआ वाराहका मांस रस देवे अथवा शक्कर, तैल, मुलहटी, सोंठ इनके साथमें दधि देवे । पैत्तिक रक्तप्रदरमें क्षीरकाकोली नीलकमलशालूक, कमलनाल, कालीयक, पद्मकमल इन सबको समान भाग लेकर कल्क बनावे । दुग्ध, खाँड और मधुके साथ सेवन करनेसे पैत्तिक रक्त प्रदर नष्ट होताहै ॥ ३—६ ॥

चरकसे पुष्यानुग चूर्ण ।

पाठाजम्बाम्रयोर्मध्यं शिलाभेदं रसाञ्जनम् । अम्बष्ठकीं मोचरसं समङ्गां वत्सकत्वचम् ॥ १ ॥ बाह्लीकातिविषे बिल्वं मुस्तं लोध्रं सगैरिकम् । कट्फलं मरिचं शुण्ठीं मृद्वीकां रक्तचन्दनम् ॥ २ ॥ कट्वङ्गवत्सकानन्तां धातकीं मधुकार्जुनम् । पुष्येणोद्धततुल्यानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ३॥ तानि क्षौद्रेण संयोज्य पिबेन्ना तण्डुलाम्बुना । अर्शः सुचातिसारेषु रक्तं यच्चोपवेश्यते ॥ ४ ॥ दोषागन्तुकृताये च बालानां तांश्च नाशयेत् । योनिदोषं रजो दुष्टं श्वेतं नीलं सपीतकम् ॥ ५ ॥ स्त्रीणां स्यावारुणं यच्च प्रसह्य विनिवर्त्तयेत् । चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम् ॥ ६ ॥

अर्थ–पाठा जामुनकी गुठली, आमकी गुठली, पाषाणभेद, रसांजन, पाढ, मोचरस, लज्जालु, कुडाकी छाल, हिंगुपत्री, अतीस, वेलगिरी, नागरमोथा, लोध, गेरू, कायफल, काली मिरच, सोंठ, दाख, रक्तचंदन, श्योनाक, इन्द्रजौ, अनन्तमूल धायके फूल, मुलहटी, अर्जुनवृक्षकी छाल इन सबको पुष्य नक्षत्रमें इकट्ठे करके समान भाग मिलावे और चूर्ण बनालेवे । इस चूर्णमें शहत मिलाकर तंदुलके जलके साथ सेवन करे इस चूर्णके सेवनसे अर्श अतीसार जमाहुआ रक्त बालकोंके आगन्तुक दोष योनिदोष रजोदोष रक्तदोष सफेद नीलापीला श्याव वर्ण और अरुण प्रदर अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं । महर्षि आत्रेयसे प्रशंसित इस चूर्णका नाम पुष्यानुग है ॥ १–६ ॥ किसी २ ग्रन्थमें कमलकेशर और करकापाठ तथा लज्जालुसे मंजिष्ठका ग्रहण किया है ॥

असृग्दरः प्राणहरः स्त्रीणां सर्वत्र कीर्त्तितः ।
तस्मात्तस्य प्रशमने परं यत्नं समाचरेत् ॥ ७ ॥

अर्थ–स्त्रियोंका प्रदररोग सर्वथा प्राणनाशक कथन किया है, इसलिये उसके शमन करनेके अर्थ विशेष प्रयत्न करना चाहिये ॥ ७ ॥

पद्मकोत्पलबीजानि त्रापुसानि शतावरी । विदारी चेक्षुमूलं च पिष्ट्वा धौतघृतायुतम् । योन्यां शिरसि गात्रे च प्रदेहोऽसृग्दरापहः ॥ ८ ॥

अर्थ–पद्माख कमलगट्टाकी मिंगी सब्जी निकालकर खीरे ककडीके बीजकी मिंगी शतावरी, क्षीरविदारीकन्द, ईखकी जड इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर धुलेहुए घृतमे मिलाकर योनिमार्ग और शिरमें तथा सर्वाङ्ग शरीरमें मालिश करनेसे प्रदररोग नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

मुद्गपर्णीविपक्वेन तैलेन पिचुधारणम् । कर्त्तव्यं रक्तनाशाय मार्दवाय सुखाय च ॥ ९ ॥ दध्ना सौवर्चला जाजी मधुकं नीलमुत्पलम् । पिबेत् क्षौद्रयुतं नारी वातासृग्दरपीडिता ॥ १० ॥

अर्थ–मुद्गपर्णी (मूंगपर्णी) के कल्कमें तिलके तैलको पकाकर उसमें रुईका फोहा भिगोकर योनिमार्गमें रखनेसे रक्तस्राव बन्द होता है और प्रदरवाली स्त्रीको मृदुता तथा सुखोत्पन्न होता है ॥ ९ ॥ काला नमक, जीरा, मुलहटी, नीलाकमल, शहत इन सबको समान भाग लेकर दहीमें मिलाकर सेवन करनेसे वातजन्य प्रदर रोग नष्ट होता है ॥ १० ॥

वाराहस्य रसो मेध्यः सकौलित्थो निशाधिकः । वातासृग्दरशान्त्यर्थं पिबेद्दध्ना वराङ्गना ॥ ११ ॥

अर्थ—वाराहका मांसरस, वकरेका मांसरस, कुलथीका रस (काढा) इनमें दही और निशा कहिये हल्दीका चूर्ण अधिकतर डाल कर सेवन करनेसे वातजन्य प्रदर रोग नष्ट होताहै ॥ ११ ॥

पित्तासृग्दरशान्त्यर्थं पिवेदिक्षुरसेन वा । पिवेदैणेयकं रक्तं शर्करामधुसंयुतम् ॥ १२ ॥ वासकस्वरसं पैत्ते गुडूच्या रसमेव वा ॥ १३ ॥

अर्थ—पित्तज प्रदरकी निवृत्तिके लिये ईखका रस पान करे । हरिणके रक्तमें मिश्री और मधु मिलाकर पान करे । अथवा अडूसाके स्वरसमें मधु मिलाकर पान करनेसे एवं गिलोयके स्वरसमें मधु मिलाकर पान करनेसे, पित्तजनित प्रदर रोग शान्त होता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

चन्दनोशीरपतङ्गमधुकं नीलमुत्पलम् । त्रपुसैर्वारुबीजानि धातकी कदलीफलम् ॥ १४ ॥ कोललाक्षावटारोहपद्मकं पद्मकेशरम् । एतान्कल्कान्मधुयुतान्पाययेत्तंडुलांबुना ॥ १५ ॥ त्र्यहात्प्रशमयेदेतद्योषितां पैत्तिकं रजः ॥ १६ ॥

अर्थ—चन्दन, खस, पतंग, मुलहटी, नीलाकमल, खीरा ककडी और ककडीके वीज, धायके फूल, केलेकी फली, सूखे हुए बेर, लाख, वडवृक्षकी डालीके अग्र भागके अंकुर, पद्माख, कमलकेशर इन सबको समान भाग लेकर इनका कल्क बनाकर शहत और चावलके जलके साथ पान करनेसे तीन दिवसमें स्त्रियोंका पित्तजन्य प्रदर रोग नष्ट हो जाता है ॥ १४–१६ ॥

कपित्थवेणुपत्रं च सममेकत्र पेषयेत् । मधुना सह दातव्यं तीव्रप्रदरनाशनम् ॥ १७ ॥ अशोककल्ककाथं शृतं दुग्धं सुशीतलम् । यथाबलं पिवेत्प्रातस्तीव्रासृग्दरनाशनम् ॥ १८ ॥ क्षौद्रयुक्तं फलरसं काकोदूम्बरजं पिवेत् । असृग्दरविनाशाय सशर्करापयोऽन्नभुक् ॥ ॥ १९ ॥ मधुकं त्रिफला लोध्रमुस्तं सौराष्ट्रिकां मधु । मद्यैर्निम्बगुडूच्यौ तु कफजेऽसृग्दरे पिवेत् ॥ २० ॥ रोहितकान्मूलकल्कं पाण्डुरेऽसृग्दरे पिवेत् । जलेनामलकीबीजकल्कं वा ससितामधु ॥ २१ ॥ पिवेद्दिनत्रयेणैव श्वेतप्रदरनाशनम् ॥ २२ ॥ काकजङ्घकमूलं वा मूलं कार्पासमेव वा । पाण्डुप्रदरनाशाय पिवेत्तण्डुलवारिणा ॥ २३ ॥ तक्राशन-

रता सम्यक् संपिबेन्नागकेशरम् । त्र्यहं तक्रेण संपीड्य श्वेतप्रदर-शान्तये ॥ २४ ॥ फलत्रिकं दारुवचासवासालाजासदूर्वाकलशी समङ्गा । क्षौद्रान्वितं क्वाथमिदं सुशीतं सर्वात्मके पेयमसृग्दरे हि ॥२५॥

अर्थ—कैथवृक्षके पत्र और बांसके पत्र इन दोनोंको एकत्र पीसकर शहतके साथ मिलाकर सेवन करनेसे उग्र प्रदर शान्त होता है ॥ १७ ॥ अशोकवृक्षकी छालको दूधमें पकावे, जब वह अपने आप शीतल होजाय तब बलानुसार और प्रकृतिका विचार करके प्रातःकाल सेवन करे तो तीव्र प्रदररोग शान्त होता है ॥ १८ ॥ कठूमर वृक्षके फलके रसको शहतमें मिलाकर सेवन करे और इसके ऊपर दूध, चावलका पथ्य सेवन करे तो शीघ्र प्रदर रोग शान्त होता है ॥ १९ ॥ मुलहटी, त्रिफला, लोध, ऊंटकटेराकी जड, सोरठी मृत्तिका, शहत, मद्य (सराब) नीमकी जडकी छाल, गिलोय इनको समान भाग लेकर कफकी अधिकतावाले प्रदरमें पान करे ॥ ॥ २० ॥ रोहित (रोहिणवृक्ष)की जडकी छालका कल्क बनाकर श्वेत प्रदर रोगमें पान करे ॥ २१ ॥ आमलेके बीजोंका कल्क बनाकर मिश्री और शहतके साथ मिलाकर तीन दिवस पान करे तो श्वेत प्रदर नष्ट होताहै ॥ २२ ॥ काकजंघा (मसी) की जडको अथवा कपासकी जडको चावलोंके धोवनके जलके साथ पान करनेसे पाण्डुप्रदररोग नष्ट हो जाता है ॥ २३ ॥ तक्र (छाछ) के साथ नागकेशर तीन दिन सेवन करनेसे तथा तक्रके साथ भोजन करनेसे श्वेतप्रदर रोग नष्ट होता है ॥ २४ ॥ त्रिफला, देवदारु, वच, अडूसा, धानकी खील, सफेद दूर्वा, पृष्टिपर्णी, लज्जावन्ती (छुईमुई) इन सबको समान भाग लेकर क्वाथ बनावे और शीतल करके शहत मिलाकर पीनेसे सब प्रकारका प्रदररोग नष्ट होता है ॥ २५ ॥

आखोः पुरीषं पयसा निपेव्य वह्नेर्बलादेकमहर्द्वयं वा । स्त्रियो महा-शोणितवेगनद्याः क्षणेन पारं परमाप्नुवन्ति ॥ २६ ॥ दग्ध्वा मूषकविष्ठां तु लोहिते प्रदरे पिबेत् ॥ २७ ॥ लिप्ते ललाटपट्टे बलतररसाञ्जनेत्र-कल्केन । प्रदरः शाम्यति नित्यं विचित्रिताद्रव्यशक्तिरियम् ॥ २८ ॥ मधुना तार्क्ष्यसंयुक्तं मूलं स्यात्तण्डुलीयकम् । तण्डुलाम्बुयुतं पानात्सर्व-प्रदरनाशनम् ॥ २९ ॥ कुशमूलं समाहृत्य पाययेत्तंडुलांबुना । एतत् पीत्वा त्र्यहं नारी प्रदरात्परिमुच्यते ॥ ३० ॥ प्रदरं शमयति नार्याः क्वथितः सलिलेन वा । पयसा मूलं वास्तुकाञ्जयोः पीतं दिवसत्रयेणैव

॥ ३१ ॥ भूम्यामलकबीजं तु पीतं तण्डुलवारिणा। दिनद्वयत्रयेणैव स्त्रीरोगं नाशयेद्ध्रुवम्। मेढ्रगं रुधिरस्रावं रक्तातीसारमुल्बणम् ॥३२॥ प्रदरं हन्ति बलाया मूलं दुग्धेन समधुना पीतम्। कुशवाट्यालकमूलं तण्डुलसलिलेन रक्ताख्यम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—मूसेकी लेंडी (विष्ठा) को दुग्धके साथ अग्निके बलानुसार एक वा दो दिवस पर्यन्त पीवे तो नदीके प्रवाहके समान बहता हुआ भी रक्त शीघ्र क्षणभरमें बन्द हो जाता है ॥ २६ ॥ मूसेकी विष्ठाको जला, भस्म करके दूध वा जलके साथ पान करनेसे रक्तप्रदर नष्ट होता है ॥ २७ ॥ खंज पक्षीके नेत्रका कल्क करके ललाट पर लेप करनेसे प्रदर रोग अवश्य नष्ट हो जाता है, इस द्रव्यमें यह विचित्र शक्ति है ॥ २८ ॥ रसोंत और चौलाईकी जड इन दोनोंको समान भाग एकत्र करके पीसकर कल्क बनावे और शहत तथा चावलके धोये हुए जलमें मिलाकर पान करनेसे सर्वप्रकारके प्रदर रोग शान्त होते हैं ॥ २९ ॥ कुशाकी जडको उखाडकर बारीक पीसकर और उसी जलमें छानकर तीन दिन पीनेसे प्रदर रोग नष्ट हो जाता है ॥ ३० ॥ बथुआ शाककी जड अथवा कमलकी जडको जलमें पकाकर अथवा क्षीर-पाककी विधिसे दूधमें पकाकर तीन दिन पर्यन्त पान करनेसे प्रदर रोग नष्ट हो जाता है ॥ ३१ ॥ भूमि आमलेके बीजोंको चावलोंके जलके साथ पीसकर पान करनेसे दो वा तीन दिवसमें प्रदर रोग नष्ट होता है। अथवा लिंगेन्द्रिय रक्तस्राव होना तथा उल्बण अतीसार यह सब नष्ट होता है ॥ ३२ ॥ खरैटीकी जडको दूधमें पीसकर शहत मिलाकर पान करनेसे प्रदर रोग नष्ट होता है। तथा कुशाकी जड, खरैटीकी जड दोनोंको समान भाग लेकर चावलोंके जलके साथ पीसकर पीनेसे रक्त प्रदर नष्ट होता है ॥ ३३ ॥

सर्वप्रदर नाशकअशोकघृत।

अशोकवल्कलप्रस्थं तोयाढकविपाचितम्। चतुर्भागावशिष्टेन घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १ ॥ तण्डुलाम्बु अजाक्षीरं घृततुल्यं प्रदापयेत्। जीवकस्य रसश्चापि केशराजोद्भवस्तथा ॥ २ ॥ जीवनीयैः प्रियालैश्च परुषैः सरसाञ्जनैः। यष्ट्याह्वशोकमूलं च मृद्वीका च शतावरी ॥ ३ ॥ तण्डुलीयकमूलञ्च कल्कैरेभिः पलार्द्धिकैः। शर्करायाः पलान्यष्टौ गर्भं दत्वा सुचूर्णितम् ॥४॥ पुष्ययोगेन तत्सर्पिः शनैर्मृद्वग्निना पचेत्। पीतमेतद्घृतं हन्यात्सर्वदोषसमुद्भवम् ॥ ५ ॥ श्वेतनीलं तथा कृष्णं

प्रदरं हन्ति दुस्तरम् । कुक्षिशूलं कटिशूलं योनिशूलं च सर्वगम् ॥६॥ मन्दाग्निमरुचिं पाण्डुं कृशत्वं श्वासकासकम् । आयुः पुष्टिकरं धन्यं बलवर्णप्रसादनम् । देयमेतद्वरं सर्पिर्विष्णुना परिकीर्तितम् ॥ ७ ॥

अर्थ—अशोक वृक्षकी उत्तम त्वचा (छाल) लेकर कुचल डाले और १ प्रस्थ (२ सेर) तोलकर १ आढक (८ सेर) जलमें रात्रिको भिगो देवे और प्रातःकाल मन्दाग्निसे पकावे, जब चतुर्थांश २ सेर जल अवशेष रहे उस समय अग्निपरसे उतार कर छान लेवे। फिर इस क्वाथमें १ प्रस्थ घृत, एक प्रस्थ चावलोंका जल, १ प्रस्थ बकरीका दुग्ध, १ प्रस्थ जीवक-कन्दका रस, १ प्रस्थ काले भांगरेका रस कल्कके लिये जीवनीयगणके औषध, चिरौंजी, फालसा, रसौत. मुलहटी, अशोक वृक्षकी जडकी छाल, दाख, शतावरी चौलाईकी जड प्रत्येक औषध अर्द्ध पल (दो तोला) इन सबको बकरीके दुग्ध या चावलके जलके साथ पीसकर कल्क (पीठिके माफिक बनालेवे, मिश्री (खांड) ३२ तोला मिलाकर घृतपाककी विधिसे पुष्य नक्षत्रमें पकावे । इस घृतको पान करनेसे सर्व दोषजनित प्रदर, श्वेत-प्रदर, नीलप्रदर, कृष्णप्रदर, दुस्तरप्रदर, कुक्षिशूल, कटिशूल, योनिशूल, सर्वांगशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डुरोग, कृशता, श्वास, कास ये सब रोग नष्ट होते हैं । आयु-प्रद, पुष्टिकारक धन्यवर्ण बलको देनेवाला प्रसन्न कर्त्ता है, इस घृतको विष्णु भगवान्‌ने निर्माण किया है योनिव्याध्य रोगमें बृहत् कल्याणघृत कथन किया है, वह भी प्रदर रोगको अति हितकारी है ॥ १–७ ॥

सर्वप्रदर निवारक चन्दनादि चूर्ण ।

चन्दनं वरुणं लोध्रमुशीरं पद्मकेशरम् । नागपुष्पं च बिल्वं च भद्रमुस्तकशर्करा ॥ १ ॥ ह्रीबेरं चैव पाठा च कुटजस्य फलं त्वचम् । शृंगवेरं सातिविषा धातकी सरसांजनम् ॥ २ ॥ आम्रास्थिजम्बूसारास्थि तथा मोचरसोऽपि च । नीलोत्पलं समंगा च सूक्ष्मैला दाडिमत्वचम् ॥ ३ ॥ चतुर्विंशतिमेहानि समभागानि कारयेत् । तण्डुलोदकसंयुक्तं मधुना सह योजयेत् ॥ ४ ॥ योगं लोहितपित्तानामर्शसां ज्वरिणां तथा ॥ मूर्च्छामदोषसृष्टानां तृषार्त्तानां प्रदापयेत् ॥ ५ ॥ अतीसारे तथा छर्द्यां स्त्रीणां च रक्तसंग्रहे । प्रच्युतानां च गर्भाणां स्थापनं परमुच्यते । अश्विभ्यां सम्मतो योगो रक्तपित्तनिबर्हणः ॥ ६ ॥

अर्थ-चन्दन, वरुण (वरना वृक्षकी छाल) लोध, खस, कमलकेशर, नागकशर वेलगिरी, नागरमोथा, चित्रक सुगन्धवाला (कालबाला) पाढ, कुडाकी छाल, इन्द्रजौ, अतीस, धायके फूल, रसौंत, आमकी गुठली, जामनकी गुठली, मोचरस, नीलकमल मजीठ, छोटी इलायची, अनारके फलकी छाल ये सब औषधियां समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण वनालेवे और चावलोंके धोवनके जलके साथ शहत मिलाकर आधा तोला चूर्ण लेकर ऐसी ही दो वा तीन मात्रा दिवसमें सेवन करे तो रक्तपित्त ववासीर ज्वर, मूर्छा, आमदोष, तृषा, अतीसार, वमन और स्त्रियोंके रुधिरके विकार नष्ट होते हैं। यह प्रयोग गर्भस्राव वा गर्भपातको स्थापित करनेवाला है और अश्विनीकुमारोंकी सम्मतिके अनुसार रचा गया है, रक्तपित्त नाशक है ॥ १-६ ॥

प्रदरान्तक लोहः ।

लोहं ताम्रं हरितालं वंगमभ्रवराटिका । त्रिकटु त्रिफला चित्रविडंगं पटुपंचकम् ॥ १ ॥ चविका पिप्पली शंखं वचा हवुषपाकलम् । शठी पाठा देवदारु एला च बृद्धदारकम् ॥ २ ॥ एतानि समभागानि संचूर्य वटिकां कुरु । शर्करामधुसंयुक्तं घृतेन भावयेत्पुनः ॥ ३ ॥ रक्तं शीतं तथा नीलं पीतं प्रदरदुस्तरम् । कुक्षिशूलं कटीशूलं योनिशूलं च सर्वगम् ॥ ४ ॥ मन्दाग्निमरुचिं पाण्डुकृच्छ्रं च श्वासकासनुत् । आयुःपुष्टिकरं बल्यं बलं वर्णप्रसादनम् ॥ ५ ॥ रसरत्नाकर ।

अर्थ-लोह भस्म, ताम्र भस्म, हारिताल भस्म, बंग भस्म, अभ्रक भस्म, कौडीकी भस्म, त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पीपल) त्रिफला (हरडा, बहेडा आँवला,) चित्रक, वायविडंग, पांचों नमक चव्य, पीपल, शंख भस्म, वच, हाऊबेर, कुट, कचूरि, पाढ, देवदारु, छोटी इलायची, विधारा ये प्रत्येक औषधियाँ समान भाग लेकर अत्यन्त सूक्ष्म पीस लेवे पश्चात् इसमें समान भाग उत्तम मिश्री वा खाँड मिलाकर घृत और शहतकी भावना देकर गोली वना लेवे यह प्रदरान्तक लोह रक्त शीत पीतादि प्रदर कुक्षिशूल कटिशूल योनिशूल, सर्वप्रकारके शूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डुरोग, मूत्रकृच्छ्र श्वास, खाँसी इन सबको नष्ट करे आयु और वलकी वृद्धि करे; बल और वर्णको प्रसन्न रक्खै ॥ १-५ ॥

शीतकल्याणघृत ।

कुमुदं पद्मकोशिरं गोधूमो रक्तशालयः । मुद्गपर्णी पयस्या च काश्मरी मधुयष्टिका ॥ १ ॥ बलातिबलयोर्मूलमुत्पलं तालमस्तकम् ।

विदारी शतपुत्री च शालपर्णी सजीविका ॥ २ ॥ फलं त्रिपुषबीजानि प्रमदं कदलीफलम् ॥ एषामर्द्धपलान्भागान् गव्यक्षीरं चतुर्गुणम् ॥३॥ पानीयं द्विगुणं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् । प्रदरे रक्तगुल्मे तु रक्तपित्ते हलीमके ॥ ४ ॥ बहुरूपं च यत्पित्तं कामलायाश्च शोणिते । अरोचके ज्वरे जीर्णे पाण्डुरोगे मदे भ्रमे ॥ ५ ॥ तरुणी चाल्पपुष्पा च या च गर्भं न विन्दति । अहन्यहनि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ६ ॥ फलं त्रिफला प्रत्यग्रमपक्वकदलीफलम् ॥ ७ ॥ रसरत्नाकर ।

अर्थ—कमोदनीके फूल, कमल, खस, गेहूँ, लाल शालि चावल, मूँगपर्णी, काकोली, कंभारी, मुलहटी, खरैटी, बडीखरैटी (कंघी) उत्पल, नीलकमल, ताडका मस्तक (आगेका भाग) विदारीकन्द, शतावरी, शालपर्णी, जीवककन्द, त्रिफला (हरडा, बहेडा, आँवला) खीरे ककडीके बीज, केलेकी कची फली प्रत्येक औषध दो दो तोला लेकर इनका कल्क बना लेवे । गौका दूध ८ सेर जल ४ सेर, गौका घृत २ सेर सबको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे घृतको पकावे । यह घृत सर्वप्रकारके प्रदर रक्तगुल्म, रक्तपित्त, हलीमक, बहुरूप, पित्त, कामला, रुधिरविकार, अरुचि, जीर्णज्वर, पाण्डुरोग, मद, भ्रम इन सब रोगोंको नष्ट करता है । जिन स्त्रियोंको अल्प पुष्प आते होयँ और जो गर्भको धारण नहीं करती हैं उनको इस घृतके सेवनके प्रभावसे गर्भस्थित होती है । पुरुषोंकी दिनदिन स्त्रियोंमें प्रीति बढती है ॥ १–७ ॥

प्रदरान्तको रसः ।

शुद्धसूतं तथा गंधं शुद्धवंगकरूप्यकम् । खर्परं च वराटं च शाणमानं पृथक् पृथक् ॥ १ ॥ तृतीयतिलकं ग्राह्य लौहभस्मं ददौ सुधीः ॥२॥ कन्यानीरेण संमर्द्य दिनमेकं भिषग्वरः असाध्यप्रदरं हन्ति भक्षणान्नात्र संशयः ॥ ३ ॥

अर्थ—शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, वङ्गभस्म, रूपाभस्म, शुद्ध खपरिया, शुद्ध कौडीकी भस्म प्रत्येक चार चार मासे और लोहभस्म तीन तोले सबको एकत्र मिलाकर घीगुवारके स्वरसमें एक दिवस मर्दन करके १॥ रत्तीके प्रमाण गोली बनावे । यह प्रदरान्तक इस असाध्य प्रदर रोगको शान्त करता है ॥ १–३ ॥

आयुर्वेद वैद्यकसे प्रदर चिकित्सा समाप्त ।

यूनानी तिब्बसे प्रदर लक्षण तथा चिकित्सा ।

इसके दो भेद हैं, एक यह कि मामूली वक्तपर हेजका खून निकलना, हेज (रजोधर्म) को कहते हैं । कभी २ ऐसा होता है कि रजोधर्मके वक्त ज्यादा खून आता है । दूसरा यह कि रजोधर्मके दिवस बीत जानेपर भी खून बहता रहे अथवा रजस्वलाके दिनोंके अलावे खून बहना जारी होवे और बहा करे । इसको इस्तहाजा कहते हैं । और कारणोंकी विरुद्धतासे इस रोगके कई भेद हैं (१) प्रथम भेद यह है कि स्त्रीके गर्भाशय तथा शरीरमें खून विशेष हो जाय और स्त्रीकी तासीर उस बढेहुए खूनको इस रास्तेसे निकाल देवे, चिह्न उसके यह हैं कि स्त्रीका शरीर और मुख भरभरायाहुआ लाल मालूम होने लगे और खूनसे रगोंका भरा रहना और विशेष खून निकल जाने पर भी शरीरकी शक्ति और रंगका न बदलना, किन्तु कभी २ ऐसा होता है कि जितना खून निकलता है उतना ही शरीर फुर्तीला और शक्तिमान् मालूम होता है । इस कारणसे ऐसे खूनका बन्द करना शक्त मनाई है, जबतक कि शक्तिमें निर्बलता और रंग न बदल जाय और यह रोग बहुधा उन स्त्रियोंको उत्पन्न होता है, जिनको धन और आरामतलव तथा स्वतन्त्रता मिलतीहै (इलाज) इसका यह है कि वासलीक नामवाली रक्तवाही नसकी फस्द खोले जिससे जिस्ममेंसे खूनकी कमी हो जावे और इससे खून चला जावे और आवश्यकताके सिवाय खून न निकाले एक वारमें या दो वारमें तथा कई वारमें थोडा २ निकाले और दोनों स्तन कसकर बाँध लेवे और स्तनोंको आहस्ते २ मले तथा स्तनोंके नीचे बडे २ गिलास लगावे और खून रोकनेके लिये खानेको सुनहरी गोंदकी टिकिया देवे और खूनको रोकनेवाली वत्ती काममें लावे । सुनहरी गोंदकी विधि, कतीरा, गेहूँका निशास्ता, समग, अर्बी, ककडीका मगज, खीराका मगज प्रत्येक ३॥ मासे अनारके फूल ७ मासे, अकाकिया, कहरवा प्रत्येक ३॥ मासे इन सबको बारीक पीसकर बातरंगके पानीमें टिकिया बनावे । इस सुनहरी गोंदकी मात्रा ३॥ मासे अथवा ४ मासे की है । तुख्म खुर्फा (कुल्फाके बीज) के शीरामें देवे अथवा शरबत अंजवारके साथ देवे । सियाक मुमासिक । रजको रोकनेवाली सलाईकी विधि, सुर्मा, अनारके फूल, फिटकरी, सुहागा, कुन्दरुगोंदका बुरादा, माजूफल, अकाकिया, बराबर लेकर कूट छानकर लम्बी बत्ती औरतके गर्भाशयके मुखमें एक बत्ती रख देवे, और एक बत्ती बह जावे तो दूसरी रख देवे जहाँतक रक्तका आना बन्द न हो जावे तहाँतक रखता जावे और जो माजूफल कूटकर जलमें पकावे और उसका काढा छान कर उसमें ऊन कपडा वा रुई भिगोकर और उसपर वारीक पिसाहुआ सुर्मा बुर्ककर स्त्रीके योनिमार्गमें बच्चेदानसे चिपटा कर रक्खे । तथा अजीर्ण करनेवाले भफारे देना भी लाभदायक है ।

सूचना—सुहागा दो प्रकारका होता है, एक खानसे उत्पन्न हुआ, दूसरा बनाया हुआ होता है, जो खानसे उत्पन्न होता है वह नमकके माफिक है और उसका स्वाद भी नमकके माफिक खारी, कडुवापन लियेहुए होता है और हाथके बनेहुएकी विधि इस प्रकार है, कि पापडी नमकको गौके दूधमें पकालिया होय, वस यही यहाँपर काममें आता है। ऊपर लिखीहुई बत्तीमें भी इसी प्रकारसे बनाया हुआ पडता है। विशेष सूचना—गर्भाशयकी रगें और दोनों स्तनोंकी रगें आपसमें परस्पर सम्बन्ध रखती हैं अर्थात् पेटके ऊपरकी झिल्लीमें स्तनोंके नीचे इसलिये इस जगहको पछना लगानेके लिये मुख्य समझा गया है कि रजके खूनकी स्वाभाविक गति नीचेकी तर्फमें होती है और तबीयत भी उसको निकालनेकी सहायता करती है। इसलिये कोई रोकनेवाला बल-वान् होना चाहिये कि गर्भाशयकी तर्फ जो खून स्वभावसे रुजू हो रहा है उसको गर्भाशयकी तर्फ आनेसे रोक सके। सो हकीमलोग बारे लगानेकी इजाजत देते हैं और इसी कारणसे बडे प्रकारके बारेको लगाना अच्छा समझते हैं कि विशेष जगहके खून ले जानेवाली रगोंको वह खींच सके। परन्तु पछना मुख्य करके स्तनोंपर और स्तनोंके ऊपर लगाना लाभदायक नहीं है। क्योंकि इस स्थानपर रगोंमें विशेष सम्बन्ध नहीं है। (दूसरा) भेद यह है कि खून विशेष पतला और तेज होजाय तथा पतलेपन और हलके होनेके कारणसे गर्भाशयकी पतली रगोंके जरियेसे गर्भाशयमेंसे बाहरको वह जाय उसका चिह्न यह है कि खून विशेष पतला हो, व पीलापन लियेहुए जलनके साथ बाहर निकले और बहुत जल्दी निकल पडे रुककर न आवे और स्त्रीके शरीरमें निर्बलता और शरीरकी रंगतमें पीलापन आय जाय। (इलाज इसका यह है कि) पित्तको निकालनेके लिये पीली हरड और पित्तपाप-डेका काढा देवे, कि जिन औषधियोंमें दस्त लगनेके सिवाय अजीर्ण करनेकी भी शक्ति होवे और मवादकी रुजुआतको इस तर्फसे फेरनेके लिये जो कुछ प्रथम भेदमें लिखा है काममें लावे और खूनको ठंढा और गाढा करे, जिससे वन्द होजाय। तथा पीनेकी दवा, भोजन, लप, और भफारे आदि जो शीतल और अजीर्ण कारक होवे काममें लावे। पीनेकी दवाओंमेंसे शर्बत उन्नाव, शर्बत अनार, शर्बत जरिश्क, शर्बत चूक, रीवासका रुब्ब (सत्त्व) बीहका रुब्ब (सत्त्व) और भोजनोंमेंसे हसरमिया, जरश्किया, रुम्मानिया, चांवल, और मसूरके साथ देना विशेष लाभदायक है और कुर्स्, कहरवा, रुब्बरीवास, और शर्बतअनार, शर्बत जरिश्कके साथ देना खूनके वन्द करनेमें बलवान् है और अनारके फूल, अबीरागुलाबके फूल, माजू, अनारकी छालके काढेमें बैठना और इसे योनि तथा गुदाको धोना। चन्दन, अकाकिया, गुलाबके फूल,

तुतरुग, अनारकी छाल, अधीरा, कूटकर पेडूपर लेप बनाकर लगाना और सुर्माकी सलाई उठाना अधिक लाभदायक है । (विशेष सूचना) उचित है कि पित्तके निकलनेके पीछे हीरादुखीगोंद और भुनीहुई फिटकरी बारीक पीसकर खट्टे अनारके शर्बतमें मिलाकर चटावे और अंजबारके रेशा, कुल्फाके बीज, काले काहूके छिले हुए बीज अधकुचले जारिश्कके पानीमें भिगोकर छानकर शर्बत अंजबार विलायती मिलाकर पिलावे (तीसरा भेद इसका यह है कि) पानीकी तरी शरीरमें विशेष होय इस कारणसे खून पतला होजाय और रगोंके मुख सुस्त होजायँ और इस कारणसे वहनेलगें । इसका चिह्न यह है कि खूनका पतला और सफेद होना, और दूसरी प्रकारके चिह्नोंका न होना और कफके सब चिह्नोंका प्रगट होना है (इलाज इसका यह है कि) एक वा दो दिवसके अर्सेसे कई बार वमन करावे और (पारजात) दवायें खानेको देवे और भोजन तथा पीनेकी चीजोंमेंसे जो चीज खुश्की उत्पन्न करती होवे वह इस मर्जमें विशेष लाभदायक है और ऐसे ही उचित लेप भफारे और सलाई (बर्त्तिका) काममें लावे । (चौथा भेद इसका यह है कि) पित्त विशेष होय और पित्त गर्म होता है सो अपनी गर्मीसे गर्भाशयकी रगोंके मुख खोल देवे, इसके चिह्न और इलाज वही है जो दूसरे भेदमें जो खूनका पतला और तेज होना कथन कर चुके हैं उसी माफिक इसका इलाज करना लाजिम है । पांचवाँ भेद इसका यह है कि बादीके गर्म दोष उन रगोंके मुख खोल देवें इसका चिह्न यह है कि खून काला आवे कदाचित् धूम्रवर्ण और कुछ हरी धारियां लेकर निकले (इसकी विशेष परीक्षा हकीमको इस प्रकारसे करनी चाहिये कि जो साफ और सफेद रुई लेकर जरा दूरकी आगपर गर्म करे और उसको योनिमार्गमें रक्खे और एक रात दिन उसीमें रक्खी रहने देवे ता कि वह खूनमें अच्छीतरहसे भीग जावे सबेरेके समय उसको निकालकर छायामें सुखा लेवे तो इस रुईका रंग कारणके पहचाननेमें पूरी परीक्षा देगा) यदि रुई सफेद होय तो जानना चाहिये कि यह रतूवत् कफकी है और जो रुई काली वा स्याह धूराके रंगकी अथवा हरे रंगकी होवे तो जानना चाहिये कि यह तरी बादीकी है और जो रुई पीली होवे तो पित्तकी तरी है और रुई गर्म करनेकी इजाजत इसलिये दी है कि रुईमेंसे कुदर्ती शील निकल जावे और इस बलगमी तराईको अच्छी तरहसे सोख लेवे सो परीक्षा उत्तम प्रकारसे होसके और मवादका निश्चय अच्छी तरहसे होजावे और इसका निर्णय तभी होताहै जब कारण निर्बल होय और थोडा होय और तबीब दूसरे चिह्नोंसे बलगमको न पहँचान सके और जो प्रत्येक मवादके दोषके चिह्न अच्छी तरहसे प्रगट होजायँ तो प्रत्येकके कारणके होनेपर प्रत्यक्ष परीक्षा है । और इतना कष्ट उठानेकी कुछ जरूरत नहीं है ।

(इलाज इसका यह है कि) वादीके निकालनेके लिये आकाशबेल (अमरवेल) का काढा देवे और तबीब उचित समझे और रोगी औरतके जिसममें रक्तकी अधिकता जान पडे तो [वासलीक] नसकी फस्द खोले और जो कोई कार्य वर्जित होय और दूसरे भोजन और दवा तथा सलाई जो ऊपर वर्णन हो चुकी हैं- लाभदायक हैं (छठा भेद इसका यह है कि) गर्भाशयके बवासीरी मस्से यदि खूनके जारी होनेका कारण होयँ उनको अलग प्रकरणमें वर्णन करेंगे, अगर बवासीरसे खून आता होवे तो इसका लक्षण मामूली यह है कि खून बूँदबूँद करके आता है और इस मर्जवालीके सिरमें दर्द रहता है क्योंकि यह मर्ज दिमागसे सम्बन्ध रखता है (सातवाँ भेद इसका यह है कि) गर्भाशयके जखम इस रोगकारण होवे अगर ऐसा होवे तो उसकी पहचानके विशेष चिह्न यह हैं कि खून, पीव आर पाल पानीके साथ बाहर निकले और उसमें बदबू भी आती होय तथा दर्द और जलन भी होय. इसको भी अलग प्रकरणमें कथन करेंगे (आठवाँ भेद इसका) यह है कि उत्पत्तिकी कठिनताके कारणसे गर्भाशय निर्बल पडजाय और कमजोरीसे उसकी रगें फट जावें तथा झिल्ली टूटजाय इस कारणसे बहुतसा खून आता है (इलाज इसका) जो कुछ गर्भाशय जख्म (घाव) और गर्भाशयके फट जानेमें कहा गया है उसीके अनुसार करे । विशेष सूचना यह है कि बालक जननेके उपरान्त स्त्रियोंकी योनिसे बहुतसा खून आता है क्योंकि गर्भाशयमें खूनकी अधिकता है और गर्भाशयके भाग आरोग्य रहते हैं और ऐसे खूनका निकलनेसे रोकना हानिकारक है बल्कि अधिक नुकसान पहुँचानेवाला है इसको बन्द हरगिज न करे यदि यह खून बहनेसे रोक दिया जावे तो स्त्रीको मार डालता है । परन्तु जहाँ कहीं स्त्रीको अधिक निर्बलताका भय होय कि अधिक खून निकलनेसे स्त्री मरजावेगी तो इसका उपाय जो प्रथम भेदमें वर्णन करचुके हैं उसके जरियेसे बन्द करे। परन्तु जहाँ कहीं गर्भाशयकी रगें फट जावें और उसकी झिल्ली टूटजावे और मवादका निकलना योग्य समझा जावे तो ऐसे मौकेपर भी मवादके निकलनेको बन्द न कर दर्दको उन उपायोंसे बन्द करे जो गर्भाशयके घाव तथा फट जानेके उपायोंमें वर्णन किये गये हैं व जो दूर करनेके योग्य न होवें तो उसको उन उपायोंसे बन्द कर सक्ते हैं, जो ऊपर कथन किये गये हैं । हकीम (साबित करा) का बेटा कहता है कि इन बत्तियोंका रखना लाभदायक है । सुर्मा, अनारके फूल, जुत्फबल्लूत कूट पीसकर मौलसरीके पत्तेके अर्कमें मिलाकर सलाई बनावे और योनिमार्गमें गर्भाशयसे चिपटाकर रक्खे और इसी दवाका गर्भाशयके मुखमें लेप करना अति फायदे बन्द है । (नवमाँ भेद इसका यह है कि) जो कुमारी स्त्रीका

कुमारीपन दूर करनेके कारण गर्भाशयसे खून जारी होवे याने प्रथम पुरुष समागमसे स्त्रीके गर्भाशयको सद्मा पहुँचे अथवा ऐसा होवे कि पुरषेन्द्रियके बडे होनेसे गर्भाशय पर दवाव पडे और उसकी रगें फट जावें और बहुतसा खून निकले और स्त्रीको विचेतनता होनेका भय होय अथवा बिचेतनता होजावे। (इलाज) इसका यह है कि अजीर्ण [स्तम्भक] करनेवाली शराबमें वैठाले और माजू, शाहवल्लूत, अनारके फूल, गुलाबके फूल इनका काढा करके धोवे और जैतूनका तैल, गुलरोगन ये एक एक अथवा दोनोंको मिलाकर उस स्थानपर लगावे और हर समय तर रक्खे, और अंगूरकी बेल पत्ते वगैरहकी राख कपडेपर रखकर गद्दीकी तरह जननेन्द्रिय (योनि) पर बाँध देवे और (फादजहरहैवानी) औरतकी उमरके माफिक मुहताजसे मठामें पीसकर पिलावे तो प्रकृतिके अनुसार लाभदायक है और फट जानेका इलाज उन चीजोंसे भी होसक्ता है, जो गर्भाशयके फटजानेके प्रकरणमें कथन की गई हैं। अब गरीव स्त्रियोंके वास्ते थोडे प्रयोग नीचे लिखते हैं कि वो आसानीसे अपने दुःखको दूर करसकें। ये प्रयोग मेरे खुद आजमाये हुए हैं। (१) पीपल वा वडकी लाख सूखी हुई बराबरकी मिश्री वा खांड मिलाकर बारीक पीसे और शीतल जलके साथ १। तोलाकी फंकी दिनमें दो वा तीन वक्त लेनेसे तीन चार रोजमें खून वहना वन्द हो जावेगा (२) कचनारकी कली, हरे गूलर और कुलफेका साग, मसूरकी दाल, पटसनके फूलका साग, लाल चावलका भात पकाकर देवे। किसी भी दवाकी जरूरत नहीं, इन चीजोंके खानेसे दो चार रोजमें खून बिलकुल वन्द हो जाता है। (३) गधेकी सूखी लीद बारीक पीसकर योनिमें रखनेसे खूनका आना दो तीन घंटेमें बन्द होताहै। (४) वकरीकी सूखी मेंगनी ३ भाग और कुँदरू गोंद एक भाग इनको बारीक पीसकर गर्भाशयके मुखपर लगावे फौरन खूनका आना वन्द होगा। (५) पुराना टाट जलाकर उसकी राख पानीमें भिगोवे और पकावे, जब वह पानी उबल जावे ठंढा होनेपर जब तृषा लगे देवे, इसके पीनेसे खून बन्द हो जावेगा। (६) वकायन वृक्षकी नर्म कोंपल १ तोला लेकर बारीक पीसकर शीतल जलमें छानकर पीवे ५–६ दिनमें खूनका गिरना वन्द होजावेगा।

रक्तप्रदरकी व्यवस्था व इलाज ऊपर लिखा गया है, परन्तु एक हालत ऐसी भी होती है कि गर्भाशयमेंसे सदैव एक प्रकारकी तरी वहा करती है, जिसका लक्षण यह है कि भोजन पहुँचानेवाली शक्ति निर्वल है और यह फोक जो गर्भाशयसे आता है या तो कफका है या पित्तका या वादीका या विशेष खूनके कारणसे है, क्योंकि जो खून निर्मल आता है उसे इस्तहाजा कहते हैं, गर्भाशयका बहना नहीं कहते। जो दोषकी अधिकताका चिह्न उसके रंग आदिसे प्रगट है, यथार्थ पहचान उसकी

यह है कि स्त्री एक कपडा अपनी योनिमें रख लेवे और जब सूख जाय तो उसके रंगको देखे और जिस स्त्रीके गर्भाशयका वहना होता है उसकी भूख जाती रहती है और शरीरका रंग मलीन हो जाता है, मुख तथा आँखें घबराई हुई और उदास मालूम होती हैं । (इलाज) इसका प्रथम कारणके अनुसार फस्द अथवा दस्तावर दवा देवे तथा वमनसे शरीरके खराब मवादको निकाले । पीछे गर्भाशयके मवादको निकालनेके ईरसा (नील सासन) की जड और गन्धवेल, मुलहटी पहाडी गन्दना काले चनेके पानीमें पकाकर और अयारज फैकरा मिलाकर गर्भाशयमें पहुँचावे, जब गर्भाशयके मुखपर गर्मी न होवे, यदि गर्भाशयके मुखपर गर्मी मालूम पडे तो यह नुस्खा काममें न लावे और गर्भाशयके मवादको निकालनेके लिये कपडा तथा ऊनको दवाईमें ल्हसेडकर स्त्रीके मूत्रस्थानपर रक्खे । वजूर और मूत्रके लोनवाले शीरे पिलावे और उन्हींका गर्भाशयमें हुकना (पिचकारी) लगावे । जब शरीर तथा गर्भाशय पवित्र हो जाय तो उसकी पुष्टताके लिये अजीर्णकारक दवा कपडेमें या ऊनमें ल्हसेड कर स्त्रीकी योनिमें रक्खे और रोकनेवाले हुकना ग्रहण करे, जैसा कि रजकी अधिकतामें वर्णन किया गया है ।

अब तीसरा प्रकरण इसका यह है कि पुरुषका वीर्य जो गर्भाशयमें जाता है वही पीछे गर्भाशयमेंसे बाहर निकल आवे तो स्त्रीके गर्भ नहीं रहता और वीर्यके वापिस आनेका कारण यह है कि स्त्रीके गभाशयमें तरी अधिक होनेसे वह पुरुषके वीर्यको ठहरने नहीं देती, उस तरीके बहावके साथमें पुरुषका वीर्य बाहर निकल पडता है । (इलाज) इसका यह है कि स्त्रीके गर्भाशयकी तरीको निकाल कर गर्भाशयको साफ कर पीछेसे ऐसी दवाइओंको इस्तेमाल करे, जो गर्भाशयमें तरीकी पैदा-यश न होने देवे और खुष्क आहार करे ।

यूनानी तिब्बसे प्रदर लक्षण तथा चिकित्सा समाप्त ।

प्रथम वैद्यक, दूसरे दर्जेपर यूनानी तिब्ब और तीसरे दर्जेपर डाक्टरी प्रक्रियासे प्रदर रोगके लक्षण तथा चिकित्सा वर्णन की जायेगी । मैं चिरकाल पर्यंत स्त्रीजातिके गुह्यरोगोंकी चिकित्सा तीनों प्रणालीसे करता रहा, लेकिन गुह्यरोगोंमें डाक्टरी चिकि-त्सासे अधिक लाभ पहुँचा, कितनेही रोग ऐसे हैं कि वैद्यक और यूनानी तिब्बमें उनका नाम निशान भी नहीं मिलता, लेकिन डाक्टरी चिकित्साके ग्रन्थोंमें उनका पूर्ण निदान और चिकित्सा यथार्थ रीतिपर वर्णन की गई है ।

डाक्टरीसे प्रदरके लक्षण तथा चिकित्सा ।

प्रदर यह व्याधि प्रायः युवावस्थाकी स्त्रियोंको होती है । परन्तु कितनी कुमारी लड-कियोंको भी इस व्याधिसे पीडित हमने स्वयं अपने नेत्रोंसे देखा है और उनका उपचार

भी किया है । छोटी उमरकी कुमारी लडकियोंकी योनिमेंसे सफेद पानी वा गाढा चिकना धातुके समान सफेद पदार्थ निकलता है । कमजोर नाजुक शरीर तथा कोमल प्रकृतिकी लडकियोंको यह व्याधि प्रायः अधिकतासे होती देखी गई है । और जहाँतक इसका निश्चय किया गया तो यही ज्ञात हुआ कि बालक लडकियोंके दाँत निकलनेके समय, तथा योनिमें कृमि उत्पन्न होनेसे अथवा योनिकी दूषित मलीनताके संग्रह होनेसे यह व्याधि बच्चियोंको होती है । इससे इसका नाम बालप्रदर कहना उचित है । इस व्याधिसे कितनी ही लडकियोंकी योनिमें दाह पाक गर्मीके चिह्न मालूम पडते हैं, कितनी ही लडकियोंकी योनिमें शक्त कण्डू उत्पन्न होती है और बे समझ बालक लडकी उसको खुजा डालती हैं, इससे योनि ओष्ठोंपर चांदी वा गुमडी उत्पन्न हो जाती हैं और बच्चियोंको शक्त तकलीफ होती है । उपाय इसका यही है कि चिकित्सकको जो कारण ज्ञात होवे, उसकी निवृत्तिका उपाय करे, निर्बलतासे यह रोग जान पडे तो लडकीको पौष्टिक औषध तथा पुष्टिकारक आहार देवे । यदि कृमिका जमाव योनिमें मालूम पडे तो कृमिनाशक औषध दे, व कृमिनाशक औषधियोंके काढे वगैरहसे योनिको धोवे और हमेशह उस भागको धोकर उसकी मलीनता नष्ट कर साफ रखना योग्य है । बाद इसके भुनीहुई फिटकरी, भुनाहुआ सुहागा, स्युगंरलेड, अथवा जस्ताका फूला इनमेंसे किसी एक औषधको थोडे शीतल जलमें मिलाकर उसमें रुईका फोहा भिगोकर योनिको धोनेके अनन्तर अन्दरके भागमें रखना चाहिये । यदि खुजली होवे तो कारबोलिक रोल लगाना, अगर चांदी होवे तो केंफर (कपूर) का मलम अथवा और कोई मलम लगाकर निवृत्ति करना योग्य है । इति बालप्रदर ।

युवावस्थामें स्त्रियोंके गुह्यभागमेंसे एक प्रकारका सफेद स्राव अथवा कभी पीलासपर कभी ललाईलिये और गुढासपर होता है, यह स्त्रीजातिको अधिक साधारण व्याधि है, किसी समय सफेद जलके समान पतला होता है और कभी अतिचिकना और गाढा होता है । गर्भाशयमेंसे अथवा योनिमार्गमेंसे यह पदार्थ निकलता है और गर्भाशय तथा योनिमार्गसे निकलेहुए इस श्वेतस्रावमें परस्पर कुछ अन्तर रहता है । गर्भाशय-मेंसे जो स्राव होता है वह विशेष चिकना और कुछ गाढा होता है । इसको स्त्री लोग आपसमें सफेद पानी व धातु पडती है, ऐसा बोलती हैं । स्त्रीकी योनि-मेंसे ऐसी रीतिका सफेद स्राव होता है, वह केवल गर्भाशयके किसी विशेष रोगके कारणसे होता है। और दूसरी रीतिसे कितनी ही शारीरिक व्याधियोंसे भी तथा स्त्रीकी निर्बलतासे भी होता है । इस सफेद स्रावका होना स्त्रीके शरीरको क्षीण करनेवाला है और जो गर्भाशयमेंसे सफेद स्राव आता होवे तो उससे गर्भाशयके दीर्घ शोथ क्षत ग्रन्थि आदिका अनुमान होता है और वन्ध्यादोष स्थापित करनेका यह मुख्य कारण

हो जाता है । यदि युवावस्थाकी स्त्रीको प्रदर रोग देखनेमें आवे तो उसकी यथार्थ रीतिसे परीक्षा करके निश्चय करै और उसका जो कारण ज्ञात होजावे तो उसकी निवृत्तिके लिये यथार्थ उपचार करे । प्रत्येक मर्मस्थानके समान स्त्रीकी गुह्येन्द्रियमेंसे भी स्वाभाविक रीतिसे एक प्रकारका स्राव होता है, जो कि उस मर्मस्थानको चिकना रखनेके लिये पूर्ण है । यदि जो यह स्वाभाविक स्राव अधिक वृद्धिको प्राप्त होजावे तो उस स्त्रीको अति दुःख देनेवाला हो जाता है और जब इसकी अधिक वृद्धि होती है और इससे उत्पन्न हुए अन्य उपद्रव जैसे ज्वर, कमरमें पीडा, मस्तकमें कमजोरी, पैरोंमें भडक्नु, मन्दाग्नि, निर्वलतादि दीख पडते हैं तब स्त्रियां इसको विशेष करके प्रगट करती हैं; जबतक यह थोडा होवे वहांतक छुपाये रहती हैं । यह स्वाभाविक आदत इस देशकी स्त्रियोंमें है, साधारण ऋतुस्राव आनेको होय अथवा ऋतुकी अवधि पूर्ण होनेको होय उसके पीछे तीन चार दिन सफेद स्राव विशेष करके दीखना संभव है और कितनी स्त्रियोंको प्रायः यह निर्वलता तथा पाण्डुरोग क्षय रोगवाली स्त्रियोंको ऋतुके बदले केवल यह सफेद स्राव दीखता है । इसी प्रकार गर्भिणी स्त्रीको भी स्वाभाविक रीतिसे कुछ अधिक दीख पडता है । विशेष करके यह प्रदररोग गर्भाशय तथा कमलमुखके दीर्घ शोथ अथवा कमलमुखके क्षत या कमलकी गर्दनके क्षतका मुख्य चिह्न है । योनि विस्तारक यन्त्रकी सहायतासे कितने ही समय देखा गया है कि गर्भाशयके दीर्घ शोथमें दूसरा कोई भी विशेष चिह्न नहीं दीख पडता, केवल सफेद स्राव अधिकतासे दुखदाई ज्ञात होता है । प्रथम ऋतुधर्म आनेसे लेकर चार साल पर्य्यन्त यदि स्त्रीको गर्भकी स्थिति न होवे और प्रदर स्राव दीख पडता होय तो यही अनुमान होता है कि निश्चय गर्भाशयका दीर्घशोथ गर्भकी स्थितिमें बाधक है । ऐसी हालतमें योनिदर्शक नलिका यन्त्र योनिमें प्रवेश करके गर्भाशयकी पूर्ण रीतिसे परीक्षा करे कि कमलमुखमें शोथ है अथवा कमलमुखके ऊपर किसी प्रकारका क्षत छाला पडा हुआ है, वा कमलमुख कठिन है अथवा शोथके कारणसे कमल मुख संकुचित हो रहा है या गर्भाशयमें दीर्घ शोथ है । किसी समय गर्भाशयमें प्रदर स्थापित करनेवाली कितनी ही व्याधि विशेष भी होती हैं जैसा कि गर्भाशयके मस्से ग्रन्थि वगैरह इनके कारणसे प्रायः गर्भस्राव भी हो जाता है । गर्भस्राव, भी दीर्घकालके प्रदरका मुख्य और बडा कारण है । अत्यन्त मैथुन करनेसे सर्दी लगनेसे उपदंश (आतशक) रोगसे अथवा गर्भाशयके अन्तरपिण्डकी कितनीही व्याधियोंसे प्रायः प्रदर होजाता है । पाण्डुरोग और नष्टार्त्तव भी प्रदररोगका प्रभूत कारण है, दूषित आहार तथा शरीरके अन्दरकी कोई भी जीर्णव्याधि तथा बदहजमी तथा शरीरको क्षीण करनेवाली क्षयादि विषमज्वर वगैरह व्याधि जिनसे कि शरीर निर्बल और क्षीण हो

जावे ऐसी हालतमें प्रदर विशेष जान पडता है अत्यन्त मैथुनकी लालसाकी तृप्ति करनेवाली स्त्रीको भी प्रदर विशेष पीडित करता है कितनी ही स्त्रियोंके गुह्यावयवमें देखा गया है कि योनिमार्गमें किसी भी कारणसे पाक हुआ होय (पक गया होय) और राध स्राव होकर उसका जखम बिलकुल निवृत्त हो गया देखा गया है और थोडे दिवस पीछे उन्हीं स्त्रियोंको देखा गया है तो कोई भी विकृति न रहनेके बदले किन्तु सफेद स्राव होता दृष्टिगत हुआ है । दीर्घ कालतक स्राव होता हुआ प्रदर गर्भाशयके किसी विशेष रोगकी सूचना करता है और इस व्याधिमें गर्भाशयका दीर्घ शोथ. मस्सा ग्रन्थि गर्भाशयका स्थानान्तर होना तथा गर्भाशयका स्थूल हो जाना इत्यादि व्याधियोंके प्रत्यक्ष करनेके निमित्त साधक यन्त्रोंद्वारा गर्भाशयकी परीक्षा करनी योग्य है । जब कि सफेद स्राव योनिमार्गमेंसे ही आता होय तब वह दूध मिश्रित पानीके समान पतला और सफेद होता है और जब वह स्राव गर्भाशयमेंसे आता है तब वह बिलकुल स्वच्छ अति चिकना और गाढा होता है और कुछ २ दुर्गन्ध भी उसमेंसे आती है । कई डाक्टर महाशयोंने इसके दो भेद किये हैं, एक योनिप्रदर और दूसरा गर्भाशय प्रदर, याने (पुटाई नल्युकोरिया) । यह प्रकरण विस्तारपूर्वक तो गर्भाशयके दीर्घ शोथमें वर्णन किया जायेगा । परन्तु प्रदरके निदानमें त्रुटि न रहे इस हेतुसे सूक्ष्म रीतिपर यहाँ इसका वर्णन करना उचित समझा गया । यथा—यदि गर्भाशयके अन्तर पटलमें शोथ उत्पन्न होजावे तो उसमेंसे सफेद चिकना धातुके समान स्राव होता है, इसको गर्भाशयका प्रदर कहते हैं । यह रोग स्त्रीकी तरुणावस्थाके पूर्व नहीं होता प्रत्युत वारम्वार गर्भ रहनेसे और गर्भस्राव गर्भपात होनेसे यह प्रदररोग उत्पन्न होता है । तथा पूर्वलिखित मस्सादि कारणसे व योनिके शोथसे, अतिगर्मीसे व जहरीले ज्वरके कारणसे अन्तरपटलमें शोथ उत्पन्न होता है । इस कारणसे गर्भाशयमेंसे धातुके समान सफेद स्राव होता है । और कितनीही स्त्रियोंको रजोधर्म बडी उमर होनेके कारण बन्द हो जाता है । और उसके बदले गर्भाशयका प्रदर उत्पन्न होते देखा गया है । शोथ तीक्ष्ण तथा दीर्घ होता है; गर्भाशयके सम्पूर्ण अन्तरपटलमें शोथ उत्पन्न हो आता है । अथवा केवल ऊपरके भागमें यदि कमलके भाग (गर्भाशयकी गर्दन) में शोथ होता है तो वहताहुआ स्राव अति चिकना होता है । और कपडेपर नीला, पीला गुलाबी, सफेद इत्यादि रंगोंका दाग पडता है । यदि कमलकन्द (गर्भाशयका मुख) सूजा हुआ होय तो उसके ऊपर छाला निकल आवे और कमलकन्द टेढा हो जाता है । गर्भाशयके अन्तर्पिण्डका शोथ दीर्घकालसे उत्पन्न हुआ होय तो इसमें मस्सा रसौली ग्रन्थी वगैरह उत्पन्न हो जाती हैं और ऋतुस्राव अधिक आता है । अब इसका विशेष वर्णन गर्भाशयके दीर्घशोथ प्रकरणमें देखना योग्य है, यहां आवश्यकतानुसार कथन किया गया है ।

प्रदरचिकित्सा ।

प्रदररोगसे पीडित स्त्रीकी योनिपरीक्षा करनेसे जिस रोगका मूल कारण मिल जावे तो उसकी निवृत्तिके लिये योग्य उपाय करना उचित है । यदि स्त्रीका शरीर निर्बल और फीका दीख पडे तो उसकी निर्वलता नष्ट करनेके लिये लोहभस्म अथवा लोह शिलाजीत, वा प्रदरान्तक लोह, इनमेंसे किसी एक प्रयोगका सेवन करावे और पौष्टिक आहार देवे और खुली साफ हवामें फिरनेकी आज्ञा देवे और स्त्रीको उचित है कि कामकाजमें थोडा परिश्रम करे, निरर्थक आलसी होकर बिलकुल खटियामें भी न पडी रहे । जिससे पाचनशक्ति नष्ट हो जावे और आहारके साथ कुछ पाचन प्रयोग देना योग्य है । दस्त साफ आवे ऐसी औषधका प्रयोग करना भी उचित है और जिस २ उपायसे प्रदरवाली स्त्रीका शरीर निरोग होवे वह २ उपाय करना योग्य है । यदि प्रदरकी अधिक हरारतसे स्त्रीको ज्वर होवे तो कुनैन किसी प्रयोगमें मिलाकर देना उचित है । ष्ट्रिकानिया और कोटलीवर ओइल ताकतके वास्ते देना । पेडूके ऊपर शीतल जल डालना और योनिमार्गमें सलफेट्, फिंक, भुनाहुआ सुहागा, फूली हुई फिटकरी व दूसरी अनेक देशी तथा अंगरेजी स्तम्भक औषधियोंकी पिचकारी लगाना ऊपर लिखी हुई पिचकारीकी दवा एक एक अथवा सब मिलीहुई १ ड्रामसे दो ड्रामकी मात्रा लेकर १ पाईंट (आधी बोतल) शीतल जलमें मिलाकर पिचकारी लगावे दिनमें दो वक्त और टानिक आसिड, ऊपर लिखीहुइ दवाओंमें संयुक्त किया जावे तो और भी हितकारी है । लाइकर प्लंबाई सब ऐसे टेटीस ४ से ६ ड्रामतक १ पाईंट शीतल जलमें मिलाकर दिनमें २ वक्त पिचकारी लगावे, जो इन पिचकारियोंकी औषधियोंसे आराम न होवे तो जस्ताका फूल अथवा टानिक आसिड इन दोनोंमेंसे कोई एक दवा १० से १५ ग्रेनतक लेकर खिर्नीके समान गोली बनाकर योनिमें रखना उचित है । यदि कमरमें पीडा अधिक होती होवे तो बेलोडोनाका लेप करना, लोह, आसिड, पेपसीन, ताकत और पाचनके लिये इनका सेवन करावे । यदि ऐसा कोई शारीरिक कारण न होय और रोगीकी तन्दुरुस्ती ठीक होय और श्वेत स्राव दीखा करता होय तो अवश्य उसके किसी गुह्यभागमें दूसरा कारण होना संभव है । यदि उस भागमें रक्तका संग्रह हुआ होय और उस स्थलपर अधिक रक्त दीख पडे तो उस स्थलपर शोथका चिह्न अवश्य होगा । ऐसा अनुमान करना योग्य है, इसकी निवृत्तिके लिये स्त्रीको सीधी चित्त सुलाकर नितम्बका भाग पेटकी तर्फ ऊंचा करके योनिमार्गमें गर्म जलकी पिचकारी लगानी कमसे कम १ पाईंट गर्म जल पिचकारीके द्वारा योनिमें भर देना । जल इतना गर्म होना चाहिये कि जिसको अन्दरकी चर्म जिल्द सहन करसके ।

नितम्ब ऊंचा रखनेसे जल योनिके नीचले भागमें अधिक भर जाता है इससे योनि बराबर विस्तृत और प्रफुल्लित हो जाती है। और गर्भाशयका मुख भी तन कर सीधा हो जाता है और गर्म जलसे योनिके सब भागोंमें बराबर सेंक लगता है और उस भागके रक्त संग्रहका जमाव होकर जो कि रूखा और कठिन होगया था उसको गर्मजलकी ऊष्मा पिघला कर द्रवरूप (पतला) कर देती है। इस उपायके साथ रोगीको हलका और पुष्ट आहार देना चाहिये और गर्म आहार तथा गर्म मसाले वाले पदार्थ तथा मद्य आसव वगैरह पदार्थोंका सेवन बिलकुल न करे। मलशुद्धि (दस्तसाफ) आवे ऐसी दवाका प्रयोग देना योग्य है। यदि योनिमें पीडा विशेष होती होय तो मोर्फीया] तथा कोनायमकी गोली वा बत्ती बनाकर योनिमें रखना योग्य है। जब कि ऐसे उपचारके रीतिपूर्वक करनेसे रोगकी तीक्षणताके चिह्न निवृत्त होगये जान पडें तो उस रोगीको स्तम्भन औषधियोंकी पिचकारी लगावे और स्तम्भन औषधियोंकी पिचकारीके साथ गर्म जलकी पिचकारी लगाना भी शुरू रक्खे। जब कि रोगी स्त्रीको इस व्याधिके साथ ज्वर और दाह होवे और उपचारसे वह उपद्रव निवृत्त होगये हो। तब लाईट्रेट ओफसीलवर—एक ड्राम और जल एक औंस अथवा (कार्बोलिक ऐसिड दो ड्राम, और, ग्लीसराईन एक औंसको मिला उसके ऊपर चुपडना और योनिदर्शक यन्त्र योनिमें प्रवेश करके आधा औंस दवा योनिमें अन्दर डालना और धीरे धीरे यन्त्रको बाहर निकालना। जिससे दवा योनिके सब भागमें लगकर बाहरका निकले इस प्रक्रियासे सम्पूर्ण योनिमें दवा आसानीसे लग जाती है। परन्तु इसमें इतनी साव-धानी रक्खे कि दवा एकदम योनिमार्गसे बाहर न निकल पडे आस्ते आस्ते निकलने पावे। और रोगकी विशेष अधिकता न होवे तो (कार्बोलिक ऐसिड १ ड्राम ग्लीसराईन १ औंसको मिलाकर) योनिके अन्दरके भागके काममें लावे, क्योंकि कार्बोलिक ऐसिड दग्ध करनेवाला पदार्थ है यदि दवाका प्रवाह योनिमुखके चमडेके बाहरके भागको लगता है और उससे अधिक जलन होती है योनिका भाग जो बाहर श्याम वर्ण चमडेके भागसे मिलता है, उस भागका स्पर्श ज्ञान विशेष तीव्र होता है इस लिये जब वह दवा बाहरके भागके श्यामवर्ण चमडेके समीप आवे तब लीन्टके टुकडा अथवा रुईके फोहा वा किसी मुलायम कपडेसे पोंछ लेना चाहिये बाद उस भागको साफ रूखा कर देना चाहिये तथा मीठे तैलका लीन्ट अथवा रुईका फोहा थोडी देर बाद योनिके अन्दर रखकर और योनिमुख पर लीन्ट वा कपडेकी गद्दी लगाकर लंगोटके बन्धनके समान पट्टी बाँध देना कि जिससे रोगी स्त्री आव-श्यकताके समय स्वयं निकाल लेवे। इसके अनन्तर सामक और स्तम्भक गोली वा बत्ती योनिमार्गमें रखना लाभकारी है। कदाचित् प्रदरका कारण गर्भाशयमें भरा हुआ

होय तो इस रीतिसे योनिमार्गमें दवा प्रवेश करनेसे कुछ भी आरोग्यता नहीं होती । किन्तु गर्भाशयके अन्दर तथा कमलमुखके ऊपर जहाँपर रोगके चिह्न देखे और औषध लगानेकी आवश्यकता समझे वहाँ लगानी चाहिये । गर्भाशयके दीर्घ शोथमें इस विषयकी सम्पूर्ण विवेचना चिकित्सा, लिखनेमें आवेगी, वहाँपर देखना योग्य है ।

डाक्टरीसे प्रदरचिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे अत्यार्त्तव (मेनारेजवा)

प्रदरकी व्याख्या करनेके अनन्तर अत्यार्त्तव रोगको प्रदरका समीपवर्त्ती समझ कर इसी प्रसंग पर लिखा जाता है, क्योंकि यूनानी तिब्बमें तथा वैद्यकमें अत्यार्त्तव रोगको प्रदरके समीपवर्त्ती लिखा है इसी अनुक्रमसे डाक्टरीका भी इसी प्रसंगपर लिखना योग्य है ।

स्त्रीको रजोधर्मका रक्तस्राव अधिक दिवस पर्यन्त चलता रहे और प्रकृतिका नियम है कि स्त्रीको ऋतुधर्मका रक्त ३ से ५ दिवस पर्यन्त स्राव होता है । इसके विरुद्ध अत्यार्त्तव रोग होवे तो रक्तस्राव अधिक काल पर्यन्त दीखता है अत्यार्त्तवमें रक्तस्राव ७ से लेकर १५ वा २० दिवस पर्यन्त दीखता है । और पीछे रजोदर्शन एक महीने पर आनेके बदले आठ वा दश दिवसमें फिर ऋतु स्राव होने लगता है । तथापि कितनी ही स्त्रियोंको जो कि ऋतुस्राव ३ वा ४ दिवस ठहरता है सो भी उन ३ वा ४ दिवसोंमें भावसे अधिक रक्तस्राव होता देखा जाता है और धारा प्रवाहके समान बहता है । कितने ही समय ऐसा भी होता है कि ऋतुधर्म दो तीन महीने पर्यंत बढ जाता है और पीछे आता है और अधिक रक्तस्राव होता है कि किसी समय इस प्रकारकी अत्यार्त्तवताकी प्रबलतामें स्त्रीजनोंको गर्भस्रावकी आशंका हो जाती है और कभी गर्भस्रावके बदले ऋतुस्रावकी आशंका हो जाती है सो यह यथार्थ नहीं । किन्तु गर्भ धारणके १ मास पीछे स्त्रियोंके शरीरमें गर्भस्थितिके अनेक चिह्न दीखने लगते हैं, उनका लक्षण मिलाकर उपरोक्त आशंकाको पूर्णरीतिसे निश्चय करलेना योग्य है । ऊपर कथन किया हुआ ऋतुस्रावका विशेष भेद अत्यार्त्तवकी संज्ञाके अभ्यन्तरही आय जाता है । कारण—इसके कारण इस रोगकी उत्पत्तिकी गणनामें आते हैं । गुदामें तथा गुदास्थिमें दर्द, प्लीहोदर, पाण्डुरोग, फेंफसाके रोग कलेजेके रोग, हृदयस्थानके रोगको लेकर तथा इसी प्रकारसे ज्वरादि रोगोंको लेकर जब कि रक्त फीका, पतला, ऊष्ण हो जाता है अथवा किसी दूसरे कारणसे रक्त दूषित हो जाता है, तब अत्यार्त्तव विशेष आता है । कमलमुख अथवा गर्भाशयके अर्बुदसे तथा गर्भाशयमें किसी प्रकारका मस्सा वा ग्रन्थि उत्पन्न

होगई होय उससे भी अत्यार्त्तव होता है किन्तु गर्भाशय स्थानान्तरमें हट गया होय अथवा कमलमुखमें दीर्घ शोथ उत्पन्न हुआ होय तो इससे भी ऋतुस्रावका अधिक और थोडी २ अवधिसे रक्तस्राव आया करता है । गर्भअण्ड अथवा उसके समीपवर्त्ती आसपासके किसी भागमें शोथ उत्पन्न होगया होय तथा गर्भाण्ड और गर्भाशयके ऊपर कुछ दबाव होय तो इन कारणोंसे भी रक्तस्राव अधिक होने लगता है । तथापि गर्भाधान रहनेके पीछे किसी भी कारण विशेषको लेकर गर्भ शुष्क होजाय इसको लेकर तथा प्रसवके पीछे जरायु (जेरी झिल्ली) का कुछ भाग गर्भाशयमें रहजावे इस करके स्त्रीको अधिक अत्यार्त्तव स्राव होना संभव है और प्रसूति अवस्थामें स्त्रीकी क्रिया विशेष विधिपूर्वक न हुई होय कि जिसके न होनेसे गर्भाशय अपनी नियत स्थितिसे संकोचको प्राप्त न हुआ होय और किञ्चित् भी मोटा रहगया होय तो उससे भी ऋतुस्राव तथा अत्यार्त्तव होता है । अत्यन्त मैथुन तथा स्वल्प अपूर्ण मैथुन भी इस रोगकी उत्पत्ति होनेका सहायभूत कारण है । कोमल प्रकृति और नाजुक शरीरवाली स्त्रीको किसी भी प्रकारकी गर्मीके असरसे ऋतुस्राव अधिक पडता है । और हिम प्रधान शीतल देशकी निवासिनी स्त्रियोंकी अपेक्षा ऊष्णता प्रधान देशकी स्त्रियोंको अत्यार्त्तवका रक्तस्राव तथा ऋतुधर्मका रक्तस्राव अधिकताके साथ देखा जाता है । तथा साधारण और हलका शीघ्रपाकी आहार करनेवाली स्त्रीकी अपेक्षा, गर्ममसाला, मिरच, खटाई अधिक लवण खानेवाली स्त्रीको अधिक जोशसे अत्यार्त्तव देखा जाता है । विशेष चिह्न इस रोगके यह हैं कि ऋतुस्रावके समय अधिक रक्त निकलता है और यह रक्त अधिक दिवस पर्य्यन्त स्राव होता रहता है । और अधिक रक्त निकलनेसे स्त्रीका शरीर शिथिल और निर्बल हो जाता है । शरीरकी रंगत सफेद और पीली हो जाती है । सब शरीरमें आलस्य रहता है किसी प्रकारका परिश्रम करनेको रोगीकी तबीयत नहीं होती पेडूमें और कमरमें थोडा २ दर्द रहता है, मस्तकमें दर्द होता है और उठने बैठनेमें आँखोंके आगे अन्धकारसा दीखता है और चक्कर आता है और कपोलकी नसें उठीहुई जान पडती हैं । रोगी मूर्च्छित तथा बेहोशीकीसी हालतमें पडा रहता है—नाडीकी गति विशेप क्षीण हो जाती है और नाडीकी गतिके साथ ही सर्व शरीर क्षीण हो जाता है । यदि अधिक काल पर्य्यन्त यह व्याधि रहे तो शरीर विशेष कृश हो जाता है, समय पर रोगीके शरीरमें शोथ उत्पन्न हो जाता है और कुछ थोडा परिश्रम करे तो श्वास चढ आता है । तथा जठराग्नि मन्द पड जाती है, वमन उत्पन्न होती है, मलका अवरोध जान पडता है, अधिक रक्तस्राव होनेसे शरीर खाली हो जाता है, शरीरमें वायुका प्रकोप बढ जाता है, पेटमें मरोडा आता है, पेडू, कमर, गर्भ अण्ड तथा सांथलके

भागमें फटनेके समान पीडा होती है, तृषा बहुत लगती है । जल अधिक पीना पडता है, स्त्रीका मन बेचैन और व्याकुल रहता है । इस प्रबल अत्यार्त्तवसे गर्भाशयका दीर्घ शोथ उत्पन्न होता है और उससे गर्भकी स्थिति होना अति कठिन है । यदि रोगी स्त्रीको या उसके वारिसोंको यह ज्ञात हो जावे कि अत्यार्त्तवकी व्याधि है तो उसकी चिकित्सा योग्यरीति पर शीघ्र करावे और चिकित्सकको चिकित्सा करनेके पूर्व यह निश्चय करलेना अत्यावश्यक है कि यह व्याधि किस कारणसे उत्पन्न हुई है ? स्त्रीकी पूर्णरीतिसे परीक्षा करके रोगोत्पादक कारणको नष्ट करनेकी चेष्टा करे ।

अत्यार्त्तवकी चिकित्सा ।

गं·अत्यार्त्तवकी हालतमें चिकित्सकको यह जानना चाहिये कि अत्यार्त्तव कुछ निजतौरपर एक रोग नहीं है, किन्तु यह अनेक रोगोंका एक उपद्रव है, तो उपद्रवका जो कारण निश्चय किया होय उसीके आधार पर इस रोगीकी चिकित्सा करनी योग्य है । और रोगी स्त्रीको आरामसे बिस्तर पर लेटे रहनेकी आज्ञा देवे, रोगीको साफ खुलासा हवादार मकानमें रखना उचित है । उत्तम स्वादु पौष्टिक आहार देना, ग्राही औषधियोंका प्रयोग दे, जो कि रक्तको रोक सकें । गर्म तासीरके आहार तथा गर्ममसाले वगैरह वा गर्मागर्म आहार तथा किसी भी प्रकारकी गम वस्तु न देनी चाहिये । मद्य कदापि न पीवे, ग्राही औषध जैसा कि ग्यासिकएसिड, स्युगरलेंड, सलफ्युरिकऐसिड, दालचीनी वा इसका अर्क लोहभस्म वा इसका अर्क इत्यादि अत्यार्त्तवके रक्तप्रवाहको रोकनेवाली सर्वोत्तम औषध (अरगट) हैं, ये अतिशीघ्र असर करनेवाली औषधियें हैं ।

औषध प्रयोग ।

ग्यालीकऐसिड ४९ ग्रेन, डिल्युटसलफ्युरिकऐसिड ४९ बिंदु लिक्विड एक स्ट्राकट ओफ अरगट १½ ड्राम तजका अर्क ३ औंस् इस प्रयोगकी औषधियोंको मिलाकर ⅓ भाग करे और दिवसमें तीन समय ३–४ घंटेके अर्सेसे पीवे । अथवा स्युगरलेड १२ ग्रेन डिल्युटआसेटिक्एसिड २ ड्राम लाईकरमोर्फिया ४ बिन्दु (टीपा) टिंचर सिनामन २ ड्राम दालचीनीका अर्क ४ आंस–

ऊपरके प्रयोगमें लिखी औषधियोंको मिलाकर ४ भाग करलेवे और ३ घंटेके अन्तरसे एक एक भाग देना योग्य है। फिटकरीका फूला ३० ग्रेन हीराकसीस ६ ग्रेन डिल्युड सलफ्युरिक ऐसिड ३० बिन्दु दालचीनीका अर्क ४½ औंस् ऊपर लिखे प्रयोगकी औषधियोंको मिलाकर ४ भाग करलेवे और ४ घंटेके अन्तरसे एक एक भाग पीनेको देवे । यदि जो स्त्रीके अण्डमें रक्तका संग्रह जान पडे तो (पोटासब्रोमाईड) देना उत्तम है । टींक्चर क्यानाबिसईन्डीका अत्यार्त्तवकी पीडाको तथा रक्तस्रावको

अधिक शमन कर्त्ता है यदि अत्यार्त्तववाली स्त्रीकी अग्नि तीव्र होवे तो चूहे (आखु) की २-४ लेंडी बारीक पीसकर दूधमें मिलाकर स्त्रीको बे कहे दिनमें २ समय पिला देवे । इससे प्रबल प्रयोग अत्यार्त्तवके रक्तको बन्द करनेवाला दूसरा नहीं है । परन्तु मन्दाग्निवाली स्त्रीको न देवे । क्योंकि यह अत्यन्त अजीर्ण और पेटमें अध्मान (अफरा) कर्त्ता है । (वैद्यकमें वृद्धवानरीचूर्ण भी अत्यार्त्तवके रोकनेमें उत्तम है) ।

वृद्धवानरीचूर्ण ।

कवचके वीजका मगज, छोटा गोखरू, सफेद मूसली, सेमलकी जड (मूसली) सूखा आंवला, गिलोयसत्व, पीपलकी लाख, सूखा सिंघाडा, सूखा कसेरू ये सब औषधियाँ समान भाग लेकर बारीक कूट वस्त्रमें छान लेवे और औषधियोंके समान मिश्री मिलाकर गोदुग्ध तथा चावलके धोवनका जो जल उसके साथ आधा तोला चूर्ण लेवे और एक दिवसमें दो समय लिया करे ।

खानेकी औषधियोंके अतिरिक्त बाह्योपचार करना भी अति आवश्यक है । योनि तथा पेडूके ऊपर बर्फ रखना, कदाचित् किसी देशकालमें वर्फ न मिले तो शीतल जलमें कल्मीशोरा मिलाकर उसमें कपडा भिगोकर पेडू तथा योनिपर रखना । योनिमें बर्फका टुकडा रखना अथवा स्तम्भन औषधियोंकी पिचकारी योनिमें लगानी अथवा स्पेंजका टुकडा शीतल जलमें भिगोकर अथवा वर्फके जलमें भिगोकर योनिमें रखना कोई ही होसियार स्त्रियाँ स्पेंजका टुकडा योनिमें इस अत्यार्त्तवकी हालतके समय अवश्य रखती हैं और उनका रक्तस्राव कम हो जाता है अथवा किसी २ का रक्त एकदम बन्द होता देखा गया है । विशेष रक्तस्रावकी हालतमें गर्भाशयके अन्दरके पडतके ऊपर (टींक-चर आयोडीन् अथवा लायक वोरफेरी परकलारीडी) आदि औषधियां यन्त्र करके चुपडी जाती हैं । और इसके लिये गर्भाशयके मुखको चौडा करनेकी आवश्यकता है । गर्भा-शयका मुख चौडा करनेके पीछे परीक्षा करनेसे निश्चय होगा कि उसके आभ्यन्तरके अवकाशमें अर्ब्बुद अथवा मस्सा वा ग्रन्थी आदि कोई दुष्ट व्याधि जान पडे तो उसको योग्यरीतिसे शस्त्रोपचार द्वारा निकाल देना । इसके अतिरिक्त अर्डिकेरी आयुरन्स-का रस १९ से २० ड्रामतक एकही समय पीनेसे अत्यार्त्तवका कितना ही रक्तस्राव हो एकदम बन्द होजाताहै । ऋतुस्रावके बीचके दिनोंकी अवधिमें गुदास्थिके भागके ऊपर ब्लीस्टर लगाना मलशुद्धि बराबर साफ होती रहे ऐसी औषध देना योनिमें हररोज शीतल जलकी पिचकारी लगाना । स्त्रीको उचित है कि शीतल जलसे स्नान करतीरहे, पेंडू तथा कमरके ऊपर शीतल जलका (तर्डा) देना (डालना) पौष्टिक औषधियां देनी लोहभस्म शिलाजीत स्वर्णमाक्षिकभस्म तथा वायविडङ्गका मगज इनको

कारणसे कि निर्बल और तङ्ग है उसको न ठहरा सके और निरोधक शक्ति उसको मसानेकी तर्फ निकाल देवे और गुर्दा फिर जलके भागको कलेजेसे और कलेजा मासीरीकासे और वह आमाशयसे ग्रहण करे इस कारणसे पिआश अधिक होय और चैन न होय और जो अवयव एक दूसरेसे पानीको ग्रहण करते हैं-उसको यूनानी शब्दमें (जयाबीतस अथवा दलाव) कहते हैं (सोम शब्दका पर्य्यायी शब्द है) और उसके लक्षण पियाशका अधिक लगना और पानी पीतेही थोडी देर बाद पिशाबकी हाजतके जरियेसे निकाल देना और पिशावमें जलन गर्मी वा तबदीली न होना और यह रोग जब कि बहुत पुराना होता है तो कलेजेको निर्बल कर देता है । और हिक्काका रोग उत्पन्न कर देता है (इसका इलाज) यह है कि गुर्देकी अग्निके रोकनेमें उन औषधियोंका सेवन करे जो कि उसकी प्रकृतिके उपद्रवमें वर्णन की गई हैं । और जानना चाहिये कि जौका पानी, खट्टे अनारका शर्वत, अंगूरके पानीका शर्वत, नींबूका शर्वत, चूकाका शर्वत, कर्पूरकी टिकिया, जावीतसकी टिकिया, वंशलोचनकी टिकिया इत्यादि खिलाना, पिलाना और खीरा ककडीके बीजोंका शीरा, ईसबगोलका लुआब इत्यादि पिलाना और चंदन, गुलनार, अकाकिया, गिलेअर्मनी, जौकासत्तू, काहूके पानीमें मिलाकर कुतुन गुर्दोंपर लेप करना-और ठंढी सुगन्धित वस्तु जैसे नीलोफर वनफशा, गुलाबके फूल, नाशपातीके फूल, सेवके फूल, वेलकी कलियाँ इत्यादि सूँघना और बिस्तरपर विछाकर चित्त लेटना और भोजनोंमें अंगूर, अनार इत्यादि ठंढी और कब्जा करनेवाली वस्तुओंको देना अधिक लाभदायक है और तबीब (हकीम) लोग कहते हैं कि बासलीककी फस्द खुलाना लाभदायक है । (कापूरकी टिकियाकी विधि) वंशलोचन, चंदन, खुरफा, सूखी धनियां, चूकेका बीज, खीरा ककडीके बीजकी मींगी, कद्दूकी मींगी, काहूके बीज, अर्बीगोंद, गिलेअर्मनी, कापूर, आवश्यकताके अनुसार प्रत्येक समान भाग लेकर महीन कूट छानकर जलके साथ टिकिया बनावे और समयपर काममें लावे । (वंशलोचनकी टिकियाकी विधि) वंशलोचन, काहूके बीज, खुरफेके बीज, गिले अर्मनी, गुलाबके फूल, गुलनार, समान भाग लेकर उपरोक्त विधिसे टिकिया बनावे । (जावीतसकी टिकियाकी विधि) वंशलोचन, मुलहटीका सत्व, प्रत्येक ९ दिरम, खुरफेके बीज, काहूके बीज प्रत्येक १९ दिरम, सूखी धनियां, चूकाके बीज, गिलेअर्मनी प्रत्येक ३ दिरम सफेदचन्दन, गुलनार, सिमाक, अर्बीगोंद प्रत्येक २ दिरम कापूर आधा दिरम बारीक कूट छानकर खुरफे या काहू या खट्टे अनारके पानीमें विधिपूर्वक टिकिया बनावे । दूसरा भेद इसका यह है-कि अधिक ठंढ पहुंचनेसे अथवा अधिक

शीतल जलके पीनेसे और दूसरे कारणोंसे ठंढी प्रकृतिका उपद्रव तमाम जिस्मपर अथवा सिर्फ गुर्देहीपर अधिक आजावे (और ठंढा जयाबीतस बहुत ही कम होता है,) और उसका लक्षण यह है कि गर्मीके लक्षणोंका न होना, परन्तु पिलासका होना क्योंकि जयाबीतस चाहे शीतल माद्देसे उत्पन्न होय, परन्तु पिलाससे रहित नहीं हो सक्ता और जानना चाहिये कि अगर केवल गुर्देमें ठंढ होगी तो उसकी अपेक्षा पिलास अधिक होगी कि तमाम जस्ममें ठंढ होगा । सारांश यह है कि चाहे जिस प्रकारसे होय ठंढे जयाबीतसकी पिलास गर्म जयाबीतसकी पिलासको कदापि नहीं पहुंचती है और इन दोनोंमें अंतर प्रगट है । इस कारणसे कि उनकी व्यवस्था जो कुछ लिखी जा चुकी है वह बहुत है (इलाज) इसका यह है कि गुद और सब जिस्ममें गर्मी पहुंचानेके लिये (मसरूदीतूस) और गर्म माजूनें देव आर गर्म तथा बलवान् तेल जैसे कूट और महलब तथा सादका तैल जुन्दवेदस्तर अकरकरा मिलाकर गुर्दे और पीठपर मले और गन्धकके सरोवर (खान) में बैठना लाभदायक है । यदि वमन करानेकी आवश्यकता होवे तो मूलीका जुसांदा (काढा) बनाकर उसमें शहदकी सिकंजवीन मिलाकर पिलावे और नर्म करनेवाली औषधियोंका हुकना करे और उत्तम बलवान् आहार जैसा चिडियाका मांस दूसरे भुनेहुए मांस तथा पक्षियोंके मांस इत्यादि आहार देवे । उस माजूनकी विधि जो इस मौकेपर लाभदायक है और इसका नाम (मासुकुलबोल) अर्थात् पेशाबको रोकनेवाली है । कुन्दरू, शाहबलूत, साद, कुलीजन, कुरफा, ऊद इन छः औषधियोंको लेकर शहतमें मिलाकर देवे । इसकी मात्रा दो मिसकाल है और औषधियां वजनमें सब समान भाग लेवे जयाबीतस यूनानी जबानमें डोलको कहते हैं । इस कारणसे कि एक तर्फसे पानीको ग्रहण करता है और दूसरी तर्फसे निकालता है इसी कारणसे इसका यह नाम रक्खा गया है । हमारी रायमें यह अर्थ डोलमें संघटित नहीं होता किंतु सूंडिया और बैलके ऊपर जो पखाल होती है उसमें संघटित होता है आर मौलाना नफीसने वर्णन किया है कि इसको सिल २ बोल कहते हैं आर १ बहरुल जवाहर किताबके लिखनेवालेका शब्द इसके विरुद्ध है । इस कारणसे कि सिल २ बोलमें पेशाब विना इरादे आता है और जयाबीतसमें इरादेके साथ पेशाब आता है किन्तु ठीक वाक्य मौलाना नफीसका ही है, इस कारणसे कि जब निर्मलताकी अधिकता होगी और पेशाबकी नलीमें ठंढ आ जायगी तो पेशाब न रुक सकेगा । इसका पूर्ण और निष्पक्ष फैसला आयुर्वेद कर सक्ता है । जैसा कि-

सोमलक्षणसंसृष्टा कालातिक्रान्तयोगतः ।
साऽतिक्रान्तक्रमेणैव स्रवेन्मत्रमभीक्षणशः ॥

अर्थ—त्रिदोष कालसे उत्पन्न हुए सोमरोगमें जो मूत्र अत्यन्त वहने लगे तो उसको मूत्रातीसार कहते हैं, यह मूत्रातीसार वलका अत्यन्त नाशक है। जैसा कि प्रवाहिका अतीसार तथा ऐसाही मूत्र प्रवाहका अतीसार।

यूनानीतिव्वसे सोमरोगलक्षण तथा चिकित्सा समाप्त।

डाक्टरीसे सोमरोग (वहुमूत्र)।

डायावीटीझ ईनसीपीडस।

आयुर्वेद वैद्यकमें सोमरोग स्त्रीरोगके अधिकरणमें वर्णन किया गया है, लेकिन यूनानीतिव्व और डाक्टरी तथा हमारी भी रायमें अनेकपुरुष तथा स्त्रियोंको इस रोगसे पीडित देखकर यही कहना पडता है कि स्त्री वा पुरुष दोनोंको ही वहुमूत्र रोग होता है, न कि केवल स्त्रियोंको ही होता होय। किन्तु पुरुषको न होता होय यह कदापि संभव नहीं। आयुर्वेदके एकदेशी सिद्धान्तके अनुसार ही इस स्थलपर तिव्व तथा डाक्टरीसे वहुमूत्रका प्रकरण लिखना पडा है। डाक्टरीसे वहुमूत्र इस व्याधिमें मधुप्रमेहके समान चिह्न होते हैं, परन्तु यह विशेषता है कि मधुप्रमेहमें मीठी शर्करा होती है और इसमें किञ्चिन्मात्र नहीं होती। मूत्रकी रंगत स्वच्छ जलके समान होती है और इसमें भारीपन नहीं होता किन्तु मूत्र विशेष साफ और हलका होता है। उसमें सहस्र अथवा इससे थोडा अंश अधिक होता है। इस व्याधिका कारण अभीतक वरावर पूर्ण रीतिसे निश्चय नहीं हुआ और समझमें भी नहीं आता। छोटी तथा वैसेही वडी उमरके मनुष्यको यह व्याधि होती है (इलाज) अफीम, कपूर, वालेरनगन टिंकचर ओफस्टील, अरगट, विजलीका स्पर्श इत्यादि प्रयोग और प्रक्रियासे रोगियोंको आरोग्यता हुई है।

पञ्चमाऽध्यायसमाप्त।

षष्ठाध्यायारम्भः।

यूनानीतिव्वसे उत्पत्ति कर्म अवयव (अङ्ग) का संकोच।

रतक—यह भी वन्ध्यत्वका कारण है और इसकी विवेचना आयुर्वेदमें नहीं है और सूचीमुखी आदि योनियोंसे संयोग भी मिलाया जाय तो पूर्ण सम्बन्ध नहीं मिलता यूनानीतिव्वमें भी कितनी हीं व्याधियोंका वर्णन नहीं है और कितनी ही व्याधियोंका अपूर्ण वर्णन तथा चिकित्सा है। परन्तु जितना है उतना प्रकाश करना उचित है, गुणीके गुणको लुप्त करना अनर्थ है। रतक इसका अर्थ यह है कि पेटके ऊपरकी कडी झिल्ली स्त्रीकी जननेन्द्रियके (योनिके) मुखपर अथवा योनिके मार्ग और गर्भाशयके मुखके मध्यमें तथा गर्भाशयके मुखके ऊपर आजाय तथा जो योनि-

मुखके ऊपर है तो पुरुषेन्द्रियके प्रवेश होनेको रोकती है और जो गर्भाशयक मुख तथा योनिमार्गके मध्यमें है तो पुरुषेन्द्रिय सम्पूर्ण प्रवेश नहीं होसक्ती ह आर जा गर्भाशयके मुखपर है तो पुरुषेन्द्रियके प्रवेशकर्मको नहीं राक सक्ती, परन्तु गर्भाशयसे जो ऋतुधर्मका स्राव होता है उसको तथा गर्भाशयमें जो पुरुष वीर्य्यका प्रवश होता है उसको तथा बालकके निकलनेको रोक सक्ती है। क्योंकि अधिक मांसबृद्धिम भाग नहीं होता और तङ्ग मांसमें कभी २ जखम भी पड जाते हैं और इस मुकामकी मांस बृद्धि होती है, इससे तो अधिक मांस बढ जाता है और योनिमार्ग बन्द हो जाता है योनिमार्ग जन्मसे ही उत्पन्न होता है। इलाज इसका यह है कि जो होसके तो मामूलीसे बढेहुए मांसको नश्तरसे काट डाले और घावके भरनेके लिये इलाज करे और उस लम्बे नश्तरसे चीरे, जिससे बवासीरी मस्से चीरे जाते हैं या चौडे नश्तरसे चीरे, जो छिपी सलाईके समान होता है और जो विशेष मांसके जम जानेसे उत्पन्न होय तो उस चीज (बढेहुए मांस) को चीमटी शस्त्रसे पकडकर नश्तरसे काट डाले, अभिप्राय यह है कि काटनेके उपरान्त एक छेदवालेपर रुई लपेटकर एक ऐसा मरहम लगावे जो भरनेसे रोके (याने योनिमार्गका नीचे ऊपरका मांसपटल मिल न जावे) और उसको योनिमार्गमें रख देवे। जिससे धीरे २ घाव अच्छा होजावे। छेददार चीजके रखनेका यह मतलब है कि फोक और हवाके निकलनेका रास्ता बना रहे और जानलेना चाहिये कि कभी २ ऐसा होता है कि स्त्रियोंकी वह विशेष चीज (योनिकी मांसवृद्धि) जो योनिमार्गके दोनों तर्फमें है अर्बी जबानमें उसको (वजर) कहते हैं. बहुत बढकर कडी और मजबूत हो जाती है और स्त्री पुरुषके संभोगको रोकती है और कदाचित् यह विशेप मांसवृद्धि इतनी होजाय कि वह स्त्री इस विशेष बढेहुए मांससे दूसरी स्त्रीके साथ संभोग करसक्ती है और ऐसी स्त्रीको अर्बी जबानमें (वजरा) कहते हैं. और इसका इलाज भी काटनेसे होता है। धन्यवाद है हकीमजी साहब ऐसी स्त्रियां सायद अर्ब ईरानमें होती होवें। भारत तथा यूरोपमें नहीं होतीं, यदि होतीं तो नये आविष्कार वाले डाक्टर इसका विशेष विवर्णकरके चिकित्सोपचार अवश्य लिखते।

डाक्टरीसे प्रजोत्पत्ति कर्मवाले अंगका संकोच।

स्त्रीरोगोंके सम्बन्धमें विशेष करके प्रजोत्पत्ति स्थानकी व्याधियोंका समावेश होता है इस अङ्गकी व्याधियोंकी परीक्षाके निमित्त विशेष करके स्त्रीजातिके योनि अवयवको देखनेकी आवश्यकता चिकित्सकको पडती है, चाहै चिकित्सक स्त्री हो अथवा पुरुष हो यावत्काल चिकित्सक स्त्रीके गुह्य अवयवको अपनी दृष्टिसे देखकर निश्चय न करलेवे तावत्काल गुह्यावयवकी चिकित्साकी प्रवृत्ति कदापि न करे।

योनिमुख योनि ओष्ठ ये बाह्य अङ्ग हैं, प्रथम इनकी परीक्षा करे । इसके अनंतर योनिमार्ग कमलमुख गर्भाशय गर्भ अण्ड आदिकी परीक्षा करे, जो गुह्य अवयवकी न्यूनताके कारणसे ही स्त्रीको गर्भाधानका अभाव होय तो स्त्रीके गुह्य अवयवका संकोच निश्चय करके स्त्रीको गर्भवती होनेमें बाधक हो जाता है और स्त्रीपुरुषका सहवास निष्फल होता है । कितनी ही स्त्रियोंमें देखा गया है कि यह संकोच स्वभावजन्य होता है और यह मूलसेही स्त्रीके गर्भस्थानमें रहता है और किसी समय कितनी ही स्त्रियोंको पीछेसे उत्पन्न हो जाता है । जिस प्रकार योनिमुख वा योनिमार्ग संकुचित होता है उस प्रकारसे योनिके आभ्यन्तर गर्भाशय संकुचित नहीं होता, लेकिन फिर भी किसी किसी समयपर कमलमुखके भागमें कुछ २ संकोच होता है प्रायः ऐसा कितनीहीं स्त्रियाम देखा गया है । यदि इस प्रकार स्वाभाविक संकुचितपन स्त्रीके गुह्य अङ्गमें होवे तो यह वन्ध्यादोषका प्रधान कारण समझना योग्य है । क्योंकि ऐसा संकोच विशेष करके गर्भाशयक बाह्यमुखके समीप अथवा अन्तरमुखके समीप होता है । किन्तु गर्भाशयके भागोंकी अपेक्षा योनिमार्गके भागोंमें संकोच विशेष करके पाया जाता है । कितने ही समय देखा गया ह कि संकोच सम्पूर्ण योनिमार्गके भागमें होता है स्वाभाविक नियमके अनुसार यह योनिमार्ग खुला हुआ होना चाहिये । सो संकुचित विशिष्ट देखा गया है और कितने ही समय किसी २ स्त्रीकी योनिके थोडे भागमें होता ह जिसके कारणसे किसी समय योनिमुख आडा—अर्द्धचन्द्राकार पटल हो जाता है । इस हेतुसे योनिका बाह्यमुख संकुचित अथवा सब बन्द दीखता है, इस रीतिका स्वाभाविक जन्मसे उत्पन्न हुआ संकोच होता है । और कितनीही स्त्रियां ऐसी देखी गई हैं कि जो पतिके साथ सहवास भी करचुकी हैं और सन्तान भी उत्पन्न हो चुकी है परन्तु पीछेके कितनेही कारणोंका निमित्त मिळनेसे गुह्य अवयवमें संकुचितपन उत्पन्न हो गया है । वे कारण ये हैं योनिमार्गमें किसी प्रकारका व्रण (फोडा गुमडा) अथवा जख्म (घाव) हो जानेसे अथवा प्रमेह प्रदर वा उपदंश (गर्मी आतशक) आदिका क्षत पडजानेसे व इन क्षतोंका रोपण हो जानेसे पीछे वह अङ्ग संकोचको प्राप्त हो जाता है । अथवा बाल्यावस्थामें तथा तरुणावस्थामें किसी हेतु विशेषसे विषैला ज्वर उत्पन्न होजानेसे योनिके मर्मस्थानोंमें पाक वा सडाव पडजाता है, वह पकाहुआ अथवा सडाहुआ भाग रोपण (रुज) जावे तो रुजनेके अनन्तर संकोचको प्राप्त हो जाता है । इसकी विशेष व्यवस्था इस प्रकारसे है कि स्त्रीकी सम्पूर्ण बाल्यावस्था व्यतीत हो जाती है परन्तु स्वाभाविक योनिमार्गके संकोचका ज्ञान नहीं होता है कि स्त्रीकी योनिका मार्ग जन्मसे ही संकोचको सम्पूर्ण रीतिसे प्राप्त हो रहा है किन्तु स्त्रीकी बाल्यावस्थाके समाप्त हो जानेपर और तरुणावस्थाके आरम्भमें जब कि ऋतुधर्म आनेकी अवस्था प्राप्त

होती है उस समय जान पडता है कि योनिके जिस भागमें संकोच होवे उस भागके ऊपरके भागमें ऋतुके रक्तका संग्रह होता है। वह भाग ग्रन्थिकी आकृतिके समान जान पडता है, इस युक्तिप्रमाणसे जो अर्द्धचन्द्राकार पटलको लेकर रुकावट हुई होय तो योनिमार्गके भागमें ऋतुके रक्तका एकत्र संग्रह होना जान पडता है। योनि मुखका संकोच न हो, किन्तु योनिमार्ग संकोचको प्राप्त हुआ होय तो गर्भाशयके किसी भागमें अथवा विशेष करके अग्रभागमें ऋतुके रक्तका एकत्र संग्रह होना संभव है। इस कारणसे ऋतु समयके दिनोंमें स्त्रीके गर्भाशय तथा उसके समीपवर्त्ती मर्मस्थानोंमें पीडा होती है, यदि यह पीडा प्रत्येक महीनेमें ऋतुधर्म आनेके समय पुनः उत्पन्न होवे तो यह जान पडता है कि ऋतुस्रावके अभाव (रुकावट) को लेकर वहाँ रक्तका एकत्र संग्रह हुआ है। ऐसी व्यवस्थाका द्योतक (जनाने वाला) है, या न्यूनाधिक शोथ भी उत्पन्न हुआ होय ऐसा भी अनुमान होना संभव है। किन्तु बीचके दिवसोंके व्यतीत होनेके पीछे इस पीडाकर्त्ता ऋतुजन्य रक्तज पदार्थके संग्रहका शोषण हो जाता है। इस कारणसे उस अंगमें छोटी ग्रन्थि दीख पडती है और पीछे पुनः ऋतु आनेके समय पर वृद्धिको प्राप्त होता है। तथा कभी २ देखा गया है कि इस ग्रन्थिका प्रभाव मलाशय तथा मूत्राशय बस्तिस्थानके ऊपर दबाव और मिचाव पडनेसे मलमूत्रका अवरोध (कब्जीयत) होता है। यदि इस ग्रन्थिका अधिक झुकाव मलाशयकी तर्फ होवे तो मलका अवरोध अधिक होता है और मूत्र न्यून होता है, यदि इस ग्रन्थिका झुकाव मूत्राशय वा मूत्रमार्गकी नलीकी तर्फ होवे तो मूत्रका अवरोध अधिक और मलका न्यून होता है। यदि ग्रन्थि स्वभावसे होय तो मल मूत्र दोनोंका सामान्य अवरोध होता है। इस ग्रन्थिके प्रभावसे कितने ही समय स्त्रीको बहुमूत्र तथा अतीसार उत्पन्न हो जाता है। एवं अर्द्धचन्द्राकार पटल जिसमें योनिद्वार बन्धनको प्राप्त रहता है वह साधारण रीतिसे स्त्रीकी युवावस्था प्राप्त होनेपर स्त्री पुरुषका प्रथम समागम होता है। उस समय पुरुषेन्द्रिय प्रवेश क्रियाके तनावसे फट जाती है। और कुछ रक्तस्राव होकर ३—४ दिवसमें रोपण हो जाता है। परन्तु किसी २ स्त्रीका यह योनिपटल इतना चौडा मोटा और मजबूत होता है कि पूर्ण युवावस्था जवान पुरुषके समागम करने पर भी इस पटलको कुछ इजा नहीं पहुंचती और समागमकी संघर्षण क्रियाकी गतिको शहन करके और मजबूत मोटा और चर्ममें सुकडनवाला हो जाता है और ऋतुस्रावके रक्तको रोकता है, इससे रुककर रक्त योनिमार्गमें भरा रहता है और अंगुली आश्रयके विदून सब रक्त बाहर नहीं निकल सक्ता। यदि प्रथम पुरुष समागममें यह पटल न टूटे और स्त्रीको गर्भाधान रह जावे तो प्रथम प्रसवके समय यह पटल बालककी प्रसवक्रियाकी गतिको रोकता

है । चाहे संकोच जिस कारणसे हुआ होवे परन्तु योनिमार्गके संकोचके ऊपर ध्यान दो कारणोंको लेकर जाता है । प्रथम पुरुषसमागमके रति विलासमें किसी प्रकार इजा पहुंचनेसे । दूसरे स्त्रीकी पूर्ण युवावस्थाका आरम्भ हो जानेपर भी रजोदर्शन न दीखे । ऋतुधर्मकी रुकावटके लिये जो किसी प्रकारकी पीडा दर्द वा ग्रन्थि इत्यादि उत्पन्न हुई होवे तो उस पीडाको लेकर यह जान पडता है कि योनिमार्ग कुछेक अवकाशवाला है, ऐसा अनुमान किया जाता है । अब चिकित्सा इस रोगकी यह है कि जो योनिपटल चिकित्सककी बुद्धिमें ऐसा ज्ञात होवे कि उपरोक्त क्रियाओंका अवरोधक योनिपटल है ऐसा पूर्ण परीक्षासे निश्चय करलेवे और इसका उपाय भी अति सरल है, किन्तु पुरुषके प्रथम समागमसे इस चर्मपटलकी रुकावटका छेदन होगया होवे तो अति उत्तम है । यदि ऐसा न हुआ होवे तो चिकित्सकको उचित है कि स्त्रीको योनिरोगकी परीक्षाका विश्वास देकर तीव्र कैंची वा नश्तरसे इस चर्मपटलका छेदन कर देना योग्य है और कार्बोलिक एलमें रुईका फोहा भिगोकर उस छिद्रपर रख देना चाहिये और फोहा २ समय हररोज बदलना चाहिये ४।५ दिवसमें जखम रोपण हो जावेगा और चर्मपटल योनिमें दोनों भागोंसे जा मिलेगा और सतहसे मिलाहुआ दीख पडेगा । इस मौकेपर चिकित्सकको इस बातका ध्यान पूर्ण रीतिसे रखना चाहिये कि जिस चर्म पटलका छेदन किया है वह तथा योनिमुखके दोनों किनारे आपसमें परस्पर पुनः न मिल जावें, जो चर्मपटल छेदन हो चुका है वह झुकडकर योनिमुखके दोनों किनारोंसे जा मिलता है । यदि वह दोनों किनारोंका सन्धि संयोग कर देवे तो पुनः योनिमुख संकुचित हो जावेगा, क्योंकि योनिमुखका स्थान ऐसा है कि सदैव मिचाहुआ रहता है ऐसे स्थल पर सन्धि होजाना संभव है । यदि योनिमुखके किनारे मिलते जान पडे तो योनिमुखके न मिलने देनेके लिये योनि विस्तारक यन्त्र ४-६ दिवस पर्यन्त रखना योग्य है । यदि योनि विस्तारक यन्त्रके रखनेसे स्त्रीको आलस्य मालूम होवे तो उसकी आकृतिकी रुई वा कोमल कपडेकी मोटी बत्ती बनाकर तैलमें भिगोकर रक्खे और उस बत्तीकी लम्बाई ६ अंगुलके करीब होवे ४-५ अंगुल बत्ती योनिमार्गमें रहे बाकी १ वा २ अंगुल योनिके बाहर रहे और बत्ती प्रवेश करके रुई वा कपडेकी गद्दी लगाकर ऊपरसे लँगोटके समान स्त्रीके पट्टी बाँध देवे, जिस समय स्त्रीको दस्त वा पिशावकी हाजत होवे उस समय पट्टी खोलकर अपनी हाजतसे निवृत्ति करे । उस समय उस बत्तीको हाथसे दवाये रहे कि हाजतके जोर करनेसे बत्ती बाहरको न निकल पडे । यदि निकालनेकी आवश्यकता हो तो चिकित्सककी राय लेकर योनिविस्तारक यन्त्र तथा बत्तीको स्त्री निकाले इससे दोनों योनि ओष्ठोंके पुनः मिल-

नेका भय न रहेगा और रुकावट निवृत्त हो जावेगी ऊपर जो योनिविस्तारक यन्त्र रखनेका कथन किया है उस यन्त्रकी आकृति आगेके प्रकरणमें आवेगी। परन्तु जब कि योनिका सर्व मार्ग अथवा उसका अधिक यथार्थ भाग (असली भाग) मिल गया होय तब उस भागको चौडा करते तथा ऋतुस्रावका एकत्र हुआ संगृहीत रक्त निकलते अधिक परिश्रम पडता है (कार्बोलिकस्प्रे) की सहायतासे वायु शुद्ध करके नली अथवा आर (अनी) से यह एकत्र संग्रह हुआ रक्त निकालना, (स्पीरेटर) से यह रक्त संग्रह खींच लेना, किन्तु ऐसा करते समय आसपासके किसी भागमें पाक होवे तो एकदम पूर्ण मोटा छिद्र करना और सलफ्यूरसएसिड, कार्बोलिकएसिड अथवा, बोरेसिकएसिड, कालोशन बनाकर जखमको धोना। लोशनकी विधि एक भाग उपरोक्त दवा और अस्सी भाग गर्मजल, इस हिसाबसे चाहे जितना बना लेना। कितने ही डाक्टरलोग नली अथवा आर (अनी) से रक्त संग्रहको निकालनेके बदले योनिमार्गके स्वाभाविक रास्तेकी जगहमें छिद्र करते हैं, जो इस क्रियाको करनेके समय मलमार्ग (मलका नल) और मूत्रमार्ग (मूत्रनली) न कटने पावे, ऐसी सावधानी रखना विशेष आवश्यक है। इन दोनों मार्गोंकी रक्षाके लिये प्रथम यह उपाय करलेना योग्य है कि मूत्रमार्गकी नलीमें स्त्रीकी मूत्रशलाका प्रवेश करके दूसरे सहायक मनुष्यको पकडा देवे तथा गुदामार्गमें चिकित्सक (शस्त्रोपचारका कर्त्ता) वामे हाथकी तर्जनी अंगुली प्रवेश करके रक्खे और सीधे हाथकी तर्जनी अंगुलीको दोनोंके बीच (यानी गुदा और मूत्रनलीके बीचमें) जो योनि मार्ग है उसमें प्रवेश करे और उस अंगुलीके बगल बगल छेदन करे। छेदन करनेके अनन्तर योग्य उपाय तथा उपचारसे शीघ्र जखम रोपण हो जावे वैसी क्रिया करे और योनिमार्गमें योनिविस्तारक यन्त्र रख कई सप्ताह पर्य्यन्त रहने देवे।

डाक्टरीसे गर्भाशयके बाह्यमुखका संकोच।

योनिका संकोच कथन करनेके अनन्तर गर्भाशयके बाह्यमुखका संकोच कथन किया जाता है, क्योंकि प्रजोत्पत्तिकर्ममें योनि तथा गर्भाशय दोनों ही अवयव सहायभूत सम्बन्धसे विशिष्ट हैं। गर्भाशयका थोडा नीचेका भाग जो कि योनिके सम्बन्धमें आया हुआ है और योनिकी मांसपेशीओंसे मिलाहुआ है, जिसका नाम योनिके शारीरिक कमलमुख कथन कर आये हैं। वह भाग विशेष करके संकोचका स्थान है कमलके मध्यभाग (बीच) में जो छिद्र है उसको गर्भाशयका तथा कमलका बाह्यमुख कहते हैं, किसी समय पर व्याधियोंके विशेष कारणोंका निमित्त पाकर कमलके इस बाह्यमुखमें ही संकोच होता है और किसी समय पर अन्तर्मुखकी जहाँपर कमलमुख और गर्भाशयके गोल मोटे भागका सम्बन्ध मिलता है। इस स्थल पर भी संकोच होता है।

है। चाहे संकोच जिस कारणसे हुआ होवे परन्तु योनिमार्गके संकोचके ऊपर ध्यान दो कारणोंको लेकर जाता है। प्रथम पुरुषसमागमके रति विलासमें किसी प्रकार इजा पहुंचनेसे। दूसरे स्त्रीकी पूर्ण युवावस्थाका आरम्भ हो जानेपर भी रजोदर्शन न दीखे। ऋतुधर्मकी रुकावटके लिये जो किसी प्रकारकी पीडा दर्द वा ग्रन्थि इत्यादि उत्पन्न हुई होवे तो उस पीडाको लेकर यह जान पडता है कि योनिमार्ग कुछेक अवकाशवाला है, ऐसा अनुमान किया जाता है। अब चिकित्सा इस रोगकी यह है कि जो योनिपटल चिकित्सककी बुद्धिमें ऐसा ज्ञात होवे कि उपरोक्त क्रियाओंका अवरोधक योनिपटल है ऐसा पूर्ण परीक्षासे निश्चय कर- लेवे और इसका उपाय भी अति सरल है, किन्तु पुरुषके प्रथम समागमसे इस चर्म- पटलकी रुकावटका छेदन होगया होवे तो अति उत्तम है। यदि ऐसा न हुआ होवे तो चिकित्सकको उचित है कि स्त्रीको योनिरोगकी परीक्षाका विश्वास देकर तीव्र कैंची वा नश्तरसे इस चर्मपटलका छेदन कर देना योग्य है और कार्बोलिक एसिडमें रुईका फोहा भिगोकर उस छिद्रपर रख देना चाहिये और फोहा २ समय हररोज बदलना चाहिये ४।५ दिवसमें जखम रोपण हो जावेगा और चर्मपटल योनिमें दोनों भागोंसे जा मिलेगा और सतहसे मिलाहुआ दीख पडेगा। इस मौकेपर चिकि- त्सकको इस बातका ध्यान पूर्ण रीतिसे रखना चाहिये कि जिस चर्म पटलका छेदन किया है वह तथा योनिमुखके दोनों किनारे आपसमें परस्पर पुनः न मिल जावें, जो चर्मपटल छेदन हो चुका है वह झुकडकर योनिमुखके दोनों किनारोंसे जा मिलता है। यदि वह दोनों किनारोंका सन्धि संयोग कर देवे तो पुनः योनिमुख संकुचित हो जावेगा, क्योंकि योनिमुखका स्थान ऐसा है कि सदैव मिचाहुआ रहता है ऐसे स्थल पर सन्धि होजाना संभव है। यदि योनिमुखके किनारे मिलते जान पडे तो योनि- मुखके न मिलने देनेके लिये योनि विस्तारक यन्त्र ४—६ दिवस पर्यन्त रखना योग्य है। यदि योनि विस्तारक यन्त्रके रखनेसे स्त्रीको आलस्य मालूम होवे तो उसकी आकृतिकी रुई वा कोमल कपडेकी मोटी बत्ती बनाकर तैलमें भिगोकर रक्खे और उस बत्तीकी लम्बाई ६ अंगुलके करीब होवे ४—५ अंगुल बत्ती योनिमार्गमें रहे बाकी १ वा २ अंगुल योनिके बाहर रहे और बत्ती प्रवेश करके रुई वा कपडेकी गद्दी लगाकर ऊपरसे लँगोटके समान स्त्रीके पट्टी बाँध देवे, जिस समय स्त्रीको दस्त वा पिशाबकी हाजत होवे उस समय पट्टी खोलकर अपनी हाजतसे निवृत्ति करे। उस समय उस बत्तीको हाथसे दबाये रहे कि हाजतके जोर करनेसे बत्ती बाहरको न निकल पडे। यदि निकालनेकी आवश्यकता हो तो चिकित्सककी राय लेकर योनि- विस्तारक यन्त्र तथा बत्तीको स्त्री निकाले इससे दोनों योनि ओष्ठोंके पुनः मिल-

नेका भय न रहेगा और रुकावट निवृत्त हो जावेगी ऊपर जो योनिविस्तारक यन्त्र रखनेका कथन किया है उस यन्त्रकी आकृति आगेके प्रकरणमें आवेगी । परन्तु जब कि योनिका सर्व मार्ग अथवा उसका अधिक यथार्थ भाग (असली भाग) मिल गया होय तब उस भागको चौडा करते तथा ऋतुस्रावका एकत्र हुआ संगृहीत रक्त निकलते अधिक परिश्रम पडता है (कार्वोलिकस्प्रे) की सहायतासे वायु शुद्ध करके नली अथवा आर (अनी) से यह एकत्र संग्रह हुआ रक्त निकालना, (स्पीरेटर) से यह रक्त संग्रह खींच लेना, किन्तु ऐसा करते समय आसपासके किसी भागमें पाक होवे तो एकदम पूर्ण मोटा छिद्र करना और सलफ्यूरसएसिड, कार्वोलिकएसिड अथवा, वोरेसिकएसिड़, कालोशन बनाकर जखमको धोना । लोशनकी विधि एक भाग उपरोक्त दवा और अस्सी भाग गर्मजल, इस हिसाबसे चाहे जितना बना लेना । कितने ही डाक्टरलोग नली अथवा आर (अनी) से रक्त संग्रहको निकालनेके बदले योनिमार्गके स्वाभाविक रास्तेकी जगहमें छिद्र करते हैं, जो इस क्रियाको करनेके समय मलमार्ग (मलका नल) और मूत्रमार्ग (मूत्रनली) न कटने पावे, ऐसी सावधानी रखना विशेष आवश्यक है । इन दोनों मार्गोंकी रक्षाके लिये प्रथम यह उपाय करलेना योग्य है कि मूत्रमार्गकी नलीमें स्त्रीकी मूत्रशलाका प्रवेश करके दूसरे सहायक मनुष्यको पकडा देवे तथा गुदामार्गमें चिकित्सक (शस्त्रोपचारका कर्त्ता) वामे हाथकी तर्जनी अंगुली प्रवेश करके रक्खे और सीधे हाथकी तर्जनी अंगुलीको दोनोंके बीच (यानी गुदा और मूत्रनलीके बीचमें) जो योनि मार्ग है उसमें प्रवेश करे और उस अंगुलीके बगल बगल छेदन करे । छेदन करनेके अनन्तर योग्य उपाय तथा उपचारसे शीघ्र जखम रोपण हो जावे वैसी क्रिया करे और योनिमार्गमें योनिविस्तारक यन्त्र रख कई सप्ताह पर्य्यन्त रहने देवे ।

डाक्टरीसे गर्भाशयके बाह्यमुखका संकोच ।

योनिका संकोच कथन करनेके अनन्तर गर्भाशयके बाह्यमुखका संकोच कथन किया जाता है, क्योंकि प्रजोत्पत्तिकर्ममें योनि तथा गर्भाशय दोनों ही अवयव सहायभूत सम्बन्धसे विशिष्ट हैं । गर्भाशयका थोडा नीचेका भाग जो कि योनिके सम्बन्धमें आया हुआ है और योनिकी मांसपेशीओंसे मिलाहुआ है, जिसका नाम योनिके शारीरिक कमलमुख कथन कर आये हैं । वह भाग विशेष करके संकोचका स्थान है कमलके मध्यभाग (बीच) में जो छिद्र है उसको गर्भाशयका तथा कमलका बाह्यमुख कहते हैं, किसी समय पर व्याधियोंके विशेष कारणोंका निमित्त पाकर कमलके इस बाह्यमुखमें ही संकोच होता है और किसी समय पर अन्तर्मुखकी जहाँपर कमलमुख और गर्भाशयके गोल मोटे भागका सम्बन्ध मिलता है । इस स्थल पर भी संकोच होता है ।

अन्तर्मुख इतना कमलका गर्भाशयकी तर्फका मुख और बाह्यमुख इतना कमलका योनिमें रहा हुआ मुख स्वभावसे ही किसी समय किसी २ स्त्रीका कमलका मुख संकुचित होता है । ऊपरका जो गर्भाशयका यथार्थ बडा भाग है वह प्रायः स्वभावसे ही चौडा होता है । कमलमुख जिस समय पर संकुचित होय तब विशेष करके कमलका भाग लम्बा और मुखकी बाजू (बगल) की तर्फ संकीर्ण आकृतिका तथा अग्र भागकी तर्फ कुछेक टेढा ढला हुआ जान पडता है । अंतमें जो आकृति दी गई है उसके देखनेसे कमल मुख तथा गर्भाशयकी सम्पूर्ण आकृतिका बोध होगा, इस प्रकरणमें गर्भाशय तथा कमलमुखकी जो आकृति दी गई है वह तन्दुरुस्त (आरोग्य) कमलमुख तथा गर्भाशयकी आकृति समझना योग्य है । इसके साथ प्रत्येक रोगीके कमलकी आकृति मिलानेसे सरलतापूर्वक समझ सक्ते हो कि तन्दुरुस्त (आरोग्य) कमल विशेष

आकृति नं० ७ वीं देखना ।

छोटा और सरल है और उसका मुख स्वाभाविक जितना चौडा चाहिये उतना चौडा है, इसके साथ बतलाये हुए नमूनेमें कमलमुख विशेष संकुचित है और कमल लम्बे अमरूदकी आकृति और लम्बा बढा हुआ है । कमलमुख किसी २ समय इतना अधिक संकुचित होता है कि उसमें सुईका अग्रभाग मुसीबतसे प्रवेश करसके ऐसा संकीर्णमुख छिद्र हो जाता है, आरोग्य कमलमुखको अंगुलीके पोरुआसे सरलतापूर्वक हिला फिरा सक्ते हैं और कमलके मुखका छिद्र बखूबी अंगुलीके पोरुआसे ज्ञात होता है । आरोग्य कमलमुखके ओष्ठ पतले और अति कोमल होते हैं और संकीर्ण आकृतिके कमलमुखका ओष्ठ मोटा होता है और उसके आसपासका भाग अति कठोर होता है । इस रीतिके कमलमुखमें अग्रवक्रताका जो दोष आगेके विवेचनमें दिया जायगा वह दोष विद्यमान् होता है, किसी समयपर ऐसा भी होसक्ता है कि कमलमुख पीछेके भागकी तर्फ बढा हुआ होता है और ऐसी स्थितिमें गर्भाशय तथा गर्भ अण्ड भी अपूर्ण रीतिसे प्रफुल्लित हुआ होय जिससे गर्भाशय छोटा होय तो ऋतुकाल दीखता नहीं अथवा दीखता है तो विशेष कम दीखता है । यदि अत्यन्त ही छोटा कमल ८—९ वर्षकी लडकीके समान कमल होवे तो समझना चाहिये कि इस समय गर्भाशय तथा गर्भ अण्डमें भी न्यूनता (खामी) है उसी प्रकार वस्ति स्थान भी बालरूपमें ही रहा हुआ होता है यदि जो ऐसी अपूर्णता होय तो स्त्रीको रतिविलासकी (कामचेष्टा) विशेष कम होती है । उपरोक्त मर्मस्थानोंमें पीछेसे भी अनेक कारणोंको लेकर संकोच उत्पन्न हो जाता है गर्भाशयमें तो केवल कमलमुखके भागमें इस रीतिका संकोच होता है इस संकोच होनेके कारण ये हैं कि उस भागके ऊपर कोई दग्ध करनेवाला तीक्ष्ण पदार्थ जैसा कि कास्टिक अथवा अन्य प्रकारके क्षार तेजाब वगैरह लगाये जावें इसी प्रकार

उस भागके ऊपर किसी कारणसे शस्त्र प्रयोगकी छेदन भेदन क्रिया की होवे इन उपचारोंसे किसी प्रकारका पाक तथा जखम उत्पन्न हुआ होवे और उस जखमके रोपण (रुजने) के उपरान्त संकोच होना संभव है क्योंकि गर्भाशयका मुख योनिमुख गुदामुख शिकणीस्थान ये अङ्ग क्रियाकी प्रवृत्तिके निमित्तसे संकोच और विकाशको प्राप्त होते हैं । इन स्थलोंपर किसी प्रकारका जखम होजावे तो रोपण होनेके अनन्तर विकाशका बाधक हो जाता है । इसी प्रकार कमलकन्दके दीर्घ शोथ अथवा गर्भाशयके दीर्घ शोथकी अवस्थामें आमनेसामनेकी बगलोंपर एक दूसरेसे मिलते हुए कमलमुख सुकडनेके ये अंकुर होते हैं और जखम वगैरहके रुजनेके समय तथा शोथादिकी निवृत्तिके अनन्तर दोनों तर्फके भाग आमनेसामने चिपट जाते हैं और संकोच जान पडता है । इस विकृतिके विशेष चिह्न ये हैं । १ पीडितार्त्तव, २ वन्ध्यत्व पीडितार्त्तव तो प्रायः कम मिलता है । परन्तु वन्ध्यादोष अवश्य प्रधानतासे होता है । जन्मवन्ध्यास्त्रीमें इस विकृतिका निश्चय करनेकेलिये अवश्य परीक्षा करनी चाहियें वन्ध्यादोष स्थापित करनेमें यह सबसे बलवान् कारण है । कमलमुख संकुचित होनेसे वीर्य जन्तु गर्भाशयमें प्राप्त नहीं हो सक्ते और जबतक पुरुष वीर्य जन्तु स्त्रीके गर्भाशयमें न पहुँचे तबतक गर्भकी स्थिति होना सर्वथा असंभव है, इस कारणसे भी वन्ध्यादोष प्राप्त होता है; इस रोगमें सदैव पुरुष वीर्य जन्तुओंकी गर्भाशयमें प्रवेश करनेकी रुकावट होती है । किन्तु चौडे विस्तृत कमलमुखमें जिस सरलतासे पुरुष वीर्य जन्तु स्त्रीके गर्भाशयमें जा सक्ते हैं वैसे इस व्याधिवाली स्त्रीके गर्भाशयमें पुरुष वीर्य जन्तुओंका प्रवेश करना नहीं बन सक्ता, इतना तो सिद्ध है कि जैसे कमलमुख प्रफुल्लित और चौडा होगा तैसेही गर्भाधान अधिक सरलतासे रह सकेगा । इसके अतिरिक्त बाह्यमुखके संकोचके दूसरे चिह्नके तरीकेसे ऋतुधर्मकी रुकावटसे होती हुई विकृतियां हैं । ऋतुस्रावके समय स्त्रीको अत्यन्त सक्त पीडा होती है और पीडा पेटमें तथा वांसामें मुख्यता करके जान पडती है और उसके साथ सांथलमें भी दर्द हुआ करता है और किसी २ समय यह दर्द इतना विशेष सक्त होता है कि रोगी बिलकुल कामकाज नहीं करसक्ता । किन्तु इस रोगकी प्रबलताके कारण स्त्री ऊंचा मस्तक नहीं करसक्ती और स्त्रीको पडा रहना होता है किसी २ नाजुक शरीरवाली और कोमल प्रकृतिकी स्त्रीको दर्द इतना सक्त होता है और स्त्रीको अधिक वमन आया करता है कि वह स्त्री अत्यन्त दुःखदाई स्थितिमें पडी हुई और अतिक्षीण शरीर हुई दीखती है । इसके साथही स्तनोंमें दर्द होता है, पेटमें आध्मान (अफरा) हो जाता है, मस्तकमें पीडा अधिक होती है आहार करनेकी रुचि नष्ट होजाती है और स्त्री बिलकुल बेहाल बनी हुई दीख पडती है । प्रत्येक मासमें स्त्रीको

ये दुःखदायक उपद्रव हुआ करते हैं और केवल ऋतुस्राव न्यून (थोडा) होय ऐसा जान पडता है । ऋतुस्रावका रक्त अन्दर भरा रहनेसे गर्भाशयके अन्तर्पिण्डमें दीर्घ शोथ उत्पन्न हो जाता है और किसी २ समयपर इस दोषसे अत्यार्त्तव भी हो जाता है । ऋतुधर्मके रक्तका संग्रह होनेसे और उसको बाहर निकलनेका पूर्ण साफ खुला हुआ मार्ग न मिलनेसे स्त्रीका पेट कठिन हो जाता है और गर्भाशय उपाङ्गोंमें अथवा उदरके दूसरे किसी भागमें इस विकृत रक्तसे पाक वगैरह होना विशेष संभव है । अत्यार्त्तव होनेके पूर्व इस व्याधिमें सदैव न्यूनार्तव अथवा पीडितार्त्तव होता है । न्यूनार्त्तव होनेका कारण यह है कि गर्भाशयके बाह्य मुखका संकोच है और थोडा-बहुत ऋतुधर्मका रक्त गर्भाशयमें प्रत्येक मासमें भरा हुआ रहनेसे रक्तका संग्रह होता रहता है इसके अनन्तर अत्यार्त्तव रोग जान पडता है । (उपरोक्त वर्णन किये हुए संकोचकी चिकित्सा)—यदि जो संकोच थोडा होय और कमल स्वयं अपने स्वाभाविक नियतस्थलपर होय तो बाह्यमुखको विस्तृत करना योग्य है । परन्तु यह विस्तृत करनेकी क्रिया जितनी अन्तर्मुखके संकोचमें उपयोगी है उतनी बाह्यमुखके संकोचमें उपयोगी नहीं है और विस्तृत करनेपर भी वह पीछे संकोचको प्राप्त होती है, इस लिये जो वह इस रीतिसे समय समय संकुचित हो जाता होय अथवा जो संकोच अधिक होय तो उसमें शस्त्रसे छिद्र करके चौडा करना योग्य है । यदि वैसेही कमलमुखमें अग्र वक्रताका दोष रहा होय तो उसमें भी छिद्र करनेकी आवश्यकता है, ऐसे ठिकाने पर विस्तृत करनेके पीछे संकोच पुनः होता है इस लिये छिद्र करके उस भागको चौडा करे और छिद्र किया हुआ कमलमुख विस्तृत करनेके सम्बन्धमें इतनी बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि जो कमलमें अग्र वक्रताका दोष न होय और कमल अपने नियत स्थलपर होय तो कमलमुखकी दोनों बगलोंपर छिद्र करना, जो वह आगेके भागकी तर्फ बढा हुआ होय तो उसके पृष्ठभागमें छिद्र करना । छिद्र करनेसे अधिक ढीला होकर खिसके, जिससे आगेके भागकी तर्फ जा कर रहा हुआ कमलमुख स्वयं अपने आप पीछे खिसके । कारण कि उसके आगेके भागकी तर्फ रखनेमें जो पीछेसे आश्रय होता है वह खिसक जावेगा इसी प्रकार उसकी बगलोंका भाग जिसको लेकर कमलमुख आगेके भागकी तर्फ ऊंचा रहता था, वह इस छिद्रसे ढीला होकर पीछेके भागकी तर्फ पडेगा और इससे कमलमुख अपने नियत योग्यस्थानपर आवेगा, संकोचके साथ कमलमुख योग्यस्थानपर होय तो दोनों बगलोंमें छिद्र करना । यह छिद्र कमलके आर-पार न करना चाहिये किन्तु उसकी अन्दरकी कोरके अर्द्ध भाग पर्यन्त गहरा होना चाहिये । जो मुखसे लेकर दोनों बगलोंकी तर्फ उसके आरपार चीरनेमें आवे तो

आकृति नम्बर ८ वीं देखना ।

उसका ओष्ठ बाहरकी बाजू जावे, ऐसा करनेका अपना हेतु नहीं, केवल अन्दरके भागमें अर्द्ध मोटाई पर्य्यन्त मर्मस्थान छेदन करना (काटना) चाहिये । जिसस कमलमुखका मार्ग (रास्ता) चौडा होवे इस रीतिके शस्त्रोपचारके लिये निज (खास) शस्त्र आता है जिसको (मीट्रोटोम) गर्भाशय छेदक चिंचु (चीमटा) शस्त्र कहते हैं । इससे अन्तर्मुख पर्य्यन्त ऊंचा कट जाता है, जिस स्त्रीके गर्भाशयके कमलमुखपर यह शस्त्रोपचार करना होवे उस स्त्रीको बेहोश (मूर्च्छित) करके (कार्बोलिक ऐसिडके लोशन) जलसे दुष्ट जन्तुनाशक प्रवाही पदार्थसे गर्भाशय तथा इस काममें आनेवाले शस्त्रोंको धोकर स्वच्छ करके सीधे हाथकी तर्जनी अंगुलीके स्पर्श ज्ञानसे गर्भाशय छेदक शस्त्रको योनिमुख और योनिमार्गमें प्रवेश करते हुए गर्भाशयमें दाखिल करना और अंतर्मुखके जरा ऊपरसे छिद्र करना, कितने ही समय इससे यह होता है कि बाह्यमुखके समीप जितना चाहिये उतना गहरा छेद नहीं होता । इसके लिये पीछेसे उस जगहमें कैंची शस्त्रसे छिद्र गहरा करना पडता है, शस्त्रसे काटनेके बाद टींचर फेरीपर कलोरीडी अथवा हीराकशीसके जलमें थोडी रुईका फोहा डबोकर उस जखमके मध्य (बीच) भागमें रख देवे, जिससे उस जखमसे निकलता हुआ रक्तस्राव बन्द होय और जखमकी किनारी एक दूसरी किनारीसे नहीं लगेगी और काटेहुए भागके साथ मिलकर सन्धि न होगी, रुई अथवा लींटका फोहा जो अन्दर रक्खा होय उसके एक सिरेमें एक डोरा बाँधना और १२ घंटे पीछे वह डोरा पकडकर फोहा सहित खींच कर निकाल लेवे । पीछेसे एक भाग कार्बोलिकऐसिड और १६ भाग ग्लीसरीन मिलाकर उसमें रुईका फोहा भिगोकर उस फोहेको ऐसी रीतिसे ठेठ कमल मुखसे अडता हुआ अन्दर रक्खे और हररोज गर्म जलसे ठुशके द्वारा कमलमुख तथा योनिमार्गका प्रच्छालन करे । थोडे दिवस पर्य्यन्त हररोज तर्जनी अंगुली योनिमें प्रवेश कर परीक्षा कर निश्चय करे कि कमलमुख संकोचको तो नहीं पाता है, जो छिद्र पूर्ण होता होय तो पीछे उसका मुख बन्द न हो जावे ऐसा देखना चाहिये जितना खुला रहे । स्त्रीको कमसे कम दश दिवस पर्य्यन्त बिस्तर पर आरामसे शयन कराके रखे । बाद जबतक दूसरा ऋतुस्राव न हो जाय तबतक उसकी बराबर हिफाजत रख शर्दीसे बचाना चाहिये, तथा चलने फिरनेसे शान्त रहे । यह शस्त्रोपचार विशेष साधारण है और इसमें स्त्रीके शरीर वा जीवनको कुछ भी हानि नहीं है। परन्तु आरोग्यता और स्वच्छताके जो नियम हैं वे प्रत्येक शस्त्रोपचारकी क्रियाके पीछे जाननेमें आते हैं, उनको जानकर नियमपूर्वक रहना योग्य है, कदाचित् कमलमुख अत्यन्त ही संकुचित होय कि जिसमें गर्भाशय छेदक शस्त्र

(चीमटा) न आ सक्ता हो तो उसको (प्रीस्टलीनी) गर्भाशय विस्तृत करनेवाली सलाईसे जिसका वर्णन आगे कथन किया जायेगा, चौडा करना और जो ऐसा न बनसके तो पीछे वीस्टरीसे चौडा करना, इससे वह कट जायेगा। शस्त्रोपचारका यह परिवर्त्तन चिकित्सकको ध्यानमें रखना योग्य है कि जो कमलमुखमें संकोच होय और उसके साथ अग्र वक्रताका दोष न हो तो मुखकी दोनों बाजू (बगलों) पर काट-कर मुख चौडा करना चाहिये और उसके साथ अग्र वक्रताका दोप हो तो कमलके पीछेके भागमें शस्त्रोपचार करना चाहिये। कदाचित् गर्भाशयके अन्तर्मुखका संकोच हो तो संकोचस्थापित वन्ध्या स्त्रीमें अन्तर्मुख १/७ इंच व्यासवाली सलाई जा सक्ती है इतना चौडा होता है। और प्रसव हुई स्त्रीका १/६ इंचवाली सलाई जा सक्ती है बालकवाली स्त्रीके गर्भाशयमें जितना अन्तर्मुख चौडा होय उतना चौडा अन्तर्मुख यदि जो वन्ध्या स्त्रीके गर्भाशय करनेमें आवे तो शीघ्र गर्भाधान रहना विशेष संभव है और ऐसा करनेसे ऋतुधर्म भी साफ आता है। जिस स्त्रीको अत्यार्त्तवकी व्याधि होती है और रक्त विशेप स्राव होता है व जमेहुए रक्तके लोथडे निकलते हैं उस स्त्रीका कमलमुख चौडा करनेसे उसकी सब वेदना नष्ट हो जाती है। बाह्यमुखके समान अन्तर्मुखमें भी दग्धक पदार्थ लगानेसे अथवा कमलमुखके ऊपर शस्त्रोपचार करनेसे तथा गर्भाशयके शोथको लेकर वहाँ संकोच होना संभव है। अन्तर्मुखके संकोचसे भी बाह्यमुखके संकोचके वैसे ही चिह्न होते हैं। बाह्यमुखका संकोच तर्जनी अंगुली योनिमार्गमें प्रवेश करनेसे जान पडता है और अन्तर्मुखका संकोच गर्भाशयशलाका प्रवेश करनेसे जान पडता है, इस शलाका यन्त्रका शिरा १/४ इंच व्यासवाला मोटा होता है और जो भाग अन्तर्मुखके पास आता है उस ठिकाने पर १/६ इंचव्यास जितना होता है। यह शलाई मोटी होती है इससे शलाई जहाँपर रुके इसके ऊपरसे अन्तर्मुख कितना चौडा है उसकी माप करनी होगी, जो शलाईका शिरा ही अन्तर्मुखके पास अटकता होय तो समझना कि अन्तर्मुख विशेष संकुचित है और जो १/६ इंच व्यास है यहांतकका भाग अन्तर्मुख पर्य्यन्त जासके तो ऐसा समझना कि संकोच नहीं है। इस स्थितिका उपाय यह है कि विस्तृत करनेवाले साधनोंके द्वारा बाह्यमुखकी अपेक्षा अन्तर्मुखके संकोचमें अधिक उपयोगी है। शंकु आकृतिकी धातुकी शलाइयाँ प्रवेश करना और धीरे धीरे विशेष मोटी अनुक्रमसे याने प्रथम पतली दूसरे दर्जेपर मध्यम मोटाईवाली और तीसरे दर्जेपर बृहत् मोटाईवाली शलाका प्रवेश करते जाना। चाहे जिस रीतिसे होसके अन्तर्मुख अधिक विस्तृत होय वह उपाय करना अत्यावश्यक है। कितने ही समय ऋतुधर्म आनेसे प्रथम थोडे दिवस आगे कमल-मुखसे गर्भाशय शलाका प्रवेश करनेसे इच्छित लाभ हो सक्ता है तोभी अधिकांश

भागमें धातुकी शलाकाओंकी आवश्यकता पडती है । ये शलाका भिन्न भिन्न मोटाईकी आती हैं, इनको मोटाईका प्रमाण नंबरवार होता है जैसा कि १ नम्बरसे लेकर १२ नम्बरतककी आती हैं और इसी अनुक्रमसे ये गर्भाशयमें प्रवेश करनेमें आती हैं, जो अधिक नम्बरकी शलाका होय वह विशेष मोटी समझी जाती है । आरम्भमें छोटे नम्बरकी शलाई गर्भाशयके मुखमें प्रवेश करे और जैसे २ गर्भाशयका मुख विस्तृत होता जावे वैसे २ बडे नम्बरकी मोटी शलाई प्रवेश करे और क्रमसे नम्बरवार चढाता जावे इस रीतिसे स्त्रीको भी कुछ क्लेश नहीं होता और गर्भाशयका मुख पूर्णरीतिसे विस्तृत हो जाता है । ऋतुधर्म निवृत्त होने पीछे अनुमान १ सप्ताहके अन्दर यह शलाका प्रवेशकी क्रिया आरम्भ कर देवे और एक दो दिवसके अन्तरसे थोडे थोडे समय शलाई प्रवेश करनी, जिससे दूसरे. रजोदर्शनके समय पीडा अधिक कम होजायगी और इसके बाद पीछेसे होनेवाले रजोदर्शनकी अगाडी एकाध दिवस प्रथमसे केवल एक समयके लिये शलाई पीछे गर्भाशयमें प्रवेश करे और थोडा बहुत रजोदर्शन हुआ दिखाई देवे वहांतक ये शलाईकी प्रक्रिया एक एक समय प्रवेश करनी जिससे संकोच पुनः स्थापित न हो और संकोच हो गया होय उसको शलाई प्रवेशसे निश्चय होय, इसके आतिरिक्त अन्तर्मुखके विस्तृत करनेवाले साधनोंके तरीके पृथक् पृथक् जातिके लम्बे शंकु आकृति (गावदुम) आकृतिके लकडीके टुकडे आते हैं जिनका नाम टेन्ट कहते हैं ये टेन्ट तीन जातिके होते हैं स्पेंजका सीटेंगलका और टयपीलोके मूलका, आकृति नीचेके नम्बरोंकी देखनेसे इन तीन जातिके टेंट अर्थात् बर्त्तिका यन्त्रोंको जान सकोगे ।

टयूपीलो टेंट आकृति नम्बर ९ स्पेंजटेंटआकृति नम्बर १०
सीटेङ्गलटेंट आकृति नम्बर ११ देखो ।

स्पेंजका टेंट नीचे चौडा और ऊपर संकुचित होना चाहिये, जिसको पीछे.खेंचनेके लिये जो डोरा होय वह उसके दो सिरे छिद्रमें आरपार निकले हुए होने चाहिये, जिस करके पीछे खेंचनेमें उसका कोई भाग अन्दर नहीं रहसक्ता । सीटेन् गलटेंट इसी प्रकार लेमेनेरी आटेंट एक जातिके वृक्षमेंसे बनता है और (टयूपीलो टेंट टयूपीलो वृक्षकी लकडीसे बनता है । सेंजके टेंटकी अपेक्षा कमलमुख विस्तृत करनेके लिये सीटेन्गल अथवा टयूपीलोटेंट, अधिक उपयोगी है, सेंजटेंट साधारण रीतिसे प्रसव (प्रसूतिस्त्री) की क्रियामें ही अधिक काम देता है । टयूपीलोटेंट, लेमेनेरी आटेंटके समान शीघ्रतासे टूटता नहीं इससे यह प्रक्रियामें लेने योग्य अधिक सरलताका यन्त्र है । इस विस्तृत करनेवाले टेंटका साधन करनेमें कितनी ही सावधानी करनेकी आवश्यकता है । ऋतुधर्म आनेका समय होय तो उस प्रसङ्गपर टेंट गर्भाशयके मुखमें नहीं

रखना और टेंट गर्भाशयमें प्रवेश करते समय किसी प्रकारका जोर देकर टेंट प्रवेश न करे। और जिस स्त्रीके कमलमुखमें टेंट प्रवेश किया होय उस स्त्रीकी चार वा छः घंटे बाद परीक्षा करनी अर्थात् टेंट स्थलको देखना, उस स्त्रीकी चिकित्सा निरन्तर अपनी निगरानीमें रक्खे, यदि ऐसा न होय और जो स्त्री टेंट पहन कर दूर जाने-वाली होय ऐसी स्त्रीको चिकित्सक कदापि टेंट भूलकर न पहनावे। और जिस स्त्रीको टेंट पहरानेमें आया होय उस स्त्रीका टेंट निकाले पीछे थोडे दिवस पर्य्यन्त बाहर मुसाफिरी वगैरहके सफरको नहीं जाने देना और टेंट पहराई हुई स्त्रीको बिस्तरपर शयन कराके रखना और टेंट निकालनेके पीछे भी थोडे दिवस पर्य्यन्त बिस्तरपर सुलाकर रखना टेंट रखनेवाली स्त्रीको टेंट रखनेसे पूर्व सब नियम टेंट रखनेकी हालतमें वर्त्तनेके प्रथम ही सूचित कर देवे यदि वह उन नियमोंके अनुसार चलना स्वीकार करे तो टेंट प्रवेश करे। नहीं तो बिलकुल टेंट न रक्खे। जिस स्त्रीको टेंट पहराना होय उसको आगेकी रात्रिको दशसे १५ ग्रेन (पोटास ब्रोमाईड) को एक ओंस जलमें मिलाकर पिला देना जिस स्त्रीके गर्भाशयका शोथ है वैसाही उसके उपाङ्गोंका शोथ नूतन उत्पन्न हुआ होय तो ऐसी स्त्रीको टेंट कदापि न पहरावे। गर्भा-शयके मुखमें टेंट प्रवेश करनेकी रीति (प्रक्रिया) ऐसी है कि स्त्रीको अर्द्धखडी हुई बायीं करवटसे सुलावे टेबिल (मेंज) के ऊपर।

आकृति नम्बर १२ देखो।

इस स्थितिमें स्त्रीको सुलाकर उसके गुह्यस्थलकी परीक्षा करनेसे रोगका निदान करना सरल पडता है। आकृतिको देखनेसे इस स्थितिका पूर्णआभास देखनेमें आवेगा। इसमें स्त्रीको बायीं करवट सुलाकर उसके दोनों घुटने पेटकी तर्फ मुडे हुए हैं, बामा घुटना जो नीचे है उसकी अपेक्षा ऊपरका सीधा घुटना अधिक मुडा हुआ है यानी जीमना घुटना टेबिलके किनारे पर आया हुआ है जीमना खवा और माथा टेबिलकी कोरकी तर्फ ढलता हुआ है बामा खवा नीचेकी तर्फ है। स्त्रीको सुलानेकी मेज कमर पर्य्यन्त ऊंची होनी चाहिये। इसके अनन्तर गर्भाशयकी दृष्टि परीक्षा कर-नेकी नलिका यन्त्र होता है जिसकी आकृति बराबरमें देखो इस नलिका यन्त्रके

आकृति नम्बर १३ देखो।

ऊपर तैल लगाकर अंगुलीकी बगलसे योनिमुखका पीछेका भागमेंसे जरा चौडा मुख करके अन्दर प्रवेश करना कछोटा (यानी सीमत) के भागको जरा नीचा खेंचकर योनि-मुखको विस्तृत करना और योनिमार्गके पीछेके भागकी तर्फ जरा दबाता हुआ रखके उसको आगेको सरकाता जावे नलिकायन्त्र बराबर अन्दर प्रवेश होगा तब कमल-मुख इस नलिका यन्त्रके बीच पोलमें स्पष्ट रीतिसे अपनी असली आकृतिमें दीखेगा।

नलिकायन्त्र धातुका भी होता है और दूसरे काचके भी आते हैं, इसकी बनावटकी प्रक्रिया नीचे लिखे माफिक है। नलिका यन्त्र यह काचकी नली है, जिसके बाँहकी तर्फ पारा लगाकर उसके ऊपर जपान लगाया हुआ है और वह दर्पणके समान प्रक्रियासे बनाया गया है, छोटी वा बडी उमरकी स्त्रीकी शारीरिक आकृतिके लिये ये नलिका यन्त्र पृथक् पृथक् कदके आते हैं। यह यन्त्र योनिमार्गमें प्रवेश करनेसे कमलमुख खुला हुआ बे आड दीखता है। आगेसे कमलमुखकी तथा उसके अन्दरके भागकी दिशा गर्भाशय शलाका प्रवेश करके निश्चय करलेना चाहिये। इसके अनन्तर लंबे

आकृति नम्बर १४ देखो।

चीमटामें टेंटको पकडकर अथवा टेंट रखनेका एक निज यन्त्र आता है उससे टेंटको पकड कर कमलमुखमें प्रवेश करना इस यन्त्रकी आकृतिको देखनेसे टेंट प्रवेश करनेके यन्त्रका नमूना ध्यानमें आवेगा। इस यन्त्रकी नोकके ऊपर टेंटका शिरा लगाना और टेंटकी अनी कमलमुखमें प्रवेश करनी और गर्भाशयके मार्गकी योग्य दिशामें उसको चढाता जावे (आगेको सरकाता जावे) और समस्त टेंट कमलमुखके अन्दर प्रवेश कर.देना जो टेंटकी समस्त आकृति अन्दर कमलमुखमें प्रवेश न होती होवे तो वह बाहरको निकल पडती है टेंट प्रवेश करने पीछे १ भाग कार्वोलिक एसिड और २० भाग ग्लीसराईन लेकर मिलावे और उसमें रूईका फोहा भिगोकर कमलमुखके ऊपर रखदेना और रोगी स्त्रीको शान्त स्वभावसे शयन करना चाहिये, जो टेंट प्रवेश करनेके समय टेंटके जोरसे गर्भाशय ऊंचा चढ जावे. तो (टीनिकयुलमसे) कमलमुखका एक ओष्ठ पकड लेना चाहिये और पीछे टेंट प्रवेश करना योग्य है। स्पेंजटेंट प्रवेश करनेके समय नलिका यन्त्रकी आवश्यकता है परन्तु सीटेन्गल अथवा टयूपीलोना टेंटके लिये नलिका यन्त्रकी आवश्यकता नहीं है। टेंट प्रवेश करनेके यन्त्र पर टेंट चढाकर उसको गर्भाशय शलाका यन्त्रके समान योनिमार्गमें प्रवेश करके कमलमुख अंगुली स्पर्शके ज्ञानसे निश्चय करके उसमें टेंट प्रवेश करे स्पेंज टेंटको ६ घंटेके बाद निकाललेवे और टयूपिलो टेंट अथवा लेमिनेरीआटेंट १२ घंटेके बाद निकाललेवे यदि निकालनेके समय मुसीबत पडे तो नलिका यन्त्र प्रवेश करके कमलका मुख उत्तम रीतिसे परीक्षा करना और लम्बे चीमटा वा लम्बी संडासीसे टेंटको पकड कर आसानीसे खींचलेवे किसी समयपर प्रथम रखा हुआ टेंट अन्दर सरक जाता है ऐसी अवस्थामें दूसरा टेंट रखकर कमलमुख मार्गको विस्तृत करके और पीछेसे प्रथमके सरके हुए टेंटको अन्दरसे निकाल लेवे यदि ऐसे न निकलसके तो बुद्धिमान् डाक्टर कमलमुखको छेदन करके उस टेंटको निकाल लेवे। यदि रोगी स्त्रीको पीडा सक्त होती होवे तो रोगीकी पीडा शान्त करनेके लिये अफीम वा मोर्फीयाकी दवाका कोई प्रयोग देना चाहिये अथवा मोर्फि-

याकी पिचकारी छेदन स्थलकी त्वचामें लगाना वा अफीमकी गोली छेदन स्थलपर रखना ये तीन प्रकार टेंट यानी (वर्त्तिका यन्त्र) होते हैं, इन प्रत्येकमें अपना अपना निजलाभ पृथक् पृथक् होता है। सेंज टेंट सबमें उत्तम रीतिसे (गर्भाशय) के मर्मस्थानमें बैठता हुआ आता है, इससे गर्भाशय विस्तृत करनेमें दर्द कम होता है और गर्भाशय खुले तबही वह अन्दरसे निकल पडे ऐसा नहीं है; किन्तु स्त्री रोगकी चिकित्सा करनेमें सेंजटेंटका थोडाही उपयोग करनेमें आता है। प्रसूति कर्ममें जितना इसका उपयोग करनेमें आता है उतना स्त्रीके अन्य रोगोंकी चिकित्सामें नहीं आता। स्त्रीरोगकी चिकित्सामें सीटेन्गाल और टयूपीलो टेंट प्रधानतासे काममें आते हैं सीटे-न्गालकी अपेक्षा टयूपीलो विशेष अनुकूल आता है। सीटेन्गाल विशेष समय पर्य्यन्त गर्भाशयमें रहनेसे कमजोर पड जाता है। और इसी कारणसे निकालनेके समय टूट पडता है. टयूपीलो टेंट सीटेन्गालसे विशेष मजबूत रह सक्ता है और शीघ्रतासे टूटता भी नहीं है और निकालनेके समय सरलतापूर्वक निकल आता है, टेंट यन्त्र गर्भाशयमें प्रवेश करनेवाले चिकित्सकको अधिकांश विषयपर ध्यान रखनेकी आवश्य-कता है। जिस दिवस गर्भाशयके मुखमें टेंट प्रवेश करना होय उसकी प्रथमकी रात्रिको स्त्रीको २० ग्रेन पोटास ब्रोमाईडका ड्राफट देना, ऋतुधर्म आनेका समय हो तब टेंट प्रवेश नहीं करना किन्तु थोडे दिवस पूर्व प्रवेश करे और ६ घंटेसे लेकर १२ घंटे पर्य्यन्त टेंट यन्त्र गर्भाशयके मुखमें रक्खे इससे अधिक समयतक कदापि न रक्खे ६ वा १२ की अवधिमें भी स्त्रीकी ३ वा ४ समय परीक्षा करे, टेंटके प्रवेश करने वा निकालनेके समय बलपूर्वक क्रिया बिलकुल न करे। जो गर्भाशयमें आगेसे ही शोथ उत्पन्न हुआ जान पडे तो टेंट बिलकुल प्रवेश न करे। और टेंट प्रवेश करनेके समय कार्बोलिक ऐलमें टेंट डबोकर प्रवेश करे और सेलीसीलीकबुल अथवा एबसोरबन्ट-कोटनका प्लग रखना। किसी स्थलपर सडाव वगैरह उत्पन्न हुआ होय उसकी बराबर सावधानी रखनी आवश्यक है। टेंट सहित स्त्रीको बिलकुल नहीं उठने देना टेंट निका-लने बाद १ रतल गर्म जल १ ड्राम कार्बोलिकऐसिड जलमें मिलाकर इस पानीसे गर्भाशय व योनिमार्गको प्रच्छालन करे, टेंट निकालने पीछे भी थोडे दिवस पर्य्यन्त पुरुष सहवाससे पृथक् रहै और टेंटका उपयोग करने पीछे प्रसंगसे उत्पन्न होनेवाली हानि टेंट प्रवेश करनेसे स्त्रीके शरीरमें कोई भी शारीरिक उत्पात बाई जान पडे ऐसा कभी २ होता है। कितने ही समय तो टेंट प्रवेश करनेके पीछे स्त्रीको इतनी बडी पीडा उत्पन्न होती है कि एकदम टेंट निकालनेकी आवश्यकता पडती है साधारण रीतिसे स्त्रीको चक्र आता है वमन होता है और किसी समय पर थोडा ज्वरभी उत्पन्न हो जाता है किसी समय सक्त पीडा उत्पन्न होती है रोगिणीस्त्री हाथ पैर

पछाडती है और चिल्लाती है। पेटके पडदेका अथवा गर्भाशयमें तथा गर्भाशयके उपाङ्गोंमें तीक्ष्ण शोथ उत्पन्न हो जाता है और किसीको हिचकी (हिक्का) और धनुर्वात भी उत्पन्न हो जाता है, जो पूर्ण उपचार और यथार्थ चिकित्सासे ये उपद्रव तथा सक्त शोथ शान्त न होवे तो समय पर मृत्युदायक हो जाता है। यहां पर्य्यन्त टेंट प्रवेश करनेकी सूचना जो कथन की गई है इस प्रकार टेंट प्रवेशसे गर्भाशयका अन्तर्मुख देखना चाहिये कि कितना चौडा है ? यदि एक समय टेंट रखनेसे चाहिये उतना चौडा अन्तर्मुख न हुआ होय तो पीछे दूसरे समय टेंट प्रवेश करे। इस प्रकार धीरे धीरे टेंटसे अन्तर्मुख विस्तृत होता है। परन्तु इस धीरे धीरे विस्तृत करनेकी अपेक्षा उसको एकदम विस्तृत करना यह अधिक उत्तम है और पीछे कथन करनेके प्रमाण जो गर्भाशयका शोथोत्पन्न हो गया होय तो टेंटका उपयोग बिलकुल हो नहीं सक्ता ऐसे समयपर (डाक्टर प्रीस्टलीनी) की अन्तर्मुख विस्तारक शलाका यन्त्र

आकृति नम्बर १५ देखो।

विशेष उपयोगी है इस आकृतिको देखो। इस शलाकामें दो पांखियाँ होती हैं और हाथामें स्क्रू होनेसे वह इच्छित चौडी कर सक्ते हो, स्क्रू बन्द करके गर्भाशय शलाकाके समान उसको प्रवेश करनी और जब अन्तर्मुख तक पहुंच जावे तब स्क्रू दबाना उसके ऊपरका भाग अन्तर्मुखसे कुछ आगे जाता है और उसका मोटा भाग कि जहांसे उसका दूसरा पांखीआं खुलता है उससे गर्भाशयका अन्तर्मुख चौडा हो जाता है। इसमें स्त्रीको जरा दर्द मालूम पडता है इसके लिये स्त्रीको क्लोरोफार्मसे बेहोस करके यह क्रिया की जावे तो अति उत्तम है। और विस्तृत करनेमें जो दर्द होवे वह शीघ्र शान्त हो जाता है और उसमेंसे किसी प्रकारका रक्तस्राव नहीं होता। यदि रक्तस्राव होवे भी तो किंचित् मात्र थोडा होता है, इस क्रियाको करने पीछे स्त्रीको एक दिवस पर्य्यन्त निरन्तर विस्तरपर सुलाकर आरामसे रखना, बिलकुल उठने नहीं देना और उसकी योनिमें मोर्फिया तथा अफीमकी बत्ती बनाकर रखना इससे एक समयमें ही कमलमुख विस्तृत हो जाता है और जो ऐसा कभी न होय तो पीछे उसमें छिद्र करके चौडा करना योग्य है। अन्तर्मुखके समिप मोटी रक्तवाही शिरा आई हुई है और उनसे अधिक रक्त निकलना संभव है। इस लिये इन रक्त वाही-शिराओंकी बराबर सावधानी रखनी चाहिये। टेंटसे विस्तृत करनेसे कमलमुख विस्तृत न होवे तो उसमें छिद्र करनेकी आवश्यकता है, लेकिन किसी किसी स्त्रीके अन्तर्मुख तथा बाह्यमुखमें इतना अधिक संकोच होता है कि उसमें छिद्र करनेके शस्त्र भी प्रवेश नहीं होसक्ते हैं। अन्तर्मुख काटनेके लिये विशेष पृथक् पृथक् जातिके गर्भाशय छेदक चीमटा शस्त्र आते हैं, जो शलाकाकी आकृतिके होते हैं (नम्बर ३) में बतलाया हुआ

चीमटा देखो. हाथके स्क्रूको दावनेसे यह चीमटा वाहर निकलता है और इससे गर्भाशयके अन्दरका भाग कट जाता है । काटनेक पीछे उस भागको टींक्चर फेरासे अथवा हीराकशीसके पानीसे धोना और जखम रोपण होनेके पीछे दो तीन सप्ताह सीधी खडी थोडी गर्भाशयमें रखना (आकृति आगे देखो) इस शलाईके उपयोगमें विशेष जोखम रहती है, जो जोखम गर्भाशयके ऊपर शस्त्रोपचार होनेके पीछे विशेप भय रखनेके लायक है । कदाचित् गर्भाशयका बाह्यमुख और अन्तर्मुख दोनोंका संकोच होय तो दोनोंको साथ काटनेकी आवश्यकता नहीं है कारण कि बाह्यमुख और उसके साथ थोडा बहुत गर्भाशयका भाग काटनेसे अन्तर्मुख भी विस्तृत हो जाता है । जिससे शलाका वगैरह दूसरे विस्तृत करनेवाले साधनोंकी आवश्यकता नहीं है ।

प्रजोत्पत्तिकर्म अवयवकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे प्रजोत्पत्ति कर्म अवयवकी अपूर्णताका वर्णन प्रजोत्पत्ति कर्म स्त्रीके जिस अङ्गसे होता है वह यदि स्वाभाविक (जन्मसे) ही अथवा पश्चात् किसी प्रकारकी खराबियोंसे अपूर्णता विशिष्ट होवे तो सन्तान उत्पत्तिमें यह भी एक प्रधान हेतु और वन्ध्या दोपका मुख्य कारण है । आयुर्वेद तथा यूनानी तिब्बमें इसका पूर्ण निर्णय नहीं देखा जाता और यह अंक अपूर्णताकी व्याधि अनेक स्त्री जनोंमें देखी जाती है । उत्पत्ति कर्म अवयवकी स्थिति दो भागोंमें विभक्त हो सक्ती है एक स्त्रीके शरीरके अंतरावयव, दूसरे शरीरके वाह्यावयव स्त्रीके अन्तरावयवके बाह्यावयव रक्षण करनेवाले अङ्ग हैं । गर्भाधान रहनेमें उसका कोई भी प्रत्यक्ष कारण नहीं, हो भी तो वह सम्पूर्ण होनेकी आवश्यकता है कारण कि जब उसमें कोई अपूर्णता होय तब अन्तरावयवमें भी कुछ न्यूनता होती है स्त्रीको सम्पूर्ण रीतिसे प्रगटमें आरोग्य दीखती है यदि स्त्रीको वन्ध्या दोष होय तो उसका कारण अन्तरावयवका रोग ही है इससे उसका सम्पूर्ण विवेचन करना उचित् है गर्भाशयकी अपूर्णता कितनी ही स्त्रियोंमें गर्भाशय अपूर्णतायुक्त होता ह और कितनी ही स्त्रियोंमें गर्भाशय तो होता है परन्तु विशेष सूक्ष्म और संकीर्ण आकृतिका होता है कितनी ही स्त्रियोंकी पूर्ण युवावस्था पहुंचने पर भी उनका गर्भाशय पूर्ण प्रफुल्लित नहीं होता किन्तु विशेप न्यून प्रफुल्लित होता है और ८ वा ९ सालकी वालक स्त्रीके समान होता है । गर्भाशयके अभावके साथ किसी स्त्रीको गर्भ अण्डका भी अभाव होता है यदि गर्भाशय अपूर्ण प्रफुल्लित होय है वैसे ही योनिमार्ग भी नहीं होता यदि होता है सो विशेप संकीर्ण और छोटा होता है । जब कि पूर्ण गर्भाशय न होय और गर्भ अण्ड होय तब ऋतुधर्म स्राव होनेका मार्ग न होनेसे स्त्रीको बहुत दुःख होता है गुदामें तर्जनी अंगुली प्रवेश करनेसे और मूत्रमार्गमें मूत्रशलाका प्रवेश करनेसे उन दोनोंका स्पर्श होता जान पडे तो ऐसा समझना योग्य है

कि गर्भाशय बिलकुल नहीं है, कारण कि गर्भाशयके अग्र भागमें मूत्राशय आया हुआ है और पीछेके भागमें गुदा (मलका नल) आया हुआ है। जब गर्भाशय अतिसूक्ष्म रूपमें होता है तब उसका केवल मुख ही जान पडता है, जिसको कमलमुख कहते हैं और जिसमें ऋतु स्रावका रक्त आता है। गर्भाशयका मर्मस्थान नियमित कदमें बिलकुल नहीं जान पडता और उसके साथ योनिमार्ग भी छोटा संकीर्ण होता है, जब कि गर्भाशय अपूर्ण रीतिसे प्रफुल्लित हुआ होय तब कितने ही समय उसके मुखका भाग यथार्थ रीतिसे प्रफुल्लित हुआ रहता है और गर्भाशय स्वयं वालक स्त्रीके गर्भाशयके समान छोटा रहता है, याने सर्व शरीरकी वृद्धिके साथ वह नहीं बढा है ऐसा दीखता है। इसको बालगर्भाशय कहते हैं, कितने ही समय गर्भाशय स्वयं वैसे ही गर्भाशयकी ग्रीवा और मुखका भाग जो कि प्रफुल्लित होता है तो भी इनके पूर्ण प्रफुल्लितपनको प्राप्त नहीं होते और दोनों समान रीतिसे अपूर्ण रहते हैं, जब गर्भाशय अपूर्ण होता है तब उसका वाह्यमुख भी संकुचित होता है। गर्भ अण्डकी अपूर्णता अर्थात् न्यूनता यह गर्भ अण्डका अभाव स्वाभाविक (जन्मसे) ही कितनी स्त्रियोंमें होता है। उनके गर्भ अण्ड नहीं होता, किन्तु विशेष करके जिस स्त्रीमें गर्भ अण्ड नहीं होता उस स्त्रीमें गर्भाशय भी नहीं होता। वैसे ही योनिमार्गका तथा स्तनोंका भी अभाव होता है। जब गर्भ अण्ड नहीं होते तब स्त्रीकी आकृति छोकरेके समान लगती है। पूर्ण जवानीकी उमरको प्राप्त होकर भी उसके शरीरका बांधा अन्य स्त्रियोंके समान नहीं बढता। और उसका कद ठिगणा रहता है, यदि किसीका कद लम्बा भी देखा गया तो वह पतली रहती है और कितने ही समय ऐसी स्त्रीके शरीरमें पुरुषपनेके चिह्न आजाते हैं। कामोद्दीपक विचार उसके बिलकुल नहीं होते और ऋतुधर्म उसको बिलकुल नहीं आता। गर्भ अण्डका अपूर्ण प्रफुल्लित होना व गर्भ अण्डका अभाव स्त्रीमें कभी ही मिलता है, किन्तु गर्भाशय विशेष न्यून प्रफुल्लित हुआ होय ऐसा अधिक समय पाया जाता है। अपूर्ण गर्भ अण्डके साथ समय पर गर्भाशय सूक्ष्मरूपमें ही रहा हुआ होता है और किसी समय वह पूर्ण प्रफुल्लित हुआ है और योनिमार्ग अधिकांश भाग संकीर्ण छोटा होता है। गर्भ अण्डकी अपूर्णतावाली स्त्रीमें ऋतुस्राव और पुष्टतासे स्त्रीके शरीरमें होता हुआ स्वाभाविक परिवर्त्तन विशेष विलम्बसे दीखता है। यही नहीं किन्तु कितने ही समय तो यह परिवर्त्तन (फेरफार) बिलकुल बन्द रह जाता है और ऋतुस्राव जान पडता है, किन्तु विशेष न्यून दर्शनमात्र न होनेके समान दीखता है। ऐसे कारणोंसे अधिकांशमें बन्द ही रहता है। पूर्ण स्त्री कहलानेवाली आरोग्य स्त्रियोंमें जैसा तीस पैंतीस और चालीस वर्ष पर्य्यन्त ऋतुधर्म टिकता है ऐसा अपूर्णतावाली स्त्रीमें नहीं टिकता, किन्तु नियत उमरकी अवधिसे प्रथम ही बन्द

हो जाता है । स्त्रीकी ठोडींके ऊपर मूछोंके ठिकाने और पैरोंके ऊपर अधिकतासे केश (वाल) जान पडते हैं और उसकी आवाज (स्वर) पुरुषके समान घुघुराया हुआ होता है, जो गर्भ अण्ड कुछ कुछ कम प्रफुल्लित हुआ होय तो केवल दो तीन वा चार वर्ष रजोदर्शन विलम्बसे दीखता है। यदि रजोदर्शन इस रीतिसे विलम्ब करके दीखे जिससे वस्ति स्थानकी अस्थिके पुष्ट होनेके समय जो पोषण मिलना चाहिये उसके नहीं मिलनेसे वह वृद्धि नहीं पाता और वालरूपमें ही रहती है । पीछेसे जब ऋतुस्राव और उत्पत्ति अवयवकी पुष्टताका समय आता है तब वास्तिकी अस्थिकी वृद्धि पानेका समय निकल जाता है किन्तु इससे वृद्धि नहीं पाता । ऐसी स्थितिमें स्त्रीको पीछेसे गर्भाधान होय तो भी वृद्धि प्राप्त करते हुए गर्भको धारण करनेवाले गर्भाशयके रहनेके लिये वालरूप रही हुई वस्ति संकीर्ण पडती है, जिससे गर्भाशयके ऊपर दवाव होता है । इस कारणसे गर्भ अपनी पूर्ण अवस्थाको न पहुँच अधूरा पड जाना संभव है । (फलवाहिनीकी अपूर्णता अर्थात् न्यूनता ।) फलवाहिनीका अभाव यदि अपूर्णपनके साथ गर्भ अण्ड तथा गर्भाशयके समान वैसा ही होता है और इससे गर्भाशय तथा गर्भ अण्डके वास्ते परीक्षा करनी गर्भ अण्ड और गर्भाशय आरोग्य होनेपर भी फलवाहिनी विकृतिवाली होय प्रायः ऐसा होता नहीं । यदि वैसे ही फलवाहिनी विकृतिको पृथक् करसके ऐसा कोइ भी पृथक् उसका चिह्न नहीं होता और इसका इस विषयका ऐसा विवेचन कहीं देखनेमें नहीं आया—(योनिमार्गका अभाव अर्थात् संकीर्णता) योनिमार्ग कदापि विलकुल न होय और योनिमुखके ठिकाने केवल मूत्रका छिद्र मात्र ही होता है कितने ही समय योनिमार्गके अभावके साथ गर्भ अण्ड आर गर्भाशयका भी अभाव होता है, जो गर्भ अण्डका अभाव न होय और योनिमार्गका अभाव अथवा योनिमार्गकी संकीर्णता छोटापन होय तो प्रत्येक ऋतुस्रावके समय स्त्रीको पीडा (दर्द) होता है । इसके ऊपरसे ऐसा अनुमान करनेमें आता है कि ऋतुस्रावका रक्त वाहर आनेके लिये प्रयत्न करता है लेकिन उसको मार्ग न मिलनेसे यह पीडा होती है । ऋतुका समय आता है तब वहुत वारीक थोडी २ पीडा होनेके पीछे ऋतुस्रावके रक्तको अन्दर रहनेके अतिरिक्त दूसरा ठिकाना वा मार्ग न होनेसे वह रक्त वहां जम जाता है और वहां ग्रन्थिकी आकृतिमें दीखने लगता है, जिसके कारणसे पेट सूजा हुआ जान पडता है और प्रत्येक ऋतुधर्मके समान कमरमें दर्द होता है । ऐसी स्त्रीमें जो कि योनिमार्ग करनेमें आता है तो भी वह छोटा होता ह छोटा योनिमार्ग भी गर्भाधान रहनेमें किसी रीतिसे विघ्न नहीं कर्त्ता है ।

प्रजोत्पत्तिकर्म अवयवकी अपूर्णता अर्थात् संकीर्णताकी चिकित्सा ।

इस संकीर्णताका उपाय इस प्रकार करना योग्य है कि जब गर्भाशय तथा गर्भ-अण्ड होता ही नहीं वैसे ही यदि गर्भाशय सूक्ष्मरूपमें होता हो तब स्त्री सदैव (जन्मभर) के लिये वन्ध्या रहती है, इसके लिये एक भी उपाय कामका नहीं है। लेकिन जब गर्भाशय तथा गर्भ अण्ड अपूर्णपनेसे प्रफुल्लित हुआ होय तो वन्ध्या दोषकी चिकित्सा होनेसे स्त्रीको गर्भवती होनेकी आशा रखनी योग्य है । ऐसी स्त्रीको स्वच्छ वायु सेवन तथा हवादार माकानमें रहना कुछ चलने फिरनेका परिश्रम करना और उत्तम पौष्टिक आहार देना लोहभस्म तथा कटु पौष्टिक बलवृद्धिकारक औषधियोंका सेवन करना, जिससे स्त्रीकी निर्बलता नष्ट होकर बल प्राप्त होवे ऐसा उपाय करना योग्य है । स्त्रीको उचित है कि स्वच्छ वस्त्र और शरीरको साफ रखे और अनेक सन्तानवाली स्त्रीजनोंके समीप रहकर स्वयं सन्तानोत्पत्ति करनेका उत्साह बढावे । यदि स्त्रीका गर्भाशय तथा गर्भ अण्ड अपूर्णरीतिसे प्रफुल्लित हुए होंय तो भी इन दोनोंका उपाय समान है और वह अपूर्णता भी कुछ न्यून नाममात्र होय तो तभी फायदा करती है, जो चिकित्सा शरीरको अधिक पोषण देती है वही करना योग्य है । काटलीवर आईल और टींचरआफस्टील देना, जो स्त्रियां निर्मिष भोजी हैं उनको काटलीवर आईल न खाना चाहिये, क्योंकि यह मछलीकी चर्बी है और भी इस पुस्तकमें वही मांस वा रक्त पदार्थ आये हैं । वह केवल मांसाहारी जातिकी स्त्रियोंके निमित्त हैं । अहिंसक और निर्मिष भोजी स्त्रियोंको बलकी प्राप्तिके लिये नीचे लिखे पदार्थ सेवन करना योग्य है । स्वर्णमाक्षिकभस्म, लोहभस्म, शुद्ध शिलाजीत, हरडका चूर्ण, वायविडंगके बीजोंका चूर्ण इन सबको समान भाग लेकर सूक्ष्म कर लेवे और इसकी ६ ग्रेन वा ८ ग्रेनकी मात्रा दिनमें दो समय ६ घंटेके अनन्तरसे लेना योग्य है । शुद्ध शिलाजीत लोहभस्म वंशलोचन इलायचीका चूर्ण नागकेशरका चूर्ण सब समान भाग लेकर भृंगराज कालेभांगरेके रसमें घोट कर ४ वा ५ ग्रेनकी गोली बनावे और गौके दुग्धके साथ १ गोलीकी मात्रासे लेवे और ६ घंटेके अन्तरसे १ दिवसमें २ वा ३ समय सेवन करे, ये दोनों प्रयोग स्त्रियोंको अत्यन्त पुष्टि और बलदायक हैं । और इनके साथमें शुद्ध अनार्त्तवमें बतलाई हुई ऋतुधर्म लानेवाली औषधियां देना योग्य है, ऐसी अपूर्णताकी शंका करनेका मुख्य कारण और उसका प्रथम सूचना देनेवाला चिह्न अनार्त्तव है, कमसे कम चार महीने पर्य्यन्त ऋतुधर्म लानेवाली औषध देना योग्य है । और उसके साथ लोहभस्म तथा काटलीकरआईलकी योजना करना जारी रक्खे । यदि ऋतुधर्म न आवे तो गर्भाशय और गर्भ अण्डके स्थानके ठिकाने पेटके ऊपर हररोज अथवा एक दिवस खाली बीचमें देकर

विजलीके गिलास फेरना, विजलीका एक शिरा पीठपर रखना और दूसरा पेटपर। गर्भाशय तथा गर्भ अण्डके स्थानके ठिकाने रखना, समय समयपर गर्भाशयमें शलाका प्रवेश करनी, अथवा गर्भाशयको विस्तृत करनेवाली धातुकी शलाका होती हैं वो प्रवेश करनी। वैसे ही कमलमुखको वारम्वार स्पेंजके टेंटसे अथवा सीटेन्गल टेंट कमल-मुखमें प्रवेश करके विस्तृत करे, ये उपाय गर्भाशयको और गर्भ अण्डको उत्तेजित करते हैं, गर्भाशय शलाका ये धातुकी वनाई हुई हैं। एक प्रकारकी सलाई हैं (आकृति नीचे) देखो जिसके ऊपर एक एक इंचके फैसलेसे खांचे पडे हुए हैं इस शलाकोंके प्रवेश करनेकी पद्धति इस प्रकारसे है, कि शलाकाके ऊपर मीठा तैल चुपड कर अच्छे प्रकारसे चिकनी कर जरा गर्म करलेवे ठंढीशलाका प्रवेश करनेसे शलाका वा तैलमें दुष्ट जन्तु अन्दर न जासके, गर्म करनेसे यह भय नहीं रहता।

आकृति नम्बर १६-१७-१८ देखो।

दूसरे यह भी है कि गर्भाशयके मर्मस्थानोंका शलाकाके ऊपर संकोच पडना संभव है और [illegible] सलाकर योनिमार्गमें तर्जनी प्रवेश करके अँगुलीका पोरुआ कमलके मुखपर अडताहुआ रखके शलाका यन्त्रको [illegible] फेरना प्रथम पडा हुआ शलाका यन्त्रका रांक (टेढापन) आगेके भागकी तर्फ रखना और उसको गर्भाशयमें प्रवेश करके उसका हाथा (मुंठ) इतना फेरना कि गर्भाशयमें चारों तर्फ फिरे, जिस रीतिसे पुरुषकी मूत्रनलीमें मूत्रशलाका प्रवेश करते समय सावधानी रखनेकी जरूरत है उसी रीतिसे गर्भाशयमें शलाकायन्त्र प्रवेश करनेके समय साव-धानी रक्खे। गर्भाशयमें शलाका वलपूर्वक न प्रवेश कर, आहिस्तेसे करे। यदि गर्भाशय तथा कमलमुखमें किसी प्रकारका दर्द मालूम पडे तो शलाका यन्त्र न प्रवेश करे, कारण कि गर्भाशयके किसीभागमे सूजन होनेपर वह सूजन शलाका प्रवेश करनेसे अतिवृद्धिको प्राप्त होती है। यदि वलपूर्वक शलाका प्रवेश की जावे तो गर्भाशयके पर्देको फोडकर शलाका वाहर निकल आती है। नीचेकी आकृति देखनेसे मालूम होगा कि गर्भाशयमें शलाका किस प्रकारसे प्रवेश की जाती है वरावर ध्यानसे देखो।

आकृति नम्बर १९ देखो।

गर्भाशयमें शलाका प्रवेश करनेकी प्रक्रिया।

ये उपाय गर्भाशयको उत्तेजित करते हैं और इससे उत्तम लाभ पहुँचना संभव है। यद्यपि गर्भाशय तथा गर्भ अण्डको उत्तेजित करनेका सर्वोत्तम उपाय गर्भाशयमें प्रवेश करनेकी एक प्रकारकी सीधी खडी रहसके ऐसी घोडी यन्त्र (पेसरी) होती है "यह यन्त्र यूरोपके किसी डाक्टरने निर्माण किया है" यह घोडी गर्भाशयकी ऊपर सपाटीसे

आकृति नम्बर २० देखो ।

न अडे इसके लिये वह गर्भाशयकी लम्बाईसे ९ इंच छोटी होनी चाहिये । जिस स्त्रीके गर्भाशयमें ऐसी पेसरी पहनाई जावे उस स्त्रीको थोडे समयके लिये डाक्टर (चिकित्सक) की देखरेख और सँभाल तथा आश्रयमें रहना योग्य है और पाक तथा शोथका कोई चिह्न जान पडे तो पेसरीको एकदम निकाल लेना चाहिये और जिस स्त्रीके गर्भाशयमें ऐसी पेशरी प्रवेश करनी होय उस स्त्रीके गर्भाशयका शोथ अथवा दूसरा कोई भी रोग हुआ होय उसका निश्चय करना चाहिये । उसी प्रकार पेसरी प्रवेश करनेके प्रथम दो चार समय गर्भाशयमें गर्भाशयशलाका प्रवेश करनी चाहिये । इससे यह जान पडेगा कि गर्भाशय इस नवीन पेसरी यन्त्रको धारण कर सकेगा, यह सामर्थ्य गर्भाशयमें है कि नहीं । यह पेसरी प्रवेश करने पीछे स्त्रीको दो तीन दिवसपर्यंत बिस्तरपर सुलाकर रखना उत्तम रीतिसे लाभ पहुँचनेके लिये पेसरी अधिक सप्ताह पर्यन्त अन्दर रखनेकी आवश्यकता है । तोभी तीन चार सप्ताहमें वह बराबर साफ होनी चाहिये और ऋतुधर्म आनेके समय पेसरी निकाल लेनी चाहिये, जो पेसरी यन्त्र रखनेसे स्त्रीको कदाचित् ज्वर चढ आवे तो पेसरीको एकदम निकाल लेना चाहिये । गर्भाशय तथा गर्भ अण्डके अपूर्ण प्रफुल्लितपनेमें तथा उसी प्रकार कमलमुख भी वक्र हुआ होय तो उसमें भी यह पेसरी लाभ पहुँचाती है और इससे ऋतुधर्म साफ आता है । ऐसी रीतिकी पेसरी इन्डियारबरकी अथवा धातुकी आती है महाशय डाक्टर (सीम्पसन) की निर्माण की हुई है । खडी रहती हुई पेसरी गर्भाशय तथा गर्भ अण्डकी अपूर्णताकी निवृत्तिके लिये विशेष उत्तम है । इस शलाका समान पेसरीका ऊपरका भाग जस्ता धातुका और नीचेका ताम्र धातुका है । जिसका गर्भाशयके स्वाभाविक स्रावके साथ सम्बन्ध होता है उसमेंसे एक प्रकारका रासायनिक असर होता है । वह अतिलाभ पहुँचाता है, केवल यह एकही लाभ नहीं, किन्तु दूसरा लाभ यह कि इसमेंसे एक प्रकारकी विद्युत (विजली) उत्पन्न होती है । जिसका असर गर्भाशयके श्लेष्मपिण्डमें लगनेसे गर्भाशय उत्तेजित होता है । इस पेसरीका गर्भाशयमें रखनेका उद्देश तभी तक है कि गर्भाशय तथा गर्भ अण्ड पूर्णरीतिसे प्रफुल्लित न होता होय । यदि गर्भाशय अथवा गर्भ अण्डके अपूर्णपनेके लिये ऋतुधर्म बन्द रहे और दूसरे किसी मार्गसे शक्त रक्तस्राव होय अथवा ऋतुस्रावके समय ऋतुधर्म न दीखे और स्त्रीको शक्त पीडा होय तो उपरोक्त व्याधियोंकी हालतमें यह उपाय काममें लाने योग्य है । जिस स्थितिमें गर्भ अण्ड तथा गर्भाशय विद्यमान होय उसी स्थितिमें फलवाहिनी भी होती है और जो उपाय गर्भ अण्ड तथा गर्भाशयकी न्यूनताके लिये करनेमें आते हैं वे अवश्य रीतिसे फलवाहिनीकी स्थितिको

भी सुधारते हैं । इस कारण फलवाहिनीके लिये पृथक् निदान तथा चिकित्सा करनेकी आवश्यकता नहीं है । यदि योनिमार्गका सम्पूर्ण रीतिसे अभाव होय तो उसकी स्वाभाविक जगहके ऊपर एक छिद्र शस्त्रसे करना, योनिके अभावमें मूत्राशय और मलाशयके बीचमें एक पतला चर्मका पर्दा रहता है उसको काट देना और इन दोनों मर्मस्थानोंमेसे किसीको सस्त्र तथा कट न जावें ऐसी सावधानीसे काटना, मूत्राशयमें मूत्रशलाका प्रवेश करनी और दूसरे सहकारी चिकित्सकको पकडा देना और वामे हाथकी तर्जनी अंगुली गुदामें प्रवेश करे, अँगुठा गुदाके बाहर ऊपर ओष्ठके पास योनिके स्थानमें नीचे रक्खे । अँगुठेसे उतनी जगहको दाब लेवे कि जितना अन्तर दूसरी स्त्रियोंके गुदा और योनिके मुखके नीचे रहता है, पुनः मूत्रशलाका तथा गुदाके बीचकी जगहको काटे और नश्तर इतना गहरा न जाने पावे कि गुदा और योनिके बीचके पर्दापर सस्त्र पहुंचे और थोडा बहुत योनि मुखका छिद्र जान पडता होय तो उसके नीचेकी किनारी जो कि योनिमुखपटलके नामसे शारीरिकमें लिखी गई है । उसको तर्जनी अंगुलीसे दवावे और दूसरे हाथकी तर्जनीसे उसके सामनेके भागको दवावे यह पटल इतने ही संकेतसे टूट जाता है । यदि पटल मोटा होवे तो नश्तरसे काट देवे और तर्जनी अंगुली अन्दर प्रवेश करके गर्भाशयसे उसका पोरुआ जा मिलावे और पीछे गर्भाशय होवे तो चारों तर्फ पोरुआ उसके मुखपर फिराके निकाल लेवे और दूसरे समय अंगुली प्रवेश करके योनिमार्गको चौडा करे, यदि अंगुली किसी ठिकाने रुकती होवे तो जोरपूर्वक उस रुकावटको अलग करे । और योनिमार्ग साधारण रीतिसे जैसा अन्य स्त्रियोंमें होता है वैसा देखना, हुआ कि नहीं । यदि न हुआ होय तो कुछ अधिक चौडा करना और बराबर योनिमार्ग हो जावे उस समय निश्चय करके योनिविस्तारक नलिकायन्त्र जिसकी आकृति पीछे दी है उस मार्गमें पहना देवे, और इस यन्त्रको कुछ मास तक योनिमें रखना योग्य है । यदि नलिकायन्त्र न रक्खा जावे तो पुनः योनिमार्ग बन्द हो जावेगा । इससे इस योनिविस्तारक नलिकायन्त्रको अवश्य रक्खे । नलिकायन्त्र पहरानेके अनन्तर कोपीन बांध देवे कि जिससे नलिकायन्त्र खिसक न सके । यदि नलिकायन्त्रसे योनिमार्गमें कोई पाक वगैरह होय उसका उपाय करे ।

प्रजोत्पत्तिकर्म अवयवकी अपूर्णता अर्थात् संकीर्णताकी चिकित्सा समाप्त ।

आकृति नं० २१ देखो ।

योनिविस्तारकनालिकायन्त्र ।

डाक्टरीसे स्पर्शासह्य अर्थात् जो योनि किसी प्रकारके छूनेको न सहन कर सके । कितने ही समय किसी २ स्त्रीका योनिद्वार ऐसा हो जाता है कि वह किसी भी प्रका-

रके स्पर्शको सहन नहीं कर सक्ता और गर्भाधानकी स्थितिके निमित्त पुरुषेन्द्रियका संयोग (स्पर्श) अवश्य होना ही चाहिये। और यह स्पर्श असह्यता कितने ही कारणोंको लेकर उत्पन्न हो जाती है, योनिद्वार पर जरा स्पर्श किया जावे तो दृढ रीतिसे एकदम संकुचित हो जाता है। पुरुष समागम अत्यन्त दुःखदायक पड जाता है, जिस स्त्रीको ऐसी रीतिसे समागम त्रासदायक हो उसको स्पर्शासह्य योनिरोग कहते हैं और पुरुष समागम न होनेसे यह रोग भी वन्ध्यत्वके कारणमें समझना योग्य है। स्पर्शासह्य योनिरोग भी कितनी ही व्याधियोंका चिह्न रूप है। इस लिये जिस रोगसे ऐसा पुरुष समागमका त्रास (दुःख) होता होय वो प्रत्येक रोग स्त्रीको गर्भाधान रहनेमें विघ्नरूप समझना चाहिये। कारण कि योनिपटल अभेद्य याने अति कठिन होनेसे इसी प्रकार योनिमार्ग स्वाभाविक संकीर्ण अथवा उसमें तथा योनिमुखमें क्षत वा व्रण हुआ होय और वह रोपण हो गया होय जिससे योनिका संकोच हुआ होय तो पुरुष समागम बहुत ही दुःखदायक हो जाता है, और कितने ही समय तो अशक्य हो पडता है। योनिमार्ग विशेष छोटा होय अथवा योगिमुख विशेष संकुचित हो तो इससे भी पुरुष समागम बिलकुल असंभवित है, इसके लिये यह निश्चय करना योग्य है कि योनिमार्गमें योनिमुखके ऊपर गर्भाशयके मुखके ऊपर गर्भ अण्डके ऊपर इन स्थलों पर कोई व्याधि क्षत वा शोथादि है कि नहीं। योनिमार्गका शोथ, गर्भाशयका शोथ गभ अण्डका शोथ इन स्थलोंके शोथके कारण योनिमार्गको स्पर्शासह्यता है। अथवा इन भागोंके रोगके कारण पुरुष समागमसे रोग वृद्धिको प्राप्त होते हैं, इससे स्पर्शासह्यता है। जिससे दोनों स्त्री. पुरुषोंका समागम कार्य्य बरावर पूर्ण रीतिसे नहीं हो सक्ता, इसका निश्चय. करे एवं गर्भाशयके स्थानान्तरमें और विशेष करके गर्भाशयकी पश्चात् विवृता अथवा वक्रताके कारण तथा कमलकन्दके क्षतसे कितने ही समय योनिमें दर्द होता है, इन कारणोंसे भी पुरुप समागम नहीं हो सक्ता। अन्य चाहे जिस कारणसे कमरमें पीडा होती हो परंतु यह भी समागममें विघ्नरूप है। स्त्रीके मर्मस्थानकी अपेक्षा पुरुषका मर्मस्थान आकारमें विशेष मोटा होय तो स्त्रीको पुरुष समागमसे अति त्रास होता है। जैसे कि कितने ही रोगोंके कारणसे मुख बन्द हो जाता है दांती मिच् जाती है, इसी प्रकार इस रोगमें कितने ही समय कितनी ही स्त्रियोंका योनिमार्ग और योनिमुख अत्यन्त शक्त रीतिसे बन्द हो जाता है कि चाहे जितना जोर करके खोलना चाहो तो खुल नहीं सक्ता, और स्त्रीको असह्य पीडा हो जाती है। यह एकप्रकारका वातजन्य रोग है। निर्बलता, प्रदर, प्रमेह इनसे योनिमार्गके मर्मस्थानमें सडाव पड जाता है। उसके कारणसे अथवा रसौली वा किसी प्रकारकी ग्रंथि योनिअर्शके मस्से इत्यादिके होनेसे भी सुरत समागम अशक्य हो

जाता है । एक स्त्रीको हमने स्वयं देखा है कि उसके योगि ओष्ठोंपर सात मस्से थे और असह्य वेदना उसको होती थी, मस्से क्षारसे दग्ध करने और जखम रोपण होनेपर वह पीडा उसकी शान्त होगई । विशेप चिह्न इसके ये हैं कि पुरुप समागम न होसके और पुरुपके समीप आनेसे स्त्री घृणा माने और भयभीत होवे इस व्याधिका मुख्य चिह्न यही है, पुरुपके समीप आनेसे कितनी ही स्त्रियोंको इसका इतना वडा त्रास बैठ जाता है कि इस कार्य्यका नाम लेनेसे स्त्रीका शरीर कांपने लगता है योनिमुख पर अंगुली वा पुरुपेन्द्रियका स्पर्श बिल्कुल सहन नहीं होसक्ता । कितने ही समय चलने फिरनेसे और वस्त्र स्पर्शसे भी शक्त पीडा होती है । वातजन्य यह व्याधि जिस स्त्रीको होवे आर उस स्त्रीसे प्रसंगके निमित्त लेशमात्र भी प्रयत्न किया जावे तो इससे स्त्रीके सम्पूर्ण शरीरमें विजलीके समान असर होकर कम्प उत्पन्न हो जाता है । नेत्र चलायमान हो जाते हैं, हिचकी आने लगती हैं अपस्मारकीसी हालत (हिस्टीरीया) हो जाती है, क्षत शोथादि दूसरे कारणोंको लेकर पुरुप समागम अशक्य होय तव यह वातजन्य प्रकारके समान दुःख स्त्रीको नहीं होता। लेकिन योनिमार्गके क्षतके निमित्तसे योनिका श्लेष्म पिण्ड सड गया हो और उस भागके ज्ञान तन्तुओंका विन्दु विकृत होगया होय तो इससे अधिक शक्त पीडा होती है । जैसा यह रोग अधिक समय तक चलता है और स्त्रीकी पूर्ण युवावस्था प्राप्त हो जाती है, इस उमर तथा शारीरिक पुष्टताको देखकर अनभिज्ञ पुरुप वा स्त्री ऐसा समझते हैं कि यह स्त्री अपने पतिसे प्रीति नहीं रखती और इससे द्वेष मानती है तथा हिजडी है वा किसी दूसरेके जालमें फँसगई है सो उसीको इसका मन चाहता है कम्प वा मृगीकी हालतको देखकर लोग उस स्त्रीको ढोंग करने वा स्वैरिणी निश्चय करनेके अनुमान बांधा करते हैं । उस रोगी स्त्रीकी शारीरिक वेदना तथा मनोग्लानिको कोई नहीं जानता और पुरुप समागमसे उदासीन वा अनेक प्रकारके दूपित लांछन उस स्त्रीको लोग लगाया करते हैं । लोगोंके ऐसे प्रसङ्गोंको श्रवण करके उस स्त्रीकी मानसिक ग्लानि दिन प्रतिदिन वढती जाती है और शारीरिक वेदना तथा मानसिक ग्लानिसे उसका शरीर अति क्षीण होता जाता है और उसको रोग भी वढता जाता है । वह स्त्री अतिलज्जित रहती है, उसके पति तथा अन्य कुटुम्बी जन स्त्री पुरुपोंकी तर्फसे वेदरकारीपन तथा अनेक प्रकारके वहमको खडा करके इस व्याधिकी चिकित्सा नहीं होसक्ती, सो इसका परिणाम यह होता है कि या तो स्त्री जन्मभर वन्ध्या रह कर जीवन व्यतीत करे अथवा चिन्ता फिकर और मानसिक ग्लानिसे कृश हो कर मृत्युको प्राप्त होजावे ।

डाक्टरीसे स्पर्शासह्य योनिरोगकी चिकित्सा।

चिकित्सा इसकी यही है कि जो २ कारण जिस २ उपरोक्त व्याधियोंमेंसे मिले उस २ व्याधिका योग्य रीतिपर उपाय करना उचित है। और जहांतक वह व्याधि स्त्रीके गुह्यस्थलमें रहे वहांतक पुरुष समागम बिलकुल न होने पावे, पुरुषको स्त्री कदापि अपने समीप न आने देवे। कारण कि पुरुषके आनेसे स्त्रीका अन्तःकरण भयभीत हो जाता है, यदि कामान्ध पुरुष स्त्रीको लुभाकर आजमायश (रोगनिवृत्ति) की परीक्षाका लोभ देकर समागम करे तो रोगकी वृद्धि हो जाती है, सो इस रोगवाली स्त्रीको उचित है कि रोग निवृत्तिकी परीक्षा वह स्वयं कर लेवे, अपनी अंगुलीसे योनिका स्पर्श करे जहांतक उसको अंगुली स्पर्श सहन न होवे वहांतक रोग निवृत्ति नहीं हुई, ऐसा समझे। और अंगुली स्पर्श स्त्रीको सुहावे तो जान लेवे कि अब रोगकी निवृत्ति हो गई है, पीछे पुरुष समागम कुछ हानिकारक न होगा। यदि योनिमुखके आगे योनिपटल पुरुष समागमका बाधक होवे तो उसको पूर्व प्रकरणमें लिखी हुई पद्धतिके अनुसार काट देवे। यदि योनिमार्ग संकुचित हो तो योनिमार्गके संकोचका जो उपाय (प्रजोत्पत्ति कर्म अवयव) को चिकित्सामें कथन किया है, उसी रीतिसे इस प्रसंगपर करना योग्य है, और योनिमार्ग वा योनिमुखमें किसी प्रकार व्रण वा क्षत पडा हुआ होय तो उस भागमें संकोच न होने पावे ऐसी सावधानी रखनी और योनिमार्गके अन्दर संकोचका प्रसंग देखे तो योनिविस्तारक यन्त्र रक्खे, जिससे वह भाग विस्तृत रहे। आरोग्य होनेके अनन्तर पुरुष समागम होनेमें किसी प्रकारका भय नहीं रहता। यदि उस भागमें किसी प्रकारकी अपूर्णता हो तो उसकी तथा गर्भाशयकी जो कोई व्याधि होय उसका यथार्थ रीतिसे योग्य उपाय करना, जो योनिमार्गमें दर्द हो तो गर्म जलकी पिंचकारी लगानी आर इसके लिये ग्लीसराईनमें रुईका फोहा डबोकर रखना। संकोचकी निवृत्तिके लिये योनिविस्तारक यन्त्र कितने ही दिवस पर्य्यन्त योनिमार्गमें रखना पडता है। प्रदरके लिये स्तम्भन औषधियोंकी पिचकारी लगानी और स्त्रीको पौष्टिक आहार देना। योनिमुखके ऊपर कितने ही समय बारीक चीरा छतके कारणसे पड जाते हैं, उनके ऊपर स्तम्भन तथा शामक पदार्थोंका फोहा भिगोकर रखना। (सुगर्लेड ८० ग्रेन) जल १ रतल मिलाकर फोहा भिगोकर रखना, उस पानीमें १ ड्राम कार्बोलिकऐसिड मिलाकर फोहा डबोकर रखनेसे भी उत्तम लाभ पहुंचता है और जो बारीक क्षत तथा चीरा इतने उपायसे न रुझते होयँ तो २० ग्रेन नाईट्रेट ओफसीलवर और एक औंस जल मिलाकर यह लोशन एक वा दो समय योनिमुखकी किनारीके ऊपर लगाना, इससे वह सूक्ष्म क्षत वा चीरा शीघ्र रुझ जाते हैं (स्कोफयुला) नामक एक प्रकारकी रक्तकी विकृति होती है जिससे

शरीरके पृथक् पृथक् द्वारोंकी किनारीपर जखम और सडाव पड जाता है, जिस प्रकार मुख वा होंठके ऊपर क्षत पडते हैं नस्कोराकी और गुदाकी किनारीके ऊपर क्षत पडकर उनके छिद्र संकुचित हो जाते हैं वैसेही इस योनिमुखके छिद्रके लिये हैं । इन क्षतोंके रुझानेके लिये स्कोफ्युलाके क्षतम जो औषधियां लगाई जाती हैं, उनके लगानेके साथमें लोहभस्म काटलिवरआईल आदि पौष्टिक उपचार स्त्रीको देना योग्य है । और स्त्रीको स्वच्छ वायु सेवनका लाभ पहुंचाना थोडा परिश्रम लेना, जो २ आहार विहार आरोग्यता देनेवाले हैं उनकी सूचना स्त्रीको कर देनी योग्य है; उन सूचनाओंके अनुकूल स्त्रीको वर्त्तना चाहिये । और आक्षेप युक्त पुरुष समागमसे त्रास (दुःख) माननेवाली स्त्रीको नीचे लिखी हुई प्रीस्किशन विशेष उपयोगी है ।

पोटास ब्रोमाईड ३० ग्रेन, टीन्कचर होयोसायेमाई ३० टीपा बिन्दुवेलेडोना २० टीपा, जल ३ ओंस् इन सबको मिलाकर ३ मात्रा बनावे और १ ओंसकी मात्राके हिसावसे एक दिवसमें तीनों मात्रा ३ वा ४ घंटेके अन्तरसे लिया करे इसके सेवन करनेसे उस भागके ज्ञानतन्तुओंका उत्पात शान्त होगा, इसके साथ पीडा शामक तथा जो औषधियां उस भागकी स्पर्श ज्ञानशक्तिकी असह्यताको न्यून करें ऐसी औषधियां लगानेके काममें उपचार करे । टींक्चरओपीयम कलोरलहाईड्रेट लाई-कवोर प्लम्बाई सब ऐसी टेटीस टंकण (सुहागा) कार्वोलिकऐसिड ऐसिड हाई-ड्रोसीरानीक डाईल्युट इत्यादि औषधियोंमेंसे चाहे जौनसी दवा लेकर आवश्यकताके प्रमाणानुसार १ भाग औषधको ५० से लेकर १०० भागतक जलमें मिलाकर इसका फोहा योनिमुखमें रखना, उस भागकी स्पर्शज्ञता न्यून होवेगी । वैसेही योनिमार्गमें पीडाशामक औषधियोंकी वत्ती वनाकर रखना, इससे योनिमार्ग अपनी असह्य स्पर्श-ज्ञता छोड देवे । इसके अतिरिक्त मोर्फिया ३ ग्रेन, एकस्ट्राकटवेलेडोना २० ग्रेन, एसिड हाईड्रोसी एजीक डील्युट १ ड्राम, वेसेलीन एक ओंस इस प्रमाणसे औषधियाँ मिलाकर मलम वनावे और योनिमुखकी कोरके ऊपर तथा जहाँतक अन्दर अंगुली जा सके वहाँ पर्य्यन्त लगाना, इससे अतिलाभ पहुँचता है । इतना उपचार करने पर भी जो योनिमुख अथवा योनिमार्ग किसी वाह्य वस्तुका स्पर्श सहन न करसक्ता होय तो उसके श्लेष्म पडतके मध्यमें लकीरकी दोनों तर्फ जरा गहरा, अनुमानन एक वा डेढ इंच लम्वा छिद्र नस्तरसे करना । उस छिद्र किये हुए जखममें स्पेंजका टुकडा रखे अथवा लिंट्का टुकडा इन दोनोंमेंसे चाहे जिसका टुकडा १ लेकर .कार्वोलिक आई-लमें डवोकर रखदेवे (और कोपीनके समान पट्टी बाँध देवे । कार्वोलिकआईलकी विधि १ भाग कार्वोलिकऐसिड, १६ भाग तिलीका स्वच्छ तैल दोनोंको मिलालेवे और तीसरे दिवस पट्टीको खोलकर लींट वा रुईके फोहाको निकाले और योनि-

मार्गको कार्बोलिकलोशनसे साफ करे और पीछे जिस रीतिसे और प्रकारके जख-मोंका इलाज करते हैं उसी माफिक इसका इलाज करे । याद इस अर्शमें ज्वर उत्पन्न हो तो उसका योग्यरीतिसे उपाय करे और जखम रुझनेके पीछे छोडे दिवस पर्यन्त योनिविस्तारक नलिकायन्त्र योनिमार्गमें रक्खे, यदि नलिकायन्त्र प्रवेश करनेके समय किसी भागमेंसे रक्तस्राव होवे तो विस्तारकयन्त्र एकदम शीघ्रतासे प्रवेश कर देवे कि यन्त्रके दवाव पडनेसे रक्तस्राव बन्द हो जावे । यदि नलिकायन्त्रसे कोई जखम फटकर हो गया होय तो उसकी साधारण उपचारसे निवृत्ति करे, यदि इस दशामें नलिकायन्त्र बाहरको निकलता होवे तो योनिके ऊपर कपडेकी गद्दी लगाकर पट्टी बाँध देवे, यदि नलिकायन्त्रके दबावसे मल मूत्र त्यागनेमें रुकावट हो तो मलमूत्रके त्यागनेके समय नलिकायन्त्र निकाल ले, पीछे पहरा देवे । इस स्थितिमें स्त्रीको पुष्ट आहार और पौष्टिक औषधि सेवन करावे, जिससे उसके शरीरका पोषण उत्तम रीतिसे होवे ।

स्पर्शासह्य योनिदोषकी चिकित्सा समाप्त । इति षष्ठाध्याय समाप्त ।

अथ सप्तमाध्यायः ।

यूनानी तिब्बसे गर्भाशयके शोथका निदान तथा चिकित्सा ।

गर्भाशयके शोथके तीन भेद हैं–१ गर्भाशयमें गर्मसूजन उत्पन्न होना, इसके कारण कई हैं । प्रथम तो गर्भाशयपर चोटका अभिघात वा धमक पहुँचनेसे । दूसरे रजोधर्मके रक्तका रुक जाना, तीसरे गर्भस्थ बालकका गिरजाना, चौथे बाकलकी उत्पत्ति कठिनतासे होना । पांचवें पुरुषके साथ अधिक संभोग करना, छठे कुमारी स्त्री प्रथम ही पुरुषके पास जावे और पुरुषेन्द्रिय स्त्रीके आकारसे वडी मोटी लम्बी होनेसे गर्भाशय पर प्रथम ही एकदम दवाव पडनेसे सूजन पैदा हो जाना । सातवें खूनी मवाद वा पित्तीमवाद जो विना इन बिपत्तियोंके अपन आप गर्भाशय पर गिरे और गर्भाशयकी गर्म सूजनके जो विशेष चिह्न हैं । एक तो तेज ज्वर जीभपर कालापन, दूसरे शिरका दर्द मुख्य करके तालुमें । तीसरे टूंडी और पेंडूमें दर्द होना, परन्तु तालु और पेंडूमें दर्द तभी होता है कि जब सूजन गर्भाशयके आगेके भागमें होय । चौथे दोनों नितंबोंके बीच व पीठमें दर्द होय जबकि सूजन गर्भाशयके अन्तमें होय । पांचवें दोनों कोखोंमें दर्द, जो सूजन गर्भाशयकी दोनों बगलोंमें होय और कभी दर्द टूंडीमें अथवा दोनों नितम्बोंके बीचमें होता है । वहांसे जांघ, नितंब दोनों कोखोंकी तर्फ आकर ऐसी अधिकतासे खिंचाव उत्पन्न करता है कि उठना दुर्लभ हो जाता है और अक्सर ऐसा होता है जो दर्द टूंडीके नीचे होता है वह जांघमें

उतर आता है और जो दर्द दोनों नितम्बोंके बीचमें होता है वह नितंबोंमें आय जाता है । छठे मूत्र अति कठिनतासे उतरता है, जो सूजन गर्भाशयके आगेके भागकी तर्फ ऊपरको झुकाववाली होय । सातवें मलका कठिनतासे आना और जो सूजन गर्भाशयके अन्तमें नीचेकी तर्फ झुकी हुई होय यह मालूम रहे कि मूत्र मलका कठिनतासे आना व सूजनका कम होना आदि सूजनकी न्यूनाधिकताके अनुसार होता है । आठवें नाडी अधिकतासे चले और पिलाश जल्दी २ लगे । नवमें आमाशय और दिमागका बिगड जाना । इलाज इसका यह है कि वासलीककी और साफिन अर्थात् पैरकी रगकी फस्द खोले और आदिमें जो वाकलाचनेका आटा वनफसा, तरधनियां और कासनीका पानी मिलाकर थोडासा कर्पूर डालकर टूंडी और पेंडूपर लेप करे । लुआब तैल और सर्रूका निचुडा हुआ पानी थोडासा गर्भाशयमें टपकाले । और खुरफेका शीरा, वनफशाका शर्वत, खट्टे मींठे अनारका पानी, जौका पानी, वदामका तैल और कन्दके साथ पिलावे और लुआब आदि जो इसके योग्य होवें पिलावे । और जहाँतक उचित हो शीतल जल पानीसे बचावे और जो अजीर्ण हो तो वनफशा, सिविस्तान, उन्नाव, आलू जलमें पकाकर अमलतासका गूदा उसमें मिलाकर (शीरखिस्त, याने खुरासानी ओस) वदामका तैल रोगीकी सीरके माफिक डालकर पिलावे, औषधियोंका वजन तवीबकी रायसे आवश्यकताके अनुसार समझ कर ग्रहण करे । और अमलतासका गूदा शर्वत वनफशाके अथवा कासनी तथा मकोयके पानीके साथ पिलाना । ये प्रयोग अजीर्णको नष्ट करते हैं और जिस्मके अन्दरकी सूजनको अति लाभदायक हैं (विशेष द्रष्टव्य) यदि यह सूजन आरम्भमें होय तो केवल मवादके लौटनेवाली दवाओंका लेप कदापि न करे । जिससे मवाद पथरा न जाय और जब अधिक हो जाय तो वावूना और खतमी आदि जो द्रव्य कि मवादको नर्म करनेवाली हैं लेपकी रीतिसे इस्तेमाल करे । और इनका काढा तेडेकी रीतिसे इस्तेमाल करे । और जानना चाहिये कि जब अन्तमें पहुंचे तो दो कारणसे रहित नहीं एक यह कि नष्ट हो जाय, दूसरा यह कि इकट्ठा होने लग और इकट्ठा होने तथा पकनेका यह चिह्न है कि दर्द विशेष वढ जाय और भिन्न २ प्रकारके ज्वर और फुरफुरी उत्पन्न हो और चुभनादि सब चिह्न बढ जायँ । ऐसे समयमें चाहिये कि गर्मलुआब जैसे मेथीका लुआब, अलसीका लुआब, शब्बूका लुआब, थोडा २ गर्म गर्भाशयके मुखपर पहुंचावे । और वावूना, मेथीका दाना, अलसीके वीज, खतमी वनफशा, वाकलाका आटा, अंजीरके काढेमें मिलाकर थोडा २ गर्म लेप पेंडू पर करे । तथा गर्म पानीमें कमर डुवा स्त्रीको वैठावे । ये सब प्रयोग इसी लिये हैं कि पकावमें सहायता

करें और जब पक जाय तो दो कार्य्यसे रहित नहीं, यातो फूट जाय अथवा वैसे ही रहे और जो फोडा होजाय सूजन फूटजाय तो चाहिये कि उसके निकालनेमें सहायता करे। इस कामके लिये शहदके गर्म पानीसे गर्भाशयमें हुकना करना (पिचकारी लगाना) और कम मूत्र लानेवाली दवा जैसे खरबूजेके बीज, खीराककडीके बीज कासनीके बीजका काढा करके पिलाना लाभदायक है और गौका दूध मिश्री मिलाकर पिलावे यह पीबके निकालेको नियत है और चाहिये कि सर्वथा यही उपाय रक्खे जबतक कि घाव रोपण हो और विशेष मूत्रके बहानेवाली दवा कदापि न देवे, क्योंकि अधिक मूत्रलानेवाली दवा मवादको खींच लाती हैं और जखम विशेष हो जाता है और जखम पीवसे शुद्ध हो जाय तो उसके भरनेका उद्योग करे। जो दवा मरहम वगैरह जखमोंको भरते हैं वो काममें लावे। जब कि गर्भाशयकी सूजन फूटती है तो कभी तो आंता अथवा मसानेकी तर्फ उसका मवाद झुक पडता है और मूत्रके साथ पीलापानी निकलता है। उस समयम योग्य है कि मवादको आंतोंकी तर्फसे गर्भाशयकी तर्फ फिरावे जैसा कि गर्भाशयके घावोंमें उसका वर्णन आवेगा। दूसरा भेद यह है कि ठंढी सूजन कफवाली गर्भाशयमें उत्पन्न होय और उसका चिह्न पेडूकी तर्फ याने पेडूके पासमें भारापन होता है। इलाज इसका यह है कि प्रथम वमन करावे और जो कुछ मसानेकी ठंढी सूजनमें वर्णन किया गया है ग्रहण करे। तीसरा भेद यह है कि वादीकी कडी सूजन गर्भाशयमें उत्पन्न होय और यह सूजन प्रायः गर्म सूजनके उपरान्त उत्पन्न होती है और कदाचित् आरम्भमें ही रज जला हुआ अथवा किसी और कारणसे उत्पन्न होय जब कि इससे प्रथम गर्म सूजन न होय और यह सूजन फैल जाती है और इलाजके देर होनेमें जलन्धर उत्पन्न हो जाता है और गर्भाशयकी वादीकी सूजनके पांच चिह्न हैं एक तो यह कि गर्भाशयकी जगह पर बोझ मालूम होय और रोगी स्त्रीको चलने फिरने और उठने बैठने वा कामकाज करनेसे थकावट मालूम होय। दूसरे यह है कि कठोरता प्रगट होय और जो पेडूमें है तो गर्भाशयमें सूजन होनेका चिह्न है और प्रायः यह होता है (तीसरे यह है कि चलनेके समय पिण्डलियाँ काँपने लगें फिर जो सूजन गर्भाशयकी एक तर्फमें है तो उसी तर्फकी पिण्डलीमें कम्प और घबराहट उत्पन्न होय और जो गर्भाशयकी दोनों तर्फ हैं, तो दोनों पिण्डलियोंमें कंप और घबराहट होय, चौथे यह कि दर्द बहुत कम होय, और उस दशामें है कि मवाद बहुत गाढा होय और मवादकी उत्पत्ति विशेष न हुई होय, यह कि जो मवाद विशेष गाढा न होगा तो दर्द विशेष होगा और ऐसेही जो विशेष सूजन हो जाय जैसा उसका वर्णन आवेगा, पांचवें यह कि गर्भाशय किसी तर्फ झुक जावे, और किसी २ समय गर्भाशयकी सूजनका विपरीत ओरमें

झुकाव होता है जैसे कि जो सूजन गर्भाशयकी दाहिनी तर्फमें है तो बाईं तर्फ झुकजाय और इसके विपरीत अगली तर्फमें है तो पीछेकी तर्फ गर्भाशय झुका हुआ होय और इसके विपरीत नीचेकी तर्फमें सूजन हो तो ऊपरकी तर्फ झुका होय और इसके विरुद्ध यह उस दशामें होता है कि सूजन वहुत वडी होय इस लिये कि अङ्ग बोझके कारण विरुद्ध ओरमें झुका होगा और कभी गर्भाशय सूजनकी तफम झुका होगा। यह इस दशामें होता है कि सूजन छोटीसी होय सो गर्भाशय खिचावटके कारणसे सूजनकी तर्फमें खिचा हुआ और झुका हुआ होगा। इलाज इसका यह ह कि वासलीकी फस्द खोले आर वादीके दस्तोंके लिये माउल जुब्न और आकाशवेलका काढा और गुलकन्दादि धीरे २ देवे और मरहम दाखली ऊन और मरहम वासलीकून और गूगल तथा चर्बिया और गूदा, तथा नगासका तैल सौसनका तैल सोयाका तैल वेद अंजीरका तैल इनकी पिचकारी गर्भाशयपर लगानी, अथवा औषधियोंको कपडे पर लगाकर गर्भाशयपर पहुंचावे, जिससे सूजन नर्म होजावे और दूसरे प्रकारसे गूगल, शिलारस, छरीला, मेथी दाना, वावूना कर्नवके पत्ता, मोमका तैल, ईसवगोलका लुआव, अलसीके वीजके लुआवके साथ मिलाकर सूजन पर लेप करे और रातदिनमें दो वार सोया कर्नवके पत्ता अकलीलुलमलिक. खतमी, वनफशा, वावूना दोनामरूआ इत्यादि मवादको नर्म करनेवाली चीजोंके काढेमें कमरखुडनेतक स्त्रीको बैठावे। (अब गर्भाशयकी वडी और फैली हुई सूजनकी व्याख्या वणन करते हैं) यह प्रायः गर्भाशयकी गर्म सूजनके उपरान्त उत्पन्न होती है। जब कि वह नहीं फूटती और फूटकर मवाद नहीं निकलता, उसके चिह्न ये होते हैं कठोरता गर्मी, टीसें मारना और छातीके पर्दे तक दर्दका होना कदाचित् आंखका दर्द आधाशीशीका दर्द और निर्बलता दुवलापन पैरकी पिंडलियोंका सूखना पैरकी पीठपर शोथ उत्पन्न होय और पेट ऐसा हो जाय कि जैसा जलंधरवालेका होता है, अति फूला हुआ मालूम होय, कदाचित् इस हालतको लेकर जलन्धर भी हो जावे और जानना चाहिये कि सूजन वडी और फैली हुई प्रगट होती है और पेटकी रगें उभर आती हैं और उन रगोंका रंग नीला और शीशेकासा होता है और कभी २ गर्भाशयमें जखम भी हो जाता है। उस जखमके चिह्न यह हैं कि पेडू और चट्टोंमें तथा पेटके नीचे और पीठमें दर्द अधिक होता है और अक्सर इसमेंसे वदबूदार तरी जिसका पकाव समान नहीं होता वहा करती है और इस तरीका रंग सफेदी तथा स्याही लाली हरी पीली लिये हुए होता है परन्तु स्याही लिये हुए तो अक्सर होता है और सफेद वहुत कम होता है। इलाज इसका यह है कि गर्भाशयकी सूजन सादी होय अथवा उसमें जखम भी होय तो इसका इलाज नहीं हो सक्ता। क्योंकि उसकी हानिसे कोई

दूसरी विपत्ति उत्पन्न न हो जाय इस लिये उचित है कि उसके संभालनेमें परिश्रम करे जब कि गर्मी और टीसोंकी अधिकता होय तो ठंढा मरहम जिससे कि दर्द बन्द हो जाता है और ठंढे लुआब ग्रहण करे और जब गर्मी ठहर जाय और दर्द कम हो तो नर्म चीजें जो नष्ट करती हैं जैसे महरम दाखिलीऊन, गूगल और बाबूनाका तैल और बतककी चर्बी काममें लावे और ऐसेही मेथी बाबूना, अलसीके बीज कर्न-बके पत्ताके काढेसे तरेडा देवे और स्त्री ताकतवर होय तो धीरे २ और नर्मीसे कभी २ फस्द खोले और मलके द्वारा वात दोषको निकालनेवाली औषधियोंको खिलावे जिससे वादी कम हो जाय और सफाई होती रहे और उचित है कि प्रकृतिको तरी पहुं-चानेमें सहायता करता रहे और जहां कहीं सूजनमें घाव होय तो चाहिये कि खतमीके पत्ता कनबके पत्ता, बनफशा, अलसीके बीज इनका काढा करके उसमें कमर बुडने तक स्त्रीको बैठाले और इसी प्रकार सफेद सलाई औषधियोंसे बनी हुई और अफीम स्त्रीके दूधमें घिसकर गर्भाशयक अंदर पहुँचावे जिससे दर्द एकदम बन्द हो जायगा और इसके साथ थोडी केशर भी डाले जिससे अफीमकी हानिको नष्ट कर देवे और सूज-नके इलाजमें सबसे उत्तम यह है कि शीसेको धनियेके पानीमें अथवा काहूके पानीमें तथा कासनीके पानीमें घिसकर मले और गर्भाशयके अन्दर पहुँचावे और मरहम रसिल इस रोगमें अधिक लाभदायक है और खसखास तरधनियाँ, मकोय और मुर्गीके अण्डेकी सफेदी और गुलरोगन और शराब इनका लेप करे। तथा वात रंग और स्त्रियोंका दूध गुलरोगन इनको मिलाकर गर्भाशयमें पहुंचावे विशेष लाभदायक हैं जहां कहीं बहुतसा खून आता है तो उस्सारहलहयुत्तीस गिले इरमनी, रांगकी सफेदी, वात-रंगके पानीसे पतली करके गर्भाशयमें पहुँचावे तो खून बन्द हो जाता है।

यूनानी तिब्बसे गर्भाशय शोथकी व्याख्या समाप्त ।

यूनानी तिब्बसे गर्भाशयके घावोंका वर्णन ।

अब यहांसे गर्भाशयकी उस स्थितिकी व्यवस्था लिखी जाती है कि जिससे गर्भाशयके बाह्याभ्यन्तर व्रण (घावों) का ज्ञान और चिकित्साकी व्याख्या हैं। घावोंका बाहरी कारण जैसे किसी वस्तुका अभिघात (चोटका लगना) और गर्भा-शयमें धमकका पहुँचना और गर्भाशयकी रग और झिल्लीको तोड डाले और भीतरी कारण जैसे उत्पत्तिकी कठिनता और जननेके समयके दर्दकी अधिकता तथा झिल्ली और मरे हुए बालकको खींचना जिससे रग और झिल्लियोंके फटने आर टूटनेकी वा फटनेकी दशा पहुँचे और सूजन तथा फुंसियां उत्पन्न हों, जो कि गर्भाशयके अन्दर ही फूट जावें और कोई कडवा दोष जो कि स्वभावसे तीक्ष्ण होय और गर्भाशयको काटनेवाला तथा खानेवाला गर्भाशयमें आजाय और गर्भाशयके भागोंको खाजाय

(सडा देय) और गर्भाशयके घावोंका यह चिह्न है कि हर समय दर्द रहा करे खून वा पीव अलग अलग वा मिलकर निकले फिर जो खून लाल और निर्बल आता है तो रगोंके फटनेका चिह्न है और जानलेना चाहिये कि अभी गर्भाशयमें पीव नहीं पडा है और जो खून विशेष काला और दुर्गन्धित आता है और दर्द विशेष होता है तो मांसके गलने (सडने) का चिह्न है और जो मांसके पानीकीसी सूरतका थोडे दर्दके साथ निकलता है तो इस बातका निर्णय करता है कि घाव सड गया है और गर्भाशयका मांस गलने लगा है और जो कुछ गर्भाशयसे आता है गादसा है तो यह निर्णय करता है कि गर्भाशयमें गर्म सूजन दोषके सम्पूर्ण पक जानेसे प्रथम ही फूट गई है यदि जो पीव सफेद और गाढा विशेषतासे थोडी जलनके साथ आता है और उसमें दुर्गन्धि नहीं हो तो इस बातका चिह्न है कि घाव मैलसे शुद्ध होता है। क्योंकि पीवमें सफेदी और गाढापन जबहीं होता है कि उसमें असली गर्मी अपना गुण करे और उसको असली अंगोंके समान गाढापन और रंग बनादेती है। इलाज इसका यह है कि जो कुछ चोट और धमाकेसे अथवा उत्पत्तिकी अधिकतासे और बालक जननेकी अधिकतासे वा झिल्ली और मरे बालकको खींचनेसे उत्पन्न होता है और सिर्फ खून होता है तो कुमकुमके पानीमें बैठाना और रोकनेवाली चीजें कपडे पर लगाकर गर्भाशयके अन्दर पहुंचाना और चोटमें कोई कार्य्य वर्जित न होय तो प्रथम बासलीककी फस्द खोले और जो घाव गर्भाशयकी गहराईमें हो तो, गिले इरमनी अकाकिया, माजूफल रामकंझारीके पानीमें मिलाकर गर्भाशयके अन्दर पहुंचाना, इस तर्कीबसे पहुंचाना कि दवा गहराईमें पहुंच जावे। तथा सुनहरी गोंदकी टिकिया वातरंगके पानीमें मिलाकर गर्भाशयके अन्दर पहुंचाया जावे तो खूनके आनेको बन्द करती है। और जानलेना चाहिये कि हुकना और फर्जजां (दवाको ऊनमें या कपडेमें लहसेडकरके स्त्रीकी जननेंद्रिय पर रखना, पीनेकी चीजोंकी अपेक्षा इस मर्जमें जल्द गुण करते हैं (फर्जजा हाबिसकी विधि) कुंदरूगोंद, अंजरूद, हीरा दुखी गोंद, फूल, शुक, सोया, अनारकी छाल, सरूके फल कूट छानकर चौलाईके पानीमें या वातरंगके पानीमें या अधीराके पानीमें मिलाकर और ऊन उस दवामें भरकर स्त्रीके गर्भाशयमें रखे। इस काममें हकीम लोग ऊनको इसलिये ग्रहण करते हैं कि वह नर्म है। उससे गर्भाशयको कष्ट नहीं जिसका ईरान अरब आदि यवन) देशोंमें प्रथम रुईकी उत्पत्ति नहीं थी इसीसे उस स्याही लाली है नर्म मानकर वहांके हकीम काममें लेते थे, और ऊनमें अजीर्णकारक सफेद बहुत कमकी शक्ति भी है तथा घावके सुखाने और जल्द भरनेमें भी सहायता उसमें जखम भी हाके प्रयोगोंमें जो कुछ कथन किया गया है उन घावोंका उपाय है

कि जिनमें पीब न पडी होय और जब कि पीब पड गई है और घाव हो गया है तो प्रथम घावको स्वच्छ करे, उसके उपरान्त घाव भरनेके उपायोंमें आरूढ हो, और जब कि गर्भकी सूजन और फुंसियोंके फुटनेसे होय तो गुलरोगन, बनफशाका तैल और ईखका रस तीनोंको मिलाकर गर्भाशयमें पहुंचावे, जिससे दर्द बन्द हो जलन निवृत्त हो जाय। घाव स्वच्छ हो जानेके उपरान्त मरहम वासलीकून (सुर्माकी मरहम) गुलरोगनमें मिलाकर गर्भाशयके अन्दर पहुंचावे, जिससे सडे स्थलपर नूतन मांस उत्पन्न हो जखम भरजावे। बाकीका इलाज मसानेके और गुर्देके घावोंके समान करे। (मरहम वासलीकूनके बनानेकी क्रिया) सफेद राल, रातियांजमोम प्रत्येक ९० मासे गन्दाविरोजा १४ मासे, जैतूनका तैल १०९ मासे, मोमको पिघलाकर जैतूनके तैलमें मिलावे और दूसरी दवा अति बारीक पीसकर मिलावे और जहां कहीं दुर्गंधित पीब अथवा कोई चीज मांसके पानीके समान जाती होय तो ठंढी और अजीर्णकारक चीजें जैसा कि चांवल, मसूर, अनारका छिलका व फूल, अधीरा, झाऊबल्लूतका छिलका इनको औटाकर इनके काढेमें गुलरोगन मिलाकर गर्भाशयके अन्दर पहुंचावे, जिससे घावोंको दुर्गन्धिसे रहितकर गर्भाशयके भागको गलनेसे बचावे। इसके उपरान्त घावके भरनेका उपाय करे (विशेष सूचना) कभी गर्भाशयकी पीब मसानेकी तर्फ आकर मूत्रके साथ निकलती है और कभी आंतोंकी (मलके नलकी) तर्फ आकर मलके साथ निकलती है, सो मवादका झुकाव मसाने पर मालूम हो तो इसमें ऐसा यत्न करे कि पीब मसानेमें न ठहर शीघ्र मूत्रमें निकल जाया करे, और मसानेको सडी हुई पीब घायल न करने पावे। इस कामके लिये यह दवा मूत्रको लानेवाली विशेष लाभदायक है, खरबूजाके बीजकी मिंगी, खीरेककडीके बीजकी मिंगी, घीयाके बीजकी मिंगी, खशखाशके बीज प्रत्येक १४ मासे समगअर्बी, कतीरा, नशास्ता, मुलहटी प्रत्येक ३॥ मासे सबको कूट कर रक्खे और उसमेंसे १०॥ मासेके करीब लेकर शर्वत खशखाश और कीरूतीके साथ कि जो मोम और गुलरोगनके साथ बनी होय लेवे। मूत्रके बहानेवाली दवाओंका यह फल है कि पीबको मसानेसे काटकर निकाल देवें, और किरूतीका यह फल है कि मसानेके अंगपर चिपट जाय और पीबकी हानिसे उसे बचावे, जब कि पीबका आना सीधी आँतडी पर प्रगट हा तो उसके हटानेके लिये प्रयत्न करे जिससे कि पीब उलटी गर्भाशयकी तर्फ जावे और आंतपर न पडे। क्योंकि गर्भाशयका अंग विशेष कडा है पीबकी जलनको आंतडियोंकी अपेक्षा विशेष सह सक्ता है। और गर्भाशय बलवान् शक्ती बहुत थोडी रखता है, यही कारण है कि हकीमोंने पीबको आंतोंकी

तर्फसे हटाकर गर्भाशयकी तर्फ लौट जाना अच्छा माना है । वह हुकना जो पीवको आंतों पर नहीं गिरने देता है यह है, कि चांवल, मसूर, अनारका छिलका, औटाकर उसके काढेमें गिलेइरमनी, हीरादुखी गोंद, समगअर्बी, और मुर्गीके अण्डेकी जर्दी जो कि सिर्केमें पकाई होय गुलरोगन मिलाकर आंतों पर पिचकारीके जरिये पहुंचावे । और जहां उसमें मांस गल गया होय और पीव हरी वा काली अथवा गादके समान तथा पीले पानीके समान आती होय तो उचित है कि उसके निकालनेकी कोशिश करे, जिससे निकम्मे भाग बिलकुल दूर हो जायँ । इस कामके लिये जौका पानी तथा शहद व साबुनका पानी और मुलहटीके काढेको मिलावे, इन दोनों: प्रयोगों- मेंसे किसी एकको गर्भाशयमें पिचकारीके जरिये पहुंचाना लाभदायक है । और शहद दूधमें पकाकर ऊन तथा रुई उसमें भिगोकर उसको स्त्रीकी योनिक मार्गमें रखना प्रत्येक घावके लिये जो उसमें गर्मी न होय विशेष लाभदायक है। जब कि घाव शुद्ध हो जाय तो घावको भरनेवाली औषधियोंसे जिनका वर्णन होचुका है उस उस प्रयोगको घावोंकी आवश्यकतानुसार गर्भाशयमें पहुंचावे । जब विशेष दर्द घावमें उत्पन्न हो तो, अफीम और केशर स्त्रीके दूधमें मिला कपडेमें लगाकर योनिमार्गमें वा गर्भाशयके मुखमें रक्खे, जिससे दर्द बन्द हो जाय। जो घाव गहरा होय तो किसी तर्कीबसे दवाको गर्भा- शयकी गहराईमें पहुंचा दर्द ठहरावे । ताजा खतमी और चौलाईको पकाकर इसके काढेमें शहद और गुलरोगन मिलाकर गर्भाशयके अन्दर लेपके समान लगावे— तो दर्द एकदम बन्द हो जायगा—और दूसरे उपाय जो गर्भाशयके दर्दको रोकते हैं वहाँ लिखे हैं जहाँ गर्भवती स्त्रियोंका विस्तारसे उपाय वर्णन किया गया है । गर्भा- शयमें एक प्रकारके व्रण (फोडे) उत्पन्न होते हैं, उनकी व्यवस्था इस प्रकारसे है कि, जब गर्भाशयकी सूजन पक तो जाती है मगर फूटती नहीं, तो उसको ऐसी दशामें दबीला कहते हैं । और उसके चिह्नोंका वर्णन सजनके प्रकरणमें पूर्व आचुका है । इलाज इसका यह है कि जो दबीला गर्भाशयके मुखमें हो तो चीरा देकर पीव निकाल डाले और जो: गर्भाशयकी गहराईमें होय तो खरबूजाके बीज, खीराक- कडीके बीज, कासनीके बीज, गोखरू इनका काढा करके थोडे दिवसतक पीवे । और मेथीदाना, अलसीके बीज, बाबूना, अकलीलुलमालिक खतमी, जौका आटा, कनूचाके बीज, बाकलाका चून, अंजीरका काढा और तिलोंका तैल मिलाकर लेप करे और कितने ही दिवसतक यहीः लेप किया करे जबतक फूट न जाय और जो फूटनेमें विलम्ब लगे तो यह भय हो सक्ता है कि कहीं मांसके गलनेकी दशा आप- हुंचे तो अंजीर, राई इन दोनोंका काढा करके गर्भाशयमें पहुंचावे और इस काढेका

फोक पेंडूपर लेप करे और जहाँ कहीं सूजन होय और फूट जावे तो घावके शुद्ध करने भरनेकी कोशिश करे जैसा कि वर्णन ऊपर हो चुका है ।

यनानी तिब्बसे गर्भाशयके घाव (व्रणों) की व्याख्या समाप्त ।

यूनानी तिब्बसे गर्भाशयकी फुंसियोंकी व्याख्या ।

ये फुंसियां प्रायः बिगडे हुए रक्तसे अथवा पित्तसे जो खूनमें मिला होय उत्पन्न होती हैं । और ये अक्सर गर्भाशयके मुखपर वा मुखके अन्दर उत्पन्न होती हैं । और उनका चिह्न यह है कि अंगुलीकें रखनेसे माद्धम होती हैं । जब योनिको खोलकर गर्भाशयको देखे तो उसके मुखपर दिखाई देती हैं और कदाचित् उनमें खुजली भी होती होय । इलाज इसका यह है कि वासलिककी फस्द खोले और शर्वत नारंगी, सिकंजवीन, खुर्फाका शरिा और गोहूंकी दलिया देवे, जिससे कि पित्तकी गर्मी रुकजावे और भोजन कच्चे अंगूरका झोल और तुतरुग, उसके समान है । फिर जो फुंसी प्रगट हो तो सफेदाका मरहम, गुलाबके फूल, खडियामिट्टी, चांदीका मैल, मुर्दासंग, रांगका सफेदा, सफेद मोम, गुलरोगन इन सबका मरहम बनाकर लेप करे, जिससे मवाद सूख कर जलन तथा खुजली कम हो जाय और फुंसियां प्रगट हुई होवें या होनेके लक्षण दीखते होवें तो ऊपर लिखी हुई औषधियोंको वातंगके पानी तथा गुलरोगन व स्त्रीके दूधमें मिला-गर्भाशयके मुखपर लगावे ।

गर्भाशयके नासूरकी व्याख्या ।

किसी किसी समय गर्भाशयमें नासूर पड जाता है, इसकी नासूर संज्ञा उस समय कही जाती है कि जखम बहुत पुराना पड जाय और पीब निकलती रहे । और किताब शरह अस्वावका बनानेवाला कहता है कि घावको नासूर उस वक्त कहते हैं कि जब फूटनेके समयसे उसपर बहुतकाल व्यतीत हो जाय और वह समय कमसे कम ४० दिनका व्यतीत हो गया होय और नासूरका यह चिह्न है कि उसमेंसे हमेशा पीला पानी तथा पतली पीब बहा करती होय और सदैव उसमें दर्द रहे (इलाज) इसका यह है कि मवादके निकालनेवाली और खुश्क करनेवाली दवा कि जिनका वर्णन गर्भाशयके घावोंमें हो चुका है, काममे लावे । परन्तु जो दवा विशेष बलवान् हो, शीघ्र फल दिखलानेवाली हो उसको ग्रहण करे । गर्भाशयके नासूरको हथियारसे कभी न काटे, क्योंकि इसके काटनेसे मूर्च्छा और अचेतनताका भय रहता है । यदि शरीरमें मवाद भरा हो तो आवश्यकतानुसार फस्द खुला दस्तावर दवा काममें लावे, जिससे तरीके निकलने पर शीघ्र विशेष खुश्की पहुंचे ।

यूनानी तिब्बसे गर्भाशयके नासूरकी व्याख्या समाप्त ।

डाक्टरीसे गर्भाशयके मुख (कमलमुख) का दीर्घ शोथ कमलकन्दका क्षत ।

स्त्रीके गुह्यावयवके जितने मर्मस्थान हैं जिस प्रकार उनमें शोथ कारण पाकर उत्पन्न होता है उसी प्रकार कमलमुखमें भी कारण विशेपसे शोथकी उत्पत्ति होना संभव है । कमलमुख तथा गर्भाशयका तीक्ष्ण शोथ अधिक शक्त विपैले ज्वरके पीछे और प्रसवकी अवस्थामें जो तीव्र ज्वर होता है उसको लेकर होता है । ऐसे तीव्र शोथके समय गर्भाशयकी परीक्षा करनेसे ज्ञात होता है कि सोभडके समय स्त्रीके मर्मस्थानोंको कितना क्लेश पहुंचा है । विशेप कष्टदायक प्रसवसे तथा तीव्र प्रमेहसे भी इस शोथको सहायता मिलती है और ऐसी जीर्ण व्याधिसे प्रथम कमलमुखमें कुछ शोथ उत्पन्न हो जाता है। जैसा कि आगन्तुक ज्वर तथा विषम ज्वरमें कमलकन्दके नीचेके भागमें जो कि योनिमार्गसे चिपटा हुआ है, प्रथम उसी भागमें शोथ देखा गया है । कमलमुखका नीचेका होंठ मोटा और ऊपरका पतला देखा जाता है, उसकी चिकित्सा न होनेसे वही शोथ सर्व कमलमुखपर फैल जाता है और कमलका मुख गर्भाशयका मुख, रोहूमछलीके मुखकी आकृतिका कुछ चौडाई लिये हुए लम्बा और सरवट पडा हुआ असली आकृतिमें होता है। सो शोथके उत्पन्न होनेसे गर्भाशयका मुख तना हुआ सरवटरहित गोल संकुचित हो जाता है । जीर्ण शोथ यह स्त्रीको स्वाभाविक कष्ट उत्पन्न हो जाता है । और यही अधिक समय पर्य्यन्त रहनेसे वन्ध्या दोषको नियत करनेका एक प्रधान कारण हो जाता है । गर्भाशयके मुखका संकोच और गर्भाशयकी अग्रवक्रताके समान ही कमलमुखका जीर्ण शोथ और उसमें उत्पन्न हुआ क्षत वा छाला प्राय: ये वन्ध्यादोपको स्थापन करनेवाले हैं । जिस कारणसे गर्भाशयको पोपण मिलनेका प्रतिवन्ध होता है, उसी कारणसे कमलमुखमें क्षत उत्पन्न होता है । स्त्रीके शरीरको अधिक शर्दी लगनेसे प्राय: यह रोग विशेष करके उत्पन्न होता है । गर्भाशयके श्लेष्मपिण्डमें शोथ उत्पन्न होकर पीछेसे उसकी इतनी वृद्धि होती है कि गर्भाशयके मुखमें एक प्रकारका द्रवरूप स्राव होने लगता है । निर्वल शरीर कोमल प्रकृतिकी फीके मुखवाली जिस स्त्रीका मांस स्वाभाविक पाक प्रकृतिवाला हो ऐसी स्त्री, तथा जिसको सन्धिवातकी पीडासे सन्धि पकडी गई होय, एवं मन्दाग्निवाली अथवा जिसका शरीर सावारण रीतिसे गर्म रहता होय ऐसे निमित्तोंवाली स्त्रियोंके कमलकन्द (गर्भाशयके मुख) में विशेप करके क्षत उत्पन्न होता है । इसके अतिरिक्त गर्भाशयके मुखके आसपासके किसी भागमें शोथ उत्पन्न हुआ होय तो उसके असरसे भी क्षत (व्रण) छाला उत्पन्न हो जाता है । योनिमार्गमें अथवा गर्भाशयमें शोथ उत्पन्न हुआ होय या प्रमेहसे उत्पन्न हुआ हो तो इनके भी जीर्ण दर्प्यसे कमलमुखका अनेक भाग दूषित होता है । इसी प्रकार गर्भाशय स्थानान्तरमें हटगया होय और

गर्भाशयका मुख किसी अङ्गके दबावमें आ-गया हो तो प्रथम इससे उसमें रक्तका संग्रह होकर पीछेसे उसमें क्षत उत्पन्न होता है और बाह्य पदार्थ गर्भाशयमें प्रवेश करनेसे अथवा कमलमुख पर किसी प्रकार क्षोभक, दग्धक पदार्थ लगानेसे और ऐसे तीव्र पदार्थोंकी विशेष तेज पिचकारी लगानेसे बिना समझे चाहे जैसी औषध हो उसको लगानेसे, जैसे कि बहुतसी बेसमझ स्त्रियाँ योनि संकोचनके लिये अथवा अपने पतिको वशभूत करनेके लिये अताई मूर्ख दाइयोंकी तथा नायन आदि नीच-वर्णकी मूर्ख स्त्रियोंकी वा वृद्धाओंकी बतलाई हुई तथा दीहुई गोली और बत्ती आद योनिमार्गमें रख लेती हैं। योनिमार्ग कमलमुखकी अपेक्षा कुछ कठिन है और पुरुषे-न्द्रियके संघर्षणसे कुछ त्वचा (जिल्द) उसकी सहनशीलतावाली हो जाती है। परन्तु कमलमुख स्वभावसे कोमल होनेके कारण ऐसी बेसमझीकी औषधियोंके संसर्गसे दूषित हो शोथयुक्त होकर थोडे ही समयमें क्षत उत्पन्न हो जाता है । इसी प्रकार यदि स्त्री अधिक भोगविलासकी इच्छासे पुरुषसमागममें अधिक रत रहकर पुरुष समागम अधिक करती होय, अथवा पुरुषेन्द्रियका दबाव कमलमुख पर अधिक पडता होय, ऐसी स्त्रियोंके कमलमुखमें, न्यून सहवास करनेवाली स्त्रियोंकी अपेक्षा अधिक शोथ छाला और क्षत उत्पन्न होता है। और सद्गृहस्था सुशीला पतिव्रता स्त्रियोंकी अपेक्षा स्वैरिणी, कुलटा और वेश्या स्त्रियोंमें यह व्याधि अधिकतासे पाई जाती है। इन उपरोक्त कारणोंसे शोथ छत छाला और व्रण कमलमुखमें उत्पन्न होकर गर्भाशयके मुखको दूषित कर स्त्रीके वन्ध्यादोष उपस्थित हो जाता ह । इन उपरोक्त कारणोंके अतिरिक्त कमलमुखका क्षत कमलकी बाधा पहुँचने वा किसी प्रकारका अभिघात, पहुँचनेसे भी हो जाता है। प्रसवके समय जब बालक निकलनेका दबाव कमलमुखके ऊपर विशेष पडता है तब उस भागमें कुछ रक्त जम कर उस स्थलपर पीछेसे क्षत पड जाता है और वह क्षत पूर्णरीतिसे रोपण न हुआ हो और उसके पूर्वही प्रसूता स्त्री प्रसूतिगृहके विस्तरसे उठ खडी हुई हो और गृहकार्यमें प्रवृत्ति कर दी हो तो वह क्षत शीघ्र रोपण नहीं होता और अधिक समयपर्यन्त ठहरता हुआ कमलमुखको दूषित करता है और प्रसवके पीछे गर्भाशय तथा गर्भाशयका मुख (कमलमुख) जैसा स्वाभाविक संकोचको प्राप्त होना चाहिये वैसा संकुचित नहीं होता । कितने ही समय प्रसूति-कालमें बालकके निकलनेसे कमलमुख फट भी जाता है और प्रसवके अनन्तर वह स्वाभाविक रीतिसे कुछ अंशमें जुड भी जाता है और कुछ अंशमें बेजुडा हुआ भाग क्षतके तरीकेसे रहा चला आता है और यह कालान्तरमें नष्ट गर्भितव्यता स्थापन करता है। पाण्डु रोग शारीरिक क्षीणता, पौष्टिक आहारका न मिलना तथा शुद्ध वायु सेवनका अभाव एवं ऐसे ही अनेक दूसरे कारणोंसे कि जिनसे शरीर विशेष

निर्बल पडता जाता है, ये अधिकांश कारण भी कमलमुख पर क्षत उत्पन्न करते हैं । योनिमार्गमें. किसी प्रकारका शोथ उत्पन्न होनेसे कमलमुखमें भी शोथ उत्पन्न हो जाता है । इसी प्रकार यदि स्त्रीको उपदंशकी व्याधि हुई हो तो इसके जहर फैलनेसे भी कमलमुखमें शोथ उत्पन्न होता है । इस शोथ वा छत छाला, व्रणकी स्थितिके समय कमलका भाग सूझा हुआ और विम्बीफलके समान लाल दीखता है । और कितनी ही स्त्रियोंके कमलपर लाल रंगकी विन्दियाँसी देखी गई हैं और कमलमुखका अन्तर्पिण्ड कठिन और ऊपरका लुवलुवा होता है और तर्जनी अंगुली योनिमार्गमें प्रवेश करके कमलमुख पर अडाई जावे वा उसको दवाया जावे तो स्त्रीको अति पीडा मालूम होती है । कमलमुख किसी स्त्रीका अधिक चौडा और किसीका संकुचित देखा गया है और द्रवरूप श्वेत पदार्थसे भरपूर रहता है । इसका यही कारण जाना जाता है कि जिसके कमलमुखके मार्गमें शोथ होता है उसका संकुचित और जिसके कमलके ऊपर क्षत वगैरह होते हैं उसका मुख चौडा रहता है । और कमलमुखमेंसे सफेद चिकना पदार्थ विशेप वहता हुआ दृष्टिगत होता है, इस व्याधिका मुख्य और वडा चिह्न प्रदर है । जव अधिक समय पर्य्यन्त स्त्रीको श्वेत प्रदरकी व्याधि रहे तो कमलकन्दका क्षत अथवा शोथकी आशंका करनी योग्य है । इस प्रकारके चिकने श्वेत पदार्थसे गर्भाशयका मुख भराहुआ रहनेसे पुरुष वीर्य्य गर्भाशयमें प्रवेश नहीं हो सक्ता । शोथ युक्त और लाल रंगके कमलकन्दमेंसे जो पीव (राध) अथवा रक्त मिश्रित राध ऐसा कोई पदार्थ निकलता होय तो कमलमुखके चिरकालसे उत्पन्न हुए शोथकी आशंका होती है । कमलमुखके शोथके साथ उसमें कितने ही समय क्षत पडता है। और उसके ऊपर मृतमांस (सडाहुआ मांस) लगा रहता है, किसी २ समय यह मृतमांस अधिक होनेसे योनिके वाहर भी निकलने लगता है और कुछ २ जखम पर लगा भी रहता है, इसको कमलकन्दका क्षत कहते हैं । चिरकालसे उत्पन्न हुए शोथके कारणसे कमलकन्द केवल लाल रंगवाला होता है और शोथयुक्त दीख पडता है, इसके अतिरिक्त लाल तथा शोथयुक्त कमलकन्दमें कभी कभी सफेद रंगके दाने गुमडोंके समान उत्पन्न हुए देखनेमें आते हैं । जसा कि नेत्रकी पुतलीका सफेद दाना दीखता है, ऐसे ही दृष्टिगत हुए हैं । जैसे कि रेत मृत्तिकामें सफेद सितारे चमकते हैं । उसी माफिक कमलमुख पर ये सूक्ष्म दाने मालूम पडते हैं । यदि ऐसी स्थितिमें स्त्री पुरुप समागम करे तो यह कर्म उसको अति दुःखदायक हो जाता है और इस क्रियाके होनेके अनन्तर पुरुपवीर्यकी वापिसीमें योनिमार्गसे थोडा वहुत रक्त मिश्रित वीर्य्य निकलता है और किसी २ पुरुपको संदेह भी हो जाता है कि मेरे वीर्य्यमें रक्त आता है । परन्तु यह वात नहीं है । क्योंकि वह रक्त स्त्रीके कमलकन्द-

मेंसे निकल कर पुरुष वीर्य्यमें मिला है । कमलकन्दमें लाल रंग उत्पन्न होनेके अनन्तर वहाँ क्षत पडनेके परिवर्त्तनमें किसी समय उसके ऊपरसे उत्तम चर्म पडता उतर जाता है और इससे उस स्थलपर ऐसा मालूम होता है कि छाला उत्पन्न होकर फूट गया है । यदि अधिक समय पर्य्यन्त कमलकन्दमें जीर्ण शोथ रहे तो पीछे वहाँ लाल रंग न्यून होकर शोथ बाकी रह जाता है और वह भाग अति कठिन जान पडता है, आरोग्य कमलमुखकी रंगत गुलाबके फूलके समान होती है और गोलाईयुक्त एक समान होता है । व्याधिकी विशेषताके हेतुसे उसकी रंगत अधिक लाल उसमें क्षत तथा श्वेत दाने आदि विशेष विकृतियोंके चिह्न दीखने लगते हैं । कमल आरम्भमें अति कोमल होता है, परन्तु स्त्रीकी उमरके साथ कुछ २ कठिन होता हुआ बडी उमर होनेपर मजबूत हो जाता है । जहाँतक कमलमुखको मल रहता है वहाँतक अधिक प्रफुल्लित रहता है और आरोग्य कमलमुखमें अंगुलीका पोरुआ बखूबी आसानीसे आने सक्ता है और उसमें जो स्निग्ध पदार्थ रहता है वह अंगुलीके पोरुआ पर स्पष्ट आया हुआ दिखाई देता है । कमलमार्ग (गर्भाशयके मुखका मार्ग) भी लाल होता है । और उसमें शलाका प्रवेश करके उसके नीचेके होंठको दबाकर रखनेसे गर्भाशयका मार्ग दृष्टिगत होता है और स्पष्टरीतिसे उसकी रंगत ज्ञात होती है किन्तु शोथयुक्त कमलमुखमेंसे शलाकायन्त्र निकालनेके पीछेही कुछ रक्त निकलता है और शलाका भी रक्तसे भींगी हुई आती है । आरोग्य कमलमुखमेंसे शलाकायन्त्रके ऊपर कुछ नहीं आता किन्तु शलाका साफ आती ह और रोगयुक्त कमल लाल और आरोग्य गुलावके पुष्पके समान होता है । कमलमुखके कितने ही रोग हैं, वो साधारण रीतिसे चिह्नोंकी परीक्षाके ऊपर आधार रखनेकी अपेक्षा स्वयं दृष्टिके देखनेसे चिकित्सकको पूर्णरीतिसे विश्वास हो जाता है कि अमुक व्याधि है । यदि कमलकन्दके समान जो विकृति होय उसका तथा गर्भाशयके दीर्घ शोथका चिह्नभी मिलता हुआ होता है, ऐसे एक समान चिह्न होनेसे गर्भाशयकी तथा कमलकन्दकी कौनसी व्याधि है ऐसा माननेका कारण मिल जाता है और अमुक अमुक भागमें अमुक अमुक प्रकारकी विकृति है और विकृति अमुक ही स्थलपर रही हुई है, इसका निश्चय केवल चिकित्सकके दृष्टिगत होनेसे होता है । इस व्याधिमें किसी समय पीडा होती है, किसी समय नहीं भी होती । साधारण रीतिसे इस रोगीको रोगकी विसम आशंका न होनेका कारण इतना ही है कि यह रोग कितने ही समय संपूर्ण रीतिसे पीडा रहित होता है । जिस समय पीडा होती है तब साधारण रीतिसे कमरमें दर्द प्रथम होता है । प्रायः कमरमें कसक मारा करती है, यातो चलनेसे फिरने अथवा सीधा खडा रहनेसे दर्द वृद्धिको प्राप्त होता है । किसी २ समय पेंडूमें

और जंघामें भी दर्द होता है और विशेष करके कमलकन्दके साथ गर्भाशयमें भी कोई विकृति अवश्य होती है । जब ऐसा होता है तब कुछ पीडा अधिक भी होती है । दर्दकी अपेक्षासे भी जिस चिह्नसे कमलकन्दके रोगकी विशेष आशंका होती है वह प्रदर है । कमलकन्दका क्षत अथवा गर्भाशयका दीर्घ शोथ होय तभी प्रदर रोग जान पडता है और उपरोक्त दोनों रोगोंके कारणसे उत्पन्न हुआ प्रदर अधिक काल पर्य्यन्त रहता है । जबतक मूल व्याधि न जावे तबतक प्रदर नष्ट नहीं होता, प्रत्युत इस रोगकी भी अन्य अन्य शाखा उत्पन्न होती जाती हैं । उपरोक्त दोनों स्थलकी व्याधियोंका प्रधान सूचक चिह्न प्रदर ही है । कितने ही समय श्वेत पदार्थ विशेष स्राव होता है और विशेष चिकना और गाढा होता है, यहाँतक देखा जाता है कि योनिमार्गमें फटाहुआ दूधके समान फुटके एकत्र हो जाता है और इसी प्रकार कमलमुखमें भरा रहता है । जिस समय यह श्वेत प्रदरका स्राव पतला होता है तो योनिमार्गसे वाहर निकल आता है और घनरूप होता है । जिस स्त्रीका योनिमुख पटल भङ्ग न होवे उसकी योनिसे लेकर गर्भाशयके मुख पर्य्यन्त सब योनिमार्गमें यह पदार्थ भरा रहता है । इस व्याधिकी चिकित्सा करनेके समय ४ वा ५ तोलेके आशरे यह पदार्थ हमने स्वयं देखा है कि कई स्त्रियोंके गुह्यस्थलमें कई दिवस पर्य्यन्त निकला है । इस पदार्थके योनिमार्गमें जम जानेसे योनिमें तडतडी आया करती है । और नलिकायन्त्र अथवा तर्जनी अंगुली योनिमार्गमें प्रवेश की जावे तो श्वेत पदार्थ अंगुलीपर लगाहुआ आता है और श्वेत पदार्थ कमलमुखमें भराहुआ रहनेसे और पुरुषवीर्य्यसे इस श्वेत पदार्थका स्पर्श संयोग होनेसे पुरुष वीर्य्यके गर्भाधान नियत करनेवाले वीर्य्य जन्तुओंका नाश हो जाता है, इससे गर्भाधान रहनेमें विघ्न पहुँचता है । कदाचित् गर्भाधान रह भी जावे तो गर्भस्थितिके अनन्तर गर्भाशयमें जो शोथ पूर्वसे विद्यमान् था वह वृद्धिको प्राप्त होता है और गर्भाधान रहने पीछे भी रक्तस्राव हुआ करता है और प्रायः अधूरा गर्भ स्राव वा पात हो जाता है । यदि शोथ अधिक शक्त हो तो सफेद पदार्थके साथ पीव अथवा रक्त पडता रहता है, किन्तु इस श्वेत पदार्थका स्राव विशेषताके साथ होता हो तो इससे स्त्रीका शरीर निर्बल हो, ज्वरादि उपद्रवोंसे स्त्री मरणासन्न हो जाती है, बाद समय पर यही रोग मृत्युका हेतु हो जाता है । कमलकन्दके दीर्घ शोथके साथ गर्भाशयका भी दीर्घ शोथ हो तो उसका असर बढकर किसी समय गर्भ अण्ड तक पहुँचता है । जिससे पेडूमें, बांसेमें और जंघामें शक्त दर्द होता रहता है । बाद कभी २ अल्पार्त्तव, कभी २ पशलियोंमें भी दर्द आजाता है, मस्तक दुखा करता है, समय समय पर स्त्रीको वमन तथा अपस्मार (हिस्टीरिया) के समान चिह्न जान पडते हैं । इस

रोगकी अवस्थामें स्त्रीकी अग्नि अत्यन्त मन्द हो जाती है और शरीर कृश होता जाता है, जिस प्रकार गर्भाशयका तथा गर्भ अण्डका अधिक असर रोगके कारणसे बढता है उसी निमित्तकी वृद्धिसे अत्यार्त्तव भी अधिक बढ स्त्रीको अति पीडा देता है । ऐसी रोगी स्त्री यदि पुरुष समागम करे तो क्रियाके अन्तमें योनिमेंसे रक्त निकलता हुआ दीखती है और सहवास समय पीडा भी अधिक होती ह । प्रथम तो ऐसी अवस्थामें पुरुष समागमकी स्त्रीको इच्छाही नहीं होती, यदि होती है तो वह मोह प्रमाद वस इस क्रियामें प्रवृत्त हो जाती है जिससे उसको अतिक्लेश सहन करना पडता है । कमलकन्दके शोथके साथ जो गर्भाशयका शोथ न हो तो गर्भाशयशलाकायन्त्र सरलतापूर्वक . गर्भाशयके पीछेके भागकी पीठ पर्य्यन्त पहुँच सक्ता है और जो गर्भाशयमें दीर्घ शोथ हो तो गर्भाशयशलाका उसके अन्दर प्रवेश करनेमें अति कठिनता पडती है और अन्दर आधी शलाका पहुँचने पर वह गर्भाशयके शोथयुक्त भाग पर पहुँचती है, तो गर्भाशयका वह शोथयुक्त भाग शलाकाको रोकता है और शलाका यन्त्रका उसपर दबाव पडता है । यदि शलाका बाहर निकाली जावे तो वह रक्तसे भीगी हुई आती है ।

कमलमुखके दीर्घ शोथकी चिकित्सा ।

इस रोगकी चिकित्सा यह है कि उपरोक्त कथन किये अनुसार कमलकन्दका क्षत पोषणकी हानिको लेकर होता है, अतः इसके लिये वही उपाय कर्त्तव्य है कि जिससे स्त्रीको शारीरिक आरोग्यता प्राप्त हो शरीरको पुष्टि मिले, वही उपाय करना अति आवश्यक है । उत्तम स्वच्छ पौष्टिक आहार, स्वच्छ .हवादार मकानमें निवास तथा स्वच्छ हवामें फिरना, जठराग्निको प्रदीप्त करना, शीघ्रपाची भोजन करना, लोहभस्मके संयोगमें अन्य औषधियोंका सेवन करना, तथा कुनेन, पेपसीन, नाईट्रोम्युरीएटिकएसिड, कोटलीवरआइल इत्यादिका देना उत्तम है । अथवा पूर्व जो लोह, शिलाजीतका प्रयोग कथन किया गया है, उसका सेवन कराना अति हितकर है। जठराग्नि तीव्र करनेको पञ्चामृत चूर्णका सेवन कराना अति उत्तम है । (पञ्चामृत चूर्ण प्रयोग) शुद्ध पारद, शुद्ध गधक, शुद्ध ताम्रभस्म, शुद्ध लोहभस्म, अभ्रकभस्म इन सबको समान भाग लेकर प्रथम पारद और गंधककी कजली कर । तदनन्तर सर्व औपधियोंको मिलाकर जम्भीरी जातिके नींबूके रसकी भावना देकर एक दिवस मर्दन करे और सब औपधियोंके समान त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पीपल) का चूर्ण मिलाकर मर्दन कर सुखा लेवे, इसकी चार रत्तीकी मात्रा अदरकके रस वा ऊष्ण जलसे सेवन करे तो जठराग्नि अति तीव्र होती है और शरीरको बल प्राप्त होता है, जा स्त्रियां निर्मिप भोजी हैं उनको कोटलीवरआईलके संयोगकी दवा कदापि न लेनी चाहिये । किन्तु अन्य औषध प्रयोग लिखे गये हैं उन्हींका

सेवन करें । ऋतुस्रावका समय समीप आने पर स्त्रीको उचित है कि शान्तिके साथ शयन करे, किसी प्रकारका परिश्रम न करे, रोगी स्त्रीको मलशुद्धि (दस्त साफ आवे) ऐसी औषध वा आहारका सेवन करावे । इस रोगवाली स्त्रीको पुरुष समागम न करना अति सुखदायक है, कदाचित करे तो विशेष दिवसके अनन्तरसे बहुत कमती करना योग्य है । यदि समागमसे रोगकी अधिक वृद्धि हो तो बिलकुल त्याग देना योग्य है । ये क्रिया आरोग्य ही स्त्री पुरुषोंके लिये है, रोगीके लिये नहीं । इस प्रकार शारीरिक उपायोंके साथ जिस स्थितिमें यह रोग होय उसी प्रमाणसे स्थानिक व्याधिका उपाय करनेकी अति आवश्यकता पडती है और इसके लिये उत्पत्ति मर्मस्थानमें दूसरी कोई व्याधि है कि नहीं, इसका निश्चय करलेना उचित है । यदि दूसरे रोग भी उसके साथ मिलते हों तो उनकी चिकित्सा करनेमें विशेष कठिनता पडती है । योनिमार्गका शोथ हो तो उसका योग्य उपाय करना, वैसे ही यदि गर्भाशयका शोथ हो अथवा गर्भाशय स्थानान्तरमें चला गया हो तो इसके लिये भी प्रत्येक व्याधिकी क्रियानुसार योग्य उपाय करना उचित है । क्षत कितने ही समय ऐसा निर्जीव होता है कि उस भागको बराबर साफ करनेसे तथा सूक्ष्म स्तम्भन औषधियोंकी पिचकारी मारनेसे प्रदरका स्राव बन्द हो जाता है, और क्षत भी रोपण हो जाता है, इससे जितना ऊष्ण जल शहन होसके उतने गर्म जलकी पिचकारी लगावे, लगानेसे कमलमुख साफ हो जाता है और उसके ऊपर लगे हुए स्रावका दूषित पदार्थ धुल जाता है । गर्भाशय साफ करनेके लिये पृथक् पृथक् जातिकी पिचकारियां आती हैं, काचकी पिचकारी होती तो ठीक ह परन्तु क्रियामें लानेके समय कभी २ टूट जाती है इससे उसका अभिघात शरीरको पहुंचता है जिससे लाभक स्थानपर हानि पहुंचती है, इस कारणसे जहां तक होसके धातुकी पिचकारी काममें लावे । यदि धातुकी पिचकारी ठीक न मिले तो ईन्डीया-रबरकी इस क्रियामें लेनी योग्य है और विशेष सुगमतापूर्वक स्त्री लोग स्वयं इनसे अपना काम निकाल सक्ती हैं, ईन्डीयारबरकी पिचकारी दो जातिकी आती हैं उनकी आकृति नीचे दी जाती है ।

आकृति नं० २२-२३ देखो ।

सन्धिवाली ईण्डीयारबरकी पिचकारी ।

इन दोनों पिचकारियोंमेंसे सलंग पिचकारी काममें लाना अति उत्तम है, संधिवाली पिचकारी शीघ्र खराब हो जाती है, सलंग पिचकारीके द्वारा उष्ण जल या शीतल जल जिस प्रकारके जलमें जहाँ जिस औषधिका प्रयोग आवे वहां उसी माफिक औषधिका जलके साथ संयोग करके गर्भाशय तथा योनिमार्गको प्रच्छालन

करे। इस पिचकारीके द्वारा जो गर्भाशयके क्षतसे स्पर्श करती है उससे क्षतको असर पहुँचता है और थोडे ही दिवसमें क्षत रोपण हो जाता है। पिचकारी द्वारा क्षत रोपणकी औषधि टंकण सुहागेका फूला फिटकरीका फूला, सलेफटओफझींक (जस्ताका फूला) अथवा सुगरलेड इनमेंसे किसी एक औषधिको मात्रा प्रमाण लेकर जलके साथ मिलाकर उसकी पिचकारी लगाना, कितने ही समय कमलकन्दके ऊपर क्षत नहीं होता केवल छाला जैसा होता है। इसके लिये एक औंस (ग्लीसरीनमे) एक ड्राम (टेनिकएसीड) मिलाकर इसमें रुईका फोहा भिगोकर कमलकन्दके ऊपर रखना। अथवा एक भाग आयोडा फार्म तथा ४ भाग ग्लासरीन मिलाकर इसका फोहा भिगोकर कमलकन्दपर रखना, इन दोनों प्रयोगोंमेंसे एकको काममें लेनेसे क्षत, छाला वगैरह सरलतापूर्वक रोपण होजाते हैं। ऊपर कथन की हुइ स्तम्भन औषधियां कमलमुखके अन्दर गुमडी, फुंसी आदिको भी नष्ट करती हैं, कमलकन्दके चिरकालीन शोथकी चिकित्साके विषयमें योग्य विचार करे कि किस स्थलके रोगके लिये किस समयपर क्या क्या उपचार करना योग्य है? इसी निमित्तसे उस रोगको यहाँपर पांच रूपोंमें विभक्त करके दिखलाते हैं (१) कमलमुखके ओष्ठके ऊपर छाला पडा होवे। (२) कमलमुखमें तथा ओष्ठके ऊपर क्षत पडा होवे। (३) कमलमुख तथा उसके अन्दरके भागमें गुमडी वा कील पडी होवे। (४) सम्पूर्ण कमलमुख लाल होय तथा शोथ उत्पन्न हुआ होय और क्षत वा छाला न हो केवल उसमें रक्तका संग्रह हो अथवा यथार्थ रीतिसे शोथ पीडायुक्त होय। (५) शोथ निवृत्त होने पीछे तथा क्षत वगैरह रोपण होनेके बाद वह भाग कठिन हो जाय किन्तु रोपण होनेके पीछे क्षतको लेकर कठोरता रूपमें (याने व्रणकी गूतके समान हो जाय) इन पाँचरूपोंमें उसकी चिकित्सा पृथक् पृथक् रीतिसे होती है। प्रथम स्वरूपमें जो छाला कथन किया है, वह केवल स्तम्भन औषधकी पिचकारी मारनेसे तथा उस भागको साफ रखनेसे रोपण हो जाता है। दूसरे तथा तीसरे स्वरूपकी भी चिकित्सा इससे मिलती हुई है और वह एक समान उपायसे ही निवृत्त होने सक्ता है, प्रथम स्वरूपकी चिकित्सा भी इससे मिलता हुई ह। केवल इसमें अधिकता इतनी ही है कि इसकी चिकित्सा अधिक समय पर्य्यन्त करनी पडती है, अधिक तीव्र उपाय काममें लाने पडते हैं और तीक्ष्ण औषधोपचार लगाने पडते हैं। प्रथम स्वरूपकी व्याधिमें सरलही उपचारसे रोपण हो जाता है। कमलकन्दके क्षतको लेकर जो तीक्ष्ण स्तम्भन औषधियोंकी पिचकारी सहन न हो सक्ती हो तो सरल स्तम्भन औषधियोंकी पिचकारी काममें लावे और उनमें थोडा लोडेलम् (टिन्कचरओपीयम) डालना, इसके अतिरिक्त १ पाईट जलमें १ औंस ग्लीसरीन

तथा एक ड्राम टंकण (सुहागा) अथवा सोडावाई कार्बोनास मिलाकर इस पानीसे कमलमुखका प्रच्छालन करना भी अति लाभदायक है । इस औषधका पानी शामक है, इसी प्रकार कमलमुखमेंसे जो स्राव होता है उस स्रावको इस जलका प्रच्छालन कमती करता है, ग्लीसरीनमें स्तम्भन तथा शामक दवा मिलाकर उसमें रुईका फोहा भिगोकर कमलमुखपर रखना भी अति लाभदायक है । इसी प्रकार लाईक वोरप्लंवाई सव एसीटेटीसकी पिचकारी लगाना भी अति लाभकारक है । इस रीतिसे पिचकारी और औषधियोंमें भिगोकर फोहा रखना, दवाके अतिरिक्त कमलमुखके ऊपर दवा लगानेका तीसरा तरीका यह है कि जो दवा लगानेकी होय उस दवाकी वर्तिका बनाकर योनिमार्गमें कमलमुखसे अडती हुई रखना ।

दवाका प्रयोग ।

झींक ओकसाईड १५ ग्रेन, विस्मथ ओकसाईड १० ग्रेन, सुहागेका फूला १५ ग्रेन, सुगरलेड ६ ग्रेन, आयोडोफोर्म १ ग्रेन, पारेका मलम १५ ग्रेन, ऊपर लिखे प्रमाणसे औषधियाँ मिलाकर कील, गुमडी, फुन्सी आदि जिस कमलमुख पर होयँ उसपर लगानेसे अतीव लाभ पहुँचता है । इसी प्रकार टेनिकएसीडसुगरलेड और ऐसे ही दूसरी स्तम्भन औषधियोंकी वर्तिका बनाकर रखनेसे क्षत रोपण हो जाता है । यदि दर्द होता हो तो वर्त्तीके अन्दर मोरफीया $\frac{1}{8}$-से×$\frac{1}{4}$ ग्रेन अथवा एकसट्रेकट वेलेडोना १ ग्रेन, अथवा एकसट्रेकटकोनाइ मिलाना योग्य है । कत्था सफेद, काँटेदार माजूफल, हीराकशीस, गोंद इत्यादि स्तम्भन औषधियोंकी गोलियाँ वा वत्ती जो कि भारतवर्षीय देशी स्त्रियाँ प्रायः इस काममें लाती हैं, ये प्रयोग भी क्षत रोपण करनेमें अति उत्तम है । ऊपर कथन किये हुए सब प्रयोगोंका उपचार करने पर भी किसी समय क्षतकी निवृत्ती नहीं होती । पुनः इससे अधिक क्षोभक औषधियाँ लगानेकी आवश्यकता पडती है । इसके लिये मुख्य करके स्ट्रांगकार्बोलिक एसीड स्ट्रांगशोल्युशनओफ नाईट्रेटओफसीलवर १ ड्राम नाईट्रेट ओफसीलवर को १ ओंस जल टींकचर आयोडीन, लीनीमेन्टआयोडीन और समानभाग ग्लीसरीन तथा लायकवोरफेरी परकलोरीडाईफोरशीयर आदि औषधियां इस रोगकी चिकित्सामें-अन्तके दर्जे लगानेके लिये हैं आर प्लफस आव नामका हाथियार (यन्त्र) विशेष उपयोगी ह । यह यन्त्र- एक लम्बी लकडीकी शलाका आती है इसके ऊपरके भागमें तीन इंच लम्बाईमें एल्युमीनम धातुकी शलाई लगाई हुई होती है, इस धातुवाले भागपर ऐसीड वगैरह जो दवा लगानी होय उसमें डबोनेसे वह धातुका भाग गलता नहीं है आर इस धातुकी शलाकामें छोटे छोटे निशान करनेमें आये हुए हैं । जिससे उसके ऊपर जोड विठलानेमें आते हों वो खिसक नहीं

सक्ते । योनिमार्गमें पूर्व आकृतिवाला योनिविस्तारक नलिकायन्त्र प्रवेश करके कमलमुख बराबर इस नलिकायन्त्रके बीचमें रखकर उसके अन्दर दवामें डबोई हुई शलाई अन्तर्मुख पर्यन्त प्रवेश करनी और वहां आधे मिनिट अथवा १ मिनिटतक शलाई रखनी कमलमुख इस शलाईके ऊपर बराबर संकोचको पावेगा, (याने कमलमुखमें यह शलाई फँस जावेगी) इससे औषध सम्पूर्ण कमलमुख पर लगेगी । शलाका निकालने बाद लंबे चीमटामें लिन्टका टुकडा पकड कर जो कुछ एसीड वगैरह औषध कमलमुखके बाहर प्रवेश करनेके समय निकल कर उतरी होवें उनको पोंछ लेवे । बाद ग्लीसरीनमें रुईका फोहा अथवा लिन्टका फोहा भिगोकर अन्दर प्रवेश करदेना और दूसरे दिवस प्रातःकाल फोहा निकाल लेना और जितना उष्ण जल सहन होसके उतने ऊष्ण जलसे अन्दरके भागको प्रच्छालन करके पुनः पूर्वोक्त विधिसे औषधियेंका फोहा रखना । प्रत्येक सप्ताह अथवा आवश्यकता पडे तो चार चार दिवसके अन्तरसे औषध लगाना, जो स्त्रीको ऋतुधर्मका समय समीप आजाये तो उसके एक दो दिवस प्रथम तक औषध लगाना, अथवा ऋतुके पीछे तीन सप्ताह पर्यन्त दवा लगाना चौथे सप्ताहका आरम्भ होवे उस समयसे लगाना बन्द कर देवे, जो औषधियां लगानेमें आती हैं उनमें (नाइट्रीकएसिड) अधिक तीव्र औषध है और इससे कितने ही समय असह्य दर्द होता है ।

आकृति नम्बर २४ देखो ।

इसके अनन्तर नाईट्रेट ओफसीलवरकी शलाई कमलमुखमें लगानेमें आती है, अथवा उसका टुकडा वहाँ रखनेमें आता है कि जो धीरे धीरे वहाँ गल जाता है । इससे भी कितने ही समय अधिक दर्द होता है, इस लिये क्षतकी चिकित्सा करनेमें सबसे उत्तम मार्ग यह है कि नाईट्रीक एसिडके, अतिरिक्त दूसरा चाहे जो प्रवाही क्षोभक औषध लगानेसे रोगीको विश्रान्ति देना योग्य ह, जिससे शारीरिक स्थिति सँभलसके । क्षतके दूर करनेके लिये चिकित्सा अधिक दिन करनी पडती है इसमें रोगीको शीघ्रता करना उचित नहीं । क्योंकि शरीरके बाहरके क्षत (जखम) आदि तो शीघ्र अच्छे हो जाते हैं पर उसका कारण यह है कि बाह्यशरीर शुष्क रहते हुए वायुके स्पर्शसे शीघ्र जखम रोपण होकर सूख तो जाते हैं किन्तु शरीरके अन्दरके क्षतमें दोनों बातें विपरीत हैं । एक तो अन्दरका अङ्ग आर्द्र (गीला) रहता है, दूसरे उसको बाह्य वायुका स्पर्श नहीं मिलता । कमलकन्दमें दीर्घ शोथ हो अथवा कमलमुख सूझा हुआ तथा लाल रंगतका हो और उसमें किसी प्रकारका क्षत न दीखे तो उसकी चिकित्सा पृथक् धारणाके ऊपर करनी पडती है । यदि क्षोभक औषधियां ऐसे मौके पर लगानेमें आवें तो लाभके स्थान पर हानि पहुँचती है, जैसे दूसरे मर्मस्थानोंके शोथकी चिकित्सा

करनी चाहिये उसी प्रकार कमलकन्दके शोथके लिये भी करनेकी आवश्यकता है । कमलकन्दको गर्म जलकी पिचकारी लगाकर साफ करना, पेट पेंडू और योनिके बाह्य भागके ऊपर गर्म जलका सेंक करना । वांसापर कप (गिलाश) लगाना, और योनि ओष्टपर जोंक (जलौका) लगाकर रक्त मोक्षण करना । ग्लीसरीनका प्लग रखना, रक्तका संग्रह टूटकर कमलकन्दका आकार छोटा होवे ऐसा उपाय करना । कमलकन्दके दीर्घ शोथकी स्थितिमें अथवा जिसमें क्षत पडनेके बदले शोथके ही चिह्न उत्पन्न हो रहे हों उसमें पुरुष समागम अधिक दुःखदायक होता है । क्षतकी दूसरी किसी भी स्थितिमें पुरुष समागम इतना दुःखदायक नहीं होता । कमलमुख विशेष गीला जानपडे तो उसके ऊपरसे नस्तर लगाकर थोडासा रक्त मोक्षण करना, और गर्म जलकी पिचकारीसे उस भागको प्रक्षालन करना शोथके चिह्न शान्त होने पीछे स्तम्भन औषधकी पिचकारी लगानी और ग्लीसरीनका प्लग जारी रखना । क्षत वा दीर्घ शोथ निवृत्त हो जाने पीछे कमलमुख समयपर कठिन हो जाता है ऐसी स्थितिमें गर्भाशय गर्भ धारण करनेमें स्वयं (अपना) स्वाभाविक कर्म करनेमें असमर्थ होता है । आरोग्य कमलमुखके समान वह कोमल चिकना होय तो वह अपना स्वाभाविक कर्म करनेमें सामर्थ्यवान् होता है । ऐसी सूजन जो कि कठिन होगई होय कमलकन्दके ऊपर शक्त क्षोभक औषध पोटासाफयुझा, विएनापेष्ट अथवा कोटरी लगाई होय कोटरी लगाने पीछे जो वह पक गया हो तो उस पाकको लेकर कमलकन्दका भाग छोटा हो जाय अथवा क्षोभक औषध दूसरे आरोग्य भाग पर न लगजावे ऐसा पक्का कलेजा रखनेकी आवश्यकता है । इसके अतिरिक्त कमलकन्दका कद (आकार) छोटा करनेका दूसरा उपाय है, कमलकन्दके ऊपर आयोडीन लगाना अथवा आयोडाईझडकोटन कमलमुखमें रखना । इसके अनन्तर आयोडीन और आयोडाईडओफ पोटासीयमको ग्लीसरीनमें मिलाकर उसकी गोली वा वर्त्तिका (बत्ती) बनाकर योनिमार्गमें कमलमुखमें अडती हुई रखनेसे उत्तम लाभ पहुँचता है । अल्पार्त्तव वा अनार्त्तव जो इस रोगको लेकर मिलता है वह इस रोगके निवृत्त होने पीछे स्वयं निवृत्त हो जाता है । इसके अनन्तर दूसरे जो कोई शारीरिक रोगके चिह्न ज्ञात होवें उनके लिये चिकित्साके क्रमानुसार योग्य उपाय करना उचित है ।

कमलमुखके चिरकालीन शोथ छाला क्षत श्वेत स्रावकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरोंसे गर्भाशयके आभ्यन्तर पिण्डका चिरकालीन शोथ ।

यूनानी तिब्बवालोंने गर्भाशय तथा गर्भाशयके मुखके शोथका निर्णय इतना खुलासा नहीं किया जितना कि यूरोपियन वैद्योंने पृथक् पृथक् भागकी व्याधिको निर्णय

किया है। परन्तु देशी वैद्यक ग्रन्थोंकी अपेक्षा यूनानी तिब्बमें गर्भाशयके रोगकी व्यवस्था कुछ विशेष पाई जाती है। वैद्यक ग्रन्थोंमें इन व्याधियोंकी संज्ञा तक नहीं मिलती।

कमलकन्दके दीर्घ शोथके समान ही गर्भाशयके आभ्यन्तर पिण्डका दीर्घ शोथ भी स्त्रीके वन्ध्या दोषका स्थापक एक मुख्य कारण समझा जाता है। गर्भाशयका तीक्ष्ण शोथ कई प्रकारके विपैल ज्वरसे तथा गर्भाशयको किसी प्रकारका शक्त क्लेश पहुंचनेसे उत्पन्न हो जाता है और इससे विशेष करके स्त्रीके जीवनको हानि पहुँचती है। यदि साधारण दाहजन्य तीव्र शोथ होय तो वह साध्य और निवृत्तिको प्राप्त होता है और कभी २ यह शोथ कुछ निवृत्तिरूपमें होकर शान्त पड जाता है और कभी २ यही शोथ दीर्घशोथके बीजरूपमें रहा आता है और कालान्तरमें तीक्ष्ण दीर्घशोथका रूप धारण कर लेता है। दूसरे दीर्घ शोथ होनेका मुख्य कारण पोषणकी कमी और स्त्रीके शरीरकी निर्बलता है। निर्बल प्रकृतिवाली स्त्रीको यह शोथ विशेष पीडा देता है। यह पीडा विशेष करके प्रायः निर्बल प्रकृतिवाली स्त्रियोंमें ही देखनेमें आती है। इसी प्रकार पाण्डुरोगी तथा मानासिक चिन्ता करनेवाली स्त्रीको भी यह रोग विशेष पीडा देता है। प्रसवके समय गर्भाशयको विशेष क्लेश पहुँचा हो, रक्तका संग्रह अन्दर होगया हो और झिल्लीके निकलनेमें विशेष समय व्यतीत होगया हो तथा उसका कुछ भाग अन्दर रहगया होय तो उस कारणको लेकर गर्भाशयके अन्तरपिण्डके दीर्घ शोथके लिये प्रसन्न हुई स्त्री पुनः गर्भ धारण करनेमें असमर्थ बन जाती है। केवल असमर्थ ही नहीं किन्तु वंध्या दोषको धारण कर लेती है। इसके अतिरिक्त योनिमार्गमें अथवा कमलकन्दमें कुछ शोथ हो तो उसका भी असर गर्भाशयमें पहुँचता है। इसके अनन्तर जब कि ऋतुधर्म प्राप्त होनेका समय आवे उस समयमें शर्दी लगनेसे अथवा अत्यन्त पुरुष समागम करनेसे और कमलकी विकृति अथवा विवृत्तपनसे इनको लेकर स्वाभाविक स्रावके लिये गर्भाशयमेंसे बाहर निकलता हुआ रुधिर ठहरता होय तो उसको लेकर तथा वैसे ही गर्भाशयशलाका अन्दर प्रवेश करनेसे भी कितने ही समय गर्भाशयके अन्तर्पिण्डका दीर्घ शोथ उत्पन्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त किसी विशेष कारणसे सुहागवती स्त्रीका वा विधवा स्त्रीका गर्भपात करनेवाली प्रक्रिया की जावे तो भी इस समय पर गर्भाशयको बडा भारी सद्मा पहुँचता है कि इससे उसमें दीर्घ शोथ उत्पन्न हो जाता है। इन सब कारणोंकी अपेक्षा दीर्घ शोथ अधिक जोशसे प्रतिपादन करनेवाले कारणोंमेंसे उपदंश प्रमेह आदि रोगोंकी गणना भी करनेमें आती है। उपदंशके कारणसे दीर्घ शोथ होता है। और इससे गर्भाधान रहना संभव नहीं, और जो रह भी जाय तो उसी कारणको लेकर अपूर्ण गर्भस्राव हो जाना संभव है। ऐसी रीतिसे हुआ गर्भस्राव गर्भा-

शयमें दीर्घ शोथ उत्पन्न करनेवाले साधनोंकी पुष्टि देनेवाला है । प्रमेहसे भी असाध्य वन्ध्यादोप उत्पन्न होता है । यदि पुरुपको प्रमेह होता हो और चाहे जितने दर्जे यह निवृत्त हो गया हो तो भी कितने ही अंश अन्दर गुह्यप्रदेशमें भरे रह जाते हैं यह सूक्ष्म रूपमें रहा हुआ जीर्ण चेंप लगनेसे स्त्रीके गर्भाशयमें जो कि तीव्र शोथ उत्पन्न नहीं था तौ भी उससे दीर्घ शोथ उत्पन्न हो जाता है। इससे असाध्य वन्ध्यादोप प्राप्त होना सम्भव है । दीर्घ शोथकी अवस्थामें गर्भाशयके अन्दर भागमें होता हुआ परिवर्त्तन शोथके कारण गर्भाशयके अन्तर्पिण्डमें रक्तका संग्रह होता है और यह सूझ जाता है और गर्भाशयके मर्मस्थानोंमें जो पिण्ड होते हैं वो भी सूझ जाते हैं । धीरे धीरे अन्तर्पिण्डका भाग सडकर बाहर निकलने लगता है और शोथयुक्त पिण्ड मस्सारूपमें दिखाई देता रहता है । जब ऐसा होता है तब समय समय पर प्रदरका स्राव हुआ करता है । इस रीतिसे सब उपरोक्त रोगोंके कारणसे ऋतुधर्मका स्राव कमती होता जाता है । दीर्घशोथके आरम्भमें गर्भाशय सूझता हुआ लाल रंगयुक्त होकर नर्म रहता है । इससे उसके विवृत होनेका भय रहता है, पीछेसे उसकी सुर्खी न्यून हो जाती है। यदि उसका कद(आकार विशेप वडा न हुआ हो तो गर्भाशय विशेष विवृत्त नहीं होता । इसके विशेष चिह्न ये हैं कि इस रोगमें प्रदरका श्वेत स्राव विशेष पिडादायक हो जाता है और कमलकन्दके शोथमें जैसा स्राव होता है उससे यह स्राव पतला स्वच्छ और न्यून चिकनाई युक्त होता है । किसी २ समयपर यह रक्त मिश्रित भी होता है । इससे योनिमार्गमें कण्डु (खुजली) उत्पन्न हो जाती है, इसके अतिरिक्त स्त्रीकी योनिमें अत्यार्त्तव जान पडता है और ऋतुस्राव विशेप आता है । वह ऋतुस्राव अपनी अवधिके समयसे अधिक समय तक ठहरता है किसी २ समय ऋतुस्राव अति पीडायुक्त भी हो जाता है, कितने ही समय बीचके दिवसोंमें रक्तस्राव होने लगता है । जब गर्भाशयका अन्तर्पिण्ड सड जाता है और शोथयुक्त पिण्ड मस्सारूपमें खुला हो जाता है तब उसका मुख्य चिह्न अति कठिन अनिवार्य रक्त स्रावका प्रवाह है, पीछेसे जब गर्भाशय कठिन हो जाता है तब ऋतुस्राव कमती और पीडायुक्त होता है यह रोग चाहे जिस स्थितिमें होय किन्तु इससे वंध्यत्व दोप प्राप्त होना संभव है । गर्भाशयका स्वाभाविक स्राव पुरुषके वीर्यका नाशक हो जाता है, अथवा गर्भाशयका अन्तर्पिण्ड ऐसा हो पडता है कि वह स्त्री वीर्यके लिये योग्य है। आश्रय स्थान देनेमें रुकता है नाभिके नीचे पेंडूमें, जाँघमें और कमरमें दर्द होता रहता यह दर्द रोगके जोश प्रमाणे न्यूनाधिक होता है और कितने ही समय तो वह ऐसा शक्त होता है कि ऊपर कथन किये हुए स्थानोंमें अति फटनेके समान पीडा होती है । साधारण रीतिसे वामे पेंडूमें दर्द सदैव विशेष शक्त रहता है इससे ऐसा अनुमान

होता है कि गर्भ अण्डमें रक्तका संग्रह हुआ हो किसी समय पर पेटमें तथा नाभिके ठिकाने दाबनेसे दर्द होता है और यह दर्द चलनेसे अथवा पुरुष समागमसे अधिक बढ जाता है गर्भाशयके दर्दके कारणसे स्त्रीके शरीरमें बल हो नहीं सक्ता और उससे मल त्यागनेके समय किन्तु मूत्र त्यागनेके समय विशेष पीडा होती है। गर्भाशयकी स्थिति प्रमाणे कितने ही समय अतीसार भी हो जाता है, कितने ही समय बद्ध कोष्ठ हो जाता है, गर्भाशयके ज्ञान तन्तुओंके द्वारा दूसरे मर्मस्थानोंके साथ सम्बन्ध होनेसे अनेक प्रकारके चिह्न हो जाते हैं, ये चिह्न सब स्त्रियोंमें नहीं मिलते। यदि किसी स्त्रीमें एक चिह्न मिलता है तो दूसरीमें कोई और ही चिह्न मिल सक्ता है। ये चिह्न नीचे लिखे अनुसार पाये जाते हैं, जैसे बाँसा और कमरमें दर्द, योनिमें कण्डूका उत्पन्न होना, स्तनमें दर्द होना बामें स्तनके नीचे धडका होना बराबर भूखका न लगना किसी २ समयपर वमनका हो जाना, पशलिमें दर्द होना इत्यादि और भी अनेक चिह्न जान पडते हैं, जो गभाधान रहनेसे स्त्रीके शरीरमें अनेक परिवर्त्तन दीखते हैं, उसी प्रकारसे गर्भाशयके दीर्घ शोथमें भी गर्भाधानके समान दीखते हैं। गर्भाशयमें रक्तका संग्रह होता है इस व्याधिका यह मुख्य चिह्न है और इससे अनेक प्रकारके चिह्न देखनेमें आते हैं। कितने ही समय स्त्रीके चेहरेके ऊपर कील (गुमडी) उत्पन्न हो जाती हैं और कितनी ही स्त्रियोंके शिरके बाल उखड जाते हैं और इस रोगसे स्त्रीके मस्तिष्कमें ऐसा खराब असर उत्पन्न होता है कि उसको मूर्च्छा आने लगती है अथवा हिस्टीरीया (अपस्मार मिर्गी) का दौरा होने लगता है तब घरके लोग तथा अनभिज्ञ चिकित्सक घबडाकर कहने लगते हैं कि इसको पिशाच बाधाने घेरा है। वैद्य तो टालबहाना कर चले जाते हैं पुनः झारने फूँकनेवालोंकी मण्डली जुडती है। और स्त्रीके असली मर्मभेदी रोगको कोई नहीं जानता, ऐसे ही प्रपंची लोगोंके जालमें फंसकर अनेक स्त्रियां मृत्युका ग्रास बन जाती हैं। इस बातको बराबर निश्चय रक्खो कि युवावस्थाकी स्त्रीको अपस्मार वा मूर्च्छाके दौरा होते होवें तो समझ लेना कि उसके गर्भाशयमें किसी प्रकारकी उग्र व्याधि है। जिस जवान उमरकी स्त्रीके गर्भाशयमें रोग होगा उसी स्त्रीको मूर्च्छा और अपस्मारका दौरा भी अवश्य होगा, ऐसी स्त्री बहुत कम देखनेमें आई हैं कि गर्भाशयके रोगरहित होनेपर मूर्च्छा और अपस्मारसे पीडित हैं, परन्तु गर्भाशयके रोगवाली निरन्तर अपस्मार और मूर्च्छासे पीडित रहती हैं। पेटमें गर्भाशय अथवा गर्भ अण्डके भागमें इस रोगवाली स्त्रीके दर्द होता है। और पेटमें ऐसा मालूम होता है कि गुल्मरोग उत्पन्न होता होय और शीघ्रही हिस्टीरीया (अपस्मार) का दौरा हो जाता है, किन्तु कभी २ कम्प वायु-

कैसे लक्षण भी एक दो मिनिटको हो जाते हैं और किसी स्त्रीको जँभाई भी आती है और किसी २ स्त्रीके हाथ पैरोंमें ऐंठन, झुंझनाहट होता है । इसके अतिरिक्त कितनी ही स्त्रियोंको सन्धिवायु भी घेर लेती है, इससे उनकी सान्धि मारी जाती है । जब दीर्घ शोथ अधिक वर्ष तक रहनेसे गर्भाशय कठिन हो जाता है तब बहुत हठीला रोग हो जाता है तो उसकी निवृत्तिके लिये विशेष समय लगता है । यदि थोडे कालका उत्पन्न हुआ दीर्घ शोथ हो तो उपचारसे जल्दी निवृत्त होनेकी आशा रहती है ।

गर्भाशयके आभ्यन्तर पिण्डके दीर्घशोथकी चिकित्सा ।

इस रोगकी चिकित्सा आरम्भ करनेके पूर्व यह विचार करना योग्य है कि दीर्घशोथ कितने कालका उत्पन्न हुआ है, निवृत्त होनेके योग्य है या नहीं । यदि कमलकन्दका शोथ होय अथवा गर्भाशय स्थानान्तरमें हो गया हो तो उसका योग्य उपाय करना उचित है । एवं स्थानान्तरके साथ यदि कुछकुछ शोथ हो तो थोडे दिवस पर्यन्त स्त्रीको विश्रान्ति (आरामतलबी) देना उचित है । कमलमुखके भागमेंसे थोडा रक्त मोक्षण करना (रक्त निकालना) कमलमुखकी स्थितिकी गतिके अनुसार पेसरी यन्त्रका उपयोग करना । यदि रक्तमोक्षणके विदूनहीं पेसरीयन्त्रके उपयोगसे आरामकी सूरत ज्ञात होवे तो पूर्वही पेसरी यन्त्रका उपयोग करना कुछ हानि नहीं । यदि शोथ रक्तके संग्रहसे हुआ होय तो दस्त साफ आनेकी औषधि देनी और गर्म जलकी पिचकारी लगानी और ब्रोमाईड तथा आयोडाईड ओफ पोटासीयम देना और अर्गट स्टीकनीया अथवा डीजिटेलिस भी लाभ पँहुचाता है, जो उस भागमें दर्द हो तो उस स्थानमेंसे रक्त मोक्षण करना, अथवा ग्लीसरीन लगाना, ग्लीसरीनके लगानेसे रक्तका जमाव तहलील होता है। पुरुष समागमसे स्त्रीको निषेध करना । यदि गर्भाशय कठिन हो गया होय तो लाईकवोर हाइड्रोजिराई पर कलोरीडाई बासिसे १० बिन्दु पर्यन्त दिनमें तीन वार पिलाना, इसके साथ प्रसंगोपात रोगीको कुनेनकी थोडी थोडी मात्रा देनी । अथवा जो रोगी स्त्री हृष्टपुष्ट न होय और गर्भाशयमें भी रक्तका विशेष संग्रह न होय तो टींकचरफेरीपरकलोरीडी देना आयोडीडओफपोटासीयम भी कठिनताको गलाता है । यदि इसके साथ ऋतुस्रावकी कमी हो तो टींकचरआयोडीनके पांचसे दश बिन्दु देना, गर्भाशयके दीर्घशोथमें टींकचर आयोडीन ऋतुधर्मके लानेको अति उपयोगी है । आरोग्यताको प्राप्त करनेवाले सब नियमोंके ऊपर रोगी स्त्री तथा चिकित्सक दोनोंको ध्यान देना चाहिये कि स्वच्छ वायुका सेवन करना, चलना, फिरना शीतल जलसे स्नान करना । यदि शीतप्रधान देशकाल होवे तो कुछ ऊष्ण जलसे स्नान करना किन्तु स्त्रीको उचित है कि अपने

चित्तको सदैव प्रसन्न और प्रफुल्लित रखे । आहार हलका शीघ्रपाची व पौष्टिक देना, यदि किसी ज्ञातिकी स्त्रीका नियम मद्य पीनेका हो तो शक्त मनाई करना। क्योंकि गर्भाशयकी जीर्ण व्याधि मद्य पीनेवाली स्त्रीको विशेष होती है, यदि जठराग्नि विशेष मन्द हो गई होय तो इस प्रसंगसे थोडी कलेरेट वा विसकी पीना, परन्तु इनके भी पीनेका सदैव नियम नहीं रखना। शक्त पीडाकी शान्तिके लिये मोरफीयाकी गोली वा बत्ती बनाकर योनिमार्गमें रखनी, गर्भाशयसे अडाकर चिपटी हुई रक्खे, इस रोगकी अवस्थाके अतिरिक्त और किसी प्रकारका उपयोग अफीम वा मोर्फियाकी कदापि नहीं करना। और पीडाकी शान्तिके लिये स्त्रीकी कमर डूब जावे ऐसे बर्त्तनमें गर्म जल भरकर बैठालना और गर्मजलकी पिचकारी लगाना। इसके अनन्तर ब्रोमाईडओफपोटासीयम और टींकचरबेलोडोना, हायोसायेमाईस, केनेबीसईडीका, केमफर आदि औषधियाँ भी विशेष उपयोगी हैं। यदि निद्रा न आती हो तो परिमित मात्रासे (कलोरल) देना योग्य है, ये सब औषधियां दीर्घशोथके पृथक् पृथक् असरको नष्ट करती हैं। आयोटीनकी गोली वा बत्ती गुदामें रखना। इसी प्रकार बेलेडोनाकी गोली वा बत्ती गुदामें वा योनिमार्गमें रखनेसे उत्तम लाभ पहुँचता है। दूसरे शामक पदार्थोंकी गोली वा बत्ती भी योनिमार्गमें रखनी, । आयोडीन, आयोडीडओफपोटासीयम, आयोडोफोर्मकी गोली वा बत्ती गर्भाशयकी कठिनताको गलानेके लिये उपयोगी होती है। गर्भाशयसे कुछ दूरके भागमें जहाँ दर्द होता हो वहाँ राईका पलस्तर लगाना तथा वातनाशक तैल गर्मगर्म चुपडना, वा शेंक करना। अथवा ब्लीस्टर लगाना, इन उपचारोंसे दर्द निवृत्त हो जाता है। वातनाशक तैलोंमें लीनीमेन्टेएकोनाईट उत्तम है, इसी प्रकार दर्द होनेवाले भागपर बेलेडोनाका ब्लीस्टर लगाना भी लाभदायक है। और इस दर्दके नष्ट करनेके लिये कमलमुखपर शक्त तीक्ष्ण दंभक औषधियाँ लगानी, यह अधिक उत्तम उपाय है। यदि गर्भाशयमें दर्द न हो तो लोहभस्मका कोई सरल प्रयोग सेवन करना, जो स्त्रीका शरीर अधिक कृश हो गया होय तो उसके लिये यह लोहभस्म सेवन अति लाभ पहुँचाता है। यदि स्त्री हृष्टपुष्ट (बलवान्) हो तो लोहभस्म सेवनकी कुछ आवश्यकता नहीं । यदि पीछेके भागमें गर्भाशय कठिन हो गया हो और ऋतुधर्मका रक्त कम पडगया होय तो लोहभस्मके साथ ब्रोमाईडओफपोटासीयम

आकृति नं. २५–२६ देखो।

और टींकचरएलोंझ मिला परिमित मात्रासे देना। ब्रोमाईडओफपोटासीयम इस प्रसंगपर एकला ही ऋतुस्रावको कम करके उसकी अवधि बढाता है। इसके अनन्तर जब दीर्घशोथको लेकर गर्भाशयका अन्तर्पिण्ड सडकर दूषित हो जाता है और वह

पिण्ड मस्सारूपमें दीखता है और उसमेंसे अधिक रक्तस्राव हुआ करता है, तब गर्भाशयके अन्दर डालनेकी औषध उपयोग करनेमें आती है (प्लेफेरनी प्रोब) यह दूसरी शलाकाके ऊपर लगाकर जिससे सरकनेका भय न रहे, इस रीतिसे रुई लपेट कर दवामें डबोकर इसके ऊपरकी दवा कमलमुखके भागको न लगे; इस-लिये गर्भाशयके मुखमें प्रथम नलिकायन्त्र प्रवेश करे । और इस नलिकायन्त्रके बीचकी पोलमें यह दवामें डूबीहुई सलाई प्रवेश करे । आकृतिमें बतलाया हुआ नलिकायन्त्र केवल योनिमार्गमें प्रवेश करके योनिमार्गके बचाव व गर्भाशयके मुखको दिखलानेके लिये है । गर्भाशयके मुखमें प्रवेश करनेका नलिकायन्त्र जिस भागका नाम कमलमुख है उसका बचाव करता है और गर्भाशयके मुखको विस्तृत करता है, जिससें गर्भाशयके आभ्यन्तरपिण्डमें औषध सरलतापूर्वक पहुँच सके । प्रथम योनिमार्गमें आकृति १३ में दिखलाया हुआ नलिकायन्त्र प्रवेश करके कमलको देखना, कमलमुख बराबर दीखता होय तब उसमें ऊपरकी आकृति १९ में बतलाया हुआ नलिकायन्त्र योनिमार्गमें लगे हुए नलिकायन्त्रके बीचमें होकर प्रवेश करके कमलमुखमें प्रवेश करे और जब नलिकायन्त्र बराबर कमलमुख (गर्भाशयके मार्गमें) बैठ जावें, तब आकृति २६ की शलाकामें रुई लपेट कर जो दवा लगानी होवें उसमें डबोकर दोनों नलिकायन्त्रके बीच अवकाशमें होकर शलाकायन्त्र प्रवेश करे और गर्भाशयके भागमें दवाको लगावे, बहुत हलके हाथसे दवा लगानेके समय किसी प्रकारसे जोर न करे । इन दोनों नलिकायन्त्रोंकी सहायतासे दवा किसी दूसरे ठिकाने लग-नेका भय नहीं रहता, किन्तु, ठेठ गर्भाशयके आभ्यन्तर भागमें सरलतापूर्वक दवा लगाई जा सक्ती है । जो २ औषधियाँ गर्भाशयमें लगाई जाती हैं उनका पृथक् पृथक् नाम लाईकवोर आयोडीन, टींकचर आयोडीन एक ओंस चालीस ग्रेन प्रमाणका नाईटेट ओफसीलवरका लोशनलाईकवोरफेरी सबसलफेटीस, लाईकओरफे-रीपरकलोरीडी, स्टांग कार्बोलिक एसिड, अथवा कार्बोलिक एसिड, और समान भाग, ग्लीसरीन, तथा स्टोंगनाईटीकएसिड ॥।≈॥। हमारी रायमें उपरोक्त औषधियां अति तीव्र हैं। ग्लीसरीन दग्धकशक्तिकी दर्पनाशक है, सो ग्लीसरीन अधिक भाग मिलाना चाहिये । यदि अधिक भाग मिलानेसे लाभ न पहुंचे तो पीछे सम भाग मिलाकर लगाना योग्य है । ये औषधियाँ (कार्बोलिकएसिड और टींकचर आयोडीन) साधारण रीतिसे विशेष उपयोगी हैं । यदि रक्तस्राव विशेष होता हो तो टींकचरओफ-आयर्न अधिक फायदा करती है, यदि रक्तस्राव अधिक प्रवाहरूपसे होय और दूसरे उपायोंसे कुछ लाभ न हुआ होय और गर्भाशयका अन्तर्पिण्ड विशेष सडगया होय तथा गर्भाशयका पिण्ड मस्सारूपमें होगया, होय तो स्टोंगनाईटीक् एसिड लगाना ।

इससे मस्सा दग्ध हो जाता है, जैसे ये स्तम्भन औषधियाँ गर्भाशयके अन्दर लगानेमें आती हैं वैसे ही गर्भाशयकी कठिनता लानेके लिये आयोडाईडओफ: मरकयुरीका मरहम अथवा आयोडोफार्म व वेसेलीनका मरहम लगाना भी अधिक उत्तम है और वह भी इसी रीतिसे लगाया जाता है ।

गर्भाशयके आभ्यन्तरापिण्डके दीर्घशोथकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे गर्भाशयके मुखके प्रतिबन्धका निदान ।

जिस प्रकारसे योनिमुख सम्पूर्ण बन्द होता है उसी प्रकार कमलमुख भी बिलकुल बन्द होता है । और उसमें बिलकुल छिद्र नहीं होता, तजनी अंगुली प्रवेश करके स्पर्श किया जाय तो कमलकन्दका भाग जान पडता है । परन्तु उसमें वाह्यमुख छिद्र नहीं जान पडता, नलिकायन्त्र प्रवेश करके देखनेसे भी यही स्थिति दृष्टिगोचर होती है । कमलमुखके आगे आड़ा (आवर्णरूप) पडदा होता है ऐसा देखनेमें आता है और वह पडदा मुलायम होता है, यह स्थिति जन्मसे ही किसी २ स्त्रीको स्वाभाविक होती है । गर्भाशय, गर्भ अण्ड आदि पूर्ण आकारमें होते हैं, परन्तु केवल कमलमुख (गर्भाशयके मुख) का छिद्र नहीं होता, जो यह स्थिति स्वभावसे ही होय अथवा यह स्थिति पीछेसे भी कितनेही कारणोंको लेकर कमलमुखके मार्गको बन्द करती है । कमलमुखके ऊपर उत्पन्न हुई व्याधि तथा इसी प्रकारसे उस व्याधिकी निवृत्तिके लिये कोई दंभकक्रिया करके अथवा शस्त्रोपचार करनेके अनन्तर रोपण होनेके समय जो योग्यरीतिसे सँभाल न की जावे तो कमलमुखकी दोनों ओरके किनारे आमनेसामने चिपट जाते हैं और गर्भाशयका मार्ग (रस्ता) बन्द हो जाता है । यदि कमलमुखमें क्षत हो तब, किन्तु नेत्रमें जैसा फुल्लीका दाना पडता है ऐसा ही दाना कमलमुखमें होता है। वह दाना अधिक समय पर्य्यन्त ऐसेका ऐसा ही बना रहता है, उस दानेके निमित्तसे कमलमुखके दोनों किनारे (ओष्ठ) मिलकर मार्ग बन्द हो जाता है । किसी समय इस व्याधिमें इस दानेका क्षत इतना बडा प्रतिबन्ध रूप न हुआ होय तो भी इस कीलके क्षतको लेकर जो सफेद स्राव कमलमुखमें निरन्तर भरा रहता है वह पुरुष वीर्य्यको अन्दर जानेमें प्रतिबन्ध रूप हो जाता है । कितने ही समय वाह्यमुखके बदले अन्तर्मुखमें भी प्रतिबन्ध होता है, जो कारण वाह्यमुखके प्रतिबन्धकी निमित्त गणनामें आये हैं वोही अन्तर्मुखके प्रतिबन्धके भी हैं । विशेष करके गर्भाशयकी बक्रता अन्तर्मुखके प्रतिबन्धका एक दूसरा अधिक कारण है । इस व्याधिमें जो जो पृथक् पृथक् कारणोंको लेकर प्रतिबन्ध हुआ है उस प्रमाणसे उसके चिह्नोंमें अन्तर होता है । कमलमुख जब स्वाभाविक बन्द न हो

तब जिस जिस पृथक् पृथक् रोगोंसे प्रतिबन्ध हुआ होय उसके प्रथम चिह्न जानने चाहिये । यदि कमलकन्दमें क्षत होय तो अंगुलीसे कमलकन्दका स्पर्श दुःखदायक मालूम पडता है । यदि कोई ऋतुधर्मका विकार होय तो कमरके साथल आदि आसपासके भागमें दर्द रहा करता है और जो जन्मसे ही स्वाभाविक प्रतिबन्ध हो तो स्त्रीकी पूर्ण युवावस्था पहुँचनेपर ऋतुस्रावके समय स्वाभाविक प्रतिबन्धवाली स्त्रीके पेडूमें पीडा होती है । यदि जो पीडा प्रत्येक महीनेमें ऋतुके समय उत्पन्न होती हो तो साधारणरीतिसे ऐसी पीडासे स्वाभाविक त्रुटिवाली स्त्रीकी कमरमें सदैव थोडा थोडा दर्द होता हुआ उपरोक्त स्त्रीका शारीरिक बाँधा बराबर होता है । और उसको पुरुष समागममें प्रीति उत्पन्न होती ह । योनिमार्ग तथा गर्भाशय आदि सर्वाङ्ग होते तो बराबर हैं, परन्तु अंगुलीको योनिमार्गमें प्रवेश करके परीक्षा करनेसे कमलमुखके ठिकाने पर छिद्र नहीं होता । नलिकायन्त्र योनिमार्गमें प्रवेश करके परीक्षा करनेसे प्रतिबन्धवाली स्त्रीके कमलमुखके ऊपर छिद्रकी जगह पतला पडदा जान पडता है, देखनेमें अति बारीक होता है और जिस स्त्रीके कमलमुखमें प्रतिबन्ध पछिसे होता है उसके कमलमुखमें सफेद स्राव भराहुआ जान पडता है और कमलमुख सूझा हुआ दीखता है । यदि वह अधिक समयपर्य्यन्त बना रहे तो कमलमुख कठिन हुआ जानपडता है । कमलकी आकृति किसी २ स्त्रीमें बेडौल देखी गई है, इसका कारण यही है कि अधिक समय पर्य्यन्त प्रतिबन्ध तथा शोथके रहनेसे आकृतिमें कुछ विपर्य्यय आय जाता है ।

गर्भाशयके मुखके प्रतिबन्धकी चिकित्सा ।

इस प्रतिबन्धकी निवृत्तिके लिये चिकित्सकको उचित है कि प्रथम यह विचार करलेवे कि किस कारणसे प्रतिबन्ध हुआ है, उस कारणका उपाय यथार्थरीतिसे करे । यदि कमलमुखमें क्षतके ऊपर कीलके दाना समान होवे तो आवश्यकतानुसार उसके ऊपर दंभक औषधियाँ लगावे । इसकी चिकित्साकी व्यवस्थाके विषयमें (कमलकन्दके क्षतका विषय देखो) और जिस स्त्रीके कमलकन्दमें सफेद स्राव भराहुआ रहता है उस स्त्रीके योनिमार्ग तथा कमलकन्दको स्तम्भन औषधियोंकी पिचकारीसे धोना उचित है । पिचकारी लगानेसे केवल कमलमुखके अग्र भागमेंसे ही वह स्राव धुलने सक्ता है, पीछेके गहरे भागमेंका स्राव दूर करनेके लिये दंभक (दग्ध करनेवाले पदार्थ) की आवश्यकता है, कदाचित इस स्थितिसे मुख बिलकुल बन्द होगया होय तो (बील्टरी) यन्त्र प्रवेश करके उसको खुला करना, परंतु इसकी आवश्यकता पश्चात् जन्य (गर्भाशयके अन्दरके मुखके) प्रतिबन्धमें कभी कभी जान पडती है, स्वाभाविक जन्मसे ही जो प्रतिबन्ध है । यह शस्त्रोपचारके विद्वान् दूसरे

उपायसे निवृत्त होना सर्वथा असंभव है और इसके लिये शस्त्रक्रिया यही है कि सीधी बीस्टरी यन्त्रसे उस भागको छेदन करके और (वीस्टरी) को ऊंचे गर्भाशयके अन्दर ले जाना, और उसको अन्दर जिस ठिकाने पर रक्तका वा ऋतुधर्मके रक्तका जमाव (संग्रह) होय उसको निकाल लेना । वीस्टरीके बदले लम्बे हत्थावाला (लम्बे दस्ते वाला) अनी और नली जिसमें होवे ऐसे शस्त्रसे भी कमलकन्दमें छिद्र हो सक्ता है । छिद्र करनेके अनन्तर गर्म जलसे पिचकारीके द्वारा प्रच्छालन करे, इससे एक दो दिवसमें अन्दरका सब भाग निकल जावेगा, पीछे जो कमलमुखमें छिद्र किया है उसमें रबरकी दूसरी शलाका अथवा टेंटयन्त्र प्रवेश करे कि जिससे रोपण होनेके समय जख्म संकोचको न प्राप्त होवे । इस शस्त्रोपचारके समय कुछ २ ज्वर होनेके अतिरिक्त अन्य कोई प्रकारका उपद्रव स्त्रीके शरीरमें नहीं देखा जाता, किन्तु किसी २ निर्बल स्त्रीको ज्वर अधिक भी हो जाता है । साधारण शस्त्रोपचारके पीछे जिस रीतिसे रोगीकी चिकित्सा और रक्षा की जाती है उसी प्रकार इस रोगीकी करना योग्य है ।

गर्भाशयके मुखके प्रतिबन्धकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे योनिमार्गका शोथ ।

सन्तान उत्पत्तिका मुख्य साधन स्त्रीजातिके शरीरमें योनि अवयव है । यदि इस अवयवके किसी अङ्गमें किसी प्रकारकी व्याधि उत्पन्न हो जावे तो यह भी वन्ध्या दोषके कारणमें समझी जाती है । उत्पत्तिकर्म अवयवकी दूसरी व्याधियोंकी समान योनिमार्गमें भी अनेक व्याधि प्रगट हो जाती हैं, योनिमार्गका संकोच अथवा स्वाभाविक न्यूनताओंके विषयमें अन्यत्र कथन किया गया है । अब केवल योनिमार्गके शोथके विषयमें कथन किया जाता है । योनिमार्गमें शोथ उत्पन्न होनेसे उसका अधिकांश भाग सूझ जाता है और वहां पकनेके चिह्न दीख पडते हैं और किसी समय वह पाक अत्यन्त तीक्ष्ण हो जाता है, किसी समय शान्तरूपमें रहता है, कि स्त्रीको उसका ज्ञान भी नहीं होता केवल योनिमार्गमेंसे सफेद स्राव होता रहता है, और मूत्र त्यागनेके समय जलन होती है आर तीक्ष्ण शोथ प्रमेहसे ही होता है, परन्तु अधिक शक्त नहीं होता, किन्तु ऐसा शान्त तीक्ष्ण शोथ शर्दी लगनेसे, अत्यन्त पुरुष समागम करनेसे पेसरी यन्त्र अन्दर रखे और अनुकूल पडे तो इससे भी होना संभव है । गभाशय अथवा उसके मुखपर लगानेकी दंभक औषधियाँ कदाचित भ्रमसे योनिमार्गमें लग जावें तो इससे भी शोथ होना संभव है, अथवा कितने ही समय विषैले ज्वरके आनेसे भी योनिमार्गका शोथ उत्पन्न हो जाता है । किन्तु गर्भाशयके कितने ही रोगोंके कारणसे उत्पन्न हुआ जहरीला त्रेप वह

योनिमार्गमें आनेसे और किसी स्थानपर योनिमार्गमें लगा रहजावे तो उससे शोथ उत्पन्न हो जाता है और योनिमार्गका मलीन रहना यह पाकका सबसे प्रधान कारण है । यदि ऐसा होवे तब प्रथम प्रदररूपमें जान पडता है और आंखमें जैसी फुल्ली होती है ऐसी ही फफोली योनिमार्गमें कितने ही समय जान पडती हैं और इससे जीर्ण शोथके समान चिह्न मिलते हैं । वे चिह्न इस प्रकार होते हैं, योनिमार्गमें कण्डु (खुजली) आती है, पीछेसे जलन होती है, बारम्बार मूत्र त्यागनेको जान पडता है और शरीरमें थोडा थोडा ज्वर रहता है, अन्दरका भाग सूझा हुआ रहता है । यदि उसपर अंगुली लगाई जाय तो सहन नहीं होती योनिमुखके भागमें, और कछोटामें तथा जांघमें दर्द होता है और खडे होनेकी तथा चलने फिरनेकी सामर्थ्य नहीं रहती । पीछेसे. उस भागमें राध जान पडती है, जो पीली तथा लाल रंग लिये हुए पीली होती है । जिस ठिकानेसे पीब (राध) निकलती होवे उस ठिकाने पर क्षत पडता है, पीब निकलती रहे वहांतक शक्त पीडा रहती है । पीब निकलने पीछे वह पीडा कुछ शान्त होती जाती है, साँथलके मूलकी गाँठें भी सूझ जाती हैं । इस स्थलके साधारण शोथकी अपेक्षा प्रमेहके चेंपसे जो शोथ उत्पन्न हुआ हो तो जलनसे स्त्रीको अधिक क्लेश भोगना पडता है इस रोगकी जीर्ण स्थितिमें अति सूक्ष्म ज्ञात न पडनेवाले चिह्न होते हैं । इस व्याधिका अनुमान स्रावके ऊपरहीसे हो सक्ता है, जो यह विकृति प्रमेहकी होय तो दूसरे मर्मस्थानोंको देखनेसे गर्भाशय तथा गर्भ अण्डके ऊपर भी उसका असर पहुँचता है । यह पाक आठ दश दिवस पर्यन्त जोशमें चलता है, पीछे शान्त होकर जीर्णरूपमें रहता है । जो इसमें क्षत पडगया होय तो यह पीछेसे थोड़े दिवसमें रोपण हो जाता है और योनिमार्गका भाग खुरखुरा ऊँचा नीचा तथा रूखा लगता है, योनिमार्गके शोथसे गर्भाशय गर्भ अण्ड तथा फलवाहिनीकी व्याधि हो आती है और इससे वन्ध्यादोष स्थापित होता है । परन्तु इस वन्ध्यत्वका मुख्य कारण जो योनिमार्गका शोथ प्रमेहको लेकर उत्पन्न हुआ होय वही होता है । योनिमार्गके शोथका निदान योनिमार्गको देखनेसे हो सक्ता है, निदान करनेके समय यह निश्चय होना चाहिये कि, शोथ प्रमेहके कारणसे है अथवा कोई सहज दूसरा कारण है, जिससे उत्पन्न हुआ है । इसका पूर्ण निश्चय करना ही कठिन है, कारण कि किसी समय पर दूसरे किसी कारणसे उत्पन्न हुआ शोथ ऐसा उग्र रूप धारण करता है कि वह शोथ प्रमेहसे ही हुआ प्रतीत हो जाता है । साधारण नियम एसा है कि दूसरे कारणसे उत्पन्न हुआ शोथ बहुधा अति उग्र रूपमें नहीं होता और योनिमुखका शोथ अधिक शक्त होय और उसके साथही वद भी हो और दाह (जलन) का चिह्न अति तीव्र हो तो इससे प्रमेहकी आशंका हो सक्ती

है । प्रमेहके अतिरिक्त दूसरे कारणसे शोथ उत्पन्न हुआ हो तो थोडे ही दिवसमें स्त्री इस पीडासे तथा स्रावसे मुक्त हो पीछेसे उसको गर्भाधान भी रहता है । परन्तु जो वह प्रमेहके कारणसे होय तो गर्भाधान रहना कठिन है । अधिकांश प्रमेहकी विकृतिवाली स्त्रीको गर्भाधान नहीं रहता किसी समय प्रमेह शान्तरूपमें होय और उसका असर गर्भाशय गर्भ अण्ड अथवा फलवाहिनी इनमें न पहुंचा होय तो ऐसी स्थितिमें रही हुई स्त्रीको गर्भाधान रहना संभव है । परन्तु प्रमेहका जोश सम्पूर्ण मर्मस्थान तथा गर्भाशयमें व्याप्त हो रहा होय तो ऐसी स्त्रीको गर्भाधान रहना सर्वथा असंभव है ।

योनिमार्गके शोथकी चिकित्सा ।

इस व्याधिकी चिकित्सा यही है कि दिवसमें दो समय गर्मजलमें बैठना जल इतना होय कि स्त्रीकी कमर डूब जावे और पेंडूसे पानी दो अंगुल ऊँचा रहे यदि इस पानीको गर्म करनेके समय थोडासा सोढा और अफीमके फल (डोडा) डाला जावे तो अधिकगुण करता है । अफीम १२ ग्रेन स्युगरलेड १२ ग्रेन कोकमके तैलमें मिलाकर ४ बत्ती बनावे हररोज रात्रिको योनिमार्गमें एक रख देवे । ओकसाईड ओफ-झिंक् ४० ग्रेन एकस्ट्राक्टओफवेलोडोना १२ ग्रेन इन दोनोंको मिलाकर कोकमका तैल गोंदका पानी अथवा मधु (शहद) मिलाकर ४ बत्ती बनावे और हररोज १ बत्ती योनिमार्गमें रक्खे । और विशेष उपायकी योजनाका आधार रोगी स्त्रीकी स्थितिके ऊपर है गर्म पानी वा पोस्तके डोडा पकाया हुआ गर्म जलकी पिचकारी योनिमार्गमें लगानी और रोगीस्त्रीको शान्तभावसे सुलाकर रखना अरंडीके तैलका हलका जुलाब देना मूत्र साफ आवे और मूत्रकी जलन कम होवे तथा तृषा वगैरह शान्त होय ऐसे पित्तनाशक क्षार देना । ईनफ्युझम युवाअरसीफोलीया ४ ओंस लाईकवोर एमोनी-एसीटेटीस १ ओंस टींकचर हायोसायेमाई १ ड्राम स्पीरीट ईथर नाईट्रोझी १ ड्राम पोटाससाईट्रस २० ग्रेन १/६ भाग १ दिवसमें तीन तीन घंटेसे पिलाना, इसके अतिरिक्त ईनोझफ्रुटसोल्ट परिमित मात्रासे मध्याह्नके समय जलमें मिलाकर पिलाना और निद्राके लिये कलोरल तथा ब्रोमाईडओफ पोटासीयमकी एक परिमित मात्रा देना । आहार हलका और शीघ्र पाचन होनेवाला दूध साबूदाना चाह वगैरह देना उत्तम है, गर्म और अति शीतल आहार तथा अन्य कोई वस्तु खानेको नहीं देना । यदि कोई स्त्री मद्य पान करती होवे तो उसको मद्य पीनेका निषेध कर देना, पीछेसे जब रोग शान्त तथा जीर्णरूपमें आवे तब सरल स्तम्भन औषधियोंकी पिचकारी योनिमार्गमें लगावे । तथा कार्बोलिकएसिड ४० बिन्दु और सलफेटओफ-झींक ४० ग्रेन एक पाईंट जलमें मिलाना इस जलकी पिचकारी योनिमार्गमें लगाना थोडे दिवस इस जलकी पिचकारी लगाने बाद योनिमार्गका शोथ बिलकुल सूक्ष्म

(जीर्ण) रूपमें आवेगा । तव टेनेटओफग्लीसरीनमें लीन्टका टुकडा भिगोकर योनिमार्गमें रखना, यह फांहा रखनेके प्रथम तथा काटनेके पीछे गर्मजलसे उस स्थानको प्रच्छालन कर लेना । यदि प्रमेहकी विकृतिसे शोथ हुआ होय तो वह शान्त होने वाद थोडे दिवस पर्य्यन्त (कोपाईवा और शीतलचीनी) (चीनीकवालाका तैल) १०.से २० विन्दु पर्य्यन्त वतासामें डालके खानेको देना और योनिमार्गके भागको साफ रखना । यदि स्त्रीका शरीर कृश होगया हो तो पौष्टिक औषधि देना । कदाचित् योनिमार्गका घाव रोपण न होता होय और जीर्ण सूक्ष्म स्राव रहता होय तो नाईट्रेट ओफसील्वरकालोशन वनाकर योनिमार्गके अन्दर लगाना । परन्तु इस लोशनको लगानेमें विशेष सावधानी रखनी योग्य है । योनिमुख तथा योनिके अन्तर ओष्ठकी कोरके ऊपर यह प्रवाही पदार्थ नहीं लगना चाहिये, कारण कि योनिमुखके भागका स्पर्श ज्ञान विशेष तीक्ष्ण है और इसके लग जानेसे वहाँ शक्त जलन होती है । इस भयको दूर करनेके लिये वेलेडोनाटेनीकएसिड, सुगरलेड और आयोडोफार्म इनकी वत्ती वनाकर रात्रिके समय योनिमार्गमें रखना, इससे घाव शीघ्र ही रोपण हो जाता है ॥

योनिमार्गके शोथकी चिकित्साका सप्तमाध्याय समाप्त ।

अथ अष्टमाध्यायारम्भः ।

योनिअर्श गर्भाशयअर्श तथा ग्रन्थि सुश्रुतसे योनिअर्शके लक्षण ।

योनिमभिप्रपन्नाः सुकुमारान् दुर्गन्धान् पिच्छिलरुधिरस्राविणच्छत्राकारान् करीरान् जनयन्ति त एवोर्द्धमागताः श्रोत्राक्षिघ्राणवदनेष्वर्शांस्युपनिर्वर्त्तयन्ति ॥ १ ॥

अर्थ—जव कि कारण विशेषसे वात पित्त कफादि दोष कुपित होकर योनिमें प्राप्त होते हैं तव कोमल दुर्गन्धयुक्त गिलगिले रुधिर वहानेवाले छत्रकी आकृतिके समान मस्से उत्पन्न होते हैं वोही दोष ऊर्ध्व गामी होकर कान, आंख, नासिका और मुखमें मस्सोंको उत्पन्न कर देते हैं । चिकित्सा इन मस्सोंको वुद्धिमान् कुशल हस्त चिकित्सक क्षारसे दग्ध करदेवे और जो मस्से छेदनके योग्य होंय उनको प्रथम छेदन करके पीछे उनके मूलको क्षारसे दग्ध करदेवें कि पुनः वृद्धिको प्राप्त न होने पावैं ॥१॥

स्त्रियोंको रक्तजगुल्मकी उत्पत्ति । इसीको आर्त्तव जन्य गुल्म भी कहते हैं ॥

आर्त्तवादपि गुल्मः स्यात् स तु स्त्रीणां प्रजायते । अन्यस्त्वसृग्भवः पुंसां तथा स्त्रीणां प्रजायते ॥ १ ॥ नवप्रसूताऽहितभोजनाया याचामगर्भं विसृजेदृतौ वा । वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं सरुजं सदा-

हम् ॥ २ ॥ पैत्तस्य लिङ्गेन समानलिङ्गं विशेषणं चाप्यपरं निबोध यः स्पंदते पिण्डित एव नाङ्गैश्चिरात्सशूलः समगर्भलिङ्गः। सरौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो मासव्यतीते दशके चिकित्स्यः ॥ ३ ॥

अर्थ—स्त्रियोंके आर्त्तव कहिये ऋतुधमके समय स्राव होनेवाले रक्तके न निकालनेसे तथा गर्भाशयमें उसके संग्रह होकर जम जानेसे रक्तजगुल्म उत्पन्न होता है। किन्तु क्षीरपाणि वैद्यका कथन है कि धातुरूप रक्तके जम जानेसे स्त्री पुरुष दोनोंको ही रक्तजगुल्म होता है नूतन प्रसूता हुई स्त्रीके विरुद्ध आहार बिहार सेवन करनेसे अथवा अधूरे समयके गर्भस्राव पातादिके होनेसे अथवा ऋतुधर्मके समय अहित भोजनादिके करनेसे वायु कुपित होकर स्राव होनेवाले रक्तको रुक्ष (रूखा) करके गुल्माकृतिमें जमा देती है और वोही रक्त कठिन होकर पीडा तथा दाहयुक्त हो जाता है। और पित्तज गुल्मके जो लक्षण कथन किये हैं वो सब इसमें हो जाते हैं। और इसमें दूसर विशेष लक्षण भी होते हैं। यह गुल्म गोलाकृति धारण करके फडकता (हिलता) है, और हाथ पैरोंके साथ नहीं हिलता और शूलयुक्त होता है और गर्भके समान सब लक्षण मिलते हैं। मुखसे जलका स्राव होना, मुख पीला पड जाय, स्तनका अग्रभाग काला पड जाय और दौहृदादि सब लक्षण हो जाते हैं, ये सब लक्षण व्याधिके प्रभावसे हो जाते हैं, इसकी चिकित्सा दश महीने पीछे करनी चाहिये। परन्तु हमारी रायमें यदि यह गुल्म दश महीने पूर्वही चिकित्सकको निश्चय हो जावे तो उसी समयसे इसकी चिकित्सा आरंभ करे निरथक समय व्यतीत करके इसकी जडको दृढ न करे। यदि पूर्ण रीतिसे गुल्मका निश्चय न होय और गर्भकी आशंका होय तो वे निश्चय कियी चिकित्सा भी आरम्भ न करे, किन्तु दश मासके पीछे गर्भकी अवधि व्यतीत हो जानेपर करे। किसी २ वैद्यका सिद्धान्त है कि "रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम्" दश मासके व्यतीत होनेपर रक्तजगुलम चिकित्सा प्रणालीमें सुख साध्य होता है ॥ १-३ ॥

रक्तज गुल्मकी चिकित्सा।

रौधिरस्य तु गुल्मस्य गर्भकालक्रमेण च। सुस्निग्धास्विन्नकायायै योज्यं स्नेहविरेचनम् ॥ १ ॥ शताह्वाचिरबिल्वत्वग्दारुभार्ङ्गीकणाभवः। कल्कः पीतो जयेद्गुल्मं तिलक्वाथेन रक्तजम् ॥ २ ॥ तिलक्वाथो गुडव्योषघृतभार्ङ्गीयुतो भवेत्। पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषिताम् ॥ ३ ॥ पीतः सुरारसो युक्त्या मदिरावाऽऽशु गुल्मनुत् ॥ ४ ॥

मुण्डिरे चनिकाचूर्णं शर्करामाक्षिकान्वितम् । विदधीतास्रगुल्मिन्यां मलसंरेचनाय च ॥ ५ ॥

अर्थ—रक्तज गुल्मवाली स्त्रीको जब गर्भकी अवधिका समय व्यतीत हो जावे तब उसको स्निग्ध और स्वेदित करके स्नेहयुक्त विरेचन देकर प्रथम कोष्ठ शुद्धि करके औषधोपचार करे ।(शताह्वादि कल्क) शतावरी, करंजुवाकी छाल, देवदारु, भारंगी, पीपल इनको समान भाग लेकर कल्क बनावे और १ तोलेकी मात्रा इस कल्कके तिलोंके काढेके साथ पीवे तो रक्तजगुल्म नष्ट हो जावे । तिलोंके काढेमें पुराना गुड, त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पीपलका चूर्ण) भारंगीका चूर्ण और घृत डालकर पान करनेसे स्त्रियोंका रक्तजगुल्म नष्ट होता है और रजोदर्शन जो बन्द हो गया हो तो वह पुनः समयपर स्राव होने लगता है विधिपूर्वक सुराके रसकी, परिमित मात्रा पीनेसे स्त्रियोंका रक्तजगुल्म नष्ट होता है । गोरखमुंडी, रेवतचीनी मिश्री, शहत ये सब समान भाग लेकर एकत्र पीसकर सेवन करनेसे रक्तजगुल्म नष्ट होता है । और दस्त भी साफ आता है ॥ १–५ ॥

पलाशक्षार घृत ।

विशेषमपरं चास्याः शृणु रक्तप्रभेदनम् । पलाशक्षारतोयेन सर्पिः सिद्धं पिबेच्च सा ॥ ६ ॥ यस्मिन्नवसरे क्षारतोयसाध्यघृतादिषु । फेनोद्गमस्य निष्पत्तिर्नष्टदुग्धसमाकृते । स एव तस्य पाकस्य कालो नेतर लक्षणः ॥ ७ ॥

अर्थ—अब विशेष रक्तजगुल्मको स्रावित करनेवाले प्रयोग कथन किये जाते हैं ढाकके क्षारके जलसे घृतको पकाकर सिद्ध करे तो रक्तजगुल्म नष्ट होवे और क्षारादिके द्वारा घृतको पकाना होवे तो जब उसमें फटे हुएके समान झाग आने लगें तब उसको उत्तम प्रकारसे सिद्ध हुआ जानना चाहिये यह क्षारघृतके पाककी पहचान है ॥ ६ ॥ ७ ॥

उष्णैर्वा भेदयेद्भिन्ने विधिरासृग्दरोहितः । अतिप्रवृत्तमस्रं तु भिन्ने गुल्मे निवारयेत् ॥ ८ ॥ रक्तपित्तहरैर्योगैर्वालघ्नैश्च मरुद्वदान् । गुर्वभिष्यन्दि कुर्याद्वै रक्षन्नाग्नि बलं सदा । गुल्मवत्स्वन्नपानानि यथा वस्थं प्रयोजयेत् ॥ ९ ॥

अर्थ—रक्तजगुल्मको ऊष्ण औषधियोंके द्वारा भेदित करके जब कि गुल्म अच्छे प्रकारसे भेदित हो जावे, तब प्रदरनाशक विधि करनी योग्य है, जो कि गुल्मके

भेदित होनेपर अति रक्तस्राव होने लग जावे तो तत्काल उसको रक्तपित्तनाशक औषधियोंके द्वारा बन्द करे और जो उसमें वातजन्य पीडा होती होवे तो वातनाशक औषधियाँ और स्निग्ध क्रियायोंसे शान्त करे इसमें सदैव भारी और अभिष्यन्दकारक अन्नपानों अग्नि और बलकी रक्षा करे, इसमें यथा दोषानुसार गुल्मके समान अन्न पान सेवन कराने चाहिये॥ ८-९ ॥

आयुर्वेदसे रक्तजगुल्मकी चिकित्सा समाप्त ।

यूनानी तिब्बसे गर्भाशयके बवासीरीमस्सेकी व्याख्या ।

प्रथम यह जानना चाहिये कि योनिके मुखपर वा उसके नीचे ऊपरके किनारोंपर मस्से उत्पन्न हुए स्त्रियोंके देखे जाते हैं उसी प्रकार गर्भाशयकी गर्दनमें भी बादीके दोषसे मस्से उत्पन्न हो जाते हैं और ये मस्से जो बाहरकी तर्फ होते हैं सो तो आसानीसे दिखाई देते हैं और जो अन्दरकी तर्फ गहराईमें होते हैं वे गर्भाशयका मुख खोलनेसे मालूम होते हैं, इन मस्सोंकी परीक्षा मुख्य करके गर्भाशयके सन्मुख रखके देखनेसे ज्ञात होती है । फिर जो रक्तकी तेजी और भरनेका समय होय व बन्द होनेका समय हो और बन्द हो जाय तो गर्भाशयके बवासीरी मस्सेमें भी भारीपन लाली और दर्द होता है । नहीं तो एक तरी (तिलछट) गादकीसी स्याही लियेहुए जारी हो और वर्णन कीहुई बवासिरी पीली और पतली होय तो दर्द नहीं होता । इलाज इसका यह है कि बादीके खूनको निकालनेके लिये फस्द खोले और आकाशवेलका काढा पिलावे और तर भोजन जैसा कि हिरनका मास, बकरीके छोटे बच्चोंका मांस.रोगी स्त्रीको तासीरके माफिक खिलावे, जिससे खून अपनी असली स्थितिकी दशामें आजाय । बाद इसके नार्गिसका तैल, सोसनका तैल मस्सोंपर मले, जिससे नष्ट हो जायँ । तब यह मलम मस्सोंपर लगावे--चांदीका मैल, जर्दचोवा मुर्दासन प्रत्येक १०॥ मासे मोम सफेद १७ ॥ मासे पीले आलूकी गुठलीका तैल ७० मासे पीले आलूसे (शफतालूकी गुठलीकी मिंगीके तैलका ग्रहण है) जिसको हिमालयमें क्षीरफल बोलते हैं और छोटे आडूके समान पीले रंगका फल होता है । इसके वृक्षकी शकल वा पत्र बिलकुल आडूके समान होते हैं । ऊपरकी सब दवाओंको मिलाकर मरहम बना मस्सोंपर लगावे । बाकी वही उपाय है, जो योनिमुखके बवासिरी मस्सोंके विषयमें कथन किया है । जिस रोगीको जहाँ कहीं दवा लाभ न करे तो उसको लोहेके हथियार वा रेशमके तारसे काट डाले । और जो मस्से बाहरकी तर्फ हो और चौडे न होयँ, गहराईमें होयँ व चौडे होयँ तो काटनेकी चेष्टा न करे । सूखी दवाओंके अतिरिक्त कि जिनमें जलन न

होय ऐसी दवा लगावे और कुछ न लगावे, शस्त्रसे काटनेकी विधि यह है कि मस्सेको उस शस्त्रसे कि जो इस कामके लिये मुख्य है पकड कर काट डाले, इसके उपरान्त कैंचीसे उसकी जड काटे फिर गिलेअर्मनी, कहरवा, पहाडी गौका सींग और कागज जलाकर उस जखम पर बुर्के । रेशमसे काटनेकी विधि यह है कि मस्सेकी जडको जो उस ठिकाने पर आसानीसे बँध सक्ती होवे तो रेशमके धागेसे बांधकर छोड देवे, इसके उपरान्त एक कपडा बादाम रोगनमें भिगोकर इसके ऊपर रक्खे, फिर अलसीके बीजका लुआब, बादामका तैल और केशर इनका लेप करे । जहाँतक मस्सा गिर न जावे वहांतक बराबर लेप करता रहे । और स्त्रीकी योनिके भी मस्से इसी प्रकारसे कट सक्ते हैं और गर्भाशयके मुखपर अति सूक्ष्म मस्से होवें जो कि काटनेमें नहीं आसक्ते उनकी भी यही चिकित्सा है कि आकाशबेलके काढे अथवा (यारज) की गोलीसे शरीरका मवाद निकाले और जिन आहारोंसे गाढा दोष उत्पन्न होता हो उनसे स्त्रीको बचाना चाहिये और सदैव सौसनका वा शफतालूकी मिंगीका तैल मला करे । और बाबूना अकलील उलमालिक, मेथी अलसीके बीजके काढेमें बैठावे और चाहिये कि इस काढेसे मस्सेवाली स्त्री गर्भाशय और योनिको धोया करे ।

यूनानीतिब्बसे गर्भाशयके मस्सोंकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे गर्भाशयमें मस्सा मेद तथा श्वेत तन्तुमय ग्रन्थि अर्बुद आदि दुष्टरोगोंकी उत्पत्ति ।

गर्भाशयमें मेदा (चर्बी) अथवा दूसरी किसी प्रकारकी दुष्ट ग्रन्थि उत्पन्न हो जावें वह भी वन्ध्यादोषकी मुख्य कारणभूत समझी जाती है । प्रायः देखा गया है कि गर्भाशयमें अनेक प्रकारकी छोटी वडी ग्रन्थि मस्से गुमडीं आदि उत्पन्न हो जाते हैं । श्वेत तन्तुवाली मोटी और वडी ग्रन्थि किसी समय कमलमें, किसी समय गर्भाशयमें होती है । किसी समय इन दोनों मर्मस्थानों पर लम्बा चिकना मस्सा लटकता दीख पडता है और किसी समय इन मर्मोंके किसी भागमें रससे भरपूर ऐसी रसौली होती है और श्वेत तन्तुमय ग्रन्थि गर्भाशयके पडतमें ही होती है । कितने ही समय यह ग्रन्थि गर्भाशयके पडतमेंसे अन्दरके भागको वढती है, जब वह अन्दरके भागमें वृद्धिको प्राप्त होती है तब गर्भाशय भी उसका समास (मिलाप) करनेके निमित्त वृद्धिको प्राप्त होता जाता है । आकृति २७ और २८ को देखनेसे श्वेत तन्तुमय ग्रन्थिका दिखाव ध्यानमें आवेगा । २७ आकृतिकी ग्रन्थि गर्भाशयके आभ्यन्तर पडतमें है और २८ की ग्रन्थि गर्भाशयके आगेके बाह्य भागमें है । जब कि ऐसी ग्रन्थि बाहरके भागमें वृद्धि

पाती है तब गर्भाशय बिलकुल नहीं बढता । इतना ही नहीं किन्तु गर्भाशयके ऊपर ग्रन्थिका दबाव पड़नेसे गर्भाशय शुष्क और छोटा हो जाता है, यह ग्रन्थि छोटी सुपारीसे लेकर नारियलके समान मोटी हो जाती है ।

अर्श: बवासीरके मस्से, ये गर्भाशयके श्लेष्म वरणके अमुक (किसी भाग) की वृद्धि है, श्वेत तन्तुमय ग्रन्थिके समान उसकी सम्पूर्ण सपाटी गर्भाशयके साथ जुडी हुई नहीं होती, परन्तु वह मस्सा लम्बा पतला मूलसे ही गर्भाशयकी सपाटीके साथ लगा-हुआ रहता है अर्शका मस्सा किसी समयपर चनेके दानेसे भी छोटा होता है और किसी समय कालान्तरमें नारंगीके समान मोटा बडा भी हो जाता है, किसी समय इस मस्सेकी उत्पत्ति गर्भाशयके आभ्यन्तरके ऊपरके भागमेंसे होती है और किसी समय कमलकन्दके बाहरके मुखके भागमेंसे पाटीके ऊपरसे भी उगता है ।

आकृति नं० २९-३० देखो ।

जब कि मस्सा विशेष वढ जाता है तब योनिमार्गमें लटकता हुआ दीखता है । अर्शका मस्सा किसी समयपर विशेष सफेद दीखता है और किसी समय पर सुर्खी लिये हुए सफेद दीख पडता है । ये दोनों प्रकारके मस्से रक्तसे भरपूर रहते हैं और फाटनेके समय उनमेंसे रक्त अधिक निकलता है । रसौली भी अर्शके मस्से तथा श्वेत तन्तुमय ग्रन्थिके समान गर्भाशयके चाहे जिस भागमें उत्पन्न हो जाता है और उसके अन्दर प्रवाही पदार्थ भरा हुआ होता है और उसका आकार चनेके दानेसे लेकर जामुन वा अमरूदके फलके समान हो जाता है । रसौली किसी समय एक तथा किसी समय अधिक भी हो जाती है, वैसे ही अर्शका मस्सा भी किसी समय एक और किसी समय अधिक भी हो जाते हैं और अनेक होना भी संभव दीखता है । कारण कि नीचे और शीलवाली जगहमें रहनेसे तथा अधिक बैठे रहनेकी प्रकृति जिस स्त्रीकी होवे ऐसी स्त्रीको मस्सेका रोग प्राय: होता है और समान प्रसव चला आता होय उसकी अपेक्षा जिस स्त्रीको गर्भस्राव वा पात हो जाता होय ऐसी स्त्रीको भी यह रोग अधिक उत्पन्न होता है । कितने ही समय ऐसा भी होना संभव है कि गर्भस्राव वा पात ये अर्शके परिणाम हैं और अर्श गर्भस्राव वा पातका परिणाम है । इन रोगोंकी सामान्य रीतिसे स्त्रीकी बडी उमरमें ही उत्पत्ति होती है और इनसे गर्भाधानकी पूर्ण प्राप्तिमें बाधा होती रहती है । वंध्यत्वकी अपेक्षा नष्ट गार्भितव्यताका यह एक बडा कारण है कारण कि विशेष करके बालक उत्पन्न होगया है जिस स्त्रीको यह व्याधि उत्पन्न होती है और इन व्याधियोंके उत्पन्न होनेके पीछे उनका गर्भ पूर्णताको पहुँचना अति कठिन पड जाता है । स्त्रीको इससे समय समय पर गर्भस्राव वा पात हुआ करता

है । अक्सर गर्भ पड जाता है, रसौली तथा अर्शकी जातिकी ग्रन्थिकी अपेक्षा श्वेत तन्तुमय ग्रन्थि अधिक पीडादायक होती है । इस ग्रन्थिका बन्धेज स्त्रीके गर्भाशयमें अति पुखताईके साथ स्थापित होता है, श्वेतकी अपेक्षा श्याम वर्णके (सीदी) लोगोंमें यह अधिक उत्पन्न होती है, वह साधारण रीतिसे ३० अथवा ४० वर्षकी उमरमें विशेप करके उत्पन्न हो जाती है । और नियत रीतिसे जो स्त्री गर्भ धारण करती है उसकी अपेक्षा नष्ट गर्भितव्यतावाली स्त्रीमें यह व्याधि विशेप करके पाई जाती है और जिस स्त्रीमें नष्टगर्भितव्यताका अथवा अनियत गर्भितव्यताका चिह्न जान पडे ऐसी स्त्रीमें इस ग्रन्थिकी परीक्षा अवश्य करनी, प्रायः ऐसी स्त्रियोंमें यह ग्रन्थि अवश्य करके पाई जाती है । यह रोग स्त्रीके शरीरमें बडी उमरमें ही होता है, किंतु उसका मूलकारण छोटी उमरसे ही स्त्रीके शरीरके अन्दर उत्पन्न हो जाता है और इस व्याधिकी खबर न पडनेसे वन्ध्यादिदोषोंके कारणोंमें पडी रह जाती है । श्वेत तन्तुमय ग्रन्थिके ऊपर बतलाये हुए प्रमाणसे मोटी (बडीही) उमरमें होती है । परन्तु यह नियम रसौली वा अर्शके मस्सोंके लिये नहीं समझा जाता ये रोग स्त्रीको चाहे जिस उमरमें उत्पन्न हो सक्ते हैं । इन तीनों प्रकारकी व्याधियोंमेंसे चाहे जिस प्रकारकी ग्रंथि हुई हो उसको लेकर अन्दरजालमें बाह्यपदार्थ आय गया होय तो गर्भाशय आडा होय जाता है और उसके मुख्य चिह्नके तरीकेसे प्रदर और अत्यार्त्तव जान पडता है । श्वेत तन्तुमय ग्रन्थिमें रक्तका जमाव (संग्रह) विशेप होना संभव है और उससे उसमें अत्यार्त्तव विशेष पीडारूप होता है । अर्श व रसौलीकी जातिवाली ग्रन्थिमें प्रदर अधिकतासे होता है, जो अर्शका मस्सा गर्भाशयके बाहर निकल आनेके बदले अन्दर ही गर्भाशयमें भररहा होय तो रक्तस्राव अधिक भयंकर और प्रवाहरूपसे रहता हुआ चिकित्सकके ध्यानको खींचता है । रसौलीके चिह्नोंमेंसे तो केवल प्रदर ही ज्ञात होता है, यदि वह रसौली विशेप छोटी होय तो उसकी कुछ खबर भी नहीं पडती है । श्वेत तन्तुमय ग्रन्थिके साथ अत्यार्त्तव पीडितार्त्तव भी होता है, कारण कि ग्रन्थि विशेष मोटी होनेसे ऋतुधर्मके रक्तके स्रावको रोकती है और उस ग्रन्थिमें अधिक भार (वजन) होनेसे पेटमें दर्द होता है । आसपासके मर्मस्थानोंके ऊपर उसका दबाव पडता है और जाँघोंमें शक्त चस्का निकलता है । कितने ही समय गर्भाशयका मुख बन्द हो जानेसे शक्त व्याधियाँ उत्पन्न हो समय पर गर्भाशयमें शोथके चिह्न हो जाते हैं । यदि वह गर्भाशयकी अगली अथवा पीछेकी बाजू (बगल) पर होय तो इस प्रमाणसे उस ठिकाने गर्भाशयके वजन वा आकारमें वृद्धि होनेसे वह अग्र अथवा पश्चात् भागमें विवृत्त होता है । और यह ग्रन्थि विशेष मोटी होनेसे पेटमें मर्मस्थानके ऊपर

अधिक दबाव करती है । इससे किसी समयपर अतीसार रोगकी उत्पत्ति हो जाती है । अथवा बहुमूत्रताका रोग उत्पन्न हो जाता है । और ये दोनों उपद्रव पीडा युक्त हो पडते हैं, कितने ही समय अतीसार अथवा बहुमूत्र रोग अधिकतासे प्रवाह रूपमें देखा जाता है । ऐसी ग्रन्थिवाली स्त्री सामान्य रीतिसे वन्ध्या ही रहती है । यदि उसको गर्भ भी रहता है तो दूसरे अथवा चौथे महीनेमें गर्भ स्राव हो जाता है । अर्शके मस्सेके लिये ऐसा है कि जो वह मस्सा काटकर निकालनेमें आवे तो उसके निकलनेके अनन्तर स्त्री पुनः गर्भवती होती है, श्वेत तन्तुमय ग्रन्थिका निवृत्त होना अति कठिन है, जो यह ग्रन्थि विशेष मोटी होय तो इससे जठराग्नि मन्द हो जाती है । बमन होता है, श्वास चढती है और स्त्री निर्बल तथा क्षीणकाय हो जाती है । कितने ही समय इस ग्रन्थिमें पाक होकर इससे आसपासके मर्मस्थानोंमें भी पाकके चिह्न जान पडते हैं, श्वेत तन्तुमय ग्रन्थिवाली स्त्रीको जब ऋतुस्राव बन्द हो जाता है तबहीं उसको ठीक शान्ति मिलती है और पीछेसे रोगका जोश (वेग) नर्म पड जाता है । ऐसी ग्रन्थिवाली स्त्रीको उचित है कि पुरुषसमागमको त्याग देवे । क्योंकि गर्भाधानके लिये पुरुषसमागम किया जाता है सो गर्भाधान तो रहता नहीं फिर निरर्थक पुरुषसमागमसे क्या लाभ है ? यदि शौक व मनकी प्रसन्नताके लिये भी पुरुष समागम किया जावे तो उलटा रक्तस्राव विशेष होनेकी तकलीफ हो जाती है और कदाचित् गर्भाधान रह भी जाय तो वह ग्रन्थिके कारणसे गर्भ स्राव हो जाता है । इससे पीछे वन्ध्या दोषकी जड जम जाती है । यदि निदानके तरीकेसे देखा जाय तो श्वेत तन्तुमय ग्रन्थिसे गर्भाशयका भाग कठिन मालूम होता है और पेटके ऊपर हाथ रखनेसे मोटा ज्ञात होता है । अर्श अथवा रसौली ऐसी देखने वा जाननेमें नहीं आती चाहे वह कमलके मुखमें होय अथवा गर्भाशयके बाहरके भागमें हो । यदि गर्भाशयके भागमें हो, परन्तु वह बाहर आसक्ती है इतनी बडी होय तो उसी दशामें उसका स्पर्श ज्ञान होता है, किन्तु जो वह गर्भाशयके अन्दर ही रही हुई होय तो गर्भाशयको विस्तृत करके उसके अन्दर गर्भाशयशलाका प्रवेश करनेके अतिरिक्त उसका पूर्ण निश्चयात्मक निदान नहीं हो सक्ता । मस्सा अथवा रसौली मुलायम होनेसे किसी समय नहीं दीख सक्ते, कारण कि गर्भाशयके अन्दरका सब भाग रसौली और मस्सेके समान कोमल होता है । किसी समय पर कमलमुखके होंठके मस्सेके ठिकाने पर मूल होता है । इस लिये उसके ऊपर शस्त्रोपचार करनेके समय इन सब विषयोंके ऊपर ध्यान दे विचारनेकी आवश्यकता है कि, भ्रमसे कोई तन्दुरुस्त भाग न कटजावे । यदि कमलका मुख है तो उसकी बगलमें कमलमुखका छिद्र जो कि गर्भाशयका मार्ग है वह दीखता है और मस्सा

अथवा रसौली है तो उनमें कोई भी छिद्र नहीं दीखेगा न उनमें छिद्रका स्पर्श ज्ञान होगा ॥

मस्सा वा रसौलीकी चिकित्सा ।

चिकित्सा इसकी यही समझना कि ऋतुस्राव होने वा वन्द होनेका समय आवे वहांतक जो ग्रन्थिका-शक्त चिह्न जारी रहा होय तो पीछे वह चिह्न ऐसे ही शान्त पड जाता है । कारण कि ऋतुस्राव अदृश्य समय आनेपर इस ग्रन्थिका जोश कम पड जाता है । चिकित्साका क्रम यह है कि इस ग्रन्थिको लेकर होता हुआ जो रक्तस्राव उसको वन्द करना है । अरगट नामकी औषध खानेसे अथवा उसकी पिचकारी पेटकी चर्म (जिल्द) में मारनेसे रक्तस्राव वन्द हो उस ग्रन्थिका आकार भी छोटा हो जाता है । ब्रोमाईडओफ पोटासीयम अथवा आयोडाईडओफ पोटासीयम ये दो दवा भी इस ग्रन्थिके आकारको छोटा करनेमें उपयोगी हैं । अति शक्त रक्तस्रावके लिये अत्यार्त्तवके प्रकरणमें जो सव औषधियाँ लिखी गइ हैं वे सव इस ग्रन्थिके रक्तस्रावमें उपयोगी हैं और स्पेंजका टुकडा अथवा लीन्टका टुकडा रखना, इसके दवावसे भी रक्तस्रावको रुकावट पहुँचती है । कदाचित् रक्तस्राव ऐसेका ऐसा ही निरन्तर हुआ करता होय तो कमलमुख प्रफुल्लित करना, कमलमुख प्रफुल्लित करनेसे गर्भाशयका भाग अधिक संकुचित होता है और इससे ग्रन्थिके भी संकुचित होनेका कारण वनता है और कमलमुख प्रफुल्लित करनेसे रक्तस्रावकी रुकावटके लिये स्तम्भन पिचकारी मारी जा सक्ती है । टींकचर आयोडीन अथवा टींकचरफेरीपरकलोरीडी अथवा दूसरा कोई स्तम्भन पदार्थ समान भाग जलमें एकत्र मिलाना और उसकी पिचकारी लगानी । सवसे अन्तके दर्जेका इलाज ग्रन्थि काटकर निकालनेका है । लेकिन ग्रन्थिको काटकर निकालना यह जरा कठिन और भयंकर क्रिया है, इससे ग्रन्थिको लेकर जीवनकी समाप्तीका भय होता है । इसी प्रकार ग्रन्थिका काटना छेदनादि किसी प्रसंगपर कोई २ डाक्टर अजमायशके लिये करते हैं, सो इस क्रियाका फल मृत्यु ही समझा जाता है और इस व्याधिका अन्तिम परिणाम भी मृत्युको देनेवाला है, सो मूलव्याधि तथा शस्त्रोपचार दोनोंका फल अन्तके दर्जे मृत्यु है, इससे इस व्याधिकी निवृत्तिके लिये हमारी रायमें शस्त्रोपचार कराना वा करना निरर्थक है । अर्शके मस्सेकी चिकित्सा भी ग्रन्थिके समान ही है, रक्तस्रावके लिये ग्रन्थिमें वतलाया हुआ उपाय काममें लग सक्ता है । रक्तस्राव इस रोगमें समय समय पर होता है और जहाँतक मस्सा काटना अथवा जलाकर वा गलाकर निकालनेमें न आवे वहाँतक रक्तस्राव वन्द नहीं होता । श्वेत तन्तुमय ग्रन्थिको काटकर निकालना विशेष जोखम भरा हुआ काम है, परन्तु मस्सा काटकर निकालना किसी प्रका-

रकी जोखमका काम नहीं है तो भी मस्सा काटनेके प्रथम रोगीकी शारीरिक स्थिति उत्तम होवे ऐसा उपाय करके प्रथम उसको बलवान करलेवे । समय समय पर रक्तस्राव होनेसे रोगी स्त्रीका शरीर जो क्षीणताको पाया हुआ होय तो प्रथम उस क्षीणताकी निवृत्ति करना और रोगीको थोडे दिवस विश्रांति देनी (आरामतलबीमें) रखनी और स्त्रीके योनिमार्ग तथा गर्भाशयमें स्तम्भन पदार्थोंकी पिचकारी मारनी, इसके अनन्तर कमल-मुखको प्रफुल्लित करना । कमल मुखको विस्तारक यन्त्रसे चौडा कर इसके अनन्तर एक लम्बे चीमटेसे मस्सेको बराबर पकडकर और मस्सेमें बल देकर (ऐंठादेवे) कमजोर करलेना कारण कि ऐंठा देनेसे मस्सेकी मूल (जड) पतली हो जाती है और मस्सेका मूल पतला होनेसे मस्सा सरलतापूर्वक निकल आता है और ऐंठा देनेसे मस्सेके मूलकी सिरा संकुचित हो जाती है, इससे अधिक रक्तस्राव नहीं होता और काटकर निकालनेसे अधिक रक्तस्राव होता है और बल देनेमें जो थोडा बहुत रक्तस्राव

आकृति नं० ३१ देखो ।

होता है वह शीतल जलकी पिचकारी अथवा किसी स्तम्भन औषधकी पिचकारी मारनेसे बन्द हो जाता है । अथवा योनिमार्गमें कपडा दबाकर रखनेसे भी रक्त बन्द हो जाता है । और (ईकझीअर) नामका एक शस्त्र लोहेका आता है उसमें लोहेका वाला होता है इस बालेमें मस्सेके मूलको लेकर उसको तंग करनेसे भी मस्सा गिर पडता है, और उसके अन्दरका (केन्युला) को पीछे (ईकझीअर) में खींचकर उसके बालेको तंग करना, बाला बिलकुल अर्शके मूल (जड) के पास तंग करनेके समय ध्यानमें रखना कि, गर्भाशयका कोई भाग उस शस्त्रके अन्दर न आजावे और इस शस्त्रोपचारकी आकृति ३१ को देखनेसे जो (ईकझीअर) तंग करनेके समय किसी प्रकारका दर्द होय तो समझना कि गर्भाशयका कोई भाग शस्त्रके अन्दर आ गया है । इससे उसको उसी समय ढीला कर देना, इस शस्त्रोपचारमें किसी प्रकारका दर्द नहीं होता और इससे स्त्रीको बेहोश (मूर्छित) करनेकी जरूरत नहीं । अर्श इस पद्धतिके प्रमाणसे काटनेके पीछे वह बाहर निकल आता है । कदाचित अर्शका मस्सा विशेष मोटा हो तो पीछे उसको काटकर निकाल लेना और उसकी पूरी हिफाजत रखना और रोगी स्त्रीको बिस्तर पर सुलाकर रखना, जो दूसरे शस्त्रोपचारके पीछे अन्य रोगियोंकी हिफाजत करनी पडती है वैसेही इस रोगीकी करना । रसौलीकी चिकित्सामें केवल उसको चीरकर उसके अंदरसे रस निकाल लेना और स्तम्भन औषधियोंके जलसे प्रच्छालन करना ।

डाक्टरीसे गर्भाशयका अर्बुद (युटराइनक्यानसर)

अर्बुद अर्थात् (क्यानसर) नामका रोग अति दुःखदाई है । यह कितने ही

समय गर्भाशय पर उत्पन्न होता देखनेमें आता है, यह रोग प्रायः आरम्भमें कमल-कन्दके भाग पर उत्पन्न होता है और पीछेसे गर्भाशयके ऊपरके भागमें तथा आस-पासके भागोंमें पूर्णरीतिसे व्याप्त हो जाता है । इस व्याधिके विशेष चिह्न इस प्रकारसे देखनेमें आते हैं । यदि गर्भाशयमें अर्बुद क्यानसर होवे तो योनिमेंसे अति दुर्गन्ध आती है और गाढा पानी निकलता रहता है और किसी समय थोडी गंध मारती-है । और कितने ही समय इतनी अधिक दुर्गंध योनिमेंसे निकलती है कि स्वयं रोगी स्त्री तथा समीपके मनुष्योंसे सहन नहीं हो सक्ती । कभी २ अचानक रक्तस्रावका प्रवाह आरम्भ हो जाता है और अत्यन्त वेदना होने लगती है, पीछेसे यह वेदना इतनी वढ जाती है कि नशेवाली औषधियां देनेके अतिरिक्त निद्रा विलकुल नहीं आती पाचनशक्ति स्त्रीकी नष्ट हो जाती है । भौंर (चक्कर) आने लगते हैं वमन होने लगती है आहार करनेकी रुचि नष्ट हो जाती है मानसिक ग्लानि उत्पन्न हो जाती है । स्त्रीको दिनपर दिन निर्वलता दवाती हुई चली जाती है और शरीर क्षीण होता जाता है, मुख फीका पीला फिकरवन्द और दुखित दीखता है । स्त्रीकी योनिको देखनेसे कमलके ठिकाने छोटा वा वडा अनियमित आकारका कठिन क्षत अंगुलीसे स्पर्श होता है । गर्भस्थान स्वाभाविक चलित होता है सो वह इस रोगके कारणसे अचल हो जाता है, जैसे जैसे अर्बुद फैलता है तैसे तैसे योनि मूत्राशय इत्यादि आ-सपासके भाग कठिन होकर क्षत विस्तृत होता जाता है । गर्भाशयका कितना ही भाग सड जाता है, कितने ही समय मूत्र और सफराका भाग (मलका भाग) सड जाता है और सडकर सव मार्ग एकत्र हो जाते हैं । ऐसी महादुःखदायक स्थिति एक दो शाल भोगकर रोगी पंचत्वको प्राप्त हो जाता है ।

गर्भाशय-अर्बुदकी चिकित्सा ।

इस अर्बुद रोगकी चिकित्साकी वेदना निवृत्त करनेका उपाय किया जाता है । इसके विलकुल निवृत्त होनेकी चेष्टा विशेष कम रखनी पडती है । प्रथम स्त्रीके शरीरको वल देनेवाले औषध प्रयोग देवे और आहार भी पौष्टिक देवे पौष्टिक और पाचन तथा अग्निवर्द्धक औषधियोंका सेवन कराना योग्य है । आमोनिया, सि-नकोना, फासफरीकएसिड, कोनाईन, काटलीवर आईल, पेपसीन इत्यादि औष-धियाँ देना योग्य है । पीडाकी शान्तिके लिये तथा निद्राके लिये केफ (नशा) लाने-वाली दवा देनी चाहिये, जैसा मोर्फिया अफीम, भांग इत्यादि अथवा क्लोरलहाईड्रेटकी परिमित मात्रा देनी तथा मोर्फियाकी पिचकारी लगानी । इन उपरोक्त औषधियोंके प्रयोग चिकित्सककी रायके ऊपर निर्भर हैं, देशकाल और रोग तथा रोगीकी अनुसार उपयोग करे ।

टिंकचर हायोसाईमस ६० टीपा लाईकरमोर्फिया २० टीपा कोम्पाउन्ड टिंकचर ओफ कलोरोफोर्म ३० टीपा गोंदका जल २ ड्राम टिंकचरओफईन्डीयन हेम्प (भांगका अर्क) २० टीपा साफ जल १ ओंस् इन उपरोक्त औषधियोंको मिलाकर एक वा दो मात्रा करके रात्रिके समय रोगीको निद्रा आनेके निमित्त देवे, दर्दकी शान्तिके लिये योनिमार्गके अन्दर वेलोडोनाकी वत्ती वा गोली बनाकर रक्खे। रक्तस्रावकी रुकावट करनेके लिये ग्यालिकएसिड, सुगरलेड, दालचीनी इत्यादि औषधियाँ देवे। अर्बुदके ऊपर जालदलाईकर फेरी लगानेसे रक्त बन्द हो जाता है, फिटकरी अथवा ग्यालिकएसिडके पानीकी पिचकारी मारनेसे भी रक्तस्राव बन्द हो जाता है और दुर्गन्ध नष्ट करनेके लिये उत्तम उपाय यही है कि स्त्री अपनी योनिको दिनमें दो समय औषधियोंके जलसे धोती रहे और हररोज एक समय स्नान करती रहे। वस्त्र स्वच्छ पहने योनिमार्गमें नीचे लिखी हुई औषधियोंमेंसे किसी भी औषधको पानीमें मिलाकर पिचकारी लगावे। कार्बोलिकएसिड ३० ग्रेन कलोराईडओफझींक २० ग्रेन कीयासोट १ ड्राम परमांगनेट ओफपोटास ४० ग्रेन ऊपर लिखी हुई औषधियोंमेंसे कोई भी दवा लेकर उसको एक पाईंट पानीमें मिलाकर योनिमार्गमें पिचकारी लगाना और मैथुन करनेका सम्बन्ध विलकुल त्याग देवे। किसी समय अर्बुद आरम्भमें छोटा देखनेमें आवे तो उसको उसी समय शस्त्रसे काटकर निकाल देना सबसे उत्तम उपाय है। यदि इस अवस्थामें यह व्याधि निवृत्त और निर्मूल होजावे तो पीछेके बडे दुःखोंसे स्त्रीको छुटकारा मिलना संभव है।

गर्भाशयके मस्से ग्रन्थि अर्बुद चिकित्सा समाप्त।

यूनानी तिब्बसे गर्भाशयके एक तर्फ झुकजानेकी व्याख्या।

गर्भाशयका एक तर्फ झुक जाना इसके कारण और इलाज गर्भ न रहने और सन्तान न होनेके प्रकारकी व्याख्यामें विशेष वर्णन कर चुके हैं और रोगकी परीक्षामें संदेह पडता है कि रोग कौनसे अंगमें है, सो तबीबको उचित है कि रोग और अनन्तर कारणोंमें खूब विचार करे, जिससे कि किसी प्रकारका भ्रम न रहे और गर्भाशयके फिर जानेका चिह्न स्त्रियाँ अंगुली लगाकर जान लेती हैं, अतः वर्णन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जब स्त्रियोंको गर्भाशयके एक ओर झुक आनेके कारणके उपरान्त मरोडा उत्पन्न हो जैसे विशेष भार (वजनदार चीज) के खींचनेका वा उठानेका तथा कूदने या डरनेका अवसर आ पडे तो उचित है कि प्रथम यह मालूम करे कि गर्भाशय फिरा हुआ है कि नहीं फिर मरोडेका इलाज करे।

यूनानी तिब्बसे गर्भाशयके झुक जानेकी व्याख्या समाप्त।

इस इतनी वडी व्याधिके विपयमें यूनानीवालोंकी तसखीस एक घटमेंसे विन्दुके समान भी नहीं है, जव कि निदान ही नहीं है तो चिकित्सा किस विपयकी करनेको उद्यत होवें ।

डाक्टरीसे गर्भाशयका स्थानान्तर होना वा वक्र होना ।

इस व्याधिवाली जितनी स्त्रिया दृष्टिगत हुई उनमेंसे २५ सालकी उमरसे न्यून एक भी नहीं थी, प्रायः इससे ऊँची ही उमरकी देखनेमें आई हैं और शारीरिक विद्याके ज्ञाताओंका सिद्धान्त भी यही है कि यह व्याधि २५ वा ३० वर्षके उपरान्त ही देखी जाती है । वन्ध्यादोपको प्रतिपादन करनेवाले कारणोंमें उसके पृथक् पृथक् स्थानान्तर होनेवाले दोप प्रधान हैं, कारण कि गर्भाधान रहनेके मुख्य २ हेतुओंमें एक यह नियम भी मुख्यत्वको लेकर है कि, गर्भाधानकी स्थितिके लिये गर्भाशय अपने स्वाभाविक नियत स्थल पर होना चाहिये, याने वह योनिमार्गके सीधेमें होना चाहिये । गर्भाशयके स्थानान्तर होनेसे योनिमार्गके साथका यथार्थ सीधा सम्बन्ध है, वह छूट जाता है । इसके इस प्रसंग पर गर्भाशयका शारीरिक वरावर जनानेकी आवश्यकता है । प्रथम अध्यायमें गुह्येन्द्रिय शारीरिक प्रकरणमें देखो, अलग अलग प्रकारके गर्भाशयके स्थानान्तर लक्षपूर्वक निदान करनेके प्रथम उनका योग्य स्थल कराया गया है अर्थात् गर्भाशय तथा कमलमुख अपनी योग्य स्थितिमें होय तव वह कैसी रीतिसे जान पडता है, इसका वरावर ध्यान रखना चाहिये । आकृति ३२ में गर्भाशयकी योग्य स्थिति और समीपवर्त्ती मर्मस्थानोंके साथ उसकी आरोग्यताकी स्थितिका सम्वन्ध वतलाया जायेगा, सो नींचेकी आकृतिमें सव अङ्गोपाङ्ग यथास्थान स्थितिको लक्ष करके देखो, इसको वरावर देखनेसे गर्भाशयकी वक्रताकी स्थिति पूर्णरूपसे विचार सकोगे, जवतक गर्भाशयकी वक्रताका पूर्ण ज्ञान न हो तवतक पूर्णरूपसे चिकित्सामें प्रवृत्ति नहीं हो सक्ती, क्योंकि गर्भाशयकी यथार्थ स्थिति और वक्र तथा स्थानान्तर स्थितिको समझ कर ही उसको वक्रस्थितिसे सीधी स्थितिमें और स्थानान्तरसे नियतस्थानमें ला सक्ते हो । सो नींचे गर्भाशय तथा उसके उपाङ्गोंको यथास्थान देखो, समझो ।

आकृति नं० ३२ देखो ।

गर्भाशय और उसके समीपवर्त्ती मर्मस्थान ।

नं० १ गर्भाशयका स्थूलपिण्ड, २ गर्भाशयके अन्दरकी पोलका भाग, जिसमें गर्भस्थ वालक रहता है । ३ कमलमुखका अग्र ओष्ठ, जो कि योनिमार्गसे अडता हुआ है । ४ कमलमुखके अन्दरका भाग । ५ कमलमुखका छिद्र । ६ योनिमार्ग । ७ योनिमुख । ८ मूत्राशय । ९ मूत्रमार्गकी नली । १० योनिमार्ग और मूत्राशयके वीचका

परदा । ११ मलाशय अर्थात् सफराके आंतडाका आकार १२ से १२ तक मलाशयके आंतडाके अन्दरका पोला भाग । १३ गुदाका द्वार । १४ मलाशय और योनिमार्ग दोनोंके बीचका पर्दा । १५ वेसनीस्थल (योनि और गुदाके बीचका बाह्य प्रदेश) जिसको सिवनी भी बोलते हैं । १६ मूत्राशय और गर्भाशयके बीचका (पेटके परदे) का भाग । १७ मलाशय और गर्भाशयके बीचका (पेटके परदे) का भाग । १८ वस्तिस्थानकी अग्र कमानकी अस्थि । १९ अन्तर्योनि ओष्ठ । २० बाह्य-योनि ओष्ठ स्त्रीको बायें करवट अर्थात् आधी खडी हुई स्थितिमें (आकृति १२ वीं देखो) सुलाकर और ऊपर कथन किया हुआ नं० ७ में जो योनिमुख है वहांसे बायीं तर्जनी अंगुली प्रवेश करके उसको धीरे धीरे नं० ६ में जो योनिमार्ग दर्शाया है उसमें फेरे । वहाँ योनिमार्ग पूरा होगा कि नं० ३ में जो कि कमलमुखका अग्र ओष्ठ योनिमार्गसे अडता हुआ है, तर्जनी अंगुलीसे स्पर्श मालूम होगा और अंगुलीका पोरुआ अटकेगा, जब कि इस स्थलसे जरा पीछेकी तर्फ अंगुली नमने आवे तो कमलमुखका छिद्र नं० ५ के स्थलमें मालूम पडेगा । अब इस प्रमाणसे कमल-मुख सरलतापूर्वक जान पडा तो समझना चाहिये कि वह योनिमार्गके समक्ष सीधी दिशामें है और अपने योग्य नियत स्वाभाविक तथा आरोग्यताकी स्थितिमें स्थिर है । परन्तु जो आगे अथवा पीछेको खिसका हुआ होय तो इस प्रकार टटोलनेसे आगे वा पीछेके भागकी तर्फ जोरसे खींचोगे तब कमलमुखका स्पर्श होगा । विवृत गर्भाशयमें कमलमुख खिसका हुआ होता है, कमलमुखकी यथार्थ योग्य दिशा जान-लेनेके पीछे यह निश्चय करना चाहिये कि गर्भाशयका स्थूल पिण्ड यथा-योग्य स्थलपर नियत है कि नहीं, इसके जाननेकी भी अति आवश्यता है । कमल-मुख योग्य स्थानपर हैं ऐसा निश्चय होने पीछे गर्भाशयके स्थूलभागकी परीक्षा करे । अंगुलीको उसके दोनों बाजुओं पर अन्दरकी पोलमें फेरनेसे गर्भाशयका स्थूल अंगु-लीके फेरनेके साथ रोहू मछलीके मुखकी समान खुले हुए मुखका आगे तथा ऊप-रके भागकी तर्फ जान पडेगा और अंगुलीके पोरुआका धक्का मारनेसे ऊपरको जाता हुआ और पीछे अंगुलीके पोरुआके ऊपर आताहुआ जान पडेगा । वह पीछेके भागकी तर्फ अथवा आगेके भागकी तर्फ ढलाहुआ न जान पडे और उसी प्रकार गर्भाशयके स्थूल पिण्डमें किसी प्रकारका खांचा है ऐसा भी न जान पडे तो समझलेना कि विवृत्त गर्भाशय आगेको वा पीछेको ढला हुआ होता है और विकृत गर्भाशयमें उसके आगेके वा पीछेके भागमें खांचा होता है । इस प्रमाणे गर्भाशयका योग्य स्थल निश्चय करने पीछे वह कैसी पृथक् पृथक् रीतिसे स्थानान्तर हुआ है उसके जाननेकी आवश्यकता है। वन्ध्यत्व स्थापित करनेवाले कारणोंके तरीकेसे (१) गर्भा-

शयकी अग्र वक्रता (२) गर्भाशयकी पश्चात् विवृत्तता और (३) गर्भाशयकी पश्चात् वक्रता ये मुख्य हैं, इसके अतिरिक्त वह (४) आगेको भी विवृत्त होता है, वैसे ही वह नीचेको ढला हुआ इतना कि योनिमार्गमें उतरा हुआ होता है और (५) इसकी अपेक्षा इसको गर्भाशय भ्रंश भी कहते हैं। अग्र विवृत्तता वंध्यत्व स्थापित करती है, परन्तु यह कभी २ किसी २ स्त्रीमें ही मिलती है। प्रथम कथन किये हुए तीन कारण वन्ध्यादोष स्थापित करनेवाले नियमसे विशेष स्त्रियोंमें देखनेमें आते हैं। गर्भाशयके भ्रंशके साथ गर्भाशय विवृत्त अथवा विकृत हो जाता है, यह व्याधि स्त्रियोंकी सामान्य है, और वह वन्ध्या स्त्रियोंकी अपेक्षा बालक होनेवाली स्त्रियोंमें विशेष देखी जाती है । इससे इस व्याधिके विषयमें गणना न कर, स्त्रियोंके दूसरे साधारण रोगोंके प्रकरणमें गणना कियी गई है। इस प्रकरणमें प्रथम गर्भाशयकी अग्रवक्रताकी स्थितिका स्वरूप दिखलाते हैं।

(गर्भाशयकी अग्रवक्रता) यह भी वन्ध्या दोष स्थापित करनेमें गर्भाशयका अधिक सहायभूत कारण है। इस व्याधिमें कमलमुखका भाग वैसे ही गर्भाशयका स्थूलपिंड भी पेटकी तर्फ वढा हुआ होता है। और जो भाग वढा हुआ होता है उस प्रमाणे उसकी चिकित्सा करके उसको अपने नियत स्थल पर लानेकी अति आवश्यकता है। अग्र वक्रताकी अपेक्षा दूसरी चाहे जिस रीतिसे गर्भाशयका स्थानान्तर हुआ होय तो उसमें स्त्रीके वन्ध्या रहनेका इतना भय नहीं रहता। और दूसरे प्रकारका स्थानान्तर स्त्रीमें होय तो उसके होते भी किसी समय पर स्त्रीको गर्भाधान रह जाता है। यदि उसमें अग्र वक्रताका दोष होय तो उससे गर्भाधान कदापि नहीं रहने पाता, दूसरे सब स्थानान्तर पीछेसे कितने ही कारणोंको लेकर होते हैं और अग्रवक्रताका दोष होय तो यह जानना चाहिये कि यह स्वभावजन्य कुदरतीही है और उसके साथ गर्भाशयके अन्तरमुख अथवा बाह्यमुखका संकोच भी होता है। कितने ही समय गर्भाशयकी अथवा अन्तःफलकी कुछेक न्यूनता (कमी) भी होती है। वैसे ही अग्रवक्रतावाला गर्भाशय प्रसंगवश अपूर्ण प्रफुल्लित भी होता है, साधारण रीतिसे कौमार गर्भाशय (कुमारी अक्षत योनि स्त्रीका गर्भाशय) आरोग्य स्थितिमें भी सहज साज (कुछ कुछ) अग्रवक्रतावाला होता ह। कुछ कुछ अग्रवक्रता जो कौमार गर्भाशयकी योग्यता दर्शाती है तो भी जो वह अग्रवक्रता वढ जावे तो पूर्णव्याधिरूप हो जाती है। इसका कारण यह कि अग्रवक्रता वढनेके लिये गर्भाशयके ऊपरका और आगेका भाग (ऊपरका याने गर्भाशयके पीछेके माथे तक और आगेका पेटकी तर्फका भाग) कुछेक सूजनके माफिक गुलगुल और ग्रन्थीरूप होना चाहिये (आकृति ३२ में दिखलाया हुआ) नं० ८ और ११ तथा १२ वाला इन

तीनों भागोंकी परीक्षा करनेसे माळूम पडेगा कि मूत्राशय, गर्भाशयके आगेके भागमें है और मलाशय याने मळका नल सफराका भाग मर्मस्थान गर्भाशयके पीछेके भागमें है । इससे जब मूत्राशय खाली होय उस समय मल त्यागनेके लिये जो अधिक जोर करनेमें आवे तो गर्भाशय आगेके भागकी ओर हटकर मुड जाता है । इस कारणको लेकर कितनी ही स्त्रियोंका तक्षिण मरोडसे गर्भाशय आगेके भागकी तर्फ टेढा पड जाता है । इसके अतिरिक्त आगेके भागमें पाक आदि होनेसे वहां भार अधिक हो जाता है और गर्भाशय आगेके भागकी तर्फ टेढा (बांका) पड जाता है और ऐसा भी हो सक्ता है कि चाहे जिस कारणसे गर्भाशय आगेके भागकी तर्फ टेढा (बांका) होगया होय और उसके ऋतुस्रावके रक्तको बाहर आनेमें रुकावट होय कारण कि गर्भाशयके टेढा होनेसे उसका अन्तर्मुख संकुचित हो जाता है, तो इससे पीछे पाक होना संभव है और इस रीतिसे टेढा होनेके साथ उसका विवृत होना भी संभव है, इतना कि ऊपरका भाग आगेको आता है और कमलमुख पीछेके भागमें जाता है । अर्थात् ऐसा होनेमें सम्पूर्ण गर्भाशय फिरता है (गर्भाशय अग्र विवृत होता है) कितनी ही स्त्रियोंमें ऐसी रीतिकी अग्रवक्रता स्वाभाविक ही होती है, पीछेसे गर्भाशयकी अग्रवक्रताके साथ अग्रविवृतपन भी धारण कर लेता है । स्वभावजन्य अग्रवक्रता और पीछेसे उत्पन्न हुई अग्रवक्रतामें अन्तर इतनाही होता है कि पीछेसे उत्पन्न हुई अग्रवक्रतामें गर्भाशयका अन्तर्मुख विशेष संकुचित और चपटा हो जाता है । इससे समय पर ऋतुधर्मके रक्तके निकलनेमें रुकावट होती है और किसी २ समय पीडितार्त्तव जैसा जान पडता है । स्वभावजन्य अग्रवक्रतामें वन्ध्यत्व दोषके अतिरिक्त दूसरा कोई भी चिह्न नहीं माळूम पडता । स्वभावजन्य अग्रवक्रता पश्चात् अग्रवक्रताकी अपेक्षा वन्ध्यादोष स्थापित करनेका विशेष बलवान् कारण है । स्वभावजन्य अग्रवक्रतामें कमलमुखका अग्र भाग पश्चात् भागकी अपेक्षा छोटा होता है । और योनिमार्गका भी अग्र भाग पश्चात् भागकी अपेक्षा छोटा होता है । गर्भाशयकी अथवा गर्भ अण्डकी कुछेक भी न्यूनता (कमी) स्वभावजन्य अग्रवक्रतावाली स्त्रीमें मिल आती है, जिसका पश्चात्जन्य अग्रवक्रतामें अभाव होता है । कितने ही समय गर्भाशयका भाग मुडाहुआ होता है और कितने ही समय कमलका भाग मुडाहुआ होता है और कितने ही समय ये दोनों ही भाग मुडे हुए होते हैं ।

आकृति नं० ३३–३४–३५ देखो ।

गर्भाशयका कौनसा भाग मुडा हुआ है, यह मुख्य बात ध्यान रखने योग्य है । कारण कि जो भाग मुडा हुआ होय उस भागको सीधा करनेकी अधिक आवश्यकता ह और पृथक् पृथक् भागोंको सम करनेके लिये पृथक्

पृथक् युक्ति काममें लाई जाती है । उपरोक्त कथन कियेहुए कारणोंको चिकित्सक बराबर ध्यानमें रक्खे और जो जो चिह्न इस व्याधिमें होते हैं जैसे कि स्वभावजन्य अग्रवक्रतामें कितने ही समय वन्ध्या दोषके अतिरिक्त दूसरा कोई भी चिह्न नहीं जान पडता और जब ऐसी पीडा रहित अग्रवक्रता होय तब ऐसा समझना कि अग्रवक्रता अधिक नहीं है । परन्तु जब वह अधिक होती है तब स्त्रीको प्रथम ऋतुस्राव (सबसे आदिका ऋतुस्राव) विशेष विलम्बसे आता है और विलम्बसे होनेपर भी वह अति दुःखदायक होता है । ऋतुस्रावका रक्त विशेष कम आता है और अति पीडायुक्त रक्त निकलता ह, ऐसी स्थितिमें अन्तर्मुखका भी संकोच होता है और ऋतुधर्मका रक्त पूरापूरा बाहर नहीं आने सक्ता । इस करके स्त्रीके गर्भाशयमें रक्तका संग्रह हो जाता है और रक्तका जमाव होनेसे पेटमें दर्द रहता है । ज्वर चढ आता है और उसकी स्थिति विशेष दुःखदाई हो जाती है । कितने ही समय स्त्रीसे बिलकुल परिश्रम नहीं सहन होता, उसको बिस्तरमें पडा रहना पडता है और गर्भाशयके जीर्ण रोगवाली स्त्रीकी जो दुःखदायी दशा अपने दृष्टिगत होती है वैसी ही दशा किसी २ समय पर अग्रवक्रतावाली स्त्रीकी भी हो जाती है । यदि निदानसे देखा जावे तो जोकि गर्भाशयका केवल ऊपरका भाग अग्रवक्र होय तो कमलमुख अपनी योग्य स्थितिमें जान पडेगा और उसके आगेके भागमें ग्रन्थिके समान गर्भाशयके ऊपरका भाग जान पडता है और कमलमुख तथा गर्भाशयके बीच खाँचा जान पडता है और गर्भाशय खाँचेसे नीचले भागमें मुडाहुआ जान पडता है, जो कमलमुख अग्रवक्र होय और गर्भाशय अपने योग्यस्थल पर होय तो कमलमुखका स्पर्श अंगुलीसे शीघ्र नहीं होगा और उसको आगेके भागकी तर्फ खैंचना पडेगा और गर्भाशयके भागमें ग्रन्थि नहीं जान पडे, परन्तु कमलमुखके ऊपरके भागमें खांचा जान पडे और वहाँसे गर्भाशय अपने योग्य स्थल पर है ऐसा निश्चय होजाय जो दोनों भाग मुडे हुए होयँ तो कमलमुखका शीघ्र स्पर्श नहीं होगा और अंगुलीसे आगेको खींचना पडेगा । किन्तु इतनाही नहीं गर्भाशय भी ग्रन्थि रूपमें ही कमलमुखसे अडाहुआ जान पडेगा और उन दोनोंके बीचमें खांचा नहीं है ऐसा जान पडेगा ।

गर्भाशयकी अग्रवक्रताकी चिकित्सा ।

इसकी चिकित्साकी यही व्यवस्था है कि अग्रवक्रताका योग्य उपाय करनेकी अधिक सँभाल रखनेकी आवश्यकता है और गर्भाशय ऐसी उस्करार्इ हुई स्थितिमें होता है कि शीघ्र उसको विशेष श्रम देनेमें आवे तो उस श्रमकी हरारतसे शीघ्र ही तीक्ष्ण शोथ उत्पन्न हो महादुःखदायक परिणाम निकलता है । और जो गर्भाशयमें कोई भी दुःखदायक चिह्न न होय और रोगीकी

शारीरिक स्थिति उत्तम होय तो गर्भाशयशलाका समय समय पर अन्दर प्रवेश करनी चाहिये । ऋतुधर्मका रक्तस्राव दीखता हुआ बन्द होनेके तीन चार दिवस पीछे यह उपाय करना और कमसे कम एक सप्ताहमें दो समय गर्भाशय-शलाका प्रवेश करनी । इस क्रियाके करनेसे आगामी ऋतुस्राव अधिक सरलतासे और सुखपूर्वक अधिकतासे आवेगा आर स्त्रीको पीडा भी कम माॡम पडेगी और गर्भाशयके अन्दर सीधी खडी रह सके ऐसी पेसरी यन्त्र (आकृति १४ का) पहराना योग्य है कि नहीं ? इसका भी निश्चय कर लेना उचित है । यदि जो गर्भाशय शलाकायन्त्र गर्भाशयके मुखमें प्रवेश करनेसे स्त्रीको विशेष दुःख होय और गर्भाशयमें तीक्ष्ण शोथ उत्पन्न हो आवे तो गर्भाशयके अन्दर जो जो यन्त्र प्रयोग प्रवेश करनेकी प्रक्रियामें विधान किये गये होयँ वे सब प्रवेश प्रक्रिया एकदम बन्द करके स्त्रीको विस्तरपर सुलाकर रखना उत्तम है । पौष्टिक हलका आहार और पौष्टिक औषधिया सेवन कराना, अग्रवक्रताके रोगमें सदैव गर्भाशयके अन्तर्मुखमें संकोच होता ह और गर्भाशय कुछेक न्यून (कम) प्रफुल्लित हुआ रहता है और इससे जो गभाशिय सहन कर सके तो विस्तारक साधन जो यन्त्रादि हैं प्रक्रियामें लानेकी अति आवश्यकता है । टेंट आदि यन्त्र प्रवेश करनेसे गर्भाशयका अन्तर्मुख चौडा हो जावेगा और कमलमुखकी ही अग्रवक्रता होय तो वह भाग भी सीधा हो जायेगा और कठिनता त्याग कर कोमलता धारण करेगा । कमलमुखकी अग्रवक्रतामें गर्भाशयको पेसरी यन्त्रसे सहायता पहुंचानेकी कुछ आवश्यकता नहीं है, केवल कमलमुख और उसका मार्ग जरा विस्तृत होवे इतना ही ठीक समझना, फक्त इतना सुधार करनेसे समय पर वन्ध्यादोष निवृत्त होकर स्त्रीके मर्मस्थान कुछ सुधर जाते हैं । कदाचित कमलमुख बहुत संकुचित होगया होय और उससे ऋतुस्रावके समय विशेष शक्त पीडा होती होय तो कमलमुखके पीछेके भागमें छिद्र करना, यही उत्तम उपाय है । गर्भाशयके ऊपरके भागकी अग्रवक्रता होय और कमलमुख बराबर आरोग्य होय तो योनिमार्गमें दो अंगुली प्रवेश करके कमलमुखके आगेके भागमें ले जाकर जहाँ गर्भाशयके ऊपरका भाग जो अगले भागकी तर्फ नीचेको मुडकर नम आया है उसके ऊपर और पीछेके भागकी तर्फ दबाना । गर्भाशयमें शलाका प्रवेश करके वह बराबर जहाँतक अन्दर प्रवेश होती जाय वहाँ तक प्रवेश करके उसके दस्तेको धीरे धीरे आगेके भागकी तर्फ फेरे, जिससे शलाकाकी अनी पीछेके भागकी तर्फ जावे और उसके साथ गर्भाशयका ऊपरी भाग जो अग्र है निवृत्त होने पश्चात् वक्र होय और पेटके ऊपर दाबनेसे भी गर्भाशयके पीछे खींचनेमें सरलता पडती है । ऐसा करनेके बाद पीछे वह आगेके भागकी तर्फ पुनः

न आवे, इसलिये उसको उसके अनुकूल पेसरीयन्त्र पहराना योग्य है । जिससे पेसरीयन्त्रका सहारा लगे इस गर्भाशयकी स्थितिके लिये अनेकप्रकारकी पृथक् पृथक् जातिकी पेसरीयन्त्र आते हैं । परन्तु जिस रीतिसे दूसरे स्थानान्तरसे पेसरी या गर्भाशयको ढलनेकी रुकावट करती हैं ऐसा अग्रवक्रतामें नहीं । गर्भाशयमें सीधी खडी रहे ऐसी पेसरियाँ हैं ये ही पेसरियाँ कुछ उत्तम लाभ पहुंचाती हैं । आकृति नं० १४ की पेसरी पहरानी विशेष उपयोगी है, कारण कि इससे पीडितार्त्तव तथा वन्ध्यादोष दोनों ही निवृत्त होते हैं । इसके अतिरिक्त और भी दूसरी कितनी ही जातिकी पेसरी गर्भाशयको सीधा करनेवाली आती हैं । जिनका उपयोग जिस समय पर उचित समझा जावे उस समय पर गर्भाशयकी योग्यतानुसार काममें लेवे । इन सब पेसरियोंका हेतु एक समान है, जो कमलमुख और गर्भाशयके ऊपरक भाग दोनों वक्रताको ग्रहण किये होयँ तो प्रथम आगेसे कमलमुखकी अग्रवक्रताका उपाय करके ठीक करे । इसके पश्चात् गर्भाशयके ऊपरके भागवाली वक्रताकी चिकित्सा कर, इनका नियमपूर्वक क्रमसे इलाज करे । गर्भाशयकी पश्चात् विवृत्तता इस व्याधिमें सम्पूर्ण गर्भाशय फिर जाता है और उसके ऊपरका भाग पीछेके भागकी तर्फ अर्थात् मलाशय (सफरा) की तर्फ ढल पडता है और कमलमुख आगेके भागकी तर्फ अर्थात् बस्तिस्थानकी अग्र कमानकी अस्थिकी तर्फ हो जाता है, जिससे सम्पूर्ण गर्भाशय कमलमुख सहित स्थान भ्रष्ट हो जाता है । यह स्थानान्तर कभी २ अधिक निर्जीव (याने कुछ कम होता है और कभी २ वह अधिक विशेषतासे प्रत्यक्ष हुआ दृष्टिगत होता है) इस स्थितिमें रहता है । आकृति ३६ को देखनेसे गर्भाशयकी विवृत्तता कितने दर्जे पर है यह जान पडेगा । काला भाग जो नम्बर हीन लकीरका है वह ठिकाना अपने नियत स्थलपर आरोग्य गर्भाशयका है, इससे इतना ही ध्यानमें आता है कि नियत स्थानपर स्थित गर्भाशय बराबर मध्य (बीच) में नहीं है किन्तु कुछ थोडा अग्र विवृत्त है और पश्चात् विवृत्त गर्भाशयमें अग्र विवृत्त गर्भाशयकी अपेक्षा अधिक स्थानान्तरको प्राप्त हो सक्ता है । यदि इसके कारणोंकी तर्फ दृष्टि दी जावे तो गर्भाशयके बन्धन ढीले हो जानेसे उसके कद (आकार) में और भारीपन (वजनमें) वृद्धि होनेसे उसके पडत निर्बल हो जानेसे और उसमें रक्तका संग्रह होनेसे गर्भाशयका स्थानान्तर होना संभव है । और ये कारण साधारण रीतिसे सब स्थानान्तरोंके समझना चाहिये, ये ही कारण गर्भाशयकी पश्चात्-विवृत्ततामें भी सहायभूत होते हैं । गर्भाधानका वजन गर्भाशयमें बढनेसे तथा योनिमार्गका भ्रंश होनेसे इसी प्रकार गर्भाशयके अन्तर्पिण्डके दीर्घ शोथके उत्पन्न होनेसे तथा गर्भाशयमें मस्सा ग्रन्थि वगैरहके होनेसे गर्भाशय पीछेकी तर्फ ढल जाता है इन कार-

णोंके अतिरिक्त मूत्रके त्यागनेकी इच्छाको रोकनेसे मूत्रका वजन मूत्राशयमें बढ जाता है और वह वजनदार हुआ मूत्राशयका वजन निर्बल गर्भाशयपर दबाव डाले तो गर्भाशय पीछेको ढल जाता है। शुद्ध वन्ध्याकी अपेक्षा नष्ट गर्भितव्यताका यह बलवान् कारण है और कदापि बालक जिस स्त्रीको न हुआ होय उस स्त्रीकी अपेक्षा प्रसव हो चुका होय ऐसी स्त्रीमें यह व्याधि विशेष करके देखनेमें आती है और जो स्त्री तंगपोशाक पहनती है तानकर कमर पट्टी बांधनेसे कमरको पतली और नाजुक बनानेके मोहमें कमरके ऊपर जो शक्त दबाव डालती हैं (कसकर बांधती हैं) उन बे समझ स्त्रियोंको इस क्रियासे यही हानि पहुंचती है कि उनका गर्भाशय पीछेके भागकी तर्फ ढल जाना विशेष संभव है। इस व्याधिके चिह्न विशेष यह हैं कि गर्भाशयके जीर्ण रोगमें जो कुछ चिह्न मिलने चाहिये वो सब इस रोगमें होते हैं। यदि प्रसंग वश कुछ कम स्थानान्तर होय तो भी किसी समय विशेष शक्त चिह्न होते हैं और किसी प्रसंग वश अधिक बढा हुआ स्थानान्तर होय तो कोई भी दुःखदायक अधिक भयंकर चिह्न देखनेमें नहीं आता है। पीछेके भागकी तर्फ ढले हुए गर्भाशयवाली स्त्रीको दस्तकी कब्जीयत रहती है और पेडूमें दर्द रहता है पैरमें भडकन हडफूटन वा फटनेकीसी पीडा रहती है, वांसा दुखता रहता है, कमरमें भी दर्द हुआ करता है, उसके ऋतुधर्ममें भी अन्तर पडा हुआ रहता है, याने ऋतुस्राव नियमपूर्वक नहीं आता है। ऐसी स्थितिवाली स्त्रीको गर्भ रहना अधिक कठिन है अथवा यह भी कहना निरर्थक नहीं है कि, ऐसी स्त्रीके गर्भ रहना असंभव है। कदाचित् ऐसी स्थितिमें किसी स्त्रीको गर्भ रह भी जावे तो वह गर्भ पूर्ण अवधिके मास व्यतीत करके सन्तानरूपमें उत्पन्न नहीं होता। किन्तु गर्भ स्राव वा पात होकर निकल जाता है। निदानके तरीकेसे अंगुली प्रवेश करके इसकी परीक्षा कमलमुख बास्तिस्थानकी अग्र कमानकी अस्थिसे नीचे आया हुआ जान पडता है और गर्भाशयका ऊपरका भाग गोलडलेके रूपमें मलाशयके नल (याने सफराके पास) पछिके भागमें जान पडेगा यह स्थिति इसकी निदानके कायदेसे देखी जाती है।

गर्भाशयकी वक्रताकी चिकित्सा समाप्त।

डाक्टरीसे गर्भाशयकी पश्चात् विवृत्तताकी चिकित्सा।

चिकित्सा इसकी यह है कि गर्भाशयको अपने स्वाभाविक नियत योग्यस्थल पर रखना यही इसका सर्वोत्तम उपाय और चिकित्सा है। इसके अनन्तर गर्भाशयको अपने नियतस्थल पर रखने पीछे उसके विवृत्त होनेके अतिरिक्त दूसरे जो कोई शारीरिक चिह्न दीखते हों उनके निमित्त योग्य औषधोपचार करके उनकी निवृत्ति करनी योग्य है। गर्भाशयको नियत स्थान पर रखनेके लिये स्त्रीको वायीं करवट अर्द्ध खडी

हुई स्थितिमें आकृति ७ के माफिक वक्षोजस्थितिमें (आकृति ३७ में) रखनेकी आवश्यकता है । और आकृति ७ भी में बतलाई हुई स्थितिमें स्त्रीको सुलाकर कमलमुखके पीछे सफरा (मलाशय) के भागकी तर्फ अंगुली प्रवेश करके गर्भाशयके ऊपरका भाग जो इधरको ढला हुआ है वह ग्रन्थिके समान जान पडेगा । उसको अंगुलीसे ऊपर और अगले भागकी तर्फ दवानेसे वह कुछेक मध्य और आगेके भागकी तर्फ आवेगा । और कमलमुख जो आगेके भागकी तर्फ वढा हुआ था वह पीछे मध्य भागमें आवेगा । इसको शंवाय वक्षोज स्थितिमें रखनेसे उसको अधिक सरलतासे गर्भाशय स्वयं नियत स्थानपर बैठ सक्ता है आकृति ३७ का आसन ऐसा है कि विना परिश्रमके गर्भाशय ढलकर नियत स्थान पर स्वयं स्थित हो जाता है और चिकित्सकको अधिक परिश्रम नहीं करना पडता ।

आकृति नं० ३७ देखो ।

वक्षोजकी स्थितिसे गर्भाशयकी पश्चाद्विवृत्तता ।

उपरोक्त दी हुई इस स्थितिमें स्त्रीको सुलानेसे बगैर जोर दिये भी गर्भाशय पीछे पेटकी तर्फ हटता है और योनिमार्ग खोलते ही उसमें जो वायु प्रवेश करती है उस वायुके धक्केसे भी गर्भाशय पेटके भागकी तर्फ ढल जाता है । इसके होते भी गर्भाशयको नीचेके और आगेके भागकी तर्फ दवाना चाहिये किन्तु तर्जनी और मध्यमा दोनों अंगुलियोंको योनिमार्गके पीछेके भागमें प्रवेश करके दोनों अंगुलियोंसे गर्भाशयको आगेके भागकी तर्फ धकेलना, अथवा ऐसा जो न होसके तो कमलमुखके अग्र भागकी तर्फ तर्जनी अंगुली प्रवेश करके उसको पछिके भागकी तर्फ खींचना, इससे भी समय पर पश्चात् विवृत गर्भाशय अपने योग्य स्थान पर आता है । इस क्रियाके करते समय चिकित्सकको इतना ध्यानमें रखना चाहिये कि इस समय पर हमने तो विवृत्त गर्भाशयको सीधा किया है किन्तु ऐसा न हो कि इस क्रियाके करनेकी दशामें गर्भाशय कहीं वक्र हो जाय इतनी सावधानी रखना । इस क्रियाके करनेके समय मलाशय व मूत्राशय दोनों खाली होने चाहिये । इस स्थितिका आश्रय दूसरी सब स्थितियोंकी अपेक्षा गर्भोत्पत्ति करनेके लिये विशेष योग्य है, इस स्थितिमें गर्भाशयका ऊपरका भाग पेटके अन्दर अधिक ढलते भागमें रहता है और कमलमुख बराबर योनिमार्गमें पूर्णरीतिसे जहाँ नियत स्थान पर रहना चाहिये तहाँ रहता है और इससे वीर्य्य गर्भाशयके अन्दर सरलतासे जा सक्ता है और वाहर शीघ्रतासे नहीं निकलने पाता । पश्चात् विवृत्त गर्भाशयवाली स्त्रीको अधिक वर्ष पर्य्यन्त वन्ध्या रहने पछि केवल इस सीधी सूचनाकी क्रियाके अनुकूल वर्त्ताव करनेसे ही गर्भवती हुई देखी गई हैं ॥ चाहे जिस स्थितिमें स्त्रीको सुलाकर तर्जनी अंगुली प्रवेश करके गर्भाशयको

योग्य स्थान पर बैठालनेकी तजबीज करनेमें आवे तो भी उसमें इतनी संभाल रखनी कि बिलकुल जोर नहीं करना ऊपर कहीं जोर देकर करना लिख आये हैं वह क्रियाके आधीन सामान्य हस्तक्रिया वा यन्त्रक्रीया समझनी योग्य ह। किसी भी प्रकारके दोषके जमावको लेकर गर्भाशय किसी स्थलपर चिपट गया होय तो उस बंधनको तोडनेके लिये रबरकी थैलीमें जल भरके उसको उस जमावको चिपटे हुए स्थलके समीप रखना याने यह थैलीमें अन्दर रखनेकी सूचना है । इसके अन्तर अंगूठी (बीटी) की आकृतिकी रबरकी गोल पेसरीयन्त्र रखनेसे अथवा होजिस पेसरी रखनेसे भी बन्धन टूटते हैं और गर्भाशय अधिक सरलतासे अपने नियत स्थानपर लाने सक्ती है । गर्भाशयको योग्य स्थान पर लानेके लिये गर्भाशयशलाकायन्त्र अधिक उपयोगी है, दूसरे एक उपचारसे गर्भाशय सम्पूर्ण रीतिसे वह अपने योग्य-स्थान पर आने नहीं सक्ता । परन्तु शलाकायन्त्रको क्रियामें लानेके समय जोखम विशेष रहती है, प्रथम गर्भाशयकी योग्य स्थिति निश्चय कर पीछे अंगुलीके पोरुआके आधार पर शलाकायन्त्रको कमलमुखके छिद्रमें प्रवेश करना और उसका बांक (टेढा-पन) इस समय फेरना और पीठकी तर्फ करना । कितने समय तो आरम्भसे ही पीठकी तर्फ बाँक रखके शलाकायन्त्र प्रवेश करनेमें आता है, धीरे धीरे शलाका-यन्त्रको अन्दर गर्भाशयमें प्रवेश करते जानेसे शलाकायन्त्रका हत्था ठेठ जगहकी तर्फ जावेगा, जब वह बराबर गर्भाशयके ऊपरके भाग तक पहुँचेगा तब हत्था (दिस्ताको) फेरना और उसका खड पचडा भाग अग्रभागकी तर्फ करना । जिससे गर्भाशय शला-काका खांचा अग्रभागकी तर्फ आवे, पीछे स्थिर (धीरेसे रहकर शलाकाके दिस्तका पीछेके भागकी तर्फ ले जाना । जिससे उसकी अनी जो गर्भाशयके अन्दर है वह आगेके भागमें आजावे और इससे गर्भाशय भी सफरा (मलाशय) के भागकी तर्फसे उठकर आगेके भागकी तर्फ आजावे, इस रीतिसे उस-को खींचनेके पीछे गर्भाशय शलाका अन्दर रहने देना । बाद तर्जनी अंगुली प्रवेश करके यह निश्चय करना कि गर्भाशय अपने योग्य स्थान पर आया है कि नहीं । जिस दिशामें शलाका आती होय उसके ऊपरसे ही अनुमान हो सक्ता है, कि गर्भाशय अब अपने योग्य स्थान पर आया या अन्य स्थितिमें है । इसके अनन्तर शलाका गर्भाशयमें रहे तबतक पेसरीयन्त्र पहनाय देना और पेसरी बराबर रखने पीछे ही शलाकायन्त्र निकाल लेना । गर्भाशयमें शलाकायन्त्र प्रवेश करनेके समय विशेष जोर नहीं करना, जोरपूर्वक शलाकायन्त्र प्रवेश करनेकी शक्त-मनादी की जाती है । यदि शलाकायन्त्र प्रवेश करनेके समय अथवा फेरनेके समय दर्द मालूम पडे तो शलाका पीछे निकाल लेना अथवा फेरना बन्द कर देना । यदि

जोरपूर्वक शलाका प्रवेश की जावे तो वह गर्भाशयके मर्मस्थानके आरपार निकल जाती है और इससे पेटके पर्देका शोथ उत्पन्न होनेका भय रहता है । कि आकृति २७ में बतलाई हुई पश्चात् विवृत्त गर्भाशय पीछे अपने नियत स्थानमें लाया गया होय तब उसकी स्थिति (आकृति ३८ में) नीचे दिखलाये प्रमाणे हो जाती है । जब इन सब उपचारोंसे गर्भाशय अपने योग्यस्थान पर आवे तब उसको वहाँ नियत रहने पीछे पुनः अपने स्थानसे भ्रष्ट न होने पावे ऐसी ततवीज करनेकी आवश्यकता है । इसके लिये उसको पेसरीयन्त्रका सहारा देनेकी विशेष आवश्यकता है ।

आकृति नं० ३८ देखो ।

पश्चात् विवृत्त गर्भाशयको आश्रय देनेके लिये ऐसी रीतिकी पेसरी होनी चाहिये कि उसका एक सिरा ऊंचा और आगेकी तर्फ ढलता हुआ होय कि जिससे वह गर्भाशयका ऊपरी भाग जो पीछेकी तर्फ पड जाता है उसको आश्रय (सहारा) देकर अग्रभागकी तर्फ दबाये रक्खे और पेसरीयन्त्रके बीचमें पोल होनी चाहिये, जिससे कमलमुख उस पोलमें रहसके और आगेका भाग सीधा समान रूपमें रहना चाहिये, जिससे आगेका भाग योनिमार्गके अग्र भागमें जहाँ उसके रहनेका ठिकाना है वहां रहे और उसके आसपासके भागके ऊपर दबाव न करसके । ऐसी रीति और आकृतिकी योग्य पेसरी पहरानेसे गर्भाशयको आश्रय मिलता है और गर्भाशय स्वयं अपना नियत स्थान नहीं छोड सक्ता, क्योंकि पेसरीके आवरणसे स्वस्थान त्यागकर दूसरे स्थानमें जानेका अवकाश नहीं मिलता । कदाचित गर्भाशयमें रक्तका संग्रह होकर जमाव हुआ जान पडे व दावनेसे दर्द होता हो अथवा गर्भाशय कुछ आडा जान पडे तो पेसरीयन्त्र रखनेके प्रथम इस दर्दकी निवृत्ति करनी चाहिये । (ग्लासरीनमें भिगोकर सेलीसीलीक) रुईका फोहा कमलमुखके पीछेके भागमें दाव-दाबकर रखना, जिससे गर्भाशय आगेकी तर्फ खिसके वैसेही थोडासा फोहा कमल-मुखके आगेकी बगलमें रखना, जिससे थोडा सरलतासे पीछेको हट सके और गर्म जलकी पिचकारीसे योनिमार्गको व गर्भाशयको प्रच्छालन करना और ग्लीसरीनका फोहा रखना । इससे दर्द कमती होगा और संगृहीत रक्तका द्रवरूप (तहलील) होगा । पेसरी यन्त्र साधारण रीतिसे वल्केनाईटकी आती है ईन्डीयारबरकी पेसरी-ओंसे दर्द विशेष होता है जिस समय काममें लाई जाती है । पश्चात् विवृत्त गर्भा-शयको आश्रय देनेके लिये पृथक् पृथक् जातिकी पेसरियां यन्त्र काममें आते हैं उनमेंसे डाक्टर होजिसकी वल्केनाईट पेसरी विशेष उत्तम है, जो कि आकृति ३९ में दी गई है ।

आकृति नं० ३९-४०-४१ देखो।

होजिस पेसरी छोटी मोटी और बहुत थोडे बांक (टेढापन) वाली ऐसी होनी चाहिये, ऐसी पेसरी काममें आने सक्ती है। योनिमार्गकी विस्तारक शक्तिके अनुसार तथा गर्भाशयको आश्रय देनेके लिये उसका पीछेका भाग कितना ऊंचा जायगा यह ध्यानमें रखना चाहिये और विचारपूर्वक पेसरी पसंद करनी और रखनी चाहिये। नष्ट गार्भितव्यतावाली स्त्रीकी अपेक्षा शुद्ध वन्ध्यत्ववाली स्त्रीकी योनिमें पेसरी पहरानेमें जरा अधिक कठिनता पडती है। पेसरी पहरानेके लिये स्त्रीको बायीं करवट अर्द्ध खडी हुई स्थितिमें सुलावे और योनि ओष्ठको पृथक् करके योनिमुखको याने योनिके नीचेके भागको गुदाको बायें हाथके अंगूठेसे दबावे। प्रथम अंगुलीसे ओष्ठोंको चौडा करके योनिमुखके ऊपरके भागको ऊपर तर्फ ताने रहे और सीधे हाथमें पेसरी यन्त्रको इस प्रकार पकडे कि उसका पीछे भागमें रहनेवाला शिरा योनिमुखमें रखके उसकी योनिमें ऊपरको चढाता जावे और उसको पीछेके भागकी तर्फ दबाता हुआ रखके आगेको सरकाता जावे (आकृति ४० के देखनेसे इसका ठीक अनुभव होगा) जब कमलमुखके समीप उसका शिरा जा पहुँचे तब उसको पीछेके भागकी तर्फ दबावे, अथवा अंगुलीसे उसका वह शिरा पीछेके भागकी तर्फ बैठाल देवे, जो इस रीतिसे उसका फेरना न होवे, तो वह कमलमुखके आगेके भागकी तर्फ चढ जाती है। इस लिये उसको पीछेके भागकी तर्फ अंगुली प्रवेश करके दबाना इससे जो पेसरी आगेके भागकी तर्फ गई हो तो वह खिसक कर पीछेके भागकी तर्फ आती है। दूसरा शिरा योनिमार्गमें आगेके भागकी तर्फ रहता है, इस प्रमाणसे बराबर पेसरीयन्त्र पहरानेमें आया होय तो उसकी स्थिति आकृति ४१ के समान मिलती है। और इससे किसी प्रकारका दर्द भी नहीं जान पडता। किञ्चित् नम्र दर्द होता है, जो कि बेमालूम सा पडता है, कुछ जरा बहुत मालूम पडे तो गर्म जलका सेंक करनेसे तथा ग्लीसरीनका फोहा रखनेसे शान्त हो जाता है। गर्म जलसे योनिमार्ग तथा गर्भाशय प्रच्छालन करनेसे भी वैसाही लाभ पहुँचता है। इसके अनन्तर दस्त साफ आनेके लिये कोमल, रेचक औषध देना चाहिये [illegible]। पेसरी यन्त्र योनिमें पहना होय उसे निरन्तर पड़ा न रहने देवे, कि [illegible] वा सरलतापूर्वक घरका कामकाज करती रहे। जो इस (बल्केनाईट) पेसरांस स्त्रीको अधिक दर्द मालूम होय और दर्द सहन न होसके तो (इन्डीयारबरकी ग्लीसरीन) से भरीहुई पेसरी आती है उसको पहराना (आकृति ४२ में देखो) यह पेसरी स्त्रीको बायीं करवट सुलाकर पहरानेमें अधिक मुसीबत पडती है, इससे उसको प्रथम प्रवेश करनेके समय स्त्रीको चित्त सीधी सुला पेसरी कमलमुखपर्य्यन्त प्रवेश करदेवे। जब पेसरी

कमलमुख पर पहुंच जावे तब स्त्रीको बायीं करवट अर्द्ध खडी हुई स्थितिमें सुलावे । बाद जैसे हो जिस पेसरीके समान प्रक्रिया ऊपर रखनेकी लिख आये हैं उसी प्रकार ग्लीसरीनपेड पेसरीको रखना। यह पेसरीयन्त्र पोला और कोमल होनेसे गर्भाशय इसका दबाव आसानीसे सहन कर सक्ता है और इससे दर्द भी बहुत कम माछ्म पडता है। इसके आतिरिक्त (बीटी) अँगूठीकी आकृतिकी पेसरी भी स्त्रीके पश्चात् विवृत्त गर्भाशयको आश्रय देनेके लिये पहननेमें आती है। आकृति (४३ को) देखनेसे यह पेसरीयन्त्र ज्ञात होगा। लेकिन यह पेसरी भ्रंश गर्भाशयके रोगमें जितनी उपयोगी हैं.

आकृति नं० ४२-४३ देखो।

उतनी दूसेर एक भी स्थानान्तरमें नहीं है । पश्चात् गर्भाशयके साथ कितने ही समय उसका भ्रंश भी होता है और इससे वह पेसरी उस ठिकाने पर विशेष अनुकूल आती है । गर्भाशयकी पश्चात् विवृत्तताके साथ किसी समय पर गर्भ अण्डका भी भ्रंश होता है और उससे पेसरी बिलकुल सहन नही होसक्ती, कारण कि; गर्भ अण्डमें रक्तके संग्रहका जमाव रहता है और इससे स्त्री अण्डसे पेसरी अडे वा दबाव डाले तो अधिक शक्त दर्द होता है । रोगीको इस दशामें विश्राम देना, दर्दको समान करना और शामक औषध देने पीछे जब कि गर्भ अण्डका दर्द शान्त होजावे तब गर्भाशयको जो नियत स्थानपर रखे ऐसी होजिस पेसरीयन्त्र पहराना, वह ऐसी रीतिसे कि गर्भ अण्ड और गर्भाशयके बीचमें उसका पीछेका ऊँचा भाग आवे । इसके अनन्तर जो शारीरिक चिह्न देखनेमें आवें उनका योग्य रीत्यनुसार उपाय करना उचित है ।

गर्भाशयकी पश्चात् वक्रता ।

गर्भाशयकी पश्चात् वक्रता इस व्याधिका जहाँतक निर्णय किया गया है । वहाँतक यही निश्चय हुआ है कि इसमें सम्पूर्ण गर्भाशय नहीं फिरता, किन्तु गर्भाशयके ऊपरका भाग पीछेके भागमेंसे नमा हुआ (याने मुडा हुआ) होता है और कमलका भाग सीधा तथा अपनी नियत स्थितिमें होता है । इस करके कमलमुखके ऊपरके भागमें खाँचा जान पडता है और पीछेके भागमें जो ग्रन्थि जान पडती है वह असलमें गर्भाशय है । यहाँपर [illegible] विचार करनेसे ज्ञात होता है कि वक्रताकी दशामें व गर्भाशयकी आकृतिमें अन्तर पडता है और विवृत्ततामें गर्भाशयकी स्थितिमें अन्तर पडता हैं । वक्रता कितने ही समय स्वाभाविक (कुदरतसे ही) होती है और जहांतक स्त्री पूर्ण युवावस्थाको प्राप्त न होय वहां पर्य्यन्त जान पडती है । पश्चात् वक्रता योग्य दिग्दर्शन आगे (आकृति ४४ में) देखनेसे जान पडेगा । वक्रतामें गर्भाशय मुडा हुआ होनेसे जिस ठिकानेसे वह मुडा हुआ होय उसके ऊपरके भागमें दबाव

अथवा खिंचाव होनेसे उस भागमें योग्य पोषण नहीं मिलता और इससे वहां क्षत पड जाता है । कारण यह कि गर्भाशय स्थानान्तर होनेमें जो जो कारण कथन किये गये हैं वे सब कारण वक्रता प्रतिपादन करनेमें सहायभूत हो पडते हैं, जो जो कारण पश्चात् विवृत्तताके हैं वही कारण पश्चात् वक्रताके हैं । परन्तु पश्चात् वक्र गर्भाशय किसी किसी स्त्रीमें जन्मसे ही होता है और इसके चिह्न साधारण रीतिसे गर्भाशयके किसी भी जीर्ण रोगके समान स्थानान्तरमें कितने ही प्रकारके होते हैं । उनमेंसे न्यूनाधिक अथवा सब चिह्न इस प्रकार जान पडते हैं, स्थानान्तर होनेके चिह्न नीचे लिखे अनुसार जान पडते हैं । (१) स्पर्शासह्य योनि अर्थात् पुरुषसमागमको सहन न करती होय और पुरुषसमागमसे पीडा होती होय, (२) किसी भी जातिका ऋतुदोष अनार्त्तव, पीडितार्त्तव अथवा अत्यार्त्तव, (३) गर्भाशयमें रक्तका संग्रह (जमाव) होना, (४) गर्भाशयके आकार (कदमें) वृद्धि होनी, (५) कमलमुखका संकोच, (६) वन्ध्यादोषकी स्थिति, (७) गर्भाशयका भ्रंश अथवा गर्भाशयका नीचे उतर आना, (८) मूत्रका बन्द होना अथवा टपक टपक कर बिन्दू आना, (९) दस्तकी कब्जी होना अथवा अतीसार कि अर्श (बवासीर) की व्याधिका उत्पन्न होना, अथवा योनि अर्श होना, (१०) गर्भाशयके आसपासके (समीपवर्त्ती) मर्मस्थानोंमें शोथका उत्पन्न होना (११) पेटके अन्दरके दूसरे मर्मस्थानोंमें रक्तका संग्रह (जमाव) होना अथवा उसमें दीर्घ शोथके चिह्न होने (१२) मक्कलक रोगका उत्पन्न होना, (१३) चलने फिरनेके समय दर्द होना अथवा जँघा पेडू कमर नाभिके नीचे व बाँसेमें मस्तकमें दर्दका होना, (१४) शरीरके पृथक् पृथक् भागोंमें कारणहीन दर्दका उत्पन्न होना, (१५) गर्भ स्राव वा पात होना, (१६) गर्भ अण्ड तथा फलवाहिनीमें शोथ उत्पन्न होना, (१७) योनिमार्गमें शोथ दाहादिकी उत्पत्ति, (१८) उदरके विकार अन्तर कुजनादि उत्पत्ति इन १८ प्रकारकी कथन की हुई विकृतियोंमेंसे जो विकृति जोस करावे उस विकृतिका चिह्न प्रधानतासे मिल सक्ता है । वन्ध्यत्वके सम्बन्धमें अग्रवक्रता जितना बलवान् कारण है उतने दर्जे पश्चात् वक्रता नहीं है, परन्तु पश्चात् वक्रता जब स्वभावजन्य होय तो वह प्रायः वन्ध्यत्वकी व्याधिको स्थापित करती है । नष्टगर्भितव्यताका पश्चात् वक्रता विशेष प्रधान कारण है और जो नष्टगर्भितव्यता विशेष दुःखदायक हो जाती है, उसमें विशेष करके पश्चात् वक्रता अवश्य होती है । यदि निदानके तरीकेसे इसकी विशेष परीक्षा की जावे तो तर्जनी अंगुली प्रवेश करनेसे कमलमुख उससे नियत स्थानपर जान पडे और कमलमुख तथा गर्भाशयके बीचमें खाँचा जान पडे और उस खाँचेके पीछेकी तर्फ गर्भाशय माल्म पडे

और गर्भाशयशलाका प्रवेश करनेसे सीधी नहीं जा सक्ती। किन्तु उसकी दिशा फेर कर उसे बांकी (टेढी) प्रवेश करनी पडती है।

गर्भाशयकी पश्चात् वक्रताकी चिकित्सा ।

इस पश्चात् वक्रता दोषकी चिकित्सा तथा उपाय इस प्रकारसे है कि पश्चात् वक्रताके साथ गर्भाशय स्थूल हुआ रहता हो और उसमें रक्तका संग्रह (जमाव) होता हो और गर्भाशय दुखता रहता हो, जो ये चिह्न विशेष शक्त होयँ और अंगुलीका स्पर्श गर्भाशय सहन न करसक्ता होय तो स्त्रीको थोडे दिवस शान्त रीतिसे विश्राम देकर बिस्तर पर लेटाकर रखे । पीछेसे जब वह चिह्न शान्त होय तब गर्भाशयको सीधा करना और सदैव उसी सीधी स्थितिमें रहे और पीछे जैसा मुडाहुआ था ऐसा न पडजावे इसके लिये उसको आश्रय देना योग्य है । शोथके अथवा रक्तके जमावका जो कोई चिह्न होय उसके शान्त करनेके लिये स्त्रीके योनिमार्गमें ग्लीस-राईनका फोहा रखना और गर्म जलसे गर्भाशय तथा योनिमार्गका प्रच्छालन करना । इसके अनन्तर तर्जनी अंगुली प्रवेश करके निश्चय करना कि गर्भाशय कितने दर्जे मुडाहुआ है । बाद जिस प्रमाणकी शलाकाकी आवश्यकता टेढी (बांकी) प्रवेश करनी, अथवा उसकी दिशा फेरनी और शलाका बराबर गर्भाशयमें प्रवेश होजावे । इतने पर उसको उठाकर (ऊंची करके) योग्य स्थितिमें रखना, यहांपर इतनी बात ध्यानमें रखनेकी है कि गर्भाशय शलाकाके अन्दर प्रवेश करके गर्भाशयमें जो शलाका फेरनेमें आवे वह शलाका प्रथम प्रवेश करतेही अधिक परिश्रम करना पडता है । जिस ठिकानेसे गर्भाशय मुडाहुआ होता है उस ठिकानेका भाग संकुचित हुआ रहता है, इसी अवरोधसे शलाका अन्दर नहीं जा सक्ती । कितने ही समय कितनी ही स्त्रियोंके गर्भाशयके अन्तर्मुखका संकोच होता है, जो स्त्री पश्चात् वक्रतावाली अधिक कालसे इस व्याधिसे पीडित होती है अथवा पश्चात् वक्रता स्वाभाविक ही होती है उसमें संकुचितपन अवश्य देखनेमें आता है और शलाकायन्त्र अन्दर नहीं जाने सक्ता । पीछेसे उत्पन्न हुई पश्चात् वक्र-तामें भी शलाकायन्त्र प्रवेश करनेके समय अति कठिनता पडती है । इस अवसरपर शलाकायन्त्र प्रवेश करनेके दो मार्ग हैं, एक तो तर्जनी अंगुली प्रवेश करके गर्भाशयको आगेके व ऊपरके भागकी तर्फ खींचना और दूसरे गर्भाशयमें टेढापन कम करना, अथवा पीछेसे कमलमुखको आगे भागकी तर्फ खींचकर पश्चात् वक्र गर्भाश-यको पश्चात् विवृत्त गर्भाशय करना, जो योनिमार्गमें तर्जनी अंगुली प्रवेश करके गर्भा-शयको ऊपर दबानेसे वह न सरके तो स्त्रीको वक्षोजकी स्थितिमें (आकृति ३८) के समान सुलाकर गुदामें अंगुली प्रवेश करके गर्भाशयको आगे तथा नीचेके भागकी

तर्फ खींचना । इससे वक्रता कमती पडेगी और शलाका अन्दर जा सकेगी । इस रीतिका फेरफार करने पीछे भी शलाका गर्भाशयमें न जाय और संकोच स्थित है ऐसा अनुमान होय तो टेन्टयन्त्र कमलमुखमें प्रवेश करके मार्ग चौंडा करनेसे शलाका अन्दर जा सकेगी । शलाका अन्दर जाय तब गर्भाशयमें फेर कर योग्य स्थानतक ले जाना, शलाकासे गर्भाशय फेरनेकी जो रीति पश्चात् विवृत गर्भाशयके विषयमें ऊपर लिख आये हैं वह इस प्रसंगपर भी उपयोगी है और गर्भाशय योग्य-स्थान पर आवे तब उसको उस जगह स्थिर रखनेके लिये योग्य आश्रय देनेकी आवश्यकता है, इसके लिये होजिस पेसरीयन्त्र विशेप उपयोगी है । इसमें अधिक ऊंचे पिछले भागवाली पेसरीकी आवश्यकता नहीं है, पश्चात् विवृत गर्भाशयमें जो पेसरी काममें ली जाती है उसका पीछेका भाग ऊंचा होना चाहिये, कि वह भाग गर्भाशय तथा गर्भ अण्डके बीचमें आकर गर्भाशयके पीछेके भागकी तर्फ ढलनेसे रोक सके । पश्चात् विवृत गर्भाशयमें इतने ऊंचे पीछेके भागवालीकी आवश्यकता नहीं है । केवल जिस ठिकाने टेढापन है इससे जरा ऊपरके भागमें पहुँच सके, इतना उसका पीछेका भाग होय तो भी काम चल सक्ता है । इससे जो भाग पीछेकी तर्फ मुडाहुआ है उस भागके वजनको वह सहार सके और उसको बढनेसे रोक सके, ऐसी पेसरी यन्त्रकी आकृति

आकृति नंबर ४५ देखो ।

बराबरमें दी गई है, जो वल्केनाईटकी पेसरी सहन न होय तो ईन्डीया रबरकी ग्लीस-राईनवाली पेसरी अनुकूल आती है अंगूठी (वींटी) आकृतिकी रबरकी पेसरियां भी इसमें काम आती हैं । परन्तु इनसे भी कितने ही समय टेढापन होता हुआ गर्भाशय मुडाहुआही रहता है, तब टेन्टयन्त्र प्रवेश करके कमलमुख चौंडा करने पीछे अथवा एक दो समय शलाकायन्त्र प्रवेश करके संकोच है कि नहीं, अथवा निवृत्त होगया है ऐसा निश्चय होय तो स्त्रीके गर्भाशयमें सीधी खड़ी रह सके ऐसी रबडकी घोडी (आकृति २० वाली) पहरानी, इससे गर्भाशय विशेष प्रफुल्लित होता है । कदाचित् संकोच अधिक होय और ऋतु साफ न आता होय, अथवा दुःखदायक होय तो कमलमुखमें छिद्र करना और गर्भाशयकी पश्चात् वक्रताकी चिकित्सा अग्रवक्रताकी चिकित्साके समान अधिक कठिन फेरफारवाली है । और कितने ही समय संपूर्ण आरोग्यता रोगीको प्रदान करनेमें चिकित्सक असमर्थ हो जाता है और पूर्णरीतिसे आराम नहीं करने सक्ता । यदि इस मौके पर रोगीको आराम करनेमें चिकित्सक उत्साहहीन होय तो रोगीकी विशेष पीडा शान्त होय ऐसी ततवीज कर देनी चाहिये । किन्तु कोमल पोली रबडकी पेसरी पहरानी गर्म जलसे योनिमार्ग तथा गर्भाशयको प्रच्छालन करना, दस्त और मूत्र साफ आवे ऐसी ततबीज करनी आर दूसरे जिस

किसी उपायसे रोगीकी पीडा शान्त हो स्वस्थ चित्तसे रहे इतना उपाय उसका कर-देना आति आवश्यक है । इस रोगवाली स्त्रीकी तंग पोशाक ढीली करवा देना, अथवा अधिक परिश्रम न करे विश्राम लेवे इत्यादि शिक्षा रोगीको देना योग्य है ।

गर्भाशयकी पश्चात् वक्रताकी चिकित्सा समाप्त ।

अथ गर्भाशयकी अग्रविवृत्तताका निदान ।

इस अग्र विवृत्तताकी विवेचना करनेके पूर्व इतना कहदेना उचित है कि तन्दुरुस्त (आरोग्य) याने गर्भाशय और योनि रोगसे रहित कितनी ही स्त्रियोंको संदेहकी दशामें संदेहकी निवृत्तिके लिये योनि और गर्भाशयकी परीक्षा की गई है, तो आरोग्य स्थितिमें भी गर्भाशय जरा आगेके भागकी तर्फ ढलता हुआ दृष्टिगत हुआ है और इससे वह अधिकसे अधिक आगे ढल जाय तो भी वह स्थान भ्रष्ट होते नहीं देखा जाता और इसे पश्चात् विवृत जितना दुःखदायक होता है उतना यह नहीं होता । आकृति ३६ को देखनेसे इसका पूर्ण ज्ञान होगा कि पश्चात् विवृत्तकी अपेक्षा अग्र-विवृत्तता अति न्यून है । कारण इसका यह है कि गर्भाशयका भार (वजन) आकार (कद) बढनेसे वैसे ही उसके पीछेके भागके बंधन ढीले होनेसे अथवा आगेके भागमें किसी प्रकारका जमाव हुआ होय तो उसको लेकर वह आगेको ढल आता है, पेटके अन्दरके गर्भस्थानके दबावसे भी वह आगेको ढल जाता है । इस व्याधिके जो विशेष चिह्न होतेहैं वे इस प्रकार हैं—अग्र विवृत गर्भाशय जो सहज होय तो उसका कोई भी विशेष चिह्न जाननेमें नहीं आता । यदि वह अधिक वृद्धिको प्राप्त होय तो एक अनार्त्तव, दूसरा पीडितार्त्तव, तीसरा गर्भाशयमें रक्तका संग्रह (जमाव), चौथे गर्भाशयके मुखका संकोच, पांचवें वन्ध्या दोष, छठे मूत्राशय वा मलाशयके ऊपर पडता हुआ दबाव, सातवें पेडू वा बांसामें होता हुआ दर्द आदि कितने ही चिह्न मिलते हैं । इस स्थितिमें पश्चात् विवृत्ततासे उलटी ही रीतिसे गर्भाशय आगेके भागमें मुडाहुआ होता है और इससे मूत्राशयके ऊपर उसका दबाव विशेषतासे पडता है और मूत्रकृच्छ्र वा मूत्रका टपक टपक कर आना विशेष होता है । पश्चात् विवृत्ततामें मलाशयके ऊपर विशेष दबावके चिह्न मालूम पडते हैं, लेकिन दर्द किसी समय कम और किसी समय बिलकुल नहीं होता । यदि निदानके नियमसे इस व्याधिकी परीक्षा करना है तो तर्जनी अंगुली प्रवेश करके परीक्षा करे, अंगुली प्रवेश करनेसे कमलमुख पछिके भागकी तर्फ गया हुआ मालूम पडता है और योनिमार्ग पूरा होते ही शीघ्र कमलमुखका स्पर्श अंगुलीसे नहीं होता । योनिमार्गका अग्र भाग कमलमुखके पीछे खिचनेसे तंग होगया जान पडता है और कमलमुख तथा गर्भाशयके बीचमें किसी भी प्रकारका खांचा नहीं होता, वे दोनों सीधे एक धार पर मिलते हैं ।

गर्भाशय और वस्तिकी अग्र कमानके पास आयाहुआ जान पडता है, योनिमार्गमें अंगुली प्रवेश करके और पेटके ऊपर हाथके दबानेसे गर्भाशय अंगुली तथा पेटके ऊपरके हाथ दोनोंके बीचमें जान पडता है।

गर्भाशयकी अग्र विवृत्तताकी चिकित्सा।

इसकी चिकित्सामें प्रथम यह देखना चाहिये कि गर्भाशयके समीपवर्त्ती मर्मस्थानोंके साथ किसी प्रकार बंध वा रुकावट तो नहीं लगी है और उसका संयोग छुटनेके योग्य है या नहीं। छुटनेसे अन्य मर्मस्थानोंको कुछ हानि तो नहीं पहुंचेगी। यह निश्चय करना और स्त्रीको सीधी सुलाकर रखनेसे भी गर्भाशय अपने आप नियत स्थानपर आसक्ता है। वस्तिकी अग्र कमानकी अस्थिसे जरा ऊपरके भागमें गर्भाशयको जरा दाबसके ऐसी छोटी कपडाकी गद्दी लगाकर उसके ऊपर रवरका कमरपट्टा बांध कर रखनेसे गर्भाशयको अपनी नियत स्थितिके ठिकाने पर पहुँच जाना संभव है। इसके अनन्तर स्त्रीको सीधी सुलाकर योनिमार्गमें तर्जनी अंगुली प्रवेश करके उसके आगेके भागकी तर्फ अंगुली अडाकर गर्भाशयको आगे पेटके भागकी तर्फ धकेलना, नहीं तो शलाकायन्त्र प्रवेश करके जरा ऊंचा उठाना, इतना कि वह अपनी नियत जगहमें आजावे। शलाकाके उठानेके समय इतना ध्यान रखना कि शलाका ऊपरके भागमें पहुंच गर्भाशयके ऊपरके भागको न फाड देवे। इसके अनन्तर स्त्रीकी शारीरिक स्थिति सुधरे ऐसा उपाय करना योग्य है। यदि गर्भाशयमें रक्तका जमाव हुआ होय तो, अथवा गर्भाशय मोटा हो गया होय तो उसका भी योग्य उपाय करना उचित है। किन्तु दीर्घ शोथसे अथवा ग्रन्थि वगैरहसे मोटाहुआ होय तो उसीके प्रकरणमें लिखी हुई चिकित्साके प्रमाणे योग्य उपाय द्वारा निवृत्ति करना। यदि गर्भाशयके मुखका संकोच हुआ होय तो उसे शान्त करके चौडा करना। और गर्भाशयके योग्य स्थान पर आ जाने पीछे वह वहीं रहे, इसके लिये पेटके ऊपर कमरपट्टा बाँधना, कितनी ही जातिकी पेसारियाँ इस स्थानान्तरमें काम आती हैं। परन्तु दूसरे स्थानान्तरोंमें जैसी वे उपयोगी होती हैं वैसी उपयोगी इसमें नहीं होतीं। गर्भाशयके अन्दरका भाग और गर्भाशयके पीछे आया हुआ पश्चात् योनि द्रोण जैसी रीतिकी पेसरी सहन कर सक्ता है वैसी रीतिसे यह अग्र योनिद्रोण पेसरी सहन नहीं कर सक्ता। कारण कि अग्र भागमें मूत्राशय है और योनिमार्ग तथा मूत्राशयके बीचमें विशेष नाजुक पतला परदा है, जिसमें पेसरीके दबावकी हरकत शीघ्र हो जाती है, कदाचित् पेसरीका उपयोग करने योग्य स्थल और मौका जान पडे तो उसको ऐसी लेनी चाहिये कि वह गर्भाशयको ऊपर रक्खे और उसके ऊपरके भागको

पेटकी तर्फ न ढल आने देवे । अग्र विवृत्त गर्भाशयमें जो पेसारियाँ काममें ली जाती हैं वे दूसरी पेसारियोंके समान निरन्तर पहराई नहीं जा सक्तीं ।

गर्भाशयकी अग्रविवृत्तताकी चिकित्सा समाप्त ।

यूनानी तिब्बसे गर्भाशयके घुट जानेकी चिकित्सा ।

यह व्याधि डाक्टरी तथा वैद्यकमें नहीं है, लेकिन लक्षण मिलानेसे डाक्टरीमें जो गर्भाशयके रोग कथन किये हैं उनमें कितने ही लक्षण इसीके समान मिलते हैं । और यूनानी तबीबोंने इस व्याधिका पृथक् निदान किया है । जैसा कि--यह मर्ज मृगी और अचैतन्यताके समान होता है, मृगीके चिह्न भी प्रगट होते हैं, जैसे वायुकी विशेषता और किसी २ अङ्गमें खिंचाव तथा ऐंठन गिर पडना और अचैतन्यताके चिह्न प्रगट होते हैं. । जैसे हाथ, पैरोंका ठंढा होना शरीरका रंग पीला हो जाना, नाडीकी हरकतका कम होना, श्वास प्रश्वासकी न्यूनता होना आदि रोग स्त्री जातिको होवैं तो उनकी तरुणावस्थाका ख्याल करके विचारे कि रोगका मूल कारण क्या है । यदि स्त्रीके किसी अन्य अङ्गमें रोगका कारण न जान पडे तो इस रोगकी उत्पत्तिका स्थान गर्भाशय है, इसका कारण यह है कि जब दिल और दिमागसे गर्भाशयका अधिक सम्बन्ध है तो गर्भाशयकी व्याधिका असर दिल और दिमागहीमें पहुँचता है, यही कारण है कि श्वासका मिचकर आना और ज्ञान शून्यता अचैतन्यता और मृगी तथा धडकन उत्पन्न होती है और मुखमें झाग नहीं आते और इस रोगमें दो कारण हैं, एक तो यह कि मवादके न निकलनेसे गर्भाशयमें मवाद और पुरुषका वीर्य्य विशेष एकत्र होजावे और खराब मवादमें मिलकर पुरुष वीर्य्यसे बालककी आकृति न बने और उसमें एक प्रकारकी विषैली तासीर उत्पन्न हो जावे और गर्भाशय इस विषैली भाफके कष्टसे ऊपरकी तर्फ सुकड जाय और सिमटकर संकुचित हो जाय और गर्भाशयमेंसे निकम्मे भाफके परमाणु उठकर दिल और दिमागकी तर्फ आवें, इस कारणसे दिल और दिमाग ज्ञानशून्य होकर उपरोक्त कथन किया हुआ रोग उत्पन्न होय और यह रोग प्रायः बारीके दौरेसे आया करता है, जैसे कि मृगीका दौरा बारीसे आता है और जिस समय गर्भाशयमें मवाद अधिक होता है तो इस रोगका दौरा मृगीके समान प्रतिदिवस होते हुए विशेष समय पर्य्यन्त रहता है । इसकी बारीपर रोगका अधिक जोश होय तो अक्सर रोगी स्त्रीकी मृत्यु होनेका भय रहता है और इस रोगकी बारी आनेके यह चिह्न हैं कि जब इस रोगका दौरा होनेवाला होता है तब पूर्वसे ही रोगीकी बुद्धि बिगड जाती है । ज्ञान और स्मरणशक्ति नष्ट होने लगती है, अचैतन्यता और खराबी उत्पन्न होने लगती है, शिरमें

दर्द नेत्रोंके आगे अन्धकार तथा जल भरने लगता है और पिण्डलियोंमें निर्बलता उत्पन्न होने लगती है। जब दौरा होनेका समय बिलकुल समीप आय जाता है तो रोगका दौरा होनेसे पूर्व रोगीको ऐसा मालूम होता है कि कोई वस्तु पेडू योनि और गर्भाशयकी तर्फसे ऊपरको दिल और दिमागकी तर्फ चढकर आती है। मुख तथा नासिकामें अनिच्छा और निकम्मी गति प्रगट हो बुद्धिमें खराबी उत्पन्न होकर अचैतन्यताईकी दशामें रोगी गिर पडे और बेहोश होकर ज्ञानशक्ति नष्ट हो जाय और मुखसे शब्दोच्चारण बन्द हो जाय इस रोग और मृगीमें अन्तर इतना ही है, कि इस रोगवाली स्त्रीकी बुद्धि बिलकुल नष्ट नहीं होती। कारण कि जब इस रोगवालीको अचैतन्यता होती है तो जो विषय ऊपर वर्णन किया गया है उनमेंसे रोगी होशमें आनकर अक्सर बहुतसी बातोंको कहने लगती हैं और इसी प्रकार मुखसे झाग न आना, शरीरमें घबराहट, बुद्धिका क्षीण होना इस रोगके मुख्य चिह्न हैं। चिकित्सा इस रोगीकी यह है कि वारी आनेके दिवस हाथ पैर कसकर बांध देवे कि जिसकी पीडासे रोगी बेचैन रहे और रोगके दौरा होनका असर वारीके नियत समय पर रोगी स्त्रीकी बुद्धिपर न होने पावे और शिरके तालुपर पिसा हुआ नमक और राई जोरसे मले कि उसकी तेजी दिमागमें असर करे, अथवा बाबूनाके काढेसे पैरोंको धोवे। यदि बाबूना समयपर न मिले तो राईके गर्म काढेसे धोवे और रोगीके मुखपर शीतल जलके छींटे छिडकता रहे और थोडा शीतल जल पिलावे और दुर्गंधित वस्तु जैसे जुन्देबेदस्तर और तैलादि सुंघावे और गूगल तथा गंधक रोगी स्त्रीकी नासिकाके आगे न लावे और सुगंधित वस्तु जैसे कि इतर अम्बर, इतर हिना, इतर कस्तूरी गर्भाशयपर मले और इन्हीं वस्तुओंका तैल पिचकारीके द्वारा गर्भाशयके अन्दर पोलमें पहुँचावे और नाभिके नीचे घुटना पिण्डली और जाँघोंमें भीतरकी तर्फ तथा चण्डेमें बिना पछनेकी (खाली सींगी) लगावे और विचेतनताके समयमें रोगीके कानके समीप चीख मारे और भयंकर शब्द (जैसे आग लगगई साँप आया मकान गिरता है अमुक मनुष्य तुमको मारनेको खडा है) सुनावे और रोगी स्त्रीका नाम लेकर जोरसे पुकारे अथवा ऐसे शब्द कहे कि जिससे उसको क्रोध आवे। इसी प्रकार जो गर्म दवा चमचमाहट उत्पन्न करती है अथवा खुजली और तेजी उत्पन्न करती हैं जैसे नम्माम, सोंठ, मिरच, जम्बक आदिको तैलमें मिलाकर कपडे पर लगाकर योनिमार्गमें गर्भाशयसे अडता हुआ रखे और गर्भाशयमें कस्तूरी और अम्बरकी धूनी पहुँचावे। जम्बकका तैल, बकायनका तैल, बदामका तैल, गुलरोगन इनमेंसे किसी भी एक तैलमें कस्तूरी और अम्बर मिलाकर अंगुलीका पोरुआ भिगोकर गर्भाशयके मुख पर मले। यह सब क्रिया इसलिये हैं कि जमाहुआ वीर्य्य तथा अन्य

मवाद, जो विषैला हो गया है गर्भाशयमेंसे निकल जावे तथा उपरोक्त तैलोंमेंसे किसी एक तैलको गर्म जलमें मिलाकर गर्भाशयमें पिचकारी लगावे और इस दशामें स्त्रीको चैतन्यता आजाय तो ऐसे समय पर उसके पतिको संभोग करनेकी आज्ञा देवे । इस मौकेपर पतिसमागम विशेष लाभदायक है क्योंकि इस मौकेपर पतिसमागमसे गर्भाशय तथा योनिके मर्म और स्त्री अण्ड प्रफुल्लित हो जाते हैं, सो गर्भाशय नीचे सरकनेकी चेष्टा स्वभावसे ही करता है और पुरुष शरीरके स्पर्शके लिये नीचेको उतरता है, इस मौके पर तहलील किया हुआ सब मवाद जोशमें आकर बाहरको निकल आता है और स्त्रीका चित्त हर्षित होनेसे गफलतकी दशा विलकुल निवृत्त हो जाती है। परन्तु बहुतसे मनुष्य इस व्याधिको मृगी वा भूतावेश समझ कर स्त्रीके समीप जानेसे भयभीत होते हैं । दूसरा भेद इस रोगका तबीबोंने यह भी माना है कि केवल रजोदर्शनके रक्तके बन्द होनेसे ही यदि यह रोग उत्पन्न हुआ होय तो फरफ्यून और काली मिरचके चूर्णको कपडेमें लगाकर योनिमार्गमें गर्भाशयके मुखसे अडता हुआ रखे, इससे अधिक लाभ पहुँचता है और चैतन्यताकी दशामें यह उपाय है कि इसमखीकूनकी गोली और अयारजलौगाजियासे शरीरका मवाद निकाले इसके उपरान्त घमिरसा और मसरूदतूस और माजूनगयाती आदि सौफके काढेमें देवे और मवाद अपनी स्थितिके अनुसार निकलना चाहिये और उत्तम उपाय इसका यह है कि मवादके निकलनेमें एक साथ यारजात देवे और एक दिवसका अन्तर देकर माजूननिजाह देवे और स्नान करना इस रोगमें लाभदायक है और यह दवा इस रोगमें अधिक गुणदायक हैं । गारीकून ३॥ मासे, दिवालमुस्क १॥। मासे साफ शहदमें मिलाकर खिलावे, जो कुछ इस रोगके विषयमें यहाँपर कथन किया है वह उचित रीतिसे कथन किया गया ह । परन्तु इस रोगके इलाज करनेवाले तबीबको उचित है कि रोगी स्त्रीकी स्थितिको देखकर और पूर्णरीतिसे निश्चय करके रोगके उपाय जो ऊपर लिखे हैं उनके अतिरिक्त और क्रिया तथा अन्य उपचारकी आवश्यकता पडे तो अपनी बुद्धिके अनुसार उसका विधान करे । कुछ रोगके वास्ते एकही क्रिया व एक ही उपाय नहीं है, चिकित्सक जैसी रोगकी दशा देखे वैसी क्रिया व उपायसे रोगको दबावे । यदि गर्भाशयमें मवाद गाढा होय और गर्मी न होय, शर्दीका चिह्न पाया जाय तथा गतिमें भारीपन पाया जाय और नींदकी अधिकता होय, आलस्य और असावधानी प्रगट होय और जो गर्भाशयके घुटनेमें गर्मी होय और स्त्रीके कपोलोंपर सुर्खी दीख पडे घूमेरी आती होय और जी मचलाता होय और एक प्रकारकी तेज गर्मी गर्भाशयसे शिरकी तर्फ आती हुई मालूम होय और कभी २ इस दशामें ज्वर होय तो इस व्याधिका चिह्न समझना । इस दशामें चिकि-

त्सकको उचित है कि गर्मीके शान्त करनेवाली औषध देवे, जिससे रोगीको चैतन्यता प्राप्त होवे । चैतन्यता प्राप्त होनेपर वासलीककी फस्द खोले और पिंडलियों पर पछने लगाकर सिंगीया खींचे अथवा आकाशवेल (अमरवेल) के काढेसे प्रकृतिको नर्म करे । भरे पेटपर सोयाका काढा पिलाकर वमन करे और शीतल चीजें मवादको नर्म करती हैं और कम करती हैं तथा मवादको तोडती हैं जैसे शरबत नीलोपर, खुर्फाकाशीरा इनको पिलावे और रोगके दौराकी बारीके समय कापूरचन्दन और गुल नीलोफर सुँघावे और विशेष उपाय वोही करे, जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है। लेकिन पिलाने और सुँघानेमें ऊष्ण पदार्थोंको ग्रहण न करे, और तबीब सावितखान कहता है कि गर्भाशयके घुटनेकी दशामें फस्द न खोले क्योंकि फस्द खोलना स्त्रीको निर्बल करता है यदि आवश्यकता भी पडे तो पहुँचेकी हलकी फस्द खोले, क्योंकि साफिनकी फस्द खोलनेमें विशेष निर्बलता नहीं पहुँचती । यह रोग गर्भाशयके सब रोगोंसे खराब है, और एक दूसरा तबीब लिखता है कि नाभिके नीचे बारेका लगाना गर्भाशयको नीचेकी तर्फ खींचता है और कमर पर पछने लगाना इस रोगको निर्मूल करता है । यदि गर्भाशयका घुटना रजोधर्मके बन्द होनेसे होय तो दौराकी बारीके समय उसका उपाय वही है जो गर्मी और शर्दीके प्रकरणमें कथन कर चुके हैं और चैतन्यताकी दशामें फस्द खोले और रजोधर्मके रक्तको बहानेवाले आहार और औषध खिलावे, जैसा ऊपर रजोधर्म बन्द हो जानेके प्रकरणमें कथन की गई है। यदि किसी कारण विशेषसे यह रोग गर्भिणी स्त्रीको हो जावे तो फस्द खोलना और दस्त कराना उचित नहीं है, जो गर्भका प्रसव समय समीप होय तो औषध उपचार करनेकी कोशिश न करे, क्योंकि प्रसव होनेके उपरान्त यह व्याधि अपने आप स्वभावसे ही निवृत्त हो जाती है । यदि प्रसव होनेका समय दूर होवे तो रोगी स्त्रीको हलके पौष्टिक उत्तम भोजन देवे तथा इस रोगके नष्ट करनेवाले तैलोंकी मालिश हलके हाथसे करे । अधिक गर्मी तथा अधिक शर्दीकी प्रकृतिकी रक्षा करे और यह व्याधि बारीसे आती होवे तो दौराकी बारीके समय चैतन्यता लानेके लिये हाथ पैरोंको बांध सुँघानेकी औषधियोंका उपचार करे । इसके सिवाय गर्भस्थ बालकको हानि न पहुँचे ऐसे उपचार व औषधियों पर ध्यान रखे और चैतन्यताकी दशामें गुलकन्द गर्भवतीको विशेष हितकारी है, कारण कि यह गर्भस्थ बालककी रक्षा तथा रोगको निवृत्त करता है । कदाचित रोगकी विशेष अधिकता होय तो दौराकी बारी शीघ्र २ आने लगती हैं, इस दशामें हलकी फस्द और हलका जुलाब भी दे सक्ते हैं । विशेष करके जब कि गर्भवतीका तीसरा महीना व्यतीत हो गया होय और आठवाँ महीना आरम्भ न हुआ होय इस दशामें इस अवधिके दर्मियान हलकी फस्द और

हलके जुलाबका विधान है, अन्यथा नहीं । इस रोगवाली स्त्रीको भोजन प्रकृतिके अनुकूल देना चाहिये, जैसे कि गर्मीकी अधिकता होय तो कलिया कद्दू पालक छिली हुई मूँग, चावल आदि । यदि शर्दीकी अधिकता होय तो चकोर चिड़िया, बटेर, तीतर इनका मांस जीरा और दालचीनी मिलाकर देना उचित है ।

यूनानी तिब्बसे गर्भाशयके घुटजानेकी चिकित्सा समाप्त । अष्टमाऽध्याय समाप्त ।

अथ नवमाध्यायारम्भः ।

आयुर्वेद वैद्यकसे योनिकन्दका निदान तथा चिकित्सा ।

आयुर्वेदमें स्त्रीजातिके अनेक गुह्य रोगोंका निदान वा चिकित्सा बिल्कुल देखनेमें नहीं आती, किन्तु कितने ही रोगोंका नाम भेदमें विपर्य्य है, जैसे योनिकन्दका ग्रन्थि । यह ग्रन्थि पूर्व कथन किये हुए गर्भाशयके अर्बुदके समान होती है । इसमें अन्तर इतना ही है कि गर्भाशय अर्बुद कमलमुखके किसी किनारे पर अथवा कमलमुखका जो भाग योनिमार्गसे मिला है और जो स्थल कमलमुख तथा योनिमार्गकी सन्धिका है वहां पर भी देखा गया है । परन्तु योनिकन्द नामकी ग्रन्थि योनिके आभ्यन्तर ओष्ठ अथवा योनिमार्गका जो बाह्यमुख अर्थात् जहांसे योनिमार्ग आरम्भ होता है, किन्तु योनिके दोनों ओष्ठ उठाकर चौंडे करे तो ओष्ठोंके बीचमें जो स्थल दीख पडता है उसमें ये योनिकन्दकी ग्रन्थि पाई जाती हैं । डाक्टरी तरीकेसे इस मुकामकी ग्रन्थिको योनिमार्गकी ग्रन्थि कहना ठीक है । लेकिन आयुर्वेदके एक पृथक् रोगका नाम और प्रकरण नष्ट हो जाता है । इसलिये गर्भाशय भ्रंशके प्रकरणके पूर्व योनिकन्दका निदान तथा चिकित्सा लिखदेनी उचित है, कि आयुर्वेदमें योनिके सम्बन्धमें उत्पन्न हुई किसी जातिकी ग्रन्थिको योनिकन्द माना है । लेकिन कितने ही अनभिज्ञ वैद्य गर्भाशय भ्रंशको ही योनिकन्द मान बैठते हैं सो यह मंतव्य भ्रमयुक्त है ।

योनिकन्दका निदान ।

दिवास्वप्नादतिक्रोधाद्व्यायामादतिमैथुनात् । क्षताच्च नखदन्ताद्यैर्वाताद्याः कुपिता यदा ॥ १ ॥ पूयशोणितसंकाशं लकुचाकृतिसन्निभम् । उत्पद्यते यदा योनौ नाम्ना कंदस्तु योनिजः ॥ २ ॥

अर्थ—दिनमें शयन करनेसे, अतिक्रोध करनेसे, अति परिश्रम करनेसे । अति मैथुन करनेसे, नख तथा दंतादिके लगनेसे घाव जखम हो जानेसे (शायद योनिमें दांतका लगाना वाममार्गियोंका अनुकरण नूतन वैद्यक ग्रन्थोंमें लिखा गया है) इत्यादि अपने अपने कारणोंसे वातादि दोष कुपित होकर योनिमें राध (पीव) के समान अथवा

रुधिरके समान (लकुच) नाम बडहरके फलके समान जो गांठ उत्पन्न होती है उसको योनिकन्द कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

वातादि दोषोंके भेदसे पृथक् २ लक्षण।

रूक्षं विवर्णं स्फुटितं वातिकन्तु विनिर्दिशेत्। दाहरागज्वरयुतं विद्यात्पित्तात्मकन्तु तत् ॥ ३ ॥ नीलपुष्पप्रतीकाशं कण्डूमन्तं कफात्मकम्। सर्वलिङ्गसमायुक्तं सन्निपातात्मकं वदेत् ॥ ४ ॥

जो योनिकन्द रूखा विवर्ण और फटा हुआसा खुरखुरा होता है उसको वातजन्य योनिकन्द जानना। जो योनिकन्द दाह लालवर्ण युक्त और ज्वर सहित होय उसको पित्तजन्य योनिकन्द जानना ॥ ३ ॥ जो योनिकन्द नील पुष्पके वर्णके समान होय और उसमें खुजली आती होय ऐसे योनिकन्दको कफजन्य जानना। जिस योनिकन्दमें वातादि तीनों दोषोंके लक्षण मिलते होयँ उसको सन्निपातजन्य योनिकन्द जानना ॥ ४ ॥

योनिकन्दकी चिकित्सा।

स्वेदयेद्वातिकं कन्द पैत्तिकं तु विरेचयेत्। कफजे वमनं भूयः सर्वजे सर्वमर्हति ॥ ५ ॥ त्रिफलायाः कषायेण मधुयुक्तेन सेचयेत्। प्रमदायोनिकन्देन व्याधिना परिमुच्यते ॥ ६ ॥ गैरिकाञ्जनजन्तुघ्नकट्फलाम्रास्थिचूर्णितैः। पूरयेत्सततं योनिं निशाक्षौद्रसमायुतैः ॥ ७ ॥ पूरयेच्चाभयारिष्टं मध्वारिष्टमथापि वा। महामायूरमथवा बस्तौ पाने प्रयोजयेत् ॥ ८ ॥

वातजन्य योनिकन्दमें प्रथम स्वेद (पसीना) आवे ऐसी क्रिया करे और वह क्रिया यह है कि वातनाशक औषधियोंको छोटे मुखके किसी बडे बर्त्तनमें भरकर क्राथ बनावे और स्त्रीको एक कुर्सी वा ऊंची पीढीपर बैठाकर योनिके मुखको खोलकर और नीचे क्राथका बर्त्तन रखके उसका ढकना उठालेवे और वाफ लगने देवे, कमरसे नीचे मय कुर्सी पीढी क्राथके बर्त्तनके चारों ओरसे वस्त्रसे ढकदेवे। और वातनाशक तैल तथा ग्रन्थि संकुचित करनेवाली औषधियोंको काममें लावे। पित्तजनित योनिकन्द रोगमें विरेचन देकर पित्तको निकाले और रक्तका शोधन करनेवाली औषधियां देवे। कफजन्य योनिकंद रोगमें प्रथम वमन करावे। त्रिदोषजन्य योनिकन्द रोगमें मिश्रित (याने सब दोषोंको शमन) करनेवाली चिकित्सा करे ॥ ५ ॥ त्रिफला (हरडा बहेडा आंवला) इनका क्राथ बनाकर और शहत मिलाकर योनिको प्रच्छालन करनेसे योनिकन्द रोग निवृत्त होता है ॥ ६ ॥ गेरू, सुर्मा, वायविडंग,

कायफल, आंबकी गुठली और हल्दी इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बनावे और शहत मिलाकर योनिमें भर देवे ॥ ७ ॥ अभयारिष्ट अथवा मध्वारिष्ट अथवा महामयूर घृतकी बस्तिमें (पिचकारी) लगावे और पीनेको भी देवे ॥ ८ ॥

कोलभेकस्य मांसेन कन्दः शाम्यति योषिताम् । मूषिकामांससंयुक्तं तैलमातप भावितम् । अभ्यङ्गाद्धन्ति कन्दं वा स्वेदं तन्मांससैंधवैः ॥ ॥ ९ ॥ आखोर्मांसं सपदि बहुधा सूक्ष्मखण्डीकृतं यत् तैले पाच्यं द्रवति नियत यावदेतेन सम्यक् । तत्तैलाक्तं वसनमनिशं योनिभागे दधानं हन्ति व्रीडा करभगफलं नात्र संदेहबुद्धिः ॥ १० ॥ पिष्टं शंबूकमांसञ्च पक्वं तित्तिडिसंयुतम् । लेपमात्रेण नारीणां योनिकन्दहरं परम् ॥ ११ ॥ घोषकस्वरसः पीतो मस्तुना च समन्वितः । योनिकंदं निहंत्याशु तन्नाडी चैव धूपतः ॥ १२ ॥ सद्यो व्रीडाकरं कंदं योनेर्बहुविकारजम् । शलाकया ततया वा दहते कुशलो भिषक् ॥ १३ ॥

अर्थ-बाराहका मांस व मेडकके मांसका उपचार करनेसे भी योनिकन्द रोग निवृत्त होता है । चूहेके मांसको तैलमें पकाकर योनिकन्द पर मर्दन वा बंधन करनेसे अथवा चूहेके मांसमें सेंधा नमक डालकर स्वेद देनेसे योनिकन्द रोग शान्त होता है । चूहेके मांसके अति छोटे २ टुकडे करके तैलमें पकावे फिर उस तैलमें रुई वा वस्त्र डबोकर योनिमें रखनेसे योनिकन्द शान्त होता है ॥ ९ । १० । घोंघेके मांसको पीसकर उसमें पकी हुई तितिली वनस्पतिका रस मिलाकर योनिमें भरदेवे तो योनिकन्द रोग नष्ट होता है ॥ ११ ॥ कडवी तोरईके रसमें मस्तु (दहीका तोड पानी) मिलाकर पान करनेसे योनि कन्द रोग नष्ट होता है । अथवा उसकी नाडीको धूप देनेसे भी योनिकन्द रोग शान्त होता है ॥ १२ ॥ अथवा सन्तप्त लोहकी शलाकासे योनिकन्दको दग्ध करे तो विशेष दोष और विकारोंसे उत्पन्न हुआ योनिकन्द शान्त होता है ॥ १३ ॥

आयुर्वेदसे योनिकन्द चिकित्सा समाप्त ।

यूनानी तिब्बसे गर्भाशयके निकलने अर्थात् गर्भाशय भ्रंश ।

गर्भाशयका निकलना दो प्रकारका है, एक तो गर्भाशय अपनी असली सूरत पर जैसा कि नीचेकी तर्फ खिसक कर उसकी गर्दन योनिमुखसे बाहर हो जाय । दूसरा यह कि गर्भाशय अपनी असली दशासे उलट कर इस तरह पर निकले कि उसका

सब अङ्ग तो प्रत्यक्षमें दिखाई देवे किन्तु गर्दनका छेद न दिखाई देवे (गर्दनके छिद्रसे गर्भाशयके मुखका ग्रहण करना) इसको इन्किलाबुर्रहम गर्भाशयका उलटा हो जाना कहते हैं। गर्भाशयको निकल आनेको अर्बीमें (अक्क) और (करन) भी कहते हैं और गर्भाशयको निकलनेवाली स्त्रीको (अकला करना) कहते हैं, किन्तु गर्भाशयके निकल आनेके कारण बहुत हैं। एक तो यह कि स्त्रीके गर्भसे मराहुआ बालक निकले और झिल्ली कुढव खिंच जाय। दूसरा यह कि स्त्री ऊंची जगह परसे नितम्बोंके बल गिरपडे। अथवा भारी बोझ उठावे या वजनदार चीजको खींचे अथवा कूदे फांदे इन कारणोंसे गर्भाशयके बन्धन ढीले पड जाते हैं। अथवा कटजायँ वा मनका अपनी जगहसे हटजाय। तीसरा विशेष भय यह है कि निर्बल और ढीले होजायँ। चौथे यह कि कफकी चेपदार तरी गर्भाशयके बंधनोंमें आकर उनको सुस्त और ढीले करडाले और इस कारणसे गर्भाशय हट उलट कर बाहर आजाय। यह कार्य्य वृद्ध स्त्रीको और जिन स्त्रियोंकी प्रकृतिमें तरी है उनको प्रगट होता है। क्योंकि उनके शरीरमें विशेष तरी है और गर्भाशयके निकलनेका यह चिह्न है कि पेडू और नितम्बोंके मध्यकी जगह और पीठमें विशेष दर्द उत्पन्न होय, आगे पीछे खिंचाव व कपकपी चिनचिनाहट किसी कारणसे उत्पन्न होवे, योनिमार्गमें एक नर्म चीज उतर आवे फिर जो तरी कफकी है तो गर्भाशयके निकल आनेका कारण होय और गर्भाशयसे तरीका बहना शुरू हो यह इस बातका सुबूत ह। विशेष सूचना--प्रायः हकीमोंको गर्भाशय और झिल्लीमें अन्तर समझना कठिन होता है। अन्तर यह है कि झिल्ली छोटा अंग और पतली है और गर्भाशय उससे विरुद्ध आकारवाला है, चाहे किसी कारणसे उत्पन्न होय पतले आंतोंको फोकसे पवित्र करे, अर्थात् मलके निकालनेवाली दवा काममें लावे, जिससे उसका वजन (बोझ) गर्भाशयपर कम पडे और ऐसे ही मूत्रके लानेवाली चीजोंके सेवन करानेसे मसाने (वस्तिस्थान) को शुद्ध करे और जहाँ कहीं कफकी तरीका कारण हो तो मवादके निकालनेके लिये यारजातको तुर्बुदसे पुष्ट करके खिलावे और प्रत्येक दशामें आंतों और मसानेके मवादको निकालनेके उपरान्त चाहिये कि जम्बकका तैल तथा गुलरोगन लेकर थोडा केशरका तैल और थोडीसी दुर्गन्धित चीजें उसमें मिलाकर गुनगुनी करके कई बिन्दु गर्भाशयमें पहुँचावे और जो गर्भाशयका मुख बन्द नहीं हुआ है अथवा गर्भाशका मुख नहीं उलटा है तोभी वही दवा उसपर मले और इसके उरपान्त यह उपाय करे कि गर्भाशय अपनी जगह पर आजाय। उपाय यह है कि स्त्री सीधी चित्त लेटे और जाँघोंको उठाकर चौडी रक्खे चिकित्सक उस दवाको कपडेमें लपेटकर स्त्रीके योनिमार्गमें रक्खे, कि जिस दवाका वर्णन किया जायगा उसको

धीरे २ दबाकर हटावे यहांतक कि वह अपनी जगहपर आकर ठहरे । स्त्रीको जननेन्द्रिय (योनि) पर रखनेकी दवा यह है कि कीकर, तरासीस, माजू, खरनूज ये चारों बराबर लेकर पानी और थोडीसी सराबमें पका छानकर अकाकिया, सुक्रामक, महीन पसिकर इस काढेमें मिलाकर तैयार कर नरम रेशमी कपडेका टुकडा इस दवामें डवोकर गद्दी बनाकर गर्भाशय पर रक्खे, इस काढेसे भिगोकर गर्भाशयको उस गद्दीसे धीरे धीरे ऊपरको ले जावे जब अपनी जगह पर आजाय तो अजीर्णकारक (स्तम्भक) औषध पेडू और मूत्रबस्ति और गर्भाशयके समीपवर्त्ती स्थानोंके ऊपर लेप कर रोगी स्त्रीको करवटसे लिटाकर उसके नाडा बांधनेकी जगह पर (नाभिके नीचे) बारे विनासिंगीके रखकर खींचे और स्तनके नीचे पछने लगावे तो अति उत्तम है, इस दशामें सुगन्धित चीजें न सुँघावे । कारण कि सुगन्धित चीजें छींक तथा गति आदि होनेसे गर्भाशयको अपनी जगहसे टालती है अतः स्त्रीको बचाना चाहिये । यह कार्य्य इस लिये है कि गर्भाशय ऊपरकी तर्फ झुका होय और चाहिये कि गर्भाशयके पलट आनेके उपरान्त योनिमार्गमें रखनेकी उपरोक्त दवाओंको उसी जगह पर रहने देवे और कपडेके टुकडेकी गद्दी बनाकर अलसीके लुआबमें भिगोकर योनिमुखमें तथा कुछ भीतरकी तर्फ रखकर और दूसरी गद्दी लगाकर लँगोट बांध देवे और दो दिवस पर्य्यन्त इसी प्रकार चित्त लिटाये रहे और स्त्री कुछ भी भोजन न करे तो अति उत्तम है । यदि भोजन विना न रहा जाय तो कोई ऐसी वस्तु देवे जिसमें पनीलापन कम होय और अति हलकी होय । जैसे कि अधभुने अण्डेकी जर्दी । और गर्भाशयके संभालनेको तीसरे दिवस लंगोटा खोले और रखी हुई दवाको निकाल लेवे और नवीन ऊन लेकर जिस शराबमें मौलसरीके पत्र, गुलाबके फूल, बबूलका गोंद, अनारका छिलका आदि अजीर्णकारक चीजें औटाई हुई होयँ भिगोकर गुनगुन करके रक्खे और काममें लानेके समय इसी प्रकार वर्णन हो चुका है लोटें और दूसरा ऊनका टुकडा इस शराबमें भिगो कर गर्भाशय और योनिमार्ग तथा पेडूपर रख आज्ञा देवे कि जांघोंको सीधी करके करवट पर लेटे और नाडे बाँधनेकी जगहपर पछने लगा थोडी अधिक देरतक रक्खे । फिर शराबमें उपरोक्त अजीर्णकारक दवा औटाकर उसमें रखे, जब भाफ निकले तो अजीर्णकारक दवायँ पेडूपर और मूत्रमार्गके समीपवर्त्ती स्थानोंपर लेप कर लँगोट बांध देवे । जैसा ऊपर कथन कर आये हैं, बाद सर्वदा अजीर्णकारक लेप लगाते रहना । थोडे कालके उपरान्त एक घँटा मौलसिरी, गुलाबके फूल, गंदबेलाके काढेमें रक्खे, दो दो दिवस पीछे यही उपाय नये सिरेसे बदलते रहे, यहांतक कि सात दिवस पूरे होजावें । इस अवधिके बीचमें स्त्रीको कभी परिश्रम न करना चाहिये, जो नियम प्रथम वर्णन कर-

आये हैं उसी अनुकूल छींकादि व्याधिसे बचे, जिससे किसी प्रकारका झटका गर्भाशयको न पहुँचे । साथ ही साथ फिसलाने योग्य चीजें वा क्रियायोंसे बचना बहुत जरूरी है और लंगोट बांधकर तकिया लगाकर बैठे । लंगोट केवल मलमूत्र त्यागनेके समय खोले बाद पुनः बांध लेवे । (लाभ) इस रोगमें दुर्गन्धित चीजोंका सूँघना सबसे बुरा व हानिकारक है, क्योंकि गर्भाशय वास्तवमें सुगन्धित चीजोंकी इच्छा रखता है और दुर्गन्धित वस्तुओंसे घृणा करता है, जैसा कि जिगर मीठी चीजोंकी इच्छा रख अन्य प्रकारके रसोंसे अरुचि रखता है ।

यूनानी तिब्बसे गर्भाशयके हट जानेकी व निकलनेकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे गर्भाशयभ्रंश (प्रोलापसस युटराई) का निदान ।

जिस स्त्रीका गर्भाशय नीचे उतरता है, किन्तु नीचे उतर कर योनिमार्गमें अथवा योनिद्वारमें वा योनिद्वारको भी छोडकर उसके बाहर निकल आता है उस समय इस व्याधिको गर्भाशय भ्रंश कहते हैं । गर्भाशय थोडा व बहुत नीचे उतरे उसके प्रमाणसे इसकी स्थितिके तीन भेद करनेमें आते हैं । (१) एक तो गर्भाशयका मुख योनिमार्गके अन्दर आया होय (२) दूसरा गर्भाशयका मुख योनिमुखके बाहर निकल आया होय (३) सम्पूर्ण गर्भाशय योनिमुखके बाहर निकल आया होय (आकृति ४६ को) देखनेसे गर्भाशयकी भ्रंश स्थितिकी पृथक् पृथक् शकलोंका आभास जाननेमें आवेगा । और (आकृति ४७ को) देखनेसे गर्भाशयके साथ मूत्राशय तथा उसके साथ योनिमार्गका कितना भाग बाहर निकल जाता है, इस गर्भाशयका मूत्राशय और मलाशय इन मर्मस्थानोंके साथ कितना अधिक सम्बंध रहता है कि ये भी इसके साथ खिचकर बाहर आते हुए जान पडते हैं ।

आकृति नं० ४६–४७ देखो ।

गर्भाशयके साथ मूत्राशय तथा योनिमार्गका भ्रंश ।

प्रायः यह व्याधि तीस पैंतीस वर्षकी ही आयुके उपरान्त प्रौढा स्त्रियोंमें देखनेमें आती है, कम उमरकी स्त्रीको यह व्याधि बहुत थोडी देखी गई है । इस व्याधिके होनेका कारण यह है कि जिन कारणोंसे गर्भाशय पर वजन बढता है उन्हीं कारणोंसे गर्भाशयका खिसकना तथा बाहर आना भी संभव है । उसी प्रकार उसके बन्धन ढीले होनेसे भी गर्भाशय बाहर निकल आता है और कछोटेका भाग छोटा होनेसे तथा तला ऊपर गर्भ रहने और प्रसव होनेसे और कूदने, फाँदने, दौडनेसे; अथवा ऊंची जगहपरसे स्त्री नितम्बोंके बल गिर पडे, अथवा भारी वजनदार वस्तुको स्त्री उठावे वं खींचे जीनादि परसे वजन लेकर धमक कर उतरनेसे शिरपर व पीठ कन्धेपर अधिक भार रखकर आधिक मार्ग चलने आदि कारणोंसे गर्भाशय बाहर निकल आता

है । बलवान् स्त्रीकी अपेक्षा निर्बल स्त्रीको यह व्याधि अधिक होती है, जो यह व्याधि बडी उमरकी और बारबार प्रसूति होनेवाली स्त्रीको होती है तो भी छोटी उमर और सन्ततिरहित व निर्बल शरीरवालीमें ही यह व्याधि देखी जाती है । शुद्ध वन्ध्यत्वकी अपेक्षा नष्ट गर्भितव्यताका यह विशेष बलवान् कारण है । गर्भाशयका भ्रंश किसी भी रीतिसे गर्भ धारण होने देनेमें विघ्नरूप नहीं है, तो भी जिस कारणसे वह होता है वह कारण और वैसे ही गर्भके रहनेमें जो फेरफार गर्भाशयमें होते हैं, उनको लेकर समय पर गर्भकी स्थिति होना अति कठिन हो पडता है । इस व्याधिमें अनेक चिह्न होते हैं गर्भाशय नीचे उतरनेसे स्त्रीको कई प्रकारकी कठिनाई सहन करनी पडती है, पेडूके अन्दर किसी वजनदार वस्तुको भर दिया होय ऐसा स्त्रीको मालूम पडता है, जैसे किसी वस्तुको शरीरमें कोंच दिया हो, उसीके समान दर्द गर्भाशय भ्रंशवाली स्त्रीको हुआ करता है । कमरमें दर्द रहता है, सफेद पदार्थ निकला करता है, किन्तु विशेप करके आर्त्तवको किसी प्रकारकी ईजा नहीं पहुंचती । दस्तका अवरोध (बद्धकोष्ठ) रहता है । मूत्र त्यागनेकी इच्छा वारम्वार होती है और मूत्रका भी अवरोध रहता है इसीसे मूत्रकी शंका हरसमय बनी रहती है । प्रायः देखा गया है कि स्त्री जिस समय शयन करती है उस समय नीचेको उतरा हुआ गर्भाशय अपने आप अन्दर अपने नियत स्थान पर पहुंच जाता है । यदि किसी स्त्रीका न जावे तो सरलतापूर्वक हाथका सहारा देकर अन्दरको हटाकर ऊपर चढा देवे । परीक्षा करनेसे गर्भाशय नीचे उतरा हुआ जान पडता है और दीखता भी है । नीचे आया हुआ भाग जो दीखता है वह गर्भाशय ही है उसके सम्बन्धमें कमलमुख होनेसे और कमलमुखका छिद्र दीखनेसे पूर्ण निश्चय होगा कि गर्भाशय उतरा हुआ है । यदि गर्भाशयके अतिरिक्त कोई दूसरा भाग उतरा होय तो उसमें कमलमुखका भाग देखनेमें नहीं आवेगा, यदि इतने पर भी पूर्ण निश्चय न हो कुछ भ्रम मालूम हो तो कमलमुखमें गर्भाशय शलाका प्रवेश करके निश्चय कर लेवे । कितनी ही स्त्रियोंका गर्भाशय योनिमुखसे बाहर निकलाहुआ भाग उस पर वस्त्रादिका संघर्षण होनेसे चाँदी व दाग पड जाते हैं और निकले हुए भागकी चर्म (जिल्द) कठिन और खराब दीखती है । प्रायः जखम भी पड जाते हैं और राधके संयोगसे कपडा चिपक जाता है, कपडा अलग करते समय रक्त निकलता है । जब स्त्री उटकुरुआ बैठती है तो गर्भाशय बाहर निकल आता है, इस व्याधिवाली स्त्री दौडकर कोई काम नहीं कर सक्ती, यदि ऐसा करे तो अति कष्ट होता है । निदानके तरीकेसे इस व्याधिको देखा जावे तो गर्भाशय योनिमुखके बाहर निकलाहुआ होता है सो तो प्रत्यक्ष दृष्टिगत होता ही है । कदाचित् प्रथम स्थितिमें होय तो

अंगुली योनिमार्गमें प्रवेश करनेसे योनिमुखके अधिक समीप जान पडता है, कितने ही समय ऐसा भी होता है कि कमलमुखका भाग अधिक बढाहुआ होनेसे गर्भाशय जो अधिक उतरा हुआ न होय तथापि यह अधिक उतराहुआ दीखता है। इस विषयका भी निश्चय गर्भाशयशलाका प्रवेश करके करना उचित है, जो कमलमुख बढाहुआ होगा तो शलाकायन्त्रका अधिक भाग गर्भाशयमें जा सकेगा। इस देशकी स्त्रियोंको शर्म और लज्जा इतनी बढगई है कि ऐसे ऐसे भयंकर रोगोंको जीवनपर्य्यन्त दवाये बैठी रहकर अति क्लेश सहन करती हैं। यह सब समयका फेरफार है, जो कि अपनी शारीरिक स्थितिके बिगडने पर भी उसके सँभालनेमें असमर्थ रहती हैं।

गर्भाशय भ्रंशकी चिकित्सा।

इस व्याधिकी चिकित्साके उपायोंको तीन प्रकरणोंमें विभक्त किया जाता है, जैसा कि गर्भाशयके भ्रंशके ऊपर तीन स्थिति कथन की गई हैं उसी प्रकार उपायके भी तीन भाग समझ लो। (१) जब कि प्रथम स्थितिमें गर्भाशय नीचेको उतरना आरम्भ होवे तो उसको उतरनेकी गतिसे रोक कर यथास्थान नियत रहनेका उपाय करे (२) जो गर्भाशय दूसरी वा तीसरी स्थितिमें उतर आया है उसको यथास्थान ले जाकर बैठानेका उपाय करे (३) और यथास्थान बैठाये हुए गर्भाशयको उसके नियत स्थलपर स्थित (कायम) रक्खे,-किन्तु पुनः नीचे न उतरे। इसके लिये विशेष ध्यान रखना। और प्रतिदिवसके बर्त्तावमें कितना ही फेरबदल तथा आहार विहारके ऊपर यथार्थ रीतिसे ध्यान देना योग्य है। चलने फिरने व अधिक उठने बैठनेमें शान्ति रखना उत्तम है, जैसे गर्भिणी तथा प्रसव हुई स्त्री नियमपूर्वक रहती है उसी प्रकार गर्भाशय भ्रंशवाली स्त्रीको नियमपूर्वक रहना चाहिये। यदि गर्भाशय योग्य संकोचको प्राप्त हो व इसका आकार छोटा हो तो ऐसा उपाय करना योग्य है। शीतल जलसे योनिमार्गका प्रच्छालन करना (धोना) और जस्तका फूला, फिटकरी तथा टेनिकएसिड आदि ग्राही औषधियाँ शीतल जलमें मिलाकर गर्भाशय तथा योनिमार्ग पिचकारीके द्वारा धोना उचित है। गर्भाशयके बन्द ढीले होनेसे गर्भाशय आगेके भागकी तर्फ उतरता चला आता है इस कारणसे पेट भी आगेको ढलता जाता है, इस रीतिसे उसकी ढलन क्रियाको रोकनेके लिये पेटके ऊपर कमरपट्टा बाँधना उत्तम है, यह कमरपट्टा ढलते हुए पेटके भागको ऊंचा रखता है।

आकृति नं० ४८ देखो।

उपरोक्त आकृतिके कमरपट्टाके अन्दर रबर होनेसे पेटके ऊपर यह बिलकुल दबाव नहीं करता है। और मलमूत्र स्त्रीको बराबर उतरता रहे ऐसी औषधका प्रयोग सेवन करावे। यदि इस व्याधिके साथमें खांसी होवे तो उसका योग्य उपाय करना, यदि

गर्भाशय भ्रंशके साथमें वक्रता भी हुई होय तो पूर्वके अध्यायमें वर्णन की हुई चिकित्सा द्वारा निवृत्ति करे। निकले हुए भागको अन्दर रखनेके लिये स्त्रीको अर्द्ध खडी-हुई स्थितिमें अथवा वक्षोजक स्थितिमें सुलाकर और बाहर निकले हुए भागसे तैल लगाकर दावकर अन्दरको ले जावे और नियत स्थल पर बैठाल देवे। प्रायः स्त्री इस उपरोक्त स्थितिके आसनसे स्वयं भी अपने हाथसे दवाकर गर्भाशयको अन्दर ले जावे तो बैठ सक्ता है। परन्तु अधिक समय पर्यन्त गर्भाशय बाहर रहनेसे यदि शोथ व कठिन अथवा व्रणादि पडगया होय तो स्त्रीको बिस्तर पर सुलाकर रखना और उसका बाहरका भाग नीचेको जरा सहारा देकर चढता हुआ रखना और उसके ऊपर बर्फका टुकडा रखना, अथवा किसी शीतल वीर्य्यलोशनका फोहा रखना और उसके ऊपर रालके लेपवाली पट्टी बांधकर स्त्रीको सुला देना। इस प्रक्रियासे गर्भाशयका आकार छोटा हो सरलतापूर्वक अन्दर जा सक्ता है। अपने नियत स्थान पर बैठाहुआ गर्भाशय पुनः न उतर आवे इसके लिये स्त्रीको कुछ दिवस पर्य्यन्त सुलाकर रखना योग्य है। और स्तम्भन औषधियोंकी योनिमार्गमें पिचकारी लगा शीतल जलसे योनिको निरन्तर प्रच्छालन करते रहना। स्त्रीको पौष्टिक औषध प्रयोग देना टींकचर ओफस्टील, नाईट्रिक एसिड, फास्फरिकएसिड, जहरकुचिला तथा इसका सवस्टिकनियां इत्यादि स्त्रीको बल वढानेके निमित्त परिमित मात्रासे देवे। यदि खाँसी आदि व्याधि हो तो उसका योग्य औषधसे शमन करे और ग्लीसराईनमें डवोया हुआ लॅन्ट वा रुईका फोहा योनिमार्गमें रखना और ऐकस्ट्राकट अर्गटकी १५ टीपा (बिन्दु) की मात्रा १ दिवससें तीन समय पर्य्यन्त देना और कुछ समय पर्य्यन्त निरंतर दे गर्भाशयको ताकतवर वनाना। इसके अतिरिक्त उसको अपने नियत स्थानपर रहनेकी कोशिश करना उत्तम है, इसके लिये पृथक् पृथक् जातिकी पेसरीयन्त्र आते हैं वे अति उपयोगी हैं। (आकृति नं० ३९ की पेंसरीयन्त्र) यह होजिसकी सादी पेसरी बीचमें सली आनेवाली उत्तम रीतिसे गर्भाशयको नियत स्थानपर स्थिर रखने सक्ती है। इसके शिवाय जिस रीतिसे गर्भाशय अपने नियत स्थल पर हो स्थिर पुनः नीचे न उतर सके ऐसी पेसरी काममें लावे। वाद स्त्रीके मर्मस्थानको किसी प्रकारका कष्ट न पहुँचें ऐसी चिकित्सक योजना करे। यदि उपरोक्त क्रिया और चिकित्सासे गर्भाशय अपने नियत स्थान पर बराबर स्थित न रहे तो शस्त्रोपचार करना योग्य है। इसकी विधि यह है कि योनिमार्गका जो अन्तर पडत (चर्मजिल्द) है, उसका थोडा भाग काटकर उस जखमकी दोनों कोरैं मिलाकर सीम देना और जखमोंके समान उसकी चिकित्सा करके रोपण करे, इससे योनिमार्गका संकोच होनेसे गर्भाशय कदापि नीचे

न उतर सकेगा । जिन कारणोंसे योनिद्वार संकुचित होता है वे सब साधन गर्भाशय भ्रंशको रोकनेवाले हैं ।

गर्भाशय भ्रंशकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे योनिभ्रंश (प्रोलापसस) का निदान ।

आयुवेदमें योनिकन्द और प्रोलापसस एक ही व्याधि समझमें आती है । किसी समय योनिका भाग आमलाके समान निकल आता है, विशेष करके योनिकी सम्पूर्ण परिधिका भाग बाहर नहीं निकलता है । आगेका अथवा पीछेका भाग नीचे उतरता है । जब आगेका भाग नीचे उतरता है तब उसके जोडका मूत्राशयका भाग (जिस स्थल पर मूत्रनलीका छिद्र है) वह भी उतरता है । उसके अन्दर मूत्र भरा रहता है, इस कारणसे दुर्गंध आती है और मूत्रके साथमें धातु बहती है । जब योनिके पीछेका भाग उतरता है तब उसके साथ गुदा (सफराका भाग) अथवा दूसरी कोई आंतडीका भाग भी आता है । इससे उसके अन्दर मल भरा रहता है, योनिका निकला हुआ भाग धीरे धीरे बढता जाता है । पेडूमें मरोडाके समान दर्द हुआ करता है और वजन मालूम होता है तथा धातु जाती है अंगुली प्रवेश करके परीक्षा करनेसे उस निकले हुए आमलेके समान भागसे यथार्थ स्थिति मालूम पडती है ।

डाक्टरीसे योनिभ्रंशकी चिकित्सा ।

इसकी चिकित्सा प्रणाली यह है कि मूत्र अथवा मलके अवरोधकी निवृत्तिके अर्थ मूत्रशलाका तथा पिचकारीका उपयोग करना उचित है । कितने ही समय पर्य्यन्त विस्तरमें शयन कराके स्त्रीको रखना शीतल जलमें स्त्रीको बैठालना तथा नीचे लिखी दवाकी पिचकारी लगानी । लाईकरप्लंबाई, सब एसेटेटीस ४ से ६ ड्राम लेकर एक पाईंट पानीमें मिलाकर योनिमें पिचकारी लगानी तथा जस्तका फूला $\frac{1}{2}$ से १ ड्राम, फिटकरीका फूला $\frac{1}{2}$ से १ ड्राम, टेनिकऐसिड $\frac{1}{2}$ से १ ड्राम, जल एक पाइंट इन सब दवाओंको जलमें मिलाकर योनिमें पिचकारी लगानी, अथवा नीचे लिखी हुई। दवाकी गोली वा बर्त्तिका बनाकर योनिमें रखना । टेनिकऐसिड ६० ग्रेन पपडिया कत्थाकी बुकनी ३० ग्रेन इन औषधियोंको कोकमके तैलके साथ मिलाकर बर्त्तिका व गोली बना हररोज रात्रिके समय एक रख देवे । बाद स्त्रीको बल बढानेके लिये लोहभस्म, कुनैन, फासफारिकऐसिड तथा कुचिलाका अर्क आदि पौष्टिक औषध परिमित मात्रासे सेवन करावे और उत्तम हलका पौष्टिक आहार दे, स्त्रीको शिक्षा देवे कि किसी भी समय शारीरिक जोरका काम या भारी वस्तु उठानेका काम न करे । इसके अतिरिक्त योनिका भाग पुनः नीचे न उतरनेके लिये योनिमें

पहरानेका पेसरी यन्त्र आता है वह योनिकी स्थितिके अनुकूल निश्चय करके पहरावे ।

योनिभ्रंशकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे फलवाहिनी शिराका वक्र अथवा संकुचित होना ।

प्रथम स्त्रीके शारीरिक प्रकरण पर दृष्टि देकर देखो कि संतान उत्पत्तिके हेतु फलवाहिनी, गर्भ अण्ड और गर्भाशय इन तीनोंका घनिष्ट सम्बन्ध है । यदि स्त्रीके गुह्यावयवोंमें फलवाहिनी शिरा (नलीके) रोगोंका निदान करना विशेप कठिन है, कारण कि इस नलीको दृष्टिसे नहीं देख सक्ते और इसीसे उसके रोगका निदान केवल अनुमान प्रमाण द्वारा ही होने सक्ता है । जिस समय पेटके पर्देका शोथ उत्पन्न होता है तब उसमेंसे जो रस लींफ निकलता है वह फलवाहिनी नलीके आस-पास कठिन होकर जम जाता है इसीसे वह संकुचित हो जाती ह, कितने ही समय गर्भाशयमें क्षोभक प्रवाहिनी पिचकारी आदि मारनेसे फलवाहिनी नलीमें पहुँचती है और वहाँ दवाके असरसे पाक होकर रोपणके अंतर किसी समय पर वह अन्दरके भागको संकुचित करती है । किसी समय फलवाहिनी नलकि मुखमें मस्सा होनेसे भी वह भाग बन्द हो जाता है, इसी कारणसे स्त्रीको असाध्य वन्ध्यत्व दोप प्राप्त होता है । प्रथम आरम्भावस्थामें उस भागमें शोथ उत्पन्न होता है और शोथ शांत होने पछि उसका जीर्ण असर रह जाता है और प्रमेहको लेकर भी फलवाहिनी दूपित हो जाती है । इस व्याधिके विशेप चिह्न कुछ निज तौरसे तो होते नहीं, लेकिन पेटके दूसरे किसी मर्मस्थानमें शोथ होता है ऐसा निश्चय जान पडता है । स्वयं तथा दावनेसे गर्भाशयके आसपासके भागमें दद होता है और गर्भाशयका शोथ है ऐसे चिह्न जान पडते हैं । शोथके चिह्न शान्त हो जाने पीछे पेटका दर्द आदि कम पड जाता है तब वन्ध्यत्वके अतिरिक्त दूसरा कोइ चिह्न नहीं रहता है ।

डाक्टरीसे फलवाहिनी नलिकाके वक्रत्व तथा संकोचकी चिकित्सा ।

फलवाहिनीकी इस स्थितिके लिये कोई भी निज तौर पर औपध नहीं है । यदि दूसरे समीपवर्ती मर्मस्थानोंके समान शोथ हो तो गर्म जलका सेंक कर पुल्टिस आदि उपाय काममें लाने चाहिये, ये उपाय फलवाहिनीके शोथको भी शान्त करते हैं । किसी भी स्थानमें जो मर्मस्थानके सामान्य शोथ अथवा विशेप शोथकी जो सामान्य चिकित्सा इस ग्रन्थमें कथन की गई है वे सब प्रक्रिया इसमें करनेमें आती हैं । जब शोथ अधिक समय पर्यन्त रहनेसे फलवाहिनीके आसपास लींफका जमाव (संग्रह) हो जाता है तो वह संकुचित हो जाती है, तब उस संगृहीत जमावको गलानेके लिये नीचे लिखी हुई औषधियोंका प्रयोग करना योग्य है । सीरपफेरीआयो-

डीड १½ ड्राम, लाईकबोरहाईड्राजिराईपरकलोरीडाई १ ड्राम, जल ३ ओंस इस प्रमाणसे औषध मिलाकर उसके ३ भाग कर दिनमें ३ समय ४ घंटेके अन्तरसे पीना और इसी प्रकार इस औषधके सेवनका क्रम महीने दो महीने पर्यन्त बराबर रखना, जो इससे स्त्रीकी कुछ स्थिति सँभलकर ठीक होवे तो आगे समय पर ऋतुधर्म कुछ अधिक और साफ आवेगा । यदि गर्भाधान रहे बिदून कुछ फायदा जान पडें तो ठीक है, यदि कुछ लाभ न जान पडे तो यही समझना कि इस व्याधिकी स्थिति सँभलनेवाली नहीं है । किन्तु इसके लिये कुछ मन मलीन न करना, यदि इसके साथ गर्भाशयकी कोई व्याधि हो तो उसका योग्य उपाय करना ।

फलवाहिनी नाडीकी व्याधिकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे स्त्री गर्भ अण्डकी व्याधियोंके लक्षण ।

फलवाहिनी नालकाके साथ गर्भाशय तथा गर्भ अण्ड दोनोंका संयोग (संबन्ध) है, गर्भाशयकी अधिकांश व्याधियाँ पूर्व वर्णन होचुकी हैं । अब गर्भ अण्डकी व्याधियोंका वर्णन करते हैं । गर्भ अण्ड ही स्त्री वीर्यजन्तुओंकी उत्पत्तिका प्रधान स्थान है, गर्भ अण्डमेंसे स्त्री वीर्य उत्पन्न होते हैं । जब स्त्री वीर्यका पुरुष वीर्यके साथ संयोग (मिलाप) होता है तब ही गर्भाधान रहना संभव है, गर्भ अण्डकी व्याधि होनेसे स्त्रीवीर्य नियमपूर्वक उत्पन्न नहीं हो सक्ता और इसीसे इस व्याधिवाली स्त्रीको गर्भाधान भी रहना असंभव ही है । इसलिये गर्भ अण्डकी व्याधियोंको वन्ध्यत्वके कारणोंके तरीकेसे वन्ध्यत्व स्थापित करनेवाली गणनामें आती हैं । वे इस प्रकारसे हैं—जैसा कि (१) गर्भ अण्डका अभाव, (२) गर्भ अण्डका अपूर्ण प्रफुल्लित होना, (३) गर्भ अण्डका भ्रंश, (४) गर्भ अंडका दीर्घ शोथ इनमेंसे प्रथम और दूसरे विषयका वर्णन प्रजोत्पत्तिकर्म अवयवकी अपूर्णताके प्रकरणमें लिख चुके हैं वहाँ देखो । अब गर्भ अण्डका भ्रंश गर्भ अण्ड, गर्भाशयकी मथालीके दोनों तर्फ स्थित है और वहाँसे कितने ही समय किसी विशेष कारणसे खिसक कर नीचे, अथवा पछिके भागकी ओर पश्चात् योनि द्रोणमें आजाते हैं । गर्भ अण्डमें रक्तका जमाव होनेसे अथवा दूसरे किसी कारणसे जो उनके वजनमें वृद्धि हो तो इससे वे नीचे उतर आते हैं, इसी प्रकार गर्भाशय पश्चात् विवृत वा विकृत होय तो इससे भी गर्भाण्डका स्थानान्तर हो जाता है । इसकी अपेक्षा गर्भाशयके भ्रंशके साथ भी गर्भ अण्डका भ्रंश होता है, जो गर्भ अण्ड इस रीतिसे स्थानान्तरमें चलागया हो तो उसमें कालान्तरसे रक्तका संग्रह होता है और शान्तभावसे दीर्घ शोथ भी जान पडता है । गर्भ अण्ड भ्रंशके विशेष चिह्न इस प्रकारसे हैं—

दस्त जानेके समय, इसी प्रकार पुरुष समागमसे स्त्रीको दर्द मालूम पडता है पेटपर हाथ रखकर दाबनेसे गर्भ अण्डके स्थानके ठिकाने दर्द होता है और उस भागके ऊपर विशेष दवाव डालनेमें आवे तो स्त्रीको वमन होने लगती है और घुमनी आने लगती है । यदि इसके साथ शोथके चिह्न हुए होयँ तो यह चिह्न विशेष भयंकर लगते हैं । निदानपूर्वक अंगुली प्रवेश करके परीक्षा करनेसे गर्भ अण्डकी गांठ कमलमुखके पीछेकी तर्फ काठिन वदामके समान जान पडती है । यदि गर्भाशय पश्चात् विकृत होय तो उसमेंसे उसको देखना चाहिये, गर्भाशयको अपने नियत स्थानपर लानेके पीछे कमलमुखके पीछेके भागमें गर्भ अण्ड जान पडते हैं ।

डाक्टरीसे स्त्री गर्भ अण्ड व्याधिकी चिकित्सा ।

इसका उपाय यही है कि गर्भ अण्डके साथ गर्भाशयका स्थानान्तर हुआ होय तो उसको उसके नियत स्थान पर वैठालना । गर्भाशय अपने नियत स्थानपर पहुंच जाये पर इसके साथ ही गर्भ अण्ड भी स्वयं अपने नियत स्थानपर पहुंच जाते हैं । परन्तु इस प्रसंग पर गर्भ अण्डमें दर्द अधिक होता है, इस लिये गर्भाशयको नियत स्थान पर रखनेके लिये पेसरी यन्त्र पहराना आवश्यक है । क्योंकि उसको यह अति कठिन हो जाता है किन्तु कभी २ पहरा भी नहीं सक्ते यदि ऐसे मौकेपर वहपेसरी पहरा दी जावे तो स्त्रीको एकदम वमन होने लगती है और असह्य वेदना होती है । इस अवस्थामें स्त्रीको शामक औषध प्रयोग देवे और थोडे दिवस पर्य्यन्त विश्राम (आराम) देना योग्य है । गर्भाशयको पीछे नियत स्थानपर लाने तथा यथास्थान नियत रखनेके लिये होजिस पेसरी पहरानी, यदि होजिस पेसरीका पीछेका वांक जरा ऊंचा हो तो ठीक है ऐसी पेसरी काममें लेनी । कारण कि इससे गर्भाशयको अधिक ऊँचे भागमें खेंचना पडेगा और उसके साथही वो गर्भ अण्ड भी खिंचकर अपने नियत स्थान पर आ जाते हैं । दूसरे जो स्थानिक चिह्न जान पडें उनका योग्य उपाय करना उचित है सो चिकित्सक विचारपूर्वक अपनी बुद्धिके अनुसार करे ।

गर्भ अण्डका दीर्घ तीक्षण शोथ ।

प्रत्येक मासमें ऋतुधर्मके समय गर्भ अण्डमें रक्तका संग्रह विशेष होता हो ऐसी स्थितिमें तथा मानसिक शक्ति अधिक तेज होय इसी प्रकार (हिस्टीरीया) अपस्मार आदिका कुछ भी अंश जिस स्त्रीमें होय उस स्त्रीके अन्दर गर्भ अण्डका दीर्घ शोथ मिलना विशेष संभव है । रजोदर्शनकी कुछ विकृतिको लेकर अथवा गर्भाशयके दीर्घ शोथको लेकर भी गर्भ अण्डका दीर्घ शोथ उत्पन्न हो आता है । अत्यन्त और उसी प्रकार अपूर्ण पुरुष समागम भी गर्भ अण्डके दीर्घ शोथका प्रभूत कारण है जिस कारणसे गर्भाशयमें रक्तका संग्रह

होय उसी कारणसे गर्भ अण्डमें भी रक्तका संग्रह होता है, बद्धकोष्ठ प्रमेह तथा पेटके अन्तर पडतके शोथको लेकर भी गर्भ अण्डका दीर्घ शोथ उत्पन्न हो आता है। इसका विशेष चिह्न यह है कि पेडूमें तथा सांथलमें दर्द होता है और किसी समयपर विशेष शक्त हो जाता है। किसी समय तो ऋतु स्राव जोशसे आता हैं किसी समय पर थोडा आता है और किसी किसी समय बिलकुल बन्द हो जाता है। प्रथम तो सदैव थोडा थोडा दर्द हुआ करता है, किन्तु, जब ऋतु स्रावका समय आता है तब दर्द बढ जाता है। दर्दके साथ स्त्रीको घुमनी आया करती है, वमन होता है, किसी २ समय पेट चढ जाता है, स्तनोंमें दर्द रहता है, और किसी किसी समय पर (हिस्टीरीया) अपस्मारके जैसे चिह्न होते जान पडते हैं। योनिके आभ्यन्तर भागमें परीक्षा करनेसे ज्ञात होता है कि जो गर्भ अण्डके भागको दबानेसे स्त्रीको क्लेश जान पडे तो इससे विशेष दर्द हो जाता है और गर्भाशयके जीर्ण रोगसे जो चिह्न होते हैं वे चिह्न इस रोगसे भी होते हैं अजीर्णकी अनेक विकृतियाँ और वात-व्याधिके पृथक् पृथक् रूपान्तर गर्भ अण्डके रोगवाली स्त्रीमें दृष्टिगत होते हैं और ये सब स्त्रीको वन्ध्या रखनेका बडा कारण समझा जाता है। यदि इस रोगवाली स्त्रीकी आदत निरन्तर बैठे रहनेकी होय तो छुड़ा कुछ कुछ परिश्रम वा बैठने उठनेका काम लेना चाहिये। बाद इसके मल, मूत्र साफ होता रहे ऐसी औषध देना योग्य है। आहार हलका शीघ्र पचनेवाला, बलकारक देना उचित है। यदि पौष्टिक आहारसे विषयवासनाकी चेष्टा उत्पन्न होवे तो ज्ञान विचार और तर्कसे मनको हटावे। यदि शारीरिक स्थिति भी आरोग्यता पर होवे तो भी पुरुषसमागम अधिक समयके अन्तरसे करना चाहिये। गर्भ अण्डमें रक्तका संग्रह होता है इसकी निवृत्तिके लिये गर्भ अण्डके ठिकाने पेटके ऊपर राईका प्लाष्टर लगाना, अथवा ब्लीस्टर लगानेसे भी लाभ पहुँचता है। यदि जो शोथ विशेष जोशमें न हो तो ऊष्ण पुल्टिस जैसे राई, अलसी, हाल्यो-दाना, कलौंजी आदिकी रखनी। गर्मजलमें फलाटेन भिगोकर अथवा गर्म जल बोतलमें वा रबरकी थैलीमें भरकर उदरके ऊपर सेंक देना और आयोडीन चुपडना, गर्भाशय गर्भ अण्ड और योनिमार्गमें गर्म जलकी पिचकारी लगानी इससे लाभ पहुँचता है। इसके अनन्तर ग्लीसराईनप्लग रखना और कमर डूब जावे ऐसे टीपमें गर्म जल भरकर बैठना दीर्घ शोथमें गभ अण्डके अन्दर जो रक्तका संग्रह होता है उसको तहलील करने (पिघलाने) के लिये आयोडीन और ब्रोमाईड ओफपोटीसायम विशेष उपयोगी है उसके साथ लाईकबोरहाईड्रोजिराईपरकलोरीडी भी अति उत्तम फायदा करता है।

औषधप्रयोग.

पोटासआयोडीड १० ग्रेन, पोटासब्रोमाईड १५ ग्रेन, लाईकबोरहाईड्रोजिराइपरकलो-

रीडी १ ड्राम, टींकचरसीन्कोनाको १ ड्राम, जल ३ ओंस आदि औषधियोंको मिलाकर एकत्र कर एक ओंसकी मात्रा ४ घंटेके अन्तरसे लेनी चाहिये । कुछ दिवस पर्य्यन्त यह औषध सेवन करनेसे दर्द व तीक्ष्णताके चिह्न शान्त हो व्याधि जीर्णरूपमें रहती है । ऐसे समय पर स्त्रीको पौष्टिक आहार तथा औषध देना खुलीहुई स्वच्छ हवामें फिरना और हवादार मकानमें निवास करना शीतल व ताजा कूप जलसे स्नान करनेका अभ्यास रखना और बल बढानेके लिये लोह शिलाजतुका सेवन करना, लोहभस्मसे दस्त कब्ज होता है सो लोहशिलाजतुको त्रिफलाके संयोगसे सेवन करना, अथवा चन्द्रप्रभा वटिका सेवन करना उत्तम बलदायक है । कदाचित् फिर भी दस्त कब्ज रहे तो सारक औषध देना योग्य है । चन्द्रप्रभा वटी गर्म दुग्धके साथ सेवन करनेसे दस्तको कब्ज नहीं करती । यदि किसी स्त्रीको मद्य पान करनेका स्वभाव होय तो यह आदत उसकी छुडा देनी चाहिये । किसी किसी समय गर्भ अण्डका दीर्घ शोथ ऐसा जीर्णरूप धारण करता है कि इससे पृथक् पृथक् जातिके रोग उत्पन्न हो आते हैं जो बिलकुल शान्त नहीं होते, तब केवल स्त्रीकी आरोग्यता रहे और उसके शरीरमें बल आवे ऐसे औषध प्रयोग तथा आहारविहार, करे इनसे जितना लाभ पहुँचे उतनेमें संतोष करे । यदि गर्भ अण्डमें प्रमेहजन्य शोथ होय तो प्रमेहका विष नष्ट होय ऐसा उपाय करे ।

स्त्रीगर्भ अण्डके दीर्घशोथकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे स्त्रीगर्भ अण्डके जीर्णशोथका निदान ।

ऊपर गर्भ अण्डकी व्याधिके चार विभाग किये थे, परन्तु दीर्घ शोथस विपरीत कभी २ किसी किसी स्त्रीमें जीर्ण शोथ पाया जाता है । स्त्रियोंके यह जीर्ण शोथ अधिक समय पर्य्यन्त ठहरता हुआ देखा जाता है, ऋतुस्राव आनेके समय गर्भ डिम्ब रक्तसे भरपूर होते हैं और जो उसमें किसी कारणसे अधिकता होय तथा रक्तकी वृद्धिके समय उसमें भरेहुए रक्तके कारणसे कुछ शोथ उत्पन्न हो जाता है । ऋतुस्रावके समय शर्दी लगनेसे कितने ही समय यह शोथ उत्पन्न हो आता है । अति मैथुनसे अथवा गर्भाशयमें काष्ठादि औषध लगानेसे अथवा गर्भाशय शलाका प्रवेश करनेसे और गर्मीसे गर्भ अण्डका जीर्ण शोथ उत्पन्न होता है । एक अथवा दोनों तर्फके गर्भ अण्डमें जीर्णशोथ उत्पन्न हो जाता है । इस व्याधिके विशेष चिह्न इस प्रकार होते हैं । पेडूमें तथा कमरमें मन्द मन्द दर्द रहता है । एक अथवा दोनों जाँघें दूखती हैं ऋतुस्रावका रक्त थोडा और अति कष्टसे आता है घुमेर वमन तथा अजीर्णका रोग जान पडता है अपस्मार (मृगी हिस्टीरीया) के कितने ही चिह्न दीख पडते हैं मूत्र कितने ही वक्त थोड़ा २ उतरता है, किसी समय पर प्रदर मालूम

होने लगता है, पुरुषसमागमके समय अति पीडा जान पडती है, योनिके आभ्यन्तर भागकी परीक्षा करनेपर गर्भाशयमुखके दोनों ओर बगलमें शोथवाली गांठ एक वा दोनों ओर सूझी हुई जान पडती हैं, तथा दबानेसे दर्द मालूम होता है ।

स्त्रीगर्भ अण्डके जीर्ण शोथकी चिकित्सा ।

इस शोथवाली स्त्रीकी प्रकृति अधिक नाजुक हो जाती है, इसलिये प्रथम उसको बल प्राप्त करनेके निमित्त पौष्टिक औषध प्रयोग तथा पुष्टिकारक आहार देकर स्त्रीको शक्तिमान बनावे । और उसके पेट तथा पेडूके ऊपर शर्दीसे बचाव करनेके लिये फलालैनका तथा बनातका कपडा लपेट देना । एक सप्ताहके अन्दर २ समय गर्म जलमें बैठना, शीतल जलके स्पर्श व स्नानसे बचाव रखना, आरोग्य न होवे वहाँ-तक पुरुष समागमसे बचा नीचे लिखीहुई दवाका सेवन कराना । कलोरेट पोटास २० ग्रेन, जल १ ओंस इस औषधको मिलाकर दिनमें ४ समय ३ घंटेके अन्तरसे पिलाना । यदि इस औषधसे लाभ न पहुंचे तो आयोडाईडपोटास ५ ग्रेन १ दिवसमें ३ मात्रा करके देना, यदि दर्द विशेष होता होय तो उपरोक्त औषधके साथ ५ टीपा (विन्दु) टींकचरआयोडाईडके डालकर देना और काडलीवर ओईल पाचन हो सके तो उत्तम लाभ पहुंचता है । योनिमें आयोडाईडओफलेड तथा वेलोडोनाकी बत्ती व गोली बनाकर रखना । यदि कमरमें पिडा होती होय तो उसके ऊपर बेलोडोनाका प्लाष्टर लगाना । पेटके ऊपर स्त्री अण्डके ठिकाने ब्लीष्टर लगाना उचित है ।

स्त्रीगर्भ अण्डके जीर्ण शोथकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे स्त्री अण्डका जलन्दर (जलोदर) ।

जिस प्रकार पुरुषके अण्डकोशमें प्रवाही पदार्थकी वृद्धि होती है उसको "अंडवृद्धि" कहते हैं । उसी प्रकार स्त्रीके गर्भ अण्डमें भी प्रवाही पदार्थकी वृद्धि होती है, इसको "स्त्री अण्डका जलन्दर व जलोदर" कहते हैं । क्योंकि स्त्रीके अण्ड उदराकृतिके आभ्यन्तर हैं, इस कारण व्याधिके नामके साथ अन्तमें उदरका सम्बन्ध आता है । इस व्याधिमें स्त्रीके गर्भ अण्डके अन्दर प्रवाही पदार्थका संग्रह होकर वृद्धिको प्राप्त होता है तथा उससे जलन्दरके समान पेट मोटा और ऊंचा हो जाता है । गर्भ अण्डके सम्बन्धमें यह एक प्रकारकी रसौली होती है तो भी इस व्याधिका नाम सार्थक है । यह एक ही रसौली बडी होती है अनेक रसौली होयँ तो उनमेंसे एक मोटी और बडी होती है । किन्तु बाकीकी छोटी होती हैं । और पृथक् आकृतिसे अलग अलग होती हैं, अथवा एकके अन्दर दूसरी होती है । यदि एक ही रसौली होय तो उसके

अन्दर विशेष करके जलके समान प्रवाही पदार्थ जैसा होता है और उस प्रवाही पदार्थमें (आलब्युमिन) होता है । बहुत रसौली होय तो उनके अन्दर विशेष करके घनरूप (गाढा) काले रंगका चिकना स्निग्ध प्रवाही पदार्थ होता है, यह व्याधि २० से ४० वर्षकी उमरवाली स्त्रीको विशेष करके देखनेमें आती है, जो स्त्री पुरुषसमागममें रत हैं अथवा जो कुमारी हैं उनके भी होती है । यह कुछ नियम नहीं कि विवाहिता ही स्त्रीको होती होय और कुमारीको न होती होय। इस व्याधिमें विशेष चिह्न इस प्रकार होते हैं कि आरम्भमें कोई चिह्न विशेष माळूम नहीं पडता, रसौली वढकर जब पेडूमें आती है तब एकमात्र चिह्न यह कि स्त्रीका पेट स्थूल होने लगता है और वह ऐसा दीखता है कि गर्भसे अथवा चर्बीसे अथवा वायुसे पेटकी वृद्धि होती है । चिकित्सकको ऐसे भ्रममें डालनेवाला यह रोग है, पेडूके अन्दर रसौली होय तब किञ्चित् मल वा मूत्र कम वा अधिक आनेका चिह्न जान पडता है कमरमें पीडा होती है, अथवा चस्का चलता है । परन्तु ऐसे चिह्न स्त्रीको अनेक प्रकारकी व्याधियोंमें साधारण रीतिसे दीख पडते हैं । इस कारणसे इन चिह्नोंपर विशेष लक्ष्य देनेमें नहीं आता, कितने ही समय ऋतुस्राव बराबर नियमपूर्वक साफ आता है कितने ही समय न्यून आता है और किसी समय बिलकुल नहीं आता जब रसौलीसे पेट विशेष स्थूल हो आता है तब एकमात्र चिह्न थोडा बहुत होने लगता है । स्त्रीका बल नष्ट होता जाता है और शरीर निर्बल तथा कृश जान पडता है, अजीर्ण तथा मलका अवरोध रहने लगता है, मूत्र त्यागनेको अधिक बार जाना पडता है और कुछ कुछ श्वास रोगके समान चिह्न दीखने लगते हैं । पेट जलंदरकी व्याधिके समान स्थूल हो जाता है । एक बाजू (बगल) में पेटको ठोका जावे तो पेटकी सामनेकी दूसरी बगलमें प्रवाही पदार्थका प्रत्याघात लगता है । पेटको ठोकनेसे चौतर्फ कमजोर खोखला शब्द निकलता है जैसा कि जलकी कुछ कम भरी हुई मसकमेंसे निकलता है । कितने ही समय पैरोंपर शोथ उत्पन्न हो जाता है और शोथ उत्पन्न होता है तबसे ही अधिक निर्बलता, श्वास, मन्दाग्नि, निद्रानाश इत्यादि विशेष चिह्न उत्पन्न हो जाते हैं । इस व्याधिसे स्त्रीका जीवन आपत्तिमें फँस जाता है, इस स्त्री अण्डके जलंदरकी प्रथम परीक्षा करना अति आवश्यक है । साधारण जलन्दरकी व्याधिसे तथा पेटकी और कितनी ही व्याधियोंमें उसको देखकर निश्चय करे कि कौनसा जलंदर अण्ड जलन्दर है, अथवा उदर जलन्दर है ? जब चिकित्सक पूर्णरीतिसे इसका निश्चय करलेगा तभी इस व्याधिका पूर्ण उपाय होने सक्ता है । जब पेडूके अन्दर होय तो इस रसौलीकी गांठको योनिके अन्दर परीक्षा करे कि एक बाजू (बगलके) गर्भ अण्डमें माळूम होगी वह बढकर नाभिसे

लग जावेगी, इतना सब भाग पेडूका विशेष करके दोनों ओरका भराहुआ मालूम होगा कौनसी बगलमें गाँठ है इसका भी निश्चय कितने ही समय नहीं हो सक्ता इससे परीक्षक भ्रममें पड जाता है। परन्तु एक दो समय बराबर ध्यान देकर योनिके आभ्यन्तर अथवा पेडू और पेटकी परीक्षा पूर्णरीतिसे करके निश्चय करे कि अमुक बगलके गर्भ अण्डमेंसे इसकी उत्पत्ति है और नीचेकी निशानीसे स्त्रीगर्भ अण्डके जलन्दरको देखे। इस व्याधिको लेकर पेट भरा हुआ रहता है। विशेष करके पेट एक समान गोलाकार हो जाता है। यदि अनेक रसौली होयँ तो कदाचित् किसी ठिकाने ऊंचा नीचा मालूम पडता है, स्त्री खडी अथवा सिधी चित्त सोती होय तब गांठ आगेकी तर्फ मालूम पडती है, दोनों बगलें फूलीहुईं मालूम नहीं होतीं, पेटके ऊपर काली नसोंकी रेखायें दीख पडती हैं। पेट पर दाबनेसे शक्त कठिनता मालूम होती है। यदि एक ही रसौली होय तब प्रत्याघात स्पष्ट जान पडता है। यदि विशेष रसौली होयँ तो कम जान पडती हैं, विशेष करके पासमें प्रवाहीका भराव नहीं लगता किन्तु रसौलीके पडे होनेपर अथवा उसके साथ पेटका जलन्दर साधारण होय तो बगलके पडखामें भी प्रवाही पदार्थ भरा हुआ लगता है। अन्दरका पदार्थ अधिक चिकना होता है, यदि रसौलीका पड़त विशेष मोटा दलदार होय तो प्रत्याघात कम मालूम पडता है पेटपर ठोकनेसे कमजोर शब्द पूर्व कथनके समान निकलता है। कदाचित् एकाधी आँतडी उसके ऊपर आय गई हो अथवा उसके फोडनेके पीछे अन्दर वायु भर गई होय तो एकमात्र अपवादके तरीकेसे पोली आवाज आती है; कमजोर आवाज चारों ओरसे आती है। यदि स्त्री सीधी बैठे सोवे तो भी उसमें कुछ अन्तर नहीं पडता।

स्त्री गर्भ अण्डके जलोदरकी चिकित्सा।

स्त्रीको गभ अण्डका जलन्दर किसी खानेकी औषधसे नहीं निवृत्त होता, जलन्दर साधारण कदका हो, तथा स्त्रीकी प्रकृति ठीक होय तो उपाय करनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है। यदि जलन्दरके वजन सहन करनेमें कष्ट पडता हो, श्वास लेनेमें हरकत पहुँचती हुई शारीरिक आरोग्यता बिगडती जाती होय तो इस अवस्थाके दो उपाय हैं, या तो उसको फोड देना अथवा पेट चीरकर सबको निकाल देना। जलन्दर फोडनेका काम विशेष सरल है, जलन्दर फोडने पीछे कलोरेटपोटास तथा आयोडाईडपोटास, इन दोनों औषधियोंको अधिक दिवस तक दिया करना और फोडने पीछे एक दो वर्षमें पीछे प्रवाही पदार्थ भर जाता है ऐसा नहीं होने देनेके दो उपाय हैं। एक तो फोडे हुए ठिकाने पर अन्दर नली पहराकर रखना इसके द्वारा उसमेंसे प्रवाही जल निकलता रहे। दूसरा उपाय यह है कि उसको फ़ोडकर

शीघ्र उसके अन्दर टींकचर आयोडीनकी पिचकारी मारना, पिचकारी मारनेसे कितने समय देखा गया है कि फिर भी भर जाता है । इन दोनों उपायोंस पेटमें शोथ उत्पन्न होनेका भय रहता है और ये दोनों उपाय एक दो रसौलीको लागू पड सक्ते हैं । यदि अधिक रसौली होवें तो दोनों उपाय निरर्थक पडते हैं । जलन्दर फोडनेकी प्रक्रिया इस प्रकार है कि स्त्रीको दस्त और पेशावसे निवृत्त करके पग मोड करके विस्तर पर बैठालना और उसके पीछे एक मनुष्य बैठकर उस स्त्रीके नेत्र वन्द कर पेटपर एक लम्बा कपडा लपेट उसके दोनों सिरे पकडे रखना और एक नलिका शस्त्र होता है उसको तैलसे चिकना करके पेटकी मध्य रेखामें नाभिके सीधेमें दो इंच नीचे अन्दर प्रवेश करना । इसके बाद उसकी आर (नोक) निकाल लेनी, आर निकालते ही नलीमेंसे प्रवाही पदार्थकी धार छूटने लगती है । उसको वर्त्तनमें ले लेना जैसे जैसे प्रवाही पदार्थः निकलता जाय वैसे वैसे पेटसे लिपटेहुए कपडेके दोनों शिरे खींचता जावे जब प्रवाही पदार्थ निकलनेसे बन्द हो जावे तब नलीको निकाल लेवे और नलीके छिद्रके ऊपर औषधकी पट्टी लगाकर पट्टा बांध देवे । पेटको चीरकर गर्भ अण्डकी रसौली निकाल लेनेसे पुनः होती तो नहीं परन्तु पेट चीरकर निकालनेमें भी कितनी ही जोखम है । तथापि इस जलन्दरसे शरीर क्षीण होने लगता है और फोडनेसे फायदा होता नहीं तब काटकर निकालनेके अतिरिक्त स्त्रीकी आयुकी रक्षा करनेवाला दूसरा इलाज नहीं है । (स्त्री गर्भ अण्डकी जलन्दरवाली रसौलियोंको निकालनेकी प्रक्रिया—) स्त्रीको कमरके समान ऊंचे टेबिल (मेज) पर सुलाकर क्लोरोफोर्म सुंघाकर जब स्त्री वेहोश हो जावे तब नाभिके नीचे मध्य रेखामें अनुमान ६ इंच लम्बा छिद्र त्वचामें करना तब पीछे एक पडत काटने पर रसौली आवेगी उसको फोडना । फोडनेसे जब रसौलीका प्रवाही पदार्थ निकल जावे तब रसौलीको अन्दरके सम्बन्धसे काटकर उसको बाहर निकाल लेना, ये रसौली किसी ठिकाने चिपटी हुई माळूम पडे तो आहस्तेसे पृथक् करके निकाल लेना । किसी आँतडीको इजा न पहुँचने पावे । चिकित्सकका सहायक पुरुष आंतडाको ऐसी रीतिसे दाबकर रक्खे कि काटेहुए छिद्रसे आंतडा बाहर न आने पावे, रसौलीको बाहर निकालने पीछे उसके मूलको डोरासे बांधकर काटलेवे और कुछ उसमेंसे गिरपडे वहाँतक चिपका कर दाब रखे । पेटके अन्दर रक्त वा जल गिरा हो तो उसको सेंजसे उठाकर साफ करलेवे और ज़खमको रेशम वा चांदीके तारसे सी देवे । और कार्बोलिक तैलकी पट्टी भिगोकर उसपर रखे और ऊपरसें पट्टा मजबूतीसे बांध देवे । खानेको केवल दूध साबूदाना आदि प्रवाही पदार्थ देवे, दर्दकी निवृत्तिके वास्ते चार चार घंटेसे आधा ड्राम (लाईकरमोरफीया) देते रहना (अफीमका अर्क है) पेटमें

दर्द होता होय तो सेंक करना, अथवा अलसीकी पुल्टिस गर्म गर्म लगानी । थोडे दिवसमें जखम रोपण होवे उतने तक पट्टा बांधनेकी आवश्यकता है, जब जखम भरकर ऊपर आय जावे तब पट्टेकी कुछ आवश्यकता नहीं रहती । यह प्रक्रिया शस्त्रक्रियामें निपुण चिकित्सकके करनेकी शारीरिक विद्यासे अनभिज्ञ लोगोंके करनेकी नहीं है । कितने ही समय शस्त्रक्रियाके सबबसे अथवा पीछे शोथ उत्पन्न होजावे तो इस मौकेपर स्त्रीकी मृत्यु हो जाती है ।

स्त्री गर्भ अण्डका जलोदर तथा नवमाध्याय समाप्त ।

अथ दशमाध्यायारम्भः ।

रजोधर्मका बन्द होजाना नष्टार्त्तव ।

वैद्यकमें नष्टार्त्तवका निदान विशेषताके साथ नहीं मिलता, यूनानी तिब्बमें वैद्यककी अपेक्षा कुछ अच्छा वर्णन किया गया है, यूनानी तिब्बकी अपेक्षा पश्चिमी वैद्यों (डाक्टरोंने उत्तम रीतिसे निर्णय किया है । वह आगेके प्रकरणमें लिखा जावेगा । यह व्याधि भी वन्ध्यादोषका कारण है ।

यूनानी तिब्बसे रजोधर्मका बन्द होजानेका वर्णन तथा चिकित्सा ।

रजोधर्मके बन्द होजानेके कई भेद हैं, कि शरीरमें खूनकी कमीका होजाना, खून कम हो जानेका चिह्न यह है कि स्त्रीका शरीर दुर्बल और निर्बल हो शरीरका रंग पीला हो जाता है । इसका कारण यह है कि इस व्याधिके उत्पन्न होनेके पूर्व यदि स्त्रीने विशेष परिश्रम चिरकालतक किया हो अथवा भूँखी रहनेका काम पडा हो अथवा उपवास आदि विशेष करती रही हो अथवा मवादको नष्ट करनेवाला कोई रोग उत्पन्न हुआ होय अथवा फस्दादिसे खून निकाला गया हो अथवा गुलाबादिका सेवन अधिक समयतक करना आदि है। चिकित्सा इसकी यह है कि पुष्टिकारक भोजन जैसे कि मुर्गीका अण्डा अधभुना और बडे मुर्गेके गोस्तका शोरवा तथा गोस्त जवान बकरीका गोस्त, दूध, मिठाई आदि तथा रक्तको बढानेवाली मेवादि विशेष खावे । (जिस जातिकी स्त्री निर्मिष भोजी हैं वे कदापि मांस न खावें किन्तु रक्तोत्पादक मेवा तथा दुग्ध मिष्टाहारसे रक्त और बलकी वृद्धि करें) जिससे शरीरमें बल बढे और रक्त उत्पन्न होय । शरीरको विशेष आराम दे अधिक समय तक सोना चाहिये और स्नान ऐसे गुसलखानेमें किया करें जहांपर शरीरको विशेष तरी प्राप्त होय । इसका दूसरा भेद यह है कि, खून शर्दीके कारणसे अथवा गाढे दोषोंके मिलनेसे गाढा हो जाय और उसका चिह्न यह है कि शरीरकी सुस्ती सफेदी और रगोंमें लीलापन दीखे और मूत्र विशेष आवे और कफका मल आवे इस कारणसे कि आमा-

शयकी पाचनशक्तिमें बिगाड है और निद्राकी दशामें शरीर अति भारी मालूम होय और सोतेसे उठकर शरीरमें आलस्य वजन मालूम होय और रजोधर्मका जो थोडा बहुत खून आवे वह पतला होय । चिकित्सा इसकी यह है कि, दूषित मवादको पतला और मुलायम करनेवाली दवा देवे, जैसे, पारा आदि जिससे गाढे दोष पतले होकर निकल जावें । दोषोंके निकालनेके उपरान्त अजमोद, अनीसून, (रूमीसोंफ) पोदीना, देशी सोंफ, पहाडी पोदीना इनका जुसांदा बनाकर शहत वा कन्दमें चासनी करके माजून बनावे और परिमित मात्रासे स्त्रीको खिलावे, जिससे खून पतला होकर सुगमतासे वह जाय और सोया, दोनामरुआ, पोदीना, तुतली, बाबूना, अकलील उलमलिक और सातर इनके काढेका भफारा देवे और बालछड, दालचीनी, तज, हुब्बविलसां, जायफल, छोटी इलायची, कूट इत्यादिका सेंक उस मुकामपर देवे जहां अन्तर पडा होय और रक्त आदिकी गांठ पडगई होय । ये चीजें गांठको तहलील करने और मवादको नर्म करनेमें गुणदायक हैं । इनकी अपेक्षा इस तासीरको रखनेवाली और चीजें होवें उनको भी तबीब सिंकावके काममें लावे और ये उपरोक्त कथन की हुई सुगन्धित दवाओंको आगपर डालकर गर्भाशयमें धुआं पहुँचावे । जब कि खून पतला हो जाय तो साफिन और माबिजकी फस्द और पिण्डलियोंमें पछने लगाना अधिक लाभदायक है और रजके आनेसे दो दिवस प्रथम इस क्रियाको ग्रहण करे, जिससे ये दो मवाद एक साथ न निकलें और निर्बलता उत्पन्न न होय । और यह फस्द तथा पछने उस स्त्रीके लिये हैं कि जिसका जिस्म मोटा ताजा होवे और मांससे विशेष भरा होय उसको यह लाभकारी है । पतली दुबली और कम मांसवालीके काममें इस क्रियाको हरगिज न लावे । यदि तबीब उचित समझे तो मोटी ताजी स्त्रीके खून पतला करनेके लिये पेस्तर इस क्रियाको काममें ला सक्ता है । तीसरा भेद इसका यह है कि गर्भाशयकी रगोंका मुख बन्द हो रजोदर्शनका रक्त न आना यह कई प्रकारसे है । प्रथम तो यह कि गर्भाशयमें विशेष गर्मी होवे तथा खुश्की और अजीर्ण उत्पन्न हो या गर्भाशयमें जलन खुश्की आदिका होना उसका बाधक है । इलाज इसका यह है कि शीर खिस्तासिमाक घीयाके बीजकी मिंगी, खब्बाजीसोंफ इनको समान भाग लेकर बारीक पीस कर शहद और अण्डेकी जर्दी मिलाकर कपडेसे दवा लपेट कर स्त्रीकी योनिमें गर्भाशयसे चिपटा कर रक्खे और इसी प्रकार कई दिवस पर्य्यन्त रक्खा करे । यह गर्भाशयकी खुश्की तथा गर्मीको खुर्फाकाशीरा अति लाभदायक है, और गर्भाशयकी गर्मीके दूर होनेके दूसरे उपाय स्त्रीके वन्ध्या होनेके विषयमें लिख चुके हैं । दूसरी सकोडनेवाली शर्दी जो गर्भाशयमें उत्पन्न होय और रंगमें सफेदी और नाडीमें विरु-

द्रता व रगोंमें शर्दीका होना आदि उसके साक्षी हैं । (विशेष सूचना) यदि दुष्ट प्रकृति गर्भाशयमें उत्पन्न होती है लेकिन उसके चिह्न सब शरीरमें प्रगट होते हैं, क्योंकि स्त्रीके शरीरमें गर्भाशय श्रेष्ठ और प्रधान अंग है । उसकी प्रकृति सब शरीरमें प्रवेश हो जाती है, जिस स्त्रीके शरीरमें गर्भाशय नहीं होता वह स्त्री कहलानेके लायक नहीं है । चिकित्सा इसकी यह है—कि गर्म और मवादको नर्म करनेवाली दवा इस मर्जके वास्ते काममें लेवे, जिससे गर्भाशयमें गर्मी पहुँचे और वह स्त्रीके वन्ध्या होनेके विषयमें विस्तारपूर्वक वर्णन की गई है और बूलकी टिकिया गर्भाशयके गर्म करनेमें सर्वोपारि श्रेष्ठ है । उसके बनानेकी विधि इस प्रकार है—बूल १०॥ मासे, तिर्विस १७॥ मासे, तुत्तलीके पत्र, देशी पोदीना, पहाडी पोदीना, मजीठ, हींग, कुन्दलगोंद, जावशीर प्रत्येक ७ मासे जो अदवीयात इनमेंसे घोलनेकी है उनको घोल लेवे और कूटनेकी दवाओंको कूटकर छान लेवे और टिकिया बनाकर आवश्यकताक अनुसार देवदारुके काढेके साथ पिलावे । तीसरे यह कि जो खुश्की गर्भाशयमें उत्पन्न होती है और वह गर्भाशयको सकोड देवे और योनिमार्ग तथा गभार्शयकी खुश्की और शरीरका दुर्बल होना व रगोंका खाली होना उस खुश्कीका चिह्न है । चिकित्सा इसकी यह है कि गर्भाशयमें तरी पहुंचानेवाली दवा इसके काममें लावे, जैसे कि गर्भके न रहने और सन्तति न होनेके विषयमें वर्णन की गई है । चौथा भेद इसका यह है कि सूजन रजोदर्शनके बन्द हो जानेका कारण होय और इसके चिह्न तथा इलाज सूजनके प्रकरणमें वर्णन किये गये हैं । पांचवां भेद इसका यह है कि गर्भाशयके घाव भरजायँ और उसकी रगोंकी तह बन्द होजाय यद्यपि इस रोगका सर्वथा नष्ट होना संभव नहीं है । परन्तु इसलिये कि पडत (तह) बंद हो जानेके कारणसे जिस स्त्रीको बन्द हो गया है उसको हानि न होवे इसलिये फस्द खोला कर सदैव मवादको निकाला करे और स्त्रीको परिश्रम करना उचित है । छठा भेद यह है कि गर्भाशयके मुखमें बवासीरी मस्सा रजोदर्शनके रक्तको आनेसे रोकता होवें इस कारणसे रजके निकलनेको कोई रास्ता न मिलता होय और जब स्त्रीको रजोदर्शनका समय आवे तब अधिक पीडा होती होय और अत्यंत खिंचाव होय तो चिकित्सा इसकी यह है कि जो कुछ मस्सोंके प्रकरणमें कथन किया गया है यह प्रक्रिया काममें लावे । यादि मस्सेका नष्ट होना संभव न होय तो जो कुछ उस भेदको जो कि घावोंके भरनेसे उत्पन्न होता है वर्णन किया गया है, अर्थात् फस्द आदि काममें लावे, जिससे बन्द होजानेवाले कष्टोंसे स्त्री बची रहे । सातवाँ भेद इसका यह है कि अधिक मुटापे (स्थूलता) के कारणसे गर्भाशयका मार्ग दबकर बन्द हो जाय तो फस्द खोले, प्रयोजन

यह है कि शरीरके दुबले करनेको जहांतक होसके अधिक परिश्रम करे। जब रजोदर्शनके आनेका समय समीप आजाय तो पांवकी रगकी फस्द खोले, जिस रगको साफिन कहते हैं। तथा मूत्र विशेषतासे आवे ऐसे शर्बत और दवाइयोंको देवे और भोजन करनेसे प्रथम अधिक परिश्रम करना और वगैर भोजन किये स्नान करना और इतरीफलसगीर, कामूनी, गुलकन्द, अनीसून (रूमीसौंफ) इनको सदैव सेवन करना विशेष लाभदायक है । यदि गर्मी होय तो गर्म चीजें काममें न लावे । आठवाँ भेद इसका यह है कि गर्भाशय किसी तर्फको फिर जाय इस कारणसे खून न निकल सके, इसका गर्भ न रहनेके प्रकरणमें सविस्तार वर्णन कर चुके हैं और उन रोगोंकी संख्या कि जो रजके बन्द होनेसे उत्पन्न होते हैं ये हैं—गर्भाशयका मिच जाना तथा गर्भाशयकी सूजन और उसके पासके भीतरी अंगोंका सूज जाना और आमाशयके रोग जैसे अजीर्ण और मन्दाग्निका होना, जी मिचलाना तथा प्यास लगना आमाशयकी जलन तथा दिमागके रोग जैसे मिर्गी (अपस्मार हिस्टीरीया) और सिरका दर्द नेत्रोंकी जोतका घटना, मालीखोलिया तथा फालिज और सीनेके रोग जैसे खाँसी, श्वासका तंग होना गुर्देके रोग और जिगरके रोग जलन्दर वगैरह पीठ तथा गर्दनका दर्द और पित्तज्वर जिसका मवाद रगोंके अन्दर दिल और जिगरके समीप उत्पन्न होता है। नेत्र तथा कान व नाकके कितने ही रोग हैं इनमें दर्द पैदा होता है । अब उन दवाओंका वर्णन करते हैं कि जो रुकेहुए रजको खोलती हैं और हरएक कारणके अनुसार दे सक्ते हैं। बसूड़ा ७ मासे ४॥ मासे सुकके साथ देना, रजको जारी करता है। और दवा उलकरकम शर्बत अथवा सिकंजवीन बिजूरीके साथ देना साफिनकी फस्द खोलनेके उपरान्त रजको बहाती है और जुन्दबेदस्तर १॥। मासे ललिसौसनकी जड ९ मासे पोदीनाका अर्क दो गिलास शहद ३१॥ मासे इनको मिलाकर दो वक्त पिलावे तो थोडे दिवसमें रज बहने लगता है। नागरमोथा, मजीठ, तगर, तज, दालचीनी, पहाडी पोदीना, चाहे अयोगिक चाहे संयोगिक ९ मासे मंजीठके पानीके साथ देवे तो रज बहने लगता है। काले चनेका पानी जैतूनके साथ देना, हरड, अमली, सोंठ इनको वूलके काढेके साथ देना; कारण कि ये रज बहनेको जारी करते हैं। इस विषयमें अधिक लाभदायक हैं तथा लाल लोविया, मेथी, रूमी सौंफ, प्रत्येक १०॥ मासे मजीठ अधकुटी १४ मासे इन दवाओंको १ प्याले पानीमें पकालेवे जब आधा बच रहे तो छानकर ४९ मासे सिकंजवीन मिलाकर गुनगुना पिलावे । वूल, पोदीना, प्रत्येक १४ मासे देवदारु २८ मासे, गुतली ३९ मासे, मुनक्का दाने निकाली हुई ७० मासे कूट छानकर बैलके पित्तेमें

मिलाकर कई दिवस पर्य्यन्त स्त्रीके गर्भाशयके मुखमें तथा योनिमार्गमें रक्खे। तबीबलोग कहते हैं कि जो रजोदर्शन सात वर्षका भी रुका होगा तो इस दवासे खुल जायगा, और जो कुछ बालक और झिल्लीके निकालनेके लिये वर्णन किया गया है उससे भी रजका जारी होना सहजमें होता है। कुर्सेसुरमकी रजके बहानेमें विशेष लाभदायक है, तीन महीने प्रति दिवसमें तीन मात्रा याने महीने भरमें ९ मात्रा तीन दिवसमें देवे।

यूनानी तिब्बसे नष्टार्त्तव रजोदर्शनका बन्द होना समाप्त।

डाक्टरीसे रजोदर्शनसे सम्बन्ध रखनेवाली व्याधि।

रजोदर्शन रक्तस्राव यह स्त्री जातिको स्वाभाविक प्रत्येक मासमें होता है, जिस स्त्रीमें वन्ध्या दोष होता है उस स्त्रीको अवश्य कुछ न कुछ ऋतुविकृति होती है, जो कि गर्भाशयके अथवा गर्भ अण्डके कितनेही रोगोंके चिह्नके तरीकेसे वह व्याधि मिल सक्ती है, तो भी उस मूलव्याधिके ऊपर लक्ष खिंचता है। उसके प्रथम ऋतु-विकृति तो प्रत्यक्ष ही जान पडती है, यह तो प्रत्येक बुद्धिमान् चिकित्सक तथा प्रत्येक सद्गृहस्थ कुटुम्बी स्त्रियोंके ध्यानमें होगा कि कितने ही स्त्रियोंको तो ऋतुधर्म विशेष विलम्बसे आता है और कितनी ही स्त्रियोंको दर्शनमात्र भी नहीं दीखता। यदि दीखता है तो पुनः बन्द हो जाता है। और ऐसी भी स्त्रियाँ अधिक होती हैं, जिनको ऋतुस्रावका रक्तस्राव अधिक दिवस पर्य्यन्त होता रहता है और उस अवधिमें पारिमाणसे कितने ही भाग अधिक रक्तस्राव गिर जाता है। इसके अतिरिक्त किसी २ स्त्रीको ऐसा भी होता है कि ऋतुस्रावका रक्त बहुत ही न्यून दीख पडता है, तो भी वह दीखता है उस अवधिमें स्त्रीको अति कष्ट होता है। ऋतुस्रावकी ऐसी भिन्न भिन्न विकृतिका स्पष्टीकरण होना योग्य है, ऋतुस्रावमें होती हुई विकृतियोंका तीन भाग करनेमें आता है। एक तो यह कि ऋतुका अधिक समय व्यतीत करके आगमन, अनार्त्तव, नष्टार्त्तव अथवा न्यूनार्त्तव और अनियत आर्त्तव। जैसे कि ऋतुस्राव बिल-कुल न दीखता होय। ऋतु तो देखा गया होय परन्तु देखनेके पीछे बन्द होगया होय किंतु बहुत थोडा दीखता होय। और नियत समयको त्यागकर अनियत समय पर दीखता होय। २ ऋतुस्रावके रक्तकी अति अधिकता, जिसमें ऋतुस्रावका रक्त अति विशेषताके साथ निकलता होय और अधिक दिवसपर्य्यन्त स्राव होता रहे जिसको अत्यार्त्तव कहते हैं। ३ ऋतुस्रावकी पीडा होती होय जिसको पीडितार्त्तव कहते हैं, ऋतुस्रावके समयमें स्त्रीके पेटमें अति पीडा और मरोडा होता है। वन्ध्या दोषवाली अथवा वन्ध्या दोषसे रहित कितनी ही स्त्रियोंको किसी भी प्रकारका ऋतुदोष होता है, परन्तु उनको वह दोष मालूम नहीं पडता

है । वन्ध्या स्त्रीके शरीरमें नियत समय पर ऋतुधर्मके सब चिह्न योग्यरीति पर मिलते हैं कि नहीं, यह बहुत थोडे समय ध्यान रखकर देखना चाहिये । परन्तु सूक्ष्मरीतिसे इस विषयकी परीक्षा करनेमें आवे तो कोई न कोई ऋतुदोप अवश्य मिल जाता है, जिसका योग्य उपाय करनेसे ऋतु नियत समय होनेसे गर्भाधान रहनेकी आशा बँधने सक्ती है ।

ऋतुधर्मका व्यतिक्रम–विलम्बसे आगमन, रजोदर्शनकी यह विकृति विशेष उत्तम रीतिसे समझमें आसके इसके लिये इसको तीन भाग करके समझाते हैं । (१) अनार्त्तव, जिसमें ऋतुस्रावका रक्त बिलकुल नहीं दीखता (२) नष्टार्त्तव जिसमें ऋतुस्रावका रक्त थोडे बहुत महीने व वर्षतक दीखने पीछे बिलकुल बन्द हो जाता है । (३) न्यूनार्त्तव, जिसमें ऋतुस्रावका रक्त नियत समय पर प्रत्येक महीनेमें नहीं दीखता किन्तु नियत समयका उल्लंघन करके अधिक समयमें दीखता है । इसी प्रकार जब रक्तस्राव दीखे उस समय रक्त भी परिमित रक्त निकलनेकी अपेक्षा कम दीख पडता है और ऋतुस्रावका रक्त निकलनेकी जो स्वाभाविक अवधि तक टिकनेका समय है तीन व चार दिवसका उतने समय तक नहीं दीखता । किन्तु अति थोडे दिवस तक दीखता है और कितनी ही स्त्रियोंको तो केवल ऋतुको कैदमें डालकर चला जाता है, याने दर्शनमात्र देकर चला जाता है । यदि ऋतुस्राव प्रत्येक महीनेमें उत्तम नियम प्रमाणसे तो आता होय परन्तु उसमें रक्त अति थोडा पडता होय अथवा वह ३–४ दिनकी अपेक्षा १ व २ दिवस पर्य्यन्त ठहरता होय तो इसकी न्यूनार्त्तव संज्ञाकी श्रेणीमें आता है, अनार्त्तव–जिस स्त्रीको ऋतुस्रावका रक्त बिलकुल नहीं आता उस स्त्रीको अनार्त्तवका रोग होता है, बुद्धिमान् वैद्य ऐसा कहते हैं । तो भी रजोदर्शनके विषयमें कथन किये हुए नियमके प्रमाणसे कितनी ही स्त्रियोंको ऋतुस्राव अति समयके बिलम्बसे दीखता है । इसलिये समयके व्यतीत होनेके अनन्तर इस बातकी जल्दी की जाती है, कि ऋतुस्रावका समय आगया और नहीं आया किंतु जिस स्त्रीको ऋतु न आनेका रोग है उसमें ऐसा निश्चय करना नहीं । इस देशकी याने भारतभूमिकी स्त्रियोंको प्रथम रजोदर्शन बारहसे लेकर चौदह वर्षकी उमरमें दीखता है, यह एक सामान्य नियम है । परन्तु जिस स्त्रीका शरीर निर्बल होय और ऊपर नियत किये समयसे एक दो वर्ष अधिक समय व्यतीत होनेपर भी ऋतुस्राव न दीखे तो इसकी कुछ चिन्ता नहीं करनीं चाहिये यदि स्त्री रुष्टपुष्ट बलवान् होय युवावस्थाकी पुष्टताके चिह्न उन्नत होते जाते होयँ और ऋतुधर्म न आया होय तो ऐसी स्त्रीके शरीरमें कारणकी परीक्षा करनी चाहिये । ऋतु बिलकुल बन्द रहनेके कारणकी परीक्षा करते समय उन कारणोंके ऊपरसे उसके तीन विभाग

पाडने योग्य गिने जाते हैं। उनके नाम नीचे लिखे अनुसार हैं। १ वैकल्यताजन्य अनार्त्तव—२ प्रतिबन्धजन्य अनार्त्तव—३ शुद्ध अनार्त्तव। वैकल्यताजन्य अनार्त्तव उत्पत्ति स्थानकी विरूपताके लिये होता हुआ अनार्त्तव कितनी ही स्त्रियोंमें स्त्री गर्भ अण्डका बिलकुल अभाव होता है और उनको ऋतुधर्म आरम्भसे ही नहीं आता, इसका मुख्य कारण स्त्री अण्डका अभाव है। युवावस्था प्राप्त स्त्रीके शरीरमेंसे यदि स्त्री अण्ड निकाल लेनेमें आवें तो स्त्री अण्डके निकाल लेनेसे ऋतुधर्मका आना बिलकुल बन्द हो जाता है। कितने हीं समय कितनी ही स्त्रियोंके गर्भ अण्ड बिलकुल वृद्धिको नहिं प्राप्त होते और न उन स्त्रियोंको ऋतुधर्म ही आता है। इसके अतिरिक्त गर्भाशयकी विरूपता अथवा न्यूनता ये भी समस्त अनार्त्तव हैं, ये सब ऋतुधर्म न दीखनेका कारण हैं। इस व्याधिमें विशेष चिह्न इस प्रकारसे जान पडते हैं कि जिस स्त्रीके शरीरमें गर्भ अण्डका अभाव होय अथवा उनमें कुछ भी ऐसी न्यूनता हो कि गर्भ अण्ड पुष्ट युवावस्था प्राप्त स्त्रीमें भी बिलकुल वृद्धिको प्राप्त न हुए होयँ ऐसी स्त्रीका शरीर अन्य उत्तम स्त्रीके समान प्रफुल्लित हुआ होय और उसको ऋतु आनेके सिवाय प्रत्येक कर्मोंका जो दोनों जातिके सामान्य हैं वे उसके नियत होते हैं। इसकी अपेक्षा ऐसी स्त्रीके न स्तन प्रफुल्लित होते न स्त्रीपनकी खूबी ही उसमें आती है, बाद पुरुष समागमकी इच्छा व हर्ष तो कदापि नहीं उत्पन्न होता, न पुरुष उसको प्रिय लगता है। उसकी आवाज भर्राई हुई होती है, मूँछ तथा दाढीकी जगह पर थोडे २ बाल उत्पन्न हो जाते हैं, ऐसी स्त्रीमें स्त्रीपनके साथ पुरुषपनेके चिह्न भी जान पडते हैं, चाल भी मर्दानी चलती है। जिस स्त्रीके शरीरमें अनार्त्तवका कारण गर्भाशयका अभाव अथवा अपूर्णता होयं उस स्त्रीका शरीर प्रफुल्लित होता है, परन्तु उसमें स्त्रीपनकी न्यूनताके और पुरुषपनकी प्रधानताके चिह्न नहीं जान पडते और गर्भाशयके लिये परीक्षा करनेसे पूर्ण है वे अपूर्ण हैं अथवा बिलकुल अभाव है यह जान पडेगा।

वैकल्यताजन्य अनार्त्तवकी चिकित्सा।

गर्भ अण्ड अथवा गर्भाशयका अभाव होय तो कोई उपाय सार्थक नहीं होता। परन्तु जब गर्भाशय अपूर्ण रीतिसे प्रफुल्लित होता होय तब पेडूके ऊपर बिजली यन्त्रके गिलाश फेरनेसे अथवा स्पेंज और सींटेनालटेंटसे कमलमुख विस्तृत करना और गर्भाशयशलाका कमलमुखमें प्रवेश करनी जिसका सम्पूर्ण विवेचन वन्ध्या दोषके कारणमें लिखा है। प्रतिवन्धजन्य अनार्त्तव गर्भाशयके मुखको आगे आडा पर्दा होनेसे यदि उसका मुख संकुचित् रहा होय तो यह भी ऋतुधर्म आनेका न कारण है। इसकी अपेक्षा यदि योनिमार्ग संकुचित होय अथवा योनिद्वार योनिपटलसे दृढ रीतिपर बन्द

होय तो भी ऋतुधर्मके आनेका अभाव माल्रम पडता है । अन्यत्र वतलाये हुए कारणोंके समान इस कारणको लेकर भी कुछ ऋतुकी उत्पत्ति रुक नहीं सक्ती । परन्तु उसके उत्पन्न होने पीछे रक्तके वाहर आनेमें रुकावट माल्रम पडती है और इसीसे ऋतुस्रावका अभाव दीखता है । चिह्न इस व्याधिके यह हैं कि जिस स्त्रीमें ऐसे ऋतुस्रावके कारण माल्रम पडते हैं उस स्त्रीकी तन्दुरुस्ती धीरे धीरे विगड जाती है, जिस स्त्रीकी पुष्टताके चिह्न सर्वांशमें दीखते हैं परन्तु इस व्याधिके चिह्न उसके शरीरमें होनेसे उसका कमल उदास फीका दीखता है चेहरेपर उदासी और शरीर कृश होता जाता है । क्षुधा वरावर नहीं लगती पाचनशक्ति नष्ट हो जाती है, पेडूमें तथा पेटमें दर्द हुआ करता है । यह दर्द प्रत्येक मासमें ऋतुस्राव आनेके समय वढता है, गर्भाशय तथा योनिके भागमें ऋतुके रक्तका संग्रह होनेसे ग्रन्थिके समान जान पडता है और इससे दाह तथा किसी समयपर आसपासके भागमें शूलके समान ही पीडा जान पडती है । इससे भी अधिक चिह्न होते हैं, जो वन्ध्या दोषके कारणोंमें पेटके विषयमें कथन किये गये हैं । जहाँ रुकावट होय वहाँसे ऊपरके भागमें ग्रन्थिके समान पड जाता है, वह भाग फूलता है और आसपास मर्मस्थानके ऊपर उससे दवाव पडता है । स्त्री हृष्टपुष्ट होने पर भी दिनपर दिन कृश होती जाती है और प्रत्येक मासमें ऋतुधर्म आनेके नियत समय पर पीडा अधिक वढती होय तो समझना कि ऋतुस्रावके रक्तको बाहर आनेमें कोई भी रुकावट है । जब रुकावट निश्चय हो जाय तव उसका योग्य उपाय शोधकर इतना निश्चय करना चाहिये कि वह रुकावट किस प्रकारसे है और किस कारणसे उत्पन्न हुई है । यदि गर्भाशयका मुख वन्द हो अथवा उसके आगे आडी रुकावट हो तो गर्भाशयशलाका प्रवेश करनेसे वह जान पडेगी । यदि केवल पर्दा ही आडा हो तो अँगुली योनिमार्गमें प्रवेश करके कमलमुखके ऊपर लेजावे, पर्दा होगा तो अंगुलीके पोरुएके स्पर्शसे माल्रम होगा और अंगुलीके पोरुआसे कमलमुखका स्पर्श न होगा । यदि गर्भाशयका मुख वन्द होगा तो शलाकायन्त्र प्रवेश करनेसे नहीं जा सकेगी यदि योनिपटल होगा तो वह देखनेमें आवेगा । जो ऐसी रुकावटोंका कारण विशेष मजवूत न हो तो जरा जोर देकर तोड देना चाहिये, यह केवल योनिद्वारके आगे आडा पटल होनेसे रुकावट करता है । परन्तु किसी समय पर योनिद्वारके आगे जो यह पटल आडा होता है वह इतना मजवूत होता है कि कैंचीसे वा विस्टरी शस्त्रसे काटना पडता है । यदि योनिद्वार वद्ध होय किन्तु योनिद्वारका अभाव होय तो इसके लिये विस्टरी शस्त्रसे काटकर योनिमुखको चौडा करके योनिमार्गसे मिला देना । इसी प्रकार योनिमार्ग अथवा गर्भाशयका संकोच होय तो इस स्थितिके लिये योग्य उपाय करना उत्तम है । वन्ध्या दोषके विवेचनमें

प्रजा उत्पत्तिकर्म अवयवकी अपूर्णता अथवा न्यूनता और उत्पत्ति कर्म अवयवका संकोच ये दो विषय प्रथम जो कथन किये गये हैं उनके जो उपाय भी कथन किये हैं वे प्रतिबन्धजन्य अनार्त्तवके ऊपर भी काम दे सक्ते हैं और अति उपयोगी पडते हैं। उन प्रकरणोंकी चिकित्साका क्रम भी प्रतिबन्धजन्य अनार्त्तवमें अति उपयोगी है। इसके अतिरिक्त उसमें कथन किये प्रमाणे प्रतिबन्धजन्य अनार्त्तवकी रुकावट नष्ट करने पीछे योनिके मर्मस्थानमें गर्म जलकी पिचकारी लगाकर उस भागको साफ कर सदैव साफ रखना उचित है। जब शस्त्रोपचारसे आराम हो जावे तब और आसपासके भागमें पाकके सब चिह्न शान्त जान पडें तब स्त्रीको पौष्टिक उपचारकी औषध तथा आहार देवे। दस्त तथा ऋतुधर्म साफ आवे ऐसे आहार विहार औषधियोंका सेवन करावे, जिससे स्त्री पूर्ण आरोग्यताको प्राप्त होवे और आरोग्यता स्थिर रखनेवाले नियमोंकी स्त्रीको सूचना कर देनी योग्य है। शुद्ध अनार्त्तव ऊपर कथन किये-हुए प्रमाणे गर्भाशय तथा गर्भ अण्डकी न्यूनता, वैसे ही ऋतुधर्मके रक्तको बाहर आनेकी कितनी ही रुकावट होनेसे अनार्त्तव दोष होता है। परन्तु उसमें एक रुकावट न होय गर्भाशय और गर्भ अण्ड सम्पूर्ण रीतिसे खुले हुए और प्रफुल्लित होयँ तथा स्त्री पुष्ट व युवावस्थाको प्राप्त हुई होय ऋतुधर्म कितनेही समय बिलकुल दीखता नहीं, इस भेदको शुद्ध अनार्त्तव कहते हैं। कितनी ही स्त्रियोंको ऋतुधर्म कितने ही कालके विलम्बसे आता है, इसलिये पूर्ण युवावस्था प्राप्त होने पीछे एक दो वर्ष ऋतुधर्मके आनेकी राह देखनी। प्रायः करके तो इस अवधिके प्रथम ही स्त्रीको ऋतुधर्म आ जाता है, कदाचित् न आया होय तो भी कुछ दर्द किसी प्रकारका नहीं होता। शुद्ध अनार्त्तव रोगवाली स्त्रीको प्रत्येक मास ऋतुधर्मके समय ऋतुस्रावका रक्त बाहर आनेका प्रयत्न करता होय और ऋतुधर्मके समयसे पूर्व जो २ चिह्न स्त्रियोंको प्रायः होते हैं तथा इसके विरुद्ध केवल इतनी ही पीडा होती है कि पेडूमें, कमरमें और पेटके नीचेके भागमें दूखता है शरीरमें कम्प होता है पग और सांथल बहुत भारी मालूम होते हैं और गलेके आसपासकी ग्रन्थि सूझ आती हैं इस प्रकारकी पीडा एक व दो दिवस रहने पीछे बंद हो जाती है और ऋतु दीखनेमें नहीं आता प्रत्येक महीनेमें इस प्रकार होता है और पीछे सब उपद्रव शान्त हो जाते हैं और कितनी ही स्त्रियोंको इससे भी अधिक शक्त चिह्न जान पडते हैं उनको मस्तकमें शक्त पीडा रहती है, यहांतक कि मस्तक ऊंचा नहीं उठा सक्तीं, प्रकाशके समक्ष देख नहीं सक्तीं रक्तवाही नसोंमें रक्त उछलता हुआ दीखता है पशलियोंमें शूलके समान पीडा जान पडती है आहार पूर्णरीतिसे पाचन नहीं होता दस्त साफ नहीं आता स्त्रीका मुख सुस्त और फीका पड जाता है, शरीर अत्यन्त निर्बल हो जाता है। कितनी ही स्त्रियोंको

इस व्याधिमेंसे श्वास उठ खडा होता है और कितनी स्त्रियोंको, (हीस्टीरीया) मिर्गीका रोग उत्पन्न हो जाता है । शुद्ध अनार्त्तव यह हीस्टीरीयाका विशेष फल रूप कारण है, यह सब कारणोंमें जैसे स्त्री अधिक सशक्त (वलवाली) होय तैसे ही अधिक जोशमें जान पडता ह । कितनीही स्त्रियोंको प्रवल ज्वर आ जाता है मुख लाल रंगका हो जाता है । नाडी वहुत जल्द चलती हैं और पियास बहुत शक्त लगती है जैसे चिह्न प्रवलताके साथ वलवाली स्त्रीको होते हैं वैसे शक्त चिह्न निर्वल स्त्रीको नहीं होते ।

शुद्ध अनार्त्तवकी चिकित्सा ।

इस शुद्ध अनार्त्तवमें जिस स्त्रीको ज्वर आदि आता हो तो उसकी चिकित्सा नियमानुसार करे, प्रथम ज्वरको शान्त करे । ज्वरके शान्त होनेपर अजीर्ण तथा वदहजमीके लिये कटु पौष्टिक औषधियोंका सेवन करावे यदि स्त्री वलवान् होय तो उसको दो चार शक्त जुलाव देना, स्वर्णपत्री (सनाय) एलुवा, तथा विलायती नमक इनका जुलाव देना उत्तम है । इसी प्रकार द्राक्षासव उथा नाराचरस, इच्छाभेदी रस, सर्वेश्वर रस इनका जुलाव भी हितकारी है, उदरको उत्तम रीतिसे साफ करते हैं । प्रत्येक ऋतुधर्मके समय जब पीडा होती होय और इससे ऋतु आवेगा ऐसा जान पडे तो स्त्रीको कमर डूवते हुए गर्म जल एक टीपमें भरकर वैठालना । गर्म जलकी योनिमार्गमें पिचकारी लगाना, पेडूके भाग ऊपर कप (गिलास) लगाना तथा कमलकन्दके ऊपर जलौका (जोंक) लगानी तथा अन्य प्रकरणमें लिखी हुई रजोधर्म लानेवाली एलुआ, हीराकसीस, हींग, गुलावके गुलकन्दवाली गोलियोंका सेवन करा थोडा थोडा भ्रमण व व्यायाम करना तथा कुछ परिश्रमका काम करते रहना । यदि स्त्रीका शरीर निर्वल होय तो उसको लोहभस्मके संयोगवाली दवा, जैसे लोहशिलाजीत त्रिफलाद्यलोह व चन्द्रप्रभा वटिका सेवन कराना, अथवा कार्बोनेटओफ आयर्न् और प्रोफीथ्समीकिश्चर इनका सेवन कराना हितकारी है । इनके साथ उसको कटु पौष्टिक पदार्थ भी देना, इस रीतिसे उसकी शारीरिक स्थितिको आरोग्यता पर लाना चाहिये । वाद ऋतुधर्म लानेवाली औषधियां देनेकी भी आवश्यकता है एलुवा, केन्थेरीडीसअर्गट और बीजाबोल (हीरावोल) इनकी गोलियां अति उत्तम ऋतु लानेवाली हैं । नीचेके प्रिस्क्रिपशनमें लोहखंड और एलुवा आदि ऋतु लानेवाली औषधियां हैं और ये शुद्ध अनार्त्तवमें विशेष उपयोगी हैं । टींकचरफेरीपरकलोरीडी ४० टीपा एलोझ ३० टीपा मरह १॥ ड्राम नक्सवोमिका २० टीपा जल ३ ओंस बराबर लिखे प्रमाणसे औषधियोंको मिला ३ भाग कर लेना और ४ घंटेके अन्तरसे एक ·समें ३ भाग देना । परन्तु सदैवके लिये अनार्त्तववाली स्त्रीको जो वह निर्वल व

बलवान् होय उसी प्रमाणकी मात्रासे लोहभस्म अथवा रेचक औषध मिलाकर सेवन करानी । एलुवा अति उत्तम ऋतु लानेवाली औषध है और एलुवाकी बत्ती या गोली बनाकर स्त्रीकी योनिमें रखनेसे ऋतुधर्म जारी होता है । एलुवा २० ग्रेन, बीजाबोल (हीराबोल) ६० ग्रेन, दोनोंको बारीक पीसकर और कोकमके तैलके साथ मिलाकर ४ बत्ती बनावे और एक बत्ती हरदिवस रात्रिको योनिमार्गमें गर्भाशयके मुखसे अडती हुई रक्खे चारों बत्ती इसी प्रकार बर्तावमें लावे । इसके अतिरिक्त २॥ तोला मंजिष्ठ और दो आने भर लवंग इनको ५० तोला जलमें पकावे जब १२॥ तोला जल बाकी रहे तब उतार लेवे और इसमेंसे ३ तोलाकी मात्रासे १ दिवसमें ४ समय पिलावे ३ घंटेके अन्तरसे इस क्वाथके पीनेसे ऋतुधर्मका रक्त साफ आता है । यदि शरीरमें थोडा बहुत ज्वर रहता होय तो वह भी निवृत्त हो जाता है । हीराकसीस १२ ग्रेन, एलुवालुक २४ ग्रेन, हीराबोल (बीजाबोल) २४ ग्रेन और सेबीन ओईल (तैल) के २४ बिन्दु (टीपा) इनको मिलाकर १२ गोली बनावे प्रत्येक रात्रिके समय दो गोली सेवन करावे । इस औषधको सेवन करनेवाली स्त्रीको आगामी मासका ऋतुधर्म साफ आवेगा और रजोदर्शन होनेवाला होय उसके चार दिवस प्रथमसे इसको सेवन करना योग्य है । कालातिल भी ऋतुधर्म लानेको विशेष उपयोगी है, १ तोला काले तिल लेकर उनको अधकुटा करके ४० तोला जलमें डालकर पकावे ६ तोला जल बाकी रहे उस समय उसमें २॥ तोला तीन सालका पुराना गुड डाल कर मिला वस्त्रमें छान स्त्रीको पिलावे, यह एक समयकी मात्रा है । सांझको पुनः दूसरा क्वाथ इसी प्रकार सिद्ध करके पिलावे, ऋतुधर्म आनेके चार दिवस प्रथमसे इस प्रयोगका सेवन करे । और ऋतुधर्मका रक्त स्राव दीखने लगे उसी समयसे बन्द कर देवे । कदाचित काढा पीनेकी अवधिमें ऋतुधर्मका रक्तस्राव आजावे तो उसी समयसे काढा पीना बन्द कर देवे । यदि ऋतुस्राव प्रथम दूसरे तीसरे, चौथे चाहे. जिस दिवस दीखे उसी. समय बन्द कर देवे । यदि ऋतु न दीखे तो चार पाँच दिवस निरन्तर पीना, कदाचित ऋतुधर्मका स्राव पांच व छः दिवसमें दीखे तो भी काढा पांच दिवससे अधिक न पीवे, क्योंकि इसके अधिक दिवस पीनेसे अत्यार्त्तवका भय रहता है । यदि ऋतुस्राव जारी तो हो जावे लेकिन साफ न आवे तो काले तिलकी खलकी पुल्टिस पकाकर पेट पर बांधे । इसी प्रकार उपरोक्त विधिके अनुसार २ व ३ मास पर्य्यन्त करनेसे ऋतुस्रावका रक्त बराबर नियम प्रमाणे आने लगता है । शुद्ध अनार्त्तवमें इसके साथ बाह्योपचार करनेकी आवश्यकता है, गर्म जलकी योनि मार्गमें पिचकारी मारनी, गर्भाशयका मुख गर्म जलसे धोना, योनि अथवा कछोटाके स्थानमें जोंक (जलौका) लगानी, साँथलके

अन्दरके भागमें राईका प्लाष्टर लगाना, राई अथवा पोटास आदि दूसरी क्षारवाले जलमें रात्रिको पैर डबोकर रखना और कमरतक गहरे गर्म जलमें बैठाना । कितने ही शारीरिक विद्याके ज्ञाता यूरोपियन वैद्योंका ऐसा मन्तव्य है कि शुद्ध अनार्त्तवमें भी गर्भाशय और गर्भ अंडमें किसी प्रकार गुप्त दोष होता है । इसीसे गर्भाशयके भागके ऊपर तथा पेडूके ऊपर उसी प्रकार पीछेके भागके ऊपर तथा कमरके भागके ऊपर सदैव तथा एक दिवस बीचमें छोडकर बिजली फेरनेसे लाभ पहुँचता है । इसके फेरनेसे गर्भाशय तथा गर्भ अण्ड अपना अपना स्वाभाविक काम करनेमें उत्तेजित हो जाते हैं । इसी प्रकार पृथक् पृथक् जातिके शलाकायन्त्र जो दो इंच लंबे होते हैं उनको भी गर्भाशयमें प्रवेश करनेसे और इसी प्रकार कमलमुख प्रफुल्लित करनेसे ऋतुधर्मका रक्तस्राव पूर्ण रीतिसे आना संभव है । इसके अतिरिक्त ऋतु समयमें कितनी ही स्त्रियोंके गर्भाशयमेंसे रक्त नहीं निकलता । किन्तु सफेद प्रवाही पदार्थ निकलता है और स्त्रीको दो तीन समय प्रत्येक मासमें ऋतुधर्म आनेके समय सामान्य चिह्न दीखने पीछे रक्तके बदले सफेद पदार्थ पडता है और पीछे नियत ऋतुस्रावका रक्त आता है । यह व्याधि यदि अधिक समय पर्य्यन्त चले तो शरीरको क्षणि कर देती है । ऐसी स्त्रीको उत्तम पौष्टिक आहार देना, दूध अंडा आदि देना उत्तम है । यदि वनस्पतिकी अपेक्षा मांसका आहार मांसाहारी स्त्रीको अधिक पसन्द और अनुकूल पडे तो उस आहारकी प्रक्रिया जो कि बनावटी तरहसे कुई किस्मका बनाया जाता है ऐसी पसन्द करे कि जो अग्निको मन्द न करसके और अग्निपर अधिक भारी वजन न पडे जिससे वह पाचन करनेमें असमर्थ हो जावे । किन्तु शोरवा जैसे पदार्थ मांससे उत्पन्न हुए शीघ्र पच जाते हैं और हलके हैं, जो स्त्री मांसाहारी नहीं हैं उनको दुग्ध घृत इनसे बनेहुए आहार तथा फलादिका आहार करना ठीक है । बाद कुछ कसरत व परिश्रम करती रहे तथा पौष्टिक औषधियोंका सेवन करना । पुष्टिके लिये लोहभस्म सबसे उत्तम है, अथवा प्रदरारि लोहका सेवन करावे इस विकृतिमें अति उत्तम है ।

नष्टार्त्तव—(ऋतुधर्म आवे और थोडे कालके बाद आना बन्द हो जावे) कितनी ही स्त्रियोंको ऋतु आता है और दीखता है, परन्तु जब वे काम धंधेको छोडकर अलग बैठती हैं तो एकदम बन्द हो जाता है और कितनी ही स्त्रियोंको धीरे धीरे बन्द होता है । परन्तु जिन स्त्रियोंको धीरे धीरे बन्द होता है उसके प्रथम उनके अनियत समय पर ऋतुका आना अधिक संभव है । ऋतुधर्मका एकदम बन्द होजाना ऋतुधर्म स्नाता स्त्रियोंको शर्दी लगनेसे अथवा शर्दी शीलकी जगहमें पडी रहनेसे व विशेष शीतल जलमें स्नान करनेसे ऋतुधर्मका आना एकदम बन्द हो जाता है । इसके

अतिरिक्त कुछ मानसिक उपाधि उत्पन्न हो जानेसे अथवा स्त्रीको किसी प्रकार त्रास पहुँचे अथवा हृदय और मस्तिष्कका किसी प्रकारका गम और दुःखका सदमा पहुँचे कि जिससे स्त्रीका चित्त बिगड जावे इत्यादिसे बहता हुआ ऋतुधर्म बन्द हो जाता है, इसी प्रकार स्त्रीको ऋतुधर्मकी अवधिके बीचमें किसी प्रकारका ज्वर तथा अन्य कोई प्रबल व्याधि उत्पन्न हो जानेसे भी ऋतुधर्मका आना एकदम बन्द होकर रुक जाता है । खटाई, अथवा अजीर्ण कारक आहार खानेसे भी ऋतुधर्म बन्द हो जाता है और इससे किसी समयपर ज्वर हिक्का (हिचकी) वमन आदि भी उत्पन्न हो जाते हैं । इस व्याधिके विशेष चिह्न ये हैं कि ऋतुधर्मकी एकाएक रुकावट होनेसे स्त्रीको कुछ क्लेश नहीं होता, कोई अन्य ही उपद्रव व पीडा उत्पन्न होती है ऐसा कभी बनता है, नहीं तो प्रायः देखा जाता है कि रक्तके एकदम बन्द होनेसे स्त्रीको थोडा बहुत ज्वर उत्पन्न हो मस्तकमें पीडा होने लगती है, तृषा विशेष लगती है । किसी किसी समय कितनी ही स्त्रियोंको फेंफसेका मगजका अथवा गर्भाशयका शोथ उत्पन्न हो जाता है और पेडू कमर अथवा पेटमें शक्त चश्का उत्पन्न होता है । सब शरीर स्तम्भित (जकड) जाता है कितने ही समय किसी २ स्त्रीको ज्वरका वेग इतना तीव्र होता है कि स्त्री ऊंचा मस्तक नहीं उठा सक्ती । आहार करनेमें नहीं आता दस्तकी कब्जी हो जाती है और किसी समय हिक्का (हिचकी) उत्पन्न होनेके लक्षण दीख पडते हैं अथवा हीस्टीरीया (मिर्गी) का दौरा उत्पन्न होने लगता है । एकदम ऋतुस्राव बन्द होनेसे कितने ही समय स्त्रीके शरीरको शक्त इजा पहुँचती है और किसी समय इजा नहीं भी पहुँचती तो भी इससे ऐसे कितने ही जीर्ण रोगका मूल शरीरमें जम जाता है, जिसके कारणसे स्त्री अधिक समय पर्य्यन्त दुःखित रहती है । कितनी ही स्त्रियोंको इस समय प्रदरका रोग उत्पन्न हो आता है, किन्तु किसी समय पर किसी २ स्त्रीके दूसरे मर्मस्थानोंमेंसे रक्त पडने लगता है रजोदर्शन चाहे एकदम बन्द हुआ हो अथवा धीरे धीरे बन्द हुआ हो तो भी उसका सुधारना अति कठिन और दुःसाध्य हो जाता है । जहांतक वह नियमपूर्वक नियत समय पर पुनः न आने लगे वहांतक स्त्रीको गर्भ धारण करना अति कठिन हो जाता है ।

नष्टार्त्तवकी चिकित्सा ।

चिकित्सकको उचित है कि जहांतक हो सके नष्ट हुए ऋतुधर्मको पुनः लानेकी कोशिस करे और इसके लिये स्त्रीको कमर डूबने पर्य्यन्त गर्म जलमें बैठाले और गर्म जल पीनेको देवे । दस्त साफ आवे तथा स्वेद लानेवाली औषधियोंका सेवन करावे और हलका (शीघ्र पचनेवाला) आहार खिलावे जो इतना उपचार करनेसे

भी ऋतुधर्मका रक्त साफ न आवे तो दूसरे समयके लिये ठहर जाना चाहिये । यदि ज्वर तथा दूसरा कोई उपद्रव होय अथवा किसी प्रकारकी व्याधि उत्पन्न हो आवे तो उसका उपचार नियमानुसार करे दूसरे समय ऋतुका समय आवे तब उसको दस्त साफ आवे ऐसी दवा देनी । किंतु अधिक रेचक होवे ऐसी दवा कदापि नहीं देना, शक्त जुलाव देनेसे ऋतु आनेके बदले आंतडीमेंसे रक्तस्राव होना संभव है और कितनी ही स्त्रियोंको ऐसा होते देखा गया है स्त्रीको कमर पर्यन्त जलमें बैठालना, ऋतुस्राव रुकावटको लेकर जो स्त्रीको प्रदर हुआ हो अथवा दूसरे किसी भागमेंसे रक्त पडता हो तो उसका ऋतुधर्म आनेसे पूर्व बीचकी अवधिके दिनोंमें उपाय करना और प्रदर तथा दूसरे किसी मर्मस्थानकी कोई व्याधि उत्पन्न न हुई होय और शरीरमें दूसरी कोई व्याधि न जान पडती होय तो शुद्ध अनार्त्तवके विषयमें जो ऋतु लानेवाली औषधियाँ कथन की गई हैं उनका उपचार करना योग्य है । ऋतुस्रावका आना और पीछे धीरे धीरे वन्द होजाना एकदम ऋतुधर्म स्राव होनेसे वन्द होजाने पीछे: पुनः स्राव दीखने लगता है और जिस कारणके असरको लेकर थोडे समय कुछ न्यून न्यून दीखता है इसके अनन्तर एकदम वन्द हो जाता है । इसकी अपेक्षा गर्भाशयके तथा स्त्री गर्भ अण्डके रोगको लेकर ऋतुधर्मका आना धीरे धीरे वन्द हो जाता है, इसी प्रकार मासिकधर्मकी अवधि अपने नियत कालसे वन्द होती है अथवा अनियत कालपर बन्द होती होय तो भी वह धीरे धीरे वन्द होती है । ऐसा कि ऋतुधर्म नष्ट होय जिसके प्रथम ही अनियतकाल पर हो जाती है । क्षयरोग अथवा जिस रोगसे शरीर क्षीण होय वे सब रोग मासिकधर्मकी अवधिको रुकावट करते हैं, धीरे धीरे ऋतु वन्द होय उस व्याधिमें गर्भाशय कुछ न्यूनता करके रोगी होता है । और इस प्रकारका अनार्त्तव गर्भाधान रहनेमें विघ्नरूप समझा जाता है । एकदम मासिक ऋतुधर्म वन्द होनेसे जो भयंकर चिह्न होते हैं उनमेंसे इसमें एक भी नहीं होता, लेकिन थोडा थोडा मस्तकमें दर्द कटि पीडा, मन्दाग्नि, और सामान्य रीतिसे शरीरमें निर्बलता दीख पडती है । यदि गर्भाशय तथा गर्भ अण्डके रोगसे नष्टार्त्तव हुआ हो तो उस भागकी परीक्षा उत्तम रीतिसे करने पर व्याधिका मूलकारण जान पडेगा । इसीप्रकार क्षय आदि अथवा दूसरे जो कोई जीर्ण रोग होयँ उनकी भी परीक्षा पूर्णरीतिसे करना उचित है, जो अमुक रोग है ऐसा माॡम पड जावे तो उसही रोगकी चिकित्सा प्रथम करनी योग्य है । नियमपूर्वक मासिक ऋतुधर्म लानेके लिये रजोधर्म लानेवाली औषधियोंका सेवन कराना, यह आरम्भमें विलकुल निरर्थक है ।

उपरोक्त व्याधिकी चिकित्सा ।

उपरोक्त व्याधिके कारणकी परीक्षा करके उसकी निवृत्ति होनेका उपाय करना उचित है और गर्भाशयमें जो कोई व्याधि होय उसका उपाय करना साधारण रीतिसे गर्भाशयके अन्दरका भाग आद्ररूप (गीला) रहता है और उसमेंसे सफेद पदार्थ पडता रहता है इस स्थितिका योग्य उपाय करना चाहिये । यदि कोई व्याधि न जान पडे तथा शरीरके दूसरे किसी मर्मस्थानमें भी आरोग्यता जान पडे तो शुद्ध अनार्त्तवमें कथन किया हुआ निज ऋतुधर्म लानेवाला उपाय करना योग्य है ।

अथ न्यूनार्त्तव ।

इस व्याधिमें ऋतुकी अवधिमें अन्तर पड जाता है और किसी समय पर ऋतु बहता हुआ दीखता है और किसी समय विलम्बसे आता दिखाई पडता है । इसमें कभी महीना दो महीना चढ.भी जाते हैं उसी प्रकार तीन दिवस दीखनेके स्थलपर किसी समय दोही दिवस एक ही दिवस अथवा एक। ही समय दीखता है । पीछेसे स्त्रीको निरर्थक अलग बैठा रहना पडता है, उसी प्रकार ऋतुधर्मकी अवधिमें जितना रक्त निकलना चाहिये उतना नहीं निकलता बहुत ही थोडा नाममात्रको रक्त निकलता है इस अनार्त्तवमेंसे जब ऋतुधर्म आने लगता है तब प्रथम बहात्र न्यूनार्त्तवके रूपमें ही होता है और पीछे वह नियमसे आता है इसी प्रकार नियमपूर्वक ऋतु आता होय उसके नष्ट होनेके प्रथम और नष्ट हुआ ऋतु नियत होनेके प्रथम थोडे बहुत समय न्यून होता है और किसी २ स्त्रिको किसी २ समय न्यूनार्त्तव प्रथमसे ही होता है तभी गर्भाशयकी अथवा गर्भ अण्डकी किसी प्रकारकी अपूर्णता अथवा न्यूनता होती है । अनार्त्तव और नष्टार्त्तव इनमेंसे कोई भी कारण थोडा बहुत कम जोशमें रहा होय तो उससे न्यूनार्त्तव जान पडता है ।

न्यूनार्त्तवकी चिकित्सा ।

इस व्याधिकी पूर्ण परीक्षा करके इसके कारणको निश्चय कर, उसका योग्य उपाय कर लोहभस्म देना योग्य है । यदि यह प्रकृतिके अनुकूल न होय तो दूसरी पौष्टिक औषधि देना उचित है, अथवा शुद्ध अनार्त्तवके विषयमें कथन की हुई खास ऋतु लानेवाली औषधियोंका उपयोग करना योग्य है ।

पीडितार्त्तव । (डीसमेनोरीया)

इस रोगमें ऋतुधर्म नियत समय पर दीख पडे अथवा थोडा दीख पड़े इस विपय पर कुछ लक्ष देनेकी आवश्यकता नहीं है । इस रोगकी खास प्रकृति ऐसी होती है कि ऋतुके दिवसमें स्त्रीको अधिक पीडा होती है । कुछ थोडी थोडी पीडा होकर रजोदर्शन होनेका धर्म स्वाभाविक हैं, तो भी पीडा जब शक्त होती हो तब रोगी

उपायकी याचना करता है । यह पीडा किसीको अधिक किसीको न्यून होती है, किसी समय पीडा ऋतु दीखनेके पीछे घंटेतक रहती है पीछे स्वयं बन्द हो जाती है, इसी प्रकार किसी समय उपरोक्त पीडा ऐसी प्रबल होती है कि दुःखके मारे स्त्री ऊपरको मस्तक नहीं उठा सक्ती । पेटमें शक्त' ऐंठन होती है । और कमरसे टेढी होकर स्त्री पडी रहती है इस रोगकी उत्पत्ति होनेके कारणोंको लेकर उसका तीन भेद करनेमें आता है ।

(१) शुद्ध पीडितार्त्तव कितनी ही कोमल प्रकृतिकी स्त्रीको इस मौकेपर पीडा उत्पन्न हो आती है इस भेदका नाम शुद्ध पीडितार्त्तव है । (२) शोथजन्य पीडितार्त्तव गर्भाशयके शोथको लेकर पीडा होती हो । (३) प्रतिबन्धजन्य पीडितार्त्तव कितनी ही स्त्रियोंके गर्भाशयको मुखमें किसी प्रकारका प्रतिबन्ध होता है और इससे ऋतुके बाहर आनेमें रुकावट होनेसे जो पीडा होती है इसका नाम प्रतिबन्धजन्य पीडितार्त्तव है । शुद्ध पीडितार्त्तव प्रायः यह व्याधि स्त्रीको हर किसी समय उत्पन्न हो आती है । परन्तु यह ३० तीस वर्षकी उमरके पीछे अथवा इसी प्रकार बालकवाली स्त्रीकी अपेक्षा विना बालकवाली स्त्रीको अधिक होती है । बालक उत्पन्न हो चुका है उस स्त्रीको ऋतुधर्म नियत समय पर होता है । और यह व्याधि उसको कभी २ ही पीडा देती है । वन्ध्या स्त्रीमें ऐसी कोई भी व्याधि कारणभूत होती है और वह कोमल प्रकृति और नाजुक शरीरवाली तथा इसी प्रकार चपल चंचल मनोवृत्तिवाली स्त्रीको यह अधिक पीडित करती है । विशेष चिह्न इस व्याधिके इस प्रकार हैं कि ऋतुधर्म आनेके समय स्त्रीकी कमरमें चस्का निकलता है इसके साथ ही कितनी ही स्त्रियोंके मस्तकमें दर्द होता है, शरीर बे चैन रहता है अंदर कुछ गंभीरताके साथ ओंडा दर्द होता है । ऐसा स्त्रीको लगता है यह दर्द कमरसे लेकर पेटके नीचेके भागमें होकर ठेठ जंघा पर्य्यन्त फैला हुआ मालूम होता है । यह दर्द थोडे समयको शान्त रहता है और पीछे एकदम जोशके साथ शक्त दर्द होने लगता है; दर्द उत्पन्न होने पीछे ऋतुधर्म थोडे बहुत घंटोंके बाद दीखने लगता है कभी २ एक दो दिवस तक ऋतुधर्म नहीं दीखता और पीडा होती रहती है, ऋतुस्राव होने पीछे दर्दका होना बन्द हो जाता है कटि स्थानमें होता हुआ गंभीर दर्दका कारण विशेष करके गर्भ अण्डमें रक्तका जमाव (संग्रह) होता है, कितने यूरोपियन वैद्योंका ऐसा मन्तव्य है कि इस रोगमें गर्भाशयका अथवा गर्भ अण्डका कुछ भी शोथ होना संगत है उसको लेकर गर्भाशयके अन्तर पिण्डमें लींफका जमाव (संग्रह) होता है, जो संगृहीत रक्त ऋतुस्रावके साथ बाहर निकल आता है कितने ही समय सम्पूर्ण गर्भा-

शयकी खोल इस रीतिकी खोल बनकर बढती है, जिस स्त्रीको पीडितार्त्तवमें रक्तके साथ ऐसी रीतिकी खोल पडती होय उस स्त्रीको गर्भाधान रहना अति कठिन है और कितनी ही स्त्रियोंको यह खोल प्रतिमासमें पडती है । ऋतुस्रावके समय कमल सूझा हुआ और पुलपुला नर्म दीखता है और अंगुली प्रवेश करके परीक्षा की जावे तो अधिक गर्म जान पडता है इस रोगमें स्त्रीके शरीरमें ज्वर भी देखनेमें नहीं आता परन्तु क्षुधा बराबर लगती है, दस्त भी नियत समय पर आता है । प्रथम एक दो समय ऋतुधर्मका आन्त बन्द हो कर पीछे पीडितार्त्तव जान पडे व खोल निकले तो इससे गर्भस्रावकी शंका उत्पन्न होनेके प्रथम गर्भाधान रहनेके चिह्न मिलने चाहिये और गर्भस्रावमें ऋतुस्रावकी अपेक्षा रक्त अधिक पडना चाहिये । यदि निदानके तरीकेसे देखा जावे तो शुद्ध पीडितार्त्तव रोगमें योनिदर्शक यन्त्र तथा तर्जनी अंगुली प्रवेश करके परीक्षा करनेसे गर्भाशय तथा कमलमुख स्वाभाविक स्थितिमें मालूम पडता है ।

शुद्ध पीडितार्त्तवकी चिकित्सा ।

इस पीडितार्त्तवकी चिकित्सा करनेके समय चिकित्सकको अपने ध्यानमें रखना चाहिये कि, जो व्याधि अधिक समयकी उत्पन्न हुई शरीरमें स्थित हो कि जिससे शरीर क्षीण होगया होय तो प्रथम निर्बल शरीरको बलवान करना चाहिये । जहांतक शरीर बलवान न हो तहाँतक पीडितार्त्तवका नष्ट होना असंभव है, इसी प्रकार जो पीडितार्त्तवमें ऋतुस्रावका रक्त विशेष आता हो वह शीघ्र सुधरता है और अनार्त्तवके साथ मिश्रित् हुआ पीडितार्त्तव निवृत्त होना विशेष कठिन है । पीडितार्त्तवका उपाय दो प्रकारसे हो सक्ता है एक तो ऋतुस्रावके समय उत्पन्न हुई जो तीव्र वेदना उसको निवृत्त करना, दूसरी यह कि दूसरे समय ऋतु आनेपर यह पीडा न उत्पन्न होवे । ऋतुस्रावके समय शक्त पिडा होती होय तब रोगीको बिलकुल परिश्रम नहीं करना चाहिये शान्तिसे शयन करे वा बैठी रहे । हलका शीघ्रपाची तथा दस्त साफ आवे ऐसा आहार करे, कुछ ऊष्णा तथा पीडाशान्त करनेवाली औषध सेवन करनेसे उत्तम लाभ जान पडता है । ईथर और अमोबियाकी बनावटोंका कलोरल, बेलेडोना अथवा हेनबेनके साथ मिलाकर देनेसे पिडाकी शान्ति जल्दी होती है इस नीचेके प्रीस्क्रिप-शन पीडितार्त्तवमें विशेष उपयोगी है । टींकचर बेलेडोना ½ ड्राम, स्पीरीटकलोरोफार्म १ ड्राम, टींकचर हायोसायेमाई १ ड्राम, ईथरसलफ्युरीक १ ड्राम, कापूरका जल ३ ओंस उपरोक्त सब दवा मिलाकर इसका ३ भाग करे, एक दिवसमें ४ घंटेके अन्तरसे ३ वक्त पीवे । (नीचे लिखी हुई दवा बत्ती वह गोली बनाकर काममें लावे) । आयोडाईदओफलेड ४० ग्रेन, ऐकस्ट्राकटओफप्रेलाडोना १६ ग्रेन, ऐक-

स्ट्राकरओफकोनायम ४० ग्रेन दवाओंको मिलाकर कोकमके तैलके साथ ४ गोली व वत्ती बनाकर हररात्रि १ वत्ती योनिमार्गमें गर्भाशयसे अडती हुई रक्खे । कोई कोई डाक्टर पीडाकी शान्तिके लिये मादक औषध देते हैं, रोगी नसेमें पडा रहे। यदि मादक औषधि कहीं उपयोगी दीख पडे तो अन्य मद्यादिको त्याग कर पीडाकी शान्तिके लिये भांग विशेष उपयोगी है । भाँगका टींकचर वे चूर्ण लेनेसे पीडा शान्त पड जाती है, कदाचित् इससे पीडा शान्त न होय तो अफीमकी किसी प्रकारकी संयोगी दवा जिसमें अफीमका संयोग होय वह देना योग्य है । लाईकवोरओपाईसंडिटाईवस, ½ ड्राम दो रुपये भर पानीमें मिलाकर प्रातःकाल और सायंकालके समय पिलावे इससे पीडा शान्त पड जाती है । कदाचित् इससे भी पीडा हलकी न पडे तो त्वचामें मोरफीयाकी पिचकारी मारनी, यह सबसे प्रबल उपाय पीडाको शान्त करता है । यदि इसके साथ ऋतु अधिक आता होय तो उसको भी कम करता है, यदि पीडितार्त्तवमें ऋतु कम दीखता होय और पीडा अधिक होती होय तो रोगीको ऋतुस्रावका रक्त कुछ अधिक आवे ऐसा उपाय करना उचित् है । उसको गर्म जलमें बैठाल राईका काढा बनाकर उसमें स्त्रीके पैर रखवाना तथा पेडू और पेटके ऊपर नाभिके नीचे गर्म जलका सेंक करना (ऐपीयोल,) का आठ विन्दु एक ओंस जलमें मिलाकर ऐसी ही मात्रा प्रातःकाल और एक सायंकालको पिलानेसे तथा रसमें थोडा सरवत मिलाकर पिलानेसे पीडा शान्त होती है और ऋतुधर्मका आगमन अधिक दीखता है, कदाचित् इनमेंसे एक भी उपायसे पीडा न निवृत्त हो तो मोरफीयाकी पिचकारी चमडेमें लगानी इसके समान पीडा शान्त करनेवाला दूसरा एक भी उपाय नहीं है । इसके बाद वेलेडोना तथा अफीमकी गोली व वत्ती बनाकर गर्भाशयसे अडाकर योनिमार्गमें रखनेसे पीडा निवृत्त होती है और तृषाके स्थानमें गर्म गर्म कापी पीना हितकारक है । ऋतुधर्म याने मासिक धर्मका समय व्यतीत होने पर दूसरे समयके ऋतुधर्मके आगमनके समय ऋतुस्राव पीडायुक्त न होय इसके लिये पौष्टिक औषधियोंका उपचार करना । और लोहभस्मके पृथक् पृथक् अनेक प्रयोग हैं । उनका सेवन कराना तथा काटलीवरआईल, कवीनाईन और कटु पौष्टिक औषधियाँ देनी और इनके साथ उत्तम पौष्टिक आहार स्त्रीको दे खुली साफ. हवाका सेवन कराना और कुछ २ परिश्रम भी कराना चाहिये । और गर्भाशयमें खोलके माफिक जो पदार्थ निकलता है यदि उसकी उत्पत्ति होती होय तो उसके रोकनेके लिये कमलमुखके ऊपर तथा उसकी अन्दरकी बगलोंमें थोडा टींकचर आयोडीन लगाना यदि कमल अधिक विस्तृत हुआ होय और उसमें वक्रताका कोई दोष न होय तो ऋतुधर्मके समय पीडा बहुत थोडी जान पडती है । और खोलके माफिक पदार्थ उतरता है

उसका उपाय अधिक उत्तम रीतिसे होने सक्ता है। योनिमार्गमें नलिकायन्त्र प्रवेश करके और सलाइके ऊपर रुई चढाकर उस रुईवाले भागको टींकचरआयोडीनमें डबोकर कमलमुखके ऊपर लगाना। बाद जो उपाय गर्भाशयके दीर्घ शोथमें कथन किये गये हैं वोही उपाय इस खोलमें उत्तम असर करनेवाले हैं। यदि इस खोलकी व्याधिवाली स्त्रीको सोमलभस्म परिमित मात्रासे सेवन कराया जावे तो स्त्रीके शरीरको पुष्ट करता है और खोलकी वृद्धिको रोकता है।

शोथजन्य पीडितार्त्तव।

इस व्याधिकी व्यवस्था जहाँतक देखी गई है वहांतक यही निश्चय हुआ कि विशेष करके रुष्टपुष्ट स्त्रियोंको छोटी अवस्थामें यह व्याधि अधिक होती है, जिस स्त्रीके बालक उत्पन्न हो चुका है ऐसी स्त्रियोंमें यह व्याधि अधिक देखी गई है और जिनके बालक नहीं उत्पन्न हुआ है उनके यह व्याधि बहुत कम पाई जाती है। ऋतुधर्म स्नानसे निवृत्त हुई तथा प्रसूतिक रोगवाली तथा जिस स्त्रीको गर्भस्राव (पात) हुआ होय ऐसी स्त्रियोंको यदि आधक शर्दी लग जावे तो एकदम शोथयुक्त पीडितार्त्तवकी व्याधि उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार मानासिक चिन्ता भय शोक क्रोध व दिल और दिमागको किसी प्रकारका सद्मा पहुंचनेसे भी यह व्याधि उत्पन्न हो जाती है। जब यह व्याधि एकदम उत्पन्न हो आती है तब स्त्रीको शक्त ज्वर चढ जाता है पेडू और कमरमें शक्त पीडा फटनेके माफिक होती है, सम्पूर्ण उदरमें समान रूपसे शूल होता होय ऐसा जान पडता है और जंघाओंमें फटनेके समान पीडा होती है। ऋतुस्राव होने पीछे कितने ही समय कितनी ही स्त्रियोंको यह पीडा कुछ कम भी पड जाती है और कितनी ही स्त्रियोंके स्राव बन्द होनेके अन्ततक रहती है। जब यह रोग धीरे धीरे स्थापित होता होय तब ऋतुस्रावके समय प्रथम एक दो दिवस आगेसे दर्द होना आरम्भ हो जाता है, जो दर्द ऋतुस्राव बंन्द होने पीछे एक दो दिवस पर्य्यन्त बराबर जारी रहा आता है। पेडू और कमरमें भार जैसा माल्लम होता है और चस्का निकला करता है। शुद्ध पीडितार्त्तवकीसी तीक्ष्ण वेदना इसमें नहीं होती और पीडितार्त्तवमें निकलती हुई खोल इसमें भी निकलती है। गर्भाशयकी परीक्षा करनेसे कमलमुख सूझा हुआ और गर्म जान पडता है। उसके ऊपर छाला अथवा धारा दीख पडती हैं, कमलमुख खुला दीखता है और उसमें शलाकायन्त्र बखूबी प्रवेश होकर जाने सक्ता है। गर्भाशय सम्पूर्ण तथा इसके साथ ही गर्भ अण्ड भी सूझा हुआ होता है, जो गर्भाशयके आगे तथा पीछेके दोनों भाग सूझे हुए होंय तो उसके प्रमाणसे गर्भाशय पूर्व अर्थात् अग्र अथवा पश्चात् विवृत होता है और इससे मूत्रकी तथा मलकी रुकावट जान पडती है। इस रोगमें प्रायः गर्भाशय प्रदर भी अवश्य ही रहता

है और इस व्याधिवाली स्त्रीके स्तनोंमें रक्तका अधिक संग्रह होता है और स्तनोंको दबाते हैं तो अधिक पीडा मालूम होती है । शुद्ध पीडितार्त्तवमें तथा शोथजन्य पीडितार्त्तवमें जहाँतक खोल उतरती है वहाँतक गर्भाधान रहना कदापि संभव नहीं है ।

शोथजन्य पीडितार्त्तवकी चिकित्सा ।

इस व्याधिका उपाय यह है कि ऋतुस्राव आनेका समय होय तब एक दो दिवस आगेसे स्त्रीको दो चार दस्त करा कमर पर्यंत गंभीर गर्मजलमें बैठावे और योनि मार्गमें गर्म जलकी पिचकारी लगावे । यदि कुछ कुछ ज्वर रहता होय तो पसीना लानेवाली औषध देना और ऋतुस्राव आरम्भ होने पीछे भी कुछ पीडा जान पडती होय तो अफीमकी अथवा भांगकी किसी प्रकारकी संयोगी औषध देना, इससे रक्त अधिक निकलता होय तो वह भी बन्द हो जायेगा । इसके अतिरिक्त फस्द खुलवाना अथवा कमलमुखके ऊपर जलौका (जोंक) लगवाना अथवा पेडूके ऊपर शृङ्गीसे अथवा चर्मछेदन करके कुछ रक्त निकाल देना ये भी दोनों क्रिया लाभदायक हैं । मल व मूत्रकी रुकावट होवे तो उसका योग्य उपाय करना, पीडाकी शान्तिके लिये पूर्व लिखी हुई शामक औषधियोंकी गोली व वर्त्तिका बनाकर योनिमार्गमें गर्भाशयसे अडती हुई रक्खे । जब ऋतुधर्मका समय व्यतीत हो जावे तो स्त्रीको कुछ शरीरके अनुकूल व्यायाम कराना उचित है और खुली हुई स्वच्छ हवांमें फिरना और कभी २ कमर पर्यन्त गर्म जलमें बैठना और थोडे २ दिवसके अन्तरसे दस्त साफ आवे अथवा एक व दो दस्त अधिक हो जावें ऐसी औषध देना । कमलमुख पर हर सप्ताहसे टींकचरआयोडीन लगाना, अन्तको जब ऋतु आनेका समय आजाय उसके प्रथम रक्तका अधिक संग्रह होता है ऐसा गर्भाशयकी परीक्षा करनेसे मालूम होता है तो ऐसी दशामें गर्भाशय अथवा उसके आसपासके भागमेंसे जहाँसे उचित समझे रक्त निकाल लेना चाहिये ।

अथ प्रतिबन्धजन्य पीडितार्त्तव ।

इस व्याधिका अधिकांश विवरण कमलमुखके प्रतिबन्ध विषयमें लिखा हुआ है । ऋतुस्रावके रक्तको बाहर आनेके लिये मार्गमें रुकावट होनेसे ऋतु बाहर आनेमें रुकता है, इसलिये ऋतुस्रावके समय पीडा होती है । इसको प्रतिबन्धजन्य पीडितार्त्तव कहते हैं, विशेष करके कमलमुख अथवा उसके अन्दरका रास्ता याने गर्दनका मार्ग संकुचित हो जाता है । यह प्रतिबन्ध कितनी ही स्त्रियोंको जन्मसे ही स्वाभाविक होता है । कितनी ही स्त्रियोंको इस भागमें कुछ बीचमें हुआ भी मिलता है । इससे ज्ञात होता है कि जिन स्त्रियोंको इसी प्रकारका पाक होकर जखम रोपण होता है उस समय उसमें संकोच प्राप्त होता है । नष्टगर्भितन्ध्यताका यह मुख्य कारण है,

जो प्रतिबन्धजन्य पीडितार्त्तवका कारण हो जाता है । हृष्टपुष्ट तरुण और आरोग्य स्त्रीके गर्भाशयमें आठ दिवसके अन्तरसे नम्बर ८ अथवा १० की गर्भाशय शलाका-यन्त्र प्रवेश करनी, यदि कमलमुख संकोचको प्राप्त हुआ होगा तो शलाकायन्त्र गर्भाशयमें प्रवेश न हो सकेगा । इन मोटी शलाइयोंको त्यागकर ४ व ५ नम्बरकी पतली शलाईका प्रवेश करना भी अति कठिन हो जाता है और किसी समयपर गर्भाशय वक्र होता है किन्तु इससे भी ऋतुस्रावमें अवरोध होता है । इस व्याधिके चिह्न विशेष इस प्रकार हैं कि पेडूमें और कमरमें शक्त पिडा होती है और सांधल फटती है । यदि ऋतुधर्मकी रुकावट होवे तो ज्वर चढ आता है और गर्भ अण्डमें सूझन हो जाती है और गर्भ अण्डकी सूझनको लेकर अधिक वमन आने लगती है । इससे समय पर गर्भाशयका भी शोथ उत्पन्न हो आता है ।

प्रतिबन्धजन्य पीडितार्त्तवकी चिकित्सा ।

इस व्याधिकी चिकित्सा यही है कि प्रतिबन्धजन्य पीडितार्त्तव जान पडे तो धीरे धीरे शलाकायन्त्र अथवा टेंटयन्त्र कमलमुखके अन्दर प्रवेश करना और स्त्रीको आरामसे सुलाकर रखना, उसको चलने फिरने नहीं देना और वह रास्ता (कमल मुखका छिद्र) ¼ इंच व्यासवाली परिधिका जितना चौडा होय वहांतक प्रवेश करनेके यन्त्र धीरे धीरे एकसे दूसरा मोटा लेता जावे, प्रत्येक समय ऐसा बाह्य पदार्थ गर्भाशयमें प्रवेश करने पीछे स्त्रीकी उत्तम रीतिसे हिफाजत करे । यदि पकनेका कोई चिह्न जान पडे तो उसको एकदम शमन करे, ऋतुस्राव आनेका होय उसके प्रथम एक सप्ताह आगेसे टेन्टयन्त्र प्रवेश करना और इसके पीछे आवश्यकता पडे तो एक समय दूसरी वक्त भी प्रवेश करना । इस यन्त्रके प्रवेश करनेसे मार्ग विस्तृत हो जाता है, कितने ही समयके पीछे विस्तृत हुआ मार्ग पीछे संकुचित हो जाता है । तो गर्भाशयके मुखमें दोनों तर्फ (याने दोनों बाजुओंपर) छिद्र करना और अन्दर स्पंजका टुकडा रखदेवे तथा स्त्रीको थोडे दिवस पर्य्यन्त बिस्तरपर सुलाकर रखना, इससे कमलमुख सदैवके लिये विस्तृत रहता है । अत्यार्त्तव रोग भी रजोदर्शनसे सम्बन्ध रखनेवाली व्याधि है परन्तु उसकी व्याख्या इस ग्रन्थके पांचवें अध्यायमें प्रदररोगके प्रकरणमें लिखी गई है वहां देखो ॥

दशमाध्याय समाप्त ।

एकादशोऽध्यायारम्भः ।

इस अध्यायमें गर्भाशयके आभ्यन्तरकी उन व्याधियोंका वर्णन किया जायेगा कि जो असलमें गर्भाधान नहीं है किन्तु गर्भके रूपमें दीखता है और स्त्रीको सन्तानहीन

वन्ध्या रखनेमें मुख्य कारणभूत है । इनकी व्याख्या प्रथम आयुर्वेदसे पुनः यूनानी तिब्बसे और तीसरे नम्बर पर यूरोपिनीय वैद्योंके मतानुसार लिखते हैं ।

आयुर्वेद चरकसे आमगर्भमें पुष्पदर्शन ।

अस्याः पुनरामान्वयात् पुष्पदर्शने स्यात् ।
प्रायस्तत्तस्यागर्भबाधकं भवति विरुद्धोपक्रमत्वात् ।

अर्थ—जब गार्भिणी स्त्रीके आमरोगसे पुष्पदर्शन होवे तो प्रायः वह गर्भका बाधक होता है अर्थात् उसकी चिकित्सा होना अति कठिन है, क्योंकि दोनोंकी चिकित्सा परस्पर विरुद्ध होती है । जैसा कि पुष्पदर्शनमें शीत क्रियाका उपचार किया जाता है । और आमदोषमें उष्ण क्रियाका उपचार किया जाता है । कभी २ देखा गया है कि उपरोक्त विकारवाली स्त्रीका अधिक रक्त निकलनेसे गर्भ शुष्क हो वृद्धिको प्राप्त नहीं होता ।

जातसारगर्भमें पुष्पदर्शन ।

यस्याः पुनरुष्णातीक्ष्णोपयोगाद् गर्भिण्या महतिगर्भे जातसारे पुष्पदर्शने स्यादन्यो वा योनिप्रस्रावः तस्या गर्भो वृद्धिं न प्राप्नोति निःस्रुतत्वात् । सकलान्तरमवतिष्ठतेऽतिमात्रन्तमुपविष्टकमित्याचक्षते केचित् ।

अर्थ—गर्भसार उत्पन्न होनेके पश्चात् ऊष्ण और तीक्ष्ण वस्तुओंके अत्यंत सेवनसे जो पुष्पदर्शन होय अथवा और किसी प्रकारके कारणसे योनिस्राव होय तो उस स्त्रीका गर्भ नहीं बढता है । और रक्तस्राव हो जानेके कारणसे वह गर्भ विशेष समय पर्य्यन्त अपूर्ण अवस्थामें रहता आता है और कोई वैद्य इस गर्भको उपविष्टक भी कहते हैं ।

नागोदरगर्भके लक्षण ।

उपवासव्रतकर्मपण्याः पुनः कदाहान्नया स्नेहद्वेषिण्या वातप्रकोपनोक्तान्यासेव्यमानाया गर्भो न वृद्धिं प्राप्नोति परिशुष्कत्वात् । स चापि कालान्तरमवतिष्ठतेऽतिमात्रअतिमात्रस्पंदनश्च भवति तन्नागोदरमित्याचक्षते । नार्य्यास्तयोरुभयोरपि चिकित्सितविशेषमुपदेक्ष्यामः ।

अर्थ—जो गार्भिणी स्त्री उपवास व्रतादि कर्मोंमें रत रहती है अथवा कुत्सित अन्नका आहार करती है और स्नेहसे द्वेष रखती है अथवा वायु प्रकुपित करनेवाले द्रव्योंका सेवन करती है, उस स्त्रीका गर्भ वृद्धिको प्राप्त नहीं होता । क्योंकि वह शुष्क हो जाता है । यह गर्भ भी विशेष काल पर्य्यन्त उदरमें रहता है और अत्यन्त स्पन्दन

करता है, इसको नागोदर कहते हैं । अब उपविष्टक और नागोदरकी चिकित्सा कथन करते हैं ।

उपविष्टक तथा नागोदरकी चिकित्सा ।

मौतिकजीरजीहबृंहणीय मधुरवातहरसिद्धानां सर्पिषामुपयोगः । नागोदरे तु योनिव्याप्यन्निर्दिष्टं पयसामामगर्भाणां च गर्भवृद्धिकरणां च सम्भोजनमतैरेव च सिद्धैश्च घृतादिभिः । सुबुभुक्षायां अभीक्ष्णं यानवाहनावमार्जनजृम्भणैस्त्वपादनामिति ॥

अर्थ-उपविष्टक गर्भमें भूतिकगण, जीवनीयगण, बृंहणीयगण, मधुरगण, (ये सब औषधियोंके गण इसी चरक संहिताके सूत्रस्थानमें मिलेंगे) तथा वातहारक द्रव्योंके साथ सिद्ध किया हुआ घृत स्त्रीको पिलावे और नागोदर गर्भमें योनिव्यास रोगमें कथन की हुई चिकित्सा क्रमके अनुसार करे, और क्षुधा लगनेपर दुग्ध पक्क आम और गर्भ वृद्धिकारक द्रव्योंका सेवन करावे और इन्हींके साथमें सिद्ध किया हुआ घृत देवे । तथा स्त्रीके चित्तको प्रसन्न करनेवाले यान, वाहन, अपमार्जन, और कथावार्त्ता आदिका सेवन और श्रवण कराना योग्य है । अब प्रसुप्त गर्भकी चिकित्सा कथन करते हैं ।

प्रसुप्त गर्भकी चिकित्सा ।

यस्याः पुनर्गर्भः प्रसुप्तो न स्पन्दते तां श्येनमत्स्यगवयशिखिताम्रचूडतित्तिरीणामन्यतमस्य सर्पिष्मता रसेन माषयूषेण वा प्रभूतसर्पिषामूलकपूषेण वा रक्तशालीनामोदनमृदुमधुरशीतं भोजयेत् । तैलाभ्यङ्गेन चास्या अभीक्ष्णमुदरवंक्षणोरुकटीपार्श्वपृष्टप्रदेशानीषदुष्णो नोपाचरेत् ॥

अर्थ-जिस स्त्रीका गर्भ उदरमें विस्तृत (फैलासा हो जाय) चलना फिरना गर्भका वन्द हो जावे इसको प्रसुप्त गर्भ कहते हैं । ऐसी स्त्रीको शिकरा मछली, रोज, मोर, मुर्गी, तीतर इनमेंसे एक किसीका मांस लेकर उसके साथ घृतको सिद्ध करके स्त्रीको खिलावे, अथवा जो स्त्री मांसाहारी नहीं हैं उनको गोघृतके साथ उडदका यूष देवे । अथवा विशेष घृत डालकर मूलीके यूपके साथ शाली चावलोंका कोमल और मिष्ट भात खिलावे । तथा इस प्रकारकी गार्भिणीके उदर, वंक्षण, ऊरू, कमर, पसली और पीठपर तैलका मर्दन करवाना अति हितकर है ।

भावप्रकाशसे वातशुष्क गर्भ तथा नागोदरकी चिकित्सा ।

गर्भो वातेन संशुष्को नोदरं पूरयेद्यदि । सा बृंहणीयैः संसिद्धं दुग्धं मांस-

रसं पिबेत् ॥ १ ॥ शुक्रार्त्तवमजातांगं संशुष्कं मारुतार्तितम् । त्यक्तं जीवेन तत्तस्मात्कठिनं चावतिष्ठते ॥ २ ॥ शुक्रार्त्तवार्दको वायुरुदराध्मानकृद्भवेत् । कदाचिच्चेत्तदाध्मानं स्वयमेव प्रशाम्यति ॥ ३ ॥ नैगमेयेन गर्भोऽयं हृतो लोकध्वनिस्तदा । स एवाल्पप्रवृत्त्या चेल्लघुर्भूत्वाऽवतिष्ठति ॥ ४ ॥ तदा सगर्भो भवति लोके नागोदराह्वयः । धान्यकुट्टनमुख्यास्याच्चिकित्सा तुभयोरणी ॥ ५ ॥

अर्थ—यदि गर्भवती स्त्रीका गर्भ वायुसे सूखकर उदरकी पूर्त्ती न करे (गर्भाशयमें बढकर अपने पूर्ण आकारको प्राप्त न होवे) तो उसकी वृद्धिके निमित्त बृंहण पौष्टिक औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ दुग्ध घृत व मांस रस स्त्रीको पिलावे जिस शुक्रार्त्तवका गर्भाशयमें अंग न बने तब तथा अंग बननेपर प्रत्येक अंग वायुसे पीडित होय इसीसे वह गर्भ जीव रहित कठिन होकर रहता है, वह शुक्र और आर्त्तवकी पीडा करता वायु उदरमें अफरा करनेवाला होता है । यह अफरा स्वयं ही शान्त हो जाता है तब लोकमें ऐसी प्रसिद्धि हो जाती है कि इस स्त्रीका गर्भ नैगमेय नामके बालग्रहने नष्ट कर दिया है । यदि वही गर्भ अल्पप्रवृत्ति अर्थात् थोडा २ रक्त उसमेंसे गिरा करे तो वह अति छोटी आकृतिका होकर गर्भाशयमें रहता है, उसीको लोकमें नागोदर कहते हैं । इन दोनों प्रकारके (वात शुष्क और नागोदर) की यह मुख्य चिकित्सा है कि वह गर्भवती मूसल लेकर ओखलीमें धान डालकर कूटे ॥ १–५ ॥ अथवा जलपूरित दो घट दोनों हाथोंमें पकड कर ऊँचे जीनेपरसे धमकके साथ कूदती हुई उतरे ।

सुश्रुतसे अनस्थिगर्भकी स्थिति ।

यदा नार्य्यावुपेयातां बृषष्यन्त्यौ कथञ्चन । मुञ्चत्या शुक्रमन्योन्यमनस्थिस्तत्र जायते ॥ १ ॥ ऋतुस्नातां तु या नारी स्वप्ने मैथुनमावहेत् । आर्त्तवं वायुरादाय कुक्षौ गर्भं करोति हि ॥ २ ॥ मासिमासि विवर्द्धेत गर्भिण्या गर्भलक्षणम् । कललं जायते तस्या वर्जितं पैतृकैर्गुणैः ॥ ३ ॥

अर्थ—जब रतिकी इच्छामें प्रवृत्ति करनेवाली दो स्त्रियाँ परस्पर आपसमें संयोग करती हैं तब एकका वीर्य्य दूसरीकी योनिमें पडता है, उससे अनस्थि अर्थात् विना हड्डीका गर्भस्थ बालक बनता है ॥ १ ॥ ऋतुधर्मके स्नान करनेके अनन्तर जो स्त्री स्वप्नमें पुरुषके साथ मैथुन करती है उसके आर्त्तवको वायु गर्भाशय (कुक्षि) में

ले जाकर गर्भको उत्पन्न करती है। वह गर्भ साधारण गर्भकी तरह प्रत्येक मासमें बढता है और पिताके गुणोंसे रहित मांसका लोथडा जिसमें बाल, दाढी, मूछ, लोम, नख, दाँत, हड्डी आदि कठिन अंग नहीं होते ऐसा गर्भ बनता है। सुश्रुतके टीकाकार जेज्झटाचार्य्य इन तीनों श्लोकोंको क्षेपक बतलाया है॥ २-३॥ चाहे ये तीनों श्लोक धन्वतरिजीने सुश्रुतादि शिष्योंको उपदेश किये होयँ या सुश्रुतने स्वयं रचना करके लिखे होयँ अथवा जेज्झटाचार्य्यके कथनानुसार पीछेसे किसीने संयुक्त किये होवें परन्तु हमने यह प्रकरण वश लिखे हैं, क्योंकि आगे तिब्बके प्रकरणमें भी कछुआ और मुर्गा स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न होना लिखा गया है। यदि सत्य है तो वैद्य और तब्बीब दोनोंकी सत्य है यदि मिथ्या हैं तो दोनोंकी ही मिथ्या है, परन्तु हमको संदेह दोनोंमें है, लेकिन यह हमारा पूर्ण निश्चय कियाहुआ है कि गर्भमें विकृति अवश्य हो जाती है, जिसके कारणसे अंगभंग कुबडा व छ सात अंगुलीवाला बक्रनेत्र इत्यादि दोष प्रायः हो जाते हैं। परन्तु वैद्योंके सिद्धान्तमें तो यह संदेह होता है कि जब स्त्रीके साथ स्त्रीकी रतिक्रियासे गर्भकी स्थिति हो जाती है और दोनोंका रज निकलकर गर्भाशयमें प्राप्त होकर गर्भाकृतिको धारण करके बढने लगता है तो लघु शिश्नवाले पुरुषके संयोगसे गर्भकी स्थिति क्यों नहीं होती दूसरे पुरुष वीर्य्यजन्तुओंका संयोग हुए बिना स्त्री वीर्य- जन्तुओंमें निष्केवल रहकर गर्भाकृति बननेकी स्वाभाविक शक्ति नहीं हैं। यह एक कुदरती नियम है कि पुरुष वीर्य-जन्तु स्त्री वीर्यजन्तुसे जाकर मिले उस समय गर्भाकृतिको धारण करे चाहे वह गर्भाकृति शुद्ध हो अथवा विकृत होय। इसका नियम स्त्री पुरुषोंके रजवीर्य आचरण व्यवहार और मानसिक चेष्टापर ही निरभर है, स्वप्नमें जैसे पुरुष रति विलाश करता है और वीर्य्य भी स्खलित हो जाता है इसी प्रकार स्त्री भी स्वप्न मैथुन करती हो, परन्तु केवल स्त्री वीर्य्यसे गर्भाकृति बनना हमारी समझसे बाहर है। इसी प्रकार तिब्बवालेके सिद्धान्तमें भी संदेह होता है कि मनुष्य और पशुके बच्चे जरायुमें लिपटे हुए आते हैं कछुआ और मुर्गा अण्डज सृष्टि हैं जरायुवाले गर्भाशयमें अण्डज आकृतिका बनना युक्ति असंगत मालूम होता है।

आयुर्वेदसे गर्भके समान दीखनेवाली व्याधि समाप्त।

अथ यूनानी तिब्बसे गर्भके समान दीखनेवाली रिजाका वर्णन।

यह इस प्रकारसे है कि स्त्रीको एक ऐसी दशा प्रगट होय जो गर्भवती स्त्रीकी दशाके समान हो, इस तरह पर कि रजोदर्शन बन्द हो रंगमें अन्तर आ जाय, भूँख जाती रहे, पुरुषके साथ संभोगकी इच्छा न रहे, गर्भाशयका मुख

बन्द हो जाय, छाती फूल जाय पेट बडा हो जाय, जैसा कि गर्भवती स्त्रियोंका होता है । कठोरता तथा गति मालूम होय जैसी गर्भस्थ बालककी गति होती है, यदि उसको हाथसे दबावें तो पेटके दायें और बायें भागमें हो जावे । इस रोगके चरित्र विरुद्ध होते हैं कभी तो ऐसा होता है कि किसी इलाजसे नहीं जाकर स्त्रियोंकी आयुके अन्ततक रहता हुआ इसीमेंसे जलन्दर भी हो जाता है, कभी बालक जननेके समयकासा दर्द उत्पन्न होता है—और एक मांसका टुकडा तारियोंके साथ तथा दूषित मैलेके साथ निकलता है । अथवा बहुतसी वायु भी निकल जाती है, या कुछ भी नहीं निकलता और अक्सर ऐसा होता है कि झूंठे गर्भका मवाद ऊपरी गर्मीके कारणसे सड जाता है और उसमें एक ऐसी प्रकृति उत्पन्न होती है, जो जीवधारी चीजोंके बननेके समान हो जाती है, उसमें जान पड जाती है और फिर उस मवादमें जानवरकीसी सूरत आ जाती है । जैसा किसी २ ने देखा होगा कि एक स्त्रीके कछुआकी सूरतका बालक हुआ—और वह कई घंटेतक जीता रहा और हिलता चलता रहा श्वास लेता रहा । बाद एक स्त्रीने मुर्गेकी सूरतका बालक जना जिसके दो पैर थे (सावास हकीमजी साहब पैर तो थे मगर दुम और चोटीभी थी की नहीं नवाजीभाइयोंको जगानेके वास्ते मुल्लाजी जन्मसेही पैदा हो गये शायद ऐसी स्त्रियाँ रूम अरब ईरान और तुर्किस्तानमें होती होंगी) इसी प्रकार बहुतसे उदाहरण सुननेमें आये हैं अभिप्राय यह है कि अक्सर वह स्त्रीका सडाहुआ मवाद निकृष्ट उत्पत्तिकी शकलमें बन जाता है और सच्चे गर्भमें व झूंठे गर्भमें यह फर्क है कि रोगमें पेट कडा और हाथ पाँव सुस्त और ढीले रहते हैं और उसकी गति बालककीसी नहीं होती । किन्तु जब पेटपर हाथ रक्खें तो एक जगहसे दूसरी जगह हो जाय और बालक जो अपने आप हिलता है वह औरही प्रकारका होता है और बालककी उत्पत्तिका समय बीत जाय और चार पांच वर्ष तक रहे तथा किसी २ स्त्रीको सारी उमरभर रहता है और अनेक तरहके इलाज करनेसे भी अच्छा नहीं होता और यह रोग इलाजमें दर्द होते और समय व्यतीत हो जानेसे जलन्दर उत्पन्न कर देता है । झूँठे गर्भ और जलन्दरमें अन्तर प्रगट है अर्थात् कठोरता होनेसे जो झूँठ गर्भके लिये मुख्य हैं और जलन्दरके मुख्य चिह्नोंके न होनेसे अथवा यह रोग कई प्रकारका होता है । प्रथम तो यह है कि गर्भाशयके मुखमें या अङ्गमें बडी मोटी सूझन उत्पन्न होनेसे रजोदर्शनका रक्त बन्द हो जाता है और जो चीज उसके योग्य है उत्पन्न होय और उसके चिह्न तथा इलाज वही हैं, जो गर्भाशयकी कठोर सूझनके विषयमें वर्णन किये गये हैं । दूसरा यह है कि बहुतसे अधिक गर्भदोष गर्भाशयपर गिरें और उनमेंसे जो कुछ पवित्र और हलके हैं नष्ट हो जाँय और बाकी

गाढे जमकर रह जांय और कदाचित यह गाढा मवाद गर्मीके गुणसे छोटे मांसके टुकडेके समान हो जायँ तो इसका चिह्न यह ह कि गर्भाशयमें गर्भ दुष्ट प्रकृति आ जाती है। उसके उपरान्त झूँठा गर्भ उत्पन्न हो गर्भाशयके पास गर्मीका होना पुष्ट करता है। इलाज इसका यह है कि जो गर्मी और खून विशेष होय तो वासलीक और साफनकी फस्द खोले, जब गर्मी नष्ट हो जाय और अन्य किसी प्रकारका मवाद होय तो मवादके पकानेके लिये प्रतिदिवस जौका पानी, वेदअंजीरका तैल मिलाकर पिला बादयान (सोंफ) कासनीके बीज, अमलवेदके बीज, रूमी सोंफ इनका काढा बनाकर गुलाबका गुलकन्द मिलाकर पिलावे। मवादके पचनेके उपरान्त यारजकी गोली, मुतंजनकी गोली, कुंदलगोंदकी गोली कई बार मवादको निकाले और यारज लौगाजिया और यारज जालीनूस अति लाभदायक हैं। मवादके निकलनेके पीछे दह्मरसा, दवाउल किरकमतिरियाक अरबाका काढा, तिर्मिस, देवदारु, पहाडी पोदीना आदि देवे, जो अदवीयात (दवा) मरे और जीते बालकको निकाल दे जिससे मवादकी जड उखड जाय। बाद जीरा, सातर, पहाडी किब्रिया, बाबूना, जावसीर, अजमोदके पानीमें मिलाकर पेटपर लेप करे और चमेली या तुतलीका तैल मले और राख तथा नोन गर्म करके सिकाव करे बूलकी टिकिया देवदारुके पानीके साथ खाना लाभदायक है, जो कुछ रजके बन्द होनेमें कहा गया है याने उस प्रकरणमें पीनेकी चीजोंका वर्णन किया गया है वह सब इस मर्जमें लाभदायक हैं। हकीमलोग कहते हैं कि ७ मासे देवदारु लेकर एक गिलास देवदारुके पानीके साथ स्त्रीको पिलानेसे बालक और झूँठा गर्भ गिर जाता है। तीसरा यह है कि गाढी हवा गर्भाशय पत्रोंमें रुक जाय और निकलने न पावे और उसका चिह्न फूलना खिंचना और जलन्दरका चिह्न प्रगट होय। इलाज इसका यह है कि शरबत बिजूरी और जडोंका पानी पिलावै अंफराके तोडनेवाली चीजें जैसे लेपमाजून, हुकना, सलाईको काममें लावे। बाद जो जलन्दर अथवा रीहके कुलंजमें इलाज काममें ली गयी हैं वही यहाँ भी काममें लावे। भोजनके लिये चनेका पानी, गर्ममसाला मिलाकर मुर्गे व कबूतरका मांस भुनाहुआ खिलावे, यह सफूफ (चूर्ण) लाभदायक है। अजमोदके बीज २९ मासे, जीरा सिरकेमें भिगोया हुआ ३१॥ मासे, अजवाइन, सोंठ, रूमी सोंफ, प्रत्येक १४ मासे कूट छानकर बराबर कन्द मिलाकर ७ माससे लेकर १०॥ मासेतककी मात्रा सेवन करे। चौथा भेद इसका यह है कि झूँठा गर्भ इस कारणसे हो कि गर्भाशय केवल स्त्रीके रजको ठहरा लेवे, यह इस प्रकारसे है कि जो गर्भाशय स्त्रीके वीर्य्यको ठहरावेगा भोजनसे उत्पन्न हुआ रस उसकी सहायता पहुँचावेगा और दशा यह है कि मवाद पुरुषकी शक्ति (पुरुषके वीर्य्यसे) रहित है। उसमें अधूरी

दशा उत्पन्न होती है और उसका चिह्न यह है कि जो कुछ तीनोंमें मुख्य है पाया न जाय । इलाज इसका यह है कि जो कुछ बालक और झिल्लीके निकालनेमें कथन किया गया है काममें लावे । वे दवाइयाँ जो कि बालकको निकालती हैं, झूंठे गर्भ तथा रजको बहाती हैं, उत्पत्तिकी कठिनताको सरल करती हैं, बूल, गन्दाविरोजा, जावशीर प्रत्येक बराबर भाग लेवे, मात्रा ७ मासे अजमोदके पानी व सोंफके पानीके साथ देवे । दूसरा प्रयोग यह है कि कर्नबके बीज या उसकी कली ७ मासे लेकर बारीक पीस योनिमें रक्खे तो जो कुछ गर्भाशयमें होता है सो निकल पडता है । फिटकरी मिट्टीके वर्त्तनमें रखकर अग्निपर रक्खे जब फिटकरी उबलने लगे उस समय नरकचूरका बारीक चूर्ण उसके ऊपर बुरक कर अग्निके ऊपरसे उतार लेवे सलाई व वर्त्ती बनावे, जो अनामिका अंगुलीके बराबर होवे और इस सलाईको स्त्रीके गर्भाशयके मुखमें इतनी रक्खे कि ३ भाग सलाई गर्भाशयके मुखके अन्दर प्रवेश कर जावे और एक भाग बाहर रहे और यह सलाई तीन दिन तक रक्खी रहे, उसके दर्द व कष्टसे भय न करे, जो कुछ गर्भाशयमें है तीसरे दिवस बाहर आ जायगा, यह प्रयोग परीक्षा किया हुआ है । बूल, जावशीर, कुटकी समान भाग लेकर बारीक पीस लेवे और बैलके पित्तेमें मिलाकर सलाई बना दे उपरोक्त विधिसे गर्भाशयमें रक्खे, इसका भी गुण उपरोक्त सलाईके माफिक है ।

यूनानी तिब्बसे गर्भके समान दीखनेवाली व्याधि समाप्त ।

डाक्टरीसे गर्भाशयमें दूषित मांसपिण्ड विकृति ।

स्त्रीको गर्भ रहने पीछे वह गर्भ कुछ कालतक नियमपूर्वक वृद्धिको प्राप्त होकर पीछेसे उसमें किसी प्रकारकी विकृति होनेके लिये उसकी वृद्धि रुक जाती है और गर्भाधानके जो चिह्न दीख पडते थे वह सब बन्द पड जाते हैं । गर्भकी इस विकृतिको मांसपिण्ड विकृति कहते हैं, कहीं छोड भी कहते हैं । कितने ही समय यह विकृति गर्भ रहनेके आरम्भसे ही होती है । इस विकृतिके आसपास एक प्रकारकी मांस वृद्धि होती है, सम्पूर्णतासे बढनेपर गर्भको निर्जीव कर सुखानेका मुख्य कारणभूत हो जाती है । यह मांसविकृति दो प्रकारकी होती है, एक नकली दूसरी असली । नकली मांस वृद्धिगत होती है कितने ही समय ऐसा होता है कि पीडितार्त्तववाली स्त्रीको ऋतुधर्मका रक्तस्राव कुछ दिवस चढनेपर आता है (याने महीनेके नियमको उल्लंघन करके आता है) और पीछेसे गर्भाशयकी आकृतिका अंदरसे पतला पडत जैसा लोथडा निकलता है जिसको स्त्रियाँ प्रायः ऐसा मान लेती हैं कि यह गर्भ रह गया था सो पात हो गया (याने गर्भाशयमेंसे गर्भ बाहर निकल गया) और अन्दर

कुछ भाग मांसके टुकडेके समान छोड जैसा कुछ रह गया है । परन्तु यह मन्तव्य मिथ्या और युक्तिशून्य है, इसके अतिरिक्त दूसरा ऐसा भी होना संभव है कि योनि-मार्गमेंसे भी ऐसा लोथडा एकत्र होकर निकलता है । इसकी अपेक्षा यह भी है कि गर्भाशयमें शोथ होनेसे उस शोथके कारणसे निकलता हुआ श्वेत पदार्थका तथा उसके रस पडतका छिलका तथा रक्तका टुकडा जम जानेके पीछे अधिक कालमें निकलता है, तब वह मांसपिंड छोड जैसा दीखता है । इसी प्रकार गर्भाशयके अन्दरके मस्सोंका तथा ऋतुस्रावके रक्तका भाग जमी हुई दशामें भूलसे ही मांसविकृति व छोड कहलाती हैं, ये तीन प्रकारकी विकृतियाँ नकली हैं । दूसरी असली विकृति इस प्रकार हैं कि असली मांसपिण्ड व छोड तो तबहीं कहा जाता है जब गर्भाधान रहा होय और पीछे गर्भ शुष्क हो जाय, इस प्रकारका गर्भ शुष्क हो जाने पीछे वह गल जाता है और इससे ऋतु होनेके समय कोई मांसका लोथडा जैसा नहीं दीखता परन्तु एक स्रावही होता है और इससे स्त्रीजन ऐसा मानती हैं कि मांसपिण्ड (छोड) अन्दर रह गया है और गर्भ स्राव हो गया है । परन्तु पूरापूरा गर्भ नहीं पडा है, यह भी उनका मानना मिथ्या है, यदि यथार्थ देखा जाय तो गर्भस्राव हो चुका है परन्तु एक तो उसका पडत जो वृद्धिको पाये हुए होता है वह रहता हुआ छोडके समान दीखता है, यह ठीक मांसपिण्ड व छोड है । दूसरे गर्भके पडतमें रक्तका संग्रह होता है और उसकी कोई जीर्ण नस टूटी हुई होती है इस रीतिसे जब रक्तका संग्रह होता है तब गर्भका पडत भी उसीके साथ लगाहुआ होनेसे वे दोनों एक साथ चिपट जाते हैं गर्भस्रावमें गर्भका सम्पूर्ण रीतिसे स्राव नहीं होता और उसका कुछ भाग भी वहाँ चिपटा हुआ रहता है, जिसको गर्भाशयकी नसोंमेंसे पोषण मिलता है । शुद्ध गर्भके समान वह सब पिण्ड धीरे धीरे वृद्धिको प्राप्त होता है और मांसका लोथडा होय ऐसा वह भाग जान पडता है । तीसरे चौथे महीने पांचवें छठे महीने गर्भवाली स्त्रीका पेट व लक्षण होते हैं जैसा लगता है और तीसरे गर्भ पडतके ऊपर ऐसी विक्रांति हो जाती है कि उसकी योग्य वृद्धि हो जानेके बदले वह दाखके झुमकेके समान प्रवाही पदार्थसे भरीहुई छोटी २ रसौली होती हैं, वैसी ही हो जाती हैं । ऐसी रीतिंका झुमका गर्भाशयके अन्दर जो गर्भकी थैली है उसके सबसे ऊपरके भागमें होती हैं; जैसे इस प्रकारकी रसौलियाँ बढती जाती हैं वैसे ही गर्भको पोषण कमती मिलता है, इसीसे गर्भ मर कर निर्जीव हो जाता है । इस प्रकारका मांसपिण्ड लगभग अखंड मोटी रज्जु अथवा इससे भी मोटा होता है, इस व्याधिके चिह्न इस प्रकारसे होते हैं कि जब स्त्रीको यह मांसपिण्ड वृद्धि (छोड)

होनेवाला होता है तव उसको दूसरा कुछ भी चिह्न नहीं जान पडता, आरम्भमें गर्भाधानके ही चिह्न जान पडते हैं। मुखसे थूक अधिक निकलता है जिससे दिनभर थुकथुकी लगी रहती है और स्त्रीके स्तन भारी हो जाते हैं और स्तनमुखकी श्यामता वढती जाती है। इस रीतिके चिह्न लगभग दो व तीन महीने तक चलते हैं, पीछेंसे जैसे दूसरे चिह्न नियमित रीतिसे होने चाहिये वैसे नहीं होते, किन्तु दूसरे पृथक् ही प्रकारके चिह्न होते हैं। स्तनकी श्यामता कमती होती जाती है, रोगी स्त्री वेचैन रहने लगती है और उसको भूँख नहीं लगती जो कुछ थोडा वहुत आहार करती है वह पचता नहीं, जिस स्त्रीको प्रथम गर्भाधान रहा होय तो वह स्त्री शीघ्र समझ जाती है कि इस समयके गर्भाधानमें कुछ फेरफार (अन्तर) पड गया है और उसको जो भावाभाव इस समय होने चाहिये (याने दौहृदके लक्षण) सो होते नहीं और पेट वढकर ऊंचा होना चाहिये उसके वदले पेट आडा फैलवां वढता है। गर्भ साढे चार महीनेका होय तव उसके पेटमें फिरना स्वाभाविक धर्म होना चाहिये, सो यह उस प्रकारसे नहीं फिरता और पेटमें गांठके समान भाररूप पडा रहता है, परन्तु इतना अधिक समय निकलनेके प्रथम ही अढाइ अथवा तीन महीने होयँ तव स्त्रीके शरीरमेंसे पानी पडने लगता है। किसी समय इसके साथ ही रक्त भी पडने लगता है, एक दो दिवस ऐसा स्राव चलता है कि वदाम अथवा छुहारेके समान मांसका टुकडा बाहर निकल आता है और किसी समय इन टुकडोंके निकलने पीछे विशेष रक्त स्राव होने लगता है। पेटकी परीक्षा करनेसे गर्भका मस्तक जैसा कठिन होना चाहिये वैसा नहीं जान पडता कोमल और लुजगुजी वस्तुकी गाँठ वांध दी हो ऐसा माल्म होता है। प्रकृतिका स्वाभाविक नियम है कि कोई भी वाह्य चीज किसी भागमें प्रवेश करे तो उस वस्तुको निकालनेके लिये वह भाग कोशिश करता है जैसा कि नेत्रमें कोई बाह्य वस्तु प्रवेश कर जावे तो उसको नेत्रकी बांझडी नेत्रको मटमटाके बाहर निकाल देती है। यदि कोई वाह्य वस्तु गलेमें गई होय तो स्वाभाविक रीतिसे खांसी आनकर उसके निकालनेकी कोशिश होती है। यदि नाकमें कोई वाह्य वस्तु गई होय तो छींक आती है और वह वस्तु वाहर निकल जाती है, मलाशय अथवा मूत्राशयमें कोई वस्तु गई होय अथवा कोई विकृत पदार्थ प्रवेश करगया होय अथवा उसके अन्दर उत्पन्न हुआ होय तो स्वभावसे ही मनुष्यके दस्त व पेशाव वढकर अपने साथ वस्तुको वाहर लानेका प्रयत्न करते हैं। इसी रीतिसे जो स्त्रीके गर्भाशयमें भी किसी प्रकारका मांस पिण्ड (छोड) कि मस्सा जैसा कोई विकृत पदार्थ उत्पन्न हुआ होय तो स्त्रीके गर्भाशयसे विशेष रक्त पडता है, अत्यार्त्तवका रोग हुआ जान पडता है और गर्भाशय उस अन्दरकी विकृत वस्तुको

बाहर निकालनेका प्रयत्न करता है । कदाचित प्रथम बारमें न निकले तो दूसरे समय विशेष रक्त पडता है, ऐसी रीतिसे जहाँ तक वह विकृत मांसपिण्ड न निकल आवे वहाँतक उस स्त्रीको रक्त स्राव अधिकतासे आता है, किसी समय थोडे थोडे दिवसके अन्तरसे रक्त स्राव दीखता है । जिस स्त्रीका दूषित मांस पिण्ड सब निकल गया हो तो समझना कि उस स्त्रीका रक्त पडना बन्द हो जावेगा, ऋतुधमका रक्त स्राव भी थोडे दिवसको बन्द हो जावेगा । यदि ऋतुधर्म आवे भी तो नियत समय पर कुछ कम आवेगा, और पीडा उसमें बिलकुल नहीं होगी । यदि थोडा बहुत दूषित मांसका भाग रह गया होय तो ऋतुस्रावका रक्त अधिक आवेगा और पीडायुक्त स्राव होगा, दूषित मांसपिण्ड मूलसहित निकल गया हो तो थोडे ही समयमें स्त्रीका शरीर तन्दुरुस्त और बलिष्ठ हो जायेगा और जो कहीं कुछ भाग उसका रहगया होय तो उसका मुख फीका रहेगा और पेटमें समय समय पर दर्द हुआ करता है, बायीं और नाभिके नीचेके भागकी तर्फ नीचे गांठके समान वस्तु जान पडती है । वह गांठ हर महीने ऋतुधर्म आनेके समय पर रक्तके भरनेसे वृद्धिको पाती है और ऋतुस्राव होनेके पीछे वह हलकी पडती है इसके कारणसे स्त्रीका मन सदैव चिंतातुर रहता हुआ गर्भकी कुछ विकृति जान पडती हैं । इस दूषित मांसपिण्ड व (छोड) बननेका कारण यह है कि इसका निश्चय पूर्णरीतिसे अभीतक नहीं हुआ कि अमुक प्रकृति व अमुक आयु व अमुक कदकी स्त्रीमें दूषित मांसपिण्ड होना अधिक संभव है और अमुक स्त्रीमें होना नहीं संभव है । इस विषयमें निश्चयात्मक कुछ कहा नहीं जाता, कितने ही गुह्यरूप कारणोंको लेकर अथवा शारीरिक रोगोंको लेकर स्त्रीके शरीरमें कोई एक शिरा जो भर्गको पोषण देती है वह बन्द हो जाती है । उसके अन्दरका रक्त जमकर गाढा हो जाता है और इससे गर्भको योग्य पोषण न मिलनेसे गर्भ अन्दर मृतक हो जाता है और गर्भपिण्डकी जो सामग्री एकत्र हुई थी वह शुष्क हो जाती है इसी प्रकार नालकी कोई नस फूटनेसे गर्भ जरायुके अन्दर रक्तका अधिक जमाव हो जाता है, जैसे मस्तिष्ककी कोई नस टूटनेसे मस्तकमें रक्तका जमाव होकर मस्तकमें बेहोशी हो जाती है और मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है । इसी रीतिसे जरायुके अन्दर रक्तका अधिक जमाव होनेसे भी गर्भ नष्ट हो जाता है और गर्भाशयकी थैलीमें जो पानीका भाग भरा रहता है, जिसमें गभ तैरता रहता है उस पानीमें किसी भी उस भागकी नस टूटनेके लिये रक्त मिलता है और इससे विकृतिवाले पदार्थमें गर्भको रहना पडता है, इससे गर्भका नष्ट होना संभव है । गर्भस्राव हो जाता है दूषित मांसपिण्डका मुख्यकारण गर्भस्राव है, इसलिये जो कारण गर्भस्रावके हैं वेही सब कारण दूषित मांसपिण्ड विकृति व छोडके हैं

ऐसी गणना करनी चाहिये । कदाचित निदानके नियमसे देखा जाय तो प्रथम प्रकारकी दूषित मांसपिण्ड विकृतिमें गर्भाशयकी परीक्षा करनेसे चमडेके टुकडेके समान गर्भका पडत जान पडता है, दूसरे प्रकारकी विकृतिमें मांसका लोथडा अन्दर लटकता होय ऐसा जान पडता है । परन्तु गर्भाशयका मस्सा भी इसी प्रकार लटकता है तो भी मस्सेमें तथा दूसरे प्रकारकी मांसपीडा विकृतिमें अन्तर (भेद) है यदि मस्सा होवे तो मूलसे ही पतला और गर्भाशयसे लगा हुआ होगा, जो नीचेका भाग लटकता है वह कुछ मोटा होगा । यदि मांसपिण्ड विकृति होगी तो उसका लटकता हुआ भाग पतला होगा और जहांसे गर्भाशयसे लगाहुआ होगा वह भाग विशेष मोटा होगा । तीसरे प्रकारकी मांसपिण्ड विकृतिमें बहुत छोटी छोटी सूक्ष्मरूपवाली विशेष रसौलियां होती हैं और वे कोमल होती हैं । इस दूषित मांसपिण्ड विकृति व्याधिसे स्त्रीको कहाँतक छुटकारा मिल सक्ता है और चिकित्सक कहाँतक यशस्वी हो सक्ता है। यह ऐसी व्याधि है कि इससे बिल्कुल निराश न होना चाहिये, किन्तु अनेक भाग्यशाली स्त्रियोंको तो यह मांसविकृति ऐसी रीतिसे अनायास ही ऋतुस्रावके साथ निकल जाती है उसकी स्त्रीको खबर भी नहीं पडती है । इसके निकल जानेके अनन्तर स्त्री गर्भवती होती है और मांसपिण्ड विकृति जितनी ताजी याने थोडे समयकी उत्पन्न हुई हो उतनी ही शीघ्र नष्ट होनेकी आशा अधिक की जाती है । एक समय मांसपिण्ड विकृति होने पीछे स्त्रीकी स्थिति आरोग्य होने पीछे उसको गर्भाधान रहे और पीछे मांसपिण्ड विकृति होजाय तो उसका निकलना अधिक कठिन व असंभव है । क्योंकि छोटी नवीन उमरमें स्त्रीको जब ऋतुधर्म बराबर आता है उस समयमें मांसपिण्ड विकृति अधिक सरलतापूर्वक सुधरने सक्ती है, स्त्रीकी तीस सालकी आयुसे ऊपरकी अवधिमें गर्भाशयमें मांसपिण्ड विकृति हुई होय और उस स्त्रीको ऋतुधर्मका रक्तस्राव कम पडगया होय तो वह मांसपिण्ड विकृति नष्ट होना अति कठिन है । कितने ही शारीरिक विद्याके तत्त्ववेत्ता महाशयोंका ऐसा मन्तव्य है, कि दूषित मांसपिण्ड विकृति पीछे प्रफुल्लित होती है । परन्तु यह कथन केवल दूसरी ही प्रकारकी मांसपिण्ड विकृतिके लिये ठीक है, इस प्रकारकी विकृतिमें गर्भस्राव नहीं हुआ होय परन्तु उसके अन्दर रक्तका संग्रह होनेसे उसकी वृद्धि रुकी हुई होती है । यदि अयोग्य वृद्धि हुई होय तो योग्य उपचारसे रक्त संग्रह टूट कर गर्भकी वृद्धि नियमित रीतिपर पुनः आरम्भ हो जाती है । इस प्रकारकी विकृति अथवा जिसमें गर्भस्राव न हुआ होय परन्तु गर्भ रहे तबसे ही ऋतुधर्मका रक्तस्राव बन्द हो गया होय और पीछेसे एक व दो महीनाके अन्तरसे उसकी वृद्धिमें रुकावट पडगई होय अथवा अयोग्य रीति होने लगी होय परन्तु इससे गर्भस्राव न हुआ होय इसी प्रकार ऋतुधर्मका स्राव भी आया

न होय और गर्भ अभी अन्दर गर्भाशयमें स्थिर है तो वह प्रफुल्लित होती है, ऐसा संभव है। इस जातिकी मांसविकृति हो तो भी उसके लिये प्रफुल्लित होनेकी दवा लेनी, ऐसा कि गर्भके ऊपर होताहुआ रक्तका जमाव टूटे और गर्भको पोषण पहुंचे तथा गर्भ वृद्धिको प्राप्त होय ऐसी दवा देना योग्य है। झूमका जैसी रसौलियाँ यह भी एक प्रकारकी दुष्ट मांसपिण्ड वृद्धिरूप छोड ही मानी जाती हैं। इन रसौलियोंके साथ किसी समय तन्दुरुस्त गर्भ अपनी नियत स्वाभाविक-वृद्धिको प्राप्त होता रहता है और प्रसवकालकी पूर्ण अवधि समाप्त करके गर्भाशयसे बाहर आता है। प्रसवके समय होनेवाली पीडासे तुकहना आता है, गर्भकी ऐसी विकृति होय तब उसकी अनियत वृद्धि होती है, लेकिन गर्भ निर्जीव न होनेसे ही पूर्ण अवधि समाप्त करता है। इस स्थितिको भी स्त्रीजन मांसविकृति व छोड कहती हैं और उनके ऐसे विचार होते होते पूर्ण अवधि समाप्त करके समानरूपसे प्रसवका समय आ जाता है। यदि गर्भपात हो जावे तब जो मांसविकृति (छोड) होय तो उसका प्रफुल्लित होना संभव नहीं, बाकी इतना तो अवश्य ठीक है कि मांसविकृति चाहे जिस प्रकारकी होय परन्तु उसकी बडी वृद्धि अथवा विकृति गर्भके साथ रहती है। गर्भके साथ चिपटी हुई है, जो गर्भाशयके साथ चिपटी हुई नहीं है तो वह योग्य उपाय करनेसे निवृत्त हो सक्ती है। यदि अधिक समय पर्य्यन्त दुष्ट मांसविकृति गर्भाशयमें रहनेसे उसकी कोई दूसरी विकृति हुई हो और उससे नष्टगर्भितव्यता कायम पडी रहे तो वह पृथक् विषय है, परन्तु मांस विकृति न निकल जाय ऐसी प्रकारकी निराशा रखना कुछ भी वास्तविक कारण नहीं है। गर्भाशयकी रहीहुई विकृतिका योग्य उपाय करनेसे वह निवृत्त हो जाती है और नष्टगर्भितव्यता भी नष्ट हो जाती है।

गर्भाशयमें दूषित मांसपिण्ड विकृति (छोड) की चिकित्सा।

गर्भाशयके आभ्यन्तर अवकाशमें होनेवाली इन विकृतियोंकी चिकित्सा बुद्धिमान् चिकित्सक उपरोक्त निदान चिह्न और लक्षणोंसे भलेप्रकार निश्चय करके चिकित्सामें प्रवृत्ति करे। यदि गर्भमें रक्तका संग्रह थोडा थोडा हुआ होय तो उस समय इसके संयोगकाल करके तहलील पड जाता है और गर्भके ऊपरका दबाव कम होनेसे गर्भ पीछे वृद्धि पाने लगता है। यदि इसी कारणसे मांसविकृति छोड हुआ होय तो भी निवृत्त होना संभव है, परन्तु उसके पडतकी वृद्धि होनेसे अथवा दाखके झूमकाके समान रसौलियाँ उसके पडतके ऊपर होनेसे यदि गर्भकी वृद्धिमें रुकावट हुई होय तो उसका सुधरना सर्वथा असंभव है लेकिन तो भी झूमकाकी समानतावाली रसौलियां अति सूक्ष्म छोटी होयँ तो गर्भ पूर्ण नियत अवधिको पहुँच जाता है और प्रसवके होनेके समय झूमकावाली रसौली उसके पडतके साथ शीशीकी डाटके समान

निकल जाती हैं । रक्तका जमाव (संग्रह) होनेसे गर्भाशयके ऊपर दवाव हुआ होय और उससे उसकी वृद्धिमें रुकावट हुई होय तो उसके निवृत्त करनेके लिये पोटास-आयोडीड तथा लाईकवोरहाईड्रारजिराईपरकलोरीडाइ, परिमित मात्रासे देना योग्य है, इससे रक्तका जमाव (संग्रह) शोपण होता है । यदि गर्भस्रावका कोई भी कारण गर्भाशयमें दीख पडे तो वह भी इस औषधके सेवनसे निवृत्त होता है । गर्भस्राव व पातको रोकनेवाले जो उपाय हैं वे सव मांसविकृतिरूपी छोडको भी रोकनेवाले उपायोंकी गणनामें ही समझना चाहिये, कारण कि मांस विकृतिरूपी छोडका मुख्य कारण गर्भस्राव व पात है । चाहे जिस कारणसे गर्भकी वृद्धिमें रुकावट दीख पडे तो उसके लिये (सीरपफेरीआयोडीड) अति उत्तम औषध है, इसके सेवनसे उपदंशका कुछ भी उपद्रव व दोप अवशेप होय तो वह भी निर्मूल हो गर्भकी विकृति निवृत्त होती है । विधाराकी लकडी दूधमें घिसकर पीनेसे मांस-विकृति छोड पिघलता (गलता) है विधारा कटु पौष्टिक और शोधक है, भारत-वर्षीय अनेक स्त्रियां इस लकडीको पीती हैं और उनकी गर्भ (वृद्धि होती है) ऐसा उनका कथन है । लोहभस्म अथवा लोहमांडूर और स्वर्णमाक्षिक भस्म इनके सेवन करनेसे स्त्रीका शरीर पौष्टिक वलवान होता है, यदि गर्भकी वृद्धिमें किसी प्रकारकी रुकावट हो तो उसको भी लाभ पहुंचाती हैं । इनका मुख्य गुण रक्तके सुधारनेका है और पाण्डु आदि रोगोंमें अति उपयोगी हैं, मुलतानी मट्टीका नितराहुआ जल और मिश्री मिलाकर पीनेसे भी यह विकृति निवृत्त होती है । मुलतानी मृत्तिका शीतल वीर्य है रक्तकी ऊष्माको शान्त करती है अत्यार्त्तवकी दशामें स्त्रियां इसको पीती हैं किसी २ देशमें गुजरात काठियावाड कच्छकी स्त्रियां भून करके इस मिट्टीको खाती हैं और उन स्त्रियोंका यह कथन है कि जो गर्भवती भुनी हुई मिट्टी खाती है उसका वालक तन्दुरुस्त हो सदैव आरोग्य रहता है, लेकिन बुद्धिमान वैद्योंकी परीक्षासे यह निश्चय होचुका है कि मृत्तिका सेवन अति अनिष्ट है, मृत्तिकामें कुछ भाग लोहका है वह शरीरको लाभ पहुंचाता है । अवशेप भाग उदरको अति दूपित करता है और जन्तुओंका अधिक जमाव उदरमें होता है । नष्टगर्भितव्यता चाहे जिस कारणसे हुई होय स्त्री भुनीहुई मिट्टी खावे तो उसको गर्भ रहे ये वातें सव मूढता और विद्या शून्यताकी हैं, लोहादिका सेवन उत्तम रीतिसे सेवन करना चाहिये बुद्धिमान् स्त्रियोंको उचित है कि मृत्तिका सेवन कदापि न करें, जो मूढ स्त्रियां स्वयं सेवन करती होयँ अथवा इसके सेवन करनेका उपदेश दूसरी स्त्रियोंको देती होयँ उनको इस अन्ध-मार्गसे वचानेका प्रयत्न करें, जो गर्भवती मृत्तिका कोयला व ठीकडी खाती हैं उनके वच्चोंके उदरमें केंचुए पड जाते हैं और गुदामें चनूने जातिके जन्तु हो जाते हैं ।

स्त्रीके व्यवहारमें किसी प्रकारकी अयोग्यता जान पडे और समय समय पर रक्तस्राव होता होय तो गर्भाशयका मुख. प्रफुल्लित करना, इससे गर्भाशयके अन्दर जो मांस-विकृति रूपी छोड है वह किस प्रकारका है यह निश्चय हो सकेगा । योनिमार्गमें कप-डेकी मोटी बत्ती कागके समान लगानेसे चस्का बढेगा और छोड बाहर आवेगी, याने अर्गट देनेसे चस्का उत्पन्न हो छोड निकल आवेगी । यदि गर्भ शुष्क हुआ जान पडे और पीछेसे उसमेंसे शक्त रक्तस्राव हो स्त्रीके जीवनमें बाधा पहुँचेगी ऐसा जान पडे तो गर्भाशयका मुख एकदम प्रफुल्लित कर शीघ्र ही छोडको निकाल देना अति लाभकारी है । यदि औषध अथवा बाह्योपचारसे चस्का अधिक निकले तो उसके साथ गर्भाशयमें सचिक्कण करके हाथ प्रवेश करना, इससे चस्का विशेष निकलेगा और छोड निकल आवेगा । कदाचित् गर्भाशयके अन्दर किसी प्रकारका मस्सा व ग्रन्थि होय कि जिससे गर्भाशयकी वृद्धिको रुकावट करनेको अथवा गर्भस्राव व पात होनेका कारण मिला हो तो इसके लिये भी योग्य उपाय होने सक्ता है । दाखके झूमकाके समान ऐसी रसौलियोंवाली मांसविकृति छोड होय तो अर्गट सेवन करानेसे उत्तम लाभ पहुंचता है । इससे चस्का निकलता है और छोड निकल जाती है, यादि इससे न निकले तो साउन्ड अथवा कैथीटर प्रवेश करके परीक्षा कर गर्भको गर्भाशयसे पृथक् करना और वार्निकवेगसे अथवा दूसरे साधनोंसे गर्भाशयके मुखको प्रफुल्लित कर सचिकण हाथ प्रवेश कर अन्दरसे सब निकाल लेना ये सर्वोत्तम उपाय है । स्पंजका टुकडा रखनेसे भी गर्भाशय प्रफुल्लित होता है, इसके साथ ही होताहुआ रक्तस्राव बन्द हो जाता है, अन्तके दर्जे जैसे बने तैसे सरलतापूर्वक शीघ्रतासे तथा जिसमें स्त्रीको अधिक क्लेश न पहुँचे उस रीतिसे अन्दरसे निकाल लेनेकी आवश्यकता है ।

गर्भाशयमेंसे दूषित मांसपिंडविकृतिकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे गर्भाधान रहनेकी क्रियाकी हीनता ।

गर्भाधान रहनेकी क्रियामें कितनी ही हानियाँ व प्रतिबन्ध हो जाते हैं, शुद्ध वन्ध्यत्व और गर्भाधानकी क्रियाकी हानिमें इतना ही अन्तर है कि शुद्ध वन्ध्यत्व दोप-वाली स्त्रीको गर्भाधान कभी नहीं रहता और गर्भाधानकी क्रियाकी हानिवाली स्त्री एक दो समय गर्भको धारण करके सन्तानोत्पत्ति करती है । लेकिन एक दो सन्तान होनेके अनन्तर गर्भाधान धारण करनेवाली क्रियाम हीनता प्राप्त हो जाती है, गर्भ धारण करनेमें हीन क्रियावाली स्त्रियां अधिक संख्याकी हैं । स्त्रीचिकित्साक अनुभवमें निपुण चिकित्सक इस विषयमें ऐसा अनुमान करते हैं कि शुद्ध वन्ध्या स्त्रीकी अपेक्षा क्रिया-हिनतावाली स्त्रियोंकी अधिक संख्या निकलेगी, अनेक स्त्रियोंके एक दो बालक प्रथमा-

वस्थामें होकर पीछेसे गर्भाशयके आभ्यन्तर पिण्ड अथवा कमलमुखमें किसी प्रकारकी व्याधि होनेसे गर्भ बिलकुल नहीं रहता। स्वाभाविक नियमानुसार गर्भ धारण करनेको तन्दुरुस्त स्त्री होनी चाहिये और गर्भाधान रहनेके लिये २९ व ३० और किसी २ स्त्रीको ३९ व ४० तककी उमर गभ धारण करनेकी है। यदि १६ वर्षकी आयुसे लेकर २० व २२ वर्षकी आयुपर्य्यन्त गर्भ धारण स्त्री न करे तो इसके लिये स्त्रीकी परीक्षा करनी चाहिये कि क्या कारण है, जिससे स्त्रीको गभ नहीं रहता ? इस दोषका नाम क्रियाहीनता व नष्टगर्भितव्यता ह। यह वन्ध्या दोषके समान ही है, कारण कि एकाध समय गर्भस्राव व पात होकर स्त्रीको पीछे गर्भके दिवस न चढे तो स्त्रीका अन्तःकरण अति दुःखित होता ह और इस विषयके विस्तारसे सम्पूर्ण रीतिपर स्फोटन होना आवश्यक है। कारण कि वह वन्ध्यत्व अधिक दुःखदायक है, परन्तु इससे विपरीत रीतिसे उसका योग्य उपाय करे तो वह सुखसाध्य हो जाता है। वन्ध्यत्वके समान गर्भाधानकी क्रियामें हीनता यह इतनी दुःसाध्य नहीं है। इस विषयमें अधिक सूक्ष्म दृष्टि देकर गम्भीर विचार कर इसकी चिकित्सा की जावे तो उत्तम रीतिसे स्त्रीका नष्टगर्भितव्यता दोष नष्ट होकर पुनः गर्भको धारण करके सन्तानोत्पत्ति करनेमें समर्थ होती है। यदि इस रोगकी बारीक रीतिसे परीक्षा करके उसके कारणको शोधन कर इसका निश्चय करे कि वह कारण स्त्रीके शरीरमें कितने दर्जेपर प्रवृत्ति कर चुका है तथा यह किस उपायसे निवृत्त होगा, ये सब बातें यथाथ रीतिसे जाननेमें आवें तो नष्टगर्भितव्यता याने गर्भ धारणकी क्रियामें हीनताको नष्ट करनेमें चिकित्सक उत्तम आशा रखने सक्ता है। शुद्ध वन्ध्यत्व निवृत्त होनेमें चिकित्सककी क्रिया और स्वभावका परिवर्त्तन होना ये दोनोंही बातें हैं, क्योंकि स्वभावजन्य वन्ध्यत्वमें स्त्रीके शरीरमें किसी अङ्गकी न्यूनता नहीं है तथा गर्भाशय अथवा गर्भ अण्ड अपूर्ण स्थितिमें नहीं है, जो पीछेसे उत्पन्न हुई गर्भाशयकी विकृति है उसको चिकित्सक उत्तम रीतिसे निवृत्त करने सक्ता है। यह गर्भाशयकी विकृति सरलतापूर्वक निवृत्त होने सक्ती ह, नष्टगर्भितव्यता केवल पीछेसे उत्पन्न होकर गर्भाशय अथवा उसके उपाङ्गकी व्याधिके कारणसे है और शुद्ध वन्ध्यत्व तो ऐसा है कि जिसके समझनेमें बुद्धि हैरान होती है और स्वाभाविक गूढताको लेकर होता है। अवश्य जहाँ जहाँ वन्ध्यत्वके कारण मिले " तहां तहां उसका उपाय भी कथन किया गया है, यथाविधि करनेसे लाभ भी पहुँचता है। परन्तु जब अपनी कल्पनाशक्ति नहीं दौड सक्ती और चिकित्सकको कुछ उपाय करनेकी स्फुरना नहीं उठती ऐसे स्थलपर स्वाभाविक गूढता माने विदून नहीं, रहा जाता। परन्तु नष्टगर्भितव्यताके लिये ता निज कारण हैं उन कारणोंके नष्ट करनेसे नष्टगर्भितव्यता निवृत्त हो,

गर्भ रहता है । जितनी नष्टगर्भितव्यता स्त्री इस व्याधिसे छुटकारा पाकर सन्तान वाली होती हैं उतनी शुद्ध वन्ध्यत्ववाली स्त्री सन्तानवाली नहीं होतीं । इसलिये नष्टगर्भितव्यताकी व्याधि साध्य है, तो इसके उपायमें किसी प्रकारकी त्रुटि न रखनी चाहिये । यदि चिकित्सा करनेसे नष्टगर्भितव्यता कदाचित निवृत्त न भी हो तो इसका पश्चात्ताप न करना चाहिये क्योंकि किसी स्त्रीका उपाय करनेपर भी क्रिया फलीभूत नहीं होती । इसका कारण यह है कि नष्टगर्भितव्यताके सूक्ष्म कारण स्त्रीके शरीरमें गंभीररूपसे व्याप्त हो गये हैं चिकित्सककी क्रिया औषधका पूर्ण असर नहीं होता इसी कारणसे किसी २ स्त्रीकी नष्टगर्भितव्यता नहीं सुधरती । यदि नष्टगर्भितव्यताके कारणोंकी ओर ध्यान दिया जावे तो उनका यही विवरण ज्ञात होता है कि उत्पत्तिकर्म अवयवकी अपूर्णता अथवा न्यूनता इसी प्रकार उसके स्वभावजन्य संकोचकी जो जो विकृतियां वन्ध्या दोषके कारण तरीकेसे कथन की गई हैं उनको त्यागकर वन्ध्यादोषके स्थापित करनेवाले दूसरे सब कारण नष्टगर्भितव्यता स्थापित करते हैं । उत्पत्तिकर्म अवयवकी अपूर्णता न्यूनताके संकोचको लेकर बिलकुल गर्भाधान नहीं रहता और एक समय गर्भाधान रहा होय उसके ऊपरसे ऐसा साबित हो सक्ता है कि अब यह विकृति नहीं रही । वन्ध्या दोषके कारणोंके लिये सम्पूर्ण रीतिसे जो विवरण लिखा गया है, उसी प्रमाणसे नष्टगर्भितव्यतामें भी उसकी चिकित्सा करनेकी आवश्यकता है । इतना अब उसके लिये विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं है तो भी इस कारणकी अपेक्षा दूसरे निज कितने ही कारण नष्टगर्भितव्यता प्रतिपादन करनेवाले हैं उनके लिये अवश्य विचार करना आवश्यक है, उन कारणोंका उल्लेख नीचे किया जाता है । (१) गर्भस्राव व गर्भपात और इन दोनोंसे उत्पन्न हुई विकृतियाँ । (२) गर्भाशयमें दूषित मांसपिण्ड वृद्धि (छोड) इसका वर्णन इसी अध्यायमें पूर्व हो चुका है । (३) सूतिकारोग तथा इसकी जीर्ण विकृति । (४) ऋतुधर्म । रजोदर्शन वन्द होनेका समय । (५) गर्भाशयका स्थूल रह जाना । (६) गर्भवती स्त्रियोंके रोग । (७) गर्भाशयका अत्यन्त संकुचित होना । उपरोक्त ७ कारण जो नष्टगर्भितव्यताके नियत किये गये हैं इनमेंसे गर्भस्राव व पात गर्भवती स्त्रियोंके रोगोंमें आगे लिखे जावेंगे और गर्भाशयमें मांसवृद्धि व छोड इसका उपाय ऊपर लिखा गया है । सूतिका रोग प्रसवके अन्तमें लिखा जायगा, गर्भिणी स्त्रीके कितने ही प्रकारके रोग गर्भावतर्णिका प्रकरणमें लिखे जायँगे ।

आयुर्वेदसे ऋतुधर्म बंद होनेका समय ।

द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वमापंचाशत्समाः स्त्रियः ।
मासिमासि भगद्वारात्प्रकृत्यैवार्त्तवं स्रवेत् ॥ १ ॥ भावप्रकाश.

अर्थ–बारह सालकी अवस्थासे लेकर पचास सालकी अवस्था पर्य्यन्त स्त्रीको प्रत्येक महीनेमें स्वयं योनिसे आर्त्तव (रजोदर्शनका रक्त) निकलता है। बस आयुर्वेदमें पचाससालकी आयु ऋतुधर्म बन्द होनेकी है ।

पश्चिमी यूरोपियन वैद्योंकी सम्मतिसे ऋतु बंद होनेका समय ।

स्त्रीको लगभग ३२ वर्ष पर्य्यन्त रजोदर्शनका रक्त स्राव (बहने) के बाद वह कुछ २ बन्द होने लगता है, चालीस व पैंतालीस वर्षकी उमरमें वह बन्द होना चाहिये । यह नियमित क्रम है तो भी इसके बन्द होनेके समयमें कितने ही चिह्न होते हैं, जिसके लिये स्त्रीलोग वैद्य डाक्टर और हकीमोंकी सम्मति लेती हैं । जब ४२ वर्षकी आयु होती है तब शरीरकी कितनी ही शक्तियाँ उमरके आधीन निर्बल जान पडती हैं, जब स्त्री लगभग ४९ वर्षकी उमरके समीप पहुँच जाती है तब उसका रजोदर्शन बन्द हो जाता है और पीछे वह सदैवके लिये स्त्रीके जीवनपर्यन्त बन्द हो जाता है । इसके बन्द होनेसे स्त्री जो सन्तानरूपी फल उत्पन्न करती है वह समय पूर्ण हो जाता है, जो इस समय स्त्रीधर्म स्वाभाविक ही बन्द होता है तो भी वह बन्द होनेके प्रथम कितते ही अनियतरूप धारण करता है । रजोधर्म बन्द होनेका होय इसके प्रथम दो चार साल आगेसे वह क्रमसे कमती होता जाता है और दो तीन महीने चढकर आने लगता है, जब पीछे आता है तब और भी अधिक जोशसे आता दीख पडता है और अत्यार्त्तवके समान दीखता है । कितनी ही स्त्रियोंको रजोदर्शन बन्द होनेके प्रथम ऋतुस्रावका रक्त बहुत आता दीख पडनेसे स्त्रीलोग ऐसी धारणा करती हैं कि इसके शरीरमें गर्मी बहुत ही विशेष है और स्त्रियोंकी ऐसी बातें सुनकर वह रजोदर्शनवाली स्त्री भी ऐसा ही मान लेती है कि मेरे शरीरमें गर्मी अधिक होनेसे यह रक्त अधिक निकलता है । इस कारणसे स्त्रियां रक्तके अवरोधके निमित्त ठंढा उपाय करती हैं और मिश्री खांड तथा मुलतानी मिट्टी व सेलखडिया जिसको वैद्यक निघंटुमें गौरखटिका लिखते हैं, इत्यादिका सेवन करती हैं । कितने ही समय कितनी ही स्त्रियोंको ऋतुधर्मका रक्त कितने ही वर्ष प्रथमसे कम दीखने लगता है और कितनी ही स्त्रियोंकी छोटी उमरमें कई साल पर्यन्त ऋतु आनेके अनन्तर दो चार सालमें ही बन्द हो जाता है । शुद्ध वन्ध्यत्ववाली स्त्रीमें ऋतुधर्म थोडे दिवस दिखाई देकर एकदम अदृश्य हो जाता है साधारण रीतिसे स्त्रीकी ४९ वर्षकी उमरके लगभग ऋतुधर्म बन्द होता है । बन्द होनेके पूर्व अनियत समयको धारण करता है, कितनी ही स्त्रियोंको ऋतुधर्म ४९ वर्षकी आयुके पूर्व ही बन्द हो जाता है कि ३० वर्षकी उमरमें ही उनका ऋतु आना बन्द होता जाता है, एक दो वर्ष कुछ न्यूनतासे दीखकर बिल्कुल बन्द हो

जाता है । इस ऋतु बन्द होनेके चिह्न विशेष इस प्रकारसे होते हैं-ऋतु स्रावका रक्त न्यून आता है और अनियत समयपर आता है अथवा रक्तस्राव अधिक आता है कि अत्यार्त्तवके लक्षण दीख पडते हैं और कितनी ही स्त्रियोंको ऋतुस्रावके रक्तके बदले प्रदरका सफेद स्राव निकलता है किसी २ समय ऋतु पीडा युक्त आता है ऋतुस्रावका रक्त न निकलनेसे आसपासके मर्मस्थानोंमें रक्तका संग्रह हो जाता है जिसके कारणसे किसी समय पर कटिमें पीडा होने लगती है । साधारण रीतिसे स्त्रीका उदर इस उमरपर कुछ २ भारी माद्धम होता है और उदरमें अजीर्ण व कुछ वायुका कोपसा माद्धम होता है और मस्तकमें दर्द रहता है और शरीरमें निर्बलतासी माद्धम होती है ऋतुस्रावका रक्त कम दीखनेका नियम यह है कि जो स्त्री मेदवृद्धिसे स्थूल होगई होय तो उसका रक्तस्राव थोडा आता है, जो स्त्री अति कृश होय तो उसको रक्तस्राव विशेष आता है । कितनी ही स्त्रियोंको ऋतु बन्द होनेके समय हिस्टीरीया (अपस्मार) अर्श तथा स्तनोंमें पीडा तथा पेटमें अफरादि चिह्न भी देखे जाते हैं ।

चिकित्सा विषय विचार ।

इस उमरपर ऋतुधर्म लानेवाले उपाय व औषध प्रयोग देनेकी आवश्यकता नहीं है, परन्तु यातो ऋतु बन्द होनेसे स्त्रीको कोई प्रबल व्याधि उत्पन्न हुई होय अथवा ऋतुस्रावका रक्त अति प्रवाहसे पडता होय तो उपाय करना योग्य है । कदाचित् शुद्ध वन्ध्याको एकाध समय गर्भाधान रहा होय और पीछे गर्भके दिवस न चढते होयँ ऐसी स्त्रीको अत्यन्त रक्तप्रवाह कि ३० व ३२ वर्षकी उमरमें ऋतु बन्द होता होय तो इससे उसको अधिक मानासिक चिन्ता होती है । ऐसी स्त्रीको ऋतुस्राव लानेवाले शुद्ध अनार्त्तवके प्रकरणमें कथन किये हुए उपायोंकी योजना करना उचित है, यदि शरीर अति स्थूल हो गया होय तो शरीरकी स्थूलताको न्यून करनेके लिये थोडा थोडा परिश्रम करना । यदि इन उपायोंसे ऋतुस्रावकी वृद्धि न हो फल स्त्रीको विपरीत जान पडे तो ऐसा समझना कि ऋतुधर्म अब बिलकुल बन्द हो गया है, दूसरे कारणोंसे ऋतु बन्द नहीं होता है कि जिससे चिकित्सक दवाके जोरसे अथवा क्रियाके उपचारसे ऋतुको लानेका साहस करसके । यह केवल स्वभावजन्य परिवर्त्तनसे बन्द हुआ है ऐसे मौकेपर उपचार करना निरर्थक है, जठराग्निकी व्याधिक लिये तथा अजीर्णके लिये दीपन पाचन औषधियोंका सेवन करावे यदि रोगी स्त्रीको क्षुधा कम लगती हो तो वह्निकुमार रस, क्षुधाबोधकरस ज्वालानलरस अथवा पेपसीनवाइनटीकचरके लम्बा और ऐरोमेटीकस्पीरिटओफऐमोनिया आदि डाक्टरी दवा देना योग्य है । मस्तकमें अथवा कटिमें दर्द होता होय तो ब्लीष्टर लगाना और मल शुद्धि

निरन्तर होती रहे ऐसी औषधका भी उपचार करना योग्य है, वल वढानेको लोहभस्म वगैरह औपध देना। मस्तिष्कमें किसी प्रकारकी व्याधि जान परे तो ब्रोमाईड लोफपोटासीयम आदि औपध देना—और स्त्रीको उचित है कि आरोग्यता लाभ करनेवाले आहार विहारके अनुकूल प्रवृत्ति रक्खे ।

रजोदर्शन बन्द होनेके समयका वर्णन समाप्त ।

यूनानी तिब्बसे गर्भाशयका स्थूल रहजाना व फूल जाना ।

यूनानी तिब्बमें गर्भाशयका फूल जाना भी वन्ध्यत्व दोपका मुख्य हेतु है। इसका कारण यह है कि गर्भाशयकी कुदर्त्ती शक्तिमें निर्वलता आ गई हो और शीतल दुष्ट बिगडी हुई प्रकृति जो विशेप न हो अथवा उत्पत्तिकी कठिनतासे हो अथवा शीतकालकी शर्दी गर्भाशयको शीतल कर डाले ये सव उसकी शक्तिकी निर्वलताका कारण हैं और यह जाहिर है कि जब गर्भाशयकी शक्तियां निर्वल हो जाती हैं तो जो खुराकका रस उसमें पहुंचता है वह गर्मीकी निर्वलताके कारण सौदा (हवा) वनजाता है और वह गर्भाशयकी गहराईमें अथवा उसके कोनोंमें तथा गर्भाशयके गढ्ढेमें तथा वारीक रगोंके बीचमें रुकती हुई गर्भाशयको फुलाती है । विशेप सूचना—यह है कि दुष्ट प्रकृतिकी सर्दीकी अधिकता गर्मीको निर्वल कर देती है। अफराका कारण नहीं हो सक्ती क्योंकि अफरा हलकीसी गर्मीसे उत्पन्न होता है, इस रोगके चिह्न यह हैं कि पेटमें और पेटके नीचेके भागमें वादीकी सूझन अफरा व दर्द पैदा होवे और कदाचित् चड्डोंपर और आमाशयके मुख और पर्देतक दर्द पहुंचे और जब सूझनपर हाथसे ठोंकें तो नगाडेकीसी आवाज निकले इस लिये किसी २ तवीवने उसकी प्रशंसामें कहा है कि एक दशा जलंदरकीसी होय और कभी २ दर्द जगह २ पर फिरता रहता है और स्त्रीके जीवनके अन्त समय तक यह रोग रहता है और इलाजसे आराम नहीं होता है तो भी खुदाके ऊपर भरोसा रखकर कुछ इलाज इसका करना जरूरी है ।

यूनानी तिब्बसे गर्भाशयके फूल जानेकी चिकित्सा ।

शरीरसे मवादके निकालनेके लिये यारजात दे और जवारिसकामूनीसंजरीनया जडोंका पानी और वजूर खिलावे, जिससे गर्भाशयमें गर्मी पहुँचे और माद्दासोदा (हवा) को हलका करके तोड डाले, जो दवा गर्मी पहुँचाती हैं वे हवाको तोडकर निकाल देती हैं। जैसे वावूना, सोया, दोनामरूआ, पोदीना, तुलसी, अजमोदके बीज, सोंफ, कन्दाभार और जीरा ग्रहण करे । और हुकना करे तथा फर्जजा (किसी कपडे व ऊनमें लपेट) कर स्त्रीके गभाशयपर योनिके अन्दर रख लेप तथा सिंकाव तथा भफारेकी विधि पर दे और उचित है कि तुतलीका तैल, सोयाका

तैल, टूंडी (नाभि) के नीचे और स्त्रीके पेडूपर लगावे और जो कुछ मालजा जलन्दरमें वर्णन किया गया है यहांभी वह लाभदायक ह ।

यूनानी तिब्बसे गर्भाशयके फूल जानेकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे गर्भाशयका फूल जाना व मोटा रहजाना ।

गर्भाशयमें शोथ ग्रन्थि मस्सा व अन्तर्पिण्डमें जखमके सिवाय एक दूसरे कारणसे भी गर्भाशय स्थूल दीखता ह और समय पर वह नष्टगर्भितव्यताका कारण भी हो जाता है। प्रसव अथवा गर्भस्राव—गर्भपात होनेके पीछे गर्भाशय अपने स्वाभाविक संकोचको प्राप्त न होनेसे किसी २ समय मोटा रह जाता है, जिस स्त्रीके शरीरकी आकृति निर्बल होय तथा ऐसी स्त्रीके गर्भाशयकी स्नायु भी विशेष निर्बल होती हैं। ऐसी स्त्रीका गर्भाशय स्वाभाविक संकोचको प्राप्त नहीं होता, इसी प्रकार गर्भाशयमें कुछ जरायुका भाग अथवा रक्तका लोथडा जैसा कोई पदार्थ गर्भाशयके किसी ठिकाने पर चिपटरहा होय तो गर्भाशय अपनी पूर्वावस्थाको प्राप्त नहीं होता किन्तु स्वाभाविक आकृतिसे कुछ मोटा रह जाता है । बालक नहीं घबडानेवाली स्त्रीका भी गर्भाशय अपूर्ण संकोचको प्राप्त होता है, इसी प्रकार प्रसवके समय गर्भाशय तथा कमलमुखके भागको कुछ ईजा पहुंची हो तो इस कारणसे भी गर्भाशय मोटा रह जाता है, और प्रसवके अनन्तर सूतिका गृहमेंसे स्त्री शीघ्र उठ खडी होवे और घरका काम काज व परिश्रम करने लगजावे अथवा और किसी प्रकारकी मेहनतका काम करे तो उस स्त्रीका गर्भाशय मोटा रह जाता है और प्रसवके अनन्तर स्त्री जल्दीसे पुरुष समागम करने लगे तो भी मोटा रह जाता है । इन सब कारणोंको लेकर गर्भाशयमें रक्तका संग्रह अधिक होनेसे और रक्त रुक जानेसे वह मोटा रह जाता है और किसी समय सम्पूर्ण गर्भाशय मोटा रह जाता है और किसी समय केवल कमलमुखका भाग ही मोटा दीख पडता है, ऐसा होनेसे कितने ही समय कमलका भाग मोटा और लम्बा वढा हुआ जान पडता है, किसी समय चारोंतर्फसे मोटा तथा सूझा हुआ जान पडता है यह देखकर किसी समय गर्भाशयके भ्रंश होनेका भ्रम चिकित्सकको होता है । यदि केवल कमलमुखका ही भाग लम्बा और वढा हुआ हो तो यह भ्रम वन्ध्या स्त्रीमें ही जान पडती है । यदि प्रसवके अनन्तर जो वृद्धि रहगई होय तो वह गर्भाशयके भ्रंशकी दूसरी स्थितिसे मिलती जाती है । और गर्भाशय स्थूल होनेसे उसका स्थानान्तर होना अधिक संभव है और गर्भाशयके मोटे होनेसे ऋतुस्रावका रक्त भी अधिक निकलता है, जो चिह्न गर्भाशयके दर्घिशोथमें होते हैं वे भी स्थूल गर्भाशयमें जान पडते हैं और श्वेततन्तुमय ग्रन्थिसे भी गर्भाशय मोटा दीख पडता है । लेकिन श्वेततन्तुमय ग्रन्थिसे गर्भाशय अनियत (बेपरिमाण) रीतिसे मोटा हुआ दीख पडता है और एकाध स्थलपर ग्रन्थि भी जान

पडती है और दूसरा भाग गर्भाशयका यथार्थ नियत स्थितिमें होता है । इस व्याधिमें कुछ विशेष ग्रन्थि नहीं जान पडती, किन्तु सम्पूर्ण गर्भाशय स्थूल जान पडता है; यदि गर्भाशयशलाका प्रवेश की जावे तो चार इंचके करीब अन्दर जाने सक्ती है । इस रीतिसे गर्भाशय मोटा रह जानेसे किसी किसी समयपर सांथल और कमरमें दर्द हुआ करता है ।

गर्भाशयकी स्थूलताकी चिकित्सा ।

चिकित्सा इसकी यही उचित है कि प्रसव और गर्भस्राव व गर्भ पातके पीछे पूर्ण सावधानी रखनेसे गर्भाशय अपनी पूर्वावस्थाको धारण करता है और प्रसवकालकी व्याधियोंकी अपेक्षा गर्भस्राव व पातमें अधिक सावधानीका लक्ष्य रखना अति आवश्यक है । प्रसवकी योग्य अवधि पर्य्यन्त स्त्रीको आरामसे बिस्तरपर पडी रहना चाहिये आर बालकको हिफाजतसे रखना चाहिये, प्रसूतिकी अवधि निकलजाने पीछे एक मास व इससे भी कुछ अधिक समय निकले वहांतक जो योनिमार्गसे रक्त व पीवके माफिक चिकना पानी पडता होय तो गर्भाशयके किसी भागमें कुछ ईजा नहीं है । यदि गर्भाशय स्थानान्तरमें नहीं हुआ इस बातका निश्चय करनेसे स्थानान्तर मालूम पडे तो उसका योग्य उपाय करना, गर्भस्राव व पातके पीछे कमसे कम एक मास अथवा दो मास पर्य्यन्त स्त्रीको पुरुष समागमसे पृथक् रहना चाहिये, गर्भाशयको योग्य संकोच करनेके लिये अर्गटकी मात्रा देनी उचित है । निर्बल शरीरवाली स्त्रीके शरीरमें यह रोग अधिक देखनेमें आता है इससे ऐसे निर्बल शरीरवाली स्त्रीको बलदायक औषध कुष्माण्डावलेह लोह शिलाजतु, पारदशिलाजतु, स्वर्णभस्म आदि औषध अथवा डाक्टरी औषधियोंमेंसे लोह, कुनैन स्ट्रीकनीया इत्यादिके संयोगवाली दवा देना योग्य है । यदि कहीं शक्त रक्तस्राव हुआ करता हो तो ऐसा अनुमान करना कि जरायुकाका कोई भाग गर्भाशयके अन्दर रहगया है अथवा रक्तका लोथडा जम गया है, इनको बाहर निकालनेका उपाय करना उचित है; गर्भाशयका मुखं साधारण रीतिसे प्रफुल्लित होता है । यदि जो न होय तो सींटेंगलसे प्रफुल्लित करना, यदि गर्भाशय पीछेसे मुडगया हो तो अंगुलीके सहारेसे आगेको लाना और गर्भाशयके मुखमें पीव (राध) सफेद स्राव व दुर्गन्धित पदार्थ भररहा होय तो कार्बोलिकलोशनकी पिचकारीसे गर्भाशयको और कमलमुखको साफ करना और जो दूषित पदार्थ अन्दर गर्भाशयमें अधिकताके साथ भररहा होय तो उसको बाहर निकालनेकी क्रिया करे और अर्गटकी मात्रा थोडे दिवस पर्य्यन्त स्त्रीको सेवन करावे, यदि गर्भाशय मोटा रहनेसे जो नष्टगार्भितव्यता स्थापित होती है उसको निवृत्त करना उत्तम है । रोगका मूलकारण तथा उस रोगको लेकर जो गर्भाशयमें शोथ उत्पन्न हुआ होय तो साथ ही उसका और गर्भाशयका स्थानान्तर हुआ हो तो विद्वान् चिकि-

त्सक इन सब उपद्रवों सहित मूल व्याधिकी निवृत्तिके अर्थ योग्य उपचार करे, जो कि इसी ग्रन्थमें प्रत्येक व्याधिके प्रकरणमें लिखे गये हैं। जैसे कि गर्भाशयके शोथमें स्ट्रॉगकार्बोलिक ऐसिड अथवा नाईट्रीक ऐसिड काममें लिया जाता है, वैसे ही इस प्रसंगपर भी काममें लेना योग्य है। इनसे गर्भाशयका आकार शीघ्रतासे अपनी असली दशाके संकोचको प्राप्त होता है और कमलमुखके ऊपर दंभक क्रिया करनेसे भी ऐसा ही लाभ पहुंचता है, योनिमार्गमें दर्शकयन्त्र प्रवेश करके कमलके भागके ऊपर ये औषधियाँ लगानी। पोटेसाफयुझा कमकेलसीस इसी रीतिसे लगाया जाता है, उसके पीछे वीनीगरसावोणी (विलायती सिरकेमें भिगोया हुआ कपडा व रूईका) फोहा आडा लगाय देना। इसके आडा लगानेका कारण यह है कि दंभक पदार्थ जहाँ कहीं लगानेकी आवश्यकता हो वहीं लगाया जावे दूसरे स्थलपर न लगने पावे। इसी कारणसे इसका रस उतरकर कमलमुखके नीचे योनिमार्ग अथवा दूसरे किसी स्थानपर न लगने पावे ऐसी होसियारीसे लगाना चाहिये। सोडाक्षार अथवा पोटासके क्षार जलसे प्रथम योनिका प्रच्छालन करलेवे और पीछे दंभक पदार्थ लगावे तो दंभक पदार्थका असर योनिमें नहीं लगता, कितने ही यूरोपियन वृद्ध वैद्योंकी राय है कि (नाईट्रेट ओफसीलवर) और (झींककलोराईड) लगानी चाहिये। ऐसा दंभक-पदार्थ लगानेसे कमलका भाग जो बढा हुआ और लम्बा होता है वह संकुचित होकर छोटा हो जाता है। यदि कठिन हो तो कोमल हो जाता है, जो कमलका भाग केवल लम्बा मोटा चौडा ऐसी रीतिसे बढा होय और औषध प्रयोगसे ठीक आकृतिमें न आवे तो शस्त्रोपचारसे ठीक करे। यदि काटनेके समय रक्तस्राव अधिक होय और बन्द करनेमें परिश्रम पडे तो कोटरी लगाकर काटने पीछे समय समय पर कमलमुखमें विस्तृत करनेवाली गर्भाशय शलाकायन्त्र प्रवेश करना, जिससे कमलमुख संकुचित न हो जावे।

गर्भाशयके स्थूल हो जानेकी चिकित्सा समाप्त।

डाक्टरीसे गर्भाशयका अत्यन्त संकुचित हो जाना।

जैसे प्रसवके अनन्तर गर्भाशय अति स्थूल रह जाता है उसी प्रकार स्थूलतासे विरुद्ध रीति पर कभी २ किसी २ स्त्रीका गर्भाशय इतना संकुचित हो जाता है कि जाननेमें भी कठिनता मालूम होती है। और निर्बल शरीरवाली स्त्रीको यह चिह्न विशेष जान पडते हैं, उसको विशेष करके यह युवावस्थामें ही होता है, जो गर्भाशय थोडा बहुत जान पडता होय तो अनार्त्तव प्रकरणमें कथन किया हुआ गर्भाशयको उत्तेजित करनेवाला उपाय करना योग्य है। इस उपायसे विशेष करके अनार्त्तव और नष्टगार्भितव्यता दोष जान पडता है गर्भाशयकी अपूर्णताके लिये जो उपाय कथन

किये गये हैं वे उपाय इसमें भी करना योग्य है, कमसे कम एक दो वर्ष पर्य्यन्त उपाय करना उचित है ।

डाक्टरीसे नष्टगर्भितव्यताका वर्णन ।

पूर्व लिख चुके हैं कि गर्भ धारणकी जो क्रिया व साधन हैं उनकी हीनता व नष्टताको ही नष्टगर्भितव्यता कहते हैं । नष्टगर्भितव्यताके निदानके लिये भी मूल वन्ध्यत्वमें जो पद्धति लिखी गई है उसी प्रमाणसे परीक्षा करनेकी आवश्यकता है । कारण कि वन्ध्यत्व प्रतिपादन करनेवाले कारणोंसे ही प्रसूति हुई पीछे नष्टगर्भितव्यता भी होती है, केवल वन्ध्यत्वके प्रथम कारणोंका ही अभाव होना है । कारण यह कि स्त्रीको एक समय गर्भाधान रह गया हो, उसके ऊपरसे इतना सिद्ध हो सक्ता है कि उसको अब प्रजोत्पत्ति अवयवकी किसी भी प्रकारकी न्यूनता नहीं है । इसलिये वह कारण त्यागकर अवशेष जो कारण वन्ध्यत्वके हैं उनके लिये आगे लिखी हुई व्यवस्थाके प्रमाणसे परीक्षा करना योग्य है । उसके साथ यह भी देखिये कि इसके अतिरिक्त नष्टगर्भितव्यता प्रतिपादन करनेवाले कोई अन्य भी निज कारण हैं कि नहीं, उन खास कारणोंकी परीक्षा करनेके लिये नीचे लिखे प्रमाणक्रमानुसार निश्चय करना योग्य है । प्रथम रोगी स्त्रीकी सम्पूर्ण व्यवस्था पूछना उचित है कि जिस प्रसव समयके पीछेसे वह इस नष्टगर्भितव्यताके रोगसे पीडित हुई है वह प्रसव किस प्रकारसे हुआ था और इसके आगे एक व दो प्रसव होचुके हों उनमेंसे प्रत्येक प्रसव कितने समयके अन्तरसे हुआ था इसका भी निश्चय करना योग्य है । यदि आगेके एक दो प्रसवमें जितना अन्तर हुआ होय उतने समयकी अवधिपर्य्यन्त राह देखना अवश्य है उस अवधिके व्यतीत होनेके उपरान्त कितना समय व्यतीत हुआ है, उस अवधिके व्यतीत होनेपर गर्भाधान न रहे तो पीछे शीघ्र परीक्षा करनी और स्त्रीसे सब हाल पूछना गर्भस्राव गर्भपात गर्भाशयमें दूषित मांस वृद्धि (छोड) अथवा सूतिका रोगका कोई उपद्रव विशेष है सो स्त्री सब कथन करे । उसका विचार करना और स्त्रीके कथन पर ही निश्चय न समझना किन्तु अपनी परीक्षासे चिकित्सक जो निश्चय करे उसकी स्त्रीके कथनसे मिलान करके उसके पूर्ण निश्चयके लिये गुह्य अवयवोंकी परीक्षा स्वयं करके अथवा जो स्त्री पुरुषको गुह्यावयव दिखलानेसे इन्कार करे उसकी परीक्षा स्त्री जो कि शारीरिक विद्याकी जाननेवाली होय उसके द्वारा सम्पूर्ण रीतिसे परीक्षा करके और नष्टगर्भितव्यताके स्थापन करनेवाले क्या कारण हैं उनका निर्णय करके निश्चय करना । गर्भस्रावमें कोई निज ऐसा नहीं मिलता जो कि नष्टगर्भितव्यताका असाध्य हेतु समझा जावे । परन्तु स्त्रीसे जो हालात पूछनेसे उसका कोई भी कारण जान पडे तो उसका योग्य उपाय

करना उचित है। दूषित मांसवृद्धि (छोड) क रोगमें परीक्षा करनेसे प्रयोजन इतना हा है कि गर्भाशयमें किसी व्याधिके बदले उसकी आशंका होय कि क्या गर्भस्राव गर्भपात दूषित मांसवृद्धि और सूतिकारोगमें साधारण रीतिसे गर्भाशय स्थूल रह जाता है, इसलिये गर्भाशयके स्थूल रहजानेसे कमल मुखमें और गर्भाशयके अन्तरपिण्डमें क्या क्या परिवत्तन हो रहा है, उसकी यथाथ परीक्षा कर शोथ तथा गर्भाशयका स्थानान्तर आदि जो कुछ दोप जान पडे उसको शोधन करके निश्चय कर नष्टगर्भितव्यताके कारणके तरीकेसे गर्भिणी अवस्थामें ही स्त्रीको जो कोइ रोग हुआ हो उसको लेकर वह स्त्री कथन करे कि मुझे सब प्रसव नियत समय पर हुए थे, वा बराबर नहीं हुए थे लेकिन गर्भाधान तो रहा-था— किन्तु गर्भाधानकी दशामें अमुक विकृति हुई थी इस लिये गार्भिणी स्त्रीके कितने ही रोग स्त्रीको गर्भावस्थाके समय समय पर होते हैं। उसकी दशा श्रवण करके मिलान कर उन कारणोंको लेकर गर्भाशयके मर्मस्थानमें कुछ भी परिवर्त्तन हुआ है कि नहीं, इसका निश्चय अति सूक्ष्म रीतिसे करे। यदि ऋतुधर्म बन्द होनेका समय समीप आगया हो तो स्त्रीको आर्त्तव प्रवाह अनियत समय पर हो जाता है, अथवा ऋतुस्रावका रक्त किसी स्त्रीके शरीरसे अधिक आता है और किसी २ स्त्रीके शरीरसे थोडा आता है; इसके साथ ही स्त्रीकी आयु भी प्रौढावस्थाका अन्त और वृद्धावस्थाके आदिके समीप होती है। थोडेमें ही इतना समझ लेना चिकित्सकको योग्य है, वन्ध्यत्वके समान नष्टगर्भितव्यताक कारणोंके लिये भी बराबर सूक्ष्म रीतिसे परीक्षा करके निश्चय करना योग्य है।

डाक्टरीसे नष्टगर्भितव्यताकी निवृत्ति कितने अंशमें हो सक्ती है।

शुद्ध वन्ध्यापनकी अपेक्षा नष्टगर्भितव्यता अधिक सरलतासे निवृत्त हो सक्ती है और एक समय प्रसव होनेसे यह निश्चय हो जाता है कि स्वभावजन्य अडचन अब मर्मस्थानोंमें नहीं है ऐसा ज्ञात हो जाता है। एवं शुद्ध अनिवार्य्य वन्ध्यादोषमें स्वभावसे ही गर्भाशयकी तथा गर्भ अण्डकी बनावट (रचना) में अथवा क्रियामें कुछ अन्तर (परिवर्त्तन) होता है—और नष्टगर्भितव्यतामें ऐसा कोई भी विशेप विघ्न नहीं होता, परन्तु नष्टगर्भितव्यतामें जो कुछ व्याधियां होती हैं वे अधिकांशमें अति सूक्ष्म और निर्वल होती हैं। कितने ही समय तो प्रथम प्रसव हो चुका है ऐसी स्त्रीको गर्भाधान पुनः रहनेके लिये ऐसी निर्बल रुकावट होती है, गर्भाशयको तथा कमलमुखको विशेष साफ रखनेसे और स्तम्भन औषधियोंके प्रच्छालन करनेसे कमलमुखमें जो किसी प्रकारका अवरोधक पदार्थ होय वह साफ हो जाता है और ऐसी निर्वल नष्टगर्भितव्यता नष्ट होकर गर्भकी स्थिति हो जाती है। शुद्ध वन्ध्या दोपमें रहे हुए कारण कदाचित पीछेसे प्रसव हुई स्त्रीमें जान पडें तो गर्भाधान रहनेके पूर्व उपरोक्त स्त्रीमें

नहीं होते, दूसरे किसी क्षुद्र कारणको लेकर यह हो आया है और इससे वह सरलतापूर्वक नष्ट हो सक्ता है। अधिकांश भागमें ऐसी स्त्रियोंका गर्भाशय मोटा (स्थूल) रह जाता है उसका उपाय अधिक सरल ह। यथार्थ उपचारसे गर्भाशय संकोचको प्राप्त होता है प्रसवकाल याने बालक उत्पन्न होनेके अनन्तर गर्भाशयके ऊपर योग्य दवाव न होनेसे अथवा गर्भाशय बराबर साफ (शुद्ध) न होनेसे ऐसेही निर्वल कारणोंसे गर्भाशय स्थूल रह जाता है और स्त्री इन निर्वल कारणोंके रहनेपर भी पुन: गर्भवती होती है। इसके अनन्तर प्रसूतिके रोग और उसकी विकृतियां निंवृत्त करना सुख साध्य है, गर्भस्राव व गर्भपात अथवा इनसे उत्पन्न हुई विकृतियाँ ये भी विशेप सरलतापूर्वक मिटने सक्ती हैं। यदि इनमें उपदंशके असरको लेकर गर्भस्राव व गर्भपात होता हो तो दूसरे ही समय रुकावट करनेको पूर्ण समय पर्य्यन्त गर्भाधान ठहर तन्दुरुस्त वालक उत्पन्न होवे ऐसा उपाय करना योग्य है। नष्टगर्भितव्यता उपदंशके कारणको लेकर गर्भस्राव व पात होता होय तो इसको देखना, कितने अंशमें साध्य है उतने अंशमें नष्टगर्भितव्यताका एक भी कारण नहीं, तव इसके ऊपरसे यह सिद्ध होता है कि सूतिका रोग और उसकी विकृतियाँ वैसे ही गर्भस्राव व पात और इनकी विकृतियाँ निवृत्त होनी सुखसाध्य हैं। अनेक स्त्रियाँ जिनमें ये कारण विद्यमान हैं पुनः गर्भको धारण करनेमें रुकावट पडगई थी वे इन कारणोंकी निवृत्ति होनेके अनन्तर पुन: गर्भ धारण करके सन्तान उत्पन्न करती हैं। इसके अनेक प्रमाण उपस्थित हैं और नष्टगर्भितव्यताके कष्टसाध्य कारणोमें दूषित मांस विकृति (छोड) और ऋतुस्रावके रक्तका बन्द होना ये दो व्याधि आती हैं, छोडके लिये अनेक संदेह उत्पन्न होनेसे कितने ही नियम विरुद्ध अयोग्य उपचार करनेसे स्त्रीलोग अपना गर्भाशय अत्यन्त विगाड लेती हैं, उसको पुनः योग्य स्थितिमें लानेके लिये-अधिक परिश्रम और उपचार करने पडते हैं। ऋतुस्राव बन्द होनेका समय आया हो तव यह समझना चाहिये कि गर्भाशय जो अपना स्वाभाविक काम करता था उसका अवधि पूर्ण हो गइ है। इससे गर्भ रहनेके लिये गर्भाशयकी जो योग्य शुद्धि रजोदर्शनके रक्तस्रावसे होनी चाहिये, सो अव हो नहीं सक्ती ऐसी स्त्रीको ऋतुस्राव लानेवाली. औषधका प्रयोग देनेसे कुछ लाभ जान पडे तो इससे योग्य आशा बँधती है कि शायद गर्भकी स्थिति पुनः होने सक्ती है नहीं तो सव आशा त्याग देनी चाहिये। गर्भिणी स्त्रियोंके जो दूसरे रोग हैं उनको लेकर उस अवस्थामें कुछ थोडी वहुत वेचैनी रहती है, परन्तु वह सव पीडा स्त्रीको प्रसव होनेपर शान्त हो जाती है उससे नष्टगर्भितव्यता होना विशेप संभव नहीं है। इसी प्रकार जो कारण एक समय गर्भाधान समयमें हुआ हो वह दूसरे समय भी होगा ऐसा संभव नहीं है, इसके अतिरिक्त

दूसरे जो कारण मूल वन्ध्यत्व दोषके हैं उन कारणोंसे जो नष्टगर्भितव्यता हुई हो तो वे प्रत्येक कारण कितने अंश सुधरने सक्ते हैं उसके लिये वन्ध्यत्व सुधारनेकी आशाका प्रकरण देखना उचित है । उसके ऊपरसे अनुमान बाँधनेमें इतना ध्यानमें रखना चाहिये कि गर्भाधान रहनेमें विघ्नरूप पडता हुआ कोई भी कारण मूल वन्ध्या स्त्रीकी अपेक्षा पीछेसे हुई वन्ध्या स्त्रीमें जो हुआ होय तो शीघ्र सरलतापूर्वक निवृत्त हो सक्ता है ।

नष्टगर्भितव्यताकी चिकित्सा ।

इसकी चिकित्साके कई पृथक् पृथक् प्रकरणानुसार प्रसङ्ग पर प्रकरण लिखे गये हैं, अवशेष प्रकरण आगे लिखे जावेंगे । विशेष करके नष्टगर्भितव्यता स्थापन करनेवाले दो कारण मुख्य हैं, प्रसव और गर्भस्राव व पात । जैसे प्रसव हुई स्त्री अपने व्यवहारमें किसी भी रीतिका कुपथ्य रूपी अनियम ग्रहण न करे, यह वहुत आवश्यकताकी बात है कि प्रसूति स्त्री अपने नियमोंको पूर्ण रीतिसे पालन करे । इतना तो सामान्य बुद्धिसे भी समझमें आ सक्ता है कि प्रसव कालमें वर्त्तनेके जो नियम हैं वे क्रमपूर्वक वर्त्तनेसे सम्पूर्ण शरीरको आरोग्य रखते हुए स्त्रीके भिन्न भिन्न मर्मस्थानोंको आरोग्य रखते हैं । उनमें कुछ भी दूषण नहीं है, प्रसव हुई स्त्री प्रसवकालकी पद्धतिके अनुकूल वर्त्ते तो उसको भविष्यमें नष्टगर्भितव्यता होना विशेप संभव नहीं है । इसके अतिरिक्त गर्भस्राव व गर्भपात होता हो तो उसका यथार्थ कारण संशोधन करके निश्चय कर उसकी योग्य चिकित्सा करनी उचित है । स्त्रीको विश्राम देना और गर्भवतीकी अवस्थामें स्त्रीके गर्भाशयकी यथायोग्य सँभाल रखनी उचित है, गर्भरहित स्त्रीकी अपेक्षा गर्भवती स्त्रीकी अवस्थामें स्त्रीको उचित है कि अपनी प्रकृतिको विशेप यत्नपूर्वक रखे । इस अवस्थामें स्त्री अपनी प्रकृतिको न सँभाले और गफलतमें रहे तो भविष्यमें इसका फल नष्टगर्भितव्यता भयंकर रूपसे प्राप्त हो सक्ती है, गर्भस्राव व गर्भपात होतीहुई स्त्रीके लिये पोटास आयोडीड, लाकबोरहाइड्रारजीराईपरकलोरीडाई, अति उत्तम लाभ पहुँचाता है, इसके विशेष प्रयोग गर्भस्राव प्रकरणमें लिखेंगे । दूषित मांस वृद्धि (छोड) निकल जावे ऐसा उपाय करना उचित है, नूतन छोड शीघ्र निकल जाता है गर्भाधानकी स्थिति दो व तीन मास हुए हों और उसकी जो स्वाभाविक वृद्धि होती थी उसमें रुकावट पड गई होय यदि ऐसा निश्चय हो जाय तो गर्भ वृद्धिकी औषध देना योग्य है । कभी २ ऐसा होता है कि दूषित मांसपिण्डवृद्धि गर्भके समान ही २ व ३ मास पर्यन्त होती है, फिर स्थिर भावसे रह जाती है, ऐसी दशामें स्त्रीको व चिकित्सकको कभी २ धोखा खाना पडता है कि गर्भ वृद्धिकी रुकावट समझ कर गर्भवृद्धिकी औषध सेवन कराई जाती है उससे

दूषित मांस बढने लगता है सो चिकित्सकको उचित है कि औषध सेवन करनेके पूर्व इसका पूर्ण निश्चय कर लेवे कि गर्भवृद्धिमें रुकावट है अथवा दूषित मांस वृद्धि स्थिर भावको प्राप्त होगई है । इसके अनन्तर गर्भ वृद्धिकी औषध देना योग्य है, गर्भवृद्धिके स्थलपर दूषित मांसवृद्धि करना उचित नहीं ।

नष्टगर्भितव्यताकी चिकित्साप्रणाली समाप्त ।

अतिस्थूलता मेदवृद्धि भी वन्ध्यत्वका कारण है ।

अति स्थूलता मेदवृद्धि भी स्त्रीको वन्ध्या दोष स्थापन करती है, मेदवृद्धि स्त्री पुरुष दोनोंको ही होती है । अतिस्थूल पुरुष भी निन्द्य समझा जाता है, परन्तु स्त्रीकी स्थूलता तो स्त्रीके स्त्रीपनको ही नष्ट कर देती है । अति स्थूल स्त्रियाँ प्रजोत्पत्ति कर्ममें असमर्थ हो जाती हैं । और कितनी ही स्त्रियोंका रजोधर्म भी युवावस्थामें ही बन्द हो जाता है ।

आयुर्वेदसे मेदवृद्धिका निदान ।

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः । मधुरोऽन्नरसः प्रायः स्नेहान्मेदो विवर्धते ॥ १ ॥ मेदसावृतमार्गत्वात्पुष्यंत्यन्ये न धातवः । मेदस्तु चीयते यस्मादशक्तः सर्वकर्म्मसु ॥ २ ॥ क्षुद्रश्वासतृषामोहस्वप्नक्रथनसाधनैः ॥ युक्तः क्षुत्स्वेददौर्गंध्यैरल्पप्राणोऽल्पमैथुनः ॥ ३ ॥ मेदस्तु सर्वभूतानामुदरेष्वस्थिषु स्थितम् । अतएवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥ ४ ॥ मेदसावृतमार्गत्वाद्वायुः कोष्ठे विशेषतः । चरन्संधुक्षयत्यग्निमाहारं शोषयत्यपि ॥ ५॥ तस्मात्स शीघ्रं जरयत्याहारं चापि कांक्षति । विकारांश्चाश्नुते घोरान्कांश्चित्कालव्यतिक्रमात् ॥ ६ ॥ एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमारुतौ । एतौ हि दहतः स्थूलं वनं दावानलो यथा ॥ ७ ॥ मेदस्यतीव संवृद्धे सहसैवानिलादयः । विकारान् दारुणान् कृत्वा नाशयंत्याशु जीवितम् ॥८॥ अतिस्थूले च संदृष्टा विसर्पाः सभगंदराः । ज्वरातीसारमेहार्शश्लीपदापचिकादयः ॥९॥ मेदो मांसातिवृद्धत्वाचलस्फिगुदरस्तनः । अयथोपचयोत्साहो नरोऽतिस्थूल उच्यते ॥ ॥ १० ॥ मेदसः स्वेददौर्गंध्याज्जायंते जंतवोऽणवः ॥ ११ ॥

अर्थ—कसरत व परिश्रम न करनेसे दिनमें शयन करनेसे और चिकने कफकारी पदार्थोंके सेवन करनेसे इसी प्रकार मधुर रसोंके सेवन करनेसे तथा मनुष्यका अन्नरस मधुर कहिये आमरूप होकर स्नेहयुक्त मेदको बढाता है, मेद कहिये चर्बीकी अधिक वृद्धि होनेसे रसवाही शिराओंके मार्ग बन्द हो जाते हैं अन्य धातु कहिये अस्थि मज्जा वीर्य्यादि धातु पुष्ट न हो मनुष्यको मेदकी वृद्धि होती है तब वह अति सुकुमार आलसी होनेसे सर्व कर्ममें अशक्त हो जाता है। मेदवाले मनुष्यके लक्षण क्षुद्रश्वास, तृषा, मोह, निद्रा, अकस्मात् श्वास रोगका उत्पन्न होना, अङ्ग ग्लानि, भूँख, पसीना, दुर्गन्धि इन लक्षणों करके मेदस्वी मनुष्य युक्त होय, उसकी सामथ्य घट जाय और मैथुन करनेका उत्साह न होय यदि करे भी तो शीघ्र शिथिल होजाय मेद सब मनुष्योंके उदर, नितम्ब, स्तनोंमें अधिक बढता है इसीसे मेदस्वीके ये अङ्ग अति स्थूल हो जाते हैं। मेदस्वी मनुष्यकी अग्निवृद्धिमें यह कारण होता है कि मदके कारण शरीरके आभ्यन्तरके भाग रुक जानेसे कोष्ठमें वायुका संचार विशेष होय तब यह वायु अग्निको प्रदीप्त करे कि जिससे भोजन करे आहारको शीघ्र शोषण करे, ताकि वह आहार शीघ्र पाचन होकर पुनः शीघ्र क्षुधा लगे और आहार करनेकी इच्छा होवे। यदि उस समय कदाचित् आहार न मिले और आहारके लिये कालका व्यतिक्रम होय तो भयंकर वातके रोग उत्पन्न होजाय यह अग्नि और वायु संयुक्त होकर बडा उपद्रव करती है। जैसे दावानल अग्नि बनको जला देती है इसी प्रकार अति स्थूल होनेसे अग्नि और वायु मनुष्यके शरीरको जलाता ह। अत्यन्त मेद बढनेका फल यह होता है कि वायु आदि अकस्मात् भयंकर विकारोंको उत्पन्न करके शीघ्रही जीवनको समाप्त कर देते हैं उन भयंकर रोगोंके नाम ये हैं—बिसर्प, भगंदर, ज्वर, अतिसार, प्रमेह, अर्श, श्लीपद, अपचिका इत्यादि रोग अति स्थूल स्त्री पुरुषोंको देखनेमें आते हैं, मेद और मांसके बढनेसे चलायमान नितम्ब उदर स्तन होते हैं (अर्थात् स्थूल पुरुष व स्त्रीके ये अङ्ग चलनेके समय हिलते हैं और चर्बी तथा मांसकी वृद्धि परिमाण होय और मनुष्य उत्साहहनि हो जाय। मेदस्वा मनुष्यके शरीरमें पसीना अधिक आता है और दुर्गन्धि निकलती है तथा क्षुद्र अणु जन्तु उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १–११ ॥

(मेद वृद्धिवाली स्त्रीके पेडूपर मेदको अधिक जमाव होता है और पेडू ऊंचा दीखता है, कमलमुख मोटा हो जाता है और उसमें श्वेत पदार्थका जमाव रहता है योनिकी द्रोणी स्निग्ध और योनिमार्गकी मांसपेसी तथा स्नायु संकुचित रहती है। मेदकी अधिक वृद्धि होनेसे रक्तादि अन्य धातुओंकी वृद्धि नहीं होती इसी कारणसे रजोदर्शन बन्द हो जाता ह रजोदर्शन न आनेसे गर्भाशय तथा कमलमुख स्वच्छ नहीं होता। स्त्रीवीर्य्यजन्तुओंका बनना बन्द हो जाता है, पुरुषसमागमसे श्वास उखड आता है और स्त्रीके शरीरमें व्याकुलता उत्पन्न हो जाना है ये अति मेद वृद्धिवाली स्त्रियोंके मुख्य लक्षण हैं)।

आयुर्वेद वैद्यकसे मेदरोगकी चिकित्सा ।

पुराणः शालयो मुद्गा कुलित्थोद्दालकोद्रवाः ॥ लेखना वस्तयश्चैव सेव्या मेदस्विना सदा ॥ १ ॥ अस्वप्नश्च व्यवायश्च व्यायामश्चिन्तनानि च । स्थौल्यमिच्छन्परित्यक्तक्रमेणातिविवर्धयेत् ॥ २ ॥ श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः ॥ हंत्याऽवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनम् ॥ ३ ॥

अर्थ—मेद वृद्धिवाली स्त्री व पुरुष पुराने शालि चावल, मूग, कुल्थी, कोदो, (पुराने यव भी हितकारी हैं तथा मसूरकी भी यही तासीर है) इत्यादि अन्नोंका आहार करे लेखन बस्तिकर्म करना भी हितकारक है जागरण मैथुन परिश्रम और चिन्ता इन सबको स्थूलताकी इच्छावाला पुरुष त्याग देवे और स्थूल पुरुष व स्त्री इनको क्रमपूर्वक बढावें ज्यों २ जागरण मैथुन परिश्रम चिन्ता इनका मनुष्य अधिक सेवन करेगा त्यों त्यों स्थौल्यता निवृत्त होती जावेगी क्योंकि मेद वृद्धिवाला प्राणी परिश्रम चिन्ता मैथुन मार्गगमन (भ्रमण) मधु सेवन अतिजागरण इनसे अति प्रेम रक्खे और जौ तथा समा नामक अन्नका भोजन करे इत्यादिके सेवनसे अति स्थूलता भी नष्ट होती है ॥ १–३ ॥

सचव्यजीरकव्योषहिंगुसौवर्चलानलाः । मस्तुना शक्तवः पीता मेदोघ्ना वह्निदीपनाः ॥४॥ फलत्रयं त्रिकटुकं सतैललवणान्वितम् । षण्मासानुपयोगेन कफमेदोनिलापहम् ॥ ५ ॥ विडङ्गं नागरं क्षारं काललोहरजो मधु । यवामलकचूर्णं तु प्रयोगः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ६ ॥ मूत्रं वा त्रिफलाचूर्णं मधुयुक्तं मधूदकम् । बिल्वादिपंचमूलस्य प्रयोगः क्षौद्रसंयुतः । अतिस्थौल्यहरः प्रोक्तो मण्डश्च सेवितो ध्रुवम् ॥ ७ ॥ कर्कशदलवह्निसलिलं शतपुष्पाहिंगुसंयुक्तम् । फुटकेन हंति नियतं सर्वभवामेदसां वृद्धिम् ॥ ८ ॥ क्षारवातादिपत्रस्य हिंगुयुक्तं पिबेन्नरः । मेदोवृद्धिविनाशाय भक्तमण्डसमन्वितम् ॥ ९ ॥ गवेधुकानां पिष्टानां यवानाञ्चाथ शक्तवः । सक्षौद्रत्रिफलाक्वाथः पीतो मेदोहरो मतः ॥१०॥ गुडूचीत्रिफलाक्वाथस्तथा लोहरजोयुतः । अश्मजं माहिषाक्षं वा तेनैव विधिना पचेत् ॥ ११ ॥ अतिमुक्तादीजमध्यं मधुलीढं हन्त्युदरवृद्धिम् ।

मधुना चित्रकमूलं तथैव हितभोजने भुंक्ते ॥ १२ ॥ यद्दारुबूकमूलं मधुदिग्धं स्थाप्यते निशां सकलाम् । सलिलस्य तस्य पानाज्जाठरवृद्धिं शमं नयति ॥ १३ ॥ प्रातर्मधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम् । उष्णा-मन्नस्य मण्डं वा पिबन्कृशतनुर्भवेत् ॥ १४ ॥ बदरीपत्रकल्केन पेया कांजिकसाधिता । स्थौल्यं नश्येदग्निमन्थरसं वापि शिलाजतु ॥ १५ ॥

अर्थ–चव्य (काली मिरचकी वेलका मूल) जीरा, त्रिकुटा, हींग काला नमक चित्रक इनका चूर्ण बनाकर दधिके तोडके साथ सत्तूको मिलाकर भक्षण करे तो मेद वृद्धिरोग नष्ट होता है और अग्नि प्रज्वलित होती है । त्रिकुटा (सोंठ मिरच पीपल) त्रिफला (हरडे बहेडा आंवला) तैल और सेंधा नमक इनको परिमित मात्रासे एकत्र मिलाकर ६ महीने पर्य्यन्त सेवन करनेसे कफ और मेद वृद्धिरोग नष्ट होता है । वायविडंग, सोंठ जवाखार, लोहभस्म, शहत, जौ, आंवला इनको परिमित मात्रासे एकत्र करके सेवन करनेसे स्थूलता नष्ट होती है, गोमूत्र अथवा त्रिफ-लाका चूर्ण शहतके साथ भक्षण करे और ऊपरसे शहत मिला हुआ जल पीवे तो स्थूलता नष्ट होती है । अथवा चावलके मांडको पीनेसे स्थूलता नष्ट होती है पटोलपत्र और. चीता इनका क्राथ बनाकर उसमें सोंफ और हींगका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे मेद वृद्धि रोगनष्ट होता है । जवाखार और अरंडके पत्र इनके क्राथमें हींग डालकर सेवन करे और इसके ऊपरसे मांडसहित भात भोजन करे, इससे मेदकी वृद्धि नष्ट होती है । गेंहू अथवा जौके सत्तुओंको शहत और त्रिफलाका क्राथ मिलाकर सेवन करनेसे मेदवृद्धि नष्ट होती है । गिलोय तथा त्रिफलाके क्राथमें लोहभस्म डालकर पीनेसे मेदवृद्धि नष्ट होती है, तथा उपरोक्त क्राथमें शिलाजीत, गूगल इनको परिमित मात्रासे मिला पका पान करनेसे मेद वृद्धिरोग दूर होता है । तेंदूकी मिंगीको शहतमें मिलाकर चाटनेसे उदर वृद्धिरोग शान्त होता है, अथवा चित्रककी जडको पीसकर शहतमें मिलाकर चाटनेसे इसके ऊपर पथ्य भोजन करनेसे मेद वृद्धिरोग शान्त होता है । अरंडकी जडको रात्रिके समय शहत और जलमें भिगो प्रातःकाल उसको छानकर पीवे तो मेदसे उत्पन्न हुआ उदर वृद्धिरोग शान्त होता है । प्रतिदिवस प्रातःकालके समय जल और शहत मिलाकर पीनेसे मेद वृद्धिरोग शान्त होता है, अथवा पकेहुए भातके मांडको पीनेसे भी उपरोक्त गुण होता है । बेरीके पत्तोंके कल्कको कांजीमें पकाकर पेया बनाकर सेवन करनेसे अति स्थूलता नष्ट होती है, शिलाजीतको अरणीके रसमें डाल-कर पीनेसे उदर वृद्धिरोग नष्ट होता है ॥ ४–१५ ॥

स्थूलता और दुर्गन्धनाशक उद्वर्त्तन ।

शैलेयकुष्ठागरुदेवदारुकौन्तीसमुस्तात्वक्पञ्चपत्रैः ।
श्रीवासपृक्काखरपुष्पदेवपुष्पं तथा सर्वमिदं प्रपिष्य ॥ १ ॥
धत्तूरपत्रस्य रसेन गाढमुद्वर्त्तनं स्थौल्यहरं प्रदिष्टम् ॥ २ ॥

अर्थ–भूरिछरीला (छारछबीला) कूट, अगर, देवदारु नागरमोथा, दालचीनी, पंचपत्र, श्रीवासधूप, असवरग (अजखर) ब्राह्मी, लवङ्ग इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर धत्तूरेके पत्रके रसमें मिलाकर शरीरपर गाढा उवटन करनेसे स्थूलता नष्ट होती है ॥ १ ॥ २ ॥

स्थूलतानाशक अमृतादि गुग्गुलु ।

अमृतात्रुटिबिल्ववत्सकंकलिङ्गपथ्यामलकानि गुग्गुलुः ।
क्रमवृद्धमिदं मधुप्लुतं पिण्डकास्थौल्यभगंदराञ्जयेत् ॥ ३ ॥

अर्थ–गिलोय १ भाग, वडी, इलायची २ भाग, वेलगिरी ३ भाग, कुडाकी छाल ४ भाग, इन्द्रजौ ५ भाग, हरड ६ भाग, आंवले ७ भाग, शुद्ध गूगल ८ भाग सबको एकत्र मिलाकर शहतके साथ चाटनेसे प्रमेहपीडिका स्थूलता और भगंदर रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

दशांग गुग्गुलु ।

व्योषाग्नित्रिफलामुस्तविडङ्गैर्गुग्गुलुं समम् ।
खादन्सर्वाञ्जयेद्व्याधीन्मेदः श्लेष्मामवातजान् ॥ ४ ॥

अर्थ–त्रिकुटा (सोंठ मिरच पीपल चित्रक, त्रिफला नागरमोथा, वायविडङ्ग और शुद्ध गूगल ये सब समान भाग लेकर एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे मेदरोग नष्ट हो साथही कफ वातजनित रोग भी निवृत्त होते हैं ॥ ४ ॥

मेदवृद्धिनाशक लौहरसायन ।

गुग्गुलुस्तालमूली च त्रिफला खदिरं वृषम् । त्रिवृतालम्बुषा शुण्ठी निर्गुण्डी चित्रकस्तथा ॥ १ ॥ एषां दशपलान्भागांस्तोये पञ्चाढके पचेत् । पादशेषं ततः कृत्वा कषायमवतारयेत् ॥ २ ॥ पलद्वादशकं देयं रुक्मलोहं सुचूर्णितम् । पुराणसर्पिषः प्रस्थं शर्कराष्टपलान्वितम् ॥ ३ ॥ पचेत्ताम्रमये पात्रे सुशीते चावतारिते । प्रस्थार्द्धं माक्षिकं देयं शिलाजतुपलद्वयम् ॥ ४ ॥ एलात्वचः पलार्द्धञ्च विडङ्गानि पलत्रयम् । मरिचांजनकृष्णो द्वे द्विपलं त्रिफलान्वितम् ॥ ५ ॥ पलद्वयन्तु कासीसं

सूक्ष्मचूर्णिकृतं बुधैः । चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ ॥ ६ ॥ ततः संशुद्धदेहस्तु भक्षयेदक्षमात्रकम् । अनुपानं क्षिपेत्क्षीरं जांगलानां रसं तथा ॥ ७ ॥ वातश्लेष्महरं श्रेष्ठं कुष्ठमेदोदरापहम् । कामलापाण्डुरोगघ्नं श्वयथुं सभगंदरम् ॥ ८ ॥ मूर्च्छामोहविषोन्मादं गणार्णविषमानि च । स्थूलानां कर्षणं श्रेष्ठं मेदुरे परमौषधम् ॥ ९ ॥ कर्षयेच्चातिमात्रेण कुक्षिं पातालसन्निभम् । बल्यं रसायनं मेध्यं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ १० ॥ श्रीकरं पुत्रजननं बलीपलितनाशनम् । नाश्नीयात् कदलीकन्दं काञ्जिकं करमर्दकम् । करीरं कारवेल्लञ्च षट्ककाराणि वर्जयेत् ॥ ११ ॥

अर्थ–शुद्ध गूगल, मूसली, त्रिफला, खैरसार, अडूसा, त्रिवृता, गोरखमुण्डी (गुलमुंडी) सोंठ, निर्गुंडी, चित्रक प्रत्येक औषधियाँ दश पल पृथक् पृथक् ले स्वच्छ करके पांच आढक जलमें पचावे, जब चतुर्थांश जल रहे तब उतार कर छान लेवे और इस क्वाथमें उत्तम विधिसे सिद्ध कियाहुआ' कान्तलोह भस्म ४० तोला, पुराना घृत १ प्रस्थ, मिश्री ३२ तोला डालकर विधिपूर्वक तांबेके पात्रमें पकावे जब पककर शीतल हो जाय तब उतार लेवे पुनः इसमें उत्तम मधु ३२ तोला, शुद्ध शिलाजीत ८ तोला, छोटी इलायची, दालचीनी प्रत्येक २ तोला, वायविडङ्ग १२ तोला, काली मिरच, पीपल प्रत्येक ८ तोला, रसांजन (रसौत अति शुद्ध इसके अभावमें दारुहल्दीका चूर्ण लेना) ८ तोला, त्रिफला ८ तोला, शुद्ध फुलाई हुई हीराकसिस ८ तोला इन सबका सूक्ष्म चूर्ण करके मिला सबको एक रस करके एक चिकने पात्रमें भरकर रख देवे । और मेदरोगी स्त्री व पुरुषको उचित है कि वमन विरेचनादिसे शुद्ध होकर इसमेंसे १ तोला प्रमाणकी मात्रासे सेवन करे और इसके ऊपरसे दूध तथा जांगल निवासी जीवोंका मांस रस अनुपान व पथ्यसे लेवे तो यह लोहरसायन वात कफनाशक तथा सूझन, भगंदर, मूर्च्छा, मोह, विष, उन्माद और विष भक्षणसे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके विषम रोगोंको नष्ट करता है । स्थूल मनुष्योंको कृश करनेवाली मेद रोगकी परमौषध और उदरको अत्यन्त पतला करनेवाली, बलकारक, रसायन मेधाजनक उत्तम वाजीकरण लक्ष्मीजनक पुत्र उत्पन्न करनेवाली वलिपलित (बुढापेके कारणसे शरीरमें चमडेकी सरवट पड जाती हैं) उनको यह औषध नहीं पडने देती तथा बिना समय केशोंका श्वेत हो जाना इत्यादिको नष्ट करती है । इस रसायन औषध खानेवालेको उचित है कि केला, कन्द, कांजी, करोंदा, करीर, करेला इन छः पदार्थोंका त्यागन कर देवे ॥ १–११ ॥

मेदवृद्धिनाशक-लोहारिष्ट ।

सालसारादितिर्यूहं चतुर्थांशावशेषितम् । परिस्रुतं ततः शीतं मधुना मधुरीकृतम् ॥ १ ॥ फाणतीभावमापन्नं गुडं शोधितमेव वा । श्लक्ष्णपिष्टानि चूर्णानि पिप्पल्यादेर्गणस्य च ॥ २ ॥ एकध्यमावपेत्कुम्भे संस्कृते घृतभाविते । पिप्पलीचूर्णमधुभिः प्रलिप्ते चान्तरे शुचौ ॥ ३ ॥ सूक्ष्माणि तीक्ष्णलोहस्य तनुपत्राणि बुद्धिमान् । खदिराङ्गारतप्तानि बहुशः प्रक्षिपेद्बुधः ॥ ४ ॥ सुपिधानं ततः कृत्वा यवखल्वे निधापयेत् ॥ मासांस्त्रींश्चतुरो वापि यावदाऽऽलोहसंक्षयात् ॥ ५ ॥ ततो जातरसं जन्तुः प्रातः प्रातर्यथाबलम् । उपयुञ्ज्याद्यथायोगमाहारं चास्य कल्पयेत् ॥ ६ ॥ एष स्थूलं कृशेन्नूनं नष्टस्याग्नेः प्रसाधनम् । शोथघ्नः कुष्ठमेहघ्नो गुल्मपाण्ड्वामयापहः ॥ ७ ॥ प्लीहोदरहरः शीघ्रं विषमज्वरनाशनम् । अभिस्यंदापहरणो लोहारिष्टो महागुणः ॥ ८ ॥

अर्थ-सालसारादि गणके औषध सालसार, अजकर्ण, यह भी सालकाही भेद है । खैर, श्वेत खैर, दुर्गन्ध खैर, सुपारी, भोजपत्र, मेढासिङ्गी, चन्दन, कुचन्दन (पतंग) शीशम, सिरस, असन, धौ, अर्जुनवृक्ष (कोह) तालशाक, कंजा, पूतीकरंज, अगर, (दारुहल्दी) इन औषधियोंको समान भाग लेकर १६ गुणे जलमें पकावे, जब चतुर्थांश जल अवशेष रह जावे तब उतारकर छान लेवे शीतल होने पर मधु मिलाकर मिष्ट कर लेवे, और गुडकी चासनी करके मिलावे और पिप्पल्यादि गणका चूर्ण मिलावे (पिप्पल्यादिगण पीपलामूल, चव्य, चीता, अदरख, मिरच, गजपीपल, हरेणु इलायची, अजमोद, इन्द्र जौ, पाढ, जीरा, सरसों, बकायन, हींग, भारंगी, मरोडफली, अतीस, वच, बायविडङ्ग, कुटकी) उसका क्वाथ और इसके चूर्णको मिश्रित करके घृतके पात्रमें पीपलका चूर्ण और शहत चुपड कर रख देवे । इसके अनन्तर बुद्धिमान् वैद्य तीक्ष्ण लोहके सूक्ष्म पतले २ पत्र करके खैरके अंगारोमें तपावे कि अत्यन्त सुर्ख हो जावे, जब उनको वारम्बार उपरोक्त औषधमें बुझाता जावे, जब बुझाते २ लोहपत्र जीर्ण हो जावे तब सबको उसमें छोड देवे और पात्रका मुख बन्द करदेवे (लोहका वजन ग्रन्थकारने मूल श्लोकमें नहीं लिखा परन्तु इस क्रियाके लिये ८० तोला लोह लेना योग्य है) और उस पात्रको जौके ढेरमें रख देवे (अथवा पृथिवीमें गर्त खोद कर गाड तीन चार व छः मास पर्य्यन्त गडा रहने देवे चार छः मासमें लोहा बिलकुल जीर्ण हो जाता है । यदि लोह जीर्ण न होवे तो लोहारिष्ट सिद्ध

न हुआ समझिये । शरीरकी सामर्थ्यके अनुसार इस लोहारिष्टको परिमित मात्रासे प्रातःकाल पीवे और इसके ऊपर योग्य पथ्य आहार कर कुपथ्यको सदैव त्यागता रहे, तो यह लोहारिष्ट स्थूल शरीरको कृश कर देता है और बेडौल मोटाईको त्यागकर शरीर सुडौल हो जाता है । नष्ट हुई जठराग्नि प्रदीप्त होती है, शोथ कुष्ट प्रमेह गुल्म पाण्डुरोग प्लीहा उदरविकार व विषमज्वरको नष्ट करता है । यह अति गुणवाला लोहारिष्ट अभिष्यन्दन नाशक है ॥ १-८ ॥

व्योषादिसक्तू प्रयोग ।

व्योषाचित्रकशिग्रूणि त्रिफलां कटुरोहिणीम् । बृहत्यौ द्वे हरिद्रे द्वे पाठामतिविषां स्थिराम् ॥ १ ॥ हिंगुकेम्बुकमूलानि यवानीधान्यचित्रकम् । सौवर्चलमजाजी च हबुषा चेति चूर्णयेत् ॥ २ ॥ चूर्णं तैलघृतक्षौद्रभागाः स्युर्मानतः समाः । शक्तूनां षोडशगुणे भागः सतर्पणं पिबेत् ॥ ३ ॥ प्रयोगात्वस्य शाम्यन्ति रोगाः संतर्पणोत्थिताः । प्रमेहा मूढवाताश्च कुष्ठान्यर्शांसि कामलाः ॥ ४ ॥ पाण्डुप्लीहामयः शोफो मूत्रकृच्छ्रमरोचकम् । हृद्रोगो राजयक्ष्मा च कासश्वासौ गलग्रहः ॥ ५ ॥ कृमयो ग्रहणीदोषः श्वैत्र्यं स्थौल्यमतीव च । नराणां दीप्यते वह्निः स्मृतिर्बुद्धिश्च वर्द्धते ॥ ६ ॥

अर्थ—त्रिकुटा (सोंठ मिरच पीपल) चित्रक, सूखी हुई सहँजनेकी जड, त्रिफला (हरड, बहेडा, आंवला) कटेली, सफेद फूलकी कटेली, हल्दी, दारुहल्दी, पाढ, अतीस, शालपर्णी, हींग, केंऊंआकी जड, अजवायन, धनियां, चित्रक, कालानमक, जीरा, हाऊवेर, (हवुषावेर) इन सबको समान भाग ले (चित्रकका पाठ दो स्थलपर आया है सो एक औषधसे दूनी लेनी चाहिये) एकत्र करके सूक्ष्म चूर्ण बनावे, फिर तिलका तैल घृत शहत सब चूर्णके समान लेवे, जौका सत्तू १६ भाग लेवे सबको एकत्र संयुक्त करके शीतल द्रव्योंके साथ इस प्रयोगके सेवन करनेसे प्रमेह, मूढवात, कुष्ठ, अर्श, कामला, पाण्डु, प्लीहा, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, हृद्रोग, राजयक्ष्मा, श्वास, कास, गलग्रह, कृमिरोग, संग्रहणीरोग, श्वित्रकुष्ठ और विशेष करके स्थूलता मेदरोग नष्ट हो अग्नि दीपन होती हुई स्मरणशक्ति और बुद्धिकी वृद्धि होती है ॥ १-६ ॥

त्रिफलाद्य तैल ।

त्रिफलातिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः । निम्बारग्वधषड्ग्रन्थासप्तपर्णानिशाद्वयैः ॥ १ ॥ गुडूचीन्द्रासुरीकृष्णाकुष्ठसर्षपनागरैः । तैलमेभिः समैः

पक्वं सुरसादिरसप्लुतम् ॥ २ ॥ पानाभ्यङ्गगंडूषनस्यवास्तिषु योजितम् । स्थूलताऽऽलस्य पांड्वादीन्क्षयेत्कफकृतान्गदान् ॥ ३ ॥

अर्थ–त्रिफला, अतीस, मरोडफली, निसोत, चित्रक, अडूसा, नीमकी जडकी छाल, अमलतासका गूदा, वच, सतवन (सतौना) हल्दी, दारुहल्दी, गिलोय, इन्द्रायणकी जड व फल, पीपल, कूट, सरसों इनको समान भाग ले कल्क बनावे सुरसादिगण (तुलसी दोनामरुवा वनतुलसी, भूस्तृण (इसकी आकृति द्रोणपुष्पीके समान होती है) नकछिकनी, खरपुष्पा, वायविडङ्ग, कायफल, सुरसी, (इसके पत्रकी आकृति कैथके पत्रके समान होती है और कहीं पीली चमेलीके नामसे भी बोलते हैं) निर्गुण्डी, नीले फूलकी निर्गुण्डी, गोरखमुण्डी, (गुलमुंडी) मूसाकर्णी, भारंगी, मछेछी, काकमाची, बकायन इन गणकी औषधियोंको समान भाग लेकर क्वाथ बनावे और तिल्लीका तैल क्वाथ कल्क सबको एकत्र मिलाकर तैल पाककी विधिसे तैलको सिद्ध करे इस तैलको पान अभ्यङ्ग गण्डूस नस्य और वस्ति कर्ममें प्रयोग करे । यह तैल स्थूलता आलस्य पांडु आदि रोग और कफजनित रोगोंको नष्ट करता है॥ १–३॥

दुर्गन्धनाशक महासुगन्धित तैल ।

चन्दनं कुङ्कुमोशीरप्रियङ्गुत्रुटिरोचनाः । तुरुष्कागुरुकस्तूरी कर्पूरो जातिपत्रिका ॥ १ ॥ जातीकङ्कोलपूगानां लवङ्गस्य फलानि च । नलिका नलदं कुष्ठं हरेणुतगरं प्लवम् ॥ २ ॥ नखं व्याघ्रनखं स्पृक्का बोलो दमतकं तथा । स्थौणेयकं चोरकञ्च शैलेयं शैलवालुकम् ॥ ३ ॥ सरलं सप्त पर्णञ्च लाक्षा तामलकी तथा । लामज्जकं पद्मकञ्च धातक्या कुसुमानि च ॥ ४ ॥ प्रपौण्डरीकं कर्पूरं समांशैः शाणमात्रकैः । महासुगन्धिमित्येतत्तैल प्रस्थेन साधयेत् ॥ ५ ॥ प्रस्वेदमलदौर्गन्ध्यकण्डूकुष्ठहरं परम् । अनेनाभ्यक्त गात्रस्तु वृद्धः सप्ततिकोऽपि वा ॥ ६ ॥ युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः । सुभगो दर्शनीयश्च गच्छेच्च प्रमदां शतम् ॥ ७ ॥ वन्ध्यापि लभते गर्भं षण्डोऽपि पुरुषायते । अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदांशतम् ॥ ८ ॥

अर्थ–चन्दन केशर खस, फूलप्रियंगु (हिना मेहदीके फूल) इलायची, गोरोचन, लोवान सफेद, अगरु कस्तूरी, कपूर, जावित्री, जायफल, कंकोल, सुपारी, लवंग, नली, वालछड, (भूतकेशी) कूट, रेणुकातगर, नागरमोथा, नख, व्याघ्रनखी,

असवरम (अजखरतृण) बोल (हीराबोल) बीजाबोल दोनामरुआ, चोक, भूरीछ-डिया, (छारछबीला) एलुवालुक धूपसरल, सतौना, लाख भुई आंवला, लामज्जक, पद्मकाष्ठ, धायके फूल, पुंडेरियाकपूर ये प्रत्येक औषध पाव तोला ले (कपूरका पाठ दो स्थलपर आया है सो आधा तोला लेवे) इन सबका कल्क बनाकर ६४ तोला तिलके तैलमें डालकर पकावे तो यह महासुगंधि तैल सिद्ध होता है । इस तैलको व्यवहार करनेसे पसीना मलसे उत्पन्न हुई दुर्गन्धिता, खुजली, कुष्ठ ये सब नष्ट हो जाते हैं, इस तैलकी मालिस करनेसे सत्तर वर्षका वृद्ध भी युवा हो जाता है, अधिक वीर्यवान् होनेसे स्त्रियोंको अति प्रिय लगता है । भाग्यवान् और सुन्दर रूपवाला हो जाता है सौ स्त्रियोंसे प्रसंग करनेकी सामर्थ्यवाला हो जाता है वन्ध्या स्त्रियोंको गर्भ रहता है नपुंसक मनुष्य भी पुंसत्वको प्राप्त होते हैं पुत्रहीन स्त्री पुरुषोंको पुत्रकी प्राप्ति होती है और सौ वर्षकी आयु होती है ॥ १-८ ॥

शिरीषलामज्जकहेमलोध्रैस्त्वग्दोषसंस्वेदहरः प्रकर्षः । पत्रांबुलोध्रामयच-न्दनानि शरीरदौर्गन्ध्यहरः प्रदेहः ॥ १ ॥ चन्द्रांशु सलिलं लोध्रं शिरीपो-शीरकेशरैः । उद्वर्त्तनं भवेद्ग्रीष्मे स्वेदकर्म निवारणम् ॥ २ ॥ हस्तपाद श्रुतौ योज्यं गुग्गुलुं पञ्चतिक्तकम् । अशक्तौ पञ्चतिक्तं वा पक्कं खादेदतन्द्रितः ॥ ३ ॥

अर्थ-शिरसके बीज, पत्र, व छाल, लामज्जक नागकेशर, लोध्र इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर शरीरपर मलनेसे त्वचाके विकार और पसीना निकलना नष्ट होता है । तेजपत्र, सुगन्धवाला, लोध, कूट, चन्दन इनको एकत्र पीसकर शरीर पर लेप करनेसे दुर्गन्ध नष्ट होती है । कपूर, चन्दन, लोध, शिरस, खस, नागकेशर इनको एकत्र पीसकर ग्रीष्मकालमें उद्वर्त्तन करनेसे पसीना आना नष्ट होता है । यदि हाथ पैर पसीजते हों तो गूगल और पंचातिक्त घृतका सेवन करे ॥ १-३ ॥ यूनानी तिब्बवालान स्थूलताको वन्ध्या दोषका हेतु नहीं माना है शायद इसीसे यूनानी तिब्बमें स्थूलताका वर्णन स्त्री चिकित्सामें नहीं पाया जाता ।

आयुर्वेद वैद्यकसे मेदवृद्धि रोग चिकित्सा समाप्त ।

यूरोपियन वैद्योंके सिद्धान्तसे भी अतिस्थूलता वन्ध्या दोषको स्थापन करती है ।

जब स्त्री अति- स्थूल हो जाती है और उसकी कटिका पश्चात् भाग सामान्य रीतिकी अपेक्षा अति वृद्धिको प्राप्त होता है तब वह स्थूल कही जाती है । और शुद्ध वन्ध्यत्ववाली तथा नष्टगर्भितव्यतावाली स्त्रियोंमेंसे विशेष स्त्रियाँ मेद वृद्धि स्थूलतावाली

पाई जाती हैं । उसी प्रकार अनार्त्तववाली जिनको आर्त्तव आना याने रजोदर्शन बन्द हो गया है वह भी अति स्थूल पाई जाती हैं । शरीरसे जो योग्य परिश्रम करना चाहिये वह नहीं मिलनेसे अथवा परिश्रम करनेका अवसर आने पर भी जो स्त्री परिश्रम न करे याने परिश्रमसे जी चुरावे वह प्रायः स्थूलताको प्राप्त होती है । इसी प्रकार प्रसव होनेवाली स्त्रीको प्रसव होनेके समय तथा बालककी पोषण अवस्थामें बालक रुदन करने व घबडाने व डरने व चकि मारनेके समय जो स्त्रियोंको स्वयं घबडाना पडता है उस समय स्त्रीके सर्व शरीरको चिन्ता परिश्रम और मांसमें हरकत पहुँचती है, बालकको अपने शरीरका कितने ही दर्जे भोग देना पडता है इस कारणसे स्त्री स्थूल नहीं हो सक्ती । क्योंकि उसके शरीरको हरसमय परिश्रम पडता रहता है, बालकहीन स्त्रीको कुछ ऐसा परिश्रम नहीं पडता इससे उसका शरीर सदैव वृद्धिको प्राप्त होता जाता है । जिसका परिणाम पांच सात दश वर्षमें स्थूलता मेद वृद्धिकी व्याधि हो जाती है और वन्ध्या दोषवाली स्त्री अधिकांश भाग अनार्त्तव दोष पाया जाता है, प्रयोजन यह कि उसको रजोधर्मका रक्तस्राव अति न्यून आता है । इसी कारणसे उसका गर्भाशय जितना स्वभावके माफिक शुद्ध होना चाहिये उतना शुद्ध नहीं होता क्योंकि रजोधर्मका संपूर्ण रक्त निकल गर्भाशय तथा गर्भ अण्डके भागमें विशेष रक्तका संग्रह हो जाता है, इससे रक्तकी वृद्धि होती जाती है—स्त्रीकी स्थूलता भी इसीके साथ बढती जाती है, साधारण नियम ऐसा है कि वन्ध्यत्व दोष अथवा नष्टगर्भितव्यतावाली स्त्री अवश्य स्थूलताको प्राप्त होती है और स्थूलताको प्राप्त हुई स्त्रीको वन्ध्या होना अधिकांश संभव है, वन्ध्या दोष तो दूसरे अनेक कारणोंको लेकर होता है परन्तु रजोदर्शन कम होनेसे ही इस प्रसंग पर स्त्री वन्ध्या होती है और वही स्त्री पीछेसे स्थूलताको प्राप्त हो जाती है । जिस स्त्रीको अनार्त्तव दोष होता होय किन्तु गर्भ न रहता होय वह स्त्री स्थूलताको प्राप्त होती है और आर्त्तव आता होय शरीर फुर्त्तीला आलस्य विहीन होय ऐसी स्त्री स्थूल नहीं होती । इस स्थूलताकी व्याधिके कारण इस प्रकार हैं—कि रजोदर्शनकी न्यूनता इस स्थूलता होनेका शुरूसे ही बडा कारण है, गरीब परिश्रमी मेहनत करनेवाली स्त्रियोंकी अपेक्षा श्रीमन्त गृहस्थोंकी स्त्रियां अधिक स्थूल होती हैं । इसी प्रकार उद्योगी नियमपूर्वक बर्त्ताव करनेवाली स्त्रियोंकी अपेक्षा आरामसे बैठनेवाली, दिनमें सोनेवाली स्त्रियाँ विशेष स्थूल पाई जाती हैं ।

गर्भ अंडकी शिथिलता ।

गर्भ अण्डको जितना काम करना चाहिये उसकी अपेक्षा वह कुछ न्यून काम करे तब स्त्री स्थूल हो जाती है, ऋतुस्रावका होना यह गर्भ अण्डके ऊपर आधार रखता है, जो स्त्रीके गर्भ अण्डमे कुछ न्यूनता होय तो उस स्त्रीको ऋतुस्रावका रक्त थोड

आता है । जिस स्त्रीको ऋतुस्रावका रक्त थोडा आता है वही स्त्री स्थूल होती जाती है और प्रसूति रोगमें तथा गर्भस्रावको लेकर गर्भाशयके कितने ही रोग सूक्ष्मरूपमें रह जाना संभव है । जिससे ऋतुस्रावका रक्त कम आता है और जितना रक्तस्राव होना चाहिये उतना नहीं होता, कभी ऐसा होता है कि जो कुछ रक्तस्राव बहताहुआ दीखता है वह भी बन्द हो जाता है । रक्तस्राव बन्द होनेसे स्त्री स्थूल होती जाती है, इससे गर्भाधान भी ऐसी स्त्रीको नहीं रहता, परन्तु सब स्त्रियां एक समान नहीं होतीं। देखा जाता है कि कितनी ही स्थूल शरीरवाली स्त्रियोंको ऋतुस्राव बराबर आता है परन्तु गर्भ धारण नहीं करतीं और जान पडता है कि गर्भाशय तथा कमलमुखमें स्थूलताके कारणसे चर्बीकी विकृति है इसीसे पुरुषवीर्यको स्निग्ध चर्बी पकड नहीं सक्ती, यही कारण गर्भ न रहनेका जान पडता है। ऐसी स्त्री कुछ कालतक ऋतुस्नात्र होती हुई भी स्थूलताको प्राप्त होती जाती हैं, जिनका ऋतुस्राव बिलकुल ही बन्द हो जाता है ऐसी स्त्री अधिक स्थूल देखी जाती हैं । साधारण रीतिसे ३० वर्षकी उमर स्त्रीकी होय उसके पीछेसे ऋतुस्रावका रक्त स्वभावसे ही कुछ २ कम आने लगता है, इसके पीछे ही स्त्रीकी स्थूलता अधिक बढती जाती है । परन्तु शुद्ध वन्ध्यत्ववाली स्त्री इससे प्रथम ही स्थूल हो जाती है । स्थूलताको प्राप्त हुई स्त्री जैसी मोटी ताजी दीख पडती है वैसी ही कितनी ही शुद्ध स्त्रियां भी मोटी ताजी दीख पडती हैं । तब इसका विचार करना चाहिये कि स्त्री असलमें शुद्ध मजबूत बांधेकी है अथवा स्थूलताको प्राप्त हो गई है इस विषयका निर्णय नीचे लिखे प्रमाणसे ज्ञात हो सक्ता है ।

स्थूलता प्राप्त हुई स्त्रीका स्वरूप ।	शुद्ध मजबूत बांधावाली स्त्रीका स्वरूप ।
(१) स्त्री शरीरसे मोटी होती है, परन्तु प्रमाणमें पेट तथा कटिके पीछेका भाग अधिक मोटा चौंडा होता है, मुखका तथा हाथ पैरका भाग कम मोटा होता है ।	(१) स्त्रीका सब शरीर सम्पूर्ण रीतिसे समान और एक समान मोटा होता है ।
(२) शरीर कमजोर रहता है और स्त्रीको कामकाज करनेसे हंफनी आती है।	(२) शरीर ताकतदार होता है और अति जोरपूर्वक कामकाज करना पडे तो भी वह स्त्री हॅफती नहीं और मेहनतको पूरे तौरसे सहन कर सक्ती है ।
(३) रजोदर्शनका रक्तस्राव कम दीखता है और नष्टगर्भितव्यता अथवा शुद्ध वन्ध्यत्वके लक्षण होते हैं ।	(३) रजोदर्शनका रक्तस्राव बराबर नियमपूर्वक होता है और गर्भाशय शुद्ध रहता है सन्तानोत्पत्ति नियमपूर्वक होती रहती है ।

(४) शरीरमें केवल चर्वीकी वृद्धि होती है अन्य धातुओंको कम पोषण पहुँचता है ।	(४) सर्वधातुओंकी वृद्धि शरीरमें समान होती है सर्व शरीरके स्नायु प्रफुल्लित हुए रहते हैं ।
(५) शरीर पुलपुला गुलगुला जैसा लगता है ।	(५) शरीर मजबूत और कठिन लगता है ।
(६) नाडी कमजोर और मन्द चलती है ।	(६) नाडी जो जोशदार और तेज गतिके साथ चलती है ।
(७) शरीरका कोई २ भाग सूझा हुआसा माल्म होता है कहीं अधिक ऊंचा और कहीं अधिक नीचा ज्ञात होता है ।	(७) सम्पूर्ण शरीरकी मोटाई एक समान होती है और सर्वकाल एकसी ही रहती है ।
(८) पेटमें कुछ दर्द होता है और अजीर्णके चिह्न मिलते हैं और मस्तकमें चक्कर आता है ।	(८) वरावर शरीरसे तन्दुरुस्त रहती है और दूसरी किसी प्रकारकी भी विकृति शरीरमें नहीं होती ।

इस व्याधिके चिह्न यह हैं कि स्त्रीका शरीर अति स्थूल दीखता है और उसमें विशेष करके कमरके पीछे तथा पेटका भाग अधिक वढाहुआ दिखता है, पेट मोटा वडे घटके समान दीखता है सदैव अजीर्णकेसे चिह्न रहते हैं और दस्त कब्ज रहता है। ऋतुस्रावका रक्त वरावर साफ नहीं वहनेसे गर्भाशय शुद्ध नहीं होता और मस्तकमें चक्कर आया करते हैं, हाथ पैरोंपर किसी २ समय शोथ उत्पन्न हुआ है ऐसा माल्म होता है। ऐसी दशाके शोथको रस उतर आया है लोकमें ऐसा वोलते हैं । विशेष स्त्री पुरुष ऐसा ही मानते हैं, कितनी ही स्त्रियोंकी स्थूलता केवल कमरमें ही होती है और कितनी ही की केवल सांथलमें ही होती है, हाथ पैर मुलायम गुलगुले चर्वीमय दीख पडते हैं । सम्पूर्ण शरीरमें चर्वीकी वृद्धि जोशके साथ दीख पडती है और शरीरके दूसरे मर्म स्थानोंमें भी चर्वीका अधिक संग्रह दीख पडता है । इससे मर्मस्थान कमजोर हो जाते हैं, अपना काम वरावर नहीं करसक्ते हृदयमें अथवा कलेजेमें चर्वी विशेष करके जमती है और हृदय निर्वल पडनेसे स्त्रीको हफनी उत्पन्न हो जाती है और नाडीकी गति क्षीण होती है, किसी समय पर हाथ पैरोंमें दाह होता है, स्त्रीको प्रदरका रोग सदैव वना रहता है, वन्ध्या दोष अथवा नष्टगर्भितव्यता भी होती है । स्त्री आलस्यग्रस्त अजगरके समान हो जाती है, याने अपने शारीरिक कार्य्य करनेमें भी असमर्थता आ जाती है ।

मेदवृद्धिकी चिकित्सा ।

इसकी चिकित्सा यह है कि औषधोपचार आरम्भ करनेके प्रथम आहारविहारके नियमोंसे चलना अति आवश्यक है, स्वच्छ खुलीहुई वायुका सेवन करना, पैरोंसे भ्रमण करना, थोडा २ परिश्रम हररोज कर दिनपर दिन बढाते जाना, आलस्यग्रस्त होकर एकदम पडा न रहना चाहिये तथा रुक्ष और हलका आहार करना तथा भारी मिष्टान्न और अधिक घृतवाला आहार न करना चाहिये । औषधियोंका उपचार इस प्रकारसे करना चाहिये कि शरीरकी निर्बलता नष्ट होकर बल प्राप्त होवे । बल प्राप्तिके लिये लोहभस्मका सेवन करना । इसके सेवनके समयमें दस्त साफ आता रहे और ऋतुस्रावका रक्त भी साफ आवे ऐसी औषधियोंके संयोगके साथ लोहभस्म सेवन कराना उचित है । शुद्ध अनार्त्तवमें जो औषधियां ऋतुधर्म साफ लानेके वास्ते लिखी गई हैं उनको इस प्रसंगपर सेवन कराना योग्य है । स्थूलताको प्राप्त हुई स्त्रीको ऋतुधर्मके रक्तस्रावकी वृद्धि करनेके लिये नीचे लिखे अनुक्रमको काममें लाना अत्यन्त उचित है, चार पांच दिवसके अन्तरसे तीन चार दस्त आ जावें ऐसी औषध देना ठीक है । और आहार हलका व कुछ कम देना चाहिये । औषधोपचारके तरीकेसे चार व पांच दिवस आगेसे रोगीको (स्तेडा वाई कार्वोनास) एक दिवसमें ३ समय पांच पांच ग्रेनकी मात्रा देनी । (लायकवोर रोमोनिया ऐसीटेटीस) परिमित मात्रासे देना, अथवा नवसार भी इस कामके लिये उपयोगी है । स्थूलताको प्राप्त हुई स्त्रीको आहार कम देना और इसके साथ अलकली व पुटास—सोडा अथवा ऐमोनियाका क्षार देना उचित है कि आहारको शीघ्र पचा देवे । बाह्योपचारमें ऋतु लानेके लिये गर्म जलमें राई डाल कर उसमें स्त्रीके पैर रखवाना कमरके ऊपर गर्म जलका सेंक करना और पेडूके ऊपर कप (गिलास) लगाना । गिलास लगानेकी प्रक्रिया यह है कि काचका गिलास अन्दरसे साफ करके उसमें थोडासा ईथड चुपड लेवे और उसमें बत्ती लगावे कि ईथर बलने लगे तब शीघ्रतासे जहां लगाना होवे औंधा लगा देवे । ऐसा गिलास लगानेसे उस गिलासके अन्दर पवन न होनेसे शरीरके अन्दरका रक्त उस गिलासके भागके बीचमेंको खिंचेगा और वहां रक्तका संग्रह होगा और उस जगह पर गोलासा ऊपर आवेगा । इस करके उस भागका शोथ कुछ कम या ज्यादा कैसा मालूम होय सो पीछे परीक्षा करनी चाहिये । योनि ओष्ठके ऊपर अथवा बैठकके भागके ऊपर जलौका (जोंक) लगानेसे ऋतुस्राव विशेष आना संभव है । यदि ऋतुस्रावका रक्त बिलकुल बन्द हो गया हो तो ये सब औषधियां निरर्थक हैं । परन्तु जो ऋतुस्राव थोडा वहुत आता हुआ दीखता होय तो ये सब प्रयोग देकर आजमायश कर लेनी चाहिये कि इनसे साफ आता है कि नहीं,

जो इन औषध प्रयोगोंसे कुछ लाभ न दीखता हो प्रत्युत कुछ विघ्न पड़ते होवें तो इन उपचारोंको त्याग कर विचारना चाहिये कि अब ऋतुस्रावका आना बन्द हो जावेगा। योनिका धर्म जो सन्तान उत्पत्ति करनेका है वह नष्ट हो जावेगा। स्थूलताको प्राप्त हुई मेद वृद्धिवाली स्त्रीको ऋतुस्रावका रक्त साफ आनेके लिये नीचे लिखीहुई गोलियोंका प्रयोग उत्तम है।

उत्तम एलुआ १ तोला, फुलाई हुई हीराकसीस २ तोला, हीरा हींग ४ तोला, गुलाबका गुलकन्द जितना गोलियां बनानेके लायक दवा नर्म होवे उतना इस प्रमाणसे चारों औषध मिलाकर १ वाल (६ ग्रेनकी गोली) बना हररोज भोजनके अन्तमें एक गोली लेनी चाहिये। यदि प्रकृतिके अनुकूल पड़े तो २ से ३ गोलीतक लेना योग्य है, तीन गोलीतक लेनेमें कुछ हर्ज नहीं। यदि इस प्रयोगमें कुछ लोहभस्म भी संयुक्त किया जावे तो इसके संयोगसे कुछ अधिक लाभ पहुंचना संभव है, इस प्रकार औषध प्रयोगका उपचार करनेसे ऋतुस्रावका रक्त अधिक आता हुआ दीखेगा, चलने फिरनेको तथा आहार कम करनेकी प्रत्येक दिवसके वर्ताव नियमपूर्वक करनेसे तथा स्त्रीके शरीर और उसके शरीरके सब मर्मस्थान नियमपूर्वक काम करते हैं और उससे उसके शरीरमें हुई मेदकी वृद्धि न्यून होती है।

मेद वृद्धिरोगकी चिकित्सा एवं एकादशाऽध्याय समाप्त।

इति वन्ध्याकल्पद्रुम प्रथमभाग समाप्त।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना, कल्याण-मुंबई.
दूसरा पता-खेमराज श्रीकृष्णदास,
श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम् प्रेस-मुम्बई.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ वन्ध्याकल्पद्रुमः ।

द्वितीय भाग ।

द्वादशाऽध्यायारम्भ ।

डाक्टरीसे स्त्रियोंको प्रमेह रोगका निदान ।

कोई २ आचार्य स्त्रियोंको प्रमेह रोग होना नहीं मानते हैं, परन्तु यूरोपियन वैद्योंके सिद्धान्तमें स्त्रियोंको भी प्रमेहकी व्याधि होती है ऐसा माना गया है और हमारे भी सिद्धान्तमें स्त्रियोंको प्रमेह होना संभव है । आयुर्वेदमें प्रमेह स्त्रियोंके न होनेके विषयमें यह युक्ति दी है कि–

रजःप्रसेकान्नारीणां मासिमासि विशुद्ध्यति ।
कृत्स्नं शरीरं दोषाश्च न प्रमेहन्त्यतः स्त्रियः ॥ १ ॥

अर्थ–स्त्रियोंके प्रत्येक महीनेमें रजोधर्म होता रहता है, इसका कारण यह है कि उससे शरीरके सब दोष स्वच्छ रहते हैं, एवं स्त्रियोंको प्रमेह नहीं होता, अब यहाँपर यह संदेह होता है कि जिन स्त्रियोंको प्रत्येक मासमें रजोधर्म नहीं होता उन स्त्रियोंके दोष नहीं निकलते, किन्तु दोष संचित होकर प्रमेह होना संभव है । दूसरा संदेह यह है कि जिन आहारविहारोंके करनेसे पुरुषको प्रमेह होता है उनको स्त्रियां भी करती हैं जैसा कि–

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनी ग्राम्योदकानूपरसाः पयांसी ।
नवान्नपानं गुडवैकृतञ्च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥ १ ॥

अर्थ–बैठे रहनेके सुख निद्रासुख, दही, ग्राम्यजीवोंका मांस जलचर जीवोंका मांस अनूप देशके जीवोंका मांस, दूध, नवीन अन्नपान, गुडके विकार (गुडसे बने हुए यावत् पदार्थ) गुड और सम्पूर्ण कफकारक पदार्थ यह सब प्रमेह होनेके कारण हैं इनको सेवन करनेसे प्रमेह उत्पन्न होता है । इन आहार विहारोंको स्त्रियां भी करती हैं तो उनको प्रमेह होना संभव क्यों नहीं और सामान्य लक्षण जो आयुर्वेदमें प्रमेहके माने गये हैं (सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताऽऽविलमूत्रता) अर्थात् मूत्रकी

अधिकता और गदलापन होना यह प्रमेहका सामान्य लक्षण है, यह प्रायः कितनी ही स्त्रियोंके मूत्रमें लक्षण संघटित होता है । प्रत्यक्षमें देखा जाता है फिर क्या कारण कि पुरुषके समान स्त्रियोंको प्रमेह रोग होना न माना जाय। अनेक स्त्रियां प्रमेह रोगसे पीडित देखी गई हैं और प्रमेहसे उत्पन्न हुए कितने ही रोग जिनका उल्लेख नीचे किया जावेगा प्रत्यक्ष स्त्रियोंके शरीरम देखे जाते हैं। अब जिन जिन मर्मोंको प्रमेहसे हानि पहुँचती है उनका वर्णन किया जाता है । प्रमेह भी फलवाहिनी नलियोंको संकुचित करनेका मुख्य कारण है और फलवाहिनीकी नली संकुचित हो जावें तो इससे असाध्य वन्ध्या दोष प्राप्त होता है । स्त्रीको प्रमेह होनेसे कितने ही समय पेटके परदाका अथवा योनिमार्गका व गर्भाशयका शोथ उत्पन्न हो उसका असर फलवाहिनी शिरापर्य्यन्त पहुंचता हुआ वह दोष कुपित हो फलवाहिनीको दूषित कर देता ह, तथा गर्भ अण्ड और गर्भाशयके सम्बन्ध मार्गमें हानिकारक हो विघ्नरूप हो जाता है । प्रमेह स्त्री व पुरुषको चाहे जैसे हुआ हो तो उसके असरसे स्त्रीको गर्भाशयका शोथ उत्पन्न होता है और पुरुषको पीडिका उत्पन्न होती है.। यदि स्त्रीको प्रमेह अति तीक्ष्ण होय तो गर्भाशयका तीक्ष्ण शोथ उत्पन्न होता है, जो प्रमेह दीर्घ होय तो गर्भाशयका दीर्घ शोथ उत्पन्न होता है । कितनी ही स्त्रियोंको देखा गया है कि उनका प्रमेह विलकुल निवृत्त हो गया है और कोई लक्षण प्रमेहका नहीं दीख पडता, परन्तु उसके अदृश्य गुप्त जन्तु गर्भाशय अथवा अन्य मर्मस्थानोंमें पाये जाते हैं और उससे गर्भाशयका दीर्घ शोथ उत्पन्न हो जाता है और इससे असाध्य वन्ध्यत्व दोष स्थापित होता है । प्रमेहके दीर्घ असरसे नीचे लिखी हुई व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं, कितनी ही स्त्रियोंमें ये व्याधियां देखी गई हैं । (१) योनिमार्गका शोथ । (२) योनिमुखका शोथ और इससे उत्पन्न हुआ योनिमार्गका स्पर्शासह्य दोष । (३) मूत्रमार्गका शोथ व जखम । (४) कमलमुखका दीर्घ शोथ । (५) गर्भाशयके अन्तर्पिण्डका दीर्घ शोथ । (६) फलवाहिनीका दीर्घ शोथ । (७) गर्भ अण्डका शोथ । (८) वस्ति स्थानके भागमें आयेहुए पेटके पर्देका शोथ । (९) गर्भाशयके समीपवर्त्ती गभस्थानोंमें शोथ । (१०) विद्रधि (व्रद) (११) ऊपर लिखीहुई व्याधियोंमेंसे एकाध न्यूनाधिक कारणोंके साथ संयुक्त होनेके लिये इनसे उत्पन्न हुआ वन्ध्या दोष, अब यह सिद्ध हो गया कि प्रमेह भी वन्ध्या दोषका मुख्य कारण है । प्रमेह जिस जिस स्थितिमें होय उसका उसी स्थितिके अनुकूल उपाय करना उचित है, । प्रेमह शान्त होनेके पीछे जो उसकी विकृति होय उनका उपाय करना उचित है । प्रमेहकी व्याधिके लिये चन्द्रप्रभा वटी, लोहशिलाजतु, पारदशिलाजतु, वङ्गेश्वरवटी, रजत (चांदीकी भस्म, वज्राभ्रकी भस्म,

इत्यादि औषधियोंका सेवन कराना योग्य है । प्रमेहके कई भेद हैं उनके पृथक् २ लक्षण यहाँ लिखनेका अवकाश नहीं सो जिन ग्रन्थोंमें स्त्री पुरुषोंके संयुक्त रोगोंका वर्णन है वहां देखना उचित है और विशेष चिकित्साकी प्रक्रिया भी उन्हीं ग्रन्थोंसे करना योग्य है ।

स्त्री प्रमेह प्रकरण समाप्त ।

अश्मरी पथरीका निदान व चिकित्सा ।

आयुर्वेदमें जैसा स्त्रियोंको प्रमेहका होना निषेध किया गया है इस प्रकार स्त्रीका अश्मरी रोग होता है कि नहीं; इसका विधि निषेध नहीं देखा गया । परन्तु स्त्रियोंको अश्मरी रोग होता है, यह प्रत्यक्ष देखा गया है । बाद यूरोपियन वैद्य भी मानते हैं कि स्त्रियोंको अश्मरी रोग होता है । सुश्रुतमें अश्मरीके चार भेद किये हैं, जैसा कि–

चतस्रोऽश्मर्यो भवन्ति श्लेष्माधिष्ठानास्तद्यथा श्लेष्मणावातेन पित्तेन शुक्रेण चेति ॥ १ ॥

अर्थ–अश्मरी चार प्रकारकी होती है, कफज, वातज, पित्तज, वीर्य्यज इस रोगमें कफ प्रधान है तो वीर्य्यज अश्मरी तो स्त्रीको होना असंभव है, क्योंकि स्त्रियोंकी मूत्र नलीसे वीर्य्यका कुछ सम्बन्ध नहीं । (वात्तज, पित्तज, कफज, तीन प्रकारकी अश्मरी स्त्रियोंको होना संभव है) लेकिन इतना अवश्य है कि पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंको अश्मरी रोग कम होता है, अश्मरीके होनेमें सुश्रुत यह दृष्टान्त देता है ।

आमुखात्सलिले न्यस्तः पार्श्वेभ्यः पूर्य्यते नवः । घटो यथा तथा विद्धि बस्तिर्मूत्रेण पूर्य्यते । एवमेव प्रवेशेन वातः पित्तं कफोऽपि वा । मूत्रयुक्त उपस्नेहात् प्रविश्य कुरुतेऽश्मरीम् । अप्सु स्वच्छास्वपि यथा निषिक्तासु नवे घटे । कालान्तरेण पङ्कः स्यादश्मरी सम्भवस्तथा । संहन्त्यपो यथा दिव्या मारुतोऽग्निश्च वैद्युतः । तद्वद्बलासं बस्तिस्थमुष्मा संहन्ति सानिलः । मारुते प्रगुणे बस्तौ मूत्रं सम्यक् प्रवर्त्तते । विकारा विविधाश्चापि प्रतिलोमे भवन्ति हि । मूत्राघाताः प्रमेहाश्च शुक्रदोषास्तथैव च । मूत्रदोषाश्च ये केचिद्बस्तावेव भवन्ति हि ॥

अर्थ–जैसे मुखकी ओरसे जलमें रखा हुआ घट पसवाडेकी ओर भर जाता है इसी प्रकारसे बस्ति भी मूत्रसे भर जाती है । जैसे नूतन घटमें भरेहुए स्वच्छ निर्मल जलमें भी बहुत कालतक रहनेसे कीचड हो जाती है उसी प्रकारसे पथरी उत्पन्न हो

जाती है । अब इसके कठिन होनेका कारण दिखलाते हैं, जैसे मेघका जल वायु, सूर्य्य, और विद्युत (विजली) के संयोगसे कठोर अर्थात् ओला वर्फके समान हो जाता है इसी प्रकारसे वस्तिमें स्थित जो कफ उसको पित्त और वायु कठिन कर देते हैं । जब वायु अनुकूल होता है तब बस्तिमें मूत्र अच्छे प्रकारसे प्रवृत्त होता है और वायुके अनुकूल न होने पर अनेक प्रकारकी व्याधि उत्पन्न हो जाती हैं जैसे मूत्राघात प्रमेह और बहुतसे वीर्य्यके विकार और इसी रीतिसे वस्तिमें होनेवाले अनेक प्रकारके मूत्रदोष मूत्रकृच्छ्रादिक उत्पन्न हो जाते हैं ।

अश्मरी पथरी होनेके पूर्वमें ये उपद्रव होते हैं ।

तासां पूर्वरूपाणि बस्तिपीडारोचकौ मूत्रकृच्छ्रं बस्तिशिरोमुष्कशेफसां वेदना कृच्छ्राज्ज्वरावसादौ बस्तगन्धित्वं मूत्रस्येति । यथा संवेदना वर्ण दुष्टं सान्द्रमथाविलम् । पूर्वरूपेऽश्मनः कृच्छ्रान्मूत्रं सृजति मानवः ।

अर्थ-पथरी होनेके पूर्व ये लक्षण होते हैं-वस्तिमें पीडा, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, वस्तिके ऊपरके भागमें तथा वृषण और शिश्नेन्द्रियमें अधिक वेदना होती है, ज्वर, अङ्गग्लानि, मूत्रमें वकरेके मूत्रकीसी दुर्गन्ध होती है । अश्मरीके उत्पन्न होनेसे पूर्व वातादि दोषोंके अनुसार ही पीडा और रंग होते हैं । मनुष्य बडी कठिनतासे दूषित गाढा और कलुषित मूत्रोत्सर्ग करता है ये सब लक्षण पथरीके पूर्वरूपमें होते हैं ।

अश्मरीके सामान्य लक्षण ।

अथ जातासु नाभीबस्तिसेवनीमेहनेश्वन्यतमास्मिन्मेहतो वेदना मूत्रधारासङ्गः सरुधिरमूत्रता मूत्रविकिरणञ्च गोमेदकप्रकाशमनाविलं ससिकतं विसृजति धावनलङ्घनप्लवनपृष्ठयानाध्वगमनैश्चास्य वेदना भवति ।

अर्थ-पथरीके उत्पन्न होनेपर नाभि वस्ति गुदा और उपस्थेन्द्रियके बीचसे बनी अथवा शिश्नेन्द्रिय इनमेंसे किसी एकमें मूत्र करनेके समय वेदना होती है, मूत्रकी धारके संग रुधिरका आना मूत्रका खण्ड खण्ड होकर निकलना गोमेद मणिके समान स्वच्छ वालूकेसे कणोंसे युक्त मूत्रका होना । दौडने लांघने तैरने हाथी घोडेपर चढने अथवा मार्ग चलनेसे भी अत्यन्त वेदना होती है ये पथरीके सामान्य लक्षण हैं । विशेष लक्षण वात पित्त कफ इनके पृथक् पृथक् लक्षण कहे गये हैं उनके लिखनेकी अवश्यकता नहीं ।

यूरोपियन वैद्यलोग अश्मरी (पथरी) की व्यवस्था इस प्रकारसे मानते हैं-कि स्त्रीको किसी २ समय पथरी उत्पन्न हो जाती है, पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीको पथरी बहुत कम होती

है। उसके जैसे चिह्न पुरुषके होते हैं उनको देखा होय वैसे ही स्त्रीके होते हैं, परन्तु स्त्रीको निरन्तर पीडा अधिक होती है इसका विशेष विवरण आगे लिखा जायेगा ।

अश्मरीकी चिकित्सा ।

अश्मरीदारुणो व्याधिरन्तकप्रतिमो मतः । तरुणो भेषजैः साध्यः प्रवृद्धश्छेदमर्हति । तस्य पूर्वेषु रूपेषु स्नेहादिक्रम इष्यते ॥ १ ॥ पाषाणभेदो वसुको वशिरोऽश्मन्तको वरी । कपोतवङ्कातिबलाभल्लूकोशीरकन्तकम् ॥ ॥ २ ॥ वृक्षादनी शाकफलं व्याघ्री गुण्ठत्रिकण्टकम् । यवाः कुलत्थाः कोलानि वरुणं कतकात् फलम् ॥ ३ ॥ ऊषकादिप्रतीवापमेषां क्काथे शृतं घृतम् । भिनत्ति वात सम्भूतां तत्पीतं शीघ्रमश्मरीम् ॥ ४ ॥ वा० भ०

अर्थ--दारुणरूप पथरीकी व्याधि मृत्युके समान मानी गई है, तत्काल उत्पन्न हुई पथरी औषधियों करके सिद्ध हो सक्ती है।बाद प्रवृद्ध (बडी) हुई पथरी शस्त्र द्वारा छेदन करके निकालनेके योग्य है, इस पथरीके पूर्वरूपमें स्नेहादि कर्म वांछित (हितकारक) हैं । पाषाणभेद कल्मीसोरा, खारीनमक, आपटा, शतावरी, ब्राह्मी, गंगेरन, सोनापाठा, खस, कंतकफल, अमरवेल (आकाशवेल), शाकफल, कटेली, गुंठतृण, गोखुरू, जौ, कुल्थी, वेलगिरी, वरुणवृक्ष (बरना), कैथफल इनके क्काथमें ऊषकादि गणकी औषधियोंका कल्क मिलाकर उसमें गोघृत संयुक्त करके घृतपाककी विधिसे घृतको सिद्ध करे, यह पान कियाहुआ घृत वातसे उत्पन्न हुई पथरीको तत्काल भेदन करता है ॥ १–४ ॥

ऊषकादिगण ।

ऊषक सैन्धवशिलाजतुकासीसद्वयहिंगूनि तुत्थकं चेति । ऊषकादिः कफं हन्ति गणो मेदो विशोषणः । अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्रगुल्मप्रणाशनः ॥ ५ ॥

अर्थ–ऊषका एक प्रकारकी क्षार संयुक्त मृत्तिका (मिट्टी) है, किसी टीकाकारका मत है कि इस मृत्तिकामें उत्पन्न होनेवाली वनस्पति आदि द्रव्योंको ऊषका कहते हैं और किसीने ईखके मूलका ग्रहण किया है । लेकिन हमारे सिद्धान्तमें ऊषर भूमिमें उत्पन्न होनेवाली रेहू नामक मृत्तिका है, जो कि क्षार संयुक्त है और वस्त्रोंके मलको काटती है शायद पथरीके काटने व घुलानेका गुण भी इसमें होना संभव है। ऊषका, सेन्धानमक, शिलाजीत, कसीस, हीराकसीस, तुत्थ यह ऊषकादिगण कफका नाश करनेवाला मेदको सुखाता है, पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र गुल्म इनको नष्ट कर देता है ॥ ५ ॥

गंधर्वहस्तबृहती व्याघ्रीगोक्षुरकेक्षुरात् । मूलकल्कं पिबेद्दध्ना मधुरेणा-

श्मभेदनम् ॥ १ ॥ कुशः काशः शरो गुण्ठ इत्कटो मोरटोऽश्मभित् । दर्भौ विदारी वाराही शालिमूलं त्रिकण्टका ॥ २ ॥ भल्लूकः पाटली पाठा पत्तूरः सकुरण्टकः । पुनर्नवा शिरीषश्च तेषां क्वाथे पचेद्घृतम् ॥ ॥ ३ ॥ पिष्टेन त्रपुसादीनां बीजेनेन्दीवरेण वा । मधुकेन शिलाजेन तत्पित्ताश्मरीभेदनम् ॥ ४ ॥

अर्थ–अरंडकी जड, बडी कटेली (सफेद फूलकी कटेली) छोटी कटेली, गोखरू, काली ईखकी जड इनके कल्कको मीठे दधिके साथ पीवे तो पथरी कट जाती है । डाभ कास शर गुंठतृण, इत्कट, दूर्वा पाषाणभेद, सफेद डाभ, विदारीकन्द, वाराहीकन्द, चौलाईकी जड, गोखुरू, सोनापाठा, पाटला, पाठा, पतंग, कुरंटा, सांठ, शिरस इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर इनका क्वाथ करके क्वाथमें घृत मिलाकर पकावे । अथवा ककडी आदिके बीजों करके व कमल करके व मुलहटी करके व शिलाजीतके क्वाथमें किया हुआ घृत पथरीको काटता है ॥ १–४ ॥

वरुणादिः समीरघ्नो गुणावेला हरेणुका । गुग्गुलुर्मरिचं कुष्ठं चित्रकः ससुराह्वयः ॥ ५ ॥ तैः कल्कीतैः कृता वापं मूषकादिगणेन च । भिनत्ति कफजामाशु साधितं घृतमश्मरीम् ॥ ६ ॥

अर्थ–वरुणादि गण वीरतरु आदि गण और इलायची रेणुका गूगल, मिरच, कूट, चीता, देवदारु इनके कल्कों करके और ऊषकादि गणसे प्रतिभाविक करके सिद्ध कियाहुआ घृत कफकी अश्मरीको तत्काल काटता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

वरुणादिगण ।

वरुणार्त्तगलशिग्रुमधुशिग्रुतर्कारीमेषशृङ्गीपूतीकनक्तमालमोरटाग्निमंथसैरीयकद्वयविम्बीवसुकवसिरचित्रकशतावरी बिल्वाजशृङ्गीदर्भावृहतिद्वयं चेति ॥ वरुणादिर्गणो ह्येष कफमेदो निवारणः । विनिहन्ति शिरः शूलं गुल्माभ्यन्तरविद्रधीन् ॥ ७ ॥ ८ ॥

अर्थ–वरना नीलेफूलका पियावांसा, सफेद फूलका संहजना, रक्त फूलका संहजना, तर्कारी (अरनीके समान दूसरी बूटी है कोई वैद्य अरनीका ही रूपान्तर इसको मानते हैं कि अरनीमेंसे कुछ विकृति उत्पन्न होकर यह दूसरी जाति वन गयी है) मेढाशृंगी घृत करंज कंजा मूर्वा (मरोरफली) पियावांसा, कंदूरी (गोलकाकडी) वसुक (सफेद आक) वसिर (गजपीपल) चित्रक, शतावर, वेलगिरी, काकडाशृङ्गी,

डाभ दोनों कटेली छोटी बडी । यह वरुणादिगण कफ और मेद रोगोंको नष्ट करता है, शिरदर्द गुल्म और आभ्यन्तर विद्रधिको निवृत्त करता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

वीरतरुआदिगण ।

वीरतरुसहचरद्वयदर्भवृक्षादनीगुन्द्रानलकुशकाशाश्मभेदकाग्निमन्थमोरटावसुकवसिरभल्लुककुरुण्टकेन्दीवरकपोतवङ्काश्वदंष्ट्रा चेति ॥ वीरतर्वादिरित्येष गणो वातविकारनुत् । अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्राघातरुजापहः ॥ ९ ॥ १० ॥

अर्थ—त्ररवेल (वेल्लान्तर जगतिर्वीरतरुः) यह श्वेत रक्त पीत तीन रंगके पृथक् पृथक् पुष्पोंवाली वेल हिमालय पतन तथा पश्चिमीघाटके पर्वतोंमें होती है । यह कुछ वेल नहीं है परन्तु इसकी शाखा वेलके समान होती है विरुद्ध जातिमें नहीं किन्तु वृक्ष जातिकी वनस्पति है—नीले फूलका पियावांसा, पीले फूलका पियावांसा, डाभ (कुशा) वंदाक, पटेरा, नरसल, कास, श्वेत दर्भ, पाषाणभेद, अरनी, मोरटा, सफेदआक, गजपीपल, स्यौनाक (सोनापाठा) सिखालिका, इन्द्रीवर यह एक बडे २ पत्र और अनेक फलवाला वृक्ष हिमालयकी तराईमें होता है उस प्रान्तके लोग इसको इंदुवर बोलते हैं । किसीके मूत्रका अवरोध होता है तो इसकी छालका काढा करके पिलाते हैं ब्राह्मी, हुलहुल, गोखरू, इसीको वीरतर्वादिगण कहते हैं । यह वातजन्य विकारोंको नष्ट करता है पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, इत्यादि रोगोंको नष्ट करता है ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ये प्रयोग पुरुष व स्त्री दोनोंकी पथरीको जो कि नवीन उत्पन्न हुई होय लाभ पहुंचा सक्ते हैं, बहुत लोगोंको यह भ्रम होगा कि शस्त्रक्रिया और यन्त्रोंसे पथरी निकालनेकी तरकीव यूरोपके वैद्यों (डाक्टरोंने) निर्माण की है सो यह भ्रम उन सज्जनोंका निर्मूल है, क्योंकि भारतवर्षीय आर्य्य वैद्योंने इस समयसे कितने ही सहस्र वर्ष पूर्व पथरी निकालनेके शस्त्र तथा छेदन करके पथरीको बाहर निकाल लेनेकी क्रिया लाभ की थीं, यूरोपके वैद्य इस क्रियाका अनुकरण लेकर ही पथरी निकालनेकी प्रक्रिया तथा अनेक शस्त्र यन्त्र निर्माण आर्य्य वैद्योंसे बहुत काल पीछे किये हैं इसका प्रमाण वाग्भट्ट है जैसा कि—

वाग्भट्टसे—छेदन करके शस्त्रद्वारा पथरी आकर्षण करनेकी विधि ।

सिद्धैरुपक्रमैरेभिर्न चेच्छान्तिस्तदा भिषक् । इति राजानमापृच्छ्य शस्त्रं साध्ववचारयेत् ॥ १ ॥ अक्रियायां ध्रुवो मृत्युक्रियायां संशयो भवेत् । निश्चितस्यापि वैद्यस्य बहुशः सिद्धकर्मणः ॥ २ ॥ अथातुरमुपस्निग्धं

शुद्धभीषच्च कर्शितम् । अभ्यक्त स्विन्नवपुषमभुक्तं कृतमंगलम् ॥ ३ ॥ आजानुफलकस्थस्य नरस्याङ्के व्यपाश्रितम् । पूर्वेण कायेनोत्तानं विषण्णं वस्त्रचुम्मले ॥ ४ ॥ ततोऽस्याकुञ्चिते जानुकर्परे वाससा दृढम् । सहाश्रयमनुष्येण बद्धस्याश्वासितस्य च ॥ ५ ॥ नाभेः समन्तादभ्यज्या-दधस्तस्याश्च वामतः । म्रदित्वा मुष्टिना कामं यावदश्मर्यऽधोगता ॥ ६ ॥ तैलाक्ते वर्द्धितनखे तर्ज्जनीमध्यमेंऽततः । अदाक्षिणे गुदेऽङ्गुल्यौ प्राणी-छायानुसेवनीम् ॥ ७ ॥ असाद्य बलयं नाभ्यामश्मरीं गुदमेढ्रयोः । कृत्वान्तरे तथा बस्तिं निर्बली कमनायतम् ॥ ८ ॥ उत्पीडयेदङ्गु-लिभ्यां यावद्ग्रन्थिरिवोन्नतम् । शल्यं स्यात् सेवनी मुक्त्वा यवमात्रेण पाटयेत् ॥ ९ ॥ अश्ममानेन न यथा भिद्यते सा तथा हरेत् । समग्रं सर्पवक्रेण स्त्रीणां बस्तिस्तु पार्श्वगः ॥ ॥ १० ॥ गर्भाशयाश्रयास्तासां शस्त्रमुत्सङ्गवत्ततः । न्यसेदतोऽन्यथा ह्यासां मूत्रस्रावी व्रणो भवेत् ॥ ११ ॥ मूत्रप्रसेकक्षरणान्नरस्याऽ-प्यपि चैकधा । बस्तिभेदोऽश्मरीहेतः सिद्धिं याति न तु द्विधा ॥ १२ ॥ विषल्यमुष्णपानीयद्रोण्यान्तमवगाहयेत् । तथा न पूर्य्यतेऽस्त्रेण बास्तिः पूर्णेतु पीडयेत् ॥ १३ ॥ मेढ्रतः क्षीरिवृक्षाम्बुसूत्रं संशोधयेत्ततः । कुर्य्या-द्गुडस्य सौहित्यं मध्वाज्याक्तव्रणः पिबेत् ॥ १४ ॥ द्वौ कालौ सघृतां कोष्णां यवागूं मूत्रशोधनैः । त्र्यहं दशाहं पयसा गुडाढ्येनाल्पमोदनम् ॥ भुञ्जीतोर्ध्वं फलाम्लैश्च रसैर्जाङ्गलचारिणाम् ॥ १५ ॥ क्षीरिवृक्षकषा-येण व्रणं प्रक्षाल्य लेपयेत् । प्रपौण्डरीकमाञ्जिष्ठायष्ठ्याह्वनयनौ-षधैः ॥ १६ ॥ व्रणाभ्यङ्गं पचेत्तैलमेभिरेव निशान्वितैः । दशाहं स्वेदयेच्चैनं स्वमार्गं सप्तरात्रतः ॥ १७ ॥ मूत्रत्वं गच्छति दहे-दश्मरीव्रणमग्निना । स्वमार्गप्रतिपत्तौ तु स्वादुप्रायैरुपाचरेत् ॥ १८ ॥ तं बस्तिभिर्न चारोहेद्वर्षं रूढव्रणोऽपिसः । नगनागाश्ववृक्षस्त्रीरथान्नाप्सु प्लुवेत सः ॥ १९ ॥ मूत्रं शुक्रवहौ बस्तिबृषणौ सेवनीं गुदम् । मूत्रप्र-सेकं योनिं च शस्त्रेणाष्टौ विवर्जयेत् ॥ २० ॥

अर्थ—जो सिद्धरूप इन चिकित्साओं करके रोगकी शान्ति न हो तो कुशल वैद्य वक्ष्यमाण प्रकारसे राजाकी आज्ञा लेकर सुन्दर प्रकारकी शस्त्रक्रियासे पथरीको निकाले, क्योंकि हे राजन् क्रिया नहीं करनेमें निश्चय मृत्यु होगी और क्रिया करनेमें निश्चित क्रिया करनेवाला अनेक बार जिसने शस्त्रक्रियासे पथरीको निकाला है ऐसे वैद्यको भी संशय होता है पीछे उपस्निग्ध, शुद्ध कुछ कर्शित, और अभ्यक्त तथा स्वेदित शरीरवाला, निराहार, बलि हवनादि मंगल कर्मोंको करनेवाला, पैरों पर्य्यन्त फलक अर्थात् आसन विशेषमें स्थित हुए दूसरे मनुष्यकी गोदमें आश्रित हुआ पूर्वसंज्ञक अर्थात् ऊपरके शरीरसे सीधा हुआ, वस्त्रके चुंमल अर्थात् इडुआपर बैठा हुआ ऐसे उस पथरीवाले रोगीको स्थित करके पीछे उस रोगीके कुछेक कुटिलरूप पैर कोहनीको दोनों पैरोंके नीचेसे निकालकर दृढरूप वस्त्रसे बांध देवे। आश्रयवाले मनुष्यसे आश्वासित किया हुआ ऐसे उस रोगीकी नाभिके सब ओर नीचेको कोमल हाथोंसे मालिस करे, पीछे उसकी नाभिक वामे पार्श्वमें मुष्टि करके इच्छाके अनुसार मर्दन करे जब पथरी नीचेको सरक आवे तब तैलसे भिगोईहुई बढेहुए नखवाली वामें हाथकी तर्जनी अंगुली और मध्यमा अंगुलीको गुदामें प्रवेश करे, पीछे सीमनको और वलयको तथा नाभिको प्राप्त होकर पथरीको नीचेके भागमें बस्तिके मुखपर लाकर गुदा और उपस्थेन्द्रियके बीचमें निर्वलिक और विस्तारसे रहित है। ऐसी तरहसे बस्तिस्थानको करके पीछे दोनों अंगुलियोंसे पथरीको ऊंची करे, जैसे कि गांठ निकलती हुई दीख पडती है। पीछे सीमनके वायीं ओरको जौके समान सीमनके स्थानको छोडकर पथरीके अनुमान उस उठीहुई जगहके जहाँ पथरी स्थिर की गई है शस्त्रके द्वारा चीर देवे। परन्तु एसी विधि करे, जिससे वह पथरी टूट न जावे। और सर्पके फण सरीखेके यन्त्रसे सावित पथरीको निकाल लेवे, क्योंकि टूटीहुई पथरी पुनः बढ जाती है। स्त्रियोंका बस्तिस्थान पार्श्वमें प्राप्त होनेवाला और गर्भाशयके आश्रित ऐसा होता है, इस कारणसे उन स्त्रियोंको उत्संगकी तरह नीचेके शस्त्रका पात करावे यदि ऐसा न करे तो उन स्त्रियोंके मूत्रको झिरानेवाला जखम उत्पन्न हो जाता है, मूत्रका प्रसेक झिरनेसे ऐसे ही पुरुषको भी मूत्रस्रावी घांव उत्पन्न होता है। एक प्रकारसे अश्मरी हेतुवाला बस्ति भेद सिद्धिको प्राप्त होता है दो प्रकारवाला बस्तिभेद सिद्धिको प्राप्त नहीं होता पथरीको निकालने पीछे उस रोगीको गर्म जलसे भरीहुई देग व नांदमें स्नान करावे, स्नान करनेके पीछे बस्तिस्थान रक्तसे पूरित नहीं होता कदाचित दैव बसात् रक्तसे बस्ति पूरित हो जावे तब दूधवाले वृक्षोंके क्राथसे उत्तर बस्तिकी क्रिया करे। दूधवाले वृक्ष (वट, पीपल, पिलखन, गूलर, अंजीर) उत्तर बस्तिकी क्रिया करके पश्चात् मूत्रकी शुद्धिके अर्थ गुडसे तृप्तिको करे.

और शहद तथा घृतसे अभ्यक्त हुए घाववाला रोगी मनुष्य दोना समय घृतसे संयुक्त और कुछ गर्म ककडी कूष्माण्ड, गोखुरू इनसे वनीहुई यवागूको पीवे तीन दिवस पर्यन्त अतिगुड मिलेहुए दूधके साथ थोडे चावलोंका भोजन करे, दश दिवसके पश्चात् जंगलमें विचरनेवाले जीवोंके मांसका रस, अनार, विजौरा आदि खट्टे रसोंसे अल्प संयुक्त चावलोंका आहार करे दूधवाले वृक्षोंके क्राथसे घावको प्रक्षालन करके पीछे पौंडा, कमल मंजिष्ठ, मुलहटी लोध इनका लेप करे इन्हीं औषधियोंमें हल्दी मिलाकर मीठा तैल सिद्ध कर घावपर लगावे ऐसे इस घावको दश दिवस पर्यन्त स्वेदित किये पीछे यदि अपने मार्गमें मूत्र न जावे तब सात रात्रिके पीछे अग्निसे पथरकि घावको दग्ध करे और मूत्र अपने मार्गमें प्रवृत्त हो जावे तव विशेषतासे मधुर पदार्थोंसे संयुक्त की हुई उत्तर वस्तिसे उस रोगीको उपचारित करे अंकुरित घाववाला भी यह पथरीका रोगी एक साल पर्य्यन्त पर्वत, हाथी, घोडा, ऊंट आदिकी सवारी तथा वृक्षपर न चढे, रथ, गाडी आदि पर भी न चढे और स्त्री समागमसे बचता रहे जलमें न तैरे । मूत्रको वहानेवाला वस्तिस्थान और वीर्यको वहानेवाले दोनों वृषण सीमन गुदा, मूत्र प्रत्येक पानी इन आठोंको शस्त्र करके वर्जित करे ॥ १–२० ॥

डाक्टरीसे पथरीका निदान तथा चिकित्सा ।

ऊपर लिख चुक हैं कि यूरोपियन वैद्याके सिद्धान्तमें पथरीका रोग स्त्रियोंको अवश्य होता है, परन्तु पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंको कम होता है । जवान पुरुषोंकी अपेक्षा बालकोंको अधिक होता है कारण कि बालकोंके मूत्रका मार्ग बहुत छोटा होता है, स्त्रियोंकी मूत्र नलीकी लम्बाई छोटी और चौंडी होती ह इसी कारणसे उनको पथरीका रोग कम होता है, परन्तु भारतवर्षके कई प्रान्तोंमें प्राय: यह रोग अधिकतासे पाया जाता है । दक्षिण भारतकी अपेक्षा गुजरात काठियावाड मालवा, सिन्ध हालार झालावाड इन प्रान्तोंमें यह रोग अधिक होता है, इन्हीं प्रान्तोंकी स्त्रियोंक यह रोग पाया जाता है । यूरोपियन वैद्योंके सिद्धान्तमें मूत्रमेंसे पथरी उत्पन्न होती है उसको मूत्राश्मरी कहते हैं और मूत्रमें स्वाभाविक क्षार होता है उसमें अधिकता होनेसे अथवा दूसरा नवीन क्षार उत्पन्न होकर उसकी पथरी बँधने लगती है और वह धीरे धीरे मोटी होती जाती है । पथरी उत्पन्न होनेका मूलकारण पूर्णरीतिसे नियत करनेमें नहीं आता कि अमुक पुरुष बालक व स्त्रीको किस कारणसे आरंभमें यह उत्पन्न होना शुरू हुई, क्योंकि एक घरमें अनेक स्त्री पुरुष बालक सब एकसा ही आहार विहार व एक ही कूप, तालाव, व झरने, नदी, नहर आदिका जल पान करते हैं । फिर सबको छोडकर एकाध स्त्री, पुरुष, बालककी बस्तिमें इसकी उत्पत्ति होने लगती है ।

परन्तु कितने ही शारीरिक विद्याके ज्ञाताओंका ऐसा सिद्धान्त है कि पथरीका मूल-कारण रक्तविकार और पाचनमें विकृति होनेसे इसकी उत्पत्ति होती है । पाचन शक्तिमें अंतर पडनेसे मूत्रमें क्षारका भाग विशेष आता है, उसको दूसरे अनुक्रमका योग मिलनेसे उस क्षारका कुछ समुदाय एकत्र होकर वह स्थूल स्थितिमें बंधने लगता है, एक समय यह स्थूल रूप धारण करे इतनेमें उसके ऊपर मूत्रमेंसे दूसरी थर (क्षारकी मलाइ) पानीकी तहपर तह जमती जाती है, जिस देशमें विशेष पत्थर व रेतीली जमीन होती है वहांके जलमें भी अन्यत्रके जलकी अपेक्षा क्षारका भाग अधिक होता है । वहां इस रोगकी उत्पत्तिका प्रबल प्रवाह रहता है और कितने ही प्रान्तोंमें पथरीका रोगी बिलकुल नहीं देखा जाता । पथरी मुख्य करके तीन प्रकारके क्षारकी बँधती है (१ लीथीक, अथवा युरीक) २ फासफ्याटिक, ३ ओक्षालीक । लीथीक क्षारकी पथरी प्रायः बालकोंको ही होती है, अथवा तरुणावस्थाके पुष्ट मनुष्यको भी होती है । जिस मनुष्यकी प्रकृति सन्धिवायु तथा (गाउट) ऊपरको जाती होय उस मनुष्यको यह विशेष होती है, लीथीक एसिडकी पथरी प्रायः छोटी व चिकनी कठिन गोलाकार चपटी होती है, ज्वरकी दशामें लीथीक एसिड मूत्रमें विशेष जाता है इससे ज्वरकी दशामें मूत्रका लाल रंग होता है । ऐसे मूत्रके रखनेसे मूत्रके वर्त्तनके पेंदेमें ईंटका बारीक रेत होता है उसी माफिक तह जम जाती है । फासफ्याटिक अश्मरी मोटी व मुलायम (नर्म) होती है, उसके शीघ्र टुकडे २ हो जाते हैं इस जातिकी पथरी कमजोर मनुष्यको होती ह । यदि मूत्राशयकी व्याधिमें इस क्षारकी उत्पत्ति और संग्रह विशेष करके देखनेमें आता ह । और ओक्षालिकअश्मरी भूरे अथवा काले रंगकी होती हैं उसकी सपाटी खुरखुरी व ऊंचे नीचे अंकुरोंवाली कंकडके समान होती है और कभी २ ठीक गोखरूके आकारकी भी देखी गई है, यह भी निर्बलस्थितिके मनुष्यको विशेष होती है । पथरीवाले मनुष्यके मूत्रको कुछ घंटे तक रखकर देखा जावे तो परीक्षा करनेसे उसमें रेत तथा सूक्ष्म कणका कंकरीके निकलते हैं और बर्त्तनके नीचे मालूम पडते हैं । पथरी होनेके आरम्भमें अथवा पथरी बंधनेसे प्रथम ऐसा मूत्र आता हो तब योग्य चिकित्सा करनेमें आवे तो उसका निवारण हो जाता है । यदि एक समय पथरी बंधजावे तो पीछे उसके गलानेका इलाज करनेसे कुछ फल नहीं होता ।

रेतीका उपाय ।

यदि अश्मरी उत्पन्न होनेके आरम्भमें निश्चय हो जावे तो रोगीको शक्कर, खांड, इत्यादि गलित वस्तु तथा मद्य (शराब) मिरचादि गर्म पदार्थोंका खाना बन्द करा केवल सादा हलका आहार उसको करना चाहिये । साफ खुली हवाका सेवन करना, कूद

फांदको छोडकर योग्य व्यायाम (कसरत) करनी चाहिये, अश्मरी होनेके आरम्भमें मूत्र करनेके समय दाह होता हुआ मूत्रका रंग कुछ अधिक पीला होता है। औषधियोंमें प्रवाही पदार्थ अधिक पीना चाहिये दूध, जल अथवा दूध और जलको मिश्रित कर लस्सी बनाके पीवे अलसीको पका उसके काढेमें दूध मिलाकर दिनमें कई वार पीवे (लीथीकएसिड) के रेतके ऊपर (वायकार्वोनेटओफ) पुटास देनेसे उत्तम लाभ पहुँचता है।

प्रयोग।

वायकार्वोनेटओफ पुटास ४० ग्रेन, जल ४ ओंस दोनोंको मिलाकर ४ भाग बना १ दिनमें ४ घंटेके अन्तरसे ४ समय पीवे। वायकार्वोनेटओफ पुटास जठराग्निको मन्द करता है इस कारणसे अधिक दिवस पर्य्यन्त इसका सेवन करना अहित है, इसलिये नीचेकी दवाका प्रयोग देना योग्य है। वायकार्वोनेटओफ पुटास ३० ग्रेन, सोराक्षार १० ग्रेन, साईट्रीकएसिड १५ ग्रेन, इन औषधियोंको १२ ओंस जलमें मिलाकर दिनमें ४ व ५ समयमें पीवे। साइट्रेट ओफ पुटास, वायकार्वोनेटके समान तो गुण नहीं करता किन्तु रोगी मनुष्यकी प्रकृतिको अधिक अनुकूल पडता है और इसका सेवन भी अधिक समय पर्य्यन्त करनेसे किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचती। साईट्रेटओफ पुटास ४५ ग्रेन, जल तीन ओंस दोनोंको मिलाकर ३ भाग कर दिनमें ३ समय पिलावे। दस्त साफ लानेके वास्ते हलका जुलाब देते रहना, सीडलीझ पाउडर, ग्रेगरीझपाउडर अथवा एपसम्साल्ट ऊपरकी किसी औषधके साथ मिलाकर देना उचित है अथवा एपसम्साल्ट ४ से ६ ड्राम पर्य्यन्त, लाडेनम १० विन्दु टींकचरबेलेडोना २० विन्दु, साइट्रेटओफ पुटास ३० ग्रेन, साफ जल ४॥ ओंस ऊपरकी सब औषधें मिलाकर एक दिवसमें तीन समय पिलावे। लीथीयावाटर पनिसे भी कितने ही वार इस रोगीको लाभ पहुँचा है, यदि इन औषधियोंसे लाभ न होय और जो अश्मरी फासफाटीक अथवा ओक्षालीक होय तो नाईट्रीक ऐसिड देनेसे फायदा पहुंचता है।

नाइट्रोम्युरीयाटीकऐसिडडील्युट २० टीपा (विन्दु) चिरायताका काढा ३ ओंस—इनको मिलाकर ३ भाग करे और १ दिवसमें ३ समय पीवे—डील्युटनाईट्रीकऐसिड ३० टीपा (विन्दु) लीकरस्ट्रीकन्या १५ टीपा जल ३ ओंस इनको मिलाकर ३ भाग करे और दिनमें ३ समय पीवे यदि बनसके तो अश्मरी रोगीको जल वायु परिवर्त्तन कराना योग्य है मूत्रकी पथरी ३ स्थलपर मिलसक्ती है कभी मूत्रपिण्डमें होती है कभी मूत्रमार्गमें होती है—परन्तु अधिक करके मूत्रमार्गमें मिलती है, स्त्री वा पुरुष व बालक किसीके भी पथरी हो उसको

निकालनेके सिवाय अन्य उपाय नहीं है, परन्तु यह जरूरी बात है कि छ व सात रोगियोंमेंसे पथरी निकाली जावे तो १ मृत्युको अवश्य प्राप्त होता है। बालकोंकी पथरी निकालनेमें त्युकी संख्या कम होती है और जैसे २ बडी उमरका मनुष्य हो तैसे २ मृत्युकी संख्या बढती जाती है, यदि पथरी अधिक मोटी हो तो मरनेका भय अधिक है पथरी निकालनेके पीछे कितने ही कारणोंसे मृत्यु होती है काटनेके सबबसे रक्त अधिक निकल जानेसे पेटके अन्दर सूझन उत्पन्न होनेसे अथवा मूत्राशयमें सूझन हो जाता है इन कारणोंसे प्रायः मृत्यु हो जाती है। पथरी निकालनेमें जोखम भी शरीरके कर्मको पहुँचती है कई बार सफरा गुदाका भाग गंभीर छेद करनेसे कट जाता है अथवा उसको ईजा पहुँचनेसे थोडा भाग नष्ट हो जाता है इससे मलमूत्रका रस्ता एकत्र हो जाता है। मलद्वारके समीप काटा गया हो तो वह विशेप करके जखमके साथ ही रुजता है यदि मलमार्गमें काट ऊँचा हुआ हो तो वह विशेष करके रुजनेमें नहीं आता दस्तके मार्गसे व दस्तके समय मूत्र आने लगता है उसको निवृत्त करनेके लिये अन्दरके छिद्रसे मलद्वार पर्य्यन्त सब भाग काटना पडता है। सो पथरीकी शस्त्रक्रियामें कई प्रकारकी जोखम रहती है यह ग्रन्थ स्त्री चिकित्साका है सो स्त्रियोंकी पथरी निकालनेकी प्राक्रिया नीचे लिखी जाती है। पूर्व वाग्भट्टसे जो अश्मरी निकालनेकी प्रक्रिया लिखी गई है वह पुरुप अश्मरीसे सम्बन्ध रखती है लेकिन यह दिखलाया गया है कि भारतवर्षीय वैद्य भी कई सहस्रवर्ष पूर्व अश्मरी शस्त्र क्रियासे निकालते थे। वाग्भट्टसे जो अश्मरीके औषध प्रयोग लिखे गये हैं वे स्त्री पुरुष बालक तीनोंके काममें आ सक्ते हैं।

स्त्रीकी–शस्त्रयन्त्रद्वारा अश्मरी आकर्षण करनेकी विधि।

(१) मूत्रमार्गको चौडा करके पथरी पकडनेके चीमटासे पथरीको निकाललेना मूत्रमार्गको चौडा करनेके लिये मूत्रमार्गमें थोडे समय पर्य्यन्त स्पेंजका टुकडा टेंटके समान रखना पडता है अथवा तीन पंखवाला यंत्र (हथियार–औजार) आता है उसको मूत्रमार्गमें प्रवेश करके स्क्रूल फिराकर उसकी पाखियाँ पृथक् पृथक् करके उस यन्त्रको मूत्रमार्गमें स्थिर रक्खे इससे मूत्रमार्ग चौडा होता है पीछे चौडी हुई मूत्रमार्गकी नलीमें पथरी पकडनेका चीमटा प्रवेश करे साधारण कदकी पथरी होय तो वह इस प्रक्रियासे निकल आती है यद्यपि पथरी जरा मोटी हो तो नीचेको बाहरकी तर्फ थोडा काटकर छिद्र चौडा करना पडता है। (२) यदि पथरी मोटी हो मूत्रमार्गकी नलीके द्वारा न निकल सक्ती हो तो योनिके अन्दर अर्द्ध भा[illegible] छिद्र करके निकाल उस भागके जखमको सी देना चाहिये। (३[illegible] माफिक पथरीको मूत्राशयके अन्दर तोड उसके सूक्ष्म टुकडे [illegible]

हानि पहुंचनेसे लज्जाकी मारी इस दुष्ट व्याधिको छिपा किसीसे जिकर तक नहीं करतीं, बाद इसी व्याधिके चंगुलमें पडकर मृत्युका ग्रास वन जाती हैं याने अपने स्त्रीपनको तथा शीलधर्मको लांछन लगा समझतीं हैं) ।

अर्थ—स्त्रीकी योनिमें अथवा योनिमुख व योनिओष्ठ पर श्याववर्णकी फुंसी (गुमडी) व चांदी होवे उनमें सूई चुभनेकीसी पीडा होय, अथवा फोडनेकीसी पीडा हो योनिमें स्फुरण होवे उसको वातकी उपदंश कहते हैं । पित्तज उपदंशमें पीले रंगकी गुमडी व व्रण होवें उनमेंसे अधिक मवादका स्राव व दाह होता है । रक्तज उपदंशकी चांदी लाल रंगकी होती है । कफज उपदंशमें सफेद व बडे व्रण होते हैं अधिक समयमें पकते हैं उनमें खुजली शोथ और गाढा स्राव होता है जखम चारों ओरसे सफेद और पीवस भरे रहते हैं और जखमोंमें सुरसुराहट हुआ करती है । वात पित्त कफ तीनों दोषोंकी मिली हुई उपदंशमें नानारंगका स्राव और कई प्रकारकी पीडा होती है यह उपदंश अति दूषित कष्टसाध्य समझी जाती है । जो मूढ स्त्री पुरुष उपदंश होनेपर भी विषय भोग किया करते हैं उनकी उपस्थेन्द्रियमें सडाव पड कृमि उत्पन्न हो जाते हैं, जखमामेंसे दुर्गन्ध आने लगती है । स्त्रीकी योनिके दोनो ओष्ठ योनि लिङ्ग तथा योनिमुख भृंश हो जाता है, किसी २ स्त्रीकी योनि व गुदाके बीचका पर्दा सडकर जखम हो जाते हैं और कालान्तरमें उन जखमोंमेंसे गुदाका मल योनिमेंसे आतेहुए देखा गया है ।

आयुर्वेदसे उपदंशकी चिकित्सा ।

साध्य उपदंश रोगी स्त्रीकी योनिको स्वेदन और स्नेहन करके जलौका (जोक) योनि ओष्ठपर लगाके दूषित दोपको निकाल देवे जिससे बढाहुआ दोप निर्बल पड जावे । वमन और विरेचनसे रोगीके शरीरको शुद्ध करे दोषोंकी लघुता होनेसे दाह पाक पीडा स्राव शीघ्र शांत हो जाता है । यदि उपदंश रोगी निर्बल होय और वमन विरेचनको सहन न करसके तो उसके अत्यन्त बढेहुए दोपोंके निरूहण बस्तिके द्वारा हरण कर जखमोंको सदैव शुद्ध करे । सडेहुए भागको प्रत्येक दिवस स्वच्छ कर दिया करे, यदि जखममें जन्तु पडगये हों तो नीमादिके ऊष्ण जलसे प्रच्छालन किया करे । यदि वातजन्य उपदंशमें जखम अति दूषित हो गये हों तो नीचे लिखाहुआ लेप करनेसे जखम शुद्ध हो जाते हैं ।

प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वसरलागरुदारुभिः । सरास्नाकुष्ठपृथ्वीकैर्वातिके लेपसेचने ॥ १ ॥ निचुलैरण्डबीजानि यवगोधूमशक्तवः । एतैश्च वातजं स्निग्धैः सुखोष्णं संप्रलेपयेत् ॥ २ ॥ पद्मोत्पलमृणालैश्च ससर्जार्जुन-

वेतसैः । सर्पिः स्निग्धैः समधुकैः पैत्तिकं संप्रलेपयेत् ॥ ३ ॥ शालाजकर्णाश्वकर्णधवत्वग्भिः कफोत्थितम् । सुरापिष्टाभिरुष्णाभिः सतैलाभिः प्रलेपयेत् ॥ ४ ॥ निम्बार्जुनाश्वत्थकदम्बशालाजम्बूवटोदुम्बरवेतसैश्च । प्रक्षालनालेपघृतानि कुर्य्याच्चूर्णञ्च पित्तास्रभवोपदंशे ॥ ५ ॥ त्वचो दारुहरिद्रायाः शंखनाभिरसांजनम् । लाक्षा गोमयनिर्य्यासं तैलं क्षौद्रं घृतं पयः ॥ ६ ॥ एभिस्तु पिष्टैस्तुल्यांशैरुपदंशं प्रलेपयेत् । व्रणाश्च तेन शाम्यन्ति श्वयथुर्दाह एव च ॥ ७ ॥ शस्त्रेणोपचरेच्चापि पाकमागतमाशु च । तमपोह्यमथो सर्पिः क्षौद्रयुक्तैः प्रलेपयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—वातजन्य उपदंशमें पुंडेरिया, मुलहटी, धूपसरल, अगरु—देवदारु, रायसण, कूट इलायची इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक कल्क उपदंशके जखमोंपर लेप करे और औषधियोंके काथसे जखमोंको हररोज धोवे । जलवेत, अरण्डके बीज, जौ, गेहूँ, दोनों सत्तू इन सबको समान भाग लेकर सबको अति बारीक पीस डाले और घृतसे स्निग्ध करके कुछेक गर्म कर उपदंशके जखमों पर लेप करे तो वातजन्य उपदंश नष्ट होती है । सफेद कमल, लालकमल, कमलकी नाल, राल, अर्जुनकी छाल, वेत, मुलहटी इन सबको एकत्र करके समान भाग लेकर बारीक पीस लेवे और घृतसे स्निग्ध करके उपदंशके जखमों पर लेप करे तो पित्तजन्य उपदंशका शमन होता है । सालकी छाल, अजकर्णकी छाल अश्वकर्णकी छाल, धौवृक्षकी छाल इन सबको समान भाग लेकर अति बारीक पीसलेवे अति उत्तम मद्य मिलाकर गर्म करे और थोडा मीठा तैल मिलाकर स्निग्ध करके उपदंशके जखमों पर लेप करे तो कफजन्य उपदंश नष्ट होती है । नीमकी जडकी छाल, अर्जुन वृक्षकी छाल, पीपल ब्रह्मपीपल वृक्षकी छाल, कदम्ब वृक्षकी छाल, सालकी छाल, जामुनकी छाल, वटवृक्षकी छाल, गूलरकी छाल, जलवेत इन सबको समान भाग लेकर काथ बना जखमोंको प्रक्षालन करे । अथवा इन्हीं औषधियोंको सूक्ष्म पीसकर घृत मिलाकर लेप करे तो पित्तजन्य तथा रक्तजन्य उपदंशके व्रण नष्ट होते हैं । दारुहल्दीकी छाल, शंखकी नाभि, रसौत, लाख, गोबरका रस, तैल, शहद घृत, दूध इन सबको समान भाग लेकर एकत्र बारीक पीसकर उपदंशके जखमोंके ऊपर लेप करनेसे व्रण सूझन और दाह दूर होता है । यदि उपदंश अधिक पाकको प्राप्त हुआ हो तो उस समय सडेगले भागको शस्त्रसे छेदन भेदन करके निकाल देवे नहीं तो सडाहुआ भाग अधिक भागको सडा देगा—और गर्मजलसे धोकर शहद घृतका लेप करके जखमको शुद्ध करे और रोपण प्रयोगोंसे जखमको भरे ॥ १—८ ॥

बंधूकदलचूर्णेन दाडिमत्वग्भजोऽथवा । गुण्डनं तद्वते शस्तं लेपः पूगफलेन वा ॥ ९ ॥ सौराष्ट्री गैरिकं तुत्थं पुष्पं काशीशसैन्धवम् । लोध्रं रसांजनं वापि हरितालं मनःशिलाम् ॥ १० ॥ हरेणुकैले च तथा समांशान्यपि चूर्णयेत् । तच्चूर्णं क्षौद्रसंयुक्तमुपदंशेषु योजितम् ॥ ११ ॥ गुन्द्रां दग्ध्वा कृतं भस्म हारितालं मनाशिला । उपदंशविसर्पाणामेतद्धानिकरं परम् ॥ १२ ॥ जलधौतं प्रयत्नेन लिङ्गोत्थमवचूर्णयेत् । रोगं कासीसचूर्णेन पुरुषः सुखवाञ्छया ॥ १३ ॥ करवीरस्य मूलेन परिपिष्टेन वारिणा । असाध्यापि व्रजत्यस्तं लिङ्गोत्थरुक प्रलेपनात् ॥ १४ ॥

अर्थ-दुपहारियाके पत्रोंका चूर्ण अथवा अन्तरकी छाल या पुरानी सुपारी बारीक पीसकर उपदंशके व्रणोंपर लेप करनेसे अति लाभ पहुँचता है । सोरठी मृत्तिका-गेरू नीलाथोथा-हीराकसीस फुलाईहुई सेंधव लोध रसौत हरिताल, मनशिल, रेणुका, इलायची ये सब समान भाग लेकर बारीक पीसकर शहत मिलाकर उपदंशके जखमोंपर लेप करनेसे उपदंश नष्ट होता है । पुट पाककी विधिसे हरताल और मनशिलको मूर्छित करके घृत व शहदमें मिलाकर लेप करनेसे उपदंश और विसर्प रोग नष्ट होता है । हीराकसीसका फूला करके बारीक पीस लेवे और जलमें मिलाके वारम्वार जखमोंको धोनेसे अथवा हीराकसीसके चूर्णको जखमों पर छिडकनेसे उपदंश नष्ट होता है ॥ ९-१४ ॥

अथ करंजाद्य घृत ।

करञ्जनिम्बासनशालजम्बूवटादिभिः कल्ककषायसिद्धम् ।
सर्पिर्निहन्यादुपदंशदोषं सदाहपाकस्रुतिपाकयुक्तम् ॥ १५ ॥

अर्थ-करंजका पंचाङ्ग, नीमका पंचाङ्ग, विजयसार, साल, जामुन और न्यग्रोधादिगणकी समस्त औषधियां इनके क्काथ और कल्कमें सिद्ध कियाहुआ घृत तत्काल सर्वप्रकारके उपदंशोंको दाह पाक स्राव सहित नष्ट करता है ॥ १५ ॥

न्यग्रोधादिगणके औषध ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षमधुककपीतनककुभाम्रकोशाम्रचोरकपत्रजम्बूद्वयपियालमधुकरोहिणीवञ्जुलकदम्बबदरीतिन्दुकीसल्लकीलोध्रसावररोध्रभल्लातकपलाशा नन्दवृक्षश्चेति ॥ न्यग्रोधादिर्गणो व्रण्यः

संग्राही भग्नसाधकः । रक्तपित्तहरो दाहमेदोघ्नो योनिदोषहृत् ॥१५॥
(सुश्रुत सूत्रस्थान)

अर्थ—वड, गूलर, पीपल, पाकर (पिलखन), महुआ, अम्बाडा, ककुभ, (अर्जुन) आम्र, कोशाम्र, चोरकपत्र, जामुन, रायजामुन, प्रियाल (चिरौंजी), कायफल, वेंत, कदम्ब, वेरतेन्दू, सल्लकीलोध, पठानीलोध, भिलावा, ढाक, नन्दीवृक्ष (पारसपीपल) यह न्यग्रोधादिगण व्रणको हितकारी संग्राही और टूटीहुई अस्थि आदिको जोडनेवाला रक्त पित्त दाह और मेदा इनका नाशक और योनिदोषोंको हरनेवाला है ॥ १५ ॥

भूनिम्बादि घृत ।

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरञ्जधात्रीखदिरासनानाम् ।
सतोयकल्कैर्घृतमाशु पक्वं सर्वोपदंशापहरं प्रदिष्टम् ॥ १६ ॥

अर्थ—चिरायता, नीमका पंचाङ्ग, त्रिफला, पटोलपत्र, करंज, आंवले, खैरसार, विजयसार इनके क्वाथ और कल्कसे घृत सिद्ध करके उपदंश रोगीके काममें लावे यह घृत सर्वप्रकारके उपदंशोंको शीघ्र ही नष्ट कर देता है ॥ १६ ॥

आगारधूमाद्य तैल ।

आगारधूमो रजनीसुराकिट्टश्च तैस्त्रिभिः । यथोत्तरैः पचेत्तैलं कण्डूशोथरुजापहम् । शोधनं रोपणश्चैव उपदंशहरं परम् ॥ १७ ॥

अर्थ—घरका धूमसा १ भाग अथवा घरमें धूमसा न मिले तो भडभूजेके छप्पर व मकानकी दिवालोंपरसे झाड लावे । हल्दी दो भाग, सुराकिट्ट (मद्यका फोक) ३ भाग लेवे और मीठे तैलको इनमें पकावे यह तैल खुजली सूजन और पीडाको शमन करता है । तथा शोधन और उपदंशके जखमोंका रोपण है ॥ १७ ॥

जम्बाद्यतैल ।

जम्बूवेतसपत्राणि धात्रीपत्रं तथैव च । नक्तमालस्यपत्राणि तद्वत् पद्मोत्पलानि च ॥ १८ ॥ बलाचातिबलास्थि मधुकश्च प्रियङ्गवः । लाक्षा कालीयकं लोध्रं चन्दनं त्रिवृताह्वयः ॥ १९ ॥ एतान्येकी कृतान्येव वत्समूत्रेण पेषयेत् । अक्षमात्रयुतैर्द्रव्यैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ॥ २० ॥ सर्वव्रणहरं तैलमेतत्सिद्धं प्रयोजितम् । उपदंशहरं श्रेष्ठं मुनिभिः परिकीर्त्तितम् ॥ २१ ॥

अर्थ—जामुनके पत्र, वेंतके पत्र, आंवलेके पत्र, करंजके पत्र, कमल, कमोदनी, खरैटी, गंगेरन, आमकी गुठली, मुलहटी, फूलप्रियंगु, लाख, कलम्बक, लोध, चन्दन, निसौत यह प्रत्येक औषध एकएक तोला लेकर कूट डाले फिर बकरेके मूत्रमें रात्रिको भिगोकर रख देवे और प्रातःकाल सिलपर डालकर बारीक पीसे फिर इस कल्कमें एक प्रस्थ मीठा तैल पकाकर सिद्ध करे और छानकर भर लेवे । यह तैल सब प्रकारके व्रणोंको हरनेवाला है और सब प्रकारके दुष्ट उपदंशके व्रणोंको शीघ्र भरनेवाला है ॥ १८–२१ ॥

सेवेन्नित्यं यवान्नञ्च पानीयं कौपमेव च ।

अर्थ—उपदंश रोगी जौके बनेहुए व्यजन आहार करे और कूपका जल पान करे ।

आयुर्वेदसे उपदंशकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे उपदंशका निदान तथा चि० ।

यूरोपियन वैद्योंके सिद्धान्तमें भी उपदंशका वन्ध्या दोष हेतु है । उपदंशकी व्याधि गर्भाधान रहनेमें कुछ भी रुकावट नहीं करती परन्तु तो भी इसको वन्ध्यत्वके कारणोंमें गिनना चाहिये, कारण कि इसके जहरसे स्त्रीका वीर्य्य विगड़ जाता है और गर्भाशय पूर्ण रीतिसे प्रफुल्लित नहीं हो सक्ता । इससे स्त्री वीर्य भी प्रफुल्लित पूर्णरीतिसे नहीं होता और गर्भ धारण होनेके लिये स्त्रीवीज परिपूर्ण प्रफुल्लित होनेकी आवश्यकता है, इस पूर्ण प्रफुल्लित होनेकी क्रियाका उपदंश नाशकारक हो पडता है । कदाचित स्त्रीको गर्भ रहकर वह वृद्धिको प्राप्त हो तो भी उपदंशका जीर्ण जहरी असर गर्भके बंधान (आकृति) को दूषित कर डालता है, इसके कारणसे अधूरा गर्भ स्राव व पात होकर निकल जाता है । किसी समय यह अधूरे मासका गर्भपात अनेक रोगोंका कारण हो जाता है, इस रीतिसे गर्भ रहनेमें अथवा रहेहुए गर्भको परिपूर्ण अवधि पर्यन्त पहुंचानेमें विघ्न आता होय तो स्त्रीके शरीरके अन्दर उपदंशकी विकृति है अथवा क्या है इसका निश्चय करना चाहिये । नीचे लिखेहुए लक्षण स्त्रीके शरीरमें जीर्ण उपदंशका जहर जारी रखनेके सूचक हैं ।

(१) योनिके मुखके ऊपर जखम तथा वहाँ राध आदिका होना । (२) गर्भस्राव व पात । (३) सायलके मूलकी गांठोंकी वृद्धि होना । (४) शरीरके ऊपर दाफडे चांठा खुजली गुमडी आदिकी उत्पत्ति । (५) चमडी (चर्म) का साधारण रीतिसे रंग बदल जाना और चर्मका काला रंग पड जाना (६) गलेके अन्दर छोटी छोटी गांठोंकी उत्पत्ति होना और वहां क्षत पड जाना । (७) समय समय पर प्रतिश्यार्य (जुखाम) का हो आना । (८) पीनस । (९) कनीनिकाकी और

नेत्रकी व्याधियोंका उत्पन्न होना अथवा पलकोंमें अन्दर सूक्ष्म चांदीका पड जाना । (१०) पीठके ऊपर मस्सोंकी उत्पत्ति होना । (११) गुदाके अन्दर (सफरा) को आंतडियोंका संकोच होना । (१२) जीभमें धारा पडना और होठमें दर्ज पडना । (१३) अधिक समय पर्यन्त मस्तकका-दर्द रहना । (१४) पिंडलियोंकी अस्थिके ऊपर गांठोंका उत्पन्न होना । (१५) कमरकी अस्थिमें दर्द रहना । (१६) सन्धियोंका दुःखना । (१७) हाथ पैरके तलुवोंकी चमडीका उखड जाना और वहां छोटी छोटी गुमडी होकर उनमें छिद्र पड जाना । (१८) अंगुलियोंके नखोंका बिगड जाना । (१९) मस्तकके बाल गिरजाना अथवा परवालोंकी उत्पत्ति होना । (२०) चेहरेकी रंगतका बदलना आर भडभडाया हुआ दीखने लगे । (२०) छाती और हृदयमें ऊष्मा तथा दाहका रहना । ऊपर लिखेहुए २१ चिह्नोंमेंसे कोई चिह्न मिले तो उपदंशकी आशंका करनी इन सब चिह्नोंमेंसे किसी एक स्त्रीमें व पुरुषमें सब चिह्न नहीं मिलते परन्तु किसीमें कोई तो किसीमें कोई चिह्न मिलता है । सम्पूर्ण चिह्न एक रोगीमें नहीं मिलते परन्तु अधिक कालान्तरकी व्याधि होवे और सप्तधातु उपदंशके जहरसे दूषित हो गये होयँ उस एकही रोगीमें ये सम्पूर्ण चिह्न देखनेमें आये हैं ।

उपदंशकी चिकित्सा ।

इस उपदंशकी व्याधिकी निवृत्तिके लिये स्त्रीको सारसापरिला, पोटास आयोडीड इनका सेवन करना हितकारी है, सबसे हितकारी शुद्ध किया हुआ मूर्छित पारदका सेवन है । मूर्छित पारद परिमित मात्रासे अधिक काल पर्यंत सेवन कियाहुआ उपदंशके जहरको मूलसे निकाल कर शरीरको शुद्ध करता है । चोपचीनीका पाक खाना भी उपदंशकी व्याधिको लाभ पहुंचाता है, उपदंश रोगीको गर्म वस्तु खानेकी शक्त मनाई करनी, अधिक समय पर्यन्त नीचे लिखे औषध प्रयोगका सेवन करना अति लाभदायक है । सिरपर फेरीआयोडीड ३० तीस टीपां (बिन्दु) लायकफेरडोनोवन ३० तीस टीपा (बिन्दु) साफ जल ३ ओंस उपरोक्त औषधियोंको मिलाकर ३ भाग कर दिवसमें तीन व चार घंटेके अन्तरसे तीनों मात्रा दे देना, स्थानिक जखम आदि होयँ उनका योग्य उपाय तैल मलम आदि जो रोपण औषध हैं उनको काममें लाना । सब उपद्रव उपदंशके जीर्ण असरको लेकर है ऐसा समझ कर योग्य उपाय करना, परन्तु समय-पर कमलमुखके ऊपर उपदंशका ताजा जखम (क्षत) पडता है । यदि कमलमुखके ऊपर उपदंशकी धारा पडी होय तो दूसरे भागमें जैसे धारा (चांदी) के ऊपर आयोडोफार्म और नाईट्रीकऐसिड लगाई जाती है वैसे ही कमलमुखके ऊपर भी लगानी चाहिये (ब्लेकवोशमें लीन्टका फोहा) व साफ रुईका फोहा डबोकर योनि-

मार्ग और कमलमुखके क्षत पर रखना । सामान्य रीतिसे स्त्रीकी उपदंश व्याधिका वर्णन ऊपर हो चुका है परन्तु बहुत स्त्री, पुरुष ऐसे भी हैं जो अनभिज्ञता वश व्यभिचार कर अपने जीवन और शरीरको नष्ट कर देते हैं जितना इस व्याधिके विषयमें ऊपर लिखा गया है वह केवल स्वल्प रीतिसेही लिखा गया है परन्तु इस व्याधिसे जो २ दुष्ट परिणाम होते हैं उनका सम्पूर्ण हाल न लिखनेसे शौकीन स्त्री पुरुषोंकी आंखें न खुलेंगी इससे इस व्याधिकी सम्पूर्ण व्यवस्था लिख देना उचित है । चांदी अथवा टांकी यह विशेष करके व्यभिचारीही पुरुषोंको अवश्य होती है, जो स्त्रियां अनेक पुरुषोंके साथ गमन करती हैं नीच ऊंच रोगी इन्द्रियवालेका विचार नहीं करतीं किन्तु (पुरुषमेव भुञ्जते) यह पुरुष है इसके साथ भोग विलास करें ऐसे विचार जिन स्त्रियोंके तथा पुरुषोंके होते हैं वोही इस दारुण व्याधिसे अपने जीवनको नष्ट करते हैं । चांदी एक प्रकारका चेंपवाला रोग है इसकी परीक्षा कोई करना चाहे तो शौकसे करलेवे, किसी स्त्री व पुरुषके चांदी होय उसकी पींव दूसरे मनुष्यके लगा दो उसी स्थलपर उसके चांदी उत्पन्न हो जाती है । प्रथम चांदी और सुजाकको यूरोपियन वैद्य एकही समझते थे, परन्तु अब इसकी अधिक छानवीन और परीक्षा करनेसे अधिक निर्णय किया गया है और कितने ही डाक्टरोंने केवल इसी व्याधिके रोगी गणोंकी चिकित्सा आयुपर्य्यन्त करके निश्चय किया हैं कि ये दोनों व्याधि एक नहीं हैं सो अब यह बात मान्य नहीं है । कारण कि सुजाकके चेंपमेंसे सुजाक ही उत्पन्न होता है और चांदीके चेंपसे चांदी ही उत्पन्न होती है किन्तु इतना ही नहीं अब चांदीको पृथक् पृथक् दो प्रकारसे समझा जाता है कि एक प्रकारकी चांदी नर्म होती है तो जो वह जिस भागमें हुई होय वहां उसका असर जान पडता है । दूसरे ठिकाने व दूसरे शरीरपर उसका कुछ भी असर नहीं जान पडता । जहां चांदी हुईहोय वहाँसे पीव (राध) लेकर उसी मनुष्यके शरीरके दूसरे ठिकाने पर वह राध लगाई जावे तो उस भागके ऊपर भी वैसी ही चांदी पडती है कि जिस चांदीमेंसे राध ली गई थी, दूसरे प्रकारकी चांदी कठिन होती है और उसका असर सम्पूर्ण शरीरके ऊपर जान पडता है । उस चांदीका चेंप लेकर उसी रोगीके शरीरमें दूसरे ठिकाने पर लगानेमें आवे तो उसका कुछ भी असर नहीं होता, इसलिये यह कठिन चांदी उस यथार्थ गर्मी अथवा उपदंशका भयंकर रोग समझना । प्रथम नर्म चांदीमें अधिक जोखम रहीहुई नहीं थी नर्म चांदीके साथ वद (विद्रधि) होती है वह विशेष करके पाकको प्राप्त होकर फूटती है । परन्तु कठिन चांदीके साथ वद होवे तो वह पकती नहीं किन्तु अधिक कालपर्य्यन्त कठिन और सूझी हुई रहती है ये दो प्रकारकी चांदी केवल पृथक् पृथक् हैं । इनका परिणाम भी पृथक्

है इसलिये इनको प्रथमसे ही परीक्षा करके योग्य उपाय करना अति आवश्यक है, नरम चांदी (सॉफटशांकर) यह विशेष करके स्त्रीसंभोगके साथ पुरुषेन्द्रिय व स्त्रीकी योनिभाग छिलजाने अथवा एकको उत्पन्न होकर दूसरेको उसके चेंपका स्पर्श हो जानेसे होती है। यह विशेप करके दूसरे व तीसरे ही दिवस दीखने लगती है अथवा पांच सात दिवसके अन्दर उसका उद्भव होता है, यह पुरुषेन्द्रियके फूलके ऊपर अथवा ढकनेकी चमडीके किनारेके जोडमें होती है और स्त्रीकी योनिके ओष्ठके ऊपर जो भाग पुरुष समागममें अन्दरको जाता आता है अथवा योनिमुखके ऊपर होती है। दोनोंकी इन्द्रियके आसपास चेंप लगनेसे एकमेंसे दो चार चांदी उत्पन्न हो आती हैं, ये चांदी गोलाकार और जरा गहरी होती हैं। उनके नीचेका व किनारोंका भाग नर्म होता है और उनके नीचेका तथा किनारेका भाग नर्म होता है और उसकी सपाटीके ऊपर सफेद मृत मांस होता है तथा उसमेंसे अधिक पीब (राध) निकलती है तथा पुरुषकी इन्द्रियका फूल सूझ आता है और स्त्रीके योनि ओष्ठ तथा योनिमुख सूझ जाते हैं। पुरुषकी इन्द्रियका चमडा ऊपर चढ जावे तो नीचेको नहीं उतरता तथा स्त्रीकी योनिका योनिमुख नहीं खुलता, योनि ओष्ठ चौंडे कियेजावें तो अति पीडा होती है। पुरुषकी इन्द्रियके ढकनेका चमडा यदि किसी समय नीचेको उतरा हुआ होय तो अथवा नीचेको उतर आई होय तो नीचे उतरने पीछे चांदीकी पीब (राध) अन्दर भरी रहनेसे अन्दरका भाग तथा चमडा सूझ आता है और वह चमडा माणिके ऊपर चढता नहीं—और अन्दरकी चांदीकी क्या दशा है सो नेत्रसे नहीं देख सक्ते। किसी समय माणिके अन्दर मूत्रमार्गमें चांदी पडती हुई जोशमें आकर भयंकर रूप हो जाती है। इससे उसके आसपासका भाग सडता हुआ फैलता जाता है। प्रसरती चांदीको (फाजोनडिा) कहते हैं इसके साथ बद होती है वह पककर फूटती है—उस बदके ठिकानेपर गर्त्त (गड्ढा) पड जाता है और गर्त्त जल्दी नहीं रुजता, उसका किसी समय इतना जोर होता है कि इन्द्रीका कितना ही भाग एकाएकी एकदम सड जाता है। इस प्रमाणे किसी मनुष्यकी सम्पूर्ण इन्द्रीका नाश हो जाता है, ऐसी दशामें रोगीको ज्वर होता है तथा अधिक समयपर्य्यन्त रोगी त्रास पाता है इस सडनेवाली चांदीको (स्लफींग) कहते हैं ऐसी प्रसरती और सडनेवाली चांदी विशेष करके निर्बल और दुर्बल स्त्री, पुरुषोंको होती है यही उपरोक्त चांदी स्त्री जातिकी योनिमें होवे तो योनिओष्ठ, योनिमुख सूझ जाता है। पेडू लाल गर्म हो जाता है कभी २ इस सूझनका जहर मूत्रनलीके अन्दर व मुखपर पहुँच जाता है, मूत्र रुकावटसे बूंदबूंद आता है गर्भाशय तथा कमलमुखमें असर पहुँचनेसे सूझन उत्पन्न हो जाती है। स्त्रीके मसानेकी रगों तथा कमर साथलमें पीडा होती है, योनिमुख और योनिओष्ठमें

दाह तथा चिमचिमाहट होती है । स्त्रीका चित्त बेचैन रहता है और फिकरबन्द मालूम पडती है इस प्रकारकी चांदीके सब चिह्न स्त्रीको भी पुरुषके समान समझने चाहिये । कई स्त्रियोंकी हमने स्वयं ऐसी खराब दशा देखी है कि योनि ओष्ठ और योनिलिङ्ग सडकर गिर गये हैं मूत्रनलीमें सडाव पहुंच गया है योनिलिङ्गके निकल जानेसे उसके ठिकाने पर मूत्रका छिद्र एक और बन गया है । गुदा व योनिके बीचका परदा सडकर उसमें छिद्र पडगये हैं, और जुलाब दिया गया तो पतला मल उन छिद्रोंमें होकर योनिमार्गसे निकलता था यह स्त्री असलमें वेश्या थी इसके अनन्त पापोंका उदय हुआ था लेकिन जुलावके बाद इसको आहार देना बन्द किया गया और मांस रस २३ दिवस देकर रखा । खानेको कर्पूररस संज्ञक पारद दिया गया, किन्तु पारदके साथ कुछ अफीमका भाग ४ दिवसके अन्तरसे मिला कर दिया जाता था कि दस्त न होजावें दस्त आनेसे जखमोंके फटनेका भय था, जखमों पर वह रोजा-सिंदूर कमीला और बोडेकी टापकी भस्म मकडीके जालेके ऊपर रखकर एक जाला योनिमार्गमेंसे और एक गुदामेंसे ले जाकर छिद्रके ऊपर दोनों मिलादिये जाते थे और तीसरे दिवस इन जालोंको बदला जाता था उसके छिद्र तीनों बंद हो गये परन्तु मूत्रनलीका कुदरती छिद्र बन्द हो गया और जो छिद्र योनिलिङ्ग सडजानेसे बना था वह मूत्र आनेका छिद्र बनगया लेकिन सडाव दोनों ठिकानेका बन्द होगया था । मूत्रका असली छिद्र उस स्त्रीने सलाईसे खुलवाना मंजूर नहीं किया असलमें उसके अनिष्ट अतिवर्त्तावके फलकी समाप्ति यहीं तक थी, यदि यह नर्म व सादी चांदी मूलसे ही नरम होती है तो भी पीछेसे कुछ दूसरे क्षोभक कारणोंसे कठिन हो जाती है । कभी नर्म और कभी कठिन चांदी ये दोनों सम्मिलित होकर एकही ठिकाने पर होती हैं कितने ही मनुष्योंकी इन्द्रीके ऊपर सादी फुंसी और चांदी पडती है इससे उसका यह निश्चय करना कठिन है कि यह गर्मीकी चांदी है ।

इन उपरोक्त कथन कीहुई चांदी टांकीकी चिकित्सा ।

यदि प्रथम जब सादी टांकी हो तब उसको नाईट्रीकएसिडसे जला देना चाहिये, इस ऐसिडको दो टीपा (बिन्दु) उस चांदीके ऊपर बराबर डाल देना अथवा एक सलाईसे रूई लपेट कर और एसिडमें भिगोकर चांदीके ऊपर लगा देना । आस-पासके समीपवर्त्ती अच्छे भागमें ऐसिड न लगने देना ऐसी सावधानीसे लगावे, जो नाईट्रीकएसिड विशेष चले तो उसके ऊपर धार बांध कर थोड़ा जल डालना । इससे अधिक ऐसिड धुल जावेगा तथा जलन बन्द हो जायगी, यदि कदाचित नाई ट्रीक ऐसिड न मिले तो सीलवर अथवा पोटासका स्टिक लगाना, इस प्रकारसे इस गलित भागको दग्ध करके एक दिवस उसके

ऊपर पोटास लगाना। इससे दग्ध (जलाहुआ भाग) छूट पडेगा और नीचे जखममें लाल वर्णकी जमीन दीख पडेगी जिस किसी ठिकाने पर सफेद भाग रह गया हो और रुजनेमें न आता होय तो जरासा मोरतूतिया पिसाहुआ लगादेना बाद उसको पोंछकर नीचे लिखेहुए लोशन (पानी) में कपडा भिगोकर लगा देना यदि टांकी पुरुषेन्द्रियके मणीछिद्र अथवा मणीके बीच व मणिकी सन्धिमें हो तो उसके बीचमें कपडा रखना उचित है। नहीं तो चांदीमेंसे निकलती हुई जहरी राध जहां दूसरे ठिकाने पर लगेगी वहीं चांदी पडना संभव है।

औषधप्रयोग।

टानिकएेसिड २० ग्रेन, कॉंपाउन्डटिंकचरओफलवांडर २ ड्राम, साफ जल ४ ओंस ऊपरकी औषधियोंको पानीके साथ मिश्रित करके साफ कपडा रूई व लिन्टको इस दवामें भिगोकर जखम पर रखना, यदि इससे लाभ न पहुँचे तो मोरतूतिया पिसाहुआ २० ग्रेन, साफ जल ४ ओंस दोनोंको मिलाकर कपडा वा लिन्ट भिगोकर जखम पर रखना; यदि इससे भी आराम न होय तो (ब्लाकवासक्यालोमेलका पानी) लगाना। क्यालोमेल ३० ग्रेन, चूनेका नितराहुआ पानी १० ओंस ऊपरकी दोनों दवाओंको मिलाकर कपडा व लिन्ट भिगोकर जखमके ऊपर रखना। यदि इससे आराम न हो तो यलोवाश (रसकपूरका पानी) लगाना ये ऊपर तथा नीचे लिखेहुए प्रयोग स्त्री पुरुष दोनोंको लाभ पहुँचाते हैं। उत्तम रसकर्पूर १८ ग्रेन, चूनेका पानी स्वच्छ १० ओंस दोनों वस्तुओंको मिलाकर उपरोक्त विधिसे लगाना। यदि चमडी पुरुषेन्द्रियके फूलके नीचे आ गई होय जिससे अन्दरकी चांदी न दीखती हो तो इस चांदीपर ऊपर लिखेहुए प्रयोगोंमें किसी भी औषधके पानीकी पिचकारी चामडी और फूलके बीचमें मारनी और आयोडोफोर्म छिडकना, ये चांदीको उत्तम लाभ पहुँचाती है और वह चांदी शीघ्र रोपण हो जाती है। प्रसरती चांदी हो तो उसके ऊपर कास्टिक लगाकर पीछेसे पोलिटिस बांधना जिससे सडाहुआ मांस छूटकर निकलजावे, पीछे इसपर ऊपर कथन किये हुए दवाओंके पानीमेंसे किसी एकको लगाना चाहिये और उसके साथ ही रोगीको बल बढे ऐसी औषध देनी योग्य है। (टारटरेटआफ-आयर्न) की पांचसे दश ग्रेन जलमें मिलाकर दिनमें ३ समय पिलावे। अथवा आमोन्या, सिकोनोवार्क, कवीनाईन, तथा लोहखण्डसे बनीहुई दूसरी दवा देनी उचित है। जहाँपर चमडेका भाग सड जावे तथा गलाव पडने लगे तब प्रथम उस सडे हुए भागके पोलिटिस लगाकर निकाल देवे और उसको कैंची व वस्तरसे काटकर साफ करलेवे और ऊपर लिखी हुई दवाओंमेंसे कोई दवा लगावे, अगर उपरोक्त दवाओंसे आराम न होवे तो नीचे लिखीहुई मरहम लगानी। रेडओक्षाईडओफमर-

क्युरी २ ड्राम, मोम उत्तम १ ड्राम, बदामका तैल ६ ड्राम, मोमको गर्म करके उसमें बदामका तैल मिलावे पीछे दवा डालकर अच्छे प्रकारसे मिलाना । कार्बोलिक तैल तथा बोरासीक मरहम लगानेसे भी फायदा होता है, यदि पुरुषेन्द्रियका मणि छिद्र सूझगया होय और मणिके ऊपरसे चर्म ऊपरको न चढता हो और अन्दर पीव (राध) भरी रहती हो तो इससे दिन रात विशेष वेदना होती है। रोगीको निद्रा नहीं आती है तो इस मणिके ढकनेके चमडेको मुसलमान लोगोंकी सन्नतके माफिक चमडेको मणिसे आगे खींचकर पकड लेवे और कैंचीसे काटकर निकाल देवे, अथवा नीचेकी तर्फसे खडी चर्म जिल्दको चीरकर फूल उघाड लेना चाहिये और पीछे उचित रीतिसे चिकित्सा करना । उपरोक्त शस्त्र क्रिया घूमटा उघाडनेमें अथवा मणि छिद्रके संकोचमें लिखी हुई विधिके प्रमाणे करना, बाद जहांतक अन्य उपायोंसे टांकी निवृत्ति होनेकी आशा होवे वहाँतक शस्त्रक्रिया नहीं करनी । कारण शस्त्र क्रियासे जो जखम होता है उसमें चांदीका चेंप लगनेसे चांदीका ही रूप धारण वह छेदनका जखम कर लेता है और उसके रुझनेमें बहुत समय लग जाता है । रोगयुक्त भागको धोकर साफ रखना उसके चेंप दूसरे अच्छे भागपर न लगने पावें इसकी सावधानी रख रोगीको उत्तम हलका और पौष्टिक आहार दे साफ हवामें रखना योग्य है । वद (ब्युवो) चांदी होनेसे एक अथवा दोनों तर्फ जँघाके मूलमें गांठ मोटी हो जाती है उसको वद व विद्रधि कहते हैं । नर्म टांकीके साथ जो वद होती है वह विशेप करके पके बिदून नहीं रहती और उसमें दर्द भी अधिक रहता है और किसी समय एककी अपेक्षा कई गांठें उठकर पकती हैं तथा जँघाके मूलमें खड्डा पड जाता है और रोगी कितने ही दिवस पर्यन्त चलने फिरने नहीं पाता । इन्द्रीके ऊपर जिस तर्फ चांदी हुई होय उसी तर्फ वद होता है और इन्द्रीके वीचमें अथवा दोनों तर्फ चांदी होय तो वद दोनों तर्फ होती है, दोनों तर्फकी वदमें बहुत दर्द होता है तथा वह पक जाती है । उसके साथ तीक्ष्ण शोथके चिह्न होते हैं और ज्वर भी उत्पन्न हो जाता है । कठिन टांकीके साथ भी वद होती है । परन्तु वह विशेप करके पकती नहीं वैसे ही उसमें अधिक दर्द भी नहीं होता चांदीके साथ दोनों प्रकारकी वद होती हैं, इस वदकी उत्पत्तिका कारण गर्मीके क्षतका विप है । टांकीका मूलकारण उस प्रत्येक जखमका विशिष्ट विष है, यह विप शोपण नलियोंके द्वारा वंक्षणके अन्दरवाले पिण्डमें पहुँचता है इससे उनमें शोथ उत्पन्न हो जाता है और वहां मोटा होकर ग्रन्थि रूपमें दीखता है कठिन

क्षतका विष रुधिरके द्वारा सर्व देहमें प्रसरित होता है लेकिन मृदु क्षतका जहर केवल ग्रन्थितक ही पहुँचता है, सम्पूर्ण शरीरमें विस्तृत नहीं होता ।

डाक्टरीसे उपदंशकी विकृति बदकी चिकित्सा।

बदकी गाँठके निकलनेके आरम्भमें ही रोगीको चलने फिरनेका व अधिक उठने बैठने तथा जोरका कोई काम करना व वजन उठाना इनका प्रतिबन्ध करना चाहिये। और बदके ऊपर गर्म जलका सेंक करना और बदके ऊपर बेलोडोना लगाना, आयोडिनटींकचर अथवा लीनीमेन्ट लगाना, व पारेका प्लास्तर लगाना। अथवा अन्य ब्लीष्टर लगाना, ब्लीष्टर उठने पीछे रस कपूरका पानी लगाना। यदि आवश्यकता दीखे तो उतनी जोंक लगा रक्त मोक्षण करना जिससे रक्तके साथ रोगका मूलकारण विष निकल जावे। यदि बद पकनेपर आ गई हो तो उसके ऊपर बारम्बार पोलटिस बांधना जहांतक हो सके उसके बैठालनेकी कोशिस प्रथम करनी चाहिये। यदि न बैठे तो पीछे पकानेके लिये नीमके पत्तोंका भुर्त्ता करके बांधे, सिंदूर रेवतचीनीका सत्व, वटका दूध इनको मिलाकर लगाना चूना तथा गुड लगाना। भिलावाँ सहँजनेकी छाल कत्था और गुड इनको मिलाकर लगाना यदि बद पकगई हो तो नस्तरसे छेदन कर देना अथवा उसकी शिखर कास्टिक लगाकर फोडना फूटनेके पछि रोपण तैल व मरहमकी पट्टी लगाना। कईबार देखा गया है कि बदका मोटा गंभिर क्षत होकर नासूर हो जाता है, उसके ऊपर मोटे चमडेकी कोर लटकती हुई ऐसा जखम रुजनेमें नहीं आता, जो जखम ऐसा हो तो उसके चमडेकी मोटी कोर निकाल उसके ऊपर क्यालोमल अथवा आयोडोफार्म छिडक देना और गौके पुराने सींगकी भस्म भी ऐसा ही काम देती है। अथवा (रेडप्रेसीपिटेटका) मरहम लगाना, रसकपूरका पानी लगाना, कठिन चांदीके साथ मूंढ बद होती है वह उपदंशके शारीरिक उपायके साथ निवृत्त होती है, उपदंशसे उत्पन्नहुई स्त्री पुरुषोंकी चांदी और बदका समान उपचार करे।

कठिन तथा मृदु चांदीके भेदका विचार।

मृदु चांदी	कठिन चांदी।
(१) मलिन रोगी स्त्रीसे मैथुन करनेके एक दो दिवस अथवा एक सप्ताहके अन्दर दखिती है।	(१) मलीन मैथुन करनेके एकसे ३ सप्ताह पर्य्यन्त दीखती है।
(२) मैथुनके संघर्षणसे अथवा चीरा पडनेसे उत्पन्न होती है।	(२) आरम्भमें फुंसी (गुमडी) होकर फूट जाती हैं और पीछे क्षत पडता है।
(३) दावकर देखनेसे तलेमेंसे नर्म मालूम पडती है।	(३) क्षतकी तली आरम्भसे कठिन होती है।

(४) क्षतकी कोर ऊँची सपाटी बैठी हुई उसके ऊपर सडेहुए मासकी तह होती है उसमेंसे तीव्रतासे पीव (राध) निकलती है ।

(४) क्षतकी बारीक कोर बाहरको बढीहुई सपाटीसे लाल होती है उसमेंसे पतली रस्सी निकलती है ।

(५) विशेष करके एकमेंसे अनेक क्षत होते हैं ।

(५) विशेष करके एक ही क्षत होता है ।

(६) क्षतका चेंप उसी मनुष्यके शरीरपर जिस जिस दूसरे ठिकाने लगे वहापर वैसाही मृदु क्षत पडता है ।

(६) क्षतका चेंप उसी मनुष्यके शरीरके ऊपर दूसरे ठिकाने लगाया जावे तो कठिन क्षत नहीं पडता ।

(७) एक व दोनों वंक्षणमें वद होती है वह विशेष करके पकती है ।

(७) एक व दोनों वंक्षणमें वद होती है वह थोडी दुखती है विशेष करके पकती नहीं ।

(८) क्षतमें अधिक पीडाके साथ शोथ होता है तथा उसमेंसे फैलनेवाले और सडनेवाले क्षतका उद्भव होता है और रोपण होनेमें अधिक समय लगता है ।

(८) इस क्षतमें पीडा व शोथ नहीं होता किन्तु इसमेंसे फैलनेवाला तथा सड-नेवाला क्षत कभी उत्पन्न होता है और शीघ्र ही रोपण होता है ।

(९) इस क्षतका असर स्थानिक है शरीर पर असर नहीं होता है ।

(९) इस स्थानिक क्षतहुए पीछे थोडे दिवसमें इसका दूसरा चिह्न सम्पूर्ण शरीरके ऊपर दीखने लगता है ।

इस प्रमाणसे दोनों क्षतके पृथक् पृथक् चिह्न ऊपरके कोष्ठकको विचारनेसे मालूम पडेंगे । इसको विचार करनेसे अनेक समय उनकी निश्चय परीक्षा करनी सरलतापूर्वक हो सक्ती है, किसी किसी समय क्षतकी दुर्दशा होने पीछे देखनेमें आता है कि उस समय उसका ठीक निर्णय होना दुसवार हो जाता है। कितने ही वार देखा गया है कि शीघ्र एक समयमें ही ऊपर कठिन और नर्म टांकी दोनों एक साथ ही उत्पन्न हो आती हैं । कितने ही वार ऐसा देखा गया है कि दूसरे चिह्नका समय आवे वहांतक चांदीकी जातिका निश्चय नहीं होने सकता, कठिन टांकी इसको (हार्डशांकर) बोलते हैं कठिन टांकी उत्पन्न होने पीछे शरीरके दूसरे भागोंके ऊपर गर्मीका असर जान पडता है इसलिये इस चांदीको व्याधिकी अधिक महत्वतावाली और भयंकर समझना, नर्म चांदी स्त्रीगमन करने पीछे तुरत एक दो दिवसमें दिखाई दे जाती है । इस प्रकार यह कठिन चांदी दीखती नहीं विशेष करके चार पांच दिवस अथवा ७ व ८ दिवससे अथवा ३ सप्ताहके बाद एक सफेद फुंसी (गुमडी) उत्पन्न होकर

वह टूटकर उसकी चांदी हो जाती है । इस. चांदीमेंसे गाढा पीब (राध) नहीं निकलती परन्तु पानीके समान पतली और थोडी .रस्सी निकलती है, परन्तु इस चांदीका मुख्यत्व गुण यह है कि वह दाबी जावे तो उसकी तलीका भाग कठिन माल्म होता है । इस तलीका भाग कठिन रहे इतने तक यह निश्चय समझना कि इस गर्मीके विषने शरीरमें प्रवेश किया है यह टांकी विशेष करके इसी विषे हुई है । इसके साथ एक व दोनों वंक्षणोंमें बद्द हो आती है एक व अधिक गांठें मोटी हो जाती हैं, परन्तु इन गाँठोंमें दर्द बहुत कम होता है और ये गाँठें पकती नहीं जो बद उत्पन्न होने पीछे विशेष चलना फिरना हो अथवा दूसरे किसी काममें मेहनत करनी पडे तो कदाचित ये गाँठें पक भी आती हैं ।

चिकित्सा ।

इस टांकीके उपयोगमें जो पूर्व क्यालोमल अथवा रसकपूरका पानी कथन किया है उसको लगाना अथवा लाल मरहमकी पट्टी लगानी, इससे चांदी शीघ्र मिट जाती है । इस टांकीके मिटनेमें विशेष परिश्रम नहीं करना पडता परन्तु इसको लेकर जो मनुष्यके शरीरमें गर्मी प्रवेश कर गई है उसकी चिकित्साकी तजवीज रखनी चाहिये, चांदीके ऊपर कोई पारेकी दवा अथवा आयोडोफार्म लगानेसे थोडे दिवसमें रोपण हो जाती है ।

गर्मी उपदंश सिफिलिसकी विकृतियाँ ।

कठिन चांदी दीखनेके पीछे कितनी ही मुद्दतमें शरीरके कितने ही भागोंके ऊपर उसका असर मालूम पडता है इस व्याधिको गर्मी कहते हैं । यह व्याधि दूषित योनि रोगवाली व्यभिचारिणी स्त्रियोंसे जो पुरुष विषय भोग करते हैं उनको अवश्य होती है इसी प्रकार गर्मीवाले पुरुषके समागमसे चाहे वह स्वपुरुष हो चाहे पर पुरुष होय, स्त्रियोंको होती है । और जो स्त्रियाँ दिन रात व्यभिचारका पेशा करती हैं और वेश्यापनकी दूकान लगाकर बैठी हैं ऐसे व्यवहारवाली स्त्रियोंकी योनिमें अति संघर्षणसे स्वयं यह जहरीली ऊष्मा वायु और पित्तके कुपित होनेसे उत्पन्न हो जाती हैं और उनका गुह्य शरीर अति विकृतियोंको लियेहुए रहता है, परन्तु व्यसनी पुरुष उनके मुख नेत्रोंकी चंचलता और वाणीरूपी जालमें फँसकर अपनी तन्दुरुस्तीकी पूर्ण आहुति उनके मदनमन्दिर रूपी अग्निकुण्डमें दे देते हैं। अन्यथा दूसरे किसी कारणसे इस रोगका चेंप लग गया होय तो इससे भी गर्मीका होना संभव है । जैसे कि गर्मीवाले रोगीके शरीर पर किसी चिकित्सकको कुछ शस्त्रक्रिया (काटने चीरने) का काम करनेके समय उसके किसी अङ्गमें जखम हो जाय और उस जखममें गर्मीवाले मनुष्यका चेंप लग जाय तो उस जखमके ठिकाने

गर्मीकी चांदीके समान ही चांदी उत्पन्न हो आती है तथा पीछेसे सम्पूर्ण शरीरमें गर्मी फूट निकलती है । इसी प्रकार माता (विस्फोटक) का टीका लगाते (शीली काढनेके) समय गर्मीका चेंप एक छोकरेसे दूसरे छोकरेको लग जाता है, कठिन चांदी उत्पन्न होने पीछे शरीरमें गर्मी जान पडती है यह बात तो निर्विवाद है परन्तु कितने ही चिकित्सकोंके देखनेमें ऐसा भी आता है कि नर्म टांकी उत्पन्न हुई हो इतना कि जो टांकी उत्पन्न होने पीछे निवृत्त होय तहांतक उसके आसपास अथवा तलीमें कुछ कुछ कठिनपन न लगा होय ऐसी नर्म टांकी हुए पीछे भी किसी समय शरीर पर कठिन चांदीके समान गर्मी जान पडती है । कठिन चांदीकी यह खूबी है कि जब वह टांकी उत्पन्न होय तब हीं उसकी तली व कोर कठिन होती है । दूसरी कोई चांदी वहां नहीं होती, प्रथमसे ही नर्म होती है और पीछे छेडनेसे कदाचित वह कठिन हो जाय परन्तु मूलसे कठिन नहीं होती । इसलिये नर्म चांदी होने पीछे कहीं २ शरीरके ऊपर गर्मीके चिह्न दीखते हैं, इसको भी विचारपूर्वक ध्यानमें रखना ये दो जातिकी नर्म और कठिन टांकीके शिवाय एक टांकी और होती है, जिसमें दोनोंके मिश्र लक्षण और गुण होते हैं. इनमेंसे प्रथम टांकी व्यभिचारके पीछे शीघ्रही दीखती हैं । उसमें राध निकलती है और थोडे दिवसके पीछे वह कठिन हो जाती है और अन्तके दर्जे सम्पूर्ण शरीरमें उसका जहर फैलकर फूट निकलता है । इस रीतिसे कितने ही समय नर्म और कठिन टांकाके चिह्न स्पष्ट होते हैं । और इसके ऊपरसे उसको अन्तके दर्जेमें क्या होनेवाला है इसका परिणाम सरलतासे पहचान सक्ते हैं । तथा चिकित्सकको उचित है कि रोगीको अपना खुलासा विचार दर्शा देवे लेकिन कितने ही समय कितने ही रोगियोंपर यह परिवर्त्तन समझाना अति कठिन पडता है याने पीछेसे शरीरमें गर्मी निकलती है कि नहीं, यह विषय प्रथम निर्णय हो नहीं सक्ता । यह निर्णय करना इस स्थलपर अति उपयोगका है, क्योंकि जो गर्मी निकलेगी ऐसा निश्चय होय तो उसका उपाय जैसे शीघ्र हो सके वैसे ही रोगीको विशेष लाभकारक है । गर्मी चेंपीया रोग है ऐसा पूर्व कथन करचुके हैं, गर्मीकी टांकीके पीवका चेंप दूसरे मनुष्यके लगानेमें आवे तो उस चेंपसे गर्मीका रोग उत्पन्न हो जाता है । किन्तु इतना ही नहीं गर्मीवाले मनुष्यका रक्त अथवा उसके शरीरके विविध प्रकारके रसोंका चेंप दूसरे मनुष्यके शरीरके रसोंमें लगानेमें आवे तो इससे भी दूसरे मनुष्यको गर्मीका रोग उत्पन्न हो जाता है । इस दूसरे प्रकारकी गर्मीका प्रसार होता है इसका उदाहरण यह है कि एकको कोई (धात्री बच्चेको दूध पिलाती होय) और जो उनमेंसे एकको गर्मी हो तो दूसरेको भी होना संभव होता है हरकिसी प्रकारसे

एकका दूसरेको चेंप लगता है इतनेसे ही समझना उचित है, इसके शिवाय गर्मी फैलानेका दूसरा प्रकार ऐसा है कि जिसके माता पिताको यह उपदंशका रोग होय उससे जो बालक होय उसको बचपनमें ही गर्मीके चिह्न दीखते हैं। अर्थात् यह रोग वारसामा उतरता है, इसको सहज याने शरीरके साथ उत्पत्ति कहते हैं। कठिन चांदी होनेबाद चारसे छः अथवा आठ सप्ताहके पीछे शरीरके ऊपर उपदंशका असर जान पडता है गर्मीके आरम्भसे अन्तपर्य्यन्त जो लक्षण जान पडते हैं उनके तीन प्रवाह करनेमें आते हैं। प्रथम प्रवाहमें तो केवल चांदी पडती है तथा उसके साथमें बद होती है इसको प्राथमिक उपदंश कठिन चांदी अथवा क्षत कहते हैं यह स्थानिक है। दूसरे प्रवाहमें चांदी होने बाद जो दो तीन महीनेमें शरीरकी त्वचा मुख आदिके रसपिण्ड नेत्रसन्धि तथा अस्थियोंका दर्द होने लगता है और दो चार अथवा अधिक वर्ष पर्य्यन्त चलता है इसका समावेश होता है इसको सार्वदेहिक अथवा दूसरा चिह्न कहते हैं। तीसरे प्रवाहमें चिह्न जिनको गर्मी होती है उन सबको जान नहीं पडती परन्तु थोडोंको जान पडती है और उस समय विशेष करके छाती और पेटके अन्दरके अवयवोंके ऊपर उपदंशका दखल वास करता है। कोई कोई इस तीसरे वर्गके चिह्नोंको दूसरे वर्गमें गिनते हैं और तीसरे वर्गको नहीं रखते प्रथम वर्गके चिह्न विषय दूसरा कुछ कथन नहीं किया जाता। कितने ही विद्वान् यूरोपियन वैद्य तो उपदंशके मर्जको विस्फोटक ज्वरके साथ ही समानता बतलाते हैं तथा उपदंशको भी विस्फोटकके समान एक प्रकारका रोग समझते हैं, इसमें अन्तर केवल इतना बतलाते हैं कि विस्फोटक (माता) में ज्वर शक्त, गर्मीमें थोडा किन्तु विस्फोटक शरीर फूटकर निकलता है और उसका अन्त थोडे दिनमें आता है परन्तु यह गर्मीका मर्ज थोडे महीने वा वर्षतक चलता है। सार्वदेहिक अथवा दूसरा चिह्न—ये दूसरे वर्गके चिह्न आरम्भमें होते हैं तब विशेष करके टांकी रोपण हो जाती है परन्तु तोभी टांकीके स्थान पर कुछ कठिन भाग होता है, रोगी उसको भूल जाता है और समझता है कि अब चांदी अच्छी होगई रोगसे भी पीछा छूटा इतनेमें ही शरीरमें थोडा बहुत ज्वर आ जाता है और गला सूझ गया हो व पक गया हो ऐसा लगता है और गला थोडा बहुत दूखता भी है—मुख खोलकर देखनेमें आवे तो गलेकी खिडकी उपजीभ तथा गलेके पीछेका भाग कुछ रूखा हुआ और लाल मालूम पडता है विशेष करके इस प्रमाणे-दूसरे वर्गके चिह्न शुरू होते हैं। किसी समय ज्वर थोडा होय और गला थोडा आवे तो रोगी उसके ऊपर लक्ष देता नहीं इस समय तथा आगे उपदंशसे तरह तरहके कितने ही रोग उत्पन्न होते हैं, उनका कुछ यथार्थ अनुक्रम होता नहीं। किसीको

प्रथम नेत्रका रोग होता है तो किसीकी सन्धि पकडी जाती हैं किसीकी हड्डियोंमें दर्द होता है और किसीकी त्वचामें गर्मी जान पडती है इस वर्गके चिह्न विशेष करके दोनों बाजू समान देखनेमें आते हैं जैसा कि दोनों हथेलीमें चांठा (दाग) अथवा शरीरके दोनों ओरके हाड अथवा सन्धि एक साथ पकडे जाते हैं । यह गर्मीका रोग शरीरके अमुक अङ्गका रोग नहीं है किन्तु रक्तकी विकृतिका रोग है, शरीरके प्रत्येक भागमें इसका असर चलता है और गर्मी हुई है जिसको ऐसा मनुष्य विशेष करके निर्बल फीकी आकृति और तेजहीन होता है । जिसके प्रथम टांकी पडी हो उसके प्रमाणमें शरीरकी गर्मी जान पडती है प्रथम टांकी मोटी विशेष कठिन तथा फैलतीहुई मालूम पडे तो पीछेसे गर्मीके चिह्न भी जोरसे उत्पन्न होते हैं जिस मनुष्यको एक समय उपदंशका रोग उत्पन्न हुआ हो इसके पीछे वह जडसे जाता है कि नहीं यह एक महान् प्रश्न है । इसका उत्तर इतना ही है कि जो मूल चांदी हलकी प्रतिकी हुई होय और वह उत्तम रीतिसे शीघ्र सँभाल लेनेमें आवे याने शीघ्र इलाज किया जावे । तथा चांदीवाला मनुष्य स्त्री व पुरुष अपने शरीरसे बलवान् हो तो यह रोग मूलसे ही जाना संभव है । परन्तु कितने ही मनुष्योंको तो सम्पूर्ण जिन्दगी पर्य्यन्त नहीं छोडता औषध उपाय तथा परहेजसे जिस समय कम पडता है तब कितने ही समय तो बिलकुल नहीं दीखता तो भी जैसे बिल्ली चूहे पर कूद बैठती हैं इसी प्रकार इस रोगवाले मनुष्यका शरीर शिकारी निशाना है । उपदंशका कोई २ लक्षण किसी २ समय दीखता है, जब किसी कारणसे शरीरमें निर्बलता बढे कि उसी समय यह रोग जोरसे उद्भवरूप हो जाता है । पूर्व कथन कर आये हैं कि रोग चेंपसे होता है तथा परम्परा सम्बन्ध (वारसामें) जाता है, इसके ऊपरसे यह शंका उत्पन्न होती है कि इस रोगवाले पुरुषको स्त्री समागम और इस रोगवाली स्त्रीको पुरुषसमागम करना उचित है कि नहीं स्त्री व पुरुषके गुह्य शरीरमें जखम हों वहांतक कदापि भूलकर भी दोनोंके समागम न होना चाहिये, यदि कोई अविचारी स्त्री पुरुष इस अवसरम सहवास करें तो प्रथम तो गर्भ रहकर स्राव व पात होना संभव है दूसरे पूर्ण अवधि पर पहुंचकर बालक होगा तो वह उपदंश रोगी होगा । चाहे बालक पुत्र हो चाहे कन्या हो, हाँ ऐसी दशामें स्त्री व पुरुष किसीको होवे तो गर्मीका योग्य उपचार (चिकित्सा) करनी, व्याधि निवृत्त होनेपर सहवास करना । कितने ही समय ऐसा होता है कि स्त्री व पुरुषको गर्मीकी व्याधि होय तो एकसे दूसरेको लग जाती है और दम्पति भयंकररूप व्याधिके ग्रास बन जाते हैं, एक दूसरेकी सेवा करने लायक भी नहीं रहता । स्त्री पुरुष दोनोंको उचित है कि गर्मी शरीरमें रहे तबतक मूर्छित पारदके योगकी कोई औषध सेवन

करें और शरीरमें रोग रहते सहवाससे निरन्तर हठपूर्वक बचते रहें। जिस पुरुषको अथवा स्त्रीको उपदंश हो चुकी है वो स्त्री पुरुष चिकित्सकसे विवाह करनेकी सम्मति मांगें तो चिकित्सकको सम्मति देना योग्य है कि नहीं, इस प्रश्नके उत्तरके लिये विचार करनेकी आवश्यकता है। कारण कि उपदंशकी व्याधि शरीरमें एक समय होने पछि शरीरमेंसे निर्मूल होती है कि नहीं इसमें संदेह रहता है, यदि उपदंश होने पंछि योग्य चिकित्सा करनेसे व्याधि निवृत्त हो गई होय और कुपथ्य सेवनसे भी एक दो वर्ष पर्य्यन्त शरीरमें व्याधि न दीख पडे तो चिकित्सकको उचित है कि ऐसी स्त्री व पुरुषको विवाह करलेनेकी सम्मति देवे। दूसरे विषोंके समान उपदंशका विष भी काल करके जीर्ण और तेजहीन हो जाता है, जिनको पूर्व उपदंश होकर निर्मूल हो गया है ऐसे स्त्री पुरुषके जोडाकी प्रजा कितने ही समय तन्दुरुस्त देखनेमें आई है। गर्मीके दूसरे प्रवाहमें जो व्याधियाँ होती हैं उनके सम्मिलित नाम तो पूर्व लिख आये हैं परन्तु उनमेंसे कुछ व्याधियोंका खुलासा नीचे लिखते हैं।

(१) त्वचाके ऊपर कितने ही समय लाल रंगके ताम्र वर्ण चांठा (दांफडे) पडे हुए देखनेमें आते हैं, ये चांठा अथवा दाग गोल होते हैं छोटे दाग दुअन्नीके समान और बडे दाग रुपयेसे अधिक कदके होते हैं। पेट छाती पैर हाथ इन सब स्थलोंपर देखनेमें आते हैं किसी समय दोनों हथेली और दोनों पैरके तलुआ मात्रमें ही देखते हैं, किसी समय इन चट्ठोंके साथ त्वचाका छाला और खोल निकल जाती है इसी प्रमाणे हथेली और पैरके तलुओंकी भी स्थिति होती है। इसको अवदरण कहते हैं, यह उपदंशका एक खास चिह्न है। किसी समय गर्मीके फफोला अथवा छोटी फफोली हो आती हैं इनको पुयपीडिका और जलपिडिका कहते हैं। निर्बल तबीयतके मनुष्यके शरीरमें ये पककर मोटी धारावाली चांदी पड जाती है और इसके ऊपर खुरखुराहट व फटी हुई चमडी माळूम होती है, उपदंशसे शरीरके चमडेमें खुजली तथा गुमडी होती हैं और भी त्वचाके ऊपरके साधारण रोग हुआ करते हैं और हरएक रूपमें उपदंशकी व्याधि शरीरपर दिखाई पडती है, त्वचाके ऊपर छोटी बडी पिडिका उत्पन्न हुआ करती हैं, उपदंशजन्य रोग ताम्र वर्ण तथा गोलाकार होता है सो शरीरकी दोनों और विशेष करके समान रूपमें होता है उसके मिटनेके बाद काला दाग रह जाता है।

(२) गर्मीके कारणसे क्या स्त्री क्या पुरुष इनके मस्तकके केश (बाल) कितने हकि गिर जाते हैं, पुरुषोंकी मूँछ दाढीके भी बाल गिर जाते हैं, नखसन्धि पककर उसमेंसे पीव निकलती है और कभी कभी नख भी निकल जाते हैं और पोरुओंमेंसे राध निकलती रहती है।

(३) गर्मीके आरम्भमें मुख आ जाता है ऐसा पूर्व कथन कर आये हैं । इसके साथ ही पीछेसे गलेके अन्दर चांदी पडती है काँख सूझ आती है, होंठ तथा मुखमें किसी ठिकाने चांदी पडती हुई पिडिका उत्पन्न हो आती हैं । इसके शिवाय (लारीक्ष) याने स्वरनली भी सूझ आती है अथवा उसके ऊपर चांदी पडे तो भयंकर चिह्न समझना, क्योंकि इस पर सूझन आनेसे श्वास लेनेका मार्ग बन्द हो जाता है । किसी समय नासिका अन्दरसे सड जाती है उसका पर्दा फूट जाता है और नासिका वाहरसे गिर जाती है, तालुमें छिद्र पडकर नाकमेंको रास्ता हो जाता है । इसके द्वारा खान पानादि आहार नाकमें होकर निकलने लगते हैं उपजिह्वा सडकर निकल जाती है ।

(४) अस्थिके ऊपर जो पडत है वह सूझ जाता है और उसके ऊपर मोटा अर्वुदसा हो जाता है, उसमें अधिक पीडा होती है—और केवल दाबनेसे दर्द होता है उसके अन्दर पीडा दिन रात विशेष होती है । इससे रोगीकी निद्रा भङ्ग होती है पैर तथा हाथकी हड्डियोंके ऊपर तथा डोककी हसलीकी हड्डियोंके ऊपर अर्वुदके समान टीलासा विशेष देखनेमें आता है, पसली और खोपडीके ऊपर ऐसा ही टीलासा दीखता है । उपदंशके कारणसे अस्थिके अन्दर भी सडाव उत्पन्न हो जाता है और इससे हड्डी सड जाती हैं अथवा अस्थि शोप होने लगता है ।

(५) किसी समय सन्धि वायुके समान प्रथमसे ही सन्धि पकडी जाती है विशेष करके मोटी सन्धि अकड जाती हैं, इससे रोगीके हाथ पैर हिलानेमें बडी मुसीबत पडती है। कामकाज करनेमें अति दुःखित होता है, किसी समय छोटी सन्धि अंगुलियोंकी तथा पैरकी भी पकडी जाती हैं और उनपर सूझन आ जाती है तथा पैरके टकने घोंटू, कोहनी, पहुँचे इन पर भी सूझन आ जाती है । कमर भी पकडी जाती है संधि थोडे दिवस बाद खुल जाती हैं या अधिक दिवस पर्य्यन्त पीडा सहन करनी पडती है ।

(६) कितने ही समय उपदंशका दूसरा कोई चिह्न शरीरपर नहीं दीखता, इसके पूर्वही नेत्र दुखने लगते हैं और किसी समय नेत्रका रोग पीछेसे उत्पन्न होता है नेत्रमें कनीनिका सूझ जाती है—कनीनिका सूझने पर " लींफ " (लस) नामका रस उत्पन्न होता है जिससे कनीनिका चिपट जाती हैं और फीकी तथा पलक विस्तृत नहीं होते नेत्र लाल रंगके हो जाते हैं तथा नेत्रमें और मस्तकमें अतिशय करके वेदना होती है । इसलिये रात्रिको निद्रा आना अति दुर्लभ हो जाता है । यदि इस दशामें समय पर नेत्रकी सँभाल न की जावे तो नेत्र मारा जाता है या कुछ फुल्ल खडा हो जाता है और दृष्टि नष्ट हो जाती है अथवा चिरस्थाई व्याधि नेत्रमें जड जमाकर बैठ जाती है । तीसरे प्रवाहके चिह्न कितने ही होते हैं और कितने ही नहीं होते कई वर्षतक भी प्रवाहके चिह्न एकके पीछे एक दिखाई दिया करते हैं अथवा पुनः पुनः वही

चिह्न उखडते रहते हैं । दूसरे प्रवाहके चिह्न थोडे बहुत वर्ष पीछे आरम्भ होते हैं जब रोगीकी तबीयत विशेष आशक्त होती है तब उसका जोश अधिक होता है । लस (लींफ) नामकी रसका स्राव होकर कितने ही अवयवोंमें गांठें बँध जाती हैं। कलेजेमें फेंफसेमें. मगजमें तथा दूसरे भागोंमें यह फेरफार होता है । यदि फेफसेमें इस रोगका असर पहुँचे तो इससे क्षय रोगकी भी उत्पत्ति होती है यदि मगजमें होय तो इसके कारणसे मस्तक शूल, वातव्याधि उन्माद-चित्तभ्रम लकवा आदि भयंकर रोगोंका उदय होता है । कितने ही समय हड्डियोंमें सडाव पडता है पैरकी हड्डी तथा मस्तककी हड्डीके ऊपरसे सडाव लगना आरम्भ हो जाता है, नासिका भी सडकर गिर जाती है किसी समय हड्डीमें इतनी बडी खराबी उत्पन्न होती है कि जिस भागमें सडाव लग गया है और वह सडाव बढता ही जाता है तो उस अवयवको काटनेकी आवश्यकता पडती है, नेत्रकी पुतलीमें उपदंशके कारणको लेकर इतना फेरफार होता है कि दृष्टिका नाश हो जाता है । उपदंशके कारणको लेकर पुरुषके वृषणमें लसका जमाव होनेसे उसकी वृद्धि होती है उसको उपदंशजन्य वृषण वृद्धि कहते हैं । उपदंशके कारणको लेकर स्त्रीके गर्भाशय गर्भ अण्ड फलवाहिनीमें दूषित जहर पहुँचकर तीनों अवयवोंमें शोथ उत्पन्न कर देता है, स्त्री वंध्या दोषको प्राप्त हो जाती है ।

उपरोक्त उपद्रवोंकी चिकित्सा ।

उपदंशके भयानक रोगकी खास दवा पारद है और एक उपदंश ही क्या यावत् व्याधिमात्र हैं सबकी मुख्य औषध पारद है, इसी लिये भारतवर्षीय वैद्योंने कई सहस्र वर्षपूर्व पारदकी उपमा और प्रशंसा लिखी है ।

हरति सकलरोगान् मूर्च्छितो यो नराणां वितरति किलबद्धः खेचरत्वं जवेन ॥ सकलसुरमुनीन्द्रैर्वन्दितः शम्भुबीजं स जयति भवसिन्धोः पारदः पारदोऽयम् ॥ १ ॥ यो न वेत्ति कृपाराशिं रसं हरिहरात्मकम् । वृथा चिकित्सां कुरुते स वैद्यो हास्यतां व्रजेत् ॥२॥ शुष्केन्धनमहाराशिं यथा दहति पावकः । तद्वद्दहति सूतोऽयं रोगान् दोषत्रयोद्भवान् ॥ ३ ॥ मोहयेद्वः परान् बद्धो जीवयेच्च मृतः परान् । मूर्च्छितो बोधयेदन्यान् तं सूतं कोन सेवते ॥ ४ ॥ आयुर्द्रव्यमारोग्यं वह्निर्मेधामहद्बलम् ॥ रूपयौवनलावण्यं रसोपासनया भवेत् ॥५॥

अर्थ-जो मूर्च्छित मनुष्योंके सकलरोगोंको हरण करता है और बद्ध हुआ वेग

करके आकाशमें विचरनेकी शक्ति वितरण करता है तथा सकल सुरमुनियों करके बन्दित शिवबीज संसारसागरसे पार करनेवाला ऐसे इस पारदको सर्वोत्कृष्ट समझ-कर वर्त्तो, जो कृपाके समूह हरिहरात्मक पारदको नहीं जानता वह चिकित्सक वृथा चिकित्सा करनेका भार उठाता है उसकी संसारमें हँसी होती है । जैसे सूखे इन्धनके समूहको अग्नि भस्म करती है इसी प्रकार तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए रोगोंको यह पारद दहन करता है, जो स्वयं बद्ध होकर औरोंको मोहवश करता है और स्वयं मृत होकर औरोंको जीवित करता है और स्वयं मूर्छित होकर औरोंको जागृत करता है ऐसे रसराज पारदको कौन सेवन न करे आयुका बढानेवाला द्रव्यका दिलाने वाला आरोग्यताको स्थिर रखनेवाला जठराग्निको बढानेवाला अतिशय बलदायक तथा रूप यौवन और लावण्यता ये सब रस राजपारदके सेवनसे होते हैं ॥ १—५ ॥

यूरोपके वैद्योंको जबतक चिकित्सा प्रणालीका नियम भी मालूम नहीं था उसके पूर्वही भारतवर्षीय वैद्य अमोघ औषधियोंको निश्चय करके चिकित्सा प्रणालीमें लाने लगे थे, पारदकी कोई भी औषध उपदंश रोगीको दी जावे वही औषध इस रोगको कम करनेमें समर्थ होती हुई रोगको निवृत्त कर देती है । इस पारदसे नीचे दर्जेकी औषध आयोडाई-डओफपोटास है यह औषध भी उपयोगी है परन्तु गर्मीके रोगको मूलसे निकालनेकी ताकत इस दवामें नहीं है, तो भी कुछ लाभ अवश्य पहुँचाती है । रोगके बढे हुए जोशको शांत करती है इन दो औषधियोंके सिवाय रक्तको शुद्ध करनेवाली जठराग्नि बढानेवाली तथा शरीर आरोग्य होवे ऐसी औषधियाँ उपदंश रोगीके लिये उत्तम लाभ पहुँचाती हैं। जैसे कि सारसापरीला—नाईट्रोम्युरीयाटिक आसिड, काडलीवर, ओईल, आदि औषधियाँ देना एवं ये औषधियाँ कैसे देनी अथवा कितने समय पर्य्यन्त देनी यह प्रगट करना अति आवश्यक है । पारदको साधारण व्यवहारमें लानेवाली औषधियां रसकपूर क्यालो-मल, चाक, तथा पारदका मिश्रण और पारदका मलम है । रोगीको पारदकी औषध खिलानेसे मुख आता है असलमें अधिक रोगके लिये मुख आनेकी जरूरत है । लेकिन निर्बल और साधारण रोगमें मुख लानेकी जरूरत नहीं। देशी वैद्योंमें प्रायः मुख लानेकी प्रणाली अधिक है पारदवाली औषधि देकर विशेष मुख पाक होनेसे शरीरको हानि पहुँचती है इसको बहुत लोग जानते हैं और कितने ही मनुष्योंकी जान जोखममें हो जाती है और मृत्यु भी हो जाती है इसलिये अधिक समझदार मनुष्योंमें इस मुख लाने-वाली प्रक्रियाका तिरस्कार होते देखा जाता है। इसका कारण इतना ही है कि वैद्यलोग अधिक मुख आनेके वास्ते औषध खिला देते हैं परन्तु पीछे उनसे मुख पाक तथा स्राव रुक नहीं सक्ता और रोगी पूर्ण आहार मुखके पाकके कारणसे नहीं करसक्ता, कठिन परहेजकी व्यवस्था दी जाती है रोगीके दाँत अधिक मुख आनेसे

हिलने लगते हैं मसूडे निर्बल हो जाते हैं और सडकर पीव पडने लगती है । कितनी ही कोमल आस्थियोंमें सडाव पड जाता है किसी समय जिह्वा सूझकर मोटी हो जाती है और मुखके बाहर निकल आती है और अन्दरसे श्वासका अवरोध होकर मृत्यु हो जाती है । इसलिये ऐसी रीतिसे मुख लानेकी दवा बुद्धिमान् चिकित्सक कदापि न देवे—केवल साधारण रीतिसे मुख लानेकी औषध देवे जिसको फूलमुख कहते हैं इतने मात्र आना चाहिये । फूलमुख आनेसे कुछ थूक अधिक निकलता है तथा दांतोंके मसूडोंके ऊपर थोडा असर होय और मसूडे थोडे फूल आवें इतने तक पारा देना उचित है, इससे अधिक पारद देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है इतना असर होय इतने तक समझना कि पारेका असर रक्तके ऊपर हुआ । वहुतसे लोग ऐसा समझते हैं कि जैसे मुखमेंसे अधिक थूक निकले वैसे ही अधिक फायदा होता है, क्योंकि इसके साथमें गर्मीका असर निकल जाता है । यह उन विचारशून्य चिकित्सकोंकी बडी भूल है, जैसे पारेसे मुख थोडा आवे तथा मुखका आना अधिक दिवस जारी रहे तैसे ही अधिक फायदा होता है, जैसे अधिक मुख आवे तथा मुख थोडे दिवस रखनेमें आवे वैसाही थोडा फायदा पहुँचता है कितने ही रोगियोंपर देखा गया है कि रसकपूर उनको खिलाया गया है और मुख नहीं आया है तो भी उनको पूर्ण फायदा पहुँचा है । इसलिये मुख आता है और थूक निकलता है इसीसे गर्मीका जहर निकलता है ऐसी समझ भ्रमयुक्त और वैद्य चिकित्सकोंकी कल्पनामात्र है, वे पारदकी विपाक अवस्थाके गुणको नहीं जानते न पारदकी मात्राका परिमाण जानते हैं । पारद संघटित औषध एक दो महीने पर्य्यन्त थोडी थोडी जारी रखनी और पथ्यसे भी रहना ऐसा डाक्टर हिचनसनका कथन है, वे कहते हैं कि उपदंशके लिये सब औषधियोंको त्यागकर पारद शीघ्र रोगीको खिलाओ और अधिक समय पर्य्यन्त अल्प मात्रासे खिलाते रहो इससे मुख नहीं आवेगा ।

उपदंशरोगीको पारद खिलानेकी तीन रीति हैं । एक तो मुखके द्वारा पेटमें पहुँचाना—जैसा कि क्यालोमल एकसे आधा ग्रेन अथवा चाक और पारदका चूर्ण इतना कि दिवसमें एक अथवा दो समय प्रत्येक दिवस देना प्रथम जब गर्मीके दूसरे दर्जेके चिह्न जान पडें तब अथवा उसके प्रथम यह दवा दे सक्ते हैं । मुखके द्वारा दवा देनेके समय अन्न पचनेमें जरा विघ्न पडता है तथा दस्त भी हो जाते हैं यदि शीघ्र मुख लाना होवे तो औषध अधिक मात्रा बढाकर देनी चाहिये मुख शीघ्र आ जावेगा, क्यालोमलकी गोली रसकपूरकी गोली अथवा पानी देना चाहिये । अब पारद देनेकी दूसरी रीति यह है कि धूनी वा बाष्प (भाफ) देनेकी है । क्यालोमल बीस ग्रेनकी भाफ हररोज अथवा एक दिवस बीचमें देकर रात्रिको सोनेके वक्त लेना—एक बर्त्तन ऐसा

होना चाहिये कि जिसके मध्यमें ऊँचाई और उसके चारोंतर्फ आसपास गहराई हो उस गहराईके अन्दर पांचसे लेकर ७ तोला पर्य्यन्त पानी डालना और उस वर्त्तनके नीचे (स्पीरिट) का दीपक जलाना और उस वर्त्तनके ऊपर एक कुर्सी रखनी जल छन छन बोले जब मध्यके ऊँचे भागमें क्यालोमल शीघ्र रखके रोगीको नग्न (वस्त्ररहित) करके कुर्सीपर बैठालना और गलेसे लेकर जमीन पर्य्यन्त एक मोटा कपडा चारों तर्फ लपेट देवे । अन्दाजन् १५ व २० मिनिटमें क्यालोमल तथा पानीकी भाफ बनकर शरीरको लगेगी इससे थोडा पसीना छुटेगा वह पसीना रुमालसे पोंछ लेना । अधिक पसीना निकालनेकी आवश्यकता नहीं है। इतनी सावधानी रखनी चाहिये कि जो भाफ निकले वह शरीरके सब भागोंमें बराबर लगे परन्तु गलेमें न जाने पावे । यह उपाय जिस समय चमडेके ऊपर चांटा वगैर फूट निकले उस समय अति उपयोगी हो जाता है । इस उपायसे मुख नहीं आता पेटमें कुछ हरकत नहीं पहुँचती न मेदेमें कमजोरी होती है, प्रत्युत सम्पूर्ण शरीरकी गर्मी नष्ट हो जाती है । इस प्रमाणे गर्मीके लिये जहांतक विचारते हैं वहांतक यह धूनी आठ दश सप्ताह पर्य्यन्त लेनी चाहिये, कुछ हरकत नहीं होती परन्तु परहेजसे नियमपूर्वक रहै । तीसरी रीति यह है कि पारदकी दवा पेटमें नहीं खानी और उसकी धूनी भी नहीं लेनी पडती है, किन्तु पारदका मलम होता है उसकी पट्टी जँघाके मूलमें अथवा कांखके मूलमें लगानेसे थोडे दिवसमें मुख आ जाता है । पारा तथा लार्ड (चरबीका मलम) समान भाग लेकर घोंटनेसे मलम तैयार होता है और इसका रंग आस्मानी होता है, इससे इस पारेके मलमका नाम (आशमानी मलम) पड गया है । इस मलमके लगानेसे शीघ्र दो तीन दिवसमें मुख आ जाता है यदि दो व तीन तोला एक दिन लगाया जावे तो एक ही दिवसमें मुख आ जाता है । थोडा मलम लगानेसे मुख अधिक दिवसमें आता है—इससे मुखफल मुखकी अपेक्षा अधिक मुख आता है नेत्रका दर्द हो रहा हो कि जब विलम्ब होनेसे नेत्रको नुकसान पहुँचनेकी संभावना होवे अथवा ऐसी दूसरी आवश्यकताके प्रसंगमें पारदका असर शीघ्र शरीरमें पहुँचाना होवे तब यह तीसरी रीतिसे पारदका उपयोग करनेमें आता है । जिस बालकको जन्मसे उपदंश होती है उसके भी यह पारदका मलम लगाया जाता है, यदि पारद देनेसे रोगीका अधिक मुख आया होय और मुख आनेसे रोगीको कष्ट होय तो मुखके जोशको कम करना, अथवा बन्द करना उत्तम है । बबूलकी छाल, बेरकी छाल, अनारकी छाल, कचनारकी छाल इनको समान भाग लेकर क्काथ बना उसके कुल्ला दिनमें दो तीन समय करे, तथा बट, पीपल पिलख, गूलर इनकी । क्काथ भी यही लाभ करता है, तथा नीचेकी दवा पीनेको देना—टिंकचरओफ-

वेलोडोना १० से १५ टीपा, साफ जल १ ओंस इनको मिलाकर दिनमें ३ व ४ समय पीवे, मुखसे थूकस्राव जल्दी बन्द होगा मुख आनेकी दवा किस समय देना ? रोगके आरंभमें जब टांकी कठिन हो तथा ऐसा निश्चय होय कि उपदंश शरीरमें निकलनेवाला है तो शीघ्र पारदकी औषध देना योग्य है। ऐसी दशामें दवा देनेसे किसी प्रकारकी हानि न हो प्रत्युत अतिलाभ पहुँचता है कि उद्भव होनेवाले लक्षण दब जाते हैं ऐसा करनेसे उपदंशके द्वित्व चिह्न भी नहीं दीखते। यदि यह समय व्यतीत हो जाय तो पीछे जब दूसरे प्रवाहके चिह्नोंका आरम्भ होता है तब जो योग्य समझी जावे वह पारद संघटित औषध देना आरम्भ करे। पारदकी औषध देनेके समय रोगीके शरीरकी स्थितिकी दशाका पूर्ण विचार करनेकी आवश्यकता है, क्योंकि जब रोगीका शरीर निर्बल होय तब गर्मीका जोर अधिक होता है तथा ऐसे निर्बल रोगीको पारद भी शहन नहीं होता इसलिये प्रथम शरीरको बल प्रदान करके पीछे पारद देना योग्य है। बल बढानेके वास्ते सारसापरीला आयोडाईडओफआयर्न, काडलीवरओईल, वगैरह पौष्टिक औषध देना योग्य है। डील्युटनाइट्रोम्युरीआटीकआसिड २० टीपा, डीकोकशनऔफसारसापरीला ४½ ओंस सीरपओफआयोडाईडओफआयर्न ६० टीपा, आयोडाईडओफपोटाश्यम ६ ग्रेन, साफ जल तीन ओंस ये औषधियाँ मिलाकर तीन मात्रा करके दिवसमें ३ समय पीवे। ये उपरोक्त औषधियाँ गर्मीके तीसरे प्रवाहमें भी उपयोगी पडती हैं, कारण कि उस समय शरीर अधिक करके अशक्त होता है। तथा पारद देनेकी आवश्यकता नहीं रहती यदि शरीर ठीक हो तो दूसरे प्रवाहके किसी भी कालमें पारद दे सक्ते हैं, जो प्रथम किसी समय पारद देनेसे मुख आया हो तो पीछे पुनः मुख लानेकी कुछ आवश्यकता नहीं; पीछे जब शरीरमें गर्मीका कुछ भी चिह्न जान पडे तब नीचेकी दवा देनी योग्य है।

आयोडाईडओफपोटाश्यम ६ ग्रेन, रसकपूरका प्रवाही (अर्क) ९० टीपा, चिरायताका काढा ४½ ओंस ऊपरकी औषध मिलाकर १॥ ओंसकी मात्रासे दिवसमें ३ समय रोगीको देना, यह औषध अति उत्तम है गर्मीके उपद्रव सहित सब व्याधियोंको उपयोगी पडती है इसमें पोटासआयोडाईडकी मिकदार ६ ग्रेन है यह थोडी थोडी बढाकर १० से २० व ३० ग्रेनतक बढाई जासकी है और आयोडाईडओफपोटाश्यम विशेष उत्तम असर उपदंशके ऊपर करती है—प्रथम आरम्भके समय रोगीको देनेसे एक दो व तीन दिवस प्रतिश्याय (जुखाम) हो आता है लेकिन पीछे शीघ्र बन्द हो जाता है। पोटासआयोडाईड १२ ग्रेन लीकबीड ऐक्स्ट्राकटओफ्सारसापरीला २ ड्राम साफ जल ३ ओंस ये औषधियाँ मिलाकर ३ भाग करे और १ दिवसमें ३ समय पिलावे। पोटासआयोडाईड १५ ग्रेन—कारबोलिक

ग्लीसरीन १५ टीपा लीकवीड ऐकस्ट्राकट ओफसालसापरीला २ ड्राम–जळ ३ ओंस टारटरेटओफ आयर्न ३० ग्रेन । ऊपरकी दवा मिलाकर तीन समय १ दिवसमें पीना उपदंशके तीसरे प्रवाहमें निर्बलताके कारण मस्तिष्क वगैरह अंदरके अवयवकी व्याधिमें यह दवा उपयोगी है । और त्वचाके ऊपर जो सब शरीरमें गर्मीके चांटा पड जाते हैं उनको पारदकी धूनी उत्तम रीतिसे निवृत्त करती है तथा चांटा पडा होय उनके ऊपर (रेडप्रेसीपीपिटओईन्ट) लगानी जिनमें लाली न होय और लाल होनेकी आशाभी न हो ऐसे चांटा पर कास्टीक लगाना और पीछे यह मलम लगानी अथवा ब्लाकवाश लगानी गलेके अन्दर नाकके अन्दर तालुयाके तथा स्वरनलीके चांटा परभी कास्टिक लगाना, मुखमें तथा गलेमें चांटा तथा पिडिका होती है उनके ऊपर (नाईट्रेटओफसीलवर) १ ग्रेनको १ ओंस जलमें मिलाकर लगाना । अथवा लीकर फेरी व ग्लीसरीन चुपडना । लीकरफेरीपरकलोराईड ३ ड्राम–ग्लीसराईन ४ ड्राम, टरपनटाईनओईल ३ ड्राम–कार्बोलिक आसिड २ ड्राम इन औषधियोंको मिलाकर सूझे हुए वरमवाला चांटाके भागके ऊपर लगानेसे आराम होता है । ऐसे मुकामोंपर डोवर्सपाउडर अथवा पारेके मलमका लेप करना हितकारक है । नेत्रकी कनीनिकामें शोथ हुआ होय तो शीघ्र मुख लानेकी दवा देनी पीछे पोटास आयोडाइड शुरू करना । नेत्रके अन्दर वारम्वार आट्रोपीनिका टीपा डालकर कीकी मोटी होय ऐसा करना उचित है । इसके अतिरिक्त आवश्यकताके अनुसार जलौका (जोंक) लगाकर रक्त मोक्षण करना तथा ब्लीष्टर लगाना निद्रा आना इसमें अच्छा है नेत्रकी गतिको शान्ति मिलनेसे विशेष लाभ पहुँचता है डोवर्सपावडर अथवा कलोरलहाइड्रेट देना (वेलाडोना एकस्ट्राकट चुपडना) पोशका सेंक देना सन्धियाँ दुखती होवें तो उस समय रसकपूर और आयोडाईड ओफपोटास पिलाना–और सन्धियोंके ऊपर आयोडीन लगाना–अथवा पारद वाला लेप करना । उपदंशवाले रोगी तथा चिकित्सकको उचित है कि रोगी चाहे जैसा कुपथ्याहारी होवे परन्तु चिकित्सक उसको भय दिखलाकर कुपथ्यसे बचावे क्योंकि ऊपर यह निश्चय हो चुका है कि गर्मीकी दवा केवल पारद है और पारदकी सेवनावस्थामें कुपथ्य करना मृत्युका बुलाना है, जिसको मरनेकी आकांक्षा होय वह कुपथ्य सेवन करे । गर्म पदार्थ मद्य (शराब) मिरच-राई, अदरख, कांजी–दही, बैंगन, खटाई, आदि बिलकुल नहीं खाना शरीरमें बल प्राप्त होवे ऐसे पदार्थ खाने चाहिये–जैसे २ शरीरमें बल बढता है वैसे २ गर्मीका प्रवाह दवता जाता है मुख आया होय तबसे लेकर बन्द होने पर्य्यन्त घरमें रहना चाहिये और शीतल पवनसे विशेष बचाव रखना चाहिये–और शीतल जलसे भी स्नान न करे खटाईकी वस्तुसे बिलकुल घृणा रखनी चाहिये । मिठाई तथा फल वगैरह भी

गर्मीवालेको अति हानिकारक होते हैं—सो कदापि न खाना, गौका दुग्ध चावल गेहूँ इनका साधारण आहार करना उचित है। पारद सेवन करनेके पूर्व एक हलका जुलाब लेना और पारद सेवन करनेके अन्तमें एकदम पारदको बन्द न करना किन्तु मात्रा घटाकर कितने ही दिवसमें न्यूनमात्रासे सेवन करके त्यागना योग्य है। देशी वैद्यलोग उपदंशकी व्याधिके ऊपर पारदकी औषधियोंमेंसे रसकपूर—अथवा हिंगुल, सिंगरफ, दिया करते हैं सो प्रसिद्ध है कि चिलममें रखके पिलाते हैं तथा मलम भी काममें लाते हैं तथा रसकपूर वगैरह खिलाते भी हैं (रसकपूरमें कितनाही भाग केलोमल तथा कितनाही भाग कोरोझी व सब्लीमेट) का होता है।

भारतवर्षीय वैद्योंके तरीकेसे पारद प्रयोग।

रसकपूर १ तोला, माजूफल १ तोला, मुर्दासंग १ तोला, त्रिफलाकी भस्म २ तोला, सफेद पपडिया कत्था १ तोला, स्याहजीरा १ तोला, धुला हुआ घृत १० तोला इन सब औषिधियोंको बारीक पीसकर घृतमें मिलाकर मलम बना चांदी और उपदंशके क्षतपर लगावे हिंगुल (सिंगरफ) १ तोला, रूमीमस्तगी २ तोला, मोरतूतिया (तूतिया) १ तोला, बावची २ तोला, राल ४ तोला, मीठा तैल ८ तोला, गूगल, १ तोला रालको गर्म करके उसमें तैल मिलाना फिर गूगल मिला बाकी दवाओंको अति बारीक करके मिलाना. और घोंटकर मलम बना, चांदी तथा उपदंशके क्षत शरीरपर जहां पडे होयँ सब जगह लगाना और बद फूट गई होय तो उसपर भी लगाना। त्रिफलाकी भस्म करके उसको घृतमें मिलाकर चांदीपर लगाना यदि उसमें थोडा मोरतूतिया मिलाकर लगाया जावे तो अधिक लाभ पहुँचता है, त्रिफलाके काढेसे उपदंशके क्षतोंको धोनेसे भी लाभ पहुँचता है।

केशरादिवटी।

रसकपूर, मिश्री, चंदन, लवङ्ग, जावित्री, केशर ये समान भाग लेकर—इनकी मूंगके समान गोली बनावे १ से लेकर ३ गोली पर्य्यन्त उपदंश रोगी स्त्री व पुरुषको देवे, अथवा तीन दिवसके अन्तरसे छोटी हरडका चूर्ण ६ मासेसे १ तोला पर्य्यन्त कूप जलके साथ देनेसे एक व दो दस्त आया करेंगे, यह औषध उपदंशके ऊपर अधिक असर करती है और पूर्ण नियम दिखलाती है। लवङ्ग १ तोला अजवायन ४ तोला, भिलावाँ ३९ नग, पारद, १ तोला, वायविडंग १ तोला अकरकरा १ तोला, काली मिरच १ तोला, पुराना गुड ४ तोला प्रथम भिलावाँ तथा पारदको घोट एकरस करना, इसके बाद गुड डालकर बारीक पीसे इसके अनन्तर दूसरी औषधियोंका सूक्ष्म चूर्ण करके मिला १ मासा प्रमाण गोली बनावे, प्रतिदिन १ गोलीसे आरम्भ करके प्रातःकाल जलके साथ निगल जावे,

दो दिवस वाद दो गोली और ४ दिवस वाद ३ गोलीतक प्रातःकालके समय ही निगल जाया करे, दूधभात थोडी मिश्री मिलाकर खावे यह औषध उपदंशको अति लाभकारी है ।

वालोपदंश–इन्फन्टाईलसीफीलीस ।

पूर्व कथन किया गया है कि गर्मीका रोग (सहज) कुलपरम्परा–(वारसामें) भी मिलता है, इस प्रमाणसे कितने ही वर्ष पर्य्यन्त उपदंशका कुलपरम्परामें होना संभव है । परन्तु पूर्णरीतिसे निश्चय नहीं कहा जा सक्ता तो भी प्रथम उपदंश होने पीछे वर्ष छ महीनेमें इस प्रमाणसे गर्भके ऊपर उसका असर अधिकतर आता है, पीछे गर्मी जैसे पुरातन होवे और उसका जोर कम पडे तथा दूसरे प्रवाहमेंसे तीसरे प्रवाहमें पहुँचने पर जैसे थोडा असर अवशेष रहता है तथापि ऐसा भी उदाहरण मिल आता है कि अधिक वर्ष व्यतीत होनेपर भी इस प्रमाणसे उपदंश कुलपरम्परा (वारसामें) उतरती है पिताको गर्मीका रोग हो तथा माताको न होय तथापि उनके बच्चोंके गर्मी देखी जाती है और वालक द्वारा वह गर्मी माताको लगना संभव है, यदि माताके गर्मी हो तो बच्चेको उपदंश हो जाता है । हमने स्वयं कई वालक ऐसे देखे हैं कि उनके माता पिताको गर्मी विलकुल नहीं थी किन्तु तीसरी पुस्तमें दादाके गर्मी थी और नीचली तीसरी पुस्तमें आनकर पौत्रमें देखी गइ । कितने ही वालक ऐसे देखे गये हैं कि जन्मके साथ ही उनके शरीरमें उपदंशकी चांदी आती है । कितने ही ऐसे देखे गये कि जन्मसे दो चार छ मासके वाद उनके शरीरमें चांदी उत्पन्न होकर दिखाई दी है, इस रोगका एक नियम नहीं किन्तु यह पूर्ण निश्चय है कि स्त्री पुरुषके रजवीर्य्यमें छुपाहुआ उपदंशका जीर्ण जहर रहता है और वह कुलपरम्परामें वरावर चला जाता है इस कुलपरम्परा सम्वन्धमें कुष्ट रोग और उपदंश समान ही समझे जाते हैं, जैसा कि सुश्रुत लिखता है ।

स्त्रीपुंसयोः कुष्ठदोषाद्दुष्टशोणितशुक्रयोः ।
यदपत्यन्तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥

अर्थ–जिन स्त्री पुरुषोंके रजवीर्य्य कुष्ट रोगसे दूषित हो गये होवें उनकी सन्तान भी कोढी होती है । यही व्यवस्था उपदंशसे समझलो यदि उपदंशके कारणसे स्त्री पुरुषका रज वीर्य्य नष्ट हो जावे तो सन्तान नहीं होती, यदि दूषित रज वीर्य्यसे होवे तो संतान उपदंश रोगवाली अवश्य होती है, यहांतक कि वालक जन्मके पीछे माताको उपदंश हो तो उसका दूध पीनेके कारणसे तथा हरसमय शरीरके सम्पर्क ...से वच्चेको भी उपदंश हो जाती है और जिस वालकको उपदंशकी व्याधि है वह

बालक निरोगी धात्रीका दुग्ध पीवे तो उस धात्रीको उपदंश होना संभव है। जैसे कि मुखमें अथवा स्तनमें फट जाता है याने चीरासा पड जाता है इसी माफिक इस रोगका प्रसार अधिक रहता है।

बालउपदंश तीन प्रकारसे प्रगट होता है।

(१) एक तो गर्भावस्थामें उपदंश प्रगट होता है इससे कितनी ही स्त्रियोंका गर्भपात व स्राव हो जाता है। २ दूसरा गर्भपात न हो किन्तु बालक पूर्ण मास व्यतीत करके उत्पन्न हो इसके पीछे बालकके अङ्गोंके ऊपर उपदंशके चिह्न मालूम पडते हुए समयपर वृद्धिको प्राप्त होते हैं। तीसरे बालकके जन्मसमयमें शरीरके ऊपर उपदंशका कोई चिह्न भी दिखाइ नहीं देता परन्तु थोडे सप्ताह व मास अथवा वर्ष पीछे उपदंश प्रगट हो जाती है उपदंशवाले माता पितासे उत्पन्न हुआ बालक जन्मसे दुर्बल सूखे हाथ पैर मुरदाके समान रहता है, त्वचामें सरवट सुकडन तथा स्याह लाल दाग होते हैं। उसकी नाकमें प्रतिश्याय (जुखाम) के सदश कफ तथा पानीकी तराईसे भरी रहती है और थोडे दिवस पीछे नितम्ब व पैरके ऊपर गर्मीकी लाल कुछ श्यामता लिये हुए चांदी निकलती है मुख आ जाता है होंठके ऊपर चांदी पडती है। ऐसे बालकको जो दांत निकलते हैं उनमेंसे आगेके ऊपरसे भागको दो चार दांत चमत्कारीवाले होते हैं वे खोखे होते हैं उनके बीचमें मार्ग होता है और वे शीघ्र गिर जाते हैं, जो कायम दांत आते हैं वे भी वैसे ही होते हैं और उनके ऊपर खड्डा होता ह।

आकृति नं० ५०-५१ देखो।

बाल उपदंशकी चिकित्सा।

पारद इस गर्मीकी व्याधिके ऊपर एक उत्तम औषध है उसका इस कुल-परम्परामें उतरीहुई गर्मीके ऊपर किस प्रकार असर होता है इसके ऊपरसे ही साफ मालूम पडता है कि जिस स्त्रीको उपदंश व्याधिके कारणसे गर्भपात हुआ करता होय उसको पारद खिलाकर तथा ऊपरी पारद उपचारसे मुख लानेमें आवे इतना कि गर्भस्थ बालकको कुछ हानि न पहुंचे इस प्रकार पारद सेवनसे बालकमें असर नहीं आता, बालकके उछरनेमें बिलकुल अडचन नहीं आती जो बालक जन्मेगा उसके भी गर्मी न होगी और जो बालकके जन्म पीछे उसको थोडे दिवसमें गर्मी पडे तो उस बच्चेकी माताको पारद देना। यदि बालकको थोडा मुख आया हो तो उसके पारदका मलम लगाना इतने ही उपचारसे बच्चेकी गर्मी शान्त हो सक्ती है, यदि बच्चेको चाक तथा पारद देते हैं अथवा लींटके ऊपर पारदका मलम चुपडकर बालकके पैर तथा पीठके ऊपर बांधकर रखना

इस रीतिसे बालकका उपदंश मिट जाता है और जहाँतक उपदंश निवृत्त न होवे वहांतक मलम परिवर्त्तन करते रहना, मलममें जो पारदका भाग है वह शरीरमें प्रवेश कर उपदंशको निवृत्त करता है। बडी उमरके मनुष्यको जैसे पारदकी औषधसे सरलतापूर्वक मुख आता है वैसा बालकको मुख नहीं आता ये बात ध्यानमें रखने योग्य है। बालकको केवल दुग्ध पिलाना चाहिये, उपदंशकी भयंकर व्याधि कई पुस्तक नहीं छोडती इसी कारणसे इसकी पूर्ण व्यवस्था इस स्थलपर लिखी गई है कि कुलको दूषित करनेवाली व्याधिकी व्यवस्था आनपूर्वक जान स्त्री पुरुष निरोग होकर सन्तान उत्पत्ति करें और बहुतसे स्त्री पुरुष लज्जाके मारे इस व्याधिकी चिकित्सा नहीं कराते किन्तु व्याधिको पर्वतके समान वढा लेते हैं, यदि स्त्री पुरुष चतुर और समझदार होवें तो परस्पर एक दूसरेकी चिकित्सा कर सक्ते हैं।

टांकी चांदी-उपदंश टांकी चाँदी सिफिलीसकी चिकित्सा एवं द्वादशाऽध्याय समाप्त १२

अथ त्रयोदशोऽध्यायारम्भः।

यूनानी तिब्बसे गुदाके रोगोंकी व्याख्या।

गुदामें कई प्रकारकी व्याधियाँ उठ खडी होती हैं उनमेंसे प्रथम अर्श (बवासीर) की व्याधिका वर्णन किया जाता है। बवासीर दो प्रकारकी होती है एक यह कि गुदाकी रगोंके सिरेपर गाढे बादीके रुधिरसे मस्से उत्पन्न हो जायँ, ये मस्से सात प्रकारके होते हैं। एक तो यह कि पित्तका सिरा फूल जाय और उसमेंसे कुछ मल टपकने लगे, दूसरे यह कि अँगूरके दानेके अनुसार गोल और चौंडे होय इनको (इनबी) कहते हैं, जो अंजीरके फलकी आकृतिके होयँ उनको (तीनी) कहते हैं। छोटे और कठोर होयँ जैसे मसूर और चना इनको (द्धयी) कहते हैं। लम्बे और कठोर होयँ जैसे कि छुहारेकी गुठलीके समान इनको (तिमरी) कहते हैं, लम्बे और नर्म शहतके समान होयँ इनको (तूती) कहते हैं, तूतीका सिर गोल और दानेकी शकलका होता है और जड पतला होता है, तथा इनके दो भेद हैं। एक तो यह कि जिनमेंसे पीब रिसती रहे दूसरे यह कि जिनमेंसे पीब न रिसती होय। इन लक्षणोंके होनेपर भी या तो गुदाके बाहर होते हैं, व भीतर होते हैं तथा जो गुदाके भीतर होते हैं उनकी चिकित्सा करना कठिन है और उमीया उनको कहते हैं जिसके अन्दर छिद्र न होय और उनमें रक्त व पीब आदि कुछ भी न निकले उन्हें दामी कहते हैं जिनमें छिद्र होय और उनमेंसे पीला पानी और रक्त निकलता रहे तो जानना चाहिये कि मस्सोंमें दर्द चुभनेके समान होना और जलन होना पित्तज रुधिरका लक्षण है। चुभन तथा अधिक भारीपनका मालूम

होना अधिक गाढे रुधिरका लक्षण है, चिकित्सा इसकी यह है कि अधिक रुधिर इसका कारण निश्चय होवे तो बासिलिक अथवा साफिन अथवा माविज इनकी आवश्यकताके अनुसार फस्द खोल रुधिरको निकाले तथा दोनों नीतंबोंके बचिमें भरी सिंगीसे रक्त निकालना अति हितकारी है। बाद तबीयतको नर्म करनेके लिये काबुली हरड, कासनीका क्वाथ पिलावे और कलेजा तथा तिल्लीके ठीक करनेमें ध्यान रखे, इनमें कोई खराबी होवे तो निकाल देवे और जिन २ वस्तुओंके भोजन करनेसे उत्तम स्वच्छ रक्त उत्पन्न होवे उनका आहार करावे जैसे बडे मोटे मुर्गेके मांसका शोरबा, खीर, गाढी वस्तु जैसे घोडे हिरणका मांस बैंगन, मसूर, कर्मकल्ला, गधीका दूध, खारी मछली इत्यादि मेवे तथा भोजन जो २ इस रोगमें हानि कारक हैं न देवे और इस बातका ध्यान रखे कि रोगीकी तबीयत नर्म रहे और नर्म करनेके लिये यह औषधियाँ देवे हरडका मुरब्बा आँवलेका मुरब्बा इतरीफल सजीर और गूगलका इतरीफल इत्यादि, यदि रोगीको दस्त आते हों तो आवश्यकतानुसार उनको बन्द कर पीछे बवासीरकी दशाके अनुसार उसकी औषध करे जिससे बवासीरमें दर्द अन्य किसी प्रकारका कष्ट न हो ऐसी वस्तु लगावे जिससे मस्से शीघ्र गलजावें। यदि बवासीर दोषयुक्त तथा कष्टदायक हों तथा उसमेंसे कुछ मल न निकलता होय तो कोई ऐसी औषध काममें लावे, जो गुदाकी रगोंके मुखको खोल उसमेंसे रुधिरको निकालकर दर्दको बन्द कर दे। बवासीरमेंसे अधिक रुधिर निकलता होय और वह रुधिर सुर्ख साफ और पतला होय तथा उसके निकलनेसे रोगीका शरीर निर्बल हो जावे तो ऐसी औषध काममें लावे कि जिससे रक्त बंन्द हो जावे लेकिन जिस रोगीके शरीरमें अग्नि प्रबल होय और अधिक निर्बलताका भय न होय और मस्सोमेंसे काला रक्त निकलता होय तो ऐसे रक्तके बन्द करनेमें शीघ्रता न करनी चाहिये क्योंकि इस दूषित रक्तके निकल जानेसे कितने ही वातज रोगोंसे शरीरका बचाव रहता है, जैसे पागलपन सिरका दर्द, कूलोंका दर्द, गुर्दे और ग्रीवाका दर्द आदि इसवास्ते तबीबोंने कहा है कि बवासीरका रुधिर स्त्रियोंके मासिक धर्मके रुधिरके समान तासीरवाला है। जिसके निकल जानेसे मनुष्य कितने ही रोगोंसे बचता है यदि इस रक्तको कुसमय बन्द करे तो कितने ही रोग ऊपर कथन किये हुए उत्पन्न हो जाते हैं और इस प्रकार औषधोपचासे बवासीरको लाभ न पहुँचे तो मस्सोंको कटवा डाले जैसा कि वर्णन किया जायगा, असली चिकित्सा भी इस रोगकी यही है कि क्षारादिसे दग्ध करके निकाल देना व काटकर निकाल देना। अब उन औषधियोंका वर्णन करते हैं जो बवासीरके मस्सोंको सुखाती हैं व गिरा देती हैं। आसके पत्र, जायफल, बेंगनकी बोंडी कीकरकी जडकी छाल, मुर्र इन्द्रायनकी जडकी छाल,

सांपकी केंचुली, गूगल इन सबको समान लेकर बवासीरके मस्सोंपर धूनी देवे धूनी देनेकी विधि यह है कि ऊँटकी मेगनी जलाकर एक छोटे मुखके वर्त्तनमें व लोटे हांडी आदिमें भर उपरोक्त औषधियोंको उस बर्त्तनकी अग्निपर डाल उटकुरुआ बैठकर गुदाके मस्सोंपर धूनी देवे । दूसरी विधि यह है कि ऊँटके मेंगने जमीनमें सुलगावे और उसके अंगारपर दवा डाले और उसके ऊपर छेददार बर्त्तन रखे, वर्त्तनके छिद्रके ऊपर रोगीकी गुदा रहे जिससे धूनी रोगीकी गुदाको बराबर लगे और अधिक समय तक धूनी देनी चाहिये जिससे मस्से सूख जावें । बवासीरके मस्सोंको सुखा देनेवाली औषध अनारके छिलके, कुन्दर, बलूतकी छाल, जायफल, इन चारोंको कूटकर अँगूरके पानीमें उबाल कर खरलमें पीसकर दोनों समय बवासीर पर लेप करे और गूगल, कुन्दर रातीनज, स्पंद, कीब्रकी जडकी छाल इन औषधियोंको पूर्वोक्त विधिसे धूनी देवे । अब उन औषधियोंका वर्णन करते हैं जो गुदाका मुख खोल देती हैं, बवासीरके पीडा देनेवाले रुकेहुए रुधिरको निकाल देती हैं । पलाण्डु (प्याजका) रस गौका पित्ता, अरतनी सान इनमें रुईका फोहा भिगोकर गुदामें रक्खे, कबूतरकी बीट, बहरोजा—मरियम, इनकी भी धूनी गुणकारक है । इस बातको ध्यानमें रक्खो कि जिस समय इन खोलनेवाली औषधियोंको काममें लाओ तो प्रथम हम्माम करो—और शफतालूकी मिंगीका तैल गौकी पिण्डलीका गूदा, ऊंटके कुब्बकी चर्बी, बवासीरपर मले जिससे कि नर्म हो शीघ्र खुल जावे । क्योंकि बवासीरके नर्म करनेसे प्रथम खोलनेवाली दवा देवे तो मस्सोंमें पीडा अधिक होती है और दर्दके कारण रोगी छिन्नप्रकृति और निर्बल हो जाता है, अक्सर ऐसा होता है कि साफिन और माबिनकी फस्द खोलनेसे बवासीरका रक्त जारी हो जाता है । प्रायः ऐसा भी होता है कि रुधिर जारी करनेके लिये मस्से खोले जावें तो नर्म करनेवाली औषधियां काममें लावे—कारण कि कभी २ ऐसा देखा गया है कि नर्म करनेवाली औषधियोंसे मस्से खुल जाते हैं और खोलनेवाली औषधियोंकी आवश्यकता नहीं पडती, जब खोलनेवाली औषध काममें लावे कदाचित् अधिक पीडा उत्पन्न हो इस बातका भय हो कि गुदा सूझ जावेगी और रोगीकी शक्ति क्षीण होकर निर्बलता बढ जावेगी तो ऐसे मौकेपर दर्द बन्द करनेवाली औषधियाँ काममें लावे । इकलील, अफीम, खतमी—केशर, अलसीके बीज, अंडेकी जर्दी चर्बी गूगल प्याज, मीयासायला, ऊंटके कुब्बका गूदा इन औषधियोंमेंसे जो चीज कुट सक्ती हैं उनको कूट लेवे, जो वस्तु पिघलानेके लायक हैं उनको पिघला सबको मिलाकर लेप करे, इस लेपसे दर्द भी बन्द हो जाता है और रगोंका मुख भी खुल जाता है । दूसरी औषध जो दर्दको बन्द करती है उसकी विधि यह है कि कर्मकल्लाके पत्तोंको

लेकर इतना उबाले कि वे गल जावें और रोगनगुल अंडेकी सफेदी और थोडी अफीम मिलाकर लेप करे। सफेदाके मलमकी विधि जो दर्दको बन्द कर देता है–सफेदा, सफेद मोम, गुलरोगन, सबको मिलाकर एकसा कर लेवे फिर काममें लावे और प्याजको गौके घृतमें गर्म करके गुदापर लगावे तो दर्द बन्द हो जाता है, गंदनाको गौका घृत व बदाम रोगनमें गर्म करके (भूनकर) खरलमें डाल कर पीस मलमके समान बना मस्सोंपर लगावे तो अति लाभदायक है। ऊंटके कुव्वकी चर्बी बवासीर पर लगाना दर्द बन्द करनेमें मुख्य वस्तु है, चाहे चर्बी मले चाहे भीतर रख लेवे–और अण्डेका जर्द भाग गुलरोगनके साथ अधिक गुणकारक है। अब उन औषधियोंका वरणन किया जाता है जो बवासीरके रुधिरको बन्द करनेवाली हैं, कहरुआकी टिकिया, गूगलकी गोली, काबिजमाजून, खुब्सुलहदीद खिलावे और शिथाफ कौली रक्खे माजू, अनारके छिलके, मूरद, तुख्मगुल, अकाकिया इत्यादिके क्काथसे गुदा पर तरेडा देवे और उसमें रोगीको बिठावे, यदि खरगोशकी ऊन और मकडीका जाला वातरंगके पानीमें या केवल तिरेपानीमें भिगोकर सफ्फकाविज अथवा मुर्दासंग व सफेदा पीसकर उसपर बुरक कर गुदापर रख पट्टीसे बांध दे तो खूनी बवासीरको तत्काल बन्द करता है।

अर्श–बवासीर।

(गूगलकी विबन्धकारक गोली) छोटी हरड, बडी हरडका छिलका, बहेडेका छिलका, आंवला छिलाहुआ, शुद्ध गूगल, प्रत्येक दो दिरम, मरजान, कहरुआसीपीकी भस्म, प्रत्येक एक दिरम, गूगलको छुहारोंके जलमें पीसकर दूसरी दवा कूटछान कर उसमें मिलाकर गोलियाँ बनावे मात्रा दो दिरमकी है। अन्य औषध–बडी हरड ३० दिरम लेकर गौके घृतमें भून कहरुआ १० दिरम शुद्ध गूगल ४० दिरम–गूगलको गंधनाके जलमें घोलकर दूसरी औषधियोंको कूट छानकर उसमें मिलाकर गोलियां बनावे, मात्रा दो दिरम। (शियाफ कोहलीकी विधि) गुलनार, कुन्दुरू, माजू, सुरमा, फिटकरी, अकाकिया, अर्बीगोंद, सब समान भाग लेकर बत्ती बनाकर काममें लावे याने गुदाके अन्दर मस्से होवें तो वहां रक्खे। अब मस्सोंके काटनेकी विधि लिखी जाती है–इस बातको ध्यान रखना योग्य है कि मस्सोंको काटकर निकाल देना इस रोगकी पूर्ण चिकित्सा है–और मस्सोंके काटनेमें अक्सर भय भी रहता है सो जबतक मस्सोंके काटनेकी अधिक आवश्यकता न हो वहाँ तक न काटे। काटना यातो लोहेके शस्त्रसे हो सक्ता है या तेज काटनेवाली औषध क्षार आदिसे हो सक्ता है, अथवा जैसे दीकयरदीक और फलदकी ऊन–तथा हरताल आदिसे काटे जाते हैं। मस्सोंके काटनेकी बहुत उत्तम विधि यह है कि सब मस्सोंको न काटे एकको छोड दे

क्योंकि जो दोष इस ओरको रुजू होवे (झुके) तो उसके निकलनेके लिये मार्ग रहे और इस दूसरे समयको इस रोगका भय न रहे जैसा कि हकीम उकरातने वर्णन किया है कि ववासीरके सब मस्सोंको न काटना चाहिये उनमेंसे एकको अवश्य छोड देना, प्रायः ऐसा भी बर्णन करते हैं कि यदि ववासीरके मस्से कईएक हों तो प्रथम एकको काटे जव वह अच्छा हो जाय तव दूसरेको काटे, इसी प्रकार एक एक करके प्रत्येकको काटे यहांतक कि एक बच रहे उसको रहने देवे जिससे खराव रुधिर निकलता रहे। यदि औषधियोंसे काटना चाहे तो काटनेवाली औषधियोंको मस्सों पर लगावे, जिससे मस्से जलकर काले होकर गिर पडें और अच्छा मांस निकल आवे, उस समय उसपर मलम लगाकर जखमको रोपण कर शस्त्रसे काटे चाहे औषधसे काटे। मगर रोगीकी दशा पर अवश्य ध्यान रक्खे, यदि रोगी बलवान् हो दर्दको सह सक्ता हो तो सब मस्सोंको एक समय काट डाले। यदि रोगी पीडा न सहन कर सक्ता होवे तो एक एक करके काटे और दर्द बन्द करनेवाला मलम लगाता रहे। वहांतक कि बवासीर जबतक नष्ट न होवे तबतक जखमोंके रोपण करनेमें पूरी हिफाजत रक्खे, जो बवासीरकी जड अति गंभीर और भीतरी होवे तो, उसको काटकर निकालनेसे मस्सा निर्मूल होनेकी संभावना होवे तो, गुदा पर सिंगी रखकर खींचे जिससे मस्से बाहरकी ओर दीखने लगें फिर उनका शस्त्रसे व किसी काटनेवाली दवासे काट डाले, जो विधि उपरोक्त वर्णन हो चुकी है। हर्डका इतरीफल आमाशय तथा बवासीरी तासीरवाले रोगीको अति लाभदायक है और बवासीर रोगीके वद्धकोष्ठ व दस्त कब्जीको खोलता है विधि यह है कि वडी काविली हरडकी छाल, बहेडेकी छाल, छोटी हरड, आंवला इन सबको समान भाग लेकर बारीक कूट लेवे और बादामके तैलमें चिकनी करके थोडी गर्म करलेवे और तिगुने शहत व मिश्रीकी चाशनीमें मिलाकर माजूनके माफिक कर लेवे, मात्रा २ से ४ व ५ दिरमतक है। इसी प्रकार गूगल काइतरीफल भी पेटको नर्म करता है और बवासीरको अति लाभदायक है, वड़ी हरडका छिलका, वहेडेका छिलका, आंवलेका छिलका प्रत्येक १० दिरम और १५ दिरम गूगलको गंधनाके जलमें खरल करके दवाओंको कूट छानकर त्रिगुण शहद मिलाकर पकावे, जब चाशनी पक जावे तव सब एकत्र करके रक्खे इसकी मात्रा ३ से ५ मिसकाल तक है। दूसरा भेद बवासीरका यह है कि जिसको रिहाई ववासिर कहते हैं और यह एक प्रकारकी खराव हवा होती है जो कठिनतासे पिघलती है और कूलंजकासा दर्द बवासीरमें उत्पन्न कर देती है और वहांसे कभी पीठकी ओर चढती है। पुरुषके कोश तथा स्त्रीके मसानेमें तथा गुदाके इर्दगिर्द

उतर जाती है और ऊपरको चढे तो पेटमें गुडगुडाहट उत्पन्न कर देती है, कभी २ इसके कारणसे आम रुधिरके दस्त आने लगते हैं और कभी पेटमें कब्ज और अजीर्णके चिह्न दीखते हैं और कभी २ वह दूषित वायु दूसरे अङ्गोंमें जैसे हाथ और पैरोंकी तर्फ झुक पडती है, उसके कारणसे घुटने, तथा अन्य जोडोंमें उठने बैठनेके समय शब्द होता है जिसको चटकना कहतेहैं । यह रोग वायुके दोषोंके कारणसे जो गुर्देपर गिरते हैं अथवा उसमेंसे उत्पन्न होते हैं यह दोष गुर्देकी गर्मीसे खराब गाढी हवा बन जाते हैं और गाढे होनेके कारणसे पिघलती नहीं, गुर्देकी चारों ओर फिरती रहती है । ऊपर कहेहुए उपद्रवोंको उत्पन्न करती है, चिकित्सा इसकी यह है कि—अफतीमूनका काथ अथवा अफतीमूनकी गोली रोगीको खिलावे, जिससे वातका दोष निवृत्त हो जावे । इसके अनन्तर दूषित वायुसे दूषित जो विकृति उनके तोडनेवाली जवारिशको खिलावे और जवारिश ऐसी दवाओंकी होनी चाहिये, जो मूत्र और मलके द्वारा दूषित रतूवतको निकालनेवाली होय और दवाका असर शीघ्र गुर्देमें पहुंचे और वायु उत्पन्न करनेवाले आहार विहारोंको त्याग देवे, गोलियोंकी विधि जो कि इस दूषित रिहाई बवासीरको लाभदायक हैं । दिरवंज, अकरब्बी, छोटी हरड, बडी हरड, शीतरजाहिन्दी अकरकरा, काली मिरच, गंदनाके बीज, शुद्ध गूगल इन सबको समान भाग लेकर बारीक कूट छान एक अदवीयातसे सवा गुणा नौसादर मिला मुनक्का तथा गंदनाके पानीमें गूँद कर गोलियां बनावे, मात्रा दो दिरमसे ३ दिरमतक लेवे । बासलीककी फस्द-रीही बवासीरको अधिक गुण करती है, क्योंकि यह बादीके दोषको जिससे यह रोग उत्पन्न होता है निकाल देती है । शरीरका मलना, स्नान करना भ्रमण करना घोडेकी सवारी इस मर्जको लाभदायक हैं, क्योंकि इनसे शरीरकी खराब वायु तथा मल पसीनेके साथ निकल शरीरकी गर्मीसे साफ होती हैं । इलाजुल अमराजमें बवासीरके इलाजके बारेमें कई कठिनता दिखलाई गई हैं, प्रथम यह कि गुदा मल निकलनेका मार्ग है उसपर मल हररोज गिरता रहता है, गुदाके मार्गकी हरकत पहुंचाता रहता है और दर्द उत्पन्न करता है । दूसरे यह कि गुदापर थोडीसी वस्तु भी दर्द उत्पन्न कर देती है, दर्द मलको खींच लेता है । तीसरे यह कि गुदाकी जगह बहुत नीची है इस कारणसे मल सहजमें गुदापर गिरता है, चौथे यह कि गुदा नीचेसे ऊपरकी ओर झुकीहुई है इस कारणसे औषधका लगाना कठिन होता है । पांचवें यह कि गुदामें रगें बहुत हैं इस कारणसे मल उनमें अधिक समा जाता है और मलके अधिक समा जानेसे रोग उत्पन्न होता है । छठे यह कि उसमें रीहसंज्ञक वायु छिपी रहती है इस कारणसे जो मल उसमें एकत्र होता है वह सड

जाता है, सातवें यह कि हवा और विष्टाके निकलनेके कारणसे उसमें रुकावट नहीं रहती, इस कारणसे औषध अपना पूर्ण गुण नहीं पहुँचा सक्ता।

यूनानीतिब्बसे बवासीरकी चिकित्सा समाप्त।

आयुर्वेदसे अर्शके लक्षण तथा चिकित्सा।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात्सहजानि च। अर्शांसि षट्प्रकाराणि विद्याद्गुदवली त्रये॥ १॥ दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि संदूष्य विविधाकृतीन्। मांसाङ्कुरानपानादौ कुर्वन्त्यर्शांसि ताञ्जगुः॥ २॥

अर्थ—आयुर्वेदीय वृद्ध वैद्योंने अर्श (बवासीरके छः भेद किये हैं जैसा कि—वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोपज, रक्तज, सहज)·ये छ प्रकारका बवासीर गुदाकी तीनों वलियोंमें होता है। दुष्टहुए वातादि दोष त्वचा मांसमेदको दूषित करके गुदामे अनेक प्रकारके आकारवाले मांसके अंकुरोंको उत्पन्न करते हैं इसको अर्श व बवासीर कहते हैं॥१॥२॥

अब गुदाकी शारीरक आकृतिको दिखलाते है कि जिसमें इन मस्सोंकी उत्पत्ति होती है।

गुदावलीका वर्णन।

तत्र स्थूलान्त्रप्रतिबद्धमर्द्धपञ्चांगुलं गुदमाहुस्तस्मिन् वलयस्तिस्रोऽध्यर्द्धाङ्गुलान्तरभूताः प्रवाहणी विसर्जनी सम्वरणी चेति चतुरङ्गुलायताः सर्व्वास्तिर्य्यगेकाङ्गुलोच्छ्रिताः। शङ्खावर्त्तनिभाश्चापि वर्णतः सम्प्रकीर्त्तिताः। रोमान्तेभ्यो यवाध्यर्द्धो गुदोष्ठः परिकीर्तितः। (सुश्रुतः)

अर्थ—तहां स्थूल आँतसे बंधीहुई जिसका प्रमाण साढे चार अंगुलका होता है इस स्थानको गुदा व मलद्वार सफरा कहते हैं, इसमें तीन वली डेढ डेढ अंगुलकी दूरी पर हैं। एकका नाम प्रवाहिणी, यह मल व अपानवायुको बाहर निकालती है दूसरीका नाम विसर्जनी है जो मलादिको शरीरसे बाहर त्याग कर देती है तीसरी सम्बरणी है जो मलादिके बाहर निकलने पर पश्चात् गुदाके मुखको ज्योंका त्यों बन्द कर देती है। गुदाका विस्तार ४॥ अंगुलका है प्रत्येक बली १॥ अंगुलके आकारवाली हैं ऊपरकी दोनों बली शंखकी आवर्त्तके समान होती हैं और (अर्द्धांगुलप्रमाणेन गुदोष्ठं परिचक्षते) और रोमावली गुदाका ओष्ठ आधा अंगुल पर ह।

अर्शके पूर्व रूप।

तेषां तु भविष्यतां पूर्वरूपाण्यन्नेन श्रद्धाकृच्छ्रात्पक्तिरम्लाकासक्थिसदनमाटोपकार्श्यमुद्गारबाहुल्यमक्ष्णोश्च श्वयथुरन्त्रकूजनं गुदपरिकर्त्तन-

माशङ्का पाण्डुरोगग्रहणीदोषशोषाणां कासश्वासौ भ्रमस्तन्द्रानेन्द्रियदौर्बल्यञ्च जाते श्वेतानि रूपाणि प्रव्यक्त तराणि भवन्ति।

अर्थ—इन होनेवाले अर्श रोगोंके पूर्वरूप ये हैं। अन्नमें अरुचि, कठिनतासे अन्नका पचना, खट्टी डकार, हडफूटन, अफरा, कृशता, डकारोंका विशेष आना, नेत्रोंपर सूजन उदरमें गुडगुड शब्दका होना गुदामें कतरनीसे काटनेकीसी वेदना—पाण्डुरोग ग्रहणी रोग शोष रोगकी आशंका कास श्वास भ्रम तन्द्रा निद्रा इन्द्रियोंकी दुर्बलता याने इन्द्रिय व्यापारमें शून्यता शरीरमें आलस्य इत्यादि रूप होते हैं और जब अर्शरोग प्रगट हो जाता है तब ये ही रूप प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

दोषजन्य अर्शोके लक्षण—व रूप। प्रथम वातजार्श।

तत्र मारुतात्परिशुष्कारुणवर्णानि विषममध्यानि कदम्बपुष्पतुण्डिकेरी नाडीमुखसूचीमुखाकृतीनि च भवन्ति तैरुपहतः सशूलं संहतमुपवेश्यते कटीपृष्ठपार्श्वमेढ्रगुदनाभिप्रदेशेषु चास्य वेदना गुल्माष्ठीलाप्लीहोदराणि चास्य तन्निमित्तान्येव भवन्ति कृष्णात्वङ्नखनयनरदनवदनमूत्रपुरीषश्च पुरुषो भवति।

अर्थ—जो अर्श वातजन्य दोषसे उत्पन्न होती है उसमें सूखे कुछ २ लाल वर्णवाले ऊँचे नीचे विषम कदम्बके फूलके समान खुरखुरे वनकपासकी कलीके समान नीलमुख और सूची मुखाकृतिवाले मस्से उत्पन्न होते हैं, इनके कारणसे रोगी किंच किंचकर बडी कठिनतासे अति कठिन मल त्याग करता है इस वातज अर्शवाले रोगीकी कमर, पीठ, पसली, मेढ्र, गुदा, नाभि इत्यादि स्थानोंमें वेदना होती है इसी रोगसे गुल्म, अष्ठीला, प्लीहा (तिल्ली) और अन्य रोगभी उत्पन्न होते हैं इस अर्शवाले मनुष्यकी त्वचा नख, नेत्र, दांत, मुख, मूत्र, पुरीष, श्याववर्णके काले पड जाते हैं।

पित्तज और कफजार्शके लक्षण।

पित्तान्नीलाग्राणि तनूनि विसर्पीणि पीतावभासानि यकृत् प्रकाशानि शुकजिह्वासंस्थानानि यवमध्यानि जलौकीवक्त्रसदृशानि प्रक्लिन्नानि च भवन्ति तैरुपहतः सदाहं सरुधिरमतिसार्य्यते ज्वरदाह पिपासामूर्च्छा श्चोपद्रवा भवन्ति पीतत्वङ्नखनयनदशनवदनपुरीषश्च पुरुषो भवति॥ श्लेष्मार्शश्च लक्षणानि। श्लेष्मजानि श्वेतानि स्थिराणि वृत्तानि स्निग्धानि पाण्डूनि करीरपनसास्थिगोस्तनाकाराणि न भिद्यन्ते न स्रवन्ति कण्डू-

वहुलानि च भवन्ति तैरुपहतः सश्लेष्माणमनल्पं मांसधावनप्रकाशमति-सार्य्यते शोफशीतज्वरारोचकाविपाकशिरोगौरवाणी चास्य तन्निमित्ता-न्येव भवन्ति शुक्लत्वङ् नखनयनदशनवदनमूत्रपुरीपश्च पुरुषो भवति ॥

अर्थ—जो अर्श पित्तसे उत्पन्न होता है उसके मस्सोंका अग्र भाग नीला होता है पतले स्राव युक्त पिलाई लिये हुए प्रकृतिके समान चमकते हुए शुक्र जिह्वाके तथा यव (जौ) के समान मध्य भागवाले अर्थात् नीचे ऊपर पतले और वीचमें मोटे जोंकके मुखके समान क्लेदस्रावी होते हैं, ऐसे मस्सोंसे पीडितरोगी कठिनतासे पुरीपोत्सर्ग करता है और ज्वर दाह तृषा मूर्च्छा इत्यादि उपद्रव होते हैं और ऐसे रोगीकी त्वचा नख नेत्र दांत मुख पुरीष ये सव पीले हो जाते हैं ये सव पित्त अर्शके लक्षण हैं ।

अव कफजार्शके लक्षण कहते हैं ।

श्लेष्मज अर्शके मस्सोंका रंग श्वेत होता है और जडमें वहुत मोटे होते हैं कठिनतायुक्त होते हैं गोल चिकने पाण्डु वर्ण वाले करीर और कटहरके फलके समान तथा गोस्तन आकृतिवाले होते हैं इस प्रकारके मस्से न फटते हैं और न स्रवते हैं और इनमें खुजली वहुत चलती है ऐसे मस्सेवाला रोगी कफ संयुक्त वहुत मांसके धुलेहुए जलके समान पुरीपोत्सर्ग करता है सूजन शीतज्वर अरुचि विपाक सिरमें भारीपन इत्यादि उपद्रव होते हैं और ऐसे रोगीकी त्वचा नख नेत्र दांत मुख मूत्रपुरीप इत्यादि श्वेतवर्ण होते हैं ।

रक्तजार्शके लक्षण ।

रक्तजानि न्यग्रोधप्ररोहविद्रुमकाकणान्तिका फलसदृशानि पित्तलक्ष-णानि च यदावगाढपुरीपप्रपीडितानि भवन्ति तदात्यर्थं दुष्टमनल्पमसृक् सहसाः विसृजन्ति तस्यैवाति प्रवृत्तौ शोणितातियोगोपद्रवा भवन्ति सन्निपातजानि सर्वदोषलक्षणयुक्तानि ॥

अर्थ—रक्तज अर्शके मस्से वडके अंकुरके समान मूंगा और चिरमिटीके रंगके सदृश होते हैं और इनमें पित्तकी ववासीरके लक्षण विशेष करके पाये जाते हैं जव कि गाढे विष्ठाके निकलनेसे पीडित होते हैं तव दूषितरक्त अत्यन्त जोरसे निकलता है उस रुधिरके अत्यन्त निकलनेसे वायु कुपित होकर आक्षेपक आदि उपद्रवोंको करती है ये खूनी ववासीरके लक्षण हैं । जो अर्श सन्निपातसे उत्पन्न होता है उसमें उक्त दोषोंके सम्पूर्ण लक्षण पाये जाते हैं—जैसा कि—

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्द्वंद्वोल्वणानि च ।

सर्वैर्हेतुस्त्रिदोषाणां सहजैर्लक्षणं समम् ।

अर्थ-जिस अर्श रोगमें दो दोषोंके कारण और लक्षण पाये जाते होयँ उसको द्वंद्वजार्श जानना । तथा पृथक् २ वातादि दोशोंसे प्रगट होनेवाले अर्शरोगोंके जो २ हेतु और लक्षण कथन किये गये हैं वे सर्वांशमें त्रिदोपज बवासीरके लक्षण जानने तथा श्वास पीडादि उपद्रव और मलका उत्तमरीतिसे न उतरना इत्यादि उपद्रव तथा सहजसे उत्पन्न हुए अर्शके जो लक्षण कहे गये हैं वे भी त्रिदोपकी: बवासीरके लक्षणोंमें दीख पडते हैं—क्योंकि—

द्रव्यमेकरसं नास्ति न रोगोऽप्येकदोषजः ।
एकस्तु कुपितो दोष इतरानपि कोपयेत् ।

अर्थ—एकही रसवाली कोई औषध नहीं है और एकही दोषसे कुपित होकर कोई रोग प्रगट नहीं होता किन्तु कुपित हुआ एक दोष अन्य दोषोंको भी कुपित करता है । जैसे कि अपने अनुकूल कारणसे कुपित हुई वायु बढकर शीतप्रकृति होनेसे कफको कुपित करती है और द्रवत्व होनेसे पित्तको बढाती है ।

सहजार्शके लक्षण ।

सहजानि दुष्टशोणितशुक्रनिमित्तानि तेषां दोषत एव प्रसाधनं कर्त्तव्यम् । विशेषतश्चात्रदुर्दर्शनानि परुषाणि पाण्डूनि दारुणान्यन्तर्मुखानि तैरुपद्रुतः कृशोऽल्पभुक् सिरासंततगात्रोऽल्पप्रजः क्षीणरेताः क्षामस्वरः क्रोधनोऽल्पाग्निर्घ्राणिशिरोऽक्षिश्रवणरोगवान् सततमन्त्रकूजाटोपहृदयोपलेपारोचकप्रभृतिभिः पीड्यते ॥

अर्थ—जो अर्श शरीरकी उत्पत्तिके साथ ही उत्पन्न होता है उसे सहज कहते हैं यह बवासीर माताके रज और पिताके वीर्य्य दूषित होनेसे उत्पन्न होता है किन्तु इसकी चिकित्सा भी चिकित्सकके दोषोंके अनुसार ही करनी चाहिये अर्थात् जिस २ दोपके लक्षण बवासीरमें पाये जावें तदनुसार उसकी चिकित्सा करे। विशेष करके सहज अर्शके मस्से देखनेमें भयंकर, कडे, पाण्डु वर्णवाले दारुण और अन्दरको मुखवाले होते हैं, ऐसी बवासीरवाला मनुष्य शरीरसे कृश अल्प भोजन करनेवाला क्षीण वीर्य्य स्वरहीन क्रोधी होनेसे मन्दाग्निवाला नाक सिर आंख कान रोगवाला होता है। उसके पेटमें गुडगुडाहटका शब्द होता है पेटमें अफरा हृदयमें उपलेप और अरुचि इत्यादि रोगोंसे वह मनुष्य पीडित रहता है ।

भारतवर्षीय वैद्योंने प्रत्येक रोगकी तीन अवस्था नियत की हैं—१ सुखसाध्य, २ कष्टसाध्य, ३ असाध्य। इसके ऊपर हमने पूर्ण लक्ष्य उसी समयसे दिया है, जिस समयसे चिकित्सा वृत्तिका अवलम्बन किया है; यह सिद्धान्त आयुर्वेदीय वैद्योंका सर्वोपरि ऊंचे दर्जेका है। जिस व्याधिमें असाध्यताके लक्षण संघटित हो चुके हों वह व्याधि निवृत्त नहीं होती, किन्तु शरीरको नष्ट करदेनेवाली ही समझी जाती है। बहुतसे सद् वैद्य लोभको त्यागकर असाध्य रोगीपर हाथ नहीं डालते, परन्तु यूरोपियन पश्चिमी वैद्योंके सिद्धान्तमें कोई भी व्याधि असाध्य नहीं मानी जाती किन्तु जिस व्याधिका उपाय नहीं सूझता याने उनके यन्त्र शस्त्र क्रिया औषधादि काम नहीं देते किन्तु रोगी, पंचत्वको प्राप्त हो जाता है। उस समय वे परास्त होकर बैठते हैं, इसी प्रकार इस अर्शकी व्याधिके भी तीन भेद किये हैं। जैसाकि—

अर्शकी साध्यासाध्य व्यवस्था।

वाह्यायां तु वलौ जातान्येकदोषोल्बणानि च। अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च॥ १॥ द्वन्द्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च। कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसम्वत्सराणि च॥ २॥ सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यंतरावलिम्। जायन्तेऽर्शांसि संश्रित्य तान्यसाध्यानि निर्दिशेत्॥ ३॥ शेषत्वादायुपस्तानि चतुः पादसमन्विते। याप्यंते दीप्तकायाग्नौ प्रत्याख्ये यान्यतोऽन्यथा॥ ४॥ हस्ते पादे गुदे नाभ्यां मुखे वृषणयोस्तथा। शोथो हृत्पार्श्वशूलं च तस्यासाध्योऽर्शसोहितः॥ ५॥ हृत्पार्श्वशूलं संमोहश्छर्दिरंगस्य रुग् ज्वरः। तृष्णा गुदस्य पाकश्च निहन्युर्गुदजातुरम्॥ ६॥

अर्थ—जो ववासीर वाहरकी संवरणीनामक वलीमें प्रगट हुआ होय और एक दोषसे उत्पन्न हुआ होय, जिसको उत्पन्न हुए एक सालसे अधिक न हुआ हो ऐसे अर्शके मस्से सुखसाध्य हैं। जो अर्शके मस्से भीतरकी दूसरी (विसर्जनीय) नामकी वलीमें दो दोषोंसे प्रगट हुए हों, जिसको उत्पन्न हुए एक सालसे अधिक व्यतीत हुआ हो उनको कष्ट साध्य जानना, किसी २ वैद्याचार्य्यका ऐसा मत है कि वाहरकी वलीमें दो दोषोके मस्से और भीतरकी वलीमें एक दोषके मस्से भी कष्टसाध्य समझे जाते हैं। सहजार्श अर्थात् शरीरके उत्पन्न होनेके समयसे माता पिताके दोषके कारणसे उत्पन्न हुआ हो अथवा वात पित्त कफ तीनों दोषोंके संयुक्त प्रकोपसे उत्पन्न हुए जो

मस्से, जो तीसरी अन्तकी वलीमें उत्पन्न हुए होयँ उसको असाध्य जानना ॥ ३ ॥ यदि साध्य अर्श होय और रोगीकी आयु अवशेष होय और चतुःपाद सम्पत्ति १ वैद्य चिकित्सकका आज्ञाकारी धनवान् रोगी होय २ चिकित्सक सर्वक्रिया कुशल और सर्वोषधियोंसे सम्पन्न होय ३ रोगीकी सेवा करनेवाला सेवक आलस्य रहित बुद्धिमान् और रोगीसे स्नेह रखनेवाला होय ॥ ४ ॥ औषध अति गुणकारी नवीन रस वीर्य्यादिसे संयुक्त होय इनसे युक्त होय तथा रोगीकी जठराग्नि प्रदीप्त होयँ तो ऐसे रोगीको याप्य जानना यदि इससे अन्यथा अर्श रोगी होवे तो चिकित्सकको उचित है कि उसकी चिकित्साकी प्रवृत्तिमें न पडे ॥ ५ ॥ जिसके हाथ पैर गुदा नाभि मुख और अण्डकोश इनमें शोथ उत्पन्न हो गया होय और जिसका हृदय और पसली दूखती होयँ ऐसा अर्श रोगी असाध्य है किन्तु वह मृत्युके मुखमें प्रवेश कर रहा है, हृदय पसवाडेमें दर्द इन्द्रिय और मनमें मोह होय वमन अङ्गोंमें पीडा ज्वर प्यास गुदाका पकना अर्थात् गुदाके ऊपर अनेक प्रकारकी गुमडी निकलने लगें इन सब लक्षणोंसे संयुक्त अर्श रोगी असाध्य है ये सब मृत्युके लक्षण हैं । क्योंकि (तृष्णारोचकशूलार्त्तमतिप्रसूतशोणितम् । शोथातिसारसंयुक्तमर्शांसि क्षपयन्ति हि) प्यास अरुचि शूल इनसे पीडित और जिस रोगीके मस्सोंमेंसे अत्यन्त रुधिर बहता होय, सूजन अतीसार ये भी होयँ वह रोगी नष्ट होनेवाला है ।

अर्शरोगकी चिकित्सा ।

चतुर्विधोऽर्शसां साधनोपायः । तद्यथा भेषजं क्षारोऽग्निः शस्त्रमिति । तत्राचिरकालजातान्यल्पदोषलिङ्गोपद्रवाणि भेषजसाध्यानि मृदुप्रसृतावगाढान्युच्छ्रितानि क्षारेण । कर्कशस्थिरपृथुकठिनान्यग्निना । तनुमूलान्युच्छ्रितानि क्लेदवन्ति च शस्त्रेण । तत्र भेषजसाध्यानामर्शसामदृश्यानाञ्च भेषजं भवति । क्षाराग्निशस्त्रसाध्यानान्तु विधानमुच्यमानमुपधारय ॥ १ ॥ (सुश्रुत)

अर्थ—आयुर्वेदमें सबसे उत्तम चिकित्सा प्रक्रिया अर्शकी सुश्रुतमें है । अर्शकी चिकित्साके चार उपाय कथन किये गये हैं, जैसे १ औषधोपचार २ क्षारकर्म (क्षारसे मस्सोंको गलाकर निकाल देना) ३ अग्निकर्म ४ शस्त्रकर्म, जो अर्शके मस्से थोडे दिवससे उत्पन्न हुए होयँ और उनमें वातादि दोषोंके लक्षण, उपद्रव कम होते होयँ ऐसे मस्से भेपज (औषधसाध्य हैं) अर्थात् खानेकी दवाके सेवनसे निवृत्त हो सक्ते हैं, कोमल फैलेहुए कठोर और जो कुछ ऊंचे हो गये हों ऐसे मस्से क्षारसाध्य हैं ।

तीक्ष्ण दृढ मोटे और कठोर मस्से अग्नि कर्म साध्य हैं, ऐसे मस्से जिनकी जड पतली होयँ ऊँचे होय और क्लेद युक्त हों वे शस्त्रकर्म साध्य होते हैं। भेषज-साध्य और अदृश्य अर्शमें औषध ही प्रधान है, अब क्षार अग्नि और शस्त्रसाध्य रोगोंका विधान कहते हैं ॥ १ ॥

तत्र बलवन्तमातुरमर्शोभिरुपद्रुतमुपस्निग्धं परिस्विन्नमनिलवेदनाभिवृद्धि-प्रशमार्थं स्निग्धमुष्णमल्पमन्नं द्रवप्रायं भुक्तवन्तमुपवेश्य सम्भृते शुचौ देशे साधारणे व्यभ्रे काले समे फलके शय्यायां वाप्यादित्यगुदमन्यस्योत्संगे निषण्णापूर्व्वकायमुत्तानं किञ्चिदुन्नतकटिकं वस्त्रकम्बलकोपविष्टं यन्त्रशाटकेन परिक्षिप्तग्रीवासक्थं परिकर्म्मभिः सुपरिगृहीतमस्पंदनशरीरं कृत्वा ततोऽस्मिन् घृताभ्यक्तं यन्त्रमृज्वणुमुखं पायौ शनैः शनैः प्रवाहमाणस्य प्रणिधाय प्रविष्टे चार्शो वीक्ष्य शलाकयोत्पीड्य पिचुवस्त्रयोरन्यतरेण प्रमज्य क्षारं पातयेत् पातयित्वा च पाणिना यन्त्रद्वारं पिधाय वाक्-च्छतमात्रमुपेक्षेत। ततः प्रमृज्य क्षारबलं व्याधिबलञ्चावेक्ष्य पुनराले-पयेत्। अथार्शः पक्वजाम्बवप्रतीकाशमभिसमीक्ष्यावसन्नमीषिन्नतमुपा-वर्त्तयेत्। क्षारं प्रक्षालयेद्धान्याम्लेन दधिमस्तुशुक्तफलाम्लैर्व्वा ततो यष्टी-मधुकमिश्रेण सर्पिषा निर्व्वाप्य यन्त्रामपनीयोत्थाप्यातुर्मुष्णोदकोप-विष्टं शीताभिरद्भिः परिषिञ्चेदशीताभिरित्येके ॥ २ ॥

अर्थ-बलवान् रोगी जो अर्शरोगसे उपद्रुत है उसको स्नेहन और स्वेदन कर्मके अनन्तर वातजनित वेदनाकी वृद्धिकी शान्तिके लिये चिकनाई युक्त कुछ थोडा उष्ण और पतला (हरीरादि) भोजन कराके पवित्र और समान भूमिपर तख्त व मेज (टेबिल) बिछाकर बैठावे, परन्तु उस दिवस वृष्टि बादल कुछ न होवे सूर्यके प्रकाशकी तर्फ गुदा करा ऐसी रीतिसे दूसरे पुरुषकी गोदीमें रोगीको लिटा देवे कि उसके आगेका धड कुछ नीचा और कमरका भाग कुछ ऊंचा रहे—कम्बल अथवा कोई अन्य वस्त्र उसके नीचे बिछा देवे, तदनन्तर वस्त्रकी एक लम्बी पट्टी लपेट कर रोगीकी ग्रीवा, और हाथ, बांध परिचारकों (सहायकों) को दृढ करके पकडा देवे जिससे रोगीका शरीर हिलने न पावे। तदनन्तर सीधे और छोटे मुख-वाली शलाकायन्त्रपर घृत चुपडकर धीरेधीरे गुदा मार्गमें प्रवेश करे. जब यन्त्र गुदाके अन्दर घुस जावे तब अर्शको देखकर और शलाका यन्त्रसे पीडित करके रुई व

कोमल वस्त्रसे पोंछकर तथा धोकर मस्सोंपर क्षार लगावे क्षार लगानेके पीछे हाथसे यन्त्रद्वारको ढककर सौ मात्रा जितने कालमें मुखसे उच्चारण की जाती है उतने काल पर्य्यन्त क्षारको मस्सोंके ऊपर रहने देवे । फिर क्षारको पोंछकर देखे कि क्षारने व्याधि गलानेका कितना असर किया है और व्याधिस्थान (मस्सेको देखे कि कितना गल गया है और कितना बाकी रहा है) जितना मस्सा बाकी रहा होय उसी परिमाणसे पुनः क्षार लेप कर देवे । जब अर्शका मस्सा पकेहुए जामुन फलके समान और कुछ नीचासा जीर्ण दीख पडे उस समय उसको छोड देवे, पुनः मस्सेके ऊपरसे क्षारको धान्याम्ल (चावलकी कांजी) अथवा दहीके निचडे हुए तोड जलसे धो डाले । अथवा शुक्त फलाम्लसे धो डाले, कोल वस्त्र तथा रुईसे मस्सेको पोंछकर घृतमें मुलहटीका अति सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर मस्सेके ऊपर लगा देवे और यन्त्रको निकाल कर रोगीको खडा करदेवे फिर रोगीको गर्म जलमें बिठाल कर शीतल जलसे परिषेक करे । कोई २ वैद्याचार्य्य यह कहते हैं कि उष्ण जलसे ही परिषेक करे ।

ततो निर्व्वातमागारं प्रवेश्याचारिकमादिशेत् सावशेषं पुनर्दहेत् । एवं सप्तरात्रात्सप्तरात्रादेकैकमुपक्रमेत तत्र बहुषु पूर्वं दक्षिणाद्वामं-बामातात् पृष्ठजं ततोऽग्रजमिति ॥ ३ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर रोगीको निर्वात स्थानमें प्रवेश कराके अर्श रोगसम्बन्धि नियम पालन करनेकी शिक्षा देवे और जिस जिस मस्सेकी जड बाकी रही दीख पडे उनको दग्ध कर देवे (जला देवे) इसी रीतिसे प्रत्येक सातवें दिवस एक एक मस्सेकी चिकित्सा करे, जो मस्से बहुत हों तो प्रथम दाहिने फिर बायें फिर पीठकी तर्फके सबसे पीछे आगेके मस्सोंकी चिकित्सा करे ॥ ३ ॥

सम्यक्दग्धके लक्षण ।

तत्र वातश्लेष्मनिमित्तान्यग्निक्षाराभ्यां साधयेत् क्षारेणैव मृदुना पित्त-रक्तनिमित्तानि । तत्र वातानुलोम्यमन्नरुचिराग्निदीप्तिर्लाघवं बलवर्णोत्प-त्तिर्मनस्तुष्टिरिति सम्यग्दग्धलिङ्गानि ॥ ४ ॥

अर्थ—जो अर्श वात व कफसे उत्पन्न हुई होय तो उसको अग्निकर्म औरक्षार कर्म दोनोंसे निवृत्त करे, याद पित्त रक्तसे उत्पन्न हुई होय तो उसको मृदुक्षारसे निवृत्त करे । वायुका अनुलोमन अर्थात् अपने मार्गसे निकलना अन्नमें अरुचि जठराग्निका प्रबल होना शरीरमें हलकापन बल और वर्णकी उत्पत्ति मनमें प्रसन्नता जब ये लक्षण होते हैं तब अर्शको सम्यग् दग्ध समझो ॥ ४ ॥

अति दग्धके लक्षण ।

अतिदग्धे तु गुदाय दरणं दाहो मूर्च्छा ज्वरः ।
पिपासा शोणितातिप्रवृत्तिस्तन्निमित्ताश्चोपद्रवा भवन्ति ॥ ५ ॥

अर्थ–गुदाका विदीर्ण होना दाह मूर्च्छा ज्वर तृष्णा रुधिरका अत्यन्त वहना और रक्तसम्बन्धि अनेक उपद्रव होते हैं इन लक्षणोंसे सम्पन्न अर्श अति दग्ध होता है ॥ ५ ॥

हीनदग्धअर्शके लक्षण ।

श्यामाल्पव्रणताकण्डुरनिलवैगुण्यमिन्द्रियाणामप्रसादो विकारस्य चाशान्तिर्हीनदग्धे ॥ ६ ॥

अर्थ–काले और छोटे व्रणकी उत्पत्ति खुजली वायुकी विरुद्धता इन्द्रियोंकी असंतुष्टता और विकारका ज्योंका त्यों वना रहना ये सव लक्षण हीन दग्ध अर्शके हैं ॥ ६ ॥

अर्शमें प्रक्रियाका विधान ।

महान्ति च प्राणवतश्छित्वा दहेत् । निर्गतानि चात्यर्थं दोषपूर्णानि यन्त्रादिलास्वेदाभ्यङ्गस्नेहावगाहोपनाहविस्रावणालेपक्षाराग्निशस्त्रैरुपाचरेत् ॥ ७ ॥ प्रवृत्तरक्तानि च रक्तपित्तविधानेन भिन्नपुरीषाणि चातीसारविधानेन वद्धवर्चांसि स्नेहपानविधानेनोदावर्त्तविधानेन वा । एष सर्व्वस्थानगतानामर्शसां दहनकल्पः ॥ ८ ॥ आसाद्य च दर्वीकूर्चकशलाकानामन्यतमेन क्षारं पातयेत् । भ्रष्टगुदस्य तु विना यन्त्रेण क्षारादिकर्म्म प्रयुञ्जीत सर्वेषु च शालिषष्टिकयव गोधूमान्नं सर्पिः स्निग्धमुपसेवेत् पयसा निम्बयूषेण पटोलयूषेण वा यथादोषशाकैर्वास्तूकतंडुलीयकजीवन्त्युपोदिकाश्ववलावलमूलकपालंक्यसनाचिल्लीचुचूकलायवल्लीभिरन्यैर्वा । यच्चान्यदपि स्निग्धमग्निदीपनमर्शोघ्नं भ्रष्टमूत्रपुरीषञ्च तदुपसेवेत् । दग्धेषु चार्शस्स्वभ्यक्तोऽनलसन्धुक्षणार्थमनिलप्रकोपसंरक्षणार्थञ्च स्नेहादीनां सामान्यतो विशेषतस्तु क्रियापथमुपसेवेत् सर्पींषि च दीपनीयवातहरसिद्धानि हिंग्वादिभिश्चूर्णैः प्रतिसंसृज्यापिवेत् । पित्तार्शस्सु पृथक्पर्ण्यादीनां कषायेण दीपनीयप्रतीवापं भद्रदार्वादिपिप्पल्यादि सर्पिः । शोणितार्शस्सु मंजिष्ठामुरुङ्च्यादीनां कषाये श्लेष्मार्शस्सु सुरसादीनां कषाये सर्पिः । उपद्रवांश्च यथास्वमुपाचरेत् ९

अर्थ—जो मनुष्य बलवान् होय और उसके मस्से बडे होयँ तो उनका प्रथम शस्त्रसे छेदन कर फिर दग्ध कर देवे, जो मस्से बाहरको निकल आये होयँ और वात पित्त कफ रक्त दोपोंसे पूरित होयँ उनको विना यन्त्रके स्वेदन अभ्यङ्ग, स्नेहन, अवगाह उपनाह, विस्नावण, लेप, क्षार, अग्निकर्म शस्त्र आदि कर्मोंसे अच्छा करे ॥ ७ ॥ जिस अर्शमें रक्त प्रवृत्त हो गया होय उसको रक्त पित्त विधानसे भिन्न पुरुप अर्शको अतिसारके विधानसे बद्धपुरीप अर्शको स्नेहपानसे—अथवा उदावर्त्त विधानसे साधे अर्शकी यह दग्धविधि जो इस स्थलपर लिखी गई है वही नाक मेढ़ू योनि आदि सम्पूर्ण स्थानोंमें होनेवाले अर्शमें भी करे ॥ ८ ॥ दर्वी कूंची अथवा शलाई इन तीनोंमेंसे एकको लेकर इनसे क्षार डाले जिसकी गुदा विदीर्ण हो गई होय उसके विना यन्त्र ही क्षारादिक कर्म्मोंका प्रयोग करे । सर्व प्रकारके अर्श रोगोंमें शालि चावल, सांठी चावल, जौ, गेंहू, इत्यादि अन्नोंके बनेहुए पदार्थ घृतके पदार्थ खावे । दूध नीमका, यूप परवरका यूप, इनमेंसे किसी एकके साथ खाय अथवा दोषाके अनुसार वथुआ, चौलाई, जीवन्ती, पोई, अश्ववला, छोटी मूली, पालक, वनवथुआ, चुचू, मटरका शाक बेलके साथ खाय इनके सिवाय और जो चिकने अग्निसंदीपन अर्शनाशक, मल मूत्रको निकालनेवाले द्रव्य हैं उनका भी सेवन करे । अर्शके दग्ध होनेपर अभ्यंजन करके अग्निको बढा- नेके निमित्त और वात कोपको शान्त करनेके निमित्त सामान्य और विशेष नियमों द्वारा अर्थात् सम्पूर्ण प्रकारकी अर्शनाशक विधिसे और वातार्शकी दहन विधिसे स्नेहा- दिकोंके चिकित्सामार्गपर चले, दीपन और वातनाशक औषधियोंमें सिद्ध किया घृत हिंग्वादि चूर्णके साथ पीवे । पित्तजनित अर्शमें पृथक् पर्ण्यादिके कपायके साथ दीपन औपधियोंसे संयुक्त देवदारु और पिप्पल्यादि घृतका सेवन करावे रक्तजार्शमें मंजिष्ठादि और मुरुङ्यादि औषधियोंके कपायमें सिद्ध कियेहुए घृतको देवे और कफार्शमें सुर- सादिके कपायमें सिद्ध कियाहुआ घृत देवे । अन्योपद्रवोंका यथायोग्य विधि- पूर्वक उपाय करता रहे ॥ ९ ॥

विना यंत्रक्षार कर्मका निषध ।

परं च यत्नमास्थाय गुदे क्षाराग्निशस्त्राण्यवचारयेतद्विभ्रमाद्भिषाएढ्यशो- फदाहमदमूर्च्छाटोपानाहातीसारप्रवाहणानि भवंति मरणं वा ॥ १० ॥ (सुश्रुत)

अर्थ—अत्यन्त यत्न करके सावधानीके साथ गुदामें क्षार अग्नि तथा शस्त्रकर्म करे, जो चिकित्सक भ्रमसे विना शोचे विचारे व समझे विदून गुदाके मर्ममें ये कर्म कर डाले तो स्त्री स्त्रीपनसे और पुरुष पुरुषत्वसे हीन होकर नपुंसकता सूजन, दाह, मद, मूर्च्छा, आटोप, अनाह, अतीसार, प्रवाहणादि रोग हो रोगी मृत्युको प्राप्त होता है ॥ १० ॥ अब अर्शके यन्त्रोंका वर्णन किया जाता है परन्तु अफसोस इतना ही है कि भारत-

वर्षीय वैद्योंने यन्त्रविद्याकी उन्नति नहीं की, जो पूर्व आचार्योंने—आयुर्वेदके सुश्रुतादि ग्रन्थोंमें गुदा योनि उपस्थेन्द्रिय तथा मुख नासिका नेत्र आदिके रोगोंकी निवृत्तिके वास्ते यन्त्र शस्त्र निर्माण किये थे वे इदानींकालमें लुप्त देखे जाते हैं । यन्त्र शस्त्र विद्यामें भारतवर्षीय वैद्य सबसे पीछे हैं, कोई भी माईका लाल ऐसा नहीं है कि आयुर्वेदमें लिखेहुए यन्त्र शस्त्रोंका निर्माण करके उनका प्रचार करे. न कोई राजा महाराजा ऐसा है कि प्राचीन आयुर्वेदके प्रचारके लिये कटिबद्ध होवे ।

अब अर्शकी चिकित्साके यन्त्रोंकी निर्माणविधि लिखी जाती है ।

तत्र यन्त्रं लौहं दान्तं शार्ङ्गं वार्क्षं वा गोस्तनाकारं चतुरङ्गुलायतं पञ्चाङ्गुलपरिणाहं पुंसां षडंगुलपरिणाहं नारीणां तलायतं तद्द्विछिद्रं दर्शनार्थमेकं छिद्रन्तु कर्म्मणिएकद्वारे हि शस्त्रक्षाराग्नीनामतिक्रमो भवति ॥ छिद्रप्रमाणं तु अंगुलायतमंगुष्ठोदरपरिणाहं यदंगुलमवशिष्टं तस्यार्द्धांगुलमधस्तादर्द्धांगुलोच्छ्रितो परवृतकार्णीकमेषयन्त्राकृतिसमासः ॥ ११ ॥

(यन्त्रका प्रमाण सुश्रुत)

अर्थ—इस अर्श चिकित्साकी प्रक्रियामें आनेवाला यन्त्र—लोह—हाथीदांत, सींग अथवा सेमर आदि वृक्षोंकी लकडीके होने चाहिये—गौके थनके आकारवाला चार अंगुल लम्बा होवे—पुरुषके लिये उसकी मोटाई पांच अंगुल—और स्त्रियोंके लिये छः अंगुल—लम्बा और हथेलीके समान गोल होना चाहिये इस यन्त्रमें दो छिद्र होते हैं एक देखनेके लिये और दूसरा कर्म करनेके लिये । एक द्वारमें ही शस्त्रक्षार और अग्नि इनका अतिक्रम नहीं होता है छिद्र तीन अंगुलका लंबा अंगठेके पोरुआके समान गोल होना चाहिये, जो एक अंगुल बचा है उसमें नीचेकी ओरसे आधे अंगुलकी गोल कर्णीका होनी चाहिये यह संक्षेपसे यन्त्रकी आकृति वर्णन की गई है ॥ ११ ॥ अब यहांसे आगे अर्शके मस्सोंके ऊपर लगानेवाले लेपोंका वर्णन करेंगे ।

स्नुहीक्षीरयुक्तं हरिद्राचूर्णमालेपः प्रथमः । कुक्कुटपुरीषगुञ्जाहरिद्रापिप्पलीचूर्णमिति गोमूत्रपित्तपिष्टो द्वितीयः दन्तीचित्रकसुवर्चिकालांगुलीकल्को वा गोपित्तापिष्टस्तृतीयः । पिप्पलीसैन्धवकुष्ठशिरीषफलकल्कः स्नुहीक्षीरपिष्टोऽर्कक्षीरपिष्टो वा चतुर्थः ॥ कासीसहरितालसैन्धवश्वमारकविडङ्गपूतीककृतवेधनजम्बकेत्तिमारणी दन्तीचित्रकालर्कस्नुहीपयः सुतैलं विपक्वमभ्यञ्जनेनार्शः शातयति ॥ १२ ॥

अर्थ—थूहरके दूधमें हल्दीका चूर्ण मिलाकर अर्शके मस्सोंपर लेप करे, यह प्रथम लेप है । मुर्गाकी वीट चिरमिटी हल्दी, पीपलका चूर्ण इनको गोमूत्र, गोपित्तामें पीसकर अर्शके मस्सोंपर लेप करे, यह द्वितीय लेप है । दन्ती, चित्रक, ब्राह्मीबूटी, कलहारी, इनके चूर्णको गोके पित्तामें पीसकर अर्शके मस्सोंपर लेप करे यह तृतीय लेप है । पीपल, सेंधा नमक, कूट, सिरसके बीज, इनको थूहरके दूधमें अथवा आकके दूधमें पीसकर लगावे, यह चौथा लेप है । कसीस, हरिताल, सेंधा नमक, कनेरकी जड, वायविडङ्ग, कंजा, तोरई, जामन आक, उत्तमारणी (भूम्यामलकी) दन्ती, चीता श्वेतआक और थूहरके दूधमें तैलको पकाकर अर्शके मस्सोंपर लगानेसे मस्से कट जाते हैं । १२ । अब उन मस्सोंकी चिकित्साके प्रयोग कहे जाते हैं जो देखनेमें नहीं आते ।

प्रातःप्रातर्गुडहरीतकीमासेवेत । गुडः कर्त्ताग्निसादस्य सहन्त्यदभयादिभिः । गुडं तत्कार्यकारी च हन्ति भल्लातकैः सह । ब्रह्मचारी गोमूत्रद्रोणसिद्धं वा हरीतकीशतं प्रातः प्रातर्यथाबलमुपयुञ्जीत क्षौद्रेण अपामार्गमूलं वा तण्डुलोदकेन सक्षाद्रैमहरहः । शतावरीमूलकल्कं वा क्षीरेण ॥ चित्रकचूर्णयुक्तं वासीधुपराध्र्यम् । भल्लातचूर्णयुक्तं वा सक्तुमन्थमलवणं तक्रेण । कलशेवान्ताश्चित्रकमूलकल्कावलिप्ते निषिक्तं तक्रमम्लमनम्लं वा पानभोजनेषूपयुञ्जीत । एष एव भार्ग्यास्फोतायवान्यामलकगुडूचीषु तक्रकल्पः ॥ १३ ॥

अर्थ—अदृश्य मस्सेवाले रोगीको उचित है कि प्रातःकाल हरडका चूर्ण गुड मिलाकर खाया करे, क्योंकि गुड भी संयोग शक्तिसे अग्नि संदीपन होता है । अथवा गुड और भिलावेके मगजकी गोली बनाकर सेवन करे, अर्श रोगवाले रोगीको उचित है कि ब्रह्मचर्य्यसे रहे और एक द्रोणी गोमूत्रमें १०० हरडोंको शोधन करके प्रातःकाल ही बल और प्रकृतिके अनुसार मधुके साथ खाया करे । अथवा अपामार्ग ओंगाकी जडको चावलके जलमें पीसकर शहतके संग खाया करे । अथवा शतावरीकी जडको दूधके साथ खाय । अथवा उत्तम मद्यमें चित्रकका चूर्ण मिलाकर खाय । अथवा एक कर्ष भिलावेका चूर्ण और सोलह कर्ष यवशक्तू नमकरहित तक्रके साथ खाय । अथवा चित्रककी जडको बारीक पीसकर एक घडेके अन्दर लेप कर देवे और उसमें तक्र (मट्ठा)भर देवे फिर अम्ल अथवा अनम्लको पीने और खानेमें देवे इसी रीतिसे भारंगी, सारिवा, अजवायन, आमला, गिलोय इनके साथ भी मट्ठा पीवे यह तक्रकल्प है ॥ १३ ॥

अन्नवर्जित तक्र प्रयोग ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्याचित्रकविडङ्ग शुण्ठीहरीतकीषु च पूर्वचदेव निरन्नो वातकमहरहर्मासमुपसेवेत । शृङ्गवेरपुनर्नवाचित्रककषायसिद्धं वा पयः । कुटजमूलत्वक्फाणितं वा पिप्पल्यादिप्रतिवापं क्षौद्रेण ॥ वातव्याध्युक्तं हिंग्वादिचूर्णमुपसेवेत तक्राहारः क्षीराहारो वा । क्षारलवणां श्वित्रकमूलक्षारोदकसिद्धान्वाकुल्माषान्भक्षयेत् । चित्रकमूलक्षारोदसिद्धं वा पयः । पलाशतरुक्षारुक्षारसिद्धान्वा कुल्माषान् । पाटलामामार्गबृहतीपलाशक्षारं वा परिस्रुतमहरहर्घृतसंसृष्टम् । कुटजबंदाकीमूलकल्कं वा तक्रेण । चित्रकपूतीकनागरकल्कं वा पूतीकक्षारेण क्षारोदकसिद्धं वा सर्पिपिप्पल्यादिप्रतीवापं । कृष्णतिलप्रसृतं प्रकुञ्च वा प्रातः प्रातरनुसेवेत शीतोदकानुपानं । एभिरग्निवर्द्धतेऽग्निरर्शांसि चोपशाम्यन्ति ॥ १४ ॥ (सुश्रुत)

अर्थ-पीपल, पीपलामूल, चंव्य, चीता, वायविडङ्ग, सोंठ, हरड, इनको पीसकर पूर्वकी तरह अथवा विना भोजन किये प्रतिदिन प्रातःकाल ही मट्ठेके साथ विना भोजन किये ही पान करे । अदरख, विसखपरा, चित्रक इनके क्वाथमें सिद्ध किया-हुआ दूध देवे । कुडाकी जडकी छालका फणित करके देवे-परन्तु आहारके वास्ते दुग्ध व तक्र देवे । क्षारलवण, चित्रककी जड, इनसे संयुक्त क्षारोदकमें सिद्ध किया हुआ कुल्मापका आहार देवे । चित्रककी जड और क्षारोदकमें सिद्ध किया हुआ दूध देवे । ढाकके क्षारमें सिद्ध की हुई कुल्माप देवे । पाटला, औंगा, कटेली, ढाकके क्षारका पानी प्रतिदिवस घृतमें मिलाकर देवे । अथवा कुडा और वन्दाककी जडकी छालको पीसकर तक्र (मट्ठा) के साथ पीवे (चित्रक), कंजा, सोंठ, इनके कल्कको करंजुआके क्षारके साथ देवे । अथवा पिप्पल्यादि चूर्णसे युक्त क्षारोदकमें सिद्ध कियाहुआ मट्ठा पिलावे । आठ तोले व चार तोले काले तिल, प्रतिदिवस प्रातः-काल चाब लेवे और ऊपरसे शीतल जल पीवे, इन उपरोक्त प्रयोगोंसे जठराग्नि वढती है और अर्श शान्त होता है ॥ १४ ॥

दन्त्यारिष्ट ।

द्विपंचमूलीदन्तीचित्रकपथ्यानां तुलामाहृत्य जलचतुर्द्रोणो विपाचयेत् । ततः पादावशिष्टं कषायमादाय सुशीतं गुडतुलया सहोन्मिश्रय-

घृतभाजने निःक्षिप्य मासमुपेक्षेत यवपल्ले ततः प्रातः प्रातर्मात्रां पाययेत तेनार्शोग्रहणीदोषपाण्डुरोगोदावर्त्तारोचका न भवन्ति दीप्तोऽग्निश्च भवति ॥ १५ ॥ (सुश्रुत)

अर्थ—लघुपंचमूल, बृहत्पंचमूल, दन्ती, चीता, हरड प्रत्येक सौसौ पल ले चार द्रोण जलमें पकावे, चौथाई जल शेष रहनेपर शीतल करके काथको छान औषधियोंको निकाल काथमें १०० पल गुड मिलाकर घृतकी हाँडीमें भर एक महीने जौके ढेरमें दावकर रख देवे एक महीना व ४० दिवसके बाद छानकर शीशी व काचके वर्त्तनमें भरलेवे और प्रातःकाल ही इसमेंसे १ पल (४ तोले) की मात्रा रोगीको पिलावे अथवा रोगीकी प्रकृतिके अनुसार पिलावे इसके सेवन करनेसे अर्श, संग्रहणी, पाण्डुरोग, उदावर्त्त, अरुचि—नष्ट हो अग्नि प्रदीप्त होती है ॥ १५ ॥

अभयरिष्ट।

पिप्पलीमरिचविडंगैलवालुकलोध्राणां द्वे द्वे पले इन्द्रवारुण्याः पंच पलानि कपित्थमध्यस्य दश पथ्याफलानामर्द्धप्रस्थः प्रस्थो धात्रीफलानामेतदेकध्यं जलचतुर्द्रोणे विपाच्य पादावशेषं परिस्राव्य सुशीतं गुडतुलाद्वयेनोन्मिश्रय घृतभाजने निक्षिप्य प्रातः प्रातर्यथाबलमुपयुञ्जीत एष खल्वरिष्टः प्लीहाग्निपङ्गार्शोग्रहणीहृत्पाण्डुरोगशोफकुष्ठगुल्मोदरकृमिहरो बलवर्णकरश्चेति ॥ १६ ॥ (सुश्रुत)

अर्थ—पीपल, काली मिरच, वायविडंग, एलुआ, लोध ये प्रत्येक दो दो पल लेवे, इन्द्रायणकी जड पांच पल, कैथकी गिरी १० पल, हरडकी छाल ३२ तोला आँवला ६४ तोला इन सबको मिलाकर चार द्रोण जलमें पकावे जब चौथा भाग जल बाकी रहे तव उतारकर शीतल करके छान लेवे और दशसेर गुड मिलाकर घृतकी हाँडी व चीनीकी वर्त्तनमें भरकर जौके ढेरमें १ महीने व ४० दिवस पर्यन्त रख पीछे निकाल कर छान लेवे और शीशी आदिमें भरकर रखे इसकी ४ तोलाकी मात्रा रोगीको प्रातःकाल देवे अथवा रोगीके बलके अनुसार मात्रा देवे यह अरिष्ट प्लीहा, मन्दाग्नि, अर्श, संग्रहणी, हृद्रोग, पाण्डुरोग, शोफरोग, कुष्ठ रोग, गुल्म ६ प्रकारके उदररोग, कृमिरोगको हरनेवाला है और बल वर्णको बढानेवाला ह, इसको सुश्रुतने अभयारिष्ट लिखा है ॥ १६ ॥

अर्शके पृथक् पृथक् कर्मोंका निर्देश। सुश्रुत।

वायुप्राप्त अर्शमें स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, आस्थापन अनुवासन इत्यादि

कर्म करने चाहिये पित्तज अर्शमें विरेचन, रक्तज अर्शमें संशमन कफजमें अदरख और कुल्थी और सर्व दोष मिश्रित अर्शमें सब दोषोंके हरनेवाली यथोक्त दोष समन कर्त्ता औषधका सेवन करे और प्रकारके अर्शोंमें प्रकृतिके अनुसार दोष हरण कर्त्ता औषधियोंमे सिद्ध कियाहुआ दुग्ध पान करावे ।

भल्लातक विधान ।

भल्लातकानि परपक्कान्यनुपहतान्याहृत्यैकमादाय द्विधा त्रिधा चतुर्द्धा वा छेदयित्वा कषायकल्पेन विपाच्य कषायस्य शुक्तिमनुष्णां घृताभ्यक्तं तालुजिह्वौष्ठः प्रातःप्रातरुपसेवेत ततोऽपराह्ले क्षीरं सर्पिरोदन इत्याहार एवमेकैकं वर्द्धयेत्तावद्यावत्पञ्चेति । ततः पञ्चपञ्चाभिर्वर्द्धयेद्यावत्सप्तति-रिति । प्राप्य च सप्ततिमपकर्षयेद्भूयः पंच पंच यावत्पञ्चेति पञ्चभ्य-श्चैकैकं यावदेकमिति एवं भल्लातकसहस्रमुपयुज्य सर्व्वकुष्ठार्शोभिर्वि-मुक्तो बलवान् रोगः शतायुर्भवति ॥ १७ ॥ (सुश्रुत)

अर्थ—भूमिदोषसे रहित परिपक्क भिलावेको लावे उसमेंसे एक भिलावेके तीन चार टुकडे करके क्वाथकी रीतिसे पकाकर शीतल करके प्रथम दिवस एक शुक्ति (शीपी) भर पीवे लेकिन पीनेसे प्रथम तालु होंठ और जीभ गलफडा इनको घृतसे चुपड लेवे—इसी प्रकार प्रतिदिवस प्रातःकाल सेवन करे और तीसरे पहरमें घृत दूध भातका भोजन करे । इसी प्रकार एक एक करके प्रतिदिवस पांच भिलावें-तक बढावे, पीछे प्रतिदिवस पांच पांच बढावे, जब ७० भिलावे हो जावें तब पांच पांच करके कम करता जावे यहांतक कि जब पांच भिलावें शेष रह जावें तब एक एक करके घटावे यहांतक कि एक रहजाय इसी रीतिके अनुसार सहस्र भिला-वोंके खाने पर सम्पूर्ण प्रकारके कुष्ठ और अर्श रोग नष्ट हो रोगी मनुष्य बलवान् होकर १०० वर्ष पर्य्यन्त जीता रहता है यह भल्लातक कल्प है इस पर लवण खटाई मिरच व दूध भात घृतके सिवाय अन्याहार वर्जित है यदि रोगी अन्य आहार करे तो मृत्यु हो जाती है । और इसके अनन्तर भी दो मास पर्य्यन्त पथ्यसे रहे ॥ १७ ॥

बृहदाग्निघृतम् ।

भल्लातकसहस्रार्धं जलद्रोणे विपाचयेत् । अष्टभागावशिष्टन्तु कषायम-वतारयेत् ॥ १ ॥ घृतप्रस्थं समावाप्य कल्कानीमानिदापयेत् । त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्ति पिप्पली ॥ २ ॥ हिंगुचव्याजमो-

दाश्च पञ्चैव लवणानि च। द्वौ क्षारौ हवुषा चैव दद्यादर्द्धपलोन्मितान्॥३॥ दधिकाञ्जिकशुक्तानि स्नेहमात्रासमानि च। आर्द्रकस्वरसञ्चैव शोभांजनरसं तथा॥४॥ तत्सर्वमेकतः कृत्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत्। एतदग्निघृतं नाम मन्दाग्नि च प्रशस्यते॥५॥ अर्शसां नाशनं श्रेष्ठं मूढवातानुलोमनम्। कफवातोद्भवे गुल्मे प्लीहोदरदकोदरे॥६॥ शोफं पाण्ड्वामयं कासं ग्रहणीं श्वासमेव च। एतानि नाशयत्याशु सूर्य्यस्तम इवोदितः॥७॥

अर्थ—पांचसौ नग पके हुए पुष्ट भिलावें लेकर इनको सावधानीसे थोडे २ कुचलकर एक द्रोण जलमें पकावे जब आठवां भाग जल अवशेष रहे तब उतारकर छान लेवे। पुनः उस क्वाथमें एक प्रस्थ गोघृत मिला त्रिकुटा, पीपलामूल, चित्रक, गजपीपल, हींग चव्य, अजमोद, पांचो नमक (सेंधा नमक, काला नमक, सांभर नमक, कचिया नमक, सामुद्र नमक) अभावमें (जलका नमक) जवाखार सज्जीखार, हाऊबेर प्रत्येकका कल्क दो दो तोला दही कांजी शुक्त अदरखका स्वरस सहजनेकी मूली व छालका रस प्रत्येक दो दो प्रस्थ मिला सबको एकत्र करके यथाविधिसे घृतपाक करे और पकने पर घृतको छानकर भरलेवे इस घृतकी मात्रा १ तोलेसे लेकर २ तोला पर्य्यन्त है, तथा रोगीके बलानुसार मात्रासे सेवन करावे यह घृत मन्दाग्नि रोगके लिये अति हितकारी है। अर्शको नष्ट करनेवाला तथा दुष्ट वायुको अनुलोमन करनेवाला एवं कफ वातसे उत्पन्न हुए गुल्म रोग प्लीहा रोग उदर रोग जलोदर सूजन पाण्डुरोग कास संग्रहणी श्वास इन सब रोगोंको हरनेवाला है, जैसे सूर्य्य अन्धकारको हरता है॥ १—७॥

प्राणदागुटिका।

त्रिपलं शृङ्गवेरस्य चतुष्कं मरिचस्य च। पिप्पल्याः कुडवार्धञ्च चव्यस्य पलमेव च। तालीशपत्रस्य पलं पलार्द्धं केशरस्य च। द्वे पले पिप्पलीमूलादर्द्धकर्षञ्च पत्रकात्। सूक्ष्मैलाकर्षमेकञ्च कर्षञ्च त्वङ्मृणालयोः। अजमोदाद्विजाज्योश्च सूक्ष्माण्येकत्र चूर्णयेत्। गुडात्पलानि त्रिंशच्च चूर्णमेकत्र कारयेत्। अक्षप्रमाणा गुटिका प्राणदेति च सा स्मृता। पूर्वं भक्षेत्तु पश्चाच्च भोजनञ्च यथाबलम्। मद्यं मांसरसं यूषं क्षीरं तोयं पिबेदनु। हन्यादर्शांसि सर्वाणि सहजा-

न्यस्रजानि च । वातपित्तकफोत्थानि सन्निपातोद्भवानि च । पानात्यये मूत्रकृच्छ्रे वातरोगे गलग्रहे । विषमज्वरपित्ते च पाण्डुरोगे तथैव च । कृमिहृद्रोगिणाञ्चैव गुल्मशूलार्त्तिनां तथा । छर्द्यतीसाररोगाणां कामलाहिक्कानां हिताम् । शुण्ठ्याःस्थानेऽभया देया विड्गुडे वातपित्तजे । प्राणदेयं सितां दत्त्वा चूर्णमानाच्चतुर्गुणाम् । अम्लपित्ताग्निमान्द्यादौ प्रयोज्या गुदजातुरे । अनुपानप्रयोक्तव्यं व्याधौ श्लेष्मभवे पलम् । पलं द्वयन्त्वनिलजे पित्तजे तु पलत्रयम् । फलाम्लधान्याम्लरसोदकं च मद्यं मरुद्रोगिणि चानुपानम् । इक्षो रसः क्षीरहिमाम्बुपित्ते ऊष्णाम्बुयूषं कफजे विदध्यात् । गंडूषमात्रया देयं मृदौ क्रूरे च पञ्च च । अनुपानप्रयोक्तव्यं देशकालमवेक्ष्य च । यथा जलगतं तैलं तत्क्षणादेव सर्पति । तथा भैषज्यसङ्गेषु प्रसर्पत्यनुपानतः ।

अर्थ—सोंठ १२ तोला कालीमिरच १६ तोला पीपल ९ तोला चव्य तालीशपत्र प्रत्येक ४ तोला, नागकेशर २ तोला, पीपलामूल ९ तोला तेजपत्र आधा तोला छोटी इलायची १ तोला, जीरा १ तोला, कृष्णजीरा १ तोला, दालचीनी, खस प्रत्येक १ तोला अजमोद १ तोला, इन सबको एकत्र करके अति बारीक पीसकर कपडछान करे—और १२० तोला नर्म जातका पुराना गुड मिलाकर एक एक तोलेकी गोली बनावे—इस गोलीको प्राणदा कहते हैं, रोगीके बलानुसार भोजनके प्रथम व पीछे इसका सेवन करावे । इस गोलीके ऊपर मद्य—मांसरस (सोरुआ) यूष दूध अथवा जलका अनुपान करे । यह प्राणदा गुटिका सर्वप्रकारके अर्श, सहज अर्श, रक्तजार्श, वात पित्त कफ तथा त्रिदोषसे उत्पन्न हुए अर्शको तथा पानात्यरोग, मूत्रकृच्छ्र, बालरोग, गलग्रह, विषमज्वर, पित्तज्वर, पाण्डुरोग, कृमिरोग, हृदयरोग, गुल्म, शूल वमन अतीसार कामला, हिक्का इन उपरोक्त रोगोंमें अतिहितकारी है । इस वटीको मलावरोध और वात पित्तकी अर्शमें देना होय तो सोंठके स्थलपर हरड डालनी चाहिये गुडके स्थानमें चूर्णसे चौगुनी खांड व मिश्री डालनी चाहिये, इस प्राणदा गुटिकाको अम्लपित्त मन्दाग्नि—और गुदाके रोगोंमें देना चाहिये. कफके रोगोंमें अनुमानन् चार तोले पीना चाहिये और पित्तके रोगोंमें १२ तोला पीना चाहिये, वात रोगोंमें फलोंकी तथा धानोंकी कांजी रसौदन तथा मद्यका अनुपान करे, पित्तके रोगोंमें ईखका दूध और शीतल जलका अनुपान करे—कफके रोगोंमें ऊष्ण और यूषका अनुपान

करे देश और कालको विचार कर मृदु और क्रूर अनुपानकी पंचगण्डूषकी मात्रा देवे जिस प्रकार तैल जलमें डालनेसे तत्काल फैल जाता है उसी प्रकार अनुपानसे औषधि शरीरमें शीघ्र फैल जाती है।

श्रीबाहुशालगुड।

त्रिवृत्तेजोवती दन्ती श्वदंष्ट्रा चित्रकं शठी। गवाक्षी मुस्तविश्वाह्वा विडङ्गानि हरीतकी ॥ १ ॥ (पलोन्मितानि) पलान्यष्टावरुष्कात्। वृद्धदारु पलान्यष्टौ सूरणस्य च षोडशः ॥ २ ॥ जलद्रोणे पचेत्काथं चतुर्भागाऽवशेषितम्। पूतन्तु तं रसं भूयः क्वाथेभ्यो द्विगुणो गुडः ॥ ॥ ३ ॥ लेहं पचेत्तु तं तावद्यावद्दर्वीप्रलेपनम्। अवतार्य्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ ४ ॥ त्रिवृत्तेजोवतीकन्दचित्रकान्द्वि-पलांशकान्। एलात्वङ्मारिचं चापि गजाह्वाश्चापि षट्पलम् ॥ ५ ॥ द्वात्रिंशच्च पलश्चैव चूर्णयित्वा निधापयेत्। ततो मात्रां प्रयुञ्जीत जीर्णे क्षीररसायनः ॥ ६ ॥ पञ्चगुल्मान्प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं हलीमकम्। जयेदर्शांसि सर्वाणि तथा सर्वोदराणि च ॥ ७ ॥ दीपयेद्ग्रहणी मन्दां यक्ष्माणां चापकर्षती। पीनसे च प्रतिश्याय आमवाते तथैव च ॥ ८ ॥ अयं सर्वगदेष्वेव कल्याणो लेह उत्तमः। दुर्नामान्तकरश्चासौ दृष्टो वारसहस्रशः ॥ ९ ॥ भवन्त्यनेन पुरुषाः शतवर्षा निरामयाः। दीर्घायुषः प्रजननो वलीपलितनाशनः ॥ १० ॥ रसायनवरश्चैष मेधाजननउत्तमः। गुड-श्रीबाहुशालोऽयं दुर्नामारिः प्रकीर्तितः ॥ ११ ॥

अर्थ—निसोत, तेजबल, दन्ती, गोखुरू, चीता, कचूर, इन्द्रायण, नागरमोथा, सोंठ, वायविडंग, हरडकी छाल, प्रत्येक चार चार तोला पक्व पुष्ट भिलावे ३२ तोला, विधारा ३२ तोला, जमीकन्द ६४ तोला इन सबको कुचलकर दो द्रोण (याने २०४८ दो हजार अडतालीस तोला) जलमें पकावे जब चौथा भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर वस्त्रमें छान लेवे फिर उस क्वाथसे दुगुना गुड मिला मन्दाग्निमें पचावे जब पकते २ गुड कलछीसे चिपकने लगे तो उतार लेवे फिर इसमें निसोत, तेजबल, जमीकन्द, चित्रक, प्रत्येक आठ आठ तोला; इलायची, दालचीनी, काली मिर्च, गजपीपल प्रत्येकका चूर्ण चौवीस चौवीस तोला मिला इसको शक्तिके अनुसार भक्षण

करे । इस औषधिके जीर्ण होने पर दुग्ध मांसरसका भक्षण करे, यह गुड पांच प्रकारके गुल्म रोग, पाण्डु, हलीमक, सब प्रकारकी बवासीर, सब प्रकारके उदररोगोंको नष्ट करे । मन्दाग्निको दीपन करता है और राजयक्ष्माको अपकर्षण करता है यह बाहुशालगुड, पीनस, प्रतिश्याय, आमवात, और सब प्रकारके रोगोंमें हितकारी है, यह बवासीर रोगको विशेष करके हित करता है । इसकी हजारोंवार परीक्षा हो चुकी है, इसके सेवन करनेसे मनुष्य रोगोसे छूटकर सौ वर्षतक जीता है । यह गुड आयुवर्द्धक है वलीपलित नाशक और उत्तम रसायन है, बुद्धिको बढानेवाला है इस श्रीबाहुशाल गुडको दुर्नामारि भी कहते हैं ॥ १-११ ॥

अर्शमें पेय औषध ।

गुदश्वयथुशूलार्त्तं मन्दाग्निं पाययेच्च तम् । त्र्यूषणां पिप्पलीमूलं पाठां हिंगुसचित्रकम् ॥ १ ॥ सौवर्चलं पुष्कराख्यमजाजीं बिल्वपेषिकाम् । विडं यवानीं हपुषां विडङ्गं सैंधवं वचाम् ॥ २ ॥ तिंतिडीकञ्च मण्डेन मेद्येनोष्णोदकेन च । तथार्शोग्रहणीदोषशूलानाहाद्विपच्यते ॥३॥ (चरक)

अर्थ-गुदाकी सूजन शूल और मन्दाग्नि युक्त अर्शमें नीचे लिखे द्रव्योंका पान करावे, त्रिकुटा, पीपलामूल, पाठा हींग चित्रक, संचल नमक, कुडा-काला जीरा, वेलगिरी, विड नमक, अजवायन, हाऊवेर, वायविडंग सेंधा नमक वच, इमली इनको सुरामण्ड और उष्ण जलके साथ पान करे तो अर्शरोग ग्रहणी दोष शूल आनाह इनको नष्ट करे ॥ १-३ ॥

अर्शमें यूपसंयुक्त मांस ।

शुष्कमूलकयूषं वा यूषं कौलत्थमेव वा । दधित्थबिल्वयूषं वा सकुलत्थमकुष्ठकम् ॥ छागलं वा रसं दद्याद्यूषैरेतैर्विमिश्रितम् । लावादीनां फलाम्लं वा सतक्रं ग्राहिभिर्वृतम् ॥ (चरक)

अर्थ-सूखी मूलीका यूप व कुल्थीका यूप व कैथका यूप व वेलगिरीका यूप सोठका यूप अथवा इन्हीं यूपोंसे संयुक्त बकरेका मांस रस अथवा अनारकी खटाई मिलाहुआ गौका तक्र व संग्राही औषधोंके साथ सिद्ध कियाहुआ लवादिका मांस देना उचित है ।

अर्शपर आनुवासनिकतैल ।

पिप्पलीं मदनं बिल्वं शताह्वां मधुकं वचाम् । कुष्ठं शठीं पुष्कराख्यं चित्रकं देवदारु च । पिष्ट्वा तैले विपक्तव्यं पयसा द्विगुणेन च । अर्शसां

मूढवातानां तच्छ्रेष्ठमनुवासनम् ॥ गुदनिःसरणं शूलं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् । कट्यूरुपृष्ठदौर्बल्यमानाहं वंक्षणाश्रयम् । पिच्छास्रावं गुदं शोफं वातवर्चोविनिग्रहम् । उत्थानं बहुशो यच्च जयत्तेच्चानुवासनम् ॥ (चरक)

अर्थ—पीपल मैनफल बेलगिरी सौंफ, मुलहटी वच, कूट सोंठ पुष्करमूल चित्रक देवदारु इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीसकर द्विगुण दूध डालकर द्विगुण मीठे तैलमें पचावे, तैल सिद्ध होनेपर यह अनुवासन तैल अर्शरोग तथा मूढवातमें हितकारी होता है । इससे गुदाका बाहर निकलना शूल मूत्रकृच्छ्र प्रवाहिका कमर ऊरू और पीठकी दुर्बलता वंक्षणका आनाह पिच्छास्राव गुदाकी सूझन तथा अधोवायु और विष्ठाका विबन्ध बारम्बार रोगका उठना ये सब नष्ट हो जाते हैं ।

(कनकारिष्टअर्थात् आमलक्यारिष्ट)।

नवस्यामलकस्यैकां कुर्य्याज्र्झरितां तुलाम् । कुडवांशं विडङ्गानि पिप्पलीमारिचानि च ॥ पाठामूलं च पिप्पल्यः क्रमुकं चव्यचित्रकौ । मंजिष्ठैल्वालुकं रोध्रं पालिकान्युपकल्पयेत् । कुष्ठं दारुहरिद्रां च सुराह्वं शारिवाद्वयम् । इन्द्राह्वां भद्रमुस्तं च कुर्य्यादर्द्धपलोन्मिताम् । चत्वारि नागपुष्पस्य पलान्यभिनवस्य च । द्रोणाभ्यामम्भसो द्वाभ्यां साधयित्वावतारयेत् । पादावशेषे पूते च रसे तस्मिन् समावपेत् । मृद्वीकाद्व्याढकरसं शीतं निर्यूहसंमितम् । शर्करायाश्च शुक्लाया दद्याद्द्विगुणितां तुलाम् । कुसुमस्वरस्यैकमर्द्धप्रस्थं नवस्य च । त्वगेलाप्लवपत्राम्बुसेव्यक्रमुककेशरम् । चूर्णयित्वा तु मतिमान् कार्षिकान् अत्र दापयेत् । तत् सर्वं स्थापयेत् पक्षं शुचौ च घृतभाजने । प्रलिप्ते सर्पिषा किञ्चिच्छर्करागुरुधूपिते । पक्षादूर्ध्वं अरिष्टोऽयं कनको नाम विश्रुतः । प्रायः स्वादुरसो हृद्यः प्रयोगाद्भक्तरोचनः । अर्शांसि ग्रहणीदोषमानाहमुदरं ज्वरम् । हृद्रोगं पाण्डुतां शोथं गुल्मवर्चोविनिग्रहम् । कासं श्लेष्मामयां श्चोगान् सर्वानेवापकर्षति । वलीपलितखालित्यं दोषजं च व्यपोहति । (चरक)

अर्थ—नूतन आंवले एक तुला (४०० तोला), वायविडंग पीपल और काली

मिरच—ये तीनों एक एक कुडव (१६ तोला) लेवे, पाठा, पीपलामूल, सुपारी, चव्य, चित्रक, सुपारी, मजीठ, एलुआ, लोध इनको एक पल (चार चार तोला) कूट, दारुहल्दी, देवदारु, दोनों सारिवा, कूटज, भद्रमोथा, ये दो दो तोला, नागकेशर, चारपल (१६ तोला) इन सब औषधियोंको ले जौकुट करके ६४ सेर जलमें पकावे जब १६ सेर जल शेष रह जाय तब उतारकर शीतल होनेपर छान लेवे, और इस काथके समान ही दो आढक (१६ सेर) दाखका रस मिला व दो तुला (८०० तोला) सफेद चीनी नूतन शहत आधा प्रस्थ (एक सेर) दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागरमोथा, नेत्रवाला, सुपारी, केशर, ये सब एक एक कर्ष (दो दो तोला) लेकर चूर्ण करके उसमें मिला फिर एक शुद्ध घृतके बर्त्तनमें अथवा चीनीके बर्त्तनमें भरकर १५ दिवस पर्य्यन्त धरा रहने देवे । पूर्वोक्त द्रव्योंको घट व चीनीके बर्त्तनमें भरनेसे प्रथम घृतमें छोटी चीनी (शक्कर) मिला कर बर्त्तनके अन्दर लेप कर अगरकी धूनी देकर सुगन्धित कर लेवे, एक पक्ष (१५ दिवस) पछि यह कनकारिष्ट अर्थात् आमलक्यारिष्ट, तैयार हो जाता है । यह अति स्वादु मिष्ट हृदयप्रिय और भोजनमें अति रुचि बढानेवाला होता है, इसके सेवन करनेसे अर्श, ग्रहणी दोष, अनाह, उदररोग, ज्वर, हृद्रोग, पाण्डुरोग, शोष, गुल्म, विष्टा मलका विबन्ध, खांसी, तथा सब प्रकारके उग्र कफ रोग नष्ट हो, बलीपलित तथा खालित्य रोग भी नष्ट हो जाता है ।

रक्तजार्शकी चिकित्साका अनुक्रम ।

चिकित्सितमिदं सिद्धं स्राविणां शृण्वतः परम् । तत्रानुबन्धो द्विविधः श्लेष्मणो मारुतस्य च । विट्श्यावकठिनं रूक्षं चाधोवायुर्न वर्त्तते । तनु चारुणवर्णं च फेनिलं चासृगर्शसाम् । कट्यूरुगुदशूलं च दौर्बल्यं यदि वाधिकम् । तत्रानुबन्धो वातस्य हेतुर्यदि विरूक्षणम् । शिथिलं श्वेतपीतं च विट्स्निग्धगुरुपिच्छिलम् । यद्यर्शसां घनं चासृक्तन्तुमत् पाण्डुपिच्छिलम् । गुदः सपिच्छः स्तिमितो गुरुस्निग्धश्च कारणम् । श्लेष्मानुबन्धो विज्ञेयः तत्र रक्तार्शसां बुधैः ।

अर्थ—अब रक्तज (खूनी बवासीर) के अनुभव किये हुए प्रयोगोंको लिखते हैं—इसमें दो दोषोंका अनुबन्ध होता है एक कफका, दूसरा वायुका । जिस रक्तजार्शवाले रोगीका दस्त काला, कठिन, रूखा, होय और अधोवायु की प्रवृत्ति न होती हो और अर्शका रक्त पतला लाल रंगका और झागदार

होय, रोगीकी कमर ऊरु गुदा इनमें शूल होता हो रोगीका शरीर अति दुर्वल होय—एवं रूक्ष पदार्थोंके सेवन करनेसें अर्श उत्पन्न हुआ होय उसको वातानुवन्धी अर्श कहते हैं। जिस रोगीका विष्टा ढीला सफेद पीला स्निग्ध भारी और पिच्छिल हो जिस अर्शका रक्त गाढा तन्तुदार पाण्ड वर्ण और पिच्छिल होय गुदा पिच्छिल और स्तिमित हो जो गुरु और स्निग्ध पदार्थोंके सेवनसे अर्श उत्पन्न हुई होय उसको कफानुवन्धी रक्तजार्श कहते हैं।

(अब रक्तजार्शमें चिकित्साका अनुक्रम कहते हैं।)

स्निग्धशीतं हितं वाते रूक्षशीतं कफेऽनुगे। चिकित्सितमिदं तस्मात् सम्प्रधार्य प्रयोजयेत्। पित्तश्लेष्माधिकं मत्वा शोधनेनोपपादयेत्। स्रवणं चाप्युपेक्षेतं लंघनैर्वा समाचरेत्। प्रवृत्तमादावर्शोभ्यो योनिं गृह्णात्यबुद्धिमान्। शोणितं दोषमनिलं तद्रोगान् जनयेद्बहून्। रक्तपित्तं ज्वरं तृष्णामग्निनाशमरोचकम्। कामलो श्वयतुं शूलं गुदवंक्षणसंश्रयम्। कण्डुवरुकोठपिडकाकुष्ठं पाण्ड्वामयं गुदम्। वातमूत्रपुरीषाणां विबन्धं शिरसो रुजम्। स्तैमित्यं गुरुगात्रत्वं तथान्यान् रक्तजान् गदान्। तस्मात् स्रुते दुष्टरक्ते रक्तसंग्रहणं मतम्। हेतुलक्षणकालज्ञो बलशोणीतवर्णवित्। कालं तावदुपेक्षेत यावन्नात्ययमाप्नुयात्। अग्निसंदीपनार्थं च रक्तसंग्रहणाय च। दोषाणां पाचनार्थञ्च परं तिक्तैरुपाचरेत्। यत्त प्रक्षीणदोषस्य रक्तं वातोल्बणस्य च। वर्त्तते स्नेहसाध्यं तत् पानाभ्यङ्गानुवासनैः। यत्तु पित्तोल्बणं रक्तं घर्मकाले प्रवर्त्तते। स्तम्भनीयं तदेकान्तान्न चेद्वातकफानुगम्। (चरक)

अर्थ—वातानुवन्धी रक्तजार्शमें स्निग्ध और शीतल तथा कफानुवन्धी रक्तजार्शमें रुक्ष और शीतल चिकित्सा करना आवश्यक है, जिस रक्तजार्शमें कफ पित्तकी अधिकता हो तो संशोधन द्वारा चिकित्सा करे, अथवा स्रावकी उपेक्षा करके लंघन द्वारा चिकित्सा करे जो वैद्य प्रथम ही अर्शके बहते हुए रुधिरको रोक देता है तब रक्त वातजदोषोंसे दूषित हो जाता है और वायुकर्तृक अनेक प्रकारके उपद्रव खडे हो जाते हैं। यथा—रक्तपित्त, ज्वर, तृष्णा, मन्दाग्नि, अरुचि, कामलारोग, सूजन, गुदशूल, वंक्षणशूल, खुजली, फुंशी गुमडी पित्ती, पिडिका, कोढ, पाण्डुरोग, अधोवायु, मल-

मूत्रका विबन्ध, शिरोवेदना, स्तिमिता, शरीरमें भारीपन, आलस्य तथा अन्य भी बहुतसे रक्तज रोग उत्पन्न हो जाते हैं इस कारणसे दूषित रक्तके स्रावके कारण—लक्षण काल—बल और रुधिरका रंग देखकर रुधिरको बन्द करना चाहिये । रक्तस्रावकी उस समयतक उपेक्षा करनी चाहिये जबतक किसी उपद्रवके होनेकी सम्भावना न हो तदनन्तर अग्निको बढानेके लिये तथा रक्तको रोकनेके लिये और दोषोंको पचानेके लिये तिक्त औषधियोंका प्रयोग करे । क्षीण दोषवाले वाताधिक्य अर्श रोगीका रक्त जो स्नेहसाध्य होता है वह स्नेहपान अभ्यङ्ग अनुवासन द्वारा शान्त हो जाता है, जो पित्ताधिक्य रक्त ग्रीष्मकालमें प्रवृत होता है यदि उसमें वात कफका अनुबन्ध न होय तो उसको सर्वथा रोक देना चाहिये ।

रक्तसंग्राही औषध ।

कुटजत्वङ्निर्यूहः सनागरः स्निग्धरक्तसंग्रहणः । त्वग्दाडिमस्य तद्वत् सनागरः चन्दनरसश्च । चन्दनकिराततिक्तकधन्वयवासाः सनागराः क्वथिताः । रक्तार्शसां प्रशमना दार्वीत्वगुशीरनिम्बाश्च । सातिविषाकुटजत्वक्फलं च सरसाञ्जनम् । मधुयुतं हि रक्तापहं प्रदद्यात् पिपासवे-तण्डुलजलेन । (कुटजादिकाथ) कुटजशकलस्य सार्ध्यं पलशतमार्द्रस्य मेघसलिलेन । यावत् स्यात् गतरसं तद्द्रव्यं पूतो रसस्ततो ग्राह्यः । मोचरसः ससमङ्गः फलिनी च समांशिकैस्त्रिभिस्तैश्च । वत्सकबीजं तुल्यं चूर्णितमत्र प्रदातव्यम् । पूतः क्वथितः सरसो दार्वीलेपो ततः समवतार्य्यः । मात्राकालोपहिता रसक्रियैषा जयतिरक्तम् । छागलीपयसा पीता पेया मण्डेन वा यथाग्निबलम् । जीर्णौषधश्च शालीन पयसा छागेन भुंजीतः । नीलोत्पलं समङ्गा मोचरसश्चन्दनं तिला लोध्रम् । पीत्वा छागलीपयसा भोज्यं पयसैव शाल्यन्नम् । छगलीपयः प्रयुक्तं निहन्ति रक्तं सवास्तुकरसश्च । धन्वविहंगमृगाणां रसोनिरम्लः कदम्लो वा । पाठावत्सकबीजं रसाञ्जनं नागरं यवानीं वा । बिल्वमिति च गुदजान्तर्विचूर्ण्य पेयानि शूलेषु । दार्वी किराततिक्तं मुस्तं दुःस्पर्शकश्च रुधिरघ्नम् । रक्तेऽतिवर्त्तमाने शूले च घृतं विधातव्यम् ॥ (चरक)

अर्थ—कुडाकी छालके काथमें सोंठ डालकर पीनेसे स्निग्ध रक्त बन्द हो जाता है ।

इसी प्रकार दाडिम (अनारका छिलका) लेकर क्वाथ बना उसमें सोंठ डालकर पीनेसे अथवा चन्दनके क्वाथमें सोंठ डालकर पीनेसे रक्त बन्द हो जाता है । अथवा चन्दन चिरायता, जवासा, सोंठ इनका क्वाथ पीनेसे रक्त बन्द हो जाता है । दारुहल्दी दालचीनी उसीर नीमकी छाल इनका क्वाथ करके पीनेसे रक्त बन्द हो जाता है । अतीस कुडाकी छाल इन्द्रजौ रसौत इनको समान भाग लेकर चूर्ण बनावे और जब पियाश लगे तब तण्डुलके जलके साथ इस चूर्णकी फंकी लेवे तो अर्शका रक्त बन्द हो जाता है । **कुटजादि क्वाथ**—हरी अर्थात् गीली कुडाकी छालके छोटे २ टुकडे १०० पल लेकर आन्तरिक्ष जल (वर्षातका जल जो ऊर्ध्वचद्दर बांध करलिया होय) उसमें पकावे, जब पकते २ उसका रस निकल आवे तब उसको उतारकर छान लेवे । (क्वाथ बनानेकी विधि यह है कि औषधसे सोलहगुणा जल लेवे और चौथा भाग बाकी रहे तव उतार लेवे) और इस क्वाथमें मोचरस वाराहक्रान्ता प्रियंगुका चूर्ण समान भाग लेकर मिला देवे और इन तीनोंके चूर्णके समान इन्द्रजौका चूर्ण मिला इन सबको अग्निपर चढाकर मन्दाग्निसे पकावे और कलछीसे चलाता रहे जब कि यह पकते २ गाढा हो जावे तब उतारकर शीतल करके बर्त्तनमें भरलेवे और अग्निकाल तथा रोगीकी प्रकृतिके अनुसार परिमित मात्रासे इनका सेवन करावे तो यह रक्तार्शको नष्ट कर देता है । इसको बकरीके दूधके साथ अथवा पेयाके साथ व मण्डके साथ सेवन करना चाहिये । औषधके पचने पर बकरीके दूधके साथ शालि चावलोंका भात आहार करना चाहिये । नीलकमल, समंगा, मोचरस, रक्तचन्दन तिल, लोध इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना बकरीके दूधके साथ पान करे । साथ ही शालि चावलोंका भोजन करे, अथवा बकरीका दूध और बथुयेका रस इनको मिलाकर पीनेसे रक्तजार्श नष्ट हो जाता है । अथवा धन्वदेशज पशु पक्षियोंका मांस रस विना खटाईका सेवन करे अथवा पाठा, इन्द्रजौं, रसौत, सोंठ, अजवायन, बेलगिरी इनको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बनावे इस चूर्णके सेवनसे शूलयुक्त अर्श नष्ट हो जाता है । अथवा दारुहल्दी, चिरायता, मोथा, जवासा, समान भाग लेकर चूर्ण बनावे इसके सेवनसे रक्त बन्द हो जाता है । यदि दर्द अत्यन्त होता होय और रक्त भी अत्यन्त बहता होय तो इन्हीं दार्व्यादि चारों द्रव्योंके साथ सिद्ध किया हुआ घृत सेवन करे ।

रक्तजार्शपर पेयाविधि ।

लाजैः पेयापीताचुक्रिकाकेशरोत्पलैः सिद्धा हन्त्याशु रक्तरोगं तथा बलापृश्निपर्णीभ्याम् ॥ ह्रीबेरबिल्वनागरनिर्यूहे साधितां सनवनीताम् । वृक्षाम्लादाडिमाम्लामम्लीकाम्लासकोलाम्लाम् । गृञ्जरकसुरो सिद्धां

भृष्टां यमकेन वा पिबेत् पेयाम् । रक्तातिसारशूलप्रवाहिकाशोथनिग्रहणीम् ।
(चरक)

अर्थ—चुक्रिका, केशर, नीलकमल, बला (खरैटी) पृष्णिपर्णी इनसे युक्त खीलोंकी पेया रक्तजार्शको नष्ट करती है, अथवा नेत्रवाला, बेलगिरी, सोंठ इनके क्वाथमें सिद्ध की हुई पेयामें मक्खन मिलाकर पीवे अथवा लहसन और मद्यके साथमें सिद्ध की हुई अथवा घृत तैलमें भुनी हुई पेयामें वृक्षाम्ल, अनार, इमली व बेरकी खटाई डालकर पान करे इस पेयाके पान करनेसे अर्शका रक्तस्राव रक्तातीसार शूल प्रवाहिका और शोथ नष्ट होता है ।

काश्मर्य्यामलकानासुदुम्बराणां खण्डान् फलाम्लानाम् । गृञ्जनकशाल्मलीनां क्षीरिण्याः चुक्रिकायाश्च । न्यग्रोधशुङ्गकानां खण्डांस्तथा-कोविदारपुष्पाणाम् । दध्नः शरेण सिद्धां दद्याद्रक्ते प्रवृत्तेऽति ।

अर्थ—खंभारी, आंवला, गूलर, अनार, लहसन, सेमर, क्षीरिणी चुक्रिका, वडकी कोंपल, कचनारके फूल, दहीकी मलाई इनसे सिद्ध कियाहुआ षड्यूष सेवन करनेसे अत्यन्त वहता हुआ रुधिर रुक जाता है ।

रक्तजार्शपर शाक व यूषविधान ।

सिद्धं पलाण्डुशाकं च तक्रेणोपदिकां सबदरां च । रुधिरस्रवे प्रदद्या-न्मसूर पश्चतक्राम्लम् । पयसा शृतेन यूषैर्मसूरमुद्गाढकीमकुष्ठानाम् । भोजनमद्यादम्लैः शालिश्यामाककोद्रवजम् । शशहारिणं लावमांसैः कपिञ्जलैणेयैः सुसिद्धैश्च । भोजनमद्यादम्लैर्मधुरैरीपत् समीरचैर्वा । दक्षशिखितित्तिरिरसैर्द्विककुल्लोपाकजैश्च मधुराम्लैः । अद्याद्रसैरतिवहे-प्वर्शः स्वनिलोल्वण शरीरः । रससखण्डयूषपयवागूसंयुक्तः कूवलोऽथवा जयति । रक्तमतिवर्त्तमति वर्त्तमानं वातं च पलाण्डुरुपयुक्तः । छागा-न्तरोधितरुणां सरुधिरसुपसाधितं बहुपलाण्डु । व्यत्यासान्मधुराम्लं विट्शोणितं संक्षयेदेयम् । (चरक)

अर्थ—जिस अर्श रोगीके अर्शमेंसे रक्त वहता होय तो प्याजका शाक, पोईका शाक, वबेरका शाक, तक्र, (छाछ) के साथ सिद्ध करके खिलावे, या मसूरकी दालमें तक्र मिलाकर पिलावे । अथवा मसूर, मूंग, अरहर (तूर), मोंठ (मठ) इनके यूषको दूधके साथ सिद्ध करके देवे, अथवा शाली चावल कोदो इनको मद्य व

खटाईके साथ सेवन कराना, अथवा शशा, हिरन, लवा, सफेद तीतर एणसंज्ञक मृग इनका मांस और मद्य खटाई मीठा और स्वल्प मात्रासे संयोग की हुई काली मिरचका चूर्ण डाल कर सेवन करावे। वातकी अधिकतावाले मनुष्यके अर्शमेंसे यदि रक्त विशेष निकलता हो तो मुर्गा, मयूर, तीतर, ऊंट और लोपाकके मांस रसमें कुछ मीठा और अम्ल रस मिलाकर देवे। मांस रस व षड्यूष व यवागूके साथमें पलाण्डुका खाना अथवा केवल पलाण्डुका ही सेवन करना अत्यन्त बहते हुए रक्त और वातको नष्ट करता है। इस रोगमें विष्टा और रुधिरके अत्यन्त क्षीण होनेपर बकरेकी देहके बीचका ताजा मांस रुधिर सहित बहुतसी प्याज डालकर सिद्ध करे और बिपरीति क्रमसे खटाई मिठाई डालकर सेवन करे।

अर्शपर नवनीत विधान।

नवनीतघृताभ्यासात् केसरनवनीतशर्कराभ्यासात्। दधिसरमथिताभ्यासादर्शांस्यपयान्ति रक्तानि। नवनीतं घृतं छागं मांसं सषष्ठिकः शालिः। तरुणश्च सुरामण्डः तरुणाश्च सुरा निहन्त्यजस्रम्। प्रायेण वातबहुलान्यर्शांसि भवन्त्यतिस्रुते रक्ते। तस्माद्रक्ते दुष्टेऽथनिलः स विशेषतो जेयः। दृष्ट्वा तु रक्तपित्तप्रबलं कफवातलिङ्गमल्पञ्च। शीताः क्रियाः प्रयोज्याः यथेरिता वक्ष्यते चान्याः (चरक)

अर्थ—मक्खन संज्ञक घृतके सेवन करनेसे अथवा केशर मक्खन और शर्कराके सेवनके अभ्याससे तथा दहीको मलाई सहित रईसे मथकर सेवन करनेसे रक्तजार्श नष्ट हो जाता है। मक्खन, घृत, बकरेका मांस, सांठी चावल, शालि चावल, नवीन सुरामंड, नवीन मद्य इनके सेवन करनेसे भी रक्तजार्श शीघ्र शान्त हो जाता है, रक्तके अत्यन्त निकल जानेपर अर्शमें प्रायः वातकी अधिकता हो जाती है, इसलिये रक्तके दूषित होनेपर भी विशेष करके वायुके शान्त करनेका उपाय करे। अर्शमें रक्त पित्तकी प्रबलता तथा कफ वातकी अल्पताको देखकर पहिले कही हुई व आगे आनेवाली शीतलक्रियाओंका प्रयोग करे।

रक्तजार्श पर अवगाहन प्रयोग।

रक्तेऽतिवर्त्तमाने दाहे क्लेदे च गाहयेच्चापि। मधुकमृणालपद्मकचन्दनकुशकाशनि क्वाथे। इक्षुरसमधुकवेतसनिर्यूहे शीतले पयसिवातम्। अवगाहयेत् प्रदिग्धं पूर्वं शिशिरेण तैलेन। दत्वा घृतं सशर्करमुपस्थदेशे गुदे त्रिकदेशो शिशिरजलस्पर्शसुखाधाराः प्रस्तम्भनीर्मृज्याः। कदली-

दलैरभिनवैः पुष्करपत्रैश्च शीतजलसिक्तैः। प्रच्छादनं मुहुर्मुहुरिष्टं पद्मोत्पलदलैश्च । दूर्वाघृतप्रदेहः शतधौतमपि सर्पिः । व्यजनपवनश्च रक्तो रक्तस्रावं जयत्याशु । (चरक)

अर्थ–रक्तके अत्यन्त बहनेपर तथा दाह और क्लेदके उत्पन्न होनेपर शरीरमें शीतल तैलकी मालिश करके मुलहटी, कमलनाल पद्माख, रक्तचन्दन, कुशा, कासकी जड इनके क्वाथसे रोगीको स्नान करावे, अथवा ईखका रस मुलहटी और वेतके क्वाथसे स्नान करावे, अथवा शीतलदुग्धसे रोगीको स्नान करावे । उपस्थेन्द्रिय गुदा और त्रिकस्थानमें घृत और शर्करा मिलाकर लेप करे फिर धीरे २ शीतल जलकी धारा डाले तो रक्तका स्राव बन्द हो जाता है । नवीन कोमल केलेके पत्र अथवा शीतल जलसे छिडके हुए कमलके पत्रसे वारम्वार अर्शको ढकना भी हित है । दूब और घृतका लेप अथवा सौ बार व सहस्र बारका धुलाहुआ घृत इनका लेप अथवा पंखेकी पवन–अति शीतल जलका तर्डा इनसे भी बहताहुआ रक्त बन्द हो जाता है ।

अर्शपर घृतप्रयोग ।

समङ्गामधुकाभ्यां तिलमधुकाभ्यां रसाञ्जनघृताभ्याम् । सर्जरसघृताभ्यां वा निम्बघृताभ्यां मधुघृताभ्याम् । दार्वीत्वक्सर्पिर्भ्यां सचन्दनाभ्यामथोत्पलघृताभ्याम् दाहे क्लेदे भ्रंशे गुदजाः प्रतीसारणीयास्युः । आभिः क्रियाभिरथवा शीताभिर्यस्य तिष्ठति न रक्तम् । तं काले स्निग्धोष्णैर्मांसैस्तर्पयेन्मतिमान् । अवपीडकसर्पीभिः कोष्णैर्घृततैलकैस्तथाभ्यङ्गैः । क्षीरघृततोयसेकैः कोष्णै समुपाचरेदाशु । कोष्णेन वातप्रबलं घृतमण्डेनानुवासयेत् शीघ्रम् । पिच्छावस्तिं दद्याद्बस्तिं काले तस्याथवा सिद्धम् ।

अर्थ–समंगा और मुलहटी तिल और मुलहटी रसौत और घृत राल और घृत, नीम और घृत शहत और घृत, दारुहल्दीकी छाल और घृत, अथवा रक्तचन्दन नीलकमल और घृत इनका लेप करनेसे दाह क्लेद--गुदभ्रंश और अर्श शान्त हो जाते हैं । इन ऊपर कही हुई क्रियाओंसे अथवा शीतल क्रियाओंसे जिस अर्श रोगीका रुधिर बन्द न होय उसको ठीक समयमें स्निग्धोष्णा मांसद्वारा तर्पण देवे । अथवा शिरोविरेचन कर्ता घृत देवे अथवा ईषत् ऊष्णा घृत तैलकी मालिश करावे अथवा ईषदुष्णा दूध घृत व जलसे परिषेक करै । ऐसे वात प्रबल रोगीको ईषदुष्णा घृत मण्डसे शीघ्र अनुवासन देवे, पिच्छावस्ति व सिद्धावस्ति देवे ।

पिच्छावस्ति, सिद्धावस्ति, अनुवासनबस्तिके प्रयोग।

यवासकुशकाशानां मूलं पुष्पञ्च शाल्मलम् ॥ न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थ शुङ्गाश्च द्विपलोन्मिताः। त्रिप्रस्थे सलिलस्यैतत् क्षीरप्रस्थे च साधयेत्। क्षीरशेषं कषायं च पूतं कल्कैर्विमिश्रयेत्। कल्काः शाल्मलिनिर्य्यास समंगा चन्दनोत्पले। वत्सकस्य च बीजानि प्रियङ्गु पद्मकेशरम्। पिच्छावस्तिरयं सिद्धः सघृतक्षौद्रशर्करः। प्रवाहिकागुदभ्रंशरक्तस्रावज्व- रापहः। (अनुवासनबस्तिः) प्रपौंडरीकं मधुकं पिच्छावस्तौ यथेरि- तम्। पिष्टानुवासनं स्नेहं क्षीरद्विगुणितं पचेत्।

अर्थ—पिच्छावस्ति और सिद्धावस्तिके औषध प्रयोग इस प्रकारसे हैं—जवासा कुशाकी जड़ कासकी जड सेमरका फूल बडे गूलर और पीपलकी कोंपल ये सब दो २ पल लेवे तथा तीन प्रस्थ जल और एक प्रस्थ गोदुग्धमें मिलाकर पकावे जब दुग्ध शेप रह जावे उसको छान लेवे। फिर इसमें सेमरका गोंद वाराहक्रान्ता चन्दन नीलकमल इन्द्रजौ प्रियंगु नागकेशर इनको पीसकर मिला देवे। इसका नाम पिच्छा- वस्ति है। यदि इसमें घृत और शहत और चीनी भी मिलाई जावे तो यह सिद्धा- वास्ति हो जाती है, इन बास्तियोंका प्रयोग करनेसे प्रवाहिका गुदभ्रंश अर्शका रक्तस्राव तथा ज्वर शान्त हो जाता है (अनुवासनबस्ति प्रयोग) पुण्डरिया, मुलहटी तथा पिच्छावस्तिमें कथन कियेहुए द्रव्योंको पीस कर स्नेह तथा दुगुना दूध डालकर सिद्ध करके अनुवासन बस्ति देवे।

ह्रीबेरादि घृत।

ह्रीबेरमुत्पलं लोध्रं समंगा चव्यचन्दनम्। पाठासातिविषाबिल्वं धातकी देवदारु च। दार्वीत्वक् नागरं मासी मुस्तं क्षारो यवाग्रजः। चित्रक- श्चेति पेश्याणी चांगेरी स्वरसो घृतम्। ऐकध्वंसाधयेत्सर्वं तत्सर्पिः परमौषधम्। अर्शोऽतिसारग्रहणी पाण्डुरोगज्वरारुचौ। मूत्रकृच्छ्रे गुदभ्रंशे बस्त्यानाहे प्रवाहने। पिच्छास्रावेऽर्शसांशूले योज्यमेतत् त्रिदोषनुत्।

अर्थ—नेत्रवाला, नीलकमल, लोध, लज्जालू, चव्य, चन्दन, पाठा, अतीस बेल- गिरी, धायके फूल, देवदारु, दारुहल्दीकी छाल, सोंठ, जटामासी मोथा, जवाखार, चित्रक इन सबको समान भाग लेकर चांगेरीके रसके साथ पीसकर कल्क बनावे

और द्विगुणवृत, घृतके समान चौलाईका रस मिलाकर पकावे जब घृत सिद्ध हो जावे तब वर्त्तनमें भर लेवे यह घृत अत्यन्त गुणकारी होता है । इसके सेवन करनेसे अर्श अतीसार ग्रहणी दोप पाण्डु रोग ज्वर अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, गुदभ्रंश, वस्तिका आनाह प्रवाहन, पिच्छास्राव अर्शशूल त्रिदोषजन्य अर्श इत्यादिको नष्ट करनेवाला यह घृत है ।

अवाकपुष्पादि घृत ।

अवाक्पुष्पीबलादार्वी पृश्निपर्णीत्रिकण्टकः । न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थ शुंगाश्चे त्रिपलोन्मिताः । कषायएषपेष्याणी जीवन्तिकटुरोहिणी । पिप्पलीपिप्पलीमूलं नागरं सुरदारु च । कलिंगाः शाल्मलं पुष्पं वीरा-चन्दनमुत्पलम् । कट्फलं चित्रकं मुस्तं प्रियंग्वतिविषास्थिराः । पद्मो-त्पलानां किञ्जल्कं समंगासनिदिग्धिका । बिल्वं मोचरसः पाठा भागाः कर्पसमन्विताः । चतुः प्रस्थे श्रितं प्रस्थं कषायस्थावतारयेत् । त्रिंश-त्पलानि प्रस्थोऽत्र विज्ञेयो द्विपलाधिकः । सुनिषन्नकचां गेर्य्याप्रस्थौ द्वौ स्वरसस्य च । सर्वैरेतैर्यथोद्दिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् । एतदर्शस्त्व-तीसारे रक्तस्रावे त्रिदोषजे । प्रवाहने गुदभ्रंशे पिच्छासु विविधासु च । उत्थाने चातिबहुशः शोथशूले गुदाश्रये । मूत्रग्रहे मूढवाते मन्देग्नावरु-च्चावपि । प्रयोज्यं विधिवत् सर्पिर्बलवर्णाग्निवर्द्धनम् । विविधेष्वन्नपानेषु केवलं वा निरत्ययम् ॥

अर्थ—सौंफ, खरैंटी, दारुहल्दी, प्रश्निपर्णी, गोखरू, वडकी कोंपल, गूलरकी कोंपल, पीपरकी कोंपल ये प्रत्येक दो दो पल ले कूटकर चार प्रस्थ जलमें पकावे, जब चतुर्थांश जल शेप रहे तब उतार कर छान लेवे पुनः जैंती, कुटकी, पीपल, पीपलामूल, सोंठ, देवदारु, इन्द्रजौ, सेमरका फूल, काकोली, रक्तचन्दन, नीलकमल, कायफल, चित्रक, नागरमोथा, प्रियंगु, अतिविप (अतीस) शालपर्णी, लालकमलकी केशर, लज्जालू, कटेली, वेलगिरी, मोचरस, पाठा इन सवको एक एक कर्प लेकर पीसकर कल्क बना उसमें मिलावे । यहां माप ३२ पलका प्रस्थ समझना चाहिये । पुनः इसमें चौपत्तिया बूटीका रस एक प्रस्थ चांगेरीका रस एक प्रस्थ, घृत एक प्रस्थ इन सवको मिलाकर पकावे । यह घृत अर्शरोग अतीसार, त्रिदोपज रक्तस्राव, प्रवाहिका गुदभ्रंश, अनेक प्रकारके पिच्छास्राव—अनेक प्रकारसे वारम्वार मलका निकलना, गुदशोथ, गुदशूल,

सूत्रग्रह, मूढवात, मन्दाग्नि, अरुचि इन रोगोंको नष्ट करता है। यह घृत अकेला ही तथा अनेक प्रकारके अन्य २ अनुपानके साथ दिया जाता है।

अर्शरोगमें विपरीत क्रमविधान।

व्यत्यासान्मधुराम्लानि शीतोष्णानि च योजयेत्। नित्यमग्निबलापेक्षी जयत्यर्शः कृतान् गदान्। त्रयो विकाराः प्रायेण ये परस्परहेतवः। अर्शांसि चातिसारश्च ग्रहणीदोषएव च। एषामग्निबले हीने वृद्धिवृद्धे परिक्षय। तस्मादग्निबलं रक्ष्य मेषु त्रिषु विशेषतः॥ (चरक)

अर्थ—अर्श रोगमें विपरीत क्रमसे मधुर और अम्ल तथा शीत और ऊष्ण द्रव्योंका व्यवहार करना चाहिये। अग्निबलकी इच्छा करनेवाला अर्शसे उत्पन्नहुए रोगोंको जीत लेता है अर्श अतिसार और ग्रहणी दोष ये तीनों रोग ऐसे हैं कि इनमेंसे परस्पर एक दूसरेका हेतु होता है। अग्निके क्षीण होनेसे इन रोगोंकी वृद्धि होती है और अग्निके बढनेसे इन रोगोंकी क्षीणता होती है। इसलिये इन तीनों रोगोंमें विशेप करके अग्निवलकी रक्षा कर्त्तव्य है।

अर्शके मस्सोंपर सूत्रबन्धन।

भावितं रजनीचूर्णं स्नुहीक्षीरैः पुनः पुनः।
बन्धनात् सुदृढं सूत्रं छिनत्यर्शो भगंदरम्॥

अर्थ—हल्दीके चूर्णको वारम्वार थूहरके दूधमें भावना देकर सूत्रके डोरासे लपेट कर उस सूत्रसे मस्सेको खींचकर बांधनेसे बवासीरके मस्से और भगंदर नष्ट हो जाते हैं।

क्षारसूत्र बन्धन।

स्नुहीकाण्डगते क्षीरे भल्लातकसमन्विते। ज्योतिष्मत्रिफलादन्ती कोशातक्यग्नि सैन्धवैः। चूर्णैरेतैः समघृतैः बन्धयेत् सूत्रकं दृढम्। सूत्रं तत्पातयेदर्शः छिन्नमूलइव द्रुमः॥

अर्थ—थूहरका दूध भिलावां, मालकांगनी, त्रिफला, दन्ती तोरई चित्रक, सेंधानमक इन सबको एकत्र पीसकर घृतमें मिलाकर सूत्र (डोरा) पर लपेट कर सूत्रसे मस्सोंको खींचकर बांधनेसे बवासीरके मस्से गलकर गिर जाते हैं, जिस प्रकार जडके कटनेसे वृक्ष गिर जाते हैं।

कालपुष्पादि क्षार।

श्वेतपुष्पः कालपुष्पो रक्तपुष्पस्तथैव च। पीतपुष्पो वरस्तेषु काल-

पुष्पः प्रकीर्त्तितः॥प्रशस्तेऽहनिनक्षत्रे कृतमंगलपूर्वकम् । कालपुष्पकमाहृत्य दग्ध्वा भस्मसमाहरेत् । आढकन्तुसमादाय जलद्रोणे विपाचयेत् । चतुर्भागावशिष्टेन वस्त्रपूतेन वारिणा । शंखचूर्णस्य कुडवं प्रक्षिप्य विपचेत्पुनः । शनैः शनैर्मृदावग्नौ यावत्सान्द्रतनुर्भवेत् । स्वर्जिकायावशूके च शुण्ठी मरिच पिप्पली । वचाचातिविषा चैव हिङ्गचित्रकयोस्तथा। एषां चूर्णानि निक्षिप्य पृथगेवाऽष्टमाषकम् । दर्व्यासंघटितं चैव स्थापयेदायसे घटे । एषवह्निसमः क्षारः कीर्तितः काश्यपादिभिः । नाति तीक्ष्णे न च मृदुः शिवः शीघ्रं सपिच्छलः । शुक्लः श्लक्ष्णोऽत्यमिष्यन्दीक्षारस्यष्टाविमे गुणाः ।

अर्थ—श्वेत, कृष्ण, रक्त, पीत इन फूलोंके भेदसे घंटा पाढल चार प्रकारकी होती है इनमेंसे काले फूलकी सर्वोत्तम गुणकारी समझी जाती है । उत्तम नक्षत्रमें तथा शुभ दिनमें मंगल कार्य्य करके काले फूलकी घंटा पाढल वृक्षको लेकर अग्निसे भस्म करलेवे । फिर उस भस्ममेंसे एक आढकके परिमाण भस्म लेकर एक द्रोण जलमें पकावे, जब चतुर्थांश जल शेष रहजाय तब नितार कर रैनी बांधके छान लेवे, पश्चात् उसमें एक कुडव परिमाण शंखकी भस्म मिलाकर धीरे २ मन्दाग्निसे पचावे जब पकते पकते गाढा घनरूप हो जावे तब सज्जीखार, जवाखार, सोंठ, मिरच, पीपल, वच, अतीस, हींग, चित्रक, इनमेंसे प्रत्येकका चूर्ण आठ मासे मिलाकर कलछीसे चलाकर एक काचके पात्रमें भर देवे । यह क्षार अर्शरोगमें अग्निप्रदीप्त करनेवाला है और अग्निके समान गुण करता है । काश्यपादि ऋषियोंने इसको कथन किया है यह क्षार न अत्यन्त तीक्ष्ण है न अत्यन्त मृदु है, शुभ है शीघ्र गुणकारक पिच्छल श्वेत श्लक्ष्ण और अभिष्यन्दी इसका सेवन परिमित मात्रासे रोगीको करावे तथा मस्सोंके काटनेमें भी अद्भुत गुण रखता है ।

अर्श रोगीको सेव्यासेव्यका वर्णन ।

भृष्टैः शाकैर्यवागूभिर्यूषां मांसरसैः खण्डैः । क्षीरतक्रप्रयोगैश्च विचित्रैर्गुदजान् जयेत् । यद्वायारोनुलोम्याय यदाग्निवलवृद्धये । अन्नपानौषधं द्रव्यं तत् सेव्यं नित्यमर्शसैः । यद्तोविपरीतं स्यान्निदाने यत् प्रदर्शितम् । गुदजैस्तत् परीतेन नैवसेव्यं कथञ्चन । (चरक)

अर्थ--अर्श रोगीको अनेक प्रकारके भुने हुए शाक यवागू यूषमांस रस षडयूष दूध छाछ (मट्ठा) के प्रयोगोंका सेवन करके अर्शका दमन करना चाहिये। और जो द्रव्य वायुका अनुलोमन कर अग्निको तीव्र करते हैं वे अन्नपान औषध निरन्तरही अर्शरोगियोंको सेवनीय हैं,जो द्रव्य इनसे विपरीत हैं तथा अर्शको उत्पन्न करनेके हेतुओंमें जो जो द्रव्य वर्णन किये गये हैं वे अर्शरोगियोंको कदापि सेवन न करने चाहिये।

अर्श रोगीको वर्जित कर्म।

वेगावरोधस्त्रीपृष्ठयानान्यत्कटुकासनम्। यथास्वन्दोषलं चान्नमर्शः सुपरिवर्जयेत्॥ (सुश्रुत)

अर्थ--इस अर्श रोगवाले रोगीके मल मूत्रका वेग न रोकना चाहिये, घोडा और ऊंट पर न चढना चाहिये। उटकुरुआ न बैठना चाहिये दोषकारी भोजन सर्वथा त्याग देवे।

यथा सर्वाणि कुष्ठानि हतः खदिरबीजकौ। तथैवार्शांसि सर्वाणि वृक्षाकारुष्करौहतः। असाध्यानातिवर्त्तन्ते प्रमेहारजनी यथा। क्षाराग्निनातिवर्त्तन्ते तथा दृश्या गुदाद्भवाः। (सुश्रुत)

अर्थ--जिस प्रकार खैर और विजैसार सम्पूर्ण प्रकारके कुष्ठोंको नष्ट करता है उसी प्रकार कुडा और भिलावा सम्पूर्ण प्रकारके अर्शरोगोंको नष्ट करते हैं। जिस प्रकार असाध्य प्रमेह हल्दीसे नष्ट हो जाते हैं इसी प्रकार गुदाके रोग क्षार और अग्निकर्मोसे नष्ट हो जाते हैं।

चिकित्सकका कर्त्तव्य।

घृतानि दीपनीयानि लेहायस्कृतयः सुराः।
आसवाश्च प्रयोक्तव्या वीक्ष्य दोषसमुच्छ्रितम्।

अर्थ--चिकित्सकको उचित है कि दोषोंके बलाबलको देखकर दीपन घृत अवलेह लोहनिर्मित सुरा और आसव देवे।

आयुर्वेदसे अर्शचिकित्सा समाप्त।

डाक्टरीसे अर्श (पाईल्स) की चिकित्सा।

मलद्वार (गुदा) के आसपास अथवा उसकी कोरके ऊपर अथवा मलमार्ग (सफरा) के अन्दर शिराओंका जाल प्रफुल्लित होकर ग्रंथि बँध जानेसे जो मस्सा उत्पन्न हो जाता है उसको अर्श (पाईल्स) कहते हैं। मल मार्गके अन्दर जो मस्सा अर्थात् बवासीर होती है उसको अन्तर अर्श कहते हैं, जो बाहर होती है उसको

वाह्य अर्श कहते हैं । अन्दरके अर्शके मस्सोंमेंसे रक्त पडता है इससे इसको रक्तजार्श कहते हैं, कारण इस अर्शकी उत्पत्तिका यह है कि सफराके अन्दर अथवा बाहरकी रक्त नलियां ढीली पडकर मोटी और विस्तृत पडकर वढ जाती हैं, तब अर्श उत्पन्न हुआ समझा जाता है । इन रक्तज नलियोंमें मुख्य शिराओंका जाल होता है और सफरा (मलमार्गके अन्दर) रस पडतके बाहर शिराका जाल स्वाभाविक रीतिसे अतिशय होता है, इसी प्रकार मलद्वारके पासकी त्वचाके अन्दर भी ऐसा जाल अधिक होता है दस्त जानेके समय स्वाभाविक जोर करना पडता है । इससे इस जालमें रक्त भरकर ढीला पडनेकी आदत हो जाती है और इस जालमेंसे रुधिरका फिरना शुरू होकर ऊपरको कलेजेकी मध्य शिरामें जाना पडता है । तथा जो मोटी अर्श शिराके मार्फत रक्त ऊपर चढता है उसमें पडदा भी नहीं होता और गुरुत्वके (भारीपनक) नियमके लिये हो इस जालमें रुधिराभिशरण (रुधिरकी गमनक्रिया) विशेष धीरे धीरे होती है, तथा रक्तका संचय रहता है । इस प्रकारसे गुदाके भागकी शिरा जालकी रचना ही स्वभावसे ऐसी है, इसलिये उसमें अर्श होनेका उत्तेजन मिलता है, इस अर्शरोगका कितने ही दर्जे उमरके ऊपर आधार रहता है । अनुमानसे अठारह वीस वर्षकी उमरका मनुष्य यदि अधिक काल पर्य्यन्त बैठा रहे तो उसको यह रोग उत्पन्न होना अधिक संभव है, इसी प्रकार वृद्धावस्थामें जब शरीरके सर्वांग ढीले पड जाते हैं उस समय भी अर्शकी उत्पत्ति अधिक जान पडती है । स्त्रीजातिको अर्श होनेका समय गर्भावस्थाका समय ही अधिक अनुकूल पडता है, इस कारण कि गर्भावस्थामें स्त्रीके गर्भके दवावको लेकर नीचे भागमें रक्तका संचय अधिक रहता है और बैठकर रहनेवाली ऐसेही आराम भोग करनेवाली आलसी तथा शरीरको जितनी कसरतकी आवश्यकता है उतनी कसरत न करनेवाली स्त्री जनोंको अर्श अधिक होता है । इसी प्रकार पुरुष भी जो आलसी है तथा अधिक आरामतलव बैठे रहनेवाले हैं, जो शरीरको कसरत नहीं देते हैं । उन्हीं लोगोंको यह रोग अधिक होता है । इसी प्रकार मलावरोधसे तथा वारम्वार जुलाव लेनेसे भी अर्श उत्पन्न होता है । गुदाक दूसरे रोग तथा गर्भाशयकी व्याधि तथा उदरके अन्दरकी ग्रन्थि आदि रोगोंसे भी अर्शकी उत्पत्ति होती है, इस प्रमाणसे एक व अधिक कारणोंको लेकर रक्तका जमाव (संग्रह) वढनेसे शिराओंका जाल फूल जाकर उसमें गांठके समान मस्सा पड जाते हैं (इन मस्सोंकी आकृति वैद्यकके प्रकरणमें लिख चुके हैं) तथा सफरा (गुदा) के अन्दरका रस पडत लाल काले रंगका दिखाई देता है मल निकलनेके समय जब मल किसी कारणसे कठिन उतरता है तब आहस्त आहस्ते सूझाहुआ

रस पडत नीचे खींचता है, ऐसा होनेसे एक समान रस पडत कठिन मलके साथ बाहर आने लगे तो उसको देखनेसे यह ज्ञात होता है कि मस्सेके समान शिराओंका पृथक् पृथक् गुच्छा उतरा है। यह भी आइस्ते आइस्ते लम्बा बढता जाता है और दस्तके साथ बाहर आने लगता है और दबाव होकर उसका कोई भाग फूटनेसे अथवा घिसनेसे दस्तके साथ थोडा बहुत रक्त पडता है। अर्शका मस्सा मोटा हो तो उसके बीचमें एक बारीक धमनी रहती है जिस समय मस्सा फूटता है तो अतिशय करके रक्तस्राव होता है बाह्यार्श बाहरका अर्श मलद्वार अर्थात् गुदाके किनारों पर तथा उसके आसपास होता है, प्रथम आरम्भमें त्वचाकी सरबट पडने लगती है तथा वह बढकर मस्सा बन जाता है और उसकी अर्श संज्ञा हो जाती है ये छोटे बडे होते हैं तथा इनका रंग साधारण त्वचाके समान ही होता है और किसी २ स्त्री पुरुषके जांबली रंगके देखे गये हैं।

अर्शका चिह्न जब आरम्भमें छोटा होय तब बाह्य अर्श पीडा नहीं देता है; केवल उस भागमें थोडी खुज़ली तथा गर्मी मालूम पडती है, परन्तु जब मस्सा मोटा हो जाता है अथवा किसी समय सूज आता है तब अर्शके मस्सेके अन्दर पीडा होती है। इतना ही नहीं किन्तु बैठकके सर्व भागमें और कूलेमें भी दर्द होता है। अन्तके दर्जे वह अर्श पककर फूटता है, अथवा उसके अन्दरसे रक्त निकल कर कठिनतासे शान्त पड़ जाता है। दूसरा अन्तर अर्श सफराके अन्दर होय तब उसको अन्तर अर्श कहते हैं, अन्दरका अर्श लम्बाकार होता है। अथवा गोलाकार होता है, जो मस्सा लम्बाकार होता है उसका मूल मोटा होता है और वह अक्सर टूटता नहीं उसमेंसे रक्तस्राव नहीं होता है, जो मस्सा गोलाकार होता है उसका मूल बारीक होता है वह विशेष करके टूटता है और रक्तस्राव होता है।

चिह्न विशेष—अन्दरके अर्शके कारण गुदाके आभ्यन्तर गर्मी जान पडती है खुज़ली आती है अथवा चुमचुमाहट व खिचावसा गुदाके अन्दर मालूम पडता है। जैसा कि अन्दर गुदामें कोई जन्तु रेंगता हो ऐसा जान पडता है, दस्त उतरनेके पीछे ऐसा मालूम होता है कि अभी कुछ दस्त गुदामें निकलनेसे बाकी रह गया है इस आशंकाके लिये रोगीको मल त्यागके समय जोर करना पडता है। मल त्याग करनेके अनन्तर भी रोगीको चैन नहीं पडता आइस्ते आइस्ते यह पीडा बढती है, याने पेचिसका ऐंठा होकर आमका किञ्चित् दस्त आता है इसी प्रकार मल त्यागनेके समय अर्शरोगीको जोर करना पडता है। इस पीडाके कारणसे रोगी समयपर दस्त न जाकर समयका व्यतिक्रम करके जाता है, जब सूखकर कठिन मल हो जाता है इस कारणसे मल त्यागनेके समय गुदामें पीडा होती है और अर्श बाहर दीखने लगता है। गुदाके

अन्दर थोडा चिकना श्लेष्म उतरता है इससे गुदा भींगी रहती है, तथा कभी यह श्लेष्म गुदासे बाहर आ जाता है जिससे वस्त्र भी बिगड जाता है । पीठके नीचेके नीचे त्रिकसंधिके समीप दर्द रहता है और किसी समय जंघा तथा पैर भी दुःखते हैं रोगीका मुख फिकरमन्द और उदास जान पडता है । कमरमें भार तथा पेडू भरा-हुआसा माल्म होता है इन सब चिह्नोंकी अपेक्षा बडा चिह्न जिसपर रोगीका लक्ष खिंचता है वह रक्तस्राव है । रक्तस्राव थोडा अथवा बहुत होता है प्रथम तो मल उतरने पीछे दो चार बिन्दु रक्तके पडते हैं अथवा मलकी एक ओर रक्तका दाग व तन्तुसा दिखाई पडता है । किसी समय अर्शका रक्त कितने ही तोला ओंस व रतल तक भी पडता है जब रक्त अधिक पडता है तब दर्द आदि पीडा जो रोगीको जान पडती थी वह सब शान्त हो जाती हैं, परन्तु जब रक्त अधिक पडता है तब थोडे थोडे समयके अंतरसे पडने लगता है उस समय शरीरके ऊपर इस रोगका अधिक असर जाने बिदून नहीं रहता, रक्तका स्राव १५ दिवस अथवा १ मास किन्तु इससे भी अधिक समय पर्य्यन्त रहता है । किसी २ रोगीको चार छः महीने पर्य्यन्त होता है अथवा थोडा बहुत रक्तस्राव जारी सदैव रहता है, यदि एक समय रक्त पडने लगे तो ४ व छ दिवस पडने पीछे बन्द होता है । एक समय अधिक रक्त पडे इससे शरीरको हानि पहुंचे इसकी अपेक्षा थोडा थोडा रक्त अधिक लम्बे समय पर्य्यन्त पडता रहे तो इससे भी उसी माफिक विशेष हानि पहुंचती है । रोगीका शरीर फीका पड जाता है मस्तकमें दर्द होता है छातीमें धडकन होती है और किसी समय निर्बलताके कारणसे चक्कर और मूर्च्छा भी आती है । किसी समय मस्सेके टूटनेसे शरीरके दूसरे अवयवमें भी रक्त अधिकतासे संचय होता है और मस्सेमें रक्तकी न्यूनता होनेसे कुछ आराम माल्म पडता है, किसी २ अर्श रोगी स्त्रीको मासिक रजोधर्मका रक्त न निकलकर अर्शके मस्सेमेंसे रक्तस्राव होता है । अर्शके मस्से टूटकर जो रक्त निकलता है वह बिलकुल लाल वर्णका होता है, कारण यह कि वह रक्त विशेष करके धमनी अथवा बारीक रक्तवाहिनी नलियोंमेंसे आता है मोटी शिरामेंसे नहीं आता अर्शके मस्सेको साथमें गुदाके दूसरे रोग जैसा कि भगंदर, ग्रन्थि, आम, आदि भी हो जाते हैं । अर्शकी निवृत्तिका उपाय कितने ही प्रकारसे होता है, किसी समय अर्श तत्कालका उत्पन्न हुआ होय और उसकी चिकित्सा शीघ्र की जावे तो बिलकुल निवृत्त हो जाता है । परन्तु कुछ कालके व्यतिक्रम होनेसे बिलकुल निवृत्त होनेकी आशा नहीं रहती, किसी समय अर्शका मस्सा ऐसा सूझ आता है और उस सूझनसे उसके अन्दरका रक्त घनरूप (गाढा) हो जाता है । इस प्रमाणे अनेक समय बाहरके अर्शमें यह स्थिति होती है, रक्त गाढा हो जानेके पीछे रक्त बाहर नहीं निकलता इसलिये ऐसे मस्सोंमें पीडा भी नहीं होती और किसी २

समय अर्श पक जाता है फूटकर पीब निकलती है पीछे वह साफ होता है । किसी समय अर्शका मस्सा गलकर गिर पडता है जब मस्सा अधिक लम्बा बढ जाता है तब नीचेको उतरता है और इसके बढनेसे पीछे मलद्वार बंद होकर मलद्वारके अन्दर मस्सा फँस जावे तो अधिक पीडा होती है, तथा एक दो दिवसमें ऐसा मस्सा गलकर गिर पडता है, (औषधोपचार) अर्शकी व्याधिका औषधोपचार दो प्रकारसे है। एक तो शरीरके जिस जिस कारणको लेकर अर्श उत्पन्न हुआ होय उनकी पूर्ण रीतिसे परीक्षा करके निश्चय करे और उन कारणोंको निवृत्त करनेका योग्य उपचार करके नष्ट कर बराबर रोगीको पथ्य परहेजसे रक्खे । शुद्ध वायु शुद्ध जलका सेवन करावे और शरीरकी तन्दुरुस्तीकी पूर्ण उन्नति कर अर्शको शान्त करना, तथा दूसरे अर्शके मस्सोंको शस्त्रक्रियासे निकाल देना । अर्श रोगीको साधारण हलका आहार शीघ्र पचनेवाला देना योग्य है, भोजनके पदार्थोंमें गर्म मसाला मिरच तैल खटाई आदि पीडाकारक पदार्थोंको न डाले। अर्श रोगीका शरीर जितनी कसरत सहन कर सके उतना भ्रमण व हवाखोरी करे, खाली बैठे रहनेके बदले साफ शीतल हवादार आरण्यमें अथवा वाटिकाओंमें फिरना अति उत्तम है । दस्त सदैव साफ आया करे इसके लिये मृदु रेचक औषधका सेवन करना, अधिक तीव्र जुलाब कदापि न लेना, अधिक तीव्र जुलाबसे अर्श रोगीके मस्सोंमेंसे रक्तस्राव होने लगता है । कालीमिर्च अर्शके ऊपर उत्तम असर करती है, परन्तु कुछ उष्ण है इस कारणसे इसकी उष्णता निवृत्त करनेके लिये हरी काली मिरचोंको लेकर मिश्री व देशी खांडकी चाशनीमें उनका मुरब्बा बना प्रकृतिके अनुसार परिमितमात्रासे रोगीको सेवन करना उचित है । स्त्रीजनोंके गर्भाशय अथवा दूसरी जातिकी ग्रन्थि आदिके दबावसे अर्शका मस्सा उत्पन्न हुआ होय तो विशेष औषधोपचार करना नहीं, स्त्रीका प्रसव होनेके अनन्तर ये मस्से अपनेआप मिट जाते हैं । केवल दस्त साफ आवे ऐसी तजबीज करते रहना और दस्त आनेके लिये अरंडीका तैल दुग्धमें मिलाकर पिलाना अति उत्तम है ।

कलजेके दर्दको लेकर रक्तके फिरनेमें हरकत व प्रतिबन्ध होता होय तो उसका योग्य उपाय करना, मृदु जुलाबके लिये अर्श रोगको अरंडीका तैल, गंधकका फूल, स्वर्णमुखी (सनायकी पत्ती) ये तीनों औषध मृदुरेचक और उपयोगी हैं । सनाय अथवा गंधकका फूल एवं काली मिरचका मुरब्बा ये प्रातःकालके समयमें लेना, काली मिरचके मुरब्बाकी मात्रा आधा तोलासे १ तोला पर्य्यन्त है, इससे दस्त जरा नर्म आता है । पौन तोला प्रातःकाल और पौन तोला सायंकालको लेना अति हितकारी है, ऊपर जो हरी काली मिरचका मुरब्बा लिखा गया है उसकी अपेक्षा नीचे लिखा हुआ अवलेह अधिक गुणकारक है । शीतलचीनी २ तोला, कालीमिरच आधा

तोला, सोयाके बीज १ तोला इन सबको वारीक कूटकर ५ तोला शहतमें मिला सामको आधा व पौन तोला इसमेंसे खाया करे। नाईट्रोम्युरीयाटीकआसिड २० विन्दु नवसार ½ ड्राम, टाराक्ष्यकमकारस ३ ड्राम, चिरायताका काढा ३ ओंस इन सबको मिलाकर ३ भाग कर दिवसमें ३ समय छ घंटेके अन्तरसे लेवे।

जिस डाक्टर महाशयने वैद्यक तथा डाक्टरी दोनों प्रकारकी चिकित्साओंका चिकित्सा प्रणालीमें अभ्यास किया और रोगियोंपर औषधियोंकी परीक्षा की है उन्होंने मुक्तकण्ठसे आयुर्वेदके प्रयोगकी प्रशंसा कर अपने ग्रन्थोंमें आयुर्वेदके प्रयोगोंका उल्लेख किया है। **अग्निसंदीपन वटी**—शुद्ध गंधक, काली मिरच, सोंठ, सेंधानमक इन्द्रजव ये सब द्रव्य समान भाग लेकर अतिसूक्ष्म चूर्ण बना नींबूके रसमें मर्दन करके १ मासे प्रमाण गोली—तथा ४ रत्ती प्रमाण गोली बनाकर अदरखके रसके साथ अथवा जम्भीरी नींबूके रसके साथ भोजनसे २ घंटा प्रथम इस गोलीका सेवन करे तो अग्नि संदीपन होवे। मिश्री १८ तोला, सूरण (जमींकंद) सुखाकर उसका चूर्ण ५ तोला सफेद चिर्मिटी (घुँघची) १ तोला, नागकेशर १ तोला उपरोक्त औषधियोंका चूर्ण करके शहत व मक्खनमें मिलाकर १ ड्राम व आधा ड्रामकी मात्रा दिनमें २ व ३ समय लेना।

भल्लातक वटी।

सोंठ, काली मिरच, पीपल, प्रत्येक १ तोला, काबुली हरड, बहेडा आँवला प्रत्येक २ तोला, साफ चुने हुए तिल २ तोला, भिलावाँ २ तोला इन सब औषधियोंका चूर्ण करके समान भाग पुराना गुड मिलाकर १ मासा प्रमाण गोली बना एक व दो गोली हररोज सेवन करे। केवल त्रिफला (हरड बहेडा आँवला) समान भाग लेकर चूर्ण बनावे और एक दिवसके अन्तरसे अर्द्ध तोलाकी मात्रा रात्रिको लिया करे। इससे अर्शरोगीको दस्त साफ आता है और अति लाभ पहुंचता है, जिस प्रकार अर्शरोगीको औषध सेवनकी व्यवस्था है उसी प्रकार औषध अर्शके ठिकानेपर लगानेसे भी लाभ पहुंचता है। सायंकाल तथा प्रातःकाल त्रिफलाके काथमें रुईका फोहा भिगोकर अर्शके ठिकाने पर रखनेसे अति लाभ पहुंचता है। यदि अन्दरका मस्सा बाहर आता हो तो उसको तथा बाहरके मस्सेपर यह नीचे लिखी मरहम लगानी चाहिये।

माजूफलका बारीक चूर्ण १ तोला, अफीम ६ मासे, मक्खनघृत ३ तोला इन तीनों औषधियोंको मिश्रित करके मलम बना अंगुलीके पोरुआपर मलम लेकर अर्शके मस्सों-पर लगावे, यह मलम अति लाभदायक है। इसके अतिरिक्त कितनी ही औषधियां ऐसी हैं कि मस्सोंपर पिचकारी लगानेसे भी अतिलाभ पहुंचाती हैं। जैसे कि हीरा-

कसीस १॥ रत्ती जल २ तोलामें मिलाकर इसी प्रकार प्रत्येक दिवस रात्रिके समय पिचकारी गुदाके अन्दर लगाकर शयन करजावे इससे अन्दर मस्स सुकड जाते हैं। इसी प्रकार फिटकरीका फूला २॥ रत्ती तथा माजूफलका सूक्ष्म चूर्ण २॥ रत्ती जल २॥ तोला इनकी भी पिचकारी उपरोक्त विधिके अनुसार लगावे। तथा लोहका अर्क टिंकचरऑफस्टील २० बिन्दु जल २ तोला दोनोंको एकत्र करके पिचकारी लगानी, यदि रक्तस्राव होता हुआ अर्श गुदाके बाहर आताहुआ दिखाई पडे तो फिटकरीके फूलाकी बूकी लगानी चाहिये। अथवा उपरोक्त विधिका कथन कियाहुआ लोहखंडक अर्क लेकर उसमें रुईका फोहा भिगो मस्सेके ऊपर लगाना, फिटकरीके जलसे गुदाका प्रक्षालन करना, शीतल जल व बर्फके जलकी पिचकारी दस्त जानेसे प्रथम गुदाके अन्दर लगानेसे दस्त साफ उतरता है और रक्तस्राव होता होय तो बन्द हो जाता है। टिंकचरहीमामेलीसके दो व तीन बिन्दु थोडे जलमें मिलाकर इसी मात्राके समान एक दिनसमें ४ व ६ समय सेवन करना, अथवा इस दवाको एक ड्राम लेकर १ व दो औंस जलमें मिलाकर शयन करनेके समय गुदाके अन्दर पिचकारी लगानी, इसी प्रकार थोडे दिवस पर्य्यन्त इस औषधकी पिचकारी हररोज लगानेसे रक्तस्राव होनेवाला मस्सा शान्त हो जाता है। यदि अर्शके मस्से सूझ आये हों तो रोगीको बिस्तरपर सुलाकर रखना चाहिये और अर्शके मस्सोंके चारों ओर जलौका (जोंक) लगाकर रक्त मोक्षण करना। परन्तु जोंक लगानेके समय चिकित्सक इतनी होसियारी रक्खे कि अर्शके मस्सोंपर जोंक न लगने पावे, यदि किसी मस्सेपर जोंक असावधानीसे लग जावेगी तो उसी ठिकाने जखम पड जावेगा उसका जखमके समान इलाज करे। सूजन पर पोलिटिस बाँधनी, अफीमके फल (पोस्तका डोडा) को जलमें पकाकर उसके क्राथसे सेंक करना। अथवा गर्म जलमें बैठना (सिडलीज पौडर) अथवा ऐपसमसाल्ट (विलायती नमक एक जातिका क्षार है) इनसे जुलाब लेवे, अथवा एरंडके तेलका जुलाब लेवे; धूप भांग, लोबान इनमेंसे किसी एककी धूनी लेनी चाहिये।

अर्शछेदनार्थ शस्त्रोपचार।

अर्शके मस्से काटनेमें शस्त्रका उपयोग तीन प्रकारसे होता है। १ अर्शके मस्सेका छेदन करना, २ अर्शके मस्सेका बंधन, ३ कास्टिक लगा कर अर्शके मस्सेको दग्ध करना। इनमेंसे प्रथम क्रिया है सो केवल बाहरके मस्सोंपर अति उपयोगी है और दूसरी दोनों क्रिया आभ्यन्तर अर्शको उपयोगी पडती हैं। एवं (१) बाहरके अर्शका छेदन उसको चीमटेमें पकडकर ऐंठा देकर कतरनी (कैंची) से अथवा तीक्ष्ण नस्तरसे मस्सेकी जडमेंसे काट लेना, इसके अनन्तर शीतल जलमें साफ कपडेकी

गद्दी बना भिगोकर कटे हुए मस्सेके जखम पर रखकर एक कपडेकी लँगोटीके आकारमें पट्टी बाँध देना । रोगी चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष हो पट्टी बन्धन समान करना चाहिये । मस्सा छेदनके अनन्तर किसी किसी रोगीके शरीरमेंसे रक्त अधिक स्राव होता है, यदि ऐसी दशा हो तो लोहेकी कील गर्म करके उस स्थलपर दग्ध कर देना उचित है फौरन रक्तस्राव बन्द हो जाता है । (२) गुदाके अन्दरके अर्शके मस्सोंको यदि हो सके तो रेशमके डोरासे बांध देवें और बांधनेके पीछे वह मस्सा दो व चार पांच दिवसतक अवश्य गिर जाता है । अर्शके मस्सेसे डोरा बांधनेके समय रोगीको कलोरोफोर्म सुंघाकर बेहोश करलेना चाहिये और गुदा विस्तारक यन्त्रसे रोगीकी गुदाका मुख चौंडा करके अर्शके मस्सेको बाहरकी ओर उन्नत कर लेना व मस्सा बाहर आ सके तो गुदाके मुखके बाहर निकाल लेना । सुईमें रेशमका डोरा पिरोकर मस्सेके मूलमेंसे सूई पिरोकर आरपार, निकालनी, प्रत्येक डोरासे प्रत्येक बाजू मस्सेका आधा भाग खेंचकर बांधना सब. अर्शके मस्से इस प्रमाणसे बांधनेके पीछे डोरासहित गुदाके अन्दर कर देना, जो कलोरोफोर्म सुँघानेमें न आया हो तो रोगीसे करंजने अर्थात् नुकहनेको (बोले जैसे दस्त आनेको जोर लगाते) हैं इतनेमें अर्शके मस्से बाहर आ जाते हैं । जब मस्से बाहर आ जावें तब ऊपर कथन की हुई रीतिसे उनका मूल बंधन करना, किन्तु मस्सोंको काटना नहीं । कारण कि काटनेसे रक्तस्राव अधिक होता है, ऐसे मौके पर दग्ध करनेके अतिरिक्त रक्त बन्द करनेका कोइ उत्तम उपाय नहीं सूझता अर्शके मस्से बांधनेके अनन्तर तीन दिवस पीछे अरंडीके तैलका जुलाब रोगीको देना उचित है, किसी २ रोगीके मस्से तीसरे दिवसही जुलाबके जोशके मलके साथ बाहर निकलकर गिर जाते हैं । (३) कभी २ अन्दरके अर्शके मस्से कास्टिक लगाकर दग्ध करनेमें आते हैं और (नाईटिक ऐसिड) भी इसी प्रकार लगानेमें आता ह, परन्तु अभीतक इस ऐसिडका उपयोग सब चिकित्सक नहीं करते कारण कि यह ऐसिड कदापि दूसरे ठिकाने पर लग जानेसे जोखम रहती है । इसकी अपेक्षा अशके मस्सोंको दग्ध करके निकालनेका उपाय उत्तम है, अर्शके मस्सोंकी दहनक्रिया करनेके प्रथम उन मस्सोंमेंसे प्रत्येक मस्सेको बाहर निकाल कर (और चीमटासे) खींचकर पकड तीक्ष्ण कैंचीसे काटकर लोहकी कील अति लाल गर्म करके उस मस्से काटनेके स्थानको दग्ध कर देना । दग्ध करनेसे रक्तस्राव नहीं होता अर्शके मस्सोंको काटने व दग्ध करने पीछे रोगीको साबूदाना अथवा अन्य प्रवाही आहार हलका और शीघ्र पचनेवाला देना चाहिये, यदि, मूत्र न आता हो तो उष्ण जलका सेंक करना चाहिये । अथवा रोगीको गर्म जलमें बैठा

तीन दिवस पीछे अरंडीके तैलका हलका मृदु रेचक जुलाव देना इसके अनन्तर थोड दिवस पर्य्यन्त दस्त नर्म आवे ऐसी औषधका सेवन कराना योग्य है ।

डाक्टरीस अर्शपाईल्सकी चिकित्सा समाप्त ।

अथातो भगन्दराणां निदानं व्याख्यास्यामः ।

भगंदरके भेद, निरुक्ति, पूर्वरूप ।

वातपित्तश्लेष्मसन्निपातागन्तुनिमित्ताः शतपोनकोष्ट्रग्रीवपरिस्रावि शम्बूकावर्त्तोन्मार्गिणो यथासंख्यं पञ्च भगन्दरा भवन्ति । ते तु भगगुदबस्तिप्रदेशदारणाच्च भगन्दरा इत्युच्यते । अपक्वाः पिडकाः पक्वास्तु भगन्दराः । तेषान्तु पूर्वरूपाणि कटीकपालवेदनागुदकण्डूर्दाहः शोफश्च गुदस्य भवति ॥ (सुश्रुत)

(अब यहांसे आगे भगन्दर रोगका निदान तथा चिकित्साकी व्याख्या कथन की जावेगी, भगंदरकी व्याधि स्त्री व पुरुष दोनोंको ही उत्पन्न होती है, योनि और गुदाके समीपवर्त्ती होनेसे यह व्याधि गुह्य समझी जाती है । इसी हेतुसे इस प्रकरणके समीप लिखना उचित है)

अर्थ–वात पित्त कफ सन्निपात और आगन्तुक इन पांच कारणोंसे पांच प्रकारके भगंदर होते हैं, जैसे कि शतपोनक, उष्ट्रग्रीव, परिस्रावी, शम्बूकावर्त्त, उन्मार्गी, भगन्दरकी निरुक्ति ये भगन्दर गुदा और बस्तिको विदीर्ण करके उत्पन्न होते हैं । इससे भगन्दर इस नामसे कहे जाते हैं–यहांपर भग शब्द गुदाका वाचक है– " तथा भगस्य गुदस्यावान्तरे भगन्दरः " ऐसा भी कहा जाता है कि गुदा और भग तथा पुरुषेन्द्रियके बीचमें जो व्रण उत्पन्न होय उसको भगन्दर कहते हैं । जबतक यह व्रण कच्चा रहता ह तबतक पिडिका, गुमडी व फुंसी कहा जाता है और यही पकनेपर भगन्दर कहा जाता है । भोजसंहिताके निर्मिताने इसकी निरुक्ति इस प्रकारसे की है, " भगं पारिसमन्ताच्च गुदबस्तिस्तथैव च । भगवद्दारयेद्यस्मात्तस्माज्ज्ञेयो भगंदरः " जो गुदाके चारों ओर और गुदाके वस्तिभागको स्त्रीकी योनिके समान विदीर्ण करता है उसे भगन्दर कहते हैं । इस भगंदरके पूर्वरूप इस प्रकार हैं, जब भगन्दर होनेवाला होता है तब कटिकी अस्थिमें वेदना, गुदामें खुजली दाह और सूझनादि पूर्व रूप चिह्न उत्पन्न होते हैं ।

शतपोनकादि भगन्दरोंके लक्षण ।

तत्रापथ्यसेविनां वायुः प्रकुपितः सन्निवृत्तः स्थिरीभूतो गुदमभितोऽङ्गुले

द्व्यङ्गुले वा मांसशोणिते प्रदूष्यारुणवर्णां पिडकां जनयति सास्य-तोदादीन्वेदनाविशेषान् जनयत्यप्रतिक्रियमाणा च पाकमुपैति मूत्राश-याभ्यासगतत्वाच्च व्रणः प्रक्लिन्नः शतपोनकवदणुमुखैश्छिद्रैरापूर्यते तानि च छिद्राण्यजस्रं फेणानुविद्धमधिकमास्रावं स्रवन्ति व्रणश्च ताड्यते भिद्यते छिद्यते सूचाभिरिव निस्तुद्यते गुदश्चावदीर्य्यते वातमूत्रपुरीषरेतसामप्या-गमश्च तैरेव छिद्रैर्भवति तं भगन्दरं शतपोनकमित्याचक्षते ॥ पित्तन्तु प्रकुपितमनिलेनाधः प्रेरितं पूर्ववदवस्थितं तन्वीमुच्छ्रितामुष्ट्रग्रीवाकारां पिडिकां जनयति । सास्य चोषादीन्वेदनाविशेषान् जनयत्यप्रतिक्रिय-माणा च पाकमुपैति व्रणश्चाग्निक्षाराभ्यामिव दह्यते दुर्गन्धमुष्णामास्रावं स्रवत्युपेक्षितश्च वातमूत्रपुरीषरेतांसि विसृजति तं भगंदरमुष्ट्रग्रीवमित्या-चक्षते ॥ श्लेष्मा तु प्रकुपितः समीरेणनाधः प्रेरितः पूर्ववदवस्थितः शुक्लावभासां स्थिरां कण्डूमन्त्री पिडकां जनयति सास्य कण्डूवादी-न्वेदनाविशेषान् जनयत्यप्रतिक्रियमाणा च पाकमुपैति व्रणश्च कठिनः संरम्भी कण्डूप्रायः पिच्छिलमजस्रमास्रावं स्रवत्युपेक्षितश्च वातमूत्रपुरी-षरेतांसि विसृजति तं भगन्दरं परिस्राविणामित्याचक्षते ॥ वायुः प्रकुपितः प्रकुपितौ पित्तश्लेष्माणौ परिगृह्याधो गत्वा पूर्ववदवस्थितः पादाङ्गुष्ठप्रमाणां सर्वलिङ्गां पिडकां जनयति सास्यतोददाहकण्डूवादीन्वेदनाविशेषान् जनयत्यप्रतिक्रियमाणाः च पाकमुपैति व्रणश्च नानाविधवर्णमास्रावं स्रवति पूर्णनदीशम्बूकावर्त्तवच्चात्र समुत्तिष्ठन्ति वेदनाविशेषास्तं भगन्दरशम्बू-कावर्त्तमित्याचक्षते ॥ मूढेन मांसलुब्धेन यदस्थि शल्यमन्नेन सहाभ्यवहृतं यदावगाढपुरीषोन्मिश्रमपानेनाधः प्रेरितमसम्यगागतं गुदं क्षिणोति तत्र क्षतनिमित्तः कोथमुपजायते तस्मिंश्चक्षते पूयरुधिरावकीर्णमांसकोथे भूमाविव जलप्रक्लिन्नायां कृमयः संजायन्ते ते भक्षयन्तो गुदमनेकधा-पातो दारयन्ति तस्य तैर्मार्गैः कृमिकृतैर्वातमूत्रपुरीषरेतांस्याभिनिः-सरन्ति तं भगंदरमुन्मार्गिणामित्याचक्षे ॥ उत्पद्यतेऽल्परुक्शोफा क्षिप्रं

चाप्युपशाम्यति पायुश्वन्तदेशे पिडकांसा ज्ञेयान्या भगन्दरात् भागन्दरी तु विज्ञेया पिडकाऽतो विपर्य्ययात् । पायो स्याद्व्यंगुले देशे गूढमूला सरुग्ज्वरा ॥ भगन्दरस्य कारणम् । यानयानान्मलोत्सर्गात्कण्डूरुक्दाहशोफवान् । पायुर्भवेद्रुजः कट्यां पूर्वरूपं भगंदरे । साध्याऽसाध्यलक्षणम् । घोराः साधयितुं दुःखाः सर्व्व एव भगन्दराः । तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च भगंदरः ।

अर्थ—जो मनुष्य कुपथ्य भोजन करते हैं उनके वात कुपित हो एकत्र होतीहुई गुदाके चारों ओर एक २ अंगुल या दो २ अंगुलतक मांस व रुधिरको दूषित करके लाल रंगकी फुंसीको उत्पन्न कर देती हैं। इसमें एक प्रकारकी चमक और दर्द होने लगता है, इसकी उपेक्षा करनेसे यह बडा व्रण होकर पक जाता है। क्योंकि यह व्रण मूत्राशयके समीप होनेसे गीला हो जाता है, तब इसमें शूक दोषसे उत्पन्न होनेवाली शतपोनक नामवाली व्याधिके समान बहुतसे छोटे २ मुखवाले छिद्र हो जाते हैं। फिर इन छिद्रोंमें होकर विशेष झागदार स्राव होने लगता है और व्रणमें टूटने फटने छिदने सुई चूभनेकीसी वेदना होने लगती है, गुदा विदीर्ण हो जाती है इन्हीं असंख्य छिद्रामसे अधोवायु मूत्र पुरीष आर वीर्य निकलने लगता है, इसीसे इस रोगको शतपोनक भगंदर कहते हैं इसका यह नाम पडनेका कारण यह है कि (शतपोनक) नाम चलनीका है और इस रोगमें चलनीके समान अनेक छिद्र होनेसे इसको शतपोनक कहते हैं।

उष्ट्रग्रीव भगंदरके लक्षण।

कुपित हुआ पित्त जब वायुसे प्रेरित होकर नीचेको आता है तब प्रथम प्रकारसे लाल रंगवाले पतले ऊँटकी गर्दनके समान ऊंचे मुखवाले फोडोंको उत्पन्न करता है। इसमें चूसनेकीसी वेदना विशेष करके होती है इसकी चिकित्सा न कियेजाने पर पक जाता है, फिर इस व्रणमें अग्निकर्म और क्षारकर्मके दग्धके समान जलन होती है—और दुर्गन्ध उठने लगती है तथा गर्मस्राव होने लग जाता है। इस दशाम भी यदि इसकी उपेक्षा की जाय तो इसहीमेंसे वात मूत्र पुरीष वीर्य्य निकलने लग जातेहैं, इस प्रकारके भगंदरको उष्ट्रग्रीव कहते हैं।

परिस्रावी भगंदरके लक्षण।

कुपित हुआ कफ जब वायुसे प्रेरित होकर नीचेको आता है तब पूर्वके समान एकत्र होकर गुदाके चारों ओर सफेद रंगवाले कडे (कठिन) खुजलीसे संयुक्त व्रणोंको

उत्पन्न करता है इसमें खुजलीकीसी अनेक प्रकारकी पीडा होती है, यदि इसकी चिकित्सा न की जाय तो यह पक जाता है और इसका व्रण कठोर संरम्भी और खुजलीयुक्त होता है । इसमेंसे गिलगिला पीब विशेष करके निकलता है, इसकी ऐसी दशामें उपेक्षा करनेसे इसमेंसे अपान वायु मूत्र पुरीष वीर्य्य निकलने लगता है, इसको परिस्रावी भगंदर कहते हैं ।

शम्बूकावर्त्त भगंदरके लक्षण ।

जब वायु कुपित होकर कुपित हुए पित्त और कफको पकडकर नीचेको ले जाता है तब वहां जाकर पूर्वकी तरह स्थित होकर पांवके अँगूठेके समान पूर्वोक्त वात पित्त कफ तीनों दोषोंके लक्षणोंसे युक्त व्रणोंको उत्पन्न करता है । इन फोडोंमें चिलक जलन खुजली आदि अनेक प्रकारकी वेदना उत्पन्न हो आती हैं, इसकी उपेक्षा किये जानेपर यह पक जाता है और इसकी व्रणमेंसे अनेक प्रकारके रंगकी पीब झडने लगती है । जैसे चढीहुई नदीमें शंखके समान भंवर पडा करती हैं वैसेही इसमें अनेक प्रकारकी वेदना होती है, इस भगंदरको शम्बूकावर्त्त कहते हैं ।

उन्मार्गी भगंदरके लक्षण ।

जो मांसाहारी मनुष्य अन्नके साथ मांसमें लिपटीहुई हड्डीको खा जाता है इस कारणसे जब हड्डी मिलाहुआ मल गुदाके मार्गसे सम्यक्रीतिसे नहीं निकल सक्ता और उस हड्डीकी रगडसे गुदा फट जाती है और उस स्थानमें उस घावके कारणसे दुर्गन्ध उत्पन्न हो जाती है, तब जैसे थोडे जलवाली भूमिमें जलके सडनेसे कृमि उत्पन्न हो जाते हैं उसी प्रकारसे इस जखममें पीब और रुधिरके अवकीर्णसे उस मांसमें कृमि उत्पन्न हो जाते हैं । वे अनेक स्थानसे गुदाके मांसपिण्डको खा जाते हैं और पसवाडोंकी ओरसे विदीर्ण कर देते हैं, कीडोंके किये हुए उस मार्गद्वारा अधोवायु मूत्र पुरीष वीर्य्य निकलने लगते हैं, इस भगंदरको उन्मार्गी कहते हैं और यही आगन्तुक कहलाता है । प्रायः गुदाके समीप वह फोडा जिसमें अल्प वेदना और अल्प सूजन होती है, जो शीघ्र ही अच्छा हो जाता है वह फोडाही है, उसको भगन्दर नहीं कह सक्ते, किन्तु भगंदरका व्रण तो इससे विपरीत लक्षणों-वाला होता है । वह गुदासे एक व दो अंगुलके अन्तरपर मोटी जडवाला वेदना और ज्वरसहित होता है, भगंदर उत्पन्न होनेके कारण रथादि सवारी पर चढकर गमन करनेसे पुरीषोत्सगस जो गुदामें खुजली पीडा दाह सूजन और कमरमें वेदना होती है इन लक्षणोंसे भगंदर होता है ।

भगंदरके साध्यऽसाध्य लक्षण ।

सब प्रकारके भगंदर दुःखदाई और अति कष्टसाध्य होते हैं, परन्तु जो

भगंदर त्रिदोषसे उत्पन्न हुए हैं अथवा घावसे उत्पन्न हुए हैं वे अत्यन्त असाध्य हैं, उनकी चिकित्सा होना सर्वथा असंभव है। किन्तु घाव होनेपर शस्त्रक्रियाके विदून कोई भी भगंदर साध्य नहीं हो सक्ता।

भगंदरकी चिकित्सा।

पञ्च भगंदराः ख्यातास्तेष्वसाध्यः शम्बुकावर्त्तः शल्यनिमित्तश्चेति शेषाः कृच्छ्रसाध्याः। तत्र भगन्दरपिडिकोपद्रुतमातुरमपतर्पणादिविरेचनान्ते नैकादशविधेनोपक्रमेणोपक्रमेतापक्कपिडिकम्। पक्केषु चोपस्निग्धमवगाहस्विन्नं शय्यायां सन्निवेश्यार्शसामिव यन्त्रयित्वा भगंदरं समीक्ष्य पराचीनभवामचीनं वा बहिर्मुखमन्तर्मुखं वा ततः प्राणीधायैषणीमुन्नस्य साशयमुद्धरेच्छस्त्रेण। अन्तर्मुखे चैवं सम्यग् यन्त्रप्रणिधायप्रवाहमाणस्य भगन्दरमुखमासाद्यैषणीं दत्त्वा शस्त्रं पातयेत्। आसाद्य वाग्निक्षारं चेत्येतत्सामान्यं सर्वेषु।

अर्थ–पूर्वनिदान स्थानमें भगंदरके पांच प्रकार कथन किये गये हैं। उनमेंसे शम्बूकावर्त्त और शल्यनिमित्तज असाध्य होते हैं, शेष सब कृच्छ्रसाध्य हैं। निदान स्थलमें भगंदरोंका साध्यासाध्य विभाग किया है, परन्तु यहाँ उनका पुनः वर्णन केवल प्रसंगगत है पुनरुक्ति दोष नहीं आता है। वह रोगी जो भगंदरकी फुंसीसे पीडित है उसकी चिकित्सा अपतर्पणसे लेकर विरेचन पर्य्यन्त ग्यारह प्रकारसे करे परन्तु यह चिकित्साका प्रकार उसी समय पर्य्यन्त है जबतक वह फुंसी पकने न पावे। उस फुंसीके पक जानेपर स्नेहन अवगाहन और स्वेदन करके पलंगपर रोगीको लिटा देवे और अर्शकी तरह यन्त्रसे पकड कर देखे कि यह भगंदर भीतरको मुखवाला प्राचीन है अथवा बाहरको मुखवाला अर्वाचीन है। फिर सलाई डालकर कुछ ऊंचा कर शस्त्रसे जडसहित काट देवे।

अन्तर्मुख भगन्दरमें विशेषता।

अन्तर्मुख भगन्दरमें यन्त्रको अच्छी रीतिसे लगाकर प्रवाह माण (बहतेहुए) भगंदरके मुखको प्राप्त होकर उसमें सलाई डालकर यन्त्रसे काटदेवे, अथवा उसको प्राप्त करके अग्निकर्म अथवा क्षारकर्म करे यह सम्पूण प्रकारके भगन्दरोंका सामान्य विधान है।

विशेषतस्तु।

नाड्यन्तरे व्रणान्न कुर्याद्भिषक् तु शतपोनके।
ततस्तेषूपरूढेषु शेषा नाडीरुपाचरेत्॥

विशेषकरके कुशलवैद्यको उचित है कि शतपोनक भगन्दरमें नाडियोंके बीचमें व्रण कर देवे और जब वे व्रण रोपण (पुरजावें) तब शेष नाडियोंकी चिकित्सा करे।

अनिश्चित निकटवर्त्ती नाडियोंमें छेदन दोष।

गतो योऽन्योऽन्यसम्बद्धावाह्याश्छेद्यास्त्वनेकधा । नाडीरनभिसम्बद्धा यश्छिनत्त्येकधा भिषक् । सकुर्य्याद्विवृतं जन्तोर्व्रणं गुह्यविदारणम् । तस्य तद्विवृत्तमार्गं विण्मूत्रमनुगच्छति । आटोपगुदशूलं च करोति पवनो भृशम् । तत्राधिगततन्त्रोऽपि भिषङ्मुह्येदसंशयम् ॥ तस्मान्न विवृतः कार्य्यो व्रणस्तु शतपोनके । व्याधौ तत्र बहुच्छिद्रे भिषजा वै विजानता । अर्द्धलाङ्गलकश्छेदः कार्य्यो लाङ्गलकोऽपि वा । द्वाभ्यां समाभ्यां पार्श्वाभ्यां छेदो लाङ्गलको मतः । ह्रस्वमेकतरं यच्च सोर्द्ध-लाङ्गलकः स्मृतः । सेवनीं वर्जयित्वा च चतुर्द्धा दारिते गुदे । सर्वतोभ-द्रकं च्छेदमाहुच्छेदविदो जनाः। पार्श्वगतेन शस्त्रेण छेदो गोतीर्थकी भवेत्॥

अर्थ-जो नाडियाँ आपसमें एक दूसरीसे मिलीहुई बाहरको गई हैं उनमें बहुतसे छिद्र करे, जो वैद्य एक दूसरीसे वेमिली नाडियोंको एक प्रकारसे छेदता है वह उस व्रणको चौंडा कर देता है इससे उस रोगीकी गुदा भी विदीर्ण हो जाती है। उस फटे हुए मागम होकर विष्टा और मूत्र निकलने लगता है, वायु अपनी अत्यन्तताके कारण घोर आटोप और गुदशूल उत्पन्न करता है। ऐसे भगंदर रोगमें शास्त्रकुशल वैद्य भी निश्चय घबडा जाता है, इसी कारणसे शतपोनक भगंदरमें व्रणका मुख चौंडा न करे। बहुत छिद्रोंसे युक्त उस व्याधिमें जानकर वैद्यको उचित है कि उसमें अर्द्ध लांगल, लांगल, सर्वतोभद्र, गोतीर्थके समान छिद्र करे। जिसके दोनों पार्श्व भाग समान होते हैं उसको लांगल छिद्र कहते हैं, जिसका एक पार्श्व बहुत छोटा हो उसे अर्द्धलांगल कहते हैं। सेवनीको छोडकर जब गुदामें चार छेद किये जाते हैं उसे सर्वतोभद्र कहते हैं, जो पसवाडेकी ओर छिद्र किया जाता है उसे गोतीर्थ कहते हैं। इसके समझनेके लिये यह व्यवस्था दी जाती है कि लांगल हलको कहते हैं, इससे जो हलके आकारके सदृश होता है उसे लांगल और आधे हलके समानवालेको अर्द्धलां-गल कहते हैं। छोटी पलकिया अथवा मंडलाकार आसन विशेषको सर्वतोभद्र कहते हैं। गोतीर्थके कई अर्थ हैं जैसे गच्छतो गोर्मूत्रगति सदृश्यः। अथवा गोयोनिः। तदाकारो गोतीर्थकः। अथवा गोतीर्थं निपानं येन गावः पिबन्ति-चलती हुई गौके

मूत्रके समान अथवा गौकी योनिके समान अथवा गौओंके जल पीनेकी प्याऊके समान आकारवालेको गोतीर्थ कहते हैं।

भगन्दर छेदनके पश्चात् कर्म।

सर्वतः स्रावमार्गास्तु दहेद्वैद्यस्तथाग्निना। सुकुमारस्य भीरोर्हि दुष्करः शतपोनकः। रुजास्रावापहं तत्र स्वेदमाशु प्रयोजयेत्। स्वेदद्रव्यैर्यथोद्दिष्टैः कृषरापायसादिभिः। ग्राम्यानूपौदकैर्म्मांसैर्लावाद्यैर्वापि विष्करैः। वृक्षादनीमथैरण्डं बिल्वादिश्च गणं तथा। कषायं सुकृतं कृत्वा स्नेहकुम्भे निषेचयेत्। नाडीस्वेदेन तेनास्य तं व्रणं स्वेदयेद्भिषक्। तिलैरण्डातसीमाषयवगोधूमसर्षपान्। लवणान्यम्लवर्गश्च स्थाल्यामेवोपसाधयेत्। अत्तुरं स्वेदयेत्तेन तथा सिध्यति कुर्वतः। स्विन्नश्च पाययेदेनं कुष्ठञ्च लवणानि च। वचाहिङ्ग्वाजमोदश्च समभागानि सर्पिषा। मार्द्वीकेनाथ वाम्लेन सुरासौवीरकेण वा। ततो मधुकतैलेन तस्यासिञ्चेद्भिषग्व्रणम्। परिषिञ्चेद्गुदं चास्य तैलैर्वातरुजापहैः। विधिनानेन विण्मूत्रं स्वमार्गमधिगच्छति। अन्ये चोपद्रवास्तीव्राः सिध्यन्त्यत्र न संशयः॥

अर्थ—वह व्रण जो चारों ओरसे झिरता है उसको अग्निसे जला देना चाहिये। सुकुमार और डरपोक मनुष्यका शतपोनक भगंदर दुश्चिकित्स्य होता है इसलिये इन मनुष्योंकी वेदना और स्राव बन्द करनेको बहुत शीघ्र स्वेदन कर्म करावे यथोक्त स्वेदन द्रव्योंसे अथवा खिचडी और खीरसे अथवा ग्राम्य आनूप और औदक पशुओंके मांससे अथवा लावा आदि बिष्किर पक्षियोंके मांससे स्वेदनकर्म करावे। अथवा बन्दाक अरंड और बिल्वादि गणका क्वाथ बनाकर चिकने घडेमें भर नाडी स्वेदनकी रीतिसे उस व्रणको स्वेदन करे अथवा तिल अरण्ड अलसी, उरद, जौ गेंहू, सरसों सम्पूर्ण जातिके लवण और अम्लवर्ग इनको एक बर्त्तनमें पका फिर रोगीको इसका बफारा देकर स्वेदन करावे, ऐसा करनेसे रोगी अच्छा हो जाता है। स्वेदन कर्मके अनन्तर कूट सब जातिके लवण, वच, हींग, अजमोद इन सबको समान भाग लेकर घृत दाखका रस अम्लरस, मद्य अथवा कांजीके संग पान करावे। इसके पीछे व्रणपर महुआका तैल लगावे और गुदाको भी वातनाशक द्रव्योंके तैलसे परिषिंचित करे इस रीतिसे चिकित्सा कियेजाने पर मल मूत्र अपने २ मार्ग होकर निकलने लगेंगे और अनेक प्रकारके तीव्र उपद्रव भी शान्त हो जावेंगे इसमें संदेह नहीं है।

उष्ट्रग्रीव भगंदरकी चिकित्सा ।

शतपोनक आख्यात उष्ट्रग्रीवेक्रियां शृणु । अथोष्ट्रग्रीवमेषित्वाच्छित्वा क्षारं निपातयेत् । पूतिमांसव्यपोहार्थमग्निरत्र न पूजितः । अथैनं घृतसंसृष्टैस्तिलैः पिष्टैः प्रलेपयेत् । बंधं ततोऽनुकुर्वीत परिषेकन्तु सर्पिषा । तृतीये दिवसे मुक्त्वा यथास्वं शोधयेद्भिषक् । ततः शुद्धं विदित्वा च रोपयेत्तु यथाक्रमम् ॥

अर्थ—इस प्रकार ऊपर शतपोनक भगन्दरकी चिकित्सा वर्णन की गई है । अब यहांसे उष्ट्रग्रीव भगंदरकी चिकित्सा कथन की जाती है, उष्ट्रग्रीवमें सलाई डालकर उसको चीर डाले फिर सडेहुए मांसको निकालनेके लिये उसपर क्षार डाल देवे इससे सडाहुआ मांस गलित होकर निकल आवे इस रोगमें अग्नि-कर्म करना उचित नहीं है, इसपर तिलोंको बारीक पीसकर उसमें घृत मिलाकर, लेप करे । इसके अनन्तर व्रणको पट्टीसे बाँध उसको गर्म २ घृतसे सेंकता रहे, तीसरे दिवस पट्टी खोलकर यथोक्त रीतिसे फिर व्रणको साफ करे । जब व्रण साफ हो जाय अर्थात् (व्रण अति शुद्ध हो जावे) तब उसको यथाक्रम रोपण करनेकी कोशिश करे ।

परिस्रावी भगंदरकी चिकित्सा ।

उत्कृत्यास्रावमार्गन्तु परिस्राविणि बुद्धिमान् । क्षारेण वा स्रावगतिं दहेद्धुतवहेन वा ॥ सुखोष्णेनाणुतैलेन सेचयेद्गुदमण्डलम् । उपनाहाः प्रदेहाश्च मूत्रक्षारसमन्विताः । वामनीयौषधैः कार्य्याः परिषेकाश्च मात्रया । मृदुभूतं विदित्वैन मल्पस्रावरुगन्वितम् । गतिमन्विष्य शस्त्रेण छिन्द्यात्खर्ज्जूरपत्रकम् । चन्द्रार्द्धं चन्द्रचक्रञ्च सूचीमुखमवाङ्मुखम् । छित्वाग्निना दहेत् सम्यगेवं क्षारेण वा पुनः । ततः संशोधनैरेवं मृदुपूर्वैर्विशोधयेत् ॥

जो भगन्दर चारो ओरसे झिरता हो तो उसके स्रावमार्गको चीरकर क्षार अथवा अग्निसे उस मार्गको जला देवे, जिससे स्रावका बहना बन्द हो जाय । पुनः अण्ड तैलको कुछ ऊष्ण करके उससे गुदा मंडलको सेचन करे मूत्र और क्षारसे समन्वित बन्धन और लेप कर मृदु वमन याने थोडी २ वमन करानेवाली औषध भी देवे । जब व्रण कोमल हो वेदना तथा स्राव भी कम हो जाय तब सलाई डालकर खर्जूर

पत्रके समान चीर देवे, यह छिद्र चन्द्र अर्द्धचन्द्र चक्र, सूचीमुख अथवा अवाङ्मुखके समान करना चाहिये। फिर इसको अग्नि अथवा क्षारसे जला देवे, तदनन्तर प्रथम मृदुशोधन, पीछे तीक्ष्ण शोधन द्रव्योंसे शोधन करे।

बालकके भगंदरकी चिकित्सा।

बहिरन्तरमुखश्चापि शिशोर्यस्य भगन्दरः। तस्याहितं विरेकाग्निशस्त्रक्षारावचारणम्। यद्यन्मृदु च तीक्ष्णञ्च तत्तस्यावचारयेत्॥ आरग्वधनिशाकालाचूर्णं मधुघृताप्लुतम्। अग्रवर्त्तिप्रणिहितं व्रणानां शोधनं हितम्। योगोऽयं नाशयत्याशु गतिं मेघमिवानिलः॥

अर्थ—बालकका भगंदर चाहे बहिर्मुखवाला हो चाहे अन्तर्मुखवाला हो उसके लिये विरेचन, अग्निकर्म, शस्त्रकर्म, क्षारकर्म, अहित हैं, जो २ मृदु और तीक्ष्ण औषधियां हैं उन्हींको काममें लावे। अमलतास, हल्दी, अहिंसा इनके चूर्णको शहत व घृतमें मिलाकर उससे अग्रवर्त्ती (सूतकी बत्ती) को इन औषधियोंमें लपेटकर व्रणके छिद्रमें प्रवेश करे, यह वर्त्तिका व्रण शोधनमें हित है। यह प्रयोग भगंदरको ऐसा शीघ्र अच्छा कर देता है जैसे वायु मेघकी गतिको रोक देती है।

शल्यनिमित्तज भगंदरकी चिकित्सा।

आगन्तुजे भिषक् नाडीं शस्त्रेणोत्कृत्य यत्नतः। जाम्बोष्टेनाग्निवर्णेन तप्तया वा शलाकया। दहेद्यथोक्तं मतिमांस्तं व्रणं सुसमाहितः। क्रमिघ्नं च विधिं कुर्य्याच्छल्यानयनमेव च। प्रत्याख्यायैष चारेभ्यो वर्ज्यश्चापि त्रिदोषजः। एतत्कर्म समाख्यातं सर्वेषामनुपूर्वशः। एषान्तु शस्त्रपतनाद्वेदना यत्र जायते। तत्राणुतैलेनोष्णेन परिषेकः प्रशस्यते॥

अर्थ—आगन्तुज भगन्दरमें नाडीको शस्त्रसे छेदन करके जाम्बोष्ट शस्त्रको अथवा सलाईको अग्निमें विशेष गर्म करके अत्यन्त सावधानतासे व्रणको जला देवे, इसके अतिरिक्त ऐसी क्रिया भी करनी चाहिये जिससे कीडोंका नाश हो शल्य निकल जाय, यदि भगंदर त्रिदोषसे उत्पन्न हुए हों तो उन्हें असाध्य जानै इन उक्त कर्म्मोंका वर्णन भगन्दरोंके अनुसार ही किया गया है, इनमें शस्त्रके लगनेसे जहां वेदना हो तहाँ उष्ण अणु तलस परिषेक करना उचित है।

अणुतैलका प्रयोग।

तिलपरिपीडनोपकरणकाष्ठान्याहृत्यानल्पकालं। तैलपरिपीतान्यणूनि

खण्डशः कल्पयित्वावक्षुद्रमहति कटाहे पानीये आप्लाव्य क्वाथयेत्ततः स्नेहमन्तु पृष्ठाद्यदुदेति तत्सरकपाण्योरन्यतरेणादाय वातघ्नौषधप्रतीवापञ्च स्नेहपाककल्पेन विपचेदेतदणुतैलमुपदशन्ति वातरोगेषु । अणुभ्यस्तैलद्रव्येभ्यो निष्पाद्यत इत्यणुतैलम् ॥

अर्थ—जिस काष्ठके कोल्हूकी लाठके नीचेके भागसे तिल सरसों आदि पदार्थ घानीमें पेरकर तैल निकाला जाता है उस लकडीके टुकडे २ करके तैलमें डाल देवे, जब काष्ठ भाग तैल पीकर पूरित हो जावे तब उसके छोटे २ टुकडे करके एक बडी कडाईमें जल भरकर अग्निपर पकावे । ऐसी रीतिसे पकानेपर उस लकडीमेंसे जो तैलका भाग जलपर आवे उसको निकाल लेवे, इस तैलमें वातनाशक औषधियां मिलाकर स्नेह पाककी विधिसे पकालेवे यह अणु तैल है । विशेष करके वातरोगमें काम आता है, बाद भगंदरमें भी जहाँ २ इसका उपचार करना लिखा है वहां २ करना योग्य है ।

भगन्दरमें बफारा ।

वातघ्नौषधसम्पूर्णां स्थालीं छिद्रशराविकाम् । स्नेहाभ्यक्तगुदस्तामध्यासीतसबाष्पकाम् । नाड्या बास्या हरेत् स्वेदं शयानस्य रुजापहम् । उष्णोदकेऽवगाह्यो वा तथा शाम्यति वेदना ।

अर्थ—देवदारु तथा अरंड, सम्हालू, अरणी, सोनापाठादि वातनाशक औषधियोंको एक हांडीमें भरकर उसके ऊपर एक सराव सरई या जिसके बीचमें एक छिद्र हो ऐसी ढांक देवे और उस हाँडीमें थोडा जल डालकर अग्निपर चढावे, जब औषधियां पक जावें तब नीचे उतारकर रक्खे । पकानेके समय सरवेके बीचवाला छिद्र बन्द कर रोगीको एक ऊंची कुर्सीपर बैठाकर उसके नीचे वर्त्तन रख कुर्सीको चारों ओरसे ढक देवे । पीछे वर्त्तनके सरवाके छिद्रको खोल भाफको भगन्दरके व्रणपर लगने देवे। अथवा रोगीको लिटाकर नाडी स्वेदके क्रमसे वेदनानाशक पसीना देवे, अथवा गर्म जलसे स्नान करावे ऐसा करनेसे वेदना शान्त हो जाती है ।

वात कफ वेदनामें उपनाह ।

कदलीमृगलोपाकप्रियकाजिनसंभृतान् । कारयेदुपनाहांश्च शाल्वणादीन् विचक्षणः । कटुतिक्तं वच हिंगु लवणान्यथ दीप्यकम् । पाययेच्चाम्ल कौलत्थसुरासौवीरकादिभिः ॥

अर्थ—कदली मृग (हिरन विशेष) स्यारिया (गीदड) और अजगरका

चमडा (अतिस्थूल सर्प) के चमडोंसे अथवा शालनसे उपनाह करावे अथवा त्रिफला, वच, हींग, लवण अजमोद इनके चूर्णको कांजी, कुलथीके यूप मदिरा सौवीरादिको पिलावे।

भगन्दरका शोधनवर्ग।

ज्योतिष्मती लाङ्गलकी श्यामा दन्ती त्रिवृत्तिलाः। कुष्ठं शताह्वा गोलोमी तिल्वको गिरिकर्णिका। कासीसकाञ्चनक्षीर्य्यौ वर्गः शोधन इष्यते॥

अर्थ—मालकांगनी, कलहारी, काली निशोथ, तिल, कूठ, दन्ती, श्वेत निसोत, शतावर, दूर्वा, लोध, गिरिकर्णिका, कसीस, थूहरका दूध ये सब भगंदरको शोधन करनेवाले औषध हैं।

भगंदरके उत्सादन द्रव्य।

त्रिवृत्तिला नागदन्ती मंजिष्ठाः पयसा सह। उत्सादनं भवेदेतत्सैन्धवक्षौद्रसंयुतम्। रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मंजिष्ठा निम्बपल्लवाः। त्रिवृत्तेजोवती दन्ती कल्को नाडीव्रणापहः। कुष्ठं त्रिवृत्तिला दन्ती मागध्यः सैन्धवं मधु। रजनी त्रिफला तुत्थं हितं स्याद्व्रणशोधनम्॥

अर्थ—निसोथ, तिल, नागदन्ती और दूधके साथ सेंधा नमक, शहत, मिलाकर देवे, ये भगंदरको उत्सादन करनेवाले द्रव्य हैं। रसौत, दोनों हल्दी, मजीठ, नीमके पत्र निशोथ, तेजवल, दन्ती इन सबका कल्क नाडी व्रणोंको दूर करता है। कूठ निशोथ, तिलदन्ती, पीपल, सेंधा नमक, शहत, हल्दी, त्रिफला, नीलाथोथा ये सब व्रणके शोधनमें हितकारी द्रव्य हैं।

भगंदरके रोपण तैल।

मागध्यो मधुकं रोध्रं कुष्ठं मेला हरेणवः। समङ्गा धातकी चैव सारिवा रजनीद्वयम्। प्रियङ्गवः सर्जरसः पद्मकं पद्मकेशरम्। सुधा वचां लाङ्गलकीं मधूच्छिष्टं ससैन्धवम्। एतत्संभृत्य सम्भारान् तैलं धीरो विपाचयेत्। एतद्धि गण्डमालासु मण्डलेष्वथ मेहिषु। रोपणार्थे हितं दद्याद्भगन्दरविनाशनम्॥ न्यग्रोधादिगणश्चैव हितः शोधनरोपणे। तैलं घृतं वा तत्पक्वं भगंदरविनाशनम्। त्रिवृद्दन्तीहरिद्रार्कमूलं लोहाश्वमारकौ। विडङ्गसारं त्रिफला स्नुह्यर्कपयसी मधु। मधूच्छिष्टसमायुक्त-

स्तैलमेतैर्विपाचयेत् । भगन्दरविनाशार्थमेतद्योज्यं विशेषतः । चित्रकार्कौ त्रिवृत्पाठे मलपूहयमारकम् । सुधां वचां लाङ्गलकीं सप्तवर्णं सुवर्चिकाम् । ज्योतिष्मतीं च सम्भृत्य तैलं धीरो विपाचयेत् । एतद्धि स्यंदनन्तैलं भृशं दद्याद्भगन्दरे । शोधनं रोपणं चैव संवर्णकरणं तथा । द्विव्रणीयमवेक्षेत व्रणावस्थासु बुद्धिमान् ॥

अर्थ-पीपल मुलहटी, लोध कूट, इलायची हरेणु, मजीठ, धायके फूल, सारिवा, दोनों हल्दी, प्रियंगु, राल, पद्माख, कमल, केसर, सेहुंड थूहरका भेद, वच, कलिहारी, मौम, सेंधा नमक इन सबको समान एकत्र करके तैलमें पकावे तैलसे चौगुना जल डाले । तैल सिद्ध हो जावे तब पात्रमें छानकर भरलेवे यह तैल गंडमाला, मंडल और प्रमेहको नष्ट करता है, घावोंको पूरने और भगंदरको नष्ट करनेमें अति हितकारी है । पूर्व लिखाहुआ न्यग्रोधादि गण भगंदरके शोधन रोपणमें हित है, अथवा उसके साथ पकायाहुआ घृत या तैल भगन्दरको नष्ट कर देता है । निसोत, दन्ती, हल्दी, आककी जड, लोह, कनेर, वायविडङ्ग, त्रिफला, सेहुंड, आकका दूध, शहत, मोम ये सब वस्तु डालकर तैल पकावे, यह तैल भगंदरके दूर करनेमें अत्यन्त हित है । चीता, आक, निसोत, पाठा, कठूमर, कनेर, सेहुंड, वच, कलिहारी, सातला, सज्जीखार, मालकांगनी इन सबको एकत्र करके तैलको पकावे । यह स्यन्दन संज्ञक तैल भगंदरोंमें लगाना उचित है, । तथा बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि शोधन रोपण और संवर्ण करणमें द्विव्रणीय अध्यायोक्त उपचार जो सुश्रुत संहितामें कथन किये हैं उनको भी काममें लावे ।

आगे यन्त्रक्रियाका विधान किया है ।

छिद्रादूर्ध्वं हरेदोष्ठमर्शो यन्त्रस्य यन्त्रवित् । ततो भगन्दरे दद्यादेतदर्द्धेन्दुसन्निभम् । व्यायामं मैथुनं कोपं पृष्ठयानं गुरूणि च । संवत्सरं परिहरेदुपरूढव्रणो नरः ।

अर्थ-यन्त्र कर्मका जाननेवाला चिकित्सक छिद्रसे ऊपर अर्शोयन्त्रको लगावे फिर आधे चन्द्रमाके समान भगन्दरमें लगाकर काट लेवे भगन्दरका रोगी व्रणके पुर जाने पर भी एक वर्षतक परिश्रम, मैथुन, कोप, घोडा, ऊंटकी सवारी और भारी भोजन करना त्याग देवे ।

आयुर्वेदसे भगंदरकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे (फीस्च्युलाईऐनो) भगन्दरकी चिकित्सा ।

कितने ही समय कितने ही स्त्री व पुरुषोंको गुदाके आसपास गलाव (गलित) मांस हो जाता है, किसी समय तन्दुरुस्त मनुष्यको भी ऐसा गलित मांस रोग होता है । इसमें पीडा अधिक होती है और कभी शीघ्र कभी अधिक विलम्बसे पककर फूटता है, लेकिन विशेप करके यह गलित भगंदर रोग अधिकही उमरके मनुष्योंके होते देखा जाता है । वाद अधिक पीडाके साथ अधिक समयमें जो भगंदर पकता है वह अन्दर ही अन्दर अधिक गलित होता जाता है । समय भी अधिक लगता हुआ उसका मुख बाहर शीघ्र नहीं होता याने मुखपरसे शीघ्र नहीं पकता, किसी समय गुदाके अन्दर और किसी समय बाहर फूटता है । किसी २ समय दोनों ओर फूटता है । यह भगंदर प्रायः मनुष्यकी निर्बलताके कारणसे होता है, किसी २ मनुष्यको मर्मस्थान पर लात घूँसा अथवा और किसी वस्तुका अभिघात लगनेसे होता है, अथवा ठंढी जगह व शीलवाली जगह पर बैठने व निवास करनेसे, गुदाके अन्दर चांदी जखम व अर्श आदि होनेसे भी होता है । अथवा मांसाहारी स्त्री पुरुषोंके खानेमें मांसके साथ कदाचित् हड्डी खा ली जावे तो वह गुदामार्गमें अटक कर जखम उत्पन्न करदेती है इससे भी गलित भगंदर हो जाता है ।

भगंदरकी विशेष व्याख्या तथा लक्षण ।

यदि यह निश्चय हो जावे कि भगंदरसे अन्दर मांस गलित होकर सडता है तो उसको शीघ्र फोडकर पीबको बाहर निकालनेका मार्ग करना, नहीं तो अन्दरके भागमें अधिक गलने लगेगा और उसका विस्तार भी अधिक हो जावेगा । भगंदरका पीब अधिक दुर्गन्धित वास मारनेवाला होता है । गुदाके आसपासमें भगंदर फूटने पीछे शीघ्र निवृत्त नहीं होता, उसके मुखका भाग खुला रहता है; याने अन्दरका भाग पोला खोखला रहता है । तथा थोडा २ पीब निकला करता है यह थोडे २ पीबका निकलना बन्द नहीं होता इसीसे इसको स्वदेशी वैद्यलोग भगंदर कहते हैं । इस भगंदरका मुख किसी समय बन्द होकर उसके अन्दर पोलके भागमें पीब एकत्र हो जाता है और वही पीब दूसरे ठिकाने पककर मुख करके फूटकर निकलता है । ऐसे भगंदरका रास्ता कई समय नितम्बके ऊपर अथवा नीचेको पीब रुजू होवे तो जंघातक पहुंचता है, भगंदर एक अथवा २ व इससे भी अधिक हो एक ही भगंदरमें कई मुख हो जाते हैं । किसी २ मनुष्यके भगंदरमें कितने ही समय अन्दरके भागमें अधिक गम्भीरता (गहरापन) होता है और सीधा होता है और कोई २ सीधा टेढा होता है, कभी २ खांचेदार भी होता है । भगंदर दो जातिका होता है एक तो वह कि जबतक उसका एक मुख बाहरको होवे तथा दूसरा

मुख उसका गुदाके अन्दरको होय तब उसको पूर्णरूपसे भगंदर कहते हैं, दूसरी जातिके भगंदरमें केवल एक मुख होय वह मुख चाहे गुदाके अन्दर हो चाहे वाहर हो यदि गुदाके अन्दर होय तो उसको अपूर्ण भगंदर कहते हैं । पूर्ण भगंदर अधिक साधारण होता है, यदि वाहरके छिद्रमेंसे सलाई प्रवेश की जावे तो गुदाक अन्दरक मुखमेंसे निकलकर गुदमार्गमें अंगुली प्रवेश करके देखोगे तो अंगुलीसे लगेगी, यदि भगंदरका जखम टेढा मेढा होय अथवा गहरा ओंडा होय तो थोडी मुसीवतसे सलाई गुदाके अन्दर जावेगी इस भगंदरमेंसे पीव निकलती है और कितने ही समय भगंदरके छिद्रमेंसे विष्टाभी आने लगता है और अपानवायु भी आता है इससे रोगीका अधिक कष्ट सहन करना पडता है । अपूर्ण भगंदरका मुख वाहर होता है, यदि उसमें सलाई प्रवेश करी जावे तो गुदाके अन्दर नहीं जा सक्ती, जो उसका मुख केवल गुदाके अन्दर हो वाहर न होय तो गुदामेंसे मल त्यागनेके समय पीव निकलती हुई माल्म पडती है और मल उतरनेके समय दर्द भी होता है । इसके ऊपरसे निश्चय होता है तथा गुदादर्शक यन्त्र (रेकटलसेक्युलम्) गुदामें प्रवेश करके देखनेसे छिद्र वाहरसे गुदाके अन्दरके भागमें दीख पडेगा भगंदरका रस्ता किसी समय आडाटेढाभी होता है ।

भगंदरकी चिकित्सा ।

यदि बाहर ही अपूर्ण भगंदरका व्रण होय तो कास्टिक आदि लगानेसे मिट जाता है, नहीं तो भगंदरको काटने विदून उत्तमरीतिसे आराम नहीं हो सक्ता और काटनेके लिये भगंदरको कुछ पुराना होने देना चाहिये । भगंदर काटनेके समय रोगीका वल और तन्दुरुस्ती ठीक होनी चाहिये, यदि रोगी अधिक निर्वल होय और भगंदर काटा जावे तो काटनेका जखम शीघ्र रोपण नहीं होता, प्रायः जखम विगड जाता है । यदि क्षयरोगवालेको किसी समय भगंदर होता हुआ उसमेंसे पीव निकलती रहती हो तो इससे क्षयके रोगको कुछ फायदा माल्म होता है ऐसा कितने ही डाक्टरोंका सिद्धान्त है । इसलिय उसमें पीडा न होय तथा पीव थोडा निकलता होय तो क्षयरोगीका भगन्दर रहने देवे इसी प्रकार क्षयरोग अपनी पूर्णावस्थामें पहुंच गया हाय और रोगी मृत्युके समीप पहुंच गया होय तो काटनेसे कुछ लाभ नहीं होता, यदि रोगी जीवित रहने योग्य होवे तो भगंदर रोगको शस्त्रोपचारसे निरोग करना योग्य है ।

शस्त्रोपचारकी प्रक्रिया ।

यदि भगंदर रोगपर चिकित्सकका शस्त्रोपचारका विचार निश्चय हो गया होय तो प्रथम दिवस रोगीको अरंडीके तैलका जुलाव देकर उसके मलाशयकी शुद्धि करे और दूसरे दिवस (कलोरोफार्म) सुंघाकर पूर्ण भगंदरके अन्दर सलाइ प्रवेश कर

वामें हाथकी तजनी अंगुली गुदामें प्रवेश करके सलाई नोकपर लगावे। इसके अनन्तर सलाईके आधारपर टेढी (बीसचुरी) प्रवेश करनी जो कि अंगुली और (वीसचुरी) के बीचमें आयाहुआ सब भाग काटकर निकाल लेना। यदि दूसरा भगंदर होय तो उसको भी उसी प्रक्रियाक अनुसार काटकर दुरुस्त करना। इस कटेहुए स्थलमें लींट अथवा साफ रूई ऐडोफार्म छिडककर भरना आर लंगोटीके माफिक पट्टी बांधदेना। पीछे अफीम अथवा मोर्फीयाकी योग्य मात्रा देते रहना जिससे रोगीको पडिा माल्रम न होवे और दो व तीन दिवस पर्य्यन्त दस्त भी न आने पावे, इसक अनन्तर मृदु जुलाब देकर दस्त साफ करादेना और हर-रोज पतला दस्त आतारहे ऐसी औषधका सेवन कराते रहना और हररोज कार्बोलीक तैलका फोहा तथा रोपण मलमकी पट्टी जखममें रखता रहे जबतक जखम अन्दरतलीमेंसे न भर आवे और ऊपरतक पूर्णरोपण न होवे तबतक बराबर ऐसा ही करते रहना। यदि अपूर्ण भगंदर होय तो उसमें सलाई प्रवेश करके जिस ठिकानेपर गुदाके अन्दर नलीके भागके पासमें आवे वहां जोरसे सलाई गुदाके अन्दरकी तर्फ निकालदेना, इतना कि जिससे पूर्ण भगंदररूप बनजावे। इसक पछि ऊपर कथन की हुई प्रक्रियाके प्रमाण काटना तथा इलाज करना, देशी वैद्यलोग तो प्रायः भगंदरका इलाज करते नहीं परन्तु एक सतीयाजातिके हकीमलोग अथवा मद्रासप्रान्तक सतीयालोग भगंदर व अर्शका इलाज करते हैं, सो सोमलादि उसके अन्दर भरते हैं और उससे जखम जल जाता है और दर्द बहुत अधिक होता है और आराम होनेमें भी अधिक बिलम्ब लगता है और किसी २ को आराम नहीं होता।

डाक्टरीसे भगंदरकी चिकित्सा समाप्त।

डाक्टरीसे प्रोलर पसस अर्थात् गुदभ्रंशकी चिकित्सा।

गुदाके अन्दरका भाग मलद्वार याने गुदाके मुखके बाहर निकलकर आ जाता है, इसको प्रायः काँच निकलना कहते हैं, यह रोग प्रायः अशक्त बच्चोंको होता है, परन्तु यह कुछ नियम नहीं कि बच्चोंकी ही गदा निकलती हो, किन्तु अनेक जवान स्त्री पुरुषोंकी भी गुदावली मल त्यागनेक समय बाहर निकल आती है। अधिक समय पर्य्यन्त बैठे रहनेसे तथा पेटके अन्दर मलाशय आमाशयमें मरोडा चलनेसे मल त्यागनेके लिये जोर करना पडता है, इससे भी गुदावली बाहर निकलनेका रोग उत्पन्न होता है। जिस २ व्याधिमें नुकहना (जसा ऊंह ऊंह) करके कूथना पडता है, जैसे मूत्र त्यागनेक समय, दस्त जानेके समय गुदाकी वली निकलनेका कारण होता है इसी प्रकार पथरी, मूत्रग्रन्थी, मलका शूक जाना गुदाका को रोग जिसस दस्तकी कब्जी रहती हो अर्श रोग—अथवा अन्य दूसरे गुदाके रोग गुदावली निकलनेका कारण

हो सक्ते हैं। हमने कई स्त्रियोंको देखा है कि प्रसवम उनकी गुदावली बाहर निकल आई है और बालक उत्पन्न होनेके अनन्तर अंगुलियोंका सहारा देकर अन्दर की गई है। साधारण रीतिसे कांच निकलनेकी (गुदाकी वली अन्तरपटल) बाहर आता है, परन्तु कभी किसी २ स्त्री व पुरुषका सम्पूर्ण सफराका भाग मोजाकी माफिक टेढा होकर बाहर निकल आता है। दस्त जानेके समय गुदावली बाहर निकलती हैं व विशेष करके अपने आपही अथवा कुछ हाथका सहारा देनेसे अन्दर चली जाती हैं। परन्तु किसी समय अन्दर न जा बाहर रहकर सडने लगती हैं, पीव पडकर गलाव पड जाता है।

प्रोलर पसस व गुदभ्रंश–कांच निकलनेकी चिकित्सा।

इस गुदावली निकलनेका प्रथम उपाय यह है कि निकले हुए भागको जो गुदाके मुखसे बाहर आया है उसको अंगुलियोंके सहारेसे अन्दर करना चाहिये, विशेष करके होसियार रोगी अपने आपही निकलेहुए भागको अन्दर कर लेता है। यदि किसी समय रोगीके हाथसे अन्दर न जा सके तो उस निकलेहुए भागके ऊपर मीठा तेल चुपडकर एक बारीक कोमल कपडा उसके ऊपर डालकर दूसरे हाथके अंगूठा और अंगुलीसे मलद्वारको चौडा दाबकर हाथके अंगूठा व अंगुलीको डालेहुए कपडेपर रखके दबाकर अन्दर प्रवेश कर देवे । गुदाके मुखपर कपडेकी पट्टी रखकर लँगोटी लगा देवे, इस गुदभ्रंश रोगके निवृत्त करनेके लिये उत्तम उपाय यह है कि जिस कारणको लेकर यह रोग उत्पन्न हुआ होय उस कारणको निश्चय करके जो कारण मालूम होय उसको निवृत्त करे, जैसा कि पथरी होवे तो उसको निकालना। यदि मूत्र-ग्रन्थी होय उसको निवृत्त करना, अर्श होय तो काटकर व दग्ध करके निवृत्त करना। दस्त सदैव साफ आयाकरे ऐसी औषध देना और अर्शकी चिकित्सा प्रकरणमें जो २ इलाज कथन किये गये हैं वे इस ठिकाने सब काम दे सक्ते हैं। एक औंस (२॥ तोला) जलमें २ ग्रेनसे ४ ग्रेनतक हीराकसीस डालकर इसकी पिचकारी लगानी, अथवा आवश्यकताके अनुसार परिमित मात्रासे अरंडीका तैल, स्वर्णपर्णी (सनाय) अथवा छोटी हरड आदिका जुलाब देना। मिरच आदि गर्म पदार्थ नहीं खाना–और शरीरमें बल बढे ऐसा औषध तथा डाक्टरीदवाका उपचार करना, जो यह गुदभ्रंश कांच निकलनेका रोग अधिक समयका हो तथा यथार्थ चिकित्सा करनेपर भी निवृत्त न हो पीडा अधिक होती हो तो इस प्रक्रियाको काममें लावे । वह भाग जो डोरासे बांधने योग्य होय तो खेंचकर डोरासे बांध देवे थोडे दिवसमें गलकर गिर पडेगा। इसी प्रकार अर्शके मस्से अथवा अनेक प्रकारकी ग्रन्थी भी बांधनेमें आती हैं तो थोडे दिवसमें कटकर गिर जाती हैं। स्वदेशी वैद्य प्रायः इस प्रक्रियाको काममें विशेष करके लाते हैं।

आयुर्वेदसे गुदभ्रंशका निदान तथा चिकित्सा ।

आयुर्वेदमें इस रोगकी उत्पत्ति अतीसारके अत्यन्त प्रवाहसे मानी गई है । जैसा कि गुदाका पकना अथवा कांचका निकलना—परन्तु हमारी समझमें यह भी अनेक रोगियोंके देखनेसे निश्चय हो चुका है कि विना अतीसारके भी यह रोग होता है । जैसा कि डाक्टरी प्रकरणमें लिखा गया है और निर्बल मनुष्यको प्रायः होता है ।

गुदाके दाह पाककी चिकित्सा ।

निरेकैर्बहुभिर्यस्य गुदं पित्तेन दह्यते । पच्यते वातयोः कार्यं सेकप्रक्षालनादिकम् ॥ पटोलयष्टीमधुककाथेन शिशिरेण हि । गुदप्रक्षालनं कार्य्यं तेनैव गुदसेचनम् ॥ दाहे पाके हितं छागीदुग्धं सक्षौद्रशर्करम् । गुदस्य क्षालने सेके युक्तं पाने च भोजने । गुदनिःसरणे प्रोक्तं चांगेरीघृतमुत्तमम् । अतिप्रवृत्त्या महती भवेद्यदि गुदव्यथा । स्विन्नमूषकमांसेव तदा संस्वेदयेद्गुदम् । अथ गोधूमचूर्णस्य संनीतस्य तु वारिणा । साज्यस्य गोलकं कृत्वा मृदु संस्वेदयेद्गुदम् । गुदभ्रंशे गुदं स्नेहैरभ्यज्यांतः प्रवेशयेत् । प्रविष्टं स्वेदयेन्मंदं मूषकस्यामिषेण हि । शंबूकमांसं सुस्विन्नं सतैललवणान्वितम् । ईषद् घृतेन चाभ्यज्य स्वेदयेत्तेन यत्नतः । गुदभ्रंशमशेषेण नाशयेत्क्षिप्रमेव च । मूषकस्याथवसया पायं सम्यक् प्रलेपयेत् । गुदभ्रंशाभिधो व्याधिः प्रणश्यति न संशयः । चांगेरीकोलदध्यम्लक्षारनागरसंयुतम् । घृतं विपक्वं पातव्यं गुदभ्रंशगदापहम् । कोमलं पद्मिनीपत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम् । एतन्निश्चिन्त्य निर्दिष्टं नतस्य गुदनिर्गमः ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको अत्यन्त दस्तोंके होनेसे पित्तसे गुदामें जलन हो अथवा पकजावे तो उस पर सेंक व जलकी धारा (तर्डा) देना अथवा शीतल जलसे धोना और पित्तनाशक लेप करना । पटोलपत्र, महुआ, मुलहटी इनके काथको शीतल करके गुदाको इसी काथका तर्डा देवे तथा गुदाके दाह व पक जानेमें बकरीके दूधमें खांड और शहत मिलाकर गुदाको धो तर्डा देवे तथा पान व भोजनमें भी बकरीका दूध लेना चाहिये ।

गुदाकी कांच निकलनेका यत्न ।

यदि गुदाकी बली बाहर निकल आई हो तो चांगेरी घृत जो आगे लिखा है

देना अति हितकारी है, यदि अत्यन्त दस्तोंके होनेसे गुदामें पीडा होय तो चूहेके मांसको औटाकर इसमें गुदाको स्वेदन करे अर्थात् भफारा देवे अथवा गेहूँके आटेको जलमें मिलाके पोलिटिसके समान पकावे, जब घनरूप हो जावे तब उसमें घृत मिलाकर नर्म गोला बनाकर उससे गुदाको सेंक देवे, इससे पसीना आवेगा ।

गुदभ्रंशका उपाय ।

गुदाकी कांचको घृत व तैलसे चिकनी करके भीतरकी प्रवेश करदेवे, जब भीतरको चली जावे तब चूहेके मांसको कांजाम पकाकर अरण्डके पत्रोंपर रखके गुदाको स्वेदन (भफारा) देवे । अथवा छोटे २ शंख (सखुला) के मांसको निकाल कर पकावे और उसमें मीठा तैल और सेंधा नमक मिलाकर प्रथम गुदाको घृतसे चुपडकर यत्नपूर्वक स्वेदन करे तो गुदाके निकलनेको शीघ्र नष्ट करे । अथवा चूहेकी वसा चर्वीसे गुदाको लेपित करे तो गुदभ्रंशकी व्याधि निस्संदेह निवृत्त होवे ।

चांगेरी घृतका प्रयोग ।

चार पत्तेकी खट्टी लोनियाँका स्वरस, वेरका क्काथ, खट्टा दही ये तीनों मिलाकर घृतसे चौगुने लेवे तथा जवाखार और सोंठ इनका कल्क डालके घृतको पकावे तो यह घृत खाने और लगानेसे गुदभ्रंश व्याधिको नष्ट करता है ।

तथा कमलनी पत्रप्रयोग

जो मनुष्य कोमल २ कमलनीके पत्रोंको सुखाकर चूर्ण करके वरावर मिश्री मिलाकर १ तोलाकी मात्रासे दिनमें ३ समय सेवन करे तो गुदाका निकलना कदापि न होवे यह प्रयोग कई समय अनुभव किया गया है । आंतडोंको तथा सफराको वल देता ह ।

आयुर्वेदसे गुदभ्रंश चिकित्सा समाप्त ।

(यूनानी तिब्बमें भगंदरको नासूरके नामसे वर्णन किया गया है)

यूनानी तिब्बसे गुदाके नासूरकी चिंकित्स

यह गुदामें एक गहरा जखम होता है, जो वडी कठिनतासे अच्छा होता है । यह स्त्री पुरुष दोनोंकी ही गुदामें अक्सर हो जाता है और किसी २ स्त्री व पुरुषकी गुदामें सीधी आंतकी ओर उत्पन्न होता है और उसके सववसे गुदामेंसे पीला पानी निकला करता है यह घाव दो प्रकारका होता है, एक तो वह जो सीधी आंतमें होवे और उसका लक्षण उस घावके विपरीत होय जो आंतके भीतर घुस जाता है ।(चिकित्सा) इसकी यह है कि घावको दवाकर सव पीला पानी निकाल डाले फिर देखे कि उसमें सलाई जा सक्ती है कि नहीं, जो सलाई न जा सके तो गर्व नामकी गोलीको पीसकर दोनों समय दो तीन विन्दु टपकावे और टपकाते समय वीमारको चित्त लिटावे, उसके

नितम्बके नीचे तकिया रखे जिससे नितम्ब अधर रहें और जबतक दवा न सूख जावे तबतक रोगी इसी तरह लेटा रहे, अगर सलाई जा सक तो एक बारीक सलाइ लेकर उसपर रुई लपेट अब्बी गोंदके पानीमें भिगोकर सियाफकी पिसी हुई दवाओंमें भरकर घावके अन्दर रक्खे । सियाफ गर्वकी विधि–एलुआ, कुन्दरदम्बुल अखवेन, सुर्मा, फिटकरी, गुलनार प्रत्येक एक एक दिरम जंगार १ दिरम सबको कूट छानकर गुलाब जलमें सियाफ बनावे । इसका दूसरा भेद यह है कि घाव आंतके भीतर पहुंच गया होय और उसका लक्षण यह है कि हवा और विष्टा अपने आप इस नासूरके मार्गसे निकल आवे इसी तरह अगर घावमें सलाई डालें और गुदामें अंगुली लेजायँ तो दोनों आंतमें मिलजावें, परन्तु यह मार्ग विशेष तङ्ग हो कि जिसमेंसे सलाई न जा सके, तङ्ग होनेके कारणसे विष्टा भी उस ओरसे न निकल सक । यदि इस बातका संदेह हो कि घाव आँतके अन्दर पहुँच गया है व इन दोनोंमें यह अन्तर है कि रुईको रोगीकी गुदामें इस प्रकारसे रक्खे कि हवा अन्दर न घुसने पावे आर रोगी श्वासको रोंककर नीचेकी ओर जोर करे जैसा कि मल त्यागनेके लिये करते हैं । घावपर अंगुली रक्खे कि हवा निकलती हुइ मालूम होवे तो समझना चाहिये कि जखम आंतके अन्दर पहुंच गया ह । दूसरी विधि इसके जाननेकी यह है कि एक नलके सदृश वस्तु लेकर उसका एक सिरा घावपर लगावे और दूसरी ओर कोई वस्तु जलावे जिससे धुंआँ भीतर जावे फिर रोगीको धूँआकी गर्मी मालूम पडे तो जानना चाहिये कि घाव आंतके अन्दर पहुंच गया है । अगर गर्मी न मालूम होवे तो समझना कि अन्दर नहीं पहुंचा है, (चिकित्सा) इसकी यही उचित है कि इसका इलाज न करे, क्योंकि इसका इलाज करनेसे रोगीको कष्ट विशेष होता है । यूनानी तिब्बमें भगंदरको नासूरक नामसे वणन करके हतोत्साह होकर चिकित्सा करनेकी मनाई कर दी गई है, परन्तु इस ग्रन्थक पाठक यूनानीवालोंकी परीक्षासे जानकार होंगे इसी लिये यह प्रकरण भगंदरकी चिकित्सासे पृथक् लिखा गया है ।

यूनानी तिब्बसे भगंदर उर्फ नासूरकी चिकित्सा समाप्त ।

यूनानी तिब्बसे गुदाके शोथ (सूजन) की चिकित्सा ।

इसक दो भेद हैं प्रथम भेद गर्म सूजनके वर्णनमें है और बहुधा यही भेद उत्पन्न होता है और तीन हालतोंसे बाहर नहीं है यातो आदिमें उत्पन्न होय अथवा गर्म औषधियोंको काममें लानेके पीछे, या खुजलीके पीछे या फटजाने या घावके पीछे या बवासीरके मस्सोंको काटनेके पाछे उत्पन्न हो । उसका लक्षण यह है कि दर्द जलन और मूत्रका बूंदबूंद उतरना और उसके कारणोंका प्रथम होना आदि,

यह सूजन स्त्री व पुरुष दोनोंकी गुदामें उत्पन्न हुआ करती है, परन्तु बहुत कम होती है। (चिकित्सा) आदि वासलीककी फस्द खोले यदि कुछ कारणसे वर्जित न होय तो नितम्बकी हड्डियोंपर पछने लगावे और दोष पिघलानेके लिये (इस्फीदाज) के मरहमका लेप करे और ठंढी तासीरकी चर्बियोंको काममें लावे यदि अंडेकी सफेदीको गुलरोगनमें मिलाकर रांग व शीशेके खरलमें घिसकर सूजनके मुकाम पर लगावे तो अधिक गुणकारक है। यदि दर्द अधिक होय तो थोडीसी अफीम भी इस मरहममें मिला देवे जिससे दर्द बन्द हो जावे, रोगीकी प्रकृतिको दुरुस्त करनेके लिये ठंढे शर्वत जिसमें ईसवगोल और रेहाके बीज पडेहुए हों तथा उन्नाव और अलूबुखारेका क्वाथ मिलाकर पिला उचित पथ्य भोजन करावे। इस रोगमें वमन अधिक गुणकारक है, जब दोष विरेचन और पिलानेवाली औषधियोंसे दूर न हो दोषोंका एकत्र होकर प्रबल जमाव होने लगे तो उस मुकामको शीघ्र चीरकर दोषोंको निकालना चाहिये। उसके पकनेका इन्तजार न करे, क्योंकि जल्द न चीरा जावे तो दोष गुदाके अन्दरकी तर्फ रुजू हो नासूर (भगंदर) उत्पन्न होना संभव है। जब सूजनकी जलन बन्द हो जावे और दर्द बाकी रहे और गुदा बाहरको निकली हुई मालूम पडे-तो यह लेप बडाही गुणकारक है। (लेपकी विधि) चुकन्दरके पत्र तैलमें गर्म करके और उनके साथ गेहूंका आटा मिलाकर गुदापर बांधे। उस लेपकी विधि जो कठोर सूजनको लाभकारक है यह है कि इकलील, सफेद खतमी, छिलीहुई मसूर मकोयके पत्र, वनफशाके पत्र प्रत्येक बराबर लेकर वनफशाका तैल, अंडेकी जर्दी, कासनीके पत्तोंका पानी, हय्युल आलमका पानी मिलाकर काममें लावे। उस लेपकी विधि जो नर्म सूजनको लाभदायक है, मसूर, गुलाबके फूल बराबर लेकर कूट छानकर मकोयका पानी मिलाकर अंडेकी जर्दी और गुलरोगन मिला लेप करे। दूसरा भेद गुदाकी ठंढी सूजनका है, यह सूजन वातज है तो सूजनका सुस्त होना-और गर्मीके लक्षणोंका न होना उसका सबूत है। चिकित्सा वमन करावे और ऐसी सूजनके लिये अक्सर फस्त खोलनेकी आवश्यकता होती है, सूजनको पिघलानेवाला मरहम काममें लावे। जब सूजन पक जाय तो उसको चीर देवे, यदि सूजन कठोर हो तो उसके नर्म करने, पिघलानेके लिये बत्तख व मुर्गेकी चर्बी अंडेकी जर्दी गुलरोगन औजिरफका लेप करे। अगर सूजन कुछ दिवस पर्य्यन्त रहे तो गूगल बढा पिघलानेवाली औषधियोंके क्वाथमें बैठना और दाखल्यूनका मरहम रोगनके साथ अथवा बासलयून मरहम अंडेकी जर्दीके साथ गुणकारक है।

गुदाकी सूजनकी चिकित्सा समाप्त।

यूनानी तिब्बसे गुदाके फट जानेकी चिकित्सा।

यह एक प्रकारकी रुक्षता (सूखापन) गुदामें उत्पन्न होता है जैसा कि हाथ पैरमें फटनेका रोग उत्पन्न होता है और इसके कई भेद हैं एक तो यह कि जो गुदामें अग्नि और सूखेपनसे फटन उत्पन्न होती है यह प्रायः बहुतसी स्त्री व पुरुषोंकी गुदामें उत्पन्न होती है । अग्नि और खुश्कीकी प्रबलता होना उसका प्रबल लक्षण है, (चिकित्सा) सफेद मरहमका लेप करे और यह कीरूती गुणकारक है । विधि बनानेकी इस प्रकार है—गुलरोगन, सफेदा, मुर्दासिंग, चांदीका मैल, निशास्ता, चक्कीका गुवार, कतीरा, खतमीका लुआब, ईसबगोल बिहीदाना, बत्तखकी चर्बी, मोम इसका मरहम बना गुदाकी खुश्क फटनपर लगावे और भोजनके वास्ते चिकना शोरवा देवे, यदि पित्त व जलाहुआ रक्त इस अग्नि और फटनका कारण हो जलन और गुदाकी गर्मी व उसके लक्षण इस फटनकी साबूती देते होवें तो विरेचन देवे और हरडकी छाल, अमलतासका क्काथ, शर्बत, बनपशा, ईसबगोल, मिश्री कर्फके शीरेके साथ देवे, उपरोक्त मरहमको काममें लाना लाभदायक है । दूसरा यह कि गर्म सूजनके कारणसे गुदा फट जावे उसका लक्षण सूजन हो उस जगहका ऊंचा होना और इसके साथही तेजीसे दर्द होना । (चिकित्सा) इसकी यह है कि गुदाकी सूजनोंका जो २ ऊपर उपाय लिखा है उसके माफिक इसका इलाज करे और विशेष उपाय इसका यह है कि वासलिक, माविज, साफिन इनमेंसे किसी एक नसकी फस्त खोलना लाभदायक है । तीसरे यह कि सूखा मल निकलते समय गुदाकी फटन उत्पन्न हुई होय । चौथा यह कि बवासीरके कारणसे गुदा फट जावे और प्रत्येकके लक्षण कारणके प्रथम हो जानेसे प्रगट हो जावें । पांचवें यह कि गुदाकी रगोंका खूनसे भर जाना तथा अधिक दस्तोंका होना ये फटनके कारण हैं, यदि गुदाके फटनेसे अधिक खून बहने लगे तो यह लक्षण रगोंके फूल जानेका है । (चिकित्सा) इसकी यह है कि प्रथम जिस कारणसे जो २ फटन उत्पन्न हुई होयँ उसके मूलकारणको प्रथम निवृत्त करे । पछि फटनेकी चीर पडगई होय उनकी निवृत्तिके लिये गुलरोगन, इस्फीदाज, मुर्दासंगाजेत्फ, बैलकी पिंडलीका गूदा इनका मरहम बनाकर मले और जहां कहीं फटनेसे खून जारी होवे और फस्त भी करचुके होय और खूनके बन्द करनेकी आवश्यकता होय तो स्तम्भन (कब्ज) करनेवाली टिकिया रोगीको देना उचित है । माजू, आस, गुलअनार, अनारका छिलका, गुलाबके फूल, जायफल, झाऊ वृक्षका फल इनके क्काथमें रोगीको बैठा सीपीकी भस्म, कुसार, कुन्दरू चक्कीका गुवार सुरमा स्याह इनको अति वारीक करके फटनेकी जगह पर बुर्के, फायदा इसका यह है । इलाजुल अमराजमें लिखा है कि कब्ज करनेवाली टिकिया यह हैं कि (सफेदजीरा,

वालछड, लवंग, रूमी मस्तगी प्रत्येक पांच दिरम, सन्दल, कुन्दरू, दम्बुलखवैन प्रत्येक दो दिरम भंगके वीज ३ दिरम प्रत्येकको वारीक पीसकर टिकिया वनावे। इस रोगीको ठंढे जलसे वचना चाहिये और जो चीजें खट्टी चरपरी व दस्तको कब्ज करनेवाली तथा मलको सुखानेवाली होवें उनस वचना चाहिये। यदि दस्तकी कब्जी व मलकी खुश्की मालूम पडे तो प्रातःकालके समय शर्वत वनफशा विहीदानेके लुआवके साथ पीना चाहिये, अथवा रात्रिके समय थोडा वदाम रोगन दूधमें मिलाकर पीना चाहिये।

गुदाके फटनेकी चिकित्सा समाप्त।

यूनानी तिब्बसे सर्जके इस्तरखाका वर्णन।

सर्ज उस स्थानको कहते हैं जो गोली और गुदाक वीचमें होता है इसी प्रकार स्त्रीकी योनि, गुदाके वीचम जो सीमन होता है उसको सर्ज समझना चाहिये। इसके ढीले हो जानेका यह लक्षण है कि मल और अधोवायु वेरोक निकल जावे और यह कारणक अलग २ होनेसे कई प्रकारका है एक तो यह है कि पट्ठा जो उस पट्ठेपर जो गुदाके चारों ओर लगाहुआ गुदाको ठहराता है किसी प्रकारके अभिघात (चोटके) लगनेसे कटजाय व टूटजाय इस कारणसे उस पट्ठे पर दुःख पहुँचे और सर्जमें ढीलापन आ जावे, दूसरे ववासीरके काटनेसे उस पट्ठेको दुःख पहुंचे और सर्जमें ढीलापन आ जावे। इन दोनों भेदोंके यह लक्षण हैं कि पीठपर चोट लगनेके पीछे या ववासीरके काटे जाने पीछे एक संग उत्पन्न होय और ये दोनों रोग दुःसाध्य हैं। तीसरे यह कि वाहरी व भीतरी ठंढ इस रोगका कारण होय इसका लक्षण यह है कि धीरे २ उत्पन्न होय और सर्दीके कारण प्रथम हो चुके होयँ जैसे कि जलके किनारेके व पानीकी जहगके समीपके पत्थरोंपर वैठना अथवा अति शीतल जल पीना, इस भेदका यह लक्षण है कि गुदामें अति ढीलापन उत्पन्न होय और यह रोग प्रायः होता रहता है। (चिकित्सा) इसकी यह है कि जो दोष ढीलेपनके हैं उनको निकाल डाले और प्रकृतिके वदलनेके लिये जो कुछ अर्द्धांगमें चिकित्सा की जाती है उसीको इस मौकेपर काममें लावे। कूटका तैल, जुन्दवेदुस्तर फराफियून मिला कर गुदापर मले और पीसकर नीचे हड्डियोंपर भी मले तथा गर्म, कब्ज करनेवाली औषधियोंके काथमें वैठे जैसे कि वालछड, कडवाकूट, जायफल इत्यादि। चौथे यह कि गुदाकी सूजन इस रोगका कारण होय और इसके लक्षण दर्द आदि सूजनके चिह्न होते हैं—।

यूनानी तिब्बसे गुदाके जखमकी चिकित्सा।

गुदामें किसी कारणसे जखम (घाव) उत्पन्न हो गया होय तो जो चीजें घावको

रोपण कर खुश्की पैदा करती हैं उनको घावपर लगाना उचित है जैसा कि जलातुआ तथा धोयाहुआ शीश, मुर्र, सिमाकके वृक्षकी टहनी आसकी टहनी, महीन पीसकर घावपर बुर्क देवे, इस रोगमें काला मरहम गुणकारक है, यदि दर्द अधिक होय तो अफीम मल देवे ।

गुदाके जखमकी चिकित्सा समाप्त ।

यूनानी तिब्बसे गुदाकी खुजलीकी चिकित्सा ।

खुजलीके कई भेद हैं एक तो यह कि गुदाको साफ न रखनेसे छोटे २ कीडे उत्पन्न हो जावें इस कारणसे गुदामें खुजली उत्पन्न होतीहोय तो इन कीडोंको मारनेवाली दवा लगानी चाहिये । पलासपापडेका पानी गुदाके अन्दर पहुंचानेसे कीडे मरजाते हैं फिटकरी व कसीसके पानीसे गुदाके जन्तुओंका नाश होता है । दूसरा भेद यह कि वात दूषित रक्त गुदापर गिरे और यह बवासीर होनेसे प्रथम होता है उसके लक्षण ये हैं कि जलनका होना तथा गुदा भारी माळूम होवे और दीदानके लक्षणोंका न होना । (चिकित्सा) इसकी यह है कि बासलीककी फस्त खोले अथवा दोनों नितंबोंके बीचमें पछने लगावे—और विरेचनके लिये अफतीमूनका काढा पिला हलका भोजन करे । इस रोगमें ठंढी और स्वाद रहित औषधियां काममें लावे, गूगलको जर्द आलूकी गुठलीके तैलमें मिलाकर गुदापर मलना हितकारक है । तीसरे यह कि कडुवा व खारा दोष खुजलीका कारण होय उस दोषका लक्षण यह कि पेचिशके साथ विष्टामें निकलता है । (चिकित्सा) इसकी यह है कि इस बातपर ध्यान देना चाहिये, मुख्य दोष गुदासे अथवा अन्य समीपवर्त्ती किसी अवयवमेंसे आता है तो शरीर और अवयवको साफ करना उचित है और दोष प्रधानतासे गुदामें रुकाहुआ है तो उसको साफ करे जैसा कि पेचिशमें साफ करनेकी औषध दी जाती हैं इस रोगमें वमन कराना अधिक हितकारी है । बहुधा नितम्बकी हड्डी पर पछना लगानेकी जरूरत पडती है, जानना चाहिये कि गुदाके रोगके सब भेदोंमें नितंबकी हड्डी पर पछने लगाना और रुधिर खींच सिरका तथा तैल गुदापर मलना अधिक लाभदायक है । इसीप्रकार अनारदाना शफतालूके तैलके साथ अथवा एलुआ शराबमें मिलाकर मोम और गुलरागनके साथ या जर्द आलूकी गुठलीके तैलके साथ मलना लाभदायक है । लेकिन गुदाके रोग जरा मुश्किलसे आराम होते हैं, क्योंकि गुदा प्राकृत स्वभावसे दोषोंके गिरने और निकलनेका मार्ग है और शरीरके स्थूल पिण्डसे नीचेके स्थानमें है इसी कारणसे उसमें पट्ठे अधिक हैं और उनकी गति बलवान है इस कारणसे थोडेसे

कष्टसे दर्द हो जाता है और दर्दकी अधिकतासे दोप रगोंमें समा जाता है । जानना चाहिय कि गुदाको खुजलीके वास्ते यह पत्ती लाभदायक है । फिटकरीका फूला जूफा दोनोंको वरावर पीसकर वत्तखकी चर्वीमें मिलाकर वत्ती वनाकर गुदामें रक्खे ।

यूनानी तिब्बस गुदाकी खुजलीकी चिकित्सा एवम् त्रयोदशाऽध्याय समाप्त ।

अथ चतुर्दशाऽध्यायारंम्भः ।

यूनानी तिब्वसे मसानेकी व्याधियोंकी चिकित्सा ।

(व्याधिज्ञानको मसानेका शारीरक ।)

नचि लिखी हुइ व्याधियोंमेंसे चंद व्याधियाँ ऐसी हैं जो कि गुर्देसे उत्पन्न होती हैं और मसानस सम्बन्ध रखती हैं और मसाना एक थैली है सूरत उसका वलूतंकीसी होती हैं, किन्तु जिसके दोनों सिरे नोकीले होते हैं और बीचमें चौडाई होती है और उसके दो घर हैं। भतिरका घेरा तो अस्वी ह इसलिये कि पेशावकी आवश्यकता माल्म होय जिसस निःशारक शक्ति गति करे और बाहरका घेरा सिफाकी है जो कि रक्षा करता है । जिससे भीतरका घेरा भरने और खिचनेसे फट न जावे और मसाना एक गर्दन है मूत्रकी ओरके जो पेशाव आनेका रास्ता है और यह मसानेकी गर्दन पुरुषोंमें तीन झुकाव रखती है और स्त्रियोंमें सिर्फ एक झुकाव और गुर्देसे मसानेकी ओर दो रगें जिनको ग्रांज कहते हैं उतरकर आई हैं । जिनके द्वारा पानी गुर्देसे उतरकर मसानेमें आवे और ऐसा नहीं है कि ये दोनों रगें मसानेमें आते ही खुलगई हों, किन्तु ये दोनों घेरोंके बीचमें खुलकर मसानेकी लम्बाईतक आनकर मसानेके छिद्रोंके निकट कि जो पानीके निलनेकी जगह हैं एक होकर भीतरके घेरेमें खुली है और पानी गुर्देसे मसानेमें इस विधिसे पहुंचता है और मसानेसे प्रयोजन यह है कि वह मूत्रको एकत्र रक्खे और एक साथ उसको निकाल देवे और मसानेकी कई व्याधि हैं जो नीचे वर्णन की जायेंगी ।

यूनानी तिब्बसे मसानेकी सूजनकी चिकित्सा समाप्त ।

मसाने शब्दसे बस्ति अर्थात् मूत्राशयका ग्रहण है ।

इस मसानेकी सूजन अथवा मसानेकी अन्य व्याधि स्त्री तथा पुरुष दोनोंको होती है,परन्तु मसानेकी व्याधि स्त्रीजनोंकी गुह्येन्द्रिय (योनि) से सम्वन्ध रखती है । और पुरुष डाक्टर हकीम व वैद्यको दिखलानस इस देशकी स्त्रीजन अधिक लज्जा परहेज करती हैं, इसी कारणस मसानेके रोगोंकी चिकित्सा इस ग्रन्थमें लिखी गई है कि चिकित्सक स्त्री व पढीलिखी साधारण स्त्रीजन रोगके लक्षण समझ कर स्वयं अपनी चिकित्सा कर सके । आयुर्वेद वैद्यकमें मसानेकी सूजनका पृथक् प्रकरण दृष्टिगत

नहीं हुआ। किन्तु यूनानी तिब्बमें मुफसिलरीतिसे इसके लक्षण तथा चिकित्सा पाई जाती है, सो नीचे लिखते हैं। इस मसानेकी सूजनके कई भेद हैं, प्रथम भेद इसका गर्म है यह सूजन यातो आदिमें उत्पन्न होती है या खुरखुरी पथरीके छिलनेसे उत्पन्न हो जाती है, या किसी वस्तुके अभिघात (चोट लगने) से उत्पन्न होती है। मसानेकी सूजनके चार लक्षण हैं। एक तो यह कि पेडूमें दर्द अधिक हो और चुभनेकीसी पीडा तथा भारीपन और फूलना माल्म होय दूसरा यह कि गर्मी तप जनानेवाली और पिलास उत्पन्न हो हाथ पैर ठंढे रहें और पागलपनकीसी बातें करे, जिह्वामें स्याही प्रगट हो जाय, तीसरा यह कि पेशाब बन्द निकले या बिलकुल न निकले, यह दशा तभी होती है जब सूजन अधिक होती है, ज्वर भी हो जाता है और सूजन आंतोंको बिलकुल दबा लेती है, पेडूपर ललाईका प्रगट होना इस बातका साबूत देता है कि मसानेकी सूजन अगली तर्फको झुकीहुई है। (चिकित्सा) बासलीककी फस्त खोलकर शक्तिके अनुसार रक्त निकाले, जब सूजन अधिक हो जाय तो माबिज फस्त खोले और फस्त खोलनेके पीछे मकोयका पानी जिसमें अमलतासका गूदा मिलाहुआ होय उसका नर्म हुकना (बस्तिकर्म पिचकारी योनिमार्गमें) लगा जुलाब देवे, जिसमें वनफशा कासनीके बीज उन्नाव, खाँड तुरंजबीनसे बनाया हुआ होय और शर्बत वनफशा, खसखासका शीरा व काढा लाभकारक है। फस्तके प्रथम व पीछे मूत्र लानेवाली औषध कदापि न देवे, न कभी सिर्फ पिघलानेवाली औषधियोंका लेप करे। विशेष करके रक्तज सूजनमें कि जिससे मवाद कठिन न हो जाय) क्योंकि मसाना अस्त्री है और इसकी प्रकृति ठंढी है शीघ्र कठोर हो जाती है सो यह उत्तम है आदिमें कोई ऐसी पिघलानेवाली औषध जो मवादको नर्म करनेवाली होय काममें लावे। विशेष करके रक्तज शोथमें जैसे वनफशा; खब्बाजी इत्यादि गर्म करके इसके काढेका पेडूपर तरडा देवे, अथवा इनके काढेमें रोगीको बिठा मैदेकी रोटीका नर्म भाग निकालकर दूध व वनफशाके तैलमें मिलाकर गर्म करके लेप करे तथा सलगम, कर्मकल्लाके पत्र, बाबूना, खश्क इनका लेप भी उत्तम है, तथा जौका आटा, वनफशा खतमी, कासनीका पानी, मकोयका पानी मिलाकर गर्म लेप करना लाभदायक है। यह ध्यानमें रक्खे कि पिछले लेपकी सब औषध ठंढी हैं काममें लावे तो उसके पीछे कीरूती अर्थात् मोम रोगनके लेपकी रीतिपर मले। जिससे अवयवको नर्म कर जो बुराई ठंढी वस्तुओंसे आई है उसको निवृत्त करे। नवफशाके तैलमें थोडासा बाबूनाका तैल मिलाकर सदैव पेडूपर मले तो अति लाभदायक है, जब सूजन कमती हो एक सप्ताह व्यतीत हो जाय तो केवल शीतल पदार्थोंका लेपन करे। पिघलानेवाली औषध जो अधिक गर्म न होयँ

लेपकर जस वाबूना, अलसी, वाकलेका आटा, मगफखतजमें मिलाकर लेप करे, और जितनी मवादमें नर्मी और एकत्र होनेकी शक्ति होय प्रतिदिवस उतनी ही पिघलानेवाली औषध बढावे। यदि पिघल जाय तो अच्छा है और शीघ्र एकत्र होने लगे, अथवा पक जावे तो फोडनेवाली दवा काममें लावे, फूटनेके बाद जखमको भरनेवाले मरहमसे जखमको भरे। यदि मसानेकी सूजनसे मूत्र वन्द हो जावे तो खीरे ककडीके बीजोंका शीरा, ईसवगोलका लुआब पिलावे अथवा खतमीके बीज, खब्बाजीके बीज प्रत्येक दो दिरम लेकर वारीक कूटकर शर्वत वनफशाके साथ चटावे, इस दशामें दूध और तिलका तैल तथा मैदाकी रोटीवाला लेप जो ऊपर लिखा गया है लेप करना अधिक लाभदायक ह। मूत्रकी नलीमें औषधियोंका टपकाना अधिक लाभकारक है, क्योंकि वह जगह निकट है और जो औषध मूत्र नलीमें टपकाई जाती हैं वह इस प्रकार हैं। ईसवगोलका लुआव, स्त्रीका दूध मिलाकर काममें लावे यदि दर्द अधिक होय तो वन्द करनेके लिये काहूको कूटकर और एक दांग अफीम और आधा दांग केशर इनको गुलरोगनमें मिलाकर लेप करे। जब दर्द वन्द हो जाय तो जल्द लेपको हटा गर्म दूधसे तरडा देना भी दर्दको वन्द करता है, मसानेकी गर्म सूजन रक्तज व पित्तज है, इसके समझनेका यह चिह्न है कि जो रोगीको पिलाश और दर्दकी अधिकता हो मसानेकी फुलावट होय तो रक्तज समझना और जानलेना चाहिये कि हकीम लोग पित्तजके आदिमें केवल पिघलानेवाली औषधोंका लेप करना ठीक समझते हैं। परन्तु इस लेपको न करना चाहिये क्योंकि इसका कारण हम अभी वर्णन कर चुके हैं, मसानेकी सूजनके लिये जो दवा मुफीद हैं वे ये हैं। प्रथम दवाकी विधि वनफशा, इकलील, सोयाके बीज, जौका आटा प्रत्येक दो दो दिरम पीसकर वाबूनेके तैलमें मिलाकर लेप करे। (दूसरी दवाकी विधि) यह पक जानेके वाद काममें आती है—खतमी, इकलील, मेथी, वनफशा, सोया, इंजीरका क्वाथ, वाबूनेके तैलमें मिलाकर लेप करे बहुत शीघ्र पकी हुई सूजनको तोड देती है। (तीसरी दवाकी विधि) यह सूजनको तोडनेके लिये अक्सीर है, माजू, कुरसुना, कबूतरकी वीट उपरोक्त लेपमें मिलाकर लगावे। दूसरा भेद यह है कि वायुके तर मवादसे जो सूजन उत्पन्न होय उसके लक्षण मसानेमें बोझ मूत्रका कठिनतासे आना और पिंडलियोंका निर्बल होना। इसका उपाय इस प्रकारसे करे कि प्रथम वमन करा तेज हुकना काममें लावे और मरजंशो, वाबूना, नम्माम, गारके पत्र इनके क्वाथमें रोगीको विठा शर्वत बुजूरी आदि मूत्र लानेवाली औषध शहत और अमलतासके पानीके साथ पिलावे। यदि मूत्र कठिनतासे आता हो तो अजमोदके बीज, खर्बूजेके बीजकी मिंगी, मुलहटीका सत्व, मिश्री समान भाग लेकर चूर्ण बना एक

मिस्काल प्रतिदिवस खिला पीछे शिकंजवीन या गुलाब, वनफशा कुछ गर्म पानीके साथ पिलावे। तथा पिघलानेवाली औषध और पिघलानेवाले तैल मूत्रके मार्गमें टपक भुना मुर्गा, व बकरीके बच्चेके मांसका कबाब और चने खिलावे। करादीन कादरीमें मसानेकी सूजनको पिघलानेवाले तैलकी विधि इस प्रकार लिखी है कि चिरायता, गारके पत्र, सादउदविलसान, लाख, सादनज, हिन्दीमें मोरदके पत्र, सम्भुलरूमी, अजखर, रासन, ऊर्दमाना, मर्जनजोश इन सबको समान भाग वजनमें लेकर सराव और पानीमें एक दिन रात भिगोकर छान लेवे और सराव तथा पानीमें मीठा तैल मिलाकर पकावे जब तैल बाकी रहे और पानी जल जावे तब छानकर शीशीमें भर-लेवे। इस तैलको मूत्रनलीमें पिचकारीसे पहुंचावे, स्त्रियोंकी मूत्रनली तथा योनिमार्ग दोनोंमें पहुंचावे। तीसरा भेद यह है कि कठोर सूजन मसानेमें उत्पन्न होवे आदिमें कम सूजन उत्पन्न होती है और प्रायः गर्म सूजन या कुछ अभिघात लगनेके पीछे उत्पन्न होती है उसके लक्षण यह हैं कि मूत्र और मल बडी कठिनतासे उतरता है इसके कारण प्रथम हो जाते हैं। कभी २ सूजनके बढने पर मालूम होती है (चिकित्सा) इसकी यह है कि खीरे ककडीके बीज हिलीयून अनीसून, परसियाबसां, अमलतासका गूदा इनका काढा बनाकर उसमें बदामका तैल मिलाकर हलका जुलाब करावे, चाहिये कि मूत्र निकालनेमें किसी यन्त्रसे कोशिस न करे क्योंकि मसानेके साथ मूत्रनलीमें भी सूजन है यन्त्र प्रवेश करनेके समय मूत्रनली फटनेका भय रहता है। सो उत्तम उपाय यही है कि मूत्र लानेवाली दवा दे साथही मलके फुलानेवाली दवा भी देवे, जैसे कर्मकल्लाका पानी चनेका पानी पिला बाबूना, इकलील, अलसीके बीज, मेथी, खतमी खश्कदानेकी मिंगी, परसियावसां खस इनके क्वाथमें रोगीको बैठावे, इसके क्वाथका तरडा देना भी लाभ दायक है। गारजम्बकका तैल वतककी चर्वी पेडूपर मले और बाबूना अलसीके बीज, उश्क, गूगल, गौकी पिंडलीका गूदा मिलाकर तथा कूट और जैतूनका तैल भी मिलाकर लेप करे, जो कुछ विशेष हानि न दीखे तो पिघलानेवाली औषधियोंसे सूजनके रक्तको पतला करके बासलीक व साफनकी फस्त खोले।

यूनानी तिब्बसे मसानेकी सूजनकी चिकित्सा समाप्त।

यूनानी तिब्बसे मसानेकी खुजलीकी चिकित्सा।

इस मुकामकी खुजली इस प्रकारसे है कि प्रथम सूखी खुजली होती है और खुजानेसे छोटी २ फुंसियाँ उत्पन्न हो फूट जाती हैं, यह रोग ऐसी वस्तुओंके खानेसे होता है कि जो रुधिरको गर्म करती है या जिस २ आहार विहारसे पित्त

और वात उत्पन्न होती है उसके लक्षण ये हैं कि मूत्रमें जलन दुर्गन्ध और भूसीकासा होना मसानेमें अधिक दर्द तीव्र खुजलीका होना कभी पीव व पीले रंगके पानीका निकलना और कभी मूत्रमें गर्म रुधिरका निकलना, यह तभी होता है जब पकनेसे प्रथम फुंसियाँ फूट जाती हैं या फुंसियोंके साथ घाव उत्पन्न हो जाता है। (चिकित्सा) इसकी यह है कि इसको शीघ्र निवृत्त करनेका परिश्रम करे क्योंकि इससे विसर्प व्याधिका होना भी संभव है, जुलाव देकर साफ करनेकी कोशिस करे लुआब विहीदाना लुआब ईसबगोल, निशास्ता अर्बीगोंद कतीरेके साथ पीना चाहिये। जौका काढा, बदामका तैल, दूध, चिकना शोरवा इत्यादिका आहार करना लाभदायक है, विहीदानेका लुआव स्त्रीका दूध, बादामका तैल, मूत्रकी नलीमें टपकाना व पिचकारीसे पहुंचाना लाभदायक है। हम प्रथम लिख चुके हैं कि अर्बीमें हुकना करना वस्तिक्रिया व पिचकारी लगानेको कहते हैं इस रोगमें हुकना मूत्रके छिद्रमें करना तथा बासलीककी फस्त खोलना। कुलुनपर पछने लगाना, आवश्यकतानुसार दस्त और वमन करा इस बातका ध्यान रखना योग्य है कि पछने फस्त तथा उल्टी और दस्त यहांपर उतने अधिक न करावे कि जितने गुर्देकी खुजलीमें कराये जाते हैं। उत्तम उपाय कि जबतक कोमल मृदु रेचक दवाओंसे काम हो सके वहांतक तीव्र रेचक दवासे काम न लेवे और रोगीके बलके अनुसार क्रिया करे। चनेका पानी, हरीरा मुर्गीका अंडा आधा भुना हुआ दूध, चावल खांड बूरा—गेंहूका काढा और बदामका तैल बदामका हरीरा इत्यादि उत्तम भोजन रोगीको देवे।

यूनानी तिब्बसे मसानेकी खुजलीकी चिकित्सा समाप्त।

डाक्टरीसे योनिकण्डूका निदान।

योनिके ऊपरके भागमें किसी २ स्त्रीको किसी समय शक्त खुजली उत्पन्न हो जाती है. उसको वह स्त्री सहन नहीं करसक्ती और इतनी तीव्र खुजली होती है, उससे वह भाग छिल जाता है और जलन उत्पन्न होती है। अधिक खुजानेसे वह भाग सूज जाता है इसलिये इस रोगीकी चिकित्सामें इतना ध्यान रखना योग्य है कि यह कोई खास तौरसे पृथक् रोग नहीं परन्तु कितनी ही शारीरिक स्थितिको लेकर अथवा आहारके विपरीत होनेसे अथवा इस विकृतिवाले दूसरे मनुष्यके गुह्य स्थानके स्पर्शसे अथवा इसी प्रकार स्वयं स्त्रीके गुह्य भागमें किसी प्रकारकी विकृतिके उत्पन्न होने और उसका दोष बाह्यभागमें आनकर कण्डूको उत्पन्न करता है। इसलिये इसका उपाय खुजलीकी निवृत्ति करनेके उपायके साथ ही मूल विकृति जिसके कारणसे यह व्याधि उत्पन्न हुई है उसका उपाय करनेकी अधिक आवश्यकता है।

कारण—प्रथम योनिकण्डूके कारणोंकी परीक्षा करनी चाहिये तो शारीरिक व स्थानिक कारण मिलें उनके दो भाग हो सक्ते हैं। (शारीरिक दोषकी उत्पत्तिका कारण) विशेष भारी तथा प्रकृतिसे अधिक आहार करनेसे तथा खट्टा खारी नमकीन चरपरा गर्ममसाला जिसमें अधिक पडा होय ऐसे आहारके सेवनसे स्त्रीको नजलेका रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें प्रथम आमसंज्ञक कफकी वृद्धि नीचेके भागमें और विकृत कफकी वृद्धि ऊपरके भागमें होती है ऊपरके भागका बढाहुआ कफ मुख व नासिकाके मार्गसे निकलता है, नीचेके भागका खुजली रोगको विशेपताके साथ उत्पन्न करता है। इसके अलावे उपदंश तथा मूत्रपिण्ड, जठर—और यकृत्के जीर्ण रोगको लेकर भी यह रोग विशेप करके उत्पन्न होता है, हलका और साधारण आहार करनेकी अपेक्षा अधिक भारी तथा परिमाणसे विशेष और अधिक नमक मिरच खटाई गर्ममसाला खानेवाली तथा शराब पीनेवाली स्त्रीको यह रोग अधिक उत्पन्न होता है और दुःखदाई भी होता है। कितने ही पृथक् पृथक् जातिके ज्वरोंके उत्पन्न होनेसे पछि अनेक स्त्रियोंको देखा गया है कि योनिकण्डू उत्पन्न हो जाती है रक्त दूषित होनेसे भी एक प्रकारके चिह्न हैं, इसके अलावे किसी समय गर्भवती स्त्रीको जब पछिके समयमें मूत्र बहुत टपका करता है तब इसी प्रकार ऋतुधर्मकी अवधि बन्द होती होय उस समय पर तथा वृद्धावस्थाके फेरफारको लेकर भी योनिभागमें तथा योनिके ऊपर खुजली उत्पन्न होती है, कभी किसी २ स्त्रीको (हस्टीरिया) अपस्मार मृगीकी दशामें शक्त कण्डू उत्पन्न होती है। अवस्थानिक कारणोंमें उस भागमें जो त्वचा दोष है वह मुख्य समझना चाहिये, जो उस स्थानकी त्वचाके भागमें खुजलीका दाग होय और पीछे वह लीले रंगका हो गया होय तथा इसीप्रकार पसीनेसे उत्पन्न होनेवाली गुमडी आदिको लेकर तथा अलाईको लेकर भी योनिके ऊपरके भागमें खुजली उत्पन्न हो जाती है। योनिके ऊपरके भागमें तथा रगोंमें पसीनेका अधिक जमाव होनेसे खुजली तथा सूक्ष्म जन्तु लोम कूपोंकी जडमें उत्पन्न हो जाते हैं, प्रदर—प्रमेह व कितनी ही मूत्र विकृतियोंको लेकर भी खुजली उत्पन्न हो जाती है। इस भागका स्वाभाविक स्राव ऐसी विकृतिवाला कितने ही समय होता है, उसकी काठिनतासे ततडी आती है—और उससे खुजली आया करती है इसके अलावें मूत्राशयके अथवा योनिमार्गके व योनिमुखके शोथको लेकर भी खुजली उत्पन्न हो जाती है योनिमुखमें किसी समय ऐसे सूक्ष्म जन्तु उत्पन्न हो जाते हैं कि उनके कारणसे खुजली उत्पन्न हो जाती है तथा योनिके ऊपरके भागमें जिसका नाम केशभूमि है उसमें जूं जातिके जन्तु आदि उत्पन्न होगये होयँ इसको लेकर अथवा अर्शके मस्सोंसे उस स्थानका रक्त दूषित होकर उसके उत्पातसे खुजली आती होय तथा

मूत्र नासूर हो उसमेंसे मूत्र टपकता हो इससे भी खुजली उत्पन्न हो जाती है । अन्तके दर्जे इस विषयमें इतना ही कहना बस है कि स्त्रीजन इस गुह्येन्द्रियके स्थानको धोकर साफ नहीं रखती उनके इस स्थानपर खुजलीकी चल आया करती है, इसी प्रकार इस गुह्येन्द्रियके मुख व अन्दरके भागको धोकर साफ नहीं रखती है उन स्त्रियोंके इस भागमें मैल पसीनेका जमाव होकर तथा आभ्यन्तरकी तरीके भागका जमाव होकर इस स्थानपर खुजली और सूक्ष्म जन्तुओंका उत्पन्न होना संभव है । इस व्याधिके विशेष चिह्न इस प्रकारसे हैं खुजली आया करती है और खुजाते खुजाते ददोडेसे पड जाते हैं और अधिक खुजानेसे वह भाग छिल उस स्थान पर जलन हो थोडी सूजन भी आ जाती है । किसी समय पर इतनी खुजली व जलन शक्त होती है कि स्त्रीको रात्रिके समय निद्रा नहीं आती, इसलिये कितनी ही स्त्री उस भागपर पानीसे कपडा भिगोकर रख पंखेसे पवन करती रहती हैं ।

डाक्डरीसे योनिकण्डूकी चिकित्सा ।

योनिके ऊपर शक्त खुजली आ वह अधिक समयपर्य्यन्त आया करती है, इस प्रकारसे इस रोगवाली स्त्री कथन करे तो उसकी सब व्यवस्था श्रवण करके विचार करे कि इसका क्या कारण है ? इसके लिये चिकित्सकको उचित है कि स्त्रीकी गुह्येन्द्रियकी परीक्षा योनिदर्शक यन्त्र लगा अति गंभीरताके साथ सूक्ष्म रीतिसे विचार कर इसके कारणका खोज कर उपाय करे, तो उसी समय यह व्याधि निवृत्त होती है । क्योंकि यह व्याधि अनेक कारणोंको लेकर उत्पन्न होती है, इसके असली मूलकारणको चिकित्सक परीक्षा करके निकाले तभी इस व्याधिकी शान्ति होती है । नहीं तो केवल कण्डूकी चिकित्सा करनेसे इसकी शान्ति नहीं होती, क्योंकि मधुप्रमेह नजला अथवा दूसरा कोई स्थानिक कारण व शारीरिक रोगका कारण होय तो उसकी परीक्षा करनी और मूत्रमार्गकी जो कुछ विकृति जान पडे तो उसका योग्य उपाय करना । यदि मधुप्रमेहवाली स्त्रीको चल आती हो तो (सोडासेलीसीलास) पांचपांच ग्रेनकी मात्रा १ दिवसमें चार समय ३ घंटेके अन्तरसे देना । गर्म मसालेवाला आहार तथा भारी गरिष्ठाहार, और जो स्त्री शराव पीती हो तो उसको यह आहार तथा खटाई, मिरच, अधिक नमकीन पदार्थका आहार एकदम बन्द करदेना उचित है । एक व दो समय दस्त साफ आवे ऐसी औषध स्त्रीको देना उचित है, अरण्डीके तैलका तथा हरड व त्रिफलेका कोमल जुलाब देना उचित है । सोडा रूवार्ब आदि सारक औषधियाँ मिलाकर देना—उपवा ३ तोला, काबुली हरडकी छाल १॥ तोला, लाल चंदन १॥ तोला, सनाय १॥ तोला इस पवित्र चूर्णकी ६ मासेकी मात्रा शीतल जलके साथ लेनेसे

दस्त साफ आता है और रक्त तथा त्वचादोष शुद्ध होकर खुजली निवृत्त होती है। ईनोझफ्रुटसोल्ट, दो ड्राम जलमें मिलाकर पीनेसे तथा बडी पांच धारीवाली काबुली हरडका छिलका कूटकर चूर्ण बना ४ व ९ मासे हररोज दूधके साथ सेवन करे तो दस्त साफ आता है और गर्मरक्त शीतल हो जाता है। यदि प्रदर आदिका स्राव होता हो तो उसकी निवृत्तिके लिये स्तम्भन औषधियोंकी पिचकारी लगाना उचित है तथा इस रोगकी परीक्षा करके रोगके कारणको जानकर उसका योग्य उपाय करना। यदि उपदंश-की कोई विकृति हो तो इसकी निवृत्तिकी औषध देना योग्य है, थोडे दिवस रोगीको सोमल व पारदकी कोई बनावटी दवा देना योग्य है, नीचेका मिकचर खुजली कमती करनेको थोडे दिवस पर्य्यन्त अवश्य पीना चाहिये। फेरीएटक्कीनाईनसाईट्रस १९ ग्रेन, लाईकबोरआर्सेनिनीकेलीस १० टीपा, टीन्कचरसीन्कोनाको १॥ ड्राम वाईनपेपसीन १ ड्राम जल साफ ३ ओंस इन औषधियोंको मिलाकर ३ भाग कर भोजनके पीछे लिया करे, यदि खुजलीका कारण नजला हो, तो सोडा अथवा पोटासके क्षारके साथ कोलचीमनोवाईन देना उचित है। लगानेकी औषधियोंमेंसे ठंढी औषधियाँ उत्तम लाभ पहुंचाती हैं चन्दनका तैल १ भाग ग्लीसराईन ४ भाग मिलाकर खुजली पर दिनमें २ व ३ समय लगानेसे खुजली कमती हो जाती है, इस स्थानकी खुजलीवाली स्त्रियोंको उचित है कि एकान्त वास करें, यदि दिवसके समय एकान्त वास न हो सके तो रात्रिको अवश्य एकान्त वास करके खुजलीके स्थानको खुला रक्खें और कपडा उसके ऊपरसे हटा देवें, वायु लग-नेसे खुजली तथा जखम निवृत्त हो जाते हैं कपडेका वजन खुजलीके स्थानमें कम रखें। बदामका तैल तथा धूपेल तैल लगानेसे भी खुजली कम होती है, १ भाग कार्बोलिकऐसिड १०० भाग जल ३ भाग कीऐझोट डालकर इस पानीसे उस स्थानको जहांपर खुजली है दिनमें ३ समय धोना चाहिये। इसी प्रकार त्रिफलाके जलके धोनेसे तथा कपडा भिगोकर खुजलीके स्थानपर रखनेसे खुजली निवृत्त होती है। शुगरलेड १० ग्रेन, ऐसिडहाईड्रोसीऐनीक २ ड्राम, सुहागेका फूला १ ड्राम, जल १० ओंस मिलाकर इसमें कपडा व रुईका फोहा भिगोकर रखनेसे खुजली निवृत्त होती है। तथा १ भाग कलोरोफार्मको ७ भाग बादामके तैलमें मिलाकर खुजलीके स्थानपर लगानेसे खुजली शान्त होती है। लाई-कबोरप्लमवाईसबऐसीटेटीस १ भाग, गुलाबजल, २० भाग इनको मिलाकर कपडे व रुईका फोहा भिगोकर खुजलीके स्थानपर रखनेसे खुजली निवृत्त होती है। खुज-लीकी शान्तिके लिये जहां औषधियोंमें जल मिलाना लिखा है वहांपर गुलाबजल मिलाया जाय तो अति उत्तम है। धमासेको जलमें पकाकर काढा करे अथवा तमाखूको

जलमें पकाकर काढा बनावे और छानकर योनि तथा योनिके ऊपरके भागको धोवे तो खुजली शान्त होती है, गुलाबजल तथा ग्लीसराईन समान भाग मिलाकर खुजलीके ऊपर दिवसमें २ व ३ वक्त लगाना चाहिये और दो व तीन घंटे बाद धो डाले, यदि खुजानेसे भाग छिल गया हो तो कर्पूर और तवाखीरका चूर्ण मिलाकर उस छिले हुए भागके ऊपर चिपका देना । यदि अधिक खुजानेसे वह भाग अधिक छिल गया हो जिससे कपडा व हाथका स्पर्श न सहा जाता हो इसके लिये नीचे लिखी औषधियां काममें लावे । कार्वोलिकऐसिड २ ड्राम, झींकओकसाईड २ ड्राम, केलेमाईनप्रेपरेटा ४ ड्राम ग्लीसराईन ४ ड्राम, गुलाब जल ८ ओंस इन औषधियोंको मिलाकर इसमें स्पेंजका टुकडा भिगोकर छिलीहुई जगह पर लगाना और स्पेंजके टुकडेको एक २ घंटेके अन्तरसे दवामें डबोकर रखते जाना इस लोशनको हिलाकर स्पेंजका टुकडा डबोना । जिस प्रकारसे स्त्रीकी योनिके मुख तथा ऊपरकी खुजली निवृत्त होवे वह २ उपाय करना उचित है । लाईकर आर्सिनिक ९ टीपा कुनेन २ ग्रेन टींचकरओफस्टील २० टीपा साफ जल २ ओंस ये लिखी औषधियोंको मिलाकर २ भाग करे और भोजन करनेके समय एक भाग पिया करे ।

डाक्टरीसे योनिकण्डूचिकित्सा समाप्त ।

योनिमुख व बाह्ययोनिओष्ठका शोथ अर्थात् (वलवाईटीझ) की चिकित्सा ।

योनिका बाह्य ओष्ठ विशेष करके किसी समय सूज जाता है । मूत्रमार्गके शोथको लेकर—अथवा प्रमेहको लेकर व योनिओष्ठके भाग शोथके चिह्न होनेसे योनिमुख पर शोथ उत्पन्न हो जाता है, अन्दरके भागमें क्षत होनेसे खुजली आती है और खुजानेसे योनि ओष्ठ सूज जाता है । इसी प्रकार शर्दी और शीतल पवन लगनेसे अथवा शक्त चढाई उतराई करनेसे किसी जहरी जन्तुके काटनेसे अथवा जहरी ज्वरके आनेसे योनिमुखमें शोथ उत्पन्न हो जाता है, किसी समय योनिके एक ओष्ठ पर शोथ उत्पन्न होता है और किसी समय दोनों पर होता है । इसके अलावे योनिके बाह्यओष्ठ पर जुदी जुदी जातिकी ग्रन्थी होती हैं इससे भी सूजाहुआ माळूम होता है, कभी २ चर्बीकी जातिकी अन्दर कोमल ग्रन्थी होती है, उसको काटनेसे अन्दरसे चिकना मेदाके समान पदार्थ निकलता है । अथवा इस भागके अधो लोममें जूं जातिके जन्तु होनेसे उनके दंशको खुजानेसे भी ओष्ठ तथा समीपवर्त्ती भागमें सूजन हो जाती है । इस व्याधिके विशेष चिह्न इस प्रकारसे हैं कि बाह्य ओष्ठ पर सूजन होनेसे वह भारी माळूम हो रोगीको बेचैनी रहती है, छोटी उमरकी बालक स्त्रीकी अपेक्षा बडी उमरकी स्त्रीको यह सूजन उत्पन्न हो तो कुछ विशेष शक्त व्याधिके ये चिह्न माने जाते हैं । उसको देखनेसे विशेष भय माळूम होता है, शर्दी आदि जैसे बच्चेको लगती है वैसे

शर्दी गर्मी आदि बडी उमरकी स्त्रीको लगती नहीं इससे उसमें किसी दूसरे गंभीर रोगके चिह्न हैं ऐसा माना जाता है। कभी २ ऐसा होता है कि अन्तर ओष्ठके ऊपर क्षत होनेके लिये खुजानेसे सूजन हो आती है, इसी प्रकार प्रमेहसे भी हो जाती है और उस भागमें दाह होता हुआ मूत्र त्यागनेके समय अधिक मेहनत पडती है। यदि वहां पाक आदि होता होय तो इस कारणसे स्त्रीको शक्त ज्वर उत्पन्न हो जाता है और शक्त जहरी ज्वरसे उस भागमें शक्त जलन होती है। ऐसे समयमें आस-पासके दूसरे भागमें भी शक्त जलन दाह आदि रहते हैं, चर्बीकी अथवा दूसरी जातिकी ग्रन्थिओंसे उत्पन्न हुई सूजनमें अधिक पीडा व दर्द नहीं होती केवल उससे भार व बेचैनी मालूम होती है। इस दशामें मैथुन नहीं होने शक्ता।

डाक्टरीसे योनिमुख व बाह्यओष्ठके शोथकी चिकित्सा।

यदि यह शोथ शर्दी लगनेसे उत्पन्न हुआ हो तो उस मुकामको गर्म कपडा फला-टेन वगैरहसे ढांकना उचित है। यदि किसी क्षतकी खुजलीके कारणसे शोथ मालूम पडे तो किसी औषधका फोहा रखना उचित है, जैसा कि (शुगरलेड १ ड्राम) जल आठ ओंस इनको मिलाकर फोहा भिगोकर रखना, यदि जहरी ज्वरसे शोथ उत्पन्न हुआ हो तो उसकी योग्य चिकित्सा करनी। यदि ग्रन्थि हो तो उसको शस्त्रसे काटकर निकाल लेना अगर चर्बीकी ग्रन्थि हो तो उसके ऊपरके भागमें जरा ओडा छिद्र करनेसे थैली फूटती है, उसके अन्दरसे कंकणके समान पदार्थ हो उसको दाब कर निकाल लेवे। यदि दूसरी कोई कठिन ग्रन्थि हो तो उसको काटकर सम्पूर्णको निकाल लेवे। योनि-मुख व ओष्ठ शोथवाली स्त्रीको कमर पर्य्यन्त गर्मजलमें बैठाले, यदि पोस्तके डोडा इस पानीमें डाले जावें तो अति हितकारक हैं, इसी प्रकार सोडा डालना भी हितकारक है। अथवा फिटकरी व शुगरलेड गर्म जलमें मिलाकर प्रक्षालन कर गर्म पदार्थका आहार न करना। यदि उपरोक्त औषधियोंसे फायदा न होवे तो नीचेके प्रयोग काममें लावे इनसे शीघ्र लाभ पहुँचेगा।

लिनिमेन्टएकोनाईट दो ड्राम, क्यारनओईल १ ओंस इन दोनों औषधियोंको मिलाकर लगाना डिल्ल्युटहाईड्रोश्यानिकऐसिड १ ड्राम, आट्रोपनिका मलम २ ड्राम, सादा मलम १ ओंस, ऊपरकी तीनों औषधियोंको मिलाकर चुपडना। आयोडाईड-ओफलेड ९० ग्रेन, लिनिमेन्टबेलोडोना १ ड्राम, सादा मलम १ ओंस इन तीनों औषधियोंको मिलाकर सूजन पर चुपडना।

डाक्टरीसे योनिमुख व योनि ओष्ठके शोथकी चिकित्सा समाप्त।

यूनानी तिब्बसे मूत्रके जलनकी चिकित्सा।

इस मूत्र जलन रोगके चार भेद हैं, प्रथम भेद यह है कि गुर्दे व मसानेकी खुज-

लीके कारणसे व पीबकी जलनसे जो गुर्दे अथवा मसानेके घावसे आवे इसका इलाज मसानेकी खुजलीके प्रकरणमें खुजलीका इलाज लिखा गया है, । घावोंका इलाज घावके अनुसार करे । दूसरा भेद इसका यह है कि कलेजा गर्म होकर पित्त वढ जाय और इस कारणसे मूत्रमें तेजी जलन, खारापन हो जाय उसका लक्षण यह है कि मूत्र रंगीन होय पीव, छिलके मूत्रमें न होवें अग्निके तमाम लक्षण प्रगट हो गर्म दवा और भोजनोंका करना इसका साक्षी है–(चिकित्सा) इसकी यह है कि–ईसवगोलका लुआब, विहीदानेका लुआब, खुरफेका शीरा, काहूका शीरा, शर्वतखसखास, शर्वतवनफसा, वनादिकुलवुजुर, जौका काढा, खीराककडीके बीजोंका शीरा इत्यादि औषधियोंको पिला अंडा आधा भुनाहुआ, बादामका तैल तथा कद्दूका तैल इत्यादि जिस वस्तुका विशेष स्वाद मालूम न हो सो खिलावे । जो वस्तु खारी, खट्टी, तेज और अधिक गर्म हो उससे रोगीको बचावे, स्त्रीको उचित है कि पुरुषके साथ सहवास न करे । इस रोगके इलाजमें परिश्रम करे क्योंकि जो पडा रह जाता है उसकी रगें रुक जाती हैं और मसाने तथा मूत्रस्थानमें घाव कर देती हैं, जो मल अधिक होय और प्रकृतिका उत्तम रीतिसे ठीक होना संभव न जान पडे तो फस्त व वमन और मलको नर्म करनेवाली औषधियोंसे आवश्यकताके अनुसार मलको निकाले । वाद जो कुछ कलेजेके रोगोंके उपद्रवमें वर्णन किया गया है वह क्रिया तथा दवा यहांपर भी काममें लावे और सियाफे अवियज औरतोंके दूधमें घोलकर बादामका तैल या गुलरोगन मिलाकर मूत्रके छिद्रमें टपकाना लाभदायक है, जो दर्दकी अति अधिकता हो तो थोडी अफीम भांगके बीज वनादिकुलवजूर इत्यादि औषधियोंमेंसे दी जा सक्ती हैं । तीसरा भेद इसका यह है कि जो चेंपदार मल मूत्रकी दुरुस्ती व मूत्रनलीके ठीक रखनेको मूत्रमें मिलाहुआ रहता है यह दूर हो जावे इस कारणसे कि मूत्र लानेवाली गर्म औषध सेवन की होय अथवा कोई दूसरा कारण होय कि जिससे यह चेंपदार मल पिघल गया होय, जैसे कि स्त्रीका पुरुषके साथ अधिक समागम हो अधिक समयतक परिश्रम करना इत्यादि । इसके लक्षण यह हैं कि प्रथम कारणका होना शरीरमें सूखापन, प्रकृतिमें अग्निके (ऊष्मा) के लक्षणका न होना । (चिकित्सा) इसकी यह है कि मूलकारणके नष्ट करनेके पीछे सियाफे, अवियज स्त्रीके दूधमें घोलकर मूत्रके छिद्रमें टपकावे । अथवा पिचकारीसे पहुंचावे जिससे मूत्रकी नलीमें चेंपदार मल आ जाय दूसरे लुआब और चेंपदार औषधियां कि जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है खिलावे । चौथा भेद वह है कि मूत्रनलीके अन्दर जखम हो उसके कारणसे मूत्र आनेके समय मूत्रनलीमें जलन होय जैसा कि सुजाककी दशामें, क्योंकि मूत्र जखमके ऊपर होकर निकलता है तो जलन उत्पन्न करता

है। उसका लक्षण यह है कि ऐसी जलन उत्पन्न होनेके दो व तीन दिवस पीछे मूत्रमें पीव आने लगती है और नलीके अन्दरके जखममें दर्द तथा गुह्येन्द्रिय (योनिमार्गके) जखम तथा मसानेके जखममें यह अन्तर है कि जो जखम मसानेमें होगा तो मूत्र वारंवार और कम आवेगा। मूत्रस्थानके जखममें ऐसा नहीं होता मूत्रस्थानके जखमकी चिकित्सा आगे वर्णन की गई ह।

यूनानी तिब्बसे मूत्रजलनकी चिकित्सा समाप्त।

डाक्टरीसे मूत्रमार्गके दाह (जलन) का निदान।

कितने ही समय पृथक् पृथक् कारणोंसे मूत्रनलीमें दाह (जलन) उत्पन्न हो जाती है। गर्भाशय तथा योनिमार्गके पृथक् पृथक् रोगोंसे मूत्र त्यागनेके समय जलन होती है यह एक बडा चिह्न है, जब जलन संयुक्त मूत्र निकलता है तव मूत्र भी बारम्बर आता है। योनिमार्गका अति तीक्ष्ण व दीर्घकालके शोथका अथवा इसी प्रकार उस भागमें किसी प्रकारका क्षत हो तो इसके कारणसे भी मूत्र करनेके समय दाह (जलन) होती है प्रायः देखा गया है कि योनिमार्गके तीक्ष्ण वर्ममें मूत्र त्यागनेके समय स्त्रीको इतनी तेज जलन और कष्ट होता है कि स्त्री बेचन हो जाती है। इसके अलावे कमलकन्दके क्षतको लेकर अथवा गर्भाशयमें किन्तु कमलमुखमें व योनिमार्गमेंसे प्रदरका श्वेत व अन्य किसी रंगका स्राव होता हो तो इनको लेकर भी मूत्रमार्गकी नलीमें अधिक जलन होती है। किन्तु प्रमेहकी विकृतिसे अथवा स्त्रीको प्रसव होनेसे अथवा मूत्रमार्गकी नलीमें सूजन होनेसे भी मूत्र दाहयुक्त निकलता है, यदि गर्भाशय स्थानान्तरमें चला गया होय अथवा गर्भअण्डमें शोथ उत्पन्न हुआ होय इन कारणोंसे भी मूत्र दाहयुक्त निकलता है। तथा पीडितार्त्तववाली स्त्रीका भी मूत्र दाहयुक्त निकलता है, योनिके अन्तर ओष्ठके क्षतको लेकर तथा योनिमुखमें शोथ उत्पन्न हुआ हो अथवा किसी प्रकारका व्रण व ग्रन्थि उत्पन्न हुई हो अथवा उपदंशका व किसी अन्य कारणसे क्षत उत्पन्न हुआ हो तब मूत्रका स्पर्श होनेसे वह भाग जलने लगता है। यह एक प्रकारका चिह्न है, परन्तु यह किसी प्रकारका पृथक् रोग नहीं। अधिक मैथुन करनेसे भी मूत्रमार्गकी नलीमें व नलाक मुखपर कुछ ईजा पहुंचनेसे मूत्र त्यागनेके समय जलन मालूम होती है। यदि यह मूत्रनलीका खास रोग होय, तो मूत्रके साथ पीव अथवा कुछ रक्तका चिह्न आता है मूत्रनलीको देखनेसे लाल रंग और सूजन दीख पडती है।

मूत्रदाह (जलन) की चिकित्सा।

जिस जिस कारणके निमित्तको लेकर मूत्रदाह (जलन) होती होय उस उस

कारणको निवृत्त करना उचित है उन कारणोंकी चिकित्सा पूर्व लिख आये हैं। कारणोंके निवृत्त होनेसे मूत्र दाह शान्त हो जाता है, लेकिन प्रधान व्याधिकी चिकित्साके साथ इस दुःखदायक चिह्नकी शीघ्र शान्ति हो ऐसी औषधका सेवन रोगीको कराना उचित है । मूत्रल, शीतल, शामक औषध देना उचित है, जिससे मूत्रदाहमें कमी पडे नीचे लिखाहुआ मिक्चर मूत्रके दाहको शान्त करनेके लिये अति उत्तम है । स्पीरीटईथरनाईट्रोझी १ ड्राम पोटासऐसीटास २० ग्रेन, ज्युनीपर १ ड्राम, टींकचरहायोसायेमस १ ड्राम, जल ३ ओंस इन सब दवाओंको मिलाकर ३ भाग करके ४ घंटेके अन्तरसे दिनमें तीन समय सेवन कर शीतल चीनी पीसकर जलमें छानकर मिश्री डालके पीवे। आमलेका स्वरस मिश्री डालकर पीवे त्रिफला रात्रिके समय गर्म जलमें भिगो प्रातःकाल छानकर मिश्री डालकर पीवे तो मूत्रदाहको शान्ति होती है । गुलुच (गिलोय) का स्वरस व हिम मिश्री डालकर पीवे, यदि अधिक समयसे मूत्रदाहकी व्याधि हो तो चन्द्रप्रभा वटीका सेवन करना । अफीम तथा वेलेडोनाकी वर्त्तिका (बत्ती) बनाकर योनिमार्गमें रखना, गोखरू अथवा भूफलीका लुआब निकाल कर मिश्री डालके पीवे । यदि दीर्घ शोथ हो तो १० से २० बिन्दु पर्य्यन्त (कोपेवानां) दिनमें दो वक्त पीना किसी समय मूत्रग्रन्थि बँध जाती है । इसकी निवृत्तिके लिये मूत्रशलाका मूत्रमार्गमें प्रवेश करके विस्तृत करना कमर पर्यंत गर्म जलमें बैठ गर्म जलका सेंक करना, खानेमें गर्म वस्तु तथा मिरची सोंठ राई आदिका खाना त्याग देना ।

डाक्टरीसे मूत्रदाह (जलन) की चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे मूत्रमार्गकी नलीमें ग्रन्थि व मस्सेकी चिकित्सा ।

स्त्रीके मूत्रमार्गकी नलीके मुखपर व नलीके मुखसे कुछ अन्दर किसी समय एक प्रकार दाने उत्पन्न हो जाते हैं, ये दाने राई, बाजरा, मूंगसे लेकर और झडबेरीके बेरके समान मस्सेकी आकृतिके देखनेमें आते हैं । इन मस्सोंके चिह्न मूत्राश्मरीके समान होते हैं और स्त्रीको वारम्बार मूत्र त्यागनेकी हाजत होती है । मूत्र त्यागनेके समय जलन होती है, इन मस्सोंमेंसे किसी समय रक्त निकलता है किसी समय मूत्रके साथ धातुके समान पदार्थ निकलता है। इनकी उत्तम चिकित्सा यही है कि चिकित्सक योनि ओष्ठोंको विस्तृत करके तीक्ष्ण कैंचीसे इन मस्सोंको काट इनकी जडको कास्टिकसे दग्ध कर देवे, जो मस्सा काटनेमें न आवे उसको केवल कास्टिकसे दग्ध कर देवे ।

डाक्टरीसे मूत्रमार्गके मस्सोंकी चिकित्सा समाप्त ।

मूत्राघातका निदान ।

जायन्ते कुपितैर्दोषैर्मूत्राघातास्त्रयोदश । प्रायो मूत्रविघाताद्यैर्वातकुण्डलिकादयः । रौक्ष्याद्वेगाभिघाताद्वा वायुर्बस्तौ सवेदनः । मूत्रमाविश्य चरति विगुणः कुण्डलीकृतः । मूत्रमल्पाल्पमथवा सरुजं संप्रवर्तते । वातकुंडलिकान्तान्तु वैद्यो विद्यात्सुदारुणाम् ।आध्मापयन्बस्तिगुदं रुद्ध्वा वायुश्चलोन्नताम् । कुर्य्यात्तीव्रार्त्तिमष्ठीलां मूत्रविण्मार्गरोधिनीम् ॥ वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः । निरुणद्धि मुखं तस्य बस्तेर्बस्तिगतोऽनिलः । मूत्रसङ्गो भवेत्तेन बस्तिकुक्षिनिपीडितः। वातबस्तिः स विज्ञेयो व्याधिकृच्छ्रप्रसाधनः । चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्त्तते । मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते । मूत्रस्य वेगेऽभिहिते तदुदावर्त्तहेतुकः। अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद्भृशम् । नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनम् । तन्मूत्रजठरं विद्यादधोबस्तिनिरोधनम् ॥ बस्तौ वाप्यथवा नाले मणौ वा यस्य देहिनः । मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत सरक्तं वा प्रवाहतः । स्रवेच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वाप्यनीरुजम् । विगुणानिलजो व्याधिः समूत्रोत्सङ्गसंज्ञितः ॥ रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ । मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेत्तां तदाह्वयम् ॥ अन्तर्बस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पसहसा भवेत् । अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिः मूत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥ मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धृतम् । स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक् पश्चाद्वा प्रवर्त्तते । भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते । व्यायामाध्वातपैः पित्तं बस्तिं प्राप्याऽनिलावृतम् । बस्तिं मेढ्रं गुदञ्चैव प्रदहेत्स्रावयेदधः ॥ मूत्रं हारिद्र्यमथवा सरक्तं रक्तमेव च । कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जैतोरुष्णवातं वदन्ति तम् ॥ पित्तं कफो वा द्वौ वापि संहन्येतोऽनिलेन चेत् । कृच्छ्रान्मूत्रं तदा पीतं रक्तं श्वेतं घनं सृजेत् । सदाहरोचनाशंखचूर्णवर्णञ्च तद्भवेत् । शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम् ॥ रूक्षदुर्बलयोर्वातेनोदावर्त्तं सकृद्यथा । मत्रस्रोतोऽनुपद्येत विट्संसृष्टं तदा नरः ॥

विड्गन्धं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विघातं विनिर्दिशेत् ॥ द्रुताध्वलङ्घनायासैर-भिघातात्प्रपीडितान् । स्वस्थानाद्वस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् । शूलस्यन्दनदाहार्त्तो बिन्दुं बिन्दु स्रवत्यपि । पीडितस्तु सृजेद्धारां संस्तम्भोद्वेष्टनार्तिमान् । बस्तिकुण्डलिमाहुस्तं घोरं शस्त्रविषोपमम् । पव-नप्रबलं प्रायो दुर्निवारो ह्यबुद्धिभिः । तस्मिन् पित्तान्विते दाहः शूलं मूत्रविवर्णता । श्लेष्मणा गौरवं शोथः स्निग्धं मूत्रं घनं सितम् । श्लेष्म-रुद्धबिलो वस्तिः पित्तोदीर्णे न सिध्यति । अविभ्रान्तबिलः साध्यो न च यः कुण्डलीकृतः । स्याद्वस्तौ कुण्डलीभूते तृण्मोहः श्वास एव च ।

अर्थ—आयुर्वेद वैद्यकमें मूत्र व्याधिके दो भेद किये हैं, एक मूत्रकृच्छ्र दूसरा मूत्रा-घात । मूत्रकृच्छ्रकी व्याधि स्त्रियोंके प्रायः अति कम होती है लेकिन मूत्राघातके तेरह भेद हैं वे प्रायः अधिकांश स्त्रियोंको होते देखे गये हैं । मूत्रकृच्छ्रके वात पित्त कफ सन्निपातज पुरीषज शल्यज इनकी उत्पत्ति स्त्रियोंके मानी जावे तो कुछ अत्युक्ति नहीं आती, क्योंकि दोष मल या अभिघातसे जैसी व्याधि पुरुषोंको होती हैं वैसेही स्त्रियोंको होना संभव है अब नीचे मूत्रकृच्छ्रके भेद लिखे जाते हैं ।

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसङ्गनित्यद्रुतपृष्ठयानात् । आनूपमत्स्या-ध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणां तथाष्टौ ॥ (संप्राप्ति) पृथग्मला स्वैः कुपिता निदानैः सर्वेथवा कोपमुपेत्य बस्तौ । मूत्रस्य मार्गं परिपीड-यन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥ तीव्रा हि रुग्वंक्षणबस्तिमेढ्रे स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह वातात् । पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं कृच्छ्रं मुहुर्मूत्रयतीह पित्तात् ॥ बस्तेः सलिङ्गस्य गुरुत्वशोथौ मूत्रं सपिच्छं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपाताद्भवंति तत्कृच्छ्रतमञ्च कृच्छ्रम् ॥ मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु च । मूत्रकृच्छ्रं तदा-घाताज्जायते भृशदारुणम् । वातकृच्छ्रेण तुल्यानि तस्य लिङ्गानि निर्दिशेत् ॥ शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः । आध्मानं वात-शूलञ्च मूत्रसङ्गं करोति च ।

अर्थ—विशेष करके मूत्रादि वेगोंको रोकनेसे कुपित हुए दोष वातकुंडलिकादि

तेरह प्रकारके मूत्राघातोंको उत्पन्न करते हैं। (वात कुण्डलिकाके लक्षण) शरीरके रुक्ष होनेसे अथवा मल मूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे दूषित हुई वायु कुण्डलाकार (गोलाकार) होय और मूत्रके साथ संयुक्त होकर पीडाको उत्पन्न करती है तथा मूत्रमें मिश्रित होनेसे मूत्राशय (बस्ति) में विचरण करती है, इस कारणसे थोडा २ और पीडासे संयुक्त मूत्र स्रवता है, इस अत्यन्त दारुण रोगको वात कुण्डलिका बोलते हैं। १ (अष्ठीलाके लक्षण) वायु मूत्र तथा मलको रोककर मूत्राशय तथा गुदामें अफराको उत्पन्न करके चंचल ऊंची तीव्र पीडावाली और मूत्र तथा मलके मार्गको रोकनेवाली पिंडीके समान ग्रन्थीको उत्पन्न करती हैं, इसका नाम अष्ठीला है। २ (वातबस्तिके लक्षण) जो मूर्ख मनुष्य मूत्रके वेगको रोकता है उसके मूत्राशयमें रहनेवाली वायु बस्तिके मुखको बंद कर देती है तब मूत्र रुक बस्त्याशय तथा कोखमें पीडा होती है। इसको वातबस्ति कहते हैं, यह वातबस्ति रोग कष्टसाध्य जानना ३। (मूत्रातीतके लक्षण) मूत्रके वेगके वहुत समय पर्य्यन्त रोकनेसे मूत्र शीघ्र नहीं उतर त्यागनेके समय धीरे २ थोडा २ मूत्र उतरे उसको मूत्रातीत कहते हैं। ४ (मूत्र जठरके लक्षण) मूत्रके वेगको रोकनेसे जो उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है उस उदावर्त्तसे कुपित हुई वायु उदरको पूरित करके नाभिके नीचे तीव्र पीडा युक्त अफराको करती है, इस अधो बस्तिको अवरोध (रोकनेवाले) इस रोगको मूत्र जठर कहते हैं। ५ (मूत्रोत्संगके लक्षण) मूत्र त्यागनेके समय बस्ति व मूत्रेन्द्रिय अथवा मूत्रनलीके अग्र भागमें जब मूत्र रुक जाता है तब वह हृदयक श्वासादिके बलसे मूत्रको करे तो वायु मूत्राशयको फाडकर पीडायुक्त अथवा विना पीडाके रुधिर-युक्त थोडा २ मूत्र धीरे २ उतरे विगुण वातोत्पन्न इस रोगको मूत्रोत्संग कहते हैं। ६ (मूत्रक्षयके लक्षण) रूक्ष शरीर और क्लान्त शरीर (थकेहुए शरीरवाले मनुष्यके मूत्राशयमें स्थित जो वायु पित्त कफ सो मूत्रको क्षय करते हैं इससे पीडा और दाह होता है, इस व्याधिको मूत्रक्षय कहते हैं। ७ (मूत्रग्रन्थिके लक्षण) मूत्राशयके भितिर प्राय: गोल आकारवाली स्थिर छोटे आँवलेके समान ग्रन्थि हो जाती ह, उसमें अश्मरीके समान पीडा होती है इसको मूत्रग्रन्थि कहते हैं। ८ (मूत्र शुक्रके लक्षण) मूत्र वेगको रोककर स्त्री पुरुष मैथुनमें प्रवृत्त होवें तो उसका वीर्य्य वायुसे दूषित होकर मूत्र निकलनेसे प्रथम अथवा मूत्रके पीछे राख मिश्रित जलके समान गिरता है, इसको मूत्रशुक्र कहते हैं। (ऐसी प्रवृत्तिस स्त्रीका मूत्र बडे कष्टसे बिन्दु २ करके आता है और बस्ति स्थानमें अफरा उत्पन्न हो जाता है) ९। (मूत्रोष्णवातके लक्षण) व्यायाम (दंड कसरत) (स्त्रीजनोंको नृत्यादिके करने अथवा अत्यन्त मार्गके चलनसे धूपमें बैठना फिरना व परिश्रम करनेसे इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर वायुके

आश्रयभूत हो और मूत्रवस्ति स्थानमें प्राप्त होकर वस्ति तथा मूत्रनली और गुदामें दाहको उत्पन्न करता है तथा हल्दीके रंगके समान अथवा किंचित् लाल रंगको लिये-हुए अथवा रक्त संयुक्त मूत्रको वारम्वार वडे कष्टसे मूते इसको मूत्र उष्णवात रोग कहते हैं । (इस रोगमें मूत्रनलीमें जखम पड जाते हैं और कालान्तरमें पीव आने लगती है, इसीकी सुजाक संज्ञा हो जाती है यह रोग गर्म तीक्ष्ण पदार्थोंके सेवन करनेसे भी होता है) । १० (मूत्रासादके लक्षण) पित्त अथवा कफ किन्तु दोनों दोप मिलेहुए जव वायुसे दूषित हो जाते हैं तव पीला लाल सफेद अथवा घनरूप (गाढा) ऐसा मत्र कष्टसे उतर तथा मूत्र त्यागनेके समय जलन होय और वह मूत्र भूमिपर गिरते ही सूख जावे तव उसका रंग गोरोचन अथवा शंखके चूर्णके समान हो जाय अथवा विचित्र रंगका हो जाय तो इसको मूत्रासाद रोग कहते हैं । ११ (विड्विघातके लक्षण) रूखे शरीरवाले, दुवले मनुष्यके वायुसे प्रेरित मल जव उदावर्त्तको करता ह तव वह मल मत्रमार्गमें जावे उस समय वह मनुष्य मूते तो वडे कष्टसे विष्ठाकी गंधयुक्त मत्र उतरे इसको विड्विघात कहते हैं । १२ मूत्राशय, मलाशयके वीचमें पर्दा है किन्तु मूत्रमें मलका आना सर्वथा असंभव है । परन्तु यूनानी तिव्वके निदानसे देखा जावे तो मूत्रमें एक प्रकारकी गन्ध उत्पन्न हो जाती है और मूत्राशयमें मत्रमें भूसी व छिलकेके समान एक प्रकारका पदार्थ उत्पन्न हो जाता है । १३ (वातकुण्डलिकाके लक्षण ।) अति शीघ्र दौडनेसे अथवा चलनेसे व लंघन करनेसे अधिक परिश्रम करनेसे लकडी आदिकी चोटके लगनेसे दवानेसे वस्ति अपने स्थानको त्यागकर वायु ऊपरको जाय और स्थूल होकर गर्भके समान दीखती है इससे शूलकम्प और दाहसे पीडित होकर एक २ विन्दु मूत्र उतरता है । जव वस्ति स्थानको जोरसे दवाया जावे तो वडे वेगसे मूत्रधारा मूत्रनलीसे वाहर गिरती है वस्तिस्थानमें सूजन और पेड़ू (मसाने) में पीडा होती है, इसको वस्तिकुंडल कहते हैं । यह महा भयंकर व्याधि शस्त्र और विपके समान होती है । प्रायः इसमें वायु प्रवल रहती है यह व्याधि यन्त्रक्रियाहीन और स्वल्प वुद्धिवाले वैद्योंसे निवारण नहीं होती किन्तु यन्त्रक्रियामें निपुण वैद्य ही इसको निवारण करनेमें समर्थ है । जो यह वस्ति कुंडलरोग पित्ताधिक्य होय तो इसमें दाह शूल और मूत्रका रंग वुरा होता है, जो इसमें कफाधिक्य होय तो भारीपन सूजन मूत्र चिकना गाढा और सफेद होता है । जिस वस्तिका मुख कफ करके वन्द हो जाय और पित्त करके व्याप्त होय वह वस्ति असाध्य है, जिसका मुख खुला होय वह साध्य है, कुंडलीकृत न होय वह भी साध्य है । इस कुण्डली मूत्रवस्तिके होनेसे तृपा मोह और श्वास ये लक्षण होते हैं यहांतक मूत्राघातके तेरह भेदोंके लक्षण समाप्त हुए । (अव मूत्रकृच्छ्रके लक्षण लिखे जाते हैं)

मूत्रकृच्छ्रका निदान ।

व्यायाम कहिये कसरतादिके करनेसे तीक्ष्ण औषधियोंके सेवनसे व मिरच राई सहिजनादि तीक्ष्ण वस्तु व गर्म मसाले आदिके खानेसे व रूखे पदार्थोंके खानेसे मद्यपान करनेसे घोडा ऊंटादिकी सवारी पर चढकर दौडनेसे अनूप देशके जलोंकी मछलियोंके खानेसे भोजनके ऊपर भोजन करनेसे और अजीर्णके होनेसे मनुष्योंके आठ प्रकारका मूत्रकृच्छ्र रोग होता है । संप्राप्ति अपने २ कारणोंसे वातादि दोष भिन्न २ कुपित होकर अथवा तीनों दोष संयुक्त कुपित होकर मूत्राशयमें प्राप्त हो मूत्रके मार्गको पीडित करते हैं तब मनुष्य बडे कष्टसे मूत्र त्यागता है । (वातसे उत्पन्न मूत्रकृच्छ्रके लक्षण) वातज मूत्रकृच्छ्रमें वंक्षण बस्ति और मूत्रनलीमें अत्यन्त पीडा हो बारम्वार थोडा २ मूत्र उतरे १ । (पित्तसे उत्पन्न मत्रकृच्छ्रके लक्षण) पित्तज मूत्रकृच्छ्रमें पीला किञ्चित लाल पीडा सहित दाहयुक्त और थोडा २ अत्यन्त कठिनतासे मूत्र उतरता है । २ (कफज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण) कफज मत्रकृच्छ्रमें बस्ति और मूत्रनलीमें भारीपन हो तथा सूजन हो मूत्र पिच्छिलरूपसे उतरे । ३ (सन्निपातसे उत्पन्न हुए मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।) त्रिदोषज मूत्रकृछ्रमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं, यह अत्यन्त कष्टसाध्य है । ४ (शल्यज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण) मूत्रके बहनेवाली जो नसें हैं उनमें किसी प्रकारका अभिघात लगे अथवा जखम हो जाय तब इससे भयंकर मत्रकृच्छ्र उत्पन्न होता है । इसके लक्षण वातज मत्रकृच्छ्रके समान होते हैं । ५ (पुरीपज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण) मलके अवरोधसे वायु कुपित होकर पेटका फूलना वात शूल और मत्रकी रुकावट होती है ये छः प्रकारके मूत्रकृच्छ्रमेंसे अपने २ निमित्त किसी स्त्रीको होते हैं । अश्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्र अश्मरी प्रकरणमें देखो शुक्रज मूत्रकृच्छ्र स्त्रियोंको नहीं होता ।

क्रमसे मूत्राघातकी चिकित्सा ।

स्नेहस्वेदोपपन्नस्य हितं स्नेहविरेचनम् । दद्यादुत्तरबस्तिं च मूत्राघाते सवेदने ॥ नलकुशकाशेक्षु शिफां क्वथितां प्रातः सुशीतलां ससिताम् । पिबतः प्रयाति नियतं मूत्रग्रह इत्युवाच कविः ॥ गोधावत्यामूलं क्वथितं घृततैलगोरसैन्मिश्रम् । पीतं निरुद्धमचिराद्भिनत्तिमूत्रसंघातम् ॥ पिबेच्छिलाजतुक्वाथे युक्ते वीरतरादिके । रसं दुरालभाया वा कषायं वासकस्य वा ॥ क्वाथं सपत्रमूलस्य गोक्षुरोः सफलस्य च । पिबेन्मधुसितायुक्तं मूत्रकृच्छ्ररुजापहम् ॥ घनसारस्य चूर्णेन वस्त्रवर्त्तिः कृताम्बुना । गुण्डयित्वा परिक्षिप्तः मूत्ररोधं जहाति सा ॥ सदा भद्राश्मभिन्मूलं शताव-

र्याश्च चित्रकम् । रोहिणी कोकिलाक्षौ च क्रौञ्चस्थूलत्रिकण्टकम् ॥ श्लक्ष्णपिष्टैः सुरापीतो मूत्राघातप्रबाधनः ॥ पिबेद्बर्हि शिखामूलं दुग्धभुक् तण्डुलांबुना । वस्तिमुत्तरवस्तिं वा सर्वेषामेव दापयेत् ॥ निदग्धिकायाः स्वरसं पिबेद्वा तक्रसंयुतम् । जले कुंकुमकल्कं वा सक्षौद्रमुषितं निशि ॥ त्रिकण्टकैरण्डशतावरीभिः सिद्धं पयो वा तृणपञ्चमूलैः । गुडप्रगाढं सघृतं पयो वा रोगेषु कृच्छ्रादिषु शस्तमेतत् ॥ शृतशीतपयोऽन्नाशी चन्दनं तण्डुलांबुना । पिबेत्सशर्करं श्रेष्ठमुष्णवाते सशोणिते ॥ १-१० ॥

अर्थ—पीडायुक्त मूत्राघात रोगमें स्नेहन तथा स्वेदन क्रिया करके पश्चात् स्नेहयुक्त पदार्थोंसे विरेचन देवे तथा उत्तरवस्ति भी देवे ये क्रिया अति हितकारी है । नरसल, कुशा, कांस और ईखकी जड इनका क्वाथ वनाकर उसमें मिश्री डालकर शीतल करके प्रातःकाल पान करनेसे मूत्राघात रोग नष्ट होता है । काली मूसलीकी जडका क्वाथ वनाकर उसमें घृत तैल और गोदुग्ध मिलाकर पान करनेसे वहुत दिनोंका पुराना मूत्राघात रोग शीघ्र नष्ट होता है । वीरतरादिगणका क्वाथ वनाकर उसमें शिलाजीत डालकर अथवा अडूसेका क्वाथ मिलाकर पान करनेसे अथवा पत्र पुष्प फल जडसहित गोखुरूका क्वाथ वनाकर उसमें शहत और मिश्री मिलाकर पान करनेसे मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है । वीरतरादिगण अश्मरी चिकित्सा प्रकरणमें देखो । कपूरको जलमें पीसकर वारीक कपडेपर लपेट कर वत्ती वनावे फिर उस वत्तीको मूत्रनलीके छिद्रमें रक्खे तो मूत्रकी रुकावट खुल जाती है । कुम्भेर पाषाणभेद, शतावरि, चित्रक, कुटकी, तालमखाना, कमलगट्टा, और वडे गोखुरू इनको समान भाग लेकर परिमित मात्रासे पीसकर मदिरा (शराव) में छानकर पान करनेसे मूत्र वातरोग नष्ट होता है । मयूरशिखाकी जडको चावलोंके जलके साथ पीसकर पीवे । और दुग्धके साथ तण्डुलादि हलका भोजन करे तो मूत्राघात रोग नष्ट होता है । अथवा सर्व प्रकारके मूत्राघात रोगोंमें वस्ति व उत्तर वस्ति देवे । कटेलीके स्वरसको तक्रके साथ पान करनेसे मूत्राघात रोग नष्ट होता है । अथवा केशरको जलमें पीसकर उसमें शहत मिलाकर रात्रिके समय एक पात्रमें रख प्रातःकाल पी जावे इसके सेवनसे मूत्राघात रोग नष्ट होता है । गोखुरू, अरंडकी जड, शतावरि इनको समान भाग लेकर गोदुग्धमें पकाकर दूधको छानकर पान करे । अथवा तृण पंचमूलको गोदुग्धमें पकाकर पान करे, अथवा गुड घी गोदुग्ध इनको मिलाकर पान करनेसे मूत्रकृच्छ्र मूत्राघातादि सव रोग [नष्ट] होते हैं । चन्दनको घिसकर चावलोंके भीगेहुए जलमें मिलाकर मिश्री डालकर

पान करे और औटेहुए शीतल दूधके साथ चावलोंका भोजन करनेसे रुधिरयुक्त मूत्राघात रोग निवृत्त होता है ॥ १-१० ॥

विदारीघृत ।

विदारी वृषको यूथी मातुलुंगी च भूस्तृणम् । पाषाणभेदः कस्तूरी वसुको व शिरोऽनलः ॥ पुनर्नवा वचा रास्ना बला चातिबला तथा । कशेरुविसशृंगाटतामलक्यः स्थिरादयः । शरेक्षुः दर्भमूलञ्च कुशः काशस्तथैव च । पलद्वयन्तु संगृह्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ पादशेषे रसे तस्मिन्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ शतावर्य्यास्तथा धात्र्याः स्वरसो घृतसम्मितः ॥ षट्पलं शर्करायाश्च कार्षिकाण्यपराणि च । यष्ट्याह्वं पिप्पली द्राक्षा काश्मर्य्यं सपरूषकम् ॥ एला दुरालभा कौन्ती कुङ्कुमं नागकेशरम् । जीवनीयानि चाष्टौ च दत्त्वा च द्विगुणं पयः ॥ एतत्सर्पिर्विपक्तव्यं शनैर्मृद्वग्निना भिषक् । मूत्राघातेषु सर्वेषु विशेषात्पित्तजेषु च ॥ कासश्वासक्षतो रस्कधनुस्त्रीभारकर्षिते ॥ तृष्णाछर्दिमनः कम्पे शोणितच्छर्दिते तथा ॥ रक्ते यक्ष्मण्यपस्मारे तथोन्मादशिरोग्रहे । योनिदोषे रजो दोषे शुक्रदोषे स्वरामये ॥ एतत्स्मृतिकरं वृष्यं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ पुत्रदं बलवर्णाढ्यं विशेषाद्वातनाशनम् ॥ पान भोजननस्येषु न क्वचित् प्रतिहन्यते ॥ विदारीघृतमित्युक्तं रसायनमनुत्तमम् ॥ १-११ ॥

अर्थ-क्षीर विदारीकन्द, अडूसा, जुही, विजौरा, भूस्तृण, पाषाणभेद, कस्तूरी, सांभर नमक, समुद्र नमक, चीता, पुनर्नवा, वच, रास्ना, खिरेटी, कंघी, कसेरू, कमलकी जड, सिंघाडे, भूई आँवला, स्थिरादि गणके सर्व औषध (यदि समयपर स्थिरादिगणके औषध प्राप्त न हो सकें तो अभावमें वीरतरु आदि गणके औषध लेवे ये दोनों गण न्यूनाधिक समानता रखनेवाले हैं । रामसर, ईख, कांस, कुशा ये प्रत्येक औषध दो पल अर्थात् ८ तोला ले एक द्रोण जलमें पकावे, जब पकते २ जल चतुर्थांश शेष रहे तब उतार कर छान लेवे पुनः इस क्वाथमें एक प्रस्थ घृत मिलाकर शतावरका स्वरस एक प्रस्थ (यदि शतावरका स्वरस न मिले तो सूखी शतावरका क्वाथ बनाकर डाले) आंवलोंका स्वरस एक प्रस्थ खांड व मिश्री २४ तोला तथा

मुलहटी, पीपल दाख, कुम्मेरफल, फालसे, छोटी इलायची, धमासा अथवा जवासा, रेणुका, केशर, नागकेशर और जीवनीगणकी आठ औषध प्रत्येक दो दो तोला लेकर कल्क बना सबको मिला देवे तथा गौका दुग्ध दो प्रस्थ मिलावे और मन्दाग्निसे विधिपूर्वक पकावे, सिद्ध होनेपर उतार कर घृतको छानकर निकाल लेवे और वर्त्तनमें भरलेवे । यह घृत सर्व प्रकारके मूत्राघात विशेष करके पित्तजनित मूत्ररोग खांसी, श्वास उरुक्षत, धनुष चढानेसे कर्षित हुए विशेष स्त्री प्रसङ्ग करनेसे कर्षितहुए तृषा, वमन, मानासिक रोग, कम्प, रुधिरकी वमन, क्षयरोग, रुधिर विकार, अपस्मार, उन्माद, शिरोरोग, योनिरोग, रजोदोष, शुक्रदोष, स्वरभङ्ग इत्यादिक सर्व रोगोंमें हित है । यह घृत स्मरणशक्तिको वढानेवाला वीर्य्यजनक, पुत्रजनक वल और वर्णको वढानेवाला विशेष करके वातरोगोंको नष्ट करनेवाला उत्तम रसायन है इसको पान भोजन सब प्रयोगोंमें लेना उचित है ॥ १-११ ॥

मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहवस्तिस्वेदोपनाहोत्तरवस्तिसेकान् । स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान्दद्यादसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥ अमृता नागरा धात्री वाजिगन्धा त्रिकण्टकम् । प्रपिबेद्वातरोगार्त्तः शूलवान्मूत्रकृच्छ्रवान् ॥ ॥ २ ॥ पुनर्नवैरण्डशतावरीभिः पत्तूरवृश्चीव बलाश्मभिद्भिः । द्विपञ्च मूलेन कुलित्थकेन यवैश्च तोयोत्क्वथिते कषाये ॥ ३ ॥ तैलं वराहर्क्षवसाघृतञ्च तैरेव कल्कैर्लवणैश्च सिद्धम् ॥ तन्मात्रयात्रप्रतिहन्ति पीतं शूलान्वितं मारुतमूत्रकृच्छ्रम् ॥ ४ ॥ सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा ग्रैष्मो विधिर्वस्तिपयो विकाराः । द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्घृतैश्च कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कुर्य्यात् ॥ ५ ॥ कुशः काशऽशरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम् । पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं वस्ति विशोधनम् । एतत्सिद्धं पयः पीतं मेढ्रगं हन्ति शोणितम् ॥ ६ ॥ शतावरीकासकुशाश्वदंष्ट्रा विदारिशालीक्षुकशेरुकाणाम् । क्वाथं सुशीतं मधुशर्कराभ्यां युक्तं पिबेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रे ॥ ७ ॥ एर्वारुवीजं मधुकं सदार्वी पैत्ते पिबेत्तंडुलधावनेन । दार्वी तथैवामलकीरसेन समाक्षिकं पित्तकृते च कृच्छ्रे ॥ ८ ॥ हरीतकी गोक्षुरराजवृक्षपाषाणभिद्धन्वयवासकानाम् ।

काथं पिबेन्माक्षिकसंप्रयुक्तं कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे ॥ ९ ॥ क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानं स्वेदोपवान्तं वमनं निरूहाः। तक्रञ्च तिक्तोषणसिद्धतैलान्यभ्यंगपानं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ १० ॥ मूत्रेण सुरया वापि कदली स्वरसेन वा। कफकृच्छ्रविनाशाय सूक्ष्मं पिष्ट्वा त्रुटिं पिबेत् ॥ ॥ ११ ॥ तक्रेण युक्तं शितिवारकस्य बीजं पिबेन्मूत्रविघातहेतोः। पिबेत्तथा तंडुलधावनेन प्रवालचूर्णं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ १२ ॥ सर्वं त्रिदोषप्रभवे च कृच्छ्रे स्थानानुपूर्व्याप्रसमीक्ष्य कार्य्यम्। त्रिभ्योऽधिके प्राग्वमनं कफेस्यात्पित्ते विरेकः पवने च बस्तिः ॥ १३ ॥ बृहती धावनी पाठा यष्टी मधुकलिङ्गकाः। पाचनीयो बृहत्यादिः कृच्छ्रदोषत्रयापहः ॥ १४ ॥ गुडेन मिश्रितं क्षीरं कटूष्णं कामतः पिबेत्। मूत्रकृच्छ्रेषु सर्वेषु शर्करावातरोगनुत् ॥ १५ ॥ मूत्रकृच्छ्रेऽभिघातोत्थे वातकृच्छ्रक्रियामता। पञ्चवल्कलकल्पः कवोष्णोऽत्र प्रशस्यते ॥ १६ ॥ मद्यं पिबेद्वासासितं ससर्पिः श्रृतं पयश्चापि सिताज्ययुक्तम्। धात्रीरसं चेक्षुरसं पिबेद्वा कृच्छ्रे सरक्ते मधुना विमिश्रम् ॥ १७ ॥ स्वेदचूर्णक्रियाभ्यङ्ग बस्तयः स्युः पुरीषजे। कृच्छ्रे तत्र विधिः कार्य्यो सर्वशुक्रविबन्धजित् ॥ १८ ॥ क्वाथो गोक्षुरबीजस्य यवक्षारयुतः सदा। मूत्रकृच्छ्रं सरुग्जन्म पीतः शीघ्रं नियच्छति ॥ १९ ॥

अर्थ—वातजनित मूत्रकृच्छ्रमें चिकित्सक रोगीको अभ्यङ्ग (तैलादिकी मालिस) करावे तथा स्नेहन, निरूहन बस्ति व उत्तरबस्ति देवे अङ्गोंमें दोपनाशक योग्य औषधियोंका बन्धन करावे अथवा घृत तैल आदिसे सेंक करावे तथा वातनाशक शालपर्णी आदि औषधियोंका काथ आदि स्नेहन पदार्थोंके साथ पिलावे। गिलोय, सोंठ, आँवले, असगंध, गोखुरू, इनका काथ बनाकर पिलावे तो वातसम्बन्धी रोग शूल और मूत्रकृच्छ्र आदि निवृत्त होवें। पुनर्नवाद्यमिश्रक पुनर्नवा, अरण्ड, शतावर, पतूंर, श्वेत पुनर्नवा, खरैटी, पाषाणभेद, दशमूलके सब औषध, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, गंभारी, अरणी, सोनापाठा, छोटी कटेली, सफेद फूलकी बडी कटेली, गोखुरू, वेलके जडकी छाल, कटपाडर, कुलथी इन सब द्रव्योंको समान भाग लेकर काथ बना इन्हीं

द्रव्योंका कल्क मिलाकर तथा सेंधा नमक डालकर इनमें पकायाहुआ घृत तैल सूअरकी चर्बी ऋक्षकी चर्बी इनको योग्य मात्रासे सेवन करे तो इससे शूल सहित वायु सम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र रोग शान्त होता है । (पित्तजनित मूत्रकृच्छ्र रोगकी चिकित्सा) पित्तजनित मूत्रकृच्छ्र रोगमें वैद्य रोगीके अङ्गोंपर जल चन्दनादि शीतल पदार्थोंका सेचन अथवा अवगाहन करे ऊष्ण जलमें कलमी शोरा डालकर रोगीको बैठाले अथवा शीतल जलमें प्रवेश कराके स्नान करावे, शीतल पदार्थ चंदन खस आदिका लेपन ग्रीष्मऋतुके समान उपचार करे । दाख विदारीकन्द, ईख इनका रस तथा घृत इनकी पिचकारी लगावे । (तृणपंचमूल कुशा, कांस रामसर, डाभ, ईख इन पांचोंकी जडको तृण पंचमूल कहते हैं, इस पंचमूलका उपयोग करनेसे पित्तजनित मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो मूत्राशय शुद्ध हो जाता है, इस पंचमूलको दूधमें पकाकर पान करनेसे मूत्रमें रुधिर आता हो तो वन्द हो जाता है । (शतावर्य्यादिकाथ) शतावर, कांस, कुशा, गोखुरू विदारीकन्द, शालिचावल, ईख कसेरू इनका क्राथ वनाकर शीतल करके उसमें शहत और घृत डालकर पीनेसे पित्तजनित मूत्रकृच्छ्र रोग निवृत्त होता है । (एर्वारुबीजादिपान ।) खीरे ककडीके बीज मुलहटी, दारुहल्दी इनको समान भाग लेकर चावलोंके जलमें पीसकर पान करे अथवा दारु हल्दीको पीसकर आंवलोंके रसके साथ शहत मिलाकर पीनेसे पित्तजनित मूत्रकृच्छ्र रोग शान्त हो जाता है । (हरीतक्यादि क्राथ ।) हरड, गोखुरू, अमलतासका गूदा, पाषाणभेद जवासा इनका क्राथ वनाकर शहत डालकर पान करनेसे मूत्रकृच्छ्र, दाह, विवन्ध और पीडा शान्त होती है । (कफज मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।) क्षार उष्ण तथा तीक्ष्ण औषध अन्नपान स्वेदन जौका भोजन, वमन निरूहण वस्ति, तक्र तथा कडुवे पदार्थोंसे उष्ण पदार्थोंसे पकायेहुए तैलका अभ्यंग करनेसे अथवा इस तैलका पान करनेसे कफज मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है । छोटी इलायचीके बीजको गोमूत्रके साथ अथवा मद्यके साथ किम्वा केलेके स्वरसके साथ अति वारीक पीसकर वेरके समान गोली बनावे कटु काथके साथ सेवन करे अथवा तक्रके साथ सेवन करे इससे कफज मूत्रकृच्छ्र रोग शान्त होता है शिरी आरीके बीजोंको तक्रके साथ पीसकर तक्रमें मिलाकर पीवे तो मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात रोग नष्ट होता है । तथा प्रवाल (मूँगे) को पीसकर चावलोंके जलके साथ पीनेसे कफज मूत्रकृच्छ्र रोग शान्त होता है । (त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा) तीनों दोषोंसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो वायुसे लेकर जो कफज मूत्रकृच्छ्र पर्य्यन्त आनपूर्वक चिकित्सा कथन की है उन सबोंको प्रयोगको मिश्रित करके और दोषोंकी आनर्श्वक अवस्था देखकर उपचार करे, यदि त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्रमें जो कफाधिक्य हो तो प्रथम वमन करावे, पित्त अधिक होय तो विरेचन देवे और वाताधिक्यमें

बस्तिक्रिया करे । बडी सफेद फूलकी कटेली, पृष्टपर्णी, पाढ, मुलहटी, इन्द्रजौ इनको समान भाग लेकर क्काथ बनावे, इसके पान करनेसे त्रिदोषजनित मूत्रकृच्छ्र रोग शान्त होता है गुडको दुग्धमें डालकर थोडा ऊष्ण पीवे तथा कटु द्रव्योंके क्काथमें गुड और दुग्ध मिलाकर पीनेसे सर्वप्रकारके मूत्रकृच्छ्र शर्करा वातरोग शान्त होते हैं । (अभिघातज मत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा) पेंडूपर वा मत्रनल वा बस्तिस्थान पर चोट आदिके लगनेसे जो मूत्रकृच्छ्र रोग उत्पन्न हुआ होय तो वातज मूत्रकृच्छ्र रोगके समान चिकित्सा करे। पंचक्षीरी वृक्षकी छाल (वड, गूलर, पीपल, पारस, पीपल, पिलखन) को जलमें पीसकर कुछेक उष्ण करके मूत्राशय पर लेप करनेसे अभिघात जनित मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है । यदि मूत्रकृच्छ्रमें जो रुधिर सहित मूत्र आता होय तो घृत मिश्री शहत मिलाकर पुनः बराबर भाग मद्य मिलाकर पीवे अथवा गर्म कियाहुआ दुग्ध लेकर उसमें मिश्री, शहत मिलाकर पीवे, अथवा आंवलोंके रसमें ईखका रस शहत मिलाकर पीवे (मलजनित मूत्रकृच्छ्र रोगके लक्षण) मलके रोकनेसे जो मूत्रकृच्छ्र हुआ हो तो स्वेदन लानेवाले चूर्णोंको सेवन करे तथा तैलादिक स्निग्ध पदार्थोंकी मालिश कर बस्तिक्रिया करे । शुक्र विबन्धनाशक जो क्रिया पुरुषके लिये की जाती हैं, वे सब स्त्रीके मलजनित मत्रकृच्छ्रमें करना उचित है । गोखुरूका क्काथ बनाकर उसमें जवाखार डालकर पीनेसे पुरीष जनित मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है ॥ १–१८ ॥

सुकुमार कुमारक पुनर्नवादि लेह ।

पुनर्नवामूलतुलां दर्भमूलं शतावरी । बलातुरगगन्धा च तृणमूलं त्रिकण्टकम् ॥ १ ॥ विदारिगन्धानागाह्वं गुडूच्यतिबलास्तथा । पृथग् दशबलान् भागानपां द्रोणे विपाचयेत् ॥ २ ॥ तेन पादावशेषेण घृतस्याद्धढकं पचेत् । मधुकं शृङ्गवेरञ्च द्राक्षा सैन्धवपिप्पली ॥ ३ ॥ द्विपलानि पृथग्दत्त्वा यवान्याः कुडवं तथा । त्रिंशद्गुडपलान्यत्र तैलस्यैरण्डजस्य च ॥ ४ ॥ एतदीश्वरपुत्राणां प्राग्भोजनमनिन्दितम् । राज्ञां राजसमानानां बहुस्त्रीपतयश्च ये ॥ ५ ॥ मूत्रकृच्छ्रे कटीशूले तथा गाढपुरीषिणाम् । मेढ्रवङ्क्षणशूले च योनिशूले च शस्यते ॥ ६ ॥ यथोक्तानां च गुल्मानां वातशोणितजाश्चये । बल्यं रसायनं शीतं सुकुमारकुमारकम् ॥ ७ ॥

अर्थ-पुनर्नवाकी जड और कुशाकी जड दोनों दोसौ २ तोला, शतावर, खरैटीकी जड, असगंध, तृणपंचमूल, गोखुरू, विदारीकन्द, नागकेशर, गिलोय कंघी ये प्रत्येक ४० तोला ले कूटकर १ हजार २४ तोला जलमें पकावे जब चतुर्थांश भाग बाकी रहे उस समय उतार छानकर एकसौ अट्ठाईस (१२८) तोला घृत मिलाकर पकावे इसमें मुलहटी, अदरख, दाख, सेंधानमक, पीपल ये प्रत्येक आठ आठ तोला पीसकर मिलावे, गुड १२० तोला, अरंडीका तैल १२० तोला इन सबको विधिपूर्वक पकावे, जब अवलेह सिद्ध हो जावे तब उतारकर घृतके पात्रमें भर लेवे । इस सुकुमार कुमार अवलेहको राजालोग तथा राजालोगोंके समान श्रीमन्त तथा जो विशेष स्त्रियोंसे सहवास करते हैं वे भोजनके पूर्व सेवन करें । मत्रकृच्छ्र कटिशूल मलबद्ध मूत्रनलीका शूल वंक्षण शूल योनिशूल गुल्मरोग तथा वात रक्त इन सब व्याधियोंमें हितकारी है । यह बलदायक, रसायन शीतल, और कुमारोंको सुकुमार बनानेवाले हैं ॥ १-७॥

त्रिकण्टकारग्वधदर्भकाशदुरालभापर्वतभेदपथ्याः । निघ्नन्ति पीता मधुनाश्मरिन्तु संप्राप्तमृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम् ॥ निर्दग्धिकायाः स्वरसं कुडवं मधुसंयुतम् । मूत्रदोषहरं पीत्वा नरः सम्पद्यते सुखम् । सितातुल्यो यवक्षारः सर्वकृच्छ्रप्रणाशनः । द्राक्षासितोपलाकल्कं कृच्छ्रघ्नं मस्तुनायुतम् ॥ एलाश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीनामेर्वारुबीजलवणोत्तमकुङ्कुमानाम् । चूर्णानि तण्डुलजले ललितानि पीत्वा प्रत्यग्रमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री ॥ १-४ ॥

अर्थ-गोखुरू, अमलतासका गूदा, डाभ, कांस, जवासा पाषाणभेद, हरडकी छाल इनको समान भाग लेकर पीसकर जलमें छानकर शहत मिलाकर पीनेसे अश्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्र रोग शान्त होता है । कटेलीके १६ तोला स्वरसको निकाल उसमें शहत मिलाकर पिलावे तो मत्रकृच्छ्र रोग शान्त होता है । जवाखारको मिश्रीके साथ सेवन करनेसे सर्वप्रकारके मूत्रकृच्छ्र शान्त होते हैं । दाख और मिश्रीके कल्कको दहीके जलके साथ सेवन करनेसे मत्रकृच्छ्र रोग शान्त होता है । छोटी इलायचीके बीज, पाषाणभेद, शिलाजीत, पीपल खीरेककडीके बीज, सेंधानमक, केसर इनका सूक्ष्म चूर्ण करके चावलोंके जलके साथ सेवन करनेसे मृत्युको प्राप्त हुआ भी मूत्रकृच्छ्र रोगी आरोग्य हो जाता है ॥ १-४ ॥

आयुर्वेद वैद्यकसे मत्राघात, मत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा समाप्त ।

यूनानी तिब्बसे मसानेके दर्दका निदान तथा चिकित्सा ।

मसानेमें दर्द होनेके कई कारण हैं जैसा कि सूजन, घाव, खुजली, पथरी इत्यादि इसके अतिरिक्त हवाके प्रकोपसे भी मसानेमें दर्द हो जाता है और शीतल व गर्म प्रकृतिके कारणसे भी मसानेमें दर्द हो जाता है । इसके दो भेद हैं जैसा कि गर्म हवा. पेशाव लानेवाली औषध और ऊष्ण वस्तुओंके खानेसे उत्पन्न हो और उसके लक्षण यह हैं कि पिलासका लगना, मसानेमें दर्द, जलनका होना, मत्र जर्द रंगका जलताहुआ आवे । (चिकित्सा) इसकी यह है कि खुरफेके बीज ककडी खीरेके बीज मीठे कद्दूके बीज कासनीके बीजोंका शीरा तथा शर्बत वनफशा और शर्बत खसखास मिलाकर पिलावे । वनादि कुलबुजूर ठंढा इन्हीं शर्बतोंके साथ अथवा कद्दूके पानी या सिकंजवनिके साथ अति लाभकारक है, सफेद चन्दन फूफल, जौका आटा, मकोय, कासनीके पानीमें मिलाकर लेप कर वनफशाका तैल कद्दूका तैल अथवा नीलोफरका तैल मल, मूत्रनलीके छिद्रमें टपकावे । वनफशा, नीलोफर, खतमी, मकोयके क्काथमें बैठा उत्तम भोजन जैसा कि कलिया पालकका साग, अंडेकी जर्दी, मुर्गेका मांस इनको अनारके रसके साथ खिलावे । दूसरा भेद यह कि प्रकृतिमें ठंढा उपद्रव होय और उसके कारण ठंढा शर्बत और ठंढी औषधियोंका खाना है । इससें मूत्रमें सफेदी हो जाती है और अधिक कपूर आदि ठंढी औषधोंके खानेके पीछे या शीतल पवन लगनेके पीछे उत्पन्न होता है, अरिस्तूनने कथन किया है कि शीतल पवन निर्बल कर देती है । क्योंकि उस प्रकृतिके विरुद्ध है और जिस्मको शीतल कर देती है विशेष करके पट्ठोंके अवयवको शीतल करती है । (चिकित्सा) इसकी यह है कि सोंफके बीज, अजमोदके बीज, पोदीना, अनीसून, गाजरके बीज, तितलीके बीज उबाल कर साफ करके शर्बत दीनार मिलाकर पिलावे । तथा तितली ब्रँजासफ, सोया, पोदीना थोडासा जुन्देवेदस्तर थोडी हींग मिलाकर लेप करे । तथा बाबूना कसूर, वनफशा, इकलील, रजनजोश इनका काढा करके उसमें बैठ चूनेका पानी, भुनाहुआ मांस, तथा कबूतरके बच्चेका मांस खिला शहदका गुलकन्द, इतरीफलसंगीर, तिरियाककवीर, मवीज, अंजीर इत्यादि खिलावे । सौसन, नर्गिस फरफयून इनके तैलोंको मसाने पर मल गर्म पानीका तरडा देना अति लाभकारक है । मसानेके दर्दका एक तरीका यह भी है कि प्रकृति मलको बुहरानकी रीतिके समान मसानेके मार्गसे निकाल देवे और उसके लक्षण कुहरानके दिन उत्पन्न होय पेशाबका बहना शुरू होय (चिकित्सा) इसकी यह है कि मूत्रके निकालनेवाली औषधियोंकी सहायतासे मत्रको निकाल देवे मूत्रके साथ ही वह मल निकल जाता है ।

यूनानी तिब्बसे मसानेके दर्दकी चिकित्सा समाप्त ।

यूनानी तिव्वसे मसानेमें रक्त जम जानेका निदान तथा चिकित्सा।

अक्सर यह रोग खूनी पेशावके पीछे या मसानेपर चोट लगनेके पीछे उत्पन्न होता है और उसके लक्षण बेहोशी बेचैनी नाडीका कम चलना और बन्द होना, शरीरका शातल पड जाना और कभी शरीरमें कपकपी हो वाहरके अवयवमें शीतलता विशेप आ जाती है। (चिकित्सा) इसकी यह है कि केवल सिकंजवीन, अनसनी, अथवा थोडी अंगूरके वेलकी राख मिलाकर पिलावे, यदि अंजासिफ अजमोदके वीज, मूलीके वीज, जंगली तितली इत्यादि जिस औपधमें कि रक्तको तहलील करनेकी शक्ति होवे पानीमें मिलाकर और सिकंजवीन डालकर देवे तो शीघ्र असर करती है । अथवा खरगोशका चूस्ता, अंगूरके वेलकी राख जलमें मिलाकर पीना अथवा मसानेपर इसको गर्म करके तरडा देना व मूत्रनलीके छिद्रमें टपकाना अति लाभकारक है तथा इकलील, हासां अजखर इंजदान पोदीना, वावूना, अकवहान, तितली इनका काढा वनाकर रोगीको वैठालना । उसके फोकका मसानेपर लेप करना अति लाभदायक है और गर्मजलका अधिक समयतक तरडा देना, अथवा वैठना, अथवा वावूनाका तैल व मूलीका तैल सोयाका तैल मसानेपर मलना भी लाभ पहुंचाता है । जमाहुआ खून जव इन लिखी हुई विधियोंसे तहलील न होवे तो जो औपध कि वलवान् मूत्रके लानेवाली हैं, जो पथरीको तोडनेवाली होय काममें लावे और गधेका सूखा कलेजा और कछुएका पित्ता खाना जमेहुए रक्तको तहलील करता है । काले चनेका क्वाथ तथा तितली पिलाना, झाऊकी भस्म तथा अंजीरके पत्रकी भस्म पानीमें डालकर उस पानीको नितारकर मूत्रनलीमें डालना अधिक लाभदायक है । जव किसी तरहसे आराम न हो रोगीके मरजानेका भय होय तो जमेहुए खूनको पथरीकी तरह नस्तरसे चीरकर निकाल डाले, ऐसे रोगीके लिये मुर्गेका शोर्वा चनेकी दाल चीनीके साथ पकेहुए आहारका देना उत्तम है ।

यूनानी तिव्वसे मसानेमें रुधिरके जमजानेकी चिकित्सा समाप्त ।

यूनानी तिव्वसे मसानेके फूल जाने और हवा भर जानेकी चिकित्सा।

यह मर्ज अक्सर सूजनेसे मिलाहुआ होता है, परन्तु असलमें यह सूजन नहीं होती है और यह मर्ज दो कारणोंसे होता है एक तो यह कि पेट फूलनेवाले भोजन करना जैसे लोविया वाकला इत्यादि खाना पेटको फुला देता है । दूसरा यह कि मसानेमें रतूवत हो नर्म होनेकी शक्ति न होय इससे मसानेमें खिंचावट होती है, फिर जो फुलानेवाले भोजन हैं सो इस वातका कारण है कि उसका फूलनेवाला स्थान वदलता रहेगा और मार मालूम न होगा, जो रतू-

वत्के कारणसे है तो खिंचावटके साथ भार मालूम होगा फूलना एक स्थानसे न होगा। (चिकित्सा) इसकी यह है कि तीन दिवस पर्य्यन्त व इससे अधिक जैसा उस व्याधिके अनुसार समझे केवल माऊलउसूल गर्म देवे, अथवा रोगनबेद अंजीरका रोगन दो मिस्काल रोज खिलाया करे—और रोगनवान, रोगनजम्बकमें हींग और तफिया—मिलाकर मसानेपर मले और इस दवाको मूत्रनलीके छिद्रमें डालना, अथवा पिचकारी लगाना अथवा तितली, पोदीना, सन्द, सोया, जुन्दवेदस्तर इत्यादि—जो २ औषधियां हवाको तहलील करनेवाली हैं उनका लेप करे—और फुलनेवाली तथा पट्ठोंको निर्बल करनेवाली औषधियों और आहारोंसे बचना उचित है। केशरके तैलका खाना और मसानेपर मलना लाभदायक है, जो मूत्रके आनेमें कठिनता होय तो खरबूजेका सूखा छिलका कुछ नर्म कूटकर मिश्रीके साथ खिलावे और रोगीको बातनाशक औषधियोंके काथमें बिठाले, जो रतूबत् अधिक दीख पडे तो वमन कराना लाभदायक है। तिर्याक संजरीना, मसरूदीतूस और अंजीर लाभकारक है इस रोगमें बत्ती अधिक लाभदायक है, उसकी विधि इस प्रकारसे है। अजमोदके बीज, अनीसून, सोफसातर, पपिल, सिकंजबीन, सबको मिलाकर बत्ती बनाकर गुदामें रक्खे और माजून कमूनी इस रोगमें अधिक लाभदायक है, सोंफ अनीसून, कर्र, अजमोदके बीज, अजखर—मिश्री इनका जुलाब बनाकर काममें लावे।

यूनानी तिब्बसे मसानेके फूलने और हवा भर जानेकी चिकित्सा समाप्त।

यूनानी तिब्बसे मूत्र बन्द हो जानेकी चिकित्सा।

इस मर्जके कई भेद हैं जैसा कि गुर्देकी सूजन या मसानेकी सूजन—और मसानेकी पथरी परन्तु यह स्त्रियोंके मसानेमें पथरी नहीं पडती है। मसानेमें रुधिर व पीवका जम जाना—अथवा उसमें हवाका भर जाना ये सब मूत्र बन्द हो जानेके कारण हैं और इन सबकी चिकित्सा कथन हो चुकी है। इसका दूसरा भेद यह है कि मूत्रकी नलीमें बढती मांस उत्पन्न होकर मूत्रके मार्गको रोक देवे, उसका कारण यह है कि मूत्रनलीमें सुजाकका जखम हुआ होय अथवा दूसरे प्रकारसे जखम हुआ होय और वह जखम अच्छा हो उसकी मांसवृद्धिका अंकुर बढने लगे, वह मस्सेकी आकृतिमें बढकर मूत्रनलीको रोक लेवे, कभी ऐसा देखा गया है नतो मूत्रनलीमें सुजाक हुआ है न किसी प्रकारका जखम पडा है किन्तु अपने आपही मांसवृद्धिको प्राप्त होकर मस्सेकी आकृतिमें होकर मत्रमार्गको रोक लेता है। इससे प्रथम जखम न होय यदि यह बढाहुआ मांस उस नलीमें होगा जो गुर्दे और मसानेके बीचमें या उस नलीमें होय जो गुर्दे और कमरके बीचमें है तो कमरमें भारीपनका होना और मसानेका मूत्रसे खाली होना इस वातका सबूत है। और बढाहुआ मांस जो मूत्रनलीमें

निकला हुआ हो तो मसानेमें भारीपन, कठोरता तथा पेडूमें भारीपन हो अधिक दर्द तथा खिंचावट मालूम होगी, बाहर तो ऐसा होता है कि यह मांस इतना नहीं होता कि मत्रको रोक देवे । विशेष बढती मांसः जो अपने आप नलीमें बिदून घाव पडनेके उत्पन्न हो जाता है उसके निश्चय करनेमें थोडी कठिनता पडती है। इसी कारणसे इसके जाननेवाले कहते हैं कि जो मांस अंकुर नलीमें उत्पन्न हो तो कासातीरसे मालूम कर सक्ते हैं, जो मसानेसे ऊपर उत्पन्न हुआ हो तो मालूम नहीं होता । इस कारणसे कि इलाज लाभदायक न होय और इस बातको जान लेना चाहिये कि मूत्रवाहिनी नली मसानेतक है, जो नली मूत्रस्थान और मसानेके बीचमें है वह मूत्रनली व पेशाबकी नली कहलाती है । बाद जो नली मसानेसे ऊपर कलेजेतक है उसको भी नली कहते हैं, इस कारणसे कि जो पानी कलेजेसे मसानेमें उतरकर आता है वह मूत्र कहलाता है। (चिकित्सा) इसकी यह है कि प्रथम इस बातके जाननेका परिश्रम करे कि मांस मूत्रेन्द्रियमें जम-गया है अथवा उस नलीमें है, जो मसाने और गुर्देके बीचमें है । अथवा गुर्दे और कलेजेके बीचमें है, चाहे जिस प्रकारसे हो उसका नष्ट करना असम्भव है, जैसा कि यह बात प्रगट है कि जब मत्र अधिक बन्द हो जाय तो उसके निकालनेकी विधि करना उचित है। वह इस प्रकारसे है कि जो मत्रेन्द्रियकी नलीमें मांसवृद्धि उत्पन्न हुई होय तो कासातीर (यह एक मूत्र निकालनेका शलाकायन्त्र है) से मूत्र निका-लनेकी क्रियाको काममें लावे । यदि इसके साथ मत्रनलीमें कठिन सूजन होय तो मूत्रनलीमें शलाकायन्त्र कदापि प्रवेश न करे, क्योंकि दर्द अधिक बढ जायगा । सूजनके छिलने और फटनेका भय है ऐसे समयमें जब मत्र बिलकुल बन्द हो रोगीके मरनेका भय होय तो पुरुषकी गोली और शराक बीचमें चीरा देकर पथरीके समान निकाल सक्ते हैं। परन्तु स्त्रियोंकी मूत्रनलीमें चीरा देनेका अवकाश नहीं है सो जहां-तक हो सके स्त्रियोंकी मांसवृद्धिकी चेष्टा शलाकायन्त्रसे ही करे । पुरुषके चीरा लगावे उस समय एक नली छोड देवे कि जिसके जरियेसे मूत्र निकलता रहे । अक्सर इस प्रक्रियासे रोगी मरनेसे बच जाता है, जो मांस मसानेसे ऊपर उत्पन्न हुआ होय तो कोई भी विधि लाभकारक न होगी । सिवाय इसके कि नर्म करनेवाली औषधियोंके जुसांदेमें रोगीको बैठावे कि नलीमें नर्मी (मुलायमी) और सुस्ती आनकर मूत्रका अव-रोध खुलजावे। इसी कारणसे तबीबलोग कहते हैं कि रोगीको गर्म जलमें बैठाना बाद गर्म पानीसे निकलनेके पीछे मेथीका आटा, खुब्बाजी, बनफशा, बाबूना, इकलील, कर्मकल्लेका पानी, खरकके तैलमें मिलाकर मसानेसे लेकर कलेजेपर्य्यन्त लेप करे, जिससे जिस्मके अन्दरूनी भागमें अधिक नर्मी आ जावे । (जिन औषधियोंके

काढेमें रोगीको बैठाना चाहिये वो ये हैं) बाबूना, बनफशा खत्मी, गोखुरू, करमकल्लेके पत्र, हंसराज, अलसी और भी जो इनके मुताबिक गुण रखती होयँ सो लेना उचित है । तीसरा भेद इसका यह है कि जो मांसका पठ्ठा मसानेकी गर्दनको दबाता है और निचोडता है और मसानेकी गति दूर करनेका यन्त्र है सुस्त हो जावे उसका लक्षण यह है कि जब मसानेको दबावे तो मूत्र सुगमतासे आवे और बहनेकी रीतिपर निकले और बूंद २ तथा उछल कर न निकल मूतनेकी इच्छा निवृत्त हो जावे, मूत्रको रोक देना तथा निकाल देना ये दोनों क्रिया बिलकुल बसमें न रहें । (चिकित्सा) इसकी यह हैं कि गर्म माजूने जैसे मसरुदीतूस, माजून बिलारीसंजरीना, तिरयाक, कैवीर, माजून, मादतुल हयात खावे । और नारदीनका तैल, कूटका तैल, तितलीका तैल, वेदअंजीरका तैल, सौसनका तैल ये मसानेपर मले । यदि थोडा साजुंदवेदस्तर, तथा फरफयून इन तैलोंमेंसे-किसीमें मिलाकर लगावे तो अधिक लाभदायक है, दालचीनी, साद, सलीखा, लवंग, बिसवासेका एक एक घूंट पीना और मसानेपर तरडा देना लाभदायक है । ऊपर जो माजून मादतुल हयात लिखी गई है उसको माजूनफलासफा भी कहते हैं, इस माजूनके बनानेवाले हकीम (दंदरूमाखस) हैं यह उस वक्तके तबीबोंके कहनेके मुताबिक बनाई गई है । उसकी विधि यह है कि सोंठ, काली मिरच, पीपल, दालचीनी, आंवला, सीतरज हिन्दी, जिरावन्द, गोल, खुशीयत, उस्सालव, चिलगोजेकी मिंगी, बाबूनेकी जड, ताजा नारियल प्रत्येक औषध १० दिरम, बाबूना ५ दिरम, मवीज मुनक्का ३० दिरम, साफ शहद दुगुना व तिगुना मिलाकर माजूनकी विधिसे माजून बनावे सब औषधियोंको अति बारीक पीसकर शहदमें मिलावें, मात्रा ४ माससे ७ व ९ मासे पर्य्यन्त है । चौथा भेद इसका यह है कि लसदार दोष मूत्र बहनेवाले मार्गमें एकत्र होकर चिपट जावे । और गांठ उत्पन्न करे इसका लक्षण यह है कि रोगी स्त्रीके व मर्दके पेडूमें बोझासा मालूम होगा और पथरी, सूजन, खूनका जम जाना, पीवका जम जाना, बढतेहुए मांस अंकुरोंके जम जानेके लक्षण इनमेंसे एक भी न जान पडे स्त्री व पुरुषका आराम तलब रहना व लसदार चीजोंका खाना जैसे गौका मांस कल्लापाया, पनीर इत्यादि और मूत्रमें कच्चे कफका उत्पन्न होना (चिकित्सा) इसकी यह है कि मूत्रके लानेवाली बलवान औषध देवे जिससे लसदार दोष मूत्र बहनेवाली नलीमें चिपट रहा है जोरसे मूत्र प्रवाह आनेके साथ निकल आवे । नम्मामके पत्र, गारके पत्र, मरजंजोश, बाबूना, सोया, इकलील, मेथी, अजमोद इनके काथमें रोगीको बैठा गोखुरूका तैल, सोयाका तैल, बिच्छूका तैल, मूत्रनलीके मुखमें टपकावे, पेड पर मलना भी अधिक लाभकारक है । औषधियोंके काढेमें रोगीको बैठानेके समय मूत्रलानेवाली औषधियोंका

पिलाना और काढेमेंसे निकलते समय मूत्र नलीके मुखमें तैलोंका टपकाना अधिक गुण करता है। वह लेप जो मसानेमें रुधिर जम जानेके प्रकरणमें लिखा गया है इस मौकेपर करना अति लाभदायक है। वमन कराना तथा हुकना (पिचकारी) लगाना लाभदायक है, मूत्र लानेवाली औषध यह है, अजमोदके बीज, रूमी सौंफ, जंगली सलगम कूट छानकर सोयाके पानीके साथ पिलावे। दूसरा प्रयोग मुर्गेका संगदान सूखाहुआ एक मिस्काल नमक हिन्दी एक दिरम, मूलीका पानी कूट छानकर गर्म जल या गधीके दूधके साथ पिलावे। तीसरा प्रयोग अजमोदका पानी, बदामके तैलके साथ पिलावे। चौथा कारण इसका यह है कि तेज मल मसाने पर गिरकर अपनी तेजीसे मसाने और मूत्रकी नलीके चेपदार मलको छील डाले, इस कारणसे कि मूत्रके निकलनेके समय अति दुःख और जलन होती है इस क्लेशके भयसे फिर पेशाब करनेकी ओर रोगी ध्यान नहीं देता इस कारणसे मूत्र बूंद २ करके आता है और इस दशासे मूत्र बिलकुल बन्द नहीं होता है। उसका लक्षण यह कि मूत्रमार्ग और मूत्रस्थानमें जलनका होना इससे पूर्व गर्मीका मालूम पडना और गर्म औषधियोंका खाना है, इस प्रकारके रोगमें जो रोगी अपने दिलको बलवान् रखे और मूत्रके निकलनेके समय दर्दको सहन करलेवे तो मूत्र खुलकर आने लगता है। क्योंकि निस्सारक शक्तिकी ओर रोगी जो ध्यान देता है उसीसे उसको कष्ट होता है, यदि निस्सारक शक्ति परसे रोगी ध्यान हटालेवे तो उसी वक्तसे मूत्र आने लगता है। क्योंकि इसका दूसरा कोई कारण नहीं है (चिकित्सा) इसकी यह है कि दोषको ठीक करनेके लिये ईसबगोलका लुआब, बिहीदानेका लुआब, मुर्रके बीजोंका लुआब, शर्बत बनफशा, शर्बत खसखास, शर्बत उन्नाब, काहूका तैल, मीठे बादामका तैल, बनफशाका तैल, जौका आटा इत्यादि खिलावे। जो औषध गर्म हैं और उनमें मूत्र निकालनेकी शक्ति है उनसे बचे रहना चाहिये जिससे तर मल अधिक न निकल जावे और ईसबगोलका लुआब, अर्बी गोंदका लुआब, मूत्रनलीके मुखमें टपकावे, जिससे उसकी नलीमें चेपदार मल आ जावे और सियाफे, अबीअज, स्त्रीके दूधमें घोलकर थोडासा बादाम अथवा कद्दूका तैल उसमें मिलाकर डालना अधिक लाभदायक है, जो शरीरसे मल अधिक निकले तो आदिमें विरेचनकी आवश्यकता समझ कर देना उचित है। पाँचवा भेद इसका यह है कि अधिक समय तक मूत्र मसानेमें रुका रहे, चाहे नींदके कारणसे होय अथवा किसी और कारणसे हो मसानेमें पेशाबके रुके रहनेसे खिंचावट और टेढापन उत्पन्न हो जावे और उसकी निस्सारक शक्ति दुर्बल हो जाय इसका लक्षण यह है कि मूत्र रुकनेके पीछे उत्पन्न होय। (चिकित्सा) इसकी यह है कि अलसीके बीज, मेथी कर्ड, कर्मकल्लेके पत्र, खत्मी इनको उबालकर इसके काढेमें रोगीको

बैठाले, इसमेंसे निकलनेके समय रोगीके मसानेको हाथसे दबावे, जिससे मूत्र निकल आवे और यह बात जाहिर है कि मसानेको हाथसे दबाना निचोडनेका काम देता है निस्सारक शक्तिको उभारनेके लिये बलसानका तैल, कूटका तैल, पेडूपर मले जो इस विधिसे मूत्र न निकले तो कासातीर (सलाईसे मूत्र निकाले) ऐसे रोगीके लिये यह बात जरूरी है कि उसके पास ऐसे कारण न होने चाहिये कि जिनसे मूत्र न निकले । छठा भेद इसका यह है कि मूत्रनलीमें घाव व फुंशी उत्पन्न हो जावें तो मूत्रके निकलनेके समय उनमें दर्द होता है और प्रकृति मूत्र निकालनेकी कोशिस करे इस कारणसे कठिनताके साथ थोडा २ मूत्र निकलने देवे परन्तु जो रोगी इस कष्टको सहन कर जावे तो थोडीही वारमें मूत्र खुलकर साफ आने लगेगा। जैसा कि हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं और इसका लक्षण यह है कि घाव और फुंसियोंके लक्षण वर्तमान होय और जो रोगी उसके कष्टको सहन करलेवे तो मूत्र सरलतासे निकल आता है और जब यह मल नलीके मलके नाश हो जानेसे उत्पन्न होय तो अग्निके होने या न होनेके अन्तर प्रगट होता है । (चिकित्सा) इसकी यह है कि-जो कुछ मसानेके लिये वर्णन किया गया है वे सब उपाय आवश्यकताके अनुसार काममें ला अफीम, भाँगके बीज इनको जलके साथ वारीक पसिकर मूत्रनलीके मुखमें टपकानेसे दर्द बन्द हो जाता है । ईसबगोलका लुआब अर्बीगोंद, इनका टपकाना भी नलीके ऊपरके भागपर चेंपदार मलको फैलाता है । इसका सातवां भेद यह है, कि-मसानेकी पीठपर चोट लगकर मसानेकी शक्तिको निर्बल कर डाले, इस कारणसे मसानेमें सूजन उत्पन्न होय-अथवा उसके भागमें सुस्ती आ जावे । यदि सूजन न हो तो उसकी चिकित्सा मसानेकी सूजनके अनुसार करे । ऐंठन उत्पन्न होय या उसके भाग सुस्त हो गये हों तो वासलीककी फस्द खोलना व गुलरोगन मलना लाभदायक है । ऐसा ही लीफोंके सुस्त पडजानेमें नर्म करनेवाली तथा बन्द करनेवाली, कब्ज करनेवाली औषधियोंके पानीमें रोगीको बैठालना हितकारक है, इस रोगकी प्रत्येक दशामें मूत्र निकलनेवाली विधिकी आवश्यकता है । चाहे मूत्रशलाका डालकर चाहे किसी और विधि व औषध आदिसे होय इस बातको जानना चाहिये कि मसानेकी लीफोंकी बनावटके निर्बल हो जानेसे उत्पन्न होय तो यह रोग अति कठिन हो जाता है । आठवां भेद इसका यह है कि मूत्रके मार्गमें अधिक गर्मीसे जैसा उष्ण ज्वरमें उत्पन्न होती ह अथवा कब्ज और रूखापन होय, उसके लक्षण यह हैं कि जो थोडासा मत्र मत्राशयमें हो वह न निकले और अधिकतासे मूत्र होय तो शीघ्र निकल आवे और मूत्रकी तेजी और जलन तथा तर वस्तुओंका इसके लिये अति लाभदायक होना इस बातका प्रमाण है । (चिकित्सा) ईसबगोलका लुआब, बिहीदानेका लुआब,

शर्वत वनफशा, गुलरोगन इनको मिलाकर पिलावे जिससे तरी उत्पन्न होय-और जौका काढा, पालकका साग, क तथा वादामकी मिंगी इत्यादि खिलावे और. मूत्र खोलनेवाली औषधियोंके क्वाथमें विठावे जिससे तरी.उत्पन्न होय, वनफशा तथा कद्दूका तैल मसानेपर मले जिससे तरी उत्पन्न होय । नववां भेद इसका यह है कि पट्ठों और रगोंमें कफके आनेसे मसानेमें और मूत्रकी नलीमें ऐंठन होने लगे-और जब कभी मूत्र आवे तो उछलकर निकले, वहनेकी रीति पर न निकले-और जो मसानेमें ढीलापन होय तो उसके लक्षण इससे विरुद्ध होते हैं । (चिकित्सा) इसकी यह है कि ऐंठ-नको नष्ट करनेका उपाय करे, चमेलीके पत्तोंके काढेमें रोगीको वैठाले और तीव्र मूत्र प्रवाही औषध काममें लावे । दशवां भेद इसका यह है कि मसानेकी गति निर्वल हो जाय और मूत्रकी चुभन माल्लम न होय जिससे मूत्रको निकाल कर वाहर करे. और मसानेकी गतिमें निर्वलता या तो इस कारणसे आती है कि मसानेमें या मसानेके पट्ठेमें किसी प्रकारका कष्ट पहुंचा होय जैसा कि सरसाममें प्रगट होता है और मूत्रग-तिका माल्लम न होनेका यह लक्षण है कि रोगीको मूत्रकी तेजी सरकनेकी गति न माल्लम होवे । (चिकित्सा) इसकी यह है कि-सौसन नर्गिस, चमेली, केशर, वलसान, इन तैलोंमेंसे जो मिलसकें उसमें थोडी कस्तूरी और जुदवेदस्तर, मिलाकर मूत्रनलीके मुखमें टपकावे और.पेड्रूपर मले । सुगन्धित वलवान् वस्तु जैसे सोयाके पत्र, पोदीनाके पत्र, सौसनके पत्र, सोयाके पत्रका रस मिलाकर लेप कर तिरियाक कवीर, मसरूदी-तूस, सिंजरीना, और माजूनमादुतुलहयात खिलावे । माउलउसूल-वेदअंजीरके तैलके साथ खिलावे, जो शरीरमें जोश होय तो वमन भी कराना लाभदायक है । करावा-दीनकादरीमें माउलउसूलकी विधि इस प्रकार लिखी है । अजनोदके जडकी छाल, राजियानाके जडकी छाल प्रत्येक १० दिरम, किव्रके जडकी छाल, आजमोदके वीज, अनीसून, राजयानेके वीज, इजखरकी जड प्रत्येक ४ दिरम असारो, वलसानके दाने प्रत्येक दो दिरम जुंतयाना सलीखा प्रत्येक २॥ दिरम उदवलसान वूजीदान हजारसन्द प्रत्येक ३ दिरम मवीजमुनक्का २० दिरम इन सव औषधियोंको पानीमें उवालकर छान लेवे इसकी मात्रा ३० मिस्कालकी देते रहना । ग्यारहवां भेद इसका यह है कि किसी कारण विशेषसे मसाना अपने नियतस्थानसे हट जावे और यह कारण मूत्र वन्द हो जानेका होय यह स्निग्ध लेप और पसीना देनेसे तथा हस्त क्रियासे अपने ठिकाने पर नियत किया जावे । वारहवां भेद इसका यह है कि जो अवयव मसानेके पास हैं जैसे आंत, गर्भाशय, गुदा, नाभि, पेडू इत्यादि इनमें गंभीर वडी सूजन होय गर्भा-शय अपने नियत स्थानसे हट जावे अथवा योनिमुखमें आ जावे मूत्रवस्ति पास होनेके कारणसे मूत्रमार्ग दव जावे और मूत्रका आना वन्द हो जावे, इस भेदके

लक्षण चिकित्सा यूनानी तथा डाक्टरीसे पूर्व उन प्रकरणोंमें देखो । तेरहवां भेद इसका यह है कि जो हड्डी मसानेकी सीधमें है वह अपने स्थानसे हट जावे तो इस कारणसे मूत्र बन्द हो जावे और इसको सिलसिलबोल यानी मूत्र बारम्बार आता है सो आगे कथन किया जावेगा।

यूनानी तिब्बसे मूत्र बन्द हो जानेकी चिकित्सा समाप्त।

यूनानी तिब्बसे एक एक बिन्दु मूत्र आनेकी चिकित्सा।

प्रथम भेद इसका यह है कि गर्म दोषोंके कारणसे मूत्रमें तेजी आ जाय उसके लक्षण यह हैं कि मूत्रमें जलन और जर्दी, वारम्बार मूत्रको उठना यह भेद पुरुषको स्त्रीप्रसंगसे और स्त्रीको पुरुषके अधिक प्रसंगसे तथा गर्म वस्तुओंके भोजन, गर्म औषधियोंके खाने और अधिक परिश्रम गर्मी व धूपमें किया जावे इत्यादिसे उत्पन्न होता है, अक्सर गर्मीके समयमें और गर्म प्रकृतिमें और जवान उमरके स्त्री पुरुषोंको होता है। (चिकित्सा) इसकी यह है कि, ठंढी चीजोंका शीरा जैसे खुरफे, कद्दूक बीज, खरबूजेके बीज, कासनीके बीज, काहूके बीज, ककडी खीरेके बीज, कासके बीज, तरबूजके बीज, कुरस, मासिकुलवोल ये सब ठंढी चीजें मिलाकर पिलावे और जौका काढा, कासनी, काहू कद्दू इत्यादि खिला शर्बत वनफशा, शर्बत खसखासका पानी लाभदायक है, तथा कुरस, मासिकुलवोल इत्यादि देवे। (मूत्र रोकनेवाली टिकियाकी विधि) वंशलोचन, सूखा धानियां चूकाके बीज, गिलेअर्मनी, चंदन, गुलअनार अर्बीगोंद कूट छानकर काहूके पानीके साथ मिलाकर एक मासेके प्रमाण टिकिया बना दिनमें ३ व ४ टिकिया खावे। दूसरा भेद इसका यह है कि मसानेके जिस्ममें निर्बलता आनेसे व उसकी प्रकृतिमें ठंढ पहुंचनेसे अथवा उन पट्ठोंमें जो मसानेके चारों ओर लगे हुए हैं ढीलापन आनेसे निस्सारक शक्ति निर्बल हो जाय इसका लक्षण यह है कि मूत्र सफेद हो प्रथम शीतल औषधियोंका सेवन, पिलासका न लगना और आपसे आप मूत्रका निकल जाना ये इस रोगके सबूत हैं। (चिकित्सा) इसकी यह है कि गर्म माजूने जैसे मसरीदूतस, इतरीफलकवीर, जवारिस कुंदर, संजरीना, बलूतकी छाल, हब्बुलास मिलाकर खाना अधिक लाभदायक है और मासकुलवोल गर्म भी ऐसा ही लाभदायक है। अंजीर तथा मवीज मसानेको गर्म और साफ करनेमें विशेष हैं और रोग वेदअंजीर खाना और मलना तथा मोमयाइरोगन जम्बक यां बादामके तैलमें घोलकर मूत्रनलीके छिद्रमें टपकाना, इसमें रूईका फोहा भिगोकर गुदामें रखना अधिक गुणदायक है (गर्म मास कुल वोलटिकियाकी विधि) बलूत, कुन्दर, प्रत्येक १० दिरम, साद, खुरफा, कुलींजन, रासन, वजकहरुवा प्रत्येक एक मिस्काल इन सबको बारीक कूटकर दो दिरम पुरानी शराब व मुसाल्लिसके

साथ देवे और काकला एक मिस्काल, प्रतिदिवस खाना विशेष लाभकारक है। चनेका पानी गर्म औषधियोंमें पकाकर खिलाना अति लाभदा[illegible] । तीसरा भेद इसका यह है कि सूजन व पथरी अथवा रुधिरका जम जाना या मसानेकी खुजली, घाव इनसे मूत्र बूंद २ आता हो तो ऊपर लिखे मुताबिक चिकित्सा इनकी क्रमानुसार करनी उचित है । यूनानी तिव्वसे विन्दुविन्दु मूत्र आनेकी चिकित्सा समाप्त ।

यूनानी तिव्वसे सिलसिलवोलकी चिकित्सा ।

यह रोग यानी, सिलसिलवोल, स्त्री व पुरुष दोनोंको होता है और यह छोटी उमरवाली स्त्रियोंमें अक्सर देखनेमें आया है । इस रोगकी व्यवस्था इस प्रकारसे है कि मूत्र वे मालूम निकल जावे और यह कई प्रकारसे होता है प्रथम भेद इसका यह है कि मसाना अथवा वह पट्ठा जो मसाने पर मढाहुआ है, ठंढ और तरीके कारणसे ढीला हो जाय । उसका लक्षण यह है कि मूत्रमें सफेदी होय और जलन न हो प्रकृतिमें सब ठंढे उपद्रवोंके लक्षण प्रगट होयँ, अक्सर यह भेद ठंढे और तरीदार रोगोंके अन्तमें उत्पन्न होता है । (चिकित्सा) इसकी यह है कि, गर्म और कब्ज करनेवाली औषधियां जैसे साद, कुन्दर, कुलीजन इत्यादि देवे, इसके अनुसार मसानेमें गर्मी पहुंचावे और नीचेकी तरीको सुखावे और ठंढी तथा कब्ज करनेवाली वस्तुओंमें जैसे वलूतकी छाल, गुलनार, हब्बुल्लास, इत्यादि मिलाकर देवे और मुश्क, जुंदवेदस्तर, गर्म तेलोंमें मिलाकर मसाने तथा पेडूपर मले और सबसे उत्तम इतरीफल, कबीरका खाना है । इस रोगके वास्ते जो इतरीफल बनाया जावे उसकी औषधियोंको गौके घृतमें भून लेवे ।

इतरीफल कबीर ।

शकाकुल, सोंठ, तोदरीसुरख, तोदरीपीली, इन्द्रजौ, वहमनसुर्ख, वहमन सफेद, हब्बकुलकुल, धुलेहुए, तिल शकरतत्ररजद, खसखास सफेद प्रत्येक ७ मासे काविलीं हरडकी छाल, काली हरडकी छाल वहेडेकी छाल, गुठली निकाले हुए आँवला, काली मिरच, पीपल १।।। पौने दो तोला सबको कूटकर वस्त्रमें छान लेवे और औषधियोंसे चतुर्थांश गोघृतसे चिकनी करके जरा गर्म करके मिला झागदार शहत औषधियोंसे तीन गुणा लेकर सबको मिला तीन महीने रखा रहने देवे, वाद तीन महीनेके काममें लावे । मसानेके रोगोंकी अपेक्षा कितने ही रोगोंको नष्ट करता है। मात्रा इसकी ३ मासेसे ७ मासे पर्यंत है । वलूतकी छाल, मस्तगी, साद, छोटी हरड, कन्द ये समान भाग लेकर इनका चूर्ण बना इसका सेवन करना अति लाभदायक है। तवीव लोगोंने लिखा है कि लोमडी-का भुना हुआ मांस खाना इस रोगको और पीठके दर्दको अति लाभकारक है । दूसरा भेद इसका यह है कि वह हड्डी जो मसानेकी सीधमें है चोटके कारणसे वाहरकी ओर

व भीतरकी ओर हटजाय इस बातको जानना चाहिये कि जिस दशामें हड्डी बाहरकी ओर हट जायगी तो वह दो लक्षणोंसे बाहर नहीं ह, एक ता यह कि मसानेकी रगें कट जाय इसके यह लक्षण हैं कि हड्डी उभरकर ऊंची हो जाय। इसकी चिकित्सा तिब्बकी रायसे असम्भव है क्योंकि टूटी रगें ठीक नहीं हो सकीं, दूसरे यह कि वे रगें अपने स्थानसे बाहर हो टूटी न होयँ लेकिन रगोंकी खिचावटसे जो हड्डियोंके दूर हो जानेमें होता है वह पट्ठा जो सामनेको दवता है उसको कष्ट पहुंचता है। (चिकित्सा) इसकी यह है कि हड्डियोंको उनके स्थानपर हटा लावे और कभी हड्डियोंके टल जानेसे मूत्र निकालनेमें तङ्गी आ जाती है, जो हड्डियां भीतरको सरक जावें तो उसकी चिकित्सा यह है कि पछने खींचनेसे अथवा जिफ्तके लेपसे हड्डियोंको खींचकर अपने स्थान पर लावे। तीसरा उपद्रव इसका यह है कि गर्म प्रकृतिका उपद्रव मसानेमें अधिक उत्पन्न होय, इसका लक्षण यह है कि प्रकृतिमें अग्नि (गर्मीकी अधिकता होय) और मूत्र रंगीन आवे, गर्म औषधियोंसे हानि पहुँचे (चिकित्सा) इसकी यह है कि गुलनार, वंशलोचन, गिलेअर्मनी, खुरफेके बीज, काहूके बीज ये समान भाग लेकर टिकिया बनाकर काममें लावे, तीन चार टिकरी हररोज खा जो कुछ गर्म जावीतसमें कथन किया गया है उसको काममें न ला कब्ज व ठंढी करनेवाली बस्तु काममें लावे। चौथा भेद इसका यह है कि जो अवयव मसानेके समीप हैं जैसे गर्भाशय टूंडी (नाभि) आदिमें बडी सूजन उत्पन्न होय और इन अवयवोंकी सूजनके कारणसे मसाना दव जावे तो आँतोंमें बहुतसा फोक जमा होकर मसानेको तङ्ग करे और इसी प्रकारसे वह भारी गर्म होता है। (चिकित्सा) इसकी यह कि कारणको निश्चय करके उसको नष्ट करे। पांचवां भेद इसका यह है कि जो मूत्र लानेवाली वस्तु जैसे शराब, खरबूजा इत्यादि वारम्वार मूत्र आनेका कारण होय उनका खाना बन्द करे। (चिकित्सा) इसकी यह है कि कारणको नष्ट कर उसके पीछे जो रोगकी स्थिति रहे उसकी क्रियाके अनुसार ठीक करे,। छठा भेद इसका यह है कि मसानेके नीचे हट जानेसे यह रोग होय तो इसका कथन ऊपर हो चुका है उसका उपाय उसी माफिक करे।

यूनानी तिब्बसे सिलसिलबोलकी चिकित्सा समाप्त।

यूनानी तिब्बसे सुषुप्ति अवस्थामें मूत्र निकल जानेकी चिकित्सा।

यह रोग अक्सर बच्चोंको होता है, परन्तु बालकपनकी आदत किसी २ लडकीको पड जाती है तो वह युवावस्था आने पर भी बनी रहती है। परन्तु लडकोंको जवानीकी उमर आने पर यह रोग अपने आप निवृत्त हो जाता है, परन्तु बेसहूर लडकियोंको यह रोग १७। १८ सालतककी उमरमें भी देखा गया है। (चिकित्सा)

इसकी यह है कि उस वस्तुका सेवन करावे जो ऊपर सिलसिलवोलके मर्जमें कथन की गई हैं, जो मसानेकी ठंढ और पट्टेके ढीला हो जानेके भेदमें (अर्थात् जल्दी मूत्र आनेके) प्रकरणमें कथन की गई हैं। और यह जानना चाहिये कि प्रायः यह रोग जो स्त्रियोंकी जवान उमरको पकड लेता है तो अति कठिनतासे जाता है। यदि यह रोग स्त्रियोंकी जवानी आनेपर भी न जावे तो इसका उत्तम उपाय यही है कि रात्रिको कई समय सोतेसे उठाकर इस रोगीको मूत्र त्यागनेकी याद दिलावे थोडे दिवस तक ऐसा करनेसे आदत छूट जाती है। यदि इस तर्कीबसे भी यह आदत न छूटे तो रात्रिके समय भोजन और पानी न देवे ठंढी और गीली वस्तुके खानेसे रोगीको रोक सोसनका तैल व वानके तैलमें थोडीसी मुश्क और फरफयून मिलाकर पेडूपर मल शहत व गुलकन्द खिलावे। आगे कथन किया हुआ औषध प्रयोग इस रोगके लिये अति लाभ पहुंचानेवाला है। जीरा, कुन्दर, हब्बुलास प्रत्येक पाँच मिस्काल, शहत ४० मिस्काल इन दोनोंको मिलाकर २ दिरमके अंदाजकी मात्रासे तीन समय रोगीको सेवन करावे।

यूनानी तिब्बसे सुषुप्ति अवस्थामें मूत्र निकल जानेकी चिकित्सा समाप्त।

यूनानी तिब्बसे मूत्रमें रुधिरके आनेकी चिकित्सा।

इस रोगके तीन भेद हैं, प्रथम भेद यह कि कोई नस गुर्देमें खुल जावे या फट जावे तो इसका लक्षण यह है कि साफ पतला रुधिर विना दर्दके निकले, पीला पानी व मैल कुछ नहीं होवे यदि रगोका मुख खुला होय तो थोडा २ रक्त उसमेंसे निकले जो रग फटगई होय तो अधिक रक्त उसमेंसे निकले और एक साथ जोशमें निकले, गुर्देपर चोटका पहुंचना और तेज विषैली औषधियों तथा अन्य वस्तुओंका खाना इस बातका साबूत है और यह जानना चाहिये कि जो खूनी मूत्र गुर्देकी रगके खुलने या फट जानेसे होता है तो रुधिर बवासीरकी तरह किसी ठीक समय पर कभी निकलता है। और जिस समय बन्द हो जाता है तो गुर्देकी रगोंके भर जानेसे नितम्बकी हड्डियोंकी ओर दर्द मालूम होता है, जिस समय रुधिर निकलने लगता है तो दर्द कम हो जाता है, रगोंके भर जानेतक कम ही रहता है। (चिकित्सा) इसकी यह है कि बासलीक और साफनकी फस्त खोले और कहरुवाकी टिकिया बोलउद्दम (खूनी मूत्र आनेके रोकनेवाली टिकिया) और नफस उद्दम (खूनका थूकना) इन टिकियोंमेसे देवे और उन्नावका शर्बत सूखे धनियेके साथ और खस-खासका शर्बत रीवाज, काकनुज ये सब लाभदायक हैं। तबीबलोग कहते हैं कि गुदा और पेडूपर पछने लगाना इस रोगके लिये लाभदायक है, जो रक्तकी तेजी इस

रोगका कारण होय तो शीतल जलका मसाने पर तर्डा देवे व बर्फ बांध खट्टे आहार गर्म जलसे स्नान करना अधिक परिश्रम करना और शीघ्रतासे चलना ये इस रोगमें अधिक हानिकारक हैं। (बोलउद्दमकी टिकियाकी विधि) खीरे ककडीके बीजकी मिंगी चार दिरम, निसास्ता, कतीरा, गुलनार, सुर्ख दम्मुलअखवैन, अर्बीगोंद प्रत्येक एक दिरम सबको बारीक कूट छानकर खुरफा अथवा वातरंगके पानीके साथ गूंदकर एक एक मासेकी टिकिया बना आवश्यकताके अनुसार पांच छः टिकिया पर्य्यन्त १ दिवसमें देवे। दूसरा भेद इसका यह है कि गुर्दा व कलेजा निर्बल हो जाय इस कारणसे रक्त जलसे अच्छी तरहसे अलग न होय और मूत्रके साथ निकले। लक्षण इसका यह है कि मूत्र मांसके धोवनके समान सुर्खी लिये हुए निकले जो गुर्देकी निर्बलतासे होय तो सफेदी लियेहुए मूत्र आवेगा और कुछ गाढा होगा, जो कलेजेकी निर्बलतासे होगा तो सुर्खीके साथ पतला होगा। (चिकित्सा) इसकी यह है कि पूर्व जो कुछ कलेजे और गुर्देकी निर्बलतामें वर्णन किया गया है उस कारणके लक्षणके अनुसार चिकित्सा करे। तीसरा भेद इसका यह है कि मूत्रके अवयवकी रगोंमें जखम उत्पन्न हुआ होय इस कारणसे रक्त मिश्रित मूत्र आने लगे। इन रगोंमें जखम होनेके अनन्तर ही कष्ट उत्पन्न होता है और लक्षण उसका यह है कि पीब मिश्रित रक्त मूत्रके साथ आवे और मूत्रमें सडीहुई दुर्गन्धी हो मूत्र थोडा २ निकले विशेष करके यह जखम मसानेकी रगोंमें होता है। (चिकित्सा) इसकी यह है कि जो कुछ उपचार मसानेके घावोंमें वर्णन किया गया है उसका इस रोगमें भी उपचार करे और गिलेअर्मनी तथा काकनजकी टिकिया अति लाभदायक है और कुंदरू, गिलेअर्मनी, वंशलोचनकी टिकिया मुमसिब सब भेदोंमें लाभदायक है।

यूनानी तिब्बसे-मूत्रमें रक्त आनेकी चिकित्सा समाप्त।

डाक्टरीसे गुदास्थि शूलकी चिकित्सा।

डाक्टरीम गुदास्थि शूलको (कोकसालजया) कहते हैं इसका निदान आयुर्वेद वैद्यक तथा यूनानीमें नहीं पाया जाता गुदास्थि जो कि गुदाके पीछेके भागमें दोनों नितम्बोंके बीचमें मलद्वारके समीप कटिभागसे सम्बन्ध रखनेवाली अन्तकी हड्डी है उसके अन्दर किसी २ समय पर दर्दका चस्का निकलता है, इसको धक्का पहुंचनेसे अथवा किसी वस्तुके चोट लगनेसे अथवा किसी ऊंची सवारी व ऊंचे स्थानसे गिरनेसे अथवा अन्य किसी कारणसे हड्डीमें कुछ सदमा पहुंचा होय तो उसमेंसे शूलका चस्का निकलता है। इसके लक्षण इस प्रकारसे हैं कि उठते बैठते चलते समय तथा मल त्यागनेके समय पीडा होती

है, विशेप करके इस रोगवाली स्त्री एक नितंब पर शरीरका भार रखके बैठती है और जब उठती है तो बहुत आइस्ते २ उठती है (कोकसीकस) पर दावनेसे दर्द होता है और पुरुपसमागमके समय अत्यन्त पीडा होती ह ।

गुदास्थि शूलकी चिकित्सा ।

इसकी चिकित्सा यह है कि सक करना अफीम तथा वेलोडोनाका लेप करना । अथवा अफीम तथा लोहबानका तैल लगाना, ब्लीस्टर लगाना । यदि त्वचाके भागमें शोथ हो तो जलौका लगाकर रक्त मोक्षण करना, अथवा मोर्फियाकी पिचकारी लगाना इन ऊपर लिखेहुए उपायोंसे आराम न होवे और हड्डीमें कुछ विशेप खराबीके लक्षण माल्रम पडें तो कोकसीकसको काटकर निकाल जखममें ओडरोफार्म भरके टांके लगाकर सी कर ऊपरसे कार्बोलिक लोशन रख तीसरे दिवस टांके काटकर व्रणके समान रोपण उपाय करके जखमको सुखावे ।

स्त्रियोंकी कटिपीडा व कटिगत शूलकी चिकित्सा ।

प्रायः देखा गया है कि स्त्रियोंकी कमरका दर्द भी विशेप दुःखप्रद है, कई प्रकारके पृथक् २ कारणोंको लकर यह दर्द होता है । जैसें रजोदर्शनका यह स्वाभाविक चिह्न है और रजोदर्शन स्त्रीको प्रथम ही बार युवावस्थाके आरम्भमें आनेवाला होय उस समय पर अथवा हर समयके रजोदर्शनके समयमें भी रहता है । इस प्रकार यह दर्द स्वाभाविक और तन्दुरुस्त रजोदर्शनमें भी रहता है, लेकिन जिस समय पर इस अङ्गकी कुछ विकृति होय तब यह विशेप शक्त होता है । पीडितार्त्तवमें तथा अत्यार्त्तवमें यह दर्द विशेप होता है, किसी २ स्त्रीको पीडितार्त्तवमें इतना शक्त दर्द होता है कि इसके कारणसे स्त्री शान्तिपूर्वक वैठ नहीं शक्ती, बेवस पडी रहती है रजोदर्शनके अतिरिक्त कमलकन्दके क्षतको लेकर अथवा गर्भाशय, गर्भ अण्ड इनका स्थानान्तर हुआ होय तो इसके कारणसे भी कमरमें दर्द रहता है । जिस स्त्रीको प्रदरका निरन्तर स्राव रहता होय उसकी कमर भी निरन्तर दुखती रहती है, इसी प्रकार मूत्रमार्गकी और गर्भाशयके उपाङ्गोंकी व्याधिसे भी कमरमें निरन्तर दर्द बना रहता है । गर्भाशयकी व्याधिको लेकर दस्तकी कब्जी रहती है यह कारण भी कमरमें दर्द उत्पन्न करनेवाला है । सन्धि वातशूल: तथा सफराकी व्याधिसे भी कमरमें दर्द रहता है चाहे जिस व्याधि व अन्य किसी कारणसे शरीरमें क्षीणता उत्पन्न हुइ होय इसस भी कमरमें दर्द रहना संभव है, यह दर्द परिश्रम करनेवाली स्त्रियोंकी अपेक्षा वैठनेवाली स्त्रियोंमें अधिक देखा जाता है । (चिकित्सा) इसकी यह है कि कटिपीडाका जो कारण चिकित्सकको निश्चय होवे उसको निवृत्त करना यही कमरके दर्दका मुख्य उपाय है और दस्त साफ आता रहे ऐसी औषधका सेवन

करा उत्पत्तिकर्म अवयवकी व्याधिके योग्य उपाय जो पूर्व प्रकरणोंमें लिखे गये हैं वे काममें लाना चाहिये। साथही उस गुह्यस्थानके भागको साफ रखना योग्य है, बाद स्त्रीको जो आहार पोषणके अर्थ दिया जावे वह पौष्टिक होना चाहिये, इसके साथ ही हलका और शीघ्र पचनेवाला भी होवे। और रोगी स्त्रीको शान्त परिश्रम करना चाहिये—और कटिके दर्दके लिये सामक औषध देना, अफीम अथवा अफीम मिश्रित कोई बनावटी औषधका प्रयोग देना अथवा मोर्फिया परिमित मात्रासे देना। कमरके ऊपर तंग पट्टा बांधना अथवा कमरके भागपर कोरा सेंक देना, अथवा पोस्तके डोडा जलमें पकाकर उनके काढेकी भाफका सेंक व फलाटेनका कपडा भिगोकर निचोडके सेंक देना वातनाशक और पीडानाशक औषध कमर पर चुपडना—लीनीमेन्ट वेलेडोना १ ड्राम लिनिमेन्ट ओपाई १ ड्राम, केम्फको २ ड्राम—टारपीटनका तैल ५ ड्राम इन सब औषधियोंको मिलाकर चुपडनेसे दर्द कम हो जाता है। यदि इस प्रयोगको काममें लाने पर भी दर्द असह्य होता होय तो $\frac{1}{3}$ ग्रेन मोर्फियाकी पिचकारी मारनी कमर पर्यन्त गर्म जलमें बैठनेसे पीडा शान्त हो जाती है।

कटि पीडाकी चिकित्सा समाप्त।

वन्ध्यादोषकी परीक्षा प्रणाली।

इस ग्रन्थका उद्देश यह है कि जिन स्त्रियोंके सन्तान नहीं होती वे अपने स्त्रीरूप जीवनको भाररूप समझती हैं, उन स्त्रियोंमेंसे कोई तो जन्मसे ही वन्ध्या होती हैं और कोई बीचमें किसी प्रकारकी व्याधिमें फँसकर वन्ध्या दोषको धारण करती हैं। इस ग्रन्थमें उन वन्ध्यत्वके सब दोषोंकी परीक्षा प्रणाली तथा निवृत्तिके उपाय जहांतक योग्य समझे गये हैं वैद्यक यूनानी और डाक्टरी तीनों प्रकारकी चिकित्सा प्रणालीसे ऊपर लिखे गये हैं। वन्ध्यत्वके सम्पूर्ण दोषोंसे मुक्त होकर स्त्री युवावस्थामें सन्तानकी माता बने यही इस ग्रन्थका मुख्य उद्देश ह। यदि जो वन्ध्या स्त्री वन्ध्यादोषकी निवृत्तिके अर्थ चिकित्सकके समीप आवे और औषधोपचार करानेकी चेष्टा रखती हो तो उसकी परीक्षा इस प्रकारसे करे कि प्रथम उस स्त्रीसे सब हाल जबसे कि उसको प्रथम रजोदर्शन आया था तबसे लेकर और चिकित्सक समीप पहुंचे तबतकका दर्याफ्त करे चिकित्सकको उचित है कि स्त्रीके कथन कियेहुए हाल पर बराबर कान लगाये रखे, जो कुछ कथन वन्ध्या स्त्रीने किया है उसपर आति सूक्ष्मदृष्टिसे सब विषयों पर विचार करे। इस प्रकार विचार करनेसे यदि स्त्रीके कथन पर ही कोई कारण मिल जावे तो ऊपर कथन कियेहुए निदानसे मिलान करे, यदि न मिले तो स्त्रीकी विशेष परीक्षा करनी उचित है। जो २ कारण वन्ध्यत्व प्रतिपादन करनेवाले

शारीरिक विद्याके ज्ञाताओंने शोधन करके निकाले हैं यूनानी और डाक्टरीसे उन सब ऊपर लिखेहुए कारणोंमेंसे नम्बरवार लक्षपूर्वक देखकर परीक्षा करनेसे वन्ध्यत्वका योग्य कारण मिलना संभव है । इसकी अपेक्षा स्त्रीमें अमुक कारणसे ही वन्ध्या दोप प्राप्त हुआ है यह सरलतापूर्वक जाननेके लिये नीचे लिखी पद्धतिके प्रमाणसे स्त्रीकी परीक्षा करनेकी आवश्यकता है । यदि स्त्रीकी परीक्षा करने विदून किसी समय पर वन्ध्यादोष स्थापित करनेवाला यथार्थ कारण मिल भी जावे परन्तु परीक्षा प्रणालीके अनुसार तथा प्रत्येक रोगी स्त्रीमें इस प्रकारसे परीक्षा करनेसे कितने ही समय जहां कहीं कोई कारण सरलतासे नहीं मिलसके वहां उसका योग्य यथार्थ कारण शोधनेके लिये साधन मिलता है और मुख्य कारणके अतिरिक्त दूसरे भी कितने ही कारण वन्ध्यत्व प्रतिपादन करनेवाले स्त्रीके शरीरमें रहते हैं कि नहीं इसका भी यथार्थ ज्ञान चिकित्सककी विशेष परीक्षा करनेसे होता है । इसके साथ ही यह भी निश्चय होगा कि वन्ध्या स्त्रीकी कौन २ व्याधि शान्त होकर कितने दर्जेतक सुधर सक्ती है और चिकित्सकका अनुक्रम किस प्रकारसे करना होगा, यूनानी तथा डाक्टरी इनमें कौनसी चिकित्सासे स्त्रीको लाभ पहुंचेगा । यह सब प्रक्रिया निश्चय होना सम्भव है, जो वन्ध्या दोषवाली स्त्री आवे उससे सभ्यतापूर्वक उसकी सर्व हकीकत पूछे । स्त्री जो कुछ अपनी शारीरिक व्यवस्था कथन करे उसको ध्यान देकर श्रवण करे अनेक स्त्रियां प्रसंग विरुद्ध बातें करने लगती हैं उन बातोंसे चिकित्सकको उदासीन न होना चाहिये किन्तु स्त्री चाहे जैसा ऐंडाबेंडा कथन करे परन्तु चिकित्सकको उसमेंसे मुख्य २ बातें जो रोगके अनुकूल मिलसकें उनको ग्रहण करके रोगी स्त्रीके शरीरमें तलाश करे कि मिलता है कि नहीं । यदि स्त्रीके कथनमें कुछ संदेह ज्ञात होवे तो पुनःप्रश्न करके चिकित्सकको संदेह भरे कथनकी निवृत्ति कर लेनी योग्य है, जो वन्ध्यत्वका मुख्य कारण हो उसको निश्चय करके ध्यानमें रखना योग्य है । एवं स्त्रीके शरीरमें ऋतुस्रावकी कुछ विकृति है अथवा स्पर्शासह्य योनि, योनिमार्गका चर्म, किन्तु पेटमें किसी प्रकारकी ग्रन्थि अथवा अन्य प्रकारके कितने ही रोग जो कि वन्ध्या स्त्रियोंमें मिलना संभव हैं जैसे कि प्रदरादि । जब इस प्रकारकी कोई विकृति मिले तो उसका कारण तलाश करे कि इसका मुख्य कारण क्या है ? उसको पूर्ण रीतिसे शोधकर निकालना योग्य है । यदि इस परीक्षाके समय गर्भाशयकी व्याधि कारणभूत होय तो मिलने सक्ती हैं, यदि इस परीक्षा करनेके समय और स्त्रीके कथन तथा रोगके लक्षणोंकी ऐक्यता मिलानेके स्थलपर चिकित्सकको कोई अगत्यका विषय जान पडे तो इसका विचार सूक्ष्मदृष्टि और गंभीर बुद्धिसे करे कि जिसका पूर्ण रीतिसे निश्चयपूर्वक ज्ञान हो जावे उस समय उसका उपचार करनेका

उद्योग करना उचित ह । प्रदर तथा ऋतुविकृतिके लिये रोगी स्त्रीकी स्थिति पूछनी और स्त्रीके कथनमेंसे जो कोई कारण मिले अथवा चिकित्सककी परीक्षासे कोई सूक्ष्म कारण मिले उसका उपाय करना । इसके अतिरिक्त स्त्रीका शरीर अवलोकन करना चिकित्सकको आत आवश्यक है, क्योंकि शरीरकी ओर लक्ष देनेसे वन्ध्यत्व प्रतिपादन करनेवाली किसी व्याधिका कारण शरीरमें होगा तो जान पडेगा । जैसा कि सर्वाङ्ग व्याधि, पाण्डुरोग, व निर्बलता, शरीरका कोई भाग अपूर्ण प्रफुल्लित हुआ होय शरीरके किसी भागकी न्यूनताके साथ प्रजोत्पत्तिवाले अङ्गकी न्यूनता व अपूर्णता जो कुछ होगी उसका ज्ञान यथार्थ रीतिसे शरीर अवलोकनसे होगा एवं स्त्रीकी दाढी मूंछ पर यदि बाल उगे होवें तो जानना कि इस स्त्रीके शरीरमें पुरुषपनके विशेष चिह्न प्राप्त हुए हैं । इस कारणसे स्त्रीपनके चिह्नकी न्यूनता इसके शरीरमें प्रजोत्पत्ति कर्ममें अथवा अवयवमें कुछ बाधक है, अथवा किसी अंगमें न्यूनता है, कितनी ही स्त्रियोंके मस्तकके केश गिर पडते हैं इससे उसके शरीरमें उपदंश रोगकी विकृतिका अनुमान होता है । इस रीतिसे शरीर अवलोकन करनेसे जान पडे कि स्त्रीका शरीर बराबर प्रफुल्लित हुआ ह तथा स्त्रीके कथनके अनुकूल उसका शरीर बराबर स्त्रीपनमें विद्यमान है ऐसा निश्चय मालूम पडता होय तो समझना कि इस वन्ध्या दोष जाहिर करनेवाली स्त्रीके प्रजोत्पत्ति कर्म अवयवकी कोई भी अपूर्णता व खामी नहीं है । जिससे वन्ध्यत्वके कारण तरीकेसे गर्भाशय अथवा गर्भ अण्डकी कोई व्याधि है ऐसा अनुमान चिकित्सकको करना उचित है और अपूर्णताके साथ स्त्रीके शरीरमें पृथक् जातिका बेडोल फेरफार होता है जिसके न होनेसे यह निश्चय होगा कि उसकी विकृति नहीं है । शरीर अवलोकन करनेके समय यह भी देखना चाहिये कि स्त्रीकी उमर कितनी है और शरीर बलवान् है कि निर्बल यह निश्चय करलेना जरूरी है । इन सब बातोंका निश्चय करके स्त्रीके भविष्यका विचार करना होता है, कि वन्ध्यत्व दोषमेंसे कितने दर्जे स्त्री सुधर शक्ती है और इस स्त्रीकी चिकित्सा किस क्रमसे करनी चाहिये इत्यादिका अनुमान चिकित्सकको होगा । जो स्त्री स्थूल, मेद वृद्धिसे मोटी होगई होय तथा स्त्रीके पैरोंपर रस उतरा होय (यह रोग प्रायः दक्षिण आर पश्चिम समुद्र तटस्थकी रहनेवाली स्त्रियोंमें देखा जाता है) अथवा स्त्रीके पेटमें गुल्म व किसी प्रकारका उदर विकार होय इन सबका निश्चय करना चिकित्सकको उचित है । अब अवलोकन प्रणालीपरीक्षाके दो भाग करनेमें आते हैं । एक तो शारीरिक अवलोकन, दूसरा प्रजोत्पत्तिकर्म अवयववाले अङ्गोंका बाहरसे आभ्यन्तरतक अवलोकन

ऊपर कथन की हुई दोनों रीतिकी परीक्षा यानी स्त्रीसे सब हकीकत पूछना और शारीरिक अवलोकन करनेसे वन्ध्यत्व प्रतिपादन करनेवाले कारण कुछ भी न मिलें तो इसके अनन्तर ऊपर लिखीहुई परीक्षाके दूसरे भागकी परीक्षाका क्रम देखना चाहिये, कदाचित कोई कारण मिल जावे तो स्त्रीकी परिपूर्ण परीक्षा करनी योग्य है। क्योंकि स्त्रीमें वन्ध्यत्व दोष स्थापित करनेवाला एकही कारण है कि कोई दूसरा भी है अथवा नहीं है। कितने ही समय स्त्रीसे हकीकत पूछनेसे तथा दृष्टिसे शरीर अवलोकन करनेसे वन्ध्या स्त्रीके शरीरमें जो विकृति जान पडे उसके साथ ही किसी समय किसी २ स्त्रीके गर्भाशयमें भी किसी रोगकी विकृति होती है इसी प्रकार किसी समय जो विकृति जान पडे उस विकृतिके कारणके तरीकेसे भी किसी समय गर्भाशयकी कोई व्याधि होती है इसलिये चिकित्सकको उचित है कि परीक्षा पूर्ण रीतिसे करे। अब पीछेकी परीक्षाके अनुसार पैरसे लेकर मस्तक पर्य्यन्त जैसे सामान्य परीक्षा की जाती है उसी प्रकार अन्य शारीरिक रोगोंमें मुख जीभ, नेत्र, नाडी, छाती, पेट आदि देखकर निदान करना चाहिये। इसी प्रकार स्त्रीके शरीरमें कोई दूसरा रोग जिसको सर्वाङ्ग रोग कहते हैं, है कि नहीं यह सब निश्चय करना। यदि शरीरके किसी भागमें सूजन गुल्म ग्रन्थि आदि हो तो उस भागको दबाकर देखना, तथा कोई भाग गल गया है अथवा चर्वी रहित हो गया है उसका पूर्ण परीक्षा करके निश्चय करना, इस परीक्षाके अनन्तर स्त्रीके प्रजोत्पत्ति कर्म अवयवकी परीक्षाकी आवश्यकता होती है। इस परीक्षाके करनेमें प्रथम सृष्टि उत्पत्ति कर्मके बाह्य अवयवकी परीक्षा आती है, बाह्य अवयवमें बाह्य और अन्तर्योनि, ओष्ठ मूत्रमार्गका मुख क्लीटोरीस (योनिलिङ्ग) योनिमुख इत्यादि और स्तन ये स्तन भी वन्ध्यास्त्रीके परीक्षा करने योग्य हैं। क्योंकि स्तन पूर्णरूपसे प्रफुल्लित हुए कि नहीं, इन सबकी परीक्षा करके निश्चय करना। यदि बाह्यावयवमें कुछ अपूर्णता अथवा न्यूनता व विरूपता हो तो अन्तरावयवमें भी विरूपता होना संभव है, इसके अतिरिक्त कितने ही समय योनिद्वारके आगे दृढ योनिपटल होता है यह पटल है कि नहीं इसका निश्चय करना। कारण पूर्ण उमरवाली स्त्रीकी योनिमें जो यह योनिद्वार पर दृढ रीतिसे रुकावट होय तो इससे ऋतुस्रावकी रुकावट और दूसरी कितनी ही गर्भाशयकी व्याधि होना संभव है। यह पटल बाह्यावयवकी गणनामें नहीं है, (किन्तु एक प्रकारका विशष उत्पन्न हुआ भाग कितनी ही स्त्रियोंमें देखा जाता है) जिससे इसकी स्थितिके अभाव अन्दरके मर्मस्थानकी कोई विकृति सूचक नहीं, इसके अनन्तर अन्तरावयवकी परीक्षा करनेकी आवश्यकता है। यह भाग बाह्यावयवसे ढकाहुआ है इस कारणसे खुले नेत्रसे देखनेके लिये साधनकी आवश्यकता

पडती है, इसलिये नलिकायन्त्रकी सहायतासे गर्भाशय तथा योनिमार्गकी स्थिति जानी जाती है अन्तरावयवमें १ योनिमार्ग २ गर्भाशय ३ गर्भ अण्ड और ४ फलवाहिनी इतने अङ्ग आते हैं इनकी परीक्षा करनेके लिये नीचे लिखी पद्धतिकी आवश्यकता है । १ तर्जनी अंगुलीसे परीक्षा करना, २ तर्जनी अंगुली तथा दूसरे हाथके स्पर्शसे परीक्षा करना ३ पेटको दबाकर हाथसे परीक्षा करना, ४ योनिदर्शक नलिका यन्त्र योनिमार्गमें प्रवेश करके नेत्रोंसे योनिमार्ग तथा गर्भाशयका निरीक्षण करना । ५ गर्भाशयमें गर्भाशयशलाका प्रवेश करके गर्भाशयके अन्तर पिण्डकी परीक्षा करना, ६ कमलमुख बिस्तृत करने पीछे कमलमुखकी विकृतिका निश्चय करना इसको कमलमुख परीक्षा कहते हैं । ७ गर्भाशयके समीपवर्ती मर्मस्थानोंको देखकर गर्भाशयकी परीक्षा, इस परीक्षामें मूत्राशय और मलाशयकी परीक्षा करनेकी आवश्यकता है । (१ तर्जनी अंगुली योनिमार्गमें प्रवेश करके परीक्षा करनेकी रीति ।) स्त्रीको वामी करवटसे अर्ध खडी हुई स्थितिमें सुलाकर (पीछेकी आकृतिमें देखो) अथवा सीधी चित्त सुलाकर तर्जनी अंगुलीका नख काट तैलसे चुपडकर योनिमार्गमें प्रवेश करनी और योनिमार्गके पीछेके भागमें ऊपरकी ओर अंगुली फेरनी दोनों ओर अंगुली फेरना इस क्रियासे स्त्रीके आभ्यन्तर मर्मस्थानका ज्ञान होगा । इसके पीछे चाहे जिस स्थितिसे उसकी परीक्षा करे तो भी परीक्षा करनेवाले चिकित्सकको यथार्थ ज्ञान होगा । तर्जनी अंगुली योनिमार्गमें प्रवेश करके परीक्षा करनेसे नीचे लिखेहुए विषयोंका ज्ञान होगा । (१) अंगुली प्रवेश करनेसे योनिमार्गकी व्याधियोंका ज्ञान होगा प्रथम तो योनिमुख ही अंगुली रखनेसे यदि संकुचित होगा तो अंगुलीके पोरुआको अन्दर जानेसे रोकेगा, परन्तु अक्सर ऐसा संकोच नहीं होता । ऐसा संकोच किसी बिरली स्त्रीमें ही मिलता है, अथवा स्पर्शासह्य योनिरोगवाली स्त्रीमें मिलता है और उनका कारण उस भागमें रहने पर उत्पातको लेकर है । यदि तन्दुरुस्त योनिमुख अंगुलीके ऊपर अथवा अन्दर अंगुली न जा सके ऐसा संकुचित नहीं होता, जो ऐसा संकुचित होता होय तो उस भागके बराबर निरीक्षण करनेसे उस संकोचका कारण मिल सक्ता है और उस भागमें कोई क्षत छाला व धारा होय तो मालूम पड सक्ता है । इसकी अपेक्षा योनिमार्ग विशाल है कि छोटा है इसका भी ज्ञान होगा यदि गर्भाशयकी अथवा गर्भ अण्डकी अपूर्णता होय तो यह भाग अपूर्ण प्रफुल्लित हुआ मालूम पडता है और यह भी मालूम होगा कि उसका रस पिण्ड स्निग्ध (चिकना) कोमल है अथवा रूक्ष खुरखुरा व कठिन है तन्दुरस्त योनिमार्गका रसपिण्ड चिकना कोमल स्निग्ध होता है । परन्तु जो योनिमार्ग कठिन खुरखुरा होय तो समझना कि उसमें पाक

हो गया और वहां पर किसी मर्मस्थानका भाग गल गया है और पकनेका स्थान रोपण होनेके समय सुकडाहुआ रोपण हुआ है, इस कारणसे कठिन हो गया है विस्तृत होनेमें खिचाव पडता है दूसरे तन्दुरुस्त योनिमार्गको गीला रखनेके लिये उस मर्मस्थानके सूक्ष्म पिण्डका स्राव होता है सो वह पिण्ड गल जानेसे वह स्राव नहीं होता इससे वह योनिमार्गका भाग शुष्क रहता है। योनिमार्गके साधारण शोथमें इसी प्रकार प्रमेह और उपदंशकी विकृतिसे ये व्याधि प्रायः विशेष मिल सक्ती है, योनिमार्गके भागमें छाला पडता है और छाला रुजनेके समय उस भागमें कठिनता रह जाती है। इसकी अपेक्षा उसके ऊपर मस्सा व्रण फफोला धारा शोथ आदि इनमेंसे कोई होय तो निरीक्षण करनेसे जान पडती है, सो इन सब व्याधियोंकी चिकित्सा करनेमें अति उपयोगी हो जाती है। (२) कमलमुख अंगुलीसे स्पर्श करनेसे चिकित्सक जान सक्ता है कि वह कठिन है अथवा कोमल है। मोटा है कि वहुत संकुचित है अथवा चौंडा है। यदि अंगुलीके स्पर्शसे कमलमुखमें दर्द होता है, या नहीं होता इस स्पर्शज्ञानसे उसके क्षतका अनुमान होता है, जो कमल आडा आगया होय तो अंगुलीके स्पर्शसे. वह दूखता है। यदि विशेष संकुचित हो तो स्त्रीको ऋतुस्रावके समय पीडा अधिक होती है और क्षत आदि रुझनेसे वह भाग कठिन और मोटा रह जाता है वन्ध्या स्त्रीका कलममुख अधिकांश भागमें कठिन होता है। जैसे २ बडी उमरकी वन्ध्या स्त्री होती जाय तैसे २ उसका कलममुख अधिक कठिन होता जाता है यह सब कमलमुखकी दीर्घ सूचना है। (३) गर्भाशय किस स्थितिमें है वह अपने नियतस्थान पर है कि इधर उधरको खिसक गया है, इसका भी अनुमान हो सक्ता है। तन्दुरुस्त तथा नियत स्थान पर स्थिर रहा हुआ गर्भाशय योनिमार्गमें गईहुई अंगुलीके टटोलनेसे गर्भाशयके मुखपर अड सके तो गर्भाशयका मुख आडा होकर खिसक गया होय तो उसकी गर्दनके भागमें अंगुलीका स्पर्श होगा और जिस तर्फको गर्भाशय खिसक गया होय उस ओरको अंगुलीसे खेंचकर अंगुली पहुँचानेमें आती है तो कमलमुख किसी तर्फ खिसका हुआ है, इसका बराबर रीतिसे ध्यान पहुंचेगा। इसलिये जो कलममुखका स्पर्श अंगुलीसे न होय तो अंगुलीको चारों तर्फ याने सीधी तर्फ और वामी तर्फ इसी प्रकार ऊपर अस्थिकी कमानके नीचे और नीचेकी बाजू गुदाकी तर्फ फेरना, इससे इसकी योग्य स्थितीका ज्ञान हो जावे। इसी रीतिसे कमलमुख किस तर्फ ढलाहुआ है यह ज्ञान पडेगा, इसी प्रकार आधी अंगुलीकी लम्बाईसे गर्भाशय जान पडेगा और जो गर्भाशय खिसकाहुआ होय तो वह किस दिशामें तथा किस भागमें खिसका है यह विचारपूर्वक परीक्षा करनेसे जान पडेगा। इसी प्रकार जिस भागकी ओर गभाशय खिसका होय उस तर्फ दबानेके

समय विह्न भी मिल, सकेंगे, इसके (पृथक् निदानके लिये गर्भाशयके स्थानान्तर प्रकरणके विषयमें देखो) (४) प्रदरका स्राव अधिक होता है कि न्यून और विशेष होता है तो किस रीतिसे होता है सो अंगुलीपर चिपटा हुआ जमाव आवेगा उसकी परीक्षा करनेसे जान पडेगा। इसके बाद गर्भाशयके आगे व पीछेके भागमें व जिस भागको योनिद्रोण कहते हैं, इस भागमें अंगुली प्रवेश करके देखे कि कोई ग्रन्थि आदि तो नहीं है, इसका निश्चय करे। गर्भाशय छोटा है अथवा अपूर्णतासे प्रफुल्लित है यह अंगुलीके स्पर्शसे जान पडेगा। यदि अपूर्णतासे प्रफुल्लित होगा तो छोटा मालूम होगा और उसकी गर्दन लम्बी नहीं होगी, किन्तु गर्दन भी छोटी होगी और गर्भाशयका भाग अति छोटा कुमारी लडकियोंके समान होगा (तर्जनी अंगुली योनिमार्गमें प्रवेश करके दूसरा हाथ पेटके ऊपर रखकर गर्भाशयकी तथा अन्य मर्मस्थानोंकी कितनी ही व्याधियोंका अनुमान हो सक्ता है, सो नीचेकी आकृति ९२ में देखो।

(आकृति नं० (९२) देखो)

तर्जनी अंगुली योनिमार्गमें रखके और दूसरा हाथ पेटके ऊपर रखकर दबानेसे गर्भाशयके निदानकी प्रक्रिया इस ९२ वीं आकृतिमें दिखलाई गई है। इसको देखनेसे गर्भाशयकी स्थितिका ज्ञान होगा यदि गर्भ अण्ड सूजाहुआ होय तो जान पडेगा कि गर्भाशयसे अडती हुई योनिमार्गमें रक्खी हुई अंगुली और पेटके ऊपर रक्खा हुआ हाथ दोनोंके बीचमें दबानेसे यदि उस भागमें ग्रन्थि है कि नहीं यह जान पडेगा। इस परीक्षाके करनेके समय स्त्री अपना पेट बिलकुल ढीला रक्खे यदि स्त्रीके पेटकी चमडी बहुत मोटी होय अथवा उसमें अधिक चर्बीका संग्रह होय ऐसी स्त्रीका गर्भाशय दाबकर देखनेसे सरलतापूर्वक नहीं जान पडता गर्भाशयके पृथक् २ स्थानान्तर जाननेके लिये यह पद्धति उपयोगी है। (गर्भाशयके स्थानान्तर विषयका प्रकरण देखो) इसी प्रकार गर्भाशयमें जो कोई ग्रन्थि आदि होय तो जान पडेगी और कौनसे भागमें ह कैसी दुखदायक है ये सब व्यवस्था जान पडेगी, यदि गर्भाशय बढाहुआ होय अथवा दूखता होवे ग्रन्थि होवे तो ये भी उपरोक्त प्रक्रियाकी योनिमार्गमें अंगुली प्रवेश तथा पेटपर हस्त स्पर्श तथा दबानेसे जान पडेगी। (३) केवल पेटके ऊपर हाथ रखके दाबनेसे भी गर्भाशयकी वृद्धिका तथा इसी प्रकार गर्भअण्ड सूजाहुआ होय तो इसका भी ज्ञान चिकित्सकको होगा। (४) (योनिदर्शक यन्त्रसे होती हुई परीक्षा.) योनिदर्शक यन्त्र तीन प्रकारका है, १ नलिकायन्त्र २ द्विभित्त अथवा चतुर्भित्त यन्त्र (और ३ चंच्वाकृतियन्त्र ॥ दर्शक यन्त्रोंके द्वारा कमलमुख और योनिमार्गको चिकित्सक अपनी नजरसे देख सक्ता है और यन्त्रोंके द्वारा देखना अति आवश्यक है कारण कि योनिके अन्दरके मर्मोंका पूर्णज्ञान यावत्काल न होवे,

तावत् काल चिकित्सामें प्रवृत्ति हरगिज न करे । दर्शकयन्त्र यह एक कांचकी नली है जिसके ऊपर सूर्य्य व दीपककी किरण आनकर पडे और उन किरणोंका प्रतिविम्ब योनिके अन्दर कमलमुख पर पडता है उस समय कमलमुख स्पष्टरीतिसे अपनी असली दशामें दीखता है, कमलमुखका स्वरूप स्वच्छ प्रकाशमें दृष्टिगत होता है और यह यन्त्र कांचका होनेके कारण शीघ्र साफ हो जाता है । योनिमार्गका स्राव अथवा गर्भाशयका अम्लस्राव होता हो तो उसका असर भी इस पर नहीं लगता और जो औषध गर्भाशयमें अथवा कमलमुखमें लगानी होवे तो नलिकायन्त्र योनिमार्गमें होनेसे मर्मस्थानमें दग्ध करनेवाली औषधियां लगानी होय तो अन्य स्थानपर असर नहीं कर सक्ती । चिकित्सक जिस स्थानपर लगावे उसी स्थान पर दवाका असर पहुँच सक्ता है तथा कमलमुख पर औषध लगानी होय तो उसका असर कमलमुख पर ही रहेगा । इस नलिकायन्त्रसे कमलमुख पर क्षत है अथवा क्या व्याधि है अथवा वह भाग सूजा हुआ है अथवा रंगमें अति लाल हो रहा है इन सब व्याधियोंको चिकित्सक अपनी दृष्टिसे देख सक्ता है । इसके अलावे कमलमुखमें जो कुछ प्रदरका स्राव आदि भरा होय तो वह भी दीख पडेगा इस नालिका यन्त्रकी आकृति तथा प्रवेश करनेकी प्रक्रिया पूर्व लिख चुके हैं सो वह प्रकरण देखो । इसके अतिरिक्त (डाक्टर मेकजोटनजोन्स) का निर्माण कियाहुआ नलिकायन्त्र भी इसी रीतिसे गर्भाशयकी परीक्षाके काममें लिया जाता है । उसकी आकृति ९३ में देखो ।

आकृति नंबर ९३ देखो.

यह दर्शक नलिकायन्त्र साधारण : नलिकायन्त्रके समान ही है परन्तु इसकी बाहरकी किनारीके नीचले . भागके साथ तीन पृथक् पृथक् सन्धि संयुक्त होसक ऐसा एक (नीकल प्लेटेड) लोहकी सलाई है जिसके शिरेपर नलिकायन्त्रके बराबर सामने आ सके ऐसा एक कांचका ऐना जडाहुआ है, इस कांचके अन्दर गर्भाशयका प्रतिविम्ब पडता है और कांचपर प्रकाशकी किरण पडनेसे कांचका प्रतिविम्ब गर्भाशय पर पडता है । चिकित्सकको उचित है कि वगलमें खडा होकर देखे कि गर्भाशयकी क्या स्थिति है ।

२ द्विभित्त अथवा चतुर्भित्त यन्त्रमें दो अथवा चार पांखीया होतें हैं उन पांखियोंको बन्द करके योनिमार्गमें प्रवेश करनेमें आता है और गर्भाशयका मुख जैसा नलिकायन्त्रसे स्पष्ट दीख पडता है वैसा इस यन्त्रसे नहीं दीखता गर्भाशय तथा कमलमुखका योग्यस्थान निश्चय करने पीछे उसकी योग्य दिशामें यह यन्त्र प्रवेश करना और जरा दूरीपर कमलमुख रहे इतना यन्त्रका स्क्रू फेरना जिससे पंखियाँ खुलकर चौडी होवे, जिससे कमलमुख तथा योनिमार्गका भाग दृष्टिगत पडे जब कि इस यन्त्रको

पीछे निकालना होय तब सब स्क्रूल दाबकर न निकालना, कारण कि इससे योनि-मार्गका कोई मर्मस्थान पकडमें आ जाना संभव है, सो कुछ स्क्रूल फिराकर थोडा भाग यन्त्रका खुला रहे इस माफिक योनिसे बाहर निकालना उचित है।

(चंच्वाकृति यन्त्र) इस यन्त्रसे कमलका भाग तथा योनिका भाग उत्तम रीतिसे दीख सक्ता है और कमलमुखमें टेंट आदि प्रवेश करना होय अथवा कमल-मुख योनिमार्गके ऊपर किसी व्याधिके कारणसे शस्त्रोपचार करना होय उस दशामें यह यन्त्र अधिक उपयोगी है। परन्तु इसको स्थिर भावसे पकडनेके लिये एक होसियार सहायक मनुष्यकी आवश्यकता है।

आकृति नंबर ९४ देखो.

इस यंत्रको योनिमार्गमें प्रवेश करनेके समय आकृति १२ में बतलाई हुई प्रक्रियाके प्रमाणसे स्त्रीको बाईं करवटसे अर्द्ध खडीहुई स्थितिमें सुलाकर और उसकी कमरक आसपासका सब कपडा ढीला करके आकृति ९४ में आभास दिया है प्रवेश कर।

गर्भाशयमें शलाकायन्त्र प्रवेश करके परीक्षा करनेकी प्रणाली।

गर्भाशयकी लम्बाईका माप (नापना) होता है जो शलाकायन्त्रके प्रवेश करनेमें कुछ रुकावट होती होय तो शलाकायंत्रकी दिशा फेरनी चाहिये। गर्भाशय खिसक गया होय अथवा कुछ बांका (टेढा) पड गया होय तो उसी प्रमाणसे रुख बदल कर शलाकायन्त्र प्रवेश करना, यदि गर्भाशयमें ग्रन्थि आदि कुछ अटकती हो तो भी शलाकायन्त्रकी दिशा बदलनेसे वह अन्दर जा सक्ती है और उसकी लम्बाईका माप हो सकता ह। इस बातका भी पूर्ण ज्ञान होगा कि गर्भाशय योनिमार्गसे किस दिशामें स्थित है, कारण कि गर्भाशयके अमुक भागमें ग्रंथि होनेसे गर्भाशयकी नियत स्थिति छूट जाती है। उसकी दिशा पलट जाती है, श्वेत तन्तुमय ग्रन्थिकी दशामें गर्भाशयके अन्दरका भाग विरूप हो जाता है और गर्भाशयके अन्दरका भाग कितना चौंडा है इसका निश्चय होता है। इसी प्रकार गर्भाशय प्रत्येक भागमें शलाकायन्त्र प्रवेश करके देखनेसे वहां दर्द होता है कि नहीं इसके अलावे कौन भाग गर्भाशयका आर्द्ररूप है, कौन भाग रूखा है, यह सब जान पडेगा। गर्भाशयके अन्तर पडतके दीर्घ वर्म (शोथ) का यह एक बडा चिह्न व लक्षण है, इसी प्रकार गर्भाशयके अन्दर कोई विकृतिवाला पदार्थ जैसा कि मस्सा ग्रन्थि रसौली आदि जो कुछ होय सो जान पडेगा।

(९) गर्भाशय किस ठिकानेसे बढ गया है यह भी जान पडेगा, इसके अतिरिक्त गर्भाशय स्थानान्तरमें गया होय तो उसको योग्य स्थानपर पीछे बैठालनेके लिये भी शलाकायन्त्रका उपचार ठीक उपयोगी है।

(६) कमलमुख विस्तृत करनेके पीछेसे करनेमें आईहुई परीक्षा गर्भाशयक अन्तरप-डतमें जो विकृति रही होय वह कमलमुखक संकुचित रहनेसे नहीं जान पडती, इसलिये कमलमुखको चौंडा करनेकी आवश्यकता है। इस रीतिसे चौंडा करनेसे अन्दरकी रसौली व मस्सा होय तो अथवा उसकी इसी प्रकार अन्दरओल व छोडका जरायु व झिल्लीका कुछ भाग रह गया हो तो उसकी भी माल्रम पडेगी। निदान करने पर भी जब गर्भाशयके अन्दर औषध प्रवेश करनी होय तब उसके विस्तृत करनेकी विशेष आवश्यकता है।

(७) इसके अनन्तर मलाशय और मूत्राशयकी परीक्षा करनसे गर्भाशयके रोगोंकी उत्तम सहायता मिलती है, इन मर्मस्थानोंके साथका संबंध ह सो इनकी परीक्षा करनेसे गर्भाशय जो आगे अथवा पीछेके भागकी ओर स्थानांतरमें गया होय तो उसका अथवा गर्भाशयकी व गर्भ अण्डकी कोई ग्रंथि हो तो इसकी भी माल्रम पडेगी। इस कथन की हुई पद्धतिके प्रमाण जो नियमपूर्वक परीक्षा करनेमें आवे तो वन्ध्यादोषका क्या कारण है सो निश्चय हो सक्ता है। इस प्रकार ध्यान देकर उसके कारणके लिये परीक्षा करनेमें आवे तो व्याधि तथा व्याधिके कारणकी आर उस कारणको लेकर गर्भाशयकी स्थिति कैसी है इनको ज्ञान चिकित्सकको पूर्ण रीतिसे होगा। चिकित्सा करनेके समय यह विशेष उपयोगी होगा। चिकित्सकको उचित है कि प्रथम पूर्णरीति उपरोक्त प्रणालीके अनुसार सब परीक्षा करके चिकित्सा आरम्भ करे। जो इस रीतिसे निदान करनेकी पद्धति बतलाई है तो भी विशेष निश्चय करनेके लिये अर्थात् इसका निदान विशेष यथार्थरीतिसे करनेके लिये वन्ध्यत्वके क्या क्या कारण हैं तथा प्रत्येकका पृथक् २ पद्धतिके अनुसार निदान हो सक्ता है। सो नीचे लिखे प्रमाणे देखनेसे जान पडेगा, इसलिये जो वन्ध्यत्वका कारण इस पद्धतिके अनुसार निश्चय न हो तो पीछे इस कोष्ठक प्रक्रियाके प्रमाणे प्रत्येक कारणके लिये परीक्षा करनी, जो कारण न मिले उस कारणको परीक्षा करके निकालना इस प्रकारसे वन्ध्यत्वका कारण निकल सकेगा। (१) प्रजोत्पत्तिकर्म अवयवक अपूर्णता) जो सहज साज सूक्ष्म रीतिसे अपूर्णता होय तो स्त्रीको कुछ खबर नहीं पडती और इससे स्त्री अपनी दशा प्रगट नहीं करती, यदि अधिक होय तो शरीरमें कुछ बेडौलपन रहता है। इसी प्रकार योनिमार्गमें अंगुली प्रवेश करके परीक्षा करनेसे भी मर्मस्थान कुछ छोटा माल्रम होता है। तथा गर्भाशय शलाकायन्त्र प्रवेश करके माप करनेसे भी मर्मस्थान छोटा माल्रम हो ऐसा लगता है। (२) प्रजोत्पत्तिकर्म अवयवका संकोच) यदि संकोच आगेके भागमें हो तो बगैर यन्त्रकी सहायताके आंखोंस दीखता है, यदि संकोच ओडे भागमें भीतरकी तर्फ हो तो दर्शकयन्त्र

तथा शलाकायन्त्रकी सहायतासे दीखता है । (३) गर्भाशयका स्थानान्तर होना अंगुल प्रवेश करनेसे जान पडता है ॥ (४) (स्पर्शासह्ययोनि) स्त्रीसे हकीकत पूछनेसे तथा योनि पर अंगुली स्पर्श की जावे और योनि अंगुलीके स्पर्शको सहन न कर सके इससे जान पडता है । (५) (गर्भअण्डकी व्याधि) स्त्रीसे हकीकत पूछनेसे तथा अंगुलीसे गर्भ अण्डको स्पर्श करनेसे जान पडता है । (६) (गर्भाशयमें चर्बी) श्वेत तन्तुमय ग्रन्थि अथवा दूसरी कोई दुष्ट ग्रन्थि ये शलाकायन्त्रसे तथा गर्भाशयको विस्तृत करनेसे जान पडती हैं । (७) (कमलमुखका प्रतिबन्ध) नलिकायन्त्र योनिमार्गमें प्रवेश करनेसे कमलमुख दृष्टिगत होता है, यदि उसमें किसी प्रकारका प्रतिबन्ध होय तो दीख पडता है । (८) (मेदवृद्धि अति स्थूलता) यह देखनेसे ही जान पडती है । (९) (कमलकन्दका दीर्घ शोथ) कमलकन्दका क्षत नलिकायन्त्र योनिमार्गमें प्रवेश करके दीख पडता है । (१०) (गर्भाशयके अन्तर पडतका दीर्घशोथ) गर्भाशयमें शलाकायन्त्र प्रवेश करके गर्भाशयकी परीक्षा करनेसे जान पडता है । (११) (योनिमार्गका शोथ) हकीकत पूछनेसे नेत्रोंके देखनेसे तथा चंच्वाकृति यन्त्रकी सहायतासे दीख सक्ता है । (१२) (फलवाहिनीकी वक्रता अथवा संकुचित होना) हकीकत पूछने तथा आभ्यन्तर परीक्षासे जान पडता है । (१३) (प्रमेह) हकीकत पूँछने, तथा देखनेसे जान पडता है (१४) (उपदंश) हकीकत पूँछने, देखनेसे—तथा शारीरिक चिह्न देखनेसे जान पडता है । (१५) किसीभी जातिका (ऋतु विकार) हकीकत पूँछने और स्त्रीरोगकी परीक्षा करनेसे जान पडता है । इस प्रमाणसे प्रत्येक कारणके लिये स्त्रीके रोगोंकी परीक्षा करना, इसके अनन्तर इस कोष्टकमें वतलाइ हुई रीतिके अनुसार देखतेहुए जिस विकृतिका अनुमान हो उस विकृतिका यथार्थ कारण क्या है तथा वह विकृति गर्भाशयमें क्या क्या परिवर्त्तन करती है यह सब नियमपूर्वक पद्धतिके प्रमाणसे परीक्षा करने पर माळूम पड सक्ता है ।

वन्ध्यादोषकी निवृत्तिकी आशा कितने अंशमें करनी चाहिये ।

वन्ध्या दोषके लिये योग्य औषधोपचार करानेवाली स्त्री अपना वन्ध्यत्व निवृत्त होगा कि नहीं, इसके जाननेकी इच्छा सदैव रखती है और यह उत्सुकता तृप्त करनेके समय यह प्रश्न करती है तो इस प्रसङ्ग पर उत्तर देना कुछ सरल नहीं, किन्तु अति सूक्ष्म विचार करनेकी आवश्यकता पडती है । इसके लिये निश्चित उत्तर अपनेको ढूँढना चाहिये कि स्त्री वन्ध्यादोषसे मुक्त हो सक्ती है अर्थात् वन्ध्यत्व दोष बिलकुल निर्मूल हो सक्ता है अथवा कितने अंशमें स्त्री सुधर सक्ती है, जो कारण वन्ध्यत्वका होय वह कारण जड पकड गया होय तो निर्मूल होना दुसवार है, यह सब व्यवस्था विचार प्रश्नका यथार्थ उत्तर देनेके लिये नीचे लिखे हुए विषय

लक्षपूर्वक ध्यानमें रखनेकी आवश्यकता है । स्त्रीका ऋतुस्राव—स्त्रीका विवाह होनेके अनन्तर पति संयोग होनेसे पूर्व ऋतुस्राव आ जावे ऐसी स्थितिमें गर्भवती होना संभव है । परन्तु कितनी ही स्त्रियोंको ऐसा नहीं होता यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सक्ते कि अमुक अवधिमें स्त्रीको गर्भ धारण हो जावे क्योंकि कोई स्त्री बलवान् पुष्ट शरीर-वाली और पूर्ण प्रफुल्लित गर्भाशयवाली ऋतुधर्म आते ही गर्भवती हो जाती है, किसी स्त्रीका शरीर निर्बल हो आयु भी कम हो और गर्भाशय पूर्ण रूपसे प्रफुल्लित न हुआ हो तो गर्भ धारण करनेकी शक्ति उसमें नहीं होती । यदि ऐसे निर्बल शरीर और अपूर्ण प्रफुल्लित गर्भाशयवाली स्त्री कदाचित् गर्भवती हो भी जाय तो उसका शरीर अधिक निर्बल हो गर्भ स्राव होना संभव है । यदि बालक हो भी तो अत्यन्त निर्बल होता है इसलिये स्वाभाविक नियम ऐसा है कि स्त्रीको प्रथम रजोदर्शन आनेपर ही वह गर्भको धारण नहीं करती । कितनी ही स्त्री शीघ्र गर्भवती होती हैं सो ऊपर लिख आये हैं परन्तु अधिकांशमें यह नियम है कि स्त्री रजोदर्शन होने पीछे चार व पांच सालके अन्दर गर्भवती होती है । साधारण रीतिसे ऋतु प्रथम तेरह व चौदह वर्षकी उमरमें दीखता है, इस नियमके अनुसार उसको गर्भाधान सत्रह व अठारह सालमें प्रथम रहता है, इसके प्रथम जो स्त्री सन्तान उत्पन्न करनेकी उत्सुक होय तो उसको धैर्य्य रखना योग्य है । परन्तु प्रायः इतनी उमरमें स्त्रियोंको धीरता नहीं होती । जो दर्शन हुए चार साल हुआ होय और स्त्री अठारह सालकी हुई होय वहां तक स्त्रीको गर्भाधान व सन्तान न हुआ होय तो उसको सन्तान उत्पन्न करनेकी उत्सुकता होती है । इतनी उमर पर स्त्री पहुंचती होय और स्त्रीको गर्भाधान न रहा होय तो ऐसी स्त्रीको वन्ध्या कहना संभव नहीं, कारण कि कितनी ही स्त्रियोंको एक दो वर्ष प्रथम भी गर्भाधान रहता है और कितनी स्त्रियोंको एक दो वर्षके व्यतीत होने पर विलम्बसे रहता है । इसलिये स्त्री बीस सालकी होय वहांतक गर्भ धारण करनेकी राह देखनी चाहिये और इस अवधिके बीचमें जो किसी स्त्रीको गर्भाशयका रोग होय ऐसा निश्चय मालूम पडे तो इसके लिये योग्य उपाय करना लेकिन यह स्त्री वन्ध्या है ऐसा मानकर उसकी चिकित्सा करवानी और उसके गर्भाशयके ऊपर शस्त्रोपचार करानेकी शीघ्रता न करनी चाहिये, बीस वर्ष व्यतीत होनेपर जो स्त्रीके कोई भी सन्तति न हुई होय तो उसको वन्ध्या समझकर और गर्भाशयका कोई रोग अनुमानसे न जान पडे और ऋतुस्रावका रक्त बराबर आता होय तो भी वन्ध्यत्वका क्या कारण है यह निश्चय करनेकी तजवीज करनी । यदि बीस वर्षकी उमर न हुई होय इसके प्रथम स्त्री चिकित्साके लिये चिकित्सकके पास आई होय तो स्त्रीको धैर्य्य रखनेकी शिक्षा देवे, परन्तु बीस सालकी उमर व्यतीत होनेके अनन्तर निदानकी

पद्धतिमें बतलाये प्रमाणे वन्ध्यत्वका क्या कारण है सो निश्चय करना और वन्ध्यत्वको सुधार सक्ते हैं व नहीं, इसका विचार करके आईहुई स्त्रीको योग्य उत्तर देना। इस प्रमाणसे कारणवार स्थितिका विचार करके उत्तर देना प्रथम नीचे लिखे चार विषयोंके ऊपर प्रत्येक कारणके साथ विचार करनेकी आवश्यकता है। (१) आयु (उमर) (२) ऋतुस्राव (३) सफेदस्राव अथवा प्रदर, (४) स्त्रीकी शारीरिक स्थिति अथवा शरीर बांधा। प्रथम जैसे छोटी उमर तैसे ही बन्ध्यत्व सँभलनेकी उत्तम आशा वीसवें वर्ष वन्ध्यत्वका कारण नष्ट करनेके लिये जितने दर्जे चिकित्सक अथवा रोगी स्त्री दोनों ही आशासे भर पूर होते हैं इतने दर्जेकी आशा पच्चीस वर्षकी उमरमें नहीं रहती, जो इस वन्ध्यत्व विषयमें तीस वर्षतक स्त्रीका रहना हो वन्ध्यत्व दोष नष्ट न होय तो पीछे रोगीकी उम्मेद मारी जाती है। चिकित्सकको भी उसके सुधारनेमें अधिक परिश्रम पडता है, कारण कि वन्ध्यत्वका जो कारण होय वह इस प्रसंग विशेषसे जड पकड जाता है और गर्भाशयके अन्दर कितना ही फेरफार (अन्तर) कर डालता है। पैंतीस वर्षकी उमरमें रोगीको आराम होनेकी आशामें चिकित्सक भी दृढतापूर्वक नहीं रह सक्ता, कारण कि वन्ध्यत्वका कारण विशेष मजबूत हो जाता है और रजोदर्शन भी इस समयमें बन्द होनेके अनकरीब होता है। ऋतुस्राव जो स्त्रीकी पैंतालीश वर्षकी उमर होय वहांतक टिकता है तो भी बन्ध्या स्त्रियोंमें वह आताहुआ बन्द हो जाता है, कितनी ही वन्ध्या स्त्रियोंको केवल दिखाई देकर बन्द हो जाता है। इसके साथ ही स्त्रीको सन्तानोत्पत्तिकी ना उम्मेदी होती जाती है, अर्थात् जो कारण वन्ध्यत्व सुधारनेमें बाधक आवे वह कारण जैसे जैसे स्त्रीकी उमर बढती जाती है तैसे वृद्धि पाता जाता है। कदाचित वन्ध्यत्वके कारणकी ओर लक्ष न दे तो भी जैसे समय व्यतीत होता जाता है तैसे तैसे गर्भाशयकी स्वाभाविक प्रकृतिमें अन्तर पडता जाता है। छोटी उमरमें जैसे गर्भाशय सचिक्कण कोमल रहता है किन्तु बडी उमरमें वैसा नहीं रहता, खुरखुरा और कठोर हो जाता है। उसके सूक्ष्म पिण्ड मोटे हो जाते हैं जैसे घोर निद्रामें पडाहुआ आलसी मनुष्य स्थूल और अचल हो जाता है और उसके सम्पूर्ण शरीरमें परिश्रमकी ओरसे एक प्रकारका स्वाभाविक अभाव हो जाता है इसी प्रकार अधिक वर्षपर्यन्त सुस्त रहा हुआ गर्भाशय गर्भ धारण करनेकी ओरसे दुर्लक्ष रखता है। गर्भाशय एक जातिकी स्नायु संयोग (मिलान) के गुणवाले तन्तुओंका बंधाण है, छोटी उमरकी स्नायु स्वभावसे ही कोमलता लिये होती है और बडी उमरमें कठिन हो जाती है। यह एक प्रकारका स्वाभाविक नियम है जैसे वृद्धावस्थामें मनुष्यका शरीर सूखता जाता है इसी प्रकार गर्भाशयकी दशा भी समझो। छोटी उमर याने वीस वर्षसे प्रथम गर्भाशय

सचिक्कण और कोमल होता है इस उमरमें वह सरलतापूर्वक गर्भ धारण कर सकता है, पीछेसे कठोरता ग्रहण करता जाता है। पच्चीस वर्षकी उमरमें जो गर्भाशय कठिन हो गया होय तो भी अधिक कठिन नहीं होता इतने दर्जेकी कठोरता योग्य उपाय करनेसे कोमल पड जाती है, छोटी उमरकी स्त्रीके कमलमुख और गर्भाशयपर अंगुली फेरनेसे कोमल और सचिक्कण माछ्म होता है। कमलमुखकी कठोरता नष्ट करने तथा उसको कोमल करनेमें उत्तम कमलमुखके अन्दर (लेमीनेरीया) अथवा टचूपीलोटेन्ट आदि कमलमुख विस्तृत करनेवाले साधन प्रवेश करनेमें आते हैं, इनसे कमलमुख चौंडा होता है और कमलमुख चौंडा होनेसे उसके तन्तुओंमें खिंचाव पड वेह कोमल हो जाता है। कमलमुखकी कठोरता दूर करनेका यह एक कृत्रिम उपाय है, और सम्पूर्ण गर्भाशयको कोमल कर सके ऐसा कृत्रिम उपाय एक भी अभीतक जाहिरमें नही आया। गर्भाधान और प्रसव ये ऐसे कुदरती वनाव हैं कि इनसे सम्पूर्ण गर्भाशय कोमल पड जाता है गर्भाधान गर्भाशयको विस्तृत करता है और गर्भाशय कोमल भी हो जाता है, प्रसवकाल कमलमुखको चौंडा करता है और कमलमुखको कोमल करनेका कुदर्ती उपाय है। वैसा ही उससे मिलताहुआ कृत्रिम उपाय मनुष्यके हाथ लगा है इतना कि टेन्ट प्रवेश करनेका (वारनिझ) वेगसे कमलमुख विस्तृत करनेका इस कृत्रिम उपायको करके प्रसव कभी नहीं आया तो ऐसी वडी उमरकी स्त्रीके कमलमुखको स्वाभाविक रीतिसे प्रसव आइहुई स्त्रीका कमलमुख जितना कोमल होता है इतने दर्जे कोमल पड सक्ता है। परन्तु वडी दलगीरीके साथ कहना पडता है कि अभीतक ऐसी एक भी तर्कीब शोधकर नहीं हुई, ऐसा एक भी उपाय जाहिरमें नहीं आया कि जिसको लेकर गर्भाधानसे जैसा सम्पूर्ण गर्भाशय विस्तृत और कोमल होता है। तैसे इस उपायसे वडी उमरको प्राप्त हुई वन्ध्या स्त्रीका गर्भाशय कोमल पड सक्ता है। और छोटी उमरकी स्त्रीका जैसा सचिक्कण कर सके सम्पूर्ण पृथिवीकी आवादीके श्रेष्ठ स्त्रीरोगके निपुण चिकित्सक भी एक ही मुखसे स्वीकार करते आते हैं कि वन्ध्यत्व सुधारनेके लिये व स्त्री सरलतासे गर्भ धारण कर सके इसके लिये कमलमुखको चौंडा करनेकी आवश्यकता है। केवल इस रीतिसे कमलमुख कोमल और चौंडा होय इसके ऊपरसे इतनी सव आशा रख सक्ते हैं, तो सम्पूर्ण गर्भाशय कोमल और चौंडा होय और कालके असरमेंसे मुक्त होय तो इसके लिये विशेष उत्तम आशा रखनेके लिये उम्मेद नहीं होय। परन्तु जहांतक ऐसा उपाय न मिले वहाँतक जैसे स्त्रीकी वडी उमर तैसे वन्ध्यत्व सुधारनेकी आशा ऐसी स्त्रीके शरीरमें थोडी रखनी चाहिये, अथवा विलकुल न रखनी। ऋतुस्राव जो नियत समयपर आता होय तो स्त्रीके वंध्यत्वमेंसे मुक्त होनेकी उत्तम आशा रहती है, यदि ऋतुस्राव

कम दीखता हो अथवा अधिक दीखता होय और दीखता है उसपर समय पर पीडा होती होय तो ऐसी स्त्रीका वन्ध्यत्व सुधारना अति कठिन है। वंध्यत्ववाली स्त्रीको प्रायः अनार्त्तव दोष हो जैसे जैसे ऋतु कम हो जाय तैसे तैसे वंध्यत्व सुधारनेकी अति कठिनता बढती जाती है। ऋतुस्राव नियत समय पर हुए उपरांत ही गर्भाधानका अधिक आधार रहता है, यदि अधिक उमरकी स्त्रीको भी ऋतु-धर्मका रक्तस्राव साफ आता होय ऐसी स्त्रीको वंध्यत्व छोटी उमरमें ऋतुस्राव कमती हो गया होय वह स्त्री विशेष उत्तम रीतिसे सुधर सक्ती है। ऋतु नियत समयसे अधिक समयमें आना अथवा कमती आना ये गर्भ अण्डकी कुछ अपूर्णताको लेकर है, जिस कारणसे होताहुआ वन्ध्यत्व निवृत्त होना कठिन है। अनार्त्तववाली स्त्री शीघ्र स्थूल हो उसका गर्भाशय भी शीघ्र कठिन हो जाता है। अनार्त्तवाली स्त्रीका वन्ध्यत्व कमती ऋतुस्राववाली स्त्रीकी अपेक्षा अधिक सरलतासे मिट सक्ता है और ऐसा होनेमें दो बलवान कारण हैं।

(१) अनार्त्तवमें गर्भ अण्डकी अपूर्णता अथवा ऐसी कोई स्वाभाविक विकृति होती है अत्यार्त्तव गर्भाशयमें उत्पन्न हुआ पीछेकी विकृतिको लेकर होता है स्वाभा-विककी अपेक्षा पीछेसे उत्पन्नहुई विकृति निवृत्त करनेमें विशेष आशा रखने योग्य है। इसके लिये अधिक लम्बे दिवससे अनार्त्तव दोषवाली स्त्रीकी अपेक्षा अधिक समयके अत्यार्त्तववाली स्त्रीका वन्ध्यत्व मिटना सरल है। (२) अनार्त्तव दोषमें स्त्रीके गर्भ अण्डको अथवा गर्भाशयको कोई भी परिश्रम नहीं, पडता उसको कुछ भी परिश्रम न पडनेसे उसमेंसे रक्त न निकलनेसे वह भाग विशेष कठिन हो जाता है। उसमेंसे गर्भाशयको जड करनेवाले मलीन पदार्थ रह जानेके लिये स्त्री सहजमें ही स्थूल होने लगती है और छोटी उमरकी अपेक्षा बडी उमरका जैसा गर्भाशय और कमलमुख हो जाता है। अत्यार्त्तववाली स्त्रीके गर्भाशयको अधिक परिश्रम लगनेसे वह कोमल रहता है और जो उसमें मस्सा आदि अत्यार्त्तवका जो कारण है वह रहता है तो भी दूसरे मलीन पदार्थ जो गर्भाशयको जड करनेवाले हैं वे निकलकर दूर हो जाते हैं। दूर हो सके ऐसे स्थानिक कारणके अलावे गर्भाशयका रस पडत दूसरे सब रीतिसे ठीक होता है। पीडितार्त्तवकी निवृत्ति होना दोनोंकी अपेक्षा कठिन है और जब इस व्याधिको लेकर गर्भाशयमेंसे खोल (झिल्ली) उतर आती है तब वन्ध्यत्व सुधरनेकी आशा थोडी रहती है इस ऋतु विकारकी जड न जमी होय तो निवृत्त हो सक्ता है, जो पीडितार्त्तवमें ऋतुस्राव विशेष आता है वह कम ऋतुस्राववाला पीडितार्त्तवकी अपेक्षा विशेष सरलतासे निवृत्त हो सक्ता है। ऋतुविकारके ऊपरसे ही वन्ध्यत्व असाध्य है कि कैसा है यह अनुमान बाँध नहीं सक्ते परन्तु इस ऋतु

विकार होनेका मूलकारण क्या है उसको शोधकर निकाले और इसके ऊपरसे चिकि-त्सकको अनुमान बाँधना चाहिये, जो उपरोक्त ऋतुविकारका कारण सुधर सक्ता है। ऐसा होय तो इससे हुआ ऋतुविकार तथा वन्ध्यादोष सुधर सक्ता है। (३) सफेद स्राव व प्रदर जितने अधिक समयका होता हैं वैसे ही वन्ध्यत्वका कारण सजड समझना चाहिये ऐसा मन्तव्य है। दीर्घकालका प्रदर गर्भाशयके अंतर पडतकी व्याधिसे अथवा योनिमार्गकी किसी जीर्ण व्याधिको लेकर होता है और वह पोपणकी खामी सूचक है—थोडा बहुत सफेद पानी साधारण रीतिसे अनेक स्त्रियोंकी योनिमेंसे पडता है और वह किसी प्रसङ्गसे पडता है और किसी प्रकारका प्रसंग नहीं। परन्तु पडते २ जो निरन्तर पडता रहे तो वह ऐसे रोगकी निशानी है कि जिससे होताहुआ वन्ध्यत्व निवृत्त होना कठिन है, प्रदरके कारणभूत रोगके अतिरिक्त प्रदरका दीखना भले ही सहज साज व निर्जीव होय तो भी वह गर्भाधानमें दो रीतिसे विघ्नरूप है। कमलमुखमें यह स्राव भरा रहनेसे उसमें वीर्य अथवा वीर्य्यजन्तु नहीं जा सक्ते दूसरे योनिमार्गमें पुरुषेन्द्रियमेंसे वीर्य्य पडते ही शीघ्र वीर्य्यजन्तुओंका नाश हो जाता है, यदि यह सफेद स्राव थोडा और नूतन तथा निर्जीव होय तो सरलतासे निवृत्त हो सक्ता है। परन्तु जो अधिक समयका होय और गर्भाशयके किसी महान् रोगको लेकर होय तो वह मूल रोगकी निवृत्ति जहांतक न होवे और अधिक समयतक प्रदरसे गर्भाशय अथवा योनि-मार्गके मर्मस्थानमें छाला पडगया होय और उससे उस स्त्रीको गर्भ रहनेमें थोडी आशा रहती है। अब स्त्रीके शरीरपर सन्तान होनेका कितना आधार है सो देखो। (४) शारीरिक स्थिति जैसे स्त्रीका शरीर रोगी तैसेही उसके पुत्रकी माता बननेकी आशा थोडी ही रहती है, क्योंकि स्त्रीका रोग निवृत्त होय तो पुत्रकी माता बन सक्ती है। वन्ध्यत्व सुधरे विदून नहीं बन सक्ती, अनेक स्त्रियां पाण्डु अथवा ऐसी दूसरी व्याधि रक्तविकृतिवाली वन्ध्या स्त्रियोंका वह रोग निवृत्त हो जावे तो गर्भवती हो जाती हैं। ऊपर कथन किये प्रमाणे चार विषयोंको लक्षपूर्वक मनन करने पीछे वन्ध्यत्वका क्या कारण है इसकी परीक्षा करनेके अनन्तर यदि यह कारण सुधर सके ऐसा है कि नहीं उसका अनुमान करके पीछेसे योग्य उत्तर देना।

उत्पत्तिकर्म अवयवकी अपूर्णता।

जो गर्भाशय अथवा गर्भ अण्डका अभाव होय तो इससे असाध्य वन्ध्यत्व निकलता है योनिमार्गका अभाव आगेकी दो स्थितिके समान वन्ध्यत्व प्रतिपादन कर-नेवाला नहीं है तो भी अधिकांश भागमें योनिमार्गके अभावके साथ गर्भाशय अथवा गर्भ अण्डका भी अभाव होता है और इससे असाध्य वन्ध्यत्व होता है। ये सर्व स्थान जब अपूर्ण रीतिसे प्रफुल्लित हुए होयँ तब योग्य उपायोंसे उनको उत्तेजित

कर सक्ते हैं, ऐसी स्थितिमें गर्भाधान होता है अपूर्णता अधिक सहज साज अथवा निर्जीव होय तब लाभ होना संभव है । अधिक न्यून अपूर्णता भी उन मर्मस्थानोंके अभावके समान वन्ध्यत्व स्थापित करती है, जो कि सूक्ष्म रीतिसे अपूर्ण रहाहुआ गर्भाशय योग्य उपायसे विशेष प्रफुल्लितताको प्राप्त होता है तो भी वह तन्दुरुस्त गर्भाशयकी पूर्ण वृद्धिको पहुंच नहीं सक्ता । वह मर्मस्थान ऐसी सूक्ष्म स्थितिमें रहाहुआ होनेसे उसमें रहेहुए गर्भको जो वृद्धिके प्रमाणोंमें योग्य मिलती नहीं और उससे गर्भपात हो जाता है । मर्मस्थानका अभाव अथवा अपूर्णतावाली स्त्री अधिकांशमें कम निकलती है इस प्रकारके कारण प्राय: असाध्य हैं परन्तु वे जबतक मिल सक्ते हैं अधिक भागमें स्त्रियोंके अङ्ग पूर्णरीतिसे प्रफुल्लित हुए होंय उनके मर्मस्थान बराबर कदके होते हैं उनके होते भी उनके सन्तान नहीं होती ऐसी स्त्रियोंकी संख्या बहुत अधिक होती है । उनकी स्थिति विशेष दु:साध्य है सहज अपूर्णता गर्भाशयमें होय तो कदाचित् किसी २ स्त्रीको गर्भाधान रहता है, परन्तु प्राय: यह कारण असाध्य वन्ध्यत्व प्रतिपादन करनेवाला है और जहांपर वन्ध्यत्व निवृत्त होता है तहां ये मर्मस्थान सुधर सकें इतने दर्जे अपूर्ण प्रफुल्लित हुए होते हैं परन्तु उनका बिलकुल अभाव नहीं होता ।(२) उत्पत्ति कर्म अवयवका संकोच इस व्याधिसे कुछ असाध्य वन्ध्यत्व दोष नहीं आता परन्तु वह सुधर सक्ता है, जैसे संकोच पुरातन आर मोटा होय तैसे ही उसका निवृत्त होना कठिन है । यदि संकोच स्वाभाविक होय उसकी अपेक्षा पीछेसे उत्पन्न हुए संकोचको लेकर जो वन्ध्यत्व प्राप्त हुआ होय तो उसका निवृत्त होना सरल है स्वभावसे हुए संकोचके साथ समय पर गर्भाशयकी अथवा गर्भ अण्डकी अपूर्णता भी होती है और इससे स्वाभाविक संकोचवाली रोगी स्त्रियां सहजसे आरोग्य नहीं होतीं, योनिमार्गकी अपेक्षा गर्भाशयके संकोचसे वन्ध्यत्व विशेष होता है चाहे जिस मर्मस्थानका संकोच सहज होय तो वह सुधर सक्ता है और गर्भाधान भी रह सक्ता है । (३) गर्भाशयका स्थानान्तर होना सब स्थानान्तरोंकी अपेक्षा गर्भाशयकी अग्रवक्रता यह वन्ध्यत्वका एक बडा कारण है सर्वाङ्ग सम्पूर्ण स्त्रीके जब अन्दर वन्ध्यत्व मिल आता है तब अधिक भागमें कमलमुखकी अग्र वक्रता होती है जब कि स्त्रीकी स्थिति बिलकुल पीडा रहित होती है और वन्ध्यत्वके कारण तरीकेकी तर्फ ध्यान खेंचे तो ऐसी गर्भाशयकी किसी भी व्याधिका अनुमान नहीं हो सक्ता, ऐसी स्थितिमें वन्ध्यत्वके कारणके तरीकेसे यह व्याधि रही हुई होती है, दूसरे सब स्थानान्तरमें अधिक भाग थोडी बहुत पीडा रहती है, परन्तु अग्रवक्रताकी स्थिति जो सहज साज होय तो वह बिलकुल दर्द रहित होती है यह वन्ध्यत्व सुधर सक्ता है । अग्र वक्रताके साथमें मर्मस्थानमें भी कुछेक

स्वाभाविक न्यूनता होती है, ऐसी स्थितिमें अग्रवक्रता अथवा इससे हुआ वंध्यत्व-का सुधरना कठिन है । यदि ऐसी न्यूनता न होय और उसका प्रथम ही निदान करके शीघ्र ही उपाय करनेमें आया होय तो इससे होताहुआ वन्ध्यत्व निवृत्त होता है । अधिक समयतक रहनेसे उसमें ऋतुधर्मकी कुछ विकृति हो जाती है, जिसके निवृत्त करनेमें विशेष परिश्रम पडता है, अग्रवक्र कमलमुखके साथ किसी समय कमलमुख लम्बा और शंकु आकृतिका होता ह । इससे होता हुआ वन्ध्यत्व विशेष काल पर्य्यन्त रहता है, परंतु यह साध्य है इसपर प्रथम शस्त्रोपचार करनेमें आवे तो यह शीघ्र निवृत्त हो जाता है । दूसरे सब स्थानान्तर इतने बडे दर्जेका वन्ध्यत्व प्रतिपादन करनेवाले नहीं हैं, अग्रवक्रताके पीछे दूसरे नम्बरपर वन्ध्यत्वके कारण तरीकेसे पश्चात् वक्रता आती है । यह स्थिति जो स्त्रीके शरीरमें स्वभावसे ही होय तो ऐसी स्त्रीका वन्ध्यत्व निवृत्त होना बहुत कठिन है, कारण कि इससे गर्भाशय पूर्ण प्रफुल्लित नहीं हो सक्ता । पश्चात् विवृत गर्भाशय अग्र वक्रता और पश्चात् वक्रताकी अपेक्षा अधिक सरलतासे निवृत्त होती है, पश्चात् विवृततामें गर्भाशयका स्थानान्तर होनेपर भी गर्भाधान रहता है । जिस प्रमाणसे अग्रवक्रता अथवा पश्चात् वक्रतामें गर्भाधान नहीं रह सक्ता और स्थानान्तरमें गर्भाधान रहता है, परन्तु कितने ही समय गर्भस्राव आदि विकृति हो जानेका भय रहता है । (४) स्पर्शासह्ययोनि-जो छोटे कारणोंसे स्पर्शासह्यता हुई होय तो शीघ्र निवृत्त हो वन्ध्यत्व नष्ट हो जाता है, इसका कारण योनिपटल होता है इस योनिपटलको काटनेके पीछे अवरोध निवृत्त होनेसे गर्भाधान रहना संभव है, यदि यह रोग योनिमार्गके पाकको लेकर हुआ होय और वहांसे अधिक राध आदिके बहनेसे उस भागका श्लेष्म पडत गल सड गया होय तो उस भागके ज्ञानतन्तुओंका बिन्दु खुला हो जाता है, इस कारणसे निवृत्त होना कठिन है । इससे उत्पन्न हुआ वन्ध्यत्व अधिक समयतक चलता है, यदि योनिमार्गकी स्थिति गर्भाधान रहनेमें विशेष सहायभूत नहीं है तो भी इस मर्मस्थानका उत्पात गर्भाधान रहनेके लिये आवश्यकीय क्रिया जो स्त्री पुरुषका समागम है इसमें यह व्याधि विघ्न करती है और यह वन्ध्यत्वकी प्रतिपादक है, यह रोग साध्य है बुद्धिमान् चिकित्सक चाहे जिस स्थितिमें यह रोग होय निवृत्त कर सक्ता है । (५) गर्भ अण्डकी व्याधियाँ-गर्भ अण्ड स्त्री बीजकी उत्पत्ति स्थान होनेसे उसकी व्याधियाँ अवश्य गर्भाधान रहनेमें विघ्नरूप होनी चाहिये जहाँतक गर्भ अण्डमें सूजन हो स्त्रीका वीर्य पूर्णरीतिसे प्रफुल्लित नहीं होता वहांतक स्त्रीको गर्भ रहनेकी पूर्ण आशा नहीं रहती । गर्भ अण्डका भ्रंश उसके दीर्घ शोथकी अपेक्षा अधिक सुख-साध्य है और गर्भ अण्डका दीर्घ शोथ जो पीडितार्त्तव युक्त न होय तो वह अधिक

सरलतासे सुधर सक्ता है । (६) गर्भाशयकी ग्रन्थि—श्वेततन्तुमय ग्रन्थिसे असाध्य वंध्यत्व अथवा नष्टगर्भितव्यता आती है दूसरे चर्बीकी ग्रन्थि रसौली अथवा मस्सा आदि जो कुछ होय उसको काटकर निकालनेसे गर्भाशयके अन्दर रहीहुई विकृति नष्ट हो जाती हैं । और स्त्रीको गर्भाधान रहता है श्वेततन्तुमय ग्रन्थि गर्भाशयके पडतमेंसे उत्पन्न होती है और उसको काटकर नहीं निकाल सक्ते, उसके काटनेसे गर्भाशयका कट जाना संभव है, इससे उसके ऊपर शस्त्रोपचार न करना यही उपयुक्त है । बाकी दूसरी ग्रन्थिसे उत्पन्न हुआ वन्ध्यत्व उन ग्रन्थियोंके नष्ट होनेसे सुधरता है और उन ग्रन्थियोंके कितने ही प्रसंग पर गर्भाधान रहता है, परन्तु वह गर्भ पूर्ण अवधि पर्य्यन्त नहीं पहुंचता । (७) कमलमुखका प्रतिबन्ध—जो कमलमुखका प्रतिबन्ध स्वाभाविक (कुदरती) होय तो उससे उत्पन्नहुए वन्ध्यत्वकी निवृत्ति होना कठिन होता है । कारण कि ऐसी स्थितिके साथ समयपर गर्भाशय अपूर्णता प्रफुल्लित हुआ मालूम पडता है, इस प्रकारका प्रतिबन्ध क्वचित् ही मिलता है, विशेष भागमें प्रतिबन्ध पीछे उत्पन्न हुआ ही होता है, जो मूलकारणको लेकर वह उत्पन्न होय वह कारण सुधरने पीछे प्रतिबन्ध निवृत्त हो जाता है और गर्भाधान रह सक्ता है । स्वाभाविक प्रतिबन्धके अतिरिक्त दूसरे कारणसे उत्पन्नहुआ प्रतिबन्ध साध्य होता है । (८) स्थूलता मेदवृद्धि इस स्थितिको स्त्री पहुंचे तब उसका वन्ध्यत्व निवृत्त होना कठिन है । कारण कि स्त्रीका स्थूल होना इस प्रकार साबित कर सक्ते हैं कि स्त्री शरीरमें वन्ध्यत्वका कारण विशेष गम्भीर जड पकड लेता है और स्थूलहुई स्त्रीका गर्भ अण्ड अपना काम करनेमें शीथिल हो जाता है ऐसी स्त्रीकी मेदवृद्धिमेंसे स्त्रीको मुक्त करनेमें बडी कठिनता पडती है । इतने लम्बे समयतक स्त्रीकी चिकित्सा करनेकी कठिनता पडती है कि इतने समयकी अवधि पर्य्यन्त रोगी स्त्री व उसके सम्बन्धी मनुष्य धैर्य्य नहीं रख सक्ते । गर्भाशयके दूसरे रोगोंमें इसी प्रकार अत्यार्त्तवमें अथवा पीडितार्त्तवमें जैसे स्त्रीको दुःख होता है तैसे इसमें कोइ भी दुःख नहीं होता, इससे स्त्री अपनी चिकित्सा करानेमें अधिक आतुर नहीं होती । दूसरी व्याधियोंमें वन्ध्यत्वके लिये आतुर न होय तो भी उसके अन्दर होतीहुई पीडाके लिये उसको आतुर होना पडता है, मेदवृद्धिकी स्थिति दुःखरहित होनेसे उसमें स्त्रीको अपनी मुटाई देखकर आनन्द जान पडता है और उसका अन्तःकरण सन्तानकी चिन्ता रहित हो गया होय तो पीछे उस स्थितिकी दवा करवानेमें आवश्यकता नहीं समझती । इससे वन्ध्यत्वका जो कारण होता है वह अधिक जड पकड जाता है, स्थूल हुई स्त्रियोंमें जिनको रजोदर्शनका रक्त उत्तम रीतिसे स्राव होता होय उनका वन्ध्यत्व सुधारनेकी उत्तम आशा होती है । अनार्त्तववाली स्त्रीका वन्ध्यत्व सुधरना अति कठिन है, जिस स्त्रीको रजोदर्शन अति सूक्ष्म दीखता होय वह

स्त्री अति स्थूल होय तो उसकी स्थिति नहीं सुधर सक्ती । (९) कमलकन्दका क्षत—आरोग्य दीखती हुई स्त्रीमें वन्ध्यत्वका यह बडा कारण है अधिक स्त्रियोंमें यह कारण मिलता है, गर्भाशयकी अग्रवक्रता कमलकन्दका क्षत और गर्भाशयके अन्तर पडतका दीर्घ शोथ इन तीन कारणोंसे अनेक स्त्रियां वन्ध्या होती हैं । कमलकन्दका क्षत सूक्ष्मरूपसे यह विशेष सक्तरूपमें हो जाता है और जिस स्थितिमें क्षत होय उस प्रमाणे उसमेंसे उत्पन्न हुआ वन्ध्यत्व सुधारनेकी आशा रख सक्ते हैं, जो कमलमुखके ऊपर केवल छिल जानेके समान होय तो यह शीघ्र निवृत्त हो जाता है । कमलमुखकी कोरकी अपेक्षा जो अन्दरके भागमें क्षत होय तो उसका निवृत्त होना कठिन है और जो अधिक लम्बे समयतक क्षत रहा होय तो पीछे कमलमुखका भाग मोटा और कठिन हो गया होय तो इससे उत्पन्न हुआ वन्ध्यत्व निवृत्त होना अति कठिन है । जैसे वह अधिक पीडायुक्त तैसे ही वह अधिक दूषित समझा जाता है, कितने ही समय क्षत अति सूक्ष्म देखा जाता है और उससे पुरुष समागममें पीडा बिलकुल नहीं होती ऐसे क्षतके रहने पर भी स्त्रीको गर्भाधान रह जाता है । क्षत अधिक वर्षका बडाहुआ होय वैसे ही उससे कमलमुख मोटा और कठिन हो गया होय तो उससे उत्पन्न हुआ वन्ध्यत्व निवृत्त नहीं होता, गर्भाशयकी अग्रवक्रता और गर्भाशयके अन्तर पडतके दीर्घ शोथकी अपेक्षा यह कारण विशेष सरलतासे निवृत्त हो सक्ता है असाध्य वन्ध्यत्वमें विशेष भाग गर्भाशयके अन्तरपडतके दीर्घ शोथका है किन्तु कमलकन्दके क्षतका नहीं । (१०) (गर्भाशयके अन्तर्पिण्डका दीर्घ शोथ , इन व्याधिसे प्रायः असाध्य वन्ध्यत्व उत्पन्न होता है गर्भाशयका अन्तर पडत इतना विशेष बिगड जाता है कि वह इतना अधिक मोटा रहता है कि उनमें इतनी बडी मस्सेकी अथवा कील (गुमडियों) की जैसी विकृति हो जाती है, उनसे उत्पन्नहुआ वन्ध्यत्व नहीं सुधरता, जो यह व्याधि सहज होय तो वह सुधर सक्ती है गर्भाशयमें शलाका प्रवेश करते समय विशेष पीडा न होती होय ऋतुपीडा युक्त न होय तथा गर्भाशयके अन्तर पडतके मर्मस्थानमें हानि न पडा होय इसी प्रकार वह कठिन न हुआ होय तो इससे होता-हुआ वन्ध्यत्व सुधर सक्ता है, परन्तु ये सब चिह्न सक्तरूपमें होय तो वन्ध्यत्व सुधरनेकी थोडी आशा रहती है । (११) (योनिमार्गका शोथ) शोथ साधारण होय तो उसके निवृत्त होने पीछे गर्भाधान रहता है इसी प्रकार प्रदरका स्राव कि जो पाकको प्राप्त हुआ होय वह भी निवृत्त हो सक्ता है, मर्मस्थानका स्वाभाविक स्राव जो कि ऐसा दूषित हो गया होय कि जिससे उसका स्पर्श होते ही वीर्य्य जन्तुओंका नाश हो जाय वह स्थिति भी सुधर सक्ती है, परन्तु जो शोथ प्रमेहके चेपसे हुआ होय इससे

असाध्य वन्ध्यत्व प्राप्त होता है। विशेष करके तो इस स्थितिमें योनिमार्गकी स्पर्शासह्यता होती है और वैसे ही वन्ध्यत्वके कारण तरीकेसे माननेमें आता है। (१२) फलवाहिनीका वक्र अथवा संकुचित होना फलवाहिनीके रोगसे असाध्य वन्ध्यत्व प्राप्त होता है। परंतु उसका पृथक निदान नहीं हो सक्ता जब वंध्यत्वका दृश्य कारण निवृत्त होते भी वंध्यत्व नष्ट न हुआ होय तो उसके कारण तरीकेसे फलवाहिनीके रोगका अनुमान करनेमें आता है। (१३-१४) उपदंश तथा प्रमेह-वन्ध्यत्व प्रतिपादन करनेवाले कारणके तरीकेसे उपदंश और प्रमेह दोनोंकी गणना आई हैं, इनमेंसे उपदंशकी अपेक्षा प्रमेह वडी व्याधि है-उपदंश जो कि स्त्री व पुरुषको हुआ होय तो उनको सन्तानकी प्राप्ति नहीं होय ऐसा समय समय पर देखा जाता है तो भी विशेष करके उनके सन्तान होती देखी गई है। अब देखना चाहिये कि असंख्य बालकोंको माता पिता उपदंश युक्त बालकोंको पेटसे जन्मते हैं अनेक बालकोंको बाल उपदंश होता है उनके शरीरके ऊपर पृथक् पृथक् जातिकी रक्त विकृतियां दीखती हैं और चांदी गूंमडा आदि अनेक उपदंशकी निशानी मिलती हैं, इसके ऊपरसे सिद्ध होता है कि माता पिताके उपदंशका असर बालकोंके शरीरमें आता है। परन्तु इससे उनके प्रजा नहीं होती यह बात दृढ नियमपूर्वक गणनामें नहीं आती और ऐसा भी बनता है कि उपदंशको लेकर गर्भस्राव हो जाय या बालक अधिक समय पर्य्यन्त जीवित न रहे अथवा गर्भाधान ही न रहे ऐसा कुछ नियम नहीं। यह बात प्रमेह विषयमें नहीं लगती प्रमेहकी व्याधिसे असाध्य वन्ध्यत्व प्राप्त होता है, शक्त प्रमेहका जहर शान्त हो जानेके पीछे उसका छिपाहुआ गुप्त असर प्रमेह विकृतिवाला स्राव मूत्रमार्ग, योनिमार्ग, गर्भाशय इनके किसी भी भागमें रहता है, जो वीर्य्यके साथ मिलनेसे उसके अन्दरके वीर्य्यजन्तु (जो कि गर्भाधान रहनेमें अति उपयोगी हैं) इनका नाश कर डालता है। किन्तु योनिमार्गमें पहुंचते ही वीर्य्य विकृत हो जाता है इस कारणसे उस वीर्यसे फलोत्पत्ति नहीं हो सक्ती। कमलकन्दका क्षत गर्भाशयके अन्तर पडतका शोथ और फलवाहिनीका शोथ गर्भ अण्डका शोथ जो वन्ध्यत्वका प्रभूत कारण है। ये सब प्रमेहसे उत्पन्न होते हैं जैसा कि स्त्रीको प्रमेह है तैसे ही पुरुषके प्रमेहके लिये भी समझना सैकडों वन्ध्या स्त्रियोंमें नव्वे ९० वन्ध्या स्त्रियाँ प्रमेहको लेकर ही संतान हनि रहती हैं जैसा प्रमेह स्त्रियोंको होता है वैसा ही उन स्त्रियोंके पतिको भी प्रमेह होय तो दोनोंका परिणाम एक समझना गर्भाशयकी अपूर्णताकी माफिक प्रमेह असाध्य वंधत्व स्थापित करता है।

वंध्यादोषकी चिकित्सा प्रणाली।

वन्ध्यत्व इसका विवरण पूर्व लिख चुके हैं यह कोई निज स्वतन्त्र रोग नहीं है लेकिन शारीरिक अथवा उत्पत्तिकर्म अवयवकी पृथक् पृथक् व्याधियोंका परिणाम है और इसके लिये वन्ध्यत्वके उपायमें इतना अवश्य है कि जिस कारणको लेकर वन्ध्यत्व उत्पन्न हुआ हो वह कारण निवृत्त होय ऐसा उपाय करना इसके बाद स्त्री अपनी युवावस्थाको प्राप्त होय तबहीं जो अपने शुद्ध वर्तावके ऊपर ध्यान रखती हुई तो भविष्यमें वह पुत्रकी माता बननेकी आशाको प्राप्त होती है स्वाभाविक नियमके प्रमाणे जितने तन्दुरुस्ती जनानेवाले प्रमाणोंके वर्तावसे वन्ध्यत्वके जो २ पृथक् पृथक् कारण हैं वे उत्पन्न होने नहीं पाते, तब वन्ध्यत्वकी चिकित्साके दो बडे विभाग हो सक्ते हैं। एक तो वन्ध्यत्वको रोकनेवाली चिकित्सा—दूसरी वन्ध्यत्वको निवृत्त करनेवाली चिकित्सा (१) वन्ध्यत्व रोकनेवाली चिकित्सा—इसमें स्वच्छ वायुका सेवन तथा निवास स्थान होना चाहिये शान्त परिश्रम करना आलस्यका त्याग नियम प्रमाणे समय पर शयन करना समय पर जागरण करना और प्रसन्न चित्त हो अन्तःकरणको आनन्दमें रखना इतनी बातोंपर ध्यान देना आवश्यक है, जिससे स्त्रीकी तन्दुरुस्ती उत्तम रीतिसे रहे उसी प्रकारसे स्त्रीका शरीर अति प्रफुल्लित रहेगा आर वंध्या दोष प्रतिपादन करनेवाले कारण भी उत्पन्न नहीं हो सक्ते। (२) वंध्यत्व उच्छेदनी चिकित्सा—इसमें वन्ध्यत्वके प्रत्येक कारणवार उपाय करनेकी आवश्यकता है, पूर्व वन्ध्यत्वके कारणोंका विवेचन करते उन प्रत्येक कारणकी सम्पूर्णतासे चिकित्सा लिखी गई है इससे वह विषय पुनः यहां लिखनेकी कुछ आवश्यकता नहीं परंतु तोभी जो विषय साधारण रीतिसे विशेष लक्षमें रखनेलायक हैं उनको नीचे लिखते हैं। प्रजोत्पत्ति अवयवकी स्वाभाविक न्यूनता होय तो वह किस प्रकारकी है उसको निश्चय करके उपाय करना अत्यंत अपूर्णपनसे प्रफुल्लित हुए मर्मस्थान सुधरते नहीं तो भी जो थोडे अंशमें अपूर्ण होय तो गर्भाशय उत्तेज करनेके लिये उसके अंदर शलाकायंत्र आकृति १६। १७। १८ को प्रवेश करना। यदि कोइ विघ्नरूप पटल हो अथवा कोई मर्मस्थान स्वभावसे ही बद्धद्वार हो तो उसके ऊपर योग्य शस्त्रोपचार करके द्वार खुला करना, मर्मस्थानका संकोच हो तो उसको विस्तृत कर बाह्य मुख अथवा अन्तरमुख विस्तृत करना यह वंध्यत्व निवृत्त करनेका अधिक उपयोगी सहायभूत साधन है। वंध्या स्त्रीके कमलमुखको जो प्रसवसे हुई होय यदि उस स्त्रीका कमलमुख विस्तृत करनेमें आवे तो वह विशेष सरलतासे गर्भ धारण कर सक्ती है। यदि कमलमुखकी अग्रवक्रता हो तो उसको दूसरे स्थानान्तरके समान अपने योग्यस्थान पर बैठानेके प्रथम उसको उत्तेजित करना चाहिये, बाद जिस स्त्रीके अग्रवक्रता स्वाभाविक

होती है उस स्त्रीका गर्भाशय कुछेक अपूर्ण प्रफुल्लित हुआ होता है । इसलिये वह तेज होय शलाकायन्त्र अंदर प्रवेश करना, गर्भाशयमें सीधी खडी रहे ऐसी इंडिया रबरकी घोडी आकृति २० में बतलाई हुई विशेष उपयोगी होती है । अग्रवक्रताकी अपेक्षा दूसरे स्थानांतरमें पेसरीसे गर्भाशयको अपने योग्य स्थानपर रखनेकी विशेष आवश्यकता है, यदि पुरुषसमागम त्रासदायक मालूम हो तो इसकी परीक्षा करके कारण निश्चय करके उसक ऊपर शामक औषधियां लगाना यदि क्षत आदि होय तो वह योग्य उपायसे रोपण होनेमें और त्रास कम न मालूम होय तो योनिमार्गके मर्मस्थानमें छिद्र करके उसको रोपण करना, इससे त्रास कम हो जाता है । इसक बाद रसीली, मस्सा आदि जो कुछ होय उसको निकाल देना चाहिये इन सबके करने पर भी जो क्रिया विशेष करनेकी आवश्यकता पडे वह यह है कि उत्पत्ति अवयव बराबर साफ रख कमलमुखके ऊपर जो कुछ चिकना होय उसको नष्ट कर कमलमुखका मार्ग स्वच्छ रखना । यदि उसमें कील (गुमडी) होय तो उसको दग्ध करनेकी योग्य तजवीज कर ठेठ अन्तरमुख पर्य्यंत जो दंभक पदार्थ लगाना योग्य समझा जावे तो लगाना, इससे पीडितार्त्तव, अल्पार्त्तव अनार्त्तव आदि दब जाते हैं । कमल कठिन हो गया होय तो वह कोमल हो जाता है, अनार्त्तव नष्ट होनेसे ऋतु पुनः स्थापित हो स्त्रीको स्थूलता बढनेकी जो क्रिया होती है वह बढनेसे रुकती है और वंध्यत्व सुधारनेकी उत्तम आशा रहती है । इसके अतिरिक्त जो गर्भाशय निर्बल दीखता होय तो उसको बलवान् करनेके योग्य पौष्टिक उपचार करना, जो गर्भाशयमेंसे चिकना पतला पदार्थ निकलता होय पीछे लिखेहुए रोगाधिकारके प्रकरणों व पृष्ठोंको बांचकर उसमेंसे मालूम होगा कि इस विकृतिका कारण गर्भाशयके भागमें होना चाहिये, इसलिये यह भाग साफ कर अंदर स्तम्भन औषधियोंकी पिचकारी लगानी अन्तके दर्जे दंभक औषधियां लगानी होय तो वे भी अंदर पहुंचानी । इसके अतिरिक्त योनिमार्गमें शोथ होय तो उस भागको गर्म जलसे प्रक्षालन करना और वह साधारण है कि प्रमेहके कारणको लेकर है इस प्रमाणसे इसका उपाय करना, फूलवाहिनीके रोगोंका विशेष कष्टसे भी समाधान नहीं हो सक्ता । शोथ निवृत्त करनेके और उत्पन्न हुए शोथके जमावको मिटानेके लिये उसके ऊपर गर्म जलका सेंक करना, ऋतुधर्म साफ आता ह कि नहीं इसकी परीक्षा कर अनियत समय पर होय तो उसको नियत समयपर लाना । रजोदर्शनकी व्याधिका क्या कारण है उसकी परीक्षा करके निवृत्त करनेका योग्य उपाय करना यदि उपदंशकी शंका हो अथवा उपदंश प्रत्यक्षमें होय तो कुछ समय पर्य्यंत पोटासआयोडाइड तथा लायकबोरहाइड्रारजीराईपरकलोरीडाईका सेवन कराना । इसके अनंतर वंध्यत्वके

कारणके तरीकेसे दूसरा कोई भी शारीरिक रोग होय ऐसा निश्चय हो जाय तो उस रोगके अनुसार उपाय करना और छोटा कोई कारण मिल जावे तो उस कारणका योग्य उपाय करना और उसके सम्पूर्ण विवेचनके लिये उस कारणको देखना । इस प्रमाणसे वंध्यत्व निवृत्तिकी चिकित्सा करनेके समय ध्यानमें रखना चाहिये कि उसके कारणभूत गर्भाशयके पृथक् पृथक् रोग हैं वे रोग अधिक समय पर्य्यन्त चलते हुए अधिक समय पर्य्यन्त रहकर स्त्रीके शरीरमें घर करके रहते हैं । इससे उनके निवृत्त होनेमें अधिक समय लगता है ४–६ व बारह मास पर्यन्त ऐसी जीर्ण व्याधिका उपाय करनेकी आवश्यकता है और वह रोग साफ होनेके पीछे कमसे कम छ व बारह महीना पर्य्यन्त गर्भ रहनेकी राह देखनी चाहिये । इतने समयकी अवधिमें गर्भाधान रहे तो समझना कि यह चिकित्साका फल है, जो सात नियम गर्भ धारण करनेके जरूरी हैं नियम योग्य स्थितिमें जानना और उनको यथास्थितिमे पालन किया जावे तो इन नियमोंके अनुसार वर्त्तनेसे स्त्री सरलतापूर्वक गर्भ धारण कर सक्ती है ।

वन्ध्यादोषकी परीक्षा प्रणाली तथा चिकित्सा प्रणालीके नियम तथा चतुर्दशाध्याय समाप्त ।

अथ पंचदशाऽध्यायः ।

गर्भ धारणमें बाधक तथा स्त्रीको वन्ध्या बनानेवाले जितने रोग हैं उनकी उत्पत्ति और चिकित्सा ऊपर कथन हो चुकी है, इसके अतिरिक्त स्त्रियोंकी गुदा तथा योनि अंगोंमें जो व्याधि होती हैं उनकी उत्पत्ति लक्षण और चिकित्सा जहांतक योग्य समझा गया है वहांतक सबका वर्णन आयुर्वेद, यूनानी, तिब्ब और डाक्टरीसे इस ग्रन्थमें लिखा गया है । अब नीचे गर्भ धारणकी प्रक्रिया तथा गर्भिणी स्त्रियोंके रोग और उनका उपचार लिखा जाता है ।

आयुर्वेदसे गर्भ धारण प्रक्रिया ।

चिकित्सा शास्त्रमें शरीर ही मुख्य है वे शरीर जिस प्रकार उत्पन्न होता है उसके जाननेको गर्भोत्पत्ति क्रम कहते हैं, परन्तु गर्भोत्पत्तिकी भूमि रजस्वला स्त्री है इसीसे प्रथम रजस्वलाका स्वरूप कहते हैं ।

द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वमापंचाशत्समाः स्त्रियः ।
मासिमासिभगद्वारात्प्रकृत्यैवार्त्तवं स्रवेत् ॥

अर्थ–बारह सालकी अवस्थासे लेकर ५० वर्षकी अवस्थापर्य्यन्त स्त्रीके महीनेके महीने स्वभावसे ही स्वयं आर्त्तव (रजोधर्म) का रुधिर निकलता है ।

गर्भ धारणके लिये स्त्री पुरुषके बलवीर्य्य वा आयुका विधान।

पञ्चविंशे ततोवर्षे पुमान्नारीतु षोडशे । समत्वा गतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक् । ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् । यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते । जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः । तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ।

अर्थ—जितना बल पराक्रम २५ वर्षकी अवस्थामें पुरुषको होता है उतना ही बल १६ सालकी अवस्थामें स्त्रीको प्राप्त होता है, २५ वर्षका पुरुष और १६ वर्षकी स्त्री बलमें दोनों समान हैं । १६ वर्षसे कम उमरवाली स्त्रीमें २५ वर्षसे कम उमरवाला पुरुष कदापि गर्भ धारण न करे किन्तु उपरोक्त आयुकी अवधि पर ही गर्भ धारण करना उचित है । इससे कम उमरमें गर्भाधान किया जाय तो वह गर्भ उदरमें ही बिगड जाता है, कदाचित् बालक उत्पन्न भी होय तो वह जीवित नहीं रहता, यदि जीवित भी रहे तो बालक अत्यन्त दुर्बलेन्द्रिय कृश शरीरवाला रहता है । इससे १६ सालसे नीची उमरवाली स्त्रीमें गर्भ धारण करना सृष्टिक्रम और शारीरक विद्याके विरुद्ध है । गर्भाधानके लिये यज्ञादि कर्मकाण्डका विधान तथा पुत्रेष्टि कर्मकी आज्ञा चरकमें लिखी है और कर्मकाण्ड सूत्रोंमें गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टिपर्य्यन्त षोडश संस्कारोंका विधान है सो प्रत्येक द्विजातीयार्य्यलोगोंको यथोक्त विधिपूर्वक उत्तम सन्तानकी प्राप्तिके लिये संस्कारोंका करना यथाविधि उचित है । जो लोग मंगल कार्य्योंमें यज्ञादि नहीं करते वे अनार्य्य पतित हैं और गर्भसे लेकर जितने संस्कार शरीरके लिये किये जाते हैं उनसे बालक और स्त्री दोनोंको लाभ पहुंचता है और उत्तम सन्तानकी प्राप्ति होती है ।

गर्भधारणका समय ।

आर्त्तवस्रावदिवसादृतुः षोडशरात्रयः ।
गर्भग्रहणयोग्यस्तु स एव समयस्मृतः ॥

अर्थ—आर्त्तवस्रावके दिवससे लेकर सोलह रात्रि पर्य्यन्त स्त्री ऋतुमती कहलाती है वही समय गर्भ ग्रहणके योग्य है ।

उत्तम सन्तान होनेका उपाय ।

स्त्रीपुरुषयोरव्यापन्नशुक्रशोणितयोनिगर्भाशयोः श्रेयसीम्प्रजामिच्छतोम् तदर्थाभिनिर्वृत्तिकरं कर्मोपदेक्ष्यामः । अथाप्येतौ स्त्रीपुरुषौ स्नेहस्वेदाभ्यामुपपाद्य वमनविरेचनाभ्यां संशोध्य क्रमेण प्रकृतिमापादयेत् ।

सशुद्धौ च स्थापनानुवासनाभ्यामुपचरेत् । उपाचरेच्च मधुरौषधसंस्कृताभ्यां घृतक्षीराभ्यां पुरुषं स्त्रियन्तु तैलमासाभ्याम् ।

अर्थ—वे स्त्री और पुरुष जिनके वीर्य्य रजसम्बन्धी रक्तयोनि और गर्भाशय किसी विकारयुक्त नहीं हैं और जो उत्तम सन्तानकी इच्छा करते हैं उनको उत्तम सन्तानकी प्राप्तिके लिये जो २ कर्म करने चाहिये उन्हींका वर्णन किया जाता है । स्त्री पुरुष दोनोंको स्नेहन स्वेदन देनेके पश्चात् वमन विरेचनसे शुद्ध करके क्रमशः पूर्वोक्त रीतिद्वारा उनको शुद्ध प्रकृतिपर ले आवे तदनन्तर आस्थापन और अनुवासन वस्ति देवे । तदनन्तर मधुर गणोक्त द्रव्योंसे संस्कार कियेहुए दुग्ध घृत मिश्रित आहार पुरुषको देवे तथा तैल और मांससंयुक्त पदार्थ स्त्रीको देवे ।

रजस्वला स्त्रीके पालनेके नियम ।

आर्तवस्रावदिवसादहिंसा ब्रह्मचारिणी । शयीतदर्भशय्यायां पश्येदपि पतिं च न । करे शरावे पर्णे वा हविष्यं त्र्यहमाचरेत् । अश्रुपातं नखच्छेदमभ्यङ्गमनुलेपनम् ॥ नेत्रयोरंजनं स्नानं दिवा स्वापं प्रधावनम् । अत्युच्च शब्दश्रवणं हसनं बहु भाषणम् । आयासं भूमिखननं प्रवातं च विवर्जयेत् ॥

अर्थ—जिस दिवससे स्त्री रजस्वला होय तबसे जीवहिंसा न करे ब्रह्मचर्य्यसे रहे कुशकी शय्यापर सोवे पतिका दर्शन न करे हाथमें मिट्टीके वर्तनमें व पत्तलपर रखके भोजन करे, मूंग भात दूध भातादि, भोजन करे आँसू न बहावे नखोंको न काटे तैलादि न लगावे न चंदनादिको लगावे स्नान न करे दिनमें शयन न करे कहीं आवे जावे नहीं अत्यन्त ऊंचे शब्दको न सुने न हँसी ठठोल करे विशेष बोले भी नहीं परिश्रम न करे पृथिवीको नाखूनादिसे न खाद और जिस स्थानपर विशेष वायु चलता होय वहाँ न बैठे ये सब नियम रजस्वलास्त्रीको पालने चाहिये ।

रजस्वलाके नियम न पालनेके दोष ।

अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा लोभाद्वा दैवतश्च वा । स चेत्कुर्यान्निषिद्धानि गर्भोदोषांस्तदाप्नुयात् । एतस्या रोदनाद्गर्भो भवेद्विकृतलोचनः । नखच्छेदे कुनखी कुष्ठी त्वभ्यङ्गतो भवेत् । अनुलेपात्तथा स्नानाद्दुःखशीलोऽञ्जनादहक् । स्वापशीलो दिवास्वापाच्चंचलः स्यात् प्रधावनात् । अत्युच्चशब्दश्रवणाद्बधिरः खलु जायते । तालुदंतौष्ठजिह्वासु श्यावो-

हसनतो भवेत्। प्रलापी भूरिकथनादुन्मत्तस्तु परिश्रमात्। स्खलते भूमिखननादुन्मत्तो वातसेवनात् ॥

अर्थ—जो स्त्री अज्ञानसे व प्रमाद व (उन्मत्तता) व लोभसे अथवा दैववश होकर निषिद्धाचरण करे तो वह दोष गर्भके बालकमें आ जाते हैं, जैसे कि स्त्रीके रजस्वलावस्थामें रोनेसे बालक बुरे नेत्रवाला होय नख काटनेसे बालक कुनखी होय तैलादिकी मालिस करनेसे कुष्ठी होय चंदनादिके लगानेसे और स्नान करनेसे बालक दुखिया होय काजल सुरमादि लगानेसे अंधा होय दिनमें सोनेसे बालक अत्यंत निद्रालु होय डोलने फिरनेस बालक चंचल होय विशेष ऊंचे स्वरके सुननेसे बालक बहरा होय हँसनेसे बालकके तालु दांत होंठ जीभ काले होयँ विशेष बोलनेसे बालक बकनेवाला होय परिश्रम करनेसे बालक बावला होय पृथिवी खोदनस बालक रेंगनेवाला होय और विशेष पवन सेवनसे बालक उन्मत्त व वातरोगादिसे पीडित होय।

स्त्री पुरुषके कर्तव्यकर्म।

ततः पुष्पात्प्रभृति त्रिरात्रमासीत ब्रह्मचारिण्यधः शायिनी पाणिभ्यामन्नमजर्जरात् पात्राद्भुञ्जाना न च कांचिदेव मृजा पद्येत ततश्चतुर्थेऽहन्येतासुत साव्यसशिरस्कं स्नापयित्वा शुक्लानि वासांस्याच्छादयेत् पुरुषञ्च। ततः शुक्लवाससौ स्रग्विणौ सुमनसावन्योन्यमभिकामौ संवसतामिति ब्रूयात् ॥

अर्थ—जिस दिवस स्त्री ऋतुमती होय उसी दिनसे उसको उचित है कि तीन दिवस पर्यन्त ब्रह्मचारिणी रहे अर्थात् पतिका संग न करे पृथिवीमें सोवे हाथका तकिया लगा लेवे और मृत्तिकादिके पात्रमें भोजन करे आर किसी प्रकारसे अंगका मार्जन अर्थात् स्नानादि कर्म न करे चौथे दिवस उबटन करके सिरसे स्नान करे और श्वेत वस्त्र धारण कर पुरुषको भी इसी प्रकार स्वच्छ वस्त्र धारण करावे, जब ये श्वेत वस्त्र धारण करलेवे माला पहर लेवे तथा इनका मन प्रसन्न होय और एक दूसरेकी इच्छा करता होय तो उनसे कहे कि तुम आपसमें सहवास करो।

स्त्रीसहवासके दिवस और विधि।

स्नानात् प्रभृति युग्मेष्वहःसु संवसेतां पुत्रकामौ तौ आयुग्मेषु दुहितृकामा न च न्युब्जां पार्श्वगतां वा सं सेवेत। न्युब्जाया वातो बलवान्

स योनिं पीडयति। पार्श्वगताया दक्षिणे पार्श्वे श्लेष्मा सच्युतोऽपि दधाति गर्भाशयं वामे पार्श्वे पित्तं तदस्याम् पीडितं विदहाति रक्तशुक्रं तस्मादुत्ताना बीजं गृह्णीयात् तस्या हि यथास्थानमवतिष्ठन्ते दोषाः पर्याप्ते चैनां शीतोदकेन परिषिञ्चेत् ।

अर्थ—यदि पुत्रकी इच्छा हो तो ऋतुस्नानके दिनसे युग्मदिनोंमें अर्थात् ऋतुके चार दिवस त्याग कर छठे आठवें दशवें बारहवें चौदहवें सोलवें इत्यादि दिनोंमें स्त्रीगमन करे और कन्याकी इच्छा हो तो अयुग्म पांचवें सातवें नवमें ग्यारहवें तेरहवें पंद्रहवें आदि दिवसोंमें स्त्रीगमन करे । न्युब्ज भाव (तिरछी रीति) से और पार्श्वगत (करवट लियेहुए) स्त्रीके साथ गमन न करे । न्युब्जभावमें सोतीहुई स्त्रीके साथमें सहवास करनेसे वायु बलवान् होकर योनिको पीडित करती है, दाहिनी करवटसे सोईहुई स्त्रीके साथ गमन करनेसे श्लेष्मा प्रच्युत होकर गर्भाशयको ढांक लेता है । बाईं करवटसे सोईहुई स्त्रीके साथ गमन करनेसे पित्त कुपित होकर गर्भस्थ रक्त और शुक्रको दूषित कर देता है । अतः स्त्रीको उचित है कि उत्तान रीतिसे (चित्त सीधी) सोकर पुरुष बीजको ग्रहण करे, ऐसा करनेसे वातादि दोष अपने २ स्थानपर स्थित रहते हैं । संसर्गानन्तर स्त्रीको उचित है कि हाथ पैर मुख और योनिको शीतल जलसे प्रक्षालन करे ।

गर्भाधानकालका फल ।

तत्र प्रथमदिवसे ऋतुमत्यां मैथुनगमनमनायुष्यं पुंसां भवति । यच्च यत्राधीयते गर्भ सम्प्रसवमानो विमुच्यते । द्वितीयेऽप्येवं सूतिकागृहे वा तृतीयेऽप्येवमसम्पूर्णाङ्गोऽदीर्घायुश्च भवति ॥

अर्थ—ऋतुमती स्त्रीके साथ प्रथम दिवस गमन करनेसे पुरुषकी आयु अल्प हो जाती है, यदि उसी दिन गर्भ भी रह जाय तो वह उत्पन्न होते ही मर जाता है । इसी प्रकार दूसरे दिवस भी स्त्रीगमनका फल होता है यातो सन्तान होते ही मर जाती है अथवा दश दिवसके अन्दर मर जाती है, तीसरे दिवस भी स्त्री गमन करनेसे सन्तानका अङ्गभङ्ग होता है और आयु भी अल्प होती है । चौथे दिवस गमन करनेसे सन्तान सम्पूर्ण अङ्ग प्रत्यङ्गोंसे युक्त और दीर्घआयु होती है ।

ऋतुसमयमें मैथुन निषेध ।

न च प्रवर्त्तमाने रक्ते बीजं प्रविष्टं गुणकरं भवति । यथा नद्यां प्रति-

स्रोतः प्लावि द्रव्यं प्रक्षितमतिनिवर्त्तते नोर्द्ध्वं गच्छति तद्वदेव द्रष्टव्यम्। तस्मान्नियमवतीं त्रिरात्रं परिहरेत् अतः परं मासादुपेयात् ॥

अर्थ—ऋतुकालमें जब रुधिर निकल रहा होय तब पुरुष वीर्य्य गर्भाशयके अन्दर घुसजावे तो वह निरर्थक होता है। जैसे बहती हुई नदीके प्रवाहसे यदि कोई बहनेके योग्य पदार्थ डाला जाता है तो ऊपरको नहीं चढता किन्तु प्रवाहके साथ हीमें वह जाता है, इसी प्रकार रुधिरप्रवाहमें डालाहुआ पुरुष बीज भी ऊपरको चढकर गर्भ धारणमें असमर्थ हो वहकर निकल जाता है। इसलिये नियमपूर्वक तीन रात्रितक स्त्रीसंग न करे इसके पीछे एक मासपर्य्यन्त स्त्री संग करे, ॥ गर्भ धारणकी अवधि १ मास पर्य्यन्त नहीं है किन्तु १६ दिवस पर्य्यन्त ह।

स्त्रीके दूषित रक्तजन्य विकृतावयव।

यदा स्त्रिया दोषप्रकोपेनोक्तान्या सेवमानाया दोषाः प्रकुपिताः शरीरसुपसर्पन्तः शोणितंगर्भाशयो दूषयन्ति तदाय गर्भं लभते स्त्रीतदा गर्भस्य तस्य मात्रजानामवयवानामन्यतमोऽवयवो विकृतिमापद्यते एकोऽथवानेकः अस्य यस्य ह्यवयवस्य बीजे बीजभागे वा दोषाः प्रकोपमापद्यन्ते तं तमवयवं विकृतिराविशति। यदा ह्यस्याः शोणितगर्भाशयबीजभागः प्रदोषमापद्यते तदा वन्ध्यां जनयति। यदा पुनरस्याः शोणिते गर्भाशयबीजभागावयवः स्त्रीकराणाञ्च शरीरबीजभागानामेकदेशः प्रदोषमापद्यते। तदा स्त्रियाकृतभूपिष्ठामस्त्रियां वार्त्तां नाम जनयति तां स्त्रीव्यापदमाक्षते ॥

अर्थ—जब स्त्रियोंके दोषोंको प्रकुपित करनेवाले पदार्थोंके सेवन करनेसे दोष कुपित होकर शरीरमें फैलते हुए रक्त और गर्भाशयको दूषित कर देते हैं तब जो गर्भ रहता है उस गर्भके मातृजादि अवयवोंमेंसे कोई अथवा कितने ही अवयव विकृत हो जाते हैं बीजके जिस भागमें दोष कुपित हो जाते हैं उसी भागसे उत्पन्नहुआ गर्भका वहीं अवयव विकृत हो जाता है। जब स्त्रीका शोणित और गर्भोत्पादक बीजभाग दूषित हो जाता है तब वन्ध्या दोषयुक्त कन्या उत्पन्न होता ह जब इसके शोणितमें गर्भाशयोत्पादक बीजभाग दूषित हो जाता है तब सडी हुई सन्तान होती है। जब स्त्रीके शोणितमें गर्भकारक पुरुष बीजभाग दूषित हो जाता है तब स्त्रीकी आकृतिवाली स्त्री चिह्नोंसे हितवार्तानामक सन्तान उत्पन्न होती है, इस सन्तानको स्त्रीपादक कहे हैं।

पुरुषके दूषित शुक्रजन्य विकृतावयव ।

एवमेव पुरुषस्य यदा बीजे बीजभागः प्रदोषमापद्यते तदा पितृजावयवविकृतिं विद्यात् । यदा पुनरस्य बीजे बीजभागावयवः प्रदोषमापद्यते तदा पूतिप्रजां जनयति । यदात्वस्यबीजे बीजभागावयवः पुरुषकराणां च शरीरबीजभागानामेकदेशः प्रदोषमापद्यते । तदा पुरुषाकृतिभूयिष्ठमपुरुषं तृणपूर्तिनामजनयति तां पुरुषव्यापदमाचक्षते एतेन मातृजाता पितृजाताश्चावयवानां विकृतिर्व्याख्याता निर्विकारः परस्त्वात्मासर्वभूतानां निर्विशेषः सत्त्व शरीरयोस्तु विशेषाद्विशेषाद्विशेषायलब्धिः ॥

अर्थ—जब पुरुषके बीज भागमें दोष उत्पन्न होता है तब पितृजादि अवयवोंमें विकार होता है, जब सन्तानकारक बीज भाग दूषित हो जाता है तब पूतिसन्तान उत्पन्न होती है जब पुरुषकारक बीज भाग दूषित हो जाता है, तब पुरुषाकृति विशिष्टपुरुष चिह्नोंसे रहित तृणपूति संतान होती है । इनको पुरुषव्यापत् कहते हैं इन मातृज और पितृज अवयवोंकी विकृतिके व्याख्यानके साथ ही सात्म्यज रसज और सत्वज अवयवोंकी विकृति समझ लेनी चाहिये । आत्मामें विकृति नहीं हो सक्ती क्योंकि वह निर्विकार है और सम्पूर्ण प्राणियोंमें समान हैं केवल तत्त्व और शरीरकी भिन्नतासे ही उसकी भिन्नता जानी जाती है । स्त्रीपुरुषोंको उचित है कि गर्भस्थिति करनेके पूर्व ही रक्तवीर्य्यका संशोधन करके गर्भकी स्थिति करें जिससे गर्भ विकृतावयवको प्राप्त न होने पावे ।

गर्भधारणके अयोग्य स्त्री ।

तत्रात्यशिता क्षुधिता पिपासिता भीता विमनाः शोकार्त्ता क्रुद्धान्यञ्च पुमांसमीच्छंति मैथुने चाभिकामा न गर्भन्धत्ते विगुणां वा प्रजां जनयति । अतिबालामतिवृद्धां दीर्घरोगिणीमन्येन नवाविकारेणोपसृष्टां वर्जयेत् । पुरुषेऽप्येतदेव दोषाः । अतः सर्वदोषवर्जितौ स्त्रीपुरुषौ संसृजेयाताम् ।

अर्थ—वह स्त्री जिसने विशेष आहार कर लिया होय क्षुधातुर होय पिलासी भयभीत होय मनमलीन होय शोकार्त होय क्रुद्ध होय पतिसे विरोध रखकर अन्य पुरुषसे रति करनेकी इच्छा रखती होय—ऐसी स्त्री गर्भधारण नहीं कर सक्ती है अत्यन्त बाला अत्यन्त बुड्ढी अधिक समयसे रोगिणी व अन्य किसी विकारसे पीडित रहती होय ऐसी स्त्री गमनके योग्य नहीं है—इन्हीं दोषोंसे युक्तपुरुष भी वीर्य्यदान देनेमें निकृष्ट है, इससे सम्पूर्ण दोषोंसे रहित स्त्री पुरुषको गर्भधारणके लिये समागम करना योग्य है ।

गर्भ धारणके निमित्त स्त्रीपुरुपके समागमकी विधि।

संजातहर्षौ मैथुनेचानुकूलाविष्टगन्धं सास्तीर्णं सुखं शयनमुपकल्प्य मनोसंहितमशनमशित्वा नात्यशितौ दक्षिणपादेन पुमान् स्त्री वामेनारोहेत् तत्र मन्त्रं प्रयुञ्जीत् आहारसि विहरसि वायुरसि सर्वतः प्रतिष्ठासि धाता त्वा दधातु विधातात्वा दधातु ब्रह्मवर्चसा भवेति। ब्रह्मा बृहस्पतिर्विष्णुः सोमः सूर्य्यस्तथा श्विनौ। भगोऽथ मित्रावरुणौ पुत्रं वीरं दधातु मे इत्युक्त्वा संवसेताम्॥

अर्थ—जब स्त्री पुरुप दोनोंका चित्त गमनोत्सुक होय तब अनुकूल सुगंधित द्रव्योंसे चर्चित कोमल तकिया विछौनासे युक्त सुखदायक शय्या कल्पना करावे और मनको प्रसन्न करनेवाला हितकारी भोजन करके (तथा विशेप भोजन न खा लेवे) शय्यापर पुरुप अपने दाहिने पैरसे और स्त्री अपने बायें पैरसे चढ, इस मंत्रका पाठ करे। "आहरसिविहरसि वायुरसि सर्वतः प्रतिष्ठासि धातात्वादधातु विधातात्वादधातु ब्रह्मवर्चसा भवेदिति ब्रह्माबृहस्पतिर्विष्णुःसोमः सूर्य्यस्तथाश्विनौ। भगोऽथ मित्रावरुणौ पुत्रं वीरं दधातु मे" इस मन्त्रका उच्चारण करके स्त्रीसंगमन करे।

गर्भावतरण क्रम।

कामात् मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः। गर्भः संजायते नार्य्याः सजातो बाल उच्यते॥ ऋतौ स्त्रीपुंसयोर्योगे मकरध्वजवेगतः। मेढ्रयोन्यभिसंघर्षाच्छरीरोष्मानिलाहतः। पुंसः सर्वशरीरस्थं रेतो द्रावयतेऽपतत्। वायुर्मेहनमार्गेण पातयत्यंगना भगे। तत्संश्रुत्य व्यात्तमुखं याति गर्भाशयं प्रति। तत्र शुक्रवदायाते नार्त्तवेन युतं भवेत्॥

अर्थ—कामवेगसे दोनों स्त्रीपुरुषोंके संयोग होनेपर शुद्ध रुधिर और शुद्ध वीर्य्यसे स्त्रीके गर्भाशयमें शुद्ध गर्भ रहता है जब वह प्रगट होता है तब उसको बालक कहते हैं। ऋतुके विपय कामदेवके वेगसे स्त्री पुरुषोंका संयोग होनेपर लिंग और योनिके आपसमें संघर्पण होनेपर शरीरकी गर्मी वायु ताडित हो पुरुपके सर्व देहस्थित वीर्य्यको द्रवीभूत करके उस द्रवीभूतहुए वीर्य्यके भागको वायुलैंगके मार्गसे स्त्रीकी योनिमें गेर देवे वह वीर्य्य टपककर खुलेहुए गर्भाशयके मुखमें जाता है जिस प्रकार पुरुषके शरीरसे शुक्र आता है उसी प्रकार स्त्रीके शरीरसे रजका रुधिर आता है उसमें वह वीर्य मिल जाता है।

शुक्रार्त्तवसमाश्लेषो यदैव खलु जायते । जीवस्तदैवविशति युक्तशुक्रार्त्तवांतरम् । सूर्य्यांशोः सूर्य्यमणीत उभयस्माद्युता यथा । वह्निः संजायते जीवस्तथा शुक्रार्तवाद्युतात् । आत्माऽनादिरनन्तश्चाऽव्यक्तो वक्तुं न शक्यते । चिदानन्दैकरूपोऽयं मनसापि न गम्यते । सर्वभूतोऽपि जगतो भाविनीबलवत्तया । अविद्यास्वीकृते कर्मवशो गर्भं विशत्यसौ । स एव वेत्तारसनो द्रष्टा घ्राता स्पृशत्यपि । श्रोता वक्ता च कर्त्ता च गन्तारन्तोत्सृजत्यपि ॥ दिने व्यतीते नियतं संकुचत्यंबुजं यथा ॥ ऋतौ व्यतीते नार्य्यास्तु योनिः संव्रियते तथा ॥

अर्थ–जिस समय वीर्य और आर्तवका संयोग होता है उसी समय उनके साथ जीव उसमें प्रवेश करता है, जैसे सूर्य्यकी किरण और मणीके संयोगसे अग्नि प्रगट होती है उसी प्रकार शुक्र शोणितके सम्बन्धसे जीव प्रगट होता है वह जीवात्मा अनादि अनंत अव्यक्त कहनेमें न आवे चित् आनन्दका एक स्वरूप जिसको मनकरके भी प्राप्त न हो सके ऐसा जीवात्मा जगत्में बलवती (भावी) होनहार करके अविद्याको स्वीकार करके कर्मवश गर्भमें (चौवीस तत्वके शरीरमें) प्रवेश करता है यह जीव स्वादको जानता है देखता है सूंघता है स्पर्श करता है श्रवण करता है कथन कर्ता है गमन करता है रमण करता है त्याग करता है ॥ जैसे दिनके व्यतीत होनेपर निश्चय कमलपुष्प बन्द हो जाता है उसी प्रकार ऋतु (रजोदर्शन होनेसे लेकर सोलह रात्रिके व्यतीत होने पर कमलमुख, गर्भाशयका मुख बन्द हो जाता है)।

बीजेंऽतर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ । यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुरःसरौ । आधिक्ये रेतसः पुत्रः कन्या स्यादार्तवेऽधिके । नपुंसकं तयो साम्ये यथेच्छा पारमेश्वरी ॥

अर्थ–वीर्यके गर्भाशयमें पवनसे दो भाग याने दो हिस्सोंमें विभक्त होनेसे दो जीव अर्थात् दो बालक गर्भाशयमें बन जाते हैं इनको यम (जोडला) कहते हैं किसी २ ने इनकी उत्पत्ति धर्म अधर्मसे भी मानी है गर्भके समय वीर्य अधिक होनेसे पुत्र उत्पन्न होता है और स्त्रीका आर्तव अधिक होनेसे कन्या होती है एवं वीर्य्य और आर्तवके समान होनेसे नपुंसक सन्तान होती है आगे परमेश्वरकी इच्छा ।

गर्भाधानके पश्चात् स्त्रीका कर्तव्य कर्म ।

लब्धगर्भायाश्चैतेष्वहः सु लक्ष्मणावटशृङ्गसहदेवाविश्वदेवानामन्यतमं

क्षीरेणाभिषुत्य त्रींश्चतुरो वा विन्दून्दद्यात् । दक्षिणे नासापुटे पुत्रकामायै न च तान्निष्ठीवेत् ॥ ध्रुवं चतुर्णां सान्निध्याद्गर्भः स्याद्विधिपूर्वकः । ऋतुक्षेत्राम्बुबीजानां सामग्र्यादङ्कुरो यथा ॥

अर्थ—जिस समय स्त्री गर्भवती होजावे तब लक्ष्मणा वडकी कोंपल सहदेई विश्वदेवा (गुलशकरी अथवा गांगेरूकी) कोइ २ इसको सफेद फूलकी वला भी बोलते हैं इनमेंसे किसी एकको दूधके साथ पीसकर तीन व चार विन्दु पुत्रकी इच्छा करनेवाली स्त्रीको दक्षिण नासिका छिद्रमें सुंघावे और थूकने न देवे (गर्भाधानमें अन्य उपयोग) जैसे ऋतुक्षेत्र जल और वजि इन चारोंको संयोगसे अंकुर उत्पन्न होता ह इसी प्रकार इन चारोंके संयोगसे गर्भ उत्पन्न होता है जैसे ऋतुकाल -क्षेत्र गभाशय-जल आहारके पचनेपर उत्पन्न हुआ रस, वजि शुक्र और आर्तवके विना इन चारोंके संयोगके गर्भ धारण नहीं होता ।

विधिपूवक गर्भ धारणका फल ।

एवं जाता रूपवन्तो महासत्वाश्चिरायुषः ।
भवन्त्युणस्य मोक्तारः सत्पुत्राः पुत्रिणोहिताः ।

अर्थ—इस प्रकारसे जब विधिपूर्वक पुत्र उत्पन्न होता है वह रूपवान् पराक्रमी दीर्घायु माता पिताके ऋणको दूर करनेवाला साधु होता ह ।

गार्भिणीको उत्तम पुत्रोत्पत्तिकी आहारविधि ।

सा चेदेवमाशासीत बृहन्तमवदातं हर्य्यक्षमोजस्विनं शुचिं सत्वसम्पन्नं पुत्रमिच्छेयमिति । शुद्धस्नानात् प्रभृत्यस्यै मन्थमवदातं यवानां मधुसर्पिभ्यां संसृज्य श्वेताया गोः सरूपवत्सायाः पयसालोड्य राजते कांस्ये वा पात्रे काले काले सप्ताहं सततं प्रयच्छेत् पानाय प्रातश्च शालियवान्नविकारान् दधिमधुसर्पिर्भिः पयोभिर्वा संसृज्य भुञ्जीत । तथा सायमवदातशरणशयनासनयानवसनभूषणा च स्यात् ।

अर्थ—यदि स्त्री ऐसी इच्छा करे कि मेरा पुत्र बृहत्काय गौरवर्ण सिंह किशोरवत् पराक्रमी ओजस्वी पवित्र और सत्त्व सम्पन्न हो तो उसे उचित है कि ऋतुस्नानके दिवससे उत्तम जौका मन्थघृत और शहत मिलाकर उसमें ऐसी गौका दूध मिलावे जिसका वर्ण गौर और उसका वछडा भी श्वेत वर्ण होय । इसको चांदी व कांसीके पात्रमें नियत समय पर सात दिवसतक निरन्तर पान करा प्रातःकाल शालि अन्न व

जौके पदार्थोंको दही घृत शहत अथवा गौके दूधके साथ दे सायंकालके समय उत्तम घरमें उत्तम पलंग आसनयान पर वस्त्र भूपणादिसे अलंकृत करके बैठावे ।

सायम्प्रातश्च शश्वत् श्वेतं महान्तं ऋषभं आजानेयं हरिचन्दनाङ्कितं पश्येत् । सौम्यभिश्चैनां कथाभिर्मनोऽनुकूलाभिरुपासीत । सौम्याकृतिवचनोपचारचेष्टांश्च स्त्रीपुरुषानितरानपि चेन्द्रियार्थानवदाता न पश्येत् । सहचर्य्यश्चैनाम्प्रियहिताभ्यां सततमुपचरेयुः । तथा भर्ता न च मिश्रीभावमापद्येयातामित्यनेन विधिना सप्तरात्रं स्थित्वाष्टमेऽहन्याप्लुत्याद्भिः सशिरस्का भर्त्रा सहाहतानि वस्त्राण्याच्छादयेत् अवदातानि अवदाताश्च स्रजो भूषणानि बिभृयात् ।

अर्थ—उस स्त्रीको सायंकाल और प्रातःकाल सफेद रंगका बडा ऋपभ (उत्तम नसलका घोडा) दिखलावे । शान्तिप्रदायक सुन्दर मनोनुकूल कथावार्त्ता सुनाता रहे, इसी प्रकार उसको सुन्दर आकृतियोंवाली सौम्य वचनोंसे युक्त सौम्याचार सौम्यचेष्टावाले स्त्रीपुरुप अथवा और २ उत्तम वस्तु दिखलावे इसकी सहचरी निरन्तर हितकारक उपायोंसे इसकी सेवा करती रहें और गर्भवती स्त्रीका स्वामी भी इससे न मिले इस प्रकार सात दिवस पर्य्यन्त रहकर आठवें दिवस शरीरपर उबटन लेपन करके स्त्री पुरुप दोनों शिरसहित स्नान करें और सुन्दर स्वच्छ वस्त्रोंको धारण कर सुन्दर स्वच्छ फूलोंकी माला और आभूपणोंसे अपने शरीरको अलंकृत करें । उत्तम आचरण उत्तम वस्त्र उत्तम आहार विहार उत्तम दार्शनिक खूबसूरत वस्तु व चित्रोंका अवलोकन मनमें श्रेष्ठ विचार स्वच्छता इत्यादिका असर माताके मनमें होवे तो उसका अमर गर्भस्थ बालकपर पहुंचता है । प्रायः देखा गया है कि भारतवर्पकी अनेक स्त्रियोंके ऐसे बालक होते हैं कि उनके शरीरपर कोई अङ्ग अधिक होता है, जैसे कि तीन पैर चार हाथ, मस्तकमें नेत्रकी आकृति, दो बालकोंका पेट जुडा हुआ, किसीका मस्तक चौंडा वेडौल, किसीके हाथमें अधिक अंगुली होती है ।

(विशेप इसका विवरण इच्छित सन्तान नामकी हमारी पुस्तकमें देखो)

शुभकर्म्मोंसे स्त्री पुरुपोंकी बुद्धि स्वच्छ और सात्विकी हो जाती है और उन सात्विक [illegible]सी तामसी परिणामोंका असर सन्तानमें आता है पूर्वकालमें प्रत्येक आर्य्य स्त्री [illegible] संस्कारके वगैर किसी भी कामका विधान नहीं करते थे । परन्तु इस समय कालकी कुटि[illegible]ल गति होनेसे वैद्यक शास्त्रका अधोपतन हा गया है और इसके साथही संस्कार और [illegible] यज्ञादि कर्म्मोंका अभाव हो गया है यह बात पूर्वाचार्य्योंने उत्तम रीतिसे

निश्चय कर ली थी कि जैसे स्त्री पुरुषोंके परिणाम हात हे वैसे ही परिणाम सन्तानके होते हैं यज्ञादि कर्म करके परिणाम शुद्ध होनेके अनन्तर गर्भाधान क्रिया करनी उचित है जैसा कि।

सत्त्वभेदका कारण।

सत्त्ववैशेष्यकराणि पुनस्तेषां तेषां प्राणिनां मातापितृसत्त्वान्यन्तर्वन्त्याः श्रुतयश्चाभीक्ष्णं स्वोचितञ्च कर्मसत्वविशेषाभ्यासश्चेति ॥ यथोक्तेनोपसंस्कृतशरीरयोः स्त्रीपुरुषयोः मिश्रीभावमापन्नयोः शुक्रं शोणितेन सह संयोगं समेत्याव्यापन्नमव्यापन्नेन योनावनुपहतायामप्रदुष्टे गर्भाशये गर्भमभिनिर्वर्त्तयत्येकान्तेन। तद्यथा निर्मले वाससि सुपरिकल्पितेरञ्जनं समुदितगुणं उपनिपातादेव रागमभिनिर्वर्त्तयति तद्वत् यथा वा क्षीरं दध्नाभियुतमभिषवणाद्विहाय स्वभावमापद्यते दधिभावशुक्रं तद्वदेवमाभिनिर्वर्त्तमानस्य गर्भस्य स्त्रीपुरुषत्वे हेतुः पूर्वमुक्तः ॥ यथा हि बीजमनुपतप्तं तप्तं स्वां स्वां प्रकृतिमनुविधीयते व्रीहिर्वा व्रीहित्वं यवोना यवत्वं तथा स्त्रीपुरुषावपि यथोक्त हेतुविभागं अनुविधीयते। तयोकर्म्मणा वेदोक्तेन विवर्त्तमानमुपदिश्यते प्राग् व्यक्तीभावात् । प्रयुक्तेन सम्यक् कर्म्मणा हि देशकालसम्पदुपेतानां नियतमिष्टफलत्वं तथेतरेषामितरत्वं तस्मादापन्नगर्भां स्त्रियमभिसमीक्ष्य प्राक् व्यक्तीभावात् गर्भस्यपुंसवनमस्यै दद्यात् ॥

अर्थ-(सत्वमें भेद होनेके निम्न लिखित कारण हैं) यथा सन्तानका सत्व माता पिताके सत्वके अनुसार हाता है तथा धर्मशास्त्रादि ग्रन्थोंका श्रवण, जैसे २ कम वे करते हैं तदनुसार ही सन्तानका सत्व होता है ऊपर कहेहुए संस्कारोंसे (गर्भाधानादि संस्कार) शुद्ध कियेहुए स्त्री पुरुषोंका समागम होवे, यदि उनका शुद्ध शुक्र और रज मिलाकर अदुष्ट योनि द्वारा अदुष्ट गर्भाशयमें प्रवेश करे तो निश्चय गर्भकी उत्पत्ति होती है। जैसे निर्मल धुलेहुए वस्त्रमें रंग चढाया जाय तो निश्चय ही बहुत उत्तम रंग चढता है, जैसे दूधके साथ दहीके मिलने पर दूध अपने स्वभावको छोडकर दधिभावको प्राप्त करता है। इसी प्रकार शुद्ध शुक्र शुद्ध रजसे मिलनेपर निश्चय गर्भकी उत्पत्ति हो जाती है, उत्पन्न हुए गर्भमें पुत्र होता व कन्या इन हेतुओंको

आगे वर्णन करेंगे । जैसे भला व बुरा बीज बोया जाता है उसका फल भी वैसा ही होता है, जैसे व्रीहिके बोनेसे व्रीहि और जौके बोनेसे जौ उत्पन्न होता है इसी प्रकार सन्तानकी व्यवस्था भी समझो । गर्भके लक्षण प्रगट होनेसे प्रथम यथोक्त वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान कर सम्यक् प्रयुक्त कियेहुए देशोत्कर्ष और कालोत्कर्ष कामोंका फल भी उत्तम होता है । इतर कर्मोंका फल भी उत्पन्न होता है और इतर कर्मोंका फल इस लिये है कि जब यह मालूम हो जाय कि स्त्रीको गर्भ रह गया है परन्तु गर्भके लक्षण प्रगट नहीं हुए हैं स्त्रीको पुंसवन करावे ।

पुंसवनविधि ।

गोष्ठे जातस्य न्यग्रोधस्य प्रागुत्तराभ्यां शाखाभ्यां शुङ्गेऽनुपहते आदाय द्वाभ्यां धान्यमाषाभ्यां सम्यदुपेताभ्यां गौरसर्षपाभ्यां वा सह दध्नि प्रक्षिप्य पुष्ये ऋक्षे पिबेत् । तथैवापरान् जीवकर्षभकापामार्ग सहचरकल्कांश्च युगपदेकैकशो यथेष्टं वाप्युपसंस्कृत्य पयसा । कुड्यकीटकं मत्स्यकञ्चोदकाञ्जलौ प्रक्षिप्य पुष्येण पिबेत् । तथा कनकमयान् राजतानायसांश्च पुरुषकानाग्निवर्णानणुप्रमाणान् दध्नि पयसि उदकाञ्जलौ वा प्रक्षिप्य पिबेदनवशेषतः पुष्येण पुष्येणैव च पिष्टस्य पच्यमानस्योष्माणमुपघ्राय तस्यैव च पिष्टस्योदकसंसृष्टस्य रसदेहलीमुपनिधाय दक्षिणे नासापुटे स्वयमासिञ्चेत् पिचुनेति पुंसवनानि यच्चान्यदपि ब्राह्मणा ब्रूयुराप्ता वा पुंसवनमिष्टं तच्चानुष्ठेयम् ।

अर्थ—गोष्ठ अर्थात् गौ चरानेकी जगहमें उत्पन्न हुए वट वृक्षकी पूर्व और उत्तरकी शाखाओंसे दो कोंपल निर्दोष लावे उनको दो धान्य माष अथवा सफेद सरसोंके साथ दहीमें डालकर पुष्य नक्षत्रमें पान करे । अथवा जीवक ऋषभक आगा और सहदेवी इन सबको मिलाकर अथवा एक २ को घोंटकर लुगदी बना दूधके साथ सिद्ध करके पान करे अथवा एक नग कुडयकीट (यह एक प्रकारका कीडा होता है, और एक छोटी मछली लेकर इनको एक अंजली भर जलमें पीसकर पुष्य नक्षत्रमें पान करे अथवा सोना चांदी व लोहेका अणु प्रमाण अग्नि वर्ण पुरुष बनाकर दही दूध व अंजली भर जलके साथ पुष्य नक्षत्रमें पान करे, पुष्य नक्षत्रमें जोश दियेहुए पिष्टककी भाफको सूंघकर उसी पिष्टक रसको देहलीमें रखकर रूईके फोहासे नासिकाके दाहिने छिद्रमें उस रसको डाले । इन प्रयोगोंके अतिरिक्त अन्य-

कोई इष्ट पुंसवन जिसको विद्वान् वैद्य पंडित व आप्तपुरुष बतलावें उसको भी करना उचित है ।

अनुक्त लक्षण ।

आहाराचारचेष्टाभिर्य्यादशीभिः समन्वितौ । स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः ॥ (अनस्थिगर्भका कारण) यदानार्य्यावुपेयातां वृषस्यन्त्यौ कथंचन । मुंचन्त्यौ शुक्रमन्योन्यमनस्थिस्तत्र जायते ॥ (स्वप्नमैथुनमें गर्भ धारण) ऋतुस्नातातु या नारी स्वप्ने मैथुन मावहेत् । आर्तवं वायुरादाय कुक्षौ गर्भ करोति हि । मासिमासि विवर्द्धेत गर्भिण्या गर्भलक्षणम् । कललं जायते तस्या वर्जितं पैतृकैर्गुणैः ।

अर्थ—जैसे आहार आचरण और चेष्टाओंसे स्त्री पुरुष समागममें प्रवृत्त होते हैं वैसी ही उनकी सन्तान भी होती है, (अनस्थि गर्भका लक्षण) जब रतिकी इच्छामें प्रवृत्त होनेवाली दो स्त्रियाँ आपसमें संभोग करती हैं तब एकका वीर्य्य दूसरी स्त्रीकी यानम पडकर गर्भाशयमें प्रवेश कर जावे तो उससे गर्भ रह कोमल अस्थिवाला बालक उत्पन्न होता है (स्वप्नमैथुनमें गर्भ धारण) ऋतुस्नान करके जो स्त्री स्वप्नमें मैथुन करती है उसके आर्त्तवको वायु गर्भाशयके अन्दर ले जाकर गर्भको उत्पन्न करती है वह गर्भ साधारण गर्भकी तरह प्रत्येक महीनेमें बढता है और पिताके गुणोंसे रहित मांसका लोथडा जिसमें वाल दाढी मूंछ रोम नख दांत नस रग हड्डी नहीं होते ऐसा उत्पन्न होता है (यह श्लोक सुश्रुत संहितामें है परन्तु जेज्झटाचार्य्य इन श्लोकोंको क्षेपक मानता है) ।

सर्पवृश्चिककूष्माण्डविकृताकृतयश्च ये ।
गर्भास्त्वेतो स्त्रियाश्चैव ज्ञेया पापकृता भृशम् ॥

अर्थ—जो सर्प वृश्चिक कूष्माण्ड और अन्यविकार युक्त आकृतियोंके गर्भ होत हैं वे स्त्रियोंके पापसे उत्पन्न होते हैं (लेकिन हमारी रायमें विकृत गर्भ स्त्रीके ख्यालसे होते हैं अथवा दृगगत पदार्थोंसे उनके ख्याल जम जाते हैं । उसी माफिक आकृति गर्भाशयमें बनने लगती है) जैसा कि—(पूर्वं पश्ये ऋतुस्नाता यादृशं नरमंगना । तादृशं जनयेत्पुत्रं ततः पश्येत्पतिं प्रियम्) ऋतुस्नानके ऋतुस्नाता स्त्री जैसे स्वरूपवान् व कुरूपवान् पुरुषको अथवा अन्य जीव जन्तुओंको प्रथम देखे उसके उसीके समान संतान प्रगट होती है इससे स्त्रीको उचित है कि ऋतुस्नान करके सुन्दर व्यक्तिके प्रियदार्शनिक पुरुष अपने प्रिय पतिको देखे ॥

शरीरके वर्णके हेतु ।

तत्र तेजोधातुः सर्ववर्णानां प्रभवः स यदा गर्भोत्पत्तावब्धातु प्रायो भवति तदा गर्भं गौरं करोति पृथिवीधातुप्रायः कृष्णाम् । पृथिव्याकाशधातुः प्रायः कृष्णश्यामं तोयाकाशधातुप्रायो गौरश्यामम् । मतान्तरम् । यादृग् वर्णमाहारमुपसेवते गर्भिणी तादृग्वर्णप्रसवा भवतीत्येके भाषन्ते ॥

अर्थ—इस विषयमें तेजो धातुही गोरे काले आदि सब प्रकारके रंगोंका कारण है यदि वही धातु गर्भोत्पत्तिके समय जलप्राय होती है अर्थात् जलसे अधिक मिश्रित होती है तब गर्भस्थ बालकका वर्ण गोरा होता है, जब उसमें पृथिवी धातु अधिक होती है तब बालकके शरीरका वर्ण काला होता है जब उसमें पृथिवी और आकाश धातु अधिक होते हैं तब देहका वर्ण कृष्ण श्याम होता है जब उसमें जल और आकाश धातु अधिक होते हैं तब शरीरका रंग गौर श्याम होता है । अन्य २ आचार्य्योंका मंतव्य है कि गर्भिणी जिस रंगका भोजन करती है उसी रंगका बालक उसके उत्पन्न होता है ।

विकृत नेत्र होनेका कारण ।

तत्र दृष्टिभागमप्रतिपन्नं तेजो जात्यन्धं करोति तदेव रक्तानुगतं रक्ताक्षं पित्तानुगतं पिङ्गाक्षं श्लेष्मानुगतं शुक्लाक्षं वातानुगतं विकृताक्षमिति ॥

अर्थ—जब चौथे महीनेमें वही पूर्वोक्त तेज किसी पूर्वजन्मार्जित पापके कारणसे दृष्टि भागमें नहीं जाता है तो सन्तान जन्मान्ध होती है और जब तेज धातु रक्तमें प्रवेश करती है तब सन्तानके नेत्र रक्त वर्ण होते हैं । और जब पित्तसे मिली होती है तब बालककी आंख पीली होती हैं । जब कफ संयुक्त होती है तब सफेद और जब वात संयुक्त होती है तब विकृत कानी भेंडीकीसी आंखें होती हैं ।

अदृष्टार्तव ऋतुमतीके लक्षण ।

पीनप्रसन्नवदना प्रक्लिन्नात्ममुखद्विजाम् । नरकामां प्रियकथां स्रस्तकुक्ष्यक्षिमूर्द्धजाम् । स्फुरद्भुजकुचश्रोणिनाभ्यूरुजघनस्फिचम् । हर्षोत्सुक्यपराञ्चापि विद्यादृतुमतीमिति ॥

अर्थ—जिस स्त्रीका मुख हृष्टपुष्ट और प्रसन्न होवे जिसका शरीर और मसूडे गीले रहते होयँ जिसको पुरुष अति प्रिय लगे जो विषय सम्बन्धि वातें सुननेमें प्रीति रखती

होय जिसकी कूख नेत्र और केश ढीले पड जायँ जिसके भुजा कुच श्रोणी नाभि ऊरू जांघ और कूले फडकते होयँ जिसको रतिमें प्रवृत्त होनेकी अति अभिलाषा होय ऐसी अदृष्टार्त्तवमती स्त्रीको ऋतुमती समझो कितने ही डाक्टरोंका यह मत है कि ऋतुधर्मके आये विगर भी स्त्री गर्भवती हो सक्ती है । उसका यही कारण है कि आजकलकी नवीन शोधके डाक्टरोंसे कई सहस्र वर्ष पूर्व ही सुश्रुत वैद्यने इसका निर्णय करलिया है ।

सद्यो गृहीत गर्भके लक्षण ।

तत्र सद्योगृहीतगर्भाया लिङ्गानि श्रमो ग्लानि । पिपासा सक्थिसदनं शुक्रशोणितयोरविबन्धः स्फुरणञ्च योनेः।

अर्थ–वह स्त्री जिसके शीघ्र ही गर्भ रहा होय उसके यह लक्षण होते हैं, जैसे अनायास खेदका होना, अरुचि, पिलासका लगना, ऊरुओंका जिकड जाना शुक्र शोणितका बन्द हो जाना, योनिका फडकना इत्यादि लक्षण होते हैं ।

गर्भ ग्रहणके उत्तरकालीन लक्षण ।

स्तनयोः कृष्णमुखता रोमराज्युद्गमस्तथा । अक्षिपक्ष्माणि चाप्यस्याः संमील्यन्ते विशेषतः । अकामतश्छर्दयति गन्धादुद्विजते शुभात् । प्रसेकः सदनञ्चापि गर्भिण्यालिङ्गमुच्यते ॥

अर्थ–गर्भ रहनेके पश्चात् तीन चार महीने व्यतीत हो जाते हैं तब स्त्रीके कुचोंपर श्यामता, रोमांच खडे हो जाना, पलकोंका बारबार बन्द होना, बिना कारण वमन होना, सुगन्धित पदार्थोंसे विरक्तता, लार टपकना, कांपना इत्यादि लक्षण हो जाते हैं ।

गर्भवतीके वर्जित कर्म ।

तदाप्रभृत्येव व्यायामं व्यवायमं व्यवायमतर्पणम् निकर्षणं दिवास्वप्नं रात्रिजागरणं शोकं यानावरोहणं भयमुत्कटकासनं चैकान्वतः स्नेहादिक्रियां शोणितमोक्षणं चाकाले वेगविधारण अनसेवेत ॥ दोषाभिघातैर्गर्भिण्या यो यो भागः प्रपीड्यते । स स भागः शिशोस्तस्य गर्भस्थस्य प्रपीड्यते ॥

अर्थ–गर्भ रहनेके समयसे परिश्रम मैथुन उबटना व बोझा उठाना दिनमें शयन करना रात्रिमें जागरण करना शोक तथा भयभीत होना सवारी पर चढना उतरना भागना उछलना उटकुरुआ बैठना स्नेह किया मलमूत्रका रोकना अथवा तीव्र वमन

विरेचनके औषध खाना इत्यादि कर्मोंको त्याग देवे । नीचे लिखे कर्मोंके करनेसे गर्भको क्लेश वातादि दोष तथा चोटके लगनेसे अथवा और २ कारणोंसे गर्भिणी स्त्रीके जिस २ अङ्गमें पीडा होती है उस समय उसके गर्भस्थ बालकको भी उसके संसर्गसे उसी २ अङ्गमें पीडा होती है ।

मासपरत्वमें गर्भकी अवस्था ।

तत्र प्रथमे मासि कललं जायते । द्वितीये शीतोष्मानिलैरभिप्रपच्यमानानां महाभूतानां संघातो घनः संजायते । यदि पिण्डः पुमान् स्त्री चेत्पेशी न पुंसकश्चेदर्बुदमिति । चतुरस्रा भवेत् पेशीवृत्तः पिण्डो घनः स्मृतः । शाल्मलीमुकुलाकारमर्बुदं परिचक्षते । तृतीये हस्तपादशिरसांपंचपिण्डका निर्वर्त्तन्तेऽङ्गप्रत्यङ्गविभागश्च सूक्ष्मो भवति । चतुर्थेसर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्ततरो भवति गर्भहृदयप्रव्यक्तभावाच्चेतनाधातुरभिव्यक्तो भवति कस्मात् तत्स्थानत्वात्तस्माद् गर्भश्चतुर्थे मास्यभिप्रायमिन्द्रियार्थेषु करोति ।

अर्थ—प्रथम महीनेमें शुक्र और शोणितके आपसमें मिल जानेसे एक प्रकारका लोथडासा हो जाता है यह गर्भकी प्रथम मासकी आकृति है । दूसरे महीनेमें कफ वात और पित्तसे पकेहुए जो पृथिव्यादि पंच महाभूत इनका जो समूह अर्थात् मिलकर एक हो जाना इससे वह पूर्वोक्त कलल कुछ घनरूप (गाढा) हो जाता है । जो गर्भ गर्भाशयमें स्थित शुक्रशोणितका समूह गोलाकार होवे तो पुत्र होता है और लम्बी मांस पेशीके समान होय तो कन्या उत्पन्न होय और गोलार्द्धके समान होय तो नपुंसक होता है । इस विषयमें गयादासाचार्य्य लिखते हैं कि पेशी चौकोन होती है गोल और गाढा पिण्ड होता है और सेमरकी कलीके आकारका अर्बुद होता है । तीसरे महीनेमें गर्भके दो हाथ और दो पैर और एक शिर ये पांचों चिह्न उस पिण्डसे अलग अलग वन जाते हैं । इनके अतिरिक्त हृदय पीठ छाती उदर आदि अङ्ग और ठोडी नाक होंठ कान उंगली एंडी इत्यादि प्रत्यङ्ग सूक्ष्मरूपसे वन जाते हैं । चौथे महीनेमें सब अंग प्रत्यंगोंके विभाग पृथक् पृथक् वन जाते हैं और गर्भस्थ बालकका हृदय उत्पन्न होनेसे उसमें चेतना धातु भी प्रगट हो जाती है क्योंकि हृदय ही चेतना धातुका स्थान है और इसीसे गर्भचौथे महीनेमें इन्द्रियोंके विषय जो रूप रस गन्ध स्पर्श इनके भोगनेकी इच्छा करता है उसीको दौहृद कहते हैं ।

दौहृदके लक्षण ।

द्विहृदयां च नारीं दौहृदिनीमाक्षचते । दौहृदविमाननात् कुब्जं कुणिं खञ्जं जडं वामनं विकृताक्षमनक्षं वा नारी सुतं जनयति तस्मात् सा यदिच्छेत् तत्तस्यै दापयेत् । लब्धदौहृदा हि वीर्य्यवन्तं चिरायुषं च पुत्रं जनयति ॥ इन्द्रियार्थास्तु यान् यान् सा भोक्तुमिच्छति गर्भिणी। गर्भाबाधभयात्तांस्तान् भिषगाहृत्य दापयेत् । सा प्राप्त दौहृदा पुत्रं जनयेत गुणान्वितम् । अलब्धदौहृदा गर्भे लभेतात्मनि वा भयम् । येषु येष्विन्द्रियार्थेषु दौहृदे वै विमानता । प्रजायते सुतस्यार्तिस्तस्मिंस्तस्मिंस्तथेन्द्रिये ॥ राजसंदर्शने यस्या दौहृदं जायते स्त्रियाः । अर्थवन्तं महाभागं कुमारं सा प्रसूयते । दुकूलपट्टकौशेयभूषणादिषु दौहृदात् । अलंकारैषिणं पुत्रं ललितं सा प्रसूयते । देवताप्रतिमायन्तु प्रसूते पार्षदोपमम् ॥ दर्शने व्यालजातीनां हिंसाशीलं प्रसूयते । गोधामांसाऽशने पुत्रं सुषुप्सुं धारणात्मकम् । गवां मांसे च बलिनं सर्वक्लेशसहन्तथा । माहिषे दौहृदाच्छूरं रक्ताक्षं लोमसंयुतम् । बराहमांसात् स्वप्नालुं शूरं सञ्जनयेत् सुतम् । मार्गाद्विक्रान्तजंघालं सदा वनचरं सुतम् ॥ अतोऽनुक्तेषु या नारी समभिध्याति दौहृदम् ॥ शरीराचार शीलैः सा समानं जनयिष्यति ॥

अर्थ—(दौहृदके लक्षण) चौथे महीनेमें जब स्त्रीके गर्भमें हृदय उत्पन्न हो जाता है तब उसको दौहृदिनी कहते हैं । कारण यह है कि उसके दो हृदय होते हैं एक बालकका दूसरा स्त्रीका । (दौहृद न मिलनेका फल) स्त्रीको दौहृद न मिलनेसे अर्थात् जिस वस्तु पर स्त्रीका मन चले और वह उसे न मिले तो संतान कुबडी टोंटी, खंज, जड, बौनी कानी मेंडी और नेत्ररहित होती है इससे उचित है कि जिस जिस वस्तु पर उसकी इच्छा होय वह वस्तु स्त्रीको अवश्य देवे । जिन स्त्रियोंको दौहृद मिल जाता है वेही वीर्य्यवान् और दीर्घ आयु पुत्रको उत्पन्न करती हैं । इस दौहृदकी दशामें चिकित्सक तथा स्त्रीके पतिको उचित है कि गर्भिणी स्त्री जिन २ भोगोंके भोगनेकी इच्छा करे उसको वोही २ पदार्थ देवे क्योंकि ऐसा न करनेसे गर्भको बाधा पहुंचनेका भय रहता है । यथाभिलषित पदार्थोंके मिल जानेसे गुणवान्

पुत्र उत्पन्न होता है और जिसको अभीष्ट पदार्थ नहीं मिलते हैं उनको गर्भका और शरीरका दोनोंका भय रहता ह गर्भवतीको जिस इंन्द्रियका भोग नहीं मिलता है तो उसके सन्तानकी वही इन्द्रिय उस विपयसे रहित होती है, जैसे गर्भवतीको यदि अच्छे इत्तरादि सुगन्धित द्रव्योंके सूंघनेकी इच्छा हुइ और वे उसको न मिले तो सन्तान नासिका इंद्रियके विपयसे रहित होगी और उसको पीनसादि नासिकाके रोग होंगे यदि चक्षु इन्द्रियको रूपादिका दर्शन न हुआ तो सन्तान कांडी भेंडी अथवा अन्धी होगी इसी प्रकार और इन्द्रियोंके विपयमें भी समझो (दौहृद विशेपसे सन्तानके गुण) जिस स्त्रीकी इच्छा राजा अथवा किसी अन्य ऐश्वर्य्यवान् पुरुपको देखनेकी होय तो उसका पुत्र धनवान् पुण्यवान् होगा यदि उसकी इच्छा रेशमी वस्त्र मखमलादि वस्त्र और अनेक प्रकारके भूपण धारण करनेको होय तो उसके ऐसा पुत्र होता है जो वस्त्र भूपण पहरनेकी इच्छा करे और रूपवान् भी होवे, जिस स्त्रीकी इच्छा महात्माओंके आश्रम देखनेकी होय उसके जितेन्द्रिय धर्मशील पुत्र होता है, जिसकी इच्छा देवताओंकी मूर्त्तिके दर्शनकी हो वह सभ्य पुत्रको उत्पन्न करती है (विद्वांसो हि देवाः) यहां पर मूर्तिसे प्रयोजन जितेन्द्रिय विद्वान् परोपकारियोंका है । जिस स्त्रीको सर्पादि हिंसक जीवोंके दर्शनकी इच्छा होय उसके हिंसक पुत्र उत्पन्न होता है, जिसको गोहका मांस खानेकी इच्छा होय तो उसका बालक अत्यन्त सोनेवाला और धारणशील होता है. जिसकी इच्छा गोमांस खानेकी होय उसका बालक बलिष्ट और सम्पूर्ण क्लेशोंका सहनेवाला होता है, सूकरके मांसकी इच्छा करनेवाली स्त्रीका बालक अतिनिद्रालु और शूरवीर होता है, जिसकी इच्छा मार्गमें चलनेकी होय उसका बालक बडी बडी जंघावाला बेगवान् और वनचरी होता है । जिसकी इच्छा मृगके मांसपर होती है वह उद्योगी वेगवान् और वनचरी होता है, जिस स्त्रीकी इच्छा जंगली सूअरके मांस पर होय उसका बालक उद्विग्न मनवाला होता है और जिसकी इच्छा तीतरके मांस पर होय उसका बालक नित्य डरपोक होता है । कोई आचार्य (नित्य शीलं च तैत्तरात्) ऐसा पाठ मानकर यह अर्थ करते हैं कि बालक शीलवान् होता है ॥

अनुक्त दौहृदके लक्षण ।

इसा हेतुसे यह भी समझ लेना चाहिये कि विस्तार भयसे जो जो द्रव्य यहा नहीं कथन किये हैं यदि उनपर स्त्रीकी इच्छा होय तो सन्तानके आचरण और शील उसी उसी वस्तुके अनुसार होते हैं जैसे यदि स्त्रीका मन उष्ण पदार्थोंपर होय तो सन्तानका स्वभाव कठोर होगा यादि गर्भ ठीकडा वा मिट्टी खावे तो सन्तान धनहीन और पाण्डुरोगी होगी । यदि स्त्रीकी सवारीमें बैठनेकी इच्छा होय तो संतान भोगिया होगी । इसी प्रकार और भी जानो ।

दौहृदमें देवयोग ।

कर्म्मणा चोदितं जन्तोर्भवितव्यं पुनर्भवेत् । यथा तथा दैवयोगाद्दौहृदं जनयेद्धृदि ।

जैसा प्राणियोंकी प्रारब्धमें लिखा है तदनुसार होनहार होता है और दैवयोगसे उसीके अनुसार दौहृत भी उत्पन्न होता है । जैसे कोई प्राणी प्रारब्धवश हिंसक होनहार है तो उसकी माताका मन दौहृद कालमें हिंसक पशुओंके मांस पर चलेगा ॥

पंचममासमें गर्भाकृति ।

पंचमे मनः प्रतिबुद्धितरं भवति । षष्ठे बुद्धिः विशेषेण षष्ठे मासि गर्भस्य बलवर्णोपचयो भवत्यधिकमन्येभ्यो मासेभ्यस्तस्मात्तदा गर्भिणी बलवर्णहानिमापद्यते । सप्तमे सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्ततरो भवति । अष्टमेऽस्थिरो भवत्योजस्तत्र जातश्चेन्न जीवेन्निरोजस्त्वान्नैर्ऋतभागत्वाच्च ततो बलिं मांसौदनमस्मै दापयेत् । नवमदशमैकादशद्वादशानामन्यतमजायते अतोऽन्यथा विकारी भवति । मातुस्तु खलु रसवहायां नाड्यां गर्भनाभिनाडीप्रतिबद्धा सास्य मातुराहाररसवीर्य्यमभिवहति । तेनोपस्नेहनास्याभिवृद्धिर्भवति ॥

अर्थ—(पांचवें महीनेमें गर्भाकृति) पांचवें महीनेमें मन अत्यन्त चैतन्य हो जाता है । (छठे महीनेमें गर्भाकृति) छठे महीनेमें बालकके बुद्धि उत्पन्न होती है, चरकमें लिखा है कि विशेष करके छठे महीनेमें गर्भस्थ बालकके और महीनोंकी अपेक्षा बल वर्ण अधिक बढ़ जाता है, इससे गार्भिणकि शरीरका बल वर्ण घट जाता है । (सप्तम मासमें गर्भाकृति) सातवें महीनेमें सम्पूर्ण अंग प्रत्यङ्गोंके विभाग पृथक् पृथक् हो जाते हैं । (अष्टम मासमें गर्भाकृति) आठवें महीनेमें हृदयस्थ सर्वधातु सम्बन्धि ओज स्थिर नहीं होता है इस कारणसे इस महीनेमें उत्पन्नहुआ ओज रहित आर राक्षसोंका भाग होनेसे नहीं बचता, इससे उचित है कि राक्षसोंकी प्रसन्नताक लिये मांस और चावलोंका बलिदान करे । (यह राक्षस बलिकी आज्ञा खास सुश्रुत संहिताकी है सत्य व मिथ्याको बुद्धिवान् विचार लें रोगका नाम राक्षस ह) । (अष्टम माससे ऊपर गर्भाकृति नवमें दशवें ग्यारहवें बारहवें)इन महीनोंसे किसी एकमें बालक उत्पन्न होता है यदि इनमें उत्पन्न न होवे तो सन्तानको विकार युक्त समझो । निराहार गर्भके वर्त्तनमें हेतु गर्भस्थ बालकको आहार इस प्रकारसे मिलता है कि माताकी रसबाहिनी नाडीमें गर्भके नाभिकी नाडी जिसको

नाल कहते हैं बंधीहुई होती है उसी नाडीमें होकर माताके कियेहुए भोजनका रस गर्भके बालकमें पहुंचता है और इसीसे गर्भस्थ बालक बढता है ।

अङ्ग प्रत्यङ्गसे पूर्व गर्भ पुष्टिका कारण ।

असञ्जाताङ्गप्रत्यङ्गप्रविभागमानिषेकात् प्रभृति सर्वशरीरावयवानुसारिणीनां रसवाहानां तिर्य्यग्गतानां धमनीनामुपस्नेहो जीवयति ॥ गर्भो रुणद्धि स्रोतांसि रसरक्तवहानि वै । रक्ता जरायुर्भवति नाडी चैव रसात्मिका । सा नाडी गर्भनाडीं गर्भमाप्नोति तथा गर्भस्य वर्त्तनम् । यद्यदश्नाति मातास्य भोजनं हि चतुर्विधम् । तस्मादन्नादसीभूतं वीर्य्यं त्रेधा प्रवर्त्तते ॥ भागः शरीरं पुष्णाति स्तन्यं भागेन वर्द्धते । गर्भः पुष्यति भागेन वर्द्धते च यथाक्रमम् ॥ गर्भं कुल्येव केदारं नाडी प्रीणाति तर्पिता ॥

अर्थ—गर्भाशयमें वीर्य्यके पहुंचनेसे जबतक उसमें अंग प्रत्यंग पृथक् पृथक् नहीं होते हैं तबतक माताके सम्पूर्ण अंगमें जानेवाली रसवाहिनी नाडियां और तिरछी जानेवाली नसोंका उपस्नेह उसी उसी अंग प्रत्यंगका पोषण करता है, जैसे नदीके किनारे पर लगेहुए वृक्ष नदीके जलसे हरे रहते हैं । भोजसंहितामें भी ऐसा ही लिखा है, गर्भ माताके रस रक्तवाही स्रोतोंको रोक देता है रक्तसे वह झिल्ली अथवा जरायु जिसमें गर्भ लिपटा रहता है बनती है और उसीसे वह नाल भी उत्पन्न होता है वह नाडी गर्भमें पहुंच जाती है और उसीके द्वारा गर्भको आहार पहुँचता है, जो भक्ष्य भोज्य चोष्य लेह्य चार प्रकारके भोजन माता करती है उसका रस बनकर तीन भागोंमें बट जाता है । एक भागसे माताके शरीरका पोषण दूसरेसे स्तनोंमें दूधका उत्पन्न होना तीसरेसे गर्भका पोषण होकर क्रमसे बढना ये काम होते हैं । जैसे क्यारियोंमें बहताहुआ जल खेतको हरा भरा रखता है और बढाता है उसी प्रकार नालद्वारा गर्भकी वृद्धि होती है ।

गर्भमें अङ्गोंका क्रम ।

गर्भस्य हि सम्भवतः पूर्वशिरः सम्भवतीत्याह शौनकः शिरोमूलत्वादेहेन्द्रियाणाम् । हृदयमिति कृतवीर्य्यो बुद्धेर्मनसश्च स्थानात्वात् नाभिरिति पाराशर्य्यस्ततो हि वर्द्धते देहो देहिनः पाणिपादमिति मार्कण्डेयस्तन्मूलाच्चेष्टा या गर्भस्य । मध्यशरीरमिति सुभूतिगौतमस्तन्निबद्धत्वात् सर्वगा-

त्रसम्भवस्य । धन्वन्तरीका मन्तव्य । तत्तु न सम्यक् । सर्वाङ्गप्रत्यङ्गानि संभवन्तीत्याह—धन्वतरिर्गर्भस्य । सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्ते वंशांकुरवच्च चूतफलवच्च ॥ तद्यथा । चूतफले परिपक्के केशरमांसास्थिमज्जानः पृथग् दृश्यंते। कालप्रकर्षात्तान्येव तरुणोनोपलभ्यन्ते सूक्ष्मत्वात्तेषां सूक्ष्माणाम्। केशरादीनां कालः प्रव्यक्ततां करोति । एतेनैव वंशांकुरोऽपि व्याख्यातः एवं गर्भस्य तारुण्ये सर्वेष्वङ्ग प्रत्यङ्गेषु सत्स्वपि सौक्ष्मादनुपलब्धिः । तान्येव कालप्रकर्षात् प्रव्यक्तानि भवन्ति ॥ तत्र गर्भस्य पितृजमातृजरसजात्मजसत्वजसात्म्यजानि शरीरलक्षणानि व्याख्यास्यामः । गर्भस्य केशश्मश्रुलोमास्थिनखदन्तशिरास्नायुधमनीरेतः प्रभृतीनि स्थिराणि पितृजानि । मांसशोणितमेदोमज्जहृन्नाभियकृतप्लीहान्त्रगुदप्रभृतीनि मृदूनि मातृजानि ॥ शरीरोपचयो बलं वर्णः स्थितिर्हानिश्च रसजानि । इन्द्रियाणि ज्ञानं विज्ञानमायुः सुखदुःखादिकं चात्मजानि ॥ सत्वजान्युत्तरं बक्ष्यामः । वीर्य्यमारोग्यं बलवर्णौमेधा च सात्म्यजानि ॥

गर्भके अङ्गोंका क्रम ।

अर्थ—गर्भके प्रथम कौनसा अङ्ग उत्पन्न होता है इसमें भिन्न २ आचार्य्योंका भिन्न २ मन्तव्य है । शौनक कहता है कि गर्भमें प्रथम शिर होता है क्योंकि शिरही सम्पूर्ण देहेन्द्रियोंका मूल कारण है । कृतवीर्य्याचार्य्य कहता है कि प्रथम हृदय उत्पन्न होता है—क्योंकि वह बुद्धि और मनका स्थान है पाराशर कहते हैं कि प्रथम नाभि होती है । क्योंकि शरीर धारियोंका शरीर वहींसे बढता है । मार्कण्डेय कहते हैं कि प्रथम हाथ पैर उत्पन्न होते हैं क्योंकि गर्भकी चेष्टा इन्हींके आधीन होती है सुभूति और गौतम कहते हैं कि प्रथम मध्य शरीर होता है क्योंकि सम्पूर्ण अवयवोंका होना उसीके आधीन है । इस विषयमें धन्वन्तारिका मन्तव्य है कि जो बातें ऊपर अन्य आचार्य्योंकी वर्णन की गई हैं धन्वन्तारिके मतसे विरुद्ध हैं । वे कहते हैं कि सम्पूर्ण अङ्ग प्रत्यङ्ग एक ही साथ उत्पन्न होते हैं परन्तु वे अति सूक्ष्म होते हैं इससे देखनेमें नहीं आ सक्ते, जैसे वांसका अंकुर और आमका फल उत्पन्न होतेही उसमें छिलका गूदा और गुठली एक साथ ही उत्पन्न होते हैं परन्तु विशेष सूक्ष्म होनेसे नहीं दीखते हैं । परन्तु जब फल पक जाता है तब छिलका गूदा और गुठली अलग अलग दिखाई देने लगते हैं, इसी

प्रकार बाँसके अंकुरको भी जानो । इसी प्रकार गर्भमें सम्पूर्ण अङ्ग प्रत्यङ्गोंके होनेपर भी सूक्ष्म होनेके कारण वे पृथक् दिखाई नहीं देते हैं । परन्तु वोही समय पाकर पृथक् २ दिखाई देते हैं । अब हम गर्भके उन शारीरिक लक्षणोंका वर्णन करेंगे, जो पिता माताके रससे आत्माके सान्निध्य सत्वसे और सात्म्यसे उत्पन्न होते हैं । ऐसे गर्भसे उत्पन्न हुए लडकोंके कालान्तरमें केश, दाढी, मूच्छ, रोम, हड्डी, नख, दांत, रग, नस, नाडी, वीर्य्य इत्यादि स्थिर द्रव्य पिताके अंशसे उत्पन्न होते हैं । गर्भके बालकके मांस रुधिर मेदा मज्जा हृदय नाभि यकृत् तिल्ली आंत गुदा इत्यादि कोमल पदार्थ माताके अंशसे उत्पन्न होते हैं । (रसजलक्षण) गर्भमें शरीरका बढना बल वर्णस्थिति और हानि ये सब रससे उत्पन्न होते हैं (आत्मजलक्षण) कान नाक द्वारा गंध शब्दादिकका ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान आयुष्य सुख दुःख इत्यादि आत्माके सान्निध्यसे होते हैं इससे यह न समझ लेना कि आत्माको होते हैं, क्योंकि आत्मातो निर्विकार है और निर्विकारको विकार नहीं हो सक्ता है । सात्म्यजलक्षण—जो द्रव्यसत्वसे उत्पन्न होते हैं उनका वर्णन पृथक् किया गया है वीर्य्य आरोग्यता बल वर्ण और बुद्धि ये सात्म्य अर्थात् आत्माकी अनुकूलतासे होते हैं ॥

अप्रत्यक्षगर्भकास्तन्यादि लक्षणोंसे स्त्री पुन्नपुंसकका ज्ञान ।

तत्र यस्या दक्षिणे स्तने प्राक् पयोदर्शनं भवति दक्षिणाक्षि महत्वञ्च पूर्वञ्च दक्षिणं सकथ्युत्कर्षति बाहुल्याच्च पुन्नामधेयेषु द्रव्येषु दौहृदमभिध्यायति स्वप्नेषु चोपलभते पद्मोत्पलकुमुदाम्रातकादीनि पुन्नामान्येव प्रसन्नमुखवर्णा च भवति तां ब्रूयात् पुत्रमियं जनयिष्यति तद्विपर्य्यये कन्याम् ॥

अर्थ—यहां जिस गर्भिणी स्त्रीके प्रथम दाहिने स्तनमें दूध उत्पन्न होय और दाहिना नेत्र बडा हो जाय प्रथम दाहिना ऊरू भारी हो जाय विशेष: करके जिसकी पुरुष नामवाली वस्तु जैसे अनार अमरूद इत्यादि अच्छी लगती होय जिसको स्वप्नमें पद्म उत्पन्न कुमुद आँवला आदि पुरुषनामवाली द्रव्य दिखाई देवे जिसका मुख और वर्ण प्रफुल्लित होय तो ऐसे लक्षणोंवाली स्त्रीको जानलो कि इसके पुत्र होगा और जो इन लक्षणोंसे विपरीत लक्षण होय तो कन्या उत्पन्न होती है, विपरीत लक्षण जैसे वाम स्तनमें दुग्ध उत्पन्न होना स्त्री नाम वाचक जैसे पूडी कचौरी इत्यादि वस्तुओंपर इच्छा होना स्वप्नमें स्त्रीवाची पदार्थोंकी जैसे हथिनी घोडी इत्यादिका देखना मुख और वर्णपर अप्रसन्नता होना इत्यादि विपरीत लक्षणोंसे कन्या उत्पन्न होती है ।

नपुंसक और यमलके लक्षण ।

यस्याः पार्श्वद्वयमुन्नतं पुरस्तान्निर्गतमुदरं प्रागभिहित लक्षणं च तस्या नपुंसकमिति विद्यात् । यस्या मध्ये निम्नं द्रोणीप्रभूतमुदरं सा युग्मं प्रसूयत इति ॥

अर्थ–जिस गर्भवती स्त्रीकी दोनों कूंख ऊंची होयँ आगेसे उदर निकल आया होय और जिसमें पुत्र कन्या दोनोंके मिले हुए लक्षण जैसे दोनों स्तनोंमें दूधका उत्पन्न होना दोनों आंखोंका बढना इत्यादि लक्षण होयँ तो समझ लो कि नपुंसक सन्तान होयगी ॥

यमलके लक्षण ।

अर्थ–जिसका उदर बीचमें नीचा होकर द्रोणीके समान हो गया होय उसके जोडले बालक होते हैं, अन्य ग्रन्थमें भी लिखा है कि (रोमराजी भवेन्निम्ना यस्याः सा सूयते यमौ) जिसके रोम नीचेको झुकगये होयँ उसके दो बालक होते हैं ॥

गर्भिणीके सदाचारसे रहनेका फल ।

देवताब्राह्मणपराः शौचाचारहिते रताः । महागुणान् प्रसूयन्ते विपरीतास्तु निर्गुणान् ॥ अंगप्रत्यंगनिर्वृत्तिः स्वभावादेव जायते ॥ अंगप्रत्यंगनिर्वृत्तौ ये भवंति गुणागुणाः । ते ते गर्भस्य विज्ञेया धर्म्माधर्मनिमित्तजाः ।

अर्थ–जो गर्भवती स्त्री देवता और ब्राह्मणोंमें हित रखनेवाली है जो पवित्रता और सदाचारसे रहनेवाली है उनकी सन्तान गुणवान् होती हैं यदि इन आचरणोंसे विपरीत आचरणोंवाली होगी तो सन्तान भी निर्गुणी होगी अङ्ग और प्रत्यङ्गोंका पृथक् पृथक् होजाना इसमें स्वभाव कारण है परन्तु इन अङ्गप्रत्यङ्गोंकी उत्पत्तिमें जो गुण अवगुण जैसा कि (भेंडा होना पंगु होना इत्यादि) होते हैं वे सब उस गर्भके धर्म अधर्मपर निर्भर हैं अर्थात् गर्भ पुण्यात्मा होगा तो शरीरावयव सब ठीक होंगे यदि अधर्मी होगा तो लंगडा लूला काणा भेंडा विकृत अङ्गवाला होगा ॥

चरकसे–गर्भनाशकभाव ।

गर्भोपघातकस्त्विमे भावाः तद्यथा उत्कटुकराविषमस्थानकठिनासनसेविन्या वातमूत्रपुरीषवेगानुपरुन्धत्या दारुणानुचितव्यायामसेविन्यास्तीक्ष्णोष्णातिमात्रसेविन्याः प्रमिताशनसेविन्या गर्भो म्रियतेऽन्तःकुक्षेर्वा अकाले स्रंसते शोषीभवति वा तथाभिघातप्रपीडनैः श्वभ्रकूपप्रपातोद्देशावलोकनैर्वा

भीष्णां मातुःप्रपतत्यकाले तथातिमात्रसंक्षोभिभिर्यानयानैरप्रियातिमात्र-श्रवणैर्वाग्रयततोत्तानशायिन्याः पुनर्गर्भस्य नाभ्याश्रया नाडीकंठमनुवेष्ट-यति।विवृतशायनी नक्तश्चारिणी चोन्मत्तं जनयत्यपस्मारिणं पुनः कलि-कलहशीला। व्यवायशीला दुर्वपुषमह्रीकं स्त्रैणं वा ।शोकनित्यभितमप-चितमल्पायुषं वा अभिधात्री परोतापिनभीर्ष्युं स्त्रैणां वास्तेनान्वायासबहु-लपतिद्रोहिणमकर्म्मशीलं वा । अमर्षणी चण्डमौपधिकमसूयकं वा ॥ स्वमनित्या तन्द्रालुमबुधं अल्पाग्निं वा मद्यनित्या पिपासालुमनवास्थितं वा गोधामांसप्रायः। शार्करिणमश्मरिणं शनैर्मेहिनं वा बाराहमांसप्राया रक्ता-क्षङ्कथनमनतिपरुपरोमाणं वा मत्स्यमांसया नित्यचिरनिमिषं स्तब्धाक्षं वा। मधुरनित्या प्रमेहिनं मूकमतिस्थूलं वा अम्लनित्य रक्तपित्तिनं त्वगक्षिरोगिणं वा लवणनित्या शीघ्रवलीपलितं खालित्यरोगिणं वा। कटुकनित्या दुर्वलमल्पशुक्रमनपत्यं वा । तिक्तनित्या शोषिणमबल-मपचितं वा। कषायनित्या श्यावमानाहितमुदावर्त्तिनं वा। यद्यच यस्य यस्य व्याधेर्निदानमुक्तं तत्तदा सेवमानान्तर्वत्नी तद्विकारबहुलपत्यं जन-यति । पितृजास्तु शुक्रदोषा मातृजैरपचारैर्व्याख्याता इति गर्भोपघात-कराभावा व्याख्याताः ॥

अर्थ—गर्भके नष्ट करनेवाले भाव ये हैं। यथा जो गर्भवती स्त्री उटकुरुआ होकर बैठती है अथवा ऊंचे नीचेपर चढती उतरती है तखत पत्थरादि कठोर आसनोंपर बैठती है अधोवायु मूत्र और पुरीपके उपस्थित वेगोंको रोकती है—कठिन और सामर्थ्यसे बाहर अनुचित परिश्रमके कामोंको करती है, जो तीक्ष्ण उष्ण पदार्थोंका अत्यन्त सेवन करती है या भूखी रहती है उसका गर्भ कुक्षिके भीतर मर जाता है अथवा अकालमें दो चार छः महीनेका होकर गिर पडता है वा शुष्क हो जाता है। इसी प्रकार किसी अभिघात (चोट) के लगनेसे प्रपीडन (मसका अर्थात् दवाव पडनेसे) अथवा वारम्वार गहरे गड्ढे वा कूएके देखनेसे वा गड्ढे आदि नीची जगहमें उतरनेसे भी अनुचित कालमें गर्भ गिर पडता है तथा अत्यन्त संक्षोभि (जिसमें विशेप हाल लगती होय) ऐसी सवारीपर चढकर चलनेसे अप्रिय और अत्यन्त घोर शब्दोंके सुननेसे (तोपादिक) शब्द सुननेसे गर्भ गिर जाता है इसी प्रकार और भी भयंकर शब्द सुनकर चौक पडनेसे भी

गर्भ गिर जाता है इसी प्रकार सदैव चित्त शयन करनेसे गर्भकी नाभिमें रहनेवाली नाडी कण्ठको लपेट लेती है जो गार्भिणी स्त्री चारों हाथ पैरोंको पसारकर सोती है अथवा रात्रिके समय बाहर भ्रमण करती है उसकी सन्तान उन्मत्त होती है कलह-कारिणी स्त्रीकी सन्तान मृगीरोगसे ग्रस्त होती है व्यवायशीला (याने अत्यन्त मैथुनाभिलाषिणी) स्त्रीकी सन्तान कुत्सिताङ्ग निर्लज्ज और व्यभिचारिणी होती है नित्यप्रति शोकाकुल स्त्रीको सन्तान डरपोक कृश और अल्पायु होती है अभिध्यात्री (परधनमें ईर्ष्या रखनेवाली) स्त्रीकी सन्तान परोपतापी ईर्ष्या-युक्त और व्यभिचारिणी होती है चोर स्त्रीकी सन्तान अति पारिश्रमी अतिद्रोही और अकर्मशील होती है अमर्षिणी अर्थात् क्रोधित स्त्रीकी सन्तान प्रचण्ड उपाधियुक्त और असूयक होती है । (स्वप्ननित्या) विशेषसोनेवाली स्त्रीकी सन्तान तन्द्रालु अज्ञान मन्दबुद्धि और मन्दाग्नि रोगवाली होती है (मद्यनित्या) शराब पीनेवाली स्त्रीकी सन्तान (पिपासालु) प्यास युक्त और उद्विग्न चित्त होती है (गोधामांसप्राया) गोहके मांसको खानेवाली स्त्रीकी सन्तानके शर्करा और शनैर्प्रमेह होता है (शूकरका मांस) खानेवाली स्त्रीकी सन्तान लाल नेत्रवाली हिंसक और थोडे कडे रोमोंवाली होती है । मछलीका मांस खानेवाली स्त्रीके चिरनिमिष (देरमें पलक मारनेवाली स्तब्धाक्ष पथराये नेत्रोंवाली सन्तान होती है) नित्यप्रति मधुर भोजन करनेवाली स्त्रीके प्रमेही गूंगी और अतिस्थूल सन्तान होती है, खटाई खानेवाली स्त्रीके रक्त पित्त रोगी त्वग् (चमडेके) रोगवाली और नेत्ररोगवाली सन्तान होती है । अधिक नमक खाने-वाली स्त्रीकी सन्तान ऐसी होती है कि जिसके बाल (केश) शीघ्रही सफेद हो जाते हैं, पालित रोग होकर गिर पडते हैं । कटु भोजन करनेवाली स्त्रीके दुर्बल अल्पवीर्य्य और निःसन्तानवाली सन्तान होती है, तीखे पदार्थ खानेवाली स्त्रीके शोषरोगी निर्बल और कृश सन्तान होती है, कषाय पदार्थ खानेवाली स्त्रीके श्यामवर्ण अनाह रोगी उदा-वर्त्त रोगिणी सन्तान होती है, जो जो द्रव्य जिस २ व्याधिका हेतु कथन किये गये हैं उन उन द्रव्योंको यदि गर्भवती स्त्री सेवन करे तो उसी २ रोगसे पीडित संतान होती है । पिताके शुक्रदोष और माताके अपचारोंका वर्णन किया गया है इसी प्रकार सम्पूर्ण भावोंका वर्णन किया गया है जो गर्भ नाशक हैं ।

गार्भिणीकी उपचारविधि ।

तस्मादहितानाहारविहारान् प्रजासम्पदमिच्छन्ती स्त्री विशेषेण वर्जयेत्। साध्वाचारा चात्मानमुपचरेद्धिताभ्यामाहारविहाराभ्यां व्याधींश्चास्या मृदुमधुरशिशिरसुखसुकुमारप्रायैरौषधाहारोपचारैरुपचरेत् न चास्या

वमनविरेचनशिरोविरेचनानि प्रयोजयेत् न रक्तमवसेचयेत् । सर्वकालं चानास्थापनमनुवासनं वा कुर्य्यात् अन्यत्रात्ययिकाद्व्याधेः । अष्टमं माससुपादाय वमनादिसाध्येषु पुनर्विकारेषु मृदुभिर्वमनादिभिस्तदर्थकारिभिर्वोपचारः स्यात् ॥ पूर्णमिव तैलपात्रमसंक्षोभयतान्तर्वत्नी भवत्युपचर्य्या ॥ सा चेदपचाराद् द्वयोस्त्रिषु वा मासेषु पुष्पं पश्येन्नास्या गर्भः स्थास्यतीति विद्यात् । अजातसारा हि तस्मिन् काले गर्भाः । सा चेच्चतुष्प्रभृतिषु मासेषु क्रोधशोकेर्ष्याभयत्रासव्यवायव्यायामसंक्षोभसंधारणविषमासनशयनस्थानक्षुत्पिपासातियोगात् कदाहाराद्वा पुष्पं पश्येत् तस्या गर्भस्थापनविधिमुपदेक्ष्यामः ।

अर्थ—इन ऊपर कहेहुए हेतुओंसे उत्तम सन्तानकी इच्छा करनेवाली स्त्री विशेष करके अहित आहार विहारका परित्याग कर देवे साधु आचार विचारसे रहकर हित आहार विहारका सेवन करती रहे । यदि गर्भिणी स्त्रीको किसी प्रकारका रोग होजाय तो उसकी मृदु मधुर शीतल सुखकारी और सुकुमार औषध आहार उपचारादि द्वारा चिकित्सा करे, ऐसी स्त्रीको वमन विरेचन शिरोविरेचन न देवे फस्त न खोले गर्भके समयमें किसी समय आस्थापन वा अनुवासन वस्ति न देवे । यदि कोई आत्यायिक रोग हो जाय तो उस समय इनके प्रयोग करनेमें कोई हानि नहीं है । अष्टम माससे आगे वमनादि साध्य आत्यायिक रोगोंमें मृदु वमन विरेचनादि व ऐसी औषध देवे जो उसमें हितकारी हो । (गर्भिणीके उपचारमें प्रधान कर्म) तैलसे भरेहुए वर्त्तनको यदि उठाने धरनेका काम पडता है तो ऐसी सावधानीसे उठाते हैं कि किसी प्रकार उसको धक्का न लगे, क्योंकि जरा भी धक्का लग जावे तो तैलके फैल जानेका भय रहता है, यदि दैवात् किंचित् धक्का लग जावे तो कुछ हाथ नहीं लगता । इसी प्रकार गर्भिणी स्त्री भी तैलसे भरे हुए पात्रके समान होती है, इसकी चिकित्सामें विशेष सावधानी रखनी चाहिये । यदि किसी उपचारसे दूसरे तीसरे महीनेमें गर्भिणी स्त्रीको रजोदर्शन हो जाय तो यह समझ लो कि इसका गर्भ स्थिर नहीं रह सक्ता है । क्योंकि उस समयपर्य्यन्त गर्भमें सार उत्पन्न नहीं होता है । यदि क्रोध शोक ईर्ष्या भय त्रास व्यवाय व्यायाम संक्षोभ वेगसंधारण विषमासन विषमशयन स्थान क्षुधा पिपासा इनके अतियोगसे व दुष्ट आहारसे चतुर्थ माससे आगे रजोदर्शन होय तो उस गर्भकी रक्षाकी विधि वर्णन करते हैं ।

गर्भकी रक्षाविधी।

पुष्पदर्शनादेवेनां ब्रूयात् शयनं तावन्मृदुसुखंशिशिरास्तरणसंस्तीर्णमीषद्वनतशिरस्कं प्रतिपद्यस्वेति ततो यष्टीमधुकसर्पिभ्यां परमशिशिरवारिसंस्थिताभ्यां पिचुमापाप्लाव्योपस्थसमीपे स्थापयेत्तस्याः तथा शतधौतसहस्रधौताभ्यां सर्पिभ्यां अधोनाभेः सर्वतः प्रदिह्यात्। गव्येन चैनां पयसा सुशीतेन मधुकाम्बुना वा न्यग्रोधादिकषायेण वा परिषेचयेत् अधो नाभेः। उदकं वा सुशीतमवगाहयेत् क्षीरिणाञ्च कषाय द्रुमाणां स्वरसपरिपीतानि चेलानि ग्राहयेत् न्यग्रोध शुङ्गादिसिद्धयोर्वा क्षीरसर्पिषोः पिचुं ग्राहयेत्। अतश्चैवोक्षमात्रं प्राशयेत् प्राशयेद्वा केवलं एव क्षीरसर्पिः॥ पद्मोत्पलकुमुदकिञ्जल्कांश्चास्यै समधुशर्करं लेहार्थं दद्यात् शृंगाटकपुष्करबीज कशेरुकान् भक्षणार्थम्। गन्धप्रियंगुसितोत्पलशालूको दुम्बरशलाटुन्यग्रोधशुङ्गानि वा पाययेदेनां आजेन पयसा चैनां बलातिबलाशालिषष्टिकेक्षुमूलकाकोलीशृतेन समधुशर्करं रक्तशालीनामोदनं मृदु सुरभि शीतं भोजयेत्। लावकपिञ्जलकुरंगशम्बरशशहरिणैणकालपुच्छकरसेन वा घृतसलिल सिद्धेन सुखशिशरोपवातदेशस्थां भोजयेत्॥ क्रोधशोकाया सव्यवाय व्यायामे तच्चाभि रक्षेत् सौम्याभिश्चैनां कथाभिर्मनोऽनुकूलाभिरुपासीत्तथास्या गर्भस्तिष्ठति।

अर्थ—रजोदर्शन होते ही स्त्रीसे कहे कि तुम कोमल सुखदायक शीतल बिछौनेसे युक्त सिरहानेकी तर्फ कुछ नीची शय्या पर शयन करो फिर अत्यन्त शीतल जलमें मुलहटीका चूर्ण और घृत डालकर अच्छे प्रकारसे मिला उसमें एक रुईके फोहाको भिगोकर योनिमें रख देवे और नाभिके नीचे सौबार अथवा सहस्र बार धुले हुए घृतका चारों तर्फ लेप करदेवे। फिर गौके दुग्ध व मुलहटीके शीतल क्राथका अथवा न्यग्रोधादि गणोक्त वृक्षोंके क्राथसे सेचन करे। अथवा शीतल जल ही डालता रहे क्षीर वृक्ष तथा कषाय वृक्षोंके क्राथमें वस्त्रका टुकडा भिगोकर योनि मार्गमें रखे। अथवा बडकी कोंपलोंसे सिद्ध कियेहुए घृत दूधमें रूईका फोहा भिगोकर योनिमें रख देवे तथा इसी प्रकारकी औषधियोंमेंसे २ तोला खिलादेवे तथा केवल घृत और दुग्ध ही खानेको देवे। पद्म-उत्पल कुमुद केशर इनको शहत और मिश्रीके साथ चाटनेको देवे। सिंघाडा, पुष्कर-

बीज और कसेरू खानेको देवे, गन्ध प्रियंगु, सिता उत्पल शालूक और गूलरके कच्चे सुखाये हुए फल अथवा वडकी कोंपल बकरीके दूधके साथ देवे । बला, अतिवला, शालि, सांठी चावल, इक्षुमूल और काकोली इनको गर्म दूधके साथ देवे शहत और चीनी मिले हुए लाल चावलोंका कोमल सुगंधित और शीतल भात खानेको देवे, लवा, कपिञ्जल, कुरङ्ग, साबर, खर्गोश, हरिण, काला हरिण और कालपुच्छ इनके मांस रसमें घृतको सिद्ध करके ऐसे स्थानमें भोजन करावे जो ठंढा होय और जहां ठंढी ठंढी वायु लगती होय, ऐसे समयमें क्रोध शोक, आयास, व्यवाय और व्यायामसे गर्भिणीकी रक्षा करे शान्तिप्रदायक और मनोनुकूल कथा वार्ता कहकर उसके चित्तको सदैव प्रसन्न रक्खे इन उपचारोंके करनेसे गिरता हुआ गर्भ रुक जाता है ।

आमदोषमें पुष्पदर्शन ।

अस्याः पुनरामान्वयात् पुष्पदर्शनं स्यात् ।
प्रायस्तत्तस्या गर्भबाधकं भवति विरुद्धोपक्रमत्वात् ॥

अर्थ—जब गर्भिणी स्त्रीके आमरोगसे पुष्पदर्शन होवे वह प्रायः गर्भका बाधक होता है अर्थात् उसकी चिकित्सा होना कठिन है । क्योंकि दोनोंकी चिकित्सा विरुद्ध होती है, जैसे कि पुष्पदर्शनमें शीतक्रिया की जाती है और आमदोषमें उष्ण क्रिया की जाती है ।

जातसार गर्भके पुष्पदर्शनमें चिकित्सा ।

यस्याः पुनरुष्णतीक्ष्णोपयोगाद् गर्भिण्या महति गर्भे जातसारे पुष्पदर्शनं स्यादन्यो वा योनिप्रस्रावः तस्या गर्भो वृद्धिं न प्राप्नोति निस्रुतत्वात् सकलान्तरमवतिष्ठतेऽतिमात्रन्तमुपविष्टकमित्याचक्षते केचित् ।

अर्थ—गर्भसार उत्पन्न होने पश्चात् उष्ण और तीक्ष्ण वस्तुओंके अत्यन्त सेवनसे जो पुष्पदर्शन होय अथवा और किसी प्रकारसे योनिस्राव हो तो उस स्त्रीका गर्भ नहीं बढता, रक्तस्रावके कारण वह गर्भ बहुत दिवस पर्य्यन्त अपूर्णावस्थामें रहा आता है और कोई २ इस गर्भको उपविष्टक भी कहते हैं ।

नागोदर गर्भके लक्षण ।

उपवासव्रतकर्म्मपरायाः पुनः कदाहारायाः स्नेहद्वेषिण्यां वातप्रकोपनोक्तान्यासेव्यमानाया गर्भो न वृद्धिं प्राप्नोति परिशुष्कत्वात् । स चापि कालान्तरमवतिष्ठतेऽतिमात्रमतिमात्रस्पन्दनश्च भवति तन्नागोदरमित्याचक्षते नार्य्यास्तयोरुभयोरपि चिकित्सितविशेषमुपदेक्ष्यामः ॥

अर्थ-जो गर्भिणी स्त्री उपवास व्रतादि कर्म्मोंमें रत रहती है व कुत्सित अन्नका भोजन करती है स्नेहसे द्वेष रखती है अथवा वात प्रकोप कर्त्ता द्रव्योंका सेवन करती है उसका गर्भ नहीं बढने पाता, क्योंकि वह सूख जाता है। वह गर्भ भी बहुत दिवस पर्य्यन्त उदरमें रहता है और अत्यन्त स्पदन करता है, इसको नागोदर कहते हैं। (अब हम उपविष्टक और नागोदर दोनों प्रकारके गर्भोंकी चिकित्साका वर्णन करते हैं) ॥

भौतिकजीवनीयबृंहणीयमधुरवातहरसिद्धानां सर्पिषामुपयोगः। नागोदरे तु योनिव्यापन्निर्दिष्टं पयसामामगर्भाणाञ्च गर्भवृद्धिकराणाञ्च सम्भोजनमतैरेव च सिद्धैश्च घृतादिभिः सुबुभुक्षायां अभीक्ष्णं यानवाहनावमार्जनजृम्भणैरुपपादनमिति ॥

अर्थ-उपविष्टक गर्भमें भूतिकगण, जीवनीयगण, बृंहणीयगण, मधुरगण, तथा वातनाशक द्रव्योंके साथ सिद्ध कियाहुआ घृत देवे। नागोदर गर्भमें योनिव्यातमें कथन की हुई चिकित्सा पूर्व लिख चुके हैं उसी प्रक्रियासे करे और क्षुधा लगनेपर दूध आम गर्भ और गर्भवृद्धिकारक द्रव्योंको दे इन्हींके साथमें सिद्ध कियाहुआ घृत देवे। तथा चित्तको प्रसन्न करनेवाले यान वाहन अपमार्जन करे तथा चित्तको प्रसन्न करनेवाली वार्त्ता श्रवण करावे।

प्रसुप्तगर्भमें चिचित्सा।

यस्याः पुनर्गर्भः प्रसुप्तो न स्पन्दते तां स्येनमत्स्यगवयशिखिताम्रचूडतित्तिरीणामन्यतमस्य सर्पिष्मता रसेन माषयूषेण वा प्रभूतसर्पिषा मूलकयूषेण वा रक्तशालिनामोदनमृदुमधुरशीतं भोजयेत्। तैलाभ्यङ्गेन चास्याः अभीक्ष्णमुदरवंक्षणोरुकटीपार्श्वपृष्ठप्रदेशानीषदुष्णेनोपाचरेत् ॥

अर्थ-जिसका उदर गर्भ प्रसुप्त अर्थात् फैलासा हो जाय और गर्भका चलना फिरना बन्द हो जाय उसको शिकरा मछली रोझ मोर मुर्गा तीतर इनमेंसे किसी एकका मांसरस घृतके साथ देवे अथवा घृतके साथ उडदका यूष देवे अथवा विशेष घृत डालकर मूलीके यूषके साथ लाल चावलोंको कोमल मिष्ट और शीतल भात बनाके खिलावे तथा ऐसी गार्भिणीके उदर, वंक्षण, ऊरू, कमर, पसली और पीठ-पर तैलका मर्दन करना हितकारी है।

उदावर्त्त बद्धगर्भकी चिकित्सा।

यस्याः पुनरुदावर्त्तविबन्धः स्यादष्टमे मासे न चानुवासनसाध्यम्मन्येत्।

ततस्तस्यास्तद्विकारप्रशमनमुपकल्पयेन्निरूहं उदावर्तो ह्युपेक्षितः सहसा सगर्भाङ्गर्भिणीङ्गर्भमथवातिपातयेत् । तत्र वीरणशालिषष्टिककुशकाशेक्षुवालिकावेतसपरिव्याधिमूलानां भूतीकानन्ताकाश्मर्य्यापरूषकमधुकमृदुकानाञ्च वयसार्धोदकेनोदगमयरसं पियालविभीतकमज्जतिलकल्क सम्प्रयुक्तमीषल्लवरसमनत्युष्णान्निरूहन्दद्यात् । विपगतविबन्धां चैनां सुखसलिलपरिषिक्ताङ्गी स्थैर्यकमविदाहिनमाहारम्भुक्तवन्ती सायं मधुरकसिद्धेन तैलेनानुवासयेत् न्युब्जत्वेन मास्थापनानुवासनाभ्यामुपचरेत् ॥

अर्थ—यदि गर्भके आठवें महीनेमें उदावर्त्तके कारण विबन्ध हो जायँ और वह रोग अनुवासन वस्तिसे आराम न हो सके तब उसके उस विकारकी शान्तिके लिये निरूहण वस्ति देवे । यदि इस उदावर्त रोगकी उपेक्षा की जावे तो गर्भ और गर्भिणी दोनों नष्ट हो जाते हैं । इस रोगमें वीरन, शाली चावल, सांठी चावल, कुशा, काश इक्षुवालिका, वेतसजल, वेतस इन सबकी जड, अजवायन, अनन्तमूल, गंभारी, फालसा, मुलहटी, दाख इन सबको अर्द्धोदक दूधमें काथ बनालेवे । उस क्राथमें पियाल, बहेडेका गूदा, तिलकल्क तथा थोडासा नमक मिलाकर किञ्चित् गर्म निरूहण वस्ति देवे विबन्ध नष्ट होने पर ईषदुष्ण जलसे परिषिक्त कराके स्थिरकर्त्ता अविदाही अन्नका भोजन कराके सायंकालके समय मधुर गणोक्त द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए तैलकी अनुवासनवस्ति देवे तथा गर्भिणीको औंधी करके अस्थापन और अनुवासन वस्ति देवे ।

गर्भस्राव और पातका निदान ।

ग्राम्यधर्माध्वगमनयानायासावपीडनैः । ज्वरोपवासोत्पतनप्रहाराजीर्णधावनैः । वमनाच्च विरेकाच्च कुंथनाद्गर्भयातनात् । तीक्ष्णधारोष्णकटुकतिक्तरूक्षनिषेवणात् । वेगाभिघाताद्विषमादासनाच्छयनाद्भयात् गर्भे पतति रक्तस्य सशूलं दर्शनं भवेत् ॥ आचतुर्थात्ततो मासात्प्रस्रवेद्गर्भविद्रवः । ततः स्थिरशरीरस्य पातः पंचमषष्ठयोः ॥ गर्भोऽभिघातविषमासनपीडनाद्यैः पक्वं द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन ॥

अर्थ—अति मैथुन करना मार्ग चलना, सवारीमें बैठना, अति परिश्रम करना, किसी प्रकारकी पीडा होना, ज्वर उपवास अथवा भोजन न करना, कूदना, उछलना, चोटके

लगनेसे अजीर्णसे दौडनेसे वमन और विरेचनसे गर्भको किसी प्रकारकी यातना होनेसे तीक्ष्ण धारवाले शस्त्रके लगनेसे गर्म चरपरा कडुवा और रूक्ष पदार्थोंके भोजनसे मल मूत्रादि उपस्थित वेगोंके रोकनेसे ऊंची नीची जगहमें बैठनेसे और सोनेसे अतः किसी प्रकारका भय गर्भिणीको लगनेसे गर्भपात होता है। (गर्भके स्राव और पातका पूर्वरूप कहते हैं) जिस समय गर्भ गिरनेको होता है तब स्त्रीके पीडाके साथ योनिमार्गसे रुधिर निकलता है। गर्भस्राव और पातकी अवधि। चौथे महीने पर्यन्त गर्भद्रव (रुधिर) रूपमें रहता है (यह मत कई आचार्योंका है) उस अवस्थामें जो रुधिर निकले उसको स्राव कहते हैं और चौथे महीनेसे लेकर पांचवे छठे महीनेतक गिरता है सो सर्व शरीर दृढ बन जानेसे उसकी पातसंज्ञा है (गर्भपातमें दृष्टान्त) गर्भ विना समयके कैसे गिरता है इस विषयमें निदानपूर्वक दृष्टान्त कहते हैं कि (अभिघात) चोट विषम न्यूनाधिक भोजन और पीडन आदि कारणोंसे इस प्राणीके जैसे पकाहुआ फल वृक्षसे चोट लगनेसे क्षणमात्रमें गिर जाता है उसी प्रकार गर्भपात हो जाता है।

गर्भस्रावकी चिकित्सा।

गुर्विण्या गर्भतो रक्तं स्रवेद्यदि मुहुर्मुहुः। तन्निरोधाय सा दुग्धमुत्पलादिशृतं पिबेत् ॥ उत्पलं नीलमारक्तं कह्लारं कुमुदं तथा। श्वेतांभोजश्च मधुकमुत्पलादिरयं गणः। संशीलितो हरत्येव दाहं तृष्णा हृदामयम्। रक्तपित्तं च मूर्च्छां च तथा च्छर्दिमरोचकम् ॥

अर्थ—गर्भवती स्त्रीके गर्भसे बारम्बार यदि रुधिर स्राव होवें तो उसके रोकनेको उत्पलादि गणके क्वाथमें दूध मिलाकर शीतल करके पिलावे। (उत्पलादिगण) उत्पल (नील और लाल फूलका कमल) कलहार कमोदनी सफेद कमल, मुलहटी यह उत्पलादि गण है इसका सेवन करनेसे दाह तृषा हृदयरोग रक्तपित्त, मूर्च्छा वमन और अरुचि नष्ट होती है।

गर्भपातके उपद्रव।

प्रस्रंसमाने गर्भे स्याद्दाहः शूलं च पार्श्वयोः।
पृष्ठरुक्प्रदरानाहौ मूत्रसंगश्च जायते ॥

अर्थ—जब गर्भ गिरनेको होता है तब दाह दोनों पसवाडोंमें शूल (दर्द) पीठमें पीडा प्रदर अफरा मूत्रका रुकना ये घोर उपद्रव होते हैं।

गर्भके स्थानान्तरमें हट जानेके उपद्रव।

स्थानात्स्थानांतरं तस्मिन् प्रयात्यपि च जायते।

आमपक्काशयादौ तु क्षोभः पूर्वेऽप्युपद्रवाः ॥

अर्थ–जब गर्भ अपने स्थानसे दूसरे स्थानमें चला जाता है तब आमाशय और पक्काशयमें क्षोभ और पूर्वोक्त पसवाडोंमें दर्द आदि उपद्र होते हैं ।

चिकित्सा ।

स्निग्धशीतक्रियास्तेषु दाहादिषु समाचरेत् । कुशकाशोरुबूकानां मूलैर्गोक्षुरकस्य च । शृतदुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलहृत्परम् ॥ श्वदंष्ट्रामधुकक्षुद्राम्लानैः सिद्धं पयः पिबेत् । शर्करामधुसंयुक्तं गार्भिणीवेदनापहम् । मृत्कोष्ठागारिका गेहसम्भवानवमृत्तिका । समंगाधातकीपुष्पगैरिकं च रसाञ्जनम् । तथा सर्जरसैश्चैतान् यथालाभं विचूर्णयेत्॥तच्चूर्णं मधुना लिह्याद्गर्भपातप्रशांतये । कसेरूत्पलशृंगाटकल्कं वा पयसा पिबेत् ॥ पक्वं वचारसोनाभ्यां हिंगुसौवर्चलान्वितम् । आनाहेतु पिबेदुग्धं गुर्विणी सुखिनी भवेत् ।तृणपंचकमूलानां कल्केन विपचेत्पयः । तत्पयो गुर्विणी पीत्वा मूत्रसंगाद्विमुच्यते । शालीक्षुकुशकाशैः स्याच्छरेण तृणपंचकम् । एषां मूलतृषादाहपित्तासृड् मूत्रसंगहृत् ॥

अर्थ–गर्भपात और गर्भके अन्य स्थानमें हट जानेसे जो दाह होय उसमें स्निग्ध शीतल क्रिया करे । अथवा कुश कांस अरंडकी जड गोखुरू इनको दूधमें डालके पकावे फिर शीतल करके मिश्री मिलाकर पिलावे तो गर्भवतीका गर्भपातका शूल निवृत्त होय । अवथा गोखुरू मुलहटी, कटेरी–त्राणपुष्प इनको दूधमें डालके पकावे फिर शीतल होनेपर मिश्री शहत मिलाकर पीवे तो गर्भवतीका दर्द नष्ट हो, अथवा भृंगीके वनेहुए घरकी मिट्टी लज्जालु धायके फूल गेरू रसौत और राल इनको वारीक चूर्ण करके शहतके साथ ४ व ६ मासेकी मात्रासे चाटे तो गर्भपातका उपद्रव नष्ट होय कसेरू, कमलगट्टा, सिंघाडे इनके कल्कको दूधमें मिलाकर पीवे तो गिरताहुआ गर्भ रुक जाता है । वच और लहसन इनको दूधमें डालके पकावे और उसमें हींग तथा काला नमक मिलाकर पीवे तो गर्भवती स्त्रीका अध्मान (अफरा) नष्ट होवे । जिस गर्भवतीका मूत्र रुक गया होय वह तृणपंचककी जडोंके कल्कसे दूधको औटाय कर पीवे तो मूत्र उतरने लगता है । तृणपंचक शालि चावल, ईख, कुशा, कांस, सरपता, इनकी जड लेनी चाहिये यह तृषा, दाह, रक्तपित्त और मूत्र रुकनेको नष्ट करता है ।

गर्भवतीके मासानुमासिकका यत्न।

मधुकं शाकबीजं च पयसा सुरदारु च। अश्मन्तकस्तिलाः कृष्णास्ताम्रवल्ली शतावरी। वृक्षादनी पयस्या च लता चोत्पलसारिवा। अनन्ता सारिवा रास्ना पदना मधुकमेव च। बृहत्योकाश्मरी चापि क्षीरी शुंगास्त्वचो बिसम्। पृष्टिपर्णी बला शि श्वदंष्ट्रा मधुयष्टिका। शृंगाटकं बिसं द्राक्षा कसेरू मधुकं सिता। वत्सैते सप्त योगाः स्युरर्धश्लोकसमापनाः। यथासंख्यं प्रयोक्तव्यं गर्भस्रावे पयोयुताः॥ एवं गर्भो न पतति गर्भशूलं च शाम्यति। कपित्थबृहती बिल्वपटोले च निदिग्धिकाः। मूलानि क्षीरसिद्धानि दापयेद्भिषगष्टमे। नवमे मधुकानन्ता पयस्या सारिवाः पिबेत्। क्षीरं शुण्ठीपयस्याभ्यां सिद्धं स्याद्दशमे हितम्। सक्षीरं वा हिता शुण्ठी मधुकं सुरदारु च। क्षीरिकामुत्पलं दुग्धं समंगामूलकं शिवाम्॥ पिबेदेकादशे मासि गर्भिणी शूलशान्तये। सिता विदारी काकोली क्षीरी चैव मृणालिका। गर्भिणी द्वादशे मासि पिबेच्छूलघ्नमौषधम्। एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रारुक् चोपशाम्यति॥

अर्थ—मुलहटी शाक वृक्षके बीज (कोई २ कुलकाके बीज ग्रहण करते हैं) क्षीर काकोली (क्षीर काकोलीके अभावमें असगन्ध भी ली जाती है) और देवदारु इनका क्राथ प्रथम महीनेमें पिलावे। अश्मन्तक काले तिल, ताम्रवल्ली, शतावर ये दूसरे महीनेमें पिलावे। वांदा क्षीरकाकोली, लताप्रियंगु, अनन्तमूल, ये तीसरे महीनेमें पिलावे। अनन्तमूल, सारिवा, रास्ना, ब्रह्मदण्डी, मुलहटी, ये चौथे महीनेमें पिलावे। छोटी और बडी दोनों कटेली—कंभारीके फल क्षीरीवृक्ष (वटादि) की कली तथा छाल आर कमलकी डंडी ये पांचवे महीनेमें देवे॥ पृष्टपर्णी, खरैटी, सहजना, गोखुरू, मुलहटी—ये छठे महीनेमें देवे॥ सिंघाडा कमलकी डंडी, दाख, कसेरू, मुलहटी मिश्री इनका क्राथ बनाकर सातवें महीनेमें देवे। धन्वतारि कहते हैं कि हे वत्स! ये आधे आधे श्लोकमें कथन किये हुए प्रयोग क्रमसे प्रथमादि महीनोंमें दूधके साथ देने चाहिये, इस प्रकार वर्त्ताव करनेसे गर्भ नहीं गिरता है और पीडा शान्त हो जाती है यहांपर अर्द्ध श्लोकमें जो दवा कथन की हैं सव मिलाकर १॥ व २ तोला लेवे यह क्राथकी

मात्रा है और कल्क बनाकर देना होय तो आधा व १ तोला लेवे और कल्कको वारीक पीसकर ४ तोला गोदुग्धमें मिलाकर देवे ॥ कैथ, बडी कटेरी, बेल, पटोलपत्र, ईख छोटी कटेरी इनकी जडको दूधमें पकाकर वैद्यको उचित है कि आठवें महीनेमें देवे । इस स्थलपर कैथादिकी जड सब मिलाकर ४ तोला और दूध ८ पल तथा जल ३२ पलको मिलाकर पकावे जब दूधमात्र शेष रहे तब उतार कर शीतल करके छानकर पिलावे और मुलहटी, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली, सारिवा ये सब १ तोला लेकर शीतल जलसे बारकि पीस कर १ पल दूधमें मिलाकर पिलावे ये दोनों प्रयोग नवमें महीनेके हैं । दशवें महीनेमें सोंठ और क्षीरकाकोलीको पूर्ववत दूधमें पकाकर पिलावे ॥ अथवा दशवें महीनेमें सोंठ मुलहटी देवदारु इनको शीतल जलसे पीसकर दूधमें मिलाकर पिलावे । ग्यारहवें महीनेमें क्षीरकाकोली, कमलगट्टा दूध लज्जालुकी जड आंवले ये सब १ पल लेकर क्वाथ बनावे और दूधमें मिलाकर पिलावे । बारहवें महीनेमें मिश्री विदारीकन्द काकोली (इसके अभावमें असगन्ध) क्षीरी वृक्षके फल और कमलकी जड इनका क्वाथ पीवे गर्भवतीका शूल नष्ट होय ॥ इन प्रयोगोंका सेवन करनेसे गर्भ पुष्ट होता है और गर्भवतीकी पीडा नष्ट होती है ॥

चरकके मतसे गर्भकी मास परत्वरक्षणविधि ।

प्रथमे मासे शङ्कितं गर्भमापन्नं क्षीरमनुपस्कृतं मात्रावच्छीतं काले काले पिबेदन्तर्वत्नी सात्म्यमेव च पुनर्भोजनञ्च सायंप्रातर्भुञ्जीत ॥ द्वितीये मासे क्षीरमेव च मधुरौषधसिद्धं तृतीये मासे क्षीरं मधुसर्पिर्भ्यामुपसंसृज्य । चतुर्थमासे क्षीर नवनीतमक्षमात्रमश्नीयात् । पंचमे मासे क्षीरसर्पिः। षष्ठे मासे क्षीरसर्पिः मधुरौषधसिद्धं तदेव सप्तमे मासे ॥ सप्तममासेऽन्योपचारः । तत्र गर्भस्य केशा जायमाना मातुर्विदाहं जनयन्तीति स्त्रियो भाषन्ते तन्नेति भगवानात्रेयः किन्तु गर्भोत्पीडनाद्वातपित्तश्लेष्मणः उरः प्राप्य विदहन्ति ततः कण्डूरुपजायते कण्डुमूला च किक्किसावाप्तिर्भवति । तत्र कोलोदकेन नवनीतस्य मधुरौषधसिद्धस्य पाणितलमात्रे कालेऽस्यै दद्यात् । चन्दनमृणालकल्कैश्चास्याः स्तनोदरं विमृद्नीयात् । शिरीषं धातकीसर्षपमधूकचूर्णैः कुटजार्जकबीजमुस्तहरिद्राकल्कैर्वा । निम्बकोलकसुरसमंजिष्ठाकल्कैर्वा पृषतहरिणशशरुधिर युतया त्रिफलया वा करवीर पत्रसिद्धेन वा तैलेनाभ्यंगः परिषेकः पुनर्मालिनीमधूक-

सिद्धेनाम्भसा जातकण्डूश्च कण्डूयनं वर्जयेत् त्वग्भेदनवैरूप्यपरिहारार्थ-मसह्यान्तु कण्डूवां उन्मर्दनोद्धर्षणाभ्यां परिहारः स्यात् मधुरमाहार-जातं वातहरमल्पमल्पस्नेहलवणमल्पोदकान्तु पानं च भुञ्जीत् ।

अर्थ—गर्भकी आशंका होने पर प्रथम महीनेमें विना किसी औषधके डाले त्रिदून और गर्म किया हुआ शीतल दुग्ध गर्भवती स्त्रीको पिलावे और प्रातःकाल तथा सायंकालमें सात्म्य भोजन करावे दूसरे महीनेमें मधुर गणोक्त औषधियोंसे सिद्ध कियाहुआ दुग्धपान करावे. । तीसरे महीनेमें दूधमें शहत और घृत डालकर पान करावे । चौथे महीनेमें दूध और तोलेभर मक्खन सेवन करावे । पांचवें महीनेमें दूध और घृत सेवन करावे । छठे और सातवें महीनेमें मधुर औषधियोंसे सिद्ध कियाहुआ दुग्ध तथा घृत देवे । (सातवें मासमें विशेष अन्य उपचार) स्त्रियां प्रायः कहा करती हैं कि सातवें मासमें गर्भस्थ बालकके केश निकल आते हैं और उन केशोंके निकलनेसे माताके उदरमें अत्यन्त दाह उत्पन्न होता है । परन्तु भगवान आत्रेय इस कथनको स्वीकार नहीं करते, किन्तु आत्रेयका कथन है कि गर्भके उत्पीडनसे वात पित्त कफ ये तीनों दोप उरःस्थलमें पहुंचकर दाह उत्पन्न करते हैं । इससे खुजली उत्पन्न होती है खुजलीसे किक्किसा अर्थात् त्वचा फटने लगती है । इन लक्षणोंके होने पर वेरके क्काथमें मधुर औषधियोंसे संस्कार किया हुआ हथेली भर नवनीत मिलाकर समय समय पर देता रहे । चन्दन और कमलनालको घोंटकर स्तन और उदर पर मलता रहे अथवा सिरस धायके फूल सरसों मुलहटी इनके चूर्णसे अथवा कुडाकी छाल तुलसीके बीज मोथा हल्दी इनको घोंटकर अथवा नीम, वेर सुरसा, तुलसी, मंजिष्ठ इनके कल्कसे अथवा पृषत हरिण और सस्सेके रुधिरमें मिला हुआ त्रिफलाका कल्क अथवा कनेरके पत्तोंके साथ सिद्ध किये हुए तैलकी मालिश करे । यदि स्तनोंमें खुजली होय तो हाथसे न खुजावे किन्तु मालतीके फूल और मुलहटी डालकर जलको पकावे उस जलसे स्तनोंको धो डाले, क्योंकि खुजानेसे त्वचा फटीसी हो जाती है और शरीरमें नखके चिह्न कुरूप दिखाई देते हैं (जैसे प्रायः स्त्रियोंके देखनेमें आता है) यदि खुजाने बगैर चैन न पडे तो धीरे धीरे पोरुआसे सहरा देवे नखसे न खुजावे—तथा वातनाशक आहार थोडी चिकनाई और नमक तथा थोडा जलपान करनेको देवे ।

अष्टममासमें गर्भरक्षण विधि ।

अष्टमे तु मासे क्षीरयवागूं सर्पिष्मतीं काले काले पिवेत् तन्नेति भद्र-काप्यः पैङ्गिल्यावाधो हि अस्या गर्भमागच्छेदिति । अस्त्वत्रपैङ्गिल्या-

बाध इत्याह भगवान् पुनर्वसुरात्रेयो न ह्येतत् कार्य्यं एवं कुर्वंति हि आरोग्यबलस्वरसंहननसम्पदुपेतं ज्ञातीनामपि श्रेष्ठमपत्यं जनयति ॥

अर्थ—आठवें महीनेमें घृत डालकर दूध यवागू समय समय पर पान करावे परन्तु भद्रकाप्य आचार्य्य कहते हैं कि यह ठीक नहीं है ऐसा करनेसे गर्भस्थ बालकके नेत्र पिङ्गलवर्ण हो जायँगे। इस पर भगवान् आत्रेयने कथन किया है कि यदि सन्तानके नेत्र पिङ्गल वर्णके हो जाय तो क्या हानि है यह सन्तान निरोग बलवर्ण स्वरयुक्त तथा ऐसी सुडौल होयगी कि वैसा उस कुटुम्बभरमें कोई उत्पन्न न हुआ होय।

नवमे तु खल्वेनां मासे मधुरौषधसिद्धेन तैलेनानुवासयेत्। अतः चास्यास्तैलं पिचुमिश्रं योनौ प्रणमेद्गर्भस्थानमार्गस्नेहनार्थं। यदिदं कर्म्म मासमुपादायोपदिष्टमालं आनवमान्मासात्तेन गर्भिण्या गर्भसमये गर्भधारणे कुक्षिःकटी पार्श्वपृष्ठं मृदु भवति वातश्चानुलोमः सम्पद्यते मूत्रपुरीषे च प्रकृतिभूते सुखेन मार्गमनुपद्येते चर्म्म नखानि च मार्दवमुपयान्ति बलवर्णौ चोपचीयते पुत्रं चेष्टं सम्पदुपेतं सुखिनं कालेन प्रजायते इति ॥

अर्थ—नवमें महीनेमें मधुर औषधियोंसे सिद्ध किये हुए तैलकी अनुवासन बस्ति देवे और गर्भमार्गको सचिक्कण रखनेके लिये योनिमार्गमें तैलका फोहा लगा रहनेदेवे। प्रथम महीनेसे लेकर जो नौ महीने तकके कर्म वर्णन किये गये हैं इन सबको यथावत् करनेसे गर्भिणीके गर्भसमय तथा गर्भ धारणमें कुक्षि, कमर, पसवाडे, पीठ सब कोमल रहते हैं वायुका अनुलोमन होता है मल मूत्र सुखपूर्वक बाहर निकल जाते हैं। त्वचा और नख मृदु रहते हैं बल और वर्ण बढता है पुत्र तथा पुत्री सर्व गुण सम्पन्न और सुखी होता है तथा सुखपूर्वक उचित (नियत) समय पर प्रसव होता है।

गर्भिणीका कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म।

गर्भिणी प्रथमदिवसात् प्रभृति नित्यं प्रहृष्टा शुच्यलंकृता शुक्लवसना शान्तिमंगलदेवता ब्राह्मणगुरुपरा च भवेन्मलिनाविकृतहीनगात्राणि न स्पृशेद् दुर्गन्धदुर्दर्शनानि परिहरेदुद्वेजनीयाश्च कथाः शुष्कं पर्युषितं कुथितं क्लिन्नं चान्नं नोपभुञ्जीत बहिर्निष्क्रमणं शून्यागारचैत्यश्मशानवृक्षाश्रयान् क्रोधभयसंकराश्च भारानुच्चैर्भाष्यादिकं परिहरेद्यानि च गर्भं व्यापादयन्ति न चाभीक्ष्णं तैलाभ्यङ्गोत्सादना-

दीनि निषेवेत न चायासयेच्छरीरं पूर्वोक्तानि च परिहरेत्। शयनासनं मृद्वास्तरणं नात्युच्चमपाश्रयोपेतमसम्बाधं विदध्यात् हृद्यं द्रवं मधुरप्रायं स्निग्धं दीपनीयसंस्कृतञ्च भोजनं भोजयेत् सामान्यमेतदाप्रसवात्॥

अर्थ—गर्भिणी स्त्रीको उचित है कि जिस दिवससे गर्भ रहे उसही दिनसे नित्य-प्रतिं प्रसन्न मनसे रहना चाहिये, पवित्र आभूषणादिको धारण करे, स्वच्छ वस्त्र पहरे, शान्तिसे रहे अथवा स्वस्ति शान्ति पाठ मंगलाचरण विद्वान् ब्राह्मण और वृद्धोंमें प्रीति रक्खे। मलीन कुरूप और अङ्गहीनोंका स्पर्श न करे, दुर्गन्धित वस्तु और अप्रिय वस्तुओंको न देखे, ऐसी बातोंको न सुने जिनसे भय प्राप्त होय, सूखा बासी सडा और गीला भोजन न करे। बाहर फिरना शून्य निर्जन स्थानमें रहना ऐसे वृक्षके नीचे बैठना जहां कोई देवस्थान कल्पना किया होय श्मशानमें जाना इत्यादि कर्मोंको न करे, ये कायिक नियम हैं। क्रोध और भय उत्पन्न करनेवाले कामोंको न करे बोझ न उठावे ऊंचे स्वरसे भाषण न करे यान वाहनादि पर न चढे जिनसे गर्भका नाश हो जाता है उन उन कामोंको न करे ऋतुसमयमें निषिद्ध कर्म और दिवा-स्वप्नादि भी न करे। तैलमर्दन और उबटनादि भी न लगावे शारीरिक और मानसिक परिश्रमोंको भी त्याग देवे कोमल शय्या आसन बिछौने विछाकर बैठे सोवे ऊंचे नीचे पर न चढे उतरे। जिन कामोंको करनेसे परिश्रम और खेद न होवे ऐसे कामोंको करे (याने शान्त परिश्रम करे) हृदयको हितकारी पतले मिष्ट चिकने अग्नि संदीपन करनेवाले द्रव्योंसे तैयार किये हुए भोजन करे ये सन्तान होनेसे पूर्वके सामान्य नियम कहे गये हैं। अब यहाँसे आगे सूतिकागार अर्थात् सौरी (सोवडके) वरका विधान तथा सामान कथन किया जाता है।

सूतिकागारकी विधि।

प्राक् चैवास्या नवमान्मासात् सूतिकागारं कारयेत्। अपहृतास्थि-शर्कराकपाले देशप्रशस्तरूपरसगंधायां भूमौ प्राग्द्वारमुदग्द्वारं वा। तत्र बैल्वानां काष्ठानां तिन्दुकैंगुदकानां भल्लातकानां वारणानां खदिराणां वा यानि चान्यान्यपि ब्राह्मणाः शंसेयुरथर्ववेदविदः तद्वसनालेपनाच्छाद-नापिधानसम्पदुपेतं वास्तु हृदययोगाग्निसलिलोलूखलवर्चःस्थानस्नान-भूमिमहानसमृतुसुखम्।

अर्थ—नवमें मासके प्रारम्भसे प्रथम ही सूतिकागार अर्थात् (सोवर व सौरीगृह) नियत करे उस घरकी हड्डी वालू रेत ठीकरे कंकर वालूरेत आदिको निकालकर साफ

कर लिपा पुताकर स्वच्छ करादेवे, जिससे वह घर सुहावना दीखे तथा सुगन्धित धूप व अन्य रसादिक सुगन्धित द्रव्योंसे गंधयुक्त हो जावे इस सौवरके घरका द्वार (दरवाजा) पूर्व अथवा उत्तर दिशाकी तर्फ होना चाहिये। वल तेंदू गोंदी भिलावा वरुण व खैर इत्यादि वृक्षोंकी लकडी अथवा और किसी प्रकारके वृक्षकी लकडी जिसको अथर्व वेदके ज्ञाता विद्वान् ब्राह्मण बतलावें लाकर उपस्थित करे। तथा वस्त्र आलेपन ओढने बिछानेके वस्त्र भी तैयार रक्खे। तथा उस घरमें अग्नि, जल, ओखली, मूसल (व खरल मूसली) रक्खे, मल मूत्र त्यागनेका स्थान व पात्र रक्खे तथा स्नानका स्थान व कोई बडा वर्त्तन (कढाई वा टीप) रक्खे। महानस तथा अन्य २ वस्तु जो उस समय पर आवश्यक और सुखदाई होवें तथा जो २ वस्तु जिस २ ऋतु व कालमें प्रसववतीको सुख देनेवाली होवें उनको पूर्वसे ही लाकर सूतिकागारमें एकत्र कर लेवे। (यहाँपर चरक तथा सुश्रुताचार्य्यका कुछ मत भेद है) चरकाचार्य्यने सामान्यतासे सूतिकागारका विधान किया है, परन्तु सुश्रुताचार्य्य वर्णभेदसे इस प्रकार कथन करते हैं, सूतिका घरको इस प्रकारसे निर्माण करावे कि ब्राह्मण उस भूमिको श्वेत क्षत्री रक्त (लाल) वैश्य पीली और शूद्र काली पुतवावे मकानका दरवाजा भी पूर्व व दक्षिणको होना चाहिये।

सूतिकागारका विशेष सामान।

तत्र सर्पिस्तैलमधुरकसैन्धवसौवर्चलकाललवणविडङ्गगुडकुष्ठकिलिमनागरपिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीमण्डूकपर्णीपिप्पलीएलालांगली वचाचव्यचित्रकचिरिबिल्वहिङ्गुसर्षपलहशुनकनकनीपातसीबल्वजभूर्जाः कुलत्थमैरेयसुरासवाः सन्निहिताः स्युः। तथाश्मानौ द्वौ द्वे च एरण्डमूपले सोलूखले खरवृषभश्च द्वौ च। तीक्ष्णौ सूची पिप्पलकौ सौवर्णराजतौ द्वे शस्त्राणि च तीक्ष्णायसानि द्वौ च बिल्वमयौ पर्यङ्कौ तैन्दुकैंगुदानि च काष्ठान्यग्निसन्धुक्षणादि स्त्रियश्च बह्व्यो बहुशः प्रजाता सौहार्द्दयुक्ताः सततमनुरक्ताः प्रदक्षिणचाराः प्रतिपत्तिकुशलाः प्रकृतवत्सलास्त्यक्तविषादाः क्लेशसहिष्णोऽभिमताः ब्राह्मणश्चाथर्ववेदविद्यश्चान्यदपि तत्र समर्थं मन्येत यच्च ब्राह्मणाब्रूयुः स्त्रियश्च वृद्धाः तत्कार्य्यम्॥ ततः प्रवृत्ते नवमे मासे पुण्येऽहनि नक्षत्रयोगमुपगते प्रशस्ते भगवति शशिनि कल्याणे करणे मैत्रे मुहूर्त्ते शान्तिं हुत्वा गोब्राह्मणमग्निमुदक-

आदौ प्रवेश्य गोभ्यः तृणोदकं मधुलाजांश्च प्रदाय ब्राह्मणेभ्योऽक्षताः सुमनसो नान्दीमुखानि च फलानिष्टानि दत्वा उदकपूर्वमासनस्थेभ्योऽभिवाद्य पुनराचम्य स्वस्तिवाचयेत्ततः पुण्याहशब्देन गोब्राह्मणमन्वावर्त्तमाना प्रदक्षिणां प्रविशेत् सूतिकागारम्। तत्रस्था च प्रसवकालं प्रतीक्षेत् ॥

अर्थ—जो घर प्रसवके लिये उपरोक्त विधिसे निर्माण किया हो उसी घरमें घृत, तैल, मधु, सेंधा नमक, संचर नमक, वायविडङ्ग, गुड, कूट, देवदारु, सोंठ, पीपलामूल, पीपल, गजपीपल, मण्डूकपर्णी (यह ब्राह्मीबूटीका भेद है) इलायची, लांगली (कलिहारी), वच, चव्य (काली मिरचकी जड और पीपलकी वेलकी लकडी चव्यके नामसे ली जाती है) चित्रक, करंजुवा, वेलकी जड, हींग, सरसों, लहशुन, कनकसे (धतूरा व सोना दोनों ही काममें आते हैं) कदम्ब, अलसी, विल्वज, भोजपत्र, कुलथी जैरेय, सुरा, आसव ये सब एकत्र करके तथा उसी घरमें दो सिल अरंडके दो मूसल, दो ओखली, एक गधा, एक बैल, सोने चांदीकी दो सूई, दो पिप्पलक, लोहेके दो तीक्ष्ण धारवाले अस्त्र, बेलकी लकडीके दो पलंग, अग्नि जलानेके लिये तेंदू और गोंदीकी लकडी ये सब वस्तु एकत्र करके रक्खे। और प्रौढा व वृद्धा ऐसी स्त्रियां जिनके अनेक सन्तान हुए होयँ, जो गर्भिणीसे स्नेह रखती होयँ और अनुरागवती होयँ अथवा प्रसवक्रियामें प्रवीण होयँ तथा सिद्धान्त ज्ञाता प्रकृति वत्सला, प्रसन्नमना, परिश्रम सहनेवाली और चाहनेवाली स्त्रियां उस सूतिकाघरमें रक्खी जावें और अथर्व वेदके ज्ञाता ब्राह्मणको भी बुलाकर सम्मति लेनेके निमित्त सूतिकागारके समीप रक्खे। इसके अतिरिक्त प्रसवकालके उपयोगी अन्य अन्य वस्तुओंको भी उपस्थित रक्खे तथा अथर्व वेदके ज्ञाता ब्राह्मण और कुलकी वृद्ध स्त्रियां जिस कामकी आज्ञा देवें वह भी करे। नवमें महीनेके लगनेपर शुभ दिवस शुभ नक्षत्र योगमें जिस दिवस चन्द्रमा होय तथा शुभ फलदायक मैत्र मुहूर्त हो ऐसे योगके उपस्थित होनेपर शान्तिकारक हवन करके प्रथम ही गौ ब्राह्मण अग्नि और जल उस सूतिकागारमें ले जावे। फिर गौओंको तृण जल शहत खील देवे और ब्राह्मणोंको अक्षत, फूल, कल्याणसूचक अभिमत फल देकर उत्तर पूर्वकी ओर मुख करके बैठावे। फिर नमस्कार कराके आचमन कराके स्वस्तिवाचन करावे, फिर पुण्याहवाची शब्दोंके साथ गौ ब्राह्मणोंके समक्ष गर्भवती स्त्रीको सौवरमें प्रवेश करे और वहां बैठकर प्रसवकालकी प्रतीक्षा करे।

आसन्नप्रसवकालके लक्षण।

जाते हि शिथिले कुक्षौ मुक्ते हृदय बन्धने। सशूले जघने नारी ज्ञेया

सातु प्रजायिनी। तत्रोपस्थितप्रसवायाः कटीपृष्ठं प्रति समन्ताद्वेदना भवत्यभीक्ष्णं पुरीषप्रवृत्तिर्मूत्रं प्रसिच्यते योनिमुखात् श्लेष्मा च॥ (अन्यच्च चरकात्) तस्यास्तु खल्विमानि लिंगानि पूजनकालमभितो भवन्ति तद्यथा क्लमो गात्राणां ग्लानि राननस्याक्ष्णोः शैथिल्यं विमुक्त बन्धनत्वमिव वक्षसः कुक्षेरवस्रंसनमधो गुरुत्वं वंक्षणवस्तिकटिपार्श्व-पृष्ठनिस्तोदो योनेः प्रस्रवणमनन्नाभिलाषश्चेति ततोऽनन्तरभावीनां प्रादु-र्भावः प्रसेकश्च गर्भोदकस्य।

अर्थ—प्रसवकालके ये लक्षण होते हैं कि स्त्रीकी कूख ढीली पड जाता है और बालक हृदय बन्धनको तोडकर नीचा हो जाता है और दोनों जांघोंमें शूल होने लगता है कमर और पीठके चारों ओर अत्यन्त पीडा होती है वारम्वार मूत्र और मल पार-त्याग करनेकी सी इच्छा होती है और योनिद्वारसे कुछ श्वेत पदार्थ कफके समान निकलने लगता है। अन्य लक्षण चरकसे प्रसवकालके उपस्थित होने पर गर्भिणी स्त्रीके नीचे लिख हुए लक्षण होते हैं। यथा शरीरके अवयवोंमें क्लान्ति मुखपर ग्लानि आंखोंमें शिथिलता वक्षःस्थलके बन्धनमुक्त होजानेकासा बोध कुक्षिका नीचेकी तर्फ धसकना शरीरके नीचेके भागमें भारीपन वंक्षण वस्ति कमर पार्श्व पीठ इनमें सुई चुभनेकीसी पीडा योनिसे श्वेत पदार्थका प्रस्राव अन्नमें अरुचि इत्यादि लक्षण होते हैं। इन लक्षणोंके अनन्तर ही बालक उत्पन्न होनेका दर्द चलता है और पुनः गर्भोदकनिकलताहै। गर्भोदकको लौकिकमें स्त्रियां मूत्रकी पोटली कहतींहैं॥

प्रसवकालमें कर्त्तव्य कर्म।

प्रजनयिष्यमाणां कृतमंगलस्वस्तिवाचनां कुमारपरिवृतां पुन्नामफल-स्वहस्तां स्वभ्यक्तामुष्णोदकपरिषिक्तामथैनां सम्भृतां यवागूमाकण्ठात् पाययेत्। ततः कृतोपधाने मृदुविस्तीर्णे शयने स्थितामाभुग्नसक्थी-मुत्तानामशङ्कनीयाश्चतस्रः स्त्रियः परिणतवयसः प्रजननकुशलाः कर्त्तित-नखाः परिचरेयुरिति॥ अन्यच्च चरकात्॥ आवीप्रादुर्भावे तु भूमौ शयनं विदध्यात् मृद्वास्तरणोपपन्नं तदध्यासीनां तां समन्ततः परिवार्य यथोक्तगुणाः स्त्रियः पर्युपासीरन्नाश्वासयन्त्यो वा वाग्भिर्ग्राहिणीभिः सान्त्वनीयाभिः। सा चेदावीभिः संक्लिश्यमाना न प्रजायेताथैनां ब्रूयात्

उत्तिष्ठ मुषलमन्यतरश्च गृहीत्वानेन तदुलूखलं धान्यपूर्णं मुहुर्मुहुरभिजहि मुहुर्मुहुरवजृम्भस्व चंक्रमस्व चान्तरान्तरा इत्येवमुपदिशन्त्येके॥

अर्थ-जिस स्त्रीके बालक उत्पन्न होनेवाला होय उसे मंगलपाठ और स्वस्तिवाचन कराके पुँल्लिंगवाचक अमरूद अनार इत्यादि फलोंको देकर तैलमर्दन कराके गरम जलसे स्नान करावे और कण्ठपर्यन्त पेट भरकर यवागू पिलावे । तदनन्तर तकियेके सहारे कोमल बिछौनेवाली शय्यापर लिटा देवे लेकिन पैर ऊँचे और उकडू रक्खे और लज्जा तथा भयादिकसे रहित होकर पूर्ण उमरवाली जो दाईके काममें अति निपुण होय ऐसी चार स्त्रियां जिनके नखादिक कटे होंय सेवामें उपस्थित करे ॥ चरकसे ॥ प्रसववेदनाके चलनेपर पृथिवीपर कोमल गुदगुदे बिछौने बिछाकर स्त्रीको शयन करादेवे जब वह लेट जाय तब पूर्वोक्त गुणसम्पन्न चार स्त्रियां उसको चारों तर्फसे घेरकर बैठ जाँय और शान्तिप्रदायक तथा हृदयग्राही बातोंसे गर्भिणीको आश्वासन देती रहें । जो दर्दके चलनेपर गर्भिणीको अत्यन्त क्लेश होय और इसपरभी सन्तान उत्पन्न न होय तो उससे कहे कि उठकर बैठि जाओ और दोनों मूसलोंमेंसे एकको लेकर धान्यसे भरी हुई ओखलीमें वारम्वार चोट लगाकर धान्यको कूट वारम्वार हाथपांवको पसार और बीच बीचमें टहलती भी रहे ॥ कोई आचार्य इन सब क्रियाओंको करनेका उपदेश करते हैं ॥ उपरोक्त जो प्रसवके विलम्ब होनेकी स्थितिका उपाय मूसल लेकर धान कूटनेका विधान किया है उसका भगवान् आत्रेय निषेध करते हैं ॥

इस विषयमें भगवान् आत्रेयका सिद्धान्त ।

तन्नेत्याह भगवानात्रेयः । दारुणव्यायामवर्जनं हि गर्भिण्याः सततमुपदिश्यते ॥ विशेषश्च प्रजननकाले प्रचलितसर्वधातुदोषायाः सुकुमार्या नार्या मुषलव्यायामसमीरितो वायुरन्तरं लब्ध्वा प्राणान् हिंस्याद् दुष्प्रतीकारतमा च तस्मिन् काले विशेषेण भवति गर्भिणी । तस्मान् मुषलग्रहणं परिहार्यमृषयो मन्यन्ते जृम्भणश्चांगक्रमणं पुनरनुष्ठेयमिति ॥

अर्थ-भगवान् आत्रेय कथन करते हैं कि यह उपाय यथार्थ नहीं है । कारण कि गर्भिणी स्त्रीको कठिन परिश्रम न करना चाहिये, ऐसा उपदेश सदैवके लिये गर्भिणी स्त्रीमात्रको दिया गया है । विशेष करके प्रजनन कालमें तो सम्पूर्ण धातु और दोष सहजहीमें प्रचलित हो जाते हैं ऐसे समयमें सुकुमाराङ्गी नारी ऐसा कठिन परिश्रम करे तो मूषलके चलानेसे प्रेरित हुइ वायु अन्दर प्रवेश करके प्राणोंको नष्ट कर देगी

और उस समय गर्भिणी स्त्री विशेष करके दुश्चिकित्स्य होती है । इसलिये प्राचीन वैद्याचार्य्य मूपलकी प्रक्रिया काममें लेनेका निषेध करते हैं । और हाथ पांव फैलाना डोलना फिरना स्वीकार करते हैं ।

दाईका कर्म ।

अथास्या विशिखान्तरमनुलोममनुसुखमभ्यज्याद् ब्रूयाच्चैनामेका । सुभगे प्रवाहस्वेति न चाप्राप्तावी प्रवाहस्व । ततो विमुक्ते गर्भनाडीप्रबन्धे सशूलेषु श्रोणीवङ्क्षणबस्तिशिरः सुप्रवाहेथाः शनैः शनैः । ततो गर्भनिर्गमे प्रगाढं ततो गर्भे योनिमुखं प्रपन्ने गाढतरमाविशल्यभावात् ॥

अर्थ—इसके पश्चात् दाईको उचित है कि प्रसव होनेवाली स्त्रीके अपत्यमार्ग (योनिमार्गमें) योनिमुखकी तर्फ अनुलोम रीतिसे तैलादिकी चिकनाई लगा समीपवर्त्ती चार स्त्रियोंमेंसे एक स्त्री यह कहे कि हे सुभगे निरूहण करो जिससे पीडा न होय—ऐसा प्रवाहण करे तब गर्भनाडीके बन्धनके छूट जाने पर शूलयुक्त श्रोणी वंक्षण वस्तिके ऊपरके भागमें शनैः शनैः (धीरे धीरे) गर्भस्थ वालक आ जायगा । उस समय गर्भके वालकको निकलनेके मार्गपर तथा योनिमार्गमें खिसकताहुआ योनिमुख पर आनेके समय योनिमुखमें कुछ पीडा होकर वालक विल्कुल वाहर आ जायगा । उस समय दाईको उचित है कि वालकको जरायुसे पृथक् करे ।

अकालप्रसवमें दोष ।

अकालप्रवाहणाद् बधिरं मूकं व्यस्तहनुं मूर्द्धाभिघातिनं कासश्वासशोषोपद्रुतं कुब्जं विकटं वा जनयति । तत्र प्रतिलोममनुलोमयेत् ॥

अर्थ—गर्भकी पूर्ण अवधि समाप्त न होनेके पूर्व ही याने ७ व ८ मास तथा ९ मास १० दिवस पूर्ण न करके जो वालक गर्भाशयमेंसे निकल जाता है वह बहरा, गूंगा, चपटी ठोंढीवाला, मूर्द्धा रोगी, खांसी श्वास और शोष इत्यादि उपद्रवयुक्त कुबडा टेढा होता है, जो वालक टेढा या उलटा पडगया होय उसको मूढगर्भ चिकित्साकी रीतिसे सीधा करे । मूढ गर्भ चिकित्साका प्रकरण देखो ।

चरकसे प्रसवकालमें औषध तथा विशेष क्रिया विधान ।

अथास्यै दद्यात् कुष्ठैलालाङ्गलिकीवचाचित्रकचिरिबिल्वचूर्णमुपघ्रातुं सा तत् मुहुर्मुहुरुपाजिघ्रेत् तथा भूर्जपत्रधूमं शिंशपासारधूमं तस्याश्चान्तराकटीपार्श्वपृष्ठसक्थिदेशादीनीषदुष्णेन तैलेन तैलनाभ्यज्यानुसुखमवमृ-

हीयादित्यनेन कर्म्मणा गर्भोऽवाक्प्रतिपद्यते । स यदा जानीयाद्विमुच्य हृदयमुदरमस्यास्त्वाविशति बस्तिशिरोऽवगृह्णाति त्वरयन्त्येनामाव्यपरिवर्त्ततेऽधो गर्भ इत्यस्यामवस्थायां पर्य्यंकमेनामारोप्य प्रवाहितसुपक्रमेत् कर्णे चास्या मन्त्रमिममनुकूला स्त्री जपेत् ॥ (प्रसवकालका मन्त्र) क्षितिर्जलं वियत्तेजो वायुर्विष्णुः प्रजापतिः । सगर्भां त्वां सदा पान्तु वैशल्यं च दिशन्तु ते ॥ प्रसुष्व त्वमविक्लिष्टमविक्लिष्टा शुभानने । कार्त्तिकेयद्युतिं पुत्रं कार्त्तिकेयाभिरक्षितामिति ॥ ताश्चैनां यथोक्तगुणाः स्त्रियोऽनुशिष्युरनागतावीर्मा प्रवाहिष्ठाः या ह्यनागतावी प्रवाहयतोऽत्यर्थमस्यास्तत्कर्म्म भवति ॥ प्रजास्या विकृता विकृतिमापन्ना श्वासकासशोषप्रसक्ता वा भवति । यथा हि क्षवथूद्गारवातमूत्रपुरीषवेगान् प्रयतमानोऽप्यप्राप्तकालान्न लभते कृच्छ्रेण वाप्यमाप्नोति तथा नागतकालं गर्भमपि प्रवाहमाना यथा चैषामेव क्षवथ्वादीनां सन्धारणमुपघातायोपपद्यते तथा प्राप्तकालस्य गर्भस्याप्रवहणम् । सा यथा निर्देशं कुरुष्वेति वक्तव्या । तथा च कुर्वती शनैः पूर्वं प्रवाहेत ततोऽनन्तरं बलवत्तरं तस्याः प्रवाहमानाया स्त्रियः शब्दं कुर्य्युः प्रजाता प्रजाता धन्यं धन्यं पुत्रमिति तथास्या हर्षेणाप्यायन्ते प्राणाः ॥

अर्थ—प्रसव कालमें स्त्रीको कूट, इलायची, लाङ्गली (कलिहारी), वच, चित्रककी छाल, करंजुआकी मींगी, इन सबका अति सूक्ष्म चूर्ण बनाकर सुंघावे गर्भिणी इस नस्यको बारम्बार प्रीतिपूर्वक सूंघे । भोजपत्रका धुंआं अथवा शिशणके गूदेका धूंआ बीच बीचमें देना योग्य है । कमर पसली पीठ और सक्थि आदि स्थानोंपर सहता सहता गर्म तैल लगाकर धीरे धीरे हाथ फेरना उचित है । इन क्रियाओंके करनेसे गर्भाशयका मुख विस्तृत हो जायगा और गर्भस्थ बालक नीचेकी तर्फ खिसकने लगेगा । जब यह मालूम होवे कि गर्भस्थ बालकका नाल बंधन हटकर उदरके नीचे भागमें सरकता हुआ वस्तिके समीप पहुंचा है उस समय स्त्रीको प्रसववेदना विशेष शीघ्र शीघ्र होने लगती है । उस समय यह समझ लेना चाहिये कि गर्भका मुख नीचेकी तर्फ हो गया है । अर्थात् (गर्भस्थ बालक गर्भाशयके मुखपर आ गया है) ऐसे समयमें स्त्रीको पलंगपर बैठालकर प्रवाहित करावे अर्थात् जोर लगाकर नीचे खींचनेकी आज्ञा देवे

और उस समय जो अनुकूल वृद्धा स्त्री होवे वह उपरोक्त प्रसवकालके (क्षितिर्जलं वियत्तेजो वायुर्विष्णुः प्रजापतिः) इस सम्पूर्ण मन्त्रको प्रसववतीके कानमें सुनावे। उपरोक्त प्रसवकालके मन्त्रका अर्थ यह है। " पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, विष्णु, ब्रह्मा ये सब तेरी और तेरे गर्भकी रक्षा कर। और तेरे गर्भशल्यको निकाल देवें " (हे शुभानने) । विना ही क्लेश तेरे कार्त्तिकेयकी कान्तिके समान पुत्र होय और कार्त्तिकेयजी तेरे इस पुत्रकी रक्षा करें (उपरोक्त मन्त्रमें सबके अधिष्ठाता परमात्माकी प्रार्थना ग्रहण है। इसके अनन्तर पूर्वोक्त गुणसम्पन्न स्त्रियां उससे कहें कि यदि प्रसव वेदना न होती होय तो जोरसे न खींचो (और जो विना वेदनाके जोरसे खींचोगी तो तुम्हारा श्रम व्यर्थ हो सन्तान कुरूपवाली हो जायगी। कुरूप होकर श्वास खांसी शोप इत्यादि रोगोंसे पीडित होगी, इसमें एक दृष्टान्त ह जैसे छींक, डकार, अधो-वायु, मूत्र और पुरीप, प्रयत्न करने पर भी अप्राप्त कालके कारण नहीं उतरते हैं। अथवा अति कष्टसे उतरते हैं इसी प्रकार अप्राप्त काल गर्भके निकालनेके लिये जोर मारना व्यर्थ है। और क्षवथु आदिक रोकनेसे विकार उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार प्राप्तकाल गर्भमें जोर न मारनेसे उपद्रव होते हैं। प्रसववती स्त्रीसे यह कह देना उचित है कि जैसे हम तेरेको उपदेश देव वैसा तम करो प्रथम ता धीरे २ खींचे फिर जोर २ से खाचे जब प्रसववती स्त्री जोर २ स चींके तब पासकी उपचार करनेवाली स्त्रियोंको कहना चाहिये कि अब हुआ अब हुआ: श्यावास श्यावास पुत्र हुआ पुत्र हुआ इन शब्दाके सुननेसे प्रसववती स्त्रीको हप बढकर उसका मन सन्तुष्ट हो जाता है और प्रसव वेदनाकी तफस मन हटकर प्राण संतष्ट होताहै।

सुश्रुतसे प्रसवकालमें विलंबका उपचार।

गर्भसंगे तु योनिं धूपयेत् कृष्णसर्पनिर्मोकेण पिण्डीतकेन वा। बध्नी-याद्धिरण्यपुष्पीमूलं हस्तपादयोर्धारयेत् सुवर्चलां विशल्यं वा।

अर्थ—यादि गर्भमें बालक रुकजाय और उसके होनेमें विलम्ब लगे तो काले सर्पकी कांचली अथवा पिंडीतक (मैनफल) की धूनी योनिमें देवे अथवा हिरण्यपुष्पीकी जड हाथ और पैरमें बांध देवे। अथवा सुवर्चला या पाटला स्त्रीके हाथ पैरोंमें बांध देवे। (सुवर्चलासे हुलहुल और पाटलासे पाढलाका ग्रहण करना योग्य है)।

भावप्रकाशसे अन्य प्रयोग।

करंकीभूतगोमर्धा सूतिकाभवनोपरि। स्थापितस्तत्क्षणानार्य्याः सुखं प्रसवकारकः॥ १॥ पोतकीमूलकल्केन तिलतैलयुतेन च। योनेर-

भ्यन्तरं लिप्त्वा सुखं नारी प्रसूयते ॥ २ ॥ कृष्णा वचा चापि जलेन पिष्टा सैरण्डतैला खलु नाभिलेपात्। सुखं प्रसूतिं कुरुतेऽगनानां निपीडितानां बहुभिः प्रमादैः ॥ ३ ॥ मातुलुंगस्य मूलं तु मधुकेन युतं तथा। घृतेन सहितं पीत्वा सुखं नारी प्रसूयते ॥ ४ ॥ इक्षोरुत्तरमूलं निजतनुमानेन तन्तुना बध्वा। कटिविषये गर्भवती सुखेन सूतेविलंबेन ॥ ५ ॥ तालस्य चोत्तरं मूलं स्वप्रमाणेन तन्तूनाम् बद्ध्वा कट्यां तु नियतं सुखं नारी प्रसूयते ॥ ६ ॥

अर्थ—गौका मस्तक चर्म माससे रहित केवल हड्डीमात्र रह गया होय उसको प्रसूता होनेवाली स्त्रीके मकानकी छत्तपर रखनेसे तत्काल सुखपूर्वक बालक होता है ॥ १ ॥ पोईक सागकी जडके कल्कको तिलके तैलमें मिलाकर योनिमार्गमें सर्वत्र चुपड देवे तो स्त्री सुखपूर्वक बालकका जनती है ॥ २ ॥ पपिल, वच इनको समान भाग लेकर जलके साथ बारकि पीस लेवे और समान भाग अरंडीका तैल मिलाकर नाभिपर लेप करे तो स्त्रीसुखपूर्वक बालकको जनती ह ॥ ३ ॥ बिजौरेकी जड और मुलहटी इनको समान भाग लेकर बारीक पीस घृत शहत मिलाकर पीवे तो सुखपूर्वक प्रसव होय । ४ । ईखकी जडको स्त्रीके शरीरके समान लम्बा डोरा लेकर कमरसे बांधे तो सुखपूर्वक प्रसव होय ॥ ५ ॥ बालककी नालके पिछले भागको स्त्रीके शरीरकी लम्बाईके समान डोरेसे कमरमें बांधे तो सुखपूर्वक बालक होय ॥ ६ ॥

तुषाम्बुपरिपिष्टेन कन्देन परिलेपयेत्। लाङ्गल्याश्चरणौ सूते क्षिप्रमापन्नगर्भिणी ॥ १ ॥ सितया चर्वणं कृत्वा कोकिलाक्षस्य मूलकम्। तद्रसं करणेनाशु सुखं नारी प्रसूयते ॥ २ ॥ श्यामासुदर्शनाभ्यान्तु लताभ्यां परिकल्पितम्। क्षिपेत्कुडवकं मूर्ध्नि- यावत्पादतलं व्रजेत्। उद्धृतगात्रपीडायाः सुखप्रसवकारकम् ॥ ३ ॥ अपामार्गशिखां योनिमध्ये निःक्षिप्य धार्यते। सुखं प्रसूयते नारी भेषजस्यास्य योगतः ॥ ४ ॥ पाठामूलन्तु तद्वत्स्यादाटरूषकमूलकम्। लेपनाद्धारणाद्वापि सुखप्रसवकारकम् ॥ ५ ॥ मूलञ्च शालिपर्ण्यास्तु पिष्टं वा तण्डुलाम्बुना। नाभिबस्तिभगालेपात्सुखं नारी प्रसूयते ॥ ६ ॥ परुषकशिफालेपस्थिरामूलकृतोऽपि वा। नाभिबस्तिभगे लेपः सुखं नारी प्रसूयते ॥ ७ ॥ वं. से.

अर्थ—कलिहारीके कन्दको कांजीमें पीसकर गार्भिणीके पैरोंपर लेप करनेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ १ ॥ तालमखानेकी जडको मिश्रीके साथ चावकर उसकी पीक (रस) कानमें डालनेसे, सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ २ ॥ श्यामा और सुदर्शन लताको पीसकर एक कुडव परिमाण लेकर शिरपर धारण करे, जबतक वह पैरोंपर टपककर न आ जावे तबतक धारण करे रहे इससे प्रसवकी पीडा शान्त होती है और सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ ३ ॥ अपामार्ग (ओंगा चिरचिटा) की जडको उखाडकर योनिमें धारण करनेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ ४ ॥ पाढकी जडको अथवा अडूसेकी जडको पीसकर योनिमार्गमें लेप करनेसे अथवा योनिमुख पर लेप करनेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ ५ ॥ शालपर्णीकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर नाभिबस्ति और भगके ऊपर लेप करनेसे स्त्रीका प्रसव सुखपूर्वक होता है ॥ ६ ॥ फालसेकी जड और शालपर्णीकी जड इनको एकत्र पीसकर स्त्रीकी नाभि बस्ति और भगपर लेप करनेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ ७ ॥ कितने ही वैद्यकके नूतन ग्रन्थोंमें प्रसव विलम्बके उपचारके विषयमें च्यवनमन्त्र अथवा यन्त्रको दिखलाना व जल पिलाना लिखा है, परन्तु हमारा सिद्धान्त इसपर यत्किञ्चित् नहीं है, परन्तु पाठक पाठिकाओंके दिग्दर्शनार्थ लिखना पडता है; यदि किसीका विश्वास भी हो तो शौकसे कार्यमें लावें हम निषेध भी नहीं करते ।

इहामृतञ्च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनी । उच्चैःश्रवाश्च तुरगो मन्दिरे निवसन्तु ते ॥ इदममृतमपां समुद्धृतं वै तव लघुगर्भमिमं विमुञ्चतु स्त्री । तदनलपवनार्कवासवास्ते सहलवणाम्बुधरैर्दिशन्तु शान्तिम् ॥ मुक्ताः पशोर्विपाशाश्च मुक्ता सूर्येण रश्मयः । मुक्तः सर्वभयाद्गर्भः एह्येहि मारिचं स्वाहा ॥ जलं च्यवनमन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितम् । पीत्वा प्रसूयते नारी दृष्ट्वा चोभयत्रिंशकम् ॥ नाडी १६, ऋतु ६, वसुभिः ८, सहपक्ष २, दिग् १० अष्टादश १८, भिरेव । अर्क १२, भुवन १४, वेद ४, सहितैरुभयत्रिंशकमाश्चर्यम् । इहामृतञ्च सोमश्च...." स्वाहा " ।

अर्थ—इस च्यवनमन्त्रसे जलको सातवार अभिमन्त्रित करके स्त्रीको पिलावे । इससे सुखपूर्वक प्रसव होता है और नीचे लिखे ३० तीसके यन्त्रको स्त्रीको दिखलावे ॥

३०	३०	३०	३०	३०
३०	१६	२	१२	३०
३०	६	१०	१४	३०
३०	८	१८	४	३०
	३०	३०	३०	

१६	२	१२
६	१०	१४
८	१८	४

इस यन्त्रको लिखकर दिखानेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥

चरकसे प्रसव (बालक) होनेके अनन्तर स्त्रीको कर्म्म ।

यदा च प्रजाता स्यात्तदैवैनामवेक्षेत काश्चिदस्याः अमरा आपन्ना नेति तस्याः चेदमरा न प्रपन्ना स्यादथैनादन्यतमा स्त्री दक्षिणेन पाणिना नाभेरुपरिष्टाद्बलवत् निपीड्य सव्येनं पृष्ठतः उपसंगृह्य सुनिर्धूतां निर्धुनुयात् । अथास्याः पादपार्ष्ण्या श्रोणीमाकोटयेदस्याः फिजावुपसंगृह्य सुपीडितं पीडयेत् अथास्या बालवेण्या कण्ठतालू परिस्पृशेत् । भूर्ज्जपत्रकाचमणिसर्पनिर्मोकधूमैश्चास्या योनिं धूपयेत् । कुष्ठताली सकल्कं बल्वजयूषे मैरेयसुरामण्डे तीक्ष्णे कौलत्थे वा मण्डूकपर्णिपिप्पलीक्काथे वा संप्लाव्य पाययेदेनाम् ॥ (अमराकर्षणविधिः) तथा सूक्ष्मैलां किलिमकुष्ठनागरविडङ्गकालविड्चव्यपिप्पली चित्रकोपकुञ्चिकाकल्कं खरवृषभस्य वा जीवतो दक्षिणं कर्णमुत्कृत्य दृषदि जर्जरीकृत्य बल्वजयूषादीनामाप्लावनानामन्यतमस्मिन् प्रक्षिप्य मुहूर्त्तस्थितमुद्धृत्य तदाप्लावनं पाययेदेनाम् । शतपुष्पाकुष्ठमदनहिंगुसिद्धस्य चैनां तिलस्य पिंचु ग्राहयेत् । अतश्चैवानुवासयेदेतैरेव चाप्लावनैः फलजीमूतेक्ष्वाकुधामार्गवकुटजकृतवेधनहस्तिपिप्पल्युपाहतैरास्थापयेत् । तदास्थापमस्याः सह वातमूत्रपुरीषैर्निर्हरत्यमरा माससक्तां वायोरनुलोमगमनात् । वातमूत्रपुरीषाण्यन्यानि अमरं हि चान्तर्बहिर्मुखानि सजन्ति ॥

अर्थ—बालक होनेके पश्चात् दाई तथा अन्य स्त्री जो समीपमें हैं उनमेंसे दोको उचित है कि प्रसववाली स्त्रीके शरीर (योनिमार्ग) को देखें कि अमरा (जरायु-जेरी) बाहर निकली वा नहीं, जो न निकली होय तो एक स्त्री अपने दाहिने हाथसे प्रसूताकी नाभिके ऊपर जोरसे दाबे और दूसरे हाथसे पीठ पकड कर जोरसे हिलावे

पैरकी एँढियोंको नाभीके समीप लेजाय और नितम्बोंको पकड कर अच्छी तरहसे पीडन करे । बालोंकी वेणीको मुखमें प्रवेश करके कण्ठ और तालूपर फेरे । भोजपत्र कांच मणि सांपकी कांचलीकी धूनी योनिमें देवे, बल्वजके यूषमें कूट तालीसपत्र पीसकर अथवा मैरेय, सुरामण्ड, कुल्थीके यूषमें मिलाकर अथवा मंण्डूक और पीपलके क्वाथमें मिलाकर प्रसूतिको पान करावे ।

अमरा निकालनेकी विशेष विधि ।

छोटी इलायची, देवदारु, कूट, सोंठ, वायविडंग, काला नमक, चव्य, पीपल, चित्रक, काला जीरा इन सबको समान भाग लेकर पीस लेवे और पूर्वोक्त बल्वज अथवा मैरेय, सुरामण्ड, कुल्थीका यूष अथवा मण्डूकपर्णी और पीपलके क्वाथमें मिलाकर पान करावे । अथवा जीतेहुए गधे व बैलका दाहिना कान कतर कर पत्थरपर पीसकर बल्वजादि यूषोंमेंसे किसी एकमें २ घडीतक डाल देवे, फिर निकालकर प्रसूति स्त्रीको पान करावे । अथवा सोंफ मैनफल हींग इनको तेलमें सिद्ध करे और इस तैलमें रुईका फोहा भिगोकर योनिमें रख देवे अथवा पूर्वोक्त क्वाथोंसे अनुवासन बस्ति क्रिया करे । अथवा मैनफल, मोथा, कडवी तुम्बी, धामार्गव, कुडा, कृतवेधन, गजपीपल, इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीस लेवे और पूर्वोक्त बल्वजादि क्वाथके साथ संयुक्त करके आस्थापन बस्तिक्रिया करे । क्योंकि आस्थापन बस्ति वायुका अनुलोमन करती है इससे आस्थापन वात मूत्र पुरीषके साथ ही बद्ध अमरा बाहर निकल आती है, क्योंकि वात मूत्र पुरीष अथवा अन्य ऐसेही अन्तर्मुख और बहिर्मुख द्रव्य अमराके साथ मिले रहते हैं ॥ मूत्र और पुरीषका अमरा न निकलनेसे अवरोध रहता है अमराके साथ मिले हुए नहीं रहते अमराके साथ केवल दूषित रक्त और गर्भ जल मिश्रित रहता है ।

सूतिकाका उपचार ।

अथ सूतिकां बलातैलाभ्यक्तां वातहरौषधनिःक्वथितेनोपचरेत् सशेषदोषान्तु तदहः पिप्पली पिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीचित्रकशृङ्गवेरचूर्णं गुडोदकेनोष्णेन पाययेत् । एवं द्विरात्रं त्रिरात्रं वा कुर्य्यादादुष्टशोणितात् । विशुद्धे ततो विदारिगन्धादिसिद्धां स्नेहयवागूं क्षीरयवागूं वा पाययेत्त्रिरात्रम् । ततो यवकोलकुलत्थसिद्धेन जांगलरसेन शाल्योदनं भोजयेद्बलमग्निबलञ्चावेक्ष्य । अनेन विधिनाध्यर्द्धमासमुपसंस्कृता विमुक्ताहाराचारा विगतसूतिकाभिधाना स्यात् पुनरार्त्तवदर्शनादित्येके ।

अर्थ—सूतिका अर्थात् प्रसववाली स्त्रीके शरीरमें बलाका तैल लगाकर वातको नष्ट करनेवाली औषधियोंका क्वाथ पिलावे। यदि कदाचित् रक्त दोष शेष रहजाय तो पीपल, पीपलामूल, गजपीपल, चित्रककी छाल, अदरख इनका चूर्ण करके परिमित मात्रासे गर्म २ गुडके जलके साथ पिलावे। इस प्रकार जबतक रक्त दोष शुद्ध न होय तबतक दो तीन दिवस पर्य्यन्त इसी प्रकार करता रहे, जब रक्त स्राव शुद्ध हो जाय तब विदारीगन्धादिसे सिद्ध किया हुआ (विदारीगन्धादिगण चरक वा सुश्रुतमें देखो) घृत यवागू व क्षीर यवागू तीन दिवस पर्यन्त पिलावे। इसके अनन्तर शारीरिक बल और मन्दाग्निको देखकर बेर कुलथीसे सिद्ध किया हुआ जांगल मांसरसके साथ शाली चावलोंका भात खिलावे, इस रीतिसे डेढ महीनेतक करता रहे तदुपरान्त आहार आचारका नियम न करे और उसी कालके पीछे सूतिका स्त्रीका सूतिकापन भी नष्ट हो जाता है किसी २ का ऐसा भी कथन है कि बालक होनेके पश्चात् पुनः रजोदर्शन तक सूतिकापन रहता है।

जांगल देशज सूतिकाओंका उपचार।

धन्वभूमिजातां सूतिकां घृततैलयोरन्यतरस्य मात्रां पाययेत्। पिप्पल्यादिकषायानुपानं स्नेहनित्या च स्यात्त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा॥ बलवतीमबलां यवागूं पाययेत्त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा। अतऊर्द्ध्वं स्निग्धेनान्नसंसर्गेणोपाचरेत् प्रायशश्चैनां प्रभूतेनोष्णोदकेन परिषिञ्चेत्। क्रोधायासमैथुनादीन् परिहरेत्॥

अर्थ—जांगल देशवाली सूतिकाओंको भूख लगने पर घृत व तैल इनमेंसे किसी एकको परिमित मात्रासे पिलावे, जब पिप्पली आदिके क्वाथका अनुपान देवे नित्यप्रति उबटना लगानेवालीको तीन दिवस पर्य्यन्त घृत व तैलमेंसे एक वस्तु देवे और बलवती स्त्रीको पांच दिवस पर्य्यन्त और बलहीनको तीन व चार पांच दिवसतक जैसा उचित समझे यवागू पिलावे इसके बाद घृतसे संस्कार कियाहुआ भोजन देवे और कभी २ अत्यन्त उष्ण जलसे स्नान भी करावे, (परिषिञ्चेत्) इस शब्दसे तर्डा अर्थात् पानी डालना इस क्रिया विशेषका ग्रहण है योनिमार्ग योनिमुख आदि पर शोथ वा पीडाके समय इस क्रियाको स्त्रियां करती हैं। क्रोध शोक परिश्रम और मैथुनादिक कर्म्मोंका सूतिकावाली स्त्री परित्याग कर देवे।

सूतिकाके पूर्वोक्तहाराचारमें व्यतिक्रमका फल।

मिथ्याचारात् सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते सकृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो

वा भवेदल्पपतर्पणात् ॥ तस्मात्तां देशकालौ च व्याधिसात्म्येन कर्मणा परीक्ष्योपचरेदेवं नेयमत्ययमाप्नुयात् ॥

अर्थ—प्रसूता स्त्रीके मिथ्याहार विहारसे जो व्याधियां उत्पन्न होती हैं वे कृच्छ्रसाध्य अथवा असाध्य होती हैं और ये व्याधियां रोगादिकमें उपवास करनेसे भी होती हैं, इसलिये देशकाल व्याधि सात्म्य इत्यादि कर्म्मोंसे प्रसूति स्त्रीकी परीक्षा करके उपचार करे ऐसा न होवे कि रोग बढ जावे। वैद्य और दाईको उचित है कि मिथ्याहार विहार और विरुद्ध उपचार सूतिका स्त्रीपर कदापि न होने देवे, नहीं तो सूतिकाकी व्याधि स्त्रीके प्राण नष्ट करनेवाली हो जाती है, यदि चिकित्सक और दाई सूतिकास्त्री पर मिथ्योपचार करें तो रक्षकके स्थलपर भक्षक समझे जाते हैं।

चरकसे सूतिकाके आहार विहारका वर्णन।

सूतिकान्तु खलु बुभुक्षितां विदित्वा स्नेहं पाययेत् प्रथमं परया शक्त्या सर्पिस्तैलं वसां मज्जानं वा सात्म्यीभावमभिसमीक्ष्य। पिप्पली-पिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेरचूर्णसहितं पीतवत्याश्च सर्पिस्तैलाभ्या-मभ्यज्य वेष्टयेदुदरं महता वाससा तथा तस्या न वायुरुदरे विकृति-मुत्पादयत्यनवकाशत्वात्। जीर्णे तु स्नेहे पिप्पल्यादिभिरेव सिद्धां यवागूं सुस्निग्धां द्रवां मात्रशः पाययेतोभयतः कालं चोष्णोदकेन परिषेचयेत् प्राक् स्नेहयवागूपानाभ्यां। एवं पञ्चरात्रं सप्तरात्रं वानुपाल्य ततः क्रमे-णाप्ययायेत् स्वस्थ वृत्तमेतत् सूतिकायाः ॥

अर्थ—यदि प्रसूता स्त्रीको भूख लगे तो प्रथम उसको स्नेह पान करा उसकी सात्म्यताको देखकर अर्थात् जो उसकी उस समय स्थिति और प्रकृतिके अनुकूल होय तो घृत तैल वसा मज्जा इनमेंसे किसी एकका पान करावे। पीपल, पीपलामूल चव्य, चित्रक, सोंठ इनका चूर्ण घृतके साथ पान कराके, उदर पर घृत वा तैलकी मालिस करके बहुतसा गर्म वस्त्र (जैसा फलालेन व रुईका नामा) उदर पर लपेट देवे, जिससे वायु अवकाश न पाकर उदरमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न न करने पावे। स्नेहके पच जानेपर पिप्पल्यादि पूर्वोक्त द्रव्योंके साथ सिद्ध कीहुई पतली यवागू घृतके प्रमाणानुसार दोनों समय पान करावे और स्नेह यवागूको पान करनेसे प्रथम ही उष्णोदकसे सेचन करे, इस विधिके अनुसार पांच सात दिनतक प्रसूति स्त्रीको

भोजनादि देकर तृप्ति कराता रहे । ये प्रसूति स्त्रीकी स्वस्थावस्थाके आहार विहार वर्णन किये गये हैं, प्रसववाली स्त्रीकी जो प्रसूतिकाकी व्याधियां होती हैं उनका वर्णन आगे किया जायगा । (अब कुमारके जन्म समयके कर्म्मोंका वर्णन किया जाता है सो नीचे देखो) ।

सुश्रुतसे बालक होनेके पश्चात् कर्म्म ।

अथ जातस्योल्वं मुखञ्च सैन्धवसर्पिषा विशोध्य घृताक्तं मूर्ध्नि पिचुं दद्यात्ततो नाभिनाडीमष्टांगुलमायम्य सूत्रेण बद्धा छेदयेत् । तत् सूत्रै-कदेशञ्च कुमारस्य ग्रीवायां सम्यग्बध्नीयात् ॥ अथ कुमारं शीताभिर-द्भिराश्वास्य जातकर्म्माणी कृते मधुसर्पिरनन्ताब्राह्मीरसेन सुवर्णचूर्ण-मंगुल्यानामिकया लेहयेत्ततो बलात्तैलेनाभ्यज्य क्षीरवृक्षकषायेण सर्वगन्धोदकेन वारूप्यहेमप्रततेन वा वारिणा स्नापयेदेनं कपित्थपत्र-कषायेण वा कोष्णेन यथाकालं यथादोषं यथाविभवञ्च ॥

अर्थ—जिस समय बालक उत्पन्न हो लेवे इसके अनन्तर । जरायु (झिल्ली) को बालकके सर्व शरीरपरसे उतार कर अलग कर बालकके मुखको सैंधव तथा सरसोंके चूर्णसे शुद्ध करके घृतसे भीगाहुआ एक रूईका फोहा बालकके मुखके तालुमें लगा देवे । फिर बालकके नाभि नालको आठ अंगुल नाप कर खींचकर एक डोरासे बांध देवे और बाकी नालको तीव्र धारवाले नस्तर व चाकूसे काटकर पृथक् कर उस डोराको जिसमें बालककी नाभिसे संयोग रखनेवाला नाल बचा है उसको मालाके समान ढीला बालककी गर्दनमें डाल देवे, ऐसा करनेसे बालककी नालमेंसे जो रक्तस्राव होता है वह बन्द हो जायगा । फिर बालकको शीतल जल अथवा समयके अनुसार उष्ण जलसे धो पोंछकर गर्भकी व प्रसवकालकी घबडा-हटको निवृत्त कर जातिकर्म करनेके पश्चात् शहत, घृत अनन्ताबूटी तथा ब्राह्मीबूटीके स्वरसमें एक व दो चावल भर सुवर्णभस्मको मिलाकर नख कटीहुई अनामिका अंगु-लीसे कुमारको चटा बलाका तैल लगाकर क्षीरवृक्षके काथसे अथवा सर्व गन्धोदकसे अथवा चांदी व सोनेके बुझे हुए जलसे बालकको स्नान करावे । अथवा यथाकाल यथादोष और यथाविभव कैथके पत्रके काथसे अथवा कुछ गर्म जलसे स्नान करावे, (यदि किसी कालमें बालकको शीतल जलसे भी स्नान कराना हो तो उस जलको गर्म करके शीतल करलेवे, क्योंकि जलमें सूक्ष्म जल जन्तु होते हैं वे बालकके शरीरमें

प्रवेश न करने पावें । जलको थोडा उष्ण करनेसे नष्ट हो जाते हैं) ॥ औषधियोंका क्वाथ कहा गया है सो वह दोषकी निवृत्तिके वास्ते कहागया है ॥

वृद्ध वाग्भट्टके मतानुसार जन्मप्राशन विधि ।

ऐन्द्रीब्राह्मीशंखपुष्पीवचाकल्कं मधुघृतोपेतं रेणुमात्रं कुशाभिमंत्रितं सौवर्णेनाश्वत्थपत्रेण मेधायुर्बलजननं प्राशयेत् । ब्राह्मीवचानन्ताशतावर्य्यन्यतमचूर्णं चेति ॥ धमनीनां हृदिस्थानां विवृतत्वादनन्तरम् । चतुरात्रात्त्रिरात्राद्वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्त्तते ॥ तस्मात् प्रथमेऽह्नि मधुसर्पिरनन्तामिश्रं मंत्रपूतं त्रिकालं पाययेद्द्वितीये लक्ष्मणासिद्धं सर्पिस्तृतीये च ततः प्राङ्निवारितः स्तन्यं मधुसर्पिः स्वपाणितलसम्मितं द्विकालं पाययेत् ॥

अर्थ—ऐन्द्री, ब्राह्मी, शंखाहूली, वच ये समान भाग लेकर कल्क बनावे (कल्क पिट्ठीके समान बारीक पिसेहुए पदार्थको कहते हैं) इनके कल्कमें शहत और घृत न्यूनाधिक मिलाकर मटरके समान मात्रा कुशासे अभिमन्त्रित करके सुवर्णभस्म मिलाकर पीपलके पत्र पर रखके बुद्धि आयु और बलके बढानेके निमित्त बालकको चटावे । अथवा ब्राह्मी, वच, अनन्तमूल, शतावरि इनमेंसे किसी एकके चूर्णको न्यूनाधिक शहत घृतके साथ मिलाकर चटावे । शहत और घृतको सुवर्णभस्ममें मिलाकर चटानेका यह कारण है कि बालक उत्पन्न होनेके तीन चार दिवस पश्चात् स्त्रीके हृदयकी धमनियां खुल जाती हैं । तब उनमें दुग्ध बढने लगता है, इसलिये प्रथम दिवस घृत शहत और अनन्ता मिलाकर मन्त्रसे अभिमन्त्रित (पवित्र) करके बालकके पोषणके अर्थ तीन समय पिलावे । और दूसरे तीसरे दिवस लक्ष्मणा डालकर सिद्ध किया हुआ घृत परिमित मात्रासे पिलावे, चौथे दिवस अपनी हथेलीमें आवे उतना शहत घृत पिलावे । (हथेलीकी मात्रा सीधी हथेली तानकर लेना चाहिये चुल्लू भरकर नहीं) पुनः चौथे दिवसके तीसरे कालसे बालककी माता व धात्री अपना दुग्ध पिलावे ।

चरकसे कुमारके कर्म्म ।

तस्यास्तु खल्वमण्याः प्रपतनार्थे खल्वेवमेव कर्म्मणि क्रियमाणे जातमात्रेऽस्यैवं कुमारस्य कार्य्याण्येतानि कर्म्माणि भवन्ति तद्यथाश्मनोः संघट्टनं कर्णयोर्मूले शीतोदकेनोष्णोदकेन वा मुखपरिषेकः । तथा संक्लेशविहितान् प्राणान् पुनर्लभेत् कृष्णाकपालिकाशूर्पेण चैनमभिनिष्पुनी-

यावद्यचेष्टः स्यात् यावत् प्राणानानां प्रत्यागमनं तत्तत् सर्वमेव कुर्य्युः । ततः प्रत्यागतप्राणं प्रकृतिभूतमभिसमीक्ष्य स्नानोदकग्रहणाभ्यामुपपादयेत् । अथास्य ताल्वोष्ठकण्ठजिह्वाप्रमार्जनमारभेत अङ्गुल्यामुपरिलिखितनखया सुप्रक्षालितोपनया कार्पासपिचुमत्या प्रथमं प्रमार्जितस्यास्य च शिरस्तालु कार्पासपिचुना स्नेहगर्भेण प्रतिच्छादयेते ततोऽस्यानन्तरं सैन्धवोपहितेन सर्पिषाप्रच्छर्दनम् ॥

अर्थ—पूर्व प्रसंगपर अमरा निकालनेकी विधि चरक संहितासे उद्धृत की गई है—(अब कुमारके विषयमें कर्त्तव्य कर्म्मोंका वर्णन करते हैं) यथा बालक होनेके पश्चात् बालकके कानके पास दो पत्थरके टुकडे लेकर बजावे, ठंढे अथवा गर्म जलसे धीरेधीरे मुखपर परिषेक करे । ऐसा करनेसे प्रसव समयका कष्ट नष्ट होकर बालकके प्राण प्रफुल्लित हो जाते हैं । परिषेकके पीछे सूपकी मन्दी २ हवा करनी चाहिये, बालक जवतक चैतन्य न हो जाय तवतक बालकको चैतन्य करनेके अन्य २ कर्म्म भी करने चाहिये जब बालक प्रकृतिभूत हो जाय तब उसको स्नान करावे । फिर बालकके तालु, ओष्ठ कण्ठ और जिह्वाका मार्जन प्रारम्भ करे, नख कटी हुई अंगुली पर धुनीहुई स्वच्छ रुईका फोहा लपेट कर उपरोक्त ताल्वादि स्थानोंको धोवे । फिर स्नेह गर्भित रुईका फोहा बालकके तालुमें लगा देवे । तदनन्तर सेंधा नमक और घृत खिलाकर बालकको वमन करावे, आगे नाडी छेदनविधि ऊपर लिखे प्रमाणसे है ।

कदाचित् बालककी नाभि पक जावे उसका उपचार ।

तस्य चेन्नाभिः पच्येत् ताम् लोध्र मधुकप्रियङ्गुदारुहरिद्राकल्कसिद्धेन तैलेनाभ्यंज्यादेषामेव तैलौषधानां चूर्णेनावचूर्णयेत् एष नाडी कल्पनविधिरुक्तः सम्यक् ॥

अर्थ—यदि बालककी नाभि पक जावे तो, लोध, मुलहटी, प्रियंगु, दारुहल्दी इनको समान भाग लेकर इनका कल्क बनावे और द्विगुण मीठा तैल मिलाकर पकावे तैल सिद्ध होनेपर छानकर यह तैल बालककी नाभिपर चुपडा करे दिनमें ३ व ४ समय अथवा येही सब औषध वा तैल नाभिपर लगा देवे यह सम्यक् नाडी छेदनकी विधि वर्णन की गई है ।

असम्यक् नाडी छेदनके उपद्रव ।

असम्यक्कल्पनेहि नाड्या आयामव्यायामौत्तुण्डीकापिण्डलिकाविनापि-

काविजृम्भिका–वाधेभ्यो भयम् । तत्राविदाहिभिर्वातपित्तप्रशमनैराभ्यङ्गोत्सादनपरिषेकैः सर्पिर्भिश्चोपक्रमो गुरु लाघवमभिसमीक्ष्य ॥

अर्थ–गर्भ नाडीका उत्तम रीतिसे छेदन न होनेपर आयाम, व्यायाम, उत्तुण्डीका, पिपीलिका, विनामिका, विजृम्भकादि व्याधियोंका भय रहता है । इन व्याधियोंके हलकेपन व भारीपनको देखकर अविदाही वात पित्त नाशक अभ्यङ्ग उत्सादन, परिषेक और घृतादि स्निग्ध क्रियाओंके द्वारा चिकित्सा करनी उचित है ।

जातकर्मकी विधि ।

ततोऽनन्तरं जातकर्म्म कार्य्यं तद्यथा मधुसर्पिषी मन्त्रोपमन्त्रिते यथाम्नायं प्राशितुं दद्यात् स्तनमतऊर्द्धमेतेनैव विधिना दक्षिणां पातुं पुरस्तात् प्रयच्छेत् । अथातः शीर्षतः स्थापयेदुदकुम्भं मंत्रोपमन्त्रितम् ।

अर्थ–इसके अनन्तर जातकर्म्म करना चाहिये, मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके घृत और शहत यथाम्नाय चटावे तदनन्तर मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके स्त्रीके दाहिने स्तनको प्रथम पान करावे तदनन्तर वामेको तथा वालकके सिरहानेकी चारपाईके पास अभिमंत्रित जलका कुम्भ स्थापन करके रक्खे ।

वालककी रक्षाविधि ।

अथास्य रक्षां विदध्यात् आदानी खदिरकर्कन्धुपीलुपरूषकशाखाभिरस्या गृहं समन्ततः परिवारयेत् । सर्वतश्च सूतकागारस्य सर्षपातसीतण्डुलकणकणीकाप्रकिरेयुः । तथा तण्डुलवलिहोमः सततमुभयतः कालं क्रियेतानामकर्मणोद्वारे च मुषलदेहलीमनुतिरश्चीनं न्यस्तं स्याद्वचाकुष्ठशोभकहिंगुसर्षपातसीकणकणीकानां रक्षोघ्नसमाख्यातानां चौषधीनां पोदलकां बद्धा सूतिकागारस्योत्तरदेहल्यामासृजेत् । तथा सूतिकायाः कण्ठे सुपुत्रायाः स्थाल्युदककुंभपर्यंकेष्वपि तथैव च द्वयोर्द्वारपक्षयोः सककुंभकेन्धनाग्निस्तिन्दुककाष्ठेन्धनश्चाग्निः सूतिकागारस्याभ्यन्तरतो नित्यं स्यात् । स्त्रियश्चैनां यथोक्तगुणाः सुहृदश्चानुजाग्रयुः दशाहं द्वादशाहं वानुपरतप्रदानमंगलाशीः स्तुतिगीतवादित्रमन्नपानविषदमनुरक्तप्रहृष्टजनसम्पूर्णं तद्वेष्मकार्य्यं ब्राह्मणश्चाथर्ववेदवित्

सततमुभयतः कालं शान्तिं जुहुयात् स्वस्त्ययनार्थं कुमारस्य तथा सूतिकायाः इत्येतद्रक्षाविधानमुक्तम् ।

अर्थ—अब बालककी रक्षाविधिका विधान वर्णन करते हैं । आदानी, खैर, बेर, पीलू और फालसेके वृक्षोंकी शाखा इन्हें सूतिकागारके चारों ओर टांग घरके चारों ओर सरसों अलसी चावलकी कनकी बखेर दोनों समय तण्डुल बलि होम नित्यप्रति करता रहे । जबतक नामकरण संस्कार न हो लेय तबतक दर्वाजेके बीचमें एक लोहेका मूसल टेढा करके रख वच, कूट, क्षेमक यह (एक सुगंधित द्रव्य) है इसके स्थान पर तगर अथवा जटामांसी भी काम आती है । हींग सरसों, अलसी, चावल, तथा अन्य अन्य रक्षोघ्न द्रव्योंको एक पोटलीमें बांधकर सूतिकागारके उत्तरकी देहलीके ऊपर चौखटमें बांध देवे । इसी प्रकार बालक और प्रसूति दोनोंके गलेमें तथा स्थालीमें जलपात्रमें तथा पलंगमें भी उपरोक्त द्रव्योंकी पोटली बाँध सूतिकागारके दोनों दर्वाजोंपर चांवल जल कुम्भ जलानेकी लकडी तेंदूके कोपलोंकी अग्नि ये निरन्तर घरके अन्दर रखे । पूर्वोक्त कथन की हुइ गुणसम्पन्न स्त्रियां और सुहृद्गण दश व बारह रात्रितक बारीबारीसे जागते रहें—और बालक तथा प्रसूतिकी रक्षा करते रहें और समीपवर्ती स्त्रियां बालक और स्त्रीको देखतीं रहें, इसी अवधिमें दान मंगल आशीर्वचन—स्तुति पाठ शान्तिपाठ गीत बाजा आदि होता रहे । उस गृहमें सदैव अन्न पानी रक्खे और अनुरक्त प्रसन्न चित्त हंसने हँसानेवाले मनुष्य भी उस घरमें पृथक् बैठक बनाकर रहें—और अथर्व वेदके ज्ञाता ब्राह्मण (आचार्य्य व पुरोहित,) बालक और प्रसूतिके कल्याणार्थ दोनों समय स्वस्तिपाठ शान्तिपाठ और वेदोच्चारण, हवन करते रहें । यह बालककी रक्षाविधि कथन की गई है । इसी प्रकार बालककी रक्षाविधि सुश्रुतमें कथन की गई है । (अब प्रसूतीकी चिकित्सा कथन की जाती है)

चकरसे प्रसूती स्त्रीके रोगावस्थामें उपाय ।

तस्यास्तु व्याधिरुत्पद्यते कृच्छ्रसाध्यो भवति असाध्यो वा । गर्भवृद्धि-क्षयितशिथिलसर्वशरीरधातुत्वात् प्रवाहनवेदनाक्लेदनरक्तनिःस्रुतिविशेष-शून्यशरीरत्वाच्च तस्मात्तां यथोक्तेन विधिनोपचरेत् भौतिकजीवनीयबृं-हणीयमधुरवातहरसिद्धैरभ्यङ्गोत्सादपरिषेकावगाहान्नपानविधिभिर्विशेष-तश्चोपचरेद्विशेषतो हि शून्यशरीराः स्त्रियः प्रजाता भवन्ति ॥

अर्थ—इस प्रसूती स्त्रीके शरीरमें जो जो व्याधियां उत्पन्न होती हैं वे कृच्छ्र साध्य व असाध्य होती हैं, ऐसा रोगोंके होनेके कारण यह हैं कि गर्भके बढनेसे सम्पूर्ण धातुक्षीण और शिथिल हो जाती हैं । तथा बालक जन्मनेके समय किन्नेकी वेदना—क्लेद रक्त स्रावके कारण शरीर शून्य पड जाता है, इसलिये उपरोक्त व्याधियोंसे प्रसूती स्त्रीकी सुश्रूप तथा रक्षा करना उचित है । विशेष करके भौतिक द्रव्य (अजवायनादि गण, जीवनीय गण, बृंहणीयगण, मधुर गण,) तथा वातनाशक द्रव्योंके साथ सिद्ध कियेहुए तैल स्त्रीके शरीरपर मालिश मर्दन परिषेक अवगाहन तथा अन्नपानविधिसे चिकित्सा करे, क्योंकि प्रसूती स्त्रियां विशेष करके व्याधियोंके आक्रमणसे शून्य हो जाती हैं।

सुश्रुतसे प्रसूतीके रोगोपचारका विधान ।

अथापरा पतन्त्यानाहाध्मानौ कुरुते तस्मात्कण्ठमस्याः केशवेष्टितयाङ्गुल्या प्रमृजेत् । कटुकालाबुकृते वेधनसर्षपसर्पनिर्म्मोकैर्वा कटुतैलविमिश्रैर्योनिमुखं धूपयेत् ॥ लाङ्गलीमूलकल्केन वास्याः पाणिपादतलमालिम्पेत् । मूर्ध्नि वास्या महावृक्षक्षीरमनुसेचयेत् कुष्ठलाङ्गलीमूलकल्कं वा मद्यमूत्रयोरन्यतरेण पाययेत् । शालिमूलकल्कं वा पिप्पल्यादिं वा मद्येन सिद्धार्थककुष्ठलाङ्गलीमहावृक्षक्षीरमिश्रेण सुरामण्डेन वा स्थापयेत् । एतैरेव सिद्धेन सिद्धार्थकतैलेनोत्तरवस्तिं दद्यात् । स्निग्धेन क्लृप्तनखेन हस्तेनापहरेत् ॥

अर्थ—अन्य रोगोंकी उत्पत्ति होनेमें मूत्रका बन्द होना और अफरा ये प्रायः हो जाते हैं, इसलिये अंगुलीपर बाल लपेटकर स्त्रीके कण्ठमें अंगुली प्रवेश करके शुद्ध करना चाहिये । कडवी तूम्बी, कडवी तोरई, सरसों, सांपकी कांचली इन सब वस्तुओंको समान भाग लेकर बारीक कूट कडवा तैल मिलाकर स्त्रीकी योनिके मुखमें धूनी देवे । अथवा कलिहारीकी जडको बारीक पीसकर प्रसूता स्त्रीके हाथ पैरोंके तलुवों पर लेप करे, अथवा कूट कलिहारीकी जड इनके कल्कको मद्य अथवा गोमूत्रके साथ पिलावे । अथवा धानकी जडका कल्क व पिप्पल्यादि गणके औषधोंको बारीक कूटकर मद्यके साथ पिलावे अथवा सरसों, कूट, कलिहारी और महावृक्ष (थूहरका दूध) मिलाकर पिलावे, अथवा सुरामण्डके साथ सेवन करावे । अथवा इन उपरोक्त सब वस्तुओंसे सिद्ध कियाहुआ सरसोंका तैल लेकर उत्तरबस्ति क्रिया करे चिकने अथवा कटेहुए नखवाली अंगुलियोंसे मलको दूर करदेवे ।

मक्कल रोगके लक्षण तथा चिकित्सा ।

प्रजातायाश्च नार्य्या रुक्षशरीरायास्तीक्ष्णैरविशोधितं रक्तं वायुना तद्देशगेनातिसंरुद्धं नाभेरधः पार्श्वयोर्बस्तौ बस्तिशिरसि वा ग्रन्थिं करोति । ततश्च नाभिवस्त्युदरशलानि भवन्ति सूचीभिरिव निस्तुद्यते भिद्यते दीर्यत इव च पक्वाशयः । समन्तादाध्मानसुदरे मूत्रसङ्घश्च भवतीति मक्कललक्षणम् ॥ (सुश्रुतसे)

अर्थ—स्त्रीके सन्तान उत्पन्न होनेके पश्चात् रूक्ष शरीरके परिश्रमकी तीक्ष्णतासे दूषित रक्त जो योनिमार्ग व गर्भाशयकी सूक्ष्म शिराओंमेंसे बहता है वह रक्त योनिमें प्रवेश करनेवाली वायुसे रुककर नाभिके नीचेकी बस्तिमें और बस्तिके ऊपर ग्रन्थिके आकारमें हो जाता है । इसीसे नाभिबस्ति और उदरमें शूल हुआ करता है और पक्वाशयमें सूईके चुभने टूटने फटने कीसी पीडा होती है पेटमें चारों ओर अफरा हो मूत्र रुक जाता है इस रोगको वैद्यलोग मक्कल कहते हैं । किसी आचार्यके मतमें शिरका शूल भी इस रोगमें उत्पन्न होता है जैसा कि (सूतायाहृच्छिरोबस्ति शूलमक्कलसंज्ञितम्)

मक्कल रोगकी चिकित्सा ।

तत्र वीरतर्वादिसिद्धं जलमूषकादिप्रतीवापं पाययेत् । यवक्षारचूर्णं वा सर्पिषा सुखोदकेन वा लवणचूर्णं वा पिप्पल्यादिक्वाथेन पिप्पल्यादिचूर्णं वा सुरामण्डेन वरुणादिक्वाथं वा पंचकोलैलाप्रतीवापं पृथक् पर्ण्यादिक्वाथं वा भद्रदारुमरिचसंसृष्टं पुराणगुडं वा त्रिकटुकचतुर्जातककुस्तुम्बुरुमिश्रं खादेदथवा पिबेदरिष्टमिति ॥

अर्थ—इस मक्कल रोगकी निवृत्तिके अर्थ अर्जुनवृक्षका क्वाथ पिलावे । अथवा घृतके साथ जवाखार देवे, अथवा उष्ण जलके साथ सेंधा नमक देवे—पिप्पल्यादिगणके क्वाथके साथ पिप्पल्यादिगणका चूर्ण मिलाकर देवे । अथवा मद्यके फेनके साथ वरुणादि क्वाथ मिलाकर देवे, अथवा पंचकोल और इलोयचीका चूर्ण पृथक् पर्णीके क्वाथके साथ देवे । अथवा देवदारु काली मिरच इनका बारीक चूर्ण करके पुराने गुडमें मिलाकर देवे, अथवा हरड आदिका क्वाथ पिलावे ।

वङ्गसेनसे अन्य क्रिया तथा प्रयोग ।

पृथिव्यां पतिते गर्भे योनौ पीडनमिष्यते । अप्रवेशो यथा वायोस्तस्य

संरक्षणक्रिया । हृद्बस्तिशूलमाध्मानं प्रविष्टे तत्र जायते ॥ त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं दारुचव्यं सचित्रकम् । रजन्यौ हपुषा जाजी सक्षारलवणत्रयम् ॥ कल्कमुष्णांबुना पीत्वा सुखेनाशु विरिच्यते ॥

अर्थ-प्रसवके समय बालकके भूमिमें गिरते ही (याने योनिमेंसे बालक निकल आवे) उसके अनन्तर पेटको जरा सहारेसे दबाकर द्रवरूप मलको योनिमेंसे निकाल देवे और तत्काल योनिमुखको दबाय देवे जिससे प्रसूताकी योनिमें अधिक वायुका प्रवेश न होने पावे । क्योंकि उस समय योनि और गर्भाशयका मुख चौडा होनेसे वायु अति शीघ्र प्रवेश हो जाता है, उस वायुके प्रवेश होनेसे हृदय और बस्तिमें शूल तथा अफरादि अनेक उपद्रव हो जाते हैं । अन्य प्रयोग सोंठ कालीमिरच, पीपल, पीपलामूल, देवदारु, चव्य, चित्रक, हल्दी, दारुहल्दी, हाऊबेर, जीरा, जवाखार, सेंधा नमक, काला नमक, कचिया नमक, इनको समान भाग लेकर कल्क बना उष्ण जलके साथ पान करावे, इससे सुखपूर्वक रेचक होकर मक्कल रोगके उपद्रव शान्त होते हैं ।

सूतिका रोगोंका निदान ।

तथा सूतिकाव्याधि ज्वरादिकोंकी प्रसूत संज्ञा ।

मिथ्योपचारात्संक्लेशाद्विषमाजीर्णभोजनात् । सूतिकायास्तु ये रोगा जायन्ते दारुणाश्च ते ॥ १ ॥ अङ्गमर्दो ज्वरः कासः पिपासा गुरुगात्रता । शोथः शूलातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम् ॥ २ ॥ ज्वरातीसारशोथाश्च शूलानाहबलक्षयाः । तन्द्राऽरुचिप्रसेकाद्या वातश्लेष्मसमुद्भवाः ॥ ३ ॥ कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगा क्षीणमांसबलाश्रिताः । ते सर्वे सूतिकानाम्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवाः ॥ ४ ॥

अर्थ-जिस स्त्रीके बालक उत्पन्न हो चुका होय और वह स्त्री मिथ्या उपचार (याने पवनादि अनुचित आचारण मिथ्याहार विहार) करे तो दोष कुपित करनेवाले अन्न पानादिका ग्रहण है । अथवा संक्लेश कोहिये अत्यन्त क्रोध करनेसे और विषम भोजन तथा अजीर्णमें भोजनादि करनेसे जो प्रसूता स्त्रीके रोग होते हैं वे दारुण और कष्टसाध्य होते हैं । वे रोग इस प्रकार हैं—अङ्गोंका टूटना, ज्वर खांसी, प्यास, शरीरका भारी होना, सूजन, शूल अतीसार ये सूतिका रोगकी व्याधिके चिह्न हैं, ये अङ्गमर्दादिक प्रसूताके होते हैं, सो प्रसूत रोग करके ही समझने चाहिये । २ । ज्वरादि रोगोंका विशेष निदान कहते हैं—ज्वर, अतीसार, सूजन, शूल अफरा, बलकी क्षीणता,

तन्द्रा, अरुचि, मुखसे लार (थूकका बहना) इत्यादि वात कफके विकार तथा जिसका मांस और बल क्षीण हो गया होय उसके ज्वरादि रोग तथा अन्य उपद्रव कृच्छ्रसाध्य होते हैं, ये व्याधियाँ आश्रय आश्रितके अभेदके सदृश प्रसूता नामसे ही कही जाती हैं। इन ज्वरादिकोंमें एक रोग प्रधान और अवशेष उपद्रव कहे जाते हैं॥ ३॥

सूतिका रोगोंकी चिकित्सा।

सूतिकारोगशांत्यर्थं कुर्याद्वातहरीं क्रियाम्। दशमूलकृतं क्राथं कोष्णं दद्याद्घृतान्वितम्॥ अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपंचमूलजलदजलम्। शृतशीतं मधुयुक्तं शमयत्यचिरेण सूतिकांतकम्॥

अर्थ—प्रसूत रोगके शान्त करनेके अर्थ वातनाशक क्रिया करनी चाहिये। अथवा दशमूलके मन्द गर्म क्राथमें घृत डालकर पिलावे अथवा गिलोय, सोंठ, कटसैरया, प्रसारणी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी सफेद फूलकी कटेली, गोखुरू, नागरमोथा, सबको समान भाग लेकर दो तोला औषधियोंको २० तोला जलमें पका ५ तोला बाकी रहे उस समय उतार कर छान लेवे और १ तोला शहत मिलाकर पिलावे तो सूतिका रोग शान्त होय। दशमूलके औषध इस प्रकार हैं (बेलकी जडकी छाल, गंभारी, पाढर, अरनी, स्योनाक ये बृहत्पंच मूल कहाते हैं। शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेली, सफेद फूलकी कटेली गोखरू ये लघु पंचमूल कहाते हैं दोनोंकी दश औषध मिलानेसे दशमूल हो जाते हैं।

सूतिका रोगपर देवदार्वादि क्राथ।

देवदारुवचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम्। भूनिम्बः कट्फलं मुस्तं तिक्ता धान्यहरीतकी। गजकृष्णा सदुःस्पर्शा गोक्षुरुर्धन्वयासकः बृहत्यतिविषा छिन्ना कर्कटः कृष्णजीरकः। समभागान्वितैरेतैः सिंधुरामठसंयुतम्॥ क्राथमष्टावशेषं तु प्रसूतां पाययेत्स्त्रियम्। शूलकासज्वरश्वासमूर्च्छाकंपशिरोर्त्तिभिः। युक्तंप्रलापतृड्दाहतन्द्रातीसार वांतिभिः। निहन्ति सूतिकारोगं वातपित्तकफोद्भवम्। कषायो देवदार्वादिः सूतायाः परमौषधम्।

अर्थ—देवदारु, वच, कूट, पपिल, सोंठ, चिरायता, कायफल नागरमोथा, कुटकी, धनियां, हरड, गजपीपल, कटेली, गोखुरू, धमासा, सफेद फूलकी कटेरी, अतीस, गिलोय, काकडाशृंगी, काला जीरा ये सब समान भाग लेकर २ तोला औषधको ४०

तोला जलमें पकावे ८ तोला जल बाकी रहे उस समय उतार कर छान लेवे और भुनी हींग तथा सेंधा नमकका थोडासा चूर्ण प्रक्षेप करके पिलावे तो इस काथसे शूल, खांसी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कम्प, शिरकी पीडा युक्त प्रलाप, तृषा, दाह तन्द्रा, अतिसार, वमन इत्यादि प्रसूतके रोग और वातपित्त कफके रोगोंको यह देवदार्वादि काथ नष्ट करता है, यह प्रसूतके लिये परम दिव्य महौषध है ।

सूतिका रोगपर सौभाग्यशुंठी ।

आज्यस्यांजलियुग्ममत्र पयसः प्रस्थद्वयं खण्डतः पंचाशत्पलमत्र चूर्णितमथो प्रक्षिप्यतेनागरम् ॥ प्रस्थार्धं गुडवद्विपाच्य विधिना मुष्टित्रयं धान्यकात् मिश्याः पंचपलं पलं क्रिमिरिपोः साजाजिजीरादपि ॥ व्योषांभोददलोरगेन्द्रसुमनस्त्वगुद्राविडीनां पलं पकं नागरखण्डसंज्ञकमिदं तत्सूतिकारोगहृत् । तृट्छर्दिज्वरदाहशोषशमनं सश्वासकासापहं प्लीहव्याधिविनाशनं कृमिहरं मन्दाग्निसंदीपनम् ॥

अर्थ—धाडकी सोंठ वे रेशेवाला जिसको सतावा सोंठ भी बोलते हैं, ४० तोलाको कूटकर कपडछान चूर्ण बना गौका घृत ४० तोला प्रथम गौके २ सेर दुग्धमें डालकर सोंठके चूर्णको पकावे, जब उसका मावा हो जावे तब घृत डालकर अच्छीतरहसे भून लेवे और दोसी तोला सफेद बूरा व मिश्री मिलाकर एक रस करलेवे । जब पाक उत्तम रीतिसे हो जावे उस समय उतारकर धनियाँ १२ तोला कलौंजी २० तोला, वायविडंग ४ तोला, सफेद जीरा, काला जीरा, सोंठ काली मिरच, पीपल, नागरमोथा, नागकेशर, दालचीनी, छोटी इलायचीके दाने प्रत्येक औषध चार चार तोला लेकर सबका बारीक चूर्ण करके उपरोक्त पाकमें मिला देवे तो यह नागरखण्ड अर्थात् सौभाग्यशुंठी पाक तृषा दाह वमन ज्वर शोष श्वास खांसी प्लीहा कृमि रोगको नष्ट करे तथा जठराग्निको प्रदीप्त करे इसकी मात्रा आधा तोलासे १॥ तोला पर्यन्त रोगी स्त्रीकी प्रकृतिके आधारका विचार करके देवे ।

प्रताप लङ्केश्वर रस ।

एकेन्दुचन्द्रानलबाणकुम्भीकलैकभागं क्रमशो विमिश्रितम् । सूताभ्रगंधोषणलोहशङ्खवनोत्पलाभस्मविषं सुपिष्टम् । प्रसूतचा पानलदन्तिबन्धान्पुराऽमृताब्दत्रिफलायुतोऽयम् । आर्द्राम्बुना वा किल संन्निपातान् गुदांकुरान् वल्लमितो निहन्ति । निजानुपानैर्निजपथ्यभुक्तान् सर्वातिसारग्रहणीगदांश्च प्रतापलङ्केश्वरनामधेयं सूतश्च प्रोक्तो गिरिराजपुत्र्या ॥

अर्थ—पारद १ भाग अभ्रक भस्म १ भाग, शुद्ध गंधक १ भाग, पीपलका चूर्ण ३ भाग, लोहभस्म ५ भाग, शंखभस्म ५ भाग, अरने कंडोंकी राख १६ भाग, शुद्ध वच्छनाग विष १ भाग इन सबको एकत्र करके पीसलेवे अथवा अदरखके रसमें मर्दन करके २ रत्ती प्रमाणकी गोलियाँ बनावे फिर इसकी गोली वा चूर्णको शुद्ध गूगल गिलोय नागरमोथा त्रिफला इनके चूर्णके साथ गर्म जलसे अथवा इनके क्वाथके साथ सेवन करनेसे प्रसूत रोग धनुर्वात और दंतवेष्ट रोगोंको नष्ट करे है सन्निपात रोगमें तथा अर्श रोगमें अदरखके साथ देवे यह यथोक्त अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारके अतिसार संग्रहणी रोगोंको नष्ट करता है यह प्रताप लंकेश्वर नामका रस (पारद) पार्वतीने कथन किया है।

पिप्पल्यादि घृत।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली। चव्यश्च रजनी देया भद्रमुस्तवचाभयाः। धान्याकमजमोदा च सपंचलवणानि च। भद्रदारु यवानी च भार्ङ्गी कुटजतण्डुलाः॥ कण्टकार्य्याश्च मूलं वै बृहती बिल्वपेशिका। मरिचानि विडङ्गानि कल्कैरेतैश्च पादिकैः। यवकोलकुलित्थानां निर्यूहे च चतुर्गुणे। दधिप्रस्थं पयःप्रस्थं दत्वा प्रस्थ घृतं पचेत्। वातिकान् पैत्तिकांश्चैव श्लेष्मिकान् सान्निपातिकान्। सूतिकोपद्रवान् सर्वानभ्यंगादेव नाशयेत्॥

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चित्रक, गजपीपल, चव्य, हल्दी, नागरमोथा, वच, हरडकी छाल, धनिया, अजमोद, पांचों नमक, देवदारु, अजवायन, भारंगी, इन्द्रजौ, छोटी कटेलीकी जड, सफेद फूलकी कटेलीकी जड, वेलगिरी, काली मिरच, वायविडंग इन सबको समान भाग लेकर कल्क बनावे और यह कल्क एक भाग और जौ वेर कुल्थी इनके चौगुने क्वाथमें एक प्रस्थ दही एक प्रस्थ घृत एक प्रस्थ दूध डालकर उत्तम विधिसे घृतको पकावे। इस घृतको केवल मालिस करनेसे वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य और सन्निपातजन्य सब प्रकारके सूतिका रोग उपद्रव सहित शान्त होते हैं।

पञ्चजीरक गुड।

जीरकं हबुषा धान्यं शताह्वा बदराणि च। यवानी मेथिका हिंगु पत्रिका कासमर्दकम्। पिप्पली पिप्पलीमूलमजमोदाथ वाष्पिका। चित्रकं च पलांशानि तथा धान्यश्चतुष्पलम्। कशेरुकं नागरञ्च

षष्टीदीप्यकमेव च । गुडस्य च शतं दद्यात् घृतप्रस्थं तथैव च । क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । पञ्चजीरकमित्येतत्सूतिकानां प्रशस्यते । गर्भार्थिनीनां नारीणां बृंहणीये समारुते । विंशतिं व्यापदो योनेः श्वासं कासं स्वरक्षयम् । हलीमकं पाण्डुरोगं दौर्बल्यं मूत्रकृच्छ्र-ताम् । हन्ति पीतोन्नतकुचाः पद्मपत्रायतेक्षणाः । उपयोगात्स्त्रियो नित्यमलक्ष्मीमलवर्जिताः ॥

अर्थ—जीरा, हाऊवेर, धनियां, शतावर, वेरकी त्वचा, अजवायन, मेथी, हिंगुपत्री कसौंदी, पीपल, पीपलामूल, अजमोद हिंगोटका गर्भ, चित्रक ये प्रत्येक औषध चार ४ तोला लेवे, धनियां कसेरू, सोंठ, मुलहटी, मयूरशिखा रूखडी प्रत्येक १६।१६ तोला इन सबको एकत्र करके सूक्ष्म चूर्ण बनावे गुड ४०० तोला घृत एक प्रस्थ गौका दुग्ध २ प्रस्थ इन सबको एकत्र करके गुड पाककी विधिसे मन्दाग्निपर पकावे इसको पंच-जीरक गुड कहते हैं । यह पंचजीरक गुड प्रसूता स्त्रियोंको अत्यन्त हितकारी है, यह पंचजीरक गुड गर्भधारण करनेकी इच्छावाली स्त्रियोंको अत्यन्त पुष्टिकारक है । तथा २० प्रकारके योनिरोग श्वास खांसी स्वर भंग हलीमक पाण्डुरोग, दुर्बलता, मूत्रकृच्छ्र-ता इन सबरोगोंको नष्ट करता है । इसका नित्य सेवन करनेसे अलक्ष्मी और मलसे रहित होकर स्त्रियां उन्नत स्तनवाली और कमलके समान नेत्रोंवाली हो जाती हैं ।

अन्य उपचार ।

कृत्वोपवासमबला सुतजन्मघस्रे प्रातर्निपीय कृमिशत्रुभवं हि मूलम् । वासाम्भसा किमथवा हविषापि पीत्वा सूती जयेत्षडिति रोगसमूहमुग्रम् ॥ क्षुद्रैरण्डजटाशृंगी कण शुण्ठी सुखास्पृहम् । सूतिका च प्रशांत्यर्थं निःक्वाथ्य मधुनापिबेत् ॥ निम्बवल्कलकल्कस्तुसर्पिषाकाञ्जिके नतु । पीतः प्रशान्तयेन्नूनमचिरात्सूतिकागदम् ॥ पंचमूलकषायन्तु सूतिका-लवणान्वितम् । सुखोष्णं पाययेत्पूर्वं सूति[illegible]रोगनाशनम् ॥ सुतप्तलोह-माकृष्य वारुण्यान्तु निधापयेत् । सूतिकोपद्रवान्सर्वान्हन्ति [illegible]त्वा न संशयः ॥ वह्नौ तप्तेन लोहेन मुद्गयूषं सुवापितम् । पीत्वेवं सूतिका नारी सर्वव्याधीन्व्यपोहति ॥अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपञ्चमूलजलदजलम् । शीतं पीतं मधुना सह शमयतिसूतिकान्तकम् ॥ सहचरकुलित्थपुष्करवे-

कङ्कतदारुवेतसः क्काथः । पीतः सहिंगु लवणः शमयति शूल ज्वरौ-सूत्याः सहचरमुस्तगुडूचीभद्रोत्कविश्वबालकैः कथितम् । पेयमिदं मधु-मिश्रं सद्यो ज्वरशूलनुत्सूत्याः ॥

अर्थ—प्रसवके दिन स्त्री उपवास करके प्रातःकाल वायविडङ्गकी जड (वीसफारज) का चूर्ण तथा अडूसेके स्वरस व क्काथके साथ अथवा घृतके साथ. पान करे तो प्रसूतके छः रोगोंके समूह नष्ट हो जाते हैं । अथवा—कटेलीकी जड, अरंडकी जड, काकडाश्रृंगी, पीपल, सोंठ इनका मन्दोष्ण क्काथ बनाकर शहत डालकर पान करनेसे समस्त सूतिका रोग नष्ट होते हैं । नीमकी कोमल छालका कल्क बनाकर घृत और कांजीके साथ पान करनेसे सूतिका रोग नष्ट होता है, पंचमूलका क्काथ बनाकर उसमें थोडा सेंधा नमक डालकर कुछ गर्म सहता सहता पीनेसे सूतिका रोग नष्ट होता है । संतप्त लोहेको लेकर बारुणी नामक मद्यमें बुझाकर उस मद्यको पान करनेसे सूतिका रोग नष्ट होता है । मूंगके यूषके सन्तप्त लोहेको बुझाकर उस यूषको पान करनेसे सूतिका रोग नष्ट होता है । गिलोय, सोंठ, पियावांसा, गंध, प्रसारणी, पंचमूल, नागरमोथा और सुगन्धवाला इन सबको समान भाग लेकर दो तोलेका क्काथ बनाकर शीतल करके शहत डालकर पान करनेसे सूतिका रोग नष्ट होता है । पियावांसा, कुल्थी, पुष्करमूल, कटेली, देवदारु, बेंत इनको समान भाग लेकर इनका दो तोले क्काथ बनाकर थोडी भुनीहुई हींग और सेंधा नमक डालकर पान करनेसे सूतिका रोग नष्ट होता है । पियावांसा, नागरमोथा, गिलोय, गंधप्रसारिणी, सोंठ, सुगन्धवाला इन सबको समान भाग लेकर दो तोले क्काथ बनाकर उसमें शहत डालकर पान करनेसे सूतिकारोग नष्ट होता है ।

योनि सम्वरण रोगके लक्षण ।

वातलान्यन्नपानानि ग्राम्यधर्मप्रजागरम् । अत्यर्थसेवनमानायां गर्भिण्या योनिमार्गणः । मातरिश्वा प्रकुपितो योनिद्वारस्य संवृतिम् । कुरुते रुद्धमार्गत्वात्पुनरंतर्गतोऽनिलः । निरुणद्ध्याशनद्वारं पीडयन् गर्भसंस्थितिम् । निरुद्धवदनोच्छ्वासो गर्भश्चाशुविपद्यते । उच्छ्वासरुद्धहृदयान्नाशयत्यर्थजर्मणीम् । योनिसंवरणं नाम व्याधिमेतं प्रचक्षते ॥

अर्थ—गर्भवतीके वातकारी अन्नजल मैथुन रात्रि जागरण इनके अत्यन्त सेवन करनेसे वायु योनिके मार्गमें प्राप्त होकर और उसी स्थलपर कुपित होकर योनिके मार्गको रोक देवे जब अन्दरकी रुकी हुई पवन अन्दरही प्रवेश करके गर्भाशयके मुखको रोक-

कर गर्भकी स्थितिको पीडित करे तथा स्त्रीके वचनको वन्द करे और ऊर्द्ध श्वास प्रगट करे कि जिससे गर्भ तत्काल नष्ट हो जाय वह उच्छास रुकनेसे हृदयकी गति बन्द होनेसे गार्भिणीके शरीरको भी नष्ट करे है इसको योनिसंवरण नाम रोग कहते हैं।

गर्भ मरनेके कारण तथा असाध्य गर्भिणकि लक्षण।

मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः प्रपीडितः । गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीडितः ॥ योनि सम्वरणं संगः कुक्षौ मक्कल्ल एव च । हन्युः स्त्रियं मूढगर्भो यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ।

अर्थ–माताके मानसिक दुःख तथा आगन्तुक दुःखोंसे क्लेश पहुंचने पर तथा माताक शारीरिक रोगोंसे वह गर्भ पेटमें ही मर जाता है, त्रहां वन्धु क्षयादि मानसिक दुःख और प्रहारादि और दोष कुपितसे होते हैं, उनको आगन्तुक जानना। वायुके योगसे योनिका संकोच गर्भका अटकना, और मक्कल्ल शूल तथा (आक्षेपक खांसी श्वासादि) अनेक प्रकारके उपद्रव होनेसे वह मूढ गर्भ स्त्रीको नष्ट कर देता है। अथवा योनि संवरण रोग भी ऊपर कहा गया है वह भी स्त्रीको हानिकारक है।

मूढगर्भका निदान तथा सम्प्राप्तिपूर्वक लक्षण।

मूढः करोति पवनः खलु मूढगर्भं शूलं च योनि जठरादिषु मूत्रसंगम् । भुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः सगर्भः संख्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम् ॥ संकीलकः प्रतिखुरः परिघोऽथ बीजस्तेषूर्ध्ववाहुचरणैः शिरसा च योनौ । संगी च यो भवति कीलकवत्सकीलो दृश्यैः खुरैः प्रतिखुरः सहिकायसंगीगच्छेद्भुजद्वयशिराः स च बीजकाख्यो योनौ स्थितः सपरिघः परिघेण तुल्यः ॥

अर्थ–अपने हेतुओंसे मूढ (कुंठित गतिवाली) वायु गर्भको मूढ (टेढा) कर देती है। तथा योनिमें पेट आदिमें दर्द तथा पीडाके साथ बहुत थोडा २ मूत्र उतरे फिर दुष्ट वायुके रुकनेसे वह गर्भ कुटिल (टेढा वा वेडौल) होकर चार प्रकारसे योनिमें आनकर अटक जाता है, (सुश्रुताचार्य) [illegible]से अटकना मानते हैं, परन्तु इसका कुछ नियम नहीं कि अमुक प्रकारसे ही अटकता है वैद्योंने जो [illegible] अटकनेके लक्षण लिखे हैं उनसे विपरीत भी अटकताहुआ देखनेमें आया है। चार प्रकारकी रुकावटके लक्षण। संकीलक, प्रतिखुर परिघ और बीज ये चार भेद हैं, जो मूढ गर्भ ऊंचे हाथ और पैरोंसे तथा मस्तकसे जो कीलकके समान अटक जावे उसको संकीलक व कीलक कहते हैं। और जिसके हाथ पैर खुरके समान योनिसे बाहर निकल आवें

उसको प्रतिखुर कहते हैं और जिसके दोनों हाथके बीचमें मस्तक योनिमें आनकर अटक जावे उसको बीजक कहते हैं और जो परिघ योनिद्वारके आगे आनकर आडा होकर योनिद्वारको रोकलेवे उसको परिघ मूढ गर्भ कहते हैं। (अब आठ प्रकारके लक्षण कथन करते हैं)

द्वारं निरुध्य शिरसा जठरेण कश्चित् कश्चिच्छरीरपरिवर्त्तनकुब्जकायः एकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन तिर्यग्गतो भवति कश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः। पार्श्वापवृत्तगतिरेति तथैवकश्चिदित्यष्टधा भवति गर्भगतिः प्रसूतौ ॥

अर्थ—कोई मस्तकसे योनिद्वारको रोकता है कोई अपने पेटसे कोई अपने शरीरको फिराय कर कुबडा होकर उस कुबडेपनसे योनिको रोकता है, कोई एक हाथसे कोई दोनों हाथोंसे कोई तिरछा होकर कोई नीचा मुख होकर कोई पसलियोंको टेढा करके योनिद्वारको रोकता है इस प्रकार प्रसव होनेके समय मूढ गर्भकी आठ प्रकारकी गति होती है ॥ सुश्रुतभी इसी प्रकार मानता है जैसा कि।

कश्चिद्द्वाभ्यां सक्थिभ्यां योनिमुखं प्रतिपद्यते। कश्चिदाभुग्नैकसक्थिरितरेण सक्थ्ना। कश्चिदाभुग्नसक्थिशरीरः स्फिग्देशेन तिर्यग्गतः। कश्चिदुदरपार्श्वपृष्ठानामन्यतमेन योनिद्वारं पिधायावतिष्ठते। अन्यः पार्श्वापवृत्तशिराः कश्चिदेकेन बाहुना। कश्चिदाभुग्नशिरा बाहुद्वयेन। कश्चिदाभुग्नमध्यो हस्तपादशिरोभिः। कश्चिदेकेन सक्थ्ना योनिद्वारं प्रतिपद्यते अपरेण पायुमिति ॥

अर्थ—कोई दोनों सक्थियों (कूलों) से योनिमुखको रोकता है। कोई एक सक्थिसे टेढा होकर रोकता है। कोई दूसरीसे रोकता है। कोई कूला तथा शरीरसे टेढा होकर नितम्बोंसे तिरछा होनेपर योनिमुखमें अटक जाता है। कोई पेट पसली और पीठ इनमेंसे किसी एकके बल होकर योनिमुखको रोक लेता है। कोई पसलियोंकी तरफस सीधा मस्तक होकर एक भुजाको योनिमुखसे बाहर निकालकर अटक जाता है। कोई टेढा मस्तक होकर दोनों भुजा योनिमुखसे बाहर निकलकर अटक जाता है कोई शरीरके मध्यभागके मुडजानेसे हाथ पैरको योनिमुखसे बाहर निकाल कर शिरके बल योनिमें अटक जाता है। कोई एक नितंबसे योनिमुखको रोकता है कोई: दूसरे पुट्ठेसे गुदाको रोक लेता है, ये आठ भेद मूढगर्भके कथन किये हैं।

असाध्य मूढगर्भ और गर्भिणीकी स्थिति ।

अपविद्धशिराया तु शीताङ्गी निरपत्रपा ।
नीलोद्धतशिरा हन्ति सा गर्भं स च तां तथा ॥

अर्थ–जिस मूढगर्भ स्त्रीका मस्तक गिरगिर पडे और स्त्रीका शरीर शीतल हो जाय और स्त्रीकी लज्जा नष्ट हो जाय जिसकी कूखमें नीली नसें दीख पडें ऐसे लक्षणवाली स्त्रीका गर्भ नष्ट हो माताका भी मारक होता है ।

मूढ गर्भकी चिकित्सा प्रक्रिया ।

याभिः संकटकालेऽपि बह्व्यो नार्य्यः प्रसाविताः । सम्यग्लब्धं यशस्तास्तु नार्य्यः कुर्य्युरिमां क्रियाम् ॥ गर्भे जीवति मूढे तु गर्भं यत्नेन निर्हरेत् । हस्तेन सर्पिषाक्तेन योनेरन्तर्गतेन सा ॥ मृते तु गर्भेगर्भिण्या योनौ शस्त्रं प्रवेशयेत् ॥ शस्त्रशास्त्रार्थविदुषी लघुहस्ताभयोज्झिता । सचेतनं तु शस्त्रेण न कथंचन दारयेत् ॥ सदीर्य्यमाणो जननीमात्मनं चापि मारयेत् । नोपेक्षेत मृतं गर्भं मुहूर्त्तमपि पण्डितः । तदाशु जननीं हंति प्रभूतात्मं यथा पशुम् ॥

अर्थ–जिन दाइयोंने संकटवाली अनेक प्रसूति स्त्रियोंके प्रसव कराये होयँ, जिनका सर्वत्र लोकमें यश विस्तृत होय ऐसी हस्तक्रियामें निपुण दाईको उचित है कि नीचे लिखे प्रमाणे विधिको करे । यदि जिस स्त्रीका मूढ गर्भ जीता होय तो उसको सावधानीके साथ हाथोंमें घृत वा तिलका तैल लगाकर योनिमें अपना हाथ प्रवेश करे और अंगुलियोंके सहारेसे जो भाग बालकका कमानीकी हड्डीमें अटक रहा होय उसको ऊँचा नीचा करके दबा कर धीरे २ से बाहरको निकालनेकी क्रिया करे और बालकको बाहर निकाल लेवे (दाईको उचित है कि इस क्रियाके करनेके समय बालकके किसी अङ्गको जोरसे न दबावे कि जिससे बालककी मृत्यु हो जावे व अंग भंग हो जावे, जो दाई जीवित अटके हुए बालकको जीवित ही निकाल लेती है वह प्रशंसाके योग्य है) । यदि बालक गर्भाशयमें ही मरगया होय तो जो शस्त्र शास्त्रमें अर्थात् बालकके काटने फाडनेमें कुशल होय (जिनकी आकृति आगे डा० प्रकरणमें दी जावेगी) उन शस्त्रोंके द्वारा हलके हाथसे जो कि छेदनक्रियामें डरती न होय ऐसी क्रियानिपुण दाई मरेहुए गर्भस्थ बालकको अन्दरसे ही काटकर बाहर निकाल लेवे । यदि बालकमें कुछ थोडे भी प्राण होयँ तो कदापि उस बालकका छेदन न करे । यदि जीतेहुए बालकको अपनी मूर्खतासे जो दाई मार डालती है तो

वह बालक स्वयं मरकर अपनी माताको भी मार देता है। इससे दाईको उचित ह कि जीवित बालकको हरगिज न मारे। यदि बालक मरगया होय तो उसको एक दो घंटा भी गर्भाशयमें न रहने देवे कारण कि उस मृत बालकका जहर माताके गर्भाशयसे निकल कर समस्त शरीरमें फैलने लगता है और तत्काल माताको मार देता है। जैसे विशेष खायाहुआ अन्न पशुको मार देता है—इस कारणसे उचित है कि मत बालकको तत्क्षण निकालनेकी क्रिया कर बाहर निकाल देवे। यहां केवल इतना ही दिखलाया गया है कि शस्त्रसे मृत बालकको छेदन करके भारतवर्षीय वैद्य भी निकालते थे। परन्तु वर्त्तमान समयमें शस्त्रक्रियाको स्वदेशी वैद्योंने आलस्यवश त्याग दिया है। वृद्ध वाग्भट्ट देखिये मूढगर्भकी शस्त्रच्छेदन क्रियाका वर्णन इस प्रकारसे करते हैं।

मृत गर्भके लक्षण।

मृतेऽन्तरुदरं शीतं स्तब्धं ध्मातं भृशव्यथम्। गर्भास्यन्दो भ्रमस्तृष्णा कृच्छ्रादुःश्वसनं क्लमः॥ अरतिः स्रस्तनेत्रत्वमावीनामसमुद्भवः। तस्याः कोष्णाम्बुसिक्तायाः पिष्ट्वा योनिं प्रलेपयेत्॥ (इसी प्रकारके लक्षण भावमिश्र कथन करते हैं) गर्भास्यंदनमावीनां प्रणाशः श्यावपाण्डुता। भवेदुच्छ्वासपूतित्वं शूलं चान्तर्मृते शिशौ॥

अर्थ—शीतल और स्तब्ध गर्वायमान किन्तु कठोर और अफरासे संयुक्त ऐसा पेट हो जाता है, उस समय गर्भका स्फुरण नहीं होता और भ्रम तृषा कष्टसे श्वास उप ताप ग्लानि स्थानसे भ्रष्ट हुए नेत्र प्रसवकाल सम्बन्धि शूलकी उत्पत्ति नहीं होती। ऐसी स्त्रीको अल्प गर्म किये हुए जलसे सेचित करके पीछे आगे कथन की हुई औषधियोंको पीसकर योनिपर लेप करे। मृत गर्भके लक्षण भावमिश्रने भी इसी प्रकार कथन किये हैं, गर्भका न फडकना और प्रसवकालमें जो स्वाभाविक पीडा स्त्रियोंको होती है उसका न होना, शरीरका रंग काला और पीला पडजाना, तथा श्वासमें दुर्गन्धि आवे और उदरके भीतर सूजन होय अर्थात् पेटमें आँतोंके फूलनेसे सूजन हो जाय ये गर्भमें बालक मर जानेके लक्षण हैं। इन लक्षणोंके अनन्तर किसी २ स्त्रीको तीव्र ज्वर भी उत्पन्न होता है।

गुडं किण्वं सलवणं तथान्तः पूरयेन्मुहुः॥ घृतेन कल्कीकृतया शाल्मल्यतसिपिच्छया॥ मन्त्रैर्योग्यैर्जरायुक्तैर्मूढगर्भो न चेत् पतेत्। अथापृच्छ्येश्वरं वैद्यो यत्नेनाशु तमाहरेत्॥ हस्तमभ्यज्य योनिश्च साज्य-

शाल्मलिपिच्छया। हस्तेन शक्यं तेनैव गात्रं च विषमं स्थितम् ॥ आञ्छनोत्पीडसंपीडविक्षेपोत्क्षेपणादिभिः। अनुलोम्य समाकर्षेद्योनिं प्रत्यार्जवागतम् ॥ हस्तपादशिरोभिर्यो योनिं भुग्नः प्रपद्यते। पादेन योनिमेकेन भुग्नोऽन्येन गुदं च यः ॥ विष्कम्भौ नाम तौ मूढौ शस्त्रदारणमर्हतः। मण्डलांगुलिशस्त्राभ्यां तत्र कर्म प्रशस्यते ॥ वृद्धिपत्रं हि तीक्ष्णाग्रं न योनाववचारयेत्। पूर्वं शिरः कपालानि दारयित्वा विशोधयेत् ॥ कक्षोरस्तालुचिबुके प्रदेशेऽन्यतमे ततः। समालम्ब्य दृढं कर्षेत् कुशलो गर्भशंकुना ॥ अभिन्नशिरसं त्वक्षिकूटयोर्गण्डयोरपि। बाहु छित्वांससक्तस्य वाताध्मातोदरस्य तु ॥ विदार्य कोष्ठयन्त्राणि बहिर्वा संनिरस्य च। कटिसक्तस्य तद्वच्च तत् कपालानि दारयेत् ॥ यद्यद्वायुवशादंगं सज्जेद्गर्भस्य खण्डशः। तत्तच्छित्वा हरेत् सम्यग्रक्षेन्नारीं च यत्नतः ॥ गर्भस्य हि गतिं चित्रां करोति विगुणोऽनिलः। तत्रानल्पमतिस्तस्मादवस्थापेक्षमाचरेत् ॥ छिन्द्याद्गर्भं न जीवन्तं मातरं स हि मारयेत्। सहात्मना न चोपेक्ष्यः क्षणमप्यस्तजीवितः ॥ योनिसंवरणभ्रंशमक्कल्लश्वासपीडिताम्। पूत्युद्गारां हिमाङ्गीं च मूढगर्भां परित्यजेत् ॥ अथापतन्तीममरां पातयेत् पूर्ववद्भिषक्। एवं निर्हृतशल्यां तु सिञ्चेदुष्णेन वारिणा ॥ दद्यादभ्यक्तदेहायै योनौ स्नेहपिचुं ततः। योनिर्मृदुर्भवेत्तेन शूलं चास्याः प्रशाम्यति ॥ दीप्यकातिविषारास्नाहिंग्वेलापञ्चकोलकान्। चूर्णं स्नेहेन कल्कं वा क्वाथं वा पाययेत् ततः ॥ कटुकातिविषापाठाशाकत्वग्घिंगुतेजिनीः। तद्वच्च दोषस्पन्दार्थं वेदनोपशमाय च ॥ त्रिरात्रमेव सप्ताहं स्नेहमेव ततः पिबेत्। सायं पिबेदरिष्टं वा तथा सुकृतमासवम् ॥

अर्थ—वृद्ध वाग्भट्ट कहते हैं कि—गुड मदिरा (सराव) से पचा हुआ द्रव्य नमक इन्होंसे वारम्वार योनिको पूरित करे (योनिमार्गमें भरे) और सेमलका गोंद अलसीका निर्यास (लुआब) निकाल कर इनको घृतमें मिलाकर योनिमार्गमें भरे। इनके

भरनेका यही प्रयोजन है कि योनिमार्ग और योनिमुख सचिक्कण होनेसे बालक बाहरको सरक आवे, जो योग्य मन्त्रों करके अथवा जेरीके निकासनेमें कथन किये हुए योगोंके उपचार करनेसे यदि मूढ गर्भ न निकले तो हस्त क्रियामें कुशल वैद्य व दाईको उचित है कि राजाकी आज्ञा लेकर उस मूढ गर्भको शस्त्रसे छेदन करके शीघ्र निकाले नहीं तो स्त्रीके मरनेका भय है। अर्थात् घृत संयुक्तसे मंलके निर्यास (सेमंलका गोंद जिसको मोचरस कहते हैं उसको बारीक पीसकर गर्म जलमें मिलानेसे लुआबवाला चिकना पदार्थ बन जाता है, उसीकी निर्यास संज्ञा है। उसको योनिमार्गमें लगानेसे गर्भ आगेको सरकने लगता है) करके हाथको चिकना करलेवे तथा योनिको चिकनी करके जो गर्भ हाथसे निकालने योग्य हो उसको हाथसे निकाले किन्तु हाथसे निकालने योग्य मूढ गर्भ पर शस्त्रोपचार न करे और जो गर्भ हाथसे निकालने योग्य न हो तथा गर्भका अंग विषमरूपसे स्थित हो रहा हो तो दीर्घता करके स्थापन तथा ऊपरको पीडन तथा चारों बाजूसे पीडन तथा विशेष प्रेरण तथा उत्कर्ष करके तथा उत्क्षेपण इत्यादि क्रियाओंको करके स्पष्ट बनाकर योनिसे बाहरको खींचे। हाथ पैर शिर इन्हों करके कुटिल हुआ गर्भ योनिमार्गमें प्राप्त होवे अथवा एक पैर करके योनिमार्गमें प्राप्त हुआ होवे और दूसरे पैर करके गुदा (सफरा) को प्राप्त हुआ होवे। (इस कथनका प्रयोजन यह है कि एक पैर योनिमार्गमें अटक रहा हो और दूसरा पैर गुदा (सफराकी तर्फ अटक रहा होय) ये दोनों निष्कम्भ नामवाले मूढ गर्भ हैं। इनको शस्त्रसे काटकर निकालना उचित है, इनको (मण्डलाग्र) तथा (अंगुली) इन दो शस्त्रोंसे काटकर (गर्भाकर्षक) शस्त्रसे खींच कर निकाले। (इन सब शस्त्र यन्त्रोंकी आकृति डाक्टरी प्रकरणमें दी जावेगी)

वैद्य और दाईको शस्त्रोपचार विषयकी शिक्षा।

तीक्ष्ण अग्र भागवाले वृद्धिपत्र शस्त्रको योनिमें प्रवेश न करे क्योंकि इससे योनिमार्ग अथवा गर्भाशयके मुख (कमलमुख) के कट जानेका भय है। प्रथम शिरके और मुखके ऊपर होकर एक फणी यन्त्र प्रवेश करके ठोढीमें अटका कर गर्भको बाहर निकलनेका प्रयत्न करे, कदाचित् इससे न निकले तो कपालभंजक शस्त्रसे प्रथम कपाल (शिरको) तोडकर निकाले। तथा कांख छाती तालु टोडी इन्होंमेंसे किसी एक प्रदेशको दृढरूपसे ग्रहण करके चतुर चिकित्सक व दाई गर्भशंकु शस्त्र करके निकाल जिसका शिर नहीं कटा है ऐसे मूढ गर्भकी नेत्र कूट और कपोलके प्रदेशमें ग्रहण करके गर्भशंकु शस्त्रसे निकाले। कंधोंके बलसे अटकेहुए गर्भको बाहू काटकर बाहर निकाल वायु करके पूरित उदरवाले (बालकका पेट वायुसे फूल कर मोटा हो गया होय और उदर योनिमार्गमें अटक गया होय तो उसके कोष्ठको काटकर

पेटकी आंतडी प्रथम बाहर निकाल लेवे इसके बाद कटिके कपालोंको (नितम्बकी परियाकां) तोडकर पीछे समस्त शरीरको बाहर खींचे, जो २ अङ्ग वायुके वशसे मूढ गर्भका योनिमें अडजावे उस २ अङ्गको सूक्ष्म रीतिसे सावधानीके साथ छेदन करके निकाले, परन्तु छेदन करते समय स्त्रीके योनिमर्मोंकी रक्षा यत्नपूर्वक करे । गर्भाशय और बस्तिमें कुपितहुआ वायु गर्भकी चित्ररूप गतिको करता है ऐसे समय बुद्धि-वान् वैद्य अवस्था करके अपेक्षित कर्मको करे, जो क्रिया उस समयपर हित समझी जावे और मूढ गर्भ निकले उसीको आसानीसे करे । बालक जीताहुआ अटक रहा होय तो उसको कदापि छेदन न करे किंतु कुशल वैद्य जीवित बालकको जीताहुआ ही चातुर्यतासे निकाले । कदाचित् मूढ वैद्य व दाई जीवित बालकको काटकर निकाले तो माताके मरनेका भी भय रहता है और निर्जीव गर्भको माताके पेटमें क्षणमात्र भी न रहने देवे । क्योंकि मृत बालकका जहर फैलकर तीव्र ज्वरादि उपद्रव उत्पन्न करके माताको मार देता है । योनिमार्गको आच्छादित कर लिया और योनिका भ्रंश करलिया होय मक्कल्ल रोगके लक्षण होगये होयँ और प्रबल श्वाससे पीडित होय और डकार तथा श्वासमेंसे दुर्गंधि आतीहोय और सब अङ्ग जिसके शीतल होगये होयँ ऐसे लक्षणोंसे युक्त मूढ गर्भवाली स्त्रीको यशकी इच्छा-वाला वैद्य त्याग देवे । मूढगर्भके निकालनेके अनन्तर जो अमरा (जरायु जेरी अमरा) निकलनेकी क्रिया तथा प्रयोगोंसे निकाले जैसे कि निकलेहुए शल्य गर्भ-वाली स्त्रीकी योनिको उष्ण जलसे सेचित करे । पीछे अभ्यक्त शरीरवाली स्त्रीकी योनिमें स्नेहसे भीगे हुए (तैलमें भीगे हुए) रुईके फोहाको रखे इसके रखनेसे जो शल्यको निकालनेके समय पीडा हुई थी वह शान्त हो जाती है और योनिमार्ग सचिक्कण हो जाता है । और अजवायन अतीस, रास्ना, हींग, इलायची, पीपल, पीपला-मूल, चव्य, चित्रक, सोंठ सब समानभाग लेकर परिमित मात्रासे इनका चूर्ण वा कल्क तथा क्वाथ बनाकर कुछ स्नेह घृत तैलादि मिलाकर स्त्रीको पान करावे । पीछे कुटकी, अतीस, पाठा, खरच्छदशाक, दालचीनी, हींग, तेजोवती इनके क्वाथको दोषोंके निकलनेके अर्थ तथा पीडाकी शान्तिके अर्थ पिलावे । ऐसे तीन रात्रिपर्य्यन्त पान कराके पीछे सात दिवसतक स्नेह पान करावे और सायंकालमें अरिष्टको तथा उत्तम आसवको पान करावे ।

शिरीषककुभक्काथपिचून् योनौ विनिक्षिपेत् । उपद्रवाश्च येऽन्ये स्युस्तान् यथास्वमुपाचरेत् । पयोवातहरैः सिद्धं दशाहं भोजने हितम् ॥ रसो दशाहं च परं लघुपथ्याल्पभोजना । स्वेदाभ्यङ्गपरा स्नेहान् बला-

तैलादिकान् भजेत् । ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यः सा क्रमेण सुखानि च ॥ बलामूलकषायस्य भागाः षट् पयसस्तथा । यवकोलकुलत्थानां दशमूलस्य चैकतः ॥ निःक्राथभागो भागश्च तैलस्य च चतुर्दश । त्रिमेदादारुमञ्जिष्ठाकाकोलीद्वयचन्दनैः ॥ अश्वगन्धावरीक्षीरशुक्लायष्टीवरारसैः । शताह्वाशूर्पपर्ण्येलात्वक्पत्रैः श्लक्ष्णकल्कितैः ॥ पक्वं मृद्वग्निना तैलं सर्ववातविकारजित् । सूतिकाबालमर्मास्थिक्षतक्षीणेषु पूजितम् ॥ ज्वरगुल्मग्रहोन्मादमूत्रघातान्त्रवृद्धिजित् । धन्वन्तरेरभिमतं योनिरोगक्षयापहम् ॥ बस्तिद्वारे विपन्नायाः कुक्षिः प्रस्यन्दते यदि । जन्मकाले ततः शीघ्रं पाटयित्वोद्धरेत् शिशुम् ॥ मधुकं शाकबीजं च पयस्या सुरदारु च । अश्मन्तकः कृष्णतिलास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ वृक्षादनी पयस्या च लता चोत्पलसारिवा । अनन्ता सारिवा रास्ना पद्मा च मधुयष्टिका ॥ बृहती द्वयकाश्मर्य्यः क्षीरीशृङ्गत्वचो घृतम् । पृश्निपर्णी बला शिग्रुः श्वदंष्ट्रा मधुपर्णिका ॥ शृङ्गाटकं बिसं द्राक्षा कसेरु मधुकं सिता । सप्तैतान् पयसा योगानर्द्धश्लोकसमापनात् ॥

(अब वह प्रयोग लिखे जाते हैं जो मूढ गर्भ निकालनेके अनन्तर स्त्रीकी योनिबस्ति आदिमें कुछ अभिघात पहुँचा होय अथवा अन्य प्रकारकी किसी विकृतिसे रक्तमिश्रित जलका स्राव होता होय उसकी निवृत्तिके अर्थ नीचेके प्रयोग हैं)

अर्थ—शिरसकी छाल और अर्जुन वृक्ष (लोकमें इसको कौहवृक्ष भी बोलते हैं) दोनोंको समान भाग लेकर क्वाथ बना रुईका फोहा भिगोकर योनिमार्गमें रक्खे इसके रखनेसे योनि पीडा शान्त होती है, अन्य उपद्रव उत्पन्न होयँ उनकी यथाविधि चिकित्सा करे । वातनाशक रास्नादि औषधियोंमे सिद्ध कियेहुए दूधको मूढगर्भास्त्री दश दिवसतक आहार करे । इसके अनन्तर दश दिवसपर्यन्त मांसके रसका (सोरुआ) हित है, जो स्त्री मांस आहार नहीं करती उनको अन्नका यूष कुछ स्निग्ध पदार्थ मिलाकर सेवन करना हित है । इसके अनन्तर हलका और पथ्य और अल्पमात्रासे भोजनकी वृद्धि करनेवाली स्वेद (पसीना) अभ्यंग (स्निग्ध पदार्थ तैलकी मालिस व बादामकी पिष्टिकादिका उबटन) करनेवाली स्त्री खरैटी आदि वातनाशक औषधियोंके स्नेहोंका सेवन करे । इसके बाद चार महीनेके उपरान्त क्रम क्रमसे सुखको देनेवाले अन्नपानाहारादि और

क्रीडा विहारादिका सेवन करे। खरैटीकी जडका काथ छः भाग, गौका दुग्ध छः भाग, जौ, वेर, कुलथी, दशमूल, इनका काथ एक भाग और मीठा तैल एक भाग ऐसे चौदह भाग संयुक्त होनेके अनन्तर मेदा, महामेदा, देवदारु, मंजिष्ठ, काकोली, क्षीरकाकोली, रक्तचन्दन, अनन्तमूल, कूट, तगर, जीवक, ऋषभक, सेंधा नमक, कमल, शारिवा, शिलाजीत, वच, अगर, सोंठ, असगन्ध, शतावारि, क्षीरविदारी, मुलहटी त्रिफला, वोल, महाशतावारि, रानमूंग, इलायची, दालचीनी, तेजपत्र इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण व कल्क बनाकर पूर्वोक्त औषधियोंमें मिलावे और कोमल अग्निसे पकावे (यहांपर ग्रन्थकारने तैलकी तौल नहीं लिखी है सो सब द्रव्योंसे चौगुणा तैल लेना चाहिये) यह तैल सब प्रकारके वातरोगोंको जीतता है और प्रसूति स्त्रियोंको और बालकोंकी वृद्धिके अर्थ विशेष लाभकारी है, मर्म हड्डीकरके क्षतक्षीण ऐसे रोगियोंको पूजित है। ज्वर गुल्म ग्रहदोष उन्माद मूत्राघात अन्त्रवृद्धि योनिरोग क्षयरोग इनको नष्ट करता है, यह तैल धन्वतरि वैद्यराट्का माननीय है। मरेहुए गर्भवाली स्त्रीके वस्ति द्वारके समीप कुक्षि अत्यन्त फुरती होवे तो चतुर वैद्य व दाई तत्काल तीव्र धारवाले शस्त्रसे उस अटके हुए अङ्गको (वालकके अङ्गको काटे जो वालक कदाचित् जीवित होवे और स्त्री मृतक हो गई होवे तो स्त्रीके अवरोध करनेवाले अङ्गको काटकर वालककी जीवित निकाल लेवे) (न मालूम छेदन प्रकरणसे आगे यह श्लोक ग्रन्थकारने क्यों दिया है, हमने भी उसी प्रसंगपर लिख दिया है) मुलहटी खरच्छदशाकका वीज, दूध, देवदारु, आपटा, काले तिल, मजीठ, शतावारि, इनको तथा अमरवेल (आकाशवेल), छोटे पत्रवाली दूधी व दुधियाघास, गंधप्रियंगु, उत्पल (कमलकी जड वा कमलगट्टा), शारिवा अथवा धमासा, अनन्तमूल, रास्ना, कमोदिनी, मुलहटी, अथवा दोनों कटेली (श्वेत फूलकी तथा वैंजनी फूलकी) कंभारी, वंशलोचन, जीवक, दालचीनी, घृत, अथवा पृश्निपर्णी खरैटी सहजना, गोखुरू, मुलहटी, अथवा सिंघाडा कमलकी नाल, दाख, कसेरू, मुलहटी, मिश्री ये सात प्रयोग उन स्त्रियोंके अर्थ कहे हैं कि जिनका मृतक गर्भ निकल गया होय और दूषित रक्तस्राव होचुका होय इसके वाद भी रक्त जारी रहता होय और बन्द न होता होय तो इन प्रयोगोंमेंसे किसी एकका सेवन करावे।

मूढगर्भ चिकित्सा तथा आयुर्वेद प्रक्रिया गर्भधारण प्रकरणसे लेकर बालककी जन्मक्रिया स्त्रियोंके सूतिका सम्बन्धि रोग तथा मूढगर्भ निकालनेकी क्रिया समाप्त।

यूनानी तिब्बसे गर्भवती स्त्रियोंके उपायोंका वर्णन।

बहुधा गर्भका गिरना और सन्तान न होना और झिल्लीका बन्द हो जाना, जिसमें

बालक लिपटा रहता है, जिसको वैद्यकके प्रकरणमें (अमरा जरायु वा जेरी कथन कर चुके हैं) और मराहुआ बालक उत्पन्न होनेके अनन्तर रजका बन्द होना । और संतोषदायक उपाय जो बालक जनने उपरान्त किये जात हैं तथा गभ गिरनेका उपाय इन सब भेदोंका पृथक् २ वर्णन किया जायगा । प्रथम भेद यह है कि स्त्री गर्भवती है कि नहीं, इसके निश्चय करनेके ये चिह्न हैं । जननेंद्रिय (कमलमुख बन्द हो जावे) और योनिमुख छोटा संकुचित रहे, योनिमार्ग तथा योनिमुख सूखा रहे, योनि तथा नाभिके बीच पेटके भागमें कुछ थोडासा दर्द उत्पन्न होय, स्त्रीकी संभोगकी इच्छा निवृत्त हो गभ रहनेके उपरान्त भूल व मुहब्बतसे संभोग किया जावे तो स्त्रीको यथोचित लाभ न हो प्रसूत गर्भको कष्ट पहुंच स्त्रीको फुरफुरी आती है । तथा रजोधर्म बन्द हो जाता है और स्तनोंका मुख काला हो जाता है, । नेत्रकी सफेदीमें कालापन आजाता है, जी मिचलाने लगता है, बुरी २ चीजें खानेको मन चलायमान हो जाता है । जैसे मिट्टी, कोयला, ठीकरी इत्यादि ऐसे ही और भाव भी कई प्रकारके प्रगट हो जाते हैं और लडका होनेके चिह्न यह हैं कि स्त्रीका रंग अच्छा और स्वच्छ हो मुखपर प्रसन्नताके चिह्न झलकते रहे, मूत्र रंगीन आवे, प्रायः दहिना स्तन बायें स्तनसे कुछ बडा दीखे और कुचोंकी शिरा कुछ कालापन लियेहुए दीखें और बालककी गति गर्भाशयमें दाहिनी ओर माल्लम होय और स्त्रीको अधिक भार माल्लम न होय और गर्भवतीकी इच्छा हलके आहार करनेकी रहे बाद तबीबोंने कहा है कि जो दर्द स्त्रीकी कमरसे उठे और फिर पेटमें आवे तो लडका होता है । और जो दर्द टूंडी और मूत्रस्थानके मध्यमेंसे उठता है तो लडकी उत्पन्न होती है । जो स्त्रीके गर्भमें लडकी होवे तो विशेष चिह्न इस प्रकारसे हैं कि स्त्रीका रंग फीका रहे मुख कांति जाती रहे स्त्रीकी गति सुस्त रहे, पेटमें भार माल्लम पडे छातीकी शिरा काली और बाई कुच दाहिनीसे बडी दीखती है और मूत्र सफेद होय तथा उसकी रंगत तबदील होती रहे । प्रायः गर्भाशयमें लडकीकी गति बाईं तर्फको माल्लम पडे और पेट विशेष बडा न होय और स्त्रीकी इच्छा प्रायः दूषित बुरी वस्तु खानेको चले और झूँठी भूख बहुत माल्लम पडे । और परीक्षाके लिये हकीम बुकरातने कहा है कि जो गर्भके होनेमें कुछ संदेह माल्लम होय तो २२ ॥ मासे शहद ठंढे पानीमें मिलाकर रात्रिको शयनके समय स्त्रीको पिलावे यदि इसके पीनेसे टूंडीमें मरोडा और ऐंठन उत्पन्न होय तो समझ लो कि स्त्री गर्भवती है, अगर न होय तो गर्भ नहीं है । अथवा कोई सुगन्धित वस्तु किसी बर्त्तनमें रखकर जलावे कि उसकी सुगन्ध बाहर न निकले और उस बर्त्तनके मुखपर टोंटी (नली) लगाकर उसका दूसरा सिरा स्त्रीके योनिमुखपर लगावे और उस स्त्रीकी नाभिपर उस वस्तुकी गन्ध माल्लम पडने

लगे तो समझ लो कि स्त्री गर्भवती है अगर मालूम न पडे तो गर्भवती नहीं है। कोई २ हकीम यह विधि भी बतलाते हैं कि जरावन्द कूटकर शहदमें मिलावे और नीला ऊन लगाकर विना कुछ खाये योनिमार्गमें भीतर रखे और दुपहरतक कुछ आहार न करे, जो इस क्रियासे स्त्रीके मखमें स्वाद मालूम न होय तो गर्भवती नहीं है। यदि कुछ स्वाद मालूम होता है तो गर्भवती है, फिर जो मीठा स्वाद मालूम होय तो गर्भाशयमें लडका है। और मुखमें कडुवा स्वाद मालूम होय तो लडकी है, किताव यूनानीतिव्व (दस्तूर उल इलाज) में लिखा है कि गर्भके तीन चिह्न हैं एक तो यह है कि स्त्रीको अपनी दशा आपही मालूम होती है, जैसे कि पेटमें भारीपन और कमरमें मीठा २ दर्द और दूसरे गर्भकी दशा तवीव और दाईको मालूम हो जावे। तीसरे उस स्त्रीके पतिको उसका हाल मालूम होवे जैसे कि मैथुनसे घृणा करना और स्तनोंको दवाया जाय तो आरामकी अपेक्षा दर्द मालूम होता है। दूसरा भेद गर्भवती स्त्रियोंके उपायके वर्णनमें है जब गर्भ मालूम होय तो स्त्रीको उचित है कि कूदने विशेष वोझा उठाने भागने तथा चीख मारनेका शक्त प्रतिवन्ध रखे और मवादके भरनेसे तथा क्रोध भय चिन्तासे वचती रहे, जो चीजें रजको वहाती हैं (जैसे कि गर्म पदार्थ तीक्ष्ण वस्तु) इनसे वालकका जन्म होनेतक वचती रहे। नीचा ऊंचा मार्ग विकट पर्वतका सफर कष्टदायक सवारी भय देनेवाले स्थान इनसे वचती रहे। फस्द (रक्त निकालने) व मलको निकालनेवाला जुलावकी दवाओंसे वचती रहे, मख्य करके चौथे महीनेसे प्रथम और सातवें महीनेके पीछे यदि दस्तावर दवाओंकी आवश्यकता किसी विशेष कारणसे पडे तो मवादके नर्म करनेके लिये अमलतासके गूदेका सरवत वनाकर पिलावे। कदाचित् किसी विशेष कारणसे खूनके निकालनेकी आवश्यकता पडे तो हलके पछनोंसे जरूरीयातके माफिक थोडा खून निकाले, फस्दसे खून हर्गिज न निकाले अगर पछनोंसे खून कामके लायक न निकले और फस्दकी जरूरत ही पडे तो थोडा २ खून कई मर्त्तवे निकाले और गर्भवतीकी दशा पर तवीव हरवक्त ध्यान रक्खे जिससे खून अधिक न निकल जावे। और गर्भवती स्त्रीको चाहिये कि हरसमय निष्काम न पडी रहे, किन्तु अपने शरीरकी ताकतके माफिक चलती रहे और कामकाज करती रहे, जिससे फोक पचता रहै। गर्भवती स्त्रीको पुरुषके साथ संभोग करना हानिकारक है, मुख्य करके जिस स्त्रीका पुरुष संभोग करनेमें अतिवलवान् और दीर्घमूत्रेन्द्रिय आकारवाला होय कि जिसकी इन्द्रियका अग्रभाग गर्भाशयके मुखपर दवाव डाले और स्त्रीके दोनों कन्धे पकडकर अपनी ..वे तो गर्भस्थ वालकको महा हानि पहुंचती है। और गर्भ गिरनेका भय हो

जाता है, सो गर्भवती स्त्री व उसके पुरुषको उचित है कि संभोग त्याग देवें। ऐसेही बादीकी चीजें जैसे कि लोबिया, किब्र, बाकला, चना, अजमोद आदि हानिकारक हैं और गर्भवती स्त्रीको चाहिये गर्भस्थ बालककी रक्षाके लिये जिससे गर्भ गिरनेका भय न रहे और गर्भवतीकी तबीयत संतुष्ट रहे और खुश दिल होवे ऐसे गुण रखनेवाली दवाका सेवन करे जैसे कि याकूती आदि–तिरियाक मसरूदीतूस दिवालमुश्क दरूनज और कचूर खाया करे (कचूर प्रायः गर्म माना जाता है मगर न मालूम तिब्बवालोंने किस कारणसे इसको इस मौकेपर लिखा है) गर्भवती स्त्रीको उचित है कि अपनी प्रकृतिकी शर्दी गर्मीका ध्यान हरसमय रक्खे। शुद्ध पवित्र हलके आहार किया करे। यदि स्त्री मांस खानेकी इच्छा करे तो १ वर्षसे कम उमरवाले बकरे बकरीका मांस खावे। और बिही, अनार, सेव, अमरूद, मुनक्का और सुगन्धित शराब तबीयतको प्रसन्न करनेवाली चीजें खाया करे। परन्तु जब कभी ऐसा जान पडे कि शरीरमें फिसलनेवाली तरी विशेष होती जाती है कि गर्भ गर्भाशयमेंसे फिसल न पडे तो ऐसी दशाका विचार करके गर्भवतीको उचित है कि पतले शोरबा तर मेवा और स्नान करनेको त्याग देवे। यदि अजीर्ण होवे तो उसके मवादको मुलायम करनेको उचित चीजोंका समय अनुसार सेवन करे, विशेष प्रयोजन यह है कि गर्भवतीकी तबीयतमें अजीर्ण होना विशेष हानिकारक है क्योंकि आंतोंका मवादसे भरा रहना गर्भाशयके समीपवर्त्ती होनेके कारण गर्भस्थ बालकको कष्ट पहुंचता है। और फिसलनेवाली तरीके दूर करनेमें मूत्रका लाना पसीना हुकना (पिचकारी) और दस्तका साफ आना ये उपयोगी विधि है, इनमेंसे भी जबतक पसीनेसे काम चले तबतक पिशाब लानेवाली दवा न देव। और जबतक नर्म हुकने (मृदु पिचकारी) से अजीर्ण निवृत्त न हो तबतक मलको गहराईसे निकालनेवाली दवा न देवे। जो २ चिह्न प्रायः उस दशामें प्रगट होते हैं उन प्रत्येकका उपाय लिखा जाता है, (वमन और जी मचलानेका उपाय) गर्भवती स्त्रियोंको अक्सर वमन जी मचलानेकी शिकायत पैदा हुआ करती है। क्योंकि आमाशयके दोष एकत्र होते हैं इसीलिये कहते हैं कि जबतक यह शिकायत सामान्य तौरसे रहे तो इसका उपाय न करे। क्योंकि यह स्वाभाविक समय पर उत्पन्न होते हैं। यदि यह शिकायत विशेषतासे बढ जावे तो उसका उपाय करे। मुख्य करके गर्भवतीको ४ मास व्यतीत न हुए होयँ तो यह समझ लो कि वह रजका मवाद है सो तबीयतमें विकृति पैदा कर रहा है। उसका जोश कुदर्ती कायदेसे ही रफा हो जावेगा, क्योंकि रजके मवादका स्वभाव बाहर निकलनेका है मगर वह गर्भ स्थितिके निमित्तसे बाहर नहीं निकल सका और स्त्रीकी तबीयतको बिगाडता है कदाचित इस उपद्रवसे निर्बलताका भय होय और यह भी भय होय कि वमनके आनेसे

लगे तो समझ लो कि स्त्री गर्भवती है अगर माल्रुम न पडे तो गर्भवती नहीं है । कोई २ हकीम यह विधि भी बतलाते हैं कि जरावन्द कूटकर शहदमें मिलावे और नीला ऊन लगाकर विना कुछ खाये योनिमार्गमें भीतर रखे और दुपहरतक कुछ आहार न करे, जो इस क्रियासे स्त्रीके मखमें स्वाद माल्रुम न होय तो गर्भवती नहीं है । यदि कुछ स्वाद माल्रुम होता है तो गर्भवती है, फिर जो मीठा स्वाद माल्रुम होय तो गर्भाशयमें लडका है । और मुखमें कडुवा स्वाद माल्रुम होय तो लडकी है, किताव यूनानीतिब्ब (दस्तूर उल इलाज) में लिखा है कि गर्भके तीन चिह्न हैं एक तो यह है कि स्त्रीको अपनी दशा आपही माल्रुम होती है, जैसे कि पेटमें भारीपन और कमरमें मीठा २ दर्द और दूसरे गर्भकी दशा तवीब और दाईको माल्रुम हो जावे । तीसरे उस स्त्रीके पतिको उसका हाल माल्रुम होवे जैसे कि मैथुनसे घृणा करना और स्तनोंको दबाया जाय तो आरामकी अपेक्षा दर्द माल्रुम होता है । दूसरा भेद गर्भवती स्त्रियोंके उपायके वर्णनमें है जब गर्भ माल्रुम होय तो स्त्रीको उचित है कि कूदने विशेष बोझा उठाने भागने तथा चीख मारनेका शक्त प्रतिबन्ध रखे और मवादके भरनेसे तथा क्रोध भय चिन्तासे बचती रहे, जो चीजें रजको बहाती हैं (जैसे कि गर्म पदार्थ तीक्ष्ण वस्तु) इनसे वालकका जन्म होनेतक बचती रहे । नीचा ऊंचा मार्ग बिकट पर्वतका सफर कष्ट-दायक सवारी भय देनेवाले स्थान इनसे बचती रहे । फस्द (रक्त निकालने) व मलको निकालनेवाला जुलावकी दवाओंसे बचती रहे, मख्य करके चौथे महीनेसे प्रथम और सातवें महीनेके पीछे यदि दस्तावर दवाओंकी आवश्यकता किसी विशेष कारणसे पडे तो मवादके नर्म करनेके लिये अमलतासके गूदेका सरवत बनाकर पिलावे । कदाचित् किसी विशेष कारणसे खूनके निकालनेकी आवश्यकता पडे तो हलके पछनोंसे जरूरीयातके माफिक थोडा खून निकाले, फस्दसे खून हर्गिज न निकाले अगर पछनोंसे खून कामके लायक न निकले और फस्दकी जरूरत ही पडे तो थोडा २ खून कई मर्त्तबे निकाले और गर्भवतीकी दशा पर तबीब हरवक्त ध्यान रक्खे जिससे खून अधिक न निकल जावे । और गर्भवती स्त्रीको चाहिये कि हरसमय निष्काम न पडी रहे, किन्तु अपने शरीरकी ताकतके माफिक चलती रहे और कामकाज करती रहे, जिससे फोक पचता रहै । गर्भवती स्त्रीको पुरुषके साथ संभोग करना हानिकारक है, मुख्य करके जिस स्त्रीका पुरुष संभोग करनेमें अतिवलवान् होय और दीर्घमूत्रेन्द्रिय आकारवाला होय कि जिसकी इन्द्रियका अग्रभाग स्त्रीके गर्भाशयके मुखपर दवाव डाले और स्त्रीके दोनों कन्धे पकडकर अपनी तर्फको दवावे तो गर्भस्थ बालकको महा हानि पहुंचती है । और गर्भ गिरनेका भय हो

जाता है, सो गर्भवती स्त्री व उसके पुरुषको उचित है कि संभोग त्याग देवें। ऐसेही बादीकी चीजें जैसे कि लोबिया, किव्र, बाकला, चना, अजमोद आदि हानिकारक हैं और गर्भवती स्त्रीको चाहिये गर्भस्थ बालककी रक्षाके लिये जिससे गर्भ गिरनेका भय न रहे और गर्भवतीकी तबीयत संतुष्ट रहे और खुश दिल होवे ऐसे गुण रखनेवाली दवाका सेवन करे जैसे कि याकूती आदि–तिरियाक मसरूदीतूस दिवालमुश्क दरूनज और कचूर खाया करे (कचूर प्रायः गर्म माना जाता है मगर न मालूम तिब्बवालेंने किस कारणसे इसको इस मौकेपर लिखा है) गर्भवती स्त्रीको उचित है कि अपनी प्रकृतिकी शर्दी गर्मीका ध्यान हरसमय रक्खे। शुद्ध पवित्र हलके आहार किया करे। यदि स्त्री मांस खानेकी इच्छा करे तो १ वर्षसे कम उमरवाले बकरे बकरीका मांस खावे। और विही, अनार, सेव, अमरूद, मुनक्का और सुगन्धित शराब तबीयतको प्रसन्न करनेवाली चीजें खाया करे। परन्तु जब कभी ऐसा जान पडे कि शरीरमें फिसलनेवाली तरी विशेष होती जाती है किं गर्भ गर्भाशयमेंसे फिसल न पडे तो ऐसी दशाका विचार करके गर्भवतीको उचित है कि पतले शोरवा तर मेवा और स्नान करनेको त्याग देवे। यदि अजीर्ण होवे तो उसके मवादको मुलायम करनेको उचित चीजोंका समय अनुसार सेवन करे, विशेष प्रयोजन यह है कि गर्भवतीकी तबीयतमें अजीर्ण होना विशेष हानिकारक है क्योंकि आंतोंका मवादसे भरा रहना गर्भाशयके समीपवर्त्ती होनेके कारण गर्भस्थ बालकको कष्ट पहुंचता है। और फिसलनेवाली तरीके दूर करनेमें मूत्रका लाना पसीना हुकना (पिचकारी) और दस्तका साफ आना ये उपयोगी विधि है, इनमेंसे भी जबतक पसीनेसे काम चले तबतक पिशाब लानेवाली दवा न देवें। और जबतक नर्म हुकने (मृदु पिचकारी) से अजीर्ण निवृत्त न हो तबतक मलको गहराईसे निकालनेवाली दवा न देवे। जो २ चिह्न प्रायः उस दशामें प्रगट होते हैं उन प्रत्येकका उपाय लिखा जाता है, (वमन और जी मचलानेका उपाय) गर्भवती स्त्रियोंको अक्सर वमन जी मचलानेकी शिकायत पैदा हुआ करती है। क्योंकि आमाशयके दोष एकत्र होते हैं इसीलिये कहते हैं कि जबतक यह शिकायत सामान्य तौरसे रहे तो इसका उपाय न करे। क्योंकि यह स्वाभाविक समय पर उत्पन्न होते हैं। यदि यह शिकायत विशेषतासे बढ जावे तो उसका उपाय करे। मुख्य करके गर्भवतीको ४ मास व्यतीत न हुए होयँ तो यह समझ लो कि वह रजका मवाद है सो तबीयतमें विकृति पैदा कर रहा है। उसका जोश कुदर्ती कायदेसे ही रफा हो जावेगा, क्योंकि रजके मवादका स्वभाव बाहर निकलनेका है मगर वह गर्भ स्थितिके निमित्तसे बाहर नहीं निकल सका और स्त्रीकी तबीयतको बिगाडता है कदाचित इस उपद्रवसे निर्बलताका भय होय और यह भी भय होय कि वमनके आनेसे

गर्भस्थ वालकको झटका लगकर कष्ट पहुंचता है व चार महीने व्यतीत हो चुके होयँ तो ऐसी दशामें उचित है कि वमन वन्द करनेवाली दवा देवे । शरवत सेव शरवत विही, शरवत अनार, शरवत चन्दन, कच्चे अंगूरका शरवत (इनमेंसे किसी एकको पोदीनाके अर्कमें मिलाकर देवे) आंवलेका चूर्ण ३॥ मासे ऊपर कहेहुए सरवतोंमेंसे किसी एकमें मिलाकर देवे, कहरवा १॥ मासे वारीक पीसकर शरवत गुलावमें देनेसे वमनको रोकता है । खुर्फा, जौका सत्तू, तवाखीर, नीवूकी खटाई, अरजन ये प्रत्येक वमनको रोकती हैं, इमलीका शरवत वमनको रोकता है । हव्वुलास चूर्णकी विधि (यह वमनको रोकता है) हव्वुलास ३५, मासे वंशलोचन ७ मासे, सिमाक, अनारके फूल, खट्टा अनारदाना, वागका पोदीना, कच्ची अगर गुलावके फूल, सफेद चन्दन प्रत्येक ३॥ मासे महीन पीसकर चूर्ण वनावे और ३॥ माससे ७ मासे तकको मुहताज मीठे पानीके साथ खावे । जिसमें वतासे वा कन्द पडा होय और जी मचलानेको दूर करनेके लिये सोया और मूलीके वीजके काढेसे वमन कराना लाभदायक है । परन्तु वमन उसी स्त्रीको कराना चाहिये जो वमनके परिश्रमको सहन कर सके, जो सहन न करसके उसको जरा चलाना फिराना चाहिये । जिससे कि दोष पचजावें, बुरी चीजोंको खानेकी इच्छा गर्भवतीकी होती है सो अनुचित पदार्थोंसे वचाना ही ठीक है और जो २ वस्तु गर्भस्थ वालक और गर्भवतीको हित पडे उनको देना ही मुफीद है । (गर्भवतीकी धडकनका उपाय) कभी २ किसी २ गर्भवती स्त्रीके आमाशयके मुखमें कोई दोष धडकन उत्पन्न कर देता है इस दशामें गुलावका शरवत गर्म जलमें मिलाकर पीना और शरीर सहन करसके उतना परिश्रम करना अति उत्तम है, जो इस उपायसे निवृत्त न होय तो दिलके रोगोंकी तफ ध्यान देना चाहिये । " हवाओंका उपाय " हवा कई प्रकारकी गतिसे आमाशय और आंतोंमें फिरती ह, उसके निवृत्त करनेके वास्ते (जवारिस) कम्मूनी और पुष्टिकारक चूर्ण भोजनके अन्तमें परिमित मात्रासे देना चाहिये और भोजन कम करना चाहिये और शरीर सहन करसके उतना परिश्रम करना हित है । ऊपर जो पुष्टिकारक चूर्ण कथन किया है वह इस प्रकारसे ह, सूखा पोदीना, छोटी इलायची, कपूर कचरी, तेजपत्र, सौंफ, सखा धनियां, तुर्स अनार दाना, किर्विया, काली मिरच, गुलावके फूल, पीपल, काला नोन, लाहौरी नोन, इनका वजन प्रकृतिकी गतिके माफिक लेवे जो प्रकृतिमें गर्मी हाव तो अथवा किसी कारणसे हरारत रहती हो तो काली मिरच और पीपल न मिलावे । मात्रा दो माससे ५ मासेतक देवे । " सूजनका उपाय " यह सूजन पांवकी पीठपर किसी २ गर्भवती स्त्रीको हो जाती है इसकी निवृत्तिके वास्ते तैल और सिरका मिलाकर लेप करे और सिरकामें नमक मिलाकर लगाना भी

हितकारी है। कर्नवके पत्तोंका काढा बनाकर उसमें पैर रखनसे सूजन नष्ट होजाती है॥ (खुजली और गर्मीका उपाय जो कि योनिओष्ठ योनिमुख और योनिमार्गमें उत्पन्न होती है॥) खितमीका लुआब निकाल कर मुलतानी मिट्टी मिलाकर लेप करना और मलतानी मिट्टी मट्ठा (छाछ) में मिलाकर लेप करे, अथवा मकोयके स्वरसमें मुलतानी मिला कर लेप करे। अथवा कासनीके रसमें मुलतानी मिलाकर लेप करे, अथवा तरबूजके पानीमें मुलतानी मिलाकर लेप करे। ऊपर कथन कीहुई दवाओंके रस तथा काढेमें बैठना भी लाभदायक है। इस बातका उपाय कि पीठ और पेटकी मछलियां (विशेष) बालकके बोझ और बढावसे तथा भाफके परमाणुओंसे भरकर खिच जाया करती हैं इससे गर्भवती स्त्रीको विशेष थकापन और आलस्य मालूम होने लगता है। इस दशामें गुलरोगन मलना हितकारी है, अथवा बकरीकी मैंगनी और जौका आटा लेकर (बराबर वजन) इसकी रोटी बनाकर एक बारीक कपडेमें लपेट कर इससे सहता सहता सैंक करना लाभदायक है। आर नर्म तथा हलका आहार दे पीठ मर्दन, कन्धा, बांहकी मछलियोंको गुलरोगन चुपड कर मलना लाभ पहुंचाता है। (आहस्ते २ मलना चाहिये) उस खूनका उपाय जो गर्भवती किसी २ स्त्रीको कुसमय और कुरीतिपर जारी हो जाता है मसूर, अनारके फूल, अनारका छिलका, सूखा अंजीर, हर्डका पानी और सिरकेमें पकाकर उसके पानीकी भाफ योनिको देवे और इन दवाओंके फोकको महीन पीसकर पेडूपर लेप करे कदाचित् रुधिर अधिक निकलता होय तो रक्त प्रदर रोगमें जो सुनहरी गोंदकी टिकिया कथन की गई है उनको देवे। नवम महीना जिसवक्त गर्भको लगे उस वक्तसे गर्भवतीको उचित है कि हररोज प्रातःकाल विना कुछ खाये पीये १०॥ मासे मीठे बदामका तैल पिलाया करे। और जो चीजें खट्टी भारी अजीर्ण और कब्ज करनेवाली होयँ उनसे बचना चाहिये। क्योंकि गर्भवती स्त्री इस कायदेसे रहेगी तो बालक विना कष्टके उत्पन्न होगा, अति पवित्रतासे इस महीनेमें रहना चाहिये। और बालक जननेके निकट आ जाय तो गर्भवती स्त्रीको चाहिये कि न्हानेके स्थान हमामादि जो कि एकान्त होय कर्नव, मेथी, अलसी, सोया इत्यादिको जलमें पकाकर छानकर इस काढेमें सहता २ बैठे और पेट पीठ कमर पर सोया अथवा बाबूनाके तैलकी मालिस हलके हाथसे करनी चाहिये कदाचित् ये तैल न मिलसकें तो तिलीका तैल काममें लेना चाहिये। चिकने और हलक भोजन जिनमें कन्द तथा बदामका तैल पडा होय खिलावे, जिससे बालक सहजमें जन सके।

गर्भवतीके उपायोंका प्रकरण समाप्त।

यूनानी तिब्बसे गर्भ गिरजानेकी चिकित्साका वर्णन ।

गर्भ गिरजाना इसके कारण कितने ही हैं, एक तो बाहिरी कारण जैसे कि गर्भवतीके शरीर पर चोटका लग जाना वा किसी ऊंचे स्थलपरसे खुद गिरपडना और जोरसे उछलना मुख्य करके पीछेकी तर्फ दूसरी भीतरी विकृति जैसे रंज क्रोधादि विशेष करना और विशेष चिन्ता तथा स्नानके स्थान विशेष ठहरकर जलक्रीडा करना और हवाकी शर्दी गर्मीकी अधिकता और ऐसे भोजनोंको खाना और सुगन्धिका सूंघना और उनपर गर्भवती स्त्रीकी तबीयत चलती हो और वे भोजन प्राप्त न हो सके होयँ । कभी २ विशेष आनन्द प्राप्त होनेके कारणसे भी गर्भपात होना संभव हो जाता है । तीसरे शारीरिक रोगादि और विशेष पेटका खाली होना चाहे भूंखके कारणसे हो चाहे मवादके निकलनेसे हो । विशेष पेट भरकर खाना तथा अजीर्ण और पुरुषसंभोगकी हरकतसे हो चौथे यह कि गर्भाशयके अन्दर बालककी आकृति बिगडकर गिरपडे । जैसे बालकको गर्भाशय पोषण न पहुंचता होय और क्षीण हो जाय और अधिक निर्बल होनेके अनन्तर गिर पडे अथवा किसी कारण विशेषसे अन्दर ही मरकर गिरपडे । मरेहुए बालकको गर्भाशय रख नहीं सक्ता, किन्तु कुदरतके कायदेके माफिक मुरदार वस्तु शरीरमें ठहर नहीं सक्ती पेटमें बालकके रोगोंका चिह्न यह है कि गर्भवाली स्त्री याने बालककी माता सदैव रोगी रहे तथा दस्तोंकी अधिकता और रक्तका विशेष निकल जाना गर्भ रहनेके आरम्भसे ही स्तनोंमेंसे दूधका बहना । और निर्बलताके चिह्नका प्रभाव यह है कि बालककी गति (चलना फिरना) गर्भाशयमें मालूम न पडे और कभी २ चले भी तो कम चले । एक स्त्रीके गर्भ रहा और चार महीनेतक बालककी गति उसको अच्छी तरहसे मालूम होती रही पीछे विना किसी प्रत्यक्ष रोगके बालककी गति बन्द होगई और पेट जो बढता था वह दबने लगा इस चार महीनेमें जो कुछ बढनेकी दशा पहुंची थी वह भी कमती होनेलगी इसी दशामें आठ महीने वीत गये और नवमा महीना था कि उस स्त्रीके पेटमें अकस्मात् विशेष दर्द उठा और बच्चा एक झिल्लीमें लिपटाहुआ बाहर निकल पडा जब झिल्लीको फाडकर बालकको निकाला तो जन्ममें पूरा था और सब अङ्ग जैसे नवमें महीनेमें होने चाहिये वैसे ही पूरे थे । परंतु मुख और शिरमें खराबी थी और सब शिर मिचाहुआ था, जैसे कि उसके शिरमें हड्डी न होवे और सब चहरम मुख और नाकके छोटे २ दोही छिद्र थे इनके सिवाय और कुछ मालूम नहीं होता था और नाक या आंखकी जड आदि और दोनों कान गर्दनकी जगहमें लगे थे और गर्दन अधिक मोटी थी अगले दो दांतोंकी जगह पर मसूडे कडे डंकके समान उभरे हुए थे, जैसे दांत बाहर निकल रहे हों जब कि गर्भमें

बालककी आकृति बनी उस समय सब अङ्गोपाङ्ग भी बन चुके थे और इस गर्भकी अवस्था उस बालककी माताको कुछ रोग व कष्ट नहीं हुआ । लेकिन किसी कारणसे गर्भस्थ बालकके शरीरमें विकृति उत्पन्न होगई इसी कारणसे बालकका अङ्ग भंग हुआ । गर्भवती स्त्री और दाई इस नजरिसे बहुत कुछ लाभ उठा सक्ती हैं । पांचवां कारण गर्भ क्षीण होनेका यह है कि गर्भाशयका मुख विशेष चौंडा होगया होय अथव उसमें विशेष तरी एकत्र होगई होय इस कारणसे बालक गर्भाशयमें पूरे समयतक न ठहर सके और गर्भाशयसे बाहरको फिसल आवे । छठा कारण यह है कि गर्भाशयमें गर्म और दुष्ट प्रकृति बालकको जलानेवाली उत्पन्न हो गई होय, अथवा ठंढी जमानेवाली प्रकृति उत्पन्न हो गई होय । अथवा गर्भाशयमें अधिक हवा प्रवेश करके गर्भ क्षिणका कारण होगई होय । सातवां कारण यह है कि रजका बन्द होना जो गर्भ रहनेके उपरान्त हुआ करता है, कदाचित् इससे भी गर्भ गिरनेकी दशा पहुंचे और यह इस प्रकारसे होता है कि रुधिर विशेष होय और बालककी परिवरिसको थोडा खर्च होता होय फिर वह रुधिर विशेष होकर बालकको गर्भाशयसे बाहरको फिसला देवे । आठवां कारण यह है कि स्त्री स्वभावसे अथवा किसी व्याधिसे अत्यन्त दुर्बल होय और उसके अङ्गोपाङ्ग सूखे रहते होवें और उसके आहारमेंसे इतना रस रक्त न बनता होय कि जो बालककी परिवारिसको पहुंच सके, इस कारणसे बालक निर्बल रहता है और गर्भका गिरना भी इस कारणसे संभव समझा जाता है । पांचवें कारणसे सातवें कारणतक यद्यपि शरीरके रोग गर्भपातका कारण हैं मगर भले प्रकार समझनेके लिये पृथक् २ लिखे गये हैं । जिस स्त्रीका शरीर समान होता है और दूसरे तीसरे महीनेमें उसका गर्भ गिरता है तो मालूम कर सक्ते हैं कि उसके गर्भाशयकी रगोंके मुख जो चुन्नटोंकी सकलके हैं रहट (पतले पदार्थ) की तरीसे भरगये हैं इस कारणसे बालकको ठहरानेवाली शक्ति नहीं रोक सक्ती । और जहां बाहरी वा भीतरी कारण उसके होयँ तो उसका चिह्न प्रकट रहता ही है । (चिकित्सा) योग्य वस्तुओंसे उसको निवृत्त करना । जैसे जिस दोषकी तरीके कारणसे आमाशयका मुख सुस्त हो गया होय तो उसको गर्भाशयके—बहनेकी तरीसे और नेत्र पलकोंकी सूजनसे तथा मुखमें पानी भर आनेसे पहचान सक्ते हैं । शरबत बालंगो और जडोंका पानी तथा शरबत विजूरी पिलावे । और कबाब मसालेदार और केसरिया भात और दालचीनी खिलावे और वमनकी जरूरत होय तो वमन करा देवे । जरूरत पडे तो गोलियों तथा यारजसे मवादको निकाल देवे । और दिवाल मुश्क तथा संजरनिया इसको लाभदायक है और गालिया केशरका तैल—तथा जम्बकके तैलसे गर्भाशयमें हुकना (पिचकारी) लगाना लाभदायक है । यह आगे लिखीहुई माजून अधि-

कतर मुफीद है (विधि) कचूर दरूनजअकरबी प्रत्येक ७ मासे, अनविंधे मोती, कहरवा, अगर प्रत्येक १०॥ मासे छरीला, बालछड प्रत्येक १॥। पौने दो मासे कूट छानकर तिगुने शहतमें मिलावे इसकी मात्रा ४॥ मासेकी है। आगे लिखा चूर्ण भी इसी माफिक गुणकारी है। जुन्देबेदस्तर, अजमोदके बीज, बादयान (सौंफ), रूमी सौंफ (अनीसून), अजवायन, सातरहींग, कुलीजन प्रत्येक १०॥ मासे कूट छानकर ३॥ मासेकी मात्रा खिलावे। किताब करावादी-नकादरीके लिखनेवालेने दिवालमुश्कके बनानेकी विधि इस प्रकार लिखी है। मोती अनविंधे, कहरवा, मूंगाकी जड, कच्चा रेशमकतरा हुआ बहुत बारीक कचूर, दरूनज अकरबी प्रत्येक ४॥ मासे बहमन सफेद, बडी इलायची, बालछड, लवंग, तेजपत्र, छरीला, प्रत्येक ३॥ मासे जुन्दबेदस्तर, पीपल, सौंफ प्रत्येक १॥। मासे किसी २ हकीमने जुन्दबेदस्तर ३॥ मासे और कस्तूरी २ रत्ती मिलाना भी लिखा है। इन सब दवाओंको कूट छानकर दुगुनेसे तिगुनेतक कच्चे शहदमें मिलाकर दिवालमुश्क बनावे। इसकी मात्रा ४॥ मासेकी है, इसको ४० दिन रखे रहनेके बाद सेवन करे और किसी २ हकीमका ऐसा मत है कि यह दवा छः महीने रखे रहनेके बाद सेवन करे। गर्भाशयमें जो वायु ठहर जाती है उसको पेडूके फूलने गुडगुडाहट आमाशयका अफरा अजीर्ण और वादी उत्पन्न करनेवाले भोजनोंकी हानिसे पहचान सक्ते हैं। इलाज इसका यह है कि—सौंफ, अनीसून (रूमीसौंफ), अजमोदके बीज, गुलाबका गुडकंद इनका काढा बनाकर मृदु रेचक करावे। और जडोंका पानी इसके लिये लाभदायक है। और चनेके खार अथवा पानीमें शोरा मिलाकर देवे अथवा गोखु-रूके पानीमें थोडा शोरा मिलाकर देवे। चकोर और बटेरका मांस भी हितकारी है। जम्बकका तैल अथवा खैराका तैल और नारदेनका तैल दोनों नितम्बोंके मध्यमें कमर और पेडू तथा योनिपर मालिश करे। इस मर्जको यह माजून लाभदायक है। (कचूर) दरूनज, हींग, जुन्दबेदस्तर, माजूफ, वंशलोचन प्रत्येक ३॥ मासे, सोंठ सात मासे, कस्तूरी ६ रत्ती, कूट छानकर दुगुनेसे तिगुनेतक शहदमें मिलाकर माजून बनावे और मात्रा ४॥ मासे खिलाया करे, बूरा और नारियलका खाना लाभदायक है। जिस स्त्रीका दुर्बल होना इसका कारण होय तो वह शरीरकी निर्बलता और दुबलेपनसे प्रगट होता है। इलाज इसका यह है कि घृत जिन आहारोंमें पडा होय जैसे हलुवा, हरीरा तथा गोघृतमें बूरा मिलाकर खिलावे और गुलबनफशाका तैल तथा बदामका तैल शरीरपर मले और भोजनके उपरान्त सामान्य स्नान करना हितकारी है। अथवा इसके अलावे और जो कोई कारण दीख पडे तो उसके निवृत्त करनेका उपाय करे। इसके साथ ही रोगी प्रकृति और मौसमपर भी अवश्य ध्यान रक्खे।

(विशेष सूचना) कितनी ही दशाओं में गर्भ क्षीण होनेके वही कारण हैं जो स्त्री वन्ध्या होनेके प्रकरणमें वर्णन किये गये हैं। परन्तु प्रसंगवश सूक्ष्मरीतिसे यहां भी दिखलाया गया है, प्रयोजन यह है कि जो २ विकृति गर्भको हानि पहुंचानेवाली होयँ उनको गतिके ऊपर विशेष दृष्टि रखनी चाहिये। चौथा भेद यह कि कठिनतासे सन्तान होना। यह कई प्रकारसे है एक तो यह कि स्त्री मोटी होवे और गर्भाशयके मोटे होनेसे समीप व मर्मस्थानोंकी रगें तंग हो जावें गर्भस्थ बालकको बाहर निकलनेमें संकुचित मार्ग मिले और उन रगोंमें बालकको बाहर करनेकी शक्ति न रहे इस बाहर करनेवाली शक्तिकी निर्बलतासे सन्तान होना कठिन हो जाय सो यह मोटे होनेका चिह्न प्रत्यक्ष है। गर्भाशयका छोटा होना बालकके शरीरकी न्यूनतासे और मार्गकी तङ्गीको गर्भाशयके मुखके विशेष चौडा न होनेसे और स्त्रीकी बालक बाहर निकालनेवाली शक्तिकी निर्बलतासे तथा निकालनेकी गति अच्छी तरह न मालूम होनेसे जानसक्ते हैं। इलाज इसका यह है कि वनफसाका तैल, जम्बकका तैल, जैतूनका तैल, मुर्गे और बतककी चर्बी, गौकी पिण्डलीकी चर्बी, पेट, पीठ कमर, पेडूपर मले तथा दोनों नितम्बोंके बीचमें और गुदा योनिके बीचकी सीमनपर मले। मालिश हलके हाथसे कर वावूना, सोया, दोना, मरुवा इनको जलमें पकाकर गर्भवाली स्त्रीको इस पानीमें बैठाले और पानी इतना होना चाहिये जिसमें नाभी डूबजावे और पहाडी पोदीना हंसराज इनको जलमें पकाकर काढा बनालेवे और मिश्री डालकर पिलावे। कालादाना जुन्दवेदस्तर और नकछिकनी इनमेंसे किसीकी नस्य छींक आनेके वास्ते नाकमें सुंघावे, जब छींक आने लगे तो नाक और मुख बन्द करलेय जिससे बालकको बाहर निकालनेकी शक्ति नीचेको जोश करे। और बालकको निकालनेमें सहायता करे और घोडा गधा तथा खिच्चरके खुरका धूंआ योनिमुखमें देवे, इससे बहुत जल्दी लाभ पहुंच बालक शीघ्रतासे निकल आता है। मोटे बडे चर्बीदार मुर्गेके मांसका शोरवा स्त्रीको पिलावे यह भी इस मौकेपर हितकारी है। इसका दूसरा भेद यह भी है कि इसवक्तमें किसी ठंढी हवा अथवा और किसी प्रकारकी शर्दीसे आमाशयका मुख सिमट कर सुकड जाय इसको गर्भाशयकी शर्दी और सुकडनेसे पहचान सक्ते हैं। इलाज इसका यह है कि हम्माममें स्त्रीको लेजावे और गुनगुने पानीमें बैठाल गर्म तथा नसोंको नर्म करनेवाले तैल जो ऊपर वर्णन किये हैं उनकी मालिश कर एक कोमल कपडेकी बत्ती बनाकर उसको शहदमें भिगोकर योनिमार्गमें रक्खे। तीसरा भेद यह है कि बालकके शरीरपर लिपटीहुई झिल्लीका मोटा होना भी कठिनतासे प्रसव होनेका कारण हो सक्ता है। यहांपर जानना चाहिये कि मुसीमिया एक झिल्ली विशेषका नाम है, जो गर्भाशयमें बालकके चारों तर्फ उत्पन्न होती है, जिससे बालककी रक्षा रहती

है। जैसे कि कद्दू दानेकी थैली होती है परन्तु इससे विशेष कडी और चौंडी होती हैं और बालक जब निकलनेके लिये गति करता है और बालक कुछ हृष्टपुष्ट होता है, बालकको निकालनेका जोश पूरा होता है, स्त्रीभी निकालनेकी गति पर जोर देती है तो यह झिल्ली बहुत शीघ्र फट जाती है और बालक उसमेंसे निकल कर बाहर आ जाता है। इसके कुछ काल बाद झिल्ली भी बाहर निकल पडती है, कदाचित् यह झिल्ली विशेष मोटी होती है तो शीघ्र नहीं फट सक्ती। ऐसी दशा निश्चय हो जावे तो ऐसा उपाय करे कि बच्चा न मरने पावे क्योंकि निकलनेकी गतिसे बालकको बडा ही कष्ट पहुंचता है और कदाचित् निकल न सके तो बालकके मरनेका भय रहता है और इस दशासे कितने ही बालक मर भी जाते हैं, क्योंकि इस गुप्त रुकावटको दाइलोग कम समझती हैं। दाईको चाहिये कि झिल्लीकी रुकावट मालूम होय तो बायें हाथकी अंगुलियोंसे झिल्लीको पकड कर और दाए हाथसे तेज धारवाला नश्तर लेकर झिल्लीको चीर देवे मगर इस बातका विशेष ध्यान चतुर दाईको रखना चाहिये कि शस्त्रकी धारसे बालक तथा प्रसववाली स्त्रीके गर्भाशयके मुख वा योनिमार्ग व योनिमुखमें अभिघात न लगने पावे। इसका विशेष ख्याल रखना उचित है। (विशेष द्रष्टव्य) गर्भवतीके लिये अर्थात् मुख्य करके जिसको बालक जननेमें कठिनता प्रतीत होनेकी संभावना होय उसके लिये सुगमरीति यह है कि जब बालक जननेके दिन समीप जान पडें और जननेके चिह्न प्रतीत होने लगे तो उस स्त्रीको हम्माममें लेजाकर और बहुतसा गर्म जल उसके सिरपर डाले, जल उतना गर्म होना चाहिये कि जिसको स्त्रीका जिस्मबे तकल्लुफ सहज कर सके और गुनगुने जलमें बैठाले और तैल मले तथा स्त्रीको बोले कि थोडी दूर चलफिरकर उटकुरुवा बैठ जावे और एक साथ ही अचानक कूदे और कई बार ऐसा करे। उस वक्त पर दाईको उचित है कि अलसीके बीजोंका लुआब, बदामका तैल, तिलीका शीरा व मुर्गेकी चर्बी अथवा बतककी चर्बी बनफसाके तैलमें मिलाकर योनि-मुख योनिमार्ग और गर्भाशयके मखपर मले और इन मकामोंको अच्छी तरहसे चिकना कर देवे कि बालक बाहरको आसानीसे फिसल आवे और स्त्रीको चाहिये कि जननेके दर्दसे प्रथम ही मलमूत्र त्यागकर जननक्रिया पर बैठे और जो कदाचित् पेटमें अजीर्ण होय तो नर्म हुकने (पिचकारी) से मलको निकाल देवे। और कई दिवस प्रथमसेही नर्म चिकने शोरबाका आहार करे। यदि स्त्री मांस न खाती होवे वह बदामके हरीरेका आहार करे और आहार प्रकृतिसे कुछ कम करे। शीतल जल खटाई तथा अन्य शीतल वस्तुओंसे बच गर्म जगहमें जहां शीतल हवा न आती होय, जमीनमें भी शील न होय ऐसे ठिकाने पर सोया बैठा करे और इस बातका विशेष

ध्यान रखे छातीसे लेकर घुटनेतकके अंगको शर्दी न लगने पावे गर्म कपडेसे ढके रहे । और जब बालक जननेका दर्द उठे तो संतोषके साथ दर्दका शहन करे रंज न माने रोवे पीटे नहीं चीख न मारे और पैरोंपर जोर देवे जिससे जोरका असर अन्दर पहुंचे और जबतक भीतरकी तर्फ जोरका झुकाव मालूम न होय तबतक कभी बनावटी जोर न करे । यह माजून खिलावे कई हकीमलोग इसको परीक्षा की हुई कहते हैं जुन्देवेदस्तर, शिलारस, दालचीनी, देवदारु प्रत्येक १।।। मासे कूटछानकर तिगुने शहदमें मिलावे । मात्रा इसकी ४।। मासेकी है गर्म पानी व शहदके पानी अथवा पुरानी शराबके साथ घोलकर पिलावे । चौथे यह कि प्रकृति और हवाकी गर्मी कठिनताका कारण हो जाय और यह बात गर्मीके होने और दूसरे कारणोंके न होनेसे मालूम होती है । इलाज़ इसका यह है कि वनफशाका तैल, लाल चन्दन, गुलाब पेंट पीठपर मले और खट्टे मीठे अनारका पानी तुरंजबीनके साथ पिलावे और अधिक गर्म चीजोंसे बचे और सामान्य स्थानमें रक्खे और ऐसी दशामें गर्मी पहुंचानेवाले इलाज बर्जित हैं । अब उन दवाओंका वर्णन करते हैं, जो प्रकृतिके अनुसार सन्तानकी कठिनताके लिये लाभदायक हैं । जान लेना चाहिये कि चकमक पत्थर बांये हाथमें रखना और मूंगाकी जड दाहिने घुटनेमें बांधना लाभदायक है । अमलतासका छिटका १।। तोला कूटकर काढा बना वनफशाका शरबत अथवा चनेके पानीमें मिलाकर पिलावे तो उसी समय बालक और झिल्लीको गर्भाशयसे बाहर निकालता है, यह प्रयोग परीक्षा कियाहुआ है, जो केवल अमलतासकी फलीके छिलकेको ही कूटकर काढा बनाके पिलावे तो भी वैसा ही गुण करता है । और दालचीनीका खाना उत्तम है, किन्तु थोडी हींग जुन्देवेदस्तरमें मिलाकर देना हितकारी है, और सुगन्धि सूंघनेसे गर्भवती स्त्रियोंको सर्वदा रोक देना चाहिये । मुख्य करके गर्भके रहनेके उपरान्तसे ही सुगन्धिका सूंघना निषेध है, क्योंकि सुगन्धिका सूंघना उत्पत्ति कर्मकी क्रियाको कठिन करता है । काले सांपकी कांचलीका धूआँ योनिमुखको लगाना बालकको शीघ्र बाहर निकालता है । यह परीक्षा कियाहुआ प्रयोग है । "मगर दूसरा तबीब कहता है कि इसको काममें लाना उचित नहीं, कारण कि कभी २ इसके जहरसे बालक मर जाता है" हमारी समझमें यह बात बेबुनियाद है विष सर्पकी थैलीके सिवाय दूसरे अङ्गमें नहीं रहता हमने बहुतसे कंजरोंको देखा है कि सांपका फन (थूथडी और दुम) को काटकर अलग कर देते हैं और बीच धडके भागको पकाकर खा जाते हैं किन्तु मरते नहीं देखे गये । सम्पादक कदाचित् जननेवाली स्त्रीको जब दर्द ४ दिवसतक या इससे कम ज्यादा बराबर बना रहे तो जानना चाहिये कि बालक मरगया है उसका उपाय शीघ्र करना चाहिये ।

यूनानी तिब्बसे गर्भपात तथा कष्टित प्रसवका प्रकरण समाप्त ।

रुकेहुए गर्भाशय और मरेहुए वालकको निकालनेकी प्रक्रिया ।

जब कि बालक पेटमें मर जावे अथवा बालक पेटमेंसे निकल आवे परन्तु झिल्ली पेटमेंसे न निकले और उसका वह लगाव जो डोरेकी तरह उसमें और बालकमें रहता है उसका सम्बन्ध टूट जावे तो उसके निकालनेका शीघ्र उपाय करे । क्योंकि उसके न निकालनेसे मृत्युका भय रहता है । और बालकके मर जानेके यह चिह्न हैं कि बालकके फिरनेकी गति पेटमें माळूम न होय और गर्भवतीके हाथ पैर शीतल हो जायँ, श्वास लगातार आवे । इलाज इसका यह है कि जंगली पोदीना, देवदारु, हंसराज, प्रत्येक १०॥ मासे तिर्मिस बागका पोदीना प्रत्येक ७ मासे इनका जुसादा बना कर ४५ मासे मिश्री मिलाकर पिला नकछिकनी तथा कलौंजी सुंघावे, जिससे स्त्रीको छींक आने लगे, फिर उसका मुख और नाक वन्द करदेवे । जिससे उसकी शक्तिका जोश भीतरकी तर्फ पहुँचे, जो कुछ गर्भाशयमें है उसको निकाल डाले और जरावन्द, तिर्मिस, हाळून, देवदारु, कूटकर वैलके पित्तेमें मिलाकर ग्रहण कर इन्द्रायणका गूदा कूट और सूखी तुतली प्रत्येक १०॥ मासे बूल ३॥ मासे कूट छानकर वैलके पित्तेमें मिलाकर नाभि और पे पर लेप करे । बूल, गंधा विरोजा, आवशीर, जुन्देवेदस्तर, कर्नब वैलके पित्तेमें गूंदकर टिकिया बनावे और अंगीठीमें जलाकर उसके ऊपर छेददार चलनी रखके. इनका धूम्र योनिमुख पर लगावे । अन्य प्रयोग बूल, जावशीर, कुंदल गोंद, बराबर वजन लेकर गोली बनावे और १०॥ मासे इसमेंसे गर्म पानीके साथ खिलावे इससे गर्भाशयमें जो कुछ होता है निकल पडता है । अन्य प्रयोग कतीरा, अगर, तुत्तली, इन्द्रायणका गूदा सब समान भाग कूटछान सरावमें बत्ती बनाके योनिमार्गमें रखे तो गर्भाशयमेसे बालक निकल पडता है । (अन्य प्रयोग) जावशीर, जुन्देवेदस्तर, सफेद कन्द, गौका पित्त बराबर वजन लेकर सबको मिलाकर ३॥ मासेकी मुहताज गर्म पानीके साथ देवे और कुछ देरके बाद छींक आनेका उपाय करे जैसा ऊपर कथन कर चुके हैं तो थोडी ही देरमें बालक और झिल्ली निकल पडती है । (अन्य उपाय) काले सांपकी कांचली, जंगली कबूतरकी बीट दोनोंको मिलाकर योनिमुखको धूनी देवे तो बालक शीघ्र निकल आता है । जब इन उपरोक्त उपायोंसे कार्य्य सिद्ध न होवे तो चाहिये कि होसियार दाई व तबीब नख कटेहुए हाथको चिकना करके योनिमार्गमें अन्दर डालके बालकको खींच लेवे कि स्त्रीके किसी दूसरे अङ्गपर सद्मा न पहुंचे । जब कि मरे बालकको निकालनेमें कोई उपाय हितकारी न पडे तो बालकके शस्त्रसे टुकडे २ करके निकाल लेवे । इस कामको शस्त्रविद्यामें निपुण और शारीरक विद्याके जाननेवाला तबीब वा दाई कर सक्ता है । इस कामके करनेमें बडा भय है जहांतक और उपायोंसे प्रयोजन सिद्ध हो जावे तो इस कामके करनेमें आरूढ न होवे ।

यूनानी तिब्बसे रुकेहुए गर्भाशय और मरेहुए बालकको निकालनेका प्रकरण समाप्त ।

बालक उत्पन्न होनेके बाद जो रक्त निकलता है उसको नफास कहते हैं नफासके रुधिरको बन्द करनेकी चिकित्सा ।

जानना चाहिये कि जो रुधिर बालक होनेके बाद निकलता है उसको नफास कहते हैं । इसका समय लडका लडकी पैदा होनेके अनुसार परस्पर विरुद्ध है । लडकेकी दशामें १९ दिनसे ३० दिनतक और लडकीकी दशामें ३९ दिनसे ४० दिनतक होता है, जहां इस विधिपर न आवे तो उसका निवृत्त करना योग्य है । वही बुरे २ रोग जो रजको बन्द होनेसे उत्पन्न होते हैं सोई इस कारणके बन्द न होनेसे हो जाते हैं । इस दशामें योग्य है कि जो २ अदवीयात रजके रोकनेमें (रक्त प्रदर प्रकरण) में कथन की गई हैं उनको काममें लावे, यह प्रयोग भी लाभदायक है। अजमोदके बीज, सौंफ, हंसराज, पहाडी पोदीना समान भाग लेकर जुसादा करके मिश्री मिलाकर पिलावे । (अन्य प्रयोग) जूफा, गूगल, हुरमुल, अलेकुलवतम, राई इनको समान भाग लेकर कूटकर योनिमुखको विस्तृत योनिमार्गमें धूनी पहुंचना बहुत जल्द लाभ पहुंचाता है, यह भी ध्यान रखना चाहिये कि कोई स्त्री निर्बल और विशेष पतली दुवली होती है और उसके शरीरमें रुधिर अधिक नहीं होता सो स्वभावसे ही बन्द हो जाता है । ऐसी स्त्रियोंको उपाय करनेकी आवश्यतका नहीं, जो स्त्रियां अधिक रक्तवाले शरीरकी हैं और स्वभावसे बन्द न होय तो उपाय करना अति आवश्यक है । यहांपर यह जानना चाहिये कि स्त्रियोंको बच्चा जननेके उपरान्त खून और वमन प्रगट होता है और यह रुधिर क्या हुआ है सो गर्भावस्थाके समयमें बालककी परिवरिससे बचा हुआ समझना वह ऊपरकी तर्फ रुजू होकर स्तनोंमें पहुंच कर दूध बन जाता है । क्योंकि उसका झुकाव ऊपरकी तर्फ है वमन आती है और कुछ रजकी तर्फ निकल जाती है इसको नफास कहते हैं । सातवां भेद यह है कि गर्भाशयके दर्दके ठहरानेके उपायमें है, जो कि बालक जननेके उपरान्त उत्पन्न होता है । जडोंका शरबत अथवा जौकी घाटका शोरवा पिलावे और गधे तथा खच्चरके खुरका धुआं योनिमुख और योनिमार्गमें दे अलसीके बीजका काढा बनाकर छान लेवे जितने गर्मको स्त्री सहन करसके उतने गर्मसे गर्भाशयमें हुकना करे (पिचकारी लगावे) तो दर्द जलन वगैरह रफे हो जाती हैं । और गधीके दूधकी पिचकारी गर्भाशयमें लगानेसे उसी वक्त लाभ पहुंचता है । गन्धबेलका जुसादा बनाकर पिलावे । सातरका अथवा तजका काढा बनाकर पिलावे, अथवा इन दोनों औषधियोंके काढेकी पिचकारी लगानेसे भी दर्द बन्द हो जाता है । यदि दर्द बालक जननेके उपरान्त और रजस्वला होनेके बीचमें होता है वह भी उपरोक्त दोनों दवावोंकी पिचकारी लगानेसे जाता रहता है । जौका सत्तू खाना इस दर्दको नष्ट कर देता है जो दर्द गर्मीसे होता होय तो खब्बाजीका काढा पिलानेसे बन्द हो जाता है । और खब्बाजीके काढेकी पिचकारी गर्भाशयमें लगानेसे गर्मीका दर्द नष्ट हो जाता है । योनिमार्गमें चमेलीका तैल मलना हितकारी है और गर्भाशयके मुखपर कठिनताको भी लाभ पहुंचाता है । खशखाशकी छालका पानी पिलानेसे दर्दकी अधिकताको उसी समय नष्ट कर देता

है। परन्तु जबतक और दवासे काम चल सके तबतक इसको काममें न लावे, क्योंकि आगे चलकर यह रजोधर्मको रुक बन्द करता है। और उस समयमें रजके न निकलनेसे दर्द भी अधिक हो जाता है। आगे लिखा हुआ प्रयोग दर्दको तथा गर्भाशयके मुखकी कठोरताको लाभदायक है और रज तथा तरियोंको निकालती है। और गर्भाशयके घावको निर्मल करती है। उत्तम शहद १ भाग, गधीका व स्त्रीका दूध २ भाग, दोनोंको मिलाकर चिनगारियोंकी मृदु अग्निपर जो बहुत दहकती न होय रक्खे, जिससे दूधका धीरे २ शहदमें प्रवेश हो जाय जब दोनों हिलमिल जावें तब एक कपड़ा सूतका अथवा ऊनका भिगोकर योनिमार्गमें प्रवेश करे और गर्भाशयके मुखतक पहुंचा देवे। जिन स्त्रियोंका स्वभाव ऐसा है कि संभोगके करनेसे गर्भाशयका दर्द उत्पन्न हो जाता है वह इन्हीं प्रयोगोंसे निवृत्त हो जाता है।

मन्दासके रुक और गर्भाशयकी पीडाकी चिकित्साका प्रकरण समाप्त।

यूनानी तिब्बसे किसी स्त्रीको आपत्तिकालमें अपूर्ण गर्भ गिराने और बालक निकालनेकी चिकित्सा।

यह प्रकरण इस कारणसे लिखा जाता है कि यातो छोटी उमरकी स्त्रीको गर्भ रहजावे और बालक जननेके कष्टसे उसकी मृत्युका भय होवे कि यह स्त्री मर जावेगी। अथवा स्त्री किसी भयंकर रोगमें फँस रही होय कि गर्भकी स्थिति रहनेसे स्त्रीकी मृत्यु हो जावेगी और गर्भ गिरादेनेसे स्त्री बचजावेगी ऐसा निर्णय करलिया होय तो अवश्य गर्भको निकाल देना चाहिये। अथवा स्त्रीके गर्भाशयमें कोई रोग होवे कि गर्भके बढनेसे वह रोग बढनेकी व स्त्रीके मरनेकी संभावना होवे तो ऐसी दशाके निश्चय होनेपर गर्भको अवश्य गिरा देवे। चिकित्सकको उचित है कि विधवा व व्यभिचारिणी वेश्याओंका गर्भ कदापि न गिरावे। इस ग्रन्थका मुख्य प्रयोजन सद्गृहस्थ स्त्रियोंकी रक्षा और सन्तान उत्पन्न करके कुल वृद्धि करनेका है, यह प्रकरण भी हमने सद्गृहस्थ स्त्रियोंकी जानकी रक्षाके निमित्त ही लिखा है कि गर्भ रहनेसे उनकी जानकी जोखम दीखे तो रक्षा करना योग्य है। जानना चाहिये कि जबतक विशेष आवश्यकता न हो तो इस कार्यके करनेमें जल्दी न करे, मुख्यकर जो उसमें जान पडगई होय तो मराहुआ बालक निकालनेके प्रकरणमें अथवा झिल्ली निकालनेकी अवस्थामें जो कुछ लिखा गया है वही बहुत है और उससे लाभ पहुंचे तो कुछ क्रिया और प्रयोग नीचे दिये जाते हैं। कोमल कागजकी बत्ती बना कर गर्भाशयके मुखमें प्रवेश करनेसे उसी समयसे बालक निकलनेके चिह्न दीखने लगते हैं और २४ घंटेके अन्दर बालक निकल जाता है, मगर इस कागजकी बत्तीको अरंडीके तेल या इन्द्रायनके फलके गूदेके रसमें या बैलके पित्तेमें भिगोकर प्रवेश करना चाहिये। दूसरा प्रयोग हजार सन्दके बीजका खाना तथा योनिमेंसे लेकर योनिमार्ग और गर्भाशयके मुखतक दवाकी बत्ती या दवाओंका भीगाहुआ कपडा व फोहा रखना। निरजाका तेल कपडेमें लगाकर योनिमार्गमें गर्भाशयके मुखसे चिपटाकर रखना

बालकको गर्भसे बाहर निकालता है। (यह प्रयोग परीक्षित) है हींग, गंधापिरोजा, वखूरमायम इनको हमवजन लेकर पानीमें पीस कर पेट पर लगाना और कपडा भिगोकर योनिमार्गमें रखना गर्भको बाहर निकालता है। बहुतसे प्राचीन हकीमलोग कहते हैं कि जो स्त्री वखुरमरियम (व वखुरमायम दूसरा नाम है) पर पैर रखदेवे या भूलसे पैरके नीचे आजावे तो उस स्त्रीका गर्भ गिर जाता है। और इन्द्रायणके ताजे फल या पत्तोंका पानी निचोड कर गर्भाशयमें हुकना (पिचकारी) लगावे शीघ्र बालक निकल पडता है परीक्षित है। गाजवांकी जडका स्वरस गर्भाशयमें पहुंचावे तो उपरोक्त गुण करता है। और चूका घास १०॥ मासे पीसकर स्त्रीको कई दिवसतक खिलावे तो बालक निकल पडता है इसी प्रकार अफसन्तीन, पित्तपापडा, कई दिनतक १४ मासेकी मात्रासे खिलावे। (अन्य प्रयोग) हींग १॥। मासे तुतली सूखी हुई १०॥ मासे यह सब एक मात्रा है बारीक कूटकर देवदारुके काढेकेसाथ दोनों समय कई दिवसतक खिलावे तो तीन दिवसमें बालक निकल पडता है—(अत्यन्त लाभदायक सलाईकी विधि) नौसादर ३९ मासे, छरीला १०॥ मासे, छरीलाको बारीक पीसकर चूर्ण करलेवे पीछे नौसादरको उसके साथ पीस लेवे और इस अन्दाजसे पानी डाले कि दवा पतली न हो जावे किन्तु नौसादरका पानीके संयोगसे पानी हो जाता है। सो बत्ती बनाने लायक होवे उतना जलका संयोग करे, पीछे दोनोंको पीसकर छुहारेकी गुठलीके समान मोटी और छुहारेकी गुठलीसे लम्बी बत्ती बना सुखाकर एक शिरा गर्भाशयके मुखमें प्रवेश कर देवे सारीरात रखे और जांघोंको तकियापर रखके स्त्री सीधी सोती रहे। एक बत्ती गल जावे तो दूसरी रक्खे बालक बाहर निकल आवेगा। जिस स्त्रीकी प्रकृति गर्म और खुस्क होवे उसको ६३॥ मासे खतमी बारीक पीसकर ४० तोला शीतल जलमें मिलाकर पिलावे, बालक फिसलकर बाहर आ जावेगा। जब गर्भ निकालनेकी आवश्यकता पडे तो स्त्रीको अजीर्ण और विष्टम्भी भोजन न देवे और न कोई कब्ज करनेवाली दवा देवे। पेटपर वेदअंजीर व तिलीका तैल मले। चिकने शोरवा वगैरह हलके आहार खानेको देवे इसके बाद गर्भ बाहर निकलनेवाले प्रयोगोंका उपयोग करे, थोडासा सकमूनिया तुतलीके पानीमें पीस लेवे और कागजकी बत्तीपर लगाकर गर्भाशयके मुखमें प्रवेश करे तो गर्भ बाहर आ जाता है। और अटकी हुई झिल्ली भी इस प्रयोगसे निकल पडती है। जंगली पोदीना, खंगाली लकडी, तुर्की अगर, कडवी कूट, तज, अजवायन, बागका पोदीना, दोनामरुवा, नाकरुन, घासके बीज, मेथी, पहाडी गन्दना, काली झांप ऊदविलसां, अगर प्रत्येक समान भाग लेकर एक देग पानीमें पकावे और उसका काढा तैयार हो जावे जब सुहाते २ काढेमें स्त्रीको बैठाले। जब कि गर्भ निकल पडे इसके उपरान्त—गूगल, जूफा, हुर्मुल, सातर, अलेकुलवत्तम, राई इनमेंसे जो २ वस्तु जिस देशकालमें उस समय पर मिल सकें समान भाग लेकर कूटलेवे और इनका धूँआ गर्भाशयमें पहुंचावे जिससे कि रज जारी हो जाय और गाढा न होने पावे। अगर रज गाढा हो जावेगा तो स्त्री गर्भाशयमें किसी प्रकारका रोग उत्पन्न हो जाता है। कभी २ ऐसा होता है कि बालकको

निकालनेकी कोशिसमें अन्दर ही मर जाता है और उस वक्त ये चिह्न स्त्रीके शरीरमें मालूम होते हैं कि बालक पेटमें कडा हो जाय—और जब कि गर्भवती स्त्री करवट लेवे तब मालूम होता एक पत्थरके समान वस्तु पेटमें इधरसे उधर लुढकती है । और जीवितावस्थामें बालकके रहते जैसा पेट गर्म रहता वैसा गर्म नहीं रहता कुछ गर्मी घट जाती है और नाभि ठंडी हो जाती है और स्त्रीके स्तन दुर्बल और ढीले हो जाते हैं। नेत्रकी सफेदीमें स्याही मालूम होती है कभी ऐसा होता है कि कान सिर और नाक सफेदी लियेहुए दीखते हैं और होंठ लाल हो जाते हैं । ये चिह्न मालूम पडें तो समझ लो कि गर्भ निर्जीव है । इसके निकालनेकी कोशिस शीघ्रतासे करे, मृत बालक और झिल्लीको निकालनेवाला लेप—इन्द्रायणका गूदाकूट तुतलीके पत्र प्रत्येक २ तोला लेकर महीन पीस लेवे और बैलका पित्ता मिलाकर पेटपर. नाभिके नीचेसे लेकर पेडू और योनिके दोनों ओठोंपर लेप करे । जो २ प्रयोग मृत बालक निकालनेके प्रकरणमें लिखे गये हैं उनका प्रयोग इस मौकेपर करै । हम ऊपर लिख चुके हैं कि विना आवश्यकताके गर्भके निकालनेकी कोशिस कदापि न करे और उपरोक्त लक्षणोंवाली स्त्रियां होवें तो गर्भ निकालनेकी अपेक्षा गर्भ न रहे ऐसा वर्त्ताव करना ठीक है । कम उमरवाली व गर्भ रहनेसे जिसके मरनेका भय है अथवा किसीके गर्भाशयमें रोग होय या बालक जननेके कष्टसे जिसके मरनेका भय है. ऐसी स्त्रियां पुरुषके समागमसे ही बचती रहें तो अति उत्तम है । यदि खिच्चरका मूत्र लोहेका बुझा पानी पिलाया जावे तो कदापि गर्भ न रहे । और हाथीकी सूखी लीद शहदमें मिलाकर स्त्रीको खिलावे और हाथीकी लीदका पानी निचोड कर उसमें कपडा भिगोकर योनिमार्गमें रखनेसे कदापि गर्भ नहीं रहता । कोई तवीव कहते हैं कि जो पाषाणभेदका चूर्ण मेहदीमें मिलाकर स्त्रीके हाथ पैरमें लगावे तो गर्भ रहनेको रोकता है और रजको बन्द करता है । सबसे उत्तम उपाय यह है कि आजकल विलायती डाक्टरोंने एक रबरका यन्त्र बनाया है उसको स्त्रीके गर्भाशय पर पहनानेसे पुरुषका वीर्य्य गर्भाशयमें नहीं जाने पाता । यह यन्त्र अंगरेजी दवाफरोशोंकी प्रत्येक दुकान पर मिलता है (१। रुपयेसे लेकर २) तककी कीमतका आता है ।

यूनानी तिब्बसे कम उमरवाली व दुर्बल रोगी स्त्रियोंको गर्भ न रहनेका प्रकरण समाप्त ।

यूनानी तिब्बसे गर्भाशयके फट जानेकी चिकित्साका प्रकरण ।

इस रोगके उत्पन्न होनेके कितने ही कारण हैं मगर मुख्य २ कारण हैं यह बतलाकर उसका उपचार लिखा जाता है । प्रथम कारण यह है कि प्रसवके समय बालकके निकलनेके जोशसे अथवा मोटी झिल्ली स्वभावसे न फटती होय और दाईने हथियारसे फाडनेकी कोशिस की होय और कदाचित् गर्भाशयके मुखपर हथियारका असर पहुंच गया होय अथवा दाईका नखून आदि लगनेसे गर्भाशयका मुख फटगया होय । अथवा अन्दर खुस्की रहती होय और बालक पैदा होने समय दाईने तैल वगैरह वा चर्बीसे चिकना न किया होय तो भी उस वक्तमें गर्भाशयका मुख फट जाता है । कभी २ ऐसा भी

देखा गया है कि बडी पुरुषेन्द्रियवाला मनुष्य छोटी उमरकी स्त्रीके साथ संभोग करे और अपने शरीरसे जोशमें आनकर दबावे तो गर्भाशयका मुख (कमलमुख) दबावसे फट जाता है। इस रोगका चिह्न यह है कि हर समय नाभिसे नीचे दर्द रहता है स्त्रीमल त्यागनेको जोर करे तो दर्द रहता है सफरेमें अंगुली डाली जावे और दबाया जावे तो नाभिकी तर्फ आगेके भागमें दर्द माॡम होता है योनिमार्गमें अंगुली प्रवेश करके गर्भाशयके मुखपर फेरी जावे तो दर्द माॡम होगा । पुरुषसंभोगके समय अति पीडा और बेचैनी माॡम होती है और पुरुषेन्द्रिय रक्तसे भीगीहुई निकलती है, पुरुष संयोगके अनन्तर कितनेही घंटेतक विशेष पीडा बढ जाती है। अगर ऐसी दशा होय तो (नं० १३) का योनिविस्तारक नलिका यन्त्र डालकर देखनेसे माॡम हो सक्ता है कदाच इस यन्त्रके सहारे भी न दीखे तो स्त्रीको अन्धेरे मकानमें सीधी सुलावे और १३ नम्बरका यन्त्र उसके योनिमार्गमें प्रवेश करे और स्त्रीके शिरकी तर्फ एक बत्ती जलाकर रक्खे और एक साफ कांचका ऐना स्त्रीकी योनिके सामने लगावे कि ऐनेका प्रकाश गर्भाशयके मुखपर पडेगा और गर्भाशयके मुख तथा गर्दनके अन्दर जो कुछ खराबी होगी वह बखूबी देखनेमें आवेगी और माॡम होगा कि किस मुकामपर फटाव वा छिलाव किस सकलमें है। इसके बाद उसकी चिकित्साका उपचार करना योग्य है। इस रोगके वास्ते यूनानी तिब्बमें सबसे उत्तम दवा वासलीकूनकी मरहममें थोडीसी बतककी चर्बी, मुर्गेकी चर्बी और बनफशाका तैल मिलाकर साफ रुई व कोमल कपडा भिगोकर बच्चेदान (गर्भाशय) के मुखपर रक्खे, अगर जखम या फटाव गर्भाशयकी गर्दनके अन्दरकी तर्फ होय तो बत्ती बनाकर दवामें भिगोकर रक्खे। दूसरा प्रयोग—गौकी पिंडलीकी मजा (यूनानीमें इसको गूदा बोलते हैं) बनफशाका तैल और थोडी बारीक पिसीहुई राल मिलाकर तीनोंको जरा गर्म कर लेवे कि अच्छे प्रकारसे मिल जावे। और उपरोक्त प्रकारसे बत्ती फोहा या कपडा भिगोकर काममें लावे। सौसनका तैल, अलेकुल, अम्बात और थोडी राल मिलाकर उपरोक्त क्रियानुसार मिलाकर तैयार करे और ऊपर लिखी विधिके अनुसार काममें लावे। जिन स्त्रियोंको प्रथम पुरुष समागमके समय योनिमार्ग व योनिमुखकी झिल्ली परदा (योनिपटल) टूटनेसे तकलीफ पहुंचती है उसके लिये भी ये औषध लाभ पहुंचाता है और इनसे कदाच व्याधि निर्मूल न होवे तो ये दवा काममें लावे। गौकी पिंडलीकी मजा सफेद मोम बकरीके गुर्देकी चर्बी इन तीनोंको मिला लेवे और थोडासा बहुत बारीक पिसा हुआ संगजराहत मिलाकर काममें लावे। ऐसी हालतममें स्त्रीको उचित है कि—पुरुष समागम बिलकुल त्याग देवे और ऊँचे नीचे चढने उतरने भागने दौडनेसे बचती रहे, गर्म खुश्क चीजें न खावे दस्त पतला और साफ आवे इसका ध्यान रखे कठिन दस्त आनेसे गर्भाशयके मुखपर दबाव पडता है जखम फट जाता है इसलिये गुलाबका गुलकंद व इतरीफल मुलैयन थोडे दिनतक खाती रहे । व दूधके साथ ६ मासे आंवलेका चूर्ण खाया करे।

यूनानी तिब्बसे गर्भाशयके फटनेकी चिकित्साका प्रकरण समाप्त।

यूनानी तिब्बसे गर्भाशयकी सूखी खुजलीकी चिकित्साका प्रकरण।

इसका कारण यह है कि बालक जननेके बाद दाई आदिने दर्दकी शान्ति व अन्य किसीकी निवृत्तिके लिये व नफासके मवादको बन्द करनेके लिये कोई दूषित दवा अन्दर काममें ली होय अथवा प्रसवकी दशामें गर्म २ पदार्थ खिलाये जाते हैं, उनसे पित्त दोषकी तेजी आगई हो अथवा नमकीन चरपरी व खुश्क बादी करनेवाली चीजें खाई गई होयँ। कदाच स्त्रीके वीर्य्यमें तेजी और गर्मी आ गई होय इससे खुजली उत्पन्न हुई होय अगर ऐसा होय तो रजकी रंगतसे मालूम हो सक्ता है। कि कौनसा कारण है। क्योंकि बहुत समयतक वीर्य्यका न निकलना भी इस रोगके कारणभूत होनेका कारण समझा जाता है। कभी २ ऐसा देखा गया है कि यह खुजली अत्यन्त बढ जाती है इसकी तेजीकी दशामें स्त्रीको चैन नहीं पडती, स्त्रीकी शक्ति निर्बल पड जाती है। इस रोगवाली स्त्रीको जितना संभोग मिलसके उतनेसे संतोष नहीं होता किन्तु जितना संभोग विशेष किया जाय उतनी ही इच्छा विशेष बढती है इस कष्टसे स्त्री बडी ही व्याकुल हो जाती है। इलाज इसका यह है, जो स्त्रीका शरीर अधिक रक्तवाला होय तो फस्द कराके थो। २ रक्त दो वा तीन वक्त करके निकाल देवे, या जितने रक्तके निकालनेकी जरूरत समझी जावे उतना कम ज्यादा तबीब अपनी अकलके माफिक निकाले [illegible] कारण तबीबकी समझमें आया होय उसके अनुसार मलको निकालनेवाली [illegible]दवायां देनी उचित हैं। दवा कुछ मुलइयन और रेचक होवे, जैसे [illegible]फ, गुलाबके फूल, दाख, अनीसून, अमलतासका गूदा, छोटी हरड उन्नाव, गुलनीलोफर, मुलहटी, इत्यादिको समान भाग आवश्यकताके अनुसार मात्रासे काढा करके मिश्री मिलाकर कुछ दिनतक पिलाकर खराब दोषको निकाल देवे। (लगानेकी दवा) सफेद संदल, मामीसा, उस्सारह, लहय्युतीस, हरा धनिया, तुखमकुर्फा, तुखमकाहू इनको बारीक पीसकर गर्भाशयके मुखपर लेप करना और योनिमार्गमें रखना, गुलरोगन और बनफशाका तैल लगाना भी लाभ पहुंचाता है। नीचे लिखीहुई दवा इस रोगको विशेष परीक्षा की हुई है। पोदीनाके पत्र, अनारका छिलका, छिलीहुई मसूर इनको कूटकर अंगूरी शराब व अंगूरी सिर्केमें पकावे और इसमें कपडा भिगोकर गर्भाशयके मुखपर रक्खे। कदाचित्त यह खुजली योनिमार्ग और योनिमुखपर भी आ गई होवे तो यही उपाय करे, कामकी तेजी और वीर्य्यकी तेजीकी निवृत्तिके लिये शीतल दवाओंका इस्तेमाल करावे। जैसे तुखमकुर्फा, काहू, मगजखीरा, मुनक्का, केलेका पानी इत्यादि काममें लावे।

यूनानी तिब्बसे गर्भाशयकी सूखी खुजलीकी चिकित्साका प्रकरण एवं दूसरा भाग समाप्त।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, 'लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर' प्रेस, कल्याण-मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास, 'श्रीवेङ्कटेश्वर' स्टीम् प्रेस-मुम्बई.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ वन्ध्याकल्पद्रुमः ।

तृतीय भाग ।

डाक्टरी रजोदर्शन और गर्भप्रकरण ।

रजोदर्शन—यह गर्भाशयमेंसे निकलता हुआ एक प्रकार रक्तस्राव है जो कि बराबर प्रत्येक महीनेमें स्त्रीकी जननेन्द्रियकी मार्फत दीखता हुआ स्त्रीमें जहांतक प्रजोत्पत्ति करनेकी शक्ति रहती है तबतक बराबर नियमपूर्वक आता रहता है । इस नियत ऋतुस्रावके रक्तको अटकाव—अलग बैठना, ऋतुधर्म, स्त्रीधर्म, रजोदर्शन इत्यादि नामोंसे बोलते हैं । जब स्त्रीको प्रथम रजोदर्शन आता है तभीसे स्त्रीको पूर्ण युवावस्थाके आरम्भकी गणना की जाती है, प्रथम रजोदर्शनसे लेकर पीछे ३० । ३५ । ४० । और किसी स्त्रीको ४५ वर्षतककी उमर पर्य्यन्त रजोदर्शन टिकता है । रजोदर्शनके होनेके अनन्तरसे स्त्रीके शरीरमें आभ्यन्तर एक बडा ही परिवर्त्तन हो जाता है । इस कार्य्यके देखनेसे जाना जाता है कि कुदरतके नियमके अनुसार स्त्रीका मुख्य कर्त्तव्य कर्म इस संसारमें सन्तान उत्पन्न करनेका है । परन्तु जहां तक स्त्रीको रजोदर्शन नहीं आता वहांतक स्त्रीको गर्भका रहना कदापि संभव नहीं है । मुख्य करके गर्भ धारणके लिये रजोदर्शन होना चाहिये, इतनेसे ही गभ नहीं रहता किन्तु रजोदर्शन भी नियमपूर्वक नियत समय पर होना चाहिये । क्योंकि वन्ध्या स्त्रियोंको भी रजोदर्शन होता है परन्तु वह नियमपूर्वक नियत समय पर नहीं होता । इसलिये रजोदर्शन अनियत समयपर होनेके कारणोंसे दूर रहनेकी योग्य हिफाजत रखी जावे तो स्त्रीके वन्ध्या रहनेकी चिन्ता नहीं रहती, रजोदर्शन नियत समय पर होने लगे उसीवक्त स्त्रीका स्त्रीपन समझा जाता है । कन्या अवस्थामेंसे निकलकर स्त्री अवस्थामें प्राप्त होनेकी यह मुख्य निशानी है, इस प्रसंगपर स्त्रीका शरीर प्रफुल्लित होता है और स्त्रीके मनकी शक्ति बढती है और कितने ही शरीरके अङ्गोंका परिवर्त्तन होताहुआ नजर आता है, स्त्री १३ व १४ वर्षकी होय तब उसके शरीरके अन्दर ऋतुस्राव आनेका समय संभव समझा जाता है । रजोदर्शन स्त्रीरूपी मकानका स्तम्भ है, प्रत्येक वधूको सन्तानकी माता बननेका आधार इसी नियत रजोदर्शनके ऊपर रहता है । रजोदर्शनके समय जो प्रत्येक वधूकी हिफाजत यथार्थ रीतिपूर्वक न की जावे तो कितने ही रोगोंके भोगनेकी पुतली (मूर्ति) बन जाती हैं और वन्ध्या होनेका बडा दोष इसी रजोदर्शनके ऊपर आता

है, रजोदर्शनकी क्रियाका स्पष्टीकरण करनेमें कुछ विचार इस विषयका नीचे लिखे प्रमाणे करनेमें आता है ।

रजोदर्शन सम्बन्धि नियम ।

(१) रजोदर्शन प्रथम दीखनेकी आयु ।

(२) रजोदर्शन आनेसे प्रथमके चिह्न ।

(३) रजोदर्शनसे होताहुआ गर्भाशयका तथा शरीरका परिवर्त्तन ।

(४) रजोदर्शनका रक्तस्राव ।

(५) नियत समयपर होनेवाले रजोदर्शनके चिह्न ।

(६) गर्भ धारण होनेका संभव ।

(७) रजोदर्शन बन्द होनेका समय और उसके चिह्न ।

(८) ऋतुस्नाता स्त्रीकी हिफाजत ।

इन आठ नियमोंपर स्त्रीचिकित्सकको बराबर ध्यान देना चाहिये ।

(१) डाक्टरीसे रजोदर्शन दीखनेकी आयुका विचार ।

रजोदर्शन विशेष करके स्त्रीको १४ वें वर्ष आता है, हजाराम एकाद स्त्री ऐसी निकलेगी, जिसको १४ वर्षसे प्रथम रजोदर्शन आया होय । ऐसी कोई भी स्त्री नहीं निकलेगी, जिसको १० सालकी उमरमें रजोदर्शन आया होय । इतने कालमें मुझे भी कोई प्रमाण ऐसा नहीं मिला—इतना अवश्य देखनेमें आया है कि कितनी ही स्त्रियोंको १८ व २० सालमें रजोदर्शन नहीं आया और जब उनका विवाह हुआ और पति संयोगके अनन्तर रजोदर्शन देखनेमें आया (शीतप्रधान देशकी अपेक्षा गर्म देशकी रहनेवाली स्त्रियोंको रजोदर्शन पहिले ही आने लगता है और शीतप्रधान देशकी स्त्रियोंकी अपेक्षा गर्म देशकी स्त्रियोंको ऋतुस्रावका रक्त भी कुछ अधिक गिरता है, जिन स्त्रियोंको रजोदर्शन १४ वर्षकी उमरसे आने लगता है उनको बन्द भी जल्दी हो जाता है । उनकी जवानी ही कुल २० । २५ सालकी उमर पर्य्यन्त समझिये, इसके अनन्तर प्रौढा और ३० । ३५ की अवस्थामें रजोदर्शन बन्द होकर वृद्धा बन बैठती हैं । शीतप्रधान देश यूरोप, रूस, आदिकी स्त्रियोंको हम ६० वा ६५ वर्षकी उमरमें देखते हैं, तो जवान और हृष्टपुष्ट ३० वर्षकी उमरवालीसी दीख पडती हैं । एक देशी स्त्री ३० सालकी उमरवालीको उनके सामने खडा करके देखेंगे तो दोनोंकी उमर आपको समान दीखेगी । रजोधर्म शीघ्र छोटी उमरमें आनेका एक कारण यह भी है कि पारिश्रमी उद्योगी और गरीब लोगोंकी लडकियोंकी अपेक्षा बडे अमीर घरोंकी आरामसे बैठने व अच्छा पदार्थ खाने पीनेसे भी ऋतुधर्म छोटी उमरमें आ जाता है । सद्गृहस्थ महाशयोंको चाहिये कि विलासकी पुस्तकें अपनी कन्याओंको कदापि न पढने देवें और नाटक वगैरह कभी न दिखलावें । कन्यावस्थामें उनको पूर्ण

ब्रह्मचर्य्यसे रख ज्ञानोपदेश और बुद्धिकी उन्नति करनेवाली पुस्तकें कन्याओंको पढ़ा सुनावें, उपरोक्त कारणोंसे कन्याओंके मनमें: खराब असर उत्पन्न हो छोटी ही उमरमें उनको ऋतुधर्म आ जाता है । छोटे ग्राम निवासी स्त्रियां जो मोटा हलका आहार करती हैं उनकी अपेक्षा बडे शहरकी निवास करनेवाली और भारी खुराक खानेवाली लडकियोंको शीघ्र ऋतुधर्म आ जाता है । बडे २ डाक्टरोंका सिद्धान्त है कि कन्याओंको १४ वर्षकी आयुके उपरान्त रजोधर्म आना चाहिये । यही सिद्धान्त भारतवर्षीय प्राचीन वैद्योंका है, जो कि हजारों वर्ष प्रथम ही लिखकर रख गये हैं जैसा कि

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् । यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः । तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥ सुश्रुत ।

अर्थ—कन्याकी अवस्था १६ सालकी और कुमारकी अवस्था २५ सालकी होवे उस समय दोनोंका विवाह संस्कार होकर गर्भाधान क्रियामें प्रवृत्त होवे यदि कन्याकी अवस्थामें सोलह सालसे न्यून होवे और गर्भाधानमें प्रवृत्ति करे तो वह गर्भ कुक्षिमें ही नष्टभ्रष्ट वा शुष्क होकर स्रावित हो जाता है । पूर्ण समयतक गर्भाशयमें पोषण पाकर उत्पन्न नहीं होता कदाच उत्पन्न भी होय तो दीर्घ कालतक जीवित नहीं रहता, यदि जीवित भी रहे तो दुर्बलेन्द्रिय रहता है । इस कारण अति बाला स्त्रीमें गर्भाधान स्थापन कदापि न करना चाहिये । सोलह वर्षसे नीचेकी उमर कन्याओंकी अतिबाला है इस महानगरी मुम्बईमें हमने १४ सालतक प्रत्येक देशके मनुष्योंकी रीतिरिवाजका अनुभव किया है । कच्छी काठियावाडी और गुजरात पत्तनके लोगोंमें ऐसा खराब रिवाज है कि ६० । ६५ वर्षकी अवस्थापर्य्यन्त विवाह करते हैं इनमें ऐसा पुरुष हजारों पीछे एक ही निकलेगा जिसका एक ही विवाह हुआ होय, नहीं तो खाते पीते आसूदाहालतके सबही मनुष्य ६० । ६५ की अवस्थातक ३ । ४ । ५ । ६ विवाहतक करते हैं । १० वा ११ वर्षकी लडकीके साथ विवाह करके कन्याको उसी समय अपने घर ले जाते हैं । जोतिषने भी इस बातमें सहायता की है । तो यह कि जन्मपत्रीकी कुंडली १० । ११ वर्षकी लडकियोंकी इन ६० । ६५ वर्षके बुड्ढोंसे जोतिषी फलितके माननेवाले मिला देते हैं । दूसरे ज्योतिषाचार्य्य लोगोंने अपनी जीविकाके स्वार्थसे लोगोंके शिरपर भय खडा कर दिया है ।

अष्टवर्षाभवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी । दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च । त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥

अर्थ—कन्याकी आठवें वर्ष गौरी, नवमें वर्ष रोहिणी, दशवें वर्ष कन्या और इसके उपरान्त रजस्वला संज्ञा है। इसका प्रयोजन यही है कि जो १० वर्षके अन्दर विवाह न करे तो उस रजस्वला कन्याको देखकर उसके माता पिता और वडा भाई तीनों नरकमें जाते हैं। स्त्री पुरुषके शारीरकको न जाननेवाले स्वार्थी लोगोंने यहांतक अनर्थ किया है कि वैद्यकमें ग्रहाजुष्ट और धर्मशास्त्रमें नक्षत्र अपने स्वार्थके लिये श्लोक वनाकर प्राचीन ग्रन्थोंमें घुसेड दिये हैं। और फलितके माननेवाले जोतिषी वृद्धोंसे अधिक दक्षिणा लेकर १०। ११ वर्षकी कन्याकी जन्मपत्री मिला देते हैं, इन अविचारियोंने अपने स्वार्थके लिये इस देशको गारत कर दिया है। देशकी अधोगति होती जाती है, निरापराधिनी कन्याओंको ये जोतिषी डुवो देते हैं। मैंने परीक्षाके वास्ते विधवा और सुहागिन कई स्त्रियोंकी जन्मपत्री एकत्र करके कई ज्योतिषियोंको दिखलाई तो विधवाओंको सुहागिन और सुहागिनोंको विधवा वताने लगे यही इनकी जोतिषका फलित है। यह प्रकरण विरुद्ध विषय हमने इसलिये लिखा है कि अव विद्याकी उन्नति और सभ्यताका अभिमान भारतवर्षीय लोगोंमें कुछ २ उदय होने लगा है सो जन्मपत्री कुंडली अष्टवर्षा भवेद् गौरी इन सवको न मान करके अपनी कन्याओंको छोटी उमरमें न डवोवें, जो समय वैद्यक और डाक्टरोंसे स्त्री पुरुषोंके संयोगका ऊपर निश्चय हो चुका है उसीमें अपनी प्रिय पुत्रिओंका विधिपूर्वक प्राचीन रीतिसे विवाह संस्कार योग्य उमरवाले वरके साथ करें। जिससे स्त्री पुरुषोंकी तन्दुरुस्ती और विद्योन्नति परस्पर प्रीतिपूर्वक वलिष्ट सन्तानोंकी उत्पत्ति करें और गृहस्थाश्रमके सुखको भोगें।

(२) (रजोदर्शन आनेके प्रथम चिह्न) रजोदर्शन प्रथम ही दीखनेको है इसको क्रमानुसार विवरण दिखानेके प्रमाण तथा उसके चिह्नमें कितना परिवर्त्तन है, इसलिये उसकी सावधानीसे हिफाजत करनेकी आवश्यकता है। इस कारण उसके चिह्नोंके दो विभाग करनेमें आते हैं।

(१) रजोदर्शन प्रथम ही स्त्रीको आवें उसके पहलेके चिह्न।

(२) रजोदर्शन नियत कायदेसे आया होय तव रजोदर्शनके चिह्न प्रथम रजोदर्शन हुए पहिले जो चिह्न होते हैं वही चिह्न पीछेसे भी, दूसरा रजोदर्शन होनेके पहिले होते हैं। अन्तर इतना ही है कि प्रथम रजोदर्शनमें कुछ कष्ट स्त्रीको मालूम होता है कि यह पहले कभी उसको सहन नहीं करना पडा था। प्रथम रजोदर्शनमें कुछ चिह्न भी शक्त होते हैं, कारण लडकीकी वाल्यावस्थामें उन मर्मोंको कुछ काम नहीं करना पडा था। अव उनपर स्वाभाविक कुदरती नियमका काम करना पडा। प्रथमकी अपेक्षा दूसरे समयसे वह शक्त चिह्न कुछ कम हो जाते हैं। प्रथम रजोदर्शन

आनेके पीछे किसी स्त्रीको तो दूसरे समयका रजोदर्शन २८ वा ३० दिनमें बराबर समय पर आता है और किसीको इससे प्रथम ही आ जाता है। किसीको दो वा १॥ मास चढकर आता है और ४ । ६ वक्त ऐसी दशासे होकर फिर नियम पर २८ ३० दिवस बाद आने लगता है। ताकतवर शरीरवाली स्त्रीको प्रथम रजोदर्शन किस समय आवेगा इसके बतलानेको कोई जाहिरमें चिह्न नहीं दीखते। इतना अवश्य है स्तनोंमें ग्रन्थी पडजावे गर्भ अण्डमें कुछ पीडा होने लगे तो समझलो कि अब रजोदर्शन थोडे कालमें आनेवाला है। गर्भ अण्डमें कुछ २ पीडा इसलिये होती है कि वह फूटनेवाला है, इस प्रधान चिह्नसे स्त्री अनुमान कर शक्ती है कि अब एक दो दिवसमें रजोदर्शन आनेवाला ह। इसक सिवाय शरीरका परिवर्त्तन कुछ देखनेमें नहीं आता, जब रक्त आन लगे तव माल्रम होता है कि रजोदर्शन हो गया। किसी २ स्त्रीका स्वभाव ऐसा भी होता है कि रजोदर्शन आनेसे प्रथम उसकी कटिमें पीडा होने लगती है। पेडूपर भारीपन माल्रम होता है और पेडू फटा जाता है, शरीरके किसी भागमें गंभीर पीडा होती है। अथवा कमर पर कुछ वजन रखदिया होय, शरीरमें बेचैनी रहती है स्त्री सुस्त जान पडती है और थकापनसी माल्रम होती है। कामकाजमें चित्त नहीं लगता स्त्रीका चित्त पडे रहनेको चाहता है, स्त्रीका मन दर्दकी ओर रहता दे। स्तन कठिन हो जाते हैं, स्पर्श करनेसे पीडा माल्रम होती है। नेत्रके नीचेके पलकके नीचे काले रंगकी नस उठ आती हैं, कितनी ही स्त्रियोंके मस्तकमें दर्द रहता है रजोदर्शन आनेके समय मस्तक बडा भारी हो जाता है। किसी २ स्त्रीको (हिस्टीरिया) वातव्याधि, आधाशीशी तथा मस्तक पीडा इनमेंसे किसी न किसी व्याधिका उदय हो जाता है। परन्तु ये चिह्न सिर्फ निर्बल स्त्रियोंमें ही विशेष करके पाये जाते हैं। ऋतुस्रावका रक्त निकलना जारी हो जावे उस समय ये चिह्न निर्बल पड जाते हैं। कितनीही स्त्रियोंको ऋतुधर्म आनेके प्रथमसे ही दस्तकी कब्जीयत हो जाती है। और ऋतु आने पीछे नियत समयके दस्तसे एक दो दस्त अधिक लग जाते हैं। इस समय गर्भाशयमें रक्तका जमाव अधिक रहता है, इस कारणसे गर्भाशयका कद कुछ मोटा दीख पडता है। और आतडेके ऊपर कुछ दवाव पडता है इसका फल यह है कि स्त्रीको झाडा एक दो वक्त अधिक आता है और रजोदर्शन जारी होनेपर ये सब चिह्न भी नष्ट हो जाते हैं।

(३) रजोदर्शनसे होताहुआ गर्भाशय तथा शरीरका परिवर्त्तन ॥ स्त्रीके गर्भाशयमें स्त्री अण्डमें फलवाहिनी नाडियोंमें इस समय रक्तका जमाव अधिक होता है। रजोदर्शनके समय गर्भअण्डमेंसे स्त्री वीर्य परिपक्व होकर फूट निकलता है। जैसे किसी

रक्तवाही शिराका छेदन करनेसे रक्त निकलने लगता है, इसी माफिक स्त्री अण्ड फूटकर हर महीनेमें रक्त मिश्रित स्त्रीबीज निकलता है। यदि वह स्त्रीबीज पुरुषबीजसे मिलजावे तो गर्भ रहजाता है। और पुनः रजोदर्शन नहीं आता । यदि स्त्रीबीज और पुरुषवीर्यका संयोग नहीं हुआ तो गर्भ नहीं रहता है और पुनः रजोदर्शन नहीं आता, न स्त्री बीज फूटकर निकलता है, कन्या रहने पर स्त्रीके गर्भाशयका वजन जितना लघु आकृतिमें होता है सो स्त्रीधर्म आनेपर उससे अधिक हो जाता है और उसका आकारभी कुछ वढकर प्रफुल्लित होता है, । गर्भाशयका मुख प्रफुल्लित होकर खुल जाता है। इस प्रकारका परिवर्त्तन गर्भाशयमें होता है, उसी प्रकारका स्त्रीके शरीरमें भी परिवर्त्तन होता है। रजोदर्शन आनेके पूर्व स्त्रीका शरीर कन्यारूपमें दीखता था और वालिका उमरमें मुखपर भोलापन सीधापन दीखता था। परन्तु रजोदर्शन आनेके वाद शरीर पुष्ट और वृद्धिको प्राप्त होताहुआ दीखता है। शरीर गोलता और भराहुआ दीखने लगता है, शरीरके पृथक् २ भागोंमें चर्वीकी वृद्धि मालुम होती है, शरीर भारी होने लगता है। स्तन मोटे तथा हृष्टपुष्ट वनते हैं कमरका घिराव वढ जाता है वस्ती पिंजर अधिक वढता है, स्त्रीका मुख कमल भराहुआ दीखता है, अवतक भ्राता तथा पिताकी गोदीमें लिपटकर वातचीत करती थी परन्तु रजोदर्शन होते ही वह चपलता जो कुमारी अवस्थामें थी नष्ट हो गई और अव पुरुषमात्रसे लज्जा मानती है भ्राता तथा पितासे नेत्र मिलाकर भी वार्तालाप करनेमें शर्म मालुम होती है। प्रत्येक रीति भांतिमें लज्जा करने लगती है, यह शर्मरूपी भूषण शीलवती स्त्रियोंमें इस समय स्वभावसे ही उत्पन्न हो जाती है, जो धार्मिक पतिव्रता स्त्रियां हैं वे इस कुदरती भूषणको जीवनपर्यन्त नष्ट नहीं करतीं (कुलटाओंका कुछ प्रसंग नहीं) इस समय स्त्रीका मानसिक परिवर्तन भी अधिक स्पष्ट जान पडता है और परमात्माने स्त्रीको प्रजोत्पत्ति करनेका पराक्रम दिया है, सो भविष्यमें वह सन्तान उत्पत्ति करती है। इस व्यवहारके जो वर्त्ताव हैं उन सवका ज्ञान इस समय स्वभावसे ही हो जाता है। इस समय स्त्रीका मुख मंडल सव सूचना देने लगता है और वाल्यावस्थाका भोलापन निष्कपटता और खेलकूदकी वुद्धि अदृश्य हो जाती है।

रजोदर्शनका रक्तस्राव ।

(४) यह रक्तस्राव साधारण रीतिसे प्रत्येक महीनेके ३० दिवस अथवा २८ दिवसमें आता है, कितनी ही स्त्रियोंको चौवीस दिवसमें आनेका ही नियम वंध जाता है और प्रत्येक रजोदर्शनमें ३ से ५ दिवस पर्य्यन्त रक्तस्राव होता है यह रक्तस्राव किसी स्त्रीको दो दिवस अधिक होता है और पीछे कम हो जाता है। किसीको एक दिवस अधिक स्राव होकर पीछे कम पड जाता है, इसका रंग लाल होता है

परन्तु ज्यों ज्यों ऋतुस्रावके दिन व्यतीत होते जाते हैं त्यों त्यों रंगमें अन्तर पडता जाता है। आरम्भमें जो रक्त गाढा और लाल आता था वह पीछेसे पतला और फीकी रंगतका आने लगता है, शुद्ध रक्त जैसे कि हवा लगनेसे जमकर घनरूप हो जाता है वैसे वह रक्त नहीं जमता। कारण इसका यह है कि योनिका जो अम्ल श्लेष्म स्राव सदैव रहता है वह इस ऋतुस्रावके साथ मिश्रित है इसीसे रक्त जमता नहीं है। परन्तु जो ऋतुस्राव अत्यार्त्तवकी स्थितिसे अधिक रक्त निकलता होय तो इतने बडे भागपर स्वल्प अम्ल रसका असर नहीं होता और रक्त जमता भी नहीं है। परन्तु जहांतक रक्त रजोधर्मका जमता है वहांतक गर्भाधान रहना संभव नहीं है, किसी समय रजोधर्मका रक्त अधिक पडता है और किसी समय न्यून पडता है। साधारण रीतिसे ३ से ५ दिवसतक ४ औंस (१० तोला) रक्त पडता है। यदि इससे अधिक रक्त पडे तो स्त्रीको बडा कष्ट होता है।

(५) नियत समयपर रजोदर्शन आरम्भमें किसी बिरली ही स्त्रीको आता है। किसीको कुछ काल प्रथम और किसीको एक दो मास चढ़कर आता है, परन्तु आठ व दश समय ऐसा अनियत समयपर आकर पुनः २९ व ३० दिवसमें आने लगता है। यदि १० व १२ बार आकर नियत समयपर न आवे तो समझना कि गर्भ अण्ड, फलवाहिनी व गर्भाशयमें कुछ विकृति है परीक्षा करनेसे तीनों स्थलोंपर कुछ विकृति प्रगट होय तो उसका उपचार करे। यदि विकृति न होय तो समझलो कि स्त्रीके शरीरमें रक्तकी न्यूनता है और निर्बल है ऐसी दशामें रक्तोत्पादक द्रव्योंका सेवन कराना चाहिये।

(६) गर्भ धारण होनेकी संभावना—गर्भ धारणरूपी कर्म सदैव नियत समयपर ऋतुधर्म होनेके अनन्तर ही रहता है और नवीन स्त्रीको प्रथम रजोदर्शन प्राप्त होनेके अनन्तर तीन व चार सालके अन्दर गर्भ रह जाता है। परन्तु यह नियम सब स्त्री-मात्रके लिये नियत नहीं है, कितनी ही स्त्रियोंको इस अवधिके पीछे रहता है। देखनेमें भी यही आता है कि जिस स्त्रीके गर्भअण्ड फलवाहिनी गर्भाशयमें कुछ विकृति नहीं है और ऋतुधर्म नियत समय पर आने लगा है ऐसी सैकडा स्त्रीमेंसे अस्सी स्त्रियाँ अवश्य ही प्रथम ऋतुके आनेसे चार सालकी अवधिके अन्दर ही गर्भवती हो जाती हैं। ऋतुस्राव आनेके पीछे कितने दिवसमें गर्भ रहेगा—अथवा कितने दिवसमें रहना संभव है यह कुछ निश्चित नहीं कहा जाता। (आयुर्वेदके रचयिता प्राचीन वैद्योंने १६ दिवसकी अवधि कुछ दिवस काट छांटकर गर्भ रहनेकी निश्चित कर दी है) इतना तो कह सक्ते हैं कि पुरुष वीर्य्य आठ दिवस पर्य्यन्त गर्भाशयमें नहीं बिगडता और पुरुषवीर्य्य गर्भाशयमें पहुंचनेके आठ दिवस पर्य्यन्त भी स्त्रीबीज पुरुष-

वीर्यमें मिले तो गर्भ रहना संभव है । गर्भोत्पत्ति चाहे जिस समय होय परन्तु ऋतु-धर्म प्राप्त होनेके पीछे गर्भाशयका मुख जैसा प्रफुल्लित हो जाता है ऐसा ऋतुस्राव आनेसे प्रथम प्रफुल्लित नहीं रहता । ऋतुधर्म आनेके पीछे एक अठवाडेतक गर्भाशयका मुख इसी प्रकार प्रफुल्लित (खुला) हुआ रहता है और इस अवधिमें पुरुषवीर्य्य सरलतापूर्वक गर्भाशयमें प्रवेश कर सक्ता है । पुरुष वीर्य्यके साथ ही अथवा एक दो दिवसमें स्त्रीबीज भी उसमें जाकर मिल जावे तो अवश्य गर्भोत्पत्ति हो जाती है, कितने ही विद्वानोंका ऐसा मन्तव्य है कि ऋतुधर्म आनेको होय उसके प्रथम एक अठवाडेमें गर्भ रहना अधिक संभव है । परन्तु उस समय गर्भाशयका मुख विशेष प्रफुल्लित (खुला) हुआ नहीं रहता है । इस कारणसे पुरुषवीर्य्यको गर्भाशयमें प्रवेश करना असंभव है । कदाच उपरोक्त पक्षवाले विद्वानोंके कथनानुसार पुरुषवीर्य्य गर्भाशयमें दाखिल भी हो जावे और गर्भ भी रह जावे तो गर्भ रहनेबाद ऋतुधर्म नहीं आना चाहिये बन्द होना ही नियम संघटित है । गर्भ रह भी गया होय तो एक अठवाडेमें वह पुद्गलरूप बंधेज रूपमें नहीं हो सक्ता और जबतक गर्भपिन्ड बँधकर कठिन न होय तो संभव है कि कदाच ऋतुस्रावके रक्तप्रवाहमें बहकर गर्भाशयसे बाहर निकल जावेगा, कदाच गर्भ रहनेपर ऋतुस्रावका रक्त दर्शनमात्र ही दीखकर बन्द हो जावे तो शायद उपरोक्त पक्षका समर्थ हो जावे । लेकिन पुद्गलसे ऋतुधर्मका रक्त-स्राव होनेपर गर्भका गर्भाशयमें स्थिर रहना हमारी समझसे बाहर है । और हमतो कहते हैं कि एक अंशको त्यागकर यह पक्ष सर्वांशमें युक्तिशून्य है ।

दर्शन बन्द होनेका समय तथा चिह्न ।

निरन्तर ३० वर्षपर्यन्त रजोदर्शन तन्दुरुस्त स्त्रीको आता है पीछे स्वभावसे बन्द होने लगता है तेतालीससे पचास वर्षतक ऋतुस्राव दीखनेके पीछे (याने १२ व १४ वर्षकी उमरसे लेकर आना शुरू हुआ ४२ से ५० तक आनकर बन्द हो गया । किसीको ३० वर्षकी ही उमरमें बन्द हो जाता है) मगर इस देशकी स्त्रियोंको तीस वर्षतक जारी रहनेके बाद बन्द हो जाता है और शीतप्रधान देशकी स्त्रियोंको पांच सात वर्ष अधिक ठहरता है । इसके बन्द होनेसे यह साबित होता है कि अब स्त्री गर्भ धारण करनेमें सामर्थ्यहीन होगई है । जैसे किसी वृक्षपर प्रथमही पुष्प पीछे फल आने लगे । जबतक उस वृक्षमें फूल, फल देनेकी शक्ति स्थिर रही तबतक नियत समय पर बराबर फल फूल देता रहा । परन्तु कालान्तरमें अति प्राचीन होनेसे फूल फल आना बन्द हो गया तो समझलो कि कुदरती नियमके माफिक उस वृक्षमें जो पुष्प, फल आनेके तत्त्व थे वे निकल चुके, अब वह वृक्ष निष्फल हो गया । यही स्थिति स्त्रीकी जाननी चाहिये । गर्भवती होनेसे भी स्त्रीका रजोदर्शन बन्द हो जाता है ।

उमरके आधीन बन्द हुआ, या—गर्भकी स्थितिसे बन्द हुआ। इसमें कितना अन्तर है। गर्भाधान रहनेसे जो रजोदर्शन बन्द हुआ होय तो गर्भ रहनेके पीछेके जो चिह्न हैं वे प्रगट होने लगते हैं, जिनका कथन आगे किया जायगा और जो आयुके आधीन कुदरतक नियमके माफिक बन्द होय तो उसमें गर्भ रहनेके पीछेका एक भी चिह्न प्रगट नहीं होता। कुदरती नियमके नाफिक बन्द होता है तब नियत समयको त्यागकर अनियत समय पर रजोदर्शन आने लगता है और एक दो सालतक ऐसी स्थिति पकडता है कि किसी रजोदर्शनमें रक्त अधिक आता है और आठ नव दश दिवसतक ठहरता है तथा अत्यार्त्तवकेसे लक्षण दीख पडते हैं। किसी समय बहुत थोडा रक्तस्राव आता है और नियत समयकी अवधिको उल्लंघन करके अनियत समय-पर आता है, जब बिलकुल बन्द होनेके समीप पहुंचता है तब दर्शनमात्र ही रक्त दीख पडता है। और कभी २ किसी २ स्त्रीको २ व ३ मास चढकर आने लगता है। जिन स्त्रियोंको बन्द होनेकी अवधिके समीप अधिक रक्त निकलता है उनको बडा कष्ट सहन करना पडता है अधिक रक्त निकलनेसे स्त्रीलोग व मूर्ख दाई ऐसा बोलती हैं कि इसके शरीरमें गर्मी बढगई है वे जानकर मूर्ख वैद्य भा ऐसा ही बोल देते हैं—और शीतल उपचार करने लगते हैं। इससे स्त्रीकी कटिमें पीडा होने लगती है। और इस हालतमें कितनी ही स्त्रियोंकी नासिका तथा गुदद्वारसे भी रक्त आते देखा गया ह। लाल रंगके चांटे (दांफडे) भी शरीरमें दीख पडते हैं। कितनी ही स्त्रियोंके पेटमें चर्बीका जमाव अधिक हो पेटकी चमडी नीचेको लटक पडती हैं और दाबनेसे विशेष मोटी माऌम होती है। कितनी ही स्त्रियोंका पेट ऐसा बेडौल दीखता है कि छत्तीस व चालीस वर्षकी आयुमें पेट नीचेको लटक पडता है और ऋतुधर्म बन्द हो जाता है कदाच इस नियत समयसे पूर्व स्त्रीका ऋतुधर्म बन्द हा जावे तो समझना चाहिये कि उसको कुछ गुह्य मर्मोकी व्याधि है। उसका उपाय इस ग्रन्थके अनार्त्तव दोष प्रकरणमें कथन कर चुके हैं उसके अनुकूल उपचार करे और स्त्रीको हिफाजतसे रखे।

(८) (ऋतुस्नाता स्त्रीकी रक्षा) ऋतुस्नाता स्त्रियोंको आहार स्वच्छ और हलका स्निग्ध और शीघ्र पचनेवाला देना चाहिये, क्योंकि आहारका असर ऋतुपर अपना प्रवाह दिखाता है। शीतल ठंढा वासी वा भारी वायुकारक आहारके सेवनसे स्त्रीको अजीर्ण दोष उत्पन्न होता है, उदरमें अफरा उत्पन्न करता है इसी प्रकार अति गर्म अथवा गर्म मसाले संयुक्त आहारसे शरीरमें दाह उत्पन्न होता है इस हालतमें स्त्रीको खट्टा खारा तिक्त पदार्थ कभी न खाना चाहिये। जैसी हिफाजत किसी बडे घायल रोगी व बडे जखमवालेको रखी जाती है वैसी ही हिफाजत ऋतुस्नाता स्त्रीकी रखना

उचित है। कितनी ही बेसमझ निर्बुद्धि स्त्रियां इस हालतमें खटाई, तक्र, दधि, आंमका आचार, नीबू, अमली, खाँड आदि खाकर सक्त रोगमें फँस जाती हैं। उनको ज्वर खांसी शरीरमें वेदना और शरीरकी जकडन हिक्का (हिचकी) आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं, ऐसे हानिकारक आहारोंसे तथा जिह्वाके स्वादसे ऋतुस्नाता स्त्रियोंको निरन्तर बचना चाहिये। (किसी २ ऋतुस्नाता स्त्रीको हमने देखा है ऐसे विपरीत आहार विहारसे ऋतुस्राव एकदम बन्द हो स्त्रीको ज्वर उत्पन्न हो जाता है। मस्तक तथा कमरके बांसेमें सक्त पीडा होने लगती है और किसी २ स्त्रीको खींचातानीकी सी दशामें शरीर इठने लगता है और हाथ पैरोंमें वांयटे आने लगते हैं। हिचकी उत्पन्न हो जाती हैं उदरमें वायु कुपित रहता है, सो हम स्वयं अनुमत की हुई व्याधियोंसे सचेत करते हैं कि ऋतुधर्मके समय मिथ्याहार विहार शर्दीसे बचती रहे। कदाच उपरोक्त दशामें स्त्री फँसजावे तो उसका योग्य उपाय कर आगेके वास्ते सावधान रहना चाहिये। जो वे समझ स्त्रियां हैं उनको सचेत कर देना उचित है। ऋतुधर्मके समय दाल, भात, रोटी, पूडी, दूध, शाक आदि साधारण रीतिका आहार करना योग्य है, जिस आहारसे अजीर्ण होवे ऐसा आहार कदापि न करे, अधिक आहार भी न करे। खेल तमासे या भयानक वस्तुओंका दर्शन बुरे शब्दोंका सुनना कुरूप मनुष्यका दर्शन न करे इस ऋतुस्रावकी दशामें स्त्री प्रायः निर्बल हो जाती है परन्तु यह निर्बलता स्त्रीको मालूम नहीं होती। इस दशामें बहुतसी स्त्रियां दुग्धाहारसे विशेष परहेज करती हैं, परन्तु यह उनकी बडी भूल है। इस हालतमें जिन स्त्रियोंको दुग्ध प्राप्त होवे उनको अवश्य ही दुग्धाहार करना योग्य है। देशकालके माफिक पूर्ण वस्त्रसे शरीरको ढके हुए रखें.

इस भारतवर्षमें उच्च वर्णके लोगोंमें रजस्वला स्त्रीको चांडली धोवन चमकारी आदि संज्ञा बतलाते हैं और उनके स्पर्शसे छूँआछूत मानते हैं और शीतकालके मौसममें उनके ओढनेको पूर्ण वस्त्रभी नहीं देते और कितनीही स्त्रियां घरके एक कोनेमें जमीनपर पडी रहती हैं उनको शीतकालकी शक्तशर्दी बडा कष्ट पहुँचाती है। धर्मस्मृतियोंमें प्रायः उपरोक्त संज्ञाके वचन देखनेमें आते हैं परन्तु उन धर्माचार्योंका यह प्रयोजन नहीं है कि ऋतुस्नाता प्रयोजन स्त्रियोंको कष्ट पहुँचावें उनका प्रयोजन यही कि रक्त प्रवाहमें पुरुष स्त्रीसे सहवास न करे क्योंकि उस हालतमें सहवास करनेसे पुरुषवीर्य गर्भाशयमें ठहर नहीं सक्ता भय और ग्लानि वगैरह मनुष्य मानते नहीं इसी कारणसे ऋतुस्नाता स्त्रीकी नीचसंज्ञा उस हालतमें लिख दी है कि पुरुष ग्लानि मानकर सहवास न करे और छूँआछूतका प्रयोजन यह है कि उस हालतमें स्त्रीको परिश्रम करना विषम है सो छूआछूतके भयसे स्त्री किसी कामसे हाथ न लगावेगी यदि इस हालतमें

स्त्री चांडली हो जाती है तो पुनः द्विजाति होनेके वास्ते प्रायश्चित्त करते हमने किसीको नहीं देखा ॥ वोही स्त्रियां फिर प्राणप्रिये और प्राणसुन्दरी समझी जाती हैं। यह सब वर्त्ताव अनुचित है।

इस ऋतु धर्मकी दशामें स्त्रीको पूर्ण वस्त्रसे उसकी रक्षा करनी चाहिये और पृथिवी या चूनेकी जमीन पर कदापि न बैठे, चटाई चौकी व धुलनेवाली चारपाई पर बैठे, कारण इस हालतमें शर्दी लगनेसे ऋतुस्रावका रक्त बन्द हो जाता है और सर्दीसे रक्त जम जाता है गर्भाशय तथा गर्भ अण्डमें शोथ उत्पन्न हो जाता है। पेडू कटिमें शक्त पीडा उत्पन्न हो जाती है। शर्दीसे गर्भाशयकी प्रकृति विगड जाती है, गर्भ धारण करनेमें गर्भाशय असमर्थ हो जाता है। इसलिये ऋतुधर्म वाली स्त्रीको उचित है कि शीतल पवन और शर्दीसे बचती रहे, मकानकी वारी (खिडकी) में बैठकर अधिक वायुका सेवन न करे, जहां वायुके अधिक झकोरे लगते होवें वहां न सोवे बैठे। जिस जमीनमें शील शर्दी होवे वहां भी न बैठे सोवे कितनी ही स्त्रियोंकी ऋतुस्राव आनेके पूर्व और ऋतुस्राव शुरू होवे वहांतक गर्भ अण्डमें शक्त पीडा हो रक्त निकलनेके समय कमरमें, पेडूमें शक्त पीडा और फटन मालूम होती है। इस कष्टसे स्त्री ओंधा मुख किये पडी रहती है, इस समयपर स्त्रीकी विशेष हिफाजत रखना उचित है, कदाच गर्भाशयका कोई रोग हो तो उसका योग्य उपाय करना उचित है। क्योंकि जहांतक गर्भाशय रोगी रहेगा वहांतक गभ रहना संभव नहीं है। रोगी गर्भाशयमें कदाचित् गर्भ रह भी जावे तो गर्भपात होना संभव है। और गर्भपात होते कितनी ही स्त्रियोंको देखा गया है, कदाच गर्भपात नहीं भी होवे और पूर्ण दिवस व्यतीत करके बालक उत्पन्न होवे तो वह होते ही दो चार दिवसमें मर जाता है। यादि मरे भी नहीं तो यावत् जीवे तावत्काल रोगी रहे। इससे गर्भाशयके रोगवाली स्त्रीको गर्भाधान न रखनाही अच्छा है।

(गर्भाधान रहनेके लिये नीचे लिखे साधनोंकी आवश्यकता है। वह साधन आठ हैं। ये आठों साधनोंमेंसे एक साधनकी भी हानि होगी तो उसीको गर्भ धारणमें विघ्नरूप समझना चाहिये)

(१) स्त्रीवीर्य्य (बीज) नियत होना चाहिये और फलवाहिनी नलीके द्वारा उचित रीतिसे गर्भाशयमें पहुंचना चाहिये (२) गर्भाशयका अन्तर्पिण्ड ऐसा शुद्ध और बलवान् होना चाहिये कि वह स्त्रीबीज और पुरुष वीर्य्यको अपने आधारमें ग्रहण कर सके (३) कमलमुख (गर्भाशयका मुख) योग्य रीतिपर खुलाहुआ होना चाहिये, कि जिससे पुरुषवीर्य्य गर्भाशयके अन्तरपिण्डमें आसानीसे प्राप्त हो सके। (४) कमलमुख तथा गर्भाशय अपने कुदरती नियत स्थानपर स्थित होने चाहिये

(गर्भाशय किसी स्थानान्तरमें न होय । और गर्भाशयके मुखमें किसी प्रकारकी वक्रता न होय किन्तु योनिमार्गके सीधपर कमलमुख अपनी नियत दिशामें स्थित रहाहुआ होना चाहिये । (५) कमलमुखमें किसी प्रकारका चिकना पदार्थ न होय जो कि पुरुषवीर्य्यको गर्भाशयमें पहुंचानेसे प्रतिवन्ध करे । (६) गर्भाशयमेंसे अथवा योनि-मार्गमेंसे स्वाभाविक होताहुआ श्वेतस्राव इतना अधिक विकृतिवाला और अम्ल न होना चाहिये, जो पुरुषके वीर्य्य जन्तुओंको नष्ट भृष्ट करदेवे । (७) स्त्रीके तथा पुरुषके वीर्य्य जन्तु (स्पर्मेटोजून) पक्व होने चाहिये । (८) स्वाभाविक समयपर रजोदर्शनसे स्त्रीका गर्भाशय शुद्ध हो चुका होय रजोदर्शनकी दशामें तथा पछि कुछ विकृति गर्भाशयमें न होनी चाहिये ।

उपरोक्त आठ साधनोंका विशेष विवरण ।

(१) जो स्त्रीका गर्भअण्ड (अन्तःफल) यथार्थ रीतिसे प्रफुल्लित हुआ होय जिसमें स्त्रीबीज जन्तु नियमपूर्वक उत्पन्न होते होयँ और फलवाहिनी नलीके द्वारा गर्भाशयमें पहुंच जावें । इसकी विशेष विवेचना हम (गर्भ धारण होनेकी संभावना) के प्रकरणमें लिख चुके हैं वहां देखो । परन्तु प्रकरणवश इतना पुनः लिखना पडता है कि स्त्री गर्भअण्ड (अन्तःफल) में असंख्य स्त्रीबीज युवावस्थामें होते हैं । कितने ही बीज पक्व होते हैं, कितने ही अपक्व होते हैं; प्रत्येक बीज जैसे २ पक्व होता जाता है वह अन्तःफलके बीचमेंसे बाहरकी तर्फ आ जाता है, प्रत्येक मही-नेमें प्रत्येक बीज अपनी पूर्णावस्थाको पहुँचकर पक्व होकर अन्तःफलकी सपाटीपर रहते हैं, उस समय अन्तःफल, फलवाहिनी, नली गर्भाशय तीनों रक्तसे लबालब भरपूर रहते हैं । और आर्त्तवप्रवाह होता रहता है फलवाहिनीका गुच्छेदार शिरा जो अन्तःफलकी सपाटीके समीप लगा हुआ था उसीके द्वारा पक्व स्त्री बीज गर्भाशयमें आते हैं । किसी २ विद्वान्का ऐसा कथन है कि स्त्रीबीज रजोदर्शनके रक्तके साथ आते हैं किसीका कथन है कि रक्तप्रवाहसे प्रथमही आ जाते हैं । किसीका कथन है कि रक्तप्रवाह बन्द होय उसी दिन अथवा दूसरे दिन आते हैं, हमारी समझमें तीसरा पक्ष निशंक जान पडता है । दो पक्षोंमें जो शंका हैं उनको ऊपर (गर्भधारण होनेकी संभावना) में लिख चुके हैं । कदाच स्त्रीबीज गर्भाशयमें होय और पुरुषवीर्य्य गर्भा-शयमें न पहुंचा होय तो गर्भ रहना संभव नहीं है । पुरुषवीर्य्य गर्भाशयमें पहुंच जावे और वहांपर स्त्रीबीज न होय तो भी गर्भ रहना संभव नहीं है । गर्भाशयमें नर-मादा दोनोंके बीजका संयोग परस्पर होय दोनोंमेंसे किसी १ का बीज विकृत न हुआ होय उसी समय गर्भका रहना संभव है अन्यथा नहीं । वह समय ऋतुस्रावके पीछेका ही निशंक समझमें आता है । गर्भाशयमें स्त्रीबीज न आनेके ये कारण हैं कि अंतः-

फलकी अपूर्णता अथवा उसमें कुछ खामी, होवे वा अन्त:फल किसी रोगपीडित रहता होय ये तीनों कारण स्त्री बीजकी उत्पत्तिमें विघ्नरूप हो जाते हैं, कदाचित् फलवाहिनी नलीमें कुछ रोग होवे तो उसकी व्याधिके कारणसे स्त्री बीज नियत समयपर गर्भाशयमें नहीं आ सक्ता। अन्त:फलकी सपाटीपर जो फलवाहिनीका गुच्छेदार शिरा पडा रहता है वह मुरझा जाता है (बस्ती तथा स्त्रीकी गुह्येन्द्रियके शारीरकका प्रकरण देखो ९ से ९ तक फलवाहिनीका शिरा है आकृति ४ प्रथमाध्यायमें) रजोदर्शनके रक्तका स्त्रीगर्भ अण्डके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। नियत समयपर नियमपूर्वक रजोदर्शन आनेवाली स्त्रीका स्त्रीबीज नियमपूर्वक उपन्न होता रहता है। ऐसी स्त्रीको ऋतुस्राव होनेके पीछे स्त्री बीज और पुरुषवीर्यका संयोग होनेपर गर्भ रहना विशेष संभव है। जिनको लौकिकमें वन्ध्या स्त्री कहते हैं उनको प्राय: ऋतुविकृति संबन्धि रोग होते हैं, इससे स्त्रीबीज नियमपूर्वक यथासमय उत्पन्न नहीं होता। प्रत्येक वन्ध्या स्त्रीके रोगकी परीक्षा करनेके समय ऋतुसम्बन्धि रोगकी छानबीन पूर्ण रीतिसे मन लगाकर चिकित्सकको करनी चाहिये।

गर्भाशयका अन्तर्पिण्ड।

(२) कितने ही रोगोंसे विगड जाता है गर्भाशयके अन्तर्पिण्डका दीर्घ शोथ, गर्भाशयका अर्बुद, और श्वेत तन्तुमय ग्रन्थी, मस्सा, इत्यादि रोगोंसे तथा गर्भाशयके अन्तर्पिण्डमें तराई अधिक होनेसे गर्भाशयके अन्तर्पिण्डके मर्मस्थानसे ऐसे बिगड जाते हैं कि उनमें स्त्रीबीज व पुरुषवीर्य्य पहुँचा कि उसी समय दूषित होकर बिगड जाता है। कितने ही समय इस रोगसे अत्यार्त्तव भी हो जाता है और अत्यार्त्तवके रक्त प्रवाहके साथ स्त्रीबीज व पुरुषवीर्य बाहर निकल पडता है। और किसी स्त्रीको गर्भाशयके दीर्घशोथके कारणसे जो श्वेत स्राव होता है उससे भी स्त्रीबीज व पुरुषवीर्य्य गर्भाशयमें पहुँचकर दूषित हो जाता है॥ इसलिये गर्भाधान रहनेके लिये गर्भाशयका अन्तर्पिण्ड तन्दुरुस्त होना चाहिये और उसमें अतिशय करके रक्तका जमाव वा अन्य वस्तुकी विशेष तराई भी न होनी चाहिये। गर्भाशयके अन्दर किसी प्रकारका क्षत व छाला भी न होना चाहिये। गर्भाशयका रसपिण्ड भी सड न गया होय। इसी प्रकार गर्भाशयका अन्तर्पिण्ड कठिन न हो गया होय। और गर्भाशयके मर्मस्थान भी अपने स्वभावके विरुद्ध विगडे न होवें। ऐसे तन्दुरुस्त गर्भाशयमें स्त्रीबीज तथा पुरुष वीर्यका परस्पर संयोग होनेसे अवश्य गर्भ रहना संभव है॥

(३) कमलमुखका संकुचित होना। अथवा कमलमुखके आगे पटलका होना इस भी कमलमुख संकुचित हो जाता है, कमलमुखका संकुचित होना सन्तानोत्पत्ति बडा दोष है। और वन्ध्या दोषको स्थापन करनेका मुख्य कारण है।

(४) गर्भाशयमें स्वाभाविक समयानुसार, रक्तका संग्रह होता है और नियत समयपर वह निकल जाता है ऐसी रीतिके परिवर्त्तनसे, इसी प्रकार किसी दुष्ट ग्रन्थी आदिके होनेसे गर्भाशयके आकारमें घटा बढी होना संभव है। इससे गर्भाशय टेढा सीधा हो जाता है और उसके बंधन भी ढीले हो जाते हैं। इसी प्रकार स्त्रीका योनिप्रदेश जो विस्तृत है, उसमें गर्भाशयका स्थानान्तर होना विशेष संभव है, इस रीतिसे समस्त गर्भाशय निवृत्त हो जाता है, तब कमलमुखका भाग योनिप्रदेशके अन्तर्मुखके ऊपर होनेके बदले आडा टेढा पड जाता है इससे कमलमुख योनिमार्गके सीधमें रहना चाहिये था, जहांपर कि पुरुषेन्द्रियका आगमन होता है परन्तु आडा टेढा होनेसे गुदाके परदेकी तर्फ हो जाता है इससे पुरुषेन्द्रियमेंसे निकलाहुआ वीर्य्यस्राव गर्भाशयके मुखमें जाना चाहिये था, परन्तु कमलमुख और पुरुषेन्द्रियकी समान सीधमें संयोग न होनेसे नहीं जा सक्ता। यदि कमलमुख वक्र न होता तो सरलतापूर्वक गर्भाशयमें पुरुषवीर्य्य पहुँच गर्भ रह जाता, परन्तु कमलमुखकी वक्रता विघ्नरूप है। दूसरे सब प्रकारके गर्भाशयके स्थानान्तरोंकी अपेक्षा कमलमुखकी अग्रवक्रता वन्ध्या दोष स्थापनका बडा कारण है॥

(५) गर्भाशयका मुख यथार्थ खुला रहनेपर और योनिमार्गके साथ यथास्थान नियत सम्बन्ध रखनेपर तथा इसी प्रकार स्त्रीवीज नियत समय उत्पन्न होनेपर भी कमलमुखमें चिकने पदार्थका प्रतिबन्ध रूप होनेसे स्पर्मैंटोझून उसमें प्रवेश नहीं करसक्ता। और चिकना पदार्थ योनिमार्गसे बाहर आता है, जिसको श्वेत प्रदर कहते हैं, किसी समय गर्भाशयके अन्दर भी यह पदार्थ भराहुआ रहता है। इस पदार्थसे कमलमुख भराहुआ रहनेसे पुरुषवीर्य्य गर्भाशयके अन्दर पिण्डमें नहीं पहुँच सक्ता, पुरुष वीर्य्यसे उस चिकने पदार्थका संयोग होनेसे पुरुषवीर्य्यमें जो जन्तु हैं वे इस पदार्थके स्पर्शसे ही नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकारका चिकना पदार्थ गर्भाशय तथा कमलमुखमें दीर्घ शोथका एक प्रधान चिह्न है, इसीसे गर्भाधान नहीं रहता।

(६) गर्भाशयमेंसे तथा योनिमार्गमेंसे जो स्वाभाविक स्राव होता है वह अम्ल (खट्टा) होता है उससे पुरुष वीर्य्य जन्तुओंका संयोग होते ही वीर्य्यजन्तु नष्ट हो जाते हैं। यदि यह स्राव जिन स्त्रियोंको अधिक होता होय तो शीतल जल व आधा तोला फिटकरीका फूल ४० तोला जलमें मिलाकर योनिमार्गका प्रक्षालन करनेसे वह पदार्थ निकल जाता है, उस समय स्त्रीवीज तथा पुरुषवीर्य्यका संयोग होवे तो गर्भका रहना विशेष संभव है। जिन स्त्रियोंको इस सफेद स्रावकी व्याधि अधिकतासे होय उनको उचित है कि पुरुष समागमके पूर्व सैंधा नमक २॥ तोला और ३ मासे काष्टिक पुटास २५० तोला थोडा गर्म जल मिलाकर योनिमार्गमें पिचकारी लगानेसे

वह अम्लरस नष्ट हो जाता और जबतक अम्लरसका स्राव न होने पावे इस अवधिमें पुरुष वीर्य्य जावे तो उसके वीर्य्य जन्तुओंका नाश नहीं हो गर्भ रहना संभव है।

(७) (वीर्य्यजन्तु पक्क होनेकी आवश्यकता) पुरुष वीर्य्य जब २४ से २६ घंटे-पर्य्यन्त वीर्य्याशयमें रहे तब उस पुरुष वीर्य्यमें वीर्य्यजन्तु उत्पन्न होते हैं व स्त्रीसमागम करनेसे जो पुरुष वीर्य्य निकलता है उसमें निकल पडते हैं। इसके बाद २४ से २६ घंटेके अन्तरसे स्त्री समागम होगा तो वीर्य्यजन्तु उसमें अवश्य होयँगे, लेकिन जो लोग २४ घंटेके अन्दर कईबार स्त्रीसमागम करते हैं उनका वीर्य्यजन्तु हीन होता है, जन्तुहीन वीर्य्यसे गर्भ रहनेकी संभावना कदापि नहीं होती। इसलिये २४ घंटेमें कईबार स्त्रीसमागम करना निरर्थक है। (विशेष सूचना—हमारी रायमें स्त्रीसमागम तीसरे दिवस होना चाहिये, क्योंकि हर-रोजके समागमसे वीर्य्यजन्तु पक्क नहीं होते और हररोज समागम करनेवाले पुरुषोंके वीर्य्यमें नरजन्तु बहुतही कम रहते हैं। मादाजन्तु तथा नपुंसक जन्तु अधिक होते हैं नरजन्तुओंका शिर बडा होता है। मादाजन्तुओंकी अपेक्षा कुछ मोटे होते हैं, मादा वीर्य्यजन्तुओंका शिर छोटा होता है और नरजन्तुकी अपेक्षा कुछ छोटे और पतले होते हैं। इन दोनोंकी आकृतिके विरुद्ध तीसरे नपुंसक वीर्य्यजन्तु होते हैं, ये शिर-हीन और दोनों तर्फसे एक समान होते हैं। लडकोंकी १८ सालकी अवस्थासे प्रथम ये जन्तु पक्क नहीं होत। आयुर्वेदका सिद्धान्त है कि पुरुषका वीर्य्य अधिक होनेसे पुत्र आर स्त्रीका वीर्य्य अधिक होनेसे कन्याका जन्म होता है और स्त्रीपुरुषका सम वीर्य्य होनेसे नपुंसक सन्तानका जन्म होता है, सो यह सिद्धान्त सब वीर्य्यजन्तुके ऊपर ही समझा जाता है। पुरुष संज्ञक जन्तु पुरुषवीर्य्यमें अधिक होवे तो पुत्र और स्त्रीसंज्ञक जन्तु अधिक होवें तो कन्या और नपुंसक संज्ञक जन्तु अधिक होवें तो नपुंसक सन्तानका जन्म होता है। जो लोग स्त्रीके ऋतुस्रावके समयके पीछे ही स्त्री समागम करते हैं और ४।६ दिवस समागम करके ब्रह्मचर्य्यसे रहते हैं और फिर आगामी ऋतुधर्मके अन्तरका नियम रखते हैं उन लोगोंके वीर्य्यमें पक्क जन्तु और नर-जन्तुकी संख्या अधिक पाई जाती है। जो लोग स्त्री सहवासके व्यसनोंमें फँसे रहते हैं और दिन रैन इसी कृत्यमें लिप्त रहते हैं उनके वीर्य्यमें प्रथम तो जन्तु होते नहीं अगर होते भी हैं तो तीनोंकी सकलसे विरुद्ध और अति सूक्ष्म अपक्क होते हैं। वीर्य्यजन्तुओंके देखनेकी परीक्षा प्रणाली इस प्रकार है कि स्त्री पुरुषका समागम जिस रात्रिको हुआ होय उसके प्रातःकाल कमलमुखपर लगाहुआ श्वेत पदार्थ लेकर एक साफ कांचके टुकडे पर रखकर व चीना व कांचकी रकाबीमें रखकर सूक्ष्म दर्शक-यन्त्रसे देखा जावे तो वीर्य्यजन्तु दृष्टिगत होवेंगे। परन्तु जो स्त्री सहवास करके उसी

समय खडी हो जाती हैं और चलती फिरती हैं उनके कमलमुखपर वीर्य्य जन्तु नहीं रहते । पुरुषवीर्य्यके विशेप जन्तु सहवासके अन्तमें पुरुपके पृथक् होतेही जो वीर्य्य स्त्रीके योनिमार्गमेसे बाहरको निकल आता है । उसको कांचकी रकाबीम लेकर उसी समय सूक्ष्म दर्शकयन्त्रसे देखोगे तो अनेक पुरुप वीर्य्यजन्तु दृष्टिगत होंगे । परन्तु थोडे समयकी वायु लगनेसे ये जन्तु मृतक हो जाते हैं जिस पुरुपके वीर्य्य जन्तुओंकी परीक्षा करनी होय पक, अपक्क, पु० नपुंसक, मादाकी शकल देखनी होय तो इसी माफिक परीक्षासे देख सक्त हो, परन्तु परीक्षा करनेमें विशेप विलम्ब होगा तो जन्तु मर जावेंगे । या जिस स्त्रीके आगमनमार्गमें अधिक अम्ल श्वेत पदार्थ होगा उसके मिलनेसे भी जन्तु उसी समय नष्ट हो जाते हैं ।

(८) गर्भ धारणके लिये स्त्रीके रजोदर्शनकी विशेप आवश्यकता है जिस स्त्रीको ऋतुधर्म न आता होय अथवा जिसको किसी रोगके कारणसे ऋतुधर्म आना बन्द होगया होय अथवा उमरके आधीन होकर ऋतुस्राव बन्द हो गया होय ऐसी स्त्रियोंको गर्भ धारण नहीं हो सक्ता । इसके अतिरिक्त जिन स्त्रियोंका ऋतुस्राव नियत समयको त्यागकर अनियत समयपर आता होय उनको भी गर्भ रहना संभव नहीं है । शुद्ध रजोदर्शन जिनको नियत समय पर होता है उनही स्त्रियोंको गर्भ धारण करनेकी पूर्ण संभावना है । अब यह बात निश्चय होचुकी है कि गर्भ धारणके लिये ऊपर लिखे मुताबिक आठ साधन साङ्गोपाङ्ग होनेकी आवश्यकता है, स्त्रीके गर्भाशय, गर्भाण्ड, फलवाहिनीकी व्याधि आदि स्त्री रोग तथा वीर्य्यके रोग इत्यादिमेंसे एक साधनकी भी न्यूनता होगी तो गर्भ रहना संभव नहीं है ।

डाक्टरीसे गर्भाधान प्रकरण (प्रेगनन्सी) ।

रजोदर्शन अपने नियत समय पर आनेके बाद गर्भाधान रहना संभव है । हमने देखा है कि कितनी ही स्त्रियोंको प्रथम रजोदर्शन आनेके बाद ही गर्भाधान रह जाता है । परन्तु ऐसे गर्भसे उत्पन्न हुए बालक चिरजीवित नहीं रहते, यदि चिरजीवित भी कोई रहे तो अति दुर्बल और कमजोर होते हैं । जिन स्त्रियोंको एक दो साल रजोदर्शन होनेके अनन्तर गर्भाधान रहता है, उनके बालक अच्छे हृष्ट पुष्ट और निरोगी रहते हैं । क्योंकि इस अवधिमें स्त्रीकी आयु भी १६ सालके अनकरीबन् पहुँच जाती है और गर्भाशय भी अपनी पूर्ण वृद्धिको प्राप्त हो जाता है । और १६ सालकी उमरमें स्त्रीकी बाल्यावस्था नष्ट होकर युवावस्थाका आरम्भ हो जाता उसके समस्त धातु पुष्ट हो जाते हैं आयुर्वेदके प्राचीन वैद्योंने भी सोलह वर्षके उपरान्त ही गर्भ धारण करनेकी सामर्थ्य स्त्रीमें मानी है और गर्भ धारण करानेवाले पुरुषको २५ वर्षके उपरान्त ही वीर्य्यदान स्त्रीको देना चाहिये । १६ वर्षकी स्त्री और २५ वर्षका पुरुष ये

दोनों शारीरिक धातुओंकी समतावाले होते हैं, जैसा (कि पञ्चविंशेत्ततोवर्षे पुमान् नारी तु षोडशे। समत्वागतवीर्य्यौ तौ जानीयात्कुशलो भिषक्) सुश्रुत शारीरस्थान। सोलह सालसे न्यून उमरमें गभ धारण करना एक प्रकारका अनर्थ है, विचार और समझदार स्त्री पुरुषोंको अपने भविष्यका विचार करके गर्भाधानमें प्रवृत्ति करनी चाहिये। मरकर पुनः जन्म होना तो युक्ति शून्य माल्रम पडता है, परन्तु सन्तानरूपी पुर्नजन्म दम्पतिका प्रत्यक्ष प्रमाणसे हो जाता है, सो स्त्री और पुरुषको उचित है कि आरोग्य और बलवान् होकर सन्तानरूपी पुनर्जन्म भविष्यके सुखके हेतु करना योग्य है। अव गर्भाधानके विषयको समझानेके लिये उसके चिह्नोंको जाननेकी आवश्यकता है। विशेष करके गर्भाधानका साधारण निश्चय सब लोग कर सक्ते हैं, परन्तु नियमानुसार समझनेके लिये गर्भाधानका विषय ३ अंशमें विभाग करके दिखलाया जाता है।

प्रथम गर्भकी स्थिति रहे वहांसे लेकर चार मासपर्यन्तके लक्षण दिख लाये जाते हैं। इस विषयका प्रथम परिवर्त्तन रक्तके सम्बन्धमें माल्रम पडता है, किसी स्त्रीको गर्भ रहते ही रोमांच खडे हो जाते हैं, प्रथम शरीरमेंसे तरंग और फुरहरीसी आन कर रोमांच हो जाते हैं। जिस दिवस गर्भकी स्थिति होय उसी समयसे स्त्रीका मुखमंडल परिवर्त्तन (तबदील) हो जाता है। नेत्रोंके आसपासमें जरा काली परिधि उत्पन्न हो जाती है। चेहरा मन्द तथा शरीर कृश हो जाता है। नाडीकी गति कुछ २ शीघ्रगामी हो जाती है। शरीरका रक्त कई दर्जे पतला होकर रक्ततामें कमी हो जाती है। (फीब्रनि) वढता है योनिके अन्दरका भाग जरा सुर्ख हो जाता है। कमलमुख जरा प्रफुल्लित नरम और स्निग्ध हो जाता है। रजोदर्शन बन्द हो जाता है। गर्भाधानके ये चिह्न मुख्यतौरपर सर्व मान्य समझे जाते हैं। परन्तु इन चिह्नोंके लिये भी कितने ही अपवाद हैं, कितने ही समय ऐसा उदाहरण प्रत्यक्षमें आया है कि स्त्रीको निश्चय गर्भ होनेपर भी ऋतुस्रावका रक्त निकलते देखा गया है। इसी प्रकार दूसरी तर्फसे गर्भाशय और स्त्री अण्डकी व्याधि तथा दूसरे कितने ही रोगोंमें गर्भाधानके सम्बन्धके सिवाय ऋतुधर्मका रक्तस्राव बन्द रहता है और दस्तानका समय न होनेपर भी गर्भ रहता है। ऐसा भी प्रमाण मिल सक्ता है, जैसे कि वालक जन्मनेके पीछे थोडे महीनेतक रजोदर्शन नहीं आता और इसी अवधिमें दूसरा गर्भ रहते देखा गया है। इससे उपरोक्त चिह्न भ्रमयुक्त हैं (नहीं २ डाक्टर साहब ये चिह्न भी ठीक हैं और इस प्रकारके गर्भका रहना भी ठीक है) अगर आपलोगोंको विश्वास नहीं है तो इसी अध्यायके वैद्यक गर्भप्रकरणमें देखो भारतवर्षके प्राचीन वैद्य सुश्रुतने कई हजार वर्ष पूर्व ही ऐसी स्त्रियोंकी परीक्षा करके (अदृष्ट पुष्पवती संज्ञा, बांध दी है) ऐसी स्त्रियोंको रजोदर्श-

नका रक्त नहीं आता मगर स्त्रीबीज गर्भाशयमें दाखिल हो पुरुषबीजसे संयोग होनेपर गर्भाधान रह जाता है । ऐसी कई स्त्री हमारे देखनेमें आई हैं कि रजोदर्शन न होनेपर भी गर्भाधान रह गया है ।

डाक्टरीसे गर्भधारणके चिह्न ।

(१) रजोदर्शनका बन्द होना (२) जी मचलाना और वमन होना (३) मुखसे थूक व लारका निकलना (४) स्तनोंकी वृद्धि होना और स्पर्श करनेसे दर्द मालूम होय (५) स्तनोंके अग्रभागपर श्यामता आना (६) स्तनोंमें दुग्धकी उत्पत्ति (७) भावाभाव (८) बालकका पेटमें फरकना (९) पेटकी वृद्धि होना (१०) नाभिके खड्डेका ऊपरको उठना (११) पेटकी नसोंका ऊपर उठ आना (१२) हित भोजनसे भी अरुचि (१३) मूत्रका वारम्बार आना (१४) किसी समय शरीरका रूप प्रफुल्लित दीखे और किसी समय शरीर दुर्बल और मुखमंडल मलीन दीखे । ये उपरोक्त चिह्न साधारण रीतिसे सब स्त्रियोंको होते हैं । इनके शिवाय कितनी ही स्त्रियोंको खास चिह्न अपनी आदतके माफिक होते हैं । जैसे किसीकी दाढमें पीडा हो जाती है, किसीकी आँखें उठ आती हैं, किसीके पैर वा सांथल सूज आती है, किसकि शिरके बाल उखडने लगते हैं, किसीके शरीरका कोई भाग वायुसे पीडित हो जाता है, किसीके शरीरमें खुजली आती है इत्यादि चिह्न प्रत्येक स्त्रीकी प्रकृतिके अनुसार अपवादरूप समझे जाते हैं ।

उल्टी (वमन) अथवा खाली उल्टी ये गर्भाधानका एक सामान्य चिह्न है । गर्भाधानवाली स्त्रीको प्रातःकाल उठते ही जी मिचलाता है, मुखमेंसे थूक व लार बहती हुई, उल्टी आने लगती है, किसीको गर्भ धारण करनेके १ महीनेके अन्दर और किसीको दूसरे व तीसरे महीनेमें उल्टी आती हैं । विशेष करके अधिक स्त्रियोंको गर्भ रहनेके ४ व ६ अठवाडे पीछे ही यह उपद्रव होने लगता है और चौथे व पांचवें महीनेतक रहता है । कितनी ही स्त्रियोंको जल्दी शुरू हो अधिक समयपर्यन्त रहती है । किसी २ स्त्रीको विशेष शक्त उल्टी होती है, कितने ही दिवस पर्यन्त आहार पेटमें बिलकुल नहीं ठहरना और ऐसी दशामें अन्तेक़ दर्जे लाचारीके साथ गर्भपात करनेकी चेष्टा करनी पडती है । क्षुधा किसी समय अधिक लगती किसी समय आहारके ऊपरसे मन हट जाता है । कितने ही समय अमक्ष्य वस्तुओंपर मन चलता है, इस समयकी स्वभावजन्य वमनका कुछ उपाय करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि २।३।४ मासपर्यन्त यह दशा स्वभावसे ही बन्द हो जाती है । यदि वमनसे स्त्री अधिक परेशान होय तो कुछ मृदु उपाय करना उचित है, परन्तु किसी २ स्त्रीकी वमन तो किसी भी उपायसे बन्द नहीं होती । जो वमन दूसरे रोगसे होता है तथा

गर्भिणीकी उल्टीमें कितना अन्तर है जब किसी मनुष्यको मस्तिष्ककी खराबीसे अथवा जठराग्निकी खराबीसे उल्टी होती है तो उल्टी होनेसे उस व्याधिका जोश कम हो जाता है। कितने ही समय ऐसा होता है कि उल्टी बन्द हुई कि वह व्याधि निर्मूल हो जाती हैं। गर्भिणी स्त्रीकी उल्टी अधिक समय पर्यन्त चलती है यदि दूसरे रोगसे गर्भिणी स्त्रीके समान उल्टी आती होय तो वह रोगी मरणके आसरेपर पहुँच जावे। परन्तु गर्भिणीको इतना बडा कष्ट जान नहीं पडता, उसको बराबर सहन करते चली जाती है। जिन स्त्रियोंको गर्भवती होनेपर उल्टी अधिक कष्ट पहुंचाती है उनको प्रसवके समय कम कष्ट मालूम होता है। लेकिन एक उल्टी आनेसे ही गर्भका निश्चय नहीं होता क्योंकि ऊपर कथन किये रोगोंसे भी उल्टी आने लगती है। उल्टीके साथ और भी कारण रूप चिह्न देखनेमें आवें और रजोदर्शन भी बन्द हो जावे उसवक्त निश्चय गर्भाधान समझा जाता है। जिन स्त्रियोंको एक समय गर्भ रहा होय और गर्भ सम्बन्धि जो २ उपद्रव हुए होयँ उनको वह बखूबी दूसरे वक्तके गर्भपर पहचान सक्ती हैं कि ये उपद्रव प्रथमके गर्भपर मुझे हो चुके हैं। किसी २ स्त्रीको गर्भ रहनेके पीछे गर्म जलके समान अनेक समय मूत्र त्यागनेकी हाजत होती है, किसीको अतीसारके माफिक दस्त बारम्बार जानेका रोग हो जाता है। परन्तु इस दशामें भी विशेप करके मलावरोध विशेष देखनेमे आता है। कितनी ही स्त्रियोंका स्वभाव बदलजाता है किसीका स्वभाव चिडचिडानेका हो जाता है उनसें कुछ हितकी बात कही जाय तो बुरी तरहसे चिढने लगती हैं। किसीका स्वभाव रंजीदा और फिकरमंद हो जाता है, कोई २ स्त्री ऐसी शान्त स्वभाव हो जाती है जैसे संसार त्यागी योगीश्वरोंका स्वभाव हो जाता है। कितने ही समय यह परीक्षा पूर्णरीतिसे पास हो चुकी है कि गर्भाधानवाली स्त्रीका मूत्र दो तीन दिवस रोक कर रख छोडा जाय तो चौथे दिवस देखने पर उसमें (कीस्टीन) नामका एक जातिका पदार्थ क्षारके माफिक बँध जाता है। इसको शारीरिक विद्याके जाननेवाले विद्वान् गर्भाधानकी पूर्णरूपसे भ्रम रहित निशानी मानते हैं। यह क्षारके माफिक पदार्थ चर्बीके समान होता है, गर्भ रहनेके पीछेसे यह चिह्न दीखता है कि स्त्रीके मुखमेंसे थूक (लार) इस माफिक बहने लगती है जैसे कि किसी मनुष्यको उपदंशकी निवृत्तिके लिये पारद व भिलावाका प्रयोग दिया गया है और उसका मुख आ गया होय यही हाल किसी स्त्रीका देखनेमें आता है। यह चिह्न कितनी ही स्त्रियोंको तो थोडे दिवस चलकर बंद हो जाता है और कितनी ही स्त्रियोंको अधिक समयतक चलता है। किसी स्त्रीको ऐसा होता है कि पांच सात दिवस पर्यन्त जी मचलाना और उल्टी लगातार चलती है

और पीछे बन्द हो जाती है, इसके बन्द होनेसे मुखमें थूँक अधिक आने लगता है और जब थूकका आना बन्द होता है तो जी मचलाना और उल्टी पुनः शुरू हो जाती है । उल्टी बन्द होने पर थूक शुरू हो जाता है । स्त्री सारा दिन इतना थूकती है कि थूकते २ स्त्री हैरान हो जाती है । विशेपता यह है कि मुखमें किसी प्रकारका शोथ छाला व पकाव नहीं दीखता दाँतोंके मसूडे सब ज्योंकेत्यों आरोग्य दखिते हैं । जिह्वा व तालुमें किसी प्रकारका पाक नहीं दीखता । यह गर्भ रहनेका एक चिह्न समझा जाता है ।

(२) दूसरे विभागमें चौथे महीनेसे लेकर नव महीनेतकके चिह्नोंका समावेश होता है । स्तनके अन्दर कितना ही परिवर्त्तन होता है, रजोदर्शन बन्द होनेके दूसरे व तीसरे महीनेसे स्तनकी स्वाभाविक स्थितिमें परिवर्त्तन होने लगता है स्तन मोटे कठिन और भरेहुए दीखते हैं उनमें थोडा २ दर्द होने लगता है । उनके अन्दर गाँठें दीख पडती हैं और हाथसे स्पर्श किया जाय तो स्त्रीको पीडा मालूम होती है । स्पर्शको सहन नहीं कर सक्ती उसमें शोथ उत्पन्न होनेके माफिक पीडा होती है, शूलसा मालूम पडता है जैसे २ स्तन मोटा व फूला हुआ दीखता है तैसे २ उसके ऊपर काली नसें स्पष्टरूपसे दीखने लगती हैं । ऊपरकी त्वचा तन जाती है और उसके ऊपर शुभ्र रेखा पडती हैं, स्तनका अग्र भाग जैसे दिवस चढते हैं वैसे ही अधिक मोटा और काला हो जाता है । स्तनके चारों तर्फके भागसे नसें उठकर मध्य-भागमें सब मिलती होयँ ऐसा दीख पडता है । स्तन मुखके चारों तर्फ २० से ३० तक वारीक कुछ श्यामता लिये गुलावी रंगके दाने उत्पन्न हो जाते हैं । इनको विन्दु उपडना भी वोलते हैं । धीरे २ स्तन मुखके आसपासका सब भाग श्याम वर्णका हो जाता है यह श्यामता आरम्भमें कुछ कम होती है परन्तु पीछे विशेप श्याम-वर्ण हो जाती है । यह श्याम भाग स्तनके दूसरे भागोंसे कुछ विशेप पोला मालूम पडता है उसके ऊपर अंगुलीको पोरुआ रखकर दवानेसे ऐसा मालूम होता है कि चर्बीका भाग पिघल कर पतला हो गया है । स्तनका और भाग सब कठिन स्तनके ऊपर पसीना आया करता है इससे स्त्रीकी चोली भीग जाती है । स्तनकी इतनी उन्नतावस्थाको देखकर ऐसा अनुमान होता है कि इस प्रसंग पर शरीरके और भागोंकी अपेक्षा-स्तन अधिक परिश्रममें लगेहुए हैं और है भी ठीक कि बालकके पैदा होनेके अनन्तरकी पोपण सामग्रीके वास्ते मेहनत कररहे हैं । जैसे २ गर्भाधानके दिवस चढते जाते हैं तैसे २ स्तनकी स्थितिका परिवर्त्तन विशेपतासे होता जाता है । स्तनको दावनेसे थोडा पानी झिरता है और एक दो व तीन मास बाद दूध चिकना-ईवाला निकलता दीख पडता है । स्तनके उपरोक्त परिवर्त्तनसे गर्भ रहनेका निश्चय हो

जाता है। परन्तु इसमें भी दूषण आता है किसी २ स्त्रीको गर्भ होनेपर भी स्तनादिक चिह्नकी उन्नति बिलकुल देखनेमें नहीं आती दूसरे गर्भाशयके रोग व जरायुकी व्याधिसे भी गर्भका सम्बन्ध न होनेपर स्तनादिक चिह्न उपरोक्त प्रमाणानुसार उन्नत जान पडते हैं। कितने ही समय जिस स्त्रीके स्तनोंमें दूध नहीं था और ऐसी स्त्री दूसरेके बालकको अन्तःकरणकी प्रीतिसे प्यार करे अपने स्तन उसके मुखसे दबाने लगे तो थोडे दिवसमें उसके स्तनोंमेंसे दूध निकलता देखा गया है। इस समय पर किसी २ स्त्रीको चक्कर आने लगते हैं अथवा आंखोंके आगे अंधियारी आनेकी आदत होती है चौथे महीनेमें जब गर्भाशय वस्तीके बाहर ऊपर पेटमें निकलकर आता है तब यह हालत विशेष होती है। गर्भ रहता है जबीसे कमलका मुख बन्द हो जाता है प्रथमके दो महीनेमें गर्भाशय जरा नीचे उतरा होय ऐसा जान पडता है और इसके पीछे ऊँचा चढता जाता है गर्भाशयका कद बढता जाता है उस समय कमलका भाग योनि गर्भाशयकी (गर्दन) ऊपर चढकर विस्तृत होकर गर्भाशयके साथ मिलजाता है। पेट मोटा दीखने लगता है। चौथे महीनेके सुमारमें गर्भाशय बस्ती (पेल्विस) मेंसे पेटके अन्दर आता है। पांचवें महीनेमें बस्तीसे ऊपर और नाभिके नीचेके आंतरडामें रहता है। छठे महीनेमें नाभितक पहुंचता है और नाभिको आगेकी तर्फ खींचता है। सातवें महीनेमें गर्भाशय नाभिसे ऊपर चढता है और आठवें महीनेमें कलेजेके नजदीक पहुँचता है नवमें महीनेमें ठेठ कलेजे पर्य्यन्त पहुँच जाता है और नवमें महीनेके अन्तके पक्षमें जरा नीचे उतरकर आगेको धसकता है इस समयपर गर्भाशय गोल अंडाकार हो जाता है किसीके पेटमें जोडले दो बालक होयँ तो पेट अधिक बडा दीखता है और आकारमें भी कुछ फेर पडता है पांचवां मास पूर्ण होनेपर बालक पेटमें फरकने लगता है। इसका विशेष बयान नीचे लिखा जायगा।

आकृति नं० ९९ देखो।

चार पांच महीनेका गर्भ इस स्थितिमें होता है और गर्भाशय तथा उसके अन्दर बढती हुई बालककी स्थिति इस आकृतिके माफिक रहती है। पांचवे महीनेसे बालक पेटमें फरकता है उल्टी तथा थुकथुकीकी पीडामेंसे स्त्री इस समय पर मुक्त हो जाती है, गर्भस्थ बालककी इस स्थितिको (चैतन्योत्पत्ति) कहते हैं। गर्भमें जीव पडगया ऐसा स्त्री जन मान लेती हैं, जिन स्त्रियोंके प्रथम बालक उत्पन्न हो चुका है, बालकके फरकनेका अनुभव करचुकी हैं उनको तो यह बालक फरकना पूर्णरूपसे गर्भका निश्चय करा देता है। परन्तु कितनी ही मूर्ख स्त्रियोंको गर्भ नहीं रहा है तथा अपने शरीरकी हालत जाननेका भी विचार नहीं रखती हैं उनको वे बालक फरकनेकी क्रिया वायु रोगसे फरकना मानकर समझ लेती हैं कि पेटमें वायु फरकता है। इसी प्रकार पांचवे मासमें बालक

फरकनेकी क्रियाको चैतन्योत्पत्ति मान लेना भ्रमरूप है, क्योंकि जिस समयसे गर्भ रहा है उसी समयसे जीव है, प्रत्युत इसके पूर्व स्त्रीबीज तथा पुरुषवीर्य्य दोनोंमें जीव था या नहीं था, तो गर्भकी वृद्धि क्यों हुई । अचेतन मुरदार पदार्थकी वृद्धि नहीं होती जैसे कि गुलाबके वृक्षमें सुगन्धि नहीं होती किन्तु जब पुष्पावस्थाकी स्थिति होती है उस समय सुगन्धि माळूम पडती है । वटके बारीक बीजमें जड शाखा पत्र फल जटा सब उस अणुमात्रमें विद्यमान् थे परन्तु प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आते, जब उस बीजका वृक्षरूप परिणाम हो जाता है: तो सब प्रत्यक्ष दीखने लगते हैं । इसी प्रकार स्त्री पुरुषके बीजमें जीव और बालकके हाथ पैर कान नासिका नेत्र अस्थि और सब इन्द्रियोंकी आकृति विद्यमान् थी लेकिन छुपीहुई थी, जब पुरुषवीर्य्यका संयोग स्त्रीबीजसे गर्भाशयमें हुआ तो सब आङ्गोपाङ्ग बनकर कुदरती नियमके माफिक मनुष्य आकृति दीखने लगी । (जो गुण कार्य्यमें होते हैं वे कारणमें विद्यमान् पूर्व ही) रहते हैं, ५ महीनेकी अवधितक गर्भस्थ बालक बहुत छोटा था ५ महीने बाद वह अपनी गर्भ निवासकी आधी अवधि पूर्ण करके गतिमान हो गया । इतने समयतक बालक बहुत छोटा होनेसे उसकी गति स्त्रीको माळूम नहीं होती थी अब उसकी गति माळूम होने लग गई । कितने ही समय बालक पन्द्रह दिनसे प्रथम ही फडकता है कभी १५ दिनसे १ व दो दिवस पीछे फडकता है । गाफिल स्त्रीको बालक फडकनेकी गति ७ वें महीनेतक खबर नहीं पडती । आरम्भमें बालक फडकता है जब होसियार स्त्रीको भी बहुत ध्यान देनेसे माळूम पडता है । लेकिन सातवें महीनेसे तो बालक पेटमें उछलता कूदता होय ऐसा जान पडता है । स्त्रीके पेटके ऊपर हाथ रखनेसे गर्भस्थ बालक एक बगलसे दूसरी बगलको सरक जाता है, ऐसा देखनेवालेको हाथको स्पर्श ज्ञान होता है इसी प्रकार पेटकी चमडीके ऊपर दृष्टि देनेसे पेटकी चमडी उछलती माळूम होती है । जैसे २ बालक अधिक फडकता है तैसे २ उसका शरीर बल पकडता जाता है और अधिक मोटा होता है, आठवें महीनेमें यह साफ माळूम होगा कि पेटके अमुक ठिकानेपर बालकका मस्तक है अमुक ठिकानेपर हाथ पैर हैं । पांचवें महीनेके पीछे (बालटमेंट) नामककी एक निशानी जान पडती है इसकी विधि इस प्रकारसे है कि गर्भवती स्त्रीको खडी करके उसकी योनिमें तर्जनी अंगुली प्रवेश करके गर्भाशयके मुखपर पोरुआ रक्खे और ऊपरको आहस्तेसे गर्भाशयके मुखपर टक्कर मारे कि इससे गर्भाशयके मुखपरसे कोई भारी वजनदार पदार्थ ऊपरको हट जाता है और थोडी ही देरमें फिर आनकर गर्भाशयके मुखपर बैठ जाता है । यह निशानी निश्चयपूर्वक गर्भाधान रहनेकी सूचक है, यह वजनदार पदार्थ जो ऊपरको हट गया था और फिर नीचे गभार्शयके मुखकी तर्फ

सरकता हुआ आ गया इसको पानीमें तैरता हुआ गर्भ समझना, अन्तके महीनेमें पानी कम हो जाता है फिर यह निशानी जाहर नहीं होती; दूसरा कारण यह भी है कि गर्भ भी बहुत वजनदार हो जाता है । स्टेथासकोपयन्त्र (श्रवणनली) स्त्रीके उदरपर लगाके. अन्दरके शब्दकी परीक्षा करनेसे दो प्रकारकी ध्वनि सुननेमें आती है एक तो ओर (जरायु) की गतिकी ध्वनि दूसरी गर्भस्थ बालकके हाड (रक्ताशयकी ध्वनि सुननेमें आती है) यह ध्वनि पांचवें महीनेके अन्तमें सुन पडती है । ओर (जरायु) की ध्वनि मन्द गर्जना ऐसी सुनी जाती है जैसे कि जिस नदीका जल पत्थरोंसे टकराता है और उसके उछलनेकी गर्जना होती है व समुद्रकी तरंगोंकी गर्जना होती है और दूरस्थ मनुष्यके सुननेमें आती है । अथवा दूरसे चलती हुई घोडागाडीका शब्द सुनाई देता होय । यह ध्वनि पेडूकी दाहिनी वा वामी बाजूपर सुनाई देती है और कितनेही समय नाभिके समीप सुनाई देती है और कितनेही समय गर्भाशयके ऊपरके भागमें सुनाई देती है । यह ध्वनि जरायुके अन्दर गर्भके पोषणके लिये जो रुधिरका आवागमन होता है उससे उत्पन्न होती है । और गर्भाशयके जिस भागमें जरायु (अमरा) चिपटी हुई होय उस स्थलपर इसकी ध्वनि अधिक स्पष्ट सुनाई देती है । कितने ही समय बिलकुल सुननेमें नहीं आती । कदाचित् गर्भाशय किसी व्याधिकी कोई भी ग्रन्थी होवे तो उससे भी ऐसी ध्वनि निकलती है । अथवा शिराके ऊपर दवाव पडनेसे भी ऐसी ध्वनि सुनाई पडती है । रक्ताशय (हाड) की ध्वनि भी पांचवें महीनेके पीछे सुनाई देती है । प्रथम यह ध्वनि मंद होती है पीछे जैसे जैसे गर्भके दिवस बढते जाते हैं तैसे स्पष्टतासे सुनाई देती है । इस गतिकी आवाज छोटी घडीके टिकटिकारेके समान प्रत्येक मिनिटमें एक सौ चालीस बार सुनाई देती है । यह ध्वनि पेडूके दाहिने व वामे बाजूपर विशेष करके अमरा (जरायु) की ध्वनिके सामनेकी तर्फ सुनाई देती है । और पेडूके वामें भागकी तर्फ विशेष करके सुनाई देती है । कितने ही समय मध्य भागमें भी सुनाई देती है । और ऐसा होय तब गर्भकी स्वाभाविक स्थिति सर्वथा सरल नहीं रहती है, अब जो दोनों तर्फ रक्ताशयकी ध्वनि स्पष्टतासे सुनाई देती होय और एक ही तर्फ न होय तो जानना कि इस गर्भवतीके गर्भाशयमें दो बालक हैं इसमें कुछ संदेह नहीं । किसी-समय गर्भस्थ बालक निर्बल होय अथवा गर्भाशयमें बालकके चारों तर्फ जो पानी रहता है वह विशेष होय तो यह ध्वनि कम सुनाई देती है, अथवा किसी समय बिलकुल सुनाई नहीं देती । परन्तु जब रक्ताशयकी ध्वनि स्पष्टतापूर्वक सुननेमें आवे इसके पीछे गर्भाधान है इसके विषयमें कुछ संशय नहीं रहता गर्भाधानकी निशानियोंमेंसे यह एक उत्तम प्रामाणिक निशानी है ।

भावाऽभाव ये चिह्न गर्भवती स्त्रीको तीसरेसे चौथे पांचवें महीनेतक होता है, इसीको वैद्यक आयुर्वेदमें (दौहृद) कहते हैं यह चिह्न किसी स्त्रीको एक मास प्रथम वा किसीको एक २ मास पीछे दीखता है, इस समयपर गर्भवती स्त्रीका मन अनेक प्रकारकी खाद्य अखाद्य वस्तुओंके खानेके वास्ते चलता है और स्त्रीकी वृत्ति ऐसी २ वस्तुओंपर चलती है कि स्त्रीके मुखसे उस वस्तुका नाम सुनकर सुननेवालेको हँसी और नफरत आती है । गर्भरहित स्थितिमें जिन वस्तुओंकी इच्छा कदापि स्त्री नहीं करती मगर इस स्थितिमें उसके मनकी वृत्ति विलकुल खाद्य पदार्थोंपर विचारशून्य हो जाता है । जिन वस्तुओंसे अजीर्ण कोष्टबद्ध या वमन उत्पन्न होता है ऐसी वस्तुओंको खानेकी चेष्टा होती है, किसी २ समय एक ही वस्तुपर मन चलता है । अवशेष वस्तुसे विलकुल घृणा होती है, आहारकी पृथक् पृथक् वस्तुओंपर स्त्रीकी वृत्ति खिचती है, इसके सिवाय कितनी ही मूर्ख स्त्रियोंकी वृत्ति राख, कोयला ठीकरी, मट्टी कंकर आदि खानेको चलती है । खट्टी या वातल वस्तु खानेको जिनका मन चलता है वे इस मौकेपर अमली, वेर, नींबू आदि खाती हैं, ऐसी चीजोंका नाम सुनते ही स्त्रियोंके मुखमें पानी आ जाता है । जिन चीजोंमें कुछ भी स्वाद व गुण सुगन्धि नहीं है, परन्तु इस मौकेपर गर्भवती स्त्रीका इन चीजोंपर भाव होय तो वे चीजें उसको स्वादिष्ट और सुगन्धित माळूम होती हैं । ठीकरी, कोयला, मट्टी, राख, कंकरी इनमें किसी प्रकारका रस व सुगन्धि नहीं है, परन्तु इस मौकेपर इन वस्तुओंमें भी स्वादिष्ट और सुगन्धि माळूम होती है, ऐसी स्त्रियोंके लिये इस मुम्बईमें मुलतानी मिट्टीको भूनकर प्रत्येक चवेना वेचनेवाले अपनी दूकानपर तैयार रखते हैं और गर्भवती स्त्रियां कोट्याधीशोंकी गृहणी इस चीजको खरीद कर लाती हैं या नोकरसे मँगाकर खाती हैं । इस अवस्थामें किसी स्त्रीका मन वहुतसे जेवर पहनने पर चलता है किसीका अच्छे २ कपडे पहननेपर चलता है, किसीका मन बालकोंके साथ खेलनेको चलता है, किसीका मंन इधर उधरकी बहुतसी बातें करनेको चलता है । इस भावाऽभाव (दौहृद) होनेका कारण मस्तिष्ककी परिवर्त्तन अवस्था है, गर्भाशय तथा मस्तिष्कके ज्ञान तन्तुओंमें परस्पर अति समीपताका सम्बन्ध रहता है । इस कारणसे उसका असर मस्तकमें भी होता है । कितने ही समय मगजके ऊपर इतनी शक्त असर होती है कि किसी वस्तुके ऊपर उसका चित्त जम जावे तो पागलकी तरह उसकी प्राप्तिका यत्न करती है । पूर्व लिख आये हैं कि पेटमें गर्भकी स्थिति कहांतक असर करती है, जलंदर और वातोदर रोगको त्यागकर पेटकी इतनी वृद्धि स्त्रीके गर्भाधानसेही होती है और हरकोई उसके पेटको देखकर कह सक्ता है कि स्त्री गर्भवती है ।

आकृति नं० ५६ देखो ।

गभाशयमें ओर जरायुका स्थल और गर्भकी स्थिति बालकको बाहर रखकर उसकी स्थिति दिखलाई है नाल पृथक् दाखता है आंवल पृथक् है ।

गर्भाधानके सर्वचिह्न इस वक्त मिलाकर देखिये तो इस प्रमाणे होते हैं, रजोदर्शन बन्द हो जाता है । स्तनादि चिह्न विशेप स्पष्ट जान पडते हैं, उल्टी, अरुचि, शरीरके किसी भागमें दर्दका चस्क आदि चिह्न विशेष करके पांचवे महीनेसे बंद हो जाते हैं, गर्भाशयसे पेट मोटा अण्डाकार हो जाता है आर पेट कठिन माल्रम होता है । गर्भस्थ बालकका रक्ताशय तथा जरायुकी ध्वनि सुनाई देती है । वालोटमेंट स्पष्ट नहीं जान पडता गर्भ हिलता है, सो हाथके स्पर्शसे माल्रम होता है तथा कानसे भी सुननेमें आता है योनिका रंग लाल और कुछ काला दीख पडता है । कमलमुखको मल तथा प्रफुल्लित लगता है गर्भाशयके मुखके ऊपर बालकका मस्तक कठिन ऐसा अंगुलीके स्पर्शसे माल्रम होता है । गर्भाधानकी मुख्य निशानी रक्ताशयकी ध्वनि है—और गर्भका फरकना (वालेटमेन्ट) तथा स्तनादि आदि चिह्न हैं ।

डा० से गर्भिणी स्त्रीकी रक्षणविधि ।

गर्भिणी स्त्रीको उचित है कि अपने आहार विहारकी सावधानी विशेष ध्यानसे रख भारी आहार तथा अजीर्ण करनेवाली वस्तु कदापि न खावे । साथही विशेष गरिष्ट मिष्ठान्न भी न खावे, कितनी ही मूर्ख स्त्रियोंके मुखसे हमने सुना है कि गर्भवती स्त्री दो जीवोंसे है सो दुगुण आहार दोनोंके लिये करना चाहिये । यह कथन भ्रमरूप है, गर्भाधान कालमें तथा गर्भ रहनेके आरम्भमें स्त्रियोंको प्राय: उल्टीका माद्दा पैदा होता है उस वक्तमें भारी और अधिक आहार करनेसे ज्वर उत्पन्न हो जाता है । ऐसी दशामें गर्भवतीको हलका आहार ही लेना योग्य है, जो स्त्री गर्भावस्थामें आरोग्य रहती है उसको प्रसवके समय अधिक कष्ट नहीं माल्रम पडता । गर्भवती स्त्रीको अजीर्ण व अतीसार रोग उत्पन्न हो जावे तो गर्भपात होना संभव है । इसी प्रकार गर्भिणी स्त्रीको अन्य रोग सतावें तो गर्भस्थ बालक तन्दुरुस्त नहीं रहता, किन्तु अतिकमजोर पैदा हो उसको जावन पर्य्यन्त रोग सताया करते हैं । अजीर्ण होनेसे मस्तक दुखता है इससे उल्टीके रोगको विशेष सहायता मिलती है और उल्टीका उपद्रव स्त्रीके शरीरको अधिक निर्बल कर देता है । गर्भवती स्त्रीको शीतल वासी सडाबूसा आहार कदापि न करना चाहिये, इसके सेवनसे पेटमें वायुकी वृद्धि हो दर्दका चस्का उठ खडा होता है । अधिक मिरच व तैल खटाईवाले आहारोंको कदापि न करे, तैलके पदार्थ तथा खटाई खानेसे खांसीका रोग उत्पन्न हो खांसनेके समय बालकको झटका पहुंचता है, और किसी समय खांसीका रोग इतना शक्त हो जाता है कि रात्रिके समय निद्रा लेना

दुसवार हो जाता है। अधिक खांसनेसे उल्टी होने लगती है, मिथ्या आहार विहार सेवन करनेसे खाली स्त्रीकी अपेक्षा गर्भिणी स्त्री शीघ्र रोगी हो जाती है, इसलिये गर्भिणी स्त्रीको अच्छीतरहसे पच सके उतना हलका और हित आहार खाना चाहिये। पीछेके महीने याने नवमें मासमें स्त्रीको क्षुधा अधिक लगती है और इस अन्तके महीनेमें गर्भस्थ बालक भी बडा हो जाता है, इसलिये स्त्रीको अधिक पोषण पहुंचानेकी आवश्यकता है। इस समयमें स्त्री अधिक आहार कर सक्ती है और कियाहुआ आहार पच सक्ता है, परन्तु आहार हलका और पौष्टिक परिमित मात्रासे करना उचित है। जिस प्रकार गर्भिणी स्त्रीको उपवास करनेसे हानि पहुंचती है उसी प्रकार अधिक और भारी आहार करनेसे नुकसान पहुंचता है। बालक गर्भमें फरकने लगे इसके पीछे स्त्रीको उपवास बिलकुल नहीं करना चाहिये, उपवास करनेस बालकके पोषणमें कमी पहुंचती है, और पोषणमें कमी पहुंचनेसे बालक निर्बल हो जाता है। और बालकका फडकना बन्द हो जाता है जिस दिवस गर्भिणी स्त्री यथारुचि पौष्टिक आहार करती है उस दिवस गर्भ खब फडकता है और उपवास करनेसे गर्भका फडकना वन्द हो जाता है। जब बालकको पोषण नहीं पहुंचता तो वह प्रथम तडफडाता है और पीछे खामोस होकर गर्भाशयक किसी भागमें निर्बलताक साथ स्थिर हो जाता है। विषम आसन हचका लगानेवाली सवारी बोझा उठाना भयंकर शब्द भागना दौडना चिल्लाना कूदना इनकी शक्त मनाई गर्भिणी स्त्रीको कर देनी चाहिये।

गर्भवतियोंके पालन करनेयोग्य नियम।

(१) गर्भवती स्त्रीको दस्त साफ आना चाहिये कोष्ठ बद्ध (कब्जियत) होनेसे विशेष हानि पहुंचनेकी संभावना होती है अगर दस्तकी कब्जियत होय तो १ औंस अरंडीका तैल साढे सात तोला गर्म दूधमें मिलाकर पिलादेवे, जिससे उसका मलाशय शुद्ध हो जावे। चाहे सोंफ १ तोला, द्राख १ तोला, गुलाबके फूल १ तोला, अनीसून ६ मासे इनका काढा करके मिश्री मिलाकर पिलावे इससे एक व दो दस्त हो जावेंगे। इसके सिवाय दूसरी दवाका तेज जुलाब कदापि न देवे बहुत दस्त आनेसे गर्भपात हो जाता है।

(२) गर्भवती स्त्रियोंको जो रोग होवे उसका उपचार यथासाध्य करना उचित है। इस देशमें प्रायः ऐसा रवाज देखा जाता है कि गर्भवती स्त्रीको रोग होवे तो औषध नहीं देते और न कुछ उपाय करते हैं, यदि कोई कडी छाती करके वैद्यराजको भी बुलावे तो नाडी देखकर वैद्यराज भी अपना मूर्ख पन प्रगट कर बैठते हैं और कहन लगते हैं कि गंगामाई श्रीठाकुरजी महाराज खैर करे, दो जीवकी रक्षा करे ऐसी हालतमें दवा देनेकी तो नहीं जचती—आयुर्वेदमें गर्भवतीके

प्रत्येक रोगकी चिकित्साके उपचार लिखे हैं, सो होसियार समझदार वैद्य व डाक्टरको बुलाकर गार्भिणके प्रत्येक रोगकी चिकित्सा करनी योग्य है। मूर्ख स्त्रियों व मूर्ख वैद्योंके कहनेसे निरोपाय होकर स्त्रीके रक्षकोंको न बैठना चाहिये। हजारों स्त्रियां गर्भकी दशामें बीमार होकर बिन उपाय प्राण त्याग देती हैं और दो जीवोंका घात होता है, सो ऐसा करना मूर्खोंका काम है समझदार सभ्योंका नहीं। गर्भवती स्त्रियोंकी चिकित्सामें इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि कोई ऐसी औषध उनको न खिलाई जावे जिसके सबबसे उनका गर्भ गिरनेका भय होय अथवा गर्भ गिरजावे।

(३) गर्भवती स्त्रीको उचित है कि ऐसा आहार न करे कि जिससे उसके पेटमें रोग उत्पन्न होवे और कोष्ट बिगड अतिसार व आमातीसार (पेचिस) व मलकी ग्रन्थी पडजावें और मरोडा होनेलगे, क्योंकि ऐसा रोग होनेसे गर्भपात हो जाता है कदाच रोग होवे तो उसका उपाय करना योग्य है।

(४) किसी २ गर्भवती स्त्रीको सोतेसे उठते ही प्रातःकाल भूँख लगती है उस समय वह घरके लोगोंके भयसे नहीं खाती कामकाजमें लग जाती है और दुपहरको सब घरके मर्द और बडी २ उमरकी बुढिया भोजन करचुकें तब पीछेसे उस गर्भवतीको खानेको मिलता है, देखो कितना बडा अनर्थ है, वह स्त्री भूखको दाबकर काममें लगी रहती है गर्भाशयमें बच्चा तडफडाया करता है। इस दशामें गर्भवतीको उचित है कि सब बडे बूढोंके अदब कायदेकी मर्यादा त्यागकर ताजा गर्म किया हुआ दुग्ध रुचिके माफिक पीवे। अथवा कोई अच्छी वस्तु जो अहित न होवे भूँख लगनेपर अवश्य खा लेवे, हम ऊपर लिख चुक हैं कि गर्भवतीको उपवास करना व भूँखा रहना बुरा है। स्त्रीके भूखा रहनेसे गर्भस्थबालकको विशेष हानि पहुंचती है, जो स्त्रियां भूखी रहती हैं उनका बालक बहुत कमजोर उत्पन्न होता है और जो भूख लगनेपर खा लेती हैं उनक बालक बलिष्ठ व आरोग्य हो जीवनपर्य्यन्त आरोग्य तथा बलवान् रहते हैं। जो गरीब घरकी स्त्रियां गर्भवती होवें और उनको दुग्धादि मवसर न होवे वे भूख लगे तो उसी समय ताजी खिचडी भात व रोटी बनाकर खा लेवें, भूखी कदापि न रहे। जिनको अन्न मवसर नहीं है वे इन धनवानोंको बद्दुआ देवें कि जो लाखों करोडों दाबकर बैठे हैं, जिनकी स्त्रियाँ मनो कपडे और पसेरियों जेवर संदूकोंमें भरकर रखती हैं उनके नगर तथा पडोसमें दारिद्री गर्भवती भूखी मरती हैं। ऐसा देखनेवाले द्रव्यपात्रोंको धिक्कार है।

(५) किसी २ गर्भवतीको प्रातःकाल बिछौनेसे उठते ही जी मचलाता है, मुखमें थूक व लार बहने लगती है उसको उचित है, गर्म जलसे कुल्ला कर ताजा

दूध गर्म कियाहुआ रुचिके माफिक पीवे । इससे उसका जी मचलाना बन्द हो तबीयत ठहर जाती है ।

(६) गर्भवतीको वस्त्र परिधान (अर्थात् ओढने पहरनेके कपडे) उजले धुलेहुए साफ रखने, चाहिये, साडी व लहँगा कमरपर कसकर न बांधे गीले वस्त्र शरीर पर कदापि न रखे । भीगाहुआ कपडा शरीरपर रखनेसे शर्दीका रोग उत्पन्न होता है । शीतकालमें गर्म तथा रुईदार वस्त्र पहने और उष्ण कालमें हलके इकहरे वस्त्र पहने व जैसा देशकाल होय उसके अनुसार पहनना चाहिये ।

(७) परिश्रम—गर्भवती स्त्रीको विशेष परिश्रम न करना चाहिये, अधिक परिश्रमसे गर्भको हानि पहुँचती है और गर्भवती रोगी हो जाती है । इस लिखनेसे यह भी नहीं समझना कि गर्भवती स्त्री दिनरात पलंग पर सोतीही रहे व बैठी रहे, नहीं उसको शान्त परिश्रम जितना उससे हो सके उतना अवश्य करना चाहिये । जिससे गर्भस्थ बालक और स्त्रीको कष्ट न पहुँचे, जो वडे २ द्रव्यपात्र घरोंकी स्त्रियां गर्भवती होनेपर हर समय सोती बैठी रहती हैं उनको प्रसव (बालक जनने) के समय बडा कष्ट पहुँचता है और बहुत तोवा दइया पुकारती हैं । लेकिन जो स्त्री शान्त परिश्रम करनेवाली हैं उनको प्रसव कष्ट बहुत ही थोडा मालूम होता है । क्योंकि चलने फिरने कामकाज करनेसे उनकी स्नायु गतिमान रहती है, बैठनेवाली स्त्रियों-की स्नायु स्थिर रहती है, सो उस समय अधिक खिंचाव पडता है ।

(८) किसी २ स्त्रीके पेटका चमडा कच्चा होता है सो गर्भके बढनेसे फट जाता है और चिरचिराहट मालूम होने लगती है इसके वास्ते मीठा तैल व चमेलीका तैल व गुलरोगन व खोपडेका जैसा मयसर होसके गर्म करके पेटपर मल लिया करे, एक समम हररोज लगानेसे यह हरकत नहीं होती है ।

(९) किसी २ स्त्रीके पेटका चमडा ढीला होता है सो गर्भ बढनेकी दशामें उसके वजनसे पेट नीचेको पेडूकी तर्फ लटकने लगता है और उठते बैठते चलने फिरनेमें गर्भवती स्त्रीको बडा कष्ट मालूम होता है ऐसी स्थितिमें पेटकी लटकनको जरा सहारा देकर ऊंची उठालेवे और एक बिलस्त भर चौडे कपडेको पेटसे लगाकर पीछेकी ओर गांठ दे लेवे, इससे उसको चलने फिरने उठने बैठनेमें कष्ट मालूम न होगा ।

(१०) किसी २ स्त्रीके स्तन गर्भवती होनेकी दशामें बढनेकी स्थितिसे दुखने लग जाते हैं, चमडा तनने लग जाता है उनपर किसी भी जातिका गर्म तैल लगानेसे यह हरकत निवृत्त हो जाती है ।

(११) गर्भवती स्त्रीको अंधेरे उजेरेमें तथा जो स्थल भयानक भूत, प्रेत, जिन चुडेलें नामसे जाहिर किये जाते हैं व जिस स्थानपर हिंसक भयावने जीवोंका भय रहता हो कदापि न जाना चाहिये। भय देनेवाले, चौंकनेवाले कार्य्योंसे बचना चाहिये। क्योंकि स्त्री भयभीत होकर चौंकपडे तो उसका गर्भस्थ वालक सुकड जाता है।

(१२) भयदायक शब्द जहांपर होते होयँ जैसे पहाडका गिरना, विजलीका तडकना, मकानका गिरना, तोपोंकी भयंकर आवाज व आतशवाजीके छूटनेकी आवाज इनसे वचना चाहिये, ऐसे शब्दोंके सुननेसे स्त्रियोंके तो क्या पशुओंके भी गर्भपात हो जाते हैं।

(१३) गर्भवती स्त्रीको ऐसे रोगियोंके पास न जाना चाहिये कि संक्रामक व्याधि जैसे चेचक (माता शीतला) कुष्ठ रोगवाले अग्नि रोहिणी ज्वर नेत्र रोगी, क्षयरोगी विशूचिकादिके रोगी रहते होवें आयुर्वेदमें लिखा है कि (कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्दनएव च । औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्तिनरान्नरम्) इस श्लोकमें कोई ऐसा न समझे कि नरसे नर परही संक्रामक रोग जाते नारी पर नहीं जाते सो सुश्रुताचार्यका यहां मनुष्यमात्रसे प्रयोजन है। कदाच गर्भवती स्त्रीको चेचक निकल आवे तो उससे चाहे स्त्री तो वच भी जावे परन्तु गर्भकी रक्षा होनी सर्वथा असंभव है। गर्भवती स्त्रीको प्रसवके समयपर जो स्त्री बालक जन रही होय उसके समीप कदापि न जाने देवे, वह उसक जननेका कष्ट देखकर भयभीत हो जावेगी और भयभीत होनेसे गर्भका गिर जाना संभव है।

(१४) गर्भवती स्त्रीको उचित है कि गर्भ रहनेके पहलेका रजोदर्शन आया होय उसकी वरावर याद रखे, क्योंकि एक महीना पूर्ण होनेपर गर्भावस्थामें भी ऋतुके समय पर उसके शरीरमें कुछ अकुलाहट उत्पन्न हो जाता है, शरीरमें बेचैनीके लक्षण दीख पडते हैं और हाथ पैरोंमें टीसें चलने लगती हैं। इस समय पर स्त्रीको सावधानीसे रहना चाहिये और सब प्रकारकी वदपरहेजीसे बचती रहे कामकाज न करे और ऐसा आहार विहार न करना चाहिये कि जिससे उस रोगके बढ जानेकी सहायता मिले। बहुत डोलना फिरना न करे, शरीरको झटका व धक्का न लगना चाहिये गर्मी तथा शर्दी इनसे बचना चाहिये और साफ मकानमें रहना चाहिये।

(१५) गर्भवती स्त्रीको जीना व नसेनीपर चढना उतरना हानिकारक है, पहाड आदिकी चढाई न करनी चाहिये, गिरने व फिसलनेकी जगह पर न जाना चाहिये।

(१६) गर्भवती स्त्रीको विशेष करके तीन मास पूर्ण होनेके पहिले और पांच महीना पूरे होनेके उपरान्त दूरदेशमें न जाना चाहिये गाडी छकडा मझोली इक्का और ऊँट घोडाकी सवारी जिसमें शरीरको धक्के लगते होवें न करनी चाहिये, इन १६ नियमोंके अनुसार चलनेसे गर्भवतीकी विशेष रक्षा

हो गर्भपातका कुछ भय नहीं रहता है। तीन महीनेके अन्दर गर्भ गिरनेका विशेष भय रहता है, किसी प्रकार अनुचित व्यवहार करनेसे पांच महीनेतक भी गर्भपात हो जाता है। छः महीनेका बच्चा जननेसे गर्भपात नहीं कह सक्ते, क्योंकि छः मासके बच्चेका जीता रहना असम्भव नहीं है, परन्तु छः मासका उत्पन्न हुआ बालक बडे उपाय और यत्नसे बच सक्ता है। क्योंकि कच्चे बच्चेको विना उपाय और यत्नपूर्वक रखे विदून जिलाना और परिवारिस करना बडा कठिन काम है, सात व आठ मासके उत्पन्न हुए बालक अवश्य जीते रहते हैं। लेकिन इस देशकी स्त्रियोंमें यह प्रचार है कि आठ मासके बालकके जीनेकी आशा छोड देती हैं, कदाच आठ मासका बालक वीमार पडे तो उसकी हिफाजत भी न कर स्त्रियां कहने लगती हैं कि यह तो आठ महीनेका है जीवेगा नहीं, आठ मासका कोई जीता ही नहीं है। भगवानके घरसे पूरी उमर लेकर नहीं आया, अगर पूरी उमर लेकर आता तो क्यों आठ महीनेका पैदा होता, डाक्टर व हकीमोंके पास उमर बढानेकी दवा थोडी ही रखी है, रोग दोषका इलाज हकीम डाक्टर जानते हैं, वह दूध पीनेवाला बालक विदून उपायके किसी रोगमें फँसकर मर जाता है। इन भविष्य वक्तृ स्त्रियोंका कथन पूर्ण हो जाता है, सो समझदार मनुष्योंको स्त्रियोंके कथनपर कदापि विश्वास न करना चाहिये। बालक चाहे छः सात आठ कितने ही मासका उत्पन्न हुआ होय वह किसी रोगमें फँस जावे तो उसका उपाय किसी बुद्धिमान् वैद्य व डाक्टरसे अवश्य कराना चाहिये। छः व सात आठ मासके बालकके पालनेकी विधि है उसके अनुसार पालन करना चाहिये।

गर्भाधानकी अवाध।

गर्भमें नव महीने रहकर बालक उत्पन्न होता है इस बातको सब कोई जानता है, परन्तु शरीर विद्याके जाननेवाले डाक्टरोंने यह निश्चय किया है कि ९ मास १० दिवस बालक गर्भाशयमें रहकर उत्पन्न होवे यह समय ठीक है। अब किसी स्त्रीका प्रसव तो नव मास, १० दिवससे ऊपर होता है और किसीका इस नियत अवधिसे कुछ दिवस प्रथम होता है। परन्तु कुछ आगे व पीछे बालक होनेसे कुछ विशेष हानि नहीं है, क्योंकि १० । ९ दिवस आगे पीछे बालक होनेका अन्तर नहीं समझा दूसरे यह १० । ९ दिवसकी कमी वेशीका कारण यह भी है कि जिस दिवस गर्भ स्थित हुआ होय उसका पूर्ण रीतिसे निश्चय होना जरा दुसवार है। क्योंकि स्त्रियां प्रायः शारीरक विद्यासे शून्य होती हैं किसी २ स्त्रीको तो अपने शरीरके प्रत्यक्ष रोगका भी भान नहीं होता। रोगके विषयमें कुछ उससे पूछा जाय तो यही

उत्तर देती हैं कि मुझे क्या खबर है कि मेरे शरीरमें क्या हुआ और क्यों हुआ ? ऐसी कमसमझ स्त्रियोंको इस सूक्ष्म प्रक्रया जो कि शरीरके अन्दर होती है उसका यथार्थ ज्ञान होना असंभव है । परन्तु जो स्त्रियां पढी लिखी बुद्धिमान् हैं उनको जिस दिवस गर्भकी स्थिति होती है उसी दिवस भान हो जाता है दूसरे दिवससे ही उनको गर्भकी स्थितिके लक्षण दीखने लगते हैं । ऐसी चतुर स्त्रियोंकी समय (दिवस) गणना ठकि और विश्वासके योग्य होती है । परन्तु यह कथन भी कुछ शंका भरा हुआ है कि सब स्त्रियोंको प्रसव एक अवधिके कायदेपर नहीं होता, इस विषयमें कितने ही प्रकारका विवाद चल सक्ता है । क्योंकि इस बातको निश्चयपूर्वक कोई भी नहीं कह सक्ता कि गर्भाशयमें कितनी अवधितक निवास करके बालक उत्पन्न होता है और सब बालकोंकी स्थिति गर्भाशयमें ठहरनेकी समान है व कम ज्यादा है, इन प्रश्नोंका उत्तर देना कठिन है । सब बालकोंकी गर्भ निवासकी अवधिका निर्णय करना सर्वथा असंभव है । लेकिन जाहरमें विद्वानोंकी तहकीकातसे यही निश्चय हुआ है कि २८० दिवसकी अवधि ठीक है यह अवधि साधारण तौरसे नियत की गई है । तथापि इससे थोडे बहुत न्यूनाधिक समयमें प्रसवकाल होवे तो इसके लिये वादाविवाद करनेकी आवश्यकता नहीं है । परन्तु यहाँपर अब यह प्रश्न उठता है कि अधिकसे अधिक बालक कितने समय पर्य्यन्त गर्भाशयमें रह सक्ता है और कमसे कम कितने दिवसका बालक जीवित रहकर जन्म ले सक्ता है । इसके लिये यही उत्तर दिया जाता है कि अधिकसे अधिक १२ मास तक बालक गर्भाशयमें ठहर कर जन्म लेता है, ऐसा कई समय देखनेमें भी आया है और आयुर्वेद वैद्यकमें भी गर्भवतीका इलाज बारह महीने तकका लिखा है । तो इस प्राचीन प्रमाणसे भी यही सिद्ध होता है कि प्रसवकी सबसे बडी अवधि १२ महीने है, कमसे कम सजीव बालक ६ मासका उत्पन्न होता है और अनेक प्रयत्नसे जीवित कोई २ बालक रहता है । गर्भस्राव व पातकी व्यवस्था पृथक् है और गर्भाधानके प्रसवकालका सम्पूर्ण रीतिसे निश्चय करना बडाही कठिन है । अमुक तिथिको गर्भ रहा था तो अमुक तिथिको पूर्ण अवधि पर प्रसव होगा, इसका निश्चयपूर्वक विश्वास करने योग्य कुछ भी उत्तर नहीं मिल सक्ता । इतना अवश्य कह सक्ते हैं कि जिस समय बालक गर्भमें प्रथम फरकने लगे तब साढे चार महीने गर्भके व्यतीत हुए समझ लीजिये और साढे चार महीने बालक होनेके समयके बाकी समझ लीलिये । परन्तु यह बात भी निर्विवाद नहीं है क्योंकि किसीको तो ४॥ मासमें बालककी फर्कन मालूम होती है और किसीकों ५ महीने बाद होती है, फिर यह भी शंका होती है कि ४॥ मास व्यतीत हो चुके हैं उनमें भी कुछ भ्रम होना संभव है । इस

सजीव पैदा होना । प्रथम सात महीनेके अन्दर गर्भपात होय तो प्रायः बालक मृतकही निकलता है और सातवें महीनेसे लेकर नवमें महीनेतक जो बालक होय वह सजीव ही होता है, उसमें मृतक संज्ञा बहुत कम पाई जाती है । चाहे बालक पैदा होनेके अनन्तर मर जावे परन्तु अन्दरसे विशेष करके जीवित ही आते हैं। गर्भस्राव होता है उसका समय विशेष करके स्त्रीके ऋतुकालके अनुसार है। विशेष करके गर्भस्राव प्रथमके तीन मासमें होता है दूसरे नम्बर पर चौथे महीनेका अन्त भी गर्भस्रावका समझा जाता है, इसके अनन्तर गर्भपात संज्ञा समझनी चाहिये, इन तीनों दर्जोंपर सैकडा पीछे १६ । ४ । १ क्रमानुसार समझिये, उच्च श्रेणीकी आरामतलब स्त्रियोंको गर्भस्राव व गर्भपात अधिक होता है । बालकके जन्म होनेकी अपेक्षा गर्भस्रावमें विशेष हानि और भय समझा जाता है, इसका कारण यह है कि बालकका जन्म कुदरती नियमके माफिक होता है वह कष्ट स्त्रीके लिये स्वाभाविक है, परन्तु गर्भस्राव उससे विरुद्ध रोगजन्य विकृति है इसमें स्त्रीको अधिक कष्ट पहुँचता है और इस विकृतिकी व्याकुलता स्त्रीके शरीरमें ऐसी बढती है कि वह अधमरी हो जाती है । और प्रसवकी अपेक्षा गर्भस्रावमें रक्त अधिक स्राव होता है । दूसरा विशेष कारण यह भी है कि जैसे पूर्ण समयकी अवधि व्यतीत करके गर्भाशयसे बालकका सम्बन्ध नियम प्रमाणे आसानीसे छूटता है ऐसे गर्भस्रावमें बालकका सम्बन्ध गर्भाशयसे सरलतापूर्वक गर्भके उपाङ्ग नहीं छूटते किन्तु अति कष्टके साथ छूटते हैं कदाच गर्भपातके समय किसी उपांगका भाग गर्भाशयमें रह जावे तो रह स्त्रीके लिये बडाही हानिकारक हो जाता है और जबतक वह भाग न निकल जावे तबतक नतो स्त्रीका ऋतुस्राव नियमपूर्वक आता है न दूसरा गर्भ स्थित होता है । गर्भस्रावका गर्भपात होनेके कितने ही कारण हैं उनके दो विभाग करनेमें आते हैं । प्रथम भाग तो यह कि जो गर्भस्थ बालकको गर्भाशयसे बाहर निकालनेकी प्रेरणा करते हैं दूसरे यह गर्भस्थ बालककी मृत्यु उत्पन्न करते हैं । इन दोनोंका सम्बन्ध करनेमें आता है । गरीब कौमकी परिश्रमी स्त्रियोंकी अपेक्षा बडे घरकी बैठाल्ठ आलसी स्त्रियोंको गर्भस्रावका उपद्रव अधिक देखनेमें आता है, अति शोक हर्षादिका सद्मा मनके ऊपर पहुँचनेसे गर्भपात हो जाता है । अकस्मात् तथा ऋतु परिवर्त्तनकी शर्दी गर्मी व वायुका फेरफार होनेसे तथा उदरके अन्दर वायु अथवा कृमिका जोर होनेसे अतिशय रेचक (दस्त) ऐंठा (मरोडा) इसी प्रकार कोष्टबद्ध (मलका अवरोध) होनेसे गर्भस्राव हो जाता है । बहुतसी स्त्रियां गर्भसे पहिले बालकको पेटपर बैठाल्के खिलाती हैं और बालक नितंबोंके बल उछल उछल कर पेट पर कूदता है इससे गर्भको सद्मा पहुँचता है और गर्भस्राव हो जाता है, स्तन व योनिके किसी

उपाङ्ग पर किसी कारणसे शस्त्र प्रयोग किया जाय तो गर्भपात हो जाता है। ऊपर कथन किये हुए सब कारण तथा किसी समय गर्भाशयको और कुछ सद्मा पहुँचनेसे भी गर्भपात होना संभव है। हमने स्वयं देखा है कि किसी गर्भवतीको पितृग्रहसे अथवा और किसी प्रिय मनुष्यके मरनेके तथा और कोई दुःखदाई समाचार सुननेमें आये कि गर्भाशयमें रक्तस्राव तथा पीडा होने लगती है और गर्भपात हो जाता है। यह भी देखनेमें आया है कि कितनी ही स्त्रियोंके मनके ऊपर विशेष सद्मा पहुँचा है और (गिर भी गई हैं) अथवा अकस्मात् शरीरको विशेष हरकत भी पहुँची है। ग्रामोंमें अक्सर पशुओंका बांधने खोलनेका काम स्त्रियां करती हैं और कई वार देखा है कि पशुओंने गर्भवती स्त्रीको सींगोंपर उठाकर अलग पटक दिया है और उनके गर्भाशय पर कुछ सद्मा नहीं पहुँचा गर्भ ज्योंका त्यों बरकरार रहा है। गर्भाशयमें बालककी मृत्यु हो जावे तो गर्भपात हो जाता है। इसके कारणोंमें स्त्रीके गर्भका तथा उसके उपाङ्गोंमें व्याधि उत्पन्न हो जाती है, जिस स्त्रीके शरीरमें अधिक रक्त होय तो इससे उसी समय गर्भाशयके अन्दर रक्त विकृति होनेसे गर्भ नष्ट होकर गर्भस्राव व पातको प्राप्त होता है। कितनीही स्त्रियां अधिक कृश (दुर्वल) होनेसे गर्भस्थ बालकको यथार्थ पोषण न पहुँचनेसे गर्भस्राव हो जाता है। कितनी ही स्त्रियोंको उप-दंशकी व्याधिकी विकृतियां भी गर्भपातका कारण हो जाती हैं। कितनी ही स्त्रियोंको शीतज्वर, कालेरा, पाण्डु आदि रोग भी गर्भपातका कारण हो जाते हैं पेटके अन्दरकी व्याधि जैसे गुल्म, प्लीहा, यकृत् व किसी प्रकारकी सूजन तथा ग्रन्थी आदि रोग होय तो गर्भस्थ बालककी वृद्धिमें हरकत पहुंचानेवाले होते हैं, इस कारणसे गर्भपात हो जाता है। तथा गर्भाशयका स्थानान्तर होना व कमलमुखका कोई रोग और अति मैथुन अथवा गर्भाशयकी कोई व्याधि तथा गर्भाशयके उपाङ्गोंकी व्याधि इनसे भी गर्भपात हो जाता है। गाडी आदि यान तथा ऊंट घोडाकी मुसाफिरी व रेलका लम्बा सफर भी गर्भस्रावका कारण हो जाते हैं। जिस गर्भको रहे दो तीन महीने हो चुके होयँ और किसी कारणसे गर्भाशयमें बालककी मृत्यु हो जावे तो शीघ्रही गर्भस्राव शुरू हो जाता है।

गर्भ गिरनेके लक्षण व पूर्वरूप इस प्रकार होते हैं।

रक्तस्राव तथा चुभने व कटनेकीसी पीडा ये मुख्य चिह्न दीखते हैं और जितने अधिक समयका गर्भ होय उतनेंही अधिकतासे ये दोनों चिह्न होते हैं, कदाच चार व छः सप्ताहका गर्भ होय तो केवल ऋतुधर्मका रक्तस्राव अधिकतासे आवे केवल स्त्रीको इतना ही मात्र माळूम होता है कि ऋतुधर्म कुछ अधिक दिवस चढकर आया है इसी कारणसे रक्तस्राव अधिक हुआ। ऐसे

गर्भस्रावका रक्तस्राव किसी २ स्त्रीको कितने ही दिवस पर्य्यन्त रहता है और अपने आप बन्द हो जाता है, या आकुलताके कारण स्त्री कुछ औषध लेवे तो भी बन्द हो जाता है। कभी २ किसी २ स्त्रीको ऐसा होता है कि इस समयका रक्तस्राव बे पीडाके होय तो समझो कि गर्भ अभी गर्भाशयमें स्थित है, जो रक्तस्राव अधिक चस्क काटनेकीसी पीडाके साथ हो तो गर्भ बाहर निकल पडता है। इसका मुख्य चिह्न पीडा है, जिस स्त्रीको काटनेकीसी पीडा होती होय उसका गर्भ कदापि नहीं ठहर सक्ता। अगर ४ व पांच छः महीनेका गर्भपात होय तो विशेष रक्त प्रवाह होता है, गर्भके उपांग जरायु और पडत उस समय गर्भाशयके समीप सम्बन्धमें होते हैं वे एकाएक शीघ्रतासे नहीं छूटते। गर्भाशय वारम्वार संकुचित होता है, इससे वारम्वार चस्का और पीडा होती रहती है, इस पीडासे स्त्री इठने लगती है और अति व्याकुल होती है। परन्तु गर्भाशयसे उपांगोंका सम्बन्ध आहस्ते २ पृथक् होकर गर्भके साथ वाहर निकल आते हैं जबसे उपांगोंको सधा पहुंचता है तभीसे वे छुटनेकी कोशिश करते हैं, उसी समयसे रक्तस्राव आरम्भ हो जाता है गर्भके उपांग जिस समयसे पृथक् होनेकी कोशिस करते हैं और जहांतक गर्भाशयके सम्बन्धसे विलकुल पृथक् न हो जावें तबतक रक्तस्रावका प्रवाह जारी रहता है। अगर यह रक्तस्राव अधिक होय तो किसी २ स्त्रीकी मृत्यु भी हो जाती है, कदाच गर्भपात होनेके अनन्तर कुछ भाग बाकी इस विकृतिका गर्भाशयमें रह जाता है तो सूतिका रोग रक्तज गुल्मादि दुष्ट व्याधि उत्पन्न हो जाती हैं, इन व्याधियोंसे रक्तप्रदर दीर्घकाल पर्यन्त रहता है। जिस समय स्त्रीको अधिक पीडा उठती है उस समय योनिमार्गमें अंगुली प्रवेश करके कमलमुखपर पोरुआ रखके देखोगे तो पीडाके समय कमलमुख विशेष खुल गर्भके विकृतिवाला भाग अन्दरसे निकलता मालूम होगा और इस भागके निकलनेपर कमलमुख सुकड पीडा वन्द हो जाती है। फिर कुछ समयतक ठहरकर यही क्रिया होने लगती है जबतक गर्भके विकृतावयव समस्त न निकल जावें तबतक पीडा और इस क्रियासे स्त्रीको शान्ति नहीं मिलती।

गर्भपातकी चिकित्सा।

गर्भपातके उपरोक्त उपद्रवोंपर लक्ष देकर निश्चय करे कि जो गर्भस्थ वालक जीवित है, चिकित्सकको ऐसा निश्चय होवे तो इसके लिये ऐसा उपाय करे कि जिससे गर्भस्राव व गर्भपात न होने पावे। यदि चिकित्सकको गर्भस्थ वालकके अन्दर रहनेकी आशा न हो, यही निश्चय होय कि यह वाहर निकल आवेगा और इसके न निकलनेसे स्त्री नाहक कष्ट सहन कर रही है तो उसका वैसा ही उपाय करे। उपरोक्त निदान विषयमें कथन किया गया है कि स्त्रीको अधिक पीडा आ आकर

रक्त निकलता होय और कमलमुखकी स्थिति लिखे अनुसार होय तथा रक्तप्रवाह बराबर जारी होय तो गर्भके ठहरनेकी आशा त्याग देनी चाहिये । इस उपरोक्त स्थितिके रोकनेके लिये कोई भी मामूल उपाय नहीं दीखता । गर्भपातमें विशेष करके प्रथम रक्तस्राव आरम्भ होता है और पीछे पीडा होती है, चिकित्सकको चाहिये कि जहाँतक उसका प्रयत्न और औषध काम दे सके वहांतक शीघ्र प्रथम रक्तप्रवाहको रोकनेका प्रयत्न करे । इसके लिये स्त्रीको दिलासा, शान्ति देकर स्वच्छ एकान्त स्थानमें उसका शयन निवास रखकर परिश्रम व उठने बैठनेकी शक्त मनाई कर देवे । शराब अथवा और किसी प्रकारके मादक द्रव्य व गर्म तथा रेचक पदार्थोंके सेवनसे बचाना चाहिये और हलका पौष्टिक आहार देवे । औषध प्रयोग देना होय तो इस समय रक्तस्तम्भक औषध देनी उचित हैं, पांचसे दश बिन्दु पर्य्यन्त (टिंचर क्यानाबीस) अथवा (टींचर डीजु टेलीस) एक औंस जलमें मिलाकर दो व तीन घंटेके अन्तर देना, इससे रक्तस्राव बन्द हो जायगा । इसके अलावे (ग्यालीक एसिड, शुगरलेड, आयर्न, फिटकरी) इत्यादि औषधियोंके देनेसे रक्तप्रवाह बन्द हो जाता है, ये सब औषधियां रक्तप्रवाह स्तम्भक हैं । ऐसे समयपर अफीम भी एक अमूल्य औषध है, रक्तस्रावके लिये अति उपयोगी है । वीससे तीस बिन्दु पर्य्यन्त (लाडेनम) देनेसे उत्तम असर होता है, यदि दूसरी औषधियां दी जावें उनके साथमें अफीमकी कृत्रिम दवा भी संयोग की जावे तो विशेष लाभ पहुंचता है । जो रक्तप्रवाह थोडा होगा तो उपरोक्त औषधियोंसे लाभ पहुंचेगा, जो रक्तप्रवाह एकदम अधिक होय और उसके साथ पीडा भी अति विशेषतासे होय तो जानना चाहिये कि यह रक्तप्रवाह और पीडा शीघ्र बन्द न होगी तो गर्भ बहुत जल्दी गिर जावेगा । इसलिये इस प्रबल रोग प्रवाहको रोकनेके लिये ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे शीघ्र लाभ पहुंचे । योनिमार्गमें शीतल जल व बर्फमें भिगाहुआ कपडा रखना । ऐसे एक कपडेकी गद्दी बनाकर शीतल जल व बर्फमें भिगोकर पेटके ऊपर रख थोडी २ देरसे उसको पुनः तर करते रहना । और अरगटका द्रव्य रूपसत्व एक ड्राम देना, अथवा अरगटकी लकडी मिल सके तो उसका ताजा क्राथ बनाकर एकसे दो औंसतक देना, इससे आधे घंटेमें पीडा बन्द हो गर्भाशय संकुचित हो रक्तप्रवाह भी कुछ कम पडने लगता है । एक तर्फ तो यह उपरोक्त उपाय करना, दूसरी तर्फसे रक्त प्रवाहको रोकना, योनिके अन्दर स्पंज, रूमाल, व रूईका फोहा अति शीतल जल व बर्फमें भिगोकर भर देना और १५ व २० मिनटसे बदलते रहना, इससे रक्तप्रवाह अधिकांश बन्द होता जायगा । कपडा और रूईमें पानीका भाग अधिक समयतक नहीं ठहरता, इससे इसको थोडे समय

पीछे तर करना चाहिये और स्पंजमें पानी अधिक समय तक ठहरता है उसके रखनेकी क्रिया नीचे लिखे माफिक है । जो उपरोक्त क्रियासे रक्त प्रवाह बन्द हो जाय और पीडा कम पडजाय तो ठीक है । और कमलमुख भी संकुचित हो गया होय तो समझ ले कि उपद्रव शान्त हो गया है, कदाच रक्तप्रवाह भी जारी होय और पीडा भी चलती होय और कमलमुख भी विस्तृत होय तो समझ ले कि गर्भ अपने उपाङ्गोंसे छूटकर बाहर निकल पडेगा । इस हालतके रोकनेके लिये स्पंजको काममें लाना चाहिये स्पंज एक ही टुकडा न रखना चाहिये किन्तु छोटे २ कई टुकडे करलेवे और एक २ डोरासे सबको लपेट लेवे जिससे स्पंज कुछ संकुचित हो जावे और डोरेका एक शिरा लटकता रहे, स्पंजका प्रथम टुकडा खुलेहुए कमलके ऊपर अडा कर चिपटताहुआ रखे कि जिसकी शीतलतासे कमलका मुख डिटर कर संकुचित हो अन्दरसे निकलते हुए रक्तके प्रवाहको रोक देवे । बाकी बचे हुए सब टुकडोंको ठंडा ऊपर पानीसे भिगोकर योनिमार्गमें भरदेवे और सबके डोरेका शिरा योनिसे बाहरकी तर्फ लटकता रहने देवे कि जब निकालनेकी आवश्यकता होय तब डोरा पकडके खींच लेवे । कदाचित इनके रखनेसे भी गर्भ स्थिर न हुआ तो ये सब टुकडे गर्भपातके समय स्वयं योनिसे बाहर निकल आते हैं और पीछेसे गर्भ निकलता है, जो गर्भ स्थिर हो जावे तो आठ घंटे पीछे स्पंजके टुकडोंमें जो डोरा बँधाहुआ शिरा बाहर है उसको पकडकर एक एक करके खींचता जावे और सब बाहर आ जावें उस समय योनिमार्गमें अंगुली प्रवेश करके कमलमुखको पोरुआ लगा कर देखना चाहिये कि कमलमुख प्रथमके माफिक खुला है या पूर्णरूपसे संकुचित होकर अपनी यथास्थितिमें हो गया है । अथवा प्रथम जैसा रक्तस्रावकी दशामें खुल जाता था वही गति है व उससे कुछ कम खुला हुआ है । इत्यादिकी परीक्षा करके योनिमार्गमें शीतल जलकी पिचकारी लगाकर धो डाले और साफ करके पीछे स्पंज रखनेकी आवश्यकता होय तो उपरोक्त क्रमानुसार लगावे और आठ घंटेतक रखा रहने देवे कपडा तथा रुई रखनेकी अपेक्षा स्पंजमें पानीकी तराई अधिक ठहरती है इससे स्पंज विशेष लाभ पहुंचाता है । कदाच गर्भके उपाङ्ग छूटकर कमलमुखमें अटक रहे होयँ और कमलमुख विस्तृत हो रहा होय तो स्पंज पुनः रखनेकी आवश्यकता नहीं है, । अटके हुए गर्भको कमलमुखसे बाहर खींच लेवे अगर अंगुलीसे न खींच सके तो गर्भ निकालनेके चीमटासे पकड कर खींच लेवे । इतना ध्यान रखे कि चीमटासे पकडनेके समय कमलमुखका होठ न पकडा जावे । गर्भको बाहर निकालकर गर्म जलकी पिचकारीसे योनिमार्ग और कमलमुखको धोकर साफ कर देवे और स्त्रीको आरामसे शयन करनेकी आज्ञा देवे । जो पांच

महीनेसे पूर्व गर्भपात होता है उसमें इतना प्रयास नहीं उठाना पडता वह जल्दीसे निकल जाता है, लेकिन पांच माससे ऊपरका गर्भ होय तो जरायुके पडतको फोडकर निकलता है। उसमें पीडा अधिक होती है। क्योंकि जरायुके पडत न टूटें जबतक गर्भ छूटा नहीं पडता और जब जरायुसे गर्भका सम्बन्ध छूट जाता है तब पिडा भी कम हो रक्तप्रवाह भी कम पड जाता है। कदाचित् गर्भके उपाङ्गका कोई भाग गर्भाशयमें चिपट रहा होय तो उसको जोर देकर न उखाडना चाहिये वह पीछेसे रक्तप्रवाहके साथ निकल आता है। जबतक वह निकलता नहीं है तबतक रक्तप्रवाह भी जारी रहता है, उसके निकलनेके पीछे रक्तप्रवाह कम पडता जाता है। जो गर्भ अपने उपाङ्ग सहित बाहर निकल आता है उसके पिछे रक्तप्रवाह शीघ्र बन्द हो जाता है। इसके बाद स्त्रीकी रक्षा प्रसूति स्त्रीके समान करना उचित है। किसी २ स्त्रीको देखते हैं तो प्रायः गर्भपात करनेकी स्वाभाविक प्रकृति हो जाती है, जहां दो चार महीनेका गर्भ हुआ और पात हो गया बारम्बार ऐसीही दशा रहती है। अगर ऐसी दशामें गर्भपात होनेका कारण मालूम पडे तो उसको निवृत्त करना चाहिये, कदाचित् स्त्रीके शरीरमें रक्तकी अधिकता होय तो फस्द खोल-कर कुछ रक्त निकाल देना चाहिये, कदाचित् स्त्री कृश हो तो उसके बल बढानेके वास्ते ताकतदार औषध और पौष्टिक आहारका सेवन करावे और कुछ बेफिकिरी तथा आरामतलबी भी देनी चाहिये। यदि गर्भाशय स्थानान्तरमें हो गया हो तो उसको नियत स्थानपर लाना चाहिये, जो स्त्रीको उपदंश विकृति हो तो पारदकी काइ बना-वटी दवासे निवृत्त करे अथवा आयोडाइडओफपुटासका सेवन कराके निवृत्त करे, उप-दंशका असर निकल जानेके बाद गर्भपातका भय नहीं रहता। किसी स्त्रीको रोगके विनाही कारण गर्भपातका स्वभाव पड जाता है, ऐसी प्रकृतिकी स्त्रीको गर्भ रहनेके बाद थोडी हींगकी गोली बनाकर हररोज खिलानी चाहिये, जब गर्भपातकी अवधि (समय) निकल जावे तब बन्द कर देना चाहिये। अथवा गर्भपातका समय आनेको होय उससे १९ व २० रोज प्रथमसे (लीकवीड एकस्ट्राकटआवअरगटकी पांचसे दश बिन्दु पर्य्यन्त दिनमें दो व तीन समय सेवन करना और गर्भपातकी मियाद निकल जावे याने जिस मुद्दतपर पहिले गर्भपात होते रहे हैं वे वक्त निकल जावें, तब बन्द कर देना चाहिये। उपरोक्त दवाओंसे गर्भकी स्थितिको बहुत कुछ सहायता मिलती है।

प्रसवकाल।

बालकके जन्मकालको प्रसव व सोवड कहते हैं। यानी स्त्रीके गर्भसे बालकका उत्पन्न होना यह दो प्रकारका है, एक तो स्वाभाविक प्रसव, दूसरा अस्वाभाविक प्रसव ये दो भद हैं। अब यह दिखलाना है कि प्रसवके दोनों भेदोंमें क्या अन्तर है? स्वाभा-

विक प्रसवमें बालक मस्तककी तर्फसे सीधा गर्भाशयमेंसे बेरोकटोक योनिमार्गसे गुज-
रता हुआ योनिमुखके बाहर आ जाता है, इसको वे कष्टका स्वाभाविक प्रसव कहते हैं,
इसमें स्त्रीको साधारण कष्टके सिवाय कुछ विशेष तकलीफ नहीं होती । इस सरल नियमके
विरुद्ध अस्वाभाविक प्रसव अथवा स्त्रीको और बालकको कष्टदायक प्रसव होता है ।
अस्वाभाविक प्रसवमें बडी मुसीबत अटकती है गर्भस्थ बालकके निकालनेमें साधनकी
आवश्यकता पडती है, जिस मार्गसे बालक बाहर निकलता है उस मार्गमें बालकके
रुकावट होती है और बालक अङ्गमार्गमें अटक जाते हैं । उनको सँभाल कर बालक
निकालनेकी कोशिश की जाती है यह विषय आगे आवेगा । प्रसवके इन दो भेदोंके
सिवाय तीसरी स्थिति और भी है उसमें बालकके प्रसवमें तो कुछ रुकावट नहीं
होती, परन्तु किसी समय जरायुमें बालक तो बाहर निकल आता है लेकिन जरायु
गर्भाशयमें रह जाती है इससे स्त्रीको बडा कष्ट सहन करना पडता है,
जरायु जबतक निकलकर बाहर नहीं आती तबतक रक्तप्रवाह होता रहता है ।
हिचकी आने लगती हैं गर्भाशयमें फटनेकीसी पीडा है किसी स्त्रीका गर्भाशय
फट भी जाता है और अन्तरादान व्याधि होती है स्त्रीको ज्वर उत्पन्न हो जाता है,
इसको कष्टप्रसव कहते हैं ।

डाक्टरीसे प्रसव प्रक्रिया ।

प्रसव प्रक्रिया यह अण्डज और जरायुज दोनों प्रकृतिके जीवोंको समान है ।
अण्डसृष्टि पक्षी तिर्यञ्च (याने जो अण्ड प्रसव करके उसके अन्दरसे बच्चा निकलता
है (जरायुज जिनका शरीर गर्भमें झिल्ली व जेरी ढकाहुआ रहता है, जैसे पशु
और मनुष्य कुदरती नियमके माफिक प्रसवके सबको समान होता है । परन्तु
मनुष्य जाति अधिक बुद्धिका अभिमानी होनेके कारणसे प्रत्येक कुदरती नियममें
दखल देनेका इरादा करता है, इसी कारणसे कुदरती बातोंमें दखल देने लगा
है । जैसे संसारके प्रत्येक कार्यमें मनुष्योंने छानबीन की है उसी प्रकार प्रसव
क्रियामें भी बहुतसी छानबीन मनुष्योंने की है । बालकके जन्मको प्रसव कहते हैं
इसके विषयमें जो विचार किया है वह तीन प्रकारके विषयकी क्रियासे प्रसव कार्य्य
होता है, उसके समझानेके वास्ते पृथक् २ लिखा जाता है । (१) प्रथम जिस
साधनसे गर्भके ऊपर दबाव पडकर बाहर आता है । (२) दूसरे स्वयं गर्भस्थ
बालकके शरीरकी गति । (३) तीसरे जिस मार्गमें होकर बालक बाहर आता है ।
(१) प्रथम गर्भके ऊपर अन्दरसे दबाव पडकर बाहर प्रसव होनेके दो साधन हैं
और बडा आधार गर्भाशयके संकोचके ऊपर है । दूसरा आधार पेटकी

स्नायुके दबावके ऊपर है ये गर्भाशयके सहायक होती हैं, गर्भाशयको एक मोटी स्नायुकी थैली समझनी चाहिये यह स्नायुओंके तन्तुकी रचनाके माफिक है कि वह संकुचित होय इतनेमें वह थैली महीन पदार्थ कमलकी तर्फ दबावे और पीडा आवे उसको गर्भाशयका संकोच समझो कारण (ऐंठा और) पीडा होय वह केवल गर्भाशयके संकोचके लिये होती है। इसलिये गर्भाशयके संकोच आर पीडा यह एकही समझिये (पीडा ठहर २ कर होती है) गर्भाशयके ऊपरके भागसे संकोच होना शुरू होकर रबडके माफिक कमलमुख पर्य्यन्त संकोच होता हुआ चला आता है, (ऐंठा) किसी स्त्रीको थोडे २ अन्तरसे और किसी २ स्त्रीको विशेष अन्तरसे आती है किसी स्त्रीको अधिक शक्त आती है, किसीको हलकी आती है। प्रसवके समय आरंभमें जो (ऐंठ) आती है उसका दर्द ऐसा होता है कि जैसे अन्दर कोई काटता होय अथवा कुचिलता होय ऐसी मालूम होती है और पीछेसे मरोडामें जैसे जोर करना पडे अथवा नुकहना पडे ऐसी पीडा होती है। पीडाके समयपर वांसा तथा कमर फटतीसी मालूम होती है, प्रत्येक समय ऐंठन आनेके वक्त पेटपर हाथ रखके देखें तो गर्भाशय संकुचित होनेके लिये कठिन होता जाता है, ऐसा मालूम होता है। प्रथम पेटकी स्नायुका जोर कितनेक दर्जे स्वेच्छापूर्वक होता है परन्तु पीछेसे जब जोर जोरसे ऐंठा आने लगते हैं तब पेटकी स्नायु भी अपने आप सहायक हो जाती हैं और उसका जोर इच्छापूर्वक नहीं रहता। गर्भाशयकी अन्दरकी बाजूके सम्बन्धमें पतले पडतकी थैली है उसके अन्दर जल भरा हुआ रहता है और उस थैलीके जलके अन्दर बीचमें बालक रहता है। इस गर्भ जलके रहनेसे स्त्रीके पेटपर किसी प्रकारका बाह्य धक्का कदाचित् लग जावे तो गर्भस्थ बालकके ऊपर उसका सब्बा नहीं पहुंच सक्ता। इसी कारणसे कुदरतने यह जल गर्भाशयमें उपाय रहित बालककी रक्षाके वास्ते नियत किया है, इसी प्रमाणसे इस जलको गर्भस्थ बालकका रक्षण करनेवाला समझना चाहिये। परन्तु इस जलका केवल इतना ही काम नहीं है, किन्तु प्रसवके समयपर भी यह जल अति उपयोगी हो जाता है, जो यह प्रवाही पदार्थ न होय ता गर्भाशय तथा पेटकी स्नायुके संकोचका दबाव गर्भस्थ बालकके ऊपर पडकर उसको नष्ट करे विदून न रहे। यह प्रवाही साधन प्रसवके समय गर्भाशयके मुखको विस्तृत करनेके लिये अत्यावश्यकताका ह, यदि यह प्रवाही पदार्थ जल न होय तो गर्भाशयके मुखको प्रसवके समय हानि पहुंचने विदून न रहे। कदाच किसी मूढ गर्भपर चिकित्सकको शस्त्रक्रिया करनी पडे तो उस समय इस जलसे सुगमता पडती है, क्योंकि शस्त्रका सब्बा गर्भाशयकी जिल्दपर पहुँचनेका भय कम रहता है। (२) इस दूसरे

मौकेपर गर्भस्थ वालकके शरीरपर विचार करना चाहिये कि गर्भस्थ वालकके शरीरका सवसे स्थूल भाग मस्तक है, उसका पृथक् २ व्यास लम्बा चौंडा और संकोचवाला है। उसके मापकी स्थिति आगे लिखेंगे। यह मस्तक वस्ति स्थानके लम्बे और छोटे व्यासमें होकर निकल कर वाहर आता है वालकका मस्तक वहुत मोटा होता है। यदि वालकका शरीर गर्भमें किसी व्याधिसे मोटा हो गया होय तो प्रसवकालके समय स्त्रीके गुह्य शरीरको विशेष इजा पहुंचती है। कितनी ही स्त्रियोंका योनिमुख नीचेकी तर्फसे गुदाकी तर्फको फट जाता है॥ (३) अव आप प्रथम अध्यायमें स्त्रीकी गुह्येन्द्रियका शारीरक देखो वहां वस्तिकी आकृति तथा व्यास लिखा गया है। इस तीसरे प्रसंगके विचारमें वस्ति और वालकके शरीरके आगमनका विचार है कि वालक वस्तिके आगमन द्वारमें दाखिल होकर उसकी कक्षामें फिरकर निर्गमन द्वारसे वाहर आता है। पूर्व वस्तीके व्यासकी लम्बाई लिख आये हैं, उसके आधारके ऊपरसे मालूम पडेगा कि उसका व्यास न्यूनाधिक है। वस्तीके व्यासकी न्यूनाधिकताके कारणसे ही व्यासके अनुसार ही वालकके मस्तकको स्क्रूल (पेच) के माफिक फिरा-कर निकालना पडता है। अव प्रसव समयके तीन विभाग करनेसे आप अच्छीतरह समझ सक्ते हैं, जव वालकके अङ्ग उपांग गर्भाशयसे सम्बन्ध छोडते जाता है तव प्रथम समयमें कमलमुखके पूर्णरूपसे विस्तृत होनेकी क्रियाका समावेश होता है। इस कार्य्यके लिये छः से लेकर वारह घंटे तथा कभी २ किसी स्त्रीको इससे भी अधिक समय लग जाता है। कमलमुख पूर्णरूपसे विस्तृत हेनेके पीछे वालकका वाहर प्रसव (वाहर आना होय) वहांतकके समयको दूसरी गतिका समय कहते हैं। इसनें वहुत कम समय लगता है, वालक वाहर आनेके अनन्तर जरायु वाहर निकल आवे इतने समयको प्रसवका तीसरा समय समझना चाहिये। (१) प्रसवका प्रथम काल आरम्भ होतेही ऐंठा आना शुरू हो जाता है और इतनेमें चारों तर्फके दवावसे गर्भजाल कमलमुखकी तर्फ मार्ग करने लगता है और जैसे २ ऐंठन और पीडा वढती जाती है तैसे २ धीरे धीरे कमलका मुख विस्तृत होता जाता है। जैसे थोडा २ कमलमुखका मार्ग जगह देता जाता है उसमें ऊपरसे उतरताहुआ गर्भजाल अपने पडत सहित नीचेको प्रवेश करता जाता है और क्रमसे वाहरको निकलता आता है। जिस प्रवाही पदार्थका ऊपर कथन हो चुका है उसी पदार्थको सहायतासे कमलमुखके सर्व व्यास पर एक समान समतुल्य दवाव पडता हुआ और स्त्रीके किसी अङ्गको क्लेश न देता हुआ धीरे धीरे कमलमुख खुलता जाता है। कदाचित् इस प्रवाही पदार्थके वदले जो कुदरती नियम किन्तु कमलमुखको विस्तृत करनेके लिये कोई कठिन पदार्थ नियत करता, जैसा कि वालकका मस्तक

कठिन होता है तो ऐसा सुखपूर्वक प्रसवका परिणाम कदापि नहीं होता। कारण कि गर्भाशयके बलात्कार संकोच करनेसे गर्भस्थ बालकको कष्ट पहुंचता है सो इतना ही नहीं किन्तु कमलमुखके सर्व भाग पर समतुल्य और नियमपूर्वक स्थितिसे दबाव नहीं होता। इस प्रवाही पदार्थसे ही गर्भाशय जो बलात्कारसे जोर करता है उसका विशेप असर एकदम कमलमुखके ऊपर न होकर गर्भाशयके ऊपर कितनेही दर्जे अधिक जोर लगता है इससे कमलमुखके ऊपर किसी प्रकारकी विशेप तकलीफ नहीं पहुंचती। यह इस प्रकार देखा गया है कि विशेप करके कमलमुख सम्पूर्ण रीतिसे विस्तृत हो जाता है उसी समय गर्भ जलकी थैली फूट जाती है, थैली फूटनेके अनन्तर प्रसव होनेको अधिक समय व्यतीत नहीं होता, किसी २ स्त्रीका कमलमुख विस्तृत होनेके पूर्व ही गर्भजलकी थैली टूट जाती है। और बालकके मस्तकका दबाव कमलमुखके ऊपर बाहर निकलनेको पडने लगता है। गर्भजल प्रथम ही निकलनेसे बालकके कठिन मस्तकका दबाव पडनेसे कमल पर कुछ शोथ हो आता है। परन्तु यह दशा प्रथम गर्भवाली स्त्रीकी होती है, क्योंकि उसके कमलमुखके स्नायु तन्तु शक्त और दृढ होते हैं। अभीतक कमलमुखके स्नायु तन्तुओंको विस्तृत और संकुचित् होनेका काम नहीं करना पडा था इसी कारणसे प्रथमका प्रसव सुकुमारावस्थावाली स्त्रीको अधिक समयतक कष्टदायक होता है। क्योंकि कमलमुख अधिक मजबूत होनेसे शीघ्र विस्तृत नहीं हो सक्ता और प्रथम प्रसव होनेके पीछे कमलमुल कुछ थोडा ढीला हो जाता है फिर नवी उमरकी स्त्रीके कमलमुखके समान दृढता पर नहीं पहुंचता इस कारणसे आगे होनेवाली प्रसव क्रियाके समय अधिक वक्त नहीं लगता और न स्त्रीको अधिक कष्ट सहना पडता है। किसी २ स्त्रीका कमलमुख विशेप कठिन होता है और बालकके मस्तकके दबावसे उसपर शोथ उत्पन्न हो जाता है ऐसी स्त्रीके कमलमुखको विस्तृत होनेमें अधिक समय लगता है और स्त्रीको भी महान् कष्ट सहन करना पडता है। और प्रसवका दूसरा काल प्रथम कालमें गर्भस्थ बालकको गर्भाशयके मुखका प्रतिबन्ध होता है। वह ऊपर कथन किये हुए प्रमाणसे कमल पूर्ण रीतिसे खुल जावे तो फिर बालकको सिर्फ वस्ति पिंजरमेंसे बाहर आनाही बाकी रह जाता है, इस वस्ति प्रदेशमेंसे गर्भको बाहर आनेमें जो समय व्यतीत होता है उसको प्रसवका दूसरा काल कहते हैं, प्रथम कालमें अन्दर पीडा होती है और कोई काटता होय इस माफिक दर्द होता है। प्रथम कालका कार्य्य सम्पूर्ण. न होय वहांतक गर्भस्थ बालकको कुछ विशेष कष्ट नहीं होता और गर्भाशयसे जोरसे संकुचित होने लग जाता है उस संकोचके दबावसे ही गर्भस्थ बालक कमलमुखकी तरफ रुजू होता है और गर्भाशयके संकोचके साथ पेटकी स्नायुका संकोच होता है और स्त्रीका नुकहना (ऊं ऊं ऊं,) शब्द

शुरू होता है, स्त्रीको सक्त जोर करना पडता है यह जोरवाली ऐंठन दूसरे कालकी सूचक है । और वालकका मस्तक वस्तिस्थानमेंसे बडी चातुर्यताके साथ निकलता है वस्तिस्थानके ऊपर नीचेका व्यास छोटा लम्बा होता है उसीके अनुसार वालकके मस्तकको फिरना पडता है वस्तिके व्यासकी लम्वाई प्रथमाध्यायमें लिख आये हैं (वहां देख लो) यहां केवल वालकके मस्तकके व्यासकी लम्बाई लिखनेकी आवश्यकता है । वालकके मस्तकका पूर्व पश्चिम व्यास चारसे साढे चार इंच और उत्तर दक्षिण व्यास ३ से ३½ इंच है । तीसरा व्यास हन्वटी (ठोडी) से लेकर मस्तकके पीछेके भागतक मापनेसे उसकी लम्बाई ५ इंचके करीब होती है मस्तकके पश्चिम भागसे ऊर्ध्व मध्यविन्दुकी लम्बाई ३ से ३½ इंच है, पुत्रीकी अपेक्षा पुत्रके मस्तककी आकृति जरा बडी होती है । वालकका विशेप करके मस्तकके भागकी तर्फसे प्रसव होता है क्योंकि गभम भी बालक इसी वलसे रहता है और मस्तक वालकके सम्पूर्ण शरीरसे स्थूल भाग है जिस मार्गसे मस्तक निकलता है उसके पीछे वाकीका सम्पूर्ण शरीर निकलनेमें कुछ वाधा नहीं पडती ।

आकृति नं० ९७ देखो.

प्रसवसमयमें वालकका मस्तक प्रथम वस्तिके आगमनद्वारम दाखिल होता है, तब उसका पूर्व पश्चिम व्यास इस द्वारका वामे तीर्य्यक तिरछे व्यासके अनुसार है । वालकके मस्तकका पश्चिम भाग स्त्रीके वाम (आसेटा व्युलम) की तरफ तथा ललाटका भाग ईल्यम और सेकमकी दक्षिण सन्धिकी तरफ होता है, आगमनद्वारका तिरछा व्यास अधिक लम्बा होनेसे वालकके मस्तकका पूर्व पश्चिम लम्बा व्यास वस्तीके तिर्छे व्यासके मुताविक है मस्तकका छोटा व्यास जो उत्तर दक्षिणका है, वह आगमन द्वारके खडे छोटे व्यासमें वैठता हुआ फसेवां आता है वालकका मस्तक वस्तीमें प्रवेश करनेके समय हनु (ठोढी) छातीके सम्बन्धमें रहकर ललाटका भाग थोडा ऊंचा रहता है और पश्चिम भाग पेल्वीसमें (इस्कीयम) पर नीचे उतरता है पीछेसे ललाट भी नीचे उतरने लगता है, पीछे औरभी पश्चिम भाग नीचे उतरता है और वामी वाजूपरसे घिसटकर खुवीक कमानके नीचे आगेकी तरफ आता है उसी समय ललाट उतरकर दक्षिण वाजूकी तर्फसे सेकमके अन्तरगोलमें जाता है ।

आकृति नं० ९८ देखो ।

इस रीतिसे मस्तक अपनी उत्तर दक्षिण स्थितिके ऊपर फिरता हुआ वस्तिमें उतरता आता है वस्तिकक्षामें बरावर आता है तव मस्तकका पूर्व पश्चिम व्यास कक्षाके खडे

व्यासमें आ जाता है क्योंकि दोनोंका वह लम्बा व्यास है। इस प्रमाणसे आगमनद्वारके तिर्छे व्यासमेंसे कक्षाके बडे व्यासकी तरफ मस्तकको स्क्रूल (पेच) के माफिक फिरनेकी आवश्यकता पडती है। इसके बाद ऊपरके दबावसे मस्तकका पश्चिम भाग खुवीक कमानके नीचे अड जाता है इस स्थितिमें हनु (ठोडी) जो अबतक छातीके सम्बन्धमें स्थित थी वह वहांसे सम्बन्ध छोडकर गर्दन लम्बा होकर ललाटका भाग नीचे उतरकर मस्तक निर्गमनद्वारके बाहर दीखता है। निर्गमन द्वारमेंसे निकलते समय बालकका मुख सीधा कोकसीक्षकी तर्फ होता है परन्तु उसमेंसे निकल करके तुरन्त मुखका रुख दक्षिण जंघाकी तर्फ हो जाता है। इतनेमें फिर वह स्वयं पूर्वकी दशा धारण करता है मस्तक आगमन द्वारमें दाखिल होकर तब दक्षिण तिर्य्यक व्यासमें हो जाता है, बालक वस्तिमेंसे निकलकर फिरता है और पूर्व पश्चिम व्यासमें आता है परन्तु वस्तिमेंसे निकलकर तुरन्त अपनी असली दशा धारण करलेता है। इस रीतिसे गर्दन और मस्तक आगमनद्वारमें दाखिल होता है वह स्क्रूल (पेच) के माफिक फिरकर बस्तिमें नीचे उतरकर तिर्छे व्यासमेंसे खडे व्यासमें आ जाता है और गर्दन लम्बी होकर निर्गमनद्वारमेंसे मस्तक बाहर निकलता है और बाहर निकलकर तुरन्त वह अपनी पूर्वदशा धारण करता है, उस समय बालकके दोनों खवे आगमन द्वारके वामे तिर्छे व्यासमें दाखिल होकर नीचे उतरते हैं। दक्षिण खवा दक्षिण ईस्कयमकी तर्फसे खुवीक कमानके नीचे आता है और वामा खवा वामे ईस्कयमकी तर्फसे सेक्रमके अन्तर गोलमें होकर बैठककी तर्फसे बाहर आता है कि इतनेमें बालकका बाकी शरीर तुरन्त निकल पडता है। इस प्रमाणसे बडी चतुराईकी युक्तिसे मस्तक वस्तिके लम्बे छोटे व्यासमें चाहिये ऐसी रीतिसे फिरकर बाहर निकलता है जिस समय मस्तक निर्गमनद्वारमें आता है उस वक्तमें आगेके भागमें खुवीक कमान आता है, परन्तु पीछेके भागमें बैठकका नरम भाग होता है और कोकसी कसनामकी आस्थिके दबावसे पीछेको हटता है। और बैठकका मांस तथा त्वचावाला भाग मस्तकके दबावसे विस्तृत होता जाता है अन्तके दर्जे सम्पूर्ण विस्तृत होकर मस्तकको बाहर निकलनेका रस्ता देता है। किसी २ समय किसी २ स्त्रीके ऊपरके अधिक जोरसे मस्तक एकदम नीचे उतर आता है तो बैठक याने सीमनका भाग फट जाता है। ऊपर कथन किया गया है कि बालकका प्रसव होनेके समय मस्तकका भाग प्रथम निकलता है परन्तु मस्तकका भाग एकही स्थितिमें और एक समान स्थिर रूप रीतिसे नहीं आता किन्तु पृथक् २ चार स्थितिमें स्थिर होता हुआ योनिमुखसे बाहर आता है। प्रथम स्थितिमें मस्तकका पूर्व पश्चिम व्यास आगमनद्वारके दक्षिण वांसाके व्यासमें मिलता हुआ आता है और ललाट पीछेके

भागमें होकर दक्षिणसे कोइल्यम सन्धिकी तर्फ रहता है और मस्तकका पश्चिम भाग आगेके भागमें होकर वामें ईस्कयमकी तर्फ रहता है । दूसरी स्थितिमें मस्तकका पूर्व पश्चिम व्यास वस्तिके वामे तिर्य्यक (तिर्छे) व्यासके अनुसार रहता है और ललाट पीछेको वामी बाजू सेकोइल्यमसन्धिकी तरफ होता है और मस्तकका पश्चिम भाग दक्षिण इस्कीयमकी तर्फ रहता है ।

आकृति न० ५९ देखो ।

वालकके प्रसवकी तीसरी स्थितिमें मस्तक तथा वस्तिकी व्यास प्रथम स्थितिके माफिक मिलता आता है परन्तु ललाटके आगे वामा ईस्कयम तर्फ आता है और मस्तकका पश्चिम भाग वस्तिके पीछेकी तर्फ दक्षिण कोनेमें जाता है । और वालकके प्रसवकी चौथी स्थितिमें मस्तक तथा वस्तिका व्यास दूसरी स्थितिसे मिलता हुआ है परन्तु ललाट दक्षिण इस्कीयमकी तरफ रहता है और मस्तकका पश्चिमभाग वाम पीछेके कोनमें जाता है । विशेष करके मस्तक प्रथम स्थितिमें जन्मता है वालककी पीठका भाग स्त्रीके अग्र भागमें होता है और दूसरी स्थितिमें भी वालककी पीठका भाग स्त्रीकी पीठकी तरफ होता है और तीसरी तथा चौथी स्थितिमें वालककी पीठका भाग स्त्रीकी पीठकी तरफ होता है और पेटका भाग आगेके तर्फ होता है, आगमनद्वारमें प्रवेश करते समय मस्तक तीसरी स्थितिमें होता है । वह विशेष करके फिरकर वाहर आनेके समय दूसरी स्थितिमें आ जाता है और चौथी स्थितिमें होय वह फिरकर प्रथम स्थितिमें आता है, प्रथम स्थितिमें मस्तक फिरकर वाहर किस रीतिसे आता है इसके समझनेके पीछे वाकीकी स्थितिमेंसे व किस रीतिसे फिर निकलता है उसको सहजही समझ सक्के हो मस्तकका पश्चिम भाग खुवीक कमानकी तर्फ होय तथा ललाट वैठक (सीमन) की तर्फ होय तो निर्गमन द्वारमेंसे वालकका निकलना सरल पडता है । प्रथम और दूसरी स्थितिमेंसे पश्चिम भाग पासकी ईस्कीयमपरसे सरलताके साथ कमानेके तले उतरता है परन्तु तीसरी और चौथी स्थितिमें वह सामनेके सेकोइल्यम सन्धिकी तर्फ होता है वहांसे वडा फेरा (चक्कर) करके कमानके तले (नीचे) आता है जो वालक फिर न सके तो ललाट कमानके नीचे आता है और पश्चिम भाग सेकममें मुड जाता है। उसके वाहर निकलनेमें निर्गमनद्वारमें कठिनता पडती है और वैठककी (सीमन) फुटनेकी विशेष भय रहती है ।

आकृति नं० ६० देखो ।

वालकका जिस समय प्रसव याने वाहर आनेको होय तव गर्भाशय थोडासा वस्तिस्थानकी तर्फ नीचे उतता है और इसी प्रसव होनेके आगे एक दो सप्ताह रहे तवसे ही

भारवाही (बोझा उठाने) वाली स्त्रीके पेटका चढाव जरा कम दीखने लगता है और उस स्त्रीको स्वयं भी अपना पेट जरा हलका मालूम होता है तथा श्वास प्रश्वास सरलतापूर्वक आती है और प्रसवका समय समीप आता जाय तब किसी २ समयपर खाली ऐंठा आता है और प्रसव होनेका आरम्भ होवे तब योनिमेंसे चिकना प्रवाही पदार्थ निकलता है, जिसमें कुछ २ रक्त भी मिश्रित रहता है फिर यथार्थ ऐंठा उठता है और बालक तथा गर्भाशयका जो सम्बन्ध है वह पृथक् होनेकी क्रिया आरम्भ हो जाती है । और बालक गर्भाशयके सम्बन्धको छोडता जाता है और गर्भाशयसे बाहर निकलनेको खिसकता आता है ।

(३) इस प्रक्रियाके माफिक ऊपर कथन किये प्रमाणसे प्रसवका प्रथम और दूसरा काल व्यतीत होनेके बाद जरायुसंयुक्त बालक बाहर आवे उसको तीसरा काल कहते हैं । बालकके बाहर आनेके बाद जो ऐंठन जोरसे आती है वह पांच दश मिनिटतक बन्द हो जाती है इस अवधिमें थोडा बहुत रक्तस्राव आता है और प्रसववाली स्त्री शिथिल हाकर पडी रहती है । इसके पीछे थोडा २ ऐंठा होने लगता है और रक्त-प्रवाहके साथ जरायु बाहर निकल पडती है, इसको प्रसवका चौथा काल कहते हैं । दिखाया गया है कि कोई २ बालक तो समस्त जरायु संयुक्त बाहर आता है जरायु फटकर बालक बाहर हो जाता है और बालकके पैरोंके साथ समस्त जरायु निकली चली आती हैं आर कोई बालक जरायुसे बिलकुल पृथक् होकर बाहर आता है आर जरायु पीछे कुछ रक्तप्रवाहके साथ आती है इसमें कितनेही शरीरका ज्ञाता विद्वानोंकी ऐसी सम्मति है कि किसी स्त्रीका जरायु बहुत मजबूत और मोटी होती है बहुत विलम्बसे फटती है यहांतक कि समस्त जरायु बालकके साथही रहती है और उसको फाडकर बालकको निकालना पडता है एक डाक्टरकी सम्मती है कि परिश्रमी स्त्रियोंकी जरायु बहुत मजबूत हो जाती है । इस प्रकार बालकक पूर्ण प्रस-वमें ४ पहरस ६ पहरतक लगते हैं याने १२ घटस लेकर २४ घंटेपर्य्यन्त प्रसव क्रिया हो जाती है परन्तु किसी २ स्त्रीको इससे अधिक और न्यून समय भी लगता है प्रसव होनेके बाद गर्भाशयमें जो कुछ निकलनेवाला प्रवाही पदार्थ है वह निकलकर गर्भाशय संकुचित् होकर और अपनी पूर्व अवस्थामें गोलाकार बंधकर नाभिके नीचे स्वस्थानपर कुदरती नियमानुसार नियत हो जाता है । और स्त्रीके पेटकी त्वचा कुछ ढीली हो जाती है परन्तु कुछ दिवस व्यतीत होनेपर वह भी अपनी स्वाभाविक स्थितिमें आ जाती है ।

डा० स्वाभाविक प्रसवमें प्रसूति स्त्री और चिकित्सकके कर्त्तव्य कर्म्म ।

बालकका जन्म होनेके अनन्तर स्त्रीको स्वच्छ और सूखे मकानमें रहना चाहिये इस

देशकी ऐसी रवाज़ है कि जो मकान बेकार और खराब होय उसीमें प्रसव कराते हैं और १० व १५ दिवसतक प्रसूति स्त्री उसीमें रहती है, उस मकानमें हवा आदि जानेसे बडे भयभीत होते हैं यहांतक कि उस कोठरीमें प्रकाशतक नहीं जाने देते। उसको पूर्ण रूपसे कालकोठरी बना देते हैं और उसके अन्दर अग्नि हरसमय दहकाते हैं उस अग्निके धूएमें गैसका भाग रहता है वह प्रसूति और बालक दोनोंको हानि पहुँचाता है। मुझे प्रसूति तथा बालकको देखनेके लिये इस स्थितिमें कई जगह जाना पडा है और उस प्रसूति गृहमें ४।६ मिनट ठहरनेपर मेरा भी दम घुटने लगा है आखिरकार डाट बतलाकर उस मकानके एक दो दरवाजे खुलवातेही थोडीही देरमें गर्म गैस निकलकर वायु स्वच्छ होगई है और गैसके जहरसे प्रसूति तथा बालक वेहोस थे सो थोडेही समयमें चैतन्य हो गये हैं। इस दशामें विशेप हवा पहुँचना सर्वथा वर्जित है परन्तु ऐसा करना भी सर्वथा वर्जित है कि मकानको बन्द करके उसकी हवाको खराब कर देना जितना कि अधिक हवा जानेसे नुकसान पहुंचता है उससे कई दर्जे बढकर एकदम मकानके अन्दर हवा बन्द कर देनेसे पहुँचता है। और उस मकानको शीत व वर्षाऋतुमें गर्म करनेकी आवश्यकता पडे तो अँगीठीमें कोयला व लकडी छाडे आदि जो कुछ दहकाने होवें तो खुली जगहमें उनको दहकाना चाहिये और जिस समय दहककर अंगार होजावें तब प्रसूतिगृहके अन्दर रखना चाहिये। मकान ऐसा होय कि उसकी हवा स्वच्छ होती रहे। अब स्वाभाविक याने कुदरतके नियमानुसार जो प्रसव हो चुका होय उसमें प्रसूति स्त्रीको क्या २ कर्त्तव्य है और उसके रक्षक चिकित्सकको क्या २ कर्त्तव्य है। इस व्यवस्थाको नीचे लिखते हैं। स्त्रीको दिन पूरे होनेका स्मरण बराबर रखना चाहिये और उस समयपर प्रथमही पेटमें दर्द और ऐंठा आरम्भ होवे और योनिमेसे रक्तमिश्रित जलस्राव दीख पडे उसी समयसे सूतिकागारमें जानेकी तैयारी करनी चाहिये—और ओढने बिछानेके विस्तरादि जिस २ उपयोगी वस्तुकी आवश्यकता पडे उसको सूतिकागारमें रखलेवे। और सेवा करनेवाली जो स्त्री होवे उसको समीप रक्खे। चिकित्सकको उचित है कि आगे लिखे सामानको लेकर प्रसवकालके समय स्त्रीकी रक्षाके लिये समीप रहे। स्त्रियोंके मूत्र निकालनेकी सलाई धातुकी। थोडा लाडेनम, तथा अरगट, कैंची, डोरा, तथा पेटसे बांधनेका पट्टा इतनी वस्तु चिकित्सकको समीप रखनी उचित हैं। स्वाभाविक प्रसवमें कुछ विशेष औषधियोंकी आवश्यकता नहीं पडती परन्तु कदाच समयपर जरूरत पडे तो तुरन्त उपयोगमें आसके इस लिये आवश्यक औषध पास रखना अति उत्तम है। स्त्रीके पेटमें ऐंठन झूठी और सत्य दो प्रकारकी होती है झूठी ऐंठन होती है वा यथार्थ प्रसवकालकी ऐंठन होती है इसका निश्चय करना। यदि प्रसवकालकी यथार्थ

एठन आती होवे तो प्रत्येक ऐंठनपर गर्भाशय कठिन होता हुआ माल्हम पडता है और ऐंठन थोडे २ समयके अन्तरसे आती हुई धीरे २ ऐंठनका जोर बढता जाता है, इसके साथही कमर तथा बांसामें ऐसी पडा माल्हम होती जैसे फटता होय और पेटमें ऐसा माल्हम होता है कि बाढ व हिलोर आती होय और यह बाढ अति शक्तिके साथ आती है स्त्रीको ऐसा माल्हम पडता है कि पेटमें कोई बस्तु प्रबलतासे चढती आती है । योनि परीक्षा करनेसे गर्भाशयका भाग नीचेको उतरता हुआ माल्हम पडता है और कमलमुख (गर्भाशयका मुख) खुलता हुआ चला जाता है । झूँठी ऐंठन सिर्फ वायुके प्रकोप व गतिसे उत्पन्न होती है, यदि झूँठ ऐंठन होय तो नियमपूर्वक ठहर ठहरकर नहीं आती किन्तु अनियत अन्तरसे आती है और पीडा ऐसी माल्हम होती है कि पेटके आगेके भागमें दर्द होता है, गर्भाशय तथा गर्भस्थ बालककी प्रसवक्रियाका दर्द नहीं माल्हम होता । उदरमें वायुविकारसे झूँठी ऐंठन आती होय तो अरंडीका तैल २ तोला दूधमें मिलाकर दस्त साफ करा देना । इसके बाद कलोरोडाईन अथवा लाडेन इन दोनोंमेंसे किसी एक दवाका १० से लेकर २० बिन्दु तक २ तोला पानीमें मिलाकर पिला देना, इससे झूँठी ऐंठन बन्द हो जाती है । ऐंठन और गर्भाशयका संकोच ये गर्भको नीचे सरकानेके वास्ते होते हैं ज्यों ज्यों गर्भ नीचेको सरकता है त्यों त्यों गर्भाशय संकुचित् होता जाता है और पीडा होती है ।

प्रसवकाल होनेके समय योनिपरीक्षा ।

प्रसवकालकी यथार्थ ऐंठन आती है ऐसा निश्चय दाई व चिकित्सकको होय तो तुरन्त योनिपरीक्षा करनी योग्य है । कमलमुखकी स्थिति तथा गर्भाशयके अधोभागकी परीक्षा करनी उचित है, यह जान पडे कि गर्भाशयका अधोभाग बराबर नियत स्थानपर स्थित न होय तो उसका शीघ्र उपाय हो सक्ता है । स्त्रीको बिस्तरपर वक्षोजस्थितिसे वामी करवट सुलाकर और उसके शरीरको वस्त्रसे आच्छादन करके चिकित्सक अपने हाथकी एक व दो अंगुली तैलसे चुपडकर स्त्रीके पीछे बैठकर व खडा होके योनिमें प्रवेश करके योनिमार्गके पछिके भागमें कमलमुख पर्य्यन्त ले जाना और कमलमुखकी स्थिति देखनी कि कितना विस्तृत हुआ है और गर्भस्थ बालकका मस्तक कमलमुखके समीप है कि नहीं । कमलमुख विस्तृत होने लगा होगा तो बालकके मस्तकका कठिन भाग अंगुलीके पोरुआसे स्पर्श होगा और मस्तकका ब्रह्मरन्ध्र कोमल माल्हम होगा, जो कमलमुख विस्तृत होनेका केवल आरम्भ ही हुआ होगा तो स्त्रीके बैठने उठने तथा थोडे चलने फिरनेमें कुछ हानि नहीं पहुंचती, स्त्रीको हलका दुग्धादिका आहार देना और मल मूत्रके संग्रहसे स्त्रीको शुद्ध कर देना चाहिये । यह निश्चय समझना चाहिये कि कमलमुख विस्तृत हो प्रसवकी सूचना देता है ।

आकृति नं० ६१ देखो ।

यह आकृति जो दीगइ ह चिकित्सको प्रथम योनिपरीक्षा करनी पडी होय और प्रथमकालकी स्थितिका निश्चय हो गया होय तो दूसरे समय परीक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं रहती । यदि कदाचित् प्रसव होनेमें अधिक समय व्यतीत हो गया होय और प्रसवके दूसरे कालके विशेष लक्षण प्रगट न हुआ होय तो उचित है कि दूसरें समय परीक्षा करना । इस दूसरी परीक्षासे मालूम होगा कि कमलमुख किस स्थितिमें है और परीक्षा करनेके समय इतना ध्यान रखना चाहिये कि अंगुलीके स्पर्शसे गभजाल न फूटने पावे । जब कि प्रथम काल पूर्ण हो जाय और कमलमुख सम्पूर्ण खुल जावे उस समय विशेष जोशसे ऐंठा आने लगते हैं और प्रसवके दूसरे कालका आरम्भ हो जाता है, चिकित्सकको ऐसा समझना चाहिये प्रथम कालमें ऐंठन हलकी आती है । कमलमुख पूर्ण रूपसे विस्तृत हो जानेपर (टशीयो) फुटनेके अनन्तर ऐंठा अधिक जोरसे आने लगता है इस, समय प्रत्येक ऐंठनके साथ स्त्री अपने श्वासको रोककर अपने समस्त शरीरका जोर वलात्कारसे करती है, जोर करते २ स्त्रीको पसीने आने लगते हैं । इस समय स्त्रीके शरीरमें विशेष आकुलता होती है और शरीर जरा गर्म हो जाता है, जब कि ऐंठन जोरजोरसे आने लगे और स्त्री अधिक जोर करने लगे तब ऐसा समझना कि बालकके होनेमें थोडाही समय है । ऐसे मौकेपर स्त्रीको वामी करवट वक्षोजस्थितिमें विस्तरपर सुलाकर पुनः योनिपरीक्षा करनी, गर्भका अधोभाग कितना नीचे उतर आया है इसका निश्चय करना प्रथम काल समाप्त होनेपर ही विशेष करके गर्भजलकी थैली टूट जाती है । यदि इस कायदेके माफिक गर्भजलकी थैली टूट गई होय तो अंगुलीके पोरुआके स्पर्शसे बालकक मस्तकका भाग स्पष्ट रीतिसे जान पडेगा और अग्रभागमें अंगुली जरा ऊंची प्रवेश करके फेरनेसे बालकके कानका स्पर्श होगा । बालकका मस्तक कमलमुखसे. बाहर आनेपर भी गर्भजलकी थैली टूटी न होय तो अंगुलीके नखसे उसको फाड देना चाहिये किसी २ स्त्रीकी थैली मोटी और मजबूत होती है नखसे न फटे तो नस्तर व कैंचीसे फाड देना परन्तु बालकके शरीरको बचाकर फाडना थैली फटतेही स्त्रीको ऐंठा आवे और स्त्री जरा जोर करे तो बालकका अधोभाग नीचे उतरने लगता है, जहांतक कमलमुख सम्पूर्ण रीतिसे विस्तृत न हुआ होय वहांतक गर्भजलकी थैलीको कदापि न फोडे इसके निश्चयके वास्ते प्रथम योनि-परीक्षा पूर्ण रीतिसे कर लेवे कि इससे स्त्रीके अभ्यन्तर अङ्गोपाङ्ग तथा बालकके शरीरको किसी प्रकारकी इजा न पहुंचे । ऐंठन आनेके समय अंगुली योनिमार्गमें प्रवेश करके कमल-मुखपर रखनेसे बालकका अधोभाग नीचे उतरता हुआ मालूम पडेगा और इसके आधारसे यह निश्चय हो जायगा कि बालकका प्रसव होनेमें कितने कालका विलम्ब है । बाल-

कके मस्तकका भाग नीचे उतरकर निर्गमनद्वारमें आता जायगा ऐसे आइस्ते २ मस्त-कका भाग नीचे उतरता आवेगा और बाहर निकलनेके करीब आन पहुँचेगा । उस समय योनिमुख क्रमक्रमसे चौंडा और ढीला होता जायगा जिस समय मस्तकका भाग योनिमुखपर बाहर आनेको एकाएक जोरसे दबाव डालता है और स्त्री भी कुनहकर अधिक जोर देती है तो योनिमुखके नीचे सीमनके पास जिसको वेसणी अंग बोलते हैं वह कट जाता है, परन्तु यह प्रथम प्रसववाली स्त्रीको ही ईजा पहुँचती है दूसरे बालक होनेपर नहीं पहुंचती । योनिमुखके नीचेके भागकी रक्षाके लिये इस समयपर एक कोमल स्वच्छ कपडा लेकर उसको हलके हाथके सहारेसे दबाकर रखना चाहिये, इतनी सहायतासे उसकी फटनेसे रक्षा हो जाती है । यदि बालकका समस्त मस्तक बाहर आ जावे तो उसको दक्षिण हस्तके आधारपर लेना चाहिये, खेंचनेकी आवश्यकता नहीं है । स्वभावसे ही थोडे समयमें ऐंठा होकर खवेका भाग बाहर निकल आवेगा कदाचित् थोडे समयमें बाहर न निकले तो बालकके खवेपर अंगुलीका सहारा लगाकर अंगुलीको बगल (कांख) के आधारपर अडाकर एक खवा बाहर निकलनेसे शीघ्रही दूसरा खवा और हाथ बाहर निकल आवेगा और दोनों खवे और हाथाक निकलनेके बादही बालकका समस्त शरीर योनिमार्गसे बाहर निकल आता है इस समयपर प्रसव करनेवाले चिकित्सकको उचित है कि स्त्रीके पेटपर गर्भाशयके ऊपर हाथसे दबाव रक्खे । बालकका मस्तक बाहर आ जानेपर जो बालकके गलेके आसपास नाल लिपटा हुआ होय तो उसको छुटाकर गले और मस्तकसे पृथक् कर देना चाहिये । जो दाई समीपमें उपस्थित है उसको बोल देना कि बालक बाहर आनेके समय प्रसूती स्त्रीका पेट गर्भाशयके ऊपरसे दबाती जावे हलके हाथके सहारेसे इस दबावसे बालक बाहरको सरकता हुआ चला आता है, केवल यही लाभ इस दबावसे नहीं है किन्तु इससे अधिक लाभ यह भी है कि इस क्रियासे गर्भाशय शीघ्रही संकुचित हो अपनी यथा-स्थितिमें हो जाता है और अमरा (जरायु) शीघ्र बाहर निकल आती है । अधिक प्रवाह भी नहीं होता सो प्रसवके समय जैसे २ बालकका शरीर गर्भाशयसे बाहर निकलता आवे वैसे २ पेटको हलके हाथसे दबाना चाहिये, दाई तथा प्रसव करानेवाले चिकित्सकको उचित है कि इस क्रियासे वे भूल न रहें । और बालकके बाहर आतेही उसके मुख तथा नाकमेंसे शीघ्रही लार निकाल देना चाहिये, लार निकालतेही उसको सांसारिक वायुका स्पर्श हो जाता है कि उसी समय चीक मारमारके रोने लग जाता है और श्वास प्रश्वासकी क्रिया आरम्भ हो जाती है । इस प्रकारसे प्रसवकी आधी क्रिया समाप्त हो जाती है और जरायु निकलना बाकी

रह जाता है। जब कि बालकका श्वास प्रश्वास आरम्भ हो जावे तब नालका छेदन करना चाहिये, मुख और नासिका साफ होनेके बाद जो बालक रुदन न करे और उसके श्वास प्रश्वासकी क्रिया आरम्भ न होवे तो श्वास प्रश्वास चलनेतक उसका नाल छेदन न करे। एक डाक्टरका कथन है कि जन्म होनेके बाद जो बालक रुदन न करे और श्वास प्रश्वासकी क्रिया आरम्भ न होय और बालक जीवित होय तो उसको खुली हवामें १५-२० मिनिट रखनेसे श्वास प्रश्वास शुरू हो जाते हैं और रुदन करने लगता है (हमारे देशी डाक्टरोंमेंसे लाहौरके जैनपत्रिकाके सम्पादकके पुत्र महाशय डाक्टर हैं उन्होंने अपने निज गृहमें पुत्रजन्मके समय बालकके रुदन न करनेपर इस क्रियाको अनुभव करके जैनपत्रिकामें मुद्रण की थी इससे यह क्रिया विश्वासके योग्य है (और नाल छेदन करनेके प्रथम बालककी नाभिसे २॥ इंचके सुमार नालको छोडकर एक डोरासे खींचकर बांध देवे और उस बंधनसे आगे दो इंचके सुमार नाल छोडकर दूसरे ठिकाने नालको बांध देवे इन दोनों बन्धनोंके बीचमें कैंचीसे नालको कतर देवे और बालकके शरीरको स्वच्छ करके साफ वस्त्रपर उसकी माताकी दृष्टिके आगे लिटा देवे। और पेटके ऊपर जिस ठिकानेपर गर्भाशय है मसलकर दवा देना, इस क्रियासे गर्भाशय संकुचित हो जावे तब पेडू और गर्भाशयके ऊपर एक पट्टी बांध देवे। जरायु आदि गर्भाशयमेंसे छूटकर योनिमार्गमें आते हैं योनिमार्गमें अंगुली प्रवेश करके देखनेसे जरायुका स्पर्श होय तो अंगुलीसे उसको खींचकर बाहर निकाल लेना उसके साथही पडत तथा रक्त आदि निकल पडते हैं। विशेष करके बालक बाहर आनेके बाद गर्भाशय पांच दश मिनिटको विश्राम लेता है इस अवसरतक जरायु उसके अन्दर रहती है और दो चार रक्त ऐंठन आकर रुधिरका कुछ प्रवाह आता है इसके साथही जरायु और नाल बाहर निकल पडता है कदाचित् जो जरायु बाहर न आवे तो नालको खेंचकर निकालनेका प्रयत्न कदापि न करे क्योंकि खींचकर नालको निकाला जावे तो नाल टूट जाता है और रक्तप्रवाह होने लगता है। जो कदाचित् जरायु शीघ्र बाहर न आवे और उसके साथही रक्तप्रवाह भी बन्द हो गया होय तो जरायुके आनेके वास्ते कुछ समय पर्य्यन्त राह देखनी चाहिये। और गर्भाशयसे चिपटी हुई है अथवा छूटकर अलग हो गई है इसका निश्चय करना चाहिये, एकाध ऐंठन आवे और उसके साथ रक्त-प्रवाहका जोरसे प्रवाह आवे यह जरायुका गर्भाशयसे पृथक् होनेका चिह्न है। इसके सिवाय विशेष विश्वासके योग्य चिह्न यह है कि जो जरायु गर्भाशयके सम्बन्धमें होय तो नाल रक्तसे भरा हुआ लगता है और उसमें धडका भी होता है और जो गर्भा-शयका सम्बन्ध त्यागकर पृथक् हो चुका होय तो नाल ढीला तथा धडकारहित हो

जाता है। जरायु और नाल गर्भाशयसे पृथक् होने पीछे जो कदाचित् कमलमुख संकुचित हो जाय तो जो जरायु बाहर आनेवाली थी वह गर्भाशयके अन्दर ही रह जाती है। और गर्भाशयको मसलने व दबावसे जरायु बाहर न निकले तो आधे व पौन घंटेतक उसके निकलनेकी राह देखनी चाहिये। यदि इतने समयमें निकल आवे तो ठीक है यदि न निकले तो अंगुलियोंके नख साफ करके अंगुली व हाथ गर्भाशयमें डालकर जरायुको बाहर निकाल लेना चाहिये, जिस समय जरायु निकलनेको गर्भाशयमें हाथका प्रवेश किया जाय उस समय गर्भाशयके ऊपर पेटको एक हाथसे दबाकर रखे जिससे गर्भाशयसे संकुचित रहे। गर्भाशयसे सम्बन्ध त्यागकर जरायुका बाहर निकल आना यह जरा विशेष कठिनताका काम है यह न निकले वहांतक प्रसव कार्य्यमें बडा भय समझा जाता है वह भय रक्त प्रवाहका है, गर्भाशय संकुचित होकर कठिन न हो जावे वहांतक रक्तप्रवाहका भय रहता है, गर्भाशय संकुचित हो जानेपर रक्तप्रवाहका बिलकुल भय नहीं रहता है। यदि गर्भाशय संकुचित होकर कुदरती नियमके माफिक अपनी स्वाभाविक स्थिति धारण कर लेवे तो पेडूमें एक कठिन गोलेके समान हाथके स्पर्शसे मालूम होता है। अगर गर्भाशय ढीला व पुलपुला मालूम होय तो रक्तप्रवाह जारी रहता है, गर्भाशय ढीला और पुलपुला होय तो पेडूमें गोलके समान कठिन मालूम नहीं होता किसी २ समयपर ऐसा देखा गया है कि जरायु गर्भाशयसे सम्बन्ध छोडकर कमलमुखमें आकर अटक रहता है, इस कारणसे बालक बाहर आने बाद जो रक्त निकलनेवाला था वह गर्भाशयके अन्दर भरा रहता है, यह बात ध्यानमें रखके इसका निश्चय हो जावे तो तत्काल उपाय करना उचित है, इसके लक्षण तथा चिकित्सा अत्यार्त्तव प्रकरणमें पूर्व लिखा गया है। और जरायु बाहर निकलनेके पीछे गर्भाशय पूर्ण रीतिसे संकुचित होकर अपनी असली दशामें कठिन रूपमें आ जावे इसके लिये स्त्रीके पेटपर गर्भाशयके ऊपर एक कपडेकी गद्दी बनाकर रखे और एक कपडेकी पट्टी ऐसा बांध देवे कि जिससे स्त्रीको क्लेश न पहुँचे और जरायु तथा पडत निकले तो वह समस्त निकल गया है कि नहीं इसको अच्छी तरहसे देखलेवे इनका कुछ भी भाग अन्दर रह जावे तो इसके निमित्तसे रक्तप्रवाह जारी हो जाता है, अन्तके दर्जे अन्दर गर्भाशयमें सडने लगे तो स्त्रीको ज्वर आने लगता है। और इसको सूतिका ज्वर बोलते हैं। अब हम यह प्रगट करते हैं कि प्रसूति स्त्रीकी जान धाईके हाथोंमें रहती है। इसलिये चतुर दाईको स्थिर चित्तसे बालक और प्रसूतिको पृथक् करके दोनोंकी रक्षाका कर्त्तव्य पालन करना उचित है ऐसी विदुषी दाईकी लोकमें प्रतिष्ठा बढती है स्त्री और बालकोंकी प्राणदाता समझी जाती हैं। परन्तु इतनाही अफसोस है कि

इस भारतभूमिमें विद्याका पूर्ण प्रचार न होनेसे शारीरक विद्यासे रहित और अपठित अनारिन नीच कौमकी स्त्रियां इस समय दाईका काम करती हैं और हजारों बच्चों और प्रसूति स्त्रियोंको मार डालती हैं ।

स्त्रीचिकित्सक प्रसवकार्य्यकरानेवालेके लिये योग्य नियम ।

(१) सूतिकागृहमें जानेके पूर्व दाईको उचित है कि अपने नख कतर लेवे । (२) सफेद स्वच्छ वस्त्र पहनकर सूतिकागृहमें जावे (३) हाथोंकी अंगुलियोंमें छल्ला अंगूठी व चूडी तथा कडे आदि होवें तो उतारकर रख देवे (४) एक सूतिकागृहके कपडे पहनकर दूसरे सूतिकागृहमें न जावे (५) एक प्रसूती स्त्रीको डराना व धमकाना न चाहिये उसको धैर्य्य प्रदान करे और बेटी तथा बहनका संबोधन करके संभापण करे (६) दाईके सिवाय सूतिकागृहमें दो चतुर स्त्रियां और भी रहनी चाहिये (जो कि दाईके कथनानुसार प्रसूतिके कार्य्यमें सहायता देवें) (७) जिस देशकालमें चतुर स्त्री चिकित्सक दाई न मिले तो स्त्री शारीरकविद्या और प्रसवक्रियाके जाननेवाले दुराचरणसे रहित समदृष्टि और स्त्रीजनोंमें माता भगिनी और पुत्रीकी भावना रखनेवाले सज्जन पुरुप चिकित्सकसे प्रसवके समय कार्य करानेमें कुछ हर्ज नहीं है । कदाच किसी स्त्रीको अपनी लज्जा त्यागनेका हठ हो तो पर्देकी आड (ओट)से पुरुप चिकित्सक सब क्रिया बतला सक्ता है । परन्तु इस समय मूढ दाइयोंको हाथसे हजारों बच्चे और स्त्रियां मृत्युके मुखमें प्रवेश कर जाती हैं, इससे निरपराध बच्चे और स्त्रियोंको बचाना उचित है (८) सूतिकागृहके लिये कुछ सामान ऊपर कथन कर आये हैं उसके अलावे इतनी चीजें और रख लेनी चाहिये, और आवश्यकीय चीजें यथास्थान रखलेनी चाहिये कि समयपर हाथ डालतेही उठा ली जावें । नारियलका तैल हाथ व योनि चुपडनेको, अरंडीका तैल, दो तकिये स्त्री जाँघोंके तले रखनेको, गर्म जल, शीतल जल, कुछ फीता और दो तीन गज साफ व नया कपडा थोडे साफ चींथडे, निर्धूम कोयलेकी आग्नि १ गज फलाटेन दो मट्टी व चीनी व धातुकी कूंडी एक दो प्याले आदि और जिन २ औपधियोंकी आवश्यकता प्रसवसमयपर पडती होय वो भी रखे ।

दाई (प्रसव करानेवाली स्त्रीचिकित्सक) के विशेष कर्त्तव्य कर्मका निर्देश ।

स्त्रीचिकित्सकको उचित है कि प्रसव होनेवाली स्त्रीके पूर्व लिखे हुए प्रसवके पूर्व रूप दीखने लगे होय तो उसको सूतिकागृहमें लेजाकर सीधी सुलाकर उसकी कोखें दोनों तर्फसे टटोलकर देखे कि गर्भाशयमें बालक किस करवटसे है अर्थात् बालकका शिर ऊपरको है वा नीचेको है और बालक सीधा है व आडा टेढा पडगया है इन

सब बातोंका निश्चय कर लेवे। गर्भाशयमें स्वाभाविक नियमानुसार बालकका शिर नीचेको और पैर ऊपरको रहते हैं और प्रसवसमयमें भी कुदरती नियमके अनुसार बालकका शिरही प्रथम गर्भाशयसे निकलता है। परन्तु जिस बच्चेका शिर गर्भाशयमें ऊपरकी तर्फ होता है उसके प्रथम पैर निकलते हैं और आसावधानीके कारणसे प्रायः जो बालक गर्भाशयमें आडा तिर्छा हो जाता है वह शिरके बल नहीं निकलता। इस प्रकारके प्रसवका हाल आगे मुफसिल रीतिसे लिखा जायगा, यहां केवल इतनाही दिखलाना है कि स्त्रीचिकित्सक प्रसवकी इन स्थितियोंको समझ लेवे कि जिससे उसको प्रसवक्रियामें धोखा न होने पावे। प्रथम बालकका शिर व पैर निकलनेकी यह पहचान है कि जो दक्षिण बगलमें बालक कुलबुलाता जान पडे और वाम कोख भारी जान पडे तो निश्चय समझ लो कि प्रथम बालकका शिर गर्भाशयसे बाहर निकलेगा। यदि वाम कोख फडके और उसी तर्फ बालक कुलबुलाता जान पडे और दक्षिण कोख भारी जान पडे तो बालकके पैर प्रथम गर्भाशयस बाहर निकलेंगे। जितनी कुलबुलाहट दक्षिण कोखकी दूसरे मनुष्यको जान पडती है, उतनी कुलबुलाहट वामी कोखकी दूसरेको नहीं जान पडती, इस प्रकार यदि चिकित्सकको कुछ कुलबुलाहट न जान पडे तो प्रसववाली स्त्रीसे पूछना चाहिये कि तुमको बाई किस तर्फकी कोखमें बालक हिलना जान पडता है। यदि प्रसववाली स्त्री बतलावे कि वामी कोखमें बालक कुलबुलाता है और दक्षिण कोख भारी है तो जान ले कि बालकके पैर प्रथम गर्भाशयसे बाहर निकलेंगे स्त्रीचिकित्सक प्रथम स्त्रीके पेटको टटोले और उसको यह निश्चय होवे कि गर्भाशयमें बालक आडा तिर्छा हो रहा है तो समझ लो कि प्रथम बालकका हाथ गर्भाशयसे बाहर निकलेगा। और जो हाथ पहले निकला तो जबतक बालकको सीधा न कर दिया जावे तबतक बालक गर्भाशयसे बाहर नहीं निकल सक्ता। प्रायः ऐसी घटना हजार पीछे ४ छः ही होती हैं, बालकको सीधा करनेकी प्रक्रियां आगे लिखी जावेगी। ये उपरोक्त घटना गर्भवती स्त्री गर्भावस्थाके नियमोंके विपरीत चलती हैं उनहींको होती देखी गई हैं नियमानुसार चलनेवाली गर्भवतीको कदापि नहीं होती। गर्भाशयस प्रथम हाथ व पैरका निकलना स्वाभाविक प्रसवसे विपरीत अस्वाभाविक प्रसव समझा जाता है और इस अस्वाभाविक प्रसवका प्रकरण आगे लिखा जायगा परन्तु यह अस्वाभाविक प्रसव किन कारणोंसे होता है सो यहां बतला देना ठीक है। गर्भ रहनेके दिनसे लेकर छः महीनेके पूर्व बालक गर्भाशयमें स्थित भावसे नहीं रहता है कारण गर्भाशयमें हलता फिरता रहता है लेकिन छठे महीनेसे लेकर जन्मपर्यन्त बालकका शिर नीचेको और पैर ऊपरको गर्भाशयमें स्थिर भावसे रहते हैं और इसी स्थितिसे

थाने प्रथम शिरके वलही वालक उत्पन्न होता है कदाचित् छः मासके पूर्व जो वालक जन्मे या गर्भपात होय तो वालकके हाथ पैरही प्रथम गर्भाशयसे वाहर निकलते देखे जाते हैं और नव महीने प्रथम सात आठ महीनेका वालक जीवित रहता है परन्तु सैकडा पीछे पांच दश जीते हैं (१) विपरीत प्रसवका कारण यह है कि गर्भाशयमें वालक मर गया होय तो अक्सर देखा गया है कि उसके हाथ व पैर प्रथम निकलते हैं। (२) किसी रोगविशेषके कारणसे वालककी स्वाभाविक आकृति वदल जावे तो भी प्रसवसमयमें उसके हाथ पैरही प्रसवके प्रथम निकलते हैं। (३) जैसे कि किसी वालकके शिरमें पानी आ जाता है और पानी आ जानेसे वालकका शिर स्वाभाविक शिरसे दो तीन व चतुर्गुणतक मोटा हो जाता है इसका उपचार शारीरक विद्याके जाननेवाले चिकित्सक द्वाराही उत्तम रीतिसे हो सक्ता है (४) गर्भवती स्त्रीको रोग हो जानेसे गर्भाशयकी आकृतिमें कुछ अन्तर आ जावे तो भी प्रसवके समय वालकके हाथ पैरही प्रथम निकलते हैं (५) कदाच गर्भवती स्त्री किसी रोग विशेपसे कुवडी हो जावे या उसके शरीरमें कुछ अभिघात लगनेसे नितम्बकी हड्डी टेढी पड जावे व वस्ति पिंजरकी हड्डियोंको अभिघात पहुंचे तो भी वालकका प्रसव स्वाभाविकसे विपरीत होता है (६) प्रसवसमयमें जो पीर व ऐंठन होती है उसके होतेही एकदम गर्भ थैलीका जल निकल पडे तो भी स्वाभाविकसे विपरीत प्रसव होता है (७) जव कि गर्भ रहनेके समयसे पांच महीने होजावें इसके वाद गर्भवतीको दूरदेशका सफर करनेसे धक्का व झकोरा लगनेसे वच्चा टेढा पड जाता है और प्रसवसमयमें वालकके हाथ पैरही प्रथम निकलते हैं क्योंकि इस समय पर्य्यन्त गर्भाशयमें वालक स्थिरभावसे जगह नहीं पकडता है (८) गर्भवती स्त्रीके गिरकर चोटका अभिघात पहुँचनेसे कमर वा पेटपर धक्का वा हाल लगनेसे भी उपरोक्त दोप प्रसवसमयमें आता है। कदाचित् वालकका हाथ गर्भाशयसे प्रथम निकल आवे तो वह वालक जवतक नहीं निकल सक्ता कि तवतक उसका हाथ अन्दर करके सीधा न कर लिया जावे ऐसी अवस्थामें शारीरक विद्याको जाननेवाली स्त्रीचिकित्सक वा पुरुप चिकित्सकके विना प्रसव होना वडाही कष्टसाध्य है। इसकी विशेप प्रक्रिया आगे लिखी जावेगी।

रायु आंवल वा फूलके विषयका विशेष कथन।

नीचे जो विषय लिखा जाता है उसको प्रसव करानेवाले स्त्री चिकित्सक वा दाईको वारीक दृष्टिसे लक्ष देकर समझ लेना चाहिये जिससे प्रसवकालमें स्त्री और वालकको अति कष्ट सहन न करना पडे। क्योंकि विचार शून्य दाईके हाथसे प्रसवमें

दो जीवोंको कष्ट और मृत्यु होना सम्भव है इसलिये गर्भाशयके अन्दरकी दशाको अच्छी तरह समझलेना चाहिये—जरायु और अमरा ये संस्कृत नाम हैं। जरायुकी सकल गर्भाशयके समान ही होती है गर्भाशयकी तदाकार आकृतिमें एक जिल्द गर्भाशयके अन्तरापिण्डके भीतर है जैसे अमरूदकी आकृतिका गर्भाशय है उसीके समान जरायुकी आकृति है। इसका गोल और चौडा भाग ऊपरकी तर्फ है और संकुचित भाग गर्भाशयके मुखकी तर्फ है और प्रसवद्वारसे मिला हुआ है, ऊपरके भागको जरायुका शरीर और नीचेके भागको जरायुका मुख कहते हैं। इस जरायुके अन्दर एक झिल्लीदार बारीक चमडेकी जिल्दकी थैलीसी जलभरी हुई रहती है उसी जलभरी हुई थैलीके बीचमें बालक रहता है और गर्भाशयके बीचमें उसको बालकका घर समझना चाहिये। असली जरायु जिसका जिकर ऊपर लिख चुके हैं वह आंवल (फूल) के साथ नहीं गिरती। गर्भ रहनेके प्रथम जैसे गर्भाशय सुकडा हुआ रहता है ऐसे ही जरायु भी सुकडी हुई रहती है। गर्भ रहनेपर जैसे बच्चा बढता है वैसे ही जरायु भी बढती है और बालक उत्पन्न होनेके अनन्तर जैसे गर्भाशय सुकड जाता है वैसे ही जरायु भी सुकड जाती है इस जरायुको गर्भाशयका अन्तर पडत भी कहते हैं और अमरा नाम भी इसीमें संघटित होता है, यह गर्भाशयके अन्तरपिण्डकी रक्षा करनेवाली जिल्द है। गर्भाशय पडतदार मांस पेशी और स्नायु तन्तुओंसे बना हुआ है और व पडत पलाण्डुके पडतोंके समान हैं। इनमें विस्तृत और संकुचित होनेका स्वभाव है जिस प्रकार प्याजकी ग्रन्थिके ऊपर बारीक छिलका बढा रहता है इसी प्रकार यह पडत गर्भाशयके अन्तरपिण्डके ऊपर विस्तृत है। और गर्भजल थैली इसको वैद्यकमें जरायु बोलते हैं और अमरा भी कहते हैं। लोकमें जेरी और झिल्ली पोतडी बोलते हैं और देश भेदसे और २ नाम भी हैं, इसका कोई भाग गर्भाशयमें चिपटा हुआ रह जाता है सो सडने लगता है और प्रसूतिको ज्वर उत्पन्न हो जाता है इसको सूतिका ज्वर कहते हैं। गर्भाशयमें इसके रहनेसे रक्तस्राव भी होता है और इसके शुष्क होकर गर्भाशयमें रहनेसे आगामी गर्भ नहीं रहता, कदाचित् रह भी जावे तो स्राव हो जाता है। आयुर्वेदमें स्त्रीके वस्तिपिंजरको पोलमें आये हुए गर्भाशय और गर्भाशयके अङ्गोपांगोंका शारीरक पूर्ण रीतिसे नहीं लिखा गया इसी प्रकार स्त्रीके शारीरकका पूर्ण विवरण यूनानी तिब्बमें भी नहीं पाया जाता, जो ग्रन्थ डाक्टरीके प्रचार होनेके बाद यूनानी तिब्बके लिखे गये हैं उनमें कुछ २ विवरण डाक्टरीके आधारसे लिखा गया है। ऊपर जिस गर्भजल थैलीका कथन हो चुका है उसको स्त्रियां पोतडी, झिल्ली और जेरी बोलती हैं। ऊपर जिस जरायु अमराका कथन हो चुका है उसका गर्भाशयसे नित्य सम्बन्ध है और इस जरायु (पोतडी) का अनित्य सम्बन्ध है क्योंकि

गर्भाशयमें गर्भ रहनेपर इसकी आकृति तैयार होती है और प्रसवके समय यह पोतडी फूटकर गर्भजल और वालक दोनों निकल आते हैं, इसके बाद अनित्य जरायु (पोतडी) भी निकल कर गर्भाशयसे वाहर आ जाती है । और इसको जमीनमें गाड देते हैं । आंवल इसको आयुर्वेदमें अमरा कथन किया है परन्तु अमरा शब्दका अर्थ असली तौरसे नित्य सम्बन्धवाली जरायु पर संघटित होता है, क्योंकि स्त्रीका शरीर रहनेतक असली जरायुका सम्बन्ध रहता है । परन्तु इस समय व्यवहारमें आंवल व (फूल) पर ही अमरा संज्ञा वोली जाती है यह आंवल (फूल) उसको बोलते हैं जैसे कि वालककी नाभिसे लगा हुआ नाल आता है उस नालके एक सिरेका सम्बन्ध वालककी नाभिसे है और दूसरे सिरेका सम्बन्ध गुलाबके फूलकी आकृतिकी वस्तुसे रहता है यह भी वालक होनेके पीछे पोतडीके साथमें बाहर निकल आती है इसके निकलनेके प्रथमही वालकका नाल छेदन किया जाता है । नीचे वालकका नाल और आंवल इन दोनोंके सम्बन्धकी आकृति देखकर समझ लो ।

आकृति नं० ६२-६३ देखो ।

गर्भाशयकी आकृति जरायुकी स्थिति आंवल और नालका वालककी नाभिसे सम्बन्ध पोतडी (झिल्ली गर्भजल थैली जिसमें वालक रहता है) कमलमुखकी स्थिति और पोतडी खुलने और जल तथा वालकके निकलनेकी स्थिति योनिमार्ग निर्गमन द्वारमें वालककी रुकावटके अङ्ग और रुकावटके अवरोधको निवृत्त करनेकी प्रक्रिया इत्यादि पर स्त्री चिकित्सक विशेष लक्ष रखकर क्रियाको सिद्ध करता है वह लोकमें यशभागी समझा जाता है । और इस बातको ध्यानमें रखो कि जिस स्त्रीको प्रथम प्रसव होता है उस समय पर उसकी जरायुका मुख वन्द रहता है इस कारण पहलौठीके वालकके जन्म समयमें स्त्रीको अधिक कष्ट सहन करना पडता है इतना कष्ट आगे आनेवाले प्रसव पर नहीं होता । जबतक कमलमुख और जरायुका व्यास १५ व १६ अंगुलका खुलकर तैयार न होगा तबतक वालकका शिर बाहर नहीं निकल सक्ता इतने व्यास तक खुलनेमें प्रथम प्रसववाली किसी २ स्त्रीको दो दिवस व इससे भी कुछ समय अधिक लग जाता है । इस दशामें प्रथम प्रसूता स्त्रीको विशेष धैर्य्य देना चाहिये । यह कुदरती नियम है कि मनुष्यका जन्म इसी रीतिसे होता है और प्रसूताको विचारना चाहिये कि मैंभी अपनी माताको इतना ही कष्ट पहुँचाकर किसी समय पर उत्पन्न हुई थी । स्त्री चिकित्सकको उचित है कि कभी २ किसी २ स्त्रीको ऐसा भी होता है कि जरायु और कमलका मुख खुलनेके अनन्तर गर्भजल नहीं आता किन्तु समस्त वालकका शरीर गर्भजल थैली सहित गर्भाशयसे वाहर निकल पडता है। उस समय यह न समझे कि यह मांसका लोथडा व विकृत गर्भ है नहीं उस थैली

(पोतडी) को चीरकर बालकका शरीर बचाकर बाहर निकाललेवे इस कार्य्यके करनेमें अधिक विलम्ब न करे क्योंकि विलम्ब करनेसे पोतडीके अन्दर. बालकका श्वास घुटने लगता है । योनि परीक्षा करनेके समय स्त्री चिकित्सकको उचित है, नखके लगनेसे गर्भजलकी थैली न फटजावे क्योंकि थैलीके फटनेसे गर्भजल निकल जाता है और बालक गर्भाशयमें रह जाता है और कभी २ ऐसा होनेसे बालक गर्भाशयमें आडा तिर्छा पड जाता है और हाथ बाहर निकल आता है कोई २ मूर्ख दाई जल्दी जननेके वास्ते भी पोतडीको नखसे फाडदेती हैं इससे प्रसववाली स्त्री और बालक दोनोंको कष्ट होता है इसलिये जहांतक होसके प्रथम कालमें पोतडीको न फटने देवे। कदाचित् गर्भाशय.तथा जरायुका मुख खुलनेमें बहुत समय व्यतीत हो चुका होय और खुलनेकी सूरत दिखाई न देती हो तो चिकित्सकको ऐसा उपाय करना चाहिये कि प्रसूता को सूखी वमन होने लगे (सूखी उल्टी आने लगे) किन्तु अन्दरसे उल्टीके साथमें कुछ जल व आहार न निकले इसके लिये सरल उपाय यह है कि उसी प्रसूता स्त्रीके शिरके बाल खोलकर उसके मुखमें जिह्वाकी जडतक पहुँचा देवे (ठूसकर भर देवे) इस उपायसे बहुत ही शीघ्र सूखी वमन आने लगती है और जरायु तथा गर्भाशयका मुख बहुत शीघ्र २ खुलने लगेगा । यहां पर चिकित्सकको इतना ध्यान रखना चाहिये कि प्रसूताके मुखमें बालोंका इतना न ठूँसे कि उसका श्वास प्रश्वास रुकने लगे और तबीयत घबडाने लगे किन्तु मुखमें बालोंको अन्दाजके माफिक डाले। दूसरे यह भी है कि यह उपाय प्रथम कालका है दूसरे तीसरे कालमें न करे दूसरे तीसरे कालमें करनेसे प्रसूताको कष्ट पहुंचता है और प्रथमकालमें कुछ कष्ट नहीं पहुंचता कारण कि किसी २ प्रसताको प्रथम कालमें वमन स्वभावसे ही आती है ।

प्रसव होनेके समयमें आहारकी व्यवस्था ।

प्रथम प्रसूती स्त्री (याने जिसको पहलाही बालक उत्पन्न होनेवाला होय) उसको दो तीन दिवस पर्य्यन्त पीडा होती रहती है, उस समयमें यहांकी मूर्ख दाइयां तथा घरकी बे समझ स्त्रियां खानेको नहीं देती हैं और प्रसव होनेवाली नवलवधू विचारी दो तीन दिनतक भूखी मरा करती है और भूखी रहनेसे उसके शरीरको यथार्थ पोषण नहीं पहुंचता सो निर्बल हो जाती है । निर्बल स्त्रीको प्रसवक्रियाका कष्ट अधिक भारी पडता है । दुर्बलताकी दशामें अधिक दुःख पाती है ऐसी दुष्टा दाई पर वाकईमें क्रोध आता है । इस दशामें स्त्रीको हलका आहार देना वर्जित नहीं है, प्रसूताको प्रथम कालमें जब ऐंठन व पीडा होने लगे तब सुहाता २ गर्म दूध थोडे २ अन्तरसे पिलाना उचित है, इससे जरायु तथा गर्भाशयका मुख भी जल्दी २ खुलने लगता है आर प्रसूताके शरीरका बल नहीं घटता । परन्तु दूसरे और

तीसरे कालमें गर्म दूध व गर्म आहार देनेसे हानि पहुंचती है, इस कारणसे दूसरे तीसरे कालमें ताजा बनाया हुआ शीतल हरीरा व हलुआ सीरा आदि देना हितकारी है, साबूदाना आरारोट देना भी हितकारी है। अर्थात् प्रथम कालमें गर्म और दूसरे तीसरे कालमें ताजा बनाया हुआ शीतल अगर दूसरे तीसरे कालमें गर्म आहार दिया जावे तो प्रसूताके गर्भाशयमेंसे परिमाणसे अधिक रक्त पडता है, इससे स्त्री अति निर्बल और दुःखित हो जाती हैं। यदि प्रसूताको जलकी आवश्यकता होवे तो प्रथम कालमें शीतल जल देना उचित है कि उससे शीघ्र २ पीडा होती हैं और शीघ्र प्रसव होकर प्रसूतीका पीछा छूट जाता है। दूसरे तीसरे और चौथे कालमें गर्म किया हुआ जल देना चाहिये, जो कि गर्म करके शीतल कर लिया होय। इस देशकी मूर्ख दाइयां और बेसमझ स्त्रियां सन्निपात और वायुरोग हो जानेके भयसे शीतल जल व शीतल दुग्ध तथा आहार प्रसूताको नहीं देती हैं। यह उनके मूर्खपनकी समझ है और गर्म २ वस्तु खिलाकर प्रसूताको अति कष्ट पहुँचाती हैं उसे अजवायन सोंठ और गुड खिला देती हैं। इनके सेवनसे प्रसूताके उदरमें अधिक गर्मी पहुंचती है और कितनेही दिवसतक गर्भाशयमेंसे रक्तस्राव होता रहता है, जो स्त्री चिकित्सक ऊपर लिखी हुई विधिके प्रसवक्रियामें निपुण होगा और प्रसवकी दशामें उपरोक्त नियमानुसार प्रवृत्ति करेगा उसके हाथसे प्रसूता और बालककी जानकी जोखम होनेकी सम्भावना नहीं होगी। एक भद्दीरवाज मूर्ख दाइयोंने और भी निकाल रखी है कि बालक होनेके समयतक प्रसव वाली स्त्रीको खडी रखती हैं व कडीमें अथवा चौखटमें एक रस्सी बांधकर उसको पकडाकर खडी कर देती हैं. सो कदाचित् इस दशामें बालक हो पडे तो एकदम वेगके साथ बालकका जमीनमें गिरना संभव है। सो दूसरा काल प्रारम्भ होते ही स्त्रीको गुदगुदे बिस्तर पर लेटा देवे खडे व उटकुरुआ बैठनेसे बच्चेका शिर जमीनपर पड जावे तो बालक उसी समय धमकसे मर जाता ह मूर्ख दाइयां प्रसववाली स्त्रीको बडा कष्ट देती हैं।

आकृति नं० ६४ देखो।

दूसरा काल आरम्भ होते ही इस आकृतिकी स्थितिके समान बामी करवटसे लेटा कर उसकी दोनों जंघाओंके बीचमें एक तकिया अथवा कपडेका गेंडुआ बनाकर रख देवे जिससे उसकी जांघोंका बीच चौडा रहे और निर्गमन द्वार खुला रहे तथा बालकका शिर निकलनेके समय निर्गमन द्वार और बालकके शिरपर दबाव न पडने पावे। और बालकका शिर बे रोकटोक बाहर निकल आवे तब दाईको उसके शिरके नीचे हाथ रखना चाहिये जैसा कि आकृतिमें दिखलाया है।

बालककी हफनी निवृत्त करने और रुदन करानेके विशेष उपाय।

प्राय: बालकके जननेमें अधिक विलम्ब होनेसे बालक हाँपने लगता है, बालकके उत्पन्न होते ही ऊपर लिखी हुई क्रियाके अनुसार उसके मुख तथा नासिकामेंसे लारको निकाल देवे। इसके उपरान्त जो बालक कुदरती नियमके माफिक स्वभावसे ही न रोवे तो दो तीन समय ठंढा (शीतल) जल चिकित्सक अपने चुल्लूमें भर कर बालकके नेत्र और मुख पर हलके हाथसे छींटे देवे कि जिससे बालक चौंक कर रोने लगै। कदाचित् इस उपायसे बालक न रोवे तो एक बर्तनमें शीतल जल भरकर बालकके गलेसे ऊपरके अङ्ग मुख नासिका कानको बचाकर नीचेका धड शीतल जलमें डबोकर तुरन्त निकाल लेवे। यदि इस उपायसे भी बालक न रोवे तो एक बर्त्तनमें शीतल जल और दूसरे बर्तनमें गर्म जल (यहांपर शीतल जल वह लेना चाहिये जो गर्म करके ठंढा करलिया होय कच्चा जल काममें न लिया जावे, गर्मजल ऐसा लेना चाहिये जिससे बालकके शरीरको हचका न लगे (कच्चा जल बालकके शरीरसे कदापि स्पर्श न किया जावे) बालकका शिर गर्दनसे ऊपर बचाकर प्रथम शीतलमें डबोदिया जावे उसीवक्त निकाल कर फिर गर्म जलमें डबोदिया जावे। कदाचित् इस क्रियाके एकबार करनेसे भी बालक रुदन न करे तो तीन बार इसी प्रकारसे करे, प्रथम शीतल दूसरे गर्म जलमें डबो डबोकर निकाल लेवे। यदि इन उपायोंमेंसे भी बालक रुदन न करे तो दाई अपने दोनों पैरोंको लम्बे पसार कर बैठ जावे और दोनों पैरोंके पंजे मिलाकर अपने पैरोंकी नलियों पर बालकको सीधा चित्त लिटाकर और बालककी दोनों पसलियों पर अपने दोनों हाथकी अंगुलियां जोडकर रख लेवे फिर बालकके मुख पर अपना मुख लगाकर फूँक लगावे और जब फूँक लगाचुके तब हाथकी अंगुलियोंसे आसानीसे बालककी पसली दबावे और फूँकनेके समय दाई अपने हाथोंकी अंगुली बालककी पसलियाँ पोलेसे रखे बहुत दबाकर न रखे जिससे बालकके पिंजर पर दवाव पडे और हवा अन्दरको अच्छी तरहसे फेंफसेमें भरसके इसी प्रकार थोडी देरतक फूँक लगावे। फूँकनेके पीछे बालककी पसलियां सहजसे दबावे, इस क्रियासे बालकके फेंफसेकी रुकी हुई श्वास खुल जावेगी और श्वासके खुलतेही बालक रुदन करने लगेगा। यह एक प्रगट बात है कि मनुष्यमात्रकी छाती श्वासको अन्दर खींचनेमें ऊपरको उभरकर (उठ) आती है और श्वासको बाहर निकाल देने पर छाती बैठ (पिचक) जाती है। मनुष्योंका फेफसा चमडेकी धोंकनीके समान समझना चाहिये जैसे कि चमडेकी धोंकनी वायुके भर जानेसे फूल जाती है। वायुके निकाल देनेसे सुकड जाती है यही दशा मनुष्योंके श्वास लेनेसे और श्वासके निकाल देनेसे होती है। चतुर स्त्री चिकित्सक दाईको उचित है कि ऐसी हिकमती तर्कीबसे

वालकके फेंफडेमें फूँकके जरिये वायु भरके और पसली दवाकर वायुको वाहर निकाल देवे । जिससे वालकके फेंफसेका पंखा चलने लगे और वालकके श्वास प्रश्वासकी गति जारी हो जावेगी प्रायः ऊपर लिखे हुए उपाय तथा सवसे प्रथम लाहोरी डाक्टरका अजमाया हुआ उपाय वायुमें वालकको हवा खिलानेका इत्यादि उपाय कर लिये जावें और वालक श्वास प्रश्वास न चले इसके पीछे इस उपायको काममें लेवे अगर उस समय पर मोरपंखा अथवा किसी और पक्षीका पंख मिल सके तो इसके पूर्व उस पंखको वालकके मुखके तालु पर फेरे और सुलसुलावे इससे भी वालक रुदन करने लगता है और श्वास प्रश्वास जारी हो जाता है । इस देशकी मूर्ख दाई व स्त्रियां इस अवस्थामें वालकको मसानके झपेटेमें आया हुआ वतलाती हैं और काली मिर्चें चावकर वालकके मुखमें थूंक देती हैं, अनेक प्रकारके छू मन्त्र करके वालकको मार देती हैं । अगर जीवित भी रहे तो मिर्चोंकी झलझलाहटसे तत्कालके वालककी नलीमें खरावी हो खांसी उत्पन्न हो जाती है । वालकका जन्म होते ही प्रथम वालकके रंगको देखना चाहिये कि उसकी आंख नाक और मुख नीला पड गया होय और जन्मते ही न रोवे तो तुरन्त प्रसूताकी तर्फसे नालमें फीतेका वन्ध लगाकर वालककी नामीकी तर्फसे २॥ व ३ इंचके सुमार छोड कर तीव्र (पेनी) केंचीसे नाल काटकर आधा व पौना तोला रक्त नालमेंसे निकाल देवे और पीछे फीतेसे वांध देवे और इसके पीछे वालकके रुलानेका उपाय करे । यदि वालकके आंख नाक मुख नीले रंगके न पडे होयँ तो विना रुदन कराये उसका नाल कदापि न काटे । आर हमने देखा है कि वहुतसी दाईलोग वालकके नालको वांसकी खपची व सरपतेकी चीरसे घिस घिस कर काटती हैं और कहती हैं कि नालको प्रथमसे लोहेसे न काटना चाहिये क्या वे समझीकी वात है । जवतक वालकके शरीरसे नालका सम्बन्ध रहता है तवतक वालकका एक उपाङ्ग है जैसा कि शरीरको काटनेसे कष्ट पहुंचता है वैसाही उस अवस्थामें नालको घिस घिस कर काटनेसे कष्ट पहुँचता है, सो इस वेविचारकी रवाजको त्यागकर पेनी केंचीसे नालको काटना चाहिये । केंचीसे काटनेमें नाल शीघ्र कट जाता है वालकको इसका कष्ट मालूम नहीं होता और घिस घिस कर खपचसे काटनेमें वालककी नाभिको झटका लगता है सो नाभि ऊपरको उठ आती है या नाभि पक जाती है । डोरा व तांतसे नालको वांधनेकी अपेक्षा फीतासे वांधना अति उत्तम है क्योंकि डोरा व तांतसे वांधाहुआ नाल कट जाता है और फिर दूसरा वांधना पडता है फीतेके वंधनसे नाल कटता नहीं है । वालकके जन्मतेही स्त्री चिकित्सकको वालकके शरीर पर दृष्टि देनी चाहिये कि वालक

हृष्ट पुष्ट है या दुर्बल कुम्हलाया हुआ है । यदि बालक दुर्बल कृश और कुम्हलाया हुआ दीख पडे तो प्रसूताके योनि सम्बन्धकी तर्फसे नालको पकडकर और दूसरे हाथकी चुटकीसे दबाकर बालककी नाभिकी तर्फको सूत ना लावे कि जिससे कुछ रक्त बालकके शरीरमें समा जावे बालकके शरीरमें रक्त समा जानेसे वह चैतन्य और हराभरा दीखने लगता है और बलवान हो जाता ह, क्योंकि प्रत्येक मनुष्यके शरीरमें रक्तकी अधिकतासे ही बल बढता है । यह क्रिया नाल काटनेके पूर्व की जाती है । और नाल काटनेके अनन्तर बालकक शरीरको उष्ण जलसे धोकर कोमल सूखे वस्त्रसे पोंछकर सुखशैया कोमल वस्त्र पर शुला देवें, यदि शीत ऋतु होवे तो फलाटेन व रुईके वस्त्र पर सुलावे इससे बालकके कोमल शरीरको शीतकी बाधा न पहुंचने पावे । अगर उष्ण ऋतु होवे तो साफ वस्त्र पर सुलादेवे और कोमल वस्त्रसे मुख खुला रखके शरीरको ढप देवे इस समय पर प्रसवके कष्टकी हरारतसे बालकको निद्रा आ जाती है । कदाचित् बालकके शरीरमें कुछ कष्ट होवे तो उसको निद्रा नहीं आती वह रुदन करता है । स्त्री चिकित्सक दाई और सद्गृहस्थ पढी लिखी स्त्रियोंको समझमें प्रसव प्रक्रिया उत्तम रीतिसे आ जावे और प्रसूतास्त्रियोंको सहायता देवें तथा बालक और माताकी यथार्थ रीतिसे रक्षा करें इस कारणसे इस प्रकरणको खुलासा विस्तारपूर्वक समझाया है । जिससे कि मूर्ख दाई प्रसूता और फूलकी प्रकृतिके समान बालकको कष्ट न पहुंचावें, यदि घरकी स्त्रियां प्रसव प्रक्रियाको समझलेवें तो मूर्ख दाईको अनुचित प्रक्रिया और ढोंग ढकोसले बच सक्ती हैं । केवल मूर्ख दाईसे मल मूत्र उठानेका काम लेना उचित है । बालकका जन्म होनेके पीछे एक मूर्खपनका काम दाई और करती हैं इस कामको हमने स्वयं देखा है । बालक होनेके पीछे प्रसूताको थोडी देर तक कुछ पीरें आती हैं उसका कारण हम ऊपर लिख आये हैं कि गर्भजल थैली और आंवलका सम्बन्ध गर्भाशयसे पृथक् होनेके लिये पीडा होती है और उनका सम्बन्ध छूटनेपर बाहर निकल आते हैं और पीडा शान्त हो जाती है । कितनी ही मूर्ख दाइयां जल्दीसे निबटनेके कारण गर्भाशयम हाथ डाल कर गर्भजल थैली और आंवल (फूल) को जिसका सम्बन्ध बालककी नाभिसे है निकालती हैं कोई मूर्ख दाई नालको पकड कर खींच लेती है । सो फूलका कुछ भाग टूटकर गर्भाशयमें रह जाता है उसके सडनेसे प्रसूताको तीव्रज्वर (सन्निपात) हो जाता है इससे प्रसूतीका प्राण संकटमें पड मृत्युके मुखमें प्रवेश कर जाती है । फूल गिरानेका उपाय हम ऊपर लिख चुके हैं, परन्तु अधिक समझानेके लिये दूसरी प्रक्रिया लिखनी पडती है । कोई २ मूर्ख दाई बालक होनेके पीछे प्रसूताको इस अभिप्रायसे खडा करती है कि पेटमेंसे जमा हुआ रक्त निकल जावे लेकिन इस दशामें प्रसूताको खडा करना अति

हानि पहुंचानेवाला काम है । कदाचित् इस दशामें स्त्री चक्कर खाकर (तवांरा, आकर गिर पडे तो प्राणान्त हो जाता है) कुदरती नियमके अनुसार जितना रक्त प्रसव समयमें निकल जाता है उससे अधिक रक्त निकालना हानिकारक है । कदाचित् फूल न गिरें और अधिक विलम्ब हो जावे और पेटमें पीडा भी बन्द हो जावे तो तैलसे हाथ चुपड कर गर्भाशयमें प्रवेश करे परन्तु गर्भाशयके किसी भागमें नखका अभिघात न पहुंचने पावे इसका पूरा ध्यान रखे । फूलको अंगुलियोंसे पकड कर लपेटा (मरोडा) देकर आहस्ते २ बाहरको निकाल लेवे और फूलके निकलने तक प्रसूताके पेटको दबाये रहे । फूलको लपेटा दे दे कर निकालनेसे यह प्रयोजन है कि पोतडी सहित फूल निकल आता है और उसमेंसे कुछ भाग टूट फूट कर गर्भाशयमें चिपट कर नहीं रह सक्ता । प्रायः फूल आपही निकल पडता है और जहांतक हो सके गर्भाशयमें हाथ न डाले । जो दाई लोग शीघ्रता करके गर्भाशयको छेड छाड करती हैं वे स्त्रीके मर्मस्थानोंको बिगाड देती हैं बालक होनेके पीछे अधिक रक्तस्राव होनेसे स्त्री ऐसी निर्बल हो जाती है कि महीनों तक उसकी तन्दुरुस्ती ठीक नहीं होती । यह केवल अनपढ शारीरक विद्यासे शून्य दाइयोंके हाथसे कर्त्तव्याकर्त्तव्यको न विचारनेसे प्रसूता स्त्रियोंको कष्ट पहुंचता है जिस प्रसूताके शरीरसे कुदरती नियमानुसार रक्तस्राव होता है वे ३० व ४० दिवसमें बखूबी तन्दुरुस्त हो जाती हैं । बालक होनेके पीछे तथा निर्बलताकी दशामें प्रसूताको २४ घंटे पर्य्यन्त निरन्तर बिस्तर पर लेटी रहने देवे मल मूत्र त्यागनेकी दशा होवे तो बिस्तर पर वर्त्तन रखके त्याग कराना चाहिये और १० । १२ दिवस पर्य्यन्त प्रसूताको अति सावधानीसे रहना चाहिये । दो तीन दिवस पर्य्यन्त विशेष हलका आहार देवे जैसे दूध साबूदाना अरारोट आदि इसके आगे तीसरे व चौथे दिनसे भुने हुए गेहूंकी दलिया आदि दूधके साथ देवे और इसके अनन्तर क्रम २ से भारी आहार बढाना चाहिये ।

प्रसवके अनन्तर प्रसूताकी सेवा ।

प्रसव होनेके अनन्तर प्रसूता स्त्रीको किस कायदेसे रहना चाहिये तथा कैसे आहार विहार करना चाहिये शरीरके प्रति क्या कर्त्तव्य है यह सब इस जगह बतलाया जाता है । ऊपर आहारकी प्रक्रिया लिखी गई है प्रसूताको भूखा न रखना चाहिये और बालक दूध पीता रहे उस अवस्था तक प्रसूताको उत्तम हलके और पौष्टिक आहार देना चाहिये । और खराब आहार तथा अनिष्ट सूखे बासी आहारोंसे बालककी माताको त्याग रखना चाहिये, जैसे कि बत्तीसा क्वाथ न दिन रातका पकाया हुआ पानी जलको अधिक दिनरात पकानेसे जलका स्वच्छ भाग भाफ बनकर उड जाता है और भारी भाग जलका वर्त्तनके पेंदेमें रह जाता है वह महादूषित जल समझा जाता है उदरमें

पहुंचकर हा! न करता है जल गर्म इतना करना चाहिये कि जिसमें उफान आ जावे उस समय अग्निसे उतार कर छान कर शीतल करलेवे, यही जल प्रसूताको १५–२० दिवस तक देना चाहिये इसके बाद कूपका ताजा जल छान कर पीने लगे । घृत मेथीके लड्डू बदाम गोंद सोंठ आदि चीजें बिना कारणके न खिलावे, यदि किसी प्रकारका रोग होय तो देशी औषधियोंमेंसे दशमूलका क्वाथ अर्क व चूर्ण यह प्रसूताके सब रोगोंको हितकारी है । डाक्टरी दवा जो जिस रोगके अनुकूल होवे समय पर विचारकर देना चाहिये, नाहकको काढे आदि कदापि न देवे । उपरोक्त वस्तुओंके खानेसे प्रसूताको अजीर्ण हो जाता है और अधिक गर्म चीजें खानेसे रक्तमें ऊष्माकी तेजी आ जाती है । उससे फोडा ढूमडे, फुंसी आदि उत्पन्न हो आमाशय बिगड जाता है । सो प्रसूताको ऐसे हलके और पौष्टिक आहार देना कि दिनमें तीन चार समय खा लेवे और शीघ्र पचते हुए भूख लगती रहे, जो आहार शीघ्र पचता रहेगा उसीसे शरीरमें बल बढेगा, जो आहार भारी होगा न पचेगा व देरमें पचेगा वह अजीर्ण मन्दाग्नि करनेवाला होगा, जैसे शीरा हलवा लपसी पूडी आदि । तथा गुड रोटी गुडके लड्डू ये सब आहार प्रसूताको अहित हैं और यह रवाज लोकरूढि पडगई है इस मौकेपर दूध सबसे हितकारी हलका पौष्टिक और बालकके लिये माताके स्तनोंमें दुग्ध उत्पन्न करनेवाला आहार है । परन्तु कहीं ४० दिवस तक और कहीं दो महीने तक प्रसूताको नहीं देते, यह विचार शून्य और अज्ञानी मनुष्योंका काम है । बालक अधूरे दिनका उत्पन्न होय तथा गर्भपात हो जावे या प्रसूती होवे इस दशामें स्त्रीको आधी भूख आहार देते हैं, इससे स्त्रीके शरीरको पूरा पोषण नहीं पहुंचता । इससे स्त्रीका शरीर कृश हो जाता है और बालकको पूरे तौरसे दुग्ध उत्पन्न नहीं होता, इस लिये वह भी कृश हो जाता है । यदि इस दशामें कुछ रोग उत्पन्न हो गया होय और आहार देनेसे स्त्रीको कुछ हानि पहुंचनेकी संभावना होय तो भले ही एक दो दिवस भूखा रखना उचित है, परन्तु अच्छी भली प्रसूताको भूखा रखना व भरपेट आहार न देना महा अनर्थ है । क्योंकि बालककी माताको अपने शरीरके पोषण तथा बालकके शरीरके पोषण दोनोंकी खुराकका आवश्यकता होती है सो देशमें प्रसूताके खुराकके विषयमें हदसे ज्यादा परहेज है सो प्रसूता स्त्रियोंको अति कष्टदायक और हानि पहुंचानेवाला है । इसलिये बुद्धिमान सद्गृहस्थास्त्रियोंको उचित है लौकिक रूढिको त्यागकर प्रसती स्त्रीको भरपेट हलका पौष्टिक आहार देवें और यथाक्रम जैसे २ भारी आहार पचते जावें उस क्रमसे बढाती जावें, जो २ आहार प्रसूताको पचता जावे वही उसके लिये हितकारी है जो आहार प्रसूताको न पचे व कुछ विकार उत्पन्न करे या बालकके

पक्षम अहित पहुंचावे वही आहार हानिकारक और त्यागने योग्य है । भात खिचडी आदि आहार प्रसवके ७–८ दिवस पीछे हितकारी हो सक्ते हैं, सबसे अधिक हितकारी दुग्ध है बालककी माता इसको सदैव पीती रहे ।

प्रसूती स्त्री और बालकका निवासस्थान ।

इस देशमें विद्याके अभावसे वृद्धिसे ऐसा रवाज पड गया है कि मनुष्य अपनी तन्दुरुस्तीके हिताहितको नहीं विचारते और शरीरको आरोग्य रखनेवाले स्थानकी तर्फ दृष्टि नहीं देते। सोवडके लिये ऐसा खराब मकान कोठरी आदि दी जाती हैं कि जो अति मैली कुचेली कूडा कचट टूटे फूटे वर्त्तन कंडे लकडी और रद्दी भद्दी सामानसे भर रही होय । गर्भवतीको प्रसवपीडा आतेही उपरोक्त मकानमें घुसेड देते हैं उसमें १०।१५।२० रोज तक प्रसूती मय बालकके पडी रहती है सो यह सर्वथा विपरीत आर बालक तथा प्रसूतीको हानि पहुंचानेवाला रवाज है । प्रसूतीके लिये अच्छा स्वच्छ मकान जिसकी जमीन नीचेसे सूखी होवे और स्वच्छ हवाका आवागमन रहता होय । हवाके आवागमनसे यह प्रयोजन न समझना कि उस मकानमें खुली हवा वेगके साथ आती जाती होय । जैसे कि मकानके अन्दर हवाका विलकुल न जाना हानिकारक है उसी प्रकार वेगके साथ वायुके झपाटे जाना भी बालक तथा प्रसूती दोनोंको हानिकारक है । सो जहां पर प्रसूता तथा बालककी शय्या व आसन होय वहां पर वायुके झपाटे न पहुंचने चाहिये । इतनी वायुकी आवश्यकता ह कि सामान्य वायु आती जाती रहे, जिससे मकानकी वायु स्वच्छ रहे दूषित व जहरीली हवा न होने पावे स्वच्छ वायुकी मनुष्यको कितनी आवश्यकता है इसको परिशिष्ट भागमें देखो । स्वच्छ स्थान और स्वच्छ वायु और स्वच्छ वस्त्र इन आरोग्यता रखनेवाले साधनोंपरसे हमारे देशवासी लोगोंका विचार विलकुल नष्ट हो गया है, लेकिन इस समय पढे लिखे मनुष्य कुछ ध्यान देने लगे हैं । मलीन वस्त्र टूटी हुई खाट उसके ऊपर सहस्र चींथडोंसे संयुक्त फटी टूटी मलीन गूदडी (कांथरी) दूषित वायु संयुक्त अंधकारसे आच्छादित एक कोठरीके कोनमें प्रसूती और बालक १ व डेढ महीनेतक पडे सडा करते हैं । इस भारत-भूमिमें उत्पन्न होनेका दण्ड बालकको डेढ मासका कठिन निवास दिया जाता है । उस अंध कोठरीमें प्रथम तो खिडकी (बारी) होती नहीं कदाचित होवें भी तो उनको वन्द कर देते हैं, कदाचित उस खिडकीकी सन्धिमें कहीं दर्ज व छिद्र होवे तो उसको कपडे व कागजसे वन्द कर देते हैं । प्रकाशके वास्ते दिन रैन उस मकानमें दीपक जलता रहता है एक कोनेमें कंडे लकडी दहकती है उसके धूँएसे अंधकोठरीकी वायु जहरीली हो जाती है । दरवाजेके आगे एक मैले कुचैले

फटे टूटे कपडेका पर्दा और कहीं भूसा घास व धनेकी पांसी पडी रहती है चौखटमें एक लोहकी कील सिरसके पत्र और कपडेकी पोटलीमें कुछ और टोटिका भी लटकता रहता है। एतावता बर्ताव बालककी रक्षाके लिये करते हैं, अग्नि भी इसी कारणसे दहकती रहती है कितनी उच्च जातिके लोगोंमें तो ऐसी रवाज है कि प्रसूती और बालकको १० वें दिवस स्नान करा देते हैं और कितनी जातिके लोग १६ व २० दिवस तक बालक और प्रसूतीको स्नान नहीं करने देते। उस अंधकोठरीमें प्रसूतिकी सेवा करनेवाली एक दो स्त्री और मूढ दाई वैठी रहती है और बाहरकी स्त्रियां भी बालक और प्रसूतीको देखनेके लिये आया करती हैं। जिन स्त्री पुरुषोंको कुछ सभ्यता और विचारवान बननेका अभिमान है वे लोग उपरोक्त लक्षण संयुक्त प्रसूता गृहका अनुमान कर सक्ते हैं कि इस कोठरीमें हवा कितने दर्जे बालक और प्रसूताको हितकारी हो सक्ती है। उपरोक्त कोठरीकी हवासे बालक तथा उसकी माताकी तबीयत कितने ही समयसे ऐसी बिगडती है कि चिकित्सककी भी बुद्धि सँभलनेसे हैरान हो जाती है। किसी २ प्रसूता गृहमें ऐसा होता है कि कंडे और लकडीके धूँएमेंसे कार्बोलिक एसिड जहर कोठरीमें अधिक भर जाता है तो बालककी मृत्यु हो जाती है और कार्बोलिक और भी विशेषतासे होय तो दुर्बल शरीरवाली प्रसूताभी मर जाती है। क्या विलक्षण बुद्धि और विचारकी बातें हैं प्रसूता और बालक तबीयत बिगडनेपर किसी स्वदेशी वैद्यको बुलाया जावे तो प्रथम तो वह आवेगा ही नहीं क्योंकि प्रसूताको स्पर्श करनेसे उसका धर्म रौरव नर्ककी तर्फ भाग जाता है कदाचित् आ भी गये तो प्रसूता गृहसे दूर बैठ जावेंगे और दाई तथा किसी दूसरी स्त्रीसे प्रसूता व बालककी तबयितका हाल पूछेंगे पूछताछ कर यही कहेंगे कि किसी वक्त हवाका असर मकानमें पहुंच गया इसीसे तबीयत बिगड गई। बत्तीसाका काढा देओ और हवा जरा भी नहीं जाने पावे वह विचार शून्य नष्ट बुद्धि वैद्य अलग बैठकर निरर्थक बातें बनाता है यह नहीं देखता कि कोठरीके अन्दर जहरी वायु धूंएसे हो गई है, सो इस मकानकी हवा निकालकर साफ कर दो, जब वैद्यको इतना ज्ञान होवे तो उस समय इतना बोलसक्ता है जब कि उसको इसका स्वयं ही ज्ञान नहीं है तो क्योंकर बोल सक्ता है। अब हम विचारशील बुद्धिमान और सभ्यताके अभिमानी स्त्री पुरुषोंसे नम्रता पूर्वक यही निवेदन करते हैं कि बालक और प्रसूताको इस दुःखदाई चालसे बचाकर इसके नष्ट करनेका प्रयत्न करें। प्रसूता स्त्रीकी इस नाजुक अवस्थामें अधिक स्वच्छ वायु पूर्ण सुख और आराम देनेका समय है तथा उसके मनको खुसवक्ती देनेकी आवश्यकता होती है, ऐसे समयमें अज्ञानादि विशिष्ट प्रणाली तथा मिथ्या धर्म बन्धनमें फँसकर दुःख भोगना पडता है। देखो पीछे जाकर इसी

पुस्तकमें सूतिकागारकी स्वच्छताका वर्णन प्राचीन आर्य्यादर्शके वैद्योंने कैसा किया है। सूतिका गृहको साफ रखना राख धूल व कूडा कर्कट न रहने पावे, किसी प्रकारकी गन्धकी वहां न रहने पावे खराव वदवू घरमें न रहने पावे। वालक होने और आंवल निकलने वाद गर्म दूध और गर्म जल मिलाकर योनिमार्ग और प्रसवद्वार (योनि) मुखको धोकर साफ कर देवे और जो वस्त्र प्रसवके समय रक्तादिसे बिगड गये होवें उनको उतारकर अलग कर स्वच्छ वस्त्र पहना देवे। योनिमुखपर प्रसवक्रियाके दवावसे पीडा व शोथ होवे तो गर्म दुग्ध मिले हुए जलसे दो तीन वक्त दिनमें धो दिया करे और स्वच्छ वस्त्रकी पोटली व गद्दी वनाकर सेंक दिया करे गर्म दूध पानीके धोने और सेंकनेसे पीडा शान्त हो जाती है और योनिमुखका शोथ भी निवृत्त हो जाता है। कदाचित् पोटली सेंक करनेकी मैली हो जावें तो दूसरी स्वच्छ वस्त्रकी पोटली वदल लेनी चाहिये। और शीतल जलका स्पर्श योनिमुख व योनिमार्गपर कदापि न करना चाहिये, शीतल जलके स्पर्शसे पीडा और सूजन वढ जाती है। पूर्व जो कथन कर आये हैं कि पेटके ऊपर कपडाकी पट्टी बांध देना और योनिमुख तथा पेडूपर रूमालके माफिक गद्दी साफ कपडेकी वनाकर रख देना और पांच व ६ घंटेके अन्तरसे इस गद्दीको देखना कि गर्भाशयमेंसे स्राव कितना और कैसा आता है इसकी परीक्षा स्त्री चिकित्सक निरन्तर करता रहे। प्रसवकालमें स्त्रीको अधिक कष्ट परिश्रम पहुँचनेसे इस अवसरपर स्त्रीको निद्रा आ जाती है सो ६। ७ घंटे वरावर निद्रा उसको लेनी चाहिये इस मौकेपर वालककी हिफाजत दूसरी स्त्रियां करें और प्रसूतागृहके समीप किसी प्रकारका गुलगपाडा न करना चाहिये और ढोलकी मजीरा न खटकाने चाहिये। प्रसूती स्त्रीको निद्रा लेनेसे उसका शरीर स्वस्थ हो जाता है और तीन भाग पीडा व क्लेश जो प्रसवसमयमें सहन किया था वह शान्त हो जाता है। प्रसवका श्रम कम पड जाता है और निद्रामेंसे जागने वाद स्त्री होसियार और चैतन्य दीखपडती है। कदाचित् इस अवसरपर किसी कारणसे स्त्रीको निद्रा न आवे तो उसके शिरमें पीडा उत्पन्न हो जाती है और ज्वर हो आता है स्त्री बीमार पड जाती है सो वहांपर जो निद्राको भङ्ग करनेवाले कारण होयँ उनको नष्ट कर देना चाहिये और इसपर भी निद्रा न आवे तो भांगका सत्व व अफीमकी कोई दवा अथवा (क्लोरलहईड्रेट) इनमेंसे कोई दवा परिमित मात्रासे देनी चाहिये, परन्तु ऐसी दवा कोई इस मौकेपर न देनी चाहिये जो कि गर्भाशयके संकुचित होनेमें विघ्न पहुँचावे। वालकको उष्ण सुहाते सुहाते जलसे स्नान कराके उसके शरीरपर स्वच्छ वस्त्र पहना देवे। और वालकके नालको इस देशकी स्त्रियां एक डोरेमें बांधकर उसके गलेमें डोराका माला व घडीकी चैनके माफिक डाल देती हैं

सो यह रवाज बालकको समयसमयपर हानि पहुंचाता और दुःख देता है क्योंकि बालक तथा उसकी माताका हाथ नालके डोरेसे लगनेपर वह नाल खिंचता है और बालकको कष्ट पहुंचता है । नाभि ऊपरको उठती है और नाभिपाक रोग बालककी नाभिमें उत्पन्न हो जाता है सो इस मूर्खपनके कायदेको त्यागकर बालकके नालको एक साफ कपडेके रूमालमें लपेटकर अंगुठीके माफिक गोल करलेवे और उसको नाभिके ऊपर चूडीके माफिक रखकर उसके ऊपर बारीक कपडेकी गद्दी बनाकर रख देवे और हलके कपडेकी पट्टीसे तगडीके माफिक बांध देवे । और प्रसव होनेके पीछे स्त्री और बालककी स्थितिको देखनेके लिये स्त्री चिकित्सक हररोज २४ घंटेके अन्तरसे उनके पास आया करे और वीस तीस मिनिट उनके समीप ठहर कर उनकी दशाको हररोज देखा करे जबतक कि स्त्री पूर्णरूपसे तन्दुरुस्त न होय तबतक बराबर उनकी हिफाजत करनी चाहिये और स्त्रीकी तथा बालककी नाडी किस गतिपर है मलमूत्र स्त्री और बालकको हुआ कि नहीं, अगर हुआ तो किस माफिक हुआ योनिमार्गका स्राव किस माफिक है कितना है स्वाभाविक है अथवा न्यूनाधिक है, न्यूनाधिक है तो किस कारणसे है, उसपर ध्यान देकर विचार करना योग्य है । पेटके किसी भागमें पीडा होती है कि नहीं गर्भाशय संकुचित होकर अपनी पूर्व स्थितिको धारण करता है कि नहीं बालक व स्त्रीको निद्रा बराबर आती है कि नहीं इत्यादि दशाको प्रसूतीसे पूछकर निश्चय करना और बालककी नाभिपर नालके कारणके कुछ खराबी तो नहीं पहुंची है इसका निश्चय करना । बहुतसी मूर्ख दाईलोग तैलमें अंगुली चिकनी करके दीवेकी लोपर गर्म करती हैं और बालककी नाभिको सेंकती हैं सो बालकके नाल और नाभिकी सन्धिमें स्याही भरकर पक जाती है और बालकको कष्ट पहुंचता है । यदि बालककी नाभिपर सेंककी आवश्यकता होवे तो साफ कपडेकी गद्दी बनाकर निर्धूम कोयलेके अंगारपर किसी धातुका बर्त्तन रखके उस गद्दीको उसपर हलकी गर्म करके सेकना चाहिये और बालककी नाभिके ऊपर धूल मट्टी व राख न पडनी चाहिये । प्रसवके समयमें मूत्राशय और मूत्रनली (मूत्रमार्गपर) कुछ दबाव पडनेसे कुछ सूजन उत्पन्न हो जाती है इस कारणसे कुछ २ मूत्रका आना बन्द हो जाता है यदि आवे भी तो बहुत रुक २ कर कम आता है इस दशामें कदाचित मूत्र एकदम रुक रहा होय तो मूत्रशलाका मूत्रमार्गमें प्रवेश करके मूत्राशयको हाथके शहारेसे दबाकर संग्रह हुए मूत्रको एक समय व दो समय निकाल देवे । यदि मूत्रकी हाजत अधिक होती होय और मूत्र थोडा २ आता होय अथवा बूंद २ आता होय और वारम्वार जाना पडता होय तो केवल गर्मजलका सिकाव पेडू तथा मूत्राशय योनिमुखपर करना । अफीमको जलके साथ पतली करके गर्म कर लेप करना । कच्चा पानी व शीतल पानी प्रसूताके पेट

व प्रसव द्वारपर लगनेसे सूजन और दर्द बढ जाता है अगर शीतल जल योनिमार्गमें चला जावे तो ऐसे समयपर विशेष हानि पहुंचाता है सो एक व डेढ महीनेतक कच्चा व शीतल जल प्रसूताके शरीरमें लगानेके व स्नानके काममें कदापि न लेना चाहिये पीनेके वास्ते गर्म किया हुआ शीतलजल कुछ अनुपकारी नहीं है कदाचित् ज्वरादि व्याधि होवे तो कुछ उष्णजल देना उचित है । सोंठ, पीपल, पैसा झडबेरीकी जड तथा और कुछ अलाय बलाय जिसको फेवर्डीका जल बोलते हैं. कदापि न देवे । प्रसूताको उचित है कि स्वच्छ वस्त्रसे अपने तथा बालकके शरीरको निरन्तर ढके रहे विशेष हवाका झपाटा शरीरको न लगने पावे जैसा मौसम शर्द गर्म होवे उतना कपडा प्रसूताके शरीरपर रहना चाहिये अधिक उठना बैठना व फिरना प्रसूताको न करना चाहिये । कोई भयदायक व चौकनेवाला शब्द प्रसूता व बालकके समीप न बोलना चाहिये । प्रसव होनेके बाद स्त्रीकी नाडी गति शीघ्रतासे होती है अगर इस समय ज्वर हो गया होय तो शीघ्र चालके साथ नाडीकी गतिमें चंचलता भी होती है, यदि ज्वर आ गया होय तो समझना चाहिये कि यह प्रसूताको किसी विशेष व्याधिकी निशानी है । यह कई कारणोंको लेकर सूतिका ज्वर उत्पन्न हो जाता है, इसलिये इस ज्वरके कारणको तलाश करके जिस मूल कारणसे ज्वर उत्पन्न हुआ है उसका योग्य उपाय करना । चिकित्सकको उचित है कि ज्वरके कारणोंको सूक्ष्म दृष्टिसे तलाश करे क्या स्तनोंमें अधिक दूधका संग्रह है उसके जोशसे ज्वर हुआ होय तो पेंप लगाकर दूधको निकाल देना चाहिये, पेंप न मिले तो स्तनोंको हाथसे दबाकर दूधको खेंचलेना चाहिये । क्योंकि जिस स्त्रीको दूधकी उत्पत्ति अधिक होय तो तत्कालका पैदा हुआ बालक इतने दूधको खींचनेमें असमर्थ होता है । अथवा गर्भाशयमें शोथ उत्पन्न हुआ या खराब वस्तु जो कि बालककी उत्पत्तिके साथ व पीछे निकलती है उसका कुछ भाग गर्भाशयमें रह जावे और सडने लगे तो प्रसूतीको तीव्र ज्वर उत्पन्न हो जाता है । अगर ऐसा होय तो उसके निकालनेका प्रयत्न करे गर्भाशयका शोथ होवे तो फिल-टरके जरिये गर्मजलसे सेंक करे और ऊपरभी शोथ नाशक औषधियोंका लेप करे । अथवा और किसी कारणसे ज्वर उत्पन्न हुआ होय तो उसको निश्चय करके उपाय करे प्रसव होनेके अनन्तर प्रसूतीकी योनिमेंसे स्वाभाविक रक्तका प्रवाह थोडा २ लाल रंगका चार पांच दिवस पर्य्यन्त निकलता है ४ । ५ दिवसके पीछे कुछ फीकी रंगतका पड जाता है मैले पानीकीसी रंगत हो जाती है और इस रंगतका स्राव २४ व २८ दिवसतक रहता है किसी २ स्त्रीका सोलह वीस दिवसमें ही बन्द हो जाता है । कदाचित मरा-बालक गर्भाशयसे निकले तो थोडे ही दिवस निकलकर बन्द हो जाता है, मरा ८५ न होय और १६ । २० दिवसके अन्दरही यह पानी बन्द हो जावे तो

स्त्रीको कोई न कोई व्याधि उत्पन्न हो जाती है आर ज्वर भी आने लगता है। कदाचित यह पानी थोडा बहुत निकलता भी रहे और वह सडांदकीसी वासवाला होवे तो यह एक प्रकार खराब चिह्न है ऐसी दशा होवे तो योनिमार्गमें औषधियोंके जलकी पिचकारी लगाकर साफ करना चाहिये। प्रसव होनेके पीछे कितनेही घंटेतक स्त्रीको थोडी २ ऐंठन पीडा रहती है इसको (आफटरपेन कहते हैं) किसीको तो ४। ६ घंटे पीडा आनकर बंद हो जाती है और किसीको एक दो दिवस पर्य्यन्त यह पीडा रहती है, लेकिन जिस स्त्रीको प्रथम प्रसव होता है उसको यह पीडा नहीं होती अगर होती भी है तो बे माल्म होती है और जिन स्त्रियोंको कई बार बालक उत्पन्न हो चुके हैं उनको प्रायः आती है। यदि स्त्री इस पीडाको सहन करसके तो ठीक है कदाचित यह पीडा असह्य होय और इसके कारणसे स्त्री व्याकुल होय और निद्रा न आती होय तो (कलोरोडाईन अथवा मार्फिया) परिमित मात्रासे दिया जावे तो पीडा शान्त हो जाती है। बालक जन्म होने तथा पोतरीके निकलनेके पीछे यह पीडा होती है इसको पश्चात् ऐंठन व पीडा कहते हैं। गर्भाशयमें दूषित रक्त व अन्य आंवल आदिका कुछ भाग रह जाता है उसके निकालनेको यह पीडा होती है। प्रसव होनेके पीछे कदाचित स्त्रीको एक दिवस और एक रात्रि पर्य्यन्त दस्त न आवे तो २॥ व ३ तोला अरंडीका तेल आधपाव गर्म दूधमें मिलाकर पिला देवे। और बालकको दस्त आ जावे तो ठीक है अगर न आवे तो दूसरे दिवस थाडा अरंडीका तैल सोयाका अर्क व काढा मिलाकर पिला देवे तो उसको दस्त आ जावे और पायु इन्द्रियका मार्ग खुल जावे। काष्ठूल अरंडीके तैलकी मात्रा हालके जन्म बालकको १ मासेसे लेकर दो मासे पर्य्यन्त है जब कभी इसके देनेकी आवश्यकता पडे तो प्रत्येक दो महीनेकी अवस्थाके बालकको १ मासा वढाकर देना चाहिये। अक्सर देखा जाता है कि माताका दुग्ध बालक प्रथम दिवस पीता है तो उसी दिन व दूसरे दिन उसका मल निर्गत हो जाता है लेकिन जिसका मल न निकले उसको अवश्य जुलाब देना चाहिये। यदि इस दशामें जुलाब न दिया जाय तो कई तरहके रोग बालकको उत्पन्न हो जाते हैं और ऐसे समय पर बालकके जीवन सूत्रकी संभावना भी असंभव हो जाती है। दूसरे यह भी है कि किसी २ स्त्रीको तीन दिवस पर्य्यन्त दूध नहीं उतरता और बालकके पेटमें दूध न पहुंचनेसे दस्त भी नहीं आता और नालके जारिये जो पोषण कुदरतके नियमानुसार गर्भाशयमें पहुंचा था वह भी बाहर आनेपर नष्ट हो जाता है, ऐसी दशामें बालककी जान वडे संकटमें आ जाती है। बालकको दस्त न आवे और कुछ पोषण उसके पेटमें न पहुँचे तो प्रायः बालककी मृत्यु हो जाती है। इसी कारणसे इस देशमें हालके जन्मे हुए बाल-

कको जन्म घूटी देनेकी रवाज पड रही है, परन्तु माताके दुग्ध और जन्मघूटीसे उत्तम काष्टूलकोही डाक्टरोंने मान रखा है इससे बालकका कोष्टा शुद्ध हो जाता है और नल सचिक्कण और कोमल हो जाता है।

दूसरे दिवस किसी २ प्रसूता स्त्रीको कुछ ज्वर हो जाता है इसका कारण यह है कि स्तनोंमें एक प्रकारका तनाव व खिचाव दूधके कारणसे उत्पन्न हो जाता है इसका उपाय यही है कि बालकको दूध पिलाना शुरू कर दिया जावे यहांतक बालकको कितनी ही स्त्रियां घूटीके आश्रय रखती हैं और कितनी ही स्त्रियां जबसे बालक स्तन दाबने लगते हैं तभीसे दूध पिलाना शुरू कर देती हैं किसी २ स्त्रीको दूधकी तेजीसे विशेप सक्त ज्वर उत्पन्न हो आता है। बालक उत्पन्न होने और जरायुके निकलनेके बाद जो कपडा स्त्रीके पेटके ऊपर पसलियोंतक वांधा गया था उसको २४ व २९ दिवस पर्य्यन्त बंधा रहने देवे। कदाच वह ढीला पड जावे व खुल जावे तो सँभालकर बांध देना चाहिये और प्रसूता कमसे कम २० दिवस तक विशेप उठे बैठे नहीं, बिस्तरपर आरामसे बालकको लेकर लेटी रहे। इसके पीछे १९ व २० दिवस पर्य्यन्त घरके अन्दरही बैठे उठे घरसे बाहर न निकले। इतनी अवधि निकल जावे इसके बाद बाहर जानेकी आज्ञा प्रसूताको दी जावे। (गर्भाशयकी पूर्वावस्था) गर्भ रहनेसे पूर्व गर्भाशयकी जैसी स्थिति थी वह गर्भ रहनेके दिनोंमें गर्भाशयका आकार बहुत बडा हो गया था। वह प्रसव होनेके बाद संकुचित होकर गोलाकार बडे अमरूदके व्यासमें रहता है उसके वृद्धि पाये हुए भागकी चर्बी रूपान्तरमें हो कर शोपण हो जाती है। और एक व डेढ महीनेके अन्दर गर्भाशयका आकार गर्भ रहनेसे पूर्वकी स्थितिमें आ जाता है। ऊपर कहचुके हैं कि प्रसव होनेके बाद स्त्रीको डेढ दो महीने पर्य्यन्त शरीरको आराम देना चाहिये यदि इस अवधिमें प्रसववाली स्त्री विशेप चलना फिरना करे व परिश्रम करने लग जावे तो इसका फल स्त्रीको आगे अनिष्ट भोगना पडता है। क्योंकि उसका गर्भाशय भारी और मोटी आकृतिमें रहनेसे नीचे योनिमार्ग व योनिमुखमें उतर आता है इसको (गर्भाशयभ्रंश) कहते हैं. अथवा गर्भाशयकी वक्रता हो जाती है कभी २ रक्तस्राव भी हो जाता है, इन सब व्याधियोंकी चिकित्सा पूर्व इसी ग्रन्थमें लिखी है, उपायकी आवश्यकता पडे तो उक्त लिखित प्रकरणोंको देखो। प्रसूता स्त्रीके पेटके ऊपर पट्टी बांधना गर्भाधानके दिनोंमें गर्भकी रुकावट (पेट लटकने) लगे उसको ऊपर रोकनेकी सहायताके लिये पेट और पेड़ू बढकर इस समय स्त्रीका बहुत बडा हो जाता है। अब बालकके जन्म होनेके पीछे पेटकी दीवलका अग्रभाग ढीला पड जाता है और चमडा नीचेको लटकन लगता है इसके ऊपर कमर पट्टी (पेटी) बांधनेसे आश्रय मिलता है।

पेटी बांधनेका मुख्य कारण इस प्रकारसे है कि उस पेटीको इस प्रकार बाँधना चाहिये कि गर्भाशयके ऊपर उस पेटीका दबाव बराबर रहना चाहिये इस प्रकार बांधनेसे ही गर्भाशयको आश्रय मिलता है । इसके आश्रयसे गर्भाशय थिर रहता है और गर्भाशयके बंधन ढीले पडकर (गर्भाशय भ्रंश) व्याधिका भय न हो गर्भाशय संकुचित होकर गर्भ रहनेसे पूर्वकी स्थिति धारण कर लेता है । तथा रक्तस्रावके प्रवाहका भी भय नहीं रहता, आजके समय पर विलायती चौंडी कमरपेटी विकने बहुत आती हैं उनको कमरसे बांधके काममें लेना चाहिये । जहांपर ये न मिलसकें वहांपर ६ से ८ अंगुलतक चौंडी मजबूत कपडेकी पट्टी लेनी तथा एक हाथ लम्बे चौंडे कपडेकी तह करके गद्दी बनानी इस गद्दीको पेडूके ऊपर रखकर लम्बी पट्टीको कमरके चारोंतर्फ खींचकर बांध लेना । इस देशकी स्त्रियां अक्सर प्रसवके पीछे कहीं कमरपट्टा बांधती हैं परन्तु कायदे प्रमाणे सँभालकर नहीं बांधतीं, या तो एक कपडेकी धज्जी बांध लेती हैं या एक लम्बा फेंटा लेकर कमरसे लपेट लेती हैं । वह भी ढीलासा लपेटती हैं, उनको यह ज्ञान नहीं है कि यह कमर बांधनेसे हमको क्या लाभ पहुंचता है और किस कायदेसे बांधना चाहिये सो उपरोक्त लिखी विधिके अनुसार डेढ महीने तक कमरसे पेटी अवश्य बांधनी चाहिये ।

प्रसूती स्त्रीको औषध प्रयोग ।

प्रसव समयमें कुछ रोग दीख पडे अथवा प्रसवके बाद प्रसूती स्त्रीको किसी रोगकी उत्पत्ति हो जावे तो उस व्याधिकी शान्तिके अर्थ रोगकी शमनकर्त्ता औषध प्रयोग चिकित्सकको विचारपूर्वक देना उचित है । यदि प्रसूती स्त्रीको किसी प्रकारकी व्याधि न होय और स्वाभाविक नियम प्रमाणे प्रसवके अन्तर उसकी तन्दुरुस्ती ठीक मालूम पडे तो कोई भी औषध देना उचित नहीं है । ज्वर ऐंठन मलावरोध गर्भाशयकी कुछ व्याधि निद्रानास इत्यादिमेंसे कोई रोग चिकित्सकको मालूम पडे तो उसकी चिकित्सा करनी उचित है कितने ही लोगोंमें ऐसी रवाज है कि बालक होनेके बाद ही स्त्रीको अरंडीका तैल इंग्लिश दाई लोग पिला देती हैं परन्तु यह रवाज ठीक नहीं है, जो काम कुदरती नियम प्रमाणे होवे उसमें मनुष्यको अपना हस्तक्षेप करना उचित नहीं है, कुदरती नियमसे विरुद्धता आवे उस समयमें मनुष्यको सँभालना उचित है । यदि प्रसुती स्त्रीको मलावरोध (दस्तकी कब्जी) होवे तो कास्टूल देकर दस्त करा देना चाहिये और स्वभावसे दस्त आ जावे तो किसी दवाके देनेकी आवश्यकता नहीं है । बालकके वास्ते यही नियम कुदरती है कि वह माताका दूध पीने लगे उसीसे उसको दस्त हो जाया करता है, अगर इस निय-

मके माफिक बालकको दस्त न आवे तो ऊपर लिखे प्रमाणे दस्त आनेका उपाय करना चाहिये । इस भारतवर्षमें प्रसूती स्त्रीको निष्प्रयोजन कितने ही प्रकारकी औषध काढा पाक इत्यादि बनाकर खिलानेका रवाज पड रहा है और बहुतसे मनुष्योंका ऐसा विश्वास है कि प्रसूतीको ये औषध लाभ पहुंचाते हैं परन्तु प्राचीन कालके भारतवर्षीय वैद्योंने निष्प्रयोजन औषध देना किसी ग्रन्थमें नहीं लिखा । प्रसवकी अवस्थामें प्रसूती स्त्रीको रोग उत्पन्न होवे उन्हींका उपचार खुलासा रीतिसे प्रत्येक रोगका नाम लेकर आगे उपचार लिखा है । निरर्थक औषध देना उन्होंने भी हानिकारक समझा था, अब जो भेडिया धसानकी रवाज बिना रोगके औषध देनेकी पड रही है कि किसी स्त्रीको शायद इससे कुछ लाभ पहुंचता होय परन्तु डाक्टरी और वैद्यकके कायदेमें बिना रोग औषध देनेसे उलटी हानि पहुंचती है । इस कारणसे प्रसूती स्त्रीको बिना कारणके औषध देनेका रवाज त्याग देना चाहिये, सभ्यताके अभिमानी और समझदार स्त्री पुरुषों-को उचित है कि जो अनुचित कार्य्य लोकमें प्रचलित हो रहे हैं उनके त्यागनेकी कोशिस करते रहें । इसी प्रकार प्रसव होनेसे स्त्रीका योनिमुख और योनिमार्ग विस्तृत होनेसे ढीला पड जाता है । योनिमार्ग और मुखकी मासपेशी तथा शिरा कुदरती नियमसे ऐसी बनी है कि समय पर विस्तृत हो जावे और विस्तृत होनेका कार्य्य समाप्त होनेके बाद स्वभावसे ही संकुचित होकर अपनी पूर्वावस्थामें स्थित हो जाती है । जसे कि गर्भाशय इतना बडा होकर प्रसव होनेके बाद संकुचित हो जाता है । यही स्वभाव योनिमार्ग और योनिमुखका है । योनिमुख और योनिमार्गको संकुचित करनेको मूर्ख दाइयां बीजा-बोलकी गोली व शराबके फोहे तथा माजूफलके चूर्णकी पोटली और कई प्रकारके अलाय बलाय स्त्रीके योनिमार्गमें महीनोंतक रखा करती हैं यह रवाज भी बिलकुल खराब आर अनिष्ट है । हमने कितनी ही स्त्रियोंको देखा है कि दाई लोगोंकी दवा रखनेसे उनके योनिमार्गमें शोथ और जखम पड जाते हैं और उनको तकलीफ उठानी पडती है कुदरतके नियम प्रमाणे स्त्रीके गुह्यावयव स्वभावसे ही अपनी पूर्वावस्थाको धारण कर लेते हैं । इसके लिये बेसमझीके उपाय करना विचारके विरुद्ध है । इसका यथार्थ उपाय यही है कि ३ मास पर्य्यन्त पुरुष सहवासका त्याग और अधिक परिश्रमको त्याग कर शान्त परिश्रम करे और ऊपर लिखे नियम प्रमाणे वर्त्ताव करे ।

शिशुपालन अर्थात् बालकको दुग्धपान ।

प्रकृतिका स्वाभाविक धर्म ऐसा है कि जो देहधारी जरायुसे उत्पन्न होते हैं उनका आहार कुदरतने विशेष करके प्रवाही तरल पदार्थ दुग्ध नियत किया है और जरायुज व्यक्तियां उत्पन्न होनेके अनन्तर स्वभावसे ही दुग्धपान (अपने शरीरके पोषणकी

तर्फ) रुजू हो जाती हैं। जस जंगलमें रहनेवाले पशुओंके शिशु अपने इष्ट साधनके लिये उनकी वृत्ति स्तनमें लीन हो जाती है जरायुसे उत्पन्न होनेके कारण यह स्वभाव कुदरतके नियमके माफिक मनुष्योंके बच्चोंका है, प्रसव होनेके पीछे २४ से ४८ घंटे पर्य्यन्त स्त्रीके स्तनमेंसे दुग्ध निकलने लगता है इस क्रियाकी गतिके उत्पन्न होनेके कारणसे किसी २ स्त्रीके शरीरमें कुछ ज्वर हो जाता है और किसी २ स्त्रीको विशेष तीव्र ज्वर उत्पन्न हो जाता है और किसी २ स्त्रीको बिलकुल ज्वर नहीं आता है। परन्तु जिन जिन स्त्रियोंको ज्वर उत्पन्न होता है वह दूध निकलनेके अनन्तर शान्त हो जाता है। जिस स्त्रीके आगे बालक मौजूद होय और स्तनमेंसे दूध पीता रहे तो उस स्त्रीको विशेष ज्वर उत्पन्न नहीं होता, लेकिन जिस स्त्रीका बालक उत्पन्न होते ही धात्री (दाई) के यहां पालन करनेको दिया जावे (इस देशमें एक रवाज यह भी बेसमझीकी है कि जिन स्त्रियोंके बालक मर जाते हैं उनके कई बालक मरनेके बाद गडरनी अहीरी आदि दाइयोंको बालक उत्पन्न होतेही दे दिया जाता है। बालककी माता उसको देखने भी नहीं पाती, माताके नेत्रोंमें पट्टी बांध दी जाती है और इसका कारण यह बतलाया जाता है कि माता बालकको देख लेवेगी तो यह भी मर जावेगा। जिस उमर पर उस स्त्रीके पहिले बालक मर चुके होवें उस उमर तक माता बालकको नहीं देखने पाती, ऐसी स्त्रीको तथा जिसका बालक उत्पन्न होकर मर जावे इनको ज्वर अधिक आता है, क्योंकि दुग्धके खींचनेके लिये आगे बालक मौजूद नहीं है। प्रसूतीके स्तनमेंसे जो प्रथम भाग दूधका आता है वह जरा चिकना होता है और उसका गुण भी रेचक (दस्तावर) होता है, यह बालकके पेटमें पहुँचते ही जुलाबका काम करता है, प्रकृतिने यह स्वाभाविक रेचक दवाका गुण प्रथम आनेवाले दुग्धमें ही नियत करदिया है कि बालकके उदरमें पहुंचे और उसको दस्त आ जावे। किसी २ स्त्रीके स्तनोंमें दुग्धकी उत्पत्ति अधिक होती है और किसी २ क स्तनोंमें दुग्धकी उत्पत्ति न्यून होती है, जिन स्त्रियोंका शरीर निर्बल और नाजुक होता है अथवा कुछ शारीरक व्याधि रहती होय किन्तु मानसिक चिन्ता रहती होय अथवा ज्वर रहता होय। स्त्री चिकित्सकको उचित है कि ऐसी बालककी माता स्त्रियोंको प्रत्येक रोगके अनुसार उनकी चिकित्सा करके आरोग्य करे और जिस २ औषधसे स्त्रीका बल बढे और बालकको पूर्ण दुग्धकी उत्पत्ति होवे ऐसा प्रयत्न करना उचित है। देशी औषधियोंमें शतावरि आदि कवच-के वीज उडदका कोई आहार तथा दुग्धादि जो कि स्तनोंमें दुग्धोत्पन्न करनेवाले पदार्थ हैं उनका यथाविधि सेवन कराना उचित है। सोयाके वीज तथा मेथीदाने खिलाने तथा सोयाके बीजका क्वाथ बनाकर दिनमें २–३ समय पिलाना और अरं-

डके पत्र गर्म करके स्तनोंके ऊपर बांधना ऐसे उपायोंसे स्तनोंमें दुग्धकी वृद्धि होती है । किसी २ स्त्रीके स्तनोंमेंसे दुग्ध बिलकुल सूख जाता है और किसी समय बालकके पोषणके योग्य दुग्ध नहीं उतरता है और किसी २ बालककी माता दुर्भाग्यके वशीभूत होकर मर जाती है किसी २ स्त्रीको ऐसा रोग होवे कि इसका दुग्ध पीनेसे बालकका शरीर भी खराब होता जावे और किसी स्त्रीके स्तनोंमें रोग उत्पन्न हो जाता है । ऐसे आतकालके समय पर बालकके पोषणके निमित्त दुग्ध पिलानेवाली धाय रखनी पडती है अथवा पशु (गौ बकरी) आदिका दुग्ध पिलानेकी आवश्यकता पडती है । धात्री (१) ऐसी होनी चाहिये जो सदैव बालकसे अपने बालकके समान स्नेह करनेवाली होय (२) शरीरसे आरोग्य होय (३) धात्रीके शरीरमें उपदंश (आतशक) ज्वर क्षयरोग कुष्ट अपस्मार नेत्ररोग फोडाफुंसी व रक्तविकार न होय न पूर्व हुए होयँ, जिसके कुलमें कोई वारसासे उतरनेवाली व्याधि न होय (४) धात्रीके शरीर तथा दोनों स्तनोंसे दुग्ध निकालकर परीक्षा करना उचित है । उसके दुग्धमें किसी रोगके चिह्न पाये जावें तो उसको कदापि न रखना, शुद्ध दुग्धसे स्तन परिपूर्ण होवे ऐसी धात्रीके दुग्धसे बालकका योग्यरीतिसे पोषण होता है । (५) जिस उमरका अपना बालक होय उतनीही उमरका बालक धात्रीका होय तब हीं अपने बालकको धात्रीका दुग्ध अनुकूल पडता है । अपना बालक हालका उत्पन्न हुआ होय और धात्रीका बालक एक डेढ व दो महीनेका होय तो अपने हलके उत्पन्न हुए बालकको उसका दुग्ध अनुकूल नहीं हो सक्ता और अपने बालकको दस्त और कृशताका रोग उत्पन्न हो बालक दिन पर दिन सूखता हुआ अन्तके दर्जे मर जाता है । (६) धात्री सुशील सज्जन और समझदार होनी चाहिये अपने शरीर और वस्त्रोंको साफ रखती होय (७) ऐसी न होवे कि अपने बालकको तो भर पेट दुग्ध पिलाती होय और लिये हुए बालकको जब कभी पिलाती होय और बालकको पूर्ण पोषण न पहुंचा सके ऐसी अधर्मी बेईमान न होनी चाहिये । (८) समान उमरके बालकवाली और समदृष्टि रखनेवाली धात्रीका दुग्ध पीकर ही बालकका यथार्थ पोषण हो सक्ता है, ऐसी धात्रीकाही दुग्ध बालकको अनुकूल पडता है (९) कभी २ किसी स्त्रीके दूधमें अन्तर रहता है इसका कारण स्त्रीकी उमरसे भी सम्बन्ध रखता है, जिस उमरकी स्त्री होय उसी उमरकी धात्री होनी चाहिये अपने बालककी माता प्रथम बालककी माता होवे तो धात्री भी प्रथम बालककी माता होनी चाहिये । (१०) इतनेपर भी बालककी तन्दुरुस्तीमें कुछ अन्तर मालूम हो तो धात्रीका दुग्ध निकालकर उसकी परीक्षा करनी चाहिये और धात्रीकी उमर दांत केश और उसके अनुभव वर्त्तावपर ध्यान देना योग्य है कि बालकके साथ कैसा वर्त्ताव रखती है ।

कदाचित् बालकके अनुकूल एक धात्रीका दुग्ध न आवे तो दूसरी बदल देनी चाहिये और जिस धात्रीका दुग्ध हलका पाचन और बालककी प्रकृतिके अनुकूल पड सके ऐसी धात्रीके समीपही बालकका पोषण कराना उचित है । धात्रीको उचित है, कि जिस आहारसे दो बालकोंके पोषणके लिये दुग्ध उत्पन्न हो सके तथा जैसा आहार करनेका उसका स्वभाव होवे और जो आहार उत्तम रीतिसे पचसके उसी आहारका सेवन करे और धात्रीको रखनेवाली स्त्री धात्रीकी प्रकृतिके अनुकूल जो जो आहार आवे उसीको देना योग्य है । द्रव्य पात्र लोगोंके बालकके पोषणके लिये गरीब दरिद्री स्थितिकी धाय मिलती है । और सदैवकी स्थितिका आहार गरीब लोगोंका हलका अन्न होता है जिसमें घृतादिका संयोग भी कभी २ होता है दुग्ध अक्सर किसी २ गरीबके यहां भी बालकवाली स्त्रीको मिलता है । सो ऐसी गरीब स्थितिके आहार सेवन करनेवाली धायको श्रीमन्तलोग भारी चिकने और गरिष्ट आहार करावें तो एकदम उसको माफिक नहीं आ सक्के और धात्रीको अजीर्ण होकर उसकी तबियत बिगड जाती है । इससे बालककी तन्दुरुस्ती और पोषणमें विघ्न पडता है । सो धात्री रखनेवाले श्रीमन्त लोगोंको उचित है कि धात्रीके ऊपर इतनी कृपाकी भूल न करें जिससे उनके बालकके शरीरको हानि पहुंचे, यदि उनकी मर्जी ऐसी ही होवे कि हमारा बालक विशेष पुष्ट होवे तो धात्रीको यथाक्रमसे स्निग्ध और भारी भोजन खिलानेकी आदत करलेवें एक दो महीनेमें भारी आहार पचानेका स्वभाव धात्रीको हो सक्ता है । यथाक्रम आहार बढाकर देनेसे धात्री तथा बालकके शरीरको हानि पहुंचनेकी संभावना नहीं होती । धात्रीको बालक देनेके पीछे १५ दिवस व १ महीनेसे चिकित्सकको बालक देखना चाहिये कि बालकका पोषण यथार्थ रीतिसे होता है कि नहीं और बालककी शारीरक उन्नति बराबर होती है कि नहीं । और कोई रोगादि तो बालकके शरीरमें हानि नहीं करता है इत्यादि विचार करना योग्य है, चिकित्सकको उचित है कि ऐसी अवस्थावाले निर्बोध बालककी रक्षाके अर्थ हर समयकी परीक्षाके अनन्तर जो त्रुटि बालकके पोषणमें विपरीत जानपडे तो धायको समझा दिया करें ।

डाक्रीसे बालकको पशुदुग्ध पिलानेकी प्रक्रिया ।

माताके दुग्धके अभावमें धात्रीदुग्ध और जिस देशकालमें उपरोक्त लक्षण सम्पन्न धात्री न मिल सके अथवा मनुष्य धात्रीके द्वारा बालकका पोषण करानेमें असमर्थ होय ऐसी दशामें पशुदुग्धके द्वारा बालकका पोषण करना उचित है । परन्तु श्रीमन्त द्रव्यपात्रोंकी आराम तलब स्त्रियां जिनको यह विचार है कि बालकको दुग्ध पिलानेसे हमारा जोबन हुसन (सौंदर्य) नष्ट हो जावेगा ऐसी विचारशून्य स्त्रियोंको विचारना

चाहिये कि जो वालक नवमास उनके उदरमें निवास :करके और माताके रक्त और पिताके वीर्य्यसे शरीर वनकर उत्पन्न हुआ है वह उनका आत्मज रूपान्तर है । अर्थात् दम्पतिका पुनर्जन्म हुआ है यह सन्तानरूपी पुनर्जन्म प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध है । यहांपर न्याय और मन्तरव्यकी युक्ति लगानेकी आवश्यकता नहीं है, सौंदर्य नष्ट होनेके भयसे अपने आत्मज वालकके पोषणका भार स्वयं अपने अधीन रखें, धात्री दुग्ध व पशुदुग्धका आसरा न लेवें प्रकृतिने जो आङ्गोपाङ्ग स्तनादि उनके शरीरमें नियत किये हैं उनसे यथा समयपर नियमानुसार काम लेना मनुष्यमात्रका स्वाभाविक कर्त्तव्य है । सन्तानकी माता कहलानेकी अधिकारी वोही स्त्रियां हैं जो सन्तानको उत्पन्न करके स्वयं उनका पालन पोषण करती हैं। जो सन्तान माता पिताके समीप रहकर परिवरिस पाते हैं वोही पूर्णरूपसे पितृ मातृ भक्त होते हैं । क्योंकि मातापिताकी स्नेहरूपी विद्युतके आकर्षणका समावेश गर्भसे लेकर युवावस्थाके आरम्भतक होता रहता है । आरामतलवी और सौंदर्य नष्ट होनेके ख्याल इस भारतभूमिकी स्त्रियोंमें पूर्वकालमें नहीं पाये जाते थे, किन्तु आधुनिक समयमें देखादेखी कहीं कहीं यहांकी स्त्रियोंमें ऐसे ख्याल उत्पन्न होगयेहैं । पूर्वकालमें राजा महाराजालोगोंकी पटरानीसे लेकर एक झोंपडा निवासी दरिद्रीकी स्त्रीतक अपने आत्मज सन्तानका पोषण स्वयं करती थीं । उनका उदाहरण इस समयकी समझदार स्त्रियोंको ग्रहण करना उचित है ।

पशुदुग्ध पशुओंमें ऐसा पशु कौन है जो स्त्री दुग्धसे समानता रखता होय अभीतककी तहकीकातसे स्त्रीदुग्धकी समानताके गुणवाला दुग्ध किसी पशुका नहीं है, इतना निश्चय डाक्टरोंने अवश्य किया है कि गधीके दुग्ध स्त्रीके दुग्धके समान गुणवाला तो नहीं है परन्तु कितने ही दर्जे स्त्रीदुग्धसे मिलता है परन्तु सम्पूर्णांशमें समानता नहीं पाई जाती । अगर गधीका दुग्ध प्राप्त हो सके तो तत्कालमें दुहकर वालकको पिलाना चाहिये । परन्तु गधीका दुग्ध सर्व देशकालमें वालकको मिलना दुसवार है । इससे यही उचित है कि स्त्री और गधीके दुग्धके अभावमें गौदुग्धसे वालकका पोषण करे यह सर्व देश काल और प्रत्येक वालकको प्राप्त हो सक्ता है । परन्तु गौका दुग्ध स्त्रीके दुग्धकी अपेक्षा अधिक गाढा और न्यून गुणवाला है यह गुणोंमें तो स्त्रीके दुग्धकी समानतावाला हो नहीं सक्ता, लेकिन पतले पनमें लानेके लिये जल मिलाकर स्त्रीके दुग्धके समान पतला कर सक्ते हैं और जल इस प्रकारसे मिलाना चाहिये कि जो गौ १ महीनेके अन्दरकी व्याई हुई होय उसके दो भाग दुग्धमें १ भाग साफ जल मिलाना और जो गौ एक महीनेसे ऊपरकी व्याई हुई होय उसके दुग्धमें वरावर भाग जल मिलाकर वहुत थोडी मिश्री मिलावे उसको गर्म करके उफान दे मलाई उतार लेवे, जितना गर्म दुग्ध स्त्रीका व गायके थनमेंसे निकलता है इतनी गर्माई

वाला पिलावे। अति गर्म व विलकुल शीतल न पिलावे दुग्धको चमचा व सीपीसे पिलावे उसके किनारे गोल होने चाहिये मगर चमचा और शीपी दोनोंकी अपेक्षा दूध पिलानेकी काच शीशी विलायती आती है उसके मुखपर स्तनकी डोडीके समान खडकी डोडी लगी रहती है उसको वालकके मुखमें लगानेसे माताके स्तनके समान ही वालक दूध खींचता है तो उस अन्दाजसे दुग्ध उसके मुखमें पहुंचता रहता है इस शीशीको दुग्ध पिलानेके पीछे उसका काग निकालकर गर्म जलसे धोना चाहिये और जितने समय दूध पिलाना उतने ही समय धोना चाहिये न धोनेसे शीशीमें खटास उत्पन्न हो जाता है। खटाससे दुग्ध विगड जाता है और खराव दुग्धके पीनेसे वालकको उदर रोग हो जाता है, प्रातःकालका निकाला हुआ दुग्ध सायंकालको और सायंकालका निकाला हुआ प्रातःकालको कभी न पिलाना चाहिये और दुग्ध अन्दाजसे पिलाना चाहिये जितना वालकको आसानीसे पच सके अजीर्ण न होने पावे। ऊपर जो दुग्धमें जल मिलानेका क्रम लिखा है जैसे २ वालककी उमर बढती जावे वैसे २ उसकी अग्निभी तीव्र होती है और वह भारी और गाढे दुग्धके पचानेमें समर्थवान होती जाती है, सो हर १५ दिवससे २ तोला जलका भाग उपरोक्त विधिमेंसे कम करना और दुग्धका भाग बढाना उचित है इसी प्रकार करते २ वालक गैर पानीके केवल दुग्धको पचानेकी शक्तिवाला हो जावे उस समय उसको वगैर पानीवाला दुग्ध पिलाना चाहिये। जिस समय बालक निर्केवल दुग्ध पचानेकी शक्तिवाला हो जाता है उस समय उसके सब अङ्ग उपांगु हृष्ट पुष्ट हो जाते हैं। और प्रत्येक ३ घंटेके अन्तरसे वालकको दुग्ध पिलानेका नियम रखना चाहिये। यह नहीं कि वालक कदाचित रोने लगे और उसके मुखमें दूधकी शीशी व स्तन ठूंसदिया जावे। प्रथम अवस्थामें गौका दुग्ध पानी मिलाये बगर कदापि न पिलावे फूलके समान तासीरवाले वालकको गाढा दुग्ध पच नहीं सक्ता पेटमें अफरा होता है दस्त हो जाते हैं दूसरी अवस्थाम जल मिलाना कम करना और दुग्ध बढाना तीसरी अवस्थामें जल मिलाना छोड देना और निर्केवल दुग्ध पिलाना, जिस देश कालमें गौके दुग्धका अभाव होवे वहां बकरीका दुग्ध भी पिलाया जाता है लेकिन कोष्ट बद्ध करता है (विशेषदुग्ध) किसी स्त्रीके स्तनोंमें दुग्ध बालकके पोषणके लिये ठीक २ होता है और किसी स्त्रीक स्तनोंमें कम होता है कम होनेका कारण ऊपर लिख आये हैं और किसी २ स्त्रीके स्तनोंमें. दुग्धकी उत्पत्ति विशेष अधिकतासे होती है। यहांतक कि बालक भरपेट पीता है परन्तु स्तनोंमें दुग्धका जोश रहता है और स्तन दुग्धके जोशसे तनेहुए रहते हैं। और जब अधिक दुग्ध भरा रहता है उस समय स्तनोंमें तनाव पडा हो व स्तनोंक जोशसे स्त्रीको ज्वर हो जाता है. और किसी

समय दुग्धका इतना प्रवाह बढता है कि अपनेआप ही स्तनोंमेंसे बहने लगता है कितनीही स्त्रियोंके स्तन मोटे होकर सूज जाते हैं और पककर फूटते हैं और स्तनोंमें जखम पड जाते हैं। यदि स्तनका रोग किसी दूसरे कारणसे नहीं होय किन्तु बालकसे जितना दूध खिच सक्ता है उतना यह खींचता है । इस पर भी स्तनमेंसे दूधका जोश नहीं घटता दूसरे किसी स्त्रीका बालक मर जाता है उसके स्तनोंमें भी दूधका जोश बढता है और दोनों स्तनोंमें पीडा होती है बालक समस्त दुग्धको नहीं खींच सक्ता तथा बालकके मर जानेसे यह परिणाम उत्पन्न होता है । इसकी चिकित्सा दो प्रकारसे स्त्री चिकित्सकको करनी चाहिये, स्तनोंमें जो दुग्धका संग्रह है उसको निकाल कर बाहर डाल देवे तथा दूसरा उपाय यह कि दुग्धकी उत्पत्ति जो स्तनोंमें होती है उसको बन्द करना चाहिये । स्तनोंमें एकत्र हुआ दुग्ध किसी २ समय स्वयं ही बाहर निकलने लगता है नहीं तो दूध खींचनेका विलायती यन्त्र बाजारमें बिकता है डाक्टरी दवा बेचनेवालोंकी दूकानपर मिलता ।

आकृति नं० ६९ देखो ।

इस यन्त्रके काचके मुखमें स्तनकी डोडी रखके स्तनपर दवा देवे और पीछेके भागमें जो रबड लगी हुई है उसको हथेली और अंगुलियोंके बीचमें देकर दबावे जिस वक्त दबा चुकी उसी समय अंगुली और हथेली पोली करनेसे स्तनोंमेंसे दुग्ध निकलेगा और नीचे जो कांचका पोला भाग गोलेके समान है उसमें दुग्ध एकत्र होता रहेगा जिस समय यह गोला भरजावे उसी समय यन्त्रको स्तनपरसे हटाकर गोलामेंसे एकत्र हुए दुग्धको फेंक दो और जहांतक सब दुग्ध न निकल आवे तबतक इसी प्रकार निकालकर स्तनोंको दुग्धसे खाली कर देना चाहिये । इसके बाद स्तनोंमें दुग्ध उत्पन्न न होय ऐसा उपाय करना चाहिये । इसके लिये बेलोडोना अच्छा है बेलोडोनाका तैल व सत्व स्तनोंपर लेपके समान लगाना चाहिये, परन्तु इसके लगानेके बाद बालकको दुग्ध पिलाना होय तो स्तनपर साबन व चनेका आटा लगाकर धो डाले क्योंकि यह दवा जहरी है । और बेलोडोनाका सत्व $\frac{1}{3}$ ग्रेन दिनमें दो व तीन समय स्त्रीको जलमें मिलाकर पिलावे । इस उपायसे दुग्धकी उत्पत्ति बन्द हो जाती है । देशी औषधका लेप करना होय तो संगजरास सेलखडिया कापूर समान भाग लेकर अफीम व पोस्तके डोडाके जलमें बारीक पीसकर मलमसा बनाकर स्तनपर लेप करे इससे भी स्तनोंमें दुग्धकी उत्पत्ति कम हो जाती है । स्तनोंमेंसे दुग्ध खींचनेका उपाय स्त्रियां इस प्रकारसे भी करती हैं कि बडी उमरके बालकसे दुग्ध खिचवाती हैं यदि स्त्री दुग्ध शुद्ध होवे दूषित और जहरी न हुआ होवे तो बडी उमरके बालकको पिलानेमें कुछ हर्ज नहीं है । परन्तु दुग्ध दूषित और

जहरी हो गया होय तो दुग्ध पीनेवाला बालक रोगी हो जाता है सो निरपराधी बालक रोगी हो जावे तो महा अनर्थ है। इतना बचाव अवश्य हो सक्ता है कि बालकसे दूध मुखमें खिंचवाकर बाहर निकाल दिया जावे। लेकिन दो तीन वर्षके बालकको इतनी होशियारकी समझ नहीं होती कि दुग्धको पेटमें न जाने देवे और मुखसे खींचकर निकाल देवे। सोवड होनेके पीछे कितनी स्त्रियोंके स्तनोंमें व्याधि उत्पन्न हो जाती है, उसका उपाय प्रसव सम्बन्धि सब रोगोंके अन्तमें आयुर्वेद और डाक्टरीसे लिखाहुआ है वहां दखा।

बालकके दुग्ध पिलानेका समय।

बालकके दुग्ध पिलानेका समय नियत कर लेना चाहिये और सदैव नियत समय पर ही दुग्ध पिलाना उचित है। चाहे दुग्ध माताका होय चाहे धायका होय चाहे किसी पशुका होय, ऊपर हम लिख आये हैं कि पशुओंमें गधीका दुंग्ध स्त्रीके दुग्धसे कितने ही अंशमें समानता रखता है। बहुत मनुष्योंका ऐसा ख्याल है कि गधी सब पशुओंमें अपवित्र है, बहुतोंका ख्याल है कि शीतला माता जो मनुष्योंकी देवी समझी जाती हैं उनका बाहन है। किन्तु नहीं बालकके वास्ते इस जानवरका दुग्ध अति हितकारी है। अगर इसका दुग्ध अधिक न मिलसके तो १ महीनेमें २-४ समयमें तो अवश्य ही बालकको पिलाना चाहिये। ज्वर, अतीसार खांसी आदि रोग जो कि दांत निकलनेके समय पर बालकोंको हुआ करते हैं उस समयमें अति उपयोगी है। बालक अवस्थामें दुग्ध पीना सोना मलमूत्र त्यागना बस ये चार काम हैं बालकको पोषण अधिक मिलनेसे आर शरीरकी सामग्रीमेंसे खर्च कम होवे जब धीरे २ बालकका शरीर वृद्धिको प्राप्त होता है। प्रथम अवस्थामें दो २ घंटेके अन्तरसे बालकको दुग्ध पिलानेका समय नियत करना चाहिये, जैसे २ बालककी उमर बढती जाय तैसे २ उसके दुग्ध पिलानेका समय भी बढाते रहना योग्य है। दो घंटेके अन्तरसे तीन घंटेका और तीन घंटेके अन्तरसे चार घंटेका बस है, बालक जब तक दुग्धाहारी रहे तब तक ४ घंटेके अन्तरसे दुग्ध पिलाते रहना। इस अवधिमें बालकका पान किया हुआ दुग्ध उत्तम रीतिसे पचता रहेगा। और माताके स्तनमें नूतन दुग्ध उत्पन्न होकर दूसरे समयके लिये संचित रहेगा। वारम्वार दूध पिलानेकी आदत बालकको लगाना अनुचित है, ऐसी आदत लगानेसे बालकके आहारको पूर्ण दुग्ध नहीं मिलता और वारम्वार दुग्ध पीनेसे बालकको उल्टी आने लगती है। अजीर्ण हो जाता है और उल्टीमें बालकके पेटसे ऐसा दूध निकलता है

जैसी दहीकी फुटक होती है और बालकका दस्त सफेद पीला और फटा हुआ देखनेमें आता है, ये सब लक्षण अजीर्णके कारणसे होते हैं, यह बालकको वारम्वार दुग्ध पिलानेका दोष है। और बालकको दुग्ध पिलानेके समय माता तथा धायको क्रोध न करना चाहिये किसीसे लडना भिडना व क्रोधमें आनकर वक वक न करनी चाहिये क्रोध करनेसे बालकको दुग्ध नहीं पचता है और उसके पेटमें पीडा होने लगती है। ऐसे समयका पिलाया हुआ दुग्ध बालकको विषके समान हो जाता है, कितनीही स्त्रियां बालकको बगलमें रखके सो जाया करती हैं। बालक स्तनको चूसता रहता है और स्तनके भारसे उसका मुख और नासिका बन्द हो जाती है और स्तनकी डोडी बालकके मुखमें रहती है, इस दशामें बालकका श्वास घुटकर बालक मर जाता है और बेसमझ माता निद्रासे उठती है जब बालकको गोदमें उठाती है उसकी गर्दन लटक जाती है शरीर निर्जीव दीखता है और रोने लगता है, स्त्रियां कहती हैं कि मसानके झपाटेमें आनकर बालक मर गया है। अपनी भूलको नहीं समझती सो सोनेके समय बालकको दुग्ध पिलानेकी आदत कभी नहीं डालनी चाहिये। एक तो स्त्रीकी निद्रामें विघ्न पडता है दूसरे बालककी आयुका खतरा हो जाता है। बालकके लिये प्रत्येक स्त्रीके स्तनोंमेंसे कितना दुग्ध आता है इसका निश्चय पूर्ण रीतिसे नहीं हो सक्ता, स्त्रीकी तबीयत पूर्ण रीतिसे प्रसन्न रहना शरीर बलवान रहना और शरीरका बंधान और दुग्धका बालकके शरीरके पोषणके वास्ते खर्च होना और बालकके ऊपर पूर्ण प्रेम दुग्ध पिलाने वालीका रहना इत्यादि वर्त्ताव और स्त्रीके शरीरकी आरोग्यता इन सबके ऊपर दुग्धका आधार समझो। बालकके जन्म होनेके पीछे बालकको दुग्ध पिलानेके समयमें विशेष करके स्त्रीको ऋतुधर्म नहीं आता है इसका अन्दाज ७ महीनेसे लेकर १ साल पर्य्यन्त स्त्रीका रजोधर्म आना बन्द रहता है। और किसी स्त्रीको प्रसव होनेके पीछेसे ही प्रत्येक महीनेकी अवधि पर आर्त्तव आया करता है, किसीको रजोधर्म शीघ्र आने लगता है और किसीको विलम्बसे आता है। किसी २ स्त्रीका ऐसा स्वभाव होता है कि जबसे रजोधर्म आना शुरू होता है तभीसे उसका दूध बिगड जाता है और किसीका आर्त्तव आनेसे दुग्ध शुद्ध बना रहता है। परन्तु यह नियम बिलकुल यथार्थ नहीं है कि आर्त्तव आनेसे सबका दुग्ध बिगड ही जाता होय। परन्तु यह बात बिलकुल निश्चय हो चुकी है जिस स्त्रीको रजोधर्म आने लगता है और वह सहवास करने लगे तो गर्भाधानकी स्थिति होना भी संभव है, जब गर्भाधान रह गया तो स्त्रीका दुग्ध अवश्य ही बिगड जाता है। और दुग्ध पतला हो जाता है कम आने लगता है, यदि इस दशामें जो स्त्रियां बालकको दुग्ध पिलाती हैं उनके बालक कृश

होते जाते हैं बालकके शरीरका रंग पीला पड जाता है । और किसी २ बालकको गर्भाधानवाली स्त्रीका दुग्ध पिनेसे इतनी निर्बलता हो जाती है कि कोई व्याधि बालकको इस अर्शेमें हो जावे तो वह उस व्याधिमें ही मर जाता है । विशेष करके ऋतु बन्द रहता है जब तक स्त्रीको दूसरा गर्भ नहीं रहता है, कदाचित् दूसरा गर्भ रह भी जावे तो बालकका दुग्ध पिलाना बन्द कर दिया जाय । यह कुदरती नियम है कि विशेष स्त्रियोंका ७ । ८ महीनेतक बालक होनेके पीछे ऋतुधर्म बन्द ही रहता है । जिन स्त्रियोंका ऐसा स्वभाव है कि प्रसव होनेके बाद एक वर्षका गोदीका बालक न होने पावे और साल भरके अन्दर ही दूसरा गर्भ रह जावे तो उसके बालक कमजोर रहते हैं और स्त्री भी कमजोर हो जाती है । डेढ व दो सालके बाद जिन स्त्रियोंको दूसरा गर्भ रहता है उनके बालक भी हृष्टपुष्ट होते हैं और स्त्री भी निर्बल नहीं होती है शीघ्र २ गर्भका रहना और बालक उत्पन्न होना स्त्री और बालक दोनोंको हानिकारक है । स्त्रीके गर्भवती होनेके बाद ही बालकको दूध पिलाना छोड देवे । और या तो उसको गौका दूध पिलावे । या (लीवींग फुड) खिलाकर बालकका पोषण करना उचित है । यूरोपसे (कंडेन्स्ड् मल्कि) धनरूए दुग्धके डब्बे बाजारमें बिकनेको आते हैं । परन्तु जहांतक गायके दुग्धसे-बालकका पोषण उत्तम रीतिसे हो सके वहां तक इन यूरोपके डब्बोंका दुग्ध काममें न लिया जावे । क्योंकि ये डब्बा विदेशी मांसाहारियोंके. स्पर्श किये हुए आते हैं अपने धर्मके विरुद्ध बालकको भी अखाद्य वस्तु न देनी चाहिये । जहांपर गौका ताजा दुग्ध न मिल बालकके पोषणमें हानि पहुंचती दीख पडे तो भले ही इन डब्बोंके दुग्धका काम लेना चाहिये । और गर्भकी स्थिति होनेपर बालकको स्तनपान कैसे छुटाना चाहिये सो इसका निश्चित समय नियत करना तो कठिन है, क्योंकि बालककी उमर व बालककी शारीरक स्थिति तथा दुग्ध पिलानेवाली माताकी तबीयतके ऊपर इसका आधार है । अगर बालककी तबीयत ठीक होय तो एक सालकी उमर होनेपर स्तनपान छुडा देना चाहिये, यदि बालककी स्थिति ठीक न होय और बालककी माता गर्भवती न हुई होय तो जबतक बालक दांत न निकाले तबतक दूध पिलानेमें कुछ हानि नहीं है । अगर बालककी माता गर्भवती हो गई होवे तो उसी समय बालकका स्तनपान एकदम बन्द कर देना चाहिये और उपरोक्त रीतिसे बालकका पोपण करना चाहिये । कदाचित माताकी शारीरक स्थिति निर्बल होय व माता रोगी होय तो एक सालके अन्दर ही स्तनपान छोड देना चाहिये । यदि माताके स्तनोंमें बालकके पूर्ण पोषणके योग्य दूध उत्पन्न न होता होय तो प्रथम ही छोडकर उपरोक्त लिखे अनुसार बालकको पोषण करे । कितने ही डाक्टरोंका यही सिद्धान्त है कि दो ढाई

सालकी उमरतक बालकके सम्पूर्ण दुधिया दांत निकल आते हैं, जबतक माताका दुग्ध बालकको पिलाना चाहिये वसर्ते इस उमरतक स्त्री गर्भवती न. हुई होय इतने समयकी अवधि तक कुदरती नियमके अनुसार दूधके बदले बालकको दूसरा आहार करनेके लिये उसके मुखमें दांतरूपी चक्की उत्पन्न हो जाती है और अन्नादिकके आहारको दांतोंसे बारीक पीसकर चबा सक्ता है, फिर इसी आहारके आधार पर बालकका निर्वाह होने लगता है। और स्त्रीके प्रसवको जैसे २ अधिक समय व्यतीत होता जाता है वैसे २ स्त्रीका दुग्ध पतला होता जाता है और ज्यों २ बालक बडा होता है त्यों २ उसको भारी आहारकी आवश्यकता होती जाती है। पतले दुग्धसे उसके शरीरका पोषण यथार्थ रीतिपर नहीं होता, इस समयपर बालकको माताके दुग्धके आधार पर ही रखा जावे तो उसका शरीर पूर्ण रीति वृद्धि नहीं पा सक्ता और अधिक कालकी प्रसूतीका दुग्ध बालककी तबीयतको बिगाडनेवाला होता है। जिस समयपर स्तन पानसे बालकको छुटानेकी कोशिस की जावे उसके प्रथमसे ही थोडा थोडा गौका दुग्ध और इसके बाद कुछ २ हलके आहारका भाग जैसे साबूदाना व भुने गेहूंकी दलिया व भुने चावलकी दलिया जलमें पकाकर दूध और मिश्री मिलाकर देने लगे। इस आहारके परिवर्त्तनकी दशामें सदैव बालककी तबीयतके ऊपर ध्यान रखना योग्य है कि बालककी तबीयत किसी प्रकारसे न बिगडने पावे। बाद एकदम बालकका स्तन बन्द न करे, एकदम बन्द करनेसे बालकको बडा त्रास हो बालककी तबीयत बेचैन होती हुई अजीर्ण दस्त तथा ज्वर हो जाता है। और माताके स्तनमें दूध भरकर तन जाते हैं। ऐसी दशामें कुछ २ दुग्ध बालकको पिलावे, बाकी दूध यन्त्रसे निकालकर फैंक देना चाहिये कदाच बालक स्तन छोडनेके लिये बहुत रुदन करे व त्रास पावे तो स्तनके ऊपर कोई ऐसी कडवी वस्तु लगादेनी चाहिये, जो बालकके होठोंसे लगते ही कडवे हो जावें। परन्तु ऐसी वस्तु विचारकर लगानी चाहिये कि कदाच बालकके मुखमें चली जावे तो उसको हानिकारक न होवे, यहांसे आगे बालकोंकी चिकित्साकी प्रक्रिया सोलहवें अध्यायमें देखो।

मूढगर्भ अर्थात् स्वभाव विरुद्ध प्रसव प्रकरण। (अन्नेचरल लेबर)

ऊपर जो कुछ प्रसव प्रक्रिया लिखी गई है वह प्राकृतिक धर्मके स्वभावानुकूल प्रसवकी है। अब आगे जो कुछ लिखा जाता है वह स्वाभाविक प्रसवके विरुद्ध जो प्रसव होता है उसीकी प्रक्रिया है। जैसा कि गर्भाशयसे चलकर बालक बिना रोक टोकके कुदरती नियमानुसार प्रथम मस्तकके बलसे निर्गमन द्वारमें होकर बाहर आवे उसको स्वाभाविक प्रसव कहते हैं। इस प्रक्रियाके विरुद्ध जो प्रसव होवे उसको स्वभाव

विरुद्ध प्रसव कहते हैं, इसके होनेके तीन दोष नीचे लिखे प्रमाणे. समझो। (प्रथम) गर्भस्थ बालकको बाहर सरकाने व ढकेलनेवाले साधनमें कुछ न्यूनता होय (दूसरा) गर्भस्थ बालक जिस मार्गसे निकलकर बाहर आता है उस मार्गमें कुछ न्यूनता व रुकावट होय। (तीसरा)—गर्भस्थ बालककी आकृतिमें कुछ न्यूनता व अन्तर होय। प्रथम—गर्भस्थ बालकको सरकाने व ढकेलनेवाले साधनका दोष गर्भाशय तथा पेटकी स्नायुयेंमें होता है। जैसे कि गर्भाशय तथा पेटकी स्नायु पूर्ण रूपसे बलवान् होय तो प्रसव एकाएक जोशके साथ शीघ्र हो जाता है तथा गर्भाशय और स्नायु निर्बल और सुस्त हो तो प्रसव होनेमें विलम्ब लगता है। इस प्रकारसे प्रथमको शीघ्र प्रसव और दूसरेको विलम्ब प्रसव कहते हैं, यह प्रथम शीघ्र प्रसव अति बलात्कार ऐंठन पीडा आनेसे और (पेल्वीस) वस्तीके विशेप चौंडे होनेसे और गर्भस्थ बालककी आकृति (कद) विशेष छोटा पतला होनेसे एकाएक प्रसव बहुत शीघ्रतासे हो जाता है। इस प्रकारके प्रसव होनेकी अवस्थामें स्त्री खडी होय, मार्ग चलती होय, किसी काममें लगरही होय व निद्रामें होय तब भी कितनेही समय इस प्रमाणे प्रसव हो जाता है। इससे कितने ही समय बालकको इजा पहुँचती है। हमने खुद देखा है कि एक ग्रामीण स्त्री रामलीला देखने आई थी उसको खडे २ प्रसव हो गया बालक पृथिवीपर गिरा और थोडे समयके बाद गिरनेकी धमकके सदमेसे मर गया, किसी समय बालककी माताको भी हानि पहुंचती है। बालक गर्भाशयमेंसे एकदम सरककर निकल पडता है और स्त्री उस समय धोखेमें बेभूल रहती है, जो स्त्री इस समयमें खडी हो तो बालकके बाहर निकलते समयमें झटका लगता है और बालकका नाल टूट जाता है और योनिमुख तथा योनिके नीचेका भाग बेसणी (सीमन) फट जाती है। उसमें चिरनेकासा जखम हो विशेष रक्त प्रवाह हो जाता है, ऐसी दशामें कितनीही स्त्रियां मूर्छित हो जाती हैं। इस रीतिके अनुसार जो कि अचानकके भूलमें प्रसव हो जावे इसके लिये उपायकी ततबीज करना बन नहीं सक्ता। परन्तु कितनीही स्त्रियोंको ऐसी आदत होतीहै। इससे ऐसी प्रकृतिवाली स्त्रीको प्रथमसे कुछ खबर होय तो अफीमकी परिमित मात्रा देना उचित है और पेडूपरसे नाभि पर्य्यन्त कपडेकी पट्टी मजबूतीके साथ बांध देवे। कारण कि स्त्रीको आरामसे शयन करने पर ऐंठन और पीडाका जोश कम हो जाता है। अकस्मात बेभूलमें प्रसव होनेका संभव कम रहता है। दूसरा (विलम्ब प्रसव) इस प्रसवके होनेमें अधिक समय लगे तो बालक तथा स्त्रीको हानि पहुँचनेका भय रहता है, गर्भाशय तथा पेटके स्नायु बराबर संकोच नहीं होनेसे यदि उनका जोर बराबर (पेल्वीस) की घरीमें न लगनेसे गर्भस्थ बालक नीचे निर्गमन द्वारकी तर्फ नहीं उतरता, इस कारणसे विलम्ब लगता

है। यदि गर्भाशय बहुत ही आगेकी तर्फ ढलता होय तथा एक वगलकी तर्फ मुडे जाय तो गर्भाशयकी तथा आगमन द्वारकी धरी सीधी लकीरमें नहीं रहती है। गर्भाशय और स्नायुका संकोच न्यून होनेसे ऐंठन पीडा मन्द होती है। और शरीरकी निर्बलता तथा मनके विकार अपस्मार (हिष्ट्रिया) तथा वातव्याधि आदि दूसरे कारणोंके आश्रयभूत होकर ऐंठन और पीडाका जोश कमती होता है। इसलिये गर्भवती स्त्रीके शरीरमें वलकी वृद्धि होवे ऐसा उपाय प्रथमसे ही स्त्री चिकित्सकको करना चाहिये और यह उपाय गर्भवती होनेके उपरान्त किया जावे तभी प्रसव समय पर इसका फल होता है। ऊपर कथन की हुई हरकतें प्रसव समयपर न होने पावें। और प्रसवके समय पर स्त्रीको हिम्मत और दिलासा देनी चाहिये। प्रसव समयपर जव कि ऐंठन और पीडा होना शुरू हो जावे तव पीडाके साथ ही गर्भाशयके ऊपर दोनों हाथ रखके नीचेकी तर्फ आहस्ते आहस्ते दवाना चाहिये, ऐसा करनेसे अधिक पीडा होनेका कार्य्य शुरू होगा। जो वालकका प्रसव होनेमें केवल ऐंठन और पीडाकी ही न्यूनता होय और दूसरी किसी प्रकारकी रुकावट न होय तो गर्भाशयको संकुचित करनेके लिये अरगट नामवाली डाक्टरी दवा देना उत्तम है, अरगटकी वूकी ½ ड्रामको प्रवाही एकस्ट्राकट १ ड्रामके साथ मिलाकर ४ ओंस जलमें डालके पकावे जव कि काथ एक ओंस ढाई तोलासे लेकर ५ तोला पर्य्यन्त रहे तव इसकी मात्रा आधे २ घंटेके अन्तरसे देनी चाहिये। वाद जहां तक इस दवाका असर न होय वहांतक देनी चाहिये। अरगटके अतिरिक्त सुहागा तथा तज भी शीघ्रकार्य्यके लिये देनेमें आती है, लेकिन इसका गुण इतना नहीं है कि जितना अरगटके ऊपर विश्वास रख सक्ते हैं, जो कमलमुख विशेष शक्त और गर्भ आडा होय अथवा वस्ती पिंजरकी विकृताकृति होय अथवा गर्भस्थ वालकके निकलनेमें किसी प्रकारका प्रतिवन्ध होय तो अरगट कदापि नहीं देना चाहिये, कारण कि अरगटके देनेसे सक्त ऐंठन और पीडा आती है। और दूसरी तर्फसे प्रतिवन्धके कारणसे गर्भ निकल नहीं सक्ता ऐसी दशामें स्त्री और वालक दोनोंकी जानकी हानिका भय रहता है। यदि पेटकी स्नायु ढीली पडगई होय इसलिये गर्भाशय आगेको धसक पडता है अथवा आडा पड जाता है इस कारणसे गर्भाशयके मुखकी वस्तीकी धरी (सीध) को त्यागकर अस्तव्यस्त टेढी हो जाती है। इस ही कारणसे गर्भस्थ वालकको प्रसव होनेके लिये सीधा मार्ग नहीं मिलता, इसलिये स्नायुका जोर देना तथा गर्भाशयको अपने नियत स्थलपर रखना उत्तम है और पेटके ऊपर वांधनेकी पट्टीका उपयोग करनेमें आता है। (दूसरा) गर्भस्थ वालकके निकलनेके मार्गमें न्यूनता–गर्भाशयको छोडकर वालक कमलमुखसे वाहर निकलता हुआ योनिमार्गमें

होकर योनिमुखसे बाहर आता है। यदि इन मार्गोंमें किसी प्रकारकी रुकावट होय और वह रुकावट गर्भमार्गके किसी मृदु भाग (कोमल भाग) में है अथवा अस्थि भाग और, कमलमुख योनिमार्ग तथा बेसणी (योनिमुखके समीपवर्त्ती अवयव) इन मार्गोंको कोमल भाग व मृदु कहते हैं। कमलमुखकी कठिनता होय तो कमलमुखके विस्तृत करनेमें गर्भाशयको परिश्रम पडता है, परन्तु जबकि यह स्वाभाविक दृढताकी अपेक्षा कमलमुख विशेष कठिन हो तो इससे प्रसव क्रियाके होनेमें एक प्रकारकी रुकावट विघ्नरूप खडी हो जाती है। यह बात आश्चर्य्यजनक है कि जब कमलमुखका भाग पतला होता है तब वह अधिक सक्त होता है इस समय पर इसको विस्तृत किया जावे तो अधिक समय लगता है कदाचित् कमलमुख अधिक कठिन हो तो कितने समयतक ऐंठन और पीडा बराबर आनेके बाद वह कम हो जाती है और प्रसूती स्त्री पीडा सहन करते २ कायल हो जाती है। फिर उसको कुनहने व जोर करनेकी सामर्थ्य नहीं रहती, परिश्रम करते २ स्त्रीका शरीर, गर्भ और निर्बल हो जाता है। उसकी नाडीकी गति शीघ्रतासे होने लगती है, योनि स्थानके अन्दरका भाग गर्म तथा रुक्ष (रूखा) होने लगता है। ऐसी स्थितिमें यह उपाय करना चाहिये कि स्त्री बलवान हो तो १ व दो घंटेके अन्तरसे (टारटरीमेटिक) ⅙ ग्रेन देना चाहिये, इसके देनेसे कमलमुख कठिनता त्याग कर ढीला पडेगा। यदि कुछ मलका अवरोध मालूम पडे तो चिकित्सकको निश्चय करके साल्ट (विलायती नमक) का जुलाब देना चाहिये क्योंकि इस दशामें स्त्रीके सफरेमें मलकी कठिन ग्रन्थी पड गई हो तो योनिमार्गका अवरोध करके बालकके निकलनेमें रुकावट करती है और रेचक दवासे वह मलग्रन्थी निकल जाती हैं सो चिकित्सकको सफरा तथा योनिमार्गकी परीक्षा करके रेचकके वास्ते साल्टनमक देना चाहिये और मलका अवरोध न होय तो परिमित मात्रासे अफीम देना चाहिये। यह उपयोगी इस कारणसे समझी जाती है कि अति दुःखित और कायर स्त्रीको निद्रा आ जाती है। इसी प्रकार (लाडेनम) की २० बिन्दुकी मात्रा देना भी अफीमके माफिक गुण करती है, क्योंकि स्त्रीको ऐंठन और पीडाका जो कष्ट मालूम होता है वह निद्राकी दशामें त्रास नहीं मानती। परन्तु जाग्रत होनेसे फिर उसको ऐंठन और पीडा होने लगती है और विशेष जोशके साथ पीडा मालूम होती है (कलोरोफोर्म) इस समय उत्तम लाभ पहुँचाता है, कलोरोफोर्म सुँघानेसे स्त्रीको शान्ति हो जाती है और कमलमुख जरा जरा नर्म पड जाता है। परन्तु कलोरोफार्म सुँघानेकी आवश्यकता होय तो अन्दाजकी मात्राके साथ सुँघाना चाहिये और योनिमार्गके अन्दर दश बारह मिनिट पर्य्यन्त गर्म सुहाते २ जलकी पिचकारी लगानेसे कमलमुख कोमल हो जाता है। एकस्ट्राक्ट बेलेडोनाकी

दो ग्रेनकी गोली वनाकर योनिमार्गमें कमलमुखमें अडाकर रखनेसे भी लाभ पहुँचता है। जब कि इन औषधियोंके उपचारसे कमलमुख विस्तृत होय तब कमलमुखके अन्दर स्पेंज रखकर और रबरकी थैली कमलमुखमें डालके उसमें फूंक,रकीारो अथवा और किसी तरकीबसे हवा भरे, हवासे जब थैली फूलेगी तब थैलीके फूलनेके साथही कमलमख चौंडा होता जायगा। अधिक समय पर्य्यन्त यह प्रयत्न करनेसे भी कमलमुख नर्म तथा चौंडा न होय और स्त्रीकी सामर्थ्य घटकर क्षीण मालूम पडे तो कमलमुखकी चारों तर्फ अन्दरसे थोडा थोडा छिद्र करना और पीछे स्त्रीको अरगटकी मात्रा खिलानी, पुनः उपरोक्त विधिसे रबरकी थैली डालकर क्रिया करे। इसके करनेसे भी प्रसव न होय तो चीमटा गर्भाशयमें डाल-नेका शस्त्र जिनकी आकृति आगे दी है, गर्भाशयमें प्रवेश करके चरण भ्रमणसे प्रसव कराना उचित है। इस प्रक्रियाको वही कर सक्ता है जो कि ऐसी दशामें चिकित्सकके समीप रहकर शस्त्रक्रिया और प्रसवप्रक्रियाको देख और करचुका होय, वही इस क्रियाके करनेमें प्रवृत्ति करे। किसी स्त्रीको कमलमुखकी व्याधि हुई होय तो वालकके निकल-नेमें रुकावट होती है अथवा कमलमुखके ऊपर अर्बुद हुआ होय अथवा गर्भ रहनेसे पूर्व किसी प्रकारका जखम कमलमुख पर हुआ होय और उसकी गूत कठिन होकर रोपण हो गई होय अथवा समस्त कमलमुख पककर जखमी हुआ होय और रोपण होनेके समय दोनों वाजू चिपटकर रह गई होय (कमलमखके आमने सामनेके दोनों होंठ मिलकर चिपट गये होयँ) इन कारणोंसे प्रसव होनेके समय वालकके निकलनेमें रुकावट पडती है। अर्बुदकी व्याधि जरा शक्त है इसके लिये शस्त्रप्रयोग पृथक् करनेके विदून अर्बुद नष्ट नहीं होता। सो अर्बुदकी व्याधिको त्याग-कर और जो कारण कथन किये हैं उनके लिये ऊपर लिखे हुए उपाय उपयोगी हो सक्ते हैं। विशेष समयतक प्रसव होनेकी राह देखनेके पीछे जो गूत और कमलमुखका भाग चिपटा हुआ होय और वहांपर उपरोक्त उपायोंसे प्रसव होनेकी संभावना न होय तो चिपटे हुए भागपर शस्त्रसे छिद्र करना योग्य है। जो अर्बुद भी कुछ थोडे भागमें होय और छोटा होय तो यही शस्त्रप्रयोगका इलाज काममें लाना चाहिये, जो अर्बुद चौतरफा कमलमुखके अधिक भागमें फैला हुआ होय और ऊपर कथन किये हुए इलाजोंसे कमलमुख इतना विस्तृत होनेकी संभावना न होय कि जिसमेंसे वालक निकल आवे तो इस मौकेपर क्या करना चाहिये इस स्थितिके विषयमें डाक्टरोंके कितने ही मत भेद हैं परन्तु हम यहां सिद्धान्तपक्षका उपाय लिखे देते हैं। जो इतने विलम्ब और अडचनको सहन करके गर्भस्थ वालक और स्त्री दोनोंही सजीव होयँ और वालककी माताको अधिक समय पर्य्यन्त संसारमें जीव-

नकी आशा न होय तो गर्भाशयके ऊपरसे उदरके विदीर्ण (चीरकर) बालकको बाहर निकाल लेना यह उत्तम पक्ष है। और गर्भस्थ बालक गर्भाशयमें मर गया होय तो बालकका शिर भेदन करके प्रसव कराना योग्य है। (हमारी रायमें उदर विदीर्ण करके गर्भस्थ बालकको कदापि न निकालना चाहिये, क्योंकि उदर विदीर्ण करनेसे प्रायः स्त्रीकी मृत्यु हो जाती है और उदर विदीर्ण करके निकाले हुए बालकके बचनेकी व दीर्घ जीवित रहनेकी संभावना नहीं होती। यदि स्त्री जीवित रहे और अर्बुद छेदन करके गर्भाशय तन्दुरुस्त बना रहे तो बालक होनेकी फिर भी कुछ संभावना रहती है। सो अर्बुद छेदन करकेही प्रसव कराना उचित है। यदि अर्बुद छेदन प्रसवकी क्रियामेंही स्त्रीकी मृत्यु हो जावे तो इसमें चिकित्सकका कुछ दोष नहीं है। कदाच उदर विदर्ण ही करके बालकको निकालना पडे तो उदर पर शस्त्रप्रयोग करनेके समय इतना ध्यान रखना चाहिये कि गर्गस्थ बालकके शरीरपर शस्त्रका अभिघात न पहुंचने पावे। कीसी २ स्त्रीकी योनि संकुचित् और (तङ्गवली) वाली होती है इसके लिये ऊपर लिखा हुआ औषधोपचार तथा रबरकी थैलीका इलाज करे, यदि इसके करने बाद भी गर्भाशय विस्तृत न होय तो छिद्र करनेकी आवश्यकता पडती है। परन्तु इतना ध्यानमें रखना चाहिये कि कमलमुखमें छिद्र करनेकी अपेक्षा योनिमें छिद्र करनेमें अधिक भय और जोखम रहता है। कदाचित बेसणीमें किसी समय सक्त माॡम पडे तो इसके लिये ऊपर कथन की हुई (टार्टरइमेटिक) अफीम कलोरोफोर्म इत्यादि दवा देनी तथा तल चुपडना ऐसा करनेसे नर्म होकर विस्तृत हो जाती है। स्त्रीके वस्तिस्थानमें किसी प्रकारकी ग्रन्थी होय तो वह भी गर्भस्थ बालकके बाहर आनेमें रुकावट करती है ग्रन्थी प्रायः वस्तीके कोमल भागोंमें उत्पन्न होती है यह ग्रन्थी प्रसव होनेमें बाधक इस प्रकारसे होती है कि ग्रन्थीके आकारके प्रमाणमें रुकावट करता हो जाती है, जो मार्ग बालकके निकलनेका है उसमें वह अड जाती है और बालकको नीचेसे सरकनेसे रोकती है, इसी प्रकार वस्ति पिंजरकी अस्थिका कोई भाग ऊंचा टेकरेके माफिक निकल रहा होय वह भी उपरोक्त ग्रन्थीके समान बालकके निकलनेमें रुकावट करता है। और स्त्री अण्डकी बृद्धि अथवा उसका जलोदर उत्पन्न होनेसे भी किसी २ स्त्रीके प्रसव समयमें रुकावट पहुंचती है, इसी प्रकार किसी २ स्त्रीके मूत्राशयमें मूत्र भरा रहनेसे और किसी समय सफरा (मलाशयमें मलके भरे रहनेसे भी प्रसव प्रक्रियामें रुकावट होती है। यह भी विलम्बका हेतु है। उपरोक्त रुकावटोंका उपाय यह है कि मूत्र तथा मलके कारणसे बालकके निकलनेमें रुकावट निश्चय हो तो मूत्रको स्त्री मूत्रनलीमें शलाका यन्त्र प्रवेश करके मूत्र निकाल देवे। यदि मलका अवरोध हो तो गर्मजलमें साबन घोलकर उसकी पिचकारी सफरा (गुदा) में लगावे जिससे

मल बाहर निकल पडे और रुकावटका मार्ग साफ हो जावे । यदि वस्ति पिंजरकी किसी अस्थिका भाग ऊंचा टेकरेके माफिक होय तो इसके लिये वस्तीके व्यासमें जितना मार्ग कमती होय उतना मार्ग वस्तीके व्यासके अनुसार करनेकी तरकीबवाला उपाय करना । यदि व्यास किञ्चित् ही छोटा होय तो बालकका चरण भ्रमण (पैर फेरकर) अथवा चीमटाके आश्रित गर्भस्थ बालकको निकालनेकी प्रक्रिया करे, चरण भ्रमण और चीमटासे प्रसव होसियारीके साथ हो सक्ता है । जो वस्तीका व्यास अधिक छोटा हो तो बालकका शिर भेदन अथवा स्त्रीका उदर विदीर्ण करनेसे स्त्री और बालक दोनोंको पृथक् पृथक् करे । यदि स्त्री अण्डकी ग्रन्थी छोटी होय तो उसको बस्तीके ऊपरकी तर्फ खींचकर चढा देना और बालकके निकलनेका मार्ग साफ कर देना, यदि स्त्री अण्डका जलन्दर बहुत बडा होय तो चंच्वाकृति यन्त्रसे योनिको विस्तृत करके (इस यन्त्रकी आकृति पूर्व देखो) योनिमार्गके अन्य मर्मस्थानोंको बचाकर स्त्री अण्डके जलन्दरको चीर देवे और उसके अन्दरका प्रवाही पदार्थ निकाल देवे, इस प्रवाही पदार्थके निकलने पर प्रसव होनेका मार्ग साफ हो जाता है और बालक निकसनेकी रुकावट नहीं रहती । ऊपर कथन की हुई बस्तीके कोमल भागकी रुकावटके अतिरिक्त बस्तिपिंजरकी विकृताकृति होनेसे भी प्रसवमें रुकावट होती है, वस्तिपिंजरकी हड्डियोंमें कोइ व्याधि होनेसे बस्तिस्थानके स्वाभाविक व्यासमें न्यूनाधिकता होती है । कितनेही समय बस्तीके समस्त व्यासमें चौडाई हो जाती है अथवा सर्व दिशामें संकोच होता है बस्तिस्थानका आकार इस दशामें एकन्दर बडा अथवा छोटा होता है । इसके अतिरिक्त बस्तीकी दूसरी विकृताकृति आगमन द्वारकी कक्षामें तथा निर्गमनद्वारमें भी देखनेम आती है, आगमनद्वारमें कितनीही वार (सेकमकी–प्रोमोन्टरी) आगेको विशेप वढी हुई होती है । इसलिये बस्तीका पूर्व पश्चिम व्यास कमती हो जाता है कक्षाका व्यास (सेकम) में न्यूनाधिक अन्तरगोल होनेसे कमती जास्ती होता है और (कोकसीकस) स्थिर हो गया होय अथवा दोनों तर्फका (इस्कीयम) समीप आ गया हो तो निर्गमनद्वारका व्यास कमती हो जाता है और किसी समय वस्ती बाँकी टेढी हो जाती है और किसी समय गरेर्णाके आकारके समान हो जाती है ।

आकृति नं० ६६ देखो ।

उपरोक्त आकृतिके समान जब कि वस्ती विकृताकृतिमें होय तो इस समय इस आकृतिकी वस्तीमेंसे प्रसव होनेके समय बालकका मस्तक रुकावटके ठिकाने आनकर अटक जाता है । इसके लिये जैसी रुकावट उस समय चिकित्सक देखे वैसा उपाय करना चाहिये, जो कि व्यास ४ इंच अथवा कुछ अधिक हो तो कदाचित प्रसव होनेमें कुछ विलम्ब लगता है तो भी कुदरती साधनसे ही विशेष करके प्रसव

होता है । पूर्व पश्चिमव्यास ३ १/८ इंचसे ४ इंच लम्बा हो तो चीमटाके साधनसे प्रसव कराना पडता है, यदि व्यास ३ १/४ इंचसे कमती होवे और २ १/२ इंचसे ऊपर होय तो चरण भ्रमण करके प्रसव कराना पडता है । और वस्तीका व्यास २ १/२ इंचसे कमती और १ ३/४ इंचसे अधिक हो तो बालकका शिर भेदन करनेकी आवश्यकता पडती है । यदि इससे भी जो वस्तीका व्यास कमती होय तो स्त्रीका उदर विदीर्ण करके बालकको निकालनेकी कोशिस करनी चाहिये, इस स्थितिके लिये इसके अतिरिक्त दूसरा कोई भी इलाज नहीं दीखता । जो पेल्विस (बस्ति) का व्यास छोटा है ऐसा प्रथमसे ही मालूम हो तो स्त्री चिकित्सकको उचित है कि छः मासके पूर्व ही गर्भपात कर देना चाहिये, एक स्त्रीके चार समय गर्भकी स्थिति हुई और पूर्ण अवस्था होने पर चारों समय बालकका शिर भेदन करके हमारे समक्ष निकाला गया उसकी वस्ती संकुचित थी । जिन स्त्रियोंकी वस्ती संकुचित है उनको गर्भका रहना बहुत ही बुरा है । वस्तिका व्यास मापनेके लिये कई प्रकारके यंत्र होते हैं उनसे वस्तीके व्यासकी लम्बाई मापनेमें आ सक्ती है और होसियार बुद्धिमान् चिकित्सक हाथकी अंगुलियोंसे भी अनुमान कर सक्ता है । योनिमार्गमें तर्जनी अंगुली प्रवेश करके (प्रोमोन्टरी—सेकमके ऊपरके भाग) में लगावे और बाहरसे उसको (खुवीस) की तर्फ रखे इनमें पूर्व पश्चिम व्यासकी लम्बाईकी अजमायश हो जावेगी । स्वाभाविक व्यासकी वस्तीमें अंगुली प्रोमोन्टरीसे लगने नहीं सक्ती । यदि अंगुली प्रोमोन्टरीसे लगे तो समझो कि पूर्व पश्चिम व्यास बस्तीका छोटा है अथवा दो अंगुली योनिमें प्रवेश करके सेकम और खुवीसकी तर्फ चौडी करके पृथक् २ रखना और इससे दोनों अंगुलियोंके बीचका अन्तर ऊपरसे व्यासकी अजमायश जना देगा अथवा हाथकी चारों अंगुली योनिमार्गमें प्रवेश करके ऊपरकी तर्फ ले जाना और इससे आगमन द्वारमें चौडाई हो सक्ती है कि नहीं इसको देखना चाहिये । इसके ऊपरसे अनुमान बांध सक्ते हैं कि चारों अंगुली योनिमें जा सकें तो व्यास ठीक समझना चाहिये, परन्तु चारों अंगुली भिचकर जावें तो व्यासमें कुछ संकोच है और चारों अंगुली न जा सकें तो व्यास छोटा है ।

अस्वाभाविक प्रसवकी गर्भ सम्बन्धि न्यूनता व कारण ।

गर्भस्थ बालकके लिये प्रसवमें होती हुई रुकावटोंका कारण चार प्रकारका होता है । (१) गर्भके पडतकी न्यूनताके कारणसे होती हुई रुकावट (२) विचित्र आकृतिके गर्भसे होती हुई रुकावट (३) बालककी विकृति कई आकृति व बहुगर्भ (४) गर्भस्थ बालकका विपरीत रीतिसे निकलना ।

(१) गर्भके पडतकी न्यूनताके कारणसे होती हुई रुकावट—गर्भकी थैली जिसको पोतडी बोलते हैं इसका पडत किसी समय दृढ और मोटा हो तो वह प्रसव समय पर टूटता नहीं है इस कारणसे प्रसव होनेमें विलम्ब लगता है और कमलमुख सम्पूर्ण विस्तृत होने बाद पडत न टूटे तो उसको अंगुलीसे दबाकर अथवा नखसे पोतडीको चीरकर अथवा (पडतभेदक) नामवाला एक शस्त्र आता है उससे भी गर्भजल थैली (पोतडी) को तोडते हैं। यदि इस शस्त्रद्वारा पोतडी तोडनेकी आवश्यकता पडे तो योनिमार्ग तथा गर्भाशयके कोमल भागोंको किसी प्रकारका अभिघात न पहुंचे इतनी होसियारी और सावधानी दाई तथा स्त्री चिकित्सकको रखनी चाहिये। पडतको तोडनेके पीछे बालकका मस्तक शीघ्रतासे नीचे उतरने लगता है।

आकृति नं० ६७ देखो।

(१) किसी २ स्त्रीकी गर्भजल थैलीका पडत फूटनेके समयसे प्रथम ही फूट जाता है इस प्रकारका कमलमुख विस्तृत होनेके पूर्व ही फूट जाता है, ऐसी दशामें कमलमुखके चौडे होनेमें विशेष समय लगता है। इस कारणसे प्रसव कालमें भी विशेष विलम्ब हो जाता है और कमलमुख पर किसी समय शोथ उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार किसी स्त्रीको गर्भजल थैलीमें जलकी अधिकता होनेसे प्रसव होनेमें अधिक विलम्ब लगता है और विशेष करके गर्भजल थैलीका पडत विशेष दृढ और मजबूत होता है। वैसे ही उसके साथ गर्भजल भी अधिक होता है, यदि यह गर्भजल अधिक हो तो स्त्रीका पेट अधिक बडा हो जाता है और जलंदरवाले रोगीके समान पेटके ऊपर एक तर्फ टंकारा मारनेसे दूसरी तर्फको प्रत्याघात (जलमें जैसे एक किनारे पर हिलाया जाय तो उसकी हलनेकी लहर दूसरे किनारे तक पहुंचती है। जान पडता है कि विशेष जल होनेसे गर्भाशय बराबर कायदेके माफिक संकुचित नहीं हो सक्ता। इस लिये प्रसव होनेमें विशेष समय लगता है, इस विशेष जल व्याधिके लिये कमलमुख जिस समय पूर्ण रूपसे विस्तृत हो जावे उसी समय गर्भजल थैली (पोतडी) के पडतको फोडदेना गर्भजल थैलीके फोडते ही गर्भजलका अधिक भाग बाहर निकल पडता है और गर्भाशय जोरके साथ संकुचित होने लग जाता है।

आकृति नं० ६८ देखो—विचित्रगर्भ दो बालक जुडेहुए।

(२) विचित्र गर्भ—इस विचित्र गर्भकी आकृति कई प्रकारकी होती है। किसी बालकके दो मस्तक किसी बालकके चार हाथ अथवा चार पैर होते हैं, किसी बालकके पूंछ पशुके समान होती है किसीका मस्तक पशुओंके समान होता ह और किसी २ स्त्रीके दो बालक जुडे हुए होते हैं। मुम्बईमें दो लडकी देखी गई उनकी कटिपर पीठ जुडी हुई थी आगरा मेडिकल असपतालमें दो लडके एक चमारीके उत्पन्न हुए

उनका पेट नाभिके समीपसे जुडा हुआ था, ऐसे विलक्षण गर्भके बालकोंके निकलनेके लिये प्रसंग देखै वैसाही उपाय चिकित्सकको करना उचित है। यदि गर्भको जलंदर हो तो उसका मोटापन होनेसे बडे कदके लिये प्रसव होनेके समय गर्भसे बालक निकलनेमें अवरोध होता है। जलोदरवाले गर्भके पेटमें छातीमें अथवा मस्तकमें होता है (इसका प्रयोजन यह है कि किसी २ बालककी छाती पेट व मस्तकमें जल भर जाता है और उस अङ्गकी आकृति स्वाभाविकसे बडी होती है, इस कारणसे कमलमुख व वस्तीके व्याससे बाहर नहीं निकल सक्ता) इसके निकलनेकी कुछ समयतक राह देखनी चाहिये। यदि इस अर्शेमें गर्भस्थ बालकका नीचे उतरना न होय तो जलोदरवाले भागको फोडकर जल निकाल देनेसे प्रसव हो जावेगा।

आकृति नं० ६९ देखो।

(३) बालककी विकृति कई आकृति व बहुगर्भ—किसी २ स्त्रीको जुडे हुए २ बालक उत्पन्न होते हैं, किसीके तो दोनों जुडे हुए छोकरा होते हैं किसीके एक छोकरा एक छोकरी जुडे हुए होते हैं और किसीके दोनों छोकरी ही जुडी हुई होती हैं। किसी २ के तीन भी जुडे हुए होते हैं जोडले बालक पैदा होयँ तब गर्भाशय पूर्ण रीतिसे संकुचित नहीं हो सक्ता इस कारणसे प्रसव होनेमें अधिक समय लगता है। एक बालक निकलनेके पीछे दूसरा बालक निकलता है। यदि प्रथम बालक मस्तकके बलसे निकला होय अथवा पैरोंकी तर्फसे निकला होय तो दूसरा बालक प्रथम बालकसे विरुद्ध स्थितिमें ही विशेष करके जन्म लेता है। कभी तो ऐसा देखनेमें आया है कि दोनों बालकोंकी नाल और आंवल पृथक् पृथक् होती हैं और कभी ऐसा देखनेमें आया है कि आंवल एकमेंसे नालका सम्बन्ध भी एक ही है। परन्तु बीचमें जाकर नाल दो हो गये हैं जिसकी (आकृति ६२। ६३) देखो नालका सम्बन्ध एक आंवल (फूल) से होने पर भी दोनों बालकोंका रक्ताभिसरण जुदा जुदा होता है। प्रत्येक बालक अपनी पृथक् पृथक् थैलीमें रहता है। किसी २ स्त्रीके दोनों बालक एकही थैलीमें भी देखे गये हैं, प्रसव समयमें प्रथम बालकके निकलनेमें विशेष समय लगता है परन्तु, प्रथम बालकके जन्म होनेके पीछे दूसरे बालकके निकलनेमें इतना समय नहीं लगता है। प्रथम बालकका जन्म होनेके बाद स्त्रीके पेट पर हाथ रखकर देखनेसे यह भी निश्चय हो सक्ता है कि दूसरा बालक अभी गर्भाशयमें है, प्रथम बालक उत्पन्न होने बाद उसका नाल तोडना नहीं चाहिये और नालके सम्बन्धमें जो आंवल (फूल) है वह अभीतक गर्भाशयके अन्दर है सो उसको खेंचकर अथवा हाथ डालकर निकालनेका प्रयत्न नहीं करना। प्रथम बालकका जन्म होनेके बाद अनुमान २० से ४० मिनटके बाद

पुनः स्त्रीके पेटमें ऐंठन पीडा शुरू होगी और दूसरे बालकका जन्म हो जावेगा, कदाचित दूसरे बालकले होनेमें अधिक समय लगे तो जानना चाहिये कि दूसरा बालक मराहुआ निकलेगा। अनुमान आधा घंटासे पौन घंटेतक दूसरा बालक होनेकी राह देखनी चाहिये। यदि इस अर्शेमें दूसरे बालक होनेके चिह्न स्त्रीचिकित्सकको न जान पडें तो दूसरे बालककी गर्भजल थैलीका पडत तोड देना और स्त्रीको अरगट देना और इसका कुछ असर न होय तो बालकका चरण भ्रमण करके निकाल लेना और मस्तक नीचेकी तर्फ होय तो गर्भाशयमें डालनेका चीमटा प्रवेश करके मस्तक पकडकर निकाल लेना। अगर बालक जीवित होय तो मस्तक नहीं पकडना किन्तु ठोडीमें यन्त्र अडाकर निकाल लेना। कदाचित् दोनों बालकोंका मस्तक एक दूसरेके साथ मिला हुआ होय अथवा अटक जाय और वह किसी युक्तिसे पृथक् न हो सके तो शिरभेदन व बालकोंका शरीर छेदन करे विदून नहीं निकल सक्ते ।

(४) (गर्भाशयमेंसे बालकका विपरीति रीतिसे निकलना) कुदरती नियमके माफिक गर्भाशयमेंसे बालकका प्रथम मस्तक निकलता है । परन्तु जब इस कुदरती नियमके विरुद्ध बालकके शरीरका दूसरा कोई भाग जैसे कि मुख हाथ पैर नितम्ब इत्यादिमेंसे कोई प्रथम निकले तो विशेष करके प्रसवके होनेमें अधिक विलम्ब लगता है । मुख हाथ पैर घुटना नितम्बादि भेदोंसे जो प्रसव होता है उसके भेदोंका नीचे वर्णन किया जाता है ।

आकृति नं० ७० देखो ।

(१) मुखका प्रथम आना मुख पृथक् पृथक् चार स्थितिमें आता है और ये चारों स्थिति मस्तकके आनेकी चार स्थितिके अनुसार हैं, प्रथमकी दो स्थिति दूसरी दो स्थितिकी अपेक्षा अधिक साधारण होती हैं। मस्तक अपनी उत्तर दक्षिण धरीके ऊपर फिरनेसे उसकी असली स्थिति बदलकर मुख मस्तकके ठिकाने पर नीचे आता है। प्रथम स्थितिमें हडपची (ठोडी) पीछेको जीमनी तर्फके कोनेमें होती है और ललाट वामे भागके ईस्कीयमकी तर्फ होता है, जीमनी तर्फका गाल नीचे और अग्रभागमें होता है उसके नीचे उतरनेसे ठोडीका भाग आगे तर्फ आ जाता है और बालकके कपालका भाग सेकमकी तर्फ जाता है । मुखकी दूसरी स्थितिमें ठोडी पीछेके वामे कोनेमें होती है और कपाल जीमने ईस्कीयमकी तर्फ होता है । वामी तर्फका गाल नीचे और अग्र भागमें होता है । मुख तीसरी और चौथी स्थितिमें कभी २ देखनेमें आता है ऐसा होय तब ठोडी वामें और जीमने इस्कीयमकी तर्फ होती है । मुखकी प्रथम और दूसरी स्थितिमें ठोडी पीछेकी तर्फ होती है और तीसरी तथा चौथी स्थितिमें ठोडी आगेकी तर्फ होती है । जब कि

मुख अधोभागमें होता है तब गर्दन अतिशय खिंचकर लम्बी स्थितिमें रहती है, एक तर्फको ललाट और दूसरी तर्फको ठोढी होती है और मस्तक अधोभागमें होता है। तब एक तर्फ ललाट और दूसरी तर्फ पश्चिम भाग रहता है अर्थात् जब मुखके बल बालकका जन्म होता है तब पश्चिम भागके बदले ठोठी होती है, जैसे मस्तकके बलसे प्रसव होनेके समय पश्चिम भाग खुवीसकी कमानके नीचे आता है और ललाट वेसणीकी तर्फ आता है तब सरलतापूर्वक प्रसव होता है जब मुखकी तर्फसे प्रसव होता है उस समय ठोडी कमानके तले आती तथा ललाट वेसणीके समीप रहता है, तब प्रसव सरलतापूर्वक होता है परन्तु जो ठोडी वेसणीके समीप रहे तो मस्तकके बाहर निकलनेमें अति कठिनाई पडती है । क्योंकि मस्तकके बाहर निकलनेमें हमेसह गर्दन लम्बी हो जाती है । परन्तु मुखके बल प्रसव होवे तो गर्दन प्रथमसेही लम्बी हो जाती है और विशेष लम्बाई होना असह्य हो जाता है, इससे बालकका बाहर आना मुसिकिल हो जाता है । इससे प्रथम तथा दूसरी स्थितिमें ठोडी आगमन द्वारमें पीछेकी तर्फ होती है तब चक्कर खाकर निर्गमनद्वारमें खुवीसकी कमानके तले आता है । तीसरी तथा चौथी स्थितिमें ठोडी इस्कीयमके ऊपर सरककर तुरन्त खुवीसकी कमानके तले जाती है और ठोडी कमानके तलेसे बाहर निकले इतनेमें ललाट और मस्तकका ऊर्ध्वभाग तथा पश्चिम भाग वेसणीकी तर्फसे बाहर निकलता है । और मुखके बल होनेवाले प्रसवके समय मस्तक बाहर आनेमें गर्दन लम्बी होनेके बदले मुड जाती है ॥ तर्जनी अंगुली योनिमार्गमें प्रवेश करनेसे नाक ठोडी नेत्र और मुखका भाग जान पडता है इससे चेहरेका ज्ञान पूर्ण रीतिसे हो जाता है। इस प्रसवका उपाय यह है कि चेहरासे उत्पन्न होनेवाले बालकके प्रसवमें अधिक समय लगता है तोभी विशेष करके गर्भ सही सलामत (जीवित) निकलता है इसलिये किसी उपायकी आवश्यकता नहीं पडती है परन्तु पेल्विस स्त्रीका कुछेक छोटा होय तो उसका अटकाव पडता है यदि चेहरा अधिक समय पर्य्यन्त अटका रहे तो (वेकटीस) की तर्फ उसको योग्य स्थितिमें फेरना अथवा आवश्यकता पडे तो चीमटा यन्त्रकी सहायतासे प्रसव करना, हडपची पीछे होय और वह फिरकर कमानके नीचे नहीं आवे तो चेहरा अटक जाता है इसको चीमटासे अथवा किसी समय शिर भेदन करके प्रसव कराना पडता है ।

(२) गर्भस्थ बालकका प्रसव समयमें प्रथम नितम्बका निकलना । गर्भस्थ बालक जब प्रसव समयमें प्रथम नितम्बके बलसे गर्भाशयमेंसे बाहर निकले तो उसकी पृथक् पृथक् चार स्थिति हैं, इन्हीं चार स्थितियोंके द्वारा किसी एक स्थितिसे बालक बाहर आता है इनमेंसे दो स्थितिमें बालकका पेट माताकी पीठकी तरफ होता है

और दूसरी दो स्थिति (तीसरी चौथी) में वालकका पेट माताके पेटकी तरफ रहता ह और वालकका नितम्ब वस्तिस्थानके दक्षिण तथा वामे तिर्य्यक व्यासमें रहता है। प्रथम स्थितिमें वालकका वामा नितम्ब दक्षिण इस्कीयमकी तर्फ होता है और वालकका दक्षिण नितम्ब पीछेके वामे कोनेमें होता है। दूसरी स्थितिमें वालकका दक्षिण नितम्ब वामे इस्कीयमकी तर्फ और वामा नितम्ब पीछेके दक्षिण कोनेकी तर्फ आता है। इन दोनों स्थितियेंमें वालकका पेट माताकी पीठकी तर्फ रहता है, जो वालकका नितम्ब ईस्कीयम अथवा खुवीसकी तरफ होय तो वह दूसरे नितम्बकी अपेक्षा हमेसह नीचा रहता है और योनिमें अंगुली प्रवेश करके परीक्षा की जावे तो अंगुलीसे वह प्रथम स्पर्शमें लगता है और नितम्ब नीचे आनेके वाद खवा जिस व्यासमें नितम्ब होय उसी व्यासमें पेल्विसकी अन्दर दाखिल होता है परन्तु मस्तक उससे विरुद्ध व्यासमें आता है इस प्रकार कि नितम्ब वामे तिर्य्यक् व्यासमें होय तो मस्तक दक्षिण तिर्य्यक् व्यासमें रहता है और वस्तीकी कक्षामें वालकका चेहरा (मुख) सेकमकी अन्तरगोलाईमें जाता है और मस्तकका पश्चिम भाग खुवीस कमानमें आता ह इतनेमें चेहरा (मुख) का भाग कोकसीकसकी तर्फसे वाहर निकल आता है।

आकृति नं० ७१ देखो।

तीसरी तथा चौथी स्थितिमें वालकका पेट माताके पेटकी तर्फ रहता है तीसरी स्थितिमें वामा नितम्ब वामा (आसेटाव्युलम) की तर्फ रहता है और वालकका दक्षिण नितम्ब पीछेके दक्षिण कोनेकी तर्फ रहता है। और चौथी स्थितिमें वालकका दक्षिण नितम्ब दक्षिण (आसेटाव्युलम) की तरफ और वामा नितम्ब पीछे वामें कोनेकी तरफ रहता है। वाहर निकलते समय वालकका पेट प्रथम आगेकी वाजूपर होता है परन्तु वह जैसे मस्तक पेल्विसमें दाखिल होय वैसेही वह पेट फिरने लगता है और फिरता हुआ पीछेकी बाजूपर चला जाता है इस प्रकार तीसरी तथा चौथी स्थितिमें मस्तक तो प्रथम तथा दूसरी स्थितिके माफिकही वाहर आता है और चेहरेका भाग प्रथम आगे होता है मुखका भाग वस्तीमें दाखिल होनेके पीछे फिरकर सेकमके अन्तर गोलकी तरफ सरकता जाता है। और मस्तकके पीछेका भाग खुवीसकी तरफ आता है। इस प्रकार हमेसह मस्तक वाहर आते समय ऐसी रीतिसे फिरता है कि चेहरेका भाग सेकमकी तरफ जाता है और पश्चिम भाग आगेकी तरफ आता है इससे वह सरलतापूर्वक निकल सक्ता है, यदि चेहरेका भाग आगे रहे और पश्चिम भाग सेकमकी तरफ जाय तो उसके निकलनेमें वडी ही कठिनता

पडती है। नितम्बका भाग याने दोनों नितम्ब तथा उनके बीचके चीरासे जान सक्ते हैं पीछेकी तर्फ (कोकसीकम) की अनीदार हड्डी लगती है। चेहरा ऊपरको नाककी दंडीके माफिक कोई भाग ऊंचा नहीं जान पडता, इससे यह नितम्ब है ऐसा निश्चय होता है और दोनों नितम्बके बीचमें उत्पत्ति अवयव होता है। उपाय इसका यह है कि नितम्बके बलसे जिस बालकका प्रसव होनेम आवे उसके लिये सहायताकी आवश्यकता नहीं पडती केवलमात्र विलम्ब अधिक लगता है। कारण यह कि नितम्बसे प्रसव होनेके मार्गका कोमल भाग देखना चाहिये कि व. मस्तकके माफिक विस्तृत नहीं हो सक्ता, केवल मस्तकके आनेके समय कठिनता पडनेका संभव रहता है, यदि मस्तकके आनेमें अधिक समय लगे और गर्दनके ऊपर दबाव पडे तो बालकका जीव जोखममें आ जाता है । और नितम्ब बाहर आनेके पीछे बालकको जरा भी खींचना नहीं चाहिये, बालक निकलते समय जैसे २ फिरे वैसे २ फिरने देना चाहिये। जिस बलसे बालक फिरता होय उसी गतिपर फिरनेकी सहायता करनी चहिये और जब बालककी नाभितकका भाग बाहर निकल आवे तब नाभिके सम्बन्धमें जो नाल है उसको बहुत आइस्तेसे जरा नीचा खेंचकर ढीला कर लेवे कि जिससे नालके टूटनेका भय न रहे। और बालकका मस्तक जो अभीतक गर्भाशयमें है मस्तकके ठिकानेपर हाथ रखके नीचेको दाबता आवे तो बालककी ठोडी छातीसे जुडी हुई निकल मस्तक शीघ्र निकल आवेगा । कदाचित् ठोडी छातीसे अलग पड जावे तो मस्तक नहीं निकलता, किन्तु अटक जाता है। यदि ऐसा अटकाव होय तो बामे हाथकी दो अंगुली अटके हुए बालकके नेत्रादि इन्द्रियोंको बचाकर चेहरेके ऊपर रक्खे और सीधे हाथकी अंगुलियां मस्तकके पश्चात् भागपर लगाके मस्तकको ऊंचा करना और बालकको तान लेना। यदि ऐसा भी करनेस बालक शीघ्र न निकले तो चीमटा लगाकर बालकको निकाल लेना और कदाचित् बालक मरा हुआ होय व बालक किसी यत्नसे न निकले तो अन्तके दर्जे बालकका शिर भेदन करके निकालना उचित है।

(३) प्रसव होनेके समय कोई २ बालक घुंटण (घोंटू) अथवा पैरके बलसे प्रथम निकलता है। यह भी नितंम्ब प्रसवक समान ही पृथक् २ चार स्थितिमें निकलता है। परन्तु इसकी मुख्यता दोही स्थितिमें गिनी जाती हैं। प्रथम स्थितिमें पैरकी अंगुली पीछे होती ह और दूसरी स्थितिमें पैरकी अंगुली आगे होती हैं। इसलिये इसकी योजनाके ऊपरकी व्यवस्थासे एकता मिलती आती है। बालकका पैर व हाथ प्रथम निकल आता है इस प्रसवमें कमलमुख विशेष करके विस्तृत नहीं होने पाता इसके पूर्वही गर्भजल थैलीका पडत टूट जाता है इसी कारणसे पीछे विस्तृत होनेमें

अधिक समय लगता है आर इसी निमित्तसे प्रसव होनेमें भी विशेप काल व्यतीत होता है इस प्रकारके प्रसवोंमें वालकके जानकी जोखम रहती है।

(४) चौथा भेद इस प्रसवका इस प्रकारसे ह कि प्रसवसमयमें गर्भस्थ वालक आडा पड जाता ह एक वगलकी तर्फ शिर और दूसरी वगलकी तफ पैर हो जाते हैं। कुदरती नियम ऐसा है कि गर्भाशयमें वालकका शिर नीचेको और पैर ऊपरको रहते हैं और इसी नियमके माफिक स्वाभाविक प्रसव समझा जाता है, परन्तु जव गर्भाशयमें वालक आडा पड जाता है तव प्रसवके समय वालकका हाथ प्रथम गर्भाशयसे वाहर निकलता ह. इसको आडा प्रसव कहते हैं इस प्रसवमें दक्षिण हाथ तथा वामा हाथ प्रथम वाहर आता है गर्भस्थ वालककी पीठ आगे होय तो दक्षिण हाथ वाहर आता है, यदि दक्षिण हाथ प्रथम वाहर आवे तो इस स्थितिकी (आकृति ७२ नं०) की समझो। यदि दक्षिण हाथ वाहर आवे तो उसके साथ वालककी पीठ भी माताके पीछेके भागकी तर्फ होगी इसको दूसरी स्थिति समझो और वामा हाथ वाहर आवे तो उसके साथ वालककी पीठ माताके अग्र भागकी तर्फ होगी इसको तीसरी स्थिति समझो । वामे हाथके प्रथम निकलनेमें वालककी पीठ माताके पीछेके भागकी तफ होय तो इसको चौथी स्थिति समझो ।

आकृति नं० ७२ देखो ।

इस आकृतिके माफिक गर्भाशयमें गर्भस्थ वालक प्रसव समयमें आडा हो जाता है, इसकी पृथक् पृथक् चार स्थिति हैं। इनमेंसे प्रथम स्थिति विशेप साधरण होती है गर्भस्थ वालककी इस प्रसव समयकी आडी प्रथम और चौथी स्थितिमें वालकका मस्तक माताके वामे वगलमें रहता ह और पैर दक्षिण वगलमें रहते हैं। दूसरी और तीसरी स्थितिमें वालकका मस्तक माताकी दक्षिण कूखमें तथा पैर सामनेकी कूखकी तर्फ रहते हैं। वालकका कौनसा हाथ वाहर ह इसके जाननेके लिये जो हाथ जिस स्थितिमें होय चिकित्सकको वही हाथ अपना उसी स्थितिमें प्रवेश करके देखे कि जिस हाथके अनुसारही जो हाथ वालकका आवे वही हाथ समझना चाहिये। वालकके हाथका अंगूठा जिस तर्फको दीख पडे उसी तफको वालकका मस्तक समझना चाहिये । जो वालक गर्भमें आडा पड जावे और प्रसव समयमें प्रथम उसका हाथ वाहर निकलता दीख पडे इसका केवल यही उपाय है कि गर्भाशयमें हाथ प्रवेश करके वालकका चरण भ्रमण करके प्रसव कराना और चरण भ्रमण करनेका उत्तम समय वह है कि जव समस्त कमलमुख पूर्ण रीतिसे विस्तृत हो जावे. और गर्भजल थैलीका पडत फूटनेको तयार होय तभी इस क्रियाको करनेसे सुलभता होती है।

आकृति नं० ७३ देखो।

कदाचित कमलमुख पूर्ण रूपसे विस्तृत होनके प्रथम ही गर्भजल थैलीका पडत टूट जावे और गर्भजल स्राव हो जावे तो फिर स्वभावसे प्रसव होना असंभव है, इसके लिये विशेष समय पर्य्यन्त राह न देखनी चाहिये, किन्तु चरण भ्रमण करके प्रसव करानेमें विलम्ब नहीं करना चाहिये। इस समय कमलमुख चौंडा रहता है सो हाथ डालकर चरण भ्रमण करके बालकको निकाल लेना चाहिये। गर्भ पडत फूटनेके पीछे जैसे जैसे समय व्यतीत होता जाय वैसे २ ऐंठन और पीडा होकर गर्भस्थ बालक बस्तीके अन्दर दृढतासे बैठता जाता है और जब बालक पेल्विस (बस्ती) के अन्दर मजबूतीसे बैठ जावे तब चरण भ्रमण करना बडाही कठिन पडता है। अधिक समय व्यतीत हो जाने पर यह कार्य्य अस्तब्ध हो जाता है पीछे इस चरण प्रसवके स्थल पर बालककी छाती भेदनकी आवश्यकता पडती है, कदाचित गर्भस्थ बालक आडा पड गया होय और केवल ऐंठन और स्वाभाविक पीडाकी सहायतासे ही शरीर सीधा होकर बालकका जन्म हो जावे तो इसको स्वाभाविक चरण भ्रमण कहते हैं।

डाक्टरीसे मूढगर्भ अर्थात् स्वभावविरुद्ध प्रसव प्रकरण समाप्त।

असमय पर नालके निकलनेसे बालककी मृत्यु (प्रोलाप्स आफ फ्यूनीस)

प्रसवके समयमें बालकके हाथ पैर किन्तु मस्तकके साथ किसी २ समय पर बालकका नाल जिसका सम्बन्ध नाभिसे है नीचे उतर आता है, इस नालके नीचे उतर आनेसे स्त्रीको तो किसी प्रकारकी हानि होती नहीं, न स्त्रीके प्रसव होनेमें कुछ रुकावट होती है। परन्तु बालककी जानको विशेष हानि पहुंचती है वह हानि इस प्रकारसे पहुंचती है कि बस्तिस्थानके अन्दर आनकर नालके ऊपर बालकके शरीरका दवाव पडनेसे उसके रक्तका आवागमन (लोहीका फिरना) बन्द हो जाता है। इसके बन्द होनेसे बालककी मृत्यु हो जाती है। इसका उपाय इस प्रकारसे है, जो कदाचित बालकके मर जानेका निश्चय हो जावे तो कुछ भी आवश्यकता उपाय करनेकी नहीं है। प्रसव स्वयं अपने आप हो जाता है अगर प्रसव न होवे तो उपरोक्त विधिसे प्रसव कराना योग्य है। इस दशामें प्रायः मृतक बालक उत्पन्न होता है। यदि बालक जीवित होवे अथवा कुछ संदेह होय तो शीघ्र उपाय करना चाहिये। यदि स्त्रीचिकित्सकसे वन सके तो अपनी अंगुलीके ऊपर आसानीके साथ नालको चढाकर बालकके मस्तककी तर्फ रखना स्त्रीको ऐंठन और पीडा आनेसे बालकका मस्तक नीचे उतरनेसे नाल ऊपर रह जावेगा। और ऊर्ध्वाकर्षणसे दूसरा उपाय यह भी नालकी रक्षा कर सक्ता है कि प्रसूता स्त्रीकी नितम्बके नीचे एक थोडा मोटा तकिया रख देना चाहिये इससे प्रसव द्वारका भाग ऊंचा हो जावेगा और बालकका मस्तक नीचा रखना इतना करनेसे नाल

ऊपरको चढ जावेगा । तीसरा उपाय यह भी है कि नालके ऊपर दवाव पडकर वालकके मरनेका भय होय तो चरण भ्रमण करके वालकको निकाल लेना अथवा चीमटा प्रवेश करके प्रसव करना उचित है । जो वालकका मस्तक नीचे आया होय और स्त्रीके गर्भाशयका कमलमुख पूर्ण रीतिसे विस्तृत हो गया हो तो चीमटा प्रवेश करके मस्तकसे लगाकर और मस्तकको ऊंचा करे तथा कमलमुख वरावर विस्तृत और चौडा न हुआ होय तो चरण भ्रमणकी क्रियाके द्वारा प्रसव कराना उचित है ।

डाक्टरीसे असमय नाल निकलनेसे वालककी मृत्यु होनेके उपायकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे प्रसवकालमें काम आनेवाली शस्त्र प्रक्रिया ।

यह प्रकरण ऐसे निपुण स्त्रीचिकित्सककी प्रक्रियाका है, जो स्त्रीजनोंके गुह्यावयवके शारीरकको उत्तम रीतिसे जानता होय और प्रसव समयमें शस्त्र प्रक्रिया भले प्रकार देखी होवे वही चिकित्सक इसके करनेका साहसी होवे, अन्यथा अनभिज्ञ वैद्य इस प्रक्रियाका साहसी न वने । जव कि प्रसव समयमें वालकके उत्पन्न होनेमें किसी असाधारण प्रकारकी रुकावट आ पडे तव कई प्रकारकी शस्त्र प्रक्रिया करनेकी आवश्यकता पडती है । सो यह शस्त्र प्रक्रिया दो प्रकारकी है, एक प्रकारकी शस्त्र प्रक्रियामें वालक तथा वालककी माता इन दोनोंके शरीरके वचाव करनेका हेतु रखा गया है । जैसे कि (वेकटीस) व्यवहारमें लाने, चीमटा लगाकर वालकको फिराकर निकालनेसे वालक तथा उसकी माता दोनोंका वचाव होता है । दूसरी शस्त्र प्रक्रियामें वालकके जीवका मोह तथा दरकार न करके केवल स्त्रीके जीवनके वचावका हेतु रखा गया है । जैसे कि वालकका शिरभेदन करके उसको वाहर निकालनेकी आवश्यकता पडती है । (वेकटीस) यह प्रसव कार्य्यमें आनेका चीमटा एक पंखके आकारका शस्त्र होता है, यह शस्त्र जव कि वालकका मस्तक सहज कारणसे पेल्वीसके, (वस्ती) के अन्दर अटक पडता है तव उस मस्तक फेरने तथा नीचे उतारनेमें उपयोगी हो सक्ता है, वस्तिस्थानके अन्दर वालककी ठोढी छातीसे पृथक् होकर वालकका मस्तक अटक जाता है अथवा अधोभागके ठिकानेसे वालकका मुख आया हो और मस्तकका भाग सहज स्थितिसे अन्तर पड गया हो तो उसको फिराकर निकालनेमें (वेकटीस) शस्त्रका उपचार उपयोगी हो सक्ता है । चिकित्सक अपने दक्षिण हाथकी दो अंगुली योनिमें कमलमुखके अन्दर रखके- इन अंगुलियोंके आधार पर वालकके मस्तकके पश्चिम भागके ऊपर (वेकटीस) शस्त्रको ले जाना और इसके पीछे मस्तकको आइस्तेसे खींचना अथवा फेरना उस समय पर जो कुछ कर्त्तव्य इस शस्त्रसे उचित समझा जावे सो योग्य रीतिपर करना । प्रसवकार्य्यमें जो चीमटा काममें आते हैं वे दो प्रकारके होते हैं एक लम्बे दूसरे ठिंगने मध्यम कदके उनकी आकृति देखो ।

आकृति नं० ७४-७५-७६-७७ देखो।

इन शस्त्रोंकी व्यवस्था इस प्रकारसे है कि लम्बा चीमटा दो प्रकारका है एक सीधा लम्बा चीमटा होता है तथा दूसरा खमदार बाँकवाला लम्बा चीमटा होता है, जो बाँकवाला लम्बा खमदार चीमटा होता है उसका बांकापन बस्तीकी धरीके बांकेपनके अनुसार है। प्रसव समयमें जब बालक बस्तिप्रदेशसे ऊंचा और आगमन-द्वारमें होय तब लम्बा चीमटा काममें आता है और जो बालक बस्तीके अन्दर नीचे और निर्गमनद्वारमें आया हुआ हो तो छोटा मध्य कदका चीमटा बालकके निकालनेको उपयोगी होता है। इन चीमटोंसे तीन काम होते हैं। (१) मस्तकको पकड कर खींचना (२) बालकके मस्तकको फेरना (३) और दाबना जब कि ऊपरके भाग-मेंसे गर्भाशय बालकको नीचेकी तरफ बराबर न सरका सके तब बालकको इन हीं चीमटोंसे खेंचते हैं और बालकका प्रसव कराके बाहर निकालते हैं। यदि स्त्रीके बस्ति-प्रदेशमें बालकका मस्तक एकही स्थितिमें अटक रहा हो तो चीमटा शस्त्र उसके फेर-नेके काममें आता है। और बालकका मस्तक विशेष बडा होय किन्तु पेल्बिस (बस्ती-स्थान) का व्यास कुछ छोटा हो तो चीमटा शस्त्र मस्तकके दाबनेके उपयोगमें आता है जैसे कि चीमटा जितना लम्बा होय उतनाही वह अधिक उपयोगी हो सक्ता है। और बालकको खींचनेमें अधिक मजबूत होता है, जिस कार्य्यमें छोटा मध्य कदका चीमटा आता है वह काम भी बडे चीमटासे हो सक्ता है और नीचे लिखे हुए अवसरोंमें चीमटा शस्त्र उपयोगी होता है और कार्य्यमें आता है। कदाचित गर्भाशय बालकके निकालनेमें असमर्थ होय और बालकको नीचेकी तर्फ बस्तीमें न सरका सके। अथवा बालकका प्रसव होनेके मार्गमें किसी प्रकारकी भी रुकावट पडे, अथवा स्त्री और बालककी जानकी जोखम होय इत्यादि विघ्नोंकी निवृत्ति चीमटा शस्त्रके साधनसे होकर प्रसव प्रक्रिया सरलता पूर्वक हो सक्ती है। (प्रथम) जब कि खूब ऐंठन और पीडा स्त्रीको आने लगे और पीछे वह बन्द पड जावे और स्त्री जोर लगाते २ थक जावे और स्त्रीकी बस्तीमें बालक अटक रहा होय और योनिके अन्दरका कोमल भाग विस्तृत हो गया हो. तो चीमटा शस्त्र प्रवेश करके बालकको चीमटाकी सहायतासे निकाल लेना। (दूसरा) बालककी ठोढी चेहरा अथवा मस्तक अधो भागमें होय और बालकके इन अङ्गोंका लम्बा व्यास पेल्वीसके छोटे व्यासमें फँस गया हो तो चीमटा शस्त्रका उपयोग करके निकाल लेना। (तीसरा) और चीमटाके दबावसे बालकके मस्तकका व्यास आधा इंच कम पड सक्ता है इस लिये पेल्वीसके व्याससे मस्तकका व्यास उतनाही मोटा हो तो बालकको चीमटाकी सहायतासे निकाल सक्ते हैं। (चौथा) बालकके मस्तकके साथ हाथ पैर अथवा नाल किसी समय उतर आवें तो चीमटाकी सहायतासे

वालकके मस्तकके नीचे ला सक्ते हैं । (पांचवां) पैरोंके वल उत्पन्न होनेवाले वालकके मस्तकका भाग जव स्त्रीके वस्ति स्थानमें आता है तव अटक जाता है और नालके ऊपर दवाव होता होय तव चिमटा प्रवेश करके वालकके मस्तकके भागको निकाल लेना–जहां पर नालके ऊपर दवाव पडता है वहां चीमटा लगाकर वालकके उस भागको ऊंचा कर देना । (छठा) किसी २ स्त्रीको रक्तप्रवाह हिचकी (हिक्का) गर्भाशय विदीर्ण इत्यादि अकस्मातकी होनेवाली व्याधियोंसे स्त्री तथा वालकके जीवकी रक्षाके लिये चीमटाके साधनसे शीघ्र प्रसव हो वालक वाहर आ जाता है । जहां तक कमलमुख उत्तम रीतिसे विस्तृत न हुआ होय अथवा कमलमुख विशेष कठोर होय और योनिमार्ग तथा आसपासका कोमल भाग सूज गया हो तो इस दशामें स्त्रीचिकित्सक चीमटेका उपयोग कदापि न करे । जव वालकके मस्तकके व्यासकी अपेक्षा वस्ती स्थानका व्यास अधिक न्यून होय अथवा स्त्रीके पेडूके अन्दर किसी प्रकारकी ग्रन्थी हो वालकके वाहर निकलनेमें रुकावट हो तो चीमटा यन्त्र योनिमें कदापि प्रवेश न करना चाहिये । छोटा मध्य कदका चीमटा स्त्रीकी योनिमें डालना हो तो इस प्रकारसे डाले कि स्त्रीको वामे करवट सुलाकर विछोनाके किनारेक ऊपर कमरका याने पीछेका भाग रखना और स्त्रीको मूत्र न आया होय तो मूत्रशलाका डालकर पिशाव निकाल देना । वाद यह निश्चय करना कि वालकका मस्तक पेडूमें किस स्थितिमें रुकावट पा रहा है इसका पूर्ण रीतिसे निश्चय करके ऐसा विचारो कि वस्तीकी कक्षामें वालकका मस्तक पूर्व पश्चिम व्यासमें रहा हुआ है और वालकके ललाटका भाग सेकमकी तर्फ है अव चीमटाको योनिमें प्रवेश करते उसका पांखिया वालकके दोनों कानोंकी तर्फ जाना चाहिये, सदैव ऊपरका पांखिया योनिमें प्रथम प्रवेश करना चाहिये । पीछे उसीके अनुसार नीचेका पांखिया प्रवेश करना, चिकित्सक अपने वामे हाथकी दो अंगुलीमें डवोकर योनिमें प्रवेश करे और वालकके सीधे कानकी तर्फ ऊपरके भागमें कमलमुखके अन्दर ले जावे और अपने सीधे हाथमें चीमटाका ऊपरका पांखिया खडा पकड कर तैलमें दवाकर वामें हाथकी हथेली तथा अंगुलियोंके आधार पर आइस्तेसे वालकके मस्तकके ऊपर ले जाना, जैसे २ चीमटाका पांखिया अन्दरको प्रवेश करता जावे तैसे २ चीमटेका दिस्ता चिकित्सक ऊंचा और सीधा करता जावे ।

आकृति नं० ७८ देखो ।

चीमटा शस्त्रका एक पांखिया वरावर अंदर पहुंचनेके पीछे उसको खुवीसकी तर्फ ले जाना और उसको किसी सहायकके हाथमें पकडा देना तथा चिकित्सककी वायें हाथकी अंगुलियां सामनेकी वाजूपर वालकके वामे कान तक अन्दर रखके इस

अंगुली संकेतके आधार पर चीमटा शस्त्रका नीचेका पांखियां ऊपर प्रवेश किये हुए पांखियांकी बराबर सामने अन्दर प्रवेश कर देना और जैसे २ शस्त्र अन्दरको प्रवेश होता जावे तैसे २ उसका पकडनेका दिस्ता ऊंचा करता जावे और पांखियां नीचे करता जावे जब कि पांखियां पूर्ण रूपसे अन्दर नियत स्थान पर पहुंच जावे तब उसका दिस्ता नीचे कर देवे। चीमटा शस्त्रके दोनों पांखियाँ बरावर अन्दर पहुंच जावें तो शस्त्रके दोनों दिस्ते वाहर परस्पर एक दूसरेसे एक साथ मिल जाते हैं, जो दोनों दिस्ते परस्पर एक दूसरेके साथ बराबर न मिलें तो एक पांखिया अथवा दोनों पीछे खींच कर आइस्तेसे निकाल लेवे और पीछे दूसरे समय ऐसी रीतिसे प्रवेश करे कि दोनों पांखिया परस्पर मिल जावें और बाहर दोनों दिस्ते मिल जावें। यदि चीमटा शस्त्रके अन्दर जानेमें किसी प्रकारकी रुकावट मालूम हो तो आजूबाजू याने दोनों बगलकी तर्फ शस्त्रको आइस्तेसे हिला देवे और ऊपर नीचेको कदापि न हिलावे। स्त्रीको ऐंठन और पीडा न आती होय उस समय चीमटाका पांखिया अन्दर प्रवेश करना चाहिये पांखिया प्रवेश करते समय कमलमुखको किसी प्रकारकी हानि न पहुंचे ऐसी सावधानी रखनी चाहिये और प्रत्येक पांखियाको योनिमें प्रवेश करनेके समय अधिक जोर देनेका काम नहीं है। हलके हाथके सहारे और आइस्तेसे प्रवेश करना चाहिये जिससे बालकके मस्तक और स्त्रीके शरीरके गुह्य भागके कोमल अवयवको किसी प्रकारकी हानि न पहुंचे। चीमटा प्रवेश करनेके पीछे स्त्रीको पीडा आती होय तो प्रत्येक पीडाके साथ चीमटाको नीचे (आगे) की तर्फ खींचते जाना और पीडा न आती हो तो एक एक मिनटके अन्तरसे निरन्तर चीमटा खींचते जाना। खींचनेके समय हाथके ऊपर साधारण दबाव रखना और जब खींचना बन्द करे तब चीमटाके दिस्तेके ऊपरसे दबाव छोडकर हाथ ढीला कर लेवे जिससे बालकके मस्तकके ऊपर निरन्तर एक समान अघटित दवाव जारी न रहे। और चीमटाको खींचते समय किस २ दिशाका तर्फ खींचना है इसका पूर्ण रीतिसे विचार रखना चाहिये। बालकका मस्तक आगमनद्वार (कक्षामें) अथवा निर्गमनद्वारके पास होय इसका ध्यान रखना चाहिये और जिस स्थान पर बालकका मस्तक होय उस भागकी धरीकी दिशाके अनुसार आकर्षण करना। यदि आगमनद्वारमें मस्तक होय तब चीमटाका दिस्ता स्त्रीकी गुदाकी तर्फ रखना और जस २ बालकका मस्तक नीचे बाहरको आता जावे तैसे २ उसकी धरीके अनुसार चीमटाका दिस्ता अग्रभागमें लाना चाहिये। और निर्गमनद्वारमेंसे निकलते समय स्त्रीकी योनिके नीचेके भाग जो कि सीमनसे मिला हुआ है जिसको वेसणी कहते हैं इस समय पर यह मुकाम अक्सर असावधानीसे फट जाता है सो इसलिये बालकका मस्तक इस मुकाम पर आवे जब आइस्तेसे खेंचना

चाहिये जिससे वेसणीको इजा न पहुंचे। यदि गर्भाशय संकुचित होता होय तो निर्गमनद्वारमें बालकका मस्तक आवे जब चीमटा शस्त्रको निकाल लेना और बाकी जो बालकका शरीर अन्दर रह गया है वह प्रसवकी स्वाभाविक रीतिके अनुसार पर बाहर निकल आवेगा, क्योंकि रुकावटके मार्गसे बालकका मस्तक निकलकर आगे आ चुका है अब रुकावटसे कोई अंग बालकका नहीं रुक सक्ता शेष भाग स्वभावसे निकल आता है।

किसी विशेष विघ्नके कारणसे लम्बा चीमटा प्रवेश करनेकी आवश्यकता पडती है उसको नीचे लिखी विधिके अनुसार प्रवेश करे। ऊपर जो विधि चीमटा शस्त्र योनिमें प्रवेश करनेकी लिखी गई है वह छोटे मध्य कदके चीमटेकी है। और बालकका मस्तक वस्तीस्थानकी कक्षाके नीचे होय अथवा निर्गमनद्वारमें होय तब ही मध्य कदका छोटा चीमटा काम दे सक्ता है, छोटा चीमटा बालकके मस्तकके आधार पर काम आता है। इसके पांखिया ऐसी रीतिसे प्रवेश करना कि वह चीमटा बालकके कान पर होकर मस्तककी बगलके दोनों भागोंको पकड लेवे। बालकके कान वस्ती चाहे जिस व्यासमें होयँ उस व्यासमें छोटा चीमटा जा सक्ता है। और लम्बा चीमटा प्रसव कार्य्यमें लेनेकी पृथक् रीति है। जो नियम छोटा चीमटाके प्रवेशके लिये ऊपर लिखे गये हैं वे बालकके मस्तकके आधार पर हैं, परन्तु बडे लम्बे चीमटाका नियम वस्तीके आधारपर प्रवेश करनेका है। जैसे कि बालकका मस्तक आगमनद्वारमें ऊंचा होय तब बडे लम्बे चीमटाका उपयोग करना पडता है। इसके लिये लम्बे चिमटाको हमेशह वस्तीके उत्तर दक्षिण व्यासमें प्रवेश करना पडता है, चीमटेके अन्दर बालकके मस्तकका चाहे जौनसा भाग आवे इसका विचार नहीं किया जाता किन्तु वस्तीके उत्तर दक्षिण व्यासमें चीमटेको प्रवेश करना, इसमें बांकवाले लम्बे चीमटाके लिये तो प्रवेश करनेका यह नियम अवश्य है और लम्बा चीमटा प्रवेश करनेके समय गर्भाशय तथा कमलमुखमें कुछ कष्ट पहुंचनेकी संभावना रहती है। इस लिये स्त्री चिकित्सक अपने दामे हाथकी दो अंगुली अथवा चार अंगुली तेलमें डबोकर योनिमार्गमें प्रवेश करके कमलमुखके अन्दर जाने देवे, इसके आधारपर ऊपरका और पीछे नीचेका इस प्रमाणके अनुसार चीमटाका दोनों पांखिया वार फेरसे अन्दर प्रवेश करना और चिकित्सकके हाथकी दिशा इस मौकेपर वेसणीकी तर्फ होती है और चीमटाको खींचनेसे जैसे २ बालकका मस्तक नीचे उतरता आवे तैसे २ हाथकी दिशा आगेको आती जाती है और बालकका मस्तक बाहर आनेके समय हाथ ठेठ पेटसे भिड जाता है। मध्य कदके छोटे चीमटाकी अपेक्षा लंबा चीमटा प्रवेश करनेमें और इससे काम लेनेमें विशेष कठिनता और जोखम है। जब कि बालकका मस्तक नीचे निर्गमन द्वारके पास हो और लम्बा चीमटा कार्य्यमें आया होय तो इस समय पर उसको छोटे चीमटेके समान नियम आता है।

आकृति नं० ७९ देखो।

जबकि वस्तीका पूर्व पश्चिम व्यास ४ से ३¼ इंच पर्य्यन्त हो तो चीमटा प्रवेश करके प्रसव हो सक्ता है, जो व्यास इससे कम होय तो चीमटाके उपयोगसे प्रसव कदापि न करना।

डाक्टरीसे जिस गर्भने पूर्ण अवस्था न पाई होय ऐसे अपूर्ण गर्भके प्रसव करनेकी विधि। (इंडकशन् आफ प्रीमेचर लेबर)

जिस गर्भन ९ मास १० दिवसकी अवधि पूरी न की होय अथवा एक दो मास व ३ मास पूर्ण अवधिमें कम होय ऐसे गर्भके निकालनेके कई कारण हैं, जो नीचे लिखे जावेंगे। इस प्रसवके करानेमें बालक और उसकी माता दोनोंके जीवनका बचाव करनेके हेतुसे अपूर्ण गर्भ प्रसव करनेकी आवश्यकता पडती है, इस लिये जब सजीव बालक निकालनेकी आशा रख सक्ते हैं तब यह प्रसव करवानेमें आता है। सात मासका प्रथम जन्मे हुए बालकके जीवित रहनेकी आशा विशेष कम रहती है। इससे सात मास पूर्ण माताके गर्भमें जिस बालकने निवास कर लिया होय इसके बाद बालकका प्रसव करवानेमें आता है, जो गर्भ सात महीनाके प्रथम माताके जननेमें हानिकारक भय हो तो बालकके जीवकी दरकार करनेके अलावे गर्भको चाहे जिस समय निकाल कर बाहर कर सक्ते हैं। अपूर्ण महीनेमें गर्भाशय आदिके भागोंमें स्वाभाविक रीतिसे प्रसवके लिये अनुक्रम नहीं होता। इसलिये अपूर्ण मास जाननेमें कितना भय होता ह विशेष भय यह है कि जरायु (गर्भजल थैली) का सम्बन्ध छूट कर गर्भाशयसे बराबर पृथक् नहीं होता और सम्बन्ध जबरन छुडाया जाय तो इससे रक्तस्राव अधिक होता है नीचे लिखे हुए प्रसंगमें अधूरे मासके जाननेकी आवश्यकता पडती है। (प्रथम) वस्ति स्थान स्त्रीका (पेल्वीस) विकृताकृति होय और उसमेंसे पूर्ण ९ मास १० दिवस जो बालक गर्भमें निवास कर चुका है वह निकल सक्ता है कि नहीं। यदि नहीं निकल सक्ता है तो अपूर्ण गर्भका प्रसव कराना योग्य है, जो स्त्रीके वस्ति स्थानका पूर्व पश्चिम व्यास ३¾ इंच हो तो उसमेंसे पूर्ण ९ मास १० दिवसकी अवधिवाला बालक निकल नहीं सक्ता इस लिये तथा इससे कमती वस्तीका व्यास जान पडे तो अपूर्ण गर्भका प्रसव करानेकी आवश्यकता होती है। (दूसरे) स्त्रीके वस्ति स्थानके अन्दर किसी प्रकारकी ग्रन्थी उत्पन्न हुई होय और बालकके निकलनेके मार्गकी रुकावट करे अथवा योनिमार्ग किन्तु कमलमुखमें किसी प्रकारकी व्याधिके कारणसे संकुचित हो गया होय तो इन कारणोंके होनेसे भी अपूर्ण गर्भका प्रसव करानेकी आवश्यकता पडती है। (तीसरा) गर्भाधान समयकी अवधिमें गर्भवती स्त्रीकी शारीरक आरोग्यतामें किसी प्रकार विकार उत्पन्न हो गया होय जैसे कि अधिक समय पर्य्यन्त

अनिवार्य्य छर्दि (वमन) रोग अथवा अतीसार (दस्तलगने) का रोग उत्पन्न हुआ होय इस लिये स्त्रीके जीवनमें कुछ भय लगता होय अथवा गर्भाशयके मुखके ऊपर जरायुका पर्दा आया होय इससे अधिक रक्त प्रवाह होता होय अथवा गर्भवती स्त्रीको हिक्का (हिचकी) रोग अथवा लं (फेंफडे) का शोथ अथवा फेंफडा व रक्ताशयकी कोई वडी भयंकर व्याधि उत्पन्न हुई होय । इनके निमित्तसे भी अपूर्ण मासका गर्भ प्रसव करानेकी किसी समय आवश्यकता पडती है । इन ऊपर कथन किये हुए किसी भी कारणके लिये जब गभपात न करानेकी आवश्यकता पडे तब आधानका कोई समय नियत नहीं कर सक्ते कि प्रसव किस समय पर होगा । परन्तु हो सके वहांतक सजीव वालक निकल सके और प्रसवके वाद भी उसके जीवनकी आशा हो सके इतने कालकाही गर्भ प्रसव कराना योग्य है । सजीव गर्भ जन्मानेके लिये तया आगे वालकके जीवित रहनेकी आशाके आधारके निमित्त सात मास पूर्ण होनेके अनन्तर जितना दिवस अधिक हो जाय उतनी ही वालकके सजीव प्रसव तथा आगे जीवित रहनेकी विशेप आशा रख सक्ते हैं । इतनी अवधिमेंसे दिवस कमती हो तो सजीव उत्पन्न होने तथा आगे जीवित रहनेकी आशा कम रह सक्ती है । गर्भपातके औपध स्त्रीको खानेके वास्ते दी जाती हैं इसी प्रकार योनिद्वारमें कितने ही प्रकारसे प्रयोग करनेमें आते हैं, जिससे कि गर्भपात न होय मूल कारण यह ह कि किसी भी साधनसे स्त्रीके पेटमें ऐंठन और पीडा आने लगे कि जिससे गर्भाशय संकुचित होने लगे ऐसी योजना करनेका उद्योग करे और गर्भपात करनेकी मुख्य रीति नीचे लिखी जाती हैं । (प्रथम) गर्भजल थैलीके पडतको फोड कर गर्भजलका स्राव होने देना चाहिये कि जिससे गर्भाशय संकुचित होकर ऐंठन और पीडा होना आरम्भ हो जावे (गम ईला-स्टीक काथेटर) नामकी मूत्रशलाका इस काममें लेते हैं उसका थोडासा शिरा काट-कर उसको चिकनी करके गर्भाशयमें प्रवेश करे और इससे गर्भजल थैलीको फोड देवे जिससे कि गर्भजल निकल जावे गर्भजल निकलनेके वाद १० से लेकर ४० घंटे पर्य्यन्त ऐंठन और पीडा शुरू होगी । स्वाभाविक नियमके प्रमाणानुसार गर्भके प्रसव-होनेमें कमलमुख विस्तृत होनेमें कितना ही आधार गर्भजलकी थैलीके ऊपर है और इसी गर्भजल थैलीके आधारसे गर्भस्थ वालकका रक्षण भी होता है । परन्तु ऊपर लिखे प्रमाणे गर्भजल थैलीका पड़त फोडनेसे गर्भजलका प्रथमही स्राव हो जाता है और ऐंठन तथा पीडा पीछे शुरू होती है इससे कमलमुखके ऊपर गर्भका दवाव होनेसे कमलमुख तथा गर्भ दोनोंको ईजा पहुँचना संभव है, ऐसा होनेसे स्त्रीको पीडा अधिक दुखदाई खडी हो जाती है । दूसरी विधि—यह विधि इस प्रकारसे है कि प्रथम कमलमुखको विस्तृत करनेकी प्रक्रिया करनी, स्पंजका टुकडा अथवा सिटेंगलका

टुकडा कमलमुखके अन्दर रखना, इन टुकडोंक फूलनेसे कमलमुख थोडा बहुत चौंडा अवश्य होगा। इसके बाद इन टुकडोंको निकाल लेना और इनके बदले रबडकी थैली कमलमुखमें रखके उसमें हवा अथवा पिचकारीके जरिये पानीसे रबडकी थैलीको भरना, इससे कमलमुख जितना विस्तृत होसके उसका अन्दाज चिकित्सक कर लेवे। रबडकी थैली छोटी पतलीसे लेकर कई दर्जे बडी मोटी आती हैं सो प्रथम छोटी पतली लेकर एकके पीछे एक मोटे दर्जेकी रखता जावे। इस साधनसे तीनसे ६ घंटेके अन्दर गर्भका प्रसव हो जाता है।

तीसरा अनुक्रम इस विधिसे है कि गर्भपडतको गर्भाशयसे कमलमुखके आस-पाससे अनुमान तीन इंचके प्रदेशमेंसे जो गर्भाशय और गर्भपडतका सम्बन्ध है उसको छुटाकर अलग कर देवे इस विधिके करनेसे १९ से लेकर २९ घंटेके बाद ऐंठन और पीडा आना शुरू हो जाती है। और गर्भाशयपडतको पृथक् करनेके लिये कमलमुखक अन्दर गर्म जलकी पिचकारी मारनी चाहिये, अथवा कमल-मुखके अन्दर शलाकायन्त्र: प्रवेश करके फेरना चाहिये, जो अधिक प्रवेशमें अथवा गर्भाशयके ऊपरके भागतक गर्भाशयसे गर्भपडतका सम्बन्ध छूट जावे और ऐंठन तथा पीडा जार जोरसे जल्दी २ आनकर गर्भपात हो जाता है। कितनेही चिकित्सक गर्भाशयके अन्दर पांच छः इंचकी पोली शलाई प्रवेश करके उसमें ४ व ९ ओंस गर्म जलकी पिचकारी मारते हैं, इससे ऐंठन और पीडा तुरन्त होने लगती है, परन्तु सलाई अन्दर प्रवेश करनक समय गर्भाशय तथा कमलमुखको कुछ कष्ट पहुँचना संभव है। चौथी विधि इस प्रकारसे है कि कितनेही डाक्टर लोग इस कामके लिये गर्म जलकी पिचकारी थोडे दिवसतक हर रोज दिनमें दो तीन समय लगवाते हैं इस क्रियासे थोडे दिनमें गर्भाशयमें ऐंठन और पीडा होकर गर्भपात हो जाता है।

पांचवीं विधि इस प्रकारसे है कि किसी २ डाक्टरकी इस प्रसवके विषयमें यह राय है कि गर्भाशयके अन्दर गर्भाशय शलाका अथवा शलाकाके आकारकी कोई दूसरी वस्तु प्रवेश करे और ऐंठन व पीडा जहाँतक शुरू न होय वहांतक रखनेका प्रयत्न करे। शलाकाकी अपेक्षा पूर्व टेंट यन्त्र कथन कर आये हैं वह इस कामके लिये अच्छा है। इस देशमें प्राय: विधवा व बडी उमरतक लडकीकी सादी न होनेसे गुप्त समागम कर लेती हैं तो किसी समयपर उनको गर्भकी स्थिति हो जाती है, वह गर्भ यदि स्थिर रहे तो चार छः महीने पीछे स्त्रीका पेट बढने लगता है तब उसको छुपानेकी चेष्टासे गर्भपातकी तजवीज की जाती है और मूर्ख दाई लोग प्राय: इस कार्य्यके निमित्त आगे लिखे उपायोंको काममें लाती हैं। सेगिया थूहरकी डाली गर्भाशयके मुखमें प्रवेश करती हैं कोई दाई बांसकी पोई कमलमुखमें प्रवेश करती हैं। कोई दाई सलाईपर

टुकडा कमलमुखके अन्दर रखना, इन टुकडोंके फूलनेसे कमलमुख थोडा बहुत चौडा अवश्य होगा । इसके बाद इन टुकडोंको निकाल लेना और इनके बदले रबडकी थैली कमलमुखमें रखके उसमें हवा अथवा पिचकारीके जरिये पानीसे रबडकी थैलीको भरना, इससे कमलमुख जितना विस्तृत होसके उसका अन्दाज चिकित्सक कर लेवे । रबडकी थैली छोटी पतलीसे लेकर कई दर्जे बडी मोटी आती हैं सो प्रथम छोटी पतली लेकर एकके पीछे एक मोटे दर्जेकी रखता जावे । इस साधनसे तीनसे ६ घंटेके अन्दर गर्भका प्रसव हो जाता है ।

तीसरा अनुक्रम इस विधिसे है कि गर्भपडतको गर्भाशयसे कमलमुखके आस-पाससे अनुमान तीन इंचके प्रदेशमेंसे जो गर्भाशय और गर्भपडतका सम्बन्ध है उसको छुटाकर अलग कर देवे इस विधिके करनेसे १५ से लेकर २५ घंटेके बाद ऐंठन और पीडा आना शुरू हो जाती है । और गर्भाशयपडतको पृथक् करनेके लिये कमलमुखके अन्दर गर्म जलकी पिचकारी मारनी चाहिये, अथवा कमल-मुखके अन्दर शलाकायन्त्र: प्रवेश करके फेरना चाहिये, जो अधिक प्रवेशमें अथवा गर्भाशयके ऊपरके भागतक गर्भाशयसे गर्भपडतका सम्बन्ध छूट जावे और ऐंठन तथा पीडा जार जोरसे जल्दी २ आनकर गर्भपात हो जाता है । कितनेही चिकित्सक गर्भाशयके अन्दर पांच छः इंचकी पोली शलाई प्रवेश करके उसमें ४ व ५ ओंस गर्म जलकी पिचकारी मारते हैं, इससे ऐंठन और पीडा तुरन्त होने लगती है, परन्तु सलाई अन्दर प्रवेश करनेके समय गर्भाशय तथा कमलमुखको कुछ कष्ट पहुँचना संभव है । चौथी विधि इस प्रकारसे है कि कितनेही डाक्टर लोग इस कामके लिये गर्म जलकी पिचकारी थोडे दिवसतक हर रोज दिनमें दो तीन समय लगवाते हैं इस क्रियासे थोडे दिनमें गर्भाशयमें ऐंठन और पीडा होकर गर्भपात हो जाता है ।

पांचवीं विधि इस प्रकारसे है कि किसी २ डाक्टरकी इस प्रसवके विषयमें यह राय है कि गर्भाशयके अन्दर गर्भाशय शलाका अथवा शलाकाके आकारकी कोई दूसरी वस्तु प्रवेश करे और ऐंठन व पीडा जहाँतक शुरू न होय वहांतक रखनेका प्रयत्न करे । शलाकाकी अपेक्षा पूर्व टेंट यन्त्र कथन कर आये हैं वह इस कामके लिये अच्छा है । इस देशमें प्राय: विधवा व बडी उमरतक लडकीकी सादी न होनेसे गुप्त समागम कर लेती हैं तो किसी समयपर उनको गर्भकी स्थिति हो जाती है, वह गर्भ यदि स्थिर रहे तो चार छः महीने पीछे स्त्रीका पेट बढने लगता है तब उसको छुपानेकी चेष्टासे गर्भपातकी तजवीज की जाती है और मूर्ख दाई लोग प्रायः इस कार्य्यके निमित्त आगे लिखे उपायोंको काममें लाती हैं । सेगिया थूहरकी डाली गर्भाशयके मुखमें प्रवेश करती हैं कोई दाई बांसकी पोई कमलमुखमें प्रवेश करती हैं । कोई दाई सलाईपर

एलुआ लगाकर कैमलमुखमें प्रवेश करती हैं, कोई दाई चित्रककी सलाई प्रवेश करती हैं। ये सब उपाय हैं तो ठीक परन्तु स्त्रीके गुह्यावयवमें इन उपायोंसे कुछ हानि पहुंचनेकी संभावना है। छठी विधि इसकी इस प्रकारसे है कि गर्भपात करनेके लिये बिजली लगाना उत्तम है और गर्भवती स्त्रीके स्तनोंके ऊपर कई प्रकारके तैल आदि चुपडनेसे भी इस काममें कुछ सहायता पहुँचती है। और इसके लिये: अरगट भी देनेमें आता है टंकणक्षार भी देते हैं। और कितनेही चिकित्सक इस कामके लिये सक्त जुलावभी देते हैं, परन्तु इन क्रियायोंसे लाभके वदले स्त्रीको हानि पहुँचती है और सक्त जुलावसे किसी समय रक्तातीसार व संग्रहणी होकर स्त्रीकी आयु समाप्त हो जाती है। इन उपायोंमेंसे विश्वासके योग्य केवल अरगट है परन्तु इससे वालक मरा हुआ निकलता है।

डाक्टरीसे अपूर्ण गर्भ प्रसवकी विधि समाप्त।

डाक्टरीसे गर्भस्थ वालकको गर्भाशयमें परिवर्त्तन (फेरने) की विधि।

गर्भाशयमें कितनेही समय गर्भस्थ वालक किसी कारण विशेषसे आडा पड जाता है तथा सीधी योग्य स्थितिको त्यागकर दूसरीही अयोग्य स्थितिमें हो जाता है। अयोग्य स्थितिमें हो जानेसे जवतक वालकको योग्य स्थितिमें न लावें तवतक वालकका प्रसव नहीं होता, इस लिये आडे टेढे वालकको योग्य स्थितिमें लानेकी आवश्यकता पडती है। ऐसे अयोग्य स्थितिमें आये हुए गर्भस्थ वालकको फेरनेकी दो विधि हैं। एक तो मस्तककी तर्फसे फेरनेमें आता है। दूसरे वालकके पैरकी तर्फसे फेरकर उसको वाहर निकालते हैं। जो वालक वस्तीस्थानके आगमन द्वारमें आनेके समय वालकके अधोभागमेंसे मस्तकके वदले खवा गर्दन अथवा चेहरेका भाग आते हुए मालूम पडे और गर्भजल थैलीका पडत न टूटा होय वहांतक गर्भको फेरकर योग्य स्थितिमें वालकके मस्तकको ला सक्ते हैं। एक हाथ योनिके अन्दर तैल चुपडकर चिकित्सक प्रवेश करे और उस हाथको सीधा कमलमुखमें प्रवेश करता हुआ गर्भाशयमें ले जावे, दूसरा हाथ स्त्रीके पेटके ऊपर रक्खे। चिकित्सक दोनों हाथोंकी यथा स्थित चालन प्रक्रिया (गति) से वालकका मस्तक वरावर अधोभागमें फिरकर आवे इस प्रमाणसे फेरकर लावे। यदि मस्तकके साथ वालकका एकाध हाथ व नाल आता होय तो उसको खींचकर ऊंचा कर देना और गर्भाशयके ठिकाने पेटपर आइस्ते २ दवाव डालकर वालकके मस्तकके नीचेकी तर्फ सरका देना और वालकका मस्तक जव वरावर प्रसवमार्गकी स्थितिमें आजावे और गर्भपडत फूट जावे तो इतनेमें शीघ्र प्रसव हो जावेगा। कदाचित् इस अर्सेमें गर्भपडत न फूटे तो फोड देना उचित है।

आकृति नं० ८० देखो ।

चरण भ्रमणप्रक्रिया—चरण भ्रमण (पैर फेरकर) प्रसव करानेकी प्रक्रिया इस प्रकारसे है कि गर्भाशयके अन्दर चिकित्सक अपने हाथको चिकना करके प्रवेश करे और गर्भस्थ बालकका एक अथवा दोनों पैर पकडकर बालककी स्थितिको सीधा करके (फिराकर) बाहर निकाल लेना । इस बराबरकी आकृतिमें बालकको शिरके बल लानेकी विधि है और नीचेकी आकृतिमें बालकका चरण फेरकर पैरके बलसे प्रसव करानेकी विधि लिखी गई है । इस आडे गर्भकी स्थितिके विषयमें ४ रात प्रथम चिकित्सकको समझकर स्थिति परिवर्त्तनका परिश्रम करना चाहिये । प्रथम जब कि गर्भाशयमें बालक आडा पड गया होय और इस स्थितिमें उसका हाथ बाहर निकल आया होय अथवा अधोभागके ठिकानेसे बालकका धड आया होय तो चरण भ्रमण करना कठिन और असाध्य पडता है । दूसरी—जब कि बालकका चेहरा (मुखाकृति) अधोभागके ठिकानेपर आ गया होय और स्त्रीका पेट विशेष ढीला होनेसे गर्भस्थ बालक आगे आ गया होय तो किसी समय बालकको पैरसे फेरकर निकालनेकी जरूरत पडती है । तीसरा प्रकार यह है कि स्त्रीके कमलमुखपर जरायु आ गई होय और हिक्का (हिचकी) आती होय अथवा गर्भाशय विदीर्ण हुआ होय । नाल नीचे उतर आया होय अथवा स्त्रीकी मृत्यु एकाएक हुई होय तो इत्यादि प्रसंगोंके कारणसे भी बालकका पैर फेरकर प्रसव कराना पडता है ।

आकृति नं० ८१ देखो ।

चतुर्थ प्रकार यह है कि किसी समय पेल्वीस (बस्तीस्थान) की विकृताकृति होनेसे बालकका प्रसव मस्तकके बलसे होना कठिन हो जाता है । परन्तु चरणभ्रमण करनेसे प्रसव कराया जाय तो मस्तकसे जो रुकावट लगती है वह कितनेही दर्जे बच जाती है । क्योंकि मस्तकके नीचेका भाग ऊपरके भागकी अपेक्षा आधे व पौन इंचके सुमार व्यासमें न्यूनता पडती है इससे वह पेल्वीसमेंसे सरलतापूर्वक निकल आता है और उसके पीछे ऊपरका कठिन भाग लम्बा और पतला होकर निकल आता है । इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि जब कमलमुख उत्तम रीतिसे विस्तृत हो जावे इसके पीछे गर्भको फेरनेकी तैयारी करनी चाहिये । स्त्रीको कलोरोफोर्म सुंघाकर यह क्रिया सुगमतापूर्वक हो सक्ती है । गर्भजल थैली फूटनेसे प्रथमहीका समय चरणभ्रमण प्रक्रियाके लिये विशेष अनुकूल समझा जाता है । और गर्भजल थैलीके फूटनेके पीछे जैसे २ अधिक समय व्यतीत होता है तैसे २ गर्भस्थ बालकके फेरनेमें विशेष कठिनता पडती जाती है । कमलमुख विस्तृत होकर गर्भजल थैली फूटी होय तो जिस प्रकारसे वन सके वैसेही बालकको शीघ्रतासे फेरकर निकाल लेना, यदि

थैली फूटकर अधिक समय व्यतीत हो गया होय और गर्भजल थैलीका सब प्रवाही पदार्थ स्राव हो चुका होय और गर्भाशय बालकके ऊपर जोरसे संकुचित होकर बैठ गया होय और योनिके अन्दरका भाग सूज गया होय तो इस दशामें गर्भस्थ बालकको फेरकर निकालना यह काम विशेष कठिन और कष्टसाध्य है, प्राय: यह मौका जोखम भरा हुआ समझा जाता है । चरणभ्रमण करके प्रसव करानेकी यह विधि है कि स्त्रीको बिछौनेके किनारेके ऊपर वामी करवट वक्षोजस्थितिमें सुलावे कमरके पीछेका भाग बिलकुल बिस्तरके किनारेपर रहे । यदि स्त्रीका मलमूत्र साफ न हुआ होय तो प्रथम मलमूत्र साफ कर लेवे पीछे चिकित्सकका जौनसा हाथ अनुकूल और चलता हुआ होय, उस हाथको तैलसे चिकना करके योनिमें प्रवेश करे और बालकका जो हाथ बाहर निकल आया होय वही हाथ चिकित्सक योनिमें प्रवेश किया जाय तो विशेष सुबीता पडता है, यदि बालककी पीठ माताके पेटकी तर्फ होय तो ऐसी स्थितिमें चिकित्सक अपने वामे हाथको योनिमें प्रवेश करके बालकको फेरे तो विशेष सुगमता पडती है । बालककी पीठ माताकी पीठकी तर्फ होय तो चिकित्सकका दक्षिण हाथ कार्य्य करनेमें कुशल रहता है । सारांश यह है कि चिकित्सकका जो हाथ बालकके पेटके ऊपर होकर पैरको पकडनेमें सरलतापूर्वक जा सके वही हाथ ठीक कार्य्य करनेमें समर्थ समझना । स्त्रीको जिस समय पर ऐंठन और पीडा आनआनकर बन्द होती होय उसी अवधिमें हाथको योनिमें प्रवेश करे और योनिमें प्रवेश करनेके समय हाथकी पांचों अंगुली मिलाकर अंगुलियोंके बाह्य भागको तैलसे चिकना करे (किन्तु हथेलीपर तैल न लगावे) और योनिके अन्दर आसानीसे हाथको प्रवेश करे जब हाथ कमलमुखके समीप पहुँच जावे तब कमलमुखके होठोंके बीचमेंसे हाथको गर्भाशयमें प्रवेश करके बालकके कन्धे (खंमे) के ऊपर निकालकर छाती और पेटकी तर्फ हाथको आइस्ते आइस्ते ले जावे और जिस समयपर स्त्रीको पीडा आती होय उस समय हाथको स्थिर रखे और पीडा बन्द होवे तब पुन: हाथको आगे बढाना इस विधिसे हाथको अन्दर प्रवेश करते समय अपना दूसरा हाथ चिकित्सक स्त्रीके गर्भाशयके ऊपरके भागमें पेटपर रखके नीचेको दबाता रहे कदाचित् चिकित्सकका हाथ खाली न होवे तो दूसरे सहायकके हाथसे स्त्रीके पेटको दबानेकी आज्ञा देवे और दबानेके कायदेको समझा देवे।

आकृति नं० ८२ देखो ।

योनिमें हाथ प्रवेश करके कमलमुखके बीचमें देखे कि गर्भजलके थैली साबित व टूट गई है अगर टूटी हुई होय तो गर्भजल थैली तथा गर्भाशये दोनोंके बीचमें हाथको प्रवेश करे अगर थैली टूटी न होवे तो तोडकर हाथको प्रवेश करे । परन्तु ऊपरक भागमें

हाथ जानेके बाद पीछे गर्भ पडतको अंगुलीसे तोडकर बालकके पैरको पकड लेवे और नीचेकी तर्फ आइस्तेसे सरकाता लावे। ऐसी स्थितिके प्रसंगका प्रसव कभी २ किसी २ स्त्रीको ही होता है विशेप करके गर्भजल थैलीका पडत टूटनेके पीछे और कितनाही समय व्यतीत हो जानेके वादही जब बालक नहीं निकलता और मूर्ख दाई लोगोंकी अकल काम नहीं देती तब चिकित्सकको गर्भस्थ बालकके फेरनेका परिश्रम उठाना पडता है। चिकित्सकका हाथ अन्दर पहुँचनेके पीछे बालकका पैर और हाथकी पहचान करनेमें कभी २ भ्रम हो जाता है पैरका घोंटू और हाथका कोहनकी मणि तो चिकित्सकके हाथमें आती हैं उनकी पहचान इस प्रकारसे कर लेवे परन्तु घोंटू और कोहनी दोनोंही मोटे होवें तोभी जरा भ्रम रहता है। परन्तु विशेष चिह्न इस प्रकारसे है कि कोहनी विशेष अनीदार होती है कोहनीका कोना पैरोंकी तर्फ मुडा रहता और घोंटूका कोना हाथोंकी तफ मुडा हुआ रहता है, पैर और हाथके फलाओंकी भ्रान्ति होती ह परन्तु पैरकी अंगुली परस्पर मिली हुई और छोटी होती हैं और अंगूठा अंगुलियोंसे मिला हुआ रहता है। हाथकी अंगुलियां लंबी और मुडी हुइ होती हैं अंगूठा पतला और लम्बा होता ह। यदि चिकित्सकके हाथमें बालकके दोनों पैर बराबर पकडनेमें आ जावें तो दोनोंको खींच लेवे और दोनों पैर हाथमें न आवें तो एकको पकडकर नीचेकी तर्फ ले आवे। बालककी जंघाके मूलमेंसे पैर पकडनेमें आवें तो विशेष सरलतासे बालक नीचे उतर आता है (बनता) तक जो बालकका हाथ बाहर आ गया हाय तो उसके सामनेका पर पकडना और सदैव बालकको पेटकी बाजूसे नाच उतारना पीछेकी बाजूसे उतारना नहीं (इसका खुलासा इस प्रकारसे है कि बालकको निकालनेके समय उसकी पीठका भाग ऊपरकी तर्फ याने ओंधा पद करके निकाले और पेटका भाग नीचेकी तफ रहे) एक तर्फका अंदरसे इस विधिसे बालकका पर पकडकर खींचनेमें आता है जिस समय बालक नीचेकी तर्फ खींचा जावे उसी समयपर स्त्रीके पेटके ऊपर एसी रीतिसे दबाव डाले कि बालकको नीचे उतरनेवाली गतिको गर्भाशयके अन्दरसे सहायता देवे और बालकका मस्तक तथा बाहर आया हुआ हाथ अन्दरको चढता जावे।

आकृति नं ८३-८४ देखो।

बालकका एक पैर बाहर जंघा पर्यन्त निकल आवे तो दूसरी जंघाके मूलमे अंगुलियां अडा कर उसको भी नीचे उतार लेवे और बाकी पेटका तया छातीका भाग सरलता पूर्वक निकल आता है नाभिका भाग बाहर निकल आवे तो शीघ्र ही नालको थोडा नीचे खींच लेवे जिससे कि नाल तनकर टूटनेका भय न रहे और बालककी नाभि पर कुछ कष्ट न पहुंचे पेटका तथा छातीका भाग बाहर निकलनेके समय बाल-

कको आइस्तेसे ऐसी रीतिसे फेरते जाना कि आगमन द्वारके उत्तर दक्षिण व्यासमें बालकके मस्तकका पूर्व पश्चिम व्यास आ जावे । बालकका मस्तक वस्तीकी कक्षामें आवे तब चेहरेका भाग सेकमके अन्तर गोलमें जावे इस समय वालकके दोनों हाथ अन्दर मस्तकके साथमें रहते हैं उनमेंसे एक स्कन्ध (खव्वा) ऊपर और पीछे दूसरा खव्वा ऊपर आगेको चढाकर हाथको बाहर उतार लेना इस समय बालकके मस्तकका भाग निर्गमनद्वारमें आवेगा ऊपरसे गर्भाशयके दबावके कारणसे बालककी ठोडी छातीके साथ होवे तो जरा खेंचनेसे ही मस्तक सरलता पूर्वक बाहर निकल आता है । यदि बालककी ठोडी छातीसे पृथक् पड गइ हो तो ठोडी और मस्तकका पश्चिम भाग बालकके लम्बे व्यासमें मस्तक आन पडता है, इस कारणसे वहां अटकाव पडता है इस लिये चिकित्सक अपनी दो अंगुली बालकके ऊपरके जावडा पर रखके ठोडीको नीचेकी तर्फ ले आवे और उसी समय बालकके मस्तकके पीछेके भागमें अंगुली लगाकर मस्तकको ऊँचा करे इतनेमें गर्दन मुडकर मस्तकका भाग बाहर निकल आवेगा, यदि इस विधिसे मस्तक बाहर न आवे तो चीमटा शस्त्र लगाकर उसकी सहायतासे बालकके मस्तकको बाहर निकाल लेना । पूर्व कथन कर चुके हैं कि गर्भजल थैली फटकर समस्त गर्भजल निकल गया होय और गर्भाशय अधिक समय व्यतीत होनेसे संकुचित होकर बालकके शरीरसे चिपट गया हो तो ऐसी दशाकी अनावकाश स्थितिमें अन्दर अवकाश (जगे) न रहनेसे गर्भस्थ बालकको फेर कर निकालनेका काम अति कठिन और असाध्य हो जाता है । ऐसी दशा आनेपर बालक विशेष करके मृतक ही होता है, यदि ऐसी स्थिति होय तो बालकका शिर वं छाती भेदन करके ही निकालनेकी आवश्यकता होती है ।

डाक्टरीसे गर्भस्थ बालकको फिराकर व चरण भ्रमण करके प्रसव करानेकी विधि समाप्त ।

उदरविदीर्ण प्रसव । (सीझरीयन सेकशन्)

यह प्रसव ऐसा भयंकर है कि कितनेही मनुष्य इसका नाम श्रवण करके घबडा जाते हैं, परन्तु ऐसे प्रसवका मौका किसी २ समय परही आता है यह समय ऐसे प्रसंगपर आता है कि गर्भस्थ बालकका स्वाभाविक कुदर्त्ती मार्गसे प्रसव न होय और किसी विधि व क्रिया करने परभी प्रसवका होना असंभव हो पडे तो इस स्थितिमें स्त्रीका पेट और गर्भाशय चीरकर बालकको बाहर निकालते हैं, लेकिन इस उदर विदीर्ण प्रक्रियाकी आवश्यकता उसी समय पडती है जब प्रसवद्वार होकर बालकके निकालनेकी कोई भी विधि काम न देवे । इस प्रसवको उदरविदीर्ण प्रसव कहते हैं । इस भयंकर शस्त्रप्रक्रियामें स्त्रीकी जानको विशेष जोखम रहती है और इस क्रियाके

होने बाद बहुत थोडीही स्त्रियोंका जीवन संसारमें रहता है। प्रसव करानेके लिये जो किसी क्रियाका उपयोग करनेमें आता है उनका प्रथम हेतु (कारण) ऐसा होता है कि बालक तथा बालककी माता इन दोनोंके जीवकी रक्षा होनी चाहिये, परन्तु इन दोनोंकी जान न बच सके ऐसा न होय और एकके जीवकी हानि होय और दूसरको जवि बच सके ऐसा होय तो बालककी जानकी हानि होनेपर माताकी जानको बचाना चाहिये, क्योंकि स्त्री जीवित रहेगी तो बालक फिर भी होनेकी आशा रहती है। यदि माताकी जान बचनेकी आशा किसी भी उपायसे न होय तो बालकके बचानेकी पूर्ण कोशिस करनी चाहिये। नीचे लिखे हुए बयानमें स्त्रीके उदर विदीर्ण क्रियाके करनेकी आवश्यकता पडती है। प्रथम कारण इसमें यह है कि जब किसी स्त्रीका वस्तिपिंजर ऐसी विकृताकृतिका हो जाय कि उसका व्यास दो इंचसे कम होय तो जीवित बालक उसमेंसे नहीं निकल सक्ता। और बालकके शरीरका भेदन करनेके समय स्त्रीके शरीरको अति कष्ट पहुंचनेके अलावे भेदन किये हुए बालकके अङ्गोपाङ्ग निकल आवें ऐसा विश्वास नहीं होता। इसलिये स्त्रीका उदर विदीर्ण करके बालकको निकालनेकी आवश्यकता पडती है, क्योंकि उदर विदीर्ण करके बालकको न निकाला जावे तो वह गर्भाशयमें ही मृत्यु पाता है और बालकका अन्दर मृत्यु होनेसे मृतक बालकका जहर स्त्रीके शरीरमें फैल जाता है, तीव्र ज्वरादि उपद्रव उत्पन्न होकर स्त्री भी मर जाती है। स्त्रीके बस्ती पिंजरकी अस्थिको विकृताकृति होनेके सिवाय दूसरी कोई व्याधि रूपी ग्रन्थीके उत्पन्न हो जानेसे बस्तीका व्यास दो इंचसे कम हो गया होय तोभी उदर विदीर्ण करनेकी आवश्यकता पडती है। दूसरा कारण इसका यह है कि जब स्त्रीकी अकस्मात्सेही व रक्त-प्रवाहसे अथवा अन्य प्रकारकी किसी व्याधिसे एकाएक मृत्यु हो जावे और बालक पेटमें जीवित होवे तो शीघ्रही उदर विदीर्ण करके जीवित बालकको निकाल लेना चाहिये, स्त्रीकी मृत्यु होनेके पीछे दश मिनिटके अन्दरही बालकको निकाल लिया जावे तो जीवित निकलेगा, नहीं तो अधिक समय व्यतीत होनेसे बालक भी मृत्यु पाता है। तीसरा कारण यह है कि किसी कारणसे स्त्रीका गर्भाशय फूट गया होय और बालक गर्भाशयसे बाहर पेटके अन्दर आगया होय अथवा गर्भोत्पत्ति गर्भा-शयसे बाहरही हुई होय तो इसके प्रसवके लिये उदर विदीर्णके सिवाय दूसरा कुछ उपाय नहीं है। चौथा कारण यह है कि स्त्रीकी योनिके अन्दर व कमलादिका अर्बुदरोग अथवा दुष्ट ग्रन्थी आदि व्याधि उत्पन्न हुई होय और इन व्याधियोंके कारणसे बालकके निकलनेका मार्ग रुक गया होय जिससे प्रसव न हो सक्ता होय और स्त्रीकी अधिक समय पर्यन्त जीवित रहनेकी इच्छा न होय तो उदर विदीर्ण उपायसे प्रसव हो सक्ता है।

उदर विदीर्ण करनेकी विधि ।

उदर विदीर्ण करनेके समयपर स्त्रीको कलोरोफोर्म सुंघाकर बेभान कर लेवे जिससे उसको शस्त्राभिघातका कष्ट न पहुँचे कलोरोफोर्म सुंघानेका एक यन्त्र आता है एक शिरेपर कलोरोफोर्मकी शिशी रहती है एक शिरेपर नासिकापर रखनेका टोपीकी आकृतिका यन्त्र रहता है । बीचमें रबडकी पोली नलीमें पिचकारीके समान पोला गोला रहता है, इसके दबानेसे कलोरोफार्म शीशीमेंसे उडकर दूसरे शिरेपर जो यन्त्र नासिकाके ऊपर लगाया जाता है उसमें पहुँचकर श्वास प्रश्वासके साथ नासिकाछिद्रसे शरीरमें विस्तृत होकर मनुष्यको बेभान कर देता है । कोई २ डाक्टर कपडेकी गद्दीपर कलोरोफोर्म छिडककर सुंघाते हैं, परन्तु इस तर्कीबसे कलोरोफोर्म विशेष खराब जाता है । जब कि स्त्री बेभान हो जावे और लम्बे २ श्वास लेने लगे तब नाभिकी नीचेकी मध्य रेखामें ६ इंचसे लेकर आठ इंचतक लम्बा छिद्र करना चाहिये, पेटकी त्वचा तथा अन्तर पडत काटकर छिद्र बनावे और इसीके अनुसार ५ इंचसे लेकर ६ इंच पर्य्यन्तका छिद्र गर्भाशयमें करे और गर्भाशयके अन्दर बालकको निकाल लेवे और बालकको निकालनेके पीछे जरायु नाल और पडतको निकाल लेवे । जिस समय गर्भाशयमें चीरा देकर छिद्र बनाया जावे उस समय इतना ध्यान रखे कि बालकके शरीरपर शस्त्रका अभिघात न पहुँचे इसकी पूर्ण रीतिसे सावधानी रखे । इस क्रियाके करत समय चिकित्सकके समीप एक दो सहायक होने चाहिये और सहायकसे पेट और गर्भाशयके चिरे हुए दोनों भागके किनारे संयुक्त करके साथही मिलाकर पकडा देवे जिससे कि रक्त और गर्भजल पेटकी खोल तथा अन्य भागोंमें न जाने पावे । इस उदरविदीर्णप्रसवमें बड़ा भय रक्तप्रवाहका होता है। यदि अधिक रक्तप्रवाह होय तो गर्भस्थानको मसलना अथवा उसके अन्दर वर्फ रखना अथवा बिजली लगानी चाहिये, जिससे गर्भस्थान संकुचित होकर रक्तप्रवाह बन्द हो जावे । गर्भाशयमेंसे योनिमुख और कमलमुखमें होकर एक रबडकी सलाई लगाकर रखना इसके पीछे गर्भाशयको सी देवे, इसके बाद पेटके चीरे हुए भागमें टांके लगा देवे. और उसके ऊपर कारबोलिक लोशन व शीतल जलकी पट्टी भिगोकर रखना और पट्टीसे पेटको बांध देना । थोडे दिवस पर्य्यन्त स्त्रीको हलका और पतला आहार जैसे दूध साबूदाना आदि देना चाहिये, यदि उचित समझे तो पीडा शान्तिके लिये थोडी अफीम व ब्राण्डी देना चाहिये ।

डाक्टरीसे उदरविदीर्ण प्रसवप्रक्रिया समाप्त ।

डाक्टरीसे मूढगर्भकी शिरभेदनप्रक्रिया (क्रेन्याटामी)

यह शिरभेदन प्रक्रियाका प्रसव उस दशामें किया जाता है कि जब स्त्रीकी बस्तीके व्यासमेंसे मस्तकके बलसे बालक न निकल सके, इतना छोटा होय तब बालकका शिर भेदन करके निकालनेमें आता है और मस्तक भेदन करनेका हेतु ऐसा होता है कि बालकके मस्तक कपाली (हड्डीके अन्दर) की पोलमें जो मगजका भाग है उसको बाहर निकाल लेनेसे शिरका कद छोटे व्यासका हो जाता है और बस्तीके छोटे व्यासमेंसे निकलनेके लायक हो जाता है, शिर भेदन करनेका शस्त्र कैंचीके आकारवाला लम्बे दिस्ते हाथमें पकडनेके होते हैं। इस शस्त्रमें मुख्यता यह है कि इसकी धार पांखियाकी अंदरकी बाजूमें नहीं होती किन्तु बाहरकी बाजूमें होती है। वह शिरभेदन करके मगजका भाग बाहर निकाल देता है, प्रथम मगजका भाग बाहर निकालनेके बाद खोपडीके भागको मजबूत चीमटासे पकड कर अथवा उसमें. आंकडा लगा कर समस्त गर्भको बाहर खींच लेवे। अब जिन २ कारणोंसे बालकका शिरभेदन प्रसव कराया जाता है वे नीचे लिखे जाते हैं। (प्रथम) ऊपर इसका कथन हो चुका है कि दुष्टग्रन्थी अर्बुद अथवा अन्य किसी कारणसे बस्तीका व्यास तीन इंचसे कम और दो इंचसे ऊपर हो तो शिरभेदन करके बालकको निकाल सक्ते हैं, जो बस्तीका व्यास तीन इंचसे ऊपर होय तो बालकका चरण भ्रमण करके प्रसव करा सक्ते हैं, जो कदाचित दो इंचसे कम व्यास हो तो शिरभेदन करनेका उपाय निष्फल हो जाता है। क्योंकि इतने व्यासमेंसे शिरभेदन किया हुआ भी बालक स्त्रीको भयंकर ईजा पहुंचा कर नहीं निकल सक्ता। इस कारणसे स्त्रीका उदर विदीर्ण करके प्रसव करानेकी आवश्यकता होती है। दूसरा कारण यह है कि जब पेल्वीस स्त्रीके बस्तीस्थानका व्यास यथावत् नियत होय परन्तु बालकका मस्तक अधिक मोंटा होय और बस्तीके व्यासमेंसे नहीं निकल सक्ता हो तो बालकके शिरका भेदन करके प्रसव कराना पडता है। इसी प्रकार बालकके मस्तकमें जलन्दर हो तो भी शिरभेदन प्रसव करना पडता है। परन्तु इसमें इतना अन्तर है कि बालकके चर्मपडतमें ही जलंदर हो तो चर्मपडतको तोडकर जल निकाल देने पर प्रसव हो सक्ता है और चर्म जिल्दके तोडनेकी ईजासे बालक बच जावे तो सजीव रह सक्ता है। तीसरा कारण इसका यह है कि बालकका मस्तक तथा हाथ दोनों साथ ही प्रसव समयमें उतर आये होयँ और हाथ पीछे ऊपर चढे ऐसा न होय इसी प्रकार मस्तक नीचे उतर सके ऐसा न हो तो बालकका शिरभेदन करके प्रसव कराना पडता है। चौथा कारण इसका यह है कि गर्भाशयके अन्दर ही बालककी मृत्यु हो गई होय और प्रसव होनेमें विलम्ब होता होय तो मृतक बालकका शिरभेदन करके प्रसव कराया जाता है। ऐसी मृतक

बालककी दशा मालूम हो जावे तो उसको शीघ्र ही निकाल लेना चाहिये, जिससे स्त्रीका कष्ट नष्ट हो जावे और अधिक समय पर्य्यन्त तक बालक गर्भाशयमें रहेगा तो उसका जहर फैल कर स्त्रीकी मृत्यु होना संभव है, सो मतक बालकको जहां तक हो सके शीघ्र निकाल लेना चाहिये । पांचवां कारण इसका यह है कि हिक्का (हिचकी) रक्तप्रवाह इत्यादिक रोगोंके प्रसंगमें तात्कालिक प्रसव करानेकी आवश्य-कता पडती है और ऐसे प्रसंगके प्रसवमें चीमटा शस्त्रका उपयोग न हो सक्ता हो तो शिरभेदन प्रसव कराना योग्य है । जिस समय पर चिकित्सक यह निश्चय कर लेवे कि अभी इस प्रसंग पर शिरभेदन प्रसव कराना है, ऐसा निश्चय होनेके बाद अधिक समय व्यतीत न करे । जब कमलमुख विस्तृत हो गया हो तो शीघ्र ही बालकका शिरभेदन कर देना प्रथम, कितनेही डाक्टरोंका ऐसा सिद्धान्त था कि बालक जीवित रहे वहां तक शिरभेदन न करना चाहिये । किन्तु गर्भाश-यमें बालककी मृत्यु हो जावे इसके अनन्तर शिरभेदन क्रिया करनी चाहिये, परन्तु ऐसा करनेमें कुछ शुभ फल नहीं दीखता क्योंकि जो पांच कारण ऊपर कथन किये गये हैं उनसे बालककी मृत्यु तो अवश्य होवेहीगी चाहे विलम्बसे होय चाहे शीघ्र होय । परन्तु जितना अधिक विलम्ब इस प्रसवके करानेमें होगा उतनीही हानि स्त्रीको पहुँचना संभव है ।

आकृति नं० ८५–८६–८७ देखो ।

डाक्टरीसे मूढगर्भके प्रसवसमयमें शिरभेदनकी प्रक्रिया ।

बालकका शिर भेदन करनेके समयपर एक मेज (टेबिल) व बिछौनाके ऊपर स्त्रीको बामे करवट सुलाकर चिकित्सक अपने बामे हाथकी दो अंगुलियोंको योनिमें प्रवेश करके बालकके मस्तकके अधोभागमें लगावे और उन अंगुलियोंके आधार शिरभेदक शस्त्र सीधे हाथमें पकडकर योनिमें अन्दर प्रवेश करे और इस समय पर ऐसी सावधानी रखे कि स्त्रीकी योनिके अन्दरके किसी भागको शस्त्रसे अभिघात न पहुँचने पावे, अंगुलियोंसे बालकका मस्तक टटोलकर मस्तकके अन्दर शिरभेदक शस्त्र और घुसेडकर पीछे उसको खींचकर निकाल लेना । इस क्रियासे मस्तककी एक दिशामें चीरा लगेगा पीछे दूसरे समय दिशा फेरकर त्रिशूलाकार व त्रिकोणाकार छिद्र बन जावे ऐसे अन्दा-जसे शस्त्र प्रवेश करके निकाल लेवे और छिद्रोंके ऊपरसे कपाल अस्थि दबाकर मगजका भाग निकाल लेवे, इसके बाद कपालकी अस्थिके किसी अनुकूल भागमें आंकडा शस्त्र अटकाकर अथवा शिरके भागको चीमटेसे पकडकर बालकके समस्त शरीरको निकाल लेवे । इसके बाद गर्भजलथैली (जेरी) नाल जरायुको निकाल लेवे । इस शस्त्र प्रयोगमें दूसरी प्रक्रिया छाती भेदन (ऐवीसरेशन) की है, याने शिरभेदनके अतिरिक्त छाती भेदन करनेका भी किसी २ प्रसंगपर उपयोग करना पडता है । वह

इस प्रकारसे है कि जब गर्भाशयमें गर्भस्थ बालक आडा पड गया होय और एक हाथ बालकका बाहर आ गया होय व प्रसवक्रियामें अधिक समय व्यतीत हो गया होय तथा गर्भाशयके संकुचित होनेसे गर्भाशयका पडत बालकको दाबकर बैठ गया होय और गर्भाशयके दबावसे बालक जमकर वस्तीमें बैठ गया होय तो शिरभेदन करनेकी क्रिया न बनती होय और गर्भजलके निकल जानेसे चरण-भ्रमणक्रियासे भी बालक न निकल सक्ता होय क्योंकि गर्भाशयके ऊपरका भाग बालकके शरीरको दाब बैठा है, चरणभ्रमण क्रियाको गर्भाशयमें अवकाश नहीं है इससे चरणभ्रमण क्रिया भी नहीं बन सक्ती। लाचारी दर्जे इस मौकेपर बालककी छातीका भाग (पसलीपिंजर) जो नीचेकी तर्फ कमलमुखसे लगा हुआ होय उसका भेदन करके बालकको निकाल लेवे। छातीका भाग निकलनेपर मस्तक भी निकल आता है, कदाच मस्तक बाहर न निकल सके तो मस्तकका भेदन करके बाहर निकाल लेवे। (डीकापेटेशन) इस क्रियाके अतिरिक्त शिर छेदन करनेकी एक दूसरी प्रक्रिया यह है कि चिमटाके आकारका एक शस्त्र होता है वह बालकके मस्तकपर बराबर बैठ सक्ता है उसको मस्तकके भागके ऊपर बराबर बैठाले कि मस्तक उस शस्त्रके बीचमें आ जावे, बराबर मस्तकपर बैठाने बाद उस शस्त्रके बाहरका स्क्रुल फिरावे। इस स्क्रुलके फिरानेसे बालकके मस्तकका चूरा हो जाता है (इस शस्त्रको बालकके मस्तकपर बैठालनेके समय इतना ध्यान रखे कि स्त्रीके मर्मस्थानका कोई भाग बालकके शिरके साथ शस्त्रके बीचमें न आ जावे) मस्तकका चूरा होनेपर शस्त्रके स्क्रुलको अधिक न फिरावे और बालकको बाहर खींच लेवे। ऊपर कथन कर आये हैं कि स्त्रीकी वास्तिका व्यास दो इंचका होय वहांतक शिर भेदन क्रिया हो सक्ती है। परन्तु दो इंचसे आधा या पाव इंच व्यास कम होवे तो यह शिरभेदन क्रिया नहीं हो सक्ती कदाचित् जबरदस्ती कोई चिकित्सक करे भी तो स्त्रीके शरीरको वेजा हानि पहुंचती है।

डाक्टरीसे मूढगर्भके प्रसवसमयमें शिरभेदनकी क्रिया समाप्त।

प्रसवसमयमें उपद्रव।

प्रसवसमयमें कितनेही प्रकारके उपद्रव प्रसूता स्त्रियोंको हुआ करते हैं। जैसे कि १ जरायुका गर्भाशयसे न निकलना। २ रक्तस्राव। ३ हिक्का उत्पन्न होना। ४ गर्भाशयका फट जाना। ५ गर्भाशयकी अन्दरसे वक्रता हो जानी। १ प्रथम—जरायुका अन्दर रह जाना (रटेंशन आफ़ प्लासेंटा) इसको प्रायः स्त्रियाँ ऐसा बोलती हैं कि झिल्ली पोतरी ऊपर चढ गई इसका ऐसा कायदा है कि बालकका

जन्म होनेके थोडे समय बाद पोतरी जरायु बाहर स्वभावसे ही निकल आती है । यदि आधे घंटेसे लेकर १ व डेढ घंटेपर्य्यन्त जरायु बाहर न निकले तो उसका कारण निश्चय करना चाहिये । विशेष करके नीचे लिखे हुए तीन कारणोंमेंसे कोई कारण जरायुको अन्दर रोकनेवाला अवश्य मिलेगा । प्रथम कारण—यदि गर्भाशय बालक उत्पन्न होनेके अनन्तर पूर्णरूपसे संकुचित न होवे तो जरायु अन्दर रह जाती है । दूसरा कारण यह कि जरायु गर्भाशयके ऊपरके भागमें होय और इस अवधिमें गर्भाशयके नीचेका भाग संकुचित हो जाय तो जरायु बाहर नहीं निकल सक्ती । तीसरा कारण यह कि गर्भाशयकी किसी व्याधिके कारणसे गर्भाशयके अन्दर चिपटी रहें इस कारणसे बाहर नहीं आ सक्ती । प्रथम कारणकी विशेष निरुक्ती प्रसव होनेके बाद जरायुके निकलनेके अनन्तर गर्भाशय संकुचित होकर कठिन गोलाके समान नाभिसे नीचे और पेड्रूके ऊपर स्थित हो जाता है, परन्तु जब गर्भाशय बराबर संकुचित नहीं होता तब गर्भाशय पेटके अन्दर बडा लोथडा जैसा मालूम होता है । जरायु उसके अन्दर रहती है और गर्भाशयके साथ बिलकुल मिला हुआ सम्बन्ध जरायुका होय तो रक्तस्राव नहीं होता, लेकिन कहींसे कुछ सम्बन्ध पृथक् होय तो अक्सर रक्तस्राव होने लगता है । उपाय इसका यह है कि पेटके ऊपर मशलकर गर्भाशयको दबाना इससे गर्भाशय संकुचित होगा अरगटकी परिमित मात्रा देना और जरायुका भाग गर्भाशयसे जितना पृथक् होय उसको हाथ अन्दर प्रवेश करके निकाल लेना, अन्दर गर्भाशयमें हाथ प्रवेश होनेसे विशेष करके गर्भाशय संकुचित होने बगैर नहीं रहता । दूसरे कारणकी विशेष निरुक्ति इस प्रकारसे है कि गर्भाशयके नीचेका भाग संकुचित होनेके समय जरायु ऊपरके भागमें रह जाती है :इस प्रकार संकुचित होनेसे गर्भाशयके नीचेके भागमें जो कमलमुखका भाग है वह बन्द हो जाता है । अथवा गर्भाशयके मध्यका भाग संकुचित होकर उसकी आकृति वालू रेतकी (घडी) जैसी हो जाती है । योनिमें अंगुली प्रवेश करके परीक्षा करनेसे गर्भाशयको संकुचित हुआ भाग मालूम पडता है गर्भाशय ऐसी रीतिसे जो संकुचित होता है अनियत और स्वभाव विरुद्ध है । इस संकोचके कई कारण होते हैं, १ नालको ताडना करनेसे २ एकाएक वेभूल प्रसव होनेसे ३ और प्रसवसमयमें अधिक विलम्ब लगनेसे स्वभावविरुद्ध संकोच होता है । ४ जोडले बालक तथा बहु गर्भ जननेसे भी गर्भाशय विशेष चौडा हो जाता है और उसका संकोच स्वाभाविक संकोचसे विरुद्ध अनियत रीतिसे होता है । इस कारणका उपाय यह है कि जरायु न निकलनेका कारण मालूम पड जावे तो शीघ्रही हाथकी पांचों अंगुली संयुक्त करके गर्भाशयके अन्दर संकुचित भागमेंसे जरायुको पकडकर बाहरको खींच लेवे और कदाचित किसी व्याधिके कारणसे

जरायु गर्भाशयसे चिपट रही होय और उस कारणसेही बाहर न निकलती होय तो उसमें कितनी जोखम है और जरायु जिस भागमें चिपटी हुई होय उसके आसपासका गर्भाशयका भाग संकुचित होता है और गर्भाशय संकुचित होनेसे भी जरायु गर्भाशयसे जुदी होकर छूटती नहीं है। यदि जरायु इस रीतिसे छूटकर अलग न होय तो इसके लिये गर्भाशयमें अन्दर हाथ प्रवेश करके अंगुलियोंसे संभालकर गर्भाशयके सम्बंधसे जरायुको पृथक् करके अलग करे। यदि चिपट रही होय तो अंगुलियोंसे खुतरकर उसको गर्भाशयसे अलग करे और समस्त जरायुके भागको निकाल लेवे। कदाचित् किसी भागमें जरायु अधिक दृढतासे चिपट रही होय तो उसके उखाडनेको विशेष जोर न देवे क्योंकि ऐसा करनेसे गर्भाशयको विशेष सद्मा पहुंचता है, कदाचित् जरायुका कुछ भाग गर्भाशयमें चिपटा हुआ बाकी रह जावे तो नीचे लिखे माफिक तीन गतियोंमेंसे एक गति होती है। प्रथम गति कितनेही समय देखा गया है कि जरायुका रहा हुआ भाग पीछ गर्भाशयसे सम्बन्ध छोडकर बाहर निकल आता है। दूसरी गति इसकी इस प्रकारसे होती है कि पीछ वह भाग जरायुका गर्भाशयके अन्दरही सडकर निकल आता है और यह भी देखा गया है कि जब यह भाग अन्दर गर्भाशयमें सडता है तब कितनीही स्त्रियोंको ज्वर आ जाता है, जब सडा हुआ भाग निकल जाता है तब ज्वर शान्त हो जाता है। तीसरी गति इस भागकी ऐसी है कि गर्भाशयसे अन्दरही जरायुका रहा हुआ भाग कितनी ही स्त्रियोंका शोषण हो जाता है। दूसरी गतिमें लिख चुके हैं कि सडे हुए भागके असरसे स्त्रीको ज्वर आता है, स्त्रीका शरीर गर्म रहता है जीभ सूखी बनी रहती है और नाडीकी गति शीघ्रगामी हो जाती है। बालकको दुग्ध पिलाना बन्द हो जाता है और किसी २ स्त्रीका योनिस्राव भी बन्द हो जाता है, परन्तु विशेष करके योनिस्राव बन्द होनेके बदले उलटा अधिक स्राव होता है और उसमेंसे सडांदकी दुर्गन्धि आती है। इसका उपाय यही है कि गर्भाशयमें गर्मजलकी पिचकारी लगाकर साफ करना और स्त्रीके बलकी रक्षा रहे और ज्वर शान्त होवे ऐसी औषध देनी चाहिये। प्रसव समयमें रक्तप्रवाहका विषय अति उपयोगी है क्योंकि स्त्री तथा बालककी जानका आधार इसीके ऊपर रहता है। (पूर्व रक्तप्रवाह) जो रक्तप्रवाह बालकके प्रसव होनेके पूर्व होता है उसको प्रसव पूर्व प्रवाह कहते हैं और बालकका प्रसव होनेके पीछे जो रक्तप्रवाह होता है उसे प्रसवानन्तर प्रवाह कहते हैं। (प्रसव पूर्व प्रवाह) प्रसव होनेके प्रथम जो रक्तप्रवाह होता है वह सदैव प्रत्येक स्त्रीकी जरायुका गर्भाशयसे थोडा बहुत सम्बन्ध छुटानेके कारणसे होता है। प्रसव होनेके पूर्व जो रक्तप्रवाह होता है उसके दो भेद

हो सक्ते हैं। प्रथम अकस्मात रक्तप्रवाह। दूसरा अधोगत जारेके लिये होने-वाला प्रवाह अचूक प्रवाह। प्रथम अकस्मात रक्तप्रवाह (ऐक्सीडेंटल हेमरेजा) स्वाभाविक नियम प्रमाणे जरायु गर्भाशयके ऊर्ध्व भाग अथवा मध्य भागसे लगी हुई होती है, जरायु इस प्रमाणे अपने स्वाभाविक ठिकाने पर गर्भाशयमें होनेसे कुछ अकस्मातसे ही थोडी बहुत उसमेंसे छुट जाती है, किन्तु टूट जाती है तो इस कारणसे रक्तप्रवाह होता है इसको अकस्मात् प्रवाह कहते हैं। रक्त बाहर आता है अथवा किञ्चित गर्भाशयके अन्तरपिण्डमें ही रक्तस्राव रहता है. यदि जरायुका विशेप भाग पृथक् पडा हो तो विशेप रक्तस्राव होता है। जरायुके छूटकर पडनेके कारण कितने ही हैं जैसे कि स्त्रीको पछाड लगनेसे धक्का लगनेसे मारनेसे और किसी प्रकारकी हरकत पहुंचनेसे जोर करनेसे किसी प्रकारका अति परिश्रम करनेसे गाडीकी सवारीमें हचका लगनेसे अथवा किसी प्रकारका मनोविकार होनेसे इत्यादि कारणोंसे रक्तप्रवाह होता है। रक्तप्रवाहके विशेप चिह्न इस प्रकारसे होते हैं। यदि रक्तस्राव थोडा हो तो विशेष चिह्न जाननेमें नहीं आते। परन्तु विशेष रक्तप्रवाह हो तो नाडीकी गति तीव्र और निर्बल होती है नेत्रोंके आगे स्त्रीको अंधकार मालूम होता है और कानोंमें वोंघाट शब्द मालूम होता है शरीर शीतल पड जाता है और स्त्रीका मुख फीका पड जाता है शरीरमें वेचैनी और हाथ पैरोंमें हडफूटन होती है। श्वास तथा मूर्च्छा उत्पन्न होती है, यदि ऐसे चिह्नोंवाला रक्तप्रवाह बन्द न हो तो स्त्रीकी मृत्यु होना संभव है ऊपर कथन कर चुके हैं कि रक्तप्रवाह बाहर दीखता है अथवा अन्दर ही रहता है। यह स्थिति नेत्रोंसे चिकित्सकको स्वयं देखनी चाहिये इस रक्त-प्रवाहकी स्थिति इस प्रकारसे होती है कि प्रत्येक समय पर प्रसव होनेके प्रथमकीसी ऐंठन और पीडा होती है और ऐंठन तथा पीडाके आनेके समय रक्तप्रवाह वन्द हो जाता है और ऐंठन तथा पीडाके वन्द होने पर पीछेसे रक्तप्रवाह जारी हो जाता है, प्रत्येक ऐंठन और पीडाके पीछे इसी प्रकारसे रक्तस्राव रहता है। इससे स्त्रीको मूर्च्छा आती ह तब रक्तप्रवाह बन्द रहता है और जब स्त्री चैतन्य होवे तब पुनः रक्तप्रवाह होने लगता है। इस प्रकारके रक्तस्रावसे बहुत कम स्त्रियोंका जीवन स्थिर रहता है।

उपाय इस व्याधिका विशेप सावधानीसे करना चाहिये, क्योंकि रक्तके आश्रित ही प्रत्येक मनुष्यका जीवन है। यदि शरीरमेंसे रक्त अधिक निकल जावे तो मनुष्यके जीवनका अन्त हो जाता है। प्रसवसे पूर्व समयमें जो रक्तप्रवाह थोडा होय और प्रसव होनेके समयमें अधिक समयका अन्तर दीख पडे तो स्त्रीको सुलाकर विस्तर पर रखना चाहिये। और ग्राही औपध जैसे कि शुगरलेड ग्यालिक आसिड सल्फयुरीक आसिड और अफीम व अफीमका सत्व मोर्फिया

इनको परिमित मात्रासे देने पर लाभ पहुँचेगा। रक्तप्रवाह बन्द न हो तो योनिमें कपडेकी मुष्टिक प्रमाण बत्ती बनाकर रखे इससे प्रसव होनेमें भी सहायता मिलती है। क्योंकि योनि-मार्गकी स्नायु विस्तृत हो जाती है, यदि रक्त प्रवाह अधिक हो तो जैसे शीघ्र प्रसव हो जावे वैसा ही उत्तम समझना चाहिये नहीं तो बालकके जीवनको हानि पहुँचती है। एक तर्फसे तो योनिमें कपडेकी बत्ती ठूंसकर लगाना दूसरी तर्फसे पेटके ऊपर पट्टा बांधकर रखे। और रक्तस्राव होनेसे कमलमुख नर्म कोमल हो जाता है इससे सरलतापूर्वक चौडा हो जाता है और इस समय ऐंठन और पीडा उत्तम तौरसे आती हो तो गर्भजल थैलीके पडत (पोतडी) को फोड देना चाहिये, इस पडतके फोड़ते ही गर्भाशय अधिक संकुचित हो रक्तप्रवाह कम हो जायगा। गर्भाशयके संकोच करनेके लिये अरगटकी परिमित मात्रा स्त्रीको देनी चाहिये। योनिमार्गमें कपडेका मुष्टियोग भरने तथा उपरोक्त उपायसे भी रक्तप्रवाह बन्द न हो तो कमलमुखको रबडकी थैलीसे (इस थैलीकी विधि पूर्व लिखी गई है) शीघ्र विस्तृत करना और जब कमलमुख विस्तृत हो जावे तब बालकको चरण भ्रमण क्रियासे अथवा प्रसव चीमटाकी सहायतासे बाहर निकाल लेना। कदाचित जो बालक गर्भाशयमें ही मृत्यु पा चुका हो तो उसको शिर भेदन करके शीघ्र ही निकाल लेना। जो कदाचित अति. रक्तस्रावसे स्त्रीका जीवन जोखममें जान पडे तो दूसरे मनुष्यका रक्त उस स्त्रीके शरीरमें पहुँचानेकी आवश्यकता पडती है। दूसरे मनुष्यके शरीरसे रक्त पहुँचानेकी विधि नीचे देखो, जिस स्त्रीका अधिक रक्तस्राव हो गया हो तो उसकी रक्तक्षीणता मृत्यु उत्पन्न करती है। उसके लिये दूसरे मनुष्यका अथवा पशुका रक्त शरीरमें फस्दके द्वारा पहुँचाना चाहिये। किसी मजबूत आरोग्य तथा जिसके शरीरमें रक्तकी अधिकता होय ऐसे मनुष्यका फस्दमेंसे यन्त्रकी मारफत परआई रोगीकी फस्दमें रक्त पहुंचाना। यदि मनुष्यका रक्त पहुँचानेको न मिले तो बकरेका रक्त लेकर उसको (फीब्रीन) निकाल कर और रक्तकी पिचकारी भर कर आइस्तेसे रोगीके हाथकी रक्तवाही शिरामें भर देवे यह रक्त पहुँचानेकी प्रक्रिया प्राचीन कालकी है। प्राचीन कालके लोगोंकी ऐसी धारणा थी कि वृद्ध मनुष्यके शरीरमें तरुण मनुष्यका रक्त पहुँच जानेसे वृद्ध मनुष्य पुनः तरुण हो जाता है। रक्त निकालने व दूसरे मनुष्यके शरीरमें रक्त पहुँचानेके लिये हाथकी कोहनीके ऊपरकी रक्तवाही शिरा सबसे उत्तम समझी जाती है।

आकृति नं० ८८ देखो।

अधोगत जरायु (प्लासेंटाप्रीव्या) जब कि कमलमुखके आसपास जरायु आई हुई हो तो उसको अधोगत जरायु कहते हैं। स्वाभाविक रीतिसे जरायु गर्भाशयके ऊपरके भागमें उत्पन्न होती है याने स्त्रीका रक्त गर्भाशयमें होकर जरायुमें पहुंचता है और

इसी रक्तसे गर्भस्थ बालकका पोषण होता है सदैव बालकका जन्म होनेके पीछे जरायु निकल आती है। परन्तु जब आंवल (जरायु) अधोगत आई हुई होय तब प्रसव होनेके पूर्व ही वह छूटकर पडने लगती है और इससे रक्तावस्राव होता है, अधोगत जरायु होय तब रक्तप्रवाह हुए विदून रहता ही नहीं, इस लिये इसको अमुक रक्तप्रवाह कहते हैं। इसके विशेष चिह्न इस प्रकारसे होते हैं कि जरायु अधोगत कमल मुखके आसपास एक प्रकारसे अपवाद रूप किञ्चित् ही देखनेमें आती है, परन्तु जब वहां होय तब अति रक्तप्रवाह होता है। केवल रक्त अधिक स्राव होता है। इतना ही नहीं किन्तु एका-एकी किसी कारणक बगैरही वहने लगता है और पीछ रक्तस्रावका प्रवाह अपने आप बन्द हो जाता है और आठ व पन्द्रह दिवस पीछे पुनः वहने लगता है। विशेष करके आठवां महीना पूर्ण होने पर और कभी इसके कुछ दिवस प्रथम ही प्रथम रक्तप्रवाह होता दीखता है, जैसे २ गर्भके दिवस पूर्ण होते जाते हैं तैसे २ रक्तप्रवाह अधिक होता है। योनिमें अंगुली प्रवेश करके परीक्षा करनेसे कमलमुख मोटा नरम और स्निग्ध माळूम होता ह और उसमें नाडीकी गतिके समान ठपका लगता है। जरायु बराबर कमलमुखके मध्यमें आनकर रहती है आर कमलमुखके किनारोंके ऊपर लगी रहती है, जो बराबर कमलमुखके मध्यमें लगी हुई हो तो अंगुलीके स्पर्शसे नरम रक्तका लोथडा होय ऐसा समस्त कमलमुखमें आई हुइ माळूम होती है। जो कमलमुखके किनारेके ऊपर हो तो केवलमात्र एक तरफ ही माळूम होती है और दूसरे तर्फ पडत तथा गर्भस्थ बालकका भाग माळूम होता है। प्रसव काल शुरू होवे तब रक्तप्रवाह बढने लगता है जैसे २ गर्भाशय संकुचित होय और कमलमुख विस्तृत होने लगे तैसे २ जरायुके सम्बन्धकी रक्त नलियां टूटकर रक्तका प्रवाह चलता है और ऐंठन तथा पीडा होती है त्यों त्यों रक्त अधिक निकलता है और ऐंठन पीडा बन्द होय तब रक्तप्रवाह कम होता है, यह अधोगत जरायुका प्रवाह अकस्मात् प्रवाहसे पृथक् नीचेकी निशानीसे देख सक्ते हैं। अकस्मात प्रवाहमें ऐंठनके साथ रक्त बन्द होता और ऐंठन बन्द होने पर बीचके समयमें याने एक ऐंठन समाप्त होवे, दूसरी आवे इसके बीचके समयमें रक्तस्राव होता है। अंगुली डालकर देखनेसे गर्भजल थैली अथवा कोई गर्भस्थ बालकका भाग अंगुलीसे स्पर्श होगा कमलमुखका भाग पतला होता ह और रक्तप्रवाह होनेका कुछ भी कारण माळूम पड जाता ह, जैसे कि किसी प्रकार अभिघात व मारपछाड इत्यादि अधोगत जरायुके प्रवाहमें ऐंठन पीडा आती है, उस समय रक्तका अधिक प्रवाह होता है और ऐंठन पीडा बन्द होय उस समय रक्तका प्रवाह कम होता है। कमलमुखके अन्दर नर्म गावा जैसी कि जरायु माळूम होती है कमलमुख

मोटा तथा उसके अन्दर नाडीकी गतिके समान ठपका होता है, किसीभी कारणके शिवाय किसी समय स्त्री भरपूर निद्रामें होय उस समय ही रक्तप्रवाह एकदम आरम्भ हो जाता ह और पीछे एकदम बन्द पड जाता है विशेष रक्त निकलनेसे जो शारीरक चिह्न होत हैं वे पूर्व लिखे गये हैं।

इस रक्तप्रवाहका उपाय इस प्रकारसे स्त्रीचिकित्सकको करना चाहिये कि जो प्रसव होनेके समयमें कितनेही दिवसका विलम्ब दखि और स्त्रीके शरीरसे रक्त प्रवाह अधिक न दीख पडे तो इस स्थातिके न्यून रक्तस्रावको बन्द करनेका उपाय कर स्त्रीको बिस्तर पर सुलाकर शान्तिसे रखना चाहिये । और (श्युगर लेड) दो ग्रेन (डील्युट आसेटीक आसिड) आधा ड्राम इन दोनोंको एक औंस जलमें मिलाकर प्रत्येक दो घंटेके अन्तरसे इसी मात्रासे पिलाता रहे । अथवा लाडेनम १५ बिन्दु ग्यालिक आसिड १५ ग्रेन उपरोक्त विधिसे जलमें मिलाके पिलावे, अगर रक्तप्रवाह अधिक होता हो तो बालकका प्रसव शीघ्र हो जावे ऐसा उपचार करना चाहिये। कमलमुख बराबर विस्तृत हो जावे तभी बालकको चरण भ्रमण करक निकाल लेना चाहिये । यदि कमलमुख विस्तृत होनेके पूर्व रक्त प्रवाह बन्द करना ही उत्तम समझा जावे तो कमलमुख तथा योनिमार्गमें कोमल कपडेकी बत्ती बनाकर शीशीकी डाटके समान रखना चाहिये । इससे रक्त प्रवाह बन्द हागा, यदि इस दरमियानमें ऐंठन और पीडा आवे और उससे कमलमुख चौडा विस्तृत होय. तो बत्ती लगानेका उपाय न करना और एठन तथा पीडा बराबर न आती होय तो गर्भपडत (पोतडी) को फोड देना और आवश्यकता पडे तो अरगटकी मात्रा स्त्रीको द स्त्रीके पेटके ऊपर सक्त पट्टा बांध देना चाहिय । इससे बालकके मस्तकका दबाव कमलमुख तथा जरायुके ऊपर पडनेसे रक्तप्रवाहका मार्ग बन्द हो जायगा और अधोगत जरायु होनेसे कमलमुख नरम (कोमल) होता ह, इसस कमलमुख शीघ्र विस्तृत हो जाता है । कदाचित् इतने उपाय करने पर भी रक्तप्रवाह जारी रहे और कमलमुख विस्तृत न होय तो रबडकी थैली कमलमुखमें प्रवेश करके वायु भरकर (यह विधि ऊपर लिखी गई है) कमलमुखको विस्तृत करे । कमलमुख ½ स ¾ इंचके प्रमाण तक विस्तृत हुआ होय तो कमलमुख नर्म होनेसे उसमें हाथ जा सक्ता है, इस लिये बालकका चरण भ्रमण करके प्रसव करा देवे इसमें विलम्ब न करना चाहिये । अधोगत जरायुके होनेसे अति रक्तप्रवाह होता है, यदि इस दशाका रक्तप्रवाह अति उग्ररूपसे हो तो गर्भस्थ बालक और उसकी माता दोनोंका जीव जोखममें हो जाता ह । ऊपरके लिखे हुए उपचारोंमें दोनोंकी जान बचानेका हेतु रखा गया है । जब कि स्त्रीके शरीरमसे अधिक रक्त प्रवाह हो जाता ह तो उसकी नाडी अति

क्षीण हो जाती है और शरीर ठंढा पड जाता ह, श्वास तथा घबराहट व्याकुलतादि ऐसे भयंकर चिह्न जान पडें तो बालककी जानकी इच्छा न करते हुए स्त्रीके जीवनकी रक्षाका साहस करना चाहिये इस समय पर बालकको फेरकर शीघ्र प्रसव कराना चाहिये, इस क्रियाके सम्रासे स्त्रीकी जानको ईजा लग जाती है इस लिये इस समय पर कमलमुखमें हाथ प्रवेश करके जरायुको गर्भाशयमेंसे पृथक् कर देवे । और एक्स्ट्राकट आफ अरगट १ ड्राम लाडेनम २० बिन्दुसे लेकर ३० बिन्दु पर्यंत और ब्रांडी १ औंस इन तीनोंको मिलाकर पानीमें संयुक्त करके स्त्रीको पिलावे इसके वाद ऐंठन और पीडा आनेसे वालक और जरायु बाहर निकलनेको प्रयत्न करेंगे । जो बालक और जरायु बाहर न निकले तो स्त्रीको सावधान करके चीमटाके आश्रयसे अथवा चरण भ्रमण करके बालकको गर्भाशयसे निकाल लेवे और प्रसवके अनन्तर जो रक्तप्रवाह होता है (पोष्टमारटम् हेमरेजा) बालकका प्रसव होनेके बाद रक्तप्रवाह होता है वह जरायु निकलनेके प्रथम अथवा पीछे होता है । और प्रथम कारण यह कि जरायु अन्दर रह जाती है । इसक विशेष कारणोंका वर्णन ऊपर हो चुका है गर्भाशय संकुचित न होय और ढीला रहे इससे अथवा गर्भाशय नियमविरुद्ध संकुचितं होय इससे और जरायुका गर्भाशयके साथ सम्बन्ध रहे इससे जरायु इन कारणोंसे भी अन्दर रह जाती है । इस स्थितिका उपाय इस प्रकारसे है कि गर्भाशयसे सम्बन्ध होनेके कारणसे अथवा गर्भाशयके नियमविरुद्ध संकुचित होनेसे जरायु रह गई हो तो गर्भाशयमें चिकित्सक अपना हाथ प्रवेश करके जरायुको बाहर निकाल लेनेसे रक्तप्रवाह बन्द हो जाता है । यदि गर्भाशय ढीला रहा होय और इसी कारणसे रक्तप्रवाह होता होय अथवा जरायु न निकलती होय तो अरगट्की परिमित मात्रा स्त्रीको देनी चाहिये और गर्भाशयके ऊपरसे स्त्रीके पेटको दावना चाहिये । और योनिमुख तथा पेडूके ऊपर बर्फ व शीतल जलका भीगा हुआ कपडा रखना चाहिये और उस कपडेको हर समय शीतल जलसे तर करके रखना चाहिये । अथवा ऊंचेसे शीतल जलकी धार मारनी चाहिये, अथवा फिलटरमें पानी भरके रबडकी पैंप योनिमें लगाकर शीतल जल डालते रहना । इस शीतल उपचारसे गर्भाशय संकुचित होने विना नहीं रह सक्ता, यदि गर्भाशयके संकुचित होनेसे भी जरायु बाहर न आवे तो चिकित्सक अपना हाथ गर्भाशयमें प्रवेश करके निकाल लेवे प्रायः गर्भाशयमें हाथ प्रवेश करनेसे गर्भाशय संकुचित होता है जब कि जरायु गर्भाशयमें अन्दर हो तो उसके निकालनेके लिये चिकित्सकको एक हाथ गर्भाशयमें प्रवेश करना पडता है । उस समय पर स्त्री चिकित्सक अपने दूसरे हाथका दवाव गर्भाशयके ठिकाने स्त्रीके पेटके ऊपर रखे इससे गर्भाशय बराबर संकुचित होगा । दूसरा

कारण इस प्रकारसे है कि किसी २ समय पर किसी २ स्त्रीको जरायु निकलनेके पीछे रक्तप्रवाह जारी होता है । यह रक्तप्रवाह गर्भाशयकी निर्बलता और ढीला रहनेके कारणसे होता है, यह प्रवाह भी किसी २ स्त्रीको अति उग्र रूपसे होता है । और उसको बन्द करनेमें किसी २ समय पर बडी ही कठिनता पडती है । यह रक्तप्रवाह जरायुके निकलने पीछे तुरन्त ही होता है । अथवा किसीको कुछ समयके बाद भी होता है । और अकस्मात् एकदम रक्तका प्रवाह चलने लगता है । और पेटके ऊपर हाथ रखनेसे गर्भाशयके ऊपर दाबकर देखा जावे तो गर्भाशयका भाग गोल व कठिन नहीं लगता किंतु ढीला लोथडासा मालूम होता ह योनिमार्गके अन्दर रक्तके छींछडे और ग्रन्थी भरी रहती है । और रक्तस्रावसे जो २ चिह्न शरीरमें होते हैं वे इस ग्रन्थके डाक्टरी प्रकरणमें देखना चाहिये ।

इस व्याधिका उपाय करनेमें विलम्ब करना चाहिये, जहांतक हो सके तत्काल ही इसका उपाय करे तुरन्तही लाडेनम तथा ब्रांडीकी मात्रा देना स्त्रीको शुरू कर देवे और जिंस २ स्थिति पर जैसी २ औषधकी आवश्यकता समझी जावे बारी बारीसें देना चाहिये । अरगटकी मात्रा देनी तथा ऊंचेसे शीतल जलकी धार मारनी । यदि बर्फ मिलसके तो लम्बी पतली डली बर्फ लेकर जलमें डालके उसकी तीक्ष्ण धारोंको गोल करके गर्भाशयके अन्दर रख देवे । बर्फ न मिले तो गर्भाशयमें हाथकी अंगुलियां प्रवेश करके रक्तके छींछेडे और ग्रन्थी निकाल लेवे और अति शीतल जलमें कपडा भिगोकर गर्भाशयमें रखे एक पतला शिरा कपडेका योनिमुखके बाहर रखे जब कपडा निकालनेका वक्त आवे तब उस शिरेको पकडके खींच लेवे । यदि इन उपायोंसे रक्त बन्द न होवे तो बिजली लगानी चाहिये बिजलीका एक गिलाश पेटके ऊपर रखना और दूसरा योनिद्वारमें रखना इससे गर्भाशय संकुचित होगा और रक्तप्रवाह बन्द हो जायगा, यदि इस उपायसे भी रक्तप्रवाह बन्द न हो तो (परकलोराईड ओफ् आयर्न) की गर्भाशयमें पिचकारी लगानी चाहिये । (स्ट्रांग परकलोराईड ओफ आयर्न) ४ ओंसमें १२ ओंस जल मिलाकर आइस्तेसे ऐसी विधिसे पिचकारी लगावे कि दवा गर्भाशयके ऊपरके भागम पहुँच जावे । इस दवामें शीतल जल साफ मिलाना चाहिये । और पिचकारी लगानेके समय गर्भाशयमें हवा न जाने पावे ऐसी सावधानीसे पिचकारी लगावे । जो रक्त नलियोंमेंसे निकलकर बहता है वह इस दवासे बन्द हो जायगा और रक्त नलियोंके मुख तुरन्त ठिठुरकर सुकड जाँयगे और रक्तका प्रवाह रुक जायगा । कदाचित् पिचकारी उपस्थित न हो तो (टिंचकर ओफ् स्टील एकसे दो ओंस पर्य्यन्त लेकर स्पेंजके टुकडेके ऊपर लपेट कर गर्भाशयके अन्दर जहांसे रक्तस्राव होता होय उस ठिकाने पर दाब कर रख देवे और स्पेंजके

एक शिरेपर मजबूत कपडाकी धजी व फीता बांध लेवे और उसको योनिमुखसे बाहर रखे दूसरे व तीसरे दिवस निकालना होय जब उस धजी व फीताको पकडके आइस्ते २ खींचकर निकाल देवे, इससे रक्तप्रवाह बन्द हो जायगा। जबकि स्त्रीका रक्तप्रवाह अत्यन्त विशेष हो गया होय और शरीर निर्बल तथा क्षीण हो गया हो तो स्त्री मृतकके समान हो जाती है, तब ऐसी स्थितिवाली स्त्रीको बचानेके लिये दूसरे मनुष्यका रक्त जो कि शुद्ध हो तो उस क्षीण रक्त स्त्रीके शरीरमें प्रवेश करनेकी आवश्यकता होती है इस प्रकार रक्त प्रवेश करनेकी दो तीन प्रक्रिया हैं। एक प्रक्रियाकी आकृति ऊपर इसी रक्तप्रवाह प्रकरणमें दी गई है जिसके शरीरमेंसे रक्त लिया जाय और जिसके शरीरमें रक्त प्रवेश किया जाय दोनोंकी कोहनीके ऊपर रक्तवाही शिराकी फस्दमें यन्त्रका शिरा लगावे और दूसरा शिरा स्त्रीकी रक्तवाही शिरामें लगाकर खडके गोलाको दाबकर रक्त पहुँचावे। इस यन्त्रकी क्रियासे तन्दुरुस्त अधिक रक्तवाले मनुष्यका रक्त क्षीणरक्ता स्त्रीकी कोहनीके ऊपरकी रक्तवाही शिरामें रक्त पहुँच कर सब शरीरमें फिरने लगेगा। रक्त पहुंचानेकी दूसरी रीति यह भी है कि प्रथम रक्त निकाल कर चीनी व कांचका प्याला भर लेना आठ व दश औंस रक्त निकालना और १० । १५ विन्दु आमोनिया डालकर मिला देना कि जिससे रक्त अधिक घनरूप न हो जावे। और पिचकारीमें रक्त भरकर स्त्रीकी रक्तवाही शिरामें पहुचावे। और रक्त पहुंचानेकी तीसरी रीति इस प्रकारसे है कि निकाले हुए रक्तमेंसे (फीब्रिन) को निकाल कर पृथक कर लेवे और रक्तको छानकर पिचकारीके जरिये स्त्रीकी फस्दमें पहुंचावे।

डाक्टरीसे प्रसवसमयके रक्तप्रवाहका प्रकरण समाप्त।

डाक्टरीसे प्रसूता स्त्रीकी हिक्का (हिचकीकी चिकित्सा)
(प्यरपरल कवल झन्स)

हिचकीकी व्याधि प्रायः अनेक अवस्थामें अनेक मनुष्योंको होती है, परन्तु प्रसूता अवस्थामें जो हिचकी स्त्रीको होती है उसको प्रसूता हिचकी कहते हैं और यह एक प्रकारसे विशेष भयंकर व्याधि समझी जाती है। यह हिचकी किसी समय पर किसी २ स्त्रीको गर्भाधान समयमें होती है और किसी २ को प्रसव समयमें होती है और किसीको प्रसव होनेके पीछे होती है इस हिचकीके विशेष चिह्न नीचे लिखे प्रमाणे होते हैं, कितनीही स्त्रियोंको तो हिचकी आरम्भ होनेके पूर्व ही चिह्न देखनेमें आते हैं। जैस कि मुख तथा नेत्रोंका लाल होना कनपटीमें चस्का तथा पीडा होती है चक्कर भौंर आती है, कानोंमें घोंघाठ शब्द होता है, नेत्रोंमें तिमिर आता है किसी २ के

मस्तकके पीछेके भागमें तथा पेटमें अथवा छातीमें अति दर्द होता है और किसी स्त्रीको कुछ बेसुध (बेभान) पन भी मालूम होता है और कभी २ किसी २ स्त्रीके नेत्र चक्र वक्र फिरकर और स्त्री बिलकुल बेहोश हो जाती है। हिचकीका जोश उठ खडा होता है किसी २ समय पर किसी २ स्त्रीके ये उपरोक्त चिह्न पूर्ण पूर्वावस्थामें बिलकुल नहीं होते, एकदम हिचकी आरम्भ हो जाती है। इन हिचकियोंकी प्रथम गति मुख तथा गर्दनकी स्नायुओंमेंसे आरम्भ होती है और जिह्वा आगेको आ जाती है और दांत कटकटा कर उनमेंसे रक्त निकलता है, रक्त मसूडोंकी सन्धिमेंसे आता है और मुखमें झाग आते हैं और स्त्रीका चेहरा सूजकर भडभडायासा मालूम होता है। इसके बाद स्त्रीके हाथ पैर और शरीरकी सम्पूर्ण नसोंमें खेंचा तानी होने लगनी है और श्वास प्रश्वास कठिनतासे चलता है और इसके साथही आश्चर्य्य जनक घुरघुर शब्दकी आवाज कंठ नलीमेंसे आने लगती है और मलमूत्र स्त्री बिस्तर पर त्याग देती है, उसको अपने शरीरकी अवस्था मालूम नहीं रहती। मस्तकसे लेकर पैर पर्य्यन्त खींचातानी होकर किसी २ समय पीछे धीरे २ शरीर स्थिर हो जाता है, इसके अनन्तर सम्पूर्ण शरीर पर पसीना आता है नाडीकी गति तीव्र और कठिन चालपर हो जाती है। लेकिन पसीना आनेके अनन्तर नाडीकी गति शान्त और नर्म पड जाती है और स्त्रीका मुख स्वाभाविक स्थितिमें आ जाता है। मुखमेंसे जो झाग आते थे वे बन्द हो जाते हैं और नेत्र जो तीव्र हिचकीकी दशामें स्थिर हो गये हों तो इस स्थितिमें नेत्रकी पुतली फिरने लगती है और धीरे २ स्त्रीकी स्थिति सावधानीमें आती हुई मालूम होती है और कुछ समयमें सावधान हो जाती है। अथवा स्त्रीको निद्रा आ जाती है। पीछे स्त्रीको जाग्रत होय तब उससे उसके शरीरकी दशा पूछी जावे तो क्या २ हुआ था सो उसको कुछ भी स्मरण नहीं रहता, केवल इस पीछेकी दशामें स्त्रीका समस्त शरीर दूखता है मन मलीन शरीर सुस्त और चित्त व्यग्र रहता है। यदि इस प्रकार एक ही समय हिचकीका दौरा आनकर बन्द पड जावे अथवा अधिक व न्यून कालके अन्तरसे पुनः आती है। और दौरा होनेके पीछे बीचके समयमें स्त्री बिलकुल सावधान हो जाती है। किसी २ समय फिर स्त्रीकी असावधानीकी दशामें पुनः दौरा हो हिचकी आने लगती है। और किसी २ समय हिचकियोंके चिह्नमें विशेष अन्तर मालूम पडता है और किसी २ समय हिचकियोंके चिह्नमें विशेष अन्तर मालूम पडता है किसी २ समय हिचकी आनेके पीछे स्त्री विशेष प्रलाप करती है और उल जलजलू बकवाद करती है किसी २ समय कोई २ स्त्री हिचकीका दौरा होनेके पीछे कई घंटे पर्य्यन्त बेसुध पडी रहती है विशेष करके प्रसूतिकी हिचकी प्रसव कालके समयके अनकरीब तथा

प्रसव होनेके समयमें आती हैं और ऐसी हिचकीवाली स्त्रियोंके जो बालक उत्पन्न होते हैं वे प्रायः अन्दरसे ही $\frac{1}{3}$ भाग मृतक होते हैं और प्रसव होनेके अनन्तर जो हिचकी आती है वे कभी २ किसी २ स्त्रीको ही आती हैं। इन हिचकियोंकी विशेष तसखीस (निदान) इस प्रकारसे करनेमें आता है कि गर्भिणी स्त्रीको शोथ उत्पन्न हुआ होय अथवा स्त्रीके मूत्रमें (अल्ब्युमीन) जाता होय ऐसी स्थितिवाली स्त्रीको प्रसवसमयमें हिचकी उत्पन्न होना विशेष संभव है और जितनी स्त्रियोंको हिचकीका रोग लगता है उनमेंसे $\frac{1}{4}$ भाग स्त्रियोंकी अनुमानसे मृत्यु हो जाती है। इस प्रसूति अवस्थाकी हिचकियोंकी प्रायः वातका हिचकियोंसे विशेष अंशमें ऐक्यता मिलती है, परन्तु वातजन्य हिचकियां अधिक समय पर्य्यन्त चलती हैं और वातजन्य हिचकियोंमें घुरघुर शब्द नहीं होता। हीस्टीरीयाकी हिचकी तथा मगजमें रक्तका वेग चढनेसे जो हिचकी उत्पन्न होती हैं उनसे तथा अन्य कारणोंसे जो हिचकी उत्पन्न होती है उन सबसे यह हिचकी पृथक् ही है । हीस्टीरीयाकी हिचकीके समय मुखमेंसे झाग नहीं आते और मुखकी स्नायुमें खिचाव नहीं होता, मुखके ऊपर शीतल जलके छींटे मारनेसे होस और चैतन्यता आ जाती है। परन्तु इन हिचकियोंमें इस क्रियाके करनेसे सावधानी नहीं आती है, मस्तिष्कमें रक्तका प्रवाह चढ जानेसे जो हिचकियां आती हैं उनमें भी मुखमेंसे झाग नहीं आते हैं । जीभ नहीं कचराती और हिचकी निवृत्त होनेके बाद विशेष करके शरीरका कोई भाग रह जाता है। इस व्याधिकी चिकित्सा नीचे लिखे अनुसार स्त्री चिकित्सकको करना चाहिये ।

हिचकीकी चिकित्सा ।

ऊपर लिखेहुए चिह्न जो हिचकी उत्पन्न होनेके पूर्व ही होते हैं वे पूर्णरूपसे चिकित्सकको मालूम पडजावें उसी समय रेचक औषध देकर दस्त कराने चाहिये जब हिचकीका आना आरम्भ हो स्त्रीके शरीरको कुछ कष्ट न पहुंचे तो स्त्रीको शरीरको कुछ कष्ट न पहुंचे तो स्त्रीको आरामसे बिस्तर पर सुला स्त्रीके मुखके अन्दर दोनों जावडोंके दाढ दांतके बीचमें एक कठिन लकडीका टुकडा जो कि बोतलके कागकी आकृतिका हो रख देना चाहिये। यदि स्त्रीका शरीर अधिक रक्त संयुक्त होय और लमना तथा गर्दनकी नाडियां उछलती होय तो फस्द खोलकर कुछ रक्त निकाल देना उचित् है। परन्तु जो स्त्री रक्त मोक्षणसे निर्बल होनेकी गति पर पहुंचे तो केवल मात्र साल्टादिका जल्प देकर ही दोषको निर्बल करे, रक्त निकालनेकी आवश्यकता नहीं । स्त्रीके शिरके ऊपर शीतल जलका कपडा भिगोकर रखना तथा बर्फ मिलती होय तो बर्फ रखना । यदि अफीमकी परिमित मात्रा दी जावे तो हिचकीके वास्ते उत्तम असर करती है। क्लोरलहाईड्रेट २० से लेकर ३० ग्रेन पर्य्यन्तकी मात्रा

तीन २ घंटेके अन्तरसे देनी उचित है। इसके देनेसे प्रायः कितनी ही स्त्रियोंकी हिचकी निवृत्त हो जाती हैं, कदाचित् स्त्री अधिक समय पर्य्यन्त बेहोस रहे तो स्त्रियोंकी मूत्रशलाका मूत्रनलीमें प्रवेश करके उसका मूत्र निकाल लेना चाहिये, इस कार्यको भूलना नहीं। कलोरोफोर्म सुंघाकर स्त्रीको बेहोस रखनेसे आती हुई हिचकी बन्द हो जाती है, इस प्रकार कई घंटेतक कलोरोफार्मके असरसे स्त्रीको वेहोश रखनेमें किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुंचती। इस बीचमें पीडा शुरू होकर बालकके प्रसव होनेमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पहुंचती। और इस समय पर कलोरोफार्म सुंघानेवाला चिकित्सक विशेप सावधानी रक्खे, प्रसव समयमें हिचकी उत्पन्न हुई होय तो बालकके जन्मनेके प्रथम कुछ बन्द होनेकी संभावना थोडी रहती है। परन्तु बालकके जन्म होनेके पीछे तो प्रायः बन्द हो जाती हैं। इस लिये जैसे बने तैसे शीघ्र प्रसव करा देना चाहिये। यदि स्त्रीके गर्भाशयका कमलमुख खुल गया होय तो चीमटा शस्त्रकी सहायतासे अथवा बालकका चरण भ्रमण करके निकाल लेना उचित है। बाद जहांतक चीमटासे बालक बाहर निकल आवे तो उसको शीघ्र निकाल लेना चाहिये। यहांतक चरण भ्रमणकी प्रक्रिया न करे कदाचित् इस अर्शेमें कमलमुख न खुला होय तो कमलमुख विस्तृत करनेका उपाय करना चाहिये। परन्तु जो कमलमुख पूर्ण रूपसे न खुला होय तो बालकके निकालनेका प्रयत्न कदापि भूलकर न करना। क्योंकि ऐसा करनेसे विशेप हिचकी आनेकी संभावना रहती है, जो कदाचित् हिचकी विशेप जोशसे आती होय और गर्भाशयमें प्रसव होनेकी कोई विशेप क्रिया न दीखती होय और गर्भाशय जडत्व भावमें स्थिर हो और शीघ्र प्रसवका विशेष चिह्न न दीख स्त्रीकी शक्ति क्षीण होती हुई जान पडे तो चीमटा शस्त्रकी सहायतासे प्रसव करानेसे अथवा चरण भ्रमण क्रियासे प्रसव करानेसे स्त्रीकी हिचाकियेंमें कुछ अधिकता मालूम पडे तो गर्भस्थ बालकका शिर भेदन करके प्रसव करानेके अतिरिक्त स्त्रीकी जानके बचानेवाला एक भी इलाज नहीं दखि पडता। स्त्रीको हिचकी उत्पन्न होकर बन्द हो जानेके पीछे अनेक समय देखा गया है कि विशेप करके बालक मृतक ही उत्पन्न होता है। इस लियें स्त्री चिकित्सकको उचित है कि इस अवसर पर स्त्रीकी जानको बचानेकी विशेष चेष्टा और प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि बालककी जानकी अपेक्षा स्त्रीकी जान बचानेकी विशेष संभावना है। बालककी जान तो इस अवसर पर विशेष खतरेमें रहती है और स्त्रीकी जान बच जावेगी तो बालक होनेकी संभावना फिर भी हो सक्ती है। बालककी जानकी दरकार त्यागकर स्त्रीकी रक्षा चिकित्सकको करना उचित है। और हिचकी निवृत्त होनेके पीछे स्त्रीको निरुपद्रव जगहमें शान्तिके साथ रख पूर्ण रूपसे उसकी रक्षा कर

हलका आहार देना, अफीमकी परिमित मात्रा देना, जिससे उसको निद्रा आ जावे । अथवा कलोरल हाईड्रेटकी थोडी २ मात्रा कई दिवस पर्य्यन्त देते रहना और स्त्रीको दस्त साफ आवे तथा शरीरको शान्ति मिले ऐसे उपायसे उसकी रक्षा कर तन्दुरुस्त वनाना स्त्री चिकित्सकका मुख्य कर्त्तव्य है ।

डाक्टरीसे प्रसूति समयकी हिचकीकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे गर्भाशयके फट जानेका उपाय (रपचर ओफ युटरस)

गर्भाशयका फटना इस प्रकारसे होता है कि प्रसव कालके समयमें स्त्रीको पीडा और ऐंठन आनेसे गर्भाशय किसी समय फट जाता है । किसी २ स्त्रीका तो आरम्पार गर्भाशय फट जाता है, किसी २ के गर्भाशयमें अन्तर तथा वाह्य पडत मात्रही चिर जाता है। विशेषकरके यह फटाव छोटा ही होता है, परन्तु किसी २ समय पर किसी २ स्त्रीके गर्भाशयका फटाव ऐसा होता है कि आरम्पार फटकर गर्भाशयमेंसे वालक पेटमें निकल कर चला जाता है । गर्भाशयके फटनेके कई कारण होते हैं, जैसे कि पेडूमें तथा योनिमार्गके मृदु (कोमल) भागमें वालकको निकलनेके समय किसी प्रकारकी रुकावट होय अथवा उत्पन्न होनेके समय गर्भाशयमें वालक आडा हो जावे, इसके साथ ही जोर २ से स्त्रीको ऐंठन और पीडा आने लगे तो ऐसे अवसर पर प्रायः गर्भाशय फट जाता है । इसी प्रकार चरण भ्रमण करने और चीमटाकी सहायतासे प्रसव करानेमें भी कभी २ ऐसी ही दशामें गर्भाशय फट जाता है । अथवा गर्भवतीके पेटके ऊपर लात लगनेसे अथवा किसी प्रकारका धक्का लगनेसे व अन्य प्रकारका कोई अभिघात पहुंचनेसे भी गर्भाशय फट जाता है । गर्भाशयके फट जानेके विशेष चिह्न इस प्रकारसे होते हैं कि स्त्रीको जिस समय प्रसवकी ऐंठन और पीडा उठती होय उस समय अन्दर ऐसा माल्म होता है कि एकाएकी अन्दरमें किसी ठिकाने कोई भाग कटा जाता है व कूटता ह, ऐसी असह्य पीडा होने लगती है । इसके पीछे शीघ्रही ऐंठन और पीडा आनेसे वन्द हो जाती है । और स्त्रीका शरीर सिथिल हो जाता है, शरीरमेंसे पसीना निकलने लगता है, स्त्रीका मुख चिन्तातुर हो जाता है । वालक ऊंचा चढ जाता है और वालकके हाथ पैर स्त्रीके पेटमें स्पष्ट रूपसे दीखने लगते हैं, स्त्रीकी योनिमेंसे न्यूनाधिक रक्तस्राव होता है, स्त्रीको वमन होने लगती है, वमनमें अन्तके दर्जे चाय काफीके समान काला जल निकलता है स्त्रीकी नाडीकी गति क्षीण होने लगती है । और श्वास उत्पन्न होने लगता है यदि ऐसे चिह्न समस्त रूपसे होयँ तो स्त्री मृत्युको प्राप्त हो जाती है । जो इस प्रथम सद्या परसे स्त्री वच जावे तो स्त्रीके पेटके अन्दर शोथ उत्पन्न होकर तीव्र ज्वर उत्पन्न

हो जाता है। इससे भी किसी २ समय पर किसी २ स्त्रीकी मृत्यु हो जाती है, ऐसी दुष्ट और असह्य वेदनासे कोईही स्त्री बचती है; बाकी मृत्युके मुखमें प्रवेश करती हैं। इस व्याधिका उपाय यही है कि गर्भाशय फटनेके कुछ आसार शीघ्र ही चिकित्सक तथा स्त्रीको माल्म होने लगें तो शीघ्र ही गर्भाशयमेंसे प्रथम बालकको निकाल लेना उचित है। यदि कमलमुख कोमल और खुलाहुआ होय तो चीमटा शस्त्र प्रवेश करके बालकको तुरन्त निकाल लेवे। यदि बालक इतना ऊंचा होय कि चीमटाके अन्दर उसका शिर न आ सके तो शीघ्र ही चरण भ्रमण करके बालकको निकाल और चीमटा शस्त्र तथा चरण भ्रमण प्रक्रियासे भी बालक न निकल सके तो समझ ले कि अब शिर भेदन क्रियाके विदून बालक नहीं निकलेगा। यदि ऐसा निश्चय चिकित्सकको हो जावे तो शीघ्र ही शिर भेदन क्रिया करके बालकको निकाल लेवे, जो कदाचित बालक गर्भाशयके फट जानेसे स्त्रीके पेटके अन्दर चला गया होय और गर्भाशयके मार्गसे न निकल सक्ता होय ऐसा निश्चय पूर्ण रूपसे स्त्री चिकित्सकको हो जावे और कदाचित् बालक जीवित होय तो तुरन्त ही स्त्रीका उदर विदीर्ण करके बालकको निकाल लेवे। स्त्रीके बच जानेकी आशा होवे तो जो उस समय पर योग्य उपाय समझा जावे वह करना उचित है, स्त्रीको शान्ति देनेके लिये थोडी ब्रांडी देना अथवा परिमित मात्रासे अफीम मोरफीआ आदि दे, दूध साबूदाना आदि प्रवाही आहार देना। शोथ उत्पन्न हुआ होय व ज्वर उत्पन्न हुआ होय तो उनके उतारनेका उपाय जारी रखना, पेटके ऊपर सेंक व पोलटिस अथवा जो उपाय योग्य समझा जावे वह करना उचित है। इस स्थितिमें विशेष सावधानीसे उपाय करना चिकित्सकका पूर्ण कर्त्तव्य है।

डाक्टरीसे गर्भाशयके फट जानेकी चिकित्सा समाप्त।

डाक्टरीसे प्रसवके अनन्तर स्त्रीके गर्भाशयके टेढे (वक्र) पड जानेकी चिकित्सा (ईनवरझनओफपुटरस)

गर्भाशयका टेढापन व वक्रता यह बालकका जन्म होनेके पीछे ही कुछ गर्भाशय टेढा हो जाता है व मुड जाता है, ऐसा कि कानटोपीके समान गर्भाशयके ऊपरका भाग अन्दरकी तर्फ थोडा बैठ जाता है और किसी समय अंदर मुड कर ठेठ योनिद्वारके बाहर दीखने लगता है। गर्भाशयके वक्र होनेके कारण ये हैं कि एकाएक शीघ्रतासे प्रसवका होना, क्योंकि आइस्ते २ जो प्रसव होता है, उसमें बालक धीरे २ नीचेको सरकता आता है। उसी क्रमसे गर्भाशय भी ऊपरके भागसे खाली होकर संकुचित होता चला आता है और एकदम प्रसव होनेसे गर्भाशय एक साथ ही

खाली होकर मुड जाता है । और जरायुके निकालने नालको तोडनेसे अथवा जरायु और नालको कुछ खेंचातानीकी हरकत पहुँचनेसे अथवा प्रसव होनेके पीछे शीघ्र ही स्त्रीको वमन व खांसी आदिके लिये शारीरक जोर करने व झटका लगनेसे गर्भाशय अंदर मुड जाता है । इसके विशेष लक्षण इस प्रकारसे जान पडते हैं कि जैसे स्त्रीको मरोडामें जोर करना पडे उसी माफिक दर्द गर्भाशयके मुड जानेकी दशामें होता है, वांसा फटने लगे ऐसी पीडा मालूम होती है और रक्त प्रवाह होता है । वमन आने लगती है शरीरमेंसे पसीना छुटने लगता है तथा जी घवडाता है स्त्रीके पेटके ऊपर हाथ रखनेसे गर्भाशयका गोला मालूम नहीं पडता और योनिमार्गमें अंगुली प्रवेश करके परीक्षा करनेसे लाल रक्तके समान गुलगुला मुडाहुआ गर्भाशय जान पडता है । यदि योनि विस्तारक यंत्र लगाकर देखा जावे तो भी गर्भाशय मुडीहुई स्थितिमें दीख पडता है । इसका उपाय इस प्रकारसे करे कि जिस प्रकारसे हो सके उसी प्रकारसे शीघ्र गर्भाशयको दावकर सीधा करके उसको उसके नियत स्थानपर अंदरकी तर्फ ले जाकर स्थित करे । हाथ प्रवेश करके सम धारण एक समान जोरसे गर्भाशयको दवाकर गोल स्थितिमें लाकर ऊपरको चढाता जावे, इससे गर्भाशय ऊपरको चढ जावेगा । चढानेके समय हाथ भी गर्भाशयके साथ अंदरको ले जावे और उसको यथास्थान उसकी नियत स्थितिमें वैठाल देवे, कदाचित गर्भाशयके अंदर जरायु चिपटी हुई होय तो उसको हाथसे उखाडकर पीछ गर्भाशयको सीधा करके नियत स्थान पर स्थित करे । जो गर्भाशय अधिक समय पर्य्यन्त वाहर रहे तो उसके ऊपर शोथ उत्पन्न हो आता है और शोथ उत्पन्न हो जाने पर उसको नियत स्थानपर वैठालना वडाही कठिन हो जाता है । यदि ऐसी स्थितिमें गर्भाशय हो जावे तो जलका कपडा भीगाहुआ उसके ऊपर रखके आवश्यकता पडे तो स्त्रीको जुलाव देकर अथवा रक्त मोक्षण करके शोथको शान्त करे, जव सूजन उतर जावे तव गर्भाशयको ऊपर चढाकर सीधी स्थितिमें लाकर नियत स्थान पर वैठाले ।

डाक्टरीसे प्रसवके अनन्तर गर्भाशयकी वक्रताकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे प्रसवके अनन्तर स्त्रीको पादस्तम्भ व पादशोथ व्याधि ।
(फले गमेश्या डोलन्स)

यह व्याधि विशेष करके प्रसूता स्त्रियोंको होती है और आयुर्वेदके मतानुसार वात कफजन्य समझी जाती है । प्रसूता समयके अतिरिक्त भी किसी २ समय पर यह व्याधि हो जाती है और कितनेही पुरुषोंको भी यह व्याधि हो जाती है । विशेष

करके यह व्याधि वामें पैरमें होती है और किसी २ को दक्षिणमें होती है और कभी २ किसी २ के दोनों पैरोंमें भी होती देखी गई है। इस व्याधिके विशेष लक्षण इस प्रकारसे होते हैं कि यह रोग ठंढ तथा ज्वर आनकर आरम्भ होता है और आरम्भसे ही पीडा उत्पन्न होती है, पीडा स्त्रीके पेडू और कमरके अन्दर शुरू होकर जंघामें होकर पैरमें उतरती है। अथवा प्रथम पैरकी पिण्डलीमें उत्पन्न होकर ऊपरको जंघामें चढती है, इस रोगकी उत्पत्ति होनेसे स्त्रीके शरीरकी आकृति मन्द और शिथिल हो जाती है। इसके अनन्तर पैरकी पिण्डलीमें अधिक पीडा होने लग जाती है और सूजन उत्पन्न हो जाती है और पैर मोटा दीखता है परन्तु पैरकी रंगतमें कुछ फेरफार नहीं होता केवल मात्र जरा २ सफेद मालूम होता। है हाथका स्पर्श होनेसे दुःखता है यह दर्द मोटी शिराके ठिकाने पर विशेष मालूम होती है। विशेष करके जहां पीडा प्रथम आरम्भ हुई होय वहींसे सूजन चढने लगती है और पीछे नीचे अथवा ऊपर पीडाके अनुसार ही सूजन चढती है ऊपरकी त्वचा तनीहुई तथा चिलकती हुई दीख पडती है। यह सूजन अन्य साधारण सूजनके समान नहीं होता और इस सूजन पर अंगुली लगाकर दबानेसे खड्डा नहीं पडता, किन्तु सूजनके आरम्भमें अथवा उतरते समय पर दबानेसे कुछ थोडासा खड्डा मालूम पडता है पैरको नीचे रखनेसे इस सूजनमें कुछ अधिकता नहीं होती। केवल मात्र दर्द अधिक होता है और सूजन कठिन होती है, और इस सूजनमें छिद्र करनेसे जल नहीं वहता प्रायः सूजन विशेष करके शीघ्र चढ आती है थोडे घंटेमें ही पैर विशेष मोटा हो जाता है और भारी जान पडता है, जंघा तथा पैरकी मोटी शिरा कठिन डोराके समान हो जाती हैं। तथा जंघा और पैरके ऊपर किसी समय कठिन लाल रंगकी लकीरें मालूम पडती हैं और जंघाके मूल गांठें बंध जाती हैं। ये गांठें किसी समय पर पक भी जाती हैं, इस रोगके साथमें स्त्रीको ज्वर भी रहता है शरीर गर्म नाडीकी गति जल्दी चलती है, जीभ मैली रहती है। यह रोग थोडे दिवस व दो चार सप्ताह रहता है और इसके पीछे ज्वरादिकी तीव्र वेदना और तीक्ष्ण चिह्न शान्त होते जाते हैं। परन्तु पैरमें सूजन यथावत् रहती है अन्तके दर्जे सूजन भी उतरने लगती है, जब सूजन उतरने लगे तो पैरको दबानेसे सूजनमें शोथके समान खड्डा पड जाता है। विशेष दिवस याने एक महीनेसे भी ऊपर पैर जकडा हुआ निर्बल इस व्याधिसे रहता है। इस व्याधिसे किसी २ स्त्रीकी ही मृत्यु होती है नहीं तो कष्ट सहन करके प्रायः स्त्री अच्छी हो जाती हैं। ज्वरकी पीडा अधिक सहन करनी पडती है और किसी २ का पैर भी पक जाता है, पैरकी शिराके अन्दरसे दूषित रक्तका एकाध बिन्दु शुद्ध रक्तमें मिलकर शरीरके

रक्तमें फिरने लग जावे तो शरीरका सम्पूर्ण रक्त दूपित होकर किसी २ स्त्रीकी मृत्यु भी हो जाती है, क्योंकि इस व्याधिसे रक्त दूपित और जहरीला हो जाता है। यह व्याधि पैरकी शिरा और रसनलियोंके शोथसे उत्पन्न होती है।

इस व्याधिकी चिकित्सा इस प्रकारसे करनी चाहिये कि पैरके ऊपर टरपनटाईन लगा गर्म जलका सेंक देना उचित है, अथवा वारम्वार अलसीकी पोलटिस गर्मा-गर्म लगानी उचित है। उसके ऊपर फलालेनका कपडा लपेट देना तथा फलालेन न होय तो नवी रुईकी गद्दी कपडेके अन्दर रखके लपेटना और ऊपरसे कपडेकी पट्टी बांध देना। खानेकी औपध (कार्वोनेटओफआमोन्या) तथा कुनाईन और मार्फिया इनको परिमित मात्रासे देना चाहिये, यदि स्त्रीके शरीरमें विशेप निर्वलता मालूम पडे तो समय २ पर थोडी ब्रांडी देना और साल्ट आदिका हलका जुलाव देना। जव स्त्रीके पैरसे सूजन उतरने लगे तव पीनेकी दवा आयोडाईडपोटास तथा लोहका अर्क और कुनेन इत्यादि दवाको परिमित मात्रासे देना, तथा पैरके ऊपर लगानेको लीनीमेंट क्याम्फर, वेलोडोना अथवा आयोडीन लगाना चाहिये स्त्रीको हलका आहार दूध सावूदानादि दे विशेप हिफाजतसे रहना चाहिये।

डाक्टरीसे प्रसूता स्त्रीकी पाद शोथ व्याधिकी चिकित्सा समाप्त।

डाक्टरीसे सूतिका सन्निपात (प्यरपरलमेनीया)

आयुर्वेदमें प्रसूति स्त्रीकी प्रसवके अनन्तर जो व्याधि उत्पन्न होती है उनकी उत्पत्ति वात कफकी प्रधानतासे मानी गई है, उन सव व्याधियोंमें एक व्याधि मुख्य और वाकीकी व्याधियोंको उपद्रव माना गया है। इसी प्रकारसे डाक्टर महाशयोंने माना है, परन्तु व्याधिकी उत्पत्तिके कारणोंमें कुछ अन्तर रह जाता है। जैसे कि कितनी ही स्त्रियोंको प्रसव होनेके अनन्तर थोडे वहुत दिवसके वाद ज्वर उत्पन्न होकर चित्तभ्रम हो जाता है। इस व्याधिको सूतिका सन्निपात कहते हैं। सूतिका सन्निपात दो प्रकारका होता है। एक प्रकारका सूतिका सन्निपात विशेप करके प्रसव होनेके पीछे ही तुरन्त उत्पन्न हो आता है, इसके साथ ही स्त्रीको विशेप तीव्र ज्वर आता है, प्रसवकी क्रियासे निर्वल हुई स्त्री विशेप उन्मत्त हो जाती है। अनेक प्रकारके प्रलाप करती है इसका परिणाम यह होता है कि स्त्रीकी मृत्यु हो जाती है, इसको उन्मत्त सन्निपात कहते हैं। दूसरे प्रकारका सन्निपात विशेष करके प्रसव होनेके कितने ही दिवस पीछे उत्पन्न होता है, इसके साथ ज्वर उत्पन्न होता है और उन्मत्तपन इसमें नहीं होता, परन्तु स्त्रीका चित्त मलीन मन्द और निश्चेष्टित रहता है। यह व्याधि अधिक दिवस

पर्य्यन्त चलती है, इसको सिर्फ निश्चेष्टित सूतिका सन्निपात कहते हैं । प्रथम जो उन्मत्त सन्निपात कथन किया गया है उसके विशेष लक्षण इस प्रकारसे होते हैं कि इस व्याधिवाली स्त्रीको निद्रा नष्ट हो जाती है, मस्तकमें दर्द होता है शरीरमें बेचैनी रहती है तथा स्त्रीका स्वभाव चिडचिडाया हुआ रहता है । स्त्रीके मुखपर चिन्ता और फिकरमन्दी जाहिर होती है स्मरण रहित बेभान हो जाती है । नेत्र चक्रबक्र हो जाते हैं स्त्री अति उन्मत्त होकर प्रलाप और तूफान करने लगती है । पागलके समान मस्त होकर मस्ती करने लगती है तथा उठकर किसी २ समय भागनेकी चेष्टा करती है । किसी समय सुस्त होकर पडी रहती है, किसी समय उसके चित्तमें ऐसी तरङ्गें उठती हैं कि एक समान मस्ती और तूफान करती रहती है । और उसके आसपास समीपमें जो मनुष्य होवें उनके मारनेको दौडती है, स्त्रीके स्तनोंमें दूध कम हो जाता है । अथवा बिलकुल सूख जाता है अपने प्यारे बालककी जान लेनेको तैयार हो जाती है और गालियाँ देती है । ज्वरका वेग तीव्र आता है नाडी उछलतीहुई तीव्र गतिपर जल्दी २ चलती है दस्त कब्ज रहता है जीभपर विशेष मैल जम जाता है और उन्मत्तताका प्रबल वेग तथा तन्द्रामें डूबीहुई रहती है तथा दूसरे मनुष्यसे क्रुद्ध रहती है, अन्तके दर्जे अतिश्रमसे अशक्त होकर बेहोश हो मृत्युके मुखमें प्रवेश करती है । यदि उन्माद थोडा होय और निद्रा भी आती होय तो रोग विवश शान्त होनेकी संभावना रहती है, इस प्रबल व्याधिपरसे स्त्री बच भी जाती है । इस व्याधिके होनेके कारण इस प्रकारसे डाक्टर लोग मानते हैं कि उन्मत्त सन्निपात किसी समय मस्तिष्कके शोथके उत्पन्न होनेके कारणसे भी होता है और किसी समय स्त्रीके अतडीमें शोथ उत्पन्न हो जावे तो इस कारणसे भी उन्मत्त सन्निपात होता है । अथवा गर्भाशयमें प्रसवके पीछे कोई व्याधि उत्पन्न होय व ओझरीमें किसी प्रकारकी व्याधि उत्पन्न होय तो इन कारणोंसे भी सूतिका सन्निपात उत्पन्न होता है । किसी मनोविकारसे जैसे कि अति हर्ष, अति शोक तथा किसी प्रकारकी चिन्ता व फिकर व उन्माद इत्यादिसे भी उन्मत्त सन्निपात होता है । इस व्याधिका उपाय इस प्रकारसे करे कि प्रथम स्थितिमें सर्वत जुलाब देना आधा ड्राम जलप और चार व पांच ग्रेन क्यालोमल दोनों मिलाकर देनेसे जुलाब उत्तम रीतिसे आवेगा, उत्तम जुलाब होनेके अनन्तर ऐसी औषध देना कि जिससे स्त्रीको निद्रा आ जावे । जैसे कि अफीम व मोर्फिया इनकी परिमित मात्रा देवे । कदाचित् सन्निपात मगजके शोथके कारणसे उत्पन्न हुआ होय तो इस दशामें अफीम हानिकारक समझी जाती है और उपकारके बदले अपकार पहुंचता है । इस दशामें अफीमकी अपेक्षा कलोरलहाईड्रेट अधिक उपयोगी हो सक्ती है, इस दवाकी २० से

लेकर ४० ग्रेन पर्य्यन्त मात्रा देनेसे स्त्रीको निद्रा आ जाती है । स्त्रीको कुछ हानि पहुंचनेका भय नहीं रहता कलेरोफार्मे सुँघानेसे भी स्त्रीको लाभ पहुंचता है । जब स्त्रीकी शक्ति क्षीण होने लगे तो उस वक्त थोडी ब्रांडी आमोन्या तथा ताकत स्थिर रहे ऐसा हलका आहार देना चाहिये । मन्दसूतिका सन्निपातके विशेष लक्षण इस प्रकारसे होते हैं कि इस सन्निपातमें स्त्री हमेशाह अशक्त होती है प्रसव समयमें विशेष रक्तप्रवाह होनेके पीछे अथवा बालकको कितनेही दिवस पर्य्यन्त दुग्ध पिलानेसे स्त्रीकी शक्ति कम होकर मन्द सूतिका सन्निपात उत्पन्न होता है इस सन्निपातमें ज्वरका वेग तथा उन्मत्तताकी तरङ्ग नहीं होती स्त्री पागलकी तरहसे मन्द और व्यग्र चित्तसे रहती है, यह व्याधि अधिक समय पर्य्यन्त रहती है इसमें स्त्रीकी मृत्युका भय विशेष करके थोडा ही रहता है । इस व्याधिका उपाय चिकित्सक इस प्रकारसे करे कि स्त्रीकी शक्ति और ताकत बढे ऐसा आहार देना चाहिये, इसी प्रकार गुणवाली औषध भी देना उचित है । जैस कि लोहभस्म लोहका प्रवाही पदार्थ अर्क (लाईकर) कुनेन, नाईटोहाईट्रोकलोरीक आसिड इत्यादि औषधियोंको परिमित मात्रासे देवे और स्त्रीको दस्त साफ आता है ऐसी मृदु रेचक दवा देना भी उचित है, स्त्रीको निद्रा आवे उसका मन शान्त रहे इसके लिये अफीम मोर्फीया कलोरलहाईड्रेट हेनवेन कपूर अथवा भांग इत्यादिमेंसे उचित समझी जावे वे औषध परिमित मात्रासे देता रहे ।

डाक्टरीसे सूतिका सन्निपातकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे प्रसूति स्त्रियोंके सूतिका ज्वरकी चिकित्सा ।

सोवडकी अवस्थामें प्रसूता स्त्रियोंको कितने ही प्रकारका ज्वर उत्पन्न हो जाता है । इनमेंसे किसीको तो साधारण हलका ज्वर उत्पन्न होता है और किसी २ को तीव्र वेगसे बडा प्रबल ज्वर उत्पन्न होता है । इनमेंसे साधारण ज्वरको छोडकर तीव्र वेगवाले प्रबल ज्वरके तीन भेद करनेमें आते हैं । प्रथम भेदमें गर्भाशयके सम्बन्धसे होता है यह ज्वर गर्भाशयमें शोथ उत्पन्न हुआ होय तो ज्वर उसके उपद्रवसे उत्पन्न हुआ समझना चाहिये । दूसरे भेदमें ज्वर उत्पन्न होनेका मूल कारण किसी भी जातिका चेप होता है यह चेप फेफसा (लं) अथवा गर्भाशयमेंसे शारीरक रक्तमें प्रवेश करता है इसके मूलमें किसी प्रकारका शोथ उत्पन्न नहीं होता, परन्तु यह रक्त विकार होनेके पीछे स्त्रीपूर्ण अवस्था पर्य्यन्त जीवित रहे तो शरीरके कई भागोंमें शोथके चिह्न जान पडते हैं । इस ज्वरको डाक्टरी कायदेसे चेपीले ज्वरकी गणनामें समझा जाता है । तीसरे भेदका ज्वर किसी २ स्त्रीको पक्काशयके अवयवोंके विकारसे उत्पन्न हुआ माना जाता है । अब प्रथम भेदसे जो

गर्भाशयके शोथके कारणसे सूतिका ज्वर उत्पन्न होता है वह (पेरीटो नियमके) तथा गर्भाशयके अथवा गर्भाशयकी शिरा तथा गर्भाशयके उपांगोंमें शोथके उत्पन्न होनेसे होता है। उसके विशेष चिह्न इस प्रकारसे होते हैं, प्रसव होनेके पीछे पेटके अन्दर दर्द होने लगता है तथा पेडूके भाग दाबनेसे दर्द हो तो धीरे २ यह दर्द बढता जाता है। और पेटमें फैलता जाता है पेर लम्बा रखनेसे अधिक दर्द माल्रम होता है और पैरोंको मोडकर रखनेसे कम दर्द मालूम होता है। इसलिये अक्सर स्त्री अपने पैरोंको मुडेहुए रखती हैं, यह पीडा जैसे २ अधिक बढती जाती है वैसे २ ज्वरको वेग भी अधिक होता जाता है, किसी समय पर शीतका उभार आता है नाडी डूबीहुई (दबीहुई) तारके समान शीघ्र गतिसे चलती है, एक मिनिटमें १२० से लेकर १६० ठपका नाडीकी गतिके होते हैं। स्त्रीके शरीरकी चर्म जिल्द गर्म तथा रूखी हो जाती है। श्वास जरा कम और विशेष आकुलतासे चलता है, इसमें छातीका भाग हिलता है तथा पेटका भाग कम हिलता है स्त्रीकी जिह्वा सफेद रूखी क्षारवाली और जिह्वाका अग्र भाग लाल रंगका मध्य भाग खुरखुरा हो जाता है। कुछ समयके व्यतीत होनेसे स्त्रीका पेट फूल जाता है प्रथम वायुसे और जलसे फूल जाता है। पेटमें पीडा पेटके फूलनेसे स्नायुओंमें बनाव और वृद्धि असह्य मालूम होती है, प्रथम खाली उबकाई आती हैं और हिचकी आती हैं अथवा पीछेसे वमन आने लगती है, वमनमें पित्त अथवा काफीके काढेके समान काला पानी निकलता है। प्रसवके पीछे होनेवाला स्राव तथा स्तनोंमेंसे दुग्ध विशेष करके बन्द हो जाता है और दस्त कब्ज रहता है, मूत्र लाल रंगका थोडा २ उतरता है। स्त्रीका मुख फिकरमन्द शरीर ठंढा तथा आर्द्र (पसीनासे भीगाहुआ) रहता है नाडीकी गति अति शीघ्रगामी तथा वारीक होती है। स्त्रीका शरीर अति क्षीण निर्बलादि चिह्न प्रगट होकर शरीरका अन्त होता है। उपरोक्त कथन कियेहुए सम्पूर्ण चिह्न हरसमय देखनेमें नहीं आते, किसी समय पर दर्द न्यून होता है। ज्वर थोडा होता है, जब स्त्रीका शरीर बलवान् होय तो ज्वरादिक लक्षण (चिह्न) भी जोरावर होते हैं। जैसे २ स्त्री निर्बल होती जावे तैसे २ ज्वरादिक चिह्न भी निर्बल हो जाते हैं। जबकि गर्भाशयमें शोथ उत्पन्न हुआ होय तो गर्भाशयका आकार स्त्रीके पेटके अन्दर बडा मालूम पडता है और पेडूमें दर्द होता है और पेडूको दाबनेसे दर्द माल्रम पडता है मूत्र बडी कठिनतासे उतरता है। विशेष चिह्न ऊपर कथन किये गये हैं और (पेरी टोनीयम) के शोथके प्रमान लक्षण होते हैं। किसी २ समय गर्भाशयके उपाङ्गोंकी सूजन उत्पन्न हो जाती है, उसके चिह्न कुछ निर्बल और हलके होते हैं, पेडूकी एक बगलमात्रमें दर्द मालूम पडता है। किसी समय गर्भाशयकी शिराका शोथ उत्पन्न होता है, तब कप-

कपीके साथ ज्वर तीव्रतासे चढता है और मस्तकमें अधिक पीडा होती है प्रसवका स्राव तथा स्तनोंका दुग्ध बन्द हो जाता है । जलकी तृषा लगती है वमन आगे लगती है, पेटके अन्दर विशप दर्द नहीं जान पडता, थोडे समयक पाछ फुप्फुस कलेजा सन्धि इत्यादि भागोंमेंकी गांठ वंध जाती है । इस व्याधिसे स्त्रीकी मृत्यु हो जाती है, यदि इस व्याधिसे स्त्रीकी मृत्यु होवे तो १० । ११ । १२ दिवसके अन्दर हो जाती है । इस भयंकर व्याधिका उपचार नीचे लिखे अनुसार करना चाहिये ।

चिकित्सा ।

जिस ठिकाने पेटके ऊपर दर्द होता होय उस ठिकानेपर ६ से १२ पर्य्यन्त जलौका (जोंक) लगाकर रक्त निकाल देना चाहिये और उष्ण जलका सेंक करना अथवा अफीमके फल (पोस्तके डोडाका) काढा बनाकर उसमें फलालेनका कपडा भिगोकर दर्दके ठिकाने पर सेंक करे और पेटके ऊपर गर्मागर्म अलसीकी पोलिटिस रखे और दो दो घंटेके अन्तरसे बदलते रहना । आधा २ ग्रेन कफीमकी गोली बनाकर चारचार घंटेके अन्तरसे देना चाहिये, यदि चिकित्सक उचित समझे तो प्रत्येक गोलकि साथ १ ग्रेन क्यालोमल मिलाकर देवे । यदि स्त्रीके शरीरमें रक्तकी अधिकता दीख पडे शिरा वेधन (फस्द) खोलकर ४ व ५ ओंस रक्त मोक्षण करदेवे । यदि स्त्रीके पेटमें अधिक अफरा चढ आया होय तो चार ड्राम टरपेनटाईनका तैल और चार ड्राम एरंडीका तैल दोनोंको मिलाकर पिला देवे । इस स्थितिमें दस्तका आना उत्तम है और सफरेमें गर्म जलकी पिचकारी मारना । योनिमार्ग तथा गर्भाशयमें गर्म जलकी पिचकारी लगा योनिमार्ग तथा गर्भाशयको साफ रखना । यदि स्त्री निर्बल होने लगे तो ब्रांडी और आमोन्या आदि गर्म औषध परिमित मात्रासे देना योग्य है । यदि चेपि सूतिकाज्वर यह दूसरे भेदकी व्याधि होय तो यह दूसरे भेदकी व्याधि अति भयंकर समझी जाती है । क्योंकि इस व्याधिमेंसे विरली ही स्त्री अपने भाग्यके प्रवल होनेसे बचती है, इस रोगकी उत्पत्ति कितने ही दूसरे रोगोंके चेंपके कारणसे होती है । यदि प्रसूता जननेके इस्पतालमें यह व्याधि एक स्त्रीको होय तो दूसरी बालक जननेवाली स्त्रियोंको भी यह उडकर लगती है, यदि इसे ज्वरवाली स्त्रीके समीप जो दाई जाती होय और वह फिर दूसरी प्रसूता स्त्रियोंके समीप जावे तो उस प्रसूताको भी यही चेंपवाला ज्वर उत्पन्न होना संभव है । इसलिये एक प्रसूता स्त्री जो ज्वरवाली होय तो उसके समीपसे आनकर दाई तथा स्त्री चिकित्सकको उचित है कि कपडा बदलकर स्नान करके अपने शरीरको साफ करलेवे जब दुसरी प्रसूता स्त्रीके समीप जावे । इस ज्वरमें विशेष चिह्न इस प्रकारसे होते हैं कि प्रसव होनेके दो तीन दिवस व्यतीत

होनेपर शीतकी कपकपी लगकर स्त्रीके शरीरमें ज्वर उत्पन्न हो नाडीकी गति अति क्षीण निर्बल हो जाती है। स्त्रीका शरीर विशेष निर्बल, अशक्त हो स्त्री बेहोश पड अन्तके दर्जे स्त्रीका शरीर शीतल होकर (शीताङ्ग) मृत्युको प्राप्त होता है, इस ज्वरके आने बाद तीनसे पांच छः दिवसमें मृत्यु होती हैं। और इस रोगवाली स्त्रीका शरीर ऐसा दिखता है कि इसको कुछभी रोग नहीं था। अक्सर यह देखा गया है कि इस व्याधिकी चिकित्सा करनेके लिये चिकित्सकको समयका अवकाश नहीं मिलता, यदि मिलता है तो बहुत ही थोडा समय मिलता है और इस थोडेसे समयमें चिकित्सकके उपायका प्रयत्न काम नहीं देता। यदि चिकित्सकको उपाय करना ही पडे तो ब्रांडी-साल बोलाटाईल कलोरेट ओफपुटास इत्यादि औषधियोंमेंसे उचित समझे सो परिमित मात्रासे देता रहे। तीसरे भेदका ज्वर जो कि पक्वाशयकी व्याधिके कारणसे उत्पन्न होता ह, यह ज्वर स्त्रीकी ओझरी तथा आंतडीमें कुछ खराबी उत्पन्न हो जावे उसीके निमित्तसे ज्वर उत्पन्न हो जाता है, इस ज्वरमें स्त्रीके मस्तकमें पीडा होती है पेटमें दर्दका चस्का उठता है और वायुकी प्रबलता जान पडती है। विशेष दुर्गन्धि-युक्त काले रंगका मल दस्तमें आता है नाडीकी गति शीघ्रगामी होती है, स्त्रीकी जिह्वा-पर मैल जमा रहता है मुखमेंसे दुर्गन्धि आती है। इस व्याधिकी चिकित्साका सबसे प्रधान उपाय यही है कि रेचक देकर अन्दरकी खराबीको निकाल देना चाहिये। इसके लिये गर्मजलमें अरंडी तैल मिलाकर सफरामें पिचकारी लगानी, दुग्धमें मिलाकर अरंडीका तैल स्त्रीको पिलाना, एक औंससे लेकर दो औंस पर्य्यन्त योग्य समझे उतना देवे। जुलाब साफ आनेके वाद २० से लेकर ३० बिन्दु पर्य्यन्त (लाडेनम) जलमें मिलाकर देना। यदि स्त्रीके शरीर पर पीलेपनकी झलक मारती होय तो पित्तका जोश समझा जाता है, यदि ऐसा होय तो कयालोमेल तथा कोलोसींध अथवा पोलोफीलीनका जुलाब देना उचित है। स्त्रीके पेटके ऊपर सेंक करना जुलाब आनेके बाद नाईट्रीक आसिड और टींकचरहायोसायामस परिमित मात्रासे चिरायताके क्काथमें मिलाकर देना। प्रधान उपाय इस रोगका यही है कि ओझरी और आंतडेकी खराबीको जुलाब देकर साफ कर देना।

डाक्टरीसे सूतिका ज्वरकी चिकित्सा समाप्त।

आयुर्वेदसे स्तन पाकके लक्षण तथा चिकित्सा।

प्रसवके अनन्तर कई कारणोंसे बालककी माता स्त्रियोंके स्तनोंमें प्रायः व्याधि उत्पन्न होकर स्तन पक जाते हैं और दुग्ध दूषित हो जाता है, उनके कारणसे प्रायः बालक भी रोगी हो जाते हैं।

स्तनरोगका निदान।

सक्षीरौ वाप्यदुग्धौ वा प्राप्य दोषः स्तनौ स्त्रियाः। प्रदूष्य मांसं रुधिरं स्तनरोगाय कल्पते ॥ १ ॥ यत्सरक्तं तनुस्रावं रुधिराभिषगन्धकम्। शोथवृद्धिसमायुक्तं सरुजञ्च पयोधरम् ॥ २ ॥ पञ्चानामपि तेषां हि रक्तजं विद्रधिं विना। लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ ३ ॥

अर्थ–प्रसव होनेके अनन्तर प्रसूता स्त्रीको वात पित्त कफ ये तीनों दोष दुग्ध संयुक्त अथवा दुग्ध रहित स्तनोंमें प्राप्त होकर स्तनोंके मांस रुधिर और शिराजालको दूषित करके स्तन रोगको उत्पन्न करते हैं। उन रोग विशिष्ट स्तनोंमें पतला और दूषित मांसकी दुर्गन्धवाला रक्त स्रवता (बहता) है, स्तनोंमें शोथकी वृद्धि तथा पीडा हुआ करती है। यह उपरोक्त कथन किया हुआ स्तनरोग वात पित्त कफ सान्निपात (तीनों दोष संयुक्त) और आगन्तुक इन भेदोंसे पांच प्रकारका है और इसके लक्षण रक्तज विद्रधिको त्याग कर बाह्य विद्रधिके समान जानने चाहिये ॥ १–३ ॥

स्तन विद्रधि।

पवनेन स्तनशिराः विकृताः प्राप्य योषिताम्। सूतानां गर्भिणीनाञ्च सम्भवे श्वयथुर्घनः ॥ स्तने सदुग्धे वा बाह्यो विद्रधेर्लक्षणान्वितः। नाडीनां सूक्ष्म वक्त्रत्वात् कन्यानां न तु जायते ॥ ४–५ ॥

अर्थ–वात दोषसे विकृत हुई स्तनोंकी शिरा प्रसूति स्त्रियोंको तथा गर्भिणी स्त्रियोंके स्तनोमें घन (कठिन) सूजनको उत्पन्न करती है उसको स्तन विद्रधि कहते हैं, यह स्तन विद्रधि प्रायः सदुग्धा स्तनोंमें होती है, इसमें बाह्य विद्रधिके लक्षण मिलते हैं। यह विद्रधि स्त्रीकी कन्या अवस्थामें नहीं होती इसका कारण यह है कि स्त्रीकी कन्या अवस्थामें स्तनोंमें जो सूक्ष्म शिरा जाल है उनके मुख सूक्ष्म होते हैं। तरुणावस्थामें इन शिराओंके मुख प्रफुल्लित हो जाते हैं ॥ ४–५ ॥

स्तन रोगकी चिकित्सा।

शोथं स्तनोत्थितमवेक्ष्य भिषग्विदध्याद्यद्विद्रधावविहितं बहुधा विधानम्। आमे विदाहिनि तथैव गते च पाकं तस्याः स्तनौ सततमेव विनिर्दुहेत ॥ जलौकोभिर्हरेद्रक्तं न स्तनावुपनाहयेत्। दुःखस्तना तु या नारी सा शीघ्रं सुखिनी भवेत् ॥ लेपो विशालमूलेन हन्ति पीडां स्तनोत्थिताम्। निशाकनककल्काभ्यां लेपश्चापि स्तनार्त्तिहा ॥ लेपे

निहन्ति मूलं वन्ध्याकर्कोटकी भवं शीघ्रम्। निर्वाप्य तप्तलोहं सलिले तद्वा पिबेत्तत्र ॥ यष्टिर्निंबं हरिद्रा च निर्गुंडीधातकी समम्। चूर्णं स्तन व्रणे देयं रोपणं कुरुते भृशम् ॥ ९--१० ॥

अर्थ—स्तन रोगमें स्त्रीके स्तनोंमें सूजन उत्पन्न होय तभी (चिकित्सक) को उचित है कि विद्रधि रोगमें कथन कियेहुए चिकित्सा उपचारोंके द्वारा उपाय करे, यदि स्तनकी सूजन अपक्व अथवा पक्व होय अथवा दाह युक्त होय तो भी उसका दुग्ध निकाल देवे और स्त्रीका उचित समझे तो कोमल रेचक देकर शरीर शुद्ध कर-देवे स्त्रीके स्तनोंपर जलौका (जोंक) लगाकर दूषित रक्तको निकाल देवे स्त्रीके स्तन शोथपर सेंक कदापि न करे इस प्रकार करनेसे स्तनोंके दुःखसे पीडित स्त्री शीघ्रही सुखी हो जाती है । इंद्रायणकी जडका लेप करनेसे स्तनोंमें उत्पन हुई पिडा शांत हो जाती है । हल्दी और धतूरेके पत्र पीस कर लेप करनेसे स्तनोंकी पीड़ा शांत हो जाती है । बाँझ ककोडेकी जडको पीसकर लेप करनेसे स्तनोंकी पीडा शान्त हो जाती है । अथवा लोहेकी अग्निमें संतप्त करके लाल करे और जलमें बुझाकर उस जलको स्त्री पान करे तो स्तनोंकी पीडा शान्त हो जाती है ॥ मुलहटी नीमकी छाल व पत्र, हल्दी, सम्हालू, धायके फूल सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके इस चूर्णको स्तनोंके व्रणपर लगानेसे व्रणका जखम भर जाता है ॥ ९–१० ॥

स्तन विद्रधिका उपाय ।

कासीससैन्धवशिलाजतुहिंगुचूर्णमिश्रीकृतो वरुणवल्कलजः कषायः । अभ्यन्तरोत्थितमपक्वमतिप्रमाणं हृणामयं जयति विद्रधिमुग्रवीर्यम् ॥ ११ ॥

अर्थ—बरनेकी छालके काढेमें कासीस सेंधा नमक शिलाजीत प्रत्येक ६ रत्ती हींग २ रत्ती इनको मिलाकर पीनेसे सब प्रकारकी बाह्याभ्यन्तर विद्रधि नष्टहोती हैं ॥ ११ ॥

करंजघृत ।

नक्तमालस्य पत्राणि वरुणादि फलानि च । सुमनायाश्च पत्राणि पटोल-रिष्टयोस्तथा । १ । द्वे हरिद्रे मधूच्छिष्टं मधुकं तिक्तरोहिणी । प्रियङ्गुकुशमूलञ्च निचुलस्य त्वगेव च ॥ २ ॥ एतेषां कार्षिकैर्भागैर्घृत-प्रस्थं विपाचयेत् । दुष्टव्रणप्रशमनं तथा नाडीविशोधनम् । सद्यश्छिन्नं व्रणानाञ्च करंजाद्यमिदं शुभम् ॥ ३ ॥

अर्थ—करंजुआंके पत्र, वरुणवृक्षके फल, चमेलीके पत्र परवलके पत्र, नीमके पत्र हल्दी, दारुहल्दी मोम, मुलहटी, कुटकी, फूलप्रियंग (महदाक फूल) कुशाकी जड, जलवेंत ये प्रत्येक औषध एक एक तोला लेकर कूटपीसकर कल्क (पीठीके माफिक) बनावे और इस कल्कमें एक प्रस्थ घृत मिलाकर पकावे, घृत सिद्ध होनेपर छानकर भर लेवे। यह घृत सब प्रकारके दुष्ट व्रण और घावोंको शुद्ध करके रोपण करनेवाला है। यदि स्तन पककर फूट जावें तो इस घृतको लगानेसे जखम भर जाते हैं। यदि स्तन पककर फूट जावें तो व्रणके समान उपाय करना चाहिये॥ १-२॥

आयुर्वेदसे स्तनपाक चिकित्सा समाप्त।

यूनानी तिब्बसे स्तनोंका वर्णन।

जब मनुष्यकी युवावस्था होती है तब उसके स्तनोंमें गांठ (ग्रन्थि) पड जाती है। सो नर (मर्दों) में तो गर्मीकी अधिकतासे जो कि उनकी प्रकृतिके योग्य है नष्ट हो जाती हैं। नारी जाति स्त्रियोंमें रजस्वलाके मवादकी अधिकता और गर्मीकी निर्बलतासे जो कि उनका स्वभाव है। प्रतिदिवस अधिक होती है और जबतक स्त्रीकी पूर्ण जवानी नहीं भरती तबतक बराबर बढती रहती हैं, बढते २ यहांतक बढ जाती है कि दूध पीनेवाले बालकोंके पोषणका स्रोत बन जाती हैं और छातीकी गर्मी और आत्माकी संतुष्टता करनेवाली हो जाती हैं। यह बात प्रगट है कि दूध वीर्य और रुधिर बहुधा अपनी २ दशामें विरुद्ध तासीरवाले और स्वरूपवाले हैं। परन्तु इन तीनोंके उत्पन्न होनेका कारण समानता रखता है, क्योंकि दूध और वीर्य असलमें रुधिर ही है और शरीरके पृथक् २ स्थानोंके भेदसे अलग सूरतमें हो जाता है, और दूधकी प्रकृतिमें हकीमोंने विरुद्धता की है कोई तबीब कहता है कि दूध गर्म और तरकूनके समान है कोई कहते हैं कि सर्द है और कोई समानता ही मानते हैं॥

यूनानी तिब्बसे स्तनोंकी सूजन और खिचावटके लक्षण तथा चिकित्सा।

स्त्रीके स्तनोंकी सूजनके विषयमें जानना चाहिये कि जैसे ठंढी और गर्म सूजन शरीरके प्रत्येक अंगमें उत्पन्न होती है उसी प्रकार ठंढी और गर्म तासीरको लेकर स्त्रीके स्तनोंमें भी उत्पन्न हो सक्ती है। जैसे कि ठंढी सूजन स्पर्शमें ठंढी खिचावट तर्राहट और पीडावाली होती है, गर्म सूजन स्पर्शमें गम जलन और चस्का मारती है। अब जानलेना चाहिये कि जो सूजन ठंढी है तो अजमोद पीसकर गर्म करके स्तनोंपर लेप करना और बाबूना सौंफके पानीमें व अजमोदके पानीमें पीसकर गर्म करके लेप करनेसे लाभ पहुँचता है। जो सूजन गर्म होय तो सिर्का गर्म पानीमें मिलाकर बकरी व बैलके फुकनेमें भरकर सूजन पर रख गौके घृतमें बाकलाका आटा मिलाकर लेप करे।

मकोयकी पत्तीको कूटकर गुलरोगनसे चिकनी करके स्तनोंकी सूजन पर लगावे और तीन दिनके उपरान्त उन लेपोंको लगावे जिनका कथन दूधके सड जानेके प्रकरणमें आगे आवेगा, स्तनोंमें एक प्रकारकी सूजन उत्पन्न होती है जो कि दूधके जमनेसे या दूधके पतले हो जानेसे अथवा दूधके सड जानेसे उत्पन्न होती है। स्तनोंमें दूध तीन कारणोंसे जम जाता है–प्रथम कारण तो विशेष गर्म प्रकृति है, जो कि दूधकी तरीको सुखा देती है और यह तरीको सुखानेवाली प्रकृति स्तनोंके अलावे चाहे सम्पूर्ण शरीरमें उत्पन्न हुई होय चाहे सिर्फ दोनों स्तनोंमें ही हुई होय। दूसरा कारण बहुत ठंढी प्रकृतिका है, जो कि सम्पूर्ण शरीरमें अथवा दोनों स्तनोंमें ही उत्पन्न हुई होय और इस ठंढी प्रकृतिके कारणसे दूध ठिठुर जाता है। तीसरा कारण इसका यह है कि बालक निर्बल होय और वह स्तनोंके सम्पूर्ण दूधको न खींच सक्ता होय अथवा बालक किसी रोगसे निर्बल हो गया होय दूध न चूस सक्ता होय, वहुत समय तक दूध स्तनोंमें रहनेसे गाढा होकर जम जावे। गर्म और ठंढी प्रकृतिके लक्षण समझ करं जो प्रकृति गर्म होय तो एक कपडा ठंढे पानी और सिर्कामें भिगोकर स्तनोंके ऊपर रखे जिससे स्तनोंकी गर्मी शान्त हो जावे, दूधकी तराई न सूखने पावे दुर्गन्धिको रोककर दूधके गाढेपनको निवृत्त करे। गुलवनफशाके रोगनकी मालिश स्तनोंपर हररोज करनी चाहिये और थोडा गुनगुना जल छाती और स्तनोंपर डालना उचित है, जिस स्तनमें रोगी स्त्रीको गर्मीकी अधिकता होय तो वाकलाका आटा जौका आटा मुंगास (जंगली अनारकी जड)का चूर्ण अंडेकी जर्दी तर (हरा) धनिया इन सबको खुर्फाके पानी (स्वरस)में मिलाकर स्तनों पर लेप करे और इसी प्रकार अन्य दवा जो कि स्तनोंमें ठंढ पहुँचावे दर्द शान्त करे और मवादको न खींचनेवाली दवा लाभदायक है। सिर्का तथा गुलरोगन गर्म करके उसमें कपडा भिगोकर स्तनोंपर रखना। और मकोय तथा काकनज (काकजंघा) की पत्ती पीसकर स्तनोंपर लेप करना लाभ पहुंचाता है। जब स्तनोंका रोग आखिरी पर पहुंचे और गर्मीका माद्दा कम हो जाय तो सूजनको विलकुल नष्ट करनेवाले लेप लगावे। उन लेपोंकी विधि इस प्रकारसे है कि अलसीके बीज, बाबूना, अकलील, डलमालिक, तिल इन सबको समान भाग लेकर वारीक पीसकर गुलरोगनकी कीरूतीमें मिलाकर लेप करे, जब सूजन नष्ट हो मवाद एकत्र होने लगे तो मवादको पकानेवाले लेप जैसे कि मेथीका लुआब, खतमीका लुआव, अलसीके बीजका लुआब इनको गर्म करके लेप करे अथवा पुलिटिस बनाकर बांधे अथवा सोंफका छिलका, मेथीका बीज, अलसीके, बीज रातीनज (एक प्रकार गोंद है) इन सबको समान भाग लेकर वारीक पीसकर अंजीरके काढेमें मिलाकर लेप कर यदि प्रकृति ठंढी होय तो मोम और खैराका तेल सोसनका तेल कूटके तेलकी कीरूती बनाकर स्तनोंपर लगावे।

बाद सूखा पोदीना कूटकर पानीमें पकावे जब हल्लुवासा हो जावे तो मोमके रोगनके साथ पीस लेप करे । मेथी कूट छानकर सिर्का और वनफशाके तैलमें मिलाकर स्तनों-पर लेप करे तो अति लाभदायक है, और स्तनोंमें जो दूध जम जाता है वह कभी तो सूजन उत्पन्न करता है कभी स्तनोंमें खिचाव करता है, कभी सूजन उत्पन्न ही होती है। परन्तु गर्म दुष्ट प्रकृतिके कारणसे जो दूध जम जाता है अक्सर सूजन उत्पन्न करता है । परन्तु जिस स्त्रीकी प्रकृति ठंढी होय अथवा निर्बल बालक दूधको स्तनोंमेंसे कम चूसता होय यही कारण होय तो वह सूजन बहुत ही कम होती है । स्तनोंका दूध खिंचकर निकल जानेसे ही कम पड जाती है, गर्मजल सुहाता हुआ छाती और स्तनोंपर डाले जिससे सब दूध बाहर आसानीसे निकल आवे, प्रायः यह रोग स्त्रियोंको ही होता है और इस खिंचावका इलाज कि जो स्तनोंमें दूध जमनेके विनाही होता है और सूजन उत्पन्न हो जाती है । उसका उपाय चुकंदर और कर्नब पकाकर उसका पानी स्तनोंपर डाले, जो अलसीके बीज, बाबूना, वनफशा, खितमी मेथी इनको जलमें पकाकर उसके काढेमें तैल मिलाकर स्तनोंपर डाले तो बहुत ही शीघ्र लाभ पहुंचता है और सब प्रकारके मुलायम करने-वाले याने इस रोगमें लाभदायक है । कभी २ स्तनोंका दूध जमकर सड जाता है, उसका उपाय यह है कि साबतचुकंदरको लेकर पकावे जब वह पककर नर्म हो जावे तो उसके साथमें बकायनकी मिंगी और छिलाहुआ बाकला दोनोंको बारीक पीसकर चुकन्दरको भी साथ पीस लेवे और तिलोंका तैल मिलाकर स्तनों पर लेप करे । तिलका चूर्ण गौका घृत शहद और बाकलाका आटा और वगैर छने गेंहूके चूनकी रोटी सबको एक साथ कूटकर लेप करना अति लाभदायक है । अलसीके बीज मेथीके बीज खतमी बाबूना सब एक एक मुट्ठी लेकर जलमें पकावे, जब पक जावे तब सबको पीसकर लेप करे और उचित है कि इन लेपोंमेंसे जो लेप लाभदायक समझा जावे उसको हररोज दिनमें तीन समय करना चाहिये । जिससे कि शीघ्र पकजावे, या बैठ जावे और गर्म जलसे सिकाव करना उचित है, जो कुछ उपाय समयपर उचित समझा जावे उसको तबीब अपनी बुद्धिके मुताबिक करे ।

यूनानी तिब्बसे स्तनोंकी सूजन और खिंचावकी चिकित्सा समाप्त ।

यूनानी तिब्बसे स्तनोंका कडा हो जाना और गांठका उत्पन्न होना ।

प्रथम वनफशाका तैल और मुर्गीके अंडेकी जर्दी मिलाकर लेप करे । जैतूनके तैलमें मोम मिलाकर पिघला लेवे और बेलका गूदा मिलाकर लेप करे । कभी ऐसा होता है कि उसमें कोरा तैल मिलाकर लगानेकी ही आवश्यकता पडती है, शिर्केकी

गाद व माजूफलके पत्र पीसकर लगाना लाभदायक है । गांठ नर्म करनेके लिये तरी पहुँचानेवाली चीजें और चर्बीका लगाना लाभदायक है, यह गांठ अक्सर जवानीके उमरके आरम्भ होते ही पुरुषोंके स्तनोंमें भी पड जाती है ।

यूनानी तिब्बसे स्तनोंका कडा होना और गांठकी चिकित्सा समाप्त ।

यूनानी तिब्बसे स्तनोंके कुट जानेकी चिकित्सा ।

यह विषय इस प्रकारसे है कि कभी २ स्तनपर कुछ अभिघातादि लगनेसे स्तन कुचल जाते हैं, तो स्तनकी रगोंको सद्मा पहुंचता है और मांस कुट जाता है, जो यह सद्मा हलका होय तो पहाडी मुनक्काके दाने और मूंग इन दोनोंको पीसकर सर्रूकी पत्तीके पानीमें अथवा अधीराके पानीमें मिलाकर स्तनोंपर लेप करे । यदि स्तनमें पीडा कुट जानेके कारणसे होय व सूजन आ गई होय तो उसको भी ऊपर लिखाहुआ लेप लाभ पहुंचाता है । यदि रोगमें कुछ अदल बदल देखे तो तबीब आवश्यकताके अनुसार उपाय करे ।

यूनानी तिब्बसे स्तन कुट (कुचल) जानेकी चिकित्सा समाप्त ।

यूनानी तिब्बसे स्तनके दबील (बडी सूजनकी चिकित्सा ।)

स्तनोंकी इस सूजनपर अलसीके बीज, तिल, सौसनके बीज, मीअयेतर (वनफशाकी गीली ताजी जड) कबूतरकी बीट, पपडिया नमक, रातियाज (एक प्रकारका गोंद है) इन सबको हमवजन लेकर बारीक पीस लेवे और तिलीका तैल, गौकी नलीका गूदा मय पुरलामें मिलाकर स्तनोंकी सूजन पर लेप करे, विशेष उपाय पीछे लिखेहुए सूजनके प्रकरणके अनुसार करे । यदि स्तन पक गये हों चीरनेकी आवश्यकता समझी जावे तो तीव्र धारवाले नस्तरसे चीरकर खराब मवादको निकाल कोमल जगहके घावोंके इलाजके समान स्तनके घावका इलाज करे ।

यूनानी तिब्बसे दबीलकी चिकित्सा समाप्त ।

यूनानी तिब्बसे स्तनोंके अत्यन्त दीर्घ हो जानेकी चिकित्सा ।

अक्सर देखा गया है कि किसी २ स्त्रीके स्तन अत्यन्त बढकर लटकने लगते हैं और स्तनोंकी रगें ढीली पड जाती हैं, इस दशामें सफेदा काशगरी खडिया मट्टी प्रत्येक ७ मासे दोनों बारीक पीसकर बंगके पत्रके पानीमें (बंग एक जातिकी वनस्पति है) अथवा बंगके बीजके काढेमें मिलाकर थोडासा मस्तगीका तैल उसमें डालकर प्राति मासमें तीन दिवस लेप किया करे, लेपके समय अलसी और माजूके पानीमें कपडा भिगोकर स्तनोंपर लगेहुए

लेपके ऊपर रखे, जिससे कि लेप ठंढा वना रहे और स्नान कम करे । (दूसरा लेप) पवित्र मिट्टी जिसको अर्वीमें (हर) कहते हैं, ७० मासे शूकरां घासकी जड ७ मासे (इस घासको जमीनसे खोदकर शूअर खाते हैं) इन दोनोंको सिर्केमें पीसकर तीन दिवस पर्य्यन्त लेप करे । (तीसरा लेप) तीन शामूस (सफेद मिट्टी) अकाकिया गोंद, सफेदा सब वरावर लेकर वंग (यवानीका पानी) निचोडकर उसमें मिला स्तनोंपर लेप करे तीन दिवस हर महीने । (चौथा लेप) फिटकरी पीसकर जैतूनके तैलके साथ सीसेके खरलमें पीसे जव कि थोडासा सीसा भी उसके साथ घिस जावे तब स्तनोंपर लेप करे । इस प्रकरणमें वङ्गके पानीका प्रयोग आया है सो वङ्ग खुरासानी अजवायनको कहते हैं, उसकी जड व पत्रका पानी निचोडकर काममें लेना चाहिये ।

यूनानी तिब्बसे स्तनोंके अत्यन्त लटकने और दीर्घ हो जानेकी चिकित्सा समाप्त ।

डाक्टरीसे प्रसूता स्त्रियोंके स्तनपाककी चिकित्सा ।

प्रकृतिने नारी जातिके शरीरमें जो स्तनकी रचना की है वह भी सृष्टिके उत्पत्ति कर्म अवयवकी गणनामें ही आती है । कारण गर्भाशय तथा गर्भअण्ड और फलवाहिनीके समान ही स्त्री जातिकी युवावस्थामें स्तन भी पूर्णरूपसे प्रफुल्लितपनेको प्राप्त होते हैं । स्त्रीके पेटके अन्दर गर्भाशयमें गर्भस्थ वालकका पोपण गर्भाशय करता है और स्त्रीके स्तन वालकका जन्म होनेके अनन्तर पोषण करते हैं, सो एक व डेढ साल पर्य्यन्त वरावर वालकको पोपण पहुँचाते हैं । जिस प्रकारसे गर्भाशयमें और गर्भअण्डमें प्रत्येक महीने पर ऋतुस्रावके समय अथवा स्त्री गर्भ धारण करलेवे उस गर्भावस्थामें प्रसव होनेके पीछे उपरोक्त अङ्गोंकी स्थितिमें फेरफार (परिवर्त्तन) होता है, उसी प्रकारका परिवर्त्तन कुदरती नियमानुसार स्तनोंमें भी होता है । ये स्तन चर्वी तथा सूक्ष्म शिराजाल (तन्तुओंसे) वनेहुए हैं, इनमें दुग्धको उत्पन्न करनेवाली नलियां हैं । प्रत्येक स्तनमें अनुमान १८ ऐसी नलिया हैं जिनमेंसे दुग्ध उत्पन्न होता है और स्तन मुखकी डोडीके पास आनकर वहां वारीक छिद्रोंसे निकलता ह, इन नलियोंके मुख स्तन मुखके पास खुले होनेसे स्तनको दावनेसे उनमेंसे दुग्ध निकलता है । इन स्तनोंकी रचना शरीरके हाड पिंजरसे विलकुल पृथक् और हाडपिंजरके ऊपर छातीपर होनेसे इनको शर्दी गर्मी तथा अभिघात धक्का खेंचातानी आदि अनेक प्रकारके कारणोंसे सब्रा पहुँचनेके हेतुसे किसी समय तथा प्रसवके अनन्तर पक जाते हैं और स्तनोंमें जो कि कई प्रकारके दूसरे रोग होते हैं परन्तु उन सवमेंसे यह स्तनपाक मुख्य रोग है । यह स्तनपाक इतना प्रवल रोग ह कि यह निर्जीव कारणोंसे भी समय २ पर उत्पन्न हो जाता है, इससे स्त्रीको अधिक कष्ट उठाना पडता है । इस रोगकी उत्पत्तिके हेतु

इस प्रकारसे हैं कि स्तनकी व्याधि साधारण रीतिसे स्त्रीकी युवावस्था होनेपर ही होती है। जब स्त्री पूर्णरूपसे युवावस्थाको प्राप्त होने लगती है उसी समय पर स्तन भी पूर्णरूपसे प्रफुल्लित होते हैं। जिस समय पर स्तन प्रफुल्लित होते हैं उस समयपर स्तनोंमें एक प्रकारकी ग्रन्थी उत्पन्न होती है, जो कि दाबनेसे दुखती है। यदि यह ग्रन्थी अधिक जोरसे दाबी जावे तो स्तनोंमें पाक उत्पन्न हो स्त्रीको ऋतुस्राव आनेके समय स्तनोंमें रक्तका जमाव विशेष होता है। इस कारणसे उस समय पर स्तन पीडा संयुक्त रहते हैं, इसी प्रकार गर्भाशयकी किसी व्याधिके कारणसे भी रक्तका जमाव विशेष करके स्तनोंमें रहता है और स्तनोंमें दर्द भी होता है। यदि इस समय पर स्तनोंको किसी प्रकारकी इजा पहुँचे तो उनमें पाक शुरू हो जाता है। अधिक तङ्ग चुस्त चोली (आंगी पहरनेसे तथा बगैर चोली पहने रहनेसे भी स्तन पाक होना संभव है। स्तनके ऊपर किसी प्रकारका अभिघात लगनेसे तथा जोरसे दबानेसे भी पाक उत्पन्न होता है, जो स्त्रियां गर्भवती होयँ और बालक उनका दुग्धपान करता होय तो उनको स्तनपाक व्याधि होना संभव है, ठाली स्त्रियोंकी अपेक्षा बालकवाली स्त्रियोंको स्तनपाक व्याधिका होना विशेष संभव है। प्रथम बालक पैदा हुआ होय उस स्त्रीके स्तनकी डोंडी विशेष करके चपटी होती हैं वह उठीहुई नहीं होती, इस कारणसे बालक दूध नहीं खींच सक्ता, जब कि स्तनमें दूध नहीं निकलता तो बालक रोता है और स्त्री उस समय परेसान होतीहै। स्तनोंमें दूध चढ आता है स्तनकी डोडीकी त्वचा कोमल होनेसे छिल जाती है, क्योंकि बालक बखतोंबखत मुखसे दाबता है सो चमडीको ईजा पहुँचकर छिल जाती है। अथवा स्तनकी चमडी फटने लगती है। उस समय पर बालक स्तनको दूध चूसनेके लिये दाबता है उस समय पर विशेष दर्द होता है और बालक दूध नहीं चूस सक्ता। दाबनेसे स्तनको डोडी खिंचती है, इससे जखम पडकर वढने लगता है और विशेष पीडा होती है। बालक भूखा रहनेसे रुदन करता है और स्त्री शोकसे आतुर रहती है। स्तनोंमें दूध एकत्र हो जाता है वह दूधका एकत्र होना भी पीडाकी अधिकताको बढाता है; ऐसी पीडाकी अधिकतामें दूध निकालनेका उपाय भी कठिन पडता है। निर्बल तथा पाण्डु रोगवाली और भी किसी शारीरक रोगसे पीडित स्त्री तथा और किसी प्रकारके नवीन उत्पातसे भी स्तनपाककी व्याधि हो जाती है, कितनी ही स्त्रियोंको न कुछ ईजासे भी स्तनपाककी व्याधि उत्पन्न हो जाती है और कितनी ही स्त्रियोंके स्तनपर विशेष सख्त पहुँचनेसे भी वह २ चार दिवसमें स्वयं ही शान्त हो जाता है। अब स्तनके पाक होनेका इतना ही कारण है कि स्तनके ऊपर किसी प्रकारका दवाव पडनेसे स्तनके अन्दरकी नसें मिड जाती हैं और

उन नसोंके मिडनेसे वहां गाँठ पड वह किसी समयपर तो पकने लगती है, किसी समयपर किसी स्त्रीको दो चार दिवस पीडा देकर शान्त हो जाती है। किसी समय पर अन्दरकी नसें टूट जाती हैं तो आसपासके भागमें जो रक्तका जमाव हो जाता है उसको पककर निकालनेके सिवाय दूसरा कोई रस्ता नहीं मिलता। गर्भिणी तथा शीघ्र प्रसूता हुई स्त्रीके स्तनोंमें विशेष बोझ होनेसे वह अधिक शीघ्र पक जाते हैं और सोवडकी दशामें प्रसूता स्त्रीको जो दूसरे दिवस ज्वर चढता है वह ऐसा सावूत देता है कि अब निरन्तर स्त्रीके स्तनोंमें दूधका बोझा अधिक बढता जाता है। यदि उन दिनोंमें वालक पूरे तौरसे स्तनोंमेंसे दूध खींचने लगे तो स्तनपाक व्याधिकी भय कम रहती है। वालकके मर जानेसे तथा वालकको दूध न पिलानेसे स्तनोंमें दूधका वजन बढनेसे स्तनपाक व्याधिका होना विशेष संभव है। चाहे जिस कारणसे स्तनोंमें दूध रुका रहे स्तनोंसे वाहर दूध न निकले तो अवश्य ही स्तनपाक व्याधिका होना विशेष संभव है। स्तनोंके मुखके समीप सफेद लकीरेंसी पडी रहती हैं, किसी समय पर इनमें कुछ ईजा पहुंचे तो इससे भी स्तनपाक व्याधि होती है, कितनी ही स्त्रियोंको तीव्र ज्वरमें विषैले असरको लेकर स्तनपाक व्याधि उत्पन्न हो जाती है। यह स्तनपाक सिर्फ विषैले ज्वरके असरके कारणसे ही होता है, इस ज्वरमें स्तनपाकका एक दूसरा कारण यह भी है कि ज्वरकी गर्मीसे स्तन गर्म रहता है और दूध भी इस ज्वरकी दशामें अधिक गर्म निकलता है, इस कारणसे वेसमझ वालक स्तनको मुखसे नहीं दाव सक्ता और दूधके न खिंचनेसे स्तनोंमें दूधका जमाव हो जाता है, दूधके जमावसे स्तनोंमें ऐसा मालूम होता है कि स्तन फटे जाते हैं। इस कारणसे भी स्तनपाक व्याधि उत्पन्न होती है। और स्तन पाक व्याधिके आरम्भमें ये लक्षण होते हैं कि प्रथम स्तनमें पीडा होने लगती है और स्तन भारी तथा कठिन मालूम होता है, तथा स्तनके अन्दर ग्रन्थी पडगई मालूम होती है, दूधके रुकनेसे. स्तन विशेष मोटा वडा मालूम होता है और अन्दरसे उसका स्नायुजाल तन जाता है, ऐसा मालूम होता है कि स्तन फटे जाते हैं। अन्दर चस्का चलता हुआ मालूम होता है, स्तन स्पर्शके संघर्षणको सहन नहीं कर सक्ते, स्त्रीका हाथ हिलनेसे तथा खभाफेरने व करवट लेनेसे भी अधिक पीडा स्तनमें होती है। स्त्रीका हाथ विलकुल ऊंचा नहीं हो सक्ता। स्त्री अपने स्तनपर हाथ रखके भी करवट लेवे तो इस क्रियासे उसको पीडा मालूम होती है। स्तनके जिस ठिकानेपर विशेष पाक (पकने) का या राध. पडनेका चिह्न होता है वह स्थल लाल और त्वचा पतली पडती जाती है। उस स्थलको दावनेसे अधिक पिडा होती है और स्थलके ऊपर कपडेका स्पर्श होनेसे पीडा होती है सुर्खी वढती जाती है और सम्पूर्ण स्तन सूज जाता है साथही ज्वर चढ जाता है। ज्वर

१०२। १०३। १०४ डिग्री पर्य्यन्त होता है, जबतक स्तन पाकका जोश रहता है तबतक ज्वर बिलकुल उतरता नहीं है और साथही स्त्रीको शीत (ठंढ) भी लगती है। जो लाल भाग स्तनका सूजाहुआ होता है वह धीरे २ पककर पीब (राध) पडती जाती है। अंगुलीसे दाबकर देखे तो पीब चलतीहुई माल्लम होती है और अन्तके दर्जे वह स्तनकी जगह फूटती है। राध निकलती है परन्तु इस ठिकानेपरसे जो राध पककर स्वयं निकलती है इसकी अपेक्षा यह अच्छा है कि जब चिकित्सकको स्तन पकाहुआ माल्लम हो जावे तो उसी समय नस्तरसे उस पकी हुई जगहको चीर देवे जिससे स्त्रीको शीघ्र विश्रान्ति मिलजावे। परन्तु इस समय पर दर्द बहुत सक्त होता है लेकिन नस्तर लगानेसे जो पीडा होती है वह बहुत ही थोडे समय तक रहती है, पीछे शान्त हो जाती है और नस्तर न लगानेसे पाक कई दिवसमें फूटता है। जबतक स्त्रीको अधिक पीडा सहन करनी पडती है, जैसा स्तनका पाक अतिगंभीर (ओंडा) होय वैसा ही अधिक दिवस लगते हैं। और अधिक दिवस पर्य्यन्त पीब बहती है, अधिक दिवस पर्य्यन्त पीब बहनेसे स्तनका वह भाग काला पड उसमें पृथक् पृथक् कई ठिकानेपर पीब निकलनेके मुख हो जाते हैं, स्तनके अन्दरसे पीब तथा दूध बहता है और स्तनके चारों तर्फ जो धारा पड जाती हैं उन धाराओंके आसपासका भाग काली झलक लिये दीख पडता है। कितने ही दिवस पर्य्यन्त तर रहता है जब वह जखम रोपण हो जाता है तब उस ठिकानेपर कठिन ग्रन्थीके समान मासपिंड हो जाता है, पीछे कुछ कालमें नर्म हो जाता है। स्तनके साधारण पाकके समय किसी स्त्रीकी बगल भी पकने लगती है और कभी २ ऐसा होता है कि स्तनका एक जखम अच्छा होनेपर दूसरे ठिकाने नवा उत्पन्न हो जाता है, वह भी पकने लगता है। इसी प्रकार दूसरा अच्छा होनेपर तीसरा उत्पन्न होता है, ऐसे ही कई ठिकानेपर स्तनका भाग पकता फूटता है और स्तनके चारों तर्फ जखम होकर रुजते जाते हैं। ऐसी स्थितिवाले स्तनकी दुग्ध नलियां नष्ट होकर स्तन सूखकर निकम्मा हो जाता है।

डाक्टरीसे स्तनरोगकी चिकित्सा।

प्रथम चिकित्सकका यह फर्ज है कि जहांतक होसके स्त्रीके स्तन पकने न देवे, जो उपाय स्तन पाकको रोक सके उनको काममें ला स्तनोंको पकनेसे रोके। पूरी उमरकी स्त्री अपने स्तनोंकी संभाल करना चाहे तो उसको स्तनपाक रोग नहीं हो सक्ता, स्तनोंके ऊपर किसी प्रकारका दबाव न पडने पावे और चोली तथा आंगी आदि तङ्ग कपडा न पहनना चाहिये, जो स्तनोंको किसी प्रकारकी ईजा पहुंचावे। पहननेकी चोली व आंगी ऐसी होना चाहिये कि जिसकी खोलमें स्तन सरलता

पूर्वक रह सकें, स्तनके ऊपर कपडेकी मगनकी किनारी न आवे कि स्तनकी कोमल चर्म जिल्दको काटने लगे प्रथम वालक होनेवाली स्त्रीको अपने स्तनकी डोडी प्रथमसे ही खींच २ कर लम्बी और गोलकर लेनी चाहिये । स्तनकी चपटी डोडी वालकके मुखमें सरलतापूर्वक नहीं आती गोल और लम्बी डोडी स्तनकी होवे तो वालकके मुखमें जानेसे स्तनको कुछ सदमा नहीं पहुंचता, स्तनकी त्वचा नाजुक होय तो इसके लिये आगेसे ही स्पीरिट लोशन लगाकर मजवूत कर लेना चाहिये । अथवा टानिक आसिडंकालोशन लगाना और स्तनकी डोडी छिलगई होय अथवा चिरगई होय तो उसके ऊपर टंकण खार (भुना सुहागा) सुगरलेड, सुगरलेड ग्रीसरीन, सिलवर नाईट्रेड इनमेंसे कोई भी दवा लगानी चाहिये, स्तनकी डोडीके ऊपर (शील्ड) नामका यन्त्र मिलता है यह स्तनका ढकना है इसको स्तनपर रखनेसे कुछ सदमा नहीं पहुँचता, डाक्टरी यन्त्र वेचनेवालोंकी दूकानपर मिलती है । और सरलतापूर्वक इसके रखनेसे दूध वहता है स्तनके ऊपर किसी प्रकारका क्षत न पडना चाहिये, यदि पडगया होय तो उपरोक्त दवा लगानेसे आराम हो सक्ता है और क्षत स्थलके अंदर गहरा न पहुंचना चाहिये इसकी सँभाल वरावर रखे, प्रसव होनेके ३० व ३६ घंटे पीछे तक वालकको दूध न पिलाया जावे तो स्तनमें दूधके जोशसे पकनेकी क्रियाका होना संभव है । यदि वालक स्तनमेंसे दूध न खींचता होय अथवा वालक मरगया होय तो दुग्धके वजन वढनेसे स्तनोंमें खिंचाव और पाक होता है, सो ऊपर विशेष दुग्धके उत्पत्तिके प्रकरणमें ब्रेस्टपेंप यन्त्रसे (दुग्धाकर्षण) दूधका वजन स्तनमेंसे निकाल देना चाहिये । और सेल खडिया कपूरको शीतल जलमें पीसकर स्तनोंपर लेप कर देना तथा खडियाको ठंडे जलमें मिलाकर उसमें कपडा भिगोकर स्तनपर रखना चाहिये । जिस स्त्रीका वालक मरजाता है उसका दुग्ध थोडे दिनमें सूख जाता है और स्तन पाक रोग होनेका भय नहीं रहता । दुग्धकी उत्पत्ति न सूके तो स्तनपाक होनेका भय रहता है कत्थारूमी मस्तगी अथवा और किसी प्रकारकी स्तम्भन दवा लगानेसे स्तनपाकका भय नहीं रहता, यदि इन दवाओंमेंसे किसीको लगाना होय तो शीतल जलके साथ पीसकर लेप करे और भिगा कपडा स्तनके ऊपर रखे । यदि इतना उपाय करनें पर भी स्तनपाक हो और स्तनोंमें पीवकी उत्पत्ति होती जान पडे तो जिस उपायसे शीघ्र पकजावे ऐसा उपाय करना उचित है । गर्म जलका सेंक और गर्मागर्म अलसीकी पोलटीस रखनी अफीमका फल याने पोस्तका डोडा जलमें पकाकर उसके जलमें फलालेनका कपडा भिगोकर निचोडके सेंक करना, इससे स्तनकी पीडा शान्त हो जाती है स्तनके ऊपर एकस्ट्रेक्ट वेलोडोना लगाना और ऊपरसे सेंक करना, अथवा नीचे

लिखाहुआ लेप स्तनपाककी पीडा शान्त करता है। रूमी मस्तगी १ ड्राम, कलोडीयन १ ड्राम, कपूर १ ड्राम, एकस्ट्राक्टबेलोडोना १ ड्राम, कलोरोफार्म २ ड्राम ये पांचो वस्तु मिलाकर स्तनपर लगा स्तनके ऊपर गर्मागर्म पोलटिस रख देना। यदि स्त्रीको ज्वर आया होय तो ज्वर शान्त करनेकी औषध दे दस्त साफ आता रहे ऐसा उपाय करना। स्तनमें पीव (राध) पडगई मालूम होय तो पकेहुए भागमेंसे नस्तरसे पीवको निकाल देना और स्तनपाककी दशामें स्त्रीको निद्रा न आती होय तो इसके लिये डोवर्स पाऊडर अथवा सलफोनल परिमित मात्रासे देना। यदि स्त्रीकी शक्ति कम होगई होय तो इसके लिये काडलीवरआईल, कुनेन देशी दवामेंसे द्राक्षारिष्ट देना उचित है। यदि स्त्री ब्रांडी पीनेवाली होय तो थोडी २ ब्रांडी देना उचित है, जो जखम गहरा होय तो उसमें अन्दर सडाहुआ भाग भरा रहता है। कार्बोलिकएसिड १ भागको ५० भाग गर्म पानीमें मिलाकर उसकी पिचकारी स्तनके जखम पर लगानी, जिससे सडाहुआ भाग साफ होकर निकल जावे। जखम अन्दरसे भरने लगे और जखम जहरी न होने पावे, जखमकी धारोंके ऊपर आयडोफार्म छिडकना चाहिये और उसके ऊपरसे कार्बोलिक तैलमें लिंटका टुकडा व रूईका फोहा भिगोकर रख कपडेकी पट्टीसे स्तनको बांध देना कि स्तन हिलने न पावे। हिलनेसे जखम फट कर शीघ्र अच्छा नहीं होता, स्तनको खुला भी न रखना चाहिये। खुला स्तन उठने बैठने करवट लेनेमें हिलता है और हिलनेसे जखमको ईजा पहुंचती है। स्त्रीको आहार दूध भात साबूदाना आदि देना, यदि स्त्री मांसाहारी होय तो दूध मिलाकर अण्डा पिलाना, स्त्रीकी शक्तिको बढाता है। परन्तु इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि एक स्तन स्त्रीका रोगी होय तो दूसरे स्तनका दूध बालक अक्सर पीता है जो लोग असूदा हैं वे तो इस दशामें बालकके पोषणार्थ दाई दूध पिलानेवाली रख सक्ते हैं। परन्तु साधारण तथा गरीब स्थितिके लोग तो माताके एक स्तनका दूध पिलाकर ही बालकका पोषण कराते हैं, इस दशामें माताको जो औषध आहार तथा अन्य वस्तु व ब्रांडी आदि जो कुछ दिया जाता है उसका असर दूधके द्वारा बालकको पहुँचता है। शर्द गर्म पदार्थ जुलाब आदि सबका असर बच्चेको होता है सो जो २ पदार्थ बालकोंको हानिकारक न समझा जावे वह २ पदार्थ ही इस स्थितिमें बालककी माताके उपयोगमें लाया जावे, इसका पूर्ण विचार स्त्री चिकित्सकको रखना चाहिये।

(यह १५ वां अध्याय इस ग्रन्थके सर्व अध्यायोंसे बडा है, कारण कि आयुर्वेद यूनानी तिब्ब और डाक्टरी तीनों प्रकारकी चिकित्साओंसे गर्भ धारणसे लेकर प्रसूता

होनेपर्य्यन्तकी प्रक्रिया और चिकित्साका समावेश इस अध्यायमें किया गया है। इससे इसका विस्तार वढ गया है। परन्तु तीनों चिकित्सा प्रणालीसे जो २ वात उपयोगी समझी गई वह इसमें उद्धृत की गई हैं।)

स्तनपाक चिकित्सा एवं वन्धाकल्पद्रुमका पञ्चदशाऽध्याय समाप्त।

षोडशाध्यायः।

इस १६ वें अध्यायमें वालकोंके पोषण करनेवाली धात्रीके निरोग रहनेकी प्रक्रिया शुद्ध दुग्ध और वालकोंके पोपणकी प्रक्रिया तथा वालकोंके रोगके लक्षण तथा चिकित्साका वर्णन किया जायेगा। वालकको दुग्ध पिलानेवाली माता तथा धात्री जितनी अरोग्य और तन्दुरुस्त रहेगी उतना ही दूध पीनेवाला वालक अरोग्य रहेगा। इस देशमें वालकोंकी पोपणकी प्रक्रिया विलकुल खराव है, इससे वालकोंकी तन्दुरुस्ती विगडकर मृत्युके मुखमें प्रवेश कर जाते हैं। वालककी माता तथा पिता इस वातपर विश्वास कर लेते हैं कि पूरी उमर लेकर नहीं आया था इससे इस वालककी मृत्यु हो गई। यह वही मसल है कि चलनीमें दुग्ध दोहना और कर्म्मोंको रोना, कोईभी समझदार मनुष्य इस वातसे कायल नहीं हो सक्ता कि जिस कामकी सिद्धिके लिये जो साधन और क्रिया चाहिये उसके विदून कामकी सिद्धि कदापि नहीं होसक्ती। जैसे कि इस पुस्तकका लिखना एक काम है, इसके लिये दावात स्याही कागद कलमादि साधन हैं और हाथमें कलम लेकर लिखना इसकी क्रिया है। इत्यादि साधनोंसे यह पुस्तकरूपी काम तैयार हुआ। इसी प्रकार वालकके पोपणरूपी साधन और क्रियासे वालककी परिवारिस होती है, यदि वालकके पोपणरूपी साधन और क्रियामें त्रुटी होगी व उसका पोपण उचित रीतिको त्याग कर विरुद्ध रीतिपर किया जाय तो वालककी रक्षा रूपी कार्य सिद्ध न होगा। इसमें यह विश्वास करलेना कि बालक पूरी उमर लेकर नहीं आया यह विश्वास भ्रमयुक्त है, न इसमें पूर्ण उमर लानेका दोष है न कर्म और तकदीरका, न परमात्माका दोष है। यदि दोष है तो वालकके पोषण करनेवालोंका है कि यथाविधि वालकका पोपण नहीं किया और वह रोगसे दुर्वल होकर मृत्युके मुखमें प्रवेश कर गया। बहुतसे बुद्धिहीन स्त्री पुरुप वालकोंको अफीम अथवा वालागोलीका देना जन्मसे ही आरम्भ कर देते हैं, (वाला गोलीमें अफीम पडती है न मालूम, यह प्रयोग किस वालकोंके शत्रुने चलाया है) मुम्बईका हेल्थ अफसर हरसाल रिपोर्ट करता है कि वालकोंको वालागोली देनेसे वालक दिनभर सोता रहता है वाला गोलीमें अफीम जहरी वस्तु है। वालकके दिन रात सोते पडे रहनेसे उसके शरीरको पूरा पोपण नहीं पहुंचता और पूरा पोषण न पहुंचनेसे वालक निर्वल रहता है, वालकको

निर्बलताकी दशामें कुछ साधारण व्याधिभी हो जावे तो उसीमें उसकी मृत्यु हो जाती है। बालागोलीके संचालक अपनी बालागोलीका परिणाम विचार लें। इसी प्रकार किसी २ प्रान्तमें अफीम देनेका रवाज है और किसी प्रान्तमें अफीमके फल जलमें भिगोकर उसका जल बालकोंको पिलाते हैं। किन्तु अफीमको बालकोंके लिये निर्बुद्धि मनुष्योंने सर्वौषध समझ रखा है। ऐसे मनुष्योंको यह समझना चाहिये कि तरुण रुष्ट पुष्ट मनुष्य जिस द्रव्यके खानेसे चार छः घंटे तक कष्ट उठाते हैं वह जहरी वस्तु फूलके समान बालकको किस अंशमें लाभ पहुंचा सक्ती है। यदि प्रत्यक्षमें लाभ है तो इतना अवश्य है कि अफीमके नशेमें बालक दिनरात बुतकी तरह पडा रहता है माताको उसके पोषणका विशेष कष्ट नहीं उठाना पडता और जितना थोडा बहुत कष्ट वह उठाती है उससे भी थोडे समयमें उसको छुटकारा मिल जाता है। क्योंकि अफीम खानेवाला बालक चिरजीवित नहीं रहता। अफीम खानेवाला बालक सुस्त और निर्बल रहता है उसके मस्तिष्कमें खुस्की और गर्मी रहती है। नेत्रोंकी स्नायु अपनी क्रियामें शिथिल रहती है, पेट कठिन और मलकी कब्जी (अवरोध) रहता है। बालकके हाथ पैर पतले और निर्बल रहते हैं। बालक चैतन्यता युक्त हँसमुख नहीं रहता अफीम स्तम्भक होनेसे बालकके शरीरमें रक्तकी भ्रमण क्रिया पूर्णरूपसे नहीं होती। बालक उन्मादीके समान रहता है और उसके ज्ञानतन्तु निर्बल हो जाते हैं, आलसी रहता है इत्यादि अवगुण अफीमके प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। चीनप्रदेश निवासी मनुष्योंको इस काली सर्पिणी अफीमने ही गारत कर दिया है। अब उन-लोगोंको भी इस सर्पिणीके जहरी अवगुण मालूम होने लगे हैं सो त्यागनेका प्रयत्न किया है, रोगकी दशाके सिवाय औषधके अतिरिक्त जो माता पिता अपने बालकोंको अफीम तथा अन्य मादक द्रव्य खिलाना आरम्भ करते हैं वे बालकोंके पूर्ण शत्रु समझने योग्य हैं।

धात्री बालकको दुग्ध पिलानेवाली धाय। (चरकसे धात्री परीक्षा)

अथातो धात्रीपरीक्षामुपदेक्ष्यामः। अथ ब्रूयात् धात्रीमानयेति समान-वर्णां यौवनस्थां निभृतामनातुरामव्यंगामव्यसनामविरूपामजुगुप्सितां देशजातीयामक्षुद्रामक्षुद्रकर्मिणीं कुले जातां वत्सलामरोगजीवद्वत्सां पुंवत्सां दोग्ध्रीमप्रमत्तामशायिनीमनुच्चारशायिनीमनन्तशायिनीं कुशलो-पचारां शुचिमशुचिद्वेषिणीं स्तन्यसम्पदुपेतां इति ॥

अर्थ—चरक कहता है कि अब हम धात्री परीक्षा लिखते हैं। धात्रीको धाय कहते हैं, नीचे लिखे लक्षणवाली धाय बालकके पोषणके वास्ते होनी चाहिये। समान वर्ण-

वाली जैसे कि ब्राह्मणको ब्राह्मणी, क्षत्रीको क्षत्री वर्णकी, वैश्यको वैश्य वर्णकी, शूद्रको शूद्र वर्णकी (इस बातसे जांना जाता है कि प्राचीन वैद्योंने वर्णव्यवस्थाके ऊपर बडाही जोर दिया ह) धाय रखना चाहिये । कदाचित सम्पूर्ण लक्षण संघटित्त स्वजाति धाय न मिले तो शुभ लक्षण सम्पन्न विजातिके रखनेमें कुछ पातक नहीं है, (आजकल ऐसा ही प्रचार है कि गडर्नी अहीरी आदि रखी जाती हैं) युवावस्थावाली निभृता (शान्त स्वभाववाली) आतुरता रहित अङ्गभङ्ग न हो किन्तु सम्पूर्ण अङ्गोंसे युक्त व्यसन रहित स्वरूपवान अनिन्दनीय प्रसन्न चित्तसे रहनेवाली अनिन्द देशमें जिसका जन्म हुआ होय अक्षुद्रा नीचकर्म्म करनेवाली न होय और बालकोंपर पूर्णरूपसे स्नेह करनेवाली जिसके उत्पन्न हुए वालक सव तन्दुरुस्त और जीवित होयँ और पुत्रकी माता होय जिसके स्तनोंमें दुग्धकी उत्पत्ति पूर्णरूपसे होती होय उन्मत्तता (पागलपन) तथा बहुभाषी व्यर्थ बकनेवाली न होय अशायिनी शयन करती हुई भी थोडे ही आहार द सकेतसे शीघ्र जाग जावे और चैतन्य हो जावे । पवित्र. आचार और नेकचलन-वाली अपवित्रता और अनाचारसे घृणा करनेवाली उत्कृष्ट स्तनवाली इन लक्षणोंसे सम्पन्न धाय होनी चाहिये । भूत प्रेत जादू टोना छूमन्त्र टोटका पर जिसका विश्वास न होवे केवल ईश्वर निष्ठ होवे ।

सुश्रुतसे धात्रीके लक्षण ।

ततो यथावर्ण धात्रीमुपेयान्मध्यमप्रमाणां मध्यमवयसमरोगां शीलवतीमचपलामलोलुपामकृशामस्थूलां प्रसन्नक्षीरामलम्बौष्ठीमलम्बोर्ध्वस्तनीमव्यङ्गामव्यसनिनीं जीवद्वत्सां दोग्ध्रीं वत्सलामक्षुद्रकर्म्मिणीं कुले जातामतो भूयिष्ठैश्च गुणैरन्वितां श्यामामारोग्यबलवृद्धये बालस्य । तत्रोर्ध्वस्तनी करालं कुर्य्यात् । लम्बस्तनी नासिकामुखं छादयित्वा मरणमापादयेत् । ततः प्रशस्तायां तिथौ शिरःस्नातामहतवाससमुदङ्मुखं शिशुमुपवेश्य धात्रीं प्राङ्मुखीमुपवेश्य दक्षिणं स्तनं धौतमीषत्परिस्रुतमभिमन्त्र्य मन्त्रेणानेन पाययेत् ॥ मन्त्र ॥ चत्वारः सागरास्तुभ्यं स्तनयोः क्षीरवाहिणः । भवन्तु सुभगे नित्यं बालस्य बलवृद्धये । पयोऽमृतरसं पीत्वा कुमारस्ते शुभानने । दीर्घमायुरवाप्नोति देवाः प्राश्यामृतं यथा ॥

अर्थ—इसके अनन्तर अपने २ वर्णवाली अर्थात् स्वजातीय धाय बालकके पोषणके लिये नियत करे यह धाय मध्यम कदवाली न बहुत लम्बी होय न बहुत ठिंगनी होय

और मध्यम अवस्थावाली न प्रौढा होय न सोलह वर्षसे नीची अवस्थावाली होय किन्तु १६ वषस ऊपरकी और ३५ वर्षसे नीचेकी उमरवाली होय। जिसके शरीरमें किसी प्रकारका रोग न होय शील सम्पन्न होय चंचलता रहित अलोलुप न बहुत मोटी न बहुत कृश जिसका दुग्ध बालकके शरीरको प्रसन्न रखनेवाला होय जिसके होठ पतले और छोटे होयँ जिसके स्तन लम्बे और विशेष ऊंचे बेडौल न होयँ जिसको किसी प्रकारका व्यङ्ग न हो जिसके उत्पन्न हुए सब बालक जीवित होयँ जो बालक पर अपने आत्मज सन्तानके समान प्रीति रखनेवाली होय जिसमें किसी प्रकार दुष्कर्म न होयँ उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई होय जिसके माता पिताके कुष्ठ उपदंशादि दुष्ट व्याधि न होयँ ऐसे २ और भी शुभ गुण धात्रीमें देखलेना चाहिये। शुभगुणोंसे युक्त श्याम वर्णवाली धात्रीको बालककी आरोग्यता और बुद्धिके वास्ते नियुक्त करे। (प्रायः देखा गया है कि श्यामा स्त्रीके स्तनोंमें दुग्ध विशेप होता है (और अन्यत्र भी लिखा है कि मट्टीका घट वटकी छाया कूंपका जल श्यामा स्त्री सदैव पथ्य हैं) जिसके अधिक ऊंचे स्तन व लटकते स्तन न होयँ इसका यह प्रयोजन है कि बेडौल स्तन दुग्ध पीनेके समय बालकके मुख और नासिकाको थकलेते हैं, जिससे बालकका श्वास घुटता है। इससे फूलके माफिक स्वभाववाले बालकको मृत्युका भय रहता है, उपरोक्त लक्षणोंसे सम्पन्न धायको नियत करके शुभ तिथिमें सिरसहित स्नान कराके उत्तम स्वच्छ वस्त्र धारण करावे और उत्तर दिशाको बालकका मुख करके और धायको पूर्वाभिमुख बैठाले और उसके दक्षिण स्तनको जलसे धोकर उसमेंसे थोडा दूध निकाल ऊपर लिखाहुआ मन्त्र पढकर बालकके मुखमें धायका स्तन देवे। मन्त्रका अर्थ हे सुभगे (धात्री) इस बालकके बलकी वृद्धि और पोषणके अर्थ चारों समुद्र आपके स्तनोंमें दुग्धरूप हो करके बहें। हे शुभानने धात्री, जैसे देवता अमृत पान करके चिरंजीवी होगये इसी प्रकार अमृत-रसरूपी तेरे दुग्धका पान करके यह बालक दीर्घायुवाला होवे। इस अवसरपर धात्रीको उचित है कि बालकको आशीर्वाद देवे।

(चरकमें इतनी विशेषता है)

शुद्धदुग्धवाली धात्रीका कर्त्तव्यकर्म।

धात्री तु यदा स्वादुबहुशुद्धदुग्धा स्यात्तदा स्नातानुलिप्ता शुक्लवस्त्रं परिधायैन्द्रीं ब्राह्मीं शतवीर्य्यां मोघाममव्यथां शिवामरिष्टां वाट्यपुष्पीं विश्वक्सेनकान्तामिति बिभ्रत्यौषधीः कुमारं प्राङ्मुखं प्रथमं दक्षिणं स्तनं पाययेतेति धात्रीकर्म॥

अर्थ—जब धायका दुग्ध मिष्ट और विशेष शुद्ध होय और उसके शरीर तथा दुग्धकी परीक्षा पूर्ण रीतिसे हो चुकी होय तब धायको स्नान कराके उसके शरीरपर कपूर चन्दनादिका लेपन कराके इन्द्रायण ब्राह्मी सहस्रवीर्या, शतवीर्या, नीली और सफेद दूर्वा, पाटला, हरड, आंवला, नींग, खरैटी, प्रियंगु वेणुका इन सब औषधियोंको धारण करके प्रथम बालकको दक्षिण स्तनका दुग्ध पिलावे ॥ औषध धारण करनेका प्रयोजन यह है कि उपरोक्त औषधियोंके नाम और गुणका परिचय धात्रीको करा देवे, क्योंकि रुगणावस्थामें ये सब औषधियां प्रायः कलकके औषध प्रयोगोंमें आती हैं ।

नियत धात्रीको बदलकर दूसरी धात्री रखनेमें दोष ।

अतोऽन्यथा नानास्तन्योपयोगस्यासात्म्याद् व्याधिजन्म भवति । अपरिस्रुतेऽप्यतिस्तब्धस्तन्यपूर्णस्तनपानादुत्स्रुहितस्रोतसः शिशोः कासश्वासवमीप्रादुर्भावः । तस्मादेवं विधानं स्तन्यं न पाययेत् ॥

अर्थ—बालकके दुग्ध पिलानेको यदि एक ही धाय जिसका दुग्ध बालकको अनुकूल पडगया होय नियत न की जाय, कभी कोई कभी कोई धाय बदलकर बालकको दूध पिलाने लगें तो बालकके आत्माको दुग्ध अनुकूल (माफिक) न होनेके कारणसे बालक रोगी हो जाता है । इस कारणसे वारम्वार अनेक धाय बदलनेसे बालकको विशेष हानि पहुँचती है । कदाचित नियत धायको कुछ रोगादि ऐसा उत्पन्न हुआ होय कि जिससे बालकको हानि पहुँचना संभव होय तो शीघ्र ही उसका दुग्ध पान बन्द करके दूसरी बदल, उसमें उपरोक्त लक्षण देखलेवे । और थोडासा दूध निकालकर पीछे बालकके मुखमें स्तन दिया जाय ऐसा न करनेसे स्तनकी कठोरताके कारण और दुग्धसे स्तन पूर्ण रूपसे भरे रहनेके कारणसे बालकके मुखमें स्तनमेंसे अधिक दुग्ध आ जानेसे गलेमें अटक जाता है । ऐसा होनेसे बालकको खांसी श्वास वमन होने लगती है, इस कारण विपरीत विधिसे बालकको स्तनपान न करावे ऐसी शिक्षा धायको कर देना उचित है ।

धात्रीस्तनकी परीक्षा ।

अथास्याः स्तन्यमप्सु परीक्षेत । तच्चेच्छीतलममलं तनुशंखावभासमप्सु न्यस्तमेकीभावं गच्छत्यफेनिलमतन्तुमन्नोत्प्लवते न सीदति वा तच्छुद्धमिति विद्यात्तेन कुमारस्यारोग्यं शारीरोपचयो बलवृद्धिश्च भवति ॥

अर्थ—बालकको दुग्ध पिलानेवाली स्त्रीके दुग्धकी परीक्षा दुग्धको जलमें डालकर करनी चाहिये, जिस स्त्रीका दूध शीतल निर्मल पतला शंखके समान सफेद स्वच्छ

हो, पानीमें डालते ही मिल जावे और दुग्ध तथा जल एक हो जावे झागदार न होय न जलके ऊपर तैरे न जलके नीचे बैठे ऐसे दुग्धको शुद्ध दुग्ध कहते हैं । ऐसे शुद्ध दुग्धके पान करनेसे बालक अरोग्य रहता है, उसका शरीर दिनपर दिन वृद्धिको प्राप्त हो बलवान् होता है ।

वर्जित धात्रीका दुग्ध देना निषेध ।

न च क्षुधितशोकार्त्तश्रान्तप्रदुष्टधातुगर्भिणीज्वरितातिक्षीणातिस्थूलविदग्धभक्ष्यविरुद्धाहारतर्पितायाः स्तन्यं पाययेन्नाजीर्णौषधञ्च बालं दोषौषधमलानां तीव्रवेगोत्पत्तिभयात् ॥

अर्थ—जिस धायका शरीर क्षुधा और शोकसे अति पीडित होय जिसके शरीरकी सप्त धातु रस रक्त मांस मेदा अस्थि रज दूषित होगये होयँ अथवा ज्वरसे पीडित रहती होय अत्यन्त कृश व अत्यन्त स्थूल (मोटी) होय जो विदग्ध और रूक्ष अन्नका आहार करती होय अथवा असात्म्य ठंढा वासी भोजन करती होय अथवा जो अति आहार करती होय ऐसी धायका दुग्ध बालकको कदापि न पिलावे । बालक जिसका दुग्ध पीता होय उसको अजीर्णमें औषध भी न देवे, क्योंकि इसमें बालकको दोष और औषध मलादिके तीव्र वेगका भय रहता है ।

धात्र्यास्तु गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा । दोषा देहे प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति । मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टा वातादयः स्त्रियाः ॥ दूषयन्ति पयस्तेन शारीरा व्याधयः शिशोः । भवन्ति कुशलस्तांश्च भिषग् सम्यग् विभावयेत् ॥

अर्थ—जो धात्री भारी विषम और दोषयुक्त भोजन करती है उसके शरीरमें दोष (वात पित्त कफ) कुपित हो जाते हैं, इन दोषोंके कुपितसे स्तन्य भी दूषित होकर उनका दुग्ध विकारी हो जाता है । क्योंकि शरीरमें जब प्रधान दोष वातादि दुष्ट हो जाते हैं तो धात्रीका दुग्ध क्योंकर शुद्ध रह सक्ता है, ऐसे दोषयुक्त दुष्ट दुग्धके पीनेसे बालकके शरीरमें अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं । इसलिये कुशल वैद्यको उचित है कि दोषयुक्त दुग्धकी अच्छे प्रकारसे परीक्षा करे ।

चरकसे वातोपसृष्टपीतोपसृष्ट कफोपसृष्टदुग्धके भिन्न २ लक्षण ।

तस्य विशेषा श्यावारुणवर्णा कषायानुरसं विशदमनतिलक्ष्यगन्धं रूक्षं द्रवं फेनिलं लघ्वतृप्तिकरं कर्षणवातविकाराणां कर्तृ वातोपसृष्टं

अर्थ—जब धायका दुग्ध मिष्ट और विशेष शुद्ध होय और उसके शरीर तथा दुग्धकी परीक्षा पूर्ण रीतिसे हो चुकी होय तब धायको स्नान कराके उसके शरीरपर कपूर चन्दनादिका लेपन कराके इन्द्रायण ब्राह्मी सहस्रवीर्या, शतवीर्या, नीली और सफेद दूर्वा, पाटला, हरड, आंवला, नाग, खरैटी, प्रियंगु रेणुका इन सब औषधियोंको धारण करके प्रथम बालकको दक्षिण स्तनका दुग्ध पिलावे ॥ औषध धारण करनेका प्रयोजन यह है कि उपरोक्त औषधियोंके नाम और गुणका परिचय धात्रीको करा देवे, क्योंकि रुग्णावस्थामें ये सब औषधियां प्रायः बालकके औषध प्रयोगोंमें आती हैं।

नियत धात्रीको बदलकर दूसरी धात्री रखनेमें दोष ।

अतोऽन्यथा नानास्तन्योपयोगस्यासात्म्याद् व्याधिजन्म भवति । अपरिस्नुतेऽप्यतिस्तब्धस्तन्यपूर्णस्तनपानादुत्स्नुहितस्रोतसः शिशोः कासश्वासवमीप्रादुर्भावः । तस्मादेवं विधानं स्तन्यं न पाययेत् ॥

अर्थ—बालकके दुग्ध पिलानेको यदि एक ही धाय जिसका दुग्ध बालकको अनुकूल पडगया होय नियत न की जाय, कभी कोई कभी कोई धाय बदलकर बालकको दूध पिलाने लगें तो बालकके आत्माको दुग्ध अनुकूल (माफिक) न होनेके कारणसे बालक रोगी हो जाता है । इस कारणसे वारम्वार अनेक धाय बदलनेसे बालकको विशेष हानि पहुँचती है । कदाचित नियत धायको कुछ रोगादि ऐसा उत्पन्न हुआ होय कि जिससे बालकको हानि पहुँचना संभव होय तो शीघ्र ही उसका दुग्ध पान बन्द करके दूसरी बदल, उसमें उपरोक्त लक्षण देखलेवे । और थोडासा दूध निकालकर पीछे बालकके मुखमें स्तन दिया जाय ऐसा न करनेसे स्तनकी कठोरताके कारण और दुग्धसे स्तन पूर्ण रूपसे भरे रहनेके कारणसे बालकके मुखमें स्तनमेंसे अधिक दुग्ध आ जानेसे गलेमें अटक जाता है । ऐसा होनेसे बालकको खांसी श्वास वमन होने लगती है, इस कारण विपरीत विधिसे बालकको स्तनपान न करावे ऐसी शिक्षा धायको कर देना उचित है ।

धात्रीस्तनकी परीक्षा ।

अथास्याः स्तन्यमप्सु परीक्षेत । तच्चेच्छीतलममलं तनुशंखावभासमप्सु न्यस्तमेकीभावं गच्छत्यफेनिलमतन्तुमन्नोत्प्लवते न सीदति वा तच्छुद्धमिति विद्यात्तेन कुमारस्यारोग्यं शारीरोपचयो बलवृद्धिश्च भवति ॥

अर्थ—बालकको दुग्ध पिलानेवाली स्त्रीके दुग्धकी परीक्षा दुग्धको जलमें डालकर करनी चाहिये, जिस स्त्रीका दूध शीतल निर्मल पतला शंखके समान सफेद स्वच्छ

हो, पानीमें डालते ही मिल जावे और दुग्ध तथा जल एक हो जावे झागदार न होय न जलके ऊपर तैरे न जलके नीचे बैठे ऐसे दुग्धको शुद्ध दुग्ध कहते हैं। ऐसे शुद्ध दुग्धके पान करनेसे बालक अरोग्य रहता है, उसका शरीर दिनपर दिन वृद्धिको प्राप्त हो बलवान् होता है।

वर्जित धात्रीका दुग्ध देना निषेध।

न च क्षुधितशोकार्त्तश्रान्तप्रदुष्टधातुगर्भिणीज्वरितातिक्षीणातिस्थूलविदग्धभक्ष्यविरुद्धाहारतर्पितायाः स्तन्यं पाययेन्नाजीर्णौषधञ्च बालं दोषौषधमलानां तीव्रवेगोत्पत्तिभयात्॥

अर्थ—जिस धायका शरीर क्षुधा और शोकसे अति पीडित होय जिसके शरीरकी सप्त धातु रस रक्त मांस मेदा अस्थि रज दूषित होगये होयँ अथवा ज्वरसे पीडित रहती होय अत्यन्त कृश व अत्यन्त स्थूल (मोटी) होय जो विदग्ध और रूक्ष अन्नका आहार करती होय अथवा असात्म्य ठंढा बासी भोजन करती होय अथवा जो अति आहार करती होय ऐसी धायका दुग्ध बालकको कदापि न पिलावे। बालक जिसका दुग्ध पीता होय उसको अजीर्णमें औषध भी न देवे, क्योंकि इसमें बालकको दोष और औषध मलादिके तीव्र वेगका भय रहता है।

धात्र्यास्तु गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा। दोषा देहे प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति। मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टा वातादयः स्त्रियाः॥ दूषयन्ति पयस्तेन शारीरा व्याधयः शिशोः। भवन्ति कुशलस्तांश्च भिषग् सम्यग् विभावयेत्॥

अर्थ—जो धात्री भारी विषम और दोषयुक्त भोजन करती है उसके शरीरमें दोष (वात पित्त कफ) कुपित हो जाते हैं, इन दोषोंके कुपितसे स्तन्य भी दूषित होकर उनका दुग्ध विकारी हो जाता है। क्योंकि शरीरमें जब प्रधान दोष वातादि दुष्ट हो जाते हैं तो धात्रीका दुग्ध क्योंकर शुद्ध रह सक्ता है, ऐसे दोषयुक्त दुष्ट दुग्धके पीनेसे बालकके शरीरमें अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये कुशल वैद्यको उचित है कि दोषयुक्त दुग्धकी अच्छे प्रकारसे परीक्षा करे।

चरकसे वातोपसृष्टपीतोपसृष्ट कफोपसृष्टदुग्धके भिन्न २ लक्षण।

तस्य विशेषा श्यावारुणवर्णं कषायानुरसं विशदमनतिलक्ष्यगन्धं रूक्षं द्रवं फेनिलं लघ्वतृप्तिकरं कर्षणवातविकाराणां कर्तृ वातोपसृष्टं

क्षीरमभिज्ञेयं ॥ कृष्णनीलपीतताम्रावभासं तिक्ताम्लकटुकानुरसं कुणप रुधिरगन्धिभृशोष्णं पित्तविकाराणां कर्तृ पित्तोपसृष्टं क्षीरमभिज्ञेयं । अत्यर्थशुक्लमतिमाधुर्योपपन्नलवणानुरसं घृततैलवसामज्जागन्धि पिच्छिलं तन्तुमदुदकपात्रेऽवसीदति श्लेष्मविकारिणां कर्तृ श्लेष्मोपसृष्टं क्षीरमभिज्ञेयम् ॥ तेषां तु त्रयाणामपि क्षीरदोषाणां प्रकृतिविशेषमभिसमीक्ष्य यथास्वं यथादोषश्च वमनविरेचनस्थापनानुवासनानि विभज्य कृतानि प्रशमनाय ॥

अर्थ—दूषित दुग्धके लक्षण इस प्रकारसे होते हैं, जिस स्त्रीके दूधका वर्ण काला व लाल होय पीछेसे कसैला स्वाद आता होय विषद होय अथवा जिस दुग्धमें किसी प्रकारकी गन्ध दूधकी गन्धसे भिन्न प्रकारकी आती होय, रूखा, पतला, झागदार, हलका, अतृप्तिकर्त्ता कृशताकारक तथा वात विकारोंको उत्पन्न करनेवाला होय ये वातोपसृष्ट दुग्धके लक्षण हैं । जिस स्त्रीके दुग्धमें काली पीली तथा तांबेकेसे रंगकी झलक मारती होय जिसमें तिक्त अम्ल कटुक रस होय जिसमें सडे हुए रुधिरकी गन्धके समान गन्ध आती होय, जो दुग्ध अति उष्ण होय जिसके पीनेवाले बालकको पित्त विकार उत्पन्न होते होयँ ऐसे दुग्धके पित्त विकारोपसृष्ट लक्षण हैं । जो दुग्ध अत्यन्त श्वेत मधुर रस संयुक्त लवणानुरसवाला और घृत तैल वसा (चर्बी) मज्जा (हड्डीके बीचकी मिंगीके) समान गन्ध जिस दुग्धमें आती होय और पिच्छिल होय जिसमें तृणाकृतिकी धारा पडती होय, जलके बर्त्तनमें डालनेसे डूब जावे और श्लेष्म विकारोंको उत्पन्न करे पीनेवाले बालकको कफ खांसी जुखामादि बने रहें ऐसे दुग्धके श्लेष्मोपसृष्ट लक्षण हैं । इन तीनों प्रकारके स्तन दोषोंको देखकर वैद्य यथायोग्य दोषोंके क्रमानुसार धात्रीको वमन विरेचन आस्थापन अनुवासनादि वस्तीक्रियाके प्रयोगोंद्वारा दुग्धको शुद्ध करे ।

तीनों दोष वात पित्त कफोपसृष्ट दुग्धके लक्षण ।

स्तन्ये त्रिदोषसंदुष्टे शकृदामं जलोपमम् । नानावर्णरुजं चाल्पं विबद्धमुपवेश्यते ॥ भ्रमारोचकवम्यास्यपाकस्तृष्णाज्वरादयः । स्युर्यत्र तं विजानीयात्क्षीरालसकसंज्ञितम् ॥

अर्थ—वात पित्त कफ तीनों दोषसे मिश्रित होकर जिस स्त्रीका दुग्ध दूषित होता है वह आमसहित मलके समान दूषित जलके समान अनेक प्रकारके वर्णवाला अनेक

प्रकारकी पीडायुक्त और जलमें डालकर परीक्षा की जावे तो आधा जलके ऊपर और आधा नीचे तैरने लगता है । जिस दुग्धके पीनेसे बालकको भ्रम अरुचि वमन मुखपाक तृष्णा ज्वर इत्यादि उपद्रव उत्पन्न होय तो इस रोगको क्षीरालसक रोग कहते हैं ।

धात्रीका दोष युक्त सात प्रकारका दुग्ध व उसके उपद्रव ।-

लवणं तनु चाम्लञ्च कटुकं फेनिलं तथा । मांसधावनसंकाशं पीतकञ्च तथैव च ॥ एतत्सप्तविधं क्षीरमशुद्धं जीवकोऽब्रवीत् । करोति लवणं क्षीरं बालस्य मलनिर्गमम् ॥ तनु क्षीरं कफं कुर्य्यादम्लञ्च मुखपाकताम् ॥ मांसधावनसंकाशं छर्दिञ्च कुरुते शिशोः । फेनिलं श्वासकासन्तु मूत्रलं कटु पीतकम् ॥

अर्थ-धात्रीका वह दूषित दुग्ध खारी, पतला, खट्टासवाला, चरपरा, झागोदार मांसके धोवनके समान, पीला ऐसे सात प्रकारका जानना । खारी दुग्ध पीनेसे बालकको अतीसार रोग होता है, पतला दूध बालकको कफ बढाता है । खट्टा दूध बालकको मुखपाक रोग उत्पन्न कर्ता है । मांसके धोवनके समान दूध वमन उत्पन्न करता है । झागोदार दूध श्वास खांसीको उत्पन्न करता है । चरपरा और पीला दूध बालकको अधिक मूत्र लाता है ।

दूषित दुग्धवाली धात्रीको आहारपानका विधान ।

पानाशनाय विधिस्तु दुष्टक्षीराया यवगोधूमशालिषष्टिकमुद्गहरेणुकुलत्थसुरासौवीरकतुषोदकमैरेयमेदकलशुनकरञ्जप्रायः स्यात् क्षीरदोषविशेषांश्च वेक्ष्यावेक्ष्य तत्तद्विधानं कार्य्यं स्यात् ॥

अर्थ-जिस धात्रीका दुग्ध दूषित हो गया है, उसे खान पानके वास्ते जौ, गेंहू, शाली चावल, सांठी चावल, मूंग, हरेणु, कुलथी, सुरा, सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक, लहशुन, करज इत्यादि द्रव्य देना उचित है ।

धात्रीके स्तनोंसे दुग्ध नष्ट होनेका कारण ।

क्रोधशोकावात्सल्यादिभिश्च स्त्रियः स्तन्यनाशो भवति ॥

अर्थ-क्रोध और शोक करनेसे तथा बालकपर आन्तरिक प्रीति न होनेसे धात्रीके स्तनोंका दुग्ध नष्ट हो जाता है ।

धात्री क्षीर दोष शोधनापाय ।

पाठामहौषधसुरदारुमुस्तमूर्वागुडूचीवत्सकफलकिराततिक्तकटुकरोहि-

णीशारिवाकषायाणाञ्च पानं प्रशस्यते । तथान्येषां तिक्तकषायकटुकमधुराणां द्रव्याणां प्रयोगक्षीरविकारविशेषानभिसमीक्ष्य मात्राकालञ्चेति क्षीरविशोधनानि ॥

अर्थ–धात्रीके दूषित दुग्धको शोधनेवाले द्रव्य पाठा, सोंठ, देवदारु, नागरमोथा, मूर्वा (चूरनहार) मरोडफली गिलोय, इन्द्रजौ, चिरायता, कुटकी, शारिवा इन सबको समान भाग लेकर जौकुट करलेवे और इसमेंसे दो तोला खाको जलमें पकाकर क्काथ बनाकर प्रतिदिवस दिनमें दो समय ऐसी मात्रा पीवे । तथा अन्य प्रकारके तिक्त कषाय कटु और मधुर द्रव्योंका प्रयोग देवे । इस प्रकार धात्रीके क्षीर दोषोंके भेदोंको देखकर तथा काल और मात्राका विचार करके धात्रीके दुग्धको शोधनेका उपाय करे ।

क्षीरालसक रोगका उपाय ।

बालं तत्र च धात्रीञ्च मृदुरेकै विरेचयेत् । क्रमं पेयादिकं चैव मुस्तादिः संप्रयोजयेत् । पेयादिकं क्रमं कृत्वा मुस्तादि पाययेद्धृतम् । धात्रीक्षीरविशुद्धयर्थं मुद्गयूषरसाशिनी । भार्ङ्गीदारुवचापाठाः पिबेत्सातिविषाः शृताः ॥

अर्थ–इस क्षीरालसक रोगमें बालक और धायको मृदु औषधियों करके विरेचन देवे, पेयादिके क्रमसे मुस्तादि प्रयोगको देवे । पेयादि क्रम करके मुस्तादि घृतका प्रयोग दे धायके दूधको शुद्ध करनेके लिये मूंगके यूषका आहार देवे भारंगी, देवदारु, वच, पाठ और अंतीस इनको सम भाग लेकर १॥ व दो तोलाका क्काथ बनाकर धायको पिलावे ।

दुग्धशोधनके अन्य प्रयोग ।

पाठा मूर्वा च भूनिम्बदारुशुण्ठीकलिङ्गकाः । शारिवामृततिक्ताख्याः क्काथः स्तन्यविशोधनः । हरिद्राद्यं वचाद्यं वा पिबेत्स्तन्यविशुद्धये ॥ पटोलनिम्बासनदारुपाठामूर्वागुडूचीं कटुरोहिणीञ्च । सनागरं वा क्कथितञ्च तोये धात्री पिबेत्स्तन्यविशुद्धिहेतोः ॥ अमृतासप्तपर्णत्वक्काथः स्तन्यस्य शुद्धये । पाययेदथवा पाठायुक्तं निष्काथ्य रोहितम् ॥ भूनिम्बपाठामधुकं मधूकं निष्काथ्य तोये मधु चार्धकर्षम् ॥ प्रक्षिप्य पीतं

शिशुरोगशान्तिं दुग्धस्य शुद्धिं च करोति सद्यः ॥ मुस्तापाठाशिवा-कृष्णाचूर्णं दुग्धेन पाययेत् । एतेन सहसा शुद्धिर्ध्रुवं स्तन्यस्य जायते ॥

अर्थ–पाठा, मूर्वा, चिरायता, देवदारु, सोंठ, इन्द्र जौ, शारिवा, गिलोय, कुटकी इनको समान भाग लेकर जौ कुट करके दो तोला औषधका क्वाथ बना हररोज दो समय धात्रीको इसी मात्रासे पिलावे । यह क्वाथ धात्रीके दूषित दुग्धको शुद्ध करता है । अथवा हरिद्राद्य तथा वचाद्य घृत दूधको शुद्ध करनेके लिये पान करावे । अथवा पटोलपत्र नीमकी कोमल छाल (गिदी) विजयसार, देवदारु, पाढ, चुरनहार (मूर्वा) गिलोय, कुटकी, सोंठ इनको समान भाग लेकर दो तोलेका क्वाथ बनाकर हररोज दो समय धात्रीको पिलानेसे दुग्ध शुद्ध होता है। अथवा गिलोय, शतोना (सहोरा) दालचीनी इनका क्वाथ पूर्वोक्त विधिसे बनाकर दो समय हररोज पिलावे । अथवा काश्मरी, पाठा, बहेडेका मूल (जड) इनका क्वाथ करके धात्रीको पिलावे । अथवा चिरायता, काश्मरी, पाठा, मुलहटी, महुआ इनके क्वाथमें आधा तोला शहत मिलाकर धात्रीको पिलावे, इस क्वाथके प्रतापसे धात्रीका दुग्ध शुद्ध हो बालकका रोग शान्त होय । अथवा नागरमोथा, काश्मरी (कंभारी) पाठा, हरड, छोटी पीपल इनको समान भाग लेकर चूर्ण करके ६ मासेकी मात्रा गोदुग्धके साथ दिनमें दो समय कितनेही दिवस पर्य्यन्त लेनेसे शीघ्र दुग्धकी शुद्धि होती है ।

दूषित दुग्धसंयुक्त स्तनोंपर लेपके प्रयोग ।

पञ्चकोलमधुकैः सकुलत्थैर्बिल्वमूलतगरैः कुचलेपः । निर्मितो हितकरो बहुवारं दुग्धशुद्धिमयमाशु करोति ॥ पाठा रसांजन मूर्वा सुरदारु प्रियंगवः । एभिस्तन्यस्य वैवर्ण्यपूतिगन्धिहरो मतः ॥ त्रायमाणामृता-निम्बपटोलैस्त्रिफलान्वितैः । स्तनप्रलेपतः शीघ्रं स्तन्यशुद्धिः प्रजायते ॥

अर्थ–पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, मुलहटी, कुलथी, बेलकी जड, तगर इन औषधियोंको समान भाग लेकर जलमें पीसकर स्तनोंके ऊपर कई समय लेप करे । इस लेपसे दुग्ध शुद्ध हो जाता है, अथवा काश्मरी, पाठा, रसौत, मोरवेल, देवदारु, प्रियंगु इनको समान भाग लेकर बारीक पीस स्तनोंपर लेप करनेसे दुग्धकी शुद्धि हो स्तनोंकी विवर्णता तथा दुर्गन्धि निवृत्त होती है । अथवा त्रायमाण (वनफसा) गिलोय, नीमकी छाल, परवल, हरड, बहेडा, आंवला इन सबको समान भाग ले जलमें पीसकर स्तनोंपर लेप करनेसे दुग्धकी शुद्धि होती है । लेपकी विधि इस माफिक है–दवाको बारीक पीसकर एक अंगुल मोटा लेप स्तनोंपर करके ऊपरसे

केला व अरंडके पत्र रखके कपडाकी पट्टी बांध लेवे जिस समय लेप सूख जावे उस समय साफ जलसे धोकर दूसरा लेप करे ।

अलम्बुषाद्य तैल प्रयोग ।

अलम्बुषाकणाकल्कैः सिद्धं तैलं करोति वनितायाः । पिचुधारणनस्यदानात्कुचद्वयं श्रीफलाकारम् ॥

अर्थ—लज्जावन्ती और पीपलके कल्कमें तिलका तैल पकाकर उस तैलमें रुईका फोहा भिगोकर योनिमार्गमें रखनेसे, नासिकामें तैलकी नस्य लेनेसे स्त्रीके दोनों स्तन श्रीफलके समान हो जाते हैं ।

श्रीपर्णी तैल ।

श्रीपर्णीरसकल्काभ्यां तैलं सिद्धं तिलोद्भवम् । तत्तैलं तूलकेऽन्यस्य स्तनयोः परिधारयेत् । पतितावुत्थितौ स्त्रीणां भवेयातां पयोधरौ ॥ गजकुम्भसमाकारावुत्पन्नौ परिमण्डलौ ॥

अर्थ—अग्निमन्थ अरणीके पत्ताके स्वरसमें अथवा कल्कमें तिलके तेलको पकाकर उस तैलमें रुईका फोहा भिगोकर स्तनोंपर कुछ दिवस पर्य्यन्त रखनेसे स्त्रीके पतित हुए भी स्तन पुनः उठ आते हैं, तथा स्तनोंके मंडल हाथीके कुम्भस्थलके समान हो जाते हैं ।

दुग्धोत्पादक द्रव्य ।

क्षीरजननानि तु मद्यानि सीधुवर्ज्यानि ग्राम्यानूपौदकानि शाकधान्यमांसानि द्रवमधुराम्ललवणभूयिष्ठाश्चाहाराः क्षीरिण्यश्चौषधयः क्षीरपानश्चानायासश्चेति वीरणषष्टिशालिकेक्षिवक्षुवालिकादर्भकुशकाशगुन्द्रोत्कटमूलकषायाणाञ्च पानमिति क्षीरजननानि ॥ सुश्रुते चापि । अथास्याः क्षीरजननार्थं सौमनस्यमुत्पाद्य यवगोधूमशालिषष्टिकमांसरससुरासौवीरकपिण्याकलशुनमत्स्यकशेरुकशृङ्गाटकविषविदारिकन्दमधुकशतावरीनलिकालाबूकालशाकप्रभृतीनि विदध्यात् ॥

अर्थ—चरकके सिद्धान्तानुसार दुग्धको उत्पन्न करनेवाले ये द्रव्य हैं, साधुसंज्ञक मद्यको त्याग कर और सब प्रकारके मद्य ग्राम्य अनूप तथा औदकशाक, धान्य और मांस मधुर अम्ल और लवण युक्त पतले आहार जैसे दलिया, खीर तथा क्षीर वृक्षोंका अन्नयव दुग्धपान परिश्रमका परित्याग वीरण तृण सांठी चावल शालिचावल, ईख,

इक्षुवालिका, दाभ, कुश, कास गुन्द्रा उत्कट इन सबकी जडका क्वाथ बनाकर पान करनेसे दुग्धकी वृद्धि होती है । सुश्रुत भी इसी प्रकारके द्रव्योंको दुग्धोपादक कथन करता है । जैसे सबसे प्रथम तो दुग्ध उत्पन्न करनेके वास्ते धात्रीको प्रसन्न मनसे रहना और बालकपर पूर्ण स्नेह रखना । धात्रीको जौ या गेहूँका मीठा दलिया दूधके साथ खिलावे तथा शालिचावल और सांठी चावल, मांसरस, सुरा, सौवीर, पिष्टतिल, लहशन, मछली, कसेरू, सिंघाडा, कमलनाल, विदारीकन्द, महुआ, शतावरी, नलिका, घीया कालशाक इत्यादिक द्रव्योंको आहारमें खिलाता रहे, इससे धात्रीके स्तनोंमें दुग्धकी वृद्धि होती है ।

स्तन्याभावमें बालकको दुग्धपानकी अन्य विधि ।

क्षीरसात्म्यतया क्षीरमाजं गव्यमथापि वा ।
दद्यादास्तन्यपर्य्याप्तेर्बालानां वीक्ष्य मात्रया ॥ (सुश्रुते)

अर्थ—यदि बालकको पोषण करनेवाली धात्रीके स्तनोंमें दुग्ध न रहा होय या किसी कारणसे दुग्ध दूषित हो गया हो तो ऐसी स्थितिमें अजा (बकरी) का अथवा गौका दुग्ध इन दोनोंमेंसे जिसका दुग्ध बालककी प्रकृतिके अनुकूल पडे और कुछ उपद्रव न करे वही दूध तबतक बराबर दिया जाय जबतक बालक स्तनपान (दूध पीनेके) योग्य समझा जावे । बालकको गधीका दुग्ध सबसे उत्तम है और स्त्रीके दुग्धके समान पतला और गुण भी स्त्रीके दुग्धके समान है, बकरी गौ भैंसके दुग्धमें बालककी पाचनशक्तिके अनुसार जल मिलाना पडता है । परन्तु गधीके दुग्धमें जल मिलानेकी आवश्यकता नहीं होती ।

आयुर्वेदसे धात्रीके लक्षण तथा दूषित दुग्धकी चिकित्सा समाप्त ।

यूनानी तिब्बसे स्त्रीके स्तनोंमें दुग्ध कम होनेकी चिकित्सा ।

यूनानी तिब्बमें इसके कई कारण कथन किये गये हैं, प्रथम कारण तो स्त्रीके शरीरमें रक्तकी न्यूनता है । दूसरा कारण रक्तकी विशेष अधिकता है । तीसरा कारण रक्तमें किसी प्रकार विकृति उत्पन्न हुई होय और रक्त उससे बिगड गया होय । अब प्रथमकी स्थिति इस प्रकारसे है कि जब स्त्रीके शरीरमें रक्तकी कमी हुई होय तो उसके दुग्धकी कमी होना संभव है, क्योंकि यह बात प्रगट है कि दूधका वास्तवमें मूल कारण मवाद रुधिर है । जब रुधिर कम हो जावेगा तो मूलकारण रक्तके कम हो जानेसे उसका कार्य्य दूध भी अवश्य कम हो जायगा । रुधिरके कम होनेके कितने ही कारण हैं, प्रथम कारण तो यह है कि किसी कारण

विशेषके निमित्तसे स्त्रीकी फस्द कर उसके शरीरका रक्त निकाला गया होय, दूसरा कारण रजोधर्मकी दशामें स्त्रीका रक्त अधिक निकल गया होय, अथवा निफास (प्रसव होनेके बाद जो रक्त कई दिवस पर्य्यन्त निकलता है) वह अधिक निकल गया होय । तीसरा कारण ये है कि स्त्रीकी भोजनशक्ति कम हो गई होय जिससे रक्तकी उत्पत्ति भी कम होने लगी होय । अथवा स्त्री ऐसे भोजन करती होय कि जिनसे रक्तकी उत्पत्ति विशेष न होती होवे, जैसे बहुत ठंडे रूखे अन्नका भोजन । चौथा कारण यह भी है कि रोग, क्रोध, चिन्ता, आनन्द, भय, शोक, व अति विषयभोग इत्यादि कारणोंसे भी प्रकृतिमें रक्तकी उत्पत्तिकी रुकावट हो जाती है । पांचवां कारण यह कि स्त्रीके शरीरमें ऐसी दुष्ट प्रकृति किसी कारणसे उत्पन्न हो जावे कि स्वभावसे ही रक्तकी पैदायसमें कमी पड जावे, इस प्रकारका चिह्न इन कारणोंके प्रथम होने अथवा पाये जानेसे प्रगट होता है ।

चिकित्सा—इसकी यह है कि जिन २ कारणोंसे स्त्रीके शरीरमें रक्तकी कमी होती निश्चय हो जावे उन २ कारणोंके निवृत्त करनेका उपाय करना उचित है । बाद स्त्रीको ऐसे आहार व ऐसी वस्तु देवे जिनसे साफ और अधिक रक्तकी उत्पत्ति हो रक्तकी बढती होवे, इसके साथही स्त्रीकी प्रकृति और शारीरक कारणकी भी हिफाजत करनी उचित है । जबतक स्त्रीके शरीरमें रक्तोत्पत्ति न होय तबतक उसको मार्ग चलने, अधिक परिश्रम करनेसे रोक देवे । जबतक भोजनों (आहार विहारसे) रक्तोत्पत्ति होने लगे तबतक दवा देनेकी जरूरत नहीं है । जब आहार विहारसे रक्तकी वृद्धि न होवे तो औषध देना उचित है । चौथा कारण इसका यह है कि जिसमें रुधिरकी अधिकतासे स्त्रीके स्तनोंका दुग्ध कम हो जाता है । व इस प्रकारसे है कि स्त्रीके शरीरमें रक्त अधिक बढजाय । और उस रक्तमें कुछ भी खराबी न होवे परन्तु स्त्रीकी प्रकृति ऐसी हो जावे कि रक्तकी अधिकतासे रक्तको पचा न सके और पचाकर उसका दुग्ध बनाकर स्तनोंमें न पहुँचा सके । चिकित्सा इसकी यह है कि स्त्रीकी फस्द करके रक्त निकाल देवे, लेकिन रक्त उतना ही निकालना चाहिये कि जितना निकालनेकी आवश्यकता होय । स्त्रीको ऐसे आहार देवे कि जो रक्तकी कमी करते होय और दुग्धकी उत्पत्ति अधिक करते होय, स्त्रीके शरीरको बलवान रखे ऐसे आहार विहार करावे, जो वस्तु रक्तको दूषित करती होय उससे बराबर परहेज रखे । जिससे किसी दूसरी व्याधिके उत्पन्न होनेका भय न रहे । अक्सर देखा जाता है कि स्त्रीको विशेष भय, विशेष चिन्ता, या बालकसे प्रीतिका कम होना । अथवा और कोई कारण ऐसा हुआ होय कि उत्पत्तिको रोकता होय । इत्यादिके अलावे स्त्रीके शरीरमें उत्तम और साफ रक्त भी होय परन्तु दुग्ध कम हो जाय और उसका

चिह्न यह है कि रुधिर कम उत्पन्न होय, निषिद्ध चिह्नोंमेंसे कुछ भी प्रगट न होय और उसके कारणमात्र प्रगट होयँ । चिकित्सा इसकी इस प्रकारसे है कि जिस कारणसे यह उत्पन्न है उस कारणको नष्ट कर पुष्टिकारक तथा संतोषजनक तबीयत प्रसन्न करनेवाली औपध स्त्रीको देनी चाहिये, जिससे स्त्रीकी प्रकृति दुग्ध उत्पन्न करनेकी तर्फ रुजू हो जावे । तीसरा भेद इसका यह है कि स्त्रीके शरीरमें रक्त निकम्मा होनेसे दूधकी उत्पत्ति कम हो जावे, यह दो प्रकारसे हो सक्ता है । एक तो यह कि सोदा, सफरा, बलगम इन तीनों दोषोंमेंसे कोई एक दोष रक्तमें मिल रक्तको दूपित कर देवे और हकीमोंकी राहमें यह बात प्रगट है कि निकम्मे रक्तसे दुग्धकी पैदायश बहुत ही कम होती है । दूसरे यह कि सादा पुष्ट प्रकृति स्त्रीके शरीरमें उत्पन्न होकर रक्तको बिगाड देवे और केवल छातीमें ही संयोगिक होय फिर रक्तको उस तर्फ जानेसे रोक देवे । कदाचित प्रकृति श्रेष्ठ भी होय तो इसको हकीम लोग दोनों भेदोंमें वर्णन कर सक्ते हैं, इसका प्रथम भेद तो बिगडेहुए खूनके भेदोंमें मिलेगा, जो कि दोषोंकी अधिकतासे होय इनमेंसे पित्तकी अधिकताके यह चिह्न हैं कि दूध पतला, पीला, गन्धमें तेजी, जलन होय । कफकी अधिकताका यह चिह्न है कि दूध बहुत सफेद होय और पतला पानीके समान होय. स्वाद तथा गन्धमें खट्टासा माल्रम होय वातकी अधिकताके यह चिह्न हैं कि दूध बहुत गाढा होय उसकी सफेदीमें मैलापन माल्रम पडे और दूध बहुत कम उतरे । कभी २ स्त्रीके शरीरमें खुष्की होवे तो खुष्कीकी अधिकतासे दूध गाढा होता है और दूधमेंसे तारसा निकलता है । विशेष वक्तव्य जो कुछ कफमें दूधके एकत्र होनेका वर्णन किया है, उस दशामें है कि जब सर्दीकी विशेष अधिकता होय और नहीं तो जो कफके साथ गर्मी होगी तो इसका स्वाद खारी होगा नकि खट्टा हो । इसकी चिकित्सा तबीब इस प्रकारसे करे कि जो दोष अधिक समझा जावे उसको निकाल देवे जो औषध व आहार उस दोषके बिरुद्ध होय उनको काममें लावे, जैसे कि पित्तकी दशामें जौका पानी और हिरनके बच्चे तथा बकरीके बच्चेके मांसका बनाहुआ शोरवा, आलूबुखारा अनार तुरसीवाला और नीबू इत्यादि खिलावे । कफकी अधिकतामें ऐसा शोरवा कि जिसमें गाजरके बीज और सोंफ पडा होय खिला गेहूंके आटेमें थोडा मेथीके बीजका आटा मिला होय उसको थोडे घृतमें भूनकर शहत मिलाकर हरीरा पकाकर देवे, वात दोषमें गेहू जौचना अंजीर बदामके तेलमें पकाहुआ शोरवा देना इसके साथ मोटी बडी मुर्गीका गोस्त और दूध देनेवाली भेडकी खेरी लाभदायक है । जिस स्त्रीके दूधमें तारसे आते होयँ तो उसको वनफशा, खतमी और जौका आटा इन तीनोंके जलके साथ पकाकर छाती और दोनों स्तनोंपर एक अंगुल भर मोटा लेप करे । और वनफशा खतमें,

जौका काढा बनाकर गर्म २ तर्डा छाती और स्तन पर देवे तर भोजन स्त्रीके खानेको देवे । दूसरा कारण इसका यह है कि उस निकम्मे दूषित रक्तक भेद वर्णनमें जो दुष्ट प्रकृतिसे उत्पन्न होंय और प्रत्येक दुष्ट प्रकृतिका चिह्न प्रगट है, जो भोजन और शरबत मवाद शुद्धिमें दिये जाते हैं उनसे ही स्त्रीकी प्रकृतिको सुधारना और बदल देना । स्तनोंमें जो दुष्ट प्रकृति आ गई है उसकी लेपोंकी दवासे निवृत्ति हो सक्ती है । और दूधके बढानेवाली औषधियों (तोदरी यह एक बनस्पतिका बीज है) यह दो प्रकारकी होती है लाल और कुछ २ पीले रंगकी । तोदरी पीली और लाल सफेद खसखासके बीज, बहेडा, बकरीकी खेरी, जो भोजन गर्मी और तरीको लिये हुए होय और पित्तके वास्ते खीरा ककडीके बीजका शीरा घीया (मगजकद्दू)के बीजका शीरा, जुलाबके साथ जवान बकरीका मेजा गौका दूध खांड मिलाकर ताजी मछली मीठे जलकी और पालकका शाक ये सब अदवीयात् दूधको बढाते हैं । कफ तथा वातके वास्ते दूध और गेहूँका हरीरा व ताजा दूध सोंफके पत्रोंका हरीरा बनाकर देवे, उत्तम दुग्ध स्त्रीका वह है कि जो स्वच्छ रक्तसे उत्पन्न होय उसके लक्षण यह हैं कि रंग और गाढेपनमें समान, गन्ध तथा स्वादमें अच्छे रसवाला होय । और ऐसी दवाकी विधि जो कि दूधको बढावे वह यह है कि तिलका चून लेकर अंगूरी शराबमें मलकर छानलेवे, उस छनी हुई शराबको स्त्रीको पिला उसकी गाद (फोक) छाती व स्तनोंपर लेप कर देवे । दूसरी दवा यह भी है कि गाजर, प्याज, सलगम सोया, मूली, सोंफ इन सबके बीज समान भाग लेकर सबके वजनके बराबर भुनेहुए चने ले सबको कूट छानकर रख प्रातःकालमें १ से २॥ तोला पर्य्यन्तकी पके ताजे गौके दूधके साथ लिया करे । काविली चने सामको दूधमें भिगो रात भर भीगने दे और प्रतिदिवस प्रातःकाल उसी दूधमें खांड डालकर पिलावे तो स्त्रीके स्तनोंमें दूध बढ जाता है । दूधको बढानेवाला लेप बाकलाका आटा ३९ मासे, कूटी हुई तुलसीका चूर्ण १७॥ मासे, दोनोंको तुलसी पत्रके स्वरसमें मिलाकर स्तनोंपर लेप करे । दूसरा लेप तुलसीके बीज, जौका,आटा, बाकलाका आटा, पोदीना सूखा फोतनज यह भी एक प्रकारका पोदीना है, तुलसीके पत्तोंके स्वरसमें मिलाकर स्तनोंपर लेप करे ।

यूनानी तिब्बसे दूषित दुग्धकी शुद्धिकी चिकित्सा समाप्त ।

यूनानी तिब्बसे दुग्धकी अधिकता और दुग्धस्रावकी चिकित्सा ।

इस विषयको इस प्रकार जानना चाहिये कि दूधका स्तनोंमेंसे विशेष बहना कई कारणोंसे हानिकारक है । एक तो यह कि स्त्रीके शरीरको निर्बल करता है, क्यों-

कि दूधका पूर्वरूप मवाद रक्त है, रक्तका विशेष निकलना स्त्रीके शरीरमें विशेष निर्बलता उत्पन्न करता है। दूसरे इस बातका भी भय है कि अधिकताके कारणसे छातियोंमें रुक जावे और उसमें बाहरकी शर्दी पहुँचकर उसको गाढा कर डाले इस कारणसे निकम्मा हो जाय, अक्सर करके खट्टा भी हो जाता है। तीसरे यह कि स्तनोंमें विशेष रक्त जो कि असली गर्मीको दबा लेवे, इस कारणसे गर्मी उसमें अपना कर्त्तव्य कार्य्य न करसके, किसी प्रकारकी रोगरूपी विपत्ति उत्पन्न होय। चौथा यह है कि कदाचित् खिंचावटकी अधिकतासे स्तनोंमें सूजन अथवा कोई दूसरा रोग उत्पन्न होवे, असली अभिप्राय यह है कि जब दूधकी अधिकता होय तो उसका उपाय करना चाहिये। परन्तु जिस रोगी स्त्रीको निर्बलता व दूसरी किसी प्रकारकी व्याधिरूपी विपत्ति न बढ आवे, क्योंकि कोई २ स्त्री ऐसी होती है जो विशेष आहार करती है। उसके शरीरमें रक्त अधिक उत्पन्न होता है, इस कारणसे ऐसी तासीरवाली स्त्रियोंके शरीरमें दूध भी बढ जाता है। इस वृद्धिके होनेपर भी कुछ विशेष हानिकारक कोई उपद्रव उत्पन्न नहीं होता सो ऐसी तासीरवाली स्त्रियोंके लिये दूधके कम करनेवाली चीजोंका इस्तेमाल न करावे, जो यह जान पडे कि कोई दूसरी उपाधि उत्पन्न हो जावेगी तो स्त्रीको उचित है कि कुछ भोजन कम कर ऐसी वस्तुओंको खाया करे कि जो रतूवतको सुखा देवे। इस कारणसे दुग्ध उत्पत्ति कम हो जायगी। यह भी जानलेना चाहिये कि दुग्धकी अधिकताके कारण न्यूनताके कारणसे विरुद्ध हैं, कभी कभी ऐसा भी होता है कि स्त्रीको विना गर्भके भी स्तनमें दुग्ध उत्पन्न हो दर्द उठता है। मुख्य करके जव रजस्वलाका रुधिर बन्द होगया होय। और ऐसा भी होता है कि जवान मर्दके स्तनोंसेभी जवानीकी उमरके समयमें दूध उत्पन्न हो दर्द उठता है। यह तो कइ समय देखनेमें आया है कि बालक उत्पन्न न होनेसे भी स्त्रियोंके स्तनमें दूध उत्पन्न हो जाता है, उसका कारण यह है कि स्त्रीकी गोदीमें कोई बालक नहीं है और न हुआ है। परन्तु स्त्री जब किसी दूसरी स्त्रीके उत्पन्न हुए बालकसे स्नेह करती है अथवा स्वयं वह स्त्री किसी दत्तक सन्तानको गोद लेकर अपना सन्तान बना पुत्रके समान स्नेह करती है तो उसके स्तनोंमें दुग्ध उत्पन्न हो जाता है। इस समय भी इस प्रमाणकी पुष्टिके लिये एक स्त्री मौजूद है कि उसके सन्तान नहीं हुआ और उसने दत्तक पुत्र लिया है, उस पुत्रके आनेके पीछेसे ही उसके स्तनोंमें दुग्ध उत्पन्न हो गया है। परन्तु जवानीकी उमरमें पुरुषोंके स्तनोंमें दुग्धकी उत्पत्ति होना यूनानी तिब्बकी किताबाम ही देखनेमें आया है, सायद कहीं हकीम साहब धोखा न खा गये होयँ, क्योंकि ऐसे पुरुष तो कितनेही देखनेमें आये हैं कि जवानीकी उमरके आरम्भमें उनके स्तनोंमें गाँठें पड जाती हैं। जिन स्त्रियोंके सन्तान नहीं हुए हैं ऐसी

१४।१५ वर्षकी उमरवाली स्त्रियोंके समान स्तन हो जाते हैं परन्तु एक दो साल पीछे वह उन्नति स्वभावसे ही निवृत्त हो जाती है। मगर आजतक वैद्यक व डाक्टरीके ग्रन्थोंमें यह बात नहीं देखी गई कि पुरुषोंके स्तनोंमें दुग्ध उत्पन्न हो जाता है । दूसरे यह भी संदेह है कि स्त्रीजनोंके स्तनोंका गर्भअण्ड और गर्भाशयसे बडा ही घनिष्ट सम्बन्ध है स्त्रीके गर्भअण्ड व गर्भाशयमें कुछ आभ्यन्तर व्याधि होवे तो उसका असर स्तनोंमें आ जाता है । स्त्री जब भोगविलाशमें रत होती है तो उसके स्तनोंमें विजलीकासा असर उत्पन्न हो स्त्रीको ऐसा माद्धम होता है कि कोई वस्तु स्तनोंमेंसे निकल कर गर्भाशयकी तर्फ नीचेको उतरती जाती है । तो हमारे इस कथनका यही प्रयोजन है कि तिब्बके बनानेवाले तबीबोंको उचित था कि जिन पुरुषोंके स्तनोंमें जवानीकी उमरमें दुग्धकी उत्पत्ति देखी उन पुरुषोंकी विशेष परीक्षा करके गर्भाशय देखना था कि है कि नहीं । यदि उन पुरुषोंके गर्भाशय भी निकल आता तो नर और नारीकी सृष्टिमें कुछ भेद न रहा होता और स्त्रियोंके समान पुरुष भी बच्चे जनने लगते। मगर क्या किया जाय इस तिब्बके बनानेवाले हकीम साहब तो सिधार गये और दिल्लगीकी बात इतनी बडी तिब्बमें लिख गये कि जो देखेगा वही मस्करी उडावेगा । उपरोक्त प्रकरण दुग्धके बहनेकी चिकित्सा । इस प्रकारसे करनी चाहिये कि जो तरीको सुखानेवाली और नष्ट करनेवाली वीर्य्यको कम करनेवाली रुधिरको बहानेवाली औषध देवे जो कि लाभदायक है । क्योंकि रुधिरसे ही दूध बनकर स्तनोंकी तर्फ जायगा । और मुख्य करके रजो सम्बन्धि रुधिरका बन्द नहीं होना ही दुग्धकी अधिकताका कारण होय तो अब ऐसे लेपकी विधि लिखते हैं, जिसको स्तनोंपर लगानेसे दुग्ध कम हो जाता है । लक (यह एक गोंद लाख करके मसहूर है) और मुर्दासनको समान भाग लेकर गुलाब जलमें बारीक पीसकर स्तनोंपर लेप करे, अन्य बिधि जीरा बारीक पीसकर और सिर्केमें मिलाकर स्तनोंपर लेप करे और शीतल द्रव्योंमेंसे जो इस विषयमें लाभदायक हैं जैसे कि सिर्केमें पकाई हुई मसूर, काहूका खाना, लेप करना मुफीद है । ईसबगोलके लुआबका लेप करना ईसबगोलकी पत्तीका लेप करना अति लाभदायक है, गर्म चीजोंमेंसे तुतली खाना तुतलीका लेप करना तुतलीके बीज मुख्य करके पहाडी पैदायसके होवें । जीरा खाना सिर्केमें जीरेका सफूफ मिलाकर लेप करना । और कर्नबके बीज कूट छानकर सिर्केमें मिलाकर लेप करना विशेष लाभदायक हैं । सूखी चीजोंमेंसे जैसे कि मेथी बाकलाके बीजके चूर्णसे प्रयोजन है, इनको गुलाब और रोगन गुलमें मिलाकर लेप करे । लेपकी विधि–गिलेअरमनी और मसूर समान भाग लेकर सिक और गुलाबमें पीसकर लेप करे और भोजनमें आशशिमाकका पानी

कच्चा अंगूर और नींबू आदिका रस खटाइयोंमेंसे ग्रहण करे । तथा मसूरका खाना दुग्धकी उत्पत्तिको कम करता है ।

यूनानी तिब्बसे स्त्रीके अधिक दुग्ध और दुग्धस्रावकी चिकित्सा समाप्त ।

आयुर्वेदसे बालकका नामकरण संस्कार।

द्विजातिलोग ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य इनकी द्विजातीय संज्ञा है । गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, गर्भाधान संस्कारसे लेकर बालकके जन्म पर्य्यन्त चार संस्कार होते हैं। अब पांचवां संस्कार बालकका नामकरण है, यज्ञोपवीत और शिखाधारी द्विज शब्दके अभिमानी तथा आर्य्य लोगोंको उचित है कि वेदानुकूल प्राचीन धर्मकी प्रथापर जो संस्कार प्रणाली ऋषियोंने नियत की है उसको अवश्य समय २ पर करें। संस्कारोंको करनेसे वैदिक कर्मकाण्डकी रक्षा होती है, जो स्त्री पुरुष इन संस्कारोंको यथाविधि यथावसर पर करते हैं उनकी सात्विकी वृत्ति रहती है और उनके सन्तान भी बलिष्ठ और सात्विकी वृत्तिवाले होते हैं। सन्तानोंमें सौम्यगुण उत्पन्न होते हैं इसी लिये वैदिक आचार्योंने संस्कारका प्रचार आयुर्वेदकी आज्ञानुसार प्रवृत्त किया है। लोग पूर्वाच्यार्य्योंकी नियत प्रथाको पश्चिमी म्लेच्छ सभ्यताके अभिमानका आश्रय लेकर संस्कार विधिको त्यागते हैं वे लोग संस्कार पद्धतिके गुणोंसे शून्य हैं। आयुर्वेद वैद्यक शास्त्र किसी एक जाति व वर्ण अथवा आश्रमका निर्देश नहीं करता है, किन्तु मनुष्योंकी आरोग्यता और सौम्य गुणोंकी विधिका विधान करता है। आयुर्वेदकी उपदेश प्रणाली संसार भरके मनुष्योंके लिये एक समान है । आयुर्वेदमें किसी मतमतान्तरका खंडन मंडन नहीं है जैसे प्राकृत पदार्थ जल अग्नि वायु पृथिवी आकाश सब मनुष्योंके लिये समान है इसी प्रकार आयुर्वेदकी आज्ञा सब मनुष्यमात्रको आरोग्य रखनेवाली और सौम्य गुणोंको उत्पन्न करनेवाली है । प्रसूता प्रकरणमें बालकके जातकर्म संस्कार पर्य्यन्त लिख आये हैं । मनुस्मृति धर्मशास्त्रमें "निषेकादि श्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः" । अर्थात् मनुष्योंके शरीर और उत्तम आत्माके परिणामके लिये निषेकादि अर्थात् गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टि संस्कार पर्य्यन्त द्विजोंको इस वैदिक प्रणालीका करना उचित है । गर्भाधान संस्कार उसी दिवस होता है जिस दिवस स्त्रीको गर्भ धारण कराया जाय । पुंसवन संस्कार गर्भाधानके दिनसे लेकर दूसरे महीनेके अन्तमें अथवा तीसरे महीनेकी समाप्तिके अन्दर करना चाहिये । सीमन्तोन्नयन यह संस्कार चौथे महीनेमें होता है । जातकर्म यह बालकके जन्म समयका संस्कार है ।

नामकरण संस्कारका विधान।

दशमे दिवसे पूर्णे विधिभिः कुशलोचितैः। कारयेत्सूतिकोत्थानं नाम बालस्य चार्चितम् ॥

अर्थ–बालकका जन्म होनेसे दश दिवस पूर्ण होनेपर कुशल वैद्य विधिपूर्वक सूतिका उत्थान करे तथा बालकका नामकरण आदि संस्कार करे।

बालक होनेके उपरान्त दश दिवसकी क्रियाका विधान।

दशमे त्वहनि सपुत्रा स्त्री सर्वगन्धौषधैर्गौरसर्षपलोध्रैश्च स्नाता लघ्वहत-वस्त्रं परिधाय पवित्रेष्टलघुविचित्रभूषणवती संस्पृश्य मङ्गलान्युचिता-मर्चयित्वा च देवतां शिखिनः शुक्लवाससोऽव्यङ्गांश्च ब्राह्मणान्-स्वस्ति वाचयित्वा कुमारमहतेन शुचिवाससाच्छादयेत्। प्राक्शिरसमु-दक्शिरसं वा संवेश्य देवतापूर्वं द्विजातिभ्यः प्रणमतीत्युक्त्वा कुमारस्य पिता द्वे नामनी कारयेन्नाक्षत्रिकं नामाभिप्रायिकं च ॥ तत्राभिप्रायिकं नाम घोषवदाद्यन्तस्थान्तमूष्मान्तं च वृद्धं त्रिपुरुषान्तरमनवप्रतिष्ठितम्। नाक्षत्रिकं तु नक्षत्रदेवतासंयुक्तं कृतं द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा ॥ (सुश्रुते)

नामकरणविधिः।

ततो दशमेऽहनि मातापितरौ कृतमङ्गलकौतुकौ स्वस्तिवाचनं कृत्वा नाम कुर्यातां यदभिप्रेतं नक्षत्रनाम वा ॥

अर्थ–दशमें दिवस प्रसूता स्त्री तथा उसके बालकके शरीरमें सर्वगन्ध औषध सफेद सरसों, लोध इन सबका बारीक उबटना कराके स्नान करावे, स्नानका जल ऋतुके अनुसार और स्त्री तथा बालककी प्रकृतिके अनुसार शर्द गर्म लेवे, स्नान बन्द मकानमें करावे जहां पर विशेष हवाका झपाटा न आता होय। स्नान करके शूके अंगोछेसे स्त्री तथा बालकका शरीर पोंछ कर सूका कर नूतन स्वच्छ वस्त्र ऋतुके अनुकूल दोनोंको पहना पवित्र अभीष्ट हलके और चित्रविचित्र गहने पहनाके मङ्गल द्रव्योंका स्पर्श करा देवताओंका पूजन कराके शिखा धारी और शुक्ल वस्त्रधारी अवि-कृताङ्ग ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्तिवाचन कराके बालकको स्वच्छ और सावत वस्त्र पहनावे। फिर बालकको पूर्व व उत्तरकी तर्फ शिर कराके शयन करा देवे, यह बालक प्रथम देवताओंको (परमात्मा) को प्रणाम करता है। इसके बाद ब्राह्मणोंको प्रणाम

करता है । यह कहकर बालकका पिता उसके दो नाम रखवावे । एक नाक्षत्रिक, दूसरा आभिप्रायक । नाम रखनेकी विधि—अभिप्रायक नाम ऐसा होना चाहिये जिसके आदिमें घोषवर्ण होय और बीचमें अन्तस्थ और अन्तमें ऊष्णवर्ण होय । जैसे ब्राह्मणका भद्रदेव शर्मा, क्षत्रीका धर्मसिंह वर्म्मा, वैश्यका धनराज गुप्त इत्यादि । लेकिन ऐसा नाम पिता, पितामह और प्रपितामहका न होवे, ऐसा नाम भी न होय जो प्रतिष्ठासे रहित होय नाक्षत्रिक नाम जन्म समयके नक्षत्रसे गणित करके उसके अनुसार रखना चाहिये, यह नाम दो व चार अक्षरका होवे । नामकरणके पश्चात् कुमारकी आयुका प्रमाण जाननेके लिये परीक्षा करे, सुश्रुतका भी यही सिद्धान्त है । बालकके जन्मसे दशमें दिवस बालकके माता पिताको उचित है कि मंगलसूचक नेग टेहलोंको कुलकी रवाजके माफिक करके और वेदोक्त पाठ स्वास्तिवाचन कराके अपनी इच्छाके अनुसार अथवा जन्म नक्षत्रके अनुसार बालकका नाम निकाले । जिस तिथि महीना वर्षमें बालक उत्पन्न हुआ होय चाहे लडकी होय चाहे लडका होय उस दिनको माता पिता लिखकर अपने समीप नियमसे रखलेवे और जब बालक बडा होजावे तब उसको उसके जन्मका दिन तिथि महीना वर्ष बताकर याद करादेवे ताकि मनुष्यको अपनी आयुका ज्ञान रहे, यहाँ नक्षत्रसे किसी ग्रहका व रंगविरंगी जन्मपत्री बनानेका प्रयोजन न समझना कि जो जन्मभर मनुष्योंसे लाँच दिलाती रहती है । जोतिषके गणितके अनुसार नक्षत्र बदलते रहते हैं यहां केवल नक्षत्रसे प्रयोजन है ।

दीर्घजीवी कुमारके लक्षण ।

तत्रेमान्यायुष्मतां कुमाराणां लक्षणानि भवन्ति तद्यथा । एकैकजा मृदवोऽल्पाः स्निग्धाः सुबद्धमूलाः कृष्णाः केशाः प्रशस्यन्ते । स्थिरा बहला त्वक् प्रकृत्याकृतिसुसम्पन्नमीषत्प्रमाणातिरिक्तमनुरूपमातपत्रोपमं शिरः प्रशस्यते व्यूहं दृढं समं सुश्लिष्टशंखसन्ध्यर्धव्यञ्जनसुपचितं बलिनमर्धचन्द्राकृतिललाटं बहलौ विपुलसमपीठौ समौ नीचौ वृद्धौ पृष्ठतोऽवनतौ सुश्लिष्टकर्णपुटकौ महाछिद्रौ कर्णौ ईषत्प्रलम्बिन्यावसङ्गते समे संहते महत्यौ भ्रुवौ । समे समाहितदर्शने व्यक्तभागविभागे बलवति तेजसोपपन्ने स्वांगोपांगे चक्षुषी ऋज्वी महोच्छ्वासा वंशसंपन्नेषदवनताग्रा नासिका । महदृजुसुनिविष्टदन्तमास्यमायामविस्तारोपपन्ना श्लक्ष्णा तन्वी प्रकृतियुक्ता पाटलवर्णा जिह्वा । श्लक्ष्णं युक्तोपचयमुष्णोपपन्नं रक्तं

तालु । महानदीनः स्निग्धोऽनुनादी गंभीरसमुत्थो धीरः स्वरः । नाति-स्थूलौ नातिकृशौ विस्तारोपपन्नावास्यप्रच्छादनौ रक्तावोष्ठौ महत्यौ हनू वृत्तौ नाति महतीग्रीवा व्यूढ मुपचितमुरो गूढं जत्रु पृष्ठवंशश्च । विप्रकृष्टान्तरौ स्तनावंशपातिनी स्थिरे पार्श्वे वृत्तपरिपूर्णायतौ बाहू सक्थिनी अंगुलयश्चमहदुपचितं पाणिपादम् । स्थिरा वृत्ताः स्निग्धास्ताम्रास्तुंगाः कूर्माकाराः करजाः । प्रदक्षिणावर्त्ता सोत्संगा च नाभिः । नाभ्युरस्त्रिभागहीना समा समुपचितमांसा कटी वृत्तौ स्थिरोपचितमांसौ नात्युन्नतौ नात्यवनतौ स्फिचावनुपूर्ववृत्तावुपचययुक्तावूरू । नात्युपचिते नात्यपचिते एणीपदे प्रगूढ शिरास्थिसन्धिजङ्घे । नात्युपचितौ नात्यपचितौ गुल्फौ पूर्वोपदिष्टगुणौ पादौ कूर्माकारौ । प्रकृतियुक्तानि वातमूत्रपुरीषगुह्यानि तथा स्वप्नजागरणायासस्मितरुदितस्तनग्रहणानि । यच्च किंचिदन्यदप्यनुक्तमस्ति तदपि सर्वं प्रकृतिसंपन्नमिष्टं विपरीतं पुनरनिष्टमिति दीर्घायुर्लक्षणानि ॥ (चरक)

अर्थ—चरक ऋषिने दीर्घ आयुष्मान् कुमार (बालक) के लक्षण इस प्रकारसे कथन किये हैं । यथा बिना उलझे हुए, मृदु, अल्पस्निग्ध दृढ मूल और काले केश प्रशंसनीय होते हैं । दृढ और मोटी त्वचा उत्तम होती है । ऐसा शिर दीर्घ जीवी बालकोंका होता है, जो स्वाभाविक सुडौल बड़ा प्रमाणसे गोल और छातासे अनुकूल होता है । ललाट बड़ा दृढ एकसा चिकना कनपटीकी सन्धियोंसे युक्त अर्द्ध व्यञ्जन उपचित रेखायुक्त और आधे चन्द्रमाकी आकृतिवाला अच्छा होता है । दोनों कान मोटे कानोंके पृष्ठ भाग विपुल और समान नीचेको बढेहुए । पीठेकी ओर नीचे चिकनी औरवाले बड़े छिद्रवाले अच्छे होते हैं । दोनों भौंह कुछ लम्बी मिली हुई समान संहत और वृहत् अच्छी होती हैं । दोनों नेत्र समान दृष्टिसे युक्त व्यक्त सुविभक्त बलवान् तेजयुक्त पलक बरौनी कोए आदि अंगोपाङ्गसे युक्त प्रशंसनीय होते हैं । नासिका सीधी दीर्घ श्वाससे युक्त बांसहित आगेको कुछ नवी हुई अच्छी होती है । मुख बड़ा सीधा सुनिविष्ट अच्छा होता है, जिह्वा लम्बी चौडी सफेद और पतली प्रकृतियुक्त अच्छी होती है । तालु चिकनाई युक्त पुष्ट गर्म और रक्तवर्ण अच्छा होता है, और जो स्वर बड़ा दीन रहित स्निग्ध अनुनादी (गूंजता हुआ) गंभीर और धीर प्रशंसनीय है ।

ओष्ठ न बहुत मोटे न पतले आस्य प्रच्छादन रक्त वर्णवाले अच्छे होते हैं । ठोडी बडी और गोल नीति दीर्घ ग्रीवा बडा और पुष्ट वक्षःस्थल जत्रु (हसली) और पीठका वांसा मांससे ढके हुए श्रेष्ठ होते हैं । स्तनोंके बीचका भाग (छाती) चौडी और दोनो पसली अंसपातिनों और दृढ बाहु नितम्ब अंगुली गोल परिपूर्ण और लम्बी हाथ और पांव बहुत मोटे नख दृढ गोल स्निग्ध ताम्रवर्ण ऊंचे और कच्छपके आकारके अच्छे होते हैं । दक्षिणवर्त्त (दाहिनी ओरको चक्कर खायेहुए गहरी नाभि । कमर नाभि और हृदयके बीचके भागसे चौथाई समान और पुष्ट अच्छी होती है । दोनों स्फिक् गोलदृढ पुष्ट मांससे युक्त, न बहुत नीचे न बहुत ऊंचे अच्छे होते हैं । दोनों ऊरू गोल और पुष्टदोनों जंघा न बहुत मोटी न बहुत पतली । हरिणीके सदृश तथा उसकी शिरा अस्थि और सन्धि मांससे ढकीहुई होय तो प्रशंसनीय है । दोनों टकने न विशेष मोटे न बिशेष पतले । पूर्वोक्त गुणोंसे सम्पन्न कच्छपाकार दोनों पाद प्रशंनीय होते हैं । इनके अतिरिक्त वात मूत्र पुरीष गुह्येन्द्रिय स्वप्न जागरण, हास्य, रुदन, स्तन ग्रहण ये सब स्वाभाविक होने चाहिये । इनके अतिरिक्त और बातें भी जो कथन करनेसे रहगई हैं व प्रकृतिभूत सम्यक् गुणोंसे युक्त होयँ तो अच्छी होती हैं, ये सब दीर्घायु बालकके लक्षण हैं । इनसे भिन्न लक्षण होय तो अल्पायुके समझना ।

दीर्घजीवी कुमारके लक्षण समाप्त ।

आयुर्वेदसे कुमारागारकी विधि । (बालकके रहनेका मकान)

अतोऽनन्तरं कुमारागार विधि मनुव्याख्यास्यामः ॥ वास्तुविद्याकुशलः प्रशस्तं रम्यमतमस्कं निर्वातं प्रवातैकदेशं दृढमपगतश्वापदपशुदंष्ट्रिमूषिकपतङ्गं सुसंविक्तसलिलोदूखलमूत्रवर्चः स्थानस्नानभूमिमहानसमृतुसुखं यथर्तुशयनासनास्तरणसम्पन्नं कुर्य्यात् । तथा सुविहितरक्षाविधानबलिमङ्गलहोमप्रायश्चित्तं शुचिवृद्धवैद्यानुरक्तजनसम्पूर्ण मिति कुमारागारविधिः ॥ शयनविस्तरविधिः । शयनास्तरणप्रावरणानि कुमारस्यमृदुलघुशुचिसुगन्धीनि स्युः । स्वेदमलजन्तुमन्तिमूत्रपुरीषोपसृष्टानि च वर्ज्यानि स्युः । असति संभवेऽन्येषां तान्येव च सुप्रक्षालितोपधानानि सुधूपितानि सुशुद्धशुष्काण्युपयोगं गच्छेयुः ॥ (चरक)

अर्थ—अब हम बालकके रहनेके स्थानका वर्णन करते हैं । वास्तुविद्यामें कुशल मनुष्य एक ऐसा मकान बनावे, जो प्रशस्त (लम्बा चौडा श्रेष्ठ) रमणीक अन्धकार

रहित अधिक वातरहित सामान्य वायुका आवागमन रहता होय और एक भागमें खुली वायु आती होय मकान दृढ बना होय उसके गिरनेका भय न होय । जिसमेंसे सेह पशु दान्तवाले जीव चूहे पतंग मच्छर अथवा अन्य प्रकारके जीव न आते हों, जो कि बालकको कष्ट पहुँचावें या काट लेवें । जिस मकानमें पृथक २ जगह प्रत्येक कामके लिये अलग बनी हों जैसे जलघर, उलूखल स्थान, चक्कीघर जिसमें कूटना पीसना होता होय । वर्चस्कस्थान (संडास पायखाना) स्नानागार, रसोईघर तथा शयन करने, स्त्री पुरुषोंके बैठनेके स्थान पृथक् २ होयँ जो प्रत्येक ऋतुके अनुकूल सुखदायक शय्या आसन बिछौनेसे युक्त हो इस घरमें रक्षाविधान बलि वैश्यदेव (मङ्गलपाठ स्वस्तिवाचन शान्तिकरण होम प्रायश्चित्तादि शुभ कार्य्य होते रहें और गृहमें पवित्र वृद्ध वैद्य तथा स्नेहीजन (मुर्व्वीलोग) भी रहते होयँ । यह कुमारागारकी विधि वर्णन की गई है । अब बालकके ओढने बिछानेके वस्त्र अति कोमल, हलके पवित्र और सुगन्धित होने चाहिये । वे कपडे ऐसे न होवें कि पसीनेसे मलीन बदबूदार जूंआदि जन्तु जिनमें रहते होयँ मूत्र और बालकके पुरीषसे खराब होयँ, यदि बालकके लिये नित्यप्रति नवीन वस्त्र न प्राप्त हो सक्ते होयँ तो उन्हीं मलमूत्रोपसृष्ट वस्त्रोंमें साबुन लगाकर भले प्रकारसे धोकर सुखा कर स्वच्छ कर नीचे लिखी हुइ धूपसे धूपित करके काममें लावे ।

बालकके वस्त्रोंकी धूपनौषध ।

धूपनानि पुनर्वाससा शयनास्तरणप्रावरणानाञ्च यवसर्षपातसीहिंगुगुग्गुलु वचाचोरकवयः स्थागोलोमीजटिलापलङ्कशाशोकरोहिणीसर्पनिर्मोकानि घृतसम्प्रयुक्तानि स्युः ॥

अर्थ—बालककी शय्या तथा ओढने बिछाने पहरनेके वस्त्रको धोकर धूपमें सुखाकर नीचे लिखे हुए द्रव्योंकी धूपसे हररोज धूपित कर लिया करे । जिस मकानमें बालक रहता होय उस मकानमें भी इस धूपको हररोज दे । जौ, सरसों, अलसी, हींग, गूगल, घुडवच, चोरक, हरड, गौलोमी दूसरी जातिकी दुधवच, जटामांसी (बालछड) अशोककी छाल, कुटकी, सर्पकी कांचली इतने औषध तो चरक ऋषिकी ओरसे हैं । देवदारु, छडीला, चन्दन, तालीसपत्र, कपूर कचरी, खस, गिलोय, नरकचर, लोहबान, पद्माख ये द्रव्य ग्रन्थकारकी राहसे इस धूपमें मिलाये जावें । इन औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके घृत तथा नारियलके तैलसे चिकनी कर एक वर्त्तनमें भरकर रख निर्धूम अंगारपर डालके बालककी शय्या और वस्त्रोंको इसका धूआं देवे ।

बालककी अन्य रक्षा विधि।

मणयश्च धारणीयाः कुमारस्य खड्गरुरुगजगवय वृषभाणां जीवतां दक्षिणे विषाणेभ्योऽग्राणी गृहीतानि स्युः। ऐन्द्र्यादयश्चौषधयो जीवकर्षभकौ च यान्यप्यन्यानि ब्राह्मणाः प्रशंसेयुः। (चरकसे)

अर्थ—बालककी सूतिकागार सम्बन्धि रक्षाविधि पूर्व लिखी गई है, अब अन्य आशयसे दूसरी रक्षाविधि लिखी जाती है। कुमारके कण्ठ गलेमें नव रत्नोंमेसे कोई भी मणि पहरानी चाहिये। तथा जीवित पशुओंके गेंडा. रूरू. हाथी, दांत, रोझ व बैल इनके सींगोंके अग्र भाग चांदी व सोनेका कुंदा लगाकर कठुला बनाके पहरावे। इसी प्रकार पूर्वोक्त ऐन्द्र्यादिक औषधियाँ जीवक, ऋषभक, अथवा अन्य द्रव्य जिनको सत्य शास्त्रोंके ज्ञाता वेद विहित कर्मोंके करनेवाले ईश्वरपरायण वृद्ध ब्राह्मण बतलावे वे कुमारको धारण करावे। यूरोपादि पश्चिमी सभ्यताके अभिमानी पुरुषोंको बालककी रक्षाविधिको पढकर क्रोध व हास्य उत्पन्न होगा उन महाशयोंको विचारना चाहिय कि सभ्य देशोंसे आजकल कमरपट्टा, अंगूठी, बालपट्टादि बहुतसे ढकोसले आते हैं और उनको जाहिर किया जाता है कि इनमें बिजलीका असर है और अमुक लाभ पहुंचता है। इन ढकोसलोंकी अपेक्षा हमारे आरण्य निवासी ऋषि गणोंकी प्राचीन पद्धति कितनेही अंशमें श्रेष्ठ और स्वार्थ रहित है। राजा महाराजोंसे लेकर झोपडा निवासी दरिद्री पर्य्यन्तके लिये उपयोगी है इस समय यूरोप अमेरिकादिके लोग जो कुछ वस्तु निकालते हैं वह धन कमानेके वास्त है। लेकिन हमारे आरण्य निवासी कन्दमूल फलाहारी और वृक्ष वल्कलसे लज्जा निवारण करनेवाले त्यागी पुरुषोंमें यह बात नहीं थी, जो कुछ कार्य्य करके वे रख गये हैं उपकार दृष्टिसे समझिये। आगारा वृक्षके मूलको हाथपर रखनेसे विच्छू डंक नहीं मारता। नागदमनी बूटीको हाथमें रखनेसे कसाही क्रोधीविषयुक्त सर्प होवे कदापि दंश न करेगा। इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्यमें विलक्षण गुण पाये जाते हैं, यूरोप आदिकी कृत्रिम वस्तुओंमें बिजलीका असर बतलाके द्रव्य हरण किया जाता है। लेकिन हमारे ऋषियोंकी शोधन की हुई कुदर्ती वस्तुओंमें जो कि जीवित पशुओंसे ली गई हैं उनकी बिजली क्योंकर नष्ट हो सक्ती है। मयूरपंखसे निकाले हुए ताम्रकी अंगूठी पहननेसे किसी भी जहरी जन्तुके विषका असर नहीं होता, इसी प्रकार नई सभ्यतावाले अपनी बुद्धिसे स्वयं काम ला प्राचीन पद्धतिपर हास्य न करें।

बालकके खिलौने।

क्रीडनकानि खल्वस्य तु विचित्राणि घोषवन्त्यभिरामाणि अगरूण्या

तीक्ष्णग्राणि अनास्यप्रवेशीनि अप्राणहराणि अवित्रासनानि स्युः । न ह्यस्य वित्रासनं साधु तस्मान्न तस्मिन् रुदत्यभुञ्जाने वान्यत्र वा विधेयतामगच्छति राक्षसपिशाचपूतनाद्यानां नामान्याह्वयता कुमारस्य वित्रासनार्थं नामग्रहणं न कार्य्यं स्यात् ॥ (चरक)

अर्थ—बालकको खेलने व रम्मत करनेके लिये ऐसे खिलौने देवे, कि जो चित्र विचित्र शब्द करनेवाले बाजे आदि मनोहर हर्षदायक और हलके होयँ । जिनको बालक हाथसें उठा सके और जिनकी नोक न निकल रही होय कि बालकके शरीरमें चुभ जावे । ऐसे छोटे भी न होयँ कि बालकके मुखसें घुस जावें । ऐसा कोई खिलौना न होय कि प्राणनाशक और भय उत्पन्न करनेवाला होय, यदि बालक किसी 'समयपर रुदन कर रहा होय या मचल रहा होय अथवा खाता पीता न होय तो उसको किसी प्रकारके खेल तमासेका आश्वासन देकर प्रसन्न चित्त करे । राक्षस भूत पिशाच पूतना संखिनी डाकिनीका नाम तथा हिंसक व्याघ्रादिका नाम लेकर कदापि न डरावे किसी समय पर डरानेसे बालक भयंकर रोगी हो जाता है ।

बालकके परिचारक (टहलुओं) का कर्त्तव्य कर्म ।

बालं पुनर्गात्रसुखं गृह्णीयान्न चैनं तर्जयेत् सहसा न प्रतिबोधयेद्वित्रास भयात् सहसा नापहरेदुत्क्षिपेद्वा वातादिविघातभयान्नोपवेशयेत् कौब्ज्य-भयात् नित्यं चैनमनुवर्त्तेत प्रियशतैरजिघांसुः ॥

उपरोक्त क्रियाका फल ।

एवमनभिहितमनास्त्वभिवर्द्धते नित्यमुदग्रसत्वसम्पन्नो नीरोगः सुप्रसन्न-मनाश्च भवति । वातातपविद्युत्प्रभापादपलताशून्यागारनिम्नस्थानगृहच्छायादिभ्यो दुर्ग्रहोपसर्गतश्च बालं रक्षेत् ॥ नाशुचौ विसृजेद्बालं नाकाशे विषमने चानोष्मामारुतवर्षेषु रजोधूमोदकेषु च ॥

अर्थ—बालकके परिचारक (खिलानेवाले) को उचित है कि ऐसी रीतिसे उठावे बैठावे कि जिस प्रकारसे बालकके कोमल शरीरको किसी प्रकारसे कष्ट न पहुँचे । धमकाना घुडकना ताडना देना व चिल्लाकर बोलना पांच वर्षकी अवस्थातक ऐसा व्यवहार न करना चाहिये, क्योंकि (लालयेत् पञ्च वर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत् । प्राप्ते च षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्) यदि बालक शयन करता होय तो अचानक एकाएकी उसको न जगावे । एक साथ ही निरन्तर सुलावे भी नहीं, क्योंकि ऐसा

करनेसे वातादि रोगोंके उत्पन्न होनेका भय रहता है। एक साथ अचानक चढोडकर बैठावे भी नहीं, क्योंकि ऐसे झटकापटकीके उठाने बैठानेसे बालकके शरीरमें कुब्ज दोष आनेका भय रहता है। खिलाने आदि अनेक प्यारी वस्तुओंसे बालकको सन्तुष्ट रख बालकसे स्नेह पूर्वक मीठे वचन बोले। विधिपूर्वक उपरोक्त रीतिसे बालकका पोषण किया जावे तो दिनपर दिन बालकका शरीर वृद्धिको प्राप्त हो बालककी प्रकृति सत्व सम्पन्न हो बालकका शरीर निरोग रहता है। सब प्रकारसे बालक प्रसन्न चित्तसे रहे तो नित्यप्रति फूलता रहता है। आंधी धूप बिजलीकी चमक वृक्षलता शून्य निर्जन स्थान खड्डा खाई ऊंची नीची जगह और भयावने स्थानोंपर बालकको न ले जावे। ग्रहका भय न देवै और भी अनेक उपद्रवोंसे बालककी रक्षा करे। बालकको अपवित्र और विषम स्थानोंमें न बैठावे गर्मी हवा वर्षा धूल धूंआ जल इत्यादिसे भी बालककी रक्षा कर अकेला कदापि न छोडे।

बालकके लिये घृत खिलानेकी उत्तमता।

क्षीराहाराय सर्पिः पाययेत् सिद्धार्थकवचामांसीपयस्यापामार्गशतावरीसारिवाब्राह्मीपिप्पलीहरिद्राकुष्ठसैन्धवसिद्धं क्षीरान्नादाय मधुकवचापिप्पलीचित्रकत्रिफलासिद्धमन्नादाय द्विपञ्चमूलीक्षीरतगरभद्रदारुमरिचमधुविडङ्गद्राक्षाद्विब्राह्मीसिद्धं तेनारोग्यबलमेधायूंषि शिशोर्भवन्ति। (सुश्रुत.)

अर्थ—दुग्ध पीनेवाले बालकको घृत खिलानेका विधान सुश्रुतने किया है, यह घृत आगे लिखी औषधियोंके कल्क व क्वाथके साथ पका सिद्ध करके छानकर बर्तन भर रखे और बालकको जिस प्रकार पच सके उस मात्राके प्रमाणसे देना उचित है। प्रथम १ मासेकी मात्रासे देना आरम्भ कर हर आठरोजके अनन्तर ४ रत्ती प्रमाणसे मात्रा अधिक बढाता जावे। जब मात्राकी वृद्धि ६ व ९ मासे पर पहुँच जावे तब न बढावे, विशेषसे विशेष १२ मासेकी मात्रासे अधिक देनेकी चेष्टा न करे। घृतके औषध—पीली सरसों, वच, जटामासी, दुद्धी, अपामार्ग (ओंगा) शतावर, सारिवा, ब्राह्मी, पीपल, हल्दी, कूट, सेंधा नमक इनके साथ पकाया हुआ घृत और क्षीरान्नादिको मुलहटी, वच, पीपल, चित्रक, त्रिफला इनके साथ पकाया हुआ घृत क्षीर (दुग्ध) के तथा अन्नके साथ जो घृत खिलाया पिलाया जावे (उसको क्षीरान्नाद) कहते हैं। जो खाली अन्नके आहारके साथ दिया जावे उसको अन्नाद कहते हैं। अन्नाद घृतके औषध—मुलहटी, दूध, तगर, देवदारु, कालीमिरच और दशमूलके दश औषध वायविडङ्ग, दाख, दोनों प्रकारकी ब्राह्मी इनके साथ गोघृतको पकावे (इन घृतोंसे बालक आरोग्य बलवान् बुद्धिमान् और आयुष्मान् होता है।

(बडा होनेपर बालक विद्याध्ययनमें बडा ही तीव्र बुद्धि और बहुश्रुत होता है । ये घृत हमारे स्वयं परीक्षा किये हुए हैं) जन्मसे लेकर छः मास पर्य्यन्त बालकको दुग्धाहारी रखे और उपरोक्त घृत भी दुग्धके साथ ही परिमित मात्रासे देना चाहिये । जब बालकके मुखम दांत निकल आवें तबसे कुदरती नियमके माफिक अन्नाहारी शक्ति उत्पन्न हुई समझी जाती है । अन्नके आहारको पचानेकी शक्ति बालककी जठराग्निमें उत्पन्न हुई जान पडती है । दांत निकलनेपर बालकको अवश्य ही अन्नका आहार देना उचित है । किसी बालकके दांत ६ व ८ मासकी उमर होनेपर निकलना आरम्भ हो जाता है, किसी बालकके ९।१०।११।१२ मासकी अवस्था होने पर निकलते हैं । परन्तु पूर्वाचार्य्योंने बालकको अन्न देनेका समय छः मासकी उमर होनेपर ही नियत कर दिया है । जैसा कि सुश्रुताचार्य्यने कथन किया है । लेकिन धर्मशास्त्रमें नामकरण संस्कारके पीछे निष्क्रामण संस्कार बालकका कथन किया है निष्क्रामण (बालकको घरस बाहर प्रथमही निकालनेको कहते हैं) यह निष्क्रामण संस्कार कुछ वैकदसे विशेष सम्बन्ध नहीं रखता, परन्तु अन्नप्राशन और कर्णवेध ये दो संस्कार वैद्यकसे घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं । कर्मकाण्डके गृह्यसूत्रोंमें भी सुश्रुतके अनुकूल ही छः मासकी आयु बालककी हो जानेपर ही अन्नप्राशनका समय नियत किया है । जैसा (षष्ठे मास्यन्नप्राशनम् घृतौदनं तेजस्कामः दधि मधु घृतमिश्रितमन्नं प्राशयेत् ।)

अन्नप्राशन ।

षण्मासञ्चैनमन्नं प्राशयेल्लघु हितञ्च । नित्यमवरोधरतश्चस्यात्कृतरक्ष उपसर्गभयात् प्रयत्नतश्च ग्रहोपसर्गेभ्यो रक्ष्या बाला भवन्ति (सुश्रुत)

अर्थ—जब कि बालककी उमर जन्मके समयसे लेकर छः महीनेकी हो जावे तब उसको हलका आर हितकारी भोजन देवे, जो शीघ्र पाचन होकर बालकको पुष्टि करता होवे । ऊपरके सूत्रोंमें कहा है कि जिसको तेजस्वी बालक करना होय वह घृतयुक्त भात अथवा दधि मधु घृत तीनोंको भातके साथ मिलाकर खिलावे । इस प्रथम प्राशनकी विधि कर्मकाण्डकी विधिसे हवनादि करके करे, विशेष प्रक्रिया संस्कार विधिमें देखो । गयी आचार्य्य इस प्राशनकी विधि (षण्मासात्) इसका आशय ६ मासके आगे ही करनेकी विधि बतलाते हैं और ६ मासके अनन्तर ही बालकके दांत निकलते हैं, यह समय कुदरती नियमके अनुकूल ही अन्नप्राशनका ठीक है । बालककी रक्षाके लिये हरसमय पर एक रक्षक उसके समीप रहे, बाह्य तथा गृहसम्बन्धी उपद्रवोंसे बालकको बचाना चाहिये । और तीसरे वर्षमें बालकका चूडाकर्म्म संस्कार (केशच्छेदन व मुंडन) करादेना चाहिये । (तृतीये वर्षे चौलम्) (कर्णवेधो वर्षे

तृतीये पञ्चमे वा)। कर्णवेध संस्कार तीसरे व पांचवें वर्षमें करादेना चाहिये, ये संस्कार कन्या व कुमार दोनोंको समान हैं। अब उपनयन संस्कारका समय द्विजातीय (ब्राह्मण क्षत्री वैश्य,) इन तीनों वर्णोंका पृथक् २ समय नियत किया गया है, जैसा कि आगे लिखा है। यह संस्कार पूर्वकालमें कन्याका भी होता था जिस समय कि आर्यलोग अपने वर्णाश्रमके धर्मपर कटिबद्ध थे, जबतक सब संस्कारोंकी प्रणाली समान थी। परन्तु कालकी कुटिलता और मूर्खताके राज्यने स्त्रियोंकी शूद्र संज्ञा कर दी, और उनसे उत्पन्न हुए पुरुष अपनेको द्विज और पंडित मान बैठे। मनुस्मृतिमें उपनयनका समय इस प्रकार नियत किया है।

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्य्यं विप्रस्य पञ्चमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे॥

अर्थ—ब्राह्मण कुमारका गर्भ व जन्मसे पाँचवें, क्षत्री कुमारका गर्भ व जन्मसे छठे। वैश्य कुमारका गर्भ व जन्मसे आठवें वर्षमें उपनयन संस्कार हो जाना चाहिये। उपनयन संस्कार होनेके अनन्तरही वेदारम्भ संस्कार करके बालकको गुरुकुलमें छोड देना, इस विषयमें जो कुछ ऊपर लिखा गया है वह धर्मशास्त्र और आयुर्वेदकी प्राचीन कालमें एक ही पद्धति होनेके कारणसे दिखलाया गया है। जो ऊपर लिखा है वही सिद्धान्त सुश्रुतका है।

शक्तिमन्तश्चैनं ज्ञात्वा यथावर्णं विद्यां ग्राहयेत्। यथास्मै पञ्चविंशतिवर्षाय द्वादशवर्षा पत्नीमावहेत् पितृधर्मार्थकामप्रजाः प्राप्स्यतीति॥

अर्थ—जब कि बालक बलवान् हो जावे और मनुस्मृति धर्मशास्त्रकी आज्ञानुसार पांचवे वर्षमें उसको विद्याका आरम्भ यथा वर्ण (अर्थात् अपने वर्णके अनुसार करावे, जैसे कि ब्राह्मणको प्रथम वेदके अङ्ग व्याकरणादि वेद उपवेद षड्दर्शन न्याय, सांख्य मीमांसादि। ये सब ब्राह्मणको अपना स्वाभाविक धर्म समझ कर पढना चाहिये। राजनीति तथा व्यवसाय विद्या गणित शिल्प कलाकौशल क्षत्री, वैश्यको पढानेके निमित्त सीखना चाहिये। क्षत्रीको मुख्य करके राजनीति और ऊपर लिखी हुई सब विद्या सीखनी चाहिये। वैश्यको मुख्यतासे व्यवसाय विद्या और ऊपर लिखी हुई सब विद्या सीखनी चाहिये। यदि कोई उत्तम संस्कारका शूद्र भी कला कौशल शिल्पादि विद्या सीखना चाहे तो अवश्य उसको देशकी उन्नतिके वास्ते सिखाना उचित है। जब यह बालक पढ लिख कर २५ वर्षका हो जावे तब इसका विवाह १२ सालकी उमरवाली रूप गुणमें समान कन्याके साथ करदेवे, ऐसा करनेसे वह बालक माता पिताकी सेवा करने और आज्ञामें रहने योग्य होगा। तथा वेदस्मृति विहित धर्म स्वर्ण चांदी रत्नादि अर्थ और स्त्रीको प्राप्त करके पुत्र पौत्रादिक प्रजाको उत्पन्न करेगा।

पच्चीस वर्षसे कम उमरवाला पुरुष १६ वर्षसे कम उमरवाली स्त्रीमें गर्भ धारण न करे यही आज्ञा सुश्रुताचार्यने नीचे लिखी है ।

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् । यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते । जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ॥ तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ।

अर्थ—गर्भ प्रकरणके आरम्भमें देखो ऊपर सुश्रुतने १२ सालकी कन्याके साथ विवाह करनेकी आज्ञा २५ वर्षके पुरुषको दी है, वह आज्ञा विवाह संस्कारकी है । गर्भ धारणकी नहीं है, गर्भ धारणका समय १६ साल है । यह प्रणाली इस समय भारतके कितने ही प्रान्तोंमें देखी जाती है कि विवाह संस्कारके अनन्तर तीन साल व्यतीत होनेपर द्विरागमन (मुकलात्र) होता है । द्विरागमनका अर्थ है कि विवाह संस्कारके पीछे वधूका दूसरे समय आगमन इस दूसरे आगमनके समय वधूकी अवस्था १५ सालकी समाप्ति और १६ वें सालके आरम्भमें होती है, तो ठीक समय सुश्रुतकी आज्ञानुसार गर्भाधानकाल व वर वधूका सहवास समय प्राचीन पद्धतिके अनुकूल हो जाता है । लेकिन जो लोग काशीनाथके कथन पर चलते हैं वे प्राचीन पद्धतिके विरोधी और अपने सन्तानोंके शत्रु समझे जाते हैं । काशिनाथकी पद्धतिका खंडन पीछे कर दिया है । हे प्रिय बालको ! अपनी बालकपनकी अवस्थामें गुणज्ञ होकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करके धर्मानुसार दम्पत्तिकी जोडी अपने गुरुजनोंकी सेवा और आज्ञा पालन करते हुए बलिष्ट होकर नियमपूर्वक गृहस्थ धर्मकी उन्नति करते हुए अपने शरीरके बलकी सदैव रक्षा करते रहो । वह बल आपके शरीरमें तीन प्रकारका है ।

मनुष्य शरीरमें तीन प्रकारका बल ।

सहजं कालजं युक्ति कृतं देहबलं त्रिधा । तत्र सत्वशरीरोत्थं प्राकृतं सहजं बलम् । वयस्कृतमृतूत्थं च कालजं युक्तिजं पुनः ॥ विहाराहारजनितं तथोर्जस्कर योगजम् । (वृद्ध वाग्भट्ट)

अर्थ—वृद्ध वाग्भट्ट कहता है कि सहज, कालज, युक्तिज इन भेदोंसे मनुष्योंके शरीरका बल तीन प्रकारका है । इनमेंसे सत्व रज तम इन तीन प्रकारकी प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ व शरीरकी सामर्थ्यसे उत्पन्न हुआ यह स्वतः सिद्ध सहज बल कहाता है । अवस्था (उमर) की अधीनतासे उत्पन्न हुआ तथा ऋतुके संयोगसे उत्पन्न हुआ कालज बल कहलाता है । क्रीडा (व्यायाम) से तथा भोजनसे उत्पन्न, बलदायक रसायन योगोंके सेवन करनेसे उत्पन्न हुआ बल युक्तिज बल कहलाता है । सो

प्रत्येक स्त्री पुरुषोंको इस तीन प्रकारके बलकी रक्षा करनी चाहिये, जिस २ देशके मनुष्य इस बलकी रक्षा करते हैं वही उद्यमी पुरुषार्थी साहसी गुणी सुखी और स्वतन्त्र होते हैं । जिस देशके मनुष्य अपने बलकी रक्षा नहीं करते वे दुःखी और परतन्त्र रहते हैं ।

सात प्रकारकी प्रकृतिका भेद ।

शुक्रासृग्गर्भिणी भोज्यचेष्टागर्भाशयर्तुषु । यः स्याद्दोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिः सप्तधोदिता ॥ १ ॥ विभुत्वादाशुकारित्वादबलित्वादन्यकोपनात् । स्वातंत्र्याद्बहुरोगत्वाद्दोषाणां प्रबलोऽनिलः ॥ २ ॥ प्रायोत एव पवनाध्युषिता मनुष्या दोषात्मकाः स्फुटितधूसरकेशगात्राः ॥ ३ ॥ शीतद्विषश्चधृतिस्मृतिबुद्धिचेष्टासौहार्ददृष्टिगतयोऽतिबहुप्रलापाः । अल्पपित्तबलजीवितनिद्राः सन्नसक्तचलजर्ज्जरवाचः ॥ नास्तिका बहु भुजः सविलासा गीतहासमृगयाकलिलोलाः ॥ ४ ॥ मधुराम्लषट्टूष्णसात्म्यकांक्षाः कृशदीर्घाकृतयः सशब्दयाताः । न दृढा न जितेन्द्रिया न चार्य्या न च कान्तादयिता बहुप्रजा वा ॥ ५ ॥ नेत्राणि चैषां खरधूसराणि वृत्तान्यचारूणि मृतोपमानि । उन्मीलितानीवभवन्ति सुप्ते शैलद्रुमास्ते गगनं च यान्ति ॥ ६ ॥ अधन्या मत्सराध्माताः स्तेना प्रोद्बद्धपिण्डिकाः । श्वशृगालोष्ट्रगृध्राखुकाकानूकाश्च वातिकाः ॥ ७ ॥ (वृद्ध वाग्भट्ट)

अर्थ—पुरुषके वीर्य्यका संयोग स्त्रीके आर्त्तवसे होकर जो मनुष्य आकृति बनती है वह गर्भिणी स्त्रीके आहार और चेष्टा तथा गर्भाशयकी प्रकृति और ऋतु इनमें जो वात पित्त कफ इन दोषोंमेंसे जो अधिक होय उसीके अनुकूल मनुष्योंकी सात प्रकारकी प्रकृति होती है । सामर्थ्यवान होनेसे और शीघ्रकारी होनेसे तथा बलवान् होनेसे आहारको कुपित करनेवाला होनेसे और स्वतन्त्रतावाला होनेसे विशेष रोगोंकी उत्पत्ति करनेवाला होनेसे वायु सब दोषोंमें प्रधान समझा जाता है । इसी लिये अक्सर करके स्फुटित और धूसर रूप केश और अंगोंवाले और शीतलतासे विरोध करनेवाले चलायमान धृति स्मृति बुद्धि चेष्टा मित्रता दृष्टिगमन इनवाले तथा असम्बद्ध बोलनेवाले और दोषरूप स्वभाववाले । एवं पित्त, बल, जीवन, निद्रा इनकी अल्पतासे संयुक्त विलम्बसे संभाषण करनेवाले चलितरूप जर्जर अर्थात् भग्न कांसेके पात्रके समान शब्द करनेवाली ऐसी बाणीसे संयुक्त और नास्तिक विशेष आहार करनेवाले अनेक प्रकारकी

लीला चरित्र करनेवाले गाना हास्य करना शिकार खेलना कलह इत्यादिसे प्रीति रखनेवाले । मधुर, खट्टा, सलोना इन रसोंकी स्वाभाविक इच्छा करनेवाले और स्थूल शरीर लम्बी आकृतिवाले शब्द सहित गमन क्रिया करनेवाले दृढतासे रहित इन्द्रिय निग्रहसे रहित और सज्जनतासे शून्य और स्त्रियोंको प्रिय न लगनेवाले अल्प संतानवाले । जिनके तीक्ष्ण धूसर गोल रक्त और मत मनुष्यके समान उपमावाले, जिनके नेत्र सुषुप्ति अवस्थामें भी खुले हुए नेत्रोंके समान रहैं, सुषुप्ति अवस्थामें गमन करना तथा पर्वत वृक्ष आकाश इनमें गमन करनेवाले होते हैं । मंगलतासे रहित वैरभावसे परिपूर्ण तथा चोरी करनेवाले ऊंची पिंडलियोंवाले तथा स्वान गीदड ऊंट मूसा काक इनके समान स्वभाववाले ऐसे मनुष्य वातकी प्रकृतिवाले होते हैं ॥ १—७ ॥

पित्तप्रकृति ।

पित्तं वह्निर्वह्निजं वा यदस्मात् पित्तोद्रिक्तस्तीक्ष्णतृष्णाबुभुक्षः । गौरोष्णाङ्गस्ताम्रहस्तांऽघ्रिवक्त्रः शूरो मानी पिङ्गकेशोऽल्परोमा ॥ ८ ॥ दयितमाल्यविलेपनमण्डनः सुचरितः शुचिराश्रितवत्सलः । विभवसाहसबुद्धिबलान्वितो भवति भीषुगतिर्द्विषतामपि ॥ ९ ॥ मेधावी प्राशिथिल सन्धिबन्धमांसो नारीणामनभिमतोऽल्पशुक्रकामः । आवासः पलिततरङ्गनीलिकानां भुंक्तेऽन्नं मधुरकषायतिक्तशीतम् ॥ १० ॥ धर्मद्वेषी स्वेदनः पूतिगन्धिर्भूर्युच्चारक्रोधपानाशनेर्ष्यः । सुप्तः पश्येत् कर्णिकारान् पलाशान् दिग्दाहोल्का विद्युदर्कानलांश्च ॥ ११ ॥ तनूनि पिंगानि चलानि चैषां तन्वल्पपक्ष्माणि हिमप्रियाणि । क्रोधेन मद्येन रवेश्च भासा रागं व्रजन्त्याशु विलोचनानि ॥ १२ ॥ मध्यायुषो मध्यबलाः पण्डिताः क्लेशभीरवः । व्याघ्रर्क्षकपि मार्जारयज्ञानूकाश्च पैत्तिकाः ।

अर्थ—पित्त ही अग्नि है ऐसा धन्वन्तरीका सिद्धान्त है, (परन्तु अन्य वैद्योंके सिद्धान्तमें अग्निसे उत्पन्न होनेवाला पित्त है) इसलिये तीक्ष्ण तृषा और क्षुधावाला, गौर वर्णवाला गर्म ताम्रके समान रक्त हस्त पैर मुख शूरवीर मानी कुछ २ पीलेपनसे संयुक्त केशोंवाला अल्प केशोंवाला पुष्पोंकी माला तथा चन्दनादि लेपन इनसे प्रीति रखनेवाला सुन्दर चेष्टावाला पवित्र शरणागतकी रक्षा करनेवाला, विभव साहस बुद्धि बल इन्होंसे अन्वित और भयभीत शत्रुकी भी रक्षा करनेवाला पवित्र बुद्धिवाला सन्धियोंके बन्धन तथा मांसकी शिथिलतासे युक्त और स्त्रियोंको प्रिय न लगनेवाला वीर्य्य तथा

कामदेवकी अल्पतासे संयुक्त केशोंकी श्वेतता और तरंग नालिका इनकी अत्यन्ततासे युक्त मधुर कसैला कडुवा शीतल ऐसे आहारोंको भोजन करनेवाला। धर्मका द्वेषी अति पसीनेवाला दुर्गन्धि संयुक्त शरीरवाला और विष्टा क्रोध पान भोजन ईर्षा इनकी विशेषतासे संयुक्त शयन करनेमें कर्णके समान पलाश वृक्ष दिग्दाह उल्का विजली सूर्य अग्नि इत्यादिको देखनेवाला। सूक्ष्म और कुछ २ पीलेपनसे संयुक्त चलित रूप सूक्ष्म पलकोंवाला शीतलताको चाहनेवाला क्रोध मद्य सूर्य्यका तेज इन करके रक्तताका तत्काल प्राप्त होनेवाला (क्रोध करनेसे व मद्य पान करनेसे और धूपमें फिरनसे) तत्काल उसके नेत्र रक्तवर्ण होजावें और मध्यावस्था (६०) वर्षकी आयुतक जीवित रहे, मध्यम बलवाला पंडित और क्लेशमें डरनेवाला और व्याघ्र रीछ बंदर बिलाव शूकर इनके स्वभावके समान स्वभाववाला ऐसा मनुष्य पित्तकी प्रकृतिवाला होता है ॥ ८-१२ ॥

कफप्रकृति।

श्लेष्मा सोमः श्लेष्मलस्तेन सौम्यो गूढस्निग्धाश्लिष्टसन्ध्यस्थिमांसः। क्षुत्तृड्दुःखक्लेशघर्मैरतप्तो बुद्ध्या युक्तः सात्त्विकः सत्यसन्धः ॥ १३ ॥ प्रियङ्गुदूर्वाशरकाण्डशस्त्रगोरोचनापद्मसुवर्णवर्णः ॥ प्रलम्बबाहुः पृथुपीनवक्षा महाललाटो घननीलकेशः ॥ १४ ॥ मृद्वङ्गः समसुविभक्तचारुवर्ष्मा बह्वोजोरतिरसशुक्रपुत्रभृत्यः ॥ धर्म्मात्मा वदति न निष्ठुरं च जातु प्रच्छन्नं वहति दृढं चिरं च वैरम् ॥ १५ ॥ समदद्विरदेन्द्रतुल्ययातो जलदाम्भोऽधिमृदङ्गसिंहघोषः । स्मृतिमानभियोगवान् विनीतो न च बाल्येऽप्यतिरोदनो नलोलः ॥ १६ ॥ तिक्तं कषायं कटुकोष्णरूक्षमल्पं स भुक्त बलवांस्तथापि ॥ रक्तान्तसुस्निग्धविशालदीर्घसुव्यक्तशुक्लासितपक्ष्मलाक्षः ॥ १७ ॥ अल्पव्याहारक्रोधपानाशनेर्ष्यः प्राज्यायुर्वित्तो दीर्घदर्शी वदान्यः। श्राद्धो गम्भीरः स्थूललक्षः क्षमावानार्य्यो निद्रालुर्दीर्घसूत्रः कृतज्ञः ॥ १८ ॥ ऋजुर्विपश्चित् सुभगः सलज्जो भक्तो गुरूणां स्थिरसौहृदश्च । स्वप्ने स पद्मान् सविहङ्गमालांस्तोयाशयान् पश्यति तोयदांश्च ॥ १९ ॥ ब्रह्मरुद्रेन्द्रवरुणतार्क्ष्यहंसगजाधिपैः। श्लेष्मप्रकृतयस्तुल्यास्तथा सिंहाश्वगोवृषैः ॥ २० ॥

अर्थ—कफ (श्लेष्म) सोमरूप है इस कारणसे सौम्य रूपवाला और गूढ चिकना श्लिष्ट इस प्रकारसे सन्धि हड्डीमांस इनसे संयुक्त क्षुधा तृषा दुःख क्लेश धूप इनसे तपायमान न होनवाला बुद्धिमान् सत्व गुणकी प्रधानतावाला तथा सत्य भाषण करनेवाला । प्रियंगु, दूर्वा, शर, खण्ड, शस्त्र गौरोचन, कमल स्वर्ण इनके समान वर्णवाला लम्बी भुजावाला विस्तृत पुष्ट छातीवाला वडे मस्तकवाला घन और नील केशोंवाला । कोमल अङ्गोंवाला सुन्दर विभक्त अवयवों करक शोभायमान शरीरवाला और पराक्रम रति रस वीर्य्य पुत्र नौकर इनकी विशेषतासे संयुक्त धर्मात्मा कदापि कठोर वचन न बोलनेवाला दुस्मनोंसे चिरकाल पर्य्यंत दुष्मनी रखनेवाला । मस्त हाथीके समान गमन करनेवाला और बादल, मृदङ्ग, सिंह, समुद्र इनके समान शब्दवाला स्मृति और धारणा शक्तिवाला अभियोगवाला, नम्रतावाला, बालक अवस्थामें भी अति रुदन न करनेवाला चंचलता रहित । कडुवा, कषैला, चर्परा, गर्म, रूखा अल्प ऐसे आहारोंको सेवनेवाला बलवान रक्त स्निग्ध विशाल लम्बे प्रगट ऐसे शुक्ल भाग श्याम भाग पल्कोंसे संयुक्त नेत्रोंवाला । भाषण क्रोध पान भोजन इनकी अल्पतासे युक्त प्रभूतरूप आयु और धनसे संयुक्त दीर्घदर्शी दाता श्रद्धावान् गम्भीर क्षमावान् सज्जनतासे रहित निद्राकी अधिकतासे संयुक्त दीर्घसूत्री कृतको जाननेवाला । कोमल अङ्गोंवाला विद्वान् सुन्दर ऐश्वर्यवाला लज्जा संयुक्त गुरुजनोंका भक्त मित्रपनेकी स्थिरतासे संयुक्त शयन करनेमें कमलसे युक्त पक्षियोंके समूहसे संयुक्त ऐसे सरोवर नदी आदिकी तथा बादलोंको प्रीतिसे देखनेवाला । ब्रह्मा महादेव इन्द्र वरुण गरुड हंस हाथी सिंह अश्व बैल इनके स्वभाववाला ऐसे मनुष्य कफकी प्रकृतिवाले होते हैं ॥ १६—२० ॥

द्वंद्वज और त्रिदोषज प्रकृति ।

प्रकृतिर्द्वयसर्वोत्था द्वन्द्वसर्वगुणोदये ।
शौचास्तिक्यादिभिश्चैवं गुणैर्गुणमयीं वदेत् ॥ २१ ॥

अर्थ—यदि दो दो दोषोंके मिश्रित जैसे वात पित्त, वात कफ, कफ पित्त इनके मिश्रित गुण मालूम होवें तो द्वंद्वज प्रकृति जाननी और तीनों दोषोंके मिश्रित गुण मालूम पडें तो तीनों दोषोंकी प्रकृति जाननी । परन्तु शौच और आस्तिकतादि गुणोंके आधार पर ही प्रकृतिका भेद किया है ॥ २१ ॥

मनुष्यकी अवस्थाके तीन भेद हैं ।

वयस्त्वाषोडशाद्बालं तत्र धात्विन्द्रियौजसाम् ।
वृद्धिरासप्ततेर्मध्यं तत्रावृद्धिः परं क्षयः ॥ २२ ॥

अर्थ—बालकका जन्म होवे उस समयसे लेकर सोलह वर्ष पर्य्यन्त बालक अवस्था होती ह । इस अवस्थामें धातु इन्द्रिय बल इनकी वृद्धि होती है और १६ से उपरान्त ७० वर्षपर्य्यन्त मध्यावस्था है, इस अवस्थामें बृद्धि भी नहीं और क्षयभी नहीं और ७० वर्षके उपरान्त वृद्धावस्था है, इसमें धातुवीर्य्यबल इनका क्षय होता है॥२२॥ लेकिन दूसरे वैद्योंने २४ वर्षपर्य्यन्त वृद्धि और ५८ वर्षपर्य्यन्त समानभावसे स्थिरता इसके अनन्तर धातुवीर्य्य और बलका क्षय माना है। और रोगके कारणसे क्षय हर एक अवस्थामें हो जाता है ऊपर जो नियम स्थिर किये हैं वे निरोगी मनुष्योंके समझने, दूसरे वैद्योंने मनुष्यकी अवस्थाके विभाग इस प्रकारसे किये हैं ॥ २२ ॥

अन्यप्रकारसे अवस्थाकी अवधिके विभाग ।

वयस्तु त्रिविधं बाल्यं मध्यमं वार्द्धकं तथा । ऊनषोडशवर्षस्तु नरो बालो निगद्यते । त्रिविधः सोऽपि दुग्धाशी दुग्धान्नाशी तथान्नभुक् ॥ २३ ॥ दुग्धाशी वर्षपर्यन्तं दुग्धान्नाशी शरद्वयम् । तदुत्तरं स्यादन्नाशी एवं बाल स्त्रिधा मतः ॥ २४ ॥ मध्ये षोडशसप्तत्योर्मध्यमः कथितो बुधैः । चतुर्धा मध्यमं प्राह युवाद्वात्रिंशतो मतः ॥ २५ ॥ चत्वारिंशन्समा यावत्तिष्ठेदीर्यादिपूरितः । ततः क्रमेण क्षीणः स्याद्यावद्भवति सप्ततिः ॥ २६ ॥ ततस्तु सप्ततेरूर्ध्वं क्षीणधातुरसादिकः । क्षीयमाणेन्द्रियबलः क्षीणरेता दिने दिने ॥ २७ ॥ बलीपलितखालित्ययुक्तः कर्मसु चाक्षमः । कासश्वासादिभिः क्लिष्टो वृद्धो भवति मानवः ॥ २८ ॥ बाल्ये विवर्द्धते श्लेष्मा पित्तं स्यान्मध्यमेऽधिकम् । वार्द्धके वर्द्धते वायुर्विचार्यैतदुपक्रमेत् ॥ २९ ॥

अर्थ—मनुष्य शरीरकी अवस्था तीन प्रकारकी होती है । जैसे बाल्य, मध्यम और वृद्ध सोलह वर्षसे न्यून अवस्थावाला बालक कहाता है, वह तीन प्रकारका है । जैसे दुग्ध पीनेवाला दूध और अन्न खानेवाला और केवल अन्न खानेवाला तहां एक वर्ष पर्य्यन्त बालक दूध पीनेवाला कहाता है, दो वर्ष पर्य्यन्त दूध और अन्न खानेवाला कहाता है । इसके उपरान्त केवल अन्न खानेवाला समझा जाता है, इस प्रकार बाल्यावस्थाके तीन भेद हैं । इसके आगे सोलह वर्षसे लेकर ७० वर्षपर्य्यन्ततक मध्यम अवस्था कहाती है, उसके ४ भेद किये जाते हैं । १६ से लेकर ३२ वर्ष पर्य्यन्तकी अवस्थाको युवावस्था कहते हैं, और ३२ से लेकर ४० वर्ष पर्य्यन्तकी

अवस्थाको समावस्था कहते हैं, इस अवस्थामें मनुष्य वीर्य्यादि धातुओंसे परिपूर्ण रहता है। फिर क्रम २ से क्षीणावस्था आती है, जबतक मनुष्यकी ७० वर्षकी अवस्था होती है (और चालीससे लेकर पचास वर्ष पर्य्यन्तकी जो अवस्था है) इस अवस्थामें क्रमसे किञ्चित् २ रसादि सब धातुओंकी क्षीणता तथा इन्द्रियोंके बल उत्साह भी क्षीण होना आरम्भ हो जाता है। परन्तु रोगीको तो यह क्षीणता प्रत्यक्ष होने लगती है और निरोग मनुष्यको यह क्षीणता मालूम नहीं होती। परन्तु ७० वर्षके उपरान्त तो रसादिक धातुओंके क्षीण होनेसे दिनोदिनमें रसादिक धातु तथा वीर्य्य क्षीण होकर शरीरमें चमडेकी सरबट पडने लगती हैं। केश सफेद हो जाते हैं और बाल उखडते जाते हैं, इत्यादि चिह्न उत्पन्न होनेसे मनुष्य परिश्रम सम्बन्धी सर्व कर्म्म करनेमें असमर्थ हो जाता है, कास-श्वसादिसे पीडित होकर वृद्ध हो जाता है। बालक अवस्थामें स्वभावसे ही शरीरमें कफकी वृद्धि रहती है, इसीसे बालक सुकुमार और सुन्दर दीखता है। जवानीमें पित्तकी अधिकता स्वभावसे ही रहती है, इसीसे मनुष्यको हर विषयमें क्रोधादि उत्पन्न हो जाते हैं। वृद्धावस्थामें वायु बढती है इसीसे मनुष्यके संचित रसादिक धातु क्षीण होते जाते हैं। इन तीनों अवस्थाओंका विचार करके चिकित्सक रोगीकी चिकित्साका उपचार करे॥ २३-२९॥

देश भेद।

भूमिदेशस्त्रिधाऽनूपो जांगलोमिश्रलक्षणः॥ १ ॥ नदीपल्वलशैलाढ्यः फुल्लोत्पलकुलैर्युतः। हंससारसकारण्डचक्रवाकादिसेवितः॥ २ ॥ शशवाराहमहिषरुरुरोहिकुलाकुलः। प्रभूतद्रुमपुष्पाढ्यो नीलसस्यफलान्वितः॥ ३ ॥ अनेकशालिकेदारकदलीक्षुविभूषितः॥ अनूपदेशो ज्ञातव्यो वातश्लेष्मामयार्त्तिमान्॥४॥ आकाशशुभ्र उच्चश्च स्वल्पपानीयपादपः। शमीकरीरबिल्वार्कपीलुकर्कंधुसंकुलः॥५॥ हरिणैणर्क्ष पृषतगोकर्णखरसंकुलः। सुस्वादुफलवान् देशो वातलो जांगलः स्मृतः॥६॥ बहूदकनगोऽनूपः कफमारुतरोगवान्। जांगलोऽल्पाम्बुशाखी च पित्तासृङ्मारुतोत्तरः॥ ७ ॥संसृष्टलक्षणो यस्तु देशः साधारणो मतः। समाः साधारणे यस्माच्छीतवर्षोष्णमारुताः। समता तेन दोषाणां तस्मात्साधारणो वरः॥८॥ उचिते वर्त्तमानस्य नास्ति दुर्देशजं भयम्।

आहारस्वप्नचेष्टादौ तद्देशकृते सति॥९॥यस्य देशस्य यो जंतुस्तज्जं तस्यौषधं हितम्। देशादन्यत्र वसतस्तत्तुल्यगुणमौषधम् ॥१०॥ स्वदेशे निचिता दोषा अन्यस्मिन् कोपमागताः। बलवंतस्तथा न स्युर्जलजाः स्थलजास्तथा ॥११॥

अर्थ—भूमिज देशके तीन भेद हैं, अनूप देश, जांगल देश, मिश्रदेश। अनूप देशके लक्षण नदी तलैया पर्वत इन करके युक्त फूल कमलोंके समूहसे संयुक्त हंस सारस जलमुर्गावी चकवा चकवी करके सेवित शशा (खरगोश) शूअर, भैंसा, रुरू, रोहू इनका समूह जिस देशमें रहता होय विशेष वृक्ष और पुष्पोंसे युक्त नीली-दूब और फलोंसे संयुक्त अनेक प्रकारके शालि धान्योंके खेत होयँ केलाके वृक्ष ईख इनसे विभूषित देशको अनूप देश जानना चाहिये। (यह वात और कफके रोगोंको उत्पन्न करनेवाला है) जैसे काश्मीर व मुम्बई। जांगल देशक लक्षण जो देश आकाशके समान शुभ्र और ऊंचा होय जिसमें थोडे जलाशय (कूप तलाव नदी) होयँ और जहां तहां थोडे वृक्ष होयँ तथा छोकर, करील वेल, आक, पीलु, बेर इत्यादि वृक्षोंसे विशिष्ट हिरण, एण (कृष्णमृग) रीछ, चीता रोज गधा ये पशु अधिकतासे जिस देशमें रहते होंय और स्वादु मिष्ट फल जिसमें प्रगट होय उस देशको जांगल देश कहते हैं। यह देश स्वभावसे ही वातकर्ता समझा जाता है। अन्य प्रमाण जिस देशम जलाशय आर पर्वत अधिक होयँ वह देश कफवातके रोगोंको उत्पन्न करता अनूप देश है। जिस देशम जलाशय और वृक्ष न्यून होवें उस देशम पित्त रोग रुधिर विकार वात रोगोंको उत्पन्न करनेवाला जांगल कहलाता है। साधारण देशके लक्षण अनूप देश और जांगल देश जो ऊपर कथन किया गया है इन दोनोंके लक्षणोंसे मिलाहुआ साधारण देश जानना इसमें शर्दी वर्षा गर्मी और वायु ये सब समानतासे रहते हैं इसीसे वातादि दोष भी इसमें सम रहते हैं। साधारण देश सबसे उत्तम समझा जाता है। सुश्रुताचार्य्य कहते हैं कि जो मनुष्य देशकी आवहवा पथ्य आहार विहार करता है उसको दुष्ट देशमें रोग उत्पन्न होनेका कुछ भय नहीं रहता। एवं जिस देशमें मनुष्य रहे उस देशकी आबहवाके अनुकूल आहार विहार निद्रा और चेष्टा करनी चाहिये। वृद्ध वाग्भट्ट वैद्य कहते हैं कि जिस देशका निवासी जो मनुष्य है उसको उसी देशकी प्रगट हुई औषध हितकारी होती है, जो मनुष्य अपनी जन्मभूमिके देशको त्यागकर अन्य २ देशोंमें रहते हैं उनको उस देशके समान गुणकारी औषध देना चाहिये। यदि अनूप देशके संचित दोष दूसरे देशमें कुपित होकर कुछ व्याधि उत्पन्न करें तो वह व्याधि बलवान् नहीं हो सक्ती, इसी प्रकार जल देशके स्थल देशमें और स्थल देशके जल देशमें हीन बलवाले हो जाते हैं॥१-११॥

षड्ऋतुका वर्णन ।

तस्याशितीयोऽध्याहाराद्बलं वर्णश्च वर्द्धते । तस्यर्त्तु सात्म्यं विदितं चेष्टाहारव्यपाश्रयम् ॥ इह खलु सम्वत्सरं षडङ्गमृतुविभागेन विद्यात् तदादित्यस्योदगयनमादानं च त्रीनृतून् शिशिरादीन् ग्रीष्मान्तान् व्यवस्येत् वर्षादीन् पुनर्हेमन्तान्तान् दक्षिणायनं विसर्गञ्च । विसर्गे च पुनर्वायवो नातिरूक्षाः प्रवान्तीतरे पुनरादाने सोमश्चाव्याहतबलः । शिशिराभिर्भाभिरापूरयन् जगदाप्याययति शश्वदतो विसर्गः सौम्यः । आदानं पुनराग्नेयं तावेतावर्क वायू सोमश्च कालस्वभावमार्गपरिग्रहीताः कालर्त्तु रसदोषदेहबलनिर्वृत्तिप्रत्ययभूताः समुपदिश्यन्ते । तत्र रविर्भावमिराददानो जगतः स्नेहं वायवस्तीव्ररूक्षाश्चोपशोषयन्तः शिशिरवसन्तग्रीष्मेषु यथाक्रमं रौक्ष्यमुत्पादयन्तो रूक्षान् रसान् तिक्तः कषायकटुकांश्चाभि वर्द्धयन्तो नृणां दौर्बल्यमा वहन्ति ॥ वर्षाशरद्धेमन्तेषु तु दक्षिणाभिमुखेऽर्के कालमार्गे मेघवातवर्षाभिहतप्रतापे शशिनिचाव्याहतबले माहेन्द्र सलिल प्रशान्त. सन्तापे जगत्यरूक्षा रसाः प्रवर्द्धन्तेऽम्ललवणमधुरा यथाक्रमं तत्र बलमुपचीयन्ते नृणामिति ॥

अर्थ—जो मनुष्य ऋतुओंके अनुसार आहार विहारके कर्त्तव्यमें प्रवीण हैं ऐसे परिमित भोजी मनुष्यकी बल और कान्ति बढ सदैव आरोग्य रहते हैं । वर्षके छः विभाग इस भारत भूमिमें ऋतुओंके अनुसार विभाग करनेसे सम्वत्सरके छ विभाग करनेमें आते हैं । शिशिरसे ग्रीष्मपर्य्यन्त अर्थात् शिशिर वसन्त और ग्रीष्म ये तीन ऋतु उस समय होती हैं जब कि सूर्य्य उत्तरायण होते हैं । इस समयको आदान काल कहते हैं । शेषकी तीन ऋतु वर्षा शरद् हेमन्त उस समय पर आती हैं कि जब सूर्य्य दक्षिणायण होते हैं इस समयको विसर्ग काल कहते हैं । (आदान काल उसको कहते हैं शिशिर वसन्त ग्रीष्म इतनी ऋतुओंमें सूर्य्यकी तीव्र किरणोंके द्वारा पृथिवीके रसादिक पदार्थको सूक्ष्म वाष्प रूप करके खींच लेता है) उस ऋतुको आदान काल समझना । वर्षा शरद् हेमन्त इन ऋतुओंमें सूर्य्य सब रसादिकोंको देता है, इससे उसको विसर्ग काल कहते हैं । विसर्ग कालका वर्णन विसर्ग कालमें वायु अत्यन्त रूक्ष नहीं चलती है और आदान कालमें इससे विपरीत किन्तु

अति रूक्ष और अन्तमें रूक्ष ऊष्ण वायु चलती है । विसर्ग कालमें चन्द्रमा भी पूर्ण बलवान् हो अपनी अति शीतल किरणोंसे संसारको भरपूर प्रफुल्लित करता है । इसी कारणसे विसर्ग काल अति सौम्य अति उष्ण और अति शीतसे रहित मनुष्योंकी प्रकृतिके अनुकूल समझा जाता है । विसर्ग कालसे विरुद्ध गुणवाला आदान काल आग्नेय होता है, आदान और विसर्ग ये दोनों काल और सूर्य्य वायु चन्द्रमा ये अपने २ काल स्वभाव और अपने भ्रमणके मार्गकी गतिके अधीन होकर सब काल ऋतु रस दोष शरीरके बलके निश्चयात्मक कारण हो जाते हैं । आदान कालका वर्णन आदान कालमें सूर्य्य अपनी किरणोंसे जगतके रसको खींच लेता है तथा वायु भी अति रूक्ष ऊष्ण और तीव्र चलकर पृथिवी परके रसोंको शोषण कर लेती है । इस प्रकारसे सूर्य्य और वायु यथाक्रम उत्तरोत्तर शिशिर वसन्त और ग्रीष्मादि ऋतुओंमें रूक्षता और उष्णको उत्पन्न करते हुए कसैले और कडुवे आदि रूक्ष रसोंको बढाते हैं । इसी कारणसे इस देशके निवासी मनुष्य इस रूक्षता प्रधान ऋतुमें दुर्बल हो जाते हैं । विसर्ग कालमें बल लक्षण वर्षा शरद और हेमन्त ऋतुमें सूर्य्य दक्षिणायन होते हैं, इन ऋतुओंमें सूर्य्यकी तेजी कालमार्गकी गतिकी प्रधानतासे बादल हवा और वर्षाके कारणसे मन्द पड जाती हैं । चन्द्रमाकी किरणोंका शीत प्रधान बल बढता जाता है । वर्षातके जलकी वृष्टि होनेसे गर्मीकी ऊष्णताका जोश शान्त हो जाता है । तथा संसारमें रूक्षता निर्बल पडकर और द्रव्योंमें रस बढकर यावत् पदार्थ रसीले होते जाते हैं क्रमसे अम्ल लवण और मधुर रस अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त होकर मनुष्योंके शारीरक बलको भी बढाने लगते हैं ।

आदावन्ते च दौर्बल्यं विसर्गादानयोर्नृणाम् । मध्ये मध्य बलन्त्वन्ते श्रेष्ठमग्रे च निर्दिशेत् ॥ शीते शीतानिलस्पर्शसंरुद्धो बलिनां बली । वक्ता भवति हेमन्ते मात्राद्रव्यगुरुक्षमः ॥ स यदा नेन्धनं युक्तं लभते देहजं तदा । रसं हिनस्त्यतो वायुः शीतः शीते प्रकुप्यति ॥ तस्मात्तुषा-रसमये स्निग्धाम्ललवणान् रसान् ॥ औदकानपमांसानां मेध्यानामुप-योजयेत् ॥ बिलेशयानां मांसानि प्रसहानां भृतानि च । भक्षये-न्मदिरां सीधुं मधु चानु पिबेत् नरः । गोरसानिक्षुविकृतीर्वसां तैलं नवोदनम् । हेमन्तेऽभ्यस्यतस्तोयमुष्णं चायुर्न हीयते ॥ अभ्यङ्गोत्सादनं मूर्ध्नि तैलं जैताकमातपम् ॥ भजेद्भूमिगृहं चोष्णमुष्णं गर्भगृहं तथा ॥ शीते सुसंवृतं सेव्यं यानं शयनमासनम् । प्रावाराजिनकौषेयप्रवेणी-

कुथकास्तृतम् । गुरूष्णवासा दिग्धाङ्गो गुरुणाऽगुरुणा सदा । शयने प्रमदां पीनां विशालोपचितस्तनीम् । आलिङ्ग्याऽगुरुदिग्धाङ्गीं सुप्यात् समदमन्मथः । प्रकामं च निषेवेत मैथुनं शिशिरागमे ॥ वर्जयेदन्नपानानि लघूनि वातलानि च । प्रवातं प्रमिताहारमुदमन्थं हिमागमे । हेमन्त-शिशिरे तुल्ये शिशिरेऽल्पं विशेषणम् । रौक्ष्यमादानजं शीतं मेघमा-रुतवर्षजम् । तस्माद्धैमन्तिकः सर्वः शिशिरे विधिरिष्यते । निवात-मुष्णमधिकं शिशिरे गृहमाश्रयेत् । कटुतिक्तकषायाणि वातलानि लघूनि च ॥ वर्जयेदन्नपानानि शिशिरे शीतलानि च ।

अर्थ—ऋतुके अनुकूल संक्षिप्त बलका वर्णन विसर्ग कालके प्रथम अर्थात् वर्षा और आदान कालके अन्तमें (ग्रीष्म) ऋतुमें मनुष्य बहुत ही दुर्बल हो जाते हैं । दोनों कालोंके मध्य अर्थात् शरद और वसन्त ऋतुमें मनुष्योंके शरीरमें सामान्य बल होता है । नतो अत्यन्त दुर्बलता ही होती है और न अत्यन्त बल पुरुषार्थ ही होता है । शेषकी दो ऋतु हेमन्त और शिशिर इनमें बलकी अधिकता सब मनुष्योंको स्वभावसे ही होती है । शीतकालमें भारी और अति भोजनका विधान शीत ऋतुमें ऊपरके कथनानुसार मनुष्य अधिक बलवान् हो जाते हैं । उस समयमें उनकी जठराग्नि भी अधिक बलिष्ट हो जाती है और जठराग्निके बलिष्ट होनेका कारण यह है कि इस ऋतु-में बाहर शीतल पवनके स्पर्शसे शरीरके अन्दरकी अग्नि भीतर ही रुकी रहती है, इसी हेतुसे शीतकालमें परिमाणसे अधिक तथा भारी आहार किया हुआ भी भले प्रकार पाचन हो जाता है । (भारतके उत्तरीय भाग हिमालयके निवासी मनुष्योंकी नीचेके निवासियोंकी अपेक्षा तीव्र अग्नि होती है, (उत्तर प्रान्तके लोग प्रायः बलिष्ट होते हैं उष्ण प्रदेशकी अपेक्षा शीत प्रधान देशोंके मनुष्य बलिष्ट हृष्ट पुष्ट होते हैं, जैसा कि तिब्बत, भूतान काबुलके मनुष्य होते हैं)

(शीतकालमें भोजन न मिलनेके अवगुण ।)

जब कि शरीरस्थ जठराग्निको पचन करनेके लिये आहार न मिले तो उस समय पर वह शरीरस्थ रसको पचन करके सुखा देती है, इस रसके सूखनेसे ही शरीरमें रूक्षता होना संभव है । इसी प्रकारसे शीत ऋतुमें शीतल पवन कुपित होकर अनेक प्रकारके वायु प्रधान रोगोंको उत्पन्न करती है । (शीत ऋतुमें सेवन करनेके योग्य पदार्थोंका उपदेश) ऊपर कथन कियेहुए कारणोंसे इस शीत ऋतुमें स्निग्ध अम्ल और लवण संयुक्त तथा औदक किन्तु अनूप देशस्थ पुष्ट जानवर व पक्षियोंका मांस

अथवा मांस रस सेवन करे और वसायुक्त बिलमें रहनेवाले तथा प्रसह जीवोंका मांस भक्षण करे। मद्य सीधु तथा मधुक भी भक्षण करे, जो मनुष्य हेमन्त ऋतुमें गौका दुग्ध तथा दुग्धसे बने हुए अन्य पदार्थ इक्षु तथा इक्षुके विकार गुण शर्करादि चर्वी तैल नूतन चावल ऊष्ण जल इन सब वस्तुओंका सेवन करता है उस मनुष्यकी आयु क्षीण नहीं होती। उष्ण तैल मर्दन, उवटना बालोंमें तथा शिरमें तैल लगाना, स्वेदक्रिया पसीना आवे ऐसी वाष्पका शरीर पर लगाना। सूर्य्यताप, धूपमें बैठना, गर्भ भूमिमें सोना बैठना. गर्भ मकान वह कोठरी आदि तथा गर्म वस्त्रोंसे मढीहुई पालकी गर्म रुईदार तोषकादि विछी हुई शय्या वह आसन आदि पर बैठे तथा शयन करे। रजाई व्याघ्रचर्म रेशमी वस्त्र ऊन व रुईदार वस्त्र व कम्बलादि बिछानेके योग्य वस्त्र बिछाना और ओढनेके योग्य ओढना चाहिये। गर्म और मोटे वस्त्रोंसे सदैव शरीरको ढकाहुआ रक्खे, अगरका कस्तूरी मिश्रित लेप करे। शयन कालके समयमें पुष्ट स्तनवाली तथा पूर्णोन्नत पयोधरा अगरुसे लेपित है अङ्ग जिसका ऐसी प्रमदाके शरीरसे आलिंगन करके शयन करे शिशिरागममें यथेष्ट मैथुनका सेवन करे। हिमागममें हलके तथा वातजनित अन्न पानको त्याग देवे, विशेष शीतल पवनका सेवन त्याग देवे अल्पाहार उदमन्थको भी त्याग देवे।

हेमन्त और शिशिर ऋतुकी समानता।

हेमन्ते शिशिरे तुल्ये शिशिरेऽल्पं विशेषणम्। रौक्ष्यमादानजं शीतं मेघमारुतवर्षजम्। तस्माद्धैमन्तिकः सर्वः शिशिरे विधिरिष्यते। निवातमुष्णमधिकं शिशिरे गृहमाश्रयेत्। कटुतिक्तकषायाणिवातलानि लघूनि च॥ वर्जयेदन्न पानानि शिशिरे शीतलानि च।

अर्थ—हेमन्त ऋतु और शिशिर ऋतु इन दोनोंकी ऋतुचर्य्या यद्यपि एक समान ही है, परन्तु शिशिर ऋतुमें कुछ थोडासा अनन्तर है कि शिशिर ऋतुमें आदानकाल होता है, इस कारणसे रुक्षता और बादल, वायु तथा वर्षातुसे उत्पन्न हुआ शीत प्रगट होता है। इसी कारणसे शिशिर ऋतुमें हेमन्त ऋतुकी सम्पूर्ण विधि और आहार विहार आचरण कर्त्तव्य हैं। विशेषता यह है कि शिशिर ऋतुमें अधिक तर निर्वात तथा ऊष्ण गृहमें निवास करना उचित है। कटु तिक्त कसैले पदार्थ और वातकारी लघु और शीतल अन्न पानादिका सेवन करना शिशिर ऋतुमें त्याग कर देना चाहिये।

वसन्त ऋतुमें कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य विधिका वर्णन।

हेमन्ते निचितः श्लेष्मा दिनकृद्भाभिरीरितः। कायाग्निं बाधते रोगांस्ततः प्रकुरुते बहून्। तस्माद्वसन्ते कर्माणि वमनादीनि कारयेत्॥ गुर्वम्लस्निग्ध

मधुरं दिवास्वप्नं च वर्जयेत् ॥ व्यायामोद्वर्त्तनं धूमं कवलग्रहमञ्जनम् । सुखाम्बुना शौचविधिं शीलयेत्कुसुमागमे । चन्दनागुरुदिग्धांगो यवगोधूमभोजनः ॥ शारभं शाशमैणेयं मांसं लावकपिञ्जलम् । भक्षयेन्निगदं सीधुं पिबेन्माध्वीकमेव वा ॥ वसन्तेऽनुभवेत्स्त्रीणां कामिनीनां च यौवनम् ॥

अर्थ—हेमन्त ऋतुमें जो स्वभावसे ही कफ संग्रह हुआ था वह कफ सूर्य्यकी किरणोंसे द्रवित होकर वसन्त ऋतुमें जठराग्निको मन्द कर देता है, जठराग्निके मन्द हानके कारणसे कफ सम्बधी अनेक रोग उत्पन्न होते हैं । इसलिये वसंत ऋतुमें वमन विरेचनादि कर्म अवश्य कर्त्तव्य हैं । भारी खट्टे स्निग्ध मधुर इत्यादि आहार तथा दिनमें शयन करना इत्यादिका परित्याग करदेवे । इस वसंत ऋतुके आगमन समयमें कसरत, उवटन, अंगमर्दन, धूमपान कवल ग्रह अञ्जनादिका व्यवहार करे, उत्तम साफ ताजे जलसे शौचादि क्रिया करे । शरीर पर चन्दन अगरुका लेप करे गेहूँके वनेहुए आहारका सेवन करे । शरभ, खरगोस, हिरण, काला हिरण लावा (लवा) कपिञ्जल इनके मांसका सेवन करे । निगदसंज्ञक, साधुसंज्ञक, माध्वीसंज्ञक इन मद्योंका सेवन करें वसन्त ऋतुमें ही स्त्रियोंके यौवन तथा वन वृक्षादिके यौवनका अनुभव होता है ।

ग्रीष्म ऋतुमें कर्तव्याऽकर्तव्य विधिका वर्णन ।

मयूखैर्जगतः सारं ग्रीष्मे पेपीयते रविः । स्वादु शीतं द्रवं स्निग्धमन्नपानं तदा हितम् । शीतं सशर्करं मन्थं जांगलान्मृगपक्षिणः । घृतं पयः सशाल्यन्नं भजन्ग्रीष्मे न सीदति । मद्यमल्पं न वा पेयमथवा सुबहूदकम् । लवणाम्लकटूष्णानि व्यायामं चात्र वर्जयेत् ॥ दिवा शीतगृहे निद्रां निशि चन्द्रांशुशीतले । भजेच्चन्दनदिग्धांगः प्रवाते हर्म्यमस्तके । व्यजनैः पाणिसंस्पर्शैश्चन्दनोदकशीतलैः । सेव्यमानो भजेदस्यां मुक्तामणिविभूषितः । काननानि च शीतानि जलानि कुसुमानि च । ग्रीष्मकाले निषेवेत मैथुनाद्विरतो नरः ।

अर्थ—इस ग्रीष्मादि ऋतुमें सूर्य अपनी तीव्र ऊष्ण किरणोंसे जगतके रस सारको (सूक्ष्मतत्त्व) को खींच लेते हैं, (संसारमें यावत् पदार्थ हैं उनके सूक्ष्म रसरूपी परमाणु सूर्य्यकी गर्मीसे हलके होकर वायुके साथ उडकर आकाश मंडलमें. वायुके

आधारसे स्थित रहते हैं। वृष्टि होनेपर वही परमाणु पृथिवी पर आ जाते हैं, इस ऋतुमें मिष्ट और शीतल अन्न तथा पतला स्निग्ध पान हितकारी है, मिश्री व खांड डालकर शीतल मन्थका पान करना हित है। जंगली पक्षियोंका मांस व मांसरस भक्षण करे, दुग्धके साथ तथा घृतके साथ साली चावलोंका आहार करे, ऐसा आहार करनेसे मनुष्य दुर्बल नहीं होता ग्रीष्म ऋतुमें मद्य पान बिलकुल न करे कदाचित मद्य पानकी विशेष आवश्यकता किसी समय पर समझी जावे तो १ भाग मद्यमें ३ भाग जल मिलाकर पान करना चाहिये। अधिक लवणके पदार्थ अथवा खट्टे कडुवे, उष्ण ऐसे आहारोंको त्याग देवे। परिश्रम और कसरत करना त्याग देवे, दिनके समय शीतल मकानमें (जहां खसकी टट्टी लगी होयँ, सोवे। रात्रिके समय ऐसे स्थानपर सोवे जहांपर चन्द्रमाकी शीतल किरणोंकी चाँदनी पडती होय शरीरमें चन्दन (कर्पूर) आदिका लेप करना उचित है। चन्दन मिलेहुए व (खसका इत्तर व गुलाबजल मिलेहुए) शीतल जलसे सेचन कियेहुए पंखोंकी हवाका सेवन करे। दासीगण सेवामें रहकर सब तरहसे शीतल उपचार करती रहें मोती और शीतल मणियोंकी माला धारण करे, वन उपवन शीतल विकसित कुसुम इनका सेवन करना उचित है। ग्रीष्म ऋतुमें मैथुन करना बिलकुल त्याग देवे। (जिन स्त्री पुरुषोंको सहवास करनेके अनन्तर गर्मी और दाह उत्पन्न होता हो उनको गर्मीके मौसममें सहवास त्याग देना ठीक है।

वर्षाऋतुमें कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य विधिका वर्णन।

आदानदुर्बले देहे पक्ता भवति दुर्बलः। स वर्षास्वनिलादीनां दूषणैर्बाध्यते पुनः। भूबाष्पान्मेघनिस्पन्दात् पाकादम्लाज्जलस्य च। वर्षास्वग्निबले क्षीणे कुप्यन्ति पवनादयः। तस्मात्साधारणः सर्वो विधिर्वर्षासु चेष्यते। उदमन्थं दिवास्वप्नमवश्यायं नदीजलम्। व्यायाममातपं चैव व्यवायं चात्र वर्जयेत्। पानभोजनसंस्कारान् प्रायः क्षौद्रान्वितान्भजेत्। व्यक्ताम्ललवणस्नेहं वातवर्षाकुलेऽहनि। विशेषशीते भोक्तव्यं वर्षास्वनिलशान्तये। अग्निसंरक्षणवता यवगोधूमशालयः। पुराणाजांगलैर्मांसैर्भोज्या यूषैश्च संस्कृतैः। पिबेत् क्षौद्रान्वितं चाल्पं माध्वीकारिष्टमम्बु वा। माहेन्द्रतप्तशीतं वा कौपं सारसमेव वा। प्रघर्षोद्वर्तनस्नानगन्धमाल्यपरो भवेत्। लघुशुद्धाम्बरः स्थानं भजेदक्लेदि वार्षिकम्।

अर्थ—आदान कालमें मनुष्योंके शरीर दुर्वल हो जानेसे जठराग्नि भी दुर्वल हो जाती है। वही जठराग्नि वर्षा ऋतुमें वातादिकके दूषित होनेसे और भी अधिक मन्द हो जाती है, वर्षाऋतुमें समस्त पदार्थोंके भीगनेसे तथा पृथिवी पर अनेक प्रकारके पदार्थोंके सडनेसे एक प्रकारकी दूषित भाफ उठती है, वह मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश करती है उससे शरीरके दोप दूपित हो जाते हैं। वर्पा ऋतुमें जलका अम्ल पाक होनेके कारणसे और अग्निका वल अधिक क्षीण होनेसे वातादिक तीनों दोष अत्यन्त प्रकोपको प्राप्त हो जाते हैं, इसीसे वर्षाके मौसममें उदर सम्बन्धी साधारण व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं। इस कारणसे वर्षाऋतुमें ऐसे आहार विहार करने चाहिये कि जिससे जठराग्नि वलवान् वनी रहे और दोष भी कुपित न होने पावे। इस वर्षाऋतुमें उदमन्थ, दिवाशयन, ओस, नदीका जल, व्यायाम, धूपका फिरना, मैथुन करना इन कृत्योंका त्याग कर देना चाहिये। खाने पीनेकी वस्तुओंमें शहत मिलाकर खाया पिया करे, जिस शीत प्रधान दिवसमें शीतल वायु और जल वृष्टिका जोश अधिक होय उस दिवस नमकीन खटाईका सेवन करे तथा स्निग्ध खाद्य पदार्थोंका सेवन करे, ऐसा सेवन करनेसे वायु शान्त रहती है। जठराग्नि विगडने न पावे इसकी रक्षाके लिये जौ, गेहूं, पुराने शाली चावलोंका सेवन करे, इन अन्नोंसे वनेहुए पदार्थोंके साथ जांगल प्रदेशके रहनेवाले पशु पक्षियोंके मांसका यूप भी सेवन करे। माध्वीक संज्ञक (शराव) में अथवा जलमें मिलाकर थोडा २ शहद भी पान करना चाहिये, अन्तरीक्षका जल गर्म करके शीतल कियाहुआ अथवा तालावका जल गर्म कियाहुआ नितार कर शीतल किया हुआ और इसी प्रकारसे सिद्ध कियाहुआ कूपका जल पान करे। शरीरको मीडकर उवटना करे और स्नान करके इत्र आदि सुगन्धित द्रव्यको सूंघे अथवा सुगन्वित पुष्पोंकी माला धारण करे शरीरके अनुकूल स्वच्छ हलके (व गर्म) वस्त्र धारण करे जिस स्थानमें शील व नमी अधिक रहती होय उसका रहना त्याग देवे।

शरद् ऋतुमें कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य विधिका वर्णन।

वर्षाशीतोचिताङ्गानां सहसैवार्करश्मिभिः। तप्तानामाचितं पित्तं प्रायः शरदि कुप्यति॥ तत्रान्नपानं मधुरं लघु शीतसतिक्तकम्। लावान्कपिञ्जलानेणानुरभ्राञ्छरभाञ्छशान्॥ शालीन्सयवगोधूमान्सेव्यानाहुर्घनात्यये। तिक्तस्य सर्पिषः पानं विरेको रक्तमोक्षणम्॥ धाराधरात्यये कार्य्यमातपस्य च वर्जनम्। वसां तैलमवश्यायमौदकानूपमामिषम्॥ क्षारं दधि दिवास्वप्नं प्राग्वातश्चात्र वर्जयेत्॥

अर्थ—वर्षा ऋतुमें मनुष्योंके शरीर शीतके सहनेके योग्य हो जाते हैं, उनहीं शरीरोंके शरद ऋतुमें सहसा सूर्य्यकी किरणोंसे संतप्त होनेके कारण सञ्चित पित्त कुपित हो जाता है। इस कारणसे शरद ऋतुमें जो कि मिष्ट हलका शीतल और किञ्चित् तिक्त जो कि पित्तको शमन करनेवाले होयँ ऐसे आहारोंको तथा पेय पदार्थोंको अच्छे प्रकार क्षुधा लगने पर परिमित मात्रासे सेवन करना चाहिये। अभ्र बादलोंके निवृत्त होनेपर लावा, कपिञ्जल, हिरण, दुम्बा (मेढ़), शरभ, शशा (खरगोश) इनका मांस शाली चावल जौ गेहूं आदि अन्नोंका सेवन करना उचित है। इस ऋतुमें तिक्त पदार्थ और घृतका पान जुलाव फस्द खोलकर रक्त मोक्षण धूपमें भ्रमण करना इन सबको त्याग देवे। तथा चर्वी तैल ओसमें शयन जलचरोंका मांस अनूप देशके जीवोंका मांस क्षार दही दिनमें शयन करना और पूर्वकी वायुका सेवन इन सबको भी त्याग देवे।

हंसोदक (जल) के लक्षण तथा गुण।

दिवा सूर्य्यांशुसंतप्तं निशिचन्द्रांशुशीतलम्। कालेन पक्कं निर्दोषमगस्त्येनाविषीकृतम्। हंसोदकमिति ख्यातं शारदं विमलं शुचि। स्नानपानावगाहेषु शस्यते तद्यथामृतम्॥

अर्थ—इस शरद ऋतुका निर्मल और पवित्र जल जो दिनमें सूर्यकी किरणोंसे तप्त हो रात्रिके समय चन्द्रमाकी शीतल किरणोंसे शीतल हो जाता है वह काल स्वभावसे स्वयं पक्क हो जाता है अगस्त्य ऋषिके प्रभावसे उसके विषादिक दोष प्रथम ही नष्ट हो गये हैं इस उत्तम जलको हंसोदक कहते हैं। यह जल स्नान पान अवगाहन करनेमें अमृतके समान गुणकारी है।

शारदानि च माल्यानि वासांसि विमलानि च। शरत्काले प्रशस्यन्ते प्रदोषे चन्द्ररश्मयः॥ इत्युक्तमृतुसात्म्यं यच्चेष्टाहारव्यपाश्रयम्। उपशेते यदौचित्यादोकसात्म्यं तदुच्यते॥ दोषाणामामयानां च विपरीतगुणं गुणैः। सात्म्यमिच्छन्ति सात्म्यज्ञाश्चेष्टितं चाद्यमेव च॥

अर्थ—इस शरद ऋतुमें इसी ऋतुके खिले हुए पुष्पोंकी माला स्वच्छ वस्त्र तथा सायंकालमें चन्द्रमाकी किरणोंका सेवन अत्यन्त हितकारी है। इसी प्रकारसे जिस २ ऋतुमें जो आहार विहार सेवनीय हैं उन सबका वर्णन कर दिया, और जो आहार विहार शरीरको आरोग्य रख सुख उत्पन्न करे उसको एक सात्म्य कहते हैं। सात्मज्ञ मनुष्य

शरीर और रोगके विपरीत गुणवाले द्रव्योंको ही सात्म्यज मानते हैं और एक सात्म्यको चेष्टित मानते हैं ।

ऋतुचर्य्या प्रकरण समाप्त ।

रोगके लक्षण ।

रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसात्म्यमरोगता । रोगा दुःखस्य दातारो ज्वरप्रभृतयो हि ते ॥ १ ॥ ते च स्वाभाविकाः केचित्केचिदागंतवः स्मृताः । मानसाः केचिदाख्याताः कथिता केऽपि कायिकाः ॥ २ ॥

अर्थ—वृद्ध वाग्भट्ट कहते हैं कि वात पित्त कफ इनकी परस्पर विषमता अर्थात् न्यूनाधिकता हो जानेसे ही रोगकी उत्पत्ति होती है, जब ये वातादि दोष समान रहते हैं तब अरोग्यता रहती है । अरोग्यता मनुष्योंको सुखदायक और ज्वरसे लेकर जितने रोग हैं वे सब दुःखके देनेवाले होते हैं । इनमेंसे कोई रोग तो स्वाभाविक, कोई आगंतुज, कोई मानसिक, कोई कायिक रोग जानने चाहिये ।

व्याधिके उपद्रव और अरिष्टके लक्षण ।

रोगारम्भकदोषस्य प्रकोपादुपजायते । योऽन्यो विकारः स बुधैरुपद्रव इहोदितः ॥ रोगिणो मरणं यस्मादवश्यं भावि लक्ष्यते । तल्लक्षणमरिष्टं स्याद्रिष्टं चापि तदुच्यते ॥

अर्थ—रोग प्रगट कर्ता दोषके कुपित होनेसे एक तो रोग और उस रोगके साथमें दोषकी विषमतासे दूसरा रोग उत्पन्न हो जावे उसको उपद्रव कहते हैं । जिन लक्षणोंसे (भविष्य) में रोगीके मरणका ज्ञान होवे उसको अरिष्ट रिष्ट अथवा असाध्य लक्षण कहते हैं ।

व्याधिकी याप्यता ।

यापनीयं तु तं विद्यात् क्रिया धारयते हि यम् । क्रियायान्तु निवृत्तायां सद्यो यश्च विनश्यति ॥ प्राप्तक्रिया धारयति सुखिनं याप्यमातुरम् । पतिष्यदिवागारं स्तम्भो यत्नेन योजितः ॥ साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्याश्चासाध्यतां तथा । घ्नंति प्राणानसाध्यास्तु नराणामक्रियावताम् ॥

अर्थ—याप्य व्याधिके लक्षण इस प्रकारसे हैं कि जो रोग क्रियाको धारण करलेवे वो यापनीय अर्थात् निवृत्त होनेवाली व्याधि समझनी, जिस व्याधिके उपायमें की हुई

क्रिया निष्फल हो जावे उस व्याधिवाला रोगी तत्काल मृत्युको प्राप्त होता है । याप्य आतुर सुखपूर्वक क्रियाको धारण करता है, जैसे कि कोई गिरनेवाले मकानके नीचे स्तंभ (खंभा डाट) लगा देनेसे वह मकान गिरनेसे रुक जाता है इसी प्रकार याप्य रोगी औषधके आधारसे रुक जाता है । यदि व्याधि होनेपर इलाज न किया जाय तो उनकी साध्य व्याधि भी याप्य हो जाती है । याप्य व्याधि असाध्य हो जाती है और असाध्य व्याधि मनुष्योंको प्राणनाशक हो जाती है ।

चिकित्साके लक्षण ।

या क्रिया व्याधिहरणी सा चिकित्सा निगद्यते । दोषधातुमलानां या साम्यकृत्सैव रोगहृत् ॥ याभिः क्रियाभिर्जायंते शरीरे धातवः समाः । सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां मतम् ॥ या ह्युदीर्णं शमयति नान्यं व्याधिं करोति च । सा क्रिया न तु यो व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥

अर्थ—जो चिकित्सा सम्बन्धी क्रिया व्याधिके हरण करनेवाली है उसीका नाम चिकित्सा कहते हैं । यही चिकित्सा तीनों दोप सप्त धातु, दूषित मलोंको समान शुद्ध करती है तथा विषम दोषोंको सम करके रोगको हरण करती है । यही चिकित्सकका कर्त्तव्य पालन है । जो बढी हुई व्याधिको समन करे और दूसरी व्याधिको उत्पन्न न होने देवे उसी क्रियाको चिकित्सा कहते हैं, जो एक व्याधिको निवृत्त करके दूसरी व्याधिको उत्पन्न करे उसको चिकित्सा नहीं कहते । चिकित्सा सम्बन्धी क्रियायोंके नव नाम हैं, जैसा कि " आरम्भो निष्कृतिः शिक्षा पूजनं संप्रधारणम् । उपायः कर्म चेष्टा च चिकित्सा च नव क्रिया " आरम्भ, निष्कृति, शिक्षा, पूजन, संप्रधारण, उपाय, कर्मचेष्टा और चिकित्सा ॥

चिकित्सा विधिका निर्देश ।

जातमात्रचिकित्स्यः स्यान्नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः ॥ वह्नि शत्रुविषैस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥ रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनंतरमौषधम् । ततः कर्म भिषक् पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥

अर्थ—मनुष्योंको उचित है कि रोग उत्पन्न होते ही चिकित्सकसे उस रोगकी चिकित्सा करावे । व्याधिको छोटी समझ कर उससे भूलमें न रहे, क्योंकि भूलमें रहनेसे छोटीसी व्याधि, अग्निकी चिनगारी, निर्बल शत्रु ये समय पाकर विषके वेगके समान बढकर विकराल रूप हो जाते हैं वैद्यको उचित है कि प्रथम मनुष्यके रोगका

निदान पंचकसे निश्चय पूर्वक परीक्षा करे, फिर उस रोगके अनुकूल औषधका निश्चय करे जब कि रोग औषधका निश्चय करलेवे तब रोगीकी चिकित्साका आरम्भ करे।

चिकित्सक विना रोगको निश्चय किये चिकित्सा आरम्भ न करे।

यस्तु रोगमविज्ञाय कर्म्माण्यारभते भिषक्। अप्यौषधविधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया॥ भेषजं केवलं कर्तुं यो न जानाति चामयम्। वैद्य-कर्म स चेत् कुर्य्याद्वधमर्हति राजतः॥ यस्तु केवलरोगज्ञो भेषजेष्व-विचक्षणः। तं वैद्यं प्राप्य रोगी स्याद्यथा नौर्नाविकं विना॥ यस्तु-केवलशास्त्रज्ञः क्रियास्वकुशलो भिषक्। स मुह्यत्यातुरं प्राप्य यथा भीरुरिवाहवम्॥

अर्थ-जो वैद्य रोगको निश्चय किये विना ही चिकित्साकर्मको आरम्भ कर देता है वह वैद्य चाहे औषध विधिका ज्ञाता भी होय परन्तु ऐसे वैद्यको रोगके नाश करनेकी सिद्धि होय, किन्तु नहीं भी होय। क्योंकि जो वैद्य केवल औषध विधिको जानता है परन्तु रोगका निदान पञ्चकसे निश्चय करना नहीं जानता है, यदि ऐसा वैद्य रोगि-योंकी चिकित्सामें प्रवृत्ति करे तो राजा उसको वध करनेका दण्ड दे सक्ता है। जो वैद्य केवल रोगका निदान करके रोगके निश्चय करनेमें समर्थ है और निघंटु आदिसे, औषधके गुण नहीं जानता है। औषध प्रक्रियामें विलकुल मूढ है ऐसे वैद्यकी चिकित्सा करानेसे रोगीकी वह गति होती है कि जैसे अथाह नदीके जलमें विना मल्लाहकी नाव, अर्थात् विना मल्लाहकी नाव संकटमें डूबती है इसी प्रकार मूढ वैद्यके समीप रोगी संकटमें पड जाता है। जो वैद्य केवल शास्त्र तो पढा है लेकिन उस शास्त्रमें लिखित क्रियाओंको नहीं जानता है और क्रियाओंके करनेमें मूर्ख है वह रोगीकी स्थिति और (रोगके उपद्रवों) को देखकर भयभीत हो जाता है, जैसे कि (शास्त्रयुद्ध) वीरोंके संग्रामको देख कर कायर पुरुष घबडाता है। ऐसे कायर वैद्यकी उस समय पर सकल विगड जाती है।

व्याधि और औषध दोनोंके ज्ञाता वैद्यकी प्रशंसा।

यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः। देशकालविभागज्ञस्तस्य सिद्धिर्न संशयः॥ आदावंते रुजां ज्ञाने प्रयतेत चिकित्सकः। भेष-जानां विधानेन ततः कुर्याच्चिकित्सितम्॥ विकारनामाकुशलो न जिहि-यात् कदाचन। नहि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः॥ नास्ति

रोगो विना दोषैर्यस्मात् तस्माच्चिकित्सकैः । अनुक्तमपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥ ये न कुर्वंत्यसाध्यानां चिकित्सान्ते भिषग्वराः ॥ अतो वैद्य श्रमः कार्य्यः साध्याऽसाध्यपरीक्षणे ॥ शीते शीतप्रतीकारमुष्णे तूष्णनिवारणम् ॥ कृत्वा कुर्य्यात् क्रियां प्राप्तां क्रियां कालं न हापयेत् । अप्राप्ते वा क्रियाकाले प्राप्ते वा न क्रिया कृता । क्रियाहीनाऽतिरिक्ता च साध्येष्वपि न सिद्ध्यति ॥ विकारेऽल्पे महत्कर्म क्रिया लघ्वी गरीयसी । द्वयमेतदकौशल्यं कौशल्यं युक्तकर्मता । क्रियायास्तु गुणा लाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् । पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रियासंकरो हितः । क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिर्न क्रियासंकरो हितः । ताभिस्तु भिन्नरूपाभिः सांकर्यं नैव दुष्यति । न चैकान्तेन निर्दिष्टे शास्त्रे निविशते बुधः । स्वयमप्यत्र भिषजा तर्कनीयं चिकित्सिता । उत्पद्यते च सावस्था दोषकालबलं प्रति । यस्यां कार्य्यमकार्य्यं स्यात्कर्म कार्य्यविवर्जितम् ।

अर्थ–जो वैद्य रोग विशेषोंको उत्तम प्रकार और सर्व रोगोंके औषधके औषध प्रयोग निश्चय करनेमें चतुर है तथा देशकालके विभागोंके अनुकूल वातादि दोषोंकी प्रधानता अप्रधानताको जान रोगोंके शमन करनेकी प्रक्रियामें निपुण है, ऐसा वैद्य संशय रहित रोगीको रोगसे मुक्त करनेमें सफल कार्य्य अर्थात् सिद्धिको प्राप्त करेगा। वैद्यको उचित है कि आदि और अन्तमें भले प्रकार रोगोंकी परीक्षा करनेमें प्रयत्न करे, सम्यक्प्रकारसे रोगका निश्चय करके औषध प्रक्रियाकी विधिके अनुसार चिकित्साका प्रारम्भ करे। विकार कहिये व्याधिका नाम जाननेमें अपंडित भी होय तथापि लज्जा कभी न करे, क्योंकि वैद्यक शास्त्रमें सर्व विकारोंके नामसे ही स्थिति नहीं है, किन्तु सैकडों रोग विना नामके हैं (इस समय भी अनेक व्याधि मनुष्योंको ऐसी होती हैं कि जिनका नाम या निदान वैद्यक तिब्ब व डाक्टरीमें नहीं मिलते और मनुष्योंके शरीरमें देखी जाती हैं) ऐसी व्याधियोंका निश्चय दोषोंके अनुसार करे। विना दोषके कोई व्याधि नहीं होती और विना मिथ्या आहार विहारके दोष कुपित नहीं होते। वही वैद्य सर्वोत्तम समझा जाता है, जो व्याधिके साध्याऽसाध्यका विचार करके असाध्य रोगोंकी चिकित्साका आरम्भ नहीं करता। इससे वैद्यको उचित है कि प्रथमे व्याधिकी साध्याऽसाध्य स्थितिका निश्चय करके ही चिकित्साका आरम्भ करे। शीतप्रधान रोगोंमें

शीतके शमन करनेकी और गर्मीके रोगमें गर्मीको शमन करनेकी प्रक्रिया करे, चिकित्सा प्रणालीकी क्रिया व समयको निरर्थक नष्ट न करे । चिकित्साका समय न आनेपरही चिकित्साका निरर्थक प्रयत्न न करे, जैसे कि तरुण ज्वरमें ही औषध प्रयोग दिया जावे तो दोष विकृत होकर ज्वर विगड जाता है । अतीसारमें प्रवाहित मलके वेगको एकदम रोका जाय तो अनेक उपद्रव होते हैं, ज्वरके वेगका प्रवाह शान्त होने (पचने) लगे उस समय औषध देनी चाहिये । अतीसारमें कुपित हुए मलका प्रवाह निकल जावे उस समय दस्तोंके रोकनेका प्रयत्न करना चाहिये । सो प्राप्त काल कहिये औषध देनेसे रोग शान्त होनेकी संभावना होवे, उसी काल पर औषध देना आरम्भ करे । कदाचित् प्राप्त कालपर औषध प्रयोग न दिया जावे तो वह भी फलीभूत क्रिया नहीं होती, जो हीन क्रिया न की जावे अथवा रोगके अनुकूल क्रिया न की जावे किन्तु विरुद्ध क्रिया की जावे तो वह साध्य रोगको भी शमन करनेमें समर्थ नहीं होती । इसीसे वैद्योंने हीन क्रियाको वर्जित लिखा है । जैसे कि अल्प रोगमें चिकित्सा सम्बन्धी बडी क्रिया करनी और बडे रोगमें अल्प क्रिया करनी ये दोनों प्रक्रिया करनेवाला वैद्य मूर्ख समझा जाता है । कुशल वैद्य वही समझा जाता है कि जो रोगके अनुसार क्रियाको काममें लावे । कदाचित् एक क्रियाके करनेसे कुछ लाभ रोगीको न पहुंचे तो दूसरी क्रियाको काममें लावे, इसी प्रकार खानेकी औषधका एक प्रयोग काम न देवे तो दूसरा प्रयोग देवे, लेकिन खानेकी प्रथम औषधका वेग शान्त होनेपर दूसरा प्रयोग देवे । एकके ऊपर दूसरा प्रयोग ठोकना संकर क्रिया कहलाती है, इसके करनेसे रोगीको हित नहीं पहुँचता । प्रथम औषधका वेग शान्त न होनेपर दूसरी न देवे, परन्तु प्रयोगमें भिन्नता होनेसे देनेमें दोष भी नहीं आता है । जहां पर दो क्रिया समान रूप होवें वहां पर संकर क्रिया करना हितकारी नहीं है । परन्तु दोनों क्रिया परस्पर विपरीत रूपमें होवें तो संकर क्रिया करनेमें दोष नहीं आता है । शास्त्र प्रणालीमें प्रवेश करनेवाले वैद्यको यह उपदेश कहीं नहीं लिखा गया है कि अमुक रोगकी अमुक ही औषध है अथवा यह अमुक ही रोग है । इसलिये वैद्यको उचित है कि सब रोगोंका निदान तथा चिकित्सा करनेमें स्वयं अपनी बुद्धिसे तर्कपूर्वक औषध प्रयोग और प्रक्रियाका निश्चय करे । जैसे कि दोषकाल और बलके प्रति वह अवस्था उत्पन्न होती है कि जिसमें करने योग्य कर्म नहीं करने योग्य । न करने योग्य कर्म करने योग्य होता है ।

निषिद्ध वैद्यके लक्षण ।

कुचैलः कर्कशः स्तब्धो ग्रामीणः स्वयमागतः ।
पञ्च वैद्या न पूज्यन्ते धन्वंतरिसमा अपि ॥

अर्थ—मलिन रहनेवाला निष्प्रयोजन कठिन शब्द बोलनेवाला अभिमानी छोटे ग्रामोंका रहनेवाला लौकिक व्यवहार प्रणालीका ज्ञान भी जिसको न होय और विना बुलाये स्वयं ही रोगीके समीप आया होय इन पांच लक्षणोंसे संयुक्त वैद्य धन्वन्तरीके समान होय तो भी प्रतिष्ठा और पूजा करनेके योग्य नहीं है । इसी प्रकार किसी व्यसनवाला जिसको नसा आदिका व्यसन होय व लम्पटी अपठित लोभी छोटे रोगको बडा बतला कर रोगीसे द्रव्य हरण करता होय अपनी प्रसंशा करनेवाला स्त्रियेंमें आसक्त और भी कुलक्षण जिसमें पाये जावें ऐसे वैद्य हकीम व डाक्टरसे कदापि रोगीको अपनी चिकित्सा न करानी चाहिय ।

सद्वैद्यके लक्षण ।

चिकित्सां कुरुते यस्तु स चिकित्सक उच्यते । स च यादृक् समीचीन-स्तादृशोऽपि निगद्यते ॥ तत्त्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टग्रंथः स्वयंकृती । लघु-हस्तः शुचिः शूरः सद्योपस्करभेषजः ॥ प्रत्युत्पन्नमतिर्धीमान् व्यवसायी प्रियंवदः । सत्यधर्मपरो यश्च वैद्य ईदृक् प्रशस्यते ॥ योगविन्नाम-रूपज्ञस्तासां तत्त्वविदुच्यते । किं पुनर्यो विजानीयादोषधीः सर्वथा भिषक् । योगमासान्तु यो विद्यादेशकालोपपादितम् । पुरुषं पुरुषं वीक्ष्य स विज्ञेयो भिषक्तमः । भिषग् बुभूर्षुर्मतिमानतः स्वगुणसंपदि । परं प्रयत्नमातिष्ठेत्प्राणदः स्याद्यथा नृणाम् । तदेवयुक्तं भैषज्यं यदा-रोग्याय कल्पते । स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् । सम्यक् प्रयोगं सर्वेषां सिद्धिराख्याति कर्मणाम् । सिद्धिराख्याति सर्वैश्च गुणैर्युक्तं भिषक्तमम् ।

अर्थ—जो मनुष्य रोगियोंकी चिकित्सा (इलाज) करता है उसको चिकित्सक (वैद्य हकीम तबीब व डाक्टर) कहते हैं । जिसने चिकित्सा शास्त्र आयुर्वेद शास्त्र तथा तिब्बकी किताबें पढी होयँ अथवा डाक्टरी विद्या पढी होय और जो २ ग्रन्थ पढे होयँ उसके तात्पर्यको भले प्रकार हृदयंगत करलिया होय और गुरुके समीप रहकर छेद्य भेद्य लेखन सीवनीय आकर्षणीय शोधन स्नेह पान वमन विरेचन वस्तिक्रिया आदि जो चिकित्साकी प्रक्रिया हैं, उनको कर चुका होय व सीख चुका होय और औषध प्रयोग प्रणालीको जान चुका होय चिकित्साकी क्रियामें जिसका हलका और फुर्तीला हाथ चले सदाचारी उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ पवित्र और स्वच्छ रहनेवाला

शूरवीर रोगीकी भयंकर दशाको देखकर भयभीत न होनेवाला नूतन औषधियोंका संग्रह जिसके समीप होय शीघ्र स्फुरण बुद्धिवाला बुद्धिमान् विद्वान् उद्योगी साहसी प्रिय भाषण करनेवाला साहसी सत्यवक्ता धर्मात्मा औषधियोंके गुण नाम रूप और संयोगोंको जानता है वही वैद्य औषध तत्ववित् कहाता है, जो सम्पूर्ण प्रकारसे औषधियोंका उत्पत्ति स्थान ऋतु देशकालादिको जानकर औषध प्रयोगोंको संयुक्त करता है और रोगियोंको रोगसे छुटाता है उसको सर्वोत्तम वैद्य कहते हैं। जो मनुष्य उत्तम वैद्य उपरोक्त गुण सम्पन्न होना चाहे उसको उचित है कि रोगग्रस्त मनुष्योंकी प्राणरक्षाका अत्यन्त प्रयत्न अपनी आत्माके समान करे। उत्तम वैद्य वही है जिसकी निर्माण की हुई औषध प्रयोगके सेवनसे रोगीका रोग मुक्त होकर आरोग्यता धारण करे। और वही उत्तम औषध है कि जिसके सेवनसे शीघ्रही रोग शान्त होवे। औषधका सर्वोपरि उत्कृष्ट प्रयोग उसी समय कथन किया जाता है कि जब उससे चिकित्साकी उत्तम सफलता दृष्टिमें आती है और वैद्य अपने कार्य्यमें सफलता प्राप्त करता है तभी उसको सर्वगुण सम्पन्न उत्तम वैद्य (हकीम व डाक्टर) कहते हैं। इसी गुणसे वैद्य पूज्य समझा जाता है।

अज्ञानी मूढ वैद्यसे वचनेकी आज्ञा।

धीमता किञ्चिदादेयं जीवितारोग्यकांक्षिणा। कुर्य्यान्निपतितो मूर्ध्नि सशेषं वासवाशनिः॥ सशेषमातुरं कुर्य्यान्नत्वज्ञमतमौषधम्। दुःखिताय शयानाय श्रद्दधानाय रोगिणे॥ यो भेषजमविज्ञाय प्राज्ञमानी प्रयच्छति। तस्यैव मृत्युदूतस्य दुर्मतेस्त्यक्तधर्मणः॥ नरो नरकपाती स्यात्तस्य संभाषणादपि। वरमाशीविषविषं क्वथितं ताम्रमेव वा॥ पीतमत्यग्निसंतप्ता भक्षिता वाथयोगुडाः। न तु श्रुतवतां वेषं बिभ्रता शरणागतात्। गृहीतमन्नं पानं वा वित्तं वा रोगपीडितात्॥

अर्थ—चरक ऋषि मूर्ख वैद्यसे वचनेकी आज्ञा देते हैं कि—इन्द्रका वज्र कदाचित् रोगीके मस्तक पर पडे तो भी सायद रोगीके जीवनकी संभावना हो सक्ती है। परन्तु अज्ञानी वैद्यकी दी हुई औषधसे मनुष्यके जीवनकी आशा कदापि नहीं रह सक्ती। जो वैद्य पांडित्याभिमानी औषधके ज्ञान विनाही दुःखसे पीडित शयन करते हुए और शरणागतमें आये हुए रोगीको ज्ञानसे शून्य वैद्य औषध प्रयोग देता है उस मूर्ख मृत्युदूत दुर्मत और महापापी वैद्यके संग वार्त्तालाप करनेसे भी मनुष्य नरकगामी होता है। सर्पका विष तथा संखिया खा लेना श्रेष्ठ है, गर्म तवा अथवा अग्निसंतप्त

लोहेका लाल गोला श्रेष्ठ है, परन्तु शास्त्र वैद्य वेश धारण करके शरणागतमें आये हुए और रोगसे पीडित मनुष्यके अन्नपान और धन ग्रहण करना उचित नहीं है । किन्तु आरामका खान पान धन ग्रहण समझना चाहिये ।

अज्ञात औषधका निषेध ।

यथा विषं यथा शस्त्रं यथाग्निरशनिर्यथा । तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतं यथा ॥ औषधं ह्यनभिज्ञातं नामरूपगुणैस्त्रिभिः । विज्ञातं वापि दुर्युक्तं युक्तिबाह्येन भेषजम् ॥ योगादपि विषं तीक्ष्णमुत्तमं भेषजं भवेत् । भेषजं वापि दुर्युक्तं तीक्ष्णं संपद्यते विषम् ॥ तस्मान्न भिषजा युक्तं युक्तिबाह्येन भेषजम् (चरक)

अर्थ—विना जानी हुई औषध विष शस्त्र और अग्नि वज्रके समान रोगीको अहित उत्पन्न करनेवाली होती है। और जानी हुई औषध जिसको वैद्य अनेक वार चिकित्साके काममें ले चुका होय वह अमृतके तुल्य होती है । वह औषध कि जिसका नाम रूप और गुण मालूम नहीं है और कभी चिकित्सा कार्य्यमें नहीं आई है, वह औषध विषके समान अनर्थ उत्पन्न करती है । एवं सम्यक् विधिपूर्वक प्रयोग किये जानेपर तीव्र विष भी उत्तम औषध और गुणकारी हो जाता है, परन्तु दुर्युक्त औषध ठीक विषके समान ही होती है, इससे बुद्धिमान् और जीवनकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको उचित है कि अज्ञात् मूर्ख वैद्यसे प्रयुक्त की हुई अयुक्त औषधका सेवन कदापि न करे । यदि करे तो अपने जीवनसे हाथ धोने पडते हैं ।

देशकाल बालककी प्रकृति और बालकको दुग्ध पान करानेवाली धायकी प्रकृति व किसी प्रकारकी व्याधि विशेषकी परीक्षा चतुर वैद्य उत्तम रीतिसे करे । क्योंकि बडी बडी उमरवाले मनुष्योंके रोगका निदान करते समय बहुतसी बातें रोगी मनुष्यसे प्रश्नोत्तर करनेसे रोगका विशेष हाल और लक्षण मालूम हो जाते हैं । परन्तु बालकके रोगका निश्चय करनेमें केवल मात्र चिकित्सक और धायके ऊपर ही आधार है। जो कुछ इस अध्यायमें लिखा गया है वह सब बालकके रोग ज्ञानके लियेही लिखा गया है। सो चिकित्सकको उचित है कि प्रथम बालकके समस्त शरीरकी परीक्षा करे । पीछे दूध पिलानेवाली माता व धायसे बालककी दशा पूँछकर रोगका निश्चय करे । इसके अनन्तर बालकके रोगको शमन कर्त्ता औषधका निश्चय करके विचारपूर्वक चिकित्सा आरम्भ करे । जो चिकित्सक बालकके रोगका निश्चय किये विना ही बालकको औषध देता है वह बालकोंका घातक समझा जाता है ।

अज्ञ वालकके रोगका ज्ञान ।

अङ्गप्रत्यंगदेशे तु रुजा यत्रास्य जायते। मुहुर्मुहुः स्पृशति तं स्पृश्यमाने च रोदिति। निमीलिताक्षो मूर्द्धस्थे शिरोरोगेन धारयेत् । वस्तिस्थे मूत्रसङ्गार्त्तो रुजा तृष्यति मूर्च्छति । विण्मूत्रसङ्गवैवर्ण्यच्छदर्चाध्माना-न्त्रकूजनैः। कोष्ठे दोषान् विजानीयात् सर्वत्रस्थांश्च रोदने । (सुश्रुत)

अर्थ—अज्ञ वालकके जिस अङ्ग प्रत्यङ्गमें पीडा होती होय उसी स्थानको वालक वारम्वार छूता है, यदि दूसरा मनुष्य पीडायुक्त अङ्गको छूए तो वालक जोर जोरसे रोने लगता है। जब कोई रोग वालकके मूर्द्धामें होय तो समझो कि वालकके शिरमें कुछ खरावी है जिससे वह अपनी आंखें वन्द करके पडा रहता है । कभी २ वालकके मस्तकमें अधिक रक्त चढ जाता है ज्वर हो आता है और नेत्र वन्द करके वेहोश पडा रहता है । वालककी वस्तिमें व्याधि होनेसे उसका मूत्र वन्द हो जाता है और पेटमें अफरा हो आता है, इन रोगोंके होनेसे वालकको तृषा लगती है वेहोशी हो जाती है। जो वालकका मूत्र वन्द होय तो मुखपर विवर्णता आ जाती है और अफरासे भरपूर पेटमें भारीपन और नसें तनी हुई माळुम होती हैं । वालकके पेटमें गुडगुडाहट शब्द हो तो कोष्टगत रोग समझना चाहिये, जो सम्पूर्ण शरीरमें व्याधि हो तो वालक अत्यन्त रुदन करता है ।

वालकके उपरोक्त कथन किये हुए रोगोंपर औषधोपचार विधि ।

तेषु च यथाऽभिहितं मृद्वच्छेदनीयमौषधं मात्रया क्षीरपस्य क्षीरस-र्पिषा धात्र्याश्च विदध्यात् क्षीरान्नादस्यात्मनि धात्र्याश्चान्नादस्य कषा-यादीनात्मन्येव न धात्र्याः ।

अर्थ—जो २ औषधियां जिन २ रोगोंमें कथन की गई हैं वोही औषधियां वाल-कके उन २ रोगोंपर परिमित मात्रासे देनी चाहिये । परन्तु इतना ध्यान वालकोंके चिकित्सकको रखना चाहिये कि वे औषधियां जो वालकको दी जावें सो मृदु होनी चाहिये और कफ मेदाको छेदन करनेवाली न होय केवल दुग्धपान करनेवाले वाल-कके किसी रोगकी चिकित्सा करनी हो तो वालकको दूध पिलानेवाली माता तथा धायको दुग्ध और घृतमें औषध मिलाकर देना चाहिये । (जो वालक पशुका दुग्ध पीता हो तो फिर वालकको ही दुग्ध मधु व शरवतमें मिलाकर औषध देना उचित है) क्षीरान्नाद अर्थात् जो वालक दूधभी पीता होय और अन्नकाभी आहार करता होय तो वालक तथा दूध पिलानेवाली दोनोंको ही औषध देना चाहिये और जिस

बालकने दुग्ध पीना छोड केवल अन्नही खाता होय तो केवल बालकको ही क्वाथादि औषध दे, अथवा जो जिस रोगको उचित समझी जावे वह औषध देना उचित है, उसकी धात्रीको औषध देनेकी आवश्यकता नहीं है।

बालकके रोगोंपर उपचार विधि।

यदि त्वातुर्य्यं किञ्चित् कुमारमागच्छेत् तत्प्रकृतिनिमित्त पूर्वरूपालिङ्गोपशयविशेषैस्तत्त्वतोऽनुबुध्य सर्वविशेषानातुरौषधदेशकालाश्रयनवेक्षमाणश्चिकित्सितुमारभेतैनमधुरमृदुलघुसुरभिशीतसङ्करं कर्म प्रवर्त्तयन्नेवं सात्म्या हि कुमारा भवन्ति तथा ते शर्म लभन्तेऽचिराय रोगे त्वरोगवृत्तमातिष्ठेद्देशकालात्मगुणविपर्य्येण वर्त्तमानः॥ क्रमेणासात्म्यानि परिवर्त्योपयुञ्जानः सर्वाण्यहितानि वर्जयेत्तथा बलवर्णशरीरायुषां सम्पदमवाप्नोतीति॥ एवमेनं कुमारमायौवनप्राप्तेधर्मार्थकुशलागमनाच्चानुपालयेदिति पुत्राशिषां समृद्धिकरं कर्म व्याख्यातम्। तदाचरन्यथोक्तैर्विधिभिः पूजां यथेष्टं लभतेऽनसूयक इति॥ (चरक)

अर्थ—यदि बालकको किसी प्रकारकी व्याधि हो जाय तो उस रोगकी प्रकृति निमित्त पूर्वरूप लक्षण और उपशयादिको भेदद्वारा आतुर औषध देशकालके आश्रित भेदोंका निश्चय करके उस व्याधिके अनुकूल चिकित्सा आरम्भ करनी उचित है। मधुर मृदु लघु सुगन्धित और शीतल द्रव्योंसे बालककी चिकित्सा करे। क्योंकि येही द्रव्य उसके सात्म्य होते हैं और बालकको बहुत ही शीघ्र आरोग्यता भी हो जाती है। देशकाल और आत्मगुणोंसे विपरीत औषध देनेसे बालकका रोग जाता रहता है, क्रम २ से सब प्रकारके असात्म्य और अहित द्रव्योंका परित्याग करा देवे ऐसा करनेसे बल वर्ण शरीर और आयु वृद्धिको प्राप्त होते हैं। जबतक बालक युवावस्थाको प्राप्त न होय तबतक धर्म अर्थ और कुशल करनेवाले द्रव्योंसे बालकका पोषण करे, ये सब कर्म बालककी समृद्धि करनेवाले हैं इन सब कर्मोंको यथोक्त विधिपूर्वक करनेसे यथेष्ट सन्तानकी प्राप्तिका लाभ होता है।

बालकको औषध मात्रा देनेका प्रमाण।

तत्र मासादूर्द्ध्वं क्षीरपायाङ्गुलिपर्वद्वयग्रहणसम्मितामौषधमात्रां विदध्यात् कोलास्थिसम्मिताकल्कमात्रां क्षीरान्नादाय कोलसम्मितामन्नादायेति॥

अन्य ग्रन्थान्तरोंसे अन्य विधिका निर्देश ।

प्रथमे मासि जातस्य शिशोर्भैषज रक्तिका। अवलेह्या तु कर्त्तव्या मधुक्षीरसिताघृतैः॥ एकैकां वर्द्धयेत्तावत् यावत्संवत्सरो भवेत्। तदूर्ध्वं मासवृद्धिः स्यात् यावत् षोडशकाब्दिकः॥ (सुश्रुत)

अर्थ—जिस बालककी उमर एक महीनेसे ऊपरकी हो गई होय उसको दो अंगुलीके पोरुआमें जितनी औषध (चूर्ण) की मात्रा समा सके उतनी देनी चाहिये, जो बालक दूध और अन्न दोनोंका आहार करता है उसको झडवेरीके वेरकी गुठलीके समान मात्रा देवे, यदि बालक केवल अन्नही खाता होवे तो उसको वेरके प्रमाण मात्रा देवे। (मात्राका दूसरा प्रमाण) एक मासकी उमरवाले बालकको शहत घृत दुग्ध मिश्रीके साथ एक रत्ती औषधकी मात्रा देवे, फिर जैसे २ बालककी उमर वढती जावे तैसे २ प्रत्येक महीने पर एक २ रत्तीकी मात्रा वढाता जावे। जवतक वालक एक वर्षका न होय तवतक इसी मात्रासे बालकको मात्रा बढाकर १० रत्ती पर्य्यन्त देवे और जब बालक १ वर्षकी उमरसे ऊपर हो जावे तब १ मासेकी मात्रा प्रत्येक वर्षकी उमरपर वढाता जावे, सोलह वर्षकी उमर हो जावे तव पूरी मात्रा वडे मनुष्यके समान देनी चाहिये।

विश्वामित्रकृत मात्राप्रमाण ।

विडंगफलमात्रं तु जातमात्रस्य भेषजम्। अनेनैव प्रमाणेन मासि मासि प्रवर्द्धयेत्। ततः स्थिरा भवेत्तावद्यावद्वर्षाणि सप्ततिः॥ ततो बालकवन्मात्रा ह्रासनीया शनैः शनैः। चूर्णकल्कावलेह्यानामियं मात्रा प्रकीर्तिता। कषायस्य पुनः सैव विज्ञातव्या चतुर्गुणा।

अर्थ—विश्वामित्र कहते हैं कि हालके उत्पन्न हुए बालकको वायविडङ्गके समान औपधका चूर्ण व कल्क करक देवे, इसा प्रकार प्रथम मासमें एक विडङ्ग और दूसरे मासमें दो विडङ्ग, प्रत्येक मासमें एक २ विडङ्गकी मात्रा वढाता जावे। ऊपर लिखे माफिक १६ वर्ष पर्य्यन्तकी उमर बालककी हो जावे जब युवा मनुष्यके समान मात्राका प्रमाण देने लगे। १६ वर्षसे लेकर ७० वर्षकी उमर पर्य्यन्त यही प्रमाण मात्राका स्थिर रहता ह, परन्तु ७० वर्षके उपरान्त मात्रा धीरे २ घटाता जावे। यह मात्रा चूर्ण कल्क और अवलेहकी जाननी, यदि बालकको क्वाथ देना होय तो इसी चूर्ण मात्राको चतुर्गुणी करके क्वाथ क्रियासे क्वाथ बना कर देनी चाहिये।

सुश्रुतसे बालकको औषधोपचार ।

येषां गदानां ये योगाः प्रवक्ष्यन्ते गदं कराः । तेषु तत्कल्कसंलिप्तौ पाययेत्तु शिशुं स्तनौ । (भावमिश्र) भैषजं पूर्वमुद्दिष्टं महतां यज्ज्वरादिषु । तदेव कार्य्यं बालानां किन्तु दाहादिकं विना । त एव दोषदूष्याश्च ज्वराद्या व्याधयश्चते । अतस्तदेव भैषज्यं मात्रा तत्र कनीयसी ।

अर्थ–जिस २ रोगपर वैद्योंने जो २ प्रयोग कथन किये हैं उसी २ रोगपर बालकको भी उन्हीं औषधियेंका कल्क बनाकर स्तनों पर लपेट कर बालकको दूध पिलाया जावे तो वह औषध माताके स्तनोंपरसे दूधके साथ बालकके पेटमें पहुंच जाती है । भावमिश्र कहते हैं कि जो औषध पूर्व बडे मनुष्योंके निमित्त ज्वरसे लेकर समस्त रोगोंपर कथन की गई हैं वही औषध बालकके उन रोगोंपर दी जावें । परन्तु अग्निसे दागना, क्षार लगाना, वमन, विरेचन, रक्त माक्षणादि कर्म जो कि बडी उमरके मनुष्योंके प्रति कथन किये हैं वे बालकके कदापि भूल कर न करे । परन्तु यह नियम केवल साधारण रोगोंपर है, यदि बालकको कोई कठिन व्याधि होवे और उपरोक्त क्रियाओंके करनेसे बालककी जान बचनेकी आशा होती होय तो अवश्य करना उचित है । क्योंकि सुश्रुत कहता है कि (विरेक वस्ति वमना न ते कुर्य्याच्च नत्ययादिति) जो बडी उमरवाले मनुष्योंके दोष दूष्यसे जो ज्वरादिरोग उत्पन्न होते हैं वही रोग बालकोंको भी होते हैं । सो प्रत्येक रोगके लिये वही औषध देवे, जो बडोंको दी जाती है । लेकिन बालककी अवस्था (उमर के अनुकूल औषधकी मात्रा न्यून करके देनी चाहिये, जैसा कि ऊपर कथन किया गया है ।

बालकके सिध्मापामाविचर्चिकापर लेप ।

गृहधूमनिशाकुष्ठराजि केन्द्रयवैः शिशोः ।
लेपस्तक्रेण हन्त्याशु सिध्मपामाविचर्चिकाम् ॥

अर्थ–घरका धूमसा, हल्दी, कूट, राई, इन्द्रजौ इनको समान भाग लेकर छाछमें पीसकर लेप करनेसे चनरफ, खुजली, विचर्चिका नष्ट होती है ।

बालकके मुखस्त्रावकी चिकित्सा ।

सारिवातिललोध्राणां कषायो मधुकस्य च ।
संस्राविणी मुखे शस्तो धावनार्थं शिशोः सदा ॥

अर्थ–सरवन, तिल, लोध, मुलहटी इनको समान भाग लेकर क्वाथ बनावे, छानकर बालकका मुख प्रच्छालन करे, जिस बालकके मुखसे लार टपकती होय उसके शुद्ध

करनेको यह क्वाथ परमोत्तम है । बकायनकी सूखी छाल बारीक पीसकर उसमें बराबर भाग सफेद कत्था मिला मुख तथा जीभके छालोंपर बुर्के । अथवा जलेहुए कागजकी भस्म, छोटी इलायचीके दाने, सफेद कत्था, फिटकरीका फूला चारों वस्तु समान भाग ले सूक्ष्म चूर्ण करके मुख और जिह्वाके छालेपर बुर्के । मिश्री बारीक पीसकर उसमें थोडा कपूर डालकर दूसरे समय फिर मर्दन करे और शीशीमें भरकर रख लेवे । बालकके मुख तथा जिह्वा पाकपर छिडके तो शीघ्र आराम होता है । भुनीहुई फिटकरी, माजूफल इन दोनोंको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना मुखमें लगावे तो शीघ्र आराम होता है । अरहरकी पत्तियोंका रस निकालकर बालकके मुखमें लगावे तो मुख पाक निवृत्त होय ।

शयनावस्थामें मुखसे लार बहनेका उपाय ।

राई बारीक पीसकर उसमें बराबर भाग बूरा मिलाकर परिमित मात्रासे बालकको खिलावे, अथवा कासनीके बीज बारीक कूटकर चूर्ण बना कासनीके वजनसे चतुर्थांश नमक मिलावे, इसको दिनमें कई बार खिलानेसे मुखकी लार बहना बन्द हो जाता है । अथवा ७ मासे रूमीमस्तगी बारीक पीसकर १० तोला बूरेकी चाशनीमें मिलाकर रख बालकको दो मासेकी मात्रा देवे इसके सेवनसे लार बहना बन्द हो जाती है । यदि बालक छोटा होय तो रत्तियोंके प्रमाण मात्रा देवे अन्नाहारी बालकको दो मासेकी मात्रा है ।

बालकके रुदन तथा मुखपाक पर औषध प्रयोग ।

अश्वत्थत्वग्दलक्षौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनम् ॥ पिप्पलीत्रिफलाचूर्णं घृतक्षौद्रपरिप्लुतम् । बालो रोदिति यस्तस्मै लीढं दद्यात्सुखावहम् ॥

अर्थ—बालकके मुखमें छाले होगये होयँ तो वह स्तनपान करनेमें कष्ट मानता है, उसके लिये पीपलकी छाल और पत्र दोनोंको बारीक पीसकर उसमें शहत मिला बालकके मुखमें लगावे तो छाले निवृत्त होयँ । तथा पीपल, त्रिफला समान लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना, घृत शहत मिलाकर जो बालक रुदन करता होय उसको चटावे तो बालकका रुदन करना बन्द होय ।

छुच्छुन्दरमलो माषा हरिद्रा बिल्वपत्रकम् । इन्द्रं शिरीषपत्रञ्च धूमे-नैतत्प्रयोजितम् । निहन्ति रोदनं रात्रौ बालस्याशु न संशयः ।

अर्थ—छुच्छुंदर जातिके चूहेकी बीट, उडद, हल्दी, बेलके पत्र, इन्द्रजौ, शिरसके पत्र इनको समान भाग लेकर धूप बना इसकी धूनी देनेसे बालकोंका रात्रि रुदन बन्द होता है ।

बालकके शय्या मूत्रकी चिकित्सा।

कृतमूत्रार्थभूभागे मृदं मृष्ट्वा तुषोदके । संचूर्ण्य मधुसर्पिर्भ्यां लीढ्वा तल्पविण्मूत्रणम् । न करोति नरो जातु भृष्टमेनं निरन्तरम् । इन्द्रगोपं ससिद्धयर्थं मधुसर्पिः समायुतम् । पक्वं कच्छपतैले तु पुष्ट्यायुर्बल-वर्द्धनम् ॥

अर्थ—जिस स्थानपर बालक मूत्र त्यागता होय उस स्थानकी मट्टीको लेकर कांजीमें पकावे, जब मिट्टी खुष्क हो जावे तब उस मिट्टीका बारकि चूर्ण कर परिमित मात्रासे न्यूनाधिक शहत और घृतमें मिलाकर सेवनसे कराने बालकका शय्यापर मूत्र त्यागना बन्द हो जाता है। इन्द्रगोप (वीरबहूटी रामजीकी बुढिया; इत्यादि नामोंसे प्रसिद्ध है और वर्षातके दिनोंमें लाल जन्तु उत्पन्न होता है) इसको तलाश करके लेवे प्रायः सूखीहुई अत्तारोंके यहाँ मिलती है, सफेद सरसों इन दोनोंको समान भाग लेकर चूर्ण बना घृत शहत मिलाकर कछुवेके तैलमें भूनकर इसका चूर्ण कर लेवे, यह दवा बहुमूत्र शय्यामूत्रको निवृत्त कर बालकके बलवर्ण आयुको बढाती है। (वङ्गदेशमें इस दवाका प्रचार बालकोंमें अधिक है)

बालकका गुदपाक।

गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत् क्रियाम् । रसांजनं विशेषेण पानालेपन योर्हितम् ॥ शंखयष्ट्याञ्जनैश्चूर्णं शिशूनां गुदपाकनुत् ॥

अर्थ—बालकोंकी गुदा पकनेपर पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये तथा रसौत व दारुहल्दीका क्वाथ बनाकर उसमें शहत मिलाकर बालकको पिलाना। अथवा गुदापर रसौतका लेप करना, शंखभस्म, मुलहटी, रसौत तीनोंको समान भाग लेकर गोली बनालेवे इसके सेवनसे बालकोंका गुदपाक रोग निवृत्त होता है।

बालककी गुदावलीका बाहर निकलना (काँच निकलना)

यह रोग प्रायः बालकको अतीसार होनेके पीछेसे उत्पन्न होता है। (प्रयोग) पुरानी चलनीका चमडा जलाकर उसकी भस्म बना बालककी कांचपर छिडक कर अंगुलियोंके सहारेसे अन्दरको दबा देवे। लसोडेका फल जलाकर उसकी भस्म कर-लेवे और गुदापर घृत चुपडके लसोडोंकी भस्म बुर्क देवे। जिस बालक व बडी उमरके मनुष्यकी कांच निकलती होय उसका मूत्र एक बर्त्तनमें एकत्र कर लेवे, जिस वक्त दस्त फिर चुके उस समय मूत्रसे गुदाको धोवे, ४—५ रोज ऐसा करनेसे गुदा बाहर नहीं निकलती। आम, जामुन इन दोनों वृक्षोंकी पत्ती और छाल लेकर जौकुट

करके काढा बना इसी काढेसे गुदाको धोया करे, गुदा बाहर नहीं निकलेगी। कदाचित् गुदा (कांच) बाहर निकलकर सूज गई होय तो वह अन्दर नहीं जा सक्ती, इस दशामें उपरोक्त काढा बनाकर सुहाते २ काढेमें बालकको कई समय बैठाले, जब गुदावलीकी सूजन निवृत्त हो जावे तब हाथका सहारा देकर अन्दरको सरका देवे । गुलाबके फूलोंका तैल गुदामें लगाना अति हितकारी है । बकरीका खुर जलाकर १ तोला, माजूफल १ तोला, अनारकी कली १ तोला, अनारकी छाल १ तोला, भुनी फिटकरी १ तोला इन पाँचोंका सूक्ष्म चूर्ण करके निकलीहुई कांचपर बुर्कके अन्दरको चढा देवे । मुर्गीके अण्डेकी सफेदी गुदाके भीतर और बाहर लगानेसे कांचका निकलना बंद होता है और गुदाकी सूजन, पीडा शान्त होती है ।

कांच निकलने पर खानेका औषधप्रयोग ।

अर्थ–सोंठ, आंवला प्रत्येक ७ मासे, धनियां सेंधा नमक, काला नमक प्रत्येक १४ मासे, काली मिरच २८ मासे, पीपल ७ तोला इन सबको बारीक कूट छानकर चूर्ण बनावे मात्रा ७ मासे बालकको २ माससे ३॥ मासे तक और छोटे बालकको रत्तियोंके प्रमाणसे देवे ।

(गुदरोग) व्रण पश्चात्तक रोगके लक्षण ।

दुष्टं मलादिभिर्मातुः स्तन्यं सपिबतः शिशोः । यदाहि कुपितं पित्तं गुदं समभिधावति । तदा सञ्जायते तत्र जलौकोदरसन्निभः । व्रणः सदाह आरक्तो ज्वरकासकरः परः । करोति पीतकं चापि वर्चः स्तम्भं भवेदपि । व्रणः पश्चात्तकं नाम व्याधिः परम दारुणः ।

अर्थ–बालकको दूध पिलानेवाली माता तथा धायके वातादि दोषोंसे दूषित हुए दुग्धको बालक पीवे तो उसका पित्त कुपित होकर गुदामें पहुँचकर जोंक (जलौका) के पेटकी आकृतिके समान गुदामें अत्यन्त लाल रंगका (अर्द्ध चन्द्राकार) दाह ज्वर और खांसी युक्त ऐसा व्रण उत्पन्न होता है, इसमें मलका रंग पीला और मलस्तम्भ होता है । इसको व्रण पश्चात्तक रोग कहते हैं, यह रोग अत्यन्त दारुण और बालकको दुःखदाई है ।

व्रण पश्चात्तककी चिकित्सा ।

तत्र सम्पातयेद्युक्त्या जलौकस उदारधीः । क्षीरवृक्षकषायेण किञ्चिदुष्णो न धावयेत् ॥ पिष्ट्वा च मधुकं वापि लेपः पश्चात्तके हितः । चंदनं शारिवे द्वे च शंखनाभिसमायुतम् । पश्चात्तके प्रलेपोऽयमेषां

लेहश्च शस्यते ॥ अशनस्य तु पुष्पाणि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । गुटिकां कारयेद्वैद्यस्तां च भक्तस्य वारिणा । एतां पश्चात्तके दद्यादालेपु मतिमान्भिषक् ॥ अभ्यज्य तिलतैलेन सर्जचूर्णावचूर्णिताम् । विच्छिन्नश्येत्स्थिरैरण्डबीजाभ्यां च प्रलेपनात् ॥ आमलक्याः पलान्यष्टौ गोमूत्रे सप्त भावयेत् । भावयित्वा तपेत्पश्चाद्विच्छिर्लिप्ता प्रशाम्यति ॥

अर्थ—व्रण पश्चात्तक रोगमें श्रेष्ठ वैद्य युक्तिपूर्वक जोंक लगाकर व्रणमेंसे रक्त मोक्षण करे । और पञ्चक्षीरी वृक्षोंके मन्दोष्ण क्काथसे गुदाको प्रच्छालन करे । अथवा मुलहटीको पीसकर लेप करे तो व्रणपश्चात्तक रोग शान्त होता है । चन्दन दोनों शारिवा और शंख नाभि इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अथवा शहतके साथ अवलेह बनाकर सेवन करनेसे व्रण पश्चात्तक रोग शान्त होता है । विजयसारके फूलोंका बारीक चूर्ण करके परिमित मात्रासे भातके मांडके साथ गोलियां बनावे, इन गोलियोंके सेवन करनेसे व्रण पश्चात्तक रोग शान्त होता है । तिलके तैलमें रालका चूर्ण मिलाकर गर्म करे, जब राल तैलमें मिलजावे तब उतार लेवे और इस तैलकी मालिश करनेसे अथवा शालपर्णीके पत्र और तुषरहित अरंडके बीजोंको एकत्र पीसकर लेप करनेसे विच्छिन्न रोग निवृत्त हो जाता है । आमलोंके चूर्णको ३२ तोला लेकर गोमूत्रमें सात भावना देवे इसी प्रकार पीछे धूपमें भावना देवे और इसका लेप करे तो विच्छिन्न रोग निवृत्त होय ।

तुण्डरोगका उपाय ।

वातेनाध्मापितां नाभिं सरुजां तुण्डिसंज्ञिताम् । मारुतघ्नैः प्रशमयेत् स्नेह स्वेदोपनाहनैः ॥ मृत्पिण्डेनाग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेन सोष्मणा । स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति ॥

अर्थ—वातसे बालककी नाभि फूल जाती है उसमें पीडा होती है इसको तुण्डक रोग कहते हैं । इस रोगको स्नेहन स्वेदन और उपनाहनादि वायुनाशक योगोंसे शान्त करे । मिट्टीके गोलेको अग्निमें तपावे जब लाल हो जाय तब दूधमें बुझा देवे, इसमेंसे जो भाफ निकले वह फूलीहुई नाभिको देवे इससे स्वेदन होवे । इस स्वेदनसे नाभि पीडा और सूजन शान्त हो जाती है ।

तालुकण्टककी चिकित्सा ।

तालुमध्ये कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकण्टकम् । तेन तालु प्रदेशस्य

निम्नता मूर्ध्नि जायते । तालुपातः स्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं शकृद्द्रवम् । तृडक्षिकण्ठास्यरुजा ग्रीवादुर्धरता वमिः ॥

अर्थ—तालुके मांसमें कुपित हुआ कफ बालकोंके तालुकण्टक नामवाले रोगको उत्पन्न करता है । और तालुका मांस फूलकर नीचेको लटक आता है, उसमें दानेसे दिखाई देते हैं, इस व्याधिसे बालकके बीच शिरमें कुछ भाग नीचेको धसक गया होय ऐसा खड्डासा मालूम होता है । इस कारणसे बालक स्तनको मुखसे दावकर दुग्धको पूर्ण रीतिसे नहीं खींच सक्ता, क्योंकि स्तन दावनेसे तालुमें अधिक पीडा होती है । थोडा २ दूध बडे कष्टसे बालक खींचता है, बालकका दस्त पतला हो जाता है, तृषा लगती है, मुख शोष मारता है, नेत्र, कण्ठ, मुख इनमें पीडा होती है । बालककी गर्दन ढलती है छर्दि होने लगती है ।

तालुकण्टकका उपाय ।

हरीतकी वचा कुष्ठं कल्कं माक्षिकसंयुतम् ।
पीत्वा कुमारस्तेन्येन मुच्यते तालुकण्टकम् ॥

अर्थ—हरड, वच, कूट इनको समान भाग लेकर कल्क व चूर्ण बनाकर शहत अथवा माताके दुग्धमें मिलाकर पिलावे तो तालुकण्टक रोग निवृत्त होता है । यदि तालु पक गया होय तो जवाखारको शहतमें मिलाकर तालुपर लगावे ।

कुकूणकके लक्षण चिकित्सा ।

कुकूणकः क्षीरदोषाच्छिशूनामेव वर्त्मनि । जायते तेन तन्नेत्रं कंडुरञ्च स्रवेन्मुहुः । शिशोः कुर्य्याल्ललाटाक्षिकूटनासावघर्षणम् । न शक्तोऽर्कप्रभां द्रष्टुं न वर्त्मोन्मिलनक्षमः ॥

अर्थ—धात्री व माताके दुग्ध दोषसे बालकके नेत्रके पलकोंमें कुकूणकका रोग उत्पन्न हो जाता है इसके कारणसे बालकोंके नेत्रोंमें अत्यन्त पीडा खुजली और जलस्राव होता है । इस रोगवाला बालक अपने शिर (मस्तक) नासिका और नेत्रोंको हाथसे घिसता है और सूर्यकी प्रभा तथा दीपप्रभाको देखनेमें असमर्थ होता है, उसकी आंखोंमें चकाचौंध लगता है इससे नेत्र नहीं खोल सक्ता ।

चिकित्सा ।

बद्धंगोशकृतोष्णेन कुकूणं स्वेदयेत्ततः । द्विनिशा लोध्रयष्ट्याह्वरोहिणी-निम्बपल्लवैः । कुकूणके हिता वर्त्तिः पिष्टैस्ताम्ररजोन्वितैः । फलत्रिकं लोध्रपुनर्नवे च सशृंगवेरं बृहतीद्वयञ्च । आलेपनं श्लेष्महरं सुखोष्णं

कुकूणके कार्य मुदाहरन्ति । व्योषं सशृंगं समनःशिलालं करञ्जबीजञ्च सुपिष्टमेतत् । कद्रूर्दितानामथ वर्त्मनान्तु श्रेष्ठं शिशूनां नयने विदध्यात् । स्वरसं वृद्धदारस्य माक्षिकेण समन्वितम् । आश्चोतनेन बालानां कुकूणामयनाशनम् । कृमिघ्नालशिलादार्वीलाक्षागैरिककाञ्जिकैः । चूर्णांजनं कुकूणे स्याच्छिशूनां पोथकीषु च । मनःशिलाशंखनाभि पिप्पल्योऽथ रसाञ्जनम् । वर्तिः क्षौद्रेण संयुक्ता बालसर्वाक्षिरोगनुत् ।

अर्थ—गौके गोबरकी दो पोटली कपडेकी पोटलीमें रखे और तवेपर गर्म करके सुहाता २ सेंक नेत्रोंपर देवे, अथवा गोबरको एक बर्त्तनमें भरके उसका मुख ढांककर पकावे, जब गर्म हो जावे तब बालकके नेत्र उस बर्त्तनके मुखपर रखके गोबरकी भाफ नेत्रोंमें देवे इस स्वेदनविधिसे कुकूणक रोग शान्त होता है । नेत्र बन्द करके भाफ देवे हल्दी दारुहल्दी लोध मुलहटी कुटकी नीमके पत्र ताम्र भस्म इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीस दारुहल्दीके काढेकी भावना देकर वर्त्तिका दारुहल्दीके क्काथमें यह वर्त्तिका घिस कर बालकके नेत्रोंमें लगावे तो कुकूणक रोग शान्त हो जाता है । त्रिफला, लोध, पुनर्नवा, अदरख, छोटी कटेली, बडी कटेली इन सबको समान भाग लेकर (दारुहल्दीके क्काथ) से बारीक पीसकर गर्म करके सुहाता २ लेप करे तो कुकूणक रोग शान्त होता है । त्रिकुटा (सोंठ मिर्च पीपल) मनशिल, हरताल, करंजके बीजकी मिंगी इन सबको समान भाग लेकर दहीके जलमें एकत्र करके बारीक पीसकर थोडा गर्म करके बालकके पलकोंपर लेप करनेसे कुकूणक रोग शान्त होता है, बालकोंके नेत्र रोगमें यह प्रयोग अति हितकारी है । विधारेका स्वरस और उसके समान ही शहत मिलाकर इसका आश्चोतन करनेसे बालकोंका कुकूणक रोग शान्त होता है । वायविडंग, हरताल, मनशिल, दारुहल्दी, पीपल व वटकी लाख, गेरू इन सबको समान भाग लेकर कांजीमें पीसकर काजलके समान बनावे, इस अंजनके लगानेसे पोथकी रोग कुकूणक रोग शान्त होता है । मनशिल, शंखकी नाभि, पीपल, रसौत इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीस शहत मिलाकर इस वर्त्तिका (सलाई) को नेत्रोंमें फेरनेसे यह वर्त्तिका बालकोंके सर्व नेत्ररोग निवृत्त करनेवाली है ।

पारिगर्भिक रोगके लक्षण तथा चिकित्सा ।

मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तन्यं प्रायः पिबन्नपि । कासाग्निसादवमथु तन्द्राकार्श्याऽरुचिभ्रमैः । युज्यते कोष्ठवृद्ध्या च तमाहुः पारिगर्भिकम् । रोगं परिभवाख्यञ्च युञ्ज्यात्तत्राग्निदीपकम् ॥

अर्थ—जिस बालककी माता गर्भको धारण करलेवे उस माताका दूध पीनेसे बालकको खांसी, मन्दाग्नि, वमन, तन्द्रा अन्नमें अरुचि शरीरमें दुर्बलता और भ्रान्ति पेटका बढना पेटमें पिडा (सुई चुभानेकी समान दर्द) इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं । इस स्थितिके रोगका नाम पारिगार्भिक तथा परिभव कहते हैं । इस रोगमें अग्नि दीप्त करनेवाले पदार्थोंका उपयोग करे । चित्रक, सोंठ, पीपल, अजवायन काली, मिरच, स्याह जीरा, सफेद जीरा, सेंधा नमक, जवाखार, भुना सुहागा इन सबको समान भाग ले सूक्ष्म चूर्ण बना कर परिमित मात्रासे बालकको छांछ व दहीके तोडके साथ सेवन करावे । अथवा हिंग्वाष्टक चूर्णका सेवन करावे । और गार्भिणी माता व धायका दुग्ध पिलाना छुडा देवे, (गार्भिणीका दुग्ध छुडादेनेसे ही बालकको विशेष लाभ पहुँचता है) स्त्रीजनोंको उचित है कि गर्भ धारण होनेके अनन्तर बालकको दुग्ध कदापि न पिलावें । इस अवस्थामें दुग्ध पिलानेसे बालक रोगी हो जाता है और गार्भिणी स्त्री निर्बल हो जाती है, क्योंकि एक तो गर्भस्थ बालककी वृद्धिके लिये स्त्रीके शरीरका रक्त जाता है दूसरे गोदका बालक दुग्ध खींचे तो उसका बल क्षीण हो जाता है, ऐसा करनेसे तीन जीवोंको हानि पहुँचती है ।

बालकके उपशीर्ष रोगका निदान तथा चिकित्सा ।

कपालयोनिलादुष्टा गर्भस्तस्याश्च जायते । सवर्णो निर्व्यथः शोथस्तं विद्यादुपशीर्षकम् । यथादोषोद्भवं विद्यात्पिडिकार्बुदविद्रधिम् ॥

अर्थ—बालकोंके कपालमें वायु दुष्ट होकर उसके भीतर उसीके रंगकी पीडा रहित ऐसी जो सूजन उत्पन्न होती है उसको उपशीर्षक रोग कहते हैं । इसमें यथा दोषानुसार पिडिका, अर्बु और विद्रधि आदिको वैद्य निश्चय करके चिकित्सा करे ।

उपाय ।

उपशीर्षे नावनं शस्तं वातव्याधिचिकित्सितम् ।
पक्के विद्रधिवत्तस्मिन् क्रमं कुर्य्याद्यथोदितम् ॥

अर्थ—उपशीर्षक रोगमें नस्य प्रयोग करे (कल्पतरु) नामक रस जो कफ व्याधिकी चिकित्सामें लिखा गया है उसकी नस्य दे वातव्याधिके समान चिकित्सा करे । यदि उपशीर्षकको सूजन पक जावे तो यथादोषानुसार विद्रधिके समान चिकित्सा करे ।

दन्त रोगका निदान तथा चिकित्सा ।

दन्तमूलाश्रितो वायुर्दन्तवेष्टान्विशोषयम् ॥
यदा शिशोः प्रकुपितो नोत्तिष्ठन्ति तदा द्विजाः ।

अर्थ—बालकोंके दांतोंकी जडमें स्थित वायु दन्तवेष्ट (मसूढों) को सुखाकर जब वह कुपित होती है तब बालकोंके दांत नहीं जमते ।

उपाय ।

दन्तपालिन्तु मधुना चूर्णेन प्रतिसारयेत् ।
धातकीपुष्पपिप्पल्योर्धात्रीफलरसेन वा ॥

अर्थ—बुझेहुए चूनेमें शहत मिलाकर दन्तपालीके ऊपर घिसे, अथवा धायके फूलोंका चूर्ण, पीपलका चूर्ण दोनों समान भाग लेकर दोनोंको आंवलोंके स्वरसमें मिला दन्तपालीके ऊपर लगावे, इसके लगानेसे सरलतापूर्वक दांत जम जाते हैं ।

लावतित्तिरवल्लूररजःपुष्परसप्लुतम् । द्रुतं करोति बालानां दन्तकेसरवन्मुखम् ॥ दन्तोत्पातभवेरोगे न बालमतिपीडयेत् । पाले दन्ते हि शाम्यन्ति स्वयं तद्दन्तका गदाः ॥ सद्योजातस्य दृश्येत यस्य दन्तस्य सम्भवः । तं बालं राक्षसं विद्यात्सर्वलोकभयावहम् । अचिरेणैव कालेन माता तस्य विनश्यति ॥

अर्थ—लवा और तीतर पक्षीका मांस सुखाकर उसका सूक्ष्म चूर्ण बना उस चूर्णमें गुलाबके फूलोंकी भावना देकर सेवन करनेसे शीघ्र दाँत निकल मुख केशरके समान शोभित हो जाता है । दांत निकलनेके समयमें बालकोंको जो रोग उत्पन्न होते हैं उनकी चिकित्साके निमित्त बालकको अत्यन्त पीडित नहीं करे, क्योंकि दान्तोंके निकल आनेपर सम्पूर्ण रोग अपने आप शान्त हो जाते हैं । जिस बालकके उत्पन्न होते ही दांत दीखें अथवा दांत सहित ही बालकका जन्म होय वह बालक सब लोगोंको भय देनेवाला राक्षस प्रकृतिका जानो, उस बालककी थोडे ही समयमें माता मर जाती है । इसी प्रकार एक महीनेकी उमरसे लेकर छः महीनेकी उमरके पूर्वके बालकके दांत निकलें तो ये सब अनिष्ट माने गये हैं । आठवें महीनेसे ऊपरकी उमरके बालकके दांत निकलें वे शुभ माने गये हैं ।

अष्टमे नवमे चैव दशमैकादशे तथा । द्वादशे त्रयोदशे चैव तथा चैव चतुर्दशे । दन्ताश्चैव हि दृश्यन्ते तदा दंताः शुभावहाः ॥

अर्थ—जिस बालकके आठवें नवमें दशवें ग्याहरवें बारहवें तेरहवें और चौदहवें महीनेमें दांत निकलते हैं ऐसे दान्त शुभ होते हैं । " सदन्तो जायते बालो जातेऽप्यस्यद्विजोद्भवः । " जो बालक दांत सहित उत्पन्न होय अथवा उत्पन्न होते ही दांत निकल आवें उस बालकको अनेक उत्पात होते हैं ।

(दाँतोंके समयका विशेष निर्णय आगे ग्रहजुष्ट प्रकरणमें देखो)

सुखपूर्वक दांत निकलनेका उपाय ।

गुलरोगन मसूढोंपर मलना हितकारी है इसी प्रकार मक्खन मलना भी लाभदायक है । यूनानी हकीम कहते हैं कि कुतियाका दूध इस प्रकृतिमें विशेष अनुकूल है, जब बालकके दांत निकलनेको होवें तो मसूढोंपर अंगुलीसे कुतियाके दूधकी मालिस करे और दांत निकलनेके समय मसूढोंकी पीडाकी निवृत्तिके लिये हरी मकोयका स्वरस और गुलरोगन दोनोंको बराबर मिलाकर गुनगुना कर अंगुली डबोकर धीरे २ जावडों-पर मले, जब दांत निकलने लगें तब सिर गर्दन और कानोंकी जड तथा नीचेके जावडेको चिकना रखे और गुनगुने तैलकी बूंद कानमें टहकाते रहें । बालकको कठिन वस्तु जिसपर कि दांतोंका जोर लगे खानेको न देवे ।

दांतोंके घुन जाने और पोले पडजानेका उपाय ।

इस रोगमें खराब रतूबत दांतोंके अन्दर घुसकर सड जाय और उसके सडनेसे दान्तोंकी प्रकृति खराब हो जानेसे दांत घुनने लगें तथा भुरभुरे होजावें और हरी रंगत व काली पीली रंगत दांतोंपर आ जावे । इसका उपाय इस प्रकारसे करे कि जो दवा दांतोंको मजबूत करती है उनको काममें लावे जैसा कि रसौत, नारदेन, नागरमोथा, माजूफल, अकरकरा इनका सूक्ष्म चूर्ण बनाके दांतोंपर मले अथवा अधीरा और अनारके फूल, फिटकरी ये समान भाग लेकर सिरकेमे पकाकर कुल्ला करे, यदि बालक कुल्ला करने लायक न होय तो उसके मुखमें रुईका फोहा दवामें भिगोकर दान्तोंपर फेर दिया करे । यदि दांतोंमें घुनकर खडे पडगये होयँ तो सुक, मस्तगी, कपूर इन तीनोंको बारीक पीसकर दांतोंकी पोलमें भर देवे, जो दांतका भाग विशेष खराब हो गया हो उसको रेतीसे रेतकर निकाल देवे ।

नींदमें (दन्तदंष्ट्र) दांत कटकटानेके लक्षण ।

रूक्षाशिनो हि बालस्य चालयत्यनिलः शिराः ।
हन्वाः शय्याप्रसुप्तस्य दन्तैः शब्दं करोत्यतः ॥

अर्थ—रूखे भोजन करनेवाले बालककी ठोडीकी शिराओंमें वायु प्राप्त होकर शय्यापर सोते समय बालक दांतोंको चबाया (कटकटाया) करता है ।

उपाय ।

कर्कटशाकविपक्वं क्षीरेण चरणतललेपनादचिरात् ।
दन्तदंष्ट्रागतशब्दं शमयति बहुधैव दृष्टमिदम् ॥

अर्थ—काकडाशृङ्गी और सागोन वृक्षकी छालके संयोगसे दुग्धको पकावे (क्षीरपाककी विधिके समान पकावे) इस दुग्धका पैरके तलुवों पर लेप करनेसे बहुत शीघ्र बालकोंका दांत कटकटाना निवृत्त हो जाता है । कूटका तैल अथवा केशरका तैल जावडोंपर मलनेसे दाँतोंका कटकटाना बन्द होता है ।

बालकका काग (कौउआ) लटक आनेका उपाय ।

यह मांसका टुकडा गले और मुखकी सन्धिपर ऊपरके भागमें आया हुआ है, यह शर्दी गर्मी व मस्तकमें खराब दोष जमा होनेसे नीचेको लटक आता है । कभी यहांतक बढ जाता है कि इसके काटनेकी जरूरत पडती है । लेकिन बालकोंके लटके हुए कागपर औषध प्रयोग करना ही उचित है । शस्त्रप्रयोग बालकके कागपर करना ठीक नहीं समझा जाता, फिटकरीका फूला पीसकर उसमें अंगुली डबोकर पोरुआसे कागको उठावे और मांजूफल सिरकामें पीसकर शिरपरसे बालक तरुवाके तालु पर लेप करना लटकते हुए कागको उठाता है । मुगास, अकाकिया, सिरकेमें मिलाकर तालुपर लेप करे ।

कानकी जडमें होनेवाली सूजन ।

(यह सूजन बडी भयंकर समझी जाती है ।)

दोषत्रयेण जनिता किल कर्णमूले तीव्रज्वरो भवति तु श्वयथुर्व्यथा च । कंठग्रहो बधिरता श्वसनं प्रलापः प्रस्वेदमोहदहनानि च कर्णिकाख्ये ॥

अर्थ—त्रिदोषसे प्रगट कानकी जडकी सूजन जो कि ज्वर युक्त और तीव्र पीडा सहित होय कण्ठ रुक जावे और बधिर हो जावे श्वास अधिक चलने लगे और बकवाद करे पसीने आवें, रोगी बेहोस हो जावे, शरीरमें दाह होय ये लक्षण सब कर्णक सन्निपातके हैं ।

चिकित्सा ।

प्रलेपस्तमस्तं नयत्यंतमेकः समुद्रिक्तशोथं च रक्तावशेषः । पक्के च शस्त्रक्रिया पूयचित्सा व्रणत्वं गते चोचिता तच्चिकित्सा ॥ निशाविला-शाभयमाणिमंथदार्वीगुदीमूलकृतः प्रलेपः । प्रभाकरक्षीरयुतः प्रभावाद् व्यस्तः समस्तोऽप्यथ कर्णिकाघ्नः ॥ कुलत्थः कट्फलं शुंठीकारवी च समांशकैः । सुखोष्णैर्लेपनं कार्य्यं कर्णमूले मुहुर्मुहुः । गैरिकं खटिनी-शुंठी कट्फलारग्वधैः समैः । उष्णैः कांजिक संपिष्टैर्लेपः कर्णकमूल-

नुत् । शिग्रुराजिकयोः कल्कं कर्णमूले प्रलेपयेत् । कर्णमूलभवः शोथस्तेन लेपेन शाम्यति ॥ अशिशिरजलपरिमृदितं मरिचकणाजीर-सिन्धुजं त्वरितम् ॥ नस्यविधिसेवितं ननु कर्णकरुग्नाशकृद्गदितम् । भार्गीजयापौष्करकंटकारीकटुत्रिकोग्राघन कुण्डलीभिः । कुलीरशृंगी कटुकारसाभिः कृतः कषायः किल कर्णकघ्नः ॥ दशमूलमत्स्यशः कला-चपलात्रिफलामहौषधकिरातयुतम् । मरिचं परिकथितमाशु बलादप-हन्ति कर्णरुजः सकलाः ॥

अर्थ—अत्यन्त बढेहुए कर्णक सन्निपातको एक लेप करना ही नष्ट करता है, कर्ण-मूलमें सूजन बढ रही होय तो जोंक लगाकर रक्त निकाल देनेसे पीडा कम पड जाती है । यदि कर्णक व्रण पक गया होय तो शस्त्रोपचारसे उसकी पीव निकाल देनी चाहिये, चिरा देनेसे घाव हो गया है उसका व्रणके समान उपचार करे, जिससे रोपण हो जावे (व्रणके मलम, आगे लिखे जावेंगे)

कर्णको बैठानेवाला लेप ।

हल्दी, इंद्रायणकी जड, कूट, सेंधा नमक, दारुहल्दी गोंदनीकी जड इन सबको समान एकत्र करके अथवा जो प्राप्त हो सके उनको आकके दुग्धमें पीसकर लेप करे तो कर्णक (कर्णमूल) शान्त होय । अथवा कुल्थी, कायफल, सोंठ, कलौंजी ये सब समान भाग लेकर जलसे पीसकर गर्म करके सुहाता १ लेप करे तो कर्णमूल नष्ट होय । अथवा सोनागेरू खडिया मिट्टी, सोंठ, कायफल, अमलतासका गूदा इनको समान भाग लेकर कांजीके साथ बारीक पीसकर गर्म करके सुहाता २ लेप करे तो कर्णक नष्ट होय । अथवा सहजनेकी जड व छाल और राई इनको बारीक पीसकर लेप करे तो कर्ण मूल नष्ट होय ।

नस्यविधान ।

काली मिरच, पीपल, जीरा, सेंधानमक इनको गर्म जलके साथ बारीक पीसकर छानके नस्य देवे तो कर्णक सन्निपात नष्ट होय । क्काथ मारंगी, अरणी, पुष्करमूल, कटेलीकी जड, सोंठ, मिरच, पीपल, वच, नागरमोथा, गिलोय, ककडाशृङ्गी, कुटकी रास्ना इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्काथ बनाकर पिलानेसे कर्णक ज्वर शान्त होता है । अथवा दशमूलके दश औषध कुटकी, पीपल, हरड, बडेडा, आँवला, सोंठ, चिरायता, काली मिरच ये सब समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्काथ बना-कर पिलानेसे कर्णक सन्निपात निवृत्त होय ।

इस कर्णमूलके रोगको यूनानी तिब्बवाले भी भयंकर मानते हैं, क्योंकि यह सूजन ऐसे अङ्गमें उत्पन्न होती है कि जो नर्म और मांसका है और जल्दी खराब हो जाती है, उसकी ज्ञानशक्ति बहुत तेज है और दिमाखके समीप है इस लिये अक्सर करके सरसाम (सन्निपात) हो बुद्धि बिगड जाती है। दर्दकी अधिकतासे रोगी मरनेकी दशापर भी पहुंच जाता है। इस रोगका इलाज फस्द खोलना जुलाब देकर मवादको निकालना, प्रधान उपाय यही माना गया है।

कानकी जडमें घाव होनेका उपाय।

यह कानकी जडका पकाना और जखम पड जाना अक्सर बालकोंके होता है, क्योंकि बालकोंके चमडेकी जिल्द नर्म होती है। उपाय इसका यही है कि जखमके समीपमें केश होवें तो उनको निकलवा डाले और जखम पर स्त्रीका दूध फोहामें भरके रखे, जिससे मवादकी तेजी कम हो पीबभी दूर हो जायगा। इसके पीछे जखमेको सुखानेके लिये १ भाग सुहागेका फूला और दो भाग कमीला दोनों बारीक पीसकर जखम पर तैल चुपडके पछिसे बुकनी छिडक देवे। दो चार रोजमें जखम बिलकुल सूख जाता है।

कानकी खुजलीका उपाय।

कानमें खुजली होनेका कारण खुस्की व खारी तरी होती है। इसकी निवृत्तिके लिये अजमोदका गुनगुना पानी अथवा जर्द आलूकी गुठलीका तैल, कडुवे बादामका तैल, अथवा अजमोदको सिर्केमें पकाकर छानकर सिरकेको गुनगुना करके कानमें टपकावे। चमेलीके तैलमें थोडा एलुआ पीसकर मिला गुनगुना करके कानमें टपकावे।

कानके घावका उपाय।

कानमेंसे राध और रक्त निकलता जान पडे उसी समय समझ लो कि कानके अन्दर जखम है, ऐसा जखम प्रायः बालकोंके कानमें हुआ करता है। प्रथम कानके घावको मलसे शुद्ध कर नीमके पत्तोंको पकाकर भफारा देना घावको शुद्ध करता है। प्याजका रस मुर्गीके अंडेकी सफेदीमें मिलाकर कानमें टपकावे तो कानका घाव निवृत्त हो जाता है। नीमका तैल और साफ शहत दोनोंको मिलाकर रुईकी बत्ती इसमें भिगोकर कानमें रखे। अथवा भुनी हुई फिटकरी, बीजाबोल दोनों बराबर लेकर बारीक पीसकर शहतमें मिलाकर रुईकी बत्ती भिगोकर कानमें रखे। स्त्रीका दुग्ध कानमें टपकाना कानके जखमकी उत्तम औषध है। पीली कौडीकी भस्म करके कानमें बुर्क देवे तो कानका जखम सूख जाता है। घोंघा तैलमें पकाकर गुनगुना तैल कानमें टपकावे, यह तैल कानके जखमको अति उत्तम है। सर्सोंका तैल २० तोला, आंवला, सोंठ प्रत्येक १ तोला, नीमके पत्र दश नग, कमीला, काली मिरच

प्रत्येक ३ मासे, नीलाथोथा १ मासे प्रथम तैलको गर्म करके सब दवा डालकर जलावे जब सब दवा जलजावे तब बारीक पीसकर कमीला मिला कानमें टपकावे, यह तैल कानके जखम नासूर और ,कानकी फुंसियोंको निवृत्त कर कानके पीछे जो बालकोंके जखम होता है उसको नष्ट करता है । कानमें घाव बहुतसमयतक रहे तो सडाहुआ मवाद रुका रहनेसे कानके अन्दर कीडे पडजाते हैं उपाय इसका यह है कि थोडासा एलुआ लेकर पानीमें पीस लेवे और गुनगुना करके कानमें भर देवे, थोडे समय पर्य्यन्त भरा रहनेसे कानके कीडे सब मर जाते हैं । फिर कानको इस तर्कीबसे झुकावे कि पानी कानमेंसे सब निकल आवे । संभालूके पत्रका स्वरस निकाल कर गुनगुना करके कानमें टपकावे तो कानके सब जन्तु मर जाते हैं । तेज मद्य कानमें टपकाना कानकी पीडा और मवादके वहनेको बन्द करता है ।

कानमें पानी भर जानेका उपाय ।

जो बालक नदी या तालाबमें बदतमीजीसे कूदा फांदी करते हैं अक्सर उनके कानमें पानी भर जाता है । इसका उपाय यह है कि छींकना, खांसना, एक पैरसे झटका देकर कूदना हुंकु हांक हांग इन शब्दोंको जोरसे जावडेको झटका देकर कई बार बोलना अथवा माथेको उस तर्फ झुका कर रखना, जिस तरफके कानमें पानी भर गया है । तथा सौंफकी लकडी जो कि पोली होती है अथवा गेहूंकी नली कानमें लगाकर चूसना इत्यादि क्रिया कानसे पानीको निकालती हैं ।

कानकी पीडा और सूजनका उपाय ।

वैद्योंका यह कथन है कि कानके रोगोंसे बचना चाहे वह रात्रिको शयनके समय कानमें रुई लगाकर सोवे, कि कोई जन्तु अथवा सर्द हवा कानमें न जाने पावे । कानमें कोई दवा आदि डालनी होय तो जरा गर्म करके डाले, मूलीके पत्रोंका रस ३ भाग और तिलका तैल १ भाग दोनों मिलाकर अग्निपर पकावे जब मूलीका रस जलकर तैल मात्र बाकी रहे तब छानकर गुनगुना कानमें टपकावे तो कानकी सूजन और पीडा निवृत्त होय । अथवा भांगके पत्रका स्वरस निचोड कर गुनगुना करके कानमें डालनेसे सर्दी और गर्मीकी कर्णपीडा निवृत्त हो जाती है । अथवा भांगकी पत्तियोंको पीसकर टिकिया बनावे और मीठे तैलमें पकावे जब टिकिया जल जावें तब छानकर गुनगुना तैल कानमें टपकावे तो पीडा और सूजन निवृत्त होय । मक्खीकी वीट लेकर थोडे पानीमें पीसकर चमचामें गुनगुनी करके दो चार बूँद कानमें टपकावे तो कानकी पीडा उसी समय निवृत्त हो जाती है । चुकंदरका रस निचोडकर गुनगुना करके कानमें टपकावे तो कानकी पीडा उसी समय निवृत्त

हो जाती है । राईका तैल जरा गुनगुना करके कानमें टपकानेसे कानकी पीडा सूजन गुमडी और गांठको घुलाती है, इससे कानमें झलझलाहट उत्पन्न होता है, इसका भय नहीं करना । किन्तु यह प्रयोग पुराने बहरेपनको भी खोल देता है, कानके ज्ञानतन्तु अपना काम करनेमें बरबार फर्ज बजाते हैं ।

वधिरपनका उपाय ।

ऊँटका मूत्र गुनगुना करके कानमें कई दिवस पर्य्यन्त डाले तो वधिरपन निवृत्त होता है । आकका पीला पत्र गर्म करके उसका गुनगुना पानी कानमें डाले, इसी प्रकार १९ दिवस तक डाले तो बहरापन निवृत्त होय । लहसुनके साथ थोडा बकरीका पित्ता मिलाकर पीस थोडे तैलमें मिलाकर गर्म करके कानमें गुनगुना टपकावे तो वधिरपन नष्ट होय ।

बालकोंकी नासिकाके रोग (नकसीर फूटना)

बालकोंकी नकसीर कई कारणोंसे फूटा करती है, अक्सर गर्मीकी ऋतुमें यह रोग अधिकतासे होता है । ईसवगोल सिरकेमें पीसकर बालककी कनपटी पर लेप करे, माजूफल अत्यन्त बारीक पीसकर नाकमें फूँक देवे । गधेकी ताजी लीद कपडेमें रखके निचोड लेय और उसमेंसे जो पानीका भाग निकले उसे नाकमें डाले तो नकसीर उसी समय बन्द हो जावे । कल्मी शोरा सिर्केमें पीसकर कनपटी पर लेप करे, ऊंटके बाल जलाकर उसकी राखमें लोनी घृत मिलाकर बत्तीपर लपेट कर नाकमें प्रवेश करे । मुर्गीके अंडेकी सफेदीमें बत्ती भिगोकर उसपर थोडा कपूर छिडककर नाकमें बत्ती लगावे, गधेकी सूखी लीदकी भस्म करके उसकी राख नाकमें फूंके । गायका सूखा गोबर बारीक पीसकर नाकमें फूंके ।

प्रतिशाय जुखाम नजलाका उपाय ।

यह प्रतिश्यायका रोग प्रायः बालकोंको शर्दी लगनेसे होता है । इसमें बालकका मस्तक तथा शरीर गर्म कपडेसे ढांककर रख अधिक हवासे बालकको बचाना चाहिये, शीतल जल पीनेको न देवे और ठंढी वस्तु बालकको न देनी चाहिये । निर्विषीकी गोली जुखाम और खांसीको अति लाभदायक हैं । निर्विषी (जदवार) ७ मासे, अजवायन ९ मासे, अफीम १ तोला, कतीरा, बबूलका गोंद, मुलहटी, काली मिरच, बडी इलायचीके बिज, सोंठका कचूर, नागरमोथा, वालछड, तेजपत्र, कवाबचीनी, कुलीजन, पीपल, अजवायन, सोंठ, इस्पंद प्रत्येक ३॥ मासे, बीजाबोल, अकरकरा प्रत्येक १ मासे, अदरखके रसमें घोटकर बाजरेके प्रमाण गोलियां बनावे । बालकको खांसी, जुखाम, मन्दाग्नि, अतीसार बदहज्मीकी दशामें एक व दो गोली हररोज देवे । जब बालक अच्छा निरोग हो जावे तब बन्द करदेवे, क्योंकि इस गोलीमें अफीम है,

अफीमका व्यसन वालकको न पडे इसलिये अधिक समयतक सेवन न करावे । तथा सोंठके चूर्णमें बराबरका पुराना गुड मिलाकर १ व दो मासेकी मात्रासे वालकको उमरके माफिक खिलावे ।

यूनानी तिब्बसे वालककी नाकमें मवाद जम जानेका उपाय ।

नाकमें कभी २ कफ खुष्क होकर जम वालककी स्वास उसके कारणसे रुकने लगती है । इस दशामें गर्म जलके शहारेसे खुष्क मवादको तर कर निकाले घृत अथवा बदामके तैलसे वालककी नासिकाके छिद्रोंको चिकना कर देना चाहिये ।

यूनानी तिब्बसे वालककी नाककी फुन्सियोंका उपाय ।

कभी २ ऐसा होता है कि नाकके अन्दर कफके मवाद व वायुके कारणसे नाकमें फुन्सियां निकल आती हैं और अन्दरकी गर्मीसे साफ मवाद नष्ट हो जाता है, बाकी मवाद गाढा होकर पथरा जाता है, यहां तक कि श्वासके आने जानेमें भी कष्ट होता है । ऐसा ही नाकसे मल निकालनेमें भी कष्ट होता है, इसका उपचार इस माफिक करे कि जैसा मवाद होय उसीके अनुकूल क्रियासे दिमागको साफ करे । इस दशामें छींक लानेवाली दवा काममें न लावे, क्योंकि छींकके झटकासे फुन्सियोंमें अधिक कष्ट पहुंचता है । गर्मजलसे फुंसियोंको धोकर साफ करे और नर्म करनेके लिये मोमका तैल उनपर लगावे, जो फुंसियां इस उपायसे नष्ट न होयँ तो फुंसियोंको नस्तरसे काट खराव मांसको गलाकर साफ करनेवाली दवा जैसा फिटकरी और शकर मिलाकर छिडके, जब मांस गलकर साफ हो जावे तब गर्म पानीसे धोकर जखम भरनेके लिये सफेदाका मलम लगावे । अथवा और जो मलम जखमको भरनेवाले हैं उनको काममें लावे । इन फुंसियोंका इलाज करनेमें आलस्य न करना चाहिये क्योंकि इन फुंसियोंके विगडनेसे नाकमें नासूर हो जाता है ।

यूनानी तिब्बसे वालककी नासिकाके घावोंका उपाय ।

ये घाव वालक तथा बडी उमरके मनुष्य दोनोंके ही अपने २ कारणसे उत्पन्न हो जाते हैं । इन घावोंके तीन भेद हैं, एक तो यह कि तर होय और उसका कारण खराव रतूवत होती है, जो कि मांसको दूषित करके घाव उत्पन्न करती है । यह खराव रतूवत दिमागसे उतरती है । उपाय इसका यह है कि दिमागसे इस दूषित रतूवतको निकाले, जो रोगका मूलकारण है जब कि खराव रतूवत निकल जाय इसके पीछे जखमोंको साफ करके सफेदा, मुर्दासन, चांदीका मैल, जलाहुआ सीसा इन सबको समान भाग लेकर गुलरोगन और मोमके साथ मरहम बना योग्य रीतिसे नासिकाके घावोंपर लगावे । दूसरा भेद इसका यह है कि मवाद शुष्क होय और यह

रोग प्रायः विशेषतासे होता है, खुश्कीसे जलाहुआ दोष इसका कारण होता है, इसका उपाय स्निग्ध औषधियोंसे करे जैसा कि रोगननीलोफर, मुर्गी और बतखकी चर्बी इनको नाकमें लगावे । अथवा पीला मोम, रोगन गुलमनफसा, इनको मिला एकत्र कर विहीदानेके लुआबमें मिलाकर लगावे । और उस्तुखुदूस, मुलहटी, नीलोफर उन्नाव गाजवां इनको पानीमें रात्रिको भिगो प्रातःकाल मल छानकर मिश्री डालके पिलावे, जिससे जलीहुई रतूवत तर हो जावे । तीसरा भेद इस जखमका यह है कि जखमको बहुत समयतक रहनेसे और दुर्गन्धित रतूवतके आ जानेसे जखममें सडाव उत्पन्न हो जावे तो सफेद खरवक, हालयून दोनों बराबर पीसकर नाकमें फूंक देवे इसके पीछे अंगूरी सिर्केसे जखमको धोकर साफ करे । जब जखम साफ हो जावे तब जखमको खुष्क करनेवाली दवा जैसा कि सफेदा, कमीला आदि बारीक पीसकर लगावे ।

यूनानी तिब्बसे बालककी नाकके कुचल जानेका उपाय ।

बालक यदि किसी ऊँची जगहपरसे गिर पडे तो उसकी नाक कुचल जाती है, नाकका ऊपरका भाग यदि कुचल जावे तो प्रायः देखा जाता है कि नाकमें गम्भीर खांचा पड जाता है । इसका कारण यह है, कि नाकके ऊपरका भाग अस्थिका है वह हड्डी टूट जावे तो नाकमें खड्डा पड जाता है । यदि उस समयपर उत्तम चिकित्सक उपस्थित होय तो टूटीहुई हड्डीको यथास्थान पर बैठाल कर नाककी शकलको ठीक कर सक्ता है । नाकके आगेका भाग स्नायु और मांसके पट्टेका है, यदि यह कुचल जावे तो खांचा अथवा खड्डा नहीं पडता लेकिन अधिक सद्मा पहुंचा होय तो फट जाता है टेढा अथवा पिचका हुआ हो जाता है । उपाय इसका यह कि जो थोडा भाग नाकका कुचल गया होय तो मोटी सलाई नासिकामें डालकर ऊँचे नीचे भागोंको बराबर करे और बाहरी भागोंको हाथकी अंगुलियोंके सहारेसे ठीक सँभाल कर बराबर कर देवे कि अपनी असली दशापर आ जावें । फिर एलुआ, मुगास (जंगली अनारकी जड,) का मोटा छिलका अकाकिया, मुर्र सबको समान भाग लेकर महीन पीसकर वातरंगके लुआबमें गूंदकर बारीक कागजपर लगाकर नासिकापर चिपका देवे । यदि नासिका अधिक कुट गई होय तो अथवा नासिकाकी पतली नर्म हड्डी भी टूट गई होय तो जलद फस्द खोलनी चाहिये और मवाद जो इस ओर निकलनेको रुजू हो रहा है उसको लौटा देवे । परन्तु छोटे दूध पानेवाले बालककी फस्द न खोले, किन्तु हाथ पैरमें बन्धेज लगाकर उसके खूनको इधर आनेसे रोके । गर्दनपर अधिक दवाव न पडे ऐसा बन्देज देकर खूनके प्रवाहको रोके, जिससे खून भी अधिक निकलने पावे और सूजन विशेष होनेका भय न रहे । दिमागकी प्रकृतिकी रक्षाके लिये हलका और

ठंढा लेप सिरपर लगावे जिससे ऐसा न होय कि दर्दके समीप होनेके कारणसे दिमागमें गर्मी आ जाय और सरसाम (सन्निपातकी) दशा आ जाय, जब मवादको उतार चुके और दिमागकी प्रकृतिके रक्षासे निश्चिन्त हो जाय तब नाकके बराबर दुरुस्त करनेके लिये वह औजार जिसका नाम (मित्फाउररहम) है नाकमें प्रवेश करे और धीरे २ इस औजारको नाकमें फिरावे, जबतक नाकके भाग जो अन्दरकी ओर गिर पडे हैं अपनी जगह पर आ जायँ। उसके उपरान्त एक बारीक नकली चांदी व शीशेकी बनावे, अथवा मोरके बाजूके मोटे पंखकी जड (जिस पंखकी कलम होडिल अंगरेजी लिखनेवाले बनाते हैं) उसकी जडका भाग कतर कर और एक बारीक कपडा उसपर इस तर्कीवसे लपेटे कि उसके दोनों तर्फके पोलके मुख खुले रहें। कपडा इस तर्कीवसे लपेटे कि वह बत्तीकी सूरतमें बन जावे और बत्तीको इतना मोटा बनावे कि वह नाककी पोलमें दवा लपेटने पर बराबर आ जा जावे, फिर उस बत्तीपर अकाकिया और मुगास पीसकर बातरंगके लुआवमें मिलाकर मरहमसा बनाकर लपेट देवे। नाकमें रखके बराबर बैठाल देवे और जब नाकमें बत्ती बराबर बैठ जावे तब नाकके भागोंको बाहरसे भी अंगुलीके सहारेसे बराबर सम्हाल कर बैठाल देवे, जो लेप ऊपर कथन किया है वह लगा देवे। यदि बालक ना समझ हो तो ऊपरसे कपडेकी पट्टी बांध देवे लेकिन कपडेकी पट्टीको नाकके छेदोंके पाससे कतर कर बत्तीकी नलीके सिरेको बाहर निकाल देवे जिससे कि रोगीके श्वास आने जानेमें अवरोध न पहुंचे। जबतक नाककी दशा बिलकुल अच्छी न हो जावे तबतक बत्तीको नाकमें रखी रहने देवे।

यूनानी तिब्बसे बालककी नासिकाकी सूजनका उपाय।

नाकके सूज जानेके तीन कारण हैं एकतो यह कि विशेष गर्मी जैसे तपमोहर्रका (वह पित्त ज्वर जिसका मवाद रगोंके अन्दर और दिल तथा जिगरके समीप उत्पन्न होता है) दूसरे विशेष खुश्की जो नाककी तरीको नष्ट कर देती है। जैसे तपेदिक वह ज्वर जिसकी गर्मी मुख्य अङ्गोंके साथ अर्थात् दिल, जिगर, दिमागके साथ सम्बन्ध रखती है। तीसरे छेददार दोष कि नाकके भीतर चिपटकर उस जगह पर हवाकी खुश्की और गर्मीसे सूख जाय और मार्ग बन्द होनेके कारणसे वह तरी जो कि दिमागसे उतरती है नाकको तर रखती है न आने पावे, इस कारणसे नाक सूख जाय। उपाय इसका यह है कि जिस रोगका कारण गर्मी समझी जावे तो ठंढी दवाइयोंके पिलानेसे गर्मीको दवा ठंढे तैल नाकमें डाले जैसा कि रोगन् कुलफा, रोगन कद्दू आदि हलके तथा भारी लेप ठंढे और तर भोजन खानेको देवे। जिस रोगका कारण खुश्की होवे तो तरी पहुंचानेके लिये तर दवाइयां दे तर तैल

नाकमें डाले स्त्रीका दुग्ध स्तनोंमेंसे मस्तक पर धार डाले। और जो रोग नाकमें दोषों (छेददार मवादों) के चिपट जानेसे उत्पन्न होय तो तैल और स्निग्ध लुआबोंके नाकमें डालनेसे और जो द्रव्य तरी उत्पन्न करते हैं उनके पीनेसे उस दोषको नर्म करे, जब खुश्क हुए दोषमें निकलनेकी शक्ति और तराई उत्पन्न हो जावे तो गर्म जलके तरडे व कुल्ले करनेसे और तर सुगंधि जैसे खस व गुलाबका इतर सूंघनेसे अथवा मक्खन, लौकीके तैल आदिके लगानेसे निकाल देवे।

यूनानी तिब्बसे बालकोंकी नासिकाकी खुजलीका उपाय।

बालकोंकी नाकमें खुजली आती है उस समय नासिकाके छिद्रोंको खुजाकर लोह लुहान कर लेते हैं, यहांतक कि खुजाते २ नासिका पक जाती है। इस नासिकाकी खुजलीके दो भेद हैं। एक तो यह कि जब ठंढी हवा नाकमें जावे तब नाक और दिमागमें तेजी और झनझनाहट मालूम होय, नेत्रोंमेंसे आंसू निकल आवें। आंसू निकलनेका यह कारण है कि जलन झनझनाहट और तेजीके कारणसे दिमाग गर्म हो जाता है, रतूबतें गर्म होकर आंसूमें निकलती हैं। परन्तु ठंढी हवाके नाकमें जानेसे उस समय खुजली उत्पन्न हो जाती है और जब तेज दोष दिमागके पर्दोंमें एकत्र हो जाते हैं और तेज भाफके परमाणु उसमेंसे निकल कर नाकके रास्तेसे बाहर निकलते हैं, जिस समय ठंढी हवा नाकमें जाती है तो इस कारणसे हवाकी शर्दी उनको रोकती है कि वहीं नाकमें बन्द हो जाय और विशेष जलन और झनझनाहट उत्पन्न करें। यह मवाद कभी दिमागमें उत्पन्न नहीं होता है, किन्तु दूसरे ठिकानोंपर उत्पन्न होता है और वहांसे भाफके परमाणु चढकर नाकमें खुजली उत्पन्न करते हैं। उपाय इसका यह है कि खाने पीनेके आहारोंसे दिमाग और देहकी प्रकृतिको सँभाले, जो दोष निकालनेके लायक होयँ तो निकालनेवाली दवाओंसे निकाल देवे, दोषके निकालनेके पीछे चन्दन, गुलाब, गुलरोगन एक शीशीमें डालकर और खूब हिलाकर बालकको सुंघावे, जिस रोगीके शरीरमें भाफके परमाणु दिमागकी तर्फ चढें तो धनियेका बनाहुआ इत्रीफल सब चीजोंसे लाभदायक है, काबुली हरडकी छाल, जंगी हरडकी छाल, बहेडाकी छाल, आंवलाकी छाल, छिलाहुआ धनियां, सबको बराबर लेकर कूटकर कपड छान कर लेवे। बदामका तैल गौके घीमें चिकना करके थोडा गर्मकर लेवे कि अच्छी तरहसे दवा चिकनी हो जावे और तिगुने शहदकी चाशनी (गर्म करके) मिला दो महीने रखके पीछे सेवन करे। मात्रा बालकको एक माससे ३॥ मासेतक और बडी उमरवालेको ६ माससे नौ मासे तक सेवन कराना। (गुण) उदरको बल देता है मस्तकपीडा, कानकी पीडा, नेत्र पीडा, नाक खुश्की और खुजलीको निवृत्त करता है।

उदर और शरीर खराब अवखरोंको निवृत्त करता है। दूसरे यह कि नाककी खुजली ठंढी हवा नाकमें जानेसे बंद न होय और इस रोगका कारण यातो तेज नजला अथवा तेज जुखाम है, अथवा फुंसियां या नकसीर उत्पन्न होनेसे अथवा चेचकके उत्पन्न होनेसे होय यह खुजली मूलकारणोंके निवृत्त हो जानेसे जाती रहती है।

यूनानी तिब्बसे बालकके होठोंकी खुस्की अथवा चमडा उतरना व होठोंके फटनेका उपाय।

बालकके होठोंसे खाल चर्मजिल्द उतरती होय तो बिहीदाना खतमीकी जड(रेशा-खर्मी कहते हैं) अलसी इनका लुआब निकाल कर होठोंपर मले,। जो बच्चा मांसाहारी लोगोंका होय तो मुर्गीकी चर्बीका लगाना अति हितकारी है, यदि होंठ नीचेकी तर्फको खिंचते होवें तो बालककी नाभि और गुदापर बनफशाका तैल मलना अति लाभदायक है। जो होंठ फटते होवें तो माजूफल, सफेदा, निशास्ता, कतीरा इनको समान भाग लेकर अति बारीक पीस मुर्गीकी चर्बी अथवा घृतमें मिलाकर होंठपर लगा हवासे होठोंको बचानेके लिये अण्डेके अन्दरका सफेद छिलका अथवा मकडीका सफेद जाला चिपकावे।

यूनानी तिब्बसे बालकके होंठका कट जाना अथवा घावका उपाय।

बालकका होठ गिरनेसे अथवा किसी और प्रकारके अभिघातसे कट जावे तो उसी समय होंठको मिलाकर और चांदीका तार सूईमें पिरोकर टांका मार देना चाहिये। ऊपर शीतल जलकी पट्टी रखके बांध देना योग्य है, उस पट्टीके ऊपर कई दिनतक शीतल जल डालना चाहिये, जब सूजन उतर जावे और कटाहुआ भाग जुडकर उसकी सन्धि मिल जावे तो चांदीका तार काटकर निकाल लेना। यदि जखममें रतूवत पडगई होय तो सफेदाका मरहम लगावे, अथवा जर्द आलूका तैल रुईमें भिगोकर रखना, जो होंठ कटकर दो भाग हो गये होयँ और दोनों भाग अलग २ सूख गये होवें तो दानोंके कटे हुए किनारे थोडे २ छीलकर मिला देवे और उपरोक्त विधिसे चांदीके तारका टांका लगाकर सीम ऊपरकी क्रियाके माफिक उसका उपचार करे। होंठमें गुमडी उत्पन्न होकर गहरा जखम हो गया होय तो उसका व्रणके समान तथा मुखके अन्दरके घावोंके समान उपचार करे (खुलासा) जो जखम होंठके बाहरके भागमें होय उसका उपचार बाह्यव्रणोंके समान करे, जो जखम होंठके अन्दर भागमें होय उसका उपचार मुखके आभ्यन्तर व्रण व छालके समान करे।

सब प्रकारके घावोंको भरनेवाले तैल।

मीठा तैल १ सेर कढाईमें डालकर पकावे, गर्म हो जावे जब नीमके पत्तोंकी

टिकिया बारीक पिसीहुई १० तोला कनेरके पत्तोंकी टिकिया १० तोला बकायनके पत्रोंकी टिकिया १० तोला जब ये सब टिकिया जल जावें तब २० तोला मोम मिलाकर सब तेलको कलछीसे मिला नीचे उतार कर कपडेमें छानकर बोतलमें भर लेंव। इससे सब प्रकारके घाव रोपण हो जाते हैं। इस तैलमें रुईका फोहा भिगोकर जखम पर रखे और दिनमें दो समय बदलना चाहिये।

दूसरा तैल।

मीठा तैल २० तोला, नीमके पत्तोंकी टिकिया २॥ तोला, सम्हालूके पत्तोंकी टिकिया २॥ तोला, हल्दी पिसीहुई १ तोला इन सबको तैलमें जलावे जब सब टिकिया जल जावें तब १ तोला ३ मासे गूगल मिला देवे, जब गूगल मिल जावे तब अग्निसे उतार कर तैलको छान ४॥ मासे सिंदूर मिलाकर बोतलमें भर लेंव। इसमें रुईका फोहा भिगोकर जखम पर दो समय दिनमें रखनेसे जखम शीघ्र भर जाते हैं।

तीसरा करंज तैल।

मीठा तैल ४० तोला, कंजाके पत्रोंकी टिकिया २॥ तोला, चमेलीके पत्रोंकी टिकिया २॥ तोला, कोंछके बीजकी टिकिया २॥ तोला, नीमके पत्तोंकी टिकिया २॥ तोला इनको तैलमें जलावे, जब जल जावें तब उतार कर तैलको छान बारीक पिसाहुआ कमीला १ तोला, नीलाथोथा बारीक पिसाहुआ १ मासे इनको मिलाकर तैलको भर लेवे और तैलको हिलाकर रुईका फोहा भिगोकर जखम पर रखे, यह तैल बहुत शीघ्र जखमोंको भर लाता है। सफेद मरहम घावोंको भरनेवाला मीठा तैल १ तोला ८ मासे, सफेद मोम १ तोला आठ मासे इन दोनोंको गर्म करके मिला देवे और बारीक कपडेमें छानकर शुद्ध करलेवे। कपूर ३॥ मासे मोम और तैलमें गला ३॥ मासे सफेदा १ मासे कौडीकी भस्म मिलाकर डब्बीमें रखलेवे, आवश्यकतानुसार कपडेकी पट्टी पर लगाकर व्रण (घाव) पर लगादेवे, इससे सब प्रकारके जखम सूख जाते हैं। (फिटकरीका मरहम) मोम १ तोला ८ मासे, घृत ३॥ तोला इनको अग्निपर गर्म करके मिला फिटकरीका फूल बारीक पिसाहुआ ३॥ मासे सिंदूर २ मासे, सफेद कत्था २ मासे, मुर्दासंग बारीक पिसाहुआ २॥ मासे नीलाथोथा बारीक पिसाहुआ ४ रत्ती इन सबको डब्बीमें भर लेवे और आवश्यकतानुसार काममें लावे। (रालका मरहम) राल १ तोला बारीक पिसीहुई, मोम ४ तोला, घृत ४ तोला दोनों अग्निपर पिघलाकर मिलावे, जब घृत और मोम मिलजावें तब राल मिला कर मरहम बना आवश्यकतानुसार काममें लावे। (बालकोंके शिरमें होनेवाले व्रणोंका मरहम) कत्था १ तोला, कलई चूना १ तोला, पिसीहुई मेहदी १ तोला, बारीक

पिसाहुआ मुर्दासंग १ तोला, कच्चा सुहागा १ तोला, नलिाथोथा १ तोला, भडभूजेके छपरेका धूमसा १ तोला द्विगुणघृतमें मिलाकर मरहम बनावे, इस मरहमके लगानेसे प्रत्येक प्रकारके जखम अच्छे हो शिरसे लेकर पैरपर्य्यन्तके विगडेहुए जखम साफ होकर रोपण होते हैं ।

यूनानी तिब्बसे वर्षाती फोडाफुंसी और दोनोंका उपाय ।

वर्षातमें उत्पन्न होनेवाले फोडाफुंसी और दोनोंपर मसूरके छिलके व आंवला जलाकर इन दोनोंकी भस्म बराबर लेवे और एक भस्मके समान मेहदी बारिक पीसी हुई और कमीला बारिक पिसाहुआ ले एक दवासे चतुर्थांश भुनाहुआ तूतियां लेवे, मीठातेल इतना डाले कि जितना इन दवाओंमें खप सके और पतले मरहमके समान बन जावे सब दवा और तैलको खरलमें डालकर खूब बारीक पीस दोनों पर लगावे, दो तीन समयके लगानेसे दाने निवृत्त हो जाते हैं ।

अभिघात व चोटका उपाय ।

बालक खेलने कूदनेमें प्रायः गिर जाते हैं इससे उनके शरीरमें अभिघात (चोट) लग जाती है, उसका उपाय इस प्रकारसे करे कि विजेसारकी लकडी पानीमें घिसकर चोट लगे हुए भाग पर लेप करे । अरंडकी मिंगी और काले तिल दोनों समान भाग लेकर बारीक पिट्ठीके माफिक पीस थोडा मीठा तैल मिलाकर चोटके स्थानपर लेप करे तो पीडा निवृत्त होय और कुचला हुआ अवयव अपनी पूर्वावस्थाके समान हो जाता है । सहँजनेकी पत्ती बारीक पीसकर और बराबरका मीठा तैल मिलाकर चोटके स्थानपर लेप करके उस अङ्गको सूर्यकी धूपमें रखे । तिलकी खल बारीक कूटकर गर्म जलमें भिगो देवे और जब भीगकर नर्म हो जावे तब एक कपडेपर लगाकर चोटके स्थानपर लगा देवे । चोटके लगनेसे जो ग्रन्थी किसी अवयवमें पडगई होवे तो नीचे लिखीहुई दवा काममें लावे । पुराने नारियलकी गिरी जो कि सडी न होय ४ तोला और हलदी २ तोला दोनोंको बारीक पीसकर एक कपडेमें पोटली बना तवेपर गर्म करके दो तीन घंटे ग्रन्थीपर सेंक देवे पीछे इस दवाकी टिकडी बनाकर गर्म करके ग्रन्थीपर बांध देवे । इस प्रकार तीन दिवस बराबर सेंक देने और दवा बांधनेसे ग्रन्थी घुल जाती है ।

बालकके ज्वरकी चिकित्सा ।

(बालकको ज्वरमें घृत विधानकी विशेषता)

एकं द्वेत्रीणि चाहानि वातपित्तकफज्वरे । स्तन्यपायाहितं सर्पिरितराभ्यां यथार्थतः । न च तृष्णाभयादत्र पाययेच्च शिशुं स्तनौ । विरेक बस्ति-वमनान्यृते कुर्य्यां च नात्ययात् । (सुश्रुत)

अर्थ—वातपित्त अथवा कफज्वरमें केवल दूध पीनेवाले बच्चेको एक दो व तीन दिवसके अन्तरसे घृतकी मात्रा देवे, (इस घृतका प्रयोग ऊपर इसी अध्यायमें लिखा गया है ऊपर देखो) और क्षीरान्नाद अथवा केवल अन्नाद भक्षण करनेवाले बालकको घृतका प्रयोग अति हितकारी है । तृष्णा भयसे बालकको स्तनपान न करावे, परन्तु वमन विरेचन वस्ति इत्यादिसे विनाशकारक रोग न होवें तो स्तनपान करावे ।

ज्वरादि रोगोंमें बालकके लंघनकी मर्यादा नहीं है ।

सर्वं निवार्यते बाले स्तन्यं नैव निवार्यते । मात्रया लंघयेद्धात्रीं शिशोरेतद्धि लंघनम् । स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत् ॥

अर्थ—बालकको रोगकी स्थितिमें और कोई आहार न दे माताका दुग्ध निरोग होवे तो दूधका पीना वर्जित नहीं है, यदि बालकको किसी प्रकारका भयंकर अधिक रोग होवे तो उस रोगकी स्थितिके अनुसार बालकको दूध पिलानेवालीको थोडा लंघन कराना उचित है । अथवा हलके आहारका लघु भोजन कराना यही बालकका लंघन है । यदि दूध पिलानेवालीके दूधके कारणसे ही बालक रोगी हुआ होय तो अथवा माता वं धात्रीके स्तनोंमें दुग्धका अभाव होय तो बकरीका दूध व उसके गुणोंवाला गायका दुग्ध (गधीका) दुग्ध पिलवे ।

बालकके साधारण ज्वरोंकी चिकित्सा । (भद्रमुस्तकादि क्वाथ)

भद्रमुस्ताभयानिंबपटोलमधुकैः कृतः ।
क्वाथः कोष्णः शिशोरेष निःशेषज्वरनाशनः ।

अर्थ—नागरमोथा, छोटी हरड, नीमकी जडकी छाल, पटोलपत्र, पटोलके अभावमें गिलोय, मुलहटी परिमित मात्रासे इनका क्वाथ बनाकर किञ्चित उष्ण पिलावे । चार व पांच घंटेके अन्तरसे दिनमें ३ समय देना चाहिये ।

बालकके ज्वरपर अवलेह ।

शर्कराक्षौद्रसंयुक्ता तिक्ता लीढा ज्वरं जयेत् ।
लिम्पेन्मुहुर्मुहुर्बालं तत्कल्केन च बुद्धिमान् ॥

अर्थ—मिश्री, शहत और कुटकीका सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर बालकको चटानेसे ज्वर शान्त हो जाता है । इसी औषधको दूध पिलानेवाली स्त्रीके स्तनोंपर कई समय लेप करे तो दूधके विकार शान्त होते हैं ।

बालकके ज्वरपर पलंकषादि धूप ।

पलंकषा वचा कुष्ठं गजचर्म विचर्म्म च । निम्बस्य पत्रं माक्षीकं सर्पियुक्तन्तु धूपनम् । ज्वरवेगं निहन्त्याशु बालानान्तु विशेषतः ॥

अर्थ—लाख, वच, कूट, हाथीका चमडा, मेडका चमडा, नीमके पत्र व छाल, शहत, घृत इन सबको समान भाग लेकर एकत्र करके शहत घृत मिलाकर बालकको धूप देनेसे ज्वरका वेग शान्त होता है ।

बालकोंके रोगी होनेका कारण तथा रोगके लक्षण ।

धात्र्यास्तु गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा । दोषा देहे प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति ॥ मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टा वातादयस्त्रयः । दूषयन्ति पयस्तेन जायन्ते व्याधयः शिशोः ॥ वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन् वातगदातुरः । क्षामस्वरः कृशाङ्गः स्याद्बद्धविण्मूत्रमारुतः ॥ स्विन्नो भिन्नमलो बालः कामला पित्तरोगवान् । तृष्णालुरुष्णसर्वाङ्गः पित्तदुष्टं पयः पिबन् ॥ श्लेष्मदुष्टं पिबन् क्षीरं लालालु श्लेष्मरोगवान् । निद्रार्दितो जडः शूनी वक्राक्षश्छर्दनः शिशुः ॥ द्वन्द्वजे द्वन्द्वजं रूपं सर्वजे सर्वलक्षणम् ॥ क्षुद्ररोगे च कथिते ह्यजगल्ल्यहिपूतने । ज्वराद्या व्याधयः सर्वे वक्ष्यन्ते महतां तु ये ॥ बालानामपिते तद्वद्बोधव्या भिषगुत्तमैः ॥ यथादोषं यथारोगं यथाद्रेकं यथाबलम् । विभज्य देश-कालादींस्तत्र बालानामेव ये रोगा भवन्ति महतां न च ॥ तालुकण्ट-कमुख्यांस्तानवधारय यत्नतः ॥

अर्थ—बालकको दूध पिलानेवाली माता तथा धायके अति भारी आहारोंके भोजन करनेसे अथवा विषम भोजनोंसे अथवा वातादि दोषोंके कुपित करनेवाले आहारोंके सेवनसे वातादि दोष इनके शरीरमें कुपित होकर स्तनोंके दूधको बिगाड देते हैं । ऐसे दोष दूषित दुग्धके पीनेसे बालकोंके अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं । जो बालक वात दोषसे दूषित दुग्धको पीवे तो वातजन्य रोग उत्पन्न होते हैं स्वरभङ्ग अर्थात् बालकका स्वर क्षीण पड जाता है, बालकका शरीर कृश हो जाता है । मल मूत्र और अधोवायु रुक जाती है । यदि पित्तसे दूषित दूधको बालक पीवे तो उसके शरीरमें पसीने आते हैं, अतीसार उत्पन्न हो कामला रोग और पित्तजन्य अन्य व्याधि उत्पन्न होती हैं । पिपासा अधिक लगती है, बालकका शरीर गर्म रहता है । यदि बालक कफदूषित दुग्ध पीवे तो कफजन्य रोग उत्पन्न होते हैं, बालकके मुखसे लार बहती है निद्रा अधिक आवे शरीर भारी सूजन वमन और नेत्र सफेद और टेढे हो जावें (ऐसी दशामें किसी २ बालकको मृगीका दौरा भी होने लगता है)

दो २ दोषसे दूषित दुग्धको पीनेसे बालकको द्विदोषज व्याधिके लक्षण होते हैं और त्रिदोषसे दूषित दुग्धको पीनेसे त्रिदोषज व्याधिके लक्षण होते हैं। क्षुद्र रोगोंके प्रकरणमें जो अजगल्ली और अहिपूतन आदि रोग कथन किये हैं तथा बडी उमरवाले मनुष्योंके जो ज्वरादि रोग कथन किये हैं वही रोग बालकोंके शरीरमें भी होते हैं। इस प्रकार उत्तम चिकित्सकको जानना चाहिये कि जैसे दोष और उनसे उत्पन्न हुए रोग और उस रोगसे उत्पन्न हुई पीडा बालकके शरीरमें बलाऽबल होय उसीके अनुसार विचार पूर्वक बालकका हितकारी उपचार करे। परन्तु जो रोग बालकोंके होते हैं उनमेंसे कितने ही रोग बडी उमरके पुरुषोंके नहीं होते, जैसे कि तालुकंटकादि रोग जो ऊपर लिखे गये हैं। उपरोक्त दोषोंके कुपित होनेसे कदाचित बालकको ज्वर उत्पन्न हो जावे तो नीचे लिखे क्रमानुसार बालकके ज्वरकी चिकित्सा करे।

वातज्वरके लक्षण।

वेपथुर्विषमो वेगः कंठोष्ठमुखशोषणम्। निद्रानाशः क्षवस्तम्भो गात्राणां रौक्ष्यमेव च॥ शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं बद्धविट्कता। शूलाध्माने जृंभणं च भवत्यनिलजे ज्वरे॥

अर्थ-(जृंभात्यर्थं समीरणात्) वातज्वर उत्पन्न होनेवाला होय तो ज्वर आनेके पूर्व जंभाई आने लगती हैं। वातज्वरसे शरीर कपकपाने लगता है, और ज्वरका तीव्र विषम वेग होता है, कंठ होंठ मुखका सूखना निद्राका नाश छींक आना बन्द हो जाता है। शरीरमें रुक्षता, शिर हृदय और सर्वाङ्गमें पीडा, मुखका स्वाद नष्ट होता जावे मलबद्ध हो जावे और दस्त आवे भी तो कठिन आवे। जँभाई आया करें लोम खडे हो जावें यह विशेष चिह्न वातज्वरका है। चरक इतने चिह्न अधिक मानता है। कानोंमें झनझनाहटका शब्द होय, ठोढीका स्तम्भ, सूखी खाँसी वमन दांत खट्टे होजावें और चक्कर, मूत्र, नेत्र पीले रंगके तृषाके प्रलाप करे इत्यादि लक्षण कथन किये हैं।

बालकके वातज्वर पद्मकाष्ठादि क्काथ।

क्काथः कृतः पद्मकनिम्बधान्यछिन्नोद्भवालोहितचन्दनोत्थः। ज्वरं जयेत्सर्वभवं कृशानु धात्रीशिशुभ्यां प्रकरोति पीतः॥

अर्थ-पद्मकाष्ठ (पद्माख) नीमकी जडकी छाल गिलोय, लाल चन्दन इन चारों द्रव्योंको समान भाग लेकर १ तोला औषधका क्काथ १६ तोला जलमें बनावे, जब चार तोला बाकी रहे तब उतार कर छान लेवे और तीन घंटेके अन्तरसे ६ मासे

क्वाथकी मात्रासे बालकको देवे, अगर धात्रीको देना होय तो २ तोला औषधका क्वाथ १६ तोला जलमें पकावे जब ४ तोला रहे तब उतारकर एक ही मात्रामें पिला देवे और ऐसी ही तीन मात्रा एक दिनमें बालकको दूध पिलानेवालीको देवे । जहां कहीं धात्रीको क्वाथ पिलानेकी आवश्यकता पडे १ पल (चार तोलेकी मात्रासे पिलावे) और दूध पीनेवाले बालकको छ मासे क्वाथकी मात्रा देवे और दुग्ध तथा अन्नाहारी बालकको १ तोला क्वाथकी मात्रा देवे ।

बालकके वातज्वरपर सौम्यादि क्वाथ ।

क्वाथः स्थिरागोक्षुरविश्वबालक्षुद्राद्वयच्छिन्नरुहाकिरातैः । वातज्वरं संशमयेत्प्रपीतो बालेन धात्र्या च कृशानुकारी ॥

अर्थ-शालपर्णी, गोखुरू, सोंठ, नेत्रवाला, सफेद फूलकी कटेली, बैंजनी फूलकी कटेलीकी जड, गिलोय, चिरायता इन सबको समान भाग लेकर क्वाथ परिमितमात्रासे बालक तथा धात्रीको पिलानेसे वातज्वर शान्त होता है । इसी प्रकार शालपर्णी, पृष्ठपर्णी दोनों प्रकारकी कटेली, गोखुरू यह लघु पंचमूलका क्वाथ बालकके वातज्वरको शान्त करता है ।

वातज्वर पर किरातिक्तादि क्वाथ ।

किराताह्वामृतोदीच्यबृहतीद्वयगोक्षुरैः । श्रीपर्णीकलशीबिल्वैः क्वाथो वातज्वरापहः ॥ गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैः पाचनं शृतम् । वातज्वरे तथापेयं कालिङ्गसप्तमेऽहनि ॥

अर्थ-चिरायता, गिलोय, नेत्रवाला, दोनों कटेली, गोखुरू, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, वेलकी जडकी छाल इनका समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनावे और परिमित मात्रासे धात्री तथा बालकको पिलानेसे वातज्वर शान्त होता है । (दूसरा गुडूच्यादि क्वाथ) गिलोय पीपलामूल, सोंठ, इन्द्रजव इनको समान भाग लेकर परिमित मात्रासे क्वाथ बनाकर पिलावे तो वातज्वर शान्त होता है । गिलोय सत्व छोटी पीपलका चूर्ण अतीसका चूर्ण समान भाग लेकर बालककी उमरके अनुकूल मात्रा लेकर शहतमें चटानेसे वातज्वर शान्त होता है ।

निद्राभंगका उपाय ।

यदि बालकको ज्वरमें निद्रा न आती होय तो पीपलामूलका चूर्ण गुडमें मिलाकर परिमित मात्रासे देवे, इसके सेवनसे अवश्य निद्रा आती है । काकमाची (मकोयकी जड) काकजंघा (मसीरूखडीकी जड) इनको समान भाग लेकर क्वाथ बना गुड मिलाकर बालकको पिलानेसे निद्रा आ जाती है ।

वातज्वरमें बालकके उदर शूलाध्मानका उपाय।

दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैंधवैः।
लिम्पेत्कोष्णैरम्लपिष्टैः शूलाध्मानयुतोदरम् ॥

अर्थ—देवदारु, सफेद वच, कूट, शतावर, हींग, सेंधा लवण सबको समान भाग लेकर नींबूके रसमें बारीक पीसकर गर्म करके बालकके पेट पर लेप करे और ऊपरसे रुईका फोहा रखकर हलकासा कपडा लपेट देवे इस लेपसे उदरशूल, अफरा निवृत्त होता है।

ज्वरसे कर्णमें झनझनाहट युक्त शब्दका उपाय।

कटुतैलं कणाहिंगुवचालशुनसाधितम्।
उष्णं विनिहितं हन्ति कर्णयोर्निःस्वनव्यथाम् ॥

अर्थ—पीपल, हींग, वच, लहसुन इन चारोंको समान भाग लेकर कूट लेवे और चौगुने सरसोंके तैलमें पकावे, जब कल्क जल जावे तब तैलको छानकर सुहाता २ कानोंमें डालकर रुई लगा देवे।

वातज्वरमें उत्पन्न हुई शुष्क कासका उपाय।

कणा सुगन्धिवचया यवान्या च समन्विता।
तांबूलसहिता हंति शुष्ककासं मुखे धृता ॥

अर्थ—पीपल, सुगन्धित वच, तुषरहित अजवायन इनका बारीक चूर्ण करके पानमें चूर्ण डालकर मुखमें रखे, परन्तु इस कवलको बालक मुखमें नहीं रख सक्ता सो पानके रसमें इस दवाका चूर्ण परिमित मात्रासे मिलाकर बालकको पिला देना चाहिये। ऊपर बालकोंको लंघनका निषेध किया गया है परन्तु जो बालक निष्केवल अन्नाहारी होय और चार सालसे-अधिक अवस्था होय उनके वातादि ज्वर आहार देनेसे बिगडते दीखें तो दोषोंके अनुसार अन्नाहारी बालकको चिकित्सक लंघनकी मर्यादा पर रखे, क्योंकि दोषोंके बिगडनेसे सन्निपात ज्वर हो जानेका भय रहता है।

द्रव्यमेकरसं नास्ति न रोगोऽप्येकदोषजः।
एकस्तु कुपितो दोषाः इतरानपिकोपयेत् ॥

अर्थ—ऐसी कोई भी द्रव्य (औषध) नहीं है कि जिसमें एकही रस होय, न एक दोषजन्य कोई रोगही है क्योंकि एक दोष कुपित होकर दूसरे दोषोंको भी कुपित करता है। कारण कि वायु प्रत्येक दोषके साथमें रहती है वायुहीन पित्त और कफ गतिवाले नहीं हैं जैसा कि—

पित्तः पंगु कफः पंगुः पङ्गवो मलधातवः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्॥

अर्थ-पित्त पंगू है कफ भी पंगू है, तथा यावत् मात्र मल और धातु सब पंगू हैं स्वयं चलनेमें असमर्थ हैं, इनको वायु जहांपर ले जाती है वहांको खिंचे हुए चले जाते हैं। जैसे कि वायु बादलोंको उठा ले जाती है। वायु शरीरमें सर्वोपारि प्रधान है, यदि यह अन्य दोषोंको दूषित कर देवे तो त्रिदोष ज्वर (सन्निपात) हो जाता है और (सन्निपातस्य कालस्य कश्चिद्भेदो न विद्यते) सन्निपात ज्वर और कालमें कुछ भेद नहीं है, इसी कारण लंघनकी आवश्यकता समझी जावे तो अन्नाहारी बालकको लंघन कराना उचित है, क्योंकि ज्वरकी दशामें अग्नि शरीरके बाहर निकलने लगती है। जैसा कि-

आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान् पिधापयन्॥
विदधाति ज्वरं दोषास्तस्माल्लंघनमाचरेत्॥

अर्थ-आमाशयमें स्थित जो वातादि दोष वे शरीरस्थ जठराग्निको शान्ति करके आमसे मिलकर रस रक्त वाहिनी नाडियोंको बन्द करके ज्वर रोगको प्रगट करते हैं। इसी कारणसे लंघन करना चाहिये, इस उपरोक्त प्रमाणसे ज्वरमात्रमें लंघन करनेका विधान मिलता है। परन्तु चिकित्सक जैसा उचित समझे रोगीकी अवस्था बल तथा रोगकी स्थिति और जठराग्नि सम विषमताको देखकर लंघनकी अवधि रखे।

(चरक वातज्वरमें लंघनकी मर्यादा इस प्रकार रखता है)।

ज्वरितं षडहेऽतीते लघ्वन्नं प्रतिभोजितम्। पाचनं शमनीयञ्च कषायं पाययेद्भिषक्। तथा सुश्रुत। वातिके सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिके। श्लैष्मिके द्वादशाहेन ज्वरे युञ्जीत भेषजम्॥

अर्थ-वातज्वरको जब छः दिवस व्यतीत हो जावें तब हलका और रुचि (अन्न-यूष) का आहार स्वल्प मात्रासे देवे, इसके पीछे पाचन ज्वर शमन करता क्वाथ पिलाना उचित है। सुश्रुतका कथन वातज्वरमें सातवें दिवस, पित्तज्वरमें दशवें दिवस, कफ ज्वरमें बारहवें दिवस, तीनों दोषोंके पृथक् २ ज्वरमें यथाक्रमानुसार लंघन करके औषध देना, दोषके पचनेपर आहार देना चाहिये। अब बहुतसे बेसमझ मनुष्य तथा डाक्टर लोग यह शंका उत्पन्न करते हैं कि १०। १२ लंघन मनुष्य कैसे सहन कर सक्ता है, बहुतसे पढे लिखे वेदान्ती भी (अन्नं वै प्राणिनां प्राणः) इस उपनिषदके वाक्यको बोल दिया करते हैं। परन्तु उन अनभिज्ञोंको समझना चाहिये कि लंघनको सहन

करनेकी सामर्थ्य मनुष्यको नहीं है उन दोषोंको है, कि जिनके कुपित होनेसे रोग उत्पन्न हुआ है, इसका प्रमाण नीचे देखो। (वेदान्ती लोग प्रायः निरुद्यमी साधु गृहस्थोंके घर जीमनेवाले होते हैं उनकी नियत सदैव खानेकी तर्फ ही रहती है। भला वे कल्पित ब्रह्म बननेवाले लंघन कैसे सहन कर सक्ते हैं। डाक्टरलोग जो लंघनसे भय मानते हैं इसका कारण यह है कि भारतवर्षसे आयुर्वेदके मुख्य २ सिद्धान्तोंको लेकर यूरोपवालोंने अपनी चिकित्सा प्रणाली उस देशके निवासी मनुष्योंकी प्रकृतिके अनुकूल रखी है, क्योंकि वहांके लोग दिन रातमें आठ दश समय खाते हैं अथवा यह कहिये कि उन लोगोंका जन्म खानेके ही निमित्त हुआ है। ऐसे मनुष्य क्योंकर लंघनको सहन कर सक्ते हैं। इसी कारणसे डाक्टरलोग लंघनका नाम सुनकर चौंक पडते हैं इस भारत भूमिके निवासी लोगोंका आहार २४ घंटेमें दो समयका है, उनमेंसे भी कितने ही मनुष्य एकाहारी निकलेंगे, जो लोग धर्माभिमानी हैं वे प्रत्येक मासमें दो चार लंघन (उपवास) अवश्य ही करते हैं। जैन धर्मानुयायी लोगोंमें प्रायः बहुतसे स्त्री पुरुष दश व बारह दिवस पर्य्यन्त अन्न जल त्यागी बनकर बैठ जाते हैं। परन्तु उनमेंसे कोई मरता नहीं देखा गया। अतएव रोगकी दशामें रोगीको पक्व जलका निषेध नहीं है। जिसको जल मिलता रहे उसको कुछ हानि नहीं होती)।

दोषोंको लंघनकी सामर्थ्य।

दोषाणामेव सा शक्तिर्लंघने या सहिष्णुता। नहि दोषक्षये कश्चित् सोढुं शक्नोति लंघनम् ॥ कफपित्ते द्रवे धातू सहेते लंघनं बहुः। आमक्षयादूर्ध्वमपि वायुर्नसहते क्षणम् ॥

अर्थ—लंघनोंका सहन करना यह शक्ति मनुष्योंमें नहीं है, किन्तु वातादिक दोष जो अपने २ कारणोंसे कुपित होते हैं उनमें ही लंघनके सहन करनेकी शक्ति है। क्योंकि वातादि दोषोंके क्षीण व सम होने पर मनुष्य लंघनको सहन नहीं कर सक्ते। इसमें भी कफ और पित्त साम वात द्रवरूप और भारी होनेसे अधिक लंघनको सहन कर सक्ते हैं। परन्तु आम (पतला कच्चा कफ) क्षीण होने अथवा वातके साथ पतला पित्त होवे और पित्तके क्षीण होनेपर निष्केवल वायु क्षणमात्र भी लंघनको सहन नहीं कर सक्ते। जो डाक्टर महाशय आयुर्वेदकी नियत की हुई लंघन मर्यादाको जिस २ रोगपर हितकारी समझते हैं वे कदापि लंघन मर्यादामें दूषण नहीं देते। परन्तु जो डाक्टर आयुर्वेदकी चिकित्सा प्रणालीसे अनभिज्ञ और निरर्थक अभिमानी हैं वही लंघन मर्यादाका नाम सुनकर चौंक पडते हैं। (हमने इस बडे शहरमें हजारों

मनुष्योंको लंघन मर्यादा पर रखके रोगसे मुक्त किया है, जो डाक्टर लंघनसे चौंकते थे उनको लज्जित होना पडा है) ।

पित्तज्वरके लक्षण ।

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राल्पत्वं तथा वमी। कण्ठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥ प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा । पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं पैत्तिके भ्रम एव च ॥

अर्थ—ज्वरका वेग अत्यंत जोरके साथ होय, अतीसार, दस्त, पतले गर्म पानीके समान और पीले रंगके होयँ । निद्रा थोडी आवे, वमन होय, कण्ठ, होंठ, मुख, नासिका, ये पक जावें विशेष पसीने आते रहें, कुछ २ रोगी वृथा बकवाद करता रहे, मुखका स्वाद कडुआ होय, मूर्च्छा (यथार्थ ज्ञानमें) अन्तर पड जावे, मद कहिये नशेकीसी दशा तृषा विशेष लगे, शरीरमें दाह होय, मल मूत्र नेत्र पीले होवें और भ्रम होय ये पित्तज्वरके लक्षण हैं ।

पित्तज्वर पर द्राक्षादि क्काथ ।

द्राक्षाहरीतकीमुस्ताकटुकाकृतमालकः । पर्पटश्च कृतः क्काथ एषां पित्तज्वरापहः ॥ मुखशोषप्रलापार्त्तिदाहमूर्च्छाभ्रमप्रणुत् । पिपासारक्तपित्तानां शमनो भेदनो मतः ॥

अर्थ—दाख, हरड, नागरमोथा, कुटकी, अमलतासका गर्भ, पित्तपापडा इन सबको समान भाग लेकर परिमित मात्रासे क्काथ सिद्ध करके पीनेसे पित्तज्वर, मुख शोष, प्रलापपीडा, दाह, मूर्छा, भ्रम, तृषा इनको शान्त कर रक्तपित्तको भेदन करके निकाल देवे ।

महाद्राक्षादि क्काथ ।

द्राक्षाचंदनपद्मानि मुस्ता तिक्तामृतापि च । धात्री वालमुशीरं च लोध्रेन्द्रयवपर्पटाः ॥ परूषकं प्रियङ्गुश्च यवासो वासकस्तथा ॥ मधुकं कुलकं चापि किरातो धान्यकं तथा ॥ एषां क्काथो निहन्त्येव ज्वरं पित्तसमुत्थितम् । तृष्णां दाहं प्रलापं च रक्तपित्तं भ्रमं क्लमम् ॥ मूर्च्छा छर्दिं तथा शूलं मुखशोषमरोचकम् । कासं श्वासं च हृल्लासं नाशयेन्नात्र संशयः ॥

अर्थ—दाख, लाल चंदन, पद्माख, नागरमोथा, कुटकी, गिलोय, सूखा आंवला, सुगन्धवाला (कालावाला) खस, लोध, इन्द्रजी, पित्तपापडा, फालसे, फूलप्रियंगु, जवासा, अडूसा, मुलहटी, पटोलपत्र, चिरायता, धनियां इन सबको समान भाग लेकर परिमित मात्रासे क्काथ बनाकर पीनेसे पित्तज्वर, तृषा, दाह, प्रलाप, रक्तपित्त, भ्रम, ग्लानि, मूर्च्छा, छर्दि, शूल, मुख शोष, अरुचि, खांसी, श्वास, हृल्लास इन सबको निस्संदेह नष्ट करता है ।

तिक्तादि क्काथ ।

तिक्तामुस्तायवैः पाठाकट्फलाभ्यां सहोदकम् ।
पक्कं सशर्करं पीतं पाचनं पैत्तिके ज्वरे ॥

अर्थ—कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजी, पाढ कायफलकी छाल, नेत्रवाला इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्काथ बनाकर मिश्री डालकर पीनेसे पित्तज्वरको पचाता है ।

वासकादि क्काथ ।

वासापर्पटकोशीरनिम्बभूनिम्बसाधितः ।
क्काथो हंति वमिश्वासकासपित्तज्वराञ्छिशोः ॥

अर्थ—वासाकी जडकी छाल, पित्तपापडा, खस, नीमकी जडकी छाल, चिरायता इनको समान भाग लेकर क्काथ सिद्ध करके बालकको पिलानेसे वमन श्वास कास और पित्तज्वरको यह क्काथ शान्त करता है ।

गुडूच्यादि क्काथ ।

गुडूची भूमिनिम्बश्च वालं वीरणमूलकम् ॥ लघुमुस्तं त्रिवृद्धात्री द्राक्षा वासा च पर्पटः । एषां क्काथो हरत्येव ज्वरं पित्तकृतं द्रुतम् ॥ सोपद्रवमपि प्रातर्निपीतो मधुना सह ॥

अर्थ—गिलोय, चिरायता, सुगन्धवाला (कालावाला) वीरण तृण (घास) की जड, छोटा मोथा (गांठदार) निसोत, आँवला, दाख, अडूसाकी जडकी छाल, पित्तपापडा इनको समान भाग लेकर क्काथ सिद्ध करके शहत डालकर पीनेसे उपद्रव युक्त पित्तज्वर तत्काल शान्त होता है । छोटी हरडका बारीक चूर्ण करके परिमित मात्रासे शहत मिलाकर चाटनेसे दाहज्वर खांसी तृषा और पित्तकी वमन शान्त होती है ।

पित्तयुक्त दाहज्वर पर लेप । (तथा जलधाराकी क्रिया)

पलाशस्य बदर्या वा निंबस्य मृदुपल्लवैः । आम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं हन्या-

दाहयुतं ज्वरम् ॥ उत्तान सुतस्य गम्भीरताम्रकांस्यादिपात्रे निहिते च नाभौ । शीताम्बुधारा बहुला पतन्ती निहंति दाहं त्वरितं ज्वरं च ॥

अर्थ—पलाश (ढाक) के कोमल २ पत्र अथवा नीमके कोमल २ पत्र लेकर कांजी व नींबू, खट्टा बिजौरा इनमेंसे जो मिल सके उसके रसके साथ पीसकर शरीर पर लेप करनेसे दाहयुक्त ज्वर शान्त होवे ।

जलधारा प्रयोगकी क्रिया ।

जिस मनुष्यके शरीरमें दाह होता होय उसको सीधा सुलाकर उसकी नाभिके ऊपर ताम्रकांसादि धातुकी थाली व चौंडा कटोरा रखकर उसमें शीतल जलकी धारा (धार बांधकर) डाले तो दाहयुक्त ज्वर शान्त हो जाता है । (वर्त्तमान समयमें बडे २ नगरोंमें प्रायः बर्फ सब जगह मिलती है, सो जलधारा प्रयोगकी अपेक्षा बर्फ रखना ठीक है । जहां बर्फ न मिलती होय वहां जलधारा प्रयोग करना उचित है) ।

पित्तज्वरमें कवल और तर्पण ।

द्राक्षामलककल्केन कवलोऽत्र हितो मतः । पक्वदाडिमबीजैर्वा धान्यकल्केन च क्वचित् ॥ दाहकम्पार्दितं क्षामं निरन्नं तृष्णयान्वितम् । शर्करामधुसंयुक्तं पाययेल्लाजतर्पणम् ॥

अर्थ—दाख, आंवला इनमेंसे जो मिलसके अथवा खट्टा अनारदाना व धनिया इनको पीसकर पिट्ठीके समान बनाकर मुखमें रखनेसे मुखकी विरसता तृषा, निवृत्त होती है और मुख शोषमें अति हितकारी है । यदि बालकको देना होय तो इनका रस निकाल कर पिला देवे । (तर्पण) जो मनुष्य पित्तज्वरके दाह कम्पसे पीडित हो और जिसका शरीर कृश हो गया होय विशेष लंघन कर चुका होय पिपासासे पीडित होय ऐसे मनुष्योंको चावलकी खीलोंके सत्तूको मिश्री शहत मिलाकर जलमें घोलकर पिलावे, यदि आंवलेका रस मिलाकर पीवे तो विशेष हितकारी हो सक्ता है । पित्तज्वरवाले मनुष्यको शीतल सुगन्धित हवादार मकानमें रखना हितकारी है ।

कफज्वरके लक्षण ।

स्तैमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता । शुक्लमूत्रपुरीषत्वं स्तम्भस्तृप्तिरथापि च ॥ गौरवं शीतमुत्क्लेदो रोमहर्षोऽतिनिद्रता । प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेऽक्ष्णोश्च शुक्लता ॥

अर्थ—कफज्वरवालेका अङ्ग ऐसा रहता है कि जानो जलसे भीगाहुआ आर्द्ररूप ज्वरका मन्द वेग होय शरीरमें आलस्य रहे मुखमें मिठास मल मूत्र सफेद स्तम्भ

शरीर अकडा हुआ भोजनकी इच्छा रहनेपर भी आहारमेंसे रुचि हट जावे, शरीरमें भारीपन शीत लगे अङ्गमें उत्क्लेद होय रोमाञ्च खडे. हो जायँ अत्यन्त निद्रा आवे प्रतिश्याय, (जुखाम) अरुचि, खांसी नेत्र सफेद श्वेत रंगके दाने गले और छातीमें उत्पन्न होयँ मुखसे लारका बहना वमन तन्द्रा हृदय (फुप्फस) कफसे भरा रहे और कफका घुरघुर शब्द श्वास प्रश्वासके साथ होवे इत्यादि लक्षण कफज्वरवाले रोगीके शरीरमें होते हैं ।

कफज्वरकी चिकित्सा ।

श्लैष्मिके द्वादशाहेन ज्वरे युंजीत भेषजम् । पिप्पल्यादिकषायन्तु कफजे परिपाचनम् ॥ (पिप्पल्यादिक्वाथ) पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं गजपिप्पली । नागरं चित्रकं चव्यं रेणुकैलाजमोदिका ॥ सर्षपो हिंगु भांर्गी च पाठेन्द्रयवजीरकाः। महानिम्बश्च मूर्वा च विषा तिक्ता विडंगकम् ॥ पिप्पल्यादिगणो ह्येष कफमारुतनाशनः । गुल्मशूलज्वरहरो दीपनस्त्वाम पाचनः ॥

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, मिरच, गजपीपल, सोंठ, चित्रक, चव्य, रेणुका, बडी इलायची, अजमोद, श्वेत सरसों, हींग, भारंगी, पाढ, इन्द्रजौ, काला जीरा, बकायनकी जडकी छाल मूर्बा (मरोडफली) अतीस, कुटकी, वायविडंग, यह पिप्पल्यादि गण वात कफ नाशक है । इसका चूर्ण बनाकर भी खाया जाता है और क्वाथ भी पिया जाता है, इसकी प्रत्येक औषध समान भाग ले धाय तथा बालकको परिमित मात्राके अनुसार देनेसे वात कफकी व्याधि अथवा निष्केवल कफकी व्याधि वातज गुल्म शूल और ज्वरको शान्त करता है दीपन पाचन है ।

पिप्पली अवलेह तथा चतुर्भद्रिकावलेह ।

क्षौद्रोपकुल्यासंयोगः श्वासकासज्वरापहः । प्लीहानं हन्ति हिक्कां च बालानामपि शस्यते ॥ पिप्पली त्रिफला चापि समभागान् ज्वरी लिहन् । मधुना सर्पिषा चापि कासी श्वासी सुखी भवेत् ॥

अर्थ—छोटी पीपलका अति बारीक चूर्ण करके शहतके साथ बालकको चटावे, यह बालककी श्वास खांसी प्लीहा हिचकी और ज्वरको नष्ट करता है और ज्वर श्वास कासवाला इसके सेवनसे सुखी होता है (चतुर्भद्रिकावलेह) पीपल, हरड, बहेडा, आंवला, ये चारों समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बनावे परिमित मात्रासे धाय तथा बाल-

कको न्यूनाधिक घृत शहतके साथ चटावे तो इसके सेवनसे ज्वर कासश्वासवाला सुखी होता है ।

अष्टाङ्गावलेह ।

कट्फलं पौष्करं शृंगी यवानीकारवी तथा । कटुत्रयं च सर्वाणि समभागानि चूर्णयेत् । आर्द्रकस्वरसैर्लिह्यान् मधुना वा कफज्वरी । कासश्वासारुचिच्छर्दिहिक्काश्लेष्मानिलापहः ॥

अर्थ—कायफल, पुष्करमूल, काकडाशृङ्गी, अजवायन, कलौंजी, सोंठ, मिरच, पीपल ये सब समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करके अदरखके रस व शहतके साथ परिमित मात्रासे सेवन करे तो कफज्वर, खांसी, श्वास अरुचि, वमन हिक्का कफ और वातके रोगोंको नष्ट करता है ।

दूसरा चतुर्भद्रिकावलेह ।

कट्फलं पौष्करं शृंगी कृष्णा च मधुना सह ।
श्वासकासज्वरहरो लेहोऽयं कफनाशनः ॥

अर्थ—कायफलकी छाल, पुष्करमूल, काकडाशृङ्गी, पीपल सबको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनाकर कपडेमें छान लेवे और परिमित मात्रासे शहतके साथ चाटनेसे श्वास कास और कफज्वरको नष्ट करता है ।

कल्पतरुरसः ।

शुद्धं शंकरशुक्रमक्षतुलितं मारारिनारीरजः स्तावत्तावदुमापतिस्फुटगलालंकारवस्तु स्मृतम् । तावत्येव मनःशिला च विमला तावत्तथा टंकणं शुण्ठी द्व्यक्षमितं कणा च मिरचं दिक्पालसंख्याक्षकम् । विषादिवस्तूनि शिलोपरिष्टाद्विचूर्णयेद्वाससि शोधयेच्च । ततस्तु खल्वे रसगन्धकौ च चूर्णं च तद्यामयुगं विमर्द्य । कल्पतरुर्नामधेयो यथार्थनामा रसश्रेष्ठः । वातश्लेष्मगदानथ हरते मात्रास्य गुञ्जैका । आर्द्रकेण समभेष भक्षितो हन्ति वातकफसम्भवं ज्वरम् । श्वासकासमुखसेकशीततावह्निमांद्यमरुचिं च नाशयेत् । नस्येनाशु हरन्ति शिरोर्त्तिं कफ वातजां मोहं महांतमपि च प्रलापं क्षवथुग्रहम् ॥

अर्थ—शुद्ध पारद, शुद्ध, गंधक, शुद्ध विष, शुद्ध मनसिल, शुद्ध स्वर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध सुहागा प्रत्येक द्रव्य १ तोला लेवे । सोंठका चूर्ण २ तोला, काली

मिरच ८ तोला, पीपल ८ तोला इन सबका सूक्ष्म चूर्ण करके वस्त्रमें छान पारद, गंधक कजली बनाकर मनसिल सुहागा विष स्वर्णमाक्षिक भस्म इनको कजलीमें मिलाकर खूब बारीक पीस कपडछान किये हुए चूर्णको मिलाकर दो पहर (६ घंटे) पीसे यहं कल्पतरु नामवाला रस है। इसकी मात्रा एक महीनेके बालकको आधा चावलसे लेकर पौन व एक चावलतक, और ६ महीने उपरान्त एक सालकी उमरके बालकको १ चावलसे दो चावल पर्य्यंत। दूध और अन्नका आहार करनेवाले बालकको २ चावलसे तीन चावलतक, ५ वर्षसे ऊपर उमरवाले बालकको ३ चांवलसे ४ चावल पर्य्यंत, १४ व १६ वर्षसे ऊपरकी उमरमें एक रत्तीसे २ रत्तीपर्य्यन्त मात्रासे देना। इसका अदरखक रस अथवा शहतमें देना, यदि अदरखके रसकी तीक्ष्णताके कारणसे बालक न लेवे तो अदरखका रस और शहत दोनों मिलाकर मात्रा उसमें घोलकर पिला देवे। इसके सेवनसे वात कफ ज्वर तथा केवल कफज्वर अथवा केवल वातज्वर और वात कफ जन्य अन्य विकार श्वास खांसी मुखसे लारका बहना शीत मन्दाग्नि अरुचि इन सबका नाश करता है। यदि मस्तकमें वात कफकी पीडा होती होय तो नस्य लेनेसे निवृत्त हो जाती है, मोह प्रलाप और छींकके अवरोधको नष्ट करता है।

वातपित्तज्वरके लक्षण।

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहो निद्रानाशः शिरोरुजा॥ कण्ठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तमः॥ पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः।

अर्थ—पिलास, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, निद्राका नाश, मस्तक पीडा, कंठ और मुखका सूखना, रोमाञ्च खडे होना, अरुचि, आंखोंके आगे अंधेरा आना, सन्धिओंमें पीडा, जंभाई ये वात पित्तज्वरके लक्षण हैं।

वात पित्तज्वरकी चिकित्सा तथा मधुवल्ल्यादि हिम।

मधुकं शारिवा द्राक्षा मधूकं चन्दनोत्पलम्। काश्मरी पद्मकं लोध्रं त्रिफला पद्मकेशरम्। परूषकं मृणालं च न्यसेदुत्तमवारिणि॥ मधुलाजासितायुक्तं तत्पीतमुषितं निशि। वातपित्तज्वरं दाहं तृष्णामूर्च्छारुचिभ्रमान्। शमयेद्रक्तपित्तञ्च जीमूतमिव मारुतः।

अर्थ—मुलहटी, सरिवन, दाख, महुआके पुष्प, रक्तचन्दन, नीलोफर, गंभारी, पद्मकाष्ठ (पद्माख) लोध्र, हरड, बहेडा, आंवला, कमलका मगज, नागकेशर, पद्मकेशर, (कमलकेशर फालसा, सूखा हुआ, व ताजी कमलकी (जड भसींडा) धानकी खील

इन सबको समान भाग लेकर रात्रिको गर्म जलके साथ बडे मनुष्यको दो तोला औषध और आठ तोला जल, बालकको १ तोला दवा और ४ तोला जल । इस हिसाबसे भिगोकर रखे प्रातःकाल मलकर छान लेवे और मिश्री, शहत डालकर पीवे, यदि इसमें कमलकी जड व नाल न मिले अथवा कमलकेशर न मिले तो नीलोफर तिगुना मिलावे । इस हिमके पीनेसे बालकोंका वात पित्तज्वर दाह पिलास मूर्च्छा, अरुचि, भ्रम, रक्तपित्तको शमन करता है, जैसे मेघको वायु शमन कर देता है । मात्रा बालककी उमरके अनुसार देवे ।

किरातादि क्काथ ।

किराततिक्तममृताद्राक्षामामलकं शठी ।
निःक्काथ्य सगुडं क्काथं वातपित्तज्वरे पिबेत् ।

अर्थ—चिरायता, कुटकी, गिलोय, दाख, आंवला, सोंठका कचूर इनको समान भाग लेकर काथ बना गुड डालकर पिलावे, इसके सेवनसे वात पित्तज्वर शान्त होता है।

पञ्चभद्रक क्काथ ।

गुडूची पर्पटी मुस्तं किरातो विश्वभेषजम् ।
वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं शुभम् ॥

अर्थ—गिलोय, पित्तपापडा, नागरमोथा, चिरायता, सोंठ इन सबको समान भाग लेकर परिमित मात्रासे क्काथ बनावे, शहत इसमें नहीं लिया गया है लेकिन बालकको थोडा शहत डालकर पिलानेसे वात पित्तज्वरको नष्ट करता है ।

वात कफज्वरके लक्षण ।

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव च । शिरोग्रहः प्रतिश्याय कासः स्वेदाप्रवर्त्तनम् । सन्तापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥

अर्थ—रोगीका शरीर भीगासा रहे और सम्पूर्ण शरीरमें दर्द (पीडा) होय निद्रा आवे शरीर भारी होय मस्तकमें पीडा प्रतिश्याय (जुखाम) खांसी, पसीनेका आना संताप, ज्वरका मध्यम वेग इत्यादि लक्षण वात कफज्वरके हैं ।

बृहत्पिप्पल्यादि क्काथ ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् । वचा सातिविषा जाजी पाठा वत्सकरेणुका । किराततिक्तको मूर्वा सर्षपा मरिचानि च । कट्फलं पुष्करं भार्गीं विडङ्गं कर्कटाह्वयम् । अर्कमूलं बृहत्सिंही श्रेयसी सदुरालभा । दीपकाश्चाजमोदा च शुकनासा सहिंगुका । एतानि सम-

भागानि गण एकोऽष्टविंशतिः । एषां क्वाथो निपीतः स्याद्वातश्लेष्मज्वरापहः ॥ हन्ति वातं तथा शीतं प्रस्वेदमतिवेपथूम् । प्रलापं चातिनिद्रां च रोमहर्षारुचिस्तथा ॥ महावातेऽपतन्त्रे च शून्यत्वे सर्वगात्रजे । पिप्पल्यादिमहाक्काथो ज्वरे सर्वत्र पूजितः ॥

अर्थ–पीपल, पपिलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, वच, अतीस, जीरा, पाढ, कुडाकी छाल, रेणुका, चिरायता, कुटकी, मरोडफली, सफेद सरसों, कालीमिरच, कायफलकी छाल, पुष्करमूल, भारंगी, वायबिडङ्ग, काकडाशृङ्गी, आककी जड, सफेद फूलकी कटेली (इसके अभावमें बैंजनी फूलकी कटेली लेना) रास्ना (रायसण) धमासा, अजवायन, अजमोद, अरलूकी छाल, हींग इन सबको समान भाग लेकर जौकुट करके परिमित मात्राका क्काथ बनाकर पीनेसे वात कफज्वर केवल वातज्वर शर्दी, पसीना आना अत्यन्त कम्प प्रलाप, अति निद्राका आना, बेहोशी, रोमांचोंका खडा होना, अरुचि, महा वातव्याधि, अपतन्त्र वात, शून्यवात और सर्वाङ्ग वात इत्यादि रोगोंको नष्ट करता है, इन सब रोगोंमें यह क्काथ पूजित है ।

किरातादि क्काथ ।

किरातविश्वामृतवल्लिसिंहिकाव्याघ्रीकणामूलरसोनसिन्दुकैः ।
कृतः कषायो विनिहन्ति सत्वरं ज्वरं समीरात्सकफात्समुत्थितम् ॥

अर्थ–चिरायता, सोंठ, गिलोय, कटेलीकी जड, बडी सफेद फूलकी कटेलीकी जड, पीपलामूल, लहसुन, सम्हालूकी जड इन सबको समान भाग लेकर जौकुट करके परिमित मात्राका क्काथ बनाकर पीनेसे शीघ्र वात कफज्वर शान्त होता है ।

भद्रदार्वादि क्काथ ।

दारुपर्पटभार्ङ्ग्यब्दवचाधान्यककट्फलैः । साभयाविश्वपूतिकैः क्काथो हिङ्गुमधूत्कटः । कफवातज्वरे पीतो हिक्काशोषगलग्रहान् । श्वासकासप्रमेहांश्च हन्यात्तरुमिवाशनिः ॥

अर्थ–देवदारु, पित्तपापडा, भारंगी, नागरमोथा, वच, धनियां, कायफल, हरड, सोंठ, पूतिकरंज इन सबको समान भाग ले जौकुट करके परिमित मात्राका क्काथ बनाकर उसमें थोडी भुनीहुई हींग मिलाकर तथा शहत मिलाकर पीनेसे वात कफज्वर हिचकी शोष गलग्रह श्वास खांसी और प्रमेह नष्ट होता है ।

पित्त कफज्वरके लक्षण ।

लिप्ततिक्तास्यता तन्द्रा मोहकासोऽरुचिस्तृषा ।
मुहुर्दाहो मुहुः शीतं पित्तश्लेष्मज्वराकृतिः ॥

अर्थ—कफसे मुख लिप्त रहे और पित्तसे कडुवा रहे तन्द्रा मोह कास अरुचि, पिलास, क्षणमें दाह होय, क्षणमें शीत लगे ये पित्त कफज्वरके लक्षण हैं ।

अमृताष्टक ।

अमृताकटुकारिष्टपटोलघनचन्दनम् । नागरेन्द्रयवं चैतदमृताष्टकमीरितम् ॥ कथितं सकणाचूर्णं पित्तश्लेष्मज्वरापहम् । हृल्लासारोचकच्छर्दिस्तृष्णादाहनिवारणम् ॥

अर्थ—गिलोय, कुटकी, नीमकी जडकी छाल, पटोलपत्र, नागरमोथा, लाल चन्दन, सोंठ, इन्द्रजौ यह अमृताष्टक कहा जाता है । इसके क्वाथमें पीपलका चूर्ण प्रक्षेप करके पीनेसे पित्त कफज्वर हृल्लास, अरुचि, वमन, तृषा दाह इत्यादिको निवारण करता है ।

कण्टकार्यादि क्वाथ ।

कण्टकार्य्यमृता भार्ङ्गी विश्वेन्द्रयववासकम् । भूनिम्बचन्दनं मुस्तं पटोलं कटुरोहिणी ॥ विपाच्य पाययेत्क्वाथं पित्तश्लेष्मज्वरापहम् । दाहतृष्णारुचिच्छर्दिकासशूलनिवारणम् ॥

अर्थ—कटेली, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्रजौ, अडूसा, चिरायता, लाल चन्दन, नागरमोथा, पटोलपत्र, कुटकी इन सबको समान भाग लेकर जौकुट करके परिमित मात्राका क्वाथ बनाकर पीनेसे कफ पित्तज्वर, दाह, तृषा, अरुचि, वमन खांसी शूलको नष्ट करे ।

गुडूच्यादि क्वाथ ।

गुडूची निम्बधान्याकं चन्दनं कटुरोहिणी ॥ गुडूच्यादिरयं क्वाथः पाचनो दीपनः स्मृतः । तृष्णादाहारुचिच्छर्दिपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ—गिलोय, नीमकी छाल, धनियां, चन्दन, कुटकी इन सबको समान भाग लेकर क्वाथ बना परिमित मात्रासे पीवे तो यह गुडूच्यादि क्वाथ दीपन, पाचन है तथा पिलाश दाह अरुचि वमनको निवृत्त कर पित्त कफज्वरको शान्त करता है ।

ज्वररोगियोंको यूष व अन्नाहार पथ्य देवे ।

रक्तशाल्यादयः शस्ताः पुराणाः षष्टिकैः सह । यवाग्वोदनलाजार्थे

ज्वरितानां ज्वरापहाः ॥ मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कुलत्थान् समकुष्टकान् । यूषार्थे यूषसात्म्यानां ज्वरितानां प्रदापयेत् ॥

अर्थ—भातके लिये व यवागूके लिये पुराने लाल चावल व सांठी चावल ज्वर रोगीको हित हैं। मूंग, मसूर, चना, कुलथी, मोंठ इनमेंसे जिस पर रोगीकी इच्छा होय व जौनसा हित पडे उसका यूष बनाकर देना चाहिये, यूष ज्वर रोगीको हित होता है।

भात और यूष बनानेकी विधि।

जले चतुर्दशगुणे तण्डुलानां चतुष्पलम् । विपचेत्स्रावयेन्मंडं तद्भक्तं मधुरं लघु ॥ अष्टादशगुणे नीरे शिम्बीधान्यशृतो रसः । विरलान्नो घनः किञ्चित् पेयातो यूष उच्यते । उक्तः स एव निर्यूहो रुचिकृच्च विशेषतः ॥ (दूसरीविधि) कल्कद्रव्यपलं शुंठी पिप्पली चार्द्धकार्षिकी । वारिप्रस्थेन विपचेत्तद्भवो यूष उच्यते । यूषो बल्यो लघुः पाके रुच्यः कण्ठ्यः कफापहः ॥ (तीसरीविधि) मुद्गानां द्विपलं तोये शृतमर्द्धाढकोन्मिते ॥ पादस्थं मर्दितं पूतदाडिमस्य पलेन तत् । युक्तं सैंधवविश्वाह्वधान्यकैः पादकांशिकैः । कणाजीरकयोश्चूर्णं शाणेकेनावचूर्णितम् । संस्कृतो मुद्गयूषोऽयं पित्तश्लेष्महरो मतः ॥

अर्थ—चतुर्दश गुने (चौदह गुने) जलमें चार पल चावलोंको पकावे जब चावल पक जावें तब उनके मांडको छानकर निकाल देवे, यह भात बनानेकी विधि है यह भात हलका और मधुर है। (यूष विधि) अठारह गुणे जलमें शिम्बी धान्य (सावत, मूंग, मसूर, चना, कुलथी मोंठ) इनमेंसे जिसका यूष बनाना होय, डालकर पकावे, अन्न किञ्चित् दीखे और पेयासे कुछ अधिक गाढा होय उसकी यूष संज्ञा है, इसीको निर्यूह भी कहते हैं। यह विशेष करके रुचि कर्त्ता है, दूसरी विधि एक पल (४ तोला) यूषके धान्य लेकर उसको पिट्ठीके माफिक पीस सोंठ, पीपल दोनों आधा कर्ष (तीन २ मासे) लेकर इनको भी पीस दोनोंको १ प्रस्थ जलमें (६४ तोलाका एक प्रस्थ) होता है पकावे। जब चौथा हिस्सा बाकी रहे तब उतारकर, छान लेवे। यह यूष बलकर्त्ता पाकमें हलका रुचिकारी कंठको सुधारनेवाला और कफको नष्ट करता है। तीसरी विधि—दो पल (८ तोला) मूंगको १२८ तोलों जलमें डालकर पकावे, जब चतुर्थांश अवशेष (बाकी रहे) तब उतार कर हाथसे मल डाले और कपडेमें छान लेवे, इसमें ४ तोला अनारदाना और स्वादके माफिक सेंधा नमक

सोंठ और धनियां एक २ तोला पीपल और जीरेका चूर्ण चार २ मासे मिलावे। यह विधिपूर्वक सिद्ध कियाहुआ मूंगका यूप पित्त कफकी व्याधियोंको हरण करता है। (मसाला स्वादके अनुसार डालना) कितने ही वैद्य यूपके अन्नको कुछ २ भूनकर यूप बनानेकी आज्ञा देते हैं।

यूपके गुण।

मुद्गानामुत्तमो यूपो दीपनः शीतलो लघुः।
व्रणोर्ध्वजत्रुतृड्दाहकफपित्तज्वरास्रजित् ॥

अर्थ—मूंगका यूप सर्वोत्तम, दीपन, शीतल, हलका, व्रण और हसली कहिये ऊर्ध्व जत्रुसे ऊपरके रोगोंमें हितकारी है। तृषा दाह कफ पित्तज्वर रुधिर विकारोंको शान्त करता है। अन्नाहारी बालकोंको रोगकी दशामें सांठी चावल और यूप देना पथ्य है, उपरोक्त विधिसे आंवला और मूँगका यूप बनाकर देनेसे बालकोंकी कोठ बद्धकी व्याधि निवृत्त होती है। मसूरका यूप बालकोंके अतीसार (दस्तोंके रोग)को निवृत्त करता है।

नीचे लिखे रोगोंमें शीतल जल पानका निषेध।

ज्वरकी दशामें कच्चा जल कदापि न दिया जाय, क्योंकि कच्चा शीतल जल पीना ज्वरमें निषेध है।

नवज्वरे प्रतिश्याये पार्श्वशूले गलग्रहे। सद्यः शुद्धौ तथाध्माने व्याधौ वातकफोद्भवे। अरुचिग्रहणीगुल्मश्वासकासेषु विद्रधौ। हिक्कायां स्नेहपाने च शीतं वारि विवर्जयेत् ॥ सेव्यमानेन शीतेन ज्वरस्तोयेन वर्द्धते ॥

अर्थ—नवीन ज्वर, जुखाम, पसलीका शूल, गलग्रह (कंठ रुक) गलेके रोगमें तत्काल वमन किया होय, जुलाब ले चुका होय, उदरमें अफरा हुआ होय, वात कफकी कोई व्याधि होय, अरुचि, संग्रहणी, गुल्म रोग, श्वास, खांसी, विद्रधि, हिचकीका रोग इत्यादिमें तथा जिसने घृत तैलादिका स्नेह पान किया होय उनको शीतल जलपान करना वर्जित है। शीतल जलसे प्रयोजन बगैर पकाये हुए कच्चे जलसे है, किन्तु पकाये हुए जलका निषेध नहीं है। शीतल जलके सेवन करनेसे ज्वरकी वृद्धि होती है। जलका निषेध रोगोंके लिये किसी कालमें नहीं है लेकिन स्वल्प मात्रासे पीना चाहिये।

ज्वररोगीको लंघनावस्थामें भी जलपान विधान।

तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान् विमुञ्चति। अतः सर्वास्ववस्थासु न कचिद्वारि वर्जयेत् ॥ (हारीतवाक्य) तृष्णा गरीयसी घोरा सद्यः प्राण-

विनाशिनी। तस्माद्देयं तृषार्त्ताय पानीयं प्राणधारणम् । जीविनां जीवनं जीवो जगत्सर्वं तु तन्मयम्। अतोऽत्यन्तनिषेधेन नक्कचिद्वारि वारयेत् ॥ ज्वरे नेत्रामये कुष्ठे मन्देऽग्नावुदरे तथा। अरोचके प्रतिश्याये प्रसेके श्वयथौ क्षये। व्रणे च मधु मेहे च पानीयं मन्दमाचरेत् ॥ अतियोगेन सलिलं तृषितेऽपि प्रयोजितम् । प्रयाति श्लेष्मपित्तत्वं ज्वरितस्य विशेषतः ॥ (सुश्रुत)

अर्थ—सुश्रुतका कथन है कि पिलासके अति रोकनेसे मनुष्य (तथा अन्य प्राणी) मोह (बेहोश) हो जाते हैं और बेहोश होनेसे प्राणका त्याग हो जाता है । इससे आरोग्यावस्थामें तथा रुग्णावस्थामें किसी वैद्यका कथन जल पिलानेके निषेधमें नहीं पाया जाता । हारीत ऋषि कहते हैं कि तृषा बडी भारी घोर तत्काल प्राणनाशक होती है, इसलिये तृषार्तके प्राणोंकी रक्षा करनेवाला जल देना चाहिये, परन्तु अल्प मात्रासे देना चाहिये । सुश्रुत कहता है कि प्राणियोंका जीव जल है। यावत् दृश्य सम्पूर्ण जगत् जलमय है, इसीसे जहांपर जिस २ रोगमें जलपानका निषेध किया होय वहां सामान्य जलपानकी आज्ञा दी गई है । वास्तवमें जलपानका निषेध कहीं भी नहीं है, परन्तु किसी कफादिकी प्राणनाशक व्याधिमें सर्वथा जलपानका निषेध किया होय वहांपर थोडा २ गर्म जल देना चाहिये। क्योंकि ज्वर, नेत्ररोग, कुष्ठ, मन्दाग्नि, उदररोग, अरुचि, जुखाम, वमन, सूजन, क्षय-रोग, व्रण, मधु, प्रमेह इत्यादि रोगोंमें रोगीको थोडा २ जल पीनेको देवे । यदि अत्यन्त पिपासा मनुष्य भी-अधिक मात्रासे अपरिमित जल पी जावे तो वह जल उत्तम रीतिसे न पच उसका कफ पित्त बन जाता है। ज्वरवाला रोगी अति जलपान करे तो उसका पान किया हुआ जल विशेष करके कफ पित्त हो जाता है और बढा हुआ कफ पित्तज्वरको बढता है ।

रोगियोंको कैसा जल पीना चाहिये ।

क्वाथ्यमानं तु निर्वेगं निष्फेनं निर्मलं च यत् । तत्तोयं क्वथितं ज्ञेयं दोषघ्नं पाचनं लघु । वातश्लेष्मज्वरार्त्ताय हितमुष्णाम्बु तृष्यते ॥ दीपनं स्यात्तु कफजे वातपित्तानुलोमनम् । तद्धिमार्दवकृद्दोषस्रोतसां शीतम-न्यथा। तृष्णायां प्राप्तमुष्णाम्बु पिबेद्वातकफज्वरे । तत्कफं बिलयं नीत्वा तृष्णामाशु निवर्त्तयेत् । उदीर्य चाग्निं स्रोतांसि मृदुकृत्य विशो-

धयेत् । वातपित्तकफस्वेदशकृन्मूत्राणि सारयेत् । क्वाथ्यमानं तु निर्वेगं निष्फेनं निर्मलं तथा । अर्द्धावशिष्टं यत्तोयं तदुष्णोदकमुच्यते । ज्वर-कासकफश्वासपित्तवातामभेदसाम् । नाशनं पाचनं चैव पथ्यमुष्णोदकं सदा ॥

अर्थ–जो पकाहुआ जल उफान आनेसे रहित होय और जिसमें झाग न आते होयँ, किसी प्रकारका मल जिसमें न होय किन्तु निर्मल होय वह क्वथित जल जानना, यह वातादि दोषनाशक पाचक और हलका है । सुश्रुत कहता है कि वात कफज्वर-वालेको पिलास लगने पर पकाया हुआ जल हितकारी है, यह कफजन्य ज्वरमें जठ-राग्निको प्रदीप्त करता है । वात पित्तको अनुलोमन करता है तथा वातादि तीनों दोष और शरीरके अन्दरके स्रोतों (छिद्रों) को कोमल करता है । गर्म जलके गुणोंसे शीतल जल विरुद्ध करनेवाला है सो ज्वरवाले रोगीको कदापि शीतल जल न देवे । वृद्ध वाग्भट्ट कहते हैं कि वात कफज्वरमें यदि तृषा लगे तो उष्ण जल रोगीको पिलावे, वह गर्म जल पियाहुआ कफको निवृत्त करके तृषाको शीघ्र-शान्त करता है । जठराग्निको दीपन करके छिद्रोंको नरम कर शोधन करता है, तथा वात पित्त कफ स्वेद और मल मूत्रको निकालता है । (उष्ण जलके लक्षण) जो पका हुआ जल वेग-रहित तथा झागरहित निर्मल पकानेसे अर्द्ध भाग बाकी रहा होय उसको उष्णोदक कहते हैं । यह ज्वर खांसी कफ श्वास पित्त वात आम मेद इनको नष्ट करके पाचक है तथा मनुष्योंको गर्म जल सदैव पथ्य है ।

उष्ण जलकी अन्य विधि तथा गुण ।

अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेन द्विकेन वा । अथवा क्वथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं वदेत् ॥ श्लेष्मानिलाममेदोघ्नं दीपनं बस्तिशोधनम् । श्वासकासज्वरहरं पीतमुष्णोदकं निशि ॥ उष्णं तदाग्निजननं लघ्वच्छं बस्तिशोधनम् । पार्श्वरुक् पीनसाध्मानहिक्कानिलकफापहम् । शस्तं तच्छ्वासशूलेषु सद्यः शुद्धौ नवज्वरे ॥

अर्थ–अष्टमांश अवशेष अथवा चतुर्थांश अवशेष अथवा दो भाग अवशेष अथवा खूब तेज गर्म करने मात्रसे ही उष्णोदक सिद्ध होता है । (रात्रिके समय पियेहुए गर्म जलके गुण) रात्रिके समय गर्म जल पीनेसे कफ वात आम और मेदको निवृत्त करता है । अग्निको प्रदीप्त करके वस्तिको शोधन करता है तथा श्वास खांसी और ज्वर निवृत्त करता है, गर्म जलके रोग विशेषमें गुण गर्म जल जठराग्निको प्रकट करता है हलका और स्वच्छ है बस्ति शोधक है । तथा पसलियोंकी पीडा, पीनस

रोग, अफरा, हिचकी, और कफको नष्ट करता है। तृषा श्वास शूल रोग और जिस मनुष्यने तत्काल वमन किया होय व जुलाव लेकर शरीरकी शुद्धि की होय अथवा नवीन ज्वरवाला होय इत्यादिमें गर्म जल हितकारी है।

आरोग्याम्बु।

पादशेषन्तु यत्तोयं मारोग्याम्बु तदुच्यते। आरोग्यं तु सदा पथ्यं कासश्वासकफापहम्। सद्यो ज्वरहरं ग्राहि दीपनं पाचनं लघु। आनाहपाण्डुशूलार्शोगुल्मशोथोदरापहम्॥

अर्थ—जो पकाहुआ जल पादहीन अर्थात् १ सेरका तीन पाव रहा होय उसको आरोग्याम्बु कहते हैं, यह आरोग्याम्बु सदैव पथ्य और खांसी श्वास तथा कफनाशक है और शीघ्र ज्वरको नाशता है। ग्राही दीपन पाचन हलका है, यह अफरा पाण्डु शूल बवासीर वायगोला शोथ उदर रोगका नाशक है।

शृताम्बुके गुण।

दाहातीसारपित्तास्रमूर्च्छामद्यविषार्त्तिषु। मूत्रकृच्छ्रे पाण्डुरोगे तृष्णाच्छर्दिश्रमेषु च॥ मद्यपानसमुद्भूते रोगे पित्तोत्थिते तथा। सन्निपात समुत्थेषु शृतशीतं प्रशस्यते॥ शृताम्बु तत्रिदोषघ्नं यदंतर्बाष्पशीतिलम्। अरूक्षमनभिष्यन्दि कृमितृड्ज्वरहृल्लघु। धारापातेन विष्टंभि दुर्जरं पवनाहतम्। भिनत्ति श्लेष्मसंघातं मारुतं चापकर्षति। अजीर्णं जरयत्याशु पीतमुष्णोदकं निशि॥ दिवा शृतं पयो रात्रौ गुरुतामभिगच्छति। रात्रौ शृतं दिवा पीतं गुरुत्वमधिगच्छति॥ तत्तुपर्युषितं वह्निगुणोत्सृष्टं त्रिदोषकृत्। गुर्वम्लपाकविष्टंभि सर्वरोगेषु निन्दितम्॥ शृतशीतं पुनस्तप्तं तोयं विषसमं भवेत्। निर्यूहोऽपि तथा शीतपुनस्तप्तो विषोपमः॥ (सुश्रुत)

अर्थ—सुश्रुत कहता है कि, दाह, अतीसार, रक्त पित्त, मूर्च्छा, मद्यपानका उन्माद, विषके रोग, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डुरोग, तृषा, वमन, परिश्रम, मद्यसे उत्पन्न हुआ दाह पित्तजन्य रोग सन्निपातसे उत्पन्न हुए रोग इत्यादिक व्याधियोंमें (शृतशीत) जल (जो कि गर्म करके शीतल कर लिया होय) ऐसा जल देना उचित है। ऐसा जल त्रिदोष नाशक है, परन्तु जो गर्म करने बाद ढकाहुआ ही शीतल हो गया होय ऐसा जल रूक्ष नहीं होता किन्तु स्निग्ध हो शरीरके अन्दरके छिद्रोंको खोलनेवाला होता है। तथा कृमि तृषा ज्वरको हरण करता है और हलका है, जो जल वर्षा और वायुसे ताडित हुआ

ऐसा जल विष्टम्भ करता और विलम्बसे पचनेवाला यह कफको नष्ट कर वातको आकर्षित कर अजीर्णको पचाता है। ऐसा गर्म जल रात्रिको पान किया हुआ गुण करता है। और दिनका पकाया हुआ जल रखा रहनेसे रात्रिके समय भारी हो जाता है। इसी प्रकार रात्रिका पकायाहुआ जल रखा रहनेसे दिनको पिया जावे तो भारी हो जाता है। यदि उसी रखेहुए जलको पुनः पकावे तो गुण हीन हो जाता है। त्रिदोष करनेवाला होता है और भारी तथा इसका पाक खट्टा होता है, तथा विष्टम्भी है यह पुनः पकायाहुआ जल पिया जावे तो व्याधिकारक समझा जाता है और इसका सर्व रोगोंमें देना वर्जित है। लिखा भी है कि पकेहुए जलको शीतल करके पुनः पकानेसे विषके समान हो जाता है, इसी प्रकार यूष पेयादि खाद्य पदार्थभी पुनः पकानेसे विषके समान हो जाते हैं।

व्याधि विशेषमें शीतल जल हितकारी।

मुर्च्छापित्तोष्णदाहेषु विषे रक्ते मदात्यये। भ्रमश्रमपरीतेषु तमके श्वयथौ तथा। धूमोद्गारे विदग्धेऽन्ने शोषे च मुखकण्ठयोः॥ ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च शीतलाम्बु प्रशस्यते।

अर्थ—सुश्रुताचार्य कहते हैं कि—मूर्च्छा, पित्तकी व्याधि, गर्मी दाहरोग, विषविकार, रुधिर विकार (रक्तमें ऊष्मा) मदात्यय रोग, भ्रमरोग, परिश्रमसे थकित अथवा धूपमें मार्ग चलाहुआ, तमकश्वास, सूजन, मुखसे धूंआके समान डकार आती होय, आहार कियेहुए अन्नकी विदग्धावस्था होय, कण्ठ, मुख सूखते होयँ, ऊर्ध्वगत रक्त पित्तका रोग होय इत्यादि रोगोंमें विना पकाहुआ शीतल जल देना अति हितकारी है। ऊपर जो दाहमें गर्म कियाहुआ शीतल जल लिखा है सो ज्वरसे उत्पन्न हुए दाहमें देना उचित है और दाह रोगमें शीतल जल व बर्फ देना ही हितकारी है।

रोगमें जलके औषध विशिष्ट संस्कारकी विधि।

पित्तमद्यविषार्त्तेषु तिक्तकैः शृतशीतलम्। मुस्तपर्पटकोदीच्यछत्राख्योशीरचन्दनैः। शृतं शीतं जलं दद्यात्तृड्दाहज्वरशान्तये॥

अर्थ—सुश्रुत कहता है कि—पित्त रोग मद्य विकार और जो मनुष्य मद्यपानके उपद्रवोंसे व्याकुल हो उसको तिक्त वस्तुओंके संस्कारसे सिद्ध कियाहुआ शीतल जल देना उचित है। जैसा कि नागरमोथा, पित्तपापडा, नेत्रवाला, धनियां, खस, लाल चन्दन इन औषधियोंको जलमें डालके पका और जलको शीतल करके पिलाश दाह और ज्वरकी शान्तिकी निवृत्तिके लिये देवे।

जलका तीन प्रकारका पाक।

आमं जलं पाकमुपैति यामं पक्वं पुनः शीतलमर्द्धयामम् ।
पक्वं कदुष्णं च ततोऽर्धकालात्रयः सुपीतस्य जलस्य पाके ॥

अर्थ–जिस जलको गर्म नही किया है वह स्वभावसे ही शीतल जल १ पहर ३ घंटेमें पच जाता है, जो जल पकाकर शीतल किया गया है वह जल अर्ध पहर डेढ घंटेमें पच जाता है । और जो जल पकाकर कुछ गर्म चाहके समान पीया जावे वह चौथाई पहर (पौन घंटे) में पच जाता है, तीन प्रकारका पाक जलका है। बालकोंको सदैव जल पकाकर रोगके अनुसार देना चाहिये, जो जल पकाया नहीं जाता वह बालकोंको विशेष हानि पहुँचानेवाला होता है । प्रायः जलमें छोटे २ अणु जन्तु होते हैं, कच्चे जलमें वह बालकोंके पेटमें चले जाते हैं और पेटमें जाकर बढने लगते हैं। यहांतक कि १ व डेढ फुटके अनुमान लम्बे पतले हो जाते हैं, इनको औरत लोग केंचुआ बोलती हैं । सो बालकोंको कच्चा जलपान कदापि न करावे किन्तु शृत शीताम्बु (गर्म किया हुआ) शीतल देना ही योग्य है । रोगकी अवस्थामें रोगके अनुसार देना जैसा कि कफके रोगमें गर्म कियाहुआ गुनगुन देना चाहिये ।

ज्वरमें दुग्धपान।

अजादुग्धं गुडोपेतं पातव्यं ज्वरशान्तये । तदेव तु पयः पीतं तरुणे हन्ति मानवम् ॥ जीर्णे ज्वरे कफे क्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपमम् । तदेव तरुणे पीतं विषवद्धन्ति मानवम् ॥

अर्थ–ज्वरकी शान्ति करनेके अर्थ बकरीके दूधको गर्म करके उसमें गुड मिलाकर बालकको पिलावे । परन्तु यह दुग्ध तरुण ज्वरमें पिलाया जावे तो प्राणको हनन (मृत्यु) करता है, इस कारण ज्वरके तीव्र वेगमें दूध न पिलाना चाहिये । जीर्ण ज्वरमें और कफ क्षीण होजाने पर उपरोक्त विधिसे पियाहुआ दूध अमृतके समान गुण करता है, यदि यही दूध तरुण ज्वरमें पिलाया जावे तो विषके समान गुण कर प्राणोंका नाशक हो जाता है । ज्वरके तीव्र वेगमें व नूतन ज्वरमें माता व धाय जिसका दूध बालक पीता होय उसीका दूध पिलाना चाहिये । ज्वरका वेग शान्त होनेपर यदि आवश्यकता पडे तो बकरीका दूध देना योग्य है । यदि अन्नाहारी बालकको लंघनकी मर्यादा पर न रहा जाय और वह आहारकी इच्छा करे और चिकित्सकको यह निश्चय हो जावे कि दुग्ध पानसे ज्वर नहीं बढेगा किन्तु ज्वरका वेग शान्त हो गया है तो बकरीका दुग्ध बालकको उपरोक्त विधिके अनुसार देवे । यदि चिकित्सकको यह निश्चय होवे कि दुग्ध देनेसे ज्वरकी वृद्धि हो कफ कुपित होगा

तो कदापि दुग्ध न देना चाहियें । निष्केवल अन्नाहारी बालक उष्ण जलके आश्रयसे ३ व ४ लंघन भले प्रकार सहन करसक्ता है ।

ज्वरपर संशमनीय कषाय ।

अथसंशमनीयानि कषायाणि निबोध मे । सर्वज्वरेषु देयानि यानि वैद्येन जानता ॥ वृश्चिकबिल्ववर्षाभूपयस्योदकमेव च । पचेत् क्षीराव-शेषं तत्पेयं सर्व ज्वरापहम् ॥

अर्थ—अब संशमनीय क्वाथोंको श्रवण करो, जिनको विज्ञ वैद्य सब ज्वरोंमें उपचार करें । सफेद पुनर्नवा (विषखपराकी जड) बेलकी जडकी छाल, और लाल फूलकी पुनर्नवा (सांठ) की जड, इनको १ भाग दूध और दो भाग जल मिलाकर पकावे, जब जल जलकर दूधमात्र बाकी रहे तब उतार कर छान लेवे और ज्वरके रोगीको देवे, इसके सेवनसे सर्व प्रकारके ज्वर शान्त हो जाते हैं ।

क्षीरपाककी विधि ।

क्षीरमष्टगुणं द्रव्यात्क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम् । क्षीरावशेषं कर्त्तव्यं क्षीरपाके ह्ययं विधिः ॥ उदकाद्द्विगुणं क्षीरं शिंशपासारमेव च । तत्क्षीरशेषं कथितं पेयं सर्वज्वरापहम् ॥

अर्थ—क्षीरपाक—एक पल (चार तोला) औषध जौकुट करके लेवे और उसमें ८ पल (३२ तोला) बकरी व गौका दुग्ध डाले और ३२ पल (१२८ तोला) साफ जल मिलाकर पकावे, दुग्ध और जल मिलाकर अग्निपर रखे जब उफान आ जावे तब औषध डाले कभी २ कच्चे दूधमें औषध डालनेसे फट जाता है । जब पकते २ जल जलजावे और दूधमात्र बाकी रहे तब उतार कर छान ज्वरके रोगीको पिलावे । इसके सेवनसे जीर्ण ज्वर विषमज्वर शान्त होते हैं । (दूसरी विधि) १ तोला शीशमका सार (शीशमकी लकडीके बीचका सुर्ख भाग) १ तोला (खस) गौ व बकरीका दुग्ध १६ तोला और जल ३२ तोला इनको मिलाकर मन्दाग्निसे पकावे जब जल जलजावे और दूध मात्र बाकी रहे तब उतार कर छान लेवे और ज्वरवाले रोगीको पिलावे, यह क्षीरपाक सर्व ज्वर नाशक है । क्षीर पाकमें इतना ध्यान अवश्य रखे कि जल जलनेके अनन्तर दुग्ध न जलने पावे, जितना दुग्ध माप-कर डाला जाय उतना ही बाकी रहना चाहिये । यदि कुछ भाग दुग्धका जल जावेगा तो दुग्ध भारी हो जावेगा तो रोगीको उसके पचानेमें अधिक विलम्ब लगता है । वैद्यको उचित है कि बालक वृद्ध व युवा किसी भी अवस्थामें तरुण ज्वरवाले रोगीको

काथ व दुग्ध तथा क्षीरपाक कदापि न देवे । यदि देता है तो नीचे लिखाहुआ दोष प्राप्त होता है और तरुण ज्वरमें अधिक जलपान भी हानि करनेवाला हो जाता है, किन्तु दुग्धाहारी बालकको माता व धायका दुग्ध स्वल्प मात्रासे पिलाया हुआ ही हितकारी होता है । यदि माता और धायका दुग्ध भी मात्रासे अधिक पिलाया जावे तो पूर्ण पाचनक्रिया न होनेसे बालकको वमन आने लगती है ।

तरुण ज्वरमें काथ देना निषध ।

न कषायं प्रशंसन्ति नराणां तरुणे ज्वरे । कषायेणाकुलीभूता दोषा जेतुं सुदुस्तराः ॥ कषायं यः प्रयुञ्जीत नराणां तरुणज्वरे । स सुप्तकृष्णसर्पं तु कराग्रेण परामृषेत् ॥

अर्थ—तरुण ज्वरवाले प्राणियोंको काथ (काढा) देना वैद्य उत्तम नहीं कहते हैं, क्योंकि काढा देनेसे बढेहुए दोष अपने मार्गको छोंडकर इधर उधर व्यतिक्रम त्याग कर चले जानेसे उनका शमन करना और चिकित्सकका जीतना फिर दुस्तर हो जाता है । जो चिकित्सक तरुण ज्वरमें मनुष्योंको काढा पिलाता है वह शयन करते हुए सर्पको अपने हाथोंसे जगाता है ।

तरुण ज्वरमें काथ देनेके दोष ।

दोषाः वृद्धाः कषायेण स्तम्भितास्तरुणज्वरे । स्तभ्यन्ते न विपच्यन्ते कुर्वन्ति विषमज्वरम् ॥ न च्यवन्ते न पच्यन्ते कषायैः स्तम्भिता मलाः ॥ तिर्यग्विमार्गगा वाते घोरं कुर्युर्नवज्वरम् ।

अर्थ—यादि तरुण ज्वरमें बढेहुए दोष काढा देनेसे स्तम्भित कर दिये जावें किन्तु उनकी प्रवृत्ति निवृत्त कर दी जावे तो वह दियाहुआ काढा दोषोंका स्तम्भन कर सुखपूर्वक दोष नहीं पचते प्रत्युत दुःख देकर विलम्बसे दोष पचते हैं । तरुण ज्वरमें काथके पीनेसे स्तम्भित मल न तो निकलता है न पचता है व तिर्छी गतिको प्राप्त होकर घोर नवीन ज्वरकी वृद्धि करते हैं । इससे नवीन तरुण ज्वरमें चिकित्सक काढा कदापि न पिलावे ।

तरुण (नवीन) ज्वरमें वमन कराना निषेध ।

अनुपस्थितदोषाणां वमनं तरुणज्वरे । हृद्रोगं श्वासमानाहं मोहञ्च कुरुते भृशम् । सद्यो भुक्तस्य वा जाते ज्वरे संतर्पणोत्थिते । वमनं वमनार्हस्य शस्तमित्याह वाग्भटः ।

अर्थ—नूतन उत्पन्न हुए ज्वरमें यदि कफादिक दोषोंकी उपस्थिति और वृद्धिसे स्वयं ही रोगीकी तबीयत बिगड कर वमन हो जावे तो कुछ दोष नहीं है । परन्तु दोषोंकी अनुपस्थितिमें (औषध प्रयोग देकर) तरुणज्वरमें वमन कराई जावे तो वह हृद्रोग स्वास अफरा मोहको उत्पन्न करे है । इससे तरुण ज्वरमें वमन करानेका निषेध है । परन्तु रोगकी अवस्था विशेषमें वमन कराना उचित है, जैसे कि जिस रोगीको तत्काल आहार करनेसे ज्वर उत्पन्न हुआ होय अथवा तर्पण करनेसे ज्वर उत्पन्न हुआ होय ऐसे वमन कराने योग्य रोगीको वमन कराना उत्तम है । (यह वाग्भट्टका कथन है) ।

वमन कराने पर लंघन विधान और लंघन करानेपर वमनका निषेध ।

वमितं लंघयेत्प्राज्ञो लंघितं न तु वामयेत् । वमनक्लेशबाहुल्याद्धन्या-ल्लंघनकर्षितम् । न कार्य्यं गुर्विणीबालवृद्धदुर्वलभीरुभिः ।

अर्थ—विज्ञ वैद्य वमन करायेहुए व स्वयं वमन करेहुए रोगीको लंघन करा सक्ता है, परन्तु जिस रोगीने मर्यादा पूर्वक लंघन किया होय उसको लंघनके पीछे वमन न करावे । क्योंकि लंघनकी मर्यादासे जो रोगीको कृश हो चुका है उसको वमन करानेसे अत्यन्त क्लेश पहुँचता है और वमनके क्लेशकी बाहुल्यतासे रोगीकी कदाचित मृत्युका होना सम्भव है । गर्भवती स्त्री बालक अति वृद्ध तथा डरपोक इनको लंघन न करावे और हलका पथ्याहार देता रहे । यदि साम ज्वर होवे तो पाचन औषध देवे और निराम ज्वर होय तो शमनकर्ता औषध देनी उचित है ।

पाचन और शमनके लक्षण ।

यत्पचत्याममाहारं पचेदामरसं च यत् । यदपक्वान् पचेद्दोषांस्तद्धि-पाचनमुच्यते॥ न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि । समीकरोति संवृद्धान् तत्संशमनमुच्यते ॥

अर्थ—जो द्रव्य (औषध) कच्चे आहारको पचावे, जो अपक्व दोषों (वात पित्त कफ) को पचावे उस द्रव्यको पाचन कहते हैं। और जो द्रव्य बिगडे दोषोंको शोधन न करे और जो समान दोष हैं उनकी वृद्धि न करे और वृद्धिको प्राप्त हुए दोषोंको जो समान करे उस द्रव्य (औषध)को संशमन अथवा शमन कहते हैं ।

तरुण ज्वरमें संशोधनका निषेध (तथा शोधनके लक्षण ।)

छर्दिमूर्च्छामदं मोहं भ्रमतृड्विषमज्वरान् । संशोधनस्यापानेन प्राप्नोति

तरुणज्वरी ॥ स्थानाद्बाहिर्नयेदूर्ध्वमधो वा दोषसंचयम् । संशोधनं तदेव स्याद्देवदालीफलं यथा ॥

अर्थ—सुश्रुत वैद्य कहता है कि तरुण ज्वरवाला रोगी संशोधन औषधका पान करे तो आगे लिखेहुए रोग उत्पन्न होते हैं छर्दि, मूर्च्छा, मस्तपन, मोह, भ्रम, तृषा और विषम संज्ञक ज्वर । (शोधनके लक्षण) जो द्रव्य (औषध) पित्त कफादि दोषोंको उनके नियत स्थानसे निकाल कर ऊपरके मार्ग (मुखसे) नीचेके मार्ग (गुदासे) निकाल कर बाहर करदेवे उसको संशोधन द्रव्य (औषध) कहते हैं । जैसे कि वृंदालके फल । ये दवा वमन विरेचन दोनो ही कार्योंको करती है । वमन कारक द्रव्य जैसे वच, मैनफल, अपामार्ग, बालार्क, रेचक (दस्त लानेवाली) औषध जैसा कि निशोत, सनाय हरड, गुलाबके फूल, अमलतासका गूदा इत्यादि तीव्र रेचक जैपाल (जमालगोटा) ।

शोधन साध्य रोग ।

सद्यो ज्वरे विषे जीर्णे मन्देऽग्नावरुचौ तथा । स्तन्यरोगे च हृद्रोगे कासे श्वासे च वामयेत् ॥ जीर्णज्वरगरः छर्दिगुल्मप्लीहोदरेषु च । शूले शोथे मूत्रघाते कृमिरोगे विरेचयेत् ॥

अर्थ—तत्कालके उत्पन्न हुए ज्वरमें विष (जहर)के विकारमें (वृंदालफल सबसे उत्तम शोधन है) अजीर्ण, मन्दाग्नि, अरुचि, स्त्रियोंके स्तनरोग हृदय सम्बन्धि रोग, श्वास, खांसी इन उपरोक्त रोगोंको वमन कराके जीतना चाहिये । पुराना ज्वर, विष रोग, छर्दि रोग, गुल्म रोग, प्लीहा रोग, उदरशूल, सूजन, मूत्राघात रोग, कृमिरोग इन रोगोंमें विरेचन (दस्त) कराना उचित है ।

संशोधन तथा संशमनके अयोग्य रोगी ।

पीताम्बुर्लंघनक्षीणोऽजीर्णो भुक्तः पिपासितः ।
न पिबेदौषधं जंतुः संशोधनमथेतरम् ॥

अर्थ—जिस रोगीने तिक्त जलपान किया होय, जो रोगी लंघन करनेसे क्षीणबल होगया होय, अजीर्णवाला जिसने तत्काल आहार किया होय, जो तृषातुर होय ये मनुष्य वमन विरेचन लानेवाली औषधको न पावें ।

ज्वर रोगीका निवास स्थान ।

सामान्यतो ज्वरी पूर्वं निवाते निलये वसेत् ।
निर्वातमायुषो वृद्धिमारोग्यं कुरुते यतः ॥

अर्थ—सामान्यतासे ज्वरवाले रोगीको जिस समयसे ज्वर उत्पन्न होय उसी दिवससे जहाँ विशेष हवा न आती होय ऐसे स्थानमें उसका निवास रक्खे क्योंकि निर्वात स्थानमें ज्वरवाले रोगीको रहनेसे (सन्निपातादि) उपद्रवोंका भय नहीं रहता और रोगीकी आयु बढती है। इस कथनसे यह न समझना कि वायुका प्रवेश बिलकुल न होनेपावे ऐसा होनेसे मकानकी वायु दूषित हो जाती है। जहां रोगीको हवाके फट्कारे लगते होवैं ऐसे मकानमें न रखना चाहिये।

निर्वातसेवनात्स्वेदाल्लंघनादुष्णवारिणः ।
पानादामज्वरे क्षीणे पश्चादौषधमाचरेत् ॥

अर्थ—अर्थात् निर्वात स्थानमें ज्वरवाले रोगीके निवास करनेसे और पसीनेके निकलनेसे, उष्ण जलके पीनेसे तथा लंघनसे आम क्षीण हो जाती है और आम क्षीण होनेपर औषध प्रयोग किया जावे।

ज्वर रोगीको पंखेकी पवनका विधान ।

व्यजनस्यानिलस्तृष्णास्वेदमूर्च्छाश्रमापहः । तालवेन्तभवो वातस्त्रिदोषशमनो मतः ॥ वंशव्यजनजः सोष्णो रक्तपित्तप्रकोपनः । चामरो वस्त्रसंभूतो मायूरो वेत्रजस्तथा । एते दोषजिता वाताः स्निग्धा हृद्या सुपूजिताः ॥

अर्थ—ज्वरवाले रोगियोंको पंखेकी पवन हितकारी है, यदि बालक व ज्वरवाले अन्य रोगियोंको हवाकी इच्छा होवे तो पंखेसे पवन करना चाहिये। पंखेकी हवा तृषा, पसीने, मूर्च्छा, श्रमको निवृत्त करती है। ताडके पंखेकी पवन त्रिदोष (वात पित्त कफ) नाशक है, बाँसके पंखेकी वायु गर्म है तथा रक्त पित्तको कुपित करती है। चमर और कपडेके पंखेकी वायु तथा मोर पंखके पंखेकी और बेंतके पंखेकी वायु ये सब त्रिदोष नाश करनेवाली स्निग्ध हृदयको हितकारी सेवन करने योग्य हैं।

ज्वरमें वर्जित कर्म्म ।

परिषेकान् प्रदेहांश्च स्नेहान्संशोधनानि च । दिवास्वप्नं व्यवायञ्च व्यायामं शिशिरं जलम् ॥ क्रोधप्रवातभोज्यांश्च वर्जयेत्तरुणज्वरी ॥ (सुश्रुत)

अर्थ—स्नानादि परिषेक और लेपनादि व मालिश स्नेह पान संशोधन कहिये वमन विरेचनादि दिनमें शयन करना पुरुषको स्त्री सहवास और स्त्रीको पुरुष सहवास, शीतल जल पान, क्रोध करना, हवा खाना, भोजन करना, इन सबको तरुण ज्वरवाला रोगी त्याग देवे।

ज्वरनाशक फलोंका विधान।

द्राक्षादाडिमखर्जूरप्रियालैः सपरूषकैः। तर्पणार्हस्य दातव्यं तर्पणं ज्वरनाशनम्॥ तत्र तर्पणमेवादौ प्रदेये लाजसक्तुभिः। ज्वरापहैः फलरसैर्युक्तं समधुशर्करम्॥ (चरक)

अर्थ—दाख (मुनक्का) अनार पके हुए खिजूरफल, पकेहुए खिरनी फल, फालसे इनसे ज्वर रोगीको तर्पण करावे दाह तृषा छार्दि और लंघन करनेवालेको ये फल हितकारी हैं और ज्वरको नाशते हैं। चरक ऋषि कहते हैं कि ज्वर रोगीको प्रथम चावलकी खीलोंका सत्तू और ज्वरनाशक फलोंका स्वरस, शहत और मिश्री मिलाकर तर्पण पिलावे।

ज्वर शान्तिके लक्षण।

देहो लघुर्व्यपगतक्लमगोहतापः पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम्। स्वेदः क्षवः प्रकृतियोगमनोऽन्नलिप्सा कण्डूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि॥

अर्थ—(ज्वर शान्तिके लक्षण) शरीर हलका होय और अग्नि नष्ट हो गई होय बेहोसी तन्द्रा ताप निवृत्ति होगये होयँ मुखमें छाले होगये होयँ नेत्र नासिका आदि इन्द्रियोंमें स्वच्छता आ गई होय, व्यथा रहित होय, पसीने आवें, छींक आवे, प्रकृति स्वस्थ हो जावे, भोजन करनेकी रुचि होय, मस्तकमें खुजलीका होना इत्यादि लक्षण विगत ज्वरके हैं। ऊपर ज्वर प्रकरणकी चिकित्सा इस कायदेसे लिखी गई है कि बालकोंके अतिरिक्त जवान स्त्री पुरुषोंको भी पृथक् दोषोंसे (वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर) उत्पन्न हुआ होय तो वह भी वैद्यक कायदेसे उपरोक्त ज्वरोंकी चिकित्सा कर सकें। क्योंकि मुख्य करके यह ग्रन्थ स्त्री चिकित्साका है सो जो रोग बालक वृद्ध तरुण सबको समान रूपसे होते हैं उनके औषध प्रयोग भी समान ही हैं, केवल औषधकी मात्रामें न्यूनाधिकता करना योग्य है। पृथक् दोषोंसे उत्पन्न हुए ज्वरोंकी चिकित्सा सामान्य रूपसे लिखी गई है, विशेष विस्तारपूर्वक ज्वरोंकी चिकित्सा देखनी होय तो वैद्यकके प्रकरण बडे ग्रन्थोंमें देखना उचित है। और वहीं पर द्वन्द्वज (वात पित्त ज्वर, वात कफ ज्वर, पित्त कफज्वर) इन दोदो दोषोंसे संयुक्त ज्वर तथा सन्निपात वातपित्त कफ तीनोंके मिलनेसे अथवा तीनों दोषोंके एक साथ कुपित होनेसे त्रिदोष जन्य ज्वर उत्पन्न होता है। इसके त्रयोदश (तेरह) भेद हैं। अभिघातादिके लगनेसे जो ज्वर उत्पन्न होय एवं आगन्तुक ज्वर विषम ज्वरके (संतत, सतत, अन्येद्यु, तृतीयक, चातुर्थिक) ये पांच भेद हैं तथा जीर्ण ज्वर, इन सबका निदान और चिकित्सा आयुर्वेदके बडे ग्रन्थोंमें देखनी चाहिये।

बालकके अतीसारकी चिकित्सा ।

समङ्गा शाल्मली वेष्टं धातकी पद्मकेसरैः ।
पिष्टैरेतैर्यवागूः स्यादतीसारविनाशिनी ॥

अर्थ–मंजिष्ठ (मंजीठ) सेमलका गोंद (मोचरस) धायके फूल, कमलकी केशर इनको परिमित मात्रासे समान भाग लेकर पीसकर जलमें छानकर यवागू (लपसी) बनावे, अथवा काढा, तथा चूर्ण बनाकर शहतमें चटानेसे बालकका अतीसार निवृत्त होता है ।

बिल्वादि क्वाथ व चूर्ण ।

बिल्वञ्च पुष्पाणि च धातकीनां गजं सलोध्रं गजपिप्पली च ।
क्वाथावलेहौ मधुना विमिश्रौ बाल्येषु योज्यावतिसारितेषु ।

अर्थ–बेलगिरी, धायके फूल, नागकेशर, सफेद लोध (इसको पठानी) लोध भी बोलते हैं । गजपीपल इनको समान भाग लेकर परिमित मात्रासे क्वाथ बनाकर शहत मिश्री डालकर पिलावे, अथवा चूर्ण बनाकर शहत मिश्रीमें अवलेह बनाकर चटानेसे बालकोंका अतीसार रोग निवृत्त होता है ।

समंगादि क्वाथ ।

समङ्गा धातकी लोध्रं शारिवाभिः शृतं जलम् ।
विवृद्धेऽपि शिशोर्देयमतीसारे समाक्षिकम् ॥

अर्थ–लज्जावन्ती (छुईमुई) की जड, धायके फूल, लोध, शारिवा इनको समान भाग लेकर परिमित मात्रासे क्वाथ बना शहत मिलाकर बालकको पिलावे अथवा चूर्ण बनाकर शहतमें अवलेह बनाकर चटावे इसके सवनसे बालकोंका अति वढाहुआ अतीसार निवृत्त होता है ।

बालकके सर्वातीसार पर नागरादि क्वाथ ।

नागरातिविषामुस्तावालकेन्द्रयवैः भृतम् ।
कुमारं पाययेत्प्रातः सर्वातिसारनाशनम् ॥

अर्थ–सोंठ, अतीस, नागरमोथा, नेत्रवाला, इन्द्रजौ इन सवको समान भाग लेकर परिमित मात्रासे क्वाथ बनाकर शहत डालके बालकको पिलानेसे सर्वातीसार निवृत्त होते हैं ।

बालकके आमातीसार पर विडङ्गादि चूर्ण ।

विडङ्गान्यजमोदा च पिप्पली तण्डुलानि च । एषामालोड्य चूर्णानि सुखं तप्तेन वारिणा । आमे प्रवृत्तेऽतीसारे कुमारं पाययेद्भिषक् ॥

अर्थ—वायविडङ्ग, अजमोद, पीपल, सांठी अथवा लाल चावल इनको समान भाग लेकर अति सूक्ष्म चूर्ण बना परिमित मात्रासे किञ्चित् ऊष्ण जलके साथ बालकको सेवन करानेसे बालकका आमातीसार निवृत्त होता है ।

नागरादि क्काथ ।

नागरातिविषामुस्ताक्काथः स्यादामपाचकः ।
विषं वा सगुडं लीढं मधुनामहरं परम् ॥

अर्थ—सोंठ, अतीस, नागरमोथा इनको समान भाग लेकर क्काथ बनावे और शहत डालकर बालकको पिलानेसे आमको पचाता है । इसी प्रकार अतीस और पुराना गुड दोनोंको समान भाग लेकर परिमित मात्रासे शहतमें अवलेह बनाकर चटानेसे आमको हरता है ।

बालकके रक्तातीसार पर मोचरसादि यवागू ।

मोचरसः समंगा च धातकी पद्मकेशरम् ।
पिष्टैरेतैर्यवागूः स्याद्रक्तातीसारनाशिनी ॥

अर्थ—मोचरस (सेमरका गोंद), छुईमुईकी जड, धायके फूल, कमलकी केशर इनको समान भाग लेकर क्काथ बनावे और इस क्काथमें यवागू बनाकर बालकको पिलावे तो रक्तातीसार निवृत्त होता है । तथा मीठे अनारकी छालका सूक्ष्म चूर्ण शहत व दूधके साथ देनेसे रक्तातीसार निवृत्त होता है ।

प्रवाहिकातीसार पर लाजादि चूर्ण ।

लाजा सयष्टी मधुका शर्करा क्षौद्रमेव च ।
तण्डुलोदकयोगेन क्षिप्रं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥

अर्थ—चावलकी खील, मुलहटी, मिश्री, शहत इन सबको मिलाकर भीगे हुए चावलोंके जलके साथ पीनेसे बालकका प्रवाहिका अतीसार तत्काल निवृत्त होता है ।

पिष्ट्वा पटोलमूलं च शृंगवेरं वचामपि । विडङ्गान्यजमोदाञ्च पिप्पली तण्डुलानि च ॥ एतानि लोड्य सर्वाणि सुखं तप्तेन वारिणा । आमप्रवृत्तेऽतीसारे कुमारं पाययेद्भिषक् ॥

अर्थ—परवलकी सूखी हुई जड, सोंठ, वच, वायविडङ्ग, अजमोद, छोटी पीपल, लाल चावल ये सब द्रव्य समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनाकर परिमित मात्रासे गर्म जलके साथ पिलानेसे बालकका आमातीसार शान्त होता है ।

ज्वरातीसार पर रजन्यादि ।

हरिद्राद्वययष्ट्याह्वसिंहीशक्रयवैः शृतम् ।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नः कषायः स्तन्यदोषजित् ॥

अर्थ—हल्दी, दारु हल्दीकी छाल, मुलहटी, कटेलीकी जड, इन्द्रजौ, इनको समान भाग ले जौकुट करके परिमित मात्राका क्काथ बना शहत डालकर बालकको पिलावे तो ज्वरातीसार निवृत्त हो दुग्धदोषसे उत्पन्न हुए विकारको भी नष्ट करता है ।

धातक्यादि अवलेह ।

धातकीबिल्वधान्याकलोध्रेन्द्रयवबालकैः ।
लेहः क्षौद्रेण बालानां ज्वरातीसारवातनुत् ॥

अर्थ—धायके फूल, बेलगिरी, धनियां, लोध, इन्द्रजौ, खस इनको समान भाग लेकर कूट छानकर सूक्ष्म कपडछान चूर्ण बना परिमित मात्रासे शहतके साथ मिलाकर अवलेह बनाकर बालकको चटावे तो ज्वरातीसार, वातविकार नष्ट होता है ।

लोध्रादि अवलेह ।

लोध्रेन्द्रयवधान्याकधात्रीह्रीवेरमुस्तकम् ।
मधुना लेहयेद्बालं ज्वरातीसारनाशनम् ॥

अर्थ—लोध, इन्द्रजौ, धनियां, आमले, खस, नागरमोथा इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना परिमित मात्रासे शहतके साथ अवलेह बनाकर बालकको सेवन करानेसे ज्वरातीसार निवृत्त होता है ।

प्रियंग्वादि कल्क ।

कल्कः प्रियङ्गुकोलास्थिमधुमुस्ताञ्जनैः कृतः ।
क्षौद्रलीढः कुमारस्य छर्दितृष्णातिसारनुत् ॥

अर्थ—फूलप्रियंगु, बेरके गुठलीकी मिंगी, छिलीहुई मुलहटी, नागरमोथा, रसौत (रसौतके अभावमें दारु हल्दीकी छाल) इन सबको समान भाग लेकर कल्क बना (पिट्ठी) के माफिक पीसकर उसमें शहत मिलाकर बालकोंको चटानेसे वमन तृषा और अतिसार नष्ट होता है ।

बृहत्यादि क्काथ ।

बृहतीफलमूलत्वक्कृष्णाग्रन्थिकसंभवः । तुगाक्षीरीयुतः क्काथः पीतो हन्ति शिशोर्वमिम् । मूर्च्छां श्वासं ज्वरं कासमतिसारञ्च पीनसम् ।

अर्थ—बडी कटेली (सफेद फूल) की कटेलीके फूलका जीरा (जो कि चावलकी आकृतिका होताहै) और कटेलीकी जडकी छाल, छोटी पीपलके बीज, पीपलामूल, इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्वाथ बनावे, थोडा वंशलोचन डालकर बालकको पिलावे तो वमन, मूर्च्छा, श्वास, ज्वर, खांसी, अतीसार, पीनस इत्यादि रोगोंको निवृत्त करे।

मधुसर्पिर्विडङ्गानि सरलं देवदारु च । पटोलकुटजारिष्टसप्तपर्णयवानिका। ज्वरं छर्दिमतीसारं शमयेच्चूर्णकं त्विदम् ॥

अर्थ—वायविडङ्गके बीज, धूप सरल, देवदारु, पटोलपत्र, कुडाकी छाल, नीमकी जडकी छाल, सतौनाकी जडकी छाल, अजवायन इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना परिमित मात्रासे शहत घृतके साथ अवलेह बनाकर बालकको चटावे तो इसके सेवनसे बालकका ज्वर, वमन, अतीसार नष्ट होता है।

धान्यमतिविषा शृङ्गी गजाह्वा श्लक्ष्णचूर्णितम्।
बालानां छर्द्यतीसारं मधुना हन्ति लेहनात् ॥

अर्थ—धनियां अतीस, काकडाशृङ्गी, गजपीपल इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना परिमित मात्रासे शहत मिलाकर बालकको चटावे तो बालककी वमन तथा अतीसार निवृत्त होय ।

श्वेतकमलकिञ्जल्कं संपिष्टं तंदुलाम्बुना। मत्स्यण्डिमधुसंयुक्तं क्षिप्रं हन्ति प्रवाहिकाम्। बिल्वमूलकषायेण लाजाश्चैव सशर्कराः। आलोड्य पाययेद्बालं छर्द्यतीसारनाशनम्।

अर्थ—सफेद फूलके कमलकी केशर परिमित मात्रासे पीसकर शहत मिलाकर चावलके जलके साथ बालकको पिलानेसे प्रवाहिकातीसार रोग निवृत्त हो जाता है। इसी प्रकार बेलकी जडकी छालका परिमित मात्रासे क्वाथ बनाकर उसमें चावलकी खीलोंका चूर्ण और मिश्री मिलाकर पीनेसे बालकोंका वमन और अतीसार निवृत्त होता है।

बालककी संग्रहणीकी चिकित्सा।

पिप्पलीविजयाशुंठीचूर्णं मधुयुतं भिषक्। दत्त्वा निर्जित्य ग्रहणीं पूजां नियतमाप्नुयात् ॥ कृष्णा महौषधं बिल्वं कुटजं सयवानिकम् । मधुसर्पिर्युतं लीढं वातलां ग्रहणीं जयेत्। नागरं मुस्तकं बिल्वं चित्रकं ग्रंथिकं शिवा ॥ चूर्णमेतन्मधुयुतं कफजां ग्रहणीं जयेत्। सगुडं नागरं

बिल्वं यः खादति हिताशनः ॥ त्रिदोषग्रहणीरोगान्मुच्यते नात्र संशयः । मुस्तकातिविषा बिल्वं चूर्णितं कौटजं तथा । क्षौद्रेण लीढ्वा ग्रहणीं सर्वदोषोद्भवां जयेत् ।

अर्थ-पीपल, धुलीहुई भांग, सोंठ इनको समान भाग लेकर वारीक चूर्ण बना परिमित मात्रासे शहतमें मिलाकर बालकको चटावे तो बालककी संग्रहणी निवृत्त होती है और चिकित्सक पूजा और यशको प्राप्त होता है । पीपल, सोंठ, वेलगिरी, कुडाकी छाल, अजवायन इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना परिमित मात्रासे शहतमें मिलाकर बालकको चटावे तो वातजन्य संग्रहणी निवृत्त होय । सोंठ, नागरमोथा, वेलगिरी, चित्रक, पीपलामूल, हरड इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना परिमित मात्रासे शहतमें मिलाकर बालकको चटावे तो कफजन्य संग्रहणी निवृत्त होय । जिस बालकको हित आहार दिया जावे और गुड, सोंठ, बिल्वकी जडकी छालः इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करके अवलेह बनाकर खिलानेसे त्रिदोष जन्य संग्रहणी निवृत्त होती है, इसमें संदेह नहीं है । नागरमोथा, अतीस, बिल्वकी गिरी, इन्द्रजौ इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनाकर शहतके साथ परिमित मात्रासे बालकको चटावे तो वैद्य त्रिदोषजन्य संग्रहणीको जीत लेता है ।

बालककी संग्रहणी पर रजन्यादि चूर्ण ।

रजनी सरलो दारु बृहती गजपिप्पली । पृष्ठिपर्णी शताह्वा च लीढं माक्षिकसर्पिषा ॥ दीपनं ग्रहणीं हन्ति मारुतार्तिसकामलाम् । ज्वरातीसारपाण्डुघ्नी बालानां सर्वरोगनुत् ॥

अर्थ-हल्दी, धूप, सरल, देवदारु, सफेद फूलकी कटेली, गजपीपल, पृष्ठपर्णी, शतावर इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे परिमित मात्रासे बालकोंको घृत और शहतके साथ सेवन करावे (घृत शहत न्यूनाधिक लेवे) इसके सेवनसे बालकोंकी संग्रहणी रोग निवृत्त होय और अग्निको प्रदीप्त करे वातकी पीडा, कामलारोग, ज्वर, अतीसार, पाण्डु रोगको निवृत्त करे बालकोंके सर्व रोगपर यह चूर्ण हितकारी है ।

बालककी तृषाकी चिकित्सा ।

आम्रजम्बूप्रवालानि शालुकातिविषाणि च । क्षीरिणाश्च प्रवालानि यष्टीमधुकमेव च ॥ दर्भामूलीगिराचुक्रकथितानि जलेन तु । शर्करामधुसंयुक्तं तृष्णाच्छेदनमुत्तमम् ॥

अर्थ—आमके वृक्ष तथा जामुनके वृक्षके कोमल नूतन कोंपल, कमलकी जड (भसींडा), अतीस, क्षीरीवृक्ष (बट, पीपल, गूलर, (औदुम्बर) पिलखन इनमेंसे मिल सके उस)की कोंपल, छिलीहुई मुलहटी, डाभकी जड, नोनिया (लोनिया, शाक यह कुलफाका भेद है) इन सबको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्वाथ बनाकर शहत डालकर बालकको पिलावे तो उपद्रव सहित तृषा शान्त हो जाती है।

दाडिमस्य तु बीजानि जीरकं नागकेशरम्। चूर्णः सशर्कराक्षौद्रो लेहस्तृष्णाविनाशनः।

अर्थ—अनारदाना, जीरा, नागकेशर इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना मिश्री तथा शहतके साथ अवलेह बनाकर बालकको सेवन करानेसे तृषा शान्त हो जाती है।

बालकके अजीर्णकी चिकित्सा।

धान्यः नागरजः क्वाथः शूलामाजीर्णनाशनः। चूर्णं तक्रयुतं पीतं तद्व-द्व्योषाग्निजीरकैः॥ पिप्पलीरुचकं पथ्याचूर्णं मस्तुजलं पिबेत्। सर्वा-जीर्णहरं शूलगुल्मानाहाग्निमांद्यजित्॥ त्वक्पत्ररास्नागुरुशिग्रुकुष्ठैर-म्लप्रपिष्टैः सवचाशताह्वैः। उद्वर्त्तनं खल्लिविषूचिकाघ्नं तैलं विपक्वं च तदर्थकारि॥

अर्थ--धनियां, सोंठ इनको समान भाग लेकर परिमित मात्रासे क्वाथ बनाकर बालकको पिलावे तो बालकके शूल और आमाजीर्णको नष्ट करता ह। इसी प्रकार सोंठ, मिरच, पीपल, चित्रककी छाल, स्याह जीरा इनको समान भाग लेकर चूर्ण बना परिमित मात्रासे तक्र (छाछ) के साथ सेवन करनेसे उदरशूल और आमाजीर्ण अजीर्णको नष्ट करता है। पीपल, काला नमक, हरड इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना परिमित मात्रासे बालकको दहीके मस्तु (तोडके) साथ सेवन करानेसे सब प्रकारका अजीर्ण, उदरशूल, गुल्म, आनाह, मन्दाग्नि इनको निवृत्त करता है। दालचीनी, पत्रज (तेजपात), रासना, अगर, सहँजनेकी छाल, कूट, वच, सोंफ इनको समान भाग लेकर खट्टी कांजीके साथ बारीक पीसकर बालकके शरीर पर उबटना करनेसे अथवा इस कल्कको तीन गुणे तैलमें पकाकर तैल सिद्ध करके इस तैलकी मालिश करनेसे हाथ पैर व शरीरके किसी भागमें वांयटोंका आना और विषूचिका तथा विषूचिकाकी खिंचावटको नाशता है।

बालककी कास (खांसी) की चिकित्सा ।

पौष्करातिविषा वासा कणा शृंगीरसं लिहेत् । मधुना मुच्यते बालः कासैः पञ्चभिरुत्थितैः ॥ (मुस्तकादिक्काथ) मुस्तकातिविषा वासा कणा शृङ्गीरसं लिहन् । मधुनामुच्यतेबालः कासैः पञ्चभिरुच्छ्रितैः ॥ (कंटकारीकेशरावलेह) व्याघ्रीसुमनसंजातकेशरैरवलेहिका । मधुनाचिरसंजातान् शिशोः कासान् व्यपोहति ॥ (बालककी शुष्क कास और श्वास पर धान्यादिपान) धान्यं च शर्करायुक्तं तण्डुलोदकसंयुतम् । पानमेतत्प्रदातव्यं कासश्वासापहं शिशोः ॥ (द्राक्षादिअवलेह) द्राक्षावासाभयाकृष्णाचूर्णं क्षौद्रेण सर्पिषा । लीढं श्वासं निहन्त्याशु कासञ्च तमकं तथा ॥

अर्थ–पुष्करमूल, अतीस, अडूसाकी जडकी छाल, पीपल, काकडाशृङ्गी इनको समान भाग लेकर चूर्ण बना शहतके साथ चटावे तथा परिमित मात्रासे क्काथ बनाकर शहत मिलाकर बालकको पिलवे तो पांच प्रकारकी खांसी निवृत्त होय ।

मुस्तकादि क्काथ ।

नागरमोथा, अतीस, अडूसाकी जडकी छाल, पीपल, काकडाशृङ्गी इन सबको समान भाग लेकर जौकुट करके परिमित मात्रासे क्काथ बना शहत डालकर बालकको पिलावे तो पांच प्रकारकी खांसी निवृत्त होय । (कण्टकारी केशरका अवलेह) कटेरीके फूलमें जो पीले रंगकी केशर होती है उसको लेकर बराबरकी मिश्रीके साथ बारीक पीसकर दुगुणे शहतमें अवलेह बनाकर परिमित मात्रासे बालकको चटावे तो अधिक समयकी पुरानी खांसी भी निवृत्त होय । (धान्यादि पान ।) धनियेको तुष रहित करके मिश्रीके साथ बारीक पीसकर भीगेहुए चावलोंके जलमें पिलावे तो बालककी शुष्क कास और श्वास निवृत्त होवे । (द्राक्षादि अवलेह) बीज निकालेहुए मुनक्का (दाख) अडूसाकी जडकी छाल, हरडकी छाल, पीपल, इनको समान भाग लेकर चूर्ण बना, न्यूनाधिक घृत शहतके साथ अवलेह बनाकर बालकको चटावे तो शुष्क कास श्वास और तमकश्वासको निवृत्त करे ।

बालककी शुष्क कासपर यूष विधान ।

क्षीरादस्य शिशोः कासं शुष्कं दृष्ट्वा सुदारुणम् ।
माषयूषं पिबेद्धात्री पिप्पलीघृतभर्जितम् ॥

अर्थ–जो बालक केवल दुग्धाहारी हैं उनको यदि अति दारुण शुष्क कास होय तो उसको दुग्ध पिलानेवाली माता तथा धायको उडदका यूष, पीपलका चूर्ण और घृत मिलाकर पिलाना चाहिये। (यूषकी विधि) ४ तोला उडदको प्रथम भून लेवे (बर्त्तनमें डालकर कलछीसे चलाता रहे जब उडद सिक जावें तब ६४ तोला जल छोंड देवे और मन्दाग्निसे पकने देवे) जब चौथा हिस्सा जल (१६ तोला) बाकी रहे तब उतार लेवे और मथकर कपडेमें छान लेवे, इसमें गर्म घृत और पीपलका चूर्ण मिलाकर बालकको दुग्ध पिलानेवाली पान करे, अर्थात् बालककी धात्री पावे।

बालककी हिक्का तथा छर्दिकी चिकित्सा।

चूर्णं कटुकरोहिण्या मधुनासह योजयेत्।
हिक्कां प्रशमयेत् क्षिप्रं छर्दिंचापि चिरोत्थिताम्॥

अर्थ–कुटकीका चूर्ण परिमित मात्रासे चाटे तो तत्काल हिचकी और अधिक समयसे होतीहुई वमन शान्त होवे।

आम्रास्थि प्रयोग।

आम्रास्थिलाजसिन्धूत्थं सक्षौद्रं छर्दिनुद्भवेत्। पीतं पीतं वमेद्यस्तु स्तन्यन्तं मधुसर्पिषा। द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकोलं च लेहयेत्। पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम्॥ इति पंचकोलम्॥

अर्थ--आमकी गुठलीका बारीक चूर्ण, धानकी खीलका चूर्ण, सेंधा लवण बारीक पिसाहुआ इन तीनोंको समान भाग मिलाकर परिमित मात्रासे शहतमें अवलेह बनाकर चटावे तो बालकका वमन होना शान्त होय, जो बालक दुग्धको पीपीकर वमन कर देवे उसको बडी कटेली और छोटी कटेलीके फल तथा पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक सोंठ,) ये सब समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना परिमित मात्रासे न्यूनाधिक घृत शहतके साथ अवलेह बनाकर चटावे तो दुग्धकी उल्टी होना निवृत्त होय।

निशा कृष्णाञ्जनं लाजा शृङ्गीमरिचमाक्षिकैः। लेहः शिशोर्विधातव्यश्छर्दिकासरुजापहः॥ जम्बूकतिन्दुकानाञ्च पुष्पाणि च फलानि च। घृतेन मधुना लीढ्वा मुच्यते हिक्कया शिशुः॥ पिप्पलीमधुकानाश्च चूर्णं समधुशर्करम्। रसेन मातुलुंगस्य हिक्काछर्दिनिवारणम्॥ सुवर्णगैरिकस्यापि चूर्णानि मधुना सह। लीढ्वो सुखमवाप्नोति क्षिप्रं हि छर्दितः

शिशुः ॥ अश्वत्थवल्कं संशुष्कं दग्धं निर्वापितं जले । तज्जलं पानमात्रेण छर्दिं जयति दुर्जयाम् ॥ शुंठी धात्रीकणाचूर्णं लेहयेन्मधुना शिशुः । हिक्कानां शान्तयेतद्वदेकं वा माक्षिकं सकृत् ॥ पिप्पलीरेणुकाक्वाथः सहिंगुः समधुस्तथा । हिक्कां बहुविधां हन्यादिदं धन्वतरेर्वचः ॥

अर्थ—हल्दी, पीपल, साफ, रसौत, धानकी खीलैं, काकडाशृङ्गी, काली मिरच इन सबको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करके शहतके साथ अवलेह बनाकर बालकको परिमित मात्रासे चटावे तो बालकोंकी वमन ज्वर खांसी निवृत्त होय । जामुनवृक्ष तथा तेंदू वृक्षके फूल इनको समान भाग लेकर बारीक पीस लेवे और न्यूनाधिक शहत घृत मिलाकर बालकको चटावे तो हिचकी रोग निवारण होता है । पीपल और छिली हुई मुलहटी समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और शहत तथा मिश्री मिलाकर बिजौरा निम्बूके रसके साथ बालकको सेवन करानेसे हिचकी और वमन शान्त होते हैं । स्वर्ण गेरूका बारकि चूर्ण करके परिमित मात्रासे बालकको शहतके साथ चटानेसे बालक वमनसे निवृत्त होकर सुख पाता ह । पीपल वृक्षकी सूखी हुई छालको भस्म करके उस भस्मको अन्दाजके माफिक जलमें डाल देवे और भस्मके ऊपरसे नितरा हुआ स्वच्छ जल बालकको पिलावे तो दुर्जर छर्दि निवृत्त होय । सोंठ आंवला पीपल इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना परिमित मात्रासे बालकको चटावे तो हिचकी निवृत्त होय । निष्केवल मक्खीकी विष्ठा (बीट) का चूर्ण शहतमें मिलाकर बालकको चटानेसे हिचकी शान्त होय । पीपल, रेणुकबीज इन दोनोंको समान भाग लेकर परिमित मात्रासे क्वाथ बनावे और उसमें फूलीहुई हींग तथा शहत डालकर बालकको पिलानेसे सब प्रकारकी हिचकियां निवृत्त हो जाती हैं यह धन्वन्तरि वैद्यका कथन है ।

हरीतक्याः कृतं चूर्णं मधुना सह लेहयेत् । अधस्ताद्विहिते दोषे शीघ्रं छर्दिः प्रशाम्यति । पटोलनिम्बत्रिफलागुडूचीभिः शृतं जलम् । पीतं क्षौद्रयुतं छर्दिमम्लपित्तभवां हरेत् ।

अर्थ—छोटी हरडोंको बारीक पीसकर चूर्ण बना परिमित मात्रासे शहतमें अवलेह बनाकर बालकको चटावे तो दोष नीचेको मलाशयमें उतर जाता है, इस कारणसे छर्दि शीघ्र शान्त हो जाती है । परवल, सूखी हुई नीमकी जडकी छाल, त्रिफला, गिलोय इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्वाथ बनाकर शहत डालकर पिलानेसे अम्लपित्तसे उत्पन्न हुई छर्दि शान्त होती है ।

पञ्चमलीकषायेण सघृतेन पयः शृतम्।
सशृङ्गवेरं सगुडं शीतं हिक्कार्दितः पिबेत्॥

अर्थ—लघुपञ्चमूल (शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, बडी कटेलीकी जड, छोटी कटेलीकी जड, गोखुरू,) इनको समान भाग लेकर क्षीर पाककी विधिसे घृत मिलाकर दुग्धको सिद्ध करे और उसमें अदरखका रस और गुड मिलाकर बालकको परिमित मात्रासे पिलावे तो हिचकीका रोग शान्त होवे।

बालकके उदरमें आध्मान तथा उदर शूलकी चिकित्सा।

घृतेन सिंधुविश्वैलाहिंगुभार्गीरजो लिहन्।
अनाहवातिकं शूलं हन्यात्तोयेन वा शिशुः॥

अर्थ—सेंधानमक सोंठ बडी इलायचीके बीज हींग भारंगी इन सबको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनालेवे और इस चूर्णको परिमित मात्रासे लेकर घृतमें मिलाके बालकको चटावे तो अफरा वातजन्य शूलको नष्ट करे। इस चूर्णको गर्म जलके साथ भी देना उचित है।

एरण्ड तैल प्रयोग।

एरण्डतैलं दशमूलमिश्रं गोमूत्रयुक्तस्त्रिफलारसो वा।
निहन्ति वातोदरशोथशूलं क्वाथः समूत्रो दशमूलजश्च॥

अर्थ—अरंडीके तैलमें दशमूलका चूर्ण मिलाकर परिमित मात्राके साथ पिलानेसे अथवा त्रिफलाके क्वाथमें गोमूत्र मिलाकर पिलानेसे अथवा दशमूलके क्वाथमें गोमूत्र मिलाकर पिलानेसे वातोदर सूजन शूल अफरा सब नष्ट हो जाते हैं।

सामुद्र लवणादि चूर्ण।

सामुद्रसौवर्चलसैंधवानां क्षारो यवानामजमोदकञ्च। सपिप्पलीचित्रक-शृङ्गवेरं हिङ्गु विडञ्चेति समानि कुर्य्यात्। एतानि चूर्णानि घृतप्लुतानि युञ्जीत पूर्वं कवले प्रशस्तम्। वातोदरं गुल्ममजीर्णभुक्तं वायुप्रकोपं ग्रहणीञ्च दुष्टाम्। अर्शांसि दुष्टानि च पाण्डुरोगं भगन्दरञ्चेति निहन्ति सद्यः॥

अर्थ—समुद्रका नमक काला नमक सेन्धा नमक जवाखार अजमोद पीपल चित्रक सोंठ हींग कांचका नमक इन सबको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और जो बालक दूध पीनेवाला होय उसको परिमित मात्रासे घृतके साथ मिलाकर चटावे,

जो बालक अन्नाहार भी करता होय उसको घृतमें मिलाकर भोजनके पूर्व खिलावे। इस चूर्णके सेवनसे वातोदर गुल्म अजीर्ण वायुका प्रकोप दुष्ट संग्रहणी दुष्ट अर्श रोग पाण्डु रोग भगन्दर रोग इत्यादि नष्ट होते हैं॥

बालकके मूत्राघातकी चिकित्सा।

कणोषणासिताक्षौद्रसूक्ष्मैलासैंधवैः कृतः। मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्यः शिशूनां लेह उत्तमः॥ पीत्वा दाडिम तोयेन विश्वैलाबीजजं रसम्। मूत्राघातात्प्रमुच्येत वरां वा लवणान्विताम्॥ कर्पूरवर्तिमृदुना लिङ्गच्छिद्रे निधापयेत्। शीघ्रतया महाघोरान्मूत्रबन्धात्प्रमुच्यते॥ क्वाथैः किंशुकपुष्पाणां सेकस्तैरेव निर्मितः॥ उपनाहोऽथवा हंति मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम्॥

अर्थ-पीपल, काली मिरच, मिश्री, शहत, छोटी इलायची, सेंधानमक, इनको समान भाग लेकर चूर्ण बनावे और शहतमें अवलेह बनाकर चटावे इसके सेवनसे मूत्रावरोध निवृत्त होता है। सोंठ और छोटी इलायचीके बीज इन दोनोंको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे इस चूर्णको परिमित मात्रासे लेकर अनारदानेके स्वरसमें मिलाकर पिलावे इससे बालकका मूत्राघात रोग निवृत्त होता है। अथवा त्रिफलाका चूर्ण और सेंधा नमक इन दोनोंको मिलाकर परिमित मात्रासे अनारदानेके स्वरसके साथ पिलावे तो मूत्राघात रोग शान्त होय। कर्पूरको जलमें पीसकर कोमल बारीक वस्त्रकी पतली नीमकी सींकके प्रमाणकी बत्ती बनाकर कपूरमें भिगोकर बालककी मूत्रेन्द्रियके छिद्रमें रक्खे तो बहुत हीं शीघ्र बालक मूत्रबन्ध रोगसे छुट जाता है। केशू (ढाकके) फूलोंका क्वाथ बनाकर बालककी मूत्रवस्तीके ऊपर सेंक देवे (काढेमें एक ऊनी कपडेका टुकडा जैसे फलालेन व कम्बल बनातका टुकडा भिगोकर निचोड लेवे और बालककी मूत्रवस्तीके ऊपर रखे जब वह शीतल हो जावे तब उसको उठा लेवे और दूसरा रक्खे इसी प्रकार कुछ समयतक सेंक करे) इस प्रक्रियाके करनेसे एक घंटे भर पीछे मूत्र आ जाता है, यदि मूत्र न उतरे तो फूलोंका कुछ गर्म २ फोंक बालककी वस्तीके ऊपर बांध देवे इससे कष्टदायक मूत्रकृच्छ्र शान्त हो जाता है यदि इन प्रयोगोंसे मूत्र न निकले तो मूत्रशलाकासे मूत्र निकाले।

बालकके मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा।

मेघामृतानागरवाजिगन्धाधात्रीत्रिकण्टैर्विहितः कषायः॥ क्षौद्रेण पीतः शमयत्यवश्यं मूत्रस्य कृच्छ्रं पवनप्रसूतम्। कुशेक्षुकाशाः शरदर्भयुक्ताः प्रक्षुण्णमेतत्तृणपञ्चमूलम्। निष्क्वाथ्य पीतं मधुना विमिश्रं कृच्छ्रं सदाहं

सरुजं निहन्ति । यवक्षारयुतः काथः स्वादुकंटकसंभवः । पीतः प्रणाशयत्याशु मूत्रकृच्छ्रं कफोद्भवम् । श्वदंष्ट्राविहितः काथः शिलाजतुसमन्वितः । सर्वदोषोद्भवं हन्ति कृच्छ्रं नास्त्यत्र संशयः । कषायोऽतिबलामूलत्रपुसीबीजसाधितः । शिलाजतुयुतः पीतो मूत्रकृच्छ्रं विनाशयेत् ॥

अर्थ–नागरमोथा, हरीगिलोय, सोंठ, असगन्ध, सूखा आंवला, गोखुरू इन सबको समान भाग लेकर जौकुट कर पारिमित मात्रासे काथ बनाकर छानकर उसमें शहत मिलाकर बालकको पिलावे तो वायुसे उत्पन्न हुआ मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है। कुशाकी जड, ईखकी जड, कांसकी जड, नरसलकी जड, सरपते (मूज) की जड, इन तृणपञ्च मूलको समान भाग लेकर कूटके पारिमित मात्रासे काथ बनाकर शहत डाल कर पीनेसे दाह और पीडासे युक्त, मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है । बडे गोखुरूके काथमें जवाखार मिलाकर पीनेसे कफसे उत्पन्न हुआ मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है । बडे गोखुरूका काथ बनाकर और उसमें परिमित मात्रासे शुद्ध शिलाजीत मिलाकर पीनेसे त्रिदोपजन्य मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है । गंगेरनकी जड ककडीके बीज इनको समान भाग लेकर पारिमित मात्रासे काथ बनावे और उसमें शुद्ध शिलाजीत मिलाकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र रोग शान्त होता है । देखा जाता है कि किसी बालककी अण्ड ग्रन्थी एक व दोनों बढने लगती हैं इसके कई कारण हैं विशेष करके बालकोंके वातजन्य ही देखनेमें आती है ।

बालककी अण्ड वृद्धिकी चिकित्सा ।

एरंडतैलं सपयः पिबेद्यो गव्येन मूत्रेण तदेव वापि ।
सगुग्गुलुप्रौढरुजं प्रवृद्धां सर्वान्त्रवृद्धिं सहसा निहन्ति ॥

अर्थ–अरण्डके तैलको परिमित मात्रासे गौके दुग्धमें मिलाकर पीनेसे तथा गोमूत्रमें अरंडका तैल मिलाकर पीनेसे अथवा गौमूत्रमें साफ गुग्गुल्ल मिलाकर पीनेसे बालककी अण्डवृद्धि निवृत्त होती है । ये प्रयोग २० दिवस १ महीने व ४० दिवस पर्य्यन्त सेवन करना योग्य है । अण्डवृद्धि उठते ही उसका उपाय करना चाहिये और शीतल उपचारसे शान्त करना चाहिये जिससे पकने न पावे, पकने पर बालकको बडाही कष्ट पहुंचता है ।

रास्नायष्ट्यमृतैरण्डबलागोक्षुरसाधितः ।
काथोऽन्त्रवृद्धिं हन्त्याशु रुबु तैलेन मिश्रितम् ॥

अर्थ–रासना, मुलहटी, गिलोय, अण्डकी जड, खरैटी गोखुरू इन सबको समान

भाग लेकर जौकुट करके परिमित मात्राका काथ बना उसमें बालककी उमरके अनुसार अरंडीका तैल मिलाकर पान करनेसे अण्डवृद्धि रोग निवृत्त होता है ॥ कदाचित् अण्डवृद्धि पक जावे तो व्रणके समान चिकित्सा करनी योग्य है ।

बालकके कुण्ड रोगकी चिकित्सा ।

अर्थ—अन्नाहारी बालकोंको प्रायः खटाई मिठाई खानेकी चस्क लगनेसे तथा अभिष्यन्दी और भारी पदार्थोंके सेवनसे वातादि दोष कुपित होकर वंक्षण सन्धियोंमें ग्रन्थी उत्पन्न कर देते हैं, वह ग्रन्थी पीडा और शोथ युक्त होती है । इस शोथयुक्त ग्रन्थीको कुरण्ड रोग कहते हैं । जैसा कि (अत्यभिष्यन्दिगुर्वम्ल सेवनान्निचयं गतः । करोति ग्रन्थिवच्छोफं दोषो वंक्षणसन्धिषु ।) इस ग्रन्थीशोथके उत्पन्न होनेके समयमें किसी बालकको ज्वर भी उत्पन्न हो जाता है और दस्तकी भी कब्जी रहती है ।

कुरण्ड रोगपर लेप ।

यथाम्बुना तु संपिष्टं मूलं भार्ङ्ग्याः प्रलेपनात् । कुरण्डं गण्डमालाञ्च हन्त्यावश्य न संशयः ॥ शम्बूकोदरनिहितं गव्यं सप्ताहमातपे सर्पिः । स्थितमपहरति कुरुण्डं सैन्धवचूर्णान्वितं लेपात् ॥ ससैन्धवं घृताभ्यक्तं ताम्रभाजनमातपे । प्रतप्तं चूर्णनिर्घृष्टं तन्मलं समुपाहरेत् ॥ म्रक्षयेत्तेन कौरण्डं मनुद्विग्ने दिवानिशम् । प्रवृद्धं तेन कौरण्डं नश्यत्याह पुनर्नवा ॥ लज्जालुमूलगृध्रस्य विट्प्रलेपः प्रयोजितः । कुरण्डं योनिरोगञ्च नाशयेदविकल्पतः ॥ सतैललवणं भस्म पारदं लेपमात्रतः । अपि तालफलाकारां वृद्धिं जयति वेगतः ।

अर्थ—भारंगीकी जडको जलके साथ पीसकर अथवा घिसकर गर्म करके लेप करनेसे कुरण्ड रोग गण्डमाला, अण्डवृद्धि ये तीनों नष्ट होते हैं । शम्बूक नामवाले शंखमें (यह एक लम्बी पतली आकृतिका पीला शंख है) गौका घृत भरकर सात दिवस पर्य्यन्त रखा रहने देवे फिर आठवें दिवस उस घृतको निकालकर उसमें सेंधानमकका बारीक चूर्ण मिलाकर लेप करे तो कुरण्ड रोग शान्त हो जाता है । सेंधानमक और घृत इनको एकत्र मिलाकर ताम्रपात्रमें डालके सूर्य्यकी धूपमें रखके दोनोंको हाथसे घिसे उसके घिसनेसे जो मल निकले उस मलको निकालकर कुरण्ड शोथ पर दिन रात्रि लगावे, इसके लगानेसे अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुआभी कुरण्ड रोग शीघ्र शान्त हो जाता है । लजावन्ती (छुईमुई) की जड और गीधपक्षीकी बीट (विष्ठा) इन दोनोंको समान भाग लेकर जलके साथ बारीक पीसकर लेप करनेसे कुरण्ड शोथ और योनि रोग अवश्य

निवृत्त होता है। पारदकी भस्मको तैल और सेंधानमकमें मिलाकर मलमके समान बनालेवे और इसका लेप करे तो तालफलके समान बढीहुई अण्डवृद्धि शान्त होती है। इसके शिवाय व्रणमात्रकी सूजन विद्रधि, कुरण्ड, कर्णमूल, गलग्रन्थी, इसके लेपसे सब शान्त होती हैं यह प्रयोग स्वयं अनुभव किया हुआ है।

बालककी सूजनपर लेप।

मुस्तं कुष्माण्डबीजानि भद्रदारुकलिङ्गकान्।
पिष्ट्वा तोयेन संलिप्तं लेपोऽयं शोथहृच्छिशोः॥

अर्थ—नागरमोथा पेटेकेबीज, देवदारु, इन्द्रजव, इन सबको समान भाग लेकर जलमें बारीक पीसकर बालकके जिस अङ्गमें सूजन होय उसपर लेप करे तो बालककी सूजन निवृत्त होय।

बालककी कृशता (क्षय) की चिकित्सा।

कोई २ बालक अति कृश हो जाता है और शरीरका मांस सूखकर अस्थि पिंजर चमकने लगता है। उसकी चिकित्सा नीचे लिखे प्रयोगोंसे करे। ऐसे कृश शरीरवाले बालकोंके शरीरमें मछलीका तैल अथवा बदामका तैल प्रतिदिवस लगाना चाहिये और दो दिवसके अनन्तर चनेका बेशन लगाकर ऋतुके अनुकूल गर्म व शीतल जलसे स्नान कराना चाहिये लेकिन बालकके शरीरमें ज्वर खांसी व दस्तोंकी व्याधि होय तो स्नान कदापि न करावे।

बालकके शरीरकी वृद्धि और पुष्ट कारक प्रयोग।

यदा तु दुर्बलो बालः खादन्नपि च वह्निमान्। विदारी कन्दगोधूमयवचूर्णं घृतप्लुतम्॥ खादयेत्तदनु क्षीरं शृतं समधुशर्करम्॥ सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधुघृतं वचा। मत्स्याक्षकं शंखपुष्पी मधुसर्पिः सकांचनम्॥ अर्कपुष्पी मधुघृतं चूर्णितं कतकं वचा। सहेम चूर्णं कैटर्यं श्वेता दूर्वा घृतं मधु॥ चत्वारोऽभिहिताः प्राशा अर्द्धश्लोकसमापनाः। कुमाराणां वपुर्मेधाबलपुष्टिकराः स्मृताः। (संवत्सरं यावदेते योगाः प्रयोज्याः द्वादशवर्षाणीति केचित्)॥

अर्थ—यदि बालक अच्छा पुष्टिकारक आहार करने पर भी दुर्बल होता जाय और जठराग्नि उसकी निर्बल होय तो नीचे लिखे अनुसार प्रयोग देवे। विदारीकंदका चूर्ण गेहूं और जौका सत्व इनको घृतमें थोडा सेंककर खिलावे और ऊपर शहत व मिश्री मिलाकर गौका ताजा दूध पिलावे तो बालककी कृशता नष्ट होकर शरीरवृधिको

प्राप्त होता है ॥ (गेहूं और जौका सत्त्व २४ घंटे गेहूं जौको भिगोकर निकाले) सुवर्णकी निरुत्थ भस्म, कूटका बारीक चूर्ण, वचका बारीक चूर्ण इन सबको परिमित मात्रासे न्यूनाधिक घृत शहतके साथ मिलाकर सेवन करावे । मछेछीका चूर्ण, शंखाहूलीका चूर्ण, सुवर्णकी भस्म इन सबको परिमित मात्रासे लेकर न्यूनाधिक घृत शहतके साथ सेवन करावे । अर्कपुष्पीका चूर्ण, निर्मलीका चूर्ण, वचका चूर्ण, सुवर्णकी भस्म इनको परिमित मात्रासे न्यूनाधिक घृत शहतके साथ सेवन करावें । सुवर्णकी भस्म, कायफलका चूर्ण, सफेद दूबका चूर्ण इन सबको न्यूनाधिक घृत शहतके साथ सेवन करावे । ये चार द्रव्योंके चारों प्रयोग आधे २ श्लोकमें कथन किये गये हैं । ये प्रयोग बालकोंके शरीरको अतिपुष्टिकारक बलदायक और बुद्धिको बढानेवाले हैं । इनको १ सालकी उमर पर्यन्त सेवन करावे किसी २ वैद्यका कथन है कि १२ सालकी उमरपर्य्यन्त सेवन करावे ॥

बालकका वृद्धिकारक स्नानप्रयोग ।

सप्तच्छदार्कच्छदनक्तमालमूलैस्तुरंगारिजटासमेतैः । उत्सादिताङ्गः पशुमूत्रपिष्टैर्ह्रीवेरमुण्डीसलिलाभिषिक्तः । दिने दिने याति शिशुः प्रवृद्धिं पतिर्निशानामिव शुक्लपक्षे ॥

अर्थ—शतौनाके पत्र, आकके पत्र, कंजाके पत्र, कनेरकी जडकी छाल इन चारोंको समान भाग लेकर गोमूत्रके साथ बारीक पिट्ठीके समान पीसकर बालकके शरीरपर हलके हाथसे उवटना लगानेके समान मालिश करे और नेत्रवाला, गोरखमुण्डीको जलमें पकाकर उस जलसे स्नान करावे तो दिनपरदिन बालकके शरीरकी वृद्धि होय । जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमाकी वृद्धि होती है । यह प्रयोग राजमार्त्तण्डग्रन्थमें लिखा है ।

अष्टमंगल उद्वर्त्तन (उबटना) ।

शटी किरातसिद्धार्थमूर्वा मुस्तोपकुंचिकाः ॥ श्वेतः शिरीष इत्येषां छागीक्षीरेण लेपनम् ॥ ज्वरदाहवमीरेकरक्षस्तृणनाशनं शिशोः ॥

अर्थ—नरकचूर सोंठका (चूर) चिरायता, सफेद सरसों, मूर्वा, (मरोडफली), नागरमोथा, छोटी इलायची सफेद सिरसकी जडकी छाल इन सबको समान भाग लेकर बकरीके दुग्धके साथ बारीक पीस लेवे और बालकके शरीरपर उवटना करनेसे दाह ज्वर वमन अतीसार तृषा ये सब नष्ट होते हैं (और श्लोकमें राक्षसशब्द भी दुःख देनेवाले रोगोंका है) ।

क्षयनाशक अन्य प्रयो ।

शिलाजतुव्योषविडंगलोहताप्याभयाभिर्विहितोऽवलेहः ॥ सर्पिर्मधुभ्यां

विधिना प्रयुक्तः क्षयं विधत्ते सहसा क्षयस्य । नवनीतं सिता क्षौद्रं लीढं क्षीरभुजः पराम् ॥ करोति पुष्टिं कायस्य क्षतक्षयमपोहति । वासामहौषधी व्याघ्रीगुडूचीभिः शृतं जलम् । प्रपीतं शमयत्युग्रं श्वासकासक्षयज्वरान् ।

अर्थ—शुद्ध शिलाजीत, सोंठ, काली मिरच, पीपल, वायविडङ्गके बीजकी मिंगी, निरुत्थ लोहभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, बडी हरडकी छाल इन द्रव्योंको समान भाग लेकर सूक्ष्म पीस डाल और पारामत मात्रासे न्यूनाधिक घृत शहतके साथ अवलेह बनाके बालकको कई मास पर्य्यंत सेवन करानेसे शीघ्र क्षयरोग नष्ट होता है । मक्खन मिश्री शहत ये द्रव्य बालकको चटानेसे शरीरको पुष्ट करते हैं कृशता और क्षय रोग नष्ट होता है । अडूसाकी जडकी छाल, सोंठ, कटेलीकी जड, गिलोय इनको समान भाग लेकर परिमित मात्रासे काढा बनावे और शहत डालकर बालकको पिलावे इस क्राथके पीनेसे बालककी श्वास कास और क्षयरोग तथा ज्वर शान्त होता है ।

बालकके पाण्डुरोगकी चिकित्सा ।

बालकोंको पाण्डुरोग प्रायः मृत्तिका ठीकडी ईंट आदिके खानेसे उत्पन्न होता है यह माता या धात्रीकी असावधानीसे मृत्तिकादि खानेका व्यसन बालकोंको लग जाता है । याद बालकके रक्षक इस व्यसनसे बालकको बचाया चाहे तो ऐसे स्थानपर जहां कि मिट्टी चूना ईंट ठीकडी आदि पडी होयँ वहां बालकको स्वतन्त्र कदापि न छोडे और अखाद्य वस्तु बालकको उठाते देखे व उसके हाथमें होय तो उसी समय छीन लेनी चाहिये । यदि इतनी सावधानी रखने पर भी बालकको मृत्तिकादि खानेका व्यसन पड गया होय तो उसके समीप २ । ४ टुकडा वंशलोचनके डाल देने चाहिये वंशलोचनको बालक मृत्तिका समझकर खाता है उसका स्वादभी मृत्तिकाके समान आता है । वंशलोचन शरीरको हानि नहीं पहुंचाता और मृत्तिकादि खानेका व्यसन बालकका छूट जाता है मृत्तिकादि खानेवाले बालकोंके उदरमें जन्तु पडजाते हैं रक्त दूषित हो पाण्डुरोग तथा कामलारोग उत्पन्न हो जाता है ।

मृत्तिका भक्षणसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगके लक्षण ।

मृत्तिकादनशीलस्य कुप्यत्यऽन्यतमो मलः । कषाया मारुतं पित्तमूषरा मधुरा कफम् ॥ कोपयेन्मन्दसादींश्च रौक्ष्याद्भुक्तञ्च रूक्षयेत् । पूरयत्यविपक्वैव स्रोतांसि निरुणद्धि च ॥ इन्द्रियाणां बलं हत्वा तेजोवीर्यौजसी तथा । पाण्डुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्निनाशनम् ॥

अर्थ—जो बालक अथवा बडा मनुष्य मृत्तिका खाया करता है उसके शरीरमें वात

पित्त कफ कुपित हो जाते हैं, कषैली मृत्तिकाके खानेसे वात कुपित होती है खारी मृत्तिकाके खानेसे पित्त कुपित होता है और मीठी मृत्तिकाके खानेसे कफ कुपित होता है । फिर यह खाई हुई मृत्तिका रस रक्त मांस मेद अस्थि मज्जा शुक्र पर्य्यन्त सातों धातुओंको कुपित करके अपनी रुक्षतासे भक्षण किये हुए आहारको भी रुक्ष कर देती है । और वह मृत्तिका अपक्व रसरक्तादि वहनेवाले स्रोतों (छिद्रों) में भरकर उनको बन्द कर देती है । स्रोतोंके बन्द होनेसे शरीरके पोषणके अर्थ रस रक्तादि पहुँचना कम हो जाता है, इससे शरीरस्थ इन्द्रियोंकी सक्ति निर्बल पड जाती है इसके अनन्तर शरीरका तेज वीर्य्य और बल नष्ट हो जाता है । फिर बल वर्ण और शरीर अग्निको नाश करनेवाला पाण्डुरोग उत्पन्न होता है ।

तथाच–शूनाक्षिकूटगण्डभ्रूः शूनपान्नाभिमेहनः । कृमिकोष्ठोऽतिसार्येत मलं सासृक्कफान्वितम् ॥ अन्तेषु शूनं परिहीनमध्यं म्लानं तथान्तेषु च मध्यशूनम् ॥ गुदे च शेफस्यथ मुष्कयोश्च शूनं प्रताम्यं तमसंज्ञकल्पम् ॥ विवर्जयेत्पाण्डुकिनं यशोर्थी तथातिसारज्वरपीडितञ्च ॥

अर्थ–नेत्र, गाल, भौंह, पैर, नाभि, उपस्थेन्द्रिय इन अङ्गोंपर सूजनका उत्पन्न होना और पेटमें कीडोंकी उत्पत्ति होना कफ रुधिर मिला हुआ दस्त वारम्वार आवे ये पाण्डुरोगके विशेष अन्तिम दर्जेके लक्षण हैं और जिसके हाथ पैर शिरमें सूजन उत्पन्न होगई होय और शरीरका मध्यभाग पतला होय इन लक्षणोंवाला पाण्डुरोगी तथा जिसके मध्यभागके अङ्गोंमें सूजन उत्पन्न हुई होय और हाथ पैर आदि शरीरके अङ्ग कृश होयँ और गुदा मूत्रेन्द्रिय अण्डकोशमें सूजन होय ऐसा पाण्डुरोगी चिकित्साक्रियासे त्यागने योग्य है । चिकित्सकको उचित है कि जो पाण्डुरोगी अतीसार और ज्वरसे पीडित होय उसको त्याग देना, ऐसे पाण्डुरोगीकी चिकित्सा करनेसे वैद्यको यश नहीं मिलता क्रिया और औषध व्यर्थ नष्ट होती हैं ।

पाण्डुरोगकी चिकित्सा ।

साध्यञ्च पाण्ड्वामयिनं समीक्ष्य स्निग्धं घृतेनोर्ध्वमधश्च शुद्धम् । सम्पादयेत्क्षौद्रघृतप्रगाढैर्हरीतकीचूर्णमयैः प्रयोगैः । पिबेद् घृतं वा रजनीविपक्वं यत्त्रैफलं तिक्तकमेव चापि ।

अर्थ–चिकित्सकको उचित है कि प्रथम पाण्डुरोगीकी साध्यासाध्य व्यवस्थाका निश्चय करे जो रोगी असाध्य लक्षणयुक्त होय तो उसको त्याग देना चाहिये । जो साध्य होय तो नीचे लिखी चिकित्सा प्रणालीके अनुसार उसको चिकित्सा

करना उचित है। पाण्डुरोगीके शरीरमें रूक्षता अधिक होती है इससे घृत पान कराके उसके शरीरको स्निग्ध करलेवे फिर स्निग्ध पदार्थोंद्वाराही वमन विरेचन देकर उसके शरीरको शुद्ध करलेवे। और हरडके चूर्णमें शहत और घृत मिलाकर सेवन करावे इसके अनन्तर हल्दीके कल्क (पिट्ठी) के द्वारा सिद्ध किया हुआ घृत अथवा त्रिफलाके कल्कके द्वारा सिद्ध किया हुआ घृत अथवा तिक्त पदार्थोंके कल्कके साथ सिद्ध किया हुआ घृत पान करावे। अथवा (दस्तावर) औषधियोंके साथ घृत पान करावे अथवा विरेचन (दस्तावर) औषधियोंके साथ पकाया हुआ घृत पान करावे।

मूर्वादिघृत।

मूर्वातिक्तनिशायासकृष्णाचन्दनपर्पटैः। त्रायन्तीवत्सभूनिम्बपटोलाम्बुददारुभिः। अक्षमात्रैर्घृतप्रस्थं सिद्धं क्षीरचतुर्गुणे। पाण्डुताज्वरविस्फोटशोफार्शोरक्तपित्तनुत्।

अर्थ—मरोडफली, कुटकी, हल्दी, जवासा, पीपल, रक्तचन्दन, स्याहतरा, त्रायमाण, इन्द्रजौ, चिरायता, पटोलपत्र, नागरमोथा, देवदारु प्रत्येक औषधको एक एक तोला लेकर बारीक कूट छानकर कल्क (पिट्ठी) के समान बनालेवे। फिर इस कल्कके वजनसे चौगुना गौका दूध लेवे दूधको गर्म करके उफान आ जावे जब औषध कल्कको दूधमें मिलादेवे (कच्चे दूधमें औषध मिलानेसे दूध फट जाता है और तासीर बिगड जाती है) और १४ तोला गौका घृत मिलाकर मन्दाग्निसे पकावे जब कि दूध जलकर घृत मात्र रहजावे तब कपडेमें छानकर घृतको निकाल लेवे। यह मूर्वादिघृत पाण्डुरोग, ज्वर, विस्फोटक, सूजन, अर्श (बवासीर) और रक्तपित्तको नष्ट करता है।

कटुकाद्यघृत।

कटुकां रोहिणीं मुस्तां हरिद्रां वत्सकत्वचम्। पटोलं चन्दनं मूर्वां त्रायमाणां दुरालभाम्॥ सपिप्पलीं कर्कटिकां पूतिकं देवदारु च। पिष्टाक्षमात्रं तैः सर्पिः प्रस्थं क्षीराढके पचेत्॥ रक्तपित्तं ज्वरं दाहं श्वयथुं सभगंदरम्। अर्शांस्यऽसृग्दरञ्चैव हन्याद्विस्फोटकांस्तथा।

अर्थ—कुटकी, नागरमोथा, हल्दी, कुडाकी छाल, पटोलपत्र, लालचन्दन, मरोडफली, त्रायमाण, धमासा, पीपल, काकडाश्रृङ्गी, पूतिकरंजकी जडकी छाल, देवदारु ये प्रत्येक औषध एक एक तोला लेवे और उपरोक्त विधिसे कल्क बनाकर एक आढक

(८ सेर) गोदुग्धके साथ तथा १२८ तोला गोघृत मिलाकर पकावे जब घृत सिद्ध हो जावे उतारकर छान लेवे । यह घृत रक्तपित्त दाहज्वर पांडुरोगसे उत्पन्न हुये शोथ (सूजन) भगन्दर, बवासीर, प्रदर, विस्फोटक इत्यादि रोगोंको नष्ट करता है । (आयुर्वेदकी तोलमें १ सेरसे ६४ तोला वजन समझना) ।

व्योषादिघृत ।

व्योषं विल्वं द्विरजन्यौ तृफला द्विपुनर्नवा । मुस्ता चायोरजः पाठा विडंगं देवदारु च । वृश्चिकाली च भार्ङ्गी च सक्षीरैस्तैः शृतं घृतम् । सर्वान् प्रशमयत्याशु विकारान्मृत्तिकोद्भवान् ॥

अर्थ—सोंठ, मिरच, पीपल, विल्व (बेलवृक्षकी जडकी छाल लेना), हल्दी, दारुहल्दीकी छाल, हरड, बहेडा, आंवला, लाल फूलकी सांठ, सफेद फूलकी सांठ इन दोनोंकी जड लेना, नागरमोथा, लोहचूर्ण, पाढ, वायविडंगका मगज, देवदारु, नखपर्णी बूटी, भारंगीकी जडकी छाल ये सब समान भाग लेना सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आंवला इन तीन २ को मिलाकर एक भाग लेना अयरनूसंज्ञक लोहका चूर्ण लेना इन सबको कूट पीसकर कल्क बनाकर कल्कसे चौगुना गौका दुग्ध गर्म करके दवाओंका कल्क मिलाना और औषधियोंके वजनसे द्विगुण घृत मिलाकर मन्दाग्निसे पाक करना जब घृत पक जावे तब उतारकर छानके भर लेवे । यह व्योषादिघृत मृत्तिकासे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगको उपद्रवसहित नष्ट करता है ।

अयोरजस्त्रैफलचूर्णयुक्तं गोमूत्रसिद्धं मधुनावलीढम् ॥
पाण्डुं सकासं सकृशानुमांद्यं शूलं सशोफं शमयेदवश्यम् ॥

अर्थ—गोमूत्रसे सिद्ध किया हुआ लोह मंडूरभस्म यह परिमित मात्रासे लेवे और इसके समानही त्रिफलाका वारीक चूर्ण लेवे और इन दोनोंके समान शहतमें अवलेह बनाकर चाटनेसे बालकका पाण्डुरोग, कास, श्वास, मन्दाग्नि, शूल, सूजन इन सबको नष्ट करता है ।

बालकके कामला रोगकी चिकित्सा ।

पाण्डुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते । तस्य पित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते ॥ हरिद्रनेत्रः सभृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः । रक्तपीतशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रियः ॥ दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः । कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखाश्रया मता ॥

अर्थ—जो अन्नाहारी बालकको पाण्डुरोग होय और वह बालक पित्त कुपित करनेवाले (खटाई नमकीन चरपरे) पदार्थोंका सेवन अधिक करे तो उसका पित्त अति उष्ण होकर रक्त मांसादि धातुओंको दग्ध कर देता है उस समय पर कामला और अधिक समयका होनेसे (कालान्तरात्खरीभूता कृच्छ्रा स्यात्कुम्भकामला) कुम्भ-कामला कहलाता है । यह कामलारोगमें बालकका यकृत् (लीवर) बढनेसे भी उत्पन्न हो जाता है । इस कामलारोगमें (बालक) के नेत्र हल्दीके सादृश्य पीले हो जाते हैं, चर्म, नख, मुख पीले हो जाते हैं (शरीरका रक्त बिलकुल पीलासपर हो जाता है). और मल मूत्र कुछ रक्तामिश्रित पीला आता है रोगीका समस्त शरीर चौमासेके पाण्डुवर्ण मांडूकके समान हो जाता है इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट होकर शरीर निर्बल हो जाता है । शरीरमें दाह (ऊष्मा) बढ जाती है आहार उत्तम रीतिसे परिपक्व नहीं होता मनुष्य शारीरिक शिथिलता और अरुचिसे व्याकुल रहता है इस कामलारोगमें पित्त प्रबल हो जाता है । यह पित्त दो भेदोंसे विभक्त कहा जाता है कोष्ठाश्रित और शाखाश्रित ।

कृष्णो पीतशकृन्मूत्रो भृशं शूनश्च मानवः । सरक्ताक्षिमुखच्छर्दिविण्मूत्रो यश्च ताम्यति ॥ दाहारुचितृडानाहतन्द्रामोहसमन्वितः । नष्टाग्निसंज्ञः क्षिप्रं हि कामलावान्विपद्यते ॥ छर्द्यरोचकहृल्लासज्वरक्लमनिपीडितः । नश्यंति श्वासकासार्तो विड्भेदी कुम्भकामली ॥

अर्थ—जिस कामलारोगीका मल मूत्र काले रंगका हो गया होय और शरीर शोथयुक्त होय नेत्र मुख वमन रक्त वर्णके हो गये होंय तथा मल मूत्र कृष्ण वर्णसे विपरीत (रक्तवर्णके) हो गये होय और रोगीका शरीर पीडासे व्याकुल रहता होय । दाह अरुचि तृषा आनाह तन्द्रा मोह इत्यादि उपद्रव उत्पन्न होगये होयँ जिसकी जठराग्नि बिलकुल नष्ट होगई होय ज्ञानशक्तिरहित पडा रहता होय ऐसे लक्षणोंवाला कामलारोगी निश्चयपूर्वक मृत्युको प्राप्त होता है । और वमन अरुचि हृल्लास (सूखी उलटी) ज्वर ग्लानि श्वास खाँसी इत्यादिसे पीडित और मल जिसका पीला आता होय ऐसे लक्षणोंवाला कुम्भकामलारोगी भी निश्चयपूर्वक मृत्युको प्राप्त होता है ।

कामला रोगकी चिकित्सा ।

रेचनं कामलार्त्तस्य स्निग्धस्यादौ प्रयोजयेत् ।
ततः प्रशमनी कार्य्या क्रिया वैद्येन जानता ॥

अर्थ—प्रथम कामला रोगीको घृतपानसे स्निग्ध करके विरेचन औषध देकर जुलाब करावे इसके अनन्तर दोष शमन करनेवाली चिकित्सा करे ।

(८ सेर) गोदुग्धके साथ तथा १२८ तोला गौघृत मिलाकर पकावे जब घृत सिद्ध हो जावे उतारकर छान लेवे । यह घृत रक्तपित्त दाहज्वर पांडुरोगसे उत्पन्न हुये शोथ (सूजन) भगन्दर, बवासीर, प्रदर, विस्फोटक इत्यादि रोगोंको नष्ट करता है । (आयुर्वेदकी तोलमें १ सेरसे ६४ तोला वजन समझना) ।

व्योषादिघृत ।

व्योषं बिल्वं द्विरजन्यौ त्रिफला द्विपुनर्नवा । मुस्ता चायोरजः पाठा विडंगं देवदारु च । वृश्चिकाली च भार्ङ्गी च सक्षीरैस्तैः श्रृतं घृतम् । सर्वान् प्रशमयत्याशु विकारान्मृत्तिकोद्भवान् ॥

अर्थ—सोंठ, मिरच, पीपल, बिल्व (बेलवृक्षकी जडकी छाल लेना), हल्दी, दारुहल्दीकी छाल, हरड, बहेडा, आंवला, लाल फूलकी सांठ, सफेद फूलकी सांठ इन दोनोंकी जड लेना, नागरमोथा, लोहचूर्ण, पाढ, वायविडंगका मगज, देवदारु, नखपर्णी बूटी, भारंगीकी जडकी छाल ये सब समान भाग लेना सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आंवला इन तीन २ को मिलाकर एक भाग लेना अयरनूसंज्ञक लोहका चूर्ण लेना इन सबको कूट पीसकर कल्क बनाकर कल्कसे चौगुना गौका दुग्ध गर्म करके दवाओंका कल्क मिलाना और औषधियोंके वजनसे द्विगुण घृत मिलाकर मन्दाग्निसे पाक करना जब घृत पक जावे तब उतारकर छानके भर लेवे । यह व्योषादिघृत मृत्तिकासे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगको उपद्रवसहित नष्ट करता है ।

अयोरजस्त्रैफलचूर्णयुक्तं गोमूत्रसिद्धं मधुनावलीढम् ॥
पाण्डुं सकासं सकृशानुमांद्यं शूलं सशोफं शमयेदवश्यम् ॥

अर्थ—गोमूत्रसे सिद्ध किया हुआ लोह मांडूरभस्म यह परिमित मात्रासे लेवे और इसके समानही त्रिफलाका वारीक चूर्ण लेवे और इन दोनोंके समान शहतमें अवलेह बनाकर चाटनेसे बालकका पाण्डुरोग, कास, श्वास, मन्दाग्नि, शूल, सूजन इन सबको नष्ट करता है ।

बालकके कामला रोगकी चिकित्सा ।

पाण्डुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते । तस्य पित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते ॥ हरिद्रनेत्रः सभृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः । रक्तपीतशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रियः ॥ दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः । कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखाश्रया मता ॥

अर्थ—जो अन्नाहारी बालकको पाण्डुरोग होय और वह बालक पित्त कुपित करनेवाले (खटाई नमकीन चरपरे) पदार्थोंका सेवन अधिक करे तो उसका पित्त अति उष्ण होकर रक्त मांसादि धातुओंको दग्ध कर देता है उस समय पर कामला और अधिक समयका होनेसे (कालान्तरात्खरीभूता कृच्छ्रा स्यात्कुम्भकामला) कुम्भ-कामला कहलाता है । यह कामलारोगमें बालकका यकृत् (लीवर) बढनेसे भी उत्पन्न हो जाता है । इस कामलारोगमें (बालक) के नेत्र हल्दीके सादृश्य पीले हो जाते हैं, चर्म, नख, मुख पीले हो जाते हैं (शरीरका रक्त बिलकुल पीलासपर हो जाता है). और मल मूत्र कुछ रक्तामिश्रित पीला आता है रोगीका समस्त शरीर चौमासेके पाण्डुवर्ण मांडूकके समान हो जाता है इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट होकर शरीर निर्बल हो जाता है । शरीरमें दाह (ऊष्मा) बढ जाती है आहार उत्तम रीतिसे परिपक्व नहीं होता मनुष्य शारीरिक शिथिलता और अरुचिसे व्याकुल रहता है इस कामलारोगमें पित्त प्रबल हो जाता है । यह पित्त दो भेदोंसे विभक्त कहा जाता है कोष्ठाश्रित और शाखाश्रित ।

कृष्णो पीतशकृन्मूत्रो भृशं शूनश्च मानवः । सरक्ताक्षिमुखच्छर्दिविण्मूत्रो यश्च ताम्यति ॥ दाहारुचितृडानाहतन्द्रामोहसमन्वितः । नष्टाग्निसंज्ञः क्षिप्रं हि कामलावान्विपद्यते ॥ छर्द्यरोचकहृल्लासज्वरक्लमनिपीडितः । नश्यंति श्वासकासार्तो विड्भेदी कुम्भकामली ॥

अर्थ—जिस कामलारोगीका मल मूत्र काले रंगका हो गया होय और शरीर शोथ-युक्त होय नेत्र मुख वमन रक्त वर्णके हो गये होंय तथा मल मूत्र कृष्ण वर्णसे विपरीत (रक्तवर्णके) हो गये होय और रोगीका शरीर पीडासे व्याकुल रहता होय । दाह अरुचि तृषा आनाह तन्द्रा मोह इत्यादि उपद्रव उत्पन्न होगये होयँ जिसकी जठराग्नि बिलकुल नष्ट होगई होय ज्ञानशक्तिरहित पडा रहता होय ऐसे लक्षणोंवाला कामलारोगी निश्चयपूर्वक मृत्युको प्राप्त होता है । और वमन अरुचि हृल्लास (सूखी उलटी) ज्वर ग्लानि श्वास खाँसी इत्यादिसे पीडित और मल जिसका पीला आता होय ऐसे लक्षणों-वाला कुम्भकामलारोगी भी निश्चयपूर्वक मृत्युको प्राप्त होता है ।

कामला रोगकी चिकित्सा ।

रेचनं कामलार्त्तस्य स्निग्धस्यादौ प्रयोजयेत् ।
ततः प्रशमनी कार्य्या क्रिया वैद्येन जानता ॥

अर्थ—प्रथम कामला रोगीको घृतपानसे स्निग्ध करके विरेचन औषध देकर जुलाब करावे इसके अनन्तर दोष शमन करनेवाली चिकित्सा करे ।

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निम्बस्य वा रसः । प्रातर्माक्षिकसंयुक्तः शीलितः कामलापहः ॥ अञ्जनं कामलार्तानां द्रोणपुष्पीरसं शुभम् । निशागैरिकधात्रीणां चूर्णं वा संप्रकल्पयेत् ॥ नस्यं कर्कोटमूलस्य घ्रेयं वा जालिनीफलम् । गुडूचीपत्रकल्कं वा पिबेत्तक्रेण कामली । भक्तं तक्रेण भुञ्जीत स जहात्याशु कामलाम् ॥ लोहचूर्णं निशायुग्मं त्रिफलां कटुरोहिणीम् । प्रलिह्य मधुसर्पिर्भ्यां कामलार्त्तः सुखी भवेत् ॥

अर्थ–त्रिफलाके हिम वा क्वाथमें शहत मिलाकर पीवे । अथवा गिलोयके हिम वा क्वाथमें शहत मिलाकर पीवे । अथवा दारुहल्दीके हिम वा क्वाथमें शहत मिलाकर पीवे । अथवा नीमकी जडके छालका हिम वा क्वाथ बनाकर शहत मिलाकर पीवे इन प्रयोगोंमेंसे किसी एकको सिद्ध करके प्रातःकालमें पीनेसे कामलारोग नष्ट होता है । (रात्रिको जो औषध गर्म जलके साथ भिगोकर रख दी जावे और प्रातःकाल मसलकर उसका जल छान लिया जावे उसको हिम कहते हैं और जो हरी औषधको कूटकर उसका पानी निचोड लिया जावे उसको स्वरस बोलते हैं । हिमभी औषधका रस कहा जाता है । जिस औषध जलमें पकाकर निचोड ली जावे उसको काढा क्वाथ वा कषाय कहते हैं, यह भी औषधका रस कहलाता है ।) द्रोणपुष्पी (गूमा) दखडीके पत्रोंके स्वरसको नेत्रोंमें लगानेसे अथवा हल्दी गेरू आंवले इन तीनोंको समान भाग लेकर अंजन बनावे और नेत्रोंमें लगावे तो कामलारोगसे उत्पन्न हुई नेत्रोंकी पीतता नष्ट होती है । बांझ ककोड़ेकी जडको कूटकर उसका स्वरस निचोड़ लेवे और स्वरसकी नस्य देनेसे कामलारोगका जहर नासिकामार्गसे स्राव हो जाता है (यहांतक कि इस औषधसे सर्पका जहर भी नासिकाद्वारा निकल जाता है, परन्तु सर्पदंशकी अवस्थामें शीघ्र इसका रस नासिकामें डालना चाहिये) कडुवी तोरईके रसको नासिकामें डालनेसे भी कामलाका जहर निकल जाता है । इसी प्रकार वृन्दाल फलके स्वरस वा हिमकी नस्य लेनेसे कामलाका जहर नासिकाद्वारा स्राव हो जाता है । कामलारोगीको गिलोयके पत्रोंको पिट्ठीके माफिक पीसकर तक्रमें मिलाकर पिलावे । कामलारोगीको तक्रके साथ चावलका आहार देनेसे कामलारोग शान्त होता है । (फिटकरीका फूला करके १४ सालकी उमरसे नीचेके बालकको १ मासेसे १॥ मासेपर्य्यन्त और १४ सालसे ऊपरकी उमरवालेको २ मासेकी मात्रा तक्रके साथ देनेसे कामलारोग शान्त होता है ।) लोहभस्म (अथवा मांडूरभस्म) हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, कुटकी इन सबको समान भाग लेकर परिमित मात्रासे घृत शहतके साथ अवलेह बनाकर चाटनेसे कामलारोग शान्त होता है ।

पाण्डु और कामलारोगीको पथ्यान्न।

यवगोधूमशाल्यन्नरसैर्जाङ्गलजैः समैः ।
मुद्गाढकीमसूराद्यैर्यूषो भोजनमिष्यते ॥

अर्थ—पाण्डु और कामलारोगमें जौ गेहूँ शालि चावलोंका भात जंगली जीवोंका मांसरस मूंग अरहर (तूर) और मसूरादिक अन्नोंका यूष बनाकर देना हितकारी है।

बालकके कृमिरोगकी चिकित्सा।

कृमयस्तु द्विधाः प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदतः । बहिर्मलकफासृग्विट्-जन्मभेदाच्चतुर्विधाः ॥ नामतो विंशतिविधा बाह्यास्तत्र मलोद्भवाः। तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशाम्बराश्रयाः ॥ बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूका लिख्याश्च नामतः । द्विधा ते कोटपिटिकाः कण्डूगण्डान्प्रकुर्वते ॥ अजीर्णभोजी मधुराम्लसेवी द्रवप्रियः पिष्टगुडोपभोक्ता। व्यायामवर्जी च दिवाशयी च विरुद्धभोजी लभते कृमींस्तु ॥ माषपिष्टाम्ललवणगुड-शाकैः पुरीषजाः । मांसमाषगुडक्षीरदधिशुक्तैः कफोद्भवाः ॥ विरुद्धा-जीर्णशाकाद्यैः शोणितोत्था भवन्ति हि ॥

अर्थ—शरीरके बाहर और भीतर इन दो भेदोंसे कृमिरोगके विभाग करनेमें आते हैं इसमेंसे बाहरका कृमिरोग शरीरके ऊपर मैल पसीने आदिसे उत्पत्ति समझनी और आभ्यन्तर कृमि कफ जैसे कि क्षयरोगीके फुप्फुसमें (टुबरकिल) उत्पन्न हो जाते हैं। रक्तमें एक प्रकार सूक्ष्म जन्तु होते हैं और मलविष्टामें उत्पन्न होते हैं इनके चार भेद हैं, और नामभेदसे वीस प्रकारके हैं। शरीरके ऊपर मैल पसीनादिसे उत्पन्न होनेवाले कृमि कपडे और बालोंके आश्रयमें रहते हैं वह कई पैरोंवाले जूं वा लीख नामसे दो प्रकारके हैं कृमिवाले बालक वा बडे मनुष्यके शरीरमें चकते गुमडी फुंसी कण्डु खुजली गांठादि कृमिदंश (काटने) से उत्पन्न होते हैं। आभ्यन्तर कृमि अजीर्णमें भोजन करनेस मधुर (मीठे) पदार्थ खट्टे पदार्थ पतले पदार्थ पिष्टादिक पदार्थ गुडादिके खानेसे (व्यायामवर्जी कसरत न करना दिनमें शयन करने संयोगविरुद्ध आहारके करनेसे मनुष्योंके शरीरमें कृमिरोग उत्पन्न होता है) उडद पिष्टिक पदार्थ (पिट्ठी) आदिके बने पदार्थ खट्टे खारे गुड शाकादिके अतिसेवन करनेसे मनुष्योंके मलमें कृमि उत्पन्न होते हैं। मांस उडद गुड दूध दही शुक्तसंज्ञक कांजी इत्यादिके सेवन. करनेसे कफमें कृमि उत्पन्न होते हैं संयोग विरुद्ध भोजन अजीर्ण और शाकादिके सेवनसे रक्तमें कृमि उत्पन्न होते हैं।

कृमिरोगके लक्षण ।

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगच्छर्दनं भ्रमः । भक्तद्वेषादिसाराश्च सञ्जातकृमिलक्षणम् । कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः ॥ पृथुवर्ध्मनिभाः केचित् केचिद्गण्डपदोपमाः । रूढधान्यांकुराकारास्तनुदीर्घास्तथाऽणवः। श्वेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः सप्तधातु ते । अन्त्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महागुहाः । चुरवोदर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते । हृल्लासमास्यश्रवणामविपाकमरोचकम् । छर्दिशूलज्वरानाहकार्श्यश्वयथुपीनसान् । रक्तवाहिशिरास्थाना रक्तजा जन्तवोऽणवः। अपादावृत्ततामाश्च सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः । केशादालोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः । षडेते कुष्ठकर्माणः सहस्रौरसमातरः। पक्काशये पुरीषोत्था जायन्तेऽधोविसर्पिणः। संवृद्धाश्च भवेयुश्च ते यदामाशयोन्मुखाः । तदास्योद्गारनिःश्वासविड्गन्धानुविधायिनः। पृथुवृत्ततनुस्थूलाः श्यावाः पीताः सिताऽसिताः । ते पञ्चनामभिः ख्याताः ककेरुकमकेरुकाः । सौसुरादाः सशूलाख्यालेलिहा जनयन्ति च। विड्भेदशूलविष्टम्भकार्श्यपारुष्यपाण्डुताः। रोमहर्षाग्निसदनगुदकण्डुर्विमार्गगाः ॥

अर्थ–(कृमि उत्पन्न होनेके लक्षण) ज्वरका उत्पन्न होना शरीरकी रंगतका वदल जाना उदरमें शूल हृदयमें पीडा उलटी भ्रम भोजन करनेसे अरुचि (जी मिचलाना मुखसे लार वहना) अतीसार होना ये लक्षण उदरमें कृमि उत्पन्न होजाने पर होने लगते हैं । कफसे उत्पन्न हुए कृमि आमाशयमें वढकर उदरमें चारों तर्फ फैल जाते हैं उनमेंसे कोई तो चर्मके समान कोई केंचुएकी आकृतिके समान कोई धानके अंकुरकी आकृतिके समान कोई छोटे कोई विशेष बडे कोई श्वेत रंगके कोई तांवेके रंगके होते हैं । ये जन्तु अन्त्राद, उदरवेष्ट, हृदयाद, महागुह, (चुरव) दर्भकुसुम, सुगन्ध, इन भेदोंसे सात प्रकारके होते हैं । ये कृमि जव अधिक वढ जाते हैं तव सूखी उलटीका आना, मुखसे लारका वहना, आहारका न पचना, अरुचि, वमन, शूल, ज्वर, आनाह, कृशता, सूजन और पीनसको उत्पन्न करते हैं । रक्तके वहनेवाली नाडियोंमें रहनेवाले रुधिरसे उत्पन्न हुए कृमि ये अति सूक्ष्म होते हैं कितनेही तो इतने सूक्ष्म होते हैं कि सूक्ष्मदर्शक यन्त्रकी सहायताके विदून नहीं दीख सक्ते,

इन रक्तजन्तुओंके पैर नहीं होते कोई गोल (और कोई लम्बे भी होते हैं) ताम्रवर्ण व रक्त वर्णके लाल होते हैं। इनमेंसे कोई छोटे भी होते हैं जो कि देखनेमें नहीं आते उनको सूक्ष्म दर्शक यन्त्र विदून नहीं देख सक्ते इन कृमियोंके केशाद, लोमविध्वंस, रोमद्वीप, उदुम्बर, सहस्रसर, मातर ये छः नाम हैं, ये जन्तु विशेष करके कुष्ठरोगको उत्पन्न करते हैं। और पक्काशयमें मलसे कृमि उत्पन्न होकर गुदाके द्वारा होकर जो मलके साथ कृमि निकलते हैं ये मलाशयमें जब अधिक बढ जाते हैं तब उस मनुष्यकी डकार और श्वास प्रश्वासमें मलके समान दुर्गन्ध आती है, य मलके कृमि लम्बे गोल छोटे बडे धूसर वर्णवाले पीले वर्णके सफेद वर्णके काले वर्णके होते हैं। इनके ककेरुक, मकेरुक, सौसुराद, शूलाख्य, लेलिह, ये पांच नाम हैं, ये जन्तु विमार्गगामी हो जानेपर मलभेद, शूल, विष्टम्भ, कृशता, कर्कशता, पाण्डुता, रोमाञ्च, मन्दाग्नि और गुदाद्वारमें खुजलीको उत्पन्न करते हैं।

कृमिरोगकी चिकित्सा।

बालकोंका शरीर तथा वस्त्र स्वच्छ रखना चाहिये उनके शरीर पर मल एकत्र न होने पावे। यदि बालकके शरीरपर मल उत्पन्न होकर पसिना आवेगा तो अवश्य बाह्य कृमि उत्पन्न हो जावेंगे। बालकोंको अतिमिष्ट और पतले आहार जिनका ऊपर निदानमें वर्णन हो चुका है न देने चाहिये और बालकको अजीर्ण कारक पदार्थोंसे भी बचाना चाहिये बहुतसे बालकोंको मिष्ठ पदार्थ खानेकी चाट लग जाती है सो अति मिष्ट पदार्थ भी अधिकतासे न देना चाहिये, जो २ कारण ऊपर कृमि उत्पन्न होनेके लिखे गये हैं उनपर ध्यान देकर बालकको बचाना चाहिये। बालक विशेष ज्ञानशून्य होता है उसको अपने हित अहितका ज्ञान नहीं जिह्वाके स्वादका विशेष लोभी होता है सो बालकके रक्षकोंको चाहिये कि जो आहार विहार बालकके शरीरको अहित पहुँचानेवाले हैं उनसे बचानेकी चेष्टा करते रहैं।

तेषामन्यतमं वैद्यो जिघांसुः स्निग्धमातुरम्। सुरसादिविपक्केन सर्पिषा वाऽन्नमादिशेत्। विरेचयेत्तीक्ष्णतमैः योगैरास्थापयेद्धि च। विडंगतण्डुलव्योषशिग्रुभिर्मरिचेन च। तक्रसिद्धा यवाग्वः स्यात्कृमिघ्नी संसुवर्चिका। विडंगव्योषसंयुक्तमन्नमण्डं पिबेन्नरः। दीपनं कृमिनाशाय वह्निश्च कुरुते भृशम्। सक्षौद्रः कृमिजिद्भिः पीतः कृमिहरशिग्रुजश्च क्वाथः। पीतं मूत्रमजायाः ग्रन्थिकचूर्णान्वितं वापि। पारशीययवानी पीता पर्युषिता वारिणा प्रातः। गुडपूर्वा कृमिजालं कोष्ठगतं पातयत्याशु॥

सुस्ताखुपर्णीफलदारुशिग्रुकाथः सकृष्णाकृमिशत्रुकल्कः । मार्गद्वयेनापि चिरप्रवृत्तान्कृमीन्निहन्ति कृमिजांश्च रोगान् ॥ पलाशबीजस्वरसं पिबेद्वा क्षौद्रसंयुतम् । पिबेत्तद्बीजकल्कं वा तक्रेण कृमिनाशनः ॥ लिह्यात् क्षौद्रेण विडङ्गं चूर्णं कृमिविनाशनम् । सुरसादिगणं वापि सर्वथैवोपजायते ॥ प्रत्यहं कटुकं तिक्तं भोजनञ्च हितं भवेत् । कृमीणां नाशनं रुच्यमग्निसंदीपनं परम् ॥

अर्थ—उपरोक्त कथन किये हुए दोनों प्रकारके कृमिरोगकी निवृत्तिके लिये प्रथम रोगीको स्निग्ध करे इसके अनन्तर सुरसादिगणकी औषधियोंके द्वारा पकाये हुए घृतके साथ आहार देवे । अथवा तीक्ष्ण विरेचन व आस्थापन वस्तीका प्रयोग करे । परन्तु वडे मनुष्योंको तीव्र विरेचन आस्थापन वस्ती देना योग्य है वालकोंको केवल मृदु विरेचन देवे । (सुरसादिगणके औषध) तुलसी, वनतुलसी, दोंना मरुआ, सफेद, वनतुलसी, भूस्तृण, अंगुदाक (यह द्रोणपुष्पीके समान ही एक प्रकारकी बूटी है), नकछिकनी, खरपुष्पी, वायविडंग, कायफल सुरसी (बिल्वनासी, निर्गुण्डी, गोरखमुण्डी, मूसाकर्णी, भारंगी, काकजंघा, मकोय, वकायन) यह सुरसादिगण कृमिनाशक है । वायविडङ्गके चावल, त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पीपल), सहँजनाकी सूखी हुई जड, काली मिरच इनके काथद्वारा सिद्ध की हुई यवागू (सीरा, लापसी) में सज्जीखार डालकर पिलावे । यह कृमि नाशक है । चावलोंका भात वनाकर उसका मांड छान लेवे और उसमें वायविडंग तथा त्रिकटुका वारीक चूर्ण परिमित मात्रासे मिलाकर कृमिरोगीको पिलावे यह प्रयोग अग्निदीपन और कृमिनाशक है । वायविडंग तथा सूखी हुई सहजनेकी जड दोनों समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ वनावे और उसमें शहत डालकर कृमिरोगीको पिलावे । अथवा पीपलामूलको सूक्ष्म चूर्ण करके वकरीके दुग्धके साथ पान करावे तो कृमिरोग नष्ट होवे । खुरासानी अजवायनको वासी (शीतल) जलमें पीसकर छान लेवे और उसमें गुड मिलाकर पिलावे तो कोष्टगत समस्त कृमि समूह नष्ट हो जाता है । नागरमोथा, आखुपर्णी (मूसाकणा), त्रिफला (हरड, वहेडा, आंवला) देवदारु, सूखी हुइ सहँजनेकी जड इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका काढा वना उस काढेमें पीपल और वायविडंगका चूर्ण अथवा कल्क मिलाकर पिलावे तो दोनों मार्गसे प्रवृत्त हुए कृमि और कृमिरोगसे उत्पन्न हुए समस्त रोग व उपद्रव नष्ट हो जाते हैं । ढाक (केशू) के बीजोंके स्वरसमें शहत मिलाकर पीनेसे अथवा सूखे हुए ढाकके बीजों

(पलाशपापडा) का चूर्ण करके गौके तक्र (छाछ)के साथ पीनेसे कृमिरोग निवृत्त हो जाता है । वायविडंगकी मिंगीका बारीक चूर्ण करके परिमित मात्रासे शहतमें मिलाकर चाटनेसे कृमि रोग निवृत्त होता है । और सुरसादि गणकी औषधियोंमेंसे एक एक व कई २ औषध मिलाके शहत व गौके तक्रके साथ सेवन करनेसे कृमिरोग नष्ट होता है । कृमिरोगी नित्यप्रति कटुक और तिक्त पदार्थोंका भोजन करे तो उसको हितकारी है और कृमिरोगका नाशक है रुचिकर्त्ता तथा अग्निप्रदीप्त करनेवाला है ।

यवक्षारं कृमिरिपुमगधा मधुना सह ।
भक्षयेत्कृमिरोगघ्नं पक्तिशूलहरं परम् ॥

अर्थ—जवाखार, वायविडंग, पीपल इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना शहतमें लेह बनाकर परिमित मात्रासे सेवन करे तो उदरकृमि तथा पक्तिशूलको हरण कर्त्ता है ।

बाह्यकृमि (यूक) नाशन प्रयोग ।

रसेन्द्रेण समायुक्तो रसो धत्तूरपत्रजः ।
ताम्बूलपत्रजो वापि लेपनं यूकनाशनम् ॥

अर्थ—पारदको धतूरेके पत्रके स्वरसमें अथवा नागरवेल पानके स्वरसमें मर्दन करके शिरमें लगानेसे जूं और लीख नाश होते हैं ।

भण्डी पिष्टाऽऽरनालेन गोमूत्रेणाभिपिष्टकाः ।
कुनटी कटुतैलेन योगा यूकापहास्त्रयः ॥

अर्थ—मजीठको कांजीमें पीसकर शिलारसको गोमूत्रमें पीसकर और मंनशिलको कडुवे (सरसों) के तैलमें पीसकर शिरमें लेप करनेसे जूं लीख नष्ट होते हैं तीनों प्रयोग जूं लीखको नष्ट करनेवाले हैं ।

मशकमत्कुणनाशक धूप ।

ककुभकुसुमं विडङ्गं लांगलीं भल्लातकं तथोशीरम् । श्रीवेष्टकं सर्जरसं मदनश्चैवाष्टमं दद्यात् ॥ एष सुगन्धो धूपो मशकानां नाशनः श्रेष्ठः । शय्यासु मत्कुणानां शिरसि वस्त्रे च यूकानाम् ॥

अर्थ—अर्जुनवृक्षके फूल, वायविडंग, कलिहारी, (यह हल्दीकी गांठकी आकृतिका विष है) भिलावे, खस, श्रीवेष्टधूप, राल, मैनफल इन सबको समान भाग लेकर

कूटकर धूप बनावे यह धूप घरमें देनेसे मच्छर भाग जाते हैं । इस धूपको खाटमें देनेसे खटमल भाग जाते हैं । धूप देकर कपडोंपर धूआं लगानेसे जूं नष्ट हो जाते हैं।

मक्षिकानाशक प्रयोग ।

तक्रपिष्टेन तालेन लेपो गुग्गुलकं शुभम् । तमाघ्राय गृहांत्यांति मक्षिकानात्र संशयः ॥ शालिनिर्यासधूमेन गृहं त्यजति मक्षिका ॥ मार्जारस्य मलं तालं पिष्ट्वा मूषिकमालिपेत् । तमाघ्राय गृहं त्यक्त्वा सर्वो निर्यान्ति मूषिका ॥

अर्थ—एक पुतला आटेका बनाकर उस पुतलेके ऊपर छाछमें पिसी हुई हरतालका लेप करके घरके उस स्थानमें रक्खे जहांपर बहुत मक्खी आती होयँ, इस पुतलेकी गंधसे सब मक्खी घरको त्याग देती हैं । रालकी धूनी देनेसे मक्खी घरको त्याग देती हैं । बिलावकी विष्ठा और हरताल दोनों एकत्र पीसकर एक चूहेके ऊपर लेप कर देवे इस चूहेकी गन्ध सूंघतेही सब घरके चूहे भाग जाते हैं ।

भुजंगमूषकादिनाशक धूप ।

लाक्षाभल्लातकश्च श्रीवासः श्वेतापराजिता । अर्जुनस्य फलं पुष्पविडङ्गं सर्जगुग्गुलुः । एभिः कृतेन धूपेन शाम्यन्ति नियतं गृहे । भुजङ्गमूषका दंशा घुणा मशकमत्कुणाः ॥

अर्थ—लाख, भिलावे, लोहवान, सफेद फूलकी अपराजिता, अर्जुनवृक्षके फूल, फल, वायविडङ्ग, राल, गूगल इन सबको समान भाग लेकर धूप बना घरमें इस धूपको देनेसे घरमेंसे सर्प, चूहे, डाँस, घुन लगनेवाले कृमि, मच्छर, खटमल, सब भाग जाते हैं।

कृमिरोगवालेको कुपथ्याहारका त्याग ।

क्षीराणि मांसानि घृतानि चापि दधीनि शाकानि च पर्णवन्ति । अम्लं च मिष्टं च रसं विशेषात् कृमीन् जिघांसुः परिवर्जयेद्धि ॥

अर्थ—बगैर औषधका दूध, मांस, बगैर औषधका घृत, बगैर औषधका दही, पत्रोंके शाक, खट्टे पदार्थ, मीठा रस इन पदार्थोंको विशेष करके कृमिरोगी त्याग देवे ।

कृमीणां विट्कफोत्थानामेतदुक्तं चिकित्सितम् ।
रक्तजानान्तु संहारं कुर्यात् कुष्ठचिकित्सया ॥

अर्थ—मलजन्य और कफजन्य तथा (बाह्य) कृमियोंकी चिकित्सा ऊपर लिखी गई है । रक्तजन्य कृमिरोगकी चिकित्सा कुष्ठरोगकी चिकित्साके समान करनी उचित

है। यह केवल बालकोंको कष्ट पहुँचानेवाले कृमियोंकी चिकित्सा सूक्ष्म रीतिसे लिखी है। विशेष चिकित्सा बडे ग्रन्थोंमें देखो।

बालकका स्वरभङ्ग व (स्वरभेद)

अर्थ—विशेष जोरके साथ भाषण करनेसे व रुदन करनेसे विषके खानेसे ऊँचे स्वरसे पाठ करना गलेमें किसी वस्तुके लगनेसे और वात पित्त कफके कुपित होनेसे ये कण्ठमें स्वरके बहानेवाली नाडियोंमें प्राप्त होकर स्वरको नष्ट कर देते हैं, वात पित्त कफादिके भेद तथा सन्निपात क्षय भेद इन भेदोंसे छः प्रकारका स्वरभेद कहा गया है। परन्तु छोटे बालकोंको रुदन करनेसे बडे बालकोंको पाठ आदिके करनेसे तथा दोषोंके कुपित होनेसे ही स्वरभेद होता है। इसके विशेष लक्षण निदान ग्रन्थमें देखना चाहिये।

मृगनाभ्यादिअवलेह।

मृगनाभिः ससूक्ष्मैला लवंगकुसुमानि च। त्वक्क्षीरी चेति लेहोऽयं मधुसर्पिः समायुतः। वाक्स्तम्भमुग्रञ्जयति स्वरभ्रंशसमन्वितम्। ब्राह्मी वचाऽभया वासा पिप्पली मधुसंयुता। अस्य प्रयोगात्सप्ताहात्किन्नरैः सह गीयते।

अर्थ—कस्तूरी असली १॥ मासे, छोटी इलायची १ तोला, लवङ्ग १ तोला वंशलोचन १ तोला इनको बारीक पीसकर औषधियोंके वजनसे दो गुण शहत औषधियोंके चूर्णके समान गोघृत मिलाकर अवलेह बनावे और परिमित मात्रासे सेवन करे तो वाणीका स्तम्भ और स्वरभेदरोग नष्ट होय। तथा ब्राह्मीबूटी, वच, हरडकी छाल, अडूसाकी जडकी छाल, पीपल इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और परिमित मात्रासे शहतके साथ अवलेह बनाकर चटावे तो सात दिवसके सेवनसे स्वरभङ्ग नष्ट होकर किन्नरोंके समान स्वर हो जाता है।

तथा कोष्णजलं देयं भुक्त्वा घृतगुडोदनः। पैत्तिके तु विरेकस्तु पयश्च मधुरैः शृतम्। लिहेन्मधुरकानां वा चूर्णं मधुसमायुतम्। अश्नीयाच्च ससर्पिष्कं यष्टीमधुकषायकम्। पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम्। पिबेन्मूत्रेण मतिमान् कफजे स्वरसंक्षये। अजमोदां निशां धात्रीं क्षारं वह्निं विचूर्ण्य च। मधुसर्पियुतं लीढ्वा स्वरभेदं व्यपोहति। पलत्रिकत्र्यूषणयावशूकचूर्णञ्च हन्यात्स्वरभेदमाशु। किंवा कुलित्थं वदनान्तरस्थं स्वरामयं हन्त्यथ पौष्करं वा। वाते सलवणं तैलं पित्ते

सर्पिः समाक्षिकम् । कफे सक्षारकटुकं क्षौद्रं केवलमिष्यते । गले तालुनि जिह्वायां दन्तमूलेषु चाश्रितः । तेन निष्क्रामते श्लेष्मा स्वरश्चाशु प्रसीदति । अगरुसुरदारुदार्वीसलिलं स्वरभेदहंतिपिबेत्कोष्णम् । व्याघ्रीसुरतरुनागरसिंहमुखक्वाथमथापिवा ॥

अर्थ—स्वरभंगवालेको घृत गुड गर्म भात इनका भोजन कराके गर्म जल पान करावे । पित्तके स्वरभंगमें विरेचन कराना उचित है और मधुर औषधियोंको दुग्धमें पकाकर छानकर उस दुग्धको पान करावे । अथवा मधुर औषधियोंका चूर्ण करके शहतमें मिलाकर चटावे । अथवा मुलहटीके क्वाथमें घृत डालकर पान करावे । पीपल, पीपलामूल, काली मिरच, सोंठ इनको समान भाग लेकर (सूक्ष्म चूर्ण) बना परिमित मात्रासे गोमूत्रमें मिलाकर पान करे तो स्वरभंग नष्ट होय । अजमोद, हल्दी, आंवले, जवाखार, चित्रककी छाल इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और शहतके साथ परिमित मात्रासे सेवन करे तो स्वरभङ्ग रोग नष्ट होवे । त्रिफला, त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पीपल) जवाखार इनको समान भाग लेकर चूर्ण बना शहत मिलाकर गोलियां बनालेवे इन गोलियोंको मुखमें रखकर इनका रस अन्दरको चूसता रहे तो स्वरभङ्ग रोग नष्ट होता है, इसी प्रकार कुल्थी तथा पुष्करमूलके चूर्णकी गोली बनाकर मुखमें रखनेसे स्वरभङ्ग निवृत्त होता है । वातजन्य स्वरभङ्गरोगमें सेंधानमकका बारीक चूर्ण तैल मिलाकर सेवन करे । और पित्तजन्य स्वरभङ्गमें शहतके साथ न्यून मात्रासे घृत मिलाकर सेवन करे । और कफजन्य स्वरभंगमें जवाखार त्रिकटुका चूर्ण शहतके साथ मिलाकर सेवन करे । इस प्रकार सेवन करनेसे गला, तालु, जीभ, दाँतोंकी जडमें रहनेवाला श्लेष्ममल निकलकर गिर जाता है । और स्वर स्वच्छ हो जाता है । अगर देवदारु इनको समान लेकर परिमित मात्रासे क्वाथ बनावे और मन्दोष्ण (निवांय २) पान करनेसे स्वरभंग निवृत्त हो जाता है । अथवा कटेलीकी जड, देवदारु, सोंठ, अडूसाकी जडकी छाल इनको समान भाग लेकर क्वाथ बनावे इसके पीनेसे स्वरभंग रोग नष्ट होता है ।

सारस्वतघृत ।

समूलपत्रमादाय ब्राह्मीं पक्षाल्य वारिणा । उलूखले क्षोदयित्वा रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ रसे चतुर्गुणे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् । औषधानितुपेष्याणीतरनिमानि प्रदापयेत् ॥ हरिद्रा मालती कुष्ठं त्रिवृता सहरीतकी । एतेषां पलिकान् भागान् शेषाणि कार्षिकाणि च ॥

पिप्पल्योऽथ विडंगानि सैंधवं शर्करा वचा ॥ सर्वमेतत्समालोड्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ एतत्प्राशितमात्रेण वाग्विशुद्धिः प्रजायते । सप्तवारप्रयोगेण किन्नरे सह गीयते ॥ अर्द्धमासप्रयोगेण सोमराजी वपुर्भवेत् । मासमात्रप्रयोगेण श्रुतमात्रन्तु धारयेत् ॥ हन्याष्टादशकुष्ठानि अर्शांसि विविधानि च । पञ्चगुल्मान् प्रमेहांश्च कासं पंचविधं तथा ॥ वन्ध्यानामपि नारीणां नराणामल्परेतसाम् । घृतं सारस्वतं नाम बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥

अर्थ—मूल (जडसहित) तथा पत्रसहित ब्राह्मी बूटीको जलमें प्रच्छालन करके कूट लेवे और कपडेमें रखकर इसका स्वरस १६ सेर लेवे और गौका घृत ४ सेर लेवे हल्दी, मालतीके पुष्प, कूट, निसोत, हरडकी छाल, ४ तोला लेवे, पीपल, वायविडंग, सैंधानमक, मिश्री, वच, प्रत्येक औषध दो २ तोला लेवे इन सूखी हुई सब औषधियोंको कूट पीसकर ब्राह्मीके रसके साथ कल्क बनावे और सबको मिलाकर एक कलईके पात्र व लोहकी कढाईमें चढाकर मन्दाग्निसे पचावे जब ब्राह्मीका रस जल जावे तब उतारकर घृतको वस्त्रमें छानकर भर लेवे यह ब्राह्मी (सारस्वत) घृत सिद्ध हुआ। इसको बालक तथा युवा वृद्ध मनुष्योंको उनकी उमरके प्रमाणसे मात्रा देकर सेवन करावे, इसके सेवन करनेवाले मनुष्योंकी वाणी शुद्ध होय सात दिवस सेवन करनेसे किन्नरोंके समान गायन करे । १५ दिवस सेवन करे तो सोमराजी (चन्द्रमाके) समान उज्जल वर्ण होय । एक मास सेवन करनेसे जो कुछ शास्त्र पाठादि श्रवण करे उसको कंठस्थ कर लेवे । अठारह प्रकारके कुष्ठ रोग, अर्शरोग, गुल्मरोग, प्रमेहरोग, खांसी इनको नष्ट करे । निस्सन्तान वन्ध्या स्त्री और अल्पवीर्य्यवाले पुरुषोंको यह सारस्वत घृत बल और वर्णका बढानेवाला है । इस घृतका उपयोग हमने २१ सालसे अनेक रोगियोंपर किया है सबको लाभ पहुँचता है । विशेष करके बालकोंको १ मात्रा हररोज दो तीन मास सेवन कराई जावे तो अति तीव्र बुद्धि और धारणशक्तिवाले हो जाते हैं मन्दबुद्धिवाले विद्यार्थी जिनको पाठ कण्ठस्थ नहीं होता उनको इसका सेवन अवश्यही करना चाहिये ।

बालकोंकी अरुचिकी चिकित्सा दाडिमादिचूर्ण ।

द्वे पले दाडिमाम्लस्य खण्डं दद्यात्पलत्रयम् । त्रिसुगन्धिपलं चैकं चूर्ण-

मेकत्र कारयेत् ॥ तच्चूर्णमात्रया भुक्तमरोचकहरं परम् । दीपनं पाचनञ्च स्यात्पीनसज्वरकासजित् ॥

अर्थ—खट्टे अनारदानेका अम्लरस ८ तोला, मिश्री व बूरा १२ तोला, दालचीनी, पत्रज, छोटी इलायचीके बीज-ये तीनों मिलाकर चार तोला (इनको पृथक् २ डेढ तोलाके प्रमाणसे लेवे) कूटछानकर चार तोला चूर्ण तैयार होगा इन सबको मिलाकर चटनीके समान बना लेवे । इसके सेवनसे बालकोंकी अरुचि नष्ट हो जठराग्निको प्रदीप्त करता है । पाचन है और पीनस ज्वर कास इनको निवृत्त करे । पीपल और जवाखारका चूर्ण शहतमें मिलाकर अथवा खट्टे अनारके रसमें मिलाकर अथवा पकीहुई अमलीके पनेमें मिलाकर बालकोंकी जीभ, तालूपर लगानेस दूध पीनेवाले बालकोंकी अरुचि निवृत्त होती ह । जीरा, काली मिरच, सेंधानमक, छोटी इलायचीके बीज इनको समान भाग लेकर चूर्ण बनावे, इस चूर्णको अदरखके रस तथा शहत मिलाकर दूध पीनेवाले बालकोंकी जिह्वा तालूपर फेरनेसे अरुचि निवृत्त हो दूध पीने लगते हैं, ये दोनों प्रयोग हमारे अनुभव किये हुए हैं ।

जीरकद्वयमम्लीका वृक्षाम्लं दाडिमान्वितम् ।
चित्रकार्द्रकसंयुक्तमरुचिं हन्ति दुष्कराम् ॥

अर्थ—सफेद जीरा, स्याहजीरा, पकी हुई इमलीका गूदा, आंवला, अनारदाना, चित्रककी छाल, सोंठ इनको समान भाग लेकर चूर्ण बनावे येह चूर्ण दुर्निवार अरुचिको नष्ट करता है ।

एलादि चूर्ण ।

सूक्ष्मैला पत्रकं त्वक् च पत्रं तालिशजन्तुगा । पृथ्वीका जीरकं धान्यं दाडिमं चार्द्धकार्षिकम् ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् । मरिचं दीप्यकञ्चैव वृक्षाम्लं चाम्लवेतसम् ॥ अजमोदाऽश्वगन्धा च दधित्थं चापि कार्षिकान् । प्रदेया चातिशुद्धायाः शर्करायाश्चतुः पलम् । चूर्णमग्निप्रसादं स्यात्परमं रुचिवर्द्धनम् । प्लीहानं कासमर्शांसि शूलं श्वासं वमिं ज्वरम् ॥ निहन्ति दीपयत्यग्निं बलवर्णप्रदं परम् । वातानुलोमनं हृद्यं कण्ठजिह्वाविशोधनम् ॥

अर्थ—छोटी इलायचीके बीज, तजपत्र, दालचीनी, तालीसपत्र, वंशलोचन, बडी इलायचीके बीज, काला जीरा, धनियां, खट्टा अनारदाना ये प्रत्येकको आधा तोला

प्रमाणसे लेवे। और पीपल, पीपलामूल, चव्य, काली मिरचकी जड, चित्रक, सोंठ, काली मिरच, अजवायन, वृक्षाम्ल (चूकाकी लकडी) अमलवेतस, अजमोद, असगन्ध, सूखा हुआ कैथका गूदा ये प्रत्येक एक २ तोला लेवे, मिश्री १६ तोला इन सबको एकत्र कूट छानकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। यह चूर्ण बालकसे लेकर वृद्धपर्य्यन्तको लाभदायक है, परिमित मात्रासे सेवन कियाहुआ अग्निको अत्यन्त प्रदीप्त करता है। रुचिकर्त्ता है प्लीहा खांसी, बवासीर, शूल, श्वास वमन और ज्वरको नष्ट करनेवाला है, अग्निबल और रूपको बढानेवाला है वातको अनुलोमन कर्त्ता है। हृदयको हितकारी कण्ठ और जिह्वाको शुद्ध करता है।

बालककी मूर्च्छाकी चिकित्सा।

मूर्च्छारोग निर्बल कृश बालकोंको प्रायः होता है मूर्च्छा रोगके कितने ही कारण हैं, लेकिन बालकोंको तीन कारणोंसे ही मूर्च्छा रोग होता देखा गया है। यातो शारीरक निर्बलता या मलमूत्रका अवरोध अथवा बालक कहींसे गिर गया होय या किसी वस्तुका अभिघात लगा होय। यदि बालक कृश और निर्बल होय तो क्षयरोगमें लिखे हुए प्रयोगोंका सेवन कराके बालकके शारीरक बलको बढाना चाहिये, जो कोष्ठबद्ध या मूत्रका अवरोध होय तो मलमूत्रको निकालनेवाली औषध देनी योग्य है, जो अभिघातसे मूर्च्छा हुई होय तो चैतन्य करनेवाली क्रिया करना योग्य है। हमने कई बालक मूर्च्छारोगी ऐसे भी देखे हैं कि उनके मस्तककी तर्फ अधिक रक्त चढनेसे मूर्च्छा होगई और उपचार करनेसे रक्त नीचे उतर आया है तो चैतन्य हो गये हैं। इस स्थितिका उपाय यही है कि बालकके मस्तकपर शीतल जलका कपडा भिगोकर रखना अथवा बर्फ मिलती होय तो कपडेमें लपेटकर बर्फ रखना और आयुर्वेदमें मूर्च्छारोगके लिये प्रायः शीतोपचार करनाही योग्य समझा गया है। शीतल जलका छिडकना मूर्छित रोगीको चैतन्य करता है, शीतल जल एक बडे बर्त्तनमें भरकर बालकको स्नान कराना मूर्च्छारोगको निवृत्त करता है, चन्दनको घिसकर लेप करना शीतल पंखेकी पवन करना गुलाबजल केवडाजल खसका इतर जलमें मिलाकर अथवा खीरा ककडीका इतर जलमें मिलाकर छिडकना मूर्छितको चैतन्य करता है। सुगन्धित मधुर शरबतको शीतल जलमें मिलाकर पिलाना मूर्च्छा रोगमें हितकारी है।

कोलास्थिपद्मकोशीरं चन्दनं नागकेशरम्। लीढं क्षौद्रेण बालानां मूर्च्छानाशनमुत्तमम्॥ द्राक्षामामलकं स्विन्नं पिष्ट्वा क्षौद्रेण संयुतः। सर्वदोषभवां मूर्च्छां सज्वरां नाशयेद्ध्रुवम्॥ शीताः प्रदेहा मणयः

सहाराः सेकावगाहा व्यजनस्य वाताः। लेह्यान्नपानादिसुगन्धिशीतं मूर्च्छासु सर्वासु परं प्रशस्तम् ॥

अर्थ—वेरकी गुठलीका मगज, पद्माखकी छाल, खस, सफेद चन्दन, नागकेशर इनको समान भाग लेकर चूर्ण वना परिमित मात्रासे शहतके साथ अथवा (शर्वत केवडाके साथ) वालकोंको चटानेसे मूर्च्छारोग नष्ट होता है। मुनक्का दाख वीज निकाले हुए और उवाले हुए आमले इनको समान भाग लेकर वारीक पीस लेवे और शहत मिलाकर चटनीके समान वना परिमित मात्रासे वालकको सेवन करावे तो त्रिदोषकी मर्छा और ज्वर नष्ट होय शीतल लेप शीतलवीर्य्य (तसीरवाली), मणियोंके हार, शीतल सेंक, शीतल अवगाहन ये सव शीतल उपचार मूर्छाको नष्ट करते हैं। पंखाकी पवनादि ऊपर लिख आये हैं।

महौषधामृता क्षौद्रं पुष्करं ग्रन्थिकोद्भवम्। पिवेत् कणायुतं क्वाथं मूर्च्छायाञ्च मदेषु च ॥ पिवेद्दुरालभाक्वाथं सघृतं भ्रमशान्तये। त्रिफलायाः प्रयोगो वा प्रयोगः पयसोऽपि च ॥ रक्त जायान्तु मूर्छायां हितः शीतक्रियाविधिः ॥

अर्थ—सोंठ, गिलोय, पुष्करमल, पीपलमूल, सवको समान भाग लेकर परिमित मात्रासे क्वाथ वनावे और शहत तथा पीपलका चूर्ण डालकर पिलावे तो मूर्च्छा और मद दोनों निवृत्त होते हैं॥ और धमासेके क्वाथमें घृत मिलाकर पीनेसे भ्रम शान्त होता है। त्रिफला सेवन करनेसे तथा दुग्धका सेवन करनेसे भ्रम शान्त होता है। और रक्तजन्य मूर्छामें शीतल उपचार करना चाहिये।

(वालककी नष्टसंज्ञा) वेहोशीके लक्षण तथा चिकित्सा।

नष्टसंज्ञो वमेत्फेनं संज्ञावानतिरोदति।
पूयशोणितगन्धित्वं स्कन्दापस्मारलक्षणम् ॥

अर्थ—जो वालक वेहोश हो जाय मुखसे झाग निकले और होशमें आनेपर वहुत जोर रुदन करे तथा जिसके शरीरमेंसे सडी हुई राध (पीव) कीसी गंध आती होय इसको स्कन्दापस्मार रोग कहते हैं, यह मृगी रोगकाही रूपान्तर समझा जाता है॥ इसकी चिकित्सा इस प्रकारसे करे।

विल्वः शिरीषो गोलोमी सुरसादिश्च यो गणः॥ परिषेके प्रयोक्तव्यः स्कन्दापस्मारशान्तये। अष्टमूत्रविपक्वन्तु तैलमभ्यंजने हितम्। उत्सा-

दनं वचाहिंगुयुक्तं स्कन्दग्रहे हितम्। गृध्रोलूकपुरीषाणि केशा हस्तिनखो-द्भूतम्। वृषभस्य तु रोमाणि योज्यान्युद्धूपनेऽपि च ॥

अर्थ—वेलकी जड, शिरस, सफेद दूब, और सुरसादि गणके औषध इनके क्वाथसे स्कन्दापस्माररोगकी शान्तिके अर्थ बालकके शरीरपर सेचन करे। सुरसादिगणके (औषध) इसी अध्यायमें पूर्व लिखे गये हैं क्रमि चिकित्साके प्रकरणमें वहां देखो। (अष्टमूत्रतैल) गौ, बकरी, भेड, भैंस, घोडा, गधा, ऊँट, हाथी इन अष्ट पशुओंके आठ भाग मूत्रमें २ भाग तैल मिलाकर पकावे, जब मूत्र जल तैलमात्र बाकी रहे तब उतारकर छानकर भर लेवे इस तैलकी मालिस बालकके शरीरपर करनेसे स्कन्दा-पस्माररोग शान्त होता है। वच और हींग इनको बारीक जलके साथ पिट्ठीके समान पीसकर बालकके शरीरपर उवटना करे तो स्कन्दापस्मार रोगसे ग्रस्त बालकको हितकारी है। धूप गीधकी वीट, उल्लूकपक्षीकी वीट, बाल हाथीका नख (नखून), घृत, वैलवाल इनको समान भाग लेकर धूप बनावे इस धूनीको बालकको देनेसे स्कन्दापस्मार रोग शान्त होता है। यह स्कन्दापस्माररोग अपस्मारका अनुयायी होनेसे यहां लिखा गया है।

भस्मकरोग।

प्राय: देखा गया है कि जो बालक गडरनी, अहीरी, लोधनादि धायोंके घर पोषण (पलने) के लिये जन्मते ही दे दिये जाते हैं और जब दुग्धाहार बन्द होकर उनको अन्नाहार दिया जाता है तो उस गरीब जातिकी धायके यहां उन बालकोंको रुक्ष बासी मोटे अन्नकी रोटी या जंगली शाक आदि खानेको दिये जाते हैं। इस रुक्षाहारके करनेसे बालकका कफ क्षीण होकर वात पित्त बढ जाते हैं, तब ये बढे हुए दोष जठराग्निसे मिलकर भोजन किये हुए पदार्थको शीघ्र पाचन कर देते हैं। इसीसे इसको भस्मक अग्नि कहते हैं, यदि इस भस्मक अग्निवाले बालकको भूखके समयपर खानेको न मिले तो बढी हुई अग्नि रस रक्तादि धातुओंको पचन करती है। ऐसे बालकोंके हाथ पैर गर्दनादि अङ्ग सूखे हुए होते हैं और पेट बहुत बड़ा हो जाता है और बालककी लालसा हर समय खानेपर रहती है वह किसी समय भी खानेसे उदासीन नहीं होता।

भस्मकरोगकी चिकित्सा।

अन्नपानैर्गुरुस्निग्धैर्मधुरसान्द्रहिमस्थिरैः। पीतादिरेचनैर्धीमान्भस्मकं प्रशमं नयेत् ॥ औदुम्बरं त्वचं पिष्ट्वा नारीक्षीरे युतां पिबेत्। ताभ्या

च पायसं सिद्धं भुक्तं जयति भस्मकम् ॥ मयूरतण्डुलैः सिद्धं पायसं भस्मकं जयेत् । विदारीस्वरसक्षीर सिद्धं वा माहिषं घृतम् ॥

अर्थ—गुरु (भारी) चिकने अति सान्द्र शीतल स्थिर ऐसे पदार्थोंसे खिलाने पिलानेसे दस्त करानेसे बुद्धिमान् चिकित्सक भस्मरोगका शमन करे । गूलरका फल दालचीनी इनको परिमित मात्रासे स्त्रीके दुग्धके साथ पीसकर और दुग्धमें ही मिलाकर पिलावे अथवा गूलर और दालचीनीके चूर्णको परिमित मात्रासे दूधमें पकाकर खीर बनाके खिलानेसे भस्मकरोग शान्त होता है । ओंगाके बीजों (चावलों) की खीर बनाकर खानेसे भस्मकरोग निवृत्त हो जाता है । विदारी कंदका स्वरस दूध ये दोनों आठ २ भाग लेवे और गौका घृत एक भाग मिलाकर घृतको सिद्ध करके परिमित मात्राके खानेसे भस्मकरोग निवृत्त होता है (इसमें किसी २ वैद्यने जीवनीय गणकी औषधियोंका कल्क मिलाकर घृतको पकाना लिखा है यदि जीवनीय गणके औषधका कल्क मिलाना होय तो १६ तोला मिलावे । यदि इस भस्मकरोगके जीतनेको वैद्य रेचक औषध देवे तो पित्तनाशक देनी योग्य है ।

अत्युद्धताग्निशान्त्यै माहिषदधिदुग्धतक्रसर्पींषि । संसेवेत यवागूं समधुच्छिष्टां ससर्पिष्काम् ॥ असकृत्पित्तहरणं पायसं प्रतिभोजनम् । श्यामात्रिवृद्विपक्वं वा पयो दद्याद्विरेचनम् ॥ यत्किञ्चिन्मधुरं सेव्यं श्लेष्मलं गुरु भोजनम् । सर्वं तदत्यग्निहितं भुक्त्वा प्रस्वपनं दिवा ॥

अर्थ—अत्यन्त बढीहुई अग्निको भैंसके दधि, दुग्ध, तक्र (छाछ) घृत इनका सेवन कराके अथवा मोम और घृतको यवागू बनाकर सेवन कराके जीते । इस भस्मक रोगमें वारम्वार पित्तको शान्त करनेवाली औषध देना उचित है तथा खीर भोजन करना । हलुवा घृत संयुक्त चूरमादिका भोजन करना हित है कृष्ण निसोतके चूर्णको दुग्धमें पकाकर विरेचनके अर्थ देवे जितने मधुर कफको बढानेवाले और भारी पदार्थ अधिक समयमें पचनेवाले हैं वह भस्मकरोगमें हितकारी हैं तथा दिनमें शयन करना भी हितकारी है ।

सिततण्डुलसितकमलं छागक्षीरेण पायसं सिद्धम् ।
भुक्त्वा घृतेन पुरुषोऽद्वादश दिवसान् बुभुक्षितो न भवेत् ॥

अर्थ—सफेद चावल और सफेद कमलके बीज (कमलगट्टा) की गिरी इन दोनोंको समान भाग पीसकर बकरीके दूधमें खीर बनावे और उसमें घृत मिलाकर खानेसे १२ दिवसमें भस्मकरोग शान्त होता है ।

बालकके दाहकी चिकित्सा।

बालकोंको दाहरोग दो कारणोंसे होता है बालकका पित्त किसी कारणसे कुपित होकर रक्तमें तेजी उत्पन्न करे और रक्त तथा पित्तकी तेजीसे त्वचामें दाह उत्पन्न हो जावे। दूसरे यह कि बालकको दूध पिलानेवाली माता और धाय किसी प्रकारके दाहकारी आहार विहारको करे और उसका असर दूधमें पहुँचकर बालकको अन्तर दाह उत्पन्न कर देवे। प्रथमको बाह्य दाह और दूसरेका अन्तर्दाह कहते हैं।

शतधौतघृताभ्यक्तं दिह्यात्तु यवसक्तुभिः। कोलामलकसंयुक्तैर्दाडिमाम्लेन बुद्धिमान्। चन्दनाम्बुकणास्यन्दितालवृन्तोपवीजितः। सुप्याद्दाहार्दितांऽभोजकदलीदलसंस्तरे। परिषेकावगाहेषु व्यंजनानां च सेवने। शस्यते शिशिरं तोयं तृष्णादाहोपशान्तये। क्षीरैः क्षीर कषायैश्च सुशीतैश्चन्दनान्वितैः। अन्तर्दाहं प्रशमयेदेतैश्चान्यैः सुशीतलैः। पद्मकं चन्दनं तोयमुशीरं श्लक्ष्णचूर्णितम्। क्षीरेण पीतं बालानां दाहं नाशयति ध्रुवम्॥ फलनीलोध्रसेव्याम्बुहेमपत्रं कुटंनटम्। कालीय करसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम्।

अर्थ—दाहसे व्याकुल मनुष्यके शरीरमें गौका घृत जो सौ बार शीतल जलसे कांसेकी थालीमें धोया गया होय उसका लेप करना तथा जौके सत्तूको शीतल जलमें घोलकर शरीरपर लेप करना। बेर अथवा (उन्नाव) को और आँवलोंको समान भाग ले एकत्र पीसकर लेप करना। अनारदाना अथवा अमलीको पीसकर शरीरपर लेप करना। चन्दनको घिसकर व पीसकर ताडके पंखेपर लेपन करे, उस पंखेसे दाहरोगीको हवा करे। अथवा कमल और केलेके पत्रोंका बिस्तर बनाकर रोगीको सुलावे। दाहसे पीडित बालकके शरीरपर शीतल जलका छींटा देना शीतल जलको एक बर्त्तनमें भरकर बालकको बैठालना अथवा स्नान कराना। पंखेपर शीतल जल छिडककर उस पंखेसे पवन करना इस क्रियासे तृषा और दाह शान्त होता है। दूध और दूधवाले वृक्षोंका चन्दनयुक्त शीतल क्काथ तथा और २ शीतल प्रयोगोंसे अन्तर्दाहको शमन करे। पद्मकाष्ठ, सफेद चन्दन, नेत्रवाला, खस इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करके शीतल दुग्धके साथ परिमित मात्राके साथ सेवन करनेसे बालकोंका अन्तर्दाह निश्चय निवृत्त होता है। मेहदीके फूल, लोध, लामजक बूटी, खस, पद्माख, केवटीमोथा इनको पीत चन्दनके रसमें पीसकर लेप करनेसे दाह शमन होता है। बर्फका जल बालकके शरीरपर सेंचित करनेसे दाह निवृत्त होता है।

च पायसं सिद्धं भुक्तं जयति भस्मकम् ॥ मयूरतण्डुलैः सिद्धं पायसं भस्मकं जयेत् । विदारीस्वरसक्षीर सिद्धं वा माहिषं घृतम् ॥

अर्थ—गुरु (भारी) चिकने अति सान्द्र शीतल स्थिर ऐसे पदार्थोंसे खिलाने पिलानेसे दस्त करानेसे बुद्धिमान् चिकित्सक भस्मरोगका शमन करे । गूलरका फल दालचीनी इनको परिमित मात्रासे स्त्रीके दुग्धके साथ पीसकर और दुग्धमें ही मिलाकर पिलावे अथवा गूलर और दालचीनीके चूर्णको परिमित मात्रासे दूधमें पकाकर खीर बनाके खिलानेसे भस्मकरोग शान्त होता है । औंगाके बीजों (चावलों) की खीर बनाकर खानेसे भस्मकरोग निवृत्त हो जाता है । विदारी कंदका स्वरस दूध ये दोनों आठ २ भाग लेवे और गौका घृत एक भाग मिलाकर घृतको सिद्ध करके परिमित मात्राके खानेसे भस्मकरोग निवृत्त होता है (इसमें किसी २ वैद्यने जीवनीय गणकी औषधियोंका कल्क मिलाकर घृतको पकाना लिखा है यदि जीवनीय गणके औषधका कल्क मिलाना होय तो १६ तोला मिलावे । यदि इस भस्मकरोगके जीतनेको वैद्य रेचक औषध देवे तो पित्तनाशक देनी योग्य है ।

अत्युद्धताग्निशान्त्यै माहिषदधिदुग्धतक्रसर्पींषि । संसेवेत यवागूं समधुच्छिष्टां ससर्पिष्काम् ॥ असकृत्पित्तहरणं पायसं प्रतिभोजनम् । श्यामात्रिवृद्विपक्कं वा पयो दद्याद्विरेचनम् ॥ यत्किञ्चिन्मधुरं सेव्यं श्लेष्मलं गुरु भोजनम् । सर्वं तदत्यग्निहितं भुक्त्वा प्रस्वपनं दिवा ॥

अर्थ—अत्यन्त बढीहुई अग्निको भैंसके दधि, दुग्ध, तक्र (छाछ) घृत इनका सेवन कराके अथवा मोम और घृतकी यवागू बनाकर सेवन कराके जीते । इस भस्मक रोगमें बारम्बार पित्तको शान्त करनेवाली औषध देना उचित है तथा खीर भोजन करना । हलुवा घृत संयुक्त चूरमादिका भोजन करना हित है कृष्ण निसोतके चूर्णको दुग्धमें पकाकर विरेचनके अर्थ देवे जितने मधुर कफको बढानेवाले और भारी पदार्थ अधिक समयमें पचनेवाले हैं वह भस्मकरोगमें हितकारी हैं तथा दिनमें शयन करना भी हितकारी है ।

सिततण्डुलसितकमलं छागक्षीरेण पायसं सिद्धम् ।
भुक्त्वा घृतेन पुरुषोऽद्वादश दिवसान् बुभुक्षितो न भवेत् ॥

अर्थ—सफेद चावल और सफेद कमलके बीज (कमलगट्टा) की गिरी इन दोनोंको समान भाग पीसकर बकरीके दूधमें खीर बनावे और उसमें घृत मिलाकर खानेसे १२ दिवसमें भस्मकरोग शान्त होता है ।

बालकके दाहकी चिकित्सा।

बालकोंको दाहरोग दो कारणोंसे होता है बालकका पित्त किसी कारणसे कुपित होकर रक्तमें तेजी उत्पन्न करे और रक्त तथा पित्तकी तेजीसे त्वचामें दाह उत्पन्न हो जावे। दूसरे यह कि बालकको दूध पिलानेवाली माता और धाय किसी प्रकारके दाहकारी आहार विहारको करे और उसका असर दूधमें पहुँचकर बालकको अन्तर दाह उत्पन्न कर देवे। प्रथमको बाह्य दाह और दूसरेका अन्तर्दाह कहते हैं।

शतधौतघृताभ्यक्तं दिह्यात्तु यवसक्तुभिः। कोलामलकसंयुक्तैर्दाडिमाम्लेन बुद्धिमान्। चन्दनाम्बुकणास्यन्दितालवृन्तोपवीजितः। सुप्याद्दाहार्दितांऽभोजकदलीदलसंस्तरे। परिषेकावगाहेषु व्यंजनानां च सेवने। शस्यते शिशिरं तोयं तृष्णादाहोपशान्तये। क्षीरैः क्षीर कषायैश्च सुशीतैश्चन्दनान्वितैः। अन्तर्दाहं प्रशमयेदेतैश्चान्यैः सुशीतलैः। पद्मकं चन्दनं तोयमुशीरं श्लक्ष्णचूर्णितम्। क्षीरेण पीतं बालानां दाहं नाशयति ध्रुवम्॥ फलनीलोध्रसेव्याम्बुहेमपत्रं कुटंनटम्। कालीय करसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम्।

अर्थ—दाहसे व्याकुल मनुष्यके शरीरमें गौका घृत जो सौ बार शीतल जलसे कांसेकी थालीमें धोया गया होय उसका लेप करना तथा जौके सत्तूको शीतल जलमें घोलकर शरीरपर लेप करना। बेर अथवा (उन्नाव) को और आँवलोंको समान भाग ले एकत्र पीसकर लेप करना। अनारदाना अथवा अमलीको पीसकर शरीरपर लेप करना। चन्दनको घिसकर व पीसकर ताडके पंखेपर लेपन करे, उस पंखेसे दाहरोगीको हवा करे। अथवा कमल और केलेके पत्रोंका बिस्तर वनाकर रोगीको सुलावे। दाहसे पीडित बालकके शरीरपर शीतल जलका छींटा देना शीतल जलको एक बर्त्तनमें भरकर बालकको बैठालना अथवा स्नान कराना। पंखेपर शीतल जल छिडककर उस पंखेसे पवन करना इस क्रियासे तृषा और दाह शान्त होता है। दूध और दूधवाले वृक्षोंका चन्दनयुक्त शीतल क्वाथ तथा और २ शीतल प्रयोगोंसे अन्तर्दाहको शमन करे। पद्मकाष्ठ, सफेद चन्दन, नेत्रवाला, खस इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करके शीतल दुग्धके साथ परिमित मात्राके साथ सेवन करनेसे बालकोंका अन्तर्दाह निश्चय निवृत्त होता है। मेहदीके फूल, लोध, लामज्जक बूटी, खस, पद्माख, केवटीमोथा इनको पीत चन्दनके रसमें पीसकर लेप करनेसे दाह शमन होता है। बर्फका जल बालकके शरीरपर सेंचित करनेसे दाह निवृत्त होता है।

बालकके उन्मादकी चिकित्सा ।

मदयन्त्युद्धता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः ।
मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्त्तितः ॥

अर्थ—वात पित्त कफ ये दोष अति वृद्धिको प्राप्त होकर तथा वढे हुए दोप विमार्गगामी होनेसे मनको ज्ञान करनेवाली धमनियों (ज्ञानतन्तुओंमें) प्रवेश करके अथवा उनको आच्छादित करके मनको यथार्थ ज्ञान नहीं होने देते किन्तु विपरीत ज्ञान होता है इसीको उन्मादरोग कहते हैं इसमें मन हरसमय भ्रममें रहता है ।

ब्राह्मीकूष्माण्डीफलषड्ग्रन्थाशङ्खपुष्पिकास्वरसाः । उन्मादहृता दृष्टा पृथगेते कुष्ठमधुमिश्राः ॥ मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः कनकदलसंयोजितः समभागः । शमयत्युन्मादगदं तृणराजवल्लीरसयुक्तः ॥ सितकुसुमबलायाः सार्धकर्षत्रयं यः शिखरिचरणकोलं क्षीरपाकेन पक्वम् ॥ पिबति तदनुशीतं प्रातरुत्थाय नित्यं जयति रटति घोरं व्याधिमुन्मादमुग्रम् ॥

अर्थ—ब्राह्मीबूटी, पेठा, वच, शंखपुष्पी (शंखाहूली) इन चारोंमेंसे जो समयपर मिल सके उसका स्वरस निकालकर परिमितमात्रासे शहत मिलाकर वालकको पिलावे थोडे दिवसके साधन करनेसे उन्मादरोग निवृत्त होता है । ब्राह्मीका भेद जो मांडूकपर्णी (वडे पत्रकी ब्राह्मी) का स्वरस, धतूरेके पत्रोंका स्वरस इन दोनोंको मिलावे अथवा तृणराजवल्लीका (घास जिसको मकरा बोलते हैं) स्वरस मिलाकर परिमित मात्रासे वालकको पिलावे तो कुछ दिनके सेवन करनेसे उन्माद रोग शान्त होता है । सफेद फूलकी खरैटीका चूर्ण ३॥ कर्ष (१ तोला १॥ मासे) (यह बडी उमरके पुरुषकी मात्राका परिमाण है, बालककी मात्रा उसकी उमरके अधीन होनी चाहिये) पुनर्नवाकी जडका चूर्ण १ तोला इन दोनोंको क्षीरपाककी विधिसे पकाकर गौदुग्ध सिद्ध कर शीतल करके प्रतिदिवस प्रातःकालमें पीवे और पथ्य भोजन देवे तो शीघ्रही अत्यन्त बढा हुआ उन्माद शान्त होता है ।

सिद्धार्थकाद्यञ्जन ।

सिद्धार्थको हिङ्गु वचा करञ्जो देवदारु च । मञ्जिष्ठा त्रिफला श्वेता कटभी त्वक् कटुत्रिकम् ॥ समांशानि प्रियङ्गुश्च शिरीषो रजनीद्वयम् ॥ बस्तमूत्रेण पिष्टोऽयमगदः पानमञ्जनम् ॥ नस्यमालेपनञ्चैव स्नानमुद्वर्त्तनं तथा । अपस्मारविषोन्मादकृत्यालक्ष्मीज्वरापहम् ॥

अर्थ—सफेद सरसों, हींग, वच, करंजुवाके बीजकी गिरी, देवदारु, मंजिष्ठ त्रिफला (हरडा, बहेडा, आंवला तीनों मिले हुए), कटभी, दालचीनी, त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पीपल तीनों मिले हुए), मेहदीके फूल सिरसके फूल (अथवा बीज) हल्दी, दारुहल्दीकी छाल इन सबको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना लेवे और परिमित मात्रासे बकरीके मूत्रके साथ पीसकर पिलावे अंजनके समान नेत्रोंमें लगावे नाकमें नस्य देवे शरीरपर लेपन करे अथवा इन औषधियोंके काढेमें स्नान करावे अथवा उबटना करे तो अपस्मार, विष, उन्माद, कृत्या, अलक्ष्मी, ज्वर शांन्त होवे ॥

उन्मादनाशक वर्त्तिका।

त्र्यूषणं हिंगु लवणं वचा कटुकरोहिणी । शिरीषनक्तमालानां बीजं श्वेताश्च सर्षपाः ॥ गोमूत्रपिष्टैरेतैस्तु वर्त्तिर्नेत्राञ्जने हिता । चातुर्थिकम पस्मारमुन्मादं वा नियच्छति ॥

अर्थ—सोंठ, मिरच, पीपल, हींग, सेंधानमक, वच, कुटकी, सिरसके फूल व बीज, करंजुवाके बीजकी गिरी, सफेद सरसों इन सबको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और इस चर्णको गोमूत्रमें पीसकर बत्ती बनावे इस बत्तीको जलमें भिगोकर नेत्रोंमें फेरनेसे चौथइया ज्वर मृगी और उन्मादरोग शान्त होता है।

महापैशाचिक घृत।

जटिला पूतना केशी चारटी नर्कटी वचा। त्रायमाणा जया वीरा चोरकः कटुरोहिणी ॥ कायस्था शूकरी च्छत्रा सातिच्छत्रा पलंकषा । महापुरुषदन्ता च वयस्था नाकुलीद्वयम् ॥ कटम्भरा वृश्चिकाली सास्थिराऽपि च तैर्वृतम् । सिद्धं चातुर्थिकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ महापैशाचिकं नाम घृतमेतद्यथाऽमृतम् । मेधाबुद्धिस्मृतिकरं बालानाञ्चाग्निदीपनम् ॥

अर्थ—बालछड, हरड, भूकेशी, (यह भी जटामासीके समान है इसको मुरामांसी भी बोलते हैं)। ब्राह्मी, कौंचकी जड, वच, त्रायमाण (यह वनप्साकी जातिकी बूटी है) अरणीकी छाल, क्षीरकाकोली, चोरपुष्पी (यह बूटी प्रायः सभी देशमें पाई जाती है इसके पुष्प सोते हुए मनुष्यकी नासिकाके आगे रखनेसे मनुष्य गाढनिद्रामें अचेत रहता है जबतक पुष्प नासिकाके समीपसे अलग न किये जायँ तबतक निद्रा नहीं खुलती), कुटकी, सम्हालूकी जडकी छाल, वाराहीकन्द, सोंफ, सोयाके

बीज, शुद्ध गूगल, शतावरि, गिलोय, रास्ना, गंधरास्ना मालकांगनी विछवा, शालपर्णी ये प्रत्येक औषध दो दो तोला लेवे और औषधियोंसे सोलहगुण जल डाले और क्राथ (काढा) बनावे जब चतुर्थांश जल बाकी रहे तब क्राथको छान लेवे इस क्राथमें औषधियोंके वजनसे द्विगुण गौका घृत मिलावे और मन्दाग्निसे पकावे जब क्राथ जलकर घृत बाकी रहे तब उतार लेवे और घृतको छानकर वर्त्तनमें भर लेवे इस घृतको बालककी उमरके अनुसार सेवन करावे तो चातुर्थिक ज्वर, उन्माद, ग्रह-बाधा, अपस्मारको नष्ट करे यह महापैशाचिक घृत बालकोंके लिये अमृतके समान है मेधा (बुद्धि) स्मरणशक्तिको बढानेवाला है और बालकोंके अङ्गकी वृद्धि करता है । जहां २ घृतके प्रयोग सिद्ध करने होयँ वहांपर क्राथ सिद्ध करके पीछे घृत मिलाकर पकाना चाहिये और जहांपर क्राथ और कल्क दोनों कथन किये होयँ वहां क्राथ करके कल्क और घृत क्राथमें मिलाकर पकाना चाहिये । सूखी औषधियां यदि घृत और जलमें मिलाकर पकाई जावें तो औषधियां घृतको शोषण कर लेती हैं और घृत बहुत थोडा हाथ लगता है । क्राथमें पकानेसे घृत बहुत थोडा नष्ट होता है और औषधियोंका असरभी बराबर आ जाता है ।

बालकके अपस्मारकी चिकित्सा ।

आयुर्वेदमें जो अपस्मार रोगके होनेके कारण लिखे हैं जैसा कि—

चिन्ताशोकादिभिर्दोषाः क्रुद्धा हृत्स्रोतसि स्थिताः ॥ कृत्वास्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते । वातात्पित्तात्कफात्सर्वैर्दोषैः स स्याच्चतुर्विधः । तमःप्रवेशसंरम्भो दोषोद्रेको हतस्मृतिः । अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरतरो हिसः॥

अर्थ—अत्यन्त चिन्ता और शोकादिके करनेसे दोष कुपित होकर हृत्स्रोत (मनके वहनेवाली नाडियों) में प्राप्त होकर स्मरणशक्तिको नष्ट करके अपस्मार (मृगी) रोगको उत्पन्न करते हैं । यह अपस्माररोग वात पित्त कफ इन तीनों दोषोंके बिगड-नेसे पृथक् २ तीन प्रकार और तीनों दोषोंके संयुक्त होकर कुपित होनेसे इन भेदोंसे चार प्रकारका है । अन्धकारमें प्रवेश करनेके समान ज्ञानका नाश होना और नेत्र चक्कर खाते हुए टेढे बांके होजावें ये लक्षण जिस रोगमें होयँ ऐसे भयंकर रोगको अपस्मार कहते हैं, बालकोंको कफप्रधानापस्मार रोग होता है और उनके ज्ञानतन्तु कफसे आच्छादित हो जाते हैं कफवेग निवृत्त होनेपर चैतन्यता आ जाती है ।

हृत्कम्पः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्च्छा प्रमूढता । निद्रानाशश्च तस्मिंस्तु भविष्यति भवंत्यथ । कम्पते प्रदशेद्दन्तान्फेनोद्वामी श्वसत्यपि । परुषारुणकृष्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात् ॥ पीतफेनाङ्ग वक्त्राक्षः पीतासृग्रू-

पदर्शनः। सतृष्णोष्णाऽनलव्याप्तलोकदर्शी च पैत्तिकः॥ शुक्लफेनांगवक्त्राक्षः शीतहृष्टांगजो गुरुः। पश्यं शुक्लानि रूपाणि मुच्यते श्लैष्मिकश्चिरात्। सर्वैरेतैः समस्तैश्च लिंगैर्ज्ञेयस्त्रिदोषजः॥ अपस्मारः स चासाध्यो यः क्षीणस्याऽनवश्च यः॥ प्रतिस्फुरन्तं बहुशः क्षीणं प्रचलितभ्रुवम्। नेत्राभ्यां च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत्॥ पक्षाद्वाद्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः॥ अपस्माराय कुर्वन्ति वेगं किञ्चिदथोत्तरम्॥

अर्थ—जब कि अपस्मारका दौरा होनेको होता है तब दौरा होनेके पूर्व ये लक्षण होते हैं। हृदय कांपे और शून्य पड जावे, चिन्तामूर्छा और पसीने आवें, ध्यान लग जावे, प्रमूढता हो जावे (इन्द्रिय) अपने कार्य्यको न करें, निद्राका नष्ट होना इत्यादि। (वातजन्य अपस्मारके लक्षण) वातके अपस्मारका दौरा होय उस समय रोगी कांपने लगे, दांतोंको किरकिर कडकड करे, मुखसे झाग गिरने लगे और श्वासकी गति भरे कर्कश (कठिन) शरीर अरुण और काले वर्णका मनुष्य रोगीकी तर्फ दौडा आता है। (पित्तापस्मारके लक्षण) पित्तकी मृगीका दौरा होय उस समय मृगीवालेके मुखसे झाग निकले शरीर, मुख और नेत्र ये पीले होते हैं और वह पीले रक्तके रंगकीसी सब वस्तुओंको देख तृषायुक्त गर्मीके साथ तथा अग्निसे व्याप्तहुए सर्व लोकको देखे। (कफापस्मारके लक्षण) कफकी मृगीका दौरा जिसको होय उसके मुखसे झाग निकलें अङ्ग मुख नेत्र सफेद होय शरीर स्पर्श करनेसे शीतल मालूम होय शरीरके लोम खडे हो जावें शरीर भारी हो जावे, सर्व पदार्थ सफेद रंगके दीखें और मृगीका दौरा अधिक समय पर्यन्त रहे। (सन्निपातापस्मारके लक्षण) मगी रोगवाले जिस मनुष्यमें तीनों दोषोंके लक्षण पाये जावें उसको त्रिदोषज अपस्मार समझना इसको आयुर्वेदके आचार्योंने असाध्य समझ रखा है तथा अधिक समयका अपस्मार रोग भी असाध्य है। (असाध्यापस्मारके लक्षण) बारम्बार अपस्मारका दौरा कम्पयुक्त होय रोगी क्षीण हो गया होय और मोह जिसकी चलायमान होय और नेत्र टेढे बांके फिरते होयँ ऐसा अपस्मार रोगी विनाशको प्राप्त होता है (अपस्मारका दौरा होनेका समय) प्रकुपित हुए दोष १५ वें दिवस अथवा १२ वें दिवस अथवा एक महीनेसे मृगी रोगको प्रगट करते हैं, इसका भेद इस प्रकारसे रखागया है कि पित्तके अपस्मारका दौरा १५ वें दिन और वातका १२ वें दिन तथा कफका दौरा एक महीने (३० दिन) पर होता है। इस अपस्मार रोगके विषयमें कारण यह बतलाया गया है कि चिन्ता और शोकादि करनेसे दोष

कुपित होते हैं और दोष कुपित होकर हृदयके स्रोतोंको रोक लेते हैं जब मृगी रोग उत्पन्न होता है यह कथन बडे मनुष्योंमें संघटित होना संभव है, परन्तु दुग्धाहारी बालकको शोक चिन्तादि कुछ नहीं होते हैं। उनको अपस्मार रोग उत्पन्न हो जाता है। जहांतक हमने छोटी उमरके दुग्धाहारी बालकोंको इस रोगसे ग्रस्त देखा है कि बालकको पालनेवाली माता व धायके मिथ्याहार विहारसे ही अपस्मार रोग उत्पन्न हुआ संभव समझा गया है। क्योंकि जो स्त्रियां ठंडा व शीतकारक पित्तकारक कफकारक आहार व दही छाछ ठंडी खीर, ठंडा हलुवा, उडदके बनेहुए शीतल पदार्थ, रात्रिको पकी हुई मछलीको प्रातःकाल खाना गौमांस, भैंसका मांस, खाना शर्दीके स्थानमें बालकको लेकर सोना वारम्बार शीतल जलसे स्नान करना अति शीतल पदार्थोंका तथा उष्णही उष्ण पदार्थोंका सेवन करना इत्यादि कारणोंकोही मैं अपनी चिकित्सा वृत्तिके समयकी अवधिमें निश्चय कर चुका हूं। क्योंकि जो २ दूध पीनेवाले बालक अपस्मार रोगी मेरे समीप आये तो उनको दुग्ध पिलानेवाली (आया) तथा बालककी माताने उपरोक्त कारणोंमेंसे कोई न कोई कारण अवश्य पाया गया, मैं विश्वास करताहूं मृगी रोगसे ग्रस्त बालकोंके चिकित्सक उपरोक्त कारणों पर अवश्य लक्ष्य देकर अनुभव करेंगे। दूसरी बात यह है कि आयुर्वेदमें जो अपस्मार रोगके दौरा होनेकी अवधि १२।१२।३० दिवसकी नियत की गई है वह भी बडी उमरके समस्त रोगियोंमें संघटित नहीं होती, क्योंकि उपरोक्त नियमके अनुसार नियत समय पर दौरा होता है ऐसा एकाद ही रोगी इस २२ सालकी चिकित्सा वृत्तिमें देखा गया है, अधिकांश रोगी ऐसे ही देखे गये हैं, कि जिनको अनिश्चित समय पर दौरा हुआ है। हमने निश्चय करनेके लिये बहुतसे रोगियोंके दौरा होनेकी तारीख नोट करके रखी परन्तु रोगीको दौरा उपरोक्त अवधिके समयकी मर्यादाके विरुद्ध ही हुआ, अवश्य एक दो रोगी ऐसे देखे गये कि जिनको नियत मर्यादाके अनुसार दौरा हुआ परन्तु दिन और रात्रिका अन्तर उनमें भी रहा। इस लिखनेका प्रयोजन यही है कि अपस्मार रोगीके दौरा होनेकी अवधिसेही अपस्मारका निश्चय न समझा जावे दौरा नियत किये हुए समयसे आगे पीछे भी होता है।

चिकित्सा।

कुष्माण्डकरसं दत्त्वा मधुकं परिपेषयेत्।
अपस्मारविनाशाय तत्पिबेत्सप्तवासरान्॥

अर्थ—पुराने पेठेके रसके साथ परिमित मात्रासे मुलहटी पीसकर और पेठेके रसमें उस,लुगदीको मिलाकर बालकको पिलावे इसको सात दिवस पर्य्यन्त पीनेसे बालकका

मृगीरोग निवृत्त हो जाता है । कदाचित् इस प्रयोगसे सात दिवसमें बालकका अपस्मार निवृत्त न होवे तो उसको मैनफलके बीजोंका क्वाथ करके परिमित मात्रासे शहत मिलाकर पिलावे इस औषधसे वमन होकर कफपित्तादि दोष निकल जाते हैं और बालकके हृत्स्रोत शुद्ध हो जाते हैं, किसी २ बालकको इससे वमन तथा विरेचन दोनों हो जाते हैं । जिस बालकको इस दवासे केवल वमनही आवे और दस्त न आवे तो दूसरे दिवस उसको दस्त करानेके लिये निसीतका चूर्ण परिमित मात्रासे शहतमें मिलाकर देवे इससे विरेचन कराके पीछे नीचे लिखी हुई औषधियोंको कुछ काल पर्य्यन्त सेवन करावे ।

मूलं बर्हिशिखाया गवाक्ष्या लीढं नरेण मासेन । निःशेषयत्यपस्मृतिमिति सिद्धं नात्र सन्देहः ॥ यः खादेत् क्षीरभक्ताशी माक्षिकेन वचारजः । अपस्मारं महाघोरं सुचिरोत्थं जयेद्ध्रुवम् ॥ उत्तरदिग्गतमुस्तकमूलं बुद्ध्या समुद्धृतं पेष्यम् । पीतं पयसा हन्यादपस्मृतिं गोसवर्णवत्सायाः ॥

अर्थ—मयूरशिखा बूटीकी जडको गवाक्षिबूटीके स्वरसमें मिलाकर एक महीनेपर्य्यन्त निरन्तर सेवन करनेसे निश्चय संदेह रहित अपस्माररोग शान्त होता है । वचका सूक्ष्म पीसा हुआ बारीक चूर्ण बालककी उमरके आधीन मात्रासे शहतमें मिलाकर चटावे और ऊपरसे थोडा दूध पिलावे और दूध भातकाही आहार बालकको करावे तो अधिक समयका उत्पन्न हुआ महाघोर अपस्माररोग अवश्य बालकका पीछा छोड देता है । इस प्रयोगको हमने अनेक बालकोंको सेवन कराके अपस्मारसे मुक्त किया है । इस प्रयोगके सेवनसे किसी २ बालकको २ । ३ । ४ । दिवसपर्य्यन्त वमन आती है और उसके हृत्स्रोत शुद्ध हो जाते हैं परीक्षित प्रयोग है । उत्तरदिशामें उत्पन्न हुए नागरमोथाकी जडको उखाडकर लावे और सुखाकर उसका सूक्ष्म चूर्ण बनाकर परिमितमात्रासे (बालकको) एक रंगके बछडेकी माता गौके दुग्धके साथ सेवन करावे तो अपस्मार रोग शान्त होता है ।

निर्गुण्डी भवकन्दाक पाननस्योपयोगतः । उपैति सहसा नाशमपस्मारो महागदः ॥ मनोह्वा तार्क्ष्यजश्चैव शकृत्पारावतस्य च । अञ्जनाद्धन्त्यपस्मार मुन्मादश्च विशेषतः ॥ श्व शृगालविडालानां कपीनां च गवामपि । पित्तानि नस्यतो दद्यादयं स्मृति निवृत्तये ॥

अर्थ—निर्गुंडी (सम्हालू) के वृक्षमें जो कन्दा (गाँठ) उत्पन्न होती है उसको

लाकर परिमित मात्रासे जलके साथ पीसकर बालकको पिलावे और इसकी नास भी देवे तो अपस्माररोग शीघ्र शान्त होता है। मनशिल, रसौत, कबूतरकी बीट इनको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें अंजन करनेसे अपस्मारका दौरा शान्त होता है। कुत्ता, गीदड, बिलाव, बन्दर, गौ इनके पित्तेकी नास लेनेसे अपस्मार रोग शान्त होता है।

महाचैतस घृत।

शणत्रिवृत्तथैरंडो दशमूली शतावरी। रास्ना मागधिका शिग्रु काथ्यं द्विपलिकं भवेत्॥ विदारि मधुकं मेदे द्वे काकोल्यौ सिता तथा। एभिः खर्जूर मृद्वीकाजीरं युञ्जीत गोक्षुरैः। चैतसस्य घृतं स्यांगं पक्तव्यं सर्पिरुत्तमम्॥ महाचैतससंज्ञं तु सर्वापस्मारनाशनम्॥ गरोन्मादप्रतिश्यायतृतीयकचतुर्थकान्। पापालक्ष्मीर्जयेदेतत्सर्वग्रहनिवारकम्॥ श्वासकासहरं चैव शुक्रार्त्तव विशोधनम्॥

अर्थ—सनके बीज, निसौत अरंडकी जड, दशमूलकी दश औषध मिली हुई, (बेलकी जडकी छाल, कंभारी व गंभारीकी जडकी छाल, सोनापाठाकी जडकी छाल, अरणीकी जडकी छाल, स्योनाककी जडकी छाल, शालवणकी जडकी छाल, पिठवनकी जडकी छाल, बडी सफेद फूलकी कटेलीकी जड, छोटी बैंगनीफूलकी कटेलीकी जड, गोखरूकी जड, व फल ये दश मूलके दश औषध हैं; शतावरी, रास्ना, पीपल, सहजनेकी जडकी छाल इन प्रत्येक औषधको पृथक् २ आठ तोलेके परिमाणसे ले कूटकर सोलह गुने जलमें क्वाथ बनावे जब चौथा भाग जल बाकी रहे तब उतारकर क्वाथको छान लेवे विदारीकन्द, मुलहठी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मिश्री, खजूरका फल, मुनक्कादाख, सुगन्धित मृत्तिका, गोखुरू प्रत्येक औषध दो दो तोला लेवे इन प्रयोगमें मेदाके अभावमें सफेद मूसली अथवा बच लेवे और महामेदाके अभावमें ब्राह्मी और शंखपुष्पी लेवे इन औषधियोंको कूट छानकर सूक्ष्म चूर्ण बना लेवे और छने हुए क्वाथमें मिला देवे और १ सेर गौका घृत मिलाकर मन्दाग्निसे पकावे जब क्वाथ जलकर घृत अवशेष रहे तब उतारकर छान लेवे और वर्त्तन भर लेवे इस घृतका सेवन बालकको परिमित मात्रासे करावे तो यह महाचैतसघृत सब प्रकारके अपस्माररोगको नष्ट करता है विषोन्माद जुखाम, नजला, तृतीयक, चातुर्थिक ज्वर, श्वास, कास, और स्त्री पुरुषोंके आर्त्तवदोष शुक्रदोष इत्यादिको निवृत्त करता है।

पलंकषादि तैल।

पलंकषा वचा पथ्या वृश्चिकाल्यर्कसर्षपैः जटिलापूतनाकेशीलाङ्गली- हिङ्गुचोरकैः॥ लशुनातिविषाचित्राकुष्ठैर्विड्भिश्च पक्षिणाम्। मांसाशिनां यथा लाभं बस्तमूत्रे चतुर्गुणे। सिद्धमभ्यञ्जनात्तैलमपस्मारविनाशनम्॥

अर्थ—गूगल (लाख भी ली जाती है) वच, हरड, नखपर्णी (विच्छवा) वृश्चिकाका अर्थ कितनेही निघंटुज्ञान औषध परिचयसे शून्य वैद्योंने विछाटी लिखा है। (वृश्चिका नखपर्णी च पिच्छलाप्यलिपत्रिका) इसके ये चार नाम हैं परन्तु कहीं २ के अनभिज्ञ मनुष्य इसको विच्छवा बोलते हैं) आककी जडकी छाल सरसों जटामांसी (वालछड) हरडकी पाठ श्लोकमें दो स्थानपर आया है सो इसको दो भाग लेना, मुरामांसी, कलियारी, हींग, चोरक (चोरपुष्पी अथवा चोरवेल, लहशन, अतीस, जमालगोटाकी जड कूट, गीद, गृध्र, काक, उल्लूक इनकी वीट प्रत्येक औषध २ तोला लेवे और बारीक कूटकर ८ सेर बकरीके मूत्रमें मिला देवे और एकसौ अट्ठाईस तोला सरसोंका तैल मिलाकर मन्दाग्निसे पकावे जब बकरीका मूत्र जल जावे तब उतारकर तैलको छानकर भर लेवे। इस तैलको अपस्मार रोगी बालकोंके शरीरमें मर्दन करनेसे अपस्मार रोग नष्ट हो जाता है।

हृत्कम्पोऽक्षिरुजा यस्य स्वेदो हस्तादिशीतता। दशमूलीजलं तस्य कल्याणाख्यं प्रयोजयेत्। पंचकोलं समरिचं त्रिफलाविडसैन्धवम्। कृष्णोविडंगपूतीकयवानीधान्यजीरकम्॥ पीतमुष्णाम्बुना चूर्णं वात- श्लेष्मामयापहम्। अपस्मारे तथोन्मादेऽप्यर्शसां ग्रहणी गदे। एतत्क- ल्याणकं चूर्णं नष्टस्याग्नेश्च दीपनम्॥

अर्थ—जिस अपस्माररोगीके हृदयमें कम्प होय नेत्रमें पीडा और खिंचाव होय शरी- रमें पसीने आवें और हाथ पैर शीतल हो जावें ऐसे अपस्माररोगीको दशमूलका क्वाथ अथवा कल्याणचूर्ण परिमित मात्रासे देवे दशमूलके क्वाथकी औषध ऊपर लिखी गई है कल्याणचूर्ण नीचे लिखा जाता है। पीपल बडी, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ काली मिरच, त्रिफला, विडक्षार, सेंधालवण, पीपल छोटी, वायविडंगके बीजकी गिरी, करंजुवाकी गिरी, अजवायन, धनियां, स्याहजीरा इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करे और गर्मजलके साथ सेवन करनेसे वातकफके रोग अपस्मार, उन्माद- अर्श, संग्रहणी इत्यादि रोगोंको नष्ट करके अग्निको प्रदीप्त करता है।

वालककी वातव्याधिकी चिकित्सा ।

वातजन्य व्याधियां ८० प्रकारकी स्थानभेदसे आयुर्वेदके ज्ञाताओंने निरूपण की हैं। यदि अनेक मत मतान्तरोंके भेदको त्यागकर वैद्यक आधारपर वायुकी क्रियाओंका विचार किया जाय तो यावत् दृश्य पदार्थोंका कर्ता वायु है और वेदके आचार्य्योंने भी प्रत्यक्ष ब्रह्म कथन करके स्तुति की है (नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि) सुश्रुतसंहितामें सुश्रुतने धन्वतरिमहाराजसे वातरोगके ज्ञान होनेके निमित्त प्रश्न कियाहै इसका उत्तर धन्वन्तरि देते हैं कि–

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्राब्रवीद्भिषजांवरः । स्वयम्भूरेष भगवान् वायुरित्यभिशब्दितः ॥ स्वातन्त्र्यान्नित्यभावाच्च सर्वगत्वात्तथैव च । सर्वेषामेव सर्वात्मा सर्वलोकनमस्कृतः । स्थित्युत्पत्तिविनाशेषु भूतानामेष कारणम् ॥ अव्यक्तो व्यक्तकर्म्मा च रूक्षः शीतो लघुः खरः । तिर्य्यग्गो द्विगुणश्चैव रजोबहुल एव च ॥ अचिन्त्यवीर्य्यो दोषाणां नेता रोगसमूहराट् । आशुकारी मुहुश्चारी पक्वाधानगुदालयः ॥

अर्थ–सुश्रुतके प्रश्नको सुनकर धन्वतारि कहते हैं कि–यह वायु स्वयम्भू भगवान् है और वायुशब्दसे प्रचलित है । कर्म करनेमें स्वतन्त्र है (नित्य) भूत, भविष्यत वर्त्तमान् तीनों कालमें विद्यमान् रहता है आकाशवत् सर्वस्थानपर जानेकी गति इसमें रहती है और स्थावर जंगम जो कुछ दीख रहा है सबका कारण कार्य्यात्मक है और सम्पूर्ण लोक, इसको नमस्कृत: (नमस्ते) करते हैं इसके विदून कोई क्रिया नहीं होती और सर्व प्राणियोंके जीवन उत्पत्ति और विनाशका भी कारणरूप यही वायु है । कैसा है कि (अव्यक्त) इसका स्वरूप देखनेमें नहीं आता, परन्तु जो कुछ क्रिया (कर्म) यह करता है वह प्रत्यक्ष प्रगट हो जाता है । यह वायु रूखा है शीतल है हलका है स्पर्शमें खर है तिर्य्यग्गामी (तिर्छा चलनेवाला है ।) शीत और स्पर्श दो गुणों करके विशिष्ट है इसमें रजोगुण प्रवल है असीमशक्ती धारण करनेवाला है शरीरमें दोष धातु और मलादिकोंका प्रेरक है और शरीरमें उत्पन्न होनेवाले सम्पूर्ण रोगोंका अधिपति है और शीघ्र क्रिया करनेवाला शरीरमें सर्वत्र वारम्वार भ्रमण करनेवाला है और शरीरमें इसके रहनेका स्थान विशेप पक्वाशय और गुदा है ।

शरीरगत वायुके पांच भेद ।

यथाग्निः पञ्चधा भिन्नो नामस्थानात्मकर्म्मभिः । भिन्नोऽनिलस्तथा

ह्येको नामस्थानक्रियामयैः ॥ प्राणोदानौ समानश्च व्यानश्चापान एव च। स्थानस्था मारुताः पञ्च यापयन्ति शरीरिणाम् ॥

अर्थ—जैसे शरीरगत अग्निके स्थान और कर्मके भेदसे पांच नाम हैं जैसे (पाचक, रंजक, आलोचक, भ्राजक साधक) इसी प्रकार वायु एक होनेपर भी नाम स्थान और क्रियाके भेदसे व्याधियोंका कारण होनेसे पांच प्रकारका कहा गया है ॥ प्राणवायु, उदानवायु, समानवायु, व्यानवायु, अपानवायु, एकही वायुके पांच नाम हैं। जब ये वायु स्व २ स्थानपर नियत रहकर शरीरका धारण पोषण यथाविधिसे करती हैं इस अवस्थाका नाम स्वस्थ तथा आरोग्यता है। और इससे विपरीत स्थितिका नाम रोग व व्याधि है ॥

उपरोक्त पांच वायुके कर्म।

वायुर्यो वक्त्रसंचारी स प्राणो नाम देहधृक्। सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते ॥ प्रायशः कुरुते दुष्टो हिक्काश्वासादिकान् गदान् ॥ उदानो नाम यस्तूर्द्ध्वमुपैति पवनोत्तमः। तेन भाषितगीतादिविशेषोऽभिप्रवर्त्तते ॥ ऊर्द्ध्वजत्रुगतान् रोगान् करोति च विशेषतः। आमपक्वाशयचरः समानो वह्निसंगतः ॥ सोऽन्नं पचति तज्जांश्च विशेषान्विविनक्ति हि। गुल्माग्नि संग्यतीसारप्रभृतीन् कुरुते गदान् ॥ कृत्स्नदेहचरो व्यानो रससंवहनोद्यतः। स्वेदासृक्स्रावणो वापि पञ्चधा चेष्टयत्यपि ॥ क्रुद्धश्च कुरुते रोगान् प्रायशः सर्वदेहिगान् ॥ पक्वाधानालयोऽपानः काले कर्षति चाप्ययम्। समीरणः सकृन्मूत्रशुक्रगर्भार्त्तवान्यधः। क्रुद्धश्च कुरुते रोगान् घोरान् बस्तिगुदाश्रयान् ॥ शुक्रदोषप्रमेहास्तु व्यानापानप्रकोपजाः। युगपत्कुपिताश्चापि देह भिन्द्युरसंशयम् ॥

अथ—जो वायु टेढी गतिवाला (किसी २) टीकाकारने (वक्र) शब्द उपलक्षण मात्रही माना है परन्तु वक्रशब्दसे वायुकी टेढी गतिका ग्रहण है। मूर्द्धा हृदय कण्ठ नासिकादि अङ्गोंमें भ्रमण करता हुआ शरीरको धारण करता है उसका नाम (प्राणवायु) है यह मुखमें चाबे हुए आहारके ग्रासको गलेमेंसे भीतरको ले जाता है और प्राणोंको धारण करता है, यही वायु कुपित होने पर अक्सर हिक्का (हिचकी) श्वास प्रतिश्याय (सरेकमा) स्वरभङ्ग खांसी इत्यादि रोगोंको उत्पन्न करता है। जो वायु

शरीरके नीचेके भागसे उठकर ऊपरके भागमें जाता है उसको (उदानवायु) कहते हैं इसी वायुकी गतिसे मनुष्य भाषण करता है तथा गीत रागादिके गानेकी गतिकी प्रवृत्ति होती है, यह वायु कुपित होवे तो ऊर्द्ध जत्रुसे (गर्दनसे) ऊपर नेत्र कान नासिका शिरोरोग इत्यादि स्थानोंकी व्याधिको उत्पन्न करता है। जो वायु आमाशय और पक्काशयमें रहता है और अग्नि उसका सहायक होता है उसका नाम समान वायु कहते हैं। यह समान वायु आहार किये हुए अन्नको पचाता है और अन्नके पाकसे उत्पन्न हुए रसको तथा मल मूत्रको पृथक् २ करके उनके स्थानों (रसको रसाशयमें, मलको मलाशयमें, मूत्रको मूत्राशयमें) पहुंचाता है, यदि यह समानवायु कुपित हो जावे तो गुल्मरोग, मन्दाग्नि, अतीसार, (उदरविकार) इत्यादि रोगोंको उत्पन्न करता है इनके अतिरिक्त और भी रोगोंको उत्पन्न करता है। जो वायु समस्त शरीरमें व्यापक और रसकी प्रेरणामें उद्यत रहता है उसका नाम (व्यानवायु) कहते हैं, यह शरीरमें स्वेद (पसीना) और रक्तको बहाता है। और प्रसारण, आकुञ्चन, बिनमन, उनमन, तीर्य्यग्गमन, इस पांच प्रकारकी क्रियाकी चेष्टाओंको करता है। यह वायु यदि कुपित हो तो सब शरीरमें व्यापक होनेवाले रोगोंको उत्पन्न करता है जैसे ज्वर अतीसार रक्तपित्त इत्यादि। जो वायु पक्काशयमें स्थित है और (शंकाकी निवृत्ति) के समय पर विष्टा, मूत्र, वीर्य्य, प्रसव समयमें गर्भ और रजोदर्शनके समयमें रक्तको नीचेकी तर्फ सरकाकर बाहर निकालता है इसका नाम (अपानवायु) है। यदि यह कुपित हो जावे तो अश्मरी मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, वस्तीके रोग, अर्श भगन्दरादि गुदाके घोर रोगोंको उत्पन्न करता है अर्श व मलावरोध भी इसीसे होता है। व्यान और अपान वायुके संयुक्त कुपित होने पर वीर्य्य दोष प्रमेहादि रोग उत्पन्न होते हैं और उपरोक्त पांचों वायु एक साथ ही कुपित होवें तो निश्चय ही मनुष्यके शरीरका नाश (मृत्यु होती है) इसमें संशय नहीं है। यह शरीर गत पांच नाम वाला वायु स्थान कर्म्म और दोषोंसे मिलकर ८० अस्सी प्रकारके वातरोगोंको उत्पन्न करता है। उन रोगोंके विशेष लक्षण चरक सुश्रुत अथवा माधवनिदानमें देखो, यहां केवल वायुके पांच भेद मात्र लिखे गये हैं। विशेष चिकित्सा भी उपरोक्त ग्रन्थोंके अनुसार करनी योग्य है, यहांपर जो कुछ प्रयोग वातव्याधिके नीचे लिखे जाते हैं वह केवल साधारण रीतिसे समझो कि किसी समय पर सामान्य रीतिसे बालकको वातजन्य रोग उत्पन्न होवे तो उसका उपाय इस ग्रन्थमें नहीं है। इसी अभावको दूर करनेके निमित्त नीचे प्रयोग लिखे जाते हैं, ८० प्रकारके वायु रोगोंका पृथक् २ निदान और चिकित्सा लिखनेसे ग्रन्थका विस्तार अधिक बढ जाता यह ग्रन्थ केवल स्त्री रोगोंकी चिकित्साका है और जो

बालक छोटी उमरमें स्त्रियोंके अधीन रहते हैं सो जो कोई रोग बालकोंको होवे उसको स्त्री जन उस समय संभाल सकें इसी कारणको आगे रखके यह सोलहवां अध्याय बालरोग चिकित्साका रखा गया है ।

वायुकुपित होनेके कारण।

दूध पनिवाले बालकोंको यदि वायुरोग होवे तो समझ लो कि दूध पिलानेवाली माता व धायके मिथ्याहार विहारसे हुआ है, जो कि नीचे लिखे जावेंगे। यद्यपि यह शंका यहांपर उत्पन्न हो सक्ती है कि जिस माता व धायने मिथ्याहार विहार किये थे उसको वातजन्य रोग उत्पन्न क्यों नहीं हुआ और बालकको क्यों हो गया। इसका उत्तर यह है कि बालक और माता तथा धायकी प्रकृतिमें समानता नहीं है। बडी उमरवाले मनुष्योंकी प्रकृति बलवान् होती है और बालक प्रकृति कोमल होती है। बडी उमरका मनुष्य जैसे सब्रा रोगको सहन कर सक्ता बालक वैसे सब्रोंको सहन नहीं कर सक्ता। दूध पिलानेवाली माता व धायको शर्दी गर्मी लगनेसे उसके शरीरपर शर्दी गर्मीके लक्षण मालूम नहीं पडते, परन्तु बालककी प्रकृतिमें शर्दी गर्मीका असर मालूम हो जाता है। जैसे कि बालकको दूध पिलानेवाली स्त्री जलके काममें अधिक समय पर्य्यन्त रहे अथवा धूप और गर्मीमें रहे तो बालकको शर्दी जुखाम खांसी ज्वर उत्पन्न हो जाता है इसी प्रकार गर्मीसे बालकके शरीरमें बेचैनी दस्तका पतला होना आंखें दुःखना इत्यादि उपद्रव प्रत्यक्ष देखे गये हैं। दूसरे अन्नाहारी बालकके आहार और विहारसे भी वायु कुपित होती है। जैसे कि कषैले चरपरे, कटुरसके पदार्थ भूँख अधिक होय और आहार थोडा मिले, सूखा आहार जैसे बहुत दिनका रखा हुआ बासी पडा होय बहुत हलका आहार इत्यादिके खानेसे इनको चाहे बडी उमरका मनुष्य खावे चाहे बालक खावे वायु विकार उत्पन्न अवश्य होगा। पूर्वकी तथा वर्षाऋतुकी वायुका अधिक समय पर्य्यन्त सेवन करना जागरण करना जल व कीचडमें क्रीडा करना शर्दीका लगना लंघन करना मलमूत्रको रोकना अथवा बालकको किसी प्रकारका भय होना डर जाना किसी प्रकारके अभिघातसे चोट लगकर व किसी कारणसे शस्त्रक्रियाका प्रयोग बालकके शरीरपर किया गया होय और इससे बालकके शरीरसे अधिक रक्तस्राव हो गया होय, किसी रोगके कारणस बालकका मांस और रक्त सूख गया होय अथवा वमन और विरेचनसे बालकके शरीरका तर भाग निकलकर रूक्षता अधिक बढगई होय, उदरमें किसी प्रकारका आम सम्बन्धी विकार उत्पन्न हुआ अथवा शिशिरऋतुमें बलवान वायु शरीरके छिद्रोंको परिपूर्ण करके समस्त शरीरमें अथवा शरीरके किसी एक अङ्गमें होनेवाले अनेक रोगोंको उत्पन्न करती है उनके लक्षण निदानग्रन्थसे निश्चय करना चाहिये ।

अर्थ—आमाशयमें वातके कुपित होनेसे हृदय, पसली, उदर, नाभि इनमें शूल उत्पन्न होय तृषा लगे डकार आवे तथा विशूचिका (हैजा) खांसी कण्ठ शोष, श्वास इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं। आमाशयमें कुपित हुए वायुकी चिकित्सामें यदि बालक अन्नाहारी हो तो उसको एकाध लंघन करा दीपन पाचन औषधका प्रयोग देवे। अथवा वमन और विरेचन कराके पुरानी मूंग, जौ शालिचावल इनका पथ्याहार देवे (और आहारमें. दीपन पाचन औषधियोंका चूर्ण मिलावे) और रोहिषतृण हरड़, नरकचूर पुस्करमूल इनको समान भाग लेकर परिमित. मात्रासे काथ बनाकर पिलावे अथवा बेलगिरी, गिलोय, देवदारु, सोंठ अथवा वच, अतीस, पीपल, विडनमक इन तीनोंमेंसे कोई भी एकका काथ उपरोक्त विधिसे बनाकर पिलावे ये तीनों काथ आमाशयमें कुपित हुए वायुके नाशक हैं।

पक्काशयमें कुपित वातके लक्षण तथा चिकित्सा।

पक्काशयस्थोऽन्त्रकूजं शूलाटोपौ करोति च। कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहं त्रिकवेदनाम्॥ वह्नेः संवर्द्धनं कार्य्यं कर्म्मोदावर्त्तकं तथा। देयस्नेहविरेकश्च पक्काशय गतेऽनिले॥ वाते जठरगे दद्यात्क्षारचूर्णादिदीपनम्। शुण्ठीकुटजबीजाग्नि चूर्णं कोष्णाम्बु कुक्षिगे॥

अर्थ—पक्काशयमें वातके कुपित होनेसे आँतोंका बोलना पेटमें दर्द आटोप अफरा मल मूत्रका कठिनतासे उतरना आनाह और त्रिकस्थानमें पीडाका होना। (चिकित्सा) पक्काशयमें वात कुपितकी निवृत्तिके लिये जठराग्निको वृद्धिका उपाय करे जिन क्रिया और औषध प्रयोगसे अग्निकी दीपन पाचन शक्ति बढे उनको काममें लावे और उदावर्त्तमें जो क्रिया कथन की जायगी (उदावर्त्त चिकित्सा आगे देखो) उनके अनुसार क्रिया करे। प्रथम स्नेहपान कराके इसके बाद रेचक औषध देवे जठरगत वातमें क्षार चूर्णादि दीपन औषध देवे और कुक्षिमें वात कुपित होय तो सोंठ, इन्द्र जौ, चित्रक, इनको समान भाग लेकर चूर्ण बनावे और गर्म जलके साथ देवे।

गुदामें कुपित वातके लक्षण तथा चिकित्सा।

ग्रहो विण्मूत्रवातानां शूलाध्मानाश्मशर्कराः। जंघोरुत्रिकपार्श्वांस पृष्ठरोगो गुदेऽनिले॥ वाते गुदगते दुष्टे कर्मोदावर्त्तकं हितम्॥

अर्थ—मल मूत्र अपान वायुका रुकना, शूल, अफरा, पथरी, शर्करा, जंघा, ऊरू, त्रिक, पसवाडा, कन्धा, पीठ इत्यादिमें दर्द होना ये गुदामें कुपित हुए वायुके लक्षण जानना। गुदागत वातके कुपित होनेपर उदावर्त्त रोगकी चिकित्सा करे।

हृदयगत वातकी चिकित्सा ।

हृदयानिलनाशाय गुडूचीं मरिचान्विताम् । पिबेत्प्रातः प्रयत्नेन सुखं तप्तांभसासह ॥ पिबेदुष्णाम्भसापिष्टमाश्वगन्धं बिभीतकम् । गुडयुक्तं प्रयत्नेन हृदयानिलनाशनम् ॥ देवदारुसमायुक्तं नागरं परिपेषितम् । हृद्वातवेदनायुक्तः पीत्वा सुखमवाप्नुयात् ॥

अर्थ—हृदयमें कुपित हुए वातको नष्ट करनेके अर्थ कालीमिरच और हरित गिलोय दोनोंको बारीक पीसकर परिमित मात्रासे ऊष्ण जलके साथ पिलावे । अथवा असगन्ध बहेडाकी छाल इनके चूर्णमें गुड मिलाकर गर्म जलके साथ पिलावे । अथवा देवदारु और सोंठको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके गर्म जलके साथ पिलावे तो इन तीनों प्रयोगोंमेंसे किसी एकका सेवन करनेसे हृदयगत वात नष्ट होय ।

श्रोत्रादिमें वात कुपितके लक्षण तथा चिकित्सा ।

श्रोत्रादीष्विन्द्रियवधं कुर्य्यात् क्रुद्धः समीरणः ॥ श्रोत्रादिष्व निले दुष्टे कार्योवातहरः क्रमः । स्नेहाभ्यङ्गावगाहाश्च मर्दनालेपनानि च ॥

अर्थ—श्रोत्रादिमें वात कुपित होय तो श्रवण शक्तिको नष्ट कर देवे । श्रोत्रकी श्रवण शक्ति नष्ट होय तो वात हरणकर्त्ता उपाय करे जैसा स्नेहन गर्म तैल डालना व शरीरमें गर्म तैलकी मालिश करना गर्म तैलमें बैठना मंडिना लेप करना ।

शिरागत वातके लक्षण तथा चिकित्सा ।

कुर्य्याच्छिरागतः शूलं शिराकुंचनपूरणम् । स बाह्याभ्यन्तरायामं खल्लीं कुब्जत्वमेव च ॥ स्नेहाभ्यङ्गोपनाहाश्च मर्दनालेपनानि च । वाते शिरागते कुर्य्यात्तथा चासृग्विमोक्षणम् ॥

अर्थ—शरीरकी शिरा (नसोंमें) कुपित हुआ वायु शिराओंको संकुचित करे तथा शिराओंमें वायु भरकर उनको परिपूर्ण करे जैसा कि बाह्यायाम पिछाडीको बालक व बडा मनुष्य नव जावे अन्तरायाम आगेको नव जाय, खल्ली और कुब्जेपनको करे । शिरागत वातकी चिकित्सा स्नेहपान, अभ्यंग वफारा देकर पसीना निकालना तैलादिका मर्दन वातनाशक लेप शिरा वेधनकरके रक्त मोक्षण करना इत्यादि कर्म करे ।

स्नायुगत वातके लक्षण तथा चिकित्सा ।

शूलमाक्षेपकः कल्पः स्तंभः स्नाय्वनिलाद्भवेत् । स्वेदोपनाहाग्नि कर्म बन्धनोन्मर्दनानि च । क्रुद्धेस्नायुगतेवाते कारयेत्कुशलोभिषक् ॥

अर्थ—स्नायुमें वात कुपित होनेसे शूल आक्षेप रोग और स्नायु स्तम्भ रोग होते हैं। इसकी चिकित्सा बडी नसोंमें वायु कुपित होने पर पसीने निकालना उपनाह स्वेद दाग देना बंधन मीडना आदि कर्म करे।

सन्धिगत वातके लक्षण तथा चिकित्सा।

हन्तिसन्धिगतः संधीन् शूल शोथौ करोति च। कुर्यात्सन्धिगतेवाते दाह स्नेहोपनाहनम्। इन्द्रवारुणिकामूलं मागधी गुड संयुतम्। भक्षयेत्कर्षमात्रंतु सन्धिवातं विपोहति॥

अर्थ—शरीरकी सन्धियोंमें वात कुपित होनेसे सन्धियोंमें शूल और शोथ उत्पन्न करे और सन्धिओंको जकड लेवे। सन्धिओंमें वात कुपित होने पर दागना स्नेहन उपनाह स्वेद करे। अथवा इन्द्रायणकी जडका चूर्ण और पीपलका चूर्ण दोनों समान भाग मिलाकर और दोनोंके समान पुराना गुड मिलाकर उमरके। अनुकूल पारिमित मात्रासे सेवन करावे तो सन्धिवात नष्ट होय।

वातष्ठीला प्रत्यष्ठीलाके लक्षण तथा चिकित्सा।

नाभेरधस्तात्सञ्जातः सञ्चारी यदिवाऽचलः। अष्ठीला वर्द्धनोग्रन्थिरूर्ध्वमायतउन्नतः। वातष्ठीलां विजानीयाद्बहिर्मार्गावरोधिनीम्। एतामेव रुजायुक्तां वातविण्मूत्र रोधिनीम्। प्रत्यष्ठीला मिति वदेज्जठरे तिर्य्यगुत्थिताम्। अष्ठीलायाः क्रियाकार्य्याः गुल्मस्यान्तर विद्रधेः। चूर्णं हिंग्वादिकं चात्र पिबेदुष्णेन वारिणा।

अर्थ—नाभिके नीचेके भागमें चलायमान अथवा स्थिर रूपसे नियत गोलाकृतिकी कठिन ऊपरसे कुछ २ लम्बी और आडी कुछ ऊंची ऐसी ग्रन्थी उत्पन्न होय और इस ग्रन्थीके उत्पन्न होनेसे मलमूत्र और अधोवायुकी रुकावट होय इसको वातष्ठीला व्याधि कहते हैं। इस वातष्ठीलाकी ग्रन्थी यदि नाभीके ऊपरके भागमें उत्पन्न होय और उसमें पीडा होय और मलमूत्र अपानवायुकी रुकावट होय तो इसको प्रत्यष्ठीला व्याधि कहते हैं। इन दोनोंकी चिकित्सा इस प्रकारसे करे कि अष्ठीला प्रत्यष्ठीलामें गुल्म और अन्तर विद्रधिके समान क्रिया करे। और हिंग्वादि चूर्ण गर्म जलके साथ पीना चाहिये।

हिग्वादि चूर्ण।

हिङ्गुग्रन्थिकधान्यजीरकवचा चव्याग्निपाठा शठी वृक्षाम्लं लवणत्रयं त्रिकटुकं क्षारद्वयं दाडिमम्। पथ्या पौष्करवेतसाम्लहपुषा जाज्यस्त-

देभिः कृतम् ॥ चूर्णं भावितमेतदार्द्रकरसैः स्याद्बीजपूरद्रवैः । गुल्माध्मानगुदाङ्कुर ग्रहणिकोदावर्त्तसंज्ञान् गदान् प्रत्याध्मानगदोदराश्मरियुतां स्तूनीद्वयारोचकान् । ऊरुस्तम्भमतिभ्रमञ्च मनसो बाधिर्य्यमष्ठीलिकां प्रत्यष्ठीलिकया सहाय हरते प्राक्पीतमुष्णाम्बुना । हृत्कुक्षिवंक्षणकटीजठरान्तरेषु वस्तिस्तनां सफलकेषु च पार्श्वयोश्च । शूलानि नाशयति वातबलासजानि हिंग्वाद्यमाद्यमिदमाश्विनसंहितोक्तम् ॥

अर्थ–भुनी हींग, पीपलामूल, धानियां, जीरा, वच, चव्य, चित्रककी छाल, पाठा, नरकचूर, वृक्षाम्ल, (चूकाकी लकडी) काला नमक, सेंधा नमक, कांचका नमक, सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार, सज्जाकीखार, खट्टा अनारदाना, छोटी हरड, पुष्करमूल, अम्लवेतस, हाऊवेर, काला जीरा इन सब द्रव्योंको समान भाग ल कूट छानकर चूर्ण बनावे । इस चूर्णको अदरखके स्वरस तथा नीबूके रसकी भावना देवे, यह हिंग्वादि चूर्णगुल्म, आध्यान, अर्श, संग्रहणी, उदावर्त्त, प्रत्याध्मान, उदर विकार, पथरी, तूनी, प्रतितूनी, अरुचि, उरुस्तम्भ, अत्यन्त भ्रम वधिरता अष्ठीलावात प्रत्यष्ठीला वात इन सब रोगोंको नष्ट करता है । इसको प्रातःकाल जलके साथ परिमित मात्रासे सेवन करना चाहिये यह चूर्ण हृदय शूल कुक्षिशूल वंक्षण शूल, कटिशूल उदर शूल वस्तिशूल, स्तनशूल, स्कन्दशूल, पार्श्वशूल इन सबको नष्ट कर देता है तथा विशेष करके वात कफ जानत शूलको नष्ट कर्त्ता है । यह हिंग्वादि चूर्ण अश्विनीकुमार संहिताम कथन किया ह ।

पटोलकफलैर्यूषो वृष्योवातहरो लघुः । वाट्यालककृतो यूषः परं वातविनाशनः ॥ पञ्चमूली वलासिद्धं क्षीरं वातामये हितम् ॥ वाजिगन्धा वलातिस्रो दशमूली महौषधम् । द्वे गृध्रनख्यौ रास्ना च गणो मारुतनाशनः ॥ सहचरामरदारुसनागरं क्वथित मम्भसि तैल विमिश्रितम् । पवनपीडितदेहगतिः पिवन् द्रुतविलम्बितगो भवतीच्छया ॥

अर्थ–परवल फलोंका यूष वातनाशक और हलका है । खरेटीके क्वाथमें सिद्ध कियाहुआ यूष विशेष वातनाशक है । पञ्चमूल (जिनका नाम पीछे लिखा है) आर खरैटीकी जड इन दोनोंके साथ क्षीरपाककी विधिसे सिद्ध कियाहुआ दूध पीनेसे वात रोग निवृत्त हात हैं । असगन्ध खरैटी, गंगेरन, कंघी, दशमूलके समस्त औषध सोंठ दो प्रकारकी गृध्रनखी, रास्ना, यह वाजी गंधादि गण वातनाशक है । इसको

क्काथ क्षीरपाक, यूषादिमें प्रयोग करे, तथा प्रलेप करे । पियाबांसा, देवदारु, सोंठ इनका क्काथ बनाकर और उसमें अरंडीका तैल डाल कर पान करावे जिस मनुष्यकी गमनशक्ति वात करके नष्ट होगई है ऐसा मनुष्य इसका सेवन करनेसे स्वेच्छापूर्वक चल सक्ता है ।

वातपीडिताङ्गोंपर लेपविधान ।

पुनर्नवैरंडयवातसीभिः कार्पासजैरस्थिभिरारनालैः । स्विन्नैरमीभिस्त्रिभिः षड्भिरेव स्वेदः समीरार्तिहरो नराणाम् ॥ कोलं कुलित्था सुरदारु रास्ना माषा उमा तैलफलानि जुष्टम् । वचा शताह्वा यवचूर्णमम्लमुष्णानि वातामयिनां प्रदेहः ॥ स्नेहैश्चतुर्भिर्दशमूलमिश्रैर्गन्धौषधैश्चानिलहृत्प्रदेहः । आनूपमत्स्यामिषवेशवारैरुष्णैः प्रदेहः पवनापहः स्यात् ॥ बृहत्फाणिज्जकोत्थेन रसेन परिलेपयेत् । प्रदेशं वायुना ग्रस्तं नरः सम्यक् प्रशान्तये ॥ तिन्तिडीकदलैः सिद्धं तालिण्डिकया सह । पिष्ट्वा सुखोष्णमालेपं दद्याद्वातरुजापहम् ॥

अर्थ—पुनर्नवा (सांठ) की जड अरंडीके तुषरहित बीज, जौ, अलसी, कपासके बिनौलेकी मिंगी इन सबको समान भाग लेकर कांजीके साथ बारीक पीसकर गर्म करके तैयार कर लेवे । और वातसे पीडित स्थानको सेंककर उसपर यह गर्म २ लेप करके *अरंडपत्र गर्म करके लेपपर चिपका ऊपर कपडा बांध देवे*, इसके तीन लेप बांधनेसे वातपीडा शान्त हो जाती है । चारों प्रकारके स्नेह (तैलघृतचर्बीमज्जा) [किसी २ वैद्यने दुग्ध, मोम, तक्रको भी स्नेह माना है] दश मूलके १० औषध, सुगन्धित पदार्थ इनका बनाया हुआ प्रलेप वातनाशक है । अनूप देशकी मछली और स्थलके शूकर शृगालादि पशु बटेर, लवा, कपोत, तीतर आदि पक्षियोंका मांस भी वातनाशक है और इसकी वेशवार संज्ञा कथन की गई है । जहांतक अन्य औषधियोंसे वातरोग शान्त होय वहांतक जीवहिंसामें प्रवृत्ति न करनी चाहिये इसी कारणसे इस प्रकरणपर हम मांसप्रयोगोंका त्याग करते हैं । बडे पत्रकी वनतुलसी जिसको रेहान् बोलते हैं । इसका स्वरस निकालकर गर्म करके वायुसे पीडित स्थानपर लेप करनेसे वायुविकार नष्ट हो जाता है । इमलीके पत्र और ताडवृक्षकी जटा व जड, इन दोनोंको एक जलसे भिगे हुए वस्त्रमें लपेटे और ऊपरसे चिकनी मट्टी लपेटे और अग्निमें (भूभल)में दबाकर भुर्त्ता बना लेवे और इसेको बारीक पीसकर गर्म करके वायुसें पीडित स्थानपर लेप करे-तो वातपीडा नष्ट होवे ।

सुप्तवाते त्वसृङ्मोक्षं कुर्य्याच्च बहुशोभिषक् । दिह्याच्च लवणागारधूमै-स्तैलसमन्वितैः ॥ ऊर्ध्ववातविनाशाय वासापत्रसमन्वितम् । श्यामामूलं पिबेत्पिष्टं क्षीरेण परिमिश्रितम् ॥ (लशुनप्रयोग) पिष्ट्वा ससूक्ष्मं लशुनस्य कन्दं घृतेन लिह्याद् घृतभोजनाशी ॥ तस्य प्रणश्यन्ति हि वातरोगाः संस्कारहीनात्पुरुषादिवार्थः ॥

अर्थ–सुप्त वातरोगमें वद्य विशेष करके स्नायु वेध (फस्द) खोलकर रक्तमोक्षण करा देवे, परन्तु रक्त उतना निकाले कि जितने रक्त निकलनेसे रोगीके शरीरको हानि न पहुंचे । दुग्धाहारी वालकका रक्त न निकाले सेंधानमक धूमसा तैल इनका लेप करना हितकारी है । और उर्ध्व वातको नष्ट करनेके लिये अडूसाके पत्रका रस और अनन्तमूलकी जडका चूर्ण दूधमें डालके पान करे । लहशुनकी गांठको वारीक पीसकर और उसके साथ घृत मिलाकर सेवन करे और भोजनमें विशेष घृतसंयोग करके खावे इसके सेवनसे सर्व प्रकारके वातरोग नष्ट होते हैं ।

स्वायंभुव गुग्गुलुवटी ।

व्योषं सग्रन्थिकं पथ्यां चित्रकं जीरकद्वयम् । अजमोदा यवानी च वचा चव्यमवल्गुजम् ॥ लवणत्रितयं क्षारौ समभागानि कारयेत् । यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्तं गुग्गुलं शुभम् ॥ पादार्द्धसम्मितं चात्र योजयेदम्लवेतसम् । गुटिकैषा हिता वाते सामे सन्ध्यास्थिमज्जगे ॥ दृढीकरोति भग्नञ्च जठरानलदीपनी । पूजिता देवदेवेन कालपाशेन शम्भुना ॥

अर्थ–त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पीपल) हरड, चित्रक, सफेद जीरा, स्याह जीरा, अजमोद, अजवायन, वच चव्य, वावची कालानमक, सेंधानमक, कांचका नमक, सर्जिका क्षार, यवक्षार ये प्रत्येक औषध वरावर भाग लेवे और इनको कूट सूक्ष्म कपडछान चूर्ण वनावे) और इन सबकेसमान गोमूत्रसे शोधा हुआ ले गूगलका अष्टमांश अम्लवेतसका. चूर्ण ले इन सवको एकत्र मिलाकर कूट डाले, यदि गूगलके ही साथ गोली वनाने लायक नर्म होतो गोलियां वना लेवे । यदि गूगलके साथ नर्म न होवे तो थोडा गोघृत मिलाकर नर्म कर लेवे और वडी उमरवालेको १ मासेसे ३ मासेतककी गोली खिलावे और वालकोंको एक रत्तीसे लेकर ४ व ६ रत्ती पर्य्यन्तकी गोली देवे, यह स्वायंभुव गुग्गुलके सेवनसे आमवात, सन्धिगत वात मज्जा-

गत वात तथा अन्य वातरोगोंको नष्ट करे । टूटी हुई हड्डीको जोडनेवाली तथा जठराग्निको प्रदीप्त करनेवाली ह । यह स्वायंभुव गुग्गुलु देवोंके देव कालपाशरूपी महादेव (शम्भू) करके पूजित है ।

आदित्यपाकगुग्गुलू ।

पृथक् पलांशा त्रिफला पिप्पली चेति चूर्णितम् । दशमूलाम्बुना भाव्यं त्वगेलार्धपलान्वितम् ॥ दत्त्वापलानि पञ्चैव गुग्गुलोर्वटकीकृतः । एवं मांसरसाभ्यासाद्वातरोगानशेषतः ॥ हन्ति सन्ध्यास्थिमज्जास्थान् वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा । लेहवद्द्विगुणेनायमालोड्यालोड्य चातपे । दशमूलाम्बुना शोष्यः सप्त वारान्सुगुग्गुलुः ॥

अर्थ–हरड, वहेडा, आंवला, प्रत्येक एक एक पल (चार २ तोला) लेवे और पीपल ४ तोला, दालचीनी २ तोला, वडी इलायचीके बीज २ तोला इन सबकी बराबर शुद्ध गुग्गुलु ले सबको एकत्र पीसकर दशमूलके अष्टमावशेष क्वाथकी सात भावना देकर सुखा लेवे । फिर इसकी १ मासा प्रमाणकी तथा १–२–३ रत्ती प्रमाणकी गोली वना लेवे १ मासाकी मात्रा पूरी उमरके मनुष्यको और रत्तियोंकी मात्रा वालकोंको मांसरसके साथ सेवन करावे तो सर्व प्रकारके वातरोग नष्ट होवें तथा सन्धिवात, अस्थिवात, मज्जागत वात सब निवृत्त होते हैं । जो लोग मांसरससे परहेज रखते हैं उनका नीचे लिखे क्वाथके साथ सेवन करना चाहिय । रास्ना सोंठकी जड, अरंडकी जडका छिलका देवदारु इनको समान भाग लेकर परिमित मात्रासे क्वाथ वनावे और इस क्वाथके साथ गूगलकी वटीका सेवन करे ।

वातव्याधिके असाध्य लक्षण ।

शूनं सुप्तत्वचं म्लानं कम्पाध्माननिपीडितम् ।
रुजार्तिमन्त च नरं वातव्याधिर्विनाशयेत् ॥

अर्थ–जिस वातरोगवाले मनुष्यके शरीरमें शोथ होय शरीरकी चर्म जिल्द शुन्न (स्पर्शरहित) हो गइ होय, शरीर कुम्हला गया होय कंप अफरा पीडासे अति दुःखित होय ऐसे लक्षणवाले रोगीको वातव्याधि मारक समझनी चाहिये ।

पांचों वायुका प्रकृतिस्थ ।

अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतौ स्थितः ।
वायुस्यात्सोऽधिकं जीवेद्वीतरोगः समाः शतम् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यकी वायुका जो २ स्थान और कर्म ऊपर कथन कर आये हैं उस २ नियत स्थानपर वायुप्रकृतिस्थ रहकर स्वेच्छापूर्वक अपना कार्य्य करती हुई भ्रमण करती है वह मनुष्य वातरोगसे रहित होकर सौ वर्षपर्य्यन्त जीवित रहता है।

बालकके रक्तपित्तकी चिकित्सा।

रक्तपित्तका रोग दुग्धाहारी बालकोंको बहुतही कम उत्पन्न होता है और वहभी दुग्ध पिलानेवालीके दोषसे होता है, यदि दुग्ध पिलानेवाली स्वयं रक्तपित्तरोगी होवे तो बालकको इसका असर जबतक बराबर रहता है तबतक दुग्ध पिलानेवालीका रोग निवृत्त न हो जावे। क्योंकि रक्तपित्तवाली स्त्रीके दुग्धमें पित्तकी विशेष तेजी रहती है उसका असर बालकको दुग्धके द्वारा पहुंचता रहता है। दुग्धाहारी बालकको गर्मी लू आदि लगनेसे पित्तकी तजा रक्तमें प्राप्त हुई होवे तो २।४ रोजमें निवृत्त हो जाती है। लेकिन दुग्ध पिलानेवालीके दोषसे हो तो अधिक समयतक ठहरता है। अन्नाहारी बालकोंके रक्तपित्तकी व्याधि प्रायः विपरीत आहारविहारसे होती है जैसा धूपमें फिरना मिरच, खटाई, अतितीक्ष्ण वस्तुओंका खाना नमकीन खारके खानेसे पित्त कुपित होकर रक्तको दूषित करके (रक्तं च पित्तं रक्तपित्ते) रक्तपित्त रोग उत्पन्न करता है तब नासिका मुख कर्ण नेत्र इन ऊपरके मागास गुदा और मूत्रेन्द्रिय इन नीचेके मार्गोंसे रक्त निकालता है। इसको रक्तपित्त कहते हैं।

सदनं शीतकामित्वं कण्ठधमायनं वमिः। लोहगन्धश्च निःश्वासो भवत्यस्मिन्भविष्यति। सांद्रंसपाण्डु सस्नेहं पिच्छिलं च कफान्वितम्। श्यावारुणं सफेनं च तनु रूक्षं च वातकम्। रक्तपित्तकषायाभं कृष्णं गोमूत्रसन्निभम्। मेचकागारधूमाभमंजनाभं च पैत्तिकम्। संसृष्टलिङ्गं संसर्गित्रिलिंगं सन्निपातिकम्। ऊर्ध्वगं कफसंसृष्टमधोगं मारुतान्वितम्। द्विमार्गं कफवाताभ्यामुभाभ्यामनुवर्त्तते॥ दौर्बल्यश्वासकासज्वरवमथुमदापाण्डुतादाहमूर्छा भुक्ते घोरोविदाहस्त्वधृतिरपि सदा हृद्यतुल्या च पीडा॥ तृष्णाकोष्ठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूतिनिष्ठीवनत्वं भक्तद्वेषाविपाकौ विकृतिरपि भवेद्रक्तपित्तोपसर्गाः। एकदोषानुगं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते। त्रिदोषजमसाध्यं स्यान्मंदाग्ने रतिवेगितम्। ऊर्ध्वं साध्यमधोयाप्यमसाध्यं युगपद्गतम्। व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यानश्नतश्च यत्। एकमार्गं बलवतो नातिवेगं नवोत्थितम्। रक्तपित्तसुखे

काले साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् । येन चोपहतो रक्तं रक्तपित्तेन मानवः । पश्ये द्दश्यं वियच्चापि तच्चासाध्यमसंशयम् । लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः । लोहितोद्गारदर्शी च म्रियते रक्त पैत्तिके ॥

अर्थ—ग्लानिका होना शीतकी इच्छा कण्ठसे धूंआसा निकलना वमनका आना गर्म किये हुए लोहखंड पर जल डालनेसे जो भाफ उठती है और उसमें जैसी गन्ध आती है ऐसी ही गन्ध रक्तपित्त होनेवाले रोगीकी श्वासमेंसे गन्ध आती है । इन लक्षणोंसे जानना कि रक्त पित्त रोग उत्पन्न होगा । सघन कुछ २ पीले रंगवाला चिकना गाढा ऐसे चिह्नोंवाला रक्तपित्त कफ मिश्रित जानना । नीलवर्ण, लालवर्ण कुछ झाग युक्त पतला रूक्ष ऐसे चिह्नोंवाला रक्तपित्त वातका जानो । जो रक्तपित्तकी वमन व नासि-कामेंसे आया हुआ रक्त क्वाथकी रंगतके समान होय काला होय गोमूत्रके समान होय मयूरकी चन्द्रिकाके समान नील वर्ण होय बैंजनी रंगके समान होय धूआं अथवा सुमाके समान रंगवाला होय ये सब पित्तजन्य रक्तपित्तके लक्षण हैं । और परस्पर दो दो दोषोंके मिलनेसे जो रक्त पित्त होता है उसमें दोनों दोषोंके लक्षण मिलनेसे द्विदोषज जानो (और जिस रक्तपित्तमें तीन दोषोंके लक्षण मिलते होयँ उसको सन्निपातजन्य रक्तपित्त जानो । ऊपरके मार्गोसे कफ और नीचेके मार्गसे जो रक्तपित्त निकले उसको वातका जानो और दोनों मार्गोंसे निकले उसको वातपित्तका जानो । रक्तपित्तके विशेष उपद्रव रक्तपित्त रोगीका शरीर अति दुर्बल श्वास खाँसी ज्वर, वमन, मदात्य शरीरका पीला पडजाना, दाह, मूर्च्छा, आहार करनेके अनन्तर दाह होय अधैर्य्यपन, हरसमय हृदयमें पीडा होती होय, तृषा, कोष्ठ भेद (मलका पतला आना) मस्तकमें पीडा होय दुर्गन्ध युक्त थूकना, अन्नमें अरुचि, आहारका परिपक न होना ये रक्त-पित्तके उपद्रव होते हैं । (दोषोंके भेदसे रक्तपित्तका साध्याऽसाध्य लक्षण) एक दोषसे उत्पन्न हुआ रक्तपित्त साध्य होता है दो दोषसे उत्पन्न हुआ याप्य (कष्टसाध्य) और तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ रक्तपित्त असाध्य होता है । जिस मनुष्यकी अति मन्दाग्नि होय रोगसे जिसका शरीर क्षीणवल हो गया होय, वृद्ध मनुष्य जिसका आहार थक गया होय ऐसे मनुष्योंका रक्तपित्त असाध्य जानो । (साध्य रक्तपित्त होनेके विशेष कारण) जो मनुष्य बलवान् होय और एकही मार्गसे रक्तपित्त निकलता होय अर्थात् ऊपरके मार्गसे ही निकलता होय और अति वेगसे न निकलता होय बहुत थोडे सम-यसे ही उत्पन्न हुआ होय हेमन्त शिशिर कालमें प्रगट हुआ होय (अथवा स्वभावसे शीत प्रधान देश जैसा हिमालय) में उत्पन्न हुआ होय और रोगीके शरीरमें उपरोक्त दुर्बलतादि लक्षण न होयँ । ऐसा रक्तपित्त रोग साध्य जानो ।

(अन्य साध्याऽसाध्य लक्षण) जिस मनुष्यको रक्तपित्त रोगने ग्रस लिया होय जो रोगी दृश्य कहिये दीखनेवाले पदार्थों और अदृश्य कहिये रूप रहित आकाश इनको रक्त वर्णके देखे ऐसा रोगी संदेह रहित असाध्य जानो। जो वारम्वार रक्तका वमन करे और जिसके लाल नेत्र होयँ ऐसा रक्तपित्तवाला रोगी मृत्युको प्राप्त होता है। और कितनेही बालकोंकी नक्सीर चला करती है उसको स्त्रीजन नक्की चलना नकसीर चलना कहा करती हैं इसको रक्तपित्त रोग समझो।

रक्तपित्तकी चिकित्सा।

क्षीणमांसबलं वृद्धं बालं शोषानुबन्धिनम्। अवश्यमविरेच्यं च स्तंभनैः समुपाचरेत्॥

अर्थ—क्षीणमांस, क्षीणबल, वृद्धावस्थावाला बालक तथा शोष (क्षयरोगी जिसका शरीर दिन पर दिन क्षीण होता जाय) ऐसे रक्तपित्त रोगियोंको शुद्धिके अर्थ कदापि वमन विरेचन न करावे ऐसे रोगियोंको रक्त स्तम्भन करनेवाली औषध देकर रक्त प्रवाहको बन्द करे।

पित्तास्रं शमयेन्नादौ प्रवृत्तं बलिनोऽश्नतः। हृत्पाण्डुग्रहणीदोषप्लीहगुल्मक्षयादिकृत्॥ गलग्रहं पूतिनस्यं मूर्च्छाञ्च ह्यरुचिं तथा। कुष्ठानर्शांसि विसर्पवर्णनाशं भगन्दरम्॥ बुद्धीन्द्रियोपरोधञ्च कुर्य्यात् स्तम्भितमादितः॥

अर्थ—उत्पन्न होते ही रक्तपित्तके वेगको वैद्य न रोके क्योंकि उत्पन्न होतेही रोग बलवान् होता है सो रक्तका प्रवाह बन्द करना कठिन हो जाता है, यदि रक्तप्रवाह रुकभी जावे तो वह दूषित रक्त हृद्रोग पाण्डुरोग, संग्रहणी, प्लीहा गुल्मरोग क्षय (राजलक्ष्मा) गलग्रह पूतिनस्य मूर्च्छा अरुचि कुष्ठ अर्श विसर्प विवर्णता भगंदर बुद्धि इन्द्रियोंका अवरोध इत्यादि विकारोंको उत्पन्न करता है। (कोई वैद्य ज्वरादिकी उत्पत्ति भी मानते हैं) डाक्टरलोग रक्तप्रवाहको शीघ्र बन्द करते हैं यदि अधिक रक्त स्राव हो जावे तो मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है।

ऊर्ध्वं प्रवृत्तदोषस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः। अक्षीणबलमांसाग्नेः कर्त्तव्यमपतर्पणम्। ऊर्ध्वगे तर्पणं पूर्वं कर्त्तव्यञ्च विरेचनम्। प्रागेऽधोगमने पेया वमनं च यथाबलम्॥

अर्थ—बडीउमरवाले मनुष्यको ऊर्ध्वगत रक्तपित्तमें बल और मांसादि क्षीण न हुए होयँ तो प्रथम अपतर्पण अर्थात् लंघनादि क्रिया करनी। उर्ध्वगत रक्तपित्तमें बल मांस जिसका क्षीण हो गया होय उसको जलके द्वारा संतर्पणक्रिया वैद्य करे।

यदि उर्ध्वगत रक्तपित्तका अत्यन्त प्रवाह अर्थात् वे परिमाण रक्त निकलता होय और शरीरके मांसादिक धातु क्षय न हुए होयँ तो बलवान् रोगीको जुलाब देवे। और अधोगत रक्तपित्तमें प्रथम पेयादि देकर पीछे दोषानुसार वमन करावे परन्तु बालकको वमन और विरेचन न करावे ॥

आरग्वधेन धात्र्या वा त्रिवृता पथ्ययाथवा। विरेचनं प्रयोक्तव्यं शर्करामाक्षिकोत्तरम् ॥ मुस्तेन्द्रयवयष्ट्याह्वं मदनाह्वं पयो मधु । शिशिरं वमनं योज्यं रक्तपित्तहरं परम् ॥

अर्थ—रक्तपित्त रोगीको विरेचन कराना हो तो अमलतासका गूंदा आमले इनके क्वाथमें मिश्री डालकर पिलावे अथवा निसोत और छोटी हरडका चूर्ण व क्वाथ बनाकर मिश्री मिलाकर देवे । रक्तपित्त रोगीको वमन कराना होय तो नागरमोथा इन्द्रजौ मुलहटी मैनफलका गर्भ इन सबका क्वाथ बनाकर शहत मिलाकर शीतल करके पिलावे यह प्रयोग रक्तपित्त नाशक है। वमन करानेको मैनफलका गर्भ १ तोलासे कम न लेवे। नासिकासे रक्तप्रावह चलता होय तो गधेकी लीदका पानी नीचोड कर उसमें कपडेकी मोटी बत्ती भिगोकर नासिकामें शीशीके डाटके माफिक लगा देवे ।

रक्तपित्त रोगीको आहारविधान ।

शालिषष्टिकनीवार कोरदूषप्रसाधिकाः । श्यामाकाश्च प्रियंगुश्च भोजनं रक्तपित्तिनाम् ॥ मसूरमुद्गचणकाः समकुष्टाढकीफलाः ॥ प्रशस्ताः सूपयूषार्थे कल्पिता रक्तपित्तिनाम् ॥ दाडिमामलकं विद्वानम्लार्थे चापि दापयेत् । पटोलनिम्बन्यग्रोधप्लक्षवेतसपल्लवाः ॥ शाकार्थे शाकसात्म्यानां तण्डुलीयादयो हिताः । पारावतान् कपोतांश्च लावान् रक्ताक्षवर्त्तकान् ॥ शशान् कपिंजलानेणान् हरिणान् कालपुच्छकान् । रक्तपित्तहरान् विद्याद्रसास्तेषां प्रयोजयेत् । ईषदम्लाननम्लांश्च घृतभ्रष्टान् ससैंधवान् । कफानुगे यूषशाकान् दद्याद्वातानुगे रसम् ॥ पथ्यं सतीनयूषेण ससितैर्लाजशक्तुभिः ॥

अर्थ—(रक्तपित्त रोगीका पथ्याहार विधान) शालिचावल, सांठीचावल समा कोदो पसाई मुनिअन्न कांगनी ये सब पुराने अन्न रक्तपित्त रोगीको आहारमें देवे मसूर, मूंग, चना, मोठ, अरहर इनकी दाल और यूष, रक्तपित्त रोगीको देवे ।

खटाई खट्टा अनारदाना आंवला और (दाखजारिस्क). इनको देवे । परवल नीमकी कोंपल वड पिलखन इनकी कोंपल, वेंतकी कोंपल चौलाई ये शाक रक्तपित्त रोगीको हित हैं । मांस, कबूतर, पिण्डाक, लवा, सारस, वटेर, खरगोश, सफेद तीतर, काला हिरन्, दुम्बा इत्यादि पशु पक्षियोंके मांसका रस रक्तपित्त रोगीको हित है (जो लोग मांसभोजी हैं उन्हींके निमित्त मांस विधान है) कफजन्य रक्तपित्तमें कुछ खट्टे रस देना हितकारी. हैं । थोडी खटाई पडी होय ऐसे घृतमें भुने हुए जिनमें सेंधानमक पडा होय ऐसे यूप और शाक देवे और वातजन्य रक्तपित्तमें केवल मांसरस देना उचित है । तथा मिश्री खांडमिश्रित खीलोंका सत्तू आर तीनीका यूप पथ्य है । (तिनी मटरका नाम है) जैसा (पथ्यं सतीन) पाठ लिखा है यदि रोगी फल चाहे तो (जलं खर्जूरमृद्वीकामधुकैः सपरूपकैः ।) खजूरफल पिण्डखजूर दाख महुआके फूल तथा फल (गिलौंटे) फालसे ये फल तथा इनका क्वाथ भी मिश्री डालकर देवे ।

ह्रीबेरमुत्पलं धान्यं चन्दनं यष्टिकामृता । वृषोशीरयुतः क्वाथः शर्करामधुसंयुतः । रक्तपित्तं जयत्युग्रं तृष्णां दाहं ज्वरं तथा । चन्दनोशीरलोध्राणां रसे तस्मिन् सनागरे । किराततिक्तकोशीरमुद्गानां तद्वदेव तु ॥ शशः सवास्तुकः शस्तो विबन्धेरक्तपित्तजे । वातोत्तरे तित्तिरिः स्यादुदुम्बररसे शृतः ॥ मयूरप्लक्षनिर्यूहः न्यग्रोधस्य च कुक्कुटः । रसो विषोपलादीनां वार्ताककरो हितौ ॥ तृप्यतेतिक्तसांसिद्धं तृष्णाघ्नं वा कफोदकम् ॥ सिद्धं विदारो गन्धाद्यैः शृतशीतमथापि वा ॥

अर्थ—नेत्रवाला कमलकी जड, लालचन्दन मुलहटी, गिलोय, अडूसा, खस, इनको समान भाग लेकर परिमित मात्रासे क्वाथ वनाकर शहत और मिश्री डालकर पीनेसे तृषा दाह ज्वर सहित अत्यन्त उग्ररूपसे बढा हुआ रक्तपित्त रोग शान्त होता है । कमलके फूल कमोदनीकी केशर (फूलका जीरा) पिठवन, महदीकेफूल इनके क्वाथमें पेया बनाकर रक्तपित्त रोगीको देवे । लाल चन्दन, खस लोध, सोंठ इनके क्वाथमें अथवा चिरायता, खस, मूंग इनके क्वाथमें या सिद्ध करके रक्तपित्त रोगीको देवे । यदि रक्तपित्त रोगवाले मनुष्यको विबन्ध हो तो खरगोसके मांसका रस, बथुएका शाक देवे यह विशेप हितकारी है । वाताधिक्य रक्तपित्त रोगमें तीतरके मांसका रस गूलरके फल व कोंपलका क्वाथ हितकारी है । मोर तथा पिलखनकी कोंपल व फल निर्यूह वटके फल व कोंपल मुर्गेके मांसका यूप

अथवा रस कमल केशर मिश्री इनका यूष व रस वैंगन केंकडा (जलका जन्तु) है, इनका रस हितकारी है। यदि रक्तपित्त वाले रोगीको अधिक तृषा लगे तो तिक्त औषधियोंके द्वारा सिद्ध किया हुआ जल पीनेको देवे, अथवा विदारीगन्धादि गणकी औषधियोंके द्वारा सिद्ध किया हुआ शृत शीतल जल पीनेको देना चाहिये।

सिद्ध योगराज।

वृषस्य स्वरसं कृत्वा द्रवैरेभिः प्रयोजयेत्। प्रियङ्गुमृत्तिकालोध्रमञ्श्वेति च चूर्णयेत्॥ एतच्चूर्णन्तु पातव्यं रसक्षौद्रसमन्वितम्। नासिकामुखपायुभ्यो योनेर्मेढ्राच्च वेगतः। रक्तपित्त स्रवद्धन्ति सिद्ध एष प्रयोगराट्। यच्च शस्त्रक्षतेनैव रक्तं स्रवति वेगतः। तदप्यनेन चूर्णेन तिष्ठत्येवावचूर्णितम्॥

अर्थ—मेहदीके फूल सुगन्धित सोरठी मृत्तिका लोध्र श्वेत निसोत इन सबको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण वनावे और अडूसाके पत्रोंका पुटपाक करके रस निचोड लेवे, इस रसमें शहत मिलावे और थोडी मिश्री भी डाले और उपरोक्त चार औषधियोंका चूर्ण परिमित मात्रासे मिलाकर अवलेह वनाके रक्तपित्त रोगी सेवन करे तो इस सिद्ध योगराजके प्रभावसे नासिका, मुख, गुदा, योनि, (स्त्री पुरुषोंकी उपस्थेन्द्रिय) इनमेंसे निकलता हुआ रक्त बन्द हो जाता है। यदि शस्त्रादिसे घाव हो गया होय और स्राव बन्द न होता होय तो इस चूर्णके सेवनसे जखम पर लगानेसे बन्द हो जाता है।

चन्दनादि चूर्ण।

चन्दनं नलदं लोध्रमुशीरं पद्मकेशरम्॥ नागपुष्पञ्च विल्वञ्च भद्रमुस्तं सशर्करम्॥ ह्रीवेरं चैव पाठा तु कुटजोत्पलमेव च। शृङ्गवेरं सातिविषा धातकी सरसाञ्जनम्॥ आम्रास्थिजम्बूसारास्थि तथा मोचरसोऽपि च॥ नीलोत्पलं समङ्गा च सूक्ष्मैला दाडिमत्वचम्। चतुर्विंशतिरेतानि समभागानि कारयेत्। तण्डुलोदकसंयुक्तं मधुना सह योजयेत्॥ योगो लोहितपित्तानामर्शिनां ज्वरिणां तथा। मूर्च्छामेदोपसृष्टानां तृष्णार्त्तानां प्रदापयेत्॥ अतीसारं तथाछर्दिस्त्रीणाञ्च रजसोग्रहम्। प्रत्युतानाञ्च गर्भाणां स्थापनं परमुच्यते। अश्विनोः सम्मतो योगो रक्तपित्तनिवर्हणः॥

अर्थ—चन्दन, लमाज्जक, लोध, खस, कमलकेशर, नागकेशर, बेलगिरी, भद्रमोथा (छोटी ग्रन्थिवालेको भद्रमोथा कहते हैं) । सुगन्धवाला (नेत्रवाला यह सुगन्धित तृण है नारीका शाक जो तलावमें होता है वह नहीं है) पाढ, कुडाकी छाल, कमलकी जड व कमलगट्टाकी गिरी, अदरख, अतीस, धायके फूल, रसौत, आमकी गुठलीकी गिरी, जामुनकी गुठलीकी गिरी, मोचरस, नील कमल (नीलोफर) लज्जावन्ती, छोटी इलायचीके बीज अनारकी छाल इन सबको समान भाग लेकर कूट छानकर अति सूक्ष्म चूर्ण बनावे और जिस पानीमें चावल भींग रहे होयँ उस पानीको नितारकर शहत मिलाव । इस चूर्णकी परिमित मात्रा मुखमें रखके ऊपरसे शहत मिला हुआ चावलका जल पी जावे तो रक्तपित्त, रक्तजार्श, पित्तज्वर, मूर्च्छा, मेदरोग, तृषारोग इसके सेवनसे निवृत्त होते हैं । अतीसार, छर्दि, स्त्रियोंके रक्तप्रदरको नष्ट करता है तथा गर्भस्रावकी स्थितिको स्थापन करता है, यह प्रयोग रक्तपित्तकी निवृत्तिके निमित्त अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है । इसी प्रकार महादूर्वादि घृत, शतावरीघृत, वृहच्छतावरी घृत, कामदेवघृत, वृहद्वासादिघृत ये सब रक्तपित्तको नष्ट करनेवाले हैं । गधेकी लीदका जल निचोडकर नाकमें डालनेसे बालकोंकी नकसीर उसी समय बन्द हो जाती है ।

बालकके हृद्रोगकी चिकित्सा ।

हृद्रोग दुग्धाहारी बालकोंको होता कम देखा गया है । यदि किसी २ बालकके होता भी है तो दुग्ध पिलानेवाली माता व धात्रीके दोषसे होता है । खटाई भारी पदार्थ अति गरिष्ट गर्म पदार्थ कषैले पदार्थ दुग्ध पिलानेवाली खावे तो उसका दुग्ध दूषित हो जाता है और दूषित दुग्धसे बालकको हृद्रोग होजाता है । इसकी उत्पत्तिका कारण इस प्रकारसे है कि स्त्रीका दुग्ध दूषित और भारी होनेसे बालकको पचता नहीं है, दुग्धके न पचनेसे उसका रस नहीं बनता और वह सड जाता है । तभी उसमें कृमि उत्पन्न हो जात हैं, अन्नाहारी बालकोंको ऊपर लिखे आहारादिके सेवनसे दोष कुपित होकर हृद्रोग उत्पन्न होता है ।

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयंगताः ।
हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥

अर्थ—कुपित हुए दोष रसको जो कि हृदयमें रहता है दुष्ट करके हृदयमें अनेक प्रकारकी पीडाको उत्पन्न करते हैं उसको हृदयरोग कहते हैं । वह हृदयरोग पांच प्रकारका है वातपित्त कफ सन्निपात कृमिज (वातके हृदय रोगमें) हृदय व्यथासे फैलासा माल्म होय सुई चुभानेकीसी पीडा होय मथन व मर्दनकीसी पीडा होय कोई चीर कर टुकडा करता है ऐसी पीडा होय अथवा फूटने काटनेके समान पीडा

होय। (पित्तके हृदयरोगमें) तृषा लगना ऊष्मा शीतपदार्थकी इच्छा दाह चोष चूसने-के समान पीडा होय हृदयमें क्लम कण्ठसे धूआंसा निकले मूर्च्छा क्लेद सडी वस्तुकी-सी दुर्गन्धि मुखका सूखना । (कफके हृदयरोगमें) कफसे हृदय व्याप्त रहे तथा हृदय भारी मालूम पडे कफका गिरना अरुचि हृदय जकडासा मालूम पडे मन्दाग्नि मुखमें मिठास चिपकनापन रहे । इसी प्रकार तीनो दोषोंके लक्षण संयुक्त होनेसे त्रिदोषजन्य हृदयरोग जानना । (जैसा कि)

"विद्यात्रिदोषन्त्वपि सर्वलिङ्गं तीव्रार्त्तितोदं कृमिजं सकण्डूम्" ॥ उत्क्लेदः ष्ठीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः । अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोथश्च कृमिजे भवेत् ॥

अर्थ—जिससे सब लक्षण मिलते होयँ वह त्रिदोषज और जिसके हृदयमें नोचने-कीसी तीव्र पीडा होय खुजली होय इसको कृमिजन्य हृदयरोग जानना और उत्क्लेद वारम्वार थूकना, सुई चुभानेकीसी पीडा, शूल, सूखी उबकाई, अन्धकार, अरुचि, नेत्रोंमें कालापन, शोष, इत्यादि लक्षण कृमिज हृद्रोगमें होते हैं ।

क्लोमः सादो भ्रम शोषो ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः ।
कृमिजे कृमिजातीनां श्लेष्मिकाणां च ये मताः ॥

अर्थ—रंजक पित्तके स्थानको क्लोम अर्थात् तृषास्थान कहते हैं इसका शुष्क होना, ग्लानि, भ्रम, मुखशोष इत्यादि हृदय रोगके उपद्रव हैं कृमिज हृदय रोगमें कफज कृमि रोगके समान उपद्रव होते हैं । और हृल्लास मुखमेंसे लारका बहना आहारका न पचना क्षय रोगकेसे उपद्रव होना इत्यादि ।

हृद्रोगकी चिकित्सा ॥

घृतेन दुग्धेन गुडांभसा वा पिबन्ति चूर्णं ककुभस्त्वचो ये । हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ पुटदग्धं हरिणशृङ्गं पिष्टं गव्येन सर्पिषा पिबतः । हृत्पृष्ठशूलमचिरादुपैति शान्तिं सुकष्टमपि ॥

अर्थ—घृत दुग्ध अथवा गुडके शरबतके साथ अर्जुन वृक्षके बारीक चूर्णको पान करनेसे हृदयरोग, अजीर्ण, ज्वर, रक्तपित्त नष्ट होता है और मनुष्य दीर्घजीवी रहता है । हिरणके शृङ्गके टुकडा करके हांडीके संपुटमें रखके भस्म बनावे और पीस-कर बारीक कर और परिमित मात्रासे दुग्ध व घृतके साथ पान करे तो हृदयकी पीडा तथा पीठका कष्ट देनेवाला दर्द निवृत्त होय । अर्जुन घृत हृदय रोगको शान्त करता है ।

वातोपसृष्टे प्रथमं वामयेत्स्निग्धमातुरम्। द्विपञ्चमूलीक्वाथेन सुस्नेहलवणेन च। क्वाथः कृतः पौष्करमातुलुङ्गपलाशपूतीकशठीसुराह्वैः। सनागराजाजिवचायवानीसक्षारकृष्णोलवणेन पेयः।

अर्थ—वातजन्य हृदय रोगमें रोगीको दशमूलके क्वाथमें तैल और सेंधानमक मिलाकर पान कराके वमन करा देवे। पुष्करमूल, बिजौराके जडकी छाल, (अथवा फलका गर्भ) ढाककी जडकी छाल, करंजकी छाल, नरकचूर, देवदारु इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका काढा बनावे और सोंठ, जीरा, वच, अजवायन जवाखार, सेंधानमक इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना इस चूर्णको परिमित मात्रासे उपरोक्त क्वाथमें मिलाकर पान करानेसे वातजन्य हृदयरोग शान्त होता है।

हरीतक्यादिघृत।

हरीतकीपुष्करनागराह्वैर्यवैर्वयस्थालवणैश्च कल्कैः।
सहिङ्गुभिः साधितमेव सर्पिर्हितञ्च हृत्पार्श्वगदेऽनिलोत्थे॥

अर्थ—हरड, पुष्करमूल, सोंठ, इन्द्रजौ, गिलोय सेंधानमक, हींग इन सबका कल्क बनाकर घृतको सिद्ध करके सेवन करनेसे हृदयका रोग पार्श्वशूल तथा अन्य वातजन्य रोग निवृत्त होते हैं।

बलादिघृत।

घृतं बलानागबलार्जुनानां क्वाथेन कल्केन च यष्टिकायाः।
सिद्धं तु हन्याद्धृदयामयं हि सवातरक्तक्षतरक्तपित्तम्॥

अर्थ—खरैटी, कंघी, अर्जुनवृक्षकी छाल छिली हुई मुलहटी इनको समान भाग लेकर क्वाथ बना इन्हींका कल्क बनाकर घृतको पकाकर सिद्ध करके सेवन करनेसे हृद्रोग, वातरक्त, घाव, रक्तपित्त इनको निवृत्त करे।

बल्यमांसरसक्षीरघृतशालिं च भोजयेत्।
वातघ्नसिद्धं तैलं च बस्तिं दद्याद्विचक्षणः॥

अर्थ—बल देनेवाले आहार मांस मांसरस दुग्ध घृत शाली चावल तथा वातनाशक औषधियोंके द्वारा सिद्ध किये हुए घृत तैलादि और बस्ति कर्म ये समस्त उपचार वातजन्य हृदय रोगमें हितकारी हैं।

श्रीपर्णीमधुकक्षौद्रसितागुडजलैर्वमेत्। पित्तोपसृष्टे हृदये सेवेत मधुरैः शृतम्। घृतं कषायांश्चोद्दिष्टान्पित्तज्वरविनाशनान्॥ द्राक्षासिताक्षौद्रप-

रुषकैः स्याच्छर्दे च पित्तापहमन्नपानम् । पिष्ठा पिबेद्वापि सिता-जलेन यष्ट्याह्वयं तिक्तकरोहिणीञ्च ॥ अर्जुनस्य त्वचा सिद्धं क्षीरं योज्यं हृदामये । सितया पञ्चमूल्या वा बलया मधुकेन वा ॥

अर्थ—पित्तजन्य हृद्रोगमें कुम्मेरके (जारिस्क) मुलहटी इनका क्काथ वनाकर शहत और शक्कर गुड मिलाकर वमन करावे और मधुर पदार्थोंके साथ सिद्ध किया हुआ घृत और क्काथ सेवन करावे । तथा पित्तज्वरमें जो चिकित्सा की जाती है उसका उपचार पित्तजन्य हृद्रोगमें करे ।

श्रेयस्याद्य घृत ।

श्रेयसीशर्करा द्राक्षाजीवकर्षभकोत्पलैः । बलाखर्जूरकाकोलीमेदायुग्मैश्च साधितम् ॥ सक्षीरं माहिषं सर्पिः पित्तहृद्रोगनाशनम् ॥

अर्थ—हरड, मिश्री, दाख, जीवक, ऋषभक, कमलकी जड, खरैटी खिजूर, काकोली, मेदा, महामेदा इनको समान भाग लेकर क्काथ बनावे और इस क्काथमें भैंसका दुग्ध घृत मिलाकर पकावे जब दुग्ध और क्काथ जलकर घृत मात्र बाकी रहे तव उतार लेवे और छानकर भर लेवे । इस घृतके सेवनसे पित्तजन्य हृद्रोग शान्त होता है ।

वचानिम्बकषायाभ्यां वाम्यं हृदि कफोत्थिते । वातहृद्रोगहृच्चूर्णं पिप्पल्यादि च योजयेत् ॥ कुम्भशिठीबलारास्नाशुण्ठीपथ्यासपौष्कराः । चूर्णिता वा शृता मूत्रे पातव्याः कफहृद्ग्रहे ॥ सूक्ष्मैलामागधीमूलं मलीढं सर्पिषा सह । नाशयत्याशु हृद्रोगं गुल्मानपि विशेषतः ॥

अर्थ—कफजन्य हृदयरोगमें वच तथा नीमकी छालके क्काथको पान कराके वमन करावे । और वातज हृद्रोगनाशक 'पिप्पल्यादि चूर्ण जो कि नीचे लिखा है उसको वात तथा कफके' हृदयरोगमें प्रयोग करे । पाढ, नरकचूर, खरैटी, रास्ना, सोंठ, हरड, पुष्करमूल इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनावे अथवा काढा बनावे और इस चूर्णको गोमूत्रके साथ अथवा क्काथमें गोमूत्र मिलाके सेवन करनेसे कफजन्य हृद्रोग निवृत्त होता है । छोटी इलायचीके बीज, पीपलामूल इन दोनोंको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और परिमित मात्रासे घृतके साथ सेवन करनेसे कफजन्य हृद्रोग और विशेष करके गुल्मरोग नष्ट होता है ।

पिप्पल्यादि चूर्ण ।

पिप्पल्यैला वचा हिङ्गु यवक्षारोऽथ सैन्धवम् । सौवर्चलमथो शुण्ठी ह्यजमोदा च चूर्णितम् । फलधान्याम्लकौलित्थदधि मद्यवसादिभिः । पाययेच्छुद्धदेहश्च स्नेहेनान्यतमेन च ॥

अर्थ—पीपल, इलायची, वच, हींग, जवाखार, सेंधानमक, काला नमक, सोंठ, अजमोद इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनावे और इस चूर्णको परिमित मात्रासे, त्रिफलाके क्वाथके साथ, अथवा कांजीके साथ, अथवा कुल्थी अन्नके यूषके साथ, अथवा दहीके साथ, अथवा मद्यके साथ, अथवा वसाके साथ, अथवा अन्य किसी स्नेहन पदार्थके साथ वमन विरेचनसे शुद्ध हुए शरीरवाले हृद्रोगीको सेवन करावे । त्रिदोषजहृदयरोगमें त्रिदोषनाशक अन्नपान तथा औषध देवे कृमिजन्य हृदयरोगमें कृमिप्रकरणमें कथन की हुई औषधका प्रयोग देवे ।

कृमिजे च पिबेन्मूत्रं विडंगामयसंयुतम् ।
हृदि स्थिताः पतन्त्येव ह्यधस्तात्कृमयो नृणाम् ॥

अर्थ—कृमिजनित हृदयरोगमें वायविडंग और कूट इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और परिमित मात्रासे गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे असाध्य कृमि निकलकर बाहर गिर जाते हैं ।

उदावर्त्त रोगकी चिकित्सा ।

वातविण्मूत्रजृम्भाश्रुक्षवोद्गार वमीन्द्रियैः ।
क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्त्तसंभवः ॥

अर्थ—अधोवायु, विष्ठा, मूत्र, जँभाई, अश्रुपात, छींक, डकार, वमन, शुक्र, भूख, प्यास, श्वास, निद्रा इन १३ वेगोंको रोकनेसे उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है । परन्तु बालकोंको कोष्ठबद्ध होकर मलके रुकने या मूत्रके रुकनेसे ही उदावर्त्तरोग होता देखा गया है । बालक मल वायुसे शुष्क होकर ग्रन्थी बंध जावे और मलद्वारको रोक लेवे उस समय अधोवायुका अवरोध होय और मल वात करके खुश्क हुआ गुदा बाहरको सरककर न निकले उस समय वायुकी गति ऊपरको होती है और इसी प्रकार किसी कारणविशेषसे मूत्रका अवरोध होनेसे भी उदावर्त्तरोग बालकको उत्पन्न होता है ।

सर्वेष्वेतेषु विधिवदुदावर्त्तेषु कृत्स्नशः । वायोः क्रिया विधातव्या स्वमार्गप्रतिपत्तये ॥ पश्चोर्द्ध्व जायते वायोरावर्त्तः स चिकित्सकैः । उदावर्त्त इति प्रोक्तो व्याधिस्तत्रानिलः प्रभुः ।

अर्थ–इन सब उदावर्त्तरोगोंमें वायुही प्रधान कारण समझी जाती है, इस लिये चिकित्सकको उचित है कि प्रथम वातको स्वमार्गमें लानेके लिये उपचार करना चाहिये । जिस रोगमें वायु आवर्त्त कहिये चक्कर खाकर ऊपरको जावे उसको उदावर्त्त रोग कहते हैं ।

वातमूत्रपुरीषाणां संगोध्मानं क्लमो रुजा । जाठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् । आटोपशूलौ परिकर्त्तिका च संगः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः । पुरीषमास्यादथवा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य । बस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा । विनामो वंक्षणानाहः स्याल्लिङ्गं मूत्रनिग्रहे ॥

अर्थ–अधोवायुके रुकनेसे अधोवायु मल मूत्र इनका बन्द होना पेट फूल जावे, अनायास श्रम और पेटमें बादीसे पीडा उत्पन्न होय, और पेटमें वायुजन्यशूल तथा तोदादि पीडा होय । मलके वेग (हाजत) को रुकनेसे पेटमें गुडगुडशब्द होय, पक्काशयमें शूल होय, गुदामें कतरनेकीसी पीडा होय, मल उतरे नहीं, डकार विशेष आवे और डकारमेंसे मलके समान दुर्गन्धि आवे तथा मल आवे मूत्रवेगके रुकनेसे मूत्र वस्ती (मूत्राशय) और शिश्नेन्द्रिय इनमें पीडा होय और मूत्र कष्टसे उतरे मस्तकमें पीडा होय और पीडाके क्लेशसे शरीर सीधा न होय पेडूमें विशेष अफरा होय । उदावर्त्तके समानही वातकी प्रधानतासे आनाहरोग उत्पन्न होता है जैसा कि–

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन । प्रवर्त्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरन्ति ॥ तस्मिन्भवत्यामसमुद्भवे च तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहः । आमाशये शूलमथो गुरुत्वं हृत्स्तम्भमुद्गारविघातनञ्च ॥ स्तंभः कटिपृष्ठपुरीषमूत्रे शूलोऽथ मूर्च्छाशकृतश्च छर्दिः । श्वासश्च पक्काशयजे भवन्ति तथालसोक्तानि च लक्षणानि ॥

अर्थ–आम अथवा विष्ठा क्रमसे संचित होकर और दुष्ट वायुसे रूक्ष होकर सूख जावे अर्थात् गांठ पड जावे और मलाशयसे चलकर गुदाद्वारसे बाहर न निकले इसको वैद्यलोग आनाहरोग कहते हैं आमसे उत्पन्न हुए आनाहरोगमें तृषा प्रतिश्याय शिरमें उष्णता और जलन आमाशयमें शूल शरीरमें भारीपन हृदयका जकड जाना डकारका न आना ये सब लक्षण होते हैं । और जो मलके सञ्चित होनेसे आनाह हुआ होय उससे कटिस्तम्भ, पीठ मल मूत्र इनका अवरोध (जकड) जावे शूल मूर्च्छा विष्ठा मिली

हुई वमन, अलसक अफरा वायुका विधान इत्यादि लक्षण होते हैं। असलमें यह व्याधि आंतडेका संकोच है आगे आँतडेके संकोचका वर्णन लिखा है।

उदावर्तकी चिकित्सा।

इस उदावर्त्तरोगमें तथा आनाहरोगमें तत्काल फल देनेवाली बस्तिक्रिया है, आम मल और अधोवायु इनकी प्रवृत्ति शीघ्र बस्तिक्रियासे होती है। अरंडीका तैल उष्ण जलमें मिलाकर अथवा स्वच्छ साबुन गर्म जलमें मिलाकर गुदामें पिचकारी लगानेसे मलकी ग्रन्थी उसी समय बाहर निकल पडती है और वायुकी गति ऊर्द्ध भागको त्यागकर अधोभागकी तर्फ प्रवृत्ति करती है।

अधोवातनिरोधोत्थे उदावर्त्ते हितं मतम्। स्नेहपानं तथा स्वेदो वर्तिर्बस्तिर्हितो मतः। विड्विघातसमुत्थे तु विड्भंगान्नं तथौषधम्। वर्त्यभ्यङ्गावगाहाश्च स्वेदो बस्तिर्हितो मतः। मूत्रावरोधजनिते क्षीरवारिवचां पिबेत्। दुःस्पर्शास्वरसं वापि कषायं ककुभस्य च। एर्वारुबीजतोयेन पिबेद्वा लवणीकृतम्। सितामिक्षुरसं क्षीरं द्राक्षां यष्टीमथापि वा। सर्वथैव प्रयुञ्जीत मूत्रकृच्छ्राश्मरीविधिं।

अर्थ—अधोवायुके निरोधसे उत्पन्न हुए उदावर्त्त रोगमें स्नेहपान पसीने लाना फलवात्तका गुदामें रखना तथा बस्तिक्रियाका प्रयोग करना हित है। मलावरोधसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तमें दस्त लानेवाले मलको मुलैयन करनेवाले अन्नपान देना तथा रेचक औषध (अरंडीका तैल दूधके साथ देना) फलवर्त्तिको गुदामें रखना मालिश करना ऊष्ण जल व निग्राये तैलमें बैठना पसीने निकालना बस्तिक्रियाका प्रयोग करना इत्यादि उपचार हितकारी हैं। मूत्रावरोधसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तमें दुग्ध और जल दोनोंकी लप्सी बनाकर पिलावे अथवा इस लप्सीके साथ वचको बारीक पीसकर और लप्सीमें छान कर पिलावे अथवा कटेलीका तथा जवासेका स्वरस मिलावे अथवा अर्जुन वृक्षकी छाल तथा पत्रका स्वरस निकाल कर पिलावे अथवा खीरेककडीके बीजोंको जलके साथ बारीक पीसकर जलमें छानकर सेंधा नमक मिलाकर पिलावे। अथवा दाख मुलहटी इनको बारीक पीसकर दूध व ईखके रसमें मिलाकर, पिलावे अथवा जलमें छानकर मिश्री मिलाके पिलावे। और जो उपाय पूर्व मूत्रकृच्छ्रमें तथा अश्मरी रोगकी चिकित्सामें कथन किये गये हैं वे सब मूत्रावरोधसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तमें प्रयोग करना।

गुडाष्टकप्रयोग ।

सव्योषपिप्पलीमूलं त्रिवृद्दन्ती च चित्रकम् । तच्चूर्णं गुडसंमिश्रं भक्षयेत् प्रातरुत्थितः ॥ एतद्गुडाष्टकं नाम्ना बलवर्णाग्नि वर्द्धनम् । उदावर्त्तप्लीहगुल्मशोथपांड्वामयापहम् ॥

अर्थ–सोंठ मिरच, पीपल, पीपलामूल, निसोथ, दन्ती, चित्रककी छाल इन सबको समान भाग लेवे और सबके समान गुड मिलाकर परिमित मात्रासे प्रातःकाल सेवन करनेसे यह गुडाष्टक बलवर्ण, अग्निको बढानेवाला, उदावर्त्त, प्लीहा, गुल्म, सूजन, पाण्डुरोग इनको नष्ट करता है ।

हिंग्वादिचूर्ण ।

हिंगूग्रन्धा विड्शुंण्ठ्यजाजी हरीतकी पुष्करमूलकुष्ठम् ।
यथोत्तरं भागविवृद्धमेतत्प्लीहोदरानाह विषूचिकासु ॥

अर्थ–हींग १ भाग वच २ भाग सोचरनमक ३ भाग सोंठ ४ भाग जीरा ५ भाग हरड ६ भाग पुष्करमूल ७ भाग कूट ८ भाग इन सबका चूर्ण बना गर्म जलके साथ सेवन करनेसे प्लीहारोग, उदररोग, आनाहरोग, विषूचिका (हैजा) इन सबको शमन करता है ।

त्रिकटुद्यावर्त्त ।

वर्त्तिस्त्रिकटुकसैन्धवसर्षपग्रहधूममदनकुष्टफलैः । मधुनि गुडे वा पक्के विदधीतांगुष्ठपरिमाणा ॥ वर्त्तिरियं दृष्टफलाशनैः प्रणिहिता गुदे घृताभ्यक्ता । आनाहोदावर्त्तशमनी जठरगुल्मनिवारणी ॥

अर्थ–त्रिकुटाका सूक्ष्म चूर्ण, सेंधानमक, सरसों, धूमसा, मैनफल, कूट इन सबको समान भाग लेकर एकत्र करके सूक्ष्म पीस लेंवे और शहत तथा गुडमें मिलाकर अंगुष्ठ प्रमाण अथवा बालकके लिये छोटी बत्ती बनावे और इस बत्तीको घृतसे चुपड कर गुदाके मुख पर घृत लगाके बत्तीको गुदामें सरका देवे इस बत्तीके रखनेसे आनाह उदावर्त्त उदररोग गुल्मरोग निवृत्त होवे ।

आनाहचिकित्सा ।

तुल्यकारणकार्य्यत्वादुदावर्त्तहरींक्रियाम् । आनाहेषु च कुर्वीत विशेषश्चाभिधीयते ॥ त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विचतुः पञ्चभागिकाः । गुडेन तुल्यागुटिका हरत्यानाहमुल्वणम् ।

अर्थ—उदावर्त्त और आनाह रोगके तुल्य कारण और कार्य्य होनेसे उदावर्त्त रोग हरनेवाली क्रिया आनाह रोगमें करनी उचित है। (औषध प्रयोग) काली निसोथका चूर्ण २ तोला पीपलका चूर्ण ४ तोला छोटी हरडका चूर्ण ६ तोला गुड ११ तोला इन सबको मिलाकर गोली बना परिमित मात्रासे सेवन करे तो आनाह रोगके अफराको निवृत्त करे।

वचाद्य चूर्ण।

वचाभयाचित्रकया वस्रूकान्सपिप्पलीकातिविषान्सकुष्ठान्।
उष्णाम्बुनानाहविमूढवातान्पीत्वाजयेदाशुरसौदनाशी॥

अर्थ—वच हरड चित्रककी छाल जवाखार पीपल अतीस कूट इन सबको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और परिमित मात्रासे सेवन करे और रसौदनसे यहां मांसके सोरुआका ग्रहण होता है सो मांसाहारीको मांस रसके साथ भात खाना चाहिये। यह चूर्ण आनाह और मूढवातको नष्ट करता ह।

गुल्म रोगकी चिकित्सा।

गुल्मरोग दुग्धाहारी बालकोंमें तो देखा नहीं जाता, परन्तु अन्नाहारी बालकोंके अवश्य देखा गया है।

दुष्टवातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः। कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मं कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपिणम्। तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वहृद्बस्तिनामयः। हृद्बस्त्योरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारि यदि वाऽचलः। वृत्तश्च योऽपचयवान्स गुल्म इति कीर्त्तितः। सव्यस्तैजायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितैः। पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः॥ उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्धस्तृप्त्यक्षमत्वान्त्रविकूजनानि। आटोपमाध्मानमपाकशक्तिरासन्न गुल्मस्य वदन्ति चिह्नम्॥ अरुचिः कृच्छ्रविण्मूत्रं वातश्चान्त्रविकूजनम्। आनाहश्चोर्ध्ववातत्वं सर्वगुल्मेषु लक्षणम्॥ रुक्षान्नपान्नविषमातिमात्रं विचेष्टनं वेगविनिग्रहश्च। शोकाभिघातोऽतिमलक्षयश्च निरन्नता चानिलगुल्महेतुः। यत्स्थानसंस्थानरुजाविकल्पं विड्वातसंगं गलवक्त्र शोषम्। श्यावारुणत्वं शिशिरज्वरं च हृत्कुक्षिपार्श्वशशिरोरुजश्च। करोति जीर्णेऽत्यधिकं प्रकोपं भुंक्ते मृदुत्वं समुपैति यश्च। वातात्स गुल्मो न च तत्र रूक्षं कषायतिक्तं कटु चोपशेते॥

अर्थ–मिथ्याहार विहार करनेके कारणोंसे वातादि तीनों दोषोंमेंसे एक एक दोष व तीनों दोष एकत्र कुपित होकर कोष्ठमें पांच प्रकारकी ग्रन्थिको उत्पन्न करते हैं, इसको गुल्म रोग कहते हैं। दोनों पसली, हृदय, नाभि, वस्ती इन स्थानोंमें गुल्मरोग उत्पन्न होते हैं। हृदय तथा वस्ती स्थान इन दोनोंके बीचमें स्थिर रहनेवाली अथवा चलायमान गोलाकृतिवाला न्यूनाधिक होनेवाली ऐसी ग्रन्थिको गुल्म कहते हैं। कुपित हुए वातादि दोषोंके पृथक् २ एक एक दोषोंके तीन गुल्म और सन्निपातसे उत्पन्न हुवा चौथा गुल्म ये चार प्रकारके गुल्म स्त्री पुरुषके शरीरमें समान रूपसे उत्पन्न होते हैं। परन्तु स्त्रियोंके रक्तसे उत्पन्न हुआ पांचवाँ गुल्म होता है, जिसकी चिकित्सा दुष्ट ग्रन्थि प्रकरण विषयमें पूर्व लिखी हुई है। किसी २ वैद्यने द्वंद्वज गुल्म भी माना है। गुल्म उत्पन्न होनेके पूर्व अरुचि मलमूत्रका कष्टसे उतरना वायुसे आन्तोंमें अन्तरकूंजन न होना पेटका फूलना वातकी गतिका ऊपरको होना ये लक्षण सर्व प्रकारके गुल्म रोगोंमें होते हैं। (गुल्मरोग उत्पन्न होनेके कारण तथा लक्षण) रूक्षान्नपान विषम भोजन मात्रासे अधिक भोजन करना विरुद्ध चेष्टा मल मूत्रादि वेगोंको रोकना शोक अभिघात (किसी पदार्थकी चोटका लगना) वमन विरेचनादिसे मलका क्षय आहार न करना ये सब वातज गुल्मके कारण हैं (लक्षण) जो गुल्म कभी पार्श्व (पसलीमें) कभी नाभिमें कभी हृदयमें और कभी वस्तीमें चला जाय कभी लम्बा कभी मोटा कभी गोल कभी छोटा हो जाय और कभी अधिक पीडा और कभी थोडी पीडा होय कभी चुभनेकीसी कभी कतरनेकीसी पीडा होय मल और अपान वायुका अवरोध होय कण्ठ और मुखमें शोष होवे शरीरका रंग नीला अथवा लाल हो जाय शीत लगकर ज्वर उत्पन्न हो जाय हृदय, कूख, पसली, कंधा, मस्तक पीडा आहार जीर्ण होने पर अधिक पीडा होय और भोजन करनेसे पीडा न्यून हो जावे ये सब लक्षण हैं। इसमें रूखे कषैले कडुवे और चरपरे पदार्थोंका सेवन करनेसे रोगीको सुख नहीं होता।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्रोधाऽतिमद्यार्कहुताशसेवा। आमोऽभिघातो रुधिरं च दुष्टं पैत्तस्य गुल्मस्य निमित्तमुक्तम्॥ ज्वरः पिपासा सदनांगरागः शूलं महज्जीर्यति भोजने च। स्वेदो विदाहो व्रणवच्च गुल्मः स्पर्शासहपैत्तिकगुल्मरूपम्॥ शीतं गुरुस्निग्धमचेष्टनं च सम्पूरणं प्रस्वपनं दिवा च। गुल्मस्य हेतुः कफसंभवस्य सर्वस्तु दिष्टो निचयात्मकस्य॥ स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसादहृल्लास कासारुचिगौरवाणि। कफस्य लिंगानि चयानि तानि भवन्ति गुल्मे कफकोपजाते। व्यामिश्र-

लिंगानपरांस्तु गुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥ महारुजं दाहपरीत-मश्मवद् घनोन्नतं शीघ्रविदाहिदारुणम् । मनः शरीराग्नि बलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥

अर्थ–कटु खट्टा तीक्ष्ण रस दाहकारी करील सहजना मिरचादि रूक्ष भोजन करनेसे भोजन करनेसे क्रोध करनेसे मद्यपान करनेसे धूपमें फिरने व अग्निके समपि रहनेसे विदग्धजर्णिसे दुष्ट हुआ रस अभिघात कहिये किसी वस्तुका लगना रुधिरका बिगडना इत्यादि कारणोंसे पित्तज गुल्म उत्पन्न होता है (पित्तज गुल्मके लक्षण) ज्वर उत्पन्न होना तृषा लगना मुख और अङ्ग पर रक्तता आहार पचनेके समय अत्यन्त शूल होय पसीना आवें जलन होय व्रणके समान स्पर्श सहन न हो सके ये पित्तज गुल्मके लक्षण हैं (कफज गुल्मके कारण शीतल भारी चिकना, ऐसे भोजन करना पारिश्रम न करना पेट भरकर भोजन करना दिनमें शयन करना ये कफज गुल्मज कारण हैं । और तीनों दोषोंको कुपित करनेवाले आहार विहारके सेवनसे सन्निपातज गुल्म होता है (कफजगुल्म) शरीर भीगासा रहे शीतलमें ज्वर उत्पन्न हो जावे शरीरका स्तम्भ होना (जकडना) हृल्लास खांसी अरुचि भारीपन और कफके अन्य चिह्न भी होवें । इसको कफज गुल्म जानो । जिस गुल्मवाले रोगीके अत्यन्त पीडा और दाह उत्पन्न होता होय पत्थरके समान सघन और उन्नत तत्काल विदग्धाजीर्ण करता दारुण मन शरीर अग्नि बल इनको हरण करनेवाला यह त्रिदोषजन्य असाध्य-गुल्म कहाता है ।

गृहीत्वा सज्वरश्वासं छर्घतीसारपीडितम् ।
हृन्नाभि हस्तपादेषु शोथः कर्षति गुल्मिनम् ॥

अर्थ–(असाध्यलक्षण) जिस गुल्मरोगीको ज्वर श्वास वमन अतीसारसे पीडित और हृदय नाभि हाथ पैरोंमें शोथ हो गया होय इसके सिवाय शूल तृषा भोजनमें अरुचि दुर्बलता इत्यादि लक्षण जिस रोगीमें पाये जावें वह गुल्मरोगी मृत्युको प्राप्त होता है ।

गुल्मरोगीकी चिकित्सा ।

लंघनं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम् । बृंहणञ्च भवेदन्नं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ गुल्मिनामनिलशान्तिरुपायैः सर्वशो विधिवदाचरितव्या । मारुते तु विजिते समुदीर्णं दोषमल्पमपि कर्म्म निहन्यात् ॥ कुम्भीपिण्डेष्टकास्वेदान्कारयेत्कुशलो भिषक् । उपनाहाश्च कर्त्तव्याः

सुखोष्णाः साल्वणादयः ॥ स्रोतसामार्दवं कृत्वाजित्वामारुतमुल्बणम्। भित्वा विबन्धं गुल्मस्य स्वेदो गुल्ममपोहति ॥ ऊर्ध्ववातश्च मनुजं गुल्मिनं च निरूहयेत् ॥

अर्थ—लंघन अग्नि दीप्त करनेवाले आहार औषध चिकने ऊष्ण वातानुलोमक तथा सर्व प्रकारके पुष्टिकारक (द्रव्य) अन्न पानादि गुल्मरोगमें हितकारी हैं। सर्वप्रकारके गुल्मरोगमें प्रथम विविध प्रकारके उपचारोंसे वातको शमन करना चाहिये, क्योंकि वातके शमन होने पर पीछे अन्य दोष थोडे ही प्रयत्नसे आप शान्त हो जाते हैं। एक मटकी व टोकनीमें वातनाशक क्वाथोंको अथवा कांजीको भर कर गर्म करके उसकी भाफसे गुल्म पर स्वेद देवे इसको कुम्भीपाक स्वेद कहते हैं। और भीगी हुई कीचडको कपडेमें बांध कर गर्म करके सेंक देवे, इसको मृत्तिका स्वेद बोलते हैं। और उपनाह साल्वण स्वेद तथा सुखोष्ण लेप इन क्रियाओंके द्वारा गुल्मरोगको शमन करना चाहिये। गुल्मरोगमें स्वेद देनेसे स्रोत शुद्ध होते हैं और बलवान् वायु शमन होता है मलमूत्रादिके अवरोधको नष्ट करके गुल्मका विबन्ध नष्ट होता है। गुल्मरोगमें ऊर्ध्ववात हो तो निरूहण करना उचित है।

वातारितैलेन पयोयुतेन पथ्यासमेतेन विरेचनं हि। संस्वेदनं स्निग्धमतिप्रशस्तं प्रभंजनक्रोधकृते च गुल्मे ॥ स्वर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकसंभवः। पीतस्तैलेन शमयेद्गुल्मं पवनसंभवम् ॥ तित्तिरांश्च मयूरांश्च कुक्कुटान् क्रौंचवर्त्तकान्। सर्पिःशालीन्प्रसन्नां च वातगुल्मे प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—वातजन्य गुल्ममें अरंडीका तैल दूधम मिलाकर और छोटी हरडोंका चूर्ण डालकर रेचक करानेके अर्थ देवे तथा स्वेद करना स्नेह न करना हितकारी है। सज्जी कूट केतकी वृक्षका क्षार तीनोंको समान भाग लेकर परिमित मात्रासे लेकर तैलमें मिलाके गुल्मरोगीको पिलावे तो वातजन्य गुल्मरोग नष्ट होय। तीतरका मांस मोरका मांस, मुर्गेका मांस, कोंचपक्षी चतक इनका मांस घृत शाली चावल प्रसन्नासंज्ञक सुरा ये वातजन्य गुल्मरोगमें पथ्य हैं।

पित्तगुल्मेत्रिवृच्चूर्णं पातव्यं त्रिफलाम्बुना। विरेकाय सितायुक्तं कम्पिल्लं वास माक्षिकम् ॥ अभयां द्राक्षया खादेत्पित्तगुल्मी गुडेन वा ॥

अर्थ—पित्तज गुल्मरोगीका निसोतका चूर्ण त्रिफलाके क्वाथके साथ पिलावे विरेचनके वास्ते मिश्री और शहतमें मिलाकर कमीलाका चूर्ण परिमित मात्रासे खिलावे तो

पित्तज गुल्म नष्ट होय । पित्तज गुल्मवाला हरडके सूक्ष्म चूर्णको दाखके कल्कमें मिलाकर खावे ।

क्षाराष्टक ।

पलाशवज्रिशिखरी चिंचार्कतिलनालजाः । यवजः स्वर्जिका चेति क्षारा अष्टौ प्रकीर्त्तिताः । गुल्मशूलहराः क्षारा अजीर्णस्य च पाचनाः ॥

अर्थ—पलाश (ढाक) थूहर, ओंगा, इमली, आक, तिल, जौ, सज्जी इनके क्षारको एकत्र करके परिमित मात्रासे सेवन करे तो गुल्म शूलको हरण करते हैं और अजीर्णको पचाते हैं ।

द्राक्षादि घृत ।

द्राक्षां मधुकखर्जूरं विदारीं सशतावरीम् । परूषकाणि त्रिफलां साधयेत्पलसम्मिताम् । जलाढके पादशेषे रसमामलकस्य च । घृतमिक्षुरसं क्षीरमभयाकल्कपादिकम् । साधयेत्तु घृतं सिद्धं शर्कराक्षौद्रपादिकम् ॥ प्रयोगपित्तगुल्मघ्नं सर्वपित्तविकारनुत् ॥

अर्थ—दाख, मुलहटी, खिजूरफल, विदारीकन्द, शतावर, फालसे, त्रिफला, ये प्रत्येक औषध एक एक पल (चार २ तोला) लेकर एक आढक जलमें पकावे जब चतुर्थांश जल बाकी रहे तब उतार कर क्राथको छान लेवे । और इस क्राथमें आमलेका स्वरस (स्वरसके अभावमें आंवलेका काढा लेना) घृत ईखका रस दूध हरडका कल्क ये सब द्रव्य क्राथसे चौथा भाग लेवे और सबको एकत्र करके मन्दाग्निसे पकावे जब क्राथ जल जावे और घृत मात्र बाकी रहे तब उतार कर घृतको छान लेवे और बर्त्तनमें भर कर रख देवे । इस घृतको परिमित मात्रासे लेकर उसमें घृतकी मात्रास चतुर्थांश मिश्री और शहत मिलाकर सेवन करे इस घृतके सेवनसे पित्तज गुल्म और सर्व प्रकारके पित्त विकार नष्ट होते हैं ।

कफज गुल्मकी चिकित्सा ।

तिलैरण्डातसी बीजसर्षपैः परिलिप्य च । श्लेष्मगुल्ममयः पात्रैः सुखोष्णैः स्वेदयेद्भिषक् ॥ यवानीचूर्णितं तक्रं विडेन लवणीकृतम् । पिबेत्संदीपनं वातमूत्रवर्चोऽनुलोमनम् ॥

अर्थ—तिल अरंडके बीजकी मिंगी अलसा सरसों इन सबको समान भाग लेकर बारिक पीसकर एक धातुके पात्र पर लेप करके उस पात्रको अग्नि पर गर्म कर गुल्मके ऊपर सुहाता २ सेंक देवे । अजवायनके चूर्णको तक्र (छाँछ) में मिलावे

और थोडा कालानमक डाल पान करनेसे अग्नि प्रदीप्त होती है तथा वायु मलमूत्रको अनुलोमन करनेवाला है। वातज गुल्मके समान, कफज गुल्मकी चिकित्सा करनी चाहिये ।

क्षीर षट्पल घृत ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः। पलिकैः सयवक्षारैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ क्षीरप्रस्थेन तत्सर्पिर्हन्ति गुल्मं कफात्मकम् । ग्रहणी-पाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ॥

अर्थ-पीपल, पीपलामल, चव्य, चित्रककी छाल, सोंठ, जवाखार ये प्रत्येक औषध चार चार तोला लेवे । और गौ घृत १ प्रस्थ गौ दुग्ध १ प्रस्थ उपरोक्त औषधियोंको दुग्धके साथ पीसकर कल्क बना लेवे सबको एकत्र करके मन्दाग्निसे पकावे जब दुग्ध जल कर घृत मात्रावशेष रहे तब उतार कर छान लेवे । यह घृत परिमित मात्रासे सेवन करनेसे कफज गुल्म संग्रहणी पाण्डुरोग प्लीहा खांसी और कफज्वरको शान्त करता है ।

हिंग्वादिचूर्ण ।

हिंगु त्रिकटुकं पाठां हवुषामभयां शठीम् । अजमोदाजगन्धे च तिन्तिडी चाम्लवेतसम् । दाडिमं पौष्करं धान्यमजाजी चित्रकं वचाम् । द्वौ क्षारौ पञ्चलवणं चव्यं चैकत्र योजयेत् । चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमन्नपानेष्वऽनव्ययम् । प्राग्भुक्तमथवा पेयं मद्येनोष्णोदकेन च । पार्श्वहृद्बस्तिशूलेषु गुल्मेवातकफात्मके । आनाहे मूत्रकृच्छ्रे च शूले च गुदयोनिजे । ग्रहण्यर्शोविकारेषु प्लीहपांड्वामयेऽरुचौ । उरोविबन्धहिक्कायां कासे श्वासे गलग्रहे । भावितं मातुलुङ्गस्य चूर्णमेतद्रसेन वा । वाहुशो गुटिकाः कार्य्याः कार्षिकाः स्युस्ततोऽधिकम् ॥

अर्थ-हींग भुनीहुई, सोंठ, मिरच, पीपल, पाठ, हवुषाबेर, हरड, नरकचूर, अजमोद, वनतुलसीके पत्र व जड, तंतडीक, अम्लवेतस, अनारदाना, पुष्करमूल, धनियाँ, जीरा, चित्रककी छाल, वच, जवाखार, सज्जी, सेंधानमक, मनियारीनमक, कालानमक, पञ्चमद्रानमक, समुद्रनमक, चव्य इन सबको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण वनावे इस चूर्णको अन्नपानके साथ प्रति दिवस. सेवन करे अथवा प्रातःकाल मद्य वा गर्म जलके साथ सेवन करे । यह हिंग्वादि चूर्ण पार्श्वशूल हृदयशूल वातकफजनितगुल्म आनाहरोग मूत्रकृच्छ्र गुदशूल योनिशूल संग्रहणी बवासीर, प्लीहा पाण्डुरोग अरुचि

उरोग्रह विवन्ध हिक्का खांसी श्वास गलग्रह इत्यादि रोगोंको नष्ट करता है। जो इसकी गोली बनानी होय तो विजौरेके रसमें मर्दन करके गोली बनालेवे, इसकी मात्रा बडी उमरके मनुष्यको १ तोलासे ऊपरकी कथन की है, बालकोंकी मात्रा बालककी उमरके अनुसार देनी चाहिये। दो दोष जनित गुल्मोंमें दो दोषको शमन कर्त्ता और त्रिदोष जनित गुल्ममें त्रिदोष नाशक उपचार करना चाहिये, दो दोषवाले गुल्मको कष्टसाध्य और त्रिदोष जनित गुल्मको असाध्य जान कर उपचार करे।

पथ्य।

शालिगोछागदुग्धश्च पटोलं मिश्रितं घृतम्। द्राक्षापरूषकं धात्री खर्जूरं दाडिमं सिता॥ पथ्यार्थं पैत्तिके गुल्मे बलातैलश्च योजयेत्॥ कुलित्थाञ्जीर्णशालींश्च षष्टिकान्यवजाङ्गलान्। मद्यतैलघृतं तक्रं कफगुल्मे प्रयोजयेत्॥

अर्थ—शालिचावलोंका भात गौ बकरीका दुग्ध पखलका शाक यूष घृत दाख फालसे आमले खर्जूरफल दाडिम मिश्रीखांड खरैटी ईखतैल ये सब पित्तज गुल्ममें पथ्य हैं। कुल्थी पुराने शांठीचावल शालिचावल जौ जंगलके जीवोंका मांस मद्य तैल घृत तक्र ये सब कफज गुल्ममें पथ्य हैं इनका प्रयोग करना चाहिये।

प्लीहा यकृत्‌रोग लक्षण।

शोणिताज्जायते प्लीहा वामतो हृदयादधः। रक्तवाहिशिराणा स मूलं ख्यातो महर्षिभिः। क्लमो भ्रमो विदाहश्च वैवर्ण्यं गात्रगौरवम्। मोहो रक्तोदरत्वं च ज्ञेयं रक्तजलक्षणम्॥ सज्वरः सपिपासश्च सदाहो मोहसंयुतः। पीतगात्रो विशेषेण प्लीहापैत्तिक उच्यते। प्लीहा मन्दव्यथः स्थूलः कठिनो गौरवान्वितः। अरोचकेन संयुक्तः प्लीहा कफज उच्यते॥ नित्यमानद्धकोष्ठः स्यान्नित्योदावर्त्तपीडितः। वेदनाभिः परीतश्च प्लीहा वातिक उच्यते॥ दोषत्रितयरूपाणि प्लीहासाध्ये भवंत्यपि। अधो दक्षिणतश्चापि हृदयाद्यकृतः स्थितिः। तत्त रंजकपित्तस्य स्थानं शोणितजं मतम्॥ प्लीहामयस्य हेत्वादि समस्तं यकृदामये। किन्तु स्थितिस्तयोर्ज्ञेया वामदक्षिणपार्श्वयोः॥

अर्थ—प्लीहा अथवा यकृत् रोग दुग्धाहारी बालकोंमें बहुत ही कम होता है, परन्तु दुग्धान्नाहारी अथवा केवल अन्नाहारी बालकोंमें प्रायः विशेष ही देखा जाता है, प्लीहा मनुष्य शरीरका एक अवयव विशेष है । इस अवयवमें रक्तके कारणसे प्लीहा रोग (कलेजे) के रोगकी उत्पत्ति मानी जाती है, यह अवयव मनुष्यके वामे भागमें हृदयके नीचे रहता है और रक्त बहानेवाली नसोंका मूल महर्षियोंने कहा है । रक्तज प्लीहाके लक्षण (क्लम ग्लानि) भ्रमदाह विवर्णता (शरीरमें भारीपन) मोह रक्तोदरका होना ये रक्तजन्य प्लीहाके लक्षण हैं । (पैत्तिक प्लीहाके लक्षण) जिस प्लीहा रोगीके शरीरमें ज्वरतृषा दाह मोह और शरीर पीला हो जाय ऐसे प्लीहा रोगीको पित्तजन्य प्लीहा रोग जानना । (कफज प्लीहाके लक्षण) जिसमें मन्द पीडा होय मोटी कठोर और भारी होय और रोगीको अरुचि रहती होय उसको कफकी प्लीहा जानो । (वातज प्लीहाके लक्षण) जिस प्लीहा रोगीका पेट प्लीहाके ऊपर हर समय तना हुआ रहे और कठिन होय और नित्यप्रति उदावर्त्त रोगकेसे लक्षणसे रोगी पीडित और दुःखी रहे उसको वातज प्लीहा जानना । (असाध्य प्लीहाके लक्षण) असाध्य प्लीहा रोगमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं । शरीरावयव यकृत् (लीवरका) स्वरूप । हृदयस्थानके नीचे दाहिनी तर्फको यकृत् है यह रंजक पित्तका स्थान रुधिरसे बना हुआ आयुर्वेदके आचार्योंने माना है । यकृत् रोग प्लीहा रोगके सम्पूर्ण हेतु यकृत्में भी जान लेने, किन्तु आयुर्वेदमें अन्तर इतनाही माना है कि प्लीहा पसवाडेके वामें भागमें होती है और यकृत् दाहिने तर्फ होती है । प्लीहा और यकृत्का शारीरक आयुर्वेदमें विशेष सूक्ष्म रीतिसे वर्णन किया है इसीका निदान भी सूक्ष्म रीतिसे है ।

प्लीहा और यकृत्की चिकित्सा ।

पातव्योयुक्तितः क्षारः क्षीरेणोदधिशुक्तिजः । तथादुग्धेन पातव्याः पिप्पल्यः प्लीहशान्तये ॥ अर्कपत्रं सलवणं पुटदग्धं सुचूर्णितम् । निहन्ति मस्तुना पीतं प्लीहानमतिदारुणम् । पलाशक्षारतोयेन पिप्पली परिभाविता । प्लीहगुल्मार्त्तिशमनी वह्निमांद्यहरी मता ॥ रसेन जंबीरफलस्य शंखनाभीरजः पीतमवश्यमेव । शाणप्रमाणं शमयेदशेषं प्लीहामयं कूर्मसमानमाशु ॥ शरपुंखमूलकल्केस्तक्रेणालोडितः पीतः । प्लीहानं यदि नः हरति शैलोऽपि तदा जले प्लवते ॥ सुपक्वसहकारस्य रसः क्षौद्रसमन्वितः पीतः प्रशमयत्येव प्लीहानं नेह संशयः । सुस्विन्नं शाल्मलीपुष्पं निशापर्य्युषितं नरः । राजिकाचूर्णसंयुक्तं खादेत् प्लीहो-

पशान्तये ॥ यवानिकाचित्रकयावशकषड्ग्रन्थि दन्ती मगधोद्भवानाम् । चूर्णं हरेत्प्लीहगदं निपीतमुष्णांबुना मुस्तरसासवैर्वा ॥

अर्थ—प्लीहारोगवालेको युक्तिपूर्वक समुद्रकी सीपका क्षार परिमित मात्रासे दुग्धके साथ पिलावे तो प्लीहारोग शान्त होय । अथवा दुग्धके साथ प्रति दिवस वर्द्धमान पिप्पलीका चूर्ण पिलावे तो प्लीहा शान्त होय । अथवा नोन पीसकर एक हांडीमें बिछावे और उसके ऊपर आकके पत्र बिछावे और आकके पत्रोंके ऊपर निमक फिर बिछावे इसी प्रकार कई पडत निमक और आकके पत्रके लगा हांडीका मुख संपुटसे बन्द करके गजपुटमें फूंक देवे, जब शीतल हो जाय तब इस क्षारको हांडीसे निकाल कर बारीक पीस परिमित मात्रासे इस क्षारको तक्रके साथ पीवे तो घोर प्लीहा रोग नष्ट होवे । पलाश क्षार जलकी पीपलोंमें भावना देकर सेवन करे तो प्लीहा गुल्म और मन्दाग्निका रोग निवृत्त होय । शंखकी नाभिकी भस्म करके ४ मासेकी मात्रा जंभीरी नीबूके रसमें सेवन करे तो कछुवेके समान ऊंची प्लीहा अवश्य नष्ट होय (४ मासेकी मात्रा पूरी उमरके मनुष्यकी है बालकको उसकी उमरके अनुकूल मात्रा देवे) । शरफोका बूटीकी जडका कल्क व चूर्ण करके तक्र (छाछ) में मिलाकर पीवे तो प्लीहारोग नष्ट होवे, यदि इस प्रयोगसे प्लीहारोग नष्ट न होवे तो शिला (पत्थर) जलमें अवश्य तैरने लगे । (शाखापक) आमके रसमें शहत मिलाकर पान करे तो अवश्य प्लीहा रोग निवृत्त होय । सेमर वृक्षके फूलको जलमें उबाल कर रात्रिभर रखा रहने दे और प्रातःकाल उसमें राईका चूर्ण मिला कर खाय तो प्लीहारोग शान्त होय । अजवायन चित्रककी छाल जवाखार पीपलामूल दन्ती पीपल इनको समान भाग लेकर चूर्ण बनावे और इस चूर्णको परिमित मात्रासे गर्म जल छाछ सुरा आसव इनमेंसे किसी एकके साथ सेवन करनेसे प्लीहारोग नष्ट होता है ।

शोथकी उत्पत्तिके लक्षण ।

शोथरोग दुग्धाहारी बालकोंके शरीरमें तो देखा नहीं जाता परन्तु दुग्धान्नाहारी बालक तथा केवल अन्नाहारी बालकोंके शरीरमें प्रायः उत्पन्न होता है, जो बालक मृत्तिका भक्षण करते हैं उनके प्रायः शोथरोग उत्पन्न होता है। अथवा बालकोंके शरीर पर विषैले जन्तुओंका चलने फिरने व स्पर्शसे मूत्र पुरीष शुक्र लगनेसे अथवा निर्विष मनुष्यादि प्राणियोंको दाढ दांत नख आदिके लगनेसे, मलिन वस्त्र आदि शरीर पर पहननेसे अथवा विषैले वृक्षोंकी वायुका शरीर पर स्पर्श होनेसे तथा भिलावाँ अथवा कौंच्छकी फली आदिके लगनेसे विषैली वस्तुओंके धूंआदिके लगनेसे शीतल पवन वा समुद्रकी पवनके लगनेसे किसी वस्तुके अभिघातसे इत्यादि कारणोंसे

सूजन उत्पन्न होकर चारों तर्फ फैल जाय और उसमें दाह लाल रंग होय और विशेष करके उसमें पित्तके लक्षण मिलते होयँ । अभिघातसे जो सूजन उत्पन्न होती है उसमें मांसादि कुचल जाते हैं और शस्त्राभिघातसे जो शरीरका अङ्ग कट गया होय उसके कारणसे जो सूजन होती है वह शस्त्राभिघातजन्य कही जाती है । और वात पित्त कफ ये ३ प्रकारकी तथा दो दो दोषोंके संयुक्त होनेसे ३ प्रकारकी और तीनों दोषोंके संयुक्त होनेसे सन्निपातका ऐसे ९ प्रकारका शोथ रोग माना गया है ।

चलस्तनुत्वक् परुषोऽरुणोऽसितः ससुप्तिहर्षार्त्तियुतो निमित्ततः । प्रशाम्यति प्रोन्नमति प्रपीडितो दिवा बली स्याच्छ्वयथुः समीरणात् ॥ मृदुः सगन्धोऽसितपीतरागवान् भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः । यस्तूष्यते स्पर्शसहोऽक्षिरागवान् सपित्तशोथो भृशदाहपाकवान् ॥ गुरुः स्थिरः पाण्डुररोचकान्वितः प्रसेकनिद्रावमिवह्निमांद्यकृत् । सकृच्छ्रजन्मप्रशमो निपीडितो नचोन्नमेद्रात्रिबलीकफात्मकः ॥ निदानाकृतिसंसर्गाच्छ्वयथुः स्याद्द्विदोषजः । सर्वाकृतिसन्निपाताच्छोथो व्यामिश्रलक्षणः ॥ दोषाः श्वयथुमूर्ध्वं हि कुर्वन्त्यामाशयस्थिताः पक्वाशयस्था मध्ये तु वर्चःस्थानगतास्त्वधः । कृत्स्नदेहमनुप्राप्ताः कुर्युः सर्वसरं तथा ॥ छर्दिस्तृष्णारुचिश्वासो ज्वरोऽतीसार एव च । सप्तकोऽयं सदौर्बल्यः शोथोपद्रवसंग्रहः ॥ श्वासः पिपासा छर्दिश्च दौर्बल्यं ज्वर एव च । यस्य चान्ने रुचिर्नास्ति शोथिनं परिवर्जयेत् ॥ यो मध्यदेशे श्वयथुः सकष्टः सर्वगश्च यः । अर्धोऽगेऽरिष्टभूतः स्याद्यश्चोर्ध्वं परिसर्पति ॥

अर्थ—वातसे उत्पन्न हुई सूजन चंचल त्वचा पतली हो जाय कठिन सूजन होय लालरंग होय तथा श्याव वर्ण होय त्वचा शून्य पड जाय अनेक प्रकारकी भिन्न २ वेदना होय रोमाञ्च और पीडा होय कभी निमित्तके विनाही शान्त हो जाय सूजनको दबानेसे दबकर खड्डा पड जावे और शीघ्रही ऊपरको उठ आवे और दिनमें सूजनका विशेष जोर रहे । और पित्तसे उत्पन्न हुई सूजन नर्म कुछ गन्ध युक्त काली पीली लाल इत्यादि रंगकी होय इस सूजनके उत्पन्न होनेसे भ्रम, ज्वर, पसीना, तृषा, मस्तपन ये लक्षण होयँ तथा हाथ स्पर्श करनेसे पीडा होय नेत्र लाल हो जायँ दाह और पाक होय ॥ कफसे उत्पन्न हुई सूजन भारी स्थिर पीली होय इसके योगसे अन्न द्वेष

लारका गिरना निद्रा वमन मन्दाग्नि ये लक्षण होयँ तथा इस सूजनकी उत्पत्ति और निवृत्ति विशेष कालमें होय और दबानेसे खड्डा पड जावे और शीघ्र नहीं उठे रात्रिके समय प्रबल होय । दो दो दोषका निदान लक्षण मिलनेसे दो दोषकी सूजन जाननी। और जिस सूजनमें वात पित्त कफ तीनोंके लक्षण होयँ उसको सन्निपातकी सूजन जानना । आमाशयमें स्थित दोष ऊपरके अङ्ग तथा ऊरुस्थानादिमें सूजनको उत्पन्न करते हैं । पक्वाशयमें थिस्त दोष शरीरके मध्यभागमें सूजनको उत्पन्न करते हैं । मलाशय गत दोष शरीरके नीचेके भाग पैरादि अङ्गोंमें शोथको उत्पन्न करते हैं । और सर्व शरीरमें स्थित दोष सम्पूर्ण शरीरमें सूजनको उत्पन करते हैं । (सूजनके उपद्रव) छर्दि, तृषा, अरुचि, श्वास, ज्वर, अतीसार, दुर्बलता, सूजनके ये सात उपद्रव हैं । (सूजनके असाध्य लक्षण) श्वास, तृषा, वमन, दुर्बलता ज्वरके लक्षण जिस सूजन-वाले रोगीके होयँ वह चिकित्सा करनेके योग्य रोगी नहीं है । जो सूजन शरीरके मध्य भाग तथा ऊपरके भागमें होय वह कष्टसाध्य है, परन्तु जो सूजन नीचे अङ्गोंसे उत्पन्न होकर ऊपरको चढे वह असाध्य जानना ।

शोथकी चिकित्सा ।

शुण्ठीपुनर्नवैरण्डपञ्चमूलशृतं जलम् । वातिके श्वयथौ शस्तं पानाहार-परिग्रहे ॥ पटोलत्रिफलारिष्टदार्वीकाथः सगुग्गुलुः । तद्वत्पित्तकृतं शोथं हन्ति श्लेष्मोद्भवं तथा ॥ मिश्रे मिश्रकर्म कुर्यात् सर्वजे सर्वमेवहि । बिल्वपत्ररसं पूतं शोषणं त्रिभवे पिबेत् ॥ शोथे त्वागन्तुजे कुर्य्यात्से-कलेपादिशीतलम् । भल्लातक्या हरेच्छोथं सतिला कृष्णमृत्तिका ॥ महिषीक्षीरसंपिष्टैर्नवनीतसमन्वितैः । तिलैर्लिप्तः शमं याति शोथो भल्ला-तकोत्थितः ॥ षष्ठीदुग्धतिलैर्लेपो नवनीतेन संयुतः । शोथमारुष्करं हन्ति चूर्णैः शालदलस्य च । विषजशोथचिकित्सा तु विषचिकित्सायां दृष्टा ॥ महिष्या नवनीतं वा लेपाद्दुग्धतिलान्वितम् ॥ फलं त्रिकोद्भवं क्वाथं गोमूत्रेणैव साधितम् । वातश्लेष्मोद्भवं शोथं हन्याद्वृषणसम्भ-वम् ॥ वृश्चीवदेवद्रुमनागरैर्वा दन्तीत्रिवृत्त्र्यूषणचित्रकैर्वा । दुग्धं सुसिद्धं विधिना निपीतं गीतं परं शोथहरं भिषग्भिः ॥ सेकस्तथार्कवर्षाभूनिम्ब-क्वाथेन शोथहृत् ॥ गोमूत्रेणापि कुर्वीत सुखोष्णेनावसेचनम् ॥ पुन-

र्नवा दारु शुण्ठी शिग्रुः सिद्धार्थकस्तथा । अम्लपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रलेपः सर्वशोथहृत् ॥

अर्थ—सोंठ पुनर्नवा, अरंडकी जडकी छाल, लघु पंचमूल, (पंचमूलकी औषध पीछे कथन कर आये हैं) इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्वाथ बनावे, इस क्वाथको पिलानेसे अथवा आहारादिमें देनेसे वातजन्य शोथ रोग निवृत्त होता है। पटोलपत्र त्रिफला नीमकी छाल दारुहल्दीकी छाल इनका विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उसमें गूगल मिलाकर पीवे तो पित्त कफसे उत्पन्न हुई सूजन निवृत्त होय और दो दोषोंसे मिश्रित सूजनमें मिश्रित उपचार करे और सन्निपातसे उत्पन्न हुई सूजनमें तीनों दोषोंका शमन होय ऐसा उपचार करे। बेलपत्रका स्वरस और काली मिरचका अनुमान माफिक चूर्ण इनको मिलाकर पिलानेसे त्रिदोषकी सूजन शान्त होती है। आगन्तुज सूजनमें सेक और लेप ये सब शीतल ही करने चाहिये । काली मिट्टी और तिल इन दोनोंको समान भाग लेकर पीस लेवे और लेप करे तो भिलावेके स्पर्शसे हुई सूजन निवृत्त होती है अथवा तिलोंको दूधके साथ पीसकर मक्खन मिलाकर लेप करे तो भिलावेकी तथा अन्य वृक्षादिके स्पर्शसे हुई सूजन निवृत्त होय, अथवा मुलहटी और तिलको दूधके साथ बारीक पीसे और मक्खन मिलाकर लेप करे। अथवा शाल वृक्षके सूखे पत्रका चूर्ण जलके साथ पान करे तो सूजन निवृत्त होय। हरड, गोरोचन, कूट, आकके फूल, नील कमल, बेंतकी जड, तुलसी इन्द्रजो, मंजीठ धमासा इनको समान भाग लेकर लेप करे तो सब प्रकारके जहरी वृक्षकी हवासे उत्पन्न हुई सूजन निवृत्त होय तथा जन्तुके स्पर्श व काटनेसे उत्पन्न हुई सूजन भी निवृत्त होती है। तथा पीपल सुगन्धित तृण (रोहिष) जटामांसी, लोध, इलायचीके बीज, सोरा, काली मिरच, नेत्रवाला, बडी इलायचीके बीज, सोनागेरू इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्वाथ बनाकर शहत डालके सेवन करनेसे सब प्रकारका विषजन्य शोथ निवृत्त होता है।

विषजन्य शोथकी विशेष चिकित्सा ।

चरक सुश्रुतके विष प्रकरणमें देखो और सूक्ष्मरूपसे आगे इस ग्रंथमें भी वर्णन है। गोमूत्रमें त्रिफला डालकर क्वाथ बनावे इस क्वाथके पान करनेसे वात कफकी तथा अण्डकोशकी सूजन नष्ट होती है। सफेद फूलकी पुनर्नवाकी जड देवदारु सोंठ अथवा दन्ती काली निशोत सोंठ मिरच पीपल चित्रक इन दोनों प्रयोगमेंसे एक प्रयोगको क्षीरपाककी विधिसे दूधको सिद्ध करके पान करे तो शोथको निवृत्त करता है।

आककी जड पुनर्नवा चिरायता इनको समान भाग लेकर क्काथ बनावे इस क्काथमें बैठने व तरडा देनेसे सूजन निवृत्त होती है, अथवा गौमूत्रका सेक करनेसे भी सूजन निवृत्त होती है। पुनर्नवाकी जड देवदारु सोंठ सहँजनाकी छाल सफेद सरसों इनको समान भाग लेकर जल व गोमूत्रसे पीसकर गर्म करके सूजन पर लेप करे और लेपके ऊपर अरंडके पत्र लगाकर कपडा लपेट देवे सूजन निवृत्त होय।

पथ्यादि क्काथ तथा मानकन्द घृत।

पथ्यनिशाभार्ग्यमृताकदार्वीपुनर्नवादारुमहौषधानाम्। क्काथः प्रसह्योदर-पाणिपादमुखाश्रितं हन्त्यचिरेण शोथम्॥ मानकक्काथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत्। एकजं द्वंद्वजं शोथं त्रिदोषञ्च व्यपोहति॥

अर्थ—हरड, हल्दी, भारंगीकी छाल, गिलोय, चिरायता, दारुहल्दीकी छाल, पुनर्नवाकी जड, देवदारु, सोंठ, सबको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्काथ बनाकर पीनेसे उदर हाथ पैर और मुखकी सूजन बहुत शीघ्र ही नष्ट होती है। मानकन्दके क्काथ और कल्कके साथ एक प्रस्थ घृतको सिद्ध करे इस घृतके सेवनसे एक दोष दो दोष त्रिदोषकी सूजन निवृत्त होती है।

नवकार्षिकगुग्गुलु।

त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैकांशयोजिता।
गुटिका शोथगुल्मार्शो भगंदरवतां हिता॥

अर्थ—त्रिफला ३ तोला शुद्ध गूगल ५ तोला पीपलका चूर्ण १ तोला इन सबको एकत्र करके गौमूत्रके साथ मर्दन करके गोली बनावे और परिमित मात्रासे भक्षण करे तो सूजन गुल्म अर्श भगंदर इनको निवृत्त करे।

कण्ठमाला (गंडमाला) अपची।

कर्कंधु कोलामलकप्रमाणैः कक्षां समन्यागलवंक्षणेषु। मेदः कफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद्गण्डमाला बहुभिस्तु गंडैः॥ ते ग्रन्थयः केचिदवाप्त-पाकाः स्रवन्ति नश्यन्ति भवन्ति चान्ये। कालानुबंधं चिरमादधाति सैवापचीति प्रवदंति केचित्॥

अर्थ—मेद और कफ इनसे उत्पन्न कूख कन्धा गर्दनके पिछाडी मन्या संज्ञक नाडीमें गलेमें वंक्षण कहिये जांघकी सन्धिमें इन ठिकानों पर बेरकी आकृतिकी अथवा आंव-

लेकी आकृतिकी अथवा अनेक प्रकारकी आकृतिकी गांठ उत्पन्न होकर विशेष समयमें धीरे २ पकें उनको गंडमाला व कण्ठमाला कहते हैं । गंडमालका ही रूपान्तर अपची कहलाता है । उपरोक्त कण्ठमालाकी गांठ पके नहीं अथवा पकनेसे स्राव हो जावे और वह ग्रन्थी अच्छी होय और दूसरी उत्पन्न हो जाय और पक फूट कर वह निवृत्त होय और तीसरी नवीन उत्पन्न होय इसी क्रमसे अनेक ग्रन्थी पकती फूटती और नवीन उत्पन्न होती रहें, अधिक समय पर्य्यन्त कष्ट देती रहे इसको अपची रोग कहते हैं । प्रायः यह रोग दुग्धान्नाहारी तथा केवल अन्नाहारी वालकों और वडी उमरके स्त्री पुरुषोंके होता है, ऐसी ग्रन्थी प्रायः क्षय रोगीके भी इन्हीं ठिकानोंपर उत्पन्न होती हैं ।

कण्ठमालाकी चिकित्सा ।

कांचनारत्वचः क्वाथः शुण्ठीचूर्णेन संयुतः । माक्षिकाढ्यः सकृत्पीतः क्वाथो वरुणमूलजः । गण्डमालां हरत्याशु चिरकालानुवन्धिनीम् ॥

अर्थ—कचनारकी छालके क्वाथमें सोंठका चूर्ण डालके पीवे और ऊपरसे उसी समय वरुण वृक्षकी छालके क्वाथमें शहत मिलाकर पीवे तो अधिक समयसे उत्पन्न हुई गंडमाला निवृत्त होय ।

कचनार गुग्गुलु ।

काञ्चनारस्य गृह्णीयात्त्वचं पञ्चपलोन्मिताम् । नागरस्य कणायाश्च मरिचस्य पलं पलम् ॥ पथ्याविभीतधात्रीणां पलमर्धं पृथक् पृथक् ॥ वरुणस्याक्षमेकं च पत्रकैलात्वचां पुनः । टंकं टंकं समादाय सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत् ॥ यावच्चूर्णमिदं सर्वं तावानेवात्र गुग्गुलुः । संकुट्य सर्वमेकत्र पिण्डं कृत्वा विधारयेत् । गुटिकाः शाणिकाः कृत्वा प्रभाते भक्षयेन्नरः ॥ गलगण्डं जयत्युग्रमपचीमर्बुदानि च । ग्रन्थीन् व्रणानि गुल्मांश्च कुष्ठानि च भगन्दरम् । प्रदयश्चानुनार्थं क्वाथो मुण्डीतिकाभवः । क्वाथः खदिरसारस्य क्वाथः कोष्णाभयाभवः ॥

अर्थ—कचनारकी सूखी हुई छाल २० तोला सोंठ पीपल काली मिरच प्रत्येक चार २ तोला हरड, वहेडा, आंवला प्रत्येक दो २ तोला वरुण वृक्षकी छाल एक तोला पत्रज इलायचीके वीज दालचीनी प्रत्येक चार २ मासे इन सव औषधियोंका

सूक्ष्म चूर्ण बनावे और सब चूर्णके वजनकी बराबर शुद्ध गूगल मिलावे और शहतके संयोगसे गोली बनावे, इस गूगलकी मात्रा पूरी उमरके मनुष्योंको चार मासेकी देना और बालकोंको उनकी उमरके अनुकूल देना। इसकी मात्रा प्रातःकालके समय गोरखमुंडी अथवा खैरसार अथवा हरडके काथके साथ देना चाहिये, इसके सेवनसे गलगंड, अपची, अर्बुद, ग्रन्थी, व्रण, गुल्म, कुष्ठ, भगन्दर इत्यादि रोग निवृत्त होते हैं।

तैलप्रयोग।

चक्रमर्दकमूलस्य पलकल्के विपाचयेत्। केशराजरसे तैलं कटुकं मृदुनाऽग्निना॥ पादांशिकविनिःक्षिप्य सिन्दूरमवतारयेत्। एतत्तैलं निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम्॥ गुञ्जामूलफलैस्तैलं विपक्कं द्विगुणांभसा। हरेदभ्यङ्गनस्याभ्यां गण्डमालां सुदारुणम्। चन्दनं साभया लाक्षा वचा कटुकरोहिणी। एतत्तैलं शृतं पीत्वा समलमपचीं हरेत्॥ व्योषं विडंगं मधुकं सैंधवं देवदारु च। तैलमेभिः शृतं नस्यात्स-कृच्छ्रामपचीं हरेत्॥ (चक्रमर्दतैल)

अर्थ—पमारकी जडको चार तोला लेकर भांगरेके रसके साथ पिट्ठीके समान पीस लेवे और १६ तोला कडुवा सरसोंका तैल तथा १६ तोला भांगरेका स्वरस मिलाकर मन्दाग्निसे तैलको पकावे जब तैलमात्र बाकी रहे तब उतार कर छान लेवे और इसमें एक तोला सिंदूर मिला गंडमाला तथा अपचीके जखमों पर लगावे तो जखम रोपण (भर) जाते हैं। यह चक्रमर्द तैल दारुण गण्डमालाको निवृत्त करता है। (गुंजादितैल) चिरमिटी (घूंघची) की जड और फलको बारीक पीसकर उसमें दवासे दूना जल और चौगुना सरसोंका तैल मिलाकर मन्दाग्निसे पकावे तैल मात्र बाकी रहे तब उतार कर छान लेवे, यह तैल नस्य और मालिश करनेसे दारुण गंडमालाको निवृत्त करता है। (चन्दनादि तैल) चन्दन, हरड, लाख, वच, कुटकी इनको समान भाग जलके साथ पीसकर कल्क बनावे और कल्कसे दूना जल और चौगुना तैल मिलाकर मन्दाग्निसे पकावे इस तैलको गर्म २ पीनेसे जड सहित अपची रोग निवृत्त होता है। (व्योषादि तैल) सोंठ मिरच, पीपल, वाय-विडंग, महुआके फूल सेंधानमक देवदारु इन सबको समान भाग लेकर कल्क बनावे और कल्कके वजनसे दूना जल, चौगुना तैल मिलाकर मन्दाग्नि पर उपरोक्त विधिसे तैलको सिद्ध करे। इस तैलकी नस्य लेनेसे घोर अपची रोग निवृत्त होता है।

वर्ध्म रोगकी चिकित्सा।

वद व काखोलाई वदका ही नाम काखमें उत्पन्न होनेसे काखोलाई अथवा कखारी बोलते हैं, जांघकी सन्धिमें होय.उसको बद कहते हैं। आयुर्वेदमें विद्रधि (वद) की उत्पत्तिके स्थान गुदा, वस्ती, मुख, नाभि, कूख, वंक्षण, वृक्क, प्लीहा, यकृत्, हृदय, क्लोम कथन किये हैं। जैसे कि वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, आगन्तुज, रक्तज इनमेंसे कई शरीरके आभ्यन्तर फूटती हैं और कई बाहर फूटती हैं। आभ्यन्तर फूटनेवाली वदकी राध गुदा मुख और मूत्रमार्गसे निकलती है। इनकी विशेष चिकित्सा चरक सुश्रुत वाग्भट्टादिमें देखो, यहां पर केवल जानुके मूल और कांखमें उत्पन्न होनेवाली काखोलाई दोका ही उपचार लिखा जाता है। वद और काखोलाई उत्पन्न होते ही उसके बैठालनेका उपाय करे, क्योंकि ये दो ठिकानेकी वद पक कर फूटती है तो बालकोंको अति कष्ट होता है। और उसको चीरनेकी आवश्यकता पडती है। यदि यह मालूम होवे कि यह पकेगी तो उसके पकानेवाली अलसी आदिकी पोलटिस बांधे। (बैठालनेवाली दवा यह है।) केलेकी जड मनुष्यके मूत्रमें पीस कर पकावे और गर्म २ का लेप करके ऊपरसे कपडाकी पट्टी बांध देवे। जो दवा वदको बैठालने व पकानेके निमित्त लगावे उनको दिनमें तीन व चार समय बदल कर नवी लगानी चाहिये। पीपल व लसोडेके पत्र सीधी तर्फसे गर्म करके बांध नर्मा कपास अथवा सम्हालूके पत्रोंका भुर्त्ता करके बांधे मेथी दाना और हाल्यां दाना बारीक पीस कर गर्म करके लेप करे। घीकुवारके पट्ठेको वीचमेंसे चीर कर उस पर थोडी रसौत और हल्दी डाल कर गर्म करके बाँधे वदके उत्पन्न होते ही कलई चूना शहत अथवा मुर्गीके अंडेकी सफेदीमें मिलाकर मलमसा वन जावे तव कपडेपर लगाकर चिपका देवे,एक दो समयके लगानेसे ही वद वैठ जाती है। रुईकी भस्म करके जलके साथ पीसकर लेप करे। यदि वद व काखोलाई कितनी ही वडी होय यह आगेका प्रयोग चार दिवसमें घुला देता है, प्याजकी गांठको वारीक पीसकर कन्याके मूत्रमें पकावे जब पककर मरहमके समान हो जावे तव लेप करके ऊपर धतूरेके पत्र रखके पट्टी बांध देवे चार पांच समयके बांधने पर वद विलकुल घुल जाती है। यदि वद अथवा और किसी किस्मका फोडा पकाना हो तो कंगी (महावला) के पत्र और इमलीके बीज दोनों जलमें पकावे जव पककर नर्म हो जावें तव मरहमके समान पीसकर बारीख कर लेवे और गर्म गर्म लेप करे तो वद तथा फोडेको दो तीन वक्तके लेप करनेसे फोड देता है, यह पकाने और फोडनेमें अति उत्तम प्रयोग है। जिस वद या काखोलाई अथवा फोडोंमें पीडा अधिक होय और पकता न होय तो नीचेकी औषधका प्रयोग काममें लावे। सिरसके बीजका चूर्ण मैन-

फलके बीज प्रत्येक ९ मासे, रेवचीनी १ तोला, प्याज १ तोला, नीमके पत्र १ तोला, एलुआ ६ मासे, अलसीके बीज ७ मासे, गूगल ७ मासे, मेथी दाने ६ मासे इन सबको बारीक पीसकर तेज सराबमें मिलाकर गर्म कर लेवे और सुहाता २ लेप करे। बद फूट जावे और जखम हो जावे तो हल्दी जलाकर उसकी भस्म बना लेवे और कडुवे तैलमें मिलाकर लगावे जखम भर जावेगा अथवा गोंदीके पत्र लसोडेके पत्र जलाकर भस्म कर लेवे और इस भस्मको कपडेमें छानकर घृतमें मिलाकर मलम बना लेवे इस मलमको जखम पर लगावे सब तरहके जखम भर जाते हैं।

भृष्टश्चैरंडतैलेन सम्यक्कल्कोऽभयाभवः। कृष्णासैंधवसंयुक्तो वर्ध्मरोगहरः परः॥ अजाजी हपुषा कुष्ठं गोमेदबदरान्वितम्। कांजिकेन तु संपिष्टं तल्लेपो वर्ध्मजित्परः॥

अर्थ—हरडको बारीक पीसकर पिष्ठीके समान बना लेवे और अरंडके तैलमें भूनकर पीपलका चूर्ण और सेंधानमक मिलावे और परिमित मात्रासे सेवन करे तो बदका रोग निवृत्त होय। अथवा जीरा हपुषा, कूट तथा बेर इनको कांजीमें पीसकर लेप करे तो बद बैठ जाती है।

बालककी पसली (डबह अतफाल) हूककी चिकित्सा।

यह व्याधि पार्श्वशूल रोग वैद्यकके मतानुसार समझा जाता है प्रायः देखा जाता है कि यह रोग दूध पीनेवाले बालकोंको होता है इस रोगसे बहुतसे बालक मृत्युको प्राप्त होते हैं। इस रोगके उत्पन्न होते ही बालक दुग्धपान व आहार करना त्याग देता है दस्त कब्ज हो जाता है किसी २ बालकको ज्वर भी उत्पन्न हो जाता है श्वास अधिक चलने लगती है बेहोश पडा रहता है, यदि बालकका पेट व पशली दबाकर देखी जावे तो रोने लगता है। वैद्यकमें इसका निदान इस प्रकारसे है।

कफं निगृह्य पवनः सूचीभिरिव निस्तुदन्। पार्श्वस्थः पार्श्वयोः शूलं कुर्य्यादाध्मानसंयुतम्॥ तेनोच्छ्वसिति वक्त्रेण नरोऽन्नं च न कांक्षति। निद्रां च नाप्नुयादेव पार्श्वशूलः प्रकीर्त्तितः॥

अर्थ—कफवायुसे संयुक्त होकर सुईके चुभानेकीसी पीडा उत्पन्न करे और पसवाडेमेंही रहकर पसवाडेकोही पीडित करे तथा उदरमें अफरा होनेसे मनुष्य मुखसे श्वास लेवे और आहारकी इच्छा न करे निद्रा नष्ट हो जावे इसको पार्श्वशूल कहते हैं। यूनानी तिब्बमें इसको (डबहअतफाल) कहते हैं लोकमें हूक भी कहते हैं, अथवा

पसलीका चलना भी कहते हैं । यूनानी तबीब इसके दो भेद मानते हैं, एक तो यह कि जिसमें गर्मी पाई जावे जैसा कि ज्वर और सूखी खांसी भी पसली चलनेके साथमें होवे । दूसरा यह कि पसलीका दवान उत्पन्न होय तथा श्वास खांसी दस्तकी कब्जी होय और माद्देमें शर्दी पाई जाय पहिला भेद सात दिनतक रहता है इसमें कुछ भय नहीं होता इसमें गर्म वस्तु न दी जावे । दूसरा भेद जो माद्देमें शर्दीको लेकर होता है वह कभी २ किसी २ बालकको बडा भयंकर हो जाता है उसमें शर्द वस्तु न दी जावे । वैद्यकमें (पीडा, तृषा, अफरा, मूर्च्छा, गौरवता, अरुचि, खांसी, श्वास, वमन, हिक्का) इत्यादि शूलके उपद्रव माने गये हैं और यूनानीमें दो भेद दिखलाकर गर्मी शर्दीको ही कारण समझकर वर्णन किया है । वैद्यकसे इसकी प्रधान चिकित्सा इस प्रकार है कि—

विज्ञाय वातशूलं तु स्नेहस्वेदरुपाचरत् ।
शूलशल्याकुलस्य स्यात् स्वेद एव सुखावहः ॥

अर्थ—वातप्रधान शूलमें स्नेहन और स्वेदन करे और जो प्राणी शूलरूप शल्यसे (शल्य काटेको कहते हैं) व्याकुल है उनको स्वेदन करना ही सुखदाता है । परन्तु पित्तके शूलको त्यागकर वात कफके शूलमेंही स्वेदन हितकारी है । वमन तथा पाचन क्षारादि देना हित है । अलसी, बिनौले, राई, अरंडीका मगज, सरसों इनको कूटकर पोटली बनावे और उसको कांजीमें डवोकर गर्म तवेपर रखे जव गर्म हो जावे तब सुहाता २ सेक करे अथवा राईका पलस्तर पसली और पेटपर रखना हितकारी है । अजवायनको कूटकर थोडा सेंधानमक मिलाकर कांजीके साथ पीसलेवे और गर्म करके लेप करे पटोलपत्र, नीमकी छाल, मैनफल, वच इनको समान भाग लेकर परिमित मात्रासे क्वाथ बनावे और थोडा सेंधानमक और शहत मिलाकर बालकको पिलावे इससे थोडी देरमें वमन होगी और दूषित वात कफ निकल जानेपर पसली पीडा तथा पेटका अफरा तथा श्वासका चलना वन्द हो जायगा । एलुवा, कमीला, पीपल, काला नमक इनको समान भाग लेकर जलके साथ पीसकर मूंगके प्रमाण गोली बनावे और बालककी उमरके अनुसार मात्रा देवे ।

यूनानी प्रयोग ।

कंजाके बीजकी मिंगी १ नग, नीलाथोथा कच्चा १ रत्ती दोनोंको बारीक पीसकर सरसोंके समान गोली बनावे और एक वा दो गोली बालकको खिलावे तथा कमीला ८ मासे हींग एक मासे दोनोंको दहीके पानीमें पीसकर काली मिर्चके समान गोलियाँ बनावे और दूध पीनेवाले बच्चेको हररोज १ गोली और बडे बच्चेको उसकी उमरके

माफिक गर्म जलके साथ देवे चूकाकी लकडी काली मिर्च पीली हरडका वक्कल काली निसौत सबको समान भाग पीसकर जलके साथ काली मिर्चके प्रमाण गोलियां बनावे और दिनमें २ व ३ गोली बालकको गर्म पानीके साथ देवे तो पसलीका रोग निवृत्त होय । वजूर अर्थात् कण्ठमें टपकानेकी दवा सूखा केंचुआ पानीमें पीसकर बालकके कण्ठमें टपकावे तो पसलीका चलना बन्द होय । इसी प्रकार मसी रुखडीकी हरी लकडीको चीर डाले उसकी गांठमें सफेद रंगका कीडा निकलता है उस कीडेको बालककी माताके दूधमें पीस कर पिलावे दो तीन वक्त पिलानेसे पसलीका चलना बन्द हो जाता है । अथवा बालककी पसली और पेट पर अरंडीका तैल गर्म करके मसले और बकायनकी नर्म २ पत्ती गर्म करके पेट और पसली पर बांध देवे । अथवा बबूलका गोंद और एलुआ प्रत्येक एक २ तोला लेकर घीगुवारके पाठेके रसमें पीसकर गर्म करके पसली और पेट पर लेप करे और ऊपरसे रुई चिपका देवे तो पसलीका चलना बन्द होय । वैद्यकमें घोडाचोली नामवाला रस इस रोगमें अधिक लाभ पहुँचाता है और रेचक है किसी २ यूनानी तिब्बवालोंने भी इस दवाको अपनी किताबमें लिखा है और घुडचढीकी गोली नाम रख दिया है । पारा ७ मासे, गंधक १४ मासे, निसौत १४ मासे, काली मिरच २० मासे, भुना हुआ सुहागा २८ मासे, जंगी काबिली हरडका वक्कल ४ तोला ८ मासे अरंडीके बीज ४ तोला शुद्ध जमालगोटा ४ तोला ८ मासे छोटी इलायचीके बीज दो मासे सबको एकत्र करके भांगरेके रसमें मर्दन करे और काली मिरचके प्रमाण और छोटे बच्चोंको मूँग तथा मोंठके प्रमाण गोली बनावे । एक व दो गोली बालकको देनेसे दस्त आन कर पसलीका रोग निवृत्त होता है ।

बालकके पेटमें दुग्ध न पचे और जम जावे ।

इसके लक्षण इस प्रकारसे हैं कि बालकका पेट फूल जावे और अचेतन हो जावे और बालकके शरीर पर ठंढा पसीना आवे कभी जाडेसे ज्वर उत्पन्न हो जावे कभी खाली ज्वर उत्पन्न हो आवे । इसका उपाय यह है कि वमन करा देवे तो उसी समय पेटका अफरा और अचेतनता निवृत्त हो जाती है । यदि वमन न कराया जावे तो अंजीरकी लकडीकी भस्म पानीमें मिलावे और थोडे समय तक रखके उसका पानी नितार लेवे इसी प्रकार ७ बार नवी २ भस्म डालके पानीको नितार लेवे और पानीकी गाद नीचे बैठ कर पानी स्वच्छ हो जावे तव उस पानीको थोडा २ कई वार बालकको पिलावे अथवा पोदीनाके अर्कमें बूरा मिलाकर पिलावे । अथवा खुश्कदाना पानीमें पीसकर मिलाकर पिलावे । अथवा राईको पीस कर पानीमें मिलाकर पिलावे ।

बालकके मिट्टी और कोयला खानेका उपाय ।

अजवायन ३॥ मासे, काला नमक १॥ मासे, तेजबल १॥ मासे, अकरकरा २। मासे इनको वारीक पीस कर काली मिर्चके समान गोली बना लेवे और १ व २ गोली हर रोज बालकके मुखमें रख दिया करे ।

बालकके मूत्रमें रुधिर आनेकी चिकित्सा ।

फिटकरी भुनी हुई, बारहसींगाके सींगकी भस्म, कतीरा, गेरू, गुलअनार, बबूलका गोंद प्रत्येक औषध ३॥ मासे इन सबको बारीक कूट छान कर जलके साथ चार २ रत्तीकी गोली बनावे और कुलफाके बीजको ठंढाईकी तरह पीस छान कर ठंढाई बनावे इसके साथ १ गोली बालकको देवे दो तीन समय देनेसे बालकके मूत्रमें रक्त आना बन्द हो जावेगा यदि बडे मनुष्यको यह दवा खानी हो तो ९ गोली कुलफाबीजकी ठंढाईके साथ खावे । जवासेको ठंढाईके माफिक पीस कर पीवे तो मूत्रमें रक्त आना बन्द हो । बालकको चाकस ११ बीज और बडे मनुष्यको २१ बीज बारीक पीस कर खिलावे और ऊपरसे चन्दनके चूरेका शीतल जल पिलावे तो मूत्रमें रक्त आना बन्द होय ।

बालकोंके शिरके फोडे तथा शिरोगंजकी चिकित्सा ।

बालकोंके शिर पर एक प्रकारके घाव होते हैं कि जिनके ऊपर खुरंड बंध जाता है और अन्दर पीव रहती है, ये जखम विशेष बिगडने लगते हैं तो बालोंकी जडको गला देते हैं और शिर पर बाल नहीं रहते ये जखम वात और अधिक कफकी तराईसे उत्पन्न होते हैं बालक उमरमें कफकी तराई अधिक रहती है और युवावस्थाके आरम्भतक यह रोग बडा जोर करता है युवावस्था प्राप्त होने पर यह रोग स्वभावसे निवृत्त हो जाता है । परन्तु शिरके बालोंको नाबूद कर जाता है । (चिकित्सा) आरम्भमें जोंकके जरिये शिरमेंसे रक्त निकालना उत्तम है । मरहम जो कि परीक्षा किया हुआ है । आंवला जलाकर १० तोला पोस्तके डोडा जला कर उसकी भस्म ५ तोला मेहदीकी पत्तीका बारीक चूर्ण कपडछान किया हुआ ३ तोला ४ मासे कमीला कपडछान किया हुआ ३ तोला ४ मासे भुना हुआ तूतिया १० मासे भुना हुआ सुहागा १० मासे भडभूजेके छप्परका धूंआ १० मासे भट्टीकी राख १० मासे सरसोंका तैल जितना इसमें मिल सके और मरहम बन सके उतना इसको शिर पर लगानेसे शिरके व्रण बिलकुल अच्छे हो जाते हैं । (दूसरा प्रयोग) कमीला बारीक पिसा हुआ ५ तोला सुहागा भुना हुआ और बारीक

पिसा हुआ २॥ तोला दोनोंको मिलाकर और सरसोंका तैल शिरके गूमडों पर चुपडे पीछेसे दवाकी बुर्की छिडक देवे। (तीसरा प्रयोग) तमाकूका गुल जो चिलममें जल कर रह जाता है उसको पीसकर कडुवे तैलमें मिलाकर लगावे। (चौथा प्रयोग) अरंडकी कोंपल बारीक पीस कर थोडा नमक मिलाकर शिर पर लेप करे।

शिरोव्रण रोगसे बाल गिर जावें तो उनको निकालनेवाली दवा।

शिरकी गंजके कारणसे जिन लडका व लडकीके बाल गिर जावें तो उनके निकालनेका उपाय करना चाहिये, क्योंकि मनुष्यक शिरकी शोभा बालोंसे ही है। जिस स्थान परसे बाल गिर गये होयँ उस स्थान पर चूहेकी मेंगनी शिरकेमें पीस कर मले और दो सप्ताह तक बराबर मलता रहे। अथवा हरा हंसराज निचोड कर उसका स्वरस मले। अथवा कूटका बारीक चूर्ण करके शिरका और शहदमें मिलाकर मले। अथवा चुकन्दरके पत्तोंको पीसकर लेप करे। अथवा समुद्रफेन जलाकर भस्म कर लेवे और उस भस्मको शिरकेमें मिलाकर मले।

बालककी फ्यासकी चिकित्सा।

यह वह रोग है कि शिरपरसे बारीक छिलका भूसीके समान उडा करते हैं और बालोंमें चमकते रहते हैं इसको स्त्रिजन फ्यास बोलती हैं। चिकित्सा इसकी यह है कि बालकके शिरमें तैल डालते रहनेसे यह रोग उत्पन्न नहीं होता। यदि यह रोग उत्पन्न हो जावे तो थोडा कलई चूना लेकर उसको तिगुने सिरकेमें भिगो देवे रात्रि भर भीगनेके बाद चूना और सिरकामें साफ शहद मिलाकर पतला मलमसा बना लेवे और शिरपर मले। नीबूके रसमें बूरा मिलाकर शिरमें डाले और ६। ७ घंटे बाद शिरको धो डाले। चुकन्दरके पत्र और जडके स्वरसमें थोडा नमक मिलाकर शिरमें डाले तो फ्यास और शिरके जूं जन्तुओंको नष्ट करता है।

बालकोंकी सूखी और तर खुजली।

यह रोग अक्सर त्वचा रोगमें समझा जाता ह सूखी खुजली प्रायः त्वचामें वातकी विशेषता होनेसे उत्पन्न होती है। तर खुजली रक्त कफ तथा पित्तमें खारी माद्दा अधिक होनेसे उत्पन्न होती है। (चिकित्सा) मनसिल १ तोला, गंधक १ तोला, रसौत १ तोला इनको १२ तोला सरसोंके तैलमें पकावे जब तैल पक जावे तब छान कर शीशीमें भर शरीर पर मालिस करे। सरफोका, त्रिफला, पित्तपापडा (स्याहतरा) चिरायता कुटकी इनको समान भाग लेकर जौकुट कर लेवे और बालककी उमरके अनुकूल मात्रा लेकर रात्रिको गर्म जलमें भिगो देवे प्रातःकाल छान कर शहत डालके पिलावे। सात आठ दिवस पिलानेस खुजली निवृत्त हो जाती है। काविली

जंगी हरडका वक्कल, आंवला, वायविडंगका मगज, प्रत्येक एक तोला काली निसीत दो तोला इन सबका चूर्ण बना लेवे और बालककी उमरके समान मात्रा शहत तथा सरवत गुलावमें मिलाकर खिलावे यह दस्तावर है। यदि अधिक दस्त कराने होवें तो अधिक मात्रा देवे। यह आकके पत्तोंका तैल सूखी और तर दोनों प्रकारकी खुजलीको गुण करता है २० तोला सरसोंका तैल एक वर्त्तनमें भरके अग्निपर पकावे जब वह गर्म हो जावे तव आकके पत्र एक एक करके २१ नग उसमें जलावे जब सब पत्र जलकर राख हो जावें तब उतार लेवे और छःमासे मनसिल बारीक पिसा हुआ मिलाकर खूब मूसलीसे रगड लेवे और शरीर पर मलाकरे तीन चार रोजमें खुजली निवृत्त हो जावेगी। कलमी शोरा कडुवे तैलमें मिलाकर मर्दन करे। मेहदीके पत्र और गुलावके फूल पुराने सिरकेमें मिलाकर पीस तैल मिलाकर शरीर पर मले।

वर्षाऋतुमें फुंसियां गुमडी व दाने वालकोंके उत्पन्न होते हैं उनकी चिकित्सा।

मसूरके छिलके जला कर भस्म करे। तथा आंवला जला कर भस्म करे मेहदीके पत्रका बारीक चूर्ण कपडछान किया हुआ कमीलाका सूक्ष्म चूर्ण ये चारों द्रव्य एक तोला लव, भूना हुआ तूतिया ३ मासे कपूर १॥ मासे इन सबको तैलमें मिलाकर खरलमें मर्दन करे जब मरहमकी माफिक हो जावे तब डब्बामें भर कर रख लेवे और वर्षातमें उत्पन्न होनेवाले दानों पर लगावे।

वालकोंकी अलाईका उपाय।

गर्मीके ऋतु तथा वर्षातके आरम्भमें वारीक मिली हुई अति सूक्ष्म गुमडियोंकी उत्पत्ति शरीरमें हो जाती है इसको अलाई बोलते हैं। सिरसकी छाल चन्दनके समान जलमें घिसकर अलाई पर लेप करे। चन्दन और कपूर गुल व जलमें घिसकर लेप करे अथवा नीमकी जड जलमें घिसकर लेप करे। अथवा चन्दनका तैल शरीरपर लगावे।

वालकका न्यच्छ (अर्थात् मुखपर काले दाग झाई) का उपाय।

यह विकार प्रायः खट्टा खारी नमकीन आहार करनेसे होता है अथवा इन्हीं पदार्थोंको बालककी धात्री खावे तो दुग्धाहारी बालकोंको भी यह रोग उत्पन्न हो जाता है मुखपर काले दाग पड जाते हैं। प्रायः यह रोग चर्मको ही दूषित करता है वालकका सुन्दर मुख काले दागोंसे खराव मालूम होता है। उपाय इसका यह है कि जो दवा चर्मकी स्याहीको निकालें उनको काममें लावे जैसा कि बेरकी गुठलीकी मिंगी छिली हुई मुलहटी कडुवा कूट इनको समान भाग लेकर जलके साथ वारीक पीस लेवे और मुखपर अथवा जहां पर काले दाग होंय उबटनेके माफिक लगा कर मले

और सूख जाने पर जलसे धो डाले अथवा कुलफाके बीज गौके दूधके साथ बारीक पीसकर मुख पर मले। अथवा नरकचूर और समुद्रफेन जलमें पीसकर उबटना करे। अथवा जवासेका काढा बनाकर मुखको धोया करे। जवानीकी उमरके आरम्भ होते ही लडकों और कितनीही लडकियोंके भी मुहासे निकलने लगते हैं और इनसे चेहरेकी रंगत बिगड जाती है। उपाय इनका यह है कि श्वेत चिरमिटीके छिलका उतार कर उसकी मिंगी लेवे और उसके समान सेंधानमक मिला दोनोंको बारीक पीस लेवे और फिर कुचिला भिगोकर उसके जलके साथ पिट्ठीके माफिक पीसकर मुहासों पर उबटनेके समान मले। अथवा पीली कौडीको अति बारीक पीसकर नींबूके रसमें भिगोदेवे जब रस सूख जावे और डाल देवे दो दिवस भीगनेके बाद खरलमें डालकर खूब पीसे कि मरहमके समान हो जावे जब किसी शीशी अथवा डिबियामें रख इसका लेप दिनमें दो समय मुहांसों पर किया करे, यदि लेप कठिन हो जावे तो नींबूका रस और डाल देवे आठ रोज लेप करनेसे मुहासे निवृत्त होकर मुख स्वच्छ हो जाता ह।

आयुर्वेदसे बालरोगचिकित्साका प्रकरण एवं तीसरा भाग समाप्त।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, 'लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर' प्रेस, कल्याण-मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास, 'श्रीवेङ्कटेश्वर' स्टीम् प्रेस-मुंबई.

इति

वन्ध्याकल्पद्रुम

तीसरा भाग

समाप्त ।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ वन्ध्याकल्पद्रुमः ।

चतुर्थ भाग ।

बालकके विसर्प रोगकी चिकित्सा ।

यह विसर्प रोग प्रायः बालकोंके शरीरमें उत्पन्न होता देखा गया है, बडी उमरके मनुष्यको यह रोग प्रायः खारी, खट्टा, कडुवा गर्म आचारादि अथवा हरे शाकादिके अति सेवनसे वातादि दोष कुपित होकर सात प्रकारका विसर्प उत्पन्न होता है। वह शरीरमें सर्वत्र फैल जाता है इसीसे इसका नाम विसर्प कहते हैं। बालकोंको यह रोग दूध पिलानेवाली धात्री व माता उप्रोक्त पदार्थोंका सेवन करे तो दुग्धमें उन पदार्थोंका असर आनकर बालकोंको विसर्प रोग उत्पन्न करता है। वह सात प्रकारका ह वातज, पित्तज, कफज, सन्निपात ये ४ भेद तथा तीन प्रकारका द्वंद्वज जैसे कि वात पित्तसे आग्नेय विसर्प कफवातसे ग्रन्थाख्य विसर्प, और सातमी कर्दम संज्ञक घोर विसर्प पित्तकफसे उत्पन्न होता है, परन्तु हमारी समझमें विसर्प दो ही प्रकारका होता है। एक तो शरीरके दोषोंके बिगडनेसे स्वजन्य विसर्प और दूसरा संक्रामक, विसर्पवाले दूसरे मनुष्योंके संसर्गसे उत्पन्न होनेवाला विसर्प कहते हैं। स्वजन्य विसर्प किसीके मुख पर और किसीके मस्तक पर और किसीके पैरमें किसीके नितम्ब और उपस्थेन्द्रियके समीप उत्पन्न हो कर शरीरके अन्य भागमें फैलने लगता है और शरीरके अन्दर तथा बाहरके भागमें जैसे कि पेटके अन्दर गलेमें अथवा मस्तकके अन्दर भी यह व्याधि उत्पन्न हुई देखी जाती है। जखमके कारणसे जो विसर्प होता है वह जखमके चारों तर्फ आसपासमें होता है। इस विसर्प रोगमें ज्वर उत्पन्न होता है और इसके साथ शरीरका कोई भाग लाल हो आता है और वह भाग गर्म तथा सूजन युक्त होता है, उस भागमें जलन और तडतडाहट मारती है शीतला (विस्फोटक) रोगके समान यह रोग भी चेपी (संक्रामक) समझा जाता है। इस्पतालमें यदि एक रोगी विसर्प रोगवाला आ जावे तो व्रणवाले सब रोगियोंको यह रोग उडकर लग जाता है। यदि कोई चिकित्सक विसर्पवाले रोगीको छूकर अन्य व्रणवाले रोगियोंका तथा प्रसूता स्त्रीको छुवे तो उनको भी विसर्प रोग उत्पन्न हो जाता है, तथा उस प्रसूती स्त्रीके बालकको भी विसर्प रोग हो जाता है। इस रोगमें यह विशेषता अधिक

है कि शरीरके एक भागमें उत्पन्न होकर शरीरके दूसरे भागमें भी फैल जाता है तथा एक भागमेंसे निवृत्त हो जाय और दूसरे भागमें उत्पन्न हो जाय यह स्वाभाविक तासीर इस रोगकी है । विशेष लक्षण इस रोगके इस प्रकारसे होते हैं ।

प्रथम शीत लगकर ज्वर उत्पन्न हो जाय और ज्वरके समस्त चिह्न दीख पडें और किसी २ बालक व बडे मनुष्यका गला आ जाता है शरीर गर्म रहता है मूत्र रक्तवर्णका उतरता है नाडीकी गति जोसके साथ शीघ्र २ होती ह वमन ज्वर चित्तभ्रम तृषा बडी उमरका रोगी निरर्थक प्रलाप करने लगता है । और कोई रोगी उठकर बडे २ तूफान करता है । किसी समय पर तो दस्तकी कब्जी हो जाती है और किसी समय पतले दस्त होने लगते हैं । इसक अनन्तर दूसरे व तीसरे दिवस शरीरके किसी अङ्ग पर विसर्प दीखने लगता है । कदाचित् मुखपर विसर्पकी उत्पत्ति होनेवाली होय एक तर्फ अथवा दोनों तर्फसे मुख सूज जाता है प्रथम रोगीकी नासिका लाल वर्णकी हो जाती है और यह रक्तता सम्पूर्ण मुख मस्तक गर्दन और खंभे पर्य्यन्त फैल जाती है, रोगीका चेहरा सूजकर लाल रंगतवाला तूंबाके समान हो जाता है । इस दशामें मनुष्यके मुखको देख पहचानना भी कठिन हो जाता है, नेत्रोंके पलक सूज कर लटकतेसे जान पडते हैं । नेत्रोंका खुलना कठिन हो जाता है और दूसरे ठिकाने, जहां पर विसर्प उत्पन्न होय उस ठिकाने पर लाल रंगकी सूजन उत्पन्न हो जाती है गर्म तथा उस ठिकाने अग्नि जलती है रोगीको ऐसा मालूम होता है जहां पर विसर्प उत्पन्न होता ह उस भागके सम्बन्धकी रसग्रन्थीमें पीडा उत्पन्न हो जाती है । जैसे कि मनुष्यके मुख पर विसर्पकी सूजन हो तो उसकी गर्दनकी ग्रन्थी मोटी हो जाती है और विसर्प पैरोंमें उत्पन्न हुआ हो तो जंघा ग्रन्थी सूजकर मोटी हो जाती है और उनमें पीडा होने लगती केवल त्वचामें ही होय तो दो चार अथवा इससे अधिक दिवसमें न्यून पड जाता है । और ज्वर उतर जाता है सूजन धीरे २ उतरती है । लेकिन जब त्वचाके अन्दरके संयोगमें विसर्पका विप प्रवेश कर गया होय तो इस स्थितिमें विशेष करके पके विदून नहीं रहता, इस विसर्पके स्थान पर पककर फफोले पड जाते हैं और उनके अन्दरसे फूटने पर पानी निकलता है । और फूटने बाद जखम हो जाता है सूजन अधिक चढती है और पीडा विशेप होती है रोगीकी शक्ति अति न्यून हो जाती है नाडीकी गति क्षीण हो जाता ह जिह्वा शुष्क रहती है और श्याम वर्ण पड जाती है विसर्प व्रण फूटनेके पीछे उसकी रक्तता कम होती जाती है । परन्तु सूजन नहीं उतरती उसक अन्दर सूई चुभानेकीसी पीडा और चसका चलता है और फूटनेके बाद सडा हुआ मृतक मांस अन्दरसे निकलता है विसर्पके जखमोंको रोपण होनेमें अधिक समय व्यतीत होता है विसर्पकी सूजन

पकने पर दो चार स्थलसे फूट कर मुख हो जाते हैं; रोगीके शरीरमें थोडा २ ज्वर बना रहता है और पसीना आया करता है अग्नि मन्द हो जाती है। किसी २ रोगीको विसर्पकी दशामें अतीसार उत्पन्न हो जावे तो निर्बल होकर मृत्युको प्राप्त होता है। किसी २ रोगीकी अस्थि पर्य्यन्त विसर्पका जहर पहुँच जाता है तो उस समय हड्डी सडने लगती है और इसके कारणसे रोगीके हाथ काटने पडते हैं तो भी रोगीका बचना दुसवार समझा जाता है। विसर्प होनेके पूर्व मनुष्यको कोई दूसरा रोग हुआ हो तो विसर्प होनेसे उसका भी जोश बढ जाता है कदाचित् जखम अथवा चांदी होय तो विसर्पके होनेसे उनमें भी सडाव शुरू हो जाता है। अक्सर देखा गया है कि जखमवाले रोगियोंको विसर्प रोग उडकर लग जाता है और उसके जखम विषैले हो जाते हैं और जखमोंके सडने पर उसका परिणाम बुरा निकलता है। चेपसे विसर्प यदि किसी चिकित्सक शरीरमें जखम होवे और वह विसर्पवाले रोगीके जखमोंकी काटफांस करे तो उसका जहर चिकित्साके जखमोंमें दाखिल हो जाता है। एक स्थान पर अनेक रोगी होयँ और उनमेंसे एक रोगीको विसर्प रोग उत्पन्न हो तो इस रोगीके शरीरके परमाणु फैलनेसे सबको विसर्पका रोग उत्पन्न हो जाता है, इस लिये विसर्प रोगके समीप दूसरे रोगीको न रहना चाहिये। मूत्र पिण्डके शोथ, मधु प्रमेह, कानसर, गाउट आदि रोगमें अक्सर विसर्प रोगकी उत्पत्ति देखी जाती है। बालक और वृद्धावस्थावाले मनुष्योंको विसर्प व्याधि विशेष करके होती है। विसर्पकी चिकित्सा इस रीतिसे करनी चाहिये कि विसर्पवाले रोगीको सबसे पृथक् रखे और उस स्थानको स्वच्छ रखे। विसर्पवाला रोगी निर्बल हो जाता है उसके बलकी रक्षा करनी उचित है। प्रथम वमन और विरेचन देकर शरीरको शुद्ध करना चाहिये। लोह भस्म अथवा टिंकचर ओफ स्टीऊ परिमित मात्रासे इनका सेवन करनेसे विसर्प व्याधिवालेको अति लाभ पहुंचता है। यदि विसर्प फैलता होय तो (क्यास्टिक) लेकर विसर्पकी किनारीको दग्ध कर देवे ऐसा करनेसे वह फैलने नहीं पाता (टिंकचर ओफ् स्टील) विसर्प पर लगानेसे लाभ पहुंचता है। गर्म पानी पोस्तके डोडाका काथ बनाकर उसमें ऊनी कपडा भिगोकर सेंक देना अति हितकारी है। विसर्पके स्थानपर शीतल वस्तु व ठंढा जल कदापि न लगाना, इससे विशेष हानि पहुंचती है, कारण कि उस स्थल पर अच्छा हो जाता है और दूसरे स्थलपर उत्पन्न होता है। यदि विसर्पके स्थान अधिक जान पडें और विशेष दाह और तनाव मालूम पडे तो उस स्थान पर जोंकें लगाके रक्त निकाल देना चाहिये अथवा सूक्ष्म रूपसे नस्तर मारकर रक्त और जल निकाल देना चाहिये। जो पाक पूर्ण रूपसे हो गया हो तो पूर्ण नस्तर लगाकर उसका जल पीब निकाल उष्ण जलसे धोकर जखमको साफ

कर देना चाहिये और रोपण तैल व मरहम लगाकर व्रणके समान उपचार करे और जो भाग न पका होय और पीडा अधिक होती होय तो अलसी व गेहूँके आटेकी पोलटिस लगाकर पकाना चाहिये ।

दशाङ्गलेप ।

शिरीषयष्टीनतचन्दनैलामांसीहरिद्राद्वयकुष्ठवालैः । लेपो दशाङ्गः सघृतः प्रयोज्यो विसर्पकुष्ठज्वरशोथहारि ॥ रास्ना नीलोत्पलं दारु चन्दनं मधुकं बला । घृतक्षीरयुतो लेपो वातवीसर्पनाशनः ॥ भूनिम्बवासा कटुकापटोलीफलत्रयं चन्दननिम्बसिद्धः । विसर्पदाहज्वरशोथकण्डू-विस्फोटतृष्णावमिहृत्कषायः ॥ कुष्ठेषु यानि सर्पीषि व्रणेषु विविधेषु च । विसर्पे तानि योज्यानि सेका लेपनभोजनैः ॥

अर्थ–सिरसकी छाल, मुलहटी, तगर, चन्दन, छोटी इलायचीके बीज, जटामांसी हल्दी, दारुहल्दी, कूट नेत्रवाला इन सबको समान भाग लेकर कपड छान चूर्ण बनावे और दुग्ध घृत मिला कर शिलपर पीस लेप करे यह दशाङ्ग लेप विसर्प कुष्ठ ज्वर और सूजनको नष्ट करता है । रास्ना नील कमल देवदारु लाल चन्दन महु-आके फूल अथवा छाल खरैटीकी जड व पत्र सबको समान भाग लेकर बारीक पीस दुग्ध तथा घृत मिलाकर लेप करे तो वातजन्य विसर्प रोग निवृत्त होय । (काथ) चिरायता, अडूसाके पत्र अथवा जडकी छाल, कुटकी, पटोलपत्र, त्रिफला, चन्दन, नीमकी छाल इन सबको समान भाग लेकर जौकुट कर लेवे और परिमित मात्राका काथ बनाकर पिलानेसे विसर्प, दाह, ज्वर, सूजन, खुजली, विस्फोटक, तृषा, वमन इत्यादिको निवृत्त कर्ता है । जो घृत प्रयोग कुष्ठरोग तथा व्रणरोग पर (चरक सुश्रुत वाग्भट्ट,) आदिमें कथन किये गये हैं वे सब घृत विसर्प रोग पर सेंक लेप भोजन आदि उपचारोंमें लेना योग्य है ।

करंज तैल ।

**करंजसप्तच्छदलांगलीकस्नुह्यर्कदुग्धानलभृंगराजैः ।
तैलं निशामूत्रविषैर्विपक्वं विसर्पविस्फोटविचर्चिकाघ्नम् ॥**

अर्थ–करंजुआकी जडकी छाल, सतौनाकी जडकी छाल, कलिहारी, थूहरका दुग्ध, आकका दुग्ध, चित्रककी छाल, भांगरा, हल्दी इनको समान भाग लेकर और एक औषधके समान वच्छनाग विष लेकर इनका कल्क बनावे और औषधियोंके वजन

चतुर्गुणा मीठा तैल तथा चतुर्गुणाही गोमूत्र मिलाकर मन्दाग्निसे पकावे इस तैलके लगानेसे विसर्प, विस्फोटक, विचर्चिका निवृत्त होता है । वङ्गसेन विसर्पकी गति इस प्रकारसे कथन करता है ।

विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनो बस्तिशीर्षजः । पद्मवर्णो महापद्मो रोगो दोषत्रयोद्भवः । शंखाभ्यां हृदयं याति हृदयाच्च गुदं व्रजेत् ॥

अर्थ—बालकोंके मस्तक तथा मूत्राशयमें तीनों दोषोंके प्रकोपसे उत्पन्न हुआ प्राण-नाशक लाल रंगवाला विसर्प रोग इसको महापद्मक भी कहते हैं, मस्तकमें उत्पन्न हुआ विसर्प कनपटियोंमेंसे हृदयसे उतर जाता है । और हृदयमेंसे गुदामें चला जाता है । इसी प्रकार मूत्राशयमेंसे उत्पन्न हुआ विसर्प गुदामें जाता है और गुदामेंसे हृदयमें जाता है और हृदयमेंसे मस्तकमें चला जाता है ।

शालिवोत्पलकह्लार भद्रश्री मुस्तचन्दनैः । प्रपौण्डरीकमंजिष्ठा यष्टी मधुक सर्षपैः । कुमाराणां प्रशस्तोऽयं लेपो वीसर्पनाशनः ॥ न्यग्रोधोदुम्बरोऽश्वत्थप्लक्षवेतसजंबुजैः । त्वग्भिर्यष्ट्याह्वमंजिष्ठाचन्दनोशीरपद्मकैः । श्लक्ष्णपिष्टैर्यथालाभं शिशोः कार्य्यं प्रलेपनम् । सदाहरागविस्फोट-वेदनाव्रणशान्तये ॥

अर्थ—सरबत कमल, कमोदनी चन्दन नागरमोथा लाल चन्दन पुण्डरीक मंजिष्ठ मुलहटी सरसों इनको समान भाग लेकर बारीक पीस कर लेप करनेसे बाल-कोंका विसर्प रोग शान्त होता है । वड, गूलर, पीपल पिलखन वेत जामुन इन सबकी छाल लेवे मुलहटी मजीठ सफेद चन्दन खस पद्माख इन सबको समान भाग लेकर दूधके साथ बारीक पीस कर लेप करे तो बालकोंके व्रणकी दाह विसर्पकी लाली विस्फोटक वेदना और व्रण शान्त होय । विस्फोटक रोगमें जो (महापद्मक घृत) कथन किया है वह इस विसर्पमें भी अभ्यंगके लिये प्रयोग करना चाहिये ।

वचाकुष्ठविडङ्गानां कोष्ठक्राथवगाहनम् ।
कच्छूविचर्चिकाकण्डूदद्रुभिर्मुच्यते शिशुः ॥

अर्थ—वच, कूट, वायविडंग इनको समान भाग लेकर क्राथ बनावे और कोष्ठ पर्य्यन्त बालकको इस क्राथमें बैठाले स्नान करावे तो कच्छू विचर्चिका कण्डू दद्रू रोग नष्ट होय (क्राथ इतना) गर्म होना चाहिये जितना बालक सहन कर सके ।

(यूनानी तिब्बमें) इस विसर्प व्याधिको जमरह अर्थात् सुर्खबाद कहते हैं । और यह विशेष करके बालकोंको ही उत्पन्न होती है निदान उसका यह माना गया है

कि रुधिर विकारसे एक प्रकारका शोथ उत्पन्न होता है । और जलता चमकता दौडता फैलता होय तो उसको जमरह खालसह कहते हैं और वह केवल पित्तके कोपसे होता है । और उसकी रंगतमें पलिापन झलक मारता है । जो पित्तमें रक्त भी सामिल होय तो उसमें विशेष जलन नहीं होती है और रंगतमें सुर्ख झलक मारती है । यदि यह रोग दूध पीनेवाले बच्चेको हो तो उसकी माता व धायको रक्तशोध औषधियां खिलावे । अगर अन्नका आहार और दूध दोनों खाने पीनेवाले बालकोंके हों तो दूध पिलानेवाली और बालक दोनोंको रक्तशोध औषध खिलावे यदि खाली अन्नाहारी बालकके यह रोग होय तो बालकको ही औषध देवे । यूनानी तिब्बके कथनानुसार एक चनेके प्रमाण शुद्ध रसौत बालकको कई दिवस पर्य्यन्त खिलाना अति लाभदायक है । (ब्राह्मीबटी) ब्राह्मी, नीलकंठी, लाल चन्दन, धनियां, प्रत्येक तीन मासे मेंहदीकी पत्तियां ९ मासे काली मिरच, मुलतानी मिट्टी प्रत्येक १ मासे, बकायनकी पत्ती, नीमकी पत्ती प्रत्येक ९ नग इन सबको कूट छान कर कोथमीर (हरे धनियेके पत्रोंके) रसमें घोट कर चनेके प्रमाण गोली बनावे और दो व ३ गोली हररोज बालककी माता दूधके साथ देवे बालक तथा दूध पिलानेवालीको खटाईसे वर्जित अलोना भोजन देवे ।

बालकोंके विस्फोटक रोगका उपाय ।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च । तथर्तुदोषेण विपर्य्ययेण कुप्यन्ति दोषाः पवनादयस्तु । त्वचामाश्रित्य ते रक्तं मांसास्थीनि प्रदूष्य च । घोरान् कुर्वन्ति विस्फोटान्सर्वाञ्ज्वरपुरःसरान् ॥ अग्निदग्धनिभाः स्फोटा सज्वरा रक्तपित्तजाः । क्वचित् सर्वत्र वा देहे विस्फोटक इति स्मृतः ॥ शिरोरुक्शूलभूयिष्ठं ज्वरस्तृट्पर्वभेदनम् । सकृष्णवर्णता चेति वात विस्फोटलक्षणम् ॥ ज्वरदाहरुजास्रावपाकतृष्णाभिरन्वितम् । पीतलोहितवर्णश्च पित्तविस्फोटलक्षणम् ॥ छर्द्यरोचकजाड्यानि कण्डूकाठिन्यपाण्डुता । अवेदनश्चिरात्पाकी सविस्फोटः कफात्मकः ॥ कण्डूर्दाहोऽरुचिच्छर्दिरेतैस्तु कफपैत्तिकः । वातपित्तात्मको यस्तु कुरुते तीव्रवेदनाम् । कण्डूस्तैमित्यगुरुभिर्जानीयात्कफवातिकम् ॥ मध्ये निम्नोन्नतोऽन्ते च कठिनोल्पप्रकोपवान् । दाहराग तृषामोहच्छर्दिमूर्च्छारुजो ज्वरः । प्रलापो वेपथुस्तन्द्रा सोऽसाध्यः

स्यात्रिदोषजः ॥ रक्तारक्तसमुत्थाना गुञ्जाफलनिभास्तथा । वेदितव्यास्तु रक्तेन पैत्तिकेन च हेतुना । नते सिद्धिं समायान्ति सर्वैर्योगवरैरपि । एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः । सर्वरूपान्वितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ हिक्का श्वासोऽरुचिस्तृष्णा चाङ्गमर्दो हृदि व्यथा । विसर्पज्वरहृल्लासा विस्फोटानामुपद्रवाः ॥

अर्थ—जिस बालकके चरपरे अथवा तीक्ष्ण तिक्त खट्टे गर्म दाह करनेवाले पदार्थ तथा रूखे वासी आहार अति नमकीन पदार्थोंका सेवन करनेसे अथवा अजीर्णमें भोजन करनेसे अथवा भोजनके ऊपर भोजन करनेसे तीव्र धूपमें फिरनेसे ऋतुके परिवर्त्तन होनेसे तथा ऋतुके विरुद्ध आहार विहार करनेसे इत्यादि कारणोंसे वातादि दोष कुपित होकर रक्त मांस और अस्थिके रसको दूषित करके प्रथम ज्वरको उत्पन्न करनेके अनन्तर त्वचामें सर्व प्रकारका विस्फोटक रोग उत्पन्न हो जाता है । (विस्फोटकका स्वरूप ज्ञान) ज्वरयुक्त रक्त तथा पित्तसे उत्पन्न हुआ विस्फोटक अग्निसे जले हुएके समान जो फफोला शरीरके किसी प्रदेशमें अथवा सम्पूर्ण शरीरमें उत्पन्न होय उसको विस्फोटक कहते हैं । जैसे सब प्रकारकी व्याधियोंमें वात दोषकी प्रधानता समझी जाती है उसी प्रकारसे विस्फोटक रोगमें रक्त और पित्त दोषको प्रधान समझो । (वातजन्य विस्फोटकके लक्षण) शिरमें शूल ज्वर तृषा सन्धियोंमें टूटनेके समान पीडा और फफोलेमें कुछ २ कृष्णता झलकती होय ये वातजन्य विस्फोटकके लक्षण हैं । (पित्तजन्य विस्फोटकके लक्षण) ज्वर दाह पीडा स्राव पकना तृषा शरीरकी रंगतमें पीतता आ जावे और सुर्खी भी हो फफोलेमें पीतता और रक्तताकी झलक मारे ये सब लक्षण पित्तजन्य विस्फोटकके हैं (कफजन्य विस्फोटकके लक्षण) वमन अरुचि जडता फोडोंमें खुजली कठिनता और फफोले श्वेत और कुछ २ पीत वर्णकी झलकवाले और पीडा रहित होय तथा बहुत दिवसमें पाक होय ये सब लक्षण कफजन्य विस्फोटकके हैं (दो दो दोषके मिश्रित लक्षण) कफपित्त जनित विस्फोटकमें खुजली दाह और अरुचि होती है । वातपित्त जनित विस्फोटकमें अत्यन्त पीडा होती है । कफवात जनित विस्फोटकमें खुजली अंगोंमें जडता और शरीरमें भारीपन होता है (त्रिदोष जनित विस्फोटकके लक्षण) बीचमें नीचा चारों तर्फ ऊंचा, कठिन, थोडा पकनेवाला, दाह, रक्तता, तृषा, मोह, वमन, मूर्च्छा, वेदना, ज्वर, वृथा बकवाद, (प्रलाप) कंप , तन्द्रा ये सम्पूर्ण लक्षण त्रिदोष जनित विस्फोटकमें होते हैं सो यह असाध्य समझा जाता है । (रक्तजनित विस्फोटकके लक्षण) पित्तको कुपित करनेवाले जो कारण हैं उन्हीं कारणोंसे रुधिर

भी कुपित होता है इस प्रकार कोपको प्राप्त हुए रुधिरसे उत्पन्न हुआ विस्फोटक चिरमटीके समान लाल रंगका और लाल स्रावबाला तथा दाह युक्त होता है और यह रक्तजनित विस्फोटक अनेक अनुभव किये हुए सिद्ध प्रयोगोंसे भी शमन नहीं होता और इसका रोगी आरोग्य नहीं होता । (विस्फोटकका साध्यासाध्य विचार ।) एक दोषसे उत्पन्न हुआ विस्फोटक साध्य समझा जाता है । दो २ दोषसे उत्पन्न हुआ विस्फोटक कष्टसाध्य समझा जाता है । और त्रिदोषसे उत्पन्न हुआ विस्फोटक तथा जिसमें अनेक प्रकारके उपद्रव हों उसको असाध्य समझना । (विस्फोटक रोगके उपद्रव) हिचकी श्वास, अरुचि तृषा, शरीरका टूटना, तथा पीडा हृदयस्थानमें पीडा विसर्प, ज्वर, वमन, (स्राव दाह) इत्यादि उपद्रव विस्फोटक रोगमें होते हैं ।

विस्फोटककी बाह्याभ्यन्तरस्थिति ।

एते चाष्टविधा बाह्या आंतरोऽपि भवेदयम् । तस्मिन्नंतर्व्यथा तीव्रा ज्वरयुक्ताभिजायते । यस्मिन् बहिर्गते स्वास्थ्यं न वातस्य बहिर्गतिः । तत्र वातिकविस्फोटक्रिया कार्या विजानता ॥

अर्थ—इस प्रकार यह विस्फोटक रोग बाहरमें होनेवाला आठ प्रकारका है और भीतरमें भी होता है जो विस्फोटक शरीरके भीतरमें होता है उसमें शरीरके अन्दर अत्यन्त व्यथा और ज्वर रहता है यदि इस विस्फोटकका जहर शरीरके बाह्यभागमें निकल आवे तो शरीरकी स्वस्थता होती है परन्तु वातकी बाहर गति नहीं है इस लिये आभ्यन्तर विस्फोटकमें वातजन्य विस्फोटकके समान चिकित्सा करनी उचित है ।

विस्फोटककी चिकित्सा ।

तत्रादौ लङ्घनं कार्य्यं वमनं पथ्यभोजनम् । यथायुक्तं बलं वीक्ष्य युक्तमुक्तं विरेचनम् ॥ पटोलेन्द्रयवारिष्टवचामदनसाधितम् । वमनं तत्प्रदातव्यं विस्फोटे कफपैत्तिके ॥ क्षुधिते लङ्घिते वान्ते जीर्णशालियवादिभिः । मुद्गाढकीमसूराणां रसैर्वा विश्वसंयुतैः । सुनिषण्णकवेताग्रतंडूलीयककेतकैः । कुलकाभीरुकैरेभिः सपर्पटसतीनकैः ॥ कर्कोटकारवेल्लैश्च कुसुमैर्निम्बबिल्वजैः । तिक्तद्रव्यसमायुक्तं भोजनं संप्रयोजयेत् ॥ द्विपञ्चमूलं रास्ना च दार्व्युशीरं दुरालभाम् । अमृतां धान्यकं मुस्तं जयेद्वातसमुद्भवान् ॥ द्राक्षाकाश्मर्य्यखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः । कटुकालाजदुःस्पर्शैः सितायुक्तं तु पैत्तिके ॥ भूनिम्बनिम्बवासाश्च त्रिफलेन्द्र-

यवासकैः। पिचुमन्दं पटोलञ्च सक्षौद्रं कफजे हितम् ॥ किराततिक्तकारिष्टयष्ट्याह्वाम्बुदवासकम्। पटोलपर्पटोशीरत्रिफलाकौटजान्वितम्। (तथैवैतत्सर्वविस्फोटनाशनम्)। पटोलामृतभूनिम्बवासकारिष्टपर्पटैः। खदिराष्टयुतैः क्वाथो विस्फोटज्वरशान्तये॥ (कूण्डलीपिचुमन्दाम्बुना) विस्फोटं नाशयत्याशु वायुर्जलधरानिव॥ अमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं खदिरमसितवेत्रं निम्बपत्रं हरिद्रे। विविधविषविसर्प कुष्ठविस्फोटकण्डूरपनयति मसूरीं शीतपित्तं ज्वरञ्च॥ पटोलत्रिफलारिष्टगुडूचीमुस्तचन्दनैः। समूर्वा रोहिणी पाठा रजनी स दुरालभा॥ कषायं योजयेदेतत्पित्तश्लेष्मज्वरापहम्। कण्डूत्वग्दोषविस्फोटविषवीसर्पनाशनम्॥

अर्थ—इस विस्फोटक रोगमें जो बालककी अवस्था लंघनके योग्य हो तो प्रथम लंघन करावे, यदि बालककी अवस्था लंघनके योग्य न होय तो कदापि लंघन न करावे। तथा वमन और पथ्य आहारसे इस रोगको शमन करे, यदि विरेचन देनेकी आवश्यकता हो तो बालकके शरीरका बल और अग्निके बलाबलको विचार कर विरेचन देवे। कफपित्त जनित विस्फोटक रोगमें पटोलपत्र इन्द्रजौ नीमकी छाल वच मैनफलका गर्भ इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्वाथ बनावे और क्वाथमें शहद मिलाकर पिलावे यह वमन लानेवाला प्रयोग है। विस्फोटक रोगमें क्षुधाके लंघन कराये हुए तथा वमन कराये हुए रोगीका पुरातन जौ पुरातन मूंग अरहर मसूर इनका यूष बनाकर मांस रस (सोरुआ) तथा सोंठके चूर्णके साथ सेवन करावे। शिरी वेंतकी कोंपल, चौलाई शाक, केतकी, वेर, शतावरी, स्याहतरा, मटर, ककोडा (कंटोला) करेला, नीमके फूल, बेलके फूल इनके साथ अन्य तिक्तरसवाले पदार्थोंके संयोगसे भोजन प्रयोगकी योजना करे। दशमूलके दश औषध (ये पीछे कई जगह लिखे गये हैं) तथा रास्ना दारुहल्दीकी छाल, खस, धमासा, गिलोय, धनियां नागरमोथा इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्वाथ बनाकर पीनेसे वातजनित विस्फोटक निवृत्त होता है। दाख, कुम्भेर खजूर फल, पटोलपत्र, नीमकी जडकी छाल, अडूसा, कुटकी धानकी खील, धमासा इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्वाथ बनाकर मिश्री डालके सेवन करे तो पित्तजनित विस्फोटक निवृत्त होते हैं। नीमकी जडकी छाल, अडूसाकी जडकी छाल, त्रिफला, इन्द्रजौ, जवासा, पटोलपत्र इन सबको समान भाग लेकर परिमित मात्रासे

क्काथ बनाके शहद मिलाकर पान करनेसे कफजनित विस्फोटक रोग शान्त होता है । चिरायता नीमकी जडकी छाल, मुलहटी, नागरमोथा, अडूसाकी जडकी छाल, पित्तपापडा, खस, त्रिफला, कुडाकी छाल ये सब औषध समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्काथ बना शहत व मिश्री मिलाकर पिलावे तो यह द्वादशांग क्काथ सर्व प्रकारके विस्फोटक रोगको नष्ट करता है । पटोलपत्र, गिलोय चिरायता अडूसाकी जडकी छाल, नीमकी जडकी छाल, पित्तपापडा इनके क्काथमें खदिराष्टकी औषधियोंका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे विस्फोटक रोग शान्त होता है । गिलोय नीमकी जडकी छाल, सुगन्धवाला खैरसार (खैरवृक्षका सत्व कत्था) इन्द्रजौ इनको समान भाग लेकर परिमित मात्रका क्काथ बनाकर पीनेसे शीघ्रही विस्फोटक रोग शान्त होता है । गिलोय अडूसा पटोलपत्र नागरमोथा सतौना वृक्षकी जडकी छाल, खैरसार कृष्णवेत नीमके पत्र हल्दी दारुहल्दी इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्काथ बनाकर पान करनेसे अनेक प्रकारकी विष व्याधि विसर्प कुष्ट विस्फोटक कण्डू मसूरिकारोग शीतपित्त ज्वर शान्त होता है । पटोलपत्र त्रिफला नीमकी जडकी छाल गिलोय नागरमोथा, लालचन्दन, मरोडफली कुटकी पाढ हल्दी, धमासा इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्काथ बनाकर पान करनेसे पित्तकफ ज्वर कण्डू त्वचामें होनेवाली व्याधि विस्फोटक विष व्याधि विसर्प इत्यादि रोग निवृत्त होते हैं ।

लेप प्रयोग ।

पीछे विसर्प रोगमें जो दशाङ्ग लेप कथन किया गया है वह विस्फोटक रोगमें लेप करना हितकारी है ।

पुत्रजीवस्यमज्जानं जले पिष्ट्वा प्रलेपयेत् । कालस्फोटं विषस्फोटं सद्यो हन्ति सवेदनम् ॥ कक्षग्रन्थिं गलग्रन्थिं कर्णग्रथिं च नाशयेत् । हन्याच्च स्फोटकं ताम्रपुत्रजीवो विनाशयेत् ॥ चन्दनं नागपुष्पञ्च तण्डुलीयकशारिवा । शिरीष वल्कलं पत्रं लेपः स्याद्दाहनाशनः ॥ विस्फोटव्याधिनाशाय तण्डुलाम्बुप्रपेषितैः । बीजैः कुटजवृक्षस्य लेपः कार्य्यो विजानता ॥ उत्पलं चन्दनं लोध्रमुशीरं शारिवाद्वयम् । जलेन पिष्ट्वा लिम्पेतस्फोटदाहार्त्तिनाशनम् ॥ शिरषोशीरनागाह्वहिंस्राभिर्लेपनाद्द्रुतम् ॥ विसर्पविषविस्फोटाः प्रशाम्यन्ति न संशयः ॥ शिरीषचन्दनानङ्गातिन्तिडीवल्कपूरकैः । प्रलेपः सघृतः कार्य्यो विस्फोटश्लेष्मनाशनः ॥

अर्थ–जीयापोता वृक्षके फलकी मिंगीको जलके साथ बारीक पीस कर लेप करे तो श्याम वर्णके काले फफोलेंको शीघ्र नष्ट करता है, बगलकी काखोलाई गलेकी ग्रन्थी कर्णग्रन्थी इन सबको जीयापोताकी मिंगीका लेप नष्ट करता है। चन्दन नागकेशर चीलाईकी जड शारिवा, शिरषकी छाल तथा पत्र इन सबको समान भाग लेकर जलके साथ बारीक पीसकर लेप करनेसे विस्फोटक रोगका दाह नष्ट होता है। कुडाके बीज (इन्द्रजौ) को भीगे हुए चावलोंके जलके साथ पीसकर लेप करनेसे विस्फोटक रोग शान्त होता है। कमोदनी (कमलकी जाती) है। चन्दन, सफेदलोध, खस दोनों प्रकारकी शारिवा इनको समान भाग लेकर जलके साथ पीस कर लेप करनेसे विस्फोटक रोगकी दाह और पीडा शान्त होती है। शिरसकी छाल खस नागकेशर हींग इनको समान भाग लेकर जलके साथ बारीक पीसकर लेप करनेसे विसर्प, विस्फोटक, विष निश्चय शान्त होते हैं। सिरषकी छाल चन्दन रेणुका तितिडकि इनको समान भाग लेकर बिजौरेके रसमें बारीक पीसकर गौका घृत मिलाकर लेप करनेसे विस्फोटक और कफ नष्ट होता है।

महापद्मकघृतप्रयोग।

पद्मकं मधुकं लोध्रं नागपुष्पञ्च केशरम्। द्वे हरिद्रे विडङ्गानि सूक्ष्मैला तगरं तथा॥ कुष्ठं लाक्षा पत्रकञ्च सिन्धूत्थं तुत्थमेव च। तोयेनालोड्य तत्सर्वं घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ यांश्च रोगान्निहन्त्येतत्तान्निबोध महामुने। सर्पकीटादिदंष्ट्रेषु लूतामूत्रकृतेषु च॥ विविधेषु च स्फोटेषु तथा कुष्ठविसर्पिषु। नाडीषु गण्डमालासु प्रभिन्नासु विशेषतः। अगस्ति विहितं धन्यं पद्मकं तु महाघृतम्॥

अर्थ–पद्माखकी छाल, मुलहटी, लोध्र, नागकेशर, हल्दी, दारुहल्दी, वायविडंग, छोटी इलायची, तगर, कूट, लाख, तेजपत्र, सेंधानमक, शुद्ध मोरतूतिया इस प्रयोगकी सब औषधियोंको समान भाग लेकर जलके साथ बारीक पीस लेवे और औषधियोंके वजनसे चतुर्गुण गोघृत लेकर मन्दाग्निसे पकावे (मूल पाठमें एक प्रस्थ घृतका विधान है परन्तु औषधियोंकी तोल नहीं दी गई) जब घृत सिद्ध हो जावे तब छान कर भर लेवे। यह घृत सर्पविष विषैले कीडोंके विष लूता (मकडीका विष) मूत्रकृच्छ्र अनेक प्रकारके विस्फोटक रोग सर्व प्रकारके कुष्ट रोग विसर्प रोग नाडीव्रण गलगंड रोग गण्डमाला रोग इत्यादि व्याधियोंको नष्ट करता है। इस महापद्मक घृतको अगस्त्य मुनिने निर्माण करके धन्यवाद प्राप्त किया है।

पञ्चतिक्त घृत ।

पटोलसप्तच्छदनिम्बवासाफलत्रिकच्छिन्नरुहाविपक्कम् ।
तत्पञ्चतिक्तं घृतमाशु हन्ति त्रिदोषविस्फोटविसर्पकण्डूः ॥

अर्थ–पटोलपत्र सतौनाकी जडकी छाल नीमकी जडकी छाल अडूसा त्रिफला गिलोय इनको समान भाग लेकर क्वाथ बनावे और कुछ औषधियोंका कल्क बनाकर क्वाथमें कल्कको मिला चौगुना गोघृत मिलाकर घृतपाककी विधिसे घृतको सिद्ध करके छानकर वर्त्तनमें भर लेवे । यह घृत त्रिदोषज विस्फोटक विसर्प कण्डू इनको नष्ट करे ।

काम्पिल्लकाद्य तैल ।

कम्पिल्लकं विडङ्गानि वत्सकं त्रिफलां वलाम् । पटोलं पिचुमन्दञ्च लोध्रं मुस्तप्रियङ्गुकम् ॥ धातकी खदिरं सर्जमेला चागरु चन्दनम् । पिष्ट्वा तैलं भवित्साध्यं तत्तैलव्रणरोपणम् ॥

अर्थ–कमीला वायविडंग कुडावृक्षकी छाल त्रिफला खरैटीका पञ्चाङ्ग पटोलपत्रका पञ्चाङ्ग नीमके पत्र तथा छाल लोध नागरमोथा मेहदीके पत्र तथा फूल खैरका कत्या राल इलायची अगर चन्दन इनको समान भाग लेकर कल्क और काढेके द्वारा औषधियोंके वजनसे चतुर्गुण मीठा तैल लेकर तैलपाककी विधिसे तैलको सिद्ध करे तो यह तैल विस्फोटक व्रण तथा अन्य सर्व प्रकारके व्रणोंको रोपण करता है ।

योगरत्नाकरसे मन्थज्वर (मोतीझारा निकारा) ।

ज्वरो दाहो भ्रमो मोहो ह्यतीसारो वमिस्तृषा । अनिद्रा मुखशोषश्च तालुजिह्वा च शुष्यति ॥ ग्रीवायां परिदृश्यन्ते स्फोटकाः सर्षपोपमाः । घृताशनात्स्वेदरोधान्मंथरो जायते नृणाम् ॥

अर्थ–अधिक घृत सेवनसे अथवा पसीना रोकनेसे वडी उमरके मनुष्योंको तथा अन्नाहारी वालकोंको मन्थज्वर (मोतीझारा निकारा) उत्पन्न हो जाता है (दुग्धाहारी वालकोंको यह रोग वहुत ही कम उत्पन्न होता देखा गया ह) इसके विशेष लक्षण इस प्रकारसे हैं । ज्वर दाहभ्रम मूर्च्छा अतीसार वमन तृषा निद्रानाश मुख तालु और जिह्वा इनका सूखना गलेपर सफेद मोतीके समान झलकते हुए दानों (फुंसियों) का उत्पन्न होना इत्यादि । सफेद दाने प्रायः पित्तज्वरमें तथा कभी २ कफपित्त ज्वरमें भी उत्पन्न होते हुए देखे गये हैं, इसी कारणसे माधवनिदानमें पित्तज्वरके उपद्रवमें ही इस

रोगकी गणना मानी गई है। लेकिन योगरत्नाकरमें इस रोगका निदान पृथक् लिखा है। हमारी रायमें फुप्फुस (लं) में कफ और पित्ताशयमें पित्त ये दोनों कुपित होनेसे यह रोग उत्पन्न होता है, क्योंकि इसमें खाँसी भी किसी २ रोगीको होती है। और जो रोगी कास श्वाससे व्याकुल हो जाता है और छाती तथा कण्ठ कफसे पूरित जिसका हो जाता है वह रोगी अवश्य मृत्युके मुखमें प्रवेश करता है। किसी २ रोगीके शरीरमें कण्ठसे लेकर पैरोंतक सफेद दाने उत्पन्न होते हैं, किसीके गलेस लकर पैरोंतक सफेद दाने उत्पन्न होते हैं, किसीके गलेसे लेकर कमर व नाभि पर्य्यन्त और किसीके गलेसे लेकर छातीतक और किसीके केवल गलेमें निकल कर शान्त हो जाते हैं। गले और छातीपर दाने निकलें तो १४ व १६ रोजमें यह मनुष्यका पीछा छोड देता है लेकिन कमर और पैरोंतक निकलें तो २४ और २८ रोजमें जाकर यह रोग शान्त होता है। जब नाभिसे नीचे उतर जाता है तब रोगीका विशेष भय नहीं रहता लेकिन नाभि पर्य्यन्त निकलनेमें यदि अन्यथा उपचार व आहार विहार बिगड जावे तो अक्सर रोगीकी मृत्यु हो जाती है। कितने ही रोगियोंको इसमेंस क्षय रोगकी उत्पत्ति होते देखी गई है और क्षय रोगियोंकी छाती और गलेपर ये दाने कई २ बार उत्पन्न होते देखे गये हैं। ये दाने चर्मकी प्रथम जिल्दसे ही उत्पन्न होते हैं और बहुत थोडाभी अभिघात पहुंचे तो शीघ्र टूट जाते हैं। इस रोगका उपाय यही है कि रोगीको शीतल जल व शीतल पदार्थ न देवे स्वर्ण व मोती डालकर जलको पकाकर देवे, गोदुग्ध व भुनेहुए शालिचावल अथवा साबूदाना जलमें पकाकर दुग्ध मिलाके देवे औषध प्रयोग मसूरिका रोगके समान करे। यदि रोगी तरुणावस्थाका बलवान होय और ज्वर तथा खांसीका तीव्र वेग होय तो एक दो व तीन लंघन रोगीके देनेसे रोग बिगडनेका भय नहीं रहता।

स्नायु व्याधिके लक्षण।

शाखासु कुपितो दोषः शोथं कृत्वा विसर्पवत्। भित्वैवतं क्षते तत्र सोष्मा मांसं विशोष्य च॥ कुर्य्यात्तन्तुनिभं सूत्रं वृतं सितद्युतिं बहिः। शनैः शनैः क्षतादेति छेदात्तत्कोपमावहेत्। तत्पात्ताच्छोथशान्तिः स्यात्पुनः स्थानान्तरे भवेत्। सस्नायुकः परिख्यातः क्रियोक्तात्र विसर्पवत्॥ बाह्वोर्यदि प्रमादेन त्रुट्यते जङ्घ्योरपि। संकोचं खञ्जतां चापि छिन्नो नूनं करोत्यसौ।

अर्थ—हाथ पैर आदि जो शरीरकी शाखा हैं उनमें वातादि दोष कुपित होकर

विसर्प रोगकी सूजनके समान सूजनको उत्पन्न करते हैं और उस सूजनमें उष्मासे एक गुमडी उत्पन्न होकर फूट जाती है उस जखममेंसे एक सफेद रंगका पतला तन्तु (डोरे) के समान उस जखममें सरकता हुआ शरीरके बाहरको धीरे २ निकलता आता है और बीचमेंसे यह तन्तु किसी कारणसे टूट जावे तो रोगीको असह्य पीडा होती है और यह तन्तु समस्त निकलकर शरीरके बाहर आ जाता है तब सूजन और पीडा शान्त हो जाती है टूटा हुआ तन्तु अन्दर रह जाय तो वह दूसरे ठिकाने पर फूटकर निकलता है किसी २ मनुष्यको तो एकके पीछे दूसरा और दूसरेके पीछे तीसरा इस प्रकारसे कई ठिकाने पर निकलता है इसको स्नायुरोग कहते हैं लेकिन लोकमें नहरुआ कहते हैं, इसकी चिकित्सा विसर्प रोगके समान करनी चाहिये। और रोगीको उस तन्तुकी विशेष रक्षा करनी चाहिये, रुई अथवा कोमल कपडेकी बत्ती बनाकर निकलते हुए तन्तुको उसपर लपेटता जावे और निकलनेके ठिकानेके समीपही रखके कपडेकी पट्टीसे बांध लेवे, यदि खुला रहेगा तो उसके टूटनेका भय रहता है किसी मनुष्यको इस तन्तुके टूटनेसे हाथसे टोंटा और पैर लंगडा होना पडता है। प्रायः यह उस प्रान्तमें अधिक होती है जहांकी जमीनमें जल भरा रहता है और डहर बोलते हैं वहांके लोगोंको विश्वास है कि जलके साथमें वारीक कीडा पेटमें चला जावे तो वह शरीरको फोडकर निकलता है। यह व्याधि अन्नाहारी बालकों तथा बडे मनुष्योंको होती है।

स्नायुव्याधि (व्रण) की चिकित्सा।

स्नेहस्वेदप्रलेपादिकर्म्म कुर्य्याद्यथेप्सितम्। रामठं शीततोयेन पीतं तन्तुकरोगनुत्॥ मञ्जिष्ठयष्टी मधुकं पयस्या प्रपौण्डरीकं सह पद्मकेन। सौगन्धिकं चेति सुखं प्रलेपः शस्तो विसर्पे त्वथ तन्तुरोगे॥ स्वेदात्स्नायुकमत्युग्रं भेकः काञ्जिकसाधितः। तद्वद्बब्बूलजं बीजं पिष्टं हन्ति प्रलेपनात्॥ गव्यं सर्पिस्त्र्यहं पीत्वा निर्गुण्डीस्वरसं त्र्यहम्। पिबेत्स्नायुकमत्युग्रं हन्त्यवश्यं न संशयः॥ मूलं सुषव्या हिमवारिपिष्टं पानादिकं तन्तुकरोगमुग्रम्। शान्तिं नयेत्सव्रणमाशु पुंसां गन्धर्वगंधेन घृतेन पीतम्॥ अतिविषमुस्तकभार्ङ्गीविश्वौषधपिप्पलीबिभीतकीनाम्। चूर्णमिदं तन्तुघ्नं पुंसामुष्णेन वारिणा पीतम्॥ शिग्रुमूलदलैः पिष्टैः काञ्जिकेन ससैन्धवैः। लेपनं स्नायुकव्याधेः शमनं पर-

मुच्यते ॥ अहिंस्रमूलकल्केन तोयपिष्टेन यत्नतः । लेपसम्बन्धनात्तन्तु- र्निःसरेन्नैव संशयः ॥

अर्थ–इस स्नायु रोगमें स्नेहन स्वेदन और प्रलेपादि यथोचित क्रिया करनी योग्य हैं, हीराहींगको परिमित मात्रासे जलके साथ बारीक पीसकर शीतल जलमें मिलाकर पीनेसे स्नायु रोग निवृत्त हो जाता है । मंजिष्ठ मुलहटी काकोली पुंडेरिया पद्माख सुगन्धिततृण इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीस कर लेप करनेसे विसर्प और स्नायुरोग शान्त. हो जाता है । मेंडकको चीर कर दो भाग कर लेवे और तवेपर कांजी डालकर मेंडकके दोनों भागोंको गर्म करके स्नायु व्रणके ऊपर सेंक करे जब एक भाग शीतल हो जावे तब उसको तवेपर गर्म करनेको रख देवे और दूसरे भागसे सेंक करे, इसी प्रकार कितनेही समयतक करनेसे स्नायुरोग शान्त हो जाता है । अथवा बबूल वृक्षके बीजोंकी मिंगी निकालकर बारीक पीसकर लेप करनेसे स्नायु- रोग शान्त हो जाता है । प्रथम गोघृतको रुचिके अनुकूल तीन दिवस पर्य्यन्त पान करे इसके अनन्तर निर्गुण्डी (सम्हाळु) के पत्रोंके स्वरसको तीन दिवस पर्य्यन्त पान करे तो स्नायुरोग नष्ट हो जाता है । यह प्रयोग अति उत्तम और परीक्षित इसके सेवनसे अति उग्र स्नायुरोग हमने कितनेही रोगियोंका निवृत्त किया है । कलौंजीकी जडको शीतल जलमें पीस कर पान करनेसे स्नायु रोग निवृत्त होता है । अश्वगन्धा घृतप्रयोग तथा असगन्धका कल्क बनाकर गौघृतमें पकावे और छान कर उस घृतका पान करनेसे स्नायुव्रण नष्ट होता है । अतीस नागरमोथा भारंगीकी छाल सोंठ पीपल बहेडा इनका चूर्ण करके गर्म जलके साथ पान करनेसे स्नायुरोग नष्ट होता है । सहिजनेकी जड और पत्रोंको कांजीमें पीसकर सेंधानमक डाल कर लेप करनेसे स्नायु रोग शान्त होता है । अहिंस्राबूटीकी जडको जलमें पीसकर लेप करनेसे नहरुआका तन्तु टूटता नहीं किन्तु शीघ्र बाहर निकल आता है ।

शीतला अर्थात् मसूरिकारोग तथा शीतलाकी उत्पत्ति ।

किसी ग्रन्थमें तो मसूरिका रोगको (शीतला) माता व (शीतलादेवी) की स्तुति प्रार्थना लिखी है और किसीमें विस्फोटकको शीतला माना है । भावप्रकाशमें मसू- रिकारोगको शीतला देवीकी स्तुस्ति लिखी है । इनका परिचय अभिमानी स्त्री पुरुषोंको नीचे दिखलाये देते हैं ।

शीतला देवीकी उत्पत्ति ।

रावणोवाच–आदौ कृतयुगे ब्रह्मा महेशं वाक्यमब्रवीत् ॥ तवाज्ञया मया देव सृष्टा नानाविधाः प्रजाः ॥ समस्ता भूस्तुतैर्व्याप्ता भवंत्यन्येऽपि

तद्विधाः । कामेन यान्ति भार्य्यासु पुनः सृष्टः प्रवर्त्तते ॥ गजैरश्वैर्मनुष्याद्यैर्व्यातेयन्तु धराखिला । शीघ्रं यास्यति पाताले तत्र यत्नो विधीयताम् ॥ एवं ब्रह्मवचः श्रुत्वा शूलमैक्षन्महेश्वरः । ततो जज्ञे पुमानेको भीमो घोरपराक्रमः । रक्तांतलोचनः क्रोधी वडवाग्नियुतो नरः । ऊर्ध्वकेशो ललज्जिह्वः कृतक्रोशोऽजितेन्द्रियः ॥ तं दृष्ट्वा तु महादेवः पार्वतीं वाक्यमब्रवीत् । जात एव महाक्रूरः सर्वसंहारकारकः ॥ एतस्य मोहनार्थाय देहि भार्य्यां यथोचिताम् । एवं शिववचः श्रुत्वा स्वकं पृष्ठं ददर्शह ॥ ततो देवी समुत्पन्ना योच्यते भवितव्यता । रूपलावण्यसम्पन्ना पीनोन्नतपयोधरा। मारणास्त्रं मोहनास्त्रं कराभ्यां दधती शुभा । श्वेतवस्त्रपरीधाना लज्जाप्रावृतलोचना ॥ सा प्रणम्य तदा देवीं शिवयोरग्रतः स्थिता। शस्त्रभार भराक्रान्त कालचित्तविमोहिनी ॥ दृष्ट्वा तां पार्वती प्राह ममाज्ञा क्रियतामिति । कालस्य भव पत्नी त्वमतश्चित्तं विमोहय ॥ याचयस्व करं श्रेष्ठं कुरु कार्य्यं प्रजापतेः । ततः प्रीता तु सा प्राह देव्यग्रे प्रणता स्थिता॥ अथ भवतव्योवाच॥ मयाधीनमिदं सर्वं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् । कालश्चायं मयाधीनः कोऽपि मां न च वेत्स्यति ॥ आब्रह्मस्तंभपर्य्यन्तं विष्णौ देव्या च शूलिनि । दृष्टिर्मम समैवास्ति मत्स्वरूपाविदस्त्विमे ॥ एवमुक्त्वा भवान्या सा पाणिग्रहमचीकरत् । कृतकृत्योऽभवत्काल उद्वाह्य भवितव्यताम् ॥ कृतोद्वाहं तु तं ज्ञात्वा विधाता वाक्यमब्रवीत् । शीघ्रमागम्यतां स्वामिन् दृष्टिः संहार्यतामिति ॥ ततस्तु भृत्याः कालेन रचिताः स्वस्यतेजसा । भवितव्यतया सार्द्धं ततः स्वस्वामितेजसा ॥ शोषो ज्वरः पाण्डुसारश्वासपालात्ययादिकाः । अभ्यन्तरगिरिचराः शतशस्तेन निर्मिताः । सर्प्पा व्याघ्रवृकाः सिंहवृश्चिका राक्षसा गजाः । भूतप्रेतपिशाचांश्च बाह्यस्थाः परिचारकाः ॥ तस्याभ्यन्तरशक्त्या च कामिनी मोहिनी तृषा । लिप्साहंकृतिबुद्ध्विनिद्रास्सेर्ष्या भयादिकाः ॥

ग्रहणी कामला सूची छर्दिर्मूर्च्छाश्मरी तृषाः । डाकिनी शाकिनी घोरा इत्यैता बाह्यहेतुकाः ॥ एवं परिवृतं दृष्ट्वा स्वसैन्यमविचारयत् । मत्तः कस्त्वधिको लोके न जाने भवितव्यताम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः हननीया भयार्दतः । एवं विधार्य्य मनसि महेशं हन्तुमुद्यतः ॥ तं दृष्ट्वा तु महेशेन शक्तिरेका प्रदर्शिता । अतिघोरा विरूपाक्षी संकीर्णजघनोदरा ॥ दंदह्यमाना कोपेन ज्वलयन्ती दिशो दश । तस्यास्तु दृष्टिपातेन कालः सर्वाङ्गपीडितः ॥ तामेवाविवशुः सर्वे कः प्रभुः कश्च सेवकः । बलिनः सर्व एव स्युः सेवकाः निर्बलस्य न ॥ नानास्फोटैः परिवृतो दह्यमानो रुषाग्निना । तस्येदृशीमवस्थान्तु दृष्ट्वा दाहादयो गदाः ॥ भग्नाहंकारकं दृष्ट्वा तं कालं भवितव्यता । ईषद्विहस्य तं प्राह न ते साधुरहंकृतिः ॥ मदधीनं जगत्सर्वं मदाज्ञा क्रियतां त्वया । त्वया स्वतन्त्रतारम्भः कृतस्तेनेदृशी गतिः ॥ एषा मदंशसंभूता शीतला तां प्रसादय । अवश्य तव साहाय्यं करिष्यति त्वया हताः ॥ कालोवाच ॥ वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् । मार्जनीकलशोपेतां सूर्प्पालंकृतमस्तकाम् ॥ वन्देऽहं शीतलां देवीं सर्वरोगभयापहम् । यामासाद्य निवर्त्तन्ते विस्फोटकभयं महत् ॥ शीतले शीतले चेति यो ब्रूयाद्दाहपीडितः । विस्फोटकभयं घोरं गृहे तस्य न जायते ॥ शीतले ज्वरदग्धस्य पूतिगन्धगतस्य च । प्रणष्टचक्षुषः पुंसस्त्वामाहुर्जीवनौषधम् ॥ शीतले तनुजान् रोगान् नृणां हरसि दुस्तरान् । विस्फोटकविशीर्णानां त्वमेकामृतवर्षिणी ॥ गलगण्डग्रहा रोगा ये चान्ये दारुणा नृणाम् । त्वदनुध्यानमात्रेण शीतले यान्ति संक्षयम् ॥ न मन्त्रं नौषधं तत्र पापरोगस्य विद्यते । त्वमेका शीतले धात्री नान्यां पश्यामि देवताम् ॥ मृणालतन्तुसदृशीं नाभिहृन्मध्यसंस्थिताम् । यस्त्वां संचिन्तयेदेवि तस्य मृत्युर्नजायते ॥ एवं स्तुता तदा देवीं शीतला प्रीतमानसा । उवाच वाक्यं कालाय वरं वरय सत्वरम् ॥ (कालोवाच) अहोश्वाद्भुत माहात्म्यं तव दृष्टं मया-

तद्विधाः। कामेन यान्ति भार्य्यासु पुनः सृष्टः प्रवर्त्तते॥ गजैरश्वैर्मनुष्याद्यैर्व्याप्तेयन्तु धराखिला। शीघ्रं यास्यति पाताले तत्र यत्नो विधीयताम्॥ एवं ब्रह्मवचः श्रुत्वा शूलमैक्षन्महेश्वरः। ततो जज्ञे पुमानेको भीमो घोरपराक्रमः। रक्तांतलोचनः क्रोधी वडवाग्नियुतो नरः। ऊर्ध्वकेशो ललजिह्वः कृतक्रोशोऽजितेन्द्रियः॥ तं दृष्ट्वा तु महादेवः पार्वतीं वाक्यमब्रवीत्। जात एव महाक्रूरः सर्वसंहारकारकः॥ एतस्य मोहनार्थाय देहि भार्य्यां यथोचिताम्। एवं शिववचः श्रुत्वा स्वकं पृष्ठं ददर्शह॥ ततो देवी समुत्पन्ना योच्यते भवितव्यता। रूपलावण्यसम्पन्ना पीनोन्नतपयोधरा। मारणास्त्रं मोहनास्त्रं कराभ्यां दधती शुभा। श्वेतवस्त्रपरीधाना लज्जाप्रावृतलोचना॥ सा प्रणम्य तदा देवीं शिवयोरग्रतः स्थिता। शस्त्रभार भराक्रान्त कालचित्तविमोहिनी॥ दृष्ट्वा तां पार्वती प्राह ममाज्ञा क्रियतामिति। कालस्य भव पत्नी त्वमतश्चित्तं विमोहय॥ याचयस्व करं श्रेष्ठं कुरु कार्य्यं प्रजापतेः। ततः प्रीता तु सा प्राह देव्यग्रे प्रणता स्थिता॥ अथ भवतव्योवाच॥ मयाधीनमिदं सर्वं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्। कालश्चायं मयाधीनः कोऽपि मां न च वेत्स्यति॥ आब्रह्मस्तंभपर्य्यन्तं विष्णौ देव्या च शूलिनि। दृष्टिर्मम समैवास्ति मत्स्वरूपाविदस्त्विमे॥ एवमुक्त्वा भवान्या सा पाणिग्रहमचीकरत्। कृतकृत्योऽभवत्काल उद्वाह्य भवितव्यताम्॥ कृतोद्वाहं तु तं ज्ञात्वा विधाता वाक्यमब्रवीत्। शीघ्रमागम्यतां स्वामिन् दृष्टिः संहार्यतामिति॥ ततस्तु भृत्याः कालेन रचिताः स्वस्यतेजसा। भवितव्यतया सार्द्धं ततः स्वस्वामितेजसा॥ शोषो ज्वरः पाण्डुसारश्वासपानात्ययादिकाः। अभ्यन्तरगिरिचराः शतशस्तेन निर्मिताः। सर्प्पा व्याघ्रवृकाः सिंहवृश्चिका राक्षसा गजाः। भूतप्रेतपिशाचांश्च बाह्यस्थाः परिचारकाः॥ तस्याभ्यन्तरशक्त्या च कामिनी मोहिनी तृषा। लिप्साहंकृतिबुद्धिनिद्रास्सेर्ष्या भयादिकाः॥

ग्रहणी कामला सूची छर्दिर्मूर्च्छाश्मरी तृषाः। डाकिनी शाकिनी घोरा इत्यैता बाह्यहेतुकाः॥ एवं परिवृतं दृष्ट्वा स्वसैन्यमविचारयत्। मत्तः कस्त्वधिको लोके न जाने भवितव्यताम्॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः हननीया भयार्दतः। एवं विधार्य्य मनसि महेशं हन्तुमुद्यतः॥ तं दृष्ट्वा तु महेशेन शक्तिरेका प्रदर्शिता। अतिघोरा विरूपाक्षी संकीर्णजघनोदरा॥ दंदह्यमाना कोपेन ज्वलयन्ती दिशो दश। तस्यास्तु दृष्टिपातेन कालः सर्वाङ्गपीडितः॥ तामेवाविवशुः सर्वे कः प्रभुः कश्च सेवकः। बलिनः सर्व एव स्युः सेवकाः निर्बलस्य न॥ नानास्फोटैः परिवृतो दह्यमानो रुषाग्निना। तस्येदृशीमवस्थान्तु दृष्ट्वा दाहादयो गदाः॥ भग्नाहंकारकं दृष्ट्वा तं कालं भवितव्यता। ईषद्विहस्य तं प्राह न ते साधुरहंकृतिः॥ मदधीनं जगत्सर्वं मदाज्ञा क्रियतां त्वया। त्वया स्वतन्त्रतारम्भः कृतस्तेनेदृशी गतिः॥ एषा मदंशसंभूता शीतला तां प्रसादय। अवश्य तव साहाय्यं करिष्यति त्वया हृताः॥ कालोवाच॥ वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम्। मार्जनीकलशोपेतां सूर्पालंकृतमस्तकाम्॥ वन्देऽहं शीतलां देवीं सर्वरोगभयापहम्। यामासाद्य निवर्त्तन्ते विस्फोटकभयं महत्॥ शीतले शीतले चेति यो ब्रूयाद्दाहपीडितः। विस्फोटकभयं घोरं गृहे तस्य न जायते॥ शीतले ज्वरदग्धस्य पूतिगन्धगतस्य च। प्रणष्टचक्षुषः पुंसस्त्वामाहुर्जीवनौषधम्॥ शीतले तनुजान् रोगान् नृणां हरसि दुस्तरान्। विस्फोटकविशीर्णानां त्वमेकामृतवर्षिणी॥ गलगण्डग्रहा रोगा ये चान्ये दारुणा नृणाम्। त्वदनुध्यानमात्रेण शीतले यान्ति संक्षयम्॥ न मन्त्रं नौषधं तत्र पापरोगस्य विद्यते। त्वमेका शीतले धात्री नान्यां पश्यामि देवताम्॥ मृणालतन्तुसदृशीं नाभिहृन्मध्यसंस्थिताम्। यस्त्वां संचिन्तयेदेवि तस्य मृत्युर्नजायते॥ एवं स्तुता तदा देवीं शीतला प्रीतमानसा। उवाच वाक्यं कालाय वरं वरय सत्वरम्॥ (कालोवाच) अहोश्चाद्भुत माहात्म्यं तव दृष्टं मया-

धुना । पीडामपनय क्षिप्रं प्रहर्षं कुरु मे सदा ॥ (शीतलोवाच) एषा तव जगत्कर्त्री भार्येयं भवितव्यता । अस्याज्ञां प्रवर्त्तंते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ अहं त्वं च महेशाद्यास्ततो धन्यास्तु ते मता । बुध्याधीर्जायते साया यादृशी भवितव्यता ॥ सहायं ते करिष्यामि हरिष्यामि इमाः प्रजाः ॥ उपोदकी तु या खादे दादावुष्णां ततः परम् । तं गर्भं भक्षयिष्यामिसापि चेद्दुष्टभुग्भवेत् ॥ संतुष्टा शीतलेनाहं सदा तत्सेवकस्य च । प्रत्यहं यासमश्नाति मालस्यर्कसुपोदकी॥ तस्या गर्भं न स्पृशामि यावज्जीवं न संशयः । मम कोपेन संयातदाहो यस्तु नरोत्तमः ॥ दधिभक्तं ब्राह्मणेभ्यो जलमेभ्यः प्रदाय च ॥ स्वयमश्नाति सताहं तस्य पीडां हराम्यहम् ॥ अष्टकं च ममैतद्धि यः पठेन्मानवः सदा । विस्फोटकभयं घोरं कुले तस्य न जायते ॥ श्रोतव्यं पठितव्यश्च नरैर्भक्तिसमन्वितैः । उपसर्गभयं तस्य कदापि नहि जायते ॥ अष्टकं च ममैतद्धि पठितं भक्तितः सदा । सर्वरोगविनाशाय परं स्वस्त्ययनं महत् ॥ शीतलाष्टकमेतद्धि न देयं यस्यकस्यचित् । दातव्यं सर्वदा तस्मै भक्तिश्रद्धान्वितो हि यः ॥ रावणोवाच ॥ एवमुक्त्वा ययुः सर्वे तथैव भवितव्यता । तथा लोकान् जिघांसन्ति कालस्य वशमागताः ॥

अर्थ—रावण अपनी स्त्रीसे यह देवीकी उत्पत्तिकी कथा कहता है कि हे प्रिये ! सुनो, प्रथम सतयुगमें श्रीमहादेवजीके समीप जाकर ब्रह्माजी महाराज कहते हैं कि हे देव ! आपकी आज्ञानुसार मैंने कई प्रकारकी प्रजाकी रचना की है । हे नाथ ! सारी पृथिवी प्रजासे भर गई है और प्रतिदिवस बढती जाती है और इस प्रजामेंसे पुरुषजाति कामातुर होकर स्त्रियोंसे रमण करते हैं सो स्त्रियां गर्भको धारण करके और प्रजाको जनती हैं । सो प्रजाकी वृद्धिसे बडी हानि है । हाथी घोडा आदि पशुओं तथा पक्षियों और मनुष्योंसे यह सम्पूर्ण पृथिवी व्याप्त. हो गई है । अब इस प्रजाके भारको पृथिवी सहन नहीं कर सक्ती सो अवश्य ही पृथिवी पातालमें चली जायगी इसका कुछ उपाय करना चाहिये । इस प्रकारके ब्रह्माजीके कथनको श्रवण करके त्रिशूलधारी शिवजीने अपने त्रिशूलकी तर्फ देखा तो एक भयानक स्वरूप घोर पराक्रमवाला पुरुष त्रिशूलमेंसे निकल पडा । यमराजके समान उसके लाल नेत्र हैं और

क्रोधी अग्निके समान तेजवाला ऊंचे हैं केश जिसके और जिह्वा जिसकी मुखसे बाहर निकल रही है ऐसा वह कालपुरुष कामातुर हो कर एकदम चिल्लाने लगा। इस भयंकर पुरुषको देख कर शिवजीने पार्वती मातासे कहा कि यह तो उत्पन्न होते ही बडा क्रूर है सब सृष्टिका संहार एकदम कर देवेगा। हे प्रिये! अब इसको मोहित करनेके योग्य भार्या (स्त्री) तुम दो। शिवजी महाराजके वचनको सुनकर गौरीजी माताने अपनी पीठके पीछेकी तर्फ देखा तो एक देवी मूर्त्ति उत्पन्न हो गई जिसका नाम साक्षात् भवितव्यता कहते हैं, यह स्त्री रूप चातुर्य्यसे परिपूर्ण ऊंचे और पुष्ट हैं स्तन जिसके। और मारण अस्त्र तथा मोहनास्त्र अपने हाथमें धारण किये हुए है श्वेत वस्त्रोंको धारण किये हुए और लज्जासे नेत्रोंको नीचे कर रही है। वह देवी प्रणाम करके बं भोला बाबा और पार्वती माताके आगे खडी हुई अस्त्र शस्त्रोंके भारको उठानेसे अखरी भई कालके चित्तको हरनेवाली। इसको देखकर गौरीजी माताने उससे कहा कि तुम हमारी आज्ञाको स्वीकार करो कि तुम इसकी भार्य्या वनकर इसके चित्तको हरण करो। इससे अपना पाणिग्रहण माँगो यह ब्रह्माजीका कार्य्य करो यह सुनकर वह भवितव्यता नामवाली स्त्री. प्रसन्न होकर गौरीजीके आगे नवित होकर बैठ गई और कहने लगी कि हे गौरी देवी यह ब्रह्मा विष्णु शिवात्मक संसार तो सब मेरे ही आधीन है और यह पुरुष काल तो है ही मेरेको कोई नहीं जानता है। ब्रह्मा विष्णु और महेशको मैं समान दृष्टिसे देखती हूं और ये तीनों ऐसे मूर्ख हैं कि मेरे स्वरूपको नहीं जानते। ऐसा कथन करके वह भवितव्यता कालके साथ विवाह दी गई और इसके साथ विवाह करके काल भी अपनेको धन्य समझता हुआ प्रसन्न हो गया। अब कालका विवाह हुआ जानकर ब्रह्माजीने कथन किया कि हे स्वामिन् शीघ्रतासे आ अपनी दृष्टिको समेटो यह सुनकर कालने अपनेही तेजसे अनेक प्रकारके सेवक रचे और भवितव्यताने अपने स्वामीके तेजसे शोष ज्वर पाण्डुसार श्वास पानात्ययादि शरीरके आभ्यन्तर होने तथा बाहर विचरण करनेवाले सैकडों ही रोगोंकी रचना उसने की। तथा सर्प व्याघ्र, भेडिये, सिंह (शेर), विच्छू, हाथी, भूत, प्रेत, पिशाच इत्यादि बाहर रहनेवाले भृत्य और भीतर रहनेवाली शक्तिसे कामिनी, मोहिनी, तृषा, अहंकृती, बुद्धि, ऋद्धि, निद्रा, ईर्षा, भय इत्यादि तथा संग्रहणी कामला, विषूचिका, छादनी मूर्च्छा, अश्मरी, डाकिनी, शाकिनी, घोरा, हत्या इत्यादिकी रचना कालने की। फिर वह अपने दलको सजाकर यह देखने लगा कि अब मुझसे अधिक बलवान् लोकमें कौन है, मैं भवितव्यताको कुछ नहीं समझता अब इन ब्रह्मा विष्णु महेशादि सबको ही मारना चाहिये, ऐसा मनमें विचार करके शिवजीके

मारनेको तैयार हो गया। उस क्रोधको देख कर शिवजीने वडी घोर बदरूप जंघा और पेट फैला दिया और उसको ऐसी शक्ति दिखलाई कि अत्यन्त प्रज्वलित हुई दशों दिशाओंको जलाती हुईसी अग्नि उसके दृष्टिगत हुई जिसके देखते ही कालके समस्त अङ्गोंमें पीड़ा होने लगी और कालका समस्त लश्कर जो उसने उत्पन्न किया था उसीमें प्रवेश कर गया, वहां कौन स्वामी और कौन सेवक, बलवान्के ही सब सेवक हैं निर्वलका कोई सेवक नहीं है। काल क्रोधकी अग्निसे जलता हुआ कितनेही प्रकार विस्फोटक मसूरिकाओं युक्त उसकी ऐसी दशाको देखकर दाहादि रोग सब उसीके शरीरमें लग गये। अब भवितव्यता उस अहंकारके अभिमानी पात्र कालको देख-कर कुछ हास्ययुक्त होकर बोली कि तेरी यह अहं पदवी अच्छी नहीं है इसीने तुमको दुःखित किया है। देख मेरे ही अधीन सब जगत है मेरी आज्ञाको मान तुमने अपने वश होकर यह क्रोध किया इससे तेरी ऐसी दशा हुई है। देख यह मेरे अंशसे उत्पन्न हुई शीतला तू इसको प्रसन्न कर, यदि तू इसका आदर करेगा तो यह निश्चय तेरी सहायता करेगी। अब काल देवता अपनी स्त्रीके अंशसे उत्पन्न हुई और बतलाई हुई शीतला देवीको स्तुतिसे प्रसन्न करता है वह कैसी शीतला देवी है कि सुन्दर गधेपर सवार है और कैसी है कि बिलकुल नग्निन दिशा हैं अम्बर जिसके और हाथ झाडूसे शोभायमान है और दूसरे हाथकी शोभा मृत्तिका घट बढा रहा है और शीतलामाताके मस्तक पर सूप (छाज) मुकुटके समान विराजमान है ऐसे शृङ्गार युक्त शीतला माताकी स्तुति करके काल देवता नमस्कार करता है। हे मनुष्यो ऐसी सब रोगोंके भयके हटानेवाली शीतला माताकी वन्दना करो कि जिसको प्राप्त होकर विशेष भयंकर भी विस्फोटकका भय निवृत्त हो जाता है। जो विस्फोटक तथा मसूरिका दाहसे दुःखित मनुष्य हैं वे शीतले२ ऐसा कहें तो उसके घरमें विस्फोटक व मसूरिका रोग नहीं होता है। हे शीतले! ज्वरसे जले हुएकी तथा दुर्गन्धिमें पडे हुएकी और अन्ध प्राणियोंको जीवित करनेवाली औषध तुमको ही कहते हैं। हे शीतले! तुम मनुष्योंके शरीरमें उत्पन्न हुए दुःसाध्य रोगोंको भी हरती हो और विस्फोटक मसूरिका रोगसे ग्रस्त रोगियोंको अमृत बरसानेवाली हो। शीतले इसके अतिरिक्त मनुष्योंको जो और भी गलगण्ड ग्रहादिक रोग होते हैं वे आपके अणु स्मरणमात्रसे ही क्षय हो जाते हैं। इस पाप रोगीका न तो कोई मन्त्र है न कोई औषध है हे शीतले माता तू ही एक मात्र पोषण करनेवाली है और मैं किसी भी देवताको नहीं जानता। कमलकी नालके समान मनुष्योंकी नाभि हृदयके बीचमें विराजमान हो ऐसा जो कोई तुमको चिन्तवन करे हे देवी उसकी मृत्यु नहीं होती (क्योंकि वह मर जावे तो उसकी नाभिमें बैठी हुई शीतला माता भी मर जावे) इस प्रकारसे स्तुति

की हुई शीतला माता कालसे प्रसन्न होकर बोली कि तू शीघ्र वर मांग । अब काल-देवता कहता है कि हे माता अहो तुम धन्य हो तुम्हारा तो मैंने बडाही माहात्म्य देखा, अब मेरी पीडाको निवृत्त करके सदा हर्षित करो । शीतला माता बोली कि इस संसारको उत्पन्न करनेवाली तेरी भार्य्या है इसकी आज्ञामें ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों रहते हैं । मैं और तू भी तथा महेशादिक तीनों देव इसीमें मन देकर धन्य हो रहे हैं बुद्धिसे जैसी मति होती है सो यह भवितव्यता ही है । मैं तेरी सहायता करूंगी और इस प्रजाको हरूंगी कोई रजस्वला स्त्री प्रथम गर्म वस्तु खावे और दुष्ट भोजन करे तो मैं उसके गर्भको खा लूंगी मैं शीतल पदार्थोंसे बडी प्रसन्न होती हूं और शीतल पदार्थ सेवन करते हैं उनपर भी मैं सदा प्रसन्न रहती हूं । जो गर्भिणी स्त्री मालतीका अर्क पान करे तो जीवन पर्य्यन्त उसके कभी गर्भ बाधा न करूंगी इस मेरे कथनमें संशय नहीं जानना । मेरे कोपसे जिस मनुष्यको दाह उत्पन्न हुआ है वह नर जो दधि संयुक्त भोजन शीतल जलके साथ ब्राह्मणोंको अर्पण करके पीछे आप भोजन करे तो सात दिवसमें उसकी पीडा हरती हूं । जो मनुष्य यह मेरा अष्टक प्रति दिवस पढता है उसके कुटुम्बमें घोर विस्फोटकका भय नहीं होता । यह मनुष्योंको भक्ति श्रद्धा सहित पढना व श्रवण करना चाहिये इससे उसको इस व्याधिका भय नहीं रहता । यह मेरा अष्टक परम भक्तिसे सदैव पढना सब रोगोंका नाशक है और कल्याणका तो यही एक स्थान है । यह शीतला अष्टक किसी (यस्य कस्य) ऐसे वैसेको नहीं देना, उसी मनुष्यको देना जो पूर्ण रूपसे इसमें श्रद्धा और भक्ति रखता होय रावणने अपनी स्त्री मन्दोदरीसे कहा कि हे प्रिये इस प्रकार कथन करके सब चले गये और भवितव्यता भी चली गई । स्कन्दपुराणके काशीखण्डमें शीतलाष्टक इस प्रकार लिखा है ।

स्कन्दोवाच ।

भगवन्देवदेवेश शीतलायाः स्तवं शुभम् ।
वक्तुमर्हस्य शेषेण विस्फोटकभयापहम् ॥

अर्थ—स्कन्दऋषि (स्वामि कार्तिक) बोले कि हे भगवन् हे देवदेवेश विस्फोटकके भयको नष्ट करनेवाला शीतलाका स्तोत्र कथन करो । यह वाक्य सुनकर शिवजी बोले ।

शिवोवाच ।

वन्देहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् ।
यामासाद्य निवर्त्तेत विस्फोटकभयं महत् ॥

इसका अर्थ पूर्व लिखा गया है यहां केवल इतना ही दिखलाना है कि महा विद्वान् स्वामि कार्तिकेय ऋषि तो प्रश्न करता और शंकर स्वामी शीतलाका स्तोत्र पाठ करते हैं ।

एताः सप्तापि बोद्धव्याः शीतलादेव्यधिष्ठिताः । शीतलोचितमाचारमाशु सर्वासु वाचरेत् ॥ काश्चिद्विनापि यत्नेन सुखं सिद्ध्यन्ति शीतलाः । दृष्टाः कष्टतराः काश्चित्काश्चित्सिध्यन्ति वा न वा । काश्चिन्नैव तु सिध्यन्ति यत्नतोऽपि चिकित्सिताः ॥

अर्थ—यह सात प्रकारकी शीतला पूर्वोक्त (मसूरिका व विस्फोटक) से पृथक् है । (शीतला मातासे अधिष्ठित) इस लिये इसका यत्न शीतलाका करना चाहिये । कोई २ शीतला तो विना यत्नके ही निवृत्त हो जाती है और कोई कष्टके देनेवाली और कोई शीतला निवृत्त होवे चाहे न होवे परन्तु बहुतसी शीतला ऐसी होती हैं कि अनेक यत्न करने पर भी निवृत्त नहीं होतीं ।

अब यहांसे मसूरिका रोगका निदान यथार्थ लिखा जाता है जिसको पुरुषोंने शीतला माता मान रखा है । इसका उपाय न करनेसे अनेक मनुष्य मृत्युके मुखमें प्रवेश करते हैं । यह रोग सब ही मनुष्योंके एक समय होता है इसका कारण यह है कि जब बालकका रक्त छोटी उमरमें कच्चा पतला और तर होता है तो जो चीज कच्ची और तर है वह एक समय पर अवश्य पकेगी और जब पकेगी तब उसमें उबाल अवश्य आवेगा, जब वह उबलेगी तब यह अवश्य होगा कि चर्म जिल्दमें फुंसियां उत्पन्न होंगी और एक बालकको उत्पन्न होने पर यह संक्रामक भी हो जाता है जैसा कि चेचककी उत्पत्तिके समय अनेक नगरोंमें देखा जाता हैं और हजारों बालक इस रोगमें फँस जाते हैं । जो इसका दाना प्रथम सुर्ख और पीछे सफेद और बडा हो जाय उसकी विस्फोटक संज्ञा है और जो दाना प्रथम सुर्ख और पीछे सफेद हो जाय और बडी मसूरके समान शरीरसे उठा हुआ होय उसको मसूरिका कहते हैं, तीसरा भेद यह कि जो दाने बारीक होते हैं उनको खसरा कहते हैं । चेचक और खसरा निकलेके पूर्व रूप यह हैं कि पीठमें दर्द नाकमें खुजली मस्तक और शरीरका भारी होना और खूनके उबलनेसे जो ज्वर उत्पन्न हो तो ज्वरके समस्त लक्षण देखे जाते हैं । और रोगी नींदमें डरता है, जब सीधा शयन करे तो पैर कांपने लगे और चर्म जिल्दमें जलन और चुभन मालूम होती है और किसीको खांसी तथा गलेमें दर्द श्वासका तंग होना गलेका बैठ जाना भी होता है । खसरे और मसूरिकाके ज्वरमें इतना अन्तर होता है कि खसरेका ज्वर मसूरिकाके ज्वरकी अपेक्षा अधिक गर्म होता है और इसमें घबराहट अधिक रहती है । पीठका दर्द इसमें कम होता है जी मिचलाना और घबराहट अधिक

होती है प्रायः देखागया है कि खसरा एकदम निकल आता है । और मसूरिका ३ से लेकर सात दिवस पर्य्यन्त निकलती है । चेचक (मसूरिका) इसका मवाद (गर्म खून) विशेष तरी लिये होता है इस लिये इसका दाना बडा होता है और विस्फोटककी स्थितिके फफोलोंमें इससे भी अधिक तरी होती है इसी कारणसे विस्फोटकका फफोला बतासेके समान होता है । कभी तो मसूरिकाके दाने आरम्भमें सुर्ख और पकने पर सफेद होते हैं और कभी आरम्भसे ही सफेदी लिये हुए होते हैं । अथवा कुछ पीलापन लिये हुए होते हैं कम और विस्तृत होते हैं । इस रोगकी यह स्थिति अच्छी देखी जाती है इसम मनुष्यको कुछ हानि नहीं पहुंचती है । यदि शरीरके समस्त अङ्गोंपर विशेषतासे निकलें और नोकदार होय और परस्पर मिले हुए दाने होयँ तथा उनका रंग कुछ स्याही लिये हुए होय और कुछ २ सुर्ख भी होय और छाती तथा पेटके भागपर अधिक निकले होयँ किन्तु निकलने और पकनेमें अधिक विलम्ब लगे तो इस स्थितिमें मनुष्यको कुछ हानि पहुंचनेकी संभावना रहती है । इसी प्रकार जिस रोगीकी मसूरिकामेंसे रक्त निकले तथा प्रथम फफोले निकलें और पीछे ज्वर चढे तो यह चिह्न भी हानिकारक समझा जाता है इसी प्रकार मसूरिका निकलनेके अनन्तर ज्वर न उतरे और बराबर ज्वर बढता रहे तो यह भी हानिकारक समझा जाता है । यदि एक मसूरिका निकल रही होय और उसमेंसे दूसरी और निकले तो यह भी खराब समझी जाती है । मसूरिकाकी अपेक्षा खसरेका मवाद पित्त और रक्तके दूषित परमाणुओंको लेकर रूक्षतालिये हुए होता है इसी कारणसे खसरेकी फुंसियाँ अधिक बारीक होती हैं । बाजरा व सरसोंके समान चर्म जिल्दसे कुछ उठी हुई होती है, उनमेंसे पानी व पीब नहीं निकलता वे ऐसे ही सूख जाती हैं और बारीक भूसीकेसे छिलके उतर जाते हैं, यदि खसरा किसी कारणसे बिगड जावे तो मनुष्यको हानिकारक हो जाता है । खसरेकी रंगत स्याह होय और उसमें सुर्खीकी झलक मारती होय अथवा निकलते २ एकदम लुप्त हो जावें (छिप जावे) तो यह चिह्न भी इसका हानिकारक समझा जाता है । यदि इस रोगीकी मृत्यु होनेवाली होय तो वह ४—६ प्रहर प्रथमसे ही चैतन्यता रहित और बेहोश हो जाता है । यह मसूरिका रोग बालकोंके अतिरिक्त बडी उमरके मनुष्योंको भी होता है, इसका कारण यह है कि एक तो ऋतु ह्रासके विपरीत होने तथा उस ऋतुके विरुद्ध आहार विहार करनेसे होता है बालकोंकी अपेक्षा बडी उमरके मनुष्योंको कम उत्पन्न होता है । यहांतक इस रोगके विषयमें जो कुछ अनुभव इस अवधिमें हमको हुआ है वह लिखा गया है नीचे आयुर्वेदसे लिखा जाता है ।

अर्थ—वातज मसूरिका रोगकी फुंसी कृष्णवर्ण लाल रूखी और तीक्ष्ण पीडायुक्त होती हैं । कठिन तथा विशेष कालमें पकती हैं शरीरकी सन्धि हड्डी और पैरोंमें तोडनेके समान पीडा होती है खांसी कम्प मनमें व्याकुलता श्रम किये विना ही श्रम माल्रम होय ,तालु होठ जिह्वा इनमें रुक्षता (खुश्की) होय तृषा और अरुचि होय ये सब लक्षण वातज मसूरिका रोगके हैं (पित्तज मसूरिकाके लक्षण) पित्तज मसूरिकाकी फुंसी पीली लाल सफेद रंगकी होती है इनमें जलन अत्यन्त पीडा होती है शीघ्र पक जाती है रोगीका मल पतला उतरता है शरीरमें तोडनेके समान पीडा होती है दाह तृषा अरुचि मुख नेत्र इनमें पाक होय ज्वरका तीव्र वेग होय । (कफज मसूरिकाके लक्षण) कफज मसूरिका रोगवालेके मुखसे जलस्राव होय शरीरमें आर्द्रता (भीगा) सा रहे, शिरमें पीडा शरीर भारी होय वमन अरुचि निद्रा तन्द्रा और आलस्य होय फुंसियोंका रंग सफेद होय और चिकनी स्थूल (मोटी) खुजली युक्त होय तथा पीडा कम होती है और अधिक समयमें पकती हैं । (त्रिदोषज मसूरिकाके लक्षण) सान्निपातज मसूरिकाकी फुंसी नीली चपटी विस्तीर्ण और बीचमेंसे खड्डेदार होती हैं इनमें वेदना (पीडा) अत्यन्त होती है त्रिदोषज फुंसी अधिक समयमें पकती हैं । और दुर्गन्धि युक्त राध निकलती है । त्रिदोष जनित फुंसियां अधिकतासे उत्पन्न होती हैं ।

रक्तज चम पिडिका रोमान्तिक सप्तधातुगत मसूरिकाओंके पृथक् २ लक्षण ।

रक्तजायां भवन्त्येते विकाराः पित्तलक्षणाः ॥ कण्ठरोधोऽरुचिस्तन्द्रा प्रलापारतिसङ्गताः । दुश्चिकित्स्याः समुद्दिष्टाः पिडकाश्चर्म्मसंज्ञिताः ॥ रोमकूपोन्नतिसमा लोहिताकफवातजाः । कासारोचकसंयुक्ता रोमान्त्यो ज्वरपूर्विकाः ॥ तोयबुद्बुदसंकाशास्त्वग्गताश्च मसूरिकाः । स्वल्पदोषाः प्रजायन्ते भिन्नास्तोयं स्रवन्ति च । रक्तस्था लोहिताकाराः शीघ्रपाकस्तनुत्वचः । साध्या नात्यर्थदुष्टाश्च भिन्ना रक्तं स्रवन्ति च ॥ मांसस्था कठिना स्निग्धाः चिरपाका धनत्वचः । गात्रशूलारतिकण्डूतृष्णारुचिसमन्विताः ॥ मेदोजा मण्डलाकारा मृदवः किञ्चिदुन्नताः । घोरज्वरपरीताश्च स्थूलाः स्निग्धाः सवेदनाः । सम्मोहारतिसन्तापाः कश्चिदाभ्यो विनिस्तरेत् ॥ क्षुद्रा गात्रसमा रूक्षाश्चिपिटाः किञ्चिदुन्नताः । मज्जोत्था भृशसम्मोहवेदनाऽरतिसंयुताः ॥ छिन्दन्ति मर्मधामानि प्राणानाशु हरन्ति च ।

भ्रमैरणेवविद्धानि कुर्वन्त्यस्थीनि सर्व्वतः ॥ पक्काभाः पिडका स्निग्धाः सूक्ष्माश्चात्यर्थवेदनाः । स्तैमित्याऽरतिसंमोहदाहोन्मादसमन्विताः । शुक्रजायां मसूर्य्यान्तु लक्षणानि भवंति च । निर्दिष्टं केवलं चिह्नं दृश्यते नहिं जीवितम् ॥ दोषमिश्रास्तु सप्तैता द्रष्टव्या दोषलक्षणैः ॥

अर्थ—(रक्तज मसूरिकाके लक्षण) रक्तज मसूरिकामें पित्तज मसूरिकाके समस्त लक्षण मिलते हैं । परन्तु दूसरा आचार्य्य कहता है कि " (रक्तस्था लोहिता काराः शीघ्रपाकास्ततनुत्वचः । साध्या नात्यर्थदुष्टास्तु भिन्ना रक्तं स्रवन्ति च " रुधिरगत मसूरिका ताम्रवर्ण शीघ्र पकनेवाली होती है । और त्वचा पतली होती है (त्वचाकी एकही जिल्द उनके ऊपर होती है) यह रक्तज मसूरिका अत्यन्त दुष्ट हो जावे तो सुख साध्य नहीं रहती है । इन मसूरिकाओंके फूटनेसे रक्त निकलता है । (चर्मपिड़िका मसूरिकाके लक्षण) जिस मसूरिका रोगमें कण्ठका अवरोध अरुचि तन्द्रा प्रलाप और बेचैनी होय अर्थात् जिनकी चिकित्सा न हो सके उसको चर्मपिडिका मसरिका कहते हैं । (रोमान्तिक मसूरिकाके लक्षण) जो मसूरिका रोमकूपोंकी समान ऊँची और रक्तवर्णकी होय जिसके उत्पन्न होनेसे खांसी और अरुचि होय तथा जिसमें प्रथम ज्वर उत्पन्न होय ऐसी कफ पित्तोद्भव रोमान्तिक मसूरिका जाननी । (सप्तधातुगत मसूरिकाके लक्षण) जो मसूरिका जलके बुलबुलेके समान आकृतिवाली होय । जिनका फफोला फूटने जलसे स्राव होय ऐसी मसूरिकाको रसगत जाननी चाहिये । और जिस मसूरिकामें स्वल्प दोष होय उसको त्वग्गत जाननी चाहिये । और रक्तगत मसूरिका लोहित वर्ण शीघ्र पकनेवाली पतली त्वचावाली और इसके फूटनेसे रक्तस्राव होता है । रुधिरमें स्थित मसूरिका जो अत्यन्त दुष्ट रुधिरवाली न हो तो साध्य होती है । और अत्यन्त दुष्ट रक्तवाली हो तो कष्टसाध्य सिद्ध किया है । इसका लक्षण उपरोक्त आचार्य्यने कष्टसाध्य सिद्ध किया है मांसगत (मसूरिकाके लक्षण) मांसगत मसूरिका काठिन चिकनी और अधिक समयमें पकती है और मोटी त्वचा होती है तथा शरीरमें पीडा बेचैनी, आकुलता, खुजली तृषा और अरुचि होती है । मेद (चर्बीगत मसूरिकाके लक्षण) मेदगत मसूरिका मण्डलकी समान गोल कोमल (मुलायम) ऊपरको उठी हुई तीव्र ज्वर युक्त मोटी चिकनी पीडा युक्त बेहोसी व्याकुलता और सन्ताप युक्त होती है इस प्रकारकी मसूरिका उत्पन्न होने पर सैकडा पीछे एकाद ही रोगी जीवनको धारण करता है । (अस्थि और मज्जागत मसूरिकाके लक्षण) अस्थि और मज्जागत मसूरिका क्षुद्र (छोटी) मनुष्यके शरीरके वर्णके समान रूखी चपटी कुछ ऊपरको उठी हुई तथा अत्यन्त

मोह वेदना और व्याकुलतासे युक्त होती है। और मर्म स्थानोंके छिद्रों करके शीघ्र ही प्राणोंको नष्ट करती है और इसके उत्पन्न होनेसे अस्थिओंमें भौंरा अथवा भिडके दंशके समान पीडा होती है। शुक्रगत मसूरिकाकी (पिडिका) गुमडी पकनेके समान होती हैं परन्तु पकती नहीं हैं। तथा चिकनी बहुत छोटी अत्यन्त वेदनावाली शरीरमें स्तब्धता (जडतायुक्त) वेचैनी मोह दाह और उन्माद होता है। यह शुक्रगत मसूरिका केवल चिकित्सकके ज्ञान होनेके अर्थ कथन की गई हैं, किन्तु इसकी चिकित्साका परिश्रम करना निरर्थक है। क्योंकि यह मसूरिका जिसके उत्पन्न होय वह रोगी जीवित नहीं रहता है ॥ दोषके कुपित होनेके विदून रसादिक धातुओंका दुष्ट (दूषित) होना संभव नहीं है, इस कारणसे ये सात प्रकारकी मसूरिकाओंमें उन २ दोषोंके लक्षण उपरोक्त कथन किये हुए दोषोंके सम्बन्धसे जानना ।

मसूरिका व्याधिका साध्याऽसाध्य विचार ।

त्वग्गता रक्तजाश्चैव पित्तजाः श्लेष्मजास्तथा । एता विनापि क्रियया प्रशाम्यन्ति शरीरिणाम् ॥ वातजा वातपित्तोत्थाः श्लेष्मवातकृताश्च याः । कृच्छ्रसाध्यमतास्तस्माद्यत्नादेता उपाचरेत् । असाध्याः सन्निपातोत्थास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम् । प्रवालसदृशाः काश्चित् काश्चिज्जम्बूफलोपमाः ॥ लोहजालसमाः काश्चिदलसीफलसन्निभाः । आसां बहुविधा वर्णा जायन्ते दोषभेदतः ॥ कासो हिक्का प्रमेहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः । प्रलापश्चारतिर्मूर्च्छा तृष्णा दाहो विघूर्णता ॥ मुखेन प्रस्रवेद्रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुषा । कण्ठे घुर्घुरकं कृत्वा श्वसित्यत्यर्थदारुणम् ॥ मसूरिकाभिभूतस्य यस्यैतानि भिषग्वरः । लक्षणानीह दृश्यन्ते न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ मसूरिकाभिभूतो यो भृशं घ्राणेन निःश्वसेत् । स ध्रुवं त्यजति प्राणां तृषार्त्तो वायुदूषितः ॥ मसूरिकान्ते शोथः स्यात्कूर्परे मणिबन्धके । तथासफलके वापि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः ॥ द्वित्रिलक्षणसंयुक्तो द्वन्द्वोपद्रवसंयुतः ॥ द्वन्द्वजास्तु त्रयो ज्ञेया मनुष्याणां मसूरिकाः ॥ कफवातादिसंभूतः कोद्रवो नाम संज्ञितः । लोके वदन्ति कक्षाकः सपाकं न च गच्छति ॥ यवशूक वदङ्गेषु विध्यंति च विशेषतः । सप्ताहाद्द्वादशाहाद्वा स्वस्थो भवति मानवः ॥

अर्थ—मसूरिका व्याधिका साध्याऽसाध्य विचार रसगत और रक्तगत पित्तज कफज और पित्तकफज यह मसूरिका सुखसाध्य हैं । ये मसूरिका उपाय करनेके विनाही शान्त हो जाती हैं । केवल वातज और वातपित्तज और वातकफज संयुक्त दो २ दोषोंसे उत्पन्न हुई मसूरिका कष्टसाध्य हैं, इस कारणसे इनकी यत्नपूर्वक चिकित्सा करनी चाहिये । त्रिदोषके कोपसे उत्पन्न हुई सन्निपातज मसूरिका असाध्य हैं । इस मसूरिकाकी फुंसी प्रवाल कहिये मूँगेके समान रक्तवर्ण कोई जामुन फलके समान रंगवाली कोई लोहजालके समान और कोई अलसीके फलके समान रंगवाली होती हैं । इसके अतिरिक्त दोषोंके भेदसे और भी अनेक प्रकारके रंगकी होती हैं । जिस मसूरिका रोगीको खांसी हिचकी बेहोशी दारुण तीव्र ज्वर प्रलाप बेचैनी मूर्च्छा तृषा दाह विवर्णता घुमेर मुख नासिका और नेत्रोंके द्वारा रक्तस्राव और कण्ठमें घुर २ शब्दका होना और दारुण श्वास ये सब लक्षण हों तो ऐसे लक्षणवाले रोगीकी चिकित्सा निरोग करनेकी चेष्टासे कदापि चिकित्सक न करे । (मसूरिका रोगके अरिष्ट लक्षण) मसूरिका रोगसे पीडित जो मनुष्य नासिकाके द्वारा श्वास लेवे और उत्पन्न तृषासे पीडित हो और उपद्रव रूपमें अपतानकादि वातव्याधि उत्पन्न हो जावे तो ऐसा रोगी तत्काल मृत्युको प्राप्त होता है । मसूरिका रोगके रोगीके आरोग्य होनेपर हाथकी कुहनी पहुंचा कंधा इन तीनोंपर अथवा किसी एक ठिकाने पर अत्यन्त दारुण सूजन हो तो उसको कष्टसाध्य जानना यह चिह्न कष्टसाध्य अथवा असाध्य है । भावमिश्र कहते हैं कि जिस मसूरिका रोगमें दोषोंके लक्षण अथवा तीनों दोषोंके लक्षण मिलते होयँ और जिसमें दो २ दोषके उपद्रव प्रत्यक्ष दीख पडते होयँ उसको द्वंद्वज अथवा त्रिदोषज मसूरिका जाननी चाहिये । (मसूरिका रोगका विशेष भेद) वातकफसे उत्पन्न होनेवाली कांदोंके दानेके समान आकृतिवाली (कोद्रसंज्ञक) जो मसूरिका होती है उसको लोकमें (कक्षाक) नाम कहते हैं और यह पाकको प्राप्त नहीं होती है, जो मसूरिका जौके शूक (तीकूर) की समान विशेषतासे अङ्गोंको भेदन करती है । इस मसूरिकावाला रोगी सात दिवसमें अथवा दश दिवसमें बिना उपाय और औषधके स्वतः आरोग्य हो जाता है । लेकिन वैद्यकके आचार्योंका इस रोगके विषयमें ऐसा सिद्धान्त है कि " दुष्टाः कृच्छ्रतराः काश्चित् काश्चित् सिद्ध्यन्ति वा न वा । काश्चिन्नैव तु सिध्यन्ति साध्य मानाः प्रयत्नतः " अर्थात् कोई मसूरिका तो कृच्छ्रतर अनेक प्रयत्न करनेसे अच्छी होती हैं । और कोई २ मसूरिका अच्छी हो व न होय और कई प्रकारकी ऐसी उत्कट हैं कि यत्नपूर्वक चिकित्सा करने पर भी अच्छी नहीं होतीं ।

मसूरिका रोगकी चिकित्सा ।

मसूरिकायां कुष्ठोक्ता प्रलेपादिक्रिया हिता । पित्तश्लेष्मविसर्पोक्ता क्रिया चात्र प्रशस्यते ॥ वेणुत्वक् सुरशालाक्षा कार्पासास्थिमसूरिकाः । यवपिष्टं विषं सर्पिर्वचा ब्राह्मी सुवर्चला ॥ धूपनार्थे यथालाभं धूममेतत्प्रयोजयेत् । आदावेतत्प्रयोक्तव्यं नश्यंत्याशु मसूरिकाः ॥ न गृह्णन्ति विषं केचिद्यथालाभश्रुतेरिह । श्वेतचंदनकल्केन हिलमोचाभवं रसम् ॥ पिबेन्मसूरिकारम्भे नैम्बं वा केवलं रसम् । विल्वपत्ररसेनैव मूर्च्छितः पारदो रसः ॥ हिलमोचरसं पीतं हन्ति माक्षिकसंयुतम् । मसूरीं सर्वजां शीघ्रमास्थिजां सर्वदेहजाम् ॥ वमने मरणं प्रोतां स्तम्भने जीवनं मतम् । सर्वासां वमनं पूर्वं पटोलारिष्टवासकैः । कषायैश्च वचावत्सयष्ट्याह्वफलकल्कितैः ॥ सक्षौद्रं पाययेद्ब्राह्म्या रसं वा हैलमोचकम् । वान्तस्य रेचनं देयं शमनं वाऽबले नरे ॥ उभाभ्यां हृतदोषस्य विशुष्यन्ति मसूरिकाः । निर्विकाराश्चाल्पपूयाः पच्यन्ते चाल्पवेदनाः ॥ वाणीरबिल्वजनितं क्वाथं पर्य्युषितमुत्तमे दिवसे । चैत्रस्य पापरोगं पिबतां न भवेद्ध्रुवं चैतत् नारीणां वामपादस्थं नराणामपसव्यगम् । पापरोगं त्यजेद्दूराच्छिणस्थिविनिवारणम् ॥ चैत्रसितभूतदिने रक्तपताका स्नुहीभवने । धवलितकलसे न्यस्ता पापरुजो दूरतो धत्ते ॥ पटोलसारिवा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी । खदिरः पिचुमन्दश्च बला धात्री विकङ्कतम् ॥ एषां कषायपानन्तु हन्ति वातमसूरिकाम् । द्विपञ्चमूलं रास्ना च धात्र्युक्षीरं दुरालभा ॥ सामृतं धान्यकं मुस्तं जयेद्वातमसूरिकाम् । न्यग्रोधप्लक्षमञ्जिष्ठा शिरीषोदुम्बरत्वचाम् ॥ ससर्पिष्कं मसूर्य्यान्तु वातजायां प्रलेपनम् ॥ गुडूचीं मधुकं रास्नां पञ्चमूलं कनिष्ठकम् । चन्दनं काश्मर्य्यफलं बलामूलं विकङ्कतम् । पाककाले मसूर्य्यान्तु वातजायां प्रयोजयेत् ॥ गुडूचीं मधुकं द्राक्षा मोरटं दाडिमैः सह । पाककाले प्रदातव्यं भेषजं गुडसंयुतम् ॥ तेन पाकं व्रजत्याशु न च वायु प्रकुप्यति॥

लिह्याद्बदरचूर्णन्तु पाचनार्थं गुडेन तु । कफवातकृतास्तेन पच्यन्ते च मसूरिकाः ॥ शोधनं पित्तजायान्तु कार्य्यं वैद्येन जानता । तत्रादौ तर्पणं कार्य्यं लाजचूर्णैः सशर्करैः ॥ भोजनं तिक्तयूषैश्च मतुदानां रसेन वा । भोजनं चाथवा कार्य्यं दुष्टव्रणविसर्पिणा ॥ आदावेव मसूर्य्यान्तु पित्तजायां प्रयोजयेत् ॥ निम्बपर्पटकं पाठा पटोलं चन्दनद्वयम् । वासा दुरालभा धात्री व्योषं कटुकरोहिणी ॥ एतत्फलं शृतं शीतं मधुशर्करयान्वितम् । मसूर्य्यान्तु प्रयोक्तव्यं पित्तजायां विजानता । दाहे ज्वरे विसर्पे तु व्रणे पित्ताधिके तथा ॥ द्राक्षाकाश्मर्य्यखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः । लाजामलककटुस्पर्शैः सितायुक्तन्तु पैत्तिके ॥ शिरीषोदुम्बराश्वत्थपीलुन्यग्रोधवल्कलैः । प्रलेपः सघृतः शीघ्रं व्रणवीसर्पदाहहा । श्यामापर्पटकारिष्टचन्दनद्वयमूलकैः । धात्रीतिक्तवृषोशीरयासैश्च क्वथितं जलम् । पीतं मसूरिकां हन्ति पित्तजां दाहसंयुताम् ॥ मोरटं काश्मर्य्यफलं शृतशीतं सशर्करम् ॥ लाजाचूर्णयुतं दद्यात् पित्तजायान्तु पाचनम् ॥ दुरालभा पर्पटकं पटोलं कटुरोहिणी । श्लेष्मिक्यां पित्तजायाञ्च पाने निष्काथ्य दापयेत् ॥ भूनिम्बमुस्तकं वासा त्रिफलेन्द्रयवासकम् । पिचुमन्दं पटोलञ्च सक्षौद्रं योजितं हितम् ॥ खदिरारिष्टपत्रैश्च शिरीषोदुम्बरत्वचा । कुर्य्याल्लेपं कफोत्थायां पित्तजायामथापि वा ॥ वृषस्य स्वरसं दद्यात्क्षौद्रयुक्तं कफात्मके ॥ कफजायां मसूर्य्यान्तु कठिनायां विशेषतः । पाचनाय प्रदातव्यं लेपनं दधिसक्तुभिः ॥

अर्थ—कुष्ठरोग पर (चरक सुश्रुत) में जो लेपादि प्रयोग कथन किये हैं तथा पित्तकफज विसर्प रोग पर जो लेपादि प्रयोग कथन किये हैं वे सब क्रिया इस मसूरिका रोगमें वैद्य उपचार करें । (धूप प्रयोग) बांसकी छाल, तुलसी, लाख, बिनौले, मसूर, जौ, अतीस, घृत, वच, ब्राह्मी, हुलहुल ये सब द्रव्य अथवा इनमेंसे जितने प्राप्त हो सकें उनको समान भाग लेकर धूप बनावे मसूरिका रोगके आदिमें इस धूपको देवे तो शीघ्र ही मसूरिका रोग निवृत्त होता है । हिलमोचिका (हुलहुल) के रसमें श्वेत चन्दनका चूर्ण व कल्क डाल कर मसूरिका रोगके आरम्भमें पान करनेसे अथवा

केवल नीमका स्वरस पान करनेसे मसूरिका रोगका भय नष्ट हो जाता है । शुद्ध पारदको विल्वपत्रके स्वरसमें मूर्छित (नष्ट पिष्ट) करके और हिलमोचिकाके स्वरसमें शहत मिलाकर उसके साथ पारदकी पिष्टिकाको पान करावे (बालकको २ चावलसे ४ चावल भरकी मात्रा और जवान मनुष्यको (१) रत्तीसे दो रत्ती पर्य्यन्तकी मात्रा देवे । पारद शुद्ध व हिंगुलसे निकला हुआ होय लेवे । इस प्रयोगके सेवनसे सर्व शरीरगत मसूरिका तथा अस्थिगत और सर्व प्रकारकी मसूरिका नष्ट होती हैं । जो इस औषध प्रयोगको सेवन करनेसे वमन हो जाय तो मृत्यु होती है । और जो यह प्रयोग शरीरमें स्थिर हो जाय तो शरीर आरोग्य हो जाता है । सर्व प्रकारके मसूरिका रोगमें प्रथम पटोलपत्र नीमकी छाल अडूसा इनका काथ बना कर शहद डाल कर पिलावे इसस वमन द्वारा दोषोंकी शुद्धि होती है । अथवा वच इन्द्रजौ मुलहटी त्रिफला इनके कल्क व चूर्णमें शहद मिलाकर वमन करावे । अथवा हुलहुलके स्वरसमें अथवा ब्राह्मीके स्वरसमें शहद डालकर पान करावे इससे भी वमन आती है । वमन करानेके अनन्तर विरेचन देवे और निर्बल बालक अथवा निर्बल बडे मनुष्यको वमन विरेचन प्रक्रियाको त्यागकर शमन औषध प्रयोग देवे । वमन विरेचनके द्वारा दोष हरण होने पर मसूरिकायें उत्तम प्रकारसे सूख जाती हैं तथा विशेष विकार रहित होकर अल्प राधवाली और अल्प पीडायुक्त पकती है । जलवेतस और बेलके क्वाथको बनाकर रात्रिभर रखके बासी करके उत्तम दिवसमें पान करनेसे मसूरिका रूपी पापरोग नष्ट हो जाता है । स्त्रियोंके वाम पाद गत और पुरुषोंके दक्षिण पाद गत तथा शिरा और अस्ति गत ऐसा मसूरिका रोग असाध्य होता है अतएव ऐसे मसूरिका रोगीको यशकी इच्छावाला चिकित्सक दूरसे ही त्याग देवे । चैत्रशुक्ला त्रयोदशीके दिवस घरमें थहरके वृक्षके ऊपर कलश स्थापन करे और उसके ऊपर लाल ध्वजा (पताका) धारण करे इससे शीघ्र ही मसूरिका रूपी पाप रोग नष्ट होता है (अनेक टोटकिा त्यागकर थूहर वृक्ष औषध समझकर एकही प्रयोग टोटिका लिख दिया हैं) । पटोलपत्र सारिवा नागरमोथा पाढ कुटकी खैरसार नीमकी छाल खैरैटी आमले कटेलीकी जड इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्वाथ बनाकर पान करनेसे वातज मसूरिका नष्ट होती है । दशमूलकी दश औषध रास्ना, आंवला, खस, धमासा, गिलोय, धनियां, नागरमोथा इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्वाथ बनाकर पान करनेसे वातज मसूरिका रोग नष्ट होता है । बड (वटवृक्ष) पिलखन, मंजिष्ठ, शिरस, गूलर इनकी छालको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर घृत मिलाकर लेप करनेसे वातज मसूरिका नष्ट हो जाता है । गिलोय, मुलहटी, रास्ना, लघु पंचमूलके पांच औषध चन्दन, कुम्भेरके फल, खरैटीकी

जड, कटेलीकी जड इन औषधियोंको समान भाग लेकर क्काथ बनाकर सेवन करे (इस क्काथको मसूरिका पाकके समय देना उचित) । हे गिलोय, मुलहटी, दाख, क्षीरमोरट, अनार इनका कल्क बनाकर गुड मिलाकर परिमित मात्रासे मसूरिकाके पकनेके समय पर सेवन करावे । इसके सेवनसे शीघ्रही मसूरिका पक जाती है और वायु प्रकुपित नहीं होती । सूखे बेरोंका चूर्ण करके गुड मिलाकर मसूरिका पकानेके निमित्त सेवन करावे इसके सेवनसे कफवात जनित मसूरिका तत्काल पक जाती हैं । पित्त जनित मसूरिका रोगमें चिकित्सक शोधन कर्म करे प्रथम चावलकी खीलोंके चूर्णमें मिश्री मिलाकर तर्पण देवे । मसूरिका रोगमें तिक्त औषधियोंके यूषके साथ अथवा प्रतुद जातिके पक्षियोंके मांसरस (सुरुवा) के साथ अथवा दुष्टव्रण प्रकरणमें जो भोजन (चरक सुश्रुतमें कथन किये हैं) अथवा विसर्प व्याधिके अधिकारमें इस ग्रन्थमें कथन किये हैं उन आहारोंको इस मसूरिका रोगमें सेवन कराना उचित है । पित्तजनित मसूरिका रोगमें प्रथम नीमकी छाल पित्तपापडा पटोलपत्र सफेद चन्दन, रक्त चन्दन, अडूसाकी जड, धमासा, आंवला त्रिकुटा, कुटकी इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्काथ बनाकर शहद और मिश्री मिलाकर पान करावे । और जो पित्तजनित मसूरिका रोगमें दाह ज्वर विसर्प व्रण और पित्तकी विशेष अधिकता हो तो दाख, कुम्भेर फल, खजूर फल, पटोलपत्र नीमकी छाल, अडूसाकी जड, खील, आंवला, धमासा, इनको समान भाग लेकर क्काथ बनावे और मिश्री डालकर पान करावे (लेपका प्रयोग) शिरसकी छाल और गूलर पीपल पीलू वट इनकी छालको समान भाग लेकर बारीक पीसकर इसमें घृत मिलाकर लेप करनेसे शीघ्रही व्रणविसर्प और दाहरोग नष्ट होता है । अथवा अनन्तमूल, पित्तपापडा, नीमकी छाल, श्वेत चन्दन रक्तचन्दन गूली आंवला कुटकी अडूसा खस जवासा इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्काथ बनाकर पान करानेसे दाह संयुक्त पैत्तिक मसूरिका नष्ट होती है । क्षीरमोरट, कुम्हेरके फल इनका क्काथ बनाकर शीतल करके मिश्री और खीलोंका चूर्ण डालकर पान करनेसे पैत्तिक मसूरिका नष्ट होती है । धमासा. पित्तपापडा पटोल पत्र और कुटकी इनको समान भाग लेकर क्काथ बनाकर कफ पित्त जनित मसूरिका रोगमें पान करावे, चिरायता नागरमोथा अडूसा त्रिफला इन्द्रजौ जवासा नीमकी छाल पटोल पत्र इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्काथ बनाकर शहद डालकर पान करनेसे मसूरिका रोग शान्त होता है । (लेपप्रयोग) खैरवृक्षकी छाल, नीमके पत्र, शिरसकी छाल, गूलरकी छाल इनको समान भाग लेकर बारीक पीसकर कफ जनित तथा पित्त जनित मसूरिका रोग पर लेप करना चाहिये । कफ जनित मसूरिका रोग पर अडूसाके स्वरसमें शहद मिलाकर पान करावे ।

कफ जनित और विशेष करके कठिन ऐसी मसूरिकाओंमें दधि और चावल अथवा पुराने जीका सत्तू मिलाकर पकानेके अर्थ लेप करना चाहिये ।

पटोलं कुण्डली मुस्तावृषधान्ययवासकैः । भूनिम्बनिम्बकटुकापर्पटैश्च शृतं जलम् ॥ मसूरी शमयेदामां पक्कां चैव विशोधयेत् । नातः परतरं किंचिद्विस्फोटज्वरशान्तये । पटोलमुस्ताऽरुणतण्डुलीयकं पचेद्धरिद्रा-मलकल्कसंयुतम् । मसूरिविस्फोटविसर्पशान्तये तदेव रोमान्तिवमि-ज्वरापहम् ॥ निंबपर्पटकं द्राक्षा पटोलं कटुरोहिणी । वासा दुरालभा धात्री चोशीरं चंदनद्वयम् ॥ एष निंबादिकः क्राथः पीतः शर्करयान्वितः॥ मसूरीं सर्वजां हंति ज्वरवीसर्पसम्भवाम् । उत्थिता प्रविशेद्यातु पुनस्तां बाह्यतो नयेत् । काञ्चनारत्वचः क्राथस्ताप्यचूर्णावचूर्णितः । निम्नेन्थ्यान्त प्रविष्टान्तु मसूरीं बाह्यतो नयेत् ॥ पटोलमूलारुणतंडुलीयकं तथैव धात्री खदिरेण संयुतम् । पिबेज्जलेन कथितं सुशीतलं मसूरिका रोगविनाशनं परम् ॥ सुषवीपत्रनिर्य्यासं हरिद्राचूर्णसंयुतम् । रोमन्तीज्वर वीसर्पम-सूरीशान्तये पिबेत् ॥ दुरालभा पर्पटकं पटोलं कटुरोहिणी । श्लेष्म-पित्तमसूर्य्यान्तु क्राथमेषां प्रयोजयेत् ॥ रसं पूतिकरञ्जस्य चामलक्या रसं तथा । पिबेत्सशर्कराक्षौद्रं शोफनुत्कफपैत्तिके ॥

अर्थ—पटोलपत्र, गिलोय, नागरमोथा, अडूसा, धनियां, जवासा, चिरायता, नीमकी छाल, कुटकी, पित्तपापडा इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्राथ बनाकर पान करनेसे अपक्क मसूरिका रोग नष्ट होता है और पक्क मसूरिका रोग शुद्ध होता है । इससे उत्तम अन्य औषध प्रयोग विस्फोटक ज्वरको शान्त करनेवाली नहीं है । पटोलपत्र, नागरमोथा, श्योनाक, चौलाईकी जड इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्राथ बनावे और इस क्राथमें हल्दी और आंवलोंका कल्क डालकर पान करनेसे मसूरिका विस्फोटक विसर्प रोमान्तिक वमन तथा ज्वर शान्त होता है । नीमकी छाल, पित्तपापडा, पटोलपत्र, कुटकी, अडूसा, धमासा, आमले, खस, चन्दन, रक्तचन्दन इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्राथ बनाकर मिश्री मिलाकर पान करनेसे सर्व शरीरगत मसूरिका ज्वर विसर्प शान्त होते हैं । यदि ये मसूरिका उत्पन्न होकर आभ्यन्तरमें लुप्त हो गई हों तो

ऐसी लुप्त हुई मसूरिका फिर बाहरको निकल आती हैं। कचनारकी छालके क्काथमें स्वर्णमाक्षिक भस्मका चूर्ण डालकर पान करनेसे भीतरको लुप्त हुई मसूरिका पुनः बाहर निकल आती हैं। पटोलपत्र, रक्तचौलाई, आंवला, खैरसार इन सबको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्काथ बनाकर शीतल करके पीनेसे मसूरिका रोग नष्ट होता है। करेलेके पत्रोंके स्वरसमें हल्दीका चूर्ण डालकर पान करनेसे मसूरिका रोग रोमान्तिक ज्वर विसर्प शान्त होता है। धमासा, पित्तपापडा, पटोलपत्र, कुटकी इनको समान भाग लेकर परिमित मात्राका क्काथ बनाकर पान करनेसे मसूरिका रोग शान्त होता है। इस क्काथको कफपैत्तिक मसूरिकावाला रोगी पान करे पूति करंजुवाका स्वरस और आंवलोंका स्वरस इनमें मिश्री और शहद मिलाकर पान करनेसे सूजन तथा कफपित्तज मसूरिका रोग नष्ट होता ह।

सौवीरेण तु संपिष्टं मातुलुङ्गस्य केशरम्। प्रलेपात्पाचयत्याशु दाहं वापि नियच्छति॥ पाददाहन्तु कुरुते पिटिका पादजा भृशम्। तत्रसेकं प्रकुर्वीत बहुशस्तंडुलाम्बुना॥ पाककाले तु सर्वास्ता विशोषयति मारुतः। तस्मात्संबृंहणं कार्य्यं न तु पथ्यं विशोषणम्॥ शूलाध्मानप-रीतस्य कम्पमानस्य वायुना। धन्वमांसरसाः शस्ता ईषत्सैन्धवसंयुताः॥ दाडिमाम्लरसैर्युक्ता यूषाः स्युस्त्वरुचौ हिताः। पिबेदम्भस्ततशीतं भावितं खदिरासनैः॥ शौचे वारि प्रयुञ्जीत गायत्रिबहुवारजम्। जाती-पत्रसमंजिष्ठादार्वीपूगफलं शमी॥ धात्रीफलं समधुकं क्वथितं मधुसंयु-तम्। मुखव्रणे कण्ठरोगे गंडूषार्थं प्रशस्यते॥ अक्ष्णोः सेकं प्रशं-सन्ति गवेधुमधुकाम्बुना॥ मधुकं त्रिफला मूर्वा दार्वीत्वंगीलमुत्पलम्। उशीरलोध्रमञ्जिष्ठालेपाश्चोतनते हिताः। नश्यन्त्यनेन दृग्जाता मसूर्य्यो न भवन्ति च। प्रलेपभंजनं दद्याद्बहुवारस्य वल्कलैः॥ पञ्चवल्कलचूर्णेन क्लिन्ना स्रावयतिं तथा। दशांगलेपचूर्णेन चूर्णिता शान्तिमेति च॥ कृमिपातभया चापि धूपयेत्सरलादिभिः। वेदनादाहशान्त्यर्थं स्रुतानां च विशुद्धये। तथाष्टांगावलेहोऽत्र कवलाश्चार्द्रकादिभिः॥ निशाद्वयो शीरशिरीषमुस्तकैः सलोध्रभद्रश्रियनागकेशरैः। सस्वेदविस्फोटविसर्प

कुष्ठदौर्गन्ध्य रोमान्ति हरः प्रदेहः ॥ निम्बवर्बूरकाशोकं बिम्बीवेतसवल्कलम् । शृतशीतं प्रयोक्तव्यं स्रावप्रक्षालने सदा ॥

अर्थ–विजौरानीबूकी केशर (जीरे) को सौवीर नामक कांजीमें पीसकर लेप करनेसे मसूरिका शीघ्र पक दाहभी शान्त हो जाता है । पैरोंमें उत्पन्न हुई पिडिका पैरोंमें दाहको उत्पन्न करती हैं, ऐसी पैरोंकी पिडिकाओं पर चावलके जलका सेचन करना चाहिये । पिडिकाओंके पकनेके समय सर्व प्रकारकी मसूरिकाओंको वायु सुखा देती है । इस कारण पाकके समय बृंहण (पौष्टिक) पथ्य देना चाहिये, शोषण करनेवाला पथ्य न देना चाहिये । शूल और आध्मानसे पीडित एवं वायुसे कम्पित मसूरिका रोगीको जांगल प्रदेशके रहनेवाले जीवोंके मांसके रसमें किञ्चित् सेंधानमक डालकर पान करावे । अरुचिके होने पर अनारका स्वरस और अम्लरस यूषमें मिलाकर पिलावे । खैरवृक्षकी छाल और विजयसार इनका क्वाथ बनाकर शीतल करके पिलावे । खैरवृक्षकी छाल लसोडे तथा लसोडेके अभावमें लसोडेकी छाल इनका क्वाथ बना कर शौचकर्म्म (गुदा और हस्त प्रक्षालन) के काममें लावे। चमेलीके पत्र मंजिष्ठ दारुहल्दी सुपारी छोंकर आंवला मुलहटी इनको समान भाग लेकर इनका क्वाथ बना शहद मिलाकर मुखव्रण और कण्ठव्रणके अथवा कण्ठरोगकी निवृत्तिके अर्थ गंडूष (गरारह) करावे । गवेधु धान्य मुलहटी इनका क्वाथ बनाकर नेत्रोंको सेचन करनेसे मसूरिका रोगसे दूषित हुए नेत्र आरोग्य होते हैं । मुलहटी त्रिफला मूर्वा दारुहल्दी नीलकमल (नीलोफर) खस लोध मंजीठ इनका लेप करनेसे मसूरिका रोगसे पीडित नेत्र आरोग्य हो जाते हैं और मसूरिकाकी बाधा नहीं रहती । लसोडाके वृक्षकी छालका लेप और अंजन लगानेसे नेत्र आरोग्य हो जाते हैं । और मसूरिकाओंमेंसे क्लेद स्राव होता हो तो उस पर पंचवल्कलका चूर्ण करके बुर्के अथवा विसर्प रोगके अधिकारमें दशाङ्ग लेप लिखा गया है उसका सूक्ष्म चूर्ण करके बुर्के तो स्राव बन्द होय । मसूरिकाकी पिडिकाओंमें दुष्ट कृमी पड जानेके भयसे सरलादि औषध अथवा (गूगल चन्दन कूंदरूगोंद इसिस् लोहवान बालछड वच कूट इनमेंसे जितनी औषध समय पर प्राप्त हो सके धूप बनाकर मसूरिका रोगीके रहनेके स्थानमें देना चाहिये । वेदना और दाहकी शान्तिके लिये अथवा स्राव होती हुई मसूरिकाओंको शुद्ध करनेके लिये अष्टाङ्गावलेह जो पीछे लिखा गया है, अथवा अदरखादिका कवल धारण करना चाहिये । हल्दी, दारुहल्दी, खस, शिरस, नागरमोथा, लोध, चन्दन, नागकेशर इनको समान भाग लेकर एकत्र पीस कर लेप करनेसे स्वेद, विस्फोटक, विसर्प, कुष्ट, दुर्गन्ध, रोमान्तिक, मसूरिका सब नष्ट होते हैं । नीमकी

छाल ववूलकी छाल अशोकवृक्षकी छाल कन्दूरी वेंतकी छाल इनको समान भाग लेकर इनका काथ वनाकर शृत शीतल करके स्रावको धोनेके लिये प्रयोग करे ।

दार्वी घृत प्रयोग ।

कृत्वा दार्वीकषायञ्च कल्कैरेभिः पचेद् घृतम् । दशमूलबलापथ्या-कुष्ठरास्नाविभीतकैः ॥ दार्वीत्वग्नक्तमालैश्च समञ्जिष्ठैः सुपेषितैः । अपक्वाः पाचयत्याशु पक्वाश्चैव विशोधयेत् ॥ क्षुद्रास्तु शमयत्येतत्सेकादपि मसूरिकाः ॥ मसूरीषु प्रयुञ्जीत गौराद्यं पञ्चकं तथा ॥

अर्थ—प्रथम दारुहल्दीका काथ वनाकर तैयार करे दशमूल खरैटी हरडकी छाल कूट रास्ना वहेडाकी छाल दारुहल्दीकी छाल करंजुआकी छाल मजीठ इनका कल्क वना कर उपरोक्त काथमें मिलावे और गोघृत मिलाकर घृतपाककी विधिसे घृतको पकावे । जव घृत सिद्ध हो जावे तव छान कर भर लेवे । इस घृतको सेचनादि कर्म्मोंनें प्रयोग करे इस घृतके प्रतापसे अपक्व मसूरिका पक जाती है और पक होकर शुद्ध हो जाती हैं एवं क्षुद्र मसूरिकाभी नष्ट हो जाती हैं । विसर्प व्याधिके अधि-कारमें गौराद्यघृत और विस्फोटक व्याधिके अधिकारमें महा पञ्चक घृतका प्रयोग कथन किया है उसको मसूरिका रोगमें उपचार करे । कभी २ ऐसा देखा गया है कि मसूरिका व्याधिमेंसे दुष्टव्रण उत्पन्न हो जाते हैं उनका उत्तम उपाय यही है कि (दुष्टव्रणेषु तेष्वेव जलौकाभिर्हरेदसृक्) मसूरिकामेंसे दुष्टव्रण उत्पन्न हो जायँ तो जोंक लगाकर उसका दूषित रक्त निकाल देवे । और व्रणके समान उपचार करे ।

यूनानीतिव्वसे चेचक खसरा ज्वर ।

चेचक खसरा फफोले (विस्फोटक) यह तीनों मर्ज इन्सानके चमडेमें उत्पन्न होते हैं । और ये खूनके उवलनेसे उत्पन्न होते हैं । चाहे इस खूनका उवाल तवी-यतके कारणसे होय जैसे वाल्यावस्थामें खूनके पकनेसे उत्पन्न होता है । क्योंकि वाल्यावस्थामें खून कच्चा और तर होता है । और तर गर्म चीजका पकना और उसकी दशाका वदलना विना इस वातके उचित नहीं कि उवल जाय और जव खून उवलने लगता है तो वहुधा यह होता है कि चमडेमें फुंसियां उत्पन्न होती हैं और ऐसी दशा कम देखी जाती है कि जव खून उवलने और पक जाय तो चमडे पर कोई फुंसी न निकले जैसा कि वाल्यावस्थामें कुछ लडकोंमें देखा जाता है और प्रत्येक वालकके खूनका उवलना प्राकृतिक विधिके नियमानुसार होय जैसा कि वलवान शरीरमें वाहरी अथवा भीतरी कारणोंके निमित्तसे दोषोंका